

OSHO



महावीर वाणी

ओशो

प्रवचन-क्रम

1. मंत्र: दिव्य-लोक की कुंजी (पंच-नमोकार-सूत्र).....	3
2. मंगल व लोकोत्तर की भावना (मंगल-भाव-सूत्र).....	17
3. शरणागति: धर्म का मूल आधार (शरणागति-सूत्र).....	34
4. धर्म: स्वभाव में होना (धम्म-सूत्र).....	48
5. अहिंसा: जीवेषणा की मृत्यु (धम्म-सूत्र: 1 (अहिंसा)).....	65
6. संयम: मध्य में रुकना (धम्म-सूत्र: 2 (संयम))	81
7. संयम की विधायक दृष्टि (धम्म-सूत्र).....	98
8. तप: ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन (धम्म-सूत्र).....	114
9. तप: ऊर्जा-शरीर का अनुभव (धम्म-सूत्र)	130
10. अनशन: मध्य के क्षण का अनुभव (धम्म-सूत्र).....	145
11. ऊणोदरी एवं वृत्ति-संक्षेप (धम्म-सूत्र)	163
12. रस-परित्याग और काया-क्लेश (धम्म-सूत्र).....	180
13. संलीनता: अंतर-तप का प्रवेश-द्वार (धम्म-सूत्र).....	197
14. प्रायश्चित्त: पहला अंतर तप (धम्म-सूत्र).....	211
15. विनय: परिणति निर-अहंकारिता की (धम्म-सूत्र)	230
16. वैयावृत्य और स्वाध्याय (धम्म-सूत्र).....	248
17. सामायिक: स्वभाव में ठहर जाना (धम्म-सूत्र)	264
18. कायोत्सर्ग: शरीर से विदा लेने की क्षमता (धम्म सूत्र)	280
19. धर्म: एक मात्र शरण (धम्म सूत्र: 2)	296
20. धर्म का मार्ग : सत्य का सीधा साक्षात् (धम्म सूत्र: 3)	311
21. सत्य सदा सार्वभौम है (सत्य-सूत्र).....	326
22. कामवासना है दूसरे की खोज (ब्रह्मचर्य-सूत्र: 1).....	344

23. ब्रह्मचर्यः कामवासना से मुक्ति (ब्रह्मचर्य-सूत्रः 2).....	360
24. संग्रहः अंदर के लोभ की झलक (अपरिग्रह-सूत्र)	376
25. अरात्रि भोजनः शरीर-ऊर्जा का संतुलन (अरात्रि-भोजन-सूत्र).....	393
26. विनय शिष्य का लक्षण है (विनय-सूत्र).....	411
27. मनुष्यत्वः बढ़ते हुए होश की धारा (चतुरंगीय-सूत्र).....	432

मंत्र: दिव्य-लोक की कुंजी (पंच-नमोकार-सूत्र)

नमो अरिहंताणं।
 नमो सिद्धाणं।
 नमो आयरियाणं।
 नमो उवज्झायाणं।
 नमो लोए सव्वसाहूणं।
 एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
 मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

अरिहंतों (अर्हंतों) को नमस्कार। सिद्धों को नमस्कार। आचार्यों को नमस्कार। उपाध्यायों को नमस्कार। लोक संसार में सर्व साधुओं को नमस्कार। ये पांच नमस्कार सर्व पापों के नाशक हैं और सर्व मंगलों में प्रथम मंगल रूप हैं।

जैसे सुबह सूरज निकले और कोई पक्षी आकाश में उड़ने के पहले अपने घोंसले के पास परों को तौले, सोचे, साहस जुटाए; या जैसे कोई नदी सागर में गिरने के करीब हो, स्वयं को खोने के निकट, पीछे लौट कर देखे, सोचे क्षण भर, ऐसा ही महावीर की वाणी में प्रवेश के पहले दो क्षण सोच लेना जरूरी है।

जैसे पर्वतों में हिमालय है या शिखरों में गौरीशंकर, वैसे ही व्यक्तियों में महावीर हैं। बड़ी है चढ़ाई। जमीन पर खड़े होकर भी गौरीशंकर के हिमाच्छादित शिखर को देखा जा सकता है। लेकिन जिन्हें चढ़ाई करनी हो और शिखर पर पहुंच कर ही शिखर को देखना हो, उन्हीं बड़ी तैयारी की जरूरत है। दूसरे से भी देख सकते हैं महावीर को, लेकिन दूर से जो परिचय होता है वह वास्तविक परिचय नहीं है। महावीर में तो छलांग लगा कर ही वास्तविक परिचय पाया जा सकता है। उस छलांग के पहले जो जरूरी है वे कुछ बातें आपसे कहूं।

बहुत बार ऐसा होता है कि हमारे हाथ में निष्पत्तियां रह जाती हैं, कनक्लूजंस रह जाते हैं--प्रक्रियाएं खो जाती हैं। मंजिल रह जाती है, रास्ते खो जाते हैं। शिखर तो दिखाई पड़ता है, लेकिन वह पगडंडी दिखाई नहीं पड़ती जो वहां तक पहुंचा दे। ऐसा ही यह नमोकार मंत्र भी है। यह निष्पत्ति है। इसे पच्चीस सौ वर्ष से लोग दोहराने चले आ रहे हैं। यह शिखर है, लेकिन पगडंडी जो इस नमोकार मंत्र तक पहुंचा दे, वह न मालूम कब की खो गई है।

इसके पहले कि हम मंत्र पर बात करें, उस पगडंडी पर थोड़ा सा मार्ग साफ कर लेना उचित होगा। क्योंकि जब तक प्रक्रिया न दिखाई पड़े तब तक निष्पत्तियां व्यर्थ हैं। और जब तक मार्ग न दिखाई पड़े, तब तक मंजिल बेबूझ होती है। और जब तक सीढ़ियां न दिखाई पड़ें, तब तक दूर दिखते हुए शिखरों का कोई भी मूल्य नहीं--वे स्वप्नवत हो जाते हैं। वे हैं भी या नहीं, इसका भी निर्णय नहीं किया जा सकता। कुछ दो-चार मार्गों से नमोकार के रास्ते को समझ लें।

उन्नीस सौ सैंतीस में, तिब्बत और चीन के बीच बोकान पर्वत की एक गुफा में सात सौ साल के रिकार्ड मिले हैं--पत्थर के। और वे रिकार्ड हैं महावीर से दस हजार साल पुराने यानी आज से कोई साढ़े बारह हजार पुराने। बड़े आश्चर्य के हैं, क्योंकि वे रिकार्ड ठीक वैसे ही हैं जैसे ग्रामोफोन का रिकार्ड होता है। ठीक उनके बीच में एक छेद है, और पत्थर पर गूँज हैं--जैसे कि ग्रामोफोन के रिकार्ड पर होते हैं। अब तक राज नहीं खोला जा सका है कि वे किस यंत्र पर बजाए जा सकेंगे। लेकिन एक बात तय हो गई है--रूस के एक बड़े वैज्ञानिक डाक्टर

सर्जिएव ने वर्षों तक मेहनत करके यह प्रमाणित किया है कि वे हैं तो रिकार्ड ही। किस यंत्र पर और किस सुई के माध्यम से वे पुनरुज्जीवित हो सकेंगे, यह अभी तय नहीं हो सका। अगर एकाध पत्थर का टुकड़ा होता तो सांयोगिक भी हो सकता था। सात सौ सोलह हैं। सब एक जैसे, जिनमें बीच में छेद हैं। सब पर गूँज हैं और उनकी पूरी तरह सफाई, धूल-धवांस जब अलग कर दी गई और जब विद्युत यंत्रों से उनकी परीक्षा की गई तब बड़ी हैरानी हुई, उनसे प्रतिपल विद्युत की किरणें विकीर्णित हो रही हैं।

लेकिन क्या आदमी के पास आज से बारह हजार साल पहले ऐसी कोई व्यवस्था थी कि वह पत्थरों में कुछ रिकार्ड कर सके? तब तो हमें सारा इतिहास और ढंग से लिखना पड़ेगा।

जापान के एक पर्वत शिखर पर पच्चीस हजार वर्ष पुरानी मूर्तियों का एक समूह है। वे मूर्तियाँ "डोबू" कहलाती हैं। उन मूर्तियों ने बहुत हैरानी खड़ी कर दी, क्योंकि अब तक उन मूर्तियों को समझना संभव नहीं था—लेकिन अब संभव हुआ। जिस दिन हमारे यात्री अंतरिक्ष में गए उसी दिन डोबू मूर्तियों का रहस्य खुल गया; क्योंकि डोबू मूर्तियाँ उसी तरह के वस्त्र पहने हुए हैं जैसे अंतरिक्ष का यात्री पहनता है। अंतरिक्ष में यात्रियों ने, रूसी या अमरीकी एस्ट्रोनाट्स ने जिन वस्तुओं का उपयोग किया है, वे ही उन मूर्तियों के ऊपर हैं, पत्थर में खुदे हुए। वे मूर्तियाँ पच्चीस हजार साल पुरानी हैं। और अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है मानने का कि पच्चीस हजार साल पहले आदमी ने अंतरिक्ष की यात्रा की है या अंतरिक्ष के किन्हीं और ग्रहों से आदमी जमीन पर आता रहा है।

आदमी जो आज जानता है, वह पहली बार जान रहा है, ऐसी भूल में पड़ने का अब कोई कारण नहीं है। आदमी बहुत बार जान लेता है और भूल जाता है। बहुत बार शिखर छू लिए गए हैं और खो गए हैं। सभ्यताएं उठती हैं और आकाश को छूती हैं लहरों की तरह और विलीन हो जाती है। जब भी कोई लहर आकाश को छूती है तो सोचती है: उसके पहले किसी और लहर ने आकाश को नहीं छुआ होगा।

महावीर एक बहुत बड़ी संस्कृति के अंतिम व्यक्ति हैं, जिस संस्कृति का विस्तार कम से कम दस लाख वर्ग है। महावीर जैन विचार और परंपरा के अंतिम तीर्थंकर हैं—चौबीसवें। शिखर की, लहर की आखिरी ऊंचाई। और महावीर के बाद वह लहर और वह सभ्यता और वह संस्कृति सब बिखर गई। आज उन सूत्रों को समझना कठिन है; क्योंकि वह पूरा का पूरा "मिल्यू", वह वातावरण जिसमें वे सूत्र सार्थक थे, आज कहीं भी नहीं है।

ऐसा समझें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाए, याददाश्त रह जाएगी। वह याददाश्त हजारों साल तक चलेगी और बच्चे हंसेंगे, वे कहेंगे कि कहां है हवाई जहाज, जिनकी तुम बात करते हो? ऐसा मालूम होता है कहानियाँ हैं, पुराण-कथाएं हैं, "मिथ" हैं।

जैन चौबीस तीर्थंकरों की ऊंचाई—शरीर की ऊंचाई—बहुत काल्पनिक मालूम पड़ती है। उनमें महावीर भर की ऊंचाई आदमी की ऊंचाई है, बाकी तेईस तीर्थंकर बहुत ऊंचे हैं, जैसे-जैसे जमीन सिकुड़ती गई है, वैसे-वैसे जमीन पर ग्रेवीटेशन, गुरुत्वाकर्षण भारी होता गया है। और जिस मात्रा में गुरुत्वाकर्षण भारी होता है, लोगों की ऊंचाई कम होती चली जाती है। आपकी दीवाल की छत पर छिपकली चलती है, आप कभी सोच नहीं सकते कि छिपकली आज से दस लाख साल पहले हाथी से बड़ा जानवर थी। वह अकेली बची है, उसकी जाति के सारे जानवर खो गए।

उतने बड़े जानवर अचानक क्यों खो गए? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जमीन के गुरुत्वाकर्षण में कोई राज छिपा हुआ मालूम पड़ता है। अगर गुरुत्वाकर्षण और सघन होता गया तो आदमी और छोटा होता चला जाएगा। अगर आदमी चांद पर रहने लगे तो आदमी की ऊंचाई चौगुनी हो जाएगी, क्योंकि चांद पर चौगुना कम है गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से। अगर हमने कोई और तारे और ग्रह खोज लिए जहां गुरुत्वाकर्षण और कम हो तो ऊंचाई और बड़ी हो जाएगी। इसलिए आज एकदम कथा कह देनी बहुत कठिन है।

नमोकार को जैन परंपरा ने महामंत्र कहा है। पृथ्वी पर दस-पांच ऐसे मंत्र हैं जो नमोकार की हैसियत के हैं। असल में प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र अनिवार्य है, क्योंकि उसके इर्द-गिर्द ही उसकी सारी व्यवस्था, सारा भवन निर्मित होता है।

ये महामंत्र करते क्या हैं, इनका प्रयोजन क्या है, इनसे क्या फलित हो सकता है? आज साउंड इलेक्ट्रानिक्स, ध्वनि-विज्ञान बहुत से नये तथ्यों के करीब पहुंच रहा है। उसमें एक तथ्य यह है कि इस जगत में पैदा की गई कोई भी ध्वनि कभी भी नष्ट नहीं होती--इस अनंत आकाश में संगृहीत होती चली जाती है। ऐसा समझें कि जैसे आकाश भी रिकार्ड करता है, आकाश पर भी किसी सूक्ष्म तल पर अगूँज बन जाते हैं। इस पर रूस में इधर पंद्रह वर्षों से बहुत काम हुआ है। उस काम पर दो-तीन बातें ख्याल में ले लेंगे तो आसानी हो जाएगी।

अगर एक सदभाव से भरा हुआ व्यक्ति, मंगलकामना से भरा हुआ व्यक्ति आंख बंद करके अपने हाथ में जल से भरी हुई एक मटकी ले ले और कुछ क्षण सदभावों से भरा हुआ उस जल की मटकी को हाथ में लिए रहे--तो रूसी वैज्ञानिक कामेनिएव और अमरीकी वैज्ञानिक डा.रुडोल्फ किर, इन दो व्यक्तियों ने बहुत से प्रयोग करके यह प्रमाणित किया है कि वह जल गुणात्मक रूप से परिवर्तित हो जाता है। केमिकली कोई फर्क नहीं होता। उस भली भावनाओं से भरे हुए, मंगल-आकांक्षाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में जल का स्पर्श जल में कोई केमिकल, कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं करता, लेकिन उस जल में फिर भी कोई गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है। और वह जल अगर बीजों पर छिड़का जाए तो वे जल्दी अंकुरित होते हैं, साधारण जल की बजाय। उनमें बड़े फूल आते हैं, बड़े फल लगते हैं। वे पौधे ज्यादा स्वस्थ होते हैं, साधारण जल की बजाय।

कामेनिएव ने साधारण जल भी उन्हीं बीजों पर, वैसी ही भूमि में छिड़का है और यह विशेष जल भी। और रुग्ण, विक्षिप्त, निगेटिव इमोशंस से भरे हुए व्यक्ति, निषेधात्मक भाव से भरे हुए व्यक्ति, हत्या का विचार करने वाले, दूसरे को नुकसान पहुंचाने का विचार करने वाला, अमंगल की भावनाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में दिया गया जल भी बीजों पर छिड़का है--या तो वे बीज अंकुरित ही नहीं होते, या अंकुरित होते हैं तो रुग्ण अंकुरित होते हैं।

पंद्रह वर्ष हजारों प्रयोगों के बाद यह निष्पत्ति ली जा सकी कि जल में अब तक हम सोचते थे केमिस्ट्री ही सब कुछ है, लेकिन केमिकली तो कोई फर्क नहीं होता, रासायनिक रूप से तीनों जलों में कोई फर्क नहीं होता, फिर भी कोई फर्क होता है; वह फर्क क्या है? और वह फर्क जल में कहां से प्रवेश करता है? निश्चित ही वह फर्क, अब तक जो भी हमारे पास उपकरण हैं, उनसे नहीं जांचा जा सकता। लेकिन वह फर्क होता है, यह परिणाम से सिद्ध होता है। क्योंकि तीनों जलों का आत्मिक रूप बदल जाता है। केमिकल रूप तो नहीं बदलता, लेकिन तीनों जलों की आत्मा में कुछ रूपांतरण हो जाता है।

अगर जल में यह रूपांतरण हो सकता है तो हमारे चारों ओर फैले हुए आकाश में भी हो सकता है। मंत्र की प्राथमिक आधारशिला यही है। मंगल भावनाओं से भरा हुआ मंत्र, हमारे चारों ओर के आकाश में गुणात्मक अंतर पैदा करता है। क्वालिटेटिव ट्रांसफार्मेशन करता है। और उस मंत्र से भरा हुआ व्यक्ति जब आपके पास से भी गुजरता है, तब भी वह अलग तरह के आकाश से गुजरता है। उसके चारों तरफ शरीर के आस-पास एक भिन्न तरह का आकाश, ए डिफरेंट क्वालिटी ऑफ स्पेस पैदा हो जाती है।

एक दूसरे रूसी वैज्ञानिक किरलियान ने हाई फ्रिक्वेंसी फोटोग्राफी विकसित की है। वह शायद आने वाले भविष्य में सबसे अनूठा प्रयोग सिद्ध होगा। अगर मेरे हाथ का चित्र लिया जाए, हाई फ्रिक्वेंसी फोटोग्राफी से, जो कि बहुत संवेदनशील प्लेट्स पर होती है, तो मेरे हाथ का चित्र सिर्फ नहीं आता, मेरे हाथ के आस-पास जो किरणें मेरे हाथ से निकल रही हैं, उनका चित्र भी आता है। और आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर मैं निषेधात्मक विचारों से भरा हुआ हूं तो मेरे हाथ के आस-पास जो विद्युत-पैटर्न, जो विद्युत के जाल का चित्र

आता है, वह रुग्ण, बीमार, अस्वस्थ और केआटिक, अराजक होता है--विक्षिप्त होता है। जैसे किसी पागल आदमी ने लकीरें खींची हों। अगर मैं शुभ भावनाओं से, मंगल-भावनाओं से भरा हुआ हूं, आनंदित हूं, पाजिटिव हूं, प्रफुल्लित हूं, प्रभु के प्रति अनुग्रह से भरा हुआ हूं, तो मेरे हाथ के आस-पास जो किरणों का चित्र आता है, किरलियान की फोटोग्राफी से, वह रिदमिक, लयबद्ध, सुंदर, सिमिट्रिकल, सानुपातिक, और एक और ही व्यवस्था में निर्मित होता है।

किरलियान का कहना है--और किरलियान का प्रयोग तीस वर्षों की मेहनत है--किरलियान का कहना है कि बीमारी के आने के छह महीने पहले शीघ्र ही हम बताने में समर्थ हो जाएंगे कि यह आदमी बीमार होनेवाला है। क्योंकि इसके पहले कि शरीर पर बीमारी उतरे, वह जो विद्युत का वर्तुल है उस पर बीमारी उतर जाती है। मरने के पहले, इसके पहले कि आदमी मरे, वह विद्युत का वर्तुल सिकुड़ना शुरू हो जाता है और मरना शुरू हो जाता है। इसके पहले कि कोई आदमी हत्या करे किसी की, उस विद्युत के वर्तुल में हत्या के लक्षण शुरू हो जाते हैं। इसके पहले कि कोई आदमी किसी के प्रति करुणा से भरे, उस विद्युत के वर्तुल में करुणा प्रवाहित होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।

किरलियान का कहना है कि कैंसर पर हम तभी विजय पा सकेंगे जब शरीर को पकड़ने के पहले हम कैंसर को पकड़ लें। और यह पकड़ा जा सकेगा। इसमें कोई विधि की भूल अब नहीं रह गई है। सिर्फ प्रयोगों के और फैलाव की जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य अपने आस-पास एक आभामंडल लेकर, एक आरा लेकर चलता है। आप अकेले ही नहीं चलते, आपके आस-पास एक विद्युत-वर्तुल, एक इलेक्ट्रो डाइनैमिक फील्ड प्रत्येक व्यक्ति के आस-पास चलता है। व्यक्ति के आस-पास ही नहीं, पशुओं के आस-पास भी, पौधों के आस-पास भी। असल में रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि जीव और अजीव में एक ही फर्क किया जा सकता है, जिसके आस-पास आभामंडल है वह जीवित है और जिसके पास आभामंडल नहीं है, वह मृत है।

जब आदमी मरता है तो मरने के साथ ही आभामंडल क्षीण होना शुरू हो जाता है। बहुत चकित करने वाली और संयोग की बात है कि जब कोई आदमी मरता है तो तीन दिन लगते हैं उसके आभामंडल के विसर्जित होने में। हजारों साल से सारी दुनिया में मरने के बाद तीसरे दिन का बड़ा मूल्य रहा है। जिन लोगों ने उस तीसरे दिन को--तीसरे को इतना मूल्य दिया था, उन्हें किसी न किसी तरह इस बात का अनुभव होना ही चाहिए, क्योंकि वास्तविक मृत्यु तीसरे दिन घटित होती है। इन तीन दिनों के बीच, किसी भी दिन वैज्ञानिक उपाय खोज लेंगे, तो आदमी को पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। जब तक आभामंडल नहीं खो गया, तब तक जीवन अभी शेष है। हृदय की धड़कन बंद हो जाने से जीवन समाप्त नहीं होता। इसलिए पिछले महायुद्ध में रूस में छह व्यक्तियों को हृदय की धड़कन बंद हो जाने के बाद पुनरुज्जीवित किया जा सका। जब तक आभामंडल चारों तरफ है, तब तक व्यक्ति सूक्ष्म तल पर अभी भी जीवन में वापस लौट सकता है। अभी सेतु कायम है। अभी रास्ता बना है वापस लौटने का।

जो व्यक्ति जितना जीवंत होता है, उसके आस-पास उतना बड़ा आभामंडल होता है। हम महावीर की मूर्ति के आस-पास एक आभामंडल निर्मित करते हैं--या कृष्ण, या राम, क्राइस्ट के आस-पास--तो वह सिर्फ कल्पना नहीं है। वह आभामंडल देखा जा सकता है। और अब तक तो केवल वे ही देख सकते थे जिनके पास थोड़ी गहरी और सूक्ष्म दृष्टि हो--मिस्टिक्स, संत; लेकिन उन्नीस सौ तीस में एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने अब तो केमिकल, रासायनिक प्रक्रिया निर्मित कर दी है जिससे प्रत्येक व्यक्ति--कोई भी--उस माध्यम से, उस यंत्र के माध्यम से दूसरे के आभामंडल को देख सकता है।

आप सब यहां बैठे हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी आभामंडल है। जैसे आपके अंगूठे की छाप निजी-निजी है वैसे ही आपका आभामंडल भी निजी है। और आपका आभामंडल आपके संबंध में वह सब कुछ कहता है जो आप भी नहीं जानते। आपका आभामंडल आपके संबंध में बातें भी कहता है जो भविष्य में घटित होंगी।

आपका आभामंडल वे बातें भी कहता है जो अभी आपके गहन अचेतन में निर्मित हो रही हैं, बीज की भांति, कल खिलेंगी और प्रकट होंगी।

मंत्र आभामंडल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है। आपके आस-पास की स्पेस, और आपके आस-पास का इलेक्ट्रो डाइनैमिक फील्ड बदलने की प्रक्रिया है। और प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र है। जैन परंपरा के पास नमोकार है--आश्चर्यकारक घोषणा--एसो पंच नमुक्कारो, सब्बपावप्पणासणो। सब पाप का नाश कर दे, ऐसा महामंत्र है नमोकार। ठीक नहीं लगता। नमोकार से कैसे पाप नष्ट हो जाएगा? नमोकार से सीधा पाप नष्ट नहीं होता, लेकिन नमोकार से आपके आस-पास इलेक्ट्रो डाइनैमिक फील्ड रूपांतरित होता है और पाप करना असंभव हो जाता है। क्योंकि पाप करने के लिए आपके पास एक खास तरह का आभामंडल चाहिए। अगर इस मंत्र को सीधा ही सुनेंगे तो लगेगा कैसे हो सकता है? एक चोर यह मंत्र पढ़ लेगा तो क्या होगा? एक हत्यारा यह मंत्र पढ़ लेगा तो क्या होगा? कैसे पाप नष्ट हो जाएगा? पाप नष्ट होता है इसलिए, कि जब आप पाप करते हैं, उसके पहले आपके पास एक विशेष तरह का, पाप का आभामंडल चाहिए--उसके बिना आप पाप नहीं कर सकते--वह आभामंडल अगर रूपांतरित हो जाए तो असंभव हो जाएगी बात, पाप करना असंभव हो जाएगा।

यह नमोकार कैसे उस आभामंडल को बदलता होगा? यह नमस्कार है, यह नमन का भाव है। नमन का अर्थ है समर्पण। यह शाब्दिक नहीं है। यह नमो अरिहंताणं, यह अरिहंतों को नमस्कार करता हूं, यह शाब्दिक नहीं है, ये शब्द नहीं हैं, यह भाव है। अगर प्राणों में यह भाव सघन हो जाए कि अरिहंतों को नमस्कार करता हूं, तो इसका अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ होता है जो जानते हैं उनके चरणों में सिर रखता हूं। जो पहुंच गए हैं, उनके चरणों में समर्पित करता हूं। जो पा गए हैं, उनके द्वार पर मैं भिखारी बनकर खड़ा होने को तैयार हूं।

किरलियान की फोटोग्राफी ने यह भी बताने की कोशिश की है कि आपके भीतर जब भाव बदलते हैं तो आपके आस-पास का विद्युत-मंडल बदलता है। और अब तो ये फोटोग्राफ उपलब्ध हैं। अगर आप अपने भीतर विचार कर रहे हैं चोरी करने का, तो आपका आभामंडल और तरह का हो जाता है--उदास, रुग्ण, खूनी रंगों से भर जाता है। आप किसी को, गिर गए को उठाने जा रहे हैं--आपके आभामंडल के रंग तत्काल बदल जाते हैं।

रूस में एक महिला है, नेल्या माइखालोवा। इस महिला ने पिछले पंद्रह वर्षों में रूस में आमूल क्रांति खड़ी कर दी है। और आपको यह जान कर हैरानी होगी कि मैं रूस के इन वैज्ञानिकों के नाम क्यों ले रहा हूं। कुछ कारण हैं। आज से चालीस साल पहले अमरीका के एक बहुत बड़े प्रोफेट एडगर केयसी ने, जिसको अमरीका का स्लिपिंग प्रोफेट कहा जाता है; जो कि सो जाता था गहरी तंद्रा में, जिसे हम समाधि कहें, और उसमें वह जो भविष्यवाणियां करता था वह अब तक सभी सही निकली हैं। उसने थोड़ी भविष्यवाणियां नहीं कीं, दस हजार भविष्यवाणियां कीं। उसकी एक भविष्यवाणी चालीस साल पहले की है--उस वक्त तो सब लोग हैरान हुए थे--उसने यह भविष्यवाणी की थी कि आज से चालीस साल बाद धर्म का एक नवीन वैज्ञानिक आविर्भाव रूस से प्रारंभ होगा। रूस से? और एडगर केयसी ने चालीस साल पहले कहा, जब कि रूस में तो धर्म नष्ट किया जा रहा था, चर्च गिराए जा रहे थे, मंदिर हटाए जा रहे थे, पादरी-पुरोहित साइबेरिया भेजे जा रहे थे। उन क्षणों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि रूस में जन्म होगा। रूस अकेली भूमि थी उस समय जमीन पर जहां धर्म पहली दफे व्यवस्थित रूप से नष्ट किया जा रहा था, जहां पहली दफा नास्तिकों के हाथ में सत्ता थी। पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में जहां पहली बार नास्तिकों ने एक संगठित प्रयास किया था--आस्तिकों के संगठित प्रयास तो होते रहे हैं। और केयसी की यह घोषणा कि चालीस साल बाद रूस से जन्म होगा!

असल में जैसे ही रूस पर नास्तिकता अति आग्रहपूर्ण हो गई तो जीवन का एक नियम है कि जीवन एक तरह का संतुलन निर्मित करता है। जिस देश में बड़े नास्तिक पैदा होने बंद हो जाते हैं, उस देश में बड़े आस्तिक भी पैदा होने बंद हो जाते हैं। जीवन एक संतुलन है। और जब रूस में इतनी प्रगाढ़ नास्तिकता थी तो अंडरग्राउंड, छिपे मार्गों से आस्तिकता ने पुनः आविष्कार करना शुरू कर दिया। स्टैलिन के मरने तक सारी

खोज-बीन छिप कर चलती थी, स्टैलिन के मरने के बाद वह खोज-बीन प्रकट हो गई। स्टैलिन खुद भी बहुत हैरान था। वह मैं बात आपसे करूंगा।

यह माइखालोवा पंद्रह वर्ष से रूस में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है। क्योंकि माइखालोवा सिर्फ ध्यान से किसी भी वस्तु को गतिमान कर पाती है। हाथ से नहीं, शरीर के किसी प्रयोग से नहीं। वहां दूर, छह फीट दूर रखी हुई कोई भी चीज, माइखालोवा सिर्फ उस पर एकाग्र चित्त होकर उसे गतिमान--या तो अपने पास खींच पाती है, वस्तु चलना शुरू कर देती है, या अपने से दूर हटा पाती है, या मैग्नेटिक नीडल लगी हो तो उसे घुमा पाती है, या घड़ी हो तो उसके कांटे को तेजी से चक्कर दे पाती है, या घड़ी हो तो बंद कर पाती है--सैकड़ों प्रयोग। लेकिन एक बहुत हैरानी की बात है कि अगर माइखालोवा प्रयोग कर रही हो और आस-पास संदेहशील लोग हों तो उसे पांच घंटे लग जाते हैं, तब वह हिला पाती है। अगर आस-पास मित्र हों, सहानुभूतिपूर्ण हों, तो वह आधे घंटे में हिला पाती है। अगर आस-पास श्रद्धा से भरे लोग हों तो पांच मिनट में। और एक मजे की बात है कि जब उसे पांच घंटे लगते हैं किसी वस्तु को हिलाने में तो उसका कोई दस पौंड वजन कम हो जाता है। जब उसे आधा घंटा लगता है तो कोई तीन पौंड वजन कम होता है। और जब पांच मिनट लगते हैं तो उसका वजन कम नहीं होता है।

ये पंद्रह सालों में बड़े वैज्ञानिक प्रयोग किए गए हैं। दो नोबल प्राइज विनर वैज्ञानिक डाक्टर वासीलियेव और कामेनियेव और चालीस और चोटी के वैज्ञानिकों ने हजारों प्रयोग करके इस बात की घोषणा की है कि माइखालोवा जो कर रही है, वह तथ्य है। और अब उन्होंने यंत्र विकसित किए हैं जिनके द्वारा माइखालोवा के आस-पास क्या घटित होता है, वह रिकार्ड हो जाता है। तीन बातें रिकार्ड होती हैं। एक तो जैसे ही माइखालोवा ध्यान एकाग्र करती है, उसके आस-पास का आभामंडल सिकुड़ कर एक धारा में बहने लगता है--जिस वस्तु के ऊपर वह ध्यान करती है, जैसे लेसर रे की तरह, एक विद्युत की किरण की तरह संगृहीत हो जाता है। और उसके चारों तरफ किरलियान फोटोग्राफी से, जैसे कि समुद्र में लहरें उठती हैं, ऐसा उसका आभामंडल तरंगित होने लगता है। और वे तरंगें चारों तरफ फैलने लगती हैं। उन्हीं तरंगों के धक्के से वस्तुएं हटती हैं या पास खींची जाती हैं। सिर्फ भाव मात्र--उसका भाव कि वस्तु मेरे पास आ जाए, वस्तु पास आ जाती है। उसका भाव कि दूर हट जाए, वस्तु दूर चली जाती है।

इससे भी हैरानी की बात जो तीसरी है वह यह कि रूसी वैज्ञानिकों का ख्याल है कि यह जो एनर्जी है, यह चारों तरफ जो ऊर्जा फैलती है, इसे संगृहीत किया जा सकता है, इसे यंत्रों में संगृहीत किया जा सकता है। निश्चित ही जब एनर्जी है तो संगृहीत की जा सकती है। कोई भी ऊर्जा संगृहीत की जा सकती है। और इस प्राण-ऊर्जा का, जिसको योग "प्राण" कहता है, यह ऊर्जा अगर यंत्रों में संगृहीत हो जाए, तो उस समय जो मूलभाव था व्यक्ति का, वह गुण उस संगृहीत शक्ति में भी बना रहता है।

जैसे, माइखालोवा अगर किसी वस्तु को अपनी तरफ खींच रही है, उस समय उसके शरीर से जो ऊर्जा गिर रही है--जिसमें कि उसका तीन पौंड या दस पौंड वजन कम हो जाएगा--वह ऊर्जा संगृहीत की जा सकती है। ऐसे रिसेप्टिव यंत्र तैयार किए गए हैं कि वह ऊर्जा उन यंत्रों में प्रविष्ट हो जाती है और संगृहीत हो जाती है। फिर यदि उस यंत्र को इस कमरे में रख दिया जाए और आप कमरे के भीतर आए तो वह यंत्र आपको अपनी तरफ खींचेगा। आपका मन होगा कि पास जाएं--यंत्र के, आदमी वहां नहीं है। और अगर माइखालोवा किसी वस्तु को दूर हटा रही थी और शक्ति संगृहीत की है, तो आप इस कमरे में आएंगे और तत्काल बाहर भागने का मन होगा।

क्या भाव शक्ति में इस भांति प्रविष्ट हो जाते हैं?

मंत्र की यही मूल आधारशिला है। शब्द में, विचार में, तरंग में भाव संगृहीत और समाविष्ट हो जाते हैं। जब कोई व्यक्ति कहता है--नमो अरिहंताणं, मैं उन सबको जिन्होंने जीता और जाना अपने को, उनकी शरण में छोड़ता हूं, तब उसका अहंकार तत्काल विगलित होता है। और जिन-जिन लोगों ने उस जगत में अरिहंतों की

शरण में अपने को छोड़ा है, उस महाधारा में उसकी शक्ति सम्मिलित होती है। उस गंगा में वह भी एक हिस्सा हो जाता है। और इस चारों तरफ आकाश में, इस अरिहंत के भाव के आस-पास जो गूँज निर्मित हुए हैं, जो स्पेस में, आकाश में जो तरंगें संगृहीत हुई हैं, उन संगृहीत तरंगों में आपकी तरंग भी चोट करती है। आपके चारों तरफ एक वर्षा हो जाती है जो आपको दिखाई नहीं पड़ती। आपके चारों ओर एक और दिव्यता का, भगवत्ता का लोक निर्मित हो जाता है। इस लोक के साथ, इस भाव लोक के साथ आप दूसरे तरह के व्यक्ति हो जाते हैं।

महामंत्र स्वयं के आस-पास के आकाश को, स्वयं के आस-पास के आभामंडल को बदलने की कीमिया है। और अगर कोई व्यक्ति दिन-रात जब भी उसे स्मरण मिले, तभी नमोकार में डूबता रहे, तो वह व्यक्ति दूसरा ही व्यक्ति हो जाएगा। वह वही व्यक्ति नहीं रह सकता, जो वह था।

पांच नमस्कार हैं। अरिहंत को नमस्कार। अरिहंत का अर्थ होता है: जिसके सारे शत्रु विनष्ट हो गए; जिसके भीतर अब कुछ ऐसा नहीं रहा जिससे उसे लड़ना पड़ेगा। लड़ाई समाप्त हो गई। भीतर अब क्रोध नहीं है, जिससे लड़ना पड़े; भीतर अब काम नहीं है, जिससे लड़ना पड़े; अज्ञान नहीं है। वे सब समाप्त हो गए जिनसे लड़ाई थी।

अब एक नॉन-कानफ्लिक्ट, एक निर्द्वंद्व अस्तित्व शुरू हुआ। अरिहंत शिखर है, जिसके आगे यात्रा नहीं है। अरिहंत मंजिल है, जिसके आगे फिर कोई यात्रा नहीं है। कुछ करने को न बचा जहां, कुछ पाने को न बचा जहां, कुछ छोड़ने को भी न बचा जहां-जहां सब समाप्त हो गया--जहां शुद्ध अस्तित्व रह गया, प्योर एक्झिस्टेंस जहां रह गया, जहां ब्रह्म मात्र रह गया, जहां होना मात्र रह गया, उसे कहते हैं अरिहंत।

अदभुत है यह बात भी कि इस महामंत्र में किसी व्यक्ति का नाम नहीं है--महावीर का नहीं, पार्श्वनाथ का नहीं, किसी का नाम नहीं है। जैन परंपरा का भी कोई नाम नहीं। क्योंकि जैन परंपरा यह स्वीकार करती है कि अरिहंत जैन परंपरा में ही नहीं हुए हैं और सब परंपराओं में भी हुए हैं। इसलिए अरिहंतों को नमस्कार है--किसी अरिहंत को नहीं है। यह नमस्कार बड़ा विराट है।

संभवतः विश्व के किसी धर्म ने ऐसा महामंत्र--इतना सर्वांगीण, इतना सर्वस्पर्शी--विकसित नहीं किया है। व्यक्तित्व पर जैसे ख्याल ही नहीं है, शक्ति पर ख्याल है। रूप पर ध्यान ही नहीं है, वह जो अरूप सत्ता है, उसी का ख्याल है--अरिहंतों को नमस्कार।

अब महावीर को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए महावीर को नमस्कार; बुद्ध को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए बुद्ध को नमस्कार; राम को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए राम को नमस्कार--पर यह मंत्र बहुत अनूठा है। यह बेजोड़ है। और किसी परंपरा में ऐसा मंत्र नहीं है, जो सिर्फ इतना कहता है--अरिहंतों को नमस्कार; सबको नमस्कार जिनकी मंजिल आ गई है। असल में मंजिल को नमस्कार। वे जो पहुंच गए, उनको नमस्कार।

लेकिन अरिहंत शब्द निगेटिव है, नकारात्मक है। उसका अर्थ है--जिनके शत्रु समाप्त हो गए; वह पाजिटिव नहीं है, वह विधायक नहीं है। असल में इस जगत में जो श्रेष्ठतम अवस्था है उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है, "नेति-नेति" से उसको विधायक शब्द नहीं दिया जा सकता। उसके कारण हैं। सभी विधायक शब्दों में सीमा आ जाती है, निषेध में सीमा नहीं होती। अगर मैं कहता हूं--"ऐसा है", तो एक सीमा निर्मित होती है। अगर मैं कहता हूं--"ऐसा नहीं है", तो कोई सीमा नहीं निर्मित होती। नहीं की कोई सीमा नहीं है, "है" की तो सीमा है। तो "है" तो बहुत छोटा शब्द है। "नहीं" है बहुत विराट। इसलिए परम शिखर पर रखा है अरिहंत को। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिनके शत्रु समाप्त हो गए, जिनके अंतर्द्वंद्व विलीन हो गए--नकारात्मक-जिनमें लोभ नहीं, मोह नहीं, काम नहीं--क्या है, यह नहीं कहा; क्या नहीं है जिनमें, वह कहा।

इसलिए अरिहंत बहुत वायवीय, बहुत एब्स्ट्रेक्ट शब्द है और शायद पकड़ में न आए, इसलिए ठीक दूसरे शब्द में पाजिटिव का उपयोग किया है--नमो सिद्धाणं। सिद्ध का अर्थ होता है वे, जिन्होंने पा लिया। अरिहंत का अर्थ होता है वे, जिन्होंने कुछ छोड़ दिया। सिद्ध बहुत पाजिटिव शब्द है। सिद्धि, उपलब्धि, अचीवमेंट, जिन्होंने पा लिया। लेकिन ध्यान रहे, उनको ऊपर रखा है जिन्होंने खो दिया। उनको नंबर दो पर रखा है जिन्होंने पा लिया। क्यों? सिद्ध अरिहंत से छोटा नहीं होता--सिद्ध वहीं पहुंचता है जहां अरिहंत पहुंचता है, लेकिन भाषा में पाजिटिव नंबर दो पर रखा जाएगा। "नहीं", "शून्य" प्रथम है, "होना" द्वितीय है, इसलिए सिद्ध को दूसरे स्थल पर रखा। लेकिन सिद्ध के संबंध में भी सिर्फ इतनी ही सूचना है: पहुंच गए, और कुछ नहीं कहा है। कोई विशेषण नहीं जोड़ा। पर जो पहुंच गए, इतने से भी हमारी समझ में नहीं आएगा। अरिहंत भी हमें बहुत दूर लगता है--शून्य हो गए जो, निर्वाण को पा गए जो, मिट गए जो, नहीं रहे जो। सिद्ध भी बहुत दूर हैं। सिर्फ इतना ही कहा है, पा लिया जिन्होंने। लेकिन क्या? और पा लिया, तो हम कैसे जानें? क्योंकि सिद्ध होना अनभिव्यक्त भी हो सकता है, अमेनिफेस्ट भी हो सकता है।

बुद्ध से कोई पूछता है कि आपके ये दस हजार भिक्षु--हां, आप बुद्धत्व को पा गए--इनमें और कितनों ने बुद्धत्व को पा लिया है? बुद्ध कहते हैं: बहुतों ने। लेकिन वह पूछने वाला कहता है--दिखाई नहीं पड़ता। तो बुद्ध कहते हैं: मैं प्रकट होता हूं, वे अप्रकट हैं। वे अपने में छिपे हैं, जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो। तो सिद्ध तो बीज जैसा है, पा लिया। और बहुत बार ऐसा होता है कि पाने की घटना घटती है और वह इतनी गहन होती है कि प्रकट करने की चेष्टा भी उससे पैदा नहीं होती। इसलिए सभी सिद्ध बोलते नहीं, सभी अरिहंत बोलते नहीं। सभी सिद्ध, सिद्ध होने के बाद जीते भी नहीं। इतनी लीन भी हो सकती है चेतना उस उपलब्धि में कि तत्क्षण शरीर छूट जाए। इसलिए हमारी पकड़ में सिद्ध भी न आ सकेगा। और मंत्र तो ऐसा चाहिए जो पहली सीढ़ी से लेकर आखिरी शिखर तक, जहां जिसकी पकड़ में आ जाए, जो जहां खड़ा हो वहीं से यात्रा कर सके। इसलिए तीसरा सूत्र कहा है, आचार्यों को नमस्कार।

आचार्य का अर्थ है: वह जिसने पाया भी और आचरण से प्रकट भी किया। आचार्य का अर्थ: जिसका ज्ञान और आचरण एक है। ऐसा नहीं है कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है। लेकिन शून्य हो सकता है। हो ही न, आचरण--शून्य ही हो जाए। ऐसा भी नहीं है कि अरिहंत का आचरण भिन्न होता है, लेकिन अरिहंत इतना निराकार हो जाता है कि आचरण हमारी पकड़ में न आएगा। हमें फ्रेम चाहिए जिसमें पकड़ में आ जाए। आचार्य से शायद हमें निकटता मालूम पड़ेगी। उसका अर्थ है: जिसका ज्ञान आचरण है। क्योंकि हम ज्ञान को तो न पहचान पाएंगे, आचरण को पहचान लेंगे।

इससे खतरा भी हुआ। क्योंकि आचरण ऐसा भी हो सकता है जैसा ज्ञान न हो। एक आदमी अहिंसक न हो, अहिंसा का आचरण कर सकता है। एक आदमी अहिंसक हो तो हिंसा का आचरण नहीं कर सकता--वह तो असंभव है--लेकिन एक आदमी अहिंसक न हो और अहिंसा का आचरण कर सकता है। एक आदमी लोभी हो और अलोभ का आचरण कर सकता है। उलटा नहीं है, द वाइस वरसा इ.ज नॉट पासिबल। इससे एक खतरा भी पैदा हुआ। आचार्य हमारी पकड़ में आता है, लेकिन वहीं से खतरा शुरू होता है; जहां से हमारी पकड़ शुरू होती है, वहीं से खतरा शुरू होता है। तब खतरा यह है कि कोई आदमी आचरण ऐसा कर सकता है कि आचार्य मालूम पड़े। तो मजबूरी है हमारी। जहां से सीमाएं बननी शुरू होती हैं, वहीं से हमें दिखाई पड़ता है, वहीं से हमारे अंधे होने का डर है।

पर मंत्र का प्रयोजन यही है कि हम उनको नमस्कार करते हैं जिनका ज्ञान उनका आचरण है। यहां भी कोई विशेषण नहीं है। वे कौन? वे कोई भी हों।

एक ईसाई फकीर जापान गया था और जापान के एक जैन भिक्षु से मिलने गया। उसने पूछा जैन भिक्षु को कि जीसस के संबंध में आपका क्या ख्याल है? तो उस भिक्षु ने कहा: मुझे जीसस के संबंध में कुछ भी पता

नहीं, तुम कुछ कहो ताकि मैं ख्याल बना सकूं। तो उसने कहा कि जीसस ने कहा है, जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। तो उस झेन फकीर ने कहा: आचार्य को नमस्कार। वह ईसाई फकीर कुछ समझ न सका। उसने कहा: जीसस ने कहा है कि जो अपने को मिटा देगा, वही पाएगा। उस झेन फकीर ने कहा: सिद्ध को नमस्कार। वह कुछ समझ न सका। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं? उस ईसाई फकीर ने कहा कि जीसस ने अपने को सूली पर मिटा दिया, वे शून्य हो गए, मृत्यु को उन्होंने चुपचाप स्वीकार कर लिया, वे निराकार में खो गए। उस झेन फकीर ने कहा: अरिहंत को नमस्कार।

आचरण और ज्ञान एक हैं जहां, उसे हम आचार्य कहते हैं। वह सिद्ध भी हो सकता है, वह अरिहंत भी हो सकता है। लेकिन हमारी पकड़ में वह आचरण से आता है। पर जरूरी नहीं है, क्योंकि आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है और हम बड़ी स्थूल बुद्धि के लोग हैं। आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है! तय करना कठिन है कि जो आचरण है... अब जैसे महावीर को खदेड़ कर भगाया गया, गांव-गांव महावीर पर पत्थर फेंके गए। हम ही लोग थे, हम ही सब यह करते रहे। ऐसा मत सोचना कोई और। महावीर की नग्नता लोगों को भारी पड़ी, क्योंकि लोगों ने कहा यह तो आचरणहीनता है। यह कैसा आचरण? आचरण बड़ा सूक्ष्म है। अब महावीर का नग्न हो जाना इतना निर्दोष आचरण है, जिसका हिसाब लगाना कठिन है। हिम्मत अदभुत है। महावीर इतने सरल हो गए कि छिपाने को कुछ न बचा। अब महावीर को इस चमड़ी और हड्डी की देह का बोध मिट गया और वह जो, जिसको रूसी वैज्ञानिक इलेक्ट्रोमैग्नेटिक-फील्ड कहते हैं, उस प्राण-शरीर का बोध इतना सघन हो गया कि उस पर तो कोई कपड़े डाले नहीं जा सकते, कपड़े गिर गए। और ऐसा भी नहीं कि महावीर ने कपड़े छोड़े, कपड़े गिर गए।

एक दिन गुजरते हुए एक राह से चादर उलझ गई है एक झाड़ी में, तो झाड़ी के फूल न गिर जाएं, पत्ते न टूट जाएं, कांटों को चोट न लग जाए, तो आधी चादर फाड़ कर वहीं छोड़ दी। फिर आधी रह गई शरीर पर। फिर वह भी गिर गई। वह कब गिर गई, उसका महावीर को पता न चला। लोगों को पता चला कि महावीर नग्न खड़े हैं। आचरण सहना मुश्किल हो गया।

आचरण के रास्ते सूक्ष्म हैं, बहुत कठिन हैं। और हम सब के आचरण के संबंध में बंधे-बंधाए ख्याल हैं। ऐसा करो--और जो ऐसा करने को राजी हो जाते हैं, वे करीब-करीब मुर्दा लोग हैं। जो आपकी मान कर आचरण कर लेते हैं, उन मुर्दों को आप काफी पूजा देते हैं। इसमें कहा है, आचार्यों को नमस्कार। आप आचरण तय नहीं करेंगे, उनका ज्ञान ही उनका आचरण तय करेगा। और ज्ञान परम स्वतंत्रता है। जो व्यक्ति आचार्य को नमस्कार कर रहा है, वह यह भाव कर रहा है कि मैं नहीं जानता क्या है ज्ञान, क्या है आचरण, लेकिन जिनका भी आचरण उनके ज्ञान से उपजता और बहता है, उनको मैं नमस्कार करता हूं।

अभी भी बात सूक्ष्म है; इसलिए चौथे चरण में, उपाध्यायों को नमस्कार। उपाध्याय का अर्थ है--आचरण ही नहीं, उपदेश भी। उपाध्याय का अर्थ है--ज्ञान ही नहीं, आचरण ही नहीं, उपदेश भी। वे जो जानते हैं, जान कर वैसा जीते हैं; और जैसा वे जीते हैं और जानते हैं, वैसा बताते भी हैं। उपाध्याय का अर्थ है--वह जो बताता भी है। क्योंकि हम मौन से न समझ पाएं। आचार्य मौन हो सकता है। वह मान सकता है कि आचरण काफी है। और अगर तुम्हें आचरण दिखाई नहीं पड़ता तो तुम जानो। उपाध्याय आप पर और भी दया करता है। वह बोलता भी है, वह आपको कह कर भी बताता है।

ये चार सुस्पष्ट रेखाएं हैं। लेकिन इन चार के बाहर भी जानने वाले छूट जाएंगे। क्योंकि जानने वालों को बांधा नहीं जा सकता कैटेगरी.ज में। इसलिए मंत्र बहुत हैरानी का है। इसलिए पांचवें चरण में एक सामान्य नमस्कार है--नमो लोए सब्बसाहूणं। लोक में जो भी साधु हैं, उन सबको नमस्कार। जगत में जो भी साधु हैं, उन सबको नमस्कार। जो उन चार में कहीं भी छूट गए हों, उनके प्रति भी हमारा नमन न छूट जाए। क्योंकि उन चार में बहुत लोग छूट सकते हैं। जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है, कैटेगरीज नहीं किया जा सकता, खांचों में नहीं

बांटा जा सकता। इसलिए जो शेष रह जाएंगे, उनको सिर्फ साधु कहा--वे जो सरल हैं। और साधु का एक अर्थ और भी है। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि उपदेश देने में भी संकोच करे। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि आचरण को भी छिपाए। पर उसको भी हमारे नमस्कार पहुंचने चाहिए।

सवाल यह नहीं है कि हमारे नमस्कार से उसको कुछ फायदा होगा, सवाल यह है कि हमारा नमस्कार हमें रूपांतरित करता है। न अरिहंतों को कोई फायदा होगा, न सिद्धों को, न आचार्यों को, न उपाध्यायों को, न साधुओं को--पर आपको फायदा होगा। यह बहुत मजे की बात है कि हम सोचते हैं कि शायद इस नमस्कार में हम सिद्धों के लिए, अरिहंतों के लिए कुछ कर रहे हैं, तो इस भूल में मत पड़ना। आप उनके लिए कुछ भी न कर सकेंगे, या आप जो भी करेंगे उसमें उपद्रव ही करेंगे। आपकी इतनी ही कृपा काफी है कि आप उनके लिए कुछ न करें। आप गलत ही कर सकते हैं। नहीं, यह नमस्कार अरिहंतों के लिए नहीं है, अरिहंतों की तरफ है, लेकिन आपके लिए है। इसके जो परिणाम हैं, वह आप पर होने वाले हैं। जो फल है, वह आप पर बरसेगा।

अगर कोई व्यक्ति इस भांति नमन से भरा हो, तो क्या आप सोचते हैं उस व्यक्ति में अहंकार टिक सकेगा? असंभव है।

लेकिन नहीं, हम बहुत अदभुत लोग हैं। अगर अरिहंत सामने खड़ा हो तो हम पहले इस बात का पता लगाएंगे कि अरिहंत है भी? महावीर के आस-पास भी लोग यही पता लगाते-लगाते जीवन नष्ट किए--अरिहंत है भी? तीर्थंकर है भी? और आपको पता नहीं है, आप सोचते हैं कि बस तय हो गया, महावीर के वक्त में बात इतनी तय न थी। और भी भीड़ें थीं, और भी लोग थे जो कह रहे थे--ये अरिहंत नहीं हैं, अरिहंत और हैं। गोशालक है अरिहंत। ये तीर्थंकर नहीं हैं, यह दावा झूठा है।

महावीर का तो कोई दावा नहीं था। लेकिन जो महावीर को जानते थे, वे दावे से बच भी नहीं सकते थे। उनकी भी अपनी कठिनाई थी। पर महावीर के समय पर चारों ओर यही विवाद था। लोग जांच करने आते कि महावीर अरिहंत हैं या नहीं, वे तीर्थंकर हैं या नहीं, वे भगवान हैं या नहीं। बड़ी आश्चर्य की बात है, आप जांच भी कर लेंगे और सिद्ध भी हो जाएगा कि महावीर भगवान नहीं हैं, आपको क्या मिलेगा? और महावीर भगवान न भी हों और आप अगर उनके चरणों में सिर रखें और कह सकें, नमो अरिहंताणं, तो आपको मिलेगा। महावीर के भगवान होने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

असली सवाल यह नहीं है कि महावीर भगवान हैं या नहीं, असली सवाल यह है कि कहीं भी आपको भगवान दिख सकते हैं या नहीं--कहीं भी--पत्थर में, पहाड़ में। कहीं भी आपको दिख सके तो आप नमन को उपलब्ध हो जाएं। असली राज तो नमन में है, असली राज तो झुक जाने में है--असली राज तो झुक जाने में है। वह जो झुक जाता है, उसके भीतर सब कुछ बदल जाता है। वह आदमी दूसरा हो जाता है। यह सवाल नहीं है कि कौन सिद्ध हैं और कौन सिद्ध नहीं हैं--और इसका कोई उपाय भी नहीं है कि किसी दिन यह तय हो सके--लेकिन यह बात ही इररिलेवंट है, असंगत है। इससे कोई संबंध ही नहीं है। न रहे हों महावीर, इससे क्या फर्क पड़ता है। लेकिन अगर आपके लिए झुकने के लिए निमित्त बन सकते हैं तो बात पूरी हो गई। महावीर सिद्ध हैं या नहीं, यह वे सोचें और समझें, वह अरिहंत अभी हुए या नहीं यह उनकी अपनी चिंता है, आपके लिए चिंतित होने का कोई भी तो कारण नहीं है। आपके लिए चिंतित होने का अगर कोई कारण है तो एक ही कारण है कि कहीं कोई कोना है इस अस्तित्व में जहां आपका सिर झुक जाए। अगर ऐसा कोई कोना है तो आप नये जीवन को उपलब्ध हो जाएंगे।

यह नमोकार, अस्तित्व में कोई कोना न बचे, इसकी चेष्टा है। सब कोने जहां-जहां सिर झुकाया जा सके--अज्ञात, अनजान, अपरिचित--पता नहीं कौन साधु है, इसलिए नाम नहीं लिए। पता नहीं कौन अरिहंत है। पर इस जगत में जहां अज्ञानी हैं, वहां ज्ञानी भी हैं। क्योंकि जहां अंधेरा है, वहां प्रकाश भी है। जहां रात, सांझ होती है, वहां सुबह भी होती है। जहां सूरज अस्त होता है, वहां सूरज उगता भी है। यह अस्तित्व द्वंद्व की व्यवस्था है।

तो जहां इतना सघन अज्ञान है, वहां इतना ही सघन ज्ञान भी होगा ही। यह श्रद्धा है। और इस श्रद्धा से भरकर जो ये पांच नमन कर पाता है, वह एक दिन कह पाता है कि निश्चय ही मंगलमय है यह सूत्र। इससे सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं।

ध्यान ले लें, मंत्र आपके लिए है। मंदिर में जब मूर्ति के चरणों में आप सिर रखते हैं, तो सवाल यह नहीं है कि वे चरण परमात्मा के हैं या नहीं, सवाल इतना ही है कि वह जो चरण के समक्ष झुकने वाला सिर है वह परमात्मा के समक्ष झुक रहा है या नहीं। वे चरण तो निमित्त हैं। उन चरणों का कोई प्रयोजन नहीं है। वह तो आपको झुकने की कोई जगह बनाने के लिए व्यवस्था है। लेकिन झुकने में पीड़ा होती है। और इसलिए जो भी वैसी पीड़ा दे, उस पर क्रोध आता है। जीसस पर या महावीर पर या बुद्ध पर जो क्रोध आता है, वह भी स्वाभाविक मालूम पड़ता है। क्योंकि झुकने में पीड़ा होती है। अगर महावीर आएँ और आपके चरण पर सिर रख दें तो चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। फिर आप महावीर को पत्थर न मारेंगे! फिर आप महावीर के कानों में कीले न ठोकेंगे; कि ठोकेंगे? लेकिन महावीर आपके चरणों में सिर रख दें तो आपको कोई लाभ नहीं होता। नुकसान होता है। आपकी अकड़ और गहन हो जाएगी।

महावीर ने अपने साधुओं को कहा है कि वह गैर-साधुओं को नमस्कार न करें। बड़ी अजीब सी बात है! साधु को तो विनम्र होना चाहिए। इतना निर-अहंकारी होना चाहिए कि सभी के चरणों में सिर रखे। तो साधु गैर-साधु को, गृहस्थ को नमस्कार न करे—यह तो महावीर की बात अच्छी नहीं मालूम पड़ती। लेकिन प्रयोजन करुणा का है। क्योंकि साधु निमित्त बनना चाहिए कि आपका नमस्कार पैदा हो। और साधु आपको नमस्कार करे तो निमित्त तो बनेगा नहीं, आपकी अस्मिता और अहंकार को और मजबूत कर देगा। कई बार दिखती है बात कुछ और, होती है कुछ और। हालांकि, जैन साधुओं ने इसका ऐसा प्रयोग किया है, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। असल में साधु का तो लक्षण यही है कि जिसका सिर अब सबके चरणों पर है। साधु का लक्षण तो यही है कि जिसका सिर अब सबके चरणों पर है। फिर भी साधु आपको नमस्कार नहीं करता है। क्योंकि निमित्त बनना चाहता है। लेकिन अगर साधु का सिर आप सबके चरणों पर न हो और फिर वह आपको अपने चरणों में झुकाने की कोशिश करे तब वह आत्महत्या में लगा है। पर फिर भी आपको चिंतित होने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि आत्महत्या का प्रत्येक को हक है। अगर वह अपने नरक का रास्ता तय कर रहा है तो उसे करने दें। लेकिन नरक जाता हुआ आदमी भी अगर आपको स्वर्ग के इशारे के लिए निमित्त बनता हो तो अपना निमित्त लें, अपने मार्ग पर बढ़ जाएँ। पर नहीं, हमें इसकी चिंता कम है कि हम कहां जा रहे हैं, हमें इसकी चिंता ज्यादा है कि दूसरा कहां जा रहा है।

नमोकार नमन का सूत्र है। यह पांच चरणों में समस्त जगत में जिन्होंने भी कुछ पाया है, जिन्होंने भी कुछ जाना है, जिन्होंने भी कुछ जीया है, जो जीवन के अंतर्तम गूढ़ रहस्य से परिचित हुए हैं, जिन्होंने मृत्यु पर विजय पाई है, जिन्होंने शरीर के पार कुछ पहचाना है, उन सबके प्रति—समय और क्षेत्र दोनों में। लोक दो अर्थ रखता है। लोक का अर्थ: विस्तार में जो हैं वे, स्पेस में, आकाश में जो आज हैं वे—लेकिन जो कल थे वे भी और जो कल होंगे वे भी। लोक—सर्व लोए: सर्व लोक में, सर्वसाहूणं: समस्त साधुओं को। समय के अंतराल में पीछे कभी जो हुए हों वे, भविष्य में जो होंगे वे, आज जो हैं वे, समय या क्षेत्र में कहीं भी जब भी कहीं कोई ज्योति ज्ञान की जली हो, उस सबके लिए नमस्कार। इस नमस्कार के साथ ही आप तैयार होंगे। फिर महावीर की वाणी को समझना आसान होगा। इस नमन के बाद ही, इस झुकने के बाद ही आपकी झोली फैलेगी और महावीर की संपदा उसमें गिर सकती है।

नमन है रिसेप्टिविटी, ग्राहकता। जैसे ही आप नमन करते हैं, वैसे ही आपका हृदय खुलता है और आप भीतर किसी को प्रवेश देने के लिए तैयार हो जाते हैं। क्योंकि जिसके चरणों में आपने सिर रखा, उसको आप भीतर आने में बाधा न डालेंगे, निमंत्रण देंगे। जिसके प्रति आपने श्रद्धा प्रकट की, उसके लिए आपका द्वार, आपका घर खुला हो जाएगा। वह आपके घर, आपका हिस्सा होकर जी सकता है। लेकिन ट्रस्ट नहीं है, भरोसा

नहीं है, तो नमन असंभव है। और नमन असंभव है तो समझ असंभव है। नमन के साथ ही अंडरस्टैंडिंग है, नमन के साथ ही समझ का जन्म है।

इस ग्राहकता के संबंध में एक आखिरी बात और आपसे कहूं। मास्को यूनिवर्सिटी में उन्नीस सौ छांछट तक एक अदभुत व्यक्ति था--डाक्टर वार्सिलिएव। वह ग्राहकता पर प्रयोग कर रहा था। माइंड की रिसेप्टिविटी, मन की ग्राहकता कितनी हो सकती है। करीब-करीब ऐसा हाल है जैसे कि एक बड़ा भवन हो और हमने उसमें एक छोटा सा छेद कर रखा हो और उसी छेद से हम बाहर के जगत को देखते हैं। यह भी हो सकता है कि भवन की सारी दीवालें गिरा दी जाएं और हम खुले आकाश के नीचे समस्त रूप से ग्रहण करने वाले हो जाएं। वार्सिलिएव ने एक बहुत हैरानी का प्रयोग किया--और पहली दफा। उस तरह के बहुत से प्रयोग पूरब में--विशेषकर भारत में, और सर्वाधिक विशेष कर महावीर ने किए थे। लेकिन उनका डायमेंशन, उनका आयाम अलग था। महावीर ने जाति-स्मरण के प्रयोग किए थे कि प्रत्येक व्यक्ति को आगे अगर ठीक यात्रा करनी हो तो उसे अपने पिछले जन्मों को स्मरण और याद कर लेना चाहिए। उसको पिछले जन्म याद आ जाएं तो आगे की यात्रा आसान हो जाए।

लेकिन वार्सिलिएव ने एक और अनूठा प्रयोग किया। उस प्रयोग को वे कहते हैं: आर्टिफिशियल रि-इनकारनेशन। आर्टिफिशियल रि-इनकारनेशन, कृत्रिम पुनर्जन्म या कृत्रिम पुनरुज्जीवन--यह क्या है? वार्सिलिएव और उसके साथी एक व्यक्ति को बेहोश करेंगे, तीस दिन तक निरंतर सम्मोहित करके उसको गहरी बेहोशी में ले जाएंगे, और जब वह गहरी बेहोशी में आने लगेगा, और अब यह यंत्र हैं--ई ई जी नाम का यंत्र है, जिससे जांच की जा सकती है कि नींद की कितनी गहराई है। अल्फा नाम की वेव्स पैदा होनी शुरू हो जाती हैं, जब व्यक्ति चेतन मन से गिर कर अचेतन में चला जाता है। तो यंत्र पर, जैसे कि कार्डियोग्राम पर ग्राफ बन जाता है, ऐसा ई ई जी भी ग्राफ बना देता है, कि यह व्यक्ति अब सपना देख रहा है, अब सपने भी बंद हो गए, अब यह नींद में हैं, अब यह गहरी नींद में है, अब यह अतल गहराई में डूब गया। जैसे ही कोई व्यक्ति अतल गहराई में डूब जाता है, उसे सुझाव देता था वार्सिलिएव। समझ लें कि वह एक चित्रकार है, छोटा-मोटा चित्रकार है, यह चित्रकला का विद्यार्थी है, तो वार्सिलिएव उसको समझाएगा कि तू माइकल एंजिलो है, पिछले जन्म का, या वॉनगाग है। या कवि है तो वह समझाएगा कि तू शेक्सपियर है, या कोई और। और तीस दिन तक निरंतर गहरी अल्फा वेव्स की हालत में उसको सुझाव दिया जाएगा कि वह कोई और है, पिछले जन्म का। तीस दिन में उसका चित्त इसको ग्रहण कर लेगा।

तीस दिन के बाद बड़ी हैरानी के अनुभव हुए, कि वह व्यक्ति जो साधारण सा चित्रकार था, जब उसे भीतर भरोसा हो गया कि मैं माइकल एंजिलो हूं तब वह विशेष चित्रकार हो गया--तत्काल। वह साधारण सा तुकबंद था, जब उसे भरोसा हो गया कि मैं शेक्सपियर हूं तो शेक्सपियर की हैसियत की कविताएं उस व्यक्ति से पैदा होने लगीं।

हुआ क्या? वार्सिलिएव तो कहता था--यह आर्टिफिशियल रि-इनकारनेशन है। वार्सिलिएव कहता था कि हमारा चित्त तो बहुत बड़ी चीज है। छोटी सी खिड़की खुली है, जो हमने अपने को समझ रखा है कि हम यह हैं, उतना ही खुला है, उसी को मान कर हम जीते हैं। अगर हमें भरोसा दिया जाए कि हम और बड़े हैं, तो खिड़की बड़ी हो जाती है। हमारी चेतना उतना काम करने लगती है।

वार्सिलिएव का कहना है कि आने वाले भविष्य में हम जीनियस निर्मित कर सकेंगे। कोई कारण नहीं है कि जीनियस पैदा ही न हों। सच तो यह है कि वार्सिलिएव कहता है, सौ में से कम से कम नब्बे बच्चे प्रतिभा की, जीनियस की क्षमता लेकर पैदा होते हैं, हम उसकी खिड़की छोटी कर देते हैं। मां-बाप, स्कूल, शिक्षक, सब मिल-जुल कर उनकी खिड़की छोटी कर देते हैं। बीस-पच्चीस साल तक हम एक साधारण आदमी खड़ा कर देते हैं, जो कि क्षमता बड़ी लेकर आया था, लेकिन हम उसका द्वार छोटा करते जाते हैं, छोटा करते जाते हैं। वार्सिलिएव कहता है, सभी बच्चे जीनियस की तरह पैदा होते हैं। कुछ जो हमारी तरकीबों से बच जाते हैं वह जीनियस बन

जाते हैं, बाकी नष्ट हो जाते हैं। पर वार्सिलिएव का कहना है--असली सूत्र है रिसेप्टिविटी। इतना ग्राहक हो जाना चाहिए चित्त कि जो उसे कहा जाए, वह उसके भीतर गहनता में प्रवेश कर जाए।

इस नमोकार मंत्र के साथ हम शुरू करते हैं महावीर की वाणी पर चर्चा। क्योंकि गहन होगा मार्ग, सूक्ष्म होंगी बातें। अगर आप ग्राहक हैं--नमन से भरे, श्रद्धा से भरे--तो आपके उस अतल गहराई में बिना किसी यंत्र की सहायता के--यह भी यंत्र है, इस अर्थ में, नमोकार--बिना किसी यंत्र की सहायता के आप में अल्फा वेक्स पैदा हो जाती हैं। जब कोई श्रद्धा से भरता है तो अल्फा वेक्स पैदा हो जाती हैं--यह आप हैरान होंगे जान कर कि गहन सम्मोहन में, गहरी निद्रा में, ध्यान में या श्रद्धा में ई ई जी की जो मशीन है वह एक सा ग्राफ बनाती है। श्रद्धा से भरा हुआ चित्त उसी शांति की अवस्था में होता है जिस शांति की अवस्था में गहन ध्यान में होता है, या उसी शांति की अवस्था में होता है, जैसा गहन निद्रा में होता है, या उसी शांति की अवस्था में होता है, जैसा कि कभी भी आप जब बहुत रिलैक्स्ड और बहुत शांत होते हैं।

जिस व्यक्ति पर वार्सिलिएव काम करता था, वह है निकोलिएव नाम का युवक, जिस पर उसने वर्षों काम किया। निकोलिएव को दो हजार मील दूर से भी भेजे गए विचारों को पकड़ने की क्षमता आ गई है। सैकड़ों प्रयोग किए गए हैं जिसमें वह दो हजार मील दूर तक के विचारों को पकड़ पाता है। उससे जब पूछा जाता है कि उसकी तरकीब क्या है तो वह कहता है--तरकीब यह है कि मैं आधा घंटा पूर्ण रिलैक्स, शिथिल होकर पड़ जाता हूं और एक्टिविटी सब छोड़ देता हूं, भीतर सब सक्रियता छोड़ देता हूं, पैसिव हो जाता हूं। पुरुष की तरह नहीं, स्त्री की तरह हो जाता हूं। कुछ भेजता नहीं, कुछ आता हो तो लेने को राजी हो जाता हूं। और आधा घंटे में ई ई जी की मशीन जब बता देती है कि अल्फा वेक्स शुरू हो गईं, तब वह दो हजार मील दूर से भेजे गए विचारों को पकड़ने में समर्थ हो जाता है। लेकिन जब तक वह इतना रिसेप्टिव नहीं होता, तब तक यह नहीं हो पाता।

वार्सिलिएव और दो कदम आगे गया। उसने कहा--आदमी ने तो बहुत तरह से अपने को विकृत किया है। अगर आदमी में यह क्षमता है तो पशुओं में और भी शुद्ध होगी। और इस सदी का अनूठे से अनूठा प्रयोग वार्सिलिएव ने किया कि एक मादा चूहे को, चुहिया को ऊपर रखा और उसके आठ बच्चों को पानी के भीतर, पनडुब्बी के भीतर हजारों फीट नीचे सागर में भेजा। पनडुब्बी का इसलिए उपयोग किया कि पानी के भीतर पनडुब्बी से कोई रेडियो वेक्स बाहर नहीं आती हैं, न बाहर से भीतर जाती हैं। अब तक जानी गई जितनी वेक्स वैज्ञानिकों को पता हैं, जितनी तरंगें, वे कोई भी पानी के भीतर इतनी गहराई तक प्रवेश नहीं करतीं। एक गहराई के बाद सूर्य की किरण भी पानी में प्रवेश नहीं करती।

तो उस गहराई के नीचे पनडुब्बी को भेज दिया गया, और उस चुहिया की खोपड़ी पर सब तरफ इलेक्ट्रोड्स लगा कर ई ई जी से जोड़ दिए गए--मशीन से, जो चुहिया के मस्तिष्क में जो वेक्स चलती हैं उसको रिकार्ड करे। और बड़ी अदभुत बात हुई। हजारों फीट नीचे, पानी के भीतर एक-एक उसके बच्चे को मारा गया खास-खास मोमेंट पर नोट किया गया--जैसे ही वहां बच्चा मरता, वैसे ही यहां उसकी ई ई जी की वेक्स बदल जातीं--दुर्घटना घटित हो गई। ठीक छह घंटे में उसके बच्चे मारे गए--खास-खास समय पर, नियत समय पर। उस नियत समय का ऊपर कोई पता नहीं है। नीचे जो वैज्ञानिक है उसको छोड़ दिया गया है कि इतने समय के बीच वह कभी भी, पर नोट कर लें मिनट और सेकेंड। जिस मिनट और सेकेंड पर नीचे चुहिया के बच्चे मारे गए, उस मां ने उसके मस्तिष्क में उस वक्त धक्के अनुभव किए। वार्सिलिएव का कहना है कि जानवरों के लिए टेलिपैथिक सहज सी घटना है। आदमी भूल गया है, लेकिन जानवर अभी भी टेलिपैथिक जगत में जी रहे हैं।

मंत्र का उपयोग है, आपको वापस टेलिपैथिक जगत में प्रवेश--अगर आप अपने को छोड़ पाएं, हृदय से, उस गहराई से कह पाएं जहां कि आपकी अचेतना में डूब जाता है सब--नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं, यह भीतर उतर जाए तो आप अपने अनुभव से कह पाएंगे: सव्वपावप्पणासणो, यह सब पापों का नाश करने वाला महामंत्र है।

आज इतनी ही बात।

फिर अब इस महामंत्र का उदघोष करेंगे। इसमें आप सम्मिलित हों--नहीं, कोई जाएगा नहीं। कोई जाएगा नहीं। जिन मित्रों को खड़े होकर सम्मिलित होना हो, वे कुर्सियों के किनारे खड़े हो जाएं, क्योंकि संन्यासी नाचेंगे और मंत्र के उदघोष में डूबेंगे। इस मंत्र को अपने प्राणों में उतार कर ही यहां से जाएं। जिनको बैठ कर साथ देना हो, वे बैठ कर ताली बजाएंगे और उदघोष करेंगे।

मंगल व लोकोत्तर की भावना (मंगल-भाव-सूत्र)

अरिहंता मंगलं।
सिद्धा मंगलं।
साधु मंगलं।
केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं॥
अरिहंता लोगुत्तमा।
साधु लोगुत्तमा।
केवलिपन्नत्तो धम्मा लोगुत्तमा॥

अरिहंत मंगल हैं। सिद्ध मंगल हैं। साधु मंगल हैं। केवलीप्ररूपित अर्थात् आत्मज्ञकथित धर्म मंगल है। अरिहंत लोकोत्तम हैं। सिद्ध लोकोत्तम हैं। साधु लोकोत्तम हैं। केवलीप्ररूपित अर्थात् आत्मज्ञकथित धर्म लोकोत्तम है।

महावीर ने कहा है--जिसे पाना हो उसे देखना शुरू करना चाहिए। क्योंकि हम उसे ही पा सकते हैं जिसे हम देखने में समर्थ हो जाएं। जिसे हमने देखा नहीं, उसे पाने का भी कोई उपाय नहीं। जिसे खोजना हो, उसकी भावना करनी प्रारंभ कर लेनी चाहिए। क्योंकि इस जगत में हमें वही मिलता है, जो मिलने के भी पहले, जिसके लिए हम अपने हृदय में जगह बना लेते हैं। अतिथि घर आता हो तो हम इंतजाम कर लेते हैं उसके स्वागत का। अरिहंत को निर्मित करना हो स्वयं में, सिद्ध को पाना हो कभी, किसी क्षण स्वयं भी केवली बन जाना हो तो उसे देखना, उसकी भावना करनी, उसकी आकांक्षा और अभीप्सा की तरफ चरण उठाने शुरू करने जरूरी हैं।

महावीर से ढाई हजार साल पहले चीन में एक कहावत प्रचलित थी। और वह कहावत थी--लाओत्से के द्वारा कही गई और बाद में संगृहीत की गई चिंतन की धारा का पूरा का पूरा सार--वह कहावत थी--"दि सुपीरियर फिजिशियन क्योर्स दि इलनेस बिफोर इट इज मैनिफेस्टेड"--जो श्रेष्ठ चिकित्सक है वह बीमारी के प्रकट होने के पहले ही उसे ठीक कर देता है। "द इनफीरियर फिजिशियन ओनली केयर्स फॉर द इलनेस विच ही वा.ज नॉट एबल टु प्रिवेंट"--और, जो साधारण चिकित्सक है वह केवल बीमारी को दूर करने में थोड़ी बहुत सहायता पहुंचाता है, जिसे वह रोकने में समर्थ नहीं था।

हैरान होंगे जान कर आप यह बात कि महावीर से ढाई हजार साल पहले, आज से पांच हजार साल पहले चीन में चिकित्सक को बीमारी के ठीक करने के लिए कोई पुरस्कार नहीं दिया जाता था। उलटा ही रिवाज था, या हम समझें कि हम जो कर रहे हैं वह उलटा है। चिकित्सक को पैसे दिए जाते थे इसलिए कि वह किसी को बिमार न पड़ने दे। और अगर कभी कोई बीमार पड़ जाता तो चिकित्सक को उलटे उसे पैसे चुकाने पड़ते थे। तो हर व्यक्ति नियमित अपने चिकित्सक को पैसे देता था ताकि वह बिमार न पड़े। और बिमार पड़ जाए तो चिकित्सक को उसे ठीक भी करना पड़ता और पैसे भी देने पड़ते। जब तक वह ठीक न हो जाता, तब तक बीमार को फीस मिलती चिकित्सक के द्वारा। यह जो चिकित्सा कि पद्धति चीन में थी उसका नाम है--एक्युपंकचर। इस चिकित्सा कि पद्धति को नया वैज्ञानिक समर्थन मिलना शुरू हुआ है।

रूस में वे इस पर बड़े प्रयोग कर रहे हैं और उनकी दृष्टि है कि इस सदी के पूरे होते-होते रूस में चिकित्सक को बीमार को बीमार न पड़ने देने की तनख्वाह देनी शुरू कर दी जाएगी। और जब भी कोई बीमार पड़ेगा तो चिकित्सक जिम्मेवार और अपराधी होगा। एक्युपंकचर मानता है कि शरीर में खून ही नहीं बहता, विद्युत ही नहीं बहती--एक और तीसरा प्रवाह है, प्राण है--ऊर्जा का, एलन वाइटल का--वह प्रवाह भी शरीर में

बेहता है। सात सौ स्थानों पर शरीर के अलग-अलग वह प्रवाह है, चमड़ी को स्पर्श करता है। इसलिए एक्युपंकचर में चमड़ी पर जहां-जहां प्रवाह अव्यवस्थित हो गया है, वहीं सुई वहीं सुई चोभ कर प्रवाह को संतुलित करने की कोशिश की जाती है। बीमारी के आने के छह महीने पहले उस प्रवाह में असंतुलन शुरू हो जाता है। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि नाड़ी की जानकारी भी वस्तुतः खून के प्रवाह की जानकारी नहीं है। नाड़ी के द्वारा भी उसी जीवन-प्रवाह को समझने की कोशिश की जाती है। और छह महीने पहले नाड़ी अस्त-व्यस्त होनी शुरू हो जाती है--बीमारी के आने के छह महीने पहले।

हमारे भीतर जो प्राण-शरीर है उसमें पहले बीज रूप में चीजें पैदा होती हैं और फिर वृक्ष रूप में हमारे भौतिक शरीर तक फैल जाती हैं। चाहे शुभ को जन्म देना हो, चाहे अशुभ को। चाहे स्वास्थ्य को जन्म देना हो, चाहे बीमारी को। सबसे पहले प्राण शरीर में बीज आरोपित करने होते हैं। यह जो मंगल की स्तुति है कि अरिहंत मंगल हैं, यह प्राण-शरीर में बीज डालने का उपाय है। क्योंकि जो मंगल है उसकी कामना स्वाभाविक हो जाती है। हम वही चाहते हैं जो मंगल है। जो अमंगल है वह हम नहीं चाहते। इसमें चाह की तो बात ही नहीं की गई है, सिर्फ मंगल का भाव है।

अरिहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं, साहू मंगल हैं। केवलीपन्नत्तो धम्मो मंगल--वह जिन्होंने स्वयं को जाना और पाया, उनके द्वारा विरूपित धर्म मंगल है--सिर्फ मंगल का भाव।

यह जानकर हैरानी होगी कि मन का नियम है, जो भी मंगल है, ऐसा भाव गहन हो जाए तो उसकी आकांक्षा शुरू हो जाती है। आकांक्षा को पैदा नहीं करना पड़ता। मंगल की धारणा को पैदा करना पड़ता है। आकांक्षा मंगल की धारणा के पीछे छाया की भांति चली आती है।

धारणा पतंजलि योग के आठ अंगों में कीमती अंग है जहां से अंतर्यात्रा शुरू होती है--धारणा, ध्यान, समाधि--छठवां सूत्र है धारणा, सातवां ध्यान, आठवां समाधि। यह जो मंगल की धारणा है, यह पतंजलि योग-सूत्र का छठवां सूत्र है, और महावीर के योग-सूत्र का पहला। क्योंकि महावीर का मानना यह है कि धारणा से सब शुरू हो जाता है। धारणा जैसे ही हमारे भीतर गहन होती है, हमारी चेतना रूपांतरित होती है। न केवल हमारी, हमारे पड़ोस में जो बैठा है उसकी भी। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि आप अपनी ही धारणाओं से प्रभावित नहीं होते, आपके निकट जो धारणाओं के प्रवाह बहते हैं उनसे भी प्रभावित होते हैं। इसलिए महावीर ने कहा है--अज्ञानी से दूर रहना मंगल है, ज्ञानी के निकट रहना मंगल है। चेतना जिसकी रुग्ण है उससे दूर रहना मंगल है। चेतना जिसकी स्वस्थ है उसके निकट, सान्निध्य में रहना मंगल है। सत्संग का इतना ही अर्थ है कि जहां शुभ धारणाएं हों, उस मिल्यु में, उस वातावरण में रहना मंगल है।

रूस के एक विचारक, जो एक्युपंकचर पर काम कर रहे हैं--डाक्टर सिरोव, उन्होंने यांत्रिक आविष्कार किए हैं जिनसे पड़ोसी की धारणा आपको कब प्रभावित करती है और कैसे प्रभावित करती है, उसकी जांच की जा सकती है। आप पूरे समय पड़ोस की धारणाओं से इम्पोज किए जा रहे हैं। आपको पता ही नहीं है कि आपको जो क्रोध आया है, जरूरी नहीं है कि आपका ही हो। वह आपके पड़ोसी का भी हो सकता है। भीड़ में बहुत मौकों पर आपको ख्याल नहीं है--भीड़ में एक आदमी जम्हाई लेता है और दस आदमी, उसी क्षण, अलग-अलग कोनों में बैठे हुए जम्हाई लेने शुरू कर देते हैं। सिरोव का कहना है कि वह धारणा एक के मन में जो पैदा हुई उसके वर्तुल आस-पास चले गए और दूसरों को भी उसने पकड़ लिया। अब इसके लिए उसने यंत्र निर्मित किए हैं, जो बताते हैं कि धारणा आपको कब पकड़ती है और कब आप में प्रवेश कर जाती है। अपनी धारणा से तो व्यक्ति का प्राण-शरीर प्रभावित होता है। कुछ घटनाएं इस संबंध में आपको कहें तो बहुत आसान होंगी।

उन्नीस सौ दस में जर्मनी की एक ट्रेन में एक पंद्रह-सोहल वर्ष का युवक बैंच के नीचे छिपा पड़ा है। उसके पास टिकट नहीं है। वह घर से भाग खड़ा हुआ है। उसके पास पैसा भी नहीं है। फिर तो बाद में वह बहुत प्रसिद्ध आदमी हुआ और हिटलर ने उसके सिर पर दो लाख मार्क की घोषणा की कि जो उसका सिर काट लाए। वह तो फिर बहुत बड़ा आदमी हुआ और उसके बड़े अदभुत परिणाम हुए, और स्टैलिन और आइंस्टीन और गांधी सब

उससे मिल कर आनंदित और प्रभावित हुए। उस आदमी का बाद में नाम हुआ--वुल्फ मैसिंग। उस दिन तो उसे कोई नहीं जानता था, उन्नीस सौ दस में।

वुल्फ मैसिंग ने अभी अपनी आत्मकथा लिखी है जो रुस में प्रकाशित हुई है और बड़ा समर्थन मिला है। अपनी आत्म-कथा उसने लिखी है--"अबाउट माईसेल्फ"। उसमें उसने लिखा है कि उस दिन मेरी जिंदगी बदल गई। उस ट्रेन में नीचे फर्श पर छिपा हुआ पड़ा था बिना टिकट के कारण। मैसिंग ने लिखा है कि वे शब्द मुझे कभी नहीं भूलते--टिकट चेकर का कमरे में प्रवेश, उसके जूतों की आवाज और मेरी श्वास का ठहर जाना और मेरी घबड़ाहट और पसीने का छूट जाना, ठंडी सुबह, और फिर उसका मेरे पास आकर पूछना--यंगमैन, यौर टिकट?

मैसिंग के पास तो टिकट थी नहीं। लेकिन अचानक पास में पड़ा हुआ एक कागज का टुकड़ा--अखबार की रद्दी का टुकड़ा मैसिंग ने हाथ में उठा लिया। आंख बंद की और संकल्प किया कि यह टिकट है, और उसे उठा कर टिकट चेकर को दे दिया। और मन में सोचा कि हे परमात्मा, उसे टिकट दिखाई पड़ जाए। टिकट चेकर ने उस कागज को पंचकर किया, टिकट वापस लौटाई और कहा--व्हेन यू हैव गाट दि टिकट, वाई यू आर लाइंग अंडर दि सीट? पागल हो! जब टिकट तुम्हारे पास है तो नीचे क्यों पड़े हो? मैसिंग को खुद भी भरोसा नहीं आया। लेकिन इस घटना ने उसकी पूरी जिंदगी बदल दी। इस घटना के बाद पिछली आधी सदी में पचास वर्षों में जमीन पर सबसे महत्वपूर्ण आदमी था जिसे धारणा के संबंध में सर्वाधिक अनुभव थे।

मैसिंग की परीक्षा दुनिया में बड़े-बड़े लोगों ने ली। उन्नीस सौ चालीस में एक नाटक के मंच पर जहां वह अपना प्रयोग दिखला रहा था--लोगों में विचार संक्रमित करने का--अचानक पुलिस ने आकर मंच का परदा गिरा दिया और लोगों से कहा कि यह कार्यक्रम समाप्त हो गया। क्योंकि मैसिंग गिरफ्तार कर लिया गया। मैसिंग को तत्काल बंद गाड़ी में डाल कर क्रेमलिन ले जाया गया और स्टैलिन के सामने मौजूद किया गया। स्टैलिन ने कहा: मैं मान नहीं सकता कि कोई किसी दूसरे की धारणा को सिर्फ आंतरिक धारणा से प्रभावित कर सके। क्योंकि अगर ऐसा हो सकता है तो फिर

आदमी सिर्फ पदार्थ नहीं रह जाता। तो मैं तुम्हें इसलिए पकड़कर बुलाया हूं कि तुम मेरे सामने सिद्ध करो।

मैसिंग ने कहा: आप जैसा भी चाहें। स्टैलिन ने कहा कि दो बजे तक तुम यहां बंद रहो। दो बजे आदमी तुम्हें ले जाएंगे मास्को के बड़े बैंक में। तुम क्लर्क को एक लाख रुपया सिर्फ धारणा के द्वारा निकलवा कर ले आओ।

पूरा बैंक मिलिटरी से घेरा गया। दो आदमी पिस्तौलें लिए हुए मैसिंग के पीछे, ठीक दो बजे उसे बैंक में ले जाया गया। उसे कुछ पता नहीं था कि किस काउंटर पर उसे ले जाया जाएगा। जाकर ट्रेजरर के सामने उसे खड़ा कर दिया गया। उसने एक कोरा कागज उन दो आदमियों के सामने निकाला। कोरे कागज को दो क्षण देखा। ट्रेजरर को दिया, और एक लाख रुबल। ट्रेजरर ने कई बार उस कागज को देखा, चश्मा लगाया, वापस गौर से देखा और फिर एक लाख रुपया, एक लाख रुबल निकाल कर मैसिंग को दे दिए। मैसिंग ने बैग में वे पैसे अंदर रखे। स्टैलिन को जाकर रुपये दिए। स्टैलिन को बहुत हैरानी हुई! वापस मैसिंग लौटा। जाकर क्लर्क के हाथ में वह रुपये वापस दिए और कहा--मेरा कागज वापस लौटा दो। जब क्लर्क ने वापस कागज देखा तो वह खाली था। उसे हार्ट अटैक का दौरा पड़ गया और वह वहीं नीचे गिर पड़ा। वह बेहोश हो गया। उसकी समझ के बाहर हो गई बात कि क्या हुआ।

लेकिन स्टैलिन इतने से राजी न हुआ। कोई जालसाजी हो सकती है। कोई क्लर्क और उसके बीच तालमेल हो सकता है। तो क्रेमलिन के एक कमरे में उसे बंद किया गया। हजारों सैनिकों का पहरा लगाया गया और कहा कि ठीक बारह बज कर पांच मिनट पर वह सैनिकों के पहरे के बाहर हो जाए। वह ठीक बारह बज कर पांच मिनट पर बाहर हो गया। सैनिक अपनी जगह खड़े रहे, वह किसी को दिखाई नहीं पड़ा। वह स्टैलिन के सामने जाकर मौजूद हो गया।

इस पर भी स्टैलिन को भरोसा नहीं आया। और भरोसा आने जैसा नहीं था, क्योंकि स्टैलिन की पूरी फिलासफी, पूरा चिंतन, पूरे कम्युनिज्म की धारणा, सब बिखरती है। यही एक आदमी कोई धोखाधड़ी कर दे

और सारा का सारा मार्क्स चिंतन का आधार गिर जाए। लेकिन स्टैलिन प्रभावित जरूर इतना हुआ कि उसने तीसरे प्रयोग के लिए और प्रार्थना की।

उसकी दृष्टि में जो सर्वाधिक कठिन बात हो सकती थी, वह यह थी--उसने कहा कि कल रात बारह बजे मेरे कमरे में तुम मौजूद हो जाओ, बिना किसी अनुमति पत्र के। यह सर्वाधिक कठिन बात थी। क्योंकि स्टैलिन जितने गहन पहरे में रहता था उतना पृथ्वी पर दूसरा कोई आदमी कभी नहीं रहा। पता भी नहीं होता था कि स्टैलिन किस कमरे में है। क्रेमलिन के। रोज कमरा बदल दिया जाता था ताकि कोई खतरा न हो, कोई बम न फेंका जा सके, कोई हमला न किया जा सके। सिपाहियों की पहली कतार जानती थी कि पांच नंबर कमरे में है, दूसरी कतार जानती थी कि छह नंबर कमरे में है, तीसरी कतार जानती थी कि आठ नंबर कमरे में है। अपने ही सिपाहियों से भी बचने की जरूरत थी स्टैलिन को। कोई पता नहीं होता था कि स्टैलिन किस कमरे में है। स्टैलिन की खुद पत्नी भी स्टैलिन के कमरे का पता नहीं रख सकती थी। क्रेमलिन के सारे कमरे, जिनमें स्टैलिन अलग-अलग होता था, करीब-करीब एक जैसे थे, जिनमें वह कहीं भी किसी भी क्षण हट सकता था। सारा इंतजाम हर कमरे में था।

ठीक रात बारह बजे पहरेदार पहरा देते रहे और मैसिंग जाकर स्टैलिन की मेज के सामने जाकर खड़ा हो गया, स्टैलिन भी कंप गया। और स्टैलिन ने कहा: तुमने यह किया कैसे? यह असंभव है!

मैसिंग ने कहा: मैं नहीं जानता। मैंने कुछ ज्यादा नहीं किया मैंने सिर्फ एक ही काम किया कि मैं दरवाजे पर आया और मैंने कहा कि आई एक बैरिया। बैरिया रूसी पुलिस का सबसे बड़ा आदमी था, स्टैलिन के बाद नंबर दो की ताकत का आदमी था। बस मैंने सिर्फ इतना ही भाव किया कि मैं बैरिया हूं, और तुम्हारे सैनिक मुझे सलाम बजाने लगे और मैं भीतर आ गया।

स्टैलिन ने सिर्फ मैसिंग को आज्ञा दी कि वह रूस में घूम सकता है, और प्रामाणिक है। उन्नीस सौ चालीस के बाद रूस में इस तरह के लोगों की हत्या नहीं की जा सकी तो वह सिर्फ मैसिंग के कारण। उन्नीस सौ चालीस तक रूस में कई लोग मार डाले गए थे जिन्होंने इस तरह के दावे किए थे। कार्ल आटोविस नाम के एक आदमी की उन्नीस सौ सैंतीस में रूस में हत्या की गई, स्टैलिन की आज्ञा से। क्योंकि वह भी जो करता था वह ऐसा था कि उससे कम्युनिज्म की जो मैटीरियलिस्ट--भौतिकवादी धारणा है, वह बिखर जाती है।

अगर धारणा इतनी महत्वपूर्ण हो सकती है तो स्टैलिन ने आज्ञा दी अपने वैज्ञानिकों को कि मैसिंग की बात को पूरा समझने की कोशिश करो, क्योंकि इसका युद्ध में भी उपयोग हो सकता है। और जो आदमी मैसिंग का अध्ययन करता रहा, उस आदमी ने, नामोव ने कहा है कि जो अल्टीमेट वैपन है युद्ध का, आखिरी जो अस्त्र सिद्ध होगा, वह यह मैसिंग के अध्ययन से निकलेगा। क्योंकि जिस राष्ट्र के हाथ में धारणा को प्रभावित करने के मौलिक सूत्र आ जाएंगे, उस राष्ट्र को अणु की शक्ति से हराया नहीं जा सकता। सच तो यह है कि जिनके हाथ में अणुबम हों उनको भी धारणा से प्रभावित किया जा सकता है कि वह अपने ऊपर ही फेंक दें। एक हवाई जहाज बम फेंकने जा रहा हो उसके पायलट को प्रभावित किया जा सकता है कि वापस लौट जाए, अपनी ही राजधानी पर गिरा दे।

नामोव ने कहा है कि दि अल्टीमेट वैपन इन वार इज गोइंग टु बी साइकिक पॉवर। यह धारणा की जो शक्ति है, यह आखिरी अस्त्र सिद्ध होगा। इस पर रोज काम बढ़ता चला जाता है। स्टैलिन जैसे लोगों की उत्सुकता तो निश्चित ही विनाश की तरफ होगी। महावीर जैसे लोगों की उत्सुकता निर्माण और सृजन की ओर है। इसलिए मंगल की धारणा, महावीर ने कहा है--भूल कर भी स्वप्न में भी कोई बुरी धारणा मत करना, क्योंकि वह परिणाम ला सकती है।

आप राह से गुजर रहे हैं, आप सोचते हैं, मैंने कुछ किया भी नहीं। एक मन में ख्याल भर आ गया कि इस आदमी की हत्या कर दूं। आपने कुछ किया नहीं। कि इस दुकान से फलां चीज चुरा लूं, आप चोरी करने नहीं भी गए। लेकिन क्या आप निश्चित हो सकते हैं कि राह पर किसी चोर ने आपकी धारणा न पकड़ ली होगी?

मास्को में एक हवा पिछले दो साल में प्रचलित हुई है कि कोई भी आदमी अपनी गर्दन खुजलाने के पहले चारों तरफ देख लेता है। क्योंकि यह प्रयोग चल रहा है दो साल से। मानेन नाम का वैज्ञानिक सड़कों पर प्रयोग कर रहा है। वह आपके पीछे आकर कहेगा, "आपकी गर्दन पर कीड़ा चढ़ रहा है", --मन में अपने--"गर्दन खुजला रही है, खुजलाओ जल्दी" और लोग खुजलाने लगते हैं। अब तो यह खबर इतनी फैल गई है क्योंकि उसने हजारों लोगों पर प्रयोग किया है--राह के चौरस्तों पर खड़े होकर, होटल में बैठ कर, ट्रेन में चढ़ कर। और मानेन इतना सफल हुआ है कि नाइनटी एट परसेंट, अठानव्वे प्रतिशत सही होता है। जिसके पीछे खड़े होकर, वह भावना करता है कि गर्दन खुजला रही है, कीड़ा चढ़ रहा है, जल्दी खुजलाओ। वह जल्दी खुजलाता है। अब तो लोगों को पता चल गया है। सच में भी कीड़ा चढ़ा हो तो लोग पहले देख लेते हैं कि वह मानेन नाम का आदमी आस-पास तो नहीं है! जब से मानेन का प्रयोग सफल हुआ है तब से मस्तिष्क के बाबत एक नई जानकारी मिली है। और वह यह कि मस्तिष्क सामने से जितनी शक्ति रखता है, उससे चौगुनी शक्ति मस्तिष्क के पीछे के हिस्से में है।

तो पीछे से व्यक्ति को जल्दी प्रभावित किया जा सकता है। सामने सिर्फ एक हिस्सा है, चार गुना पीछे है। और जो लोग, जैसे कि मैसिंग, या कल मैंने आपको कहा नेल्या नाम की महिला, जो वस्तुओं को सरका सकती है--इनके मस्तिष्क के अध्ययन से पता चलता है कि इनका मस्तिष्क पीछे पचास गुनी शक्ति से भरा हुआ है--सामने एक तो पीछे पचास। योग की निरंतर धारणा रही है कि मनुष्य का असली मस्तिष्क छिपा हुआ पीछे पड़ा है। और जब तक वह सक्रिय नहीं होता तब तक मनुष्य अपनी पूर्ण गरिमा को उपलब्ध नहीं होगा।

यह भी हैरानी की बात है कि अगर आप कोई बुरा विचार करते हैं, तो प्रकृति का अदभुत नियम है कि आप मस्तिष्क के अगले हिस्से से करते हैं। मस्तिष्क का प्रत्येक हिस्सा अलग-अलग काम करता है। अगर आपको हत्या करनी है तो उसका विचार आपके मस्तिष्क के ऊपरी, सामने के हिस्से में चलता है। और अगर आपको किसी की सहायता करनी है तो पीछे, अंतिम हिस्से में चलता है। प्रकृति ने इंतजाम किया हुआ है कि शुभ की ओर आपको ज्यादा शक्ति दी हुई है, अशुभ की ओर कम शक्ति दी हुई है। लेकिन शुभ जगत में दिखाई नहीं पड़ता और अशुभ जगत में बहुत दिखाई पड़ता है। हम शुभ की कामना ही नहीं करते। या अगर हम कामना भी करते हैं तो हम तत्काल विपरीत कामना करके उसे काट देते हैं। जैसे एक मां अपने बच्चे के जीने की कितनी कामना करती है--बड़ा हो, जीए। लेकिन किसी क्षण क्रोध में कह देती है : तू तो होते से ही मर जाता तो बेहतर था। उसे पता नहीं है कि चार दफा उसने कामना की हो शुभ की और यह एक दफा अशुभ की, तो भी विषाक्त हो जाता है सब, कट जाती है कामना।

महावीर अपने साधुओं को कहते थे की मंगल की कामना में डूबे रहो चौबीस घंटे--उठते, बैठते, श्वास लेते, छोड़ते। स्वभावता मंगल की कामना शिखर से शुरू करनी चाहिए इसलिए वे कहते हैं--"अरिहंत मंगल हैं।" वे जिनके आंतरिक समस्त रोग समाप्त हो गए, वे मंगल हैं। सिद्ध मंगल हैं, साधु मंगल हैं, और जाना जिन्होंने--जैन परंपरा केवली उन्हें कहती है जो जानने की दिशा में उस जगह पहुंच गए जहां जानने वाला भी नहीं रह जाता, जानी जाने वाली वस्तु भी नहीं रह जाती, सिर्फ जानना रह जाता है, सिर्फ केवल ज्ञान मात्र रह जाता है--ओनली नोइंग। केवली, जैन परंपरा उसे कहती है जो केवल ज्ञान को उपलब्ध हो गया। मात्र ज्ञान रह गया है जहां। जहां कोई जानने वाला न बचा, जहां मैं का कोई भाव न बचा, जहां कोई ज्ञेय न बचा, जहां कोई तू न बचा। जहां सिर्फ जानने की शुद्ध क्षमता, प्योर कैपेसिटी टु नो।

इसे ऐसा समझें कि हम एक कमरे में दीया जलाएं। दीये की बाती है, तेल है, दीया है। फिर कमरे में दीये का प्रकाश है और उस प्रकाश से प्रकाशित होती चीजें हैं--कुर्सी है, फर्नीचर है, दीवाल है, आप हैं। अगर हम ऐसी कल्पना कर सकें कि कमरा शून्य हो गया--न दीवाल है, न फर्नीचर है, कुछ भी नहीं है। दीये में तेल भी न रहा, दीये की देह भी न रही--सिर्फ ज्योति रह गई, प्रकाश मात्र रह गया, न कोई दीया बचा और न प्रकाशित वस्तुएं बचीं--मात्र प्रकाश रह गया। अलोक, स्रोत-रहित, कोई तेल नहीं, कोई बाती नहीं। और ऐसा आलोक जो किसी

पर नहीं पड़ रहा है, शून्य में फैल रहा है, ऐसी धारणा है जैन चिंतन की केवली के संबंध में। जो परम ज्ञान को उपलब्ध होता है वहां ज्ञान अकारण हो जाता है, कोई सोर्स नहीं होता। क्योंकि बात बहुत कीमती है। जैन परंपरा कहती है कि जिस चीज का भी सोर्स होता है वह कभी न कभी चुक जाती है। चुक ही जाएगी। कितना ही बड़ा स्रोत क्यों न हो। सूर्य भी चुक जाएगा एक दिन--बड़ा है स्रोत हो, अरबों वर्षों से रोशनी दे रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं--अभी और अंदाजन चार हजार, पांच हजार साल रोशनी देगा, लेकिन चुक जाएगा। कितना ही बड़ा स्रोत हो, स्रोत की सीमा है--चुक जाएगा।

महावीर कहते हैं--यह जो चेतना है, यह अनंत है, यह कभी चुक नहीं सकती। यह स्रोतरहित है इसमें जो प्रकाश है वह किसी मार्ग से नहीं आता, वह बस "है"--इट जस्ट इज। कहीं से आता नहीं, अन्यथा एक दिन चुक जाएगा। कितना ही बड़ा हो, चुक जाएगा। महासागर भी चम्मचों से उलीचकर चुकाए जा सकते हैं--कितना ही लंबा समय लगे। महासागर भी चम्मचों से उलीच कर चुकाए जा सकते हैं। एक चम्मच थोड़ा तो कम कर ही जाती है। फिर और ज्यादा कम होता जाएगा। महावीर कहते हैं--यह जो चेतना है, यह स्रोत-रहित है। इसलिए महावीर ने ईश्वर को मानने से इनकार कर दिया। क्योंकि अगर ईश्वर को मानें तो ईश्वर स्रोत हो जाता है। और हम सब उसी के स्रोत से जलने वाले दीये हो जाते हैं तो हम चुक जाएंगे।

सच यह है कि महावीर से ज्यादा प्रतिष्ठा आत्मा को इस पृथ्वी पर और किसी व्यक्ति ने कभी नहीं दी है। इतनी प्रतिष्ठा कि उन्होंने कहा कि परमात्मा अलग नहीं, आत्मा ही परमात्मा है। इसका स्रोत अलग नहीं है, यह ज्योति ही स्वयं स्रोत है। यह जो भीतर जलने वाला जीवन है, यह कहीं से शक्ति नहीं पाता यह स्वयं ही शक्तिवान है। यह किसी के द्वारा निर्मित नहीं है, नहीं तो किसी के द्वारा नष्ट हो जाएगा। यह किसी पर निर्भर नहीं है, नहीं तो मोहताज रहेगा। यह किसी से कुछ भी नहीं पाता, यह स्वयं में समर्थ और सिद्ध है। जिस दिन ज्ञान इस सीमा पर पहुंचता है, जहां हम स्रोत-रहित प्रकाश को उपलब्ध होते हैं, सोर्सलेस--उसी दिन हम मूल को उपलब्ध होते हैं। जैन परंपरा ऐसे व्यक्ति को केवली कहती है। वह व्यक्ति कहीं भी पैदा हो--वे क्राइस्ट हो सकते हैं, वे बुद्ध हो सकते हैं, वे कृष्ण हो सकते हैं, वे लाओत्से हो सकते हैं। इसलिए इस सूत्र में यह नहीं कहा गया--महावीर मंगलं, कृष्ण मंगलं--ऐसा नहीं कहा। "जैन धर्म मंगल है", ऐसा नहीं कहा। "हिंदू धर्म मंगल है", ऐसा नहीं कहा। "केवली पन्नत्तो धम्मो मंगलं"--वे जो केवल-ज्ञान को उपलब्ध हो गए, उनके द्वारा जो भी प्ररूपित धर्म है, वह मंगल है। वह कहीं भी हो, जिन्होंने भी शुद्ध ज्ञान को पा लिया, उन्होंने जो कहा है, वह मंगल है।

यह मंगल की धारणा गहन प्राणों के अतल में बैठ जाए तो अमंगल की संभावना कम होती चली जाती है। जैसी जो भावना करता है, धीरे-धीरे वैसा ही हो जाता है। जैसा हम सोचते हैं, वैसे ही हम हो जाते हैं। जो हम मांगते हैं, वह मिल जाता है।

लेकिन हम सदा गलत मांगते हैं, वही हमारा दुर्भाग्य है। हम उसी की तरफ आंख उठा कर देखते हैं जो हम होना चाहते हैं। अगर आप एक राजनैतिक नेता के आस-पास भीड़ लगा कर इकट्ठे हो जाते हैं, तो यह भीड़ सिर्फ इसकी ही सूचना नहीं है कि राजनैतिक नेता आया है। गहन रूप से इस बात की सूचना है कि आप कहीं राजनैतिक पद पर होना चाहते हैं। हम उसी को आदर देते हैं जो हम होना चाहते हैं, जो हमारे भविष्य का माडल मालूम पड़ता है। जिसमें हमें दिखाई पड़ता है कि काश, मैं हो जाऊं। हम उसी के आसपास इकट्ठे हो जाते हैं। अगर सिने-अभिनेता के पास भीड़ इकट्ठी हो जाती है तो वह आपकी भीतरी आकांक्षा की खबर देती है--आप भी वही हो जाना चाहते हैं।

अगर महावीर ने कहा है कि कहा--"अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं" तो वे यह कह रहे हैं कि यह तुम कह ही तब पाओगे जब तुम अरिहंत होना चाहोगे। या तुम जब यह कहना शुरू करोगे, तो तुम्हारे

अरिहंत होने की यात्रा शुरू हो जाएगी। और बड़ी से बड़ी यात्रा बड़े छोटे से कदम से शुरू होती है। और पहले कदम से कुछ भी पता नहीं चलता। धारणा पहला कदम है।

कभी आपने सोचा कि आप क्या होना चाहते हैं? नहीं भी सोचा होगा सचेतन रूप से तो भी अचेतन में चलता है कि आप क्या होना चाहते हैं। जो आप होना चाहते हैं उसी के प्रति आपके मन में आदर पैदा होता है। न केवल आदर, जो आप होना चाहते हैं उसी संबंध में आपके मन चिंतन के वर्तुल चलते हैं, वही आपके स्वप्नों में उतर आता है; वही आपकी श्वासों में समा जाता है; वही आपके खून में प्रवेश कर जाता है। और जब मैं कहता हूं--खून में प्रवेश कर जाता है, तो मैं कोई साहित्यिक बात नहीं कह रहा हूं--मैं मेडिकल, मैं बिल्कुल शारीरिक तथ्य की बात कह रहा हूं।

इधर प्रयोग किए गए हैं और चकित करने वाले सूचन मिले हैं। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में डिलाबार प्रयोगशाला में विचार का खून पर क्या प्रभाव पड़ता है--दूसरे की धारणा का भी, आपकी धारणा तो छोड़ दें, आपकी धारणा का तो पड़ेगा ही--

दूसरे की धारणा का भी, अप्रकट धारणा का भी आपके खून पर क्या प्रभाव पड़ता है? अगर आप ऐसे व्यक्ति के पास जाते हैं जिसके हृदय से बहती करुणा और मंगल की भावना है, जो आपके लिए शुभ के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच पाता--तो डिलाबार लेबोरेटरी के प्रयोगों का दस वर्षों का निष्कर्ष यह है कि आपके खून में--ऐसे व्यक्ति के पास जाते ही, जो आपके प्रति मंगल की भावना रखता है--सफेद कण, पंद्रह सौ की तादाद में तत्काल बढ़ जाते हैं, इमिजिएटली। दरवाजे के बाहर आपके खून की परीक्षा की जाए और फिर आप भीतर आ जाएं और मंगल की कामना से भरे हुए व्यक्ति के पास बैठ जाएं और फिर आपके खून की परीक्षा की जाए, आपके खून में सफेद, व्हाइट ब्लड सेल्स--सफेद जो कोश हैं खून के--वे पंद्रह सौ बढ़ जाते हैं। जो व्यक्ति आपके प्रति दुर्भाव रखता है उसके पास जाकर सोलह सौ कम हो जाते हैं--तत्काल, इमिजिएटली।

और मेडिकल साइंस कहती है कि आपके स्वास्थ्य की रक्षा का मूल आधार सफेद कणों की अधिकता है। वे जितने ज्यादा आपके शरीर में होते हैं उतना आपका स्वास्थ्य सुरक्षित है। वे आपके पहरेदार हैं। आपने देखा होगा, ख्याल नहीं किया होगा, चोट लग जाती है तो चोट लग कर जो आपको मवाद पड़ जाती है वह मवाद सिर्फ रक्षक है, आपके शरीर के सफेद कण। वे भाग कर फौरन एक पतल पहरेदारी की खड़ी कर देते हैं। जिसको आप मवाद समझते हैं वह मवाद नहीं है, वे आपके दुश्मन नहीं हैं, वे खून के सफेद कण हैं जो तत्काल दौड़ कर घाव को चारों तरफ से घेर लेते हैं, जैसे कि पुलिस ने पहरा लगा दिया हो। क्योंकि उनके पतल को पार करके कोई भी कीटाणु शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता है। वे रक्षक हैं।

डिलाबार प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों ने चकित कर दिया है वैज्ञानिकों को कि क्या शुभ की भावना से भरे व्यक्ति का इतना परिणाम हो सकता है कि दूसरे के खून का अनुपात बदल जाए! आयतन बदल जाए! खून की गति बदल जाए! हृदय की गति बदल जाए! रक्तचाप बदल जाए! सह संभव है? अब तो इनकार करना कठिन है।

डाक्टर जगदीशचंद्र बसु के बाद दूसरा एक बड़ा नाम एक अमरीकन का है, क्लीव बैक्स्टर का। जगदीशचंद्र ने तो कहा था कि पौधों में प्राण हैं। बैक्स्टर ने सिद्ध किया है--सिद्ध हो गया है कि पौधों में भावना भी है। और पौधे अपने मित्रों को पहचानते हैं और शत्रुओं को भी। पौधा अपने मालिक को भी पहचानता है और अपने माली को भी। और अगर मालिक मर जाता है तो पौधे की प्राण-धारा क्षीण हो जाती है, वह बीमार हो जाता है। पौधों की स्मृति को भी बैक्स्टर ने सिद्ध किया है कि उनकी भी मैमोरी है। और आप जब अपने गुलाब के पौधे के पास जाकर प्रेम से खड़े हो जाते हैं तब वह कल फिर आपकी उसी समय प्रतीक्षा करता है। वह याद रखता है कि आज आप नहीं आए। या जब आप पौधे के पास प्रेम से भरकर खड़े हो जाते हैं, फिर अचानक एक फूल तोड़ लेते हैं तो पौधे को बड़ी हैरानी होती है, बड़ा कनफ्यूजन होता है। इस सबकी प्राणधाराओं को रिकॉर्ड करने वाले यंत्र तैयार किए हैं बैक्स्टर ने कि पौधा एकदम कनफ्यूज हो जाता है, उसकी समझ में नहीं आता कि

जो आदमी इतने प्रेम से खड़ा था, उसने फूल कैसे तोड़ लिया। वह ऐसे ही कनफ्यूज्ड हो जाता है जैसे कोई बच्चा आपके पास खड़ा हो, प्रेम करते-करते एकदम गर्दन तोड़ लें कि चेहरा बहुत अच्छा लगता है। पौधे की समझ में बिल्कुल नहीं आता कि यह हो क्या गया! उसके भीतर बड़ा कनफ्यूजन पैदा होता है।

बैक्स्टर कहता है--हमने हजारों पौधों को कंफ्यूज किया, उनको हम बड़ी परेशानी में डाले हुए हैं। वे समझ ही नहीं पाते कि यह हो क्या रहा है! जिसको मित्र की तरह अनुभव कर रहे थे वह एकदम शत्रु की तरह हो जाता है। बैक्स्टर का यह भी कहना है कि जिन पौधों को हम प्रेम करते हैं वे हमारी तरफ बड़ी पाजिटिव भावनाएं छोड़ते हैं।

और बैक्स्टर ने सुझाव दिया है अमरीकन मेडिकल एसोसिएशन को कि शीघ्र ही हम विशेष तरह के मरीजों को विशेष पौधों के पास ले जाकर ठीक करने में समर्थ हो जाएंगे--अगर उन पौधों को हमने इतना प्राणवान कर दिया--प्रेम से, भाव से, संगीत से, प्रार्थना से, ध्यान से। उनको इतना प्राण-शक्ति से भर दिया है तो उनके पास विशेष तरह के मरीज ले जाने से फायदा होगा। फिर हर पौधों में अपनी-अपनी प्राण-ऊर्जा की विशेषताएं हैं। जैसे रेड रोज, लाल जो गुलाब है, वह क्रोधी लोगों के लिए बड़े फायदे का है। हो सकता है पंडित नेहरू को इसीलिए उससे प्रेम रहा हो। क्रोध के लिए रेड रोज बहुत फायदे का है बैक्स्टर के हिसाब से। वह क्रोध को कम करता है, वह अक्रोध की धारणा को अपने चारों तरफ फैलाता है। उसका भी अपना आभासंडल है।

पौधों के पास भी हृदय है। माना कि वे अशिक्षित हैं, लेकिन उनके पास हृदय है। आदमी बहुत शिक्षित होता चला जाता है लेकिन हृदय खोता चला जाता है।

यह धारणा, हृदय को जन्माने का आधार बन सकती है--मंगल की धारणा, निश्चित ही मंगल की धारणा। हम इतने कमजोर हैं और अमंगल हमें इतना सहज है कि हम अरिहंत पर भी मंगल की धारणा कर पाएं तो चमत्कार है। हम यह भी कह पाएं कि अरिहंत मंगल हैं तो भी मिरेकल है। पत्थर मंगल है, इसके लिए तो कठिनाई पड़ेगी।

दुश्मन मंगल है, इसके लिए तो बहुत कठिनाई पड़ेगी। शत्रु मंगल है, इसके लिए तो बहुत कठिनाई पड़ेगी। महावीर आपको भलीभांति जानते हैं। जो श्रेष्ठतम है, उस पर भी आपको कठिनाई पड़ेगी, मंगल की धारणा करने में। उससे शुरू करते हैं--अरिहंत, सिद्ध, साधु और जिन्होंने जाना उनके द्वारा प्ररूपित धर्म।

"धर्म" का जैन परंपरा में वैसा अर्थ नहीं है जैसा अंग्रेजी के "रिलीजन" का है या उर्दू के "म.जहब" का है। और वैसा अर्थ भी नहीं है जैसा हिंदू "धर्म" का। जैन परंपरा में धम्म का जो अर्थ है वह समझ लेना चाहिए--वह बहुत खूबी का है, विशिष्ट है और जैन दृष्टि को एक नये आयाम में फैलाता है। मजहब का अर्थ तो होता है: क्रीड, एक मत, एक पंथ। अंग्रेजी के रिलीजन शब्द का अर्थ होता है करीब-करीब वही जो योग का अर्थ तो होता है। वह जिस सूत्र से बना है रिलीजियर, उसका अर्थ होता है जोड़ना, आदमी को परमात्मा से जोड़ना। योग का भी वही अर्थ होता है, आदमी को परमात्मा से जोड़ना।

लेकिन जैन चिंतन परमात्मा के लिए जगह ही नहीं रखता। इसलिए आप यह जान कर हैरान होंगे कि जैन योग का अच्छा अर्थ नहीं मानते। जैन कहते हैं--केवली अयोगी होता है--अयोगी, योगी नहीं। इसलिए महावीर को कुछ नासमझ, कुछ भूल से भरे लोग महायोगी कहते हैं, --वे गलत कहते हैं। जैन परंपरा के शब्द का उन्हें पता नहीं। महावीर कहते हैं--जुड़ना नहीं है किसी से, जो गलत है उससे टूटना है, अलग होना है। अ-योग--संसार से अ-योग, तो स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। योग कहता है--परमात्मा से मिलन, तो स्वरूप उपलब्ध होता है। महावीर कहते हैं--स्वरूप उपलब्ध ही है। जो हमें पाना है, वह हमें मिला ही हुआ है। सिर्फ हम गलत चीजों से चिपके खड़े हैं, इसलिए दिखाई नहीं पड़ रहा है। गलत को छोड़ दें, अयुक्त हो जाएं, अलग हो जाएं। इसलिए जैन परंपरा में अयोग का वही मूल्य है जो हिंदू परंपरा में योग का है। धर्म का बड़ा अनूठा अर्थ जैनो का है। महावीर कहते हैं कि वस्तु का जो स्वभाव है वही धर्म है, नेचर। धर्म का महावीर का वही अर्थ है जो लाओत्से ताओ का।

वस्तु का जो स्वभाव है, जो उसकी स्वयं की अपनी परिणति है--अगर कोई व्यक्ति बिना किसी से प्रभावित हुए सहज वरण-चरण कर पाए तो धर्म को उपलब्ध हो जाता है--अगर कोई व्यक्ति बिना प्रभावित हुए। इसलिए प्रभाव को महावीर अच्छी बात नहीं मानते। किसी से भी प्रभावित होना बंधना है। सब इंप्रेशंस बांधने वाले हैं। पूर्णतया अप्रभावित हो जाना निज हो जाना है, स्वयं हो जाना है। इस निजता को, इस स्वयं होने को वे धर्म कहते हैं। केवली प्ररूपित धर्म का अर्थ होता है, जब कोई व्यक्ति केवल ज्ञान मात्र रह जाता है, चेतना मात्र रह जाता है। तब वह जैसे जीता है वही धर्म है। उसका जीवन, उसका उठना, उसका बैठना, उसका हलन-चलन, उसका सोना--वह जो भी करता है--उसकी आंख की पलक का उठना और हिलना, उसकी समस्त अस्तित्व में प्रकट होती हुई जो भी किरणें हैं--वही धर्म है।

जैसे अग्नि अपने शुद्ध रूप में जलती हो तो धुआं पैदा नहीं होता। आप कहेंगे--अग्नि तो जहां भी जलती है, वहां धुआं पैदा होता है। और तर्क की किताब में लिखा हुआ है--जहां-जहां धुआं, वहां-वहां अग्नि। इसलिए जहां धुआं दिखे, मान लेना कि अग्नि है। लेकिन धुआं अग्नि से पैदा नहीं होता, केवल ईंधन के गीलेपन से पैदा होता है। अग्नि से उसका कोई लेना-देना नहीं है। अगर ईंधन बिल्कुल गीला न हो तो धुआं पैदा नहीं होता। धुआं अग्नि का स्वभाव नहीं है, ईंधन का प्रभाव है--जब ईंधन गीला होता है तब पैदा होता है। तो कहना चाहिए--वह पानी से पैदा होता है, वह अग्नि से पैदा नहीं होता--धुआं। अगर बिल्कुल सूखा ईंधन है, जिसमें पानी जरा भी नहीं है तो धुआं पैदा नहीं होगा। और अगर पैदा होता है तो जानना कि थोड़ा-बहुत ईंधन गीला है। अग्नि जब अपने शुद्ध रूप में होती है, जब उसमें कोई दूसरा विजातीय, फारिन एलीमेंट नहीं होता--तब उसमें कोई धुआं नहीं होता।

महावीर कहते हैं--तब अग्नि अपने धर्म में है, जब कोई धुआं नहीं है। जब चेतना बिल्कुल शुद्ध होती है और पदार्थ का कोई प्रभाव नहीं होता, शरीर का पता भी नहीं होता--जब चेतना इतनी शुद्ध होती है कि शरीर का पता भी नहीं होता है। तब महावीर कहते हैं कि, जानना कि चेतना अपने धर्म में है। इसलिए महावीर कहते हैं--प्रत्येक का अपना धर्म है--अग्नि का अपना है; जल का अपना है; पदार्थ का अपना है; चेतना का अपना है। शुद्ध हो जाना अपने धर्म में--आनंद है; अशुद्ध रहना अपने धर्म में दुख है। तो धर्म का यहां अर्थ है, स्वभाव। अपने स्वभाव में चले जाना धार्मिक हो जाना है, और अपने स्वभाव के बाहर भटकते रहना अधार्मिक बने रहना है।

लोक में इन चारों को उत्तम भी इस सूत्र में कहा है। अरिहंत उत्तम हैं लोक में, सिद्ध उत्तम हैं लोक में, साधु उत्तम हैं लोक में, केवली प्ररूपित धर्म उत्तम है लोक में। मंगल कह देने के बाद उत्तम की क्या जरूरत है? कारण है हमारे भीतर। ये सारे सूत्र हमारे मनस के ऊपर आधारित हैं। यह हमारे मन की गहराइयों के अध्ययन पर आधारित है। मंगल कहने के बाद भी हम इतने नासमझ हैं कि जो उत्तम नहीं है उसे भी हम मंगलरूप मान सकते हैं। हमारी वासनाएं ऐसी हैं कि जो निकृष्ट है लोक में उसी की तरफ बहती हैं। ऐसा भी कह सकते हैं कि वासना का अर्थ ही यही होता है--नीचे की तरफ बहाव। जो निकृष्ट है उसी की तरफ।

रामकृष्ण कहा करते थे कि चील आकाश में भी उड़े तो तुम यह मत समझना कि उसका ध्यान आकाश में होता है। वह आकाश में उड़ती है, लेकिन उसकी नजर नीचे, कहीं कूड़े-कबाड़ पर, किसी कचरेघर पर पड़े हुए मांस पर, किसी सड़ी मछली पर, उस पर लगी रहती है। उड़ती आकाश में है और उसकी दृष्टि तो नीचे कहीं किसी मांस के टुकड़े पर लगी रहती है। तो रामकृष्ण कहते थे--भूल में मत पड़ जाना कि चील आकाश में उड़ रही है इसलिए आकाश में ध्यान होगा। ध्यान तो उसका नीचे लगा रहता है।

इसलिए दूसरे सूत्र में महावीर का यह जो मंगल सूत्र है, यह तत्काल जोड़ता है--"अरिहंत लोगुत्तमा!" अरिहंत उत्तम हैं। यह सिर्फ इशारे के लिए है। "सिद्ध उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं।" उत्तम का अर्थ है कि शिखर हैं जीवन के--श्रेष्ठ हैं, पाने योग्य हैं, चाहने योग्य हैं, होने योग्य है।

किसी ने पूछा है श्रीत्जर को--क्या है पाने योग्य? क्या है आनंद? तो श्रीत्जर ने कहा--"टु बी मोर एण्ड मोर, टु बी डीप एण्ड डीप, टु बी इन एण्ड इन, एण्ड कांस्टेंटली टर्निंग इन टु समथिंग मोर एण्ड मोर।" कुछ

ज्यादा में रूपांतरित होते रहना, कुछ श्रेष्ठ में बदलते रहना, कुछ गहरे और गहरे जाते रहना, कुछ ज्यादा होते रहना।

लेकिन हम ज्यादा तभी हो सकते हैं जब ज्यादा की, श्रेष्ठ की, उत्तम की धारणा हमारे निकट हो। शिखर दिखाई पड़ता हो तो यात्रा भी हो सकती है। शिखर ही न

दिखाई पड़ता हो तो यात्रा का कोई सवाल नहीं। भौतिकवाद कहता है--कोई आत्मा नहीं है। शिखर को तोड़ देता है। और जब कोई आत्मा नहीं है, ऐसा कोई मान लेता है--तो आत्मा को पाना है, इसका तो कोई सवाल ही नहीं रह जाता।

फ्रायड यदि कह देता है कि आदमी वासना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है--तो आदमी तो वासना है ही--वह तत्काल मान लेता है। फिर वह कहता है जब वासना के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं तब बात खत्म हो गई, बात समाप्त हो गई।

एक व्यक्ति कह रहा था किसी को कि मैं बहुत परेशान था, क्योंकि मेरी कांशियंस मुझे बहुत पीड़ा देती थी, मेरा अंतःकरण बहुत पीड़ा देता था--झूठ बोलूँ तो, चोरी करूँ तो, किसी स्त्री की तरफ देखूँ तो--बड़ी पीड़ा होती थी। तो फिर मैं मनोचिकित्सक के पास गया। और मैंने इलाज करवाया और दो साल में बिल्कुल ठीक हो गया।

तो उसके मित्र ने पूछा: क्या अब चोरी का भाव नहीं उठता? स्त्री को देख कर वासना नहीं जगती? सुंदर को देख कर पाने का भाव पैदा नहीं होता?

उसने कहा: नहीं-नहीं, तुम मुझे गलत समझे। दो साल में मनोचिकित्सक ने मुझे मेरी कांशियंस से छुटकारा दिला दिया। अब पीड़ा नहीं होती, अब चिंता नहीं होती, अब अपराध अनुभव नहीं करता हूँ।

पिछले पचास सालों में पश्चिम का मनोचिकित्सक लोगों को अपराध से मुक्त नहीं करवा रहा है, अपराध के भाव से मुक्त करवा रहा है। वह कह रहा है--यह तो स्वाभाविक है, यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह तो होगा ही। अगर आज पश्चिम में जीवन ऐसे नीचे तल पर सरक रहा है--चल रहा है कहना ठीक नहीं, सरक रहा है, जैसे सांप सरकता है--तो उसका बड़े से बड़ा जिम्मा पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों को है क्योंकि वह निकृष्ट को कहता है कि यही स्वभाव है। और कठिनाई यह है कि निकृष्ट को स्वभाव मान लना हमें आसान है, क्योंकि हम परिचित हैं, और वह दलील ठीक लगती है।

जब महावीर कहते हैं, "अरिहंता लोगुत्तमा", तो समझ में नहीं पड़ता कि ऐसे लोग होते हैं। अरिहंत को हम जानते नहीं, सिद्ध को हम जानते नहीं। कौन हैं ये? हमारे भीतर तो हमने सिद्ध जैसा कभी कोई क्षण अनुभव नहीं किया; अरिहंत जैसी हमने कभी कोई लहर नहीं जानी; साधु जैसा हमने कभी कोई भाव नहीं जाना; केवली-प्ररूपित धर्म में हमने कभी प्रवेश नहीं किया। क्या हवा की बातें हैं?

तो अगर हम मान भी लें तो मजबूरी में मानते हैं और उस मजबूरी का नाम हमने धर्म रखा हुआ है। किसी घर में पैदा हो गए, जैन, मजबूरी है, आपका कोई कृत्य नहीं है। पर्युषण है तो मजबूरी है। तो आप जाते हैं मंदिर में, नमस्कार करते हैं। साधु को नमस्कार करते हैं, उपवास कर लेते हैं, व्रत कर लेते हैं--मजबूरी है। किसी का कसूर नहीं, आप पैदा हो गए जैन घर में। इसमें किसी का कोई हाथ तो है नहीं। खोपड़ी में बचपन से सुनाया जा रहा है वह भर गया है, उसको निपटा लेते हैं। बाकी कहीं स्फुरणा नहीं है उसमें। कहीं कोई ऐसा सहज भाव नहीं है।

क्या आपने ख्याल किया है मंदिर जाते वक्त आपके पैर और सिनेमा-गृह में जाते वक्त आपके पैरों की गति में बुनियादी भेद होता है--गुणात्मक, क्वालिटेटिव। मंदिर जैसे आप घसीटे जाते हैं, सिनेमा-गृह जैसे आप जाते हैं। मंदिर जैसे एक मजबूरी है, एक काम है। प्रफुल्लता नहीं है चरण में, नृत्य नहीं है चरण में जाते समय। किसी तरह पूरा कर देना है--लेकिन निकृष्ट जीवन है, पूरा--नहीं, कर देना है।

सुना है मैंने मुल्ला नसरुद्दीन जिस दिन मरा, उस दिन पुरोहित उसे परमात्मा की प्रार्थना कराने आए और कहा कि मुल्ला! पश्चात्ताप करो, रिपेंट। पश्चात्ताप करो उन पापों का, जो तुमने किए हैं। मुल्ला ने आंख खोली और कहा कि मैं दूसरा ही पश्चात्ताप कर रहा हूं। जो पाप मैं नहीं कर पाया, उनका पश्चात्ताप कर रहा हूं। अब मर रहा हूं, और कुछ पाप करने का मेरा मन था, वे नहीं कर पाया।

वह पुरोहित फिर भी नहीं समझ पाया, क्योंकि पुरोहितों से कम समझदार आदमी आज जमीन पर दूसरे नहीं हैं। उसने कहा: मुल्ला, यह क्या तुम कहते हो? अगर तुम्हें दुबारा जन्म मिले तो क्या तुम वही पाप करोगे? वैसा ही जीओगे, जैसा अभी जीए?

मुल्ला ने कहा कि नहीं, बहुत फर्क करूंगा। मैंने इस जिंदगी में पाप बड़ी देर से शुरू किए, अगली जिंदगी में जरा जल्दी शुरू कर दूंगा।

यह मुल्ला हम सब मनुष्यों के बाबत खबर दे रहा है। यह व्यंग्य है, यह आदमी पूरा व्यंग्य है हम सब पर। यह हमारी मनोदशा है। मरते वक्त हमें भी पश्चात्ताप होगा। पश्चात्ताप होगा उन औरतों का जो नहीं मिलीं। पश्चात्ताप होगा उस धन का जो नहीं पाया। पश्चात्ताप होगा उन पदों का जो चूक गए। पश्चात्ताप होगा उस सबका जो निकृष्ट था, जो पाने योग्य ही नहीं था। लेकिन क्या मरते वक्त पश्चात्ताप होगा कि अरिहंत न मिले? सिद्ध न मिले? केवली-प्ररूपित धर्म में प्रवेश न मिला?

नहीं, हो सकता है नमोकार आपके आसपास पड़ा जा रहा होगा, लेकिन आपके भीतर उसका कोई प्रवेश नहीं हो पाएगा। क्योंकि जिन्होंने जीवन भर उसके प्रवेश की तैयारी नहीं की, वे अगर सोचते हों कि क्षण भर में उसका प्रवेश हो जाएगा तो वे नासमझ हैं। जिन्होंने जीवन भर उस मेहमान के आने के लिए इंतजाम नहीं किया, वे सोचते हैं--अचानक वह मेहमान भीतर आ जाएगा तो वे गलती पर हैं। वे दुराशाएं कर रहे हैं, वे हताश होंगे।

लेकिन जो व्यक्ति निरंतर, "अरिहंत मंगल हैं, लोक में उत्तम हैं, श्रेष्ठ हैं", वही जीवन में पाने का, ऐसा सूत्र ख्याल में रखता है--और कभी-कभी न भी समझ में आता हो फिर भी रिचुअल रिपीटीशन करता है; न भी समझ में आता हो, न भी ख्याल में आता हो, ऐसे ही दोहराए चला जाता है; तो भी तो गूबज बनते हैं। ऐसे भी दोहराए चला जाता है तो भी चित्त पर निशान बनते हैं। वे निशान किसी भी क्षण, किसी प्रकाश के क्षण में सक्रिय हो सकते हैं। जिसने निरंतर कहा है कि अरिहंत लोक में उत्तम हैं, उसने अपने भीतर एक धारा प्रवाहित की है--कितनी ही क्षीण। लेकिन अब वह अरिहंत होने के विपरीत जाने लगेगा तो उसके भीतर कोई उससे कहेगा कि तुम जो कर रहे हो वह उत्तम नहीं है, वह लोक में श्रेष्ठ नहीं है।

जिसने कहा है, "सिद्ध लोक में श्रेष्ठ हैं", जब वह अपने को खोने जा रहा होगा तब कोई उसके भीतर स्वर कहेगा कि सिद्ध तो अपने को पाते हैं, तुम अपने को खोते हो, बेचते हो। जिसने कहा है, "साधु लोकोत्तम हैं", उसको किसी क्षण असाधु होते वक्त यह स्मरण रोकने वाला बन सकता है। जान कर, समझ कर किया गया, तब तो परिणामदायी है ही। न जान कर, न समझ कर किया हुआ भी परिणामदायी हो जाता है। क्योंकि रिचुअल रिपीटीशन भी, सिर्फ पुनरुक्ति भी, हमारे चित्त में रेखाएं छोड़ जाती है--मृत, लेकिन फिर भी छोड़ जाती है। और किसी भी क्षण वे सक्रिय हो सकती है। यह नियमित पाठ के लिए है, यह नियमित भाव के लिए है, यह नियमित धारणा के लिए है।

इसमें अंतिम बात थोड़ा और ठीक से समझ लें। महावीर ने जिस परंपरा और जिस स्कूल, जिस धारा का उपयोग किया है उसमें श्रेष्ठतम पर मनुष्य की ही शुद्ध आत्मा को रखा है। मनुष्य की ही शुद्ध आत्मा परमात्मा मानी है। इसलिए महावीर के हिसाब से इस जगत में जितने लोग हैं उतने भगवान हो सकते हैं। जितने लोग हैं--लोग ही नहीं, जितनी चेतनाएं हैं वे सभी भगवान हो सकती हैं। महावीर की दृष्टि में भगवान का एक होने का

जो ख्याल है वह नहीं हैं। अगर ठीक से समझें तो दुनिया के सारे धर्मों में भगवान की जो धारणा है वह अरिस्टोक्रैटिक है, एक की है। सिर्फ महावीर के धर्म में वह डेमोक्रेटिक है, सबकी है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से भगवान है। वह जाने न जाने; वह पाए न पाए; वह जन्म-जन्म भटके; अनंत जन्म भटके; फिर भी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह भगवान है। और किसी न किसी दिन वह जो उसमें छिपा है, प्रकट होगा। और किसी न किसी दिन जो बीज है वह वृक्ष होगा। जो संभावना है वह सत्य बनेगा।

महावीर अनंत भगवत्ताओं में मानते हैं--अनंत भगवत्ताओं में, इनफिनिट डिइटीज। एक-एक आदमी डिवाइन है। और जिस दिन सारा जगत अरिहंत तक पहुंच जाए, उस दिन जगत में अनंत भगवान होंगे।

महावीर का अर्थ "भगवान" से है--जिसने अपने स्वभाव को पा लिया। स्वभाव भगवान है। भगवान की यह बहुत अनूठी धारणा है। जगत को बनाने वाले का सवाल नहीं है भगवान से, जगत को चलाने वाले का सवाल नहीं है भगवान से। महावीर कहते हैं--कोई बनाने वाला नहीं है, क्योंकि महावीर कहते हैं--बनाने की धारणा ही बचकानी है। और बचकानी इसलिए है कि उससे कुछ हल नहीं होता है। हम कहते हैं जगत को भगवान ने बनाया। फिर सवाल खड़ा हो जाता है कि भगवान को किसने बनाया? सवाल वहीं का वहीं बना रहता है। एक कदम और हट जाता है। जो कहता है "भगवान ने जगत को बनाया", वह कहता है, भगवान को किसी ने नहीं बनाया। महावीर कहते हैं--जब भगवान को किसी ने नहीं बनाया, ऐसा मानना ही पड़ता है कि कुछ है जो अनबना है, अनक्रिएटेड है, तो इस सारे जगत को ही अनक्रिएटेड मानने में कौन सी अड़चन है? अड़चन तो एक ही थी मन को कि बिना बनाए कोई चीज कैसे बनेगी?

इसलिए यह समझ लेने जैसा है कि महावीर के पास नास्तिक के लिए जो उत्तर है वह तथाकथित ईश्वरवादी के पास नहीं है। क्योंकि नास्तिक ईश्वरवादी से यही कहता है कि तुम्हारे भगवान ने क्यों बनाया? बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। और बड़ी कठिनाई यह खड़ी होती है कि ईश्वरवादी को मानना पड़ता है कि उसमें वासना उठी जगत को बनाने की। जब भगवान तक में वासना उठती है तो आदमी को वासना से मुक्त करने का फिर कोई उपाय नहीं है। भगवान ने चाहा, ही डिजायर्ड। जब भगवान भी चाहता है, और भगवान भी बिना चाह के शांत नहीं रह सकता, तो फिर आदमी को अचाह में कैसे ले जाओगे? क्या भगवान परेशान था, जगत नहीं था, तो? कोई पीड़ा होती थी? वैसी ही जैसे एक चित्रकार को चित्र न बने, तो होती है? एक कवि को कविता निर्मित न हो पाए, तो होती है? क्या ऐसा ही परेशान और चिंतित होता था? क्या उसमें भी चिंता और तनाव घर करते हैं? ईश्वरवादी दिक्कत में रहा है। उसको स्वीकार करना पड़ता है कि भगवान ने चाहा।

और तब बहुत बेहूदी बातें उसको स्वीकार करनी पड़ती हैं। उसे स्वीकार करना पड़ता है--ब्रह्मा ने स्त्री को जन्म दिया और फिर उसी को चाहा। क्योंकि उसे ब्रह्मा और चाह में कोई तालमेल बिठाना पड़ेगा। तो एक बहुत एब्सर्ड घटना घटी। और वह यह कि ब्रह्मा ने जिसे पैदा किया वह तो उसका पिता हो गया। फिर उसने अपनी बेटी को चाहा। फिर वह संभोग के लिए आतुर हो गया, और फिर वह अपनी बेटी के पीछे भागने लगा। फिर बेटी उससे बचने के लिए गाय बन गई, तो वह बैल हो गया। फिर बेटी उससे बचने के लिए कुछ और हो गई, तो वह कुछ और हो गया। वह बेटी जो-जो होती चली गई, वह ब्रह्मा फिर वही-वही जीव का नर होता चला गया। तो अगर ब्रह्मा भी ऐसा चाह में भाग रहा हो, तो आप जब सिनेमा-गृह जाते हैं तो बिल्कुल ब्रह्मस्वरूप हैं। बिल्कुल ठीक चले जा रहे हैं। आपको कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। आप उचित ही कर रहे हैं। वह स्त्री फिल्म अभिनेत्री हो गई तो आप फिल्म-दर्शक हो गए--आप चले जा रहे हैं। तब फिर सारा जगत वासना का फैलाव हो जाता है।

महावीर ने इसे जड़ से काट दिया। महावीर ने कहा कि नहीं, अगर भगवत्ता की तरफ ले जाना है लोगों को तो भगवान को शून्य करो। बड़ी अजीब बात है। अगर लोगों को भगवान बनाना है तो यह भगवान की धारणा को अलग करो। बहुत अजीब, क्योंकि महावीर ने कहा--भगवान में ही चाह को रख दोगे पहले, डिजायर को रख दोगे पहले--क्योंकि उसके बिना तो जगत का निर्माण न होगा। तो फिर आदमी से चाह को शून्य करने

का कारण क्या बचेगा? तो महावीर ने कहा--जगत अनिर्मित है, अनक्रिएटेड है। किसी ने बनाया नहीं है--"है।" और विज्ञान के लिए भी यही लॉजिकल, तर्कयुक्त मालूम पड़ता है। क्योंकि इस जगत में कोई चीज बनाई हुई नहीं मालूम पड़ती--है ही। और न इस जगत में कोई चीज नष्ट होती मालूम पड़ती है, न कोई चीज निर्मित होती मालूम पड़ती है--सिर्फ रूपांतरित होती मालूम पड़ती है।

इसलिए महावीर ने जो परिभाषा की है पदार्थ की, वह इस जगत में की गई सर्वाधिक वैज्ञानिक परिभाषा है। अदभुत शब्द महावीर ने खोजा है--पुदगल--मैटर के लिए। और ऐसा शब्द जगत की किसी भाषा में नहीं है। पदार्थ के लिए महावीर ने पदार्थ नहीं कहा, नया शब्द गढ़ा--पुदगल। पुदगल का अर्थ है--जो बनता और मिटता रहता है और फिर भी है। जो प्रतिपल बन रहा है और मिट रहा है, और है। जैसे नदी प्रतिपल भागी जा रही है, चली जा रही है, हुई जा रही है और फिर भी है। फ्लोइंग एण्ड इज, वह रही है और है। महावीर ने कहा कि जो चीज बन रही है, मिट रही है, न बन कर सृजन होता है उसका, न मिट कर समाप्त होती है--बिकमिंग। पुदगल का अर्थ है: बिकमिंग। नैवर बीइंग एण्ड आलवेज बिकसिंग। कभी "है" की स्थिति में भी नहीं आती पूरी कि ठहर जाए। बस होती रहती है। तो महावीर ने कहा--पुदगल वह है जो प्रतिपल जन्म रहा, प्रतिपल मर रहा, फिर भी कभी निर्मित नहीं होता, फिर भी कभी समाप्त नहीं होता, चलता रहता है--गत्यात्मक।

पदार्थ--डेड कंसेप्ट है। अंग्रेजी का मैटर भी डेड वर्ड है, मरा हुआ शब्द है। अंग्रेजी के मैटर का कुल मतलब होता है जो नापा जा सके। वह मेजर से बना हुआ शब्द है। संस्कृत या हिंदी के पदार्थ का अर्थ होता है--जो अर्थवान है, अस्तित्ववान है, "है।" पुदगल का अर्थ होता है--जो हो रहा है, इन दि प्रोसेस। प्रोसेस का नाम पुदगल है, क्रिया का नाम पुदगल है। जैसे आप चल रहे हैं। एक कदम उठाया, दूसरा रखा।

दोनों कभी आप ऊपर नहीं उठाते। एक उठता है तो दूसरा रख जाता है। इधर एक बिखरता है तो उधर दूसरा तत्काल निर्मित हो जाता है। प्रोसेस चलती रहती है। पदार्थ का एक कदम हमेशा बन रहा है, और एक कदम हमेशा मिट रहा है।

आप जिस कुर्सी पर बैठे हैं वह मिट रही है। नहीं तो पचास साल बाद राख कैसे हो जाएगी। जिस शरीर में आप बैठे हैं, वह मिट रहा है। लेकिन बन भी रहा है। चौबीस घंटे आप उसको खाना दे रहे हैं, वायु दे रहे हैं। वह निर्मित हो रहा है। निर्मित होता चला जा रहा है और बिखरता भी चला जा रहा है। लाइफ एण्ड डेथ बोथ साइमलटेनियस, जीवन और मरण एक साथ दो पैर की तरह चल रहे हैं। महावीर ने कहा--यह जगत पुदगल है। इसमें सब चीजें सदा से हैं--बन रही हैं, मिट रही हैं। ट्रांसफार्मेशन चलता रहता है। न कोई चीज कभी समाप्त होती है, न कभी निर्मित होती है। इसलिए निर्माता का कोई सवाल नहीं है। इसलिए परमात्मा में वासना की कोई जरूरत नहीं है।

सारे धर्म परमात्मा को जगत हे पहले रखते हैं। महावीर परमात्मा को जगत के अंत में रखते हैं। इसका फर्क समझ लें। सारे धर्म परमात्मा को कहते हैं--काज, कारण है। महावीर कहते हैं--इफेक्ट, परिणाम। महावीर का अरिहंत अंतिम मंजिल है। भगवान तब होता है व्यक्ति, जब वह सब पा लिया। पहुंच गया वहां जिसके आगे और कोई यात्रा नहीं। दूसरे धर्मों का भगवान बिगनिंग में है, दुनिया जब शुरू होती है, वहां। जहां दुनिया समाप्त होती है, महावीर की भगवत्ता की धारणा वहां है। तो वे--सब कहते हैं कि दुनिया को बनाने वाला भगवान है--महावीर कहते हैं--दुनिया को पार कर जाने वाला भगवान है, वन हू गो.ज बियांड। महावीर प्रथम नहीं रखते, अंतिम रखते हैं। का.ज नहीं इफेक्ट, कारण नहीं कार्य।

दुनिया का भगवान बीज की तरह है, महावीर का भगवान फूल की तरह है।

दुनिया कहती है--भगवान से सब पैदा होता है। महावीर कहते हैं--जहां जाकर सब खुल जाता है और प्रकट हो जाता है, खिल जाता है, वहां। तो महावीर के जो अरिहंत की, सिद्ध की, भगवान की, भगवत्ता की

धारणा है वह चेतना के पूरे खिल जाने की, फ्लॉवरिंग की है, जहां सब खिल जाता है। इस खिले हुए फूल से जो झरती है सुवास, इस खिले हुए फूल से "केवलिपन्नतो धम्मो", इसको उन्होंने कहा। इस खिले हुए फूल से जो झरती है सुवास खिले हुए फूल से जो आनंद प्रकट होता है, इस खिले हुए फूल का जो स्वभाव है वह केवली द्वारा प्ररूपित धर्म है। और असे वे कहते हैं--वह लोक में उत्तम है, वह जो फूल की तरह अंत में खिलता है--क्लाइमेक्स, शिखर।

शास्त्र में लिखा हुआ धर्म लोक में उत्तम है, ऐसा महावीर नहीं कहते। नहीं तो वे कहते--शास्त्र प्ररूपित धर्म लोकोत्तम है। वेद को मानने वाला कहता है, वेद में जो प्ररूपित धर्म है वह लोक में उत्तम है। बाइबिल को मानने वाला कहता है, बाइबिल में जो धर्म प्ररूपित है वह उत्तम है। कुरान को मानने वाला कहता है, कुरान में जो धर्म प्ररूपित है वह उत्तम है। गीता को मानने वाला कहता है, गीता में जो धर्म की प्रारूपना हुई है, वह उत्तम है। महावीर कहते हैं--केवलिपन्नतो धम्मो--नहीं, शास्त्र में कहा हुआ नहीं--केवल ज्ञान के क्षण में जो झरता है वही, जीवंत। लिखे हुए का क्या मूल्य है? लिखा हुआ पहले तो बहुत सिकुड़ जाता है। शब्द में बांधना पड़ता है।

जीवंत धर्म--अब इसके बहुत अर्थ होंगे। लेकिन केवली प्ररूपित जो धर्म है वह शास्त्र में लिख लिया गया है। तो जैन अब उस शास्त्र को सिर पर ढोए चले जाते हैं, वैसे ही जैसे कुरान को कोई ढोता है, गीता को कोई ढोता है। यह महावीर के साथ ज्यादाती है। ज्यादाती इसलिए है कि महावीर ने कभी कहा नहीं कि शास्त्र में प्ररूपित धर्म। ऐसा भी नहीं कहा कि मेरे शास्त्र में कहा हुआ धर्म। लेकिन बड़ी कठिनाई है। और महावीर ने खुद कोई शास्त्र निर्मित नहीं किया। महावीर ने कुछ लिखवाया भी नहीं। महावीर के मरने के सैकड़ों वर्ष बाद महावीर के वचन लिखे गए। महावीर ने लिखवाया नहीं, लिखा नहीं।

और भी कठिन बात है और वह यह कि महावीर ने कहा नहीं। वह जरा कठिन है। वह जरा कठिन है कि महावीर ने का नहीं। महावीर तो मौन रहे। महावीर तो बोले नहीं। तो महावीर की जो वाणी है, वह कही हुई नहीं, सुनी हुई है। महावीर का जो धर्म का प्ररूपण है वह मौन, टेलिपैथिक ट्रांसमिशन है। और इसलिए बहुत पुराण जैसी लगती है बात, आपसे कहूं--कथा जैसी, लेकिन जल्दी ही सही वैज्ञानिक आधार उसको मिलते चले जाते हैं। महावीर जब बोलते, तो बोलते नहीं थे--बैठते। उनको... अंतर आकाश में जरूर ध्वनि गूंजती। ओंठ का भी उपयोग न करते, कंठ का भी उपयोग न करते।

अगर मैसिंग, एक साधारण व्यक्ति, जो कोई अरिहंत नहीं है--अगर एक कागज के टुकड़े को सिर्फ अंतर-वाणी के द्वारा कह सकता है--"यह टिकट है"--बोला तो नहीं, कहा तो नहीं, लेकिन टिकट कलेक्टर ने तो, चेकर ने तो जाना, सुना कि टिकट है। अगर एक कोरे कागज पर एक लाख रुपया दिए जा सकते हैं, तो पढ़ा तो गया, लिखा नहीं गया। ट्रेजरर ने पढ़ा तो कि लाख रुपये देने हैं। तो महावीर ने टेलिपैथिक कम्युनिकेशन का गहन प्रयोग किया। बोले नहीं, सुने गए। ही वा.ज हर्ड। मौन बैठे, पास लोग बैठे, उन्होंने सुना। और इसीलिए जो जिस भाषा में समझ सकता था उसने उस भाषा में सुना। इसमें भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि हम जो भाषा नहीं समझते उसमें कैसे सुनेंगे? और जानवर भी इकट्ठे थे, पशु भी इकट्ठे थे और पौधे भी खड़े थे, और कथा कहती है--उन्होंने भी सुना।

तो अगर बैक्स्टर कहता है कि पौधों के भाव हैं, और वे समझते हैं आपकी भावनाएं। आप जब दुखी होते हैं--पौधों को प्रेम करने वाला व्यक्ति जब दुखी होता है तब वे दुखी हो जाते हैं। जब घर में उत्सव मनाया जाता है तो वे प्रफुल्लित हो जाते हैं। जब उनके पास खड़े होते हैं तो आनंद की धाराएं बहती हैं। जब घर में कोई मर जाता है तब वे भी मातम मनाते हैं। इसके जब अब वैज्ञानिक प्रमाण हैं तब क्या बहुत कठिनाई है कि महावीर के हृदय का संदेश पौधों की स्मृति तक न पहुंच जाए!

अभी सारी दुनिया में जो प्रयोग किए जा रहे हैं, अनकांशस पर, अचेतन पर, उनसे सिद्ध होता है कि हम अचेतन में कोई भी भाषा समझ सकते हैं--कोई भी भाषा।

जैसे आपको बेहोश किया जाए, हिप्नोटाइज किया जाए गहन। इतना बेहोश किया जाए कि आपको अपना कोई पता न रह जाए तो फिर आपसे किसी भी भाषा में बोला जाए, आप समझेंगे।

अभी एक चेक वैज्ञानिक डाक्टर राज डेक इस पर काम करता है--भाषा और अचेतन पर। तो वह एक महिला पर, जो चेक भाषा नहीं जानती, उसको बेहोश करके बहुत दिन तक, उससे चेक भाषा में बातें करता था, और वह समझती थी। जब वह बेहोश होती है, उससे वह चेक भाषा में कहता है--उठ कर वह पानी का गिलास ले आओ, तो वह ले आती है। बड़ी हैरानी की बात है। जब वह होश में आती, तब उससे कहे तो वह नहीं सुनती, समझ में नहीं आता। उसने उस महिला से पूछा कि बात क्या है? जब तू बेहोश होती है तब तू पूरा समझती है, जब तू होश में आती है तब तू कुछ भी नहीं समझती।

उस महिला ने कहा--मुझे भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल रहता है बेहाशी का, कि मैं समझती थी। लेकिन जैसे-जैसे मैं होश में आती हूं तो मुझे सुनाई पड़ता है, चा, चा, चा, चा और कुछ समझ में नहीं आता। तुम जो बोलते हो, उसमें चा, चा, चा, चा मालूम पड़ता है, और कुछ नहीं मालूम पड़ता। लेकिन बेहोशी में मुझे भी थोड़ी स्मृति रहती है कि तुम जो बोलते हो, मैं समझती हूं।

राज डेक का कहना है कि आदमी की भाषा का अध्ययन उसके अचेतन के अध्ययन से यह खबर लाता है कि हम महासागर में निकले हुए छोटे-छोटे द्वीपों की भांति हैं। ऊपर से अलग-अलग, नीचे उतर जाएं तो जमीन से जुड़े हुए। ऊपर हमारी सबकी भाषाएं अलग-अलग, जितने गहरे उतर जाएं उतनी एक। आदमी की ही नहीं, और गहरे उतर जाएं तो पशु की भी एक। और गहरे उतर जाएं तो पशु की ही नहीं, पौधों की भी एक। और कोई नहीं कह सकता कि और गहरे उतर जाएं तो पत्थर की भी एक। जितने हम अपने नीचे गहरे उतरते हैं, उतने हम जुड़े हुए हैं--एक महाकांटिनेंट से, एक महाद्वीप से जीवन के, और वहां हम समझते हैं।

तो महावीर का यह जो प्रयोग था--निःशब्द विचार-संचरण का, टेलिपैथी का, यह आने वाले बीस वर्षों में विज्ञान कहेगा कि पुराण कथा नहीं है। इस पर काम तेजी से चलता है और स्पष्ट होती जाती हैं बहुत सी अंधेरी गलियां, बहुत से गलियारे जो साफ नहीं थे। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हमें किसी व्यक्ति को दूसरी भाषा सिखानी हो तो राज डेक कहता है कि चेतन रूप से सिखाने में व्यर्थ कठिनाई हम उठाते हैं। इसलिए राज डेक ने एक संस्था खोली है। और एक दूसरा वैज्ञानिक है बल्गेरिया में डाक्टर लौरेंजोव। उसने एक इंस्टिट्यूट खोली है--लौरेंजोव के इंस्टिट्यूट का नाम है--इंस्टिट्यूट ऑफ सजेस्टोलॉजी। अगर हम उसे ठीक अनुवाद करें तो उसका अर्थ होगा--मंत्र महाविद्यालय। सजेस्टोलॉजी का अर्थ होता है मंत्र। आप जाते हैं न! सलाह देने वालों को हम मंत्री कहते हैं। सुझाव देने वाले को मंत्री कहते हैं। मंत्र का अर्थ है: सुझाव, सजेशन। लौरेंजोव की इंस्टिट्यूट सरकार के द्वारा स्थापित है और बल्गेरियन सरकार कम्युनिस्ट है। इसमें तीस मनोवैज्ञानिक लौरेंजोव के साथ काम कर रहे हैं।

और लौरेंजोव का कहना है कि दो साल का कोर्स हम बीस दिन में पूरा करवा देते हैं, कोई भी दो साल का कोर्स। जो भाषा आप दो साल में सीखेंगे चेतन रूप से, वह लौरेंजोव आपको सम्मोहित--रेस्ट हालत में छोड़ कर बीस दिन में सिखा देता है। और एक नई शिक्षा की पद्धति लौरेंजोव ने विकसित की है जो कि जल्दी सारी दुनिया को पकड़ लेगी और वह बिल्कुल उलटी है जो अभी आप करवा रहे हैं। और उसके हिसाब से--और मैं मानता हूं कि वह ठीक है--मेरे हिसाब से भी, हम जिसको शिक्षा कह रहे हैं वह शिक्षा नहीं है, निपट नासमझही है।

लौरेंजोव ने जो स्कूल खोला है उस स्कूल में बच्चों के बैठने के लिए आराम कुर्सियां हैं--कुर्सियां नहीं, आराम कुर्सियां हैं--जैसा कि हवाई जहाज में होती हैं, जिन पर वे आराम से लेट जाते हैं। डिफ्यूज कर दिया जाता है प्रकाश, जैसा कि हवाई जहाज उड़ता है, तब कर दिया जाता है--तेज रोशनी नहीं। और विशेष संगीत कमरे में बजता रहता है। कोई स्कूल रहा यह! मामला सब खराब हो गया। पूरे वक्त संगीत बजता रहता है। और

विद्यार्थियों से कहा जाता है कि आंख चाहे तो आधी बंद कर लो, चाहे पूरी बंद कर लो, और संगीत पर ध्यान दो--संगीत पर। और शिक्षक पढ़ा रहा हैं, उस पर ध्यान मत दो। डोंट गिव एनी अटेंशन टु दि टीचर। शिक्षक पढ़ा रहा है, उस पर भूल कर ध्यान मत देना, उसी से गड़बड़ हो जाती है। तुम तो संगीत सुनते रहना, तुम शिक्षक को सुनना ही मत।

यह तो उलटा हो गया। क्योंकि शिक्षक, यहीं तो बेचारा परेशान है कि हमको सुन नहीं रहे हैं तो वह डंडा बजा रहा है पूरे वक्त कि हमें सुनो। लड़के कहीं बाहर देख रहे हैं, कहीं पक्षियों को सुन रहे हैं, कहीं कुछ और कर रहे हैं, और शिक्षक कह रहा है, हमें सुनो। वह तो सारा, तीन हजार साल का शिक्षक और विद्यार्थी का झगड़ा है जो अब अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है कि हमें सुनो। और लौरेंजोव कहता है कि इसीलिए तो दो साल लग जाते हैं सिखाने में। क्योंकि जब कोई व्यक्ति सचेतन रूप से सुनता है, तो उसका ऊपरी मन सुनता है। तो वह कहता है, ऊपरी मन को तो लगा दो संगीत सुनने में। तब उसका भीतरी मन का द्वार सुनता रहेगा। और दो साल का कोर्स वह बीस दिन में पूरा कर लेता है किसी भी भाषा का। और बीस दिन में आदमी उतना कुशल हो जाता है दूसरी भाषा बोलने में, जितना दो साल में नहीं हो पाता है।

बात क्या है? बात कुल इतनी ही है कि नीचे गहरे में हमारी बड़ी क्षमताएं छिपी हैं। आप अपने घर से यहां तक आए हैं। अगर आप पैदल चल कर आए हैं तो क्या आप बता सकते हैं कि रास्ते पर कितने बिजली के खंभे पड़े थे? आप कहेंगे कि मैं कोई पागल हूं! मैं उनकी गिनती नहीं करता। लेकिन आपको बेहोश करके पूछा जाए तो आप संख्या बता सकते हैं, ठीक संख्या। आप जब चले आ रहे थे इधर, तब आपका ऊपरी मन तो इधर आने में लगा था। हार्न बज रहा था, उसमें लगा था। कोई टकरा न जाए, उसमें लगा था। लेकिन आपके नीचे का मन सब कुछ रिकार्ड कर रहा है, रास्ते पर पड़े हुए लैंप पोस्ट भी, लोग निकले वह भी, हार्न बजा वह भी, कार का नंबर दिखाई पड़ गया वह भी--वह सब नोट कर रहा है। वह सब आपको याद हो गया है। आपके चेतन को कोई पता नहीं है। कहना चाहिए आपको कोई पता नहीं। वह जो पानी के ऊपर निकला हुआ द्वीप, आईलैंड है उसको कुछ पता नहीं। लेकिन नीचे जो जुड़ी हुई भूमि का विस्तार है, वहां सब पता है।

तो महावीर बोले नहीं, चुपचाप बैठे हैं। और इसीलिए यही कारण है कि महावीर का धर्म बहुत व्यापक नहीं हो पाया। बहुत लोगों तक नहीं पहुंच पाया। क्योंकि महावीर बोलते तो सबकी समझ में आता। महावीर नहीं बोले तो उनकी ही समझ में आया जो उतने गहरे जाने को तैयार थे। इसलिए महावीर का धर्म बहुत सिलेक्टिव, बहुत "चूजन फ्यू" के लिए है। जो उस जगत में महावीर के वक्त श्रेष्ठतम लोग थे, वे ही महावीर को सुन पाए। वे श्रेष्ठतम चाहे पौधों में हों और चाहे पशुओं में और चाहे आदमियों में। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर को सुनने के पहले बड़े प्रशिक्षण से गुजरना पड़ता था। ध्यान की प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता, ताकि जब आप महावीर के सामने बैठें तब आपका जो वाचाल मन है, वह जो निरंतर उपद्रव से ग्रस्त बीमार मन है वह शांत हो जाए, और आपकी जो गहन आत्मा है, वह महावीर के सामने आ जाए। संवाद हो सके उस आत्मा से।

इसलिए महावीर की वाणी को पांच सौ वर्ष तफ फिर रिकार्ड नहीं किया गया। तब तक रिकॉर्ड नहीं किया गया, जब तक ऐसे लोग मौजूद थे जो महावीर के शरीर के गिर जाने के बाद भी महावीर से संदेश लेने में समर्थ थे। जब ऐसे लोग भी समाप्त होने लगे, तब घबड़ाहट फैली, और तब संगृहीत करने की कोशिश की गई। इसलिए जैनों का एक वर्ग दिगंबर महावीर की किसी भी वाणी को आथेंटिक नहीं मानता।

उसका मानना है कि चूंकि वह उन लोगों के द्वारा संगृहीत की गई है जो दुविधा में पड़ गए थे और जिन्हें शक पैदा हो गया था कि महावीर से अब संबंध जोड़ना संभव है या नहीं, इसलिए वह प्रामाणिक नहीं कही जा सकती। इसलिए दिगंबर जैनों के पास महावीर का कोई शास्त्र नहीं है--कोई शास्त्र ही नहीं है। वे कहते हैं, सब खो गया। श्वेतांबरों के पास जो शास्त्र है वह भी पूर्ण नहीं है। क्योंकि जिन्होंने संगृहीत किया उन्होंने कहा--हम

थोड़ी सी बातें भर प्रामाणिक लिख सकते हैं। बाकी और सब अंग खो गए हैं। उनको जानने वाले अब कोई भी नहीं है। इसलिए वह भी अधूरा है।

लेकिन महावीर की पूरी वाणी को कभी भी पुनः पाया जा सकता है और उसके पाने का ढंग यह नहीं होगा कि महावीर के ऊपर जो किताबें लिखी रखी हैं उनमें खोजा जाए। उसके पुनः पाने का ढंग यही होगा कि वैसा गुप, वैसा स्कूल, वैसा थोड़े से लोग जो चेतना की उस गहराई तक जा सकें जहां से महावीर से आज भी संबंध जोड़ा जा सकता है। इसलिए महावीर ने कहा--"केवलपन्नतो धम्म"--शास्त्र नहीं। वही धर्म उत्तम है जो तुम केवली से संबंधित होकर जान सको, बीच में शास्त्र से संबंधित होकर नहीं। और केवली से कभी भी संबंधित हुआ जा सकता है। लेकिन शास्त्र बाजार में मिल जाते हैं। केवली से संबंधित होना हो तो बड़ी गहरी कीमत चुकानी पड़ती है। फिर स्वयं के भीतर बहुत कुछ रूपांतरित करना पड़ता है। महावीर कहते थे--बिना कीमत चुकाए कुछ भी नहीं मिलता है। और जितनी बड़ी चीज पानी हो, उतनी बड़ी कीमत चुकानी चाहिए।

इसलिए आखिरी बात--

जब वे बार-बार कहते हैं कि अरिहंत उत्तम हैं, सिद्ध उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं, केवली-प्ररूपित धर्म उत्तम है; तब वे यह भी कह रहे हैं कि इतने उत्तम को पाने के लिए तैयारी रखना सब कुछ चुकाने की। क्योंकि मूल्य है, मुफ्त नहीं मिल सकेगा। हम सब मुफ्त लेने के आदी हैं। हम कुछ भी चुकाने को तैयार नहीं हैं। सड़ी-गली चीज को खरीदने के लिए हम सब कुछ चुकाने को तैयार हैं। धर्म मुक्त मिलना चाहिए। असल में इससे पता चलता है--हम मुफ्त उसी चीज को लेने को तैयार होते हैं जिसको हम लेने को आग्रहशील नहीं हैं। जिसको हम कहते हैं कि मुफ्त देते हैं तो दे दें वरना क्षमा करें। महावीर कहते हैं--जो इतना उत्तम है, लोक में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे चुकाने को सब कुछ खोना पड़ेगा, स्वयं को। और जब भी कोई स्वयं को खोने को तैयार है तो वह केवलीप्ररूपित धर्म से सीधा, डायरेक्ट संबंधित, संयुक्त हो जाता है। वही धर्म, जो जानने वाले से सीधा मिलता हो, बिना मध्यस्थ के, वही श्रेष्ठ है।

आज इतना ही।

बैठेंगे पांच-सात मिनट... !

शरणागति: धर्म का मूल आधार (शरणागति-सूत्र)

अरिहंते सरणं पवज्जामि।
 सिद्धे सरणं पवज्जामि।
 साधु सरणं पवज्जामि।
 केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूं। सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूं। साधुओं की शरण स्वीकार करता हूं। केवली प्ररूपित अर्थात् आत्मज्ञ--कथित धर्म की शरण स्वीकार करता हूं।

कृष्ण ने गीता में कहा है--"सर्वधर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं ब्रज"... अर्जुन, तू सब धर्मों को छोड़ कर मुझ एक की शरण में आ।

कृष्ण जिस युग में बोल रहे थे, वह युग अत्यंत सरल, निर्दोष, श्रद्धा का युग था। किसी के मन में ऐसा नहीं हुआ कि कृष्ण कैसे अहंकार की बात कह रहे हैं कि तू छोड़ कर मेरी शरण में आ। अगर कोई घोषणा अहंकारग्रस्त मालूम हो सकती है तो इससे ज्यादा अहंकारग्रस्त घोषणा दूसरी मालूम नहीं होगी--अर्जुन को यह कहना कि छोड़ दे सब और आ मेरी शरण में। पर वह युग अत्यंत श्रद्धा का युग रहा होगा, जब कृष्ण बेझिझक, सरलता से ऐसी बात कह सके और अर्जुन ने सवाल भी न उठाया कि क्या कहते हैं आप? आपकी शरण में और मैं आऊं? अहंकार से भरे हुए मालूम पड़ते हैं।

लेकिन बुद्ध और महावीर तक आदमी की चित्त दशा में बहुत फर्क पड़े। इसलिए जहां हिंदू चिंतन "मामेकं शरणं ब्रज" पर केंद्र मान कर खड़ा है वहीं बुद्ध और महावीर की दृष्टि में आमूल परिवर्तन करना पड़ा। महावीर ने नहीं कहा कि तुम सब छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ, न बुद्ध ने कहा। दूसरे छोर से पकड़ना पड़ा सूत्र को। तो बुद्ध का सूत्र है, वह साधक की तरफ से है। महावीर का सूत्र है, वह भी साधक की तरफ से है, सिद्ध की तरफ से नहीं। अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूं, सिद्ध की शरण स्वीकार करता हूं, साधु की शरण स्वीकार करता हूं, केवली प्ररूपित धर्म की शरण स्वीकार करता हूं--यह दूसरा छोर है शरण और गति का। दो ही छोर हो सकते हैं। या तो सिद्ध कहे कि मेरी शरण में आ जाओ, या साधक कहे कि मैं आपकी शरण में आता हूं।

हिंदू और जैन विचार में मौलिक भेद यही है। हिंदू विचार में सिद्ध कह रहा है, आ जाओ मेरी शरण में; जैन विचार में साधक कहता है, मैं आपकी शरण में आता हूं। इससे बहुत पापों का पता चलता है। पहली तो यही बात पता चलती है कि कृष्ण जब बोल रहे थे तब बड़ा श्रद्धा का युग था और जब महावीर बोल रहे हैं तब बड़े तर्क का युग है। महावीर कहें--मेरी शरण आ जाओ, तत्काल लोगों को लगेगा, बड़े अहंकार की बात हो गई।

दूसरे छोर से शुरू करना पड़ेगा। पर बुद्ध और महावीर... बुद्ध के परंपरा में भी सूत्र है--बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि--बुद्ध की शरण जाता हूं, संघ की शरण जाता हूं, धर्म की शरण जाता हूं। लेकिन महावीर और बुद्ध के सूत्र में भी थोड़ा सा फर्क है, वह ख्याल में ले लेना जरूरी है। ऊपर से देखें तो दोनों एक से मालूम पड़ते हैं--गच्छामि हो कि पवज्जामि हो, शरण जाता हूं या शरण स्वीकार करता हूं--एक से ही मालूम पड़ते हैं, पर उनमें भेद है। जब कोई कहता है, बुद्धं शरणं गच्छामि--बुद्ध की शरण जाता हूं, तो यह शरण जाने की शुरुआत है, पहला कदम है। और जब कोई कहता है, "अरिहंतं सरणं पवज्जामि"--तब यह शरण जाने की अंतिम स्थिति है। शरण स्वीकार करता हूं, अब इसके आगे और कोई गति नहीं है। जब कोई

कहता है--शरण जाता हूं, तब वह पहला कदम उठाता है और जब कोई कहता है--शरण स्वीकार करता हूं, तब वह अंतिम कदम उठाता है। जब कोई कहता है--शरण जाता हूं, तो बीच से लौट भी सकता है। और शरण तक न पहुंचे, यह भी हो सकता है। यात्रा का प्रारंभ है, यात्रा पूरी न हो, यात्रा के बीच में व्यवधान आ जाए। यात्रा के मध्य में ही तर्क समझाए और लौटा दे। क्योंकि तर्क शरण जाने के नितांत विरोध में है। बुद्धि शरण जाने के नितांत विरोध में है। बुद्धि कहती है--तुम! और किसी की शरण! बुद्धि कहती है--सबको अपनी शरण में ले जाओ। तुम और किसी की शरण में जाओगे! तो अहंकार को पीड़ा होती है।

महावीर का सूत्र है--अरिहंत की शरण स्वीकार करता हूं। इससे लौटना नहीं हो सकता। यह पॉइंट ऑफ नो रिटर्न है। इसके पीछे लौटने का उपाय नहीं है। यह टोटल, यह समग्र छलांग है। शरण जाता हूं, तो अभी काल का व्यवधान होगा, अभी समय लगेगा, शरण तक पहुंचते-पहुंचते। अभी बीच में समय व्यतीत होगा। और आज जो कहता है--शरण जाता हूं, हो सकता है, न मालूम कितने जन्मों के बाद शरण में पहुंच सके। अपनी-अपनी मति पर निर्भर होगा। लेकिन पबज्जामि के सूत्र की खूबी यह है कि वह सडन जंप है। उसमें बीच में फिर समय का व्यवधान नहीं है। स्वीकार करता हूं। और जिसने शरण स्वीकार की, उसने स्वयं को तत्काल अस्वीकार किया। ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। तो अगर आप अपने को स्वीकार करते हैं तो शरण को स्वीकार न कर सकेंगे। अगर आप शरण को स्वीकार करते हैं तो अपने को अस्वीकार कर सकेंगे--करना ही होगा। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

शरण की स्वीकृति अहंकार की हत्या है। धर्म का जो भी विकास है चेतना में, वह अहंकार के विसर्जन से शुरू होता है। चाहे सिद्ध कहे कि मेरी शरण आ जाओ--जब युग होते हैं श्रद्धा के तो सिद्ध कहता है मेरी शरण आ जाओ, और जब युग होते हैं अश्रद्धा के तो फिर साधक को ही कहना पड़ता है कि मैं आपकी शरण स्वीकार करता हूं। महावीर बिल्कुल चुप हैं। वे यह भी नहीं कहते कि तुममें जो मेरी शरण आए हो तो मैं तुम्हें अंगीकार करता हूं। वे यह भी नहीं कहते। क्योंकि खतरा तर्क के युग में यह है कि अगर महावीर इतना भी कहें, सिर भी हिला दें कि हां, स्वीकार करता हूं तो वह दूसरे का अहंकार फिर खड़ा हो जाता है, कि अच्छा... ! यह तो अहंकार हो गया। महावीर चुप ही रह जाते हैं। यह एकतरफा है, साधक की तरफ से।

निश्चित ही बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए जितना आसान कृष्ण के युग में सत्य को उपलब्ध कर लेना है, उतना आसन महावीर के युग में नहीं रह जाता। और हमारे युग में तो अत्याधिक कठिनाई खड़ी हो जाती है। न सिद्ध कह सकता है, मेरी शरण आओ, न साधक कह सकता है कि मैं आपकी शरण आता हूं। महावीर चुप रह गए। आज अगर साधक किसी सिद्ध की शरण में जाए, और सिद्ध इनकार न करे कि नहीं-नहीं, किसी की शरण में जाने की जरूरत नहीं; तो साधक समझेगा, अच्छा, तो मौन सम्मति का लक्षण है, तो आप शरण में स्वीकार करते हैं।

तर्क अब और भी रोगग्रस्त हुआ। आज महावीर अगर चुप भी बैठ जाएं और आप जाकर कहें कि अरिहंत की शरण आता हूं--और महावीर चुप रहें, तो आप घर लौट कर सोचेंगे कि यह आदमी चुप रह गया। इसका मतलब, रास्ता देखता था कि मैं शरण आऊं, प्रतीक्षा करता था। मौन तो सम्मति का लक्षण है। तो यह आदमी तो अहंकारी है तो अरिहंत कैसे होगा? नहीं, अब एक कदम और नीचे उतरना पड़ता है। और महावीर को कहना पड़ेगा कि नहीं, तुम किसी की शरण मत जाओ। महावीर जोर देकर इनकार करें कि नहीं, शरण आने की जरूरत नहीं, तो ही वह साधक समझेगा कि अहंकारी नहीं है। लेकिन उसे पता नहीं, इस अस्वीकार में साधक के सब द्वार बंद हो जाते हैं।

कृष्णमूर्ति की अपील इस युग में इसीलिए है। न वे कहते--सब धर्म छोड़ कर मेरी शरण आओ, न कोई साधक कहे उनसे कि मैं आता हूं तुम्हारी शरण। तो वे इनकार करते। वे कहते--मेरे पैर में मत गिर जाना, दूर रहो। और तब अहंकारी साधक बड़ा प्रसन्न होता है कि... पर उसकी अस्मिता घनी होती है। और उसे सहयोग नहीं पहुंचाया जा सकता। हमारा युग आध्यात्मिक दृष्टि से किसी को सहयोग पहुंचाना हो तो बड़ी कठिनाई का

युग है। बुला कर सहयोग देना तो कठिन, जैसा कृष्ण देते हैं; आए हुए को सहयोग देना भी कठिन, जैसा कि महावीर देते हैं। और कुछ आश्चर्य न होगा कि और थोड़े दिनों बाद सिद्ध को कहना पड़े साधक से, आपकी शरण में आता हूं, स्वीकार करें! शायद तभी साधक मानें कि ठीक, यह आदमी ठीक है। यह आध्यात्मिक विकृति है। शरण का इतना मूल्य क्या है--इसे हम दो-तीन दिशाओं से समझने की कोशिश करें।

पहले तो शरीर से ही समझने की कोशिश करें। मैं कल आपको बल्गेरियन डाक्टर लौरेंजोव ने शिक्षा पर यह जो अनूठे प्रयोग किए हैं, उससे जब पिछले एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पूछा गया कि तुम्हें इस अदभुत क्रांतिकारी शिक्षा के आयाम का कैसे स्मरण आया, किस दिशा से तुम्हें संकेत मिला? तो लौरेंजोव ने कहा कि मैं योग के--भारतीय योग के श्वासन का प्रयोग करता था, और उसी से मुझे यह दृष्टि मिली।

श्वासन से! श्वासन की खूबी क्या है? श्वासन का अर्थ है पूर्ण समर्पित शरीर की दशा, जब आपने शरीर को बिल्कुल छोड़ दिया। पूरा रिलैक्स छोड़ दिया। जैसे ही आप शरीर को पूरा रिलैक्स छोड़ देते हैं--और शरीर को अगर पूरा रिलैक्स छोड़ना हो तो जमीन पर जो भारतीयों की पुरानी पद्धति है साष्टांग प्रणाम की, उस स्थिति में पड़ कर ही छोड़ा जा सकता है। वह शरणागति की स्थिति है शरीर के लिए। अगर आप भूमि पर सीधे पड़ जाएं, सब हाथ-पैर ढीले छोड़ कर सिर रख दें, सारे अंग भूमि को छूने लगें तो यह सिर्फ नमस्कार की एक विधि नहीं है, यह बहुत ही अदभुत वैज्ञानिक सत्यों से भरा हुआ प्रयोग है।

लौरेंजोव कहता है कि रात निद्रा में हमें जो विश्राम मिलता है और शक्ति मिलती है, उसका मूल कारण हमारा पृथ्वी के साथ समतुल लेट जाना है। लौरेंजोव कहता है--जब हम समतल पृथ्वी के साथ समानांतर लेट जाते हैं तो जगत की शक्तियां हममें सहज ही प्रवेश कर पाती हैं। जब हम खड़े होते हैं तो शरीर ही खड़ा नहीं होता, भीतर अहंकार भी उसके साथ खड़ा होता है। जब हम लेट जाते हैं तो शरीर ही नहीं लेटता--उसके साथ अहंकार भी लेट जाता है। हमारे डिफेंस गिर जाते हैं, हमारे सुरक्षा के जो आयोजन हैं, जिनसे हम जगत को रेसिस्ट कर रहे हैं, वे गिर जाते हैं।

चेक यूनिवर्सिटी प्राग का एक व्यक्ति अनूठे प्रयोगों पर पिछले दस वर्षों से अनुसंधान करता है। वह व्यक्ति है--राबर्ट पावलिटो। थके हुए आदमियों को पुनः शक्ति देने के उसने अनूठे प्रयोग किए हैं। आदमी थका है--आप बिल्कुल थके टूटे पड़े हैं तो आपको एक स्वस्थ गाय के नीचे लिटा देता है, जमीन पर। पांच मिनट उससे कहता है--सब छोड़ कर पड़े रहें और भाव करें कि स्वस्थ गाय से आपके ऊपर शक्ति गिर रही है। पांच मिनट में यंत्र बताना शुरू कर देते हैं कि उस आदमी की थकान समाप्त हो गई। वह ताजा होकर गाय के नीचे से बाहर आ गया। पावलिटो से बार-बार पूछा गया कि अगर हम गाय के नीचे बैठें तो? पावलिटो ने कहा कि जो काम लेट कर क्षण भर में होगा वह बैठ कर घंटों में भी नहीं हो पाएगा। वृक्ष के नीचे लिटा देता है। पावलिटो कहता है--जैसे ही आप लेटते हैं, आपका जो रेसिस्टेंस है आपके चारों ओर, आपने अपने व्यक्तित्व की जो सुरक्षा की दीवारें खड़ी कर रखी हैं, वे गिर जाती हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य की बुद्धि विकसित हुई उसके खड़े होने से। यह सच है। सभी पशु पृथ्वी के समानांतर जीते हैं, आदमी भर वर्टिकल खड़ा हो गया। सभी पशु पृथ्वी की धुरी से समानांतर होते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का पैर पर खड़ा हो जाना ही उसकी तथाकथित बुद्धि का विकास है। लेकिन साथ ही--यह बुद्धि तो जरूर विकसित हो गई, लेकिन साथ ही जीवन के अंतर्तम से कास्मिक, जागतिक शक्तियों से उसके और गहरे सब संबंध शिथिल और क्षीण हो गए। उसे वापस लेट कर वे संबंध पुनर्स्थापित करने पड़ते हैं। इसलिए अगर मंदिरों में मूर्तियों के सामने, गिरजाघरों में, मस्जिदों में, लोग अगर झुक कर जमीन में लेटे जा रहे हैं तो उसका वैज्ञानिक अर्थ है। झुक कर लेटते ही डिफेंस टूट जाते हैं।

इसलिए फ्रायड ने जब पहली बार मनोचिकित्सा शुरू की तो उसने अनुभव किया कि अगर बीमार को बैठ कर बात की जाए तो बीमार अपने डिफेंस मेजर नहीं छोड़ता। इसलिए फ्रायड ने कोच विकसित की, मरीज को एक कोच पर लिटा दिया जाता है। वह डिफेंसलेस हो जाता है। फिर फ्रायड ने अनुभव किया कि अगर उसके

सामने बैठा जाए तो लेट कर भी वह थोड़ा अकड़ा रहता है। एक परदा डाल कर फ्रायड परदे के पीछे बैठ गया। कोई मौजूद नहीं रहा, मरीज लेटा हुआ है। वह पांच-सात मिनट में अपने डिफेंस छोड़ देता है। वह ऐसी बातें बोलने लगता है जो बैठ कर वह कभी नहीं बोल सकता था। वह अपने ऐसे अपराध स्वीकार करने लगता है जो खड़े होकर उसने कभी भी स्वीकार न किए होते।

अभी अमरीका के कुछ मनोवैज्ञानिक फ्रायड के कोच के खिलाफ अभियान चला रहे हैं। वे यह आंदोलन चला रहे हैं कि यह आदमी को बहुत असहाय अवस्था में डालने की तरकीब है। उनका कहना ठीक है। आंदोलन, कि गलत है--उनका कहना ठीक है। आदमी असहाय अवस्था में पड़ जाता है निश्चित ही लेट कर। असहाय इसलिए हो जाता है कि उसने अपने तरफ सुरक्षा का जो इंतजाम किया था वह गिर जाता है।

पर शरणागत को हमने मूल्य दिया है। और अगर परमात्मा की तरफ, अरिहंत की तरफ, सिद्ध की तरफ, भगवान की तरफ शरणागति हो तो वह तो सदा परदे के पीछे ही है एक अर्थ में। अगर महावीर मौजूद भी हों तो महावीर का शरीर परदा बन जाता है और महावीर की चेतना तो परदे के पीछे होती है। और कोई उनके समक्ष जब समर्पण कर देता है तो वह अपने को सब भांति छोड़ देता है, जैसे कोई नदी की धार में अपने को छोड़ दे और धार बहाने लगे--तैरे नहीं, बहाने लगे। शरणागति भाव है, फ्लोटिंग है, और जैसे ही कोई बहता है, वैसे ही चित्त के सब तनाव छूट जाते हैं।

एक फ्रेंच खोजी, इजिस के पिरामिडों में दस वर्षों तक खोज करता रहा है। उस आदमी का नाम है--बोविस। वह एक वैज्ञानिक और इंजीनियर है। वह यह देख कर बहुत हैरान हुआ कि कभी-कभी पिरामिड में कोई चूहा भूल से या बिल्ली घुस जाती है और फिर निकल नहीं पाती--भटक जाती और मर जाती है। पर पिरामिड के भीतर जब भी कोई चूहा या बिल्ली या कोई प्राणी मर जाता है तो सड़ता नहीं। सड़ता नहीं, उसमें से दुर्गंध नहीं आती। वह ममीफाइड हो जाता है--सूख जाता है, सड़ता नहीं।

यह हैरानी की घटना है और बहुत अदभुत है। पिरामिड के भीतर इसके होने का कोई कारण नहीं है। और ऐसे पिरामिड के भीतर जो कि समुद्र के किनारे हैं जहां कि ह्यूमिडिटी काफी है, जहां कि कोई भी चीज सड़नी ही चाहिए, और जल्दी सड़ जानी चाहिए, उन पिरामिड के भीतर भी कोई मर जाए तो सड़ता नहीं। तो बहुत चकित हो गया। इसका तो कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। बहुत खोज-बीन की। आखिर यह ख्याल में आना शुरू हुआ कि शायद पिरामिड का जो शेप है, वही कुछ कर रहा है।

लेकिन शेप, आकार कुछ कर सकता है! सब खोज के बाद कोई उपाय नहीं था। दस साल की खोज के बाद बोविस को ख्याल आया कि कहीं पिरामिड का जो शेप, जो आकृति है, वह तो कुछ नहीं करती! तो उसने एक छोटा पिरामिड माडल बनाया--छोटा सा, तीन-चार फीट का बेस लेकर, और उसमें एक मरी हुई बिल्ली रख दी। वह चकित हुआ, वह ममीफाइड हो गई, वह सड़ी नहीं। तब तो एक बहुत नये विज्ञान का जन्म हुआ, और वह नया विज्ञान कहता है--ज्यामिटी की जो आकृतियां हैं उनका जीवन ऊर्जाओं से बहुत संबंध है। और अब बोविस की सलाह पर यह कोशिश की जा रही है कि सारी दुनिया के अस्पताल पिरामिड की शक्ल में बनाए जाएं। उनमें मरीज जल्दी स्वस्थ होगा।

आपने सर्कस के जोकर को, हंसोड़े को जो टोपी लगाए देखा है, वह फूल्स कैप कहलाती है। उसी की वजह से कागज--जितने कागज से वह टोपी बनती है, वह फूल्स कैप कहलाता है। लेकिन बोविस का कहना है कि कभी दुनिया के बुद्धिमान आदमी वैसी टोपी लगाते थे। वह वाइ.ज.कैप है, क्योंकि वह टोपी पिरामिड के आकार की है। और अभी बोविस ने प्रयोग किए हैं, फूल्स कैप के ऊपर। और उसका कहना है कि जिन लोगों को भी सिरदर्द होता है, वे पिरामिड के आकार की टोपी लगाएं, तत्क्षण उनका सिरदर्द दूर हो जाता है। जिनको भी मानसिक विकार हैं वे पिरामिड के आकार की टोपी लगाएं, उनके मानसिक विकार दूर हो सकते हैं। अनेक चिकित्सालयों में जहां मानसिक चिकित्सा की जाती है, बोविस की टोपी का प्रयोग किया जा रहा है, और प्रमाणित हो रहा है कि वह ठीक कहता है।

क्या टोपी के भीतर का आकर, आकृति इतना भेद ला दे सकती है! अगर बाह्य आकृतियां इतना भेद ला सकती हैं तो आंतरिक आकृतियों में कितना भेद पड़ सकेगा, वह मैं आपसे कहना चाहता हूं। शरणागति आंतरिक आकृति को बदलने की चेष्टा है, इनर ज्यामेट्री को। जब आप खड़े होते हैं तो आपके भीतर की चित्त-आकृति और होती है, और जब आप पृथ्वी पर शरण में लेट जाते हैं तो आपके भीतर की चित्त आकृति और होती है। चित्त में भी ज्यामेट्रिकल फिगर्स होते हैं। चित्त की आकृतियों में दो विशेष आकृतियां हैं, आपके खड़े होने का ख्याल जमीन से नब्बे का कोण बनाता है। और जब आप जमीन पर लेट जाते हैं तो आप जमीन से कोई कोण नहीं बनाते, पैरेलल, समानांतर हो जाते हैं। अगर कोई परिपूर्ण भाव से कह सके कि मैं अरिहंत की शरण आता हूं, सिद्ध की शरण आता हूं, धर्म की शरण आता हूं, तो यह भाव उसकी आंतरिक आकृति को बदल देता है। और आंतरिक आकृति बदलते ही, आपके जीवन में रूपांतरण शुरू हो जाते हैं। आपके अंतर में आकृतियां हैं। आपकी चेतना भी रूप लेती है। और आप जिस तरह का भाव करते हैं, चेतना उसी तरह का रूप ले लेती है।

चार साल पहले, सारे पश्चिम के वैज्ञानिक एक घटना से जितना धक्का खाए, उतना शायद पिछले दो सौ वर्षों में किसी घटना से नहीं खाए। दिमित्री दोजोनोव नाम का एक चेक किसान जमीन से चार फीट ऊपर उठ जाता है। और दस मिनट तक जमीन से चार फीट ऊपर, ग्रेवीटेशन के पार, गुरुत्वाकर्षण के पार दस मिनट तक रुका रह जाता है। सैकड़ों वैज्ञानिकों के समक्ष अनेकों बार यह प्रयोग दिमित्री कर चुका है। सब तरह की जांच-पड़ताल कर ली गई है। कोई धोखा नहीं है, कोई तरकीब नहीं है।

दिमित्री से पूछा जाता है कि तेरे इस उठने का राज क्या है, तो वह दो बातें कहता है। वह कहता है--एक राज तो मेरा समर्पण भाव, कि मैं परमात्मा को कहता हूं कि मैं तेरे हाथ में अपने को सौंपता हूं, तेरी शरण आता हूं। मैं अपनी ताकत से ऊपर नहीं उठता, उसकी ताकत से ऊपर उठता हूं। जब तक मैं रहता हूं, जब तक मैं ऊपर नहीं उठ पाता।

दो-तीन बार उसके प्रयोग असफल भी गए। पसीना-पसीना हो गया। सैकड़ों लोग देखने आए हैं दूर-दूर से, और वह ऊपर नहीं उठ पा रहा है। आखिर में उसने कहा कि क्षमा करें। लोगों ने कहा--क्यों ऊपर नहीं उठ पा रहे हो? उसने कहा--नहीं उठ पा रहा इसलिए कि मैं अपने को भूल ही नहीं पा रहा हूं। और जब तक मुझे मेरा ख्याल जरा सा भी बना रहे तब तक ग्रेवीटेशन काम करता है, तब तक जमीन मुझे नीचे खींचे रहती है। जब मैं अपने को भूल जाता हूं, मुझे याद ही नहीं रहता कि मैं हूं, ऐसा ही याद रह जाता है कि परमात्मा है--बस, तब तत्काल मैं ऊपर उठ जाता हूं।

शरणागति का अर्थ ही है समर्पण। क्या यह दिमित्री जो कह रहा है, क्या परमात्मा पर छोड़ देने पर जीवन के साधारण नियम भी अपना काम करना छोड़ देते हैं? जमीन अपनी कशिश छोड़ देती है! अगर जमीन अपनी कशिश छोड़ देती है तो क्या आश्चर्य होगा कि जो व्यक्ति अरिहंत की शरण जाए, सेक्स की कशिश उसके भीतर छूट जाए! जीवन का सामान्य नियम छूट जाए! शरीर की जो मांग है वह छूट जाए! क्या यह हो सकता है कि शरीर भोजन मांगना बंद कर दे! क्या यह हो सकता है कि शरीर बिना भोजन के, और वर्षों रह जाए! अगर जमीन कशिश छोड़ सकती है तो कोई भी तो कारण नहीं है। प्रकृति का अगर एक नियम भी टूट जाता है तो सब नियम टूट सकते हैं।

अब दिमित्री दूसरी बात यह कहता है कि जब मैं ऊपर उठ जाता हूं तब एक बात भर असंभव है ऊपर उठ जाने के बाद--जब तक मैं नीचे न आ जाऊं, मेरी शरीर की जो आकृति होती है उसमें मैं जरा भी फर्क नहीं कर सकता। अगर मेरा हाथ घुटने पर रखा है, तो मैं उसे हिला नहीं सकता, उठा नहीं सकता। मेरा सिर जैसा है फिर उसको मैं आड़ा-तिरछा नहीं कर सकता। मेरा शरीर उस आकृति में बिल्कुल बंध जाता है। और न केवल मेरा शरीर, बल्कि मेरे भीतर की चेतना भी उसी आकृति से बंध जाती है।

आपको ख्याल में नहीं होगा--क्योंकि हमारे पास ख्याल जैसी चीज ही नहीं बची है। आपके विचार में भी नहीं आया होगा कि सिद्धासन, पिरामिड की आकृति पैदा करना है शरीर में। बुद्ध की, महावीर की सारी मूर्तियां जिस आसन में हैं, वह पिरामिडिकल हैं। जमीन पर बेस बड़ी हो जाती है दोनों पैर की और ऊपर सब छोटा हो जाता है, सिर पर शिखर हो जाता है। एक ट्राएंगल बन जाता है--उस अवस्था में। उस आसन को सिद्धासन कहा है। क्यों? क्योंकि उस आसन में सरलता से प्रकृति के नियम अपना काम छोड़ देते हैं और प्रकृति के ऊपर जो परमात्मा के गहन, सूक्ष्म नियम हैं, वे काम करना शुरू कर देते हैं। वह आकृति महत्वपूर्ण है। दिमित्री कहता है--जमीन से उठ जाने के बाद फिर मैं आकृति नहीं बदल सकता, कोई उपाय नहीं है। मेरा कोई वश नहीं रह जाता। जमीन पर लौट कर ही आकृति बदल सकता हूं।

यह शरणागति की अपनी आकृति है, अहंकार की अपनी आकृति है। अहंकार को आप जमीन पर लेटा हुआ सोच सकते हैं? कंसीव भी नहीं कर सकते। अहंकार को सदा खड़ा हुआ ही सोच सकते हैं। बैठा हुआ अहंकार, सोया हुआ अहंकार कोई अर्थ नहीं रखता। अहंकार सदा खड़ा हुआ होता है। तो शरण के भाव को आप खड़ा हुआ सोच सकते हैं? शरण का भाव लेट जाने का भाव है। किसी विराटतर शक्ति के समक्ष अपने को छोड़ देने का भाव है। मैं नहीं, तू--वह भावना उसमें गहरी है।

मैंने आपसे कहा कि प्रकृति के नियम काम करना छोड़ देते हैं, अगर हम परमात्मा के नियम में अपने को समाविष्ट करने में समर्थ हो जाएं। इस संबंध में कुछ बातें कहनी जरूरी हैं।

महावीर के संबंध में कहा जाता है--पच्चीस सौ साल में महावीर के पीछे चलने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं समझा पाया कि इसका राज क्या है। महावीर ने बारह वर्षों में केवल तीन सौ पैंसठ दिन भोजन किया। इसका अर्थ हुआ कि ग्यारह वर्ष भोजन नहीं किया। कभी तीन महीने बाद एक दिन किया, कभी महीने बाद एक दिन किया। बारह वर्ष के लंबे समय में सब मिला कर तीन सौ पैंसठ दिन, एक वर्ष भोजन किया। अनुपात अगर लें तो बाहर दिन में एक दिन भोजन किया और ग्यारह दिन भूखे रहे। लेकिन महावीर से ज्यादा स्वस्थ शरीर खोजना मुश्किल है, शक्तिशाली शरीर खोजना मुश्किल है। बुद्ध या क्राइस्ट या कृष्ण या राम, सारे स्वास्थ्य की दृष्टि से महावीर के सामने कोई भी नहीं टिकते। हैरानी की बात है! बहुत हैरानी की बात है! और महावीर के शरीर के साथ जैसे--जैसे नियम बाह्य-काम कर रहे हैं, उसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। बारह साल तक यह आदमी तीन सौ पैंसठ दिन भोजन करता है। इसके शरीर को तो गिर जाना चाहिए कभी का। लेकिन क्या हुआ कि शरीर गिरता नहीं।

अभी मैंने नाम लिया है--राबर्ट पावलिटा का कि इसकी प्रयोगशाला में बहुत अनूठे प्रयोग किए जा रहे हैं। उनमें एक प्रयोग भोजन के बाहर सम्मोहन के द्वारा हो जाने का भी है। जो व्यक्ति इस प्रयोगशाला में काम कर रहा है उसने चकित कर दिया है। पावलिटा की प्रयोगशाला में कुछ लोगों को दस-दस साल के लिए सम्मोहित किया गया। वह दस साल तक सम्मोहन में रहेंगे--उठेंगे, बैठेंगे, काम करेंगे, खाएंगे, पीएंगे, लेकिन उनका सम्मोहन नहीं तोड़ा जाएगा। वह गहरी सम्मोहन की अवस्था बनी रहेगी। और कुछ लोगों ने तो अपना पूरा जीवन सम्मोहन के लिए दिया है जो पूरे जीवन के लिए सम्मोहन किए गए हैं, उनका सम्मोहन जीवन भर नहीं तोड़ा जाएगा।

उनमें एक व्यक्ति है बरफिलावा। उसको तीन सप्ताह के लिए पिछले वर्ष सम्मोहित किया गया और तीन सप्ताह पूरे समय उसे बेहोश, सम्मोहित रखा गया। और उसे तीन सप्ताह में बार-बार सम्मोहन में झूठा भोजन दिया गया। जैसे उसे बेहोशी में कहा गया कि तुझे एक बगीचे में ले जाया जा रहा है। देख, कितने सुगंधित फूल हैं और कितने फल लगे हैं, सुगंध आ रही है? उस व्यक्ति ने जोर से श्वास खींची और कहा--अदभुत सुगंध है! प्रतीत होता है, सेव पक गए। पावलिटा ने उन झूठे, काल्पनिक, फैंटेसी के बगीचे से फल तोड़े; उस आदमी को दिए और कहा कि लो बहुत स्वादिष्ट हैं। उस आदमी ने शून्य में, शून्य से लिए गए, शून्य सेवों को खाया। कुछ था नहीं वहां। स्वाद लिया, आनंदित हुआ।

पंद्रह दिन तक उसे इसी तरह का भोजन दिया गया--पानी भी नहीं, भोजन भी नहीं--झूठा पानी कहें, झूठा भोजन कहें। दस डाक्टर उसका अध्ययन करते थे। उन्होंने कहा है--रोज उसका शरीर और भी स्वस्थ होता चला गया। उसको जो शारीरिक तकलीफें थीं वे पांच दिन के बाद विलीन हो गईं। पेशाब या पाखाना, मलमूत्र विसर्जन सब विदा हो गया, क्योंकि उसके शरीर में कुछ जा ही नहीं रहा है। तीन सप्ताह के बाद जो सबसे बड़े चमत्कार की बात थी, वह यह कि वह परिपूर्ण स्वस्थ अपनी बेहोशी के बाहर आया। बड़े आश्चर्य की बात--जो आप कल्पना भी नहीं कर सकते, वह यह कि उसका वजन बढ़ गया।

यह असंभव है। जो वैज्ञानिक वहां अध्ययन कर रहा था--डाक्टर रेजलिव, उसने वक्तव्य दिया है--दिस इ.ज साइंटिफिकली इंपासिबल। पर उसने कहा--इंपासिबल हो या न हो, असंभव हो या न हो, लेकिन यह हुआ है, मैं मौजूद था। और दस रात और दस दिन पूरे वक्त पहरा था कि उस आदमी को कुछ खिला न दिया जाए कोई तरकीब से; कोई इंजेक्शन न लगा दिया जाए; कोई दवा न डाल दी जाए: कुछ भी उसके शरीर में नहीं डाला गया। वजन बढ़ गया। तो रेजलिव उस पर साल भर से काम कर रहा है और रेजलिव का कहना है कि यह मानना पड़ेगा कि देयर इ.ज समथिंग लाइके ऐन अननोन एक्स-फोर्स। कोई एक शक्ति है अज्ञात एक्स नाम की, जो हमारी वैज्ञानिक रूप से जानी गई किन्हीं शक्तियों में समाविष्ट नहीं होती--वही काम कर रही है। उसे हम भारत में प्राण कहते रहे हैं।

इस प्रयोग के बाद महावीर को समझना आसान हो जाएगा। और इसलिए मैं कहता हूं कि जिन लोगों को भी उपवास करना हो वे तथाकथित जैन साधुओं को सुन-समझ कर उपवास करने के पागलपन में न पड़ें। उन्हें कुछ भी पता नहीं है। वे सिर्फ भूखा मरवा रहे हैं। अनशन को उपवास कह रहे हैं। उपवास की तो पूरी, और ही वैज्ञानिक प्रक्रिया है। और अगर उस भांति किया जाए तो वजन नहीं गिरेगा, वजन बढ़ भी सकता है।

पर महावीर का वह सूत्र खो गया। संभव है, रेजलिव उस सूत्र को चेकोस्लोवाकिया में फिर से पुनः पैदा करे--कर लेगा। यहां भी हो सकता है--लेकिन हम अभागे लोग हैं। हम व्यर्थ की बातों में और विवादों में इतना समय को नष्ट करते हैं और करवाते हैं कि सार्थक को करने के लिए समय और सुविधा भी नहीं बचती। और हम ऐसी ही मूढताओं में लीन होते हैं, जिन्होंने विद्वता का आवरण ओढ़ रखा है। और हम बंधी हुई अंधी गलियों में भटकते रहते हैं जहां रोशनी की कोई किरण भी नहीं है।

यह प्रकृति के नियम के बाहर जाने की महावीर की तरकीब क्या होगी? क्योंकि महावीर तो सम्मोहित या बेहोश नहीं थे। यह पावलिटो और रेजलिव का जो प्रयोग है, यह तो एक बेहोश और सम्मोहित आदमी पर है। महावीर तो पूर्ण जाग्रत पुरुष थे, वह तो बेहोश नहीं थे। वह तो उस जाग्रत लोगों में से थे जो कि निद्रा में भी जाग्रत रहते, जो कि नींद में भी सोते नहीं। जिन्हें नींद में भी पूरा होश रहता है कि यह रही नींद। नींद भी जिनके आस-पास ही होती है--अराउंड दि कार्नर--कभी भीतर नहीं होती। वह उसे जांचते हैं, जानते हैं कि यह रही नींद और... और वह सदा बीच में जागे हुए होते हैं।

तो महावीर ने कैसे किया होगा? फिर महावीर का सूत्र क्या है? असल में सम्मोहन में और महावीर के सूत्र में एक आंतरिक संबंध है, वह ख्याल में आ जाए। सम्मोहित व्यक्ति बेहोशी में विवश होकर समर्पित हो जाता है। उसका अहंकार खो जाता है और तो कुछ फर्क नहीं है। अपने आप जान कर वह नहीं खोता, इसलिए उसे बेहोश करना पड़ता है। बेहोशी में खो जाता है। महावीर जान कर उस अस्मिता को, उस अहंकार को खो देते हैं और समर्पित हो जाते हैं। अगर आप होशपूर्वक भी, जागे हुए भी समर्पित हो सकें, कह सकें--अरिहंत शरणं पवज्जामि, तो आप उसी रहस्य लोग में प्रवेश कर जाते हैं जहां का रेजलिव और पावलिटो प्रयोग करता है। पर केवल बेहोशी में प्रवेश कर पाते हैं। होश आने पर तो उस आदमी को भी भरोसा नहीं आया कि यह हो सकता है। उसने कहा--कुछ न कुछ गड़बड़ हुई होगी। मैं नहीं मान सकता। होश में आने के बाद तो वह एक दिन बिना भोजन के न रह सका। उसने कहा कि मैं मर जाऊंगा। अहंकार वापस आ गया। अहंकार अपने सुरक्षा

आयोजन को लेकर फिर खड़ा हो गया। उस आदमी को समझा रहे हैं डाक्टर कि नहीं मरेगा; क्योंकि इक्कीस दिन तो हम देख चुके कि तेरा स्वास्थ्य और बढ़ा है। पर उस आदमी ने कहा—मुझे तो कुछ पता नहीं। मुझे भोजन दें। भय लौट आया।

ध्यान रहे, मनुष्य के चित्त में जब तक अहंकार है, तब तक भय होता है। भय और अहंकार एक ही ऊर्जा के नाम हैं। तो जितना भयभीत आदमी, उतना अहंकारी। जितना अहंकारी, उतना भयभीत। आप सोचते होंगे कि अहंकारी बहुत निर्भय होता है, तो आप बहुत गलामी में हैं। अहंकारी अत्यंत भयातुर होता है। यद्यपि अपने भय को प्रकट न होने देने के लिए वह निर्भयता के कवच ओढ़े रहता है। तलवारें लिए रहता है हाथ में कि सम्भल कर रहना। महावीर कहते हैं—अभय तो वही होता है जो अहंकारी नहीं होता। क्योंकि फिर भय के लिए कोई कारण नहीं रहा। भयभीत होने वाला भी नहीं रहा। इसलिए महावीर कहते हैं कि जो निर्भय अपने को दिखा रहा है, वह तो भयभीत है ही। अभय... अभय का अर्थ? वही हो सकता है अभय, जो समर्पित, शरणागत; जिसने छोड़ा अपने को। अब कोई भय का कारण न रहा।

यह सूत्र शरणागति का है। इस सूत्र के साथ नमोकार पूरा होता है। नमस्कार से शुरू होकर शरणागति पर पूरा होता है। और इस अर्थ में नमोकार पूरे धर्म की यात्रा बन जाता है। उस छोटे से सूत्र में पहले से लेकर आखिरी कदम तक सब छोड़ दें कहीं किसी चरण में, छोड़ दें। यह बात प्रयोजनहीन है—कहां छोड़ दें। महत्वपूर्ण यही है कि छोड़ दें।

तो शरणागति का पहला तो संबंध है—आंतरिक ज्यामिती से कि वह आपके भीतर की चेतना की आकृति बदलती है। दूसरा संबंध है—आपको प्रकृति के साधारण नियमों के बाहर ले जाती है। किसी गहन अर्थ में आप दिव्य हो जाते हैं, शरण जाते हैं।

आप ट्रांसेंड कर जाते हैं, अतिक्रमण कर जाते हैं—साधारण तथाकथित नियमों का—जो हमें बांधे हुए हैं। और तीसरी बात—शरणागति आपके जीवन द्वारों को परम ऊर्जा की तरफ खोल देती है जैसे कि कोई अपनी आंख को सूरज की तरफ उठा ले। सूरज की तरफ पीठ करने की भी हमें स्वतंत्रता है। सूरज की तरफ पीठ करके भी हम खड़े हो सकते हैं। सूरज की तरफ मुंह करके भी आंख बंद रख सकते हैं। सूरज का अनंत प्रकाश बरसता रहेगा और हम वंचित रह जाएंगे। लेकिन एक आदमी सूरज की तरफ घूम जाता है, जैसे कि सूरजमुखी का फूल घूम गया हो। आंख खोल लेता है, द्वार खुले छोड़ देता है। सूरज का प्रकाश उसके रोएं-रोएं, रंध्र-रंध्र में पहुंच जाता है। उसके हृदय के अंधकारपूर्ण कक्षों तक भी प्रकाश की खबर पहुंच जाती है। वह नया और ताजा, पुनरुज्जीवित हो जाता है। ठीक ऐसे ही विश्व-ऊर्जा के स्रोत हैं और उन विश्व-ऊर्जा के स्रोतों की तरफ स्वयं को खोलना हो तो शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

इसलिए अहंकारी व्यक्ति दीन से दीन व्यक्ति है, जिसने अपने को समस्त स्रोतों से तोड़ लिया है। जो सिर्फ अपने पर ही भरोसा कर रहा है। वह ऐसा फूल है जिसने जड़ों से अपने संबंध त्याग दिए। और जिसने सूरज की तरफ मुंह फेरने से अकड़ दिखाई। वर्षा आती है तो अपनी पंखुड़ियां बंद कर लेता है। सड़ेगा, उसका जीवन सिर्फ सड़ने का एक क्रम होगा। उसका जीवन मरने की एक प्रक्रिया होगी। उसका जीवन परम जीवन का मार्ग नहीं बनेगा। लेकिन फूल पाता है रस—जड़ों से, सूर्यों से, चांद-तारों से। अगर फूल समर्पित है तो प्रफुल्लित हो जाता है। सब द्वारों से उसे रोशनी, प्रकाश, जीवन मिलता है।

शरणागति का तीसरा और गहनतम जो रूप है, वह प्रकाश, जीवन-ऊर्जा के जो परम स्रोत हैं, जो एनर्जी सोर्सेज हैं—उनकी तरफ अपने को खोलना है।

इस पावलिटा का मैंने नाम लिया, इसके नाम से एक यंत्र वैज्ञानिक जगत में प्रसिद्ध है। वह कहलाता है, पावलिटा जनरेटर। बड़े छोटे-छोटे उसने यंत्र बनाए हैं। बहुत संवेदनशील पदार्थों से बहुत छोटी-छोटी चीजें बनाई हैं, और अभूतपूर्व काम उन यंत्रों से पावलिटा कर रहा है। वह उन यंत्रों पर कहता है कि आप सिर्फ अपनी आंख गड़ा कर खड़े हो जाएं, पांच क्षण के लिए—कुछ न करें, सिर्फ आंख गड़ा कर उन यंत्रों के सामने खड़े हो जाएं। वह यंत्र आपकी शक्ति को संगृहीत कर लेते हैं और तत्काल उस शक्ति का उपयोग किया जा सकता है।

और जो काम आपका मन कर सकता था, बहुत दूर तक वही काम अब वह यंत्र कर सकता है। पांच मिनट पहले उस यंत्र को आप हाथ में उठाते तो वह मुर्दा था। पांच मिनट बाद आप उसको हाथ में उठाएं तो आपके हाथ में उस शक्ति का अनुभव होगा। पांच मिनट पहले आप जिसे प्रेम करते हैं, अगर आपने वह यंत्र उसके हाथ में दिया होता तो वह कहता, ठीक है। यह व्यक्ति कहता या वह स्त्री कहती कि ठीक है। लेकिन पांच मिनट उसे आप गौर से देख लें और आपकी ध्यान-ऊर्जा उससे संयुक्त हो जाए तो आप उस यंत्र को अपने प्रेमी के हाथ में दे दें--वह फौरन पहचानेगा कि आपकी प्रतिध्वनि उस यंत्र से आ रही है। अगर क्रोध और घृणा से भरा हुआ व्यक्ति उस यंत्र को देख ले तो आप उसको हाथ से अलग करना चाहेंगे। अगर प्रेम और दया और सहानुभूति से भरा व्यक्ति देख ले तो आप उसे सम्हाल कर रखना चाहेंगे।

पावलिटा ने तो एक बहुत अदभुत घोषणा की है। उसने कहा--बहुत शीघ्र भीड़ को छांटने के लिए गोली और लाठी चलाने की जरूरत न होगी। हम ऐसे यंत्र बना सकेंगे जो पंद्रह मिनट में वहां खड़े कर दिए जाएं तो लोग भाग जाएंगे। इतनी घृणा विकीर्णित की जा सकेगी। अभी उसके प्रयोग तो सफल हुए हैं उसने प्रयोग बताए हैं, लोगों को करके, और वे सफल हुए हैं। अब उसने नवीनतम जो यंत्र बनाया है वह ऐसा है कि आपको देखने की भी जरूरत नहीं है। आप सिर्फ एक विशेष सीमा के भीतर उसके पास से गुजर जाएं, वह आपको पकड़ लेगा।

मैंने कल कहा था कि स्टैलिन ने एक आदमी की हत्या करवा दी थी--कार्ल आटोविच झीलिंग की, उन्नीस सौ सैंतीस में। वह आदमी उन्नीस सौ सैंतीस में यही काम कर रहा था, जो पावलिटा अब कर पाया है। बीस साल, तीस साल व्यर्थ पिछड़ गई बात। झीलिंग अदभुत व्यक्ति था। वह अंडे को हाथ में रख कर बता सकता था कि इस अंडे से मुर्गी पैदा होगी या मुर्गा, और कभी गलती नहीं हुई। पर यह तो बड़ी बात नहीं, क्योंकि अंडे के भीतर आखिर जो प्राण हैं, स्त्री और पुरुष की विद्युत में फर्क हैं, उनके विद्युत कंपन में फर्क है। वही उनके बीच आकर्षण है। वह निगेटिव-पाजिटिव का फर्क है। तो अंडे के ऊपर अगर संवेदनशील व्यक्ति हाथ रखे तो जो ऊर्जा-कण निकलते रहते हैं, वह बता सकता है।

लेकिन झीलिंग--चित्र को ढंक दें आप--वह चित्र, ढंके हुए चित्र पर हाथ रख कर बता सकता था कि चित्र नीचे स्त्री का है कि पुरुष का। झीलिंग का कहना था कि जिसका चित्र लिया गया है, उसके विद्युत-कण उस चित्र में समाविष्ट हो जाते हैं, जितनी देर लिया जाता है। और इसलिए समाविष्ट हो जाते हैं कि जब किसी का चित्र लिया जाता है, तो वह कैमरा कांशस हो जाता है, उसका ध्यान कैमरे पर अटक जाता है और धारा प्रवाहित हो जाती है। वह जो पावलिटा कह रहा है कि एक तरफ देखने से आपकी ऊर्जा चली जाती है; आपके चित्र में भी आपकी ऊर्जा चली जाती है।

पर यह तो कुछ भी नहीं है। झीलिंग की सबसे अदभुत बात जो थी, वह यह है कि किसी आईने पर हाथ रख कर वह बता सकता था कि आखिरी जो व्यक्ति, इस आईने के सामने से निकला, वह स्त्री थी या पुरुष। क्योंकि आईने के सामने भी आप मिरर कांशस हो जाते हैं। जब आप आईने के सामने होते हैं तब जितने एकाग्र होते हैं, शायद और कहीं नहीं होते। आपके बाथरूम में लगा आईना आपके संबंध में किसी दिन इतनी बातें कह सकेगा कि आपको अपना आईना बचाना पड़ेगा कि कोई ले न जाए उठा कर। वे सब रहस्य खुल जाएंगे, जो आपने किसी को नहीं बताए। जो सिर्फ आपका बाथरूम और आपके बाथरूम का आईना जानता है। क्योंकि जितने ध्यानमग्न होकर आप आईने को देखते हैं, शायद किसी चीज को नहीं देखते। आपकी ऊर्जा प्रविष्ट हो रही है।

अगर आपसे ऊर्जा प्रविष्ट होती है ध्यानमग्न होने से, तो क्या इससे विपरीत नहीं हो सकता? वह विपरीत ही शरणागति का राज है। कि अगर आप ध्यानमग्न होते हैं, बहुत छोटे से ऊर्जा के केंद्र हैं आप। और अगर आपसे भी ऊर्जा प्रवाहित हो जाती है, तो क्या परम शक्ति के प्रति आप समर्पित होकर, उसकी ऊर्जा को अपने में समाविष्ट नहीं कर सकते? ऊर्जा के प्रवाह हमेशा दोनों तरफ होते हैं। जो ऊर्जा आपसे बह सकती है, वह आपकी

तरफ भी बह सकती है। और अगर गंगाएं सागर की तरफ बहती हैं तो क्या सागर गंगा की तरफ नहीं बह सकता? यह शरणागति, सागर को गंगा की गंगोत्री की तरफ बहाने की प्रक्रिया है।

हम तो सब बह-बह कर सागर में गिर ही जाते हैं, लड़-लड़ कर बचाने की कोशिश में हैं। जीसस ने कहा है--"जो भी अपने को बचाएगा, वह मिट जाएगा। और धन्य हैं वे जो अपने को मिटा देते हैं, क्योंकि उनको मिटाने की फिर किसी की सामर्थ्य नहीं है।" गंगा तो लड़ती होगी, झगड़ती होगी, सागर में गिरने के पहले, सभी झगड़ते और लड़ते हैं। भयभीत होती होगी, मिटी जाती होगी। मौत से हमारा डर यही तो है। मौत का मतलब, सागर के किनारे पहुंच गई गंगा। मरे, बचा रहे हैं। लड़ते-लड़ते गिर जाते हैं। तब गिरने का जो मजा था, उससे भी चूक जाते हैं और पीड़ा भी पाते हैं।

शरणागति कहती है, लड़ो ही मत। गिर ही जाओ, और तुम पाओगे कि जिसकी शरण में तुम गिर गए हो, उससे तुमने कुछ नहीं खोया-पाया। सागर आया गंगोत्री की तरफ--वह जो अमृत का स्रोत है, चारों तरफ, जीवन का रहस्य स्रोत। ये तो प्रतीक शब्द हैं--अरिहंत, सिद्ध, साधु। ये हमारे पास आकृतियां हैं, उस अनंत स्रोत की। ये हमारे निकट, जिन्हें हम पहचान सकें। परमात्मा निराकार में खड़ा है, उसे पहचानना बहुत मुश्किल होगा। जो पहचान सके, धन्यभागी है।

लेकिन आकार में भी परमात्मा की छवि बहुत बार दिखाई पड़ती है--कभी किसी महावीर में, कभी किसी बुद्ध में, कभी किसी क्राइस्ट में, कभी उस परमात्मा की, उस निराकार की छवि दिखाई पड़ती है। लेकिन हम उस निराकार को तब भी चूकते हैं, क्योंकि हम आकृति में कोई भूल निकाल लेते हैं। कहते हैं कि जीसस की नाक थोड़ी कम लंबी है। यह परमात्मा की नहीं हो सकती। या महावीर को तो बीमारी पकड़ती है, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? कि बुद्ध भी तो मर जाते हैं, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? आपको ख्याल नहीं कि यह आप आकृति की भूलें निकाल रहे हैं और आकृति के बीच जो मौजूद था, उससे चूके जा रहे हैं।

आप वैसे आदमी हैं, जो कि दीये की मिट्टी की भूलें निकाल रहे हैं, तेल की भूलें निकाल रहे हैं और वह जो ज्योति चमक रही है, उससे चूके जा रहे हैं। होगी दीये में भूल। नहीं बना होगा पूरा सुघड़। पर प्रयोजन क्या है? तेल भर लेता है, काफी सुघड़ है। वह जो ज्योति बीच में जल रही है, वह जो निराकार ज्योति है, स्रोत-रहित--उसे तो देखना कठिन है। उसे भी देखा जा सकता है। लेकिन अभी तो प्रारंभिक चरण में उसे अरिहंत में, उसे सिद्ध में, उसे साधु में, उसे जाने हुए लोगों के द्वारा कहे गए धर्म में देखने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि अगर कृष्ण बोल रहे हों तो हम यह फिकर कम करेंगे कि उन्होंने क्या कहा। हम इसकी फिकर करेंगे कि कोई व्याकरण की भूल तो नहीं थी। ... ऐसे लोग हैं!

हम जिद्द किए बैठे हैं, चूकने की कि हम चूकते ही चले जाएंगे। और जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं, उनसे ज्यादा बुद्धिहीन खोजना मुश्किल है, क्योंकि वे चूकने में सर्वाधिक कुशल होते हैं। वे महावीर के पास जाते हैं तो वे कहते हैं कि सब लक्षण पूरे हुए कि नहीं? पहले लक्षण जो शास्त्र में लिखे हैं--वे पूरे होते हैं कि नहीं। वे दीयों की नाप-जोख कर रहे हैं, तेल का पता लगा रहे हैं। और तब तक ज्योति विदा हो जाएगी। और जब तक वे तय कर पाएंगे कि दीया बिल्कुल ठीक है, तब तक ज्योति जा चुकी होगी। और तब दीये को हजारों साल तक पूजते रहेंगे। इसलिए मरे हुए दीयों का हम बड़ा आदर करते हैं। क्योंकि जब तक हम तय कर पाते हैं कि दीया ठीक है, या अपने को तय कर पाते हैं कि चलो ठीक है, तब तक ज्योति तो जा चुकी होती है।

इस जगत में, जिंदा तीर्थंकर का उपयोग नहीं होता, सिर्फ मुर्दा तीर्थंकर का उपयोग होता है। क्योंकि मुर्दा तीर्थंकर के साथ, भूल-चूक निकालने की सुविधा नहीं रह जाती। अगर महावीर के साथ आप रास्ते पर चलते हों, और देखें कि महावीर भी थक कर और वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं, शक पकड़ेगा कि अरे महावीर तो

कहते थे अनंत ऊर्जा है, अनंत शक्ति है, अनंत वीर्य है। कहां गई अनंत ऊर्जा? यह तो थक गए। दस मील चले और पसीना निकल आया। साधारण आदमी हैं। दीया थक रहा है। महावीर जिस अनंत ऊर्जा की बात कर रहे हैं वह ज्योति की बात है। दीये तो सभी के थक जाएंगे और गिर जाएंगे।

लेकिन ये सारी बातें हम क्यों सोचते हैं? यह हम सोचते हैं, इसलिए कि शरण से बच सकें। इसके सोचने का लाजिक है। इसके सोचने का तर्क है। इसके सोचने का रेशनेलाइजेशन है। यह हम सोचते इसलिए हैं ताकि हमें कोई कारण मिल सके और कारण के द्वारा, हम अपने को रोक सकें--शरण जाने से। बुद्धिमान वह है जो कारण खोजता है शरण जाने के लिए। और बुद्धिहीन वह है जो कारण खोजता है शरण से बचने के लिए। दोनों खोजे जा सकते हैं।

महावीर जिस गांव से गुजरते हैं, सारा गांव उनका भक्त नहीं हो जाता। उस गांव में भी उनके शत्रु होते ही हैं। जरूर वे भी अकारण नहीं होते होंगे। उनको भी कारण मिल जाता है। वे भी खोज लेते हैं कि महावीर को, कहते हैं कि जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है वह सर्वज्ञ हो जाता है। और अगर महावीर सर्वज्ञ हैं तो वे उस घर के सामने भिक्षा क्यों मांगते थे, जिसमें कोई है ही नहीं? इन्हें तो पता होना ही चाहिए न कि घर में कोई भी नहीं है! सर्वज्ञ? ये खुद ही कहते हैं, जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। और हमने इनको ऐसे घर के सामने भीख मांगते देखा, जिसमें पता चला कि घर खाली है। घर में कोई है ही नहीं। नहीं, सर्वज्ञ नहीं है। बात खत्म हो गई। शरण से रुकने का उपाय हो गया।

क्योंकि महावीर के लिए तो लोग कहते हैं, शास्त्र कहते हैं, तीर्थकरों के लक्षण कहे गए हैं कि इतने-इतने दूरी तक, इतने-इतने फासले तक, जहां महावीर चलते हैं--वहां घृणा का भाव नहीं रह जाता, वहां शत्रुता का भाव नहीं रह जाता। लेकिन फिर महावीर के कान में ही कोई कीलें ठोंक पाता है। तो ये तीर्थकर नहीं हो सकते। क्योंकि जब शत्रुता का भाव ही नहीं रह जाता--जहां महावीर चलते हैं, उनके मिल्यू में, उनके वातावरण में, कोई शत्रुता का भाव नहीं बचता--तो फिर कोई इनके कान में कीलें ठोंक देता है, इतने पास आकर? कान में कीलें तो बहुत दूर से नहीं ठोंकी जा सकतीं। बहुत पास होना पड़ता है। इतने पास आकर भी शत्रुता का भाव बचा रहता है! बात गड़बड़ है। संदिग्ध है मामला, ये तीर्थकर नहीं हैं।

मगर महावीर तीर्थकर हैं या नहीं, इससे आप क्या पा लेंगे? हां, एक कारण आप पा लेंगे कि एक अरिहंत उपलब्ध होता था तो उसकी शरण जाने से आप बच सकेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आपके शरण जाने से महावीर को कुछ मिलने वाला था, जो आपने रोक लिया। भूल रहे हैं, शरण जाने से आपको ही कुछ मिल सकता था, जो आप ही चूक गए। ये बहाने हैं, और आदमी की बुद्धिहीनता इतनी प्रगाढ़ है कि वह बहाने खोजने में बड़ा कुशल है। खोज लेता है बहाना।

बुद्ध के पास आकर लोग पूछते हैं--चमत्कार दिखाओ, अगर भगवान हो तो? क्योंकि कहा है कि भगवान तो मुर्दों को जिला सकता है। तो मुर्दों को जिला कर दिखाओ। जीसस को सूली दी जा रही थी लोग खड़े होकर देख रहे थे कि सूली न लगे तो मानें कुछ। सूली लग जाए और जीसस न मरें, हाथ-पैर कट जाएं और जीसस जिंदा रहें तो मानें कुछ। फिर जीसस मर गए। लोग बड़े प्रसन्न लौटे। हम तो पहले ही कहते थे, लोगों ने कहा होगा आस-पास कि यह आदमी धोखाधड़ी दे रहा है। यह कोई ईश्वर का पुत्र नहीं है। नहीं तो ईश्वर का पुत्र ऐसे मरता? परीक्षा के लिए जीसस को सूली दी तो दो चोरों को भी दोनों तरफ लटकाया था। तीन आदमियों को इकट्ठी सूली दी थी। जैसे चोर मर गए। तो फर्क क्या रहा? कोई चमत्कार होना था। यह मौका चूक गए।

जीसस ईश्वर पुत्र हैं या नहीं, इसकी जांच-पड़ताल हमारे मन में क्यों चलती हैं? चलती है इसलिए कि अगर हैं, तो ही हम शरण जाएं। न हों तो हम शरण न जाएं। लेकिन अगर आपको शरण नहीं जाना है तो आप कारण खोज लेंगे। और अगर आपको शरण जाना है तो एक पत्थर की मूर्ति में आप कारण खोज सकते हैं कि शरण जाने योग्य है। और मजा यह है कि शरण जाएं तो पत्थर की मूर्ति भी आपके लिए उसी परम-स्रोत का द्वार खोल देगी। और शरण न जाएं तो खुद महावीर सामने खड़े रहें तो भी द्वार बंद रहेगा। धार्मिक आदमी मैं

उसे कहता हूँ जो शरण जाने का कारण खोजता रहता है, कहीं भी। जहां भी उसे लगता है कि यहां शरण जाने जैसा है, वह शरण चला जाता है। जहां भी मौका मिलता है, अपने को छोड़ता और तोड़ता और मिटाता है। बचाता नहीं। एक दिन निश्चित ही उसकी गंगोत्री में सागर गिरना शुरू हो जाता है। और जिस दिन सागर गिरता है, उसी दिन उसे पता चलता है कि शरणागति का पूरा रहस्य क्या था। इसकी पूरी कीमिया, इसका पूरा चमत्कार क्या था।

एक बात आखिरी--अगर जीसस सूली का चमत्कार दिखा दें और तब आप शरण जाएं तो ध्यान रखना, वह शरणागति नहीं है--ध्यान रखना, वह शरणागति नहीं है। अगर बुद्ध किसी मुर्दे को जिंदा कर दें और आप उनके चरण पकड़ लें तो समझना कि वह शरणागति नहीं है। क्योंकि उसमें कारण बुद्ध हैं, कारण आप नहीं हैं। वह सिर्फ चमत्कार को नमस्कार है। उसमें कोई शरणागति नहीं है। शरणागति तो तब है, जब कारण बुद्ध हैं, कारण आप नहीं हैं। वह सिर्फ चमत्कार को नमस्कार है। उसमें कोई शरणागति नहीं है। शरणागति तो तब है, जब कारण आप हैं, बुद्ध नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लें, नहीं तो सूत्र का राज चूक जाएगा। शरणागति तो तब है, जब कारण आप हैं, बुद्ध नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लें, नहीं तो सूत्र का राज चूक जाएगा। शरणागति तो तब होती है जब आप शरण गए हैं। और शरणागति भी उसी मात्रा में गहन होती है, जिस मात्रा में शरणागति जाने का कोई कारण नहीं होता। जितना कारण होता है उतना ही बागेन हो जाता है, उतना तो सौदा हो जाता है। शरणागति नहीं रह जाती। बुद्ध मुर्दे को उठा रहे हैं तो नमस्कार तो करना ही पड़ेगा। इसमें आपकी खूबी नहीं है। इसमें तो कोई भी नमस्कार कर लेगा। इसमें अगर कोई खूबी है तो बुद्ध की है। आपका इसमें कुछ भी नहीं है। लेकिन अदभुत लोग थे, इस दुनिया में। एक वृक्ष को जाकर नमस्कार करते थे, एक पत्थर को। तब-तब खूबी आपकी होनी शुरू हो जाती है। अकारण, जितनी अकारण होगी--शरण की भावना--उतनी गहरी होगी। जितनी सकारण होगी, उतनी उथली हो जाएगी। जब कारण बिल्कुल साफ होते हैं तब बिल्कुल तर्कयुक्त हो जाते हैं, उसमें कोई छलांग नहीं रह जाती। और जब बिल्कुल कारण नहीं होता, तभी छलांग घटित होती है।

तर्तूलियन ने, एक ईसाई फकीर ने कहा है कि मैं परमात्मा को मानता हूँ क्योंकि उसके मानने का कोई भी कारण नहीं है, कोई प्रमाण नहीं है, कोई तर्क नहीं है। अगर तर्क होता, प्रमाण होता, कारण होता--तो जैसे आप कमरे में रखी कुर्सी को मानते हैं, उससे ज्यादा मूल्य परमात्मा का भी नहीं होता।

मार्क्स मजाक में कहा करता था कि "मैं तब तक परमात्मा को न मानूंगा, जब तक प्रयोगशाला में, टेस्ट-ट्यूब में उसे पकड़ कर सिद्ध करने का कोई प्रमाण न मिल जाए। जब हम प्रयोगशाला में उसकी जांच-परख कर लेंगे, थर्मामीटर लगा कर सब तरफ से नाम-तौल कर लेंगे, मेजरमेंट ले लेंगे, तराजू पर रख कर नाप लेंगे, एक्सरे से आप बाहर-भीतर सब उसको देख लेंगे, तब मैं मानूंगा।" और वह कहता था, "लेकिन ध्यान रखना, अगर हम परमात्मा के साथ यह सब कर सके, तो एक बात तय है कि वह परमात्मा नहीं रह जाएगा--एक साधारण वस्तु हो जाएगी। क्योंकि, जो हम वस्तु के साथ कर पाते हैं--वस्तुओं का तो पूरा प्रमाण है। यह दीवार पूरी तरह है।

लेकिन इससे क्या होगा? महावीर के सामने खड़े होकर शरीर तो पूरी तरह होता है। दिखाई पड़ रहा है, पूरे प्रमाण होते हैं। लेकिन वह जो भीतर जलती ज्योति है, वह उतनी पूरी तरह नहीं होती है। उसमें तो आपको छलांग लगानी पड़ती है--तर्क के बाहर, कारण के बाहर। और जिस मात्रा में वह आपको नहीं दिखाई पड़ती है और छलांग लगाने की आप सामर्थ्य जुटाते हैं, उसी मात्रा में आप शरण जाते हैं। नहीं तो सौदे में जाते हैं।

एक आदमी आपके बीच आकर खड़ा हो जाए मुर्दों को जिला दे, बीमारों को ठीक कर दे, इशारों से घटनाएं घटने लें तो आप सब उसके पैर पर गिर ही जाएंगे। लेकिन वह शरणागति नहीं है। लेकिन महावीर जैसा आदमी खड़ा हो जाता है, कोई चमत्कार नहीं है। कुछ भी ऐसा नहीं है कि आप ध्यान दें। कुछ भी ऐसा

नहीं है जिससे आपको तत्काल लाभ दिखाई पड़े। कुछ भी ऐसा नहीं जो आपके सिर पर पत्थर की चोट पर, प्रमाण बन जाए। बहुत तरल अस्तित्व, बहुत अदृश्य अस्तित्व और आप शरण चले जाते हैं। तो आपके भीतर क्रांति घटित होती है। आप अहंकार से नीचे गिरते हैं। सब तर्क, सब प्रमाण, सब बुद्धिमान की बातें अहंकार के इर्द-गिर्द हैं। अतर्क्य, विचार के बाहर छलांग, अकारण समर्पण के इर्द-गिर्द है।

बुद्ध के पास एक युवक आया था। चरणों में उनके गिर गया। बुद्ध ने उससे पूछा कि मेरे चरण में क्यों गिरते हो? उस युवक ने कहा: क्योंकि गिरने में बड़ा राज है। आपके चरण में नहीं गिरता, आपके चरण मात्र बहाना हैं। मैं गिरता हूं क्योंकि खड़े रह कर बहुत देख लिया, सिवाय पीड़ा के और दुख के कुछ भी न पाया।

तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि "भिक्षु, देखो! अगर तुम मुझे मानते हो कि मैं भगवान हूं, तब मेरे चरण में गिरते हो, तब तुम्हें इतना लाभ न होगा, जितना लाभ यह युवक मुझे बिना भगवान माने उठाए लिए जा रहा है। यह कह रहा है कि मैं गिरता हूं, क्योंकि गिरने का बड़ा आनंद है। और मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि शून्य में गिर जाऊं, इसलिए आपको निमित्त बना लिया है। किसी दिन जब मेरी सामर्थ्य आ जाएगी कि जब मैं शून्य में गिर पाऊंगा--उन चरणों में, जो दिखाई भी नहीं पड़ते; उन चरणों में, जिन्हें छुआ भी नहीं जा सकता। लेकिन जो चरण चारों तरफ मौजूद हैं--जब मैं उस कास्मिक--उस विराट अस्तित्व, निराकार को सीधा ही गिर पाऊंगा। पर जरा गिरने का मुझे आनंद लेने दो। अगर इन दिखाई पड़ते हुए चरणों में इतना आनंद है, उसका मुझे थोड़ा स्वाद आ जाने दो, तो फिर मैं उस विराट में भी गिर जाऊंगा।

इसलिए बुद्ध का जो सूत्र है--"बुद्धं शरणं गच्छामि" वह बुद्ध से शुरू होता है, व्यक्ति से। "संघं शरणं गच्छामि"--समूह पर बढ़ता। संघ का अर्थ है--उन सब साधुओं का, उन सब साधुओं के चरणों में। और फिर धर्म पर--"धम्मं शरणं गच्छामि" फिर वह समूह से भी हट जाता है। फिर वह सिर्फ स्वभाव में, फिर निराकार में खो जाता है। वही, अरिहंत के चरण गिरता हूं; स्वीकार करता हूं, अरिहंत की शरण। सिद्ध की शरण स्वीकार करता हूं, साधु की शरण स्वीकार करता हूं। और अंत में केवलपन्नत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि--धर्म की, जाने हुए लोगों के द्वारा बताए गए ज्ञान की शरण स्वीकार करता हूं। सारी बात इतनी है कि अपने को अस्वीकार करता हूं। और जो अपने को अस्वीकार करता है वह स्वयं को पा लेता है और जो स्वयं को ही पकड़ कर बैठा रह जाता है वह सब तो खो देता है, अंत में स्वयं को भी नहीं पाता। स्वयं को पाने की यह प्रक्रिया बड़ी पैराडाक्सिकल है, बड़ी विपरीत दिखाई पड़ेगी। स्वयं को पाना हो तो स्वयं को छोड़ना पड़ता है। और स्वयं को मिटाना हो तो स्वयं को खूब जोर से पकड़े रहना पड़ता है।

दो सूत्र अब तक विकसित हुए हैं जैसा मैंने कहा--एक, सिद्ध की तरफ से कि मेरी शरण आ जाओ। दो, साधक की तरफ से कि मैं तुम्हारी शरण आता हूं। तीसरा कोई सूत्र नहीं है। लेकिन हम तीसरे की तरफ बढ़ रहे हैं। वह तीसरे की तरफ बढ़ते हुए हमारे कदम जीवन में जो भी शुभ है, जीवन में जो भी सुंदर है, जीवन में जो भी सत्य है, उसमें खोने की तरफ बढ़ रहे हैं।

समर्पण यानी श्रद्धा। समर्पण यानी शरणागति। समर्पण यानी अहंकार विसर्जन। नमोकार इस पर पूरा होता है।

कल से हम महावीर की वाणी में प्रवेश करेंगे। लेकिन वे ही प्रवेश कर पाएंगे जो अपने भीतर शरण की आकृति निर्मित कर पाएंगे। चौबीस घंटे के लिए एक प्रयोग करना। जब भी ख्याल आए तो मन में कहना--"अरिहंते शरणं पवज्जामि, सिद्धे शरणं पवज्जामि, साहू शरणं पवज्जामि, केवलपन्नत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि"। इसे दोहराते रहना चौबीस घंटे। रात सोते समय इसे दोहरा कर सो जाना। रात नींद टूट जाए तो इसे दोहरा लेना। सुबह नींद खुले तो पहले इसे दोहरा लेना। कल यहां आते वक्त इसे दोहराते आना। अगर वह शरण की आकृति भीतर बन जाए तो महावीर की वाणी में हम किसी और ढंग से प्रवेश कर सकेंगे--जैसा पच्चीस सौ वर्ष में संभव नहीं हुआ है।

आज इतना ही।

अब हम यह शरण की आकृति और इसकी ध्वनि में थोड़ा प्रवेश करें। कोई जाए न, बैठ जाएं और सम्मिलित हों।

धर्म: स्वभाव में होना (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है--तो अमंगल क्या है, दुख क्या है, मनुष्य की पीड़ा और संताप क्या है? उसे न समझें तो "धर्म मंगल है, शुभ है, आनंद है"--इसे भी समझना आसान न होगा। महावीर कहते हैं--धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। जीवन में जो भी आनंद की संभावना है, वह धर्म के द्वार से ही प्रवेश करती है। जीवन में जो भी स्वतंत्रता उपलब्ध होती है वह धर्म के आकाश में ही उपलब्ध होती है। जीवन में जो भी सौंदर्य के फूल खिलते हैं वे धर्म की जड़ों से ही पोषित होते हैं। और जीवन में जो भी दुख है वह किसी न किसी रूप में धर्म से च्युत हो जाने में, या अधर्म में संलग्न हो जाने में है। महावीर की दृष्टि में धर्म का अर्थ है--जो मैं हूं, उस होने में ही जीना है। जो मैं हूं, उससे जरा भी, इंच भर भी च्युत न होना है।

जो मेरा होना है, जो मेरा अस्तित्व है उससे जहां मैं बाहर जाता हूं, सीमा का उल्लंघन करता हूं। जहां मैं विजातीय से संबंधित होता हूं, जहां मैं उससे संबंधित होता हूं जो मैं नहीं हूं, वहीं दुख का प्रारंभ हो जाता है। और दुख का प्रारंभ इसलिए हो जाता है कि जो मैं नहीं हूं, उसे मैं कितना ही चाहूं, वह मेरा नहीं हो सकता। जो मैं नहीं हूं, उसे मैं कितना ही बचाना चाहूं, उसे मैं बचा नहीं सकता। वह खोएगा ही। जो मैं नहीं हूं, उस पर मैं कितना ही श्रम और मेहनत करूं, अंततः मैं पाऊंगा वह मेरा नहीं सिद्ध हुआ। श्रम हाथ लगेगा, चिंता हाथ लगेगी, जीवन का अपव्यय होगा और अंत में मैं पाऊंगा कि मैं खाली का खाली रह गया हूं। मैं केवल उसे ही पा सकता हूं जिसे मैंने किसी गहरे अर्थ में सदा से पाया ही हुआ है। मैं केवल उसका ही मालिक हो सकता हूं जिसका मैं जानूं न जानूं, अभी भी मालिक हूं। मृत्यु जिसे मुझसे नहीं छीन सकेगी, वही केवल मेरा है। देह मेरी गिर जाएगी तो भी जो नहीं गिरेगा, वही केवल मेरा है। रुग्ण हो जाएगा सब कुछ, दीन हो जाएगा सब कुछ, नष्ट हो जाएगा सब कुछ--फिर भी जो नहीं म्लान होगा, वही मेरा है। गहन अंधकार छा जाए, अमावस आ जाए जीवन में चारों तरफ--फिर भी जो अंधेरा नहीं होगा वही मेरा प्रकाश है।

लेकिन हम सब, जो मैं नहीं हूं, वहां खोजते हैं स्वयं को। वहीं से विफलता, वहीं से फ्रस्ट्रेशन, वहीं से विषाद जन्मता है। जो भी हम चाहते हैं, वह स्वयं को छोड़ कर सब हम चाहते हैं। हैरानी की बात है, इस जगत में बहुत कम लोग हैं जो स्वयं को चाहते हैं। शायद आपने इस भांति नहीं सोचा होगा कि आपने स्वयं को कभी नहीं चाहा, सदा किसी और को चाहा।

वह और, कोई व्यक्ति भी हो सकता है; वस्तु भी हो सकती है, कोई पद भी हो सकता है, कोई स्थिति भी हो सकती है; लेकिन सदा कोई और है, अन्य है--दि अदर। स्वयं को हममें से कोई भी कभी नहीं चाहता। और

केवल एक ही संभावना है जगत में कि हम स्वयं को पा सकते हैं, और कुछ पा नहीं सकते। सिर्फ दौड़ सकते हैं। जिसे हम पा नहीं सकते और केवल दौड़ सकते हैं, उससे दुख आएगा। उससे डिसइल्युजनमेंट होगा, कहीं न कहीं भ्रम टूटेगा और ताश के पत्तों का घर गिर जाएगा। और कहीं न कहीं नाव डूबेगी, क्योंकि वह कागज की थी। और कहीं न कहीं हमारे स्वप्न बिखरेंगे और आंसू बन जाएंगे। क्योंकि वे स्वप्न थे।

सत्य केवल एक है, और वह यह कि मैं स्वयं के अतिरिक्त इस जगत में और कुछ भी नहीं पा सकता हूं। हां, पाने की कोशिश कर सकता हूं। पाने का श्रम कर सकता हूं, पाने की आशा बांध सकता हूं, पाने के स्वप्न देख सकता हूं। और कभी-कभी ऐसा भी अपने को भरमा सकता हूं कि पाने के बिल्कुल करीब पहुंच गया हूं। लेकिन कभी पहुंचता नहीं, कभी पहुंच नहीं सकता हूं।

अधर्म का अर्थ है, स्वयं को छोड़कर और कुछ भी पाने का प्रयास। अधर्म का अर्थ है, स्वयं को छोड़ कर "पर" पर दृष्टि। और हम सब "दि अदर ओरिएण्टेड" हैं। हमारी दृष्टि सदा दूसरे पर लगी है। और कभी अगर हम अपनी शक्ल भी देखते हैं तो वह भी दूसरे के लिए। अगर आईने के सामने खड़े होकर भी अपने को देखते हैं तो वह किसी के लिए--कोई जो हमें देखेगा--उसके लिए हम तैयारी करते हैं। स्वयं को हम सीधा कभी नहीं चाहते। और धर्म तो स्वयं को सीधे चाहने से उत्पन्न होता है। क्योंकि धर्म का अर्थ है स्वभाव--दि अल्टीमेट नेचर। वह जो अंततः, अंततोगत्वा मेरा, मेरा होना है, जो मैं हूं।

सार्त्र ने बहुत कीमती सूत्र कहा है। कहा है--दि अदर इ.ज हैल। वह जो दूसरा है, वही नरक है हमारा। सार्त्र ने किसी और अर्थ में कहा है। लेकिन महावीर भी किसी और अर्थ में राजी हैं। वे भी कहते हैं कि दि अदर इ.ज हैल, बट दि इंफेसिस इ.ज नॉट ऑन दि अदर ए.ज हैल, बट ऑन वनसेल्फ ए.ज दि हैवना। दूसरा नरक है, यह महावीर नहीं कहते हैं क्योंकि इतना कहने में भी दूसरे को चाहने की आकांक्षा और दूसरे से मिली विफलता छिपी है। महावीर कहते हैं--"स्वयं होना मोक्ष है। धर्म है मंगल"।

सार्त्र के इस वचन को थोड़ा समझ लें। सार्त्र का जोर है यह कहने में कि दूसरा नर्क है। लेकिन दूसरा नर्क क्यों मालूम पड़ता है, यह शायद सार्त्र ने नहीं सोचा। दूसरा नर्क इसीलिए मालूम पड़ता है कि हमने दूसरे को स्वर्ग मानकर खोज की। हम दूसरे के पीछे गए, जैसे वहां स्वर्ग है। वह चाहे पत्नी हो, चाहे पति, चाहे बेटा हो, चाहे बेटी। चाहे मित्र, चाहे धन, चाहे यश। वह कुछ भी हो दूसरा, जो मुझसे अन्य है। सार्त्र को कहने में आता है कि दूसरा नरक है क्योंकि दूसरे में स्वर्ग खोजने की कोशिश की गई है। अगर स्वर्ग नहीं मिलता तो नरक मालूम पड़ता है। महावीर नहीं कहते कि दूसरा नरक है। महावीर कहते हैं--"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं"--धर्म मंगल है। अधर्म अमंगल है, ऐसा भी नहीं कहते। कि यह "दूसरा" नरक है, ऐसा भी नहीं कहते हैं। स्वयं का होना मुक्ति है, मोक्ष है, मंगल है, श्रेयस है।

इसमें फर्क है। इसमें फर्क यही है कि दूसरे नरक हैं यह जानना दूसरे में स्वर्ग को मानने से दिखाई पड़ता है। अगर मैंने दूसरे से कभी सुख नहीं चाहा तो मुझे दूसरे से कभी दुख नहीं मिल सकता। हमारी अपेक्षाएं ही दुख बनती हैं--एक्सपेक्टेडेंस डिसइल्यूजंड। अपेक्षाओं का भ्रम जब टूटता है तो विपरीत हाथ लगता है। दूसरा नरक नहीं है। अगर महावीर को ठीक समझें तो सार्त्र से कहना पड़ेगा कि दूसरा नरक नहीं है। लेकिन तुमने चूंकि दूसरे को स्वर्ग माना इसलिए दूसरा नरक हो जाता है। लेकिन तुम स्वयं स्वर्ग हो।

और स्वयं को स्वर्ग मानने की जरूरत नहीं है। स्वयं का स्वर्ग होना स्वभाव है। दूसरे को स्वर्ग मानना पड़ता है और इसलिए फिर दूसरे को नरक जानना पड़ता है। वह हमारे ही भाव हैं। जैसे कोई रेत से तेल निकालने में लग गया हो, तो उसमें रेत का तो कोई कसूर नहीं है। और जैसे कोई दीवार को दरवाजा मान कर निकलने की कोशिश करने लगे तो दीवार का तो कोई दोष नहीं है। और अगर दीवार दरवाजा सिद्ध न हो और सिर टूट जाए और लहलुहान हो जाए तो क्या आप नाराज होंगे? और कहेंगे कि दीवार दुष्ट है? सार्त्र वही कह रहा है। वह कह रहा है, दूसरा नरक है। इसमें दूसरे का कंडेमनशन है, इसमें दूसरे की निंदा है और दूसरे पर क्रोध छिपा है।

महावीर यह नहीं कहते। महावीर का वक्तव्य बहुत पाजिटिव है। महावीर कहते हैं--धर्म मंगल है, स्वभाव मंगल है, स्वयं का होना मोक्ष है और स्वयं को मानने की जरूरत नहीं है कि मोक्ष है। ध्यान रहे, मानना हमें वही पड़ता है, जहां नहीं होता। समझना हमें वहीं पड़ता है, जहां नहीं होता। कल्पनाएं हमें वहीं करनी होती हैं जहां कि सत्य कुछ और है। स्वयं को सत्य या स्वयं को धर्म या स्वयं को आनंद मानने की जरूरत नहीं है। स्वयं का होना आनंद है। लेकिन हम जो दूसरे पर दृष्टि बांधे जीते हैं, उन्हें पता भी कैसे चले कि स्वयं कहां है? हमें वही पता चलता है जहां हमारा ध्यान होता है। ध्यान की धारा, ध्यान का फोकस, ध्यान की रोशनी जहां पड़ती है वही प्रकट हो जाता है। दूसरे पर हम दौड़ते हैं, दूसरे पर ध्यान की रोशनी पड़ती है; नरक प्रकट होता है। स्वयं पर ध्यान की रोशनी पड़े तो स्वर्ग प्रकट होता है। दूसरे में मानना पड़ता है और इसलिए एक दिन भ्रम टूटता है--टूटता ही है। कोई कितनी देर भ्रम को खींच सकता है, यह उसकी अपने भ्रम को खींचने की क्षमता पर निर्भर है। बुद्धिमान है, क्षण भर में टूट जाता है। बुद्धिहीन है, देर लगा देता है। और एक से छूटता है भ्रम हमारा तो तत्काल हम दूसरे की तलाश में लग जाते हैं।

लेकिन यह ख्याल ही नहीं आता कि एक "दूसरे" से टूटा हुआ भ्रम का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे "दूसरे" से मिल जाएगा स्वर्ग। जन्मों-जन्मों तक यही पुनरुक्ति होती है। स्वयं में है मोक्ष, यह तब दिखाई पड़ना शुरू होता है जब ध्यान की धारा दूसरे से हट जाती है और स्वयं पर लौट आती है। "धर्म मंगल है"--यह जानना हो तो जहां-जहां अमंगल दिखाई पड़े वहां से विपरीत ध्यान को ले जाना। दि अपोजिट इज दि डायरेक्शन, वह जो विपरीत है। धन में अगर न दिखाई पड़े, मित्र में अगर न दिखाई पड़े, पति-पत्नी में यदि न दिखाई पड़े, बाहर अगर दिखाई न पड़े, दूसरे में अगर दिखाई न पड़े तो सब्स्टीट्यूट खोजने मत लग जाना। कि इस पत्नी में नहीं मिलता है तो दूसरी पत्नी में मिल सकेगा। इस मकान में नहीं बनता स्वर्ग, तो दूसरे मकान में बन सकेगा। इस वस्त्र में नहीं मिलता तो दूसरे वस्त्र में मिल सकेगा। इस पद पर नहीं मिलता तो थोड़ा और दो सीढ़ियां चढ़ कर मिल सकेगा। ये सब्स्टीट्यूट हैं।

यह एक कागज की नाव डूबती नहीं है कि हम दूसरे कागज की नाव पर सवार होने की तैयारी करने लगते हैं, बिना यह सोचे हुए कि जो भ्रम का खंडन हुआ है वह इस नाव से नहीं हुआ, वह कागज की नाव से हुआ है। वह इस पत्नी से नहीं हुआ, वह पत्नी-मात्र से हो गया है। वह इस पुरुष से नहीं हुआ, वह पुरुष-मात्र से हो गया है। वह इस "पर" से नहीं हुआ, वह "पर-मात्र" से हो गया है। महावीर की घोषणा कि धर्म मंगल है, कोई हाइपोथिटिकल, कोई परिकल्पनात्मक सिद्धांत नहीं है, और न ही यह घोषणा कोई फिलासफिक, कोई दार्शनिक वक्तव्य है। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं। पश्चिम के अर्थ में--जिस अर्थ में हीगल या कांट या बर्ट्रेण्ड रसल दार्शनिक हैं, उस अर्थों में महावीर दार्शनिक नहीं हैं। महावीर का यह वक्तव्य सिर्फ एक अनुभव, एक तथ्य की सूचना है। ऐसा महावीर सोचते नहीं कि धर्म मंगल है, ऐसा महावीर जानते हैं कि धर्म मंगल है। इसलिए यह वक्तव्य बिना कारण के दिए गए वक्तव्य हैं।

और जब पहली बार पूरब के मनुष्यों के विचार पश्चिम में अनूदित हुए तो उन्हें बहुत हैरानी हुई क्योंकि पश्चिम के सोचने का जो ढंग था--अरस्तू से लेकर आज तक--अभी भी वही है। वह यह है कि तुम जो कहते हो, उसका कारण भी तो बताओ। इस वक्तव्य में कहा है कि "धम्मो मंगल मुक्कित्ठम"--धर्म मंगल है। अगर पश्चिम में किसी दार्शनिक ने यह कहा होता तो दूसरा वक्तव्य होता--क्यों, व्हाय? लेकिन महावीर का दूसरा वक्तव्य व्हाय नहीं है, वॉट है। महावीर कहते हैं, धर्म मंगल है। (कौन सा धर्म?) "अहिंसा संजमो तवो।" वे यह नहीं कहते, क्यों? अगर पश्चिम में अरस्तू ऐसा कहता तो अरस्तू तत्काल बताता कि क्यों मैं कहता हूं कि धर्म मंगल है। महावीर कहते हैं कि मैं कहता हूं, धर्म मंगल है। कौन सा धर्म? यह अहिंसा, संयम और तप वाला धर्म मंगल है। कोई कारण नहीं दिया जा रहा है, कोई कारण नहीं बता या जा रहा है। कोई प्रमाण नहीं दिया जा रहा है। अनुभूति के लिए कोई प्रमाण नहीं होता, सिद्धांतों के लिए प्रमाण होते हैं। सिद्धांतों के लिए तर्क होते हैं,

अनुभूति स्वयं ही अपना तर्क है। अनुभूति को जानना हो कि वह सही है या गलत, तो अनुभूति में उतरना पड़ता है। सिद्धांत को जानना हो कि सही है या गलत, तो सिद्धांत के सिलौसिज्म में, सिद्धांत की जो तर्कसरणी है, उसमें उतरना पड़ता है। और हो सकता है, तर्कसरणी बिल्कुल सही हो और सिद्धांत बिल्कुल गलत हो। और हो सकता है, प्रमाण बिल्कुल ठीक मालूम पड़े, और जिसके लिए दिए गए हैं, वह बिल्कुल ठीक न हो। गलत बातों के लिए भी ठीक प्रमाण दिए जा सकते हैं। सच तो यह है कि गलत बातों के लिए ही हमें ठीक प्रमाण खोजने पड़ते हैं। क्योंकि गलत बातें अपने पैर से खड़ी नहीं हो सकतीं। उनके लिए ठीक प्रमाणों की सहायता की जरूरत पड़ती है।

महावीर जैसे लोग प्रमाण नहीं देते, सिर्फ वक्तव्य देते हैं। वे कहते हैं--ऐसा है। उनके वक्तव्य वैसे ही वक्तव्य हैं जैसे कि किसी आइंस्टीन के या किसी और वैज्ञानिक के। आइंस्टीन से अगर हम पूछें कि पानी हाइड्रोजन और आक्सीजन से क्यों मिल कर बना है, तो आइंस्टीन कहेगा, क्यों का कोई सवाल नहीं है--बना है। इट इज सो। यह हम नहीं जानते कि क्यों बना है। हम इतना ही कह सकते हैं कि ऐसा है। और जिस भ्रांति आइंस्टीन कह सकता है कि पानी का अर्थ है, एच टू ओ--हाइड्रोजन के दो अणु और आक्सीजन का एक अणु, इनका जोड़ पानी है। वैसे महावीर कहते हैं कि धर्म--अहिंसा, संयम, तप--इनका जोड़ है। यह "अहिंसा संजमो तवो", यह वैसा ही सूत्र है जैसे एच टू ओ। यह ठीक वैसा ही वक्तव्य है, वैज्ञानिक का। विज्ञान दूसरे के, पर के संबंध में वक्तव्य देता है, धर्म स्वयं के संबंध में वक्तव्य देता है। इसलिए अगर वैज्ञानिक के वक्तव्य को जांचना हो तो तर्क से नहीं जांचा जा सकता, उसकी प्रयोगशाला में जाना पड़ेगा। स्वभावतः उसकी प्रयोगशाला बाहर है क्योंकि उसके वक्तव्य पर के संबंध में हैं। और अगर महावीर जैसे व्यक्ति का वक्तव्य जांचना हो तो भी प्रयोगशाला में जाना पड़े। निश्चित ही महावीर की प्रयोगशाला बाहर नहीं है, वह प्रत्येक व्यक्ति के अपने भीतर है। लेकिन थोड़ा बहुत हम जानते हैं कि महावीर जो कहते होंगे, ठीक कहते होंगे। हमें यह तो पता नहीं है कि धर्म मंगल है, लेकिन हमें यह भलीभांति पता है कि अधर्म अमंगल है--कम से कम इतना हमें पता है। यह भी कुछ कम पता नहीं है। और अगर बुद्धिमान आदमी हो तो इतने ज्ञान से परमज्ञान तक पहुंच सकता है। हमें यह तो पता नहीं है कि धर्म मंगल है, लेकिन हमें यह पूरी तरह पता है कि अधर्म अमंगल है। क्योंकि अधर्म हमने किया है। अधर्म को हम जानते हैं।

इसे थोड़ा सोचें। क्या आपको पता है, जब भी आपके जीवन में कोई दुख आता है तो दूसरे के द्वारा आता है? दूसरे के द्वारा आता हो या न आता हो, आपके लिए सदा दूसरे के द्वारा आता मालूम पड़ता है। क्या आपके जीवन में जब कोई चिंता आती है तो कभी आपने ख्याल किया है कि चिंता भीतर से नहीं, बाहर से आती मालूम पड़ती है। क्या कभी आप भीतर से चिंतित हुए हैं? सदा बाहर से चिंतित हुए हैं। सदा चिंता का केंद्र कुछ और रहा है, आपको छोड़ कर। वह धन हो, वह बीमार मित्र हो, वह डूबती हुई दुकान हो, वह खोता हुआ चुनाव हो, वह कुछ भी हो, दूसरा है--सदा दूसरा है। कुछ और, आपको छोड़ कर आपके दुख का कारण बनता है।

लेकिन एक भ्रांति हमारे मन में है जो टूट जानी जरूरी है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि दूसरा सुख का भी कारण बनता है। उसी से सब उपद्रव जारी रहता है। ऐसा तो लगता है कि दूसरा दुख का कारण बनता है, लेकिन ऐसा भी लगता है कि दूसरा सुख का कारण बनता है। चिंता तो दूसरे से आती है, दुख भी दूसरे से आता है, लेकिन सुख भी दूसरे से आता हुआ मालूम पड़ता है। ध्यान रखें, वह जो दूसरे से दुख आता है वह इसीलिए आता है कि आप इस भ्रांति में जीते हैं कि दूसरे से सुख आ सकता है। ये संयुक्त बातें हैं। और अगर आप आधे पर ही समझते रहे कि दूसरे से दुख आता है और यह मानते चले गए कि दूसरे से सुख आता है तो दूसरे से दुख आता चला जाएगा। दूसरे से दुख आता ही इसलिए है कि दूसरे से हमने एक भ्रांति का संबंध बना रखा है कि सुख आ सकता है। आता कभी नहीं। आ सकता है, इसकी संभावना हमारे आस-पास खड़ी रहती है। आ सकता है, इसकी

संभावना हमारे आसपास खड़ी रहती है। आ सकता है, सदा भविष्य में होता है। इसे भी थोड़ा खोजें तो आपके अनुभव के कारण मिल जाएंगे।

कभी किसी क्षण में आपने जाना कि दूसरे से सुख आ रहा है--सदा ऐसा लगता है, आएगा। आता कभी नहीं। जिस मकान को आप सोचते हैं, मिल जाने से सुख आएगा, वह जब तक नहीं मिला है तब तक "आएगा" है। वह जिस दिन मिल जाएगा उसी दिन आप पाएंगे कि उस मकान की अपनी चिंताएं हैं, अपने दुख हैं, वे आ गए। और सुख अभी नहीं आया। और थोड़े दिन में आप पाएंगे कि आप भूल ही गए यह बात कि इस मकान से कितना सुख सोचा था कि आएगा, वह बिल्कुल नहीं आया।

लेकिन मन बहुत चालाक है, वह लौट कर नहीं देखता। वह रिट्रोस्पेक्टिवली कभी नहीं सोचता कि जिन-जिन चीजों से हमने सोचा था कि सुख आएगा, उनमें से कुछ आ गई, लेकिन सुख नहीं आया। इसलिए, अगर किसी दिन पृथ्वी पर ऐसा हो सका कि आप जो-जो सुख चाहते हैं, आपको तत्काल मिल जाएं तो पृथ्वी जितनी दुखी हो जाएगी, उतनी उसके पहले कभी नहीं थी। इसलिए जिस मुल्क में जितने सुख की सुविधा बढ़ती जाती है उसमें उतना दुख बढ़ता जाता है। गरीब मुल्क कम दुखी होते हैं, अमीर मुल्क ज्यादा दुखी होते हैं। गरीब आदमी कम दुखी होता है, जब मैं यह कहता हूं तो आपको थोड़ी हैरानी होगी क्योंकि हम सब मानते हैं कि गरीब बहुत दुखी होता है। पर मैं आपसे कहता हूं, गरीब कम दुखी होता है। क्योंकि अभी उसकी आशाओं का पूरा का पूरा जाल जीवित है। अभी वह आशाओं में जी सकता है। अभी वह सपने देख सकता है। अभी कल्पना नष्ट नहीं हुई है, अभी कल्पना उसे संभाले रखती है। लेकिन जब उसे सब मिल जाए, जो-जो उसने चाहा था, तो सब आशाओं के सेतु टूट गए। भविष्य नष्ट हुआ।

और वर्तमान में सदा दुख है, दूसरे के साथ। दूसरे के साथ सिर्फ भविष्य में सुख होता है। तो अगर सारा भविष्य नष्ट हो जाए, जो-जो भविष्य में मिलना चाहिए वह आपको अभी मिल जाए, इसी क्षण, तो आप सिवाय आत्महत्या करने के और कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इसलिए जितना सुख बढ़ता है उतनी आत्महत्याएं बढ़ती हैं। जितना सुख बढ़ता है उतनी विक्षिप्तता बढ़ती है। जितना सुख बढ़ता है--बड़ी उलटी बात है क्योंकि सब वैज्ञानिक कहते हैं कि साधन बढ़ जाएंगे तो आदमी बहुत सुखी हो जाएगा। लेकिन अनुभव नहीं कहता। आज अमेरिका जितना दुखी है, उतना कोई भी देश दुखी नहीं है। और महावीर अपने घर में जितने दुखी हो गए, महावीर के घर के सामने जो रोज भीख मांगकर चला जाता भिखारी होगा, वह भी उतना दुखी नहीं था। महावीर का दुख पैदा हुआ है इस बात से कि जो भी उस युग में मिल सकता था, वह मिला हुआ था। महावीर के लिए कोई भविष्य न बचा, नो फ्यूचर। और जब भविष्य न बचे तो सपने कहां खड़े करिएगा? जब भविष्य न बचे तो कागज की नाव किस सागर में चलाइएगा? भविष्य के सागर में ही चलती है कागज की नाव। अगर भविष्य न बचे तो किस भूमि पर ताशों का भवन बनाइएगा? अगर ताशों का भवन बनाना हो तो भविष्य की नींव चाहिए। तो महावीर का जो त्याग है, वह त्याग असल में भविष्य की समाप्ति से पैदा होता है। नो फ्यूचर, कोई भविष्य नहीं है, तो महावीर अब कहां जाए, किस पद पर चढ़ें जहां सुख मिलेगा? किस स्त्री को खोजें जहां सुख मिलेगा? किस धन की राशि पर खड़े हो जाएं जहां सुख होगा? वह सब है।

महावीर के फ्रस्ट्रेशन को, महावीर के विषाद को हम सोच सकते हैं। और हम उन नासमझों की बात भी सोच सकते हैं जो महावीर के पीछे दूर तक गांव के बाहर गए और समझाते रहे कि इतना सुख छोड़ कर कहां जा रहे हो? ये वे लोग थे जिनका भविष्य है। वे कह रहे थे कि पागल हो गए हो! जिस महल के लिए हम दीवाने हैं और सोचते हैं, किसी दिन मिल जाएगा तो मोक्ष मिल जाएगा--उसे छोड़ कर जा रहे हो! दिमाग तो खराब नहीं हो गया है! सभी सयाने लोगों ने महावीर को समझाया, मत जाओ छोड़ कर। लेकिन महावीर और उनके

बीच भाषा का संबंध टूट गया। वे दोनों एक ही भाषा अब नहीं बोल सकते हैं, क्योंकि उनका भविष्य अभी बाकी है और महावीर का कोई भविष्य न रहा।

हमें भी अनुभव है, लेकिन हम पीछे लौट कर नहीं देखते हैं। हम आगे ही देखे चले जाते हैं। जो आदमी आगे ही देखे चला जाता है, वह कभी धार्मिक नहीं हो सकेगा। क्योंकि अनुभव से वह कभी लाभ नहीं ले सकेगा। भविष्य में कोई अनुभव नहीं है, अनुभव तो अतीत में है। जो आदमी पीछे लौट कर देखेगा—लेकिन पीछे लौट कर देखने में भी हम यह भूल जाते हैं कि हमने पीछे जब हम खड़े थे उस स्थानों पर, तब क्या सोचा था? वह भी हम भूल जाते हैं।

आदमी की स्मृति भी बहुत अदभुत है। आपको ख्याल ही नहीं रहता कि जो कपड़ा आज आप पहने हुए हैं, कल वह कपड़ा आपके पास नहीं था और रात आपकी नींद खराब हो गई—किसी और के पास था, या किसी दुकान पर था या किसी शो-विंडो में था और आप रात भर नहीं सो सके थे। और न मालूम कितनी गुदगुदी मालूम पड़ी थी भीतर कि कल जब यह कपड़ा आपके शरीर पर होगा तो न मालूम दुनिया में कौन सी क्रांति घटित हो जाएगी! और कौन सा स्वर्ग उतर आएगा। आप भूल ही गए हैं बिल्कुल। अब वह कपड़ा आपके शरीर पर है। कोई स्वर्ग नहीं उतरा है, कोई क्रांति घटित नहीं हुई। आप उतने के उतने दुखी हैं। हां, अब दूसरे दुकान की शो-विंडो में आपका सुख लटका हुआ है। अभी भी वहीं हैं। कहीं किसी दूसरी दुकान की शो-विंडो अब आपकी नींद खराब कर रही है।

पीछे लौट कर अगर देखें तो आप पाएंगे, जिन-जिन सुखों को सोचा था, सुख सिद्ध होंगे—वे सभी दुख सिद्ध हो गए। आप एक भी ऐसा सुख न बता सकेंगे जो आपने सोचा था कि सुख सिद्ध होगा और सुख सिद्ध हुआ हो। फिर भी आश्चर्य कि आदमी फिर भी वही पुनरुक्त किए चला जाता है। और कल के लिए फिर योजनाएं बनाता है। कल की बीती सब योजनाएं गिर गईं, लेकिन कल के लिए फिर वही योजनाएं बनाता है। अगर महावीर ऐसे व्यक्तियों को मूढ़ कहें तो तथ्य की ही बात कहते हैं। हम मूढ़ हैं! मूढ़ता और क्या होगी? कि मैं जिस गड्ढे में कल गिरा था, आज फिर उसी गड्ढे की तलाश करता हूं किसी दूसरे रास्ते पर। और ऐसा नहीं कि कल ही गिरा था, रोज-रोज गिरा हूं। फिर भी वही!

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा शराब पीकर घर लौटा। टटोलता था रास्ता घर का, मिलता नहीं था। एक भले आदमी ने, देख कर कि बेचारा राह नहीं खोज पा रहा है, हाथ पकड़ा। पूछा कि इसी मकान में रहते हो?

मुल्ला ने कहा: हां। किस मंजिल पर रहते हो?

उसने कहा: दूसरी मंजिल पर।

उस भले आदमी ने बामुश्किल करीब-करीब बेहोश आदमी को किसी तरह सीढ़ियों से घसीटते-घसीटते दूसरी मंजिल तक लाया। फिर यह सोच कर कि कहीं मुल्ला की पत्नी का सामना न करना पड़े, नहीं तो वह सोचे कि तुम भी संगी-साथी हो, कहीं उपद्रव न हो, पूछा: यही तेरा दरवाजा है?

मुल्ला ने कहा: हां।

उसने दरवाजे के भीतर धक्का दिया और सीढ़ियों से नीचे उतर गया। नीचे जाकर बहुत हैरान हुआ कि ठीक वैसा ही आदमी, थोड़ी और बुरी हालत में, फिर दरवाजा टटोलता है। ठीक वैसा ही आदमी! थोड़ा चकित हुआ। अपनी ही आंखों पर हाथ फेरा कि मैं तो कोई नशा नहीं किए हूं। थोड़ी बुरी हालत में ठीक वैसा ही आदमी। फिर से टटोल रहा है तो जाकर पूछा कि भाई तुम भी ज्यादा पी गए हो?

उस आदमी ने कहा: हां।

इसी मकान में रहते हो? उसने कहा: हां। किस मंजिल पर रहते हो?

उसने कहा: दूसरी मंजिल पर। (हैरानी!)

पूछा--जाना चाहते हो? बामुश्किल, इस बार और कठिनाई हुई क्योंकि वह आदमी और भी लस्त-पस्त था। उसे ऊपर जाकर, पहुंचा कर पूछा--इसी दरवाजे में रहते हो? उसने कहा: हां।

वह आदमी बहुत हैरान हुआ कि क्या नशेड़ियों के साथ थोड़ी सी देर में मैं भी नशे में हूं? फिर धक्का दिया और नीचे उतर कर आया। देखा कि तीसरा आदमी और भी थोड़ी बुरी हालत में है। सड़क के किनारे पड़ा रास्ता खोज रहा है। लेकिन ठीक वैसा ही। उसे डर भी लगा कि भाग जाना चाहिए। यह झंझट की बात मालूम पड़ती है। यह कब तक चलेगा? यह आदमी वही मालूम पड़ता है। वही कपड़े हैं, ढंग वही है। थोड़ा और परेशान पूछा कि भाई इसी मकान में रहते हो? उसने कहा: हां।

किस मंजिल पर?

दूसरी मंजिल पर।

ऊपर जाना चाहते हो?

उसने कहा: हां।

उसने कहा: बड़ी मुसीबत है। अब इसको और पहुंचा दें। ले जाकर दरवाजे पर धक्का दिया। भाग कर नीचे आया कि चौथा न मिल जाए, लेकिन चौथा आदमी नीचे मौजूद था। अब उसमें हिलने-चलने की गति भी नहीं थी। लेकिन जैसे ही उसे पास आकर देखा, वह आदमी चिल्लाया कि "मुझे बचाओ। यह आदमी मुझे मार डालेगा।"

मैं तुझे मार डालने की कोशिश नहीं कर रहा हूं। तू है कौन?

उसने कहा: तू मुझे बार-बार जाकर लिफ्ट के दरवाजे से धक्का देकर नीचे पटक रहा है।

उस आदमी ने पूछा: भले आदमी! तीन बार पटक चुका, तुमने कहा क्यों नहीं?

उसने सोचा कि शायद अब की बार न पटके यह सोच कर। नसरुद्दीन ने कहा: कौन जाने, अब की बार न पटके!

लेकिन दूसरा पटकता हो तो हम इतना हंस रहे हैं। हम अपने को ही पटकते चले जाते हैं। वही का वही आदमी, दूसरी बार और थोड़ी बुरी हालत होती है। और कुछ नहीं होता है। जिंदगी भर ऐसा चलता है। आखिर में दुख के घाव के अतिरिक्त हमारी कोई उपलब्धि नहीं होती। ये घाव ही घाव रह जाते हैं, पीड़ा ही पीड़ा रह जाती है।

इतना हम जानते हैं, कि अधर्म अमंगल है। और अधर्म से मतलब समझ लेना--अधर्म से मतलब है, दूसरे में सुख को खोजने की आकांक्षा। वह दुख है, वह अमंगल है, और कोई अमंगल नहीं है। जब भी दुख आपको मिले तो जानना कि आपने दूसरे से कहीं सुख पाना चाहा। अगर मैं अपने शरीर से भी सुख पाना चाहता हूं तो भी मैं दूसरे से सुख पाना चाहता हूं। मुझे दुख मिलेगा। कल बीमारी आएगी, कल शरीर रुग्ण होगा, कल बूढ़ा होगा, परसों मरेगा। अगर मैंने इस शरीर से जो इतना निकट मालूम होता है, फिर भी पराया है--महावीर से अगर हम पूछने जाएं तो वे कहेंगे कि जिससे भी दुख मिल सकता है, जानना कि वह और है। इसे क्राइटेरियन, उसे मापदंड समझ लेना कि जिससे भी दुख मिल सके, जानना कि वह और है, वह तुम नहीं हो। तो जहां-जहां दुख मिले, वहां-वहां जानना कि "मैं" नहीं हूं।

सुख अपरिचित है क्योंकि हमारा सारा परिचय "पर" से है, "दूसरे" से है। सुख सिर्फ कल्पना में है, दुख अनुभव है। लेकिन दुख, जो कि अनुभव है, उसे हम भुलाए चले जाते हैं। और सुख जो कि कल्पना में है, उसके लिए हम दौड़ते चले जाते हैं। महावीर का यह सूत्र इस पूरी बात को बदल देना चाहता है। वे कहते हैं--धम्मो मंगलमुक्किट्ठं। धर्म मंगल है। आनंद की तलाश स्वभाव में है। कभी-कभी अगर आपके जीवन में आनंद की कोई किरण छोटी-मोटी उतरी होगी, तो वह तभी उतरती है जब आप अनजाने-जाने किसी भांति एक क्षण को स्वयं के संबंध में पहुंच जाते हैं--कभी भी। लेकिन हम ऐसे भ्रांत हैं कि वहां भी हम दूसरे को ही कारण समझते हैं।

सागर के तट पर बैठे हैं। सांझ हो गई है, सूर्यास्त होता है। ढलते सूरज में सागर की लहरों की आवाजों में एकांत में अकेले तट पर बैठे हैं। एक क्षण को लगता है जैसे सुख की कोई किरण कहीं उतरी। तो मन होता है कि शायद इस सागर, इस डूबते सूरज में सुख है। कल फिर आकर बैठेंगे। फिर उतनी नहीं उतरेगी। परसों फिर आकर बैठेंगे। अगर रोज आकर बैठते रहे तो सागर का शोरगुल सुनाई पड़ना बंद हो जाएगा। सूरज का डूबना दिखाई न पड़ेगा।

वह जो पहले दिन अनुभव हमें आया था वह सागर और सूरज की वजह से नहीं था। वह तो केवल एक अजनबी स्थिति में आप पराए से ठीक से संबंधित न हो सके और थोड़ी देर को अपने से संबंधित हो गए। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। इसीलिए परिवर्तन अच्छा लगता है एक क्षण को। क्योंकि परिवर्तन का, एक संक्रमण का क्षण, जो ट्रांजिशन का क्षण है, उस क्षण में आप दूसरे से संबंधित होने के पहले और पिछले से टूटने के पहले बीच में थोड़े से अंतराल में अपने से गुजरते हैं। एक मकान को बदल कर दूसरे मकान में जा रहे हैं। इस मकान को बदलने में और दूसरे मकान में एडजस्ट होने के बीच एक क्षण को अव्यवस्थित हो जाएंगे। न यह मकान होगा, न वह मकान होगा। और बीच में क्षण भर को उस मकान में पहुंच जाएंगे जो आपके भीतर है।

वह क्षणभर को उस बीच जो थोड़ी सी सुख की झलक मिलेगी--वह शायद आप सोचेंगे, इस नये मकान में आने से मिली है, इस पहाड़ पर आने से मिली है, इस एकांत में आने से मिली है, इस संगीत की कड़ी को सुनने से मिली है, इस नाटक को देखने से मिली है। आप भ्रांति में हैं। अगर इस नाटक को देखने से वह मिला है तो फिर रोज इस नाटक को देखें, जल्दी ही पता चल जाएगा। कल नहीं मिलेगा, क्योंकि कल आप एडजस्ट हो चुके होंगे, नाटक परिचित हो चुका होगा। परसों नाटक तकलीफ देने लगेगा। और दो-चार दिन देखते गए तो ऐसा लगेगा, अपने साथ हिंसा कर रहे हैं। एक पत्नी को बदल कर दूसरी पत्नी के साथ जो क्षण भर को सुख दिखाई पड़ रहा है, वह सिर्फ बदलाहट का है। और बदलाहट में भी सिर्फ इसलिए कि दो चीजों के बीच में क्षणभर को आपको अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। बस, और कोई कारण नहीं है।

अनिवार्य है, जब मैं एक से टूटूं और दूसरे से जुड़ूं तो एक क्षण को मैं कहां रहूंगा? टूटने और जुड़ने के बीच में जो गैप है, जो अंतराल है, उसमें मैं अपने में रहूंगा। वही अपने में रहने का क्षण प्रतिफलित होगा और लगेगा कि दूसरे में सुख मिला। सभी बदलाहट अच्छी लगती है। बस बदलाहट, चेंज का जो सुख है, वह अपने से क्षण भर को अचानक गुजर जाने का क्षण है। इसलिए आदमी शहर से जंगल भागता है। जंगल का आदमी शहर आता है। भारत का आदमी यूरोप जाता है, यूरोप का आदमी भारत आता है। दोनों को वही क्षण परिवर्तन का... भारतीय को हैरानी होती है, पश्चिमी को देख कर अपने बीच में कि इधर आए हो सुख की तलाश में! इधर हम जैसा सुख पा रहे हैं, हम ही जानते हैं। पाश्चात्य को, भारतीय को वहां देख कर हैरानी होती है कि तुम यहां आए हो, सुख की तलाश में! यहां जो सुख मिल रहा है, उससे हम किस तरह बचें, हम इसकी चेष्टा में लगे हैं। पर कारण हैं, दोनों को क्षण भर को सुख मिलता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि नई कोई भी चीज से व्यवस्थित होने में थोड़ा अंतराल पड़ता है। एक रिदम है हमारे जीवन की।

गोकलिन ने एक किताब लिखी है, दि काज्मिक क्लाक। लिखा है कि सारा अस्तित्व एक घड़ी की तरह चलता है। अदभुत किताब है, वैज्ञानिक आधारों पर। और मनुष्य का व्यक्तित्व भी एक घड़ी की तरह चलता है। जब भी कोई परिवर्तन होता है तो घड़ी डगमगा जाती है। अगर आप पूरब से पश्चिम की तरफ यात्रा कर रहे हैं तो आपके व्यक्तित्व की पूरी घड़ी गड़बड़ा जाती है। क्योंकि सब बदलता है। सूरज का उगने का समय बदल जाता है, सूरज के डूबने का समय बदल जाता है। वह इतनी तेजी से बदलता है कि आपके शरीर को पता ही नहीं चलता। इसलिए भीतर एक अराजकता का क्षण उपस्थित हो जाता है। सभी बदलाहटें आपके भीतर एक ऐसी स्थिति ला देती हैं कि आपको अनिवार्यरूपेण कुछ देर को अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। उसका ही रिफ्लेक्शन, उसका ही प्रतिबिंब आपको सुख मालूम पड़ता है। और जब क्षण भर को अनजाने गुजर कर भी सुख

मालूम पड़ता है, तो जो सदा अपने भीतर जीने लगता है--अगर महावीर कहते हैं, वे मंगल को, परम मंगल को, आनंद को उपलब्ध हो जाते हैं--तो हम नाप सकते हैं, हम अनुमान कर सकते हैं।

यह हमारा अनुभव अगर प्रगाढ़ होता चला जाए कि जिसे हमने जीवन समझा है वह दुख है, जिस चीज के पीछे हम दौड़ रहे हैं वह सिर्फ नरक में उतार जाती है। अगर यह हमें स्पष्ट हो जाए तो हमें महा वीर की वाणी का आधा हिस्सा हमारे अनुभव से स्पष्ट हो जाएगा। और ध्यान रहे, कोई भी सत्य आधा सत्य नहीं होता--कोई भी सत्य--आधा सत्य नहीं होता। सत्य तो पूरा ही सत्य होता है। अगर उसमें आधा भी सत्य दिखाई पड़ जाए, तो शेष आधा आज नहीं कल दिखाई पड़ जाएगा। और अनुभव में आ जाएगा।

आधा सत्य हमारे पास है कि "दूसरा" दुख है। कामना दुख है, वासना दुख है। क्योंकि कामना और वासना सदा दूसरे की तरफ दौड़ने वाले चित्त का नाम है। वासना का अर्थ है दूसरे की तरफ दौड़ती हुई चेतन धारा। वासना का अर्थ है, भविष्य की ओर उन्मुख जीवन की नौका। अगर "दूसरा" दुख है, तो दूसरे की तरफ ले जानेवाला जो सेतु है वह नरक का सेतु है। उसको "वासना", महावीर कहते हैं। उसको बुद्ध "तृष्णा" कहते हैं। उसे हम कोई भी नाम दें। दूसरे को चाहने की जो हमारे भीतर दौड़ है, हमारी ऊर्जा का जो वर्तन है दूसरे की तरफ, उसका नाम वासना है, वह दुख है।

और मंगल, जो आनंद, जो धर्म है, जो स्वभाव है, निश्चित ही वह उस क्षण में मिलेगा जब हमारी वासना कहीं भी न दौड़ रही होगी। वासना का न दौड़ना आत्मा का हो जाना है। वासना का दौड़ना आत्मा का खो जाना है। आत्मा उस शक्ति का नाम है जो नहीं दौड़ रही है, अपने में खड़ी है। वासना उस आत्मा का नाम है जो दौड़ रही है अपने से बाहर, किसी और के लिए। इसलिए इसी सूत्र के दूसरे हिस्से में महावीर कहते हैं--कौन सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप। यह अहिंसा, संयम और तप दौड़ती हुई ऊर्जा को ठहराने की विधियों के नाम हैं। वह जो वासना दौड़ती है दूसरे की तरफ, वह कैसे रुक जाए, न दौड़े दूसरे की तरफ? और जब रुक जाएगी, न दौड़ेगी दूसरे की तरफ--तो स्वयं में रमेगी, स्वयं में ठहरेगी, स्थिर होगी। जैसे कोई ज्योति हवा के कंप में कंपे न, वैसी। उसका उपाय महावीर कहते हैं।

तो धर्म स्वभाव है, एक अर्थ। धर्म विधि है, स्वभाव तक पहुंचने की, दूसरा अर्थ। तो धर्म के दो रूप हैं--धर्म का आत्यंतिक जो रूप है वह है स्वभाव, स्वधर्म। और धर्म तक, इस स्वभाव तक--क्योंकि हम इस स्वभाव से भटक गए हैं, अन्यथा कहने की कोई जरूरत न थी। स्वस्थ व्यक्ति तो नहीं पूछता चिकित्सक को कि मैं स्वस्थ हूं या नहीं। अगर स्वस्थ व्यक्ति भी पूछता है कि मैं स्वस्थ हूं या नहीं, तो वह बीमार हो चुका है। असल में, बीमारी न आ जाए तो स्वास्थ्य का ख्याल ही नहीं आता।

लाओत्सु के पास कनफ्यूशियस गया था और उसने कहा कि धर्म को लाने का कोई उपाय करें। तो कनफ्यूशियस से लाओत्सु ने कहा कि धर्म को लाने का उपाय तभी करना होता है जब अधर्म आ चुका होता है। तुम कृपा करके अधर्म को छोड़ने का उपाय करो, धर्म आ जाएगा। तुम धर्म को लाने का उपाय मत करो। इसलिए स्वास्थ्य को लाने का कोई उपाय नहीं किया जा सकता है, सिर्फ केवल बीमारियों को छोड़ने का उपाय किया जा सकता है। जब बीमारियां छूट जाती हैं तो जो शेष रह जाता है--दि रिमेनिंग।

तो धर्म का आखिरी सूत्र तो यही है, परम सूत्र तो यही है कि स्वभाव। लेकिन वह स्वभाव तो चूक गया है। वह तो हमने खो दिया है। तो हमारे लिए धर्म का दूसरा अर्थ महावीर कहते हैं--जो प्रयोगात्मक है, प्रक्रिया का है, साधन का है--पहली परिभाषा साध्य की, अंत की, दूसरी परिभाषा साधन की, मीन्स की। तो महावीर कहते हैं--कौन सा धर्म? अहिंसा, संजमो, तपो। इतना छोटा सूत्र शायद ही जगत में किसी और ने कहा हो जिसमें सारा धर्म आ जाए। अहिंसा, संयम, तप--इन तीन की पहले हम व्यवस्था समझ लें, फिर तीन के भीतर हमें प्रवेश करना पड़ेगा।

अहिंसा धर्म की आत्मा है, कहे केंद्र है धर्म का, सेंटर है। तप धर्म की परिधि है, सरकमफ्रेंस है। और संयम केंद्र और परिधि को जोड़ने वाला बीच का सेतु है। ऐसा समझ लें, अहिंसा आत्मा है, तप शरीर है और संयम प्राण है। वह दोनों को जोड़ता है--श्वास है। श्वास टूट जाए तो शरीर भी होगा, आत्मा भी होगी, लेकिन आप न होंगे। संयम टूट जाए, तो तप भी हो सकता है, अहिंसा भी हो सकती है--लेकिन धर्म नहीं हो सकता। वह व्यक्तित्व बिखर जाएगा। श्वास की तरह संयम है। इसे थोड़ा सोचना पड़ेगा। इसकी पहले हम व्यवस्था को समझ लें, फिर एक-एक की गहराई में उतरना आसान होगा।

अहिंसा आत्मा है महावीर की दृष्टि से। अगर महावीर से हम पूछें कि एक ही शब्द में कह दें कि धर्म क्या है? तो वे कहेंगे अहिंसा। कहा है उन्होंने-अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा पर क्यों महा वीर इतना जोर देते हैं? किसी ने नहीं कहा, ऐसा अहिंसा को। कोई कहेगा, परमात्मा; कोई कहेगा, आत्मा। कोई कहेगा, सेवा; कोई कहेगा, ध्यान। कोई कहेगा, समाधि; कोई कहेगा, योग। कोई कहेगा, प्रार्थना; कोई कहेगा, पूजा। महावीर से अगर हम पूछें, उनके अंतर्तम में एक ही शब्द बसता है और वह है अहिंसा। क्यों? तो जिसको महावीर के मानने वाले अहिंसा कहते हैं, अगर इतनी ही अहिंसा है तो महावीर गलती में हैं। तब बहुत क्षुद्र बात कही जा रही है। महावीर को मानने वाला अहिंसा से जैसा मतलब समझता है, उससे ज्यादा बचकाना, चाइल्डिश कोई मतलब नहीं हो सकता। उससे वह मतलब समझता है--दूसरे को दुख मत दो। महावीर का यह अर्थ नहीं है। क्योंकि धर्म की परिभाषा में दूसरा आए, यह महावीर बरदाश्त न करेंगे। इसे थोड़ा समझें।

धर्म की परिभाषा स्वभाव है, और धर्म की परिभाषा दूसरे से करनी पड़े कि दूसरे को दुख मत दो, यही धर्म है। तो यह धर्म भी दूसरे पर ही निर्भर और दूसरे पर ही केंद्रित हो गया है। महावीर यह भी न कहेंगे कि दूसरे को सुख दो, यही धर्म है। क्योंकि फिर वह दूसरा तो खड़ा ही रहा। महावीर कहते हैं--धर्म तो वहां है, जहां दूसरा है ही नहीं। इसलिए दूसरे की व्याख्या से नहीं बनेगा। दूसरे को दुख मत दो--यह महावीर की परिभाषा इसलिए भी नहीं हो सकती, क्योंकि महावीर मानते नहीं कि तुम दूसरे को दुख दे सकते हो, जब तक दूसरा लेना न चाहे। इसे थोड़ा समझना। यह भ्रांति है कि मैं दूसरे को दुख दे सकता हूं और यह भ्रांति इसी पर खड़ी है कि मैं दूसरे से दुख पा सकता हूं, मैं दूसरे से सुख पा सकता हूं, मैं दूसरे को सुख दे सकता हूं। ये सब भ्रांतियां एक ही आधार पर खड़ी हैं। अगर आप दूसरे को दुख दे सकते हैं तो क्या आप सोचते हैं, आप महावीर को दुख दे सकते हैं? और अगर आप महावीर को दुख दे सकते हैं तो फिर बात खत्म हो गई। नहीं, आप महावीर को दुख नहीं दे सकते। क्योंकि महावीर दुख लेने को तैयार ही नहीं हैं। आप उसी को दुख दे सकते हैं जो दुख लेने को तैयार है। और आप हैरान होंगे कि हम इतने उत्सुक हैं दुख लेने को, जिसका कोई हिसाब नहीं। आतुर हैं, प्रार्थना कर रहे हैं कि कोई दुख दे। दिखाई नहीं पड़ता दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन खोजें अपने को। अगर एक आदमी आपकी चौबीस घंटे प्रशंसा करे, तो आपको सुख न मिलेगा, और एक गाली दे दे तो जन्मभर के लिए दुख मिल जाएगा। एक आदमी आपकी वर्षों सेवा करे, आप को सुख न मिलेगा, और एक दिन आपके खिलाफ एक शब्द बोल दे और आपको इतना दुख मिल जाएगा कि वह सब सुख व्यर्थ हो गया। इससे क्या सिद्ध होता है?

इससे यह सिद्ध होता है कि आप सुख लेने को इतने आतुर नहीं दिखाई पड़ते हैं जितना दुख लेने को आतुर दिखाई पड़ते हैं। यानी आपकी उत्सुकता जितनी दुख लेने में है उतनी ही सुख लेने में नहीं है। अगर मुझे किसी ने उन्नीस बार नमस्कार किया और एक बार नमस्कार नहीं किया, तो उन्नीस बार नमस्कार से मैंने जितना सुख नहीं लिया है, एक बार नमस्कार न करने से उतना दुख ले लूंगा। आश्चर्य है! मुझे कहना चाहिए था, कोई बात नहीं है, हिसाब अभी भी बहुत बड़ा है। कम से कम बीस बार न करे तब बराबर होगा। मगर वह नहीं होता है। तब भी बराबर होगा, तब भी दुख लेने का कोई कारण नहीं है, मामला तब तराजू में तुल जाएगा। लेकिन नहीं, जरा सी बात दुख दे जाती है।

हम इतने सेंसिटिव हैं दुख के लिए, उसका कारण क्या है? उसका कारण यही है कि हम दूसरे से सुख चाहते हैं इतना ज्यादा कि वही चाह, उससे हमें दुख मिलने का द्वार बन जाती है, और तब दूसरे से सुख तो मिलता नहीं--मिल नहीं सकता। फिर दुख मिल सकता है, उसको हम लेते चले जाते हैं। महावीर नहीं कह सकते कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को दुख न देना। दूसरे को कौन दुख दे सकता है, अगर दूसरा लेना न चाहे। और जो लेना चाहता है उसको कोई भी न दे तो वह ले लेगा। यह भी मैं आपसे कह देना चाहता हूं। कोई वह आपके लिए रुका नहीं रहेगा कि आपने नहीं दिया तो दुख कैसे लें। लोग आसमान से दुख ले रहे हैं। जिन्हें दुख लेना है, वे बड़े इवेंटिव हैं। वे इस-इस ढंग से दुख लेते हैं, इतना आविष्कार करते हैं कि जिसका हिसाब नहीं है। वे आपके उठने से दुख ले लेंगे, आपके बैठने से दुख ले लेंगे, आपके चलने से दुख ले लेंगे, किसी चीज से दुख ले लेंगे। अगर आप बोलेंगे तो दुख ले लेंगे, अगर आप चुप बैठेंगे तो दुख ले लेंगे कि आप चुप क्यों बैठे हैं, इसका क्या मतलब?

एक महिला मुझसे पूछती थी कि मैं क्या करूं, मेरे पति के लिए। अगर बोलती हूं तो कोई विवाद, उपद्रव खड़ा होता है। अगर नहीं बोलती हूं तो वे पूछते हैं, क्या बात है? न बोलने से विवाद खड़ा होता है। अगर न बोलूं तो वे समझते हैं कि नाराज हूं। अगर बोलूं तो नाराजगी थोड़ी देर में आने ही वाली है, वह कुछ न कुछ निकल आएगा। तो मैं क्या करूं? बोलूं कि न बोलूं? अब मैं उसको क्या सलाह दूं?

जितने दुख आपको मिल रहे हैं उसमें से निन्यानबे प्रतिशत आपके आविष्कार हैं। निन्यानबे प्रतिशत! जरा खोजें कि किस-किस तरह आप आविष्कार करते हैं, दुख का। कौन-कौन सी तरकीबें आपने बिठा रखी हैं! असल में बिना दुखी हुए आप रह नहीं सकते। क्योंकि दो ही उपाय हैं, या तो आदमी सुखी हो तो रह सकता है, या दुखी हो तो रह सकता है। अगर दोनों न रह जाएं तो जी नहीं सकता। दुख भी जीने के लिए काफी बहाना है। दुखी लोग देखते हैं आप, कितने रस से जीते हैं? इसको जरा देखना पड़ेगा। दुखी लोग कितने रस से जीते हैं? वह अपने दुख की कथा कितने रस से कहते हैं? दुखी आदमी की कथा सुनें, कैसा रस लेता है। और कथा को कैसा मैग्निफाई करता है, उसको कितना बड़ा करता है। सुई लग जाए तो तलवार से कम नहीं लगती है उसे।

कभी आपने ख्याल किया है कि आप किसी डाक्टर के पास जाएं और वह आपसे कह दे कि नहीं, आप बिल्कुल बीमार नहीं हैं, तो कैसा दुख होता है! वह डाक्टर ठीक नहीं मालूम पड़ता। किसी और बड़े एक्सपर्ट को खोजना पड़ता है, इससे काम नहीं चलेगा। यह कोई डाक्टर है! आप जैसे बड़े आदमी, और आपको कोई बीमारी ही नहीं है। या कोई छोटी-मोटी बीमारी बता दे, कि कह दे, गर्म पानी पी लेना और ठीक हो जाओगे। तो भी मन को तृप्ति नहीं मिलती। इसलिए डाक्टरों को, बेचारों को अपनी दवाइयों के नाम लैटिन में रखने पड़ते हैं, चाहे उसका मतलब होता हो अजवाइन का सत। लेकिन लैटिन में जब नाम होता है, तब मरीज अकड़ कर घर लौटता है, प्रिस्क्रीप्शन लेकर कि ये कुछ काम हुआ! जीएंगे कैसे, अगर दुख न हो तो जीएंगे कैसे! या तो आनंद हो तो जीने की वजह होती है। आनंद न हो तो दुख तो हो ही!

मार्क ट्वेन ने कहा है, और अनुभवी था आदमी और मन के गहरे में उतरने की क्षमता और दृष्टि थी। उसने कहा है, तुम चाहे मेरी प्रशंसा करो, या चाहे मेरा अपमान करो, लेकिन तटस्थ मत रहना। उससे बहुत पीड़ा होती है। तुम चाहो तो गाली ही दे देना, उससे भी तुम मुझे मानते हो कि मैं कुछ हूं। लेकिन तुम मुझे बिना देखे ही निकल जाओ, तुम न मुझे गाली दो, न तुम मेरा सम्मान करो, तब तुम मुझे ऐसी चोट पहुंचाते हो संघातक कि मैं उसका बदला लेकर रहूंगा। उपेक्षा का बदला लोग जितना लेते हैं उतना दुख का नहीं लेते। आपने भी अपने पर ख्याल करेंगे तो आपको पता चल जाएगा कि आपको सबसे ज्यादा पीड़ा वह आदमी पहुंचाता है जो आपकी उपेक्षा करता है, इन्डिफरेंट है। इसलिए अगर महा वीर या जीसस जैसे लोगों को हमने बहुत सताया तो उसका एक कारण उनका इन्डिफरेंस था, बहुत गहरा कारण। वे इन्डिफरेंट थे। आप उनको पत्थर भी मार गए तो वे ऐसे खड़े रहे कि चलो कोई बात नहीं। तो उससे बहुत दुख होता है, उससे बहुत पीड़ा होती है।

नीत्शे ने; जो कि मनुष्य के इतिहास में बहुत थोड़े से लोग आदमी के भीतर जितनी गहराई में उतरते हैं, वैसा आदमी; नीत्शे ने कहा है कि जीसस, मैं तुमसे कहता हूँ कि अगर कोई तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तो तुम दूसरा गाल उसके सामने मत करना, उससे उसको बहुत चोट लगेगी। जब कोई आदमी तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, जीसस, तो मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम दूसरा गाल उसके सामने मत करना। तुम उसे एक करारा चांटा देना। उससे उसे इज्जत मिलेगी। जब तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दोगे, वह कीड़ा-मकोड़ा जैसा हो जाएगा। इतना अपमान मत करना। इसे हम न सह सकेंगे। इसीलिए तुम्हें सूली पर लटकाया गया।

यह कभी हम सोच नहीं सकते, लेकिन है यह सच। और सच ऐसे स्ट्रेंज होते हैं कि हम कल्पना भी न कर पाएं, इतने विचित्र होते हैं। अगर कोई आपकी उपेक्षा करे तो वह शत्रु से भी ज्यादा शत्रु मालूम पड़ता है। क्योंकि शत्रु आपकी उपेक्षा नहीं करता। वह आपको काफी मान्यता देता है।

हम दुख के लिए भी उत्सुक हैं--कम से कम दुख तो दो, अगर सुख न दे सको। कुछ तो दो, दुख भी दोगे तो चलेगा, लेकिन दो। इसलिए हम आतुर हैं चारों तरफ, और संवेदनशील हैं। हम अपनी सारी इंद्रियों को चारों तरफ सजग रखते हैं, एक ही काम के लिए कि कहीं से दुख आ रहा हो तो चूक न जाएं। तो उसे जल्दी से ले लें। कहीं कोई और न ले ले; कहीं चूक न जाएं; कहीं अवसर न खो जाए। यह दुख हमारे रहने की वजह है, जीने की वजह है।

तो महावीर की अहिंसा का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे को दुख मत देना, क्योंकि महावीर तो कहते ही यह हैं कि दूसरे को न कोई दुख दे सकता है और न कोई सुख दे सकता है। महावीर की अहिंसा का यह भी अर्थ नहीं है कि दूसरे को मारना मत, मार मत डालना। क्योंकि महावीर भलीभांति जानते हैं कि इस जगत में कौन किसको मार सकता है, मार डाल सकता है। महावीर से ज्यादा बेहतर और कौन जानता होगा यह कि मृत्यु असंभव है। मरता नहीं कुछ। तो महावीर का यह मतलब तो कतई नहीं हो सकता कि मारना मत, मार मत डालना किसी को। क्योंकि महावीर तो भलीभांति जानते हैं। और अगर इतना भी नहीं जानते तो महावीर के महावीर होने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले बहुत साधारण... साधारण परिभाषाओं का ढेर इकट्ठा कर दिए हैं। कहते हैं, अहिंसा का अर्थ यह है कि मुंह पर पट्टी बांध लेना। कि अहिंसा का अर्थ यह है कि सम्मल कर चलना कि कोई कीड़ा न मर जाए, कि रात पानी मत पी लेना, कि कहीं कोई हिंसा न हो जाए। यह सब ठीक है। मुंह पर पट्टी बांधना कोई हर्जा नहीं है, पानी छान कर पी लेना बहुत अच्छा है। पैर सम्मल कर रखना, यह भी बहुत अच्छा है, लेकिन इस भ्रम में नहीं कि आप किसी को मार सकते थे। इस भ्रम में नहीं। मत देना किसी को दुख, बहुत अच्छा है। लेकिन इस भ्रम में नहीं कि आप किसी को दुख दे सकते थे।

मेरे फर्क को आप समझ लेना। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप जाना और मारना और काटना; क्योंकि मार तो कोई सकते ही नहीं हैं यह मैं नहीं कह रहा हूँ! महावीर की अहिंसा का अर्थ ऐसा नहीं है। महावीर की अहिंसा का अर्थ ठीक वैसा है जैसे बुद्ध के तथाता का। इसे थोड़ा समझ लें। महावीर की अहिंसा का अर्थ वैसा ही है जैसे बुद्ध के तथाता का। तथाता का अर्थ होता है टोटल एक्सेप्टेबिलिटी, जो वैसा है वैसा ही हमें स्वीकार है। हम कुछ हेर-फेर न करेंगे।

अब एक चींटी चल रही है रास्ते पर, हम कौन हैं जो उसके रास्ते में किसी तरह का हेर-फेर करने जाएं? अगर मेरा पैर भी पड़ जाए तो मैं उसके मार्ग पर हेर-फेर करने का कारण और निमित्त तो बन जाता हूँ। और मार्ग बहुत हैं। वह चींटी अभी जाती थी। अपने बच्चों के लिए शायद भोजन जुटाने जा रही हो। पता नहीं उसकी अपनी योजनाओं का जगत है। मैं उसके बीच में न जाऊँ। ऐसा नहीं है कि न आने से मैं बच पाऊँगा, फिर भी आ सकता हूँ। लेकिन महावीर कहते हैं, मैं अपनी तरफ से बीच में न आऊँ। जरूरी नहीं है कि मैं ही चींटी पर पैर रखूँ, तब वह मरे। चींटी खुद मेरे पैर के नीचे आकर मर सकती है। वह चींटी जाने, वह उसकी योजना जाने। महावीर जानते हैं कि यह जीवन के पथ पर प्रत्येक अपनी योजना में संलग्न है। वह योजना छोटी नहीं है। वह

योजना बड़ी है, जन्मों-जन्मों की है। वह कर्मों का बड़ा विस्तार है उसका। उसका अपने कर्मों की, फलों की लंबी यात्रा है। मैं किसी की यात्रा पर किसी भी कारण से बाधा न बनूं। मैं चुपचाप अपनी पगडंडी पर चलता रहूं। मेरे कारण निमित्त के लिए भी किसी के मार्ग पर कोई व्यवधान खड़ा न हो। मैं ऐसा हो जाऊं, जैसे हूं ही नहीं।

अहिंसा का महावीर का अर्थ है कि मैं ऐसा हो जाऊं, जैसे मैं हूं ही नहीं। यह चींटी यहां से ऐसे ही गुजर जाती है जैसे कि मैं इस रास्ते पर चला ही नहीं था, और ये पक्षी इन वृक्षों पर ऐसे ही बैठे रहते हैं जैसे कि मैं इन वृक्षों के नीचे बैठा ही नहीं था। ये लोग, इस गांव के, ऐसे ही जीते रहते जैसे मैं इस गांव से गुजरा ही नहीं था। जैसे मैं नहीं हूं। महावीर का गहनतम जो अहिंसा का अर्थ है, वह है एब्सेंस, जैसे मैं नहीं हूं। मेरी प्रेजेंस कहीं अनुभव न हो, मेरी उपस्थिति कहीं प्रगाढ़ न हो जाए, मेरा होना कहीं किसी के होने में जरा सा भी अड़चन, व्यवधान न बने। मैं ऐसे हो जाऊं जैसे नहीं हूं। मैं जीते जी मर जाऊं... मैं जीते जी मर जाऊं।

हमारी सबकी चेष्टा क्या है? अब इसे थोड़ा समझें तो हमें ख्याल में आ सानी से आ जाएगा, पर बहुत से आयाम से समझना पड़ेगा। हम सबकी चेष्टा क्या है कि हमारी उपस्थिति अनुभव हो, दूसरा जाने कि मैं हूं, मौजूद हूं। हमारे सारे उपाय हैं कि हमारी उपस्थिति प्रतीत हो। इसलिए राजनीति इतनी प्रभावी हो जाती है। क्योंकि राजनीतिक ढंग से आपकी उपस्थिति जितनी प्रतीत हो सकती है और किसी ढंग से नहीं हो सकती है। इसलिए राजनीति पूरे जीवन पर छा जाती है। अगर हम राजनीति का ठीक-ठीक अर्थ करें तो उसका अर्थ है, इस बात की चेष्टा कि मेरी उपस्थिति अनुभव हो। मैं कुछ हूं, मैं ना-कुछ नहीं हूं। लोग जानें, मैं चुभूं, मेरे कांटे जगह-जगह अनुभव हों, लोग ऐसे न गुजर जाएं कि जैसे मैं नहीं था। और महावीर कहते हैं कि मैं ऐसे गुजर जाऊं कि पता चले कि मैं नहीं था, था ही नहीं।

अब अगर हम इसे ठीक से समझें--उपस्थिति अनुभव करवाने की कोशिश का नाम हिंसा है, वायलेंस है। और जब भी हम किसी को कोशिश करवाते हैं अनुभव करवाने की कि मैं हूं, तभी हिंसा होती है। चाहे पति अपनी पत्नी को बतला रहा हो कि समझ ले कि मैं हूं, चाहे पत्नी समझा रही हो कि क्या तुम समझ रहे हो कि कमरे में अखबार पढ़ रहे हो तो तुम अकेले हो! मैं यहां हूं। पत्नी अखबार की दुश्मन हो सकती है क्योंकि अखबार आड़ बन सकता है, उसकी अनुपस्थिति हो जाती है। अखबार को फाड़कर फेंक सकती है। किताबें हटा सकती है। रेडियो बंद कर सकती है। और पति बेचारा इसलिए रेडियो खोले है, अखबार आड़ा किए हुए है कि कृपा करके तुम्हारी उपस्थिति अनुभव न हो। हम सब इस चेष्टा में लगे हैं कि मेरी उपस्थिति दूसरे को अनुभव हो और दूसरे की उपस्थिति मुझे अनुभव न हो। यही हिंसा है। और यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब मैं चाहूंगा कि मेरी उपस्थिति आपको पता चले, तो मैं यह भी चाहूंगा कि आपकी उपस्थिति मुझे पता न चले क्योंकि दोनों एक साथ नहीं हो सकते। मेरी उपस्थिति आपको पता चले, वह तभी पता चल सकती है जब आपकी उपस्थिति को मैं ऐसे मिटा दूं, जैसे है ही नहीं। हम सबकी कोशिश यह है कि दूसरे की उपस्थिति मिट जाए और हमारी उपस्थिति सघन, कंडेंस्ड हो जाए। यही हिंसा है।

अहिंसा इसके विपरीत है। दूसरा उपस्थित हो और इतनी तरह उपस्थित हो कि मेरी उपस्थिति से उसकी उपस्थिति में कोई बाधा न पड़े। मैं ऐसे गुजर जाऊं भीड़ से कि किसी को पता भी न चले कि मैं था। अहिंसा का गहन अर्थ यही है--अनुपस्थित व्यक्तित्व। इसे हम ऐसा कह सकते हैं और महावीर ने ऐसा कहा है--अहंकार हिंसा है और निरहंकारिता अहिंसा है। मतलब वही है--वह दूसरे को अपनी उपस्थिति प्रतीत करवाने की जो चेष्टा है। कितनी कोशिश में हम लगे हैं, शायद सारी कोशिश यही है--ढंग कोई भी हों। चाहे हम हीरे का हार पहनकर खड़े हो गए हों और चाहे हमने लाखों के वस्त्र डाल रखे हों और चाहे हम नग्न खड़े हो गए हों--कोशिश यही है, क्या, कि दूसरा अनुभव करे कि मैं हूं। मैं चैन से न बैठने दूंगा। तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि मैं हूं।

छोटे-छोटे बच्चे भी इस हिंसा में निष्णात होना शुरू हो जाते हैं। कभी आपने ख्याल किया होगा कि छोटे-छोटे बच्चे भी अगर घर में मेहमान हों तो ज्यादा गड़बड़ शुरू कर देते हैं। घर में कोई न हो तो अपने बैठे रहते हैं,

क्यों? आपको हैरानी होती है कि बच्चा ऐसे तो शांत बैठा था, घर में कोई आ गया तो वह पच्चीस सवाल उठाता है, बार-बार उठ कर आता है, कोई चीज गिराता है। वह कर क्या रहा है? वह सिर्फ अटेंशन प्रवोक कर रहा है। वह कह रहा है, हम भी हैं यहां। मैं भी हूं। और आप उससे कह रहे हैं, शांत बैठो। आप यह कोशिश कर रहे हैं कि तुम नहीं हो। वह बूढ़ा भी वही कर रहा है, बच्चा भी वही कर रहा है। आप कहते हैं, शांत बैठो। वह बच्चा भी हैरान होता है कि जब घर में कोई नहीं होता है तो बाप नहीं कहता कि शांत बैठो। अभी कुछ नहीं कहता, कितने चिल्लाओ, घूमो-फिरो, चुप बैठा रहता है। घर में कोई मेहमान आते हैं तभी यह कहता है, शांत बैठो। क्या बात क्या है? घर में जब मेहमान आते हैं तभी तो वक्त है शांत न बैठने का।

दोनों के बीच जो संघर्ष है वह इस बात का है कि बच्चा असर्ट करना चाहता है। वह भी घोषणा करना चाहता है कि मैं भी यहां हूं। महाशय, यहां मैं भी हूं। इसलिए कभी-कभी बच्चा मेहमानों के सामने ऐसी जिद पकड़ जाता है कि मां-बाप हैरान होते हैं कि ऐसी जिद उसने कभी नहीं पकड़ी थी। उनके सामने वह दिखाना चाहता है कि इस घर में मालिक कौन है, किसकी चलती है, आखिर में कौन निर्णायक है। छोटे-छोटे बच्चे भी पालिटिक्स भलीभांति सीखने लगते हैं। उसका कारण है कि हमारा पूरा का पूरा आयोजन, हमारा पूरा समाज, हमारी पूरी संस्कृति अहंकार की संस्कृति है, अधर्म की। सारी दुनिया में वही है। आदमी अब तक धर्म की संस्कृति विकसित ही नहीं कर पाया। अब तक हम यह कोशिश ही जाहिर न कर पाए और हम सुनते नहीं महावीर वगैरह की, जो कि इस तरह की संस्कृति के स्रोत बन सकते थे। वे कहते हैं कि नहीं, उपस्थिति तुम्हारी जितनी पता न चले, उतना ही मंगल है। तुम्हारे लिए भी, दूसरे के लिए भी। तुम ऐसे हो जाओ जैसे हो ही नहीं।

महावीर घर छोड़ कर जाना चाहते थे तो मां ने कहा--"मत जाओ, मुझे दुख होगा।" महावीर नहीं गए, क्योंकि इतनी भी जाने की जिद से होने का पता चलता है। आग्रह था कि नहीं, जाऊंगा। अगर महावीर की जगह कोई भी होता तो उसका त्याग और जोश मारता--क्या कहते हैं गुजराती में आप, जुस्सा। उसका जोश और बढ़ता। वह कहता, कौन मां, कौन पिता? सब संबंध बेकार हैं। यह सब संसार है। जितना समझाते, उतना वे शिखर पर चढ़ते। अधिक संन्यासी, अधिक त्यागी आपके समझाने की वजह से हो गए हैं। भूल से मत समझाना। कोई कहे "जाते हैं", कहना, "नमस्कार।" तो वह आदमी जाने के पहले पच्चीस दफे सोचेगा कि जाना कि नहीं जाना। आप घेरा बांधकर खड़े हो गए, आपने अटेंशन देनी शुरू कर दिया। आपने कहा कि उनको जाना महत्वपूर्ण हो गया। जरूरी हो गया। अब यह व्यक्तित्व की लड़ाई हो गई। अब सिद्ध करना पड़ेगा। इतने त्यागी न हों दुनिया में अगर आस-पास के लोग इतना आग्रह न करें--तो त्यागी एकदम कम हो जाएंगे। इसमें नब्बे प्रतिशत तो बिल्कुल ही न हों और तब दुनिया का हित हो। क्योंकि जो दस प्रतिशत बचे उनके त्याग की एक गरिमा हो। उनका एक अर्थ हो। लेकिन आप रोकते हैं, वही कारण बन जाता है।

महावीर रुक गए, मां भी थोड़ी चकित हुई होगी, ऐसा कैसा त्याग! फिर महावीर ने दुबारा न कहा कि एक दफा और निवेदन करता हूं कि जाने दो। बात ही छोड़ दी। मां के मरने तक फिर बोले ही नहीं। कहा ही नहीं कुछ। मां ने भी सोचा होगा, जरूर सोचा होगा कि यह कैसा त्याग! क्योंकि त्यागी तो एकदम जिद बांध कर खड़ा हो जाता है। मां मर गई। घर लौटते वक्त अपने बड़े भाई को महावीर ने कहा: कब्रिस्तान से लौटते वक्त, मरघट से, कि अब मैं जा सकता हूं? क्योंकि वह मां कहती थी, उसे दुख होगा। तो बात समाप्त हो गई, अब वह है ही नहीं।

भाई ने कहा: तू आदमी कैसा है! इधर इतना बड़ा दुख का पहाड़ टूट पड़ा हमारे ऊपर, कि मां मर गई, और तू अभी छोड़ कर जाने की बात करता है! भूल कर ऐसी बात मत करना।

महावीर चुप हो गए। फिर दो वर्ष तक भाई भी हैरान हुआ कि यह त्याग कैसा! क्योंकि वे तो अब चुप ही हो गए। उन्होंने फिर दोबारा बात न कही। इतनी उपस्थिति को हटा लेने का नाम अहिंसा है।

दो वर्ष में घर के लोगों को खुद चिंता होने लगी कि कहीं हम ज्यादाती तो नहीं कर रहे हैं। भाई को पीड़ा होने लगी, क्योंकि देखा कि महावीर घर में हैं तो, लेकिन करीब-करीब ऐसे जैसे न हों--एक घोस्ट एक्झिस्टेंस रह गया, शैडो एक्झिस्टेंस। कमरे से ऐसे गुजरते हैं कि पैर की आवाज न हो। घर में किसी को कुछ कहते नहीं कि किसी को पता चले कि मैं भी हूँ। कोई सलाह नहीं देते, कोई उपदेश नहीं देते। बैठे देखते रहते हैं, जो हो रहा है--हो रहा है! उसमें वे उसके साक्षी हो गए हैं। कई-कई दिनों तक घर के लोगों को ख्याल ही न आता कि महावीर कहां हैं। बड़ा महल था। फिर खोज-बीन करते कि महावीर कहां हैं तो पता चलता। खोज-बीन करने से पता चलता।

तो भाई ने और सबने बैठ कर सोचा कि हम कहीं ज्यादाती तो नहीं कर रहे हैं, कहीं हम भूल तो नहीं कर रहे हैं। हम सोचते हैं कि हम रोकते हैं इसलिए रुक जाता है। लेकिन हमें ऐसा लगता है कि इसलिए रुक जाता है कि नाहक, इतनी भी उपस्थिति हमें क्यों अनुभव हो, हमें इतनी भी पीड़ा क्यों हो कि हमारी बात तोड़कर गया है। लेकिन लगता हमें ऐसा है कि वह जा चुका है, अब वह घर में है नहीं। उन सबने मिलकर कहा--यह पृथ्वी पर घटी हुई अकेली घटना है--उन सबने, घर के लोगों ने मिल कर कहा कि आप तो जा ही चुके हैं, एक अर्थ में। अब ऐसा लगता है कि पार्थिव देह पड़ी रह गई है, आप इस घर में नहीं हैं। तो हम आपके मार्ग से हट जाते हैं क्योंकि हम अकारण आपको रोकने का कारण न बनें। महावीर उठे और चल पड़े।

यह अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है, गहनतम अनुपस्थिति। इसलिए मैंने कहा कि बुद्ध का जो तथाता का भाव है, वही महावीर की अहिंसा का भाव है। तथाता का अर्थ है--जैसा है, स्वीकार है। अहिंसा का भी यही अर्थ है कि हम परिवर्तन के लिए जरा भी चेष्टा न करेंगे। जो हो रहा है ठीक है, जो हो जाए ठीक है। जीवन रहे तो ठीक है, मृत्यु आ जाए तो ठीक है। हमारी हिंसा किस बात से पैदा होती है? जो हो रहा है वह नहीं, जो हम चाहते हैं वह हो। तो हिंसा पैदा होती है। हिंसा है क्या? इसलिए युग में जितना ज्यादा परिवर्तन की आकांक्षा भरती है, युग उतने ही हिंसक होते चले जाते हैं। आदमी जितना चाहता है, ऐसा हो, उतनी हिंसा बढ़ जाएगी।

महावीर की अहिंसा का अर्थ अगर हम गहरे में खोलें, गहरे में उघाड़ें, उसकी डेप्थ में, तो उसका यह अर्थ है कि जो है उसके लिए हम राजी हैं। हिंसा का कोई सवाल नहीं है, कोई बदलाहट नहीं है, कोई बदलाहट नहीं करनी है। आपने चांटा मार दिया, ठीक है। हम राजी हैं, हमें अब और कुछ भी नहीं करना है, बात समाप्त हो गई। हमारा कोई प्रत्युत्तर नहीं। इतना भी नहीं जितना जीसस का है। जीसस कहते हैं, दूसरा गाल सामने कर दो। महावीर इतना भी नहीं कहते कि जो चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने करना, क्योंकि यह भी एक उत्तर है। एक "सार्ट ऑफ आंसर" है। है तो उत्तर--चांटा मारना भी एक उत्तर है, दूसरा गाल कर देना भी एक उत्तर है। लेकिन तुम राजी न रहे, बात जितनी थी उतने से तुमने कुछ न कुछ किया।

महावीर कहते हैं--करना ही हिंसा है, कर्म ही हिंसा है। अकर्म अहिंसा है। चांटा मार दिया है, ठीक है जैसे एक वृक्ष से सूखा पत्ता गिर गया है। ठीक है, आप अपनी राह चले गए। एक आदमी ने चांटा मार दिया, आप अपनी राह चले गए। एक आदमी ने गाली दी, आपने सुनी और आगे बढ़ गए। क्षमा भी करने का सवाल नहीं है क्योंकि वह भी कृत्य है। कुछ करने का सवाल नहीं है। पानी में उठी लहर और अपने आप बिखर जाती है। ऐसा ही चारों तरफ लहरें उठती रहेंगी कर्म की, बिखरती रहेंगी। तुम कुछ मत करना। तुम चुपचाप गुजरते जाना। पानी में लहर उठती है, मिटानी तो नहीं पड़ती, अपने से आप मिट जाती है।

इस जगत में जो तुम्हारे चारों तरफ हो रहा है, उसे होते रहने देना है, वह अपने से उठेगा और गिर जाएगा। उसके उठने के

नियम हैं, उसके गिरने के नियम हैं, तुम व्यर्थ बीच में मत आना। तुम चुपचाप दूर ही रह जाना। तुम तटस्थ ही रह जाना। तुम ऐसा ही जानना कि तुम नहीं थे। जब कोई चांटा मारे तब तुम ऐसे हो जाना कि तुम

नहीं हो, तो उत्तर कौन देगा। गाल भी कौन करेगा, गाली कौन देगा, क्षमा कौन करेगा? तुम ऐसा जानना कि तुम नहीं हो। तुम्हारी एब्सेंस में, तुम्हारी अनुपस्थिति में जो भी कर्म की धारा उठेगी वह अपने से पानी में उसकी लहर की तरह खो जाएगी। तुम उसे छूने भी मत जाना। हिंसा का अर्थ है, मैं चाहता हूं, जगत ऐसा हो।

उमर खय्याम ने कहा है-मेरा वश चले और प्रभु तू मुझे शक्ति दे तो तेरी सारी दुनिया को तोड़ कर दूसरी बना दूं। अगर आपका भी वश चले तो दुनिया को आप ऐसी ही रहने देंगे जैसी है? दुनिया! दुनिया तो बहुत बड़ी चीज है, कुछ भी आप ऐसा न रहने देंगे, छोटा-मोटा भी जैसा है। उमर खय्याम के इस वक्तव्य में सारे मनुष्यों की कामना तो प्रकट हुई ही है, और हिंसा भी। अगर महावीर से कहा जाए, अगर आपको पूरी शक्ति दे दी जाए कि यह दुनिया कैसी हो, तो महावीर कहेंगे, जैसी है, वैसी हो--एज इट इज। मैं कुछ भी न करूंगा।

लाओत्सु ने कहा है--श्रेष्ठतम सम्राट वह है जिसका प्रजा को पता ही नहीं चलता। श्रेष्ठतम सम्राट वह है जिसका प्रजा को पता ही नहीं चलता, वह है भी या नहीं। महावीर की अहिंसा का अर्थ है कि ऐसे हो जाओ कि तुम्हारा पता ही न चले और हमारी सारी चेष्टा ऐसी है कि हम इस भांति कैसे हो जाएं कि कोई न बचे जिसे हमारा पता न हो। कोई न बचे, जिसे हमारा पता न हो। सारी अटेंशन हम पर फोकस हो जाए। सारी दुनिया हमें देखे, हम हों आंखों के बीच में, सब आंखें हम पर मुड़ जाएं। यही हिंसा है। और यही हिंसा है कि हम पूरे वक्त चाहते रहें कि ऐसा हो, ऐसा न हो। हम पूरे वक्त चाह रहे हैं। क्यों चाह रहे हैं? चाहने का कारण है। वह जो धर्म की व्याख्या में मैंने आपसे कहा--दौड़ रहे हैं, वह मकान मिले, वह धन मिले, वह पद मिले, तो हिंसा से गुजरना पड़ेगा। वासना हिंसा के बिना नहीं हो सकती। किसी वासना की दौड़ हिंसा के बिना नहीं हो सकती। हम ऐसा समझ सकते हैं कि वासना के लिए जिस ऊर्जा की जरूरत पड़ती है वह हिंसा का रूप ले लेती है। इसलिए जितना वासनाग्रस्त आदमी है उतना वायलेंट, उतना हिंसक होगा। जितना वासनामुक्त आदमी उतना अहिंसक होगा।

इसलिए जो लोग समझते हैं कि महावीर कहते हैं कि अहिंसा इसलिए है कि तुम मोक्ष पा लोगे, वे गलत समझते हैं। क्योंकि अगर मोक्ष पाने की वासना है तो आपकी अहिंसा भी हिंसक हो जाएगी। और बहुत से लोगों की अहिंसा हिंसक है। अहिंसा भी हिंसक हो सकती है। आप इतने जोर से अहिंसा के पीछे पड़ सकते हैं कि आपका पड़ना बिल्कुल हिंसक हो जाए। लेकिन जो मोक्ष की वासना से अहिंसा के पीछे जाएगा उसकी अहिंसा हिंसक हो जाएगी। इसलिए तथाकथित अहिंसक साधकों को अहिंसक नहीं कहा जा सकता। वे इतने जोर से लगे हैं उसके पीछे, पाकर ही रहेंगे। सब दांव पर लगा देंगे, लेकिन पाकर रहेंगे। वह जो पाकर रहने का भाव है उसमें बहुत गहरी हिंसा है।

महावीर कहते हैं, पाने को कुछ भी नहीं है जो पाने योग्य है वह पाया ही हुआ है। बदलने को कुछ भी नहीं है क्योंकि यह जगत अपने ही नियम से बदलता रहता है। क्रांति करने का कोई कारण नहीं, क्रांति होती ही रहती है। कोई क्रांति-क्रांति करता नहीं, क्रांति होती रहती है। लेकिन क्रांतिकारी को ऐसा लगता है, वह क्रांति कर रहा है। उसका लगना वैसा ही है जैसे सागर में एक बड़ी लहर उठे और एक बहता हुआ तिनका लहर के मौके पर पड़ जाए और ऊपर चढ़ जाए और ऊपर चढ़ कर वह कहे कि लहर मैंने ही उठाई है। बस, वैसा ही है।

सुना है मैंने कि जगन्नाथ का रथ निकलता था तो एक बार एक कुत्ता रथ के आगे हो लिया। बड़े फूल बरसते थे, बड़ी नमस्कार होती थी। लोग लोट-लोट कर जमीन पर प्रणाम करते थे। और कुत्ते की अकड़ बढ़ती चली गई। उसने कहा, आश्चर्य! न केवल लोग नमस्कार कर रहे हैं, मेरे पीछे स्वर्ण-रथ भी चलाया जा रहा है। मैं ऐसा हूं ही, इसमें कोई कारण भी नहीं है। हम सबका चित्त भी ऐसा ही है।

रूस में चीजैवस्की को स्टैलिन ने कारागृह में डलवा दिया और मरवा डाला। क्योंकि उसने यह कहा कि क्रांतियां आदमियों के किए नहीं होतीं, सूरज के प्रभाव से होती हैं। और उसके कहने का कारण ज्योतिष का वैज्ञानिक अध्ययन था। उसने हजारों साल की क्रांतियों के सारे व्यौरे की जांच-पड़ताल की और सूरज के ऊपर होने वाले परिवर्तनों की जांच-पड़ताल की। उसने कहा: हर साढ़े ग्यारह वर्ष में सूरज पर इतना बड़ा परिवर्तन

होता है वैद्युतिक कि उसके परिणाम पर पृथ्वी पर रूपांतर होते हैं। और हर नब्बे वर्ष में सूरज पर इतना बड़ा परिवर्तन होता है कि उसके परिणाम में पृथ्वी पर क्रांतियां घटित होती हैं। उसने सारी क्रांतियां, सारे उपद्रव, सारे युद्ध सूरज पर होने वाले कास्मिक परिणामों से सिद्ध किए।

और सारी दुनिया के वैज्ञानिक मानते हैं कि चीजैवस्की ठीक कह रहा था। लेकिन स्टैलिन कैसे माने। अगर चीजैवस्की ठीक कह रहा था तो उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति सूरज पर हुई किरणों के फर्क से हुई है, तो फिर लेनिन और स्टैलिन और ट्राट्स्की इनका क्या होगा? चीजैवस्की को मरवा डालने जैसी बात थी। लेकिन स्टैलिन के मरने के बाद चीजैवस्की का फिर रूस में काम शुरू हो गया। और रूस के ज्योतिष-विज्ञानी कह रहे हैं कि वह ठीक कहता है। पृथ्वी पर जो भी रूपांतरण होते हैं, उनके कारण कास्मिक हैं, उनके कारण जागतिक हैं। सारे जगत में जो रूपांतरण होते हैं, उनके कारण जागतिक हैं। आप जान कर हैरान होंगे कि एक बहुत बड़ी प्रयोगशाला प्राग में, चेक गवर्नमेंट ने बनाई है, जो एस्ट्रानामिकल बर्थ-कंट्रोल पर काम कर रही है। और उनके परिणाम अट्टानबे प्रतिशत सही आए। और जो आदमी मेहनत कर रहा है वहां, उस आदमी का दावा है कि आने वाले पंद्रह वर्षों में किसी तरह की गोली, किसी तरह के और कृत्रिम साधन की बर्थ-कंट्रोल के लिए जरूरत नहीं रहेगी, गर्भ-निरोधक के लिए। स्त्री जिस दिन पैदा हुई है और जिस दिन उसका स्वयं का गर्भाधारण हुआ था, इसकी तारीखें, और सूर्य पर और चांद तारों पर होने वाले परिवर्तनों के हिसाब से वह तय कर लेता है कि यह स्त्री किन-किन दिनों में गर्भाधारण कर सकती है। वे दिन छोड़ दिए जाएं संभोग के लिए तो पूरे जीवनकाल में कभी गर्भाधारण नहीं होगा। अट्टानबे प्रतिशत दस हजार स्त्रियों पर किए गए प्रयोग में सफल हुआ है। वह यह भी कहता है कि स्त्री अगर चाहे कि बच्चा लड़का पैदा हो या लड़की तो उसकी भी तारीखें तय की जा सकती हैं। क्योंकि वह भी कास्मिक प्रभावों से होता है, वह भी आपसे नहीं हो रहा है। ज्योतिष के बड़े जोर से वापस लौट आने की संभावना है।

महावीर कहते हैं--घटनाएं घट रही हैं, तुम नाहक उनको घटाने वाले मत बनो। तुम यह मत सोचो कि मैं यह करके रहूंगा। तुम इतना ही करो तो काफी है कि तुम न करने वाले हो जाओ।

अहिंसा का अर्थ है--अकर्म। अहिंसा का अर्थ है--मैं कुछ न बदलूंगा, मैं कुछ न चाहूंगा। मैं अनुपस्थित हो जाऊंगा। अहिंसा पर थोड़ी और बात करनी पड़े, कल बात करेंगे!

आज इतना ही।

पर कोई जाए न, थोड़ा इस आनंद... !

अहिंसा: जीवेषणा की मृत्यु (धम्म-सूत्र: 1 (अहिंसा))

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्म मंगल है। कौन सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप। अहिंसा धर्म की आत्मा है। कल अहिंसा पर थोड़ी बातें मैंने आपसे कहीं, थोड़े और आयामों से अहिंसा को समझ लेना जरूरी है।

हिंसा पैदा ही क्यों होती है? हिंसा जन्म के साथ ही क्यों जुड़ी है? हिंसा जीवन की पर्त-पर्त पर क्यों फैली है? जिसे हम जीवन कहते हैं, वह हिंसा का ही तो विस्तार है। ऐसा क्यों है?

पहली बात, और अत्यधिक आधारभूत--वह है जीवेषणा। जीने की जो आकांक्षा है, उससे ही हिंसा जन्मती है। और जीने को हम सब आतुर हैं। अकारण भी जीने को आतुर हैं। जीवन से कुछ फलित भी न होता हो, तो भी जीना चाहते हैं। जीवन से कुछ न भी मिलता हो, तो भी जीवन को खींचना चाहते हैं। सिर्फ राख ही हाथ लगे जीवन में तो भी हम जीवन को दोहराना चाहते हैं।

विन्सेंट वॉनगाग के जीवन पर एक बहुत अदभुत किताब लिखी गई है। और किताब का नाम है--लस्ट फॉर लाइफ, जीवेषणा। अगर महावीर के जीवन पर कोई किताब लिखनी हो तो लिखना पड़ेगा, नो लस्ट फॉर लाइफ। जीवेषणा नहीं। जीने का एक पागल, अत्यंत विक्षिप्त भाव है हमारे मन में। मरने के आखिरी क्षण तक भी हम जीना ही चाहते हैं। और यह जो जीने की कोशिश है, यह जितनी विक्षिप्त होती है उतना ही हम दूसरे के जीवन के मूल्य पर भी जीना चाहते हैं। अगर ऐसा विकल्प आ जाए कि सारे जगत को मिटा कर भी, मुझे बचने की सुविधा हो तो मैं राजी हो जाऊंगा। सबको विनाश कर दूं, फिर भी मैं बच सकता होऊं तो मैं सबके विनाश के लिए तैयार हो जाऊंगा। जीवेषणा की इस विक्षिप्तता से ही हिंसा के सब रूप जन्मते हैं। मरने की आखिरी घड़ी तक भी आदमी जीवन को जोर से पकड़े रहना चाहता है। बिना यह पूछे हुए कि किसलिए? जीकर भी क्या होगा? जीकर भी क्या मिलेगा?

मुल्ला नसरुद्दीन को फांसी की सजा हो गई थी। जब उसे फांसी के तख्ते के पास ले जाया गया तो उसने तख्ते पर चढ़ने से इनकार कर दिया। सिपाही बहुत चकित हुए। उन्होंने कहा कि क्या बात है?

उसने कहा कि सीढ़ियां बहुत कमजोर मालूम पड़ती हैं। अगर गिर जाऊं तो तुम्हारे हाथ-पैर टूटेंगे कि मेरे! फांसी के तख्ते पर चढ़ना है। सीढ़ियां कमजोर हैं, मैं इन सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता। नई सीढ़ियां लाओ।

उन सिपाहियों ने कहा: पागल हो गए हो! मरने वाले आदमी को क्या प्रयोजन है?

नसरुद्दीन ने कहा: अगले क्षण का क्या भरोसा! शायद बच जाऊं, तो लंगड़ा होकर मैं नहीं बचना चाहता हूं। और एक बात पक्की है कि जब तक मैं मर ही नहीं गया हूं, तब तक मैं जीने की कोशिश करूंगा। सीढ़ियां नई चाहिए।

नई सीढ़ियां लगाई गईं, तब वह चढ़ा। फिर भी बहुत सम्हल कर चढ़ा। जब उसके गले में फंदा लगा ही दिया गया, और मजिस्ट्रेट ने कहा: नसरुद्दीन, तुझे कोई आखिरी बात तो नहीं कहनी है?

नसरुद्दीन ने कहा: यस, आई हेव टु से समथिंग। दिस इज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी। यह जो फांसी लगाई जा रही है, यह मेरे लिए एक शिक्षा सिद्ध होगी।"

मजिस्ट्रेट समझा नहीं। उसने कहा कि अब शिक्षा से भी क्या फायदा होगा?

नसरुद्दीन ने कहा कि अगर दोबारा जीवन मिला तो जिस वजह से फांसी लग रही है, वह काम मैं जरा संभलकर करूंगा। दिस इज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी। गले में फंदा लगा हो तो भी आदमी दूसरे जीवन के बाबत सोच रहा होता है। दूसरा जीवन मिले तो इस बार जिस भूल चूक से पकड़े गए हैं और फांसी लग रही है वह भूल-चूक नहीं करनी है--ऐसा नहीं--सम्हल कर करनी है। तो दिस इज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी।

ऐसा ही हमारा मन है। किसी भी कीमत पर जीना है। महावीर यही पूछते हैं कि जीना क्यों है? बड़ा गहन सवाल उठाते हैं। शायद जिन्होंने पूछा है, जगत क्यों है? जिन्होंने पूछा है, सृष्टि किसने रची है? जिन्होंने पूछा है, मोक्ष कहां है? ये सवाल इतने गहरे नहीं हैं। ये सवाल बहुत ऊपरी हैं। महावीर पूछते हैं, जीना ही क्यों है? व्हाय दिस लस्ट फार लाइफ? और इसी प्रश्न से महावीर का सारा चिंतन और सारी साधना निकलती है।

तो महावीर कहते हैं, यह जीने की बात ही पागलपन है। यह जीने की आकांक्षा ही पागलपन है। और इस जीने की आकांक्षा से जीवन बचता हो, ऐसा नहीं है; केवल दूसरों के जीवन को नष्ट करने की दौड़ पैदा होती है। बच जाता तो भी ठीक था। बचता भी नहीं है। कितना ही चाहो कि जीऊं, मौत खड़ी है और आ जाती है। कितने लोग इस जमीन पर हमसे पहले जीने की कोशिश कर चुके हैं। आखिर अंततः मौत ही हाथ लगती है। तो महावीर कहते हैं, जीवन का इतना पागलपन कि हम दूसरे को विनष्ट करने को तैयार हैं और अंत में मौत ही हाथ लगती है। महावीर कहते हैं--ऐसे जीवन के पागलपन को मैं छोड़ता हूं जिससे दूसरों के जीवन को नष्ट करने के लिए मैं तैयार होता और अपने को बचा भी नहीं पाता। जो व्यक्ति जीवेषणा छोड़ देता है वही अहिंसक हो सकता है। क्योंकि जब मुझे कोई आग्रह ही नहीं है कि जीऊं ही, तब मैं किसी का विनाश करने के लिए तैयार नहीं हो सकता। इसलिए महावीर की अहिंसा के प्राण में प्रवेश करना हो, तो वह प्राण है--जीवेषणा का त्याग। इसका यह अर्थ नहीं है कि महावीर मरने की आकांक्षा रखते हैं। यह भ्रांति हो सकती है।

फ्रायड ने इस सदी में मनुष्य के भीतर दो आकांक्षाओं को पकड़ा है। एक तो जीवेषणा और एक मृत्यु-एषणा। एक को वह कहता है, इरोज, जीवन की इच्छा। और एक को कहता है, थानाटोस, मृत्यु की इच्छा। वह कहता है कि जब जीवन की इच्छा रुग्ण हो जाती है तो मृत्यु की इच्छा में बदल जाती है। यह बात ठीक है। लोग आत्महत्याएं भी तो करते हैं। तो क्या महावीर राजी होंगे? आत्महत्या करने वाले को कहेंगे कि ठीक है तू! अगर जीवेषणा गलत है तो फिर मृत्यु की आकांक्षा और मृत्यु को लाने की कोशिश ठीक होनी चाहिए? फ्रायड कहता है--जिन लोगों की जीवेषणा रुग्ण हो जाती है वे फिर मृत्यु-एषणा से भर जाते हैं। फिर वे अपने को मारने में लग जाते हैं। आदमी आत्महत्या करता हुआ दिखाई तो पड़ता है। लेकिन फ्रायड को उतनी गहरी समझ नहीं है जितनी महावीर को है। महावीर कहते हैं--आत्महत्या करने वाला भी जीवेषणा से ही पीड़ित है।

इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।

कभी आपने किसी आदमी को इस भ्रांति आत्महत्या करते देखा है, जिसकी जीवेषणा नष्ट हो गई हो? नहीं। मैं चाहता हूं एक स्त्री मुझे मिले और नहीं मिलती तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता हूं। अगर वह मुझे मिल जाए तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार नहीं हूं। मैं चाहता हूं कि एक बहुत बड़ी प्रतिष्ठा और यश और इज्जत के साथ जीऊं। मेरी इज्जत खो जाती है, मेरी प्रतिष्ठा गिर जाती है--मैं आत्महत्या करने को तत्पर हो जाता हूं। मुझे वह प्रतिष्ठा वापस लौटती हो, मुझे वह इज्जत फिर वापस मिलती हो तो मैं आखिरी किनारे से मौत के वापस लौट आ सकता हूं। धन खो जाता है किसी का, पद खो जाता है किसी का तो वह मरने को तैयार है। इसका अर्थ क्या है?

महावीर कहते हैं--यह मृत्यु-एषणा नहीं है। यह केवल जीवन का इतना प्रबल आग्रह है कि मैं कहता हूं--मैं इस ढंग से ही जीऊंगा। अगर यह ढंग मुझे नहीं मिलता तो मर जाऊंगा। इसे थोड़ा ठीक से समझें। मैं कहता हूं, मैं इस स्त्री के साथ ही जीऊंगा। यह जीने की आकांक्षा इतनी आग्रहपूर्ण है कि इस स्त्री के बिना मैं नहीं जीऊंगा। मैं इस धन, मैं इस भवन, मैं इस पद के साथ ही जीऊंगा। अगर यह पद और धन नहीं है तो मैं नहीं जीऊंगा। यह जीने की आकांक्षा ने एक विशिष्ट आग्रह पकड़ लिया है। वह आग्रह इतना गहरा है कि वह अपने से विपरीत भी जा सकता है। वह आग्रह इतना गहरा है कि अपने से विपरीत भी जा सकता है। वह मरने तक को तैयार हो सकता है, लेकिन गहरे में जीवन की ही आकांक्षा है।

इसलिए महावीर इस जगत में अकेले चिंतक हैं, जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की आज्ञा भी दूंगा, अगर तुममें जीवेषणा बिल्कुल न हो। सिर्फ अकेले विचारक हैं सारी पृथ्वी पर और सिर्फ अकेले धार्मिक चिंतक हैं जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की भी आज्ञा दूंगा, अगर तुममें जीवन की आकांक्षा बिल्कुल न हो। लेकिन जिसमें जीवन की आकांक्षा नहीं है वह मरना क्यों चाहेगा। मरने की चाह के पीछे जीवन की आकांक्षा ही होती है। उलटे लक्षणों से बीमारियां नहीं बदल जाती हैं, जरूरी नहीं है।

आज से सौ साल पहले चिकित्सा शास्त्रों में एलोपैथी की एक बीमारी का नाम था, वह सौ साल में खो गया है। उसका नाम था ड्राप्सी। अब उस बीमारी का नाम मेडिकल किताबों में नहीं है। हालांकि उस बीमारी के मरीज अब भी अस्पतालों में हैं, वे नहीं खो गए। मरीज तो हैं, लेकिन वह बीमारी खो गई है। वह बीमारी इसलिए खो गई कि पाया गया कि वह बीमारी एक नहीं है, वह सिर्फ सिम्प्टोमैटिक है। ड्राप्सी उस बीमारी को कहते थे जिसमें मनुष्य के शरीर का तरल हिस्सा किसी एक अंग में इकट्ठा हो जाता है। जैसे पैरों में सारी तरलता इकट्ठी हो गई या पेट में सारा तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया। सब पानी भर गया है, सब तरलता पेट में इकट्ठी हो गई है। सारा शरीर सूखने लगा और पेट बढ़ने लगा और सारी तरलता पेट में आ गई। उसको ड्राप्सी कहते थे। अगर अस्पताल में जाएं और एक आदमी के दोनों पैरों में तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया, और एक आदमी के एंडामन में सारा तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया, तो लक्षण एक है। सौ साल तक यही समझा जाता था, बीमारी एक है। लेकिन पीछे पता चला कि यह तरल द्रव्य इकट्ठे होने के अनेक कारण हैं। बीमारियां अलग-अलग हैं। यह हृदय की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। यह किडनी की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। और जब किडनी की खराबी से इकट्ठा होता है तो बीमारी दूसरी है और जब हृदय की खराबी से इकट्ठा होता है तो बीमारी दूसरी है। इसलिए वह ड्राप्सी की बीमारी जो थी, नाम, वह समाप्त हो गया। अब पच्चीस बीमारियां हैं, उनके अलग-अलग नाम हैं। यह भी हो सकता है, लक्षण बिल्कुल एक से हों और बीमारी एक हो। और यह भी हो सकता है कि बीमारियां दो हों, और लक्षण बिल्कुल एक हों। लक्षणों से बहुत गहरे नहीं जाया जा सकता।

महावीर ने संथारा की आज्ञा दी। महावीर ने कहा है--किसी व्यक्ति की अगर जीवन की आकांक्षा शून्य हो गई हो तो मैं कहता हूं, वह मृत्यु में प्रवेश कर सकता है। लेकिन उन्होंने कहा है कि वह भोजन छोड़ दे, पानी छोड़ दे। भोजन और पानी छोड़ कर भी आदमी नब्बे दिन तक नहीं मरता--कम से कम नब्बे दिन जी सकता है, साधारण स्वस्थ आदमी हो तो। और जिस व्यक्ति की जीवन की आकांक्षा चली गई हो, वह असाधारण रूप से स्वस्थ होता है। क्योंकि हमारी सारी बीमारियां जीने की आकांक्षा से पैदा होती हैं। तो नब्बे दिन तक तो वह मर नहीं सकता। महावीर ने कहा--वह पानी छोड़ दे, भोजन छोड़ दे, लेट जाए, बैठा रहे। आत्महत्याएं जितनी भी की जाती हैं क्षणों के आवेश में की जाती हैं। क्षण भी खो जाए तो आत्महत्या नहीं हो सकती।

क्षण का एक आवेश होता है। उस आवेश में आदमी इतना पागल होता है कि कूद पड़ता है नदी में। आग लगा लेता है। शायद आग लगाकर जब शरीर जलता है तब पछताता है। लेकिन तब हाथ के बाहर हो गई होती है बाता। जहर पी लेता है। अगर जहर फैलने लगता है, और तड़फन होती है, तब पछताता है। लेकिन तब शायद हाथ के बाहर हो गई है बाता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आत्महत्या करने वाले को हम क्षणभर के लिए भी

रोक सकें तो वह आत्महत्या नहीं कर पाएगा। क्योंकि उतनी मैडनेस की जो तीव्रता है वह तरल हो जाती है, विरल हो जाती है, क्षीण हो जाती है।

महावीर कहते हैं कि मैं आज्ञा देता हूं ध्यानपूर्वक मर जाने की। तुम भोजन-पानी सब छोड़ देना नब्बे दिन। अगर उस आदमी में जरा सी भी जीवेषणा होगी तो भाग खड़ा होगा, लौट आएगा। अगर जीवेषणा बिल्कुल न होगी तो ही नब्बे दिन वह रुक पाएगा।

नब्बे दिन लंबा समय है। मन एक ही अवस्था में नब्बे दिन रह जाए, यह आसान घटना नहीं है। नब्बे क्षण नहीं रह पाता। सुबह सोचते थे मर जाएंगे, शाम को सोचते हैं कि दूसरे को मार डालें। मन नब्बे दिन... इसलिए फ्रायड को मानने वाले मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि महावीर में कहीं न कहीं सुसाइडल तत्व है, कहीं न कहीं आत्महत्यावादी तत्व है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं--नहीं है। असल में जिस व्यक्ति में जीवेषणा ही नहीं है उसके मरने की एषणा भी नहीं होती। मृत्यु की एषणा जीवेषणा का दूसरा पहलू है--विरुद्ध नहीं है, उसी का अंग है... विरुद्ध नहीं है, उसी का अंग है। इसलिए महावीर ने कोई मृत्यु की चेष्टा नहीं की। जिसकी जीवन की चेष्टा ही न रही हो, उसकी मृत्यु की चेष्टा भी नहीं रह जाती। महावीर कहते हैं कि एक हिस्से को हम फेंक दें, दूसरा हिस्सा उसके साथ ही चला जाता है। संथारा का महावीर का अर्थ है--आत्महत्या नहीं, जीवेषणा का इतना खो जाना कि पता ही न चले और व्यक्ति शून्य में लीन हो जाए। आत्महत्या की इच्छा नहीं, क्योंकि जहां तक इच्छा है, वहां तक जीवन की ही इच्छा होगी।

इसे ठीक से समझ लें। डिजायर इ.ज आलवेज डिजायर फॉर दि लाइफ--आलवेज। मृत्यु की कोई इच्छा ही नहीं होती। मृत्यु की इच्छा में ही जीवन की इच्छा भी छिपी होती है, जीवन का कोई आग्रह छिपा होता है। तो महावीर कोई आत्मघाती नहीं हैं। उतना बड़ा आत्मज्ञानी नहीं हुआ, आत्मघाती होने का सवाल नहीं है।

लेकिन यह बात जरूर सच है कि महावीर के विचार में बहुत से आत्मघाती उत्सुक हुए, बहुत से आत्मघाती महावीर से आकर्षित हुए। और उन आत्मघातियों ने महावीर के पीछे एक परंपरा खड़ी की जिससे महावीर का कोई भी संबंध नहीं है। ऐसे लोग जरूर उत्सुक हुए महावीर के पीछे जिनको लगा कि ठीक है, मरने की इतनी सुगमता और कहां मिलेगी। और मरने का इतना सहयोग और कहां मिलेगा। और मरने की इतनी सुविधा और कहां मिलेगी। इसलिए महावीर के पीछे ऐसे लोग जरूर आए जिनका चित्त रुग्ण था, जो मरना चाहते थे। जीवन की आकांक्षा के त्याग से वे महावीर के करीब नहीं आए, मरने की आकांक्षा के कारण वे महावीर के करीब आ गए। लक्षण बिल्कुल एक से हैं, लेकिन भीतर व्यक्ति बिल्कुल अलग थे। और जो मरने की इच्छा से आए, वे महावीर की परंपरा में बहुत अग्रणी हो गए। स्वभावतः जो मरने को तैयार है उसको नेता होने में कोई असुविधा नहीं होती। और क्या असुविधा हो सकती है। जो मरने को तैयार है वह पंक्ति में आगे कभी भी खड़ा हो सकता है, किसी भी पंक्ति में। और जो अपने को सताने को तैयार है वह लगा कि बड़ा त्यागी है।

ध्यान रहे, इससे महावीर के विचार को आज की दुनिया में पहुंचने में बड़ी कठिनाई हो रही है। क्योंकि महावीर का विचार मालूम होता है, मैसोचिस्ट है, अपने को सताने वाला है, पीड़क--आत्मपीड़क है। लेकिन महावीर की देह को देख कर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपने को सताया होगा। महावीर की प्रफुल्लता देख कर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपने को सताया होगा। महावीर का खिला हुआ कमल देखकर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपनी जड़ों के साथ ज्यादाती की होगी। मैं मानता हूं कि महावीर रंचमात्र भी आत्मपीड़क नहीं हैं। लेकिन महावीर के पीछे आत्मपीड़कों की परंपरा इकट्ठी हुई, यह जरूर सच है। जो अपने को सता सकते थे या सताने के लिए उत्सुक थे और बहुत लोग उत्सुक हैं, ध्यान रखना आप।

इस जगत में दो तरह की हिंसाएं हैं--दूसरे को सताने के लिए उत्सुक लोग और एक और तरह की हिंसा है, अपने को सताने के लिए उत्सुक लोग। अपने को सताने में भी कुछ लोगों को इतना ही मजा आता है जितना दूसरे को सताने में। बल्कि सच पूछा जाए तो दूसरे को सताने में आपको कभी इतना अधिकार नहीं होता, इतनी

सुविधा और स्वतंत्रता नहीं होती जितनी अपने को सताने में होती है। कोई विरोध ही करने वाला नहीं होता। आप दूसरे को कांटे पर लिटाएं तो वह अदालत में मुकदमा चला सकता है। आप खुद को कांटों पर लिटा लें तो कोई मुकदमा नहीं चल सकता है, ना! सिर्फ सम्मान मिल सकता है! आप दूसरों को भूखा मारें तो आप झंझट में पड़ सकते हैं; आप अपने को भूखा मारें तो जुलूस निकल सकता है, शोभायात्रा निकल सकती है।

लेकिन ध्यान रखें, सताने का जो रस है वह एक ही है। और महावीर कहते हैं जो अपने को सता रहा है, वह भी दूसरे को ही सता रहा है; क्योंकि वह अपने में दो हिस्से कर लेता है। वह शरीर को सताने लगता है जो कि वस्तुतः दूसरा है। यह शरीर, जो मेरे आस-पास है, उतना ही दूसरा है मेरे लिए, जितना आपका शरीर जो जरा दूर है। इसमें भेद नहीं है। यह शरीर मेरे निकट है, इसलिए मैं नहीं हूं। और आपका शरीर जरा दूर है तो तू हो गया! मैं आ पके शरीर को कांटे चुभाऊं तो लोग कहेंगे, यह आदमी दुष्ट है। और मैं अपने शरीर को कांटे चुभाऊं तो लोग कहेंगे, यह आदमी महात्यागी है।

लेकिन शरीर दोनों ही स्थिति में दूसरा है। यह मेरा शरीर उतना ही दूसरा है जितना आपका शरीर। सिर्फ फर्क इतना है कि मेरे शरीर को सताते वक्त कोई कानून बाधा नहीं बनेगा, कोई नैतिकता बाधा नहीं बनेगी। इसलिए जो होशियार हैं, कुशल हैं वे सताने का मजा अपने ही शरीर को सता कर लेते हैं। लेकिन सताने का मजा एक ही है। क्या है मजा? जिसको हम सता पाते हैं, लगता है उसके हम मालिक हो गए हैं, उसके हम स्वामी हो गए हैं। जिसको हम सता पाते हैं--जिसकी हम गर्दन दबा पाते हैं, लगता है हम उसके स्वामी हो गए हैं। महावीर के पीछे मैसोचिस्ट इकट्ठे हो गए। उन्हीं ने महावीर की पूरी परंपरा को विषाक्त किया, जहर डाल दिया।

कारण तो था, क्योंकि महावीर का कारण कुछ और था, लेकिन इन्हें वह कारण अपील किया, जंचा। कारण यह था कि महावीर कहते थे कि जब तक मैं जीवन के लिए पागल हूं तब तक मैं देख न पाऊंगा अंधेपन में कि मैं दूसरे के जीवन को नष्ट करने के लिए भी आतुर हो गया हूं। और जीवन के लिए पागल होना व्यर्थ है क्योंकि असंभव है। जीवन को बचाया नहीं जा सकता। जन्म के साथ ही मृत्यु प्रवेश कर जाती है। इसलिए जो इंपासिबल है, उसके पीछे सिर्फ पागलपन है--जो असंभव है उसके पीछे सिर्फ पागलपन खड़ा होता है। मृत्यु होगी ही। वह उसी दिन तय हो गई, जिस दिन जीवन हुआ। इसलिए महावीर कहते हैं, जीवन के लिए इतनी आकांक्षा ही हिंसा बन जाती है। इसे समझना है। इसे समझते ही जीवेषणा शून्य होने लगती है और जब जीवेषणा शून्य होने लगती है तो मृत्यु की इच्छा पैदा नहीं होती, मृत्यु का स्वीकार पैदा होता है। इनमें भेद है।

मृत्यु की इच्छा तो पैदा होती है जीवेषणा को चोट लगे तब, और मृत्यु का स्वीकार पैदा होता है जब जीवेषणा क्षीण हो तब, शांत हो तब। महावीर मृत्यु को स्वीकार करते हैं। मृत्यु को स्वीकार करना अहिंसा है। मृत्यु को अस्वीकार करना हिंसा है। और जब मैं अपनी मृत्यु को अस्वीकार करता हूं तो मैं दूसरे की मृत्यु को स्वीकार करता हूं। और जब मैं अपनी मृत्यु को स्वीकार करता हूं तो मैं सबके जीवन को स्वीकार करता हूं। यह एक सीधा गणित है। जब मैं अपने जीवन को स्वीकार करता हूं तो मैं दूसरे के जीवन को इनकार करने के लिए तैयार हूं। और जब मैं अपनी मृत्यु को परिपूर्ण भाव से स्वीकार करता हूं कि ठीक है, वह नियति है, तब मैं किसी के जीवन को चोट पहुंचाने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं रह जाता। उसके जीवन को भी चोट पहुंचाने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं रह जाता जो मेरे जीवन को चोट पहुंचाए। क्योंकि मेरे जीवन को चोट पहुंचा कर ज्यादा से ज्यादा वह क्या कर सकता है? मृत्यु! जो कि होने ही वाली है। वह सिर्फ निमित्त बन सकता है। वह कारण नहीं है। महावीर कहते हैं कि अगर तुम्हारी कोई हत्या भी कर जाए तो वह सिर्फ निमित्त है, वह कारण नहीं है। कारण तो मृत्यु है, जो जीवन के भीतर ही छिपी है। इसलिए उस पर नाराज होने की भी कोई जरूरत नहीं है। ज्यादा से ज्यादा धन्यवाद दिया जा सकता है। जो होने ही वाला था, उसमें वह सहयोगी हो गया। वह होने ही वाला था। एक बार हमें यह ख्याल में आ जाए कि जो होने ही वाला है, तो हम फिर किसी पर नाराज नहीं हो सकते।

महावीर कहते हैं, मृत्यु का अंगीकार। और बड़े मजे की बात है, मृत्यु का अंगीकार इसलिए नहीं कि मृत्यु कोई महत्वपूर्ण चीज है। मृत्यु का अंगीकार ही इसलिए कि मृत्यु बिल्कुल ही गैर-महत्वपूर्ण चीज है। जब जीवन ही गैर-महत्वपूर्ण है तो मृत्यु महत्वपूर्ण कैसे हो सकती है। जब जीवन तक गैर-महत्वपूर्ण है तो मृत्यु का क्या मूल्य हो सकता है। ध्यान रहे, मृत्यु का उतना ही आपके मन में मूल्य होता है जितना जीवन का मूल्य होता है। मृत्यु को जो मूल्य मिलता है वह रिफ्लेक्टेड वैल्यू है। आप जीवन को कितना मूल्य देते हैं उतना मृत्यु को मूल्य देते हैं।

अगर आप कहते हैं--जीना ही है किसी कीमत पर, तो आप कहेंगे--मरना नहीं है किसी कीमत पर। यह साथ चलेगा। आप कहते हैं--चाहे कुछ भी हो जाए, मैं जीऊंगा ही तो फिर आप यह भी कह सकते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाए, मैं मरूंगा नहीं। आप जितना जीवन को मूल्य देते हैं उतना ही मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है। और ध्यान रहे, जितना मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है, उतना ही आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। महावीर कहते हैं--जीवन में कोई मूल्य ही नहीं है तो मृत्यु का भी मूल्य समाप्त हो जाता है। और जिसके चित्त में न जीवन का मूल्य है, और न मृत्यु का, क्या वह आपको मारने आएगा? क्या वह आपको सताने में रस लेगा? क्या वह आपको समाप्त करने में उत्सुक होगा? हम कितना मूल्य किसी चीज को देते हैं, उस पर ही निर्भर करता है सब।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक अंधेरी रात में एक गांव के पास से गुजरता है। चार चोरों ने उस पर हमला कर दिया। वह जी तोड़ कर लड़ा, वह इस बुरी तरह लड़ा कि अगर वे चार न होते तो एकाध की हत्या हो जाती। वे चार थोड़ी ही देर में अपने को बचाने में लग गए, आक्रमण तो भूल गए। फिर भी चार थे। बामुश्किल घंटों की लड़ाई के बाद किसी तरह मुल्ला पर कब्जा कर पाए। और जब उसकी जेब टटोली तो केवल एक पैसा मिला। वे बहुत हैरान हुए कि मुल्ला अगर एकाध आना तुम्हारे खीसे में रहता तो हम चारों की जान की कोई खैरियत न थी। एक पैसे के लिए तुम इतना लड़े! हद कर दी। हमने तुम जैसा आदमी नहीं देखा। चमत्कार हो तुम!

मुल्ला ने कहा कि उसका कारण है। पैसे का सवाल नहीं है। आई डोंट वांट टु एक्सपोज माई पर्सनल फाइनेंशियल पोजिशन टु क्वाइट स्ट्रेंजर्स। मैं बिल्कुल अजनबियों के सामने अपनी माली हालत प्रकट नहीं करना चाहता हूं, और कोई कारण नहीं है। जान लगा देता। यह सवाल माली हालत के प्रकट करने का है, और तुम अजनबी। सवाल पैसे का नहीं है; सवाल पैसे के मूल्य का है। एक पैसा है कि करोड़, यह सवाल नहीं है। अगर पैसे का मूल्य है तो एक में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। और अगर करोड़ में मूल्य है तो एक में भी मूल्य होगा।

सुना है मैंने कि मुल्ला एक अजनबी देश में गया, एक अपरिचित देश में गया। एक लिफ्ट में सवार होकर जा रहा है। एक अकेली सुंदर औरत उसके साथ है। उसने उस स्त्री से कहा कि क्या खयाल है? सौ रुपये में सौदा पट सकता है? !

उस स्त्री ने चौंक कर देखा। उसने कहा कि ठीक है।

मुल्ला ने कहा: पांच रुपये का क्या खयाल है?

उस स्त्री ने कहा: तुम समझते क्या हो... तुम मुझे समझते क्या हो?

मुल्ला ने कहा: दैट वी हैव डिसाइडेड। नाउ दि क्वेश्चन इज ऑफ दि वैल्यू--प्राइज। यह तो हमने तय कर लिया है कि कौन हो तुम, यह तो मैंने सौ रुपये पूछ कर तय कर लिया, अब हम कीमत तय कर रहे हैं। अगर सौ रुपये में स्त्री बिक सकती है तो अब यह सवाल ही नहीं है कि पांच रुपये में क्यों नहीं बिक सकती? वह तय हो गया कि तुम कौन हो। उसके बावत कोई चर्चा करने की जरूरत नहीं है। अब हम तय कर लें, अब मैं अपनी जेब पर खयाल कर रहा हूं, मुल्ला ने कहा, कि अपने पास पैसे कितने हैं?

यह हमारी हमारी जिंदगी में जो भी मूल्य है, वह करोड़ का है या एक पैसे का, यह सवाल नहीं है। धन का मूल्य है तो फिर एक पैसे में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। मूल्य ही नहीं है, तो फिर पैसे में भी नहीं

है और करोड़ में भी नहीं है। और अगर एक पैसे में जितना मूल्य है, फिर उसके खोने में उतनी ही पीड़ा है। वह पीड़ा भी उतनी ही मूल्यवान है। अगर जीवन ही निर्मूल्य है तो मृत्यु में क्या रह जाता है! और अगर जीवन ही निर्मूल्य है तो जीवन से संबंधित जो सारा विस्तार है, उसमें क्या मूल्य रह जाता है! जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए धन का कोई मूल्य होगा? क्योंकि धन का सारा मूल्य ही जीवन की सुरक्षा के लिए है! जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए महल का कोई मूल्य होगा? क्योंकि महल का सारा मूल्य ही जीवन की सुरक्षा के लिए है। जिसके लिए जीवन का कोई मूल्य नहीं, उसके लिए पद का कोई मूल्य होगा? क्योंकि पद का सारा मूल्य ही जीवन के लिए है।

जीवन का मूल्य शून्य हुआ कि सारे विस्तार का मूल्य शून्य हो जाता है। सारी माया गिर जाती है। और जब जीवन का ही मूल्य न रहा तो मृत्यु का क्या मूल्य होगा! क्योंकि मृत्यु में उतना ही मूल्य था, जितना जीवन में हम डालते थे। जितना लगता था कि जीवन को बचाऊं, उतना ही मृत्यु से बचने का सवाल उठता था। जब जीवन को बचाने की कोई बात न रही तो मृत्यु हो या न हो, बराबर हो गया। जिस दिन मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं रह जाता उस दिन मेरी मृत्यु शून्य हो जाती है। और महावीर कहते हैं कि उसी दिन अमृत के द्वार खुलते हैं--महाजीवन के, परम जीवन के, जिसका कोई अंत नहीं है।

इसलिए महावीर कहते हैं--अहिंसा धर्म का प्राण है। उसी से अमृत का द्वार खुलता है। उसी से, हम उसे जान पाते हैं जिसका कोई अंत नहीं, जिसका कोई प्रारंभ नहीं, जिस पर कभी कोई बीमारी नहीं आती और जिस पर कभी दुख और पीड़ा नहीं उतरती।

जहां कोई संताप नहीं, जहां कोई मृत्यु कभी घटित नहीं होती, जहां अंधकार की किरण को उतरने की कोई सुविधा नहीं, जहां प्रकाश ही प्रकाश है। तो महावीर को मृत्युवादी नहीं कहा जा सकता और उनसे बड़ा अमृत का तलाशी नहीं है कोई। लेकिन अमृत की तलाश में उन्होंने पाया है कि जीवेषणा सबसे बड़ी बाधा है।

क्यों पाया है? जीवेषणा इसलिए बाधा है कि जीवेषणा के चक्कर में आप वास्तविक जीवन की खोज से वंचित रह जाते हैं। जीने की इच्छा और जीने की कोशिश में आप पता ही नहीं लगा पाते कि जीवन क्या है।

मुल्ला भागा जा रहा है एक गांव में। उसे व्याख्यान देना है। एक आदमी उससे रास्ते में पूछता है कि मुल्ला, उस मस्जिद में धर्म के संबंध में बोलने जा रहे हो, ईश्वर के संबंध में? ईश्वर के संबंध में तुम्हारा क्या विचार है?

मुल्ला कहता है--अभी विचार करने की फुरसत नहीं, अभी मैं व्याख्यान देने जा रहा हूं। आई हेव नो टाइम टु थिंक नाउ। अभी मैं व्याख्यान देने जा रहा हूं। अभी बकवास में मत डालो मुझे।

बोलने की फिकर में अक्सर आदमी सोचना भूल जाते हैं। दौड़ने के इंतजाम में अक्सर आदमी मंजिल भूल जाते हैं। कमाने की चिंता में अक्सर आदमी भूल जाते हैं, किसलिए? जीने की कोशिश में ख्याल ही नहीं आता कि क्यों? सोचते हैं कि पहले कोशिश तो कर लें, फिर क्यों की तलाश कर लेंगे। किसलिए बचा रहे हैं, यह ख्याल ही मिट जाता है। जो बचा रहे हैं उसमें ही इतने संलग्न हो जाते हैं कि वही एंड अनटु इटसेल्फ, अपना अपने में ही अंत बन जाता है।

एक आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता है। पहले वह शायद सोचता भी रहा होगा कि किसलिए? फिर धन इकट्ठा करना ही लक्ष्य हो जाता है। फिर उसे याद ही नहीं रहता कि किसलिए। फिर वह मर जाता है इकट्ठा करते-करते। वह नहीं बता सकता कि किसलिए इकट्ठा कर रहा था। वह इतना ही कह सकता था कि अब इकट्ठा करने में मजा आने लगा था। अब जीने में ही मजा आने लगा था। अब किसलिए जीना था--क्यों जीना था--जीवन क्या था? यह सब चूक जाता है।

महावीर कहते हैं--जीवेषणा जीवन की वास्तविक तलाश से वंचित कर देती है। और जीवेषणा सिर्फ मरने से बचने का इंतजाम बन जाती है--अमृत को जानने का नहीं, मरने से बचने का। हम सब डिफेंस की हालत में लगे हैं, चौबीस घंटे। मर न जाएं, बस इतनी ही कोशिश है। सब कुछ करने को तैयार हैं कि मर न जाएं। लेकिन

जीकर क्या करेंगे? तो हम कहते हैं--पहले मरने का बचाव हो जाए, फिर सोच लेंगे। मृत्यु से बचने की कोशिश अमृत से बचाव हो जाती है। जीवन बचाने की कोशिश, जीवन के वास्तविक रूप को, परम रूप को जानने में रुकावट हो जाती है। महावीर मृत्युवादी नहीं हैं। महावीर इस जीवेषणा की दौड़ से रोकते ही इसीलिए हैं ताकि हम उस परम जीवन को जान सकें जिसे बचाने की कोई जरूरत ही नहीं है, जो बचा ही हुआ है। जिसे कोई मिटा नहीं सकता, क्योंकि उसके मिटने का कोई उपाय ही नहीं है। उस जीवन को जानकर व्यक्ति अभय हो जाता है। और जो अभय हो जाता है, वह दूसरे को भयभीत नहीं करता।

हिंसा दूसरे को भयभीत करती है। आप अपने को बचाते हैं, दूसरे में भय पैदा करके। आप दूसरे को दूर रखते हैं फासले पर। आपके और दूसरे के बीच में अनेक तरह की तलवारें आप अटका रखते हैं। और जरा सा ही किसी ने आपकी सीमा का अतिक्रमण किया कि आपकी तलवार उसकी छाती में घुस जाती है। अतिक्रमण न भी किया हो, आप अगर शंकित हो गए और सोचा कि अतिक्रमण किया है, तो भी तलवार घुस जाती है। व्यक्ति भी ऐसे ही जीते हैं, समाज भी ऐसे ही जीते हैं। राष्ट्र भी ऐसे ही जीते हैं। इसलिए सारा जगत हिंसा में जीता है, भय में जीता है। महावीर कहते हैं--सिर्फ अहिंसक ही अभय को उपलब्ध हो सकता है। और जिसने अभय नहीं जाना है वह अमृत को कैसे जानेगा? भय को जानने वाला मृत्यु को ही जानता रहता है।

तो महावीर की अहिंसा का आधार है, जीवेषणा से मुक्ति। और जीवेषणा से मुक्ति मृत्यु की एषणा से भी मुक्ति हो जाती है। और इसके साथ ही जो घटित होता है चारों तरफ, हमने उसी को मूल्यवान समझ रखा है। महावीर एक चींटी पर पैर नहीं रखते हैं, इसलिए नहीं कि महावीर बहुत उत्सुक हैं चींटी को बचाने को। महावीर इसलिए चींटी पर पैर नहीं रखते--सांप पर भी पैर नहीं रखते, बिच्छू पर भी पैर नहीं रखते--क्योंकि महावीर अब अपने को बचाने को बहुत उत्सुक नहीं हैं। उत्सुक ही नहीं हैं। अब उनका किसी से कोई संघर्ष न रहा, क्योंकि सारा संघर्ष इसी बात में था कि मैं अपने को बचाऊं। अब वे तैयार हैं--जीवन तो जीवन, मृत्यु तो मृत्यु, उजाला तो उजाला, अंधेरा तो अंधेरा। अब वे तैयार हैं। अब कुछ भी आए वे तैयार हैं। उनकी स्वीकृति परम है।

इसलिए मैंने कहा कि बुद्ध ने जिसे तथाता कहा है, महा वीर उसे ही अहिंसा कहते हैं। लाओत्सु ने जिसे टोटल एक्सेप्टिबिलिटी कहा है कि मैं सब करता हूं स्वीकार, उसे ही महावीर ने अहिंसा कहा है। जिसे सब स्वीकार है, वह हिंसक कैसे हो सकेगा। हिंसक न होने का कोई निषेध कारण नहीं है, विधायक कारण है, क्योंकि सब स्वीकार है। इसलिए निषेध का कोई कारण नहीं है। किसी को मिटाने के लिए तैयारी करने का कोई कारण नहीं है। हां, अगर कोई मिटाने आता हो तो महावीर उसके लिए तैयार हैं। इस तैयारी में भी ध्यान रखें कि कोई प्रयत्न नहीं है महावीर का, कि वे सम्हल कर तैयार हो जाएंगे कि ठीक है मारो। इतना प्रयत्न भी भीतर जीवन का ही प्रश्न है। महावीर इतना सम्हल कर भी तैयार नहीं होंगे, वे खड़े ही रहेंगे जैसे वे थे ही नहीं, अनुपस्थित थे।

इसके एक हिस्से पर और खयाल कर लेना जरूरी है। जितने जोर से हम अपने को बचाना चाहते हैं, हमारा वस्तुओं का बचाव उतना ही प्रगाढ़ हो जाता है। जीवेषणा "मेरे" का फैलाव बनती है। यह मेरा है, यह पिता मेरे हैं, यह मां मेरी है, यह भाई मेरा है, यह पत्नी मेरी है, यह मकान मेरा है, यह धन मेरा है--हम "मेरे" का एक जाल खड़ा करते हैं अपने चारों तरफ। वह इसलिए खड़ा करते हैं कि उस पहर के भीतर ही हमारा "मैं" बच सकता है। अगर मेरा कोई भी नहीं तो मैं निपट अकेला बहुत भयभीत हो जाऊंगा। कोई मेरा है तो सहारा है, सेफ्टी है, सुरक्षा है। इसलिए जितनी ज्यादा चीजें आप इकट्ठी कर लेते हैं, उतने आप अकड़ कर चलने लगते हैं। लगता है जैसे अब आपका कोई कुछ बिगाड़ न सकेगा। एक चीज भी आ पके हाथ से छूटती है, तो किसी गहरे अर्थों में आपको मृत्यु का अनुभव होता है। अगर आपकी कार टूट जाती है तो सिर्फ कार नहीं टूटती, आपके भीतर भी कुछ टूटता है। आपकी पत्नी मरती है तो पत्नी नहीं मरती, पति के भीतर भी कुछ गहन मर जाता है।

खाली हो जाती है जगह। असली पीड़ा पत्नी के मरने से नहीं होती है। असली पीड़ा "मेरे" के फैलाव के कम हो जाने से होती है। एक जगह और टूट गई। एक एक मोर्चा असुरक्षित हो गया, एक जगह पहरा कम हो गया, वहां से खतरा अब आ सकता है।

एक मित्र हैं मेरे। पत्नी मर गई है उनकी। तो पत्नी की तस्वीरें सारे मकान में, द्वार-दरवाजे पर सब जगह लगा रखी हैं। किसी से मिलते-जुलते नहीं, तस्वीरें ही देखते रहते हैं। उनके किसी मित्र ने मुझसे कहा, ऐसा प्रेम पहले नहीं देखा। अदभुत प्रेम है। मैंने कहा, प्रेम नहीं है। वह आदमी अब डरा हुआ है। अब कोई भी दूसरी स्त्री उसके जीवन में प्रवेश कर सकती है। और ये तस्वीरें लगाकर अब वह पहरा लगा रहा है।

उन्होंने कहा: आप कैसी बात करते हैं?

मैंने कहा: मैं चलूंगा, मैं उन्हें जानता हूं।

और जब मैंने उन मित्र को कहा--सच बोलो, सोच कर बोलो, ठीक से विचार करके बोलो। अब तुम दूसरी स्त्रियों से भयभीत तो नहीं हो?

उन्होंने कहा: आपको यह कैसे पता चला? यही डर है मेरे मन में कि कहीं मैं अपनी पत्नी के प्रति विश्वासघाती सिद्ध न हो जाऊं। इसलिए उसकी याद को चारों तरफ इकट्ठी करके बैठा हुआ हूं। किसी स्त्री से मिलने में भी डरता हूं।

आदमी का मन बहुत जटिल है। और अब यह हवा भी चारों तरफ फैल गई है कि पत्नी के प्रति इतना प्रेम है कि जो दो साल पहले पत्नी मर गई, उसको वह जिलाए हुए हैं अपने मकान में। यह हवा भी उनकी सुरक्षा का कारण बनेगी। यह हवा भी उन्हें रोकेगी। यह प्रतिष्ठा भी रोकेगी।

पर मैंने उन मित्र के मित्र को कहा था कि ज्यादा देर नहीं चलेगी यह सुरक्षा। जब असली पत्नी नहीं बचती, तो ये तस्वीरें कितनी देर बचेंगी?

अभी मुझे निमंत्रण पत्र आया है कि उनका विवाह हो रहा है। यह ज्यादा दिन नहीं बच सकता। इतना भयभीत आदमी ज्यादा दिन नहीं बच सकता। इतना असुरक्षित आदमी ज्यादा दिन नहीं बच सकता।

वस्तुओं पर, व्यक्तियों पर जो हम "मेरे" का फैलाव करते हैं, महावीर उसको भी हिंसा कहते हैं। महावीर परिग्रह को हिंसा कहते हैं। महावीर का वस्तुओं से कोई विरोध नहीं है, और न महावीर को इससे कोई प्रयोजन है कि आपके पास कोई वस्तु है या नहीं। महावीर का इससे जरूर प्रयोजन है कि आपका उससे कितना मोह है। कितना उसको आप पकड़े हुए हैं, कितना आपने उस वस्तु को अपनी आत्मा बना लिया है।

यह मुल्ला नसरुद्दीन बड़ा प्यारा आदमी है। इसके जीवन में बहुत अदभुत घटनाएं हैं। एक होटल में ठहरा हुआ है। छोड़ रहा है होटल, नीचे टैक्सी में सब सामान रख आया है, तब उसे ख्याल आया कि छाता कमरे में भूल आया है। सीढ़ियां चढ़ कर वापस आया, चार मंजिल होटल। वापस पहुंचा तो देखा कि कमरा तो किसी नवविवाहित जोड़े को दे दिया जा चुका है। दरवाजा बंद है, अंदर कुछ बात चलती है। छाता बिना लिए जा नहीं सकता और अभी यह जो बात चलती है, उसको भी बिना सुने नहीं जा सकता। की-होल पर, चाबी के छेद पर कान लगाकर सुना। युवक अपनी पत्नी से कह रहा है, तेरे ये सुंदर बाल, ये आकाश में घिरी हुई घटाओं की तरह बाल, ये किसके हैं, देवी, ये बाल किसके हैं?

देवी ने कहा: तुम्हारे। और किसके?

"ये तेरी आंखें, मछलियों की तरह चंचल", उस पुरुष ने पूछा, "ये किसकी हैं? देवी, ये आंखें किसकी हैं?"

उस स्त्री ने कहा: तुम्हारी, और किसकी?

मुल्ला कुछ बेचैन हुआ। उसने कहा: ठहरो भाई! देवी, मुझे पता नहीं भीतर कौन है, लेकिन जब छाते का नंबर आए तो ख्याल रखना, मेरा है।

उसकी बेचैनी स्वाभाविक है। आएगा ही छाते का नंबर।

सारी जिंदगी उठते-बैठते, क्या मेरा है इसकी फिकर है--कहीं कोई और तो उस "मेरे" पर कब्जा नहीं कर रहा है? कहीं कोई और तो उस "मेरे" का मालिक नहीं बन रहा है? सवाल यह बड़ा नहीं है कि यह वस्तु किसकी हो जाएगी। वस्तु किसी की नहीं होती है। महावीर कहते हैं कि वस्तु किसी की नहीं होती है। उसे कभी पता नहीं चलता कि वह किसकी है। तुम लड़ते हो, मरते हो, समाप्त हो जाते हो, वस्तुएं अपनी जगह पड़ी रह जाती हैं। वही जमीन का टुकड़ा, जिसको आप अपना कह रहे हैं, कितने लोग उसे अपना कह चुके हैं। कभी हिसाब किया है, कितने लोग उसके दावेदार हो चुके हैं और जमीन के टुकड़े को जरा भी पता नहीं। दावेदार आते हैं और चले जाते हैं और जमीन का टुकड़ा अपनी जगह पड़ा रहता है। दावे सब काल्पनिक हैं, इमेजिनरी हैं।

आप ही दावा करते हैं, आप ही दूसरे दावेदारों से लड़ लेते हैं, मुकदमे हो जाते हैं, सिर खुल जाते हैं, हत्याएं हो जाती हैं। वह जमीन का टुकड़ा अपनी जगह पड़ा रहता है। जमीन के टुकड़े को पता भी नहीं है। या अगर पता होगा तो पता दूसरे ढंग से होगा। जमीन का टुकड़ा कहता होगा, यह आदमी मेरा है। जो आदमी कह रहा है, यह जमीन मेरी है, अगर जमीन को कोई पता होगा तो जमीन का टुकड़ा कहता होगा, यह आदमी मेरा है। कौन जाने, जमीनों में मुकदमे चलते हों। आपस में संघर्ष हो जाता हो कि यह आदमी मेरा है, तुमने कैसे कहा कि मेरा है। अगर कोई जमीन को पता होता होगा तो उसको अपनी मालकियत का पता होता होगा। ध्यान रहे, हम सबको अपनी मालकियत का पता है। और मालकियत के लिए हम इतने उत्सुक हैं कि अगर जिंदा आदमी के हम मालिक न हो सके तो हम उसे मारकर भी मालिक होना चाहते हैं।

और हमारे जीवन की अधिक हिंसा इसीलिए है। जब एक पति एक स्त्री का मालिक होता है, उसे पत्नी बना लेता है तो उसमें स्त्री तो करीब-करीब नब्बे प्रतिशत मर ही जाती है। बिना मारे मालिक होना मुश्किल है। क्योंकि दूसरा भी मालिक होना चाहता है। अगर वह जिंदा रहेगा तो वह मालिक होने की कोशिश करेगा।

इसलिए अब ध्यान रखें, भविष्य में स्त्री पर, पुरुषों पर मालकियत की संभावना कम होती जाती है। अगर स्त्रियों को समानता का हक दिया तो पत्नी बच नहीं सकती। पत्नी तभी तक बच सकती थी जब तक स्त्री को कोई हक नहीं था। उसको बिल्कुल ही मार डालते तो ही पत्नी बच सकती थी। वह बिल्कुल नकार हो जाती तो ही पति हो सकता है। अब जब उसे बराबर करेंगे तो पति होने का उपाय नहीं। अब मित्र होने से ज्यादा की संभावना नहीं रह जाएगी। क्योंकि दोनों अगर समान हैं तो मालकियत कैसे टिक सकती है? लेकिन समानता भी टिकानी बहुत मुश्किल है। डर तो यह है कि स्त्री ज्यादा दिन समान नहीं रहेगी। थोड़े दिन में पुरुष को आंदोलन चलाना पड़ेगा कि हम स्त्रियों के समान हैं। यह ज्यादा दिन नहीं चलेगा। क्योंकि स्त्री बहुत दिन असमान रह ली। यह तो पहला कदम है समान होने का। अब इसके ऊपर जाने का दूसरा कदम, वह उठना शुरू हो गया है। बहुत जल्दी जगह-जगह पुरुष जुलूस निकाल रहे होंगे, घेराव कर रहे होंगे कि पुरुष स्त्रियों के समान हैं, कौन कहता है कि हम उनसे नीचे हैं।

समानता ज्यादा देर टिक नहीं सकती। क्योंकि जहां मालकियत और जहां हिंसा गहन है वहां किसी न किसी को असमान होना ही पड़ेगा, किसी न किसी को नीचे होना ही पड़ेगा। मजदूर लड़ेगा, पूंजीपति को नीचे कर देगा। कल पाएगा कि कोई ऊपर बैठ गया है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर कहते हैं, जब तक जगत में मालकियत की आकांक्षा है--यानी जीवेषणा जब इतनी पागल है कि वह बिना मालिक हुए राजी नहीं होती--तब तक दुनिया में कोई समानता संभव नहीं है।

इसलिए महावीर समानता में उत्सुक नहीं हैं, अहिंसा में उत्सुक हैं। वे कहते हैं--अगर अहिंसा फैल जाए तो ही समानता संभव है। मालकियत का रस ही टूट जाए, तो ही दुनिया से मालकियत मिटेगी, अन्यथा मालकियत नहीं मिट सकती है। सिर्फ मालिक बदल सकते हैं। मालिक बदलने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बीमारी अपनी जगह बनी रहती है। उपद्रव अपनी जगह बने रहते हैं। हिंसा का जो वास्तविक हमारे जीवन में क्रियमान रूप है, वह मालकियत है।

महावीर ने जब महल छोड़ा तो हमें लगता है--महल छोड़ा, धन छोड़ा, परिवार छोड़ा। महावीर ने सिर्फ हिंसा छोड़ी। अगर गहरे में जाएं तो महावीर ने सिर्फ हिंसा छोड़ी। यह सब हिंसा का फैलाव था। ये पहरेदार जो दरवाजे पर खड़े थे, वे पत्थर की मजबूत दीवारें जो महल को घेरे थीं, यह धन और ये तिजोरियां--ये सब आयोजन थे हिंसा के। यह मेरे और तेरे का भेद, यह सब आयोजन था हिंसा का। महावीर जिस दिन खुले आकाश के नीचे आकर नग्न खड़े हो गए, उस दिन कहा कि अब मैं हिंसा को छोड़ता हूं, इसलिए सब सुरक्षा छोड़ता हूं। इसलिए सब आक्रमण के उपाय छोड़ता हूं। अब मैं निहत्था, निशस्त्र, शून्यवत भटकूंगा इस खुले आकाश के नीचे। अब मेरी कोई सुरक्षा नहीं, अब मेरा कोई आक्रमण नहीं, अब मेरी कोई मालकियत कैसे हो सकती है। अहिंसक की कोई मालकियत नहीं हो सकती। अगर कोई अपनी लंगोटी पर भी मालकियत बताता है कि यह मेरी है--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि महल मेरा है कि लंगोटी मेरी है। वह मालकियत हिंसा है। इस लंगोटी पर भी गर्दन कट सकती है। और यह मालकियत बहुत सूक्ष्म होती चली जाती है--धन छोड़ देता है एक आदमी, लेकिन कहता है, धर्म, यह मेरा है।

मेरे एक मित्र अभी एक जैन साधु के पास गए होंगे--अभी एक-दो दिन पहले। मैं महावीर के संबंध में क्या कह रहा हूं, मित्र ने उन्हें बताया होगा। उन साधु ने कहा कि कोई और महावीर होंगे, वे उनके होंगे, वे हमारे महावीर नहीं हैं। वे जिस महावीर के संबंध में बोल रहे हैं वे हमारे महावीर नहीं हैं।

मालकियत बड़ी सूक्ष्म है। महावीर तक पर भी मालकियत है। हिंसा हम वहां तक नहीं छोड़ेंगे--यह धर्म मेरा है, यह शास्त्र मेरा है, यह सिद्धांत मेरा है--रस आता है, रस किसको आता है भीतर? जहां-जहां "मेरा" है वहां-वहां हिंसा है। जो "मेरे" को सब भांति छोड़ देता है--धन पर ही नहीं, धर्म पर भी, महावीर और कृष्ण और बुद्ध पर भी--जो कहता है कि मेरा कुछ भी नहीं है। और ध्यान रहे, जिस दिन कोई कह पाता है, मेरा कुछ भी नहीं, उसी दिन "मैं कौन हूं", इसे जान पाता है। इसके पहले नहीं जान पाता। इसके पहले "मेरे" के फैलाव में उलझा रहता है, परिधि पर। इसलिए "मैं" के केंद्र पर कोई पता नहीं चलता है।

इसे ऐसा समझ लें, अहिंसा सूत्र है आत्मा को जानने का। क्योंकि "मेरे" का जब सारा भाव गिर जाता है तो फिर मैं ही बचता हूं फिर, कोई और तो बचता नहीं। निपट मैं, अकेला मैं। और तभी जान पाता हूं, क्या हूं, कौन हूं, कहां से हूं, कहां के लिए हूं। तब सारे द्वार रहस्य के खुल जाते हैं।

महावीर ने अकारण ही अहिंसा को परम धर्म नहीं कह दिया है। परम धर्म कहा है इसलिए कि उस कुंजी से सारे द्वार खुल सकते हैं, जीवन के रहस्य के। एक और तीसरी दृष्टि से अहिंसा को समझ लें तो अहिंसा का ख्याल हमारा स्पष्ट और पूरा हो जाए।

महावीर ने कहा है कि सब हिंसा आग्रह है। यह अति सूक्ष्म बात है। आग्रह हिंसा है, अनाग्रह अहिंसा है। और इसी कारण महावीर ने जिस विचार-सरणी को जन्म दिया है, उसका नाम है "अनेकांत"। वह अहिंसा के विचार का जगत में फैलाव है। अनेकांत की दृष्टि जगत में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दे सका। क्योंकि अहिंसा की दृष्टि को कोई दूसरा व्यक्ति इतनी गहनता में समझ ही नहीं सका। समझा ही नहीं सका। अनेकांत महावीर से पैदा हुआ उसका कारण है कि महावीर की अहिंसा की दृष्टि को जब उन्होंने विचार के जगत पर लगाया, वस्तुओं के जगत पर लगाया तो परिग्रह फलित हुआ। जीवन के जगत पर लगाया तो मृत्यु का वरण फलित हुआ। और जब विचार के जगत पर लगाया--जो कि हमारा बहुत सूक्ष्म संग्रह है, विचार का जगत। धन बहुत स्थूल संग्रह है, चोर उसे ले जा सकते हैं। विचार बहुत सूक्ष्म संग्रह है, चोर उसे नहीं चुरा सकते। फिलहाल अभी तक तो नहीं चुरा सकते। यह सदी पूरे होते-होते चोर आपके विचार चुरा सकेंगे। क्योंकि आपके मस्तिष्क को आपके बिना जाने पढ़ा जा सकेगा। और क्योंकि आपके मस्तिष्क से कुछ हिस्से भी निकाले जा सकते हैं, जिनका आपको पता ही नहीं चलेगा। और आपके मस्तिष्क के भीतर भी इलेक्ट्रोड रखे जा सकते हैं, और आपसे ऐसे विचार करवाए जा सकते हैं जो आप नहीं कर रहे, लेकिन आपको लगेगा कि मैं कर रहा हूं।

अभी अमरीका में डा. ग्रीन और दूसरे लोगों ने जानवरों की खोपड़ी में इलेक्ट्रोड रख कर जो प्रयोग किए हैं वे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। एक घोड़े की या एक सांड की खोपड़ी में इलेक्ट्रोड रख दिया है। वह इलेक्ट्रोड रखने के बाद वायरलेस से उसकी खोपड़ी के भीतर के स्नायुओं को संचालित किया जा सकता है, जैसा चाहें। और डाक्टर ग्रीन के ऊपर हमला करता है वह सांड। वे लाल छतरी लेकर उसके सामने खड़े हैं और हाथ में उनके ट्रांजिस्टर है छोटा सा, जिससे उसकी खोपड़ी को संचालित करेंगे। वह दौड़ता है पागल की तरह। लगता है कि हत्या कर डालेगा। सैकड़ों लोग घेरा लगाकर खड़े हैं। वह बिल्कुल आ जाता है--वह सामने आ जाता है। और वह बटन दबाता है अपने ट्रांजिस्टर की। वह ठंडा हो जाता है, वह वापस लौट जाता है।

यह आदमी के साथ भी हो सकेगा। इसमें कोई बाधा नहीं रह गई है। वैज्ञानिक काम पूरा हो गया है। कुछ कहा नहीं जा सकता कि तानाशाही सरकारें हर बच्चे की खोपड़ी में बचपन से ही रख दें। फिर कभी उपद्रव नहीं। एक बटन दबाई जाए, पूरा मुल्क एकदम जय-जयकार करने लगे। मिलिटरी के दिमाग में तो यह रखा ही जाएगा। तब बटन दबा दी और लाखों लोग मर जाएंगे बिना भयभीत हुए, कूद जाएंगे आग में बिना चिंता किए। और उनको लगेगा कि वे ही कर रहे हैं। हालांकि यह पहले से भी किया जा रहा है, लेकिन करने के ढंग पुराने थे, मुश्किल के थे।

एक आदमी को समझाना पड़ता है कि अगर तू देश के लिए मरेगा तो स्वर्ग जाएगा। इसको बहुत समझाना पड़ता है, तब उसकी खोपड़ी में घुसता है। हालांकि यह भी घुसाना ही है। इसमें कोई मतलब नहीं है। इसको भी बचपन से गाथाएं सुना-सुना कर राष्ट्रभक्ति की और जमाने भर के पागलपन की, इसके दिमाग को तैयार किया जाता है। फिर एक दिन वर्दी पहना कर इससे कवायद करवाई जाती है दो-चार साल तक। इसकी खोपड़ी में डालने का यह उपाय भी इलेक्ट्रोड ही है, लेकिन यह पुराना है, बैलगाड़ी के ढंग से चलता है। फिर एक दिन यह आदमी जाता है और मर जाता है युद्ध के मैदान में छाती खोल कर और सोचता है कि यह "मैं" मर रहा हूं, और सोचता है कि यह बलिदान "मैं" दे रहा हूं, और सोचता है, ये विचार "मेरे" हैं। यह देश मेरा और यह झंडा मेरा है। और ये सब बातें इसके दिमाग में किन्हीं और ने रखी हैं। जिन्होंने रखी हैं वे राजधानियों में बैठे हुए हैं। वे कभी किसी युद्ध पर नहीं जाते। ठीक है, इतनी परेशानी करने की क्या जरूरत है, जब इलेक्ट्रोड रखने से आसानी से काम हो जाएगा। अड़चन कम होगी, भूल-चूक कम होगी। बहुत जल्दी विचार की संपदा पर भी चोर पहुंच जाएंगे। खतरे वहां हो जाएंगे, लेकिन अब तक कम से कम विचार की संपदा बहुत सूक्ष्म रही है।

महावीर कहते हैं कि विचार की संपदा को भी मेरा मानना हिंसा है। क्योंकि जब भी मैं किसी विचार को कहता हूं "मेरा", तभी मैं सत्य से च्युत हो जाता हूं। और जब भी मैं कहता हूं कि यह मेरा विचार है, इसलिए ठीक है--और हम सभी यह कहते हैं, चाहे हम कहते हों प्रकट, चाहे न कहते हों। जब हम कहते हैं कि यही सत्य है, तो हम यह नहीं कहते कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है, तब हम यह कहते हैं कि जो कह रहा है वह सत्य है। मैं सत्य हूं तो मेरा विचार तो सत्य होगा ही--मैं सत्य हूं, तो मेरा विचार सत्य होगा। जितने विवाद हैं इस जगत में वे सत्य के विवाद नहीं हैं। जितने विवाद हैं वे सब "मैं" के विवाद हैं। जब आप किसी से विवाद में पड़ जाते हैं और कोई बात चलती है और आप कहते हैं यह ठीक है, और दूसरा कहता है यह ठीक नहीं है, तब जरा भीतर झांक कर देखना कि थोड़ी देर में ही आपको पक्का पता चल जाएगा कि अब सवाल विचार का नहीं है। अब सवाल यह है कि मैं ठीक हूं कि तुम ठीक हो? महावीर ने कहा कि यह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। इसलिए महावीर ने अनेकांत को जन्म दिया है।

महावीर से अगर कोई आकर बिल्कुल महावीर के विपरीत भी बात कहे तो महावीर कहते थे, यह भी ठीक हो सकता है। बहुत हैरानी की बात है, यह आदमी अकेला था इस लिहाज से, पूरी पृथ्वी पर। ज्ञात इतिहास के पास यह अकेला आदमी है जो अपने विरोधी से भी कहेगा, यह भी ठीक हो सकता है--ठीक उससे, जो बिल्कुल विपरीत बात कह रहा है। महावीर कहते हैं कि आत्मा है, और जो आदमी आकर कहेगा--आत्मा नहीं है, कोई चार्वाक की विचार-सरणी को मानने वाला आकर महावीर को कहेगा--आत्मा नहीं है तो महावीर

यह नहीं कहते हैं कि तू गलत है। महावीर कहते हैं, यह भी हो सकता है, यह भी सही हो सकता है। इसमें भी सत्य होगा।

क्योंकि महावीर कहते हैं कि ऐसी तो कोई भी चीज नहीं हो सकती कि जिसमें सत्य का कोई अंश न हो, नहीं तो वह होती ही कैसे। वह है। स्वप्न भी सही है। क्योंकि स्वप्न होता तो है, इतना सत्य तो है ही। स्वप्न में क्या होता है, वह सत्य न हो, लेकिन स्वप्न होता है, इतना तो सत्य है ही, उसका अस्तित्व तो है ही। असत्य का तो कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। तो महावीर कहते हैं जब एक आदमी कह रहा है कि आत्मा नहीं है, तो इस न होने में भी कुछ सत्य तो होगा ही।

इसलिए महावीर ने किसी का विरोध नहीं किया—किसी का। इसका अर्थ यह नहीं था कि महावीर को कुछ पता नहीं था। कि महावीर को यह पता नहीं था कि सत्य क्या है। महावीर को सत्य का पता था। लेकिन महावीर का इतना अनाग्रहपूर्ण चित्त था कि महावीर अपने सत्य में विपरीत सत्य को भी समाविष्ट कर पाते थे। महावीर कहते थे, सत्य इतनी बड़ी घटना है कि यह अपने से विपरीत को समाविष्ट कर सकता है। सत्य इतना बड़ा है, सिर्फ असत्य छोटे-छोटे होते हैं। महावीर कहते थे, असत्य छोटे-छोटे होते हैं। उनकी सीमा होती है। सत्य इतना बड़ा है, इतना असीम है कि अपने से विपरीत को भी समाविष्ट कर लेता है। यही वजह है कि महावीर का विचार बहुत ज्यादा दूर तक, ज्यादा लोगों तक नहीं पहुंच सका क्योंकि सभी लोग निश्चित वक्तव्य चाहते हैं—डागमेटिक। सभी लोग यही चाहते हैं, क्योंकि सोचना कोई नहीं चाहता है। सोचने में तकलीफ, अड़चन होती है। सब लोग उधार चाहते हैं। कोई तीर्थंकर खड़े होकर कह दे कि जो मैं कहता हूं, वह सत्य है, तो जो सोचने से बचना चाहते हैं वे कहेंगे—बिल्कुल ठीक है, मिल गया सत्य, अब झंझट मिटी।

महावीर इतनी निश्चितता किसी को भी नहीं देते। महावीर के पास जो बैठा रहेगा वह सुबह जितना कनफ्यूज्ड था, शाम तक और ज्यादा कनफ्यूज्ड हो जाएगा। वह जितना परेशान आया था, सांझ तक और परेशान होकर लौटेगा क्योंकि महावीर को दिन में वह ऐसी बातें कहता सुनेगा, ऐसे-ऐसे लोगों को हां भरते सुनेगा कि उसके सारे के सारे जो-जो निश्चित आधार थे, बस डगमगा जाएंगे। उसकी सारी भवन की रूपरेखा गिर जाएगी। और महावीर कहते थे—अगर सत्य तक पहुंचना है तो तुम्हारे विचारों के समस्त आग्रह गिर जाएं तभी। तुम हिंसा करते हो जब तुम कहते हो, सही सत्य है। तब तुम सत्य तक पर मालकियत कर लेते हो। तब तुम सत्य तक को भी सिकोड़ देते हो और अपने तक बांध लेते हो। तब तुम सत्य तक का परिग्रह कर देते हो। इसलिए महावीर कहते थे कि दूसरा क्या कहता है, वह भी सत्य हो सकता है। और तुम जल्दी मत करना कि दूसरा गलत है।

मुल्ला नसरुद्दीन को उस मुल्क के सम्राट ने बुलाया, और लोगों ने खबर की है कि अजीब आदमी है। आप बोलो ही न, उसके पहले खंडन शुरू कर देता है।

सम्राट ने कहा: यह तो ज्यादाती है। दूसरे को मौका मिलना चाहिए। सम्राट ने नसरुद्दीन को बुलाया और कहा कि मैंने सुना है कि तुम दूसरे को सुनते ही नहीं और बिना जाने कि वह क्या सोचता है, तुम बोलना शुरू कर देते हो—कि गलत हो!

मुल्ला नसरुद्दीन को उस मुल्क के सम्राट ने बुलाया, और लोगों ने खबर की है कि अजीब आदमी है। आप बोलो ही न, उसके पहले खंडन शुरू कर देता है।

सम्राट ने कहा: यह तो ज्यादाती है। दूसरे को मौका मिलना चाहिए। सम्राट ने नसरुद्दीन को बुलाया और कहा कि मैंने सुना है कि तुम दूसरे को सुनते ही नहीं और बिना जाने कि वह क्या सोचता है, तुम बोलना शुरू कर देते हो—कि गलत हो!

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक सुना है।

सम्राट ने कहा: मेरे विचारों के संबंध में क्या ख्याल है? अभी उसने कुछ विचार बताया नहीं।

मुल्ला ने कहा: सरासर गलत है।

सम्राट ने कहा: लेकिन तुमने सुने भी नहीं।

मुल्ला ने कहा: यह सवाल ही नहीं है, तुम्हारे हैं, इसलिए गलत। क्योंकि मेरे ठीक होते हैं। इररिलेवेंट है यह बात कि तुम क्या सोचते हो। इससे कोई संगति ही नहीं है। तुम सोचते हो, काफी है, गलत होने के लिए। मैं सोचता हूँ, काफी है, सही होने के लिए।

हम सब ऐसे ही हैं। आप इतने हिम्मतवर नहीं हैं कि दूसरे को बिना सुने गलत कहें। लेकिन जब आप सुन कर भी गलत कहते हैं तब आप पहले से ही जानते थे कि वह गलत था। तो सुन कर आप भी नहीं कहते--ध्यान रखना, सुन कर आप भी नहीं कहते। आप पहले से जानते थे कि वह गलत है। सिर्फ धीरज, संकोच, शिष्टता आपको रोकती है कि कम से कम सुन तो लो, गलत तो है ही।

मुल्ला नसरुद्दीन आपसे ज्यादा ईमानदार आदमी है। वह कहता है--सुनने के लिए समय क्यों खराब करना। हम जानते ही हैं कि तुम गलत हो, क्योंकि सभी गलत हैं, सिर्फ मैं ठीक हूँ।

सारे विवाद जगत के सही हैं। सम्राट मुल्ला से बहुत प्रसन्न हो गया और उसने कहा कि तुम रहो, हमारे दरबार में ही रह जाओ।

मुल्ला को जिस दिन से तनख्वाह मिलने लगी, सम्राट बहुत हैरान हुआ--सम्राट जो भी कहता, मुल्ला कहता--बिल्कुल ठीक, एकदम सही, यही सही है। सम्राट के साथ खाने पर बैठा था। कोई सब्जी बनी थी।

सम्राट ने कहा: मुल्ला, सब्जी बहुत स्वादिष्ट है।

मुल्ला ने कहा: यह अमृत है, स्वादिष्ट होगी ही। मुल्ला ने बहुत बखान किया उस सब्जी का। जब इतना बखान किया कि सम्राट ने दूसरे दिन भी बनवा ली। लेकिन दूसरे दिन उतनी अच्छी नहीं लगी।

तीसरे दिन रसोइए ने देखा कि इतनी अमृत जैसी चीज, तो उसने तीसरे दिन भी बना दी। सम्राट ने हाथ मार कर थाली नीचे गिरा दी और कहा कि क्या बदतमीजी है, रोज-रोज वही सब्जी!

मुल्ला ने कहा: जहर है। सम्राट ने कहा: लेकिन मुल्ला तुम तीन दिन पहले कहते थे कि अमृत है। मुल्ला ने कहा: मैं आपका नौकर हूँ, सब्जी का नहीं। तनख्वाह तुम देते हो कि सब्जी देती है?

सम्राट ने कहा: लेकिन इसके पहले जब तुम आए थे मुझसे मिलने, तब तुम अपने को ही सही कहते थे।

मुल्ला ने कहा: तब तक मैं बिन-बिका था, तब तक तुम कोई तनख्वाह नहीं देते थे। और जिस दिन तुम तनख्वाह नहीं दोगे, याद रखना, सही तो मैं ही हूँ, यह तो सिर्फ तनख्वाह की वजह से मैं कहे चले जा रहा हूँ।

यह हमारा जो मन है, हमारी जो अस्मिता है--महावीर कहते हैं--दूसरा भी सही है, दूसरा भी सही हो सकता है। तुमसे विरोधी भी सत्य को लिए हैं। आग्रह मत करो, अनाग्रह हो जाओ। आग्रह ही मत करो। इसलिए महावीर ने कोई सिद्धांत का आग्रह नहीं किया। और महावीर ने जितनी तरल बातें कही हैं उतनी तरल बातें किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं कहीं हैं। इसलिए महावीर अपने हर वक्तव्य के सामने "स्यात" लगाते थे, वे कहते थे, परहेप्स। अभी आ पका तो विचार उन्हें पता भी नहीं है, लेकिन अगर आप उनसे पूछते कि आत्मा है? तो महावीर कहते, स्यात, परहेप्स। क्योंकि वे कहते, हो सकता है, कोई इसके विपरीत हो उसे चोट पहुंच जाए। आप पूछते कि मोक्ष है? तो महावीर कहते, स्यात! ऐसा नहीं कि महावीर को पता नहीं है। महावीर को पता है कि मोक्ष है। लेकिन महावीर को यह भी पता है कि अहिंसक वक्तव्य "स्यात" के साथ ही हो सकता है--नॉन-वायलेंट असरशन। असत्य--यह भी पता है और महावीर को यह भी पता है कि स्यात कहने से शायद आप समझने को ज्यादा आसानी से तैयार हो जाएं। जब महावीर कहें कि हां, मोक्ष है, तो महावीर जितने अकड़कर कहेंगे मोक्ष है, तत्काल आपके भीतर अकड़ प्रतिध्वनित होती है। वह कहती है, कौन कहता है--"नहीं है"। संघर्ष "मैं" का शुरू हो जाता है। सारे विवाद "मैं" के विवाद हैं। महावीर अनाग्रह वक्तव्य दिए हैं--सब वक्तव्य अनाग्रह से भरे हैं। इसलिए पंथ बनाना बहुत मुश्किल हुआ। अगर कोई गोशालक के पास जाता, महावीर के प्रतिद्वंद्वी के पास, तो गोशालक कहता--महावीर गलत हैं, मैं सही हूँ। वही आदमी महावीर के पास आता तो महावीर कहते-

-गोशालक सही हो सकता है। अगर आप भी होते तो आप गोशालक के पीछे जाते कि महावीर के? आप गोशालक के पीछे जाते कि यह आदमी कम से कम निश्चित तो है, साफ तो है, उसे पता तो है। यह महावीर कहता है--गोशालक भी शायद सही हो सकता है। अभी आपको खुद ही पक्का नहीं है। खुद ही साफ नहीं है। इनके पीछे अपनी नाव क्यों बांधनी और डुबानी! ये कहाँ जा रहे हैं, शायद जा रहे हैं कि नहीं जा रहे हैं! शायद पहुंचेंगे कि नहीं पहुंचेंगे!

इसलिए महावीर के पास अत्यंत बुद्धिमान वर्ग ही आ सका--बुद्धिमान मैं कहता हूं उन व्यक्तियों को, जो सत्य के संबंध में अनाग्रहपूर्ण हैं। जिन्होंने समझा महावीर के साहस को। जिन्होंने देखा कि यह बहुत साहस की बात है, वे ही महावीर के पास आ सके। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है, जो लोग पीछे आते हैं वे सोच कर नहीं आते, वे जन्म की वजह से पीछे आते हैं। वे आग्रहपूर्ण हो जाते हैं। और उनके आग्रह खतरनाक हो जाते हैं।

एक बहुत बड़े जैन पंडित मुझे मिलने आए थे। उन्होंने स्यातवाद पर किताब लिखी है, इस अनेकांत पर किताब लिखी है। मैं उनसे बात कर रहा था। मैं उनसे बात करता रहा। मैंने उनसे कहा कि स्यातवाद का तो अर्थ ही होता है कि शायद ठीक हो, शायद ठीक न हो।

उन्होंने कहा: हां।

फिर थोड़ी बातचीत आगे बढ़ी। जब वे भूल गए तो मैंने उनसे पूछा लेकिन स्यातवाद तो पूर्ण रूप से ठीक है या नहीं, एक्सल्यूटली? उन्होंने कहा: एक्सल्यूटली ठीक है, पूर्णरूप से ठीक है। स्यातवाद पर किताब लिखने वाला आदमी भी कहता है कि स्यातवाद पूर्णरूप से ठीक है। इसमें कोई गलती नहीं है, इसमें कोई भूल हो ही नहीं सकती। यह सर्वज्ञ की वाणी है। महावीर को मानने वाला कहता है--सर्वज्ञ की वाणी है, इसमें कोई भूल-चूक है नहीं, यह बिल्कुल ठीक है--एक्सल्यूटली, पूर्णरूपेण, निरपेक्ष।

और महावीर जिंदगी भर कहते रहे कि पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। जब भी हम सत्य को बोलते हैं, तभी वह अपूर्ण हो जाता है--बोलते ही अपूर्ण हो जाता है। वक्तव्य देते ही अपूर्ण हो जाता है। कोई वक्तव्य पूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि वक्तव्य की सीमाएं हैं--भाषा है, तर्क है, बोलने वाला है, सुनने वाला है--ये सब सीमाएं हैं। जरूरी नहीं है कि जो मैं बोलूं, वही आप सुनें। जरूरी नहीं है कि जो मैं जानूं वही मैं बोल पाऊं, और जरूरी नहीं है कि जो मैं बोल पाऊं वह वही हो जो मैं बोलने की कोशिश कर रहा हूं। यह जरूरी नहीं है। तत्काल सीमाएं लगनी शुरू हो जाती हैं क्योंकि वक्तव्य समय की धारा में प्रवेश करता है और सत्य समय की धारा के बाहर है।

ऐसे ही जैसे हम एक लकड़ी को पानी में डालें तो वह तिरछी दिखाई पड़ने लगे, बाहर निकालें तो सीधी हो जाए। महावीर कहते हैं ठीक जैसे ही हम भाषा में किसी सत्य को डालते हैं, वह तिरछा होना शुरू हो जाता है। भाषा के बाहर निकालते हैं, शुद्ध शून्य में ले जाते हैं वह पूर्ण हो जाता है। लेकिन जैसे ही वक्तव्य देते हैं वैसे ही--इसलिए महावीर कहते हैं--कोई भी वक्तव्य स्यात के बिना न दिया जाए। कहा जाए कि शायद सही है।

यह अनिश्चय नहीं है, यह केवल अनाग्रह है। यह अनसर्टेनिटी नहीं है। यह कोई ऐसा नहीं है कि महावीर को पता नहीं है। महावीर को पता है लेकिन इतना ज्यादा पता है, इतना साफ पता है कि यह भी उन्हें पता चलता है कि वक्तव्य धुंधला हो जाता है। महावीर की अहिंसा का जो अंतिम प्रयोग है, वह अनाग्रहपूर्ण विचार है। विचार भी मेरा नहीं है, तभी अनाग्रहपूर्ण हो जाएगा। जिस विचार के साथ आप लगा देंगे मेरा, उसमें आग्रह जुड़ जाएगा। न धन मेरा है, न मित्र मेरे हैं, न परिवार मेरा है, न विचार मेरा है, न यह शरीर मेरा है, न यह जीवन, जिसे हम कहते हैं, यह मेरा है--यह कुछ भी मेरा नहीं है। जब इन सब "मेरे" से हमारा फासला पैदा हो जाता है, गिर जाते हैं ये "मेरे", तब मैं ही बच रह जाता हूं--अलोन, अकेला। और जो वह अकेला मैं का बच जाना है, उसकी प्रक्रिया है, अहिंसा। अहिंसा प्राण है, संयम सेतु है और तप आचरण है। कल हम संयम पर बात करेंगे।

आज इतना ही।

लेकिन अभी कोई जाए न। संन्यासी महावीर के स्मरण में धुन करते हैं, उसमें सम्मिलित हों।

संयमः मध्य में रुकना (धम्म-सूत्रः 2 (संयम))

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि महावीर रास्ते से गुजरते हों और किसी प्राणी की हत्या हो रही हो तो महावीर क्या करेंगे? किसी स्त्री के साथ

बलात्कार की घटना घट रही हो तो महावीर क्या करेंगे? क्या वे अनुपस्थित हैं, ऐसा व्यवहार करेंगे? और कोई असह्य पीड़ा से कराह रहा हो तो महावीर क्या करेंगे?

इस संबंध में थोड़ी सी बातें समझ लेनी उपयोगी हैं। एक तो महावीर गुजरते हुए रास्ते से, और किसी की हत्या हो रही हो, तो हत्या में जो हम देख पाते हैं, वह महावीर को नहीं दिखाई पड़ेगा। जो महावीर को दिखाई पड़ेगा वह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता है। पहले तो इस भेद को समझ लेना चाहिए। जब भी हम किसी की हत्या होते देखते हैं तो हम समझते हैं, कोई मारा जा रहा है। महावीर को यह नहीं दिखाई पड़ेगा कि कोई मारा जा रहा है। क्योंकि महावीर जानते हैं कि जो भी जीवन का तत्व है, वह मारा नहीं जा सकता, वह अमृत है। दूसरी बात, जब भी हम देखते हैं कि कोई मारा जा रहा है तो हम सोचते हैं मारने वाला ही जिम्मेवार है। महावीर को इसमें फर्क दिखाई पड़ेगा। जो मारा जाता है, वह भी बहुत गहरे अर्थों में जिम्मेवार है। और हो सकता है केवल अपने ही किए गए किसी कर्म का प्रतिफल पाता हो।

जब भी हम देखेंगे तो मारने वाला जिम्मेवार और मारा जाने वाला हमेशा निर्दोष मालूम पड़ेगा। हमारी दया और हमारी करुणा उसकी तरफ बहेगी, जो मारा जा रहा है। महावीर के लिए ऐसा जरूरी नहीं होगा, क्योंकि महावीर का देखना और गहरा है। हो सकता है कि जो मार रहा है वह केवल एक प्रतिकर्म पूरा कर रहा हो। क्योंकि इस जगत में कोई अकारण नहीं मारा जाता है। जब कोई मारा जाता है तो वह उसके ही कर्मों के फल की शृंखला का हिस्सा होता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि जो मार रहा है वह जिम्मेवार नहीं। लेकिन हमारे और महावीर के देखने में फर्क पड़ेगा। जब भी हम देखते हैं, कोई मारा जा रहा है तो हम सोचते हैं निश्चित ही पाप हो रहा है; निश्चित ही बुरा हो रहा है। क्योंकि हमारी दृष्टि बहुत सीमित है। महावीर इतना सीमित नहीं देख सकते। महावीर देखते हैं जीवन की अनंत शृंखला को। यहां कोई भी कर्म अपने में पूरा नहीं है वह पीछे से जुड़ा है, और आगे से भी।

हो सकता है कि अगर हिटलर को किसी आदमी ने मार डाला होता उन्नीस सौ तीस के पहले तो वह आदमी हत्यारा सिद्ध होता। हम नहीं देख पाते कि एक ऐसा आदमी मारा जा रहा है जो कि एक करोड़ लोगों की हत्या करेगा। महावीर ऐसा भी देख पाते हैं। और तब तय करना मुश्किल है कि हिटलर का हत्यारा सचमुच बुरा कर रहा था या अच्छा कर रहा था। क्योंकि हिटलर अगर मरे तो करोड़ लोग बच सकते हैं। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि हिटलर को जो मार रहा था वह अच्छा ही कर रहा था। सच तो यह है कि महावीर जैसे लोग जानते हैं कि इस पृथ्वी पर अच्छा और बुरा ऐसा चुनाव नहीं है; कम बुरा और ज्यादा बुरा, ऐसा ही

चुनाव है--लेसर ईविल का चुनाव है। हम आमतौर से दो हिस्सों में तोड़ लेते हैं--यह अच्छा और यह बुरा। हम जिंदगी को अंधेरे और प्रकाश में तोड़ लेते हैं। महावीर जानते हैं कि जिंदगी में ऐसा तोड़ नहीं है। यहां जब भी आप कुछ कर रहे हैं तो ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सकता है कि जो सबसे कम, कम से कम बुरा विकल्प था वह आप कर रहे हैं। वह आदमी भी बुरा कर रहा है जो हिटलर को मार रहा है, लेकिन जो संभव हो सकता है हिटलर से वह इतना बुरा है कि इस आदमी को बुरा कहें?

तो पहली बात मैं यह कहना चाहता हूं जैसा आप देखते हैं वैसा महावीर नहीं देखेंगे। इस देखने में यह बात भी जोड़ लेनी जरूरी है कि महावीर जानते हैं कि इस जीवन में चौबीस घंटे अनेक तरह की हत्या हो ही रही है। आपको कभी-कभी दिखाई पड़ती है। जब आप चलते हैं तब किसी की आप हत्या कर रहे हैं। जब आप श्वास लेते हैं तब आप किसी की हत्या कर रहे हैं। अगर आप भोजन करते हैं तब किसी की हत्या कर रहे हैं। आपकी आंख की पलक भी झपकी है तो हत्या हो रही है। हमें तो जब कभी कोई किसी की छाती में छुरा भोंकता है, तभी हत्या दिखाई पड़ती है।

महावीर देखते हैं कि जीवन की जो व्यवस्था है वह हिंसा पर ही खड़ी है। यहां चौबीस घंटे प्रतिपल हत्या ही हो रही है। एक मित्र मेरे पास आए थे, वे कह रहे थे कि महावीर जहां चलते थे, वहां अनेक-अनेक मीलों तक अगर लोग बीमार होते तो वे तत्काल ठीक हो जाते थे। मेरा मन हुआ उनसे कहूं कि शायद उन्हें बीमारी के पूरे रहस्यों का पता नहीं है। क्योंकि जब आप बीमार होते हैं तो आप तो बीमार होते हैं लेकिन अनेक कीटाणु आपके भीतर जीवन पाते हैं। अगर महावीर के आने से आप ठीक हो जाएंगे तो अन्य कीटाणु मर जाएंगे तत्काल। तो महावीर इस झंझट में न पड़ेंगे, ध्यान रखना। क्योंकि आप कुछ विशिष्ट हैं, ऐसा महावीर नहीं मानते। यहां प्रत्येक प्राण का मूल्य बराबर है। प्राण का मूल्य है। और आप अकेले बीमार होते हैं तब करोड़ों जीवन आपके भीतर पनपते हैं और स्वस्थ होते हैं। आप अगर सोचते हों कि महावीर कृपा करके और आपको ठीक कर दें, तो ऐसी कृपा महावीर को करनी बहुत मुश्किल होगी, क्योंकि आपके ठीक होने में करोड़ों का नष्ट होना निहित है। और आप इतने मूल्यवान नहीं हैं जितना आप सोचते हैं। क्योंकि वह जो करोड़ों आपके भीतर जी रहे हैं, वे भी प्रत्येक अपने को इतना ही मूल्यवान समझते हैं। आपका उनको पता भी नहीं है। आपके शरीर में जब कोई रोग के कीटाणु पलते हैं तो उनको पता भी नहीं है कि आप भी हैं। आप सिर्फ उनका भोजन हैं।

तो जैसा हम देखते हैं हत्या को, उतना सरल सवाल महावीर के लिए नहीं है, जटिल है ज्यादा। महावीर के लिए जीवेषणा ही हिंसा है, हत्या है। वह किसकी जीवेषणा है, इसका कोई सवाल नहीं उठता। कौन जीना चाहता है, वह हत्या करेगा। ऐसा भी नहीं है कि जो जीवेषणा छोड़ देता है, उससे हत्या बंद हो जाएगी। जब तक वह जीएगा तब तक हत्या उससे भी चलेगी। इतना महावीर कहते हैं--उसका संबंध विच्छिन्न हो गया, जीवेषणा के कारण उसका संबंध था।

महावीर भी ज्ञान के बाद चालीस वर्ष जीवित रहे। इन चालीस वर्षों में महावीर भी चलेंगे तो कोई मरेगा। उठेंगे तो कोई मरेगा। यद्यपि महावीर इतने संयम में जीते हैं कि न्यूनतम जो संभव हो, तो रात एक ही करवट सोते हैं, दूसरी करवट नहीं लेते। इससे कम करना मुश्किल है। एक ही करवट रात को गुजार देते हैं क्योंकि दूसरी करवट लेते हैं तो फिर कुछ जीवन मरेंगे। धीमे श्वास लेते हैं, कम से कम जीवन का ह्नास होता हो। लेकिन श्वास तो लेनी ही पड़ेगी। हम कह सकते हैं, कूदकर मर क्यों नहीं जाते हैं। अपने को समाप्त कर दें। लेकिन अगर अपने को समाप्त करेंगे तो एक आदमी के शरीर में सात करोड़ जीवन पलते हैं--साधारण स्वस्थ आदमी के, अस्वस्थ के तो और ज्यादा। तो महावीर एक पहाड़ से अपने को कूद कर मारते हैं तो सात करोड़ को साथ मारते हैं। जहर पी लें, तो भी सात करोड़ को साथ मारते हैं। महावीर जब देखते हैं हिंसा को, तब जटिल है सवाल। इतना आसान नहीं है, जितना आपकी आंखें देखती हैं।

क्या है हत्या? कौन सी चीज हत्या है? महावीर के देखे तो जीवन को जीने की कोशिश में ही हत्या है और जीवन को जीने में हत्या है। हत्या प्रतिपल चल रही है। और प्रत्येक जीना चाहता है इसलिए जब उस पर हमला होता है तब उसे लगता है हत्या हो रही है। बाकी समय हत्या नहीं होती है। अगर जंगल में आप जाकर

शेर का शिकार करते हैं तो वह खेल है, और शेर जब आपका शिकार करे तब शिकार नहीं कहलाता वह, तब वह हत्या है। तब वह जंगली जानवर है, और आप बहुत सभ्य जानवर हैं।

और मजा यह है कि शेर आपको कभी नहीं मारेगा जब तक उसको भूख नहीं लगी हो और आप तभी उसको मारेंगे जब आपको भूख न लगी हो, पेट भरा हो। कोई भूखे आदमी जंगल में शिकार करने नहीं जाते हैं। जिनको ज्यादा भोजन मिल गया है, जिनको अब पचाने का उपाय नहीं दिखाई पड़ता है, वे शिकार करने चले जाते हैं। शेर तो तभी मारता है जब भूखा हो, अनिवार्यता हो।

मैंने सुना है कि एक सर्कस में उन्होंने एक नया प्रदर्शन शुरू किया था। एक भेड़ को और एक शेर को एक ही कटघरे में रखने का, मैत्री का। लोग बड़े खुश होते थे, देख कर चमत्कृत होते थे कि शेर और भेड़ गले मिला कर बैठे हुए हैं। जैनी देखते तो बहुत ही खुश होते। वे भी अपने चित्र बनाए बैठे हुए हैं, शेर और गाय को साथ बिठलाया है। लेकिन एक आदमी थोड़ा चकित हुआ क्योंकि यह बड़ा कठिन मामला है। तो उसने जाकर मैनेजर से पूछा कि है तो प्रदर्शन बहुत अदभुत, लेकिन इसमें कभी झंझट नहीं आती?

उसने कहा कोई ज्यादा झंझट नहीं होती।

फिर भी उसने कहा कि शेर और भेड़ का साथ-साथ रहना! क्या कभी उपद्रव नहीं होता?

उस मैनेजर ने कहा कभी उपद्रव नहीं होता। सिर्फ हमें रोज एक नई भेड़ बदलनी पड़ती है। और कोई दिक्कत नहीं है, बाकी सब ठीक चलता है। और जब शेर भूखा नहीं रहता तब दोस्ती ठीक है, फिर कोई झंझट नहीं है। फिर वह दोस्ती चलती है। जब भूखा होता है, तब वह खा जाता है। दूसरे दिन हम दूसरी बदल देते हैं। यह प्रदर्शन में कोई इससे बाधा नहीं पड़ती।

शेर भी भेड़ पर हमला नहीं करता जब भूखा न हो। गैर अनिवार्य हिंसा कोई जानवर नहीं करता, सिवाय आदमी को छोड़ कर। लेकिन हमारी हिंसा हमें हिंसा नहीं मालूम पड़ती है। हम उसे नए-नए नाम और अच्छे-अच्छे नाम दे देते हैं। आदमी की हिंसा न हो। फिर आदमी के साथ भी सवाल नहीं है। इसमें भी हम विभाजन करते हैं। हमारे निकट जो जितना पड़ता है, उसकी हत्या हमें उतनी ज्यादा मालूम पड़ती है। अगर पाकिस्तानी मर रहा हो तो ठीक, हिंदुस्तानी मर रहा हो तो तकलीफ होती है। फिर हिंदुस्तानी में भी अगर हिंदू मर रहा हो तो मुसलमान को तकलीफ नहीं होती है। मुसलमान मर रहा हो तो जैनों को तकलीफ नहीं होती है, जैनी मर रहा हो तो हिंदू को तकलीफ नहीं होती।

और भी निकट हम खींचते चले आए हैं। दिगंबर मर रहा हो तो श्वेतांबर को कोई तकलीफ नहीं होती। श्वेतांबर मर रहा हो तो दिगंबर को कोई तकलीफ नहीं होती। फिर और हम नीचे निकल आते हैं फिर और कुछ-फिर आपके परिवार का कोई मर रहा हो तो तकलीफ होती है। और दूसरे परिवार का कोई मर रहा हो तो सहानुभूति दिखाई जाती है, होती तक नहीं। फिर वहां भी, अगर आपके ही ऊपर सवाल आ जाए कि आप बचें कि आपके पिता बचें? तो पिता को मरना पड़ेगा। भाई बचे कि आप बचें तो फिर भाई को मरना पड़ेगा। फिर इसमें भी हिसाब है। अगर आपका सिर बचे कि पैर बचे, तो पैर को कटना पड़ेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक सैनिक आया हुआ है। वह बहुत अपनी बहादुरी की बातें कर रहा है, काफी हाउस में बैठ कर। वह कह रहा है कि मैंने इतने सिर काट दिए, इतने सिर काट दिए।

मुल्ला बहुत देर सुनता रहा। उसने कहा कि दिस इज नर्थिंग। यह कुछ भी नहीं है। एक दफा मैं भी गया था युद्ध में, मैंने न मालूम कितने लोगों के पैर काट दिए।

उस योद्धा ने कहा कि महाशय, अच्छा हुआ होता कि आप सिर काटते।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सिर कोई पहले ही काट चुका था। न मालूम कितनों के पैर काटकर हम घर आ गए, कोई जरा सी खरोंच भी नहीं लगी। तुम तो काफी पिटे-कुटे मालूम होते हो। तो आपको इकोनामी वहां भी करनी पड़ेगी, सिर और पैर का सवाल आपके काटने का हो तो पैर को कटवा डालिएगा और क्या करिएगा।

मैं हूँ केंद्र सारे जगत का। अपने को बचाने के लिए सारे जगत को दांव पर लगा सकता हूँ। यही हिंसा है, यही हत्या है। महावीर इतना व्यापक देखते हैं, उस पर्सपेक्टिव में, उस परिप्रेक्ष्य में, आपको जो हत्या दिखाई पड़ गई है, वह महावीर को दिखाई पड़ेगी? ऐसी ही दिखाई पड़ेगी? इतना तो तय है कि ऐसी ही दिखाई नहीं पड़ेगी। और यह तो साफ ही है कि आपको वैसी नहीं दिखाई पड़ सकती है जैसी महावीर को दिखाई पड़ेगी। इसलिए महावीर के लिए यह प्रश्न बहुत जटिल है। किसको आप बलात्कार कहते हैं? रास्ते पर बलात्कार हो रहा है, किसको आप बलात्कार कहते हैं? पृथ्वी पर सौ में नित्यानबे मौके पर बलात्कार ही हो रहा है। लेकिन किसको आप बलात्कार कहते हैं? पति करता है तो बलात्कार नहीं होता, लेकिन अगर पत्नी की इच्छा न हो तो पति का किया हुआ भी बलात्कार है। और कितनी पत्नियों की इच्छा है, कभी पतियों ने पूछा है?

बलात्कार का अर्थ क्या है? कानून ने सुविधा दे दी कि यह बलात्कार नहीं है तो बलात्कार नहीं है। समाज ने सेक्शन दे दिया तो फिर बलात्कार नहीं है। बलात्कार है क्या? दूसरे की इच्छा के बिना कुछ करना ही बलात्कार है। हम सब दूसरे की इच्छा के बिना बहुत कुछ कर रहे हैं। सच तो यह है कि दूसरे की इच्छा को तोड़ने की ही चेष्टा में सारा मजा है। इसलिए जिस पुरुष ने कभी बलात्कार कर लिया किसी स्त्री से, वह किसी स्त्री से प्रेम करने में और सहज प्रेम करने में आनंद न पाएगा। क्योंकि जद्दोजहद से, जबरदस्ती से वह जो अहंकार की तृप्ति होती है, वह सहज नहीं होती है।

अगर आप किसी आदमी से कुश्ती लड़ रहे हों, वह अपने आप गिर कर लेट जाए और कहे--बैठ जाओ मेरी छाती पर, हम हार गए तो मजा चला गया। जब आप उसको गिराते हैं तो बड़ी मुश्किल से गिराते हैं। जितनी मुश्किल पड़ती है उसे गिराने में, उसकी छाती पर बैठ जाने में, उतना ही रस पाते हैं। रस किस बात का है। रस विजय का है। इसलिए तो पत्नी में उतना रस नहीं आता जितना दूसरे की पत्नी में रस आता है। क्योंकि दूसरे की पत्नी को अभी भी जीतने का मार्ग है। अपनी पत्नी जीती जा चुकी है--टेकन फॉर ग्रांटेड। अब उसमें कुछ मतलब है नहीं। रस क्या है? रस इस बात का है कि मैं कितने विजय के झंडे गाड़ दूँ, चाहे वह कोई भी आयाम हो चाहे वह कामवासना हो, चाहे धन हो, चाहे पद हो। जहां जितना मुश्किल है, वहां उतना अहंकार को जीतने का उपाय है। वहां अहंकार उतना विजेता होकर बाहर निकलता है।

अगर महावीर से हम पूछें, गहरे में हम समझें तो जहां-जहां अहंकार चेष्टा करता है वहीं-वहीं बलात्कार हो जाता है। यह बलात्कार अनेक रूपों में है। लेकिन फिर भी हम जो देखेंगे, हम सदा ऐसा ही देखेंगे कि अगर एक व्यक्ति किसी स्त्री के साथ रास्ते पर बलात्कार कर रहा हो, तो सदा बलात्कार करने वाला ही जिम्मेवार मालूम पड़ेगा। लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि स्त्री बलात्कार करवाने के लिए कितनी चेष्टाएं कर सकती है। क्योंकि अगर पुरुष को इसमें रस आता है कि वह स्त्री को जीत ले तो स्त्री को भी इसमें रस आता है कि वह किसी को इस हालत में ला दे।

कीर्कगार्ड ने अपनी एक अदभुत किताब लिखी है डायरी ऑफ ए सिड्यूसर, एक व्यभिचारी की डायरी। उसमें कीर्कगार्ड ने लिखा है कि वह जो व्यभिचारी है, जो डायरी लिख रहा है, एक काल्पनिक कथा है। वह व्यभिचारी जीवन के अंत में यह लिखता है कि मैं बड़ी भूल में रहा, मैं समझता था, मैं स्त्रियों को व्यभिचार के लिए राजी कर रहा हूँ। आखिर में मुझे पता चला कि वे मुझसे ज्यादा होशियार हैं कि उन्होंने ही मेरे साथ व्यभिचार करवा लिया था। दे सिड्यूस्ड मी। दैट टेक्नीक वा.ज निगेटिव। इसलिए मुझे भ्रम बना रहा। कोई स्त्री कभी प्रस्ताव नहीं करती किसी पुरुष से विवाह करने का। प्रस्ताव करवा लेती है पुरुष से ही। इंतजाम सब करती है कि वह प्रस्ताव करे। प्रस्ताव करती नहीं है। यह स्त्री और पुरुष के मन का भेद है।

स्त्री के मन का ढंग बहुत सूक्ष्म है। आप देखते हैं कि अगर एक आदमी जा रहा है एक स्त्री को धक्का मारने, तो फौरन हमें लगता है कि गलती इसने किया। और वह स्त्री घर से पूरा इंतजाम करके चली है कि अगर कोई धक्का न मारे तो उदास लौटेगी। धक्का मारे तो भी चिल्ला सकती है। लेकिन चिल्लाने का कारण जरूरी नहीं है कि धक्का मारने पर नाराजगी है। चिल्लाने का सौ में नित्यानबे कारण यह है कि बिना चिल्लाए किसी को पता

नहीं चलेगा कि धक्का मारा गया। पर यह बहुत गहरे में उसको भी पता न हो, इसकी पूरी संभावना है। क्योंकि खूबी जितनी बन-ठन कर, जिस व्यवस्था से निकल रही है, वह धक्का मारने के लिए पूरा का पूरा निमंत्रण है। उस निमंत्रण में हाथ उनका है। हमारे सोचने के जो ढंग हैं वे एकदम हमेशा पक्षपाती हैं। हम हमेशा सोचते हैं, कुछ हो रहा है तो एक आदमी जिम्मेवार है। हमें ख्याल ही नहीं आता कि इस जगत में जिम्मेवारी इतनी आसान नहीं, ज्यादा उलझी हुई है। दूसरा भी जिम्मेवार हो सकता है। और दूसरे की जिम्मेवारी गहरी भी हो सकती है। कुशल भी हो सकती है। चालाक भी हो सकती है। सूक्ष्म भी हो सकती है। महावीर जब देखेंगे तो पूरा देखेंगे। और उस पूरे देखने में, हमारे देखने में फर्क पड़ेगा। महावीर का जो "वि.जन" है, वह टोटल होगा।

अब दूसरी बात यह है कि महावीर कुछ करेंगे कि नहीं! भला अलग देखेंगे, यह भी समझ लिया जाए। कुछ करेंगे कि नहीं? तो मैं आपसे कहना चाहता हूं महावीर कुछ न करेंगे, जो होगा उसे हो जाने देंगे। इस फर्क को समझ लें। आप रास्ते से गुजर रहे हैं और किसी की हत्या हो रही है तो आप खड़े होकर सोचेंगे कि क्या करूं। करूं कि न करूं? आदमी ताकतवर है कि कमजोर दिखता है? करूंगा तो फल क्या होंगे? किसी मिनिस्टर का रिश्तेदार तो नहीं है? करके उलटा मैं तो न फंसूंगा? आप पच्चीस बातें सोचेंगे, तब करेंगे। महावीर से कुछ होगा, सोचेंगे वे नहीं। सोचना वक्त बीते जा चुका। जिस दिन सोचना गया, उसी दिन वे महावीर हुए। विचार अब नहीं चलता। विचार हमेशा पार्श्विक होता है, वि.जन टोटल होता है। विचार हमेशा पक्षपाती होता है; दृष्टि, दर्शन, पूर्ण होता है। महावीर को एक स्थिति दर्शन में दिखाई पड़ेगी। फिर जो हो जाएगा वह हो जाएगा। महावीर लौट कर भी नहीं सोचेंगे कि मैंने क्या किया? क्योंकि उन्होंने कुछ किया नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं पूर्ण कृत्य, कर्म का बंधन नहीं बनता। टोटल एक्ट कोई बंधन नहीं लाता। कुछ उनसे होगा कि नहीं होगा, लेकिन उसे हम प्रिडिक्ट नहीं कर सकते, उसे हम कह नहीं सकते कि वे क्या करेंगे। महावीर भी नहीं कह सकते पहले से कि मैं क्या करूंगा। उस सिचुएशन में, उस स्थिति में महावीर से क्या होगा, इसके लिए कोई प्रिडिक्शन, कोई ज्योतिषी नहीं बता सकता।

हमारे बाबत प्रिडिक्शन हो सकता है, इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। जितनी कम समझ हो, उतने हम प्रिडिक्टेबल होते हैं। जितनी हमारी नासमझी होगी, उतनी हमारे बाबत जानकारी बताई जा सकती है कि हम क्या करेंगे। मशीन के बाबत हम पूरे प्रिडिक्टेबल हो सकते हैं। जानवर के बाबत थोड़ी दिक्कत होती है, लेकिन फिर भी नब्बे प्रतिशत हम कह सकते हैं कि गाय आज सायं घर आकर क्या करेगी कि नहीं कह सकते? बिल्कुल कह सकते हैं। कभी-कभी भूल-चूक हो सकती है, क्योंकि गाय एकदम यंत्र नहीं है। लेकिन मशीन क्या करेगी, यह तो हम जानते हैं। जैसे-जैसे जीवन चेतना विकसित होती है, वैसे-वैसे अनप्रिडिक्टेबिलिटी बढ़ती है। साधारण आदमी के बाबत कहा जा सकता है कि यह कल सुबह क्या करेगा। महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्तियों के बाबत नहीं कहा जा सकता कि वे क्या करेंगे। उनसे क्या होगा, यह बहुत अज्ञात और रहस्यपूर्ण है। क्योंकि उनके टोटल वि.जन में, उनकी पूर्ण दृष्टि में क्या दिखाई पड़ेगा, और उस दिखाई पड़ने को वे सोच कर कुछ करने नहीं जाएंगे। वहां दिखाई पड़ेगा, वहां कृत्य घटित हो जाएगा। वे दर्पण की तरह हैं। जो घटना चारों तरफ घट रही होगी वह दर्पण में प्रतिलिखित हो जाएगी, परिलिखित हो जाएगी, रिफ्लेक्ट हो जाएगी। और उसका जिम्मा महावीर पर बिल्कुल नहीं है।

अगर महावीर ने किसी की हत्या होते रोका या किसी पर व्यभिचार होते रोका तो महावीर कहीं किसी से कहेंगे नहीं कि मैंने किसी पर व्यभिचार होते रोका था। महावीर कहेंगे कि मैंने देखा था कि व्यभिचार हो रहा है और मैंने यह भी देखा था कि इस शरीर ने बाधा डाली। आई वा.ज ए विटनेस। महावीर गहरे में साक्षी ही बने रहेंगे, व्यभिचार के भी और व्यभिचार के रोके जाने के भी। तभी वे बाहर होंगे कर्म के, अन्यथा कर्म के बाहर नहीं हो सकते। विचार से, वासना से, इच्छा से, अभिप्राय से, प्रयोजन से किया गया कर्म फल को लाता

है। महावीर के ज्ञान के बाद अब जो भी वे कर रहे हैं वह प्रयोजन रहित, लक्ष्य रहित, फल रहित, विचार रहित, शून्य से निकला हुआ कर्म है। शून्य से जब कर्म निकलता है तब वह भविष्यवाणी के बाहर होता है। मैं नहीं कह सकता कि महावीर क्या करेंगे। और अगर आपने महावीर से पूछा होता तो महावीर भी नहीं कह सकते थे कि मैं क्या करूंगा। महावीर कहेंगे कि तुम भी देखोगे कि क्या होता है, और मैं भी देखूंगा कि क्या होता है। करना मैंने छोड़ दिया है। इसलिए महावीर या लाओत्से या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों के कर्म को समझना इस जगत में सर्वाधिक दुरूह पहेली है।

हम क्या करते हैं, और हम पूछना क्यों चाहते हैं? हम पूछना इसलिए चाहते हैं कि अगर हमें पक्का पता चल जाए कि महावीर क्या करेंगे, तो वही हम भी कर सकते हैं। ध्यान रहे, महावीर हुए बिना आप वही नहीं कर सकते। हां, बिल्कुल वही करते हुए मालूम पड़ सकते हैं, लेकिन वही नहीं होगा। यही तो उपद्रव हुआ है। महावीर के पीछे ढाई हजार साल से लोग चल रहे हैं। और उन्होंने महावीर को विशेष स्थितियों में जो-जो करते देखा है, उसकी नकल कर रहे हैं। वह नकल है। उससे आत्मा का कोई अनुभव उपजता नहीं है। महावीर के लिए वह सहज कृत्य था, इनके लिए प्रयास-सिद्ध है। महावीर के लिए दृष्टि से निष्पन्न हुआ था, इनके लिए सिर्फ केवल एक बनाई गई आदत है। अगर महावीर किसी दिन उपवास से रह गए थे तो महावीर के लिए वह उपवास और ही अर्थ रखता था। उसके निहितार्थ अलग थे। हो सकता है उस दिन वे इतने आत्मलीन थे कि उन्हें शरीर का स्मरण ही न आया हो। लेकिन आज उनके पीछे जो उपवास कर रहा है, वह जब भोजन करता है तब उसे शरीर का स्मरण नहीं आता और जब वह उपवास करता है तब चौबीस घंटे शरीर का स्मरण आता है। अच्छा था कि वह भोजन ही कर लेता क्योंकि वह महावीर के ज्यादा निकट होता, शरीर के स्मरण न आने में। और भोजन न करके चौबीस घंटे शरीर का स्मरण ही कर रहा है। और महावीर का उपवास फलित हुआ था इसीलिए कि शरीर का स्मरण ही नहीं रहा था तो भूख का किसे पता चले, कौन भोजन की तलाश में जाए।

महावीर जैसे व्यक्तियों की अनुकृति नहीं बना जा सकता। कोई नहीं बन सकता। और सभी परंपराएं यही काम करती हैं। यही काम विनष्ट कर देता है। देख लेते हैं कि महावीर क्या कर रहे हैं। और इसी से दुनिया में सारे धर्मों के झगड़े खड़े होते हैं। क्योंकि कृष्ण ने कुछ और किया, बुद्ध ने कुछ और किया, क्राइस्ट ने कुछ और किया, सबकी स्थितियां अलग थीं। महावीर ने कुछ और किया। तो महावीर का अनुसरण करने वाला कहता है कि कृष्ण गलत कर रहे हैं क्योंकि महावीर ने ऐसा कभी नहीं किया। बुद्ध गलत कर रहे हैं क्योंकि महावीर ने ऐसा कभी नहीं किया। बुद्ध का मानने वाला कहता है कि बुद्ध ठीक कर रहे हैं। और ऐसी स्थिति में महावीर ने ऐसा नहीं किया, इससे सिद्ध होता है कि उन्हें ज्ञान नहीं हुआ था।

हम कर्मों से ज्ञान को नापते हैं, यहीं भूल हो जाती है। कर्म ज्ञान से पैदा होते हैं और ज्ञान कर्म से बहुत बड़ी घटना है। जैसे लहर पैदा होती है सागर में, लेकिन लहरों से सागर को नहीं नापा जाता। और अगर हिंद महासागर में और तरह की लहर पैदा होती है और प्रशांत महासागर में और तरह की हवाएं बहती हैं, और दिशाओं में बहती हैं; तो आप यह मत समझना कि हिंद महासागर सागर है और प्रशांत महासागर सागर नहीं है; क्योंकि वैसी लहर यहां कहां पैदा हो रही है! न पानी का वैसा रंग है।

महावीर की स्थितियों में महावीर क्या करते हैं, वही हम जानते हैं। बुद्ध की स्थितियों में बुद्ध क्या करते हैं, वही हम जानते हैं। फिर पीछे परंपरा जड़ हो जाती है। फिर हम पकड़ कर बैठ जाते हैं। फिर हम शास्त्रों में खोजते रहते हैं कि इस स्थिति में महावीर ने क्या किया था वही हम करें। न तो स्थिति है वही, और अगर स्थिति भी वही है तो एक बात तो पक्की है कि आप महावीर नहीं हैं। क्योंकि महावीर ने कभी नहीं लौट कर देखा कि किसने क्या किया था, वैसा मैं करूं। महावीर से जो हुआ इसलिए ठीक से समझें तो महावीर जो कर रहे हैं वह कृत्य नहीं है, एकट नहीं है, हैपनिंग है, वह घटना है। वैसा हो रहा है। वह कोई नियमबद्ध बात नहीं है। वह नियम मुक्त चेतना से घटी हुई घटना है। वह स्वतंत्र घटना है। इसीलिए कर्म का उसमें बंधन नहीं है।

महावीर से जरूर बहुत कुछ होगा। क्या होगा, नहीं कहा जा सकता। कर्म उसका नाम नहीं है, होगा। हैपनिंग होगी। इसलिए मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता कि महावीर क्या करेंगे।

प्रतिपल जीवन बदल रहा है। जिंदगी स्टिल फोटोग्राफ की तरह नहीं है। जैसा कि जड़ फोटोग्राफ होता है, वैसी नहीं है। जिंदगी चलचित्र की भांति है भागती हुई फिल्म की भांति, डाइनेमिक! वहां सब बदल रहा है, सब पूरे समय बदल रहा है। सारा जगत बदला जा रहा है। सब बदला जा रहा है। हर बार नई स्थिति है। और हर बार नई स्थिति में महावीर हर बार नये ढंग से होंगे प्रकट।

अगर महावीर आज हों, तो जैनो को जितनी कठिनाई होगी उतनी किसी और को नहीं होगी। क्योंकि उनको बड़ी दिक्कत होगी। वे सिद्ध करेंगे कि यह आदमी गलत है, क्योंकि वह महावीर की पच्चीस सौ साल पहले वाली जिंदगी उठा कर जांच करेंगे कि वह आदमी वैसे ही कर रहा कि नहीं कर रहा है। और एक बात पक्की है कि महावीर वैसा नहीं कर सकते, क्योंकि वैसी कोई स्थिति नहीं है। सब बदल गया है... सब बदल गया है। और जब वह कुछ और करेंगे वे और करेंगे ही तो जिसने जड़ बांध रखी है वह बड़ी दिक्कत में पड़ेगा। वह कहेगा यह नहीं हो सकता है। यह आदमी गलत है। सही आदमी तो वही था जो पच्चीस सौ साल पहले था। इसलिए महावीर को जैन भर स्वीकार नहीं कर सकेंगे। हां, और कोई मिल जाएं नये लोग स्वीकार करने वाले, तो अलग बात है। यही बुद्ध के साथ होगा, यही कृष्ण के साथ होगा। होने का कारण है क्योंकि हम कर्मों को पकड़ कर बैठ जाते हैं।

कर्म तो राख की तरह हैं, धूल की तरह हैं। टूट गए पत्ते हैं वृक्षों के सूख गए पत्ते हैं वृक्षों के। उनसे वृक्ष नहीं नापे जाते। वृक्ष में तो प्रतिपल नये अंकुर आ रहे हैं। वहीं उसका जीवन है। सूखे पत्ते उसका जीवन नहीं है। सूखे पत्ते तो बताते यही हैं कि अब वे वृक्ष के लिए व्यर्थ होकर बाहर गिर गए हैं। सब कर्म आपके सूखे पत्ते हैं। वे बाहर गिर जाते हैं। भीतर तो जीवन प्रतिपल नया और हरा होता चला जाता है। वह डाइनेमिक है। हम सूखे पत्तों को इकट्ठा कर लेते हैं और सोचते हैं वृक्ष को जान लिया। सूखे पत्तों से वृक्षों का क्या लेना-देना है! वृक्ष का संबंध तो सतत धारा से है प्राण की; जहां नये पत्ते प्रतिपल अंकुरित हो रहे हैं। नये पत्ते कैसे अंकुरित होंगे, नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वृक्ष सोच-सोच कर पत्ते नहीं निकालते। वृक्ष से पत्ते निकलते हैं। सूरज कैसा होगा, हवाएं कैसी होंगी, वर्षा कैसी होगी, चांद-तारे कैसे होंगे, इस सब पर निर्भर करेगा। उस सबसे पत्ते निकलेंगे। टोटल से निकलेगा सब, समग्र से निकलेगा सब। महावीर जैसे लोग कास्मिक में जीते हैं, समग्र में जीते हैं। कुछ नहीं कहा जा सकता कि वे क्या करेंगे। हो सकता है जिस पर बलात्कार हो रहा है, उसको डांटें-डपटें। कुछ कहा नहीं जा सकता। नहीं तो भूल हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन गुजर रहा है गांव से। देखा कि एक छोटे से आदमी को एक बहुत बड़ा, तगड़ा आदमी पिटाई कर रहा है। उसकी छाती पर बैठा हुआ है। मुल्ला को बहुत गुस्सा आ गया। मुल्ला दौड़ा और तगड़े आदमी पर टूट पड़ा। बामुश्किल तगड़ा आदमी काफी तगड़ा था; मुल्ला उसके लिए और भी काफी पड़ रहा था किसी तरह उसको नीचे गिरा पाया। दोनों ने मिल कर उसकी अच्छी मरम्मत की।

जैसे ही वह छोटा आदमी छूटा, वह निकल भागा। वह बड़ा आदमी बहुत देर से कह रहा था, मेरी सुन भी, लेकिन मुल्ला इतने गुस्से में था कि सुने कैसे। जब वह निकल भागा तब मुल्ला ने कहा तू क्या कहता है?

वह बोला कि वह मेरी जेब काट कर भाग गया। वह मेरी जेब काट रहा था, उसी में झगड़ा हुआ। और तूने उलटे कुटाई कर दिया और उसको निकाल दिया।

मुल्ला ने कहा यह तो बहुत बुरी बात है। लेकिन तूने पहले क्यों नहीं कहा?

उस आदमी ने कहा मैं बार-बार कह रहा हूं, लेकिन तू सुने तब न! तू तो एकदम पिटाई में लग गया।

जिंदगी बहुत जटिल है। वहां कौन पिट रहा है, जरूरी नहीं कि वह पिटने के योग्य हो। कौन पीट रहा है, यह जरूरी नहीं कि वह बेचारा गलत ही कर रहा है। मुल्ला ने कहा--उस आदमी को मैं ढूंढूंगा। ढूंढा भी। लेकिन जो छोटा सा आदमी इतने बड़े आदमी की जेब काटकर निकल भागा था--वह मुल्ला को मिल गया और उसने

फौरन मनीबेग जो चुराया था, मुल्ला को दे दिया, कहा इसे संभाल, असली मालिक तू ही है। क्योंकि मैं तो पिट गया था।

जिंदगी जटिल है। महावीर जैसे व्यक्ति उसको उसकी पूरी जटिलता में देखते हैं और जब वह उसकी पूरी जटिलता में दिखाई पड़ती है तो क्या होगा उनसे, कहना आसान नहीं है। और प्रत्येक घटना में जटिलता बदलती चली जाती है। डाइनेमिक बहाव है।

संयम पर आज कुछ समझ लें। क्योंकि महावीर उसे धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण सूत्र कहते हैं। अहिंसा आत्मा है, संयम जैसे श्वास और तप जैसे देह। महावीर ने शुरू किया, कहा पहले अहिंसा-संजमो तबो। तप आखिर में कहा, संयम बीच में कहा, अहिंसा पहले कहा। हम जब भी देखते हैं, तप हमें पहले दिखाई पड़ता है। संयम पीछे दिखाई पड़ता है। अहिंसा तो शायद ही दिखाई पड़ती है, बहुत मुश्किल है देखना।

महावीर भीतर से बाहर की तरफ चलते हैं, हम बाहर से भीतर की तरफ चलते हैं। इसलिए हम तपस्वी की जितनी पूजा करते हैं उतनी अहिंसक की न कर पाएंगे। क्योंकि तप हमें दिखाई पड़ता है, वह देह जैसा बाहर है। अहिंसा गहरे में है। वह दिखाई नहीं पड़ती, वह अदृश्य है। संयम का हम अनुमान लगाते हैं। जब हमें कोई तपस्वी दिखाई पड़ता है तो हम समझते हैं, संयमी है। क्योंकि वह तप कैसे करेगा! जब कोई हमें भोगी दिखाई पड़ता है तो हम समझते हैं, असंयमी है, नहीं भोग कैसे करेगा! जरूरी नहीं है यह। तपस्वी भी असंयमी हो सकता है और ऊपर से दिखाई पड़ने वाला भोगी भी संयमी हो सकता है। इसलिए हम संयम का सिर्फ अनुमान लगाते हैं, वह इनोसेंट है। तब हमें दिखाई पड़ जाता है, वह साफ है। संयम का हम अनुमान लगाते हैं, वह साफ नहीं है। वह अनुमान हमारा ऐसा ही है जैसे रास्ते पर गिरा हुआ पानी देख कर हम सोचें कि वर्षा हुई होगी। म्युनिसिपल की मोटर भी पानी गिरा जा सकती है। पुराने तर्कशास्त्रों की किताबों में लिखा है कि जहां-जहां पानी गिरा दिखाई पड़े समझना कि वर्षा हुई होगी, क्योंकि उस वक्त म्युनिसिपल की मोटर नहीं थी।

संयम... हम अनुमान लगाते हैं कि जो आदमी तप कर रहा है, वह संयमी है--जरूरी नहीं। तप करने वाला असंयमी हो सकता है, यद्यपि संयमी के जीवन में तप होता है। लेकिन तपस्वी के जीवन में संयम का होना आवश्यक नहीं है। महावीर भीतर से चलते हैं। क्योंकि वहीं प्राण है और वहीं से चलना उचित है। क्षुद्र से विराट की तरफ जाने में सदा भूलें होती हैं। विराट से क्षुद्र की तरफ आने में कभी भूल नहीं होती। क्योंकि क्षुद्र से जो विराट की तरफ चलता है वह क्षुद्र की धारणाओं को विराट तक ले जाता है। इससे भूल होती है। उसकी संकीर्ण दृष्टि को वह खींचता है। उससे भूल होती है।

तो संयम का पहले तो हम अर्थ समझ लें। संयम से जो समझा जाता रहा है, वह महावीर का प्रयोजन नहीं है। जो आमतौर से समझा जाता है, उसका अर्थ है निरोध, विरोध, दमन, नियंत्रण, कंट्रोल। ऐसा भाव हमारे मन में बैठ गया है संयम से। कोई आदमी अपने को दबाता है, रोकता है, वृत्तियों को बांधता है, नियंत्रण रखता है तो हम कहते हैं, संयमी है। संयम की हमारी परिभाषा बड़ी निषेधात्मक है, बड़ी निगेटिव है। उसका कोई विधायक रूप हमारे ख्याल में नहीं है। एक आदमी कम खाना खाता है, तो हम कहते हैं कि संयमी है। एक आदमी कम सोता है तो हम कहते हैं कि संयमी है। एक आदमी विवाह नहीं करता है तो हम कहते हैं, संयमी है। एक आदमी कम कपड़े पहनता है तो हम कहते हैं, संयमी है। सीमा बनाता है तो हम कहते हैं, संयमी है। जितना निषेध करता है, जितनी सीमा बनाता है, जितना नियंत्रण करता है, जितना बांधता है अपने को, हम कहते हैं उतना संयमी है।

लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि महावीर जैसे व्यक्ति जीवन को निषेध की परिभाषाएं नहीं देते। क्योंकि जीवन निषेध से नहीं चलता है। जीवन चलता है विधेय से, पाजिटिव से। जीवन की सारी ऊर्जा विधेय से चलती है। तो महावीर की यह परिभाषा नहीं हो सकती। महावीर की परिभाषा तो संयम के लिए बड़ी विधेय की होगी, बड़ी विधायक होगी। सशक्त होगी, जीवंत होगी। इतनी मुर्दा नहीं हो सकती जितनी हमारी परिभाषा है।

इसीलिए हमारी परिभाषा मानकर जो संयम में जाता है उसके जीवन का तेज बढ़ता हुआ दिखाई नहीं पड़ता, और क्षीण होता हुआ मालूम पड़ता है। मगर हम कभी फिक्र नहीं करते, हम कभी ख्याल नहीं करते कि महावीर ने जो संयम की बात कही है उससे तो जीवन की महिमा बढ़नी चाहिए, उससे तो प्रतिभा और आभामंडित होनी चाहिए। लेकिन जिनको हम तपस्वी कहते हैं उनकी आई क्यू की कभी जांच करवाई कि उनकी बुद्धि का कितना अंक बढ़ा? उनकी बुद्धि का अंक और कम होगा लेकिन हमें प्रयोजन नहीं कि इनकी प्रतिभा नीचे गिर रही है। हमें प्रयोजन है कि रोटी कितनी खा रहे हैं, कपड़ा कितना पहन रहे हैं। बुद्धिहीन से बुद्धिहीन टिक सकता है, अगर वह रोटी बना ले अगर दो रोटी पर राजी हो जाए, अगर एक बार भोजन को तैयार हो जाए।

एक साधु मेरे पास आए थे। वे मुझसे कहने लगे कि आपकी बात मुझे ठीक लगती है। मैं छोड़ देना चाहता हूं यह परंपरागत साधुता। लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पड़ूंगा। अभी करोड़पति मेरे पैर छूता है। कल वह मुझे पहरेदार नौकरी भी देने को तैयार नहीं हो सकता, वही आदमी। कभी सोचा है आपने कि जिसके आप पैर छूते हैं अगर वह घर में बर्तन मलने के लिए आपके पास आए तो आप कहेंगे, सर्टिफिकेट है? कहां करते थे नौकरी, पहले? कहां तक पढ़े हो? चोरी-चपाटी तो नहीं करते? लेकिन पैर छूने में किसी प्रमाण-पत्र की कोई जरूरत नहीं है। इतना प्रमाण-पत्र काफी होता है कि आपकी बुद्धि की समझ में आ जाए कि यह संयमी है। संयम का जैसे अपने में हमने कोई मूल्य समझ रखा है कि जो अपने को रोक लेता है तो संयमी है। रोक लेने में जैसे अपना कोई गुण है। नहीं, जीवन के सारे गुण फैलाव के हैं। जीवन के सारे गुण विस्तार के हैं। जीवन के सारे गुण विधायक उपलब्धि के हैं, निषेध के नहीं हैं। महावीर के लिए संयम और है। उसकी हम बात करें, लेकिन हम जिसे संयम समझते हैं उसको भी हम ख्याल में ले लें।

हमारे लिए संयम का अर्थ है अपने से लड़ता हुआ आदमी; महावीर के लिए संयम का अर्थ है अपने साथ से राजी हुआ आदमी। हमारे लिए संयम का अर्थ है अपनी वृत्तियों को संभालता हुआ आदमी; महावीर के लिए संयम का अर्थ है अपनी वृत्तियों का मालिक हो गया जो। सम्हालता वही है, जो मालिक नहीं है। सम्हालना पड़ता ही इसलिए है कि वृत्तियां अपनी मालिकियत रखती हैं। लड़ना पड़ता इसीलिए है कि आप वृत्तियों से कमजोर हैं। अगर आप वृत्तियों से ज्यादा शक्तिशाली हैं तो लड़ने की जरूरत नहीं रहती। वृत्तियां अपने से गिर जाती हैं। महावीर के लिए संयम का अर्थ है आत्मवान, इतना आत्मवान कि वृत्तियां उसके सामने खड़ी भी नहीं हो पातीं, आवाज भी नहीं दे पातीं। उसका इशारा पर्याप्त है। ऐसा नहीं है कि उसे क्रोध को दबाना पड़ता है, ताकत लगा कर। क्योंकि जिसे ताकत लगा कर दबाना पड़े, उससे हम कमजोर हैं। और जिसे हमने ताकत लगा कर दबाया है, उसे हम कितना ही दबाएं, हम दबा न पाएंगे। वह आज नहीं कल टूटता ही रहेगा, फूटता ही रहेगा, बहता ही रहेगा। महावीर कहते हैं: संयम का अर्थ है आत्मवान इतना आत्मवान है व्यक्ति कि क्रोध क्षमता नहीं जुटा सकता कि उसके सामने आ जाए।

एक कालेज में मैं था। वहां एक बहुत मजेदार घटना घटी। उस कालेज के प्रिंसिपल बहुत शक्तिशाली आदमी थे। बहुत दिन से प्रिंसिपल थे। उम्र भी हो गई रिटायर होने की, लेकिन वे रिटायर नहीं होते थे। प्राइवेट कालेज था। कमेटी के लोग उनसे डरते थे। प्रोफेसर उनसे डरते थे। फिर दस-पांच प्रोफेसरों ने इकट्ठा होकर कुछ ताकत जुटाई। और उनमें से जो सबसे ताकतवर प्रोफेसर था, उसको आगे बढ़ाने की कोशिश की और कहा कि तुम सबसे ज्यादा पुराने भी हो, सीनियर मोस्ट भी हो, तुम्हें प्रिंसिपल होना चाहिए और इस आदमी को अब हटाना चाहिए। सारे प्रोफेसरों ने ताकत लगा कर मैंने उनसे कहा भी कि देखो, तुम झंझट में पड़ोगे, क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम सब कमजोर हो। और जिस आदमी को तुम आगे बढ़ा रहे हो, वह आदमी बिल्कुल कमजोर है। फिर भी वे नहीं माने। उन्होंने कहा सब संगठित हैं, संगठन में शक्ति है। सारे प्रोफेसर प्रिंसिपल के खिलाफ इकट्ठे हो गए और एक दिन उन्होंने कालेज पर कब्जा भी कर लिया। और जिन सज्जन को चुना था, उनको प्रिंसिपल की कुर्सी पर बिठा दिया।

मैं देखने पहुंचा कि वहां क्या होने वाला है। जो प्रिंसिपल थे उन्हें ठीक वक्त पर, उनके घर खबर कर दी गई कि ऐसा-ऐसा हुआ है। उन्होंने कहा, हो जाने दो। वे ठीक वक्त पर ग्यारह बजे, जैसे रोज आते थे, आए दफ्तर में। वे दफ्तर में आए तो जिसको बिठाला था, उस आदमी ने उठ कर नमस्कार किया और कहा आइए, बैठिए। वह तत्काल हट गया वहां से। उस प्रिंसिपल ने पुलिस को खबर नहीं की। इन लोगों ने खबर कर रखी थी कि कोई गड़बड़ हो तो! मैंने उनसे पूछा कि आपने पुलिस को खबर नहीं की? उन्होंने कहा इन लोगों के लिए पुलिस को खबर! इनको जो करना है, करने दो।

शक्ति जब स्वयं के भीतर होती है तो वृत्तियों से लड़ना नहीं पड़ता। वृत्तियां आत्मवान व्यक्ति के सामने सिर झुका कर खड़ी हो जाती हैं; वे तो कमजोर आत्मा के सामने ही सिर उठाती हैं। इसलिए तो हमने आमतौर से सुन रखी है परिभाषा संयम की कि जैसे कोई सारथी रथ में बंधे हुए घोड़ों की लगामें पकड़े हुए बैठा है ऐसा अर्थ संयम का नहीं है। वह दमन का अर्थ है, और गलत है।

संयम का महावीर के लिए तो अर्थ है जैसे कोई शक्तिवान अपनी शक्ति में प्रतिष्ठित है। उसकी शक्ति में प्रतिष्ठित होना ही, उसका अपनी ऊर्जा में होना ही वृत्तियों का निर्बल और नपुंसक हो जाना है, इम्पोटेंट हो जाना है। महावीर अपनी कामवासना पर वश पाकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होते। ब्रह्मचर्य की इतनी ऊर्जा है कि कामवासना सिर नहीं उठा पाती। यह विधायक अर्थ है। महावीर अपनी हिंसा से लड़ कर अहिंसक नहीं बनते। अहिंसक हैं, इसलिए हिंसा सिर नहीं उठा पाती। महावीर अपने क्रोध से लड़कर क्षमा नहीं करते। क्षमा की इतनी शक्ति है कि क्रोध को उठने का अवसर कहां है! महावीर के लिए अर्थ है स्वयं की शक्ति से परिचित हो जाना संयम है।

संयम इसे क्यों नाम दिया है? संयम नाम बहुत अर्थपूर्ण है और संयम का, संयम शब्द का अर्थ भी बहुत महत्वपूर्ण है। अंग्रेजी में जितनी भी किताबें लिखी गई हैं और संयम के बाबत जिन्होंने भी लिखा है, उन्होंने उसका अनुवाद कंट्रोल किया है जो कि गलत है। अंग्रेजी में सिर्फ एक शब्द है जो संयम का अनुवाद बन सकता है, लेकिन भाषाशास्त्री को ख्याल में नहीं आएगा। क्योंकि भाषा की दृष्टि से वह ठीक नहीं है। अंग्रेजी में जो शब्द है ट्रैकिलिटी, वह संयम का अर्थ हो सकता है। संयम का अर्थ है इतना शांत कि विचलित नहीं होता, जो। संयम का अर्थ है अविचलित, निष्कंप। संयम का अर्थ है ठहरा हुआ। गीता में कृष्ण ने जिसे स्थितप्रज्ञ कहा है, महावीर के लिए वही संयम है। संयम का अर्थ है ठहरा हुआ, अविचलित, निष्कंप, डांवाडोल नहीं होता है, जो। जो यहां-वहां नहीं डोलता रहता, जो कंपित नहीं होता रहता, जो अपने में ठहरा हुआ है। जो पैर जमाकर अपने में खड़ा हुआ है।

इसे हम और दिशा से समझें तो ख्याल में आ जाएगा। अगर संयम का ऐसा अर्थ है तो असंयम का अर्थ हुआ कंपन, वेवरिंग, ट्रेबलिंग। यह जो कंपता हुआ मन है, और कंपते हुए मन का नियम है कि वह एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अगर कामवासना में जाएगा तो अति पर चला जाएगा। फिर ऊबेगा, परेशान होगा क्योंकि किसी भी वासना में होना संभव नहीं है सदा के लिए। सब वासनाएं उबा देती हैं, सब वासनाएं घबड़ा देती हैं क्योंकि उनसे मिलता कुछ भी नहीं है। मिलने के जितने सपने थे, वे और टूट जाते हैं। सिवाय विफलता और विषाद के कुछ हाथ नहीं लगता। तो वासना घिरा मन अति पर जाता है, फिर वासना से ऊब जाता है, घबड़ा जाता है फिर दूसरी अति पर चला जाता है। फिर वह वासना के विपरीत खड़ा हो जाता है। कल तक ज्यादा खाता था, फिर एकदम अनशन करने लगता है।

इसलिए ध्यान रखना, अनशन की धारणा सिर्फ ज्यादा भोजन उपलब्ध समाजों में होती है। अगर जैनियों को उपवास और अनशन अपील करता है तो उसका कारण यह नहीं है कि वे महावीर को समझ गए हैं कि उनका क्या मतलब होता है। उसका कुल मतलब इतना है कि वह ओवर-फैड समाज है। ज्यादा उनको खाने को मिला हुआ है, और कोई कारण नहीं है। कभी आपने देखा है, गरीब का जो धार्मिक दिन होता है, उस दिन वह

अच्छा खाना बनाता है। और अमीर का जो धार्मिक दिन होता है, उस दिन वह उपवास करता है। अजीब मामला है। अजीब मजा है। तो जितने गरीब धर्म हैं दुनिया में, उनका उत्सव का दिन ज्यादा भोजन का दिन है। जितने अमीर धर्म हैं दुनिया में, उनके उत्सव का दिन उपवास का दिन है। जहां-जहां भोजन बढ़ेगा वहां-वहां उपवास का कल्ट बढ़ता है। आज अमरीका में जितने उपवास का कल्ट है, आज दुनिया में कहीं भी नहीं है। अमरीका में जितने लोग आज उपवास की चर्चा करते हैं और फास्टिंग की सलाह देते हैं, नेचरोपैथी पर लोग उत्सुक होते हैं, उतने दुनिया में कहीं भी नहीं। उसका कारण है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आप महावीर को समझ कर उत्सुक हो रहे हैं। आप ज्यादा खा गए हैं, इसलिए उत्सुक हो रहे हैं। दूसरी अति पर चले जाएंगे। पर्युषण आएगा, आठ दिन, दस दिन आप कम खा लेंगे और दस दिन योजनाएं बनाएंगे खाने की, आगे। और दस दिन के बाद पागल की तरह टूटेंगे और ज्यादा खा जाएंगे और बीमार पड़ेंगे। फिर अगले वर्ष यही होगा।

सच तो यह है कि ज्यादा खाने वाला जब उपवास करता है तो उससे कुछ उपलब्ध नहीं होता, सिवाय इसके कि उसको भोजन करने का रस फिर से उपलब्ध हो, रि-ओरिएंटेशन हो जाता है। आठ-दस दिन भूखे रह लिए, स्वाद जीभ में फिर आ जाता है। और महावीर कहते हैं उपवास में रस से मुक्ति होनी चाहिए, उनका रस और प्रगाढ़ हो जाता है। उपवास में सिवाय रस के बाबत आदमी और कुछ नहीं सोचता, रस चिंतन चलता है और योजना बनती है। भूख जगती है, और कुछ नहीं होता। मर गई भूख, स्टिल हो गई भूख, फिर सजीव हो जाती है। दस दिन के बाद आदमी टूट पड़ता है जोर से भोजन पर। अति पर चला जाता है मन। असंयम है एक अति से दूसरी अति, अति पर डोलते रहना। फ्राम वन एक्सट्रीम टु दि अदर। संयम का अर्थ है मध्य में हो जाना, अनति नो एक्सट्रीम।

अगर हम समझते हों कि ज्यादा भोजन असंयम है, तो मैं आपसे कहता हूं कि कम भोजन भी असंयम है, दूसरी अति पर। सम्यक आहार संयम है, सम्यक आहार बड़ी मुश्किल चीज है। ज्यादा भोजन करना बहुत आसान है। बिल्कुल भोजन न करना बहुत आसान है। ज्यादा खा लेना आसान, कम खा लेना आसान सम्यक आहार अति कठिन है। क्योंकि मन जो है, वह सम्यक पर रुकता ही नहीं। और महावीर की शब्दावली में अगर कोई शब्द सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है तो वह सम्यक है। सम्यक का अर्थ है इन दि मिडल, नैवर टु दि एक्सट्रीम। कभी अति पर नहीं, सम। जहां सब चीजें सम हो जाती हों, अति का कोई तनाव नहीं रह जाता, जहां सब चीजें ट्रैकिलिटी को उपलब्ध हो जाती हैं। जहां न इस तरफ खींचे जाते, न उस तरफ। जहां दोनों के मध्य में खड़े हो जाते हैं। वह जो समस्वर है जीवन का, सभी दिशाओं में सभी दिशाओं में, उस समस्वरता को पा लेना संयम है। हम उसे कभी न पा सकेंगे। क्योंकि हम निषेध करते हैं। निषेध में हम दूसरी अति पर होते हैं। निषेध के लिए दूसरी अति पर जाना जरूरी होता है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हो गया। दौरा कर रहा था अपने कांस्टिट्यूएन्सी का, अपने चुनाव-क्षेत्र का। बड़े नगर में आया, जो केंद्र था चुनावक्षेत्र का। मित्रों से मिला। एक मित्र ने कहा कि फलां आदमी तुम्हारे खिलाफ ऐसा ऐसा बोलता था। तो मुल्ला जितनी गाली जानता था, उसने सब दीं।

उसने कहा--वह आदमी कोई आदमी है, शैतान की औलाद है। और एक दफा मुझे चुन जाने दो, उसे नरक भिजवा कर रहूंगा।

उस मित्र ने कहा कि मैंने तो सिर्फ सुना था कि मुल्ला, तुम बहुत अच्छी गालियां दे सकते हो, इसलिए मैंने यह कहा। वह आदमी तुम्हारा बड़ा प्रशंसक है।

मुल्ला ने कहा कि मैं पहले से ही जानता हूं, वह देवता है। एक दफा मुझे चुन जाने दो, देखना, मैं उसकी पूजा करवा दूंगा, मंदिरों में बिठा दूंगा। वह आदमी देवता है।

उस आदमी ने कहा मुल्ला, इतनी जल्दी तुम बदल जाते हो?

मुल्ला ने कहा कौन नहीं बदल जाता? सभी बदल जाते हैं। मन ऐसा ही बदलता है। जो आज रूप की देवी मालूम पड़ती है, कल वही साक्षात कुरूपता मालूम पड़ सकती है।

मन तत्काल एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। जिसे आज आप शिखरों पर बिठाते हैं, कल उसे आप घाटियों में उतार देते हैं। मन बीच में नहीं रुकता। क्योंकि मन का अर्थ है तनाव, टेंशन। बीच में रुकेंगे तो तनाव तो होगा नहीं। जब तक अति पर न हो तब तक तनाव नहीं होता। इसलिए एक अति से दूसरी अति पर मन डोलता रहता है। मन जी ही सकता है अति में। संयम में तो मन समाप्त हो जाता है। इसलिए जब आप कहते हैं फलां आदमी के पास बड़ा संयमी मन है तब आप बिल्कुल गलत कहते हैं। संयमी के पास मन होता ही नहीं। इसलिए जैन-बौद्धों में जो फकीर हैं वे कहते हैं संयम तभी उपलब्ध होता है जब नो-माइंड उपलब्ध होता है। जब मन नहीं रह जाता है। कबीर ने कहा है जब अ-मनी अवस्था आती है, नो-माइंड की, अ-मनी-मन नहीं रह जाता, तभी संयम उपलब्ध होता है। अगर हम ऐसा कहें कि मन ही असंयम है, तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी। ठीक ही होगा यही। मन ही असंयम है। मन का नियम है--तनाव, खिंचे रहो। खिंचे रहो इसके लिए जरूरी है कि अति पर रहो, नहीं तो खिंचे नहीं रहोगे। अति पर रहो, तो खिंचाव बना रहेगा, तनाव बना रहेगा, चित्त तना रहेगा। और हम सब ऐसे लोग हैं कि जितना चित्त तना रहे, उतना ही हमें लगता है कि हम जीवित हैं। अगर चित्त में कोई तनाव न हो तो हमें लगता है मरे, मर न जाएं, खो न जाएं।

जो लोग ध्यान में गहरा उतरते हैं, मुझे आकर कहने लगते हैं कि अब तो बहुत डर लगता है। ऐसा लगता है, कहीं मर न जाऊं। मरने का कोई सवाल ही नहीं है ध्यान में, लेकिन डर लगने का सवाल है। डर इसलिए लगता है कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता है, मन शून्य होता है। और जब मन शून्य होता है, तो हमने तो अपने को मन ही समझा हुआ है, तो लगता है हम मरे। मिट न जाएंगे! अगर अतीत छोड़ देंगे तो समाप्त न हो जाएंगे! गति कहाँ रहेगी, फिर हम समाप्त ही हो जाएंगे।

डा. ग्रीन ने अमरीका में एक यंत्र बनाया हुआ है फीड-बैक यंत्र है, और कीमती है। और आज नहीं कल, सभी मंदिरों में लग जाना चाहिए, सभी गिरजाघरों में, सभी चर्चों में। एक यंत्र है जिसकी कुर्सी पर आदमी बैठ जाता है और सामने उसकी कुर्सी पर पर्दा लगा होता है। उस पर्दे पर थर्मामीटर की तरह प्रकाश घटने बढ़ने लगता है। दो रेखाओं में प्रकाश ऊपर बढ़ता है, जैसे थर्मामीटर का पारा ऊपर बढ़ता है। आपके मस्तिष्क में दोनों तरफ खोपड़ी पर तार बांध दिए जाते हैं। ये तार उन प्रकाशों से जुड़े होते हैं। और आपका मन जब अतियों में चलता है तो एक रेखा बिल्कुल आसमान छूने लगती है, दूसरी जीरो पर हो जाती है। बहुत अदभुत, महत्वपूर्ण है वह। जब आप सोच रहे होते हैं कामवासना के संबंध में, तब एक रेखा आपकी आसमान छूने लगती है, दूसरी शून्य पर हो जाती है। सामने पास में ग्रीन खड़ा है, वह आ पको तस्वीरें दिखाता है, नंगी औरतों की, और आपके मन में कामवासना को जगाता है। साथ में संगीत बजता है, जो आपके भीतर कामवासना को जगाता है। एक रेखा आसमान को छूने लगती है, दूसरी शून्य पर हो जाती है। फिर तस्वीरें हटा ली जाती हैं। फिर बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट के चित्र दिखाए जाते हैं। फिर संगीत बदल दिया जाता है। ब्रह्मचर्य का कोई सूत्र आदमी के सामने रख दिया जाता है और उनसे कहा जाता है ब्रह्मचर्य के संबंध में चिंतन करो। तो एक रेखा नीचे गिरने लगती है, दूसरी रेखा ऊपर चढ़ने लगती है। और वह तब तक नहीं रुकता आदमी, जब तक कि पहली शून्य न हो जाए और दूसरी पूर्ण न हो जाए। ग्रीन कहता है यह चित्त की अवस्था है।

फिर ग्रीन तीसरा प्रयोग करता है। वह कहता है तुम कुछ मत सोचो। न तुम ब्रह्मचर्य के संबंध में सोचो, न तुम कामवासना के संबंध में सोचो। तुम तो सामने देखो और सिर्फ इतना ही ख्याल करो कि यह शांत मेरा मन हो जाए और ये दोनों रेखाएं समतुल्य हो जाएं। वह आदमी देखता है, एक रेखा नीचे गिरने लगी, दूसरी ऊपर बढ़ने लगी। इसको फीड-बैक कहता है, ग्रीन। इससे उसकी हिम्मत बढ़ती है कि कुछ हो रहा है।

इसलिए मैं कहता हूँ कि ध्यान के लिए सारे मंदिरों में वह यंत्र लग जाना चाहिए। क्योंकि आपको पता नहीं चलता कि कुछ हो रहा है कि नहीं हो रहा है। पता चले कि हो रहा है तो आपकी हिम्मत बढ़ती है। तो जितनी उसकी हिम्मत बढ़ती है, उतनी जल्दी उसकी रेखाएं करीब आने लगती हैं। जितनी करीब आने लगती हैं, वह फीड-बैक मैकेनिज्म हो गया। वह देखता है, उसे लगता है कि हो रहा है मन शांत। वह और शांत होता है, और शांत होता है। यंत्र में दिखाई पड़ता है, और शांत हो रहा है, और शांत होने की हिम्मत बढ़ती है। बहुत शीघ्र पंद्रह मिनट, बीस मिनट, तीस मिनट में दोनों रेखाएं साथ, समान आ जाती हैं। और जब दोनों रेखाएं समान आती हैं तब वह आदमी कहता है आह! ऐसी शांति कभी नहीं जानी। ऐसा कभी जाना ही नहीं। इसको ग्रीन को एक नया शब्द देना पड़ा है क्योंकि कोई शब्द नहीं कि इसको कौन सा अनुभव करें। तो वह कहता है अहा एक्सपीरिएंस! जब वे दोनों रेखाएं शांत हो जाती हैं तब आदमी कहता है अहा!

और एक दफा यह अनुभव में आ जाए तो संयम का ख्याल आ सकता है, अन्यथा संयम का ख्याल नहीं आ सकता है। संयम का अर्थ है चित्त जहां कोई भी अति में न हो, और अहा एक्सपीरिएंस में आ जाए। एक अहोभाव भर रह जाए, एक शांत मुद्रा रह जाए, तो संयम है। और यह संयम बड़ी पाजिटिव बात है।

जब दोनों अतियां साथ खड़ी हो जाती हैं तब दोनों एक-दूसरे को काट देती हैं, और आदमी मुक्त हो जाता है। लोभ और त्याग दोनों सम हो गए, तो फिर आदमी त्यागी भी नहीं होता, लोभी भी नहीं होता। और जहां तक लोभ होता है वहां तक बेचैनी होती है और जहां तक त्याग होता है वहां तक भी बेचैनी होती है। क्योंकि त्याग उलटा खड़ा हुआ लोभ ही है, और कुछ भी नहीं है--शीर्षासन करता हुआ लोभ है।

जब तक कामवासना मन को पकड़ती है तब तक भी बेचैनी होती है और जब तक ब्रह्मचर्य आकर्षण देता है तब तक भी बेचैनी होती है, क्योंकि ब्रह्मचर्य है क्या? उलटा खड़ा हुआ काम है, शीर्षासन करता हुआ काम। वास्तविक ब्रह्मचर्य तो उस दिन उपलब्ध होता है कि जिस दिन ब्रह्मचर्य का भी पता नहीं रह जाता। वास्तविक त्याग तो उस दिन उपलब्ध होता है जिस दिन त्याग का बोध भी नहीं रह जाता। पता भी नहीं रहता, क्योंकि पता कैसे रहेगा? जिसके मन में लोभ ही न रहा, उसे त्याग का पता कैसे रहेगा? अगर त्याग का पता है तो लोभ कहीं न कहीं पीछे छिपा हुआ खड़ा है। वही तो पता करवाता है। कंट्रास्ट चाहिए न, पता होने को। काली रेखा चाहिए न, सफेद कागज पर! काले ब्लैक-बोर्ड पर सफेद चाक चाहिए न। नहीं तो दिखेगा कैसे? जब तक आपको दिखता है मैं त्यागी, तब तक आप जानना कि भीतर मैं लोभी... मजबूती से खड़ा है। नहीं तो दिखेगा कैसे। जब तक आपको यह लगता है कि मैं ब्रह्मचारी! तब तक आप चोटी-वोटी बांध कर और तिलक-टीका लगा कर जोर से घोषणा करते फिरते हैं खड़ाऊं बजाकर, कि मैं ब्रह्मचारी! तब तक आप समझना कि पीछे उपद्रव छिपा है। आपकी चोटी देख कर लोगों को सावधान हो जाना चाहिए कि खतरनाक आदमी आ रहा है। खड़ाऊं बगैरह की आवाज सुन कर लोगों को सचेत हो जाना चाहिए। वह पीछे छिपा है जो ब्रह्मचर्य का दावा कर रहा है, वह कामवासना का ही रूप है।

संयम महावीर कहते हैं उस क्षण को, जहां न काम रहा, न ब्रह्मचर्य रहा। जहां न लोभ रहा, न त्याग रहा। जहां न यह अति पकड़ती है, न वह अति पकड़ती है। जहां आदमी अनति में, मौन में, शांति में थिर हो गया। जहां दोनों बिंदु समान हो गए। जहां एक-दूसरे की शक्ति ने एक-दूसरे को काट कर शून्य कर दिया। संयम यानी शून्य। और इसलिए संयम सेतु है। इसलिए संयम के ही माध्यम से कोई व्यक्ति परमगति को उपलब्ध होता है।

इसलिए संयम को श्वास मैंने कहा। और कारणों से भी श्वास कहा है। क्योंकि आपको शायद पता न हो, आप श्वास में भी असंयमी होते हैं। या तो आप ज्यादा श्वास लेते होते हैं या कम श्वास लेते होते हैं। पुरुष ज्यादा श्वास लेने से पीड़ित हैं, स्त्रियां कम श्वास लेने से पीड़ित हैं। जो आक्रामक हैं वे ज्यादा श्वास लेने से पीड़ित होते हैं, जो सुरक्षा के भाव में पड़े रहते हैं वे कम श्वास लेने से पीड़ित होते हैं। हममें से बहुत कम लोग हैं जिन्होंने सच में ही संयमित श्वास भी ली हो, और तो दूसरे काम करने बहुत कठिन हैं। श्वास तो आपको लेनी भी नहीं पड़ती, उसमें कोई लाभ-हानि भी नहीं है। लेकिन वह भी हम संयमित नहीं लेते। हमारी श्वास भी तनाव के साथ

चलती है। ख्याल करें आप, कामवासना में आपकी श्वास तेज हो जाएगी। आप उतने ही समय में, जितनी आप साधारण श्वास लेते हैं, दुगुनी और तिगुनी श्वास लेंगे। इसलिए पसीना आ जाएगा, शरीर थक जाएगा। अब अगर कोई आदमी ब्रह्मचर्य साधने की कोशिश करेगा तो साधने में वह श्वास कम लेने लगेगा। ठीक विपरीत होगा-होगा ही।

असल में ब्रह्मचारी जो है, वह एक अर्थ में कंजूस है, सब मामलों में। यह नहीं कि वह वीर्य-शक्ति के मामले में कंजूस है। जैसे वह कंजूस होता है सब मामलों में, वैसे वह श्वास के मामले में भी कंजूस हो जाता है। अगर हम बायोलाजिकली समझने की कोशिश करें तो जो ब्रह्मचर्य की कोशिश है, वह एक तरह की कांस्ट्रिप्शन की कोशिश है। कोष्टबद्धता है वह। आदमी सब चीजों को भीतर रोक लेना चाहता है, कुछ निकल न जाए शरीर से उसके। तो श्वास भी वह धीमी लेगा। सब चीजों को रोक लेगा। वह रुकाव उसके चारों तरफ व्यक्तित्व में खड़ा हो जाएगा। ये अतियां हैं।

श्वास की सरलता उस क्षण में उपलब्ध होती है, जब आपको पता ही नहीं चलता कि आप श्वास ले भी रहे हैं। ध्यान में जो लोग भी गहरे जाते हैं उनको वह क्षण आ जाता है वे मुझे आकर कहते हैं कि कहीं श्वास बंद तो नहीं हो जाती! पता नहीं चलता, बंद नहीं होती श्वास। श्वास चलती रहती है। लेकिन इतनी शांत हो जाती है, इतनी समतुल हो जाती है, बाहर जाने वाली श्वास, भीतर आने वाली श्वास ऐसी समतुल हो जाती है कि दोनों तराजू बराबर खड़े हो जाते हैं। पता ही नहीं चलता। क्योंकि पता चलने के लिए थोड़ा बहुत हलन-चलन चाहिए। पता चलने के लिए थोड़ी बहुत डगमगाहट चाहिए। पता चलने के लिए थोड़ा मूवमेंट चाहिए। यह सब मूवमेंट एक अर्थ में थिर हो जाता है। ऐसा नहीं कि नहीं चलता। चलता है, लेकिन दोनों तुल जाते हैं। जो व्यक्ति जितना संयमी होता है उतनी उसकी श्वास भी संयमित हो जाती है। या जिस व्यक्ति की जितनी श्वास संयमित हो जाती है उतना उसके भीतर संयम की सुविधा बढ़ जाती है इसलिए श्वास पर बड़े प्रयोग महावीर ने किए।

श्वास के संबंध में भी अत्यंत संतुलित, और जीवन के और सारे आयामों में भी अत्यंत संतुलित। महावीर कहते हैं सम्यक आहार, सम्यक व्यायाम, सम्यक निद्रा, सम्यक सभी कुछ सम्यक हो। वे नहीं कहते हैं कि कम सोओ; वे नहीं कहते कि ज्यादा सोओ; वे कहते इतना ही सोओ जितना सम है। वे नहीं कहते कम खाओ, ज्यादा खाओ; वे कहते हैं उतना ही खाओ जितना सम पर ठहर जाता है। इतना खाओ कि भूख का भी पता न चले और भोजन का भी पता न चले। अगर खाने के बाद भूख का पता चलता है तो आपने कम खाया और अगर खाने के बाद भोजन का पता चलने लगता है तो आपने ज्यादा खा लिया। इतना खाओ कि खाने के बाद भूख का भी पता न चले और पेट का भी पता न चले। लेकिन हम दोनों नहीं कर पाते हैं, या तो हमें भूख का पता चलता है और या हमें पेट का पता चलता है। भोजन के पहले भूख का पता चलता है और भोजन के बाद भोजन का पता चलता है, लेकिन पता चलना जारी रहता है।

महावीर कहते हैं पता चलना बीमारी है। असल में शरीर के उसी अंग का पता चलता है जो बीमार होता है। स्वस्थ अंग का पता नहीं चलता। सिरदर्द होता है तो सिर का पता चलता है, पैर में कांटा गड़ता है तो पैर का पता चलता है। महावीर कहते हैं सम्यक आहार, पता ही न चले भूख का भी नहीं, भोजन का भी नहीं सोने का भी नहीं, जागने का भी नहीं--श्रम का भी नहीं, विश्राम का भी नहीं। मगर हम दो में से कुछ एक ही कर पाते हैं। या तो हम श्रम ज्यादा कर लेते हैं, या विश्राम ज्यादा कर लेते हैं।

कारण क्या है यह ज्यादा कर लेने का? कुछ भी ज्यादा कर लेने का? का रण यही है कि ज्यादा करने में हमें पता चलता है कि हम हैं। हमें पता चलता है कि हम हैं और हम चाहते यही हैं कि हमें पता चलता रहे कि हम हैं। यही महावीर की अहिंसा के बाबत मैंने आपसे कहा कि अहिंसा का अर्थ है हमें पता ही न चले कि हम हैं। एब्सेंट हो जाएं अनुपस्थित। पर हमारा मन होता है, हमारा पता चले कि हम हैं। यही अहंकार है कि हमें पता चलता रहे कि हम हैं। न केवल हमें, बल्कि औरों को पता चलता रहे कि हम हैं। तो फिर हम असंयम के सिवाय हमारे लिए कोई मार्ग नहीं रह जाता। इसलिए जितना असंयमी आदमी हो, उतना ही उसका पता चलता है।

एमाइल जोला ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि अगर दुनिया में सब अच्छे आदमी हों तो कथा लिखना बहुत मुश्किल हो जाए। कथानक न मिले। अच्छे आदमी की कोई जिंदगी की कहानी होती है? नहीं होती। क्या बताइएगा? बुरे आदमी की जिंदगी में कहानी होती है। बुरे आदमी की जिंदगी एक कहानी होती है। अच्छे आदमी की जिंदगी अगर सच में ही अच्छी है तो शून्य हो जाती है। कहानी कहां बचती है! कुछ नहीं बचता है। जीसस की जिंदगी का बहुत कम पता है। ईसाई बड़े परेशान रहते हैं कि जिंदगी का बहुत कम पता है। वे कोई उत्तर नहीं दे पाते। जीसस पैदा हुए, इसका पता है। फिर पांच साल की उम्र में एक बार मंदिर में देखे गए, इसका पता है। फिर तीस साल की उम्र में देखे गए, इसका पता है। फिर तैंतीसवें साल में सूली लग गई, इसका पता है। बस इतनी कहानी है। तीस साल की जिंदगी का कोई पता नहीं है।

एक ईसाई फकीर मुझे मिलने आया था। वह कहने लगा आप महावीर के संबंध में कहते हैं, बुद्ध के संबंध में कहते हैं, कभी आप क्राइस्ट के संबंध में कहें। और वह जो तीस साल, जो बिल्कुल पता नहीं है, उसके संबंध में कहें। तो मैंने कहा थोड़ा तो कहा जा सकता है। लेकिन सच बात यह है कि पता न होने का कुल कारण इतना है कि जीसस की जिंदगी में कुछ भी नहीं था, नो इवेंट। और अगर लोग सूली न लगाते यह भी जीसस की जिंदगी का इवेंट नहीं है, लोगों की जिंदगी का है। लोगों ने सूली लगा दी। इसमें जीसस क्या करें! और अगर लोग सूली न लगाते तो यह भी कथा न होती। लोग न माने तो लोगों ने सूली लगा दी। इसलिए कथा है, नहीं तो जीसस का पता ही नहीं चलता, इस जमीन पर। यह सूली लगाने वालों ने इनको टिका दिया। तो जीसस कोरे कागज की तरह आते और विदा हो जाते। बहुत लोग आए और इसी तरह विदा हो गए हैं।

अगर हम महावीर की जिंदगी में भी खोजें तो किस बात का पता है? कभी किसी ने कान में कीले ठोंक दिए, इसका पता है। लेकिन दिस इ.ज नॉट इवेंट इन दि महावीरस लाइफ। यह महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है, यह तो कीले ठोंकने वाले की जिंदगी की घटना है। महावीर का क्या है इसमें हाथ? कि कोई आया और महावीर के चरणों में सिर रख दिया। यह भी महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है। यह तो सिर रखनेवाले की जिंदगी की घटना है, कि किसी ने चिल्ला कर महावीर को तीर्थंकर कह दिया, यह भी महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है। यह भी तो किसी के चिल्लाने की घटना है। अगर हम शुद्ध रूप से महावीर की जिंदगी खोजने जाएं तो कोरा कागज हो जाएगी। अच्छे आदमी की कोई जिंदगी नहीं होती। बुरे आदमी की ही जिंदगी होती है। इसलिए कहानी लिखनी हो या सिने-कथा लिखनी हो तो बुरे आदमी को ही चुनना पड़ता है। इसके बिना नहीं इसके बिना बहुत मुश्किल हो जाएगा।

रावण के बिना हम रामायण की कल्पना नहीं कर सकते। राम के बिना कर भी सकते हैं। राम की जगह कोई भी अ ब स द भी काम दे सकता है। लेकिन रावण अपरिहार्य है। उसके बिना कहानी में जान ही निकल जाएगी। वही असली कथा है। लोग समझते हैं, राम हैं कथा के केंद्र, उसके नायक। मैं नहीं समझता। रावण है। हमेशा बुरा आदमी हीरो होता है। इसलिए हीरो बनने से जरा बचना। नायक होने के लिए बुरा होना बिल्कुल जरूरी है।

संयमी व्यक्ति के जीवन से सारी घटनाएं विदा हो जाती हैं। और घटनाएं विदा होते ही उसे "मैं हूं" यह कहने का भी उपाय नहीं रह जाता। और हम सब कहना चाहते हैं कि मैं हूं। इसलिए असंयम हमें जरूरी होता है। कभी ज्यादा खाकर हम जाहिर करते हैं कि मैं हूं, कभी उपवास करके जाहिर करते हैं कि मैं हूं। कभी वेश्यालय में जाहिर करते हैं कि मैं हूं, कभी मंदिर में जाकर जाहिर करते हैं कि मैं हूं। लेकिन हमारा जाहिर करना जारी रहता है। मंदिर में भी कोई देखनेवाला न आए तो हमारा जाने का मन नहीं होता।

हम वही करते हैं जिसे लोग देखते हैं और मानते हैं कि कुछ हो। मैं हूं, इसे बताना होता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं जितने लोग इस जमीन पर बुरे हो जाते हैं, अगर हम ऐसा समाज बना सकें कि जितना बुरे आदमी को नाम मिलता है लोग उसे बदनाम कहते हैं, अगर उतना अच्छे आदमी को नाम मिलने लगे तो कोई आदमी बुरा न हो। वे अच्छे हो जाएं। बुरा आदमी भी अस्मिता की, अहंकार की खोज में ही बुरा होता है। आप इसको देखते

ही नहीं, आप इसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते, आप मानते ही नहीं कि तुम हो। उसे कुछ न कुछ करना पड़ता है। उसे कुछ करके दिखाना पड़ता है। अखबार किसी ध्यान करनेवाले की खबर नहीं छापते, किसी की छाती में छुरा भोंकने वाले की खबर छापते हैं। अखबार इसकी खबर नहीं छापते कि एक स्त्री अपने पति के प्रति जीवन भर निष्ठावान रही। अखबार इसकी खबर छापते हैं कि कौन स्त्री भाग गई।

मुल्ला नसरुद्दीन को उसके गांव के लोगों ने मजिस्ट्रेट बना दिया था, बुढ़ापे में। पहले ही दिन अदालत में कोई मुकदमा नहीं आया। दोपहर हो गई, मुंशी बेचैन होने लगा मुल्ला का मुंशी जो था वह बेचैन होने लगा, उदास होने लगा, मक्खी उड़ाते-उड़ाते वहां।

मुल्ला ने कहा बेचैन मत हो, घबड़ा मत। हैव फेथ ऑन ह्यूमन नेचर। आदमी के स्वभाव पर भरोसा रखो। शाम तक कुछ न कुछ होकर रहेगा। तू घबरा मत, इतना बेचैन मत हो। कोई न कोई हत्या होगी, कोई न कोई स्त्री भाग जाएगी, कोई न कोई उपद्रव होकर रहेगा। हैव फेथ ऑन ह्यूमन नेचर। आदमी के स्वभाव पर भरोसा रख। आदमी बिना कुछ किए नहीं रहेगा।

आदमी के स्वभाव पर भरोसा... सब अखबार उसी भरोसे पर चलते हैं, नहीं तो कोई अखबार नहीं चल पाता। लेकिन कल घटनाएं घटेंगी, अखबार में जगह नहीं बचेगी। पक्का पता है, आदमी के स्वभाव पर भरोसा है। कोई स्त्री भागेगी, कोई हत्या करेगा, कोई चोरी करेगा, कोई गबन करेगा, कोई मिनिस्टर कुछ करेगा, कोई न कोई कुछ करेगा। कहीं युद्ध होगा, कहीं उपद्रव होगा, कहीं सेना भेजी जाएगी, कहीं क्रांति होगी। आदमी के स्वभाव पर भरोसा है, नहीं तो अखबार सब मुश्किल में पड़ जाएंगे। भले आदमी की दुनिया में अखबार बहुत मुश्किल में होंगे। इसलिए मैंने सुना है स्वर्ग में कोई अखबार नहीं हैं, नरक में सब हैं। स्वर्ग में कोई घटना नहीं घटती, नो इवेंट। खबर भी क्या छापिएगा? अगर छापिएगा भी तो, छपते-छपते, बस अंत में कुछ छपेगा नहीं।

भले आदमी की जिंदगी में कोई घटना नहीं है और हम चाहते हैं कि हम हों। घटनाओं के जोड़ के बिना हम नहीं हो सकते। और अगर घटनाएं चाहिए तो आपको तनाव में जीना पड़ेगा, अतियों पर डोलना पड़ेगा। क्रोध करना पड़ेगा, क्षमा करना पड़ेगा। भोग करना पड़ेगा, त्याग करना पड़ेगा। दुश्मनी करनी पड़ेगी, दोस्ती करनी पड़ेगी। संयमी का अर्थ है जो द्वंद्व में कुछ भी नहीं करता है, जो द्वंद्व के बाहर सरक जाता है। जो कहता है न दोस्ती करेंगे, न दुश्मनी करेंगे। महावीर किसी से मित्रता नहीं करते हैं क्योंकि महावीर जानते हैं मित्रता एक अति है। महावीर किसी से शत्रुता भी नहीं करते क्योंकि महावीर जानते हैं शत्रुता अति है। लेकिन हम! हम उलटा सोचते हैं। हम सोचते हैं कि अगर दुनिया से शत्रुता मिटानी हो तो सबसे मित्रता करनी चाहिए। आप गलती में हैं। मित्रता एक अति है, उससे शत्रुता पैदा होती है। इधर आप मित्रता करते हैं, ठीक उतनी ही बैलेंसिंग आपको किसी से शत्रुता करनी पड़ेगी। उतना ही संतुलन बनाना पड़ेगा।

मुसलमान फकीर हुआ है, हसन। बैठा है अपनी झोपड़ी में। साधक कुछ पास बैठे हैं। एक अजनबी सूफी फकीर भीतर प्रवेश करता है, चरणों में गिर जाता है हसन के और कहता है तुम भगवान हो, तुम साक्षात अवतार हो, तुम ज्ञान के साकार रूप हो। बड़ी प्रशंसा करता है। हसन बैठा सुनता रहता है। जब वह फकीर सब प्रशंसा कर चुकता है तो एक और फकीर वहां बैठा हुआ है बायजीद, वहां बैठा हुआ है। वह हसन जैसी ही कीमत का आदमी है। जब वह फकीर प्रशंसा करके जा चुका होता है चरण छूकर, तो बायजीद एकदम से हसन को गाली देना शुरू कर देता है। सभी लोग चौंक जाते हैं। बायजीद और हसन को गालियां दे! पीड़ा भी अनुभव करते हैं, लेकिन बायजीद भी कीमती फकीर है। कुछ कोई बोल तो सकता नहीं। हसन बैठा सुनता रहता है। फिर बायजीद गालियां देकर चला जाता है। बायजीद के जाते ही शिष्यों में से कोई पूछता है हसन से कि हमारी समझ में नहीं आया कि बायजीद ने इस तरह का अभद्र व्यवहार क्यों किया? हसन ने कहा कुछ नहीं, जस्ट बैलेंसिंग। कोई अभद्र व्यवहार नहीं किया। वह एक आदमी देखते हो पहले, भगवान कह गया। इतनी प्रशंसा कर

गया। तो किसी को तो बैलेंस करना ही पड़ेगा। कोई तो संतुलन करेगा ही। नाउ एवरीथिंग इज बैलेंसड। अब हम वही हैं जहां इन दोनों आदमियों के पहले थे। अपना काम शुरू करें।

जिंदगी में आप इधर मित्रता बनाते हैं, उधर शत्रुता निर्मित हो जाती है। इधर आप किसी को प्रेम करते हैं, उधर किसी को घृणा करना शुरू हो जाता है। जिंदगी में जब भी आप किसी द्वंद्व को चुनते हैं, तो दूसरे द्वंद्व में भी ताकत पहुंचनी शुरू हो जाती है। आप चाहें, न चाहें, यह सवाल नहीं है। जीवन का नियम यह है। इसलिए महावीर किसी को मित्र नहीं बनाते। और जब वे कहते हैं कि सबसे मेरी मैत्री है, तो उसका मतलब मित्रता से नहीं है। उसका मतलब है कि मेरी किसी से कोई शत्रुता नहीं, मित्रता नहीं। जो बच रहता है, उसको मैत्री कहते हैं। जो बच रहता है! कुछ बच नहीं रहता है, एक निराकार भाव बच रहता है। कोई संबंध बच नहीं रहता। एक असंबंधित स्थिति बच रहती है। कोई पक्ष नहीं बच रहता, एक तटस्थ दशा बच रहती है।

जब वे कहते हैं सबसे मेरी मैत्री है, तो उसका मतलब सिर्फ इतना ही है उससे हम भूल में न पड़ें कि यह हमारे जैसी मित्रता है। हमारी मित्रता तो बिना शत्रुता के हो ही नहीं सकती। जब वे कहते हैं सबसे मुझे प्रेम है, तो हम इस भ्रम में न पड़ें कि हमारे जैसा प्रेम है। हमारा प्रेम बिना घृणा के नहीं हो सकता, बिना ईर्ष्या के नहीं हो सकता। इसलिए महावीर जैसे लोगों को समझने की जो सबसे बड़ी कठिनाई है, वह यह है कि शब्द वे वही उपयोग करते हैं, जो हम। और कोई उपाय भी नहीं है वही शब्द हैं, उपयोग करने के लिए। और हमारे भाव उन शब्दों से बहुत और हैं, हमारे अर्थ बहुत और हैं, और महावीर के अर्थ बहुत और हैं।

संयम का विधायक अर्थ है स्वयं में इतना ठहर जाना कि मन की किसी अति पर कोई हलन-चलन न हो।

आज इतना ही।

फिर हम कल बात करेंगे। अभी जाएं ना थोड़ी देर बैठें। धुन संन्यासी करते हैं, उसमें सम्मिलित हों।

संयम की विधायक दृष्टि (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

सूर्यास्त के समय, जैसे कोई फूल अपनी पंखुड़ियों को बंद कर ले--संयम ऐसा नहीं है। वरन सूर्योदय के समय जैसे कोई कली अपनी पंखुड़ियों को खोल ले--संयम ऐसा है। संयम मृत्यु के भय में सिकुड़ गए चित्त की रुग्ण दशा नहीं है। संयम अमृत की वर्षा में प्रफुल्लित हो गए, नृत्य करते चित्त की दशा है। संयम किसी भय से किया गया संकोच नहीं है। संयम किसी प्रलोभन से आरोपित की गई आदत नहीं है। संयम किसी अभय में चित्त का फैलाव और विस्तार है। और संयम किसी आनंद की उपलब्धि में अंतर्वीणा पर पैदा हुआ संगीत है। संयम निषेध नहीं है, विधेय है। निगेटिव नहीं है, पाजिटिव है। लेकिन परंपरा निषेध को मान कर चलती है। क्योंकि निषेध आसान है और विधेय अति दुष्कर। मरना बहुत आसान है, जीना बहुत कठिन है। हमें लगता है कि नहीं, जीना बहुत आसान है, मरना बहुत कठिन। लेकिन जिसे हम जीना कहते हैं, वह सिर्फ मरना ही है और कुछ भी नहीं है।

सिकुड़ जाने से ज्यादा आसान कुछ भी नहीं है। खिलने से ज्यादा कठिन कुछ भी नहीं है। क्योंकि खिलने के लिए अंतर-ऊर्जा का जागरण चाहिए। सिकुड़ने के लिए तो किसी जागरण की, किसी नई शक्ति की जरूरत नहीं है। पुरानी शक्ति भी छूट जाए तो सिकुड़ना हो जाता है। नई शक्ति का उदभव हो तो फैलाव होता है। महावीर तो फूल जैसे खिले हुए व्यक्तित्व हैं। लेकिन महावीर के पीछे जो परंपरा बनती है, उसमें तो सिकुड़ गए लोगों की धारा की शृंखला बन जाती है। और फिर पीछे के युगों में इन पीछे चलने वाले, सिकुड़े हुए लोगों को देख कर ही हम महावीर के संबंध में भी निर्णय लेते हैं। स्वभावतः अनुयायियों को देख कर हम अनुमान करते हैं उनका, जिनका वे अनुगमन करते हैं।

लेकिन अक्सर भूल हो जाती है। और भूल इसलिए हो जाती है कि अनुयायी बाहर से पकड़ता है, और बाहर से निषेध ही ख्याल में आते हैं। महावीर या बुद्ध या कृष्ण भीतर से जीते हैं और भीतर से जीने पर विधेय ही होता है। अगर किसी को परम आनंद उपलब्ध हो, तो उसके जीवन में, जिन्हें हम कल तक सुख कहते थे, वे छूट जाएंगे। इसलिए नहीं कि वे उन्हें छोड़ रहे हैं बल्कि इसलिए कि अब जो उसे मिला है, उसके लिए जगह बनानी जरूरी है। हाथ में कंकड़-पत्थर थे, वे गिर जाएंगे क्योंकि जिसे हीरे जीवन में आ गए हों, अब कंकड़-पत्थरों को रखने के लिए न सुविधा है, न शक्ति, है, न कारण है। लेकिन वे हीरे तो आएंगे अंतर के आकाश में। वे हमें दिखाई नहीं पड़ेंगे और हाथों में जो पत्थर थे, वे छूटेंगे, वे हमें दिखाई पड़ेंगे। स्वभावतः हम सोचेंगे कि पत्थर छोड़ना ही संयम है। यह एक बहुत अनिवार्य फेलेसी है जो समस्त जाग्रत पुरुषों के आस-पास इकट्ठी होती है। यह स्वाभाविक है, लेकिन बड़ी खतरनाक है। क्योंकि तब हम जो भी सोचते हैं वह सब गलत हो जाता है। लगता है महावीर कुछ छोड़ रहे हैं, यही संयम है। नहीं लगता कि महावीर कुछ पा रहे हैं, वही संयम है। और

ध्यान रखें, पाए बिना छोड़ना असंभव है। या जो पाए बिना छोड़ेगा, वह रुग्ण हो जाएगा। बीमार हो जाएगा। वह अस्वस्थ होता है, सिकुड़ता है और मरता है। पाए बिना छोड़ना असंभव है।

जब मैं कहता हूं कि त्याग की बहुत दूसरी धारणा है और संयम का बहुत दूसरा रूप और आयाम प्रकट होता है। मैं कहता हूं, महावीर जैसे लोग कुछ पा लेते हैं, वह पाना इतना विराट है कि उसकी तुलना में जो उनके हाथ में कल तक था वह व्यर्थ और मूल्यहीन हो जाता है। और ध्यान रहे, मूल्यहीनता रिलेटिव है, तुलनात्मक है, सापेक्ष है। जब तक आपको श्रेष्ठतर नहीं मिला है, तब तक जो आपके हाथ में है, वही श्रेष्ठतर है। चाहे आप कितना ही कहें कि वह श्रेष्ठतर नहीं है, लेकिन आपका चित्त कहे जाएगा, वही श्रेष्ठतर है। क्योंकि उससे श्रेष्ठतर को आपने नहीं जाना है। जब श्रेष्ठतर का जन्म होता है तभी वह निकृष्ट होता है। और मजे की बात यह है कि निकृष्ट को छोड़ना नहीं पड़ता और श्रेष्ठ को पकड़ना नहीं पड़ता। श्रेष्ठ पकड़ ही लिया जाता है और निकृष्ट छोड़ ही दिया जाता है। जब तक निकृष्ट को छोड़ना पड़े तब तक जानना कि श्रेष्ठ का कोई पता नहीं है। और जब तक श्रेष्ठ को पकड़ना पड़े तब तक जानना कि श्रेष्ठ अभी मिला नहीं है। श्रेष्ठ का स्वभाव ही यही है कि वह पकड़ ले; निकृष्ट का स्वभाव यही है कि वह छूट जाए।

लेकिन निकृष्ट हमसे छूटता नहीं और श्रेष्ठ हमारी पकड़ में नहीं आता। तो हम निकृष्ट को छोड़ने की जबरदस्त चेष्टा करते हैं। उसी चेष्टा को हम संयम कहते हैं। और श्रेष्ठ को अंधेरे में टटोलने की, पकड़ने की कोशिश करते हैं। वह हमारी इस तरह पकड़ में नहीं आ सकता। इसलिए संयम के विधायक आयाम को ठीक से समझ लेना जरूरी है। अन्यथा संयम व्यक्ति को धार्मिक नहीं बनाता केवल अधार्मिक होने से रोकता है। और जो अधर्म बाहर प्रकट होने से रुक जाता है, वह भीतर जहर बन कर फैल जाता है।

निषेधात्मक संयम फूलों को नहीं पैदा कर पाता है, केवल कांटों को प्रकट होने से रोकता है। लेकिन जो कांटे बाहर आकाश में प्रकट होने से रुक जाते हैं, वे भीतर आत्मा में छिप जाते हैं। इसलिए जिसे हम संयमी कहते हैं, वह आनंदित नहीं दिखाई पड़ता है। वह पीड़ित दिखाई पड़ता है। वह किसी पत्थर के नीचे दबा हुआ मालूम पड़ता है, किसी पहाड़ को ढोता हुआ मालूम पड़ता है। उसके पैरों में नर्तक की स्थिति नहीं होती। उसके पैरों में कैदी की जंजीरें मालूम पड़ती हैं। ऐसा नहीं लगता कि बच्चों जैसा सरल, उड़ने को तत्पर हो गया है। वह बहुत बोझिल और भारी हो गया है।

जिसे हम संयमी कहते हैं वह हंसने में असमर्थ हो गया होता है, उसके चारों तरफ आंसुओं की धारा इकट्ठी हो जाती है। और जो संयमी हंस न सके परिपूर्ण चित्त से, वह अभी संयमी नहीं है। जिसका जीवन मुस्कुराहट न बन जाए, वह अभी संयमी नहीं है। निषेध का रास्ता यह है कि जहां-जहां मन जाता है, वहां मन को न जाने दो। जहां-जहां मन खिंचता है, वहां-वहां मन को न खिंचने दो, उसके विपरीत खींचो। तो, निषेध एक अंतर संघर्ष है, इनर कांफ्लिक्ट है, जिसमें शक्ति व्यय होती है, उपलब्ध नहीं होती है। सभी संघर्ष में शक्ति व्यय होती है। जहां-जहां मन खिंचता है, वहां-वहां से उसे वापस खींचो, लौटाओ। कौन लौटाएगा, किसको लौटाएगा? आप ही खिंचते हैं, आप ही आकर्षित होते हैं, आप ही विपरीत जाते हैं। आप अपने भीतर विभाजित हो जाते हैं। खंडों में टूट जाते हैं। जिसको मनोचिकित्सक स्किकोफ्रेनिया कहता है, वह आपके भीतर घटित होता है। आप खंडित हो जाते हैं। आप दोहरे-तीहरे हो जाते हैं। आपके भीतर अनेक लोग हो जाते हैं। आप अपने को ही बांट कर लड़ना शुरू कर देते हैं। इससे जीत कभी नहीं होगी। और महावीर का सारा रास्ता जीत का रास्ता है। जो अपने से लड़ेगा, वह कभी जीतेगा नहीं।

उलटा लगता है यह सूत्र, क्योंकि हमें लगता है कि लड़े बिना जीत कैसे हो सकती है। जो अपने से लड़ेगा वह कभी जीतेगा नहीं क्योंकि अपने से लड़ना अपने ही दोनों हाथों को लड़ाने जैसा है। न बायां जीत सकता है, न दायां। क्योंकि दोनों के पीछे मेरी ही ताकत लगती है, मेरी ही शक्ति लगती है। चाहूं तो मैं बाएं को जिता लूं, तब भी बायां जीतता नहीं। चाहूं तो मैं दाएं को जिता लूं, तब भी दायां जीतता नहीं। क्योंकि दोनों के पीछे मैं

ही होता हूं। और यह जो व्यक्तित्व में खंडन हो जाता है, डिसइंटिग्रेशन हो जाता है, यह आदमी को विक्षिप्तता की तरफ ले जाने लगता है। आदमी ऐसा लगता है कि उसके ही भीतर उसका दुश्मन खड़ा है, वही है वह। आधा अपने को बांट लिया। अपनी छाया से लड़ने जैसा पागलपन है। नहीं, महावीर इतना गहरा जानते हैं कि स्किजोफ्रेनिक, खंडित व्यक्तित्व की तरफ वे सलाह नहीं दे सकते। वे सलाह देंगे, अखंड व्यक्तित्व की तरफ--इंटिग्रेटेड, इकट्ठा, एकजुट। संयम का अर्थ है--जुड़ा हुआ, इकट्ठा, इंटिग्रेटेड।

यह बहुत मजे की बात है, अगर आप असत्य बोलें, तो आप कभी भी इंटिग्रेटेड नहीं हो सकते। अगर आप झूठ बोलें तो आपके भीतर एक हिस्सा सदा ही मौजूद रहेगा जो कहेगा कि नहीं बोलना था, झूठ बोले। झूठ के साथ पूरी तरह राजी हो जाना असंभव है। अगर आप चोरी करें, तो आप कभी भी अखंड नहीं हो सकते। आपके भीतर एक हिस्सा चोरी के विपरीत खड़ा ही रहेगा। लेकिन अगर आप सत्य बोलें तो अखंड हो सकते हैं। महावीर ने उन्हीं-उन्हीं बातों को पुण्य कहा है, जिनसे हम अखंड हो सकते हैं। और उन्हीं-उन्हीं बातों को पाप कहा है, जिनसे हम खंडित हो जाते हैं। एक ही पाप है--आदमी का टुकड़ों में टूट जाना, और एक ही पुण्य है--आदमी का जुड़ जाना, इकट्ठा हो जाना, टु बी वन होल।

तो महावीर लड़ने को नहीं कह सकते हैं। महावीर जीतने को जरूर कहते हैं, लड़ने को नहीं कहते। फिर जीतने का रास्ता और है। जीतने का रास्ता यह नहीं है कि मैं अपनी इंद्रियों से लड़ने लगूं, जीतने का रास्ता यह है कि मैं अपने अतींद्रिय स्वरूप की खोज में संलग्न हो जाऊं। जीतने का रास्ता यह है कि मेरे भीतर जो छिपे हुए और खजाने हैं, मैं उनकी खोज में संलग्न हो जाऊं। जैसे-जैसे वे खजाने प्रकट होते जाते हैं, वैसे-वैसे कल तक जो महत्वपूर्ण था, वह गैर महत्वपूर्ण होने लगता है। कल तक जो खींचता था, अब वह नहीं खींचता है। कल तक बाहर की तरफ चित्त जाता था, अब भीतर की तरफ आता है।

एक आदमी है थोड़ा उदाहरण लेकर समझें। एक आदमी है, भोजन के लिए आतुर है, परेशान है, बहुत रस है। क्या करे संयम के लिए वह? रस का निग्रह करे, यही हमें दिखाई पड़ता है। आज यह रस न ले, कल वह रस न ले, परसों वह रस न ले। यह भोजन छोड़ दे, वह भोजन छोड़ दे। लेकिन क्या भोजन के परित्याग से रस का परित्याग हो जाएगा? संभावना यही है कि भोजन के परित्याग से पहले तो रस बढ़ेगा। अगर वह जिद्द में अड़ा रहे तो रस कुंठित हो जाएगा, मुक्त नहीं होगा। लेकिन कुंठित रस, व्यक्तित्व को भी कुंठा से भर जाता है।

जो भोजन करने तक में भयभीत हो जाता है, वह अभय को उपलब्ध होगा? भोजन करने तक में जो भयभीत हो जाता है, वह अभय को उपलब्ध होगा? नहीं, महावीर इसे संयम नहीं कहते। यद्यपि महावीर जिसे संयम कहते हैं, वैसा व्यक्ति रस के पागलपन से मुक्त हो जाता है। महावीर और एक भीतरी रस खोज लेते हैं--एक और रस भी है जो भोजन से नहीं मिलता। एक और रस भी है, जो भीतर संबंधित होने से मिल जाता है। हमारे बाहर जितनी इंद्रियां हैं, अगर हम ठीक से समझें तो वे सिर्फ कनेक्टिंग लिंक्स हैं, जोड़ने वाले सेतु हैं। स्वाद की इंद्रिय भोजन से जोड़ देती है, आंख की इंद्रिय दृश्य से जोड़ देती है, कान की इंद्रिय ध्वनि से जोड़ देती है। अगर महावीर की आंतरिक प्रक्रिया को समझना हो, तो महावीर यह कहते हैं कि जो इंद्रिय बाहर जोड़ देती है, वही इंद्रिय भीतर के जगत से भी जोड़ सकती है। बाहर ध्वनियों का एक जगत है। कान उससे जोड़ता है। भीतर भी ध्वनियों का एक अदभुत जगत है, कान उससे भी जोड़ सकता है। जीभ बाहर के रस से जोड़ती है। बाहर रस का एक जगत है। अति दीन, क्योंकि हमें भीतर के रस का पता नहीं, इसलिए वही सम्राट मालूम होता है। जीभ भीतर के रस से भी जोड़ देती है।

हमने सुना है, आप सबने भी सुना होगा, लेकिन प्रतीक कभी-कभी कैसी विक्षिप्तता में ले जाते हैं। हम सबने सुना है कि साधक, योगी अपनी जीभ को उलटा कर लेते हैं। लेकिन वह केवल सिंबालिक है। लेकिन कुछ

पागल अपनी जीभ के नीचे के हिस्से को काटकर उलटा करने में लगे रहते हैं। यह सिर्फ सिंबालिक है, यह सिर्फ प्रतीक है। साधक अपनी जीभ को उलटा कर लेता है, उसका अर्थ यह है कि जीभ का जो रस बाहर पदार्थों से जुड़ता था, उसे वह भीतर आत्मा से जोड़ लेता है। साधक अपनी आंख उलटी चढ़ा लेता है, उसका कुल अर्थ इतना ही है कि वह जो देखता था बाहर, अब वह भीतर देखने लगता है। और एक बार भीतर का स्वाद आ जाए तो बाहर के सब स्वाद बेस्वाद हो जाते हैं। करने नहीं पड़ते, करने से तो कभी नहीं होते, करने से तो उनका स्वाद और बढ़ता है। या जिह्वा की जाए तो कुंठित हो जाता है, रस ही मर जाता है। लेकिन इंद्रिय बाहर की तरफ ही पड़ी रहती है। इंद्रियों को भीतर की तरफ मोड़ना संयम की प्रक्रिया है।

कैसे मोड़ेंगे? कभी छोटे से प्रयोग करें तो ख्याल में आना शुरू हो जाएगा। बैठे हैं घर में, सुनना शुरू करें बाहर की आवाजों को... सुनना शुरू करें बाहर की आवाजों को। बहुत जागरूक होकर सुनें कि कान क्या-क्या सुन रहा है। सभी चीजों के प्रति जागरूक हो जाएं। रास्ते पर गाड़ियां चल रही हैं, हार्न बज रहे हैं, आकाश से हवाई जहाज गुजरता है, लोग बात कर रहे हैं, बच्चे खेल रहे हैं, सड़क से लोग गुजर रहे हैं, जुलूस निकल रहा है-सारी आवाजें हैं, उसके प्रति पूरी तरह जाग जाएं। और जब सारी आवाजों के प्रति पूरी तरह जागे हों तब एक बार यह भी ख्याल करें कि कोई ऐसी भी आवाज है, जो बाहर से न आ रही हो, भीतर पैदा हो रही हो। और तब आप एक अलग ही सन्नाटे को सुनना शुरू कर देंगे। इस बाजार की भीड़ में भी एक आवाज है, जो भीतर भी पूरे समय गूंज रही है।

लेकिन हम बाहर की भीड़ की आवाज में इस बुरी तरह से संलग्न हैं कि वह भीतर का सन्नाटा हमें सुनाई नहीं पड़ता। सारी आवाजों को सुनते रहें, लड़ें मत, हटें मत, सुनते रहें। सिर्फ एक खोज और भीतर शुरू करें कि क्या इन आवाजों को, जो बाहर से आ रही हैं; कोई इन आवाजों में एक ऐसी आवाज भी है जो बाहर से न आ रही हो, भीतर से पैदा हो रही हो? और आप बहुत शीघ्र सन्नाटे की आवाज, जैसी कभी-कभी निर्जन वन में सुनाई पड़ती है, ठेठ बाजार में सड़क पर भी सुनने में समर्थ हो जाएंगे। सच तो यह है कि जंगल में जो आपको सन्नाटा सुनाई पड़ता है, वह जंगल का कम बाहर की आवाजों के हट जाने के कारण आपके भीतर की आवाज का प्रतिफलन ज्यादा होता है। वह सुना जा सकता है। जंगल में जाने की जरूरत नहीं है। दोनों कान भी हाथ से बंद कर लें, तो वही आवाज बाहर की बंद हो जाएगी, तो भीतर जैसे झींगुर बोल रहे हों, वैसा सन्नाटा भीतर गूंजने लगेगा। यह पहली प्रतीति है भीतर के आवाज की।

और इसकी प्रतीति जैसे ही होगी वैसे ही बाहर की आवाजें कम रसपूर्ण मालूम पड़ने लगेंगी। यह भीतर का संगीत आपके रस को पकड़ना शुरू हो जाएगा। थोड़े ही दिनों में यह भीतर जो सन्नाटे की तरह मालूम होता था, वह सघन होने लगेगा और रूप लेने लगेगा। यही सन्नाटा सो हूं जैसा धीरे-धीरे प्रतीत होने लगता है। जिस दिन यह सो हूं जैसा प्रतीत होने लगता है, उस दिन कोई संगीत, जो बाहर के वाद्यों से पैदा होता है, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह अंतर की वीणा के वाद्यों से पैदा होता है, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह अंतर की वीणा का संगीत आपकी पकड़ में आना शुरू हो गया। अब आपको अपने कान के रस को रोकना न पड़ेगा। आपको यह न कहना पड़ेगा कि मैं अब सितार न सुनूंगा। मैं सितार का त्याग करता हूं। नहीं, अब छोड़ने की कोई जरूरत न रहेगी। आप अचानक पाएंगे कि और भी विराट, और भी श्रेष्ठतर, और भी गहन संगीत उपलब्ध हो गया। और तब आप सितार के सुनने में भी इस संगीत को सुन पाएंगे। तब कोई विपरीत, कोई विरोध, कोई कंट्राडिक्शन नहीं रह जाएगा। तब बाहर का संगीत अंतर के संगीत की फीकी प्रतिध्वनि रह जाएगा। दुश्मनी नहीं रह जाएगी, फीकी प्रतिध्वनि रह जाएगी। और तब आपके भीतर अखंड व्यक्तित्व खड़ा होगा जो बाहर और भीतर का फासला भी नहीं करेगा।

एक घड़ी आती है, ऐसी कि जैसे-जैसे हम भीतर जाते हैं, बाहर और भीतर का फासला गिरता चला जाता है। एक घड़ी आती है कि न कुछ बाहर रह जाता है, न कुछ भीतर। एक ही रह जाता है जो बाहर है और

भीतर है। जिस दिन यह घड़ी घटती है कि जो बाहर है वही भीतर है, जो भीतर है वही बाहर है; उस दिन आप संयम को, उस इक्विलिब्रियम को उपलब्ध हो गए, जहां सब सम हो जाता है; जहां सब ठहर जाता है; जहां सब मौन होता है; जहां कोई हलन-चलन नहीं होती है; जहां कोई भाग-दौड़ नहीं होती; जहां कोई कंपन नहीं होता।

किसी भी इंद्रिय से शुरू करें और भीतर की तरफ बढ़ते चले जाएं, फौरन ही वह इंद्रिय आपको भीतर से भी जोड़ने का कारण बन जाएगी। आंख से देखना शुरू करें, फिर आंख बंद कर लें। बाहर के दृश्य देखें, देखते रहें, लड़ें मत। और धीरे-धीरे-धीरे उसके प्रति जाएं जो बाहर से आया हुआ दृश्य न हो। बहुत शीघ्र आपको बाहर के दो दृश्यों के बीच में, भीतर के बीच में, भीतर के दृश्यों की झलकें आनी शुरू हो जाएंगी। कभी ऐसा प्रकाश भीतर भर जाएगा जो बाहर सूर्य भी देने में असमर्थ है। कभी भीतर ऐसे रंग फैल जाएंगे जो कि इंद्रधनुषों में नहीं हैं। कभी भीतर ऐसे फूल खिल जाएंगे जो पृथ्वी पर कभी भी नहीं खिले हैं। और जब आप पहचानने लगेंगे कि यह बाहर का फूल नहीं है, यह बाहर का रंग नहीं है, यह बाहर का प्रकाश नहीं है; तब आपको पहली दफे तुलना मिलेगी कि बाहर जो प्रकाश है, अब उसको प्रकाश कहें या भीतर की तुलना में उसे भी अंधेरा कहें। बाहर जो फूल खिलते हैं, अब उन्हें फूल कहें या भीतर की तुलना में केवल फूलों की प्रतिध्वनियां कहें--रिजोनेंसिस, फीके स्वर। अब बाहर जो इंद्रधनुषों से रंग छा जाते हैं, वे रंग हैं? बहुत कठिन होगा, क्योंकि जब भीतर कोई रंग को जानता है तो रंग में एक लिविंग क्वालिटी, एक जीवंत गुण आ जाता है जो बाहर के रंगों में नहीं है। बाहर के रंगों में कितनी ही चमक हो, बाहर के रंग जड़ हैं। भीतर जब रंग दिखाई पड़ता है, तो रंग पहली दफे जीवंत हो जाता है।

अब हम सोच भी नहीं सकते कि रंग के जीवंत होने का क्या अर्थ होता है। रंग और जीवित! जानें तो ही ख्याल में आ सकता है कि रंग जीवित हो सकता है; रंग प्राणवान हो सकता है। और जिस दिन भीतर का रंग प्राणवान होकर दिखाई पड़ने लगता है, बाहर के रंगों का आकर्षण खो जाता है। छोड़ना नहीं पड़ता, बस खो जाता है।

प्रत्येक इंद्रिय भीतर ले जाने का द्वार बन सकती है। स्पर्श किया है बहुत, स्पर्श का अनुभव है बहुत। बैठ जाएं, आंख बंद कर लें, स्पर्श पर ध्यान करें। सुंदर शरीर छुए होंगे, सुंदर वस्तुएं छुई होंगी, फूल छुए होंगे। कभी सुबह घास पर जम गई ओस को छुआ होगा। कभी सर्द सुबह में आग के पास बैठ कर उष्णता का स्पर्श लिया होगा, कभी किसी चांद-तारों की दुनिया में लेट कर उनकी चांदनी को छुआ होगा। वे सब स्पर्श खड़े हो जाने दें अपने चारों ओर। और फिर खोजना शुरू करें कि क्या कोई ऐसा स्पर्श भी है जो बाहर से न आया हो? और थोड़े श्रम से, थोड़े ही संकल्प से आपको ऐसा स्पर्श प्रतीत होने लगेगा जो बाहर से नहीं आया है। जो चांद-तारों से नहीं मिल सकता, जो फूलों से नहीं, ओस से नहीं, जो सूर्य की ऊष्मा से नहीं, जो सुबह की ठंडी हवाओं के स्पर्श से नहीं। और जिस दिन आपको उस स्पर्श का बोध होगा, उसी दिन आपने भीतर का स्पर्श पाया। उसी दिन बाहर के स्पर्श व्यर्थ हो जाएंगे। फिर प्रत्येक व्यक्ति को वही इंद्रिय पकड़ लेनी चाहिए जो उसकी सर्वाधिक तीव्र और सजग हो।

यहां भी आपको मैं यह कह दूँ कि जो इंद्रिय आपकी सबसे ज्यादा तीव्र है, उसे आप दुश्मन बना लेते हैं, अगर आपने संयम का निषेधात्मक रूप समझा। अगर आपने विधायक रूप समझा तो जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक सक्रिय है, वही आपकी मित्र है। क्योंकि आप उसी के द्वारा भीतर पहुंच सकेंगे। अब जिस आदमी को रंगों में कोई रस नहीं है, जिसने अभी बाहर के रंगों को भी नहीं जीया, और न जाना, उसे भीतर के रंग तक पहुंचने में बड़ी कठिनाई होगी। जिस आदमी को संगीत में कुछ प्रयोजन नहीं मालूम होता, सिर्फ मालूम होता है शोरगुल--ज्यादा से ज्यादा व्यवस्थित शोरगुल, आवाजें, ध्वनियां; ज्यादा से ज्यादा कम से कम परेशान करने वाली ध्वनियां। उस आदमी को अंतर-ध्वनि की तरफ जाने में कठिनाई होगी। उसे मुश्किल होगी, उसे अड़चन होगी। नहीं, जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक आपको परेशान करती मालूम पड़ती है, जिससे निषेध वाला लड़ना

शुरू कर देता है, वह आपकी मित्र है। क्योंकि वही इंद्रिय आपकी सबसे पहले भीतर की तरफ मोड़ी जा सकती है, तो अपनी इंद्रिय को खोज लें।

गुरजिएफ के पास कोई जाता था तो वह कहता था--तेरी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? पहले तू मुझे अपनी सबसे बड़ी कमजोरी बता दे, तो मैं उसे ही तेरी सबसे बड़ी शक्ति में रूपांतरित कर दूंगा। वह ठीक कहता था। यही है शक्ति। आपकी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? क्या रूप आपको आकर्षित करता है? तो भयभीत न हों, रूप ही आपका द्वार बन जाएगा। क्या स्पर्श आपको बुलाता है? भयभीत न हों, स्पर्श ही आपका मार्ग है। क्या स्वाद आपको खींचता है और आपके स्वप्नों में प्रवेश कर जाता है? तो स्वाद को धन्यवाद दें। वही आपका सेतु बनेगा। जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक संवेदनशील है, उससे अगर आप लड़े, तो कुंठित हो जाएगी। आपने अपने ही हाथ अपना सेतु तोड़ लिया। अगर विधायक संयम की धारणा से चले तो आप उसी इंद्रिय को मार्ग बना लेंगे, उसी पर आप पीछे लौट आएंगे।

और ध्यान रहे, जिस रास्ते से हम जाते हैं, बाहर; उसी रास्ते से भीतर आते हैं। रास्ता वही होता है, सिर्फ दिशा बदल जाती है। चेहरा बदल जाता है। आप यहां आए हैं, इस भवन तक, जिस रास्ते से आए हैं, उसी से वापस लौटेंगे। सिर्फ रुख और हो जाएगा। मुंह अभी भवन की तरफ था, अब अपने घर की तरफ होगा। लेकिन भूल कर भी अगर आपने ऐसा सोचा कि जो रास्ता मुझे अपने घर से इतनी दूर ले आया, वह मेरा दुश्मन है, इस पर मैं नहीं चलूंगा, तो आप पक्का समझ लें, आप अपने घर अब कभी भी नहीं पहुंच पाएंगे। कोई रास्ता दुश्मन नहीं है और रास्ते दोनों दिशाओं में खुले हैं।

तो, जिस रास्ते से आप बाहर के जगत में सर्वाधिक आकर्षित होते हैं और खिंचे जाते हैं--वह चाहे आंख हो, चाहे स्वाद हो, चाहे ध्वनि हो, कुछ भी हो--जिस रास्ते से आप सर्वाधिक बाहर जाते हैं, या जिस रास्ते से आप सर्वाधिक अपने से दूर चले गए हैं, वही रास्ता आपके संयम की विधायक दिशा में सहयोगी बनेगा। उसी से आपको वापस लौटना है। उससे लड़ना मत। उससे लड़ कर तो आप उसको तोड़ देंगे। तोड़ कर आपको लौटना बहुत मुश्किल हो जाएगा। ध्यान रहे, यह बहुत अजीब लगेगा। लेकिन आपको जोर से कहना चाहता हूं कि लोग उन इंद्रियों के कारण बाहर नहीं भटक गए हैं, लोग उन इंद्रियों के कारण बाहर भटक जाते हैं जिनके रास्ते वे तोड़ देते हैं। जिन इंद्रियों के रास्ते वे तोड़ देते हैं लौटने के, उनकी वजह से भटक जाते हैं। इंद्रियों की वजह से कोई नहीं भटकता है। हम सब तोड़ते हैं।

लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं--हमारी और कोई तकलीफ नहीं है; बस, यह स्वाद हमें परेशान कर रहा है। किसी तरह स्वाद से छुटकारा दिला दें। उन्हें पता ही नहीं है कि जो उन्हें परेशान कर रहा है वही उनके लौटने का मार्ग है। इसे मैं कहता हूं, संयम की विधायक दृष्टि।

इसके एक और पहलू को ख्याल में ले लेना चाहिए। जितनी इंद्रियां हैं हमारे पास, उनका एक तो प्रगट रूप है जिसे हम बहिर इंद्रिय कहते हैं। महावीर ने आत्मा की तीन स्थितियां कही हैं--एक को वे कहते हैं--बहिर आत्मा। बहिर आत्मा उस आत्मा को कहते हैं जो अभी इंद्रियों का बाहर की तरफ उपयोग कर रहा है। दूसरे को महा वीर कहते हैं--अंतरात्मा। अंतरात्मा वह आत्मा है जो अब इंद्रियों का भीतर की तरफ उपयोग कर रही है। और तीसरे को महावीर कहते हैं--परमात्मा। परमात्मा वह आत्मा है, जिसका बाहर और

भीतर मिट गया। जिसको न अब कुछ बाहर है, न कुछ भीतर है। जो न बाहर जा रही है, न भीतर आ रही है। जो बाहर जा रही है वह बहिर आत्मा है, जो भीतर आ रही है वह अंतरात्मा है; जो अब कहीं नहीं जा रही है, जहां है वहीं है, स्वभाव में प्रतिष्ठित, वह परमात्मा है।

इंद्रियों का एक बहिर रूप है, वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं। जिस जगह वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं, उस जगह जो रूप उनका प्रकट होता है वह अति स्थूल है। लेकिन वे ही इंद्रियां हमें स्वयं से भी जोड़े हुए हैं। क्योंकि

वही चीज समझ लें, कि मेरा हाथ, मैं अपने हाथ को बढ़ा कर आ पके हाथ को अपने हाथ में ले लूं तो मेरा हाथ दो जगह जोड़ रहा है। एक तो आपके हाथ से मुझे जोड़ रहा है और हाथ मुझसे भी जुड़ा हुआ है। हाथ बीच में दो को जोड़ रहा है। ध्यान रहे, जहां आपसे मुझे जोड़ रहा है वहां तो सिर्फ आपके शरीर से जोड़ रहा है। लेकिन जहां मुझे जोड़ रहा है वहां आत्मा से जोड़ रहा है। इंद्रियां जब बाहर जोड़ती हैं तो पदार्थ से जोड़ती हैं, भीतर जब जोड़ती हैं, तब चेतना से जोड़ती हैं।

तो, इंद्रियों का बहुत स्थूल रूप ही बाहर प्रकट होता है। क्योंकि जो हाथ आत्मा से जोड़ सकता है, जिसकी इतनी क्षमता है, वह बाहर केवल शरीर से जोड़ पाता है। बाहर उसकी क्षमता बहुत दीन हो जाती है। क्षमता तो जरूर उसमें आत्मा से भी जोड़ने की है, अन्यथा वह मुझसे कैसे जुड़े। और जब मैं कहता हूं; मेरे हाथ ऊपर उठ, तो वह ऊपर उठ जाता है। मेरा संकल्प मेरे हाथ को कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है। जब मैं अपने हाथ को इनकार कर देता हूं ऊपर उठाने से तो हाथ ऊपर नहीं उठ पाता। मेरा संकल्प मेरे हाथ से कहीं जुड़ा हुआ है।

अब बहुत हैरानी की बात है कि शरीर तो है पदार्थ, संकल्प है चेतना। चेतना और पदार्थ कैसे जुड़ते होंगे, कहां जुड़ते होंगे! बहुत अदृश्य होगा वह जोड़! लेकिन बाहर मेरा हाथ तो सिर्फ पदार्थ से ही जोड़ सकता है। लेकिन इसलिए हाथ पर नाराज हो जाने की जरूरत नहीं है। यह हाथ भीतर आत्मा से भी जोड़ रहा है। अगर मैं इस हाथ से अपनी चेतना को बाहर की तरफ प्रवाहित करूं तो यह दूसरे के शरीर पर जाकर अटक जाती है। अगर इसी चेतना को मैं अपने साथ वापस लौट आऊं, गंगोत्री की तरफ लौट आऊं, सागर की तरफ नहीं, तो यह मेरी आत्मा में लीन हो जाती है। हाथ में बहती हुई ऊर्जा बाहर की तरफ बहिर आत्मा का रूप है। हाथ में बहती हुई ऊर्जा भीतर की तरफ एक अंतरात्मा का रूप है। ऊर्जा बहती ही नहीं जहां, वहां परमात्मा है। परमात्मा तक पहुंचना हो तो अंतरात्मा से गुजरना पड़ेगा। बहिर आत्मा हमारी आज की स्थिति है, मौजूदा। परमात्मा हमारी संभावना है--हमारा भविष्य, हमारी नियति। अंतरात्मा हमारा यात्रा पथ है। उससे हमें गुजरना पड़ेगा। गुजरने के रास्ते वही हैं जो बाहर जाने के रास्ते हैं। एक बात... दूसरी बात--बाहर इंद्रियां स्थूल से जोड़ती हैं, भीतर सूक्ष्म से। इसलिए इंद्रियों के दो रूप हैं--एक, जिसको हम ऐंद्रिक शक्ति कहते हैं, और एक जिसको अतींद्रिय शक्ति कहते हैं।

पैरासाइकालाजी अध्ययन करती है उसका--परामनोविज्ञान। और चकित होते हैं। योग ने बहुत दिन अध्ययन किया है उसका। उसको योग ने सिद्धियां कहा है, विभूति कहा है। रूस में आज वे उसे एक नया नाम दे रहे हैं। वे उसे कहते हैं--साइकोट्रानिक्स। कहते हैं कि जैसे, मनोऊर्जा का जगत, जैसे मनोशक्ति का जगत। यह जो भीतर हमारा अतींद्रिय रूप है, संयम जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे हम अपने अतींद्रिय रूप को अनुभव करते चले जाते हैं। किसी भी इंद्रिय को पकड़ कर अतींद्रिय रूप को अनुभव करना शुरू करें। चकित हो जाएंगे।

पिछले दस वर्ष पहले, उन्नीस सौ इकसठ में रूस में एक अंधी लड़की ने हाथ से पढ़ना शुरू किया। हैरानी की बात थी। बहुत परीक्षण किए गए। पांच वर्ष तक निरंतर वैज्ञानिक परीक्षण किए गए। और फिर रूस की जो सबसे बड़ी वैज्ञानिक संस्था है, एकेडमी, उसने घोषणा की; पांच वर्ष के निरंतर अध्ययन के बाद कि लड़की ठीक कहती है। वह अध्ययन करती है। और हैरानी की बात है कि हाथ आंख से भी ज्यादा ग्रहणशील होकर अध्ययन कर रहे हैं। अगर लिखे हुए कागज पर--ब्रेल में नहीं, अंधों की भाषा में नहीं, आपकी भाषा में लिखे हुए कागज पर--वह हाथ फेरती है, तो पढ़ लेती है। आपके लिखे हुए कागज पर कपड़ा ढांक दिया गया है और उस कपड़े पर हाथ रखती है, तो पढ़ लेती है। तो यह तो आंख भी नहीं कर पाती है। यह तो, जो वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे हैं, वे भी नहीं पढ़ पाते हैं सामने, कि नीचे क्या होगा।

लेकिन वासिलिएव, जो उस लड़की पर मेहनत कर रहा था, उसको ऐसा ख्याल आया कि जो एक व्यक्ति के भीतर संभव है वह किसी न किसी मार्ग से, किसी ने किसी रूप में सबकी संभावना होनी चाहिए। तो उसने सोचा, क्या हम दूसरे बच्चों को भी ट्रेड कर सकते हैं? उसने अंधों की एक स्कूल में बीस बच्चों पर प्रयोग शुरू

किया और चकित रह गया कि बीस में से सत्रह बच्चे दो वर्ष के प्रयोग के बाद हाथ से अध्ययन करने में समर्थ हो गए। अब तब तो वासिलिएव ने कहा कि नाइनटी सेवन परसेंट आदमियों की संभावना है कि वे हाथ से पढ़ सकें--नाइनटी सेवन परसेंट। बाकी जो तीन हैं, मानना चाहिए हाथ के लिहाज से बंधे हैं। बाकी और कोई कारण नहीं है। कुछ हाथ के यंत्र में खराबी होगी। वासिलिएव के प्रयोगों का परिणाम यह हुआ, अखबारों में जब खबरें निकलीं तो कई अंधे बच्चों ने अपने-अपने घरों पर प्रयोग करने शुरू कर दिए। और सैकड़ों खबरें आईं, मास्को यूनिवर्सिटी के पास गांवों से कि फलां बच्चा भी पढ़ पाता है, फलां बच्चा भी पढ़ पाता है।

बड़ी हैरानी की बात थी क्योंकि हाथ कैसे पढ़ पाएगा। हाथ के पास तो आंख नहीं है। हाथ से कोई संबंध नहीं जुड़ता हुआ मालूम पड़ता है। हाथ स्पर्श कर सकता है। लेकिन अब चादर ढांक दी गई तो स्पर्श भी नहीं कर सकता। जैसे-जैसे प्रयोगों को और गहन किया गया, वैसे-वैसे साफ हुआ कि सवाल हाथ का नहीं है, यह सवाल अतींद्रिय है, पैरासाइकिक है। उस लड़की को फिर पैर से भी पढ़ने के लिए कोशिश करवाई गई। दो महीने में वह पैर से भी पढ़ने लगी। फिर उसको बिना स्पर्श किए पढ़ने की कोशिश करवाई गई। वह दीवार के उस तरफ रखा हुआ बोर्ड भी पढ़ लेती थी। फिर उस फासले पर रखी हुई किताब खोली जाएगी और वह यहां से पढ़ सकेगी। तब स्पर्श से कोई संबंध न रहा। वासिलिएव ने कहा है--हम जितनी शक्तियों के संबंध में जानते हैं, निश्चित ही उनसे कोई अन्य शक्ति काम कर रही है।

योग निरंतर उस अन्य शक्ति की बात करता रहा है। महावीर की संयम की जो प्रक्रिया है उसमें उस अन्य शक्ति को जगाना ही आधार है। जैसे-जैसे वह अन्य शक्ति लगती है वैसे-वैसे इंद्रियां फीकी हो जाती हैं। ठीक वैसे ही फीकी हो जाती हैं जैसे कि आप किताब पढ़ रहे हैं--एक उपन्यास पढ़ रहे हैं और फिर आपके सामने टेलीविजन पर वह उपन्यास खोला जा रहा है तो आप किताब बंद कर देंगे। किताब एकदम फीकी हो गई। कथा वही है, लेकिन अब ज्यादा जीवंत मीडिया है, आपके सामने। बहुत दिन तक किताब चलेगी नहीं, बहुत दिन तक किताब नहीं चलेगी। किताब खो जाएगी। टेलीविजन और सिनेमा इसको पी जाएगा। जो भी शिक्षा टेलीविजन से दी जा सकती है वह किताब से आगे नहीं दी जा सकेगी। उसका कोई अर्थ नहीं रह गया क्योंकि किताब बहुत मुर्दा है, बहुत फीकी हो जाती है।

अब अगर आपको कोई कहे कि उपन्यास किताब में पढ़ लो, और यह कथा फिल्म पर देख लो, दो में से चुन लो जो तुम्हें चुनना हो, तो आप किताब को हटा देंगे, तो जिन्हें टेलीविजन का कोई पता नहीं है, वे समझेंगे कि किताब का त्याग किया। त्याग आपने नहीं किया है, आपने सिर्फ श्रेष्ठतम माध्यम को चुन लिया है। सदा ही आदमी चुन लेता है, जो श्रेष्ठतम है, उसे। अगर आपको अपनी इंद्रियों का अतींद्रिय रूट प्रकट होना शुरू हो जाए तो निश्चित ही आप इंद्रियों का रस छोड़ देंगे और एक नये रस में आप प्रवेश कर जाएंगे। बाहर जो अभी इंद्रियों में ही जीते हैं, जिनकी समझ की सीमा इंद्रियों के पार नहीं--वे कहेंगे, महात्यागी हैं आप। लेकिन आप केवल भोग की और गहनतम, और अंतर्तम दिशा में आगे बढ़ गए हैं। आप उस रस को पाने लगे हैं जो इंद्रियों में जीने वाले किसी आदमी को कभी पता ही नहीं चलता। संयम की यह विधायक दृष्टि अतींद्रिय संभावनाओं के बढ़ाने से शुरू होती है।

और महावीर ने बहुत ही गहन प्रयोग किए हैं अतींद्रिय संभावनाओं को बढ़ाने के लिए। महावीर की सारी की सारी साधना को इस बात से ही समझना शुरू करें तो बहुत कुछ आगे प्रकट हो सकेगा। महावीर अगर बिना भोजन के रह जाते हैं वर्षों तक तो उसका कारण? उसका कारण है उन्होंने भीतर एक भोजन पाना शुरू कर दिया है। अगर महावीर पत्थर पर लेट जाते हैं और गद्दे की कोई जरूरत नहीं रह जाती तो उन्होंने भीतर के एक नये स्पर्श का जगत शुरू कर दिया है। महावीर अगर कैसा भी भोजन स्वीकार कर लेते हैं--असल में उन्होंने एक भीतर का स्वाद जन्मा लिया है। अब बाहर की चीजें उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। भीतर की चीजें ही बाहर की चीजों पर इम्पोज हो जाती हैं और छा जाती हैं। उसे घेर लेती हैं। इसलिए महावीर सिकुड़े हुए मालूम नहीं पड़ते, फैले हुए मालूम पड़ते हैं। उनके व्यक्तित्व में कोई कहीं संकोच नहीं मालूम पड़ता है। खिलाव मालूम होता है। वे आनंदित हैं। वे तथाकथित तपस्वियों जैसे दुखी नहीं हैं।

बुद्ध से यह नहीं हो सका। यह विचारों में ले लेना बहुत कीमती होगा और समझना आसान होगा। टाइप अलग था। बुद्ध से यह नहीं हो सका। बुद्ध ने भी यही सब साधना शुरू की जो महावीर ने की है। लेकिन बुद्ध को हर साधना के बाद ऐसा लगा कि इससे तो मैं और दीन-हीन हो रहा हूं। कहीं कुछ पा तो नहीं रहा हूं। इसलिए छह वर्ष के बाद बुद्ध ने सारी तपश्चर्या छोड़ दी। स्वभावतः बुद्ध ने निष्कर्ष लिया कि तपश्चर्या व्यर्थ है। बुद्ध बुद्धिमान थे और ईमानदार थे। नासमझ होते तो यह निष्कर्ष भी न लेते। अनेक नासमझ लोग चले जाते हैं उन दिशाओं में जो उनके लिए नहीं हैं। उन दिशाओं में, जिनकी उनकी क्षमता नहीं हैं। जो उनके व्यक्तित्व से तालमेल नहीं खाती और अपने को समझाए चले जाते हैं कि पिछले जन्मों में किए हुए पापों के कारण ऐसा हो रहा है। या शायद मैं पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूं इसलिए ऐसा हो रहा है और ध्यान रहे, जो आपकी दिशा नहीं है उसमें आप पूरा प्रयास कभी भी न कर पाएंगे इसलिए यह भ्रम बना ही रहेगा कि मैं पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूं।

बुद्ध ने छह वर्ष तक वही किया जो महावीर कर रहे थे। लेकिन बुद्ध को जो निष्पत्ति मिली उसे करने से, वह वह नहीं थी जो महावीर को मिली। महावीर आनंद को उपलब्ध हो गए, बुद्ध बहुत पीड़ा को उपलब्ध हो गए। महावीर महाशक्ति को उपलब्ध हो गए, बुद्ध केवल निर्बल हो गए। निरंजना नदी को पार करते वक्त एक दिन वे इतने कमजोर थे उपवास के कारण कि किनारे को पकड़ कर चढ़ने की शक्ति मालूम न पड़ी। एक जड़ को पकड़ कर वृक्ष की सोचने लगे कि इस उपवास से क्या मिलेगा जिससे मैं नदी भी पार करने की शक्ति खो चुका, उससे इस भवसागर को कैसे पार कर पाऊंगा। पागलपन है, यह नहीं होगा। कृश हो गए थे, हड्डियां सब निकल आईं। बुद्ध का बहुत प्रसिद्ध चित्र जो उस समय का है वह ठीक तथाकथित तपस्वी जैसी मुसीबत में पड़ेगा, उसका चित्र है। एक ताम्र प्रतिमा उपलब्ध है, बहुत पुरानी—जिसमें बुद्ध का उस समय का चित्र है, जब वे छह महीने तक निराहार रहे थे। सारी हड्डियां दिखाई पड़ती हैं, बाकी सारा शरीर सूख गया है। खून ने जैसे बहना बंद कर दिया हो, चमड़ी जैसे सिकुड़ कर जुड़ गई है। सारा शरीर मुर्दे का हो गया। वैसे ही क्षण में वह निरंजना नदी को पार करते वक्त उन्हें ख्याल आया कि नहीं, यह सब व्यर्थ है। और यह सब बुद्ध के लिए व्यर्थ था। लेकिन इसी सबसे महावीर महाशक्ति को उपलब्ध हुए। असल में बुद्ध ने जिनसे यह बात सुनी और सीखी वह सब निषेध था वह सब निषेध था। यह-यह छोड़ो, यह-यह छोड़ो, वह छोड़ते गए। जिसने जैसा कहा, वह करते चले गए। जिस गुरु ने जो बताया वह उन्होंने किया। सब छोड़ कर उन्होंने पाया कि सब तो छूट गया, मिला कुछ भी नहीं, और मैं केवल दीन-हीन और दुर्बल हो गया हूं—बुद्ध के लिए वह मार्ग न था। बुद्ध के व्यक्तित्व का टाइप भिन्न था, ढांचा और था। फिर बुद्ध ने सब त्याग कर दिया सब त्याग का त्याग कर दिया। भोग को त्याग करके देख लिया था, उससे कुछ पाया नहीं। फिर सब त्याग का त्याग कर दिया। और जब सब त्याग का भी त्याग कर दिया, तब बुद्ध ने पाया।

महावीर की प्रक्रिया में और बुद्ध की प्रक्रिया में बड़ा उलटा भाव है। इसलिए एक ही समय पैदा होकर भी दोनों की परंपरा बड़ी विपरीत है। बुद्ध ने भी पाया, वहीं पहुंचे वे जहां कोई पहुंचता है, महावीर पहुंचते हैं। लेकिन त्याग से न पाया। क्योंकि त्याग की जो धारणा बुद्ध के मन में प्रवेश कर गई, वह निषेध की थी। वहीं भूल हो गई। महावीर की तो धारणा विधेय की थी। जब भी कोई त्याग में निषेध से चलेगा तो भटकेगा और परेशान होगा और दुर्बल होगा। कहीं पहुंचेगा नहीं। आत्मबल तो मिलेगा ही नहीं, शरीर बल और खो जाएगा। अतींद्रिय का तो जगत खुलेगा ही नहीं, इंद्रियों का जगत रुग्ण, बीमार होकर सिकुड़ जाएगा। अंतर-ध्वनि सुनाई न पड़ेगी, कान बहरे हो जाएंगे। अंतर्दृश्य तो दिखाई न पड़ेंगे, आंख धुंधली हो जाएगी। अंतर-स्पर्श तो पता न चलेगा, हाथ जड़ हो जाएंगे और बाहर भी स्पर्श न कर पाएंगे।

निषेध से वह भूल होती है। और परंपरा केवल निषेध दे सकती है। क्योंकि हम जो पकड़ते हैं, उनको वही दिखाई पड़ता है जो छोड़ा है। उन्हें वह नहीं दिखाई पड़ता जो पाया। तो महावीर को अगर ठीक समझना हो,

उनके गरिमाशाली संयम को अगर समझना हो, उनके स्वस्थ, विधायक संयम को यदि समझना हो तो अतींद्रिय को जगाने के प्रयोग में प्रवेश करना चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई इंद्रिय तत्काल अतींद्रिय जगत में प्रवेश करने को तैयार खड़ी है। थोड़े से प्रयोग करने की जरूरत है और आपको पता चल जाएगा कि आपकी अतींद्रिय क्षमता क्या है। दो-चार-पांच छोटे प्रयोग करें और आपको एहसास होने लगेगा कि आपकी दिशा क्या है, आपका द्वार क्या है? उसी द्वार से आगे बढ़ जाएंगे।

कैसे पता चले, कैसे जाने कोई कि उसकी अतींद्रिय क्षमता क्या हो सकती है?

हम सबको कई बार मौके मिलते हैं लेकिन हम चूक जाते हैं। क्योंकि हम कभी उस दिशा में सोचते नहीं। कभी आप बैठें, अचानक आपको ख्याल आता है किसी मित्र का और आप चेहरा उठाते हैं और देखते हैं, वह द्वार पर खड़ा है। आप सोचते हैं, संयोग है। चूक गए मौके को। कभी आप सोचते हैं, कितने बजे हैं, ख्याल आता है नौ। घड़ी में देखते हैं, ठीक नौ बजे हैं। आप सोचते हैं, संयोग है। चूक गए। एक अतींद्रिय झलक मिली थी। अगर ऐसी झलक आपको कोई मिलती है तो इसके प्रयोग करें। अगर घड़ी पर आपने सोचा नौ बजे हैं और घड़ी में नौ बजे हैं, तो फिर अब इस पर प्रयोग करना शुरू कर दें। कभी भी घड़ी पहले मत देखें--पहले सोचें, फिर घड़ी देखें। और शीघ्र ही आपको पता चलेगा, यह संयोग नहीं है। क्योंकि यह इतने बार घटने लगेगा, और यह घटने की घटना बढ़ने लगेगी संख्या में कि संयोग न रह जाएगा।

आधी रात को उठ आए। पहले सोचें कि कितना बजा है। सोचें कहना ठीक नहीं, क्योंकि सोचने में भूल हो सकती है। ख्याल करें एकदम से कि कितना बजा है और जो पहला ख्याल हो, उसको ही घड़ी से मिलाएं, दूसरे से मत मिलाएं। दूसरा गड़बड़ होगा। पहला जो हो! अगर आपको द्वार पर आए मित्र का ख्याल आ गया तो फिर जरा इस पर प्रयोग करें। जब भी द्वार पर आहट सुनाई पड़े, दरवाजे की घंटी बजे, जल्दी दरवाजा मत खोलें। पहले आंख बंद करें और पहले जो चित्र आए उसको ख्याल में ले लें, फिर दरवाजा खोलें। थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि यह संयोग नहीं था। यह आपकी क्षमता की झलक थी जिसको आप संयोग कह कर चूक रहे थे। और एकाध दिशा में भी अगर आपका अतींद्रिय रूप खुलना शुरू हो जाए तो आपकी इंद्रियां तत्काल फीकी पड़नी शुरू हो जाएंगी और आपके लिए संयम का विधायक मार्ग साफ होने लगेगा।

हम पूरे जीवन न मालूम कितने अवसरों को चूक जाते हैं न मालूम। और चूक जाने का हमारा एक तर्क है कि हम हर चीज को

संयोग कह कर छोड़ देते हैं कि ऐसा हो गया होगा। ऐसा नहीं है कि संयोग नहीं होते, संयोग होते हैं। लेकिन बिना परीक्षा किए मत कहें कि संयोग है। परीक्षा कर लें। हो सकता है, संयोग न हो। और अगर संयोग नहीं है तो आपकी शक्ति का आपको अनुमान होना शुरू हो जाएगा। एक बार आपको ख्याल में आ जाए आपकी शक्ति का सूत्र, तो आप उसको फिर विकसित कर सकते हैं। उसको प्रशिक्षित कर सकते हैं। संयम उसका प्रशिक्षण है।

एक दिन आपने उपवास किया और आपको भोजन की बिल्कुल याद न आए, उस दिन अपने को भुलाने की कोशिश में मत लगना जैसा उपवास करने वाले करने लगते हैं। एक दिन उपवास किया तो आदमी मंदिर में जाकर बैठ जाता है। भजन कीर्तन, धुन में लगा रहता है। शास्त्र पढ़ता रहता है, साधु को सुनता रहता है। वह सब इसलिए कि भोजन की याद न आए। वह चूक रहा है। जिस दिन भोजन नहीं किया, उस दिन कुछ न करें, फिर खाली बैठ जाएं और देखें, अगर चौबीस घंटे में आपको भोजन की याद न आए, तो उपवास आपके लिए मार्ग हो सकता है। तो आप महावीर जितने लंबे उपवासों की दुनिया में प्रवेश कर सकते हैं। वह आपका द्वार बन सकता है। अगर आपको भोजन-भोजन की ही याद आने लगे तो आप जानना कि वह आपका रास्ता नहीं है। आपके लिए वह ठीक नहीं होगा।

किसी भी दिशा में--पच्चीस दिशाएं चौबीस घण्टे खुलती हैं। जो जानते हैं, वे तो कहते हैं--हर क्षण हम चौराहे पर होते हैं, जहां से दिशाएं खुलती हैं--हर क्षण। अपनी दिशा को खोज लेना साधक के लिए बहुत जरूरी

है, नहीं तो, वह भटक सकता है। और दूसरे को आरोपित मत करना, अपने को ही खोजना और अपने टाइप को खोजना, अपने ढांचे को, अपने व्यक्तित्व के रूप को। नहीं तो, भूल हो जाती है। महावीर को मानने वाले घर में पैदा हो गए हैं इसलिए आप महावीर के मार्ग पर जा सकेंगे, यह अनिवार्य नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि आपके लिए मोहम्मद का मार्ग ठीक होगा। और कोई नहीं कह सकता कि कृष्ण का मार्ग ठीक नहीं होगा। जरूरी नहीं है कि आप कृष्ण को मानने वाले घर में पैदा हो गए हैं, इसलिए बांसुरी में आपको कोई रस आ जाए, यह जरूरी नहीं है। हो सकता है, महावीर आपके लिए सार्थक हों, जिनसे बांसुरी को है, वह जन्म नहीं है। महावीर के पास जो आएगा वह चुन कर आ रहा है। उसका बेटा जन्म से जैन हो जाएगा। वह खुद चुन कर आया था। उसका चुनाव था। उसके व्यक्तित्व और महावीर के व्यक्तित्व में कोई कशिश, कोई मैग्निटिज्म था, जिसने उसे खींचा था, वह उनके पास आ गया। कृष्ण हाथ में बांसुरी न हो तो कृष्ण को पहचानना मुश्किल है। अगर बांसुरी अकेली रखी हो तो कृष्ण का ख्याल आ भी सकता है। व्यक्तित्व के टाइप हैं। और अभी, जैसा कि हमने कभी इस मुल्क में चार वर्णों को बांटा था, यह बहुत मजे की बात है कि वे चार वर्ण हमारे चार टाइप थे, जो मूल आदमी के चार रूप हो सकते हैं।

कभी-कभी चकित करने वाली घटनाएं घटती हैं। अभी रूस के वैज्ञानिक फिर आदमी को इलेक्ट्रिसिटी के आधार पर चार हिस्सों में बांटना शुरू किए हैं। वे कहते हैं--फोर टाइप्स। आधार उनका है कि व्यक्ति के शरीर की विद्युत का जो प्रवाह है, वह उसके टाइप को बताता है और वह विद्युत का प्रवाह है जो शरीर का, वह सब का अलग-अलग है। मैं मानता हूं कि महावीर का वह विद्युत का प्रवाह पाजिटिव था। इसलिए वे किसी भी सक्रिय साधना में कूद सके। बुद्ध का वह इलेक्ट्रिक प्रभाव निगेटिव था इसलिए वे किसी सक्रिय साधना से कुछ भी न पा सके। उन्हें एक दिन बिल्कुल ही निष्क्रिय और शून्य हो जाना पड़ा। वहीं से उनकी उपलब्धि का द्वार खुला। वह व्यक्तित्व का भेद है, यह सिद्धांत का भेद नहीं है।

अब तक मनुष्य-जाति बहुत उपद्रव में रही है क्योंकि हम व्यक्तित्व के भेद को सिद्धांतों का भेद मान कर व्यर्थ के विवादों में पड़े रहे हैं। अपने व्यक्तित्व को खोज लें। अपनी विशिष्ट इंद्रिय को खोज लें। अपनी क्षमता का थोड़ा सा आंकलन कर लें और फिर आप संयम की दिशा में गति करना आसान... रोज-रोज आसान पाएंगे। लेकिन अगर आपने अपनी क्षमता को बिना आंके किसी और की क्षमता के अनुकरण में चलने की कोशिश की तो आप अपने को रोज-रोज झंझट में पा सकते हैं। क्योंकि वह आपका मार्ग नहीं है, वह आपका द्वार नहीं है।

इसलिए बहुत दुर्भाग्य जो जगत में घटा है, वह यह है कि अपने धर्म को जन्म से तय करते हैं। इससे बड़ी कोई दुर्भाग्य की घटना पृथ्वी पर नहीं है। क्योंकि इस कारण सिर्फ उपद्रव पैदा होता है, और कुछ भी नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म सचेतन रूप से खोजना चाहिए। वह जीवन का जो परम लक्ष्य है, वह जन्म के होने से नहीं होता तय, वह आपको खोजना पड़ेगा। वह बड़ी मुश्किल से साफ होगा। लेकिन जिस दिन वह साफ हो जाएगा, उस दिन आपके लिए सब सुगम हो जाएगा।

दुनिया से धर्म के नष्ट होने के बुनियादी कारणों में एक यह है कि हम धर्म को जन्म से जोड़े हैं। धर्म हमारी खोज नहीं है और इसलिए यह भी होता है कि महावीर के वक्त में महावीर का विचार जितने लोगों के जीवन में क्रांति ला पाया, फिर पच्चीस सौ साल में भी उतने लोगों की जिंदगी में नहीं ला पाया। इसका कुल कारण इतना है कि महावीर के पास जो लोग आते हैं वह उनकी कांशस च्वाइस है, वह जन्म नहीं है। महावीर के पास जो आएगा वह चुन कर आ रहा है। उसका बेटा जन्म से जैन हो जाएगा। वह खुद चुन कर आया था। उसका चुनाव था। उसके व्यक्तित्व और महावीर के व्यक्तित्व में कोई कशिश, कोई मैग्निटिज्म था, जिसने उसे खींचा था, वह उनके पास आ गया। लेकिन उसका बेटा? उसका बेटा सिर्फ पैदा होने से महावीर के पास जाएगा, वह कभी पास नहीं पहुंचेगा। इसलिए महावीर या बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट, इनके जीवन के क्षणों में इनके पास जो लोग आते हैं, उनके जीवन में आमूल रूपांतरण हो जाता है। फिर यह दुबारा घटना नहीं घटती। और हर पीढ़ी धीरे-धीरे औपचारिक हो जाती है। धर्म और औपचारिक, फार्मल हो जाता है। क्योंकि हम इस घर में पैदा हुए हैं,

इसलिए इस मंदिर में जाते हैं। घर और मंदिर का कोई संबंध है? मेरा व्यक्तित्व क्या है, मेरी दिशा, मेरा आयाम क्या है। कौन सा चुंबक मुझे खींच सकता है, या किस चुंबक से मेरे संबंध जुड़ सकते हैं, वह प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं खोजना चाहिए।

हम एक धार्मिक दुनिया बनाने में तभी सफल हो पाएंगे जब हम प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने की सहज स्वतंत्रता दे दें। अन्यथा दुनिया में धर्म न हो पाएगा। अधर्म होगा। और धार्मिक लोग औपचारिक होंगे और अधार्मिक वास्तविक होंगे। क्योंकि बड़े मजे की बात है। कोई आदमी कभी भी नास्तिकता को कांशसली चुनता है, चुनना पड़ता है। वह कहता है, नहीं है ईश्वर, तो उसका चुनाव होता है। और जो आदमी कहता है, ईश्वर है, यह उसके बापदादों का चुनाव है। इसलिए नास्तिक के सामने आस्तिक हार जाते हैं। उसका कारण है। क्योंकि आपका तो वह चुनाव ही नहीं है। आप आस्तिक हैं, पैदाइश। वह आदमी नास्तिक है, चुनाव से। उसकी नास्तिकता में एक बल, एक तेजी, एक गति, एक प्राण का स्वर होता है। आपकी आस्तिकता सिर्फ फार्मल है। हाथ में एक कागज का टुकड़ा है, जिस पर लिखा है, आप किस घर में पैदा हुए हैं। वही होता है। नास्तिक से हार जाता है आस्तिक, लेकिन ज्यादा दिन यह नहीं चलेगा। अब तक ऐसा हुआ था। अब नास्तिकता भी धर्म बन गई है।

उन्नीस सौ सत्रह की रूसी क्रांति के बाद नास्तिकता भी धर्म है। इसलिए रूस में अब नास्तिक बिल्कुल कमजोर हैं। रूस के नास्तिक पैदाइश से नास्तिक हैं। उसका बाप नास्तिक था इसलिए वह नास्तिक है। इसलिए अब नास्तिकता भी निर्बल, नपुंसक हो गई है। उसमें भी वह बल नहीं रह जाएगा। निश्चित ही बल होता है, अपने चुनाव में। मैं अगर मरने के लिए भी गड्ढे में कूदने जाऊं, और वह मेरा चुनाव है, तो मेरी मृत्यु में भी जीवन की आभा होगी। और अगर मुझे स्वर्ग भी मिल जाए धक्के देकर, फार्मल, कोई मुझे पहुंचा दे स्वर्ग में, तो मैं उदास-उदास स्वर्ग की गलियों में भटकने लगूंगा। वह मेरे लिए नरक हो जाएगा। उससे मेरी आत्मा का कहीं तालमेल नहीं होने वाला है।

संयम को चुनें। अपने को खोजें। सिद्धांत का बहुत आग्रह न रखें, अपने को खोजें। अपनी इंद्रियों को खोजें। अपने बहाव देखें कि मेरी ऊर्जा किस तरफ बहती है; उससे लड़ें मत, वही आपका मार्ग बनेगा। उससे ही पीछे लौटें और विधायक रूप से अतींद्रिय का थोड़ा अनुभव शुरू करें। और प्रत्येक व्यक्ति के पास अतींद्रिय क्षमता है—उसे पता हो, न पता हो। और प्रत्येक व्यक्ति चमत्कारी रूप से अतींद्रिय प्रतिभा से भरा हुआ है। जरा कहीं द्वार खटखटाने की जरूरत है और खजाने खुलने शुरू हो जाते हैं। और जैसे ही यह होता है वैसे ही इंद्रियों का जगत फीका हो जाता है।

एक दो-तीन बातें संयम के संबंध में और, क्योंकि कल हम तप की बात शुरू करेंगे। आदमी भूलें भी नई-नई नहीं करता है, पुरानी ही करता है—भूलें भी। जड़ता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा? अगर आप जिंदगी में लौट कर देखें तो एक दर्जन भूल से ज्यादा भूलें आप न गिना पाएंगे। हां, उन्हीं-उन्हीं को कई बार किया। ऐसा लगता है कि अनुभव से हम कुछ सीखते ही नहीं। और जो अनुभव से नहीं सीखता वह संयम में नहीं जा सकेगा। संयम में जाने का अर्थ ही यह है कि अनुभव ने बताया कि असंयम गलत था; कि अनुभव ने बताया कि असंयम दुख था; कि अनुभव ने बताया कि असंयम सिर्फ पीड़ा थी और नरक था। लेकिन हम तो अनुभव से सीखते ही नहीं। अच्छा हो कि मैं मुल्ला की बात आपसे कहूं।

साठ वर्ष का हो गया है, मुल्ला। काफी हाउस में मित्रों के पास बैठ कर गपशप कर रहा है एक सांझ। गपशप का रुख अनेक बातों से घूमता इस बात पर आ गया कि एक बूढ़े मित्र ने पूछा—सभी बूढ़े हैं, साठ साल का नसरुद्दीन है, उसके मित्र हैं—एक बूढ़े ने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम्हारी जिंदगी में कोई ऐसा मौका आया, तुम्हें ख्याल आता है कि जब तुम बड़ी परेशानी में पड़ गए होगे—बहुत आकवर्ड मोमेंट? नसरुद्दीन ने कहा: सभी की जिंदगी में आता है। लेकिन तुम अपनी जिंदगी का कहो तो हम भी कहें।

तो सभी बूढ़ों ने अपनी-अपनी जिंदगी के वे क्षण बताए जब वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं, जहां कुछ निकलने का रास्ता न रहा। कभी किसी ने कोई चोरी की और रंगे हाथों पकड़ा गया। कभी कोई झूठ बोला और झूठ नग्नता से प्रगट हो गया और कोई उपाय न रहा, उसको बचाने का।

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे भी याद है। घर की नौकरानी स्नान कर रही है और मैं ताली के छेद से उसको देख रहा था। मेरी मां ने मुझे पकड़ लिया। उस वक्त मेरी बुरी हालत हुई।

बाकी बूढ़े हंसे। आंखें मिचकाईं। उन्होंने कहा: नहीं, इसमें कोई इतने परेशान मत होओ। सभी की जिंदगी में, बचपन में ऐसे मौके आ जाते हैं।"

नसरुद्दीन ने कहा: वॉट आर यू सेइंग? दिस इज अबाउट यसटरडे। क्या कह रहे हो, बचपन! यह कल की ही बात है।

बचपन और बुढ़ापे में चालाकी भला बढ़ जाती हो, भूलें नहीं बदलतीं। वही भूलें हैं। हां, बूढ़ा जरा होशियार हो जाता है और पकड़ में कम आता है, यह दूसरी बात है। लेकिन इससे बच्चा कम होशियार है, पकड़ में जल्दी आ जाता है। अभी उसके पास उपाय चालाकी के ज्यादा नहीं हैं। या यह भी हो सकता है कि बच्चे को पकड़ने वाले लोग हैं, बूढ़े को पकड़ने वाले लोग नहीं हैं। बाकी कहीं अनुभव में कुछ भेद पड़ता हो, ऐसा दिखाई नहीं पड़ता।

नसरुद्दीन मरा। स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। सौ वर्ष के ऊपर होकर मरा। काफी जीया। कथा है कि सेंट पीटर ने, जो स्वर्ग के दरवाजे पर पहरा देते हैं, उन्होंने नसरुद्दीन से पूछा-काफी दिन रहे, बहुत दिन रहे, लंबा समय रहे, कौन-कौन से पाप किए पृथ्वी पर?

नसरुद्दीन ने कहा: पाप! किए ही नहीं।

सेंट पीटर ने समझा कि शायद पाप बहुत जनरलाइज बात है, ख्याल में न आती हो। बूढ़ा आदमी है।

कहा: चोरी की कभी?

नसरुद्दीन ने कहा: नहीं।

कभी झूठ बोले?

नहीं।

कभी शराब पी?

नसरुद्दीन ने कहा: नहीं।

कभी स्त्रियों के पीछे पागल होकर भटके?

नसरुद्दीन ने कहा: नहीं।

सेंट पीटर बहुत चौंका। उसने कहा: दैन वॉट यू हैव बीन डूइंग देयर फॉर सो लांग ए टाइम? सौ साल तक तुम कर क्या रहे थे वहां? कैसे गुजारे इतने दिन?

नसरुद्दीन ने कहा: अब तुमने मुझे पकड़ा। यह तो झंझट का सवाल है।

यह झंझट का सवाल है। लेकिन इसका जवाब मैं तुमसे एक सवाल पूछ कर देना चाहता हूं। वॉट हैव यू बीन डूइंग हियर? तुम क्या कर रहे हो, यहां? हम तो सौ साल से, तुम्हारा तो सुनते हैं अनंतकाल से तुम यहां हो?

पाप न हो तो आदमी को लगता ही नहीं कि जिए कैसे। असंयम न हो तो आदमी को लगता ही नहीं कि जिए कैसे। अब महावीर जैसे लोग हमारी समझ के बाहर पड़ते हैं, इसका कारण है। इसका कारण एक्झिस्टेंशियल है। इंटेलेक्चुअल नहीं। उसका कारण बौद्धिक नहीं है कि वह हमारी समझ में नहीं आता। बुद्धि में बिल्कुल समझ में आते हैं। फर्क हमारे जीने के ढंग का है। हमारी समझ में यह नहीं आता कि संयम, तो फिर जीएंगे क्या? न कोई स्वाद में रस रह जाएगा, न कोई संगीत में रस रह जाएगा, न कोई रूप आकर्षित करेगा, न भोजन पुकारेगा, न वस्त्र बुलाएंगे, महत्वाकांक्षा न रह जाएगी। तो फिर हम जीएंगे कैसे?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि अगर महत्वाकांक्षा न रही, अगर बड़ा मकान बनाने का ख्याल मिट गया, अगर और सुंदर होने का ख्याल मिट गया, तो जीएंगे कैसे! अगर और धन पाने का ख्याल मिट गया, तो जीएंगे कैसे! हमें लगता ही यह है कि पाप ही जीवन की विधि है, असंयम ही जीवन का ढंग है। इसलिए हम सुन लेते हैं कि संयम की बात अच्छी है, लेकिन वह कहीं हमें छू नहीं पाती। हमारे अनुभव से उसको कोई मेल नहीं है। और वह हमारा सवाल ठीक ही है क्योंकि जब भी हमें संयम का ख्याल उठता है तो लगता है, निषेध-यह छोड़ो, वह छोड़ो, यह छोड़ो। यही तो हमारा जीवन है। सब छोड़ दें! तो फिर जीवन कहां है! यह निषेधात्मक होने की वजह से हमारी तकलीफ है। मैं नहीं कहता कि यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो। मैं कहता हूं, यह भी पाया जा सकता है, यह भी पाया जा सकता है, यह भी पाया जा सकता है। इसे पाओ। हां, इस पाने में कुछ छूट जाएगा, निश्चित। लेकिन तब खाली जगह नहीं छूटेगी। तब भीतर एक नया फुलफिलमेंट, एक नया भराव होगा।

और हमारी सभी इंद्रियां एक पैटर्न में, एक व्यवस्था में जीती हैं। अगर आपको अतींद्रिय दृश्य दिखाई पड़ने शुरू हो जाएं तो ऐसा नहीं कि सिर्फ आंख से छुटकारा मिलेगा। नहीं, जिस दिन आंख से छुटकारा मिलता है उस दिन अचानक कान से भी छुटकारा मिलना शुरू हो जाता है। क्योंकि अनुभव का एक नया रूप जब आपके ख्याल में आता है कि आंख के जगत में भी भीतर का दर्शन है, तो फिर कान के जगत में भी भीतर की ध्वनि होगी, भीतर का नाद होगा। फिर स्पर्श के जगत में भी भीतर के जगत का स्पर्श होगा। फिर संभोग के जगत में भी भीतर की समाधि होगी। वह तत्काल ख्याल में आना शुरू हो जाता है। जब एक जगह से ढांचा टूट जाए असंयम का, तो सब जगत से दीवार गिरनी शुरू हो जाती है। प्रत्येक चीज एक ढांचे में जीती है। एक ईंट खींच लें, सब गिर जाता है।

जनगणना हो रही है और नसरुद्दीन के घर अधिकारी गए हुए हैं, उससे पूछने, उसके घर के बाबत। अकेला बैठा है, उदासा। तो अधिकारी ने पूछा कि कुछ अपने परिवार का ब्योरा दो, जनगणना लिखने आया हूं। तो नसरुद्दीन ने कहा कि मेरे पिता जेलखाने में बंद हैं। अपराध की मत पूछो, क्योंकि बड़ी लंबी संख्या है। मेरी पत्नी किसी के साथ भाग गई है। किसके साथ भाग गई है, इसका हिसाब लगाना बेकार है। क्योंकि किसी के भी साथ भाग सकती थी। मेरी बड़ी लड़की पागलखाने में है। दिमाग का इलाज चलता है। यह मत पूछो कि कौन सी बीमारी है, यह पूछो कि कौन सी बीमारी नहीं है?

थोड़ा बेचैन होने लगा अधिकारी कि बड़ी मुसीबत का मामला है, कहां, कैसे भागे। किस तरह सहानुभूति इसको बताएं और निकलें यहां से? तभी नसरुद्दीन ने कहा-और मेरा छोटा लड़का बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में है। तो अधिकारी को जरा प्रसन्नता हुई। उसने कहा: बहुत अच्छा। प्रतिभाशाली मालूम पड़ता है! क्या अध्ययन कर रहा है?

नसरुद्दीन ने कहा: गलती मत समझो। हमारे घर में कोई अध्ययन करेगा? हमारे घर में कोई प्रतिभा पैदा होगी? न तो प्रतिभाशाली है, न अध्ययन कर रहा है। बनारस विश्वविद्यालय के लोग उसका अध्ययन कर रहे हैं। दे आर स्टडींग हिम। नसरुद्दीन ने कहा: हमारे घर के बाबत कुछ तो समझो, जो पूरा ढांचा है उसमें-और रही मेरी बात, सो तुम न पूछो तो अच्छा है। लेकिन जब तक वह यह कह रहा था तब तक तो अधिकारी भाग चुका था। उसने यह कहा तो वह था नहीं मौजूद, वह जा चुका था।

ढांचे में चीजों का अस्तित्व होता है। अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपके घर में एक आदमी पागल होता है, तो किसी न किसी रूप में आपके पूरे परिवार में ढांचा होगा, इसलिए है। नया मनोविज्ञान कहता है-एक पागल की चिकित्सा नहीं की जा सकती है जब तक उसके परिवार की चिकित्सा न की जाए। परिवार की चिकित्सा, फैमिली थेरेपी नई विकसित हो रही है। और, जो और कुछ सोचते हैं वे कहते हैं कि

परिवार से भी क्या फर्क पड़ेगा? क्योंकि परिवार, और परिवारों के ढांचे में जीता है। तो जब तक पूरी सोसाइटी की चिकित्सा न हो जाए, जब तक पूरे समाज की चिकित्सा न हो जाए, तब तक एक पागल को ठीक करना मुश्किल है। वे ग्रुप थेरेपी की बात करते हैं। वे कहते हैं-पूरा ग्रुप, वह जो समूह है पूरा, वह समूह के ढांचे में एक आदमी पागल होता है। चीजें संयुक्त हैं।

लेकिन एक बात उनके ख्याल में नहीं है, जो मैं कहना चाहता हूं। कभी ख्याल में आएगी, लेकिन अभी उनको सौ साल लग सकते हैं। यह बात जरूर सच है कि अगर एक घर में एक आदमी पागल है, तो किसी न किसी रूप में उसके पागलपन में पूरे घर के लोग कंट्रिब्यूट किए, उन सब ने कुछ न कुछ सहयोग दिया है। अन्यथा वह पागल कैसे हो जाता। और यह भी सच है कि जब तक उस घर के सारे लोग ठीक न हो जाएं तब तक यह आदमी ठीक नहीं हो सकता। यह भी सच है कि एक परिवार तो बड़े समूह का हिस्सा है और पूरा समूह उस परिवार को पागल करने में कुछ हाथ बंटाता है। जब तक पूरा समूह ठीक न होगा। लेकिन इससे उलटी बात भी सच है। अगर घर में एक आदमी स्वस्थ हो जाए तो पूरे घर के पागलपन का ढांचा टूटना शुरू हो जाता है। यह बात अभी उनके ख्याल में नहीं है। यह उनके ख्याल में कभी न कभी आ जाएगी। लेकिन भारत के ख्याल में यह बात बहुत पुरानी है। और अगर एक आदमी ठीक हो जाए तो पूरे समूह का ढांचा टूटना शुरू हो जाता है।

इसे हम ऐसा भी समझें कि अगर आपके भीतर एक इंद्रिय में ठीक दिशा शुरू हो जाए तो आपकी सारी इंद्रियों का पुराना ढांचा टूटना शुरू हो जाता है। आपकी एक वृत्ति संयम की तरफ जाने लगे तो आपकी बाकी वृत्तियां असंयम की तरफ जाने में असमर्थ हो जाती हैं। मुश्किल पड़ जाती है। जरा सा इंच भर का फर्क और सारा का सारा जो रूप है-सारा का सारा रूप बदलना शुरू हो जाता है।

कहीं से भी शुरू करें, कुछ भी एक बिंदु मात्र आपके भीतर संयम का प्रकट होने लगे तो आपके असंयम का अंधेरा गिरने लगेगा। और ध्यान रहे, श्रेष्ठतर सदा शक्तिशाली है। तो मैं मानता हूं कि अगर एक व्यक्ति एक घर में ठीक हो जाए तो वह उस घर को पूरा ठीक कर सकता है क्योंकि श्रेष्ठतर शक्तिशाली है। अगर एक व्यक्ति एक समूह में ठीक हो जाए तो पूरे समूह के ठीक होने के संचारण उसके आस-पास से होने लगते हैं क्योंकि श्रेष्ठ शक्तिशाली है। अगर आप के भीतर एक विचार भी ठीक हो जाए, एक वृत्ति भी ठीक हो जाए तो आपकी सारी वृत्तियों का ढांचा टूटने और बदलने लगता है। बिखरने लगता है। फिर आप वही नहीं हो सकते जो आप थे। इसलिए पूरे संयम की चेष्टा में मत पड़ना। पूरा संयम संभव नहीं है। आज संभव नहीं है, इसी वक्त संभव नहीं है। लेकिन किसी एक वृत्ति को तो आप इसी वक्त, आज और अभी रूपांतरित कर सकते हैं। और ध्यान रखना, उस एक का बदलना आपकी और बदलाव के लिए दिशा बन जाएगी। और आपकी जिंदगी में प्रकाश की एक किरण उतर आए, तो अंधेरा कितना ही पुराना हो, कितना ही हो, कोई भय का कारण नहीं है। प्रकाश की एक किरण अनंत गुने अंधेरे से भी ज्यादा शक्तिशाली है। संयम का एक छोटा सा सूत्र, असंयम की जिंदगियां-अनंत जिंदगियों को मिट्टी में गिरा देता है।

लेकिन वह एक सूत्र शुरू हो, और शुरू अगर करना हो तो विधायक दृष्टि रखना, शुरू अगर करना हो तो उसी इंद्रिय से काम शुरू करना जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली हो। शुरू अगर करना हो तो मार्ग मत तोड़ना। उसी मार्ग से पीछे लौटना है जिससे हम बाहर गए हैं। शुरू अगर करना हो तो अंधानुकरण मत करना कि किस घर में पैदा हुए हैं। अपने व्यक्तित्व की समझ को ध्यान में लेना। और फिर जहां भी मार्ग मिले, वहां से चले जाना। महावीर जहां पहुंचते हैं, वहीं मोहम्मद पहुंच जाते हैं। जहां बुद्ध पहुंचते, वहीं कृष्ण पहुंच जाते हैं। जहां लाओत्सु पहुंचता है, वहीं क्राइस्ट पहुंच जाते हैं।

नहीं मालूम, आपको किस जगह से द्वार मिलेगा। आप पहुंचने की फिकर करना, द्वार की जिद्द मत करना कि मैं इसी दरवाजे से प्रवेश करूंगा। हो सकता है वह दरवाजा आपके लिए दीवार सिद्ध हो, लेकिन हम सब इस जिद्द में हैं कि अगर जाएंगे तो जिनेंद्र के मार्ग से जाएंगे, कि जाएंगे तो हम तो विष्णु को मानने वाले हैं, हम तो राम को मानने वाले हैं तो हम राम के मार्ग से जाएंगे। आप किसको मानने वाले हैं, यह उस दिन सिद्ध होगा

जिस दिन आप पहुंचेंगे। उसके पहले सिद्ध नहीं होगा। आप किस द्वार से निकलेंगे, यह उसी दिन सिद्ध होगा जिस दिन आप निकल चुके होंगे, उसके पहले सिद्ध नहीं होता है। लेकिन आप पहले से यह तय किए बैठे हैं, इस द्वार से ही निकलूंगा। ऐसा मालूम पड़ता है, द्वार का बहुत मूल्य है, पहुंचने का कोई मूल्य नहीं है। जिद्द यह है कि इस सीढ़ी पर चढ़ेंगे। चढ़ने से कोई मतलब नहीं है, न भी चढ़ें तो चलेगा। लेकिन सीढ़ी यही होनी चाहिए।

यह पागलपन है और इससे पूरी पृथ्वी पागल हुई है। धर्म के नाम पर जो पागलपन खड़ा हुआ है वह इसलिए कि आपको मंजिल का कोई भी ध्यान नहीं है। साधनों का अति आग्रह है कि बस यही। इस पर थोड़ा ढीला होंगे, मुक्त होंगे तो आप बहुत शीघ्र संयम की विधायक दृष्टि पर, न केवल समझने में बल्कि जीने में समर्थ हो सकते हैं।

आज इतना ही।

कल तप पर हम बात करेंगे। बैठें, अभी जाएं मत-एक पांच मिनट।

तपः ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अहिंसा है आत्मा, संयम है प्राण, तप है शरीर। स्वभावतः अहिंसा के संबंध में भूलें हुई हैं, गलत व्याख्याएं हुई हैं। लेकिन वे भूलें और व्याख्याएं अपरिचय की भूलें हैं। संयम के संबंध में भी भूलें हुई हैं, गलत व्याख्याएं हुई हैं, लेकिन वे भूलें भी अपरिचय की ही भूलें हैं। और ज्यादा भूलें होनी कठिन हैं। जिससे हम अपरिचित हों, उसकी गलत व्याख्या करनी भी कठिन होती है। गलत व्याख्या के लिए भी परिचय जरूरी है। और हमारा सर्वाधिक परिचय तप से है क्योंकि वह सबसे बाह्य रूप-रेखा है। वह शरीर है।

तप के संबंध में सर्वाधिक भूलें हुई हैं, और सर्वाधिक गलत व्याख्याएं हुई हैं। और उन गलत व्याख्याओं से जितना अहित हुआ है, उतना किसी और चीज से नहीं। एक फर्क है कि तप के संबंध में जो गलत व्याख्याएं हुई हैं, वे हमारे परिचय की भूलें हैं। तप से हम परिचित हैं और तप से हम परिचित आसानी से हो जाते हैं। असल में तप तक जाने के लिए हमें अपने को बदलना ही नहीं पड़ता। हम जैसे हैं, तप में हम वैसे ही प्रवेश कर जाते हैं। चूंकि तप द्वार है, और इसलिए हम जैसे हैं वैसे ही अगर तप में चले जाएं तो तप हमें नहीं बदल पाता, हम तप को बदल डालते हैं।

तो तप की पहले तो गलत व्याख्या जो निरंतर होती है, वह हमें समझ लेनी चाहिए, तो हम ठीक व्याख्या की तरफ कदम उठा सकते हैं। हम भोग से परिचित हैं--भोग यानी सुख की आकांक्षा। सभी सुख की आकांक्षाएं दुख में ले जाती हैं। सभी सुख की आकांक्षाएं अंततः दुख में छोड़ जाती हैं--उदास, खिन्न, उजड़े हुए। इससे स्वभावतः एक भूल पैदा होती है। और वह यह कि यदि हम सुख की मांग करके दुख में पहुंच जाते हैं तो क्या दुख की मांग करके सुख में नहीं पहुंच सकते? यदि सुख की आकांक्षा करते हैं और दुख मिलता है, तो क्यों न हम दुख की आकांक्षा करें और सुख को पा लें! इसलिए तप की जो पहली भूल है वह भोगी चित्त से निकलती है। भोगी चित्त का अनुभव यही है कि सुख दुख में ले जाता है। विपरीत हम करें तो हम सुख में पहुंच सकते हैं। तो सभी अपने को सुख देने की कोशिश करते हैं, हम अपने को दुख देने की कोशिश करें। यदि सुख की कोशिश दुख लाती है तो दुख की कोशिश सुख ला सकेगी, ऐसा सीधा गणित मालूम पड़ता है। लेकिन जिंदगी इतनी सीधी नहीं है। और जिंदगी का गणित इतना साफ नहीं है। जिंदगी बहुत उलझाव है। उसके रास्ते इतने सीधे होते तो सभी कुछ हल हो जाता।

सुना है मैंने कि रूस के एक बड़े मनोवैज्ञानिक पावलफ के पास, जिसने कंडीशंड रिफ्लेक्स के सिद्धांत को जन्म दिया, जिसने कहा कि अनुभव संयुक्त हो जाते हैं, उसके पास एक बूढ़े आदमी को लाया गया जो कि शराब पीने की आदत से इतना परेशान हो गया है कि चिकित्सक कहते हैं कि उसके खून में शराब फैल गई है। उसका जीना मुश्किल है, बचना मुश्किल है अगर शराब बंद न कर दी जाए। लेकिन वह कोई तीस साल से शराब पी

रहा है। इतना लंबा अभ्यास है। चिकित्सक डरते हैं कि अगर तोड़ा जाए तो भी मौत हो सकती है। तो पावलफ के पास लाया गया। पावलफ ने अपने एक निष्णात शिष्य को सौंपा और कहा कि इस व्यक्ति को शराब पिलाओ और जब यह शराब की प्याली हाथ में ले, तभी इसे बिजली का शाक दो। ऐसा निरंतर करने से शराब पीना और बिजली का धक्का और पीड़ा संयुक्त हो जाएगी। शराब पीड़ा-युक्त हो जाएगी, कंडीशनिंग हो जाएगी। पीड़ा को कोई भी नहीं चाहता है। पीड़ा को छोड़ना शराब को छोड़ना बन जाएगा। और एक बार यह भाव मन में बैठ जाए गहरे कि शराब पीड़ा देती है, दुख लाती है, तो शराब को छोड़ना कठिन नहीं होगा।

एक महीना प्रयोग जारी रखा गया। एक महीना पावलफ की प्रयोगशाला में वह आदमी रुका था। वह दिन भर शराब पीता था, जब भी वह शराब का प्याला हाथ में लेता, तभी उसकी कुर्सी उसको शाक देती। वह सामने बैठा हुआ मनोवैज्ञानिक बटन दबाता रहता। कभी उसका हाथ छलक जाता, कभी हाथ से प्याली गिर जाती।

महीने भर बाद पावलफ ने अपने युवक शिष्य को बुला कर पूछा: कुछ हुआ? युवक शिष्य ने कहा: हुआ बहुत कुछ। पावलफ खुश हुआ। उसने कहा: मैंने कहा ही था कि निश्चित ही कंडीशनिंग से सब कुछ हो जाता है। पर उसके शिष्य ने कहा: ज्यादा खुश न हों, क्योंकि करीब-करीब उलटा हुआ।

पावलफ ने कहा: उलटा! क्या अर्थ है तुम्हारा?

युवक ने कहा: ऐसा हो गया है, वह इतना कंडीशंड हो गया है कि अब शराब पीता है तो पहले जो भी पास में साकेट होता है उसमें अंगुली डाल लेता है। कंडीशंड हो गया। लेकिन अब बिना शॉक के शराब नहीं पी सकता है। शराब तो नहीं छूटी, शॉक पकड़ गया। अब कृपा करके, शराब छूटे या न छूटे, शॉक छुड़वाइए। क्योंकि शराब जब मारेगी, मारेगी; यह शॉक का धंधा खतरनाक है, यह अभी भी मार सकता है। अब वह पी ही नहीं सकता है। इधर एक हाथ में प्याली लेता है तो दूसरा हाथ साकेट में डालता है।

जिंदगी इतनी उलझी हुई है। जिंदगी इतनी आसान नहीं है। तो एक तो जिंदगी की गणित साफ नहीं है कि जैसा आप सोचते हैं वैसा हो जाएगा। दुख की आकांक्षा सुख नहीं ले आएगी। क्यों? क्योंकि अगर हम गहरे में देखें तो पहली तो बात यह है कि आपने सुख की आकांक्षा की, दुख पाया। अब आप सोचते हैं दुख की आकांक्षा करें तो सुख मिलेगा। लेकिन गहरे में देखें तो अभी भी आप सुख की ही आकांक्षा कर रहे हैं। दुख चाहें तो सुख मिलेगा इसलिए दुख चाह रहे हैं। आकांक्षा सुख की ही है। और सुख की कोई आकांक्षा सुख नहीं ला सकती। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि आदमी अपने को दुख दे रहा है, लेकिन वह दुख इसीलिए दे रहा है कि सुख मिले। पहले सुख दे रहा था ताकि सुख मिले, दुख पाया। अब दुख दे रहा है ताकि सुख मिले, दुख ही पाएगा। क्योंकि आकांक्षा का सूत्र तो अब भी गहरे में वही है। ऊपर सब बदल गया, भीतर आदमी वही है।

सच बात यह है दुख चाहा ही नहीं जा सकता। यू कैन नॉट डिजायर इट। इंपासिबल है, असंभव है। अगर हम ऐसा कहें कि सुख ही चाह है और दुख की तो अचाह ही होती है, चाह नहीं होती है। हां, अगर कभी कोई दुख चाहता है तो सुख के लिए ही, लेकिन वह चाह सुख की ही है। दुख चाहा ही नहीं जा सकता। यह असंभव है। तब हम ऐसा कह सकते हैं, जो भी चाहा जाता है वह सुख है, और जो नहीं चाहा जाता है, वह दुख है। इसलिए दुख के साथ चाह को नहीं जोड़ा जा सकता। और जो भी आदमी दुख के साथ चाह को जोड़ कर तप बनाता है; (दुख धन चाह = तप), ऐसी हमारी व्याख्या है--जो भी आदमी दुख के साथ चाह को जोड़ता है और तप बनाता है--वह तप को समझ ही नहीं पाएगा। दुख की तो चाह ही नहीं हो सकती। सुख ही पीछे दौड़ता है। आकांक्षा मात्र सुख की है। चाह मात्र सुख की है। हां, एक ही रास्ता है कि आपको दुख में भी सुख मालूम पड़ने लगे तो आप दुख को चाह सकते हैं। दुख में भी सुख मालूम पड़ सकता है। इसलिए दूसरी गलत व्याख्या समझ लें। दुख में भी सुख मालूम पड़ सकता है, एसोसिएशन से, कंडीशनिंग से। जो मैंने पावलफ की बात आपको कही, उसी ढंग से, आपको दुख में सुख का भ्रम हो सकता है।

यूरोप में ईसाई फकीरों का एक संप्रदाय था--कोड़ा मारने वाला स्वयं को, फलैजिलिस्ट। उस संप्रदाय की मान्यता थी कि जब भी कामवासना उठे तो अपने को कोड़े मारो। लेकिन बड़ी हैरानी का अनुभव हुआ। जो लोग जानते हैं, उन्हें पता है या जिन्होंने वह प्रयोग किया, उनको धीरे-धीरे अनुभव आया कि कोड़े, जब भी कामवासना उठे तो अपने को कोड़े मारो--आशा यह थी कि कोड़े खाकर कामवासना छूट जाए, लेकिन धीरे-धीरे कोड़े मारनेवालों को पता चला कि कोड़े मारने में कामवासना का ही मजा आने लगा। और यहां तक हालत हो गई कि जिन लोगों ने कोड़े मारने का अभ्यास किया कामवासना के लिए, फिर वे संभोग में अपने को बिना कोड़े मारे नहीं जा सकते थे। पहले वे कोड़े मारेंगे, फिर संभोग में जा सकेंगे। जब तक कोड़े न पड़ें शरीर पर, तब तक कामवासना पूरे रस-मग्न होकर उठेगी नहीं। ऐसा आदमी के मन का जाल है।

तो अब वह आदमी अपने को रोज सुबह कोड़े मार रहा है और पास-पड़ोस के लोग उसको नमस्कार करेंगे कि कितना महान त्यागी है। क्योंकि यह जो कोड़े मारने वाला संप्रदाय था, इसके लाखों लोग थे मध्य युग में, पूरे यूरोप में। और साधु की पहचान ही यह थी कि वह कितने कोड़े मारता है। जो जितने कोड़े मारता था वह उतना बड़ा साधु था। तो सुबह खड़े होकर चौराहों पर साधु अपने को कोड़े मारते थे। लहलुहान हो जाते थे। लोग चकित होते थे कि कितनी बड़ी तपश्चर्या है। क्योंकि जब उनके शरीर से लहू बहता था तो उनके चेहरे पर ऐसा मग्न भाव होता था जो कि केवल संभोगरत जोड़ों में देखा जाता है। लोग चरण छूते थे कि अदभुत है यह आदमी। लेकिन भीतर क्या घटित हो रहा है, वह उन्हें पता नहीं है। भीतर वह आदमी पूरी कामवासना में उतर गया है। अब उसे कोड़े मारने में रस आ रहा है। क्योंकि कोड़ा मारना कामवासना से संयुक्त हो गया। यह वही हुआ जो पावलफ के प्रयोग में हुआ।

और हम अपने दुख में सुख की कोई आभा संयुक्त कर सकते हैं। और अगर दुख में सुख की आभा संयुक्त हो जाए तो हम दुख को बड़े मजे से अपने आसपास इकट्ठा कर ले सकते हैं। लेकिन, तप का यह अर्थ नहीं है। तप दुखवादी की दृष्टि नहीं है। यह दुखवाद गहरे में तो सुख ही है। तप के आस-पास यह जो जाल खड़ा है, अगर यह आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो तपस्वियों की पर्त को तोड़ कर आप उनके भीतर देख पाएंगे कि उनका रस क्या है! और एक बार आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो आप समझ पाएंगे कि जब भी कुछ चाहा जाता है तो सुख चाहा जाता है। अगर कोई दुख को चाह रहा है तो किसी न किसी कोने में उसके मन में सुख और दुख संयुक्त हो गए हैं। इसके अतिरिक्त दुख को कोई नहीं चाह सकता है। भूख मरने में भी मजा आ सकता है, कांटे पर लेटने में भी मजा आ सकता है, धूप में खड़े होने में भी मजा आ सकता है... एक बार आपके भीतर की किसी वासना से कोई दुख संयुक्त हो जाए। और आदमी अपने को दुख इसलिए देता है कि वह किसी वासना से मुक्त होना चाहता है। जिस वासना से मुक्त होना चाहता है, दुख उसी से संयुक्त हो जाता है।

एक आदमी को अपने शरीर को सजाने में बड़ा सुख है। वह शरीर से मुक्त होना चाहता है, शरीर की सजावट की इस कामना से मुक्त हो जाना चाहता है। वह नंगा खड़ा हो जाता है या अपने शरीर पर राख लपेट लेता है, या अपने शरीर को कुरूप कर लेता है। लेकिन उसे पता नहीं है कि यह राख लपेटना भी, यह नग्न हो जाना भी, यह शरीर को कुरूप कर लेना भी शरीर से ही संबंधित है। यह भी सजावट है। सजावट दिखाई नहीं पड़ती, यह भी सजावट है। आपको पता है, अगर आप कभी कुंभ गए हैं, तो एक बात देख कर बहुत चकित होंगे कि जो साधु राख लपेटे बैठे रहते हैं, वे भी एक छोटा आईना अपने डिब्बे में रखते हैं और सुबह स्नान करने के बाद जब वह राख लपेटते हैं, तो आईने में देखते जाते हैं। आदमी अदभुत है। राख ही लपेट रहे हैं तो आईने का क्या प्रयोजन रह गया। लेकिन राख लपेटना भी सजावट है, शृंगार है। शरीर को कुरूप करनेवाला भी आईने में देखेगा कि हो गया ठीक से कि नहीं?

उलटा दिखाई पड़ता है, उलटा है नहीं। तपस्वी शरीर का दुश्मन नहीं हो जाता, जैसा कि भोगी शरीर का लोलुप मित्र है। तपस्वी भोगी के विपरीत नहीं हो जाता क्योंकि विपरीत से भी भोग संयुक्त हो जाता है। विपरीत से भी भोग संयुक्त हो जाता है। शरीर को सुंदर बनाने वालों के लिए ही आईने की जरूरत नहीं होती, शरीर को कुरूप बनाने वाले के लिए भी आईने की जरूरत पड़ जाती है। शरीर को सुंदर बनाने वाला ही दूसरों

की दृष्टि पर निर्भर नहीं रहता है कि कोई मुझे देखे, शरीर को कुरूप बनाने वाला भी दूसरों की दृष्टि पर ही निर्भर रहता है कि कोई मुझे देखे। सुंदर वस्त्र पहन कर रास्ते पर निकलने वाला ही देखने वाले की प्रतीक्षा नहीं करता है, नग्न होकर निकलनेवाला भी उतनी ही प्रतीक्षा करता है। विपरीत भी कहीं एक ही रोग की शाखाएं हो सकते हैं, यह समझ लेना जरूरी है। आसान है लेकिन यही--शरीर के भोग से शरीर के तप पर जाना आसान है। शरीर को सुख देने की आकांक्षा का शरीर को दुख देने की आकांक्षा में बदल जाना बड़ा सुगम और सरल है।

एक और बात ध्यान में ले लेनी जरूरी है। जिस माध्यम से हम सुख चाहते हैं, अगर वह माध्यम हमें सुख न दे पाए तो हम उसके दुश्मन हो जाते हैं। अगर आप कलम से लिख रहे हैं--सभी को अनुभव होगा जो लिखते-पढ़ते हैं--अगर कलम ठीक न चले तो आप कलम को गाली देकर जमीन पर पटक कर तोड़ भी सकते हैं। अब कलम को गाली देना एकदम नासमझी है। इससे ज्यादा नासमझी और क्या होगी! और कलम को तोड़ देने से कलम का कुछ भी नहीं टूटता, आपका ही कुछ टूटता है। कलम का कोई नुकसान नहीं होता, आपका ही नुकसान होता है। लेकिन जूतों को गा ली देकर पटक देने वाले लोग हैं, दरवाजों को गाली देकर खोल देने वाले लोग हैं। ये ही लोग तपस्वी बन जाते हैं। शरीर सुख नहीं दे पाया, यह अनुभव शरीर को तोड़ने की दीक्षा में ले जाता है--तो शरीर को सताओ। लेकिन शरीर को सताने के पीछे वही फ्रस्ट्रेशन, वही विषाद काम कर रहा है कि शरीर से सुख चाहा था और नहीं मिला तो अब जिस माध्यम से सुख चाहा था उसको दुख देकर बताएं।

लेकिन आप बदले नहीं, अभी भी। अभी भी आपकी दृष्टि शरीर पर लगी है, चाहे सुख चाहा हो, और चाहे अब दुख देना चाहते हों, पर आपके चित्त की जो दिशा है वह अभी भी शरीर के ही आस-पास वर्तुल बना कर घूमती है। आपकी चेतना अभी भी शरीर केंद्रित है। अभी भी शरीर भूलता नहीं। अभी भी शरीर अपनी जगह खड़ा है और आप वही के वही हैं। आपके और शरीर के बीच का संबंध वही का वही है। ध्यान रखें, भोगी और तथाकथित तपस्वी के बीच शरीर के संबंध में कोई अंतर नहीं पड़ता। शरीर के साथ संबंध वही रहता है।

क्या आप सोच सकते हैं, अगर हम भोगी से कहें कि तुम्हारा शरीर छीन लिया जाए तो तुम्हें कठिनाई होगी? भोगी कहेगा--कठिनाई! मैं बरबाद हो जाऊंगा, क्योंकि शरीर ही तो मेरे भोग का माध्यम है। अगर हम तपस्वी से कहें कि तुम्हारा शरीर छीन लिया जाए, तुम्हें कोई कठिनाई होगी? वह भी कहेगा--मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा। क्योंकि मेरी तपश्चर्या का साधन तो शरीर ही है। कर तो मैं शरीर के साथ ही कुछ रहा हूं। अगर शरीर ही न रहा तो तप कैसे होगा? अगर शरीर न रहा तो भोग कैसे होगा? इसलिए मैं कहता हूं--दोनों की दृष्टि शरीर पर है और दोनों शरीर के माध्यम से जी रहे हैं। जो तप शरीर के माध्यम से जी रहा है वह भोग का ही विकृत रूप है। जो तप शरीर-केंद्रित है, वह भोग का ही दूसरा नाम है। वह विषाद को उपलब्ध हो गए भोग की प्रतिक्रिया है। वह विषाद को उपलब्ध हो गए भोग की शरीर के साथ बदला लेने की, रिवेज लेने की आकांक्षा है।

इसे समझें तो फिर हम ठीक तप की दिशा में आंखें उठा सकेंगे। यह इन कारणों से तप जो है, आत्महिंसा बन गया है। अपने को जो जितना सता सकता है उतना बड़ा तपस्वी हो सकता है। लेकिन सताने से तप का कोई संबंध है? टार्चर, पीड़न, आत्म-पीड़न, उससे तप का कोई संबंध है? और ध्यान रखें, जो अपने को सता सकता है वह दूसरे को सताने से बच नहीं सकता। क्योंकि जो अपने को तक सता सकता है, वह किसी को भी सता सकता है। हां, उसके सताने के ढंग बदल जाएंगे। निश्चित ही भोगी का सताने का ढंग सीधा होता है। त्यागी के सताने का ढंग परोक्ष हो जाता है, इनडायरेक्ट हो जाता है। अगर भोगी को आपको सताना है तो आप पर सीधा हमला बोलता है। त्यागी को आपको सताना है तो बहुत पीछे से हमला बोलता है। लेकिन आपके ख्याल में नहीं आता कि वह हमला बोल रहा है। अगर आप त्यागी के पास जाएं--तथाकथित त्यागी के पास, सो-काल्ड, जो आस्टेरिटी है, तपश्चर्या है--उसके पास आप जाएं; अगर आपने अच्छे कपड़े पहन रखे हैं और आपका त्यागी भभूत रमाए बैठा है तो आपके कपड़ों को ऐसे देखेगा जैसे दुश्मन देखता है। उसकी आंख में निंदा होगी, आप कीड़े-मकोड़े मालूम पड़ेंगे। ऐसे कपड़े पहने हुए हैं! उसकी आंखों में इशारा होगा नरक का, तीर बना होगा नरक की

तरफ कि गए नरक। वह आपको कहेगा--अभी तक सम्हले नहीं! अभी तक इन कपड़ों से उलझे हो, नरक में भटकोगे।

मैंने सुना है कि एक पादरी एक चर्च में लोगों को समझा रहा था, डरा रहा था नरक के बाबत कि कैसी-कैसी मुसीबतें होंगी। और जब कयामत का दिन आएगा तो इतनी भयंकर सर्दी पड़ेगी पापियों के ऊपर कि दांत खड़खड़ाएंगे। मुल्ला नसरुद्दीन भी उस सभा में था, वह खड़ा हो गया। उसने कहा: लेकिन मेरे दांत टूट गए हैं!

उस फकीर ने कहा: घबड़ाओ मत, फाल्स टीथ विल बी प्रोवाइडेड। नकली दांत दे दिए जाएंगे, लेकिन खड़खड़ाएंगे।

साधु, तथाकथित तपस्वी आपको नरक भेजने की योजना में लगे हैं। उनका चित्त आपके लिए नरक के सारे इंतजाम कर रहा है। सच तो यह है कि नरक में कष्ट देने का जो इंतजाम है, वह तथाकथित झूठे तपस्वी की कल्पना है, फेंटेसी है। वह तथाकथित तपस्वी यह सोच ही नहीं सकता कि आपको भी सुख मिल सकता है! आप यहां काफी सुख ले रहे हैं। वह जानता है कि यह सुख है। वह यहां काफी दुख ले रहा है। कहीं तो बैलेस करना पड़ेगा, कहीं संतुलन करना पड़ेगा। उसने यहां काफी दुख झेल लिया है। वह स्वर्ग में सुख झेलेगा। आप यहां सुख भोग रहे हैं। आप नरक में सड़ेंगे और दुख भोगेंगे।

और बड़े मजे की बात है कि उसके स्वर्ग के सुख आपके ही सुखों का मैग्रीफाइड रूप हैं। आप जो सुख यहां भोग रहे हैं, वही सुख और विस्तीर्ण होकर, बड़े होकर वह स्वर्ग में भोगेगा, और जो दुख वह यहां भोग रहा है... यह मजे की बात है कि तपस्वी अपने आस-पास आग जला कर बैठते रहे हैं... आपको नरक में आग में सड़ाएंगे वे। जो तपस्वी अपने आस-पास आग जलाएगा उससे सावधान रहना, उसके नरक में आग आपके लिए तैयार रहेगी। भयंकर आग होगी जिससे आप बच न सकेंगे। कड़ाहों में डाले जाएंगे, चुड़ाए जाएंगे और मर भी न सकेंगे क्योंकि मर गए तो मजा ही खत्म हो जाएगा। अगर मारा और मर गए तो दुख कौन झेलेगा? इसलिए नरक में मरने का उपाय नहीं है। ध्यान रखना, नरक में तपस्वियों ने आत्महत्या की सुविधा नहीं दी है। आप मर नहीं सकते नरक में, आप कुछ भी करें। और कुछ भी करें, एक काम नरक में नहीं होता कि आप मर नहीं सकते। क्योंकि अगर आप मर सकते हैं तो दुख के बाहर हो सकते हैं। इसलिए वह सुविधा नहीं दी है।

किसकी कल्पना से निकलता है यह सारा ख्याल? यह कौन सोचता है, ये सारी बातें? सच में जो तपस्वी है वह तो सोच भी नहीं सकता, किसी के लिए दुख का कोई भी ख्याल नहीं सोच सकता। वह सोच ही नहीं सकता दुख का कोई ख्याल कि किसी को कोई दुख हो। कहीं भी, नरक में भी। लेकिन जो तथाकथित तपस्वी है वह बहुत रस लेता है। अगर आप शास्त्रों को पढ़ें--सारी दुनिया के धर्मों के शास्त्रों को, तो एक बहुत अदभुत घटना आपको दिखाई पड़ेगी। तपस्वियों ने जो-जो लिखा है--तथाकथित तपस्वियों ने--उसमें वे नरकों की जो-जो विवेचना और चित्रण करते हैं, वह बहुत परवर्टेड इमेजिनेशन मालूम पड़ती है, बहुत विकृत हो गई कल्पना मालूम पड़ती है। ऐसा वे सोच पाते हैं, ऐसा वे कल्पना कर पाते हैं--यह उनके बाबत बड़ी खबर लाती है।

दूसरी एक बात दिखाई पड़ेगी कि तपस्वी, आप जो-जो सुख भोगते हैं उनकी बड़ी निंदा करते हैं और निंदा में बड़ा रस लेते हैं। वह रस बहुत प्रकट है। यह बहुत मजे की बात है कि वात्स्यायन ने अपने काम-सूत्रों में स्त्री के अंगों का ऐसा सुंदर चित्रण नहीं किया है--इतना रसमुग्ध--जितना तपस्वियों ने स्त्री के अंगों की निंदा करने के लिए अपने शास्त्रों में किया है। वात्स्यायन के पास इतना रस हो भी नहीं सकता था। क्योंकि उतना रस पैदा करने के लिए विपरीत जाना जरूरी है। इसलिए मजे की बात है कि भोगियों के आस-पास कभी नग्न अप्सराएं आकर नहीं नाचतीं, वे सिर्फ तपस्वियों के आस-पास आकर नाचती हैं। तपस्वी सोचते हैं, उनका तप भ्रष्ट करने के लिए वे आ रही हैं। लेकिन जिसको भी मनोविज्ञान का थोड़ा सा बोध है, वह जानता है--कहीं इस जगत में अप्सराओं का कोई इंतजाम नहीं है तपस्वियों को भ्रष्ट करने के लिए। अस्तित्व तपस्वियों को भ्रष्ट क्यों करना चाहेगा? कोई कारण नहीं है। अगर परमात्मा है, तो परमात्मा भी तपस्वियों को भ्रष्ट करने में क्यों रस

लेगा? और ये अप्सराएं शाश्वत रूप से एक ही धंधा करेंगी, तपस्वियों को भ्रष्ट करने का? इनके लिए और कोई काम, इनके जीवन का अपना कोई रस नहीं है?

नहीं, मनस्विद कहते हैं कि तपस्वी इतना लड़ता है जिस रस से, वही रस प्रगाढ़ होकर प्रकट होना शुरू हो जाता है। और तपस्वी काम से लड़ रहा है तो आस-पास कामवासना रूप लेकर खड़ी हो जाती है, वह उसे घेर लेती है। वह जिससे लड़ रहा है उसी को प्रोजेक्ट, उसी का प्रक्षेपण कर लेता है। वे अप्सराएं किसी स्वर्ग से नहीं उतरतीं, वे तपस्वी के संघर्षरत मन से उतरती हैं। वे अप्सराएं उसके मन में जो छिपा है, उसे बाहर प्रकट करती हैं। वह जो चाहता है और जिससे बच रहा है, वे अप्सराएं उसका ही साकार रूप हैं। वह जो मांगता भी है, और जिससे लड़ता भी है, वह जिसे बुलाता भी है और जिसे हटाता भी है, वे अप्सराएं केवल उसके उसी विकृत चित्त की तृप्ति हैं। वे उसे भ्रष्ट करने कहीं और से नहीं आती हैं, उसके ही दमन चित्त से पैदा होती हैं।

तप विकृत हो तो दमन होता है। और दमन आदमी को रुग्ण करता है, स्वस्थ नहीं। इसलिए मैं कहता हूँ—महावीर के तप में दमन का कोई भी कारण नहीं है। और अगर महावीर ने कहीं दमन जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया है तो मैं आपको कह दूँ, पच्चीस सौ साल पहले दमन का अर्थ बहुत दूसरा था। वह अब नहीं है। दम का अर्थ था शांत हो जाना। दम का अर्थ दबा देना नहीं था, महावीर के वक्त में। दम का अर्थ था शांत हो जाना। शांत कर देना नहीं, शांत हो जाना। भाषा रोज बदलती रहती है, शब्दों के अर्थ रोज बदलते रहते हैं। इसलिए अगर कहीं महावीर की वाणी में दमन शब्द मिल भी जाए तो आप ध्यान रखना, उसका अर्थ सप्रेषण नहीं है। उसका अर्थ दबाना नहीं है। उसका अर्थ शांत हो जाना है। जिस चीज से आपको दुख उपलब्ध हुआ है, उसके विपरीत चले जाने से दमन पैदा होता है। जिस चीज से आपको दुख उपलब्ध हुआ है, उसकी समझ में प्रतिष्ठित हो जाने से शांति उपलब्ध होती है। इस फर्क को ठीक से समझ लें।

कामवासना ने मुझे दुख दिया, तो मैं कामवासना के विपरीत चला जाऊँ और लड़ने लगूँ कामवासना से, तो दमन होगा। कामवासना ने मुझे दुख दिया, यह बात—मेरी समझ, मेरी प्रज्ञा में इस भांति प्रविष्ट हो जाए कि कामवासना तो शांत हो जाए और कामवासना के विपरीत मेरे मन में कुछ भी न उठे। क्योंकि जब तक विपरीत उठता है तब तक शांत नहीं हुआ। विपरीत उठता ही इसीलिए है।

एक मित्र की पत्नी मुझे कहती थी कि मेरा पति से कोई भी प्रेम नहीं रह गया, लेकिन कलह जारी है। मैंने कहा: अगर प्रेम बिल्कुल न रह गया हो, तो कलह जारी नहीं रह सकती। कलह के लिए भी प्रेम चाहिए। थोड़ा-बहुत होगा। मैंने उससे कहा कि थोड़ा-बहुत जरूर होगा। और कलह अगर बहुत चल रही है तो बहुत ज्यादा होगा।

उसने कहा: आप कैसी उलटी बातें करते हैं? मैं डायवोर्स के लिए सोचती हूँ, कि तलाक दे दूँ।

मैंने कहा: हम तलाक उसी को देने के लिए सोचते हैं, जिससे हमारा कुछ बंधन होता है। जिससे बंधन ही नहीं होता उसको तलाक भी क्या देंगे। बात ही खत्म हो जाती है, तलाक हो जाता है। यह दो वर्ष पहले की बात है।

फिर अभी एक दिन मैंने उससे पूछा कि क्या खबर है? उसने कहा: आप शायद ठीक कहते थे। अब तो कलह भी नहीं होती। आप शायद ठीक कहते थे, उस वक्त मेरी समझ में नहीं आया। अब तो कलह भी नहीं होती। तलाक के बावत क्या ख्याल है? उसने कहा: क्या लेना, क्या देना। बात ही शांत हो गई। दोनों के बीच संबंध ही नहीं रह गया। संबंध हो तो तोड़ा जा सकता है। संबंध ही न रह जाए तो क्या तोड़िएगा? अगर आप किसी वासना से लड़ रहे हैं तो आपका उस वासना में रस अभी कायम है। जिंदगी ऐसी उलझी हुई है।

इसलिए फ्रायड ने तो जीवन भर के पचास साल के अनुभव के बाद कहा और शायद यह आदमी अकेला था पृथ्वी पर जो मनुष्यों के संबंध में इस भांति गहरा उतरा—इस आदमी ने कहा कि जहां तक प्रेम है वहां तक कलह जारी रहेगी। अगर कलह से मुक्त होना है तो प्रेम से मुक्त होना पड़ेगा। अगर पति पत्नी में प्रेम है, तो प्रेम

का तो हमें पता नहीं चलता क्योंकि प्रेम उनका एकांत में प्रकट होता होगा। लेकिन कलह का हमें पता चलता है क्योंकि कलह तो प्रकट में भी प्रकट हो जाती है। अब कलह के लिए एकांत तो नहीं खोजा जा सकता। कलह ऐसी चीज भी नहीं है कि उसके लिए कोई एकांत का कष्ट उठाए। पर फ्रायड कहता है कि अगर प्रकट में कलह जारी है तो हम मान सकते हैं, अप्रकट में प्रेम जारी होगा। दिन में जो पति-पत्नी लड़े हैं, रात वे प्रेम में पड़ेंगे। पूर्ति करनी पड़ती है, बैलेंस करना पड़ता है, संतुलन करना पड़ता है।

जिस दिन लड़ाई होती है उस दिन घर में कोई भेंट भी लाई जाती है। अगर पति लड़कर बाजार गया है तो लौट कर कुछ पत्नी के लिए लेकर आएगा। अगर पति घर की तरफ फूल लिए आता हो तो यह मत समझ लेना कि पत्नी का जन्मदिन है। समझना कि आज सुबह उपद्रव ज्यादा हुआ है। यह बैलेंसिंग है, अब वह उसको संतुलन करेगा। इसलिए फ्रायड तो कहता है कि मैं कामवासना को एक कलह मानता हूँ। इसलिए फ्रायड सेक्स और वार को जोड़ता है। वह कहता है, युद्ध और काम एक ही चीज के रूप हैं और जब तक मन में कामवासना है, तब तक युद्ध की वृत्ति समाप्त नहीं हो सकती। यह इनसाइट गहरी है, यह अंतर्दृष्टि गहरी है। और इस अंतर्दृष्टि को अगर हम समझें तो महावीर को समझना बहुत आसान हो जाएगा।

महावीर कहते कि अगर जो बुरा है, तथाकथित बुरा मालूम पड़ता है; उससे छूटना है, तो जो तथाकथित भला है उससे भी छूट जाना पड़ेगा। अगर घृणा से मुक्त होना है तो राग से भी मुक्त हो जाना पड़ेगा। अगर शत्रु से बचना है तो मित्र से भी बच जाना पड़ेगा। अगर अंधेरे में जाने की आकांक्षा नहीं है तो प्रकाश को भी नमस्कार कर लेना पड़ेगा। यह उलटा दिखाई पड़ता है, यह उलटा नहीं है। क्योंकि जिसके मन में प्रकाश में जाने की आकांक्षा है, वह बार-बार अंधेरे में गिरता रहेगा। जीवन द्वंद्व है, और जीवन के सब रूप अपने विपरीत से बंधे हुए हैं, अपने से उलटे से बंधे हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति जिस चीज से लड़ेगा, विपरीत चलेगा, उससे ही बंधा रहेगा। उससे वह कभी नहीं छूट सकता। अगर आप धन से लड़ रहे हैं और धन के विपरीत जा रहे हैं, तो धन आपके चित्त को सदा घेरे रहेगा। अगर आप अहंकार से लड़ रहे हैं और अहंकार के विपरीत जा रहे हैं तो आपका अहंकार सूक्ष्म से सूक्ष्म होकर आपके भीतर सदा खड़ा रहेगा। लड़ना थोड़ा सम्हल कर। क्योंकि जिससे हम लड़ते हैं, उससे हम बंध जाते हैं।

तप इन्हीं भूलों में पड़ कर रुग्ण हो गया। और जिन्हें हम तपस्वी की भांति जानते हैं, उनमें से नित्यानबे प्रतिशत मानसिक चिकित्सा के लिए उम्मीदवार हैं। उनकी मानसिक चिकित्सा जरूरी है। और ध्यान रहे, कामवासना से छूटना आसान है, क्योंकि कामवासना प्रकृति है। कामवासना के विपरीत जो कामवासना के विरोध से बंध गया, उससे छूटना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि वह प्रकृति से और एक कदम दूर निकल जाना है।

इसे हम तीन शब्दों में समझ लें। एक को मैं कहता हूँ प्रकृति, जिसे हमने कुछ नहीं किया, जो हमें मिली है--दि गिवन। जो हमें मिली है, वह प्रकृति है। अगर हम कुछ गलत करें तो जो हम कर लेंगे, उसका नाम है विकृति। और अगर हम कुछ करें और ठीक करें तो जो होगा, उसका नाम है संस्कृति। प्रकृति पर हम खड़े होते हैं। जरा सी भूल और विकृति में चले जाते हैं। संस्कृति में जाना बहुत कठिन है। क्योंकि संस्कृति में जाने के लिए विकृति से बचना पड़ेगा और प्रकृति के ऊपर उठना पड़ेगा। दो बातें--विकृति से बचना पड़ेगा और प्रकृति के ऊपर उठना पड़ेगा। अगर किसी ने सिर्फ प्रकृति से लड़ने की कोशिश की तो विकृति में गिर जाएगा। और विकृति संस्कृति से और एक कदम दूर है। प्रकृति उतनी दूर नहीं, प्रकृति मध्य में खड़ी है। विकृति, और आप हट गए। प्रकृति से भी दूर हट गए। इसलिए तो पशुओं में ऐसी विकृतियां नहीं दिखाई पड़तीं जैसी मनुष्यों में दिखाई पड़ती हैं। क्योंकि पशु प्रकृति से नहीं लड़ते, इसलिए विकृति नहीं दिखाई पड़ती। हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

अभी न्यूयार्क के एक चौराहे पर और वाशिंगटन में और-और जगहों पर होमोसेक्सुअल्स ने जुलूस निकाले हैं और उन्होंने कहा है कि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। और इस वर्ष... पिछले वर्ष, कम से कम सौ होमोसेक्सुअल्स ने विवाह किए। जो कि कल्पना के बाहर मालूम पड़ता है--एक पुरुष, एक पुरुष के साथ विवाह

कर रहा है या एक स्त्री, एक स्त्री के साथ विवाह कर रही है--समलिंगी विवाह। सौ विवाह की घटनाएं दर्ज हुई हैं अमेरिका में इस वर्ष। और इन लोगों ने कहा है कि हम घोषणा करते हैं कि हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है कि हम जिसको प्रेम करना चाहते हैं, करें, कोई सरकार हमें रोके क्यों? एक पुरुष पुरुष को प्रेम करना चाहता है, उससे विवाह करना चाहता है, उनके काम-संबंध का अधिकार मांगता है। कम से कम डेढ़ सौ क्लब पूरे अमेरिका में हैं। और यूरोप में, स्वीडन में और स्विटजरलैंड में--सब जगह वे क्लब फैलते चले गए हैं। कम से कम दो सौ पत्रिकाएं आज जमीन पर निकलती हैं होमोसेक्सुअल्स की। पत्रिकाएं, जिनमें वे खबरें देते हैं और घोषणाएं देते हैं।

और आप हैरान होंगे कि अभी उन्होंने एक प्रदर्शन किया है, कैलिफोर्निया में, जैसा कि ब्यूटी काम्पीटिशन का होता है--महिलाओं को, सुंदर महिलाओं को हम नग्न खड़ा करते हैं। होमोसेक्सुअल्स ने पचास नग्न युवकों को खड़ा करके प्रदर्शन किया कि हम इनमें ही सौंदर्य देखते हैं, स्त्रियों में नहीं। कोई पशुओं की हम कभी सोच सकते हैं कि पशु और होमोसेक्सुअल, नहीं! हां कभी-कभी ऐसा होता है, सर्कस के पशु होमोसेक्सुअल हो जाते हैं। या कभी-कभी अजायबघर के पशु होमोसेक्सुअल हो जाते हैं।

डेस्मंड मौरिस ने एक किताब लिखी है--दि ह्यूमन जू। आदमियों का अजायबघर। और उसने लिखा है कि जो अजायबघर में पशुओं के साथ होता है वह आदमियों के साथ समाज में हो रहा है। यह अजायबघर है, यह कोई समाज नहीं है। यह जू है। क्योंकि कोई पशु पागल नहीं होता, जंगल में; अजायबघर में पागल हो जाता है। कोई पशु जंगल में आत्महत्या नहीं करता देखा गया, आज तक। लेकिन अजायबघर में कभी-कभी आत्महत्या कर लेता है। पशु विकृत नहीं होता क्योंकि प्रकृति में ठहरा रहता है। आदमी कोशिश करता है, आदमी दो कोशिश कर सकता है या तो प्रकृति से लड़ने की कोशिश करे, तो आज नहीं कल विकृति में उतर जाएगा, और या फिर प्रकृति का अतिक्रमण करने की कोशिश करे, तो संस्कृति में प्रवेश करेगा।

अतिक्रमण तप है। विरोध नहीं, निरोध नहीं, संघर्ष नहीं--अतिक्रमण, ट्रांसेंडेंस। बुद्ध ने एक बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है, वह शब्द है--पारमिता। वे कहते हैं--लड़ो मत। इस किनारे से उस किनारे चले जाओ, पार चले जाओ--पारमिता। लड़ो मत, इस किनारे से जहां तुम खड़े हो, लड़ो मत। क्योंकि लड़ोगे तो भी इसी किनारे पर खड़े रहोगे। जिससे लड़ना हो, उसके पास रहना पड़ेगा। जिससे लड़ना हो, उससे दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन आमने-सामने संगीनें लेकर खड़े रहते हैं। हिंदुस्तान-पाकिस्तान की बाउंडरी पर देखें--वे खड़े हैं। हिंदुस्तान-चीन की बाउंडरी पर देखें, वे संगीनें लिए खड़े हैं। दुश्मन से दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन के सामने संगीन लेकर खड़े रहना पड़ता है। अगर इस तट से लड़ोगे--बुद्ध ने कहा है--अगर भोग के तट से लड़ोगे तो उस तट पर पहुंचोगे कैसे? लड़ो मत, उस तट पर पहुंच जाओ। यह तट छूट जाएगा, भूल जाएगा, विलीन हो जाएगा। तपश्चर्या अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है--द्वंद्व नहीं, संघर्ष नहीं।

तो, इस अतिक्रमण के रूप पर हम थोड़े गहरे जाएंगे तो बहुत सी बातें ख्याल हो सकेंगी। एक तो पहले ख्याल ले लें कि अतिक्रमण का क्या अर्थ होता है? आप एक घाटी में खड़े हैं, अंधेरा है बहुत। आप उस अंधेरे से लड़ते नहीं, आप सिर्फ पहाड़ के शिखर पर चढ़ना शुरू कर देते हैं। थोड़ी देर में आप पाते हैं कि आप सूर्य से मंडित शिखर के निकट पहुंचने लगे। वहां कोई अंधेरा नहीं है। घाटी में अंधेरा था, आप घाटी में खड़े ही न रहे, आपने सूर्य-मंडित शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आपने धूप से नहाए हुए शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आप प्रकाश में पहुंच गए, अतिक्रमण हुआ, संघर्ष जरा भी नहीं।

जहां आप हैं, वहां दो चीजें हैं। आप भी हैं और आपके आसपास घिरा हुआ घाटी का अंधेरा भी है। दो हैं वहां, आप भी हैं, घाटी का अंधेरा भी है। अगर घाटी के अंधेरे से आप लड़ते हैं तो आप पको घाटी में ही रहना पड़ेगा। अगर आप घाटी के अंधेरे से लड़ते नहीं--अपने भीतर जो आप हैं, उसे ऊपर उठाते हैं, ऊर्ध्वगमन पर

चलते हैं तो घाटी के अंधेरे पर ध्यान देने की भी जरूरत नहीं है। जहां हम खड़े हैं, वहां चारों तरफ वृत्तियां हैं, भोग की--वे भी हैं, आप भी हैं। गलत त्यागी का ध्यान वृत्तियों पर होता है कि इस वृत्ति को मैं कैसे मिटाऊं। सही त्यागी का ध्यान स्वयं पर होता है कि मैं इस वृत्ति के ऊपर कैसे उठ जाऊं।

इस फर्क को ठीक से समझ लें, क्योंकि इन दोनों की यात्रा अलग होगी। दोनों का नियम अलग होगा, दोनों की साधना अलग होगी, दोनों की दिशा अलग होगी, दोनों का ध्यान अलग होगा। वृत्ति से जो लड़ रहा है उसका ध्यान वृत्ति पर होगा। स्वयं को जो ऊंचा उठा रहा है, उसका ध्यान स्वयं पर होगा। जो वृत्तियों से लड़ रहा है उसका ध्यान बहिर्मुखी होगा। जो स्वयं को ऊर्ध्वगमन की तरफ ले जा रहा है उसका ध्यान अंतर्मुखी होगा। और एक मजे की बात है कि ध्यान भोजन है। जिस चीज पर आप ध्यान देते हैं, उसको आप शक्ति देते हैं। जिस चीज को आप ध्यान देते हैं, उसको आप शक्ति देते हैं।

मैं पावलिटा की बात कर रहा था--चैक विचारक और वैज्ञानिक। छोटे-छोटे यंत्र हैं उसके पास। वह कहता है--पांच मिनट आंख गड़ाकर इस यंत्र को देखते रहो, और वह यंत्र आपकी शक्ति को संगृहीत कर लेता है। अमरीका में एक बहुत अदभुत आदमी था, जिसे दो साल की सजा अमरीका सरकार ने दी। ऐसा लगता है कि आदमी की बुद्धि बढ़ती ही नहीं। वह दो हजार साल हों तो भी वही करता है, दो हजार साल बाद वही करता है। एक आदमी था, विलेहम रैक। इस सदी में जिन लोगों के पास अंतर्दृष्टि रही उनमें से एक आदमी है, उसको दो साल सजा भोगनी पड़ी और आखिर में अमरीकी सरकार ने उसे पागलखाना--उसको पागल करार देकर, कानूनन उसको पागलखाने भेज दिया। उस पर मुकदमा चला एक बहुत अजीब बात पर। जिस पर, अब उसके मर जाने के बाद वैज्ञानिक कह रहे हैं कि शायद वह ठीक था।

उसने एक अदभुत बाक्स, एक पेटी बनाई, जिसको वह आर्गन बाक्स कहता था। वह कहता था--इसके भीतर कोई व्यक्ति लेट जाए और कामवासना का विचार करता रहे, तो उसकी कामवासना की शक्ति इस डिब्बे में संगृहीत हो जाती है। लेकिन अब इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण क्या हो कि संगृहीत हो जाती है। वह कहता था--प्रमाण एक ही है कि आप किसी को भी इसके भीतर लिटा दें, जिसको बिल्कुल पता नहीं है। वह एक मिनट के बाद कामवासना का विचार करना शुरू कर देता है। किसी को भी लिटा दें--वह कहता था--यही प्रमाण है। इसको तो वह हजारों लोगों का प्रमाण देता था। लेकिन इसको वैज्ञानिक कहते थे कि हम इसको कोई प्रमाण नहीं मानते। वह आदमी भ्रम में हो सकता है, उस आदमी की आदत हो सकती है। इस डिब्बे के भीतर, वह कहता था--जो विचार आप करेंगे, जहां आपका ध्यान जाएगा, वहीं शक्ति संगृहीत हो जाती है। वह अनेक ऐसे लोगों को, जिनको मानसिक रूप से ख्याल पैदा हो गया है कि वे क्लीव हैं, इंपोटेंट हैं, इन बाक्सों में लिटा कर ठीक कर देता था। क्योंकि वह कहता था--इनमें आर्गन एनर्जी इकट्ठी है। यह जो पावलिटा है, वह आपकी कोई भी शक्ति को आपके ध्यान से इकट्ठा कर लेता है।

आपको ख्याल में न होगा, जब आपकी तरफ लोग ध्यान देते हैं तो आप स्वस्थ अनुभव करते हैं, जब आपकी तरफ लोग ध्यान नहीं देते तो आप अस्वस्थ अनुभव करते हैं। इसलिए एक बड़ी अदभुत घटना घटती है कि जब आप चाहते हैं कि लोग ध्यान दें, आप बीमार पड़ जाते हैं। बच्चे तो इस ट्रिक को बहुत जल्दी समझ जाते हैं। आपकी सौ में से नब्बे बीमारियां ध्यान की आकांक्षाओं से पैदा होती हैं, क्योंकि बिना बीमार पड़े घर में आपको कोई ध्यान नहीं देता। पत्नी बीमार पड़ जाती है तो पति उसके सिर पर हाथ रख कर बैठता है। बीमार नहीं पड़ती तो उसकी तरफ देखता भी नहीं। पत्नी इस रहस्य को जान-बूझ कर नहीं, अचेतन में समझ जाती है कि जब उसे ध्यान चाहिए तब उसे बीमार होना पड़ेगा। इसलिए कोई स्त्री उतनी बीमार नहीं होती जितनी दिखाई पड़ती है। या जितना वह दिखावा करती है। या जब उसका पति कमरे में होता है तो जितना वह कूल्हती, कराहती और आवाजें करती है, वह आवाजें उतनी नहीं हैं, जितना कि पति कमरे में नहीं होता है तब वह करती है। तब भी नहीं करती है। इस पर थोड़ा ध्यान देने जैसा है। कारण क्या होगा? बच्चे बहुत जल्दी सीख

जाते हैं कि जब वे बीमार होते हैं तो सारे घर की अटेंशन उनके ऊपर हो जाती है। एक दफा यह बात समझ में आ गई कि अटेंशन आकर्षित करने के लिए बीमार होना रसपूर्ण है तो जिंदगीभर के लिए बीमारी आधार बना लेती है।

मनोवैज्ञानिक सलाह देते हैं, लेकिन बुद्धिमानी की सलाह बड़ी उलटी मालूम पड़ती है। वे कहते हैं--जब कोई बीमार हो तब जान-बूझ कर भी उस पर कम से कम ध्यान देना, अन्यथा उसे बीमार होने के लिए तुम कारण बनोगे। जब कोई बीमार हो तब तो ध्यान देना ही मत। सेवा कर देना, लेकिन ध्यान मत देना--बड़े तटस्थ भाव से। बीमारी को कोई रस देना खतरनाक है, तो जिंदगी में वह आदमी कम बीमार पड़ेगा, ज्यादा स्वस्थ रहेगा। उसके लिए ध्यान और बीमारी जुड़ेगी नहीं।

लेकिन ध्यान से शक्ति मिलती है। इसीलिए तो इतना सारी दुनिया में ध्यान पाने की कोशिश चलती है। एक नेता को क्या रस आता होगा? जूते खाए, गालियां खाए, उपद्रव सहे--रस क्या आता होगा? लेकिन जब वह भीड़ में खड़ा होता है तो सब आंखें उसकी तरफ फिर जाती हैं। पावलिटो कहता है कि वह सबकी शक्ति से भोजन पाता है। कोई आश्चर्य नहीं कि नेहरू कुछ दिन और जिंदा रह जाते, अगर चीन का हमला न होता। अचानक भोजन कम हो गया। ध्यान बिखर गया। कोई राजनीतिक नेता पद पर रहते हुए मुश्किल से मरता है, इसलिए कोई राजनीतिक नेता पद नहीं छोड़ना चाहता, नहीं तो मरना और पद छोड़ना करीब आ जाते हैं। मुश्किल से मरता है, कोई राजनीतिक नेता पद पर। मरना ही पड़े आखिर में, यह बात अलग है। अपनी पूरी कोशिश वह यह करता है कि जीते जी पद न छूट जाए, क्योंकि पद छूटते ही उम्र कम हो जाती है। लोग रिटायर होकर जल्दी मर जाते हैं। अब जो पुलिस का आफिसर था, वह रिटायर हो गया; उसकी दस साल कम से कम, उम्र कम हो जाती है।

अभी इस पर तो बहुत काम चलता है। और बहुत देर न लगेगी कि लोग रिटायर होने से इनकार करने लगेंगे, जैसे ही उनको पता चल जाएगा कि गड़बड़ क्या हो रही है। रिटायर जब तक आदमी नहीं होता, तब तक स्वस्थ मालूम पड़ता है। रिटायर होते ही बीमार पड़ जाता है। जो ध्यान का भोजन उसे मिल रहा था--दफ्तर में जाता था, लोग खड़े हो जाते थे; सड़क पर निकलता था लोग नमस्कार करते थे, बच्चे भी डरते थे क्योंकि बाप का कब्जा था पैसे पर--बैंक-बैलेंस बाप के नाम था, पत्नी भी भयभीत होती थी, फिर अब रिटायर हो गया, हाथ से धीरे-धीरे सब सूत्र छूट गए। अब वह बैठा रहता है कोने में। लोग ऐसे निकल जाते हैं जैसे वह है ही नहीं। तो वह खांसता-खंखारता है, आवाज देता है कि मैं भी यहां हूं। वह हर चीज में अड़ंगेबाजी करता है--बूढ़ों की आदत अड़ंगेबाजी की और किसी कारण से नहीं है--हर चीज में अड़ंगेबाजी करता है। कोई ऐसी बात नहीं जिसमें वह अड़ंगा न डाले। क्योंकि अड़ंगा डाल कर अब वह बता सकता है कि मैं हूं और थोड़ा ध्यान आकर्षित करता है। यह बहुत दीन अवस्था है, यह बहुत दयनीय अवस्था है। यह बहुत रुग्ण है, दुखद है--लेकिन है। वह घर में कोई ऐसी चीज न चलने देगा जिसमें वह सलाह न दे। हालांकि उसकी सलाह कोई नहीं मानता है, यह वह जानता है। इसे वह दिन भर कहता है कि कोई मेरी नहीं मानता। लेकिन फिर दिनभर देता क्यों है। वह दिन भर कहता है, कोई मेरी सुनता नहीं।

गांधीजी कहते थे कि वे एक सौ पच्चीस वर्ष जीएंगे। और जी सकते थे। अगर भारत आजाद न होता, तो वे एक सौ पच्चीस वर्ष जी सकते थे। भारत का आजाद होना उनके मरने का हिस्सा बन गया। क्योंकि आजादी के बाद ही जो उनकी सुनते थे उन्होंने सुनना बंद कर दिया, क्योंकि वे खुद ही ताकतवर हो गए। वे खुद ही पदों पर पहुंच गए। तो गांधी ने कहा: "मैं खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी अब कोई सुनता नहीं।" लेकिन गांधी को भी पता नहीं होगा कि गांधी जब भी यह कहते थे कि मेरी कोई सुनता नहीं, मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं, मैं बोलता रहता हूं, कोई मेरी फिकर नहीं करता--कोई मेरी सलाह नहीं मानता--हालांकि वे सलाह दिए जाते थे, मरने के पहले उन्होंने कहना शुरू कर दिया था कि अब मेरी एक सौ पच्चीस वर्ष जीने की कोई आकांक्षा नहीं है। परमात्मा मुझे जल्दी उठा ले। क्यों? क्योंकि खोटे सिक्के हो गए। क्योंकि कोई सुनता नहीं। क्योंकि कोई ध्यान

नहीं देता। जो ध्यान देते थे वे भी इसलिए ध्यान देते थे कि बिना गांधी पर ध्यान दिए उन पर कोई ध्यान नहीं देता था। अब वे खुद ही ध्यान पाने के अधिकारी हो गए थे, सीधा लोग उनको ध्यान दे रहे थे। अब वह गांधी पर काहे के लिए ध्यान दे! कोने में पड़ गए थे। कोई नहीं कह सकता कि गोडसे की गोली को सामने देख कर उनके मन में धन्यवाद नहीं उठा हो। कोई नहीं कह सकता है कि उन्होंने सोचा हो कि आ गया भगवान का संदेशवाहक, झंझट मिटी, --बिदा होते हैं।

ध्यान भोजन है, बहुत सटल फुड, बहुत सूक्ष्म भोजन है। अकेले ध्यान पर भी जी सकते हैं आप। इसलिए जब कोई प्रेम में पड़ता है तो भूख कम हो जाती है। आपको पता है, अगर कोई आपको बहुत प्रेम करता है तो भूख एकदम कम हो जाती है। क्यों कम हो जाती है? जब कोई प्रेम करता है, प्रेम का मतलब ही क्या है कि कोई आप पर ध्यान देता है। और मतलब क्या है? और जब कोई आप पर ध्यान नहीं देता आपको पता है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब कोई ध्यान नहीं देता तब लोग ज्यादा भोजन करने लगते हैं। जब कोई ध्यान देता है तो कम भोजन करते हैं। क्योंकि ध्यान भी कहीं गहरे में भोजन का काम करता है, बहुत सूक्ष्म तल पर काम करना है। जिस चीज को हम ध्यान देते हैं, उसको शक्ति देते हैं--यह मैं कह रहा हूं। और अब इसको कहने के वैज्ञानिक आधार हैं। अब इसको नापने के भी उपाय हैं।

मैंने पीछे आपसे निकोलिएव और कामिनिएव का नाम लिया। ये दोनों व्यक्ति टेलिपैथिक कम्युनिकेशन में इस समय पृथ्वी पर सबसे ज्यादा निष्णात लोग हैं। निकोलिएव विचार भेजता है, ब्राडकास्ट करता है और हजारों मील दूर कामिनिएव उस विचार को पकड़ता है। वैज्ञानिकों ने यंत्र लगाकर बड़े चकित हो गए कि जब निकोलिएव विचार भेजता है, तो उसकी शक्ति क्षीण होती है। उसके चारों तरफ यंत्र बताते हैं कि उसकी शक्ति क्षीण हो रही है। और जब हजारों मील दूर कामिनिएव विचार को ग्रहण करता है, तब उसकी शक्ति, यंत्र बताते हैं कि बढ़ गई। आश्चर्यजनक! हजारों मील दूर। लेकिन जब निकोलिएव विचार भेजता है कामिनिएव को, तब उससे पूछा गया कि वह करता क्या है? वह कहता है--मैं आंख बंद करके ध्यान करता हूं कि कामिनिएव मेरे सामने उपस्थित है--वह दूर नहीं है, मेरे सामने उपस्थित है। मैं अपने सारे ध्यान को उस पर लगा देता हूं। सब भूल जाता हूं सिर्फ कामिनिएव रह जाता है। और जब कामिनिएव रह जाता है और मुझे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगता है कि यह सामने खड़ा है, तब मैं उससे बोलता हूं।

ध्यान वह अटेंशन दे रहा है। तो उसकी ऊर्जा हजारों मील दूर बैठे हुए व्यक्ति को उपलब्ध हो जाती है। जिस चीज पर हम ध्यान देते हैं वहां शक्ति संगृहीत होती है और जहां से हम ध्यान देते हैं वहां से शक्ति हटती है और विसर्जित होती है। जिस वृत्ति पर आप ध्यान देते हैं उस पर शक्ति संगृहीत हो जाती है। जब आप कामवासना का विचार करते हैं तो आपके कामवासना का जो केंद्र है वह शक्ति को इकट्ठा करने लगता है। जिस चीज पर आप ध्यान देते हैं वह वृत्ति का केंद्र आपके भीतर शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। आप ही शक्ति देते हैं ध्यान देकर। फिर वह केंद्र शक्ति से भर जाता है तो वह शक्ति से मुक्त होना चाहता है, क्योंकि बोझिल हो जाता है। यह जाल है आदमी के भीतर।

लेकिन, कामवासना पर ध्यान दो तरह से दिया जा सकता है। एक, कि आप कामवासना में रस लें तो भी ध्यान दिया जा सकता है। तो प्रकृतिस्थ, नेचुरल कामवासना आप में घनीभूत होगी, नैसर्गिक कामवासना आप में शक्तिशाली हो जाएगी। एक विकृत ध्यान दिया जा सकता है। एक आदमी कामवासना पर ध्यान देता है कि मुझे कामवासना से लड़ना है, मुझे कामवासना को भीतर प्रविष्ट नहीं होने देना है--वह भी ध्यान दे रहा है। उसका भी काम का सेंटर, सेक्स सेंटर शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। अब बड़ी मुश्किल होती है। क्योंकि जो नैसर्गिक कामवासना को ध्यान देता है, वह तो नैसर्गिक रूप से शक्ति उसकी विसर्जित हो जाएगी। लेकिन जो विसर्जित नहीं करना चाहता और ध्यान देता है, इसका क्या होगा? इसकी शक्ति विकृत रूप लेना शुरू करेगी, यह विसर्जित हो नहीं सकती। यह शरीर के दूसरे अंगों में प्रवेश करेगी और उनको विकृत करने लगेगी। यह चित्त

के दूसरे स्नायुओं में प्रवेश करेगी और विकृत करने लगेगी। यह आदमी भीतर से उलझता जाएगा और जाल में फंसता जाएगा--अपनी ही अपनी ही दी गई शक्ति से।

ऐसा हुआ कि हम एक वृक्ष को पानी दिए जाते हैं और प्रार्थना किए जाते हैं कि वृक्ष बड़ा न हो। यह वृक्ष बड़ा न हो, प्रार्थना किए जाते हैं और पानी दिए जाते हैं। जिस वृत्ति को आप ध्यान देते हैं चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में, आप उसको पानी और भोजन देते हैं। तप का मूल सूत्र यही है कि ध्यान कहीं और दो। जहां तुम शक्ति को इकट्ठा करना चाहते हो वहां मत दो। ध्यान ही उठाओ ऊपर। अगर कामवासना से मुक्त होना है तो कामवासना पर ध्यान ही मत दो-पक्ष में भी नहीं, विपक्ष में भी नहीं। लेकिन ध्यान आपको देना ही पड़ेगा क्योंकि ध्यान आपकी शक्ति है, वह काम मांगती है।

तो तप का मूल सूत्र यह है कि ध्यान के लिए नये केंद्र निर्मित करो। नये केंद्र आदमी के भीतर हैं, और उन केंद्रों पर ध्यान को ले जाओ। जैसे ही ध्यान को नया केंद्र मिल जाता है, वह नये केंद्र में शक्ति को उड़ेलने लगता है, वैसे ही पुराने केंद्रों से मुक्त होने लगता है। पहाड़ पर चढ़ाई शुरू हो गई है। काम वासना का केंद्र हमारा सबसे नीचा केंद्र है। वहां से हम प्रकृति से जुड़े हैं। सहस्रार हमारा सबसे ऊंचा केंद्र है। वहां से हम परमात्म-ऊर्जा से जुड़े हैं--दिव्यता से, भव्यता से, भगवत्ता से जुड़े हैं। जब भी आप ध्यान देते हैं, आपने ख्याल किया है कि आपके मस्तिष्क में विचार चलता है, कामवासना का, और आपका काम केंद्र तत्काल सक्रिय हो जाता है। यहां विचार चला--और विचार तो चलता है मस्तिष्क में और काम केंद्र बहुत दूर है--वह तत्काल सक्रिय हो जाता है।

ठीक यही उपाय है। तपस्वी अपने सहस्रार की तरफ अपने ध्यान को लौटा कर करता है। वह जैसे ही सहस्रार की तरफ ध्यान देता है वैसे ही सहस्रार सक्रिय होना शुरू हो जाता है। और जब शक्ति ऊपर की तरफ जाती है तो नीचे की तरफ नहीं जाती है। और जब शक्ति को मार्ग मिलने लगता है, शिखर पर चढ़ने का, तो घाटियां वह छोड़ने लगती हैं। अगर शक्ति का प्रकाश के जगत में प्रवेश होने लगता है तो अंधेरे के जगत से चुपचाप उठने लगती है। अंधेरे की निंदा भी नहीं होती है उसके मन में, अंधेरे का विरोध भी नहीं होता है उसके मन में, अंधेरे का ख्याल भी नहीं होता है उसके मन में, अंधेरे पर ध्यान ही नहीं होता है। ध्यान का रूपांतरण है, तप।

अब इसको अगर इस तरह समझेंगे तो तप का मैं दूसरा अर्थ आपको कह सकूंगा। तप का ऐसे अर्थ होता है--अग्नि। तप का अर्थ होता है--अग्नि। तप का अर्थ होता है--भीतर की अग्नि। मनुष्य के भीतर जो जीवन की अग्नि है, उस अग्नि को ऊर्ध्वगमन की तरफ ले जाना तपस्वी का काम है। उसे नीचे की ओर ले जाना भोगी का काम है। भोगी का अर्थ है--जो अग्नि को नीचे की ओर प्रवाहित कर रहा है जीवन में--अधोगमन की ओर। तपस्वी का अर्थ है--जो ऊपर की ओर प्रवाहित कर रहा है उस अग्नि को, परमात्मा की ओर, सिद्धावस्था की ओर।

यह अग्नि दोनों तरफ जा सकती है। और बड़े मजे की बात यह है कि ऊपर की तरफ आसानी से जाती है, नीचे की तरफ बड़ी कठिनाई से जाती है, क्योंकि अग्नि का स्वभाव है ऊपर की तरफ जाना। आपने ख्याल किया है? आप आग जलाते हैं, वह ऊपर की तरफ जाने लगती है। इसीलिए इसे तप नाम दिया, इसे अग्नि नाम दिया, इसे यज्ञ नाम दिया, ताकि यह ख्याल में रहे कि अग्नि का स्वभाव तो है ऊपर की तरफ जाना। नीचे की तरफ तो बड़ी चेष्टा करके ले जानी पड़ती है।

पानी नीचे की तरफ बहता है। अगर ऊपर की तरफ ले जाना हो तो बड़ी चेष्टा करनी पड़ती है। और आप चेष्टा छोड़ दें तो पानी फिर नीचे की तरफ बहने लगेगा। आपने पंपिंग का इंतजाम छोड़ दिया तो पानी फिर नीचे बहने लगेगा। अगर ऊपर चढ़ाना है तो पंप करो, ताकत लगाओ, मेहनत करो। नीचे बहने के लिए पानी किसी की मेहनत नहीं मांगता, खुद बहता है। वह उसका स्वभाव है।

अग्नि को अगर नीचे की तरफ ले जाना है तो इंतजाम करना पड़ेगा। अपने से अग्नि ऊपर की तरफ उठती है--ऊर्ध्वगामी है। इसको तप कहने का कारण है क्योंकि भीतर की जो अग्नि है, जो जीवन-अग्नि है, वह स्वभाव

से ऊर्ध्वगामी है। एक बार आपको उसके ऊर्ध्वगमन का अनुभव हो जाए, फिर आपको प्रयास नहीं करना पड़ता है, उसको ऊपर ले जाने के लिए। वह जाती रहती है। एक बार सहस्रार की तरफ तपस्वी का ध्यान मुड़ जाए तो फिर उसे चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। फिर वह अग्नि अपने आप बढ़ती रहती है। धीरे-धीरे वह भूल ही जाता है—क्या नीचे, क्या ऊपर। भूल ही जाता है, क्योंकि फिर तो अग्नि सहज ऊपर बहती रहती है। एक बार आग राह पकड़ ले तो ऊपर की तरफ जाना उसका स्वभाव है। नीचे की तरफ ले जाने के लिए आयोजन करना पड़ता है। लेकिन हम नीचे की तरफ ले जाने के लिए इतने लंबे अभ्यस्त हैं कि जन्मों-जन्मों का हमारा अभ्यास है, नीचे की तरफ ले जाने का। इसलिए नीचे की तरफ ले जाना, जो कि वस्तुतः कठिन है, वह हमें सरल मालूम पड़ता है। ऊपर की तरफ ले जाना जो कि वस्तुतः सरल है, वह हमें कठिन मालूम पड़ता है।

कठिनाई हमारी आदत में है। आदतें बड़ी कठिन हो जाती हैं। और कभी-कभी स्वभाव, जो कि हमारी आदत नहीं है, जो कि वस्तु का धर्म है—उसके ऊपर हमारी आदत इतनी सख्त होकर बैठ जाती है कि स्वभाव को दबा देती है। हम सबके स्वभाव दबे हुए हैं आदतों से। जिसको महावीर कर्म का क्रम कहते हैं वह हमारी आदतों का क्रम है। हमने आदतें बना रखी हैं, वे हमें दबाए हुए हैं। वह आदतें लंबी हैं, पुरानी हैं, गहरी हैं। उनसे छूट जाना आज इसी वक्त संभव नहीं हो जाएगा। तो हम उनसे लड़ना शुरू करते हैं और उलटी आदतें बनाते हैं। लेकिन आदत फिर भी आदत ही होती है।

गलत तपस्वी सिर्फ आदत बनाता है तप की। ठीक तपस्वी स्वभाव को खोजता है, आदत नहीं बनाता। हैबिट और नेचर का फर्क समझ लें। हम सब आदतें बनवाते हैं। हम बच्चे को कहते हैं—क्रोध न करो, क्रोध की आदत बुरी है। न क्रोध करने की आदत बनाओ। वह न क्रोध करने की आदत तो बना लेता है, लेकिन उससे क्रोध नष्ट नहीं होता, क्रोध भीतर चलने लगता है। कामवासना पकड़ती है तो हम कहते हैं कि ब्रह्मचर्य की आदत बनाओ। वह आदत बन जाती है। लेकिन कामवासना भीतर सरकती रहती है, वह नीचे की तरफ बहती रहती है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तपस्वी खोजता है—स्वभाव के सूत्र को, ताओ को, धर्म को। वह क्या है जो मेरा स्वभाव है, उसे खोजता है। सब आदतों को हटाकर वह अपने स्वभाव का दर्शन करता है। लेकिन आदतों को हटाने का एक ही उपाय है—ध्यान मत दो, आदत पर ध्यान मत दो।

एक मित्र चार-छह दिन पहले मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि आप कहते हैं कि बंबई में रह कर, और ध्यान हो सकता है! यह सड़क का क्या करें, भोंपू का क्या करें? ट्रेन जा रही है, सीटी बज रही है, इसका क्या करें?

मैंने उनसे कहा: ध्यान मत दो।

उन्होंने कहा कैसे ध्यान न दें! खोपड़ी पर भोंपू बज रहा है, नीचे कोई हार्न बजाए चला जा रहा है, ध्यान कैसे न दें!

मैंने उनसे कहा: एक प्रयास करो। भोंपू कोई नीचे बजाए जा रहा है, उसे भोंपू बजाने दो। तुम ऐसे बैठे रहो, कोई प्रतिक्रिया मत करो कि भोंपू अच्छा है कि भोंपू बुरा है, कि बजाने वाला दुश्मन कि बजाने वाला मित्र है, कि इसका सिर तोड़ देंगे अगर आगे बजाया। कुछ प्रतिक्रिया मत करो। तुम बैठे रहो, सुनते रहो। सिर्फ सुनो। थोड़ी देर में तुम पाओगे कि भोंपू बजता भी हो तो भी तुम्हारे लिए बजना बंद हो जाएगा। एक्सेप्ट इट, स्वीकार करो।

जिस आदत को बदलना हो उसे स्वीकार कर लो। उससे लड़ो मत। स्वीकार कर लो, जिसे हम स्वीकार लेते हैं उस पर ध्यान देना बंद हो जाता है। क्या आपको पता है, किसी स्त्री के आप प्रेम में हों, उस पर ध्यान होता है। फिर विवाह करके उसको पत्नी बना लिया, फिर वह स्वीकृत हो गई, फिर ध्यान बंद हो जाता है। जिस चीज को हम स्वीकार कर लेते हैं! एक कार आपके पास नहीं है, वह सड़क पर निकलती है चमकती हुई, ध्यान

खींचती है। फिर आप मिल गई, फिर आप उसमें बैठ गए हैं। फिर थोड़े दिन में आपको ख्याल ही नहीं आता है कि वह कार भी है, चारों तरफ जो ध्यान को खींचती थी, वह स्वीकार हो गई।

जो चीज स्वीकृत हो जाती है उस पर ध्यान जाना बंद हो जाता है। स्वीकार कर लो, जो है उसे स्वीकार कर लो। अपने बुरे से बुरे हिस्से को भी स्वीकार कर लो। ध्यान देना बंद कर दो, ध्यान मत दो। उसको ऊर्जा मिलनी बंद हो जाएगी। वह धीरे-धीरे अपने आप क्षीण होकर सिकुड़ जाएगी, टूट जाएगी। और जो बचेगी ऊर्जा, उसका प्रवाह अपने आप भीतर की तरफ होना शुरू हो जाएगा।

गलत तपस्वी उन्हीं चीजों पर ध्यान देता है जिन पर भोगी देता है। सही तपस्वी ठीक तप की प्रक्रिया ध्यान का रूपांतरण है। वह उन चीजों पर ध्यान देता है, जिन पर न भोगी ध्यान देता है, न तथाकथित त्यागी ध्यान देता है। वह ध्यान को ही बदल देता है। और ध्यान हमारा हमारे हाथ में है। हम वहीं देते हैं जहां हम देना चाहते हैं।

अभी यहां हम बैठे हैं, आप, मुझे सुन रहे हैं। अभी यहां आग लग जाए मकान में, आप एकदम भूल जाएंगे कि सुन रहे थे, कि कोई बोल रहा था, सब भूल जाएंगे। आग पर ध्यान दौड़ जाएगा, बाहर निकल जाएंगे, भूल ही जाएंगे कि कुछ सुन रहे थे। सुनने का कोई सवाल ही न रह जाएगा। ध्यान प्रतिपल बदल सकता है, सिर्फ नये बिंदु उसको मिलने चाहिए। आग मिल गई, वह ज्यादा जरूरी है जीवन को बचाने के लिए। आग हो गई, तो तत्काल ध्यान वहां दौड़ जाएगा। आपके भीतर तप की प्रक्रिया में उन नये बिंदुओं और केंद्रों की तलाश करनी है जहां ध्यान दौड़ जाए और जहां नये केंद्र सशक्त होने लेंगे। इसलिए तपस्वी कमजोर नहीं होता, शक्तिशाली हो जाता है। गलत तपस्वी कमजोर हो जाता है। गलत तपस्वी कमजोर होकर सोचता है कि हम जीत लेंगे, और भ्रान्ति पैदा होती है जीतने की।

अगर एक आदमी को तीस दिन भोजन नहीं दिया जाए, तो कामवासना क्षीण हो जाती है। इसलिए नहीं कि कामवासना चली गई, इसलिए कि कामवासना के योग्य रस नहीं बनता शरीर में। फिर भोजन दिया जाए तो तीस दिन में जो वासना गई थी वह तीन दिन में वापस लौट आती है। भोजन मिला, शरीर को रस मिला। फिर केंद्र सक्रिय हो गया, फिर ध्यान दौड़ने लगा। इसलिए फिर जिसने भूखा रह कर कामवासना पर तथाकथित विजय पाई वह बेचारा फिर भूखा ही जीवन भर रहने की कोशिश में लगा रहता है, क्योंकि वह डरता है कि इधर भोजन दिया तो उधर वासना उठी। मगर यह निपट पागलपन है। वासना के बाहर हुए नहीं, यह सिर्फ कमजोरी की वजह से वासना को शक्ति नहीं मिल रही है।

असल में आदमी जितनी शक्ति पैदा करता है, उसमें कुछ तो जरूरी होती है जो उसके रोज के काम में समाप्त हो जाती है। एक खास मात्रा की कैलोरी उसके रोज के काम में—उठने में, बैठने में, नहाने में, खाने में, पचाने में, दुकान में आने में, जाने में व्यय हो जाती है। सोने में व्यय हो जाती है। उसके अतिरिक्त जो बचती है वह उस केंद्र को मिल जाती है जिस पर आपका ध्यान है। जो सुपरफ्लुअस है, जो अतिरिक्त है। अगर समझ लें कि एक हजार कैलोरी, मान लें कि आपके रोजमर्रा के काम में खर्च होती है और आपके भोजन और आपकी व्यवस्था से आपको दो हजार कैलोरी शक्ति शरीर में पैदा होती है, तो आपका ध्यान जिस केंद्र पर होगा; एक हजार कैलोरी जो शेष बची है, उस केंद्र पर दौड़ जाएगी। उसको कोई रास्ता नहीं है, ध्यान ही रास्ता है, ध्यान ही ऐरो है जिससे वह जाएगी। उसको और कुछ पता नहीं, कहां जाना है। आपका ध्यान उसको खबर देता है कि यहां जाना है, वह वहां चली जाती है।

अब अगर आपको झूठे तप में उतरना है, तो आप भोजन इतना कर लें कि हजार कैलोरी से ज्यादा आपके भीतर पैदा न हो। फिर आपको ब्रह्मचर्य सधा हुआ मालूम पड़ेगा। क्योंकि आपके पास अतिरिक्त शक्ति बचती नहीं जो कि सेक्स के केंद्र को मिल जाए। हजार शक्ति पैदा होती है, हजार आप खर्च कर लेते हैं। इसलिए

तपस्वी खाना कम कर देता है, पैदल चलने लगता है, श्रम ज्यादा करने लगता है और खाना कम करता चला जाता है। वह दोहरी प्रतिक्रियाएं करता है, ताकि शरीर में शक्ति कम हो और शक्ति व्यय ज्यादा हो। वह मिनिमम पर जीने लगता है। न होगी अतिरिक्त शक्ति, न वासना बनेगी।

मगर इससे वह वासना से मुक्त नहीं होता। वासना अपनी जगह खड़ी है। वासना का केंद्र प्रतीक्षा करेगा। अनंत जन्मों तक प्रतीक्षा करेगा, कहेगा जिस दिन शक्ति ज्यादा हो, मैं तैयार हूं। यह सिर्फ भय में जीना है। इस जीने से कहीं कुछ उपलब्ध नहीं होता है। इससे प्रकृति तो चूक जाती है, संस्कृति नहीं मिलती। सिर्फ विकृति मिलती है और एक भयभीत चेतना रह जाती है।

नहीं, यह नहीं है मार्ग। ठीक पाजिटिव आस्टेरिटी का, ठीक विधायक तप का मार्ग है--शक्ति पैदा करो, ध्यान रूपांतरित करो। ध्यान नये केंद्रों तक ले जाओ, ताकि शक्ति वहां जाए। इसे हम धीरे-धीरे जब और गहरे उतरेंगे ध्यान के परिवर्तन के लिए, तो यह प्रक्रिया ख्याल में आ सकेगी। लेकिन सबसे पहले तो यह ख्याल में ले लेना चाहिए कि मेरी अतिरिक्त शक्ति किस केंद्र से व्यय हो रही है। उसके विपरीत जो केंद्र है, उस केंद्र पर ध्यान को लगाना पड़ेगा।

एक छोटी सी घटना, और आज की बात मैं पूरी करूं। धर्मगुरुओं का एक सम्मेलन हुआ है। बड़े धर्मगुरु उस देश के एक नगर में इकट्ठे हुए हैं। चार बड़े धर्म हैं इस देश में, चारों के चार बड़े धर्मगुरु एक निजी वार्ता में लीन हैं। सब सम्मेलन निपटने के करीब हो गया। वह बैठ कर बातें कर रहे हैं। ऊंची बातें हो चुकीं, नकली बातें हो चुकीं। वे अब बैठ कर असली गप-शप कर रहे हैं। पचहत्तर साल का बूढ़ा धर्मगुरु कहता है कि हो गई वे बातें, सुन गए लोग। लेकिन तुम्हारे सामने क्यों मैं छिपाऊं, और मैं आशा करता हूं कि तुम भी न छिपाओगे। अच्छा होगा कि हम बताएं कि असली जिंदगी हमारी क्या है। मैं तो एक ही चीज से परेशान रहा हूं--वह धन। और दिन रात धन के विपरीत बोलता हूं। धन पर मेरी बड़ी पकड़ है। एक पैसा भी मेरा खो जाए तो रात भर मुझे नींद नहीं आती। या एक पैसा मिलने की आशा बंध जाए तो रातभर एक्साइटमेंट रहता है और नींद नहीं आती। बड़ी, धन ही मेरी कमजोरी है। बड़ी मुश्किल है। इसके पार मैं नहीं हो पा रहा हूं। क्या, आप में से कोई पार हो गया हो तो बताएं।

दूसरे ने कहा: पार तो हम भी नहीं, हमारी अपनी-अपनी मुसीबतें हैं।

एक ने कहा: मेरी मुसीबत तो यह अहंकार है। इसके लिए ही जीता हूं, इसी के लिए उठता हूं, इसी के लिए बैठता हूं। इसी के लिए अहंकार के खिलाफ भी बोलता हूं, पर है यही। इससे मैं बाहर नहीं हो पाता।

तीसरे ने कहा: मेरी कमजोरी तो यह कामवासना है। ये स्त्रियां मेरी कमजोरी हैं। दिन-रात समझाता हूं, प्रवचन करता हूं, ब्रह्मचर्य का व्याख्यान करता हूं चर्च में। लेकिन उस दिन बोलने में मजा ही नहीं आता, जिस दिन स्त्रियां नहीं आतीं। मुझे खुद ही मजा नहीं आता बोलने में। जिस दिन स्त्रियां आती हैं, उस दिन मेरा जोश देखने लायक रहता है। उस दिन जब मैं बोलता हूं तो बात ही और होती है। लेकिन अब मैं जानता हूं भलीभांति कि वह भी कामवासना ही है। मैं उसके बाहर नहीं हो पाता हूं।

चौथा आदमी मुल्ला नसरुद्दीन था। वह उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि क्षमा करें, मैं जाता हूं।

उन्होंने कहा: लेकिन तुमने अपनी कमजोरी नहीं बताई।

उसने कहा: मेरी सिर्फ एक कमजोरी है, वह है निंदा। अब मैं नहीं रुक सकता एक भी क्षण। पूरा गांव मेरी राह देख रहा होगा। जो मैंने यहां सुना है, वह मुझे कहना होगा। क्षमा करें, मेरी एक ही कमजोरी है--अफवाह। और अब मेरा रुकना मुश्किल है।

उन तीनों ने उसे पकड़ने की कोशिश की कि तू ठहर भाई, तेरी यह कमजोरी थी, तो तूने पहले क्यों नहीं कहा, इतनी देर चुप क्यों रहा?

हर आदमी की कोई न कोई कमजोरी है। उस कमजोरी को ठीक से पहचान लें। उसी में आपकी ऊर्जा व्यय होती है।

मुल्ला ने कहा कि तब तक तो मैं बैठा रहा जब तक मैं पूरा न सुन पाया। लेकिन जब मैंने पूरा सुन लिया तो जग गई मेरी शक्ति। अब इस रात सोना मेरे वश में नहीं है, अब जब तक एक-एक तक खबर न पहुंचा दूं शक्ति जग गई मेरी! वह जो कमजोरी है हमारी, वही हमारी शक्ति का निष्कासन है। वहीं से हमारी शक्ति व्यय होती है। मुल्ला तब तक बिल्कुल सुस्त बैठा था, जैसे कोई प्राण ही न हों। अचानक ज्योति आ गई, प्राण आ गए, चमक आ गई!

मुल्ला ने कहा कि गजब हो गया। कभी सोचा भी न था कि इस कांफ्रेंस में और ऐसा आनंद आने वाला है।

हमारी कमजोरी हमारी शक्ति के व्यय का बिंदु है। भोग हो या भोग के विपरीत त्याग हो, बिंदु वही बना रहता है। ध्यान वहीं केंद्रित रहता है, शक्ति वहीं से विसर्जित होती है, इवोपरेट होती है, वाष्पीभूत होती है। तप ध्यान के केंद्र बदलने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया पर कल मैं बात करूंगा। शायद लंबी इस पर बात करनी पड़े क्योंकि महावीर ने फिर तप के बारह हिस्से किए हैं, और एक-एक हिस्सा वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तो कल वैज्ञानिक प्रक्रिया को हम समझ लें, फिर महावीर के एक-एक तप के हिस्से पर हम बात करेंगे।

अभी जाएंगे नहीं--हालांकि मन की कमजोरी कह रही होगी कि भागो। तो थोड़ा रुकेंगे। जो कीर्तन संन्यासी करते हैं, उतना धैर्य और।

तपः ऊर्जा-शरीर का अनुभव (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तप के संबंध में, मनुष्य की प्राण ऊर्जा को रूपांतरण करने की प्रक्रिया के संबंध में और थोड़े से वैज्ञानिक तथ्य समझ लेने आवश्यक हैं। धर्म भी विज्ञान है, या कहे परम विज्ञान है, सुप्रीम साइंस है। क्योंकि विज्ञान केवल पदार्थ का स्पर्श कर पाता है, धर्म उस चैतन्य का भी, जिसका स्पर्श करना असंभव मालूम पड़ता है। विज्ञान केवल पदार्थ को बदल पाता है, नये रूप दे पाता है; धर्म उस चेतना को भी रूपांतरित करता है जिसे देखा भी नहीं जा सकता और छुआ भी नहीं जा सकता। इसलिए परम विज्ञान है।

विज्ञान से अर्थ होता है--टु नो दि हाउ। किसी चीज को कैसे किया जा सकता है, इसे जानना। विज्ञान का अर्थ होता है--उस प्रक्रिया को जानना, उस पद्धति को जानना, उस व्यवस्था को जानना जिससे कुछ किया जा सकता है। बुद्ध कहते थे कि सत्य का अर्थ है--वह, जिससे कुछ किया जा सके। अगर सत्य इंपोटेंट है, नपुंसक है, जिससे कुछ न हो सके, सिर्फ सिद्धांत हो, तो व्यर्थ है। सत्य वही है, जो कुछ कर सके--कोई बदलाव, कोई क्रांति, कोई परिवर्तन। और धर्म ऐसा ही सत्य है। इसलिए धर्म चिंतन नहीं है, विचार नहीं है; धर्म आमूल रूपांतरण है, म्यूटेशन है। तप धर्म का, धर्म के रूपांतरण की प्रक्रिया का प्राथमिक सूत्र है। तप किन आधारों पर खड़ा है, वह हम समझ लें। किन प्रक्रियाओं से आदमी को बदलता है, वह हम समझ लें।

सबसे पहली बात इस जगत में जो भी हमें दिखाई पड़ता है, वह वैसा नहीं है जैसा दिखाई पड़ता है। क्योंकि जो भी दिखाई पड़ता है, वह मालूम होता है थिर पदार्थ है, ठहरा हुआ, जमा हुआ पदार्थ है। लेकिन अब विज्ञान कहता है--इस जगत में ठहरी हुई, जमी हुई कोई भी चीज नहीं है। जो कुछ है, सभी गत्यात्मक है, डाइनेमिक है। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, वह ठहरी हुई चीज नहीं है; वह पूरे समय नदी के प्रवाह की तरह गत्यात्मक है। जो दीवार आ पको चारों तरफ दिखाई पड़ती है, वह दीवार ठोस नहीं है। विज्ञान कहता है--अब ठोस जैसी कोई चीज जगत में नहीं है। वह जो दीवार चारों तरफ खड़ी है, वह भी तरल और लिक्विड है, बहाव है। लेकिन बहाव इतना तेज है कि आपकी आंखें उस बहाव के बीच के अंतराल को, खाइयों को नहीं पकड़ पातीं। जैसे बिजली के पंखे को हम जोर से चला दें, इतने जोर से चला दें तो फिर आप उसकी पंखुड़ियों को नहीं गिन पाते। अगर बहुत गति से चलता हो तो लगेगा कि एक गोल वर्तुल ही घूम रहा है पंखुड़ियां नहीं। बीच की पंखुड़ियों की जो खाली जगह है, वह दिखाई नहीं पड़ती।

वैज्ञानिक कहते हैं--बिजली के पंखे को इतनी तेजी से चलाया जा सकता है कि आप अगर गोली मारें तो बीच के स्थान से नहीं निकल सकेगी, खाली जगह से नहीं निकल सकेगी, पंखुड़ी को छेद कर निकलेगी। और इतने जोर से भी चलाया जा सकता है कि आप अगर पंखे के, चलते पंखे के ऊपर बैठ जाएं तो आप बीच के

स्थान से गिरेंगे नहीं। क्योंकि गिरने में जितना समय लगता है, उतनी देर में दूसरी पंखुड़ी आपके नीचे आ जाएगी। तब... तब पंखा ठोस मालूम पड़ेगा, चलता हुआ मालूम नहीं पड़ेगा।

अगर गति अधिक हो जाए तो चीजें ठहरी हुई मालूम पड़ती हैं। अधिक गति के कारण, ठहराव के कारण नहीं। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, उसकी गति बहुत है। उसका एक-एक परमाणु उतनी ही गति से दौड़ रहा है अपने केंद्र पर जितनी गति से सूर्य की किरण चलती हैं--एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। इतनी तीव्र गति से चलने की वजह से आप गिर नहीं जाते कुर्सी से, नहीं तो आप कभी भी गिर जाएं। तीव्र गति आपको सम्हाले हुए है।

फिर यह गति भी बहुआयामी है, मल्टी-डायमेंशनल है। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं उसकी पहली गति तो यह है कि उसके परमाणु अपने भीतर घूम रहे हैं। हर परमाणु अपने न्यूक्लियस पर, अपने केंद्र पर चक्कर काट रहा है। फिर कुर्सी जिस पृथ्वी पर रखी है, वह पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है। उसके घूमने की वजह से भी कुर्सी में दूसरी गति है। एक गति कुर्सी की आंतरिक है कि उसके परमाणु घूम रहे हैं, दूसरी गति--पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है इसलिए कुर्सी भी पूरे समय पृथ्वी के साथ घूम रही है। तीसरी गति--पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है और साथ ही पूरे सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण कर रही है; घूमते हुए अपनी कील पर सूर्य का चक्कर लगा रही है। वह तीसरी गति है। कुर्सी में वह गति भी काम कर रही है। चौथी गति--सूर्य अपनी कील पर घूम रहा है, और उसके साथ उसका पूरा सौर परिवार घूम रहा है। और पांचवीं गति--सूर्य, वैज्ञानिक कहते हैं कि महासूर्य का चक्कर लगा रहा है। बड़ा चक्कर है वह, कोई बीस करोड़ वर्ष में एक चक्कर पूरा हो पाता है। तो वह पांचवीं गति कुर्सी भी कर रही है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि छठवीं गति का भी हमें आभास मिलता है कि वह जिस महासूर्य का, यह हमारा सूर्य परिभ्रमण कर रहा है; वह महासूर्य भी ठहरा हुआ नहीं है। वह अपनी कील पर घूम रहा है। और सातवीं गति का भी वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि वह जिस और महासूर्य का, जो अपनी कील पर घूम रहा है, वह दूसरे सौर परिवारों से प्रतिक्षण दूर हट रहा है। कोई और महासूर्य या कोई महाशून्य सातवीं गति का इशारा करता है। वैज्ञानिक कहते हैं--ये सात गतियां पदार्थ की हैं।

आदमी में एक आठवीं गति भी है, प्राण में, जीवन में एक आठवीं गति भी है। कुर्सी चल नहीं सकती, जीवन चल सकता है। आठवीं गति शुरू हो जाती है। एक नौवीं गति, धर्म कहता है मनुष्य में है और वह यह है कि आदमी चल भी सकता है और उसके भीतर जो ऊर्जा है वह नीचे की तरफ जा सकती है या ऊपर की तरफ जा सकती है। उस नौवीं गति से ही तप का संबंध है। आठ गतियों तक विज्ञान काम कर लेता है, उस नौवीं गति पर, दि नाइनथ, वह जो परम गति है चेतना के ऊपर-नीचे जाने की, उस पर ही धर्म की सारी प्रक्रिया है।

मनुष्य के भीतर जो ऊर्जा है, वह नीचे या ऊपर जा सकती है। जब आप कामवासना से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा नीचे जाती है; जब आप आत्मा की खोज से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है। जब आप जीवन से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा भीतर की तरफ जाती है। और भीतर और ऊपर धर्म की दृष्टि में एक ही दिशा के नाम हैं। और जब आप मरण से भरते हैं, मृत्यु निकट आती है तो वह ऊर्जा बाहर जाती है। दस वर्षों पहले तक, केवल दस वर्षों पहले तक वैज्ञानिक इस बात के लिए राजी नहीं थे कि मृत्यु में कोई ऊर्जा मनुष्य के बाहर जाती है, लेकिन रूस के डेविडोविच किरिलियान की फोटोग्राफी ने पूरी धारणा को बदल दिया है।

किरिलियान की बात मैंने आपसे पीछे की है। उस संबंध में जो एक बात आज काम की है और आपसे कहनी है। किरिलियान ने जीवित व्यक्तियों के चित्र लिए हैं, तो उन चित्रों में शरीर के आस-पास ऊर्जा का वर्तुल, इनर्जी फील्ड चित्रों में आता है। हायर सेंसिटिविटी फोटोग्राफी में, बहुत संवेदनशील फोटोग्राफी में आपके आस-पास ऊर्जा का एक वर्तुल आता है। लेकिन अगर मरे आदमी का, अभी मर गए आदमी का चित्र लेते हैं तो वर्तुल नहीं आता। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर जाते हुए, आते हैं। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर हटते हुए, भागते हुए आते हैं। और तीन दिन तक मरे हुए आदमी के शरीर से ऊर्जा के गुच्छे बाहर निकलते रहते हैं। पहले दिन

ज्यादा, दूसरे दिन और कम, तीसरे दिन और कम। जब ऊर्जा के गुच्छों का बहिर्गमन पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तब आदमी पूरी तरह मरा। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक ऊर्जा निकल रही है तब तक उसको पुनरुज्जीवित करने की कोई विधि आज नहीं कल खोजी जा सकेगी।

मृत्यु में ऊर्जा आपके बाहर जा रही है, लेकिन शरीर का वजन कम नहीं होता है। निश्चित ही कोई ऐसी ऊर्जा है जिस पर ग्रेविटेशन का कोई असर नहीं होता। क्योंकि वजन का एक ही अर्थ होता है कि जमीन में जो गुरुत्वाकर्षण है उसका खिंचाव। आपका जितना वजन है, आप भूल कर यह मत समझना कि वह आपका वजन है। वह जमीन के खिंचाव का वजन है। जमीन जितनी ताकत से आपको खींच रही हो, उस ताकत का माप है। अगर आप चांद पर जाएंगे तो आपका वजन चार गुना कम हो जाएगा। क्योंकि चांद चार गुना कम ग्रेविटेशन रखता है। अगर आप सौ पौंड आपका वजन है तो पच्चीस पौंड चांद पर रह जाएगा। इसे आप ऐसा भी समझ सकते हैं कि अगर आप जमीन पर छह फीट ऊंचे कूद सकते हैं तो चांद पर आप जाकर चौबीस फीट ऊंचे कूद सकेंगे। और जब अंतरिक्ष में यात्री होता है, अपने यान में, कैप्सूल में--तब उसका कोई वजन नहीं रहता, नो वेट। क्योंकि वहां कोई ग्रेविटेशन नहीं होता। इसलिए यात्री को पट्टों से बांध कर उसकी कुर्सी पर रखना पड़ता है। अगर पट्टा जरा छूट जाए तो वह जैसे गैस भरा गुब्बारा जाकर ऊपर टकराने लगे, ऐसा आदमी टकराने लगेगा क्योंकि उसमें कोई वजन नहीं है जो उसे नीचे खींच सके। वजन जो है वह जमीन के गुरुत्वाकर्षण से है। लेकिन किरिलियान के प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि आदमी से ऊर्जा तो निकलती है लेकिन वजन कम नहीं होता। निश्चित ही उस ऊर्जा पर जमीन के गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव न पड़ता होगा। योग के लेविटेशन में जमीन से शरीर को उठाने के प्रयोग में उसी ऊर्जा का उपयोग है।

अभी एक बहुत अदभुत नृत्यकार था पश्चिम में--निजिंस्की। उसका नृत्य असाधारण था, शायद पृथ्वी पर वैसा नृत्यकार इसके पहले नहीं था। असाधारणता यह थी कि वह अपने नाच में जमीन से इतने ऊपर उठ जाता था जितना कि साधारणतया उठना बहुत मुश्किल है। और इससे भी ज्यादा आश्चर्यजनक यह था कि वह ऊपर से जमीन की तरफ आता था तो इतने स्लोली, इतने धीमे आता था कि जो बहुत हैरानी की बात है। क्योंकि इतने धीमे नहीं आया जा सकता। जमीन का जो खिंचाव है वह उतने धीमे आने की आज्ञा नहीं देता। यह उसका चमत्कारपूर्ण हिस्सा था। उसने विवाह किया, उसकी पत्नी ने जब उसका नृत्य देखा तो वह आश्चर्यचकित हो गई। वह खुद भी नर्तकी थी।

उसने एक दिन निजिंस्की को कहा--उसकी पत्नी ने आत्म-कथा में लिखा है, मैंने एक दिन अपने पति को कहा: वॉट ए शेम दैट यू कैन नॉट सी योरसेल्फ डांसिंग--कैसा दुख कि तुम अपने को नाचते हुए नहीं देख सकते। निजिंस्की ने कहा: हू सेड, आई कैन नॉट सी। आई डू आलवेज सी। आई एम आलवेज आउट। आई मेक माइसेल्फ डांस फ्रॉम द आउटसाइड। निजिंस्की ने कहा: मैं देखता हूं सदा, क्योंकि मैं सदा बाहर होता हूं और मैं बाहर से ही अपने को नाच करवाता हूं। और अगर मैं बाहर नहीं रहता हूं तो मैं इतने ऊपर नहीं जा पाता हूं और अगर मैं बाहर नहीं रहता हूं तो इतने धीमे जमीन पर वापस नहीं लौट पाता हूं। जब मैं भीतर होकर नाचता हूं तो मुझ में वजन होता है, और जब मैं बाहर होकर नाचता हूं तो उसमें वजन खो जाता है।

योग कहता है--अनाहत चक्र जब भी किसी व्यक्ति का सक्रिय हो जाए, तो जमीन का गुरुत्वाकर्षण उस पर प्रभाव कम कर देता है और विशेष नृत्यों का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है। अनायास ही मालूम होता है। निजिंस्की ने नाचते-नाचते अनाहत चक्र को सक्रिय कर लिया। और अनाहत चक्र की दूसरी खूबी है कि जिस व्यक्ति का अनाहत चक्र सक्रिय हो जाए वह आउट ऑफ बॉडी एक्सपीरिएंस, शरीर के बाहर के अनुभवों में उतर जाता है। वह अपने शरीर के बाहर खड़े होकर देख पाता है। लेकिन जब आप शरीर के बाहर होते हैं, तब जो शरीर के बाहर होता है, वही आपकी प्राण-ऊर्जा है। वही वस्तुतः आप हैं। वह जो ऊर्जा है उसे ही महावीर ने जीवन-अग्नि कहा है। और उस ऊर्जा को जगाने को ही वैदिक संस्कृति ने यज्ञ कहा है।

उस ऊर्जा के जग जाने पर जीवन में एक नई ऊष्मा भर जाती है। एक नया उत्ताप, जो बहुत शीतल है। यही कठिनाई है समझने की, एक नया उत्ताप जो बहुत शीतल है। तो तपस्वी जितना शीतल होता है उतना

कोई भी नहीं होता। यद्यपि हम उसे कहते हैं तपस्वी। तपस्वी का अर्थ हुआ कि वह ताप से भरा हुआ है। लेकिन तप जितनी जग जाती है यह अग्नि, उतना केंद्र शीतल हो जाता है। चारों ओर शक्ति जग जाती है, भीतर केंद्र पर शीतलता आ जाती है।

वैज्ञानिक पहले सोचते थे कि यह जो सूर्य है हमारा, यह जलती हुई अग्नि है, है ही, उबलती हुई अग्नि। लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि सूर्य अपने केंद्र पर बिल्कुल शीतल है, दि कोल्डेस्ट स्पॉट इन दि युनिवर्स, यह बहुत हैरानी की बात है। चारों ओर अग्नि का इतना वर्तुल है, सूर्य अपने केंद्र पर सर्वाधिक शीतल बिंदु है। और उसका कारण अब ख्याल में आना शुरू हुआ है। क्योंकि जहां इतनी अग्नि हो, उसको संतुलित करने के लिए इतनी ही गहन शीतलता केंद्र पर होनी चाहिए, नहीं तो संतुलन टूट जाएगा।

ठीक ऐसी ही घटना तपस्वी के जीवन में घटती है। चारों ओर ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है, लेकिन उस उत्पन्न ऊर्जा को संतुलित करने के लिए केंद्र बिल्कुल शीतल हो जाता है। इसलिए तप से भरे व्यक्ति से ज्यादा शीतलता का बिंदु इस जगत में दूसरा नहीं है, सूर्य भी नहीं। इस जगत में संतुलन अनिवार्य है। असंतुलन चीजें बिखर जाती हैं।

आपने कभी गर्मी के दिनों में उठ गया बवंडर देखा होगा, धूल का। जब बवंडर चला जाए तब आप धूल के ऊपर जाना या रेत के पास जाना। तो आप एक बात देखेंगे कि बवंडर चारों तरफ था, बवंडर के निशान चारों तरफ बने हैं, लेकिन बीच में एक बिंदु है जहां कोई निशान नहीं है। वहां शून्य था। वह बवंडर शून्य की धुरी पर ही घूम रहा था। बैलगाड़ी चलती है, लेकिन उसका चाक चलता है, लेकिन उसकी कील खड़ी रहती है। अब यह बहुत मजे की बात है कि खड़ी हुई कील पर चलते हुए चाक को सहारा है। खड़ी हुई कील पर, ठहरी हुई कील पर, चलते हुए चाक को चलना पड़ता है। अगर कील भी चल जाए तो गाड़ी गिर जाए। विपरीत से संतुलन है। जीवन का सूत्र है--विपरीत से संतुलन।

तो तपस्वी की चेष्टा यह है कि वह इतनी अग्नि पैदा कर ले अपने चारों ओर, ताकि उस अग्नि के अनुपात में भीतर शीतलता का बिंदु पैदा हो। वह अपनी ओर इतनी डाइनेमिक फोर्सेज, इतनी गत्यात्मक शक्ति को जन्मा ले कि भीतर शून्य का बिंदु उपलब्ध हो जाए। वह अपने चारों ओर इतने तीव्र परिभ्रमण से भर जाए ऊर्जा के कि उसकी कील ठहर जाए, खड़ी हो जाए।

उलटा दिखाई पड़ने वाला यह क्रम है, इससे बड़ी भूल हो जाती है। इससे लगता है कि तपस्वी शायद ताप में उत्सुक है। तपस्वी शीतलता में उत्सुक है। लेकिन शीतलता को पैदा करने की विधि अपने चारों ओर ताप को पैदा कर लेना है। और यह ताप बाह्य नहीं है। यह अपने शरीर के आसपास आग की अंगीठी जला लेने से नहीं पैदा हो जाएगा। यह ताप आंतरिक है। इसलिए महावीर ने, तपस्वी अपने चारों तरफ आग जलाए, इसका निषेध किया है। क्योंकि वह ताप बाह्य है। उससे आंतरिक शीतलता पैदा नहीं होगी; ध्यान रहे आंतरिक ताप होगा तो ही आंतरिक शीतलता पैदा होगी, बाह्य ताप होगा, तो बाह्य शीतलता पैदा होगी। यात्रा करनी है अंतर की तो बाहर के सब्स्टीट्यूट्स नहीं खोजने चाहिए। वे धोखे के हैं, खतरनाक हैं।

अंतर में क्या ताप पैदा हो सकता है? किरलियान ने ऐसे लोगों का अध्ययन किया है, फोटोग्राफी में जो सिर्फ अपने ध्यान से हाथ से लपटें निकाल सकते हैं। एक व्यक्ति है स्विस्, जो अपने हाथ में पांच कैंडल का बल्ब रख कर जला सकता है, सिर्फ ध्यान से। सिर्फ वह ध्यान करता है भीतर कि उसकी जीवन अग्नि बहनी शुरू हो गई हाथ से और थोड़ी ही देर में बल्ब जल जाता है।

पिछले कोई पंद्रह वर्ष पहले हालैंड की एक अदालत ने एक तलाक स्वीकार किया। और वह तलाक इस बात से स्वीकार किया कि वह जो स्त्री थी, उसके भीतर कुछ दुर्घटना घट गई थी। वह एक कार के एक्सीडेंट में गिर गई, पत्नी। और उसके बाद जो भी उसको छुए उसे बिजली के शाक लगने शुरू हो गए। उसके पति ने कहा-- मैं मर जाऊंगा। इसे छूना ही असंभव है।

यह पहला तलाक है क्योंकि इस कारण से पहले कभी कोई तलाक नहीं हुआ था। कानून में कोई जगह नहीं थी, क्योंकि कानून ने कभी सोचा नहीं था। लेकिन यह तलाक स्वीकार करना पड़ा। उस स्त्री की अंतर-ऊर्जा में कहीं लीकेज पैदा हो गया।

आपके शरीर में भी ऋण और धन विद्युत ऊर्जा का वर्तुल है। उसमें कहीं से भी टूट पैदा हो जाए तो आपके शरीर से भी दूसरे को शाक लगना शुरू हो जाएगा। और कभी कभी आपको किसी अंग में अचानक झटका लगता है, वह इसी आकस्मिक लीकेज का कारण है। आप आकस्मिक... कभी आप रात लेटे हैं और एकदम झटका खा जाते हैं। उसका और कोई कारण नहीं है। सोते वक्त आपकी ऊर्जा को शांत होना चाहिए आपकी निद्रा के साथ, वह नहीं हो पाती। व्यवधान पैदा हो जाता है। शाक खा सकते हैं आप।

यह जो अंतर-ऊर्जा है, हिप्रोसिस के प्रयोगों ने इस पर बहुत बड़ा काम किया है। सम्मोहन के द्वारा आपकी अंतर-ऊर्जा को कितना ही घटाया और बढ़ाया जा सकता है। जो लोग आग के अंगारों पर चलते रहे हैं, मुसलमान फकीर, सूफी फकीर या और योगी--उनके चलने का कुल कारण, कुल रहस्य इतना है कि वह अपनी अंतर-ऊर्जा को इतना जगा लेते हैं कि आग के अंगारे की गर्मी उससे कम पड़ती है। और कोई कारण नहीं है। रिलेटिवली, सापेक्ष रूप से आपकी गर्मी कम हो जाती है इसलिए अंगारे ठंडे मालूम पड़ते हैं। उनके शरीर की गर्मी, अंतर-ऊर्जा का प्रवाह इतना तीव्र होता है कि उस प्रवाह के कारण बाहर की गर्मी कम मालूम होती है।

गर्मी का अनुभव सापेक्ष है। अगर आप अपने दोनों हाथ एक हाथ को बर्फ पर रख कर ठंडा कर लें और अपने एक हाथ को आग की सिगड़ी पर रख कर गर्म कर लें। फिर दोनों हाथ को एक बाल्टी में डाल दें, पानी से भरी हुई, तो आपके दोनों हाथ अलग-अलग खबर देंगे। एक हाथ कहेगा--पानी बहुत ठंडा है; एक हाथ कहेगा--पानी बहुत गर्म है। जो हाथ ठंडा है वह कहेगा पानी गर्म है, जो हाथ गर्म है वह कहेगा पानी ठंडा है। आप बड़ी मुश्किल में पढ़ेंगे कि वक्तव्य क्या दें। अगर अदालत में गवाही देनी हो कि पानी ठंडा है या गर्म? क्योंकि आप साधारणतः हमारे शरीर का ताप एक होता है, इसलिए हम कह सकते हैं पानी ठंडा है या गर्म। एक हाथ को गर्म कर लें, एक को ठंडा, फिर एक ही बाल्टी में डाल दें। आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। और आपको महावीर का वक्तव्य देना पड़ेगा--शायद पानी गर्म है, शायद पानी ठंडा है--परहेप्स। बायां हाथ कहता है, ठंडा है, दायां हाथ कहता है, गर्म है। पानी क्या है फिर? आपका वक्तव्य सापेक्ष है। आप जो कह रहे हैं, वह वक्तव्य पानी के संबंध में नहीं, आपके हाथ के संबंध में है।

अगर आपकी अंतर-ऊर्जा इतनी जग गई, तो आप अंगारे पर चल सकते हैं और अंगारे ठंडे मालूम पड़ेंगे। पैर पर फफोले नहीं आएंगे। इससे उलटी घटना हिप्रोसिस में घट जाती है। अगर मैं आपको हिप्रोटाइज करके बेहोश कर दूं, जो कि बड़ी सरल सी बात है, और आपके हाथ पर एक साधारण सा कंकड़ रख दूं और कहूं कि अंगारा रखा है, आपका हाथ फौरन जल जाएगा। आप कंकड़ को फेंक कर चीख मार देंगे। यहां तक ठीक है, आपके हाथ पर फफोला आ जाएगा। क्या, हुआ क्या? जैसे ही मैंने कहा कि अंगारा रखा है, आपके हाथ की ऊर्जा घबड़ाहट में पीछे हट गई। रिलेटिव गैप, जगह हो गई। खाली जगह हो गई, हाथ जल गया। अंगारा नहीं जलाता, आपकी ऊर्जा हट जाती है, इसलिए आप जलते हैं। अगर अंगारा भी रखा जाए हिप्रोटाइज्ड आदमी के हाथ में, और कहा जाए, ठंडा कंकड़ है--नहीं जलाता है। क्योंकि हाथ की ऊर्जा अपनी जगह खड़ी रहती है।

इसका अर्थ यह भी हुआ कि ऊर्जा आपके संकल्प से हटती या घटती या आगे या पीछे होती है। कभी ऐसे छोटे-मोटे प्रयोग करके देखें, तो आपके ख्याल में आसान हो जाएगा। थर्मामीटर से अपना ताप नाप लें। फिर थर्मामीटर को नीचे रख लें। दस मिनट आंख बंद करके बैठ जाएं और एक ही भाव करें कि तीव्र रूप से गर्मी आपके शरीर में पैदा हो रही है--सिर्फ भाव करें। और दस मिनट बाद आप फिर थर्मामीटर से नापें। आप चकित हो जाएंगे कि आपने थर्मामीटर के पारे को और ऊपर चढ़ने के लिए बाध्य कर दिया--सिर्फ भाव से। और अगर एक डिग्री चढ़ सकता है थर्मामीटर तो दस डिग्री क्यों नहीं चढ़ सकता है। फिर कोई कारण नहीं है, फिर आपके

प्रयास की बात है, फिर आपके श्रम की बात है। और अगर दस डिग्री चढ़ सकता है तो दस डिग्री उतर क्यों नहीं सकता है।

तिब्बत में हजारों वर्षों से साधक नग्न बर्फ की शिलाओं पर बैठा रहता है; ध्यान करने के लिए, घंटों। कुल कारण है कि वह अपने आस-पास, अपनी जीवन ऊर्जा के वर्तुल को सजग कर देता है, भाव से। तिब्बत यूनिवर्सिटी, ल्हासा विश्वविद्यालय अपने चिकित्सकों को, तिब्बतन मेडिसिन में जो लोग शिक्षा पाते थे; उनको तब तक डिग्री नहीं देता था--यह चीन के आक्रमण के पहले की बात है--तब तक डिग्री नहीं देता था, जब तक कि चिकित्सक बर्फ गिरती रात में खड़ा होकर अपने शरीर से पसीना न निकाल पाए। तब तक डिग्री नहीं देता था। क्योंकि जिस चिकित्सक का अपनी जीवन-ऊर्जा पर इतना प्रभाव नहीं है, वह दूसरे की जीवन-ऊर्जा को क्या प्रभावित करेगा। शिक्षा पूरी हो जाती थी, लेकिन डिग्री तो तभी मिलती थी। और आप चकित होंगे कि करीब-करीब जो लोग भी चिकित्सक हो जाते थे, वे सभी इसे करने में समर्थ होते थे। कोई इस वर्ष, कोई अगले वर्ष किसी को छह महीने लगता, किसी को साल भर। और जो बहुत ही अग्रणी हो जाते थे, जिन्हें पुरस्कार मिलते थे, गोल्डमेडल मिलते थे--वे, वे लोग होते थे जो कि रात में, बर्फ गिरती रात में एक बार नहीं, बीस-बीस बार शरीर से पसीना निकाल देते थे। और हर बार जब पसीना निकलता तो ठंडे पानी से उनको नहला दिया जाता। वे फिर दोबारा पसीना निकाल देते, फिर तीसरी बार पसीना निकाल देते सिर्फ ख्याल से, सिर्फ विचार से, सिर्फ संकल्प से।

किरलियान फोटोग्राफी में जब कोई व्यक्ति संकल्प करता है ऊर्जा का तो वर्तुल बड़ा हो जाता है। फोटोग्राफी में वर्तुल बड़ा आ जाता है। जब आप घृणा से भरे होते हैं, जब आप क्रोध से भरे होते हैं तब आपके शरीर से उसी तरह की ऊर्जा के गुच्छे निकलते हैं, जैसे मृत्यु में निकलते हैं। जब आप प्रेम से भरे होते हैं तब उलटी घटना घटती है। जब आप करुणा से भरे होते हैं तब उलटी घटती है। इस विराट ब्रह्म से आपकी तरफ ऊर्जा के गुच्छे प्रवेश करने लगते हैं। अब आप हैरान होंगे यह बात जान कर कि प्रेम में आप कुछ पाते हैं, क्रोध में कुछ देते हैं। आमतौर से प्रेम में हमें लगता है कि कुछ हम देते हैं और क्रोध में लगता है, हम कुछ छीनते हैं। प्रेम में हमें लगता है, कुछ हम देते हैं। लेकिन ध्यान रहे, प्रेम में आप पाते हैं। करुणा में आप पाते हैं, दया में आप पाते हैं। जीवन-ऊर्जा आपकी बढ़ जाती है इसलिए क्रोध के बाद आप थक जाते हैं और करुणा के बाद आप और भी सशक्त, स्वच्छ, ताजे हो जाते हैं। इसलिए करुणावान कभी भी थकता नहीं। क्रोधी थका ही जीता है।

किरलियान फोटोग्राफी के हिसाब से मृत्यु में जो घटना घटती है, वही छोटे अंश में क्रोध में घटती है। बड़े अंश में मृत्यु में घटती है, बहुत ऊर्जा बाहर निकलने लगती है। किरलियान ने एक फूल का चित्र लिया है जो अभी डाली से लगा है। उसके चारों तरफ ऊर्जा का जीवंत वर्तुल है और विराट से, चारों ओर से ऊर्जा की किरणें फूल में प्रवेश कर रही हैं। ये फोटोग्राफ अब उपलब्ध हैं, देखे जा सकते हैं। और अब तो किरलियान का कैमरा भी तैयार हो गया है, वह भी जल्दी उपलब्ध हो जाएगा। उसने फूल को डाली से तोड़ लिया फिर फोटो लिया। तब स्थिति बदल गई। वे जो किरणें प्रवेश कर रही थीं वे वापस लौट रही हैं। एक सेकेंड का फासला, डाली से टूटा फूल। घंटे भर में ऊर्जा बिखरती चली जाती है। जब आपकी पंखुडियां सुस्त होकर ढल जाती हैं, वह वही क्षण है जब ऊर्जा निकलने के करीब पहुंच कर पूरी शून्य होने लगती है।

इस फूल के साथ किरलियान ने और भी अनूठे प्रयोग किए जिससे बहुत कुछ दृष्टि मिलती है--तप के लिए। किरलियान ने आधे फूल को काट कर अलग कर दिया। छह पंखुडियां हैं तीन तोड़ कर फेंक दीं। चित्र लिया है तीन पंखुडियों का, लेकिन चकित हुआ--पंखुडियां तो तीन रहीं, लेकिन फूल के आस-पास जो वर्तुल था वह अब भी पूरा रहा, जैसा कि छह पंखुडियों के आस-पास था। छह पंखुडियों के आस-पास जो वर्तुल, आभामंडल था, और था; तीन पंखुडियां तोड़ दीं, वह आभामंडल अब भी पूरा रहा। दो पंखुडियां उसने और

तोड़ दीं, एक ही पंखुड़ी रह गई। लेकिन आभामंडल पूरा रहा। यद्यपि तीव्रता से विसर्जित होने लगा, लेकिन पूरा रहा।

इसीलिए, आप जब बेहोश कर दिए जाते हैं अनस्थेसिया से या हिप्रोसिस से--आपका हाथ काट डाला जाए, आपको पता नहीं चलता। उसका कुल कारण इतना है कि आपका वास्तविक अनुभव अपने शरीर का, ऊर्जा-शरीर से है। वह हाथ कट जाने पर भी पूरा ही रहता है। वह तो जब आप जगेंगे और हाथ कटा हुआ देखेंगे तब तकलीफ शुरू होगी। अगर आपको गहरी निद्रा में मार भी डाला जाए तो भी आपको तकलीफ नहीं होगी। क्योंकि गहरी निद्रा में, सम्मोहन में या अनस्थेसिया में आपका तादात्म्य इस शरीर से छूट जाता है और आपके ऊर्जा-शरीर से ही रह जाता है। आपका अनुभव पूरा ही बना रहता है। और इसीलिए अगर आप लंगड़े भी हो गए हैं पैर से, तब भी आपको ऐसा नहीं लगता कि आप के भीतर वस्तुतः कोई चीज कम हो गई है। बाहर तो तकलीफ हो जाती है। अड़चन हो जाती है लेकिन भीतर नहीं लगता है कि कोई चीज कम हो गई है। आप बूढ़े भी हो जाते हैं तो भी भीतर नहीं लगता कि आपके भीतर कोई चीज बूढ़ी हो गई है। क्योंकि वह ऊर्जा-शरीर है, वह वैसा का वैसा ही काम करता रहता है।

अमरीकन मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक डाक्टर ग्रीन ने आदमी के मस्तिष्क के बहुत से हिस्से काट कर देखे और वह चकित हुआ। मस्तिष्क के हिस्से कट जाने पर भी मन के काम में कोई बाधा नहीं पड़ती। मन अपना काम वैसा ही जारी रखता है। इससे ग्रीन ने कहा कि यह परिपूर्ण रूप से सिद्ध हो जाता है कि मस्तिष्क केवल उपकरण है, वास्तविक मालिक कहीं कोई पीछे है। वह पूरा का पूरा ही काम करता रहता है। आपके शरीर के आस-पास जो आभामंडल निर्मित होता है, वह इस शरीर का रेडिएशन नहीं है, इस शरीर से विकीर्णन नहीं है, वरन किरलियान ने वक्तव्य दिया है कि ऑन दि कांट्रेरी दिस बॉडी ओनली मिरर्स द इनर बॉडी, वह जो भीतर का शरीर है, उसके लिए यह सिर्फ दर्पण की तरह बाहर प्रकट कर देती है। इस शरीर के द्वारा वे किरणें नहीं निकल रही हैं, वे किरणें किसी और शरीर के द्वारा निकल रही हैं। इस शरीर से केवल प्रकट होती हैं।

जैसे हमने एक दीया जलाया हो, चारों तरफ एक ट्रांसपैरेंट कांच का घेरा लगा दिया हो, उस कांच के घेरे के बाहर हमें किरणों का वर्तुल दिखाई पड़ेगा। हम शायद सोचें कि वह कांच से निकल रहा है तो गलती है। वह कांच से निकल रहा है, लेकिन कांच से आ नहीं रहा है। वह आ रहा है भीतर के दीये से। हमारे शरीर से जो ऊर्जा निकलती है वह इस भौतिक शरीर की ऊर्जा नहीं है, क्योंकि मरे हुए आदमी के शरीर में समस्त भौतिक तत्व यही का यही होता है, लेकिन ऊर्जा का वर्तुल खो जाता है। उस ऊर्जा के वर्तुल को योग सूक्ष्म शरीर कहता रहा है। और तप के लिए उस सूक्ष्म शरीर पर ही काम करने पड़ते हैं। सारा काम उस सूक्ष्म शरीर पर है।

लेकिन आमतौर से जिन्हें हम तपस्वी समझते हैं, वे, वे लोग हैं जो इस भौतिक शरीर को ही सताने में लगे रहते हैं। इससे कुछ लेना-देना नहीं है। असली काम इस शरीर के भीतर जो दूसरा छिपा हुआ शरीर है--ऊर्जा-शरीर, एनर्जी-बॉडी--उस पर काम का है। और योग ने जिन चक्रों की बात की है, वे इस शरीर में कहीं भी नहीं हैं, वे उस ऊर्जा शरीर में हैं।

इसलिए वैज्ञानिक जब इस शरीर को काटते हैं, फिजियोलॉजिस्ट, तो वे कहते हैं--तुम्हारे चक्र कहीं मिलते नहीं। कहां है अनाहत, कहां है स्वाधिष्ठान, कहां है मणिपुर--कहीं कुछ नहीं मिलता। पूरे शरीर को काट कर देख डालते हैं, वह चक्र कहीं मिलते नहीं। वे मिलेंगे भी नहीं। वे उस ऊर्जा-शरीर के बिंदु हैं। यद्यपि उन ऊर्जा-शरीर के बिंदुओं को करस्पांड करने वाले, उनके ठीक समतुल इस शरीर में स्थान हैं--लेकिन वे चक्र नहीं हैं।

जैसे, जब आप प्रेम से भरते हैं तो हृदय पर हाथ रख लेते हैं। जहां आप हाथ रखे हुए हैं, अगर वैज्ञानिक जांच-पड़ताल, काट-पीट करेगा तो सिवाय फेफड़े के कुछ नहीं है। हवा को पंप करने का इंजाम भर है वहां, और कुछ भी नहीं है। उसी से धड़कन चल रही है। पम्पिंग सिस्टम है। इसको बदला जा सकता है। अब तो बदला जा सकता है और इसकी जगह पूरा प्लास्टिक का फेफड़ा रखा जा सकता है। वह भी इतना ही काम करता है,

बल्कि वैज्ञानिक कहते हैं, जल्दी ही इससे बेहतर काम करेगा। क्योंकि न वह सड़ सकेगा, न गल सकेगा, कुछ भी नहीं। लेकिन एक मजे की बात है कि प्लास्टिक के फेफड़े में भी हार्ट अटैक होंगे, यह बहुत मजे की बात है। प्लास्टिक के फेफड़े में हार्ट-अटैक नहीं होने चाहिए, क्योंकि प्लास्टिक और हार्ट-अटैक का क्या संबंध है! निश्चित ही हार्ट अटैक कहीं और गहरे से आता होगा, नहीं तो प्लास्टिक के फेफड़े में हार्ट-अटैक नहीं हो सकता। प्लास्टिक का फेफड़ा टूट जाए, फूट जाए, लेकिन चोट खा जाए, यह सब हो सकता है--लेकिन एक प्रेमी मर जाए और हार्ट अटैक हो जाए, यह नहीं हो सकता क्योंकि प्लास्टिक के फेफड़े को क्या पता चलेगा कि प्रेमी मर गया है। या मर भी जाए तो प्लास्टिक पर उसका क्या परिणाम हो सकता है? कोई भी परिणाम नहीं हो सकता है। अभी भी जो फेफड़ा आ पका धड़क रहा है उस पर कोई परिणाम नहीं होता। उसके पीछे एक दूसरे शरीर में जो हृदय का चक्र है, उस पर परिणाम होता है। लेकिन उसका परिणाम तत्काल इस शरीर पर मिरर होता है, दर्पण की तरह दिखाई पड़ता है।

योगी बहुत दिनों से हृदय की धड़कन को बंद करने में समर्थ रहे हैं, फिर भी मर नहीं जाते। क्योंकि जीवन का स्रोत कहीं गहरे में है। इसलिए हृदय की धड़कन भी बंद हो जाती है, तो भी जीवन धड़कता रहता है। हालांकि पकड़ा नहीं जा सकता। फिर कोई यंत्र नहीं पकड़ पाते कि जीवन कहां धड़क रहा है। यह शरीर जो हमारा है, सिर्फ उपकरण है। इस शरीर के भीतर छिपा हुआ और इस शरीर के बाहर भी चारों तरफ इसे घेरे हुए जो आभामंडल है, वह हमारा वास्तविक शरीर है। वही हमारा तप-शरीर है। उस पर जो केंद्र है उन पर ही काम तप का, सारी की सारी पद्धति, टेक्नालॉजी, तकनीक उन शरीर के बिंदुओं पर काम करने की है।

मैंने आपसे पीछे कहा कि चाइनीज एक्युपंकचर की विधि मानती है कि शरीर में कोई सात सौ बिंदु हैं, जहां वह ऊर्जा-शरीर इस शरीर को स्पर्श कर रहा है--सात सौ बिंदु। आपने कभी ख्याल न किया होगा, लेकिन ख्याल करना मजेदार होगा। कभी बैठ जाएं उघाड़े होकर और किसी को कहें कि आपकी पीठ में पीछे कई जगह सुई चुभाएं। आप बहुत चकित होंगे, कुछ जगह वह सुई चुभाई जाएगी, आपको पता नहीं चलेगा। आपकी पीठ पर ब्लाइंड स्पॉट्स हैं, जहां सुई चुभाई जाएगी, आपको पता नहीं चलेगा। और आपकी पीठ पर सेंसिटिव स्पॉट हैं, जहां सुई जरा सी चुभाई जाएगी और आपको पता चलेगा। एक्युपंकचर पांच हजार साल पुरानी चिकित्सा विधि है। वह कहती है--जिन बिंदुओं पर सुई चुभाने से पता नहीं चलता, वहां आपका ऊर्जा-शरीर स्पर्श नहीं कर रहा है। वह डेड स्पॉट है, वहां से आपका जो भीतर का तपस-शरीर है वह स्पर्श नहीं कर रहा है, इसलिए वहां पता कैसे चलेगा! पता तो उसका चलता है जो भीतर है। संवेदनशील जगह पर छुआ जाता है, उसका मतलब यह है कि वहां से ऊर्जा शरीर कांटेक्ट में है। वहां से वहां तक चोट पहुंच जाती है। जब आपको अनस्थेसिया दे दिया जाता है आपरेशन की टेबल पर तो आपके ऊर्जा शरीर का और इस शरीर का संबंध तोड़ दिया जाता है। जब लोकल अनस्थेसिया दिया जाता है कि मेरे हाथ को भर अनस्थेसिया दे दिया गया है कि मेरा हाथ सो जाए, तो सिर्फ मेरे हाथ के जो बिंदु हैं, जिनसे मेरा तपस-शरीर जुड़ा हुआ है, उनका संबंध टूट जाता है। फिर इस हाथ को काटो-पीटो, मुझे पता नहीं चलता। क्योंकि मुझे तभी पता चल सकता है जब मेरे ऊर्जा-शरीर से संबंध कुछ हो अन्यथा मुझे पता नहीं चलता।

इसलिए बहुत हैरानी की घटना घटती है, और आप भूल ऐसी न करना। कभी-कभी कुछ लोग सोते हुए मर जाते हैं। आप कभी भी सोते हुए मत मरना। सोते में जब कोई मर जाता है तो उसको कई दिन लग जाते हैं यह अनुभव करने में कि मैं मर गया। क्योंकि गहरी नींद में ऊर्जा-शरीर और इस शरीर के संबंध शिथिल हो जाते हैं। अगर कोई गहरी नींद में एकदम से मर जाता है तो उसकी समझ में नहीं आता कि मैं मर गया। क्योंकि समझ में तो तभी आ सकता है, जब इस शरीर से संबंध टूटते हुए अनुभव में आए। वह अनुभव में नहीं आते तो उसमें पता नहीं चलता कि मैं मर गया।

यह जो सारी दुनिया में हम शरीर को गड़ाते हैं या जलाते हैं या कुछ करते हैं तत्काल, उसका कुल कारण इतना है, ताकि वह जो ऊर्जा-शरीर है उसे यह अनुभव में आ जाए कि वह मर गया। इस जगत से उसका संबंध इस शरीर के साथ इसको नष्ट करता हुआ वह देख ले कि वह शरीर नष्ट हो गया है, जिसको मैं समझता था कि यह मेरा है। यह शरीर को जलाने के लिए मरघट और कब्रिस्तान और गड़ाने के लिए सारा इंतजाम है, यह सिर्फ सफाई का इंतजाम नहीं है कि एक आदमी मर गया--तो उसको समाप्त करना ही पड़ेगा, नहीं तो सड़ेगा, गलेगा। इसके गहरे में जो चिंता है वह उस आदमी की चेतना को अनुभव कराने की है कि यह शरीर तेरा नहीं है, तेरा नहीं था। तू अब तक इसको अपना समझता रहा है। अब हम इसे जलाए देते हैं, ताकि पक्का तुझे भरोसा हो जाए।

अगर हम शरीर को सुरक्षित रख सकें, तो उस चेतना को हो सकता है, ख्याल ही न आए कि वह मर गई है। वह इस शरीर के आसपास भटकती रह सकती है। उसके नये जन्म में बाधा पड़ जाएगी, कठिनाई हो जाएगी। और अगर उसे भटकाना ही हो इस शरीर के आसपास, तो इजिप्त में जो ममीज बनाई गई हैं, वे इसीलिए बनाई गई थीं। शरीर को इस तरह से ट्रीट किया जाता था, इस तरह के रासायनिक द्रव्यों से निकाला जाता था कि वह सड़े न--इस आशा में कि किसी दिन पुनरुज्जीवन, उस सम्राट को फिर से जीवन मिल सकेगा। तो सात, साढ़े सात हजारों वर्ष पुराने शरीर भी सुरक्षित पिरामिडों के नीचे पड़े हैं। उस सम्राट को जिसके शरीर को इस तरह रखा जाता था, उसकी पत्नियों को, चाहे वे जीवित ही क्यों न हों, उनको भी उसके साथ दफना दिया जाता था। एक दो नहीं, कभी-कभी सौ-सौ पत्नियां भी होती थीं। उस सम्राट के सारे, जिन-जिन चीजों से उसे प्रेम था, वे सब उसकी ममी के आस-पास रख दिए जाते थे, ताकि जब उसका पुनरुज्जीवन हो तो वह तत्काल पुराने माहौल को पाए। उसकी पत्नियां, उसके कपड़े, उसकी गद्दियां, उसके प्याले, उसकी थालियां, वह सब वहां हों--ताकि तत्काल रि-हैबिलिटेड, वह पुनर्स्थापित हो जाए अपने नये जीवन में। इस आशा में ममीज खड़ी की गई थीं। और इसमें कुछ आश्चर्य न होगा कि जिनकी ममीज रखी हैं, उनका पुनर्जन्म होना बहुत कठिन हो गया है; या न हो पाया हो; या उनकी अनेक की आत्माएं अपने पिरामिडों के आस-पास अब भी भटकती हों।

हिंदुओं ने इस भूमि पर प्राण-ऊर्जा के संबंध में सर्वाधिक गहरे अनुभव किए थे। इसलिए हमने सर्वाधिक तीव्रता से शरीर को नष्ट करने के लिए आग का इंतजाम किया, गड़ाने का भी नहीं। क्योंकि गड़ाने में भी छह महीने लग जाएंगे शरीर को गलने में, टूटने में, मिलने में मिट्टी में। उतने छह महीने तक आत्मा को भटकाव हो सकता है। तत्काल जला देने का प्रयोग हमने किया। वह सिर्फ इसीलिए था ताकि इस बीच, इसी क्षण आत्मा को पता चल जाए कि शरीर नष्ट हो गया, मैं मर गया हूं। क्योंकि जब तक यह अनुभव में न आए कि मैं मर गया हूं, तब तक नये जीवन की खोज शुरू नहीं होती। मर गया हूं, तो नये जीवन की खोज पर आत्मा निकल जाती है।

यह जो एक्युपंकचर ने सात सौ बिंदु कहे हैं शरीर में--रूस के एक वैज्ञानिक एडामैंको ने अभी एक मशीन बनाई है उस मशीन के भीतर आपको खड़ा कर देते हैं। उस मशीन के चारों तरफ बल्ब लगे होते हैं, हजारों बल्ब लगे होते हैं। आपको मशीन के भीतर खड़ा कर देते हैं। जहां-जहां से आपका प्राण शरीर बह रहा है, वहां-वहां का बल्ब जल जाता है बाहर। सात सौ बल्ब जल जाते हैं हजारों बल्बों में, मशीन के बाहर। वह मशीन, आपकी प्राण ऊर्जा जहां-जहां संवेदनशील है, वहां-वहां बल्ब को जला देती है। तो अब एडामैंको की मशीन से प्रत्येक व्यक्ति के संवेदनशील बिंदुओं का पता चल सकता है।

लेकिन योग ने सात सौ की बात नहीं की, सात चक्रों की बात की है। सात सौ बिंदुओं की! योग की पकड़ एक्युपंकचर से ज्यादा गहरी है। क्योंकि योग ने अनुभव किया है कि एक-एक बिंदु-बिंदु परिधि पर है, केंद्र नहीं है। सौ बिंदुओं का एक केंद्र है। सौ बिंदु एक चक्र के आस-पास निर्मित हैं। फिकर छोड़ दी, परिधि की। उस केंद्र

को ही स्पर्श कर लिया जाए, ये सौ बिंदु स्पर्शित हो जाते हैं। इसलिए सात चक्रों की बात की—प्रत्येक चक्र के आस-पास सौ बिंदु निर्मित होते हैं इस शरीर को छूने वाले। इसलिए आपके शरीर का... समझ लें उदाहरण के लिए, और आसान होगा, क्योंकि हमारे अनुभव की बात होती है तो आसान हो जाती है... सेक्स का एक सेंटर है आपके पास, यौन का चक्र। लेकिन उस यौन चक्र के सौ बिंदु हैं आपके शरीर में। जहां-जहां यौन चक्र का बिंदु है, वहां-वहां इरोटिक जोन हो जाते हैं। जैसे आपको कभी ख्याल में भी न होगा कि जब आप किसी के साथ यौन संबंध में रत होते हैं तो आप शरीर के किन्हीं-किन्हीं अंगों को विशेष रूप से छूने लगते हैं। वह इरोटिक जोन है। वह काम के बिंदु हैं शरीर पर फैले हुए। और कई बिंदु तो ऐसे हैं कि आपको पता नहीं होगा क्योंकि आपके ख्याल में नहीं आएंगे। लेकिन अलग-अलग संस्कृतियों ने अलग-अलग बिंदुओं का पता लगा लिया है। अब तो वैज्ञानिकों ने सारे इरोटिक पॉइंट्स खोज लिए हैं, शरीर में कहां-कहां हैं। जैसे आपको ख्याल में नहीं होगा, आपके कान के नीचे की जो लंबाई है, वह इरोटिक है। वह बहुत संवेदनशील है। स्तन जितने संवेदनशील हैं, उतना ही संवेदनशील आपके कान का हिस्सा है।

आपने कानफटे साधुओं को देखा होगा। कानफटे साधुओं की बात सुनी होगी, लेकिन कभी ख्याल में न आया होगा कि कान फाड़ने से क्या मतलब हो सकता है? कान फाड़ कर वे यौन के बिंदु को प्रभावित करने की कोशिश में लगे हैं। वह सेंसिटिव है स्पाट, वह जगह बहुत संवेदनशील है। आपने कभी ख्याल न किया होगा कि महावीर के कान का नीचे का लंबा हिस्सा कंधे को छूता है। बुद्ध का भी छूता है। जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों का छूता है। तीर्थंकर का वह एक लक्षण समझा जाता था कि उसका कान का हिस्सा इतना लंबा हो। लेकिन कान का हिस्सा इतना लंबा हो, उसका अर्थ ही केवल इतना होता है—वह हो या न हो—लंबे हिस्से का प्रतीक सिर्फ इसलिए है कि इस व्यक्ति की काम ऊर्जा बहुत होगी, सेक्स एनर्जी इस व्यक्ति में बहुत होगी। और यही ऊर्जा रूपांतरित होने वाली है, कुंडलिनी बनेगी। यही ऊर्जा रूपांतरित होगी, ऊपर जाएगी और तप बनेगी। वह कान की लंबाई सिर्फ प्रतीक है, वह इरोटिक जोन है। वहां से आपके काम की संवेदनशीलता पता चलती है। आपके शरीर पर बहुत से बिंदु हैं जो काम के लिए संवेदनशील हैं। हर चक्र के आस-पास सौ बिंदु हैं शरीर में।

आपके शरीर में ऐसे बिंदु हैं जिनके स्पर्श से, जिनके स्पर्श से, जिनकी मसाज से आपकी बुद्धि को प्रभावित किया जा सकता है। क्योंकि वे आपके बुद्धि के बिंदु हैं। आपके शरीर में ऐसे बिंदु हैं जिनसे आपके दूसरे चक्रों को प्रभावित किया जा सकता है। समस्त योगासन इन्हीं बिंदुओं को दबाव डालने के प्रयोग हैं। और अलग-अलग योगासन अलग-अलग चक्र को सक्रिय कर देता है। जहां-जहां दबाव पड़ता है, वहां-वहां सक्रिय कर देता है।

एक्युपंकचर ने तो बहुत ही सरल विधि निकाली है। वे तो सुई से आपके संवेदनशील बिंदु को छेदते हैं। छेदने से, सुई के छेदने से वहां की ऊर्जा सक्रिय होकर आगे बढ़ जाती है। वे कहते हैं—कोई भी बीमारी वे एक्युपंकचर से ठीक कर सकते हैं। और अभी एक बहुत अदभुत किताब हिरोशिमा के बाबत अभी प्रकाशित हुई है। और जिस आदमी ने, जिस अमरीकी वैज्ञानिक ने वह सारा शोध किया है, वह चकित हो गया है। उसने कहा, हमारे पास एटम बम से पैदा हुई रेडिएशंस हैं, जो-जो नुकसान होते हैं उनको ठीक करने के लिए कोई उपाय नहीं है। लेकिन रेडिएशन से परेशान व्यक्ति को भी एक्युपंकचर की सुई ठीक कर देती है। एटम से जो नुकसान होते हैं चारों तरफ के वायुमंडल में उस नुकसान को भी एक्युपंकचर की बिल्कुल साधारण सी सुई ठीक कर पाती है।

क्या होता है? जब एटम गिरता है तो इतनी ऊर्जा पैदा होती है बाहर कि वह ऊर्जा आपके शरीर की ऊर्जा को बाहर खींच लेती है। इतना बड़ा ग्रेविटेशन होता है, एटम की ऊर्जा का कि आपकी तपस-शरीर की ऊर्जा बाहर खिंच जाती है। इसी वजह से आप दीन-हीन हो जाते हैं। अगर पैर की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप लंगड़े हो जाते हैं। अगर हृदय की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप तत्काल गिरते हैं और मर जाते हैं। अगर मस्तिष्क की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप ईडियट, जड़बुद्धि हो जाते हैं। एक्युपंकचर, इस खोज में पता चला है कि आपकी ऊर्जा की गति को, आपकी ऊर्जा के चक्र को साधारण सी सुई के स्पर्श से पुनः सक्रिय कर देता है।

योगासन भी आपके शरीर में किन्हीं-किन्हीं विशेष बिंदुओं पर दबाव डालने के प्रयोग हैं। निरंतर दबाव से वहां की ऊर्जा सक्रिय हो जाती है। और विपरीत दबाव से दूसरे केंद्रों की ऊर्जा खींच ली जाती है। जैसे अगर आप शीर्षासन करते हैं तो शीर्षासन का अनिवार्य परिणाम कामवासना पर पड़ता है। क्योंकि शीर्षासन में आपकी ऊर्जा का प्रवाह उलटा हो जाता है, सिर की तरफ हो जाता है। ध्यान रहे, आपकी आदत आपकी शक्ति को नीचे की तरफ बहाने की है। जब आप उलटे खड़े हो जाते हैं तब भी पुरानी आदत के हिसाब से आप शक्ति को नीचे की तरफ बहाते हैं। लेकिन अब वह नीचे की तरफ नहीं बह रही है, अब वह सिर की तरफ बह रही है। शीर्षासन का इतना मूल्य सिर्फ इसीलिए बन सका तपस्वियों के लिए कि वह काम ऊर्जा को सिर की तरफ ले जाने के लिए सुगम है। आपकी पुरानी आदत का उपयोग है। आदत है नीचे की तरफ बहाने की, खुद उलटे खड़े हो गए। अभी भी नीचे की तरफ बहाएंगे, पुरानी आदत के वश। लेकिन अब नीचे की तरफ का मतलब ऊपर की तरफ हो गया। बहेगी नीचे की तरफ, पहुंचेगी ऊपर की तरफ। ऊर्जा... आपके भीतर जो जीवन ऊर्जा है उसको तप जगाता है, शक्तिशाली बनाता है, नये मार्गों पर प्रवाहित करता है, नये केंद्रों पर संगृहीत करता है।

आज से दो साल पहले चैकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राहा के पास एक सड़क पर एक अनूठा प्रयोग हुआ जिसे देखने यूरोप के अनेक वैज्ञानिक इकट्ठे थे। एक आदमी है बेटिस्लाव काफ्का। इस आदमी ने सम्मोहन पर गहन प्रयोग किए। संभवतः इस समय पृथ्वी पर सम्मोहन के संबंध में सबसे बड़ा जानकार है। इसने अनेक लोग तैयार किए, अनेक दिशाओं के लिए। इसके पास एक आदमी है जो उड़ते पक्षी को सिर्फ आंख उठा कर देखे, और आप उससे कहें कि गिरा दो, तो वह पक्षी नीचे गिर जाता है। आकाश में उड़ता हुआ पक्षी, वृक्ष पर बैठा हुआ पक्षी, आप कहें, गिरा दो-पच्चीस पक्षी बैठे हुए हैं, आप कहें, इस शाखा पर बैठा हुआ यह सामने नंबर एक का पक्षी है, इसे गिरा दो, वह आदमी एक क्षण उसे देखता है, वह पक्षी नीचे गिर जाता है। आप कहें, इसे

मार कर गिरा दो, तो वह पक्षी मरता है और जमीन पर मुर्दा होकर गिरता है। दो साल पहले प्राहा की सड़क पर जब यह प्रयोग हुआ, तो कोई दो सौ वैज्ञानिक पूरे यूरोप महाद्वीप से इकट्ठे थे, देखने को। सैकड़ों पक्षी गिरा कर बताए गए। अब पक्षियों को समझा कर राजी नहीं किया जा सकता। न ही उस आदमी ने अपनी मर्जी के पक्षी गिराए। सड़क पर चलते हुए वैज्ञानिकों ने कहा कि इस पक्षी को, तो उस पक्षी को गिरा दिया। जिंदा कहा तो जिंदा गिरा दिया, मुर्दा कहा तो मुर्दा गिरा दिया।

उस आदमी से पूछा जाता है और उसका जो प्रधान है साथ का, उससे पूछा जाता है कि क्या है राज? तो वह कहता है--हम कुछ नहीं करते। जैसा कि वैक्यूम क्लीनर होता है न आपके घर में, धूल को सक-अप कर लेता है, क्लीनर को आप चलाते हैं फर्श पर, धूल को वह भीतर खींच लेता है। क्लीनर खाली होता है और खींचने का रुख करता है--जैसे कि आप जोर से हवा को भीतर खींच लें, सक कर लें। जैसा कि बच्चा दूध पीता है मां के स्तन से--सक करता है, खींच लेता है। तो वह कहता है--हमने इस आदमी को इसी के लिए तैयार किया है कि उसकी प्राण ऊर्जा को सक कर ले, बसा वह पक्षी बैठा है, यह उस पर ध्यान करता है और प्राण-ऊर्जा को अपने भीतर खींचने का संकल्प करता है। अगर सिर्फ इतना ही संकल्प करता है कि इतनी प्राण ऊर्जा मेरे तक आए कि पक्षी बैठा न रह जाए, गिर जाए, तो पक्षी गिरता है। अगर यह पूरी प्राण-ऊर्जा को खींच लेता है तो पक्षी मर जाता है। इसके चित्र भी लिए गए कि जब वह सक-अप करता है, पक्षी से ऊर्जा के गुच्छे उस आदमी की तरफ भागते हुए चित्र में आए।

काफ्का का कहना है कि यह ऊर्जा हम इकट्ठी भी कर सकते हैं, और मरते हुए आदमी को जैसे आप आक्सीजन देते हैं, किसी न किसी दिन प्राण ऊर्जा भी दी जा सकेगी। जब तक आक्सीजन नहीं दे सकते थे, तब तक आदमी आक्सीजन की कमी से मर जाता था। काफ्का कहता है--बहुत जल्दी अस्पतालों में हम सिलिंडर रख देंगे, जिनमें प्राण-ऊर्जा भरी होगी और मरने वाले आदमी को प्राण-ऊर्जा दे दी जाए। उसकी ऊर्जा बाहर निकल

रही है, उसे दूसरी ऊर्जा दे दी जाए तो वह कुछ देर तक जीवित रह सकता है, ज्यादा देर भी जीवित रह सकता है।

अमरीका का एक वैज्ञानिक था, जिसका मैंने कल आपसे थोड़ा उल्लेख किया, और वह आदमी था, विलेहम रेक। आपने कभी आकाश के पास या समुद्र के किनारे बैठ कर आकाश में देखा हो तो आपको कुछ आकृतियां आंख में ऊंची-नीची उठती दिखाई पड़ती हैं। सोचते हैं कि आंख का भ्रम होगा और अब तक वैज्ञानिक समझते थे कि सिर्फ आंख का भ्रम है, एक डिल्यूजन है। या यह सोचते थे कि आंख पर कुछ स्पॉट होंगे विकृत, उनकी वजह से वह आकृतियां बाहर दिखाई पड़ती हैं। लेकिन विलेहम रेक की खोजों ने यह सिद्ध किया है कि वे आकृतियां प्राण-ऊर्जा की हैं। उन आकृतियों को अगर कोई पीना सीख जाए, तो वह महा-प्राणवान हो जाएगा और वे आकृतियां हमसे ही निकल कर हमारे चारों तरफ फैल जाती हैं। उसको उसने आर्गान एनर्जी कहा है, जीवन ऊर्जा कहा है।

प्राण-योग, या प्राणायाम वस्तुतः मात्र वायु को भीतर ले जाने और बाहर ले जाने पर निर्भर नहीं है। गहरे में जो कि साधारणतः ख्याल में नहीं आता कि एक आदमी प्राणायाम सीख रहा है तो वह सोचता है बस ब्रीदिंग की एक्सरसाइज है, वह सिर्फ वायु का कोई अभ्यास कर रहा है। लेकिन जो जानते हैं, और जानने वाले निश्चित ही बहुत कम हैं, वे जानते हैं कि असली सवाल वायु को बाहर और भीतर ले जाने का नहीं है। असली सवाल वायु के मार्ग से वह जो आर्गान एनर्जी के गुच्छे चारों तरफ जीवन में फैले हुए हैं, उनको भीतर ले जाने का है। अगर वे भीतर जाते हैं तो ही प्राण-योग है, अन्यथा वायु-योग है, प्राण-योग नहीं है। प्राणायाम नहीं है, अगर वे गुच्छे भीतर नहीं जाते। वे गुच्छे भीतर जाते हैं तो ही प्राण-योग है। उन गुच्छों से आई हुई शक्ति का उपयोग तप में किया जाता है। खुद की शक्ति का, चारों तरफ जीवन की शक्ति का, पौधों की शक्ति का, पदार्थों की शक्ति का प्रयोग किया जाता है।

एक अनूठी बात आपको कहूं। चकित होंगे आप जान कर कि काफ़्का, किरिलियान, विलेहम रेक और अनेक वैज्ञानिकों का अनुभव है कि सोना एकमात्र धातु है जो सर्वाधिक रूप से प्राण ऊर्जा को अपनी तरफ आकर्षित करती है। और यही सोने का मूल्य है, अन्यथा कोई मूल्य नहीं है। इसलिए पुराने दिनों में, कोई दस हजार साल पुराने रिकार्ड उपलब्ध हैं, जिनमें सम्राटों ने प्रजा को सोना पहनने की मनाही कर रखी थी। कोई आदमी दूसरा सोना नहीं पहन सकता था, सिर्फ सम्राट पहन सकता था। उसका राज था कि वह सोना पहन कर, दूसरे लोगों को सोना पहनना रोक कर ज्यादा जी सकता था। लोगों की प्राण ऊर्जा को अनजाने अपनी तरफ आकर्षित कर रहा था। जब आप सोने को देख कर आकर्षित होते हैं, तो सिर्फ सोने को देख कर आकर्षित नहीं होते, आपकी प्राण-ऊर्जा सोने की तरफ बहनी शुरू हो जाती है, इसलिए आकर्षित होते हैं। इसलिए सम्राटों ने सोने का बड़ा उपयोग किया और आम आदमी को सोना पहनने की मनाही कर दी गई थी कि कोई आम आदमी सोना नहीं पहन सकेगा।

सोना सर्वाधिक खींचता है प्राण ऊर्जा को। यही उसके मूल्य का राज है अन्यथा... अन्यथा कोई राज नहीं है। इस पर खोज चलती है। संभावना है कि बहुत शीघ्र, जो प्रेशियस स्टोन से, जो कीमती पत्थर हैं, उनके भीतर भी कुछ राज छिपे मिलेंगे। जो बता सकेंगे कि वे या तो प्राण ऊर्जा को खींचते हैं, या अपनी प्राण ऊर्जा न खींची जा सके, इसके लिए कोई रेसिस्टेंस खड़ा करते हैं। आदमी की जानकारी अभी भी बहुत कम है। लेकिन जानकारी कम हो या ज्यादा, हजारों साल से जितनी जानकारी है उसके आधार पर बहुत काम किया जाता रहा है। और ऐसा भी प्रतीत होता है कि शायद बहुत सी जानकारियां खो गई हैं।

लुकमान के जीवन में उल्लेख है कि एक आदमी को उसने भारत भेजा आयुर्वेद की शिक्षा के लिए और उससे कहा कि तू बबूल के वृक्ष के नीचे सोता हुआ भारत पहुंच। और किसी वृक्ष के नीचे मत सोना--बबूल के वृक्ष के नीचे सोना रोज। वह आदमी जब तक भारत आया, क्षय रोग से पीड़ित हो गया। कश्मीर पहुंच कर उसने पहले चिकित्सक को कहा कि मैं तो मरा जा रहा हूं। मैं तो सीखने आया था आयुवाद, अब सीखना नहीं है, सिर्फ

मेरी चिकित्सा कर दें। मैं ठीक हो जाऊं तो अपने घर वापस लौटूं। उस वैद्य ने उससे कहा: तू किसी विशेष वृक्ष के नीचे सोता हुआ तो नहीं आया?

मुझे मेरे गुरु ने आज्ञा दी थी कि तू बबूल के वृक्ष के नीचे सोता हुआ जाना।

वह वैद्य हंसा। उसने कहा: तू कुछ मत कर। तू अब नीम के वृक्ष के नीचे सोता हुआ वापस लौट जा।

वह नीम के वृक्ष के नीचे सोता हुआ वापस लौट गया। वह जैसा स्वस्थ चला था, वैसा स्वस्थ लुकमान के पास पहुंच गया।

लुकमान ने पूछा: तू जिंदा लौट आया? तब आयुर्वेद में जरूर कोई राज है।

उसने कहा: लेकिन मैंने कोई चिकित्सा नहीं की।

उसने कहा: इसका कोई सवाल नहीं है। क्योंकि मैंने तुझे जिस वृक्ष के नीचे सोते हुए भेजा था, तू जिंदा लौट नहीं सकता था। तू लौटा कैसे? क्या किसी और वृक्ष के नीचे सोता हुआ लौटा?

उसने कहा: मुझे आज्ञा दी कि अब बबूल भर से बचूं और नीम के नीचे सोता हुआ लौट आऊं। तो लुकमान ने कहा कि वे भी जानते हैं।

असल में बबूल सक-अप करता है इनर्जी को। आपकी जो एनर्जी है, आपकी जो प्राण-ऊर्जा है, उसे बबूल पीता है। बबूल के नीचे भूल कर मत सोना। और अगर बबूल की दातुन की जाती रही है तो उसका कुल कारण इतना है कि बबूल की दातुन में सर्वाधिक जीवन एनर्जी होती है, वह आपके दांतों को फायदा पहुंचा देती है, क्योंकि वह पाता रहता है। जो भी निकलेगा पास से वह उसकी एनर्जी पी लेता है। नीम आपकी एनर्जी नहीं पीती है, बल्कि अपनी एनर्जी आपको दे देती है, अपनी ऊर्जा आप में उड़ेल देती है।

लेकिन पीपल के वृक्ष के नीचे भी मत सोना। क्योंकि पीपल का वृक्ष इतनी ज्यादा एनर्जी उड़ेल देता है कि उसकी वजह से आप बीमार पड़ जाएंगे। पीपल का वृक्ष सर्वाधिक शक्ति देने वाला वृक्ष है। इसलिए यह हैरानी की बात नहीं है कि पीपल का वृक्ष बोधि-वृक्ष बन गया, उसके नीचे लोगों को बुद्धत्व मिला। उसका कारण है कि वह सर्वाधिक शक्ति दे पाता है। वह अपने चारों ओर से शक्ति आप पर लुटा देता है। लेकिन साधारण आदमी उतनी शक्ति नहीं झेल पाएगा। सिर्फ पीपल अकेला वृक्ष है सारी पृथ्वी की वनस्पतियों में जो रात में भी और दिन में भी पूरे समय शक्ति दे रहा है। इसलिए उसको देवता कहा जाने लगा। उसका और कोई कारण नहीं है। सिर्फ देवता ही हो सकता है जो ले न और देता ही चला जाए। लेता नहीं, देता ही नहीं, देता ही चला जाता है।

यह जो आपके भीतर प्राण-ऊर्जा है, इस प्राण-ऊर्जा को यही आप हैं। तो तप का पहला सूत्र आपसे कहता हूं इस शरीर से अपना तादात्म्य छोड़ें। यह मानना छोड़ें कि मैं यह शरीर के जो दिखाई पड़ता है, जो छुआ जाता है। मैं यह शरीर हूं, जिसमें भोजन जाता है। मैं यह शरीर हूं जो पानी पीता है, जिसे भूख लगती है, जो थक जाता है, जो रात सोता है और सुबह उठता है। "मैं यह शरीर हूं" इस सूत्र को तोड़ डालें। इस संबंध को छोड़ दें तो ही तप के जगत में प्रवेश हो सकेगा। यही भोग है। सारा भोग इसी से फैलता है। यह तादात्म्य, यह आइडेंटिटी, यह इस भौतिक शरीर से स्वयं को एक मान लेने की भ्रांति आपके जीवन का भोग है। फिर इससे सब भोग पैदा होते हैं। जिस आदमी ने अपने को भौतिक शरीर समझा, वह दूसरे भौतिक शरीर को भोगने को आतुर हो जाता है। इससे सारी कामवासना पैदा होती है। जिस व्यक्ति ने अपने को यह भौतिक शरीर समझा वह भोजन में बहुत रसातुर हो जाता है। क्योंकि यह शरीर भोजन से ही निर्मित होता है। जिस व्यक्ति ने इस शरीर को अपना शरीर समझा वह आदमी सब तरह की इंद्रियों के हाथ में पड़ जाता है। क्योंकि वे सब इंद्रियां इस शरीर के परिपोषण के मार्ग हैं।

पहला सूत्र, तप का--यह शरीर मैं नहीं हूं। इस तादात्म्य को तोड़ें। इस तादात्म्य को कैसे तोड़ेंगे, यह हम कल बात करेंगे। इस तादात्म्य को कैसे तोड़ेंगे? तो महावीर ने छह उपाय कहे हैं, वह हम बात करेंगे। लेकिन इस तादात्म्य को तोड़ना है, यह संकल्प अनिवार्य है। इस संकल्प के बिना गति नहीं है। और संकल्प से ही तादात्म्य टूट जाता है क्योंकि संकल्प से ही निर्मित है। यह जन्मों-जन्मों के संकल्प का ही परिणाम है कि मैं यह शरीर हूं।

आप चकित होंगे जान कर--आपने पुरानी कहानियां पढ़ी हैं, बच्चों की कहानियों में सब जगह उल्लेख है। अब नई कहानियों में बंद हो गया है क्योंकि कोई कारण नहीं मिलते थे। पुरानी कहानियां कहती हैं कि कोई सम्राट है, उसका प्राण किसी तोते में बंद है। अगर उस तोते को मार डालो तो सम्राट मर जाएगा। यह बच्चों के लिए ठीक है। हम समझते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है। लेकिन आप हैरान होंगे, यह संभव है। वैज्ञानिक रूप से संभव है। और यह कहानी नहीं है, इसके उपयोग किए जाते रहे हैं। अगर एक सम्राट को बचाना है मृत्यु से तो उसे गहरे सम्मोहन में ले जाकर यह भाव उसको जतलाना काफी है, बार-बार दोहराना उसके अंतर्तम में कि तेरा प्राण तेरे इस शरीर में नहीं, इस सामने बैठे तोते के शरीर में है। यह भरोसा उसका पक्का हो जाए, यह संकल्प गहरा हो जाए तो वह युद्ध के मैदान पर निर्भय चला जाएगा, और वह जानता है कि उसे कोई भी नहीं मार सकता। उसके प्राण तो तोते में बंद हैं। और जब वह जानता है कि उसे कोई नहीं मार सकता तो इस पृथ्वी पर मारने का उपाय नहीं, यह पक्का ख्याल। लेकिन अगर उस सम्राट के सामने आप उसके तोते की गर्दन मरोड़ दें तो वह उसी वक्त मर जाएगा। क्योंकि ख्याल ही सारा जीवन है, विचार जीवन है, संकल्प जीवन है।

सम्मोहन ने इस पर बहुत प्रयोग किए हैं और यह सिद्ध हो गया है कि यह बात सच है। आपको कहा जाए सम्मोहित करके कि यह कागज आपके सामने रखा है, अगर हम इसे फाड़ देंगे तो आप बीमार पड़ जाओगे, बिस्तर से न उठ सकोगे। इससे आपको सम्मोहित कर दिया जाए, कोई तीस दिन लगेंगे, तीस सिटिंग लेने पड़ेंगे--तीस दिन पंद्रह-पंद्रह मिनट आपको बेहोश करके कहना पड़ेगा कि आपकी प्राण-ऊर्जा इस कागज में है। और जिस दिन हम इसको फाड़ेंगे, तुम बिस्तर पर पड़ जाओगे, उठ न सकोगे। तीसवें दिन आपको होशपूर्वक आप बैठें, वह कागज फाड़ दिया जाए, आप वहीं गिर जाएंगे, लकवा खा गए। उठ नहीं सकेंगे।

क्या हुआ? संकल्प गहन हो गया। संकल्प ही सत्य बन जाता है। यह हमारा संकल्प है जन्मों-जन्मों का कि यह शरीर मैं हूं। यह संकल्प, वैसे ही जैसे कागज मैं हूं या तोता मैं हूं। इसमें कोई फर्क नहीं है। यह एक ही बात है। इस संकल्प को तोड़े बिना तप की यात्रा नहीं होगी। इस संकल्प के साथ भोग की यात्रा होगी। यह संकल्प हमने किया ही इसलिए है कि हम भोग की यात्रा कर सकें। अगर यह संकल्प हम न करें तो भोग की यात्रा नहीं हो सकेगी।

अगर मुझे यह पता हो कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो इस हाथ में कुछ रस न रह गया कि इस हाथ से मैं किसी सुंदर शरीर को छुऊं। यह हाथ मैं हूं ही नहीं। यह तो ऐसा ही हुआ जैसा एक डंडा हाथ में ले लें और उस डंडे से किसी का शरीर छुऊं, तो कोई मजा न आए। क्योंकि डंडे से क्या मतलब है? हाथ से छूना चाहिए। लेकिन तपस्वी का हाथ भी डंडे की भांति हो जाता है। जैसे वह संकल्प को खींच लेता है भीतर कि यह हाथ मैं नहीं हूं, हाथ डंडा हो गया। अब इस हाथ से किसी का सुंदर चेहरा छुओ कि न छुओ, यह डंडे से छूने जैसा होगा। इसका कोई मूल्य न रहा। इसका कोई अर्थ न रहा। भोग की सीमा गिरनी और टूटनी और सिकुड़नी शुरू हो जाएगी।

भोग का सूत्र है--यह शरीर मैं हूं। तप का सूत्र है--यह शरीर मैं नहीं हूं। लेकिन भोग का सूत्र पाजिटिव है--यह शरीर मैं हूं। और अगर तप का इतना ही सूत्र है कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो तप हार जाएगा, भोग जीत जाएगा। क्योंकि तप का सूत्र निगेटिव है। तप का सूत्र नकारात्मक है कि यह मैं नहीं हूं। नकार में आप खड़े नहीं हो सकते। शून्य में खड़े नहीं हो सकते। खड़े होने के लिए जगह चाहिए पाजिटिव। जब आप कहते हैं--"यह शरीर मैं हूं", तब कुछ पकड़ में आता है। जब आप कहते हैं--"यह शरीर मैं नहीं हूं", तब कुछ पकड़ में आता नहीं। इसलिए तप का दूसरा सूत्र है कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं। यह आधा हुआ, पहला हुआ कि यह शरीर मैं नहीं हूं, तत्काल दूसरा सूत्र इसके पीछे खड़ा होना चाहिए कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं, एनर्जी बॉडी हूं। प्राण-शरीर हूं। अगर यह दूसरा सूत्र खड़ा न हो तो आप सोचते रहेंगे कि यह शरीर मैं नहीं हूं और इसी शरीर में जीते रहेंगे। लोग रोज सुबह बैठकर कहते हैं कि यह शरीर मैं नहीं हूं, यह शरीर तो पदार्थ है। और दिनभर उनका व्यवहार, यही शरीर है। इतना काफी नहीं है। किसी पाजिटिव विल को, किसी विधायक संकल्प को नकारात्मक संकल्प से नहीं

तोड़ा जा सकता। उससे भी ज्यादा विधायक संकल्प चाहिए। यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह ठीक है। लेकिन आधा ठीक है। मैं प्राण-शरीर हूँ, इससे पूरा सत्य बनेगा।

तो दो काम करें। इस शरीर से तादात्म्य छोड़ें और प्राण-ऊर्जा के शरीर से तादात्म्य स्थापित करें--बी आइडेंटिफाइड विद इट। मैं यह नहीं हूँ और मैं यह हूँ, और जोर पाजिटिव पर रहे। इम्फेसिस इस बात पर रहे कि मैं ऊर्जा-शरीर हूँ। ऊर्जा-शरीर हूँ, इस पर जोर रहे--तो मैं यह भौतिक शरीर नहीं हूँ, यह उसका परिणाम मात्र होगा, छाया मात्रा होगा। अगर आपका जोर इस बात पर रहा कि यह शरीर मैं नहीं हूँ तो गलती हो जाएगी। क्योंकि वह मैं जो शरीर हूँ वह छाया नहीं बन सकता, वह मूल है। उसे मूल में रखना पड़ेगा। इसलिए मैंने आपको समझाया, क्योंकि समझाने में पहले यही समझाना जरूरी है कि यह शरीर मैं नहीं हूँ। लेकिन जब आप संकल्प करें तो संकल्प पर जोर दूसरे सूत्र पर रहे, अर्थात् दूसरा सूत्र संकल्प में पहला सूत्र रहे और पहला सूत्र संकल्प में दूसरा सूत्र रहे। जोर कि मैं ऊर्जा-शरीर हूँ, इसलिए मैंने इतनी ऊर्जा शरीर की आपसे बात की कि ताकि आपके ख्याल में आ जाए और यह भौतिक शरीर मैं नहीं हूँ, यह तप की भूमिका है। कल से हम तप के अंगों पर चर्चा करेंगे।

महावीर ने तप के दो रूप--आंतरिक तप, अंतर तप और बाह्य-तप कहे हैं। अंतर तप में उन्होंने छह हिस्से किए हैं, छह सूत्र और बाह्य-तप में भी छह हिस्से किए हैं। कल हम बाह्य-तप से बात शुरू करेंगे। फिर अंतर तप से। और अगर तप की प्रक्रिया ख्याल में आ जाए, संकल्प में चली जाए तो जीवन उस यात्रा पर निकल जाता है जिस यात्रा पर निकले बिना अमृत को कोई अनुभव नहीं है। हम जहां हैं वहां बार-बार मृत्यु का ही अनुभव होगा। क्योंकि जो हम नहीं हैं उससे हमने अपने को जोड़ रखा है। हम बार-बार टूटेंगे, मिटेंगे, नष्ट होंगे और जितना टूटेंगे, जितना मिटेंगे उतना ही उसी से अपने को बार-बार जोड़ते चले जाएंगे जो हम नहीं हैं। जो मैं नहीं हूँ, उससे अपने को जोड़ना, मृत्यु के द्वार खोलना है, जो मैं हूँ उससे अपने को जोड़ना, अमृत के द्वार खोलना है।

तप अमृत के द्वार की सीढ़ी है। बारह सीढ़ियां हैं। कल से हम उनकी बात शुरू करेंगे।

आज के लिए इतना ही।

बैठेंगे पांच मिनट, ध्वनि करेंगे संन्यासी, उसमें सम्मिलित हों... ।

अनशन: मध्य के क्षण का अनुभव (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

महावीर ने तप को दो रूपों में विभाजित किया है। इसलिए नहीं कि तप दो रूपों में विभाजित हो सकता है, बल्कि इसलिए कि हम उसे बिना विभाजित किए नहीं समझ सकते हैं। हम जहां खड़े हैं, हमारी समस्त यात्रा वहीं से प्रारंभ होगी। और हम अपने बाहर खड़े हैं। हम वहां खड़े हैं जहां हमें नहीं होना चाहिए; हम वहां नहीं खड़े हैं जहां हमें होना चाहिए। हम अपने को ही छोड़ कर, अपने से ही च्युत होकर, अपने से ही दूर खड़े हैं। हम दूसरों से अजनबी हैं--ऐसा नहीं, हम अपने से अजनबी हैं--स्टेंजर्स टु अवरसेल्वस। दूसरों का तो शायद हमें थोड़ा बहुत पता भी हो, अपना उतना भी पता नहीं है। तप तो विभाजित नहीं हो सकता। लेकिन हम विभाजित मनुष्य हैं। हम अपने से ही विभाजित हो गए हैं, इसलिए हमारी समझ के बाहर होगा अविभाज्य तप।

महावीर उसे दो हिस्सों में बांटते हैं, हमारे कारण। इस बात को ठीक से पहले समझ लें। हमारे कारण ही दो हिस्सों में बांटते हैं, अन्यथा महावीर जैसी चेतना को बाहर और भीतर का कोई अंतर नहीं रह जाता। जहां तक अंतर है वहां तक तो महावीर जैसी चेतना का जन्म नहीं होता। जहां भेद है, जहां फासले हैं, जहां खंड हैं, वहां तक तो महावीर की अखंड चेतना जन्मती नहीं। महावीर तो वहां हैं जहां सब अखंड हो जाता है। जहां बाहर भीतर का ही एक छोर हो जाता है और जहां भीतर भी बाहर का ही एक छोर हो जाता है। जहां भीतर और बाहर एक ही लहर के दो अंग हो जाते हैं; जहां भीतर और बाहर दो वस्तुएं नहीं, किसी एक ही वस्तु के दो पहलू हो जाते हैं, इसलिए यह विभाजन हमारे लिए है।

महावीर ने बाह्य तप और अंतर तप, दो हिस्से किए हैं। उचित होता, ठीक होता कि अंतर तप को महावीर पहले रखते, क्योंकि अंतर ही पहले है। वह जो आंतरिक है, वही प्राथमिक है। लेकिन महावीर ने अंतर तप को पहले नहीं रखा है, पहले रखा है बाह्य तप को। क्योंकि महावीर दो ढंग से बोल सकते हैं, और इस पृथ्वी पर दो ढंग से बोलने वाले लोग हुए हैं। एक वे लोग जो वहां से बोलते हैं जहां वे खड़े हैं। एक वे लोग जो वहां से बोलते हैं जहां सुनने वाला खड़ा है। महावीर की करुणा उन्हें कहती है कि वे वहीं से बोलें जहां सुनने वाला खड़ा है। महावीर के लिए आंतरिक प्रथम हैं, लेकिन सुनने वाले के लिए आंतरिक द्वितीय है, बाह्य प्रथम है।

तो महावीर जब बाह्य तप को पहला रखते हैं तो केवल इस कारण कि हम बाहर हैं। इससे सुविधा तो होती है समझने में, लेकिन आचरण करने में असुविधा भी हो जाती है। सभी सुविधाओं के साथ जुड़ी हुई असुविधाएं हैं। महावीर ने चूंकि बाह्य-तप को पहले रखा है, इसलिए महावीर के अनुयायियों ने बाह्य तप को प्राथमिक समझा वहां भूल हुई है। और तब बाह्य-तप को करने में ही लगे रहने की लंबी धारा चली। और आज करीब-करीब स्थिति ऐसी आ गई है कि बाह्य-तप ही पूरा नहीं हो पाता तो आंतरिक तप तक जाने का सवाल

नहीं उठता। बाह्य-तप ही जीवन को डुबा लेता है। और बाह्य तप कभी पूरा नहीं होगा जब तक कि आंतरिक तप पूरा न हो। इसे भी ध्यान में ले लें।

अंतर और बाह्य एक ही चीज है। इसलिए कोई सोचता हो कि बाह्य-तप पहले पूरा हो जाए तब मैं अंतर-तप में प्रवेश करूंगा, तो बाह्य-तप कभी पूरा नहीं होगा। क्योंकि बाह्य-तप स्वयं आधा हिस्सा है, वह पूरा नहीं हो सकता। जैन साधना जहां भटक गई वह यही जगह है, बाह्य-तप पहले पूरा हो जाए तो फिर आंतरिक तप में उतरेंगे। बाह्य-तप कभी पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि बाह्य जो है वह अधूरा ही है। वह तो पूरा तभी होगा जब आंतरिक तप भी पूरा हो। इसका यह अर्थ हुआ कि अगर ये दोनों तप साथ-साथ चलें तो ही पूरा हो पाते हैं, अन्यथा पूरा नहीं हो पाते हैं। लेकिन विभाजन ने हमें ऐसा समझा दिया कि पहले हम बाहर को तो पूरा कर लें, हम बाहर को तो साध लें, फिर हम भीतर की यात्रा करेंगे। अभी जब बाहर का ही नहीं सध रहा है तो भीतर की यात्रा कैसे हो सकती है। ध्यान रहे, तप एक ही है। बाह्य और भीतर सिर्फ कामचलाऊ विभाजन हैं।

अगर कोई अपने पैरों को स्वस्थ करना चाहे और सोचे कि पहले पैर स्वस्थ हो जाएं, फिर सिर स्वस्थ कर लेंगे, तो वह गलती में है। शरीर एक है, और शरीर का स्वास्थ्य पूरा होता है। अभी तक वैज्ञानिक सोचते थे कि शरीर के अंग बीमार पड़ते हैं, लोकल होती है बीमारी--हाथ बीमार होता है, पैर बीमार होता है। लेकिन अब धारणा बदलती चली जा रही है। अब वैज्ञानिक कहते हैं--जब एक अंग बीमार होता है तो वह इसलिए बीमार होता है कि पूरा व्यक्ति बीमार हो गया होता है। हां, एक अंग से बीमारी प्रकट होती है लेकिन वह एक अंग की नहीं होती। मनुष्य का पूरा व्यक्तित्व ही बीमार हो जाता है। यद्यपि बीमारी उस अंग से प्रकट होती है जो सर्वाधिक कमजोर है। लेकिन व्यक्तित्व पूरा बीमार हो जाता है।

इसलिए हैपोक्रेटीज ने, जिसने कि पश्चिम में चिकित्सा को जन्म दिया, उसने कहा था--ट्रीट दि डिसीज, बीमारी का इलाज करो। लेकिन अभी पश्चिम के अनेक मेडिकल कालेजस में वह तख्ती हटा दी गई है और वहां लिखा हुआ है--ट्रीट दि पेशेंट। बीमारी का इलाज मत करो, बीमार का इलाज करो, क्योंकि बीमारी लोकलाइज्ड होती है, बीमार तो फैला हुआ होता है। असली सवाल नहीं है बीमारी, असली सवाल है बीमार, पूरा व्यक्तित्व।

अंतर और बाह्य पूरे व्यक्तित्व के हिस्से हैं। इन्हें साइमलटेनियसली, युगपत प्रारंभ करना पड़ेगा। विवेचन जब हम करेंगे तो विवेचन हमेशा वन डायमेंशनल होता है। मैं पहले एक अंग की बात करूंगा, फिर दूसरे की, फिर तीसरे की, फिर चौथे की। स्वभावतः चारों अंगों की बात एक साथ कैसे की जा सकती है। भाषा वन डायमेंशनल है। एक रेखा में मुझे बात करनी पड़ेगी। पहले मैं आपके सिर की बात करूंगा, फिर आपके हृदय की बात करूंगा, फिर आपके पैर की बात करूंगा। तीनों की बात एक साथ नहीं कर सकता हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि तीनों एक साथ नहीं हैं। वह तीनों एक साथ हैं--आपका सिर, आपका हृदय, आपके पैर; वह सब युगपत, एक साथ हैं; अलग-अलग नहीं हैं। चर्चा करने में बांट लेना पड़ता है लेकिन अस्तित्व में वे इकट्ठे हैं।

तो यह जो चर्चा मैं करूंगा बारह हिस्सों की--छह बाह्य और छह आंतरिक, चर्चा के लिए क्रम होगा--एक दो तीन चार; लेकिन जिन्हें साधना है, उनके लिए क्रम नहीं होगा। एक साथ उन्हें साधना होगा, तभी पूर्णता उपलब्ध होती है, अन्यथा पूर्णता उपलब्ध नहीं होती। भाषा से बड़ी भूलें पैदा होती हैं, क्योंकि भाषा के पास एक साथ बोलने का कोई उपाय नहीं है।

मैं यहां हूं; अगर मैं बाहर जाकर ब्योरा दूं कि मेरे सामने की पंक्ति में कितने लोग बैठे थे तो मैं पहले, पहले का नाम लूंगा, फिर दूसरे का, फिर तीसरे का, फिर चौथे का। मेरे बोलने में क्रम होगा। लेकिन यहां जो लोग बैठे हैं उनके बैठने में क्रम नहीं है, वे एक साथ ही यहां मौजूद हैं। अस्तित्व इकट्ठा है, एक साथ है। भाषा

क्रम बना देती है। उसमें कोई आगे हो जाता है, कोई पीछे हो जाता है। लेकिन अस्तित्व में कोई आगे पीछे नहीं होता है। इतनी बात ख्याल में ले लें, फिर हम महावीर के बाह्य तप से शुरू करें।

बाह्य-तप में महावीर ने पहला तप कहा है--अनशन। अनशन के संबंध में जो भी समझा जाता है वह गलत है। अनशन के संबंध में जो छिपा हुआ सूत्र है, जो एसोटेरिक है वह मैं आपसे कहना चाहता हूं। उसके बिना अनशन का कोई अर्थ नहीं है। जो गुह्य अनशन की प्रक्रिया है वह मैं आपसे कहना चाहता हूं, उसे समझ कर आपको नई दिशा का बोध होगा।

मनुष्य के शरीर में दोहरे यंत्र हैं, डबल मैकेनिज्म हैं और दोहरा यंत्र इसलिए है ताकि इमर्जेंसी में, संकट के किसी क्षण में एक यंत्र काम न करे तो दूसरा कर सके। एक यंत्र तो जिससे हम परिचित हैं, हमारा शरीर। आप भोजन करते हैं, शरीर भोजन को पचाता है, खून बनाता है, हड्डियां बनाता है, मांस-मज्जा बनाता है। ये साधारण यंत्र हैं। लेकिन कभी कोई आदमी जंगल में भटक जाए या सागर में नाव डूब जाए और कई दिनों तक किनारा न मिले तो भोजन नहीं मिलेगा। तब शरीर के पास एक इमर्जेंसी अरेंजमेंट है, एक संकटकालीन व्यवस्था है, तब शरीर को भोजन तो नहीं मिलेगा लेकिन भोजन की जरूरत तो जारी रहेगी। क्योंकि श्वास भी लेना हो, हाथ भी हिलाना हो, जीना भी हो तो भोजन की जरूरत है। ईंधन की जरूरत है। आपको ईंधन न मिले तो आपके शरीर के पास एक ऐसी व्यवस्था चाहिए जो संकट की घड़ी में आपके शरीर के भीतर इकट्ठा जो ईंधन है उसको ही उपयोग में लाने लगे। शरीर के पास एक दूसरा इनर-मैकेनिज्म है। अगर आप सात दिन भूखे रहें तो शरीर अपने को ही पचाना शुरू कर देता है। भोजन आपको नहीं ले जाना पड़ता, आपके भीतर की चर्बी ही भोजन बननी शुरू हो जाती है। इसलिए उपवास में आपका एक पौंड वजन रोज गिरता चला जाएगा। वह एक पौंड आपकी ही चर्बी, आप पचा गए। कोई नब्बे दिन तक साधारण स्वस्थ आदमी मरेगा नहीं क्योंकि इतना रिजर्वायर, इतना संगृहीत तत्व शरीर के पास है कि कम से कम तीन महीने तक वह अपने को बिना भोजन के जिला सकता है। ये दो हिस्से हैं शरीर के--एक शरीर की व्यवस्था सामान्य है, दैनंदिन है। असमय के लिए, संकट की घड़ी के लिए एक और व्यवस्था है, जब शरीर बाहर से भोजन न पा सके तो अपने भीतर संगृहीत भोजन को पचाना शुरू कर दे।

अनशन की प्रक्रिया का राज यह है कि जब शरीर की एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था पर संक्रमण होता है, आप बदलते हैं तब बीच में कुछ क्षणों के लिए आप वहां पहुंच जाते हैं जहां शरीर नहीं होता। वही उसका सीक्रेट है। जब भी आप एक चीज से दूसरे पर बदलाव करते हैं, एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर जाते हैं तो एक क्षण ऐसा होता है जब आप किसी भी सीढ़ी पर नहीं होते हैं। जब आप एक स्थिति से दूसरी स्थिति में छलांग लगाते हैं तो बीच में एक गैप, अंतराल हो जाता है जब आप किसी भी स्थिति में नहीं होते हैं, फिर भी होते हैं।

शरीर की एक व्यवस्था है सामान्य भोजन की, अगर यह व्यवस्था बंद कर दी जाए तो अचानक आपको दूसरी व्यवस्था पर रूपांतरित होना पड़ता है, और इस बीच कुछ क्षण हैं जब आप आत्म-स्थिति में होते हैं। उन्हीं क्षणों को पकड़ना अनशन का उपयोग है। इसलिए जो आदमी अनशन का अभ्यास करेगा वह अनशन का फायदा न उठा पाएगा। ख्याल रखें, जो अनशन का अभ्यास करेगा वह अनशन का फायदा न उठा पाएगा। अनशन सडन प्रयोग है, आकस्मिक, अचानक। जितना अचानक होगा, जितना आकस्मिक होगा, उतना ही अंतराल का बोध होगा। अगर आप अभ्यासी हैं तो आप इतने कुशल हो जाएंगे, एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने में, कि बीच का अंतराल आपको पता ही नहीं चलेगा। इसलिए अभ्यासियों को अनशन से कोई लाभ नहीं होता। और अभ्यास करने की जो प्रक्रिया है वह यही है कि आपको बीच का अंतराल पता न चले। एक आदमी धीरे-धीरे अभ्यास करता रहे तो वह इतना कुशल हो जाता है कि कब उसने स्थिति बदल ली, उसे पता नहीं चलता। हम रोज स्थिति बदलते हैं लेकिन अभ्यास के कारण पता नहीं चलता।

रात आप सोते हैं--जागने के लिए शरीर दूसरे मैकेनिज्म का उपयोग करता है, सोने के लिए दूसरे। दोनों के मैकेनिज्म अलग हैं, दोनों का यंत्र अलग है। आप उसी यंत्र से नहीं जागते जिससे आप सोते हैं। इसीलिए तो अगर आपके जागने का यंत्र बहुत ज्यादा सक्रिय हो तो आप सो नहीं पाते। उसका और कोई कारण नहीं है, आप दूसरी व्यवस्था में प्रवेश नहीं कर पाते। पहली ही व्यवस्था में अटके रह जाते हैं। अगर आप दुकान, धंधे और काम की बात सोचे चले जा रहे हैं तो आपके जागने का यंत्र काम करता चला जाता है, जब तक वह काम करता है तब तक चेतना उससे नहीं हट सकती। चेतना तभी हटेगी, जब वहां आपका काम बंद हो जाए तो तत्काल शिफ्ट हो जाएगी। चेतना दूसरे यंत्र पर चली जाएगी, जो निद्रा का है। लेकिन हमें इतना अभ्यास है कि हमें पता नहीं चलता बीच के गैप का। वह जो जागने और नींद के बीच में जो क्षण आता है वह भी वही है जो भोजन छोड़ने और उपवास के बीच में आता है। इसलिए तो आपको नींद में भोजन की जरूरत नहीं पड़ती। आप दस घंटे सोए रहें तो भी भोजन की जरूरत नहीं पड़ती है। दस घण्टे जागें तो भोजन की जरूरत पड़ती है।

आपको पता है, ध्रुव प्रदेश में पोलर बियर होता है, भालू होता है साइबेरिया में। छह महीने जब बर्फ भयंकर रूप से पड़ती है तो कोई भोजन नहीं मिलता। वह सो जाता है। बर्फ के नीचे दब कर सो जाता है। वह उसकी ट्रिक है, वह उसकी तरकीब है। क्योंकि नींद में तो भूख नहीं लगती। वह छह महीने सोया रहता है। छह महीने के बाद वह तभी जगता है जब भोजन फिर मिलने की सुविधा शुरू हो जाती है। आपके भीतर जो निद्रा का यंत्र है वहां आपको भोजन की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह यंत्र वही यंत्र है जो उपवास में प्रकट होता है। वह आपका इमर्जेंसी मेजरमेंट है, खतरे की स्थिति में उसका उपयोग करना होता है। इसलिए आप जान कर हैरान होंगे कि अगर बहुत खतरा पैदा हो जाए तो आदमी नींद में चला जाता है। यह आप जान कर हैरान होंगे, अगर इतना खतरा पैदा हो जाए कि आप अपने मस्तिष्क से उसका मुकाबला न कर सकें तो आप नींद में चले जाएंगे। आप बेहोश हो जाते हैं, बहुत दुख हो जाए, तो। उसका और कोई कारण नहीं है, इतना दुख हो जाता है कि आपका जाग्रत मस्तिष्क उसको सहने में असमर्थ है तो तत्काल शिफ्ट हो जाता है और गहरी तंद्रा में चला जाता है, बेहोश हो जाता है। बेहोशी दुख से बचने का उपाय है।

हम अक्सर कहते हैं--मुझे बड़ा असह्य दुख है। लेकिन ध्यान रहे, असह्य दुख कभी नहीं होता। असह्य होने के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। जब तक सहनीय होता है तभी तक आप होश में आते हैं। जैसे ही असहनीय हो जाता है, आप बेहोश हो जाते हैं। इसलिए असह्य दुख को कोई आदमी कभी नहीं भोग पाता। भोग ही नहीं सकता। इंतजाम ऐसा है कि असह्य दुख होने के पहले आप बेहोश हो जाएं। इसलिए मरने के पहले अधिक लोग बेहोश हो जाते हैं। क्योंकि मरने के पहले जिस यंत्र से आप जी रहे थे, उसकी अब कोई जरूरत नहीं रह जाती। चेतना शिफ्ट हो जाती है उस यंत्र पर, जो इस यंत्र के पीछे छिपा है। मरने से पहले आप दूसरे यंत्र पर उतर जाते हैं।

मनुष्य के शरीर में दोहरा शरीर है। एक शरीर है जो दैनंदिन काम का है--जागने का, उठने का, बैठने का, बात करने का, सोचने का, व्यवहार का; एक और यंत्र है छिपा हुआ भीतर गुह्य, जो संकटकालीन है। अनशन का प्रयोग उस संकटकालीन यंत्र में प्रवेश का है। इस तरह के बहुत से प्रयोग हैं जिनसे मध्य का गैप, मध्य का जो अंतराल है वह उपलब्ध होता है। सूफियों ने अनशन का उपयोग नहीं किया, सूफियों ने जागने का उपयोग किया है। एक ही बात है, उसमें फर्क नहीं है। प्रयोग अलग हैं, परिणाम एक हैं।

सूफियों ने रात में जागने का प्रयोग किया है--सोओ मत, जागे रहो। इतने जागे रहो, जब नींद पकड़े तो मत नींद में जाओ, जागे ही रहो, जागे ही रहो, जागे ही रहो। अगर जागने की चेष्टा जारी रही, और जागने का यंत्र थक गया और बंद हो गया और एक क्षण को भी आप उस हालत में रह गए जब जागना भी न रहा और नींद भी न रही, तो आप बीच के अंतराल में उतर जाएंगे। इसलिए सूफियों ने नाइट विजिलेंस को, रात्रि-जागरण को बड़ा मूल्य दिया। महा वीर ने उसी प्रयोग को अनशन के द्वारा किया है। वही प्रयोग है।

तंत्र का एक अदभुत ग्रंथ है, विज्ञान भैरवा। उसमें शंकर ने पार्वती को ऐसे सैकड़ों प्रयोग कहे हैं। हर प्रयोग दो पंक्तियों का है। हर प्रयोग का परिणाम वही है कि बीच का गैप आ जाए। शंकर कहते हैं--श्वास भीतर जाती है; श्वास बाहर जाती है पार्वती, तू दोनों के बीच में ठहर जाना तो तू स्वयं को जान लेगी। जब श्वास बाहर भी न जा रही हो और भीतर भी न आ रही हो, तब तू ठहर जाना, बीच में, दोनों के। किसी से प्रेम होता है, किसी से घृणा होती है, वहां ठहर जाना जब प्रेम भी न होता और घृणा भी नहीं होती; दोनों के बीच में ठहर जाना। तू स्वयं को उपलब्ध हो जाएगी। दुख होता है, सुख होता है; तू वहां ठहर जाना जहां न दुख है, न सुख; बीच में, मध्य में और तू ज्ञान को उपलब्ध हो जाएगी।

अनशन उसी का एक व्यवस्थित प्रयोग है। और महावीर ने अनशन क्यों चुना? मैं मानता हूं दो श्वासों के बीच में ठहरना बहुत कठिन मामला है। क्योंकि श्वास जो है वह नॉन-वालेंटरी है, वह आपकी इच्छा से नहीं चलती, वह आपकी बिना इच्छा के चलती रहती है। आपकी कोई जरूरत नहीं होती है उसके लिए। आप रात सोए रहते हैं, तब भी चलती रहती है, भोजन नहीं चल सकता सोने में। भोजन वालेंटरी है। आप की इच्छा से रुक भी सकता है, चल भी सकता है। आप ज्यादा भी कर सकते हैं, कम भी कर सकते हैं। आप भूखे भी रह सकते हैं तीस दिन, लेकिन बिना श्वास के नहीं रह सकते हैं। श्वास के बिना तो थोड़े से क्षण भी रह जाना मुश्किल हो जाएगा और बिना श्वास के अगर थोड़े से क्षण भी रहे तो इतने बेचैन हो जाएंगे कि उस बेचैनी में वह जो बीच का गैप है, वह दिखाई नहीं पड़ेगा, बेचैनी ही रह जाएगी। इसलिए महावीर ने श्वास का प्रयोग नहीं कहा। महावीर ने एक वालेंटरी हिस्सा चुना, भोजन वालेंटरी हिस्सा है। नींद भी सूफियों ने जो चुना है वह भी थोड़ी कठिन है क्योंकि नींद भी नॉन-वालेंटरी है, आप अपनी कोशिश से नहीं ला सकते। आती है तब आ जाती है। नहीं आती तो लाख उपाय करो, नहीं आती। नींद भी आपके वश में नहीं है। नींद भी आपके बाहर है, बहुत कठिन है नींद पर वश करना।

महावीर ने बहुत सरल सा प्रयोग चुना, जिसे बहुत लोग कर सकें--भोजन। एक तो सुविधा यह है कि नब्बे दिन तक न भी करें तो कोई खतरा नहीं है। अगर नब्बे दिन तक बिना सोए रह जाएं तो पागल हो जाएंगे। नब्बे दिन तो बहुत दूर है, नौ दिन भी अगर बिना सोए रह जाएं तो पागल हो जाएंगे। सब ब्लर्ड हो जाएगा। पता नहीं चलेगा कि जो देख रहे हैं वह सपना है या सच है। अगर नौ दिन आप न सोएं तो इस हाल में जो लोग बैठे हैं वह सच में बैठे हैं कि आप कोई सपना देख रहे हैं, आप फर्क न कर पाएंगे। ब्लर्ड हो जाएगा। नींद और जागरण ऐसा कंप्यूज्ड हो जाएगा कि कुछ पक्का न रहेगा कि क्या हो रहा है। आप जो सुन रहे हैं वह वस्तुतः बोला जा रहा है, या सिर्फ आप सुन रहे हैं, यह तय करना मुश्किल हो जाएगा। और खतरनाक भी है। क्योंकि विक्षिप्त होने का पूरा डर है।

आज माओ के अनुयायी चीन में जो सबसे बड़ी पीड़ा दे रहे हैं अपने से विरोधियों को, वह, उनको न सोने देने की है। भूखा मार कर आप ज्यादा परेशान नहीं कर सकते क्योंकि सात आठ दिन के बाद भूख बंद हो जाती है। शरीर दूसरे यंत्र पर चला जाता है। सात आठ दिन के बाद भूख नहीं लगती, भूख समाप्त हो जाती है। क्योंकि शरीर नये ढंग से भोजन पाना शुरू कर देता है, भीतर से भोजन पाना शुरू कर देता है। लेकिन नींद? बहुत मुश्किल मामला है। सात दिन भी अगर आदमी को बिना सोए रख दिया जाए तो वह विक्षिप्त हो जाता है। और वल्लरेबल हो जाता है। सात दिन अगर किसी को न सोने दिया जाए तो उसकी बुद्धि इतनी ज्यादा डावांडोल हो जाती है कि उससे फिर आप कुछ भी कहें, वह मानना शुरू कर देता है। इसलिए सात या नौ दिन चीन में विरोधी को बिना सोया रखेंगे और फिर कम्युनिज्म का प्रचार उसके सामने किया जाएगा। कम्युनिज्म की किताब पढ़ी जाएगी, माओ का संदेश सुनाया जाएगा। और जब वह इस हालत में नहीं होता कि रेसिस्ट कर सके कि तुम जो कह रहे हो, वह गलत है; तर्क टूट जाता है। नींद के विकृत होने के साथ ही तर्क टूट जाता है। अब उसको मानना ही पड़ेगा, जो आप कह रहे हैं; ठीक कह रहे हैं।

नींद का प्रयोग महावीर ने नहीं किया, अनशन का प्रयोग किया। मनुष्य के हाथ में जो सर्वाधिक सुविधापूर्ण, सरलतम प्रयोग है--दो यंत्रों के बीच में ठहर जाने का, वह भोजन है। लेकिन आप अगर अभ्यास कर लें तो अर्थ नहीं रह जाएगा। ये प्रयोग आकस्मिक हैं--अचानक।

आपने भोजन नहीं लिया है, और जब आपने भोजन नहीं लिया है तब ध्यान रखें न तो भोजन का, न उपवास का--ध्यान रखें उस मध्य के बिंदु का कि वह कब आता है। आंख बंद कर लें और अब भीतर ध्यान रखें कि शरीर का यंत्र कब स्थिति बदलता है। तीन दिन में, चार दिन में, पांच दिन में, सात दिन में, कभी स्थिति बदली जाएगी। और जब स्थिति बदलती है तब आप बिल्कुल दूसरे लोक में प्रवेश करते हैं। आपको पहली दफे पता चलता है कि आप शरीर नहीं हैं--न तो वह शरीर जो अब तक काम कर रहा था और न यह शरीर जो अब काम कर रहा है। दोनों के बीच में एक क्षण का बोध भी कि मैं शरीर नहीं हूं, मनुष्य के जीवन में अमृत का द्वार खोल देता है।

लेकिन महावीर के पीछे जो परंपरा चल रही है वह अनशन का अभ्यास कर रही है। अभ्यासी है, वर्ष-वर्ष अभ्यास कर रहे हैं, जीवन भर अभ्यास कर रहे हैं। वे इतने अभ्यासी हो गए हैं--जितने अभ्यासी, उतने अंधे। अब उनको कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। जैसे आप अपने घर जिस रास्ते पर रोज-रोज आते हैं उस रास्ते पर आप अंधे होकर चलने लगते हैं, फिर आपको उस रास्ते पर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन जब कोई आदमी पहली दफा उस रास्ते पर आता है उसे सब दिखाई पड़ता है। अगर आप कश्मीर जाएंगे तो डल झील पर आपको जितना दिखाई पड़ता है वह जो मांझी आपको घुमा रहा है, उसको दिखाई नहीं पड़ता। वह अंधा हो जाता है।

अभ्यास अंधा कर देता है। इसे थोड़ा समझ लें। वह इतनी बार देख चुका है कि देखने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह बिना देखे चलाता रहता है। इसलिए जिनके साथ हम रहते हैं उनके चेहरे हमें दिखाई नहीं पड़ते--जिनके साथ हम रहते हैं उनके चेहरे हमें दिखाई नहीं पड़ते। अगर ट्रेन में आपको कोई अजनबी मिल गया है तो उसका चेहरा आपको अभी भी याद हो सकता है। लेकिन अपनी मां का या अपने पिता का चेहरा आप आंख बंद करके याद करेंगे तो ब्लर्ड हो जाएगा, याद नहीं आएगा। न याद करें तो आपको लगेगा कि मुझे मालूम है कि मेरे पिता का चेहरा कैसा है। आंख बंद करें और याद करें तो आप पाएंगे कि खो गया। नहीं मिलता कैसा है। पिता का चेहरा फिर भी दूर है, आप अपना चेहरा तो रोज आईने में देखते हैं। आंख बंद करें और याद करें, खो जाएगा। नहीं मिलेगा। आप अंधे की तरह आईने के सामने देख लेते हैं। अभ्यास पक्का है।

अभ्यास अंधा कर देता है। और जो सूक्ष्म चीजें हैं वे दिखाई नहीं पड़तीं। और यह बहुत सूक्ष्म बिंदु है। भोजन और अनशन के बीच का जो संक्रमण है, ट्रांसमिशन है, वह बहुत सूक्ष्म और बारीक है, बहुत डेलिकेट है, बहुत नाजुक है। जरा से अभ्यास से आप उसको चूक जाएंगे, वह आपको ख्याल में नहीं आएगा। इसलिए अनशन का भूल कर अभ्यास न करें। कभी अचानक उसका उपयोग बड़ा कीमती है, बड़ा अदभुत है। जैसे अचानक आप यहां सोए थे, इस कमरे में, और आपकी नींद खुले, और आप पाएं, आप डल झील पर हैं तो आपकी मौजूदगी जितनी सघन होगी इतनी आप यहां से यात्रा करके डल झील पर जाएं तो नहीं होगी। आप अचानक आंख खोलें और पाएं तो आप घबड़ा जाएंगे, चौक जाएंगे कि मैं कहां सोया था और कहां हूं, यह क्या हो गया। आप इतने कांशस होंगे, इतने सचेत होंगे, जिसका कोई हिसाब नहीं।

गुरजिएफ के पास जो लोग जाते थे साधना के लिए--यह आदमी इस पचास वर्षों में बहुत कीमती आदमी था--तो गुरजिएफ यही काम करता था, लेकिन बिल्कुल उलटे ढंग से। और कोई जैन न सोच सकेगा कि गुरजिएफ और महावीर के बीच कोई भी नाता हो सकता है। आप और गुरजिएफ के पास जाते तो पहले तो वह आपको बहुत ज्यादा खाना खिलाना शुरू करता, इतना कि आपको लगे कि मैं मर जाऊंगा। इतना खाना खिलाना शुरू करता कि आपको लगे, मैं मर जाऊंगा। वह जिद्द करता था। कई लोग तो इसलिए भाग जाते थे कि उतना खाना खाने के लिए राजी नहीं हो सकते थे। रात दो बजे तक वह खाना खिलाता। वह इतना आग्रह करता--और गुरजिएफ जैसा आदमी आपसे आग्रह करे, या महावीर आपके सामने थाली में रखते चले जाएं कुछ,

तो आपको इनकार करना भी मुश्किल होगा। और गुरजिएफ था कि कहता कि और, कि और--खिलाते ही चला जाता। वह इतना ओव्हरफ्लो हो जाए भोजन, वह दस पांच दिन आपको इतना खिलाता है कि आप खिलाने के, खाने की व्यवस्था से इस बुरी तरह अरुचिकर हो जाता। ध्यान रहे, अनशन भोजन में रुचि पैदा कर सकता है। अत्यधिक भोजन अरुचि पैदा कर देता है। वह इतना खिलाता, इतना खिलाता कि आप घबरा जाते, भागने को हो जाते। कहते कि मर जाएंगे, यह क्या कर रहे हैं आप। पेट ही पेट का स्मरण रहता है चौबीस घंटे। तब अचानक वह आपका अनशन करवा देता है। तब गैप बड़ा हो जाता है। बहुत ज्यादा खाने से एकदम न खाने पर धक्का दे देता। तो वह जो बीच की जगह थोड़ी बड़ी हो जाती, क्योंकि एकदम बहुत खाना एक अति से एकदम दूसरी अति पर धक्का दे देता। दस दिन इतना खिलाया कि आप रो रहे थे, आप हाथ-पैर जोड़ रहे थे, कि अब और न खिलाएं। ग्यारहवें दिन सुबह उसने कहा कि खाना बंद--गैप को बड़ा किया उसने। उस खाना बंद करने में आपको अभी तक भोजन का स्मरण था, अब भोजन एकदम बंद।

गुरजिएफ गर्म पानी में नहलाता, इतना कि आपको जलने लगे, और फिर ठंडे फव्वारे के नीचे खड़ा कर देता और कहता--हमारे कारण, बी अवेयर ऑफ द गैप। वह जो गर्म पानी में शरीर तप्त हो गया, हमारे कारण पसीना-पसीना हो गया, फिर एकदम ठंडे पानी में डाल दिया बर्फीले। अक्सर वह ऐसा करता है कि आग की अंगीठियां जला कर बिठा देता, बाहर बर्फ पड़ रही, पसीना-पसीना हो जाते हैं, आप चिल्लाने लगते हैं कि मर जाऊंगा, जल जाऊंगा, मुझे बाहर निकालो, मगर वह न मानता। अचानक वह दरवाजा खोलता और कहता--भागो, सामने की झील में बर्फीले में कूद जाओ, और कहता, बीच में जो संक्रमण का क्षण है, उसका ध्यान रखना, और न मालूम कितने लोगों को वह गैप दिखाई पड़ा। दिखाई पड़ेगा।

महावीर के अनशन में भी वही प्रयोग है। मध्य का बिंदु ख्याल में आ जाए तो जब एक शरीर से दूसरे शरीर पर बदलते हैं, बदलाहट करते हैं--जैसे एक नाव से कोई दूसरी नाव पर बदलाहट कर रहा हो, एक क्षण तो दोनों नाव छूट जाती हैं, एक क्षण तो वह बीच में होता है, छलांग लगाई, अभी पहली नाव से हट गया और दूसरी नाव में नहीं पहुंचा--अभी झील के ऊपर है--ठीक वैसी ही छलांग भीतर अनशन में लगती है। और इस छलांग के क्षण में अगर आप होश से भर जाएं, जाग्रत होकर देख लें तो आपको पहली बार एक क्षण भर के लिए एक जरा सा अनुभव, एक दृष्टि, एक द्वार खुलता हुआ मालूम पड़ेगा। वही अनशन का उपयोग है। लेकिन जैन साधु है, वह अनशन का अभ्यास कर लेता है, उसे वह कभी नहीं मिलेगा। वह अभ्यास की बात नहीं है। वह आकस्मिक प्रयोग है। अभ्यास तो उसी बात को मार डालेगा जिस बात के लिए प्रयोग है। इसलिए भूल कर अनशन का अभ्यास मत करना। आकस्मिक, अचानक, छलांग लगा लेना एक अति से दूसरी अति पर ताकि बीच का हिस्सा ख्याल में आ जाए।

अगर आपको विश्राम में जाना हो तो किताबें हैं जो आपको समझाती हैं कि बस लेट जाएं, एंड जस्ट रिलैक्स और विश्राम करें। आप कहेंगे, कैसे? अगर मालूम ही होता, जस्ट रिलैक्स इतना आसान होता तो हम पहले ही कर गए होते। आप कहते हैं कि लेट जाओ, रिलैक्स कर जाओ, विश्राम में चले जाओ। कैसे चले जाएं? लेकिन झेन फकीर ऐसी सलाह नहीं देते जापान में। जो आदमी नहीं सो पाता, विश्राम नहीं कर पाता, वह उससे कहते हैं--पहले, बी टेंस ए.ज मच ए.ज यू कैन। हाथ पैरों को खींचो, जितने मस्तिष्क को खींच सकते हो, खींचो, हाथ पैरों को जितना तनाव दे सकते हो, दो, बिल्कुल पागल की तरह अपने शरीर के साथ व्यवहार करो। जितने तुम तन सकते हो, तनो। रिलैक्स भर मत होना, तनो, बी टेंस। वे कहते हैं--मस्तिष्क को जितना सिकोड़ सकते हो, माथे की रेखाएं जितनी पैदा कर सकते हो, करो। सारे अंगों को ऐसे सिकोड़ लो कि जैसे कि आखिरी क्षण आ गया, सारी शक्ति को सिकोड़ कर खींच डालो, और जब एक शिखर आता है तनाव का, तब झेन फकीर कहता है--नाउ रिलैक्स, अब छोड़ दो। आप एक अति से ठीक दूसरी अति में गिर जाते हैं। और जब

आप एक अति से दूसरी अति में गिरते हैं तो बीच में वह क्षण आता है मध्य का, जहां स्वयं का पहला स्वाद मिलता है।

इसके बहुत प्रयोग हैं, लेकिन सब प्रयोग एक अति से दूसरी अति में जाने के हैं। कहीं से भी एक अति से दूसरी अति में प्रवेश कर जाओ। अगर अभ्यास हो गया तो मध्य का बिंदु छोटा हो जाता है, इतना छोटा हो जाता है कि पता भी नहीं चलता। उसका फिर कोई बोध नहीं होता।

अनशन की कुछ और दो तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए कि महावीर का जोर अनशन पर बहुत ज्यादा था। कारण क्या होंगे? एक तो मैंने यह कहा, यह तो उसका एसोटेरिक, उसका आंतरिक हिस्सा है, उसका गुह्यतम हिस्सा है। उसका राज, उसका सीक्रेट तो इसमें है। लेकिन और क्या बातें थीं? महावीर जानते हैं और जो भी प्रयोग किए हैं इस दिशा में--वे भी जानते हैं कि शरीर से, इस शरीर से आपका जो संबंध है वह भोजन के द्वारा है। इस शरीर और आपके बीच जो सेतु है, वह भोजन है। अगर यह जानना हो कि मैं यह शरीर नहीं हूं तो उस क्षण में जानना आसान होगा जब आपके शरीर में भोजन बिल्कुल नहीं है। जोड़ने वाला लिंक जब बिल्कुल नहीं है, तभी जानना आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। जोड़ने वाली चीज जितनी ज्यादा शरीर में मौजूद है, उतना ही जानना मुश्किल होगा। भोजन ही जोड़ता है, इसलिए भोजन के अभाव में नब्बे दिन के बाद टूट जाएगा संबंध--आत्मा अलग हो जाएगी, शरीर अलग हो जाएगा। क्योंकि बीच का जो जोड़ने वाला हिस्सा था वह अलग हो गया, वह बीच से गिर गया। तो महावीर कहते हैं--जब तक शरीर में भोजन पड़ा है, जब तक जोड़ है उस स्थिति में अपने को ले आओ--जब शरीर में भोजन बिल्कुल नहीं है तो तुम आसानी से जान सकोगे कि तुम शरीर से अलग हो, पृथक हो। आइडेंटिफिकेशन टूट सकेगा, तादात्म्य टूट सकेगा।

यह सच है। इसलिए जितना ही ज्यादा शरीर में भोजन होता है उतना ही शरीर के साथ तादात्म्य होता है--जितना ज्यादा शरीर में भोजन होता है उतना शरीर के साथ तादात्म्य होता है। इसलिए भोजन के बाद नींद तत्काल आनी शुरू हो जाती है। शरीर के साथ तादात्म्य बढ़ जाता है तब मूर्च्छा बढ़ जाती है। शरीर के साथ तादात्म्य टूट जाता है तो होश बढ़ता है। इसलिए उपवासे आदमी को नींद आना बड़ा मुश्किल होता है। बिना खाए रात नींद नहीं आती। नींद मुश्किल हो जाती है।

इससे तीसरी बात ख्याल में ले लें--महावीर का सारा का सारा प्रयोग जागरण का है, अमूर्च्छा का है, होश का, अवेयरनेस का है। तो महावीर कहते हैं--भोजन चूंकि मूर्च्छा को बढ़ाता है, तंद्रा पैदा करता है, भोजन के बाद नींद अनिवार्य हो जाती है इसलिए भोजन न लिया गया हो, भोजन न किया गया हो, तो इससे उलटा होगा। होश बढ़ेगा, अवेयरनेस बढ़ेगा, जागरण बढ़ेगा। यह तो हम सब का अनुभव है। एक अनुभव तो हम सब का है कि भोजन के बाद नींद बढ़ती है। रात अगर खाली पेट सो कर देखें तो पता चल जाएगा कि नींद मुश्किल हो जाती है। बार-बार टूट जाती है।

पेट भरा हो तो नींद बढ़ती है, क्यों? तो उसका वैज्ञानिक कारण है। शरीर के अस्तित्व के लिए भोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण चीज है--सर्वाधिक, आपकी बुद्धि से भी ज्यादा। एक दफा बिना बुद्धि के चल जाएगा।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को चोरों ने एक दफा घेर लिया। और उन्होंने कहा--जेब खाली करते हो, नहीं, तो खोपड़ी में पिस्तौल मार देंगे। मुल्ला ने कहा कि बिना खोपड़ी के चल जाएगा लेकिन खाली जेब के कैसे चलेगा? मुल्ला ने कहा कि बिना खोपड़ी के चल जाएगा। बहुत से लोग मैंने देखे हैं, बिना खोपड़ी के चला रहे हैं, लेकिन खाली जेब नहीं चलेगा। तुम खोपड़ी में गोली मार दो।

चोर बहुत हैरान हुए होंगे, लेकिन मुल्ला ने ठीक कहा; हम भी यही जानते हैं।

ऐसी कथा है कि मुल्ला का आपरेशन किया गया मस्तिष्क का। एक डाक्टर ने नई चिकित्सा विधि विकसित की थी जिसमें वह पूरे मस्तिष्क को निकाल लेता, उसे ठीक करता और वापस मस्तिष्क में डालता। जब वह मस्तिष्क को निकाल कर दूसरे कमरे में ठीक करने गया और जब ठीक करके लौटा तो देखा कि मुल्ला जा चुका था। छह साल बाद मुल्ला लौटा। वह डाक्टर परेशान हो गया था। उसने कहा कि तुम इतने दिन रहे

कहां? और तुम भाग कैसे गए और इतने दिन तुम बचे कैसे? वह खोपड़ी तो तुम्हारी मेरे पास रखी है। मुल्ला ने कहा--नमस्कार! उसके बिना बड़े मजे से दिन कटे और मुझे इलेक्शन में चुन लिया गया, तो मैं दिल्ली में था। राजधानी से लौट रहा हूं। और अब जरूरत नहीं है, अब क्षमा करें। सिर्फ यही कहने आया हूं कि अब आप परेशान न हों, आप संभालें।

प्रकृति भी आपकी बुद्धि की फिकर में नहीं है, आपके पेट की फिकर में है। इसलिए जैसे ही पेट में भोजन पड़ता है, आपके शरीर की सारी ऊर्जा पेट के भोजन को पचाने के लिए दौड़ जाती है। आपके मस्तिष्क की ऊर्जा जो आपको जाग्रत रखती है, वह पेट की तरफ उतर जाती है, वह पेट को पचाने में लग जाती है। इसलिए आपको तंद्रा मालूम होती है। यह वैज्ञानिक कारण है। इसलिए आपको तंद्रा मालूम होती है क्योंकि आपके मस्तिष्क की ऊर्जा, जो मस्तिष्क में काम आती वह अब पेट में भोजन पचाने में काम आती है, इसलिए जो लोग भी इस पृथ्वी पर मस्तिष्क से अधिक काम लेते हैं, उनका भोजन रोज-रोज कम होता चला जाता है। जो लोग मस्तिष्क से काम नहीं लेते, उनका भोजन बढ़ता चला जाता है क्योंकि वही जीवन रह जाता, और कोई जीवन नहीं रह जाता।

महावीर ने यह अनुभव किया कि जब भोजन बिल्कुल नहीं होता शरीर में, तो प्रज्ञा अपनी पूरी शुद्ध अवस्था में होती है क्योंकि तब सारे शरीर की ऊर्जा मस्तिष्क को मिल जाती है, क्योंकि पेट में कोई जरूरत नहीं रह जाती पचाने की। इसलिए महावीर को और आगे समझेंगे तो हमें ख्याल में आ जाएगा कि महावीर कहते थे कि भोजन बिल्कुल बंद हो, शरीर की सारी क्रियाएं बंद हों, शरीर बिल्कुल मूर्ति की तरह ठहरा हुआ रह जाए, हाथ भी हिले न, अंगुली भी व्यर्थ न हिले, सब मिनिमम पर आ जाए, सब न्यूनतम पर आ जाए क्रिया, तो शरीर की पूरी ऊर्जा जो अलग-अलग बंटी है वह मस्तिष्क को उपलब्ध हो जाती है और मस्तिष्क पहली दफा जागने में समर्थ होता है। नहीं तो जागने में समर्थ नहीं होता।

अगर महावीर ने भोजन में भी पसंदगियां कीं कि शाकाहार हो, मांसाहार न हो, तो वह सिर्फ अहिंसा ही कारण नहीं था, अहिंसा एक कारण था। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कारण दूसरा था और वह यह था कि मांसाहार पचने में ज्यादा शक्ति मांगता है और बुद्धि की मूर्च्छा बढ़ती है। अहिंसा अकेला कारण होता तो महावीर कह सकते थे कि मरे हुए जानवर का मांस लेने में कोई हर्जा नहीं है, बुद्ध ने कहा था। अगर अहिंसा ही एक मात्र कारण है, तो मार कर मत क्योंकि मारने में हिंसा है, मांस खाने में तो कोई हिंसा नहीं है! अब एक जानवर मर गया है, हम तो मार नहीं रहे, मर गया है, अब तो मांस खा रहे हैं, तो मांस खाने में कौन सी हिंसा है? मरे हुए के मांस खाने में कोई भी हिंसा नहीं है। इसीलिए बुद्ध ने आज्ञा दे दी, मरे हुए जानवर का मांस खाया जा सकता है। हिंसा तो मारने में थी। लेकिन महावीर ने मरे हुए जानवर का मांस खाने की भी आज्ञा नहीं दी। क्योंकि महावीर का प्रयोजन मात्र अहिंसा नहीं है। महावीर का उससे भी गहरा प्रयोजन यह है कि मांस पचने में ज्यादा शक्ति मांगता है, शरीर को ज्यादा भारी कर जाता है, पेट को ज्यादा महत्वपूर्ण कर जाता है और मस्तिष्क की ऊर्जा क्षीण होती है, तंद्रा गहरी होती है।

इसलिए महावीर ने ऐसे हलके भोजन की सलाह दी है जो कम से कम शक्ति मांगे और मस्तिष्क की ऊर्जा कम न हो। यह मस्तिष्क में ऊर्जा का प्रवाह बना रहे तो ही आप जाग्रत रह सकते हैं, अभी जिस स्थिति में आप हैं। इसलिए इसको बाह्य-तप कहा है, इसको आंतरिक तप नहीं कहा। जो आदमी आंतरिक तप को उपलब्ध हो जाएगा वह तो नींद में भी जागा रहता है, उसका तो कोई सवाल नहीं है। जो आदमी आंतरिक तप को उपलब्ध हो जाता है उसे तो आप शराब भी पिला दें तो भी होश में होता है। उसे तो मार्फिया दे दें तो भी शरीर ही सुस्त हो जाता है, शरीर ही ढीला पड़ जाता है। भीतर उसकी ज्योति जागती रहती है। उसकी प्रज्ञा पर कोई भेद नहीं पड़ता।

लेकिन हमारी हालत ऐसी नहीं है। हमें तो जरा सा, भोजन का एक टुकड़ा भी हमारी कांशसनेस को बदलता है, हमारी चेतना को बदलता है--जरा सा एक टुकड़ा हमारी चेतना को डांवाडोल कर देता है। हम भीतर और हो जाते हैं। तो महावीर ने कहा है--इसे पहला तप कहा है, बाह्य-तप में। चेतना को बढ़ाना है तो जब भोजन शरीर में नहीं है, आसानी से बढ़ाव हो सकेगा। छोटी-छोटी बातों के परिणाम होते हैं--छोटी-छोटी बातों के परिणाम होते हैं, क्योंकि हम जहां जीते हैं वहां हम छोटी-छोटी चीजों से ही भरे और बंधे हुए हैं। जिस दिन भी हम आदमी को भोजन की जरूरत से मुक्त कर सकेंगे उसी दिन आदमी परिपूर्ण रूप से चेतना से भर जाएगा। हम पृथ्वी से नहीं बंधे हैं, पेट से बंधे हैं। हमारा गहरा बंधन पदार्थ से नहीं है, ठीक कहें तो भोजन से है। जिस मात्रा में आप भोजन के लिए आतुर हैं, उसी मात्रा में आप मूर्च्छित होंगे, स्लीपी होंगे, और आपके भीतर जागरण को लाने में अड़चन पड़ेगी, कठिनाई पड़ेगी।

यह सवाल इतना ही नहीं है कि भोजन छोड़ दिया। यह तो सिर्फ बाह्य रूप है। भीतर चेतना बढ़े। तो चेतना कैसे बढ़े, उसको हम आंतरिक तप में समझ पाएंगे कि चेतना कैसे बढ़े। लेकिन भोजन छोड़ कर कभी-कभी चेतना बढ़ाने का प्रयोग कीमती है। लेकिन हम जब भोजन छोड़ते हैं तो चेतना वगैरह नहीं बढ़ती, केवल भोजन का चिंतन बढ़ता है। उसका कारण है कि हम भोजन भी छोड़ते हैं तो हमें यह पता नहीं कि हम किसलिए छोड़ते हैं। हमें यह बताया जा रहा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना ही पुण्य है। वह बिल्कुल पागलपन है। अकेला भोजन छोड़ देना पुण्य नहीं है। भोजन छोड़ देने के पीछे जो रहस्य है उसमें पुण्य छिपा है। अगर आपने सोचा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना पुण्य है तो भोजन छोड़ कर आप भोजन का चिंतन करते रहेंगे, क्योंकि भीतर का जो असली तत्व है उसका तो आपको कोई पता नहीं है। आप बैठ कर भोजन का चिंतन करेंगे। और ध्यान रहे, भोजन के चिंतन से भोजन ही बेहतर है, क्योंकि भोजन का चिंतन बहुत खतरनाक है। उसका मतलब यह हुआ कि पेट का काम आप मस्तिष्क से ले रहे हैं जो कि बहुत कंप्यूजन पैदा करेगा। आपके पूरे व्यक्तित्व को रुग्ण कर जाएगा। इस पर हम पीछे बात करेंगे, क्योंकि दूसरे सूत्र पर, महावीर इस पर बहुत जोर देंगे।

भोजन का चिंतन भोजन से बदतर है, क्योंकि भोजन तो पेट करता है और चिंतन मस्तिष्क करता है। मस्तिष्क का काम नहीं है, भोजना। अच्छा है, पेट को ही अपना काम करने दें। हां, अगर मस्तिष्क में भोजन का चिंतन न चले, तो ही अनशन का कोई उपयोग है, तब, जब भोजन भी नहीं और भोजन का चिंतन भी नहीं।

आपको पता है कि आपके चिंतन के दो ही हिस्से हैं, या तो काम, या भोजना। या तो कामवासना मन को घेरे रहती है, या स्वाद की वासना मन को घेरे रहती है। गहरे में तो कामवासना ही है क्योंकि भोजन के बिना कामवासना संभव नहीं है। अगर भोजन आपका कम कर दिया जाए तो कामवासना को मुश्किल हो जाती है, कठिनाई हो जाती है। तो गहरे में तो कामवासना ही घेरे रहती है। चूंकि भोजन कामवासना को शक्ति देता है इसलिए भोजन घेरे रहता है। ऊपर से हमें भोजन का चिंतन चलता रहता है। महावीर से पूछेंगे तो वे कहेंगे--जो आदमी भोजन में बहुत आतुर है वह आदमी कामवासना से भरा होगा। वह भोजन लक्षण है। क्योंकि भोजन शक्ति देता है, काम की शक्ति को बढ़ाता है, और कामवासना में दौड़ाता है। तो महावीर कहेंगे--जो भोजन के चिंतन से भरा है, भोजन की आकांक्षा से भरा है वह आदमी कामवासना से भरा है। भोजन की वासना छूटे तो कामवासना शिथिल होनी शुरू हो जाती है।

यह जो हम भोजन का चिंतन करते हैं, वह इसीलिए कि नहीं मिल रहा है भोजन तो हम सब्स्टीट्यूट पैदा करते हैं। ध्यान रहे, हमारे मन की गहरी से गहरी तरकीब, सब्स्टीट्यूट क्रिएशन है, परिपूरक पैदा करना है। अगर आपको भोजन नहीं मिलेगा तो मन आपसे भोजन का चिंतन करवाएगा। और उसमें उतना ही रस लेने लगेगा जितना भोजन में। बल्कि कभी-कभी ज्यादा रस लेगा, जितना भोजन में भी नहीं मिलता है। ज्यादा लेना पड़ेगा, क्योंकि जितना भोजन से मिलता है, उतना तो मिल नहीं सकता चिंतन से, इसलिए चिंतन में इतना रस लेना पड़ेगा कि जो भोजन की कमी रह गई है वह भी चिंतन के ही रस से पूरी होती हुई मालूम पड़े। इसलिए

अगर कामवासना से बचिएगा तो मन कामवासना का चिंतन करने लगेगा। रात कभी आप सोए हैं और आपने सपना देखा है कि जाकर पानी पी रहे हैं, वह सपना सिर्फ सब्स्टीट्यूट है। आपको प्यास लगी होगी, प्यासे सो गए होंगे। भीतर प्यास चल रही होगी और नींद टूटना नहीं चाहती, क्योंकि अगर आपको पानी पीना पड़ेगा तो जागना पड़ेगा। नींद टूटना नहीं चाहती, तो नींद एक सपना पैदा करती है कि आप पहुंच गए हैं पानी के, फ्रीज के पास--पानी पी रहे हैं। पानी पीकर मजे से फिर सो गए हैं। यह सपना पैदा किया।

यह सपना तरकीब है जिससे प्यास की जो पीड़ा है वह भूल जाए और नींद जारी रहे। आपके सब सपने बताते हैं कि आपने दिन में क्या-क्या नहीं किया। और कुछ नहीं बताते। आपके सपने के बिना आपकी जिंदगी को समझना मुश्किल है, इसलिए आज का मनोवैज्ञानिक आपसे नहीं पूछता कि दिन में आपने क्या किया, वह पूछता है--रात में आपने क्या सपना देखा? अब सोचें थोड़ा, आपके बाबत जानकारी आपके दिन के काम से मनोवैज्ञानिक नहीं लेता। वह आपसे नहीं पूछता कि आपने कुछ भी किया हो, दुकान चलाई कि मंदिर गए, उससे कोई मूल्य नहीं है। वह पूछता है--सपने में कहां गए? वह कहता है--सपने में आप आथेंटिक हो, प्रामाणिक हो, वहां से पता चलेगा कि आदमी कैसे हो? आपके जागने से कुछ पता नहीं चलेगा, वहां तो बहुत धोखाधड़ी है। जाना था वेश्यालय में, पहुंच गए मंदिर में। जागने में चल सकता है यह, सपने में नहीं चल सकता। सपने में यह धोखा आप नहीं कर सकते खड़ा, वेश्यालय में चले जाएंगे। सपने में आप ज्यादा सरल हैं, सीधे-साफ हैं।

इसलिए मनोवैज्ञानिक को--बेचारे को आपके सपने का पता लगाना पड़ता है, तभी आपके बाबत जानकारी मिलती है। आपसे आपके बाबत जानकारी नहीं मिलती। आपका जागना इतना झूठा है कि उससे कुछ पता नहीं चलता, आपकी नींद में उतरना पड़ता है कि आप नींद में क्या कर रहे हो। उससे पता चलेगा, आप आदमी कैसे हो, असली खोज क्या है आपकी? तो अगर आप दिन में उपवास किए तो उससे पता नहीं चलेगा। रात सपने में भोजन किए या नहीं, उससे पता चलेगा। अगर रात सपने में भोजन किए, दिन का अनशन बेकार गया, उपवास व्यर्थ हुआ। लेकिन जिस दिन आप उपवास करते हैं, उस दिन सपने में भोजन करना ही पड़ता है, अनिवार्य है। कहीं न कहीं निमंत्रण मिल जाता है, आप कर भी क्या सकते हैं? राजमहल में भोज हो जाता है, आप कर भी क्या सकते हैं। जाना पड़ता है।

चिंतन जो नहीं हो पा रहा है वास्तविक रूप से उसे पूरा करने की डेसपरेट कोशिश है--भोजन नहीं किया तो चिंतन कर रहे हैं। और ध्यान रहे, भोजन करते तो पंद्रह मिनट में पूरा हो जाता, चिंतन से पंद्रह मिनट में नहीं चलेगा। पंद्रह मिनट का काम एक-सौ पचास घंटे चलाना पड़ेगा। चलता ही रहेगा, चलता ही रहेगा, क्योंकि तृप्ति तो मिलेगी नहीं भोजन की, रस तो मिलेगा नहीं भोजन का, शक्ति तो मिलेगी नहीं भोजन की, तो फिर चिंतन में ही उलझाए रखना पड़ेगा। इसलिए महावीर ने, इस चिंतन को अगर आपने किया, तो महावीर ने कहा है कि आप शरीर से करते हैं कोई काम या मन से, इसमें मैं भेद नहीं करता। आपने चोरी की, या चोरी के बाबत सोचा, मेरे लिए बराबर है। पाप हो गया। यह सवाल नहीं है कि आपने हत्या की, या हत्या के संबंध में सोचा।

अदालत फर्क करती है--अगर आप हत्या के संबंध में सोचें, कोई अदालत आपको सजा नहीं दे सकती। आप खूब सोचें मजे से। कोई अदालत यह नहीं कह सकती कि आप जुर्मी हैं, अपराधी हैं। आप अदालत में कह भी सकते हैं--हम हत्या का बहुत रस लेते हैं, सपने भी देखते हैं, और दिन-रात सोचते हैं कि इसकी गर्दन काट दें, उसकी गर्दन काट दें, वह काटते ही रहते हैं। चाहे कहें या न कहें। अदालत आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती है, आप कानून की पकड़ के बाहर हैं। कानून सिर्फ कृत्य को पकड़ सकता है, कर्म को पकड़ सकता है

लेकिन महावीर कहते हैं--धर्म, भाव को भी पकड़ता है। धर्म की अदालत के बाहर नहीं हो सकते। भाव पर्याप्त हो गया। महावीर कहते हैं--कृत्य तो सिर्फ भाव की बाह्य छाया है, मूल तो भाव है। अगर मैंने हत्या

करनी चाही तो मैंने तो हत्या कर ही दी, बाहर की परिस्थितियों ने करने दी, यह बात दूसरी है। पुलिसवाला खड़ा था, अदालत खड़ी थी, सजा का डर था, फांसी का तख्ता था, इसलिए नहीं की। यह दूसरी बात है। बाहर की परिस्थितियों ने नहीं करने दी, यह दूसरी बात है। मेरी तरफ से मैंने कर दी। अगर परिस्थिति सुगम होती, सुविधापूर्ण होती, पुलिसवाला न होता या पुलिसवाला रिश्तेदार होता, या अदालत अपनी होती, मजिस्ट्रेट अपना होता, कानून अपना चलता होता तो मैंने कर दी होती। फिर कोई मुझे रोकने वाला नहीं।

न करने का कारण बाहर से आ रहा है, करने का कारण भीतर से आ रहा है। भीतर की ही तौल है, अंततः आप तौले जाएंगे, आपकी परिस्थितियां नहीं तौली जाएंगी। यह नहीं पूछा जाएगा कि जब आप हत्या करना चाह रहे थे तो आपके पास बंदूक नहीं थी इसलिए नहीं कर पाए। भाव पर्याप्त है, हत्या हो गई।

अगर आपने भोजन का चिंतन किया, उपवास नष्ट हो गया। तब तो बड़ी कठिनाई है। इसका मतलब यह हुआ कि आप तब तक उपवास न कर पाएंगे जब तक आपका चिंतन पर नियंत्रण न हो, नहीं कर पाएंगे। इसलिए मैंने कहा--चर्चा के लिए हमने नंबर एक पर रखा है, लेकिन इसको आप अकेला न कर पाएंगे जब तक चिंतन पर नियंत्रण न हो, जब तक चिंतन आपके पीछे न चलता हो, जब तक जो आप चलाना चाहते हो चिंतन में, वही न चलता हो। अभी तो हालत यह है कि चिंतन जो चलाना चाहता है वहीं आपको चलना पड़ता है। जहां ले जाता है मन, वहीं आपको जाना पड़ता है। नौकर मालिक हो गए हैं।

सुना है मैंने कि अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति रथचाइल्ड, सुबह-सुबह जो भी भिखमंगे उसके पास आते थे उन्हें कुछ न कुछ देता था। एक भिखमंगा नियमित रूप से बीस वर्षों से आता था। वह रोज उसे एक डालर देता था और उसके बूढ़े बाप के लिए भी एक डालर देता था। बाप कभी आता था, कभी नहीं आता था, बहुत बूढ़ा था, इसलिए बेटा ही ले जाता था। धीरे-धीरे वह भिखारी इतना आश्वस्त हो गया कि अगर दो-चार दिन न आ पाता तो चार दिन के बाद अपना पूरा बिल पेश कर देता कि पांच दिन हो गए हैं, मैं आ नहीं पाया चार दिन। वह चार डालर वसूल करता जो उसको मिलने चाहिए थे। फिर उसका बाप मर गया। रथचाइल्ड को पता चला कि उसका बाप मर गया है। लेकिन उसने, फिर भी उसने अपने बाप का भी डालर लेना जारी रखा। महीने भर तक रथचाइल्ड ने कुछ न कहा, क्योंकि इसका बाप मरा है, और सदमा देना ठीक नहीं है--देता रहा। महीने भर बाद उसने कहा कि अब तो हद होई। अब तुम्हारा बाप मर गया, उसका डालर क्यों लेते हो?

उसने कहा: क्या समझते हो? बाप की दौलत का मैं हकदार हूं कि तुम? हू इ.ज दि हेयर। मेरा बाप मरा कि तुम्हारा बाप मरा? बाप मेरा मरा है, उसकी संपत्ति का मालिक मैं हूं।

रथचाइल्ड ने अपनी जीवनकथा में लिखवाया है कि भिखारी भी मालिक हो जाते हैं, अभ्यास से। चकित हो गया रथचाइल्ड, उसने कहा--ले जा भाई। तू दो डालर ले और अपने बेटे की वसीयत लिख जाना। जब तक हम हैं, देते रहेंगे, तेरे बेटे को भी देना पड़ेगा क्योंकि यह वसीयत है।

चिंतन सिर्फ आपका नौकर है, लेकिन मालिक हो गया है। सभी इंद्रियां आपकी नौकर हैं, लेकिन मालिक हो गई हैं। अभ्यास लंबा है। आपने कभी अपनी इंद्रियों को कोई आज्ञा नहीं दी। आपकी इंद्रियों ने आपको आज्ञा दी है।

तप का एक अर्थ आपको कहता हूं--तप का अर्थ है: अपनी इंद्रियों की मालिकियत, उनको आज्ञा देने की सामर्थ्य। पेट कहता है, भूख लगी है, आप कहते हैं, ठीक है, लगी है, लेकिन मैं आज भोजन लेने को राजी नहीं हूं। आप पेट से अलग हुए। मन कहता है कि आज भोजन का चिंतन करेंगे, और आप कहते हैं कि नहीं, जब भोजन ही नहीं किया तो चिंतन क्यों करेंगे? चिंतन नहीं करेंगे। तो ही आप अनशन कर पाएंगे और उपवास कर पाएंगे। अन्यथा कोई फर्क नहीं लगेगा। पेट कहता रहेगा, भूख लगी है, मन चिंतन करता रहेगा। आप और उलझ

जाएंगे, और परेशान हो जाएंगे। और जैसा वह चार दिन के बाद अपना बिल लेकर हाजिर हो जाता था भिखारी, चार दिन के उपवास के बाद पेट अपना बिल लेकर हाजिर हो जाएगा कि चार दिन भोजन नहीं किया, अब ज्यादा कर डालो। तो पर्युषण के बाद दस दिन में सब पूरा कर डालेंगे। दुगुने तरह से बदला ले लेंगे। जो-जो चूक गया, उसको ठीक से भरपूर कर लेंगे। अपनी जगह वापस खड़े हो जाएंगे।

उपवास हो सकता है तभी जब चिंतन पर आपका वश हो। लेकिन चिंतन पर आपका कोई भी वश नहीं है। आपने कभी कोई प्रयोग नहीं किया। हमें चिंतन की तो ट्रेनिंग दी गई है, हमें विचार का तो प्रशिक्षण दिया गया है, लेकिन विचार की मालिकियत का कोई प्रशिक्षण नहीं है। आपको स्कूल में, कालेज में विचार करना सिखाया जा रहा है, दो और दो जोड़ना सिखाया जा रहा है--सब सिखाया जा रहा है। एक बात नहीं सिखाई जा रही है कि दो और दो जब जोड़ना हो तभी जोड़ना, जब न जोड़ना हो तो मत जोड़ना। लेकिन अगर मन दो और दो जोड़ना चाहे तो आप रोक नहीं सकते। आप कोशिश करके देख लें, आज घर पर। कहें कि हम दो और दो न जोड़ेंगे और मन दो और दो जोड़ेगा, उसी वक्त जोड़ेगा। वह आपको डिफाई करेगा, वह कहेगा तुम हो क्या? हम दो और दो चार होते हैं। आप आज कोशिश करना कि दो और दो हमें नहीं जोड़ना है, फौरन मन कहेगा, चार। आप कहना हमें जोड़ना नहीं है, वह कहेगा चार। वह आपको डिफाई करता है। और उसको डिफाई करना चाहिए। क्योंकि उसकी मालिकियत आप छीन रहे हैं। अब तक आपने उसको मालिक बनाकर रखा है। एक दिन में यह नहीं हो जाएगा। लेकिन अगर इसके प्रति सजगता आ जाए और यह ख्याल आ जाए कि मैं अपनी ही इंद्रियों का गुलाम हो गया हूं तो शायद थोड़ी यात्रा करनी पड़े--थोड़ी यात्रा करनी पड़े इंद्रियों के विपरीत। अनशन, वैसी ही यात्रा की शुरुआत है।

महावीर कहते हैं, ठीक। आज नहीं, बात समाप्त हो गई। लेकिन आपके नहीं और हां में बहुत फर्क नहीं है। आपके व्यक्तित्व में हां और नहीं में बहुत फर्क नहीं है। आपका बेटा आपसे कहता है--यह खिलौना लेना है। आप कहते हैं--नहीं। बड़ी ताकत से कहते हैं, लेकिन बेटा वहीं पैर पटकता खड़ा रहता है, वह कहता है कि लेंगे। दुबारा आप कहते हैं--मान जा, नहीं लेंगे। आपकी ताकत क्षीण हो गई है। आपका नहीं, हां की तरफ चल पड़ा। वह बेटा पैर पटकता ही रहता है। वह कहता, लेंगे। आखिर आप लेते हैं। बेटा जानता है कि आपकी नहीं का कुल इतना मतलब है कि तीन चार दफे पैर पटकना पड़ेगा और हां हो जाएगी। और कुछ मतलब नहीं ज्यादा। छोटे से छोटे बच्चे भी जानते हैं कि आपके "न" की ताकत कितनी है। एंड हाउ मच यू मीन बाई सेइंग नो। बच्चे जानते हैं और आपके न को कैसे काटना है, यह भी वे जानते हैं। और काट देते हैं। आपकी न को हां में बदल देते हैं। और जितने जोर से आप कहते हैं नहीं, उतने जोर से बच्चा जानता है कि यह कमजोरी की घोषणा है। यह आप डरवाने की कोशिश कर रहे हैं। डरे हुए अपने से ही हैं कि कहीं हां न निकल जाए। वह बच्चा समझ जाता है, जोर से बोले हैं, ठीक है, अभी थोड़ी देर में ठीक हो जाएंगे। नहीं, जो आदमी सच में शक्तिशाली है वह "जोर से नहीं" कहीं कहता है, वह शांति से कह देता है, "नहीं"। और बात समाप्त हो गई।

आपकी इंद्रियां भी ठीक इसी तरह का टानट्रम सीख लेती हैं जैसा बच्चे सीख लेते हैं। आप कहते हैं--आज भोजन नहीं; तो आप हैरान होंगे, अगर आप रोज ग्यारह बजे भोजन करते हैं तो आपको रोज ग्यारह बजे भूख लगती है। लेकिन अगर आपने कल रात तय किया कि कल उपवास करेंगे तो छह बजे से भूख लगती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। ग्यारह बजे रोज भूख लगती थी, छह बजे कभी नहीं लगती थी। हुआ क्या? क्योंकि अभी आपने, अभी तो कुछ किया नहीं, अभी तो अनशन भी शुरू नहीं हुआ, वह ग्यारह बजे शुरू होगा। सिर्फ ख्याल, रात में तय किया कि कल अनशन करना है, उपवास करना है, सुबह से भूख लगने लगी। सुबह से क्या, रात से शुरू हो जाएगी। वह आपके पेट ने आपके न को हां में बदलने की कोशिश उसी वक्त शुरू कर दी। उसने कहा, तुम क्या समझते हो? ग्यारह बजे तक वह नहीं रुकेगा। भूख इतने जोर से कभी नहीं लगती थी। रोज तो ऐसा था असल में कि ग्यारह बजे खाते थे इसलिए खाते थे। वह एक समय का बंधन था। लेकिन आज भूख बड़े जोर

से लगेगी, और अभी ग्यारह नहीं बजे इसलिए वस्तुतः तो कहीं कोई फर्क नहीं पड़ा है। रोज भी ग्यारह बजे तक भूखे रहते थे, कोई फर्क नहीं पड़ा है कहीं भी लेकिन चित्त में फर्क पड़ गया और इंद्रियां अपनी मालकियत कायम करने की कोशिश करेंगी। वह कहेंगी कि नहीं, बहुत जोर से भूख लगी है, इतने जोर से कभी नहीं लगी थी, ऐसी भूख लगी है।

निश्चित ही कोई भी अपनी मालकियत आसानी से नहीं छोड़ देता। एक बार मालकियत दे देना आसान है, वापस लेना थोड़ा कठिन पड़ता है। वही कठिनता तपश्चर्या है। लेकिन, अगर आप सुनिश्चित हैं और आपके न का मतलब न, और हां का मतलब हां होता है--सच में होता है, तो इंद्रियां बहुत जल्दी समझ जाती हैं। बहुत जल्दी समझ जाती हैं कि आपके न का मतलब न है और आपके हां का मतलब हां है।

इसलिए मैं आपसे कहता हूं, संकल्प अगर करना है तो फिर तोड़ना मत, अन्यथा करना ही मत। क्योंकि संकल्प करके तोड़ना आपको इतना दुर्बल कर जाता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। संकल्प करना ही मत, वह बेहतर है। क्योंकि संकल्प टूटेगा नहीं तो उतनी दुर्बलता नहीं आएगी। एक भरोसा तो रहेगा कि कभी करेंगे तो पूरा कर लेंगे। लेकिन संकल्प करके अगर आपने तोड़ा तो आप अपनी ही आंखों में, अपने ही सामने दीन-हीन हो जाएंगे। और सदा के लिए वह दीनहीनता आपके पीछे रहेगी। और जब भी आप दुबारा संकल्प करेंगे, तब आप पहले से ही जानेंगे कि यह टूटेगा। यह चल नहीं सकता। छोटे संकल्प से शुरू करें, बहुत छोटे संकल्प से शुरू करें।

गुरजिएफ बहुत छोटे संकल्प से शुरू करवाता था। वह कहता, इस हाथ को ऊंचा कर लो। अब इसको नीचे मत करना। जैसे ही तय किया कि नीचे मत करना, पूरा हाथ कहता है नीचे करो। अब इसको नीचे मत करना। अब चाहे कुछ भी हो जाए इसको नीचे मत करना। जब तक कहता था गुरजिएफ, मैं न कहूं हाथ को नीचे मत करना। हाथ दलीलें करेगा। आप सोचेंगे, हाथ कैसे दलीलें करेगा? हाथ दलील करता है। वह आर्ग्यु करेगा। वह कहेगा--बहुत थक गया हूं, अब तो नीचे कर लो। वह कहेगा, गुरजिएफ यहां कहां देख रहा है, एक दफे ऊपर करके नीचे कर लो। उसकी तो पीठ है। और ध्यान रखें, गुरजिएफ जब भी ऐसी आज्ञा देता था तो पीठ करके बैठता था। हाथ पच्चीस आर्ग्युमेंट खोजेगा। वह कहेगा--ऐसे में कहीं लकवा न लग जाए। और फिर हाथ कहेगा इससे फायदा भी क्या, हाथ ऊंचे करने से कोई भगवान मिलने वाला है? अरे हाथ तो शरीर का हिस्सा है, इससे आत्मा का क्या संबंध है?

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं--कपड़े बदलने से क्या होगा? आत्मा बदलनी है। कपड़ा बदलने की हिम्मत नहीं है, आत्मा बदलनी है। वे कहते हैं--आत्मा बदलने से होगा। तो कपड़े बदलने से क्या होगा? वे सोच रहे हैं यह दलील वे दे रहे हैं, यह उनके कपड़े दे रहे हैं। यह दलील उनकी नहीं है, यह उनके कपड़ों की है। यह जो घर में साड़ियों का ढेर लगा हुआ है, वे साड़ियां कह रही हैं कि कपड़े से क्या होगा? लेकिन वे सोच रहे हैं कि बहुत आत्मिक खोज कर लाए। वे कह रहे हैं कि भीतर का परिवर्तन चाहिए, बाहर के परिवर्तन से क्या होगा। बाहर का परिवर्तन तक करने की सामर्थ्य नहीं जुटती, भीतर के परिवर्तन के सपने देख रहे हैं। बाहर इतना बाहर नहीं है जितना आप सोचते हैं। वह आपके भीतर तक फैला हुआ है। भीतर इतना भीतर नहीं है जितना आप सोचते हैं, वह आपके कपड़ों तक आ गया है। वह सब तरफ फैला हुआ है।

अपने को धोखा देना बहुत आसान है। जो भूखा नहीं रह सकता वह कहेगा अनशन से क्या होगा? भूखे मरने से क्या होगा? कुछ नहीं होगा। जो नग्न खड़ा नहीं हो सकता, वह कहेगा नग्न खड़े करने से क्या होगा? इससे क्या होने वाला है? उपवास से कुछ भी नहीं होगा, तो क्या भोजन करने से हो जाएगा? नग्न खड़े होने से नहीं होगा, तो क्या कपड़े पहनने से हो जाएगा? तो गेरुवा वस्त्र पहनने से नहीं होगा तो दूसरे रंग के वस्त्र पहनने से हो जाएगा? क्योंकि दूसरे रंग के वस्त्र पहनते वक्त उसने यह दलील कभी नहीं दी कि कपड़ों से क्या

होगा, लेकिन गेरुवा वस्त्र पहनते वक्त वही आदमी दलील लेकर आ जाता है कि कपड़े से क्या होगा? हमारा मन, हमारी इंद्रियां, हमारे कपड़े, हमारी चीजें, सब दलीलें देती हैं और हम रेशनेलाइज करते हैं।

ध्यान रहे, री.जन और रेशनेलाइजेशन में बहुत फर्क है। बुद्धिमत्ता में और बुद्धिमत्ता का धोखा खड़ा करने में बहुत फर्क है। और जब हाथ कहता है कि थक जाएंगे, मर जाएंगे--गुरजिएफ कहता है कि तुम नीचे मत करना, अगर हाथ थक जाएगा तो गिर जाएगा, तुम नीचे मत करना। थक जाएगा तो गिर जाएगा, तुम करोगे क्या? अगर हाथ सच में ही थक जाएगा तो रुकेगा कैसे? जब तक रुका है, तब तक तुम मत गिराना। तुम अपनी तरफ से मत गिराना। अगर हाथ गिरे तो तुम देख लेना कि गिर रहा है। पर तुम कोआपरेट मत करना, तुम सहयोग मत देना। पर बारीक है बात। हम बड़े धोखे से सहयोग दे सकते हैं। हम कह सकते हैं यह हाथ गिर रहा है, हम थोड़े ही गिरा रहे हैं। यह हाथ गिर रहा है, और आप भलीभांति जानते हैं कि यह गिर नहीं रहा है, आप गिरा रहे हैं। इतने भीतर अपने को साफ-साफ देखना पड़ेगा अपनी बेईमानियों को, अपनी वंचनाओं को, अपने डिसेप्शंस को। और जो आदमी अपनी वंचनाओं को नहीं देखता, उसके हां और न में फर्क नहीं रह जाता। वह न कहता है और हां कर लेता है। हां कहता है और न कर लेता है।

मुल्ला नसरुद्दीन का लड़का पैदा हुआ। बड़ा हुआ तो नसरुद्दीन ने सोचा कि क्या बनेगा, इसकी कुछ जांच कर लेनी चाहिए। उसने कुरान रख दी, पास एक शराब की बोतल रख दी, एक दस रुपए का नोट रख दिया और छोड़ दिया उसको कमरे में और छिप कर खड़ा हो गया। लड़का गया, उसने दस रुपये का नोट जेब में रखा, कुरान बगल में दबाई और शराब पीने लगा। नसरुद्दीन भागा, अपनी बीबी से बोला कि यह राजनीतिज्ञ हो जाएगा। कुरान पढ़ता तो सोचते धार्मिक हो जाएगा, शराब पीता तो सोचते अधार्मिक हो जाएगा, रुपया जेब में रखकर भाग गया होता तो सोचते व्यापारी हो जाएगा। यह पॉलिटिशियन हो जाएगा। यह कहेगा कुछ, करेगा कुछ, होगा कुछ। यह सब एक साथ करेगा।

हमारा चित्त ऐसा ही कर रहा है--धर्म भी कर रहा है, अधर्म भी सोच रहा है। जो कर रहा है, जो सोच रहा है, दोनों से कोई संबंध नहीं है, खुद कुछ और ही है। और यह सब जाल एक साथ है। तपश्चर्या इस जाल को काटने का नाम है और व्यक्तित्व को एक प्रतिमा देने की प्रक्रिया है--इस बात की कोशिश है कि व्यक्तित्व में एक स्पष्ट रूप निखर आए, एक आकार बन जाए। आप ऐसे विकृत कुछ भी आकार न रह जाएं, आप में एक आकार उभरे, आहिस्ता-आहिस्ता आप स्पष्ट होते जाएं, एक क्लेरिटी हो। अगर आपको नहीं भोजन लेना है तो नहीं लेना है, यह आपके पूरे व्यक्तित्व की आवाज हो जाए, बात खत्म हो गई। अब यह बात नहीं उठेगी जब तक नहीं लेना है।

महावीर तो बहुत अनूठा प्रयोग करते थे क्योंकि यह भी हो सकता है उसी के बचाव के लिए वह प्रयोग था। यह भी हो सकता है कि आपने तय कर लिया है कि चौबीस घंटे नहीं लेंगे भोजन और न सोचेंगे। तो मन कहता है--कोई हर्जा नहीं, चौबीस ही घंटे की बात है न। चौबीस घंटे बाद तो सोचेंगे, करेंगे। ठीक है किसी तरह चौबीस घंटे निकाल देंगे। मन इसके लिए भी राजी हो सकता है। क्योंकि इनडेफिनिट नहीं है मामला, डेफिनिट है, निश्चित है। चौबीस घंटे के बाद तो कर ही लेना है, तो चौबीस ही घंटे की बात है न! एक मजबूरी जैसा आप ढो लेंगे। लेकिन तब आपको उपवास की प्रफुल्लता न मिलेगी, बोझ होगा। तब उपवास का आनंद आपके भीतर न खिलेगा। वह एक्सटेसी, वह लहर आपके भीतर न आएगी जो इंद्रियों के ऊपर मालिकियत के होने से आती है। तब सिर्फ एक बोझ होगा कि चौबीस घंटे ढो लेना है। गुजार देंगे चौबीस घंटे। निकाल देंगे, समय को। काट लेंगे समय को स्थानक में, मंदिर में देरासर में, कहीं बैठ कर समय गुजार देंगे, किसी तरह निपटा ही देंगे।

लेकिन तब, तब अनशन नहीं हुआ। महावीर निश्चित न करते थे कि कब भोजन लेंगे। और अनिश्चय पर छोड़ते थे, नियति पर। बहुत हैरानी का प्रयोग था, वह महावीर ने अकेले ही इस पृथ्वी पर किया। वे कहते थे

कि भोजन मैं तब लूंगा जब ऐसी घटना घटेगी। तब घटना अपने हाथ में नहीं। रास्ते पर निकलूंगा अगर किसी बैलगाड़ी के सामने कोई आदमी खड़ा होकर रो रहा होगा, अगर बैल काले रंग के होंगे, अगर उस आदमी की एक आंख फूटी होगी और एक आंख से आंसू टपक रहा होगा, तो मैं भोजन ले लूंगा। और वह भी अगर वहीं कोई भोजन देने के लिए निमंत्रण दे देगा। नहीं तो आगे बढ़ जाऊंगा। अनेक दिन महावीर गांव में जाते, वे जो तय करके जाते थे--जो तय उन्होंने कर लिया था पहले दिन भोजन के छोड़ने के, वह पूरा नहीं होता, वे वापस लौट आते लेकिन वे बड़े आनंदित वापस लौटते, क्योंकि वे कहते कि जब नियति की ही इच्छा नहीं है तो हम क्यों इच्छा करें? जब कास्मिक, जब जागतिक शक्ति कहती है कि नहीं आज भोजन, तो बात खत्म हो गई। अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने, नियति जाने। वे वापस लौट आते। गांवभर रोता, गांवभर परेशान होता, क्योंकि गांव में अनेक लोग खड़े होते भोजन ले लेकर और अनेक इंतजाम करके खड़े होते।

अभी भी खड़े होते हैं, लेकिन अब जैन दिगंबर मुनि--वैसा प्रयोग करता है अभी भी--लेकिन वह सब जाहिर है कि वह क्या-क्या नियम लेता है। पांच-सात नियम जाहिर हैं, वह वही के वही लेता है, पांच-सात घरों में वे नियम पूरे कर देते हैं। किसी घर के सामने केले लटके होंगे। अब वह मालूम है। वे केले लटका लेते हैं सब लोग, अपने घर के सामने। कोई स्त्री सफेद साड़ी पहन कर भोजन के लिए निमंत्रण करेगी, वह मालूम है। अब पांच-सात नियम फिक्स्ड हो गए हैं। पांच-सात नियम पांच-सात घरों में लोग खड़े हो जाते हैं करके। अब जैन मुनि कभी बिना भोजन लिए नहीं लौटता। निश्चित ही वह महावीर से ज्यादा होशियार है। कभी नहीं लौटता खाली हाथ। तब तो उसको मिलता ही है, इसलिए पक्का मामला है उसको और उसको बनाने वाले, भोजन बनाने वालों में कोई न कोई सांठ-गांठ है। भोजन बनाने वालों को पता है, उसको पता है। वह वही नियम लेता है, वही भोजन बनाने वाले पूरा कर देते हैं। भोजन लेकर वह लौट जाता है। आदमी अपने को कितने धोखे दे सकता है!

महावीर की प्रक्रिया बहुत और है। वह यह थी--वे किसी को कहेंगे नहीं, वह उनके भीतर है बात। अब वह क्या है? कभी-कभी तीन तीन महीने महावीर को खाली, बिना भोजन लिए गांव से लौट जाना पड़ा। बात खत्म हो गई, पर इनडेफिनेट है। और जब मन के लिए कोई सीमा नहीं होती तो मन को तोड़ना बहुत आसान हो जाता है; जब मन के लिए सीमा होती है तो खींचना बहुत आसान होता है। एक ही घंटे की तो बात है, तो निकाल देंगे। चौबीस घंटे की बात है, गुजार देंगे लेकिन इनडेफिनिट। महावीर का जो अनशन था, उसकी कोई सीमा न थी। वह कब पूरा होगा कि नहीं होगा, कि यह जीवन का अंतिम होगा भोजन, इसके बाद नहीं होगा इसका भी कुछ पक्का पता नहीं। वह कल पर है, कल की बात है। कल गांव में वे जाएंगे--हो गया, हो गया; नहीं हुआ, नहीं हुआ; वापस लौट आएंगे, बात खत्म हो गई।

इसलिए महावीर ने उपवास और अनशन पर जैसे गहरे प्रयोग किए, इस पृथ्वी पर किसी ने कभी नहीं किए। मगर आश्चर्य की बात है कि इतने कठिन प्रयोग करके भी महावीर को फिर भी भोजन तो कभी-कभी मिल ही जाता था। बारह वर्ष में तीन सौ पैसठ बार भोजन मिला। कभी पंद्रह दिन बाद, कभी दो महीने बाद, कभी तीन महीने बाद, कभी चार महीने बाद, पर भोजन मिला। तो महावीर कहते थे--जो मिलने वाला है, वह मिल ही जाता है। और महावीर कहते थे--त्याग तो उसी का किया जा सकता है जो नहीं मिलने वाला है। उसका तो त्याग भी कैसे हो सकता है जो मिलने वाला ही है। और तब महावीर कहते थे--जो नियति से मिला है, उसका कर्म-बंधन मेरे ऊपर नहीं है। मेरा नहीं है कोई संबंध उससे। क्योंकि मैंने किसी से मांगा नहीं, मैंने किसी से कहा नहीं, छोड़ दिया अनंत के ऊपर। कि होगी जगत को कोई जरूरत मुझे चलाने की तो और चला लेगा। और नहीं होगी जरूरत तो बात खत्म हो गई। मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है। ध्यान रहे महावीर की सारी प्रक्रिया जीवेषणा छोड़ने की प्रक्रिया है। महावीर कहते हैं--मैं जीवित रहने के लिए कोई एषणा नहीं करता हूं। अगर इस

अस्तित्व को ही, अगर इस होने को ही जरूरत हो मेरी कोई, इंतजाम तुम जुटा लेना, वह मेरा इंतजाम नहीं है। और तुम्हें कोई जरूरत न रह जाए तो मेरी तरफ से जरूरत पहले ही छोड़ चुका हूं।

लेकिन आश्चर्य तो यही है कि फिर भी महावीर जीए चालीस वर्ष--स्वस्थ जीए, आनंद से जीए। इस भूख ने उन्हें मार न डाला। इस नियति पर छोड़ देने से वे दीन-हीन न हो गए। यह जीवेषणा को हटा देने से मौत न आ गई। जरूर बहुत से राज पता चलते हैं। हमारी यह चेष्टा कि मैं ही मुझे जिला रहा हूं, विक्षिप्तता है। और हमारा यह ख्याल कि जब तक मैं न मरूंगा, कैसे मरूंगा? नासमझी है। बहुत कुछ हमारे हाथ के बाहर है, उसे भी हम समझते हैं कि हमारे हाथ के भीतर है। जो हमारे हाथ के बाहर है उसे हाथ

के भीतर समझने से ही अहंकार का जन्म होता है। जो हमारे हाथ के बाहर है, उसे हाथ के बाहर ही समझने से अहंकार विसर्जित हो जाता है।

महावीर अपना भोजन भी पैदा नहीं करते। महावीर स्नान भी नहीं करते अपनी तरफ से। वर्षा का पानी जितना धुला देता है, धुला देता है। लेकिन बड़ी मजेदार बात है कि महावीर के शरीर से पसीने की दुर्गंध नहीं आती थी। आनी चाहिए, बहुत ज्यादा आनी चाहिए, क्योंकि महावीर स्नान नहीं करते हैं। पर आपने कभी ख्याल किया, सैकड़ों पशु पक्षी हैं, स्नान नहीं करते। वर्षा का पानी बस काफी है। उनके शरीर से दुर्गंध आती है। एक आदमी अकेला ऐसा जानवर है जो बहुत दुर्गंधित है, डीओडरेंट की जरूरत पड़ती है। रोज सुगंध छिड़को, डीओडरेंट साबुनों से नहाओ, सब तरह का इंतजाम करो, फिर भी पांच-सात मिनट किसी के पास बैठ जाओ तो असली खबर मिल जाती है।

आदमी अकेला जानवर है जो दुर्गंध देता है। महावीर के जीवन में जिन लोगों को जानकारी थी, जो उनके निकट थे वे बहुत चकित थे कि उनके शरीर से दुर्गंध नहीं आती। असल में महावीर ऐसे जीते हैं, जैसे पशु पक्षी जीते हैं, उतने ही नियति पर अपने को छोड़ कर। जो मर्जी इस विराट की, इस अनंत सत्ता की जो मर्जी, वही उसके लिए राजी। ऐसा भी नहीं कि पसीना आएगा तो वे परेशान होंगे, कि नाराज ही होंगे। पसीने के लिए राजी होंगे; दुर्गंध आएगी, दुर्गंध के लिए राजी होंगे। असल में राजी होने से एक नई तरह की सुगंध जीवन में आनी शुरू होती है। एक्सेप्टिविलिटी। जब हम सब स्वीकार कर लेते हैं तो एक अनूठी सुगंध से जीवन भरना शुरू हो जाता है। सब दुर्गंध अस्वीकार की दुर्गंध है। सब दुर्गंध अस्वीकार की दुर्गंध है और सब कुरूपता अस्वीकार की कुरूपता है। स्वीकार के साथ ही एक अनूठा सौंदर्य है और स्वीकार के साथ ही एक अनूठी सुगंध से जीवन भर जाता है, एक सुवास से जीवन भर जाता है।

महावीर को पानी गिरे तो समझेंगे, स्नान कराना था बादलों को। इसको जब कथाओं में लिखा गया तो हमने बड़ी भूलें कर दीं। क्योंकि कथाएं तो कवि लिखते हैं, और जब लिखते हैं तो फिर प्रतीक और सारा काव्य उसमें संयुक्त होता है, मिथ बन जाती है। कवियों ने जब इसी बात को कहा तो खराब हो गई बात। मजा चला गया। कवियों ने कहा--जब देवताओं ने स्नान करवाया, सब बात खराब हो गई, उसका मजा चला गया। वह मजा ही चला गया, बात ही खत्म हो गई। अभिषेक देवताओं ने किया। महावीर खुद तो स्नान नहीं करते तो देवता बेचैन हो गए, वे आए और उन्होंने स्नान करवाया। असल में ऐसी बात नहीं है। बात कुल इतनी ही है कि महावीर ने समस्त पर स्वयं को छोड़ दिया। जब बादल बरसे, स्नान हो गया। लेकिन उन दिनों लोग बादलों को भी देवता कहते थे। इंद्र था, तो कथा में जब लिखा गया तो लिखा गया कि इंद्र आया और उसने स्नान करवाए। ये सब प्रतीक हैं। बात कुल इतनी है कि महावीर ने छोड़ दिया नियति पर, प्रकृति पर सब, जो करना हो कर, मैं राजी हूं।

यह राजी होना अहिंसा है। और इस राजी होने के लिए उन्होंने अनशन को प्राथमिक सूत्र कहा है। क्यों? क्योंकि आप राजी कैसे होंगे, जब तक आपकी सब इंद्रियां आपसे राजी नहीं हैं तो आप प्रकृति से राजी कैसे होंगे? इसे थोड़ा देख लें। यह डबल हिस्सा है। आपकी इंद्रियां ही आपसे राजी नहीं हैं--पेट कहता है, भोजन दो;

शरीर कहता है कपड़े, दो; पीठ कहती है, विश्राम चाहिए। आपकी एक-एक इंद्रिय आपसे बगावत किए हुए है। वह कहती है, यह दो, नहीं तो तुम्हारी जिंदगी बेकार है, अकारथ है। तुम बेकार जी रहे हो। मर जाओ, इससे तो बेहतर है अगर एक अच्छा बिस्तर नहीं जुटा पा रहे हो--मर जाओ। आपकी इंद्रियां आपसे नाराजी हैं, आपसे राजी नहीं हैं। और आपको खींच रही हैं, तो आप इस विराट से कैसे राजी हो पाएंगे! इतने छोटे से शरीर में इतनी छोटी सी इंद्रियां आपसे राजी नहीं हो पातीं, तो इस विराट शरीर में, इस ब्रह्मांड में आप कैसे राजी हो पाएंगे। और फिर जब तक आपका ध्यान

इंद्रियों से उलझा है तब तक आपका ध्यान उस विराट पर जाएगा भी कैसे, यहीं क्षुद्र में ही अटका रह जाता है। कभी पैर में कांटा गड़ जाता है, कभी सिर में दर्द हो जाता है; कभी यह पसली दुखती है, कभी वह इंद्रिय मांग करती है। इन्हीं के पीछे दौड़ते-दौड़ते सब समय जाया हो जाता है।

तो महावीर कहते हैं--पहले इन इंद्रियों को अपने से राजी करो। अनशन का वही अर्थ है, पेट को अपने से राजी करो, तुम पेट से राजी मत हो जाओ। जानो भलीभांति कि पेट तुम्हारे लिए है, तुम पेट के लिए नहीं हो। लेकिन बहुत कम लोग हैं जो हिम्मत से यह कह सकें कि हम पेट के लिए नहीं हैं। भलीभांति वह जानते हैं कि हम पेट के लिए हैं, पेट हमारे लिए नहीं है। हम साधन हैं और पेट साध्य हो गया है। पेट का अर्थ, सभी इंद्रियां साध्य हो गई हैं। खींचती रहती हैं, बुलाती रहती हैं, हम दौड़ते रहते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मकान पर बैठ कर खप्पर ठीक कर रहा है। वर्षा आने के करीब है, वह अपने खपड़े ठीक कर रहा है। एक भिखारी ने नीचे से आवाज दी कि नसरुद्दीन नीचे आओ। नसरुद्दीन ने कहा कि तुझे क्या कहना है, वहीं से कह दे। उसने कहा: माफ करो, नीचे आओ। नसरुद्दीन बेचारा सीढ़ियों से नीचे उतरा, भिखारी के पास गया। भिखारी ने कहा कि कुछ खाने को मिल जाए। नसरुद्दीन ने कहा: नासमझ! यह तो तू नीचे से ही कह सकता था। इसके लिए मुझे नीचे बुलाने की जरूरत? उसने कहा: बड़ा संकोच लगता था, जोर से बोलूंगा, कोई सुन लेगा। नसरुद्दीन ने कहा: बिल्कुल ठीक। चल, ऊपर चल। भिखारी बड़ा मोटा तगड़ा था। बामुशकिल चढ़ पाया। जाकर नसरुद्दीन ऊपर अपने खपड़े जमाने में लग गया। थोड़ी देर भिखारी खड़ा रहा। उसने कहा कि भूल गए क्या? नसरुद्दीन ने कहा: भीख नहीं देनी है, यही कहने के लिए ऊपर लाया हूं। उसने कहा: तू आदमी कैसा है, नीचे ही क्यों न कह दिया? नसरुद्दीन ने कहा: बड़ा संकोच लगा। कोई सुन लेगा। जब तू भिखारी होकर मुझे नीचे बुला सकता है तो मैं मालिक होकर तुझे ऊपर नहीं बुला सकता?

पर सब इंद्रियां हमें नीचे बुलाए चली जाती हैं, हम इंद्रियों को ऊपर नहीं बुला पाते। अनशन का अर्थ है--इंद्रियों को हम ऊपर बुलाएंगे, हम इंद्रियों के साथ नीचे नहीं जाएंगे।

आज इतना ही।

कल हम दूसरे तथ्य पर विचार करेंगे। लेकिन पांच मिनट जाएंगे नहीं, बैठे रहेंगे।

ऊणोदरी एवं वृत्ति-संक्षेप (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्खिटं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अनशन के बाद महावीर ने दूसरा बाह्य-तप ऊणोदरी कहा है। ऊणोदरी का अर्थ है: अपूर्ण भोजन, अपूर्ण आहार। आश्चर्य होगा कि अनशन के बाद ऊणोदरी के लिए क्यों महावीर ने कहा है! अनशन का अर्थ तो है निराहार। अगर ऊणोदरी को कहना भी था तो अनशन के पहले कहना था, थोड़ा आहार। और आमतौर से जो लोग भी अनशन का अभ्यास करते हैं वे पहले ऊणोदरी का अभ्यास करते हैं। वे पहले आहार को कम करने की कोशिश करते हैं। जब आहार कम में सुविधा हो जाती है, आदत हो जाती है तभी वे अनशन का प्रयोग करते हैं और वह बिल्कुल ही गलत है। महावीर ने जान कर ही पहले अनशन कहा और फिर ऊणोदरी कहा। ऊणोदरी का अभ्यास आसान है। लेकिन एक बार ऊणोदरी का अभ्यास हो जाए तो अभ्यास हो जाने के बाद अनशन का कोई अर्थ, कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। वह मैंने आपसे कल कहा कि अनशन तो जितना आकस्मिक हो और जितना अभ्यासशून्य हो, जितना प्रयत्नरहित हो, जितना अव्यवस्थित और अराजक हो, उतनी ही बड़ी छलांग भीतर दिखाई पड़ती है।

ऊणोदरी को द्वितीय नंबर महावीर ने दिया है, उसका कारण समझ लेना जरूरी है। ऊणोदरी शब्द का तो इतना ही अर्थ होता है कि जितना पेट मांगे उतना नहीं देना। लेकिन आपको यह पता ही नहीं है कि पेट कितना मांगता है। और अक्सर जितना मांगता है वह पेट नहीं मांगता है, वह आपकी आदत मांगती है। और आदत में और स्वभाव में फर्क न हो तो अत्यंत कठिन हो जाएगी बात। जब रोज आपको भूख लगती है, तो आप इस भ्रम में मत रहना कि भूख लगती है। स्वाभाविक भूख तो बहुत मुश्किल से लगती है; नियम से बंधी हुई भूख रोज लग आती है।

जीव विज्ञानी कहते हैं, बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि आदमी के भीतर एक बायोलॉजिकल क्लॉक है, आदमी के भीतर एक जैविक घड़ी है। लेकिन आदमी के भीतर एक हैबिट क्लॉक भी है, आदत की घड़ी भी है। और जीव विज्ञानी जिस घड़ी की बात करते हैं, जो हमारे गहरे में है उसके ऊपर हमारी आदत की घड़ी जो हमने अभ्यास से निर्मित कर ली है। इस पृथ्वी पर ऐसे कबीले हैं, जो दिन में एक ही बार भोजन करते हैं, हजारों वर्ष से। और जब उन्हें पहली बार पता चला कि ऐसे लोग भी हैं जो दिन में दो बार भोजन करते हैं तो वे बहुत हैरान हुए। उनकी समझ में ही नहीं आया कि दिन में दो बार भोजन करने का क्या प्रयोजन होता है! इस पृथ्वी पर ऐसे कबीले हैं जो दिन में दो बार भोजन कर रहे हैं हजारों वर्षों से। ऐसे भी कबीले हैं जो दिन में पांच बार भी भोजन कर रहे हैं। इसका बायोलॉजिकल, जैविक जगत से कोई संबंध नहीं है। हमारी आदतों की बात है। आदतें हम निर्मित कर लेते हैं इसलिए आदतें हमारा दूसरा स्वभाव बन जाती हैं। और हमारा फिर पहला प्राथमिक स्वभाव आदतों के जाल के नीचे ढंक जाता है।

झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहा: जब मुझे भूख लगती है तब मैं भोजन करता हूं। और जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूं। और जब मेरी नींद टूटती है तब मैं जग जाता हूं। उस आदमी ने कहा: यह भी कोई साधना है, यह तो हम सभी करते हैं! बोकोजू ने कहा: काश, तुम सभी यह कर लो तो इस पृथ्वी पर बुद्धों की गिनती करना मुश्किल हो जाए। यह तुम नहीं करते हो। तुम्हें जब भूख नहीं लगती, तब भी तुम खाते हो। और जब तुम्हें भूख लगती है तब भी तुम हो सकता है, न खाते हो। और जब तुम्हें नींद नहीं आती, तब तुम सो जाते हो। और यह भी हो सकता है कि जब तुम्हें नींद आती हो तब तुम न सोते हो। और जब तुम्हारी नींद नहीं टूटती तब तुम उसे तोड़ लेते हो, और जब टूटनी चाहिए तब तुम सोए रह जाते हो। यह विकृति हमारे भीतर दोहरी प्रक्रियाओं से हो जाती है। एक तो हमारा स्वभाव है, जैसा प्रकृति ने हमें निर्मित किया। प्रकृति सदा संतुलित है। प्रकृति उतना ही मांगती है जितनी जरूरत है। आदतों का कोई अंत नहीं है। आदतें अभ्यास है, और अभ्यास से कितना ही मांगा जा सकता है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक प्रतियोगिता हुई कि कौन आदमी सबसे ज्यादा भोजन कर सकता है। मुल्ला ने सभी प्रतियोगियों को बहुत पीछे छोड़ दिया। कोई बीस रोटी पर रुक गया, कोई पच्चीस रोटी पर रुक गया, कोई तीस रोटी पर रुक गया। फिर लोग घबड़ाने लगे क्योंकि मुल्ला पचास रोटी पर चल रहा था, और लोग रुक गए थे। लोगों ने कहा: मुल्ला, अब तुम जीत ही गए हो। अब तुम अकारण अपने को परेशान मत करो, अब तुम रुको। मुल्ला ने कहा: मैं एक ही शर्त पर रुक सकता हूं कि मेरे घर कोई खबर न पहुंचाए, नहीं तो मेरा सांझ का भोजन पत्नी नहीं देगी। यह खबर घर तक न जाए कि मैं पचास रोटी खा गया, नहीं तो सांझ का भोजन गड़बड़ हो जाएगा।

आप इस पेट को अप्राकृतिक रूप से भी भर सकते हैं, विक्षिप्त रूप से भी भर सकते हैं। पेट को ही नहीं, यहां उदर केवल सांकेतिक है। हमारी प्रत्येक इंद्रिय का उदर है; हमारी प्रत्येक इंद्रिय का पेट है। और आप प्रत्येक इंद्रिय के उदर को जरूरत से ज्यादा भर सकते हैं। जितना देखने की जरूरत नहीं है उतना हम देखते हैं। जितना सुनने की जरूरत नहीं है उतना हम सुनते हैं। और इसका परिणाम बड़ा अदभुत होता है। वह परिणाम यह होता है कि जितना ज्यादा हम सुनते हैं उतने ही सुनने की क्षमता और संवेदनशीलता कम हो जाती है; इसलिए तृप्ति भी नहीं मिलती है। और जब तृप्ति नहीं मिलती तो विसियस सर्किल पैदा होता है। हम सोचते हैं और ज्यादा देखें तो तृप्ति मिलेगी। और ज्यादा खाएं तो तृप्ति मिलेगी। जितना ज्यादा खाते हैं उतना ही वह जो स्वभाव की भूख है, वह दबती और नष्ट होती है। और वही तृप्त हो सकती है। और जब वह दब जाती है, नष्ट हो जाती है, विस्मृत हो जाती है तो आपकी जो आदत की भूख है, वह कभी तृप्त नहीं हो सकती है क्योंकि उसकी तृप्ति का कोई अंत नहीं है।

निरंतर हम सुनते हैं कि वासनाओं का कोई अंत नहीं है। लेकिन सच्चाई यह है कि स्वभाव में जो भी वासनाएं हैं, उन सबका अंत नहीं है। आदत से जो वासनाएं हम निर्मित करते हैं उनका कोई अंत नहीं है। इसलिए किसी जानवर को आप बीमारी में खाने के लिए राजी नहीं कर सकते। जो होशियार जानवर हैं वे तो जरा बीमार होंगे कि वॉमिट कर देंगे, वह जो पेट में है उसे बाहर फेंक देंगे। वे प्रकृति से जीते हैं, आदमी आदत से जीता है और आदत से जीने के कारण हम अपने को रोज-रोज अस्वाभाविक करते चले जाते हैं। यह अस्वाभाविक होना इतना ज्यादा हो जाता है कि हमें याद ही नहीं रहता है कि हमारी प्राकृतिक आकांक्षाएं क्या हैं!

तो बायोलॉजिस्ट जिस जीव घड़ी की बात करते हैं, वह हमारे भीतर है। पर हम उसकी सुनें तब! वह हमें कहती है—कब भूख लगी है; वह हमें कहती है कि कब सो जाना है; वह हमें कहती है कि कब उठ आना है। लेकिन हम उसकी सुनते नहीं, हम उसके ऊपर अपनी व्यवस्था देते हैं। तो ऊणोदरी बहुत कठिन है। कठिन इस लिहाज से है कि आपको पहले तो यही पता नहीं कि स्वाभाविक भूख कितनी है। तो पहले तो स्वाभाविक भूख खोजनी पड़े। इसीलिए अनशन को पहले रखा है। अनशन आपकी स्वाभाविक भूख को खोजने में सहयोगी होगा।

जब आप बिल्कुल भूखे रहेंगे--जब भूखे रहेंगे, लेकिन इस संकल्प पर आप पीछे चलेंगे तो आप थोड़े ही समय में पाएंगे कि आदत की भूख तो भूल गई क्योंकि वह असली भूख न थी। वह दो चार दिन पुकार कर आवाज दे दी कि भूख लगी है, ठीक समय पर। फिर दो-चार दिन आप उसकी नहीं सुनेंगे, वह शांत हो जाएगी। फिर आपके भीतर से स्वाभाविक भूख आवाज देगी। जब आप उसकी भी नहीं सुनेंगे तभी आपके भीतर का यंत्र रूपांतरित होगा और आप स्वयं को पचाने के काम में लगेंगे।

तो पहले आदत की भूख टूटेगी। वह तीन दिन में टूट जाती है, चार दिन में टूट जाती है; एक दो दिन किसी को आगे पीछे लगता है। फिर स्वाभाविक भूख की व्यवस्था टूटेगी और तब आप दूसरी व्यवस्था पर जाएंगे। लेकिन अनशन में आपको पता चल जाएगा कि झूठी आवाज क्या थी और सच्ची आवाज क्या थी। क्योंकि झूठी आवाज मानसिक होगी। ध्यान रहे, सेरिब्रल होगी। जब आपको झूठी भूख लगेगी तो मन कहेगा कि भूख लगी है। और जब असली भूख लगेगी तो पूरे शरीर का रोयां-रोयां कहेगा कि भूख लगी है। अगर झूठी भूख लगी है, अगर आप बारह बजे रोज दोपहर भोजन करते हैं तो ठीक बारह बजे लग जाएगी। लेकिन अगर किसी ने घड़ी एक घंटा आगे पीछे कर दी हो तो घड़ी में जब बारह बजेंगे तब लग जाएगी। आपको पता नहीं होना चाहिए कि अब एक बज गया है, और घड़ी में बारह ही बजे हों, तो आप एक बजे तक बिना भूख लगे रह जाएंगे। क्योंकि आदत की, मन की भूख मानसिक है, शारीरिक नहीं है। वह बाहर की घड़ी देखती रहती है, बारह बज गए, भूख लग गई। ग्यारह ही बजे हों असली में लेकिन घड़ी में बारह बजा दिए गए हों तो आपकी भूख का क्रम तत्काल पैदा हो जाएगा कि भूख लग गई। मानसिक भूख मानसिक है; झूठी भूख मानसिक है। वह मन से लगती है, शरीर से नहीं। तीन चार दिन के अनशन में मानसिक भूख की व्यवस्था टूट जाती है। शारीरिक भूख शुरू होती है। आपको पहली दफा लगता है कि शरीर से भूख आ रही है। इसको हम और तरह से देख सकते हैं।

मनुष्य को छोड़ कर सारे पशु और पक्षियों की यौन व्यवस्था सावधिक है। एक विशेष मौसम में वे यौन पीड़ित होते हैं, कामातुर होते हैं; बाकी वर्ष भर नहीं होते। सिर्फ आदमी अकेला जानवर है जो वर्ष भर काम पीड़ित होता है। यह काम पीड़ा मानसिक है, मेंटल है। अगर आदमी भी स्वाभाविक हो तो वह भी एक सीमा में, एक समय पर कामातुर होगा; शेष समय कामातुरता नहीं होगी। लेकिन आदमी ने सभी स्वाभाविक व्यवस्था के ऊपर मानसिक व्यवस्था जड़ दी है। सभी चीजों के ऊपर उसने अपना इंतजाम अलग से कर लिया है। वह अलग इंतजाम हमारे जीवन की विकृति है, और हमारी विक्षिप्तता है। न तो आपको पता चलता है कि आप में कामवासना जगी है, वह स्वाभाविक है, बायोलॉजिकल है या साइकोलॉजिकल है! आपको पता नहीं चलता क्योंकि बायोलॉजिकल कामवासना को आपने जाना ही नहीं है। इसके पहले कि वह जगती, मानसिक कामवासना जग जाती है। छोटे-छोटे बच्चे जो कि चौदह वर्ष में जाकर बायोलॉजिकली मेच्योर होंगे, जैविक अर्थों में कामवासना के योग्य होंगे, लेकिन चौदह वर्ष के पहले ही मानसिक वासना के वे बहुत पहले योग्य और समर्थ हो गए होते हैं।

सुना है मैंने कि एक बूढ़ी औरत अपने नाती-पोतों को लेकर अजायबघर में गई। वहां स्टार्क नाम के पक्षी के बाबत यूरोप में कथा है, बच्चों को समझाने के लिए कि जब घर में बच्चे पैदा होते हैं तो बड़े-बूढ़ों से बच्चे पूछते हैं कि बच्चे कहां से आए? तो बड़े-बूढ़े कहते हैं--यह स्टार्क पक्षी ले आया। वहां अजायबघर में स्टार्क पक्षी के पास वह बूढ़ी गई। उन बच्चों ने पूछा: यह कौन सा पक्षी है? उस बूढ़ी ने कहा: यह वही पक्षी है जो बच्चों को लाता है। छोटे-छोटे बच्चे हैं, वे एक दूसरे की तरफ देख कर हंसे, और एक बच्चे ने अपने पड़ोसी बच्चे से कहा कि क्या इस नासमझ बूढ़ी को हम असली राज बता दें? मेरी टैल हर दि रियल सीक्रेट, दिस पुअर ओल्ड लेडी। इसको अभी तक पता नहीं इस गरीब को, यह अभी स्टार्क पक्षी से समझ रही है कि बच्चे आते हैं।

चारों तरफ की हवा, चारों तरफ का वातावरण बहुत छोटे-छोटे बच्चों के मन में एक मानसिक कामातुरता को जगा देता है। फिर यह मानसिक कामातुरता उनके ऊपर हावी हो जाती है, यह जीवन भर पीछा करती है। और उन्हें पता ही नहीं चलेगा कि जो बायोलॉजिकल अर्ज थी, वह जो जैविक वासना थी, वह उठ ही नहीं पाई, या जब उठी तब उन्हें पता नहीं चला। और तब एक अदभुत घटना घटेगी, और वह अदभुत घटना यह है कि वे कभी तृप्त न होंगे। क्योंकि मानसिक कामवासना कभी तृप्त नहीं हो सकती है, जो वास्तविक नहीं है वह तृप्त नहीं हो सकता। असली भूख तृप्त हो सकती है; झूठी भूख तृप्त नहीं हो सकती। इसलिए वासनाएं तो तृप्त हो सकती हैं लेकिन हमारे द्वारा जो कल्टीवेटेड डिजायर्स हैं, हमने ही जो आयोजन कर ली हैं वासनाएं, वे कभी तृप्त नहीं हो सकतीं।

इसलिए पशु-पक्षी, वे भी वासनाओं में जीते हैं, लेकिन हमारे जैसे तनावग्रस्त नहीं हैं। कोई तनाव नहीं दिखाई पड़ता उनमें। गाय की आंख में झांककर देखिए, वह कोई निर्वासना को उपलब्ध नहीं हो गई है, कोई ऋषि-मुनि नहीं हो गई है, कोई तीर्थंकर नहीं हो गई है, पर उसकी आंखों में वही सरलता होती है जो तीर्थंकर की आंखों में होती है। बात क्या है? वह तो वासना में जी रही है। लेकिन फिर भी उसकी वासना प्राकृतिक है। प्राकृतिक वासना तनाव नहीं लाती है। ऊपर नहीं ले जा सकती प्राकृतिक वासना, लेकिन नीचे भी नहीं गिराती। ऊपर जाना हो तो प्राकृतिक वासना से ऊपर उठना होता है। लेकिन अगर नीचे गिरना हो तो प्राकृतिक वासना के ऊपर अप्राकृतिक वासना को स्थापित करना होता है।

तो अनशन को महावीर ने पहले कहा था कि झूठी भूख टूट जाए, असली भूख का पता चल जाए, जब रोआं-रोआं पुकारने लगे। आपको प्यास लगती है। जरूरी नहीं है कि वह प्यास असली हो। हो सकता है अखबार में कोके का एडवर्टाइजमेंट देख कर लगी हो। जरूरी नहीं है कि वह प्यास वास्तविक हो। अखबार में देख कर भी—लिब्वा लिटिल हॉट लग गई हो। वैज्ञानिक, विशेष कर विज्ञापन विशेषज्ञ भलीभांति जानते हैं कि आपको झूठी प्यासें पकड़ाई जा सकती हैं और वे आपको झूठी प्यासें पकड़ा रहे हैं। आज जमीन पर जितनी चीजें बिक रही हैं, उनकी कोई जरूरत नहीं है। आज करीब-करीब दुनिया की पचास प्रतिशत इंडस्ट्री उन जरूरतों को पूरा करने में लगी हैं जो जरूरतें हैं ही नहीं। पर वे पैदा की जा सकती हैं। आदमी को राजी किया जा सकता है कि जरूरतें हैं। और एक दफा उसके मन में ख्याल आ जाए कि जरूरत है, तो जरूरत बन जाती है।

प्यास तो आपको पता ही नहीं है, वह तो कभी रेगिस्तान में कल्पना करें कि किसी रेगिस्तान में भटक गए हैं आप। पानी का कोई पता नहीं है। तब आपको प्यास लगेगी, वह आपके रोएं-रोएं की प्यास होगी। वह आपके शरीर का कण-कण मांगेगा। वह मानसिक नहीं हो सकता, वह किसी अखबार के विज्ञापन को पढ़कर नहीं लगी होगी। तो अनशन आपके भीतर वास्तविक को उघाड़ने में सहयोगी होगा। और जब वास्तविक उघड़ जाए तो महावीर कहते हैं, ऊणोदरी। जब वास्तविक उघड़ जाए तो वास्तविक से कम लेना। जितनी वास्तविक-अवास्तविक भूख को तो पूरा करना ही मत, वह तो खतरनाक है। वास्तविक भूख का जब पता चल जाए तब वास्तविक भूख से भी थोड़ा कम लेना, थोड़ी जगह खाली रखना। इस खाली रखने में क्या राज हो सकता है? आदमी के मन के नियम समझना जरूरी है।

हमारे मन के नियम ऐसे हैं कि हम जब भी कोई काम में लगते हैं, या किसी वासना की तृप्ति में या किसी भूख की तृप्ति में लगते हैं, तब एक सीमा हम पार करते हैं। वहां तक भूख या वासना ऐच्छिक होती है, वालंटरी होती है। उस सीमा के बाद नॉन-वालंटरी हो जाती है। जैसे हम पानी को गर्म करते हैं। पानी सौ डिग्री पर जाकर भाप बनता है। लेकिन अगर आप निन्यानबे डिग्री पर रुक जाएं तो पानी वापस पानी ही ठंडा हो जाएगा। लेकिन अगर आप सौ डिग्री के बाद रुकना चाहें तो फिर पानी वापस नहीं लौटेगा, वह भाप बन चुका होगा। एक डिग्री का फासला फिर लौटने नहीं देगा, फिर नो-रिटर्न पॉइंट आ जाता है। अगर आप सौ डिग्री के पहले निन्यानबे डिग्री पर रुक गए तो पानी गर्म होकर फिर ठंडा होकर पानी रह जाएगा। भाप नहीं बनेगा।

आप रुक सकते हैं, अभी रुकने का उपाय है। सौ डिग्री के बाद अगर आप रुकते हैं तो पानी भाप बन चुका होगा। फिर पानी आपको मिलेगा नहीं। आपके हाथ के बाहर बात हो गई।

जब आप क्रोध के विचार से भरते हैं, तब भी एक डिग्री आती है, उसके पहले आप रुक सकते थे। उस डिग्री के बाद आप नहीं रुक सकेंगे क्योंकि आपके भीतर वालंटरी मेकेनिज्म जब अपनी वृत्ति को नॉन-वालंटरी मेकेनिज्म को सौंप देता है, फिर आपके रुकने के बाहर बात हो जाती है। इसे ठीक से समझ लें। जब ऐच्छिक यंत्र सबसे पहले आपके भीतर कोई भी चीज इच्छा की भांति शुरू होती है। एक सीमा है, अगर आप इच्छा को बढ़ाए ही चले गए तो एक सीमा पर इच्छा का यंत्र आपके भीतर जो आपकी इच्छा के बाहर चलने वाला यंत्र है, उसको सौंप देता है। उसके हाथ में जाने के बाद आप नहीं रोक सकते। अगर आप क्रोध एक सीमा के पहले रोक लिए तो रोक लिए, एक सीमा के बाद क्रोध नहीं रोका जा सकेगा, वह प्रकट होकर रहेगा। अगर आपने कामवासना को एक सीमा पर रोक लिया तो ठीक, अन्यथा एक सीमा के बाद कामवासना आपके ऐच्छिक यंत्र के बाहर हो जाएगी। फिर आप उसको नहीं रोक सकते। फिर आप विक्षिप्त की तरह उसको पूरा करके ही रहेंगे, फिर उसे रोकना मुश्किल है।

ऊणोदरी का अर्थ है--ऐच्छिक यंत्र से अनैच्छिक यंत्र के हाथ में जब जाती है कोई बात तो उसी सीमा पर रुक जाना। इसका मतलब इतना ही नहीं है केवल कि आप तीन रोटी रोज खाते हैं तो आज ढाई रोटी खा लेंगे तो ऊणोदरी हो जाएगी। नहीं, ऊणोदरी का अर्थ है--इच्छा के भीतर रुक जाना, आपकी सामर्थ्य के भीतर रुक जाना। अपनी सामर्थ्य के बाहर किसी बात को न जाने देना, क्योंकि आपकी सामर्थ्य के बाहर जाते ही आप गुलाम हो जाते हैं। फिर आप मालिक नहीं रह जाते। लेकिन मन पूरी कोशिश करेगा कि क्लाइमेक्स तक ले चलो, किसी भी चीज को उसके चरम तक ले चलो। क्योंकि मन को तब तक तृप्ति नहीं मालूम पड़ती जब तक कोई चीज चरम पर न पहुंच जाए। और मजा यह है कि चरम पर पहुंच जाने के बाद सिवाय विषाद, फ्रस्ट्रेशन के कुछ हाथ नहीं लगता। तृप्ति हाथ नहीं लगती। अगर मन ने भोजन के संबंध में सोचना शुरू किया तो वह उस सीमा तक खाएगा जहां तक खा सकता है। और फिर दुखी, परेशान और पीड़ित होगा।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में अपने गांव में मजिस्ट्रेट हो गया। पहला जो मुकदमा उसके हाथ में आया वह एक आदमी का था जो करीब-करीब नग्न, सिर्फ अंडरवियर पहने अदालत में आकर खड़ा हुआ। और उसने कहा कि मैं लूट लिया गया हूं और तुम्हारे गांव के पास ही लूटा गया हूं।

मुल्ला ने कहा: मेरे गांव के पास ही लूटे गए हो? क्या-क्या तुम्हारा लूट लिया गया है?

उसने सब फेहरिस्त बताई। मुल्ला ने कहा: लेकिन जहां तक मैं देख सकता हूं, तुम अंडरवियर पहने हुए हो।

उसने कहा: हां, मैं अंडरवियर पहने हुए हूं।

मुल्ला ने कहा: मेरी अदालत तुम्हारा मुकदमा लेने से इनकार करती है। वी नैवर डु एनीथिंग हॉफ-हार्टेडली एण्ड पार्शियली। हमारे गांव में कोई आदमी आधा काम नहीं करता, न आधे हृदय से काम करता है। अगर हमारे गांव में लूटे गए थे तो अंडरवियर भी निकाल लिया गया होता। तुम किसी और गांव के आदमियों के द्वारा लूटे गए हो। तुम्हारा मुकदमा लेने से मैं इनकार करता हूं। ऐसा कभी हमारे गांव में हुआ ही नहीं है। जब भी हम कोई काम करते हैं, हम पूरा ही करते हैं।

जिस गांव में हम रहते हैं--इच्छाओं के जिस गांव में हम रहते हैं वहां भी हम पूरा ही काम करते हैं। वहां भी इंच भर हम पहले नहीं लौटते। और चरम के बाद सिवाय विषाद के कुछ हाथ नहीं लगता। लेकिन जैसे ही हम किसी वासना में बढ़ना शुरू करते हैं, वासना खींचती है, और जितना हम आगे बढ़ते हैं, उसके खींचने की शक्ति बढ़ती जाती है और हम कमजोर होते चले जाते हैं।

महावीर कहते हैं--चरम पर पहुंचने के पहले रुक जाना। उसका मतलब यह है कि जब किसी को क्रोध इतना आ गया हो कि वह हाथ उठा कर आपको चोट ही मारने लगे--तब महावीर कहते हैं--जब हाथ दूसरे के

सिर के करीब ही पहुंच जाए तब रुक जाना। तब तुम्हारी मालकियत का तुम्हें अनुभव होगा। उस वक्त रुकना सर्वाधिक कठिन है। बहुत कठिन है। उस वक्त मन कहेगा--अब क्या रुकना?

मुसलमान खलीफा अली के संबंध में एक बहुत अदभुत घटना है। युद्ध के मैदान में लड़ रहा है। वर्षों से यह युद्ध चल रहा है। वह घड़ी आ गई जब उसने अपने दुश्मन को नीचे गिरा लिया और उसकी छाती पर बैठ गया और उसने अपना भाला उठाया और उसकी छाती में भोंकने को है। एक क्षण की और देर थी कि भाला दुश्मन की छाती में आरपार हो जाता। उस दुश्मन की, जो वर्षों से परेशान किए हुए था और इसी क्षण की प्रतीक्षा थी अली को। लेकिन उस नीचे पड़े दुश्मन ने, जैसे ही भाला अली ने भोंकने के लिए उठाया, अली के मुंह पर थूक दिया। अली ने अपना मुंह पर पड़ा थूक पोंछ लिया, भाला वापस अपने स्थान पर रख दिया, और उस आदमी से कहा कि कल अब हम फिर लड़ेंगे। पर उस आदमी ने कहा: यह मौका अली तुम चूक रहे हो। मैं तुम्हारी जगह होता तो नहीं चूक सकता था। इसकी तुम वर्षों से प्रतीक्षा करते थे। मैं भी प्रतीक्षा करता था। संयोग कि तुम ऊपर हो, मैं नीचे हूँ। प्रतीक्षा मेरी भी यही थी। अगर तुम्हारी जगह मैं होता तो यह उठा हुआ भाला वापस नहीं लौट सकता था। इसी के लिए तो दो वर्ष से परेशान हैं। तुम क्यों छोड़ कर जा रहे हो?

अली ने कहा: मुझे मोहम्मद की आज्ञा है कि अगर हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। एक तो हिंसा करना मत और अगर हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। अभी तक मैं शांति से लड़ रहा था। लेकिन तेरा मेरे ऊपर थूक देना, मेरे मन में क्रोध उठ आया। अब कल हम फिर लड़ेंगे। अभी तक मैं शांति से लड़ रहा था, अभी तक कोई क्रोध की आग न थी। ठीक था, सब ठीक था। निपटारा करना था, कर रहा था। हल निकालना था, निकाल रहा था। लेकिन कोई क्रोध की लपट न थी। लेकिन तूने थूक कर क्रोध की लपट पैदा कर दी। अब अगर इस वक्त मैं तुझे मारता हूँ तो यह मारना व्यक्तिगत और निजी है। मैं मार रहा हूँ अब। अब यह लड़ाई किसी सिद्धांत की लड़ाई नहीं है। इसलिए अब कल फिर लड़ेंगे।

कल तो वह लड़ाई नहीं हुई क्योंकि उस आदमी ने अली के पैर पकड़ लिए। उसने कहा: मैं सोच भी नहीं सकता था कि वर्षों के दुश्मन की छाती के पास आया हुआ भाला किसी भी कारण से लौट सकता है, और ऐसे समय में तो लौट ही नहीं सकता जब मैंने थूका था, तब तो और जोर से चला गया होता।

मन के नियम हैं। ऊणोदरी का अर्थ है: जहां मन सर्वाधिक जोर मारे, उसी सीमा से वापस लौट जाएं। जहां मन कहे कि एक और, और जहां सर्वाधिक जोर मारता हो। अब इस संतुलन को खोजना पड़ेगा। इसे रोज-रोज प्रयोग करके प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर खोज लेगा कि कब मन बहुत जोर मारता है, और कब इच्छा के बाहर बात हो जाती है। फिर ऐसा नहीं होता कि आप मार रहे हैं, ऐसा होता है कि आपसे मारा जा रहा है। फिर ऐसा नहीं होता कि आपने चांटा मारा, फिर ऐसा होता है कि अब आप चांटा मारने से रुक ही न सकते थे। वही जगह लौट आने की है, वही ऊण की जगह है। वहीं से वापस लौट आने का नाम है अपूर्ण पर छूट जाना।

ऊणोदरी का अर्थ है: अपूर्ण रह जाए उदर, पूरा न भर पाए। तो आप चार रोटी खाते हैं, तीन खा लें तो उससे कुछ ऊणोदरी नहीं हो जाएगी। पहले वास्तविक भूख खोज लें, फिर वास्तविक भूख को खोज कर भोजन करने बैठें। किसी भी इंद्रिय का भोजन हो, यह सवाल नहीं है। फिल्म देखने आप गए हैं। नब्बे प्रतिशत फिल्म आपने देख ली है, तभी असली वक्त आता है जब छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है क्योंकि अंत क्या होगा! लोग उपन्यास पढ़ते हैं, तो अधिक लोग पहले अंत पढ़ लेते हैं कि अंत क्या होगा! इतनी जिज्ञासा मन की होती है अंत की। पहले अंत पढ़ लेते हैं, फिर शुरू करते हैं। लेकिन उपन्यास पढ़ रहे हैं और दो पन्ने रह गए हैं और डिटेक्टिव कथा है और अब इन दो पन्नों में ही सारा राज खुलने को है, और आप रुक जाएं तो ऊणोदरी है। ठहर जाएं, मन बहुत धक्के मारेगा कि अब तो मौका ही आया था जानने का। यह इतनी देर तो हम केवल भटक रहे थे, अब राज खुलने के करीब था। डिटेक्टिव कथा थी, अब तो राज खुलता। अभी रुक जाएं और भूल जाएं।

फिल्म देख रहे हैं, आखिरी क्षण आ गया है। अभी सब चीजें क्लाइमेक्स को छुएंगी। उठ जाएं और लौट कर याद भी न आए कि अंत क्या हुआ होगा। किसी से पूछने को भी न जाएं कि अंत क्या हुआ। ऐसे चुपचाप उठ कर चले जाएं, जैसे अंत हो गया। ऊणोदरी का अर्थ आपके ख्याल में दिलाना चाहता हूं। ऐसे उठ कर चले जाएं अंत होने के पहले, जैसे अंत हो गया। तो आपको अपने मन पर एक नये ढंग का काबू आना शुरू हो जाएगा। एक नई शक्ति आ पको अनुभव होगी। आपकी सारी शक्ति की क्षीणता, आपकी शक्ति का खोना, डिस्सीपेशन, आपकी शक्ति का रोज-रोज व्यर्थ नष्ट होना, आपकी मन की इस आदत के कारण है जो हर चीज को पूर्ण पर ले जाने की कोशिश में लगी है। महावीर कहते हैं--पूर्ण पर जाना ही मत। उसके एक क्षण पहले, एक डिग्री पहले रुक जाना। तो तुम्हारी शक्ति जो पूर्ण को, चरम को छूकर बिखरती है और खोती है, वह नहीं बिखरेगी, नहीं खोएगी। तुम नित्यानबे डिग्री पर वापस लौट आओगे, भाप नहीं बन पाओगे। तुम्हारी शक्ति फिर संगृहीत हो जाएगी। तुम्हारे हाथ में होगी, और तुम धीरे-धीरे अपनी शक्ति के मालिक हो जाओगे।

इसे सब तरफ प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक इंद्रिय का उदर है, प्रत्येक इंद्रिय का अपना पेट है, और प्रत्येक इंद्रिय मांग करती है कि मेरी भूख को पूरा करो। कान कहते हैं संगीत सुनो; आंख कहती है सौंदर्य देखो; हाथ कहते हैं कुछ स्पर्श करो। सब इंद्रियां मांग करती हैं कि हमें भरो। प्रत्येक इंद्रिय पर ऊण पर ठहर जाना इंद्रिय विजय का मार्ग है। बिल्कुल ठहर जाना आसान है। ध्यान रहे, किसी उपन्यास को बिल्कुल न पढ़ना आसान है। नहीं पढ़ा बात खत्म हो गई। लेकिन किसी उपन्यास को अंत के पहले तक पढ़ कर रुक जाना ज्यादा कठिन है। इसलिए ऊणोदरी को नंबर दो पर रखा है। किसी फिल्म को न देखने में इतनी अड़चन नहीं है; लेकिन किसी फिल्म को देख कर और अंत के पहले ही उठ जाने में ज्यादा अड़चन है। किसी को प्रेम ही नहीं किया, इसमें ज्यादा अड़चन नहीं है; लेकिन प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुंचे, उसके पहले वापस लौट जाना अति कठिन है। उस वक्त आप विवश हो जाएंगे, आब्सेस्ड हो जाएंगे, उस वक्त तो ऐसा लगेगा कि चीज को पूरा हो जाने दो। जो भी हो रहा है उसे पूरा हो जाने दो। इस वृत्ति पर संयम मनुष्य की शक्तियों को बचाने की अत्यंत वैज्ञानिक व्यवस्था है।

ऊणोदरी अनशन का ही प्रयोग है लेकिन थोड़ा कठिन है। आमतौर से आपने सुना और समझा होगा कि ऊणोदरी सरल प्रयोग है। जिससे अनशन नहीं बन सकता वह ऊणोदरी करे। मैं आपसे कहता हूं--ऊणोदरी अनशन से कठिन प्रयोग है। जिससे अनशन बन सकता है, वही ऊणोदरी कर सकता है।

महावीर का तीसरा सूत्र है, वृत्ति-संक्षेप। वृत्ति-संक्षेप से परंपरागत जो अर्थ लिया जाता है वह यह है कि अपनी वृत्तियों और वासनाओं को सिकोड़ना। अगर दस कपड़ों से काम चल सकता है तो ग्यारह पास में न रखना। अगर एक बार भोजन से काम चल सकता है तो दो बार भोजन न करना। ऐसा साधारण अर्थ है, लेकिन वह अर्थ केंद्र से संबंधित न होकर केवल परिधि से संबंधित है। नहीं, महावीर का अर्थ गहरा है और दूसरा है। इसे थोड़ा गहरे में समझना पड़ेगा।

वृत्ति-संक्षेप एक प्रक्रिया है। आपके भीतर प्रत्येक वृत्ति का केंद्र है--जैसे, सेक्स का एक केंद्र है, भूख का एक केंद्र है, प्रेम का एक केंद्र है, बुद्धि का एक केंद्र है। लेकिन साधारणतः हमारे सारे केंद्र कनफ्यूज्ड हैं क्योंकि एक केंद्र का काम दूसरे केंद्र से हम लेते रहते हैं। दूसरे का तीसरे से लेते रहते हैं। काम भी नहीं हो पाता है, और केंद्र की शक्ति भी व्यय और व्यर्थ नष्ट होती है। गुरजिएफ कहा करता था--गुरजिएफ ने वृत्ति-संक्षेप के प्रयोग को बहुत आधारभूत बनाया था अपनी साधना में। गुरजिएफ कहा करता था कि पहले तो तुम अपने प्रत्येक केंद्र को स्पष्ट कर लो और प्रत्येक केंद्र के काम को उसी को सौंप दो, दूसरे केंद्र से काम मत लो। अब जैसे कामवासना है तो उसका अपना केंद्र है प्रकृति में, लेकिन आप मन से उस केंद्र का काम लेते हैं, सेरिब्रल हो जाता है सेक्स, मन में ही सोचते रहते हैं। कभी-कभी तो इतना सेरिब्रल हो जाता है कि वास्तविक कामवासना उतना रस नहीं देती, जितना कामवासना का चिंतन रस देता है। अब यह बहुत अजीब बात है। यह ऐसा हुआ है कि वास्तविक भोजन

रस नहीं देता, जितना भोजन का चिंतन रस देता है। यह ऐसे हुआ है कि पहाड़ पर जाने में उतना मजा नहीं आता जितना घर बैठ कर पहाड़ पर जाने के संबंध में सोचने में, सपने देखने में मजा आता है।

और हम प्रत्येक केंद्र को ट्रांसफर करते हैं, दूसरे केंद्र पर सरका देते हैं; इससे खतरे होते हैं। दो खतरे होते हैं--एक खतरा तो यह होता है कि जिस केंद्र का काम नहीं है, अगर उस पर हम कोई दूसरा काम डाल देते हैं तो वह उसे पूरी तरह तो कर नहीं सकता, वह उसका काम नहीं है। वह कभी नहीं कर सकता। इसलिए सदा अतृप्त बना रहेगा, तृप्त कभी नहीं हो सकता है। कहीं बुद्धि से सोच-सोच कर भूख तृप्त हो सकती है? कहीं कामवासना का चिंतन कामवासना को तृप्त कर सकता है? कैसे करेगा, वह उस केंद्र का काम ही नहीं है। वह तो ऐसा है जैसे कोई आदमी सिर के बल चलने की कोशिश करे। काम पैर का है, वह सिर से चलने की कोशिश करे। तो दोहरे दुष्परिणाम होंगे। जिस केंद्र से आप दूसरे केंद्र का काम ले रहे हैं, वह कर नहीं सकता है, एक। जो वह कर सकता था वह भी नहीं कर पाएगा। क्योंकि आप उसको ऐसे काम में लगा रहे हैं, उसकी शक्ति उसमें व्यय हो तो जो वह कर सकता था, नहीं कर पाएगा। और जिस केंद्र से आपने काम छीन लिया है, उस पर शक्ति इकट्ठी होती रहेगी। वह धीरे-धीरे विक्षिप्त होने लगेगा, क्योंकि उससे आप काम नहीं ले रहे हैं। आप पूरे के पूरे कनफ्यूज्ड हो जाएंगे। आप का व्यक्तित्व एक उलझाव हो जाएगा, एक सुलझाव नहीं।

गुरजिएफ कहता था--प्रत्येक केंद्र को उसके काम पर सीमित कर दो। महा वीर का वृत्ति-संक्षेप से यही अर्थ है। प्रत्येक वृत्ति को उसके केंद्र पर संक्षिप्त कर दो, उसके केंद्र के आस-पास मत फैलने दो, मत भटकने दो। तो व्यक्तित्व में एक सुगढ़ता आती है, स्पष्टता आती है और आप कुछ भी करने में समर्थ हो पाते हैं। अन्यथा हमारी सारी वृत्तियां करीब-करीब बुद्धि के आस-पास इकट्ठी हो गई हैं। तो बुद्धि जिस काम को कर सकती है वह नहीं कर पाती है, क्योंकि आप उससे दूसरे काम ले रहे हैं। और जो काम आप ले रहे हैं वह बुद्धि कर नहीं सकती क्योंकि वह उसकी प्रकृति के बाहर है, वह उसका काम नहीं है। इस दुनिया में जो इतनी बुद्धिहीनता है उसका कारण यह नहीं है कि इतने बुद्धिहीन आदमी पैदा होते हैं। इस दुनिया में जो इतनी स्टुपिडिटी दिखाई पड़ती है, इतनी जड़ता दिखाई पड़ती है, उसका यह कारण नहीं है कि इतने बुद्धि रिक्त लोग पैदा होते हैं, उसका कुल कारण इतना है कि बुद्धि जो काम कर सकती है वह आप उससे लेते नहीं। जो नहीं कर सकती है वह आप उससे लेते हैं। बुद्धि धीरे-धीरे मंद होती चली जाती है।

थोड़ा सोचें--कितने आदमी दुनिया में लंगड़े हैं, या कितने आदमी दुनिया में अंधे हैं, या कितने आदमी दुनिया में बहरे हैं? अगर दुनिया में बुद्धू भी होंगे तो वही अनुपात होगा, उससे ज्यादा नहीं हो सकता। लेकिन बुद्धू बहुत दिखाई पड़ते हैं। बुद्धि नाममात्र को पता नहीं चलती। क्या कारण हो सकता है, इतनी बुद्धि की कमी का? इसकी कमी का कारण यह नहीं है कि बुद्धि कम है, इसकी कमी का कुल कारण इतना है कि बुद्धि से जो काम लेना था वह आपने लिया नहीं, जो नहीं लेना था वह आपने लिया है। इससे बुद्धि धीरे-धीरे जड़ता को उपलब्ध हो जाती है। मनस्विद कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभा लेकर पैदा होता है, और प्रत्येक व्यक्ति जड़ होकर मरता है। बच्चे प्रतिभाशाली पैदा होते हैं और बूढ़े प्रतिभाहीन मरते हैं। होना उलटा चाहिए कि जितनी प्रतिभा लेकर बच्चा पैदा हुआ था उसमें और निखार आता, अनुभव उसमें और रंग जोड़ते। जीवन की यात्रा उसको और प्रगाढ़ करती। पर यह नहीं होता।

पिछले महायुद्ध में दस लाख सैनिकों का बुद्धि माप किया गया तो पाया गया कि साढ़े तेरह वर्ष उनकी मानसिक आयु थी--मानसिक आयु साढ़े तेरह वर्ष थी। उनकी उम्र पचास साल होगी शरीर से, किसी की चालीस होगी, किसी की तीस होगी और तब बहुत हैरान करने वाला निष्कर्ष अनुभव में आया कि शरीर तो बढ़ता जाता है और बुद्धि मालूम होती है, तेरह-चौदह के करीब ठहर जाती है। उसके बाद नहीं बढ़ती।

मगर यह औसत है। इस औसत में बुद्धिमान सम्मिलित हैं। यह औसत वैसे ही है जैसे हिंदुस्तान में आम आदमी की औसत आमदनी का पता लगाया जाए तो उसमें बिड़ला भी और डालमियां भी और साहू भी सब सम्मिलित होंगे। और जो औसत निकलेगी वह आम आदमी की औसत नहीं है क्योंकि उसमें धनपति भी सम्मिलित होंगे। अगर हम धनपतियों को अलग कर दें और आम आदमी की औसत पता लगाएं तो बहुत कम पाई जायेगी, वह बहुत कम हो जाएगी। नेहरू और लोहिया के बीच वही विवाद वर्षों तक चलता रहा पार्लियामेंट में। क्योंकि नेहरू जितना बताते थे, लोहिया उससे बहुत कम बताते थे। लोहिया कहते थे--पांच-दस आदमियों को छोड़ दें, ये औसत आदमी नहीं हैं, इनका क्या हिसाब रखना है! फिर बाकी को सोच लें तो फिर बाकी के पास तो नये पैसे में ही आमदनी रह जाती है। फिर कोई आमदनी नहीं रह जाती। लेकिन अगर सबकी आमदनी बांट दी जाए तो ठीक है। सबके पास आमदनी दिखाई पड़ती है, वह है नहीं।

यह जो तेरह-साढ़े तेरह वर्ष उम्र है, इसमें आइंस्टीन भी संयुक्त हो जाता है, इसमें बर्ट्रेड रसल भी संयुक्त हो जाता है। यह औसत है। इसमें वे सारे लोग सम्मिलित हो जाते हैं जो शिखर छूते हैं बुद्धि का। इसमें बुद्धिहीनों के पास भी औसत में थोड़ा सा हिस्सा आ जाता है। इसमें शिखर के लोगों को छोड़ दें। अगर जमीन पर सौ आदमियों को छोड़ दिया जाए किसी भी युग में तो आम आदमी के पास बुद्धि की मात्रा इतनी कम रह जाती है कि उसको गणना करने की कोई भी जरूरत नहीं है। उससे कुछ नहीं होता। उससे इतना ही होता है, आप अपने घर से दफ्तर चले जाते हैं, दफ्तर से घर आ जाते हैं। उससे इतना ही होता है कि दफ्तर का आप ट्रिक् सीख लेते हैं कि क्या क्या करना है। उतना करके लौट आते हैं। घर में भी आप ट्रिक् सीख लेते हैं। कि क्या-क्या बोलना, उतना बोल कर आप अपना काम चला लेते हैं। यह तो मशीन भी कर सकती है, और आपसे बेहतर ढंग से कर सकती है। इसलिए जहां भी मशीन और आदमी में काम्पटीशन होता है, आदमी हार जाता है। जहां भी मशीन से प्रतियोगिता हुई कि आप गए। मशीन से आप कहीं नहीं जीत सकते। जिस दिन आपकी जिस सीमा में मशीन से प्रतियोगिता होती है, उसी दिन आदमी बेकार हो जाते हैं।

अब अमरीका के वैज्ञानिक कहते हैं कि बीस साल के भीतर आदमी के लिए कोई काम नहीं रह जाएगा क्योंकि मशीनें सभी काम ज्यादा बेहतर ढंग से कर सकती हैं। और सबसे बड़ा सवाल जो उनके सामने है वह यही है कि बीस साल बाद हम आदमी का क्या करेंगे और इससे क्या काम लेंगे? अगर यह बेकाम हो जाएगा तो उपद्रव करेगा। इससे कुछ न कुछ तो काम लेना ही पड़ेगा। हो सकता है काम ऐसे लेना पड़े इस आदमी से जैसा घर-घर में बच्चे उपद्रव करते हैं तब खिलौने पकड़ा कर काम लिया जाता है। बस इतना ही काम लेना पड़ेगा कि कुछ खिलौने आपको पकड़ाने पड़ें। जिनमें आप घुंघरू वगैरह बजाते रहें। वह आपके लिए जरा बड़े ढंग के खिलौने होंगे। बिल्कुल बच्चे जैसे नहीं होंगे, क्योंकि उसमें आप नाराज होंगे।

बाकी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चों के खिलौनों में और बड़े आदमियों के खिलौनों में सिर्फ कीमत का फर्क होता है, और कोई फर्क नहीं होता। वह गुड़िया से खेलते रहते हैं, आप एक स्त्री से खेलते रहते हैं। जरा कीमत का फर्क होता है। यह जरा महंगा खिलौना है। बाकी खेल वही है।

वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है--दो कारणों से वृत्ति-संक्षेप पर महावीर का जोर है--एक तो प्रत्येक काम को, प्रत्येक वृत्ति को उसके केंद्र पर कनसनट्रेट कर देना है। सबसे पहली तो जरूरत इसलिए है कि जो वृत्ति अपने केंद्र पर संगृहीत हो जाती है, कनसनट्रेट हो जाती है, एकाग्र हो जाती है, आपको उसके वास्तविक अनुभव मिलने शुरू होते हैं। और वास्तविक अनुभव से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। यह वास्तविक अनुभव बहुत दुखद है। स्त्री की कल्पना से मुक्त होना बहुत कठिन है, क्योंकि धन के ढेर से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। कल्पना से मुक्त होना कठिन है क्योंकि कल्पना कहीं फ्रस्ट्रेट ही नहीं होती, कल्पना तो दौड़ती चली जाती है, कोई अंत ही नहीं आता। कहीं ऐसा नहीं होता जहां कल्पना थक जाए, टूट जाए, हार जाए। वास्तविकता का तो हर जगह अंत आ जाता है। हर चीज टूट जाती है। प्रत्येक वृत्ति अपने केंद्र पर आ जाए तो इतनी सघन हो जाती है कि आपको उसके वास्तविक, एक्चुअल अनुभव होने शुरू होते हैं। और जितना वास्तविक अनुभव हो उतनी ही

जल्दी छुटकारा है, क्योंकि उसमें कोई रस नहीं रह जाता। आपको पता चलता है, वह सिर्फ पागल मन की दौड़ थी, कुछ रस था नहीं। आपने सोचा था, कल्पना की थी, कोई रस था नहीं।

एक अनूठी घटना अमेरिका में इधर पिछले दस वर्षों में घटना शुरू हुई है। हिप्पी और बीटल और बीटनिक, इनके कारण एक अनूठी घटना शुरू हुई है। वह यह है कि पहली दफे हिप्पियों ने कामवासना को मुक्त भाव से भोगने का प्रयोग किया--मुक्त भाव से। जिन्होंने यह प्रयोग दस साल पहले शुरू किया था, उन्होंने सोचा था, बड़ा आनंद उपलब्ध होगा। क्योंकि जितनी स्त्रियां चाहिए, या जितने पुरुष चाहिए, जितने संबंध बनाने हैं उतने संबंध बनाने की स्वतंत्रता है। कोई ऊपरी बाधा नहीं है, कोई कानून नहीं है, कोई अदालत नहीं है, कोई ऊपरी बाधा नहीं है, दो व्यक्तियों की निजी स्वतंत्रता है। लेकिन दस साल में जो सबसे हैरानी का अनुभव हिप्पियों को हुआ है वह यह कि सेक्स बिल्कुल ही बेमानी मालूम पड़ने लगा, मीनिंगलेस। उसमें कोई मतलब ही नहीं रहा।

दस हजार साल पति-पत्नियों वाली दुनिया में सेक्स मीनिंगफुल बना रहा, और दस साल में पति-पत्नी का हिसाब छोड़ दें, और सेक्स मीनिंगलेस हो जाता है। बात क्या है? बहुत तरह के प्रयोग हिप्पियों ने किए और सब प्रयोग बेमानी हो जाते। ग्रुप मैरिज--कि आठ लड़के और आठ लड़कियां शादी कर लेते हैं--ग्रुप मैरिज, एक दूसरे ग्रुप से मैरिज कर रहा है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से नहीं। अब इनमें से जो जिससे राजी होगा, जिस तरह राजी होगा, जिस तरह भी होगा--यह पति का ग्रुप है दस का या आठ का, या पत्नी का आठ का, ये दोनों ग्रुप इकट्ठे हो गए, अब यह एक फेमिली है। अब इसमें सब पति हैं, सब पत्नियां हैं। ग्रुप सेक्स ने इस बुरी तरह अनुभव दिए कि अभी मैं एक अनुभवी व्यक्ति का, जो इन सारे अनुभवों से गुजरा, संस्मरण पढ़ रहा था। तो उसने लिखा कि अगर सेक्स में रस वापस लौटाना है तो वह पति-पत्नी वाली दुनिया बेहतर थी। सेक्स में रस वापस लौटाना--आप सोचते होंगे, ये अनैतिक हैं। आप सोचते होंगे, यह सब अनीति चल रही है। लेकिन आप हैरान होंगे कि जब भी कोई अनुभव पूरे रूप से मिलता है तो आप उसके बाहर हो जाते हैं। असल में सेक्स में रस बचाने के लिए परिवार और दांपत्य और विवाह की व्यवस्था है। ध्यान रहे, जिन मुल्कों में स्त्रियां बुर्का ओढ़ती हैं, उस मुल्क में जितनी स्त्रियां सुंदर होती हैं उतनी उस मुल्क में नहीं होतीं, जहां बुर्का नहीं ओढ़तीं।

नसरुद्दीन की जब शादी हुई और पत्नी का बुर्का उसने पहली दफे उघाड़ा तो वह घबरा गया। क्योंकि बुर्का में ही देखा था इसको। बड़े सौंदर्य की कल्पनाएं की थीं। और जैसे सभी बुर्का उघाड़ने पर सौंदर्य विदा हो जाता है, ऐसा ही बिदा हो गया। घबड़ा गया। मुसलमान रिवाज है कि पत्नी पति के घर आकर पहली बार यह पूछती है उससे कि मुझे तुम किन-किन के सामने बुर्का उघाड़ने की आज्ञा देते हो? पत्नी ने पूछा। नसरुद्दीन ने कहा: जब तक कि तू मेरे सामने न उघाड़े और किसी के भी सामने उघाड़। इतना ही ध्यान रखना कि अब दुबारा दर्शन मुझे मत देना।

जो चीजें उघड़ जाती हैं, अर्थहीन हो जाती हैं। जो चीजें ढंकी रह जाती हैं, अर्थपूर्ण हो जाती हैं। आपने शरीर के जिन-जिन अंगों को ढांक लिया है उनको अर्थ दिया है। ढांक-ढांक कर आप अर्थ दे रहे हैं। आप सोच रहे हैं, ढांक कर आप बचा रहे हैं, लेकिन सत्य यह है कि ढांक कर आप अर्थ दे रहे हैं--यू आर क्रिएटिंग मीनिंग। कोई चीज ढांक लो उसमें अर्थ पैदा हो जाता है। क्योंकि कोई भी चीज ढांक लो, आस-पास जो बुद्धुओं की जमात है वह उघाड़ने को उत्सुक हो जाते हैं। उघाड़ने की कोशिश में अर्थ आ जाता है। जितना उघाड़ने की कोशिश चलती है, उतनी ढांकने की कोशिश चलती है। फिर अर्थ बढ़ता चला जाता है। चीजें अगर सीधी और साफ खुल जाएं तो अर्थहीन हो जाती हैं।

अमरीका ने पहली दफा समाज पैदा किया है जो समाज सेक्स से मुक्त एक अर्थ में हो गया कि उसमें अर्थ नहीं दिखाई पड़ रहा। लेकिन इससे बड़ी परेशानी पैदा हुई है, और इसलिए अब नये अर्थ खोजे जा रहे हैं। एल एस डी में, मारिजुआना में, और तरह के ड्रग्स में अर्थ खोजे जा रहे हैं। क्योंकि अब सेक्स से तो कोई तृप्ति होती

नहीं, सेक्स में तो कुछ मतलब ही नहीं रहा। वह तो बेमानी बात हो गई। अब हमें और कोई सेंसेशन और कोई अनुभूतियां चाहिए। और अमरीका लाख उपाय करे, ड्रग्स नहीं रोके जा सकते, कोई विज्ञापन नहीं होता है एल एस डी का। लेकिन घर-घर में पहुंचा जा रहा है। कोई विज्ञापन नहीं है, कोई अखबारों में खबर नहीं है कि आप एल एस डी जरूर पीओ। लेकिन एक-एक यूनिवर्सिटी के कैम्पस पर एक-एक विद्यार्थी के पास पहुंचा जा रहा है। अमरीका तब तक सफल नहीं होगा--कानून बना डाले, विरोध किया है, अदालतें मुकदमे चला रही हैं, सजाएं दी गई हैं--एल एस डी के प्रचार के लिए जो सबसे बड़ा पुरोहित था वहां, तिमोथीलियरी, उसको सजा दे दी आजीवन की--लेकिन इससे रुकेगा नहीं, जब तक आप सेक्स का मीनिंग वापस नहीं लौटा लेंगे अमरीका में, तब तक ड्रग्स नहीं रुक सकते। क्योंकि आदमी बिना मीनिंग के नहीं जी सकता। और या फिर कोई आत्मा का, परमात्मा का मीनिंग खड़ा करे। कोई नया अर्थ, जिसकी खोज में आदमी निकल जाए। कोई नये शिखर, जिन पर वह चढ़ जाए।

एक शिखर है आदमी के पास संभोग का, वह उसकी तलाश में भटकता रहता है। और वह इतना सुरक्षित और व्यवस्थित है कि वह कभी भी यह अनुभव नहीं कर पाता कि वह व्यर्थ है। अगर उसकी पत्नी व्यर्थ हो जाती है, पति व्यर्थ हो जाता है तो भी और स्त्रियां हैं जो सार्थक बनी रहती हैं। पर्दे पर फिल्म की स्त्रियां हैं, जो सार्थक बनी रहती हैं। कोई न कोई है जहां अर्थ बना रहता है, वह उस अर्थ की तलाश में लगा रहता है, उस खोज में लगा रहता है, जिंदगी खो देता है।

महावीर कहते हैं--वृत्ति-संक्षेप--यह बड़ी वैज्ञानिक बात है। इसका एक अर्थ तो यह है कि प्रत्येक वृत्ति, प्रत्येक वृत्ति उसकी टोटल इंटेन्सिटी में जीयी जा सकेगी। और जिस वृत्ति को भी आप उसकी समग्रता में जीते हैं, वह व्यर्थ हो जाती है। और वृत्तियों का व्यर्थ हो जाना जरूरी है आत्मदर्शन के पूर्व। दूसरी बात--सारी वृत्तियां मन को घेर लेती हैं क्योंकि आप मन से ही सारा काम करते हैं। भोजन भी मन से करना पड़ता है; संभोग भी मन से करना पड़ता है; कपड़े भी मन से पहनने पड़ते हैं; कार भी मन से चलानी पड़ती है; दफ्तर भी मन से--सारा काम बुद्धि को घेर लेता है इसलिए बुद्धि निर्बल और निर्वीर्य हो जाती है, इतना काम उस पर हो जाता है। इतना बाहरी काम हो जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उससे कहा है कि अपने मालिक से कहो कि कुछ तनखाह बढ़ाए। बहुत दिन हो गए, कोई तनखाह नहीं बढ़ी। मुल्ला ने कहा: मैं कहता हूं, लेकिन वह सुन कर टाल देता है। उसकी पत्नी ने कहा: तुम जाकर बताओ, उसको कि तुम्हारी मां बीमार है, उसके इलाज की जरूरत है। तुम्हारे पिता को लकवा लग गया है, उनकी सेवा की जरूरत है। तुम्हारी सास भी तुम्हारे पास रहती है। तुम्हारे इतने बच्चे हैं, इनकी शिक्षा का सवाल है। तुम्हारे पास अपना मकान नहीं है, तुम्हें मकान बनाना है। ऐसी उसने बड़ी फेहरिस्त बताई।

मुल्ला दूसरे दिन बड़ा प्रसन्न लौटा दफ्तर से। उसकी पत्नी ने कहा: क्या तनखाह बढ़ गई है? मुल्ला ने कहा: नहीं, मेरे मालिक ने कहा: यू हैव टू मच आउटसाइड एक्टिविटीज। नौकरी खत्म कर दी। तुम दफ्तर का काम कब करोगे? जब इतना तुम्हारा सब काम है--सास भी घर में है तो दफ्तर का काम कब करोगे? उसने छुट्टी दे दी।

बुद्धि के ऊपर इतना ज्यादा काम है कि बुद्धि अपना काम कब करेगी। उसको सब तरफ से बोझिल किए हुए हैं, वह अपना काम कब करेगी? तो आप बुद्धिमत्ता का कोई काम जीवन में नहीं कर पाते। बुद्धि से आप नींद का ही काम लेते हैं। कभी धन कमाने का काम करते हैं, कभी शादी करने का काम करते हैं, कभी रेडियो सुनने का काम करते हैं। लेकिन बुद्धि की बुद्धिमत्ता, बुद्धि का अपना निजी काम क्या है? बुद्धि का निजी काम ध्यान है। जब बुद्धि अपने में ठहरती है, जब बुद्धि अपने में रुकती है, तो वि.जडम, बुद्धिमत्ता आती है और तब पहली

दफे जीवन को आप और ढंग से देख पाते हैं, एक बुद्धिमान की आंखों से। लेकिन वह मौका नहीं आ पाता। बहुत ज्यादा काम है। वह उसी में दबी-दबी नष्ट हो जाती है। जो आपके पास श्रेष्ठतम बिंदु है काम का, उससे आप बहुत निकृष्ट काम ले रहे हैं। जो आपके पास श्रेष्ठतम शक्ति है, उससे आप ऐसे काम ले रहे हैं, जिनको कि सुई से कर सकते थे, उनका काम आप तलवार से ले रहे हैं। तलवार से लेने की वजह से सुई से जो हो सकता था, वह भी नहीं हो पाता। और तलवार जो कर सकती थी, उसका तो कोई सवाल ही नहीं है, वह सुई के काम में उलझी हुई होती है।

वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है--प्रत्येक वृत्ति को उसके अपने केंद्र पर संक्षिप्त करो। उसे फैलने मत दो। भूख लगे तो पेट से लगने दो भूख, बुद्धि से मत लगने दो। बुद्धि को कह दो--तू चुप रह। कितना बजा है, फिकर छोड़। पेट खबर देगा न, कि भूख लगी है, तब हम सुन लेंगे। सोने का काम करना है तो बुद्धि को मत करने दो। नींद आएगी तो खुद ही खबर देगी, शरीर खबर देगा तब सो जाना। नींद तोड़नी हो तो भी बुद्धि को काम मत दो कि वह अलार्म भर कर रख दें। जब नींद टूटेगी तब टूट जाएगी। उसको टूटने दो स्वयं। नींद के यंत्र को अपना काम करने दो; भोजन के यंत्र को अपना काम करने दो; कामवासना के यंत्र को अपना काम करने दो। शरीर के सारे काम स्पेशलाइज्ड हैं, उनके अपने-अपने में चले जाने दो। उनको सबको इकट्ठा मत करो, अन्यथा वे सब विकृत हो जाएंगे और उनको सम्हालना कठिन हो जाएगा।

और मजे की बात यह है कि जिस केंद्र पर काम पहुंच जाता है, बुद्धि का इतना काम है कि वह केंद्र अपना काम को समग्रता से करे ताकि उसका केंद्र का काम किसी दूसरे केंद्र पर न फैलने पाए। बुद्धि इतना देखे तो पर्याप्त है, तो बुद्धि नियंता हो जाती है। वह कंट्रोलर हो जाती है। वह मध्य में बैठ जाती है और मालिक हो जाती है, उसकी नजर सब इंद्रियों पर हो जाती है। और प्रत्येक इंद्रिय अपना काम करे, यही उसकी दृष्टि हो जाती है। जैसे ही कोई इंद्रिय अपना काम करती है, बुद्धि देख पाती है कि उस काम में कुछ रस मिलता है या नहीं मिलता है, तो जो व्यर्थ काम हैं वे बंद होने शुरू हो जाते हैं। जो सार्थक काम हैं वे बढ़ने शुरू हो जाते हैं। बहुत शीघ्र वह वक्त आ जाता है--जब आपके जीवन से व्यर्थ गिर जाता है और गिराना नहीं पड़ता है। और सार्थक बच रहता है, बचाना नहीं पड़ता। आपके जीवन से कांटे गिर जाते हैं, फूल बच जाते हैं। इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता है। बुद्धि का सिर्फ देखना ही पर्याप्त होता है। उसका साथी होना पर्याप्त होता है। साक्षी होना ही बुद्धि का स्वभाव है। वही उसका काम है। बुद्धि किसी की मीन्स नहीं है, किसी का साधन नहीं है। वह स्वयं साध्य है। सभी इंद्रियां अपने अनुभव को बुद्धि को दे दें, लेकिन कोई इंद्रिय अपने काम को बुद्धि से न ले पाए, यह वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है।

निश्चित ही इसका परिणाम होगा। इसका परिणाम होगा कि जब प्रत्येक केंद्र अपना काम करेगा तो आपके बहुत से काम जो बाहर के जगत में फैलाव लाते थे, वे गिरने शुरू हो जाएंगे, वे सिकुड़ने शुरू हो जाएंगे, बिना आपके प्रयत्न के। आपको धन की दौड़ छोड़नी नहीं पड़ेगी, आप अचानक पाएंगे, उसमें जो-जो व्यर्थ है वह छूट गया। आपको बड़ा मकान बनाने का पागलपन छोड़ना नहीं पड़ेगा, आपको दिख जाएगा कि कितना मकान आपके लिए जरूरी है। उससे ज्यादा व्यर्थ हो गया। आपको कपड़ों का ढेर लगाने का पागलपन नहीं हो जाएगा, आब्सेशन नहीं हो जाएगा, आप गिनती करके मजा न लेने लगेंगे कि अब तीन सौ साड़ी पूरी हो गई, अब चार सौ साड़ी पूरी हुई हैं, अब पांच सौ साड़ी पूरी हो गई। आ पकी बुद्धि आपको कहेगी--पांच सौ साड़ी पहनिएगा कब? लेकिन आदमी अदभुत है।

मैंने सुना है कि दो सेल्स-मैन आपस में एक दिन बात कर रहे थे। एक सेल्स-मैन बड़ी बातें कर रहा था कि आज मैंने इतनी बिक्री की। एक आदमी एक ही टाई खरीदने आया था, मैंने उसको छह टाई बेच दी। दूसरे ने कहा: दिस इज नर्थिंग, यह कुछ भी नहीं है। एक औरत अपने मरे हुए पति के लिए सूट खरीदने आई थी, मैंने

उसे दो सूट बेच दिए। एक औरत अपने मरे हुए पति के लिए कपड़े खरीदने आई थी, मैंने उसे दो जोड़े कपड़े बेच दिए। मैंने कहा: यह दूसरा और भी ज्यादा जंचता है और कभी-कभी बदलने के लिए बिल्कुल ठीक रहेंगे।

कोई औरत ले जा सकती है दो जोड़े, क्योंकि जिंदगी हमारी कीमत से जीती है, बुद्धि से नहीं जीती है। वह पति मर गया है, यह सवाल थोड़े ही है। और पति को दूसरा जोड़ा पहनने का मौका कभी नहीं आएगा, यह भी सवाल नहीं है। लेकिन दूसरा जोड़ा भी जंच रहा है, और दो जोड़े--तो मन का एक रस है। करीब-करीब हम सब यही कर रहे हैं। कौन पहनेगा, कब पहनेगा, इसका सवाल नहीं है। कितना? वह महत्वपूर्ण है। कौन खाएगा, कब खाएगा, इसका सवाल नहीं है। कितना? मात्रा ही अपने आप में मूल्यवान हो गई है। उपयोग जैसे कुछ भी नहीं है, संख्या ही उपयोगी हो गई है। कितनी संख्या हम बता सकते हैं, उसका उपयोग है।

मैं घरों में जाता हूं, देखता हूं कोई आदमी सौ जूते के जोड़े रखे हुए है। इससे तो बेहतर यही है, आदमी चमार हो जाए। गिनती का मजा लेता रहे। यह नाहक, अकारण चमार बना हुआ है मुफ्त। गिनती ही करनी है न! तो चमार हो जाए, जोड़े गिनता रहे। नये-नये जोड़े रोज आते जाएंगे उसको बड़ी तृप्ति मिलेगी। अब यह आदमी बुद्धि से चमार है। सौ जोड़े का क्या करिएगा? नहीं, लेकिन सौ जोड़े की प्रतिष्ठा है। जिसके पास है उसके मन में तो है ही, जिसके पास नहीं है वह पीड़ित है कि हमारे पास सौ जोड़े जूते नहीं हैं। चमारी में भी प्रतियोगिता है। वह दूसरा हमसे ज्यादा चमार हुआ जा रहा है, हम बिल्कुल पिछड़े जा रहे हैं। अभागे हैं। सौ जोड़े जूते हम पर कब होंगे? अक्सर ऐसा होता है कि जूते के जोड़ तो इकट्ठे हो जाते हैं, लेकिन जोड़े-जूते इकट्ठा करने में पैर इस योग्य नहीं रह जाते कि चल भी पाएं। और सौ पर कोई संख्या रुकती नहीं है।

तिब्बत में एक पुरानी कथा है कि दो भाई हैं। पिता मर गया है, तो उनके पास सौ घोड़े थे। घोड़े का काम था। सवारियों को लाने-ले जाने का काम था। तो पिता मरते वक्त बड़े भाई को कह गया कि तू बुद्धिमान है, छोटा तो अभी छोटा है। तू अपनी मर्जी से जैसा भी बंटवारा करना चाहे, कर देना। तो बड़े भाई ने बंटवारा कर दिया। नित्यानबे घोड़े उसने रख लिए, एक घोड़ा छोटे भाई को दे दिया। आस-पास के लोग चौंके भी। पड़ोसियों ने कहा भी कि यह तुम क्या कर रहे हो? तो बड़े भाई ने कहा कि मामला ऐसा है, यह अभी छोटा है, समझ कम है। नित्यानबे कैसे समझालेगा? तो मैं नित्यानबे ले लेता हूं, एक उसे दे देता हूं।

ठीक छोटा भी थोड़े दिन में बड़ा हो गया, लेकिन वह एक से काफी प्रसन्न था, एक से काम चल जाता था। वह खुद ही नौकर नहीं रखने पड़ते थे, अलग इंतजाम नहीं करना पड़ता था--वह खुद ही सईस की तरह चला जाता था। यात्रा करवा आता था लोगों के लिए। उसका भोजन का काम चल जाता था। लेकिन बड़ा भाई बड़ा परेशान था। नित्यानबे घोड़े थे, नित्यानबे चक्कर थे। नौकर रखने पड़ते। अस्तबल बनाना पड़ता। कभी कोई घोड़ा बीमार हो जाता, कभी कुछ हो जाता। कभी कोई घोड़ा भाग जाता, कभी कोई नौकर न लौटता। रात हो जाती, देर हो जाती, वह जागता, वह बहुत परेशान था।

एक दिन आकर उसने अपने छोटे भाई को कहा कि तुझसे मेरी एक प्रार्थना है कि तेरा जो एक घोड़ा है वह भी तू मुझे दे दे। उसने कहा: क्यों? तो उस बड़े भाई ने कहा: तेरे पास एक ही घोड़ा है, नहीं भी रहा तो कुछ ज्यादा नहीं खो जाएगा। मेरे पास नित्यानबे हैं, अगर एक मुझे और मिल जाए तो सौ हो जाएंगे। पर मेरे लिए बड़ा सवाल है। क्योंकि मेरे पास नित्यानबे हैं। एक मिलते ही पूरी सेंचुरी, पूरे सौ हो जाएंगे। तो मेरी प्रतिष्ठा और इज्जत का सवाल है। अपने बाप के पास सौ घोड़े थे, कम से कम बाप की इज्जत का भी इसमें सवाल जुड़ा हुआ है। छोटे भाई ने कहा: आप यह घोड़ा भी ले जाएं। क्योंकि मेरा अनुभव यह है कि नित्यानबे में आपको मैं बड़ी तकलीफ में देखता हूं, तो मैं सोचता हूं, एक में भी नित्यानबे बंटे नहीं, लेकिन थोड़ी बहुत तकलीफ तो होगी ही। यह भी आप ले जाएं।

तो वह छोटा उस दिन से इतने आनंद में हो गया क्योंकि अब वह खुद ही घोड़े का काम करने लगा। अब तक कभी घोड़ा बीमार पड़ता था, कभी दवा लानी पड़ती थी; कभी घोड़ा राजी नहीं होता था जाने को; कभी थक कर बैठ जाता था। हजार पंचायतें होती थीं। वह भी बात खत्म हो गई। अब तक घोड़े की नौकरी करनी पड़ती थी। उसकी लगाम पकड़ कर चलानी पड़ती थी, वह बात भी खत्म हो गई। अपना मालिक हो गया। अब वह खुद ही बोझ ले लेता, लोगों को कंधे पर बिठा लेता और यात्रा कराता। लेकिन बड़ा बहुत परेशान हो गया। वह बीमार ही रहने लगा। क्योंकि सौ में से अब कहीं एकाध कम न हो जाए, कोई घोड़ा मर न जाए, कोई घोड़ा खो न जाए, नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।

मारपा यह कहानी अक्सर कहा करता था--एक तिब्बती फकीर था--वह अक्सर यह कहानी कहा करता था। और वह कहता था--मैंने दो ही तरह के आदमी देखे--एक, वे जो वस्तुओं पर इतना भरोसा कर लेते हैं कि उनकी वजह से ही परेशान हो जाते हैं। और एक वे, जो अपने पर इतने भरोसे से भरे होते हैं कि वस्तुएं उन्हें परेशान नहीं कर पातीं। दो ही तरह के लोग हैं इस पृथ्वी पर। दूसरी तरह के लोग बहुत कम हैं इसलिए पृथ्वी पर आनंद बहुत कम है। पहले तरह के लोग बहुत हैं, इसलिए पृथ्वी पर दुख बहुत है। वृत्ति-संक्षेप का अर्थ सीधा नहीं है यह कि आप अपने परिग्रह को कम करें। जब भीतर आपकी वृत्ति संक्षिप्त होती है तो बाहर परिग्रह कम हो जाता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि आप सब छोड़ कर भाग जाएं, तो आप बदल जाएंगे--जरूरी नहीं है। क्योंकि चीजें छोड़ने से अगर आप बदल सकें तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। अगर चीजें छोड़ने से मैं बदल जाता हूं तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। और अगर चीजें छोड़ने से मुझे मोक्ष मिलता है तो ठीक है, मोक्ष का भी सौदा हो जाता है। चीजों की ही कीमत चुका कर मोक्ष मिल जाता है। अगर एक मकान छोड़ने से, एक पत्नी और एक बेटे को छोड़ देने से मुझे मोक्ष मिल जाता है, तो मोक्ष की कीमत कितनी हुई? इतनी ही कीमत हुई जितनी मकान की हो सकती है, एक पत्नी की, एक बेटे की हो सकती है। अगर मैं चीजें छोड़ने से त्यागी हो जाता हूं तो ठीक है। चीजें छोड़ने से लोग त्यागी हो जाते हैं, चीजें होने से भोगी हो जाते हैं। लेकिन चीजों का मूल्य, उसकी वेल्यू तो कायम रहती है। फिर जिसके पास चीज नहीं हो, वह त्यागी कैसे होगा? जिसके पास छोड़ने का महल नहीं हो, वह महात्यागी कैसे होगा? बड़ी मुश्किल है, पहले महल होना चाहिए।

नसरुद्दीन से किसी ने पूछा है कि मोक्ष जाने का मार्ग क्या है? तो नसरुद्दीन ने कहा: यू मस्ट सिन फर्स्ट। पहले पाप करो।

उसने कहा: यह क्या पागलपन की बात है? तुम मोक्ष जाने का रास्ता बता रहे हो कि नरक जाने का?

नसरुद्दीन ने कहा कि जब पाप नहीं करोगे तो पश्चात्ताप कैसे करोगे? और जब पश्चात्ताप नहीं करोगे तो मोक्ष जाओगे कैसे? और जब पाप नहीं करोगे तो भगवान तुम पर दया कैसे करेगा, और जब दया नहीं करेगा तो कुछ होगा ही नहीं बिना उसकी दया के। पहले पाप करो, तब पश्चात्ताप करो, तब भगवान दया करेगा, तब स्वर्ग का द्वार खुलेगा, तुम भीतर प्रवेश कर जाओगे। तो जो एसेंशियल चीज है, नसरुद्दीन ने कहा वह पाप है। उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता, वही हम सबकी भी बुद्धि है।

एसेंशियल चीज, वस्तुएं हैं। पहले इकट्ठी करो, फिर त्याग करो। अगर त्याग न करोगे तो मोक्ष कैसे जाओगे? लेकिन त्याग करोगे कैसे, अगर इकट्ठी न करोगे? तो पहले इकट्ठी करो, फिर त्याग करो, फिर मोक्ष जाओ। मगर जाओगे वस्तुओं से ही मोक्ष। वस्तुओं पर ही चढ़ कर मोक्ष जाना होगा। तो फिर मोक्ष कम कीमती हो गया है, वस्तुएं ही ज्यादा कीमती हो गई हैं। क्योंकि जो पहुंचा दे, उसी की कीमत है।

कबीर ने कहा--गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांव। गुरु और गोविंद दोनों ही एक दिन सामने खड़े हो गए हैं, अब किसके पैर लगूं? तो फिर कबीर ने सोचा कि गुरु के ही पैर लगना ठीक है क्योंकि उसी से गोविंद का पता चलेगा।

तो अगर वस्तुओं से मोक्ष जाना है तो वस्तुओं की ही शरणागति जाना पड़ेगा, तो उनके ही पैर पड़ो क्योंकि उनसे ही मोक्ष मिलेगा। न करोगे त्याग, न मिलेगा मोक्ष। त्याग क्या करोगे? कुछ होना चाहिए, तब त्याग करोगे। तब फिर वस्तुओं का मूल्य थिर है, अपनी जगह। भोगी के लिए भी, त्यागी के लिए भी।

नहीं, महावीर का यह अर्थ नहीं है। महावीर वस्तु को मूल्य नहीं दे सकते। इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर का यह अर्थ नहीं है कि वस्तुओं के त्याग का नाम वृत्ति-संक्षेप है। महावीर वस्तुओं को मूल्य दे ही नहीं सकते। इतना भी मूल्य नहीं दे सकते कि उनके त्याग का कोई अर्थ है। नहीं, महावीर का आंतरिक प्रयोग है। भीतर वृत्ति-केंद्र पर ठहर जाए तो बाहर फैलाव अपने आप बंद हो जाता है। वैसे ही, जैसे हमने एक दीया जलाया हो और अगर हम उसकी बाती को भीतर नीचे की तरफ कम कर दें तो बाहर प्रकाश का घेरा कम हो जाता है। जहां दीये की बाती छोटी होती जाती है वहां प्रकाश का घेरा कम होता जाता है। लेकिन आप सोचते हों कि प्रकाश का घेरा कम करके हम दीये की बाती छोटी कर लेंगे तो आप बड़ी गलती में हैं। कभी नहीं होगा, आप धोखा दे सकते हैं। धोखा देने की तरकीब? तरकीब यह है कि आप अपनी आंख बंद करते चले जाएं, दीया उतना ही जलता रहेगा, प्रकाश उतना ही पड़ता रहेगा। आप अपनी आंख धीरे-धीरे बंद करते चले जाएं। आप बिल्कुल अंधेरे में बैठ सकते हैं, लेकिन वह धोखा है और आंख खोलेंगे और पाएंगे दीये का वर्तुल, प्रकाश उतना का उतना है। क्योंकि दीये का वर्तुल मूल नहीं है, मूल उसकी बाती है। उसकी बाती नीचे छोटी होती जाए तो बाहर प्रकाश का वर्तुल छोटा होता जाता है। बाती डूब जाए, शून्य हो जाए तो वर्तुल खो जाता है।

हम सबके भीतर, जो बाहर फैलाव दिखाई पड़ता है--हमारे भीतर उसकी बाती है। प्रत्येक हमारे केंद्र पर, वासना के केंद्र पर, हम कितना फैलाव कर रहे हैं, उससे बाहर फैलता है। बाहर तो सिर्फ प्रदर्शन है। असली बात तो भीतर है। भीतर सिकुड़ाव हो जाता है, बाहर सब सिकुड़ जाता है। ध्यान रहे, जो बाहर से सिकुड़ने में लगता है वह गलत, बिल्कुल गलत मार्ग से चल रहा है। वह परेशान होगा, पहुंचेगा कहीं भी नहीं।

हालांकि कुछ लोग परेशानी को तप समझ लेते हैं। जो परेशानी को तप समझ लेते हैं, उनकी नासमझी का कोई हिसाब नहीं है। तप से ज्यादा आनंद नहीं है, लेकिन तप को लोग परेशानी समझ लेते हैं क्योंकि परेशानी यही है, उनको दस कपड़े चाहिए थे, उन्होंने नौ रख लिया, वे बड़े परेशान हैं। परेशानी उतनी ही है जितना दस में मजा था। दस के मजे का अनुपात ही परेशानी बन जाएगा। दस में कम हो गया तो परेशानी शुरू हो गई। अब वह परेशानी को तप समझ रहे हैं। परेशानी तप नहीं है।

यह मैंने मुल्ला की पत्नी की बात आपसे की। यह उसने जान कर उस स्त्री से शादी की। गांव भर में खबर थी कि वह बहुत दुष्ट है, कलहपूर्ण है। चालीस साल तक उससे कोई शादी करने वाला नहीं मिला था। और जब नसरुद्दीन ने खबर की कि मैं उससे शादी करता हूँ, तो मित्रों ने कहा--तू पागल तो नहीं हो गया है नसरुद्दीन? इस औरत को कोई शादी करने वाला नहीं मिला है। यह खतरनाक है, तेरी गर्दन दबा देगी। यह तेरे प्राण ले लेगी; यह तुझे जीने न देगी; तू बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा।

नसरुद्दीन ने कहा: मैं भी चालीस साल तक अविवाहित रहा। अविवाहित रहने में मैंने बहुत पाप कर लिए। इससे शादी करके मैं प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। दिस इ.ज गोइंग टु बी ए पिनांस। यह एक तप है। जान कर कर रहा हूँ। लेकिन पश्चात्ताप तो करना पड़ेगा न। स्त्रियों से इतना सुख पाया, जब इतना ही दुख पाऊंगा, तब तो हल होगा न! और यह स्त्री जितना दुख दे सकती है, शायद दूसरी न दे सके। यह बड़ी अदभुत है। नसरुद्दीन ने शादी कर ली। मित्रों ने बहुत समझाया, न माना।

लेकिन नसरुद्दीन की पत्नी के पास खबर पहुंच गई कि नसरुद्दीन ने इसलिए शादी की है ताकि यह स्त्री उसको सताए और उसका तप हो जाए। और उसने कहा, भूल में न रहो। तुम मेरे ऊपर चढ़ कर स्वर्ग न जा सकोगे। मैं किसी का साधन नहीं बन सकती। आज से मैंने, कलह बंद। कहते हैं वह स्त्री नसरुद्दीन से जिंदगी भर

न लड़ी। उसको नरक जाना ही पड़ा, नहीं लड़ी। उसने कहा: मुझे तुम साधन बनाना चाहते हो, स्वर्ग जाने का? यह नहीं होगा। यह कभी नहीं हो सकता, तुम नरक जाकर ही रहोगे। वह इसी जमीन पर नरक पैदा करती, उसने पैदा नहीं किया। उसने अगले का इंतजाम कर दिया।

आप किस चीज को साधन बना कर जाना चाहते हैं स्वयं तक? वस्तुओं को? अपरिग्रह को? बाहर से रोक कर अपने को, सम्हाल कर? वह नहीं होगा। आप परेशान भला हो जाएं, तप नहीं होगा। परेशानी तप नहीं है। तप तो बड़ा आनंद है और तपस्वी के आनंद का कोई हिसाब नहीं है। वस्तुएं दुख हैं। लेकिन यह दुख तभी पता चलेगा आपको जब आपकी वृत्ति के केंद्र पर आप अनुभव करेंगे और दुख पाएंगे और सुख की कोई रेखा न दिखाई पड़ेगी। अंधेरा ही अंधेरा पाएंगे, कोई प्रकाश की ज्योति न दिखाई पड़ेगी। कांटे ही कांटे पाएंगे, कोई फूल खिलता न दिखाई पड़ेगा। भीतर... भीतर केंद्र व्यर्थ हो जाएगा, बाहर से आभामंडल तिरोहित हो जाएगा। अचानक आप पाएंगे, बाहर अब कोई अर्थ नहीं रह गया। लोगों को दिखाई पड़ेगा। आपने बाहर कुछ छोड़ दिया। आप बाहर कुछ भी न छोड़ेंगे, भीतर कुछ टूट गया। भीतर कोई ज्योति ही बुझ गई। तो एक-एक केंद्र पर उसकी वृत्ति को ठहरा देना और बुद्धि को सजग रख कर देखना कि उस वृत्ति के अनुभव क्या हैं।

बहुत आदमी के संबंध में जो बड़े से बड़ा आश्चर्य है वह यह है कि जिस चीज को आप आज कहते हैं कि कल मुझे मिल जाए तो सुख मिलेगा, कल जब वह चीज मिलती है तो आप कभी तौल नहीं करते कि कल मैंने कितना सुख सोचा था, वह मिला या नहीं मिला! बड़ा आश्चर्य है। यह भी बड़ा आश्चर्य है कि उससे दुख मिलता है, फिर भी दूसरे दिन आप फिर उसी की चाह करने लगते हैं और कभी नहीं सोचते कि कल पाकर इसे दुख पाया था, अब मैं फिर दुख की तलाश में जाता हूं। हम कभी तौलते ही नहीं, बुद्धि का वही काम है, वही हम नहीं लेते उससे। वही काम है कि जिस चीज में सोचा था कि सुख मिलेगा, उसमें मिला? जिस चीज में सोचा था सुख मिलेगा उसमें दुख मिला, यह अनुभव में आता है और इस अनुभव को हम याद नहीं रखते और जिसमें दुख मिला उसको फिर दुबारा चाहने लगते हैं।

ऐसे जिंदगी सिर्फ एक कोल्हू के बैल जैसी हो जाती है। बस एक ही रास्ते पर घूमते रहते हैं। कोई गति नहीं, कहीं कोई पहुंचना नहीं होता। घूमते-घूमते मर जाते हैं। जहां पैदा होते हैं, उसी जमीन पर खड़े-खड़े मर जाते हैं। कहीं एक इंच आगे नहीं बढ़ पाते। बढ़ भी नहीं पाएंगे। क्योंकि बढ़ने की जो संभावना थी वह आपकी बुद्धिमत्ता से थी, आपकी विजडम से थी, आपकी प्रज्ञा में थी। वह तो प्रज्ञा कभी विकसित नहीं होती।

तो महावीर वृत्ति-संक्षेप पर जोर देते हैं ताकि प्रत्येक वृत्ति अपनी-अपनी निखार तीव्रता में, अपनी प्योरिटी में अनुभव में आ जाए और अनुभव कह जाए दुख है, कि दुख है वहां, सुख नहीं। और बुद्धि इस अनुभव को संगृहीत करे, बुद्धि इस अनुभव को जीए और पीए और इस बुद्धि के रोएं-रोएं में यह समा जाए तो आपके भीतर वृत्तियों से ऊपर आपकी प्रज्ञा, आपकी बुद्धिमत्ता उठने लगेगी। और जैसे-जैसे बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है, वैसे-वैसे वृत्तियां सिकुड़ती जाती हैं। इधर वृत्तियां सिकुड़ती हैं, इधर बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है। और बाहर परिग्रह कम होता चला जाता है। जैसे बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है वैसे संसार बाहर कम होता चला जाता है। जिस दिन आपकी समग्र शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर बुद्धि को मिल जाती है, उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं। जिस दिन आपकी सारी शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर प्रज्ञा के साथ खड़ी हो जाती है, उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं।

जिस दिन कामवासना की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन लोभ की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन क्रोध की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन मोह की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन समस्त शक्तियां बुद्धि की तरफ प्रवाहित होने लगती हैं; जैसे नदियां सागर की तरफ जा रही हों, उस दिन बुद्धि का महासागर आपके भीतर फलित होता है। उस महासागर का आनंद, उस महासागर की प्रतीति और अनुभूति दुख की नहीं है, परेशानी की नहीं है, वह परम आनंद की है। वह प्रफुल्लता की है। वह

किसी फूल के खिल जाने जैसी है। वह किसी दीये के जल जाने जैसी है। वह कहीं मृतक में जैसे जीवन आ जाए, ऐसी है।

आज इतना ही।

कल आगे के नियम पर बात करेंगे। लेकिन उठें न। जो कीर्तन के लिए आना चाहते हैं वे ऊपर आ जाएं। पांच मिनट कीर्तन करें, फिर जाएं।

रस-परित्याग और काया-क्लेश (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

बाह्य-तप का चौथा चरण है--रस-परित्याग। परंपरा रस-परित्याग से अर्थ लेती रही है। किन्हीं रसों का, किन्हीं स्वादों का निषेध, नियंत्रण। इतनी स्थूल बात रस-परित्याग नहीं है। वस्तुतः सधना के जगत में स्थूल से स्थूल दिखाई पड़ने वाली बात भी स्थूल नहीं होती। कितने ही स्थूल शब्दों का प्रयोग किया जाए बात तो सूक्ष्म ही होती है। मजबूरी है कि स्थूल शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि सूक्ष्म के लिए कोई शब्द नहीं है। वह जो अंतर्जगत है, वहां इशारे करने वाले कोई शब्द हमारे पास नहीं हैं। अंतर्जगत की कोई भाषा नहीं है। इसलिए बाह्य जगत के ही शब्दों का प्रयोग करना मजबूरी है। उस मजबूरी से खतरा भी पैदा होता है क्योंकि तब उन शब्दों का स्थूल अर्थ लिया जाना शुरू हो जाता है। रस-परित्याग से यही लगता है कि कभी खट्टे का त्याग कर दो; कभी मीठे का त्याग कर दो; कभी घी का त्याग कर दो; कभी कुछ और त्याग कर दो। रस-परित्याग से ऐसा प्रयोजन महावीर का नहीं है। महावीर का क्या प्रयोजन है, वह दो-तीन हिस्सों में समझ लेना जरूरी है।

पहली बात तो यह कि रस की पूरी प्रक्रिया क्या है? जब आप कोई स्वाद लेते हैं तो स्वाद वस्तु में होता है या स्वाद आपकी स्वाद इंद्रिय में होता है? या स्वाद स्वादेन्द्रिय के पीछे वह जो आपका अनुभव करने वाला मन है, उसमें होता है? या स्वाद उस मन के साथ आपकी चेतना का जो तादात्म्य है उसमें होता है? स्वाद कहां है? रस कहां है? तभी परित्याग ख्याल में आ सकेगा। जो स्थूल देखते हैं उन्हें लगता है कि स्वाद या रस वस्तु में होता है, इसलिए वस्तु को छोड़ दो। वस्तु में स्वाद नहीं होता, न रस होता है; वस्तु केवल निमित्त बनती है। और अगर भीतर रस की पूरी प्रक्रिया काम न कर रही हो तो वस्तु निमित्त बनने में असमर्थ है। जैसे आपको फांसी की सजा दी जा रही हो और आपको मिष्ठान्न खाने को दे दिया जाए, तो भी मीठा नहीं लगेगा। मिष्ठान्न अब भी मीठा ही है, और जो मीठे को भोग सकता था, वह एकदम अनुपस्थित हो गया है। स्वादेन्द्रिय अब भी खबर देगी क्योंकि स्वादेन्द्रिय को कोई भी पता नहीं है कि फांसी लग रही है, न पता हो सकता है। स्वादेन्द्रिय के संवेदनशील तत्व अब भी भीतर खबर पहुंचाएंगे कि मीठा है--मिठाई मुंह पर है, जीभ पर है। लेकिन मन उस खबर को लेने की तैयारी नहीं दिखाएगा। मन भी उस खबर को ले ले तो मन के पीछे जो चेतना है उस का और मन के बीच का सेतु टूट गया है, संबंध टूट गया है। मृत्यु के क्षण में वह संबंध नहीं रह जाता। इसलिए मन भी खबर ले लेगा कि जीभ ने क्या खबर दी है, तो भी चेतना को कोई पता नहीं चलेगा।

आपके व्यक्तित्व को बदलने के लिए हजारों वर्षों से, जब भी कोई बहुत उलझन होती है तो शाक ट्रीटमेंट का उपयोग करते रहे हैं चिकित्सक--जब भी कोई उलझन होती है तो आपको इतना गहरा धक्का देने का प्रयोग करते रहे हैं, शाक का, और उससे कई बार बहुत गहरी उलझन सुलझ जाती है। और शाक ट्रीटमेंट का कुल अर्थ

इतना ही है कि आपकी चेतना और आपके मन का सेतु क्षण भर को टूट जाए। उस सेतु के टूटते ही आपके भीतर की सारी व्यवस्था जैसी कल तक थी रुग्ण, वह अव्यवस्थित हो जाती है, अराजक हो जाती है। और नई व्यवस्था कोई भी रुग्ण नहीं बनाना चाहता। इसलिए शाक ट्रीटमेंट का कुल भरोसा इतना है कि एक बार पुरानी व्यवस्था का ढांचा टूट जाए तो आप फिर शायद उस ढांचे को न बना सकेंगे।

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़े मनोचिकित्सक के पास एक रुग्ण कैथलिक नन, कैथलिक साध्वी को लाया गया था। छह महीने से निरंतर उसे हिचकी आ रही थी, वह बंद नहीं होती थी। वह नींद में भी चलती रहती थी। सारी चिकित्सा, सारे उपाय कर लिए गए थे, वह हिचकी बंद नहीं हो रही थी। चिकित्सक थक गए थे और उन्होंने कहा--अब हमारे पास कोई उपाय नहीं है। शायद मनस चिकित्सक कुछ कर सकें। तो मनस चिकित्सक के पास लाया गया। बहुत लोग उस साध्वी को मानने वाले थे। आदर करने वाले थे, वे सब उसके साथ आए थे। वह साध्वी प्रभु का भजन करती हुई भीतर प्रविष्ट हुई। वह निरंतर प्रभु का स्मरण करती रहती थी। चिकित्सक ने पता नहीं उससे क्या कहा कि दो ही क्षण बाद वह रोती हुई बाहर वापस लौटी। उसके भक्त देख कर हैरान हुए कि वह एक क्षण में ही रोती हुई वापस आ गई। रो रही है! भगवान का छह महीने का स्मरण जो नहीं कर सका था, वह हो गया है। रो तो जरूर रही है, लेकिन हिचकी बंद हो गई है।

पीछे से चिकित्सक आया। वह तो साध्वी दौड़ कर बाहर निकल गई। उसके भक्तों ने पूछा--आपने ऐसा क्या कहा कि उसको इतनी पीड़ा पहुंची? चिकित्सक ने कहा कि मैंने उससे कहा--हिचकी तो कुछ भी नहीं है, यू आर प्रेगेंट, तुम गर्भवती हो। अब कैथोलिक नन, कैथोलिक साध्वी गर्भवती हो, इससे बड़ा शाक नहीं हो सकता। उसके भक्तों ने कहा: आप यह क्या कह रहे हैं? उस चिकित्सक ने कहा: तुम घबड़ाओ मत, इसके अतिरिक्त हिचकी बंद नहीं हो सकती थी। बिजली के शाक को भी वह महिला झेल गई। लेकिन अब हिचकी बंद हो गई। हुआ क्या?

कैथलिक नन, आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर प्रवेश करती है। वह गर्भिणी है, भारी धक्का लगा। मन और चेतना का जो संबंध था, चेतना और शरीर का जो संबंध सेतु था, वह एकदम टूट गया। एक क्षण को भी वह टूट गया तो हिचकी बंद हो गई, क्योंकि हिचकी की अपनी व्यवस्था थी। वह सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। हिचकी लेने के लिए भी सुविधा चाहिए, वह सुविधा न रही। हिचकी का जो पुराना जाल था, छह महीने से निश्चित, वह अब कारगर न रहा। शरीर वही है, हिचकी कैसे खो गई! कोई दवा नहीं दी गई, कोई इलाज नहीं किया गया है, हिचकी कैसे खो गई! मनोचिकित्सक कहते हैं कि अगर चेतना और मन के संबंध में कहीं भी, जरा सा भेद पड़ जाए एक क्षण के लिए भी तो आदमी का व्यक्तित्व दूसरा हो जाता है। वह पुराना ढांचा टूट जाता है। रस-परित्याग उस ढांचे को तोड़ने की प्रक्रिया है।

वस्तु में रस नहीं होता, सिर्फ रस का निमित्त होता है। इसे हम ऐसा समझें तो आसानी हो जाएगी। आप इस कमरे में आए हैं। दीवारें एक रंग की हैं, फर्श दूसरे रंग का है, कुर्सियां तीसरे रंग की हैं, अलग-अलग लोग अलग-अलग रंगों के कपड़े पहने हुए हैं। स्वभावतः आप सोचते होंगे कि इन सब चीजों में रंग है। और जब हम कमरे के बाहर चले जाएंगे तब भी कुर्सियां एक रंग की रहेंगी, दीवार दूसरे रंग की रहेंगी, फर्श तीसरे रंग का रहेगा। अगर आप ऐसा सोचते हैं तो आप कोई आधुनिक विज्ञान की किसी भी कीमती खोज से परिचित नहीं हैं। जब इस कमरे में कोई नहीं रह जाएगा तो वस्तुओं में कोई रंग नहीं रह जाता। यह बहुत मन को हैरान करता है। यह बात भरोसे की नहीं मालूम पड़ती। हमारा मन होगा कि हम किसी छेद से झांककर देख लें कि रंग रह गया कि नहीं। लेकिन आपने झांककर देखा कि वस्तुओं में रंग शुरू हो जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं--किसी वस्तु में कोई रंग नहीं होता, वस्तु केवल निमित्त होती है, किसी रंग को आपके भीतर पैदा करने के लिए। जब आप नहीं होते, जब ऑब्जर्वर नहीं होता, जब कोई देखने वाला नहीं होता, वस्तु रंगहीन हो जाती है, कलरलेस हो जाती है।

असल में प्रकाश की किरण जब किसी वस्तु पर पड़ती है तो वस्तु प्रकाश की किरण को पीती है। अगर वह सारी किरणों को पी जाती है तो काली दिखाई पड़ती है। अगर वह सारी किरणों को छोड़ देती है और नहीं

पीती तो सफेद दिखाई पड़ती है। अगर वह लाल रंग की किरण को छोड़ देती है और बाकी किरणों को पी लेती है तो लाल दिखाई पड़ती है। अब यह बहुत हैरानी होगी कि जो वस्तु लाल दिखाई पड़ती है वह लाल को छोड़ कर सब रंगों को पीती है, सिर्फ लाल को छोड़ देती है। वह जो छूटी हुई लाल किरण है वह आपकी आंख पर पड़ती है, और उस किरण की वजह से वस्तु लाल दिखाई पड़ती है, जहां से वह आती हुई मालूम पड़ती है। लेकिन अगर कोई आंख ही नहीं है तो लाल किसको दिखाई पड़ेगी? उस किरण को पकड़ने के लिए कोई आंख चाहिए तब वह लाल दिखाई पड़ेगी। आपका बाहर जाना भी जरूरी नहीं है।

जब आप आंख बंद कर लेते हैं तो वस्तुएं रंगहीन हो जाती हैं, कलरलेस हो जाती हैं। कोई रंग नहीं रह जाता। इसका यह भी मतलब नहीं है कि वे सब एक जैसी हो जाती हैं। क्योंकि अगर वे सब एक जैसी हो जाएं तो जब आप आंख खोलेंगे तो उनमें सब में एक सा रंग दिखाई पड़ना चाहिए। रंगहीन हो जाती हैं, लेकिन उनके रंगों की संभावना मौजूद बनी रहती है, पोटेंशियलिटी। जब आप आंख खोलेंगे तो लाल-लाल होगी, हरी-हरी होगी। जब आप आंख बंद कर लेंगे तो लाल-लाल न रह जाएगी, हरी-हरी न रह जाएगी। इसे ऐसा समझें कि लाल रंग की वस्तु सिर्फ वस्तु का रंग नहीं है, वस्तु और आपकी आंख के बीच का संबंध है, रिलेशनशिप है। क्योंकि आंख बंद हो गई, रिलेशनशिप टूट गई, संबंध टूट गया। लाल रंग की कुर्सी नहीं है। आपकी आंख और कुर्सी के बीच लाल रंग का संबंध है। अगर आंख नहीं है तो संबंध टूट गया।

जब आप किसी चीज को कहते हैं--मीठा, तब भी वस्तु और आपके स्वादेन्द्रिय के बीच का संबंध है। वस्तु मीठी नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि कड़वी और मीठी वस्तु में कोई फर्क नहीं है। पोटेंशियल फर्क है। बीज फर्क है, लेकिन अगर जीभ पर न रखा जाए तो कोई फर्क नहीं है। न कड़वी कड़वी है; आप यह नहीं कह सकते कि नीम कड़वी है जब तक आप जीभ पर नहीं रखते। आप कहेंगे--मैं रखूं या न रखूं, मेरे न रखने पर भी नीम कड़वी तो होगी ही। तब आप भूल करते हैं। क्योंकि कड़वा होना आपकी जीभ और नीम के बीच का संबंध है। नीम का अपना स्वभाव नहीं है, सिर्फ संबंध है।

इसे ऐसा समझें कि एक बच्चा पैदा हुआ एक स्त्री को। जब बच्चा पैदा होता है तो बच्चा ही पैदा नहीं होता, मां भी पैदा होती है। क्योंकि मां एक संबंध है। वह स्त्री बच्चा होने के पहले मां नहीं थी। और अगर बच्चा मर जाए तो फिर मां नहीं रह जाएगी। मां होना एक संबंध है। वह बच्चे और उस स्त्री के बीच जो संबंध है, उसका नाम है। बच्चे के बिना वह मां नहीं हो सकती। बच्चा भी मां के बिना नहीं हो सकता।

इस बात को ख्याल में ले लें कि हमारे सब रस संबंध हैं वस्तुओं और हमारी जीभ के बीच। लेकिन अगर बात इतनी ही होती तो संबंध दो तरह से टूट सकता था--या तो हम जीभ को संवेदनहीन कर लें, उसकी सेंसिटिविटी को मार डालें, जीभ को जला लें तो रस नष्ट हो जाएगा। या हम वस्तु का त्याग कर दें तो रस नष्ट हो जाएगा। अगर बात इतनी ही आसान होती तो दो तरफ से संबंध तोड़े जा सकते हैं--या तो हम वस्तु को छोड़ दें जैसा कि साधारणतः महावीर की परंपरा में चलने वाला साधु करता है। वस्तु को छोड़ देता है। तब सोचता है कि रस से मुक्ति हो गई। रस से मुक्ति नहीं हुई। वस्तु में अभी भी पोटेंशियल रस है और जीभ में अभी भी पोटेंशियल सेंसिटिविटी है। अभी भी जीभ अनुभव करने में क्षम है और अभी भी वस्तु अनुभव देने में क्षम है। सिर्फ बीच का संबंध टूट गया है इसलिए बात अप्रकट हो गई है। कभी भी प्रकट हो सकती है। अप्रकट हो जाने का अर्थ नष्ट हो जाना नहीं है। फिर दोनों को जोड़ दिया जाए, फिर प्रकट हो जाएगी। हमने बिजली का बटन बंद कर दिया है इसलिए बिजली नष्ट नहीं हो गई है। सिर्फ बिजली की धारा में और बल्ब के बीच का संबंध टूट गया है। और बल्ब भी समर्थ है बिजली प्रकट करने में। बिजली की धारा भी समर्थ है अभी बल्ब से प्रकट होने में। सिर्फ संबंध टूट गया है, बिजली नष्ट नहीं हो गई। फिर बटन आप आन कर देते हैं, बिजली जल जाती है।

जो आदमी वस्तुओं को छोड़ कर सोच रहा है, रस का परित्याग हो गया, वह सिर्फ रस को अप्रकट कर रहा है, परित्याग नहीं। महावीर ने रस अप्रकट करने को नहीं कहा है, रस-परित्याग को कहा है। सिर्फ अनमैनिफेस्ट हो गया, अब प्रकट नहीं हो रहा है। इसका यह मतलब नहीं कि नष्ट हो गया। बहुत सी चीजें आप

में प्रकट नहीं होती हैं, बहुत मौकों पर। जब कोई आदमी आपकी छाती पर छुरा रख देता है तब कामवासना प्रकट नहीं होती, लेकिन मुक्त नहीं हो गए हैं आप, सिर्फ छिप जाती है। कितनी ही भूख लगी हो और एक आदमी बंदूक लेकर आपके पीछे लग जाए, भूख मिट जाती है। इसका यह मतलब नहीं भूख मिट गई, सिर्फ छिप गई। अभी अवसर नहीं है प्रकट होने का। अभी निमित्त नहीं है प्रकट होने का इसलिए छिप गई। छिप जाने को त्याग मत समझ लेना।

और अक्सर तो बात ऐसी है कि जो-जो छिप जाता है वह छिप कर और प्रबल और सशक्त हो जाता है। इसलिए जो आदमी रोज मिठाई खा रहा है, उसको मीठे का जितना अनुभव होता है, जिस आदमी ने बहुत दिन तक मिठाई नहीं खाई है, वह जब मिठाई खाता है तो उसका अनुभव और भी तीव्र होता है। उसका अनुभव और भी तीव्र होता है क्योंकि इतने दिनों तक रुका हुआ रस का जो अप्रकट रूप है, वह एकदम से प्रकट होता है, वह फल्लेड, उसमें बाढ़ आ जाती है। आ ही जाएगी। इसलिए जो आदमी वस्तुएं छोड़ने से शुरू करेगा वह वस्तुओं से भयभीत होने लगेगा। वह डरेगा कि कहीं वस्तु पास न आ जाए। अन्यथा रस पैदा हो सकता है।

एक दूसरा उपाय है कि आप इंद्रिय को ही नष्ट कर लें। जीभ को जला डालें, जैसा कि बुखार में हो जाता है, लंबी बीमारी में हो जाता है। इंद्रिय के संवेदनशील जो तंतु हैं वे रुग्ण हो जाते हैं, बीमार हो जाते हैं, सो जाते हैं। लेकिन तब भी रस का कोई अंत नहीं होता। अगर मेरी आंख फूट जाए तो भी रूप देखने की आकांक्षा नहीं चली जाती। अगर आंख ही से रूप देखने की आकांक्षा जाती होती, तो बहुत आसान था। आंख हट जाने से, टूट जाने से, फूट जाने से रूप की आकांक्षा नहीं टूटती। कान फूट जाए तो भी ध्वनि का रस नहीं छूट जाता। मेरे पैर टूट जाएं, तो भी चलने का मन नष्ट नहीं हो जाता। जो जानते हैं वे तो कहते हैं-पूरा शरीर भी छूट जाए तो भी जीवेषणा नष्ट नहीं होती। नहीं तो दोबारा जन्म होना असंभव है। जब पूरा शरीर छूट कर भी नया जीवन हम फिर से पकड़ लेते हैं तो एक-एक इंद्रिय को मार कर क्या होगा? मृत्यु तो सभी इंद्रियों को मार डालती है। सभी इंद्रियां मर जाती हैं, फिर सभी इंद्रियों को हम पैदा कर लेते हैं, क्योंकि इंद्रियां मूल नहीं हैं। मूल कहीं इंद्रियों से भी पीछे है। इसलिए जो आंख-कान तोड़ने में लगा हो, वह भी बचकानी बातों में लगा है, वह नासमझी की बातों में लगा है। उससे रस नष्ट नहीं होगा। इंद्रिय के नष्ट होने से रस नष्ट नहीं होता। वस्तु के त्याग से रस नष्ट नहीं होता, इंद्रिय के नष्ट होने से रस नष्ट नहीं होता।

तो क्या हम मन को मार डालें? मन को मारने में भी लोग लगे हैं। सोचते हैं कि मन को दबा-दबा कर नष्ट कर डालें तो शायद। लेकिन मन बहुत उलटा है। मन का नियम यही है कि जिस बात को हम मन से नष्ट करना चाहते हैं, मन उसी बात में ज्यादा रसपूर्ण हो जाता है।

एक सुबह मुल्ला के गांव में उसके मकान के सामने बड़ी भीड़ है। वह अपनी पांचवीं मंजिल पर चढ़ा हुआ कूदने को तत्पर है। पुलिस भी आ गई है, लेकिन उसने सब सीढ़ियों पर ताले डाल रखे हैं। कोई ऊपर चढ़ नहीं पा रहा है। गांव का मेयर भी आ गया है। सारा गांव नीचे धीरे-धीरे इकट्ठा हो गया है, और मुल्ला ऊपर खड़ा है। वह कहता है--मैं कूद कर मरूंगा। आखिर मेयर ने उसे समझाया कि तू कुछ तो सोच! अपने मां-बाप के संबंध में सोच! मुल्ला ने कहा: मेरे मां-बाप मर चुके। उनके संबंध में सोचता हूं तो और होता है जल्दी मर जाऊं। मेयर ने चिल्ला कर कहा: अपनी पत्नी के संबंध में तो सोच!

उसने कहा: वह याद ही मत दिलाना, नहीं तो और जल्दी कूद जाऊंगा। मेयर ने कहा: कानून के संबंध में सोच, अगर आत्महत्या की कोशिश की, फंसेगा। मुल्ला ने कहा: जब मर ही जाऊंगा तो कौन फंसेगा! यह देखते हैं, बड़ी मुश्किल थी। मेयर न समझा पाया। आखिर गुस्से में उसने कहा कि तेरी मर्जी तो कूद, इसी वक्त कूद और मर जा। मुल्ला ने कहा, तू कौन है मुझे सलाह देने वाला कि मैं मर जाऊं! नहीं मरूंगा।

आदमी का मन ऐसा चलता है। अगर कोई आपको समझाए कि मर जाओ, जीने का मन पैदा होता है। कोई आपको समझाए कि जियो, तो मरने का मन पैदा होता है। मन विपरीत में रस लेता है। इसलिए जो लोग

मन को मारने में लगते हैं उनका मन और रसपूर्ण होता चला जाता है। न वस्तु को छोड़ने से रस का परित्याग होता है; न इंद्रिय को मारने से रस का परित्याग होता है; न मन से लड़ने से रस का परित्याग होता है। हम सभी तो मन से लड़ते हैं, लेकिन कौन सा रस का परित्याग हो जाता है! मात्राओं के भेद होंगे, लेकिन हम सभी मन से लड़ने वाले हैं। हम मन को कितना दबाते हैं, कितना समझाते हैं! इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस चीज के लिए आप मन को समझाते हैं, मन उसी की मांग बढ़ाता चला जाता है। असल में आप जब समझाते हैं, तभी आप स्वीकार कर लेते हैं कि आप कमजोर हैं, और मन ताकतवर है। और जब एक बार आपने अपने मन के सामने अपनी कमजोरी स्वीकार कर ली तो मन फिर आपकी गर्दन को दबाता चला जाता है। आप मन से कहते हैं--यह मत मांग, यह मत मांग, यह मत मांग। लेकिन आपको ख्याल है कि नियम क्या है? जितना ही आप कहते हैं, मत मांग, मांगने में रस आ जाता है। लगता है, जरूर कुछ मांगने जैसी चीज है। जरूर कुछ पाने जैसी चीज है। मन को जितना रोकते हैं, उसकी उत्सुकता बढ़ती है और गहन होती है। मन के जितने द्वार बंद करते हैं, उसकी जिज्ञासा उतनी बढ़ती है, उतना लगता है कि कोई द्वार खोल कर झांक लूं और देख लूं।

तो जो भी मन के साथ लड़ने में लगेगा, वह रस को जगाने में लगेगा। यह भी ध्यान रखें कि मन से हम जिस चीज को भुलाने की कोशिश करते हैं वहां हम एक बहुत ही अमनोवैज्ञानिक काम कर रहे हैं। क्योंकि भुलाने की हर कोशिश याद करने की व्यवस्था है। इसलिए कोई आदमी किसी को भुला नहीं सकता। भूल सकता है, भुला नहीं सकता। अगर आप किसी को भुलाना चाहते हैं तो आप कभी न भुला पाएंगे। क्योंकि जब भी आप भुलाते हैं, तभी आप फिर से याद करते हैं। आखिर भुलाने के लिए भी याद तो करना पड़ेगा, और तब याद करने का क्रम सघन होता जाता है, और याद की रेखा मजबूत और गहरी होती चली जाती है।

तो जिसे आपको याद रखना हो, उसे भुलाने की कोशिश करना और जिसे आपको भुला देना हो, उसे कभी भी भुलाने की कोशिश मत करना, तो वह भूला जा सकता है। क्योंकि पुनरुक्ति याद बनती है, प्रेमियों का यही कष्ट है सारी दुनिया में। वे किसी प्रेमी को भुला देना चाहते हैं। जितना भुलाते हैं उतनी मुश्किल में पड़ जाते हैं। भुलाने की ज्यादा बेहतर तरकीब वह शादी कर लें और प्रेमी को घर में ले आए। फिर बिल्कुल याद नहीं आती। मन का यह नियम ठीक से ख्याल में ले लें, अन्यथा बड़ी कठिनाई होती है। तथाकथित साधु, तपस्वी इसी मन के गहरे नियम को न समझने के कारण बहुत उलझाव में पड़ जाते हैं। भुलाने में लगे हैं। स्त्री न दिखाई पड़े, इसलिए आंख बंद करने में लगे हैं। भोजन न दिखाई पड़े इसलिए इंद्रियों को सिकोड़ने में लगे हैं। कहीं कोई रस न आ जाए, मन को वहां से विपरीत किसी दूसरी दिशा में उलझाने में लगे हैं। लेकिन इस सबसे जहां-जहां से वे अपने को हटा रहे हैं वहीं-वहीं मन और गहरी रेखाएं स्मृति की निर्मित कर लेता है।

नहीं, मन को दबाने, समझाने, भुलाने की कोई व्यवस्था रस-परित्याग नहीं लाती। फिर रस-परित्याग कैसे फलित होता है? रस-परित्याग का जो वास्तविक रूपांतरण है, वह मन और चेतना के बीच संबंध टूटने से घटित होता है। मन और चेतना के बीच ही असली घटना घटती है।

इसे थोड़ा समझ लें तो ख्याल में आ जाए।

मन उसी बात में रस ले पाता है जिसमें चेतना का सहयोग हो, को-आपरेशन हो। जिस बात में चेतना का सहयोग न हो, उसमें मन रस नहीं ले पाता। असमर्थ है। एक आदमी रास्ते से भागा जा रहा है। आज भी रास्ते की दुकानों के विंडो केसेज में वे ही चीजें सजी हैं जो कल तक सजी थीं, लेकिन आज उसे दिखाई नहीं पड़तीं। रास्ते पर अब भी सुंदर कारें भागी जा रही हैं, लेकिन आज उसे दिखाई नहीं पड़तीं। उसके घर में आग लगी है, वह भागा चला जा रहा है। क्या हुआ? घर में आग लगी है तो हो क्या गया? चीजें तो अब भी गुजर रही हैं। मन वही है, इंद्रियां वही हैं, उन पर संघात वही पड़ रहे हैं, संवेदनाएं वही हैं, लेकिन आज उसकी चेतना कहीं और है। आज उसकी चेतना अपने मन के, अपनी इंद्रियों के साथ नहीं है। आज उसकी चेतना भाग गई है। वह वहां है

जहां मकान में आग लगी है। लेकिन घर जाकर पहुंचे और पता चले कि किसी और के मकान में आग लगी है। गलत खबर मिली थी। सब वापस लौट आएगा।

दोस्तोवस्की को फांसी की सजा दी गई थी--रूस के एक चिंतक, विचारक, लेखक को। लेकिन ऐन वक्त पर माफ कर दिया गया। ठीक छह बजे जीवन नष्ट होने को था, और छह बजने के पांच मिनट पहले खबर आई जार की कि वह क्षमा कर दिया गया है। दोस्तोवस्की ने... बाद में निरंतर कहता था--उस क्षण जब छह बजने के करीब आ रहे थे तब मेरे मन में न कोई वासना थी, न कोई इच्छा थी, न कोई रस था, कुछ भी न था। मैं इतना शांत हो गया था, और मैं इतना शून्य हो गया था कि मैंने उस क्षण में जाना कि साधु, संत जिस समाधि की बात करते हैं वह क्या है। लेकिन जैसे ही जार का आदेश पहुंचा और मुझे सुनाया गया कि मैं छोड़ दिया जा रहा हूं, मेरी फांसी की सजा माफ कर दी गई। अचानक, जैसे मैं किसी शिखर से नीचे गिर गया। बस वापस लौट आया। सब इच्छाएं; सब क्षुद्रतम इच्छाएं, जिनका कोई मूल्य नहीं था क्षणभर पहले, वे सब वापस लौट आईं। पैर में जूता काट रहा था, उसका फिर पता चलने लगा। जूता काट रहा था पैर में, उसका फिर पता चलने लगा। नया जूता लेना है, उसकी योजना चल रही थी--सब वापस। दोस्तोवस्की कहता था--उस शिखर को मैं दुबारा नहीं छू पाया। जो उस दिन आसन्न मृत्यु के निकट अचानक घटित हुआ था।

हुआ क्या था? अब मृत्यु इतनी सुनिश्चित हो तो चेतना सब संबंध छोड़ देती है। इसलिए समस्त साधकों ने मृत्यु के सुनिश्चय के अनुभव पर बहुत जोर दिया है। बुद्ध तो भिक्षुओं को मरघट में भेज देते थे कि तुम तीन महीने लोगों को मरते, जलते, मिटते, राख होते देखो। ताकि तुम्हें अपनी मृत्यु बहुत सुनिश्चित हो जाए। और जब तीन महीने बाद कोई साधक मृत्यु पर ध्यान करके लौटता था तो जो पहली घटना उसके मित्रों को दिखाई पड़ती थी, वह थी रस-परित्याग। रस चला गया। रस के जाने का सूत्र है--चेतना और मन का संबंध टूट जाए। वह संबंध कैसे टूटेगा और संबंध कैसे निर्मित हुआ है? जब तक मैं सोचता हूं--मैं मन हूं, तब तक संबंध है। यह आइडेंटिटी, यह तादात्म्य कि मैं मन हूं, तब तक संबंध है। यह संबंध का टूट जाना, यह जानना कि मैं मन नहीं हूं, रस छिन्न-भिन्न हो जाता है--खो जाता है।

रस-परित्याग की प्रक्रिया है--मन के प्रति साक्षीभाव, विटनेसिंग। जब आप भोजन कर रहे हैं तो मैं नहीं कहूंगा आपको कि आप भोजन मत करें, यह रसपूर्ण है। मैं आपसे यह भी नहीं कहूंगा कि आप जीभ को जला लें क्योंकि जीभ रस देती है। मैं आपसे यह भी नहीं कहूंगा कि मन में आप अनुभव न करें कि यह खट्टा है, यह मीठा है। मैं आप से कहूंगा--भोजन करें, जीभ को स्वाद लेने दें; मन को पूरी खबर होने दें, पूरी संवेदना होने दें कि बहुत स्वादिष्ट है। सिर्फ भीतर इस सारी प्रक्रिया के साक्षी बन कर खड़े रहें। देखते रहें कि मैं देखने वाला हूं। मन को स्वाद मिल रहा; जीभ को रस आ रहा; वस्तु प्रीतिकर मालूम पड़ती रही; लेकिन मैं पीछे खड़ा देख रहा हूं। जस्ट बियांड--एक कदम भी पार खड़े होकर देख रहा हूं। मैं देख रहा हूं; मैं द्रष्टा हूं; मैं साक्षी हूं।

रस के अनुभव में सिर्फ इतना भाव गहन हो जाए तो आप अचानक पाएंगे कि इंद्रियां वही हैं, उन्हें नष्ट करना नहीं पड़ा। पदार्थ वही हैं, उन्हें छोड़ कर भागना नहीं पड़ा। मन वही है, वह उतना ही संवेदनशील है, उतना ही सजग, जीवंत है; लेकिन रस का जो आकर्षण था वह खो गया। रस जो बुलाता था, पुकारता था, रस की जो पुनरावृत्ति की इच्छा थी--रस का आकर्षण है कि उसे फिर से दोहराओ; उसे फिर से दोहराओ; उसे दोहराओ बार-बार, उसके चक्कर में घूमो--वह खो गया है। वह बिल्कुल खो गया है। उसकी पुनरुक्ति की कोई आकांक्षा नहीं रही। और हम ऐसे रसों तक की पुनरुक्ति करने लगते हैं जो चाहे जीवन को नष्ट करने वाले क्यों न हों। अब एक आदमी शराब पी रहा है। वह जानता है, सुनता है, पढ़ता है कि जहर है, पर उसकी भी पुनरुक्ति की मांग है। मन कहता है दोहराओ। एक आदमी धूम्रपान कर रहा है। वह जानता है कि वह निमंत्रण दे रहा है न मालूम कितनी बीमारियों को--वह भलीभांति जानता है। अगर किसी और को समझाना हो तो वह समझाता है। अगर अपने बेटे को रोकना हो तो वह कहता है--भूल कर कभी धूम्रपान मत करना। लेकिन वह खुद करता है।

पुनरुक्ति की आकांक्षा है। विकृत रस भी अगर संयुक्त हो जाएं, और विकृत रस भी संयुक्त हो जाते हैं, एसोसिएशन से।

शिलर एक जर्मन लेखक हुआ। जब उसने अपनी पहली कविता लिखी थी तो वृक्षों पर सेव पक गए थे, नीचे गिर रहे थे। वह उस बगीचे में बैठा था। कुछ सेव नीचे गिर कर सड़ गए थे, और सड़े हुए सेवों की गंध पूरी हवाओं में तैर रही थी। तभी उसने पहली कविता लिखी। यह पहली कविता का जन्म और सड़े हुए सेवों की गंध एसोसिएटेड हो गए, संयुक्त हो गए। इसके बाद शिलर जिंदगी भर कुछ भी न लिख सका जब तक अपनी टेबल के आस-पास वह सड़े हुए सेव न रख ले। बिल्कुल पागलपन था। वह खुद कहता था कि बिल्कुल पागलपन है। लेकिन जब तक सड़े हुए सेवों की गंध नहीं आती, मेरे भीतर काव्य सक्रिय नहीं होता। उसमें गति नहीं पकड़ती। मैं साधारण आदमी बना रहता हूं, शिलर नहीं हो पाता। जैसे ही सड़े हुए सेवों की गंध चारों तरफ से मेरे नासापुटों को घेर लेती है, मैं बदल जाता हूं। मैं दूसरा आदमी हो जाता हूं। वह कहता था कि माना कि बड़ा रुग्ण मामला है कि सड़े हुए सेव, और भी गंधें हो सकती हैं, फूल रखे जा सकते हैं। लेकिन नहीं, यह संयुक्त हो गया।

अगर एक आदमी सिगरेट पी रहा है तो सिगरेट का पहला अनुभव सुखद नहीं है, दुखद है। लेकिन यह दुखद अनुभव भी निरंतर दोहराने से किसी क्षण की अनुभूति से अगर संयुक्त हो गया, तो फिर जिंदगी भर पुनरुक्ति मांगता रहेगा। और हो सकता है संयुक्त। जब आप सिगरेट पीते हैं तो एक अर्थों में सारी दुनिया से टूट जाते हैं। सिगरेट पीना एक अर्थ में मैस्टरबेटरी है, वह हस्तमैथुन जैसी चीज है।

मनोवैज्ञानिक ऐसा कहते हैं--आप अपने में ही बंद हो जाते हैं; दुनिया से कोई लेना-देना नहीं; अपना धुआं है, उड़ा रहे हैं, बैठे हैं। दुनिया टूट गई, आपके और दुनिया के बीच एक स्मोक करटेन आ गया। पत्नी घर है, मतलब नहीं। दुकान चलती है कि नहीं चलती, मतलब नहीं। कहां क्या हो रहा है, मतलब नहीं। आपको इतना मतलब है कि आप धुआं भीतर खींच रहे हैं, बाहर छोड़ रहे हैं। आप सारे जगत से टूट गए, आइसोलेट हो गए। अकेले हो गए। अकेले में एक तरह का रस आता है, आइसोलेशन में रस है। वही तो एकांत के साधक को आता है। अब आप यह जान कर हैरान होंगे कि एकांत के साधक को जो आता है, अगर वह किसी क्षण में सिगरेट पीने में आ गया, और आ सकता है, और आ जाता है, क्योंकि सिगरेट भी तोड़ती है। इसलिए अकेला आदमी बैठा रहे तो थोड़ी देर में सिगरेट पीना शुरू कर देता है। ख्याल मिट जाता है सब चारों तरफ का। अपने में बंद हो जाता है, क्लोजिंग हो जाती है।

यह वैसा ही है जैसे छोटा बच्चा अकेला पड़ा हुआ अपना अंगूठा पीता रहे। जब छोटा बच्चा अपना अंगूठा पीता है, ही इ.ज डिसकनेक्टेड, उसका दुनिया से कोई संबंध नहीं रहा। दुनिया से उसे कोई मतलब नहीं, उसे अपनी मां से भी अब मतलब नहीं है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं--बच्चे को बहुत ज्यादा अंगूठा मत पीने देना। अन्यथा उसकी जिंदगी में सामाजिकता कम हो जाएगी। अगर कोई बच्चा बहुत दिनों तक अंगूठा पीता रहे तो वह एकांगी और अकेला हो जाएगा। वह दूसरों से मित्रता नहीं बना सकेगा। मित्रता की जरूरत नहीं। अपना अंगूठा ही मित्र का काम देता है। किसी से कुछ मतलब नहीं। जो बच्चा अंगूठा पीने लगेगा, उसका मां से प्रेम निर्मित नहीं हो पाएगा, क्योंकि मां से जो प्रेम निर्मित होता है वह उसके स्तन के माध्यम से ही होता है, और कोई माध्यम नहीं है। अगर वह अपने अंगूठे से इतना रस लेने लगा जितना मां के स्तन से मिलता रहा है, तो वह मां से इनडिपेंडेंट हो गया। अब उसकी कोई डिपेंडेंस नहीं मालूम होती उसको। अब वह निर्भर नहीं है। और जो बच्चा अपनी मां से प्रेम नहीं कर पाएगा, इस दुनिया में वह फिर किसी से प्रेम नहीं कर पाएगा, क्योंकि प्रेम का पहला पार्ट ही नहीं हो पाया। वह बच्चा अपने में बंद हो गया। एक अर्थ में वह बच्चा अब समाज का हिस्सा नहीं रह गया।

और जान कर आप हैरान होंगे कि जो बच्चे बचपन में ज्यादा अंगूठा पीते हैं, वे ही बच्चे बड़े होकर सिगरेट पीते हैं। जिन बच्चों ने बचपन में अंगूठा कम पिया है या नहीं पिया है, उनके जीवन में सिगरेट पीने की संभावना

न के बराबर हो जाती है। क्योंकि सिगरेट जो है वह अंगूठे का सब्स्टीट्यूट है, वह उसका परिपूरक है। बड़ा आदमी अंगूठा पीए तो जरा बेहूदा मालूम पड़ेगा। तो उसने सिगरेट ईजाद की है, चुरट ईजाद किया है। उसने ईजाद की है चीजें, उसने हुक्का ईजाद किया है, लेकिन पी रहा है वह अंगूठा। वह कुछ और नहीं पी रहा है। लेकिन बड़ा है तो एकदम सीधा-सीधा अंगूठा पीएगा तो जरा बेहूदा लगेगा। लोग क्या कहेंगे! इसलिए उसने एक परिपूरक इंतजाम कर लिया है। अब लोग कुछ भी न कहेंगे। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहेंगे कि सिगरेट पीने से नुकसान होता है। अंगूठा पीने से कोई भी न कहेगा कि नुकसान होता है, लेकिन अंगूठा पीते देख कर आदमी चौंक जाएंगे कि यह क्या कर रहे हो! सिगरेट पीने से इतना ही कहेंगे कि नुकसान होता है। वह कहेगा--क्या करें मजबूरी है, यह तो मैं भी जानता हूं, लेकिन आदत पड़ गई है। अंगूठे में वह बुद्धू मालूम पड़ेगा, सिगरेट में वह समझदार मालूम पड़ेगा।

सब्स्टीट्यूट सिर्फ धोखा देते हैं। लेकिन, अगर एक बार रस आ जाए तो गलत से गलत चीज संयुक्त हो जाती है।

मुल्ला की पत्नी एक दिन उसके कॉफी-हाउस में पहुंच गई जहां वह शराब पीता रहता था बैठ कर। मुल्ला अपना टेबल पर गिलास और बोतल लिए बैठा था। पत्नी आ गई तो घबड़ाया तो बहुत, लेकिन उसने, पत्नी आ गई थी तो एक प्याली में उसको भी डाल कर शराब दी। पत्नी भी आई थी आज जांचने कि यह क्या करता रहता है! शराब उसने एक घूंट पिया, नितांत तिक्त और बेस्वाद था, उसने नीचे रख दिया और मुंह बिगाड़ा, और उसने कहा कि मुल्ला, तुम यह पीते रहते हो? मुल्ला ने कहा: सोचो, तू सोचती थी मैं बड़ा आनंद मनाता रहता हूं। यही दुख भोगने के लिए हम यहां आते हैं। समझ गई, अब दुबारा भूल कर मत कहना कि वहां तुम बड़ा आनंद करने जाते हो।

शराब का पहला अनुभव तो दुखद ही है, लेकिन शराब के गहरे अनुभव धीरे-धीरे सुखद होने शुरू हो जाते हैं, क्योंकि शराब आपको जगत से तोड़ देती है, जगत की चिंताओं से तोड़ देती है। जगत मिट जाता है, आप ही रह जाते हैं। यह बहुत ही मजे की बात है कि ध्यान और शराब में थोड़ा संबंध है। इसलिए विलियम जेम्स ने, जिसने कि इस सदी में धर्म और नशे के बीच संबंध खोजने में सर्वाधिक शोध कार्य किया, विलियम जेम्स ने कहा कि शराब का इतना आकर्षण गहरे में कहीं न कहीं धर्म से संबंधित है, अन्यथा इतना आकर्षण हो नहीं सकता। कहीं न कहीं शराब कुछ ऐसा करती होगी जो मनुष्य की गहरी धार्मिक आकांक्षा को तृप्त करता है--है संबंध। और इसलिए वेद के सोमरस से लेकर अल्डुअस हक्सले तक, एल एस डी तक, धार्मिक आदमी का बड़ा हिस्सा नशों का उपयोग करता रहा है--बड़ा हिस्सा। और नशे के उपयोग में कहीं न कहीं कोई तालमेल है। वह तालमेल इतना ही है कि शराब आपको जगत से तोड़ देती है इस बुरी तरह कि आप बिल्कुल अकेले हो जाते हैं। अकेले होने में एक रस है। संसार की सारी चिंताएं भूल जाती हैं। आप एक गहरे अर्थ में निश्चित मालूम पड़ते हैं। हो तो नहीं जाते। शराब तो थोड़ी देर बाद विदा हो जाएगी, चिंता वापस लौट आएगी, लेकिन शराब के साथ इस निश्चितता का रस जुड़ जाएगा। बस वह एक दफा रस जुड़ गया, फिर आप शराब के नाम से जहर पीते रहेंगे। वह कितना ही तिक्त मालूम पड़े, वह रस जो संयुक्त हो गया। हम विकृत रसों से भी जुड़ जा सकते हैं, और फिर उनकी पुनरुक्ति की मांग शुरू हो जाती है।

मुल्ला एक दिन अपने मकान के दरवाजे पर उदास बैठा है। पड़ोसी बहुत हैरान हुआ क्योंकि दो सप्ताह से वह बहुत प्रसन्न मालूम पड़ रहा था, इतना जितना कभी नहीं मालूम पड़ा था। उदास देख कर पड़ोसी ने पूछा कि आज नसरुद्दीन बहुत उदास मालूम पड़ते हो, बात क्या है? नसरुद्दीन ने कहा--बात! बात बहुत कुछ है। इस महीने के पहले सप्ताह मेरे दादा मर गए और मेरे नाम पचास हजार रुपये छोड़ गए। दूसरे सप्ताह मेरे चाचा मर गए और मेरे नाम तीस हजार रुपये छोड़ गए और तीसरा सप्ताह पूरा होने को है, अभी तक कुछ नहीं हुआ।

मन पुनरुक्ति मांगता है। इसका सवाल नहीं है कि कोई मरेगा तब कुछ होगा। मरने का दुख एक तरफ रह गया। वह पचास हजार रुपए मिलने का सुख है। इसलिए मनस्विद कहते हैं कि सिर्फ गरीब बाप के मरने से बेटे

दुखी होते हैं; अमीर बाप के मरने से केवल दुख प्रकट करते हैं। इसमें सच्चाई है। क्योंकि मृत्यु से भी ज्यादा कुछ और साथ में अमीर बाप के साथ घटता है। उसका धन भी बेटे के हाथ में आ जाता है। दुख वह प्रकट करता है, लेकिन वह दुख ऊपरी हो जाता है। भीतर एक रस भी आ जाता है। और अगर उसे पता चले कि बाप पुनः ज़िंदा हो गया, तो आप समझ सकते हैं, मुसीबत कैसी मालूम पड़े। वह नहीं होता कभी ज़िंदा, यह दूसरी बात है।

मुल्ला की ज़िंदगी में ऐसी तकलीफ़ हो गई थी। उसकी पत्नी मर गई, बा मुश्किल मरी। अरथी को उठा कर ले जा रहे थे कि अरथी सामने लगे हुए नीम के वृक्ष से टकरा गई। अंदर से आवाज आई हलन-चलन की। लोगों ने अरथी उतारी, पत्नी मरी नहीं थी, सिर्फ़ बेहोश थी। मुल्ला बड़ा छाती पीट कर रो रहा था। पत्नी को ज़िंदा देख कर बड़ा दुखी हो गया--छाती पीट कर रो रहा था, पत्नी को ज़िंदा देख कर वह बड़ा दुखी हो गया। फिर पत्नी तीन साल और ज़िंदा रही, फिर मरी, और जब अरथी उठा कर लोग चलने लगे तो मुल्ला फिर छाती पीट कर रो रहा था। जब नीम के पास पहुंचे, तो उसने कहा: भाइयो, जरा सम्हाल कर, फिर से मत टकरा देना।

आदमी, जो प्रकट करता है, वही उसके भीतर है, ऐसा जरूरी नहीं है। ज्यादा संभावना तो यह है कि वह जो प्रकट करता है, उससे विपरीत उसके भीतर होता है। शायद वह प्रकट ही इसलिए करता है कि वह जो विपरीत भीतर है वह छिपा रहे, वह प्रकट न हो जाए। अगर ज्यादा जोर से छाती पीट कर रो रहा है तो जरूरी नहीं कि इतना दुख हो। लेकिन कहीं किसी को पता न चल जाए कि दुख नहीं है तो छाती पीट कर रो सकता है। भीतर अन्यथा भी हो सकता है। कितनी ही गलत चीज में अगर रस आ जाए तो उसकी पुनरुक्ति शुरू हो जाती है। गलत से गलत चीज में शुरू हो जाती है, तो सही चीज में तो कोई कठिनाई नहीं है।

पर यह जोड़ कब पैदा होता है? यह लिंक कब बनती है? यह लिंक, यह जोड़, यह संबंध तब बनता है जब व्यक्ति अपने मन से अपने को दूर नहीं पाता, एक पाता है। वही उसके जुड़ने का ढंग है, जब हम पाते हैं कि मैं मन हूं। अब आपको क्रोध आता है और आप कहते हैं कि मैं क्रोधी हो गया, तो आपको पता नहीं, आप मन के साथ जोड़ बना रहे हैं। जब आपके जीवन में दुख आता है और आप कहते हैं--मैं दुखी हो गया, तो आपको पता नहीं, आप मन के साथ अपने को एक समझने की भ्रांति में पड़ रहे हैं। जब सुख आता है तो आप कहते हैं--मैं सुखी हो गया, तब आप फिर मन के साथ तादात्म्य कर रहे हैं।

अगर रस-परित्याग साधना है तो जब क्रोध आए तब कहना कि क्रोध आया, ऐसा मैं देखता हूं--ऐसा नहीं कि क्रोध मुझे आ ही नहीं रहा है--तब आप फिर संबंधित हो गए। ध्यान रहे अगर आपने कहा--नहीं, क्रोध मुझे आ ही नहीं रहा, और क्रोध आ रहा है तो आप क्रोध से संबंधित हों या अक्रोध से संबंधित हों, दोनों हालत में रस-परित्याग नहीं होगा। जब क्रोध आए तब रस-परित्याग की साधना करने वाला व्यक्ति कहेगा, क्रोध आ रहा है, क्रोध जल रहा है, लेकिन मैं देख रहा हूं।

और सच यही है कि आप देखते हैं, आप कभी क्रोधी होते नहीं। वह भ्रांति है कि आप क्रोधी होते हैं। आप सदा देखने वाले बने रहते हैं। जब पेट में भूख लगती है तब आप भूखे नहीं हो जाते, आप सिर्फ़ जानने वाले होते हैं कि भूख लगी है। जब पैर में कांटा गड़ता है तो आप दर्द नहीं हो जाते, तब आप जानते हैं कि पैर में दर्द हो रहा है, ऐसा मैं जानता हूं।

लेकिन इस जानने का बोध आपका प्रगाढ़ नहीं है, बहुत फीका है। वह इतना फीका है कि जब पैर का कांटा जोर से चुभता है तो भूल जाता है उस बोध को प्रगाढ़ करने का नाम रस-परित्याग है। वह बोध जितना प्रगाढ़ होता जाए, तब जीभ आपकी कहेगी--बहुत स्वादिष्ट है। आप कहेंगे कि ठीक है, जीभ कहती है कि स्वादिष्ट है--ऐसा मैं सुनता हूं, ऐसा मैं देखता हूं, ऐसा मैं समझता हूं, लेकिन मैं अलग हूं। रसानुभव के बीच में साक्षी हूं। कोई सम्मान कर रहा है, फूलमालाएं डाल रहा है, तब आप जानते हैं कि फूलमालाएं डाली जा रही

हैं, कोई सम्मान कर रहा है, मैं देख रहा हूं। कोई पत्थर मार रहा है, कोई गालियां दे रहा है, तब आप जानते हैं कि गालियां दी जा रही हैं, पत्थर मारे जा रहे हैं, मैं देख रहा हूं।

और एक बार इस द्रष्टा के साथ संबंध बन जाए और इस मन के संबंध शिथिल हो जाएं तो आप पाएंगे, सब रस खो गए। न वस्तुएं छोड़नी पड़तीं, न आंखें फोड़नी पड़तीं, न तथाकथित आरोपण अपने ऊपर करना पड़ता, लेकिन रस खो जाते हैं। और जब रस खो जाते हैं तो वस्तुएं अपने आप छूट जाती हैं। और जब रस खो जाते हैं तो इंद्रियां अपने आप शांत हो जाती हैं। और जब रस खो जाते हैं तो मन पुनरुक्ति की मांग बंद कर देता है। क्योंकि वह करता ही इसलिए था कि रस मिलता था। अब जब मालिक को ही रस नहीं मिलता तो बात समाप्त हो गई। मन हमारा नौकर है, छाया की तरह हमारे पीछे चलता है। हम जो कहते हैं वह मन दोहरा देता है। मन जो दोहराता है इंद्रियां वही मांगने लगती हैं। इंद्रियां जो मांगने लगती हैं, हम उन्हीं के पदार्थों को इकट्ठा करने में जुट जाते हैं। ऐसा चक्कर है।

इसे आप पहले केंद्र से ही तोड़ें। फिर भी महावीर इसे कहते हैं, यह बाह्य-तप है। यह बड़े मजे की बात है। इसे तोड़ना पड़ेगा भीतर, लेकिन फिर भी यह बाह्य-तप है। क्योंकि जिससे आप तोड़ रहे हैं वह बाहर की ही चीज है, फिर भी बाहर की चीज है। अगर मैं साक्षी हो रहा हूं तो भी तो बाहर का हो रहा हूं, वस्तु का ही हो रहा हूं, इंद्रियों का हो रहा हूं, मन का हो रहा हूं। वे सब पराए हैं, वे सब बाहर हैं।

ध्यान रहे, महावीर कहते हैं, साक्षी होना भी बाहर है। इसलिए जब केवली होता है कोई तब वह साक्षी भी नहीं होता। किसका साक्षी होना है? वह सिर्फ होता है--जस्ट बीइंग, सिर्फ होता है। साक्षी भी नहीं होता क्योंकि साक्षी में भी द्वैत है। कोई है जिसका मैं साक्षी हूं। अभी वह कोई मौजूद है। इसलिए केवली साक्षी भी नहीं होता। जब तक मैं ज्ञाता हूं तब तक कोई ज्ञेय मौजूद है, इसलिए केवली ज्ञाता भी नहीं होता, मात्र ज्ञान रह जाता है।

इसलिए महावीर इसे भी बाह्य कहेंगे। यह भी बाहर है। लेकिन बाहर का यह मतलब नहीं है कि आप बाहर की वस्तु को छोड़ने से शुरू करें। बाहर की वस्तु छूटना शुरू होगी, यह परिणाम होगा। अगर किसी व्यक्ति ने बाहर की वस्तु छोड़ने से शुरू किया तो वह मुश्किलों में पड़ जाएगा, उलझ जाएगा। वह जिस वस्तु को छोड़ेगा उसमें आकर्षण बढ़ जाएगा। वह जिससे भागेगा उसका निमंत्रण मिलने लगेगा। वह जिसका निषेध करेगा उसकी पुकार बढ़ जाएगी। जीभ से लड़ेगा, आंख से लड़ेगा तो मन और भी ज्यादा प्रताड़ित करने लगेगा। रस कायम है और इंद्रिय पास में नहीं तो मन और भी ज्यादा प्रताड़ित करेगा। अगर मन को दबाएगा, हटाएगा, समझाएगा, बुझाएगा तो मन उलटी मांग करता है। सिर्फ एक ही जगह है जहां से रस टूट जाता है, वह है साक्षीभाव। रस-परित्याग की प्रक्रिया है, साक्षीभाव।

रस-परित्याग के बाद महावीर ने कहा है--काया-क्लेश। यह महावीर के साधना सूत्रों में सबसे ज्यादा गलत समझा गया साधना सूत्र है। काया-क्लेश शब्द साफ है। लगता है--शरीर को कष्ट दो, काया को क्लेश दो, काया को सताओ; लेकिन महावीर सताने की किसी भी बात में गवाही नहीं हो सकते। क्योंकि सब सताना हिंसा है। अपना ही शरीर सताना भी हिंसा है, क्योंकि महावीर कहते हैं--वह भी तुम्हारा है! सच तुम्हारा है जो तुम उसे सता सकोगे? पदार्थ पर है। मेरे शरीर में जो खून की धारा दौड़ रही है वह उतनी ही मुझसे दूर है जितनी आपके शरीर में खून की धारा दौड़ रही है। मेरे शरीर में जो हड्डी है, वह भी मैं नहीं हूं। उतना ही मैं नहीं हूं जितना आपके शरीर की हड्डी मैं नहीं हूं। और जब मेरे शरीर की हड्डी निकाल कर और आपके शरीर की हड्डी निकाल कर रख दी जाए तो मैं पता भी न लगा पाऊंगा कि कौन सी मेरी हड्डी है--कि लगा पाऊंगा? कोई पता न लगेगा। हड्डी सिर्फ हड्डी है। वह मेरी-तेरी नहीं है। और मेरी हड्डी जिस नियम से बनती है उसी नियम से आपकी हड्डी भी बनती है। वह सब बाहर की ही व्यवस्था है।

तो महावीर अपने शरीर को भी सताने की बात नहीं कह सकते क्योंकि महा वीर भलीभांति जानते हैं कि अपना वहां क्या है? वहां भी सब पराया है। सिर्फ डिस्टेंस का फासला है। मेरा शरीर मुझसे थोड़ा कम दूरी पर, आपका शरीर मुझसे थोड़ी ज्यादा दूरी पर है, बस इतना ही फासला है। और तो कोई फासला नहीं है। पर महावीर की परंपरा ने ऐसा ही समझा कि काया को सताओ, और इसलिए मेसोचिस्ट का, आत्मपीडकों का बड़ा वर्ग महावीर की धारा में सम्मिलित हुआ। जिन-जिन को लगता था कि अपने को सताने में मजा आ सकता है वे सम्मिलित हुए।

अब ध्यान रहे, महावीर ने अपने बालों का लोंच किया, अपने बाल उखाड़ कर फेंक दिए। क्योंकि महावीर कहते थे--अब बालों को उखाड़ने के लिए भी कोई साधन पास में रखना पड़े, कोई रेजर साथ रखो या किसी नाई पर निर्भर रहो, या नाई के यहां क्यू लगा कर खड़े हो, महावीर ने कहा, फिजूल-फिजूल समय इसमें खोना जरूरी नहीं है। महावीर अपने बाल उखाड़ देते थे। लेकिन महावीर बाल उखाड़ते थे इसलिए नहीं कि बाल उखाड़ने में जो पीड़ा होती थी उस पीड़ा में उन्हें कोई रस था। सच तो यह है कि महावीर को बाल उखाड़ने में पीड़ा नहीं होती थी। यह थोड़ा समझने जैसा है। आपके शरीर में बाल और नाखून डेडपार्ट्स हैं, जिंदा हिस्से नहीं हैं। नाखून और बाल मरे हुए हिस्से हैं इसलिए तो कैंची से काट कर दर्द नहीं होता। अंगुली काटिए! बाल कैंची से कटता है, आपको दर्द क्यों नहीं होता? इफ इट इज ए पार्ट--अगर आपका ही हिस्सा है तो दर्द होना चाहिए, यदि वह जिंदा है तो दर्द होना चाहिए। लेकिन आपके बाल कटते रहते हैं, आपको पता भी नहीं चलता। बाल मरा हुआ हिस्सा है। असल में शरीर में जो जीव कोष मर जाते हैं उन कोषों को बाहर निकालने की तरकीब है--बाल और नाखून और अनेक तरह से, पसीने से, और सब तरह से। शरीर के मरे हुए कोष शरीर बाहर फेंक देता है। तो बाल आपके शरीर के मरे हुए कोष हैं। अगर मरे हुए कोषों को भी खींचने से पीड़ा होती है तो वह भ्रांति है सिर्फ। वह सिर्फ ख्याल है कि पीड़ा होगी, इसलिए होती है।

आप कहेंगे, क्या सारे लोग भ्रांति में हैं? तो मैं आपको एक छोटी सी वैज्ञानिक घटना कहूं जिससे ख्याल में आए। फ्रांस में एक आदमी है, लोरेंजो। उसने पीड़ारहित प्रसव के हजारों प्रयोग किए। कोई अब तक वह एक लाख स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवाया है। बिना कोई दवा दिए, बिना कोई अनस्थेसिया दिए, बिना बेहोश किए। जैसी स्त्री है वैसी ही उसे लिटा कर बिना दर्द के बच्चे को पैदा करवा देता है। वह कहता है--सिर्फ यह भ्रांति है कि बच्चे के पैदा होने में दर्द होता है, यह सिर्फ ख्याल है। और चूंकि यह ख्याल है इसलिए जब मां को बच्चा होने के करीब आता है तब वह भयभीत होनी शुरू हो जाती है कि अब दर्द होने वाला है। अब दर्द होगा। और चूंकि दर्द जब भी ख्याल में आता है तो वह अपनी पूरी मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ने लगती है।

दर्द सिकोड़ता है--ध्यान रहे, सुख फैलाता है, दुख सिकोड़ता है। जब आप दुख में होते हैं तो सिकुड़ते हैं। अगर एक आदमी आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाए, आपकी सब मांस-पेशियां भीतर सिकुड़ जाती हैं। कोई आपके गले में फूलमाला डाल दे, आपका सब फैल जाता है। फूलमाला डलवा कर कभी वजन मत तुलवाना, ज्यादा निकल सकता है। आप हैरान होंगे, यह वैज्ञानिक निरीक्षित तथ्य है कि भगतसिंह का वजन फ्रांसी पर बढ़ गया। जेल में तौला गया और जेल से ले जाकर फ्रांसी के तख्ते पर तौला गया, फ्रांसी लगने वाली थी तो भगतसिंह का वजन कोई डेढ़ पौंड बढ़ गया। यह कैसे बढ़ गया? भगतसिंह इतना आनंदित था कि फैल सकता है। जब आप दुख में होते हैं तो अपने को आप सिकोड़ते हैं रक्षा के लिए।

तो जब मां को डर लगता है कि अब पीड़ा आने वाली है, अब बच्चा होने वाला है और उसने देखी हैं चीखें, कराहें सुनी हैं अस्पतालों में, घर में। सब उसे पता है। वह अपनी मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ने लगती है। जब वह मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ती है और बच्चा बाहर निकलने के लिए धक्का देता है, पीड़ा शुरू होती है, दर्द शुरू हो जाता है। दर्द शुरू होता है, मां का भरोसा पक्का हो जाता है कि दर्द होने लगा। वह और जोर से

सिकोड़ती है। वह जितने जोर से सिकोड़ती है, बच्चा उतने जोर से धक्के देता है। उसे बाहर निकलना है। दोनों के संघर्ष में पीड़ा और पेन पैदा होता है।

लोरेंजो कहता है--यह पेन सिर्फ मां पैदा करवाती है। यह सजेशन है उसका, ख्याल है। पेन होने की जरूरत ही नहीं। किसी जानवर को नहीं होता है, जंगली आदिवासियों को नहीं होता है। आदिवासी स्त्री बच्चा पैदा हो जाता है जंगल में, उसको टोकरी में रख कर अपने घर चल पड़ती है। उसे विश्राम की भी कोई जरूरत नहीं रहती क्योंकि जब दर्द ही नहीं हुआ तो विश्राम की क्या जरूरत? दर्द हुआ तो फिर महीने भर विश्राम की जरूरत है। यह सारा का सारा मानसिक है, लोरेंजो कहता है। और अब तो लोरेंजो की व्यवस्था रूस और अमरीका सब तरफ फैलती जा रही है। और वह सिर्फ मां को इतना समझाता है कि तू खींच मत अपनी मांस-पेशियों को, रिलैक्स रख। बच्चे को को-आपरेट कर बाहर आने में। तू सोच कि बच्चा बाहर जा रहा है। इसलिए आप देखेंगे कि कोई पचहत्तर प्रतिशत बच्चे रात में पैदा होते हैं। उनको रात में पैदा होना पड़ता है। क्योंकि नींद में मां लड़ाई नहीं करती। नहीं तो हिसाब से पचास परसेंट रात में हों, चलेगा। पचास परसेंट दिन में हों, चलेगा। इससे ज्यादा--इससे ज्यादा का मतलब है कि मां कुछ गड़बड़ करती है। या बच्चे रात में जगत में उतरने को ज्यादा आतुर हैं। कुल कारण इतना है कि मां जब तक जगी रहती है, वह ज्यादा सख्ती से अपनी मांस-पेशियों को खींचे रहती है। वह सो जाती है तो शिथिल हो जाती है। सम्मोहन में बच्चे बिना दर्द के पैदा हो जाते हैं क्योंकि मां नींद में--गहरी नींद में सम्मोहित हो जाती है। बच्चा पैदा हो जाता है।

लेकिन लोरेंजो कहता है--को-आपरेट विद दि चाइल्ड। और लोरेंजो यह भी कहता है कि जिस मां ने बच्चे के पैदा होने में सहयोग नहीं दिया वह बाद में भी नहीं दे पाएगी। और जिस बच्चे के साथ पहला अनुभव दुख का हो गया उस बच्चे के साथ सुख का अनुभव लेना बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि पहला अनुभव एक्सपोजर है, गहरा। वह गहरे में उतर जाता है। जिस बच्चे ने पहले ही दिन पीड़ा दे दी, अब वह पीड़ा ही देगा। यह प्रतीति गहन हो गई। तो इसलिए मां बुढ़ापे तक कहती रहती है कि मैंने तुझे नौ महीने पेट में रख कर दुख झेला। वह भूलती नहीं। मैंने कितनी-कितनी तकलीफें झेलीं। बच्चे के साथ सुख का अनुभव, मां कभी कम ही कहती सुनी जाती है। दुख के अनुभव ही कहती सुनी जाती है। शायद ही कोई मां यह कहती हो कि मैंने तुझे नौ महीने रख कर कितना सुख पाया। और जो मां ऐसा कह सकेगी, उसके आनंद की कोई सीमा नहीं रहेगी, लेकिन कहने का सवाल नहीं है, अनुभव की बात है। और जो मां बच्चे को नौ महीने पेट में रख कर आनंद नहीं पा सकी, उसने मां होने का हक खो दिया। दुख पाया तो दुश्मन हो गया। और जिसके साथ इतना दुख पाया अब उसके साथ दुख की ही संभावना का सूत्र गहन हो गया। अब जब वह दुख देगा, तभी ख्याल में आएगा, जब वह सुख देगा तो ख्याल में नहीं आएगा। क्योंकि हमारी च्वाइस शुरू हो गई, हमारा चुनाव शुरू हो गया।

लोरेंजो ने लाखों स्त्रियों को बिना दर्द के, प्रसव करवा कर यह प्रमाणित कर दिया कि दर्द हमारा ख्याल है। अगर प्रसव बिना दर्द के हो सकता है तो आप सोचते हैं, बाल बिना दर्द के नहीं निकल सकते! बहुत आसान सी बात है। महावीर अपने बाल उखाड़ कर फेंक देते हैं।

लेकिन पागलों की एक जमात है और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पागलों का एक खास वर्ग है जो बाल नोंचने में रस लेता है। जिसको बाल नोंचने में रस आता है, अगर वह ऐसा ही बाजार में खड़े होकर बाल नोंचे, तो आप उसको पागलखाने भेज देंगे। अगर वह महावीर का अनुयायी होकर नोंचे तो आप उसके पैर छुएंगे। अब यह आदमी अगर थोड़ी भी इसमें बुद्धि है और पागलों में काफी होती है--काफी होती है। इसलिए काफी बुद्धि वाले लोग भी कभी-कभी पागल होते हैं। पागलों में काफी बुद्धि होती है। और जहां तक उनका पागलपन है वह अपनी बुद्धि का उसमें पूरा प्रयोग करते हैं। तो जो बाल नोंचने वाले पागल हैं वे महावीर में उत्सुक होकर साथ खड़े हो जाएंगे। कुछ पागल हैं, जिनको नग्न होने में रस आता है। उनको मनोवैज्ञानिक एक्जिबीशनिस्ट कहते हैं। अगर वे ऐसे ही नग्न होकर खड़े हों तो पुलिस पकड़ कर ले जाएगी। लेकिन महावीर को नग्न देख कर उनको बहुत मजा आ जाएगा। वे नग्न खड़े हो जाएंगे। और तब आप उनके पैर छूने पहुंच जाएंगे। पता लगाना बहुत मुश्किल है कि वह नग्नता की वजह से महावीर के अनुयायी हो गए, या महावीर के अनुयायी होने की वजह से

वे नग्न हुए हैं। बाल नोंचने में उनको मजा आता है इसलिए महावीर के साथ चले गए, या महावीर के साथ चले गए और उस राज को पा गए जहां बाल नोंचने में कोई दर्द नहीं होता। यह तय करना बहुत मुश्किल है। आदमी के भीतर क्या हो रहा है, यह बाहर से जांच बड़ी कठिन है।

मुल्ला एक दिन चर्च में गया है सुनने। कोई बड़ा पादरी बोलने आया है। चला गया। एक ईसाई मित्र ने कहा: जाकर बैठ गया। आगे ही बैठा है। प्रभावशाली आदमी है। पादरी की भी नजर उस पर बार-बार जाती है। जब पादरी ने टेन कमांडमेंट्स पर बोलना शुरू किया, दस आज्ञाओं पर और जब उसने एक आज्ञा पर काफी बातें समझाई--दाउ शैल्ट नॉट स्टील, चोरी नहीं करना तुम। तो मुल्ला बड़ा बेचैन हो गया। उसके माथे पर पसीना आ गया। पादरी को ख्याल भी आया कि बहुत बेचैन है यह आदमी, क्या बात है! इतना बेचैन है कि लगता है कि वह उठ कर न चला जाए। हाथ पैर उसके सीधे नहीं हैं। फिर पादरी दूसरी आज्ञा पर आया--दाउ शैल्ट नॉट कमिट एडल्टरी, व्यभिचार मत करना तुम। मुल्ला हंसने लगा। बड़ा प्रसन्न हुआ। बड़ा शांत और आनंदित दिखाई पड़ने लगा। पादरी और भी हैरान हुआ कि इसको हो क्या रहा है! जब सभा समाप्त हो गई, उसने मुल्ला को पकड़ा और कोने में ले गया। और पूछा कि राज क्या है तुम्हारा? जब मैंने कहा--चोरी मत करना तो तुम बहुत परेशान थे। तुम्हारे माथे पर पसीना आ गया। और जब मैंने कहा--व्यभिचार मत करना तो तुम बड़े आनंदित हो गए।

मुल्ला ने कहा कि जब आप नहीं मानते तो बताए देता हूं। जब आपने कहा चोरी मत करना तब मुझे ख्याल आया कि मेरा छाता कोई चुरा ले गया। छाता दिखाई नहीं पड़ रहा, तो मैं मुसीबत में पड़ गया कि जरूर कोई चोर--मुझे गुस्सा भी बहुत आया कि यह कैसा चर्च है, जहां चोर इकट्ठे हैं। लेकिन जब आपने कहा कि व्यभिचार मत करना, तब मुझे फौरन ख्याल आ गया कि रात में मैं छाता कहां छोड़ आया हूं--कोई हर्जा नहीं, कोई हर्जा नहीं।

आदमी के भीतर क्या हो रहा है, वह उसके बाहर देख कर पता लगाना बहुत मुश्किल है। आदमी के भीतर सूक्ष्म में वह जो घटित होता है वह बाहर के प्रतीकों से पकड़ना अत्यंत कठिन है। अक्सर ऐसा हुआ है कि महावीर के पास वे लोग भी इकट्ठे हो जाएंगे और जैसे-जैसे महावीर से फासला बढ़ता जाएगा, उनकी संख्या बढ़ती जाएगी। और एक वक्त आएगा कि महावीर के पीछे चलने वाली भीड़ में अधिक लोग वे होंगे जो उन बातों से उत्सुक हुए जिन बातों से उत्सुक नहीं होना चाहिए था। और जिन बातों से उत्सुक होना चाहिए था, उनका ख्याल ही मिट जाएगा। क्योंकि जिन बातों से उत्सुक होना चाहिए वे गहन हैं, और जिन बातों से हम उत्सुक होते हैं वे ऊपरी हैं, बाहरी हैं। अब महावीर को लोगों ने देखा है कि अपने बाल उखाड़ रहे हैं, भूखे खड़े हैं, नग्न खड़े हैं, धूप-सर्दी, वर्षा में खड़े हैं, तो जिन लोगों को भी अपने को सताना है, महावीर की आड़ में वे बड़ी आसानी से कर सकते हैं। लेकिन महावीर अपने को सता नहीं रहे। काया-क्लेश का अर्थ महावीर के लिए सताना नहीं है।

पर यह शब्द क्यों प्रयोग किया? महावीर का जो अर्थ है, वह यह है कि काया-क्लेश है। इसे थोड़ा समझें। शरीर दुख है, शरीर ही दुख है। शरीर के साथ सुख मिलता ही नहीं कभी, दुख ही मिलता है। शरीर के साथ कभी सुख मिलता ही नहीं, शरीर दुख ही देगा। इसलिए साधक जैसे ही आगे बढ़ेगा उसे शरीर से बहुत से दुख दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे जो कल तक दिखाई नहीं पड़ते थे। क्योंकि वह अपने मोह और भ्रमों में जी रहा था। डिसइल्यूजनमेंट होगा। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं--जब से ध्यान शुरू किया तब से मन में बड़ी अशांति मालूम पड़ती है। ध्यान से अशांति नहीं हो सकती। अगर ध्यान से अशांति होती तो फिर शांति किस चीज से होगी? मैं जानता हूं, अशांति मालूम पड़ती है ज्यादा ध्यान करने पर। क्योंकि जो अशांति आपने कभी भी नहीं देखी थी अपने भीतर, वह ध्यान के साथ दिखाई पड़नी शुरू होगी। दिखती नहीं थी, इसलिए आप सोचते थे, है नहीं। जब दिखती तब पता चलता है कि है। इसलिए ध्यान के पहले अनुभव तो अशांति के बढ़ने के अनुभव हैं। जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है, अशांति पूरी प्रकट होती है। एक घड़ी आएगी कि भय लगने लगेगा कि मैं

पागल तो नहीं हो जाऊंगा! अगर आप उस घड़ी को पार कर गए तो अशांति समाप्त हो जाएगी। अगर आप उस घड़ी को पार नहीं किए तो आप वापस अपनी अशांति की दुनिया में फिर लौट जाएंगे, सोए हुए।

एक आदमी सोया है। उसे पता नहीं चलता कि पैर में दर्द है। जागता है तो पता चलता है। लेकिन जागने से दर्द नहीं होता, जागने से पता चलता है। प्रत्यभिज्ञा होती है। महावीर जानते हैं कि काया-क्लेश बढ़ेगा। जैसे ही कोई व्यक्ति साधना में उतरेगा, उसकी काया उसे और ज्यादा दुख देती हुई मालूम पड़ेगी। क्योंकि सुख तो देना बंद हो जाएगा। सुख उसने कभी दिया नहीं था, सिर्फ हमने सोचा था कि देगी। वह हमारा भ्रम था, वह हमारा ख्याल था वह तो पर्दा उठ जाएगा, दुख ही दुख दिखाई पड़ेगा। उसे देख कर लौट मत जाना। महावीर कहते हैं--इस काया-क्लेश को सहना। यह काया-क्लेश देना नहीं है अपने को। काया-क्लेश बढ़ेगा। काया के दुख दिखाई पड़ने शुरू होंगे। उसकी बीमारियां दिखाई पड़ेंगी, तनाव दिखाई पड़ेंगे, असुविधाएं दिखाई पड़ेंगी, रुग्णता, बुढ़ापा आएगा, मौत आएगी, यह सब दिखाई पड़ेगा। जन्म से लेकर मृत्यु तक दुख की लंबी यात्रा दिखाई पड़ेगी। घबड़ा मत जाना। उस काया-क्लेश को सहना; उसको देखना; उससे राजी रहना, भागना मत।

तो काया-क्लेश का यह अर्थ नहीं है कि दुख देना। काया-क्लेश का अर्थ है--दुख आएगा, दुख प्रतीत होगा, दुख अनुभव में उतरेगा; तब तुम बचाव मत करना, स्वीकार करना। अब यह बहुत अलग अर्थ है। और ऐसा देखेंगे तो महावीर की पूरी बात बहुत और दिखाई पड़ेगी। तब महावीर यह नहीं कह रहे कि तुम सताना, क्योंकि महावीर कह रहे हैं--सताने की जरूरत नहीं है। काया खुद ही इतना सताती है कि अब तुम और क्या सताओगे? काया के अपने ही दुख इतने पर्याप्त हैं कि तुम्हें और दुख ईजाद करने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन काया के दुख पता न चलें, इसलिए हम सुख ईजाद करते हैं, ताकि काया के दुख पता न चलें। सुख का हम आयोजन करते हैं। कल हो जाएगा आयोजन, परसों हो जाएगा आ योजन। किसी न किसी दिन तो सुख मिलेगा ही। आज नहीं मिला, कल मिलेगा, परसों मिलेगा। तो कल पर टालते जाते हैं, स्थगित करते जाते हैं। आज का दुख भुलाने के लिए कल का सुख निर्मित करते रहते हैं। आज पर पर्दा पड़ जाए इसलिए कल की रंगीन तस्वीर बनाए रखते हैं। इसलिए कोई आदमी आज में नहीं जीना चाहता। आज बड़ा दुखद है। सब कल पर टालते रहते हैं। आज बड़ा दुखद है। अभी अगर हम जाग जाएं तो सुख का सब भ्रम टूट जाएगा।

महावीर जानते हैं कि जैसे साधना में भीतर प्रवेश होगा, कल टूटने लगेगा, आज ही जीना होगा। और सारे दुख प्रगाढ़ होकर चुभेंगे, सब तरफ से दुख खड़े हो जाएंगे। सब तरफ बुढ़ापा और मौत दिखाई पड़ने लगेगी, कहीं सुख का कोई सहारा न रहेगा। जो कागज की नाव आप सोचते थे, पार कर देगी, वह डूब जाएगी। जो आप सोचते थे सहारा है, वह खो जाएगा। जिन भ्रमों के आसरे आप जीते थे वे मिट जाएंगे। जब बिल्कुल भ्रम शून्य, डिसइल्यूजंड आप सागर में खड़े होंगे, डूबते होंगे, न नाव होगी, न सहारा होगा, न किनारा दिखाई पड़ता होगा तब बड़ा क्लेश होगा। उस क्लेश को सहना। उस क्लेश को स्वीकार करना। जानना कि वह जीवन की नियति है। जानना कि वह प्रकृति का स्वभाव है। जानना कि ऐसा है।

काया-क्लेश का अर्थ है यह--जो भी क्लेश आए, उसे स्वीकार करना, जानना कि ऐसा है। उससे बचने की कोशिश मत करना। उससे बचने की कोशिश ही भविष्य के स्वप्न में ले जाती है। उसके विपरीत सुख बनाने की चिंता में मत पड़ना। क्योंकि वह सुख बनाने की चिंता उसे देखने नहीं देती, जानने नहीं देती, पहचानने नहीं देती। और ध्यान रहे, इस जगत में जिसे मुक्त होना है, सुख से मुक्त कोई नहीं हो सकता, दुख से ही मुक्त होना होता है। सुख है ही नहीं, उससे मुक्त क्या होइएगा, वह भ्रम है। दुख से मुक्त होना होता है और दुख से मुक्ति दुख की स्वीकृति में छिपी है--एक्सेप्टिबिलिटी में छिपी है, टोटल एक्सेप्टिबिलिटी, समग्र स्वीकार। काया-क्लेश का अर्थ है--काया दुख है, उसका समग्र स्वीकार। वह स्वीकार इतना हो जाना चाहिए कि आपके मन में यह सवाल भी न उठे कि काया दुख है। यह दूसरा हिस्सा काया-क्लेश का आपसे कहता हूं।

क्योंकि जब तक आपको लगता है, काया दुख है, इसका मतलब है कि आपको काया से सुख की आकांक्षा है। अगर मैं मानता हूँ कि मेरा मित्र मुझे दुख दे रहा है, तो इसका कुल मतलब इतना है कि मैं अभी भी सोचता हूँ कि मेरे मित्र से मुझे सुख मिलना चाहिए। अगर मैं कहता हूँ कि मेरा शरीर दुख देता है तो उसका मतलब यह है कि मेरे शरीर से सुख की आकांक्षा कहीं शेष है। काया-क्लेश का अर्थ है कि स्वीकार कर लो दुख को, इतना स्वीकार कर लो कि तुम्हें क्लेश का भी बोध मिट जाए। क्लेश का बोध उसी दिन मिट जाएगा जिस दिन पूर्ण स्वीकृति होगी। इसलिए महावीर सब दुखों के बीच आनंद से भरे घूमते रहते हैं। वे जब वर्षा में खड़े हैं, या धूप में पड़े हैं, या नग्न हैं, या बाल उखाड़ रहे हैं, या भोजन नहीं कर रहे हैं तो किसी दुख में नहीं हैं। उन्हें दुख का अब पता ही नहीं है। काया-क्लेश की स्वीकृति इतनी गहन हो गई है कि अब दुख का कोई पता भी नहीं चलता। अब वह कैसे कहें कि यह दुख है।

अगर मैं अपेक्षा करता हूँ कि जब रास्ते से मैं गुजरूँ तो आप मुझे नमस्कार करें। अगर न करें तो दुख होगा। अगर मैं अपेक्षा ही नहीं करता तो न करें तो कैसे दुख होगा! अगर आप मुझे गाली देते हैं और मुझे दुख होता है तो उसका मतलब ही यह है कि मैंने अपेक्षा की थी कि आप गाली नहीं देंगे। नहीं देते तो मुझे सुख होता है, देते हैं तो मुझे दुख होता है। लेकिन अगर मेरी कोई अपेक्षा नहीं थी, अगर मेरा सिर्फ स्वीकार था कि आप गाली देंगे तो स्वीकार करूँगा। तब मैं जानूँगा कि यही नियति है। इस क्षण गाली ही पैदा हो सकती थी, वह हो गई है। आपसे गाली ही मिल सकती थी, वह मिल गई है। इसमें कहीं कोई विपरीत दूसरी आकांक्षा नहीं हो, तो फिर कोई दुख नहीं रह जाता--एक तथ्य हो जाती है, एक फेक्टिसिटी। फिर इसके पीछे हमारी कोई कामना नहीं है।

काया-क्लेश की साधना शुरू होती है, दुख के स्वीकार से--पूर्ण होती है दुख के विसर्जन से। विसर्जित नहीं हो जाता दुख, ध्यान रहे, जब तक जीवन है, दुख तो रहेगा। जीवन दुख है। लेकिन जिस दिन स्वीकार पूरा हो जाता है, उस दिन आपके लिए दुख नहीं रह जाता। महावीर अब भी रास्ते पर चलेंगे तो पैर थकेंगे। कोई पत्थर मारेगा तो सिर फूटेगा। कोई कान में खीलें ठोंक देगा तो शरीर दुख पाएगा। लेकिन महावीर अब दुखी नहीं होंगे। यह स्वीकार ही कर लिया कि ऐसा है। स्वीकार के साथ इतना बड़ा रूपांतरण होता है, इतना बड़ा ट्रांसफॉर्मेशन, जिसका हमें पता भी नहीं।

युद्ध के मैदान पर सैनिक जाता है तो जब तक नहीं जाता, तब तक भयभीत रहता है। बहुत घबड़ाया रहता है। बचाव की कोशिश में लगा रहता है कि किसी तरह बच जाऊँ। लेकिन युद्ध के मैदान पर पहुंचता है। एक-दो दिन उसकी नींद खोई रहती है, सो नहीं पाता है, चौंक-चौंक उठता है। बम गिर रहे हैं, गोलियां चल रही हैं। पर दो-चार दिन के बाद आप दंग होंगे कि वही सैनिक, बम गिर रहे हैं, गोलियां चल रही हैं, सो रहा है। वही सैनिक, लाशें पड़ी हैं, भोजन कर रहा है। वही सैनिक, पास से गोलियां सरसराती निकल जाती हैं, ताश खेल रहा है। क्या हो गया इसको? एक बार युद्ध की स्थिति स्वीकृत हो गई, फेक्ट हो गया कि ठीक है, अब युद्ध है। बात खत्म हो गई।

लंदन पर बमबारी दूसरे महायुद्ध में चलती थी। चिंतित थे लोग कि क्या होगा? लेकिन दो-चार दिन के बाद बमबारी चलती रही, स्त्रियां बाजार में सामान खरीदने निकलने लगीं, बच्चे स्कूल पढ़ने जाने लगे। स्वीकृत हो गया। युद्ध एक तथ्य हो गया। ऐसा नहीं है कि युद्ध के मैदान पर वह जो लाश पास में पड़ी होती है वह लाश नहीं होती। और ऐसा भी नहीं है कि वह आदमी कठोर हो गया, अंधा हो गया, बहरा हो गया। नहीं, वह आदमी वही है। लेकिन तथ्य की स्वीकृति सारी स्थिति को बदल देती है। अस्वीकार जब तक करेंगे, तब तक तथ्य आपको सताएगा। जिस दिन स्वीकार कर लेंगे, बात समाप्त हो गई। अगर मैंने ऐसा जान ही लिया कि शरीर के साथ मौत अनिवार्य है तो मौत का दुख नष्ट हो गया। मौत आएगी, मौत नष्ट नहीं हो गई--मौत आएगी। लेकिन अब मुझे नहीं छू पाएगी।

काया-क्लेश की साधना दुख की स्वीकृति से दुख की मुक्ति का उपाय है। लेकिन भूल कर भी काया को कष्ट देने की कोशिश काया-क्लेश की साधना नहीं है। क्योंकि जो आदमी काया को दुख देने में लगा है, वह आदमी फिर किसी सुख की आकांक्षा में पड़ा। प्रयत्न हम सुख के लिए ही करते हैं। ध्यान रहे प्रयत्न मात्र सुख के लिए है। जब तक हम कोई प्रयत्न करते हैं, तब तक हम सुख की ही आकांक्षा से करते हैं। एक आदमी अपने शरीर को भी सता सकता है, सिर्फ इस आशा में कि इससे मोक्ष मिलेगा, आनंद मिलेगा, आत्मा मिलेगी, परमात्मा मिलेगा। तो सुख की आकांक्षा जारी है।

महावीर की काया-क्लेश की धारणा किसी सुख के लिए शरीर को दुख देने की नहीं है। परंपरागत व्याख्याकार कहते हैं कि जैसे आदमी धन कमाने के लिए दुख उठाता है, ऐसा ही मोक्ष पाने के लिए दुख उठाना पड़ेगा। गलत कहते हैं। बिल्कुल ही गलत कहते हैं। जैसे कोई आदमी व्यायाम करता है तो शरीर को कष्ट देता है ताकि स्वास्थ्य ठीक हो जाए, ऐसा ही काया-क्लेश करना पड़ेगा। गलत कहते हैं। बिल्कुल गलत कहते हैं। काया तो क्लेश ही है अब और क्लेश आप उसमें जोड़ नहीं सकते। आपके हाथ के बाहर है क्लेश जोड़ना। अगर आपके हाथ के भीतर हो क्लेश जोड़ना, तब तो क्लेश कम करना भी आपके हाथ के भीतर हो जाएगा। यह समझ लें। अगर आप शरीर में दुख जोड़ सकते हैं तो घटा क्यों नहीं सकते। फिर वह सांसारिक कौन सी गलती कर रहा है, वह कह रहा है--तुम जोड़ने की कोशिश में लगे हो। अगर जोड़ने में सफल हो जाओगे--पांच दुख की जगह अगर तुम दस कर सकते हो तो मैं पांच की जगह शून्य क्यों नहीं कर सकता!

अगर दुख जुड़ सकते हैं तो दुख घट भी सकते हैं। जहां जोड़ हो सकता है, वहां घटना भी हो सकता है। तो यह तथाकथित धार्मिक आदमी जो शरीर को दुख दे रहा है इसमें, और भोगी जो शरीर के दुख कम करने में लगा है, कोई भेद नहीं है। इनका तर्क एक ही है। इनकी निष्ठा भी एक है। इनकी श्रद्धा में भेद नहीं है। एक कह रहा है--हम जोड़ लेंगे; एक कह रहा है--हम घटा लेंगे। इनके गणित में फर्क नहीं है। इनके गणित का हिसाब एक ही है।

महावीर कहते हैं--न तुम जोड़ सकते, न तुम घटा सकते। जो है, उसे चाहो तो स्वीकार कर लो, चाहो तो अस्वीकार कर दो। इतना तुम कर सकते हो। जो आल्टरनेटिव है, जो विकल्प है वह स्वीकार और अस्वीकार में है। वह घटाने और बढ़ाने में नहीं है। तुम चाहो तो स्वीकार कर लो, तुम चाहो तो अस्वीकार कर दो। ध्यान रहे, स्वीकार कर लोगे तो दुख शून्य हो जाएगा। अस्वीकार कर दोगे तो दुख जितना अस्वीकार करोगे, उतना गुना ज्यादा हो जाएगा। काया-क्लेश का अर्थ है, पूर्ण स्वीकृति, जो है उसकी वैसी ही स्वीकृति।

महावीर के कानों में जिस दिन खिलें ठोंके गए, तो कथा कहती है, इंद्र ने आकर महावीर को कहा कि आप मुझे आज्ञा दें। हमें बड़ी पीड़ा होती है। आप जैसे निस्पृह व्यक्ति को लोग आकर कानों में खिलें ठोंक दें, सताएं, परेशान करें--हमें पीड़ा होती है।

तो महावीर ने कहा कि मेरे शरीर में ठोंके जाने से तुम्हें इतनी पीड़ा होती है तो तुम्हारे शरीर में ठोंके जाने से तुम्हें कितनी न होगी?

इंद्र कुछ भी न समझा। उसने कहा कि निश्चित होती है। तो मैं आपकी रक्षा करने लगूं? महावीर ने कहा: तुम भरोसा देते हो कि तुम्हारी रक्षा से मेरे दुख कम हो जाएंगे? इंद्र ने कहा: कोशिश कर सकता हूं। कम होंगे कि नहीं, मैं नहीं कह सकता। महावीर ने कहा: मैंने भी जन्मों-जन्मों तक कोशिश करके देखी, कम नहीं हुए। अब मैंने कोशिश छोड़ दी। अब मैं इतनी कोशिश भी न करूंगा कि तुमको मैं रक्षा के लिए रखूं। नहीं, तुम जाओ। तुम्हारी भी भूल वही है जो उस कान में खिलें ठोंकने वाले की भूल थी। वह सोचता था खिलें ठोंक कर मेरे दुख बढ़ा देगा; तुम सोचते हो मेरे साथ रह कर मेरे दुख घटा दोगे। गणित तुम्हारा एक है। मुझे छोड़ दो, जो है मुझे स्वीकार है। उसने खिलें जरूर ठोंके। मुझ तक नहीं पहुंची उसकी खिलें, मैं बहुत दूर खड़ा हूं। मैंने स्वीकार कर

लिया है, मैं दूर खड़ा हूँ। एक्सेप्टेंस इ.ज ट्रासेंडेंस। जैसे ही किसी ने स्वीकार किया, अतिक्रमण हो जाता है। जिस स्थिति को आप स्वीकार करते हैं, आप उसके ऊपर उठ जाते हैं--तत्क्षण।

काया-क्लेश का यही अर्थ है। छठवां महावीर का बाह्य--तप है--संलीनता। उस पर हम कल बात करेंगे।

अभी बैठेंगे... !

संलीनता: अंतर-तप का प्रवेश-द्वार (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्य धम्मे सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

बाह्य-तप का अंतिम सूत्र, अंतिम अंग है--संलीनता। संलीनता सेतु है, बाह्य-तप और अंतर-तप के बीच। संलीनता के बिना कोई बाह्य-तप से अंतर-तप की सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए संलीनता को बहुत ध्यानपूर्वक समझ लेना जरूरी है। संलीनता सीमांत है; वहीं से बाह्य-तप समाप्त होते और अंतर-तप शुरू होते हैं।

संलीनता का अर्थ और संलीनता का प्रयोग बहुत अदभुत है। परंपरा जितना कहती है, वह तो इतना ही कहती है कि अपने शरीर के अंगों को व्यर्थ संचालित न करना संलीनता है। अकारण शरीर न हिले डुले, संयत हो, तो संलीनता है। इतनी ही बात नहीं, यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो संलीनता का बाहर की रूपरेखा को भी स्पर्श करना नहीं है। संलीनता के गहरे अर्थ हैं। तीन हिस्सों में हम इसे समझें--पहला तो आपके शरीर में, आपके मन में, आपके प्राण में कोई भी हलन-चलन नहीं होती है, जब तक आपकी चेतना न कंपे। अंगुली भी हिलती है तो भीतर आत्मा में कंपन पैदा होता है। दिखाई तो अंगुली पड़ती है कि हिली, लेकिन कंपन भीतर से आता है; सूक्ष्म से आता है और स्थूल तक फैल जाता है। इतना ही सवाल नहीं है कि अंगुली न हिले क्योंकि यह हो सकता है अंगुली न हिले लेकिन भीतर कंपन हो। तो कोई अपने शरीर को संलीन करके बैठ जा सकता है, योगासन लगा कर बैठ जा सकता है, अभ्यास कर ले सकता है और शरीर पर कोई भी कंपन दिखाई न पड़े और भीतर तूफान चले, और ज्वालामुखी का लावा उबलता रहे और आग जले।

संलीनता वस्तुतः तो तब घटित होती है, जब भीतर सब इतना शांत हो जाता है कि भीतर से कोई तरंग नहीं आती जो शरीर पर कंपन बने, लहर बने। पर हमें शरीर से ही शुरू करना पड़ेगा क्योंकि हम शरीर पर ही खड़े हैं। तो संलीनता के अभ्यास में जिसे उतरना हो उसे पहले तो अपनी शरीर की गतिविधियों का निरीक्षण करना होता है। यह पहला हिस्सा है।

क्या कभी आपने ख्याल किया है कि जब आप क्रोध में होते हैं तो और ढंग से चलते हैं? जब आप क्रोध में होते हैं तब आपके चेहरे की रेखाएं और हो जाती हैं; आपकी आंख पर अलग रंग फैल जाते हैं; आपके दांतों में कोई गति हो जाती है। आपकी अंगुलियां किसी भार से, शक्ति से भर जाती हैं। आपके समस्त स्नायु मंडल में परिवर्तन हो जाता है। जब आप उदास होते हैं तब आप और ढंग से चलते हैं, आपके पैर भारी हो गए होते हैं, उठाने का मन भी नहीं होता, कहीं जाने का भी मन नहीं होता। आपके प्राण पर जैसे पत्थर रख दिया हो, ऐसी आपकी सारी इंद्रियां पत्थर से दब जाती हैं। जब आप उदास होते हैं तब आपके चेहरे का रंग बदल जाता है, रेखा बदल जाती है। जब आप प्रेम में होते हैं तब, जब आप शांत होते हैं तब, तब सब फर्क पड़ते हैं। लेकिन

आपने निरीक्षण न किया होगा। संलीनता का प्रयोग समझना हो तो जब आप क्रोध में हों तो भागें और दर्पण के सामने पहुंच जाएं। और देखें कि चेहरे में कैसी स्थिति है क्योंकि आपका क्रोध से भरा चेहरा दूसरों ने देखा है, आपने नहीं देखा। देखें कि आपका चेहरा कैसा है। जब आप उदास हों तब आईने के सामने पहुंच जाएं और देखें कि आंखें कैसी हैं। जब आप चल रहे हों उदास, तब ख्याल करें कि पैर कैसे पड़ते हैं, शरीर झुका हुआ है, उठा हुआ है।

हिटलर ने एक मनस्विद को फ्रांस पर हमला करने के पहले फ्रांस भेजा था और पूछा था कि जरा फ्रांस की सड़कों पर देखो कि युवक कैसे चलते हैं, उनकी रीढ़ सीधी है या झुकी हुई है? उस मनस्विद ने खबर दी कि फ्रांस में लोग झुके-झुके चलते हैं। हिटलर ने कहा--फिर उनको जीतने में कोई कठिनाई न पड़ेगी। हिटलर का सैनिक देखा है आपने? पूरा जर्मनी रीढ़ सीधी करके चल रहा है। जब कोई आशा से भरा होता है तो रीढ़ सीधी हो जाती है। जब कोई निराशा से भरा होता है तो रीढ़ झुक जाती है। बुढ़ापे में सिर्फ इसीलिए रीढ़ नहीं झुक जाती कि शरीर कमजोर हो जाता है। इससे भी ज्यादा इसलिए झुक जाती है कि जीवन निराशा से भर जाता है। मौत सामने दिखाई पड़ने लगती है, भविष्य नहीं रह जाता। महावीर जैसे व्यक्ति की रीढ़ बुढ़ापे में भी नहीं झुकेगी, क्योंकि मौत नहीं है असली सवाल, बुढ़ापे में; मोक्ष का द्वार है, परम आनंद है। तो रीढ़ नहीं झुकेगी।

आप भी जब स्वस्थ चित्त, प्रसन्न चित्त होते हैं तो और ढंग से खड़े होते हैं। अगर मैं बोल रहा हूं और आपको उसमें कोई रस नहीं आ रहा है तो आप कुर्सी से टिक जाते हैं। अगर आपको कोई रस आ रहा है तो आपकी रीढ़ कुर्सी छोड़ देती है। आप सीधे हो जाते हैं। अगर कोई बहुत संवेदनशील हिस्सा आ गया है फिल्म में देखते समय, कोई बहुत थ्रिलिंग, कोई कंपा देने वाला हिस्सा हो गया है तो आपकी रीढ़ सीधी ही नहीं होती, आगे झुक जाती है। श्वास रुक जाती है। आपके चित्त में पड़े हुए छोटे-छोटे परिवर्तनों की लहरें आपके शरीर की परिधि तक फैल जाती हैं। ज्योतिषी या हस्तरेखाविद, या मुखाकृति को पढ़ने वाले लोग नब्बे प्रतिशत तो आप पर ही निर्भर होते हैं। आप कैसे उठते, कैसे चलते, कैसे बैठते, आपके चेहरे पर क्या भाव है। आपको भी पता नहीं है, वह सब आपके बाबत बहुत सी खबरें दे जाती हैं।

आदमी एक किताब है, उसे पढ़ा जा सकता है। और जिसे साधना में उतरना हो उसे खुद अपनी किताब पढ़नी शुरू करनी पड़ती है। सबसे पहले तो पहचान लेना होगा कि मैं किस तरह का आदमी हूं। तो जब क्रोध में आप आईने के सामने खड़े हो जाएं, और देखें, कैसा है चेहरा, क्या है रंग, आंख पर कैसी रेखाएं फैल गई हैं? जब शांत हों, मन प्रसन्न हो, तब भी आईने के सामने खड़े हो जाएं। तब आप अपनी बहुत सी तस्वीरें देखने में समर्थ हो जाएंगे और एक और मजेदार घटना घटेगी, वह संलीनता के प्रयोग का दूसरा हिस्सा है। जब आप आईने के सामने खड़े होकर अपने क्रोधित चित्त का अध्ययन कर रहे होंगे तब आप अचानक पाएंगे कि क्रोध खिसकता चला गया, शांत होता चला गया। क्योंकि जो क्रोध का अध्ययन करने में लग गया, उसका क्रोध से संबंध टूट जाता है, अध्ययन से संबंध जुड़ जाता है। उसकी चेतना का तादात्म्य, "मैं क्रोध हूं" से टूट गया, मैं अध्ययन कर रहा हूं, इससे जुड़ गया। और जिससे हमारा संबंध टूट गया वह वृत्ति तत्काल क्षीण हो जाती है।

तो आईने के सामने खड़े होकर एक और रहस्य आपको पता चलेगा कि अगर आप क्रोध का निरीक्षण करें तो क्रोध ज़िंदा नहीं रह सकता। तत्काल विलीन हो जाता है। और भी एक मजेदार अनुभव होगा कि जब आप बहुत शांत हों और जीवन एक आनंद के फूल की तरह मालूम हो रहा हो किसी क्षण में, कभी सूरज निकला हो सुबह का और उसे देख कर मन प्रफुल्लित हुआ हो; या रात चांद-तारे देखे हों और उनकी छाया और उनकी शांति मन में प्रवेश कर गई हो; या एक फूल को खिलते देखा हो और उसके भीतर की बंद शांति आपके प्राणों तक बिखर गई हो, तब आईने के सामने खड़े हो जाएं तब एक और नया अनुभव होगा, और वह अनुभव यह होगा कि जब कोई शांति का निरीक्षण करता है, तो क्रोध तो निरीक्षण करने से विलीन हो जाता है, शांति निरीक्षण करने से बढ़ जाती है। गहरी हो जाती है। क्रोध इसलिए विलीन हो जाता है कि आपका क्रोध से संबंध टूट जाता है। क्रोध से संबंधित होने के लिए बेचैन होना जरूरी है, परेशान होना जरूरी है, उद्विग्न होना जरूरी

है। अध्ययन के लिए शांत होना जरूरी है। निरीक्षण के लिए, मौन होना जरूरी है। तटस्थ होना जरूरी है। तो संबंध टूट जाता है।

शांति के आप जितने ही निरीक्षक बनते हैं उतने ही आपके और निरीक्षण के लिए जो शांति जरूरी है वह भी जुड़ जाती है। अध्ययन के लिए जो शांति जरूरी है वह भी जुड़ जाती है। तटस्थ होना जरूरी है, वह भी जुड़ जाता है। शांति और गहरी हो जाती है। सच तो यह है कि निरीक्षण करने से जो गहरा हो जाए, वही वास्तविक जीवन है। निरीक्षण करने से जो गिर जाए, वह धोखा था। या ऐसा कहें कि निरीक्षण करने से जो बचा रहे वही पुण्य है, और निरीक्षण करने से जो तत्काल विलीन हो जाए वही पाप है। संलीनता का पहला प्रयोग है, राइट आब्जर्वेशन, सम्यक निरीक्षण। आप बहुत हैरान होंगे कि आप कितनी तस्वीरें हैं एक साथ।

महावीर ने पृथ्वी पर पहली दफा एक शब्द का प्रयोग किया है जो पश्चिम में अब पुनः पुनरुज्जीवित हो गया है। महावीर ने पहली दफा एक शब्द का प्रयोग किया है--बहुचित्तता--पहली बार। आज पश्चिम में इस शब्द का बड़ा मूल्य है। उनको पता भी नहीं है कि महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले इसका प्रयोग किया था--पालिसाइकिक। पश्चिम में आज इस शब्द का बड़ा मूल्य है। क्योंकि जैसे ही पश्चिम मन को समझने गया, उसने कहा--मन मोनोसाइकिक नहीं है, एक मन नहीं हैं आदमी के भीतर--अनंत मन हैं; पालिसाइकिक है, बहुत मन हैं। महावीर ने ढाई हजार साल पहले कहा कि आदमी बहुचित्तवान है, एक चित्त नहीं है; जैसा हम सोचते हैं। हम निरंतर कहते हैं--मेरा मन। हमें कहना चाहिए--मेरे मन, माई माइंड नहीं, माई माइंड्स।

तो क्या आपके पास एक मन... एक ही मन हो तो जीवन और हो जाए, बहुत मन हैं। और ये मन भी ऐसे नहीं हैं कि सिर्फ बहुत हैं, ये विरोधी भी हैं। ये एक दूसरे के दुश्मन भी हैं। इसलिए आप सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ हो जाते हैं। आपको खुद ही समझ में नहीं आता कि यह क्या हो रहा है। जब आप प्रेम में होते हैं तब आप दूसरे ही आदमी होते हैं, और जब आप घृणा में होते हैं तो आप दूसरे ही आदमी होते हैं। इन दोनों के बीच कोई संगति नहीं होती, कोई संबंध नहीं होता। जिसने आपको घृणा में देखा है वह अगर आपको प्रेम में देखे तो भरोसा न कर पाएगा कि आप वही आदमी हैं। और ध्यान रहे कि सिर्फ घृणा की वजह से नहीं, आपके चेहरे की सब रूप रेखा, आपके शरीर का ढंग, आपका आभामंडल, आपका सब बदल गया होगा।

तो पहला तो निरीक्षण करें, ठीक से पहचानें कि आपके पास कितने चित्त हैं। और प्रत्येक चित्त की आपके शरीर पर क्या प्रतिक्रिया है! आपका शरीर प्रत्येक चित्त-दशा के साथ कैसा बदलता है! जब आप शांत होते हैं तो शरीर को हिलाने का भी मन नहीं होता। श्वास भी जोर से नहीं चलती। खून की रफ्तार भी कम हो जाती है। हृदय की धड़कनें भी शांत हो जाती हैं। जब आप अशांत होते हैं तो अकारण शरीर में गति होती है। एक अशांत आदमी कुर्सी पर भी बैठा होगा तो पैर हिलाता होगा। कोई उससे पूछे कि क्या कर रहे हो? कुर्सी पर बैठ कर चलने की कोशिश कर रहे हो? वह पैर हिला रहा है। आदमी थोड़ी देर बैठा रहे तो करवटें बदलता रहता है, क्या हो रहा है उसके भीतर? उसके भीतर चित्त इतना बेचैन है कि वह बेचैनी वह शरीर से रिलीज कर रहा है। अगर वह रिलीज न करे तो पागल हो जाएगा। वह रिलीज उसे करनी पड़ेगी। अगर वह शाम को घंटे भर जाकर खेल के मैदान पर दौड़ लेता है, खेल लेता है, घंटे भर घूम आता है तो ठीक, नहीं तो वह बैठे-बैठे, लेटे-लेटे अपने शरीर को गति देगा और वहां से शक्ति को मुक्त करेगा।

लेकिन यह शक्ति व्यर्थ व्यय हो रही है। संलीनता शक्ति संग्रह है, शक्ति संचयन है। और हम कोई संलीनता में नहीं जीते तो अपनी शक्ति को ऐसे ही लुटाए चले जाते हैं। ऐसे ही, व्यर्थ ही, जिसका कोई परिणाम नहीं होने वाला है; जिससे कुछ उपलब्ध होने वाला नहीं है; जिससे कहीं पहुंचेंगे नहीं। कुर्सी पर बैठ कर पैर हिलाते रहते हैं। कोई मंजिल इससे हल नहीं होती। उतनी शक्ति से कहीं पहुंचा जा सकता था, कुछ पाया जा सकता था। चौबीस घंटे हम शक्ति को अपने अंगों से बाहर फेंक रहे हैं। लेकिन इसका अध्ययन करना पड़ेगा पहले, स्वयं को पहचानना पड़ेगा और आप बहुत हैरान होंगे, आपकी जिंदगी की किताब जब आपके सामने खुलनी शुरू होगी

तो आप हैरान होंगे कि कोई रहस्यपूर्ण से रहस्यपूर्ण उपन्यास इतना रहस्यपूर्ण नहीं और अनूठे से अनूठी कथा इतनी स्ट्रेज, इतनी अजनबी नहीं, जितने आप हैं।

और ऐसा ही नहीं है कि क्रोध और अक्रोध में आप अलग स्थिति पाएंगे। आप पाएंगे कि क्रोध के भी स्टेप्स हैं। क्रोध में भी बहुत रंग हैं। कभी आप एक ढंग से क्रोधित होते हैं, कभी दूसरे ढंग से क्रोधित होते हैं, कभी तीसरे ढंग से क्रोधित होते हैं। और तब तीनों ढंग के क्रोध में आपके शरीर की आकृति अलग-अलग होती है। और तब पर्त-पर्त अपने को आप देखेंगे तो चकित हो जाएंगे कि कितना आपके भीतर छिपा है। यह पहला प्रयोग है-- निरीक्षण। इससे आप पहचान पाएंगे कि आपके भीतर क्या हो रहा है? आप जो शक्ति के पुंज हैं, उस शक्ति का आप क्या उपयोग कर रहे हैं?

दूसरी बात: जैसे ही आप समर्थ हो जाएं कि आप क्रोध को देख पाएं वैसे ही आप आईने के सामने पाएंगे कि अपने आप भी क्रोध शांत होगा, आप एक दूसरा प्रयोग जोड़ें, वह संलीनता का दूसरा प्रयोग है। जब चित्त क्रोध से भरा हो, तब आप आईने के सामने खड़े हो जाएं। निरीक्षण करने के बाद ही यह किया जा सकता है। लंबे निरीक्षण के बाद ही यह हो सकेगा। आईने के सामने खड़े हो जाएं और अपने तरफ से शरीर के अंगों को वैसा करने की कोशिश करें जैसा शांति में होता है। आईने के सामने खड़े हो जाएं। आपको भलीभांति याद है कि शांति में चेहरा कैसा होता है। अब क्रोध की स्थिति है। चेहरा क्रोध की धारा में बह रहा है। आप आईने के सामने खड़े होकर उस चेहरे को याद करें जो शांति में होता है, और चेहरे को शांति की तरफ ले जाने लगता है। बहुत ही थोड़े दिनों में आप हैरान होंगे कि आप चेहरे को शांति की तरफ ले जाने में समर्थ हो गए हैं। सारी अभिनय की कला, सारी एक्टिंग इस अभ्यास पर निर्भर करती है। जन्मजात किसी को यह प्रतिभा होती है तो वह अभिनय में कुशल मालूम पड़ता है।

लेकिन यह प्रतिभा विकसित की जा सकती है और यह इतनी विकसित की जा सकती है कि जिसका कोई हिसाब लगाना कठिन है। आईने के सामने खड़े होकर, क्रोध भीतर है और आप चेहरे पर शांति की धारा बहा रहे हैं। थोड़े ही दिनों में आप समर्थ हो जाएंगे। और तब आप एक और नया अनुभव कर पाएंगे। और वह यह होगा कि क्रोध मन में दौड़ता, शांति शरीर में दौड़ सकती है। और जब आप इन दोनों में समर्थ हो जाते हैं तो आप तीसरे हो जाते हैं--न तो आप क्रोध रह जाते, न आप मन रह जाते और न आप शरीर रह जाते। क्योंकि मन क्रोध में है, वह क्रोध से जल रहा है। लेकिन शरीर पर आपने शांति की धारा बहा दी है, वह शांत आकृति से भर गया है। निश्चित ही आप दोनों से अलग और पृथक् हो गए। न तो अब आप अपने को आइडेंटिफाई कर सकते हैं क्रोध से, और न शांति से। दोनों से तादात्म्य नहीं कर सकते। आप दोनों को देखने वाले हो गए।

और जिस दिन आप दो पैदा कर लेते हैं एक साथ, उस दिन आपको पहली दफा एक मुक्ति अनुभव होती है। आप दोनों के बाहर हो जाते हैं। एक के साथ तादात्म्य आसान है, दो के साथ तादात्म्य आसान नहीं है। एक के साथ जुड़ जाना आसान है, दो विपरीत चीजों के साथ एक साथ जुड़ जाना बहुत कठिन है, असंभव है। हां, अलग-अलग समय में हो सकता है कि सुबह आप क्रोध के साथ जुड़ें, दोपहर आप शांति के साथ जुड़ें; यह हो सकता है, अलग-अलग समय में। लेकिन साइमलटेनियसली, युगपत आप क्रोध और शांति के साथ जुड़ नहीं सकते। बड़ी मुश्किल होगी। कैसे जुड़ेंगे? जोड़ मुश्किल हो जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है। आखिरी क्षण उसके करीब हैं। वह अपने बेटे को बुलाकर सलाह देता है। वह कहता है--मैं जानता हूं कि मैं कितना ही कहूं कि तू धूम्रपान मत करना, लेकिन तू करेगा क्योंकि मेरे पिता ने भी मुझसे कहा था, लेकिन मैंने किया। इसलिए यह सलाह मैं तुझे नहीं दूंगा। मैं जानता हूं कि समझाना चाहता हूं तुझे, अनुभव से कहना चाहता हूं कि शराब मत छूना। लेकिन मेरे पिता ने भी मुझे समझाया था, लेकिन मैंने शराब पी। और मैं जानता हूं कि तू कितना ही कहे कि नहीं, नहीं पीऊंगा, तू पीएगा। मैं कितना ही कहूं कि स्त्रियों के पीछे मत दौड़ना, मत भागना, लेकिन यह नहीं हो सकता। मैं खुद ही भागता रहा हूं। लेकिन एक बात ख्याल रखना, एक स्त्री के पीछे एक ही समय में भागना, दो स्त्रियों के पीछे एक साथ मत भागना। इतनी तू मेरी

सलाह मानना। वन एट ए टाइम, एक स्त्री के पीछे एक ही समय में भागना। एक ही समय में दो स्त्रियों के पीछे मत भागना।

लड़के ने पूछा: क्या यह संभव हो सकता है, एक ही समय में दो स्त्रियों के पीछे भागना?

नसरुद्दीन ने कहा: संभव हो सकता है, मैं अनुभव से कहता हूँ।

लेकिन नरक निर्मित हो जाता है। ऐसे तो एक ही स्त्री नरक निर्मित करने में समर्थ है। इसको उलटा करके पुरुष भी कहा जा सकता है, स्त्री को सलाह दी जा रही है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन दो, फिर तो नरक सुनिश्चित है।

लेकिन उसके बेटे ने कहा: आप कहते हैं तो मेरा मन होता है कि दो के पीछे दौड़ कर देख लूँ।

नसरुद्दीन ने कहा: यह भी मैं जानता हूँ, यह भी तू सुनेगा नहीं क्योंकि मैंने भी नहीं सुना था। अच्छा है, दौड़।

उसका बेटा पूछने लगा--आप अभी मना करते थे, अब कहते हैं दौड़!

तो नसरुद्दीन ने कहा: दो स्त्रियों के पीछे एक ही समय में दौड़ने से जितनी आसानी से स्त्रियों से मुक्ति मिल जाती है, उतनी एक-एक के पीछे अलग-अलग दौड़ने से नहीं मिलती।

चित्त में भी अगर दो वृत्तियों के पीछे एक साथ आप दौड़ पैदा कर दें तो आप चित्त की वृत्ति से जितनी आसानी से मुक्त हो जाते हैं उतनी एक वृत्ति के साथ नहीं हो पाते। एक वृत्ति पूरा ही घेर लेती है। दो वृत्तियाँ काम्पिटिटिव हो जाती हैं आपस में। आप पर उनका जोर कम हो जाता है क्योंकि उनका आपस का संघर्ष गहन हो जाता है। क्रोध कहता है कि मैं पूरे पर हावी हो जाऊँ, शांति कहती है--मैं पूरे पर हावी हो जाऊँ, और आपने दोनों एक साथ पैदा कर दिए। वे दोनों आप पर हावी होने की कोशिश छोड़ कर एक दूसरे से संघर्ष में रत हो जाते हैं। और जब क्रोध और शांति आपस में लड़ रहे हों, तब आपको दूर खड़े होकर देखना बहुत आसान हो जाता है।

संलीनता का दूसरा अभ्यास है, विपरीत वृत्ति को शरीर पर पैदा करना। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अभिनेता इसे रोज कर रहा है। जिस स्त्री से उसे प्रेम नहीं है, उसको भी वह प्रेम प्रकट कर रहा है।

नसरुद्दीन देखने गया है एक दिन नाटक। उसकी पत्नी उसके पास है। नसरुद्दीन बहुत प्रभावित हुआ। पत्नी भी बहुत प्रभावित हुई है। वह जो नायक है उस नाटक में वह इतना प्रेम प्रकट कर रहा है अपनी प्रेयसी के लिए कि पत्नी ने नसरुद्दीन से कहा कि नसरुद्दीन, इतना प्रेम तुम मेरे प्रति कभी प्रकट नहीं करते। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं भी हैरान हूँ। और हैरान इसलिए हूँ कि वह जो जिसके प्रति प्रेम प्रकट कर रहा है, वस्तुतः उसकी पत्नी है बीस साल से। इतना प्रेम प्रकट किसी और के लिए कर रहा होता तो भी ठीक था। वह उसकी पत्नी है बीस साल से। इसलिए चकित तो मैं भी हूँ। ही इ.ज ए रियल एक्टर, वास्तविक, प्रामाणिक अभिनेता है क्योंकि पत्नी के प्रति, बीस साल से जो उसकी पत्नी है, उसके प्रति वह इतना प्रेम प्रकट कर रहा है! गजब का एक्टर है।

हमारा चित्त... लेकिन अभ्यास से संभव है। शरीर कुछ और प्रकट करने लगता है, मन कुछ और। तब दो धाराएं टूट जाती हैं। और ध्यान रहे राजनीति का ही नियम नहीं है, डिवाइड एण्ड रूल, साधना का भी नियम है। विभाजित करो और मालिक हो जाओ। अगर आप शरीर और मन को विभाजित कर सकते हैं तो आप मालिक हो सकते हैं आसानी से। क्योंकि तब संघर्ष शरीर और मन के बीच खड़ा हो जाता है और आप अछूते अलग खड़े हो जाते हैं।

इसलिए संलीनता का दूसरा अभ्यास है, "मन में कुछ, शरीर में कुछ" को आईने के सामने खड़े होकर अभ्यास करें। आईने के सामने इसलिए कह रहा हूँ कि आपको आसानी पड़ेगी। एक दफा आसानी हो जाए, फिर तो बिना आईने के भी आप अनुभव कर सकते हैं। जब आपको क्रोध आए--फिर धीरे-धीरे आईने को छोड़ दें--जब आपको क्रोध आए तब उसको अवसर बनाएं, मेक इट एन ऑपरच्युनिटी। और जब क्रोध आए तब आनंद को प्रकट करें। और जब घृणा आए तब प्रेम को प्रकट करें। और जब किसी का सिर तोड़ देने का मन हो, तब उसके

गले में फूलमाला डाल दें। और देखें अपने भीतर, ये दो धाराएं विभाजित--मन को और शरीर को दो हिस्सों में जाने दें, और आप अचानक ट्रांसेंडेंस में, अतिक्रमण में प्रवेश कर जाएंगे, आप पार हो जाएंगे। न आप क्रोध रह जाएंगे, न आप क्षमा रह जाएंगे। न आप प्रेम रह जाएंगे, न आप घृणा रह जाएंगे। और जैसे ही कोई दोनों के पार होता है, संलीन हो जाता है।

अब इस संलीन का अर्थ समझ लें--एक शब्द हम सुनते हैं, तल्लीन। यह संलीन शब्द बहुत कम प्रयोग में आता है। तल्लीनता हमने सुना है, संलीनता बहुत कम। और अगर भाषा कोश में जाएंगे तो एक ही अर्थ पाएंगे। नहीं एक ही अर्थ नहीं है। महावीर ने तल्लीनता का उपयोग नहीं किया है। तल्लीनता सदा दूसरे में लीन होना है और संलीनता अपने में लीन होना है। तल्लीन का अर्थ है जो किसी और में लीन है--चाहे भक्त भगवान में हो, वह तल्लीन है, संलीन नहीं। जैसा मीरा कृष्ण में--वह तल्लीन है। वह इतनी मिट गई है कि शून्य हो गई है, कृष्ण ही रह गए। पर कोई और, कोई दूसरा बिंदु, उस पर स्वयं को सब भांति समर्पित कर दें। वह एक मार्ग है, उस मार्ग की अपनी विधियां हैं। महावीर का वह मार्ग नहीं है। उस मार्ग से भी पहुंचा जाता है। उससे पहुंचने का रास्ता अलग है। महावीर का वह रास्ता नहीं है। महावीर कहते हैं--तल्लीन तो बिल्कुल मत होना, किसी में तल्लीन मत होना, इसलिए महावीर परमात्मा को भी हटा देते हैं, नहीं तो तल्लीन होने की सुविधा बनी रहेगी।

महावीर कहते हैं--संलीन हो जाना, अपने में लीन हो जाना। अपने में इतना लीन हो जाना कि दूसरा बचे ही नहीं। तल्लीन का सूत्र है--दूसरे में इतना लीन हो जाना कि स्वयं बचो ही न। संलीन होने का सूत्र है--इतने अपने में लीन हो जाना कि दूसरा बचे ही न। दोनों से ही एक की उपलब्धि होती है। एक ही बच रहता है। तल्लीन वाला कहेगा--परमात्मा बच रहता है; संलीन वाला कहेगा--आत्मा बच रहती है। वह सिर्फ शब्दों के भेद हैं और विवाद सिर्फ शाब्दिक और व्यर्थ और पंडितों का है। जिन्हें अनुभूति है वे कहेंगे वह एक ही बच रहता है। लेकिन संलीन वाला उसे परमात्मा नाम नहीं दे सकता, क्योंकि दूसरे का उपाय नहीं है। तल्लीनता वाला उसे आत्मा नहीं कह सकता, क्योंकि स्वयं के बचने का कोई उपाय नहीं। लेकिन जो बच रहता है, उसे कोई नाम देना पड़ेगा, अन्यथा अभिव्यक्ति असंभव है। इसलिए संलीन वाला कहता है--आत्मा बच रहती है; तल्लीन वाला कहता है--परमात्मा बच रहता है। जो बच रहता है, वह एक ही है। यह नामों का फर्क है और विधियों के कारण नामों का फर्क है। यह पहुंचने के मार्ग की वजह से नाम का फर्क है।

संलीन का अर्थ है: अपने में लीन हो जाना। कोई अपने में है पूरा, जरा भी बाहर नहीं जाता है। कहीं कोई गति नहीं रही। क्योंकि गति तो दूसरे तक जाने के लिए होती है। अगति हो जाएगी। अपने तक आने के लिए किसी गति की कोई जरूरत नहीं है। वहां तो हम हैं ही। क्रिया नहीं रही, अक्रिया हो गई क्योंकि क्रिया तो किसी और के साथ कुछ करना हो तो करनी होती है। अपने ही साथ करने के लिए कोई क्रिया नहीं रह जाती। अक्रिया हो जाएगी, अगति हो जाएगी, अचलता आ जाएगी। और जब भीतर यह घटना घटती है तो शरीर पर भी यह भाव फैल जाता है, मन पर भी यह भाव फैल जाता है। यह अतिक्रमण जब होता है, मन और शरीर के पार जब स्वयं की प्रतीति होती है तो सब ठहर जाता है। सब ठहर जाता है--मन ठहर जाता है, शरीर ठहर जाता है। यह महावीर की प्रतिमा संलीनता की प्रतिमा है, सब ठहरा हुआ है। कुछ गति नहीं मालूम पड़ती।

अगर महावीर के हाथ को देखें तो ऐसा लगता है कि बिल्कुल ठहरा हुआ है। इसलिए महावीर के हाथ में मसल्स नहीं बनाए गए किसी प्रतिमा में, क्योंकि मसल्स तो गति के प्रतीक होते हैं, क्रिया के प्रतीक होते हैं। तो महावीर की बांहें ऐसी हैं जैसे खैर हैं। आपने ख्याल नहीं किया होगा। किसी जैन तीर्थंकर की बांहों पर कोई मसल्स नहीं हैं। मसल्स तो क्रिया के सूचक हो जाते हैं। शरीर को जिस ढंग से बिठाया है, वह ऐसा है जैसे कि फूल अपने में बंद हो जाए, सब पंखुड़ियां बंद हो गईं। फूल की सुगंध अब बाहर नहीं जाती, अपने भीतर रमती है। इसलिए महावीर का बहुत प्यारा शब्द है--आत्म-रमण--अपने में ही रमना। कहीं नहीं जाना, कहीं नहीं जाना। सब पंखुड़ियां बंद हैं।

तो अगर महावीर के चित्र को देखें, एक फूल की तरह ख्याल करें तो फौरन महावीर की प्रतिमा में दिखाई पड़ेगा कि सब पंखुड़ियां बंद हो गई हैं। महावीर अपने भीतर, जैसे फूल के भीतर कोई भंवरा बंद हो गया हो। ऐसी महावीर की सारी चेतना संलीन हो गई है अपने में। सब सुगंध भीतर। अब कहीं कोई बाहर नहीं जा रहा है। कुछ बाहर नहीं जा रहा है। बाहर और भीतर के बीच सब लेन-देन बंद हो गया है। कोई हस्तांतरण नहीं होता है। न कुछ बाहर से भीतर आता है, न कुछ भीतर से बाहर जाता है। जब शरीर इतनी थिरता में आ जाता है, मन इतनी थिरता में आ जाता है तो श्वास भी बाहर-भीतर नहीं होती, ठहर जाती है! इस क्षण को महावीर कहते हैं--समाधि उत्पन्न होती है, इस संलीन क्षण में अंतर्गता शुरू होती है।

लेकिन संलीनता का अभ्यास करना पड़ेगा। हमारा अभ्यास है बाहर जाने का। भीतर जाने का हमारा कोई अभ्यास नहीं है। हम बाहर जाने में इतने ज्यादा कुशल हैं कि हमें पता ही नहीं चलता और हम बाहर चले जाते हैं। कुशलता का मतलब ही यही होता है कि पता न चले और काम हो जाए। हम इतने कुशल हैं बाहर जाने में। अब एक ड्राइवर है। अगर वह कुशल है तो वह गपशप करता रहेगा और गाड़ी चलाता रहेगा। कुशलता का मतलब ही यही है कि गाड़ी चलाने पर ध्यान भी न देना पड़े। अगर ध्यान देना पड़े तो वह अकुशल है। रेडियो सुनता रहेगा, गाड़ी चलाता रहेगा। मन में हजार बातें सोचता रहेगा, गाड़ी चलाता रहेगा। गाड़ी चलाना सचेतन क्रिया नहीं है।

कालिन विल्सन ने--एक पश्चिम के बहुत योग्य और विचारशील व्यक्ति ने कहा है कि हम उन्हीं चीजों में कुशल होते हैं... और जब कुशल हो जाते हैं तब... हमारे भीतर एक रोबोट, हमारे भीतर एक यंत्र-मानव है--सबके भीतर है। कुशलता का अर्थ है कि हमारी चेतना ने वह काम यंत्र-मानव को दे दिया, हमारे भीतर वह जो रोबोट है, वह करने लगता है; फिर हमें जरूरत नहीं रहती। तो ड्राइवर जब ठीक कुशल हो जाता है तो उसे कार चलानी नहीं पड़ती, उसके भीतर जो रोबोट, जो यंत्र-मानव है वह कार चलाने लगता है। वह तो कभी-कभी बीच में आता है, जब कोई खतरा आ जाता है और रोबोट कुछ नहीं कर पाता है। एक्सीडेंट का वक्त आया तो वह एकदम मौजूद हो जाता है। रोबोट से काम अपने हाथ में ले लेता है। वह जो भीतर यंत्रवत हमारा मन है उससे काम झटके से हाथ में लेना पड़ता है। जब एक्सीडेंट का मौका आ जाए, कोई गड्डे में गिरने का वक्त आ जाए, अन्यथा वह रोबोट चलाए रखता है। मनोवैज्ञानिकों ने हजारों परीक्षण से तय किया है कि सभी ड्राइवर रात को अगर बहुत देर तक जाग कर गाड़ी चलाते रहे हों, तो नींद भी ले लेते हैं क्षण दो क्षण को, और गाड़ी चलाते रहते हैं। नींद भी ले लेते हैं। इसलिए रात को जो एक्सीडेंट होते हैं, कोई दो बजे और चार बजे के बीच होते हैं। ड्राइवर को पता भी नहीं चलता कि उसने झपकी ले ली। एक सेकंड को वह डूब जाता है लेकिन उतनी देर को रोबोट काम को सम्हालता है। वह जो यंत्रवत हमारा चित्त है, वह काम को सम्हालता है।

जितनी रोबोट के भीतर प्रवेश कर जाए कोई चीज, उतनी कुशल हो जाती है। और हम जन्मों-जन्मों से बाहर जाने के आदी हैं। वह हमारे यंत्र में समाविष्ट हो गई है। बाहर जाना हमें ऐसा ही है जैसे पानी का नीचे बहना। उसके लिए हमें कुछ करना नहीं पड़ता। भीतर आना बड़ी यात्रा मालूम पड़ेगी। क्योंकि हमारे यंत्र मानव को कोई पता ही नहीं है कि भीतर कैसे आना है। हम इतने कुशल हैं बाहर जाने में कि हम बाहर ही खड़े हैं। हम भूल ही गए हैं कि भीतर आने की भी कोई बात हो सकती है। रोबोट की पर्तें हैं, इस यंत्र मानव की पर्तें हैं।

आबरी मैनन ने... एक भारतीय बाप और आंग्ल मां का बेटा है, आबरी मैनन। उसका पिता सारी जिंदगी इंग्लैंड में रहा। कोई बीस वर्ष की उम्र का था तब इंग्लैंड चला गया। वहीं शादी की, वहीं बच्चा पैदा हुआ। लेकिन आबरी मैनन ने लिखा है कि मेरी मां सदा मेरे पिता की एक आदत से परेशान रही--वह दिन भर अंग्रेजी बोलता था, लेकिन रात सपने में मलयालम--वह रात सपने में अपनी मातृभाषा ही बोलता था। साठ साल का हो गया है, तब भी। चालीस साल निरंतर होश में अंग्रेजी बोलने पर भी, रात सपना तो वह अपनी मातृभाषा में ही देखता था, जैसे कि स्वभावतः स्त्रियां परेशान होती हैं। क्योंकि वह पति सपने में भी क्या सोचता है, इसका भी पता लगाना चाहती हैं। तो आबरी मैनन ने लिखा है कि मेरी मां सदा चिंतित थी कि पता नहीं यह क्या सपने में

बोलता है। कहीं किसी दूसरी स्त्री का नाम तो नहीं लेता मलयालम में? कहीं किसी दूसरी स्त्री में उत्सुकता तो नहीं दिखलाता? लेकिन इसका कोई उपाय नहीं था।

सच यह है कि बचपन में जो भाषा हम सीख लेते हैं, फिर दूसरी भाषा उतनी गहरी रोबोट में कभी नहीं पहुंच पाती--कभी नहीं पहुंच पाती। क्योंकि उसकी पहली पर्ट बन जाती है। दूसरी भाषा अब कितनी ही गहरी जाए, उसकी पर्ट दूसरी ही होगी, पहली नहीं हो सकती। उसका कोई उपाय नहीं है। इसलिए मनस्विद कहते हैं कि हम सात साल में जो सीख लेते हैं, वह हमारी जिंदगी भर कोई पचहत्तर प्रतिशत हमारा पीछा करता है। उससे फिर छुटकारा नहीं है। वह हमारी पहली पर्ट बन जाता है।

इसलिए अगर सत्तर साल का बूढ़ा भी क्रोध में आ जाए तो वह सात साल के बच्चे जैसा व्यवहार करने लगता है क्योंकि रोबोट रिग्रेस कर जाता है। इसलिए क्रोध में आप बचकाना व्यवहार करते हैं। प्रेम में भी करते हैं, वह भी ध्यान रखना। जब कोई आदमी एक दूसरे के प्रति प्रेम से भर जाते हैं तो बहुत बचकाना व्यवहार करते हैं। उनकी बातचीत भी बचकानी हो जाती है। एक दूसरे के नाम भी बचकाने रखते हैं। प्रेमी एक दूसरे के नाम बचकाने रखते हैं। रिग्रेस हो गया। क्योंकि प्रेम का जो पहला अनुभव है वह सात साल में सीख लिया गया। अब उसकी पुनरुक्ति होगी। यह जो मैं कह रहा हूं कि हमारा बाहर जाने का व्यवहार इतना प्राचीन है--जन्मों-जन्मों का है कि हमें पता ही नहीं चलता कि हम बाहर जा रहे हैं, और हम बाहर चले जाते हैं। आप अकेले बैठे हैं, फौरन अखबार खींच कर उठा लेते हैं। आपको पता नहीं चलता, आपका रोबोट आपका यंत्र मानव कह रहा है--खाली कैसे बैठ सकते हैं, अखबार खींचो। उस अखबार को आप सात दफा पढ़ चुके हैं, सुबह से, फिर आठवीं दफे पढ़ रहे हैं, इसका बिना ख्याल किए अब आप क्या पढ़ रहे हैं! वह रोबोट भीतर नहीं ले जाता, वह तत्काल बाहर ले जाता है। रेडियो खोलो, बातचीत करो, कहीं भी बाहर जाओ, किसी दूसरे से संबंधित होओ। क्योंकि रोबोट को एक ही बात पता है--दूसरे से संबंधित होना, उसको अपने से संबंधित होना पता ही नहीं। तो इसका जरा ध्यान रखना पड़े, क्योंकि अति ध्यान रखें तो ही इसके बाहर हो सकेंगे।

और रोबोट ट्रेनिंग से चलता है, उसका प्रशिक्षण है। आपको पता नहीं कि आप अपने रोबोट से कितना काम ले सकते हैं। आपने अगर जैन मुनियों को अवधान करते देखा है तो आप समझते होंगे, यह बहुत बड़ी प्रतिभा की बात है सिर्फ रोबोट की ट्रेनिंग है। आप कर सकते हैं--छोटी सी ट्रेनिंग। रोबोट से आप कितने ही काम ले सकते हैं, सिर्फ एक दफा उसे सिखा दें। हम केवल एक ट्रैक पर काम करते हैं। आप टेप-रिकार्डर को जानते हैं। टेप-रिकार्डर एक ट्रैक का भी हो सकता है, दो ट्रैक का भी हो सकता है, चार ट्रैक का भी हो सकता है। आपके पास चार ट्रैक का टेप-रिकार्डर हो जो एक ही पट्टी पर चार ट्रैक पर रिकार्ड करता है, और आपको पता न हो, आप एक पर ही करते रहें, तो आप जिंदगी भर एक पर ही करते रहेंगे, बाकी तीन ट्रैक खाली पड़े रहेंगे। आपके मन के रोबोट के हजारों ट्रैक हैं। आप एक ही साथ हजारों ट्रैक पर काम कर सकते हैं। इसका थोड़ा प्रयोग आपको मैं ख्याल दिला दूं, तो आपको बहुत आसानी हो जाएगी।

थोड़े दिन एक छोटा सा अभ्यास करके देखें। घड़ी रख लें अपने हाथ की खोल के सामने। उसका जो सेकेंड का कांटा है, उस पर ध्यान रखें। बाकी पूरी घड़ी को भूल जाएं, सिर्फ सेकेंड के कांटे को घूमते हुए देखें। वह एक मिनट में, या साठ सेकेंड में एक चक्कर पूरा करेगा। एक मिनट का अभ्यास करें, कोई तीन सप्ताह में अभ्यास आपका हो जाएगा कि आपको घड़ी के और कांटे ख्याल में नहीं आएंगे, और आंकड़े ख्याल में नहीं आएंगे, अंक ख्याल में नहीं आएंगे। डायल धीरे-धीरे भूल जाएगा, सिर्फ वह सेकेंड का भागता हुआ कांटा आपको याद रह जाएगा। जिस दिन आपको ऐसा अनुभव हो कि अब मैं एक मिनट सेकेंड के कांटे पर ध्यान रख सकता हूं, आपने बड़ी कुशलता पाई जिसकी आपको कल्पना भी नहीं हो सकती।

अब आप दूसरा प्रयोग शुरू करें। ध्यान सेकेंड के कांटे पर रखें और भीतर एक से लेकर साठ तक की गिनती बोलें--ध्यान कांटे पर रखें, और भीतर एक, दो, तीन, चार से साठ तक गिनती बोलें, साठ या जितना हो

सके, एक मिनट में--सौ हो सके तो सौ। तीन सप्ताह में आप कुशल हो जाएंगे, दोनों काम एक साथ डबल ट्रैक पर शुरू हो जाएगा। ध्यान कांटे पर भी रहेगा और ध्यान संख्या पर भी रहेगा। अब आप तीसरा काम शुरू करें। ध्यान कांटे पर रखें, भीतर एक सौ तक गिनती बोलते रहें और कोई गीत की कड़ी गुनगुनाने लगे, भीतर।

तीन सप्ताह में आप पाएंगे, तीन ट्रैक पर काम शुरू हो गया। ध्यान कांटे पर भी रहेगा, ध्यान आंकड़ों पर भी रहेगा, संख्या पर भी रहेगा, गीत की कड़ी पर भी रहेगा। अब आप जितने चाहें उतने ट्रैक पर धीरे-धीरे अभ्यास कर सकते हैं। आप सौ ट्रैक पर एक साथ अभ्यास कर सकते हैं। और सौ काम एक साथ चलते रहेंगे--पत-पत। यही अवधान है। इसका अभ्यास कर लेने पर आप मदारीगिरी कर सकते हैं। जैन साधु करते हैं, वह सिर्फ मदारीगिरी है। उसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन रोबोट को एक दफा आप सिखा दें तो रोबोट करने लगता है।

और एक खतरा यह है कि रोबोट जब करने लगता है तो सिखाना जितना आसान है, उतना आसान भुलाना नहीं है। सिखाना बहुत आसान है, ध्यान रखना। स्मरण बहुत आसान है, विस्मरण बहुत कठिन है। लेकिन असंभव नहीं है। वाश आउट किया जा सकता है, जैसा टेप पर किया जा सकता है। मिटाया जा सकता है। पर मिटाना बहुत कठिन है। और उससे भी ज्यादा कठिन विपरीत का अभ्यास है। हमारे यंत्र-चित्त का अभ्यास है बाहर जाने के लिए। तो पहले तो यह बाहर जाने का अभ्यास मिटाना पड़ता है, और फिर भीतर जाने का अभ्यास पैदा करना पड़ता है।

तो इसके लिए--और यह संलीनता में जाने के लिए आवश्यक होगा कि जब भी आपका यंत्र-मानव आपसे कहे--बाहर जाओ, आप अगर ध्यान रखेंगे तो आपको पता चलने लगेगा। कार में आप बैठे हैं, बिल्कुल सोए हुए आदमी की तरह, अखबार उठा लेते हैं और पढ़ना शुरू कर देते हैं। आपको ख्याल नहीं, आपका यंत्र-मानव कहता है--कैसे अपने में संलीन बैठे हो? अखबार पढ़ो!

यह हाथ बिल्कुल नींद में जाता है, अखबार उठाता है, ये आंखें नींद में पढ़ना शुरू कर देती हैं। यह मन नींद में ग्रहण करना शुरू कर देता है। कचरा आप डाल रहे हैं। न डालते तो कुछ हर्ज न था, फायदा हो सकता था। क्योंकि कचरे के डालने में भी शक्ति व्यय होगी। कचरे को सम्हालने में भी शक्ति व्यय होगी। कचरे को भरने में भी मन का रिक्त स्थान भरेगा और व्यर्थ भर जाएगा। यह वैसे ही है जैसे कोई आदमी सड़क पर कचरा उठा कर घर में ला रहा हो। वह कहे--कुछ तो करेंगे, बिना किए कैसे रह सकते हैं। पर घर में लाए गए कचरे को बाहर फेंक देने में बहुत कठिनाई नहीं है, मन में लाए गए कचरे को फिर बाहर फेंकने में बहुत कठिनाई है।

इसलिए पहला ध्यान तो पहला पहरा यही रखना पड़ेगा कि मन जब बाहर जाए तो आप सचेत हो जाएं, और होशपूर्वक बाहर जाएं। अगर अखबार पढ़ना है तो जानकर कि मेरा यंत्र अखबार पढ़ना चाहता है। मैं अखबार पढ़ता हूं, अब मैं अखबार पढ़ूंगा। अखबार पढ़ें होशपूर्वक। तब आप पाएंगे कि अखबार पढ़ने में कोई रस नहीं आ रहा है, क्योंकि रस सिर्फ बेहोशी में आ सकता है। यह बहुत मजा है कि व्यर्थ की चीज में रस सिर्फ बेहोशी में आता है, होश में नहीं आता। आप किसी भी व्यर्थ की चीज में होशपूर्वक रस नहीं ले सकते हैं। बेहोशी में ले सकते हैं। इसलिए जिन लोगों को रस लेने का पागलपन सवार हो जाता है वे नशा करने लगते हैं क्योंकि नशे में रस ज्यादा लिया जा सकता है। नहीं तो रस नहीं लिया जा सकता।

होशपूर्वक, यंत्र-मानव को बाहर जाने की जो चेष्टा है उसे होशपूर्वक देखते रहें और होशपूर्वक ही काम करें। अगर यंत्र-मानव कहता है कि क्या अकेले बैठे हैं, चलें मित्र के घर; तो उससे कहें कि ठीक है, चलते हैं--होशपूर्वक चलते हैं। तेरी मांग है, हम देखते-देखते हुए चलते हैं। संभावना यह है कि आप बीच रास्ते से घर वापस लौट आए। क्योंकि कहें कि क्या--क्योंकि बड़ा मजा यह है उस मित्र के पास रोज बैठ कर बोर होते हैं और कुछ नहीं होता है। वह वही बातें फिर से कहता है कि मौसम कैसा है, कि स्वास्थ्य कैसा है! दो-तीन मिनट में बातें चुक जाती हैं। फिर वह वे ही कहानियां सुनाता है जो बहुत बार सुना चुका। फिर वह वे ही घटनाएं बताता है जो बहुत बार बता चुका है, और आप सिर्फ बोर होते हैं। रोज यही ख्याल लेकर लौटते हैं कि इस आदमी ने

बुरी तरह उबा दिया। लेकिन कल रोबोट कहता है कि मित्र के घर चलो और आपको ख्याल नहीं आता कि आप फिर बोर होने चले। अपनी बोर्डम खुद ही खोजते हैं। अगर आप होशपूर्वक जाएंगे तो रास्ते में आपको स्मरण आ जाएगा कि आप कहाँ जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, क्या मिलेगा? पैर शिथिल पड़ जाएंगे। संभावना यह है कि आप वापस लौट आएँ।

इस तरह आपके यंत्र-चित्त की बाहर जाने की प्रत्येक क्रिया पर जागरूक पहरा रखें। एक-एक क्रिया छूटने लगेगी। फिर जो बहुत नेसेसरी हैं, जीवन के लिए अनिवार्य हैं, उतनी ही क्रियाएं रह जाएंगी। गैर-अनिवार्य क्रियाएं छूट जाएंगी और तब आप पाएंगे कि शरीर संलीन होने लगा। आप बैठेंगे ऐसे जैसे अपने में ठहरे हुए हैं। जैसे कोई झील शांत है, जिसमें लहर भी नहीं उठती। एक रिपेल भी नहीं जैसे आकाश खाली, एक बदली भी नहीं भटकती। जैसे कभी देखा हो तो आकाश में किसी चील को पंखों को रोक कर उड़ते हुए--संलीन। पंख भी नहीं हिलता। चील सिर्फ अपने में ठहरी है, तिरती है, तैरती भी नहीं, तिरती है। जैसे देखा हो किसी बतख को कभी किसी झील में, पंख भी न मारते हुए--ठहरे हुए। ऐसा सब आपके शरीर में भी ठहर जाएगा, मन में भी। क्योंकि जैसे शरीर बाहर जाता है ऐसे ही मन भी बाहर जाता है। अगर शरीर बाहर नहीं जा सकता तो मन और ज्यादा बाहर जाता है। क्योंकि पूर्ति करनी पड़ती है। अगर आप मित्र से नहीं मिल सकते तो फिर आंख बंद करके मित्र से मिलने लगते हैं, दिवा-स्वप्न देखने लगते हैं कि मित्र मिल गया, बातचीत हो रही है। तो फिर धीरे-धीरे मन की भी बाहर जाने की आंतरिक कोशिशें हैं, उन पर भी सजग हो जाएँ। और जिस दिन शरीर और मन दोनों के प्रति सजगता होती है, वह जो रोबोट यंत्र है हमारे भीतर, वह बाहर जाने में धीरे-धीरे, धीरे-धीरे रस खो देता है। तब भीतर जाया जा सकता है।

और भीतर जाने में किस चीज में रस लेना पड़ेगा? भीतर जाने में उन चीजों में रस लेना पड़ेगा जिनमें संलीनता स्वाभाविक है। जैसे कि शांति का भाव है तो संलीनता स्वाभाविक है। जैसे सारे जगत के प्रति करुणा का भाव, उसमें संलीनता स्वाभाविक है। क्रोध बाहर ले जाता है, करुणा बाहर नहीं ले जाती। शत्रुता बाहर ले जाती है, मैत्री का भाव बाहर नहीं ले जाता। तो उन भावों में ठहरने से भीतर यात्रा शुरू होती है। पर संलीनता सिर्फ द्वार है। उन सारी बातों का विचार हम अंतर-तप की छह प्रक्रियाओं में करेंगे। संलीनता तो उन छह के लिए द्वार है, पर संलीन हुए बिना उनमें कोई प्रवेश न हो सकेगा। ये सब इंटीग्रेटेड हैं, ये सब संयुक्त हैं। हमारा मन करता है कि इसको छोड़ दें और उसको कर लें। ऐसा नहीं हो सकेगा। ये बारह अंग आर्गनिक हैं। ये एक दूसरे से संयुक्त हैं। इनमें से एक भी छोड़ा तो दूसरा नहीं हो सकेगा। अब महावीर ने इसके पहले जो पांच अंग कहे वे सब अंग शक्ति संरक्षण के हैं, और छठवां अंग संलीनता का है। जब शक्ति बचेगी तभी तो भीतर जा सकेगी! शक्ति बचेगी ही नहीं तो भीतर क्या जाएगा। हम करीब-करीब रिक्त और दिवालिए, बैंकरप्ट हैं। बाहर ही शक्ति गंवा देते हैं। भीतर जाने के लिए कोई शक्ति बचती ही नहीं। कुछ बचता ही नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन मरा तो उसने अपनी वसीयत लिखी--उसने वसीयत लिखवाई, बड़ी भीड़-भाड़ इकट्ठी की, सारा गांव इकट्ठा हुआ, फिर उसने गांव के पंचायत के प्रमुख से कहा--वसीयत लिखो। थोड़े लोग चकित थे। ऐसा कुछ ज्यादा उसके पास दिखाई नहीं पड़ता था जिसके लिए वह इतना शोरगुल मचाए है। उसने वसीयत लिखवाई तो उसने लिखवाया कि आधा तो मेरे मरने के बाद मेरी संपत्ति में से पत्नी को मिल जाए। फिर इतना हिस्सा मेरे लड़के को मिल जाए इतना हिस्सा मेरी लड़की को मिल जाए फिर इतना हिस्सा मेरे मित्र को मिल जाए, इतना हिस्सा मेरे नौकर को मिल जाए। वह सब उसने हिस्से लिखवा दिए। तो पंच प्रमुख बार-बार कहता था कि ठहरो, वह पूछना चाहता था कि है कितना तुम्हारे पास? और आखिर में उसने कहा कि सबको बांट देने के बाद जो बच जाए वह गांव की मस्जिद को दे दिया जाए।

तो पंच-प्रमुख ने फिर पूछा कि मैं तुमसे बार-बार पूछ रहा हूं कि तुम्हारे पास है कितना?

उसने कहा: है तो मेरे पास कुछ भी नहीं, लेकिन नियमानुसार वसीयत तो लिखानी चाहिए। नहीं तो लोग क्या कहेंगे कि बिना वसीयत लिखाए मर गए!

है कुछ भी नहीं। उसमें से भी वह कह रहा है कि सबको बांटने के बाद जो बच जाए वह मस्जिद को दे दिया जाए। हम भी करीब-करीब दिवालिया मरते हैं। जहां तक अंतः संपत्ति का संबंध है, हम सब दिवालिया मरते हैं। नसरुद्दीन जैसे ही मरते हैं, वह व्यंग्य हम पर भी है।

कुछ नहीं होता पास--कुछ भी नहीं होता। क्योंकि सब हमने व्यर्थ खोया होता है, और व्यर्थ भी ऐसा खोया होता है जैसे कि आपने बाथरूम का नल खुला छोड़ दिया हो और पानी बह रहा हो। इस तरह व्यर्थ होता है। आपके सब व्यक्तित्व के द्वार खुले हुए हैं बाहर की तरफ और शक्ति व्यर्थ खोती चली जाती है। डिस्सीपेट होती है। जो थोड़ी बहुत बचती है, उससे आप सिर्फ बेचैन होते हैं और उससे भी कुछ नहीं करते हैं, उसको बेचैनी में नष्ट करते हैं, परेशानी में नष्ट करते हैं।

तो महावीर ने पहले जो अंग कहे वे शक्ति संरक्षण के हैं। यह जो छठवां अंग कहा, यह संरक्षित शक्ति का अंतर-प्रवाह है। जैसे कोई नदी अपने मूल-उद्गम की तरफ वापस लौटने लगे। मूल-स्रोत की तरफ शक्ति का आगमन शुरू हो। बाहर की तरफ नहीं, कुछ पाने के लिए नहीं, वहां हम चलें जहां हम हैं। जहां से हम आए हैं वहां हम चलें। जहां से हमारे यह जीवन का फैलाव हुआ है, वहां हम चलें। टु बी रूट, जड़ों की तरफ चलें। उस जगह पहुंच जाएं जो हमारा अंतिम हिस्सा है। जिसके पीछे हम नहीं हैं--आखिरी और पीछे। क्योंकि वही हमारा राज है, रहस्य है, वही हम हैं। और उससे हम कितने ही बाहर जाएं, हम चांद-तारों तक पहुंच जाएं, तो भी उसे हम न पा सकेंगे। उसके लिए तो हमें भीतर ही जाना पड़ेगा। उसके लिए तो हमें संलीन ही होना पड़ेगा।

शक्ति बचे, शक्ति भीतर लौटे--पर इस शक्ति को भीतर लौटने के लिए आपको तीन प्रयोग करने पड़ें--अपनी शरीर की गतिविधियों को देखना पड़े, शरीर की गतिविधियों और मन की गतिविधियों को तोड़ना पड़े, शरीर की गतिविधियों और मन की गतिविधियों के पार होना पड़े। और तब आप अचानक पाएंगे कि आप संलीन होने शुरू हो गए। अपने में डूबने लगे, अपने में डूबने लगे, अपने में उतरने लगे। अपने भीतर, और भीतर, और भीतर, और गहरे में जाने लगे।

इसमें एक ही बात आखिरी आपसे कहूं जो भी अभ्यास करेगा कोई, उसके काम की है। क्योंकि जैसे ही संलीनता शुरू होगी, बड़ा भय पकड़ता है, बहुत भय पकड़ता है। ऐसा लगता है जैसे सफोकेट हो रहे हैं हम, जैसे कोई गर्दन दबा रहा है, या पानी में डूब रहे हैं। संलीन होने का जो भी प्रयोग करेगा वह बहुत भय से भर जाएगा। जैसे ही शक्ति भीतर जानी शुरू होगी, भय पकड़ेगा। क्योंकि यह अनुभव करीब-करीब वैसा ही होगा जैसा मृत्यु का होता है। मृत्यु में भी शक्ति संलीन होती है। और कुछ नहीं होता। शरीर को छोड़ती है, मन को छोड़ती है, भीतर चलती है, उद्गम की तरफ, तब आप तड़फड़ाते हैं कि अब मैं मरा। क्योंकि आप अपने को समझते थे वही जो बाहर जा रहा था। आपने कभी उसको तो जाना नहीं जो भीतर जा सकता है। उससे आपका कोई संबंध नहीं, कोई पहचान नहीं। आप तो अपना एक चेहरा जानते थे बहिर्गामी, अंतर्गामी तो आपको कोई अनुभव न था।

आप कहते हैं--मरा, क्योंकि वह सब बाहर जो जा रहा था, वह बाहर नहीं जा रहा, भीतर लौट रहा है। शरीर से शक्ति डूब रही है भीतर, बाहर नहीं जा रही है। मन अब बाहर नहीं जा रहा है, भीतर डूब रहा है। अब सब भीतर सिकुड़ रहा है, सब भीतर संकुचित हो रहा है, सब केंद्र पर लौट रहा है। गंगा अपने को पहचानती थी सागर की तरफ बहती हुई। उसे कभी जाना भी न था कि गंगोत्री की तरफ बहना भी, मैं ही हूं। वह उसे पहचान नहीं है। वह उसका कोई रिकग्निशन नहीं है। तो मृत्यु में जो घबड़ाहट पकड़ती है, वही घबड़ाहट आपको संलीनता में पकड़ेगी--वही घबड़ाहट। मृत्यु का ही अनुभव होगा यह। मर रहे हैं जैसे। मन होगा कि दौड़ो बाहर। कोई भी सहारा पकड़ो और बाहर निकल जाओ। अगर बाहर निकल आते हैं तो संलीन न हो पाएंगे।

तो जब भय पकड़े, तब भय के भी साक्षी बने रहना, देखते रहना कि ठीक है। मृत्यु से भी यह अनुभव कठिन होगा क्योंकि मृत्यु तो परवशता में होती है। आप कुछ कर नहीं सकते, छूट रहे होते हैं सहारे। इसमें आप

कुछ कर सकते हैं। आप जब चाहें, तब बाहर आ सकते हैं। यह तो इंटेन्शनल है, यह तो आपका संकल्प है भीतर जाने का। मृत्यु में तो आपका संकल्प नहीं होता। मृत्यु में कोई चुनाव नहीं होता। आप मारे जा रहे होते हैं। आप मर नहीं रहे होते। यह स्वेच्छा से मृत्यु का वरण है। यह अपने ही हाथ से मर कर देखना है। यह एक बार भय को छोड़ कर, भय के साक्षी होकर, जो हो रहा है, उसकी स्वीकृति को मान कर अगर आप डूब जाएं तो आप सदा के लिए मृत्यु के भय के पार हो जाएंगे। फिर मृत्यु भी आपको भयभीत नहीं करेगी। एक बार आपको अंतर्मुखी ऊर्जा की यात्रा भी, मैं ही हूं, ऐसा अनुभव हो जाए तो फिर मृत्यु का कोई भय नहीं है। फिर आप जानते हैं--मृत्यु है ही नहीं। फिर मृत्यु है ही नहीं।

मृत्यु सिर्फ अंतर्यात्रा के अपरिचय के कारण प्रतीत होती है। बहिर्यात्रा के साथ तादात्म्य, अंतर्यात्रा के साथ कोई संबंध नहीं, इसलिए मृत्यु प्रतीत होती है। यह संबंध संलीनता से निर्मित हो जाता है। कहें, आप स्वेच्छा से मर कर देख लेते हैं और पाते हैं कि नहीं मरता। आप स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश कर जाते हैं और पाते हैं, मैं तो हूं। मृत्यु घटित हो जाती है, सब बाह्य छूट जाता है। जो मृत्यु में छूटेगा वह सब छूट जाता है। सब जगत मिट जाता है, शरीर भूल जाता है, मन भूल जाता है फिर भी चैतन्य का दीया भीतर जलता रहता है।

संलीनता के इस प्रयोग को कोई ठीक से करे तो शरीर के बाहर एस्ट्रल प्रोजेक्शन या एस्ट्रल ट्रेवलिंग सरलता से हो जाती है। जब आपका शरीर भी मिट गया, मन भी मिट गया, सिर्फ आप ही रह गए, सिर्फ होना ही रह गया तब आप जरा-सा ख्याल करें, शरीर के बाहर तो आप शरीर के बाहर हो जाएंगे। शरीर आपको सामने पड़ा हुआ दिखाई पड़ने लगेगा।

कभी-कभी अपने आप घट जाता है, वह भी मैं आपसे कह दूं, क्योंकि जो प्रयोग करें उनको अपने आप भी कभी घट जाता है। आपके बिना ख्याल, अचानक आप पाते हैं--आप शरीर के बाहर हो गए। तब बड़ी बेचैनी होगी। और लगता है डर कर अब वापस शरीर में लौट सकेंगे कि नहीं लौट सकेंगे। आप अपने पूरे शरीर को पड़ा हुआ देख पाते हैं। पहली दफा आप अपने शरीर को पूरा देख पाते हैं। आँखों में तो प्रतिछवि दिखाई पड़ती है, आप पहली दफा अपने पूरे शरीर को देख पाते हैं बाहर।

और एक बार जिसने बाहर से अपने शरीर को देख लिया, वह शरीर के भीतर होकर भी फिर कभी भीतर नहीं हो पाता है। वह फिर बाहर ही रह जाता है। फिर वह सदा बाहर ही होता है। फिर कोई उपाय ही नहीं है उसके भीतर होने का। भीतर हो जाए तो भी उसका बाहर होना बना रहता है। वह पृथक् ही बना रहता है। फिर शरीर पर आए दुख उसके दुख नहीं हैं। फिर शरीर पर घटी हुई घटनाएं उस पर घटी घटनाएं नहीं हैं। फिर शरीर का जन्म उसका जन्म नहीं है, फिर शरीर की मृत्यु उसकी मृत्यु नहीं है। फिर शरीर का पूरा जगत उसका जगत नहीं है और हमारा सारा जगत शरीर का जगत है। इतिहास समाप्त हो गया उसके लिए, जीवन कथा समाप्त हो गई उसके लिए। अब तो एक शून्य में ठहराव है, और समस्त आनंद शून्य में ठहरने का परिणाम है। समस्त मुक्ति शून्य में उतर जाने की मुक्ति है समस्त मोक्षा।

लेकिन हम निरंतर बाहर भाग रहे हैं। यह हमारा बाहर भागना आक्रमण है। महावीर ने शब्द बहुत अच्छा प्रयोग किया है--प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण का अर्थ है: भीतर लौटना; आक्रमण का अर्थ है: बाहर जाना। प्रतिक्रमण का अर्थ है: कमिंग बैक टु दि होम, घर वापस लौटना। इसलिए महावीर अहिंसा पर इतना आग्रह करते हैं क्योंकि आक्रमण न घटे चित्त का, तो प्रतिक्रमण नहीं हो पाएगा। संलीनता फलित नहीं होगी। ये सब सूत्र संयुक्त हैं। यह मैं कह रहा हूं इसलिए अलग-अलग कहने पड़ रहे हैं। जीवन में जब यह घटना में उतरने शुरू होते हैं तो ये सब संयुक्त हैं। अनाक्रमण--लेकिन हम सोचते हैं--जब हम किसी की छाती पर छुरा भोंकते हैं तभी आक्रमण होता है। नहीं, जब हम दूसरे का विचार भी करते हैं तब भी आक्रमण हो जाता है। दूसरे का ख्याल भी दूसरे पर आक्रमण है। दूसरे का मेरे चित्त में उपस्थित हो जाना भी आक्रमण है। आक्रमण का मतलब ही यह है कि मैं दूसरे की तरफ बहा। छुरे के साथ गया दूसरे की तरफ, कि आलिंगन के साथ गया दूसरे की तरफ; कि सदभाव से गया कि असदभाव से गया। दूसरे की तरफ जाती हुई चेतना आक्रामक है। मैं दूसरे की तरफ जा रहा

हूँ, यही आक्रमण है। हम सब जाना चाहते हैं। जाना इसलिए चाहते हैं कि हमारी अपने पर तो कोई मालकियत नहीं है। किसी दूसरे पर मालकियत हो जाए तो थोड़ा मालकियत का सुख मिले। थोड़ा सही, कोई दूसरा मालिक होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन गया है एक मनोचिकित्सक के पास और उसने कहा कि मैं बड़ा परेशान हूँ—पत्नी से बहुत भयभीत हूँ। डरता हूँ, मेरे हाथ-पैर कंपते हैं। मुंह में मेरा थूक सूख जाता है जैसे ही मैं उसे देखता हूँ।

मनोवैज्ञानिक ने कहा: यह कुछ ज्यादा चिंता की बात नहीं है। ज्यादा चिंता की बात तो इससे उलटी बीमारी है। वह उलटी बीमारी बीमारी के लोग पत्नी को देख कर ही हमला करने को उत्सुक हो जाते हैं, सिर तोड़ने को उत्सुक हो जाते हैं, घसीटने को उत्सुक हो जाते हैं, मारने को उत्सुक हो जाते हैं, आक्रामक हो जाते हैं। वे ही असली साइकोपैथ हैं, साइकोपैथिक हैं। यह तो कुछ भी नहीं, यह तो ठीक है। इसमें कुछ घबराने की बात नहीं। यह तो अधिक लोगों के लिए यही है।

मुल्ला बड़ा उत्सुक हो गया, कुर्सी से आगे झुक आया। उसने कहा कि डाक्टर, एनी चांस ऑफ माई कैचिंग दैट डिजीज, साइकोपैथी? कोई मौका है कि मुझे वह बीमारी लग जाए? जिसको आप साइकोपैथी कह रहे हैं? मैं भी घर जाऊँ और लट्ट उठा कर सिर खोल दूँ उसका? मन तो मेरा भी यही करता है। लेकिन उसके सामने जाकर मेरे सब मंसूबे गड़बड़ हो जाते हैं। और दिन की तो बात दूर, वर्षों से मैं एक दुःस्वप्न, एक नाइट मेयर देख रहा हूँ। वह मैं आपसे कह देना चाहता हूँ। कुछ इलाज है?

मनोवैज्ञानिक ने कहा: कौन सा दुःस्वप्न?

तो उसने कहा: मैं रात निरंतर अपनी पत्नी को देखता हूँ, और उसके पीछे खड़े एक बड़े राक्षस को देखता हूँ।

मनोवैज्ञानिक उत्सुक हुआ। उसने कहा: इंटेस्टिंग। और जरा विस्तार से कहो।

तो नसरुद्दीन ने कहा कि लाल आंखें, जिनसे लपटें निकल रही हैं, तीर बड़े-बड़े, लगता है कि छाती में भोंक दिए जाएंगे। हाथों में नाखून ऐसे हैं जैसे खंजर हों। बड़ी घबराहट पैदा होती है।

मनोवैज्ञानिक ने कहा: घबड़ाने वाला है, भयंकर है।

नसरुद्दीन ने कहा: दिस इज नर्थिंग, वेट, टिल आई टैल यू अबाउट दि मान्सटर। जरा रुको, जब तक मैं राक्षस के संबंध में न बताऊँ तब तक कुछ मत कहो। यह तो मेरी पत्नी है। उसके पीछे जो राक्षस खड़ा रहता है, अभी उसका तो मैंने वर्णन ही नहीं किया। उसने उसका भी वर्णन किया। उसके भयंकर दांत, लगता है कि चपेट डालेंगे, पीस डालेंगे। उसका विशालकाय शरीर, उसके सामने बिल्कुल कीड़ा-मकोड़ा हो जाता हूँ। और उसकी घिनौनी बात और उसके शरीर से झरती हुई घिनौनी चीजें और रस ऐसी घबड़ाहट भर देते हैं कि दिन भर वह मेरा पीछा करता है।

मनोवैज्ञानिक ने कहा: बहुत भयंकर, बहुत घबड़ाने वाला।

नसरुद्दीन ने कहा कि वेट, टिल आई टैल यू दैट दि मान्सटर इज नो वन एल्स दैन मी। जरा रुको, वह राक्षस और कोई नहीं, और घबड़ाने वाली बात यह है कि जब मैं गौर से देखता हूँ तो पाता हूँ, मैं ही हूँ।

और यह दुःस्वप्न वर्षों से चल रहा है। जब तक चित्त आक्रामक है, तब तक दूसरे में भी राक्षस दिखाई पड़ेगा। और अगर गौर से देखेंगे तो आक्रामक चित्त अपने को भी राक्षस ही पाएगा। और हम सब आक्रामक हैं। हम सब दुःस्वप्न में जीते हैं। हमारी जिंदगी एक नाइट मेयर है, एक लंबी सड़ांध है, एक लंबा रक्तपात से भरा हुआ नाटक, एक लंबा नारकीय दृश्य।

मुल्ला मर कर जब स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा तो स्वर्ग के पहरेदार ने पूछा: कहां से आ रहे हो? उसने कहा: मैं पृथ्वी से आ रहा हूँ। उस द्वारपाल ने कहा: वैसे तो नियम यही था कि तुम्हें नरक भेजा जाए, लेकिन चूंकि तुम पृथ्वी से आ रहे हो, नरक तुम्हें काफी सुखद मालूम होगा। नरक तुम्हें काफी सुखद मालूम होगा इसलिए कुछ

दिन स्वर्ग में रुक जाओ, फिर तुम्हें नरक भेजेंगे ताकि नरक तुम्हें दुखद मालूम हो सके। तो मुल्ला को कुछ दिनों के लिए स्वर्ग में रोक लिया गया। क्योंकि सब सुख-दुख रिलेटिव हैं। मुल्ला ने बहुत कहा कि मुझे सीधे जाने दो। उस द्वारपाल ने कहा: यह नहीं हो सकता, क्योंकि नरक तो अभी तुम्हें स्वर्ग मालूम होगा। तुम पृथ्वी से आ रहे हो सीधे। अभी कुछ दिन स्वर्ग में रह लो। जरा सुख अनुभव हो जाए, फिर तुम्हें नरक में डालेंगे। तब तुम्हें सताया जा सकेगा।

हम जिसे जिंदगी कह रहे हैं वह एक लंबी नरक यात्रा है। और वह नरक यात्रा का कारण कुल इतना है कि हमारा चित्त आक्रामक है। पर-केंद्रित चित्त आक्रामक होता है, स्व-केंद्रित चित्त अनाक्रमक हो जाता है, प्रतिक्रमण को उपलब्ध हो जाता है। यह प्रतिक्रमण की यात्रा ही संलीनता में डुबा देती है।

आज बाह्य-तप पूरे हुए, कल से हम अंतर-तप को समझने की कोशिश करेंगे।

रुकें पांच मिनट... !

प्रायश्चित्तः पहला अंतर तप (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तप के छह बाह्य अंगों की हमने चर्चा की है, आज से अंतर-तपों के संबंध में बात करेंगे। महावीर ने पहला अंतर-तप कहा है--प्रायश्चित्त। पहले तो हम समझ लें कि प्रायश्चित्त क्या नहीं है तो आसान होगा समझना कि प्रायश्चित्त क्या है? अब कठिनाई और भी बढ़ गई है क्योंकि प्रायश्चित्त जो नहीं है वही हम समझते रहे हैं कि प्रायश्चित्त है। शब्दकोशों में खोजने जाएंगे तो लिखा है कि प्रायश्चित्त का अर्थ है-पश्चात्ताप, रिपेंटेन्स। प्रायश्चित्त का वह अर्थ नहीं है। पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त में इतना अंतर है जितना जमीन और आसमान में।

पश्चात्ताप का अर्थ है: जो आपने किया है उसके लिए पछतावा; लेकिन जो आप हैं उसके लिए पछतावा नहीं, जो आपने किया है उसके लिए पछतावा। आपने चोरी की है तो आप पछता लेते हैं चोरी के लिए। आपने हिंसा की है तो आप पछता लेते हैं हिंसा के लिए। आपने बेईमानी की है तो पछता लेते हैं बेईमानी के लिए। आपके लिए नहीं, आप तो ठीक हैं। आप ठीक आदमी से एक छोटी सी भूल हो गई थी कर्म में, उसे आपने पश्चात्ताप करके पोंछ दिया।

इसलिए पश्चात्ताप अहंकार को बचाने की प्रक्रिया है। क्योंकि अगर भूलें आपके पास बहुत इकट्ठी हो जाएं तो आपके अहंकार को चोट लगनी शुरू होगी--कि मैं बुरा आदमी हूं, कि मैंने गाली दी। कि मैं बुरा आदमी हूं, कि मैंने क्रोध किया। आप हैं बहुत अच्छे आदमी--गाली आप दे नहीं सकते हैं, किसी परिस्थिति में निकल गई होगी। आप पछता लेते हैं और फिर से अच्छे आदमी हो जाते हैं। पश्चात्ताप आपको बदलता नहीं, जो आप हैं वही रखने की व्यवस्था है। इसलिए रोज आप पश्चात्ताप करेंगे और रोज आप पाएंगे कि आप वही कर रहे हैं जिसके लिए कल पछताए थे। पश्चात्ताप आपके बीइंग, आपकी अंतरात्मा में कोई अंतर नहीं लाता, सिर्फ आपके कृत्यों में कहीं भूल थी, और भूल भी इसलिए मालूम पड़ती है कि उससे आप अपनी इमेज को, अपनी प्रतिमा को जो आपने समझ रखी है, बनाने में असमर्थ हो जाते हैं।

मैं एक अच्छा आदमी हूं, ऐसी मैं, मेरी अपनी प्रतिमा बनाता हूं। फिर इस अच्छे आदमी के मुंह से एक गाली निकल जाती है, तो मेरे ही सामने मेरी प्रतिमा खंडित होती है। मैं पछताना शुरू करता हूं कि यह कैसे हुआ कि मैंने गाली दी। मैं कहना शुरू करता हूं कि मेरे बावजूद यह हो गया, इन्सपाइट ऑफ़ मी। यह मैं चाहता नहीं था और हो गया। ऐसा मैं कर नहीं सकता हूं और हो गया--किसी परिस्थिति के दबाव में, किसी क्षण के आवेश में। ऐसा मैं हूं नहीं कि जिससे गाली निकले, और गाली निकल गई। मैं पछता लेता हूं। गाली का जो क्षोभ था वह बिदा हो जाता है। मैं अपनी जगह वापस लौट आता हूं जहां मैं गाली के पहले था। पश्चात्ताप वहीं ला देता है वापस जहां मैं गाली के पहले था। लेकिन ध्यान रखें, जहां मैं गाली के पहले था, उसी में से गाली निकली थी। मैं फिर उसी जगह वापस लौट आया। उससे फिर गाली निकलेगी।

पी. डी. आस्पेंस्की ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी है: दि स्ट्रेंज लाइफ ऑफ इवान ओसोकिन, इवान ओसोकिन का विचित्र जीवन। इवान ओसोकिन एक जादूगर फकीर के पास गया और इवान ओसोकिन ने कहा कि मैं आदमी तो अच्छा हूँ। मैंने अपने भीतर आज तक एक भी बुराई न पाई। लेकिन फिर भी मुझसे कुछ भूलें हो गई हैं। वे भूलें अज्ञानवश हुईं। नहीं जानता था कोई चीज, और भूल हो गई। रास्ते पर जा रहा हूँ, गड्ढे में गिर पड़ा क्योंकि रास्ता अपरिचित था। मैं गिरने वाला व्यक्ति नहीं हूँ। अज्ञान की भूल का मतलब यह होता है, परिस्थिति अज्ञात थी। कोई घटना घट गई, वह मैं घटाना नहीं चाहता था। कौन गड्ढे में गिरना चाहता है? मैं गिरने वाला आदमी नहीं हूँ। गड्ढा था, अंधेरा था, रास्ता अपरिचित था, या किसी ने धक्का दे दिया, मैं गिर गया। अगर मुझे दुबारा उसी रास्ते पर चलने का मौका मिले तो मैं तुम्हें बता सकता हूँ कि मैं उस रास्ते पर चलूंगा और गड्ढे में नहीं गिरूंगा।

उस फकीर ने कहा कि एक मौका दो मैं तुम्हारी बारह वर्ष उम्र कम किए देता हूँ। अब तुम बारह वर्ष बाद आना। और उसने ओसोकिन की उम्र बारह वर्ष कम कर दी। वह एक जादूगर है, उसने उसकी उम्र बारह वर्ष कम कर दी। ओसोकिन उससे वायदा करके गया है कि तुम देखोगे कि बारह वर्ष बाद मैं दूसरा ही आदमी हूँ। यही मैं चाहता था कि मुझे एक अवसर और मिल जाए, इसलिए ताकि जो भूलें मुझसे अज्ञान में हो गई हैं, वे दुबारा न हों।

बारह वर्ष बाद ओसोकिन रोता हुआ उस फकीर के पास आया और उसने कहा: क्षमा करना। वह गलती रास्ते की नहीं थी, मेरी ही थी क्योंकि मैंने फिर वही भूलें दोहराई हैं, मैंने फिर वही किया है जो मैंने पहले किया था। आश्चर्य! मैं फिर वही जीया हूँ जो पहले जीया था।

उस फकीर ने कहा: मैं जानता था, यही होगा। क्योंकि भूलें कर्म में नहीं होतीं--प्राणों की गहराई में, अस्तित्व में होती हैं। उम्र बदल दो तो कर्म फिर से तुम कर लोगे, लेकिन तुम ही करोगे न! यू विल डू इट अगेन एंड यू वीइंग द सेम। तुम वही होओगे, तुम्हीं वही करोगे फिर से; फिर वही हो जाएगा, जो पहले हुआ था।

ईवान ओसोकिन की जिंदगी ही विचित्र नहीं है, इस अर्थ में हम सबकी जिंदगी विचित्र है। हालांकि कोई जादूगर हमारी उम्र कम नहीं करता, लेकिन जिंदगी हर बार हमें न मालूम कितनी बार मौका देती है। ऐसा नहीं है कि क्रोध का मौका आपको एक ही बार आता है और परिस्थिति एक ही बार आती है। नहीं, इसी जिंदगी में हजार बार आती है, वही होती है और फिर आप वही करते हैं। इससे बचने के लिए आप अपने को धोखा देते हैं कि परिस्थिति हर बार भिन्न है। क्योंकि एक बात तो पक्की है, आप वही हैं। अगर परिस्थिति भिन्न नहीं है तो दोष स्वयं पर आ जाएगा। इसलिए आप हर बार कहते हैं--परिस्थिति भिन्न है, इसलिए फिर करना पड़ा। लेकिन जो जानते हैं, वे कहते हैं कि परिस्थिति का सवाल नहीं है, सवाल आप ही हैं--यू आर द प्राब्लम। और एक जिंदगी नहीं अनेक जिंदगी मिलती हैं, और हम फिर वही दोहराते हैं, फिर वही दोहराते हैं, फिर वही दोहराते हैं।

महावीर के पास कोई साधक आता था तो वे उसे पिछले जन्म के स्मरण में ले जाते थे, सिर्फ इसीलिए ताकि वह देख ले कि वह कितनी बार यही सब दोहरा चुका है और यह कहना बंद कर दे कि मेरे कर्म की भूल है और यह जान ले कि भूल मेरी है। पश्चात्ताप, कर्म गलत हुआ, इससे संबंधित है। प्रायश्चित्त, मैं गलत हूँ, इस बोध से संबंधित है। और ये दोनों बातें बहुत भिन्न हैं, इसमें जमीन आसमान का फर्क है। पश्चात्ताप करने वाला वही का वही बना रहता है और प्रायश्चित्त करने वाले को अपनी जीवन चेतना रूपांतरित कर देनी होती है। सवाल यह नहीं है कि मैंने क्रोध किया तो मैं पछता लूं। सवाल यह है कि मुझसे क्रोध हो सका तो मैं दूसरा आदमी हो जाऊँ, ऐसा आदमी जिससे क्रोध न हो सके--प्रायश्चित्त का यह अर्थ है। ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ द लेवल ऑफ दि बीइंग। यह सवाल नहीं है कि मैंने कल क्रोध किया था, आज मैं नहीं करूंगा। सवाल यह है--कल मुझसे क्रोध हुआ था, मैं कल के ही जीवन तल पर आज भी हूँ। वही चेतना मेरी आज भी है। पश्चात्ताप करनेवाला कल के

लिए क्षमा मांग लेगा। हर वर्ष हम मांगते हैं मिच्छामि दुक्कडम, हर वर्ष हम मांगते हैं, क्षमा कर दे। पिछले वर्ष भी मांगा था, उसके पहले भी क्षमा मांगी थी। कब वह दिन आएगा जब कि क्षमा मांगने का अवसर न रह जाए। कि मांगते ही रहेंगे। और जानते हैं भलीभांति कि जहां से क्षमा मांगी जा रही है वहां कोई रूपांतरण नहीं है। वह आदमी वही है जो पिछले वर्ष था।

एक मित्र पिछले पूरे वर्ष से मेरे संबंध में अनूठी कहानियां प्रचारित करते हैं। अब यह पर्युषण पूरे हुए तो उनका कल पत्र आया कि मुझे क्षमा कर दें। ऐसा नहीं कि मैंने जाने अनजाने अपराध किए हों, उनके लिए क्षमा कर दें—पत्र में लिखा है, मैंने अपराध किए हैं, उनके लिए क्षमा कर दें, और मैं हृदय की गहराई से क्षमा मांगता हूं। लेकिन मैं जानता हूं कि पत्र लिखने के बाद उन्होंने वही काम पुनः जारी कर दिया होगा। क्योंकि पत्र लिखने से वह रूपांतरण नहीं हो जाने वाला है। क्षमा मांग लेने से आप नहीं बदल जाएंगे, आप फिर वही होंगे। सच तो यह है—जो क्षमा मांग लेने से आप नहीं बदल जाएंगे, आप फिर वही होंगे। सच तो यह है—जो क्षमा मांग रहा है वही आदमी है जिसने अपराध किया है। प्रायश्चित्त वाला तो हो सकता है क्षमा न भी मांगे, क्योंकि वह अनुभव करे, अब मैं वह आदमी ही नहीं हूं कि जिसने अपराध किया था, अब मैं दूसरा आदमी हूं। वह जाकर इतनी खबर दे दे कि वह आदमी जो तुम्हें गाली दे गया था, मर गया है। मैं दूसरा आदमी हूं। अगर आपके मन को अच्छा लगे तो मैं उसकी तरफ से आपसे क्षमा मांग लूं, क्योंकि मैं उसकी जगह हूं। अन्यथा मेरा कोई लेना देना नहीं है, वह आदमी मर चुका है।

प्रायश्चित्त का अर्थ है: मृत्यु उस आदमी की जो भूल कर रहा था, उस चेतना की जिससे भूल हो रही थी। पश्चात्ताप का अर्थ है: उस चेतना का पुनर्जीवन जिससे भूल हो रही है। फिर से रास्ता साफ करना, फिर से पुनः वहीं पहुंच जाना जहां हम खड़े थे और जहां से भूल होती थी—उसी जगह फिर खड़े हो जाना। पैर थोड़े डगमगा जाते हैं अपराध करके, भूल करके। फिर उन पैरों को मजबूत करना हो तो क्षमा सहयोगी होती है। ध्यान रहे, लोग इसलिए क्षमा नहीं मांगते कि वे समझ गए हैं कि उनसे अपराध हो गया, वे इसलिए क्षमा मांगते हैं कि यह अपराध का भाव उनकी प्रतिमा को खंडित करता है। वे इसलिए क्षमा नहीं मांगते हैं कि आपको चोट पहुंची है, क्योंकि वे कल फिर चोट पहुंचाना जारी रखते हैं। वे इसलिए क्षमा मांगते हैं कि अपराध के भाव से उनकी प्रतिमा को चोट पहुंची है। वे उसे सुधार लेते हैं। हम सबका एक सेल्फ इमेज है। सच नहीं है वह जरा भी, लेकिन वही हमारा असली है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को कंधे पर लेकर सुबह घूमने निकला है। सुंदर है उसका बेटा। जो भी रास्ते पर देखता है वह रुक कर ठहर जाता है और कहता है, सुंदर है। नसरुद्दीन कहता है: दिस इ.ज नथिंग। यू मस्ट सी हि.ज पिकचर। यह कुछ नहीं है, इसका चित्र देखो, तब तुम्हें पता चलेगा। जो भी नसरुद्दीन से कहता है: सुंदर है यह तुम्हारा बेटा; वह कहता है: दिस इ.ज नथिंग। यू मस्ट सी हि.ज पिकचर। यह तो कुछ भी नहीं है। इसकी पिकचर देखो घर आकर अलबम में, तब तुमको पता चलेगा।

वह ठीक कह रहा है। हम सब भी जानते हैं कि हम तो कुछ भी नहीं हैं, लेकिन हमारी तस्वीर, वह जो हमारे चित्त के अलबम में है, उसको देखो। उसको ही हम दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं। उसको ही हम दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं। वह तस्वीर बड़ी और है। वह वही नहीं है जो हम हैं। इसलिए जब उस तस्वीर पर कोई दाग पड़ जाता है और हमें लगता है कि दाग पड़ रहा है तो दाग को हम पोंछ लेते हैं। पश्चात्ताप स्याही सोख का काम करता है। वह प्रायश्चित्त नहीं है, प्रायश्चित्त तो तस्वीर को फाड़ कर फेंक देगा और कहेगा—यह मैं हूं ही नहीं, जिसको मैं थोप रहा हूं निरंतर। पश्चात्ताप सिर्फ स्याही के धब्बे को अलग कर देगा। और अगर आप कुशल हुए तो स्याही के धब्बे को इस ढंग से बना देंगे कि वह तस्वीर का हिस्सा और शृंगार बन जाए। न कुशल हुए तो पोंछने की कोशिश करेंगे, इसमें थोड़ी-बहुत तस्वीर खराब भी हो सकती है।

अगर आपने रवींद्रनाथ की कभी हाथ से लिखी, हस्तलिखित प्रतिलिपियां, उनकी हस्तलिखित पांडुलिपियां देखी हैं तो आप बहुत चकित होंगे। रवींद्रनाथ से कहीं अगर कोई भूल अक्षर में हो जाए तो वे उसको ऐसे नहीं काटते थे, वे उसे काटकर वहां एक चित्र बना देते और कागज को सजा देते। तो उनकी पांडुलिपियां सजी पड़ी हैं। जहां उन्होंने काटा है, वहां सजा दिया है। अच्छा है, पांडुलिपि में करना बुरा नहीं है, आंख को सोहता है। लेकिन आदमी जिंदगी में भी यही करता है। वह पश्चात्ताप धब्बों को चित्र बनाने की कोशिश या धब्बों को पोंछ डालने की कोशिश है। पश्चात्ताप प्रायश्चित्त नहीं है, लेकिन हम सब तो पश्चात्ताप को ही प्रायश्चित्त समझते हैं।

पश्चात्ताप बहुत साधारण सी घटना है, जो मन का नियम है। मन के नियम को थोड़ा समझ लें कि पश्चात्ताप पैदा सबको होता है। यह मन का सामान्य नियम है। प्रायश्चित्त साधना है। अगर महावीर प्रायश्चित्त का अर्थ पश्चात्ताप करते हों तो यह तो कोई बात ही न हुई।

यह तो सभी को होता है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो पछताता न हो। अगर आप खोज कर ले आएं, तो वह आदमी ऐसे ही हो सकता है जैसा महावीर हो। बाकी आदमी मिलना मुश्किल है जो पछताता न हो। पश्चात्ताप तो जीवन का सहज क्रम है। हर आदमी पश्चात्ताप करता है। तो इसको साधना में गिनाने की क्या जरूरत है? पश्चात्ताप साधना नहीं, मन का नियम है। मन का यह नियम है कि मन एक अति से दूसरी अति पर डोल जाता है। तो मन के इस नियम में थोड़े गहरे प्रवेश कर जाएं तो पश्चात्ताप समझ में आ जाए। फिर प्रायश्चित्त की तरफ ध्यान उठ सकता है।

आपका किसी से प्रेम है तो आप उस आदमी में चुनाव करते हैं और वही-वही देखते हैं जो प्रेम को मजबूत करे—सिलेक्टिव। कोई आदमी किसी आदमी को पूरा नहीं देखता। देख ले तो जिंदगी बदल जाए, उसकी खुद की भी बदल जाए। हम सब चुनाव करते हैं। जिसे मैं प्रेम करता हूं उसमें मैं वे वे हिस्से देखता हूं जो मेरे प्रेम को मजबूत करते हैं और कहते हैं कि मैंने चुनाव ठीक किया है। आदमी प्रेम के योग्य है। प्रेम किया ही जाता ऐसे आदमी से, ऐसा आदमी है। लेकिन यह पूरा आदमी नहीं है। यह मन अपने को चुनाव कर रहा है। जैसे मैं किसी कमरे में जाऊं और सफेद रंगों को चुन लूं और काले रंगों को छोड़ दूं। आज नहीं कल मैं सफेद रंगों से ऊब जाऊंगा क्योंकि मन जिस चीज से भी परिचित होता जाता है, ऊब जाता है। आज नहीं कल मैं ऊब जाऊंगा इस सौंदर्य की सिलेक्टिव, एक चुनाव की गई प्रतिमा से। और जैसे मैं ऊबने लगूंगा वैसे ही वह जो असुंदर मैंने छोड़ दिया था, दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। वह तभी तक नहीं दिखता था, वह तो है ही।

सुंदरतम व्यक्ति में भी असुंदर हिस्से हैं। असुंदरतम व्यक्ति में भी सौंदर्य छिपा है। जीवन बनता ही है विरोध से, जीवन की सारी व्यवस्था ही विरोध पर खड़ी होती है। काले बादलों में ही बिजली नहीं छिपी होती, हर बिजली की चमक के पीछे काला बादल भी होता है। और हर अंधेरी रात के बाद ही सुबह पैदा नहीं होती, हर सुबह के बाद काली रात आ जाती है। हर दुख में खुशी ही नहीं छिपी है, हर खुशी के भीतर से दुख का अंकुर भी निकलेगा। जीवन ऐसे ही बहता है जैसे नदी दो किनारों के बीच बहती है। और एक किनारे के साथ नहीं बह सकती। भला दूसरा किनारा आपको न दिखाई पड़ता हो, या आप न देखना चाहते हों, लेकिन जब इस किनारे से ऊब जाएंगे तो दूसरा किनारा ही आपका डेरा बनेगा।

तो जब आप एक व्यक्ति में सौंदर्य देखना शुरू करते हैं तो आप चुनाव कर लेते हैं एक किनारे का। भूल जाते हैं—नदी दो किनारों में बहती है। दूसरा किनारा भी है। उस दूसरे के किनारे के बिना न तो नदी हो सकती है, न यह किनारा हो सकता है। अकेला किनारा कहीं होता है? किनारे का मतलब यह होता है कि वह दूसरे का जोड़ है। पर आप चुनाव कर लेते हैं। फिर आज नहीं कल सौंदर्य से थक जाएंगे। सब चीजें थका देती हैं, सब चीजें उबा देती हैं। मन चाहता है—रोज नया, रोज नया। फिर पुराना उबाने लगता है। फिर जब पुराना उबा देता है तो जो हिस्से आपने छोड़ दिए थे पहले चुनाव में वे प्रकट होने लगते हैं। दूसरा किनारा दिखाई पड़ता है और जिसके प्रति आप प्रेम से भरे थे, उसी के प्रति घृणा से भर जाते हैं। जिसके प्रति आप श्रद्धा से भरे थे, उसी के प्रति अश्रद्धा से भर जाते हैं। जिसको आप भगवान कहने गए थे उसी को आप शैतान कहने जा सकते हैं। इसमें

कोई अड़चन नहीं है। जिससे आपने कहा था--तेरे बिना जी न सकेंगे; उससे ही आप कह सकते हैं अब तेरे साथ न जी सकेंगे।

मन द्वंद्व में चलता है, क्योंकि चुनाव करता है। इसलिए जिसे द्वंद्व के बाहर होना है उसे चुनाव रहित होना पड़े, च्वाइसलेस होना पड़े। चुनता ही नहीं है--काला है तो उसे भी देखता है, सफेद है तो उसे भी देखता है और मान लेता है कि काला हो नहीं सकता सफेद के बिना, सफेद हो नहीं सकता काले के बिना--फिर उस आदमी की दृष्टि में कभी परिवर्तन नहीं होता। मैं चकित होता हूं। सब संबंध परवर्तित होते हैं। एक आदमी मेरे पास आता है, इतनी श्रद्धा और इतनी भक्ति से भर कर आता है कि कभी सोचा भी नहीं जा सकता कि यह आदमी कभी विपरीत चला जाएगा। लेकिन मैं जानता हूं कि इसकी श्रद्धा और भक्ति चुनाव है। यह विपरीत जा सकता है। जब यह विपरीत जाने लगता है तो दूसरे लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि यह कैसे संभव है। आपके जो इतना निकट है, आपको जो इतनी भक्ति देता है वह आपके विपरीत जा रहा है। उनको पता नहीं कि यह बिल्कुल नियमानुसार हो रहा है। यह बिल्कुल नियमानुसार हो रहा है। एक किनारा उसने चुना था, अब वह उस किनारे को छोड़ कर दूसरा चुनेगा। और पहले किनारे को जब चुना था तब भी आपने अपने को तर्क दे लिए थे कि मैं सही हूं और दूसरे किनारे को चुनते वक्त भी आप अपने को तर्क दे लेंगे कि आप सही हैं।

और मैं आपसे कहता हूं कि एक किनारे को चुनना गलत है। वह किनारा कौन सा है, यह सवाल नहीं है। वह तर्क क्या है, यह सवाल नहीं है। जब कोई आकर मुझे भगवान मानने लगता है तब भी मैं जानता हूं, वह एक किनारे को चुन रहा है। वह चुनाव गलत है। एक किनारे को चुन लेना गलत है। यह सवाल नहीं है कि वह क्या तर्क अपने को दे रहा है। वही आदमी कल मुझे शैतान मान लेगा और तब भी तर्क खोज लेगा! मैं नहीं कहता कि उसका शैतान ही मान लेना गलत है। मैं कहता हूं उसका चुनाव गलत है। वह पूरे को नहीं देख रहा।

चुनेगा तो बदलेगा। जहां तक चुनाव है वहां तक परिवर्तन होगा। जब आप क्रोध में होते हैं तब आप एक हिस्सा चुन लेते हैं अपने व्यक्तित्व का--वह जो क्रोध करने वाला है। जब क्रोध निकल जाता है, बिदा हो जाता है तब आप अपने व्यक्तित्व का दूसरा हिस्सा चुनते हैं जो पश्चात्ताप करने वाला है। क्रोध कर लेते हैं एक हिस्से से, वह एक चुनाव था, आपकी प्रतिमा का एक रूप था। फिर पश्चात्ताप कर लेते हैं, वह आपकी प्रतिमा का दूसरा चुनाव है। किनारों के बीच नाव बहती रहती है। आपकी नदी बहती रहती है। आप यात्रा करते रहते हैं। कभी इस किनारे लगा देते हैं नाव को, कभी उस किनारे लगा देते हैं।

प्रायश्चित्त दो किनारों के बीच चुनाव नहीं है। प्रायश्चित्त बहुत अदभुत घटना है। पश्चात्ताप देख लेता है, कर्म की कोई भूल है। प्रायश्चित्त देखता है, मैं गलत हूं। कर्म नहीं, क्योंकि कर्म क्या गलत होगा! गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं, कर्म कभी गलत नहीं होते। गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं। बबूल के कांटे गलत नहीं होते, वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। कांटे क्या गलत होंगे! वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। लेकिन बबूल जब अपने कांटों को देखता है तो कहता है कि दुखी हूं। वृक्ष तो मैं ऐसा नहीं हूं कि मुझसे कांटे निकलें। परिस्थिति ने निकाल दिए होंगे। या अपने को समझाए कि हो सकता है कि कुछ लोगों के भोजन के लिए मैंने ये कांटे निकाले हों--कि ऊंट हैं, बकरियां हैं, वे भोजन कर सकें, नहीं तो भूखे मर जाएंगे। ऐसे मुझमें कांटे का क्या सवाल है! कांटे भी निकलते हैं तो किसी की करुणा से निकलते हैं।

क्रोध भी आता है आपको तो किसी को बदलने के लिए आता है। कि उस आदमी को बदलना पड़ेगा न! दया के कारण आप क्रोध करते हैं। बाप कर रहा है बेटे पर, मां कर रही बेटी पर--दया के कारण, करुणा के कारण कि इसको बदलना है, नहीं तो बिगड़ जाएगा। और मजा यह है कि सब क्रोध के बाद कहीं कोई सुधार दिखाई नहीं पड़ता। सारी दुनिया क्रोध करती आ रही है। सब इस ख्याल में क्रोध कर रहे हैं कि नहीं तो लोग बिगड़ जाएंगे, और लोग हैं कि बिगड़ते ही चले जा रहे हैं। कोई किसी में अंतर नहीं दिखाई पड़ता है। नहीं, मालूम ऐसा होता है कि क्रोध का संबंध दूसरे को सुधारना कम, यह दूसरे को सुधारना अपने क्रोध के लिए तर्क

खोजना ज्यादा है। यह दूसरा भी कल बड़े होकर यही तर्क खोजेगा और रेशनेलाइज करेगा। यह भी अपने बच्चों को ऐसे ही सुधारेगा।

ये जो कर्म हैं, इन पर जिनका ध्यान है वे पश्चात्ताप से आगे नहीं बढ़ेंगे और पश्चात्ताप आगे बढ़ना ही नहीं है--पीछे लौटना है एक कदम, फिर एक कदम वापस; फिर एक कदम आगे, फिर एक कदम पीछे। फिर क्रोध किया, फिर पैर उठा कर पीछे रख लिया; फिर क्रोध किया, फिर पैर उठा कर पीछे रख लिया। यह एक ही जगह पर दौड़ने जैसी क्रिया है, कहीं जाती नहीं। पश्चात्ताप से सजग हों, पश्चात्ताप आपको बदलेगा नहीं; बदलने का धोखा देता है। क्योंकि जब पश्चात्ताप के क्षण में आप होते हैं तो आप अपने सारे अच्छे गुण चुन लेते हैं। जब आप कहते हैं--मिच्छामि दुक्कडम, तब आप एक प्रतिमा होते हैं साक्षात् क्षमा की। मगर आप बाइलिंग्वल हैं, द्विभाषी हैं। वह दूसरी भाषा भीतर छिपी बैठी है। वह अगर दूसरा आदमी कह देगा कि अच्छा आप तो मानते हो लेकिन मैं नहीं मानता क्योंकि मैंने कोई अपराध आपकी तरफ किया नहीं; तो उसी वक्त दूसरी भाषा आपके भीतर सक्रिय हो जाए कि यह आदमी दुष्ट है। मैंने क्षमा मांगी और इसने क्षमा भी नहीं मांगी। या आप किसी से कहें कि मैं क्षमा मांगता हूं और वह कह दे कि किया क्षमा। तो पीड़ा शुरू हो जाएगी तत्काल। दूसरी भाषा आ जाएगी।

सुना है मैंने कि एक चूहा अपने बिल के बाहर घूम रहा था। अचानक पैरों की आवाज सुनी--परिचित थी, बिल्ली की मालूम पड़ती थी--घबड़ा कर अपने बिल के भीतर चला गया। लेकिन जैसे ही भीतर गया, चकित हुआ। बाहर तो कुत्ता भोंक रहा था--भों-भों। चूहा बाहर आया। तत्काल बिल्ली के मुंह में चला गया। चारों तरफ देखा, कुत्ता कहीं भी नहीं था। चूहे ने पूछा कि तू मुझे मार डाल, उसमें कोई हर्जा नहीं, लेकिन एक बात और मरते हुए प्राणी की एक जिज्ञासा को पूरा कर दे। वह कुत्ता कहां गया? बिल्ली ने कहा: यहां कोई कुत्ता नहीं है। यू नो, इट पेइज टु बी बाइलिंग्वल। मैं कुत्ते की आवाज करती हूं, हूं बिल्ली एंड इट पेइज। तुम फंस गए मेरे चक्कर में, नहीं तो तुम फंसते नहीं। द्विभाषी हूं, कुत्ते की भाषा बोलती हूं, हूं बिल्ली। इससे चूहे बड़ी आसानी से फंसते हैं।

हम सब बाइलिंग्वल हैं, द्विभाषी हैं, दो-दो भाषा जानते हैं। बोलने की भाषा और है, होने की भाषा और है। पूरे वक्त दो किनारों के बीच चलता रहता है। पश्चात्ताप करके आप बड़े प्रसन्न होते हैं, जैसा क्रोध करके बहुत दुखी और विषाद को उपलब्ध होते हैं। क्रोध करके विषाद आता है कि ऐसा बुरा आदमी मैं नहीं था। पश्चात्ताप करके चित्त प्रफुल्लित होता है, देखो कितना अच्छा आदमी हूं। अहंकार पुनर्प्रतिष्ठित हुआ। नहीं, प्रायश्चित्त का अर्थ-भूल कर्म में नहीं है, भूल मुझमें है, गलत मैं हूं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने क्लब के बाहर निकल रहा है। एक आदमी एक कोट को पहनने की कोशिश कर रहा है क्लाक रूम से। मुल्ला उससे कहता है कि आप बड़े गलत आदमी हैं। मुल्ला से उसने कहा: मैंने तो कुछ किया ही नहीं! मैं अपना कोट पहन रहा हूं। मुल्ला ने कहा: इसीलिए तो मैं कहता हूं कि आप गलत आदमी हैं। यह कोट मुल्ला नसरुद्दीन का है। उस आदमी ने कहा: यह मुल्ला नसरुद्दीन कौन है? मुल्ला ने कहा: यह मुल्ला नसरुद्दीन मैं हूं, आप मेरा कोट पहन रहे हैं। तो उस आदमी ने कहा कि नासमझ! ऐसा क्यों नहीं कहता कि मैं गलत कोट पहन रहा हूं, ऐसा क्यों कहता है कि मैं गलत आदमी हूं। मुल्ला ने कहा: गलत आदमी ही गलत कोट पहनते हैं।

जब आप कोई गलत काम करते हैं तो आप चाहते हैं कोई ज्यादा से ज्यादा इतना कहे कि आपसे गलत काम हो गया। वह यह न कहे कि आप गलत आदमी हैं, क्योंकि काम की तो बड़ी छोटी सीमा है, एक क्षण में निपट जाएगा। आप! आप तो पूरे जीवन पर आरोपित हैं। अगर कोई कहे, आप गलत हैं, तो यह जीवन भर के लिए निंदा हो गई। अगर कर्म गलत है, एक क्षण की बात है, इससे विपरीत कर्म किया जा सकता है। किए को अनकिया किया जा सकता है, उन को अनडन किया जा सकता है। किए के लिए माफी मांगी जा सकती है। किए के विपरीत किया जा सकता है। कर्म के ऊपर दोष देने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वही आदमी प्रायश्चित्त

को उपलब्ध होता है। जो कहता, गलत कोट में नहीं पहन रहा, मैं गलत आदमी हूं। लेकिन तब प्राणों में बड़ा मंथन होता है।

तब सवाल यह नहीं है कि मैंने कौन-कौन से काम गलत किए; तब सवाल यह है कि चूंकि मैं गलत हूं इसलिए मैंने जो भी किया होगा, वह गलत होगा। तब चुनाव भी नहीं है कि कौन सा गलत किया और मैंने कौन सा ठीक किया। जब मैं गलत हूं तो मैंने जो भी किया होगा वह गलत किया होगा। बेहोश आदमी शराब पीए हुए रास्ते पर लड़खड़ाता है। वह यह नहीं कहता कि मेरे कौन-कौन से पैर लड़खड़ाए, या कहेगा? और कौन से पैर मेरे ठीक पड़े और कौन से पैर मेरे लड़खड़ाए? जब वह होश में आएगा तब वह कहेगा कि मैं बेहोश था, मेरे सभी पैर लड़खड़ाए। वे जो ठीक पड़ते मालूम पड़ते थे वे भी गलती से ही ठीक पड़े होंगे क्योंकि ठीक पड़ने का तो कोई उपाय नहीं, क्योंकि मैं शराब पीए था। हम भीतर एक गहरे नशे में होते हैं, और वह गहरा नशा यह है कि हम, एक अर्थ में हम हैं ही नहीं, बिल्कुल सोए हुए हैं।

प्रायश्चित्त को महावीर ने क्यों अंतर-तप का पहला हिस्सा बनाया? क्योंकि वही व्यक्ति अंतर्यात्रा पर निकल सकेगा जो कर्म की गलती को छोड़ कर स्वयं की गलती देखना शुरू करेगा। देखिए, तीन तरह के लोग हैं—एक वे लोग हैं जो दूसरे की गलती देखते हैं; एक वे लोग हैं जो कर्म की गलती देखते हैं; एक वे लोग हैं जो स्वयं की गलती देखते हैं। जो दूसरे की गलती देखते हैं वे तो पश्चात्ताप भी नहीं करते। जो कर्म की गलती देखते हैं वे पश्चात्ताप करते हैं। जो स्वयं की गलती देखते हैं, वे प्रायश्चित्त में उतरते हैं। जब दूसरा ही गलत है तब तो पश्चात्ताप का कोई सवाल ही नहीं है।

लेकिन ध्यान रहे, दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। इस अर्थ में कभी गलत नहीं होता। इसे बड़ा कठिन होगा समझना कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। अंतर्यात्रा के पथिक को यह समझ लेना होगा कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता है। आप कहेंगे—आप कैसी बात कर रहे हैं क्योंकि मैं गलत होता हूं तो मैं दूसरे के लिए तो दूसरा हूं ही! और अगर दूसरा गलत नहीं होता तो फिर तो मैं कैसे गलत होऊंगा? जब मैं कह रहा हूं—दूसरा कभी गलत नहीं होता तो इसलिए कह रहा हूं इसलिए नहीं कि दूसरा गलत नहीं होता, दूसरा गलत होता है, लेकिन स्वयं के लिए, आप गलत होते हैं स्वयं के लिए दूसरे के लिए आप गलत नहीं हो सकते।

आप महावीर के पास जाएं तब आपको तत्काल पता चल जाएगा। आप गाली दें, महावीर में गाली ऐसे गुंजेगी जैसे किसी घाटी में गुंजे और विलीन हो जाए। आप महावीर को क्रोधित न करवा पाएंगे। और तब बड़े हैरानी की बात है कि अगर आप क्रोधी आदमी हैं तो आपको और ज्यादा क्रोध आएगा कि दूसरा आदमी क्रोधित तक नहीं हुआ। तो और क्रोध आएगा। जीसस को सूली पर लटकाना पड़ा क्योंकि यह आदमी उन लोगों के सामने अपना दूसरा गाल करता रहा, जो चांटा मारने आए थे। उनका क्रोध भयंकर होता चला गया। अगर यह भी उनको एक चांटा मार देता तो जीसस को सूली पर लटकाने की कोई जरूरत न पड़ती। बात निपट गई होती। समान तल पर आ गए होते। फिर तो कोई कठिनाई न थी।

एनीबीसेंट जे. कृष्णमूर्ति को कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के अलग-अलग कालेजों में भर्ती कराने के लिए घूम रही थी, पढ़ने के लिए। लेकिन कोई कालेज का प्रिंसिपल कृष्णमूर्ति को लेने को राजी नहीं हुआ। जिस कालेज में भी एनीबीसेंट गई, एनीबीसेंट ने कहा कि यह साक्षात् भगवान का अवतार है, यह दिव्य पुरुष है। इनमें वर्ल्ड टीचर, जगत-गुरु का जन्म होने को है।

उन प्रिंसिपल्स ने कहा कि क्षमा करें, इतनी विशिष्टता आप उन्हें दे रही हैं कि हम कालेज में भर्ती नहीं कर सकेंगे। एनीबीसेंट ने कहा: क्यों? तो उन्होंने कहा: इसलिए भर्ती न कर सकेंगे कि एक तो इस बच्चे को परेशानी होगी इतनी महत्ता का बोझ लेकर चलने में, और दूसरे लड़के भी इसको परेशान करेंगे। इसको कठिनाई पड़ेगी इतनी गरिमा लेकर चलने में, और दूसरे लड़के इसको परेशान करेंगे। यह शांति से न पढ़ पाएगा, शांति से न जी पाएगा। इसलिए हम इसे न लेंगे।

लेकिन सभी प्रिंसिपलों ने एक खास कालेज का नाम बताया कि आप वहां चली जाओ, वह कालेज भर्ती कर लेगा।

एनीबीसेंट बहुत हैरान थी, फिर आखिर जब कोई कालेज में जगह नहीं मिली क्योंकि वह कालेज अच्छा कालेज नहीं था, जिसका लोग नाम लेते थे, उसकी प्रतिष्ठा नहीं थी। एनीबीसेंट को जब कोई उपाय न रहा तो वह कृष्णमूर्ति को लेकर उस कालेज में गई। उस कालेज के प्रिंसिपल ने कहा--खुशी से भर्ती हो जाओ, मजे से भर्ती हो जाओ; बिका.ज इन अवर कालेज एवरीवन इ.ज ए गॉड। एवरीवन विल ट्रीट यू इक्वली। कोई दिक्कत न आएगी। इधर सभी लड़के भगवान हैं हमारे कालेज में। कोई कठिनाई न आएगी बल्कि तुमको दिक्कत यही हो सकती है कि कई इसमें बिगर गॉड्स हैं, वे तुमको दबाएंगे, तुमको छोटा गॉड सिद्ध करेंगे। तुम जरा इसके लिए सावधान रहना। बाकी और कोई अड़चन नहीं है। दे विल ट्रीट यू इक्वली। समान व्यवहार करेंगे।

यह जो, हम जो व्यवहार कर रहे हैं दूसरे से, वह दूसरे पर कम निर्भर है, हम पर ज्यादा निर्भर है। हमें लगता ऐसा ही है कि दूसरे पर निर्भर है, वही हमारी भ्रांति है, वह हम पर ही निर्भर है। हम ही उसे उकसाते हैं जाने अनजाने। और जब दूसरा उसे करने लगता है तो लगता है वह दूसरे से आ रहा है। अब जिस कालेज में हरेक लड़का अपने को भगवान समझता है, उस कालेज में कोई दिक्कत नहीं है प्रिंसिपल को। वह कहता है--कोई अड़चन न आएगी। लेकिन जिसका लेज में ऐसा नहीं है, उसका प्रिंसिपल भयभीत हो रहा है कि इससे अड़चन खड़ी होगी। आसान नहीं होगा यह, कृष्णमूर्ति का यहां रहना। यह अड़चन बनेगी।

महावीर के पास आप जाएंगे तो आपको कठिनाई आएगी, अगर महावीर आ पके साथ समानता का व्यवहार करेंगे तो कठिनाई न आएगी। आप गाली दें महावीर को और महावीर भी आपको गाली दे दें तो आप ज्यादा प्रसन्न घर लौटेंगे क्योंकि बराबर सिद्ध हुए। अगर महावीर गाली न दें और मुस्करा दें तो आप रातभर बेचैन रहेंगे घर कि यह आदमी कुछ ऊपर मालूम पड़ता है, इसको नीचे लाना पड़ेगा। तो इसलिए कई बार तो ऐसा हुआ है कि बहुत साधुओं ने सिर्फ इसलिए गाली दी कि आपको उनको नीचे लाने की व्यर्थ कोशिश न करनी पड़े। आप हैरान होंगे, यह जगत बहुत अजीब है। कई साधुओं को इसलिए आपके साथ दुर्व्यवहार करना पड़ा ताकि आपको उनके साथ दुर्व्यवहार न करना पड़े। रामकृष्ण गाली देते थे, ठीक मां-बहन की गाली देते थे। और ढेर फक्कड़ साधु गालियां देते रहे, पत्थर मारते रहे, और सिर्फ इसलिए कि आ पको कष्ट न उठाना पड़े उनको फांसी वगैरह देने का--आप पर दया करके, यही समझ कर।

और यह बड़े मजे की बात है, अब तक ऐसे किसी साधु को फांसी नहीं दी गई, जिसने गाली दी हो और पत्थर फेंके हों। यह आपको पता है? पूरे इतिहास में मनुष्य जाति के! सुकरात को जहर पिला देते हैं, महावीर को पत्थर मारते हैं, बुद्ध को परेशान करते हैं। हत्या की अनेक कोशिशें की जाती हैं बुद्ध की--चट्टान सरका दी जाती है, पागल हाथी छोड़ दिया जाता है। जीसस को सूली पर लटकाते हैं, मंसूर को काट डालते हैं। लेकिन ऐसा एक भी उल्लेख नहीं है कि आपने उस साधु के साथ दुर्व्यवहार किया हो जिसने आपके साथ दुर्व्यवहार किया हो। यह बड़े मजे की बात है। यह बड़ा ऐतिहासिक तथ्य है। बात क्या है? असल में जो आपको गाली देता है, यू ट्रीट हिम इक्वली। बात खत्म हो गई। वह आदमी इतना ऊपर नहीं, जिसको फांसी-वांसी लगानी पड़े, नीचे लाना पड़े। अपने ही जैसा है, चलेगा। तो कई कुशल साधु सिर्फ इसलिए गाली देने को मजबूर हुए कि आपको नाहक परेशानी में न पड़ना पड़े, क्योंकि फांसी लगाने में परेशानी साधु को कम होती है, आपको ज्यादा होती है। बड़ा इंतजाम करना पड़ता है।

दूसरा गलत नहीं है इस स्मरण से ही अंतर्थात्रा शुरू होती है। अगर दूसरा गलत है, तब तो अंतर्थात्रा शुरू ही नहीं होगी। दूसरा गलत है या नहीं, यह सवाल नहीं है; दूसरा गलत है, यह दृष्टि गलत है। दूसरा गलत है या नहीं, इस तर्क में आप पड़ेंगे तो कभी दूसरा सही मालूम पड़ेगा, कभी गलत मालूम पड़ेगा। चुनाव शुरू हो

जाएगा। दूसरा सही है या गलत है, यह साधक की दृष्टि नहीं है। मैं गलत हूं या नहीं, यह ठहराना साधक की दृष्टि नहीं है। मैं गलत हूं, यह सुनिश्चित मान कर चल पड़ना साधक की दृष्टि है। प्रायश्चित्त तब शुरू होता है जब मैं मानता हूं, मैं गलत हूं। सच तो यह है कि जब तक मैं हूं तब तक मैं गलत होऊंगा ही। होना ही गलत है, वह जो अस्मिता है, वह जो ईगो--"मैं हूं"--वही मेरी गलती है। मेरा होना ही मेरी गलती है। जब तक "मैं नहीं" न हो जाऊं तब तक प्रायश्चित्त फलित नहीं होगा। और जिस दिन मैं नहीं हो जाता हूं, शून्यवत हो जाता हूं उसी दिन मेरी चेतना रूपांतरित होती है और नये लोक में प्रवेश करती है।

फिर भी ऐसा नहीं है कि ऐसी रूपांतरित चेतना में आपको गलतियां न मिल जाएं। क्योंकि गलतियां आप अपने कारण खोजते हैं। एक बात पक्की है कि ऐसी चेतना को आप में गलतियां मिलनी बंद हो जाएंगी। इसलिए तो ऐसी चेतनाएं आपसे कह सकीं कि आप परमात्मा हैं, आप शुद्ध आत्मा हैं, आपके भीतर मोक्ष छिपा है। द किंगडम ऑफ गॉड इ.ज विदिन यू। इसलिए जीसस जुदास के पैर पड़ सके। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जुदास ने तीस रुपये में जीसस को बेच दिया है सूली पर लटकाने के लिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई अंतर ही नहीं पड़ता क्योंकि जिस आदमी ने अपने को बदला हुआ पाया, उसको फिर किसी में कहीं कोई गलती नहीं दिखाई पड़ती। और ज्यादा से ज्यादा अगर उसे कुछ दिखाई पड़ता है तो इतना ही दिखाई पड़ता है कि आप बेहोश हो, और बेहोश आदमी को क्या गलत ठहराना। बेहोश आदमी जो भी करता है, गलत होता है, लेकिन होश वाला आदमी बेहोश आदमी को क्या गलत ठहराए!!

बहुत मजेदार घटनाएं घटती हैं, और होश वाले आदमियों ने अपने संस्मरण नहीं लिखे, वे लिखें तो बड़े अदभुत होंगे। बेहोश आदमियों के बीच जीना होश वाले आदमी को इतना स्ट्रेंज मामला है, इतना विचित्र है, लेकिन किसी ने अपना संस्मरण लिखाया नहीं क्योंकि आप उस पर भरोसा न कर सकेंगे कि ऐसा हो सकता है। ऐसे ही जैसे आपको एक पागलखाने में बंद कर दिया जाए और आप पागल न हों, तब जो जो घटनाएं आपके जीवन में घटेंगी उनसे विचित्र घटनाएं कहीं भी नहीं घट सकतीं। और अगर आप बाहर आकर कहेंगे तो कोई भरोसा नहीं कर सकता कि ऐसा हो सकता है। पागल भरोसा नहीं करेंगे क्योंकि वे पागल हैं। गैर पागल भरोसा नहीं करेंगे क्योंकि उन्हें पागलों का कोई पता नहीं। और आप दोनों हालत में रह लिए, आप पागल नहीं थे और पागलों के बीच में रहे।

एक वृद्ध साधक-सरल, सीधे आदमी हैं। कोई सोच भी नहीं सकता कि उनमें कहीं कोई पतें दबी होंगी, सबके भीतर पतें दबी हैं। वे गहरे ध्यान में अभी आजोल आश्रम में थे। एक दिन ध्यान में अच्छी गहराई में गए, और गहराई में गए इसीलिए यह घटना घटी, नहीं तो घटती नहीं; अन्यथा सीधा-सादापन था। उन्होंने आनंद मधु को बाहर निकल कर सुबह कहा कि मैं इसी वक्त बंबई जा रहा हूं। मुझे रजनीश की आज ही हत्या कर देनी है। मेरा उनसे इस जन्म में कोई संबंध नहीं, सिवाय इसके कि उन्होंने मुझसे संन्यास लिया है। वह भी एक क्षणभर का मिलना हुआ, इससे ज्यादा कोई संबंध नहीं। पिछले जन्मों को याद करने की मैंने बहुत कोशिश की, कोई याद नहीं पड़ता है कि उनसे मेरा कोई संबंध रहा हो। शांत, सीधे आदमी हैं। समस्त जीवन को छोड़ कर साधना की दिशा में गए, और गहरे गए, इसलिए यह घटना घटी। नहीं तो ऊपर से तो शांत, सीधे हैं। तो क्या हुआ? मधु परेशान हुई। वे एकदम तैयार हैं, हत्या करने जाना है। सामने ही मेरा चित्र रखा था, वह चित्र उसने सामने रख दिया और कहा--पहले इसे फाड़ डालें, पहले इस चित्र की हत्या कर दें फिर आप जाएं। चित्त दूसरे किनारे पर तत्काल चला गया, वे बेहोश होकर गिर पड़े। रोए, पछताए। कुछ किया नहीं है अभी, वह चित्र भी नहीं फाड़ा।

गहरे तल पर कहीं हिंसा का कोई आवरण सबके भीतर है। तो जितने गहरे जाएंगे, उतना हिंसा का आवरण मिलेगा। और हिंसा जब शुद्ध प्रकट होती है तो अकारण प्रकट होती है। अशुद्ध हिंसा है जो कारण खोज कर प्रकट होती है। अकारण मैं कहता हूं जब आप कारण खोज कर क्रोधित होते हैं, तो उसका मतलब है क्रोध

अभी बहुत गहरे तल पर नहीं है आपके। जब गहरे तल पर क्रोध होता है, तब आप अकारण क्रोधित होते हैं। अभी तो कारण मिलता है तब क्रोधित होते हैं, तब आप क्रोधित होते हैं इसलिए फौरन कारण खोजते हैं। गहरी पर्तें हैं।

अभी एक युवक मेरे पास अपनी हिंसा पर प्रयोग कर रहा था। अब हर भाव की सात पर्तें होती हैं मनुष्य के भीतर सात शरीरों की पर्तें होती हैं--सेवन बॉडीज की, वैसे हर भाव की सात पर्तें होती हैं। ऊपर से गाली दे लेते हैं, ऊपर से पश्चात्ताप कर लेते हैं, इससे कुछ नहीं हो जाता है। भीतर की पर्तें वैसी की वैसी बनी रहती हैं--सुरक्षिता और जितने गहरे उतरते हैं उतने अकारण भाव प्रकट होने शुरू होते हैं। जब गहरी सातवीं पर्त पर पहुंचते हैं तो कोई कारण नहीं रह जाता।

उस युवक को हिंसा ही तकलीफ थी। अपने पिता की हत्या करने का ख्याल है, अपनी मां की हत्या करने का ख्याल है। अब मैं जानता था जो अपनी मां और पिता की हत्या करने के ख्याल से भरा है, अगर वह मेरा शिष्य बना तो मैं फादर इमेज हो जाऊंगा। आज नहीं कल वह मेरी हत्या करने के ख्याल से भरेगा। क्योंकि गुरु को भक्तों ने जब कहा है कि गुरु पिता है और गुरु माता है और गुरु ब्रह्म है, अकारण नहीं कहा है। फादर इमेज, गुरु जो है। जब एक व्यक्ति किसी के चरणों में सिर रखता है और उसे गुरु मान लेता है, तो वही पिता हो गया, वही मां हो गया। लेकिन ध्यान रहे, पिता के प्रति उसके जो ख्याल थे वही अब इस पर आरोपित होंगे। उसका, जिन्होंने कहा है--तुम पिता हो, तुम माता हो उन्हें कुछ पता नहीं। जब एक आदमी मुझसे आकर कहता है कि आप ही माता, आप ही पिता, आप ही ब्रह्म, आप ही सब कुछ; तब मैं जानता हूं, अब मैं फंसा।

फंसा इसलिए कि अब तक इसकी जितनी भी धारणाएं थीं, अब मेरी तरफ होंगी। इसको कोई भी पता नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं--पागलखाने में होने का अनुभव कैसा होता है, इसको कुछ भी पता नहीं। यह तो बहुत सदभाव से कह रहा है, बहुत आनंदभाव से, अहोभाव से। इसमें क्या बुराई हो सकती है। कितनी श्रद्धा से साष्टांग वह युवक मेरे चरणों में पड़ा है और कहता है कि आप ही सब कुछ हैं। लेकिन कल ही वह मुझे सब बता कर के गया है कि वह पिता की हत्या करना चाहता है। मैं जानता हूं आज नहीं कल...। अभी कल मुझे एक मित्र ने आकर खबर दी कि वह कहता है कि मेरी हत्या कर देगा। तो वे घबड़ा गए--जिनको खबर मिली वे। उन्होंने कहा कि यह क्या मामला है, पागलों के बीच रहने का?

एक और मजेदार घटना अभी घट रही है, तो आपको कहूं। एक युवती मेरे पास ध्यान कर रही थी--और यह घटना इतनी महिलाओं को घटी है कि कह देना अच्छा होगा क्योंकि कहीं न कहीं इस संबंध में खबर पहुंचेगी। और पागल आपको कोई खबर दें तो आप भी उतने ही पागल होने से जल्दी भरोसा कर लेते हैं, पकड़ लेते हैं। अब एक महिला दिल्ली में रहती है, वह मुझे वहां से लिखती है कि रात दो बजे, रात आप सशरीर मुझसे संभोग करते हैं, दिल्ली में आकर, ठीक है! दिल्ली में रहती है, इसलिए कोई झंझट नहीं है, इसलिए कोई अड़चन नहीं है।

एक महिला ने मुझे आकर कहा कि मुझे पक्का स्मरण आने लगा है कि मैं पिछले जन्म की आपकी पत्नी हूं। मैंने कहा: होगा, अब इसमें छिपाने जैसी बात नहीं है, बड़े गौरव की बात है। तो जाकर उसने और को बताया, उसने दूसरी महिला को बताया। यह महिला तो ग्रामीण है, ज्यादा समझदार नहीं है, भोली-भाली है। जिसको बताया वह तो यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट है, पढ़ी लिखी महिला है, बड़े परिवार की है। वह महिला मेरे पास आई और उसने कहा कि यह क्या नासमझी की बात कर रही है, वह औरत। यह नहीं हो सकता, यह बिल्कुल गलत है। तो मैंने कहा कि तुमने ठीक सोचा, उसे समझा देना।

उसने कहा: मैंने उसे समझाया, लेकिन वह मानने को राजी नहीं है। वह कहती है मुझे पक्का भरोसा है, मुझे स्मरण है। मैंने उसे बहुत समझाया, उस दूसरी स्त्री ने मुझे कहा--लेकिन वह मानने को राजी नहीं है। लेकिन यह बात गलत है, यह प्रचलित नहीं होनी चाहिए। भूल से मैंने एक बात पूछ ली उससे, तो बड़ी मुश्किल हो

गई। भूल से मैंने उस स्त्री से पूछा कि मान लो वह मानने को राजी नहीं होती तो तेरा क्या पक्का प्रमाण है कि वह गलत कहती है। वह बोली--इसलिए कि पिछले जन्म में तो मैं आपकी औरत थी। इसलिए दो दो कैसे हो सकती हैं। अब कुछ कहने का मामला ही न रहा, अब बात ही खत्म हो गई। अब इससे बड़ा प्रमाण हो भी क्या सकता है? पागलों के बीच बड़ा मुश्किल है, बड़ा मुश्किल है, अत्यंत कठिन है।

तो मैंने कहा--वह स्त्री तो दिल्ली में है, इसलिए कोई दिक्कत नहीं है। अभी एक अमरीकन लड़की मेरे पास ध्यान कर रही थी दो महीने से। उसने मुझे चार-छह महीने के बाद कहा कि जब आपके पास आकर बैठती हूं, आंखें बंद करती हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि आप मुझसे संभोग कर रहे हैं। मैंने कहा: कोई फिकर न करो, संभोग का जो भाव आए, उसको भी भीतर ले जाने की कोशिश करो। वह जो ऊर्जा उठे, उसको भी ऊपर की यात्रा पर ले जाओ। तो उसने मुझसे कहा कि आप मुझे हर दो दिन में कम से कम दस-दस मिनट पास बैठने का मौका दे दें, क्योंकि यह इतना रसपूर्ण है कि संभोग में भी मुझे रस चला गया।

मेरे सामने दो ही विकल्प हैं, या तो मैं उसको इनकार कर दूं, क्योंकि यह खतरा मोल लेना है। लेकिन यह भी मैं देख रहा हूं कि उसको इनकार करना भी गलत है क्योंकि उसे सच में ही परिवर्तन हो रहा है। और अगर संभोग अंतर्मुखी हो जाए तो बड़ी क्रांति घटित होती है।

वह दो महीने मेरे पास प्रयोग करती थी, लेकिन मैंने उससे कहा, ध्यान रखना, इन दो महीने में भूल कर भी शारीरिक संभोग मत करना। वह अपने पति के साथ है। मैंने पूछा कि कितने संभोग करती हो? उसने कहा: सप्ताह में कम से कम दो-तीन, इससे कम में तो नहीं चल सकता। वह पति तो मानने को राजी नहीं है। तो मैंने कहा कि संभोग चल रहा है, वहां तक तो ठीक है, कल तू गर्भवती हो जाए तो मैं जिम्मेवार न हो जाऊं! यह होने वाला है। उसने कहा: नहीं, यह कैसी बात?

और यही हुआ। अभी कल मुझे किसी ने आकर खबर दी कि उसका पति कहता है कि वह मुझसे गर्भवती हो गई है। ये बड़े मजे की बातें हैं। लेकिन पागलों के बीच जीना भी बड़ा कठिन है। उनके बीच जीना अति कठिन है। इतनी भीड़ है उनकी। पर उनको मैं गलत नहीं कहता। उनको मैं गलत नहीं कहता।

गलत वे नहीं हैं, सिर्फ बेहोश हैं। वे क्या कर रहे हैं, उन्हें पता नहीं है, वे क्या कर रहे हैं, उन्हें पता नहीं। क्या हो रहा है, वह उन्हें पता नहीं। वे क्या प्रोजेक्ट कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, क्या मान रहे हैं, इसका उन्हें कोई पता नहीं है। तो वे बिल्कुल बेहोश हैं। वह युवती मेरे एक मित्र के घर में ठहरी तो मुझे दूसरे मित्रों ने कहा कि निकलवाओ वहां से। मैंने कहा: यह तो सवाल ही नहीं है। अभी तो वह और मुसीबत में है, उसे वहां से निकलवाना ठीक नहीं है, उसे वहां रहने दो। तकलीफ होगी। उसे वहां रहने दो। किसी ने कहा: पुलिस को दे देना चाहिए। मैंने कहा: यह बिल्कुल पागलपन की बात है। पुलिस क्या करेगी? पुलिस का क्या लेना-देना है उस बात से? अब वह जो युवक कहता फिरता है कि मेरी हत्या कर दें, अगर वह कल मेरी हत्या कर दे तो भी गलत नहीं है। तो भी गलत नहीं है। सिर्फ बेहोश है, सोया हुआ है। और वह सोने में जो भी कर सकता था, कर रहा है।

ध्यान रहे, हमारे चित्त की दो दशाएं हैं--एक सोई हुई चेतना है हमारी और एक जाग्रत चेतना है। प्रायश्चित्त जाग्रत चेतना का लक्षण है, पश्चात्ताप सोई हुई चेतना का लक्षण है। यह युवक कल आकर मुझसे माफी मांग जाएगा, इसका कोई मतलब नहीं है। आज जो कह रहा है उसका भी कोई मतलब नहीं है, कल यह माफी मांग जाएगा उसका भी कोई मतलब नहीं है। इससे कोई संबंध नहीं है। यह माफी मांगना भी उसी नींद से आ रहा है, यह क्रोध भी उसी नींद से आ रहा है। यह स्त्री गर्भवती समझ रही है मेरे द्वारा हो गई। यह जिस नींद से आ रहा है, कल उसी नींद से कुछ और भी आ सकता है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। गलत, सही इसमें चुनाव नहीं है, ये सिर्फ सोए हुए लोग हैं। और सोया हुआ आदमी जो कर सकता है, वह कर रहा है।

अभी सोए हुए आदमी के प्रति पश्चात्ताप की शिक्षा से कुछ भी न होगा। इसे स्मरण दिलाना जरूरी है कि यह सवाल नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो, सवाल यह है कि तुम क्या हो? तुम भीतर क्या हो, तुम उसी को

बाहर फैलाए चले जाते हो। और वही तुम देखने लगते हो। और जितना कोई गहरा उतरेगा उतनी ही अकारण भावनाएं प्रक्षिप्त होती हैं और सजीव और साकार मालूम होने लगती हैं। और जब वह साकार मालूम होने लगती हैं तो फिर ठीक हैं, जो हम देखना चाहते हैं वह हम देख लेते हैं। ध्यान रहे, हम वह नहीं देखते जो है, हम वह देख लेते हैं जो हम देखना चाहते हैं या देख सकते हैं। ध्यान रहे, हम वह नहीं सुनते जो कहा जाता है, हम वह सुन लेते हैं जो हम सुनना चाहते हैं, या हम सुन सकते हैं। हम चुनाव कर रहे हैं। जिंदगी अनंत है, उसमें से हम चुनाव कर रहे हैं। हम भी अनंत हैं, उसमें से भी हम चुनाव कर रहे हैं। कभी हम चुन लेते हैं क्रोध करने की वृत्ति; कभी चुन लेते हैं पश्चात्ताप की वृत्ति, कभी घृणा की, कभी प्रेम की, और हम दोनों हालत में सोए आदमी हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

एक रात जोर से शराबघर के मालिक की टेलीफोन की घंटी बजने लगी—दो बजे रात, गुस्से में परेशान, नींद टूट गई। घंटी उठाई, फोन उठाया। पूछा, कौन है? उसने कहा: मुल्ला नसरुद्दीन। क्या चाहते हो दो बजे रात? उसने कहा: मैं यही पूछना चाहता हूं कि शराब घर खुलेगा कब? व्हेन डू यू ओपन। उसने कहा: यह भी कोई बात है, तू रोज का ग्राहक। दस बजे सुबह खुलता है, यह भी दो बजे रात फोन करके पूछने की कोई जरूरत है? वह गुस्से में फोन पटक कर फिर सो गया।

चार बजे फिर फोन की घंटी बजी। उठाया। कौन है? उसने कहा: मुल्ला नसरुद्दीन। कब तक खोलोगे दरवाजे? मालिक ने कहा: मालूम होता है तू ज्यादा पी गया है या पागल हो गया है। अभी चार ही बजे हैं, दस बजे खुलने वाला है। अगर तू दस बजे आया भी तो तुझे घुसने नहीं दूंगा। आई विल नॉट अलाउ यू इन। मुल्ला ने कहा: हू वांट्स टु कम इन। आई वांट टु गो आउट। मैं तो भीतर बंद हूं। और खोलो जल्दी, नहीं तो मैं पीता चला जा रहा हूं। अभी तो मुझे पता चल रहा है कि बाहर भीतर में फर्क है। थोड़ी देर में वह भी पता नहीं चलेगा। अभी तो मुझे फोन नंबर याद है। थोड़ी देर में वह भी नहीं रहेगा। अभी तो मैं बता सकता हूं, मैं मुल्ला नसरुद्दीन हूं। थोड़ी देर में वह भी नहीं बता सकूंगा। जल्दी खोलो।

हम सब ऐसी तंद्रा में हैं, जहां पता भी नहीं चलता कि बाहर क्या है, भीतर क्या है। मैं कौन हूं, यह भी पता नहीं चलता। कहां जाना चाह रहे हैं, यह भी पता नहीं चलता। कहां से आ रहे हैं, यह भी पता नहीं चलता। क्या प्रयोजन है, किसलिए जी रहे हैं? कुछ पता नहीं चलता है। एक बेहोशी है—एक गहरी बेहोशी। उस बेहोशी में हाथ पैर मारे चले जाते हैं। उस हाथ पैर मारने को हम कर्म कहते हैं। कभी किसी को गलत लग जाता है तो माफी मांग लेते हैं; कभी किसी को लगने से कोई प्रसन्न हो जाता है तो कहते हैं—प्रेम कर रहे हैं। कभी लग जाता है, चोट खा जाता है, वह आदमी नाराज हो जाता है तो कह देते हैं—माफ करना, गलती हो गई। हाथ वही है, अंधेरे में मारे जा रहे हैं। कभी ठीक, कभी गलत, ऐसा लगता मालूम पड़ता है, लेकिन हाथ बेहोश हैं, वे सदा ही गलत हैं।

प्रायश्चित्त में उतरना हो तो जान लेना कि मैं गलत हूं; मैं सोया हुआ हूं। गलत का मतलब, सोया हुआ हूं, बेहोश हूं। मुझे कुछ भी पता नहीं है कि मेरे पैर कहां पड़ रहे हैं, क्यों पड़ रहे हैं। आ पको पता है, आप क्या कर रहे हैं? कभी एक दफा झकझोर कर अपने को खड़े होकर आपने सोचा है दो मिनट कि क्या कर रहे हैं इस जिंदगी में आप? यह क्या हो रहा है आपसे? इसीलिए आए हैं? यही है अर्थ? अगर जोर से झकझोरा तो एक सेकंड के लिए आपको लगेगा कि सारी जिंदगी व्यर्थ मालूम पड़ती है।

प्रायश्चित्त में वही उतर सकता है जो अपने को झकझोर कर पूछ सके कि क्या है अर्थ? इस जिंदगी का मतलब क्या है जो मैं जी रहा हूं? यह सुबह से शाम तक का चक्कर; यह क्रोध और घृणा का चक्कर; यह प्रेम और घृणा का चक्कर; यह क्षमा और दुश्मनी का चक्कर यह सब क्या है? यह धन और यह यश और यह अहंकार और यह पद और मर्यादा, यह सब क्या है? इसमें कोई अर्थ है? कि मैंने जो कुछ भी किया है इसमें मैं किसी तरफ बढ़

रहा हूं, कहीं पहुंच रहा हूं? कोई यात्रा हो रही है? कोई मंजिल करीब आती मालूम पड़ रही है? या मैं चक्कर की तरफ घूम रहा हूं? इन छह बाह्य-तपों के बाद यह आसान हो जाएगा। संलीनता के बाद यह आसान हो जाता है कि जब आपकी शक्ति आपके भीतर बैठ गई है, तब आप झकझोर सकते हैं और पूछ सकते हैं उसको जगा कर कि यह मैं क्या कर रहा हूं? यह ठीक है? यही है? यह कर लेने से मैं तृप्त हो जाऊंगा, संतुष्ट हो जाऊंगा?

आप मर जाएंगे, आपको लगता है--जब तक जीते हैं--बड़ी जगह खाली हो जाएगी। कितने काम बंद हो जाएंगे! कितना विराट चक्कर आप चला रहे थे, लेकिन कब्रिस्तान भरे पड़े हुए हैं, ऐसे लोगों से जो सोचते थे कि उनके बिना दुनिया न चलेगी। दुनिया ही न चलेगी, सब शांत, चांद सूरज सब रुक जाएंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ने पूछा है कि अगर दुनिया मिट जाए तो तुम्हारा क्या ख्याल है? तो उसने पूछा कि कौन सी दुनिया? दो तरह से दुनिया मिटती है। उस आदमी ने कहा, हद हो गई! यह कोई नया सिद्धांत निकाला है तुमने? दुनिया एक ही तरह से मिट सकती है। नसरुद्दीन ने कहा: दो तरह से मिटेगी--एक दिन, जिस दिन मैं मरूंगा, दुनिया मिटेगी। और एक दुनिया मिट जाए, वह दूसरा ढंग है।

हम सब यही सोच रहे हैं कि जिस दिन मैं मरूंगा, दुनिया मिट जाएगी।

मुल्ला मर गया, उसे लोग कब्र में विदा करके वापस लौट रहे हैं। तो रास्ते पर एक अजनबी मिला है और उस अजनबी ने पूछा कि वॉट वा.ज द कम्प्लेंट? मर गया नसरुद्दीन, तकलीफ क्या थी? शिकायत क्या थी? जिस आदमी से पूछा, उसने कहा: देयर वा.ज नो कम्प्लेंट, देयर इ.ज नो कम्प्लेंट। एवरीवन इ.ज कम्प्लीटली, थारोली सैटिस्फाइड। कोई शिकायत नहीं है। सब संतुष्ट हैं। मर गया, अच्छा हुआ। गांव का उपद्रव छूटा।

नसरुद्दीन ऐसा नहीं सोच सकता था कभी। वह तो कह रहा था, एक दफा दुनिया तब मरेगी, जब मैं मरूंगा। प्रलय तो हो गई असली, जिस दिन मैं मर गया।

हम सब जो कर रहे हैं, सोच रहे हैं, उस करने में कोई बड़ा भारी प्राण है, कोई बहुत बड़ा अर्थ है--पानी पर लकीरें खींच रहे हैं और सोच रहे हैं; रेत पर नाम लिख रहे हैं और सोच रहे हैं; का गजों के महल बना रहे हैं और सोच रहे हैं। खो जाते हैं आप किसी को पता भी नहीं चलता कि कब खो गए। मिट जाते हैं आप किसी को पता भी नहीं चलता कि कब मिट गए। संलीनता के बाद साधक अपने भीतर रुककर पूछे कि मैं जो कर रहा हूं इसका कोई भी अर्थ है? मैं जो हूं इसका कोई अर्थ है? मैं कल मिट जाऊंगा, एवरीवन विल बी कम्प्लीटली सैटिस्फाइड, सब लोग संतुष्ट होंगे।

एक दफा दिल्ली में एक सर्कस के दो शेर छूट गए। भागे तो रास्ते पर साथ छूट गया। सात दिन बाद मिले तो एक तो सात दिन से भूखा था, बहुत परेशान था, एक पुलिया के नीचे छिपा रहा था। कुछ नहीं मिला उसको, खाने को भी कुछ नहीं मिला, परेशान हो गया। और छिपे-छिपे जान निकल गई। दूसरा लेकिन तगड़ा, स्वस्थ दिखाई पड़ रहा था, मजबूत दिखाई पड़ रहा था। पहले सिंह ने पूछा कि मैं तो बड़ी मुसीबत में दिन गुजार रहा हूं। किसी तरह सर्कस वापस पहुंच जाऊं, इसका ही रास्ता खोज रहा हूं। वह रास्ता भी नहीं मिल रहा है। मर गए, सात दिन भूखे रहे। तुम तो बड़े प्रसन्न, ताजे और स्वस्थ दिखाई पड़ रहे हो। कहां छिपे रहे?

उसने कहा: मैं तो पार्लियामेंट हाउस में छिपा था।

खतरनाक जगह तुम गए? वहां इतना पुलिस का पहरा है, वहां भोजन कैसे मिला?

उसने कहा: "मैं रोज एक मिनिस्टर को प्राप्त करता रहा।

यह तो बहुत डेंजरस काम है। फंस जाओगे।

तो उसने कहा कि नहीं, जैसे ही मिनिस्टर नदारद होता है, एवरीवन इ.ज कम्प्लीटली सैटिस्फाइड। कोई झंझट नहीं होती है। नो वन लिसिन्स हिम। कोई कभी भी अनुभव नहीं करता। वह जगह इतनी बढ़िया है कि वहां जितने लोग हैं, किसी को भी प्राप्त कर जाओ, बाकी लोग प्रसन्न होते हैं। तुम भी वहीं चले चलो। वहां अपने

दो क्या पूरे सर्कस के सब शेर आ जाएं तो भी भोजन है और काफी दिन तक रहेगा क्योंकि भोजन खुद पार्लियामेंट हाउस में आने को उत्सुक है, पूरे मुल्क से भोजन आता ही रहेगा। इधर हम कितना ही कम करें, भोजन खुद उत्सुक है। खर्च करके परेशानी उठा कर आता रहेगा। भोजन, उनके लिए भोजन ही है जिनको आप एम.पी. वगैरह कहते हैं। भोजन हैं। पार्लियामेंट हाउस में तस्वीरें लटक रही हैं उन सब लोगों की जो सोचते हैं उनके बिना दुनिया रुक जाएगी, चांद-तारे गति बंद कर देंगे। कुछ नहीं रुकता। कुछ पता ही नहीं चलता इस जगत में आप कब खो जाते हैं।

निश्चित ही आपके किए हुए का कोई भी मूल्य नहीं है, जिसका पता चलता हो। पर दूसरे के लिए मूल्य हो या न हो, यह पूछना साधक के लिए जरूरी है कि मेरे लिए कोई मूल्य है? यह जो कुछ भी कर रहा हूं, इसकी क्या आंतरिक अर्थवत्ता है? वॉट इज इट्स इनर सिग्निफिकेंस? इसकी महत्ता और गरिमा क्या है भीतर? यह ख्याल आ जाए तो आप प्रायश्चित्त की दुनिया में प्रवेश करेंगे।

प्रायश्चित्त की दुनिया क्या है, यह मैं आपसे कहूं। प्रायश्चित्त की दुनिया यह है कि मैं जैसा भी हूं, सोया हुआ हूं, मैं अपने को जगाने का निर्णय लेता हूं। प्रायश्चित्त जागरण का संकल्प है। पश्चात्ताप, सोए में की गई गलतियों का सोए में ही क्षमा याचना है, क्षमा मांगना है। प्रायश्चित्त सोए हुए व्यक्तित्व को जगाने का निर्णय है, संकल्प है। मैंने जो भी किया है आज तक, वह गलत था क्योंकि मैं गलत हूं। अब मैं अपने को बदलता हूं--कर्मों को नहीं, एक्शन को नहीं, बीइंग को। अब मैं अपने को बदलता हूं, अब मैं दूसरा होने की कोशिश करता हूं। क्या प्रायश्चित्त का यह अर्थ आपके ख्याल में आता है? यह ख्याल में आए तो आप साधक बन जाएंगे। यह ख्याल में न आए तो आप साधारण गृहस्थ होंगे। पश्चात्ताप करते रहेंगे और वही काम दोहराते रहेंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर के लोगों ने यह देख कर कि इसके तर्क बड़े पागल होते जा रहे हैं, कुछ अजीब बातें कहता है। कहता है लॉजिकल, कहता तर्कयुक्त है। पागल का भी अपना लाजिक होता है। ध्यान रहे, कई दफे तो पागल बड़े लॉजिशियन होते हैं। बड़े तर्कयुक्त होते हैं। अगर आपने किसी पागल से तर्क किया है तो एक बात पक्की है--एक बात पक्की है कि आप उसे कनर्विस न कर पाएंगे। इस बात की संभावना है कि वह आपको कनर्विस कर ले। मगर इसकी कोई संभावना नहीं कि आप उसको कनर्विस कर पाएं। क्योंकि पागल का तर्क एक्सल्यूट होता है, पूर्ण होता है।

मुल्ला के तर्क ऐसे होते जा रहे हैं कि घर के लोग, मित्र, परेशान हो गए हैं। एक दिन मुल्ला गांव के धर्मशास्त्री से बात कर रहा है। धर्मशास्त्री ने कहा: कोई सत्य ऐसा नहीं है जिसे हम पूर्णता से घोषणा कर सकें। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि जो आप कह रहे हैं क्या यह पूर्ण सत्य है? उसने कहा: निश्चित, डेफिनेटली। मुल्ला ने कहा: सब गड़बड़ हो गया। आप यह कह रहे हैं--"किसी सत्य को हम पूर्णता से घोषित नहीं कर सकते और अब आप ही कह रहे हैं--"यह सत्य पूर्ण है"।

मुल्ला को मनोचिकित्सक के पास ले जाया गया क्योंकि गांवभर परेशान हो गया है उसके तर्कों से। मनोचिकित्सक ने सालभर इलाज किया। कहते हैं कि साल भर में मुल्ला ठीक हो गया। जिस दिन मुल्ला ठीक हुआ, मनोचिकित्सक ने बड़ी खुशी मनाई। और उसने कहा: आज तुम ठीक हो गए हो, यह मेरी बड़ी सफलता है क्योंकि तुम जैसे आदमी को ठीक करना असंभव कार्य था। इस जिंदगी में किसी को ठीक न किया तो चलेगा। चलो इस खुशी में हम बाहर चलें--फूल खिले हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं, सूरज निकला है, सुबह सुंदर है--इस खुशी में हम थोड़ा पहाड़ की तरफ चलें।

वे दोनों पहाड़ की तरफ गए। मुल्ला हांफने लगा, और चिकित्सक है कि भागा चला जा रहा है तेजी से। आखिर मुल्ला ने कहा कि रुको भई। बहुत हो गया। अगर हमारा दिमाग खराब होता तो हम तुम्हारे साथ दौड़ भी लेते। लेकिन अब ठीक हो गया हूं। तुम्हीं कहते हो, तो अब इतना ज्यादा नहीं। तो उस चिकित्सक ने कहा: मील के पत्थर को देखो, कितने दूर आए। अभी कोई ज्यादा दूर नहीं आए। मुल्ला ने देखा और कहा: दस मील। उस चिकित्सक ने कहा: इट इज नॉट सो बैड। टु ईच इट कम्स टु ओनली फाइव माइल्स। पांच मील हमको,

पांच मील तुमको। लौटने में ज्यादा दिक्कत नहीं है। मतलब यह है कि नसरुद्दीन तो ठीक हो गए, साल भर में चिकित्सक पागल हो गया। दस मील है लौटना, कोई हर्जा नहीं, पांच-पांच मील पड़ता है एक-एक के हिस्से में। ज्यादा बुरा नहीं है।

पागल को राजी करना मुश्किल है। संभावना यही है कि पागल आपको राजी कर ले। क्योंकि पागल पूरा अपनी तरफ तर्क का जाल बनाकर रखता है। री.जन्स नहीं हैं वे, रेशनेलाइजेशन हैं, तर्काभास हैं। तर्क नहीं हैं वे, तर्काभास हैं। लेकिन वह बना कर रखता है।

रूजवेल्ट की पत्नी ने एक संस्मरण लिखा है, इलनौर रूजवेल्ट ने। रूजवेल्ट राष्ट्रपति हुआ उसके पहले गवर्नर था अमरीका के एक राज्य में। गवर्नर की पत्नी होने की हैसियत से इलनौर रूजवेल्ट एक दिन पागलखाने के निरीक्षण को गई। एक आदमी ने दरवाजे पर उसका स्वागत किया। उसने समझा कि वह सुपरिन्टेंडेंट है। वह आदमी उसे ले गया। उसने तीन घंटे पागलखाने के एक-एक पागल के संबंध में जो केस, हिस्ट्री, जो ब्योरा दिया, विवरण दिया, इलनौर हैरान हो गई। उसने चलते वक्त उससे कहा कि तुम आश्चर्यजनक हो--तुम्हारी जानकारी, पागलपन के संबंध में तुम्हारा अनुभव, तुम्हारा अध्ययन। तुम जितने बुद्धिमान आदमी से मैं कभी मिली नहीं।

उस आदमी ने कहा: माफ करिए, आप कुछ गलती में हैं। आई एम नॉट ए सुपरिन्टेंडेंट, आई एम वन ऑफ इन्मेड्स। मैं कोई सुपरिन्टेंडेंट नहीं। सुपरिन्टेंडेंट आज बाहर गया है। मैं तो इसी पागलखाने में एक पागल हूं।

इलनौर ने कहा: तुम और पागल! तुम जैसा स्वस्थ आदमी मैंने नहीं देखा। किसने तुम्हें पागल किया है?

उसने कहा: यही तो मैं समझा रहा हूं, आज सात साल हो गए समझाते, लेकिन कोई सुनता नहीं। कोई मानने को राजी नहीं। अब कोई पागल कहे, मैं पागल नहीं, कौन मानने को राजी है। सुपरिन्टेंडेंट कहता है कि सभी पागल यही कहते हैं कि हम पागल नहीं हैं। इसमें क्या खास बात है?

रूजवेल्ट की पत्नी ने कहा: यह तो बहुत बुरा मामला है। तुम घबड़ाओ मत, मैं जाकर गवर्नर को आज ही कहूंगी, कल ही तुम्हारी छुट्टी हो जाएगी। तुम एकदम स्वस्थ आदमी हो साधारण नहीं, असाधारण रूप से बुद्धिमान आदमी हो। तुमको कौन पागल कहता है? अगर तुम पागल हो तो हम सब पागल हैं।

पागल ने कहा: यही तो मैं समझाता हूं, लेकिन कोई मानता नहीं।

इलनौर ने कहा कि तुम बिल्कुल बेफिकर रहो। मैं आज ही जाकर बात करती हूं। कल सुबह ही तुम मुक्त हो जाओगे। नमस्कार करके, धन्यवाद देकर इलनौर मुड़ी, उस पागल ने उचक कर जोर से लात मारी इलनौर की पीठ पर। सात-आठ सीढ़ियां वह नीचे धड़ाम से जाकर गिरी। बहुत घबड़ा कर उठी।

उसने कहा: तुमने यह क्या किया? यह तुमने किया क्या?

उस पागल ने कहा: जस्ट टु रिमाइंड यू। भूल मत जाना। गवर्नर को कह देना कि कल सुबह... जस्ट टु रिमाइंड यू।

मगर वह तीन घंटे पर पानी फिर गया। तो तीन घंटे जो वह बोल रहा था, उसमें क्या वह ठीक बोल सकता है? सवाल यह है। क्या उस तीन घंटे में वह ठीक बोल सकता है? नहीं, वह ठीक बोलने का सिर्फ आभास पैदा कर सकता है--आभास, फैलिसी। तर्काभास पैदा कर सकता है। लेकिन असलियत यह नहीं हो सकती कि जो वह बोल रहा है वह ठीक हो। ऐसा दिखाई पड़ सकता है कि बिल्कुल ठीक है। आप पकड़ न पाएं कि उसमें गलती कहां है, यह दूसरी बात है। लेकिन कोई न कोई घड़ी वह प्रकट कर देगा।

सोया हुआ आदमी भी इसी तरह कर रहा है। दिनभर बिल्कुल ठीक है, जरा क्रोध नहीं कर रहा है। अचानक एक रसीद कर देता है चांटा अपने लड़के को कि तू देर से क्यों आया? आप नहीं समझते, आप कहते हैं यह आदमी बिल्कुल ठीक है, बाकी वक्त तो ठीक ही रहता है। यह इसका चांटा बताता है कि बाकी वक्त यह सिर्फ तर्काभास पैदा करता है। यह ठीक नहीं रहता, यह ठीक रह नहीं सकता। क्योंकि उस ठीक आदमी से जो यह निकल रहा है, यह निकल नहीं सकता। एक आदमी एकदम छाती में छुरा मार देता है, किसी को हम कहते

हैं कल तक बिल्कुल भला आदमी था--एकदम भला आदमी था। माना कि बिल्कुल भला था, लेकिन वह आभास था। सोया हुआ आदमी अच्छे का सिर्फ आभास पैदा करता है। बुरा होना उसकी नियति है। वह उससे प्रकट होगा ही। क्षण दो क्षण रोक सकता है, इधर-उधर डांवाडोल कर सकता है, लेकिन वह उससे प्रकट होगा ही।

क्या आपको पता है कि आप अपने को पूरे वक्त सम्हाल कर चलते हैं? जो आपके भीतर है उसको दबा कर चलते हैं? जो आप कहना चाहते हैं वह नहीं कहते, कुछ और कहते हैं। जो आप बताना चाहते हैं नहीं बताते, कुछ और बताते हैं। लेकिन कभी-कभी वह उभर जाता है। हवा का कोई झोंका और कपड़ा उठ जाता है, भीतर जो है वह दिख जाता है, कोई परिस्थिति। तब आप कहते हैं, यह कर्म की भूल है, परिस्थिति की नहीं। परिस्थिति ने तो केवल अवसर दिया है कि आपके भीतर जो आप छिपा-छिपा कर चल रहे थे वह प्रकट हो गया।

प्रायश्चित्त तब शुरू होगा जब आप जैसे हैं, अपने को वैसा जानें। छिपाएं मत, ढांके मत, तो आप पाएंगे, आप उबलते हुए लावा हैं, ज्वालामुखी हैं। ये सब बहाने हैं आपके, ये टीम-टाम हैं। ये ऊपर से चिपकाए हुए पलस्तर हैं, ये बहुत पतले हैं। यह सिर्फ दिखावा है। इस दिखावे के भीतर जो आप हैं, उसको आप स्वीकार करें।

प्रायश्चित्त का पहला सूत्र--जो आप हैं--बुरे भले, निंदा-योग्य, पापी, बेईमान--एक्सेप्ट इट। आप ऐसे हैं। तथ्य की स्वीकृति प्रायश्चित्त है। तथ्य गलती से हो गया, इसको पोंछ देना पश्चात्ताप है। तथ्य हुआ, होता ही है मुझसे; जैसा मैं आदमी हूं, यही मुझसे होता--इसकी स्वीकृति प्रायश्चित्त का प्रारंभ है। स्वीकार, और पूर्ण स्वीकार, कहीं भी कोई चुनाव नहीं। क्योंकि चुनाव आपने किया तो आप बदलते रहेंगे। आज यह, कल वह, परसों वह, आपकी बदलाहट जारी रहेगी। प्रायश्चित्त पूर्ण स्वीकार है, मैं ऐसा हूं। मैं चोर हूं, तो मैं चोर हूं। मैं बेईमान हूं तो मैं बेईमान हूं। नहीं जरूरत है कि आप घोषणा करने जाएं कि मैं बेईमान हूं क्योंकि अक्सर ऐसा होता है कि अगर आप घोषणा करें कि मैं बेईमान हूं तो लोग समझेंगे कि बड़े ईमानदार हैं। मुझे लोगों ने भगवान कहना शुरू किया। मैं चुप रहा बहुत दिन तक, मैंने सोचा कि मैं कहां कि भगवान नहीं हूं तो उनका और पक्का भरोसा बैठ जाएगा कि यही तो लक्षण है भगवान का, कि वह इनकार करे। वह इनकार करे कि मैं नहीं हूं।

हमारा मन बड़ा अजीब है। अगर आपको किसी को सच में ही बेईमानी करके धोखा देना हो तो आप पहले उसको बता दें कि मैं बहुत बुरा आदमी हूं, मैं बहुत बेईमान हूं। वह आप पर ज्यादा भरोसा करेगा, आप बेईमानी ज्यादा आसानी से कर सकेंगे। और जब आप घोषणा करते हैं कि बेईमान हूं तब देखना कि इसमें कोई रस तो नहीं आ रहा है, क्योंकि दूसरे के सामने घोषणा में इसमें भी रस आ सकता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि लियो टाल्सटाय ने अपनी आत्म-कथा में जितने पाप लिखे हैं, उतने उसने किए नहीं थे। उसमें बहुत से पाप कल्पित हैं, जो उसने घोषणा करने के लिए लिखे। किए नहीं थे, आप सोच सकते हैं? पुण्यों की कोई घोषणा करे कि मैंने इतना दान किया तो आप कहेंगे कि यह घोषणा हो सकती है। लेकिन कोई कहे कि मैंने इतनी चोरी की, यह भी घोषणा हो सकती है? कोई ऐसा करेगा? आपने कभी सोचा है कि कोई अपने पाप की भी चर्चा करेगा, इतने जोर से? नहीं, पापी करते हैं। लेकिन टाल्सटाय जैसे लोग नहीं करते। जेलखाने में आप जाइए, जिसने दस रुपये की चोरी की है, वह कहता है दस लाख का डाका डाला। क्योंकि दस की भी कोई चोरी करने का मतलब है? तो दस के ही चोर हैं! यह कोई मतलब नहीं है।

एक कैदी कारागृह में प्रविष्ट हुआ। दूसरे कैदी ने, जो वहां सींखचों से टिक कर बैठा था, उसने कहा-- कितने दिन की सजा? उसने कहा कि चालीस साल की सजा। तो उसने कहा कि तू दरवाजे के पास बैठा। हम दीवार के पास रहेंगे। पहले आदमी ने पूछा, क्यों? उसने कहा: हमको पचहत्तर साल की सजा मिली है। तो तेरा मौका पहले आएगा निकलने का। सिक्खड़ मालूम पड़ता है। चालीस साल की कुल! छोटा-मोटा काम किया! हमको पचहत्तर साल की सजा है। हम दीवाल के पास रहेंगे, तू दरवाजे के पास। तेरा मौका निकलने का पहले

आएगा। चालीस साल ही का तो मामला है। हमको और आगे पैंतीस साल रहना है। इसका मतलब है कि उन्होंने मास्टरी सिद्ध कर दी कि अब तू इस कमरे में शिष्य बन कर रह।

तो जेलखानों में तो घोषणा चलती है। लेकिन यह कभी ख्याल नहीं आता साधारणतः कि साधु-संतों ने भी जितने पापों की चर्चा की है, उतने वस्तुतः किए हैं। या पाप की घोषणा में भी रस हो सकता है?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं--रस हो सकता है। इस हिसाब से हिसाब नहीं लगाए गए हैं कभी। गांधी की आत्मकथा का कभी न कभी मनोविषण होना चाहिए कि उन्होंने जितने पापों की अपने बचपन में बात की है उतने किए? या उसमें कुछ कल्पित हैं। जरूरी नहीं है कि वे झूठ बोल रहे हैं। आदमी का मन ऐसा है कि वह मान रहा हो कि जो वह कह रहा है, उसने किया, वह जरूरी नहीं है। तो वह जानकर लिख रहे हों कि यह मैंने किया नहीं और लिख रहा हूं। नहीं, बहुत बार दोहरा-दोहरा कर उनको भी रस आ गया हो और लगता हो, किया है। आप बहुत सी ऐसी स्मृतियां बनाए हुए हैं जो आपने कभी की नहीं, जो कभी हुआ नहीं। लेकिन आपने भरोसा कर लिया है, मान कर बैठ गए हैं और धीरे-धीरे राजी हो गए हैं। लियो टाल्सटाय ने इतने पाप नहीं किए ऐसा मनस्विदों का कहना है, पर उसने घोषणा की है।

नहीं तो मैं यह नहीं कह रहा कि प्रायश्चित्त करने वाला घोषणा करे जाकर कि मैं पापी हूं। क्योंकि घोषणा में भी खतरा है। नहीं, प्रायश्चित्त करने वाला अपने ही समझ स्वीकार करे कि मैं ऐसा हूं। किसी के सामने कहने की जरूरत नहीं। इसलिए दूसरा फर्क आपको बताता हूं।

पश्चात्ताप दूसरे के सामने प्रकट करना पड़ता है, प्रायश्चित्त स्वयं के समक्ष। पश्चात्ताप स्वयं के समक्ष करने का तो कोई मतलब नहीं। क्योंकि किसी को गाली तो दी दूसरे के समक्ष और क्षमा मांग लिया अपने मन में। इसका क्या मतलब है। जब गाली देने दूसरे के पास गए थे तो क्षमा मांगने दूसरे के पास जाना पड़ेगा। कर्म तो दूसरे से संबंधित होता है इसलिए पश्चात्ताप दूसरे से संबंधित होगा। लेकिन आपकी सत्ता तो किसी से संबंधित नहीं, आपसे ही संबंधित है। उसकी घोषणा दूसरे के सामने करना अनावश्यक है। और उसमें रस लें तो खतरा है। अपने ही समक्ष--प्रायश्चित्त अपने समक्ष, अपने ही समक्ष उघाड़ कर देखना है अपनी पूरी नग्नता को कि मैं क्या हूं।

और ध्यान रखें, दूसरे के समक्ष सदा डर है बदलाहट करने का, कुछ और बता देने का। इसलिए कोई भी आदमी सच्ची डायरी नहीं लिख पाता। भला वह दूसरे को पढ़ने के लिए न लिख रहा हो, लेकिन फिर भी कोई भी आदमी सच्ची डायरी नहीं लिख पाता, क्योंकि दूसरा पढ़ सकता है, इसकी संभावना तो सदा ही बनी रहती है। इसलिए सब डायरीज फाल्स होती हैं, झूठ होती हैं। अगर आपने डायरी लिखी है तो आप भलीभांति जानते हैं उसमें आप कितना छोड़ देते हैं जो लिखा जाना चाहिए था; कितना जोड़ देते हैं, जो नहीं था; कितना सम्हाल देते हैं, जैसे कि बात नहीं थी। लेकिन यह भी हो सकता है, इससे उलटा भी हो सकता है कि जो पाप बहुत छोटा था, उसको आप बहुत बड़ा करके लिखें। अगर आपको पाप की घोषणा करनी है। तो वह भी हो सकता है।

अगस्टीन की किताब कनफेशन संदिग्ध है कि उसमें उसने जो लिखा है, सब हुआ हो। पाप की भी सीमा है। पाप भी आप असीम नहीं कर सकते, पाप की भी सीमा है। और आदमी की सामर्थ्य है पाप करने की। यह आदमी पाप से भी ऊब जाता है और उसका भी सेच्युरेशन पॉइंट है। वहां भी शक्ति रिक्त हो जाती है और आदमी लौट पड़ता है। लेकिन दूसरे का ख्याल हो अगर मन में तो रद्दोबदल का डर है, वह आपका सोया हुआ मन कुछ कर सकता है। इसलिए प्रायश्चित्त है स्वयं के समक्ष। इसका दूसरे से कोई भी लेना-देना नहीं है।

और ध्यान रहे, महावीर प्रायश्चित्त को इतना मूल्य दे पाए, क्योंकि परमात्मा को उन्होंने कोई जगह नहीं दी; नहीं तो पश्चात्ताप ही रह जाता, प्रायश्चित्त नहीं हो सकता था। क्योंकि जब परमात्मा देखने वाला मौजूद है--देन इ.ज. इ.ज. आलवेज फार सम वन एल्स। चाहे आदमी के लिए न भी हो, लेकिन जब एक ईसाई फकीर एकांत में भी कह रहा है कि हे प्रभु! मेरे पाप हैं ये, तो दूसरा मौजूद है, दि अदर इ.ज. प्रेजेंट। वह परमात्मा ही

सही, लेकिन दूसरे की मौजूदगी है। महावीर कहते हैं--कोई परमात्मा नहीं है जिसके समक्ष तुम प्रकट कर रहे हो, तुम ही हो। महावीर ने व्यक्ति को इतना ज्यादा स्वयं की नियति निर्णीत किया है, जिसका हिसाब नहीं। तुम ही हो, कोई नहीं, कोई आकाश में सुनने वाला नहीं जिससे तुम कहो कि मेरे पाप क्षमा कर देना। कोई क्षमा करेगा नहीं, कोई है नहीं। चिल्लाना मत, घोषणा से कुछ भी न होगा। दया की भिक्षा मत मांगना, क्योंकि कोई दया नहीं हो सकती। कोई दया करने वाला नहीं है।

प्रायश्चित्त--नहीं, दूसरे के समक्ष नहीं, अपने ही समक्ष अपने नरक की स्वीकृति है। और जब पूर्ण स्वीकृति होती है भीतर, तो उस पूर्ण स्वीकृति से ही रूपांतरण शुरू हो जाता है। यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा कि पूर्ण स्वीकृति से क्यों शुरू हो जाता है? जैसे ही कोई व्यक्ति अपने को पूरा स्वीकार करता है--उसकी पुरानी इमेज, उसकी पुरानी प्रतिमा खंड-खंड होकर गिर जाती है, राख हो जाती है। और अब वह जैसा अपने को पाता है, ऐसा अपने को क्षण भर भी देख नहीं सकता, बदलेगा ही और उपाय नहीं है। जैसे घर में आग लग गई हो और पता चल गया कि आग लग गई, तब आप यह न कहेंगे कि अब हम सोचेंगे, बाहर निकलना है कि नहीं। तब आप यह न कहेंगे कि गुरु खोजेंगे, कि मार्ग क्या है? तब आप यह न कहेंगे कि पहले बाहर कुछ है भी पाने योग्य कि हम घर छोड़ कर निकल जाएं और बाहर भी कुछ न मिले। ये सब उस आदमी की बातें हैं जिसके मन में कहीं न कहीं ख्याल बना है कि घर में कोई आग नहीं लगी। एक बार दिख जाएं लपटें चारों तरफ, आदमी बाहर हो जाता है। जंप, छलांग लग जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी का आपरेशन हुआ। तो जब उसे आपरेशन की टेबल पर लिटाया गया तो खिड़कियों के बाहर वृक्षों में फूल खिले हुए हैं, इंद्रधनुष फैला हुआ है। जब उसका आपरेशन हो गया और उसके मुंह से कपड़ा उठाया गया तो उसने देखा कि सब पर्दे बंद हैं, खिड़कियां, द्वार-दरवाजे बंद हैं, तो उसने मुल्ला से पूछा कि सुंदर सुबह थी, क्या सांझ हो गई या रात हो गई? इतनी देर लग गई? मुल्ला ने कहा: रात नहीं हुई है, पांच मिनट हुआ। तो उसने कहा: ये दरवाजे क्यों बंद हैं? तो मुल्ला ने कहा: बाहर के मकान में आग लग गई है। और हम डरे कि अगर कहीं तू होश में आए और एकदम देखे आग लगी, तो समझे कि नरक में पहुंच गए हैं। इसलिए हमने खिड़कियां बंद कर दीं कि नरक में आग जलती रहती है तो तू कहीं यह न सोच ले कि मर गए, खत्म। कभी ऐसा हो जाता है कि सोच लिया कि मर गए तो आदमी मर भी जाता है। तो मुल्ला ने कहा: यह मैंने बंद की हैं खिड़कियां, और मकान में आग लग गई है बाहर।

मुल्ला के खुद के जीवन में ऐसा घटा कि वह बेहोश हो गया और लोगों ने समझा कि मर गया। उसकी अरथी बांध ही रहे थे कि वह होश में आ गया। लोगों ने कहा: अरे, तुम मरे नहीं! मुल्ला ने कहा: मैं मरा नहीं, और जितनी देर तुम समझ रहे थे कि मैं मर गया, उतनी देर भी मैं मरा हुआ नहीं था। मुझे पता था कि मैं जिंदा हूं। तो उन्होंने कहा: तुम बिल्कुल बेहोश थे, तुम्हें पता कैसे हो सकता है। क्या तुम्हें पता था? क्या प्रमाण तुम्हारे भीतर था कि तुम जिंदा हो? उसने कहा: प्रमाण यह था कि मैं भूखा था, मुझे भूख लगी थी। अगर स्वर्ग में पहुंच गया होता तो कल्पवृक्ष के नीचे भूख खत्म हो गई होती। और पैर में मुझे ठंडक लग रही थी। अगर नरक में पहुंच गया होता तो वहां ठंडक कहां है, और दो ही जगहें हैं जाने को। मुझे पता था कि मैं जिंदा हूं।

मुल्ला के गांव का एक नास्तिक मर गया--वह अकेला नास्तिक था। वह मर गया तो मुल्ला उसको बिदा करने गया। वह लेटा हुआ है। सूट सुंदर उसे पहना दिया गया था, टाई-वाई बांध दी गई थी--सब बिल्कुल तैयार। मुल्ला ने बड़े दुख से कहा, पुअर मैन! थारोली ड्रेसड एण्ड नो व्हेअर टु गो? नास्तिक था, न नरक जा सकता था, न स्वर्ग। क्योंकि मानता ही नहीं। तो मुल्ला ने कहा: इतने बिल्कुल तैयार लेटे हो, गरीब बेचारा और जाना उसको कहीं भी नहीं है।

वह जो हमारे भीतर आग है, नरक है, जहां हम खड़े ही हैं। नरक जाने को जगह नहीं है कोई, वहां हम खड़े हुए हैं, वह हमारी

स्थिति है। स्वर्ग कोई स्थान नहीं है। इसलिए महावीर पहले आदमी हैं इस पृथ्वी पर जिन्होंने कहा कि स्वर्ग और नरक मनोदशाएं हैं, माइंड स्टेट्स हैं, चित्त-दशाएं हैं। मोक्ष कोई स्थान नहीं है इसलिए महावीर ने कहा कि वह स्थान के बाहर है--बियांड स्पेस। वह कोई स्थान नहीं है, वह सिर्फ एक अवस्था है। लेकिन जहां हम खड़े हैं, वह नरक है। इस नरक की प्रतीति जितनी स्पष्ट हो जाए उतने आप प्रायश्चित्त में उतरेंगे। और जितनी प्रगाढ़--इंटेंस हो जाए, कि आग जलने लगे आपके चारों तरफ तो छलांग लग जाएगी। और रूपांतरण शुरू हो जाएगा।

उस छलांग के पांच सूत्र हम कल से धीरे-धीरे शुरू करेंगे। यह पहला सूत्र है और ठीक से समझ लेना जरूरी है। संलीनता जैसे अंतिम सूत्र है बाह्य-तप का, और कीमती है, उसके बाद ही प्रायश्चित्त हो सकता है। प्रायश्चित्त बहुत कीमती है क्योंकि वह पहला सूत्र है अंतर-तप का। अगर आप प्रायश्चित्त नहीं कर सकते तो अंतर-तप में कोई प्रवेश नहीं है, वह द्वार है।

आज इतना ही।

रुके पांच मिनट, कीर्तन करें... !

विनयः परिणति निर-अहंकारिता की (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

अंतर-तप की दूसरी सीढ़ी है, विनय। प्रायश्चित्त के बाद ही विनय के पैदा होने की संभावना है। क्योंकि जब तक मन देखता रहता है दूसरे के दोष, तब तक विनय पैदा नहीं हो सकती। जब तक मनुष्य सोचता है कि मुझे छोड़ कर शेष सब गलत हैं, तब तक विनय पैदा नहीं हो सकती। विनय तो पैदा तभी हो सकती है जब अहंकार दूसरों के दोष देख कर अपने को भरना बंद कर दे। इसे हम ऐसा समझें कि अहंकार का भोजन है दूसरों के दोष देखना। वह अहंकार का भोजन है। इसलिए यह नहीं हो सकता है कि आप दूसरों के दोष देखते चले जाएं और अहंकार विसर्जित हो जाए। क्योंकि एक तरफ आप भोजन दिए चले जाते हैं और दूसरी तरफ अहंकार को विसर्जित करना चाहते हैं, यह न हो सकेगा। इसलिए महावीर ने बहुत वैज्ञानिक क्रम रखा है--प्रायश्चित्त पहले, क्योंकि प्रायश्चित्त के साथ ही अहंकार को भोजन मिलना बंद हो जाता है।

वस्तुतः हम दूसरे के दोष देखते ही क्यों हैं? शायद इसे आपने कभी ठीक से न सोचा होगा कि हमें दूसरों के दोष देखने में इतना रस क्यों है? असल में दूसरों का दोष हम देखते ही इसलिए हैं कि दूसरों का दोष जितना दिखाई पड़े, हम उतने ही निर्दोष मालूम पड़ते हैं। ज्यादा दिखाई पड़े दूसरे का दोष तो हम ज्यादा निर्दोष मालूम पड़ते हैं। उस पृष्ठभूमि में, जहां दूसरे दोषी होते हैं हम अपने को निर्दोष देख पाते हैं। अगर दूसरे निर्दोष दिखाई पड़ें तो हम दोषी दिखाई पड़ने लगेंगे। तो हम दूसरों की शक्लें जितनी काली रंग सकते हैं, उतनी रंग देते हैं। उनकी काली रंगी शक्लों के बीच हम गौर वर्ण मालूम पड़ते हैं। अगर दूसरों के पास गौर वर्ण हो--सबके पास, तो, हम सहज ही काले दिखाई पड़ने लगेंगे।

दूसरे को दोषी देखने का जो आंतरिक रस है वह स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की असफल चेष्टा है; क्योंकि निर्दोष कोई अपने को सिद्ध नहीं कर सकता। निर्दोष कोई हो सकता है, सिद्ध नहीं कर सकता। सच तो यह है कि सिद्ध करने की कोशिश में ही निर्दोष न होना छिपा है। निर्दोषता--सिद्ध करने की कोशिश भी नहीं है। कोई यदि आपको किसी के संबंध में कोई पुण्य खबर दे तो मानने का मन नहीं होता। कोई आपसे कहे कि दूसरा व्यक्ति बहुत सज्जन, भला, साधु है तो मानने का मन नहीं होता। मन एक भीतरी रेसिस्टेंस, एक भीतरी प्रतिरोध करता है। मन भीतर से कहता--ऐसा हो नहीं सकता। इस भीतर की लहर पर थोड़ा ध्यान करें, अन्यथा विनय कभी उपलब्ध न होगी।

जब कोई किसी दूसरे की शुभ चर्चा करता है तो मन मानने को नहीं होता। भीतर एक लहर कंपित होती है और कहती है कि प्रमाण क्या है कि दूसरा सज्जन है, साधु है? वह प्रमाण की तलाश इसलिए है ताकि अप्रमाणित किया जा सके कि दूसरा साधु नहीं, सज्जन नहीं। लेकिन कभी आपने इसके विपरीत बात देखी है? अगर कोई किसी के संबंध में निंदा करे तो आपका मन एकदम मानने को आतुर होता है। आप निंदा के लिए

प्रमाण नहीं पूछते हैं। अगर कोई आदमी कहे कि फलां आदमी ब्रह्मचारी है; तो आप पूछते हैं--प्रमाण क्या है? लेकिन कोई आदमी कहे फलां आदमी व्यभिचारी है; आपने प्रमाण पूछा है? नहीं, फिर तो कोई जरूरत नहीं रह जाती प्रमाण की। कहना पर्याप्त है। किसी ने कहा तो पर्याप्त है।

और ध्यान रहे, अगर कोई कहे कि दूसरा आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध है तो आप बड़े मन को मसोस कर मान सकते हैं, प्रसन्नता से नहीं। और जब आप दूसरे को कहेंगे, तो जितने जोर से उसने कहा था उस जोर में कमी आ जाएगी। तीन चार आदमियों में यात्रा करते-करते वह ब्रह्मचर्य खो जाएगा। लेकिन अगर किसी ने कहा--फलां आदमी व्यभिचारी है तो जब आप दूसरे से कहते हैं, तो आपने ख्याल किया है--आप कितना गुणित करते हैं उसे? कितना मल्टीप्लाय करते हैं? जितना रस उसने लिया था, उससे दुगुना रस आप दूसरे को सुना कर लेते हैं। पांच आदमियों तक पहुंचते-पहुंचते पता चलेगा कि उससे ज्यादा व्यभिचारी आदमी दुनिया में कभी पैदा नहीं हुआ था। पांच आदमियों के बीच पाप इतनी बड़ी यात्रा कर लेगा।

इस मन के आंतरिक रस को देखना, समझना जरूरी है। तो विनय की साधना का पहला सूत्र तो है कि हमारे अहंकार के सहारे क्या हैं? हम किस सहारे से अविनीत बने रहते हैं? वे सहारे न गिरे तो विनय उत्पन्न नहीं होगा। निंदा में रस मालूम होता है, स्तुति में पीड़ा मालूम होती है। और इसलिए अगर आपको किसी मजबूरी में किसी की स्तुति करनी पड़ती है तो आप बहुत शीघ्र उसके सामने से हट कर, तत्काल कहीं जाकर उसकी निंदा करके बैक-बैलेंस बराबर कर लेते हैं। देर नहीं लगती। संतुलन पर ला देते हैं तराजू को बहुत शीघ्र। जब तक संतुलन न आ जाए तब तक मन को चैन नहीं पड़ता। लेकिन इससे उलटा इतने आसानी से नहीं होता। जब आप किसी को गालियां देकर जाते हैं तो तत्काल आप संतुलन स्थापित नहीं करते कि कहीं जाकर उसके गुणों की भी चर्चा कर लें। मन की सहज इच्छा यह है कि दूसरे निर्दोष हों। तो दूसरों के दोष तो हम हजारों मील से देख पाते हैं, अपना दोष इतने निकट रह कर भी नहीं देख पाते।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने गांव के मेयर को कई बार फोन किया, एक स्त्री बहुत अभद्र व्यवहार कर रही है मेरे साथ। अपनी खिड़की में इस भांति खड़ी होती है कि उसकी मुद्राएं आमंत्रण देती हैं, और कभी-कभी अर्धनग्न भी वह खिड़की से दिखाई पड़ती है। इसे रोका जाना चाहिए। यह समाज की नीति पर हमला है। कई बार फोन किया तो मेयर मुल्ला के घर आया।

मुल्ला अपनी चौथी मंजिल पर ले गया, खिड़की के पास कहा--देखिए, वह सामने का मकान, उसी में वह स्त्री रहती है। मकान नदी के उस पार कोई आधा मील दूर था। उस मेयर ने कहा: वह स्त्री उस मकान में रहती है और उस मकान की खिड़कियों से आपको टेम्पटेशंस पैदा करती है? उधर से आपको उकसाती है? यहां से तो खिड़की भी ठीक से नहीं दिखाई पड़ रही, वह स्त्री कैसे दिखाई पड़ती होगी? मुल्ला ने कहा: ठहरो--उसके देखने का ढंग--स्टूल पर चढ़ो, यह दूरबीन हाथ में लो, तब दिखाई पड़ेगी। लेकिन दोष उस स्त्री का ही है जो आधा मील दूर है!

और फिर एक दिन ऐसा भी हुआ कि मुल्ला ने अपने गांव के मनोचिकित्सक के दरवाजे को खटखटाया। भीतर गया, पूरा नग्न था।

मनोचिकित्सक भी चौंका। नीचे से ऊपर तक देखा।

मुल्ला ने कहा कि मैं यही पूछने आया हूं और वही भूल आप कर रहे हैं। मैं सड़कों पर से निकलता हूं तो लोग न मालूम पागल हो गए हैं, मुझे घूर-घूर कर देखते हैं। ऐसी क्या मुझमें कमी है या ऐसी क्या भूल है कि लोग जिससे मुझे घूर-घूर कर देखते हैं। मनोवैज्ञानिक खुद ही घूर-घूर कर देख रहा था, क्योंकि मुल्ला निपट नग्न खड़ा था। मुल्ला ने कहा: यह पूरा गांव पागल हो गया है, मालूम पड़ता है। जहां से भी निकलता हूं, वहीं लोग घूर-घूर कर देखते हैं। आपका विश्लेषण क्या है?

मनोवैज्ञानिक ने कहा: ऐसा मालूम पड़ता है कि आप अदृश्य वस्त्र पहने हुए हैं, दिखाई न पड़ने वाले वस्त्र पहने हुए हैं। शायद उन्हीं वस्त्रों को देखने के लिए लोग घूर-घूर कर देखते होंगे।

मुल्ला ने कहा: बिल्कुल ठीक है। तुम्हारी फीस क्या है?

मनोवैज्ञानिक ने सोचा ऐसा आदमी, इससे फीस ठीक से ले लेनी चाहिए। उसने सौ रुपये फीस के बताए।

मुल्ला ने खीसे में हाथ डाला, नोट गिने, दिए। मनोवैज्ञानिक ने कहा लेकिन हाथ में कुछ भी नहीं है।

मुल्ला ने कहा: यह अदृश्य नोट हैं। ये दिखाई नहीं पड़ते। घूर-घूर कर देखो तो दिखाई पड़ सकते हैं।

आदमी खुद नग्न घूमता हो बाजार में तो भी शक होता है कि दूसरे लोग घूर-घूर कर क्यों देखते हैं? और अपने घर से वह दूरबीन लगा कर आधा मील दूर किसी की खिड़की में देख सकता है और कह सकता है कि वह स्त्री मुझे प्रलोभित कर रही है। हम सब ऐसे ही हैं। हम सबका ताल-मेल ऐसा ही है व्यक्तित्व का। तो विनय तो कैसे पैदा होगी? विनय के पैदा होने का कोई उपाय नहीं है। अहंकार ही पैदा होगा। जब कोई किसी की हत्या भी कर देता है तो वह यह नहीं मानता कि हत्या में मैं अपराधी हूं। वह मानता है कि उस आदमी ने ऐसा काम ही किया था कि हत्या करनी पड़ी। दोषी वही है।

मुल्ला ने तीसरी शादी की थी। तीसरी पत्नी घर में आई तो दो बड़ी-बड़ी तस्वीरें देख कर उसने पूछा कि ये तस्वीरें किसकी हैं? मुल्ला ने कहा: मेरी पिछली दो पत्नियों की। मुसलमान घर में तो चार पत्नियां तो हो ही सकती हैं। उसने पूछा: लेकिन वे हैं कहां? मुल्ला ने कहा: अब वे कहां? पहली मर गई मशरूम पाय.जनिंग से। उसने कुरकुरमुत्ते खा लिए जो जहरीले थे। उसने पूछा--और दूसरी कहां है? मुल्ला ने कहा: वह भी मर गई। फ्रैक्चर ऑफ दि स्कल, खोपड़ी के टूट जाने से। बट द फाल्ट वा.ज हर। शी वुड नॉट ईट मशरूमस। भूल उसकी ही थी। मैं कितना ही कहूं वह मशरूम खाने को, वह कुरकुरमुत्ते खाने को राजी नहीं होती थी। तो खोपड़ी के टूटने से मर गई। खोपड़ी मुल्ला ने तोड़ी, क्योंकि वह मशरूम नहीं खाती थी। मगर दोष उसका ही था, भूल उसकी ही थी।

भूल सदा दूसरे की है। भूल शब्द ही दूसरे की तरफ तीर बन कर चलता है। वह कभी अपनी होती ही नहीं। और जब अपनी नहीं होती तो विनय का कोई भी कारण नहीं है। तो अहंकार, यह दूसरे की तरफ जाते हुए तीरों के बीच में निश्चित खड़ा होता है, बलशाली होता है। सघन होता है।

इसलिए महावीर ने प्रायश्चित्त को पहला अंतर-तप कहा है कि पहले तो यह जान लेना जरूरी होगा कि न केवल मेरे कृत्य गलत हैं बल्कि मैं ही गलत हूं। तीर सब बदल गए, रुख बदल गया। वे दूसरे की तरफ नहीं जाते, अपनी तरफ मुड़ गए। ऐसी स्थिति में हम्बलनेस, विनय को साधा जा सकता है। फिर भी महावीर ने निर-अहंकारिता नहीं कही। महावीर कह सकते थे निर-अहंकार, लेकिन महावीर ने ईगोलेसनेस नहीं कही; कहा विनय। क्योंकि निर-अहंकार नकारात्मक है और उसमें अहंकार की स्वीकृति है। अहंकार को इनकार करने के लिए भी उसका स्वीकार है। और जिसे हमें इनकार करने के लिए भी स्वीकार करना पड़े, उसका इनकार किया नहीं जा सकता। जैसे कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं मर गया हूं क्योंकि मैं मर गया हूं, यह कहने के लिए मैं हूं जिंदा, इसे स्वीकार करना पड़ेगा। जैसे कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं घर के भीतर नहीं हूं क्योंकि मैं घर के भीतर नहीं हूं, यह कहने के लिए भी मुझे घर के भीतर होना पड़ेगा।

निर-अहंकार की साधना में यही भूल होती है कि अहंकारी मैं हूं, यह स्वीकार करना पड़ता है और इस अहंकार को निर-अहंकार में बदलने की कोशिश करनी पड़ती है। बहुत डर तो यही है कि वह अहंकार ही अपने ऊपर निर-अहंकार के वस्त्र ओढ़ लेगा और कहेगा--देखो, मैं निर-अहंकारी हूं। अहंकार है ही कहां मुझमें। अहंकार यह भी कह सकता है कि अहंकार मुझमें नहीं है। तब वह विनय नहीं रह जाती, वह अहंकार का ही एक रूप है--प्रच्छन्न, छिपा हुआ, गुप्त, और पहले प्रकट रूप से ज्यादा खतरनाक है। इसलिए निर-अहंकार नहीं कहा है जानकर; क्योंकि कोई भी अंतर-तप अगर निषेधात्मक रूप से पकड़ा जाए तो सूक्ष्म हो जाएगी वह बीमारी जिसको आप हटाने चले थे, मिटाना कठिन होगा। हां, विनय आ जाए तो आप निर-अहंकारी हो जाएंगे। लेकिन निर-अहंकारी होने की कोशिश अहंकार को नष्ट नहीं कर पाती। अहंकार इतने विनम्र रूप ले सकता है जिसका

हिसाब लगाना कठिन है। अहंकार कह सकता है--मैं तो कुछ भी नहीं, आपके पैरों की धूल हूं। और तब भी इस घोषणा में बच सकता है। इसलिए बहुत बारीक और बहुत सूक्ष्म भेद है।

विनय है पाजिटिव। महावीर विधायक जोर दे रहे हैं कि आपके भीतर वह अवस्था जन्मे जहां दूसरा दोषी नहीं रह जाता। और जिस क्षण मुझे अपने दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं, उस क्षण विनय बहुत-बहुत रूपों में बरसती है। एक तो जो व्यक्ति अपने दोष नहीं देखता वह दूसरे के दोष बहुत कठोरता से देखता है। जिस व्यक्ति को अपने दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं वह दूसरे के दोषों के प्रति बहुत सदय हो जाता है; क्योंकि वह जानता है, मेरे भीतर भी यही है।

सच तो यह है कि जिस आदमी ने चोरी न की हो उस आदमी को चोरी के संबंध में निर्णय का अधिकार नहीं होना चाहिए। क्योंकि वह समझ ही नहीं पाएगा कि चोरी मनुष्य कैसी स्थितियों में कर लेता है। लेकिन हम चोर को कभी चोर का निर्णय करने को न बैठाएंगे। हम उसको बिठाएंगे जिसने कभी चोरी नहीं की है। उससे जो भी होगा वह अन्याय होगा। अन्याय इसलिए होगा कि वह अति कठोर होगा। वह जो सदयता आनी चाहिए--अपने भीतर की कमजोरी को जान कर दूसरे की कमजोरी भी स्वाभाविक है--ऐसा जो सहृदय भाव आना चाहिए वह उसके भीतर नहीं होगा। इसलिए जानकर आप हैरान होंगे कि तथाकथित जिन्हें हम पापी कहते हैं वे ज्यादा सहृदय होते हैं। और जिन्हें हम महात्मा कहते हैं, वे इतने सहृदय नहीं होते। महात्माओं में ऐसी दुष्टता का और ऐसी कठोरता का छिपा हुआ जहर मिलेगा, जैसा कि पापियों में खोजना कठिन है।

यह बहुत उलटा दिखाई पड़ता है, लेकिन इसके पीछे कारण है। यह उलटा नहीं है। पापी दूसरे पापियों के प्रति सदय हो जाता है क्योंकि वह जानता है--मैं ही कमजोर हूं तो मैं किसकी कमजोरी की निंदा करने जाऊं! इसलिए किसी पापी ने दूसरे पापी के लिए नरक का आयोजन नहीं किया। पुण्यात्मा करते हैं। उनका मन नहीं मानता कि उनको छोड़ा जा सके। और इस बात की पूरी संभावना है कि उनके पुण्य करने में रस केवल इतना ही हो कि वे पापियों को नीचा दिखा सकते हैं। अहंकार ऐसे रस लेता है।

तो एक तो जैसे ही तीर अपनी तरफ मुड़ जाते हैं चेतना के, और अपनी भूलें, सहज भूलें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं, वैसे ही दूसरे की भूलों के प्रति एक अत्यंत सदय भाव आ जाता है। तब हम जानते हैं कि दूसरे को दोषी कहना व्यर्थ है। इसलिए नहीं कि वह दोषी न होगा या होगा, इसलिए कि दोष इतने स्वाभाविक हैं। मुझमें भी हैं। और जब स्वयं में दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं तो दूसरों से अपने को श्रेष्ठ मानने का कोई कारण नहीं रह जाता।

लेकिन जैन शास्त्र जो परिभाषा करते हैं विनय की वह बड़ी और है। वे कहते हैं--जो अपने से श्रेष्ठ हैं, उनका आदर विनय है। गुरुजनों का आदर, माता-पिता का आदर, श्रेष्ठ-जनों का आदर, साधुओं का आदर, महाजनों का आदर, लोकमान्य पुरुषों का आदर--इनका आदर विनय है। यह बिल्कुल ही गलत है, यह आमूल गलत है। यह जड़ से गलत है। यह बात ठीक नहीं है। यह इसलिए ठीक नहीं है कि जो व्यक्ति दूसरे को श्रेष्ठ देखेगा वह किसी को अपने से निकृष्ट देखता ही रहेगा। यह असंभव है कि आपको कोई व्यक्ति श्रेष्ठ मालूम पड़े और कोई व्यक्ति ऐसा न मालूम पड़े जो आपसे निकृष्ट है क्योंकि तराजू में एक पलड़ा नहीं होता है।

आप दूसरे को जब तक श्रेष्ठ देख सकते हैं, यू कैन कम्पेयर, आप तुलना कर सकते हैं। आप कहते हैं कि यह आदमी श्रेष्ठ है क्योंकि मैं चोरी करता हूं, यह आदमी चोरी नहीं करता। लेकिन तब आप इस बात को देखने से कैसे बचेंगे कि कोई आदमी आपसे भी ज्यादा चोर हो। आप कह सकते हैं--यह आदमी साधु है, लेकिन तब आप यह देखने से कैसे बचेंगे कि दूसरा आदमी असाधु है। जब तक आप साधु को देख सकते हैं, तब तक असाधु को देखना पड़ेगा। और जब तक आप श्रेष्ठ को देख सकते हैं तब तक अश्रेष्ठ आपकी आंखों में मौजूद रहेगा। तुलना के दो पलड़े होते हैं।

इसलिए मैं नहीं मानता हूं कि महावीर का यह अर्थ है कि अपने से श्रेष्ठजनों को आदर क्योंकि फिर निकृष्टजनों को अनादर देना ही पड़ेगा। यह बहुत मजेदार बात है। यह हमने कभी नहीं सोचा। हम इस तरह सोचते नहीं। और जीवन बहुत जटिल है और हमारा सोचना बहुत बचकाना है। हम कहते हैं श्रेष्ठजनों को आदर। लेकिन निकृष्ट जन फिर दिखाई पड़ेंगे। जब आप सीढ़ियों पर खड़े हो गए तब पक्का मानना, कि आपको जब

आपसे आगे कोई सीढ़ी पर दिखाई पड़ेगा तो जो पीछे है वह कैसे दिखाई न पड़ेगा। और अगर पीछे का दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा तो जो आपके आगे है, वह आपसे आगे है यह आपको कैसे मालूम पड़ेगा? वह पीछे की तुलना में ही आगे मालूम पड़ता है। अगर दो ही आदमी खड़े हैं तो कौन आगे है, कौन है आगे?

मुल्ला के जीवन में बड़ी प्रीतिकर एक घटना है। कुछ विद्यार्थियों ने आकर मुल्ला को कहा कि कभी चलकर हमारे विद्यापीठ में हमें प्रवचन दो।

मुल्ला ने कहा: चलो अभी चलता हूं, क्योंकि कल का क्या भरोसा? और शिष्य बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। मुल्ला ने अपना गधा निकाला, जिस पर वह सवारी करता था, लेकिन गधे पर उलटा बैठ गया। बाजार से यह अदभुत शोभा यात्रा निकली। मुल्ला गधे पर उलटा बैठा, विद्यार्थी पीछे।

थोड़ी देर में विद्यार्थी बेचैन होने लगे। क्योंकि सड़क के लोग उत्सुक होने लगे और मुल्ला के साथ-साथ विद्यार्थी भी फंस गए। लोग कहने लगे--यह क्या मामला है? यह किस पागल के पीछे जा रहे हो? तुम्हारा दिमाग खराब है?

आखिर एक विद्यार्थी ने हिम्मत जुटा कर कहा कि मुल्ला, यह क्या ढंग है बैठने का? आप कृपा करके सीधे बैठ जाएं। तुम्हारे साथ हमारी भी बदनामी हो रही है।

मुल्ला ने कहा: लेकिन मैं सीधा बैठूंगा तो बड़ी अविनय हो जाएगी।

उसने कहा: कैसे अविनय?

मुल्ला ने कहा: अगर मैं तुम्हारी तरफ पीठ करके बैठूं तो तुम्हारा अपमान होगा, और अगर मैं तुम्हारी तरफ पीठ करके न बैठूं तो तुम मेरे आगे चलो और मेरा गधा पीछे चले तो मेरा अपमान होगा। दिस इ.ज द ओनली वे टु कम्प्रोमाइज। कि मैं गधे पर उलटा बैठूं, तुम्हारे आगे चलूं, हम दोनों के मुंह आमने-सामने रहें। इसमें दोनों की इज्जत की रक्षा है। और लोगों को कहने दो जो कह रहे हैं। हम अपनी इज्जत बचा रहे हैं दोनों।

ये जो हमारी विनय की धारणाएं हैं, श्रेष्ठजन कौन है, आगे कौन चल रहा है, यह निश्चित ही निर्भर करेंगी कि पीछे कौन चल रहा है। और जितना आप अपने श्रेष्ठजन को आदर देंगे, उसी मात्रा में आप अपने से निकृष्ट जन को अनादर देंगे। मात्रा बराबर होगी, क्योंकि जिंदगी प्रति वक्त संतुलन करती है। अन्यथा बेचैनी पैदा हो जाती है। तो जब आप एक साधु खोजेंगे, तो निश्चित रूप से आप एक असाधु को खोजेंगे, और तुलना बराबर हो जाएगी। जब भी आप एक भगवान खोजेंगे, तब आप एक भगवान खोजेंगे जिसकी निंदा आपको अनिवार्य होगी। जो लोग महावीर को भगवान मानते हैं, वे बुद्ध को भगवान नहीं मान सकते; वे कृष्ण को भगवान नहीं मान सकते। जो लोग कृष्ण को भगवान मानते हैं, वे लोग महावीर को, बुद्ध को भगवान नहीं मान सकते। क्यों नहीं मान सकते? नहीं मान सकते इसलिए कि संतुलन करना पड़ता है जिंदगी में। एक को पल्ले पर भगवान रख दिया तो दूसरे को रखना पड़ेगा जो भगवान नहीं है--दूसरे पल्ले पर। तभी संतुलन पूरा होगा।

जैन अगर किताबें भी लिखते हैं बुद्ध के बाबत--क्योंकि बुद्ध और महा वीर समकालीन थे और उनकी शिक्षाएं कई अर्थों में समान मालूम पड़ती हैं--तो मैंने अब तक एक हिम्मतवर जैन नहीं देखा जिसने बुद्ध को भगवान लिखने की हिम्मत की हो। अगर साथ-साथ लिखते भी हैं तो वे लिखते हैं--भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। बड़े मजे की बात है। बहुत हिम्मतवर हैं ये लोग जो महात्मा बुद्ध लिखते हैं। लेकिन उनकी भी हिम्मत नहीं जुट पाती कि वे भगवान बुद्ध कह सकें। भगवान कृष्ण कहना तो बहुत ही मुश्किल मामला है, क्योंकि शिक्षाएं बहुत विपरीत हैं। तो कृष्ण को तो जैनों ने नरक में डाल रखा है। उनके हिसाब से इस समय कृष्ण नरक में हैं। क्योंकि युद्ध इसी आदमी ने करवाया।

और हिंदुओं ने तो महावीर की कोई गणना ही नहीं की, एक किताब में उल्लेख नहीं किया महावीर का। यानी नरक में डालने योग्य भी नहीं माना। आप यह समझना। कोई हिसाब ही नहीं रखा। अगर बौद्धों के ग्रंथ नष्ट हो जाएं तो जैनों के पास अपने ही ग्रंथों के सिवाय महावीर का हिंदुस्तान में कोई उल्लेख नहीं होगा। हिंदुओं ने तो गणना भी नहीं की कि यह आदमी कभी हुआ भी है। इस भांति महावीर जैसा आदमी पैदा हो,

हिंदुस्तान में पैदा हो, चारों तरफ हिंदुओं से भरे समाज में पैदा हो और हिंदुओं का एक भी शास्त्र उल्लेख न कर पाए, यह जरा सोचने जैसा मामला है।

इसलिए जब पहली दफा पाश्चात्य विद्वानों ने महावीर पर काम शुरू किया तो उन्हें शक हुआ कि यह आदमी कभी हुआ नहीं होगा। क्योंकि हिंदुओं के ग्रंथों में कोई उल्लेख न हो, यह असंभव है। तो उन्होंने सोचा कि शायद यह बुद्ध का ही ख्याल है जैनों को। यह बुद्ध को ही मानने वाले दो तरह के लोग हैं, और बुद्ध और महावीर को वह जो विशेषण दिए गए वह कई जगह समान हैं। जैसे बुद्ध को भी जिन कहा गया है, महावीर को भी जिन--जिसने अपने को जीत लिया। महावीर को भी बुद्ध पुरुष कहा गया है, बुद्ध को भी बुद्ध कहा गया है। तो शायद, यह बुद्ध का ही भ्रम है। इसलिए पश्चिम के विद्वानों ने तो महावीर को मानने से इनकार कर दिया--कर देने का कारण था कि हिंदू बड़ा समाज है। इसमें कहीं कोई खबर ही नहीं कि महावीर हुए!

ध्यान रहे, जैनों को कृष्ण को स्वीकार करना पड़ा--भला नरक में डालना पड़ा हो। अस्वीकार करना मुश्किल था। इतना बड़ा व्यक्ति था, इतने बड़े समाज का आदर और सम्मान था। लेकिन हिंदू चाहें तो निगलेक्ट कर सकते हैं, उपेक्षा कर सकते हैं, कोई जरूरत नहीं है उल्लेख करने की। पर आश्चर्यजनक है यह कि एक को भगवान कोई मान ले तो फिर दूसरे को मानना बड़ा कठिन हो जाता है। कठिनाई यही हो जाती है कि तौल खड़ी हो गई, अब दूसरे को दूसरे पलड़े पर रखना पड़ेगा और संतुलन बराबर बिठाना होगा।

हम सब संतुलन बिठा रहे हैं। हम सब तुलनाएं कर रहे हैं। इसलिए यह आश्चर्यजनक घटना घटती है कि इस पृथ्वी पर इतने--इतने अदभुत लोग पैदा होते हैं, लेकिन उन अदभुत लोगों में से हम एक का ही फायदा उठा पाते हैं--एक का ही, सबका नहीं उठा पाते। सबके हम हकदार हैं। हम बुद्ध के उतने ही वसीयतदार हैं जितने कृष्ण के, जितने मोहम्मद के, जितने क्राइस्ट के, जितने नानक के या कबीर के। लेकिन नहीं, हम वसीयत छोड़ देंगे। हम तो एक के हकदार होंगे, शेष सबको इनकार कर देंगे। हमें इनकार करना पड़ेगा, क्योंकि हम जब स्वीकार करते हैं श्रेष्ठ को, तो हमें किसी को निकृष्ट की जगह रखना पड़ेगा, नहीं तो श्रेष्ठ को तौलने का मापदंड कहां होगा। इससे विनय पैदा नहीं होती।

जो आदमी कहता है कि मैं महावीर के प्रति विनयपूर्ण हूं, लेकिन बुद्ध के प्रति नहीं, वह समझ ले कि वह विनीत नहीं है। और यह भी अपने अहंकार को भरने का ही एक ढंग है क्योंकि महा वीर से अपने को जोड़ रहा हूं, महावीर भगवान हैं तो मैं भगवान से जुड़ता हूं। और तब दूसरे जो लोग बुद्ध से अपने को जोड़ कर अहंकार को भर रहे हैं, उनके अहंकार से मेरी टक्कर शुरू हो जाती है। तो मुझे अड़चन होने लगती है कि बुद्ध कैसे भगवान हो सकते हैं। क्योंकि अगर बुद्ध भगवान हैं तो बुद्ध को मानने वाले भी श्रेष्ठ हो जाते हैं। भगवान तो सिर्फ महावीर ही हैं, और उनको मानने वाले श्रेष्ठ हैं, आर्य हैं। वे ही नमक हैं इस पृथ्वी पर, बाकी सब फीके हैं। सारी दुनिया में यही पागलपन पैदा होता है। यह हमारे अहंकार से पैदा हुआ रोग है। विनय का यही अर्थ नहीं है कि आप अपने से श्रेष्ठ को आदर दें।

दूसरी बात यह भी ध्यान रखने की है कि अगर श्रेष्ठ है वह आदमी, इसलिए आप आदर देते हैं तो आपके आदर देने में कोई गुण कहां रहा? इसे भी थोड़ा ख्याल में ले लें। अगर एक व्यक्ति श्रेष्ठ है, तो आदर आपको देना पड़ता है, आप देते नहीं। आपका क्या गुण है? देने में आपका क्या रूपांतरण हो रहा है? अगर एक व्यक्ति श्रेष्ठ है तो आपको आदर देना पड़ता है। ध्यान रहे, आदर देना पड़ता है। वह मजबूरी बन जाती है। वह आपका गुण नहीं है। आपका गुण न हो अगर, तो आपका अंतर-तप कैसे होगा? अंतर-तप तो आपके भीतरी गुणों को जगाने की बात है।

अगर मुझे कोहिनूर सुंदर लगता है, तो वह कोहिनूर का सौंदर्य होगा। लेकिन जिस दिन मुझे सौंदर्य कंकड़-पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगे उतना ही, जितना कोहिनूर में दिखता है--सड़क पर पड़े हुए पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगे, उस दिन अब कोहिनूर का गुण न रहा, अब मेरा गुण हुआ। जिस दिन मुझे सबके प्रति विनय

मालूम होने लगे, बिना तौल के, उस दिन गुण मेरा है। और जब तक मैं तौल-तौल कर आदर देता हूं, तब तक मेरा गुण नहीं है, मजबूरी है। जो श्रेष्ठ है उसे आदर देना पड़ता है। श्रेष्ठ को आदर देने के लिए आपको कुछ प्रयास, कोई श्रम, कोई परिवर्तन नहीं करना होता है। वह आ पका तप कैसे हुआ? वह श्रेष्ठ व्यक्ति का भला तप रहा हो कि वह श्रेष्ठ कैसे हुआ, लेकिन आप उसको आदर देते हैं तो वह आपका तप कैसे हुआ, आपकी साधना कैसे हुई? सूरज निकलता है तो आप नमस्कार कर लेते हैं। फूल खिलता है तो आप गीत गा देते हैं। आप इसमें कहां आते हैं! आपके बिना भी फूल खिल जाता और आपके गीत से कुछ फूल ज्यादा नहीं खिलता और आपके बिना भी सूरज निकल जाता, और आपके नमस्कार से सूरज की चमक नहीं बढ़ती। आपका कहां इसमें मूल्य है? आप इसमें कहां आते हैं? आप इसमें कहीं भी नहीं आते।

मुल्ला नसरुद्दीन मनोवैज्ञानिक से सलाह लेता था, निरंतर। क्योंकि उसे निरंतर चिंताएं, तकलीफें, मन में न मालूम कैसे जाल खड़े हो जाते थे। सबके होते हैं। उसने मनोवैज्ञानिक को जाकर कहा कि मैं बहुत परेशान हूं, मुझे इनफिरियारिटी काम्प्लेक्स है, हीनता की ग्रंथि सताती है। सुल्तान निकलता है रास्ते से तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूं। एक महाकवि गांव में आकर गीत गाता है तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूं। नगर सेठ की हवेली ऊंची उठती चली जाती है तो मुझे लगता है, मैं हीन हूं। एक तार्किक तर्क करने लगता है तो मुझे लगता है, मैं हीन हूं। मैं इस हीनता की ग्रंथि से मुक्त कैसे होऊं? उस मनोवैज्ञानिक ने कहा: डोंट सफर अननेसेसरिली। यू आर नॉट सफरिंग फ्रॉम इनफिरियारिटी काम्प्लेक्स, यू आर इनफिरियर। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा: आपको हीनता की ग्रंथि से परेशानी नहीं हो रही है, आप हीन हैं। इसमें कोई बीमारी नहीं है, यह तथ्य है।

ध्यान रहे, जब आप किसी के सामने तथ्य की तरह हीन होते हैं, तो आपको आदर देना पड़ता है। यह कोई आप देते नहीं है। अब एक कालिदास शाकुंतल पढ़ता हो और आपको आदर देना पड़े, और एक तानसेन सितार बजाता हो और आपका सिर झुक जाए तो आप इस भूल में मत पड़ना कि आपने आदर दिया है। आपको आदर देना पड़ा है। लेकिन हमारा मन, जहां हमें देना पड़ता है वहां यह मानता है कि हमने दिया है, यह भी अपने अहंकार की पुष्टि है, मैंने दिया है आदर।

तो महावीर यह नहीं कह सकते कि श्रेष्ठजनों के प्रति आदर, क्योंकि वह होता ही है। उसका कोई मूल्य ही नहीं। बिना किसी भेदभाव के आदर, तब विनय पैदा होती है। श्रेष्ठ का सवाल नहीं है--जीवन के प्रति आदर, अस्तित्व के प्रति आदर, जो है उसके प्रति आदर। वह है, यही क्या कम है! एक पत्थर है, एक फूल है, एक सूरज है, एक आदमी है, एक चोर है, एक साधु है, एक बेईमान है--ये हैं। इनका होना ही पर्याप्त है। और इनके प्रति जो आदर है, अगर यह आदर संभव हो जाए तो आपका अंतर-तप है। तब यह गुण आपका है। तब आप परिवर्तित होते हैं।

फिर दूसरी बात यह कैसे तय करेंगे कि कौन श्रेष्ठ है। अगर यह जो शास्त्र कहते हैं--श्रेष्ठ, महाजन, गुरुजन कैसे श्रेष्ठ कहेंगे? कौन है गुरु? कौन है गुरु? क्या है उपाय जांचने का आपके पास? कैसे तौलेंगा? क्योंकि अनेक लोग महावीर के पास आकर लौट जाते हैं और कह जाते हैं कि ये गुरु नहीं हैं। अनेक लोग क्राइस्ट को सूली पर लटका देते हैं यह मान कर कि आवारा, लफंगा है। इसको हटाना दुनिया से जरूरी है, नुकसान पहुंचा रहा है।

और ध्यान रहे, जिन लोगों ने जीसस को सूली दी थी वे उस समय के भले और श्रेष्ठजन थे--अच्छे लोग थे, न्यायाधीश थे, धर्मगुरु थे, धनपति थे, राजनेता थे। उस समय के जो भले लोग थे उन्होंने ही जीसस को सूली दी थी। और उनकी सूली देना, देने में अगर हम तौलने चले तो वे ठीक ही मालूम पड़ते हैं, क्योंकि जीसस वेश्याओं के घर में ठहर गए थे। अब जो आदमी वेश्याओं के घर में ठहर गया हो वह आदमी श्रेष्ठ कैसे हो सकता है। क्योंकि जीसस शराबघरों में बैठ कर शराबियों से दोस्ती कर लेते थे और जो शराबघरों में बैठता हो, उसका

क्या भरोसा? क्योंकि जीसस उन लोगों के घरों में ठहर जाते थे जो बदनाम थे; तो बदनाम आदमियों से जिसकी दोस्ती हो, वह आदमी तो अपने संग-साथ से पहचाना जाता है। जो अंत्यज थे, समाज से बाह्य कर दिए गए थे, उनके बीच भी जीसस की मैत्री थी, निकटता थी। तो यह आदमी भला कैसे था? फिर यह आदमी आती हुई परंपरा का विरोध करता था, मंदिर के पुरोहितों का विरोध करता था। यह कहता था कि जो साधु दिखाई पड़ रहे हैं, ये साधु नहीं हैं। तो यह आदमी भला कैसे था? तो उस समाज के भले लोगों ने इस आदमी को सूली पर लटका दिया, और आज हम जानते हैं कि बात कुछ गड़बड़ हो गई।

सुकरात को जिन लोगों ने जहर दिया था वे समाज के श्रेष्ठजन थे। कोई बुरे लोगों ने जहर नहीं दिया था। अच्छे लोगों ने जहर दिया था। और इसीलिए दिया था कि सुकरात की मौजूदगी समाज की नैतिकता को नष्ट करने का कारण बन सकती है। क्योंकि सुकरात संदेह पैदा कर रहा था। तो जो भले जन थे वे चिंतित हुए। वे चिंतित हुए कि इससे कहीं नई पीढ़ी नष्ट न हो जाए। तो सुकरात को जहर देने के पहले उन्होंने एक विकल्प दिया था कि सुकरात अगर तुम एथेंस छोड़ कर चले जाओ और व्रत लो कि अब दुबारा एथेंस में प्रवेश नहीं करोगे तो हम तुम्हें मुक्त छोड़ दे सकते हैं। लेकिन हम तुम्हें एथेंस के समाज को नष्ट नहीं करने देंगे। या तुम यह वायदा करो कि तुम अब एथेंस में शिक्षा नहीं दोगे, तो हम तुम्हें एथेंस में ही रहने देंगे। लेकिन तुम अब जबान बंद रखोगे क्योंकि तुम्हारे शब्द नई पीढ़ी को नष्ट कर रहे हैं। जो लोग थे, वे भले थे। स्वभावतः वे नई पीढ़ी के लिए चिंतित थे। सब भले लोग नई पीढ़ी के लिए चिंतित होते हैं। और उनकी चिंता से नई पीढ़ी रुकती नहीं, बिगड़ती ही चली जाती है।

धनी कौन है, श्रेष्ठ कौन है? धन है जिसके पास वह? पांडित्य है जिसके पास वह? यश है जिसके पास वह? तो फिर यश जिस रास्तों से यात्रा करता है उन रास्तों को देखें तो पता चलेगा, यश बहुत अश्रेष्ठ रास्तों से उपलब्ध होता है। लेकिन सफलता सभी अश्रेष्ठताओं को पोंछ डालती है। धन कोई साधु मार्गों से उपलब्ध नहीं होता है। लेकिन उपलब्धि पुराने इतिहास को नया रंग दे देती है। कौन है श्रेष्ठ? समाज उसे श्रेष्ठ कहता है जो समाज के रीति-नियम मानता है। लेकिन इस जगत में जिन लोगों को हम पीछे श्रेष्ठ कहते हैं वे वे ही लोग हैं जो समाज के रीति-नियम तोड़ते हैं। बुद्ध आज श्रेष्ठ हैं, नानक आज श्रेष्ठ हैं, कबीर आज श्रेष्ठ हैं। लेकिन अपने समाज में नहीं थे। क्योंकि वे समाज के रीति-नियम तोड़ रहे थे, वे बगावती थे, वे दुश्मन थे समाज के।

और आज भी जो महावीर को श्रेष्ठ कहता है, अगर कोई बगावती होगा खड़ा तो उसको कहेगा, यह आदमी खतरनाक है। इसलिए मरे हुए तीर्थंकर ही आदृत होते हैं। जीवित हुआ तीर्थंकर को आदृत होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जीवित तीर्थंकर बगावती होता है। मरा हुआ तीर्थंकर मरने की वजह से धीरे-धीरे स्वीकृत हो जाता है। एस्टाब्लिशमेंट का, स्थापित, न्यस्त मूल्यों का, हिस्सा हो जाता है। फिर कोई कठिनाई नहीं रह जाती। अब महावीर से क्या कठिनाई है? महावीर से जरा भी कठिनाई नहीं है।

महावीर नग्न खड़े थे और महावीर के शिष्य कपड़े की दुकानें कर रहे हैं पूरे मुल्क में। कोई कठिनाई नहीं है। महावीर के शिष्य जितना कपड़ा बेचते हैं कोई और नहीं बेचता। मेरे तो एक निकट संबंधी हैं, उनकी दुकान का नाम है, दिगंबर क्लार्थ शाप। दिगंबर क्लार्थ शॉप? नंगों की कपड़ों की दुकान? महावीर सुनें तो बड़े हैरान होंगे कि और कोई नाम नहीं मिला तुम्हें? अब कोई दिक्कत नहीं, इससे दिक्कत ही नहीं आती कि दिगंबर और क्लार्थ शाप में कोई विरोध है। लेकिन अगर महावीर नंगे दुकान के सामने खड़े हो जाएं तो विरोध साफ दिखाई पड़ेगा कि यह आदमी नंगा खड़ा है, हम कपड़े बेच रहे हैं। हम इसके शिष्य हैं, बात क्या है? अगर नग्न होना पुण्य है तो कपड़े बेचना पाप हो जाएगा, क्योंकि दूसरों को कपड़े पहनाना अच्छी बात नहीं है। फिर नाहक उनको पाप में ढकेलना है। नहीं, लेकिन मरे हुए महावीर से बाधा नहीं आती। ख्याल ही नहीं आता। जब मैंने उन्हें याद दिलाया, उन्होंने कहा--आश्चर्य, हम तो तीस साल से यह बोर्ड लगाए हुए हैं और हमें कभी ख्याल ही नहीं आया कि दिगंबर में और कपड़े में कोई विरोध है।

नहीं, ख्याल ही नहीं आता। मुर्दा तीर्थकर हमारी व्यवस्था में सम्मिलित हो जाता है। हम उसको, उसकी नोकों को झाड़ देते हैं; उसकी बगावत को गिरा देते हैं; शब्दों पर नया रंग पालिश कर देते हैं, फिर वह ठीक है। लेकिन जिसको इतिहास पीछे से श्रेष्ठ कहता है उसका अपना समय उसे हमेशा उपद्रवी कहता है। किसको आदर? फिर श्रेष्ठ को जांचने का मार्ग भी तो कोई नहीं है। महाजन कौन है! महाजनों येन गतः स पन्था--जिस मार्ग पर महाजन जाते हैं, वही मार्ग है।

लेकिन महाजन कौन है? मोहम्मद महाजन हैं? महावीर को मानने वाला कभी नहीं मान पाएगा कि यह आप क्या बात कर रहे हैं। तलवार लिए हुए हाथ में जो आदमी खड़ा है, वह महाजन है? कौन है महा जन? मोहम्मद को मानने वाला कभी न मान पाएगा कि महावीर महाजन हैं। क्योंकि वह कहता है--जो आदमी बुराई के खिलाफ तलवार भी नहीं उठाता, वह आदमी नपुंसक है, क्लीव है। जब इतनी बुराई चलती है तो तलवार उठनी चाहिए। नहीं तो तुम क्या हो, तुम मुर्दे हो। धर्म तो जीवंत होना चाहिए। धर्म के हाथ में तो तलवार होगी, इसलिए मोहम्मद के हाथ में तलवार है। हालांकि तलवार पर लिखा है "शांति मेरा संदेश है।" इस्लाम का मतलब शांति होता है। इस्लाम शब्द का मतलब शांति होता है। जैनी यह कभी सोच ही नहीं सकता कि इस्लाम और शांति, इनका कोई संबंध है? लेकिन मोहम्मद कहते हैं--जो शांति तलवार की धार नहीं बन सकती, वह बच नहीं सकती। बचेगी कैसे?

कौन है श्रेष्ठ? कैसे तौलिएगा? इसलिए हमने तौलने का एक सरल रास्ता निकाला है, जिसमें तौलना नहीं पड़ता। हम जन्म से तौलते हैं। अगर मैं जैन घर में पैदा हुआ तो महावीर श्रेष्ठ; मुसलमान घर में पैदा हुआ तो मोहम्मद श्रेष्ठ। यह तौलने से बचने की तरकीब है। यह ऐसा उपाय खोजना है जिसमें मुझे तौलना ही नहीं पड़ता। अब जन्म तो हो गया, वह नियति बन गई। उससे तुल जाती है बात कि श्रेष्ठ कौन है। आप सब इसी तरह तौल रहे हैं कि कौन श्रेष्ठ है, किसको आदर देना है! जब आप जैन साधु को आदर देते हैं तो आप यह जान कर आदर देते हैं कि वह साधु है या यह जानकर आदर देते हैं कि वह जैन है।

साधु को तौलने का उपाय कहां है? कैसे तौलिएगा? एक मुंहपट्टी निकाल कर अलग कर दे और आदर खत्म हो जाएगा। तो आप किसको आदर दे रहे थे? मुंहपट्टी को या इस आदमी को? मुंहपट्टी वापस लगा ले, पैर आप छूने लगेंगे। मुंहपट्टी नीचे रख दे, आप पछताएंगे कि इस आदमी का पैर क्यों छुआ? मुंहपट्टी नीचे रख दे--अपने मंदिर में, अपने स्थानक में ठहरने न देंगे। मुंह पट्टी लगा ले--स्वागत! आप मुंहपट्टी को देख रहे हैं कि आदमी को? लगता ऐसा है कि मुंहपट्टी ही असली चीज है। यानी ऐसा नहीं कहना चाहिए, आदमी मुंहपट्टी लगाए हुए है, ऐसा कहना चाहिए कि मुंहपट्टी आदमी को लगाए हुए है। क्योंकि असली चीज मुंहपट्टी है। आखिर में निर्णय वही करती है। आदमी तो निर्णायक है नहीं। अगर बुद्ध भी आ जाएं आपके मंदिर में तो आप उनको उतना आदर नहीं देंगे जितना मुंहपट्टी लगाए हुए एक बुद्ध को देंगे। क्योंकि मुंहपट्टी कहां है?

यह तरकीबें हमने क्यों खोजी हैं? इसका कारण है। क्योंकि कोई मापदंड का उपाय नहीं है। इनसे हम रास्ता बना लेते हैं। तौलने का कोई उपाय नहीं है, यह आपकी मजबूरी है। यह आदमी की मजबूरी है कि श्रेष्ठ कौन है, इसके लिए कोई तराजू नहीं है। तो हम फिर ऊपरी चिह्न बना लेते हैं, उनसे तौलने में आसानी हो जाती है। पीछे के आदमी की हम बकवास छोड़ देते हैं। हमारे लिए तो निपटारा हो गया कि यह आदमी साधु है, पैर छुओ, घर जाओ, विनय करो।

लेकिन, महावीर इस तरह की बचकानी बात नहीं कह सकते। यह चाइल्डिश है। महावीर यह नहीं कह सकते हैं कि तुम श्रेष्ठ को आदर देना, क्योंकि श्रेष्ठ को आदर कैसे दोगे? श्रेष्ठ कौन हैं, तुम कैसे जानोगे? और जब तुम श्रेष्ठ को जानने जाओगे तो तुम्हें निकृष्ट को जानना पड़ेगा। और जब तुम श्रेष्ठ की परीक्षा करोगे तो तुम कैसे परीक्षा करोगे? उसके सब पापों का हिसाब-किताब रखना पड़ेगा कि रात में पानी तो नहीं पी लेता; कि छिपा

कर कुछ खा तो नहीं लेता; कि साबुन की बटिया तो नहीं अपने झोले में दबाए हुए है; दूधपेस्ट तो नहीं करता है; यह सब रखना पड़ेगा पता! यह सब पता रखना पड़ेगा और यह सब पता वही रख सकता है जिसका निंदा में रस हो, जो दूसरे को निकृष्ट सिद्ध करने चला हो। यह वह आदमी नहीं कर सकता जो विनयपूर्ण है। इससे क्या प्रयोजन है उसे कि कौन आदमी दूधपेस्ट रखता है कि नहीं रखता है। इसका चिंतन ही बताता है कि यह जो आदमी सोच रहा है उसमें विनय नहीं है। महावीर यह नहीं कहते।

महावीर यह कहते हैं कि विनय एक आंतरिक गुण है। बाहर से उसका कोई संबंध नहीं है। अनकंडीशनल है, बेशर्त है। वह यह नहीं कहता कि तुम ऐसे होओगे तो मैं आदर दूंगा। वह यह कहता है कि तुम हो, पर्याप्त है। मैं तुम्हें आदर दूंगा क्योंकि आदर आंतरिक गुण है और आदर मनुष्य को अंतरात्मा की तरफ ले जाता है। मैं तुम्हें आदर दूंगा बेशर्त। तुम शराब पीते हो कि नहीं पीते हो, यह सवाल नहीं है; तुम जीवन हो, यह काफी है। और यह पूरा अस्तित्व तुम्हें जिला रहा है। सूरज तुम्हें रोशनी दे रहा है, वह इनकार नहीं करता कि तुम शराब पीते हो। हवाएं आक्सीजन देने से मुकरती नहीं कि तुम बेईमान हो। आकाश कहता नहीं कि हम तुम्हें जगह नहीं देंगे क्योंकि तुम आदमी अच्छे नहीं हो। जब यह पूरा अस्तित्व तुम्हें स्वीकार करता है तो मैं कौन हूँ जो तुम्हें अस्वीकार करूँ! तुम हो, इतना काफी है। मैं तुम्हें आदर देता हूँ। मैं तुम्हें सम्मान देता हूँ।

यह जीवन के प्रति सहज सम्मान का नाम विनय है--अकारण, खोज-बीन के बिना, क्योंकि खोज-बीन हो नहीं सकती। वह जो करता है, वह आदमी विनीत नहीं होता--बेशर्त। अगर मैं कहूँ कि तुम मेरी शर्तें पूरी करो इतनी, तब मैं तुम्हें आदर दूंगा; तो मैं उस आदमी को आदर नहीं दे रहा हूँ। मैं अपनी शर्तों को आदर दे रहा हूँ। और जो आदमी मेरी शर्तें पूरी करने को राजी हो जाता है वह आदर योग्य नहीं है, वह गुलाम है। वह आदर पाने के लिए ही बेचारा शर्तें पूरी करने को राजी है। हम अपने साधुओं से कहते हैं, तुम ऐसा करो, पैदल चलो, इधर मत जाओ, उधर मत जाओ तो हम तुम्हें आदर देंगे--ये सब अनकही शर्तें हैं। अगर वह उनमें गड़बड़ करता है, आदर विलीन हो जाता है। अगर इनको मान कर चलता है, आदर जारी रहता है। और इसलिए एक दुर्घटना घटती है कि साधुओं में जो प्रतिभा होनी चाहिए वह धीरे-धीरे खो जाती है। और साधुओं की तरफ सिर्फ जड़बुद्धि लोग उत्सुक हो पाते हैं। क्योंकि जड़ बुद्धि ही आपके इतने नियमों को मान सकते हैं, बुद्धिमान आपके इतने नियमों को नहीं मान सकता।

इसीलिए यह दुर्घटना घटती है कि जब भी सच में कोई साधु पुरुष पैदा होता है तो उसे नया धर्म खड़ा करना पड़ता है क्योंकि कोई पुराने धर्म में उसके लिए जगह नहीं होती। इसका कारण है। अब एक नानक पैदा हो जाए तो उसका नया धर्म अनिवार्यतया खड़ा हो जाता है, क्योंकि कोई पुराना धर्म उसको जगह न देगा; क्योंकि वह कोई के नियम जबरदस्ती इसलिए मानने को राजी न होगा कि आप आदर देंगे। वह कहता है--आदर की क्या जरूरत है? मैं अपने ढंग से जीऊंगा जो मुझे ठीक लगता है। तब उसका ठीक लगना किसी पुराने धर्म को ठीक नहीं लगेगा, क्योंकि पुराने धर्म किन्हीं और लोगों के आस-पास निर्मित हुए हैं, उनके ठीक होने का ढंग और था।

अब मुसलमान सोच ही नहीं सकते कि नानक में भी कोई समझ हो सकती है। वे मर्दाना को बगल में लिए गांव-गांव गीत गाते फिरते हैं। संगीत की दुश्मनी है इस्लाम में। मस्जिद में संगीत प्रवेश नहीं कर सकता। मस्जिद के सामने से नहीं निकल सकता। और यह आदमी मर्दाना को लिए हुए--और जगह-जगह। मर्दाना मुसलमान था जो नानक के साथ साज बजाता था तो मुसलमानों ने उसको भी डिसओन कर दिया क्योंकि यह आदमी कैसा है! मुसलमान हो ही नहीं सकता। संगीत से तो दुश्मनी है।

मोहम्मद के लिए संगीत में कोई रस न रहा होगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यह भी हो सकता है कि मोहम्मद को संगीत के माध्यम से निम्न वासनाएं जगती हुई मालूम हुई होंगी और उन्होंने इनकार कर दिया। लेकिन सभी को ऐसा होता है, यह जरूरी नहीं है। किन्हीं के भीतर संगीत से श्रेष्ठतम का जन्म होना शुरू होता है।

तो मोहम्मद का अपना अनुभव आधार बनेगा। मोहम्मद को सुगंध बहुत पसंद थी। इसलिए मुसलमान अभी भी ईद के दिन बेचारे इत्र एक दूसरे को लगाते देखेंगे। अभी भी सुगंध से मुसलमानों को प्रेम है। वह प्रेम

सिर्फ परंपरा है। मोहम्मद को बहुत पसंद है। असल में मोहम्मद, ऐसा मालूम पड़ता है कि सुगंध मोहम्मद को वहीं ले जाती थी, जहां कुछ लोगों को संगीत ले जाता है। सुगंध भी एक इंद्रिय है; जैसा संगीत कान का रस है, वैसे सुगंध नाक का रस है। लेकिन मालूम होता है कि मोहम्मद सुगंध से बड़ी ऊंचाइयों पर उड़ जाते थे। और उनके लिए सुगंध का कोई एसोसिएशन गहरा बन गया होगा।

संभव है, जब पहली दफा उन्हें इलहाम हुआ, जब उन्हें पहली दफा प्रभु की प्रतीति हुई, या प्रभु का संदेश उतरा तब पहाड़ के आस-पास फूल खिले होंगे। सुगंध उसके साथ जुड़ गई होगी। जरूर कोई ऐसी घटना—फिर सुगंध उनके लिए द्वार बन गई। जब वे सुगंध में होंगे, तब वह द्वार खुल जाएगा।

लेकिन यही बात संगीत में हो सकती है, लेकिन यही बात नृत्य में हो सकती है, यही बात अनेक-अनेक रूपों में हो सकती है, पर, मोहम्मद हों तो शायद समझ भी जाएं, मोहम्मद तो हैं नहीं, वह तो पीछे चलने वाला आदमी है, वह कहता है कि संगीत नहीं बजने देंगे, क्योंकि संगीत इनकार है।

तो फिर नानक को मुसलमान कैसे स्वीकार करें? हिंदू भी स्वीकार नहीं कर सकते नानक को। क्योंकि नानक गृहस्थ हैं। वे संन्यासी नहीं हैं। पत्नी है, घर है, कपड़े भी वे साधारण पहनते हैं—गृहस्थ। गृहस्थ को हिंदू कैसे स्वीकार करें? ज्ञानी तो संन्यासी होता है।

फिर नानक और भी गड़बड़ करते हैं। सभी जानने वाले लोग एक अर्थ में डिस्टर्बिंग होते हैं, क्योंकि पुरानी सब व्यवस्था से वे फिर नये होते हैं। वे गड़बड़ यह करते हैं कि वे काबा भी चले जाते हैं, वे मस्जिद में भी ठहर जाते हैं। तो हिंदू कैसे मानें कि जो आदमी मस्जिद में भी ठहर जाता है, वह आदमी धार्मिक हो सकता है! मंदिर में ही ठहरना चाहिए।

जो विनय श्रेष्ठ की किन्हीं धारणाओं को मानकर चलती है वह सिर्फ अंधी होगी, परंपरागत होगी, रूढ़िगत होगी, वह क्रांतिकारी नहीं होती है। उससे अंतर-आविर्भाव नहीं होता है। अंतर-आविर्भाव जब होता है तो आदर सहज होता है—वह पत्थर के प्रति भी होता है, पौधे के प्रति भी होता है, अस्तित्व के प्रति भी होता है। इससे कोई संबंध नहीं कि वह कौन है और क्या है, कोई शर्त नहीं है। वह है, बस इतना काफी है।

ऐसी विनय की जो स्थिति है वह प्रायश्चित्त के बाद ही सध सकती है। और सध जाए तो जीवन में आनंद का हिसाब नहीं रह जाता। क्यों? क्योंकि जितना दूसरों का दोष देखते हैं, मन को उतना ही दुख होता है। और जितने दूसरों के दोष देखते हैं उतने ही अपने दोष नहीं दिखते और नहीं दिखने वाले दुश्मन भीतर छिप कर काम तो चौबीस घंटे करते हैं, बहुत दुख पैदा करवाते हैं। जब दूसरे में कोई दोष नहीं दिखता तो दूसरे से दुख आना बंद हो जाता है। जब कोई आदमी मुझ पर क्रोध करता है तो अगर मैं यह नहीं मानता कि यह उसका दोष है, या बुराई है; इतना मानता हूं कि ऐसा उससे घटित हो रहा है, तो फिर मैं उसके क्रोध से दुखी नहीं होता। अगर मैं जा रहा हूं और एक वृक्ष की शाखा मेरे ऊपर गिर जाए तो खड़े होकर वृक्ष को गाली नहीं देता—हालांकि कुछ लोग देते हैं। बिना गाली दिए वे मान ही नहीं सकते, वृक्ष को भी गाली दे देते हैं। पर वे भी मानेंगे गाली देने के बाद कि बेकार थी बात, सिर्फ आदतवश थी। क्योंकि वृक्ष को क्या पता कि मैं निकल रहा हूं, क्या प्रयोजन मुझे मारने का; चोट पहुंचाने का क्या अर्थ है!

वृक्ष को हम गाली नहीं देते क्योंकि हम मान लेते हैं कि वृक्ष को हमसे कोई प्रयोजन नहीं है। शाखा टूटनी थी, हवा का झोंका भारी था, तूफान तेज था, वृक्ष जरा-जीर्ण था, गिर गया, संयोग की बात कि हम नीचे थे। जो आदमी विनयपूर्ण होता है, जब आप उसको गाली देते हैं तब भी वह ऐसा ही मानता है कि मन में उसके क्रोध भरा होगा, परेशान होगा चित्त, जरा-जीर्ण होगा, गाली निकल गई; संयोग की बात कि हम पास थे। और कोई पास होता, किसी और पर निकलती। मगर इससे विनय में कोई बाधा नहीं पड़ती। इससे दुख भी नहीं आता। इससे यह भी नहीं होता कि ऐसा उसने क्यों किया? ऐसा तो तभी होता है जब हम मानते हैं कि उसे कुछ और करना चाहिए था जो उसने नहीं किया।

विनीत आदमी मानता है, वही होता है जो हो रहा है। वही हो सकता है जो हो रहा है--स्वीकार है वह। पर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। जीसस जुदास के पैर पड़ लेते हैं उसी रात, जिस रात पकड़े जाते हैं। जुदास के पैर पड़ना, जुदास का हाथ लेकर चूमना। कोई पूछता है कि आप यह क्या कर रहे हैं? और आपको पता है और हमें भी थोड़ी-थोड़ी खबर है कि यह आदमी दुश्मनों के साथ मिला है। जीसस कहते हैं--इससे क्या फर्क पड़ता है! यह क्या करेगा और क्या करता है, यह सवाल नहीं है। यह है, यही काफी आनंद है। फिर शायद दुबारा इससे मिलने का मौका न भी मिले। मैं बच जाऊं तो भी न मिले क्योंकि यह आदमी शायद फिर निकट आने का साहस न जुटा पाए। मैं न बचूं, तब तो सवाल नहीं। मैं कल मर जाऊं तो मेरा यह संबंध, और मेरा इसका पैर को छूना इसे याद रहेगा। वह शायद इसके किसी काम पड़ जाए। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह क्या करेगा। यह इररिलेवंट है।

विनय के लिए यह बात असंगत है कि आप क्या करते हैं, आप हैं, इतना काफी है। विनय बेशर्त सम्मान है। श्रीत्जर ने ठीक शब्द उपयोग किया है महावीर के विनय का। अगर ठीक शब्द हम पकड़ें इस सदी में तो श्रीत्जर से मिलेगा। श्रीत्जर ने एक किताब लिखी है--रेवरेंस फॉर लाइफ, जीवन के प्रति सम्मान। तो यह नहीं है कि एक तितली को बचा लेंगे और एक बिच्छू को न बचाएंगे। श्रीत्जर दोनों को बचाने की कोशिश करेगा। माना कि बिच्छू को बचाने में बिच्छू डंक मार सकता है, यह उसका स्वभाव है। इसके कारण सम्मान में कोई अंतर नहीं पड़ता। हम बिच्छू से यह नहीं कहते कि तुम डंक न मारोगे तो ही हम सम्मान देंगे। हम जानते हैं कि बिच्छू का डंक मारना स्वभाव है। वह डंक मार सकता है। श्रीत्जर उसको भी बचाने की कोशिश करेगा; क्योंकि जीवन के प्रति एक सम्मान का भाव है। और जीवन के प्रति सम्मान हो तो आपके दुख असंभव हैं, क्योंकि सब दुख आप शर्तों के कारण लेते हैं। ध्यान रहे सब दुख सशर्त हैं। आपकी कोई शर्त है इसलिए दुख पाते हैं। जिसको कोई शर्त नहीं है वह दुख पाता। दुख का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब आप दुख नहीं पाते तो जो आप पाते हैं वही आनंद है।

जीसस ने कहा है: अपने शत्रुओं को भी प्रेम करो। नीत्शे ने जीसस के इस वक्तव्य पर आलोचना करते हुए लिखा है कि इसका तो मतलब यह हुआ कि आप शत्रु को तो देखते ही हैं; शत्रु को प्रेम करो, शत्रुता तो दिखाई ही पड़ती है शत्रु में। और जब शत्रुता दिखाई पड़ती है तो प्रेम कैसे करोगे? उसका वक्तव्य तर्कपूर्ण है, लेकिन सम्यक नहीं है। नीत्शे जो कह रहा है वह तर्कयुक्त है, फिर भी सत्य नहीं। जीसस अगर उत्तर दे सकें तो वे यही कहेंगे कि माना कि शत्रुता दिखती है, लेकिन फिर भी प्रेम करो क्योंकि शत्रुता जहां दिखती है वह उसका व्यवहार है और जो उसके भीतर छिपा है वह उसका अस्तित्व है। हमारा सम्मान अस्तित्व के लिए है। वह बेशर्त है। माना कि वह गाली दे रहा है, पत्थर मार रहा है, हत्या करने की कोशिश कर रहा है, वह ठीक है। यह वह कर रहा है, यह वह जाने।

इस संबंध में यह भी आपको याद दिला दूं, उपयोगी होगा कि महावीर, बुद्ध या कृष्ण इन सबकी चिंतना में बहुत-बहुत फासले हैं, बहुत भेद हैं--होंगे ही। जब भी किसी व्यक्ति से सत्य उतरेगा तो वह नये आकार लेता है, उस व्यक्ति के आकार लेता है। निराकार सत्य तो उतर नहीं सकता। जब किसी से उतरता है तो उस व्यक्ति का आकार ले लेता है। लेकिन एक बहुत अदभुत बात है, इस पृथ्वी पर भारत में पैदा हुए समस्त धर्म एक सिद्धांत के मानने में सहमत हैं, वह है कर्म। बाकी सब मामले में भेद है। बड़े-बड़े मामलों में भेद है। परमात्मा है या नहीं? हिंदू कहेंगे, है, जैन कहेंगे, नहीं है। आत्मा है या नहीं? तो जैन और हिंदू कहते हैं, है; बुद्ध कहते हैं, नहीं है। इतने बड़े मामलों में फासला है। लेकिन एक मामले में, जो हमारी नजर में भी नहीं आता और जो इन सबसे ज्यादा कीमती है, इसीलिए उसमें फासला नहीं है। वह सेंट्रल है, केंद्रीय है। परिधि पर झगड़े हो सकते हैं। वह है, कर्म का विचार। उसमें कोई फर्क नहीं है। ये सारे धर्म इस देश में पैदा हुए हैं, कर्म के विचार से राजी हैं। बुद्ध जो

आत्मा से नहीं मानते, परमात्मा को नहीं मानते, वे भी कहते हैं, कर्म है। महावीर परमात्मा को नहीं मानते, वे भी कहते हैं, कर्म है। हिंदू परमात्मा को भी मानते हैं, आत्मा को भी मानते हैं, वे भी कहते हैं, कर्म है।

यह कर्म की, इस विनय के संदर्भ में एक बात आपको याद दिला देनी जरूरी है कि जब भी कोई कुछ कर रहा है वह अपने कर्मों के कारण कर रहा है, आपके कारण नहीं। और जो आप कर रहे हैं वह अपने कर्मों के कारण कर रहे हैं, उसके कारण नहीं। अगर यह ख्याल में आ जाए तो वह विनय सहज ही उतर आएगी। एक आदमी गाली दे रहा है, तो दो वजह हो सकती है इसके विषय में। एक आदमी मेरे पास आता है और मुझे गाली देता है तो इसे मैं दो तरह से जोड़ सकता हूँ कि या तो वह इसलिए गाली देता है कि वह मुझे गाली देने योग्य आदमी मानता है। गाली को मैं अपने से जोड़ूँ। और एक रास्ता यह है कि आदमी इसलिए गाली देता है कि उसके अतीत के सब कर्मों ने वह स्थिति पैदा कर दी है कि उसमें गाली पैदा होती है। तब मैं अपने से नहीं जोड़ता, उसके कर्मों से जोड़ता हूँ।

अगर मैं अपने से जोड़ता हूँ तो बहुत मुश्किल है विनय को साधना। कैसे सधेगी? यह आदमी सामने गाली दे रहा है, इसके प्रति मैं कैसे आदर करूँ? मन यह कहेगा कि अगर कोई गाली दे, तुम आदर करो तो तुम उसको गाली देने के लिए और निमंत्रण दे रहे हो। अगर कोई गाली दे और हम उसे आदर करें तो हम उसको और प्रोत्साहन दे रहे हैं। तर्क निरंतर यह कहता है कि हम प्रोत्साहन दे रहे हैं। इससे तो वह और गाली देगा। और यह भी हम मान लें कि हमें गाली देगा तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन हमारे प्रोत्साहन से वह दूसरों को भी गाली देगा। क्योंकि आदमी को रस लग जाए और उसे पता चल जाए कि गाली देने से आदर मिलता है तो हमें दें, तब तक भी ठीक, लेकिन वह दूसरों को भी देगा। अगर किसी आदमी को यह पता चल जाए कि यहां मार-पीट करने से लोग सम्मान देते हैं, साष्टांग दंडवत करते हैं तो वह औरों को भी मारेगा तो जिसका जिम्मा भी हम पर आएगा, क्योंकि हम न आदर देते उसे, न वह मानने के लिए उत्सुक होता।

इसलिए तो मोहम्मद कहते हैं कि उसको वहीं ठीक कर दो जो गड़बड़ करे। नहीं तो अगर तुमने उसको आदर दिया, दूसरा चांटा—गाल उसके सामने कर दिया, वह अपना चांटा कहीं भी घुमाने लगेगा, किसी को भी लगाने लगेगा इसी आशा में कि अब दूसरा चांटा और मिलने का मौका मिलेगा। दूसरा गाल सामने आता होगा। लेकिन कर्म दूसरी तरह से भी जोड़ा जा सकता है; जो न इस्लाम जोड़ सका, न ईसाइयत जोड़ सकी। इसलिए इस्लाम और ईसाइयत में एक बहुत मौलिक आधार की कमी है। बहुत मौलिक आधार की कमी है। और वह कमी है, कर्म के विचार की।

इसलिए जीसस ने इतने प्रेम की बातें कहीं, और इतना अहिंसात्मक उपदेश दिया, लेकिन ईसाइयत ने सिर्फ तलवार चलाई और खून बहाया। खैर, मोहम्मद के मामले में तो यह भी हम कह सकते हैं कि तलवार उनके खुद के हाथ में थी, इसलिये अगर मुसलमानों ने तलवार उठाई तो उसमें एक संगति है। लेकिन जीसस के मामले में तो यह भी नहीं कहा जा सकता। उस आदमी के हाथ में तो कोई तलवार न थी। लेकिन ईसाइयत ने इस्लाम से कम हत्याएं नहीं कीं। इस सारी दुनिया को, पृथ्वी को रंग देने वाले लोग खून से, ईसाइयत और इस्लाम से आए।

बात क्या होगी? भूल क्या होगी? क्या कारण होगा? जीसस जैसा आदमी जिसने इतने प्रेम की बातें कही, उसकी भी परंपरा इतनी उपद्रवी सिद्ध हुई, इसका कारण क्या है? इसका कारण है, न तो जीसस और न मोहम्मद, दोनों में से कोई भी कर्म को व्यक्ति की स्वयं की अंतर-शृंखला से नहीं जोड़ पाया। वहीं भूल हो गई। वह भूल गहरी हो गई। और जितनी दुनिया वैज्ञानिक होती जाएगी उतनी वह भूल साफ दिखाई पड़ेगी।

इसे ऐसा सोचें कि जब भी आप क्रोध करते हैं तो असल में आप दूसरे पर क्रोध नहीं करते। दूसरा सिर्फ निमित्त होता है। आप क्रोध को संगृहीत किए होते हैं अपने ही कर्मों में, अपने ही कल की यात्रा से। वह क्रोध आपके भीतर भरा होता है जैसे कि कुएं में पानी भरा होता है और कोई बाल्टी डाल कर खींच लेता है। कोई

गाली डाल कर आपके क्रोध को बाहर निकाल लेता है, बस। वह निमित्त ही बनता है। तो निमित्त पर इतना क्या क्रोध? कुआं क्यों बाल्टी को गाली दे कि तुझमें पानी है। पानी तो कुएं से ही आता है, बाल्टी सिर्फ लेकर बाहर दिखा देती है। तो विनयपूर्ण आदमी धन्यवाद देगा उसको जिसने गाली दी। क्योंकि अगर वह गाली न देता तो अपने भीतर के क्रोध का दर्शन न होता। वह बाल्टी बन गया। उसने क्रोध बाहर निकाल कर बता दिया।

इसलिए कबीर कहते हैं--निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निंदा करता हो, उसको तो अपने घर के बगल में ठहरा लेना; क्योंकि वह बाल्टी डालता रहेगा और तुम्हारे भीतर की चीजें निकाल कर तुम्हें बताता रहेगा। अकेले पड़ गए, पता नहीं कुएं में पानी भरा रहे और भूल जाए कुआं कि मुझमें पानी है क्योंकि कुएं को भी पता तभी चलता है जब बाल्टी कुएं से पानी खींचती है। और अगर फूटी बाल्टी हो तो और ज्यादा पता चलता है। निंदक, सब फूटी बाल्टी जैसे ही होते हैं। भयंकर पानी की बौछार कुएं में होने लगती है। तो कुएं को पहली दफा नींद टूटती है और पता चलता है कि क्या हो रहा है। कुआं खुद सोया रहेगा अगर बाल्टी न हो, पता भी न चलेगा।

इसलिए लोग जंगल भागते हैं। वह बाल्टियों से बचने की कोशिश है। लेकिन उससे पानी नष्ट नहीं हो जाएगा, जंगल आप कितना ही भाग जाएं। जंगल के कुएं को कम पता चलता होगा क्योंकि कभी-कभी कोई यात्री बाल्टी डालता होगा। या अगर रास्ता निर्जन हो और कोई न चलता हो तो कुएं को पता ही नहीं चलता होगा कि मेरे भीतर पानी है। ऐसे ही जंगल में बैठे साधु को हो जाता है। कभी कोई निकलने वाला कुछ गलत-सही बातें कर दे, तो शायद बाल्टी पड़ती है। अगर रास्ता बिल्कुल निर्जन हो... इसलिए साधु निर्जन रास्ता खोजता है, निर्जन स्थान खोज लेता है। अगर इसीलिए खोज रहा है तो गलती कर रहा है। अगर यही कारण है कि मेरे भीतर जो भरा है वह दिखाई न पड़े किसी के कारण, तो गलती कर रहा है, भयंकर गलती कर रहा है।

महावीर कहते हैं कि दूसरा अपने कर्मों की शृंखला में नया कर्म करता है। तुमसे उसका कोई भी संबंध नहीं है। इतना ही संबंध है कि तुम मौके पर उपस्थित थे और उसके भीतर विस्फोट के लिए निमित्त बने। इस बात को दूसरी तरह भी सोच लेना है कि तुम भी जब किसी के लिए विस्फोट करते हो तब वह भी निमित्त ही है। तुम ही अपनी शृंखला में जीते और चलते हो।

इसे हम ऐसा समझें तो शायद समझना आसान पड़ जाए। दस आदमी एक ही मकान में हैं, एक आदमी बीमार पड़ जाता है, उसे फ्लू पकड़ लेता है। चिकित्सक उससे कहता है कि वायरस है। लेकिन दस आदमी भी घर में हैं, उनमें से नौ को नहीं पकड़ा है। तो चिकित्सक की कहीं बुनियादी भूल तो मालूम पड़ती है। वायरस इसी आदमी को खोजता है, इसका मतलब केवल इतना है कि वायरस निमित्त बन सके, लेकिन इस आदमी के भीतर बीमारी संगृहीत है। नहीं तो बाकी नौ लोगों को वायरस क्यों नहीं पकड़ रहा है? कोई दोस्ती है, कोई दुश्मनी है! बाकी नौ लोगों को नहीं, इस आदमी को क्यों पकड़ लिया? इस आदमी को इसलिए पकड़ लिया है कि इस आदमी के भीतर वह स्थिति है जिसमें वायरस निमित्त बन कर और फ्लू को पैदा कर सकता है। बाकी नौ के भीतर वह स्थिति नहीं है। तो वायरस आता है, चला जाता है। वह उनके भीतर फ्लू पैदा नहीं कर पाता।

तो अब सवाल यह है--फ्लू वायरस पैदा करता है? अगर ऐसा आप देखते हैं तो आप महावीर को कभी न समझ पाएंगे। महावीर कहते हैं--फ्लू की तैयारी आप करते हैं, वायरस केवल मैनिफेस्ट करता है, प्रकट करता है। तैयारी आप करते हैं, जिम्मेवार आप हैं। जिम्मेवारी सदा मेरी है। आस-पास जो घटित होकर प्रकट होता है वह सिर्फ निमित्त है, उससे क्रोध का कोई कारण नहीं होता। धन्यवाद दिया भी जा सकता है; अनुग्रह माना भी जा सकता है; क्रोध का कोई कारण नहीं रह जाता। और तब आप में अहंकार के खड़े होने की कोई जगह नहीं रह जाती।

ध्यान रहे, जहां क्रोध है, वहां भीतर अहंकार है। और जहां क्रोध नहीं, वहां भीतर अहंकार नहीं है। क्योंकि क्रोध सिर्फ अहंकार के बीच डाली गई बाधाओं से पैदा होता है, और किसी कारण पैदा नहीं होता। अगर

आपके अहंकार को तृप्ति मिलती जाए, आप कभी क्रोधी नहीं होते। अगर सारी दुनिया आपके अहंकार को तृप्त करने को राजी हो जाए तो आप कभी क्रोधी न होंगे। आपको पता ही नहीं चलेगा कि क्रोध भी कोई चीज थी। लेकिन अभी कोई आपके मार्ग में बाधा डालने को खड़ा हो जाए, आपको क्रोध प्रकट होने लगेगा। क्रोध जो है, अहंकार अवरुद्ध जब होता है तब पैदा होता है।

लेकिन अब तो क्रोध का कोई कारण ही न रहा। अगर मैं यह मानता हूँ कि आप अपने कर्मों से चलते हैं, मैं अपने कर्मों से चलता हूँ, हम राह पर कहीं--कहीं मिलते हैं--किसी क्रास, किसी चौरस्ते पर मुलाकात हो जाती है, लेकिन फिर भी आप अपने से ही बोलते हैं, मैं अपने से ही बोलता हूँ। मैं अपने से ही व्यवहार करता हूँ, आप अपने से ही व्यवहार करते हैं। कहीं प्रकट जगत में हमारे व्यवहार एक दूसरे से तालमेल खा जाते हैं। पर वह सिर्फ निमित्त है। उसके लिए किसी को जिम्मेवार ठहराने का कोई कारण नहीं, तो फिर क्रोध का भी कोई कारण नहीं। और क्रोध का कोई कारण न हो तो अहंकार बिखर जाता है, सघन नहीं हो पाता है।

विनय बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया है। दोष दूसरे में नहीं है, दूसरा मेरे दुख का कारण नहीं है। दूसरा श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ नहीं है। दूसरे से मैं कोई तुलना नहीं करता। दूसरे पर मैं कोई शर्त नहीं बांधता कि इस शर्त को पूरा करोगे तो मेरा आदर, मेरा प्रेम तुम्हें मिलेगा, सम्मान मिलेगा। मैं बेशर्त जीवन को सम्मान देता हूँ। और प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म से चल रहा है। तो अगर मुझसे कोई भूल होती है तो मैं अपने भीतर अपने कर्म की शृंखला में खोजूँ। अगर दूसरे से कोई भूल होती है तो यह उसका काम है इससे मेरा कोई भी संबंध नहीं है। अगर एक आदमी मेरी छाती में आकर छुरा भोंक जाता है, तो भी यह कर्म उसका है, इससे मेरा कोई भी संबंध नहीं है। छाती में छुरा जरूर मेरे भुंका जाता है लेकिन इससे मेरा फिर भी कोई संबंध नहीं है। यह काम उसका ही है, वही जाने। वही इसके फल पाएगा, नहीं पाएगा, यह उसकी बात है। यह मेरा काम ही नहीं है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है।

महावीर इतना जरूर कहते हैं कि अगर यह मेरी छाती में छुरा भुंका है, तो इससे मेरा इतना ही संबंध हो सकता है कि मेरी पिछली यात्रा में मैंने यह तैयारी करवाई हो कि मेरी छाती में छुरा भुंके। इसका मेरी छाती में जाना मेरे पिछले कर्मों की कुछ तैयारी होगी। बस, उससे मेरा संबंध है। लेकिन उस आदमी का मेरी छाती में भोंकना, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। इससे उसकी अपनी अंतर्यात्रा का संबंध है। यह बात साफ-साफ दिखाई पड़ जाए तो हम पैरेलल अंतर्धाराएं हैं कर्मों की, समांतर दौड़ रहे हैं। और प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है। लेकिन जब-जब हम जोड़ लेते हैं अपने से दूसरे की धारा को, तभी कष्ट शुरू होता है।

विनय केवल इस बात की सूचना है कि मैं अपने से अब किसी को जोड़ता नहीं। इसलिए विनय को महावीर ने अंतर-तप कहा है। क्योंकि वह स्वयं को दूसरों से तोड़ लेना है। बिना पता चले चीजें टूट जाती हैं। और जब मेरे और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं रह जाता--प्रेम का नहीं, घृणा का नहीं--संबंध ही नहीं रह जाता, सिर्फ निमित्त के संबंध रह जाते हैं; तब न कोई श्रेष्ठ है, न कोई अश्रेष्ठ है। न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। न कोई मेरा बुरा करने की कोशिश कर सकता है, न कोई मेरा भला करने की कोशिश कर रहा है।

महावीर कहते हैं कि जो कुछ मैं अपने लिए कर रहा हूँ, मैं ही कर रहा हूँ--भला तो भला, बुरा तो बुरा; मैं ही अपना नरक हूँ, मैं ही अपना स्वर्ग हूँ, मैं ही अपनी मुक्ति हूँ। मेरे अतिरिक्त कोई भी निर्णायक नहीं है, मेरे लिए। तब एक हम्बलनेस, एक विनम्र भाव पैदा होता है जो अहंकार का रूप नहीं, अहंकार का अभाव है। जो अहंकार का डायल्यूट फार्म नहीं है, जो अहंकार का तरल, बिखरा हुआ, फैला हुआ आकार नहीं है--अहंकार का अभाव है।

तो यह आखिरी बात ख्याल में ले लें। विनम्रता यदि साधी जाएगी--जैसा हम साधते हैं कि इसको आदर दो, उसको आदर दो; इसको मत दो, उसको मत दो; आदर का भाव जन्माओ; विनम्र रहो; अहंकारी मत बनो, निर-अहंकारी रहो--तो जो विनम्रता पैदा होगी, इट विल बी ए फार्म ऑफ ईगो, वह अहंकार का ही एक रूप

होगी। उससे समाज को थोड़ा फायदा होगा। क्योंकि आपका अहंकार कम प्रकट होगा, दबा हुआ प्रकट होगा, ढंग से प्रकट होगा, सुसंस्कृत होगा, कल्चर्ड होगा। लेकिन आपको कोई फायदा नहीं होगा।

इसलिए समाज की उत्सुकता इतनी ही है कि आप विनम्रता का आवरण ओढ़े रहें। बस समाज को इससे कोई मतलब नहीं है। समाज की औपचारिक व्यवस्था इतने से चल जाती है कि आप विनम्रता ओढ़े रहें। रहें भीतर अहंकारी, समाज का कोई मतलब नहीं है। लेकिन धर्म को इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि आप बाहर क्या ओढ़े हुए हैं। धर्म को प्रयोजन है, आप भीतर क्या हैं? बॉट यू आर?

तो महावीर की जो विनय है वह समाज की व्यवस्था की विनय नहीं है—कि पिता को, कि गुरु को, कि शिक्षक को, कि वृद्ध को आदर दो। महावीर यह भी नहीं कहते कि मत दो। मैं भी नहीं कह रहा हूँ कि आप मत दो, बराबर दो। वही समाज का खेल है, जस्ट ए गेम, और जितना समझदार आदमी, उसको उतना ही खेल है।

एक मित्र अभी परसों ही आए और कहने लगे लड़के का यज्ञोपवीत होना है। और जब से आपको सुना तो लगता है यह तो बिल्कुल बेकार है। लेकिन पत्नी जिद्द पर है, पिता जिद्द पर हैं, पूरा परिवार जिद्द पर है कि यह होकर रहेगा। तो मैं बाधा डालूँ कि न डालूँ?

तो मैंने कहा कि अगर बिल्कुल बेकार है तो बाधा क्या डालनी! अगर कुछ थोड़ा सार्थक लगता है तो बाधा डालो। अगर तुम्हें लगता है, कि यज्ञोपवीत का यह जो संस्कार-विधि होगी, यह बिल्कुल बेकार है, इतनी बेकार अगर लगने लगी है तो ठीक है। जैसे घर के लोग सिनेमा देखने चले जाते हैं वैसे ही यज्ञोपवीत का समारोह हो जाने दो। जस्ट मेक इट ए गेम। है भी वह खेल। अब अगर पिता को मजा आ रहा है, मां को मजा आ रहा है, पत्नी मजा ले रही है, तो हर्जा क्या है इस खेल को चलने में? चलने दो। इस खेल को खेलो। अगर तुम जिद्द करते हो कि नहीं चलने देंगे तो तुम भी इसको खेल नहीं मानते, तुम भी समझते हो बड़ी कीमती चीज है। तुम भी सीरियस हो, तुम भी गंभीर हो कि अगर नहीं होगा तो कुछ फायदा होगा। जिस चीज के होने से फायदा नहीं हो रहा है, उसके न होने से क्या खाक फायदा होगा। जिसके होने तक से फायदा नहीं हो रहा है, उसके न होने से क्या फायदा हो सकता है? तो मैंने उनसे कहा, चीज इतनी बेकार है कि तुम बाधा मत डालना।

बोले, आप और यह कहते हैं! मैं तो यही समझा कि आप कहेंगे कि टूट पड़ो, बिल्कुल होने ही मत देना।

मैं क्यों कहूँगा, ऐसा फिजूल काम, और इतना रस आ रहा हो घर के लोगों को तो—सो इनोसेंट गेम—इतना सरल खेल कि एक लड़के के गले में माला-वाला डालनी है, सिर घुटाना—तो खेलने दें; इसमें क्या हर्ज है? और आदमी बच्चों जैसे हैं, उनको खेल चाहिए ही। अगर खेल न हो तो जिंदगी उदास हो जाती है। इसलिए हम जन्म को भी खेल बनाते; फिर यज्ञोपवीत का खेल खेलते; फिर शादी आती है, उसका खेल चलता। मर जाता है आदमी, तब भी हम खेल बंद नहीं करते। अरथी निकालते, वह भी उत्सव है, समारोह है, बैडवाजा आदमी को आखिर तक पहुंचा आता है। बस एक लंबा खेल है। पर आदमी बिना खेल के नहीं जी सकता है। इसलिए जिन समाजों में खेल कम हो गए हैं वहां जीना मुश्किल हो गया है, क्योंकि आदमी तो वही का वही है। तो महावीर जैसा आदमी बिना खेल के जी सकता है। लेकिन बिना खेल के कोई तभी जी सकता है जब उसे वास्तविक जीवन का पता चल जाए। वास्तविक जीवन का पता न हो तो इस जीवन को, जिसे हम जीवन कह रहे हैं, यह तो बिना खेल के नहीं जीया जा सकता है। इसमें खेल रखने ही पड़ेंगे।

पश्चिम में यह दिक्कत खड़ी हो गई, तीन सौ साल में पश्चिम के विचारक लोगों ने, जिनको मैं बहुत विचारशील नहीं कहूँगा चाहे वाल्टेयर हों और चाहे बर्ट्रेड रसल हों, उन सबने पश्चिम के सब खेल निंदित कर दिए और कहा कि सब खेल बेकार हैं। यह क्या कर रहे हो? यह सब गड़बड़ है। इसमें क्या फायदा है? फायदा कोई बता न सका। अगर आप बच्चों से पूछें कि तुम यह जो खेल खेल रहे हो, इसमें क्या फायदा है? अगर आप बच्चों से पूछें कि तुम गेंद इस कोने से उस कोने फेंकते हो, उस कोने से इस कोने में फेंकते हो, इसमें क्या फायदा

है? क्या फायदा है! तो मुश्किल में पड़ जाएंगे, फायदा तो बता नहीं सकेंगे। फायदा नहीं बता सकेंगे तो आप कहेंगे, बंद करो। क्योंकि जब फायदा ही नहीं तो क्यों खेलना है।

बच्चे बंद कर देंगे, लेकिन मुश्किल में पड़ जाएंगे, क्योंकि बच्चे क्या करेंगे? वह जो शक्ति बचेगी, उसका क्या होगा? वह जो खेलने में निकल जाता था, वह अब उपद्रव में निकलेगा। सारी दुनिया में बच्चों ने जितने खेल कम कर दिए हैं--सब स्कूलों ने बच्चों के खेल छीन लिए। अब बच्चों ने नये खेल निकाले हैं। आप समझते हैं वह उपद्रव है। वे सिर्फ खेल हैं। वे गेंद फेंक कर मजा ले लेते हैं, अब नहीं फेंकने देते तो वे पत्थर फेंक कर चीजें तोड़ रहे हैं। वह मामला वही है। आपने सब खेल छीन लिए तो उनको नये खेल ईजाद करने पड़ रहे हैं और वे नये खेल महंगे पड़ रहे हैं। वे बच्चों के खेल अच्छे थे। बच्चे एक दूसरे को मार डालते थे, मुकदमा चला देते थे, कोई न्यायाधीश बन जाता था। वे सब खेल हमने छीन लिए। सब बच्चे हमारे, बच्चे होने के समय ही गंभीर और बूढ़े होने लगे। लेकिन खेल तो उनके भीतर जो ऊर्जा है, वह खेल मांग रही है।

पश्चिम में यह दिक्कत खड़ी हुई, सारी फेस्टिविटी नष्ट कर दी है। तो वाल्टेयर से लेकर बर्ट्रेड रसेल तक के बीच पश्चिम में सारे उत्सव का भाव चला गया। सब चीज बेकार--यह भी नहीं हो सकता, यह भी नहीं हो सकता, और जिंदगी वही की वही। अब बड़ी मुश्किल हो गई, शादी का उत्सव बेकार। इसमें क्या फायदा है, यह तो रजिस्ट्री के आफिस में हो सकता है, यह बैंडबाजा क्यों बजाना? लेकिन आपको पता नहीं, वह जो आदमी बैंडबाजा बजा रहा, उसे खेल में रस था। अब यह आदमी जब रजिस्ट्री के आफिस में जाकर शादी करवाएगा तो घर आकर पाएगा--कुछ भी नहीं हुआ। यह तो बिल्कुल बेकार निकल गया मामला। सिर्फ दस्तखत ही करके आ गए रजिस्टर पर, यह शादी है! तो जो शादी सिर्फ दस्तखत करने से बन सकती है वह दस्तखत करने से किसी दिन टूट जाएगी। उसमें कोई मूल्य नहीं है।

वह शादी एक खेल था जिसमें हम बच्चों को दिखाते थे कि भारी मामला है। कोई छोटा मामला नहीं, तोड़ा नहीं जा सकता। इतना बड़ा मामला है। उसमें इतना शोरगुल मचाते थे, उसको घोड़े पर बिठाते, उसको राजा बना देते, छुरे लटका देते, बैंडबाजा बजा देते, भारी उत्सव मचता। उसको भी लगता कि कुछ हुआ है। कुछ ऐसा हो रहा है जिसको वापस लौटाना मुश्किल है। फिर इस सबके पीछे होता तो वही जो रजिस्ट्री के आफिस में होता है। लेकिन इस सबके पहले जो हो गया है वह एक रूप, एक खेल--वह खेल इतना भारी था कि उसको लौटाना मुश्किल था। और उसकी जिंदगी में याद रहता। शादी चाहे कुछ भी बन जाए बाद में, लेकिन वह जो शादी के पहले हुआ था वह उसे याद रहता। वह बार-बार सपने उसके देखता, वही घोड़े पर बैठना, वही राजा की पोशाक। और अब आज लड़का कहता है, इससे क्या होगा? यह पगड़ी मैं क्यों बांधूं? मत बांधो, लेकिन पत्नी जो हाथ लगेगी, वह छोटी लगेगी, क्योंकि खेल उसके पहले का पूरा नहीं हो पाया, बिना खेल के मिल गई है।

नसरुद्दीन की जब पहली दफा शादी हुई, वह सुहागरात को गया। रात आ गई, चांद निकल आया, पूर्णिमा का चांद। नसरुद्दीन खिड़की पर बैठा है। दस बज गए, ग्यारह बज गए, बारह बज गए। पत्नी बिस्तर में लेट गई। उसने एक दफे कहा: अब सो भी जाओ, सो भी जाओ।

नसरुद्दीन ने बारह बजे कहा कि बकवास बंद। मेरी मां कहा करती थी कि सुहागरात की रात इतनी आनंद की रात है कि चूकना मत, तो मैं तो इधर खिड़की पर बैठ कर एक क्षण भी चूकना नहीं चाहता हूं। तू सो जा। कहीं नींद लग गई और चूक गए! तो मैं तो पूरी रात जगूंगा इसी खिड़की पर बैठा हुआ। मुझे तो यह पता लगाना है जो मां ने कहा कि सुहागरात की रात बड़ी आनंद की होती है। तो आज की रात मैं फालतू बातों में नहीं खो सकता। तू सो जा। तुझे अगर बातचीत करनी है तो कल।

इसके मन में सुहागरात की एक धारणा थी। आज ठीक उलटी हालत है। आज सुहागरात जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती।

मैंने सुना है, एक युवक अपनी सुहागरात से, हनीमून से वापस लौटा। मित्रों ने पूछा कि कैसी थी सुहागरात? उसने कहा: जस्ट लाइक बिफोर। अब तो सुहागरात का अनुभव पहले ही उपलब्ध है। उसने कहा: जस्ट लाइक बिफोर, नर्थिंग न्यू! कुछ नया नहीं है।

पुरानी बुद्धिमत्ता महत्वपूर्ण थी। वह बच्चों जैसे आदमियों के लिए बनाए गये खेलों का इंतजाम था। उन खेलों के बीच आदमी जी लेता था। मैं नहीं कहता, खेल तोड़ दें। खेल जारी रखें। बड़े बूढ़ों को आदर देना जारी रखें, गुरुजनों को आदर दें, साधुओं को आदर दें। खेल जारी रखें। इससे कुछ नुकसान नहीं हो रहा है किसी का। लेकिन उसको विनय मत समझ लें। वह विनय नहीं है। मैं नहीं कहता नसरुद्दीन से कि तू खिड़की पर मत बैठ और चांद को मत देख। लेकिन मैं उससे यह कहता हूं कि इसे सुहागरात मत समझ। सुहागरात नहीं है। तू चांद देख। विनय बहुत और बात है।

लेकिन हम ऐसे जिद्दी हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। जैसे नसरुद्दीन था। दूसरी शादी की उसने। गया सुहागरात पर। बड़ा इठला कर, अकड़ कर चल रहा है। फिर पूर्णिमा है। बड़ा आनंदित है वह। रास्ते पर कोई मित्र मिल गया, उसने कहा—बड़े आनंदित हो। नसरुद्दीन ने कहा कि मेरी सुहागरात है। उस आदमी ने चारों तरफ देखा। लेकिन तुम्हारी पत्नी दिखाई नहीं पड़ती। उसने कहा: आर यू मैड? पहली दफे उसको लेकर आया, उसने सब रात खराब कर दी। इस बार उसको घर ही छोड़ आया हूं। रात भर बकवास करती रही—सो जाओ, यह करो, वह करो। पता नहीं रात कब चुक गई। और मेरी मां कहती थी कि सुहागरात...। इस बार तो उसको घर ही छोड़ आया हूं, अकेले आया हूं। सुहागरात चूकनी नहीं है।

कभी-कभी शब्द मां ने जरूर कहा था और ठीक ही कहा था। लेकिन नसरुद्दीन जो समझे हैं, वह नहीं कहा था। परंपरा जो समझती है शब्द वही हैं जो महावीर ने कहे थे, लेकिन परंपरा जो समझ लेती है, वह नहीं कहा था। विनय आविर्भाव होता है अंतस का और उसकी मैंने यह वैज्ञानिक प्रक्रिया आपसे कही। यह पूरी हो तो ही आविर्भाव होता है। हां, आप अपने को जो विनीत करने की कोशिश कर रहे हैं, वह जारी रखें। वह एक खेल है, वह अच्छा खेल है। उससे जिंदगी सुविधा से चलती है, कन्वीनियंटली। बाकी उससे कोई आप जीवन के सत्य को उपलब्ध नहीं होते हैं।

आज इतना ही।

फिर कल आगे सूत्र पर बात करेंगे। लेकिन पांच मिनट बैठें... !

वैयावृत्य और स्वाध्याय (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्खिटुं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

तीसरा अंतर-तप महावीर ने कहा है, वैयावृत्य। वैया वृत्य का अर्थ होता है--सेवा। लेकिन महावीर सेवा से बहुत दूसरे अर्थ लेते हैं। सेवा का एक अर्थ है मसीही, क्रिश्चियन अर्थ है। और शायद पृथ्वी पर ईसाइयत ने, अकेले धर्म ने सेवा को प्रार्थना और साधना के रूप में विकसित किया। लेकिन महावीर का सेवा से वैसा अर्थ नहीं है। ईसाइयत का जो अर्थ है, वही हम सबको ज्ञात है। महावीर का जो अर्थ है, वह हमें ज्ञात नहीं है। और महावीर के अनुयायियों ने जो अर्थ कर रखा है वह अति सीमित, अति संकीर्ण है।

परंपरा वैयावृत्य से इतना ही अर्थ लेती रही है, वह सुविधापूर्ण है इसलिए। वृद्ध साधुओं की सेवा, रुग्ण साधुओं की सेवा--ऐसा परंपरा अर्थ लेती रही है। ऐसा अर्थ लेने के कारण हैं, क्योंकि साधु यह सोच ही नहीं सकता कि वह असाधु की सेवा करे। जो साधु नहीं हैं, वे ही साधु की सेवा करने आते हैं। जैनों में तो प्रचलित है कि जब वे साधु का दर्शन करने जाते हैं तो उनको आप पूछें--कहां जा रहे हैं? तो वे कहते हैं--सेवा के लिए जा रहे हैं। धीरे-धीरे साधु का दर्शन करना भी सेवा के लिए जाना ही हो गया। इसलिए गृहस्थ साधु से जाकर पूछेगा--कुशल तो है, मंगल तो है, कोई तकलीफ तो नहीं? कोई असाता तो नहीं, वह इसीलिए पूछ रहा है कि कोई सेवा का अवसर मुझे दें तो मैं सेवा करूं।

साधु की सेवा, ऐसा वैयावृत्य का अर्थ ले लिया गया। निश्चित ही साधु, तथाकथित साधु का इस अर्थ में हाथ है। क्योंकि महावीर ने--किसकी सेवा, यह नहीं कहा है। तो यह अर्थ महावीर का नहीं है। जो अर्थ है उसमें वृद्ध साधु और रुग्ण साधु और साधु की सेवा भी आ जाएगा। लेकिन यही इसका अर्थ नहीं है। दूसरा सेवा का जो प्रचलित रूप है आज, वह ईसाइयत के द्वारा दिया गया अर्थ है। और भारत में विवेकानंद से लेकर गांधी तक ने जो भी सेवा का अर्थ किया है, वह ईसाइयत की सेवा है। और अब जो लोग थोड़े अपने को नयी समझ का मानते हैं वे महावीर की सेवा से भी वैसा अर्थ निकालने की कोशिश करते हैं।

पंडित बेचरदास दोशी ने महावीर-वाणी पर जो टिप्पणियां की हैं, उनमें उन्होंने सेवा से वही अर्थ निकालने की कोशिश की है, जो ईसाइयत का है। उन्होंने अर्थ निकालने की कोशिश की है, जो ईसाइयत का है। असल में ईसाइयत अकेला धर्म है जिसने सेवा को केंद्रीय स्थान दिया है। और इसलिए सारी दुनिया में सेवा के सब अर्थ ईसाइयत के अर्थ हो गए। और विवेकानंद कितना पश्चिम को प्रभावित कर पाए, इसमें संदेह है, लेकिन विवेकानंद ईसाइयत से अत्याधिक प्रभावित हुए, यह असंदिग्ध है। विवेकानंद से कितने लोग प्रभावित हुए इसका कोई बहुत निश्चित मामला नहीं है। वे एक सेंसेशन की तरह अमरीका में उठे और खो गए। लेकिन विवेकानंद स्थायी रूप से ईसाइयत से प्रभावित होकर भारत वापस लौटे। और विवेकानंद ने जो रामकृष्ण मिशन को गति दी, वह ठीक ईसाई मिशनरी की नकल है। उसमें हिंदू विचारणा नहीं है।

और फिर विवेकानंद से गांधी तक या विनोबा तक जिन लोगों ने भी सेवा पर विचार किया है, वे सभी ईसाइयत से प्रभावित हैं। असल में गांधी हिंदू घर में पैदा हुए तो मन होता है मानने का कि वे हिंदू थे। लेकिन उनके सारे संस्कार--नब्बे प्रतिशत संस्कार जैनों से मिले थे। इसलिए मानने को मन होता है कि वे मूलतः जैन थे। लेकिन उनके मस्तिष्क का सारा परिष्कार ईसाइयत ने किया। गांधी पश्चिम से जब लौटे तो यह सोचते हुए लौटे कि क्या उन्हें हिंदू धर्म बदल कर ईसाई हो जाना चाहिए। और उन पर जिन लोगों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है--इमर्सन का, थोरो का, या रस्किन का--ईसाइयत की धारा से सेवा का विचार उनका केंद्र था--उन सबका। तो इसलिए वैयावृत्य पर थोड़ा ठीक से सोच लेना जरूरी है, क्योंकि ईसाइयत की सेवा की धारणा ने और सेवा की सब धारणाओं को डुबा दिया है।

दो तीन बातें--एक तो ईसाइयत की जो सेवा की धारणा है और वही इस वक्त सारी दुनिया में सबकी धारणा है। वह धारणा फ्यूचर ओरिएण्टेड है, वह भविष्य उन्मुख है। ईसाइयत मानती है कि सेवा के द्वारा ही परमात्मा को पाया जा सकता है। सेवा के द्वारा ही मुक्ति होगी। सेवा एक साधन है, साध्य मुक्ति है। तो सेवा का जो ऐसा अर्थ है वह सप्रयोजन है, विद परपज है। वह परपजलेस नहीं है, वह निष्प्रयोजन नहीं है। चाहे मैं सेवा कर रहा हूं धन पाने के लिए, चाहे यश पाने के लिए और चाहे मोक्ष पाने के लिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं कुछ पाने के लिए सेवा कर रहा हूं। वह पाना बुरा भी हो सकता है, अच्छा भी हो सकता है, यह दूसरी बात है। नैतिक हो सकता है, अनैतिक हो सकता है, यह दूसरी बात है। एक बात निश्चित है कि वैसी सेवा की धारणा वासनाप्रेरित है।

इसलिए ईसाइयत की जो सेवा है वह बहुत पैशोनेट है। इसलिए ईसाइयत के प्रचारक के सामने दुनिया के धर्म का कोई प्रचारक टिक नहीं सकता। नहीं टिक सकता इसलिए कि ईसाई प्रचारक एक पैशन, एक तीव्र वासना से भरा हुआ है। उसने सारी वासना को सेवा बना दिया है। इसलिए नकल करने की कोशिश चलती है। दूसरे धर्मों के लोग ईसाइयत की नकल करते हैं, पोच निकल जाती है वह नकल, उसमें से कुछ निकलता नहीं। क्योंकि कम से कम कोई भारतीय धर्म ईसाइयत की धारणा को नहीं पकड़ सकता। उसका कारण यह है कि भारतीय मन सोचता ही ऐसा है कि जिस सेवा में प्रयोजन है वह सेवा ही न रही। महावीर कहते हैं--जिस सेवा में प्रयोजन है, वह सेवा ही न रही। सेवा होनी चाहिए निष्प्रयोजन। उससे कुछ पाना नहीं है।

लेकिन अगर कुछ भी न पाना हो तो करने की सारी प्रेरणा खो जाती है। नहीं, महावीर बहुत उलटी बात कहते हैं। महावीर कहते हैं--सेवा जो है, वह पास्ट ओरिएण्टेड है, अतीत से जन्मी है; भविष्य के लिए नहीं है। महावीर कहते हैं--अतीत में जो कर्म हमने किए हैं, उनके विसर्जन के लिए सेवा है। इसका कोई प्रयोजन नहीं है आगे। उससे कुछ मिलेगा नहीं। बल्कि कुछ गलत इकट्ठा हो गया है, उसकी निर्जरा होगी, उसका विसर्जन होगा। यह दृष्टि बहुत उलटी है। महावीर कहते हैं कि अगर मैं आपके पैर दाब रहा हूं या गांधी जी, परचुरे शास्त्री कोड़ी के पैर दाब रहे हैं--गांधी भला सोचते हों कि वे सेवा कर रहे हैं, महावीर सोचते हैं कि वे अपने किसी पाप का प्रक्षालन कर रहे हैं। यह बड़ी उलटी बात है। गांधी भला सोचते हों कि वे कोई पुण्य कार्य कर रहे हैं, महावीर सोचते हैं कि वे अपने किए पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं। यह परचुरे शास्त्री को उन्होंने कभी सताया होगा किसी जन्म की किसी यात्रा में। यह उसका प्रतिफल है। सिर्फ किए को अनकिया कर रहे हैं, अनडन करते हैं।

इसमें कोई गौरव नहीं हो सकता। ध्यान रहे, ईसाइयत की सेवा गौरव बन जाती है और इसलिए अहंकार को पुष्ट करती है। महावीर की सेवा गौरव नहीं है क्योंकि गौरव का क्या कारण है, वह सिर्फ पाप का प्रायश्चित्त है। इसलिए अहंकार को तृप्त नहीं करती है, अहंकार को भर नहीं सकती। सच तो यह है कि महावीर ने जो सेवा की धारणा दी है, बहुत अनूठी है। उसमें अहंकार को खड़े होने का उपाय नहीं है।

नहीं तो मैं कोड़ी के पैर दाब रहा हूं तो मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूं--अकड़ भीतर पैदा होती है। मैं बीमार को कंधे पर टांग कर अस्पताल ले जा रहा हूं तो मैं कुछ विशेष कार्य कर रहा हूं, मैं कुछ पुण्य अर्जन कर

रहा हूं। महावीर कहते हैं--कुछ पुण्य अर्जन नहीं कर रहे हो, इस आदमी को तुम किसी गड्ढे में किसी दिन गिराए होओगे, सिर्फ पूरा कर रहे हो अस्पताल पहुंचा कर। इसे तुमने कभी चोट पहुंचायी होगी, अब तुम मलहम-पट्टी कर रहे हो। यह पास्ट ओरिएण्टेड है। यह तुम्हारा किया हुआ ही, तुम पश्चात्ताप कर रहे हो, प्रायश्चित्त कर रहे हो, उसे पोंछ रहे हो। लिखे हुए को पोंछ रहे हो, नया नहीं लिख रहे हो। इसमें कुछ गौरव का कारण नहीं है।

निश्चित ही ऐसी सेवा करने वाला अपने को सेवक न मान पाएगा। तो महावीर कहते हैं--जिस सेवा में सेवक आ जाए वह सेवा नहीं है। बिना सेवक बने अगर सेवा हो जाए, तो ही सेवा है। यह जरा कठिन पड़ेगा हमें समझना। क्योंकि रस तो सेवक का है, रस सेवा का नहीं है। अगर कोढ़ी के पैर दाबते वक्त आस-पास के लोग कहें--अच्छा, तो किसी पाप का प्रक्षालन कर रहे हो! तो कोढ़ी के पैर दाबने का सब मजा चला जाए। हम चाहते हैं कि लोग तस्वीर निकालें, अखबारों में छापें और कहें कि महासेवक है यह आदमी। यह कोढ़ियों के पैर दाब रहा है।

नीत्शे ने संत फ्रांसिस की एक जगह बहुत गहरी मजाक की है। संत फ्रांसिस ईसाई सेवा के साकार प्रतीक हैं। संत फ्रांसिस को कोई कोढ़ी मिल जाता तो न केवल उसे गले लगाते, बल्कि उसके कोढ़ से भरे हुए ओंठों को चूमते भी। फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है कि संत फ्रांसिस, अगर मेरे वश में होता तो मैं तुमसे पूछता कि कोढ़ी के ओंठ चूमते वक्त तुम्हारे मन को क्या हो रहा है? और मैं कोढ़ियों से कहता कि बजाय संत फ्रांसिस को मौका देने के कि वे तुम्हें चूमें, जहां वे तुम्हें मिल जाएं, तुम उन्हें चूमो। कोढ़ियों से कहता कि जहां भी संत फ्रांसिस मिल जाएं, छोड़ो मत। उन्हें पकड़ो, गले लगाओ और चूमो। और तब देखो कि संत फ्रांसिस के चेहरे पर क्या परिणाम होते हैं।

जरूरी नहीं है कि नीत्शे जैसा सोचता है वैसा संत फ्रांसिस के चेहरे पर परिणाम हो, क्योंकि वह आदमी गहरा था। लेकिन यह बात बहुत दूर तक सच है कि जो आदमी कोढ़ी के पास उसको चूमने जाता है वह किसी बहुत गरिमा के भाव से भर कर जा रहा है, वह कोई काम कर रहा है जो बड़ा कठिन है, असंभव है। असल में वह वासना के विपरीत काम करके दिखला रहा है। कोढ़ी के ओंठ से दूर हटने का मन होगा, चूमने का मन नहीं होगा। और वह चूम कर दिखला रहा है। वह कुछ कर रहा है, कोई कृत्य।

महावीर कहेंगे--अगर इस करने में थोड़ी भी वासना है--इस करने में अगर थोड़ी भी वासना है, अगर इस करने में इतना भी मजा आ रहा है कि मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूं, कोई असाधारण कार्य कर रहा हूं तो मैं फिर नये कर्मों का संग्रह कर रहा हूं। फिर सेवा भी पाप बन जाएगी, क्योंकि वह भी कर्म बंधन लाएगी। अगर मैं कुछ कर रहा हूं, किए हुए को अनकिया कर रहा हूं तो फिर भविष्य में कोई कर्म बंधन नहीं है। अगर मैं कोई फ्रेश एक्ट, कोई नया कृत्य कर रहा हूं कि कोढ़ी को चूम रहा हूं तो फिर मैं भविष्य के लिए पुनः आयोजन कर रहा हूं, कर्मों की शृंखला का।

महावीर कहते हैं--पुण्य भी अगर भविष्य-उन्मुख है तो पाप बन जाता है। यह बड़ा मुश्किल होगा समझना। पुण्य भी अगर भविष्य उन्मुख है तो पाप बन जाता है, क्यों? क्योंकि वह भी बंधन बन जाता है। महावीर कहते हैं--पुण्य भी पिछले किए गए पापों का विसर्जन है। तो महावीर एक मैटा-मैथाफिजिक्स या मैटा-मैथामेटिक्स की बात कर रहे हैं, परा गणित की। वे यह कह रहे हैं जो मैंने किया है उसे मुझे संतुलन करना पड़ेगा। मैंने एक चांटा आपको मार दिया है तो मुझे आपके पैर दबा देने पड़ेंगे। तो वह जो विश्व का जागतिक गणित है उसमें संतुलन हो जाएगा। ऐसा नहीं कि पैर दबाने से मुझे कुछ नया मिलेगा, सिर्फ पुराना कट जाएगा। और जब मेरा सब पुराना कट जाए; मैं शून्यवत हो जाऊं; कोई जोड़ मेरे हिसाब में न रहे; मेरे खाते में दोनों तरफ बराबर हो जाएं आंकड़े; जो मैंने किया वह सब अनकिया हो जाए; जो मैंने लिया वह सब दिया हो जाए; ऋण और धन बराबर हो जाएं और मेरे हाथ में शून्य बच रहे तो महावीर कहते हैं--वह शून्य अवस्था ही मुक्ति है।

अगर ईसाइयत की धारणा हम समझें तो सेवा शून्य में नहीं ले जाती, धन में ले जाती है, प्लस में। आपका प्लस बढ़ता चला जाता है, आपका धन बढ़ता चला जाता है। आप जितनी सेवा करते हैं उतने धनी होते चले जाते हैं। उतना आपके पास पुण्य संगृहीत होता है। और इस पुण्य का प्रतिफल आपको स्वर्ग में, मुक्ति में, ईश्वर के द्वारा मिलेगा। जितना आप पाप करते हैं, आपके पास ऋण इकट्ठा होता है और इसका प्रतिफल आपको नरक में, दुख में, पीड़ा में मिलेगा। महावीर कहते हैं--मोक्ष तो तब तक नहीं हो सकता जब तक ऋण या धन कोई भी ज्यादा है। जब दोनों बराबर हैं और शून्य हो गए, एक दूसरे को काट गए, तभी आदमी मुक्त होता है, क्योंकि मुक्ति का अर्थ ही यही है कि अब न मुझे कुछ लेना है और न मुझे कुछ देना है। इसको महावीर ने निर्जरा कहा है।

और निर्जरा के सूत्रों में वैयावृत्य बहुत कीमती है। तो महावीर इसलिए नहीं कहते कि दया करके सेवा करो क्योंकि दया ही बंधन बनेगा। कुछ भी किया हुआ बंधन बनता है। महावीर यह नहीं कहते कि करुणा करके सेवा करो कि देखो यह आदमी कितना दुखी है, इसकी सेवा करो। महावीर यह नहीं कहते कि यह इतना दुखी है इसलिए सेवा करो। महावीर कहते हैं कि अगर तुम्हारा कोई पिछला कर्म तुम्हारा पीछा कर रहा हो तो सेवा करो और छुटकारा पा लो। इसका मतलब? इसका मतलब यह हुआ कि तुम अपने को सेवा के लिए खुला रखो, पैशोनेट सेवा नहीं। निकलो मत झंडा लेकर सुबह से कि मैं सेवा करके लौटूंगा, ऐसा नहीं। घोषणा करके मत तय कर रखो कि सेवा करनी ही है। जिद्द मत करो, राह चलते हो, कोई अवसर आ जाए तो खुला रखो। अगर सेवा हो सकती हो तो अपने को रोको मत।

इसमें फर्क है। एक तो सेवा करने जाओ प्रयोजन से, सक्रिय हो जाओ, सेवक बनो, धर्म समझो सेवा को। महावीर कहते हैं--खुला रखो, कहीं सेवा का अवसर हो, और सेवा भीतर उठती हो तो रोको मत, हो जाने दो। और चुपचाप विदा हो जाओ। पता भी न चले किसी को कि तुमने सेवा की। तुमको स्वयं भी पता न चले कि तुमने सेवा की, तो वैयावृत्य है।

वैयावृत्य का अर्थ है--उत्तम सेवा। साधारण सेवा नहीं। ऐसी सेवा जिसमें पता भी नहीं चलता कि मैंने कुछ किया। ऐसी सेवा जिसमें बोध है कि मैंने कुछ किया हुआ अनकिया, अनडन, कुछ था जो बांधे था, उसे मैंने छोड़ा। इस आदमी से कोई संबंध थे जो मैंने तोड़े। लेकिन अगर इसमें रस ले लिया तो फिर संबंध निर्मित होते हैं--फिर संबंध निर्मित होते हैं। और रस एक तरह का शोषण है--यह भी समझ लेना चाहिए--महावीर की दृष्टि में अगर एक आदमी दुख है और पीड़ित है और मैं उसकी सेवा करके स्वर्ग जाने की चेष्टा कर रहा हूं तो मैं उसके दुख का शोषण कर रहा हूं। मैं उसके दुख को साधन बना रहा हूं। अगर वह दुखी न होता तो मैं स्वर्ग न जा पाता। इसे ऐसा सोचें थोड़ा। तब इसका मतलब यह हुआ कि जिसके दुख के माध्यम से आप स्वर्ग खोज रहे हैं, यह तो बहुत मजेदार मामला है। इस गणित में थोड़े गहरे उतरना जरूरी है।

एक आदमी दुखी है और आप सेवा करके अपना सुख खोज रहे हैं, तो आप उसके दुख को साधन बना रहे हैं। यही तो सारी दुनिया कर रही है। यह तो सारी दुनिया कर रही है। एक धनपति अगर धन चूस रहा है तो आप उससे कहते हैं कि दूसरे लोग दुखी हो रहे हैं। आप उनके दुख पर सुख इकट्ठा कर रहे हैं। लेकिन एक पुण्यात्मा, दीन की, दुखी की सेवा कर रहा है और अपना स्वर्ग खोज रहा है, तब आपको ख्याल नहीं आता कि वह भी किसी गहरे अर्थों में यही कर रहा है। सिक्के अलग हैं, इस जमीन के नहीं--परलोक के, पुण्य के। बैंक बैलेंस वह यहां नहीं खोल पाएगा, लेकिन कहीं खोल रहा है। कहीं किसी बैंक में जमा होता चला जाएगा।

नहीं, महावीर कहते हैं--दूसरे के दुख का शोषण नहीं, क्योंकि शोषण कैसे सेवा हो सकता है? दूसरा दुखी है तो उसके दुख में मेरा हाथ हो सकता है। उस हाथ को मुझे खींच लेना है, उसी का नाम सेवा है। वह मेरे कारण दुखी न हो, इतना हाथ मुझे खींच लेना है। इसके दो अर्थ हुए--मेरे कारण कोई दुखी न हो, ऐसा मैं जीऊं। और अगर मुझे कोई दुखी मिल जाता है तो मेरे कारण अतीत में वह दुख पैदा न हुआ हो, ऐसा मैं व्यवहार करूं कि अगर मेरा कोई भी हाथ हो तो हट जाए। इसमें कोई पैशन नहीं हो सकता; इसमें कोई त्वरा और तीव्रता

नहीं हो सकती; इसमें कोई रस नहीं हो सकता करने का क्योंकि यह सिर्फ न करना है; यह सिर्फ मिटाना और पोंछना है।

इसलिए महावीर की सेवा समझी नहीं जा सकी क्योंकि हम सब पैशोनेट हैं। अगर धर्म भी हमको पागलपन न बन जाए तो हम धर्म भी नहीं कर सकते। अगर मोक्ष भी हमारी जिद्द न बन जाए तो हम मोक्ष भी नहीं जा सकते। अगर पुण्य भी किसी अर्थ में शोषण न हो तो हम पुण्य भी नहीं कर सकते, क्योंकि शोषण हमारी आदत है; शोषण हमारे जीवन का ढंग है। व्यवस्था है हमारी। और वासना हमारा व्यवहार है। जिस चीज में हम वासना जोड़ दें वही हम कर सकते हैं, अन्यथा हम नहीं कर सकते। तो अगर सेवा धन वासना हो जाए तो हम सेवा भी कर सकते हैं। इसलिए सेवा के लिए आपको उन्मुख करने वाले लोग कहते हैं कि सेवा से क्या-क्या मिलेगा, दान से क्या-क्या मिलेगा। सवाल यह नहीं है कि दान क्या है, सेवा क्या है। सवाल क्या है कि आपको क्या-क्या मिलेगा, आप क्या-क्या पा सकोगे। वे आपको स्वर्ग की पूरी झलक दिखाते हैं। आपसे कुछ भी करवाना हो तो आपकी वासना को प्रज्वलित करना पड़ता है। आपकी वासना प्रज्वलित न हो तो आप कुछ भी नहीं करने को राजी हैं।

जीसस से मरने के पहले जीसस के एक शिष्य ने पूछा कि घड़ी आ गई पास, सुनते हैं हम कि आप नहीं बच सकेंगे। एक बात तो बता दें। यह तो पक्का है कि आप ईश्वर के हाथ के पास सिंहासन पर बैठेंगे। हम लोगों की जगह क्या होगी? हम कहां बैठेंगे? वह जो ईश्वर का राज्य होगा, सिंहासन होगा, आप तो पड़ोस में बैठेंगे, यह पक्का है। हम लोगों की क्रम संख्या क्या होगी? कौन कहां बैठेगा, किस नंबर से बैठेगा? जब भी आदमी कोई त्याग करता है तो पहले पूछ लेता है कि फल क्या होगा? इतना छोड़ता हूं, मिलेगा कितना? और ध्यान रहे, जब छोड़ने में मिलने का ख्याल हो, तो वह छोड़ना है? वह बार्गनिंग है, वह सौदा है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि आपको क्या मिलेगा--मोक्ष मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा, धन मिलेगा, प्रेम मिलेगा, आदर मिलेगा, इससे कोई सवाल नहीं पड़ता--मिलेगा कुछ।

महावीर कहते हैं--सेवा से मिलेगा कुछ भी नहीं, कुछ कटेगा। कुछ मिलेगा नहीं, कुछ कटेगा। कुछ छूटेगा, कुछ हटेगा। सेवा को अगर हम महावीर की तरह समझें तो वह मेडिसिनल है, दवाई की तरह है। दवाई से कुछ मिलेगा नहीं, सिर्फ बीमारी कटेगी। ईसाइयत की सेवा टानिक की तरह है, उसमें कुछ मिलेगा। उसका भविष्य है। महावीर की सेवा मेडिसिन की तरह है, उससे बीमारी भर कटेगी, मिलेगा कुछ नहीं।

यह भेद इतना गहरा है, और इस भेद के कारण ही जैन परंपरा सेवा को जन्मा न पाई। नहीं तो जीसस से पांच सौ वर्ष पहले महावीर ने सेवा की बात की थी और उसे अंतर-तप कहा था जो जैन परंपरा उसे जगा न पाई, जरा भी न जगा पाई। क्योंकि कोई पैशन न था, उसमें कोई त्वरा नहीं पैदा होती थी। फिर कुछ कटेगा, कुछ मिटेगा, कुछ छूटेगा, कुछ कमी ही हो जाएगी उलटी। पापी के भी पाप का ढेर थोड़ा कम हो तो उसको भी लगता है कुछ कम हो रहा है। समर्थिंग इ.ज मिसिंग। मेरे पास जो था उसमें कमी हो गई। बीमार भी लंबे दिनों की बीमारी के बाद जब स्वस्थ होता है तो लगता है समर्थिंग इ.ज मिसिंग, कुछ खो रहा है। इसलिए जो लंबे दिनों तक बीमारी रह जाए और बीमारी में रस ले ले, वह कितना ही कहे, स्वस्थ होना चाहता है, भीतर कहीं कोई हिस्सा कहता है, मत होओ।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं--सत्तर प्रतिशत बीमार इसलिए बीमार बने रहते हैं कि बीमारी में उन्हें रस पैदा हो गया है, वे बीमारी को बचाना चाहते हैं। आप कहते हैं--अगर बीमारी को बचाना चाहते हैं तो चिकित्सक के पास क्यों जाते हैं, दवा क्यों लेते हैं? यही तो मनुष्य का द्वंद्व है कि वह दोहरे काम एक साथ कर सकता है। इधर दवा ले सकता है, उधर बीमारी को बचा सकता है। क्योंकि बीमारी के भी रस हैं और कई बार स्वास्थ्य से ज्यादा रसपूर्ण हैं। जब आप बीमार पड़ते हैं तो सारा जगत आपके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो जाता है। कितना चाहा कि जब आप स्वस्थ होते हैं तब जगत सहानुभूतिपूर्ण हो जाए, लेकिन तब कोई सहानुभूतिपूर्ण नहीं होता

है। जब आप बीमार होते हैं तो घर के लोग प्रेम का व्यवहार करते हुए मालूम पड़ते हैं। जब आप बीमार होते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि आप सेंटर हो गए सारी दुनिया के। सारी दुनिया परिधि पर है, आप केंद्र पर हैं। नर्स घूम रही हैं; डाक्टर चक्कर लगा रहे हैं; परिवार आपके इर्द-गिर्द घूम रहा है; मित्र आ रहे हैं; देखने वाले आ रहे हैं। आप ध्यान रखते हैं कि कौन देखने नहीं आया।

मेरे एक मित्र का लड़का मर गया। जवान लड़का मर गया। उनकी उम्र तो सत्तर वर्ष है। छाती पीट कर रो रहे थे। जब मैं पहुंचा तो पास में उन्होंने टेलीग्राम का ढेर लगा रखा था। जल्दी से मैंने उनसे एक-दो मिनट बात की। लेकिन मैंने देखा उनकी उत्सुकता बात में नहीं है, टेलीग्राम में देख जाऊं, इसमें है। तो उन्होंने वे टेलीग्राम मेरी तरफ सरकाए और कहा कि प्रधानमंत्री ने भी भेजा है और राष्ट्रपति ने भी भेजा है। जब तक मैंने टेलीग्राम सब न देख लिए तब तक उनको तृप्ति न हुई। बड़े दुख में हैं। लेकिन दुख में भी रस लिया जाता है। ये टेलीग्राम वे फाड़ कर न फेंक सके, ये टेलीग्राम वे भूल न सके, इनका वे ढेर लगाए रहे।

पंद्रह दिन बाद जब मैं गया तब वह ढेर और बड़ा हो गया था। ढेर लगाए हुए थे। अपने पास ही रखे रहते थे। कहते थे, आत्महत्या कर लूंगा, क्योंकि अब क्या जीना। जवान लड़का मर गया, मरना मुझे चाहिए था। कहते थे, आत्महत्या कर लूंगा, वह तारों का ढेर बढ़ाते जाते थे। मैंने कहा: कब करिएगा? पंद्रह दिन हो गए हैं। जितने दिन बीत जाएंगे उतना मुश्किल होगा करना। तो उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे कोई दुश्मन को देखे। उन्होंने कहा: आप क्या कहते हैं, आप और ऐसे! ऐसी बात कहते हैं! क्योंकि वह आत्महत्या करने के लिए इसलिए कह रहे थे पंद्रह दिन से निरंतर कि जब आत्महत्या की कोई भी सुनता था तो बहुत सहानुभूति प्रकट करता था। मैंने कहा: मैं सहानुभूति प्रकट न करूंगा। इसमें आप रस ले रहे हैं। उसी दिन से वे मेरे दुश्मन हो गए।

इस दुनिया में सच कहना दुश्मन बनाना है। इस दुनिया में किसी से भी सच कहना दुश्मन बनाना है। झूठ बड़ी मित्रताएं स्थापित करता है। कभी एक दफा देखें, चौबीस घंटे तय कर लें, सच ही बोलेंगे! आप पाएंगे सब मित्र बिदा हो गए। चौबीस घंटा, इससे ज्यादा नहीं। पत्नी अपना सामान बांध रही है; लड़के बच्चे कह रहे हैं, नमस्कार—मित्र कह रहे हैं कि तुम ऐसे आदमी थे! सारा जगत शत्रु हो जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह बैठ कर अपना अखबार पढ़ रहा है। और जैसा अखबार पर सभी पत्रियां नाराज होती हैं, ऐसा उसकी पत्नी भी नाराज हो रही थी कि क्या सुबह से तुम अखबार लेकर बैठ जाते हो! एक जमाना था कि तुम सुबह से मेरे सूरत की बातें करते थे और अब तुम कुछ बात नहीं करते हो। एक वक्त था कि तुम कहते थे कि तेरी वाणी कोयल जैसी मधुर है; अब तुम कुछ भी नहीं कहते। मुल्ला ने कहा—है तेरी वाणी मधुर, मगर बकवास बंद कर, मुझे अखबार पढ़ने दे। है तेरी वाणी मधुर, पर बकवास बंद कर, मुझे अखबार पढ़ने दो।

दोहरा है आदमी। मजबूरी है उसकी क्योंकि सीधा और सच्चा होने नहीं देता समाज। महंगा पड़ जाएगा। इसलिए झूठ को पोंछता चला जाता है।

मुल्ला ने जब तीसरी शादी की, तो तीसरे दिन रात को पत्नी ने कहा कि अगर तुम बुरा न मानो तो मैं अपने नकली दांत निकाल कर रख दूं, क्योंकि रात मुझे इनमें नींद नहीं आती। मुल्ला ने कहा: थैंक्स, गुडनेस। नाउ आई कैन पुट ऑफ माई फाल्स लैग, माई विग, माई ग्लास—आई एण्ड रिलैक्स। तो मैं अब अपनी लकड़ी की टांग अलग कर सकता हूं, और अपने झूठे बाल अलग कर सकता हूं और कांच की आंख रख सकता हूं और विश्राम कर सकता हूं। धन्य भाग, हे परमात्मा! तूने अच्छा बता दिया। नहीं तो हम भी तने थे, तीन दिन से हम खुद भी कहां सो पा रहे हैं! वह भी नहीं सो पा रही है। क्योंकि वे झूठे दांत सोने कैसे देंगे?

हम सब एक-दूसरे के सामने चेहरे बनाए हुए हैं, जो झूठे हैं। लेकिन रिलैक्स कैसे करें। सत्य रिलैक्स कर जाता है, लेकिन सत्य में जीना कठिन पड़ता है। इसलिए दोहरा हम जीते हैं। एक कोने में कुछ, एक कोने में कुछ, और सब चलाते हैं। बीमारी में रस है, यह कोई बीमार स्वीकार करने को राजी नहीं होता, लेकिन बीमारी में

रस है। इतना रस स्वास्थ्य में भी नहीं आता है जितना बीमारी में आता है। इसलिए स्वास्थ्य को कोई बढ़ा-चढ़ा कर नहीं बताता, बीमारी को सब लोग बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं।

यह जो हमारा चित्त है, यह द्वंद्व से भरा है। इसलिए हम करते कुछ मालूम पड़ते हैं, कर कुछ और रहे होते हैं। कहते हैं--गरीब पर बड़ी दया आ रही है, लेकिन उस दया में भी रस लेते मालूम पड़ते हैं। अगर दुनिया में कोई गरीब न रह जाए तो सबसे ज्यादा तकलीफ उन लोगों को होगी जो गरीब की सेवा करने में पैशोनेट रस ले रहे हैं। वे क्या करेंगे? अगर दुनिया नैतिक हो जाए तो साधु जो समाज को नैतिकता समझाते फिरते हैं, ये ऐसे उदास हो जाएंगे जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। ऐसा कभी होता नहीं है इसलिए मौका नहीं आता। एक दफा आप मौका दें और नैतिक हो जाएं, और जब साधु कहे कि आप चोरी मत करो; आप कहें, हम करते ही नहीं। कहे, झूठ मत बोलो; आप कहें, हम बोलते ही नहीं। कहे, बेईमानी मत करो; आप कहें, हम करते ही नहीं। वह कहे, दूसरे की स्त्री की तरफ मत देखो; आप कहें, बिल्कुल अंधे हैं। देखने का सवाल ही नहीं है। तो आप साधु के हाथ से उसका सारा काम छीने ले रहे हैं। पूरी जड़ें उखाड़ ले रहे हैं। अब साधु क्या करेगा?

साधु क्या करेगा? यह कठिन होगा समझना, लेकिन साधु-असाधु के रोगों पर जीता है। वह पैरासाइट है। वह जो असाधु चारों तरफ दिखाई पड़ते हैं, उन पर ही साधु जीता है। वह पैरासाइट है। अगर दुनिया सच में साधु हो जाए तो साधु एकदम काम के बाहर हो जाए। उसको कोई काम नहीं बचता। और कुछ आश्चर्य न होगा जो साधु आप को समझा रहे थे, अगर समझाने में उनको रस था--यही कि समझाते वक्त आदमी गुरु हो जाता है, ऊपर हो जाता है, सुपीरियर हो जाता है उससे जिसे समझाता है। इसलिए समझाने का रस है। अगर समझाने में रस था, अगर समझाने में आपके अज्ञान का शोषण था, अगर समझाने में आप सीढ़ी थे उसके ज्ञान की तरफ बढ़ने के, तो इसमें कोई हैरानी न होगी कि जिस दिन सारे लोग साधु हो जाएं, उस दिन जो साधुता की समझा रहा था, ईमानदारी की समझा रहा था, वह बेईमानी के राज बताने लगे कि बेईमानी के बिना जीना मुश्किल है। चोरी करनी ही पड़ेगी, असत्य बोलना ही पड़ेगा, नहीं तो मर जाओगे। जीवन में सब रस ही खो जाएगा।

अगर उसको समझाने में ही रस आ रहा था तब अगर वह सच में ही साधु था, समझाना उसका रस न था, शोषण न था। तो वह प्रसन्न होगा, आनंदित होगा। वह कहेगा--समझाने की झंझट भी मिटी। लोग साधु हो गए, अब बात ही खत्म हो गई। अब मुझे समझाने का उपद्रव भी न रहा। अगर सेवा में आपको रस आ रहा था कि आप कहीं जा रहे थे--स्वर्ग, सुख में, आदर में, प्रतिष्ठा में, सम्मान में--अगर सेवा करवाने को कोई भी न मिले तो आप बड़े उदास और दुखी हो जाएंगे। लेकिन अगर सेवा वैयावृत्य थी, जैसा महावीर मानते हैं तो आप प्रसन्न होंगे कि अब आपका ऐसा कोई भी कर्म नहीं बचा है कि जिसके कारण आपको किसी की सेवा करनी पड़े। आप प्रसन्न होंगे, प्रफुल्लित होंगे, प्रमुदित होंगे, आनंदित होंगे। आप कहेंगे धन्यभाग, निर्जरा हुई।

यह भेद है। सेवा में कोई रस नहीं है। सेवा केवल मेडिसिनल है। जो किया है उसे पोंछ डालना है, मिटा देना है। ध्यान रहे, जो व्यक्ति सेवा करेगा दूसरे की, कहेगा मांगेगा, वृद्ध होने पर सेवा मांगेगा। क्योंकि ये एक ही तर्क के दो हिस्से हैं। लेकिन महावीर की सेवा करने की जो धारणा है, उसमें सेवा मांगी नहीं जाएगी। क्योंकि सेवा कभी इस दृष्टि से की नहीं गई, मांगी भी नहीं जाएगी। मांगने का कोई कारण नहीं है। और अगर कोई सेवा न करेगा तो उससे क्रोध भी पैदा नहीं होगा, उससे कष्ट भी मन में नहीं आएगा। उसे ऐसा भी नहीं लगेगा कि इस आदमी ने सेवा क्यों नहीं की।

इसलिए जो लोग भी सेवा करते हैं वे बड़े टार्च मास्टर्स होते हैं। अगर आप सेवकों के आश्रम में जाकर देखें, जो कि सेवा करते हैं, तो आप एक और मजेदार बात देखेंगे कि वह सेवा लेते भी हैं, उतनी ही मात्रा में। और उतनी ही सख्ती से। सख्ती उनकी भयंकर होती है। जरा सी बात चूक नहीं सकते। और कभी-कभी अत्यंत हिंसात्मक हो जाते हैं। यह बहुत मजे की बात है कि आप जितने सख्त अपने पर होते हैं उससे कम सख्त अपने

पर होते हैं उससे कम सख्त आप किसी पर नहीं होते। आप ज्यादा ही सख्त होंगे। कभी-कभी बहुत छोटी-छोटी बातों में बड़ी अजीब घटना घटती है।

गांधीजी नोआखाली में यात्रा पर थे। कठिन था वह हिस्सा, एक-एक गांव खून और लाशों से पटा था। एक युवती उनकी सेवा में है, वह उनके साथ चल रही है। एक गांव से अड्डा उखड़ा है, दोपहर वहां से चले हैं, सांझ दूसरे गांव पहुंचे हैं। लेकिन गांधीजी स्नान करने बैठे हैं। देखा तो उनका पत्थर, जिससे वे पैर घिसते थे, वह पीछे छूट गया पिछले गांव में। रात उतर रही है, अंधेरा उतर रहा है। उन्होंने उस लड़की को बुलाया और कहा कि यह भूल कैसे हुई? क्योंकि गांधी तो कभी भूल नहीं करते हैं इसलिए किसी की भूल बरदाश्त नहीं कर सकते। वापस जाओ, वह पत्थर लेकर आओ। नोआखाली, चारों तरफ आगें जल रही हैं, लाशें बिछी हैं। वह अकेली लड़की, रोती, घबड़ाती, छाती धड़कती वापस लौटी।

उस पत्थर में कुछ भी न था। वैसे पचास पत्थर उसी गांव से उठाए जा सकते थे। लेकिन डिसीप्लेनेरियन, अनुशासन! ... जो आदमी अपने घर पर पक्का अनुशासन रखता है वह दूसरों की गर्दन दबा लेता है। क्योंकि खुद नहीं भूलते कोई चीज। दूसरा कैसे भूल सकता है? तब दिखने वाला ऊपर से जो अनुशासन है, गहरे में हिंसा हो जाता है। यह भी कोई बात थी! आदमी भूल सकता है, भूलना स्वाभाविक है। और कोई बड़ा कोहिनूर हीरा नहीं भूल गया है। पैर घिसने का पत्थर भूल गया है। लेकिन सवाल पत्थर का नहीं है, सवाल सख्ती का है, सवाल नियम का है। नियम का पालन होना चाहिए।

अगर आप अनुशासन, सेवा, नियम, मर्यादा, इस तरह की बातें मानने वाले लोगों के पास जाकर देखें तो आपको दूसरा पहलू भी बहुत शीघ्र दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। जितने सख्त वे अपने पर हैं उससे कम सख्त वे दूसरे पर नहीं हैं। जब आप किसी के पैर दाब रहे हैं, तब आप किसी दिन पैर दाब रहे हैं, तब आप किसी दिन पैर दबाए जाने का इंतजाम भी कर रहे हैं मन के किसी कोने में। और अगर आपके पैर न दाबे गए उस दिन, तब आपकी पीड़ा का अंत नहीं होगा।

लेकिन महावीर की सेवा का इससे कोई संबंध नहीं है। महावीर तो कहते हैं कि अगर मेरी कोई सेवा करेगा तो भी वह इसलिए कर रहा है कि उसके किसी पाप का पक्षालन है। अगर नहीं है कोई पाप का पक्षालन तो बात समाप्त हो गई। कोई मेरी सेवा नहीं कर रहा है। इसमें दूसरे को गौरव दिया जाए तो फिर दूसरे को निंदा भी दी जा सकती है। लेकिन न कोई गौरव है, न कोई निंदा है। वैयावृत्य का ऐसा अर्थ है।

तो आप जब भी सेवा कर रहे हैं तब ध्यान रखें, वह भविष्य-उन्मुख न हो। तो आप अंतर-तप कर रहे हैं। जब आप सेवा कर रहे हों तो निष्प्रयोजन हो, अन्यथा आप अंतर-तप नहीं कर रहे हैं। जब आप सेवा कर रहे हैं तब उससे किसी तरह के गौरव की, गरिमा की, अस्मिता की कोई भावना भीतर गहन न हो, अन्यथा आप सेवा नहीं कर रहे हैं, वैयावृत्य नहीं कर रहे हैं। वह सिर्फ किए गए पाप को, किए गए कर्म को अनकिया करना हो, बस इतना--तो तप है।

और क्यों इसको अंतर-तप कहते हैं महावीर! इसलिए अंतर-तप कहते हैं, कि यह करना कठिन है। वह सेवा सरल है जिसमें कोई रस आ रहा हो। इस सेवा में कोई भी रस नहीं है, सिर्फ लेना-देना ठीक करना है। इसलिए तप है और बड़ा आंतरिक तप है। क्योंकि हम कुछ करें और कर्ता न बनें, इससे बड़ा तप क्या होगा? हम कुछ करें और कर्ता न बनें; इससे बड़ा तप क्या होगा? सेवा जैसी चीज करें जो कोई करने को राजी नहीं है--कोढ़ी के पैर दबाएं और फिर भी मन में कर्ता न बनें तो तप हो जाएगा और बहुत आंतरिक तप हो जाएगा।

आंतरिक क्यों कहते हैं? आंतरिक इसलिए कहते हैं कि सिवाय आपके और कोई न पहचान सकेगा। बात भीतरी है। आप ही जा सकेंगे; लेकिन आप बिल्कुल जांच लेंगे, कठिनाई नहीं होगी। जो व्यक्ति भी भीतर की जांच में संलग्न हो जाता है वह ऐसे ही जान लेता है। जब आपके पैर में कांटा गड़ता है तो आप कैसे जानते हैं कि दुख हो रहा है! और जब कोई आलिंगन से आपको अपने गले लगा लेता है तो आप कैसे जानते हैं कि हृदय प्रफुल्लित हो रहा है! और जब कोई आपके चरणों में सिर रख देता है तो आपके भीतर जो लहर दौड़ जाती है

वह आप कैसे जान लेते हैं? नहीं, उसके लिए बाहर कोई खोजने की जरूरत नहीं, आंतरिक मापदंड आपके पास है।

तो जब सेवा करते वक्त आपको किसी तरह भी भविष्य उन्मुखता मालूम पड़े, तो समझना कि महावीर ने उसे सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर कोई पुण्य का भाव पैदा हो, तो कहना, तो जानना कि महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर ऐसा लगे कि मैं कुछ कर रहा हूं, कुछ विशिष्ट, तो समझना कि महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर यह कुछ भी पैदा न हो और सेवा सिर्फ ऐसे हो जैसे तख्ते पर लिखी हुई कोई चीज को किसी ने पोंछ कर मिटा दिया है। तख्ता खाली हो गया है और भीतर खाली हो गए, तो आप अंतर-तप में प्रवेश करते हैं।

महावीर ने वैयावृत्य के बाद ही जो तप कहा है, वह है स्वाध्याय--चौथा तप। निश्चित ही, अगर सेवा का आप ऐसा प्रयोग करें तो आप स्वाध्याय में उतर जाएंगे, स्वयं के अध्ययन में उतर जाएंगे। लेकिन स्वाध्याय से बड़ा गौण अर्थ लिया जाता रहा है--वह है शास्त्रों का अध्ययन, पठन, मनन। महावीर अध्ययन ही कह सकते थे, स्वाध्याय कहने की क्या जरूरत थी? उसमें "स्व" जोड़ने का क्या प्रयोजन था? अध्ययन काफी था। स्वयं का अध्ययन, स्वाध्याय का अर्थ होता है। शास्त्र का अध्ययन नहीं। लेकिन साधु शास्त्र खोल बैठे हैं सुबह से, उनसे पूछिए--क्या कर रहे हैं? वे कहते हैं--स्वाध्याय करते हैं। शास्त्र निश्चित ही किसी और का होगा। स्वाध्याय शास्त्र नहीं बन सकता। अगर खुद का ही लिखा शास्त्र पढ़ रहे हैं तो बिल्कुल बेकार पढ़ रहे हैं। क्योंकि खुद का ही लिखा हुआ है, अब उसमें और पढ़ने को क्या बचा होगा? जानने को क्या है?

स्वाध्याय का अर्थ है: स्वयं का अध्ययन। बड़ा कठिन है। शास्त्र पढ़ना तो बड़ा सरल है। जो भी पढ़ सकता है, वह शास्त्र पढ़ सकता है। पठित होना काफी है, लेकिन स्वाध्याय के लिए पठित होना काफी नहीं है। क्योंकि स्वाध्याय बहुत जटिल मामला है। आप बहुत कॉम्प्लेक्स हैं, आप बहुत उलझे हुए हैं। आप एक ग्रंथियों का जाल हैं। आप एक पूरी दुनिया हैं, हजार तरह के उपद्रव हैं वहां। उस सबके अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। तो अगर आप अपने क्रोध का अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय कर रहे हैं। हां, क्रोध के संबंध में शास्त्र में क्या लिखा है, उसका अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय नहीं कर रहे हैं। अगर आप अपने राग का अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय कर रहे हैं। राग के संबंध में शास्त्र में क्या लिखा है, उसका अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय नहीं कर रहे हैं। और आपके भीतर सब मौजूद है, जो भी किसी शास्त्र में लिखा है वह सब आपके भीतर मौजूद है। इस जगत में जितना भी जाना गया है, वह प्रत्येक आदमी के भीतर मौजूद है। और इस जगत में जो भी कभी जाना जाएगा वह प्रत्येक आदमी के भीतर आज भी मौजूद है। आदमी एक शास्त्र है--परम शास्त्र है, द अल्टीमेट स्क्रिपचर। इस बात को समझें तो महावीर का स्वाध्याय समझ में आएगा।

मनुष्य परम शास्त्र है। क्योंकि जो भी जाना गया है, वह मनुष्य ने जाना। जो भी जाना जाएगा वह मनुष्य जानेगा। काश, मनुष्य स्वयं को ही जान ले, तो जो भी जाना गया है और जो भी जाना जा सकता है वह सब जान लिया जाता है। इसलिए महावीर ने कहा है--एक को जानने से सब जान लिया जाता है। स्वयं को जानने से सर्व जान लिया जाता है। इसके कई आयाम हैं। पहली तो बात यह है कि जानने योग्य जो भी है उसके हम दो हिस्से कर सकते हैं--एक तो आब्जेक्टिव, वस्तुगत; दूसरा सब्जेक्टिव, आत्मगत। जानने में दो घटनाएं घटती हैं--जानने वाला होता है और जानी जाने वाली चीज होती है। विषय होता है जिसे हम जानते हैं, और जानने वाला होता है जो जानता है। विज्ञान का संबंध विषय से है, आब्जेक्ट से है, वस्तु से है। जिसे हम जानते हैं उसे जानने से है। धर्म का संबंध उसे जानने से है जिससे हम जानते हैं; जो जानता है उसे जानने से है।

ज्ञाता को जानना धर्म है और ज्ञेय को जानना विज्ञान है। ज्ञेय को हम कितना ही जान लें तो ज्ञाता के संबंध में तो भी पता नहीं चलता। कितना ही हम जान लें चांद-तारे, सूरजों के संबंध में तो भी अपने संबंध में कुछ पता नहीं चलता। बल्कि एक बड़े मजे की बात है कि जितना हम वस्तुओं के संबंध में ज्यादा जान लेते हैं

उतना ही हमें वह भूल जाता है, जो जानता है। क्योंकि जानकारी बहुत इकट्ठी हो जाए तो ज्ञाता छिप जाता है। आप इतनी चीजों के संबंध में जानते हैं कि आपको ख्याल ही नहीं रहता कि अभी जानने को कुछ शेष बच रहा है इसलिए विज्ञान बढ़ता जाता है रोज, जानता जाता है रोज। कितने प्रकार के मच्छर हैं, विज्ञान जानता है। प्रत्येक प्रकार के मच्छर की क्या खूबियां हैं, विज्ञान जानता है। कितने प्रकार की वनस्पतियां हैं, विज्ञान जानता है। प्रत्येक वनस्पति में क्या-क्या छिपा है, विज्ञान जानता है। कितने सूरज हैं, कितने तारे हैं, कितने चांद हैं, विज्ञान जानता है।

आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा कि अगर मुझे दुबारा जीवन मिले तो मैं एक संत होना चाहूंगा। क्यों? जो खाट के आस-पास इकट्ठे थे, उन्होंने पूछा--क्यों? तो आइंस्टीन ने कहा: जानने योग्य तो अब एक ही बात मालूम पड़ती है कि वह जो जान रहा था, वह कौन है? जिसने जान लिया कि चांद-तारे कितने हैं, लेकिन होगा क्या? दस हैं कि दस हजार हैं, कि दस करोड़ हैं कि दस अरब हैं, इससे होगा क्या। दस हैं, ऐसा जानने वाला भी वहीं खड़ा रहता है, दस करोड़ हैं, ऐसा जाननेवाला भी वहीं खड़ा रहता है; दस अरब हैं, ऐसा जानने वाला भी वहीं खड़ा रहता है। जानकारी से जानने वाले में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। लेकिन एक भ्रम जरूर पैदा होता है कि मैं जानने वाला हूं।

महावीर ऐसे जानने वाले को मिथ्या ज्ञानी कहते हैं। कहते हैं--जानने वाला जरूर है, लेकिन मिथ्या जानने वाला है। ऐसी चीजें जानने वाला है जिसे बिना जाने भी चल सकता था, और ऐसी चीज को छोड़ देने वाला है जिसके बिना जाने नहीं चल सकता। जो कीमती है, वह छोड़ देते हैं हम और जो गैर-कीमती है वह जान लेते हैं हम। आखिर में जानना इकट्ठा हो जाता है और जानने वाला खो जाता है। मरते वक्त हम बहुत कुछ जानते हैं, सिर्फ उसे ही नहीं जानते जो मर रहा है। अदभुत है यह बात कि आदमी अपने को नहीं जानता! इसलिए महावीर ने स्वाध्याय को कीमती अंतर-तपों में गिना है

स्वाध्याय चौथा अंतर-तप है। इसके बाद दो ही तप बच जाएंगे और उन दो तपों के बाद एक्सप्लोजन, विस्फोट घटित होता है। तो स्वाध्याय बहुत निकट की सीढ़ी है विस्फोट के। जहां क्रांति घटित होती है, जहां जीवन नया हो जाता है, जहां आपका पुनर्जन्म होता है, नया आदमी आपके भीतर पैदा होता है, पुराना समाप्त होता है। स्वाध्याय बहुत करीब आ गया। अब दो ही सीढ़ी बचती हैं और। इसलिए शास्त्र-अध्ययन स्वाध्याय का अर्थ नहीं हो सकता। शास्त्र-अध्ययन कितना कर रहे हैं लोग, लेकिन कहीं कोई क्रांति घटित नहीं मालूम होती। कहीं कोई विस्फोट नहीं होता है। सच तो यह है कि जितना आदमी शास्त्र को जानता है, उतना ही स्वयं को जानने की जरूरत कम मालूम पड़ती है। क्योंकि उसे लगता है कि सब जो भी जाना जा सकता है, मुझे मालूम है। महावीर क्या कहते हैं; बुद्ध क्या कहते हैं, क्राइस्ट क्या कहते हैं, वह जानता है। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, वह जानता है--बिना जाने! यह मिरेकल है--बिना जाने! उसे कुछ भी पता नहीं है कि आत्मा क्या है! उसे कोई स्वाद नहीं मिला कभी आत्मा का। उसने परमात्मा की कभी कोई झलक नहीं पाई। उसने मुक्ति के आकाश में कभी एक पंख नहीं मारा। उसके जीवन में कोई किरण नहीं उतरी जिससे वह कह सके कि यह ज्ञान है, जिससे प्रकाश हो गया हो। सब अंधेरा भरा है और फिर भी वह जानता है कि सब जानता हूं! इसे महावीर मिथ्या ज्ञान कहते हैं।

शास्त्र से जो मिलता है वह सत्य नहीं हो सकता, स्वयं से जो मिलता है वही सत्य होता है। यद्यपि स्वयं से मिला गया शास्त्र में लिखा जाता है--स्वयं से मिला गया शास्त्र में लिखा जाता है, लेकिन शास्त्र से जो मिलता है वह स्वयं का नहीं होता। शास्त्र कोई और लिखता है। वह किसी और की खबर है जो आकाश में उड़ा। वह किसी और की खबर है जिसने प्रकाश के दर्शन किए। वह किसी और की खबर है जिसने सागर में डुबकी लगाई। लेकिन आप किनारे पर बैठ कर पढ़ रहे हैं। इसको मत भूल जाना कि किनारे पर बैठ कर आप कितना ही पढ़ें, सागर में डुबकी लगाने वाले के वक्तव्य से आपकी डुबकी नहीं लग सकती। मगर डर यह है कि शास्त्र में डुबकी लगा लेते हैं लोग। और जो शास्त्र में डुबकी लगा लेते हैं वे भूल ही जाते हैं कि सागर अभी बाकी है। कभी-कभी तो ऐसा

होता है कि शास्त्र में डुबकी ऐसी लग जाती है कि वह भूल ही जाता है कि सागर भी आगे है। तो शास्त्र सागर की तरफ ले जाने वाला कम ही सिद्ध होता है, सागर की तरफ जाने में रुकावट वाला ज्यादा सिद्ध होता है। इसलिए महावीर शास्त्राध्ययन को स्वाध्याय नहीं कहते।

इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर शास्त्र के अध्ययन को इनकार कर रहे हैं। लेकिन वह स्वाध्याय नहीं है। इसको अगर ख्याल में रखा जाए तो शास्त्र का अध्ययन भी उपयोगी हो सकता है। उपयोगी हो सकता है। अगर यह ख्याल में रहे कि शास्त्र का सागर सागर नहीं; और शास्त्र का प्रकाश प्रकाश नहीं; और शास्त्र का आकाश आकाश नहीं; और शास्त्र का परमात्मा परमात्मा नहीं; और शास्त्र का मोक्ष मोक्ष नहीं--अगर यह स्मरण रहे, और यह स्मरण रहे कि किसी ने जाना होगा, उसने शब्दों में कहा है; लेकिन शब्दों में कहते ही सत्य खो जाता है, केवल छाया रह जाती है--यह स्मरण रहे तो शास्त्र को फेंक कर किसी दिन सागर में छलांग लगाने का मन आ जाएगा। अगर यह स्मरण न रहे, सागर ही बन जाए शास्त्र, सत्य ही बन जाए शास्त्र, शास्त्र में ही सब भटकाव हो जाए तो सागर को छिपा लेगा शास्त्र।

और इसलिए कई बार अज्ञानी कूद जाते हैं परमात्मा में और ज्ञानी वंचित रह जाते हैं। तथाकथित ज्ञानी, दि सो-कॉल्ड नोअर्स, वे वंचित रह जाते हैं। इसलिए उपनिषद कहते हैं कि अज्ञानी तो अंधकार में भटकते ही हैं, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। स्वाध्याय का अर्थ है--स्वयं में उतरो और अध्ययन करो। पूरा जगत भीतर है। वह सब्जेक्टिव, वह आत्मगत जगत पूरा भीतर है। उसे जानने चलो, लेकिन रुख बदलना पड़ेगा। इसलिए स्वाध्याय का पहला सूत्र है--रुख। वस्तु के अध्ययन को छोड़ो, अध्ययन करने वाले का अध्ययन करो।

जैसे उदाहरण के लिए, आप मुझे सुन रहे हैं। जब आप मुझे सुन रहे हैं तो आपने कभी ख्याल किया है कि जितनी तल्लीनता से आप मुझे सुनेंगे उतना ही आपको भूल जाएगा कि आप सुनने वाले हैं। जितनी तल्लीनता से आप मुझे सुनेंगे उतना ही आपके स्मरण के बाहर हो जाएगा कि आप भी यहां मौजूद हैं जो सुन रहा है। बोलने वाला प्रगाढ़ हो जाएगा, सुनने वाला भूल जाएगा। हालांकि आप बोलने वाले नहीं, सुनने वाले हैं। जब आप सुन रहे हैं तब दो घटनाएं घट रही हैं। शब्द जो आपके पास आ रहे हैं, आपसे बाहर हैं; और आप जो भीतर हैं। शब्द महत्वपूर्ण हो जाएंगे सुनते वक्त और सुनने वाला गौण हो जाएगा। और अगर आप पूरी तरह तल्लीन हो गए तो बिल्कुल भूल जाएगा। सेल्फ-फॉर्गेटफुलनेस हो जाएगी, आत्म-विस्मरण हो जाएगा।

मेरे पास लोग आते हैं। जब कोई मेरे पास आता है और वह कहता है--आज आप बहुत अच्छा बोले, तो मैं जानता हूं कि आज क्या हुआ। आज यह हुआ कि वह अपने को भूल गए, और कुछ नहीं हुआ--आत्म-विस्मरण हुआ। आज घंटे भर उनको अपनी याद न रही इसलिए वे कह रहे हैं कि बहुत अच्छा बोले। घंटे भर उनका मनोरंजन इतना हुआ कि उनको अपना पता भी न रहा। पंद्रह वर्ष से निरंतर सुबह-सांझ मैं बोलता रहा हूं। एक भी आदमी नहीं है वह, जो आकर कहता हो--कि आप आज बहुत ठीक बोले। वह कहता है--बहुत अच्छा बोले हैं। क्योंकि अगर ठीक बोले तो कुछ करना पड़ेगा। अच्छा बोले तो हो चुकी है बात। नहीं कहता कोई आदमी मुझसे कि सत्य बोले--सुखद बोले! सत्य बोले, तो बेचैनी पैदा होगी। सुखद बोले, बात खत्म हो गई। सुख मिल चुका। लेकिन सुख आपको कब मिलता है वह मैं जानता हूं। जब भी आप अपने को भूलते हैं तभी सुख मिलता है--चाहे सिनेमा में भूलते हों; चाहे संगीत में भूलते हों; चाहे कहीं सुनकर भूलते हों; चाहे पढ़ कर भूलते हों; चाहे सेक्स में भूलते हों; चाहे शराब में भूलते हों। आपका सुख मुझे भलीभांति पता है कि कब मिलता है--जब आप अपने को भूलते हैं, तभी मिलता है।

लेकिन जब आप अपने को भूलते हैं तभी स्वाध्याय बंद होता है; जब आप अपने को स्मरण करते हैं तब स्वाध्याय शुरू होता है। तो जब मैं बोल रहा हूं--एक प्रयोग करें, यहीं और अभी सिर्फ बोलने वाले पर ही ध्यान मत रखें, ध्यान को दोहरा कर दें, डबल एरोड, दोहरे तीर लगा दें ध्यान में--एक मेरी तरफ और एक अपनी

तरफ। सुनने वाले का भी स्मरण रहे, वह जो कुर्सी पर बैठा है, वह जो आपकी हड्डी-मांस-मज्जा के भीतर छिपा है, जो कान के पीछे खड़ा है, जो आंख के पीछे देख रहा है, उसका भी स्मरण रहे। रिमेंबर, उसको स्मरण रखें।

कोई फिकर नहीं कि उसके स्मरण करने में अगर मेरी कोई बात चूक भी जाए, क्योंकि मेरी इतनी बातें सुन लीं उनसे कुछ भी नहीं हुआ, और चूक जाएगा तो कोई हर्ज होने वाला नहीं है। लेकिन उसका स्मरण रखें, वह जो भीतर बैठा है, सुन रहा है, देख रहा है, मौजूद है। उसकी प्रेजेंस अनुभव करें। हड्डी, मांस, कान, आंख के भीतर वह जो छिपा है, वह अनुभव करें, वह मालूम पड़े। ध्यान उस पर जाए तो आप हैरान होंगे, तब आपको जो मैं कह रहा हूं वह सुखद नहीं, सत्य मालूम पड़ना शुरू होगा।

और तब जो मैं कह रहा हूं वह आपके लिए मनोरंजन नहीं, आत्म-क्रांति बन जाएगा। और तब जो मैं कह रहा हूं, आपने सिर्फ सुना ही नहीं, जीया भी, जाना भी। क्योंकि जब आप भीतर की तरफ उन्मुख होकर खड़े होंगे तो आपको पता लगेगा कि जो मैं कह रहा हूं वह आपके भीतर छिपा पड़ा है। उससे तालमेल बैठना शुरू हो जाएगा। जो मैं कह रहा हूं वह आपको दिखाई भी पड़ने लगेगा कि ऐसा है। अगर मैं कह रहा हूं कि क्रोध जहर है, तो मेरे सुनने से वह जहर नहीं हो जाएगा, लेकिन अगर आप अपने प्रति जाग गए उसी क्षण और आपने भीतर झांका, तो आपके भीतर काफी जहर इकट्ठा है क्रोध का--रिजर्वायर है, वह दिखाई पड़ेगा। अगर वह दिख जाए मेरे बोलते वक्त तो मैंने जो कहा वह सत्य हो गया। क्योंकि उसका पैरेलल, वास्तविक सत्य मेरे शब्द के पास जो होना चाहिए था, वह आपके अनुभव में आ गया। तब शब्द कोरा शब्द न रहा, तब आपके भीतर सत्य की प्रतीति भी हुई।

सुनते वक्त बोलने वाले पर कम ध्यान रखें, सुनने वाले पर ज्यादा ध्यान रखें--सुनने वालों पर नहीं, सुनने वाले पर। सुनने वालों पर भी लोग ध्यान रख लेते हैं। देख लेते हैं आस-पास कि किस-किस को जंच रहा है। मुझे वैसे लोग भी आकर कहते हैं आज बहुत ठीक हुआ। मैं उनसे पूछता हूं--क्या बात हुई? वे कहते हैं--कई लोगों को जंचा। वे आस-पास देख रहे हैं कि किस किसको जंच रहा है। और कई लोग ऐसे हैं, जब तक दूसरों को न जंचे, उनको नहीं जंचता। बड़ा म्यूचुअल नानसेंस--पारस्परिक मूर्खता चलती है। देख लेते हैं आस-पास कि जंच रहा है तो उनको भी जंचता है। और उनको पता नहीं है कि बगल वाला उनको देख कर, उसको भी जंचता है।

हिटलर अपनी सभाओं में दस आदमी बिठा देता था जो वक्त पर ताली बजाते थे, और दस हजार आदमी साथ बजाते थे। जब हिटलर ने पहली दफा अपने दस मित्रों को कहा कि तुम भीड़ में दूर-दूर खड़े होकर ताली बजाना तो उन्होंने कहा--हम बजाएंगे तो बड़े बेहूदे लगेंगे। दस आदमी ताली बजाएंगे, दस हजार में और कोई नहीं बजाएगा! हिटलर ने कहा कि मैं आदमियों को जानता हूं। पड़ोस के आदमी को देख कर वे बजाते हैं। तुम फिक्र छोड़ो। तुम सिर्फ जस्ट स्टार्ट, बजेगी ताली। हिटलर के इशारे पर वे ताली बजाते थे। वे चकित हुए कि दस हजार आदमी ताली बजा रहे हैं। क्यों? क्या हो गया? इनफेक्शन है। पड़ोस का बजा रहा है, जरूर कोई बात होगी। और जब आप बजाते हैं, तो आपका पड़ोस वाला सोचता है कि जरूर कोई बात कीमती होगी। लोग ऐसा न समझें--बुद्धू है, अपनी समझ में नहीं आया। वे भी बजा रहे हैं। दस आदमी दस हजार लोगों को ताली बजवा लेते हैं।

कभी ख्याल में नहीं आता कि आप क्या कर रहे हैं? आप जो कपड़े पहने हुए हैं, वे किसी दूसरे आदमी ने आपको पहनवा दिए हैं, क्योंकि उसने पहने हुए थे। नहीं, सुनने वालों पर ध्यान नहीं, सुनने वाले पर ध्यान, स्वयं पर ध्यान भूल जाएं सुनने वालों को। उनकी कोई जरूरत नहीं है बीच में आकर खड़े होने की। रास्ते पर चल रहे हैं तो भीड़ दिखाई पड़ती है, दुकानें दिखाई पड़ती हैं; एक आदमी भर नहीं दिखाई पड़ता है, वह जो चल रहा है। वह भर मौजूद नहीं होता। उसका आपको पता ही नहीं होता जो चल रहा है। और सब होते हैं। बड़ी अदभुत अनुपस्थिति है! हम अपने से अनुपस्थित हैं। यह अनुपस्थिति को तोड़ने का नाम ही स्वाध्याय है। टु बी प्रेजेंट टु वनसेल्फ।

गुरजिएफ ने इसे सेल्फ रिमेंबरिंग कहा है, स्व-स्मृति कहा है--स्वयं का स्मरण। कोई भी काम ऐसा न हो पाए, कोई भी बात ऐसी न हो पाए, कोई भी घटना ऐसी न घटे जिसमें मेरे भीतर जो चेतना है वह विस्मृत हो जाए। उसका होश मुझे बना रहे। तो फिर शराब भी कोई पी रहा हो और अगर होश बनाए रखे अपने भीतर कि मैं शराब पी रहा हूं और मैं, मैं मौजूद हूं, तो शराब भी बेहोश नहीं कर पाएगी, और नहीं तो पानी भी बेहोश कर देता है। अगर यह स्मरण बना रहे कि मैं हूं तो शराब एक तरफ पड़ी रह जाएगी और वह चेतना निरंतर अलग खड़ी रहेगी। यह अलग खड़ा रहना चेतना का हम पानी के साथ भी नहीं कर पाते, शराब के साथ तो बहुत दूर होता है। जब हम पीते हैं पानी तो प्यास होती है, पानी होता है, पीने वाला नहीं होता है। होना चाहिए। पीने वाला पहले, प्यास बाद में, पानी और बाद में, तो स्वाध्याय शुरू हो गया।

स्वाध्याय का अर्थ है--मेरे जीवन का कोई कृत्य, कोई विचार, कोई घटना मेरी अनुपस्थिति में न घटे जाए। मैं मौजूद रहूं--क्रोध हो तो मैं मौजूद रहूं, घृणा हो तो मैं मौजूद रहूं, काम हो तो मैं मौजूद रहूं। कुछ भी हो तो मैं मौजूद रहूं। मेरी मौजूदगी में घटे।

और महावीर कहते हैं कि बड़ा अदभुत है, जब तुम मौजूद होते हो तो जो गलत है वह नहीं घटता। स्वाध्याय में गलत घटता ही नहीं। जब मैंने कहा--शराब पीते वक्त अगर आप मौजूद हों, तो आप यह मत समझना कि आपको शराब पीने की सलाह दे रहा हूं कि मजे से पीयो, मौजूद रहो। मौजूद किसको रहना है, लेकिन पीना तो जारी रख सकते हैं! मैं आपसे यह कह रहा हूं कि अगर शराब पीते वक्त आप मौजूद रहे तो हाथ से गिलास छूट कर गिर जाएगा, शराब पीना असंभव है, क्योंकि जहर सिर्फ बेहोशी में ही पीए जा सकते हैं।

जब मैं आपसे कहता हूं--क्रोध करते वक्त मौजूद रहो तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मजे से करो क्रोध और मौजूद रहो। बस शर्त इतनी है कि मौजूद रहो, और क्रोध करो, फिर कोई हर्ज नहीं है। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि क्रोध करते वक्त अगर आप मौजूद रहे तो दो में से एक ही हो सकता है, या तो क्रोध होगा या आप होंगे। दोनों साथ मौजूद नहीं हो सकते। जब आप क्रोध करते वक्त मौजूद होंगे तो क्रोध खो जाएगा, आप होंगे। क्योंकि आपकी मौजूदगी में क्रोध जैसी रद्दी चीजें नहीं आ सकतीं। जब घर का मालिक जगा हो तो चोर प्रवेश नहीं करते। जब आप जगे हों तब क्रोध घुस जाए, यह हिम्मत क्रोध कर सकता है! आप जब सोए होते हैं तभी क्रोध प्रवेश कर सकता है। वह आपके उस कमजोर क्षण का ही उपयोग कर सकता है, जब आप बेहोश हैं। जब आप होश में हैं तो क्रोध नहीं होगा।

इसलिए महावीर जब कहते हैं कि होशपूर्वक जीयो, अप्रमाद से जीयो, जागते हुए जीयो, तो मतलब केवल इतना ही है कि जागकर जीने में जो-जो गलत है वह अपने आप गिर जाएगा। और यह अनुभव आपको होगा स्वाध्याय से कि गलत इसलिए हो रहा था कि मैं सोया हुआ था। गलत के होने का और कोई कारण नहीं है, नो रीजन एट ऑल। सिर्फ एक ही कारण है कि आप सोए हुए हैं।

इसलिए महावीर ने कहा--क्षण में भी मुक्ति हो सकती है। इसी क्षण भी मुक्ति हो सकती है। अगर कोई पूरा जाग जाए, तो गलत इसी वक्त गिर जाता है। तो महावीर यह भी नहीं कहते कि कल के लिए भी रुकना जरूरी है। यह दूसरी बात है कि आप न जाग पाएं तो कल के लिए रुकना पड़े। अगर समग्रता से क्रोध इसी क्षण में जाग जाए तो सब गिर गया कचरा। जिससे हमें लगता था कि हम बंधे हैं, जिससे लगता था जन्मों-जन्मों का कर्म और पाप--वह सब गिर गया।

स्वाध्याय से यह पता चलेगा कि एक ही पाप है--मूर्च्छा, और एक ही पुण्य है--जाग्रत। और स्वाध्याय से यह पता चलेगा कि जब भी हम सोए होते हैं तो जो भी हम करते हैं, वह गलत होता है--ऐसा नहीं कि कुछ गलत होता है, कुछ ठीक होता है--जो भी हम करते हैं वह गलत होता है। और जब हम जागे होते हैं तो ऐसा नहीं कि कुछ गलत और कुछ सही हो सकता है--जो भी होता है वह सही होता है। तो महावीर ने यह नहीं कहा है कि तुम सही करो; महावीर ने कहा है, जाग कर करो, होशपूर्वक करो, स्मृतिपूर्वक करो। क्योंकि स्मृतिपूर्वक

गलत होता ही नहीं, ऐसे ही जैसे अंधेरे में मैं टटोलूं और दीवाल से सिर टकरा जाए और दरवाजा न मिले और प्रकाश हो जाए तो दरवाजा मिल जाए, दीवार से टकराना न पड़े।

तो महावीर यह नहीं कहते कि बिना टकराए हुए निकलो। महावीर कहते हैं, रोशनी कर लो और निकल जाओ। क्योंकि अंधेरे में टकराओगे ही। मोक्ष भी खोजोगे तो टकराओगे। परमात्मा को भी खोजोगे तो टकराओगे। अंधेरे में तो कुछ भी करोगे तो टकराओगे, क्योंकि अंधेरा है। और अंधेरे का कोई और कारण नहीं है क्योंकि हम आब्जेक्ट फोकस्ड हैं, हम वस्तुओं पर सारा ध्यान लगाए हुए हैं। वह ध्यान ही रोशनी है। वस्तुओं पर पड़ती हैं तो वस्तुएं चमकने लगती हैं।

कभी आपने ख्याल किया, रोज रास्ते से निकलते हैं। आपके पास साइकिल भी नहीं है। तो कार देख कर आपके मन में ऐसा ख्याल नहीं आता कि कार खरीद लें। इसलिए कार पर आपका बहुत ध्यान नहीं पड़ता। हां कभी-कभी पड़ता है जब कार बगल से कीचड़ उछाल देती है आपके ऊपर निकलते वक्त, तब ध्यान जाता है। ऐसे ध्यान नहीं जाता। आपका फोकस कार पर नहीं बैठता, और जब तक कार पर आपके ध्यान का आपका फोकस नहीं बैठता, तब तक कार को लेने की वासना नहीं उठती।

लेकिन आज आपको लाटरी मिल गई--लाख रुपये मिल गए। अब आप उसी सड़क से गुजरिए, आप हैरान होंगे, आपका फोकस बदल गया। आज आप वह चीजें देखते हैं जो कल आपने देखी नहीं थीं। कल आपके पास साइकिल भी नहीं थी तो कभी-कभी साइकिल पर फोकस लगता था कि कभी दो सौ रुपये इकट्ठे हो जाएं तो एक साइकिल खरीद लें। कभी-कभी रात सपने में साइकिल पर बैठ कर निकल जाते थे। कभी-कभी साइकिल पर बैठा हुआ आदमी ऐसा लगता था कि पता नहीं कैसा आनंद ले रहा होगा। लेकिन फोकस की सीमा है। कार वाले आदमी से प्रतिस्पर्धा नहीं जगती थी, सिर्फ क्रोध जगता था। साइकिल वाले आदमी से प्रतिस्पर्धा जगती थी, क्रोध नहीं जगता था--एप्रोचेबल था। सीमा के भीतर था, हम भी हो सकते थे साइकिल पर, जरा वक्त की बात थी।

लेकिन आज आपको लाख रुपए मिल गए हैं, आज साइकिल पर आपका ध्यान ही नहीं जमता, आज साइकिल ख्याल में नहीं आती कि साइकिल भी चल रही है। आज एकदम कारें दिखाई पड़ती हैं। आज कारों में पहली दफा फर्क मालूम पड़ते हैं कि कौन सी कार बीस हजार की है, कौन सी पचास हजार की है, कौन सी लाख की है। यह फर्क कभी नहीं दिखाई पड़ा था, कार कार थी। यह फर्क कभी नहीं दिखाई पड़ा था, यह फर्क आज दिखाई पड़ेगा फोकस में। आज चेतना उस तरफ बह रही है, आज लाख रुपये जेब में हैं। आज वे लाख रुपये उछलना चाहते हैं। आज वे लाख कहते हैं लगाओ ध्यान कहीं। ये लाख रुपये कैसे बैठे रहेंगे, वे कहीं जाना चाहते हैं। वे गति करना चाहते हैं। आज आपका ध्यान दूसरी ही चीजों को पकड़ेगा। आज मकान दिखाई पड़ेंगे जो लाख में खरीदे जा सकते हैं। कार दिखाई पड़ेगी। दुकानों में चीजें दिखाई पड़ेंगी जो आपको कभी नहीं दिखाई पड़ी थीं। सदा थीं, पर आपको कभी दिखाई नहीं पड़ी थीं। बात क्या है? आपको वही दिखाई पड़ता है जिस तरफ आपका ध्यान होता है। वह नहीं दिखाई पड़ता है जिस तरफ आपका ध्यान नहीं होता।

हमारा सारा ध्यान बाहर की तरफ है, इसलिए भीतर अंधेरा है। आता भीतर से ही है यह ध्यान, लेकिन भीतर अंधेरा है क्योंकि ध्यान वस्तुओं की तरफ है। स्वाध्याय का अर्थ है--इस रोशनी को भीतर की तरफ मोड़ लो--भीतर देखना शुरू करना। कैसे देखेंगे? तो एक दो उदाहरण ध्यान में ले लें। एक आदमी आता है और आपको गाली देता है। जब वह गाली देता है तब दो घटनाएं घट रही हैं। वह आदमी गाली दे रहा है, यह घट रही है, आब्जेक्टिव है, बाहर है। वह आदमी बाहर है, उसकी गाली बाहर है। आपके भीतर क्रोध उठ रहा है, यह दूसरी घटना घट रही है। यह भीतर है, यह सब्जेक्टिव है। आप कहां ध्यान देते हैं? उसकी गाली पर ध्यान देते हैं तो स्वाध्याय नहीं हो पाएगा। अपने क्रोध पर ध्यान देते हैं, स्वाध्याय हो जाएगा।

एक सुंदर स्त्री रास्ते पर दिखाई पड़ी, कामवासना भीतर उठ गई। आप उस स्त्री का पीछा करते हैं, ध्यान में, तो स्वाध्याय नहीं हो पाएगा। आप उस स्त्री को छोड़ते हैं और भीतर जाते हैं और देखते हैं कि कामवासना किस तरह भीतर उठ रही है, तो स्वाध्याय शुरू हो जाएगा। जब भी कोई घटना घटती है उसके दो पहलू होते हैं—आब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव, वस्तुगत और आत्मगत। जो आत्मगत पहलू है, उस पर ध्यान को ले जाने का नाम स्वाध्याय है। जो वस्तुगत पहलू है उस पर ध्यान को ले जाने का नाम मूर्च्छा है। लेकिन हम सदा बाहर ध्यान ले जाते हैं।

जब कोई हमें गाली देता है तो हम उसकी गाली को कई बार दोहराते हैं कि किस तरह दी, उसके चेहरे का ढंग क्या था, क्यों दी, वह आदमी कैसा है, हम उसका पूरा इतिहास खोजते हैं। जो बातें हमने उस आदमी में पहले कभी नहीं देखी थीं, वह हम सब देखते हैं कि नहीं, वह आदमी ऐसा था ही, पहले से ही पता था, अपनी भूल थी, ख्याल न किया। वह गाली कभी भी देता, वह औरों को भी गाली दिया है। फलां आदमी ने यह कहा था कि वह आदमी गाली देता है। आप उस आदमी पर सारी चेतना को दौड़ा देंगे और जरा भी ख्याल न करेंगे कि आप आदमी कैसे हैं भीतर, भीतर क्या हो रहा है? उसकी छोटी सी गाली आपके भीतर क्या कर गई है।

हो सकता है, वह आदमी तो गाली देकर घर सो गया हो मजे में। आप रात भर जग रहे हैं और सोच रहे हैं। हो सकता है, उसने गाली यों ही दी हो, मजाक ही किया हो। कुछ लोग गाली मजाक तक में दे रहे हैं। उसे ख्याल ही न हो कि उसने गाली दी है।

मेरे गांव में, मेरे घर के सामने एक बूढ़ा मिठाईवाला था। वह बहरा भी था, और गाली, तकियाकलाम थी। मतलब चीजें भी खरीदे तो बिना गाली दिए नहीं खरीद सकता था किसी से। तो अक्सर यह हो जाता था कि वह घास वाली से घास खरीद रहा है और गाली दे रहा है। और वह घासवाली कह रही है कि लेना हो तो ले लो, मगर गाली तो मत दो! तो वह अपने को गाली देकर कहता है कि कौन साला गाली दे रहा है? उसको पता ही नहीं है। वह कहता है—कौन साला गाली दे रहा है? गाली दे ही कौन रहा है? वह गाली दे रहा है, वह इसमें भी अब वह अपने को ही गाली दे रहा है। और अपने को तो कोई गाली नहीं देना चाहता है!

नहीं, इसका कोई बोध नहीं है, गाली इतनी सहज हो गई है कि जो आदमी आपको गाली दे गया, हो सकता है उसे पता ही न हो। आप जो व्याख्याएं निकाल रहे हैं वह आप ही निकाल रहे हैं। भीतर जाएं कृपा करके, उस आदमी की फिकर छोड़ें। भीतर देखें कि उस आदमी ने गाली दी तो मेरे भीतर क्या-क्या व्याख्या पैदा होती है, उसकी गाली की। वह व्याख्या उस आदमी के संबंध में कुछ भी नहीं कहती, सिर्फ आपके संबंध में कुछ कहती है कि आप आदमी कैसे हैं।

अगर आपको गाली दी जाए तो आपके भीतर क्या-क्या होगा, इसको देखें। आप क्या-क्या व्याख्या करते हैं, आपके भीतर क्रोध कैसे उठता है, आप उससे क्या-क्या प्रतिकार लेना चाहते हैं? हत्या करना चाहते हैं; गाली देना चाहते हैं; गर्दन दबाना चाहते हैं; क्या करना चाहते हैं? इस पूरे को उतर जाएं देखने। आप अनुभवी होकर बाहर लौटेंगे। आप इस स्वाध्याय से ज्ञानी होकर बाहर लौटेंगे।

इसके दो मजे होंगे—एक तो आपकी अपने संबंध में जानकारी बढ़ गई होगी। और साथ ही आपको यह भी पता चल गया होगा कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उसने गाली दी, महत्वपूर्ण यह है कि मैंने कैसा अनुभव किया। और मजा यह है कि आप उसका गाली का उत्तर देने अब कभी न जाएंगे। क्योंकि आप बदल गए होंगे इस ज्ञान से, इस स्वाध्याय से, आप वही आदमी नहीं रह गए जिसको गाली दी गई थी। समर्थिंग हैज बीन एडेड, समर्थिंग हैज बीन रिवील्ड। नया कुछ जुड़ गया। सुबह आप दूसरे आदमी होंगे। हो सकता है, आप उससे क्षमा मांग आएं। हो सकता है, आप पाएं कि उसने गाली ठीक ही दी। हो सकता है, आप पाएं कि उसकी गाली उतनी मजबूत न थी जितनी होनी चाहिए थी, जितना बुरा मैं आदमी हूं। हो सकता है कि आप उससे जाकर कहें कि तेरी गाली

बिल्कुल ठीक थी और अंडर एस्टिमेटेड थी--यानी मैं आदमी जरा ज्यादा बुरा हूं। यह सब हो सकता है। या हो सकता है, सुबह आप पाएं कि उसकी गाली पर सिर्फ आपको हंसी आ रही है, और कुछ भी नहीं हो रहा है।

यह स्वाध्याय है, यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। आपके जीवन की प्रत्येक छोटी सी वृत्ति में, छोटी सी लहर में इसका उपयोग करें। यह शास्त्र आपके भीतर का खुलना शुरू हो जाएगा। पहले इस शास्त्र में गंदगी ही गंदगी मिलेगी, क्योंकि वही हमने इकट्ठी की है, वही हमारा संग्रह है। लेकिन जितनी वह गंदगी मिलेगी उतने आप स्वच्छ होते चले जाएंगे। क्योंकि गंदगी बचाना हो तो गंदगी को न जानना जरूरी है, और गंदगी को मिटाना हो तो जानना ही एकमात्र सूत्र है। जितना आप छिपाए रखते हैं अपनी गंदगी को, वह उतनी ही गहरी बनती जाती है, मजबूत होती चली जाती है। जब आप खुद ही उसको उखाड़ने लगते हैं और देखने लगते हैं तो उसकी पर्तें टूटने लगती हैं, उसकी जड़ें उखड़ने लगती हैं।

जाएं भीतर और आप पाएंगे कि बहुत गंदगी है लेकिन जितनी गंदगी आ पको दिखाई पड़ेगी, एक और मजेदार और विपरीत घटना घटेगी और आपको लगेगा आप उतने ही स्वच्छ होते जा रहे हैं। जितने भीतर जाएंगे, उतनी गंदगी कम होती जाएगी। और इसलिए एक मजा और आने लगेगा कि भीतर गंदगी कम होती जाती है तो और भीतर जाने का रस और आनंद आने लगता है। भीतर कंकड़-पत्थर नहीं, हीरे-जवाहरात दिखाई पड़ने लगते हैं, तो दौड़ तेज हो जाती है। और एक घड़ी आएगी कि आप जब सच में भीतर पहुंचेंगे--सच में भीतर, क्योंकि यह जो भी है, यह भी बाहर और भीतर के बीच में है। इसे हम भीतर कह रहे हैं सिर्फ इसलिए कि स्वाध्याय के लिए इसे भीतर समझना जरूरी है।

जितने आप भीतर जाएंगे, जिस दिन आप सेंटर पर पहुंचेंगे, केंद्र पर पहुंचेंगे, उस दिन कोई गंदगी नहीं रह जाएगी। उस दिन आप पाएंगे कि जीवन में उस स्वच्छता का अनुभव हुआ है जिसका अब कोई अंत नहीं है। आपने वह ताजगी पा ली जो अब बूढ़ी नहीं होगी। आपने उस निर्दोषता के तल को छू लिया जिसको कोई कालिमा स्पर्श नहीं कर सकती है। आप उस प्रकाश को पा लिए जहां कोई अंधकार प्रवेश नहीं करता है।

लेकिन यह क्रमशः भीतर उतरना। इसलिए स्वाध्याय को महावीर ने अंतिम नहीं कहा, चौथा तप कहा है। अभी और भी कुछ करने को भीतर शेष रह जाता है। उन दो तपों के संबंध में हम आगे आने वाले दो दिनों में बात करेंगे। पांचवां तप है: ध्यान; छठवां तप है: कायोत्सर्ग। पर स्वाध्याय के बिना कोई ध्यान में नहीं जा सकता। इसलिए महावीर ने जो सीढ़ियां कही हैं, वे अति वैज्ञानिक हैं।

लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं--ध्यान में जाना है। मैं उनकी कठिनाई जानता हूं। वे स्वाध्याय में नहीं जाना चाहते, क्योंकि स्वाध्याय बहुत पीड़ादायी है। और ध्यान में क्यों जाना चाहते हैं? क्योंकि किताबों में पढ़ लिया है, गुरुओं को कहते सुन लिया है कि ध्यान में जाने से बड़ा आनंद आता है।

लेकिन जो अपने अर्जित दुख में जाने को तैयार नहीं है वह अपने स्वभाव के आनंद में जा नहीं सकता है। पहले तो दुख से गुजरना पड़ेगा; तभी, तभी सुख की झलक मिलेगी। नरक से गुजरे बिना कोई स्वर्ग नहीं है। क्योंकि हमने नरक निर्मित कर लिया है, हम उसमें खड़े हैं। प्रत्येक आदमी यह चाहता है कि नरक में से एकदम स्वर्ग मिल जाए, यहीं। इस नरक को मिटाना न पड़े और स्वर्ग मिल जाए। यह नहीं हो सकता। क्योंकि स्वर्ग तो यहीं मौजूद है, लेकिन हमारे बनाए हुए नरक में छिप गया है, ढंक गया है। ध्यान रहे, स्वर्ग स्वभाव है और नरक हमारा एचीवमेंट, हमारी उपलब्धि है। बड़ी मेहनत करके हमने नरक को बनाया है, बड़ा श्रम उठाया है। उसे गिराना पड़ेगा। स्वाध्याय उसे गिराने के लिए कुदाली का काम करता है। जैसे कोई मकान को खोदना शुरू कर दे।

आज इतना ही।

पर पांच मिनट रुकें, धुन में भागीदार हों और फिर जाएं।

सामायिक: स्वभाव में ठहर जाना (धम्म-सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्खिटुं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

ग्यारहवां या पांचवां अंतर-तप है ध्यान। जो दस तपों से गुजरते हैं उन्हें तो ध्यान को समझना कठिन नहीं होता। लेकिन जो केवल दस तपों को समझ से समझते हैं, उन्हें ध्यान को समझना बहुत कठिन होता है। फिर भी कुछ संकेत ध्यान के संबंध में समझे जा सकते हैं। ध्यान को तो करके ही समझा जा सकता है, इशारे कुछ बाहर से ध्यान के संबंध में समझे जा सकते हैं। ध्यान प्रेम जैसा है--जो करता है, वही जानता है; या तैरने जैसा है--जो तैरता है, वही जानता है।

तैरने के संबंध में कुछ बातें कही जा सकती हैं, और प्रेम के संबंध में बहुत बातें कही जा सकती हैं। फिर भी प्रेम के संबंध में कितना भी समझ लिया जाए तो भी प्रेम समझ में नहीं आता। क्योंकि प्रेम एक स्वाद है, एक अनुभव है, एक अस्तित्वगत प्रतीति है। तैरना भी एक एक्झिस्टेंशियल, एक सत्तागत प्रतीति है। आप दूसरे व्यक्ति को तैरते हुए देख कर भी नहीं जान सकते कि वह कैसा अनुभव करता है। आप दूसरे व्यक्ति को प्रेम में डूबा हुआ देख कर भी नहीं जान सकते कि उसे प्रेम किन-किन यात्राओं पर ले जाता है। ध्यान में खड़े महावीर को देख कर भी नहीं जान सकते कि ध्यान क्या है।

ध्यान के संबंध महावीर स्वयं भी कुछ कहें तो भी नहीं समझा पाते ठीक से कि ध्यान क्या है? कठिनाई और भी बढ़ जाती है, प्रेम से भी ज्यादा, कि चाहे कितना ही कम जानते हों लेकिन प्रेम का कोई न कोई स्वाद हम सबको है। गलत ही सही, गलत प्रेम का ही सही, तो भी प्रेम का स्वाद है। गलत ध्यान का भी हमें कोई स्वाद नहीं है, ठीक ध्यान की बात तो बहुत दूर है। गलत ध्यान का भी हमें कोई स्वाद नहीं है जिसके आधार पर समझाया जा सके कि ठीक क्या है। गलत ध्यान में भी हम अपने को रोक लेते हैं।

महावीर ने दो तरह के गलत ध्यान भी कहे हैं। महावीर ने कहा है कि जो व्यक्ति तीव्र क्रोध में आ जाता है वह एक तरह के गलत ध्यान में आ जाता है। अगर आप कभी तीव्र क्रोध में आए हैं तो एक प्रकार के गलत ध्यान में आपने प्रवेश किया है। लेकिन हम तीव्र क्रोध में भी कभी नहीं आते। हम कुनकुने जीते हैं, ल्यूकवार्म; कभी हम उबलती हालत में नहीं आते। अगर आप गहरे क्रोध में आ जाएं, इतने गहरे क्रोध में आ जाएं कि क्रोध ही शेष रह जाए, क्रोध ही एकाग्र हो जाए, जीवन की सारी ऊर्जा क्रोध के बिंदु पर ही दौड़ने लगे। सारी किरणें जीवन की शक्ति की क्रोध पर ही ठहर जाएं, तो आपको गलत ध्यान का अनुभव होगा।

महावीर ने कहा है कि अगर कोई गलत ध्यान में भी उतरे तो उसे ठीक ध्यान में लाना आसान है। इसलिए अकसर ऐसा हुआ है कि परम क्रोधी क्षण भर में परम क्षमा की मूर्ति बन गए। लेकिन धीमे-धीमे जलते हुए जो क्रोधी हैं उन्हें गलत ध्यान का भी कोई पता नहीं है। अगर राग पूरी तरह हो, वासना पूरी तरह हो, पैशन पूरी तरह हो जैसा कि कोई मजनू या फरियाद जब अपने पूरे राग से पागल हो जाता है तब वह भी एक

तरह के गलत ध्यान में प्रवेश करता है। तब लैला के सिवाय मजनू को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता--राह चलते दूसरे लोगों में भी वही दिखाई पड़ती है; खड़े हुए वृक्षों में भी वही दिखाई पड़ती है; चांद-तारों में भी वही दिखाई पड़ती है। इसीलिए तो हम उसे पागल कहते हैं।

और लैला उसे जैसी दिखाई पड़ती है वैसी हमको, किसी को भी दिखाई नहीं पड़ती। उसके गांव के लोग उसे बहुत समझाते रहे कि बहुत साधारण सी औरत है। तू पागल हो गया है। गांव के राजा ने मजनू को बुलाया और अपने परिचित मित्रों की बारह लड़कियों को सामने खड़ा किया जो कि सुंदरतम थीं उस राज्य की। और राजा ने कहा: तू पागल न बन, तुझ पर दया आती है। तुझको सड़कों पर रोते देख कर पूरा गांव पीड़ित है। तू इन बारह सुंदर लड़कियों में से जिसे चुन ले, मैं उसका विवाह तुझसे करवा दूँ।

लेकिन मजनू ने कहा कि मुझे सिवाय लैला के कोई यहां दिखाई नहीं पड़ता।

और उस राजा ने कहा: तू पागल हो गया है? लैला बहुत साधारण लड़की है।

तो मजनू ने कहा कि लैला को देखना हो तो मजनू की आंख चाहिए। आपको लैला दिखाई नहीं पड़ सकती। और जिसे आप देख रहे हैं वह लैला नहीं है। उसे मैं देखता हूँ।

अब यह जो मजनू कहता है कि मजनू की आंख चाहिए, यह गलत ध्यान का एक रूप है। इतना ज्यादा कामासक्त है, इतना राग से भर गया है कि नैरोडाउन, सारी चेतना एक बिंदु पर सिकुड़ कर खड़ी हो गई है। वह चेतना का बिंदु लैला बन गई है। महावीर ने इन्हें गलत ध्यान कहा है।

यह बहुत मजे की बात है कि महावीर इस जमीन पर अकेले आदमी हैं जिन्होंने गलत ध्यान की भी चर्चा की है। ठीक ध्यान की चर्चा बहुत लोगों ने की है। यह बड़ी विशिष्ट बात है कि महावीर कहते हैं कि है तो यह भी ध्यान--उलटा है, शीर्षासन करता हुआ है। जितना ध्यान मजनू का लैला पर लगा है इतना मजनू का मजनू पर लग जाए तो ठीक ध्यान हो जाए। शीर्षासन करती हुई चेतना है--"पर" पर लगी है, दूसरे पर लगी है। दूसरे पर जब इतनी सिकुड़ जाती है चेतना तब भी ध्यान ही फलित होता है, लेकिन उलटा फलित होता है, सिर के बल फलित होता है। अपनी ओर लग जाए उतनी ही चेतना तो ध्यान पैर खड़ा हो जाता है। सिर के बल खड़े हुए ध्यान से कोई गति नहीं हो सकती।

इसलिए सिर के बल खड़े हुए सभी ध्यान सड़ जाते हैं। क्योंकि गत्यात्मक नहीं हो सकते। सिर के बल चलिएगा कैसे? पैर के बल चला जा सकता है--यात्रा करनी हो तो पैर के बल। चेतना जब पैर के बल खड़ी होती है तो अपनी तरफ उन्मुख होती है, तब गति करती है। और ध्यान जो है, वह डाइनैमिक फोर्स है। उसे सिर के बल खड़े कर देने का मतलब है, उसकी हत्या कर देना। इसलिए जो लोग भी गलत ध्यान करते हैं वे आत्मघात में लगते हैं, रुक जाते हैं, ठहर जाते हैं। मजनू ठहरा हुआ है लैला पर और इस बुरी तरह ठहरा हुआ है कि जैसे तालाब बन गया है। अब वह एक सरिता न रहा जो सागर तक पहुंच जाए। और लैला कभी मिल नहीं सकती।

यह दूसरी कठिनाई है गलत ध्यान की कि जिस पर आप लगाते हैं उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। क्योंकि दूसरे को पाया ही नहीं जा सकता, वह असंभव है,

दूसरे को पाने का कोई उपाय ही नहीं है। इस अस्तित्व में सिर्फ एक ही चीज पाई जा सकती है, और वह मैं हूँ, वह मैं स्वयं हूँ, उसको ही मैं पा सकता हूँ। शेष सारी चीजों पर मैं पाने की कितनी ही कोशिश करूँ, वे सारी कोशिशें असफल होंगी। क्योंकि जो मेरा स्वभाव है वही केवल मेरा हो सकता है; जो मेरा स्वभाव नहीं है वह कभी भी मेरा नहीं हो सकता है। मेरे होने की भ्रांतियां हो सकती हैं, लेकिन भ्रांतियां टूटेंगी और पीड़ा और दुख लाएंगी।

इसलिए गलत ध्यान नरक में ले जाता है। सिर के बल खड़ी हुई चेतना अपने ही हाथ से अपना नरक खड़ा कर लेती है। और हम बड़े मजेदार लोग हैं। हम जब नरक में होते हैं, तब हम ध्यान वगैरह के बाबत सोचने लगते हैं। जब आदमी दुख में होता है तो वह पूछता है शांति कैसे मिले। अशांति में होता है तो पूछता है शांति कैसे मिले। मेरे पास लोग आते हैं और वे कहते हैं, और कहते हैं; सुनते हैं ध्यान से बड़ी शांति मिलती है तो हमें

ध्यान का रास्ता बता दीजिए। और मजा यह है कि जो अशांति उन्होंने पैदा की है उसमें से कुछ भी वे छोड़ने को तैयार नहीं हैं। अशांति उन्होंने पैदा की है, पूरी मेहनत उठाई है, श्रम किया है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गांव के फकीर के दरवाजे को रात दो बजे खटखटा रहा है। वह फकीर उठा, उसने कहा: भई इतनी रात! और नीचे देखा तो नसरुद्दीन खड़ा है। तो उसने कहा: नसरुद्दीन कभी तुझे मस्जिद में नहीं देखा, कभी तू मुझे सुनने-समझने नहीं आता। आज दो बजे रात! फिर भी फकीर नीचे आया। कोई हर्ज नहीं, रात दो बजे आया। पास आया तो देखा कि शराब में डोल रहा है, नशे में खड़ा है। नसरुद्दीन ने पूछा कि जरा ईश्वर के संबंध में पूछने आया हूं। उस फकीर ने कहा कि सुबह आना। व्हेन यू आर सोबर, कम देना। जब होश में रहो तब आना। नसरुद्दीन ने कहा: बट दि डिफिकल्टी इज व्हेन आई एम सोबर, आई डैम केअर अबाउट योर गॉड। जब मैं होश में होता हूं तब तुम्हारे ईश्वर की मुझे चिंता ही नहीं होती है। यह तो मैं नशे में हूं इसीलिए आया हूं। ईश्वर है या नहीं?

हम सब ऐसी ही हालत में पहुंचते हैं। जब हम सुख में होते हैं तब हमें ध्यान की जरा भी चिंता नहीं पैदा होती और जब हम दुख में होते हैं तब हमें ध्यान की चिंता पैदा होती है। और कठिनाई यह है कि दुखी चित्त को ध्यान में ले जाना बहुत कठिन है, क्योंकि दुखी चित्त गलत ध्यान में लगा हुआ होता है। दुख का मतलब ही गलत ध्यान है। जब आप पैर के बल खड़े होते हैं तब आपकी चलने की कोई इच्छा नहीं होती। जब आप सिर के बल खड़े होते हैं तब आप मुझसे पूछते हैं आकर कि चलने का कोई रास्ता है? और अगर मैं आपसे कहूं कि जब आप पैर के बल खड़े हों तब ही चलने का रास्ता काम कर सकता है, तो आप कहते हैं कि जब हम पैर के बल खड़े होते हैं तब तो हमें चलने की इच्छा ही नहीं होती।

इसलिए महावीर ने पहले तो गलत ध्यान की बात की है ताकि आपको साफ हो जाए कि आप गलत ध्यान में तो नहीं हैं। क्योंकि गलत ध्यान में जो है उसे ध्यान में ले जाना अति कठिन हो जाता है। अति कठिन इसलिए नहीं कि नहीं जाएगा। अति कठिन इसलिए है कि वह गलत ध्यान का प्रयास जारी रखता है। जब आप कहते हैं, मैं शांत होना चाहता हूं तब आप अशांत होने की सारी चेष्टा जारी रखते हैं, और शांत होना चाहते हैं। और अगर आपसे कहा जाए, अशांत होने की चेष्टा छोड़ दीजिए, तो आप कहते हैं वह तो हम समझते हैं, लेकिन शांत होने का उपाय बताएं।

और आपको पता ही नहीं है कि शांत होने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता है। सिर्फ अशांत होने की चेष्टा जो छोड़ देता है वह शांत हो जाता है। शांति कोई उपलब्धि नहीं है, अशांति उपलब्धि है। शांति को पाना नहीं है, अशांति को पा लिया है। अशांति का अभाव शांति बन जाता है। गलत ध्यान का अभाव कि ध्यान की शुरुआत हो जाती है।

तो गलत ध्यान का अर्थ है--अपने से बाहर किसी भी चीज पर एकाग्र हो जाना। द अदर ओरिएंटेड कांशसनेस, दूसरे की तरफ बहती हुई चेतना गलत ध्यान है। और इसलिए महावीर ने परमात्मा को कोई जगह नहीं दी है। क्योंकि परमात्मा की तरफ बहती हुई चेतना को भी महावीर कहते हैं गलत ध्यान। क्योंकि परमात्मा आप दूसरे की तरह ही सोच सकते हैं और अगर स्वयं की तरह सोचेंगे तो बड़ी हिम्मत चाहिए। अगर आप यह सोचेंगे कि मैं परमात्मा हूं तो बड़ा साहस चाहिए। एक तो आप न सोच पाएंगे और आपके आस-पास के लोग भी न सोचने देंगे कि आप परमात्मा हैं। और जब कोई सोचेगा कि मैं परमात्मा हूं तो फिर परमात्मा की तरह जीना भी पड़ेगा। क्योंकि सोचना खड़ा नहीं हो सकता जब तक आप जिएं न। सोचने में खून न आएगा जब तक आप जिएंगे नहीं। हड्डी-मांस-मज्जा नहीं बनेगी जब तक आप जीएंगे नहीं।

तो परमात्मा की तरह जीना हो अगर तब तो ध्यान की कोई जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए महावीर कहते हैं--परमात्मा को तो आप सदा दूसरे की तरह ही सोचेंगे। और इसलिए जितने धर्म परमात्मा को मान कर शुरू होते हैं, उनमें ध्यान विकसित नहीं होता है, प्रार्थना विकसित होती है। और प्रार्थना और ध्यान के मार्ग बिल्कुल अलग-अलग हैं।

प्रार्थना का अर्थ है: दूसरे के प्रति निवेदन; ध्यान में कोई निवेदन नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है: दूसरे की सहायता की मांग; ध्यान में कोई सहायता की मांग नहीं है। क्योंकि महावीर कहते हैं--दूसरे से जो मिलेगा वह

मेरा कभी भी नहीं हो सकता, मिल भी जाए तो भी। पहले तो वह मिलेगा नहीं, मैं मान ही लूंगा कि मिला। और दूसरे से मिला हुआ, माना हुआ कि मिला हुआ है, तो आज नहीं कल छूटेगा और दुख लाएगा, पीड़ा लाएगा।

इसलिए महावीर कहते हैं--अगर पीड़ा के बिल्कुल पार हो जाना है तो दूसरे से ही छूट जाना पड़ेगा। दूसरे के साथ जो भी संबंध है वह टूट सकता है, परमात्मा के साथ संबंध भी टूट सकता है। संबंध का अर्थ ही होता है कि जो टूट भी सकता है। रिलेशनशिप का मतलब ही यह होता है कि जो बन सकती है और टूट सकती है। महावीर कहते हैं--जो बन सकता है, वह बिगड़ सकता है। इसलिए बनाने की कोशिश ही मत करो। तुम तो उसे जान लो जो अनबना है, अनक्रिएटेड है। जो तुम्हारे भीतर है, कभी बना नहीं है, इसलिए उसके मिटने का कोई डर नहीं है। वही तुम्हारा हो सकता है, वही शाश्वत संपदा है।

इसलिए महावीर को जो लोग नहीं समझ सके, उन्होंने कहा नास्तिक है यह आदमी। और उन्हें ऐसा भी लगा कि अब तक जो नास्तिक हुए हैं उनसे भी गहन नास्तिक हैं वे। क्योंकि वे नास्तिक कम से कम इतना तो कहते हैं कि ईश्वर के लिए प्रमाण दो तो हम मान लें। महावीर कहते हैं--ईश्वर हो या न हो, इससे धर्म का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि दूसरे को जब भी मैं ध्यान में लेता हूं तो गलत ध्यान हो जाता है। इसलिए महावीर इसकी भी चिंता नहीं करते कि ईश्वर है या नहीं, इसके लिए कोई प्रमाण जुटाएं। निश्चित ही ईश्वरवादियों को महावीर गहन नास्तिक मालूम पड़े, नास्तिकों से भी ज्यादा।

इसलिए तथाकथित आस्तिकों ने चार्वाक से भी ज्यादा निंदा महावीर की की है। और भी खतरा था, क्योंकि चार्वाक की निंदा करनी आसान थी क्योंकि वह कह रहा था--खाओ, पीयो, मौज करो। महावीर की निंदा और मुश्किल पड़ गई। क्योंकि वे जो नास्तिक थे वे खा, पी और मौज कर रहे थे। यह महावीर तो बिल्कुल ही नास्तिक जैसे नहीं थे। यह तो भोग में जरा भी रसातुर नहीं थे। इसलिए इनकी निंदा और भी कठिन, और भी मुश्किल पड़ गई। आदमी तो यह इतने बेहतर थे, जैसा कि बड़े से बड़ा आस्तिक हो पाया है शायद उससे भी ज्यादा बेहतर है। क्योंकि बड़े से बड़ा आस्तिक भी दूसरे पर निर्भर रहता है। ऐसी स्वतंत्रता जैसी महावीर की है, आस्तिक की नहीं हो पाती। या उस दिन हो पाती है जिस दिन या तो भक्त बिल्कुल मिट जाता है और भगवान रह जाता है या भगवान बिल्कुल मिट जाता है और भक्त रहता है। जिस दिन एक ही बचता है, उस दिन हो पाती है।

महावीर प्रार्थना के पक्षपाती नहीं हैं। महावीर दूसरे के ध्यान के पक्षपाती नहीं हैं। फिर महावीर का ध्यान से क्या अर्थ है? वह अर्थ हम समझ लें, और महावीर उस ध्यान तक कैसे आपको पहुंचा सकते हैं, उसे हम समझ लें।

महावीर का ध्यान से अर्थ है, स्वभाव में ठहर जाना--टु बी इन वनसेल्फ। ध्यान से अर्थ है--स्वभाव। जो मैं हूं, जैसा मैं हूं, वहीं ठहर जाना। उसी में जीना, उससे बाहर न जाना। अर्थ तो है ध्यान का स्वभाव में ठहर जाना। इसलिए महावीर ने ध्यान शब्द का कम प्रयोग किया, क्योंकि ध्यान शब्द--शब्द ही दूसरे का इशारा करता है। जब भी हम कहते हैं, टु बी अटेंटिव, तभी यह मतलब होता है किसी और पर। जब भी हम कहते हैं ध्यान, तो उसका मतलब होता है--कहां, किस पर? लोग आते हैं पूछने, वे कहते हैं हम

ध्यान करना चाहते हैं, किस पर करें? ध्यान शब्द में ही आब्जेक्ट का ख्याल, विषय का ख्याल छिपा हुआ है। इसलिए महावीर ने ध्यान शब्द का उतना प्रयोग नहीं किया। ध्यान की जगह ज्यादा उन्होंने प्रयोग किया -- सामाजिक। वह महावीर का अपना शब्द है, सामायिक। महावीर आत्मा को समय कहते हैं और सामायिक उसे कहते हैं, जब कोई व्यक्ति अपनी आत्मा में ही होता है, तब उसे सामायिक कहते हैं।

इधर एक बहुत अदभुत काम चल रहा है वैज्ञानिकों के द्वारा। अगर वह काम ठीक-ठीक हो सका तो शायद महावीर का शब्द सामायिक पुनरुज्जीवित हो जाए। वह काम यह चल रहा है कि आइंस्टीन ने, प्लांक ने,

और अन्य पिछले पचास वर्षों के वैज्ञानिकों ने यह अनुभव किया है कि इस जगत में जो स्पेस है वह श्री-डायमेंशनल है। जो स्थान है, अवकाश है, आकाश है, वह तीन आयामों में बंटा है। हम किसी भी चीज को तीन आयामों में देखते हैं, वह श्री-डायमेंशनल है। लम्बाई है, चौड़ाई है, मोटाई है। वह तीन है, तीन आयाम में स्थान है। और यह तीनों के साथ समय, टाइम है।

अब तक बड़ी कठिनाई थी कि यह समय को कैसे इन तीन आयामों से जोड़ा जाए। क्योंकि जोड़ तो कहीं न कहीं होना ही चाहिए। समय और क्षेत्र, टाइम और स्पेस कहीं जुड़े होने चाहिए, अन्यथा इस जगत का अस्तित्व नहीं बन सकता। इसलिए आइंस्टीन ने टाइम और स्पेस की अलग-अलग बात करनी बंद कर दी, और "स्पेसोटाइम" एक शब्द बनाया, कि समय और क्षेत्र एक ही हैं। काल और क्षेत्र एक हैं। और आइंस्टीन ने कहा कि समय जो है, वह स्पेस का ही फोर्थ डायमेंशन है, वह क्षेत्र का ही चौथा आयाम है। वह अलग चीज नहीं है। और आइंस्टीन के मरने के बाद इस पर और काम हुआ और पाया गया कि टाइम भी एक तरह की ऊर्जा, एनर्जी है, शक्ति है। और अब वैज्ञानिक ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य का शरीर तो तीन आयामों से बना है और मनुष्य की आत्मा चौथे आयाम से बनी है। अगर यह बात सही हो गई तो चौथे आयाम का नाम टाइम होगा। और महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले आत्मा को समय कहा है, टाइम कहा है।

कई बार विज्ञान जिन अनुभूतियों को बहुत बाद में उपलब्ध कर पाता है, रहस्य में डूबे हुए संत उसे हजारों साल पहले देख लेते हैं। दस-पंद्रह वर्ष का वक्त है, इस बीच काम जोर से चल रहा है। बड़ा काम रूस के वैज्ञानिक कर रहे हैं। और वे निरंतर इस बात के निकट पहुंचते जा रहे हैं कि समय ही मनुष्य की चेतना है। इसे ऐसा समझें तो थोड़ा ख्याल में आ जाए तो हमें फिर ध्यान की धारणा में, महावीर की धारणा में उतरना आसान हो जाए। इसे ऐसा समझें कि पदार्थ बिना समय के भी कल्पना की जा सकती है, कंसीवेबल है। लेकिन चेतना बिना समय के कल्पना भी नहीं की जा सकती। सोच लें कि समय नहीं है जगत में, तो पदार्थ तो हो सकता है, पत्थर हो सकता है, लेकिन चेतना ही हो सकेगी।

क्योंकि चेतना की जो गति है, वह स्थान में नहीं है, समय में है। चेतना की जो गति है, वह समय में है, वह स्थान में नहीं है, वह स्पेस में नहीं है--वह टाइम में है, समय में है। जब आप यहां उठ कर आते हैं अपने घर से, तो आपका शरीर यात्रा करता है, एक वह यात्रा होती है स्थान में। आप घर से निकले, और कार में बैठे, बस में बैठे, ट्रेन में बैठे, चले; यह यात्रा स्थान में है। आपकी जगह एक पत्थर भी रख देते तो वह भी कार में बैठ कर यहां तक आ जाता। लेकिन कार में बैठे हुए आपका मन एक और गति भी करता है जिसका कार से कोई संबंध नहीं है। वह गति समय में है। हो सकता है आप जब घर में हों, और जब कार में बैठे हों, तभी आप समय में इस हाल में आ गए हों, मन में इस हाल में आ गए हों। लेकिन कार अभी घर के सामने खड़ी है। सच तो यह है कि आप कार में बैठते ही इसलिए हैं कि आपका मन कार के पहले इस हाल की तरफ गति करता है। इसलिए आप कार में बैठते हैं, नहीं तो आप कार में नहीं बैठेंगे। पत्थर खुद कार में नहीं बैठेगा, उसे किसी को बिठाना पड़ेगा। बैठ कर भी वह वैसा ही रहेगा जैसा अनबैठा था। बैठ कर उसे आप यहां उतार लेंगे, लेकिन उस पत्थर के भीतर कुछ भी न होगा। जब आप कार में बैठे हुए हैं तो दो गतियां हो रही हैं--एक तो आपका शरीर स्थान में यात्रा कर रहा है, और आपका मन समय में यात्रा कर रहा है। चेतना की गति समय में है।

महावीर ने चेतना को समय ही कहा है, और ध्यान को सामायिक कहा है। अगर चेतना की गति समय में है तो चेतना की गति के ठहर जाने का नाम सामायिक है। शरीर की सारी गति ठहर जाए, उसका नाम आसन है, और चित्त की सारी गति ठहर जाए, उसका नाम ध्यान है। अगर आप कार में ऐसे बैठ कर आ जाएं जैसे पत्थर आता है तो आप ध्यान में थे। आपके भीतर कोई गति न हो सिर्फ शरीर गति करे और आप कार में बैठ कर ऐसे आ जाएं, जैसे पत्थर आया है, तो आप ध्यान में थे। ध्यान का अर्थ है: चेतना हो, गति शून्य हो जाए, मूवमेंट

शून्य हो जाए। यह ध्यान का अर्थ है महावीर का। अब इस ध्यान की तरफ जाने के लिए महावीर आपको क्या सलाह देते हैं, इसे हम दो-तीन हिस्सों में समझने की कोशिश करें।

कभी आपने छप्पर छाए हुए मकान के नीचे देखा होगा कि कोई रंध्य से प्रकाश की किरणें भीतर घुस आती हैं। प्रकाश की एक वल्लरी, एक धारा कमरे में गिरने लगती है। सारा कमरा अंधेरा है। छप्पर से एक धारा प्रकाश की नीचे तक उतर रही है। तब आपने एक बात और भी देखी होगी कि उस प्रकाश की धारा के भीतर धूल के हजारों कण उड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। अंधेरे में वे दिखाई नहीं पड़ते, कमरे में वे सभी जगह उड़ रहे हैं। अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ते, सभी जगह उड़ रहे हैं। उस प्रकाश की वल्लरी में दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि दिखाई पड़ने के लिए प्रकाश होना जरूरी है। शायद आपको ख्याल आता होगा कि प्रकाश की वल्लरी में ही वे उड़ रहे हैं तो आप गलती में हैं। वे तो पूरे कमरे में उड़ रहे हैं। लेकिन प्रकाश की वल्लरी में दिखाई पड़ रहे हैं।

आपकी चेतना ऐसी ही स्थिती में है। जितने हिस्से में ध्यान पड़ता है, उतने हिस्से में विचार के कण दिखाई पड़ते हैं। बाकी में भी विचार उड़ते रहते हैं, वे आपको दिखाई नहीं पड़ते।

इसलिए मनोवैज्ञानिक मन को दो हिस्सों में तोड़ देता है--एक को वह कांशस कहता है, एक को अनकांशस कहता है। एक को चेतन, एक को अचेतन। चेतन उस हिस्से को कहता है जिस पर ध्यान पड़ रहा है और अचेतन उस हिस्से को कहता है जिस पर ध्यान नहीं पड़ रहा है। चेतना उस हिस्से को कहेंगे जिसमें कि प्रकाश की किरण पड़ रही है और धूल के कण दिखाई पड़ रहे हैं; और अचेतन उसको कहें... बाकी कमरे को जहां अंधेरा है, जहां प्रकाश नहीं पड़ रहा है, धूल कण तो वहां भी उड़ रहे हैं पर उनका कोई पता नहीं चलता है।

आपके चेतन मन में आपको विचारों का उड़ना दिखाई पड़ता है, चौबीस घंटे विचार चलते रहते हैं। सरकते रहते हैं। कभी अपने ख्याल नहीं किया, कि जब प्रकाश की किरण उतरती है अंधेरे कमरे में तो जो धूल का कण उनमें उड़ता हुआ आता है, आपने ख्याल किया, वह आस-पास के अंधेरे से उड़ता हुआ आता है। फिर प्रकाश की किरण में प्रवेश करता है, थोड़ी देर में फिर अंधेरे में चला जाता है। शायद आपको यह भ्रांति हो कि वह जब प्रकाश में होता है तभी उसका अस्तित्व है, तो आप गलती में हैं। आने के पहले भी वह था, जाने के बाद भी वह है।

आपने कभी अपने विचारों का अध्ययन किया है कि वे कहां से आते हैं और कहां चले जाते हैं। शायद आप सोचते होंगे कि इधर से प्रवेश करते हैं और नष्ट हो जाते हैं। पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। पैदा और नष्ट नहीं होते। आपके अंधेरे चित्त से आते हैं, आपके प्रकाश चित्त में दिखाई पड़ते हैं, फिर अंधेरे चित्त में चले जाते हैं। अगर आप अपने विचारों को उठता देखने की कोशिश करें कि कहां से उठते हैं तो धीरे-धीरे आप पाएंगे कि वे आपके ही भीतर अंधेरे से आते हैं। और अगर आप उनके जन्म स्रोत ध्यान रखें तो धीरे-धीरे आप पाएंगे कि वे आपको अंधेरे में भी दिखाई पड़ने लगे हैं, और जब वे चले जाते हैं तब भी आपके सामने से भरे जा रहे हैं, मिट नहीं रहे हैं। अगर आप उनका पीछा करेंगे तो वे धीरे-धीरे आपको अंधेरे में भी जाते हुए दिखाई पड़ेंगे। आप उनका अंधेरे में भी पीछा कर सकते हैं।

चेतना विचार से भरी है; जैसे आकाश वायु से भरा है वैसी चेतना विचार से भरी है। जब वायु का धक्का लगता है, आपको वायु का पता चलता है, और जब धक्का नहीं लगता है तो पता नहीं चलता है। जब कोई विचार आपको धक्का देता है तब आपको पता चलता है, अन्यथा आपको पता भी नहीं चलता। विचार बहते रहते हैं। आप अपने सौ विचारों में से एक का भी मुश्किल से पता रखते हैं, बाकी निन्यानबे ऐसे ही बहते रहते हैं। और भी मजे की बात है कि हवा तो धक्का देती है तब पता भी चलता है, लेकिन आकाश का आपको कोई पता नहीं चलता क्योंकि वह धक्का भी नहीं देता।

तो आपकी चेतना में जो विचार उड़ते रहे हैं उनका आपको पता चलता है और चेतना का कभी पता नहीं चलता, क्योंकि उसका कोई धक्का नहीं है। दो उपाय हैं--या तो आप इन विचारों से बचना चाहें तो इस खपड़े से जो छेद हो गया है उसे बंद कर दें, तो आपको विचार दिखाई नहीं पड़ेंगे। नींद में यही होता है। वह जो चेतना

की थोड़ी सी धारा आपको दिखाई पड़ती थी जागने में आप उसको भी बंद करके सो जाते हैं। फिर आपको कुछ दिखाई नहीं पड़ता सब बंद हो जाता है।

गहरी बेहोशी में भी यही होता है। हिप्रोसिस, सम्मोहन में भी यही होता है। इसलिए विचार से जो लोग पीड़ित हैं, वे लोग अनेक बार अत्म-सम्मोहन की क्रियाएं करने लगते हैं और आत्म-सम्मोहन को ध्यान समझ लेते हैं। वह ध्यान नहीं है। वह सिर्फ अपनी चेतना को बुझा लेना है। अंधेरे में डूब जाना है। उसका भी सुख है। शराब में उसी तरह का सुख मिलता है, गांजे में, अफीम में, उसी तरह का सुख मिलता है। चेतना की जो छोटी सी धारा बह रही थी वह भी बंद हो गई, घुप्प अंधेरे में खो गए। बड़ी शांति मालूम पड़ती है। वह अशांति मालूम पड़ती थी प्रकाश की किरण। महावीर का ध्यान ऐसा नहीं है जिसमें प्रकाश की किरण को बुझा देना है। महावीर का ध्यान ऐसा है जिसमें सारे खपड़ों को अलग कर देना है, पूरे छप्पर को खुला छोड़ देना है ताकि पूरे कमरे में प्रकाश भर जाए।

यह भी बड़े मजे की बात है, जब पूरे कमरे में प्रकाश भर जाता है तब भी धूलकण दिखाई पड़ना बंद हो जाते हैं। जब पूरे कमरे में प्रकाश भर जाता है तब भी धूलकण नहीं दिखाई पड़ते; जब पूरे कमरे में अंधेरा हो जाता है तब भी धूलकण दिखाई नहीं पड़ते। जब पूरे कमरे में अंधेरा होता है और जरा से स्थान में रोशनी होती है तब धूलकण दिखाई पड़ते हैं। असल में धूलकणों को दिखाई पड़ने के लिए प्रकाश की धारा भी चाहिए और अंधेरे की पृष्ठभूमि भी चाहिए।

तो दो उपाय हैं इन कणों को भूल जाने का। एक उपाय तो है कि पूरा अंधेरा हो जाए तो इसलिए दिखाई नहीं पड़ते क्योंकि प्रकाश ही नहीं है, दिखाई कैसे पड़ेंगे। या पूरा प्रकाश हो जाए तो भी दिखाई नहीं पड़ते क्योंकि इतना ज्यादा प्रकाश है कि उतने छोटे से धूलकण दिखाई नहीं पड़ सकते, प्रकाश दिखाई पड़ने लगता है। पृष्ठभूमि न होने से धूलकण खो जाते हैं।

तो पहला तो यह फर्क समझ लें कि बहुत से प्रयोग हैं ध्यान के जो वस्तुतः मूर्च्छा के प्रयोग हैं, ध्यान के प्रयोग नहीं हैं। जिनमें आदमी अपने कांशस को अनकांशस में डुबा देता है। जिनमें वह गहरी नींद में चला जाता है। उठने के बाद उसे शांति भी मालूम पड़ेगी, स्वस्थ भी मालूम पड़ेगा, ताजा भी मालूम पड़ेगा। लेकिन वे उपाय सिर्फ चेतना को डुबाने के थे। उससे कोई क्रांति घटित नहीं होती।

श्री महेश योगी जो ध्यान की बात सारी दुनिया में करते हैं, वह सिर्फ मूर्च्छा का प्रयोग है। जिसे वे ट्रांसिडेंटल मेडिटेशन कहते हैं; जिसे भावातीत ध्यान कहते हैं वह ध्यान भी नहीं है, भावातीत तो बिल्कुल नहीं है; न तो ट्रांसिडेंटल है, न मेडिटेशन है। ध्यान इसलिए नहीं है कि वह केवल एक मंत्र के जाप से स्वयं को सुला लेने का प्रयोग है। और किसी भी शब्द की पुनरुक्ति अगर आप करते जाएं तो तंद्रा आ जाती है--किसी भी शब्द की। शब्द की पुनरुक्ति से तंद्रा पैदा होती है, हिप्रोसिस पैदा होती है। असल में किसी भी शब्द की पुनरुक्ति से बोर्डम पैदा होती है, ऊब पैदा होती है। ऊब नींद ले आती है। तो किसी भी मंत्र के प्रयोग का अगर आप इस तरह प्रयोग करें कि वह आपको ऊब में ले जाए, उबा दे, घबड़ा दे, नाबिन्य न रह जाए उसमें, तो मन ऊब कर पुराने से परेशान होकर तंद्रा में और निद्रा में खो जाता है। जिन लोगों को नींद की तकलीफ है उनके लिए यह प्रयोग फायदे का है, लेकिन न तो यह ध्यान है, न भावातीत है। और नींद की बहुत लोगों को तकलीफ है, उनके लिए यह फायदा है, लेकिन इस फायदे से ध्यान का कोई संबंध नहीं है। वह फायदा गहरी नींद का ही फायदा है।

गहरी नींद अच्छी चीज है, बुरी चीज नहीं है। इसलिए मैं नहीं कह रहा हूं कि महेश योगी जो कहते हैं वह बुरी चीज है। बड़ी अच्छी चीज है, लेकिन उसका उपयोग उतना ही है जितना किसी भी ट्रैकलाइजर का है। ट्रैकलाइजर से भी अच्छी है क्योंकि किसी दवा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है, भीतरी तरकीब है। भीतरी ट्रिक् है। और इसलिए पूरब में महेश योगी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, पश्चिम में बहुत पड़ा। क्योंकि पश्चिम अनिद्रा से पीड़ित है, पूरब अभी पीड़ित नहीं है। इसका बुनियादी कारण वही है। पश्चिम इनसोमोनिया से परेशान है, नींद

बड़ी मुश्किल हो गई है। नींद पश्चिम में एक सुख अनुभव हो रहा है, क्योंकि उसे पाना मुश्किल हो गया है। पूरब में नींद का कोई सवाल नहीं है अभी भी। हा, पूरब जितना पश्चिम होता जाएगा उतना नींद का सवाल उठता जाएगा।

तो पश्चिम में जो लोग महेश योगी के पास आए वे असल में नींद की तकलीफ से परेशान लोग हैं, सो भी नहीं सकते। वे वह तरकीब भूल गए जो कि प्राकृतिक तरकीब थी, वह भूल गए हैं, वह जो नेचुरल प्रोसेस थी सोने की वह भूल गए हैं। उनको आर्टिफिशियल टेक्नीक की जरूरत है जिससे वे सो सकें। लेकिन दो-तीन महीने से ज्यादा कोई उनके पास नहीं रहेगा, भाग जाएगा। क्योंकि जब उसे नींद आने लगी तो बात खत्म हो गई। तब वह कहेगा कि ध्यान चाहिए। नींद तो हो गई ठीक है, लेकिन अब, आगे? वह आगे खींचना मुश्किल है, क्योंकि वह प्रयोग कुल जमा नींद का है।

महावीर मूर्च्छा विरोधी हैं, इसलिए महावीर ने ऐसी भी किसी पद्धति की सलाह नहीं दी जिससे मूर्च्छा के आने की जरा सी भी सम्भावना हो। यही महावीर के और भारत के दूसरी पद्धतियों का भेद है। भारत में दो पद्धतियां रही हैं। कहना चाहिए सारे जगत में दो ही पद्धतियां हैं ध्यान की। मूलतः दो तरह की पद्धतियां हैं—एक पद्धति को हम ब्राह्मण पद्धति कहें और एक पद्धति को हम श्रवण पद्धति कहें। महावीर की जो पद्धति है उसका नाम श्रवण पद्धति है। दूसरी जो पद्धति है वह ब्राह्मण की पद्धति है। ब्राह्मण की पद्धति विश्राम की पद्धति है। वह इस बात की पद्धति है जिसे हम कहें—रिलैक्जेशन। परमात्मा में अपने को विश्राम करने दें, छोड़ दो ब्रह्म में अपने को, विश्राम करने दें।

महावीर ने किसी ब्राह्मण पद्धति की सलाह नहीं दी। उन्होंने कहा है कि विश्राम में बहुत डर तो यह है, सौ में निन्यानबे मौके पर डर यह है कि आप नींद में चले जाएं। सौ में निन्यानबे मौके पर डर यह है कि आप नींद में चले जाएं। क्योंकि विश्राम और नींद का गहरा अंतर-संबंध है और आपके जन्मों-जन्मों का एक ही अनुभव है कि जब भी आप विश्राम में गए हैं तभी आप नींद में गए हैं। तो आपके चित्त की एक संस्कारित व्यवस्था है कि जब भी आप विश्राम करेंगे, नींद आ जाएगी। इसलिए जिनको नींद नहीं आती है उनको डाक्टर सलाह देता है रिलैक्जेशन की, शिथिलीकरण की, श्वासन की कि तुम विश्राम करो। शिथिल हो जाओ तो नींद आ जाएगी। इससे उलटा भी सही है। अगर कोई विश्राम में जाए तो बहुत डर यह है कि वह नींद में न चला जाए। इसलिए जिसे विश्राम में जाना है उसे बहुत दूसरी और प्रक्रियाओं का सहारा लेना पड़ेगा, जिनसे नींद रुकती हो, अन्यथा विश्राम नींद बन जाती है।

महावीर ने उन पद्धतियों का उपयोग नहीं किया, महावीर ने जिन पद्धतियों का उपयोग किया वे विश्राम से उलटी हैं। इसलिए उनकी पद्धति का नाम है श्रम, श्रमण। वे कहते हैं—श्रमपूर्वक विश्राम में जाना है, विश्रामपूर्वक नहीं। और श्रमपूर्वक ध्यान में जाना बिल्कुल उलटा है विश्रामपूर्वक ध्यान में जाने के। अगर किसी आदमी को हम कहते हैं कि विश्राम करो तो हम कहते हैं—हाथ पैर ढीले छोड़ दो, सुस्त हो जाओ, शिथिल हो जाओ, ऐसे हो जाओ जैसे मुर्दा हो गए। श्रम की जो पद्धति है वह कहेगी इतना तनाव पैदा करो, इतना टेंशन पैदा करो जितना कि तुम कर सकते हो। जितना तनाव पैदा कर सको उतना अच्छा है। अपने को इतना खींचो, इतना खींचो जैसे कोई वीणा के तार को खींचता चला जाए और टंकार पर छोड़ दे। खींचते चले जाओ, खींचते चले जाओ। तीव्रतम स्वर तक अपने तनाव को खींच लो। निश्चित ही एक सीमा आती है कि अगर आप सितार के तार को खींचते चले जाएं तो तार टूट जाएगा। लेकिन चेतना के टूटने का कोई उपाय नहीं है। वह टूटती ही नहीं।

इसलिए आप खींचते चले जाओ। महावीर कहते हैं: खींचते चले जाओ, एक सीमा आएगी जहां तार टूट जाता है, लेकिन चेतना नहीं टूटती। लेकिन चेतना भी अपनी अति पर आ जाती है, क्लार्इमेक्स पर आ जाती है। और जब चरम पर आ जाती है, तो अनजाने तुम्हारे बिना पता हुए विश्राम को उपलब्ध हो जाती है। जैसा मैं इस मुट्ठी को बंद करता जाऊं, बंद करता जाऊं, जितनी मेरी ताकत है, सारी ताकत लगा कर उसे बंद करता

जाऊं तो एक घड़ी आएगी कि मेरी ताकत चरम पर पहुंच जाएगी। अचानक मैं पाऊंगा कि मुट्ठी ने खुलना शुरू कर दिया क्योंकि अब मेरे पास बंद करने की और ताकत नहीं है। मुट्ठी को बंद करके खोलने का भी उपाय है।

और ध्यान रहे जब मुट्ठी को पूरी तरह बंद करके खोला जाता है तब जो विश्राम उपलब्ध होता वह बहुत अनुूठा है, वह नींद में कभी नहीं ले जाता है। वह सीधा विश्राम में ले जाता है। सौ में से नित्यानबे मौके विश्राम में जाने के हैं, नींद में जाने का मौका नहीं है। क्योंकि आदमी ने इतना श्रम किया है, इतना श्रम किया है, इतना खींचा है, इतना ताना है कि इस तनाव के लिए उसे इतने जागरण में जाना पड़ेगा कि वह उस जागरण से एकदम नींद में नहीं जा सकता है, विश्राम में चला जाएगा।

महावीर की पद्धति श्रम की पद्धति है, चित्त को इतने तनाव पर ले जाना है। तनाव दो तरह का हो सकता है। एक तनाव किसी दूसरी चीज के लिए भी हो सकता है, उसके लिए महावीर कहते हैं गलत ध्यान है। एक तनाव स्वयं के प्रति हो सकता है, उसे महावीर कहते हैं, वह ठीक ध्यान है। इस ठीक ध्यान के लिए कुछ प्रारंभिक बातें हैं, उनके बिना इस ध्यान में नहीं उतरा जा सकता है। उसके बिना उतारिएगा तो विक्षिप्त हो सकते हैं। एक तो ये दस सूत्र जो मैंने कल तक कहे हैं, ये अनिवार्य हैं। उनके बिना इस प्रयोग को नहीं किया जा सकता। क्योंकि उन दस सूत्रों के प्रयोग से आपके व्यक्तित्व में वह स्थिति, वह ऊर्जा और वह स्थिति आ जाती हैं जिनसे आप चरम तक अपने को तनाव में ले जाते हैं। इतनी सामर्थ्य और क्षमता आ जाती है कि आप विक्षिप्त नहीं हो सकते। अन्यथा अगर कोई महावीर के ध्यान को सीधा शुरू करे, तो वही विक्षिप्त हो सकता है, वह पागल हो सकता है। इसलिए भूल कर भी इस प्रयोग को सीधा नहीं करना है, वे दस हिस्से अनिवार्य हैं। और इसकी प्राथमिक भूमिकाएं हैं ध्यान की, वह मैं आपसे कह दूँ। अभी पश्चिम में एक बहुत विचारशील वैज्ञानिक ध्यान पर काम करता है। उसका नाम है, रान हुब्बार्ड। उसने एक नये विज्ञान को जन्म दिया है, उसका नाम है सायंटोलाजी। ध्यान की उसने जो-जो बातें खोज-बीन की हैं वे महावीर से बड़ी मेल खाती हैं। इस समय पृथ्वी पर महावीर के ध्यान के निकटतम कोई आदमी समझ सकता है तो वह रान हुब्बार्ड है। जैनों को तो उसके नाम का पता भी नहीं होगा। जैन साधुओं में तो मैं पूरे मुल्क में घूम कर देख लिया हूँ, एक आदमी भी नहीं है जो महावीर के ध्यान को समझ सकता हो, करने की बात तो बहुत दूर है। प्रवचन वे करते हैं रोज, लेकिन मैं चकित हुआ कि पांच-पांच सौ, सात-सात सौ साधुओं के गण का जो गणी हो, प्रमुख हो, आचार्य हो, वह भी एकान्त में मुझसे पूछता है कि ध्यान कैसे करें? यह सात सौ साधुओं को क्या करवाया जा रहा होगा। उनका गुरु पूछता है, ध्यना कैसा करूं? निश्चित ही यह गुरु एकान्त में पूछता है। इतना भी साहस नहीं है कि चार लोगो के सामने पूछ सके।

रान हुब्बार्ड ने तीन शब्दों का प्रयोग किया है, ध्यान की प्राथमिक प्रक्रिया में प्रवेश के लिए। वे तीनों शब्द महावीर के हैं। रान हुब्बार्ड को महावीर के शब्दों का कोई पता नहीं है, उसने तो अंग्रेजी में प्रयोग किया है। उसका एक शब्द है रिमेंबरिंग, दूसरा शब्द है रिटर्निंग और तीसरा शब्द है रि-लिविंग। ये तीनों शब्द महावीर के हैं। रिटर्निंग से आप अच्छी तरह से परिचित हैं--प्रतिक्रमण। रि-लिविंग से आप उतने परिचित नहीं हैं। महावीर का शब्द है--जाति-स्मरण। पुनः जीना उसको जो जिया जा चुका है। और रिमेंबरिंग--महावीर ने, बुद्ध ने, दोनों ने "स्मृति"... वही शब्द बिगड़-बिगड़ कर कबीर और नानक के पास आते-आते "सुरति" हो गया, वही शब्द-स्मृति।

रिमेंबरिंग से हम सब परिचित हैं, स्मृति से। सुबह आपने भोजन किया था, आपको याद है। लेकिन स्मृति सदा आंशिक होती है। क्योंकि जब आप भोजन की याद करते हैं शाम को कि सुबह आपने भोजन किया था, तो आप पूरी घटना को याद नहीं कर पाते, क्योंकि भोजन करते वक्त बहुत कुछ घट रहा था। चौके में बर्तन की आवाज आ रही थी; भोजन की सुगंध आ रही थी; पत्नी आस-पास घूम रही थी; उसकी दुश्मनी आपके आस-पास

झलक रही थी। बच्चे उपद्रव कर रहे थे, उनका उपद्रव आपको मालूम पड़ रहा था। गर्मी थी कि सर्दी थी वह आपको छू रही थी, हवाओं के झोंके आ रहे थे कि नहीं आ रहे थे--वह सारी स्थिति थी। भीतर भी आपको भूख कितनी लगी थी, मन में कौन से विचार चल रहे थे, कहां भागने के लिए आप तैयारी कर रहे थे, यहां खाना खा रहे थे, मन कहां जा चुका था। यह टोटल सिचुएशन है।

जब आप शाम को याद करते हैं तो सिर्फ इतना ही करते हैं कि सुबह बारह बजे भोजन किया था। यह आंशिक है। जब आप भोजन कर रहे होते हैं तो भोजन की सुगंध भी होती है और स्वाद भी होता है। आपको पता नहीं होगा कि अगर आपकी नाक और आंख बिल्कुल बंद कर दी जाए तो आप प्याज में और सेव में कोई फर्क न बता सकेंगे स्वाद में। आंख पर पट्टी बांध दी जाए और नाक पर पट्टी बांध दी जाए और बंद कर दी जाए, कहा जाए आपके ओंठ पर क्या रखा है अब आप इसको चख कर बताइए, तो आप प्याज में और सेव में भी फर्क न बता सकेंगे। क्योंकि प्याज और सेव का असली फर्क आपको स्वाद से नहीं चलता है, गंध से चलता है और आंख से चलता है। स्वाद से पता नहीं चलता आपको।

तो बहुत घटनाएं भोजन की सिचुएशन में है, वे आपको याद नहीं आतीं। आंशिक याद है बारह बजे भोजन किया था। रिटर्निंग, दूसरा जो प्रतिक्रमण है उसका अर्थ है पूरी की पूरी स्थिति को याद करना--पूरी की पूरी स्थिति को याद करना। लेकिन पूरी स्थिति को भी याद करने में आप बाहर बने रहते हैं। रि-लिविंग का अर्थ है--पूरी स्थिति को पुनः जीना।

अगर महावीर के ध्यान में जाना है तो रात सोते समय एक प्राथमिक प्रयोग अनिवार्य है। सोते समय करीब-करीब वैसी ही घटनाएं घटती हैं जैसा बहुत बड़े पैमाने पर मृत्यु के समय घटती हैं। आपने सुना होगा कि कभी पानी में डूब जाने वाले लोग एक क्षण में अपने पूरे जीवन को रि-लिव कर लेते हैं। कभी-कभी पानी में डूबा हुआ कोई आदमी बच जाता है तो वह कहता है कि जब मैं डूब रहा था, और बिल्कुल मरने के करीब निश्चित हो गया तो उस क्षण को जैसी पूरी जिंदगी की फिल्म मेरे सामने से गुजर गई--पूरी जिंदगी की फिल्म एक क्षण में मैंने देख डाली। और ऐसी नहीं देखी कि स्मरण की हो, इस तरह से देखी कि जैसे मैं फिर से जी लिया। मृत्यु के क्षण में, आकस्मिक मृत्यु के क्षण में जब कि मृत्यु आसन्न मालूम पड़ती है, आ गई मालूम पड़ती है, बचने का कोई उपाय नहीं रह जाता है और मृत्यु साफ होती है, तब ऐसी घटना घटती है। महावीर के ध्यान में अगर उतरना हो तो ऐसी घटना नींद के पहले रोज घटानी चाहिए। जब रात होने लगे और नींद करीब आने लगे तो--रि-लिव, पहले तो स्मृति से शुरू करना पड़ेगा। सुबह से लेकर सांझ सोने तक स्मरण करें।

एक तीन महीने गहरा प्रयोग किया जाए तो आपको पता चलेगा कि स्मृति धीरे-धीरे प्रतिक्रमण बन गई। अब पूरी स्थिति याद आने लगी। और भी तीन महीने प्रयोग किया जाए, प्रतिक्रमण पर तब आप पाएंगे कि वह प्रतिक्रमण पुनर्जीवन बन गया है। अब आप रि-लिव करने लगे। कोई नौ महीने के प्रयोग में आप पाएंगे कि आप सुबह से लेकर सांझ तक फिर से जी सकते हैं--फिर से। जरा भी फर्क नहीं होगा, आप फिर से जिएंगे। और बड़े मजे की बात यह है कि इस बार जब आप जिएंगे तो वह ज्यादा जीवन हो गया बजाय इसके जो कि आप दिन में जीए थे क्योंकि उस वक्त और भी पच्चीस उलझाव थे। अब कोई उलझाव नहीं है। हुब्वार्ड कहता है कि यह ट्रैक पर वापस लौट कर फिर से यात्रा करनी है, उसी ट्रैक पर, जैसे कि टेप-रिकार्ड को आपने सुन लिया दस मिनट, उलटा और फिर दस मिनट वही सुना। या फिल्म आपने देखी, फिर से फिल्म देखी और मन के ट्रैक पर कुछ भी खोता नहीं। मन के पथ पर सब सुरक्षित है, खोता नहीं है।

रात सोने से पहले, अगर महावीर के ध्यान में, सामायिक में प्रवेश करना हो तो कोई नौ महीने का--तीन-तीन महीने एक-एक प्रयोग पर बिताने जरूरी है। पहले स्मरण करना शुरू करें, पूरी तरह स्मरण करें सुबह से शाम तक, क्या हुआ। फिर प्रतिक्रमण करें। पूरी स्थिति को याद करने की कोशिश करें कि किस-किस घटना में कौन-कौन सी पूरी स्थिति थी। आप बहुत हैरान होंगे, और आपकी संवेदनशीलता बहुत बढ़ जाएगी और बहुत

सेंसिटिव हो जाएंगे और दूसरे दिन आपके जीने का रस भी बहुत बढ़ जाएगा क्योंकि दूसरे दिन धीरे-धीरे आप बहुत सी चीजों के प्रति जागरूक हो जाएंगे, जिनके प्रति आप कभी जागरूक न थे।

जब आप भोजन कर रहे हैं, तब बाहर वर्षा भी हो रही है, तब उसके बूंदों की टाप भी आपके कान सुन रहे हैं, लेकिन आप इतने संवेदनहीन हैं कि आपके भोजन में वह बूंदों का स्वर जुड़ नहीं पाता है। तब बाहर की जमीन पर पड़ी हुई नई बूंदों की गंध भी आ रही है, लेकिन आप इतने संवेदनहीन हैं कि वह गंध आपके भोजन में जुड़ नहीं पाती। तब खिड़की में फूल भी खिले हुए हैं, लेकिन फूलों का सौंदर्य आपके भोजन में संयुक्त नहीं हो पाता है।

आप संवेदनहीन हैं, इनसेंसिटिव हो गए हैं। अगर आप प्रतिक्रमण की पूरी यात्रा करते हैं तो आपके जीवन में सौंदर्य का और रस का और अनुभव का एक नया आयाम खुलना शुरू हो जाएगा। पूरी घटना आपको जीने को मिलेगी। और जब भी पूरी घटना जीयी जाती है, जब भी पूरी घटना होती है, तो आप उस घटना को दुबारा जीने की आकांक्षा से मुक्त होने लगते हैं, वासना क्षीण होती है।

अगर कोई व्यक्ति एक बार भी, किसी भी घटना से परिपूर्णतया बीत जाए, गुजर आए तो उसकी इच्छा उसे रिपीट करने की, दोहराने की फिर नहीं होती है। तो अतीत से छुटकारा होता है और भविष्य से भी छुटकारा होता है। प्रतिक्रमण अतीत और भविष्य से छुटकारे की विधि है। फिर इस प्रतिक्रमण को इतना गहरा करते जाएं कि एक घड़ी ऐसी आ जाए कि अब आप याद न करें, रि-लिव करें, पुनर्जीवित हो जाएं, उस घटना को फिर से जिएं। और आप हैरान होंगे वह घटना फिर से जीयी जा सकती है।

और जिस दिन आप उस घटना को फिर से जीने में समर्थ हो जाएंगे, उस दिन रात सपने बंद हो जाएंगे। क्योंकि सपने में वही घटनाएं आप फिर से जीने की कोशिश करते हैं, और तो कुछ नहीं करते हैं। अगर आप होशपूर्वक रात सोने के पहले पूरे दिन को पूरा जी लिए हैं तो आपने निपटारा कर दिया, क्लोज्ड हो गए आप। अब कुछ याद करने की जरूरत न रही, पुनः जीने की जरूरत न रही। जो-जो छूट गया था वह भी फिर से जी लिया गया है। जो-जो रस अधूरा रह गया था, जो-जो अनकंप्लीट, अपूर्ण रह गया था, वह पूरा कर लिया गया।

जिस दिन आदमी रि-लिव कर लेता है, उस दिन रात सपने विदा हो जाते हैं। और निद्रा जितनी गहरी हो जाती है, सुबह जागरण उतनी ही प्रगाढ़ हो जाती है। स्वप्न जब विदा हो जाते हैं नींद में तो दिन में विचार कम हो जाते हैं। ये सब संयुक्त घटनाएं हैं। जब रात स्वप्नरहित हो जाती है तो दिन विचार शून्य होने लगता है, विचार रिक्त होने लगता है।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप फिर विचार नहीं कर सकते, इसका यह मतलब है कि फिर आप विचार कर सकते हैं, लेकिन करने का ऑब्सेशन नहीं रह जाता, जरूरी नहीं रह जाता कि करें ही। अभी तो आपको मजबूरी में करना पड़ता है। आप चाहें तो भी, न करें तो भी करना पड़ता है। और जिस विचार को आप चाहते हैं न करें, उसे और भी करना पड़ता है। अभी आप बिल्कुल गुलाम हैं। अभी मन आपकी मानता नहीं।

महावीर से अगर पूछें तो विक्षिप्त का यही लक्षण है--जिसका मन उसकी नहीं मानता है। विक्षिप्त का यही लक्षण है, पागल का यही लक्षण है। तो हममें पागलपन की मात्राएं हैं। किसी का जरा कम मानता है, किसी का जरा ज्यादा मानता है, किसी का थोड़ा और ज्यादा मानता है। कोई अपने भीतर ही भीतर करता रहता है, कोई जरा बाहर करने लगता है वही काम। बस इतनी मात्राओं के फर्क हैं--डिग्रीज आफ मेडनेस। क्योंकि जब तक ध्यान न उपलब्ध हो तब तक आप विक्षिप्त होंगे ही।

ध्यान का अभाव विक्षिप्तता है। ध्यान को उपलब्ध व्यक्ति के स्वप्न शून्य हो जाते हैं। ऐसी हो जाती है उनकी रात, जैसे प्रकाश की वल्लरी में धूल के कण न रह गए। जब वह सुबह उठता है तो सच पृच्छिए वही आदमी सुबह उठता है जिसने रात स्वप्न नहीं देखे। नहीं तो सिर्फ नींद की एक पर्त टूटती है और सपने भीतर दिन भर चलते रहते हैं। कभी भी आंख बंद करिए--दिवा-स्वप्न शुरू हो जाते हैं। सपना भीतर चलता ही रहता है।

सिर्फ ऊपर की एक पर्त जाग जाती है। काम चलाऊ है वह पर्त। उससे आप सड़क पर बच कर निकल जाते हैं, उसमें आप अपने दफ्तर पहुंच जाते हैं। उसमें अपने आप काम कर लेते हैं--आदत, रोबोट, आपके भीतर जो यंत्र बन गया है वह काम कर लेता है। इतना होश है बस। इसे महावीर होश नहीं कहते हैं।

रात जब स्वप्न पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं। तब सुबह आप ऐसे उठते हैं कि उस उठने का आपको कोई भी पता नहीं है। वह उठने में इतना ही फर्क है जैसे किसी ने एक मिट्टी के तेल में जलती हुई बाती देखी हो--पीला, धुंधला, धुएं से भरा हुआ प्रकाश। और उस आदमी ने पहली दफे सूरज का जागना देखा हो, सूरज का उगना देखा हो, इतना ही फर्क है। अभी जिसे आप जागना कहते हैं वह ऐसा ही मदी सी, पीली सी, धीमी सी लौ है। जब रात स्वप्न समाप्त हो जाते हैं, तब आप सुबह उठते हैं जैसे सूरज जगा--उस जागी हुई चेतना में विचार आपके गुलाम हो जाते हैं। मालिक नहीं होते। और महावीर कहते हैं--जब तक विचार मालिक हैं, तब तक ध्यान कैसे हो पाएगा? विचार की मालिकियत आपकी होनी चाहिए, तब ध्यान हो सकता है। तब आप जब चाहें विचार करें, जब चाहें तब न करें।

तो दूसरा प्रयोग--एक तो नींद के साथ--दूसरा प्रयोग सुबह जागने के साथ। जैसे ही जागें वैसे ही प्रतीक्षा करें उठ कर कि कब पहला विचार आता है। पहले विचार को पकड़ें, कब आता है। धीरे-धीरे आप हैरान होंगे कि जितना आप जाग कर पहले विचार को पकड़ने को कोशिश करते हैं, उतनी ही देर से आता है। कभी घंटो लग जाएंगे और पहला विचार नहीं आएगा। और यह घंटा जो है विचाररहित, यह आपकी चेतना को शीर्षासन से सीधा खड़ा करने में सहयोगी बनेगा। आप पैर के बल खड़े हो सकेंगे। क्योंकि यह घंटा भर तो बहुत दूर है अगर एक मिनट के लिए भी कोई विचार न आए तो आपको विचार नरक है, यह अनुभव होना शुरू हो जाएगा। और निर्विचार होना आनंद है, स्वर्ग है यह अनुभव होना शुरू हो जाएगा। एक मिनट को भी विचार न आए तो आपको अपने भीतर विचारों के अतिरिक्त जो है, उसका दर्शन शुरू हो जाएगा। तब धूल नहीं दिखाई पड़ेगी, प्रकाश की वल्लरी दिखाई पड़ेगी। तब आपका गेस्टाल्ट बदल जाएगा।

अगर आपने कभी कोई गेस्टाल्ट चित्र देखे हैं तो आप समझ पाएंगे। मनोविज्ञान की किताबों में गेस्टाल्ट के चित्र दिए होते हैं। कभी एक चित्र आप में से बहुत लोगों ने देखा होगा, नहीं देखा होगा तो देखना चाहिए। एक बूढ़ी का चित्र बना होता है, एक बूढ़ी स्त्री का चित्र बना होता है। बहुत से गेस्टाल्ट चित्र बने हैं। बूढ़ी का चित्र बना होता है, आप उसको गौर से देखें तो बूढ़ी दिखाई पड़ती है। फिर आप देखते ही रहें, देखते ही रहें, देखते ही रहें, अचानक आप पाते हैं कि चित्र बदल गया। और एक जवान स्त्री दिखाई पड़नी शुरू हो गई। वह भी उन्हीं रेखाओं में छिपी हुई है। वह भी उन्हीं रेखाओं में छिपी हुई है, लेकिन एक बड़े मजे की बात होगी कि जब तक आपको बूढ़ी का चित्र दिखाई पड़ेगा, तब तक जवान स्त्री का चित्र नहीं दिखाई पड़ेगा। और जब आपको जवान स्त्री का चित्र दिखाई पड़ेगा तो बूढ़ी खो जाएगी। दोनों आप एक साथ नहीं देख सकते, यह गेस्टाल्ट का मतलब है।

गेस्टाल्ट का मतलब है कि पैटर्न है देखने के, और विपरीत पैटर्न एक साथ नहीं देखे जा सकते। जब जवान स्त्री दिखाई पड़ेगी--चित्र वही है, रेखाएं वही हैं, आप वही हैं, कुछ बदला नहीं है। लेकिन आपका ध्यान बदल गया। आप बूढ़ी को देखते-देखते ऊब गए, परेशान हो गए। ध्यान ने एक परिवर्तन ले लिया, उसने कुछ नया देखना शुरू किया। क्योंकि ध्यान सदा नया देखना चाहता है। अब वह जवान स्त्री जो अभी तक आपको नहीं दिखाई पड़ी थी, वह दिखाई पड़ गई। बड़ा मजा यह होगा, आप दोनों को एक साथ नहीं देख सकते हैं, साइमलटेनियसली, युगपत नहीं देख सकते हैं। अब आपको पता है--पहले तो आपको पता भी नहीं था कि इसमें एक जवान चेहरा भी छिपा हुआ है। अब आपको पता है कि दोनों चेहरे छिपे हैं, अब भी आप नहीं देख सकते--

अब भी जब तक जवान चेहरा देखते रहेंगे, बूढ़ी का कोई पता नहीं चलेगा। जब आप बूढ़ी को देखना शुरू करेंगे, जवान खो जाएगा। गेस्टाल्ट है यह।

चेतना विपरीत को एक साथ नहीं देख सकती। जब तक आप धूल के कण देख रहे हैं, तब तक आप प्रकाश की वल्लरी नहीं देख सकते। और जब आप प्रकाश की वल्लरी देखने लगेंगे तब धूल के कण नहीं देख सकते। जब तक आप विचार को देख रहे हैं, तब तक आप चेतना को नहीं देख सकते। जब आप विचार को नहीं देखेंगे, तब आप चेतना को देखेंगे। और चेतना एक दफे जो देख ले, उसके जीवन की सारी की सारी रूप-रेखा बदल जाती है। अभी हमारी सारी रूप-रेखा विचार से निर्धारित होती है, धूलकणों से। फिर हमारी सारी चेतना प्रकाश से प्रवाहित होती है। फिर भी आप दोनों चीजों को एक साथ नहीं देख सकेंगे। जब आप विचार देखेंगे तब चेतना भूल जाएगी। जब आप चेतना देखेंगे तब विचार भूल जाएंगे। लेकिन फिर आपको याद तो रहेगा चाहे कि जवान चेहरा दिखाई पड़ रहा है, आपको याद तो रहेगा कि बूढ़ा चेहरा छिपा हुआ है। फिर आप बूढ़ा चेहरा देख रहे हो तब भी आपको याद रहेगा कि जवान चेहरा भी कहीं मौजूद है, सोया हुआ है, छिपा हुआ है, अप्रगट है।

जिस दिन कोई व्यक्ति निर्विचार हो जाता है उस दिन चेतना पर उसका ध्यान जाता है। तब तक ध्यान नहीं जाता। और एक बार चेतना पर ध्यान चला जाए तो फिर चेतना का विस्मरण नहीं होता है। चाहे आप विचार में लगे रहें, दुकान पर लगे रहें, बाजार में काम करते रहें, कुछ भी करते रहें, भीतर चेतना है, इसकी स्पष्ट प्रतीति बनी रहती है। बीमार हो जाएं, रूग्ण हो जाएं, दुखी हो जाएं, हाथ पैर कट जाएं फिर भी भीतर चेतना है, इसकी स्पष्ट स्मृति बनी रहती है। और जब चाहें तब गेस्टाल्ट बदल सकते हैं। एक्सीडेंट हो रहा है और शरीर टूट कर गिर पड़ा, पैर अलग हो गए हैं। जरूरी नहीं है कि आप पैर को ही देख कर दुखी हों। आप गेस्टाल्ट बदल सकते हैं। आप चेतना को देखने लगे, शरीर गया। शरीर का कोई दुख नहीं होगा। आप शरीर नहीं रहे।

जब महावीर के कान में खीलियां ठोंकी जा रही हैं तो आप यह मत समझना कि महावीर आप ही जैसे शरीर हैं। आप ही जैसे शरीर होंगे तो खीलियों का दर्द होगा। महावीर का गेस्टाल्ट बदल जाता है। अब महावीर शरीर को नहीं देख रहे हैं, वे चेतना को देख रहे हैं। तो शरीर में खीलियां ठोंकी जा रही हैं तो वे ऐसी ही मालूम पड़ती हैं, जैसे किसी और के शरीर में खीलियां ठोंकी जा रही हैं। जैसे कहीं और दूर डिस्टेंस पर खीलिया ठोंकी जा रही हैं। महावीर दूर हो गए। महावीर मर रहे हैं तो आप ही जैसे नहीं मर रहे हैं। गेस्टाल्ट और है। महावीर चेतना को देख रहे हैं, जो नहीं मरती।

जब जीसस को सूली पर लटकाया जा रहा है तो गेस्टाल्ट और है। जीसस उस शरीर को नहीं देख रहे हैं, जो सूली पर लटकाया जा रहा है। जब मंसूर को काटा जा रहा है तो गेस्टाल्ट और है। मंसूर उस शरीर को नहीं देख रहा है, जो काटा जा रहा है, इसलिए मंसूर हंस रहा है। और कोई पूछता है--मंसूर, तुम काटे जा रहे हो और हंस रहे हो? तो मंसूर ने कहा कि मैं इसलिए हंसता हूं कि जिसे तुम काट रहे हो वह मैं नहीं हूं। और जो मैं हूं तुम उसे छू भी नहीं पा रहे हो तो मुझे बड़ी हंसी आ रही है। तुम्हारी तलवारें मेरे आस-पास से गुजर जा रही हैं लेकिन मुझे स्पर्श नहीं कर पाती हैं। यह गेस्टाल्ट का परिवर्तन है, ध्यान का परिवर्तन है, ध्यान का फोकस बदल गया है, वह कुछ और देख रहा है।

तो रात्रि विचार के लिए तीन प्रक्रियाएं--सुबह पहले विचार की प्रतीक्षा की एक प्रक्रिया और शेष सारे दिन साक्षी का भाव, विटनेस है। जो भी हो रहा है उसका मैं साक्षी हूं, कर्ता नहीं। भोजन कर रहे हैं तो दो चीजें रह जाती हैं। दो भी नहीं रह जातीं, साधारण आदमी को एक ही चीज रह जाती है--भोजन रह जाता है। अगर थोड़ा बुद्धिमान आदमी है तो दो चीजें होती हैं--भोजन होता है, भोजन करने वाला होता है।

बुद्धिमान से मेरा मतलब है? जो थोड़ा सोच-समझ कर जीता है। जो बिल्कुल ही गैर-सोच-समझ कर जीता है, भोजन ही रह जाता है, इसलिए वह ज्यादा भोजन कर जाता है, क्योंकि भोजन करने वाला तो मौजूद नहीं था। कल उसने तय किया था कि इतना ज्यादा भोजन नहीं करना है। पच्चीस दफे तय कर चुका है कि इतना

ज्यादा भोजन नहीं करना है। इससे यह बीमारी पकड़ती है, यह रोग आ जाता है। रोग से दुखी होता है--यह भोजन इतना नहीं करना। तय कर लिया। कल जब फिर भोजन करने बैठता है तो ज्यादा भोजन करता है और वही चीजें खा लेता है जो नहीं खानी थीं। क्यों? भोजन करने वाला मौजूद ही नहीं रहता। सिर्फ भोजन रह जाता है। भोजन ने तो तय नहीं किया था, इसलिए भोजन को जितना करवाना है, करवा देता है।

जिसको हम थोड़ा बुद्धिमान आदमी कहें, वह दोनों का होश रखता हैं--भोजन का भी, भोजन करने वाले का भी। लेकिन महावीर जिसे साक्षी कहते हैं, वह तीसरा होश है। वह होश इस बात का है कि न तो मैं भोजन हूं और न मैं भोजन करने वाला हूं। भोजन भोजन है, भोजन करने वाला शरीर है, मैं दोनों से अलग हूं। एक ट्राएंगल का निर्माण है, एक त्रिकोण का, एक त्रिभूज का। तीसरे कोण पर मैं हूं। इस तीसरे कोण पर, इस तीसरे बिंदु पर चौबीस घंटे रहने की कोशिश साक्षीभाव हैं। कुछ भी हो रहा हैं, तीन हिस्से सदा मौजूद हैं और मैं तीसरा हूं, मैं दो नहीं हूं। ज्यादा भोजन कर लेने वाला एक ही कोण देखता है। अगर कहीं प्राकृतिक चिकित्सा के संबंध में थोड़ी जानकारी बढ़ गई तो दूसरा कोण भी देखने लगता है कि मैं करने वाला, ज्यादा न कर लूं। पहले भोजन से एकात्म हो जाता था, अब करने वाले शरीर से एकात्म हो जाता है। लेकिन साक्षी नहीं होता। साक्षी तो तब होता है, जब दोनों के पार तीसरा हो जाता है। और जब वह देखता है कि यह रहा भोजन, यह रहा शरीर, यह रहा मैं--और मैं सदा अलग हूं।

इसलिए महावीर ने कहा है--पृथक्त्व। साक्षी भाव का उन्होंने प्रयोग नहीं किया। उन्होंने पृथक्त्व शब्द का प्रयोग किया है--अलगपन। इसको महावीर ने कहा है भेद विज्ञान, दि साइंस ऑफ डिवीजन। महावीर का अपना शब्द है, भेद विज्ञान। दि साइंस टु डिवाइड। चीजों को अपने-अपने हिस्सों में तोड़ देना है। भोजन वहां है, शरीर यहां है, मैं दोनों के पार हूं--इतना भेद स्पष्ट हो जाए तो साक्षी जन्मता है।

तो तीन बातें स्मरण रखें--रात नींद के समय स्मरण, प्रतिक्रमण, पुनर्जीवन। सुबह पहले विचार की प्रतीक्षा, ताकि अंतराल दिखाई पड़े और अंतराल में गेस्टाल्ट बदल जाए। धूलकण न दिखाई पड़ें, प्रकाश की धारा स्मरण में आ जाए। और पूरे समय, चौबीस घंटे, उठते-बैठते-सोते तीसरे बिंदु पर ध्यान--तीसरे पर खड़े रहना। ये तीन बातें अगर पूरी हो जाएं तो महावीर जिसे सामायिक कहते हैं, वह फलित होती है। तो हम आत्मा में स्थिर होते हैं।

यह जो आत्मस्थिरता है, यह कोई जड़, स्टेग्रेट बात नहीं। शब्द हमारे पास नहीं हैं। शब्द हमारे पास दो हैं--चलना, ठहर जाना; गति, अगति; डायनेमिक, स्टेग्रेट। तीसरा शब्द हमारे पास नहीं है। लेकिन महावीर जैसे लोग सदा ही जो बोलते हैं वह तीसरे की बात है, दि थर्ड। और हमारी भाषा दो तरह के शब्द जानती है, तीसरे तरह के शब्द नहीं जानती। तो इसलिए महावीर जैसे लोगों के अनुभव को प्रकट करने के लिए दोनों शब्दों का एक साथ उपयोग करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। तब पैराडाक्सिकल हो जाता है। अगर हम ऐसा कह सकें, और कोई अर्थ साफ होता हो--ऐसी अगति जो पूर्ण गति है; ऐसा ठहराव जहां कोई ठहराव नहीं है; मूवमेंट, विदाउट मूवमेंट; तो शायद हम खबर दे पाएं। क्योंकि हमारे पास दो शब्द हैं, और महावीर जैसे व्यक्ति तीसरे बिंदु से जीते हैं। तीसरे बिंदु की अब तक कोई भाषा पैदा नहीं हो सकी। शायद कभी हो भी नहीं सकेगी।

नहीं हो सकेगी, इसलिए कि भाषा के लिए द्वंद्व जरूरी हैं। आपको कभी ख्याल नहीं आता कि भाषा कैसा खेल है। अगर आप डिक्शनरी में देखने जाएं तो वहां लिखा हुआ है--पदार्थ क्या है? जो मन नहीं है। और जब आप मन को देखने जाएं तो वहां लिखा है--मन क्या है? जो पदार्थ नहीं है। कैसा पागलपन है! न पदार्थ का कोई पता है, न मन का कोई पता है। लेकिन व्याख्या बन जाती है, दूसरे के इनकार करने से व्याख्या बना लेते हैं! अब यह कोई बात हुई कि पुरुष कौन है? जो स्त्री नहीं! स्त्री कौन है? जो पुरुष नहीं! यह कोई बात हुई? यह कोई डेफिनीशन हुई? यह कोई परिभाषा हुई? अंधेरा वह है जो प्रकाश नहीं, प्रकाश वह है जो अंधेरा नहीं! समझ में

आता है कि बिल्कुल ठीक है, लेकिन बिल्कुल बेमानी है। इसका कोई मतलब ही न हुआ। अगर मैं पूछूं, दायां क्या है? आप कहते हैं, बायां नहीं है। मैं पूछूं बायां क्या है? तो उसी दाएं से व्याख्या करते हैं जिसकी व्याख्या बाएं से की थी! यह विसियस है, सर्कुलर है।

लेकिन आदमी का काम चल जाता है। सारी भाषा ऐसी है। डिक्शनरी से ज्यादा व्यर्थ की चीज जमीन पर खोजनी बहुत मुश्किल है--शब्दकोश से ज्यादा व्यर्थ की चीज। क्योंकि शब्दकोश वाला कर क्या रहा है? वह पांचवें पेज पर कहता है कि दसवां पेज देखो, और दसवें पेज पर कहता है कि पांचवां देखो। अगर मैं आपके गांव में जाऊं और आपसे पूछूं कि रहमान कहां रहते हैं? आप कहें कि राम के पड़ोस में? मैं पूछूं, राम कहां रहते हैं? आप कहें, रहमान के पड़ोस में। इससे क्या अर्थ होता है? हमें अज्ञात की परिभाषा उससे करनी चाहिए जो ज्ञात हो। तब तो कोई मतलब होता है। हम एक अज्ञात की परिभाषा दूसरे अज्ञात से करते हैं। वन अननोन इ.ज डिफाइन्ड बाई एन अदर अननोन। हमें कुछ भी पता नहीं है, एक अज्ञात को हम दूसरे अज्ञात से व्याख्या कर देते हैं। और इस तरह ज्ञात का भ्रम पैदा कर लेते हैं।

नालेज, ज्ञान का जो हमारा भ्रम है वह इसी तरह खड़ा हुआ है। मगर इससे काम चल जाता है। इससे काम चल जाता है। काम चलाऊ है यह ज्ञान। पर इससे कोई सत्य का अनुभव नहीं होता। महावीर जैसे व्यक्ति की तकलीफ यह है कि वह तीसरे बिंदु पर खड़ा होता है जहां चीजें तोड़ी नहीं जा सकतीं। जहां द्वंद्व नहीं रह जाता, जहां दो नहीं रह जाते। जहां अनुभूति एक बनती है और उस अनुभूति को वह किससे व्याख्या करे, क्योंकि हमारी सारी भाषा यह कहती है कि यह नहीं। तो किससे व्याख्या करे? वह ज्यादा से ज्यादा इतना ही कह सकता है निषेधात्मक, लेकिन वह निषेधात्मक भी ठीक नहीं है। वह कह सकता है, वहां दुख नहीं, अशांति नहीं। लेकिन जब हम मतलब समझते हैं, तो हमारा क्या मतलब होता है?

अशांति और शांति हमारे लिए द्वंद्व है, महावीर के लिए द्वंद्व से मुक्ति है। हमारे लिए शांति का वही मतलब है जहां अशांति नहीं है। महावीर के लिए शांति का वही मतलब है जहां शांति भी नहीं, अशांति भी नहीं। क्योंकि जब तक शांति है तब तक थोड़ी बहुत अशांति मौजूद रहती है। नहीं तो शांति का पता नहीं चलता। अगर आप परिपूर्ण स्वस्थ हो जाएं तो आपको स्वास्थ्य का पता नहीं चलेगा। थोड़ी बहुत बीमारी चाहिए स्वास्थ्य के पता होने को। या आप पूरे बीमार हो जाएं, तो भी बीमारी का पता नहीं चलेगा। क्योंकि बीमारी के लिए भी स्वास्थ्य का होना जरूरी है, नहीं तो पता नहीं चलता।

तो बीमार से बीमार आदमी में भी स्वास्थ्य होता है, इसलिए पता चलता है। और स्वस्थ से स्वस्थ आदमी में भी बीमारी होती है इसलिए स्वास्थ्य का पता चलता है। लेकिन हमारे पास कोई उपाय नहीं है। हम बाहर से ही खोजते रहते हैं। और बाहर सब द्वंद्व है। लक्षण बाहर से हम पकड़ लेते हैं और भीतर कोई लक्षण नहीं पकड़े जा सकते क्योंकि कोई द्वंद्व नहीं है। तो महावीर ने वह जो तीसरे बिंदु पर खड़ा हो जाएगा व्यक्ति ध्यान में, उसे क्या होगा, इसे समझाने की कोशिश बारहवें तप में की है। वह कोशिश बिल्कुल बाहर से है, बाहर से ही हो सकती है। फिर भी बहुत आंतरिक घटना है, इसलिए उसे अंतर-तप कहा और अंतिम तप रखा है।

ध्यान के बाद महावीर का तप कायोत्सर्ग है। उसका अर्थ है--जहां काया का उत्सर्ग हो जाता है, जहां शरीर नहीं बचता, गेस्टाल्ट बदल जाता है पूरा। कायोत्सर्ग का मतलब काया को सताना नहीं है। कायोत्सर्ग का मतलब है, ऐसा नहीं है कि हाथ-पैर काट-काट कर चढ़ाते जाना है--कायोत्सर्ग का मतलब है, ध्यान को परिपूर्ण शिखर पर पहुंचना है तो गेस्टाल्ट बदल जाता है। काया का उत्सर्ग हो जाता है। काया रह नहीं जाती, उसका कहीं कोई पता नहीं रह जाता। निर्वाण या मोक्ष, संसार का खो जाना है, जस्ट डिसएपियरेंस। आत्म-अनुभव, काया का खो जाना है। आप कहेंगे महावीर तो चालीस वर्ष जिए, वह ध्यान के अनुभव के बाद भी काया थी। वह आपको दिखाई पड़ रही है। वह आपको दिखाई पड़ रही है, महावीर की अब कोई काया नहीं है, अब कोई

शरीर नहीं है। महावीर का काया-उत्सर्ग हो गया। लेकिन हमें तो दिखाई पड़ रही है। इसलिए बुद्ध के जीवन में बड़ी अदभुत घटना है। जब बुद्ध मरने लगे तो शिष्यों को बहुत दुख, पीड़ा... ! सारे रोते इकट्ठे हो गए, लाखों लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने कहा--अब हमारा क्या होगा? लेकिन बुद्ध ने कहा: पागलो, मैं तो चालीस साल पहले मर चुका। वे कहने लगे कि माना कि यह शरीर है, लेकिन इस शरीर से भी हमें प्रेम हो गया। लेकिन बुद्ध ने कहा कि यह शरीर तो चालीस साल पहले विसर्जित हो चुका है।

जापान में एक फकीर हुआ है लिंगी। एक दिन अपने उपदेश में उसने कहा कि यह बुद्ध से झूठा आदमी जमीन पर कभी नहीं हुआ। क्योंकि जब तक यह बुद्ध नहीं था, तब तक था, और जिस दिन से बुद्ध हुआ, उस दिन से है ही नहीं। तो लिंगी ने कहा: बुद्ध है, बुद्ध हुए हैं ये सब भाषा की भूलें हैं। बुद्ध कभी नहीं हुए थे। निश्चित ही लोग घबड़ा गए, क्योंकि यह फकीर तो बुद्ध का ही था। पीछे बुद्ध की प्रतिमा रखी थी। अभी-अभी इसने उस पर दीप चढ़ाया था। एक आदमी ने खड़े होकर पूछा कि ऐसे शब्द तुम बोल रहे हो? तुम कह रहे हो, बुद्ध कभी हुए नहीं? ऐसी अधार्मिक बात! तो लिंगी ने कहा कि जिस दिन से मेरे भीतर काया खो गई, उस दिन मुझे पता चला। तुम्हारे लिए मैं अभी भी हूँ, लेकिन जिस दिन से सच में न हुआ, उस दिन से मैं बिल्कुल नहीं हो गया हूँ।

यह नहीं हो जाने का अन्तिम चरण है। वह एक्सप्लोजन है। उसके बाद फिर कुछ भी नहीं है, या सब कुछ है। या शून्य है, या पूर्ण है।

कल हम आखिरी बारहवें तप की बात करेंगे।
बैठें पांच मिनट... !

कायोत्सर्गः शरीर से विदा लेने की क्षमता (धम्म सूत्र)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मो सया मणो॥

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

महावीर के साधना सूत्रों में आज बारहवें और अंतिम तप पर बात करेंगे। अंतिम तप को महावीर ने कहा है--कायोत्सर्ग--शरीर का छूट जाना। मृत्यु में तो सभी का शरीर छूट जाता है। शरीर तो छूट जाता है मृत्यु में, लेकिन मन की आकांक्षा शरीर को पकड़े रखने की नहीं छूटती। इसलिए जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह वास्तविक मृत्यु नहीं है, केवल नये जन्म का सूत्रपात है। मरते क्षण में भी मन शरीर को पकड़ रखना चाहता है। मरने की पीड़ा ही यही है कि जिसे हम नहीं छोड़ना चाहते हैं वह छूट रहा है। बेचैनी यही है कि जिसे हम पकड़ रखना चाहते हैं उसे नहीं पकड़ रख पा रहे हैं। दुख यही है कि जिसे समझा था कि मैं हूँ, वही नष्ट हो रहा है।

मृत्यु में जो घटना सभी को घटती है, वही घटना ध्यान में उनको घटती है, जो ग्यारहवें चरण तक की यात्रा कर लिए होते हैं। ठीक मृत्यु जैसी ही घटना घटती है। कायोत्सर्ग का अर्थ है उस मृत्यु के लिए सहज स्वीकृति का भाव। वह घटेगी। जब ध्यान प्रगाढ़ होगा तो ठीक मृत्यु जैसी ही घटना घटेगी। लगेगा साधक को कि मिटा, समाप्त हुआ। इस क्षण में शरीर को पकड़ने का भाव न उठे, इसी की साधना का नाम कायोत्सर्ग है। ध्यान के क्षण में जब मृत्यु जैसी प्रतीति होने लगे तब शरीर को पकड़ने की अभीप्सा, आकांक्षा न उठे, शरीर का छूटता हुआ रूप स्वीकृत हो जाए, सहर्ष, शांति से, अहोभाव से, यह शरीर को विदा देने की क्षमता आ जाए, उस तप का नाम कायोत्सर्ग है।

मृत्यु और ध्यान की समानता को समझ लेना जरूरी है तभी कायोत्सर्ग समझ में आएगा। मृत्यु में यही होता है कि शरीर आपका चुक गया; अब और जीने, और काम करने में असमर्थ हुआ; तो आपकी चेतना शरीर को छोड़ कर हटती है, अपने स्रोत में सिकुड़ती है। लेकिन चेतना सिकुड़ती है स्रोत में फिर भी चित्त पकड़े रखना चाहते हैं। जैसे किनारा कोई आपके हाथ से खिसका जाता हो; जैसे नाव कोई आपसे दूर हटी जाती हो। शरीर को हम जोर से पकड़ रखना चाहते हैं, और शरीर व्यर्थ हो गया; चुक गया; तो तनाव पैदा होता है। जो जा रहा है उसे रोकने की कोशिश से तनाव पैदा होता है। उसी तनाव के कारण मृत्यु में मूर्च्छा आ जाती है। क्योंकि नियम है, एक सीमा तक हम तनाव को सह सकते हैं, एक सीमा के बाहर तनाव बढ़ जाए तो चित्त मूर्च्छित हो जाता है, बेहोश हो जाता है।

मृत्यु में इसीलिए हर बार हम बेहोश मरते हैं। और इसलिए अनेक बार मर जाने के बाद भी हमें याद नहीं रहता कि हम पीछे भी मर चुके हैं। और इसलिए हर जन्म नया जन्म मालूम होता है। कोई जन्म नया जन्म नहीं है। सभी जन्मों के पीछे मौत की घटना छिपी है। लेकिन हम इतने बेहोश हो गए होते हैं कि हमारी स्मृति में उसका कोई निशान नहीं छूट जाता। और यही कारण है कि हमें पिछले जन्म की स्मृति भी नहीं रह जाती, क्योंकि मृत्यु की घटना में हम इतने बेहोश हो जाते हैं, वही बेहोशी की पतल हमारे पिछले जन्म की स्मृतियों को

हमसे अलग कर देती है। एक दीवाल खड़ी हो जाती है। हमें कुछ भी याद नहीं रह जाता। फिर हम वही शुरू कर देते हैं जो हम बार-बार शुरू कर चुके हैं।

ध्यान में भी यही घटना घटती है, लेकिन शरीर के चुक जाने के कारण नहीं, मन की आकांक्षा के चुक जाने के कारण, यह फर्क होता है। शरीर तो अभी भी ठीक है लेकिन मन की शरीर को पकड़ने की जो वासना है वह चुक गई। अब कोई मन पकड़ने का न रहा। तो शरीर और चेतना अलग हो जाते हैं, बीच का सेतु टूट जाता है। जोड़ने वाला हिस्सा है मन, आकांक्षा, वासना वह टूट जाती है। जैसे कोई सेतु गिर जाए और नदी के दोनों किनारे अलग हो जाएं, ऐसे ही ध्यान में विचार और वासना के गिरते ही चेतना अलग और शरीर अलग हो जाता है। उस क्षण तत्काल हमें लगता है कि मृत्यु घटित हो रही है। और साधक का मन होता है—वापस लौट चलूं, यह तो मौत आ गई। और अगर साधक वापस लौट जाए तो बारहवां चरण घटित नहीं हो पाता। अगर साधक वापस लौट जाए तो ध्यान भी अपनी पूरी परिणति पर नहीं पहुंच पाता। अगर साधक वापस लौट जाए भयभीत होकर इस बारहवें चरण से, तो सारी साधना व्यर्थ हो जाती है। इसलिए महावीर ने ध्यान के बाद कायोत्सर्ग को अंतिम तप कहा है।

जब यह सेतु टूटे तो इसे खड़े हुए देखते रहना कि सेतु टूट रहा है। और जब शरीर और चेतना अलग हो जाएं ध्यान में तो भयभीत न होना। अभय से साक्षी बने रहना। एक क्षण की ही बात है। एक क्षण ही अगर कोई ठहर गया कायोत्सर्ग में, तो फिर कोई भय नहीं रह जाता। फिर तो मृत्यु भी नहीं रह जाती। जैसे ही शरीर और चेतना एक क्षण को भी अलग होकर दिखाई पड़ गए, उसी दिन से मृत्यु का सारा भय समाप्त हो गया। क्योंकि अब आप जानते हैं आप शरीर नहीं हैं, आप कोई और हैं। और जो आप हैं, शरीर नष्ट हो जाए तो भी वह नष्ट नहीं होता है। यह प्रतीति, यह अमृत का अनुभव, यह मृत्यु के जो अतीत है उस जगत में प्रवेश कायोत्सर्ग के बिना नहीं होता है।

लेकिन परंपरा कायोत्सर्ग का कुछ और ही अर्थ करती रही है। परंपरा अर्थ कर रही है कि काया पर दुख आए, पीड़ाएं आए, तो उन्हें सहज भाव से सहना। कोई सताए तो उसे सहज भाव से सहना। बीमारी आए तो उसे सहज भाव से सहना। कष्ट आए, कर्मों के फल आए तो उन्हें सहज भाव से सहना। यह कायोत्सर्ग का अर्थ नहीं है, क्योंकि काया-क्लेश में ही समाविष्ट हो जाता है। यह तो बाह्य-तप है। अगर यही कायोत्सर्ग का अर्थ है तो महावीर पुनरुक्ति कर रहे हैं, क्योंकि काया-क्लेश में, बाह्य-तप में इसकी बात हो गई है। महावीर जैसे व्यक्ति पुनरुक्ति नहीं करते। वे कुछ कहते हैं तभी जब कुछ कहना चाहते हैं। अकारण नहीं कहते। कायोत्सर्ग का यह अर्थ नहीं है। कायोत्सर्ग का तो अर्थ है काया को चढ़ा देने की तैयारी, काया को छोड़ देने की तैयारी, काया से दूर हो जाने की तैयारी, काया से भिन्न हूं ऐसा जान लेने की तैयारी; काया मरती हो तो भी देखता रहूंगा, ऐसा जान लेने की तैयारी।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को मरघट पर भेजते थे कि वे मरघट पर रहें और लोगों की लाशों को देखें—जलते, गड़ाए जाते, पक्षियों द्वारा चीरे-फाड़े जाते, मिट्टी में मिल जाते। भिक्षु बुद्ध से पूछते कि यह किसलिए? तो बुद्ध कहते—ताकि तुम जान सको कि काया में क्या-क्या घटित हो सकता है। और जो-जो एक की काया में घटित होता है वही-वही तुम्हारी काया में भी घटित होगा। इसे देख कर तुम तैयार हो सको, मृत्यु को देख कर तुम तैयार हो सको कि मृत्यु घटित होगी। लेकिन कभी कोई भिक्षु कहता कि अभी तो मृत्यु को देर है, अभी मैं युवा हूं। तो बुद्ध कहते—मैं उस मृत्यु की बात नहीं करता; मैं तो उस मृत्यु की तैयारी करवा रहा हूं जो ध्यान में घटित होती है। ध्यान महा-मृत्यु है—मृत्यु ही नहीं महामृत्यु। क्योंकि ध्यान में अगर मृत्यु घटित हो जाती है तो फिर कोई जन्म नहीं होता। साधारण मृत्यु के बाद जन्म कीशृंखला जारी रहती है। ध्यान की मृत्यु के बाद जन्म कीशृंखला नहीं रहती।

इसलिए महावीर इसे कायोत्सर्ग कहते हैं--काया का सदा के लिए बिछुड़ना हो जाता है। फिर दुबारा काया नहीं है, फिर दुबारा दुबारा काया में लौटना नहीं है। फिर शरीर में पुनरागमन नहीं है, फिर संसार में वापसी नहीं है। कायोत्सर्ग प्वाइंट आफ नो रिटर्न है, उसके बाद लौटना नहीं है।

लेकिन कायोत्सर्ग तक से हम लौट सकते हैं। जैसे पानी को हम गर्म करते हों, नित्यानबे डिग्री से भी पानी लौट सकता है भाप बने बिना। साढ़े नित्यानबे डिग्री से भी लौट सकता है। सौ डिग्री के पहले जरा सा फासला रह जाए तो पानी वापस लौट सकता है, गर्मी खो जाएगी थोड़ी देर में, पानी फिर ठंडा हो जाएगा। ध्यान से भी वापस लौट जा सकता है, जब तक कि कायोत्सर्ग घटित न हो जाए। आपने एक शब्द सुना होगा, भ्रष्ट योगी; पर कभी ख्याल न किया होगा कि भ्रष्ट योगी का क्या अर्थ होता है। शायद आप सोचते होंगे कि कोई भ्रष्ट काम करता है, ऐसा योगी। भ्रष्ट योगी का अर्थ होता है: जो कायोत्सर्ग के पहले ध्यान से वासन लौट आए। ध्यान तक चला गया, लेकिन ध्यान के बाद जो मौत की घबड़ाहट पकड़ी तो वापस लौट आया। फिर उसका जन्म हो गया। इसे भ्रष्ट योगी कहेंगे।

भ्रष्ट योगी का अर्थ यह है कि नित्यानबे डिग्री तक पहुंचकर जो वापस लौट आया। सौ डिग्री तक पहुंच जाता तो भाप बन जाता, तो रूपांतरण हो जाता। तो नया जीवन शुरू हो जाता, तो नई यात्रा प्रारंभ हो जाती। ध्यान नित्यानबे डिग्री तक ले जाता है। सौवीं डिग्री पर तो आखिरी छलांग पूरी करनी पड़ती है। वह है शरीर को उत्सर्ग कर देने की छलांग।

लेकिन हम अपनी तरफ से समझें, जहां हम खड़े हैं वहां शरीर मालूम पड़ता है कि मेरा है। ऐसा भी नहीं, सच में तो ऐसा मालूम पड़ता है कि मैं शरीर हूं। हमें कभी कोई एहसास नहीं होता है कि शरीर से अलग भी हमारा कोई होना है। शरीर ही मैं हूं। तो शरीर पर पीड़ा आती है तो मुझ पर पीड़ा आती है, शरीर को भूख लगती है तो मुझे भूख लगती है, शरीर को थकान होती है तो मैं थक जाता हूं। शरीर और मेरे बीच एक तादात्म्य है, एक आइडेंटिटी है, हम जुड़े हैं, संयुक्त हैं। हम भूल ही गए हैं कि मैं शरीर से पृथक् भी कुछ हूं। एक इंच भर भी हमारे भीतर ऐसा कोई हिस्सा नहीं है जिसे मैंने शरीर से अन्य जाना हो।

इसलिए शरीर के सारे दुख हमारे दुख हो जाते हैं, शरीर के सारे संताप हमारे संताप हो जाते हैं शरीर का जन्म हमारा जन्म बन जाता है; शरीर का बुढ़ापा हमारा बुढ़ापा बन जाता है; शरीर की मृत्यु हमारी मृत्यु बन जाती है। शरीर पर जो घटित होता है, लगता है वह मुझ पर घटित हो रहा है। इससे बड़ी कोई भ्रांति नहीं हो सकती। लेकिन हम बाहर से ही देखने के आदी हैं, शरीर से ही पहचानने के आदी हैं।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन का पिता अपने जमाने का अच्छा वैद्य था। बूढ़ा हो गया है बाप। तो नसरुद्दीन ने कहा: अपनी कुछ कला मुझे भी सिखा जाओ। कई दफे तो मैं चकित होता हूं देखकर कि नाड़ी तुम बीमार की देखते हो और ऐसी बातें कहते हो जिनका नाड़ी से कोई संबंध नहीं मालूम पड़ता। यह कला थोड़ी मुझे भी बता जाओ।

बाप को कोई आशा तो न थी कि नसरुद्दीन यह सीख पाएगा, लेकिन नसरुद्दीन को लेकर अपने मरीजों को देखने गया। एक मरीज को उसने नाड़ी पर हाथ रख कर देखा और फिर कहा कि देखो, केले खाने बंद कर दो। उसी से तुम्हें तकलीफ हो रही है। नसरुद्दीन बहुत हैरान हुआ। नाड़ी से केले की कोई खबर नहीं मिल सकती है। बाहर निकलते ही उसने बाप से पूछा; बाप ने कहा--तुमने ख्याल नहीं किया, मरीज को ही नहीं देखना पड़ता है, आस-पास भी देखना पड़ता है। खाट के पास नीचे केले कि छिलके पड़े थे। उससे अंदाज लगाया।

दूसरी बार नसरुद्दीन गया, बाप ने नाड़ी पकड़ी मरीज की और कहा कि देखो, बहुत ज्यादा श्रम मत उठाओ। मालूम होता है पैरों से ज्यादा चलते हो। उसी की थकान है। अब तुम्हारी उम्र इतने चलने लायक नहीं रही, थोड़ा कम चलो। नसरुद्दीन हैरान हुआ। चारों तरफ देखा, कहीं कोई छिलके भी नहीं हैं, कहीं कोई बात नहीं है। बाहर आकर पूछा कि हृद हो गई, नाड़ी से... ! चलता है

आदमी ज्यादा। बाप ने कहा: तुमने देखा नहीं, उसके जूते के तल्ले बिल्कुल घिसे हुए थे। उन्हीं को देख कर ... ।

नसरुद्दीन ने कहा: अब अगली बार तीसरे मरीज को मैं ही देखता हूं। अगर ऐसे ही पता लगाया जा रहा है तो हम भी कुछ पता लगा लेंगे। तीसरे घर पहुंचे, बीमार स्त्री का हाथ नसरुद्दीन ने अपने हाथ में लिया। चारों तरफ नजर डाली, कुछ दिखाई न पड़ा। खाट के नीचे नजर डाली फिर मुस्कुराया। फिर स्त्री से कहा कि देखो, तुम्हारी बेचैनी का कुल कारण इतना है कि तुम जरा ज्यादा धार्मिक हो गई हो। वह स्त्री बहुत घबड़ाई। और चर्च जाना थोड़ो कम करो, बंद कर सको तो बहुत अच्छा। बाप भी थोड़ो हैरान हुआ। लेकिन स्त्री राजी हुई। उसने कहा कि क्षमा करें, हद हो गई कि आप नाड़ी से पहचान गए। क्षमा करें, यह भूल अब दोबारा न करूंगी।

तो बाप और हैरान हुआ। बाहर निकल कर बेटे को पूछा, कि हद कर दी तूने। तू मुझसे आगे निकल गया। धर्म! थोड़ा धर्म में कम रुचि लो, चर्च जाना कम करो, या बंद कर दो तो अच्छा हो, और स्त्री राजी भी हो गई! बात क्या थी? नसरुद्दीन ने कहा: मैंने चारों तरफ देखा, कहीं कुछ नजर न आया। खाट के नीचे देखा तो पादरी को छिपा हुआ पाया। इस स्त्री की यही बीमारी है। और देखा आपने कि आपके मरीज तो सुनते रहे, मेरा मरीज एकदम बोला कि क्षमा कर दो, अब ऐसी भूल कभी नहीं होगी।

लेकिन नसरुद्दीन वैद्य बन न पाया। बाप के मर जाने के बाद नसरुद्दीन दो चार मरीजों के पास भी गया तो मुसीबत में पड़ा। जो भी मरीज उससे चिकित्सा करवाए, वे जल्दी ही मर गए। निदान तो उसने बहुत किए, लेकिन कोई निदान किसी मरीज को ठीक न कर पाया। नसरुद्दीन बुढ़ापे में कहता हुआ सुना गया है कि मेरा बाप मुझे धोखा दे गया। जरूर कोई भीतरी तरकीब रही होगी, वह सिर्फ मुझे बाहर के लक्षण बता गया।

बाप ने बाहर के लक्षण सिर्फ भीतरी लक्षणों की खोज के लिए कहे थे। और सदा ऐसा होता है। महावीर ने बाहर के लक्षण कहे हैं भीतर की पकड़ के लिए। परंपरा के लक्षण पकड़ लेती है और फिर धीरे-धीरे बाहर के लक्षण ही हाथ में रह जाते हैं। और फिर भीतर के सब सूत्र खो जाते हैं। नाड़ी से कोई मतलब ही नहीं रह जाता आखिर में। तो नसरुद्दीन को यह भी पक्का पता नहीं रहता था कि नाड़ी अंगुलियों के नीचे है भी या नहीं। वह तो आस-पास देख कर निदान कर लेता था। सारी परंपराएं धीरे-धीरे बाह्य हो जाती हैं और नाड़ी से उनका हाथ छूट जाता है। कायोत्सर्ग का मतलब ही केवल इतना रह गया कि अपनी काया को जब भी कष्ट आए, तो उसे सह लेना। लेकिन ध्यान रहे, काया अपनी है, यह कायोत्सर्ग की परंपरा में स्वीकृत है। यह जो झूठी बाह्य परंपरा है वह भी कहती है, अपनी काया को उत्सर्ग करने की तैयारी रखना, लेकिन अपनी वह काया है, यह बात नहीं छूटती।

महावीर का यह मतलब नहीं है कि अपनी काया को उत्सर्ग कर देना। क्योंकि महावीर कहते हैं: जो अपनी नहीं है उसे तुम कैसे उत्सर्ग करोगे? तुम कैसे चढ़ाओगे? अपने को उत्सर्ग किया जा सकता है; अपने को चढ़ाया जा सकता है; लेकिन जो मेरा नहीं है उसे मैं कैसे

चढ़ाऊंगा। महावीर का कार्यात्सर्ग से भीतरी अर्थ है कि काया तुम्हारी नहीं है, ऐसा जानना कायोत्सर्ग है। मैं काया को चढ़ा दूंगा, ऐसा भाव कायोत्सर्ग नहीं है क्योंकि तब तो इस उत्सर्ग में भी मेरे की, ममत्व की धारणा मौजूद है। और जब तक काया मेरी है तब तक मैं चाहे उत्सर्ग करूं, चाहे भोग करूं, चाहे बचाऊं और चाहे मिटाऊं।

आत्महत्या करने वाला भी काया को मिटा देता है, लेकिन वह कायोत्सर्ग नहीं है। क्योंकि वह मानता है कि शरीर मेरा है। इसलिए मिटाता है। एक शहीद सूली पर चढ़ जाता है, लेकिन वह कायोत्सर्ग नहीं है। क्योंकि वह मानता है, शरीर मेरा है। एक तपस्वी आपके शरीर को नहीं सताता, अपने शरीर को सता लेता है, लेकिन मानता है कि शरीर मेरा है। तपस्वी आपके प्रति कठोर न हो, अपने प्रति बहुत कठोर होता है। क्योंकि वह मानता है यह शरीर मेरा है। आपको भूखा न मार सके, अपने को भूखा मार सकता है क्योंकि मानता है यह

शरीर मेरा है। लेकिन जहां तक मेरा है वहां तक महावीर के कायोत्सर्ग की जो आंतरिक नाड़ी है, उस पर आपका हाथ नहीं है। महावीर कहते हैं: यह जानना कि शरीर मेरा नहीं है--कायोत्सर्ग है--यह जानना मात्र। यह जानना बहुत कठिन है।

इस कठिनाई से बचने के लिए आस्तिकों ने एक उपाय निकाला है कि वह कहते हैं कि शरीर मेरा नहीं है, लेकिन परमात्मा का है। महावीर के लिए तो वह भी उपाय नहीं, क्योंकि परमात्मा की कोई जगह नहीं है उनकी धारणा में। यह बहुत चक्करदार बात है। आस्तिक, तथाकथित आस्तिक कहता है कि शरीर मेरा नहीं परमात्मा का है, और परमात्मा मेरा है। ऐसे घूम-फिर कर सब अपना ही हो जाता है। महावीर के लिए परमात्मा भी नहीं है। महावीर की धारणा बहुत अदभुत है और शायद महावीर के अतिरिक्त किसी व्यक्ति ने कभी प्रतिपादित नहीं की। महावीर कहते हैं: तुम तुम्हारे हो, शरीर शरीर का है।

इसको समझ लें। शरीर परमात्मा का भी नहीं है, शरीर शरीर का है। महावीर कहते हैं: प्रत्येक वस्तु अपनी है, अपने स्वभाव की है, किसी की नहीं है। मालकियत झूठ है इस जगत में। वह परमात्मा की भी मालकियत हो तो झूठ है। ओनरशिप झूठ है। शरीर शरीर का है। इसका अगर हम विक्षेपण करें तो बात पूरी ख्याल में आ जाएगी।

शरीर में आप प्रतिपल श्वास ले रहे हैं। जो श्वास एक क्षण पहले आपकी थी, एक क्षण बाद बाहर हो गयी, किसी और की हो गई होगी। जो श्वास अभी आपकी है, आपको पक्का है आपकी है? क्षण भर पहले आपके पड़ोसी की थी। और अगर हम श्वास से पूछ सकें कि तू किसकी है, तो श्वास क्या कहेगी? श्वास कहेगी--मैं मेरी हूं। इस मेरे शरीर में--जिसे हम कहते हैं मेरा शरीर--इस मेरे शरीर में मिट्टी के कण हैं। कल वे जमीन में थे, कभी वे किसी और के शरीर में रहे होंगे। कभी किसी वृक्ष में रहे होंगे, कभी किसी फल में रहे होंगे। न मालूम कितनी उनकी यात्रा है। अगर हम उन कणों से पूछें कि तुम किसके हो, तो वे कहेंगे--हम अपने हैं। हम यात्रा करते हैं। तुम सिर्फ स्टेशन हो, जिनसे हम गुजरते हैं। जब हम कहते हैं--शरीर मेरा है तो हम वैसी ही भूल करते हैं कि आप स्टेशन से उतरें और स्टेशन कहे कि यह आदमी मेरा है। आप कहेंगे, तुझसे क्या लेना-देना है, हम बहुत स्टेशन से गुजर गए और गुजरते रहेंगे। स्टेशन आती हैं और चली जाती हैं।

शरीर जिन भूतों से मिल कर बना है, प्रत्येक भूत उसी भूत का है। शरीर जिन पदार्थों से बना है, प्रत्येक पदार्थ उसी पदार्थ का है। मेरे भीतर जो आकाश है वह आकाश का है; मेरे भीतर जो वायु की है; मेरे भीतर जो पृथ्वी है, वह पृथ्वी की है; मेरे भीतर जो अग्नि है वह अग्नि की है; मेरे भीतर जो जल है वह जल का है। यह कायोत्सर्ग है यह जानना।

और मेरे भीतर जल न रह जाए, वायु न रह जाए, आकाश न रह जाए, पृथ्वी न रह जाए, अग्नि न रह जाए, तब जो शेष रह जाता है वही मैं हूं। तब जो छठवां शेष रह जाता है, जो अतिरिक्त शेष रह जाता है वही मैं हूं। फिर क्या शेष रह जाता है? अगर वायु भी मैं नहीं हूं, अग्नि भी नहीं हूं, आकाश भी नहीं, जल भी नहीं, पृथ्वी भी नहीं; फिर मेरे भीतर शेष क्या रह जाता है? तो महावीर कहते हैं: सिर्फ जानने की क्षमता शेष रह जाती है, दी कैपेसिटी टु नो। सिर्फ जानना शेष रह जाता है। नोइंग शेष रह जाता है।

तो महावीर कहते हैं: मैं तो सिर्फ जानता हूं, जानना मात्र। इस स्थिती को महावीर ने केवलज्ञान कहा है--जस्ट नोइंग, सिर्फ जानना मात्र। मैं सिर्फ ज्ञाता ही रह जाता हूं, द्रष्टा ही रह जाता हूं, दृष्टि रह जाता हूं, ज्ञान रह जाता हूं। अस्तित्व का बोध, अवेयरनेस रह जाता हूं। और तो सब खो जाता है। कायोत्सर्ग का अर्थ है: जो जिसका है वह उसका है, ऐसा जानना। अनाधिकृत मालकियत न करना। लेकिन हम सब अनाधिकृत मालकियत किए हुए हैं और जब हम भीतर अनाधिकृत मालकियत करते हैं तो हम बाहर भी करते हैं। जो आदमी अपने शरीर को मानता है कि मेरा है, वह अपने मकान को कैसे मानेगा कि मेरा नहीं है।

पश्चिम में इस समय एक बहुत कीमती विचारक है--मार्शल मैकलुहान! वह कहता है, मकान हमारे शरीर का विस्तार है, एक्सटेंशन ऑफ अवर बॉडीज। है भी। मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है। दूरबीन हमारी आंख का ही विस्तार है। बंदूक हमारे नाखूनों का ही विस्तार है, ये हमारे एक्सटेंशन हैं। इसलिए जितना वैज्ञानिक युग होता है उतना आपका बड़ा शरीर होता जाता है। अगर आज से पांच हजार साल पहले किसी आदमी को मारना होता तो बिल्कुल उसकी छाती के पास छुरा लेकर जाना पड़ता। अब जरूरत नहीं है। अब एक आदमी को यहां से बैठ कर वाशिंगटन में भी सारे लोगों की हत्या कर देनी हो तो एक मिसाइल, एक बम चलाएगा और सबको नष्ट कर देगा। आपका शरीर अब बहुत बड़ा है। आप बड़े दूर से... अगर मुझे आपको मारना है तो पास आने की जरूरत नहीं है। पांच सौ फीट की दूरी से बंदूक की गोली से आपको मार दूंगा। लेकिन गोली सिर्फ एक्सटेंशन है।

वैज्ञानिक कहते हैं: आदमी के नाखून कमजोर हैं दूसरे जानवरों से, इसीलिए उसने अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार किया, वह सब्स्टीट्यूट है। नहीं तो आदमी जीत नहीं सकता जानवरों से। आपके नाखून बहुत कमजोर हैं जानवरों के मुकाबले। आपके दांत भी बहुत कमजोर हैं जानवरों के मुकाबले। आपके दांत भी बहुत कमजोर हैं जानवरों के मुकाबले में। अगर आप जानवर से टक्कर लें तो आप गए। तो आपको जानवर से टक्कर लेने के लिए सब्स्टीट्यूट खोजना पड़ेगा। जानवर से ज्यादा मजबूत नाखून बनाने पड़ेंगे। वे नाखून आपके छुरे, तलवारें, खंजर, भाले हैं। उससे ज्यादा मजबूत आपको दांत बनाने पड़े, जिनसे उसको आप पीस डालें।

आदमी ने जो भी विकास किया है, जिसे हम आज प्रगति कहते हैं, वह उसके शरीर का विस्तार है। इसलिए जितना वैज्ञानिक युग सघन होता जाता है, उतना आत्मभाव कम होता जाता है। क्योंकि बड़ा शरीर हमारे पास है जिससे हम अपने को एक कर लेते हैं। आपका मकान, आपके मकान की दीवारें आपके शरीर का हिस्सा हैं। आपकी कार आपके बड़े हुए पैर हैं। आपका हवाई जहाज आपके बड़े हुए पैर हैं। आपको पता हो या न पता हो, आपका रेडियो आपका बड़ा हुआ कान है। आपका टेलिविजन आपकी बड़ी हुई आंख है। तो आज हमारे पास जितना बड़ा शरीर है। उतना महावीर के वक्त में किसी के पास नहीं था। इसलिए आज हमारी मुसीबत भी ज्यादा है। तो जो आदमी अपने शरीर को अपना मानता है, वह अपने मकान को भी अपना मानेगा। दुख बढ़ जाएंगे। जितना बड़ा शरीर होगा हमारा, उतने हमारे दुख बढ़ जाएंगे क्योंकि उतनी मुसीबतें बढ़ जाएंगी।

कभी आपने ख्याल किया है, आपकी कार को खरोंच लग जाए तो करीब-करीब आपकी चमड़ी को लग जाती है। शायद एक दफे चमड़ी पर भी लग जाए तो उतनी तकलीफ नहीं होती जितनी कार को लग जाने से होती है। कार आपकी चमकदार चमड़ी बन गई है। वह आपका आवरण है, आपके बाहर। शरीर, महावीर कहते हैं इसकी जरा सी भी मालकियत अगर हुई तो मालकियत बढ़ती जाएगी। और मालकियत का कोई अंत नहीं है। आज नहीं कल चांद पर झगड़ा खड़ा होने वाला है कि वह किसका है। अभी तो पहुंचे हैं हम इसलिए इतनी दिक्कत नहीं है। लेकिन आज नहीं कल झगड़ा खड़ा होने वाला है कि चांद किसका है? अगर रूस और अमरीका में इतना संघर्ष था चांद पर पहले पहुंचने के लिए तो वह सिर्फ वैज्ञानिक प्रतियोगिता ही नहीं थी, उसमें गहरी मालकियत है। पहला झंडा अमरीका का गड़ गया है वहां। आज नहीं कल किसी दिन अंतर्राष्ट्रीय अदालत में यह मुकदमा होगा ही कि चांद किसका है। पहले कौन मालिक बना? इसलिए रूस के वैज्ञानिक चांद की चिंता कम कर रहे हैं और मंगल पर पहुंचने की कोशिश में लग गए हैं। क्योंकि चांद पर किसी भी दिन झगड़ा खड़ा होने ही वाला है, वह मालकियत अब उनकी है नहीं।

इस मालकियत का अंत क्या है? इसका प्रारंभ कहां से होता है? इसका प्रारंभ होता है, शरीर के पास हम जब मालकियत खड़ी करते हैं, तभी विस्तार शुरू हो जाता है। विस्तार का कोई अंत नहीं है। और जितना विस्तार होता है उतने हमारे दुख बढ़ जाते हैं क्योंकि महावीर कहते हैं--आनंद को वही उपलब्ध होता है जो मालिक ही नहीं है। जो अपने शरीर का भी मालिक नहीं है। जो मालकियत करता ही नहीं। कायोत्सर्ग का अर्थ

है: मैं उतने पर ही हूं, जितने पर मेरी जानने की क्षमता का फैलाव है--वही मैं हूं, बस जानने की क्षमता मैं हूं। ध्यान के बाद इस चरण को रखने का प्रयोजन है, क्योंकि ध्यान आपके जानने की क्षमता का अनुभव है।

ध्यान का अर्थ ही है--वह जो मेरे भीतर ज्ञान है, उसको जानना। जितना ही मैं परिचित होता हूं कांशसेन से, चेतना से, उतना ही मेरा जड़ पदार्थों के साथ जो संबंध है वह विछिन्न होता जाता है और एक घड़ी आती है कि भीतर मैं सिर्फ एक ज्ञान की ज्योति रह जाता हूं।

लेकिन अभी हमारा जोड़ दीये से है--मिट्टी के दीये से। उस ज्ञान की ज्योति से नहीं जो दीये में जलती है। अभी हम समझते हैं कि मैं मिट्टी का दीया हूं। मिट्टी का दीया फूट जाता है तो हम सोचते हैं--मैं मर गया। ऐसे ही घर में अगर मिट्टी का दीया फूट जाए तो हम कहते हैं--ज्योति नष्ट हो गई। लेकिन ज्योति नष्ट नहीं होती सिर्फ विराट आकाश में लीन हो जाती है।

कुछ भी नष्ट तो होता नहीं इस जगत में। जिस दिन हमारे शरीर का दीया फूट जाता है, उस दिन भी जो चेतना की ज्योति है, वह फिर अपनी नई यात्रा पर निकल जाती है। निश्चित ही वह अदृश्य हो जाती है, क्योंकि उसके दृश्य होने के लिए माध्यम चाहिए। जैसे रेडियो आप अपने घर में लगाए हुए हैं, जब आप बंद कर देते हैं तब आप सोचते हैं क्या कि रेडियो में जो आवाजें आ रही थीं, उनका आना बंद हो गया? वे अब भी आपके कमरे से गुजर रही हैं, बंद नहीं हो गईं। जब आप रेडियो ऑन करते हैं तभी वे आना शुरू नहीं हो जाती हैं। जब आप रेडियो ऑन करते हैं तब आप उनको पकड़ना शुरू करते हैं, वे दृश्य होती हैं। वे मौजूद हैं। जब आपका रेडियो बंद पड़ा है तब आपके कमरे से उनकी ध्वनियां निकल रही हैं, लेकिन आपके पास उन्हें पकड़ने का, दृश्य बनाने का कोई उपाय नहीं है। रेडियो आप जैसे ही लगा देते हैं, रेडियो का यंत्र उन्हें दृश्य कर देता है। श्रावण में वे आपके पकड़ में आ जाते हैं।

जैसे ही किसी व्यक्ति का शरीर छूटता है तो चेतना हमारी पकड़ के बाहर हो जाती है। लेकिन नष्ट नहीं हो जाती। अगर हम फिर से उसे शरीर दे सकें तो वह फिर प्रकट हो सकती है। इसलिए इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि वैज्ञानिक आज नहीं कल मरे हुए आदमी को भी पुनरुज्जीवित कर सकेंगे। इसलिए नहीं कि उन्होंने आत्मा को बनाने की कला पा ली है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि वे रेडियो को सुधारने की तरकीब सीख गए हैं। इसलिए नहीं कि उन्होंने आदमी की आत्मा को पकड़ लिया, बल्कि इसलिए कि उन्होंने जो यंत्र बिगड़ गया था उसे फिर इस योग्य बना दिया कि आत्मा उससे प्रकट हो सके।

इसमें बहुत कठिनाई नहीं मालूम होती, यह जल्दी ही संभव हो जाएगा। लेकिन जैसे-जैसे ये चीजें संभव होती जाती हैं, वैसे-वैसे हमारा काया का मोह बढ़ता चला जाता है। अगर आपको मरने से भी बचाया जा सकता है तब तो आप और भी जोर से मानने लगेंगे कि मैं शरीर हूं। क्योंकि शरीर बच जाता है। तो मैं बच जाता हूं। मनुष्य की प्रगति एक तरफ प्रगति है, दूसरी तरफ बड़ा ह्नास है और बड़ा पतन है। एक तरफ हमारी समझ बढ़ती जाती है, दूसरी तरफ हमारी समझ बहुत कम होती चली जाती है। करीक-करीब ऐसा लगता है, हमारी जो समझ बढ़ रही है वह केवल शरीर को आधार मान कर बढ़ती चली जा रही है, उसमें चेतना का कोई आधार नहीं है। इसलिए आदमी आज दुनिया में सर्वाधिक जानता हुआ मालूम पड़ता है फिर भी इससे ज्यादा अज्ञानी समाज खोजना कठिन है।

महावीर जैसे व्यक्ति तो इसको पतन ही कहेंगे, इसको विकास नहीं कहेंगे। वे कहेंगे कि यह पतन है क्योंकि इससे दुख बढ़ा है, आनंद नहीं बढ़ा है। कसौटी क्या है प्रगति की? कि आनंद बढ़ जाए। साधन बढ़ जाते हैं, दुख बढ़ जाता है। हमारा फैलाव बढ़ गया, मालिकियत बढ़ गई, और दुख बढ़ गया। हम अब ज्यादा चीजों पर चिंता करते हैं। महावीर के जमाने में इतनी चीजों पर लोग चिंता नहीं करते थे। अब हमारी चिंताएं बहुत ज्यादा हैं। चिंताएं हमारी बहुत दूर निकल गई हैं। चांद तक के लिए हमारी चिंता है। चिंता हमारी बढ़ गई है, लेकिन वह निश्चित चेतना का हमें कोई अनुभव नहीं रहा। कायोत्सर्ग का अर्थ है: चिंता के जगत से अपना संबंध तोड़ लेना।

कैसे तोड़ेंगे? जब तक आप ध्यान में नहीं उतरेंगे तब तक कायोत्सर्ग की बात आपको मैं समझा रहा हूं, वह ठीक-ठीक ख्याल में नहीं आ सकेगी। लेकिन समझाता हूं, शायद कभी ध्यान में उतरे तो ख्याल में आ जाए। शरीर से कैसे छूटेंगे? तो एक तो निरंतर स्मरण है कि शरीर मैं नहीं हूं, निरंतर स्मरण कि शरीर मैं नहीं हूं। चलते, उठते, बैठते निरंतर स्मरण कि शरीर मैं नहीं हूं। यह निषेधात्मक है, निगेटिव है। लेकिन किसी भी प्रतीति को तोड़ना हो तो जरूरी है। और हम जो भी मान कर बैठते हैं वह प्रतीति होने लगता है। दो में से कुछ एक छोड़ना पड़ेगा। या तो आत्मा मैं नहीं हूं, इस प्रतीति में हमें उतर जाना पड़ेगा, अगर हम--शरीर मैं हूं--इसको गहरा करते हैं; या शरीर मैं नहीं हूं, इसको हम प्रगाढ़ करते हैं तो मैं आत्मा हूं इसका बोध धीरे-धीरे जगना शुरू हो जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने शराब घर में बहुत उदास बैठा है। मित्रों ने पूछा: इतने परेशान क्यों हो? मुल्ला ने कहा: परेशानी यह है कि पत्नी ने आज अल्टीमेटम दे दिया है आखिरी, और कह दिया है कि आज रात तक शराब पीना बंद नहीं किया तो वह मुझे छोड़ कर अपनी मां के घर चली जाएगी। मित्र ने कहा: यह तो बड़ी कठिनाई हुई, यह तो बड़ी मुश्किल हुई। इससे तो तुम बड़ी कठिनाई में पड़ोगे। क्योंकि मित्र ने सोचा कि शराब छोड़ना मुल्ला नसरुद्दीन को भारी कठिनाई होगी।

मुल्ला ने कहा कि तुम समझ नहीं पा रहे हो। कठिनाई तो होगी, आई विल मिस हर वेरी मच, मैं पत्नी की बहुत ज्यादा कमी अनुभव करूंगा उसके जाने से। मित्र ने कहा: मैं तो समझता था कि तुम शराब छोड़ दोगे और कठिनाई अनुभव करोगे। नसरुद्दीन ने कहा: मैंने बहुत सोचा, दो में से कुछ एक ही हो सकता है य तो शराब छोड़ कर मैं कठिनाई अनुभव करूं, या पत्नी को छोड़ कर, कठिनाई अनुभव करूं। फिर मैंने तय किया कि पत्नी को छोड़ कर हर कठिनाई अनुभव करना ठीक है, क्योंकि पत्नी को छोड़ कर कठिनाई को शराब में भुलाया जा सकता है, लेकिन शराब छोड़ कर पत्नी के साथ कुछ भुलावा नहीं, और शराब की ही याद आती है। तो दो में से कुछ एक तय करना ही है।

और एक घटना उसके जीवन में है कि अंततः एक बार पत्नी उसे छोड़ कर ही चली गई। मुल्ला शराब सामने लिए है, अपने घर में बैठा है, अकेला है। एक मित्र आया। न तो शराब पीता है, ढाल कर गिलास में रखी है। बैठा है। मित्र ने कहा: क्या पत्नी के चले जाने का दुख भुलाने की कोशिश कर रहे हो? मुल्ला ने कहा: मैं बड़ी परेशानी में हूं। दुख ही न बचा, भुलाऊं क्या! इसलिए शराब सामने रखे बैठा हूं, पीयूं भी तो क्यों! दुख ही न बचा तो भुलाऊं क्या, यही परेशानी में हूं।

विकल्प हैं, आल्टरनेटिव्स हैं। जिंदगी में प्रतिपल, प्रति कदम विकल्प हैं। क्योंकि जिंदगी बंद है। हमने एक विकल्प चुना हुआ है--शरीर मैं हूं, तो आत्मा को भूलना ही पड़ेगा। अगर आत्मा को स्मरण करना हो तो शरीर मैं हूं, यह विकल्प तोड़ना जरूरी है। और तोड़ने में जरा भी कठिनाई नहीं है, सिर्फ स्मृति को गहरा करने की बात है। आप वही हो जाते हैं जो आप मानते हैं। बुद्ध ने कहा है: विचार ही वस्तुएं बन जाते हैं। विचार ही सघन होकर वस्तुएं बन जाते हैं। शायद आपको कई बार ऐसा अनुभव हुआ हो कि जरा से विचार के परिवर्तन से आपके भीतर सब परिवर्तित हो जाता है।

अमरीका की एक बहुत बड़ी अभिनेत्री थी ग्रेटा गारबो। उसने अपने जीवन संस्मरणों में लिखा है कि एक छोटे से विचार ने मेरे सारे तादात्म्य को, मेरी इमेज को तोड़ दिया। ग्रेटा गारबो एक छोटे से नाईबाड़े में, सैलून में, लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम ही करती थी--जब तक वह बाईस साल की हो गई तब तक। उसे पता ही नहीं था कि वह कुछ और भी हो सकती है और यह तो वह सोच भी नहीं सकती थी कि अमरीका कि श्रेष्ठतम अभिनेत्री हो सकती है। और बाईस साल की उम्र तक जिस लड़की को अपने सौंदर्य का पता न चला हो, अब माना जा सकता है कि कभी पता न चलेगा।

उसने अपनी आत्म-कथा में लिखा है। लेकिन एक दिन क्रांति घटित हो गई। एक आदमी आया और मैं उसकी दाढ़ी पर साबुन लगा रही थी। उसे दो-चार पैसे दाढ़ी पर साबुन लगाने के मिल जाते थे। दिनभर वह

लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाती रहती थी। उस आदमी ने आईने में देख कर कहा: कितनी सुंदर! और ग्रेटा गारबो ने लिखा है कि मैंने पहली दफा जिंदगी में किसी को कहते सुना--कितनी सुंदर! नहीं तो किसी ने कहा ही नहीं था, नाईबाड़े में दाढ़ी पर साबुन लगानेवाली लड़की, कौन फिकर करता है!

और ग्रेटा गारबो ने लिखा है कि मैंने पहली दफा आईने में गौर से देखा, और मेरे भीतर सब बदल गया। मैंने उस आदमी से कहा कि तुम्हारा धन्यवाद, क्योंकि मुझे मेरे सौंदर्य का कोई पता ही न था। तुमने स्मृति दिली दी। उस आदमी ने दुबारा आईने में देखा और ग्रेटा गारबो की तरफ देखा और कहा कि लेकिन, क्या हुआ! जब मैंने कहा तो तू इतनी सुंदर न थी, मैंने तो सिर्फ एक औपचारिक शिष्टाचार के वश कहा, लेकिन अब मैं देखता हूँ तू सुंदर हो गई। वह आदमी एक फिल्म डायरेक्टर था और ग्रेटा गारबो को अपने साथ लेकर गया। ग्रेटा गारबो श्रेष्ठतम सुंदरियों में एक बन गई।

हो सकता था जिंदगी भर दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम ही करती रहती। एक छोटा सा विचार, इमेज, वह जो प्रतिमा थी उसकी अपने मन में, वह बदल गयीं। असली सवाल आपके भीतर आपके तादात्म्य और आपकी प्रतिमा के बदलने का है। आप जन्मों-जन्मों से मान कर बैठे हैं कि शरीर है। बचपन से आपको सिखाया जा रहा है कि आप शरीर हैं। सब तरफ से आपको बहुत भरोसा और विश्वास दिलाया जा रहा है कि आप शरीर हैं। यह आटो-हिप्रोसिस है, यह सिर्फ सम्मोहन है। आप कहेंगे कि सम्मोहन से कहीं इतनी बड़ी घटना घट सकती है? तो मैं आपको एक-दो घटनाएं कहूँ तो शायद ख्याल में आ जाए।

अमेजान में एक कबीला है आदिवासियों का। जो बहुत अनूठा है। जैसा मैंने आपसे पीछे कहा है कि फ्रेंच डाक्टर लोरेन्जो स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवा देता है सिर्फ धारणा बदलने से, सिर्फ यह कहने से कि दर्द तुम्हारा पैदा किया हुआ है। तुम शिथिल हो जाओ और बच्चा पैदा हो जाएगा बिना पीड़ा के। हम यह मान भी सकते हैं कि शायद समझाने बुझाने से स्त्री के मन पर ऐसा भाव पड़ जाता होगा, लेकिन दर्द तो होता ही है। लेकिन क्या आपको कभी कल्पना हो सकती है कि पत्नी को जब बच्चा पैदा होता हो तो पति के पेट में भी दर्द होता है? अमेजान में होता है और अमेजान में जब पत्नी को बच्चा होता है तो एक कोठरी में पत्नी बंद होती है, दूसरी कोठरी में पति बंद होता है। पत्नी नहीं रोती-चिल्लाती, पति रोता-चिल्लाता है! पत्नी को बच्चा होता है, पति को दर्द होता है!

यह हजारों साल से हो रहा है। और जब पहली दफा अमेजान के कबीले में दूसरे जाति के लोग पहुंचे तो वे चकित हो गए कि यह क्या हो रहा है। यह हो क्या रहा है! यह तो भरोसे की बात ही मालूम नहीं पड़ती। लेकिन पता चला कि उनके कबीलों में स्त्रियों को कभी दर्द हुआ ही नहीं। जब दर्द होता है पति को ही होता है, और डाक्टरों ने परीक्षा की और पाया कि वह काल्पनिक नहीं है, दर्द पेट में हो रहा है। सारी अंतड़ियां सिकुड़ी जा रही हैं। जैसा पत्नी के पेट में होता है बच्चे के पैदा होते वक्त, वैसा पति को हो रहा है।

ये सब सम्मोहन हैं, जाति का सम्मोहन। जाति हजारों साल से ऐसा मानती रही, वही हो रहा है। जो हम मानते हैं, वही हो जाता है। पति को दर्द हो सकता है अगर जाति की यह धारणा हो। इसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि हम जीते सम्मोहन में हैं। हम जो मानकर जीते हैं वही सक्रिय हो जाता है। और हमारी चेतना की मानने की क्षमता अनंत है। यही हमारी स्वतंत्रता है, यही मनुष्य की गरिमा है। यही उसका गौरव है। यही उसका गौरव है कि उसकी चेतना की क्षमता इतनी है कि वह जो मान ले वही घटित हो जाता है। अगर आपने मान लिया है कि आप शरीर हैं तो आप शरीर हो गए, और यह सिर्फ आपकी मान्यता है, जस्ट ए बिलीफ। यह सिर्फ आपका भरोसा है। यह सिर्फ आपका विश्वास है।

क्या आपको पता है कि ऐसे कबीले हैं जिनमें स्त्रियां ताकतवर हैं और पुरुष कमजोर हैं! क्योंकि वे कबीले सदा से ऐसे मानते रहे हैं कि स्त्री ताकतवर है, पुरुष कमजोर है। तो जैसे अगर कोई आदमी यहां कमजोरी दिखाए तो आप कहते हैं--कैसा नामर्द। ऐसा उस कबीले में कोई नहीं कह सकता। क्योंकि मर्द का लक्षण यह है

कि वह कमजोरी दिखाए। उस कबीले में अगर स्त्रियां कभी कमजोरी दिखाती हैं तो लोग कहते हैं कि कैसा मर्दों जैसा व्यवहार कर रही है। कमजोरी दिखाते हैं, तो मान्यता है।

आदमी मान्यता से जीनेवाला प्राणी है। और हमारी मान्यता गहरी है कि हम शरीर हैं। यह इतनी गहरी है कि नींद में भी हमें ख्याल रहता है कि हम शरीर हैं। बेहोशी में भी हमें पता रहता है कि हम शरीर हैं। इस मान्यता को तोड़ना कायोत्सर्ग की साधना का पहला चरण है। जो लोग ध्यान तक आए हैं उन्हें तो कठिनाई नहीं पड़ेगी, लेकिन आपको तो बिना ध्यान के समझना पड़ रहा है, इसलिए थोड़ी कठिनाई पड़ सकती है। लेकिन फिर भी पहला सूत्र यह है कि मैं शरीर नहीं हूं। इस सूत्र को अगर गहरा कर लें तो अदभुत परिणाम होने शुरू हो जाते हैं।

उन्नीस सौ आठ में काशी के नरेश के अपेंडिक्स का आपरेशन हुआ। और नरेश ने कह दिया कि मैं किसी तरह की बेहोशी की दवा नहीं लूंगा। क्योंकि मैं होश की साधना कर रहा हूं, इसलिए मैं कोई बेहोशी की दवा नहीं ले सकता हूं। आपरेशन जरूरी था, उसके बिना नरेश बच नहीं सकता था। चिकित्सक मुश्किल में थे। बिना बेहोशी के इतना बड़ा आपरेशन करना उचित न था। लेकिन किसी भी हालत में मौत होनी थी। नरेश मरेगा अगर आपरेशन न होगा इसलिए एक जोखिम उठाना ठीक है कि होश में ही आपरेशन किया जाए। नरेश ने कहा कि सिर्फ मुझे आज्ञा दी जाए कि जब आप आपरेशन करें, तब मैं गीता का पाठ करता रहूं। नरेश गीता पाठ करता रहा। बड़ा आपरेशन था, आपरेशन पूरा हो गया। नरेश हिला भी नहीं। दर्द का तो उसके चेहरे पर कोई पता न चला।

जिन छह डाक्टरों ने वह आपरेशन किया वे चकित हो गए। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा है हम हैरान हो गए। और हमने नरेश से पूछा कि हुआ क्या? तुम्हें दर्द पता नहीं चला! नरेश ने कहा कि जब मैं गीता पढ़ता हूं और जब मैं पढ़ता हूं--न हन्यते हन्यमाने शरीरे... शरीर के मरने से तू नहीं मरता है। नैनं छिदन्ति शस्त्राणि... जब शस्त्र तुझे छेद दिए जाएं तो तू नहीं छिदता। तब मेरे भीतर ऐसा भाव जग जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। बस इतना काफी है। जब मैं गीता नहीं पढ़ रहा होता हूं, तब मुझे शक पैदा होने लगता है। वह मेरी मान्यता कि मैं शरीर हूं, पीछे से लौटने लगती है। लेकिन जब मैं गीता पढ़ता होता हूं तब मुझे पक्का ही भरोसा हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। उस वक्त तुम मुझे काट डालो, पीट डालो! मुझे पता भी नहीं चला। तुमने क्या किया है, मुझे पता नहीं चला। क्योंकि मैं उस भाव में डूबा था, जहां मैं जानता हूं कि शरीर छेद डाला जाए तो मैं नहीं छिदता, शरीर जला जाए तो मैं नहीं जलता।

आपके भीतर भी भाव की स्थितियां हैं। आपका मन कोई एक फिक्स्ड, एक थिर चीज नहीं है। उसमें फ्लेक्चुएशंस है, उसमें नीचे ऊपर ज्योति होती रहती है। किसी क्षण में आप बहुत ज्यादा शरीर होते हैं, किसी क्षण में बहुत कम शरीर होते हैं। आप चौबीस घंटे आपके मन की भाव-दशा एक नहीं रहती। जब आप किसी एक सुंदर स्त्री को या सुंदर पुरुष को देख कर उसके पीछे चलने लगते हैं तो आप बहुत ज्यादा शरीर हो जाते हैं। तब आपका फ्लेक्चुएशंस भारी होता है। आप बिल्कुल नीचे उतर आते हैं, "जहां मैं शरीर हूं।"

लेकिन जब आप मरघट पर किसी की लाश जलते देखते हैं तब आपका फ्लेक्चुएशंस बदल जाता है। अचानक मन के किसी कोने में शरीर को जलते देख कर शरीर की प्रतिमा खंडित होती है टूटती है। उन क्षणों को पकड़ना जरूरी है, जब आप बहुत कम शरीर होते हैं। उन क्षणों में यह स्मरण करना बहुत कीमती है कि मैं शरीर नहीं हूं। क्योंकि जब आप बहुत

ज्यादा शरीर होते हैं तब यह स्मरण करना बहुत काम नहीं करेगा, क्योंकि पर्ट इतनी मोटी होती है कि आपके भीतर प्रवेश नहीं कर पाएगी। यह आपको ही जांचना पड़ेगा कि किन क्षणों में आप सबसे कम शरीर होते हैं--यद्यपि कुछ निश्चित क्षण हैं जिनमें सभी कम शरीर होते हैं। वह क्षण आपको कहूं तो वह कायोत्सर्ग में आपके लिए उपयोगी होंगे।

जब भी सूर्य डूबता है या उगता है तब आपके भीतर भी रूपांतरण होते हैं। अब तो वैज्ञानिक इस पर बहुत ज्यादा राजी हो गए हैं कि सुबह जब सूर्य उगता है तब सारी प्रकृति में ही रूपांतरण नहीं होता, आपके

शरीर में भी... क्योंकि आपका शरीर प्रकृति का एक हिस्सा है। तब आकाश ही नहीं बदलता; आपके भीतर का आकाश भी बदलता है। तब पक्षी ही गीत नहीं गाते, तब पृथ्वी ही प्रफुल्लित नहीं हो जाती, तब वृक्ष ही फूल नहीं खिलाते; आपके भीतर वह जो मिट्टी है वह भी प्रफुल्लित हो जाती है। क्योंकि वह उस मिट्टी का हिस्सा है, वह कोई अलग चीज नहीं है। तब सागर में ही आंदोलन, फर्क नहीं पड़ते; आपके भीतर भी जो जल है, उसमें भी फर्क पड़ते हैं।

और आप जानकर हैरान होंगे कि आपके भीतर जो जल है वह ठीक वैसा है जैसा सागर में है। उसमें नमक की उतनी ही मात्रा है जितनी सागर के जल में है। और आपके शरीर में थोड़ा बहुत जल नहीं है कोई पच्चासी प्रतिशत पानी है। वैज्ञानिक अब कहते हैं: जब सागर के पास आपको अच्छा लगता है तो अच्छा लगने का कारण आपके भीतर पच्चासी प्रतिशत सागर का होना है। और वह जो पच्चासी प्रतिशत सागर है आपके भीतर, वह बाहर के विराट सागर से आंदोलित हो जाता है। एक हार्मनी, एक रिजोनेंस, एक प्रतिध्वनि उसमें होनी शुरू हो जाती है। जब आपको जंगल में जाकर हरियाली को देखकर बहुत अच्छा लगता है, तो उसका कारण आप नहीं है, आपके शरीर का कण-कण जंगल की हरियाली रह चुका है। वह रेजोनेंट होता है। वह हरे वृक्ष के नीचे जाकर कंपित होने लगता है। वह उससे संबंधित है, वह उसका हिस्सा है। इसलिए प्रकृति के पास जाकर आपको जितना अच्छा लगता है, उतनी आदमी की बनाई हुई चीजों के पास जाकर अच्छा नहीं लगता। क्योंकि वहां कोई रिजोनेंस पैदा नहीं होता। बम्बई की सीमेंट की सड़क पर उतना अच्छा नहीं लग सकता, जितना सोंधी मिट्टी की गंध आ रही हो और आप मिट्टी पर चल रहे हों और आपके पैर धूल को छू रहो हों। तब आपके शरीर और मिट्टी के बीच एक संगीत प्रवाहित होना शुरू हो जाता है।

जब सुबह सूरज निकलता है तो आपके भीतर भी बहुत कुछ घटित होता है, संक्रमण की बेला है। उसको भारत के लोगों ने संध्या कहा है। संध्या का अर्थ होता है--दि पीरियड ऑफ ट्रांजीशन, बदलाहट का वक्त। बदलाहट के वक्त में आपके भीतर आपकी जो व्यवस्थित धारणाएं हैं उनको बदलना आसान है। बदलाहट के वक्त में व्यवस्थित धारणाओं को बदलना आसान है क्योंकि सब अराजक हो जाता है। भीतर सब बदलाहट हो गई होती है, सब अस्त-व्यस्त हो गया होता है। इसलिए हमने संध्या को स्मरण का क्षण बनाया है।

संध्या- प्रार्थना, भजन, धुन, स्मरण, ध्यान का क्षण है। उस क्षण में आसानी से आप स्मरण कर सकते हैं। सुबह और सांझ कीमती वक्त है। रात्रि बारह बजे, जब रात्रि पूरी तरह सघन हो जाती है और सूर्य हमसे सर्वाधिक दूर होता है, तब भी एक बहुत उपयोगी क्षण है। तांत्रिकों ने उसका बहुत उपयोग किया है। महावीर रात-रातभर जाग कर खड़े रहे। महावीर ने उसका बहुत उपयोग किया। आधी रात जब सूरज आपसे सर्वाधिक दूर होता है तब भी आपकी स्थिति बहुत अनूठी होती है। आपके भीतर सब शांत हो गया होता है, जैसे प्रकृति में सब शांत हो गया होता है। वृक्ष झुक कर सो गए होते हैं, जमीन भी सो गई होती है--सब सो गया होता है, आपके शरीर में भी सब सो गया होता है। इस सोए हुए क्षण का भी आप उपयोग कर सकते हैं। शरीर जिद्द नहीं करेगा, आपके विरोध में, राजी हो जाएगा। जैसे आप कहेंगे--मैं शरीर नहीं हूं तो शरीर नहीं कहेगा कि हूं। शरीर सोया हुआ है। इस क्षण में आप कहेंगे कि मैं शरीर नहीं हूं तो शरीर कोई रेसिस्टेंस, कोई प्रतिरोध खड़ा नहीं करेगा। इसलिए आधी रात का क्षण कीमती रहा है।

या फिर आपके--जब आप रात सोते हैं--जागने से जब आप सोने में जाते हैं, तब आपके भीतर गियर बदलता है। आपने कभी ख्याल किया है कार में गियर बदलते हुए जब आप एक गियर से दूसरे गियर में गाड़ी को डालते हैं तो बीच में न्यूट्रल से गुजरते हैं, उस जगह से गुजरते हैं जहां कोई गियर नहीं होता है, क्योंकि उसके बिना गुजरे आप दूसरे गियर में गाड़ी को डाल नहीं सकते।

तो जब रात आप सोते हैं, और जागने से नींद में जाते हैं तो आपकी चेतना का पूरा गियर बदलता है और एक क्षण को आप न्यूट्रल में, तटस्थ गियर में होते हैं। जहां न आप शरीर होते हैं, न आत्मा। जहां आपकी कोई मान्यता काम नहीं करती। उस क्षण में आप जो भी मान्यता दोहरा लेंगे वह आप में गहरे प्रवेश कर जाएगी।

इसलिए रात सोते वक्त यह दोहराते हुए सोना कि मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ। आप दोहराते रहें, आपको पता न चले कि कब नींद आ गई। आपका दोहराना तभी बंद हो जब अपने से बंद हो जाए। तो शायद उस क्षण के साथ संबंध बैठ जाए, और उस क्षण में और वह क्षण बहुत छोटा है--उस क्षण में अगर यह भाव प्रवेश कर जाए कि मैं शरीर नहीं हूँ, जब आप चेतना रूपांतरित कर रहे हैं तो आपके गहरे अचेतन में चला जाएगा।

अभी रूस में उन्होंने एक शिक्षा की नई पद्धति--हिप्रोपीडिया, नींद में शिक्षा देना, शुरू की। उसमें वे इस बात का प्रयोग कर रहे हैं। इसलिए बहुत पुराने दिनों से लोग प्रभु-स्मरण करते हुए, आत्म-स्मरण करते हुए सोते थे। मैं समझता हूँ, आप नहीं सोते, आप शायद फिल्म की जो कहानी देख आए हैं, उसको दोहराते हुए सोते हैं। उस क्षण भी आप दोहरा रहे हैं वह आपके भीतर गहरा चला जाएगा। तो अगर आप गलत दोहरा रहे हैं तो आप आत्महत्या कर रहे हैं। आपको पता नहीं कि आप क्या कर रहे हैं।

हिप्रोपीडिया में रूस में आज कोई लाखों विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। रेडियो स्टेशन से ठीक वक्त पर उन सबको सूचना मिलती है कि वे दह बजे सो जाएं। जैसे ही वे दस बजे सो जाते हैं, दस बजकर पंद्रह मिनट पर उनके कान के पास तकिए में लगा हुआ यंत्र उन्हें सूचना देना शुरू कर देता है। जो भी उन्हें सिखाना है--अगर उन्हें फ्रेंच भाषा सिखनी है तो फ्रेंच भाषा की सूचनाएं शुरू हो जाती हैं। और वैज्ञानिक चकित हुए हैं कि जागने में हम जो चीज तीन साल में सिखा सकते हैं वह सोने में तीन सप्ताह में सिखा सकते हैं।

और बहुत जल्द दुनिया में क्रांति घटित हो जाएगी और बच्चे स्कूल में दिन में न पढ़ कर रात में ही जाकर सो जाया करेंगे। दिन भर खेल सकते हैं, एक अर्थ में अच्छा होगा क्योंकि बच्चों का खेल छिन जाने से भारी नुकसान हुए हैं। वे उनको वापस मिल जाएंगे। या रात आपके घर में भी वे सो सकते हैं, स्कूल में जाने की कोई जरूरत न होगी। उनको वहां भी शिक्षा दी जा सकती है, वह कभी-कभी परीक्षा देने स्कूल जा सकते हैं। अभी तक नींद में परीक्षा लेने का कोई उपाय नहीं है, परीक्षा जागने में लेनी पड़ेगी शायद। लेकिन नींद के क्षण बहुत ज्यादा सूक्ष्म रूप से ग्राहक और रिसेप्टिव हैं, इस बात को वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया है।

इसमें भी सर्वाधिक ग्राहक क्षण वह है, जब आप जागने से नींद में बदलते हैं। ठीक इसी तरह सुबह जब आप नींद से जागने में बदलते हैं तब फिर एक ग्राहक क्षण आता है। उस क्षण भी आप स्मरण करते हुए उठें। जब सुबह नींद खुले तब आप स्मरण--पहला स्मरण यह करें कि मैं शरीर नहीं हूँ। आंख बाद में खोलें। कुछ और बाद में सोचें। जैसे ही पता चले कि नींद टूट गई, पहला स्मरण कि मैं शरीर नहीं हूँ। और ध्यान रहे, अगर आप रात आखिरी स्मरण यही किए हैं कि मैं शरीर नहीं हूँ, तो सुबह अपने-आप यह पहला स्मरण बन जाएगा कि मैं शरीर नहीं हूँ।

क्योंकि चित्त का जो लोग अध्ययन करते हैं वे कहते हैं--रात का आखिरी विचार सुबह का पहला विचार होता है। आप अपनी जांच करेंगे तो आपको पक्का पता चल जाएगा कि रात का आखिरी विचार सुबह का पहला विचार होता है। क्योंकि जहां से आप विचार को छोड़ कर सो जाते हैं, विचार वहीं प्रतीक्षा करता रहता है। सुबह जब आप जागते हैं वह फिर आप पर सवारी कर लेता है। जिस विचार को आप रात छोड़ कर सो गए हैं वह सुबह आपका पहला विचार बनेगा। अब अकसर आप क्रोध, लोभ के किसी विचार को रात छोड़ कर सो जाते हैं; सुबह से वह फिर आप पर सवारी कर लेता है।

यह बहुत ज्यादा सेंसेटिव, संवेदनशील क्षण है--सूर्य की बदलाहट या आपकी चेतना की बदलाहट। बीमारी से जब आप स्वस्थ हो रहे हों या स्वास्थ्य से जब आप अचानक बीमार हो गए हों, अगर रास्ते पर आप जा रहे हों और कार का एकदम से एक्सीडेंट हो जाए तो आप उस क्षण का उपयोग कर सकते हैं। अगर कार आपकी एकदम टकरा गई हो अचानक, तो उस वक्त आपके भीतर इतना परिवर्तन होता है, चेतना इतने जोर से झटके से बदलती है कि अगर आप उस वक्त स्मरण कर लें कि मैं शरीर नहीं हूँ, तो वर्षों स्मरण करने से जो नहीं होगा, वह एक स्मरण करने से हो जाएगा। लेकिन जब आपकी कार टकराती है तब आपको एकदम ख्याल

आता है कि मरा, मैं शरीर हूँ, मर गए। एक्सीडेंट्स का, दुर्घटनाओं का उपयोग किया जा सकता है। मैं शरीर नहीं हूँ यह आपके भीतर गहरा जिस भांति भी बैठ सके, वह सब प्रयोग करने जैसे हैं। तो कायोत्सर्ग की पहली घटना घटती है। लेकिन वह नकारात्मक है। इतना काफी नहीं है कि मैं शरीर नहीं हूँ।

दूसरा विधायक अनुभव भी जरूरी है कि मैं आत्मा हूँ। इस विधायक अनुभव को भी स्मरण रखना कीमती है। इसको स्मरण रखने के भी क्षण हैं। इस स्मरण को रखने के भी संक्रमण काल हैं। इस स्मरण को गहरा करने का भी आपके भीतर अवसर और मौका है। कब? जैसे आप संभोग करने के बाद वापस लौट रहे हैं। जब आप संभोग के बाद वापस लौट रहे होते हैं—तो आप जान कर हैरान होंगे—उस वक्त आप सबसे कम शरीर हो जाते हैं। और कामवासना के बाद वापस लौटते हैं, तब आप सिर्फ फ्रस्ट्रेशन और विषाद में होते हैं। और ऐसा लगता है—व्यर्थ, भूल, गलती, अपराध में गए। न जाते तो बेहतर। यह ज्यादा देर नहीं टिकेगी बात। घड़ी

दो घड़ी में आप अपनी जगह वापस आ जाएंगे। लेकिन संभोग के क्षण के बाद शरीर को इतने झटके लगते हैं कि उसके बाद आपको, शरीर नहीं हूँ यह प्रतीति, और मैं आत्मा हूँ यह प्रतीति करने का अदभुत मौका है।

तंत्र ने इसका पूरा उपयोग किया है। इसलिए आप, अगर आप कोई तंत्र से थोड़ा भी परिचित रहा है तो वह जान कर हैरान होगा कि तंत्र ने संभोग का भी उपयोग किया है ध्यान के लिए। क्योंकि संभोग के बाद जितने गहरे में यह बात मन में उठाई जा सकती है कि मैं आत्मा हूँ, उतनी किसी और क्षण में उठानी बहुत मुश्किल है। क्योंकि उस वक्त शरीर टूट गया होता है, शरीर की आकांक्षा बुझ गई होती है, शरीर के साथ तादात्म्य जोड़ने का भाव मर गया होता है। यह ज्यादा देर नहीं टिकेगा। और अगर आपकी आदत मजबूत हो गई है, तो आपको पता ही नहीं चलेगा। तो अक्सर लोग संभोग के बाद चुपचाप सो जाएंगे। सोने के सिवाय उन्हें कुछ नहीं सूझेगा। लेकिन संभोग के बाद का क्षण बहुत कीमती हो सकता है। लेकिन हमें तो ख्याल भी नहीं रहता है कि हम भूल करते हैं, अपराध करते हैं।

मैंने सुना है कि वेटिकन के पोप ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि ईसाइयत में एक सौ तैंतालीस पाप हैं—निंदित पाप। ऐसा माना है। हजारों पत्र वेटिकन के पोप के पास पहुंचे कि हमें पता ही नहीं था कि इतने पाप हैं, कृपा करके पूरी सूची भेजें। वेटिकन का पोप बहुत हैरान हुआ। इतने लोग क्यों उत्सुक हैं सूची के लिए? मुल्ला नसरुद्दीन ने भी उसको पत्र लिखा। उसने सच्ची बात लिख दी। उसने लिखा कि जब से तुम्हारा वक्तव्य पढ़ा, तब से मुझे ऐसा लग रहा है कि कितना हम चूकते रहे। इतने पाप हमने किए ही नहीं। दो-चार पाप करके ही अपनी जिंदगी गुजार रहे हैं। जल्दी से भेजो, जिंदगी बिल्कुल अर्थहीन मालूम पड़ रही है, जब से यह सुना कि एक सौ तैंतालीस पाप हैं। कितना हम मिस कर गए, कितना हम चूक गए, और जिंदगी थोड़ी बची है।

आदमी का जो मन है, वह ऐसा ही है। आपको खबर लगे कि एक सौ तैंतालीस पाप हैं तो आप भी घर जाकर सोचेंगे, गिनती करेंगे। कितने दो-चार ही पांच गिनती में आते हैं। बहुत बड़े पापी हुए तो दस अंगुलियां काफी पड़ेंगी। एक सौ तैंतालीस! चूक गए, जिंदगी बेकार गई, खो गया मौका। इतने हो सकते थे और नहीं किए।

मुल्ला जिस दिन मर रहा था, पुरोहित ने उससे कहा कि अब क्षमा मांग ले परमात्मा से, पश्चाताप कर। मुल्ला ने कहा: क्या खाक पश्चाताप करूं! मैं पश्चाताप यह कर रहा हूँ कि जो पाप मैंने नहीं किए, कर ही लिए होते तो अच्छा था। क्योंकि जब माफी ही मांगनी थी तो एक के लिए मांगी कि दस के लिए मांगी, क्या फर्क पड़ता है! फिर तुम कह रहे हो परमात्मा दयालु है। अगर वह दयालु है तो एक भी माफ कर देता, दस भी माफ कर देता। हम नाहक परेशान हुए। माफी मांगनी ही पड़ेगी। वह दयालु भी है, निश्चित दयालु है। हम नाहक चूके। पूरे ही कर लेते। तो मैं पछता रहा हूँ—मुल्ला ने कहा—जरूर पछता रहा हूँ, लेकिन उन पापों के लिए, जो मैंने नहीं किए, उन पापों के लिए नहीं, जो मैंने किए।

मरते वक्त आदमी पछताता है उन पापों के लिए जो उसने नहीं किए। लेकिन किसी भी पाप को करने के बाद का जो क्षण है वह बड़ा उपयोगी है। अगर आपने क्रोध किया है, तो क्रोध के बाद का जो क्षण है उसका

उपयोग करें कायोत्सर्ग के लिए। उस वक्त आसान होगा आपको मानना कि मैं आत्मा हूं। उस क्षण शरीर से दूर हटना आसान होगा। अगर शराब पी ली है और सुबह हैंगओवर चल रहा है, तो उस वक्त आसान होगा मानना कि मैं आत्मा हूं। उस वक्त शरीर के प्रति एक तरह की ग्लानि का भाव और शरीर अपराधों में ले जाता है, इस तरह का भाव सहज, सरलता से पैदा हो जाता है। जब बीमारी से उठ रहे हैं तब बहुत आसान होगा मानना। अस्पताल में जाकर खड़े हो जाएं, वहां मानना बहुत आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। जायें, वहां विचित्र-विचित्र प्रकार से लोग लटके हुए हैं, किसी की टांगे बंधी हुई हैं, किसी की गर्दन बंधी हुई है। वहां खड़े होकर पूछें कि मैं शरीर हूं? तो शरीर हूं तो वह जो सामने लटके हुए रूप दिखाई पड़ेंगे वही हूं। वहां आसान होगा। मरघट पर जाकर आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। जिन क्षणों में भी आसानी लगे स्मरण करने की मैं आत्मा हूं, उनको चूकें मत, स्मरण करें। दो स्मरण जारी रखें--निषेध रूप से--मैं शरीर नहीं हूं; विधायक रूप से--मैं आत्मा हूं।

और तीसरी आखिरी बात--शरीर का जो तत्व है, वह उसी तत्व से संबंधित है जो हमारे बाहर फैला हुआ है। मेरी आंख में जो प्रकाश है, वह सूरज का; मेरे हाथों में जो मिट्टी है, वह पृथ्वी की; मेरे शरीर में जो पानी है, वह पानी का; इसका स्मरण रखें। और निरंतर समर्पित करते रहें जो जिसका है उसी का है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे आपके भीतर वह चेतना अलग खड़ी होने लगेगी जो शरीर नहीं है। और वह चेतना खड़ी हो जाए और ध्यान के साथ उस चेतना का प्रयोग हो, तो आप कायोत्सर्ग कर पाएंगे।

जब ध्यान अपनी प्रगाढ़ता में आएगा, परिपूर्णता में, और शरीर लगेगा छूटता है, तब आपका मन पकड़ने का नहीं होगा। आप कहेंगे, छूटता है तो धन्यवाद! जाता है तो धन्यवाद! जाए तो जाए, धन्यवाद! इतनी सरलता से जब आप ध्यान में शरीर से अपने को छोड़ने में समर्थ हो जाएंगे, उसी दिन आप मृत्यु के पार और अमृत के अनुभव को उपलब्ध हो जाएंगे। उसके बाद फिर कोई मृत्यु नहीं है। मृत्यु शरीर मोह का परिणाम है। अमृत का बोध शरीर मुक्ति का परिणाम है। इसे महावीर ने बारहवां तप कहा है और अंतिम। क्योंकि इसके बाद कुछ करने को शेष नहीं रह जाता। इसके बाद वह पा लिया जिसे पाने के लिए दौड़ थी; वह जान लिया जिसे जानने के लिए प्राण प्यासे थे। वह जगह मिल गई जिसके लिए इतने रास्तों पर यात्रा की थी। वह फूल खिल गया, वह सुगंध बिखर गई, वह प्रकाश जल गया जिसके लिए अनंत-अनंत जन्मों तक का भटकाव था।

कायोत्सर्ग विस्फोट है, एक्सप्लोजन है। लेकिन उसके लिए भी तैयारी करनी पड़ेगी। उसके लिए यह तैयारी करनी पड़े और ध्यान के साथ उस तैयारी को जोड़ देना पड़ेगा। ध्यान और कायोत्सर्ग जहां मिल जाते हैं, वहीं व्यक्ति अमृत को पा लेता है।

ये महावीर के बारह तप मैंने कहे। एक ही सूत्र पूरा हो पाया, कहां अभी एक ही पंक्ति पूरी ही पाई, उसकी दूसरी पंक्ति बाकी है। लेकिन उसमें ज्यादा कहने को नहीं है। दूसरी पंक्ति इसकी बाकी है। महावीर ने कहा है: "धर्म मंगल है। कौन सा धर्म? अहिंसा, संयम, तप। और जो इस धर्म को उपलब्ध हो जाते हैं, जो इस धर्म में लीन हो जाते हैं, उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं।" यह दूसरा हिस्सा इस सूत्र का है।

सुनते वक्त आपको ख्याल में भी न आया होगा कि महावीर जब यह कह रहे हैं कि उसे देवता भी नमस्कार करते हैं, तो कोई बहुत बड़ी क्रांतिकारी बात कह रहे हैं। महावीर के इस वक्तव्य के पहले आदमी देवताओं को नमस्कार करता रहा। इसके पहले कभी किसी देवता ने आदमी को नमस्कार नहीं किया था। यह पहला वक्तव्य है संगृहीत, जिसमें महावीर ने कहा है कि ऐसे मनुष्य को देवता भी नमस्कार करते हैं। सारा वैदिक धर्म देवताओं को नमस्कार करने वाला है। आपके सुनते वक्त रोज यह दोहराया गया है, आपको ख्याल में न आया होगा कि इसमें कोई खास बात है, कोई बड़ा क्रांति का सूत्र है। महावीर जिस समाज में पैदा हुए थे, वह सब देवताओं को नमस्कार करने वाला समाज था। उस समाज में महावीर का यह कहना कि ऐसे मनुष्य को

देवता भी नमस्कार करते हैं, बड़ा क्रांतिकारी वक्तव्य था। हम भी सोचेंगे कि देवता क्यों नमस्कार करेंगे मनुष्य को! देवता तो मनुष्य से ऊपर हैं।

महावीर नहीं कहते। महावीर कहते हैं--मनुष्य से ऊपर कोई भी नहीं है। इसलिए मनुष्य की डिगनिटी और मनुष्य की गरिमा और गौरव का ऐसा वक्तव्य दूसरा नहीं है। महावीर कहते हैं--मनुष्य से उपर कुछ भी नहीं है, लेकिन साथ ही वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य से नीचे जाने वाला भी और कोई नहीं है। मनुष्य इतने नीचे जा सकता है कि पशु उससे ऊपर पड़ जाएं और मनुष्य इतने ऊपर जा सकता है कि देवता उससे नीचे पड़ जाएं। मनुष्य इतना गहरा उतर सकता है पाप में कि कोई पशु न कर सके। सच तो यह है पशु क्या पाप करते हैं! आदमी को

देखकर पशु के पाप का कोई अर्थ नहीं रह जाता। तो मनुष्य नर्क तक नीचे उतर सकता है और स्वर्ग तक ऊपर जा सकता है। देवता पीछे पड़ जाएं, वह वहां खड़ा हो सकता है; पशु आगे निकल जाएं, वहां वह उतर सकता है। मनुष्य की यह जो संभावना है, यह संभावना विराट है। इस संभावना में पाप भी आ जाते, पुण्य भी आ जाते; नर्क भी आ जाता, स्वर्ग भी आ जाता है।

लेकिन देवताओं के ऊपर क्या स्थिति बनती होगी? तो महावीर ने कहा है: नरक मनुष्य के दुखों का फल है, स्वर्ग मनुष्य के पुण्यों का फल है। लेकिन नर्क भी चुक जाता है, पाप का फल भी समाप्त हो जाता है; स्वर्ग भी चुक जाता है, पुण्य का फल भी समाप्त हो जाता है। सिर्फ एक जगह कभी समाप्त नहीं होती, जब कोई आदमी पाप और पुण्य दोनों के पार उठ जाता है। पुण्य भी कर्म है, पाप भी कर्म है। पाप से भी बंधन लगता है--महावीर ने कहा है--वह बंधन लोहे की जंजीरों जैसा है। पुण्य से भी बंधन लगता है, वह सोने के आभूषणों जैसा है। लेकिन दोनों में बंधन है। महावीर कहते हैं: वह मनुष्य जो पाप और पुण्य दोनों के पार उठ जाता है, जो कर्म के ही पार उठ जाता है और स्वभाव में ठहर जाता है, वह देवताओं के भी ऊपर उठ जाता है। वह स्वर्ग के भी ऊपर उठ जाता है।

तो आपने दो शब्द सुने हैं महावीर तक, और अनेक धर्म दो शब्दों का उपयोग करते हैं--स्वर्ग और नरक। महावीर एक नये शब्द का भी उपयोग करते हैं--मोक्ष। तीन शब्द उपयोग करते हैं महावीर। नरक वे कहते हैं उस चित्त दशा को जहां पाप का फल मिलता; स्वर्ग वे कहते हैं उस चित्त दशा को जहां पुण्य का फल मिलता; मोक्ष वे कहते हैं उस चेतना की अवस्था को जहां सब कर्म समाप्त हो जाते हैं और चेतना अपने स्वभाव में लीन हो जाती है। निश्चित ही वैसी चित्त दशा में देवता भी प्रणाम करें मनुष्य को, तो आश्चर्य नहीं। अभी तो पशु भी हंसते हैं।

मैंने एक मजाक सुनी है। मैंने सुना है कि तीसरा महायुद्ध हो गया, सब समाप्त हो गया। कहीं कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती। एक घाटी में एक गुफा से एक बंदर बाहर निकला, उसके पीछे उसकी प्रेयसी बाहर निकली। वह बंदर उदास बैठ गया और उसने अपनी प्रेयसी से कहा: क्या सोचती हो, शैल वी स्टार्ट इट आल ओवर अगेन? क्या हम आदमी को अब फिर पैदा करें, फिर से दुनिया शुरू करें? डार्विन कहता है आदमी बंदरों से आया है। कहीं तीसरा महायुद्ध हो जाए तो बंदरों को चिंता फिर होगी कि क्या करें? लेकिन वह बंदर कहता है, शैल वी स्टार्ट इट आल ओवर अगेन? क्या फिर करने जैसा भी है या अब रहने दें?

सुना है मैंने कि जब डार्विन ने कहा कि आदमी बंदरों से पैदा हुआ, है तो आदमी ही नाराज नहीं हुए, बंदर भी बहुत नाराज हुए। क्योंकि बंदर आदमी को सदा अपने अंश की तरह देखते रहे हैं, जो रास्ते से भटक गया। लेकिन जब डार्विन ने कहा--यह इवोल्यूशन है, विकास है, तो बंदर नाराज हुए। उन्होंने कहा: इसको हम विकास कभी नहीं मानते। यह आदमी हमारा पतन है। लेकिन बंदरों की खबर हम तक नहीं पहुंची। आदमी बहुत नाराज हुए, क्योंकि आदमी मानते थे, हम ईश्वर से पैदा हुए हैं और डार्विन ने कहा बंदर से, तो आदमी को बहुत दुख लगा। उसने कहा: यह कैसे हो सकता है, हम ईश्वर के बेटे! लेकिन बंदर भी बहुत नाराज हुए।

निश्चित ही आदमी को देख कर बंदर भी हंसते होंगे। आदमी जैसा है वैसा तो पशु भी उसको प्रणाम न करेंगे। महावीर तो आदमी की उस स्थिति की बात कर रहे हैं जैसा वह हो सकता है; जो उसकी अंतिम संभावना है, जो उसमें प्रकट हो सकता है। जब उसका बीज पूरा खिल जाए और फूल बन जाए तो निश्चित ही देवता भी उसे नमस्कार करते हैं। इतना ही।

तीन सौ चौदह सूत्र हैं। एक सूत्र तो पूरा हुआ। लेकिन इस सूत्र को मैंने इस भांति बात की है कि अगर एक सूत्र भी आपकी जिंदगी में पूरा हो जाए तो बाकी तीन सौ तेरह की कोई जरूरत नहीं है। सागर की एक बूंद भी हाथ में आ जाए तो सागर का सब राज हाथ में आ जाता है और एक बूंद के रहस्य को भी कोई समझ ले तो पूरे सागर का भी रहस्य समझ में आ जाता है। दूसरी बूंद को तो इसलिए समझना पड़ता है कि एक बूंद से नहीं समझ पड़ा तो फिर दूसरी बूंद को समझना पड़ता है, फिर तीसरी बूंद को समझना पड़ता है। लेकिन एक बूंद भी अगर पूरी समझ में आ जाए तो सागर में जो भी है वह एक बूंद में छिपा है।

इस एक सूत्र में मैंने कोशिश की कि धर्म की पूरी बात आपके ख्याल में आ जाए। ख्याल में शायद आ भी जाए, लेकिन ख्याल कितनी देर टिकता है! धुएं की तरह खो जाता है। ख्याल से काम नहीं चलेगा। जब बात ख्याल में हो, तभी जल्दी करना कि किसी तरह वह कृत्य बन जाए, जीवन बन जाए--जल्दी करना। कहते हैं कि जब लोहा गर्म हो तभी चोट कर देना चाहिए। अगर थोड़ा भी लोहा गर्म हुआ हो, उस पर चोट करना शुरू कर देना चाहिए। समझने से कुछ समझ में न आएगा, इतना ही समझ में आ जाए कि समझने से करने की कोई दिशा खुलती है, तो पर्याप्त है।

अभी रुकेंगे पांच मिनट, आखिरी दिन का कीर्तन करेंगे। फिर हम जाएंगे।

धर्म: एक मात्र शरण (धम्मसूत्र: 2)

जरामरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।

धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं॥

जरा और मरण में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।

अरस्तू ने कहा है कि यदि मृत्यु न हो, तो जगत में कोई धर्म भी न हो। ठीक ही है उसकी बात, क्योंकि अगर मृत्यु न हो, तो जगत में कोई जीवन भी नहीं हो सकता मृत्यु केवल मनुष्य के लिए है।

इसे थोड़ा समझ लें।

पशु भी मरते हैं, पौधे भी मरते हैं, लेकिन मृत्यु मानवीय घटना है। पौधे मरते हैं, लेकिन उन्हें अपनी मृत्यु का कोई बोध नहीं है। पशु भी मरते हैं, लेकिन अपनी मृत्यु के संबंध में चिंतन करने में असमर्थ हैं।

तो मृत्यु केवल मनुष्य की ही होती है, क्योंकि मनुष्य जानकर मरता है जानते हुए मरता है। मृत्यु निश्चित है, ऐसा बोध मनुष्य को है। चाहे मनुष्य कितना ही भुलाने की कोशिश करे, चाहे कितना ही अपने को छिपाए, पलायन करे, चाहे कितने ही आयोजन करे सुरक्षा के, भुलावे के; लेकिन हृदय की गहराई में मनुष्य जानता है कि मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं है।

मृत्यु के संबंध में पहली बात तो यह ख्याल में ले लेनी चाहिए कि मनुष्य अकेला प्राणी है जो मरता है। मरते तो पौधे और पशु भी हैं, लेकिन उनके मरने का भी बोध मनुष्य को होता है, उन्हें नहीं होता। उनके लिए मृत्यु एक अचेतन घटना है। और इसलिए पौधे और पशु धर्म को जन्म देने में असमर्थ हैं।

जैसे ही मृत्यु चेतन बनती है, वैसे ही धर्म का जन्म होता है। जैसे ही यह प्रतीति साफ हो जाती है कि मृत्यु निश्चित है, वैसे ही जीवन का सारा अर्थ बदल जाता है; क्योंकि अगर मृत्यु निश्चित है तो फिर जीवन की जिन क्षुद्रताओं में हम जीते हैं उनका सारा अर्थ खो जाता है।

मृत्यु के संबंध में दूसरी बात ध्यान में ले लेनी जरूरी है कि वह निश्चित है। निश्चित का मतलब यह नहीं कि आपकी तारीख, घड़ी निश्चित है। निश्चित का मतलब यह कि मृत्यु की घटना निश्चित है। होगी ही। लेकिन यह भी अगर बिल्कुल साफ हो जाए कि मृत्यु निश्चित है, होगी ही। तो भी आदमी निश्चित हो सकता है। जो भी निश्चित हो जाता है, उसके बावत हम निश्चित हो जाते हैं, चिंता मिट जाती है।

मृत्यु के संबंध में तीसरी बात महत्वपूर्ण है, और वह यह है कि मृत्यु निश्चित है, लेकिन एक अर्थ में अनिश्चित भी है। होगी तो, लेकिन कब होगी, इसका कोई भी पता नहीं। होना निश्चित है, लेकिन कब होगी, इसका कोई भी पता नहीं है। निश्चित है और अनिश्चित भी। होगी भी, लेकिन तय नहीं है, कब होगी। इससे चिंता पैदा होती है। जो बात होनेवाली है, और फिर भी पता न चलता हो, कब होगी; अगले क्षण हो सकती है, और वर्षों भी टल सकती है। विज्ञान की चेष्टा जारी रही तो शायद सदियां भी टल सकती हैं। इससे चिंता पैदा होती है।

कीर्कगार्ड ने कहा है, मनुष्य की चिंता तभी पैदा होती है जब एक अर्थ में कोई बात निश्चित भी होती है और दूसरे अर्थ में निश्चित नहीं भी होती है। तब उन दोनों के बीच में मनुष्य चिंता में पड़ जाते हैं।

मृत्यु की चिंता से ही धर्म का जन्म हुआ है। लेकिन मृत्यु की चिंता हमें बहुत सालती नहीं है। हमने उपाय कर रखे हैं—जैसे रेलगाड़ी में दो डिब्बों के बीच में बफर होते हैं, उन बफर की वजह से गाड़ी में कितना ही धक्का लगे, डिब्बे के भीतर लोगों को उतना धक्का नहीं लगता। बफर धक्के को झेल लेता है। कार में स्प्रिंग होते हैं, रास्ते के गड्ढों को स्प्रिंग झेल लेते हैं। अंदर बैठे हुए आदमी को पता नहीं चलता।

आदमी ने अपने मन में भी बफर लगा रखे हैं जिनकी वजह से वह मृत्यु का जो धक्का अनुभव होना चाहिए, उतना अनुभव नहीं हो पाता। मृत्यु और आदमी के बीच में हमने बफर का इंतजाम कर रखा है। वे बफर बड़े अदभुत हैं, उन्हें समझ लें तो फिर मृत्यु में प्रवेश हो सके, और यह सूत्र मृत्यु के संबंध में है।

मृत्यु से ही धर्म की शुरुआत होती है, इसलिए यह सूत्र मृत्यु के संबंध में है।

कभी आपने ख्याल न किया हो, जब भी हम कहते हैं, मृत्यु निश्चित है तो हमारे मन में लगता है, प्रत्येक को मरना पड़ेगा। लेकिन उस प्रत्येक में आप सम्मिलित नहीं होते—यह बफर है, जब भी हम कहते हैं, हर एक को मरना होगा, तब भी हम बाहर होते हैं, संख्या के भीतर नहीं होते। हम गिनने वाले होते हैं, मरनेवाले कोई और होते हैं। हम जानने वाले होते हैं, मरने वाले कोई और होते हैं।

जब भी मैं कहता हूं, मृत्यु निश्चित है, तब भी ऐसा नहीं लगता कि मैं मरूंगा। ऐसा लगता है, हर कोई मरेगा एनानीमस, उसका कोई काम नहीं है, हर आदमी को मरना पड़ेगा। लेकिन मैं उसमें सम्मिलित नहीं होता हूं। मैं बाहर खड़ा हूं, मैं मरते हुए लोगों की कतार देखता हूं। लोगों को मरते हुए देखता हूं, जन्मते देखता हूं। मैं गिनती करता रहता हूं, मैं बाहर खड़ा रहता हूं, मैं सम्मिलित नहीं होता। जिस दिन मैं सम्मिलित हो जाता हूं, बफर टूट जाता है।

बुद्ध ने मरे हुए आदमी को देखा और बुद्ध ने पूछा: क्या सभी लोग मर जाते हैं? सारथी ने कहा: सभी लोग मर जाते हैं। बुद्ध ने तत्काल पूछा: क्या मैं भी मरूंगा? हम नहीं पूछते।

बुद्ध की जगह हम होते, इतने से हम तृप्त हो जाते कि सब लोग मर जाते हैं। बात खत्म हो गई। लेकिन बुद्ध ने तत्काल पूछा: क्या मैं भी मर जाऊंगा?

जब तक आप कहते हैं, सब लोग मर जाते हैं, जब तक आप बफर के साथ जी रहे हैं। जिस दिन आप पूछते हैं, क्या मैं भी मर जाऊंगा? यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है कि सब मरेंगे कि नहीं मरेंगे। सब न भी मरते हों और मैं मरता होऊ, तो भी मृत्यु मेरे लिए उतनी ही महत्वपूर्ण है।

क्या मैं भी मर जाऊंगा? लेकिन यह प्रश्न भी दार्शनिक की तरह भी पूछा जा सकता है और धार्मिक की तरह भी पूछा जा सकता है। जब हम दार्शनिक की तरह पूछते हैं, तब फिर बफर खड़ा हो जाता है। तब हम मृत्यु के संबंध में सोचने लगते हैं, "मैं" के संबंध में नहीं। जब धार्मिक की तरह पूछते हैं। तो मृत्यु महत्वपूर्ण नहीं रह जाती, मैं महत्वपूर्ण हो जाता हूं।

सारथी ने कहा कि किस मुंह से मैं आपसे कहूं कि आप भी मरेंगे। क्योंकि यह कहना अशुभ है। लेकिन झूठ भी नहीं बोल सकता हूं, मरना तो पड़ेगा ही, आपको भी। तो बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो, क्योंकि मैं मर ही गया। जो बात होने ही वाली है वह हो ही गई। अगर यह निश्चित ही है तो तीस, चालीस, पचास साल बाद क्या फर्क पड़ता है! बीच के पचास साल, मृत्यु जब निश्चित ही है तो आज हो गई, वापस लौटा लो।

वे जाते थे एक युवक महोत्सव में भाग लेने, यूथ फेस्टिवल में भाग लेने। रथ बीच से वापस लौटा लिया। उन्होंने कहा: अब मैं बूढ़ा हो ही गया। अब युवक महोत्सव में भाग लेने का कोई अर्थ न रहा। युवक महोत्सव में तो वे ही लोग भाग ले सकते हैं, जिन्हें मृत्यु का कोई पता नहीं है। और फिर मैं मर ही गया। सारथी ने कहा: अभी तो आप जीवित हैं, मृत्यु तो बहुत दूर है। यह बफर है। बुद्ध का बफर टूट गया, सारथी का नहीं टूटा। सारथी कहता है कि मृत्यु तो बहुत दूर है।

हम सभी सोचते हैं मृत्यु होगी लेकिन सदा बहुत दूर, कभी-ध्यान रहे, आदमी के मन की क्षमता है--जैसे हम एक दीये का प्रकाश लेकर चलें, तो दो, तीन, चार कदम तक प्रकाश पड़ता है ऐसे ही मन की क्षमता है। बहुत दूर रख दें किसी चीज को तो फिर मन की पकड़ के बाहर हो जाता है। मृत्यु को हम सदा बहुत दूर रखते हैं। उसे पास नहीं रखते। मन की क्षमता बहुत कम है। इतने दूर की बात व्यर्थ हो जाती है। एक सीमा है हमारे चिंतन की। दूर जिसे रख देते हैं, वह बफर बन जाता है।

हम सब सोचते हैं, मृत्यु तो होगी; लेकिन बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी यह नहीं सोचता कि मृत्यु आसन्न है। कोई ऐसा नहीं सोचता कि मृत्यु अभी होगी; सभी सोचते हैं, कभी होगी। जो भी कहता है, कभी होगी, उसने बफर निर्मित कर लिया। वह मरने के क्षण तक भी सोचता रहेगा कभी... कभी, और मृत्यु को दूर हटाता रहेगा। अगर बफर तोड़ना हो तो सोचना होगा, मृत्यु अभी, इसी क्षण हो सकती है।

यह बड़े मजे की बात है कि बच्चा पैदा हुआ और इतना बूढ़ा हो जाता है कि उसी वक्त मर सकता है। हर बच्चा पैदा होते ही काफी बूढ़ा हो जाता है कि उसी वक्त चाहे तो मर सकता है। बूढ़े होने के लिए कोई सत्तर-अस्सी साल रुकने की जरूरत नहीं है। जन्मते ही हम मृत्यु के हकदार हो जाते हैं। जन्म के क्षण के साथ ही हम मृत्यु में प्रविष्ट हो जाते हैं।

जन्म के बाद मृत्यु समस्या है और किसी भी क्षण हो सकती है। जो आदमी सोचता है, कभी होगी, वह अधार्मिक बना रहेगा। जो सोचता है, अभी हो सकती है, इसी क्षण हो सकती है, उसके बफर टूट जाएंगे। क्योंकि अगर मृत्यु अभी हो सकती है तो आपकी जिंदगी का पूरा पर्सपेक्टिव, देखने का परिप्रेक्ष्य बदल जाएगा। किसी को गाली देने जा रहे थे, किसी की हत्या करने जा रहे थे, किसी का नुकसान करने जा रहे थे, किसी से झूठ बोलने जा रहे थे, किसी की चोरी कर रहे थे, किसी की बेईमानी कर रहे थे; मृत्यु अभी हो सकती है तो नये ढंग से सोचना पड़ेगा कि झूठ का कितना मूल्य है अब, बेईमानी का कितना मूल्य है अब। अगर मृत्यु अभी हो सकती है, तो जीवन का पूरा का पूरा ढांचा दूसरा हो जाएगा।

बफर हमने खड़े किए है। पहला कि मृत्यु सदा दूसरे की होती है, इट इज आलवेज दी अदर हू डाइज। कभी भी आप नहीं मरते, कोई और मरता है। दूसरा, मृत्यु बहुत दूर है, चिंतनीय नहीं है। लोग कहते हैं, अभी तो जवान हो, अभी धर्म के संबंध में चिंतन की क्या जरूरत है? उनका मतलब आप समझते हैं? वे यह कह रहे हैं, अभी जवान हो, अभी मृत्यु के संबंध में चिंतन की क्या जरूरत है?

धर्म और मृत्यु पर्यायवाची हैं। ऐसा कोई व्यक्ति धार्मिक नहीं हो सकता, जो मृत्यु को प्रत्यक्ष अनुभव न कर रहा हो, और ऐसा कोई व्यक्ति, जो मृत्यु को प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हो, धार्मिक होने से नहीं बच सकता।

तो दूर रखते हैं हम मृत्यु को। फिर अगर मृत्यु न दूर रखी जा सके, और कभी-कभी मृत्यु बहुत निकट आ जाती है, जब आपका कोई निकटजन मरता है तो मृत्यु बहुत निकट आ जाती है। करीब-करीब आपको मार ही डालती है। कुछ न कुछ तो आपके भीतर भी मर जाता है। क्योंकि हमारा जीवन बड़ा सामूहिक है। मैं जिसे प्रेम करता हूं, उसकी मृत्यु में मैं थोड़ा तो मरूंगा ही। क्योंकि उसके प्रेम ने जितना मुझे जीवन दिया था, वह तो टूट ही जाएगा, उतना हिस्सा तो मेरे भीतर खण्डित हो ही जाएगा, उतना तो भवन गिर ही जाएगा।

आपको ख्याल में नहीं है। अगर सारी दुनिया मर जाए और आप अकेले रह जाएं तो आप जिंदा नहीं होंगे; क्योंकि सारी दुनिया ने आपके जीवन को जो दान दिया था वह तिरोहित हो जाएगा। आप प्रेत हो जाएंगे जीते-जीते, भूत-प्रेत की स्थिति हो जाएगी।

तो जब मृत्यु बहुत निकट आ जाती है तो ये बफर काम नहीं करते और धक्का भीतर तक पहुंचता है। तब हमने सिद्धांतों के बफर तय किए हैं। तब हम कहते हैं, आत्मा अमर है। ऐसा हमें पता नहीं है। पता हो, तो मृत्यु तिरोहित हो जाती है; लेकिन पता उसी को होता है, जो इस तरह के सिद्धांत बनाकर बफर निर्मित नहीं करता।

यह जटिलता है। वही जान पाता है कि आत्मा अमर है, जो मृत्यु का साक्षात्कार करता है। और हम बड़े कुशल हैं, हम मृत्यु का साक्षात्कार न हो, इसलिए आत्मा अमर हैं; ऐसे सिद्धांत को बीच में खड़ा कर लेते हैं।

यह हमारे मन की समझावन है। यह हम अपने मन को कह रहे हैं कि घबराओ मत, शरीर ही मरता है, आत्मा नहीं मरती; तुम तो रहोगे ही, तुम्हारे मरने का कोई कारण नहीं है। महावीर ने कहा है, बुद्ध ने कहा है, कृष्ण ने कहा है--सबने कहा है कि आत्मा अमर है। बुद्ध कहें, महावीर कहें, कृष्ण कहें, सारी दुनिया कहे, जब तक आप मृत्यु का साक्षात्कार नहीं करते हैं, आत्मा अमर नहीं है। तब तक आपको भली-भांति पता है कि आप मरेंगे, लेकिन धक्के को रोकने के लिए बफर खड़ा कर रहे हैं।

शास्त्र, सिद्धांत, सब बफर बन जाते हैं। ये बफर न टूटें तो मौत का साक्षात्कार नहीं होता। और जिसने मृत्यु का साक्षात्कार नहीं किया, वह अभी ठीक अर्थों में मनुष्य नहीं है, वह अभी पशु के तल पर जी रहा है।

महावीर का यह सूत्र कहता है: "जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।"

इसके एक-एक शब्द को हम समझें।

"जरा और मरण के तेज प्रवाह में।" इस जगत में कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, परिवर्तित हो रही है--प्रतिपल। और इस प्रतिपल परिवर्तन में क्षीण हो रही है, जरा-जीर्ण हो रही है। आप जो महल बनाए हैं, वह कोई हजार साल बाद खण्डहर होगा, ऐसा नहीं, वह अभी खंडहर होना शुरू हो गया है। नहीं तो हजार साल बाद भी खण्डहर हो नहीं पाएगा। वह अभी जीर्ण हो रहा है, अभी जरा को उपलब्ध हो रहा है।

इसे हम ठीक से समझ लें, क्योंकि यह भी हमारी मानसिक तरकीबों का एक हिस्सा है कि हम प्रक्रियाओं को नहीं देखते, केवल छोरों को देखते हैं।

एक बच्चा पैदा हुआ, तो हम एक छोर देखते हैं कि बच्चा पैदा हुआ। एक बूढ़ा मरा तो हम एक छोर देखते हैं कि एक बूढ़ा मरा, लेकिन मरना और जन्मना, एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं; यह हम कभी नहीं देखते। हम छोर देखते हैं, प्रोसेस नहीं, प्रक्रिया नहीं। जब कि वास्तविक चीज प्रक्रिया है। छोर तो प्रक्रिया के अंग मात्र हैं। हमारी आंख केवल छोर को देखती है--शुरू देखती है, अंत देखती है, मध्य नहीं देखती। और मध्य ही महत्वपूर्ण है। मध्य से ही दोनों जुड़े हैं। बच्चा पैदा हुआ, यह एक प्रक्रिया है--पैदा होना। मरना एक प्रक्रिया है, जीना एक प्रक्रिया है। ये तीनों प्रक्रियाएं एक ही धारा के हिस्से हैं।

इसे हम ऐसा समझें कि बच्चा जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन मरना भी शुरू हो गया। उसी दिन जरा ने उसको पकड़ लिया, उसी दिन जीर्ण होना शुरू हो गया, उसी दिन बूढ़ा होना शुरू हो गया। फूल खिला और कुम्हलाना शुरू हो गया। खिलना और कुम्हलाना हमारे लिए दो चीजें हैं, फूल के लिए एक ही प्रक्रिया है।

अगर हम जीवन को देखें, तो वहां चीजें टूटी हुई नहीं है, सब जुड़ा हुआ है, सब संयुक्त है। जब आप सुखी हुए, तभी दुख आना शुरू हो गया। जब आप दुखी हुए, तभी सुख आना शुरू हो गया। जब आप बीमार हुए, तभी स्वास्थ्य की शुरुआत; जब आप स्वस्थ हुए, तभी बीमारी की शुरुआत। लेकिन हम तोड़कर देखते हैं। तोड़कर देखने में आसानी होती है। क्यों आसानी होती है? क्योंकि तोड़ कर देखने में बड़ी जो आसानी होती है वह यह कि अगर हम स्वास्थ्य और बीमारी को एक ही प्रक्रिया समझें, तो वासना के लिए बड़ी कठिनाई हो जाएगी। अगर हम जन्म और मृत्यु को एक ही बात समझें, तो कामना किसकी करेंगे, चाहेंगे किसे? हम तोड़ लेते हैं दो में। जो सुखद है, उसे अलग कर लेते हैं; जो दुखद है, उसे अलग कर लेते हैं मन में। जगत में तो अलग नहीं हो सकता। अस्तित्व तो एक है। विचार में अलग कर लेते हैं। फिर हमें आसानी हो जाती है।

जीवन को हम चाहते हैं, मृत्यु को हम नहीं चाहते। सुख को हम चाहते हैं, दुख को हम नहीं चाहते। और यही मनुष्य की बड़ी से बड़ी भूल है। क्योंकि जिसे हम चाहते हैं और जिसे हम नहीं चाहते, वे एक ही चीज के दो हिस्से हैं। इसलिए हम जिसे चाहते हैं उसके कारण ही हम उसको निमंत्रण देते हैं। और जिसे हम नहीं चाहते हैं, उसे हटाते हैं मकान के बाहर। और हम उसके साथ उसे भी विदा कर देते हैं, जिसे हम चाहते हैं।

आदमी की वासना टिक पाती है चीजों को खंड-खंड बांट लेने से।

अगर हम जगत की समग्र प्रक्रिया को देखें, तो वासना को खड़े होने का कोई उपाय नहीं है। तब अंधेरा और प्रकाश, दुख और सुख, शांति और अशांति, जीवन और मृत्यु एक ही चीज के हिस्से हो जाते हैं।

महावीर कहते हैं--"जरा और मरण के तेज प्रवाह में।"

जरा का अर्थ है--प्रत्येक चीज जीर्ण हो रही है। एक क्षण भी कोई चीज बिना जीर्ण हुए नहीं रह सकती। होने का अर्थ ही जीर्ण होना है। अस्तित्व का अर्थ ही परिवर्तन है। तो बच्चा भी क्षीण हो रहा है, जीर्ण हो रहा है। महल भी जीर्ण हो रहा है। यह पृथ्वी भी जीर्ण हो रही है। यह सौर परिवार भी जीर्ण हो रहा है। यह हमारा जगत भी जीर्ण हो रहा है। और एक दिन प्रलय में लीन हो जाएगा, जो भी हो रहा है।

महावीर ने बड़ी अदभुत बात कही है--महावीर कहत हैं--जो भी है उसे हम अधूरा

देखते हैं। इसलिए कहते हैं--"है"। अगर हम ठीक से देखें तो हम कहेंगे, जो भी है, वह साथ में हो रहा है, साथ में नहीं भी हो रहा है। दोनो चीजें एक साथ चल रही हैं। जैसे जन्म और मौत दे पैर हों और जीवन दोनों पैरों पर चल रहा हो। जो भी है वह हो भी रहा है और साथ ही नहीं भी हो रहा है। जिर्ण भी हो रहा है।

इसलिए महावीर की बात थोड़ी जटिल मालूम पड़ेगी, क्योंकि हमें फिर भाषा में हमें आसानी पड़ती है। यह कहना आसान होता है कि फलां आदमी बच्चा है, फलां आदमी जवान है, फलां आदमी बूढ़ा है। लेकिन यह हमारा विभाजन ऐसे ही है जैसे हम कहें, यह गंगा हिमालय की, यह गंगा मैदानों की, यह गंगा सागर की; लेकिन गंगा एक है। वह जो पहाड़ पर बहती है, वही मैदान में बहती है। वह जो मैदान में बहती है, वही सागर में गिरती है।

बच्चा, जवान, बूढ़ा, एक धारा है; एक गंगा है। बांट के हमें आसानी होती है। हमारी आसानी के कारण हम असत्य को पकड़ लेते हैं। ध्यान रखें हमारे अधिक असत्य आसानियों के कारण, कन्वीनिेंस के कारण पैदा होते हैं। सुविधापूर्ण हैं, इसलिए असत्य को पकड़ लेते हैं। सत्य असुविधापूर्ण मालूम होता है। सत्य कई बार तो इतना इनकन्वीनिेंस, इतना असुविधापूर्ण मालूम होता है कि उसके साथ जीना मुश्किल हो जाए, हमें अपने को बदलना ही पड़े।

अगर आप बच्चे में बूढ़े को देख सकें और जन्म में मृत्यु को देख सकें तो बड़ा असुविधापूर्ण होगा। कब मनाएंगे खुशी और कब मनाएंगे दुख? कब बजाएंगे बैंड बाजे, और कब करेंगे मातम? बहुत मुश्किल हो जाएगा। बहुत कठिन हो जाएगा। सभी चीजें अगर संयुक्त दिखाई पड़ें तो हमारे जीने की पूरी व्यवस्था हमें बदलनी पड़ेगी। जीने की जैसी हमारी व्यवस्था है, वह बटी हुई कैटेगरीज में, कोटियों में है।

तो हम जरा को नहीं देखते जन्म में। न देखने का एक कारण यह भी है कि यह तेज है प्रवाह। यह जो प्रक्रिया है, बहुत तेज है। इसको देखने की बड़ी सूक्ष्म आंख चाहिए उसको महावीर तत्व-दृष्टि कहते हैं। अगर गति बहुत तेज हो तो हमें दिखाई नहीं पड़ती। अगर पंखा बहुत तेज चले तो फिर उसकी पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़तीं। इतना तेज भी चल सकता है पंखा कि हमें यह दिखाई ही न पड़े कि वह चल रहा है। बहुत तेज चले तो हमें मालूम पड़े कि ठहरा हुआ है। जितनी चीजें हमें ठहरी हुई मालूम पड़ती हैं, वैज्ञानिक कहते हैं, उनकी तेज गति के कारण--गति इतनी तेज है कि हम उसे अनुभव नहीं कर पाते। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, उसका एक-एक अणु बड़ी तेज गति से घूम रहा है; लेकिन वह हमें पता नहीं चलता, क्योंकि गति इतनी तेज है कि हम उसे पकड़ नहीं पाते। हमारी गति को समझने की सीमा है। अणु की गति हम नहीं पकड़ पाते, वह बहुत सूक्ष्म है। जरा की गति और भी सूक्ष्म और तीव्र है।

जरा का अर्थ है--हमारे भीतर वह जो जीवन धारा है, वह प्रतिपल क्षीण हो रही है। हम जिसे जीवन कहते हैं, वह प्रतिपल बुझ रहा है। हम जिसे जीवन का दीया कहते हैं, उसका तेल प्रतिपल चुक रहा है।

ध्यान की सारी प्रक्रियाएं इस चुकते हुए तेल को देखने की प्रक्रियाएं हैं। यह जरा में प्रवेश है।

अभी जो आदमी मुस्कुरा रहा है, उसे पता भी नहीं कि उसकी मुस्कुराहट जो उसके होठों तक आई है--हृदय से होठ तक उसने यात्रा की है--जब ओंठ पर मुस्कुराहट आ गई है, उसे पता भी नहीं कि हृदय में शायद दुख और आंसू घने हो गए हों। इतनी तीव्र है गति। जब आप मुस्कुराते हैं, तब तक शायद मुस्कुराहट का कारण भी जा चुका होता है। इतनी तीव्र है गति कि जब आपको अनुभव होता है कि आप सुख में हैं, तब तक सुख तिरोहित हो चुका होता है। वक्त लगता है आपको अनुभव करने में। और जीवन की जो धारा है--जिसको महावीर कहते हैं--सब चीज जरा को उपलब्ध हो रही है, वह इतनी त्वरित है कि उसके बीच के हमें गैप, अंतराल दिखाई नहीं पड़ते।

एक दीया जल रहा है। कभी आपने ख्याल किया कि आपको दीये की लौ में कभी अंतराल दिखाई पड़ते हैं? लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि दीये की लौ प्रतिपल धुआं बन रही है। नवा तेल नई लौ पैदा कर रहा है। पुरानी लौ मिट रही है, नई लौ पैदा हो रही है। पुरानी लौ विलीन हो रही है, नई लौ जन्म रही है। दोनों के बीच में अंतराल है। खाली जगह है। जरूरी है, नहीं तो पुरानी मिट न सकेगी; नई पैदा न हो सकेगी। जब पुरानी मिटती है और नई पैदा होती है, तो उन दोनों के बीच जो खाली जगह है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ती। वह इतनी तेजी से चलता है कि हमें लगता है कि लौ--वही लौ जल रही है।

बुद्ध ने कहा है कि सांझ हम दीया जलाते हैं तो सुबह हम कहते हैं, उसी दीये को हम बुझा रहे हैं, जिसे सांझ जलाया था। उस दीये को हम कभी नहीं बुझा सकते सुबह, जिसे हमने सांझ जलाया था। वह लौ तो लाख दफा बुझ चुकी जिसको हमने सांझ जलाया था। करोड़ दफा बुझ चुकी। जिस लौ को हम सुबह बुझाते हैं, उससे तो हमारी कोई पहचान ही न थी; सांझ तो वह थी ही नहीं।

तो बुद्ध ने कहा है, हम उसी लौ को नहीं बुझाते। उसी लौ की धारा में आई हुई लौ को बुझाते हैं। संतति को बुझाते हैं। वह लौ अगर पिता थी, तो हजार, करोड़ पीढ़ियां बीत गईं रात भर में। उसकी अब जो संतति है, सुबह इन बारह घंटे के बाद, उसको हम बुझाते हैं।

लेकिन इसे अगर हम फैला कर देखें तो बड़ी हैरानी होगी।

मैंने आपको गाली दी। जब तक आप मुझे गाली लौटाते हैं, यह गाली उसी आदमी को नहीं लौटती, जिसने आपको गाली दी थी। लौ को तो समझना आसान है कि सांझ जलाई थी और सुबह... लेकिन यह जो जरा की धारा है, इसको समझना मुश्किल है। आप उसी को गाली वापस नहीं लौटा सकते, जिसने आपको गाली दी थी। वहां भी जीवन क्षीण हो रहा है, वहां भी लौ बदलती जा रही है। जिसने आपको गाली दी थी, व आदमी अब नहीं है, उसकी संतति है। उसी धारा में एक नई लौ है। हम कुछ भी लौटा नहीं सकते। लौटाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिसको लौटाना है, वह वही नहीं है, बदल गया।

हैराक्लाइटस ने कहा है: एक ही नदी में दुबारा उतरना असंभव है। निश्चित ही असंभव है। क्योंकि दुबारा जब आप उतरते हैं, वह पानी बह गया जिसमें आप पहली बार उतरे थे। हो सकता है, अब सागर में हो वह पानी। हो सकता है, अब बादलों में पहुंच गया हो। हो सकता है, फिर गंगोत्री पर गिर रहा हो। लेकिन अब उस पानी से मुलाकात आसान नहीं है दुबारा। और अगर हो भी जाए तो आपके भीतर की भी जीवनधारा बदल रही है। अगर वह पानी दुबारा भी मिल जाए, तो जो उतरा था नदी में, वह आदमी दुबारा नहीं मिलेगा।

दोनों नदी हैं। नदी भी एक नदी है। आप भी एक नदी हैं, आप भी एक प्रवाह हैं--सारा जीवन एक प्रवाह है। इसको महावीर कहते हैं--"जरा।" इसका एक छोर जन्म है, और दूसरा छोर मृत्यु है। जन्म में ज्योति पैदा

होती है, मृत्यु में उसकी संतति समाप्त होती है। इस बीच के हिस्से को हम जीवन कहते हैं, जो कि क्षण-क्षण बदल रहा है। यह प्रवाह तेज है। यह प्रवाह इतना तेज है कि इसमें पैर रोक कर खड़ा होना भी मुश्किल है। हालांकि हम सब खड़े होने की कोशिश करते हैं। जब हम एक बड़ा मकान बनाते हैं, तो हम इस ख्याल से नहीं बनाते कि कोई और इसमें रहेगा। या कभी कोई ऐसा आदमी है, जो मकान बनाता है, कोई और इसमें रहेगा? नहीं, आप अपने लिए मकान बनाते हैं। लेकिन सदा आपके बनाए मकानों में कोई और रहता है। आप अपने लिए धन इकट्ठा करते हैं, लेकिन सदा आपका धन किन्हीं और हाथों में पड़ता है। जीवन भर जो आप चेष्टा करते हैं, उस चेष्टा में कहीं भी पैर थमाने को कोई उपाय नहीं है। कोई और, कोई और जहां हम खड़ा होने की चेष्टा कर रहे थे, खड़ा होता है! वह भी खड़ा नहीं रह पाता!

यह बड़े मजे की बात है कि हम सब दुसरों के लिए जीते हैं।

एक मित्र को मैं जानता हूं। बूढ़े आदमी हैं अब तो। पंद्रह वर्ष पहले जब मुझे मिले थे, तो उनका लड़का एम ए करके युनिवर्सिटी के बाहर आया था। तो उन्होंने मुझे कहा कि अब मेरी और तो कोई महत्वाकांक्षा नहीं है; मेरे लड़के को ठीक से नौकरी मिल जाए, इसकी शादी हो जाए, यह व्यवस्थित हो जाए। उनका लड़का व्यवस्थित हो गया, नौकरी मिल गई। उनके लड़के को अब तीन बच्चे हैं।

अभी कुछ दिन पहले उनका लड़का मेरे पास आया। उसने कहा: मेरी तो कोई ऐसी बड़ी आकांक्षा नहीं है; बस ये मेरे बच्चे ठीक से पढ़-लिख जाएं, इनकी ठीक से नौकरी लग जाए, ये व्यवस्थित हो जाएं।

इसको मैं कहता हूं--उधार जीना। बाप इनके लिए जीए, ये अपने बेटों के लिए जी रहे हैं, इनके बेटे भी अपने बेटों के लिए जीएंगे।

जीना कभी हो ही नहीं पाता। जीना कभी हो ही नहीं पाता, लेकिन तब सारी स्थिति बड़ी असंगत, बेतुकी मालूम पड़ती है। अगर मैं इन सज्जन से कहूं तो उनको दूख लगेगा। मैंने सुन लिया और उनसे कुछ कहा नहीं। अगर मैं इनसे कहूं कि बड़ी अजीब बात है, तुम्हारे बेटे भी यही करेंगे कि अपने बेटों के जीने के लिए।

मगर इस सारे उपद्रव का अर्थ क्या है? कोई आदमी जी नहीं पाता, और सब आदमी उनके लिए चेष्टा करते हैं जो जीएंगे, और वे भी किन्हीं और के जीने के लिए चेष्टा करेंगे। इस सारे... इस सारी कथा का अर्थ क्या है?

कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता। अर्थ मालूम पड़ेगा भी नहीं, क्योंकि जिस प्रवाह में हम खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं, न हम खड़े हो सकते हैं, न हमारे बेटे खड़े हो सकते हैं, न उनके बेटे खड़े हो सकते हैं; न हमारे बाप खड़े हुए, न उनके बाप कभी खड़े हुए। जिस प्रवाह में हम खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं, उसमें कोई खड़ा हो ही नहीं सकता। इसलिए एक ही उपाय है कि हम सिर्फ आशा कर सकते हैं कि हमारे बेटे खड़े हो जाएंगे, जहां हम खड़े नहीं हुए। इतना तो साफ हो जाता है कि हम खड़े नहीं हो पा रहे, फिर भी आशा नहीं छूटती। चलो, हमारे खून का हिस्सा, हमारे शरीर का टुकड़ा कोई खड़ा हो जाएगा। लेकिन जब आप खड़े नहीं हो पाए, तो ध्यान रखें, कोई भी खड़ा नहीं हो पाएगा। असल में जहां खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं, वह जगह खड़े होने की है ही नहीं।

महावीर कहते हैं: "जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र शरण है।"

इस प्रवाह में जो शरण खोजेगा, उसे शरण कभी भी नहीं मिलेगी। इस प्रवाह में कोई शरण है ही नहीं। यह सिर्फ प्रवाह है।

तो महावीर के दो हिस्से ठीक से समझ लें।

एक--जिसे हम जीवन कहते हैं, उसे महावीर जरा और मरण का प्रवाह कहते हैं। उसमें अगर खड़े होने की कोशिश की तो आप खड़े होने की कोशिश में ही मिट जाएंगे। खड़े नहीं हो पाएंगे। उसमें खड़े होने का उपाय ही नहीं है। और ऐसा मत सोचना, जैसा कि कुछ नासमझ सोचते चले जाते हैं--जैसा कि नेपोलियन कहता है कि

मेरे शब्दकोश में असंभव जैसा कोई शब्द नहीं है। यह बचकानी बात है। यह बहुत बुद्धिमान आदमी नहीं कह सकता। और नेपोलियन बहुत बुद्धिमान हो भी नहीं सकता। क्योंकि वह कहता है कि मेरे शब्दकोश में असंभव जैसी कोई बात नहीं है। लेकिन इस कहने के दो साल बाद ही वह जेलखाने में पड़ा हुआ है--हेलना के।

सोचता था सारे जगत को हिला दूं। सोचता था, पहाड़ों को कह दूं हट जाओ, तो उन्हें हटना पड़े। लेकिन हेलना के द्विप में एक दिन सुबह घूमने निकला है और एक घासवाली औरत पगडंडी से चली आ रही है। नेपोलियन के सहयोगी ने चिल्ला कर कहा कि ओ घसियारिन, रास्ता छोड़ दे। लेकिन घसियारिन ने रास्ता नहीं छोड़ा। क्योंकि हारे हुए नेपोलियन के लिए कौन घसियारिन रास्ता छोड़ने को तैयार हो सकती है? और मजा यह है कि अंत में नेपोलियन को ही रास्ता छोड़ कर नीचे उतर जाना पड़ा और घसियारिन रास्ते से गुजर गई।

यह वही नेपोलियन है जिसने कुछ ही दिन पहले कहा था कि मेरे शब्दकोश में असंभव जैसा कोई शब्द नहीं है। अगर मैं आल्प्स पर्वत से कहूं कि हट, तो उसे हटना पड़े। वह एक घसियारिन को भी नहीं कह सकता कि हट।

महावीर कहते हैं कि कुछ असंभव है। बुद्धिमान आदमी वह नहीं है, जो कहता है कि कुछ भी असंभव नहीं है। न ही वह आदमी बुद्धिमान है जो कहता है, सभी कुछ असंभव है। बुद्धिमान आदमी वह है, जो ठीक से परख कर लेता है कि क्या असंभव है और क्या संभव है। बुद्धिमान आदमी वह है, जो जानता है क्या असंभव है और क्या संभव है।

एक बात निश्चित रूप से असंभव है कि जरा-मरण के तेज प्रवाह में कोई शरण नहीं है। यह असंभव है। इसमें पैर जमा कर खड़े हो जाने का कोई भी उपाय नहीं है। इस असंभव के लिए जो चेष्टा करते हैं, वे मूढ़ हैं।

असंभव का मतलब यह नहीं होता है कि थोड़ी कोशिश करेंगे तो हो जाएगा। असंभव का मतलब यह नहीं होता कि संकल्प की कमी है, इसलिए नहीं हो रहा है। असंभव का मतलब यह नहीं होता है कि ताकत कम है, इसलिए नहीं हो रहा है। असंभव का मतलब होता है--स्वभावतः जो हो नहीं सकता, प्रकृति के नियम में जो नहीं हो सकता।

महावीर यह नहीं कहते कि आकाश में उड़ना असंभव है। जो कहते हैं, वे गलत साबित हो गए। और महावीर जैसे आदमी कभी नहीं कहेंगे कि आकाश में उड़ना असंभव है। जब पशु-पक्षी उड़ लेते हैं, तो आदमी उड़ ले; इसमें कोई बहुत असंभावना नहीं है। जब पशु-पक्षी उड़ लेते हैं, तो आदमी भी कोई इंतजाम कर लेगा और उड़ लेगा। चांद पर पहुंच जाना, महावीर नहीं कहेंगे असंभव है। क्योंकि चांद और जमीन के बीच फासला कितना ही हो, आखिर फासला ही है। फासले पूरे किए जा सकते हैं।

इस संबंध में ईसाइयत कमजोर है; ईसाइयत ने ऐसी बातें असंभव कहीं, जिनको विज्ञान ने संभव करके बता दिया और उसके कारण पश्चिम में धर्म की प्रतिष्ठा गिर गई। धर्म की प्रतिष्ठा गिरने का कारण यह बना कि ईसाइयत ने ऐसे दावे किए थे कि यह हो ही नहीं सकता, वह हो गया। जब हो गया तो फिर ईसाइयत मुश्किल में पड़ गई। लेकिन इस मामले में भारतीय धर्म अति वैज्ञानिक हैं।

महावीर ने ऐसा कोई दावा नहीं किया है, जो विज्ञान किसी दिन गलत कर सके। जैसे यह दावा, महावीर कहते हैं: "जरा मरण के तीव्र प्रवाह में कोई शरण नहीं है।" इसे कभी भी, कोई भी स्थिति में गलत नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह गहरे से गहरा जीवन के नियम का हिस्सा है।

शरण मिल सकती है उसमें, जो स्वयं परिवर्तित न होता हो, जो स्वयं ही परिवर्तित हो रहा है, उसमें शरण कैसी!

शरण का मतलब होता है: आप मेरे पास आए, और आपने कहा कि मुझे शरण दें, दुश्मन मेरे पीछे लगे हैं, मुझे बचाएं। मैं आपको कहता हूं कि ठीक है, मैं आपको आश्वासन देता हूं कि मैं आपको बचाऊंगा। लेकिन मेरे आश्वासन का मतलब तभी हो सकता है, जब मैं कल भी मैं ही रहूं। कल जब मैं ही नहीं रहूंगा, तो दिए गए आश्वासन का कितना मूल्य है? मैं खुद ही बदल रहा हूं, तो मेरे आश्वासन का क्या अर्थ है?

कीर्कगार्ड ने कहा है कि मैं कोई आश्वासन नहीं दे सकता--आई कैन नाट प्रामिस ऐनीथिंग। इसलिए नहीं दे सकता, कि मैं किस भरोसे आश्वासन दूँ, कल सुबह मैं ही मैं रह जाऊंगा, इसका कोई पक्का नहीं। तो जिसने आश्वासन दिया था, वही जब नहीं रहेगा, तो आश्वासन का क्या अर्थ है? जो खुद बदल रहा है, वह क्या आश्वासन दे सकता है? जहां परिवर्तन ही परिवर्तन है, वहां शरण कैसी?

करीब-करीब ऐसा है कि दोपहर है और घनी धूप है, और आप एक वृक्ष की छाया में बैठ गए हैं। लेकिन आपको पता है कि वृक्ष की छाया बदल रही है। थोड़ी देर में यह हट जाएगी। यह वृक्ष की छाया शरण नहीं बन सकती, क्योंकि यह छाया है और बदल रही है, यह परिवर्तित हो रही है।

इस जगत में जहां-जहां हम शरण खोजते हैं, वे सभी कुछ परिवर्तित हो रहे हैं। जिसे हम पकड़ते हैं, वह खुद ही बहा जा रहा है। बहाव को हम पकड़ने की कोशिश करते हैं और उस आश्वासन में जीते हैं, जो खुद बदल रहा है। उसके साथ कैसी शरण संभव हो सकती है?

इसलिए महावीर कहते हैं--"जरा-मरण के तीव्र प्रवाह में कोई भी शरण नहीं है"।

चाहे धन, चाहे यश, चाहे पद, चाहे प्रतिष्ठा, चाहे मित्र, पति-पत्नी, संबंध, पुत्र--सब बहे जा रहे हैं। इस बहाव में, जहां हजार-हजार बहाव हो रहे हैं, जो आदमी सोचता है कि पकड़ कर रुक जाऊँ, ठहर जाऊँ, पैर जमा लूँ, वह आदमी दुख में पड़ेगा। यही दुख हमारे जीवन का नरक है।

किसी के प्रेम को हम सोचते हैं--शरण। सोचते हैं, मिल गई छाया। और किसी का प्रेम हमें बरगद की छाया की तरह घेरे रहेगा। लेकिन सब चीजें बदल रही हैं। कल छाया बदल जाएगी, सुबह छाया कहीं होगी, दोपहर कहीं होगी, सांझ कहीं होगी। फिर छाया ही नहीं बदल जाएगी, आज घना था वृक्ष, कल पतझड़ आएगा, पत्ते ही गिर जाएंगे। कोई छाया न बनेगी। आज वृक्ष जवान था, कल बूढ़ा हो जाएगा। आज वृक्ष फैला था, छाते की तरह आकाश में, कल सूखेगा। और यह सूखना, सिकुड़ना, यह प्रतिपल चल रहा है। तो जो वृक्ष के नीचे बैठा है यह आशा बांध कर कि "मुझे छाया मिल गई, अब मैं एक जगह रह जाऊँ।" उसे आंख नहीं खोलनी चाहिए--पहली शर्त। अगर वह आंख खोलेगा तो कठिनाई में पड़ेगा। उसे अंधा होना चाहिए। और फिर चाहे कितनी ही धूप पड़े, उसे सदा यही व्याख्या करनी चाहिए कि यह छाया है। फिर चाहे कितना ही उलटा हो जाए, वृक्ष में पतझड़ आ जाए, उसे माने ही चलना चाहिए कि फूल खिले हैं, और बसंत की बहार है।

हम सब यही कर रहे हैं। आज जो प्रेम है, कल नहीं होगा। तब हम आंख बंद करके माने चले जाएंगे कि यह प्रेम है। आज जो मित्रता है, कल नहीं होगी, तब भी हम माने चले जाएंगे कि यह मित्रता है। आज जो सुगंध थी, कल दुर्गंध हो जाएगी, तब भी हम माने चले जाएंगे।

आंख बंद करके हमें जीना पड़ता है; क्योंकि जहां हम शरण ले रहे हैं, वहां शरण लेने योग्य कुछ भी नहीं है। और तब आंखें खोलने में डर लगने लगता है। तब हम अपने से ही भयभीत हो जाते हैं। हम किसी चीज को फिर बहुत साफ नहीं देख पाते। क्योंकि डर है कि जो हम मान रहे हैं कहीं ऐसा न हो कि वहां हो ही नहीं। तो फिर हम आंख बंद करके जीने लगते हैं।

हम सब अंधों की तरह जीते हैं, बहरों की तरह जीते हैं। फिर जो है, उसको हम नहीं देखते। जो था, हम माने चले जाते हैं कि वही है और हम उसको मान कर ही व्यवहार किए चले जाते हैं।

यह जो हमारी चित्त दशा है, विक्षिप्त है। लेकिन कारण क्या है? कारण यह नहीं है कि मैंने जिसे प्रेम किया वह आदमी ईमानदार न था, नहीं, यह कारण नहीं है। मैंने जिसे प्रेम किया, वह एक प्रवाह था। ईमानदार और बेईमान का कोई सवाल नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि मैंने जिस पर मैत्री का भरोसा किया, वह भरोसे योग्य न था, नहीं वह एक प्रवाह था। मैंने प्रवाह का भरोसा किया।

चलती हुई, बहती हुई हवाओं पर जो भरोसा करता है, वह कठिनाई में पड़ेगा ही। यह कठिनाई किसी की बेईमानी से पैदा नहीं होती, न किसी के धोखे से पैदा होती है। मेरा तो अनुभव ऐसा है कि इस सारे जगत में निन्यानवे प्रतिशत कठिनाइयां कोई जानकर पैदा नहीं करता प्रवाह से पैदा होती हैं। आदमी बदल जाते हैं और रोक नहीं सकते अपने को बदलने से।

कोई बच्चा कब तक बच्चा रहेगा, जवान होगा ही। निश्चित ही बचपन में उस बच्चे ने मां को जो आश्वासन दिए, वे जवान होकर नहीं दे सकता। बच्चे के जवान होने में ही यह बात छिपी है कि मां की तरह पीठ हो जाएगी, जिसकी तरफ मुंह था। यह हो ही जाएगा। यह बच्चा मां की तरफ ऐसे देखता था जैसे उससे सुंदर इस जगत में कोई भी नहीं, लेकिन एक दिन मां की तरफ पीठ हो जाएगी। कोई और सौंदर्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा, और तब मां को लगेगा कि धोखा हो गया। सभी मांओं को लगता है कि धोखा हो गया। अपना ही लड़का--लेकिन उनको पता नहीं कि उनको जिस पति ने प्रेम किया था, वह भी किसी का लड़का था। वहां भी धोखा हो गया था। अगर वह भी अपनी मां को ही प्रेम करता चला जाता तो उसका पति होने वाला नहीं था।

लड़का जवान होगा, तो मां से जो प्रेम था, वह बदलेगा। छाया हट जाएगी, किसी और पर पड़ेगी, किसी और को घेर लेगी। तब धोखा नहीं हो रहा, सिर्फ हम प्रवाह को प्रेम कर रहे थे, यह जाने बिना कि वह प्रवाह है। हम मानते थे कि कोई थिर चीज है, इसलिए अड़चन हो रही है, इसलिए कठिनाई हो रही है।

आज दस लोग आपको आदर देते हैं आप बड़े आश्वस्त हैं। कल ये दस लोग आपको आदर नहीं देंगे, आप बड़े निराश और दुखी हो जाएंगे। ऐसा नहीं कि ये दस लोग बुरे थे। ये दस लोग प्रवाह थे। प्रवाह बदल जाएंगे। हम आदर देते भी--एक ही आदमी को सदा आदर नहीं दे सकते। हम प्रवाह हैं। हम आदर देते-देते भी ऊब जाते हैं। आदर के लिए भी हमें नया आदमी खोजना पड़ता है।

हम प्रेम भी एक ही आदमी को नहीं दे सकते, हम प्रवाह हैं। हम प्रेम देते-देते भी ऊब जाते हैं। हमें प्रेम के लिए भी नये लोग खोजने पड़ते हैं। हम एक सतत बदलाहट हैं और हम ही बदलाहट है, ऐसा नहीं। हमारे चारों तरफ जो भी है, सब बदलाहट है। अगर हम इस जगत को इसकी बदलाहट में देख सकें, तो हमारे दुखी होने का कोई भी कारण नहीं है। वृक्ष की छाया बदल जाएगी, वृक्ष भी क्या कर सकता है, सूरज बदल रहा है। और सूरज को क्या मतलब है इस वृक्ष की छाया से, और वृक्ष क्या कर सकता है? वर्षा नहीं आएगी, और वर्षा को क्या मतलब है इस वृक्ष से? और वृक्ष क्या कर सकता है कि भारी ताप हुई, सूर्य की आग बरसी, पत्ते सूख गए और गिर गए। क्या मतलब है धूप को इस वृक्ष से? और जो छाया में नीचे बैठा है, इस वृक्ष को क्या प्रयोजन है उस आदमी से कि वह छाया में नीचे बैठा है।

यह सारा का सारा जगत अनंत प्रवाह है। उस प्रवाह में जो भी पकड़ कर शरण खोजता है वह दुख में पड़ जाता है। लेकिन तब क्या कोई शरण है ही नहीं?

एक संभावना यह है कि शरण है ही नहीं, जैसा कि शापनहार जर्मन विचारक ने कहा है कि कोई शरण नहीं है। दुख अनिवार्य है, यह एक दशा है। अगर आदमी ठीक से सोचेगा तो एक विकल्प यह उठता है कि दुख अनिवार्य है, दुख होगा ही। यह बड़ा निराशाजनक है। लेकिन शापनहार कहता है सत्य यही है, हम कर भी क्या सकते हैं। फ्रायड ने पूरे जीवन चिंतन करने के बाद यही कहा कि आदमी सुखी हो नहीं सकता।

क्यों? क्योंकि जहां भी पकड़ता है, वहीं चीजें बदल जाती हैं। और ऐसी कोई चीज नहीं है जो न बदले और आदमी पकड़ ले। शापनहार कहता है कि सब दुख है। सुख सिर्फ आशा है, दुख वास्तविकता है। सुख का एक ही उपयोग है--सुख है तो नहीं, सिर्फ उसकी आशा का एक उपयोग है कि आदमी दुख को झेल लेता है। दुख को झेलने में राहत मिलती है, सुख की आशा से। लगता है, आज नहीं कल मिलेगा, आज नहीं कल मिलेगा; तो आज का दुख झेलने में आसानी हो जाती है! लेकिन सुख है नहीं। क्योंकि सभी कुछ प्रवाह है, सभी कुछ बदला जा रहा

है। आपकी आशाएं कभी पूरी नहीं होंगी क्योंकि आपकी आशाएं ऐसे जगत में पूरी हो सकती है, जहां चीजें बदलती न हों।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

आप जो भी आशाएं करते हैं, वे एक ऐसे जगत की करते हैं, जहां सब चीजें ठहरी हुई हैं। मैं जिसे प्रेम करता हूं तो प्रेम की क्या आशा है, आप जानते हैं? प्रेम की आशा है--अनंत हो, शाश्वत हो, सदा रहे, फिर कभी कुम्हलाए न, कभी मुरझाए न, कभी बदले न। यह आशा एक ऐसे जगत की है, जहां प्रवाह न हो, चीजें सब थिर-थिर हों।

अगर ठीक से समझें, तो एक बिल्कुल मरे हुए जगत की। क्योंकि जहां जरा सी भी बदलाव होगा, वहां सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। हम एक ऐसा जगत चाहते हैं, बिल्कुल मरा हुआ जगत, जहां सब चीजें ठहरी हैं। सूरज अपनी जगह है, छाया अपनी जगह है, प्रेम अपनी जगह है--सब ठहरा हुआ है। आदर, श्रद्धा अपनी जगह है, बेटा अपनी जगह है, पति अपनी जगह है--सब ठहरा हुआ है। तो हम एक मौन का जगत बना लें, बिल्कुल मृत, जहां कोई चीज कभी नहीं बदलती। लेकिन तब भी हम सुखी न होंगे। क्योंकि तब लगेगा, सब मर गया।

फ्रायड कहता है, आदमी की आकांक्षाएं असंभव हैं। वह कभी सुखी नहीं हो सकता। अगर जगत बदलता रहे तो वह दुखी होता है कि जो चाहा था वह नहीं हुआ। अगर जगत बिल्कुल थिर हो जाए, जो वह चाहे वही हो जाए, तो भी वह दुखी हो जाएगा। क्योंकि तब उसमें कोई रस न रहेगा।

अगर गुलाब का फूल खिले और खिला ही रहे, कभी न मुरझाए, तो प्लास्टिक के फूल में और गुलाब के फूल में फर्क क्या होगा? और आप भगवान से प्रार्थना करने लगोगे कि कभी तो यह मुरझाए। कभी तो ऐसा हो कि यह गिरे और बिखर जाए। अग यह छाती पर भारी पड़ने लगा।

कहते हैं आप, शाश्वत प्रेम! आपको पता नहीं। शाश्वत प्रेम मिल जाए, तो एक ही प्रार्थना उठेगी, इससे छुटकारा कैसे हो?

हम सब चाहते हैं, ठहरा हुआ जगत। लेकिन चाह सकते हैं क्योंकि वह मिलता नहीं। मिल जाए तो कठिनाई खड़ी हो जाए। फ्रायड कहता है, आदमी एक असंभव आकांक्षा है।

ज्यां पाल सार्त्र ने इस बात को अभी एक नया रुख दिया, और वह कहता है, मैं इ.ज एन एब्सर्ड पैशन। वासना ही मूढतापूर्ण है। आदमी एक वासना है, जो मूढतापूर्ण है। कुछ भी हो जाए, आदमी दुखी होगा। दुख अनिवार्य है।

महावीर के इस विश्लेषण से एक तो रास्ता यह है, जो शापनहार या फ्रायड या सार्त्र कहते हैं। लेकिन महावीर निराशावादी नहीं हैं। महावीर कहते हैं कि जगत एक प्रवाह है; लेकिन इस जगत में छिपा हुआ एक ऐसा तत्व भी है, जो प्रवाह नहीं है--उसे महावीर धर्म कहते हैं।

"जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और शरण है।"

यह जो हम देख रहे हैं चारों तरफ बहता हुआ, यही अगर सब कुछ है, तो निराशा के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। और अगर निराशा के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है, तो सिर्फ मूढ़ ही जी सकते हैं, बुद्धिमान आत्मघात कर लेंगे। कुछ बुद्धिमान तो आत्मघात करते हैं और कहते हैं कि सिर्फ मूढ़ ही जी सकते हैं। थोड़ी दूर तक यह बात सच भी मालूम पड़ती है कि मूढ़ ही जी सकते हैं। जीने के लिए घनी मूढता चाहिए।

अब यह जो बाप कह रहा है कि बेटे को काम पर लगा देने के लिए जी रहा है। यह बेटा अपने बेटे को काम पर लगा देने के लिए जी रहा है। बड़ी घनी मूढता चाहिए, इस सबको चलाए रखने के लिए अंधापन चाहिए, दिखाई ही न पड़े कि हम क्या कर रहे हैं। अगर यह दिखाई पड़ जाए कि सभी कुछ निराशा है, और

कहीं कोई शरण नहीं है, किसी चीज का कोई भरोसा नहीं, कहीं पैर टिक नहीं सकते, धारा प्रतिपल बही जा रही है। और भविष्य अनजान है, और हर घड़ी जीवन की मौत बनती जाती है। हर सुख दुख में बदल जाता है और हर जन्म अंततः मृत्यु को लाता है। अगर यह साफ दिखाई पड़ जाए, तो आप तत्काल वहीं के वहीं बैठ जाएंगे। यह तो बहुत घबरानेवाला होगा, यह बेचैन करेगा, यह संताप से भर देगा।

और पश्चिम में, इधर संताप बढ़ा है। पश्चिम में एक विचार-दर्शन है, एक्जिस्टेंशियलिज्म, अस्तित्ववाद। वह महावीर के पहले हिस्से से राजी है। लेकिन महावीर अदभुत आदमी मालूम पड़ते हैं। जीवन में सब दुख देख कर भी महावीर आनंदित हैं। यह बड़ी असंभव घटना मालूम पड़ती है, क्योंकि महावीर और बुद्ध ने जीवन के दुख की जितनी गहरी चर्चा की है, इस जगत में कभी किसी ने नहीं की। फिर भी महावीर से ज्यादा प्रफुल्लित, आनंदित और नाचता हुआ व्यक्तित्व खोजना मुश्किल है। महावीर से ज्यादा खिला हुआ आदमी खोजना मुश्किल है, शायद जमीन ने फिर ऐसा आदमी दुबारा नहीं देखा।

कहानियां हैं महावीर के बाबत वे बड़ी प्रीतिकर हैं। प्रीतिकर हैं कि महावीर अगर रास्ते पर चलें, तो कांटा भी अगर सीधा पड़ा हो तो तत्काल उलटा हो जाता है। कहीं महावीर को गड़ न जाए।

कोई कांटा उलटा नहीं हुआ होगा। आदमी इतनी चिंता नहीं करते तो कांटे इतनी क्या चिंता करेंगे? आदमी महावीर को पत्थर मार जाते हैं, कान में खीलें ठोंक जाते हैं तो कांटे--अगर कांटे ऐसी चिंता करते हैं तो आदमी से आगे निकल गए। लेकिन जिन्होंने कहा है, किन्हीं कारण से कहा है। वैज्ञानिक तथ्य नहीं है, लेकिन बड़ा गहरा सत्य है और जरूरी नहीं है सत्य के लिए कि वह वैज्ञानिक तथ्य हो ही। सत्य बड़ी और बात है, इस बात में सत्य है। इस बात में इतना सत्य है कि कोई उपाय ही नहीं है महावीर को कांटे के गड़ने का। कैसा ही कांटा हो, महावीर के लिए उलटा ही होगा। और हमारे लिए कांटा कैसा ही हो, सीधा ही होगा, न भी हो, तो भी होगा। हम मखमल की गद्दी पर चलें, तो भी कांटे गड़ने वाले हैं। महावीर कांटों पर भी चलें तो कांटे नहीं गड़ते हैं, यही मतलब है। कांटों की तरफ से नहीं है यह बात। यह बात महावीर की तरफ से है। महावीर के लिए कोई उपाय नहीं है कि कांटा गड़ सके।

जो आदमी दुख की इतनी बात करता है कि सारा जीवन दुख है, उस आदमी को कांटा नहीं गड़ता दुख का! जरूर इसने किसी और जीवन को भी जान लिया। इसका अर्थ हुआ कि यही जीवन सब कुछ नहीं है। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह जीवन की परिपूर्णता नहीं है, केवल परिधि है। जिसे हम जीवन जानते हैं, वह केवल सतह है, उसकी गहराई नहीं। और इस सतह से छूटने का तब तक कोई उपाय नहीं है, जब तक सतह के साथ हमारी आशा बंधी है। इसलिए महावीर इस सतह के सारे दुख को उघाड़ कर रख देते हैं; इस सारे दुख को उघाड़ कर रख देते हैं। इसका सारा हड्डी, मांस-मज्जा खोल कर रख देते हैं कि यह दुख है।

यह इसलिए नहीं कि आदमी दुखी हो जाए। यह इसलिए नहीं कि आदमी आत्मघात कर ले। यह इसलिए कि आदमी रूपांतरित हो जाए, उस नये जीवन में प्रविष्ट हो जाए जहां दुख नहीं है। यह एक नई यात्रा का निमंत्रण है।

इसलिए महावीर निराशावादी नहीं हैं, दुखवादी नहीं हैं, पैसिमिस्ट नहीं हैं। महावीर आनंदवादी हैं। फिर दुख की इतनी बात करते हैं। पश्चिम में तो बहुत गलतफहमी पैदा हुई है।

अलबर्ट श्वीत्जर ने भारत के ऊपर बड़ी से बड़ी आलोचना की है, और बहुत समझदार व्यक्ति यों में श्वीत्जर एक है। उसने कहा कि भारत जो है वह दुखवादी है। इनका सारा चिंतन, इनका सारा धर्म दुख से भरा है, ओत-प्रोत है, निराशावादी हैं। इन्होंने जीवन की सारी की सारी जड़ों को सुखा डाला है और इन्होंने जीवन को कालिख से पोत दिया है।

शवीत्जर थोड़ी दूर तक ठीक कहता है। हमने ऐसा किया है। लेकिन फिर भी शवीत्जर की आलोचना गलत है। अगर महावीर के ऊपर के वचनों को कोई देखकर चले तो लगेगा ही; सब जरा है, सब दुख है, सब पीड़ा है।

अगर महावीर से आप कहें कि देखते हैं यह स्त्री कितनी सुंदर है! तो महावीर कहेंगे थोड़ा और गहरा देखो। थोड़ा चमड़ी के भीतर जाओ। थोड़ा झांको, तब तुम्हें असली सौंदर्य का पता चलेगा। तब तुम्हें हड्डी, मांस-मज्जा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलेगा।

सुना हैं मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन जवान हुआ। एक लड़की के प्रेम में पड़ा। उसके पिता ने उसे समझाने के लिए कहा कि तू बिल्कुल पागल है। थोड़ा समझ-बूझ से काम ले। जरा सोच, जिस सौंदर्य के पीछे तू दीवाना है, दैट व्यूटी इज ओनली स्किन-डीप--वह सौंदर्य केवल चमड़ी की गहराई का है--तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: दैट इज इनफ फार मी, आई एम नॉट ए कैनिबल। मेरे लिए काफी है। अगर चमड़ी पर सौंदर्य है। मैं कोई आदमखोर तो नहीं हूं कि भीतर तक की स्त्री को खा जाऊं। ऊपर-ऊपर काफी है, भीतर का करना क्या है? आई एम नॉट ए कैनिबल।

ठीक कहा, हम भी यही मान कर जीते हैं। ऊपर-ऊपर काफी है, भीतर जाने की जरूरत क्या है? लेकिन यह सवाल स्त्री का ही नहीं है, यह सवाल पुरुष का ही नहीं है, यह सवाल हमारे पूरे जीवन को देखने का है। ऊपर ही ऊपर जो मानते हैं, काफी है, वे प्रवाह से कभी छुटकारा न पा सकेंगे। क्योंकि प्रवाह के बाहर जो जगत है, वह ऊपर नहीं है, वह भीतर है। लेकिन बड़ा मजा है, स्त्री के भीतर हड्डी, मांस-मज्जा ही अगर हो तब तो नसरुद्दीन ठीक कहता है कि इस झंझट में पड़ना ही क्यों? लेकिन स्त्री की हड्डी, मांस-मज्जा के भी भीतर जाने का उपाय है। और हड्डी, मांस-मज्जा के भीतर वह जो स्त्री की आत्मा है, वह प्रवाह के बाहर है।

तो तीन बातें हम समझ लें।

एक तो सतह है, फिर सतह के नीचे छिपा हुआ जगत है। और फिर सतह के नीचे की भी गहराई में छिपा हुआ केंद्र है। परिधि है, फिर परिधि और केंद्र के बीच का फासला है और फिर केंद्र है। जब तक कोई केंद्र पर न पहुंच जाए तब तक न तो सत्य का कोई अनुभव है, न सौंदर्य का कोई अनुभव है। सौंदर्य का भी अनुभव तभी होता है जब हम किसी दूसरे व्यक्ति के केंद्र को स्पर्श करते हैं। प्रेम का भी वास्तविक अनुभव तभी होता है, जब हम किसी व्यक्ति के केंद्र को छू लेते हैं, चाहे क्षणभर को ही सही, चाहे एक झलक ही क्यों न हो।

जीवन में जो भी गहन है, जो भी महत्वपूर्ण है, वह केंद्र है। लेकिन परिधि पर हम अगर घूमते रहें, घूमते रहें, तो जन्मों-जन्मों तक घूम सकते हैं। जरूरी नहीं है कि हम कितना घूमें कि केंद्र तक पहुंच जाएं। एक आदमी एक चाक की परिधि पर बैठ जाए और घूमता रहे, घूमता रहे जन्मों-जन्मों तक, कभी भी केंद्र पर नहीं पहुंचेगा। हम ऐसे ही घूम रहे हैं। इसीलिए हमने इस जगत को संसार कहा है।

संसार का अर्थ है: एक चक्र, जो घूम रहा है। उसमें दो उपाय हैं होने के, संसार में होने के दो ढंग हैं--एक ढंग है परिधि पर होना, एक ढंग है उसके केंद्र पर होना। केंद्र पर होना धर्म है।

महावीर कहते हैं: "धर्म स्वभाव है।" "वत्थू सहावो धम्म।" वह जो प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है, उसका आंतरिक, अंतरतम, वही धर्म है। महावीर के लिए धर्म का अर्थ रिलीजन नहीं है, ख्याल रखना, मजहब नहीं है। महावीर के लिए धर्म से मतलब--हिंदू, जैन, ईसाई, बौद्ध, मुसलमान नहीं है।

महावीर कहते हैं, धर्म का अर्थ है--तुम्हारा जो गहनतम स्वभाव है, वही तुम्हारी शरण है। जब तक तुम अपने उस गहनतम स्वभाव को नहीं पकड़ पाते हो, तब तक तुम प्रवाह में भटकते ही रहोगे; और प्रवाह में जरा और मृत्यु के सिवाय कुछ भी नहीं है।

प्रवाह में है मृत्यु। केंद्र पर है अमृत। प्रवाह में है जरा, दुख। केंद्र पर है, आनंद। प्रवाह में है चिंता, संताप, केंद्र पर है शून्य, शांति। प्रवाह है संसार, केंद्र है मोक्ष।

महावीर को अगर ठीक से समझें तो जहां-जहां हम पत को पकड़ लेते हैं--परिवर्तनशील पत को, वही हम संसार में पड़ते हैं। जहां हम परिवर्तनशील पत को उघाड़ते हैं, उघाड़ते चले जाते हैं, तब तक, जब तक कि अपरिवर्तित का दर्शन न हो जाए।

यह उघाड़ने की प्रक्रिया ही योग है। और जिस दिन यह उघड़ जाता है और हम उस स्वभाव को जान लेते हैं जो शाश्वत है, जिसका कोई जन्म नहीं, फिर कभी मृत्यु नहीं होगी। हम सब खोजना चाहते हैं जरूर, अमृत। हम सब चाहते हैं कि ऐसी घड़ी आए, जहां मृत्यु न हो। लेकिन वह घड़ी आएगी, जब हम उसको खोज लेंगे जिसका कोई जन्म नहीं हुआ। जब तक हम उसे न खोज लें जिसका कोई जन्म नहीं हुआ, तब तक अमृत का कोई पता नहीं चलेगा।

हम सब खोजना चाहते हैं आनंद--लेकिन आनंद से हमारा मतलब है--दुख के विपरीत। महावीर कहते हैं, आनंद से अर्थ है उसका, जो कभी दुखी नहीं हुआ--यह बड़ी अलग बात है। हम चाहते हैं आनंद मिल जाए, लेकिन हम उसी मन से आनंद चाहते हैं जो सदा दुखी हुआ। जो मन सदा दुखी हुआ, वह कभी भी आनंदित नहीं हो सकता। उसका स्वभाव दुखी होना है। महावीर कहते हैं, आनंद चाहिए तो खोज लो उसे, तुम्हारे भीतर जो कभी दुखी नहीं हुआ। फिर अगर चाहते हो अमृत, तो खोज लो अपने भीतर उसे, जिसका कभी जन्म नहीं हुआ। इसे वे कहते हैं--धर्म। धर्म का महावीर का वही अर्थ है, जो लाओत्से का ताओ से है। धर्म से वही मतलब है जो हम इस अस्तित्व की आंतरिक... प्रकृति। मेरे भीतर भी वह है, आपके भीतर भी वह है। आपके भीतर खोजना मुझे आसान न होगा। आपके पास मैं खोजने जाऊंगा तो आपकी परिधि ही मुझे मिलेगी।

इसे थोड़ा देखें।

हम दूसरे आदमी को कभी भी उसके भीतर से नहीं देख सकते, या कि आप देख सकते हैं? आप दूसरे आदमी को सदा बाहर से देख सकते हैं। आप मुस्कुरा रहे हैं, तो मैं आपकी मुस्कुराहट देखता हूं। लेकिन आपके भीतर क्या हो रहा है, यह मैं नहीं देखता। आप दुखी हैं, तो आपके आंसू देखता हूं; आपके भीतर क्या हो रहा है, यह मैं नहीं देखता। अनुमान लगाता हूं मैं कि आंसू हैं, तो भीतर दुख होता होगा; मुस्कुराहट है, तो भीतर खुशी होती होगी। दूसरा आदमी अनुमान है, इनफ्रेंस है। भीतर तो मैं केवल अपने को ही देख सकता हूं। तब हो सकता है, ऊपर आंसू हों और भीतर दुख न हो। ऊपर मुस्कुराहट हो और भीतर दुख हो।

भीतर तो मैं अपने ही देख सकता हूं। एक ही द्वार मेरे लिए स्वभाव में उतरने का खुला है--वह मैं स्वयं हूं। दूसरा मेरे लिए बंद द्वार है, उससे मैं कभी नहीं उतर सकता।

हम सब दूसरे से उतरने की कोशिश कर रहे हैं। हमारा प्रेम, हमारी मित्रता, हमारे संबंध, सब दूसरे से उतरने की कोशिशें हैं। दूसरे से हम प्रवाह में रहेंगे। इसलिए महावीर ने बड़ी हिम्मत की बात कही। महावीर ने ईश्वर को भी स्वीकार नहीं किया। क्योंकि महावीर ने कहा, ईश्वर भी

दूसरा हो जाता है--दि अदर। उससे भी कुछ हल नहीं होगा।

तो महावीर ने कहा कि मैं तो आत्मा को ही परमात्मा कहता हूं और किसी को परमात्मा नहीं कहता। कोई दूसरा परमात्मा नहीं, तुम स्वयं ही परमात्मा हो। एक ही द्वार है तुम्हारे अपने भीतर जाने का, वह तुम स्वयं हो। परिधि को छोड़ो और भीतर की तरफ हटो। क्या है उपाय, कैसे हम छोड़ें परिधि को?

एक आखिरी सूत्र।

जो भी बदल जाता हो, समझो कि वो मैं नहीं हूं।

शरीर बदलता चला जाता है। महावीर कहते हैं, जो बदलता जाता है, समझो कि मैं नहीं हूं। शरीर प्रतिपल बदल रहा है, एक धारा है। अभी आपका मां के पेट में गर्भाधान हुआ था, उस अणु का अगर चित्र

आपके सामने रख दिया जाए, तो आप यह पहचान भी न सकेंगे कि आप यह थे। लेकिन एक दिन वही आपका शरीर था, फिर जिस दिन आप जन्मे थे, वह तस्वीर आपके सामने रख दी जाए तो आप पहचान न सकेंगे कि यह मैं ही हूं। एक दिन यही आपका शरीर था। अगर आपके पिछले जन्म की लाश आपके सामने रख दी जाए तो आप पहचान न सकेंगे, एक दिन आप वही थे। अगर आपके भविष्य का कोई चित्र आपके सामने रख दिया जाए तो आप पहचान न सकेंगे, एक दिन आप वह हो सकते हैं। शरीर प्रतिपल बदल रहा है।

महावीर कहते हैं: "जो बदल रहा है, वह मैं नहीं हूं।" इसको धारण करो, इसको गहन में उतारते चले जाओ। यह तुम्हारे चेतन-अचेतन में पोर-पोर में डूब जाए कि जो बदल रहा है, वह मैं नहीं हूं।

मन भी बदल रहा है, प्रतिपल बदल रहा है। शरीर थोड़ा धीरे-धीरे बदलता है। मन तो और तेजी से बदल रहा है। तो महावीर कहते हैं, "जो बदल रहा है, वो "मैं" नहीं हूं।" मन भी "मैं" नहीं हूं। प्रतिपल धारणा को गहरा करते चले जाओ, यही एकाग्र चिंतन रह जाए कि मन भी "मैं" नहीं हूं। अभी यह विचार क्षणभर नहीं टिकता, दूसरा विचार, वह भी नहीं टिकता, तीसरा विचार। मन एक धारा है विचारों की। वह भी "मैं" नहीं हूं। ऐसा डूबते जाओ भीतर, डूबते जाओ भीतर, जब तक तुम्हें परिवर्तनशील कुछ भी दिखाई पड़े, तत्काल अपने को तोड़ लो उससे, दूर हो जाओ। एक दिन उस जगह पहुंच जाओगे जहां कुछ परिवर्तनशील नहीं दिखाई पड़ेगा, जिससे तोड़ना हो आपने को। जिस दिन वह घड़ी आ जाए जहां कुछ भी परावर्तित होता हुआ न दिखाई पड़े, जानना कि धर्म में प्रवेश हुआ। वही स्वभाव है।

महावीर कहते हैं, कि यही स्वभाव द्वीप है। यही स्वभाव प्रतिष्ठा है। यही स्वभाव गति है। गति का अर्थ—यही स्वभाव एकमात्र मार्ग है, और कोई गति नहीं है और यही स्वभाव उत्तम शरण है।

अगर जाना ही है किसी शरण में, तो इस स्वभाव की शरण चले आओ। अगर किन्हीं चरणों में सिर रख ही देना है, तो इसी स्वभाव के चरणों में सिर रख दो। और कोई चरण काम नहीं पड़ सकते, और कोई शरण सार्थक नहीं है।

स्वभाव ही शरण है।

और अगर हमने महावीर के चरणों में सिर रखा और अगर हमने कहा कि जिसने जाना है, स्वयं को, उसकी शरण में हम जाते हैं, तो यह केवल अपनी शरण आने के लिए एक माध्यम है। इससे ज्यादा नहीं। जो इस शरण में ही रुक जाए, वह भटक गया।

महावीर की भी शरण अगर कोई जाता है तो सिर्फ इसलिए कि अपनी शरण में आ सके। और महावीर की भी शरण जाता है, इसलिए कि हम नहीं पहुंच पाए अपने स्वभाव तक, कोई पहुंच गया है। जो हम हो सकते हैं, कोई हो गया है। जो हमारी संभावना है, किसी के लिए वास्तविक हो गई। लेकिन वह भी वस्तुतः हम अपने ही स्वभाव की शरण जा रहे हैं। उसके अतिरिक्त कोई गति, कोई द्वीप, कोई शरण नहीं है।

आज इतना ही।

लेकिन पांच मिनट रुकें।

धर्म का मार्ग : सत्य का सीधा साक्षात् (धम्म सूत्र: 3)

जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं।
 विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयई॥
 एवं धम्मं विउक्कम, अहम्मं पडिवज्जिया।
 बाले मुच्चुमुहं पत्ते, अक्खेभग्गे व सोयई॥
 जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
 अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ॥
 जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
 धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ॥
 जरा जाव न पीडेई, वाही जाव न वड्ढई।
 जाविन्दिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे॥

जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़ विषम (टेढ़े-मेढ़े, ऊबड़-खाबड़) मार्ग पर चल पड़ता है और गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है, वैसे ही मूर्ख मनुष्य जान-बूझ कर धर्म मार्ग को छोड़ कर अधर्म मार्ग को पकड़ लेता है और अंत में मृत्यु मुख में पहुंचने पर जीवन की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।

जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं लौटते हैं। जो मनुष्य अधर्म करता है, उसके वे रात-दिन बिल्कुल निष्फल रहते हैं। लेकिन जो मनुष्य धर्म करता है, उसके वे रात-दिन सफल हो जाते हैं।

जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियां नहीं बढ़तीं, जब तक इंद्रियां अशक्त नहीं होती, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए, बाद में कुछ नहीं होगा।

मृत्यु के संबंध में थोड़ी सी बातें और।

पहली बात: मृत्यु अत्यंत निजी अनुभव है। दूसरे को हम मरता हुआ देखते हैं, लेकिन मृत्यु को नहीं देखते। दूसरे को मरता हुआ देखना, मृत्यु का परिचय नहीं है। मृत्यु आंतरिक घटना है। स्वयं मरे बिना देखने का कोई भी उपाय नहीं है। शायद इसलिए, जब भी हम मृत्यु के बारे में सोचते हैं तो ऐसा लगता है, मृत्यु दूसरे की होगी। क्योंकि हमने दूसरों को ही मरते देखा है।

जब हम दूसरे को मरते देखते हैं तो हम क्या देखते हैं? हम इनता ही देखते हैं कि जीवन क्षीण होता चला जाता है। शरीर से जीवन की ज्योति विदा होती चली जाती है। लेकिन उस क्षण में जहां जीवन और शरीर पृथक् होते हैं, हम मौजूद नहीं हो सकते। केवल वही व्यक्ति मौजूद होता है, जो मर रहा है। तो किसी को मरते हुए देखना, मृत्यु को देखना नहीं है। मृत्यु तो स्वयं ही देखी जा सकती है। आपके लिए कोई दूसरा नहीं मर सकता है, प्रॉक्सी से मरने का कोई उपाय नहीं है। अत्यंत निजी घटना है। उधार मृत्यु का अनुभव नहीं हो सकता।

और हमारा सब अनुभव उधार है। हमने सदा दूसरों को मरते हुए देखा है। शायद इसलिए मृत्यु का जो आघात हमारे ऊपर पड़ना चाहिए, वह नहीं पड़ता। उसकी गहराई हमारे ख्याल में नहीं आती।

क्या जीवन में कोई और भी ऐसा भी अनुभव है जो मृत्यु जैसा हो? एक अनुभव है, लेकिन एक बारगी ख्याल भी न आए कि उसका और मृत्यु से कोई संबंध हो सकता है। वह अनुभव है प्रेम।

प्रेम और मृत्यु बड़े एक से अनुभव हैं। फिर तीसरा कोई अनुभव वैसा नहीं है। आपके लिए श्वास भी दूसरा आदमी ले सकता है। आपका हृदय भी, जरूरी नहीं कि आपका ही धड़के, दुसरे का भी आपके लिए धड़क सकता है। आपका हृदय अगर पूरा अलग कर दिया जाए और दूसरे हृदय से जोड़ दिया जाए, तो भी आप जीवित रह लेंगे। खून भी दूसरे का आपकी नाड़ियों में बह सकता है, श्वास भी यंत्र आप के लिए ले सकता है, लेकिन प्रेम आपके लिए कोई दूसरा कर नहीं सकता है।

प्रेम अत्यंत निजी अनुभव है। मृत्यु और प्रेम बड़े संयुक्त हैं। इसलिए जिन लोगों ने प्रेम के संबंध में गहराई से सोचा है, उन्हें मृत्यु के संबंध में भी सोचना पड़ा। और जिन्होंने मृत्यु की खोज-बीन की है, वे अंततः प्रेम के रहस्य में भी प्रवेश किए हैं।

कुछ बातें हमारे अनुभव में भी हैं, जिन्होंने बहुत नहीं सोचा होगा। जैसे, जो आदमी प्रेम से डरता है, वह मृत्यु से भी डरेगा। जो आदमी मृत्यु से डरता है, वह कभी प्रेम में नहीं पड़ेगा। जो व्यक्ति प्रेम की गहराई में उतर गया है, मृत्यु के प्रति बिल्कुल अभय हो जाता है। इसलिए प्रेमी निश्चितता से मर सकते हैं। प्रेमी को मृत्यु में कोई भय नहीं रह जाता। लेकिन जिसने कभी प्रेम न किया हो, वह मृत्यु से बहुत डरेगा। तब एक दुष्चक्र निर्मित होता है, एक विसियस सर्किल बन जाता है। मृत्यु से डरता है, इसलिए प्रेम में भी नहीं उतरता, क्योंकि प्रेम का अनुभव भी गहरे में मृत्यु का ही अनुभव है। जब तक कोई पूरी तरह मिटता नहीं, तब तक प्रेम का जन्म भी नहीं होता।

इसलिए प्रेम एक आध्यात्मिक अर्थों में मृत्यु है। प्रेम वही कर सकता है जो अपने को मिटा लेने को राजी हो। जब तक कोई इतना नहीं मिट जाता कि बचे ही नहीं, तब तक प्रेम का फूल नहीं खिलता। इसलिए जिसने प्रेम को जान लिया हो, उसने मृत्यु को भी जान लिया। या जिसने मृत्यु को जान लिया हो, उसने प्रेम को भी जान लिया।

प्रेम और मृत्यु बड़ी संयुक्त घटनाएं हैं। गहरे आंतरिक तल पर वे एक ही चीज के दो रूप हैं। यह बहुत हैरानी की बात है। लेकिन, विचारणीय है। मृत्यु तो हम जब मरेंगे, तब होगी। दूसरे को मरते देखकर हम मृत्यु का कोई अनुभव नहीं कर सकते। खुद मरेंगे, तभी अनुभव होगा। लेकिन एक उपाय है प्रेम, जिससे हम मृत्यु का अनुभव आज भी कर सकते हैं।

फिर प्रेम का ही और विराट रूप है, प्रार्थना। फिर प्रेम का ही सार अंश है, ध्यान। वे सब मृत्यु का रूप हैं। हिंदू शास्त्रों में तो कहा है कि गुरु मृत्यु है। इसी अर्थ में कहा गया है कि गुरु के पास तभी कोई पहुंच सकता है जब वह इस स्थिति में अपने को छोड़ दे, जैसे कि खुद मिट गया। और अगर गुरु के पास मृत्यु घटित न हो, तो गुरु से कोई संबंध नहीं जुड़ता।

श्रद्धा भी मृत्यु है। वह प्रेम का ही एक रूप है। यह मृत्यु तो जीवन के अंत में आएगी, जिसे हम दूसरे में घटते देखते हैं। लेकिन प्रेम आज भी घट सकता है। प्रार्थना आज भी हो सकती है। ध्यान में आज भी प्रवेश हो सकता है। जो लोग ध्यान में प्रवेश कर जाते हैं, मृत्यु का भय मिट जाता है। सिर्फ ध्यानी मृत्यु के बाहर हो जाता है, जैसे प्रेमी बाहर हो जाता है। क्यों? इसलिए नहीं कि ध्यान के द्वारा मृत्यु पर विजय हो जाती है। इसलिए भी नहीं कि प्रेम के द्वारा मृत्यु पर विजय हो जाती है। बल्कि इसलिए कि जो प्रेम में मर कर देख लेता है वह जान जाता है कि जो मरता है, वह मैं नहीं हूं। ध्यान में जो मरकर देख लेता है, वह जान जाता है कि जो मरता है, वह मेरी परिधि है, मेरी देह है, मेरे आवरण है, मैं नहीं हूं।

मृत्यु से गुजर कर जाना जाता है कि मेरे भीतर कोई अमृत भी है। इस अमृत के बोध से मृत्यु नहीं मिटती। मृत्यु तो घटेगी ही, महावीर को भी घटेगी और कृष्ण को भी घटेगी और बुद्ध को भी घटेगी। मृत्यु तो घटेगी ही, लेकिन तब यह मृत्यु केवल दूसरों के लिए होगी। दूसरे देखेंगे कि महावीर मर गए, और महावीर जानते रहेंगे कि वे नहीं मर रहे हैं। भीतर कोई मृत्यु घटित नहीं होगी, तब मृत्यु बाहरी घटना हो जाएगी, खुद के लिए भी। ऐसा अनुभव न हो पाए तो जीवन व्यर्थ गया।

इसे हम समझ लें तो फिर ये सूत्र समझ में आए।

एक बीज हम बोते हैं। वृक्ष बढ़ता है, बड़ा होता है। कब आप कहते हैं कि वृक्ष सफल हुआ? बीज बोया सफल हुआ? जब फल लगते हैं, जब फल पकते हैं, जब फूल खिलते हैं; वृक्ष जो दे सकता था, जब पूरा दे देता है, तब हम कहते हैं, सफल हुआ श्रम। जिस वृक्ष पर फल न लगें, बांझ रह जाए, उस वृक्ष को हम सफल न कहेंगे। हम कहेंगे, कहीं अवरोध आ गया, कहीं रास्ता भटक गया, कहीं वृक्ष ऐसे रास्ते पर चला गया, जहां जीवन की निष्पत्ति नहीं होती। जहां जीवन में निर्णय नहीं आता। इस वृक्ष का होना व्यर्थ हो गया।

मनुष्य भी एक वृक्ष है और मनुष्य भी एक बीज है। सभी मनुष्य फल तक नहीं पहुंचते। पहुंचना चाहिए। पहुंच सकते हैं। सभी के लिए संभव है, लेकिन हो नहीं पाता। कुछ लोग भटक जाते हैं। कुछ लोग, ऐसे मार्ग पर चले जाते हैं, जहां उनके जीवन में कोई फल नहीं लगते, और जहां उनके जीवन में कोई फूल नहीं खिलते। और जहां उनका जीवन निष्फल हो जाता है।

जीवन को हम देखें, तो जीवन की अंतिम घटना है मृत्यु। अगर इसे हम ऐसा समझें तो जीवन का जो आखिरी चरण है, शिखर है, वह मृत्यु है। जन्म तो शुरुआत है, मृत्यु अंत है। मृत्यु में ही पता चलेगा कि व्यक्ति का जीवन सफल हुआ या असफल हुआ। अंतिम घड़ी में ही जांच-पड़ताल हो जाएगी। निर्णय हो जाएगा।

अगर आप हंसते हुए मर सकते हैं तो जीवन सफल हुआ, फूल खिल गए। अगर आप रोते हुए ही मरते हैं तो जीवन व्यर्थ गया, फूल नहीं खिल पाए। क्योंकि जब सब खिल जाता है तो मृत्यु एक आनंद है। जब कुछ भी नहीं खिल पाता तो मृत्यु एक पीड़ा है, क्योंकि मैं बिना कुछ हुए मर रहा हूं। समय व्यर्थ गया, अवसर चूक गया। मैं कुछ हो नहीं पाया, जो हो सकता था। जो मेरे भीतर छिपा था वह बाहर न आया। जो गीत मैं गा सकता था, वह अनगाया रह गया। तब पीड़ा है।

हम में से अधिक लोग रोते हुए ही मरते हैं। रोता हुआ मरण इस बात की खबर है कि जीवन असफल गया। मृत्यु जब हंसती हुई होती है, जब मृत्यु फूल की तरह खिलती है, जब मृत्यु एक आनंद होती है, तो उसका अर्थ है कि इस जीवन की गहनताओं में छिपा हुआ जो अमृत था, उसका इस व्यक्ति का पता चल गया। अब मृत्यु सिर्फ विश्राम है। अब मृत्यु अंत नहीं है, बल्कि अब मृत्यु पूर्णता है, बल्कि अब मृत्यु एक लंबी निष्फल जीवन की समाप्ति नहीं है, बल्कि एक फुलफिलमेंट है, एक पूर्णता है। एक जीवन पूरा हुआ।

जैसे कोई नदी मरुस्थल में खो जाए और सागर तक न पहुंच पाए, वैसा अधिक लोगों का जीवन है, कहीं खो जाता है, पूर्ण नहीं हो पाता। जैसे कोई नदी सागर में पहुंच जाए, गीत गाती, नाचती सागर में मिल जाए।

मरुस्थल में नदी खो जाती है, सागर में भी नदी खोती है। लेकिन मरुस्थल में नदी असफल हो जाती है, सागर में नदी सफल हो जाती है। इसलिए मरुस्थल में खोती नदी रोती हुई खोएगी; सागर में गिरती हुई नदी नाचती हुई, अहोभाव से भरी हुई। खोना तो दोनों में है।

मृत्यु में हम भी खोते हैं, लेकिन रोते हुए। जैसे मरुस्थल में सब अवसर व्यर्थ हो गया। महावीर भी खोते हैं, लेकिन हंसते हुए। वह जो अवसर मिला था, उससे जो भी हो सकता था, वह पूरा हो गया है।

इस बात को समझ कर सूत्र को समझें।

"जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़, विषम टेढ़े-मेढ़े, ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चल पड़ता है और गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है, वैसे ही मूर्ख मनुष्य भी जान-बूझ कर धर्म

को छोड़, अधर्म को पकड़ लेता है और अंत में मृत्यु के मुख में पहुंचने पर, जीवन की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।"

इसमें बहुत सी बातें हैं। एक, महावीर ने बड़ी अदभुत बात कही है और वह यह कि "मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर", यह बड़ी उलटी बात है। अगर गाड़ीवान मूर्ख है, तो जान-बूझ कर क्या अर्थ रखता है, और अगर गाड़ीवान जान-बूझ कर ही गलत रास्ते पर चलता है, तो मूर्ख कहने का क्या प्रयोजन, लेकिन महावीर का प्रयोजन है। जब महावीर कहते हैं कि मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर।

मूर्खता अज्ञान का नाम नहीं है। मूर्खता, उन ज्ञानियों के लिए कही जाती है जो जान-बूझ कर... बच्चे को हम मूर्ख नहीं कहते, अबोध कहते हैं। बच्चे को हम, अगर भूल करे, तो मूर्ख नहीं कहते, बच्चा ही कहते हैं, निर्दोष कहते हैं, अभी उसे पता ही नहीं है। मूर्ख तो आदमी तब होता है, जब उसे पता होता है और फिर भी जान-बूझ कर गलत रास्ते पर चला जाता है।

जानवरों को हम मूर्ख नहीं कह सकते, अज्ञानी तो वे हैं; बच्चों को हम मूर्ख नहीं कह सकते, अज्ञान वे हैं। मूर्ख तो हम उनको ही कह सकते हैं जो ज्ञानी भी हैं, तब जान-बूझ कर भूल शुरू होती जा है और जान-बूझ कर भूल ही मूर्खता है। लेकिन क्यों कोई जान-बूझ कर भूल करता होगा?

क्योंकि सुकरात ने कहा है, कोई जान-बूझ कर भूल नहीं कर सकता। यूनान में इस पर लंबा विवाद रहा है और इस विवाद में सारे जगत की संस्कृतियों के अलग-अलग अनुवाद हैं कि कोई आदमी जब भूल करता है तो जान-बूझ कर करता है, या कि अनजान करता है। सुकरात ने कहा है, कोई आदमी जान-बूझ कर भूल नहीं कर सकता। उसकी बात में भी सच्चाई है। कभी आप जान-बूझ कर आग में हाथ डाल सकते हैं? असंभव है। जान-बूझ कर कोई कैसे भूल करेगा, क्योंकि भूल दुख देती है, पीड़ा देती है। भूल तो अनजाने ही हो सकती है।

लेकिन महावीर कहते हैं कि जान-बूझ कर भी भूल हो सकती है। जान-बूझ कर भी भूल तब हो सकती है जब आप जानते हैं कि आग में हाथ डालने से हाथ जलेगा ही। लेकिन फिर भी ऐसी परिस्थितियां पैदा की जा सकती हैं कि आप अहंकार वश आग में हाथ डाल दे। अगर यह प्रतियोगिता हो रही हो कि कौन कितनी देर तक आग में हाथ रख सकता है, तो आप जान-बूझ कर भी आग में हाथ डाल सकते हैं।

अहंकार के कारण आदमी जान-बूझ कर भूल कर सकता है। सिर्फ एक ही कारण है जान-बूझ कर भूल करने का, अहंकार के कारण। अगर आपके अहंकार को रस मिलता हो तो आप जान-बूझ कर भूल कर सकते हैं। कोई गाड़ीवान क्यों साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़ कर, ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चलेगा!

ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर अहंकार को तृप्ति मिलती है। राजमार्ग पर तो सभी चलते हैं, वहां कोई अहंकार को रस नहीं है। जब कोई उलटे-सीधे मार्ग पर चलता है तो अहंकार को रस मिल जाता है।

एवरेस्ट पर चढ़ने से कौन सा रस मिलता होगा? एवरेस्ट की चोटी पर खड़े होकर क्या उपलब्धि होती है? जब तेनसिंह और हिलेरी पहली दफे एवरेस्ट पर खड़े हो गए होंगे, तो उन्होंने क्या पाया होगा? एक बड़ी सूक्ष्म अहंकार की तृप्ति--जहां कोई भी नहीं पहुंच पाया वहां पहुंचने वाले वे पहले मनुष्य हैं। और तो कुछ भी एवरेस्ट पर मिलने को नहीं है। यात्रा के अंत पर मिलता क्या है? यात्रा के अंत पर मिलता है, अहंकार की तृप्ति।

तो जो आदमी ऊबड़-खाबड़ मार्ग चुनता है जीवन में, वह जान कर चुनता है। सीधे रास्ते पर तो सभी चलते हैं। राजमार्ग पर चलना भी कोई चलना है? जब आदमी ऐसे बीहड़ रास्ते पर चलता है, जहां चलना दुर्गम है, जहां एक-एक कदम उठाना मुश्किल है, जहां हर घड़ी कष्ट, हर घड़ी खतरा है; तो अहंकार को बड़ा रस आता है।

नीत्शे ने कहा है: "लिव डेंजरसली, खतरनाक ढंग से जीयो।" क्योंकि नीत्शे कहता है, जीवन में एक तृप्ति है, और वह तृप्ति है पावर, शक्ति। लेकिन शक्ति का अनुभव तभी होता है, जब हम विपरीत से जूझते हैं। सरल के साथ शक्ति का अनुभव नहीं होता। जहां कोई भी चल सकता है, वहां शक्ति का कैसा अनुभव? जहां बच्चे भी

निरापद चल लेते हैं, जहां अंधे भी चल लेते हैं, वहां शक्ति का क्या अनुभव? शक्ति का अनुभव तो वहां है, जहां कदम-कदम पर कठिनाई है, जहां पहुंचना असंभव है। इसलिए अहंकारी ऐसे रास्ते चुनते हैं, जो पहुंचाने के लिए नहीं होते हैं, सिर्फ अहंकार के संघर्ष के लिए होते हैं।

मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझ कर ऊबड़-खाबड़ विषम रास्ते चुन लेता है, क्योंकि वहां उसके अहंकार की प्रतिष्ठा हो सकती है। तो मूर्खता का गहनतम सूत्र है अहंकार। मूर्खता का संबंध ज्ञान से नहीं है, अज्ञान से नहीं है। मूर्खता का संबंध अहंकार से, इगो से है। जितना अहंकारी व्यक्ति होगा, उतना मूर्ख होगा।

मजा यह है कि आप अपने ज्ञान का उपयोग भी मूर्खता के लिए कर सकते हैं, क्योंकि आप अपने ज्ञान से भी अपने अहंकार को भर सकते हैं। अगर कोई व्यक्ति अपने ज्ञान से भी अपने अहंकार को ही भर रहा हो तो यह प्रयास मूर्खतापूर्ण है।

अज्ञान से तो लोग भूलें करते हैं, लेकिन ज्ञान से भी लोग भूल करते हैं। और बड़ी से बड़ी भूल जो ज्ञान से हो सकती है, वह यह कि हम अपने इस अहंकार को खड़ा करने के लिए गलत मार्ग चुन लें, जान-बूझ कर। आपको भी ख्याल होगा जिंदगी में, कई बार विषम मार्ग चुनने में बड़ा सुख मिलता है। कठिन है जो, लंबा है जो रास्ता, विघ्न जहां बहुत हैं, आपदाएं जहां हैं, विपत्तियां जहां हैं; उसे चुनने में बड़ा रस आता है।

रस क्या हैं? जीतने का रस। जब रास्ते में कोई विपत्ति होती है, तब हम जीतते हैं। जब रास्ते में कोई विपत्ति नहीं होती तो क्या खाक जीतना! इसलिए जो लोग इस भांति चलते हैं, उनके जीवन में हजार जटिलताएं खड़ी हो जाती हैं। उनका सारा जीवन, एक ही गणित को मान कर चलता है; जहां विपत्ति हो, जहां बाधा हो, जहां अड़चन हो, जो असंभव मालूम पड़े, उसे करने में उन्हें रस आता है।

और इस जगत में अधर्म से असंभव कुछ भी नहीं। अधर्म इस जगत में सबसे असंभव है। एवरेस्ट चढ़ा जा सकता है, चांद पर उतरा जा सकता है, मंगल पर भी आदमी उतर ही जाएगा, लेकिन यह कुछ भी असंभव नहीं है। अधर्म सबसे असंभव है। अधर्म का मतलब क्या? कल मैंने आपको कहा, धर्म का अर्थ है स्वभाव; अधर्म का अर्थ है स्वभाव के विपरीत। निश्चित ही स्वभाव के विपरीत जाना सबसे असंभव बात है। आदमी स्वभाव से विपरीत जा ही कैसे सकता है? स्वभाव का अर्थ ही है कि जिसके विपरीत आप न जा सकें। जैसे आग ठंडी होना चाहे, तो यह स्वभाव के विपरीत हुआ। जैसे पानी ऊपर चढ़ना चाहे तो यह स्वभाव के विपरीत हुआ। ऐसे ही अधर्म का अर्थ है, जो स्वभाव के विपरीत है, वही टेढ़ा-मेढ़ा है।

धर्म तो बहुत सरल और सीधा है; लेकिन मजा है कि धर्म में हम तभी उत्सुक होते हैं, जब वह टेढ़ा-मेढ़ा हो। सीधे धर्म में हम जरा भी उत्सुक नहीं होते। कोई बताए कि इतने उपवास करो, ऐसे खड़े रहो रात भर, नंगे रहो, कि कोड़े मारो शरीर को, कि सुखाओ, हड्डी-हड्डी हो जाओ, तब जरा रस आता है कि हां, यह कोई बात हुई।

जब धर्म भी टेढ़ा-मेढ़ा हो तो मूर्ख गाड़ीवान उत्सुक होता है। इसलिए ध्यान रखना, धर्म की तरफ जो उत्सुकता दिखाई पड़ती है, उसमें नब्बे-नब्बे से भी कम--निन्यानबे प्रतिशत मूर्ख गाड़ीवान होते हैं। जिनका कुल कारण यह होता है, कि कोई असंभव करने जैसा दिखाई पड़ रहा है। तब उनको बड़ा रस आता है। अगर उनको कहो कि आराम से बैठ कर भी, छाया में भी, धर्म उपलब्ध हो सकता है, धर्म का सारा रस ही खो जाएगा। आसान हुआ, रस खो गया। बुद्धिमान आदमी को आसान हो तो रस बढ़ेगा। लेकिन अहंकारी आदमी को, आसान हो तो रस खो जाएगा।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

तपश्चर्या का अधिकतम रस टेढ़े-मेढ़ेपन के कारण है। जब आप अपने को सता रहे होते हैं, तब आपको लगता है, हां, कुछ कर रहे हैं! भूखे हैं, पानी नहीं पी रहे हैं; तब आपको लगता है, आप कुछ कर रहे हैं। क्यों?

क्योंकि बड़ा दुर्गम है, बड़ा अस्वाभाविक है। भूख स्वाभाविक है, भूखा रह जाना अस्वाभाविक है। भूख सहज है, भूख के विपरीत लड़ना असहज है। लेकिन जितना असहज हो, धारा के विपरीत हो, उतना हमें लगता है कि हां, कुछ अहंकार को रस आ रहा है। इसलिए तपस्वियों से ज्यादा प्रखर अहंकार और कहीं खोजना मुश्किल है। झोपड़े में रह रहा है, तो अहंकार बढ़ेगा। झाड़ के नीचे है तो और बढ़ जाएगा। धूप खड़ा रहे, तो और बढ़ जाएगा। अगर विश्राम करता ही नहीं, खड़ा ही रहता है तपस्वी, तो और बढ़ जाएगा।

यह सारी की सारी चेष्टा सिकंदर और नेपोलियन की चेष्टा से भिन्न नहीं है। लेकिन हमें दिखती है भिन्न, क्योंकि हमारी समझ नहीं है। इस चेष्टा का एक ही अर्थ है कि जो असंभव है, वह हम करके दिखा दें। अगर आदमी सहज जी रहा हो, तो हमें ख्याल में भी नहीं आ सकता है कि वह धार्मिक हो सकता है।

सहज आदमी हमारे ख्याल में नहीं आता कि धार्मिक भी हो सकता है। लेकिन कबीर ने कहा है: "साधो, सहज समाधि भली।" कारण है कहने का। सहज का अर्थ यह जो महावीर कह रहे हैं, वह समझदार आदमी, जो सीधे सादे, साफ-सुथरे राजमार्ग को चुनता है; इसलिए कि कहीं पहुंचना है, इसलिए नहीं कि कुछ जीतना है।

ये दोनों अलग दिशाएं हैं। कहीं पहुंचना है तो व्यर्थ श्रम लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है तब बीच में बाधाएं खड़ी करने की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन अगर कहीं पहुंचना नहीं है, सिर्फ अहंकार अर्जित करना है यात्रा में, तो फिर बाधाएं होनी चाहिए। तो आदमी अपने हाथ से भी बाधाएं निर्मित करता है। पैदल जाता है, तीर्थयात्रा को। मुझ से तीर्थयात्री कहते हैं कि जो मजा पैदल जाकर तीर्थयात्रा करने का है, वह ट्रेन में बैठ कर जाने में नहीं है।

स्वभावतः कैसे हो सकता है? लेकिन जो और आगे बढ़ गए हैं गाड़ी को टेढ़े-मेढ़े उतारने में, वह जमीन पर साष्टांग दंडवत करते हुए तीर्थयात्रा करते हैं। उनका वश चले अगर, तो वे शीर्षासन करते हुए भी यह तीर्थयात्रा करें। लेकिन तब जो मजा आएगा, निश्चित ही वह पैदल करने वालों को नहीं आ सकता। क्यों? वह मजा क्या है? वह तीर्थ पहुंचने का मजा नहीं है। वह अहंकार निर्मित करने का मजा है। जो कोई नहीं कर सकता, वह मैं कर रहा हूं।

धर्म हो, कि धन हो, कि यश हो, जो भी हो; हम मार्ग इरछे-तिरछे चुनते हैं जान कर, महावीर कहते हैं, वह अधर्म है। असल में अधर्म तिरछा ही होगा सीधा नहीं होता। कभी आपने ख्याल किया है? एक झूठ बोलें, तो बड़ी तिरछी यात्राएं करनी पड़ती हैं। सच बोलें, सीधा। सच बिल्कुल वैसा है, जैसे इक्युलिड की रेखा--दो बिंदुओं के बीच सबसे कम दूरी। इक्युलिड की व्याख्या है रेखा की--दो बिंदुओं के बीच सबसे कम दूरी। तो रेखा सीधी होती है। दो बिंदुओं के बीच जितना लंबा चक्कर लगाते जाए, उतनी रेखा बड़ी तिरछी होती चली जाती है।

सत्य भी दो बिंदुओं के बीच सबसे कम दूरी है। असत्य सबसे बड़ी लंबी यात्रा है। इसलिए एक असत्य, फिर दूसरा, फिर तीसरा। एक को सम्हालने के लिए एक लंबी शृंखला है। बड़ा मजा है कि सत्य को संभालने के लिए कोई शृंखला नहीं होती। एक सत्य अपने में काफी होता है। सत्य एटामिक है। एक अणु काफी है।

झूठशृंखला है, सीरीज है। एक झूठ काफी नहीं है। एक झूठ को दूसरे झूठ का सहारा चाहिए। दूसरे झूठ को और झूठों का सहारा चाहिए, और झूठ हमेशा अधर में अटका रहता है, कितना ही सहारा देते जाओ, उसके पैर जमीन से नहीं लगते। क्योंकि हर झूठ जो सहारा देता है वह खुद भी अधर में होता है। आप सिर्फ पोस्टपोन करते हैं, पकड़े जाने को, बस। जब मैं एक झूठ बोलता हूं तब तत्काल मुझे दूसरा झूठ बोलना पड़ता है कि पकड़ा न जाऊं। दूसरा बोलता हूं, तीसरा बोलना पड़ता है कि पकड़ा न जाऊं। फिर यह भय कि पकड़ा न जाऊं, तो मैं स्थगित करता जाता हूं। हर झूठ थोड़ी राहत देता है, फिर नये झूठ को जन्म देता है।

सत्य सीधा है।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि सत्य को याद रखने की भी जरूरत नहीं है, सिर्फ झूठ को याद रखना पड़ता है। इसलिए जिनकी स्मृति कमजोर है, वे झूठ नहीं बोल सकते। झूठ बोलने के लिए स्मृति की कुशलता चाहिए। क्योंकि लंबी याददाश्त चाहिए। एक झूठ बोला है, उसकी पूरी शृंखला बनानी पड़ेगी। यह वर्षों तक चल सकती है। इसलिए झूठ बोलने वालों का मन बोझिल होता चला जाता है। सच बोलने वाले का मन खाली होता है, कुछ रखना नहीं पड़ता। कुछ सम्हालना नहीं पड़ता।

धर्म भी एक सीधी यात्रा है, सरल यात्रा है। लेकिन धर्म में हमें रस नहीं, रस हमें टेढ़े-मेढ़ेपन में है; क्योंकि रस हमें अहंकार में है।

अभी स्पास्की और बॉबी फिशर में शतरंज की होड़ थी। अगर स्पास्की पहले दिन ही कह दे कि लो तुम जीत गए। इतनी सरल हो अगर जीत, तो जीत में कोई रस न रह जाएगा। जीत जितनी कठिन है, जितनी असंभव है, जितनी मुश्किल है, उतनी ही रसपूर्ण हो जाती है। और मजा यह है, आदमी इसके लिए कैसे-कैसे उपाय करता है! शतरंज बड़ा मजेदार उपाय है।

आदमी एक नकली युद्ध करता है--नकली! कुछ भी नहीं है वहां, न हाथी हैं, न घोड़े हैं, न कुछ है--नकली है सब, लेकिन रस असली है। रस वही है जो असली हाथी घोड़े से मिलता है। बिल्कुल वह महंगा धंधा था। पुराने लोग उस धंधे को काफी कर चुके।

खेल, युद्ध का संक्षिप्त अहिंसात्मक संस्करण है। उसमें भी हम लड़ते हैं नकली साधनों से, लेकिन थोड़ी ही देर में नकली साधन भूल जाते हैं और असली हो जाते हैं। कोई घोड़ा क्या घोड़ा होगा मैदान पर, जो शतरंज के बोर्ड पर हो जाता है। क्यों? आखिर इस नकली लकड़ी के घोड़े में इतना रस? यह असली कैसे हो जाता है? जिस घोड़े पर भी अहंकार की सवारी हो जाए, वह असली हो जाता है। अहंकार चलता है, घोड़े थोड़े ही चलते हैं! फिर जितनी कठिनाई हो, जितनी असंभावना हो और जितना सस्पेंस हो, और जितना संदेह हो जीत में, उतनी ही बात बढ़ती चली जाती है।

आदमी ने बहुत उपाय किए हैं, जिनसे वह जो सीधा संभव है, उसको भी बहुत लंबी यात्रा करके संभव करता है। इसे महावीर कहते हैं, जान-बूझ कर, साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़ कर। जैसा मूर्ख गाड़ीवान पछताता है।

कब पछताता है मूर्ख गाड़ीवान? जब धुरी टूट जाती है। जब गाड़ी उलटे-सीधे रास्ते पर, पत्थरों पर, कंकड़ों पर, मरुस्थल में उलझ जाती है कहीं, और गाड़ी की धुरी टूट जाती है। जब एक चाक बहुत नीचे हो जाता है, तब धुरी टूटती है।

धुरी टूटने का मतलब है कि दोनों चाक जहां समान नहीं होते, असंतुलित हो जाते हैं। वहां धुरी टूट जाती है। वहां दोनों को संभालने वाली धुरी टूट जाती है। तब पछताता है, तब दुखी होता है, लेकिन तब कुछ भी नहीं किया जा सकता। तब कुछ भी करना मुश्किल हो जाता है।

जीवन में भी हम धुरी को तोड़ कर पछताते हैं। जो पहले समझ लेता है, वह कुछ कर सकता है। जो तोड़ कर ही पछताने का आदी है, तो जीवन ऐसी घटना नहीं है कि तोड़ कर पछताने का कोई उपाय हो। जो मृत्यु के बाद ही पछताएगा, उसके लिए फिर पीछे लौटने का उपाय नहीं है। हम भी पछताते हैं जब धुरी टूट जाती है। धुरी हमारी भी तब टूटती है जब असंतुलन बड़ा हो जाता है, एक चाक ऊपर और एक चाक बहुत नीचे हो जाता है।

यह होगा ही तिरछे रास्तों पर।

"अधर्म को पकड़ लेता है, और अंत में मृत्यु के मुख में पहुंचने पर जीवन की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।"

अधर्म को हम पकड़ते ही इसलिए हैं, अहंकार की वहां तृप्ति है। और धर्म को हम इसलिए नहीं पकड़ते हैं कि वहां अहंकार से छुटकारा है। धर्म की पहली शर्त है, अहंकार छोड़ो। वही अड़चन है। अधर्म का निमंत्रण है, आओ, अहंकार की तृप्ति होगी। वही चुनौती है, वही रस है। अधर्म के द्वार पर लिखा है, बढ़ाओ अहंकार को, बड़ा करो। धर्म के द्वार पर लिखा है, छोड़ दो बाहर, अहंकार को। भीतर आ जाओ।

तो जिनको भी इस बात में रस है कि मैं कुछ हूं, उन्हें धर्म की तरफ जाने में बड़ी कठिनाई होगी। जो इस बात को समझने की तैयारी में है कि मैं ना कुछ हूं, उनके लिए धर्म का द्वार सदा ही खुला हुआ है। जिनको जरा भी है कि मैं कुछ हूं, वे अधर्म में खींच लिए जाएंगे--चाहे वे मंदिर जाएं, मस्जिद जाएं, गुरुद्वारा जाएं, कहीं भी जाएं--जिनको यह रस है कि मैं कुछ हूं, जो मंदिर में प्रार्थना करते वक्त भी यह देख रहे हैं कि कितने लोगों ने मुझे प्रार्थना करते देखा, जो यह देख रहे हैं कि कितने लोग मुझे तपस्वी मानते हैं, उपासक मानते हैं, कितने लोग मुझे साधु मानते हैं; जो अभी भी उस में रस ले रहे हैं वे कहीं से भी यात्रा करें, उनकी यात्रा ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर, अधर्म के रास्ते पर हो जाएगी।

इसका मतलब यह हुआ कि जो आदमी स्वयं में कम उत्सुक है और स्वयं को दिखाने में ज्यादा उत्सुक है, वह अधर्म के रास्ते पर चला जाता है। जिस आदमी को इस में कम रस है कि मैं क्या हूं, और इस में ज्यादा रस है कि लोग मेरे संबंध में क्या सोचते हैं, वह अधर्म के रास्ते पर चला जाता है। जो लोगों कि आंखों में एक प्रतिबिंब बनाना चाहता है, एक इमेज, वह अधर्म के रास्ते पर चला जाता है।

धर्म के रास्ते पर तो केवल वे ही जा सकते हैं, जो स्वयं में उत्सुक हैं। स्वयं की वास्तविकता में, स्वयं के आवरण, आभूषण, स्वयं की साज सज्जा, स्वयं का शृंगार, दूसरों की आंखों में बनी स्वयं की प्रतिमा में जिनकी उत्सुकता नहीं है, केवल वे ही धर्म के रास्ते पर जा सकते हैं। क्योंकि दूसरे तो तभी आदर देते हैं, जब आप कुछ असंभव करके दिखाएं। दूसरे तो तभी आपको मानते हैं जब आप कोई चमत्कार करके दिखाएं। दूसरे तो तभी मानते हैं जब आप कुछ ऐसा करें, जो वे नहीं कर सकते हैं। तब।

जब आप किसी को आदर देते हैं तो आपने कभी ख्याल किया है, आपके आदर देने का कारण क्या होता है? सदा कारण यही होता है कि जो आप नहीं कर सकते, वह यह आदमी कर रहा है। अगर आप भी कर सकते हैं, तो आप आदर न दे सकेंगे।

आप जाते हैं, कोई सत्य साईं बाबा एक ताबीज हाथ से निकाल कर दे देते हैं, तो आप आदर करते हैं। एक मदारी आदर न कर सकेगा। ताबीज तो कुछ भी नहीं, वह कबूतर निकाल देता है हाथ से। वह जानता है कि इसमें आदर जैसा कुछ भी नहीं है, यह साधारण मदारीगीरी है। वह आदर न दे सकेगा। आप आदर दे सकेंगे, क्योंकि आप नहीं कर सकते। जो आप नहीं कर सकते, वह चमत्कार है। फिर यह ताबीजों से ही संबंधित होता तो बहुत हर्जा न था, क्योंकि ताबीजों में बच्चों के सिवाय कोई उत्सुक नहीं होता, न कबूतरों में कोई बच्चों के सिवाय उत्सुक होता है; लेकिन यह और तरह से भी संबंधित है।

आप एक दिन भूखे नहीं रह सकते, और एक आदमी तीस दिन का उपवास कर लेता है, तब आपका सिर उसके चरणों में लग जाता है। यह भी वही है, इसमें भी कुछ मामला नहीं है। आप ब्रह्मचर्य नहीं साध सकते और एक आदमी बाल ब्रह्मचारी रह जाता है, आपका सिर उसके चरणों में लग जाता है। यह भी वही है, कोई फर्क नहीं है। कोई भी फर्क नहीं है।

कारण सदा एक ही है भीतर हर चीज के, कि जो आप नहीं कर सकते। तब इसका यह मतलब हुआ कि अगर आपको भी अहंकार की तृप्ति करनी हो तो आप को कुछ ऐसा करना पड़े, जो लोग नहीं कर सकते। या कम से कम दिखाना पड़े कि आप कर सकते हैं, जो लोग नहीं कर सकते।

तो जो व्यक्ति अहंकार में उत्सुक है, वह सदा ही तिरछे रास्तों में उत्सुक होगा। ताबीज पेटी से निकाल कर आपके हाथ में दे देना बिल्कुल सीधा काम है, लेकिन पहले ताबीज को छिपाना, और फिर इस तरीके से निकालना कि दिखाई न पड़े, कहां से निकल रहा है, तिरछा काम है। तिरछा है तो आकर्षक है, आपको भी पता चल जाए कि ताबीज कैसे पेटी से कपड़े की बांह के भीतर गया, फिर बांह से कैसे हाथ तक आया, एक दफा आप को पता चल जाए, चमत्कार तिरोहित हो जाए। फिर दुबारा आपको इसमें कोई श्रद्धा न मालूम होगी।

आपको भी पता चल जाए कि भूखा रहने की तरीके क्या है, फिर उपवास में भी आपकी श्रद्धा न रह जाएगी। आपको भी पता चल जाए कि ब्रह्मचारी रहने की तरीके क्या है, फिर आपको उसमें भी रस न रह जाएगा।

जो आप भी कर सकते हैं... यह बड़े मजे की बात है कि किसी आदमी की अपने में श्रद्धा नहीं है। जो आप भी कर सकते हैं, उसमें आपकी कभी श्रद्धा नहीं होगी। जो दूसरा कर सकता है, और आप नहीं कर सकते हैं, तो श्रद्धा होती है। तो जो भी आदमी अहंकार खोज रहा है--अहंकार का मतलब, दूसरों की श्रद्धा खोज रहा है, सम्मान खोज रहा है--वह आदमी तिरछे रास्ते चुन लेगा।

मूर्ख गड़ीवान ऐसे ही मूर्ख नहीं है, बहुत समझदारी से मूर्ख है। उस मूर्खता में एक विधि है।

महावीर कहते हैं, लेकिन जीवन के रास्ते पर भी यही होता है। मनुष्य जान-बूझ कर धर्म को छोड़ कर अधर्म को चुन लेता है।

आपको साफ-साफ पता होता है, यह सरल और सीधा रास्ता है; लेकिन उसमें अहंकार की तृप्ति नहीं होती। तब आप तिरछा रास्ता चुनते हैं। यह जान-बूझ कर चुनते हैं। इसको समझ लेना जरूरी है। क्योंकि अगर आप बिना जाने-बूझे चुनते हैं तब बदलने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए महावीर का जोर है कि आप जान-बूझ कर चुनते हैं। अगर आप बिना जाने-बूझे चुनते हैं तब तो फिर बदलने का कोई उपाय नहीं है। अगर जान-बूझ कर चुनते हैं, तो बदलाहट हो सकती है।

बदलाहट का अर्थ ही यह है कि आप ही मालिक हैं चुनाव के। आपने ही चाहा था इसलिए तिरछे रास्ते पर गए। आप चाहेंगे तो सीधे रास्ते पर आ सकते हैं। यह आपकी चाह ही है जो आपको भटकाती है। इसमें कोई दूसरा पीछे से काम नहीं कर रहा है।

फ्रायड कहता है, आदमी जान-बूझ कर कुछ भी नहीं करता, धर्म और अधर्म के बीच यही विकल्प है। फ्रायड कहता है, मनुष्य जान-बूझ कर कुछ भी नहीं करता, सब अनकांशस होता है, सब अचेतन होता है, जानकर आदमी कुछ भी नहीं करता।

फ्रायड ने यह बात पिछले पचास सालों में इतने जोर से पश्चिम के सामने सिद्ध कर दी। और वह आदमी अदभुत था। उसकी खोज में कई सत्य थे, लेकिन अधूरे सत्य थे और अधूरे सत्य असत्यों से भी खतरनाक सिद्ध होते हैं। क्योंकि अधूरा सत्य, सत्य भी मालुम पड़ता है और सत्य होता भी नहीं। और कोई भी आदमी अधूरे सत्य को नहीं पकड़ता है। जब अधूरे सत्य को पकड़ता है, तो उसे पुरा सत्य मान कर पकड़ता है। तब उपद्रव शुरू हो जाते हैं।

फ्रायड ने पश्चिम को समझा दिया कि आदमी जो भी कर रहा है, वह सब अचेतन है। अगर यह बात सच है, तो फिर आदमी के हाथ में परिवर्तन का कोई उपाय नहीं। इसलिए शराबी ने सोचा कि अब मैं कर भी क्या सकता हूं। व्यभिचारी ने सोचा, अब उपाय भी क्या है। यह सब अचेतन है, यह सब हो रहा है। इसमें मैं कुछ भी नहीं कर सकता।

और इस सदी ने बिना जाने जगत के इतिहास का सबसे बड़ा भाग्यवाद जन्माया। भाग्यवादी कहते थे, परमात्मा कर रहा है; फ्रायड कहता है, अचेतन कर रहा है। लेकिन एक बात में दोनों राजी हैं कि हम नहीं कर रहे हैं। हमारे हाथ में बात नहीं है। परमात्मा कर रहा है। विधि ने लिख दिया खोपड़ी पर, वह हो रहा है। फ्रायड

कहता है, पीछे से अचेतन चला रहा है, और हम चल रहे हैं। जैसे कोई गुड़ियों को नचा रहा हो। हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। पहले परमात्मा नचाता था गुड़ियों को, अब अनकांशस, अचेतन नचा रहा है। सिर्फ शब्द बदल गए हैं। लेकिन आदमी के हाथ में कोई ताकत नहीं।

महावीर परमात्मा के भी खिलाफ है और अचेतन के भी। महावीर कहते हैं, तुम जो भी कर रहे हो, ठीक से जानना, तुम कर रहे हो। आदमी को इतना जादा उत्तरदायी किसी दूसरे ने कभी नहीं माना, जितना महावीर ने माना। महावीर ने कहा कि अंततः तुम ही निर्णायक हो, और इसलिए कभी भूलकर नहीं कहना कि भाग्य ने, विधि ने, परमात्मा ने, किसी ने करवा दिया। जो तुमने किया है, तुमने किया है। इसमें जोर देने का कारण है और वह कारण यह है कि जितना यह स्पष्ट होगा कि मैं कर रहा हूँ, उतनी ही बदलाहट आसान है। क्योंकि अगर मैं अपने चुनाव से उल्टे रास्ते पर नहीं गया हूँ, भेजा गया हूँ, तो जब मैं भेजा जाऊंगा सीधे रास्ते पर तो चला जाऊंगा। जब मैं भेजा गया हूँ उल्टे रास्ते पर, तो मैं कैसे लौट सकता हूँ? जब भेजेगी प्रकृति, भेजेगी नियति, भेजेगा परमात्मा, तो ठीक है, मैं लौट जाऊंगा। न मैं गया, न मैं लौट सकता हूँ। मैं एक पानी में बहता हुआ तिनका हूँ। मेरी अपनी कोई गति नहीं है, मेरा अपना कोई संकल्प नहीं है।

महावीर का यह जोर कि तुम जान-बूझ कर गलत कर रहे हो, कारणवश है और वह कारण यह है कि अगर जान-बूझ कर रहे हो तो ही बदलाहट हो सकती है। नहीं तो फिर कोई ट्रांसफॉर्मेशन, मनुष्य के जीवन में फिर कोई क्रांति संभव नहीं है। इसलिए महावीर बड़े साहस से ईश्वर को बिल्कुल इनकार कर दिए, क्योंकि ईश्वर के रहते महावीर को लगा कि आदमी को सदा एक सहारा होता है कि वह जो करेगा, उसकी बिना आज्ञा के तो पत्ता भी नहीं हिलता, तो हम कैसे हिलेंगे। तो हम कहते हैं, उसकी आज्ञा के बिना पत्ता नहीं हिलता। अब हम व्यभिचारी हैं अब हम कैसे व्यभिचार से हिल जाएं! जब वह हिलाएगा, उसकी मर्जी।

आदमी बेईमान है, अपने परमात्माओं के साथ भी। आदमी बड़ा कुशल है और परमात्मा भी कुछ कर नहीं सकता। आदमी को जो उससे बुलवाना है, बुलवाता है। जो उससे करवाना है, करवाता है। मजा यह है कि परमात्मा की बिना आज्ञा के पत्ता हिलता है, या नहीं हिलता है, यह तो पता नहीं, आपकी बिना आज्ञा के परमात्मा भी नहीं हिल सकता। वह आप ही उसको हिलाते रहते हैं, जैसी मर्जी, आप ही अंततः निर्णायक है।

इसलिए महावीर कहते हैं: "जान-बूझ कर।" लेकिन कितना ही कोई जान-बूझ कर गलत रास्ते पर जाए, रास्ता तो गलत ही होगा, और गलत रास्ते पर धुरी टूटेगी ही। रास्ते के गलत होने का मतलब ही इतना है कि जहां धुरी टूट सकती है। और तो कोई मतलब नहीं है। इसलिए अधर्म में गया हुआ आदमी रोज टूटता चला जाता है। निर्मित नहीं होता, बिखरता है।

चोरी करके देखें, झूठ बोल कर देखें, बेईमानी करके देखें, धोखा करके देखें, किसी की हत्या करें, होगा क्या? आपकी आत्मा की धुरी टूटती चली जाती है, आप भीतर टूटने लगते हैं। भीतर इंटीग्रेशन, अखंडता नहीं रह जाती, खंड-खंड हो जाता है। कभी कुछ, जिसको धर्म कहा है, वह करके देखें तो भीतर अखंडता आती है।

इसको ऐसा सोचें कि जब आप झूठ बोलते हैं, तब आपके भीतर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, एक आत्मा नहीं होती। एक हिस्सा तो भीतर कहता ही रहता है कि मत करो, गलत है। एक हिस्सा तो जानता ही रहता है कि यह यच नहीं है। आप सारी दुनिया को झूठ बोल सकते हैं, लेकिन आपने से कैसे बोलिएगा? भीतर तो पता चलता ही रहता है कि यह झूठ है। इसलिए सतह पर भर आप झूठ के लेबल चिपका सकते हैं, आपकी अंतरात्मा तो जानती है कि यह झूठ है। इसलिए आप इकट्ठे नहीं हो सकते।

आपकी परीधि और आपके केंद्र में विरोध बना रहेगा। भीतर कोई कहता ही रहेगा कि यह झूठ है, यह नहीं, यह नहीं बोलना था। जो बोला है वह ठीक नहीं था। यह भीतर खंड-खंड कर जाएगा।

अब जो आदमी हजार झूठ बोल रहा है, उसके हजार खंड हो जाएंगे लेकिन जो आदमी सच बोल रहा है, उसके भीतर कोई खंड नहीं होता। क्योंकि सच के विपरीत कोई कारण नहीं होता। और मजा यह है कि अगर कभी विपरीत भी हो, जैसा कि सच बोलते में भी कभी परिधि कहती है, मत बोलो, नुकसान होगा; लेकिन तब भी सच आता है भीतर से और झूठ आता है बाहर से।

भीतर हमेशा मजबूत होता है। इसलिए परिधि ज्यादा देर टिक नहीं पाती, टूट जाती है। लेकिन जब आप झूठ बोलते हैं परिधि की मान कर, तब कभी भी कितना ही बोलते चले जाएं, टिक नहीं सकता। रोज सम्हालें, फिर भी नहीं सम्हालता; क्योंकि भीतर गहरे में आप जानते ही हैं कि यह झूठ है। वह हजार तरह से निकलने की कोशिश करता है। इसलिए जो आदमी झूठ बोलता है वह भी किसी से बता देता है कि यह झूठ है।

आप जानते हैं क्यों? हम सब अपने इंटिमेसीज रखते हैं, आंतरिकताएं रखते हैं, जहां हम सब बता देते हैं। उससे मन हलका होता है। नहीं बता पाए दुनिया को, कोई फिकर नहीं, अपनी पत्नी को तो बता दिया! इससे राहत मिलती है। वह जो सच है भीतर, धक्के दे रहा है। उसे प्रकट करो। नहीं है हिम्मत कि सारी दुनिया को प्रकट कर दें, तो किसी को तो बता पाते हैं।

इस दुनिया में उस आदमी से अकेला कोई भी नहीं, जिसके कोई भी इतना निकट नहीं है, जिससे कम से कम वह झूठ बता सके कि जो-जो मैं गलत कर रहा हूं, वह यह है। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि प्रेम का लक्षण ही यह है कि जिसके सामने तुम पूरे सच्चे प्रकट हो जाओ। अगर एक भी ऐसा आदमी नहीं है जगत में, जिसके सामने आप पूरे नग्न हो सकते हैं अंतःकरण से, तो आप समझना आपको प्रेम का कोई अनुभव नहीं हुआ है।

लेकिन जो आदमी सारे जगत के सामने अंतःकरण से नग्न हो सकता है, उसको प्रार्थना का अनुभव हुआ है। एक व्यक्ति के सामने भी आप पूरे सच हो जाते हैं तो जो क्षणभर को राहत मिलती है, जो सुगंध आती है, जो ताजी हवाएं दौड़ जाती हैं प्राणों के आर पार, वे भी काफी हैं। लेकिन जब कोई व्यक्ति समस्त जगत के सामने सच हो जाता है, जैसा है, वैसा ही हो जाता है, तब उसके जीवन में दुर्गंध का कोई उपाय नहीं है।

महावीर धर्म कहते हैं, स्वभाव की सत्यता को, जैसा है भीतर वैसा ही। कोई टेढ़ा-मेढ़ा नहीं। ठीक वैसा ही, नग्न जैसे दर्पण के सामने कोई खड़ा हो। ऐसा जो सहज है भीतर, वह जगत के सामने प्रकट हो जाए। इस अभिव्यक्ति का, सहज अभिव्यक्ति का जो अंतिम फल है वह है, मृत्यु मोक्ष बन जाती है। और हमारे समस्त झूठों के संग्रह का जो अंतिम फल है, पूरा जीवन एक असत्य, अप्रामाणिक अन-आथेंटिक यात्रा हो जाती है। चलते बहुत है, पहुंचते कहीं भी नहीं। दौड़ते बहुत हैं, मंजिल कोई भी हाथ नहीं आती। सिर्फ मरते हैं। जीवन कहीं पहुंचाता नहीं, सिर्फ भटकाता है। जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं लौटते। जो मनुष्य अधर्म करता है, उसके वे रात-दिन बिल्कुल निष्फल जाते हैं। लेकिन जो मनुष्य धर्म करता है, उसके वे रात-दिन सफल हो जाते हैं।

महावीर के लिए सफलता का क्या अर्थ है? बैंक बैलेंस? कि कितने लोग आपको मानते हैं? कि कितने अखबार आपकी तस्वीर छापते हैं? कि कितनी नोबल प्राइज आपको मिल जाती हैं? नहीं, महावीर इसे सफलता नहीं कहते। थोड़ा सा उनकी जिंदगी देखें जिनको नोबल प्राइज मिलती है। उनमें से अधिक आत्महत्या कर लेते हैं। जो आत्महत्या नहीं करते, वे मरे-मरे जीते हैं।

अर्नेस्ट हेमिंग्वे का नाम सुना होगा। कौन इतनी सफलता पाता है? नोबल प्राइज है, धन है, प्रतिष्ठा है, सारे जगत में नाम है। बड़ा कोई लेखक न था उसके समय में। लेकिन अर्नेस्ट हेमिंग्वे अंत में आत्महत्या कर लेता है। बड़ी अदभुत सफलता है। बाहर इतनी सफलता और भीतर इतनी पीड़ा है कि आत्महत्या कर लेनी पड़ती है। अपने को सहना मुश्किल हो जाता है, तभी तो कोई आत्महत्या करता है। जब अपने को बर्दाश्त करना आसान नहीं रह जाता, एक-एक पल, एक-एक घड़ी आदमी अपने को भारी पड़ने लगता है, तभी तो मिटाता है!

तो जिसको इतनी सफलता है चारों तरफ, इतना यश, गौरव है, वह भी भीतर इतनी दिक्कत में पड़ा है! भीतर की धुरी टूट गई है। सारी दुनिया तारीफ कर रही है चकों की, धुरी तो दुनिया को दिखाई नहीं पड़ती, वह तो भीतर है, स्वयं को दिखाई पड़ती है। सारी दुनिया चांदी के वर्क, सोने के वर्क लगा रही है चाकों पर; और सारी दुनिया कह रही है, क्या अदभुत चके हैं, कितनी-कितनी ऊबड़-खाबड़ यात्राएं कीं! और भीतर धुरी टूट गई, वह गाड़ी ही जानती है कि अब क्या होना है! इन चकों पर लगे हुए सितारे काम नहीं पड़ेंगे। अंत में तो धुरी ही... उस धुरी की सफलता महावीर के लिए क्या हो सकती है? महावीर के लिए सफलता एक ही है।

समय तो बीत जाता है। उस समय में हम दो काम कर सकते हैं--या तो उस समय में हम अपनी आत्मा को इकट्ठा कर सकते हैं, या उस समय में हम अपनी आत्मा को बिखेर सकते हैं, तोड़-तोड़, टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं।

समय तो बीत जाएगा, फिर लौट कर नहीं आता, लेकिन उस समय में हमने जो किया है, वह हमारे साथ रह जाता है। वह कभी नहीं खोता इस बात को ठीक से समझ लें।

समय तो कभी नहीं लौटता, लेकिन समय में जो घटता है, वह कभी नहीं जाता। वह सदा साथ रह जाता है। तो मैंने क्या किया है समय में, उससे मेरी आत्मा निर्मित होती है। महावीर ने तो आत्मा को समय का नाम ही दे दिया है। महावीर ने तो कहा है, आत्मा, यानी समय। ऐसा किसी ने भी दुनिया में नहीं कहा। क्योंकि महावीर ने कहा कि समय तो खो जाएगा, लेकिन समय के भीतर तुमने क्या किया है, वही तुम्हारी आत्मा बन जाएगी, वही तुम्हारा सृजन है।

तो हम समय के साथ विध्वंसक हो सकते हैं, सृजनात्मक हो सकते हैं। विध्वंसक का अर्थ है कि हम जो भी कर रहे हैं उससे हमारी आत्मा निर्मित नहीं हो रही है। झूठ बोलने से एक आदमी की आत्मा निर्मित नहीं होती। चोरी करने से आत्मा निर्मित नहीं होती। धन मिल सकता है, झूठ बोलने से यश मिल सकता है। सच तो यह है कि बिना झूठ बोले यश पाना बड़ा मुश्किल है। बिना चोरी किए धन पाना बहुत मुश्किल है। जब धन मिलता है तो निन्यानबे प्रतिशत चोरी के कारण मिलता है, एक प्रतिशत शायद बिना चोरी के मिलता हो। जब प्रतिष्ठा मिलती है तो निन्यानबे प्रतिशत झूठ, प्रचार से मिलती है; एक प्रतिशत शायद, उसका कोई निश्चय नहीं है।

एक बात तय है कि अधर्म से जो मिलता है, उससे आपकी आत्मा निर्मित नहीं होती। अधर्म से जो भी मिलता है, वह आत्मा की कीमत मिलता है। बाहर तो कुछ मिलता है, भीतर कुछ खोना पड़ता है। हम हमेशा मूल्य चुकाते हैं।

जब आप झूठ बोलते हैं, तो मैं इसलिए नहीं कहता झूठ मत बोलें, कि इससे दूसरे को नुकसान होगा। दूसरे को होगा कि नहीं होगा, यह पक्का नहीं है। आपको निश्चित हो रहा है, यह पक्का है। दूसरा अगर समझदार हुआ, तो आपके झूठ से कोई नुकसान नहीं होने वाला है; और दूसरा अगर नासमझ है, तो आपके सत्य से भी नुकसान हो सकता है।

दूसरा महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण आप है। अंततः जब आप कुछ भी गलत कर रहे हैं, तो आप भीतर आत्मा के मूल्य में चुका रहे हैं; व्यर्थ का एक कंकड़, इकट्ठा कर रहे हैं और भीतर एक आत्मा का खंड खो रहे हैं। महावीर इसको असफलता कहते हैं कि एक आदमी जीवन में सब कुछ इकट्ठा कर ले और आखिर में पाए, कि खुद की धुरी टूट गई, सब पा ले और आखिर में पाए, कि खुद को खोकर पाया है यह, तब मृत्यु के क्षण में जो पछतावा होता है, लेकिन तब समय वापस नहीं आ सकता।

पुनर्जन्म की सारी भारतीय धारणाएं इसीलिए हैं कि पिछला समय तो वापस नहीं आ सकता। नया समय आपको दुबारा मिलेगा। पुराने समय को लौट आने का कोई उपाय नहीं, लेकिन नया जन्म मिलेगा। फिर से नया

समय मिलेगा। लेकिन जिन्होंने पुराने समय में मजबूत आदतें निर्मित कर ली हैं, संस्कार भारी कर लिए हैं, वे नये समय का फिर से वैसा ही उपयोग करेंगे।

थोड़ा सोचें, अगर कोई आपसे कहे कि आपको हम फिर से जन्म दे देते हैं; आपका क्या करने का इरादा है? तो आप क्या करेंगे? सोचें थोड़ा, तो आप पाएंगे कि जो आपने अभी किया है, थोड़ा बहुत माडिफाइड, इधर-उधर थोड़ा बहुत हेर-फेर, पत्नी थोड़ी और अच्छी नाकवाली चुन लेंगे, कि मकान थोड़ा और नया डिजाइन का बना लेंगे। करेंगे क्या?

मुल्ला नसरुद्दीन से मरते वक्त किसी ने पूछा था कि फिर से जन्म मिले तो क्या करोगे? तो उसने कहा, जो पाप मैंने बहुत देर से शुरू किए, वे जल्दी शुरू कर दूंगा, क्योंकि जो पाप मैंने किए, उनके लिए मुझे कोई पछतावा नहीं होता। जो मैं नहीं कर पाया हूं, उनका हमेशा मुझे पछतावा रहता है।

आप ही ख्याल करना, पाप का पछतावा बहुत कम लोगों को होता है। जो आप पाप नहीं कर पाए, उसका पछतावा सदा बना रहता है। और करके पछताना उतना बुरा नहीं है, न कर के पछताना बिल्कुल व्यर्थ है।

कभी आपने ख्याल किया कि जो-जो आप नहीं कर पाए हैं, जो चोरी नहीं कर पाए, उसके लिए भी पछता रहे हैं। जो झूठ नहीं बोल पाए उसके लिए भी पछताते हैं। जो बेईमानी अगर कर लेते! ... तो अभी कहीं के गवर्नर होते, या कहीं चीफ मिनिस्टर होते, नहीं कर पाए। नाहक जेल गए और आए। जरा सी तरकीब लगा लेते, तो मन पीड़ा झेलता चला जाता है।

अगर आपको नया समय भी मिले, तो आप पुनरुक्ति ही करेंगे; क्योंकि आपको मूल ख्याल में नहीं है कि आपने जो किया, वह क्यों किया? वह अहंकार के कारण आपने गलत रास्ता चुना। अगर अहंकार मौजूद है, आप फिर गलत रास्ता चुनेंगे। फिर गलत रास्ता चुनेंगे।

अहंकार प्रवृत्ति है--गलत रास्ता चुनने की। अगर अहंकार खो जाए, तो आप समय का उपयोग कर सकते हैं। इसलिए महावीर ने अंतिम सूत्र में बात कही-- "जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियां नहीं सतातीं, जब तक इंद्रियां अशक्त नहीं होतीं, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए। बाद में कुछ भी नहीं होगा।"

यहां हिंदू और जैन विचार में एक बहुत मौलिक भेद है। हिंदू विचार सदा से मानता रहा है कि संन्यास, धर्म, ध्यान, योग सब बुढ़ापे के लिए है। अगर महावीर ने इस विचार में कोई बड़ी से बड़ी क्रांति पैदा की तो इस सूत्र में है। वह यह कि यह बुढ़ापे के लिए नहीं है।

बड़े मजे की बात है कि अधर्म जवानी के लिए है, और धर्म बुढ़ापे के लिए; भोग जवानी के लिए, और योग बुढ़ापे के लिए। क्यों? क्या योग के लिए किसी शक्ति की जरूरत नहीं है? जब भोग तक के लिए शक्ति की जरूरत है, तो योग के लिए शक्ति की जरूरत नहीं है? लेकिन उसका कारण है--उसका कारण है, और वह कारण यह है कि हम भलीभांती जानते हैं, कि भोग तो बुढ़ापे में किया नहीं जा सकता, योग देखेंगे। हो गया तो ठीक है, न हुआ तो क्या हर्ज है। भोग छोड़ा नहीं जा सकता, योग छोड़ा जा सकता है। तो भोग तो अभी कर लें और योग को स्थगित रखें। जब भोग करने योग्य न रह जाएं, तब योग कर लेंगे।

लेकिन ध्यान रखना, वही शक्ति, जो भोग करती है, वही शक्ति योग करती है। दुसरी कोई शक्ति आपके पास है नहीं। आदमी के पास शक्ति तो एक ही है; उसी से वह भोग करता है, उसी से वह योग करता है। इसलिए महावीर की दृष्टि बड़ी वैज्ञानिक है। महावीर कहते हैं कि जिस शक्ति से भोग किया जाता है, उसी से तो योग किया जाता है। वही जो वीर्य, वह जो ऊर्जा संभोग बनती है, वही वीर्य, वही ऊर्जा, तो समाधि बनती है। जो मन भोग का चिंतन करता है, वही मन तो ध्यान करता है। जो शक्ति क्रोध में निकलती है, वही शक्ति तो

क्षमा में खिलती है। उसमें फर्क नहीं है, शक्ति वही है। शक्ति हमेशा तटस्थ है, न्यूट्रल है। आप क्या करते हैं, इस पर निर्भर करता है।

एक आदमी अगर ऐसा कहे कि धन मेरे पास है, उसका उपयोग मैं भोग के लिए करूंगा, और जब धन मेरे पास नहीं होगा तब जो बचेगा, उसका उपयोग दान के लिए करूंगा।

मुल्ला नसरुद्दीन मरा तो उसने आपनी वसीयत लिखी। वसीयत में उसने लिखवाया अपने वकिल को कि लिखो, मेरी आधी संपत्ति मेरी पत्नी के लिए, नियमानुसार। मेरी आधी संपत्ति मेरे पांच पुत्रों में बांट दी जाए; और बाद में जो कुछ बचे गरीबों को दान कर दिया जाए। लेकिन वकील ने पूछा: कुल संपत्ति कितनी है? मुल्ला ने कहा: यह तो कानूनी बात है, संपत्ति तो बिल्कुल नहीं है। संपत्ति तो मैं खतम कर चुका हूं। लेकिन वसीयत रहे, तो मन को थोड़ी शांति रहती है; कि कुछ करके आए, कुछ छोड़ कर आए।

करीब-करीब जीवन-ऊर्जा के साथ हमारा यही व्यवहार है।

महावीर कहते हैं: "भोग के जब क्षण हैं, तभी योग के भी क्षण हैं।" भोग जब पकड़ रहा है, तभी योग भी पकड़ सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं: जब बुढ़ापा सताने लगे, तब व्याधियां बढ़ जाएं, और इंद्रियां अशक्त हो जाएं, तब धर्म का आचरण नहीं हो सकता है; तब सिर्फ धर्म की आशा हो सकती है; आचरण नहीं।

आचरण शक्ति मांगता है। इसलिए जिस विचारधारा में, बुढ़ापे को धर्म के आचरण की बात मान लिया गया, उस विचारधारा में बुढ़ापे में सिवाय भगवान से प्रार्थना करने के फिर कोई और उपाय बचता नहीं। इसलिए लोग फिर राम नाम लेते हैं आखिर में। फिर और तो कुछ कर नहीं सकते, कुछ और तो हो ही नहीं सकता है। जो हो सकता था, वह सारी शक्ति गवां दी; जिससे हो सकता था, वह सारा समय खो दिया। जब शक्ति प्रवाह में थी और ऊर्जा जब शिखर पर थी, तब हम कचरा-कूड़ा बीनते रहे। और जब हाथ से सारी शक्ति खो गई, तब हम आकाश के तारे छूने की सोचते हैं। तब सिर्फ हम आंख बांध कर, बंद करके राम नाम ले सकते हैं।

राम नाम अधिकतर धोखा है। धोखे का मतलब? राम नाम में धोखा है, ऐसा नहीं, राम नाम लेने वाले में धोखा है। धोखा इसलिए है कि अब कुछ नहीं कर सकते, अब तो राम नाम ही सहारा है। साधु संन्यासी बिल्कुल समझाते रहते हैं कि यह कलियुग है, अब कुछ कर तो सकते नहीं। अब तो बस राम नाम ही एक सहारा है। लेकिन मतलब इसका वही होता है जो आमतौर से होता है। किसी बात को आप नहीं जानते तो आप कहते हैं, सिर्फ भगवान ही जानता है। उसका मतलब, कोई नहीं जानता। राम नाम ही सहारा है। उसका ठीक मतलब कि अब कोई सहारा नहीं है।

महावीर कहते हैं इसके पहले की शक्तियां खो जाएं, उन्हें रूपांतरित कर लेना। इसके पहले... और बड़े मजे की बात यह है कि जो उन्हें रूपांतरित कर लेता है खोने के पहले, शायद उसे बुढ़ापा कभी नहीं सतता। क्योंकि बुढ़ापा वस्तुतः शारीरिक घटना कम और मानसिक घटना ज्यादा है। महावीर भी तो शरीर से बूढ़े हो जाएंगे, लेकिन मन से उनकी जवानी कभी नहीं खोती।

इसलिए हमने महावीर का कोई चित्र बुढ़ापे का नहीं बनाया, न कोई मूर्ति बुढ़ापे की बनाई। क्योंकि वह बनाना गलत है। महावीर बूढ़े हुए होंगे, और उनके शरीर पर झुर्रियां पड़ी होंगी, क्योंकि शरीर किसी को भी क्षमा नहीं करता।

और शरीर के नियम हैं, वह महावीर की फिकर नहीं करता, किसी की फिकर नहीं करता। उनकी आंखें भी कमजोर हो गई होंगी, उनके पैर भी डगमगाने लगे होंगे, शायद उन्हें भी लकड़ी का सहारा लेना पड़ा हो--कुछ पता नहीं। लेकिन हमने कभी उनके बुढ़ापे की कोई मूर्ति नहीं बनाई, क्योंकि वह असत्य है। तथ्य तो हो सकती है, फैक्ट तो हो सकती है, लेकिन वह असत्य होगी।

महावीर के बाबत सच्ची खबर उससे न मिलेगी। वह भीतर से सदा जवान बने रहे, क्योंकि बुढ़ापा वासनाओं में खोई गई शक्तियों का भीतरी परिणाम है। बाहर तो शरीर पर बुढ़ापा आएगा, वह समय की धारा में अपने आप घटित हो जाएगा, लेकिन भीतर जब शरीर की शक्तियां वासना में गवाई जाती हैं, अधर्म में, टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर जब धुरी टूट जाती है, तब भीतर भी एक बुढ़ापा आता है, एक दीनता।

वासना में बिताए हुए आदमी का जीवन सबसे ज्यादा दुखद बुढ़ापे में हो जाता है। और बहुत कुरूप हो जाता है। क्योंकि धुरी टूट चुकी होती है और हाथ में सिवाय राख के कुछ भी नहीं होता, सिर्फ पापों की थोड़ी स्मृतियां होती हैं और वह भी सालती है। और समय व्यर्थ गया, उसकी भी पीड़ा कचोटती है।

इसलिए बुढ़ापा हमें सबसे ज्यादा कुरूप मालूम पड़ता है। होना नहीं चाहिए। क्योंकि बुढ़ापा तो शिखर है जीवन का, आखिरी। सर्वाधिक सुंदर होना चाहिए। इसलिए जब कभी कोई बूढ़ा आदमी जिंदगी में गलत रास्तों पर न चल कर सीधे-सरल रास्तों से चला होता है, तो बुढ़ापा बच्चों जैसा निर्दाष, पुनः हो जाता है। और बच्चे इतने निर्दाष नहीं हो सकते। क्योंकि अज्ञानी हैं। बुढ़ापा एक अनुभव से निखरता और गुजरता है। इसलिए बुढ़ापा जितना निर्दाष हो सकता है--और कभी सफेद बालों का सिर पर छा जाना--अगर भीतर जीवन में भी इतनी शुभ्रता आती चली गई हो, तो उस सौंदर्य की कोई उपमा नहीं है।

जब तक बूढ़ा आदमी सुंदर न हो, तब तक जानना कि जीवन व्यर्थ गया है। जब तक बुढ़ापा सौंदर्य न बन जाए, लेकिन बुढ़ापा कब सौंदर्य बनता है? जब शरीर तो बूढ़ा हो जाता है, लेकिन भीतर जवानी की ऊर्जा अक्षुण्ण रह जाती है। तब इस बुढ़ापे की झुर्रियों के भीतर से वह जवानी की जो अक्षुण्ण ऊर्जा है, जो वीर्य है, जो शक्ति है, जो बच गई, जो रूपांतरित हो गई, उसकी किरणें इन बुढ़ापे की झुर्रियों से बाहर पड़ने लगती हैं, तब एक अनूठे सौंदर्य का जन्म होता है।

इसलिए हमने महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण किसी का भी बुढ़ापे का कोई चित्र नहीं रखा है। अच्छा किया हमने। हम ऐतिहासिक कौम नहीं हैं। हमें तथ्यों की बहुत चिंता नहीं है, हमें सत्यों की फिकर है जो तथ्यों के भीतर छिपे होते हैं, गहरे में छिपे होते हैं। इसलिए हमने उनको जवान ही चित्रित किया है।

महावीर कहते हैं, जब है शक्ति, तब उसे बदल डालो। पीछे पछताने का कोई भी अर्थ नहीं है।

आज इतना ही।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, फिर जाएं।

सत्य सदा सार्वभौम है (सत्य-सूत्र)

निञ्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं।
भासियव्वं हियं सच्चं, निञ्चाऽऽउत्तेण दुक्करं॥
तहेव सावज्जऽणुमोयणी गिरा,
ओहारिणी जा य परोवघायणी।
से कोह लोह भय हास माणवो,
न हासमाणो वि गिरं वएज्जा॥

सदा अप्रमादी व सावधान रहते हुए असत्य को त्याग कर हितकारी सत्य-वचन ही बोलना चाहिए। इस प्रकार का सत्य बोलना सदा बड़ा कठिन होता है।

श्रेष्ठ साधु पापमय, निश्चयात्मक और दूसरों को दुख देने वाली वाणी न बोलें। इसी प्रकार श्रेष्ठ मानव को क्रोध, लोभ, भय और हंसी-मजाक में भी पापवचन नहीं बोलना चाहिए।

सूत्र के पहले एक दो प्रश्न पूछे गए हैं।

मैंने परसों कहा कि हिंदू विचार संन्यास को जीवन की अंतिम अवस्था की बात मानता है। किन्हीं मित्र को इसे सुन कर अड़चन हुई होगी। मैं निकलता था बाहर, तब उन्होंने पूछा कि हिंदू शास्त्रों में तो जगह-जगह ऐसे वचन भरे पड़े हैं कि जब शक्ति हो, तभी साधना कर लेनी चाहिए!

चलते हुए रास्ते में उनसे ज्यादा नहीं कहा जा सकता था। मैंने उनसे इतना ही कहा कि ऐसे वचन अगर आपको पता हों तो उनका आचरण शुरू देना चाहिए।

लेकिन हमारा मन बड़ा अनुदार है, सभी का। हम सभी सोचते हैं कि मेरे धर्म में सब कुछ है। यह अनुदार वृत्ति है। क्योंकि इस पृथ्वी पर कोई भी धर्म पूरा नहीं है, हो भी नहीं सकता। जैसे ही सत्य अभिव्यक्त होता है, अधूरा हो जाता है। और जब यह अधूरा सत्य संगठित होता है तो और भी अधूरा हो जाता है। और जब हजारों लाखों सालों तक यह संगठन जकड़ बनता चला जाता है, तो और भी क्षीण होता चला जाता है।

सभी संगठन अधूरे सत्यों के संगठन होते हैं। इसलिए इस जगत के सारे धर्म मिल कर एक पूरे धर्म की संभावना पैदा करते हैं। कोई अकेला धर्म पूरे धर्म की संभावना पैदा नहीं करता। क्योंकि सभी धर्म सत्यों को अलग-अलग पहलुओं से देखी गई चेष्टाएं हैं।

हिंदू विचार अत्यंत व्यवस्था को स्वीकार करता है। इसलिए हिंदू विचार ने जीवन को चार हिस्सों में बांट दिया है। ब्रह्मचर्य आश्रम है, गृहस्थ आश्रम है, वानप्रस्थ आश्रम है और फिर संन्यास आश्रम है। यह बड़ी गणित की व्यवस्था है, इसके अपने उपयोग हैं, अपनी कीमत है।

लेकिन जीवन कभी भी व्यवस्था में बंधता नहीं, जीवन सब व्यवस्था को तोड़कर बहता है। इस व्यवस्था को हमने दो नाम दिए हैं, वर्ण और आश्रम। हमने समाज को भी चार हिस्सों में बांट दिया और हमने जीवन को भी चार हिस्सों में बांट दिया। यह बंटाव उपयोगी है।

हिंदू मन को यह कभी स्वीकार नहीं रहा कि कोई जवान आदमी संन्यासी हो जाए, कि कोई बच्चा संन्यासी हो जाए। संन्यास आना चाहिए, लेकिन वह जीवन की अंतिम बात है। इसका अपना उपयोग है, इसका अपना अर्थ है, क्योंकि हिंदू ऐसा मानता रहा है कि संन्यास इतनी बड़ी घटना है कि सारे जीवन के अनुभव के बाद ही खिल सकती है। इसका अपना उपयोग है।

लेकिन महावीर और बुद्ध ने एक क्रांति खड़ी की इस व्यवस्था में। और वह क्रांति यह थी कि संन्यास का फूल कभी भी खिल सकता है। कोई वृद्धावस्था तक रुकने की जरूरत नहीं है। न केवल इतना, बल्कि महावीर ने कहा कि जब युवा है चित्त और जब शक्ति से भरा है शरीर, तभी जो भोग में बहती है ऊर्जा, वह अगर योग की तरफ बहे, तो संन्यास का फूल खिल सकता है।

यह एक दूसरे पहलू से देखने की चेष्टा है, इसका भी अपना मूल्य है। इसमें बहुत फर्क हैं, और कारण हैं फर्कों के।

इसे हम थोड़ा समझ लें।

हिंदू विचार ब्राह्मण की व्यवस्था है। ब्राह्मण का अर्थ होता है, गणित, तर्क, योजना, नियम, व्यवस्था। जैन और बौद्ध विचार क्षत्रियों के मस्तिष्क की उपज हैं--क्रांति, शक्ति, अराजकता।

जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। बुद्ध क्षत्रिय हैं। बुद्ध के पिछले सारे जन्मों की जो और भी कथाएं हैं, वे भी क्षत्रिय की ही हैं। बुद्ध ने जिन और बुद्धों की बात की है, वे भी क्षत्रिय हैं।

क्षत्रिय के सोचने का ढंग ऊर्जा पर निर्भर होता है, शक्ति पर। ब्राह्मण के सोचने का ढंग अनुभव पर, गणित पर, विचार पर, मनन पर निर्भर होता है। इसलिए ब्राह्मण एक व्यवस्था देता है। क्षत्रिय अराजक होगा। शक्ति सदा अराजक होती है। इसलिए जवान अराजक होते हैं, बूढ़े अराजक नहीं होते। जवान क्रांतिकारी होते हैं, बूढ़े क्रांतिकारी नहीं होते। अनुभव उनकी सारी क्रांति की नोकों को झाड़ देता है। जवान गैर अनुभवी होता है। गैर-अनुभवी होता है, शक्ति से भरा होता है। उसके सोचने के ढंग अलग होते हैं।

फिर इतिहासज्ञ कहते हैं, और ठीक कहते हैं कि भारत की यह जो वर्ण-व्यवस्था थी, जिसमें ब्राह्मण सबसे ऊपर था। उसके बाद क्षत्रिय था, वैश्य था, शूद्र था। निश्चित ही, जब भी बगावत होती है किसी विचार, किसी तंत्र के प्रति, तो जो निकटतम होता है, नंबर दो पर होता है, वही बगावत करता है। नंबर तीन और चार के लोग बगावत नहीं कर सकते। इतना फासला होता है कि बगावत का कारण भी नहीं होता।

इसलिए ब्राह्मणों के खिलाफ जो पहली बगावत हो सकती थी, वह क्षत्रियों से ही हो सकती थी। वे बिल्कुल निकट थे, दूसरी सीढ़ी पर खड़े थे। उनको आशा बनती थी कि वे धक्का देकर पहली सीढ़ी पर हो सकते हैं। शूद्र बगावत नहीं कर सकता था, वह बहुत दूर था, बहुत सीढ़ियां पार करनी थीं। वैश्य बगावत नहीं कर सकता था।

बड़े मजे की बात है, मनुष्य के ऐतिहासिक उत्क्रम में ब्राह्मणों के प्रति पहली बगावत क्षत्रियों से आई। ब्राह्मणों को सत्ता से उतार दिया क्षत्रियों ने। लेकिन आपको पता है कि क्षत्रियों को फिर वैश्यों ने सत्ता से उतार दिया, और अब वैश्यों को शूद्र सत्ता से उतार रहे हैं।

हमेशा निकटतम से होती है क्रांति। जो नीचे था, वह आशान्वित हो जाता है कि अब मैं निकट हूं सत्ता के, अब धक्का दिया जा सकता है। बहुत दूर इतना फासला होता है कि आशा और आश्वासन भी नहीं बंधता है।

जैन और बौद्ध, क्षत्रिय मस्तिष्क की उपज हैं। क्षत्रिय जवानी पर भरोसा करता है, शक्ति पर। शक्ति ही सब कुछ है। इसके सब आयामों में प्रयोग हुए, सब आयामों में। महावीर ने इसका ही प्रयोग साधना में किया, और महावीर ने कहा कि जब ऊर्जा अपने शिखर पर है, तभी उसका रूपांतरण कर लेना उचित है। क्योंकि रूपांतरण करने के लिए भी शक्ति की जरूरत है। और जब शक्ति क्षीण हो जाएगी तब कई दफा धोखा भी पैदा होता है। जैसे, बूढ़ा आदमी सोच सकता है कि मैं ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया।

असमर्थता ब्रह्मचर्य नहीं है। अगर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध कोई होता है, तो युवा होकर ही हो सकता है। क्योंकि तभी कसौटी है, तभी परीक्षा है। वृद्ध होकर ब्रह्मचर्य होना, ब्रह्मचरी होना मजबूरी हो जाती है। साधन खो जाते हैं। जब साधन खो जाते हैं तो साधना का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जब साधन होते हैं, उत्तेजना होती

है, कामपिटिशन होता है, जब ऊर्जा दौड़ती हुई होती है किसी प्रवाह में, तब उसके रुख को बदल लेना साधना है।

इसलिए महावीर का सारा बल युवा शक्ति पर है।

दूसरी बात, महावीर और बुद्ध दोनों की क्रांति वर्ण और आश्रम के खिलाफ है। न तो वे समाज में वर्ण को मानते हैं कि कोई आदमी बंटा हुआ है खण्ड-खण्ड में, न वे व्यक्ति के जीवन में बंटाव मानते हैं कि व्यक्ति बंटा हुआ है खंड-खंड में।

वे कहते हैं, जीवन एक तरलता है। और किसी को वृद्धावस्था में अगर संन्यास का फूल खिला है, तो उसे समाज का नियम बनाने की कोई भी जरूरत नहीं है। किसी को जवानी में भी खिल सकता है। किसी को बचपन में भी खिल सकता है। इसे नियम बनाने की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति बेजोड़ है।

इसे थोड़ा समझ लें।

हिंदू चिंतन मानकर चलता है कि सभी व्यक्ति एक जैसे हैं। इसलिए बांटा जा सकता है। जैन और बौद्ध चिंतन मानता है कि व्यक्ति बेजोड़ हैं, बांटे नहीं जा सकते। हर आदमी बस अपने जैसा ही है। इसलिए कोई नियम लागू नहीं हो सकता। उस आदमी को अपना नियम खुद ही खोजना पड़ेगा। और इसलिए कोई व्यवस्था ऊपर से नहीं बिठाई जा सकती। न तो हम समाज को बांट सकते हैं कि कौन शूद्र है और कौन ब्राह्मण है। क्योंकि महावीर जगह-जगह कहते हैं कि मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं, जो ब्रह्म को पा ले। उसको ब्राह्मण नहीं कहता जो ब्राह्मण घर में पैदा हो जाए। मैं उसे शूद्र कहता हूं, जो शरीर की सेवा में ही लगा रहे। उसे शूद्र नहीं कहता जो शूद्र के घर पैदा हो जाए। जो शरीर की ही सेवा में और शृंगार में लगा रहता है चौबीस घंटे, वह शूद्र है।

बड़े मजे की बात है, इसका अर्थ हुआ कि एक अर्थ में हम सभी शूद्र की भांति पैदा होते हैं, सभी। जरूरी नहीं है कि हम सभी ब्राह्मण की भांति मर सकें। मर सकें तो सौभाग्य है। सफल हो गए।

और फिर एक-एक व्यक्ति अलग है, क्योंकि महावीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति हजारों-हजारों जन्मों की यात्रा के बाद आया है। इसलिए बच्चे को बच्चा कहने का क्या अर्थ है? उसके पीछे भी हजारों जीवन का अनुभव है। इसलिए दो बच्चे एक जैसे बच्चे नहीं होते। एक बच्चा बचपन से ही बूढ़ा हो सकता है। अगर उसे अपने अनुभव का थोड़ा-सा भी स्मरण हो तो बचपन में ही संन्यास घटित हो जाएगा। और एक बूढ़ा भी बिल्कुल बचकाना हो सकता है। अगर उन्हें इसी जीवन की कोई समझ पैदा न हुई हो, तो बुढ़ापे में भी बच्चों जैसा व्यवहार कर सकता है।

तो महावीर कहते हैं, यात्रा है लंबी। सभी हैं बूढ़े; एक अर्थ में सभी को अनुभव है। इसलिए जब ऊर्जा ज्यादा हो तब इस अनंत-अनंत जीवन के अनुभव का उपयोग करके जीवन को रूपांतरित कर लेना चाहिए।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हिंदू परिवारों में युवा संन्यासी नहीं हुए। लेकिन वे अपवाद हैं। और जो महत्वपूर्ण संन्यासी हिंदू परंपरा में हुए, शंकर जैसे लोग, वे सब बुद्ध और महावीर के बाद हुए।

संन्यास की जो धारा शंकर ने हिंदू विचार में चलाई, उस पर महावीर और बुद्ध का अनिवार्य प्रभाव है। क्योंकि हिंदू विचार से मेल नहीं खाती कि जवान आदमी संन्यास ले ले। इसलिए शंकर के जो विरोधी हैं, रामानुज, वल्लभ, निंबार्क, वे सब कहते हैं कि वे प्रच्छन्न बौद्ध हैं, छिपे हुए बौद्ध हैं। वे असली हिंदू नहीं हैं। ठीक हिंदू नहीं हैं, क्योंकि सारी गड़बड़ कर डाली है। बड़ी गड़बड़ तो यह कर दी कि आश्रम की व्यवस्था तोड़ डाली। शंकर तो बच्चे ही थे, जब उन्होंने संन्यास लिया। महावीर तो जवान थे, जब उन्होंने संन्यास लिया। शंकर तो बिल्कुल बच्चे थे। तैंतीस साल में तो उनकी मृत्यु ही हो गई।

लेकिन कोई विचार पर किसी की बपौती भी नहीं होती कि कोई विचार जैन का है कि बौद्ध का है। विचार तो जैसे ही मुक्त आकाश में फैल जाता है, सब का हो जाता है। लेकिन फिर भी स्रोत का अनुग्रह सदा स्वीकार होना चाहिए, और इतनी उदारता होनी चाहिए कि हम स्वीकार करें कि कौन सी बात किसने दान दी है।

युवक संन्यासी हो, और जीवन जब प्रखर शिखर पर है ऊर्जा के, तब रूपांतरण शुरू हो जाए। इस दिशा में जो दान है, वह जैन और बौद्धों का है। इसके खतरे भी हैं। हर सुविधा के साथ खतरा जुड़ा होता है। हर उपयोगी बात के साथ गड़्वा भी जुड़ा होता है खतरे का।

निश्चित ही, जब युवा व्यक्ति संन्यास लेंगे तो संन्यास में खतरे बढ़ जायेंगे। जब बूढ़ा आदमी संन्यास लेगा, संन्यास में खतरे नहीं होंगे। बूढ़े को संन्यासी होना मुश्किल है, लेकिन अगर बूढ़ा संन्यासी होगा तो खतरे बिल्कुल नहीं हैं। इसलिए महावीर को अतिशय नियम निर्मित करने पड़े। क्योंकि जब युवा संन्यासी होंगे, तो खतरे निश्चित-निश्चित बढ़ जानेवाले हैं। युवक और युवतियां जब संन्यासी होंगे और उनकी वासना प्रबल वेग में होगी, तब खतरे बहुत बढ़ जानेवाले हैं। इसलिए एक बहुत पूरी की पूरी आयोजना करनी पड़ी नियमों की कि ये खतरे काटे जा सकें।

इसलिए जैन विचार कई दफा बहुत सप्रेसिव, बहुत दमनकारी मालूम होता है। वह है नहीं।

दमनकारी इसीलिए मालूम होता है कि एक-एक चीज पर अंकुश लगाना पड़ा है। क्योंकि इतनी बढ़ती हुई उद्दाम वासना है, अगर इस पर चारों तरफ से व्यवस्था न हुई तो संभावना इसकी कम है कि योग की तरफ बहे। संभावना यह है कि यह भोग की तरफ बह जाए।

इसलिए हिंदू विचार आज के युग को ज्यादा अपील करेगा; क्योंकि उसमें इतना नियम का जोर नहीं है; क्योंकि वृद्ध अगर संन्यासी होगा तो उसका वृद्ध होना ही, उसकी समझ ही नियम बन जाएगी। उस पर बहुत अतिशय, चारों तरफ बाड़ लगाने की जरूरत नहीं है। उसे छोड़ा जा सकता है, उसकी समझ पर। उससे कहने की जरूरत नहीं है कि ऐसा मत करना, ऐसा मत करना, ऐसा मत करना--हजार नियम बनाने की जरूरत नहीं है।

बुद्ध से आनंद पूछता है कि स्त्रियों की तरफ देखना कि नहीं? तो बुद्ध कहते हैं, कभी नहीं

देखना। आनंद पूछता है, और अगर मजबूरी में अनायास, आकस्मिक स्त्री दिखाई ही पड़ जाए, तो? तो बुद्ध कहते हैं, बोलना मत। आनंद कहता है, ऐसी हालत हो, स्त्री बीमार हो या कोई ऐसी स्थिति बन जाए कि बोलना ही पड़े? तो बुद्ध कहते हैं, होश रखना कि किससे बोल रहे हो।

ऐसा विचार हिंदू चिंतन में कहीं भी खोजे न मिलेगा। कहीं भी खोजे न मिलेगा। लेकिन उसका कारण है। यह युवकों को दिया गया संदेश है। हिंदू चिंतन ने तो क्रमबद्ध व्यवस्था की है--ब्रह्मचर्य। यह ब्रह्मचर्य बुद्ध और महावीर के ब्रह्मचर्य से भिन्न है। कभी-कभी शब्द भी बड़ी दिक्कत देते हैं।

ब्रह्मचर्य पहला है हिंदू विचार में। यह ब्रह्मचर्य गृहस्थ के विपरीत नहीं है। बुद्ध और महावीर का ब्रह्मचर्य गृहस्थ के विपरीत है। हिंदू ब्रह्मचर्य गृहस्थ की तैयारी है, उसके विपरीत नहीं है। युवक को ब्रह्मचारी होना चाहिए, इसलिए नहीं कि वह योग में चला जाए, बल्कि इसलिए कि शक्ति संगृहीत हो, इकट्ठी हो, तो भोग की पूरी गहराई में उतर जाए; यह बड़ा अलग मामला है। इसलिए ब्रह्मचर्य पहले। पच्चीस वर्ष तक युवक ब्रह्मचारी हो, इसलिए नहीं कि योग में चला जाए, अभी योग बहुत दूर है, बल्कि इसलिए कि ठीक से भोग में चला जाए। क्योंकि हिंदू मानता ही यह है कि अगर ठीक से कोई भोग में चला जाय, तो भोग से छुटकारा हो जाता है।

जिस चीज को भी हम ठीक से जान लेते हैं, वह व्यर्थ हो जाती है। अगर ठीक से न जान पाएं तो वह पीछा करती है। अगर बुढ़ापे में भी आपको कामवासना पीछा करती हो तो उसका मतलब ही यह है कि आप कामवासना जान न पाए, आप पूरी ऊर्जा न लगा पाए कि अनुभव पूरा हो जाता, कि आप उसके बाहर निकल आते। जब अनुभव पूरा होता है, हम उसके बाहर हो जाते हैं। जब अधूरा होता है, हम अटके रह जाते हैं।

तो ब्रह्मचर्य इसलिए है कि शक्ति पूरी इकट्ठी हो जाए, और प्रबल वेग से आदमी गृहस्थ में प्रवेश कर सके, वासना में प्रवेश कर सके, प्रबल वेग से। पच्चीस वर्ष, पचास वर्ष तक वह वासना के जीवन में पूरी तरह डूबा रहे, पूरी तरह समग्रता से। यही उसे बाहर निकालने का कारण बनने लगेगा।

और तब पच्चीस वर्ष तक वह जंगल की तरफ मुंह कर ले, वानप्रस्थ हो जाए। रहे घर में, अभी जंगल चला न जाए, क्योंकि एक दम से घर और जंगल जाने में हिंदू विचार को लगता है, छलांग हो जाएगी, क्रमिक न होगा। और जो आदमी एकदम घर से जंगल में चला गया, वह घर को जंगल में ले जाएगा। उसके मस्तिष्क में जंगल... जंगल बाहर होगा, मस्तिष्क में घर आ जाएगा।

हिंदू विचार कहता है, पच्चीस साल तक वह घर पर ही रहे, जंगल की तरफ मुंह रखे। ध्यान जंगल का रखे, रहे घर पर। अगर जल्दी चला जाएगा तो रहेगा जंगल में, ध्यान होगा घर का। पच्चीस साल तक सिर्फ ध्यान को जंगल ले जाए। जब पूरा ध्यान जंगल पहुंच जाए, तब वह भी जंगल चला जाए, तब वह संन्यासी हो। पिचहत्तर वर्ष की उम्र में संन्यासी हो।

इसके अपने उपयोग हैं। कुछ लोगों के लिए शायद यही प्रीतिकर होगा।

लेकिन हम हैं बेईमान। हम हर सत्य से अपने हिसाब की बातें निकाल लेते हैं। हम सोचेंगे, ठीक, यह हमारे लिए बिल्कुल उपयोगी जंचता है। इसलिए नहीं कि आपके लिए उपयोगी है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि इसमें पोस्टपोन, स्थगन करने की सुविधा है। न बचेंगे पिचहत्तर साल के बाद, और न यह झंझट होगी। और घर में ही रहेंगे, रहा वानप्रस्थ, वन की तरफ मुंह रखने की बात, सो वह भीतरी बात है, किसी को उसका पता चलेगा नहीं।

अपने को धोखा हम किसी भी चीज से दे सकते हैं।

फिर महावीर की सारी जो साधना प्रक्रिया है, वह हिंदू साधना प्रक्रिया से अलग है। और इसलिए महावीर की साधना प्रक्रिया का ही उपयोग करना पड़ेगा, अगर जवान संन्यासी हो तो। क्योंकि तब ऊर्जा के प्रबल वेग को रूपांतरित करने की क्रियाओं का उपयोग करना पड़ेगा।

बूढ़ा सौम्यता से संन्यास में प्रवेश करता है। जवान तूफान, आंधी की तरह संन्यास में प्रवेश करता है। इन सबकी प्रक्रियाएं अलग हैं। एक बात लेकिन तय है कि महावीर और बुद्ध ने युवा जीवन ऊर्जा को संन्यास में बदलने की जो कीमिया है, उसके पहले सूत्र निर्मित किए। वह हिंदू विचार की देन नहीं है। और अगर हिंदू संन्यासी, पीछे युवक संन्यास भी लिए, और युवा संन्यास के आंदोलन भी चलाए शंकराचार्य ने, तो उन पर अनिवार्य रूप से महावीर और बुद्ध की छाप है।

इतना अनुदार नहीं होना चाहिए कि सभी कुछ हमसे ही निकले। परमात्मा सब तरफ है, और परमात्मा हजार आवाजों में बोला है, और सब आवाजें परिपूरक हैं। किसी न किसी दिन हम उस सारभूत धर्म को खोज लेंगे, जो सब धर्मों में अलग-अलग पहलुओं से छिपा है। उस दिन ऐसा कहने की जरूरत न होगी कि हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म। ऐसा ही कहने की बात रह जाएगी, धर्म की तरफ जाने वाला जैन रास्ता, धर्म की तरफ जाने वाला बौद्ध रास्ता, धर्म की तरफ जाने वाला हिंदू रास्ता; ये सब रास्ते हैं और धर्म की तरफ जाते हैं।

इसलिए हम अपने मुल्क में इनको संप्रदाय कहते थे, धर्म नहीं। कहना भी नहीं चाहिए। धर्म तो एक ही हो सकता है, संप्रदाय अनेक हो सकते हैं। संप्रदाय का अर्थ है, मार्ग। धर्म का अर्थ है, मंजिल।

एक और मित्र ने पूछा है कि अधर्म का आचरण मनुष्य इसलिए करता है कि मैं सामान्य नहीं हूं, विशेष हूं। उससे अहंकार को पुष्टि मिलती है। क्रोध से दूर रहने का, अस्तित्व जैसा है वैसा स्वीकार करने का, साधना करने का, मैं भी यथाशक्ति प्रयत्न करता हूं। इन कार्यों में आनंद भी मिलता है। हो सकता है, उसमें अहंकार की पुष्टि भी होती हो। अहंकार को विलीन करने की प्रक्रिया में भिन्न प्रकार का अहंकार भी समर्पित हो जाता है। सामान्य मनुष्य अहंकार के सिवाय और है क्या? क्या यह संभव है कि अहंकार का ही किसी इष्ट दिशा में संशोधन होते-होते आखिर में कुछ प्राप्त करने योग्य तत्व बच रह जाए?

ये दो साधना पद्धतियां हैं। एक, कि अहंकार को हम शुद्ध करते चले जायें। क्योंकि जब अहंकार शुद्धतम हो जाता है तो बचता नहीं। शुद्ध होते-होते, होते-होते ही विलीन हो जाता है। एक। इसके सारे मार्ग अलग हैं कि हम अहंकार को कैसे शुद्ध करते चले जायें। खतरे भी बड़े हैं। क्योंकि अहंकार शुद्ध हो रहा है या परिपुष्ट हो रहा है, इसकी परख रखनी बड़ी कठिन है।

दूसरा रास्ता है, हम अहंकार को छोड़ते चले जायें, शुद्ध करने की कोशिश ही न करें, सिर्फ छोड़ने की कोशिश करें। जहां-जहां दिखाई पड़े, वहां-वहां त्याग करते जायें। इसके भी खतरे हैं। खतरा यह है कि हमारे भीतर एक दूसरा अहंकार जन्म जाए कि मैंने अहंकार का त्याग कर दिया है, कि मैं ऐसा हूं, जिसके पास अहंकार बिल्कुल नहीं है।

साधना निश्चित ही खतरनाक है। जब भी आदमी किसी दिशा में बढ़ता है तो भटकने के डर भी निश्चित हो जाते हैं। और कोई रास्ता ऐसा बंधा हुआ रास्ता नहीं है कि सुनिश्चित हो, कि आप जाएं और मंजिल पर पहुंच ही जायें। क्योंकि इस अज्ञात के लोक में आपके चलने से ही रास्ता निर्मित होता है। रास्ता पहले से निर्मित हो तब तो आसानी हो जाए। यह कोई रेल की पटरियों जैसा मामला हो कि डिब्बों के भटकने का उपाय ही नहीं है, पटरी पर दौड़ते चले जायें, तब तो ठीक है।

यह रेल की पटरियों जैसा मामला नहीं है। यहां रास्ता, लोह-पथ निर्मित नहीं है कि आप एक

दफे पटरी पर चढ़ गए तो फिर उतरने का उपाय नहीं है, चलते ही चले जायेंगे और मंजिल पर पहुंचेंगे ही। नियति इतनी स्पष्ट नहीं है।

और अच्छा है कि नहीं है, इसलिए जीवन में इतना रस, और रहस्य और आनंद है। अगर रेल की पटरियों की तरह आप परमात्मा तक पहुंच जाते हों, तो परमात्मा भी एक व्यर्थता हो जाएगी।

खोजना पड़ता है। सत्य की खोज, परमात्मा की खोज, मूलतः पथ की खोज है। और पथ भी अगर निर्मित हों बहुत से, तो भी आसान हो जाए कि हम अ को चुनें, ब को चुनें, स को चुनें। एक

दफा तय कर लें और फिर चल पड़ें।

पथ की खोज, पथ का निर्माण भी है। आदमी चलता है, और चल कर ही रास्ता बनाता है, इसलिए खतरे हैं। इसलिए भटकने के सदा उपाय हैं। पर अगर सचेतना हो, तो सभी विधियों से जाया जा सकता है। अगर अप्रमाद हो, अगर होश हो, जागरूकता हो, तो कोई भी विधि का उपयोग किया जा सकता है। और अगर होश न हो, तो सभी विधियां खतरे में ले जायेंगी। इसलिए एक तत्व अनिवार्य है--रास्ता कोई हो, मार्ग कोई हो, विधि कोई हो--होश, अवेयरनेस अनिवार्य है।

अगर आप अहंकार को शुद्ध करने में लगे हैं तो अहंकार के शुद्ध करने का क्या अर्थ होता है? पापी का अहंकार होता है कि मुझसे बड़ा डाकू कोई भी नहीं है। यह भी एक अहंकार है। साधु का अहंकार होता है कि मुझसे बड़ा साधु कोई भी नहीं है। पापी का अहंकार कहें कि काला अहंकार है। साधु का अहंकार कहें कि शुभ्र अहंकार है। लेकिन अगर साधु को होश न हो, डाकू को तो होगा ही नहीं होश, नहीं तो डाकू होना मुश्किल है। साधु को अगर होश न हो, और यह बात मन को ऐसा ही रस देने लगे कि मुझसे बड़ा साधु कोई नहीं है, जैसा कि डाकू को देती है, कि मुझसे बड़ा डाकू कोई नहीं है, तो यह भी काला अहंकार हो गया, यह भी अशुद्ध हो गया।

मुझसे बड़ा साधु कोई नहीं, इसमें अगर साधुता पर जोर हो और होश रखा जाए, तो अहंकार शुद्ध होगा। इसमें "मुझसे बड़ा" इस पर जोर रखा जाए, तो... तो अहंकार अशुद्ध होगा। मुझसे बड़ा साधु कोई नहीं, इस भाव में साधुता ही महत्वपूर्ण हो, और मुझे यह भी पता चलता रहे कि जब तक मुझे यह लग रहा है कि मुझसे बड़ा कोई नहीं, तब तक मेरी साधुता में थोड़ी कमजोरी है। क्योंकि साधु को यह भी पता चलना कि मैं बड़ा हूं, असाधु का लक्षण है।

कोई मुझसे छोटा है, तो यह हिंसा है। इसको धीरे-धीरे छोड़ते जाना है। एक दिन साधु ही रह जाए, मुझसे बड़ा, मुझसे छोटा कोई भी न रह जाए। मैं साधु हूं, इतना ही भाव रह जाए तो अहंकार और शुद्ध हुआ।

लेकिन अभी मैं साधु हूं, तो असाधु से मेरा फासला बना हुआ है। अभी असाधु के प्रति मैं सदय नहीं हूं। अभी असाधु मुझे अस्वीकार है। अभी कहीं गहरे में असाधु के प्रति निंदा है, कंडेमनेशन है। इसे भी चला जाना चाहिए, नहीं तो मैं साधु पूरा नहीं हूं।

तो जिस दिन मुझे यह भी पता न चले कि मैं साधु हूं कि असाधु हूं, इतना ही रह जाए कि "मैं हूं", साधु असाधु का फासला गिर जाए, तो अहंकार और भी शुद्ध हुआ।

लेकिन, मैं हूं, इसमें भी अभी दो बातें रह गईं--"मैं" और "होना"। यह मैं भी बाधा है, यह भी वजन है। यह होने को जमीन से बांध रखता है। अभी पंख पूरे नहीं खुल सकते, अभी उड़ नहीं सकते, अभी आकाश में पूरा नहीं उड़ा जा सकता।

इस मैं को भी आहिस्ता-आहिस्ता विलीन कर देना है, और इतना ही रह जाए कि हूं, होना मात्र रह जाए, जस्ट बीइंग, इतना भर ख्याल रह जाए कि "हूं", तो यह अहंकार की शुद्धतम अवस्था है। लेकिन यह भी अहंकार की अवस्था है। जब यह भी खो जाता है कि हूं या नहीं। जब मात्र अस्तित्व रह जाता है, तब अहंकार से हम आत्मा में छलांग लगा गए।

यह शुद्ध करने की बात हुई। लेकिन शुद्ध करने में भी छोड़ते तो जाना ही होगा। और एक होश सदा रखना होगा कि जो भी मेरा भाव है, उस भाव में आधा हिस्सा गलत होगा, आधा हिस्सा सही होगा। तो पचास प्रतिशत जो गलत है, वह मैं पचास प्रतिशत सही के लिए कुर्बान करता रहूं, और करता चला जाऊं, जब तक कि एक ही न बच जाए। लेकिन एक जब बचता है, तब भी अहंकार की आखिरी रेखा बच गई; क्योंकि एक का भी दो से फासला तो होता है। जब एक भी न बचे, जब अद्वैत भी न बचे, जब अद्वैत भी खो जाए, जब हम ऐसे हो जाएं, जैसे फूल हैं, जैसे पत्थर हैं, जैसे आकाश है, हैं लेकिन इसका भी कोई पता नहीं कि "हैं", जब इतनी सरलता हो जाए भीतर कि दूसरे का सारा बोध खो जाए, तब छलांग आत्मा में लगी।

यह तो शुद्ध करने का उपाय है, लेकिन खतरे हैं। क्योंकि जोर अगर हमने गलत पर दिया तो शुद्ध होने की बजाय अशुद्ध होता चला जाएगा। और जब अशुद्धि शुद्धता के रूप में आती है तो बड़ी प्रीतिकर होती है। जंजीरें अगर आभूषण बन कर आएं तो बड़ी प्रीतिकर होती हैं, और कारागृह भी अगर स्वर्ण का बना हो, हीरे मोतियों से सजा हो तो मंदिर मालूम हो सकता है।

दूसरा उपाय है कि हम प्रतिपल, जहां भी "मैं" का भाव उठे, जहां भी; उसे उसी क्षण छोड़ दें। मेरा मकान, तो हम सिर्फ मकान पर ध्यान रखें, और मेरा को उसी क्षण छोड़ दें; क्योंकि कोई मकान मेरा नहीं है। हो भी नहीं सकता। मैं नहीं था, तब भी मकान था; मैं नहीं रहूंगा तब भी मकान होगा। मैं केवल एक यात्री हूं, एक विश्रामालय में थोड़े क्षण को, और बिदा हो जाने को।

यह मेरा "मैं" जहां भी जुड़े तत्काल उसे वहीं तोड़ देना है। मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरा धन, मेरा नाम, मेरा वंश, जहां भी यह मेरा जुड़े उसे तत्काल तोड़ देना। उसे जुड़ने ही नहीं देना। शुद्ध करने की कोशिश ही नहीं करनी, उसे जुड़ने नहीं देना है, उसे छोड़ते ही चले जाना है।

मेरा धर्म, मेरा मंदिर, मेरा शास्त्र--जहां भी मेरा जुड़े उसे तोड़ते जाना है। फिर मेरा शरीर, मेरा मन, मेरी आत्मा, जहां भी मेरा जुड़े, उसे तोड़ते चले जाना है। अगर यह मेरा टूट जाए, सब जगह से और एक दिन आपको लगे कि मेरा कुछ भी नहीं, मैं भी मेरा नहीं, उस दिन छलांग हो जाएगी।

लेकिन रास्ता अपना-अपना चुन लेना पड़ता है। क्या आपको प्रीतिकर लगेगा। प्रतिपल तोड़ते जाना प्रीतिकर लगेगा, या प्रतिपल शुद्ध करते जाना प्रीतिकर लगेगा। श्रेष्ठतर मेरा बनाना उचित लगेगा कि मेरे को जड़ से ही तोड़ देना ही उचित लगेगा।

इसकी जांच भी अत्यंत कठिन है। इसलिए साधना में गुरु का इतना मूल्य हो गया। उसकी जांच अति कठिन है कि आपके लिए क्या ठीक होगा। अकसर तो यह होता है कि जो आपके लिए गलत होगा, वह आपको ठीक लगेगा। यह कठिनाई है। जो गलत होगा आपके लिए वह आपको तत्काल ठीक लगेगा, क्योंकि आप गलत हैं। गलत आपको आकर्षित करेगा तत्काल।

जो आपको आकर्षित करे, जरूरी मत समझ लेना कि आपके लिए ठीक है। होशपूर्वक प्रयोग करना पड़े-- होशपूर्वक जो आप कहते हैं कि यह मेरे लिए ठीक है, सौ में निन्यानबे मौके तो यह हैं कि वह आपके लिए गलत होगा। क्योंकि आप गलत हैं और आपके आकर्षण अभी गलत होंगे इसलिए गुरु की जरूरत पड़ी, ताकि शिष्य अपनी आत्महत्या न कर ले। शिष्य आत्महत्याएं करते हैं। और कई बार तो बहुत मजा होता है, शिष्य गुरु को भी जाकर बताते हैं कि मेरे लिए क्या उचित है। आप ऐसा करवाइए, यह मेरे लिए उचित है।

वे खुद ही अनुचित हैं, वे जो भी चुनेंगे वह अनुचित होगा। उचित नहीं हो सकता। और जो उचित है, वह उन्हें विपरीत मालूम पड़ेगा कि यह तो विपरीत है, यह मुझसे न हो सकेगा। इसलिए गुरु की जरूरत पड़ी कि वह सोच सके, निदान कर सके, खोज सके कि क्या ठीक होगा; निष्पक्ष दूर खड़े होकर पहचान सके कि क्या ठीक होगा।

आप खुद ही उलझे हुए हैं, आप पहचान न सकेंगे। आप खुद ही बीमार हैं, अपनी बीमारी का निदान करना जरा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि मन बीमारी की वजह से बेचैन होता है। मन जल्दी ठीक होने के लिए अधैर्य से भरा होता है। मन किसी भी तरह बीमारी इसी वक्त समाप्त हो जाए, इसमें ज्यादा उत्सुक होता है। बीमारी क्या है, इसकी शांति से परीक्षा की जाए, इसमें उत्सुक नहीं होता। इसलिए बीमार अपना निदान नहीं कर पाता है।

लेकिन, बिना गुरु के भी चला जा सकता है। तब एक ही रास्ता है, "ट्रायल एण्ड एरर।" एक ही रास्ता है कि भूल करें। और सुधार करें, प्रयोग करें। और जो आपको ठीक लगे उस पर प्रयोग करें। एक वर्ष तय कर लें कि इस पर प्रयोग करता ही रहूंगा फिर इसके परिणाम देखें, वे दुखद हैं, अप्रीतिकर हैं, अहंकार को घना करते हैं। दूसरा प्रयोग करें, छोड़ दें।

एक उपाय है भूल-चूक, अनुभव। दूसरा उपाय है, जो भूल-चूक से गुजरा हो, अनुभव तक पहुंचा हो, उससे पूछ लें। दोनों की सुविधाएं हैं, दोनों के खतरे हैं।

अब सूत्र।

"सदा अप्रमादी, सावधान रहते हुए, असत्य को त्याग कर हितकारी सत्य वचन ही बोलने चाहिए। इस प्रकार का सत्य बोलना सदा बड़ा कठिन है।"

बड़ी शर्तें महावीर ने सत्य में लगाई हैं। सत्य बोलना चाहिए, इतना महावीर कह सकते थे। इतना नहीं कहा। महावीर पर्त-पर्त चीजों को उघाड़ने में अति कुशल हैं। इतना काफी था कि सत्य वचन बोलना चाहिए। इससे ज्यादा और क्या जोड़ने की जरूरत है? लेकिन महावीर आदमी को भलीभांति जानते हैं, और आदमी इतना उपद्रवी है कि सत्य बोलना चाहिए, इसका दुरुपयोग कर सकता है। इसलिए बहुत-सी शर्तें लगायीं।

सदा अप्रमादी, होशपूर्वक सत्य बोलना चाहिए।

कई बार आप सत्य बोलते हैं सिर्फ दूसरे को चोट पहुंचाने के लिए। असत्य ही बुरा होता है, ऐसा नहीं, सत्य भी बुरा होता है, बुरे आदमी के हाथ में। आप कई बार सत्य इसलिए बोलते हैं कि उससे हिंसा करने में

आसानी होती है। आप अंधे आदमी को कह देते हैं, अंधा। सत्य है बिल्कुल। चोर को कह देते हैं, चोर। पापी को कह देते हैं, पापी। सत्य है बिल्कुल। लेकिन महावीर कहेंगे, बोलना नहीं था।

क्योंकि जब आप किसी को चोर कह रहे हैं तो वस्तुतः आप उसकी चोरी की तरफ इंगित करना चाहते हैं, या चोर कह कर उसे अपमानित करना चाहते हैं? वस्तुतः आपको प्रयोजन है सत्य बोलने से? या एक आदमी को अपमानित करने से? वस्तुतः जब आप किसी को चोर कहते हैं, तो आपको पक्का है कि वह चोर है? या आपको मजा आ रहा है किसी को चोर कहने में? क्योंकि जब भी हम किसी को चोर कहते हैं, तो भीतर लगता है कि हम चोर नहीं हैं। वह जो रस मिल रहा है, वह सत्य का रस है? वह सत्य का रस नहीं है।

इसलिए महावीर कहते हैं: "सदा अप्रमादी।" पहली शर्त होशपूर्वक सत्य बोलना। बेहोशी में बोला गया सत्य, असत्य से भी बदतर हो सकता है। सावधान रहते हुए, एक-एक बात को देखते हुए, सोचते हुए सावधानीपूर्वक, ऐसे मत बोल देना तत्काल। बोलने के पहले क्षण भर चेतना को सजग कर लेना, रुक जाना, ठहर जाना, सब पहलुओं से देख लेना ऊपर उठ कर; अपने से, परिस्थिति से।

सावधान का अर्थ है, क्या होगा परिणाम? क्या है हेतु? जब आप बोल रहे हैं सत्य, क्या है हेतु? क्यों बोल रहे हैं? क्या परिणाम की इच्छा है? बोलकर क्या चाहते हैं कि हो जाए?

सत्य बोलकर आप किसी को फंसा भी दे सकते हैं। सत्य बोल कर... आपके भीतर क्या हेतु है, क्या मोटिव? क्योंकि महावीर का सारा जोर इस बात पर है कि पाप और पुण्य कृत्य में नहीं होते, हेतु में होते हैं। मोटिव में होते हैं, एक्ट में नहीं होते।

एक मां अपने बेटे को चांटा मार रही है। इस चांटा मारने में... और एक दुश्मन एक दुश्मन को चांटा मार रहा है, फिजियोलॉजिकली, शरीर के अर्थ में कोई भेद नहीं है। और अगर एक वैज्ञानिक मशीन पर दोनों के चांटे को तौला जाए तो मशीन बता नहीं सकेगी, चांटे का वजन बता देगी, कितने जोर से पड़ा, कितनी चोट पड़ी, कितनी शक्ति थी चांटे में, कितनी विद्युत थी, सब बता देगी। लेकिन यह नहीं बता पाएगी कि हेतु क्या था? लेकिन मां के द्वारा मारा गया चांटा, दुश्मन के द्वारा मारा गया चांटा, दोनों एक से कृत्य हैं, लेकिन एक से हेतु नहीं हैं।

जरूरी नहीं है कि मां का चांटा भी हर बार मां का ही चांटा हो। कभी-कभी मां का चांटा भी दुश्मन का चांटा होता है। इसलिए मां भी दो बार चांटा मारे तो जरूरी नहीं है कि हेतु एक ही हो। इसलिए माताएं ऐसा न समझें कि हर वक्त चांटा मार रही हैं, तो हेतु मां का होता है। सौ में निन्यानबे मौके पर दुश्मन का होता है। मां भी इसलिए चांटा नहीं मारती कि लड़का शैतानी कर रहा है, मां भी इसलिए चांटा मारती है कि लड़का मेरी नहीं मान रहा है। शैतानी बड़ा सवाल नहीं है, सवाल मेरी आज्ञा है, सवाल मेरा अधिकार है, सवाल मेरा अहंकार है।

तो मां का चांटा भी सदा मां का नहीं होता। महावीर मानते हैं कि मोटिव क्या है? भीतर क्या है? किस कारण?

इस फर्क को समझ लें।

एक बच्चा शैतानी कर रहा है और मां ने चांटा मारा। आप कहेंगे, कारण साफ है कि बच्चा शैतानी कर रहा था। लेकिन यह हेतु नहीं है, यह कारण नहीं है कि बच्चा शैतानी कर रहा था। हेतु आपके भीतर होगा, क्योंकि कल भी यह बच्चा इसी वक्त शैतानी कर रहा था, लेकिन आपने नहीं मारा। आज मारा। कल भी परिस्थिति यही थी। परसों भी यह बच्चा शैतानी कर रहा था। लेकिन तब आपने पड़ोसियों से उसकी प्रशंसा की कि मेरा बच्चा बड़ा शैतान है। कल मारा नहीं, देख लिया, आज मारा। क्या बात है? हेतु बदल रहे हैं, कारण तो तीनों में एक हैं; आपके भीतर हेतु बदल रहे हैं। जब आपने पड़ोसी से कहा, मेरा बच्चा बड़ा शैतान है, तब आपके अहंकार को

तृप्ति मिल रही थी। इस बच्चे की शैतानी आपको रस पूर्ण मालूम पड़ी। कल बच्चा शैतानी कर रहा था, आप अप्ने भीतर खोए थे, आप अपने में लीन थे। इस बच्चे की शैतानी ने आपको कोई चोट नहीं पहुंचाई। आज सुबह ही पति से या पत्नी से कलह हो गई है और आप अपने भीतर नहीं जा पाते और क्रोध उबल रहा है, और यह बच्चा शैतानी कर रहा है। चांटा पड़ जाता है।

यह चांटा आपके भीतर के क्रोध के हेतु से उपजता है। यह बच्चे का कारण सिर्फ बहाना है, खूंटी है, कोट आपके भीतर से आकर टंगता है। महावीर कहते हैं, सावधानीपूर्वक। उसका अर्थ है--हेतु को देखते हुए कि मैं क्यों सच बोल रहा हूं।

"सावधान रहते हुए असत्य को त्याग कर हितकारी सत्य वचन ही बोलने चाहिए।"

सावधान रहें और जो भी असत्य मालूम पड़े, उसे त्याग दें। कोई भी मूल्य हो, महावीर मूल्य नहीं मानते। साधक के लिए एक ही मूल्य है, उसकी आत्मा का निर्माण, सृजन। कोई भी कीमत हो, अप्रमाद से सावधानीपूर्वक हेतु की परीक्षा करके, जो भी असत्य है, उसे तत्काल छोड़ दें।

यह निगेटिव बात हुई, नकारात्मक, असत्य को छोड़ दें। और इसके बाद वे कहते हैं हितकारी सत्य वचन ही बोलें। अभी सत्य वचन में फिर एक शर्त है, वह यह कि वह दूसरे के हित में हो।

आपके भीतर कोई हेतु न हो बुरा, यह भी काफी नहीं है। क्योंकि मेरे भीतर कोई हेतु बुरा न हो, फिर भी आपका अहित हो जाए। तो महावीर कहते हैं, वैसा जो दूसरे का अहित कर दे वैसा सत्य भी नहीं। बड़ी शर्तें हो गईं। असत्य का त्याग सीधी बात न रही। असत्य के त्याग में असावधानी का त्याग हो गया। प्रमाद का त्याग हो गया। और दूसरे के अहित का भी त्याग हो गया, और तब जो सत्य बचेगा वही बोलें। आप मौन हो जायेंगे। बोलने को शायद कुछ बचेगा नहीं।

महावीर बारह वर्ष तक मौन रहे, इस साधना में। न बोलेंगे वे। हम कहेंगे हृद् हो गई। अगर सत्य भी बोलना है, तो भी बोलने को बहुत बातें हैं। आप गलती में हैं। अगर महावीर जैसी निकट कसौटी आपके पास हो तो मौन हो जाना पड़ेगा। क्योंकि असत्य बहुत प्रकार के हैं। पहले तो असत्य ऐसे हैं, जिनको आप सत्य माने हुए बैठे हैं, जो सत्य हैं नहीं। और अगर आपके समाज ने भी उनको माना है तो आपको पता ही नहीं चलता कि ये असत्य हैं।

आप कहते हैं, ईश्वर है। आपको पता है? महावीर नहीं बोलेंगे। वे कहेंगे यह मेरे लिए असत्य है, मुझे पता नहीं। लेकिन जिस समाज में आप पैदा हुए हैं, अगर यह असत्य कि ईश्वर है--असत्य इसलिए नहीं कि ईश्वर नहीं है, असत्य इसलिए कि बिना जाने इसे मानना असत्य है। जिस समाज में आप पैदा हुए हैं, वह मानता है कि ईश्वर है, तो आप भी मानते हैं कि ईश्वर है। आपने फिर कभी लौटकर सोचा ही नहीं कि है भी?

जब मैं मंदिर के सामने हाथ जोड़ रहा हूं, तो यह हाथ जोड़ना तब तक असत्य है जब तक मुझे ईश्वर का कोई पता न हो। महावीर मंदिर के सामने हाथ न जोड़ेंगे। क्योंकि महावीर कहते हैं, सामूहिक असत्य है, कलेक्टिव अनदृष्ट। जब पूरा समूह बोलता है, तो आपको पता ही नहीं चलता। बल्कि पता ही तब चलता है, जब समूह में कोई बगावती पैदा हो जाता है। वह कहता है, कहां है ईश्वर? तब आपको क्रोध आता है।

अगर आपके पास सत्य है तो उसे दिखा देना चाहिए। क्रोध का कोई कारण नहीं। लेकिन जब कोई पूछता है, कहां है ईश्वर? तो आप दिखाने को उत्सुक नहीं होते, उसको मारने को उत्सुक हो जाते हैं। यह आपकी वृत्ति बताती है, क्योंकि क्रोध सदा असत्य से पैदा होता है, सत्य से पैदा नहीं होता। अगर ईश्वर है, तो दिखा दो। इस गरीब ने कुछ गलत नहीं पूछा है। एक जिज्ञासा की है। लेकिन नास्तिक को हम सदा मारने को उत्सुक होते हैं। इसका मतलब है कि आस्तिकता झूठी है। होकस-पोकस है। उसमें कुछ नहीं है, ऊपरी ढांचा है। जरा ही कोई उंगली डाल देता है तो भीतर खलबली मच जाती है।

आप मानते हैं कि आपके भीतर आत्मा है। आपको पता है? कभी मुलाकात हुई? छोड़ो ईश्वर! ईश्वर बड़ी दूर है। भीतर आत्मा बिल्कुल पास है, कहते हैं हृदय से भी करीब। मुहम्मद कहते हैं कि गले की फड़कती नस से भी करीब। इसका आपको पता है? यह भी किताब में पढ़ा है? बड़ा मजेदार है।

रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी आया। रामकृष्ण ने कहा कि सुना है कि पड़ोस में तुम्हारे मकान गिर गया। उसने कहा, मैंने सुबह का अखबार अभी देखा नहीं। जरा जाता हूं, देखता हूं। पड़ोसी का मकान गिरे, तो भी अखबार में ही पता चलता है। मगर यह भी ठीक है, क्योंकि पड़ोस अब कोई छोटी बात नहीं है, बड़ी बात है। और पड़ोस पुराने गांव से भी बड़ी बात है। नहीं पता चला होगा। लेकिन आपको आपकी आत्मा का पता भी अखबार में पढ़ने से चलता है कि है, कि नहीं है।

अखबार में एक लेख निकल जाए कि आत्मा नहीं है, तो आपको भी शक आ जाता है। किताब में पढ़ लें कि आत्मा है, आपको भरोसा आ जाता है। लोग पूछते फिरते हैं, आत्मा हैं? बड़े मजे की बात है, और सब चीजें पूछी जा सकती हैं दूसरे से। यह भी दूसरे से पूछने की बात है? आप यह पूछ रहे हैं, मैं हूं? कोई मुझे बता दे कि मैं हूं।

महावीर कहते हैं, यह भी असत्य है। मत कहो कि मैं हूं, जब तक तुम्हें पता न चल जाए। मत कहो कि भीतर आत्मा है, जब तक तुम्हें पता न चल जाए। कौन जाने, सिर्फ हुड़ी मांस का जोड़ हो, और यह बोलना और चालना सिर्फ एक बाई-प्रॉडक्ट हो। जैसा कि चार्वक ने कहा है कि पान में हम पांच चीजें मिला लेते हैं, फिर होठों पर लाली आ जाती है। वह लाली बाई-प्रॉडक्ट है। क्योंकि उन पांच चीजों को अलग-अलग मुंह में ले जाएं तो लाली नहीं आती। पांचों को मिला दें तो पांचों के मिलने से लाली पैदा हो जाती है! लेकिन लाली कोई चीज नहीं है, पांचों का दान है। पांचों को अलग कर लें, लाली खो जाती है। पांच को अलग करके आप यह नहीं कह सकते कि लाली अब कहीं है। छिप गई, अदृश्य हो गई, सिर्फ खो जाती है।

तो चार्वक ने कहा कि यह शरीर भी पांच तत्वों का जोड़ है। इसमें जो आत्मा दिखाई पड़ती है, वह बाई-प्रॉडक्ट है, उत्पत्ति है। वह कोई तत्व नहीं है। तत्व तो पांच हैं। उनके जोड़ से, उनके संयोग से आत्मा दिखाई पड़ती है। पांचों तत्वों को अलग कर लें, आत्मा बचती नहीं। खो जाती है। समाप्त हो जाती है।

तो महावीर कहते हैं, कौन जाने, चार्वक सच हो। तो झूठ मत बोलें कि मैं आत्मा हूं, कि मैं अमर हूं, यह मत बोलें। मत कहें कि पुर्नजन्म है, जब तक जान न लें। मत कहें कि पीछे जन्म थे, जब तक जान न लें। मत कहें कि पुण्य का फल सदा ठीक होता है। मत कहें कि पाप सदा दुख में ले जाता है। जब तक जान न लें।

अगर सत्य की ऐसी बात हो तो चुप हो जाना पड़े। सामूहिक असत्य है। फिर रोजमर्रा के कामचलाऊ असत्य हैं, जिनको हम कभी सोचते नहीं कि असत्य हैं।

रास्ते पर एक आदमी मिला, पूछते हैं, कैसे हैं, कहते हैं बड़े मजे में हैं। कभी नहीं सोचते कि क्या कहा! बड़े मजे में हैं! एक दफा फिर से सोचें, बड़े मजे में हैं? कहीं कोई भीतर समर्थन न मिलेगा। लेकिन जब कोई पूछता है, रास्ते पर, कैसे हैं? तो कहते हैं, बड़े मजे में हैं। और जब कहते हैं, बड़े मजे में हैं, तो पैर की चाल बदल जाती है। टाई वगैरह ठीक करके चलने लगते हैं। ऐसा लगता भी है कि बड़े मजे में हैं।

दूसरे से कहने में ऐसा लगता भी है। चार लोग पूछ लें तो दिल खुश हो जाता है। कोई न पूछे,

दिल उदास हो जाता है। जब कोई आदमी कहता है, हे! हलो! भीतर गुदगुदी हो जाती है। लगता भी है उस क्षण में कि जिंदगी बड़े मजे में जा रही है।

हम दूसरे से ही कह रहे हों, ऐसा नहीं है, इसलिए ये कामचलाऊ असत्य हैं। ये उपयोगी हैं, एक दूसरे को हम ऐसे सहारा देते रहते हैं उसके झूठों में।

महावीर कहते हैं, काम चलाऊ असत्य भी नहीं। कुछ भी हम बोलते रहते हैं। आदतन असत्य हैं—आदतन। कोई कारण नहीं होता, कोई हेतु नहीं होता, आदतन बोलते रहते हैं।

मेरे एक प्रोफेसर थे। किसी भी किताब का नाम लो, वे सदा कहते, हां मैंने पढ़ी थी, पंद्रह-बीस साल हो गए। यह आदतन था। क्योंकि पंद्रह-बीस साल वे सदा कहते थे। सारी किताबें उन्होंने पंद्रह-बीस साल पहले नहीं पढ़ी होंगी। कोई सोलह साल पहले पढ़ी होगी, कोई दस साल पहले पढ़ी होगी, कोई पचास साल पहले पढ़ी होंगी। बूढ़े आदमी थे, लेकिन वे सदा कहते, पंद्रह-बीस साल पहले मैंने यह किताब पढ़ी थी। यह तकिया कलाम था--आदतन।

फिर मैंने ऐसी-ऐसी किताबों के नाम लिए जो कि हैं ही नहीं, पर वे उनके लिए भी कहते कि हां मैंने पढ़ी थी, पंद्रह-बीस साल पहले। तब मुझे पता चला कि वे झूठ नहीं बोलते हैं, आदतन झूठ बोलते हैं। ऐसा उनकी आंख से भी पता नहीं चलता था कि वे झूठ बोल रहे हैं। और झूठ बोलने का कोई कारण भी नहीं था। कोई उन किताबों को पढ़ा हो, न पढ़ा हो, इससे उनकी प्रतिष्ठा में भी फर्क नहीं पड़ता था। वे काफी प्रतिष्ठित थे।

एक दिन मैंने उनको जाकर कहा कि यह किताब तो है ही नहीं, जिसको आपने पंद्रह-बीस साल पहले पढ़ा था। न तो यह कोई लेखक है, न यह कोई किताब है। तो उन्हें होश आया। उन्होंने कहा, कि वह मेरी आदत हो गई है।

पर यह आदत क्यों हो गई है? इस आदत के पीछे कहीं गहरा कोई हेतु है! ऐसी कोई किताब हो कैसे सकती है जो प्रोफेसर ने न पढ़ी हो। वह हेतु है, बहुत गहरा दब गया वर्षों पीछे। लेकिन अब आदतन है।

आप बहुत सी बातें आदतन बोल रहे हैं। जो असत्य हैं।

महावीर बारह साल तक चुप हो गए। फिर ऐसी बातें हैं, जो अनिश्चित हैं। इसलिए जब आप कह देते हैं कि फलां आदमी पापी है, तो आप गलत बात कह रहे हैं; क्योंकि आपको जो खबर है वह पुरानी पड़ चुकी है। पापी इस बीच पुण्यात्मा हो गया हो। क्योंकि पापी कोई ठहरी हुई बात नहीं है, जो आज सुबह पापी था, सांझ साधु हो सकता है। और जो आज सुबह परम साधु था, सांझ पापी हो सकता है।

जिंदगी तरल है, लेकिन शब्द फिक्स्ड होते हैं। आप कहते हैं फलां आदमी पापी है। महावीर न कहेंगे। वे कहेंगे कि आदमी एक प्रवाह है। तो महावीर कहेंगे स्यात। शायद पापी हो, शायद पुण्यात्मा हो।

फिर जो आदमी पापी है वह पाप करने में भी पूरा पापी नहीं होता। उसके पाप में भी पुण्य का हिस्सा हो सकता है, और जो आदमी पुण्य कर रहा है, उसके पुण्य में भी पाप का हिस्सा हो सकता है।

आदमी बड़ी घटना है, कृत्य बड़ी छोटी बात है। चोर भी आपस में सत्य बोलते हैं और ईमानदार होते हैं। और जिनको हम साधु कहते हैं, उनसे ज्यादा सत्य बोलते हैं आपस में, और ज्यादा ईमानदार होते हैं। दस साधुओं को पास बिठाना मुश्किल है, दस चोर गले मिल जाते हैं। दस साधुओं को इकट्ठा करना ही मुश्किल है। पहले तो इस पर ही झगड़ा हो जाएगा कि कौन कहां बैठे; कौन नीचे बैठे, कौन ऊपर बैठे। किसी चोर में कभी झगड़ा नहीं हुआ है इस बात पर।

साधु के भीतर भी असाधु छिपा है, चोर के भीतर भी साधु छिपा है। चोर की चोरी बाहर है, पीछे साधु छिपा है। चोरी भी करनी हो तो वचन मानना पड़ता है, नियम मानने पड़ते हैं, सच्चाई रखनी पड़ती है, ईमानदारी रखनी पड़ती है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन पर चोरी का एक मुकदमा चला। पकड़ इसलिए गया कि वह सात बार एक ही राज में एक दुकान में घुसा। सातवीं बार पकड़ा गया। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, चोरी भी हमने बहुत देखी, मुकदमे भी बहुत देखे। एक ही रात में सात बार घुसना, एक ही मकान में, मामला क्या है? अगर ज्यादा ही सामान ढोना था, तो संगी साथी क्यों नहीं रखते हो? अकेले ही सात दफा!

नसरुद्दीन ने कहा: "बड़ा मुश्किल है। लोग इतने बेईमान हो गए हैं कि किसी को संगी साथी बनाना चोरी तक में मुश्किल हो गया है। एक और दुकान भी कपड़े की, जो भी चुरा कर ले गया, पत्नी ने कहा, नापसंद है। फिर वापस। रात भर कपड़े ढोता रहा, उसमें ही फंसा। और लोग इतने बेईमान हो गए हैं कि अकेले ही चोरी

करनी पड़ती है। किसी का भरोसा नहीं किया जा सकता, चोरी तक में।" साधुओं में तो कभी भरोसा आपस में रहा नहीं, लेकिन चोरों में सदा रहा है।

और चोर कभी चोर को धोखा नहीं देता। चोरी का भी कोड है। जैसे हिंदू कोड बिल है वैसा चोरों का कोड है। उनका अपना नियम है, वै कभी धोखा नहीं देते।

महावीर कहते हैं, जब हम किसी को चोर कहते हैं, तो हम पूरा ही चोर कह देते हैं, जो कि गलत है। जब हम किसी को साधु कहते हैं तो पूरा ही साधु कह देते हैं जो कि गलत है। जीवन मिनण है, सभी चीजें मिली-जुली हैं। मत कहो। बड़ा मुश्किल है। फिर क्या बोलिएगा? क्या बोलिएगा?

एक आदमी कहता है, सुबह सूरज निकला है, बड़ा सुंदर है। यह सत्य है? मुश्किल है कहना, क्योंकि यह सत्य निजी सत्य है। और एक का निजी सत्य दूसरे का निजी सत्य न भी हो। जिसका बच्चा आज सुबह मर गया है, सूरज आज उसे सुंदर नहीं मालूम पड़ेगा। तो सूरज सुंदर है, यह निजी सत्य है। यह एक्सलूट सत्य नहीं है। जिसका बच्चा मर गया है वह रो रहा है, और आज वह चाहता है कि सूरज उगे ही न। अब कभी सूरज न उगे। अब दिन कभी हो ही न। अब अंधेरा ही छा जाए, और सब रात ही हो जाए। अब यह सूरज उसे दुश्मन की तरह मालूम होगा, जब सुबह उगेगा। यह सुंदर नहीं हो सकता।

सूरज कब सुंदर होता है? जब आपके भीतर सूरज को सुंदर बनाने की कोई घटना घटती है। सूरज असुंदर हो जाता है, जब आपके भीतर सूरज को अंधेरा करने की कोई घटना घट जाती है।

आप अपने को ही फैला कर जगत में देखते रहते हैं। तो जो आप देखते हैं वह निजी सत्य है, प्राइवेट द्रुथा और सत्य कभी निजी नहीं होता। असत्य निजी होते हैं। सत्य तो सार्वजनिक होता है, यूनिवर्सल होता है। सार्वभौम होता है। इसलिए महावीर कहेंगे, शायद सूरज सुंदर है। कभी न कहेंगे कि सूरज सुंदर है। कहेंगे, शायद परहेप्स। क्यों? महावीर एक वचन में भी ऐसा न कहेंगे कभी कि ऐसा है। वे ऐसा कहेंगे, हो सकता है। वे यह भी कहेंगे, इससे विपरीत भी हो सकता है।

यह सूरज हजारों लाखों लोगों के लिए निकला है। कोई दुखी होगा, सूरज असुंदर होगा। कोई सुखी होगा, सूरज सुंदर होगा। कोई चिंतित होगा, सूरज दिखाई ही नहीं पड़ेगा। कोई कविता से भरा होगा और सूरज पूरा जीवन और आत्मा बन जाएगी। कुछ कहा नहीं जा सकता, यह निजी सत्य है।

महावीर बारह वर्ष तक चुप रह गए, क्योंकि सत्य बोलना बहुत कठिन है। इसलिए महावीर कहते हैं, इस प्रकार का सत्य बोलना सदा बड़ा कठिन है। ऐसा सत्य जो बोलना चाहता हो उसे लंबे मौन से गुजरना पड़ेगा। गहरे परीक्षण से गुजरना पड़ेगा। और तब महावीर ने बोला।

इसलिए अगर जैन यह कहते हैं कि महावीर जैसी वाणी फिर नहीं बोली गई तो इसका कारण है। महावीर जैसा मौन भी कभी नहीं साधा गया। इसलिए महावीर जैसी वाणी भी फिर नहीं बोली गई। इतने मान से, इतने परीक्षण से, इतनी कठिनाइयों से, इतनी कसौटियों से, गुजर कर जो आदमी बोलने को राजी हुआ, उससे जो वह बोला है वह बहुत गहरा और मूल्य का ही है। नहीं तो वह बोलता ही नहीं।

"श्रेष्ठ साधु पापमय, निश्चयात्मक, और दूसरों को दुख देने वाली वाणी न बोले।" श्रेष्ठ साधु पापमय, निश्चयात्मक, सर्टेन बातें न बोले। ऐसा न कह दे कि वह आदमी चोर है। इतना निश्चयात्मक होना असत्य की तरफ ले जाता है।

यह बड़ी अदभुत बात है, यह थोड़ा सोच लेने जैसी बात है। हम तो कहेंगे कि सत्य निश्चय होता है। लेकिन महावीर कहते हैं, सत्य इतना बड़ा है कि हमारे किसी निश्चित वाक्य में समाहित नहीं होता। जब हम कहते हैं, फलां आदमी पैदा हुआ, तब यह अधूरा सत्य है, क्योंकि उस आदमी ने मरना शुरू कर दिया।

संत अगस्तीन ने लिखा है, उसका बाप मर रहा है। मरण शैया पर पड़ा है। डाक्टर इलाज कर रहे हैं। आखिर इलाज काम नहीं आया। एक दिन तो काम आता नहीं। कभी न कभी डाक्टर हारता है, और मौत जीतती है। वह लड़ाई हारने वाली ही है। डाक्टर बीच-बीच में कितना ही जीतता रहे, आखिर में हारेगा ही। उस लड़ाई में अंतिम जीत डाक्टर के हाथ में नहीं है, सदा मौत के हाथ में है।

इसलिए मामला ऐसा है, जैसे एक बिल्ली को आपने चूहा दे दिया, वह उससे खेल रही है। वह छोड़ देती है, क्योंकि छोड़ने में मजा आता है। फिर पकड़ लेती है। फिर छोड़ देती है। उससे चूहा चौंकता है, भागता है, और बिल्ली निश्चित है, क्योंकि अंत में वह पकड़ ही लेगी। यह सिर्फ खेल है।

तो मौत आदमी के साथ ऐसे ही खेलती है। कभी छोड़ देती है, जरा बीमारी ज्यादा बीमारी छोड़ दी-- डाक्टर बड़ा प्रसन्न! मरीज भी बड़ा प्रसन्न! और मौत सबसे ज्यादा प्रसन्न! क्योंकि वह खेल चलता है, क्योंकि जीत निश्चित है। इस खेल में कोई अड़चन नहीं है। कभी चूहा बिल्ली से चूक भी जाए, मौत से आदमी नहीं चूकता।

डाक्टर इकट्ठे हुए, सारे गांव के डाक्टर इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा, नाउ वी आर हेल्पलेस। नाउ नर्थिंग कैन बी डन। नाउ दिस मैन कैन नाट रिकवर। अब कुछ हो सकता नहीं, अब यह आदमी मरेगा ही। नाउ दिस मैन कैन नाट रिकवर।

अगस्तीन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन मुझे पता चला कि जो बात डाक्टर मरते वक्त कहते हैं यह तो जब बच्चा पैदा होता है तभी कहनी चाहिए, नाउ दिस चाइल्ड कैन नॉट रिकवर। यह बच्चा जो पैदा हो गया, अब नहीं बच सकता। उसी दिन कह देना चाहिए कि नाउ दिस चाइल्ड कैन नॉट रिकवर। पैदा होने के बाद मौत से बच सकते हैं? फिजूल इतने दिन रुकते हैं कहने के लिए कि नाउ दिस मैन कैन नॉट रिकवर। उसी दिन कह देना चाहिए।

महावीर कहते हैं, निश्चयात्मक मत होना, अगर सत्य होना है तो। सत्य होने का मतलब ही यह है कि जीवन है अनंत पहलुओं वाला, और जब भी हम बोलते हैं, एक पहलू जाहिर होता है। एक पहलू, अनंत पहलुओं में से। अगर हम उस पहलू को इतना निश्चय से बोलते हैं कि ऐसा मालूम होने लगे कि यही पूर्ण सत्य है, तो असत्य हो गया।

इसलिए महावीर ने सप्त-भंगी निर्मित की--बोलने का सात अंगों वाला ढंग। तो महावीर से आप एक सवाल पूछिए तो वे सात जवाब देते थे। क्योंकि वे कहते कि... और सात जवाब सुनते-सुनते आपकी बुद्धि चकरा जाए, और फिर आपको एक भी जवाब समझ में न आए। क्योंकि आप पूछ रहे हैं कि यह आदमी जिंदा है कि मर गया। अब यह साफ कहना चाहिए कि हां, मर गया कि हां, जिंदा है, इसमें सात का क्या सवाल है। लेकिन महावीर कहते, स्यात मर गया, शायद जिंदा है, शायद दोनों है। शायद दोनों नहीं है। ऐसा वे सात भंगियों में उत्तर देते। आपको कुछ समझ में न पड़ता। लेकिन महावीर सत्य बोलने की अथक चेष्टा किए हैं, ऐसी चेष्टा किसी आदमी ने पृथ्वी पर कभी नहीं की।

लेकिन सत्य बोलने की चेष्टा अति जटिल मामला है। जब कहते हैं आप, एक आदमी मर गया, जरूरी नहीं है, मर गया हो। क्योंकि अभी इसकी छाती पर मसाज की जा सकती है। अभी इसे आक्सीजन दी जा सकती है। अभी खून दौड़ाया जा सकता है और हो सकता है यह जिंदा हो जाए। तो आपका कहना कि यह मर गया है, गलत है।

रूस में पिछले महायुद्ध में कोई बीस लोगों पर प्रयोग किए गए। उसमें से छह जिंदा हो गए, वे अभी भी जिंदा है। डाक्टर ने लिख दिया था, वे मर गए।

मृत्यु भी कई हिस्सों में घटित होती है शरीर में। मृत्यु कोई इकहरी घटना नहीं है। जब आप मरते हैं तो पहले आपके जो बहुत जरूरी... बहुत जरूरी हिस्से हैं, वे टूटते हैं, ऊपरी हिस्से टूट जाते हैं, जो आपको परिधि

पर सम्हाले हुए हैं, जो आपको शरीर से जोड़े हुए हैं, वे हिस्से टूटते हैं। लेकिन अभी आप मर नहीं गए। अभी आप जिलाए जा सकते हैं। अभी अगर हृदय दूसरा लगाया जा सके तो आप फिर जी उठेंगे, धड़कन फिर शुरू हो जाएगी। लेकिन यह हो जाना चाहिए छह सेकेंड के भीतर। अगर छह सेकेंड पार हो गए... तो जो लोग भी हृदय के टूट जाने से मरते हैं, हार्ट फेल्योर से मरते हैं वे छह सेकेंड के भीतर उनमें से बहुत-से लोग पार हो गए... तो जो लोग भी हृदय के टूट जाने से मरते हैं, हार्ट फेल्योर से मरते हैं वे छह सेकेंड के भीतर उनमें से बहुत से लोग पुनरुज्जीवित हो सकते हैं, और इस सदी के भीतर पुनरुज्जीवित हो जाएंगे। लेकिन छह सेकेंड के भीतर उनका हृदय बदल दिया जाना चाहिए। इसका तो इतना जल्दी उपाय हो नहीं सकता, इसका एक ही उपाय वैज्ञानिक सोचते हैं जो कि जल्दी कारगर हो जाएगा कि एक एक्सट्रा, स्पेयर हृदय पहले से ही लगा रखना चाहिए। और यह आटोमेटिक चेंज होना चाहिए। जैसा ही पहला हृदय बंद हो, दूसरा धड़कना शुरू हो जाए, तो ही छह सेकेंड के भीतर यह हो जाएगा। आदमी जिंदा रहेगा। लेकिन अगर छह सेकेंड से ज्यादा हो गया, तो मस्तिष्क के गहरे तंतु टूट जाते हैं, उनको स्थापित करना मुश्किल है। और एक दफा वे टूट जाएं तो फिर हृदय भी नहीं धड़क सकता। क्योंकि वह भी मस्तिष्क की आज्ञा से ही धड़कता है। आपको पता हो आज्ञा का या न पता हो।

इसलिए अगर आदमी कोई पूरे मन से भाव कर ले मरने का, तो इसी वक्त मर सकता है। या कोई जीवन की बिल्कुल आशा छोड़ दे इसी वक्त, तो मस्तिष्क अगर आशा छोड़ दे पूरी तो हृदय धड़कना बंद कर देगा, क्योंकि आज्ञा मिलनी बंद हो जाएगी। इसलिए आशावान लोग ज्यादा जी लेते हैं, निराश लोग जल्दी मर जाते हैं।

ध्यान रखना, दुनिया में सहज मृत्युएं बहुत कम होती हैं। स्वाभाविक मृत्यु बड़ी मुश्किल घटना है। अधिक लोग आत्महत्या से मरते हैं--अधिक लोग। लेकिन जब कोई छुरा मारता है, तो हमें दिखाई पड़ता है और जब कोई निराशा मारता है भीतर, तो हमें दिखाई नहीं पड़ता है। जब कोई जहर पी लेता है तो हमें दिखाई पड़ता है कि उसने आत्मघात कर लिया, बिचारा! और आप भी आत्मघात से ही मरेंगे। सौ में नित्यानबे मौके पर आदमी आत्मघात से मरता है।

पशु मरते हैं स्वाभाविक मृत्यु, आदमी नहीं मरता। मर नहीं सकता आदमी, क्योंकि उसके जीवन पर वह पूरे वक्त प्रभाव डाल रहा है--आशा, निराशा, जीना, नहीं जीना, वह भीतर से प्रभावित कर रहा है। और जिस दिन मन पूरा राजी हो जाता है कि नहीं, उसी दिन हृदय की धड़कन बंद हो जाती है। इसलिए अगर मस्तिष्क के तंतु टूट गए तो फिर मुश्किल है। अभी मुश्किल है, सौ दो सौ साल में मुश्किल नहीं होगा, क्योंकि मस्तिष्क के तंतु भी रिप्लेस, किसी न किसी दिन किए जा सकते हैं। कोई अड़चन नहीं है। तब आदमी जिंदा हो जाएगा।

तो आदमी कब मरा हुआ है, कब कहें?

जब तक शरीर और आत्मा का संबंध नहीं टूट जाता तब तक आदमी मरा हुआ नहीं है। और यह संबंध कब टूटता है, अभी तक तय नहीं हो सका। कहीं टूटता है, लेकिन कब टूटता है, अभी तक तय न हो सका। किसी गहरे क्षण में जाकर टूट जाता है, फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता। फिर मस्तिष्क बदल डालो, फिर हृदय बदल डालो, फिर सारा खून बदल डालो, फिर पूरा शरीर बदल डालो, तो भी वह लाश ही होगी।

एक दफा शरीर और आत्मा का संबंध टूट जाए... तो क्या शरीर और आत्मा का संबंध टूट जाए, तब हमें कहना चाहिए कि आदमी मर गया? लेकिन तब भी यह बात अधूरी है, क्योंकि मरा कोई भी नहीं, शरीर सदा से मरा हुआ था, वह मरा हुआ है। और आत्मा सदा से अमर थी, वह अब भी अमर है। मरा कोई भी नहीं। तो कब हम कहें कि आदमी मर गया!

यह मैंने एक उदाहरण के लिए लिया।

महावीर कहेंगे, स्यात। निश्चयात्मक कुछ मत बोलना, एब्सोल्यूटिस्टिक कुछ मत बोलना।

इसलिए महावीर शंकर को पसंद न पड़े। बुद्ध को भी पसंद न पड़े। हिंदुस्तान में बहुत कम विचारकों को पसंद पड़े। क्योंकि विचारक का मजा यह होता है कि कुछ निश्चित बात पता चल जाए, नहीं तो मजा ही खो जाता है।

शंकर कहते हैं, ब्रह्म है। महावीर कहेंगे, स्यता। शंकर कहेंगे, माया है। महावीर कहेंगे, स्याता। चार्वाक कहता है, आत्मा नहीं है। महावीर कहते हैं, स्याता। ईश्वर नहीं है, महावीर उसे भी कहेंगे, स्याता। वे कहते यह हैं कि हम जो भी बोल सकते हैं, जो भी कहा जा सकता है वह सदा ही अंश होगा। और उस अंश को पूर्ण मान लेना असत्य है। इसलिए महावीर कहते हैं, सभी दृष्टियां असत्य होती हैं--सभी दृष्टियां। सभी देखने के ढंग अधूरे होते हैं, इसलिए असत्य होते हैं। और पूर्ण देखने का कोई ढंग नहीं है। क्योंकि सभी ढंग अधूरे होंगे।

मैं आपको कहीं से भी देखूं, वह अधूरा होगा। कैसे भी देखूं, वह अधूरा होगा। इसलिए महावीर कहते हैं, पूर्ण को तो वही देख सकता है, जो सब दृष्टियों से मुक्त हो गया हो। इसलिए महावीर के दर्शन का, "सम्यक दर्शन" का अर्थ है--सब दृष्टियों से मुक्त हो जाना। एक ऐसी स्थिति में पहुंच जाना, जहां कोई दृष्टि शेष नहीं रह जाती, देखने का कोई ढंग शेष नहीं रह जाता। तब आदमी पूर्ण सत्य को जानता है। लेकिन जान सकता है, जब कहेगा, फिर दृष्टि का उपयोग करना पड़ेगा। तब वह फिर अधूरा हो जाएगा। इसलिए महावीर की यह बात समझ लेने जैसी है।

सत्य पूरा जाना जा सकता है, लेकिन कहा कभी नहीं जा सकता। जब भी कहा जाएगा, वह असत्य हो ही जाएगा। इसलिए सावधानी बरतना और निश्चयात्मक रूप से कुछ भी मत कहना।

हप तो असत्य को भी इतने निश्चय से कहते हैं जिसका हिसाब नहीं। और महावीर कहते हैं सत्य को भी निश्चय से मत कहना। हम तो असत्य को भी बिल्कुल दावे की तरह कहते हैं। सच तो यह है कि जितना बड़ा असत्य होता है, उतना जोर से हम टेबल पीटते हैं। क्योंकि सहारा देना पड़ता है। जितना असत्य बोलना हो, उतना जोर से बोलना चाहिए। धीमे बोलो, लोग समझेंगे, कुछ गड़बड़ है। जोर से बोलो। टेबल को पीटकर बोलो।

सागर यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे डाक्टर गौड़। वे बड़े वकील थे। उन्होंने मुझ से कहा कि मेरे गुरु ने मुझे कहा कि जब तुम्हारे पास कानूनी प्रमाण हों अदालत में, तो धीरे बोलने से भी चल जाएगा। जब तुम्हारे पास प्रमाण हों कानूनी, तो किताबें ले जाने की और कानूनों का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं। जब तुम्हारे पास कानूनी प्रमाण न हों तो अदालत बड़े-बड़े ग्रंथ लेकर पहुंचना। और जब तुम्हें पक्का हो कि इसके विपरीत प्रमाण है, तब टेबल को जितने जोर से पीट सको, जज के सामने पीटना।

जितना बड़ा असत्य हो, उतने निश्चय से बोलना पड़ता है। नहीं तो आपके असत्य को कोई मानेगा कैसे? इसलिए असत्य बोलने के लिए भोली शक्ल हो, निश्चयवाला मन हो, आवाज तेज हो, तो आप कुशल हो सकते हैं, नहीं तो मुश्किल में पड़ेंगे। साधु होने के लिए भोली शक्ल हो, उतनी आवश्यक नहीं। इसलिए अकसर भोली शक्ल के साधु खोजना मुश्किल है, लेकिन भोली शक्ल के अपराधी निरंतर मिल जायेंगे; क्योंकि अपराध के लिए भोली शक्ल अनिवार्य जरूरत है! झूठ बोलने के लिए और तरह के प्रमाण चाहिए, हवा चाहिए।

महावीर कहते हैं, सत्य को भी निश्चय से मत बोलना। इसलिए महावीर का बहुत प्रभाव नहीं पड़ा। हैरानी की बात है, महावीर जैसी ज्वलंत प्रतिभा के व्यक्ति का प्रभाव न्यून पड़ा, न के बराबर पड़ा। जीसस को मानने वाली आधी दुनिया है। बुद्ध को मानने वाले करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। मोहम्मद को मानने वाले करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। महावीर को मानने वाले कोई भी नहीं है। वह जो पच्चीस लाख लोग दिखाई पड़ते हैं उनको मानते हुए, वे भी मजबूरी में। कोई मानने वाला नहीं है।

महावीर को मानना कठिन है, क्योंकि मानने में गुरु के पास आदमी जाता है इसलिए कि हम अनिश्चित हैं, आप निश्चयता से कुछ कहें तो भरोसा मिले, और महावीर निश्चय से बोलते नहीं। वे कहते हैं, एक ही बात निश्चित है कि निश्चित रूप से सत्य बोला नहीं जा सकता।

तो जो आदमी आश्वासन खोजने आया है--और सभी लोग आश्वासन खोजने आते हैं गुरु के पास--वह ऐसे गुरु को कैसे मान पाएगा! महावीर को मानने के लिए तो बड़ी गहन जिज्ञासा चाहिए, बड़ी गहन जिज्ञासा। आश्वासन की तलाश नहीं, सांत्वना नहीं, खोज।

इसलिए बहुत थोड़े से लोग महावीर को मान पाए। ज्यादा लोग कभी भी मान सकेंगे, यह शक मालूम पड़ता है। लेकिन किसी न किसी दिन जैसे-जैसे मनुष्य का मन विस्तीर्ण होगा और सत्य के अनंत पहलू हमें दिखाई पड़ने शुरू होंगे, वैसे-वैसे हमें, निश्चय का जोर गिर जाएगा। निश्चय कमजोरी है, अनिश्चय बड़ी प्रज्ञा है।

आइंस्टीन अनिश्चित है विज्ञान के जगत में। महावीर अनिश्चित है दर्शन के जगत में। ये दो शिखर हैं, अदभुत। महावीर ने दर्शन को जितना दिया उतना ही आइंस्टीन ने विज्ञान को दिया। दोनों अनिश्चित हैं। महावीर का नाम है स्यातवाद, आइंस्टीन का नाम है रिलेटिविटी। आइंस्टीन कहता है, कोई भी सत्य निरपेक्ष नहीं है, सापेक्ष है, तुलना में है, किसी की तुलना में है, सीधा पूर्ण सत्य कुछ भी नहीं है।

विज्ञान को हम सोचते थे, बहुत निश्चित बात, लेकिन नया विज्ञान एकदम अनिश्चित होता चला जाता है। मेरी अपनी समझ यह है कि जहां भी सत्य के निकट पहुंचता है मनुष्य, वहीं अनिश्चित हो जाता है।

जब हम दर्शन में सत्य के निकट पहुंचे महावीर के साथ, तो अनिश्चय हो गया। स्यात, रिलेटिव, निरपेक्ष नहीं सापेक्ष। कहो, लेकिन जानकर, कि अधूरा है। अंश है, पूरा नहीं है। और कहो जानकर कि उससे विपरीत भी सही हो सकता है। तुम्हारा वक्तव्य, तुम जो कहते हो वह बताता है, लेकिन किसी का खंडन नहीं करता।

विज्ञान में आइंस्टीन के साथ हम फिर दूसरी दिशा से सत्य के निकट पहुंचे। सब अनिश्चित हो गया। आइंस्टीन ने कहा, कहो, लेकिन ध्यान रखना कि सब तुलनात्मक है। कोई चीज पूर्ण नहीं है, सब अधूरा है। और इसलिए अनिश्चय ज्ञान का अनिवार्य अंग है। वक्तव्य अनिश्चित होंगे, अनुभव निश्चित हो सकता है।

सत्य के लिए इतनी कठिन शर्तें--क्रोध, लोभ, भय, हंसी-मजाक में भी असत्य नहीं बोलना चाहिए।

हंसी-मजाक में भी हम अहैतुक नहीं बोलते सत्य, उसमें हेतु होता है। अक्सर तो जब आप मजाक करते हैं किसी का, तो चोट पहुंचाने के लिए ही करते हैं। इसलिए बुद्धिमान आदमी दूसरे का मजाक न करके, अपना ही मजाक करता है। दूसरे पर कोई मजाक हिंसा हो सकती है।

यह मुल्ला नसरुद्दीन की मैं इतनी कहानियां आपको कहता हूं। इसकी कहानियां खुद के ऊपर किए गए मजाक हैं, खुद के ऊपर किए गए मजाक हैं। हर कहानी में मुल्ला खुद ही फंसता है। खुद ही मूढ़ सिद्ध होता है। अपने पर हंस रहा है।

नसरुद्दीन ने कहा है कि जो दूसरों पर हंसता है, वह नासमझ और जो अपने पर हंस सकता है, वह समझदार है।

हम मजाक भी करते हैं, तो उसमें चोट है, आघात है किसी के लिए। फ्रॉयड ने मजाक पर बड़ी खोज की है। वह महावीर से राजी होता, अगर उसको पता चलता कि महावीर ने कहा है कि मजाक में भी असत्य मत बोलना। फ्रॉयड ने कहा है, तुम्हारी सब मजाकें तरकीबें हैं। तुम जो हिम्मत से सीधा नहीं बोल पाते, वह तुम मजाक से बोलतो हो।

इसलिए कभी ख्याल किया आपने कि अगर आप जितनी जोक्स आपने सुनी हों उनमें निन्यानबे प्रतिशत सेक्स से संबंधित क्यों होती हैं? और जिस मजाक में कामवासना न आ जाए, उसमें मजाक जैसा भी मालूम नहीं पड़ता। क्यों? क्योंकि सेक्स के संबंध में हम सीधा नहीं बोल सकते, इसलिए मजाक से बोलते हैं। वह झूठ है हमारा, छिपाया हुआ। जो हम सीधा नहीं बोल सकते, उसे हम गोल-गोल घुमा-घुमा कर बोलते हैं।

कभी आपने ख्याल किया कि मजाक में आप किसको अपमानित करते हैं?

समझ लें कि एक रास्ते पर एक राजनीतिक नेता एक केले के छिलके पर फिसल कर गिर पड़े, तो आपको ज्यादा मजा आएगा, बजाय एक मजदूर गिर पड़े तो। क्यों? क्योंकि राजनीतिक नेता को आप नीचे गिरा कर देखने की बड़ी दिल से इच्छा रख कर बैठे हैं। एक मजदूर गिर पड़े तो दया भी आएगी कि बेचारा। एक राजनीतिक गिर पड़े तो दिल खुश हो जाएगा। केला, छिलका वही है, गिरने की घटना वही है। लेकिन राजनीतिक नेता गिरता है तो इतना मजा क्यों आता है? बहुत दिनों से चाहा था कि गिरे। जो हम न कर पाए वह केले के छिलके ने कर दिखाया। इसलिए दिल खुश हो जाता है।

हमारी मजाक में भी हमारे हेतु हैं। हम जब हंसते हैं, तब भी हमारे हेतु हैं। हम न तो अकारण हंस सकते हैं और न अकारण रो सकते हैं। सब जगह हेतु है।

महावीर कहते हैं, वहां भी खोजते रहना, सावधान रहना, मजाक में भी असत्य नहीं।

आज इतना ही

रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें।

कामवासना है दूसरे की खोज (ब्रह्मचर्य-सूत्र: 1)

विरई अबंभचेरस्स, काम-भोगरसन्नुणा।
 उग्गं महव्वयं बंमं, धारेयव्वं सुदुक्करं॥
 मूलमेयमहम्मस्स महोदोससमुस्सयं।
 तम्हा मेहुणसंसग्गं, निग्गंधा वज्जयन्ति णं॥
 विभूसा ईत्थिसंसग्गो, पणीयं रसभोयणं।
 नरस्सत्तगवेसिस्स, विस तालउडं जहा॥

जो मनुष्य काम और भोगों के रस को जानता है, उनका अनुभवी है, उसके लिए अब्रह्मचर्य त्याग कर, ब्रह्मचर्य के महाव्रत को धारण करना अत्यंत दुष्कार है।

निर्ग्रन्थ मुनि अब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुन-संसर्ग का त्याग करते हैं, क्योंकि यह अधर्म का मूल ही नहीं, अपितु बड़े दोषों का भी स्थान है।

जो मनुष्य अपना चित्त शुद्ध करने, स्वरूप की खोज करने के लिए तत्पर है उसके लिए देह काशृंगार, स्त्रियों का संसर्ग और स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन दूध, मलाई, घी, मक्खन, विविध मिठाइयां आदि--का सेवन विष जैसा।

काम-ऊर्जा, सेक्स एनर्जी, मनुष्य के पास एकमात्र ऊर्जा है।

एक ही शक्ति है मनुष्य के पास, उस शक्ति को हम कोई भी नाम दें। वह शक्ति दो दिशाओं में गतिमान हो सकती है।

काम-ऊर्जा किसी दूसरे के प्रति गतिमान हो, तो यौन बन जाती है, और काम-ऊर्जा स्वयं के प्रति गतिमान हो तो योग बन जाती है।

ऊर्जा एक है, दिशाओं के भेद से सारा जीवन भिन्न हो जाता है।

पानी को हम गर्म करें सौ डिग्री तक तो भाप बन जाता है, हलका हो जाता है। आकाश की तरफ उड़ने में सक्षम हो जात है। पानी को हम ठंडा करें शून्य डिग्री के नीचे, पत्थर का बर्फ हो जाता है, भारी हो जाता है। जमीन की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति उस पर वजनी हो जाती है।

भाप भी पानी है, बर्फ भी पानी है--भाप आकाश की तरफ उड़ती है, बर्फ जमीन की तरफ गिर जाती है।

ऊर्जा एक है, दिशाएं दो हैं।

जिसे हम यौन कहते हैं, सेक्स कहते हैं, वह उसी एक्स, अज्ञात ऊर्जा का नीचे की तरफ प्रवाह है। शून्य डिग्री के नीचे बर्फ बन जाना है। तब जमीन का गुरुत्वाकर्षण उस पर सघन हो जाता है। वही ऊर्जा, वही एक्स, अज्ञात शक्ति ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाए, सौ डिग्री के पार, परमात्मा की तरफ, भाप की तरह उठनी शुरू हो जाती है। जमीन का नीचे का खिंचाव समाप्त हो जाता है। शक्ति एक है, दिशाएं अलग हैं।

तो पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि शक्ति एक है। उसके उपयोग पर निर्भर करेगा कि वह आपको कहां ले जाए!

दूसरी बात यह समझ लेनी जरूरी है कि शक्ति तटस्थ है। शक्ति स्वयं आपसे नहीं कहती कि क्या करें। शक्ति आपको हेतु नहीं देती, गति नहीं देती। शक्ति तटस्थ आपके भीतर मौजूद है। आप ही जो करना चाहें उस शक्ति का उपयोग करते हैं, शक्ति आपसे कुछ भी नहीं करवाती। आप नीचे की ओर बहाना चाहें तो ऊर्जा नीचे की ओर बहेगी, ऊपर की ओर बहाना चाहें तो ऊपर की ओर बहेगी। निर्णायक आप हैं, शक्ति नहीं। शक्ति आपके हाथ में है। अगर नीचे ले जाएंगे तो नीचे के जो सुख-दुख हैं वे मिलेंगे। अगर ऊपर ले जाएंगे तो ऊपर के जो अनुभव हैं, वे मिलेंगे।

तीसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि इस शक्ति के रूपांतरण के दो उपाय हैं। एक उपाय का नाम है योग, एक उपाय का नाम है तंत्र। दोनों विपरीत हैं। दोनों उपाय जितने विपरीत हो सकते हैं उतने विपरीत हैं, लेकिन दोनों का लक्ष्य एक है।

मार्ग विपरीत भी एक लक्ष्य पर पहुंचा सकते हैं। इस संबंध में थोड़ी बात समझ लें, फिर यह सूत्र समझना आसान होगा।

तंत्र की मान्यता है कि काम-ऊर्जा का पूरा अनुभव जब तक न हो, तब तक काम-ऊर्जा को रूपांतरित नहीं किया जा सकता। काम-ऊर्जा का जितना गहन अनुभव हो सके, उतना ही काम के रस से मुक्ति हो जाती है। यह महावीर से बिल्कुल उलटा सूत्र है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें तो फिर महावीर का, जो बिल्कुल विपरीत दृष्टीकोण है, वह समझना आसान हो जाएगा। कंट्रास्ट में, एक दूसरे को सामने रखकर देखना आसान हो जाएगा।

तंत्र मानता है कि हम केवल उसी से मुक्त हो सकते हैं, जिसका हमें अनुभव हो। लेकिन क्यों? हम उसी से क्यों मुक्त हो सकते हैं, जिसका हमें अनुभव हो? तब तो इसका यह अर्थ होगा कि जिस दिन हमें मोक्ष का अनुभव होगा, हम मोक्ष से मुक्त हो जाएंगे। तब तो इसका यह अर्थ होगा, जिस दिन हमें आनंद का अनुभव होगा हम आनंद से मुक्त हो जाएंगे। तब तो इसका यह अर्थ होगा कि जिस दिन हम आत्मा का अनुभव कर लेंगे, उस दिन आत्मा व्यर्थ हो जाएगी।

नहीं, तंत्र का कहना यह है, जिस अनुभव की पूरी प्रक्रिया से गुजरकर अगर मुक्ति न हो तो समझना कि वह अनुभव स्वभाव है। और जिस अनुभव से गुजरकर मुक्ति हि जाए, समझना कि वह परभाव है।

उस अनुभव से मुक्ति हो जाती है जिसमें पहले सुख मालूम पड़ता था और पीछे दुख मिलता है उस अनुभव से मुक्ति हो जाती है जिसके ऊपर तो लिखा था अमृत, लेकिन खोल फाड़ने पर जहर मिलता है। उस अनुभव से मुक्ति हो जाती है जो व्यर्थ सिद्ध हो जाता है।

इसलिए तंत्र कहता है, काम का पूरा अनुभव आवश्यक है, ताकि काम का रस विलीन हो जाए। क्योंकि काम का रस भ्रांत है। रस है नहीं, प्रतीत होता है। जो प्रतीत होता है, अगर पूरे अनुभव से गुजरा जाए तो विलीन हो जाएगा।

रात के अंधेरे में मुझे एक रस्सी सांप मालूम पड़ती है। उससे मैं कितना ही भागूं वह मेरे लिए रस्सी न हो पाएगी, सांप ही बनी रहेगी।

तंत्र कहता है, निकट जाऊं, प्रकाश को जला लूं, देख लूं, जान लूं, अनुभव में आ जाए कि रस्सी है; सांप नहीं है। तो भय विलीन हो जाएगा।

कामवासना मालूम होती है स्वर्ग है। मालूम होता है, कामवासना में गहरा आनंद है। अगर वस्तुतः आनंद है तो तंत्र कहता है, छोड़ना पागलपन है। अगर वस्तुतः आनंद नहीं है तो अनुभव से गुजरकर जान लेना जरूरी है कि रस्सी रस्सी है, सांप नहीं है। और जिस दिन यह दिखाई पड़ जाएगा कि अनुभव आनंदहीन है, न केवल आनंदहीन बल्कि दुख परिपूरित है, उस दिन उसे कौन पकड़ना चाहेगा?

यह तंत्र की दृष्टि है। यह एक उपाय है। दूसरा एक उपाय है जो महावीर की दृष्टि है, जो योग की दृष्टि है। और ये दोनों बिल्कुल विपरीत हैं, पोलर अपोजिट्स हैं।

महावीर कहते हैं, जिसका अनुभव हो जाए, उससे छुटकारा मुश्किल है। महावीर कहते हैं, जिसका हम अनुभव करते हैं तो अनुभव की प्रक्रिया में आदत निर्मित होती है। जितना अनुभव करते हैं, उतनी आदत निर्मित होती है। और आदत का एक दुष्चक्र है--आदत का एक दुष्चक्र है। धीरे-धीरे यांत्रिक हो जाता है। एक अनुभव किया, दूसरा अनुभव किया, फिर यह अनुभव हमारे शरीर की, रोएं-रोएं की मांग बन जाती है। फिर इस अनुभव के बिना अच्छा नहीं लगता, और अनुभव से भी अच्छा नहीं लगता। अनुभव करते हैं तो लगता है कुछ भी न मिला, और अनुभव नहीं करते हैं तो लगता है कुछ खो रहा है। तो अनुभव करते हैं, पछताते हैं, और तब फिर खाली जगह मालूम होने लगती है, फिर अनुभव करते हैं।

महावीर कहते हैं, जिसका अनुभव कर लिया जाए, अनुभव आदत का निर्माता हो जाता है... , और आदमी जीता है आदत से।

आप चौबीस घंटे जो करते हैं, वह सिर्फ आदत है। जरूरी नहीं है कि करने के लिए कोई अंतःप्रेरणा रही हो। ठीक वक्त रोज भोजन करते हैं, उस वक्त शरीर कहता है, भूख लगी है। जरूरी नहीं है कि भूख लगी हो। और घड़ी अगर बदल कर रख दी जाए, और आप एक बजे रोज भोजन लेते हैं और आपको पता न हो कि घड़ी धोखा दे रही है, अभी ग्यारह ही बजे हैं और घड़ी में एक बज गया, तो आपका पेट खबर देना शुरू करेगा कि भूख लग गई है। मन को खबर हुई कि एक बज गया, कि आदत दोहरनी शुरू हो जाएगी।

आप जिस वक्त सोते हैं, अगर उसी वक्त न सो जाएं तो नींद तिरोहीत हो जाती है। अगर नींद वास्तविक थी और आप रोज बारह बजे रात सोते थे, तो एक बजे रात तक और भी तीव्रता से आनी चाहिए। लेकिन अगर बारह बजे नहीं सोए, एक बज गया, तो नींद आती ही नहीं। वह जो बारह बजे की नींद थी, आदतन थी, हैबिचुअल थी, वास्तविक नींद नहीं थी। अगर आपको एक बजे भूख लगती है और तीन बज गए, तो आप हैरान होंगे, भूख मर जाती है। बढ़नी चाहिए। अगर वास्तविक भूख है तो एक बजे वाली भूख तीन बजे और गहरी हो जानी चाहिए। लेकिन तीन बजे भूख मर जाती है। क्योंकि भूख आदतन थी।

सभ्य आदमी जितना सभ्य होता है, उतनी आदत से जीता है। न असली भूख रह जाती है, न असली नींद रह जाती है। तब आदमी का काम-अनुभव भी आदत हो जाता है। तब जरूरी नहीं कि भीतर कोई अंतःप्रेरणा हो। पति-पत्नी आदत हो जाते हैं। और आदत दोहरती चली जाती है।

एक बहुत बड़े विचारक डी.एच. लारेंस ने लिखा है कि विवाह अनुभव कम, आदत ज्यादा है। वही कमरा, वही बिस्तर, वही रंग-रोनक, वही पत्नी, वही समय--आदत। डी. एच. लारेंस ने लिखा है कि एक बात मुझे इतनी कष्टकर है जितनी और कोई नहीं। रोज उसी बिस्तर पर सोना। उसने लिखा है कि मैं कहीं भी मरना पसंद करूंगा, बिस्तर पर नहीं। ऐसे आमतौर से निन्यानबे प्रतिशत लोग बिस्तर पर मरते हैं। क्योंकि आदमी बड़ा मजेदार है।

अगर आप हवाई जहाज में बैठे हैं, तो लोग कहते हैं कि मत बैठो। कभी-कभी लाख में एकाध आदमी हवाई जहाज में मरता है। घोड़े पर सवारी करें, तो लोग कहते हैं, मत करो। कभी-कभी हजार में एक आदमी घोड़े से गिरकर मर जाता है। लेकिन कोई आपसे नहीं कहता, बिस्तर पर मत सोओ, निन्यानबे प्रतिशत आदमी बिस्तर पर मरते हैं। अधिकतम दुर्घटनाएं बिस्तर पर घटती हैं। डी. एच. लारेंस ने कहा है, बिस्तर एक आदत है। और ठीक समय पर जैसे भूख लगती है और नींद आती है, ठीक समय पर काम की वृत्ति पैदा हो जाती है। और तब लोग आदतें दोहराते रहते हैं।

महावीर कहते हैं, अनुभव आदत का निर्माण करता है और आदमी से जीता है होश से नहीं जीता। अगर होश से जीए तो तंत्र की बात ठीक हो सकती है। लेकिन आदमी जीता है आदत से, होश से नहीं जीता। इसलिए महावीर की बात में भी अर्थ है।

महावीर कहते हैं, एक बार आदत बननी शुरू हो जाए तो फिर बनती चली जाती है। बीज को जमीन में मत डालो तो अंकुर नहीं निकलता। एक बार डाल दो फिर अंकुर निकलता चला जाता है और वृक्ष बन जाता है। और वृक्ष में हजार करोड़ बीज लग जाते हैं। लेकिन बीज को जमीन में मत डालो, रखा रहने दो तो अंकुर नहीं निकलता है। एक दफा अनुभव में गुजरो, बीज जमीन पकड़ लेता है। और फिर आदत का अंकुर बढ़ना शुरू हो जाता है। फिर वह बढ़ता चला जाता है। फिर वह बड़ा होता चला जाता है।

इसलिए महावीर ने बच्चों को भी दीक्षा का मार्ग खोला। बल्कि महावीर के हिसाब से बच्चे को ही दीक्षा देनी चाहिए। अब तो मनोवैज्ञानिक भी कहते हैं कि सात साल की उम्र के बाद आदमी में बदलाहट मुश्किल हो जाती है। तो अगर सात साल, प्राथमिक सात वर्ष एक ढंग के निर्मित कर दिए जाएं तो आदमी फिर उन्ही ढंगों में जीता चला जाता है। इसलिए पहले सात वर्ष पूरे सत्तर वर्ष की संक्षिप्त कथा हैं। फिर वही दोहरता चला जाता है।

यह बड़ी मजे की बात है, इस पर थोड़ा सोचना जरूरी है कि आदत कितनी अदभुत है। आप अपनी मां को प्रेम करते हैं, सभी बच्चे करते हैं। लेकिन आपने कभी ख्याल न किया होगा कि मां प्रेम भी वैज्ञानिक अर्थों में सिर्फ आदत है। इस पर लारेंज ने बहुत काम किया। और लारेंज ने सब्स्टीट्यूट मदर्स, परिपूरक माताओं के प्रयोग किए।

जैसे एक बत्तख का बच्चा पैदा हुआ, तो बत्तख का बच्चा पैदा होता है, तो बत्तख ही उसे सबसे पहले मिलती है। मुर्गी का बच्चा पैदा होता है, तो मुर्गी ही उसे सबसे पहले मिलती है। स्वभावतः, आदमी का बच्चा पैदा होता है, तो पहला दर्शन और पहला अनुभव मां का होता है।

लारेंज ने ऐसे प्रयोग किए कि मुर्गी का बच्चा पैदा हो, तो मुर्गी का उसे अनुभव न हो पाए। मुर्गी छिपा ली जाए। मुर्गी की जगह उसने एक रबर का फुगा फुला कर रख दिया। बच्चे को पहला जो दर्शन हुआ बच्चे को, जो पहला अनुभव हुआ। वह पहला अनुभव अंतिम अनुभव है। पहला अनुभव सबसे गहन अनुभव है। क्योंकि सबसे पहली आदत है। फिर सब कुछ उसके ऊपर निर्मित होगा।

उस बच्चे ने रबर का फुगा देखा। वह रबर के फुगे के प्रति वैसा ही आसक्त हो गया जैसा मां के प्रति। इसके बाद रबर का फुगा हवा में उड़ाया जाए तो बच्चा उसके पीछे

दौड़े, लेकिन मां पास हो तो उसकी तरफ ध्यान भी न दे। मां व्यर्थ हो गई, क्योंकि वह आदत न बन पाई। यह रबर का फुगा सार्थक हो गया, यह मां बन गया।

लारेंज कहता है, कि मां कोई अर्थ नहीं। वह पहली आदत है। लेकिन और बड़े अनुभव हुए। यह जो मुर्गी का बच्चा रबर के गुब्बारे के पास बड़ा हुआ, इसको खाना, इसको पीना, सब यांत्रिक विधि से दिया गया, इसकी मां से नहीं। इसका मां से कोई संबंध नहीं जोड़ा गया। एक बड़ी हैरानी की बात हुई कि इस बच्चे के मन में मादाओं के प्रति कोई रस पैदा नहीं हुआ। वह मुर्गियों में उत्सुक नहीं रहा, उसके जीवन में सेक्स सूख गया।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस बच्चे को मां से पहला संपर्क न हो, जीवन में स्त्री से उसके गहरे संबंध न हो पाएंगे। मां ही पहली आदत है। और इसलिए हर आदमी अपनी पत्नी में मां को खोजता है, जाने अनजाने, चेतन अचेतन में मां को खोजता रहता है। और बड़ी कठिनाई यह है कि मां दुबारा मिल नहीं सकती पत्नी में। इसलिए पत्नी से कभी चैन और शांति मिल नहीं सकती। मां पत्नी हो नहीं सकती, और कोई पत्नी मां बनने को राजी नहीं, और कठिनाई तो यह है कि यह अचेतन आकांक्षा है। इसलिए अगर कोई पत्नी मां बनने को राजी हो तो भी पति को दुख होगा।

पुरुषों का इतना आकर्षण स्त्रियों के स्तन में, मां के संबंध में बनी पहली आदत का परिणाम है, और कुछ भी नहीं है। मां से पहली आदत बनी, दूसरी आदत स्तन से बनी। इसलिए पुरुष स्त्री के स्तन में इतने आतुर हैं, इतने उत्सुक हैं।

चित्रकार, मूर्तिकार, फिल्में, वे सब स्त्री के स्तन के पास चली जाती हैं। कहानियां, कविताएं, रोमांस, वे सब स्त्री के स्तन के आस पास निर्मित होता चला जाता है। उससे कुछ और पता नहीं चलता सिर्फ इतना ही पता चलता है, जैसे मुर्गी रबर के गुब्बारे के पास आसक्त हो गई, बच्चा स्तन के प्रति आसक्त हो गया। और बूढ़ा भी मुक्त नहीं हो पाता उस आदत से। बूढ़ा भी मुक्त नहीं हो पाता स्तन की आदत से। वह रस कायम ही रहता है, वह रस बना ही रहता है।

अगर आदतें इतनी महत्वपूर्ण हैं, तो महावीर कहते हैं, जिस अनुभव से छूटना हो उस अनुभव में न उतरना ही उचित है। उतर जाने के बाद छूटना रोज-रोज मुश्किल होता चला जाएगा। महावीर मनुष्य को एक यंत्र की भांति देखते हैं और निन्यानबे प्रतिशत आदमी यंत्र हैं। तो महावीर कहते हैं, यंत्रवत आदमी का जो जीवन है वह वहीं रोक दिया जाना चाहिए जहां से चीजों की शुरुआत होती है।

क्या इस बात की संभावना है कि अगर एक व्यक्ति को काम के समस्त अनुभवों, परिस्थितियों से बाहर रखा जा सके, तो उसके जीवन में काम का प्रवाह पैदा नहीं होगा?

इस बात की संभावना नहीं है कि काम का प्रवाह पैदा नहीं होगा। एक दिन बच्चा युवा होगा, शक्ति से भरेगा, ऊर्जा आएगी, शरीर का यंत्र शक्ति देगा, काम ऊर्जा भर उठेगी। काम से, काम की ऊर्जा से, सारी परिस्थितियां भी रोक ली जाए, तो भी बच्चा भरेगा। लेकिन, एक फर्क पड़ेगा। उस बच्चे के पास आदतों के सुनिश्चित मार्ग न होंगे। ऊर्जा भर जाएगी, लेकिन आदतों के बहने के लिए कोई निर्मित मार्ग न होंगे। उस बच्चे की ऊर्जा को किसी भी दिशा में रूपांतरित करना आसान होगा।

जिनके मार्ग निर्मित हो गए हैं, उन्हें नये मार्ग बनाना कठिन होता है। क्योंकि ऊर्जा पुराने मार्ग पर बिना श्रम के बहती है। अगर कोई भी मार्ग निर्मित न हो, तो नया मार्ग निर्मित करना बहुत आसान होता है; क्योंकि ऊर्जा बहना चाहती है। और कोई भी मार्ग मिल जाए तो गति से उस मार्ग पर अग्रसर हो जाती है।

महावीर की यही दृष्टि है। वे कहते हैं, काम का अनुभव खातरे में ले जाएगा, फिर ब्रह्मचर्य की तरफ आना मुश्किल होता चला जाएगा। इसलिए अनुभव से बचना।

इसे ध्यान से समझ लें—अनुभव से बचना दमन नहीं है, रिप्रेशन नहीं है। जिसको फ्रायड ने दमन कहा है, वह अनुभव से बचना दमन नहीं है। महावीर के लिए अनुभव से बचना ऊर्जा को दबाना नहीं है, अनुभव से बचना ऊर्जा को नया मार्ग देना है। जो ऊर्जा नीचे की तरफ बह रही है, उसे अगर ऊपर की तरफ ले जाना है, तो नीचे की तरफ बहने का अनुभव न हो तो ऊपर की तरफ मार्ग बनाना आसान होगा। लेकिन तब, तंत्र की ओर महावीर के योग की सारी प्रक्रियाएं विपरीत हो जाएंगी, सारी प्रक्रियाएं। तंत्र जो भी करेगा, महावीर के लिए वह गलत हो जाएगा और महावीर जो भी करेंगे, वह तंत्र के लिए गलत होगा।

मेरी दृष्टि में दोनों मार्गों से पहुंचना संभव है। दोनों मार्गों पर अलग-अलग बात पर जोर है ऊपर से, लेकिन भीतर एक ही बात पर जोर है, वह भी आपसे कह दूं।

वह जोर, तंत्र कहता है रस से मुक्ति होगी, अनुभव से। महावीर कहते हैं, रस लेना ही मत, तो मुक्ति होगी। लेकिन रस से मुक्ति दोनों में केंद्रीय है। रस से मुक्ति कैसे होगी इन बातों में, दोनों में भेद है।

इसलिए तंत्र, उन लोगों के लिए आसान पड़ेगा जो होश जगाने में लगे हैं। जो लोग होश को जगाने में नहीं लगे हैं, उनके लिए तंत्र खतरनाक होगा। इसलिए तंत्र बहुत थाड़े से लोगों के काम की बात मालूम पड़ती है। इसलिए तंत्र का व्यापक प्रभाव नहीं हो सका। लेकिन भाविष्य में तंत्र का व्यापक प्रभाव होगा, क्योंकि वह

सारा समाज का, जीवन का ढांचा रोज-रोज तंत्र के ज्यादा अनुकूल आता जा रहा है। और लोग अनुभव से, रसविहीन होते चले जा रहे हैं।

यह जान कर आपको हैरानी होगी कि जिन देशों में यौन की जितनी स्वतंत्रता है, यौन के प्रति उतनी ही विरक्ति, पैदा होती जा रही है। जिन मुल्कों में यौन की जितनी... जितनी गुलामी है, जितनी परतंत्रता है, उतनी यौन के प्रति उत्सुकता है। अगर सारा जगत ठीक से समृद्ध हुआ, समृद्ध होने का मतलब दो ही होता है, क्योंकि आदमी की दो ही भूख हैं--एक शरीर की भूख है, जो रोटी से पूरी होती है, मकान से पूरी होती है, सामान से पूरी होती है। और एक यौन की भूख है, जो प्रेम से पूरी होती है। अगर इन दोनों का अतिरेक हो गया तो तंत्र की सार्थकता बढ़ती चली जाएगी। लेकिन अभी भी वह अतिरेक हुआ नहीं है।

और महावीर जो कह रहे हैं वह बिल्कुल विपरीत है। उस विपरीतता में जो मौलिक बिंदु है, वह हम ख्याल में ले लें तो फिर सूत्र समझ में आ जाए।

तंत्र कहता है, जिससे मुक्त होना है, उसमें जाओ। महावीर कहते हैं, जिससे मुक्त होना है, उसको छुओ ही मत। पहले कदम पर रुक जाओ। क्योंकि अंतिम कदम पर तुम रुक सकोगे, इसका भरोसा कम है।

तंत्र कहता है, अगर शराब से मुक्त होना है तो शराब पीयो और होश को संभालो। शराब की मात्रा उतनी ही बढ़ाते जाओ जितना होश बढ़ता जाए, लेकिन होश सदा ऊपर रहे और शराब कभी भी बेहोश न कर पाए।

और तांत्रिकों ने अदभुत प्रयोग किए। और ऐसे तांत्रिक हैं कि उनको कितना ही नशा पिला दो, बेहोश न कर पाओगे। बेहोशी न आए तो शराब पीई भी और नहीं भी पीई। शरीर में तो शराब गई, और चेतना में शराब को कोई सस्पर्श न हुआ।

तो तंत्र कहता है, चेतना को मुक्त करो, शराब को जाने दो शरीर में, लेकिन चेतना को अछूता रहने दो।

यह कठिन है। लंबी साधना की बात है। और सबके लिए शायद संभव भी नहीं, हालांकि सब करना चाहेंगे। लेकिन तंत्र का सूत्र पूरा करना कठिन है, क्योंकि तंत्र का सूत्र यह है कि होश न खो जाए, तो शराब पीयो।

महावीर कहते हैं, अगर होश खोता हो, तो बेहतर है, पीयो ही मत। लेकिन दोनों एक बात में राजी हैं कि होश नहीं खोना चाहिए। महावीर कहते हैं, पीयो ही मत, कहीं होश न खो जाए। तंत्र कहता है, पीयो और होश को बढ़ाओ।

यह सभी बातों के संबंध में है।

महावीर कहते हैं, मांस नहीं। तंत्र कहता है, मांस का भी प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन तंत्र कहता है, चाहे सब्जी खाओ, चाहे मांस खाओ, भीतर मन में कोई भेद न पड़े। यह बहुत कठिन बात है।

तंत्र कहता है कि अभेद को पाना है, अद्वैत को पाना है तो कोई भेद न पड़े। मांस खाओ तो, सब्जी लो तो, कोई भेद भीतर न पड़े। अगर भेद पड़ गया, तो मांस खाना खतरनाक हो गया। अगर भेद न पड़े भीतर कोई--जहर भी पिया या अमृत भी--भीतर कोई भेद न पड़े। भीतर अनासक्त मन बना रहे, दोनों बराबर मालूम पड़े, तो तंत्र कहता है, तो फिर मांसाहार, मांसाहार नहीं है।

महावीर कहते हैं, यह कठिन है कि भेद न पड़े। जिनके जीवन में हर चीज में भेद है, वह कितना ही कहे कि सोना हमारे लिए मिट्टी है, फिर भी सोना सोना है और मिट्टी मिट्टी है। जिनके जीवन में हर चीज में भेद है, जो इंच भर बिना भेद के नहीं चलते, वह मदिरा और मांस लेकर पानी पी जाएंगे, इसकी आशा करनी कठिन है। तो महावीर कहते हैं, जहां से गिर जाने का डर हो वहां गति मत करो। इसलिए पूरी प्रक्रिया का रूप बदल जाएगा।

"जो मनुष्य काम और भोगों के रस को जानता है, उसका अनुभवी है, उसके लिए अब्रह्मचर्य त्याग कर ब्रह्मचर्य के महाव्रत को धारण करना अत्यंत दुष्कर है।"

आदत को तोड़ना अत्यंत दुष्कर है, और आप सब जानते हैं कि काम की आदत गहनतम आदत है। एक आदमी सिगरेट पीता है, उसे छोड़ना मुश्किल है। हालांकि पीने वाले सभी यह सोचते हैं कि जब चाहें, तब छोड़ दें। पीने वाले कभी यह नहीं सोचते कि हम कोई अडिक्टेड हैं, या हम कोई उसके गुलाम हो गए।

मुल्ला नसरुद्दीन को उसके डाक्टर ने कहा कि अब तुम शराब बंद कर दो, क्योंकि शराब से अडिक्शन पैदा होता है। आदमी गुलाम हो जाता है। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि रहने दो, चालीस साल से पी रहा हूं, अभी तक अडिक्टेड नहीं हुआ, अब क्या खाक होऊंगा! अनुभव से कहता हूं कि चालीस साल से रोज पी रहा हूं, अभी तक अडिक्टेड नहीं हुआ।

आप जो भी करते हैं, सोचते हैं, जब चाहें तब छोड़ दें, इतना आसान नहीं है। जरा सी आदत भी छोड़नी आसान नहीं। आदत बड़ी वजनी है। आपकी आत्मा आदत से बहुत कमजोर है। एक छोटी सी आदत छोड़ना चाहें, तब आपको पता चलेगा कि कितना मुश्किल है, लेकिन काम तो गहनतम आदत है, क्योंकि बायोलाजिकल है, जैविक है।

गहनतम आपके प्राणों में काम की ऊर्जा छिपी है, क्योंकि आदमी का जन्म होता है काम से, उसका रोआं-रोआं निर्मित होता है काम से, उसका एक-एक कोष्ठ पैदा होता है काम के कोष्ठ से।

आप काम का ही विस्तार हैं। आप हैं इसलिए जगत में कि आपके माता-पिता, उनके पिता, उनकी मां करोड़ों-करोड़ों वर्ष से काम ऊर्जा को फैला रहे हैं। आप उसका एक हिस्सा हैं। आपके माता-पिता की कामवासना का आप फल हैं।

इस फल के रोएं-रोएं में, कण-कण में कामवासना छिपी है। और सब आदतें ऊपरी हैं। कामवासना गहनतम आदत है। इसलिए महावीर कहते हैं, अगर आदत निर्मित होनी शुरू हो जाए तो अत्यंत दुष्कर है। फिर अब्रह्मचर्य का त्याग करके ब्रह्मचर्य में प्रवेश करना अत्यंत दुष्कर है।

असंभव वे नहीं कहते, इसलिए तंत्र का पूर्ण निषेध नहीं है। दुष्कर कहते हैं। और निश्चित ही, जिनको सिगरेट पीना छोड़ना मुश्किल हो, उनके लिए महावीर ठीक ही कहते हैं। जो सिगरेट भी न छोड़ सकते हों, वे सोचते हों कि काम के अनुभव को छोड़ देंगे, तो वे आत्महत्या में लगे हैं। उनके लिए यह संभव नहीं होगा।

इसलिए तंत्र की भी शर्तें भी बड़ी अजीब हैं। तंत्र पहले और सब तरह की आदतें तुड़वाता है, और जब निश्चित हो जाता है तांत्रिक गुरु कि सब तरह की आदतें टूट गईं तब, तब वह इन गहन प्रयोगों के लिए आज्ञा देता है।

तंत्र की शर्तें कठोर हैं। तंत्र मानता है, जब तक प्रत्येक स्त्री में मां का दर्शन न होने लगे, न केवल मां का, बल्कि जब तक प्रत्येक स्त्री में तारा का, दुर्गा का, देवी का, भगवती का, परम मां का, जगत जननी का स्मरण न होने लगे, तब तक तंत्र नहीं कहता कि संभोग के द्वारा समाधि उपलब्ध हो सकेगी।

तो तंत्र की प्राथमिक प्रक्रियाओं में स्त्री में मां का दर्शन, परम जननी का दर्शन। इसके प्रयोग हैं। इसलिए सभी तांत्रिक ईश्वर को मां के रूप में देखते हैं, पिता के रूप में नहीं। और जब मां दिखाई पड़ने लगे प्रत्येक स्त्री में, तभी तंत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

और तंत्र के प्रयोग की जो पूरी आयोजना है, वह अति कठिन है। अति कठिन इसलिए है कि पहले स्त्री को तिरोहित करना होता है। वह समाप्त हो जाए, विलीन हो जाए, स्त्री मौजूद न रहे, और तब ही उसके साथ संभोग में परम पवित्र भाव से प्रवेश करना होता है। अगर क्षण भर को भी वासना आ जाए, तो तंत्र का प्रयोग असफल हो जाता है। लेकिन वह दूभर है। महावीर कहते हैं, दुष्कर है।

आसान आदमी के लिए यही है कि वह जिससे मुक्त होना चाहता हो, उसकी आदत निर्मित न करे।

यह आसान क्यों है? क्योंकि जब ऊर्जा भीतर भरती है तो बहना चाहती है। ऊर्जा का लक्षण है बहना। जैसे नदी बहती है सागर की तरफ, ऐसे ऊर्जा भी किसी से मिलने के लिए बहती है।

ये मिलन दो तरह के हो सकते हैं। यह मिलन या तो अपने से बाहर घटित होगा कि किसी पुरुष का स्त्री से, किसी स्त्री का पुरुष से। यह एक बहाव है। एक और बहाव है भीतर की तरफ, अपने से ही मिलने का। यह जो आंतरिक बहाव है, अगर बाहर बहने की आदत न हो तो शक्ति खुद इतनी भर जाएगी कि वह भीतर के द्वार खटखटाने लगेगी और भीतर बढ़ना शुरू हो जाएगी।

ब्रह्मचर्य पर इतना जोर इसी कारण है। इस कारण कि शक्ति खुद भी मार्ग खोजने लगे, और नीचे की कोई आदत न हो, बाहर की कोई आदत न हो, दूसरे के प्रति बहने की कोई

आदत न हो, तो मार्ग न मिले। और जब मार्ग नहीं मिलता और शक्ति बढ़ती चली जाती है और बांध तोड़ना चाहती है, तब साधक आसानी से भीतर जाने वाला मार्ग खोल सकता है। शक्ति खुद ही सहयोगी हो जाती है, खोलने के लिए।

इसलिए महावीर कहते हैं: "निर्ग्रन्थ मुनि अब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुन-संसर्ग का त्याग करते हैं। क्योंकि यह अधर्म का मूल ही नहीं, अपितु बड़े से बड़े दोषों का भी स्थान है।"

अगर ऊर्जा बाहर की तरफ बहती है, तो समस्त अधर्म का मूल है। क्योंकि धर्म की परिभाषा हमने की है, स्वभाव। धर्म का अर्थ हुआ, अपने को पा लेना। अधर्म का फिर अर्थ हुआ, अपने से बाहर किसी को पाने की कोशिश, दी अदर, दूसरे को पाने की कोशिश। धर्म का अर्थ है, स्वयं को पाना; तो अधर्म का अर्थ हुआ, पर को पाना। इसलिए कामवासना से ज्यादा अधर्म कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि कामवासना का अर्थ ही है, दूसरे की खोज। धर्म का अर्थ है, अपनी खोज।

तो महावीर कहते हैं: "अधर्म का मूल है, और बड़े से बड़े दोषों का स्थान भी।"

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

हमारे जीवन में जितने दोष पैदा होते हैं, उनमें निन्यानबे प्रतिशत कामवासना से संबंधित होते हैं। आदमी अगर धन इकट्ठा करने के लिए पागल हो जाता है, तो उसे चाहे पता हो न पता हो, आदमी धन इसलिए पाना चाहता है कि अंततः धनसे कामवासना पाई जा सकती है।

आदमी पद पाना चाहता है, यश पाना चाहता है अंततः इसीलिए कि उससे कामवासना ज्यादा सुगमता से पूरी की जा सकती है। आदमी जीवन में और जो-जो करने निकल पड़ता है उस सब के पीछे गहन में कामवासना छिपी होती है। यह दूसरी बात है कि वह पूरा न कर पाए। वह साधन को ही पूरा करने में लगा रहे और साध्य तक न पहुंच पाए। यह दूसरी बात है। लेकिन गहन में साध्य एक ही होता है।

क्यों ऐसा है? क्योंकि आदमी कामवासना का विस्तार है और आदमी के भीतर मैंने कहा, दो भूखें हैं, आप जब भोजन करते हैं तो यह आपके जीवन की सुरक्षा है, और जब आप यौन में उतरते हैं तो यह जाति के जीवन की सुरक्षा है। वह भी एक भोजन है।

आप अगर भोजन करना बंद कर दें, तो आप मरेंगे। अगर आप कामवासना बंद कर दें, तो आप जाति को मारने का कारण बनते हैं। इसलिए जर्मनी के बड़े प्रसिद्ध विचारक इमैनुअल कांट ने तो ब्रह्मचर्य को अनीति कहा है। और उसके कारण हैं कहने के, उसका कहना यह है कि अगर सारे लोग ब्रह्मचर्य का पालन करें तो जीवन तिरोहित हो जाएगा। और कांट कहता है, नीति का यह नियम है, ऐसा नियम, जिसका सब लोग पालन कर सकें। जिसका सब लोग पालन न कर सकें और अगर सब लोग पालन करें, तो जीवन जो कि नीति का आधार है, संभावना है, वही तिरोहित हो जाए, तो वह अनीति है।

फिर तो ब्रह्मचर्य भी नहीं पाला जा सकता। अगर जीवन तिरोहित हो जाए, तो जो नियम की पूर्णता स्वयं ही नष्ट कर देती हो, वह नियम नैतिक नहीं है। एक अर्थ में ठीक है। आप किसी को मारते हैं, यह हिंसा है। आप अगर कामवासना को रोक लेते हैं तो भी आप उनकी हिंसा कर रहे हैं, जो इस कामवासना से पैदा हो सकते थे।

कांट के हिसाब से ब्रह्मचर्य हिंसा है। जो हो सकते थे, जो जन्म ले सकते थे उनको आप रोक रहे हैं। तो कांट कहता है, कोई आदमी अगर भूखा रहे तो यह उतना बड़ा पाप नहीं है, क्योंकि वह अपने लिए कुछ... अपने ऊपर कुछ कर रहा है। ठीक है, स्वतंत्र है। लेकिन कोई आदमी ब्रह्मचारी रहे तो खतरनाक है, क्योंकि इसका... इसका अर्थ हुआ कि वह जाति को नष्ट करने का उपाय कर रहा है। लेकिन कांट की सोचने की एक सीमा है। इस जीवन के अलावा कांट के लिए और कोई जीवन नहीं है। इस जीवन के पार और कोई रहस्य का लोक नहीं है।

महावीर कहते हैं कि जो ऊर्जा इस जगत में प्राणियों को जन्म देने के काम आती है वही ऊर्जा स्वयं को उस जगत में जन्म देने के काम आती है। ऊर्जा वही है--आत्म जन्म, खुद का ही पुनर्जन्म, उसके ही लिए काम आती है।

तो महावीर के तर्क अलग हैं। महावीर कहते हैं--और अब तो विज्ञान समर्थन देता है, एक संभोग में कोई दस करोड़ सेल, वीर्याणु छूटते हैं--तो महावीर कहते हैं, एक संभोग में दस करोड़ जीवन छूटते हैं, दो घंटे के भीतर वे सब मर जाते हैं। तो प्रत्येक संभोग में दस करोड़ जीवन की हत्या का पाप है। और एक आदमी अगर अपने जीवन में संयमपूर्वक संभोग करे तो चार हजार संभोग कर सकता है। चार हजार संभोग में, प्रति संभोग में दस करोड़ जीवाणु नष्ट होते हैं। तो आप गणित को फैला दें। अगर आपके दस-पांच बच्चे पैदा भी हो जाते हैं तो अरबों खरबों जीवन की हत्या पर।

जीवन बड़ा अदभुत है। दस करोड़ जीवाणु छूटते हैं संभोग में और उनमें संघर्ष शुरू हो जाता है उसी वक्त। बाजार में ही प्रतियोगिता नहीं है, दिल्ली में ही प्रतियोगिता नहीं है। जैसे ही दस करोड़ ये जीवाणु स्त्री की योनि में मुक्त होते हैं, इनमें संघर्ष शुरू हो जाता है। ये दस करोड़ लड़ने लगते हैं आपस में कि कौन आगे निकल जाए। क्योंकि एक ही स्त्री अंडे तक पहुंच सकता है। वे जो आलंपिक में दौड़े होती हैं वे कुछ भी नहीं हैं। बड़ी से बड़ी दौड़, जिसका आपको पता भी नहीं चलता, जिस पर सारा जीवन निर्भर होता है, वह बड़े अज्ञात में होती है। ये दस करोड़ धावक दौड़ पड़ते हैं। इनमें से एक पहुंच पाता है। बाकी सब मर जाते हैं रास्ते में और वह एक भी सदा नहीं पहुंच पाता।

जितनी जमीन की संख्या है इस वक्त, इतनी संख्या एक आदमी पैदा कर सकता है। साढ़े तीन अरब लोग हैं। एक-एक आदमी के पास उसके वीर्य में इतने जीवाणु हैं कि साढ़े तीन अरब लोग पैदा कर दें। एक आदमी एक जीवन में इतनी हत्याएं करता है। ये सब मर जाते हैं, ये बच नहीं सकते।

महावीर का हिसाब यह है कि यह बड़ी हिंसा है इसलिए अब महावीर अब्रह्मचर्य को हिंसा कहते हैं। यह बड़ी भारी महान हिंसा है क्योंकि इतने प्राण! यह सारी की सारी ऊर्जा रूपांतरित हो सकती है और इस सारी ऊर्जा के आधार पर स्वयं का नव-जन्म हो सकता है।

फिर महावीर यह भी नहीं मानते कि इस जगत को होना कोई अनिवार्यता है। यह न हो तो कुछ हर्जा नहीं है। क्योंकि इसके होने से सिवाय हर्जे के और कुछ भी नहीं होता। यह पृथ्वी खाली हो तो हर्जा क्या है? आप न हुए तो ऐसा क्या बिगड़ जाता है? फूल ऐसे ही खिलेंगे, चांद ऐसा ही निकलेगा, समुद्र ऐसी ही दहाड़ मारेगा, हवाएं इतनी ही शान से बहेंगी, सिर्फ बीच में आपके मकानों की बाधा न होगी। आपके होने न होने से फर्क पड़ता है? आप नहीं हुए तो क्या होता है? आपके होने से जमीन सिर्फ एक नरक बन जाती है।

महावीर कहते हैं, यह जो चेतना रोज-रोज शरीर में उतरती है, उपद्रव ही पैदा करती है। इसे शरीर से मुक्त करना है और किसी दूसरे लोक में इसको जन्म देना है, जहां कोई संघर्ष नहीं है। मोक्ष और संसार में इतना ही अर्थ है।

संसार में हर चीज संघर्ष है, हर चीज, चाहे आपको पता चलता हो या न पता चलता हो। यहां एक श्वास भी मैं लेता हूं तो किसी की श्वास छीनकर लेता हूं। यहां मैं जीता हूं तो किसी को मार कर जीता हूं। यहां होने का अर्थ ही किसी को मिटाना है। यहां कोई उपाय ही नहीं है, यहां जीवन मौत से ही चलता है। यहां हिंसा भोजन है। चाहे कोई मांस खाता हो या न खाता हो, पशु-पक्षी मारता हो न मारता हो; लेकिन कुछ भी खाता हो, सब भोजन हिंसा है। हिंसा से बचा नहीं जा सकता। कोई उपाय नहीं है।

तो महावीर कहते हैं, एक ऐसा लोक भी है चेतना का, जहां कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, जहां कोई संघर्ष नहीं है। ध्यान रहे, सारा संघर्ष शरीर के कारण है। आत्मा के कारण कोई भी संघर्ष नहीं है। इस पृथ्वी पर भी जो लोग आत्मा को पाने में लगते हैं, उनका किसी से कोई संघर्ष नहीं है।

अगर मैं धन पा रहा हूं तो किसी का छीनूंगा। अगर मैं सौंदर्य की खोज कर रहा हूं तो किसी न किसी को कुरूप कर दूंगा। मैं कुद भी कर रहा हूं, बाहर के जगत में कोई न कोई छिनेगा, कोई न कोई पीछे पड़ेगा। लेकिन अगर मैं ध्यान कर रहा हूं, अगर मैं भीतर शांत होने की कोशिश कर रहा हूं अगर मैं भीतर एक अंतर्गता पर जा रहा हूं, मौन, होश खोज रहा हूं तो मैं किसी से कुछ भी नहीं छीन रहा हूं। मुझसे किसी को कोई नुकसान नहीं होता, मुझसे किसी को लाभ हो सकता है।

महावीर के होने से किसी को कोई नुकसान नहीं हुआ, लाभ बहुत हुआ है। लेकिन संसार में, जितना बड़ा आदमी हो, उतना ज्यादा नुकसान पहुंचाने वाला होता है। वह बड़ा किसी भी दिशा में हो। उसका बड़प्पन ही निर्भर है दूसरे से छीनने पर।

संसार में छीना-झपटी नियम है, क्योंकि शरीर छीना-झपटी का प्रारंभ है। वह मां के गर्भ से ही शुरू हो जाती है, छीना-झपटी। वह फिर जीवन भर चलती जाती है।

मोक्ष का अर्थ है: जहां शुद्ध है चेतना, शरीर से मुक्त। जहां कोई संघर्ष नहीं है। जहां होना, दूसरे की हत्या और हिंसा पर निर्भर नहीं है।

तो महावीर कहते हैं, इस ऊर्जा का उपयोग उस जगत में प्रवेश के लिए है। यह प्रवेश दूसरे की तरफ दौड़ने से कभी भी न होगा। और कामवासना दूसरे की तरफ दौड़ती है। कामवासना दूसरे से बांधती है, और कामवासना दूसरे पर निर्भर करा देती है। इसलिए कामवासना से जुड़े हुए व्यक्तियों में सदा कलह बनी रहेगी। कलह का मतलब केवल इतना ही है, कि कोई भी आदमी गुलाम नहीं होना चाहता। और कामवासना गुलाम बना देती है।

आप किसी को प्रेम करते हैं, तो आप उस पर निर्भर हो जाते हैं। उसके बिना आपको सुख, संतोष, क्षणभर के लिए जो झलक मिलती हो वह नहीं मिल सकती। वह उसके हाथ में है, चाबी उसके हाथ में है, और उसकी चाबी आपके हाथ में हो जाती है। चाबियां बदल जाती हैं। पत्नी की चाबी पति के हाथ में, पति की चाबी पत्नी के हाथ में। निश्चित ही गुलामी अनुभव होनी शुरू हो जाती है। जिसके कारण हमें सुख मिलता है, उसके हम गुलाम हो जाते हैं और जिसके कारण हमें दुख मिल सकता है, उसके कारण भी हम गुलाम हो जाते हैं। फिर गुलामी के प्रति विद्रोह चलता है।

अभी एक बहुत विचारशाल मनोवैज्ञानिक ने एक किताब लिखी है--दि इंटिमेट एनिमी। वह पति-पत्नी के संबंध में किताब है--आंतरिक शत्रु। आंतरिकता भी बनी रहती है, शत्रुता भी चलती रहती है। शत्रुता अनिवार्य है। पति-पत्नी के बीच मित्रता आकस्मिक है, शत्रुता अनिवार्य है। मित्रता सिर्फ इसलिए है ताकि शत्रुता टूट ही न जाए, जुड़ी रहे। बनी रहे, चलती रहे। जब टूटने के करीब आ जाती है, तो मित्रता है। फिर मित्रता जमा देती है उखड़ा रूपा। फिर शत्रुता शुरू हो जाती है। शत्रुता अनिवार्य है। उसका कारण है, क्योंकि जिसके प्रति हम निर्भर हो जाते हैं, उसके प्रति दुर्भाव शुरू हो जाता है। उससे बदला लेने का मन हो जाता है, वह दुश्मन हो जाता है।

महावीर कहते हैं, कि जब तक हम दूसरे के प्रति बह रहे हैं, तब तक हम गुलाम रहेंगे। कामवासना सबसे बड़ी गुलामी है। इसलिए ब्रह्मचर्य को सबसे बड़ी स्वतंत्रता कहा है और इसलिए ब्रह्मचर्य को मोक्ष का अनिवार्य हिस्सा मान लिया महावीर ने।

"जो मनुष्य अपना चित्त शुद्ध करने, स्वरूप की खोज करने के लिए तत्पर है, उसके लिए देह काशृंगार, स्त्रियों का संसर्ग, और स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन का सेवन विष जैसा है।"

जिसे अपना चित्त शुद्ध करना हो, जिसे स्वरूप की उपलब्धि करनी हो, क्यों उसके लिए देह काशृंगार, क्यों उसके लिए स्त्री का संसर्ग या पुरुष का संसर्ग, और स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन विष जैसा है? क्यों?

इसके कारण हम ठीक से ध्यान में ले लें।

देह काशृंगार हम करते ही इसलिए हैं कि हमारी उत्सुकता किसी और में है। देह काशृंगार कोई अपने लिए नहीं करता, सदा दूसरे के लिए करता है। जिसके प्रति हम आश्वस्त हो जाते हैं, उसके लिए फिर हम देह काशृंगार नहीं करते। इसलिए दूसरों की पत्नियां ज्यादा सुंदर मालूम पड़ती हैं, अपनी पत्नीयां उतनी सुंदर नहीं मालूम पड़तीं। क्योंकि पत्नियां आश्वस्त हो जाती हैं पति के प्रति। अब रोज-रोजशृंगार करने की कोई जरूरत नहीं। जिसको जीत लिया, अब उसको जीतने को रोज-रोज क्या कारण है? तो पति उनकी असली शक्ल देखता है। उससे वह ऊब जाता है। पड़ोसी उनकी नकली शक्ल देखते हैं, जो बाहर तैयार होकर आती हैं; इसलिए पड़ोसी उनमें रस लेते मालूम पड़ते हैं।

पश्चिम में मनावैज्ञानिक समझाते हैं स्त्री को, अगर पति को सदा ही अपने में उत्सुक रखना हो तो सदा ही वह रोज-रोज जीते, इसके उपाय करते रहना चाहिए। जीत निश्चित न हो जाए क्योंकि जीत जब निश्चित हो जाती है, जो पुरुष का रस खो जाता है। पुरुष जीत में उत्सुक है।

दूसरे की पत्नी कम सुंदर भी हो, तो भी ज्यादा आकर्षक मालूम हो सकती है। क्योंकि आकर्षण जीत में है। जितना दुरुह हो जाए, उतना मुश्किल मालूम पड़ने लगता है। जितना मुश्किल मालूम पड़ने लगे, उतनी चुनौती मिलती है।

शृंगार हम करते ही दूसरों के लिए हैं, अपने लिए नहीं। अगर आपको अकेले जंगल में छोड़ दिया जाए, तो आप सोचें कि आप क्या करेंगे? आपशृंगार नहीं करेंगे और भला कुछ भी करें। सजाएंगे नहीं, क्योंकि सजाने का मतलब है, किसके लिए?

इसलिए हमने इंतजाम कर रखा था, पति मर जाए तो फिर हम विधवा स्त्री को सजने नहीं देते, क्योंकि हम उससे पूछते हैं कि किसके लिए? वह अगर अपने लिए ही सज रही थी, तो विधवा को भी सजने में क्या हर्ज है? वह पति के लिए सज रही थी। अब चूंकि पति नहीं है, इसलिए किसके लिए? और अगर विधवा को हम सजते देखें, तो शक पैदा होता है कि उसने कहीं न कहीं पति की तलाश शुरू कर दी है; इसलिए हम उसको सजने नहीं देते। उसको हम सब तरफ के कुरूप करने की कोशिश करते हैं।

बड़े मजे की बात है कि क्या सौंदर्य दूसरे के लिए है? असल में सौंदर्य एक फंदा है, एक जाल है जिसमें हम किसी को फंसाना चाहते हैं।

महावीर कहते हैं, जब दूसरे में उत्सुकता ही नहीं तोशृंगार का क्या प्रयोजन? इसलिए महावीर ने कहा, तुम जैसे हो, अपने लिए अगर तुम पृथ्वी पर अकेले होते तो वैसे ही रहो। इसलिए महावीर नग्न हो गए। इसलिए महावीर ने शरीर की सजावट छोड़ दी। इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर शरीर के शत्रु हो गए। ना इसका यह भी मतलब नहीं कि महावीर ने अपने शरीर को कुरूप कर लिया, क्योंकि वह तो दूसरी अतिशयोक्ति होती।

सौंदर्य भी अगर हम निर्माण करते हैं, तो दूसरे के लिए, कुरूपता भी अगर निर्माण करते हैं, तो दूसरे के लिए। जिस दिन पत्नी नाराज हो उस दिन वह पति के सामने सब तरह से कुरूप रहेगी, सजेगी नहीं। यह भी दूसरे के लिए। अगर सजने से सुख देने का उपाय था, तो कुरूप रह कर दुख देने का उपाय है।

महावीर ने दूसरे का ख्याल छोड़ दिया। अपने लिए जैसा जी सकते थे वैसा जीने लगे। इससे वे कुरूप नहीं हो गए, बल्कि सही अर्थों में पहली दफा एक सौंदर्य निखरा, जो दूसरे के लिए नहीं था, जो अपने भीतर से आ रहा था, जो अपने ही लिए था, जो स्वभाव था।

शृंगार झूठ है, और इसलिए शृंगार में छिपा हुआ सौंदर्य एक धोखा है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शृंगार की चेष्टा वह जो वास्तविक सौंदर्य होना चाहिए था, उसकी कमी की पूर्ति है। इसलिए जितनी सुंदर स्त्री होगी, उतना कम शृंगार करेगी। जितनी कुरूप स्त्री होगी, उतना ज्यादा शृंगार करेगी। कुरूप समाज सब तरह से आभूषणों से लद जाएगा। सुंदर समाज आभूषणों को छोड़ देगा। हम कमी पूर्ति कर रहे हैं, लेकिन दृष्टि दूसर पर है--दृष्टि सदा दूसरे पर है।

पुरुष क्यों इतना शृंगार नहीं करता? पुरुष कुछ और करता है क्योंकि स्त्रियां सौंदर्य में कम उत्सुक हैं, शक्ति में ज्यादा उत्सुक हैं। पुरुष शक्ति में कम उत्सुक हैं सौंदर्य में ज्यादा उत्सुक हैं, इसलिए स्त्रियां पूरी जिंदगी शृंगार में बिताती हैं। पुरुष शृंगार की फिकर नहीं करता। उसका कारण है। उसका कारण इतना है कि पुरुष के लिए शक्ति अगर हो उसके पास, तो वही स्त्री की उत्सुकता का कारण है। कितना धन उसके पास है, कितना बलिष्ठ शरीर उसके पास है, यह स्त्री के लिए मूल्यवान है।

स्त्री के मन में सौंदर्य का अर्थ शक्ति है। पुरुष के मन में सौंदर्य का अर्थ कमनीयता है, कोमलता है, शक्ति नहीं। पर पुरुष शक्ति को बढ़ाने में लगा रहता है, जिस चीज से भी शक्ति मिलती है, धन से मिलती है, यश से मिलती है तो धन की दौड़ करता है, यश की दौड़ करता है। मगर वह भी दूसरे के लिए है।

महावीर कहते हैं, यह दूसरे के लिए होना, यही संसार है। अपने लिए हो जाना मुक्ति है। यह जो दूसरे के लिए होने की चेष्टा है इसमें शृंगार भी होगा, स्त्रियों संसर्ग भी होगा--स्त्री से या पुरुष से मतलब नहीं है--विपरीत यौन से। विपरीत यौन के पास रहने की आकांक्षा होगी। क्योंकि जब भी विपरीत यौन पास होगा, तभी आपको लगेगा, आप हैं। और जब वह पास नहीं होगा तभी आप उदास हो जाएंगे, लगेगा आप नहीं हैं।

तो देखें, अगर बीस पुरुष बैठे हों, उनमें चर्चा चल रही हो और फिर एक सुंदर स्त्री उस कमरे में आ जाए, तो कमरे की रौनक बदल जाती है। चेहरे बदल जाते हैं, चर्चा में हलकापन आ जाता है, भारीपन मिट जाता है, विवाद की जगह ज्यादा संवाद मालूम पड़ने लगता है। क्यों? बीस ही पुरुष, स्त्री के आते अनुभव पहली दफा करते हैं कि वे पुरुष हैं। वह स्त्री की जो मौजूदगी है वह उनके पुरुष के प्रति सचेतना बन जाती है। उनकी रीढ़ें सीधी हो जाएंगी, वे ठीक सम्हल कर बैठ जाएंगे, टाई ठीक कर लेंगे, कपड़े वगैरह सब सुधार लेंगे। विपरीत मौजूद हो गया। आकर्षण शुरू हो गया।

विपरीत का आकर्षण है। इसलिए पुरुषों के अगर क्लब हों, तो उदास होंगे, अकेले पुरुषों के क्लब बिल्कुल उदास होंगे। वहां कोई रौनक न होगी। अकेली स्त्रियों की भी अगर बैठक हो तो थोड़ी बहुत देर में, जो स्त्रियां मौजूद नहीं हैं, जब उनकी निंदा चुक जाएगी, तो सब फालतू मालूम पड़ने लगेगा।

दो स्त्रियों में मित्रता भी मुश्किल है। मित्रता का एक ही कारण हो सकता है कि अगर कोई तीसरी स्त्री दोनों की शत्रु हो तो--कोई उपाय नहीं है। पुरुषों में मित्रता हो जाती है क्योंकि उनके बहुत शत्रु हैं चारो तरफ। मित्रता बनाते ही हम इसलिए हैं कि शत्रु के खिलाफ लड़ना है। स्त्रियों में कोई मैत्री नहीं बन सकती है। और उनकी बैठक हो तो उसमें चर्चा योग्य भी कुछ नहीं हो सकता, सब छिछला होगा। लेकिन एक पुरुष को प्रवेश करा दें और सारी स्थिती बदल जाएगी।

यह अचेतन सब होता है। यह अचेतन सब होता है, इसके लिए चेतन रूप से आपको कुछ करना नहीं होता है। आपकी ऊर्जा ही करती है।

दूसरे की हम तलाश करते हैं, ताकि हम अपने को अनुभव कर सकें। विपरीत को हम खोजते हैं, ताकि हमें अपना पता चल सके।

इसलिए महावीर कहते हैं, विपरीत का संसर्ग--जिसे ब्रह्मचर्य साधना है, जिसे स्वरूप की तलाश करनी है उसे छोड़ देना चाहिए। ख्याल ही विपरीत का छोड़ देना चाहिए। क्योंकि आत्मा विपरीत से नहीं जानी सकती, केवल शरीर विपरीत से जाना जा सकता है।

शरीर के तल पर आप स्त्री हैं, पुरुष हैं। आत्मा के तल पर आप न स्त्री हैं न पुरुष हैं। अगर आत्मा को खोजना है, तो विपरीत का कोई उपयोग नहीं है। अगर शरीर की ही खोज जारी रखनी है, तो विपरीत के बिना कोई उपयोग नहीं है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि कभी न कभी स्त्री और पुरुष अलग-अलग नहीं थे। बाइबिल की कहानी बड़ी सच मालूम पड़ती है। बाइबिल में कहानी है कि ईश्वर अकेला रहते-रहते ऊब गया, अकेला-अकेला रहे तो कोई भी ऊब जाए। उसने आदम को पैदा किया। फिर आदम अकेला ऊबने लगा, तो उसकी पसली निकाल कर उसने हव्वा, ईव को पैदा किया। स्त्री को पैदा किया।

कीर्कगार्ड ने बड़ा गहरा मजाक किया है। उसने कहा, पहले ईश्वर अकेला ऊब रहा था। फिर उसने आदम को पैदा किया। फिर आदम और ईश्वर ऊबने लगा। फिर उसने आदम की हड्डी से ईव को पैदा किया। फिर ईव और आदम ऊबने लगे, उन्होंने बच्चे पैदा किए--केन और अबेल को पैदा किया। फिर केन, अबेल, आदम, ईव, ईश्वर, सब ऊबने लगे। पूरा परिवार ऊबने लगा। तो फिर उन्होंने पूरा संसार पैदा किया, और अब पूरा संसार ऊब रहा है।

लेकिन बाइबिल की कहानी कहती है कि आदम की हड्डी से ईश्वर ने ईव को पैदा किया। यह बात अब तक तो मिथ, पुराण कल्पना थी; लेकिन विज्ञान की खोजों ने सिद्ध किया कि इसमें एक सच्चाई है।

जैसे हम पीछे लौटते हैं जीवन में तो अमीबा, जो पहला जीवन का अंकुरण है पृथ्वी पर, उसमें स्त्री और पुरुष एक साथ हैं। उसका शरीर दोनों का है। उसको पत्नी खोजने कहीं जाना नहीं पड़ता। उसकी पत्नी उसके साथ ही जुड़ी है, वह पति पत्नी एक है। वह पहला रूप है अमीबा। फिर बाद में, बहुत बाद में अमीबा टूटा और उसके दो हिस्से हुए।

इसलिए स्त्री पुरुष में इतना आकर्षण है, क्योंकि बायोलॉजी के हिसाब से वे एक बड़े शरीर के दो टूटे हुए हिस्से हैं, इसलिए वे पास आना चाहते हैं। निकट आना चाहते हैं, जड़ना चाहते हैं, फिर से। संभोग उनकी जुड़ने की कोशिश है। इस कोशिश में उन्हें जो क्षण भर का मेल मालूम पड़ता है, वही उनका सुख है। यह जो जुड़ने की कोशिश है, शरीर के तल पर अर्थपूर्ण है क्योंकि आधे-आधे हैं दोनों, और दोनों को अधूरापन लगता है। पर आत्मा के तल पर न कोई पुरुष है, न कोई स्त्री है।

इसलिए महावीर कहते हैं, जो स्वरूप को खोज रहा हो, शरीर को नहीं, उसके लिए विपरीत के संसर्ग की सार्थकता तो है ही नहीं, खतरा भी है। क्योंकि जैसे ही विपरीत मौजूद होगा, उसका शरीर प्रभावित होना शुरू हो जायेगा। वह कितना ही अपने को रोके, उसके शरीर के अणु विपरीत के प्रति खिंचने लगेंगे। यह खिंचाव वैसा ही है जैसे हम चुंबक को रख दें और लोहे के कण उसकी तरफ खिंच आएं।

जैसे ही पुरुष मौजूद होगा, स्त्री मौजूद होगी, दोनों के शरीरों के कण का रुख आकर्षण का हो जाता है; वे एक दूसरे के करीब आने को उत्सुक हो जाते हैं। आपकी इच्छा और अनिच्छा का सवाल नहीं है। आपकी बायोलॉजी, आपके शरीर का ढांचा, आपकी बनावट, आपका होना ऐसा है कि स्त्री और पुरुष के करीब होते ही तत्काल खिंचाव शुरू हो जाता है। उस खिंचाव को आप रोकते हैं, क्योंकि वह मेरी पत्नी नहीं है, वह मेरा पति नहीं है, आप उसको रोकते हैं। वह सभ्यता है, संस्कृति है, नियम है, लेकिन खिंचाव शुरू हो जाता है। वह खिंचाव आपको आत्मा के तल पर जाने से रोकेगा। आपकी ऊर्जा नीचे की तरफ बहने लगेगी।

इसलिए महावीर कहते हैं, यह संसर्ग खतरनाक है ब्रह्मचर्य के साधक को। स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन भी, वे कहते हैं, खतरनाक है। विष जैसा है, क्यों? क्योंकि आपकी जो भी वीर्य ऊर्जा है, वह आपके पौष्टिक भोजन से निर्मित होती है। आपकी जो भी कामवासना है वह पौष्टिक भोजन से निर्मित होती है।

तो महावीर कहते हैं, इतना भोजन लो, जिससे शरीर चल जाता हो, बस। इससे ज्यादा भोजन, जो अतिरिक्त शक्ति देगा, वह कामवासना बनती है। तो महावीर कहते हैं, यह जो अतिरिक्त भोजन है, यह तुम्हें नहीं मिलता, तुम्हारी कामवासना को मिलता है।

इस थोड़ी बात को हम समझ लें।

एक अनिवार्य शक्ति जरूरी है। चलने, उठने-बैठने, काम करने, बोलने इस सबके लिए एक खास केलरी की शक्ति जरूरी है। उतनी केलरी शरीर में लग जाती है। उसके अतिरिक्त जो आपके पास बचता है, वही आपकी कामवासना को मिलता है।

ध्यान रखें, हमारे पास जब भी कुछ अतिरिक्त बचता है--जब भी, शरीर में नहीं, बाहर भी--अगर आपके बैंक-बैलेंस में आपके खर्च और व्यवस्था और जीवन की व्यवस्था को बचा कर कुछ बचता है, तो वह भोग और विलास में लगेगा। उसका कोई और उपयोग नहीं है।

अतिरिक्त हमेशा विलास है। इसलिए जिन समाजों के पास समृद्धी बढ़ेगी वे विलासी हो जाएंगे। यह बड़ी कठिनाई है।

गरीब की अपनी तकलीफें हैं, अमीर की अपनी तकलीफें हैं। गरीब की जीवन की जरूरतें पूरी नहीं हैं, इसलिए बेईमान हो जाएगा, चोर हो जाएगा, अपराधी हो जाएगा। अमीर के पास जरूरत से ज्यादा है, इसलिए विलासी हो जाएगा। संतुलन बड़ा मुश्किल है।

महावीर कहते हैं, संतुलन, सम्यक, उतना भोजन जितने से शरीर का काम चल जाता हो। उससे कम भी नहीं, उससे ज्यादा भी नहीं। महावीर का जोर सम्यक आहार पर है। इतना, कि जितने से काम चल जाता हो। लेकिन हम ज्यादा लिए चले जाते हैं।

इसमें जो चीजें गिनाई हैं उन्होंने--दूध, मलाई, घी, मक्खन--यह थोड़ा सोचने जैसी है।

दूध असल में अत्याधिक कामोत्तेजक आहार है और मनुष्य को छोड़ कर पृथ्वी पर कोई पशु इतना कामवासना से भरा हुआ नहीं है, और उसका एक कारण दूध है। क्योंकि कोई पशु, बचपन के कुछ समय के बाद दूध नहीं पीता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। पशु को जरूरत भी नहीं है। शरीर का काम पूरा हो जाता है। सभी पशु दूध पीते हैं अपनी मां का, लेकिन दूसरों की माताओं का दूध सिर्फ आदमी पीता है, और वह भी आदमी की माताओं का नहीं, जानवरों की माताओं का भी पीता है।

दूध बड़ी अदभुत बात है, और आदमी की संस्कृति में दूध ने न मालूम क्या-क्या किया है, इसका हिसाब लगाना कठिन है। बच एक उम्र तक दूध पीए, यह नैसर्गिक है। इसके बाद दूध समाप्त हो जाना चाहिए। सच तो यह है, जब तक मां के सतन से बच्चे को दूध मिल सके, बस तब तक ठीक है। उसके बाद दूध की आवश्यकता नैसर्गिक नहीं है। बच्चे का शरीर बन गया, निर्माण हो गया--दूध की जरूरत थी, हड्डी थी, खून था, मांस बनाने के लिए--स्ट्रक्चर पूरा हो गया, ढांचा तैयार हो गया। अब सामान्य भोजन काफी होगा। अब भी अगर दूध दिया जाता है, तो यह सारा दूध कामवासना का निर्माण करता है। यह अतिरिक्त है। इसलिए वात्स्यायन ने काम सूत्र में कहा है कि हर संभोग के बाद पत्नी को अपने पति को दूध पिलाना चाहिए। ठीक कहा है।

दूध जिस बड़ी मात्रा में वीर्य बनाता है, और कोई चीज नहीं बनाती। क्योंकि दूध जिस बड़ी मात्रा में खून बनाता है और कोई चीज नहीं बनाती। खून बनता है, फिर खून से वीर्य बनता है। तो दूध से निर्मित जो भी है, वह कामोत्तेजक है। इसलिए महावीर ने कहा है, वह उपयोगी नहीं है। खतरनाक है, कम से कम ब्रह्मचर्य के साधक के लिए खतरनाक है। ठीक है, काम-सूत्र में और महावीर की बात में कोई विरोध नहीं है। भोग के साधक

के लिए सहयोगी है, तो योग के साधक के लिए अवरोध है। फिर पशुओं का दूध है वह। निश्चित ही पशुओं के लिए, उनके शरीर के लिए, उनकी वीर्य-ऊर्जा के लिए जितना शक्तिशाली दूध चाहिए, उतना पशु मादाएं पैदा करती हैं।

जब एक गाय दूध पैदा करती है, तो आदमी के बच्चे के लिए पैदा नहीं करती, सांड के लिए पैदा करती है। और जब आदमी का बच्चा पीए उस दूध को और उसके भीतर सांड जैसी कामवासना पैदा हो जाए, तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं हैं। वह आदमी का आहार न था। इस पर अब तो वैज्ञानिक भी काम करते हैं, और आज नहीं कल हमें समझना पड़ेगा कि अगर आदमी में बहुत-सी पशु प्रवृत्तियां हैं, तो कहीं उनका कारण पशुओं का दूध तो नहीं है। अगर उसकी पशु प्रवृत्तियों को बहुत बल मिलता है, तो उसका कारण पशुओं का आहार तो नहीं है!

आदमी का क्या आहार है, यह अभी तक ठीक से तय नहीं हो पाया। लेकिन वैज्ञानिक हिसाब से अगर आदमी के पेट की हम जांच करें, जैसा कि वैज्ञानिक किए हैं, तो वे कहते हैं, आदमी का आहार शाकाहारी ही हो सकता है। क्योंकि शाकाहारी पशुओं के पेट में जितना बड़ा इंटेस्टाइन की जरूरत होती है, उतनी बड़ी इंटेस्टाइन आदमी के भीतर है। मांसाहारी जानवरों की इंटेस्टाइन छोटी होती है, जैसे शेर की, बहुत छोटी होती है। क्योंकि मांस पचा हुआ आहार है, बड़ी इंटेस्टाइन की जरूरत नहीं है। पचा पचाया है, तैयार है भोजन। उसने ले लिया, वह सीधा का सीधा शरीर में लीन हो जाएगा। बहुत छोटे पाचन यंत्र की जरूरत है।

इसलिए बड़े मजे की बात है कि शेर चौबीस घंटे में एक बार भोजन करता है। काफी है। बंदर शाकाहारी है, देखा आपने उसको! दिनभर चबाता रहता है। उसकी इंटेस्टाइन बहुत लंबी है। और उसको दिन भर भोजन चाहिए। इसलिए वह दिन भर चबाता रहेगा।

आदमी का भी बहुत मात्रा में एक बार खाने की बजाय, छोटी-छोटी मात्रा में बहुत बार खाना उचित है। वह बंदर का वंशज है। और जितना शाकाहारी हो भोजन, उतना कम कामोत्तेजक है। जितना मांसाहारी हो उतना कामोत्तेजक होता जाएगा।

दूध मांसाहार का हिस्सा है। दूध मांसाहार है, क्योंकि मां के खून और मांस से ही निर्मित होता है। शुद्धतम मांसाहार है। इसलिए जैनी, जो अपने को कहते हैं हम गैर-मांसाहारी हैं, कहना नहीं चाहिए, जब तक वे दूध न छोड़ दें।

क्रेकर ज्यादा शुद्ध शाकाहारी हैं क्योंकि वे दूध नहीं लेते। वे कहते हैं, दूध एनिमल फूड है। वह नहीं लिया जा सकता। लेकिन दूध तो हमारे लिए पवित्रतम है, पूर्ण आहार है, सब उससे मिल जाता है, लेकिन बच्चे के लिए, और वह भी उसकी अपनी मां का। दूसरे की मां का दूध खतरनाक है। और बाद की उम्र में तो फिर दूध-मलाई और घी और ये सब और उपद्रव हैं। दूध से निकले हुए। मतलब दूध को हम और भी कठिन करते चले जाते हैं, जब मलाई बना लेते हैं, फिर मक्खन बना लेते हैं, फिर घी बना लेते हैं, तो घी शुद्धतम कामवासना हो जाती है। और यह सब अप्राकृतिक है, और इनको आदमी लिए चला जाता है। निश्चित ही, उसका आहार फिर उसके आचरण को प्रभावित करता है।

तो महावीर ने कहा है, सम्यक आहार, शाकाहारी आहार, बहुत पौष्टिक नहीं केवल उतना जितना शरीर को चलाता है। ये सम्यक रूप से सहयोगी हैं उस साधक के लिए, जो अपनी तरफ आना शुरू हुआ।

शक्ति की जरूरत है, दूसरे की तरफ जाने के लिए शांति की जरूरत है, स्वयं की तरफ आने के लिए। अब्रह्मचारी, कामुक शक्ति के उपाय खोजेगा। कैसे शक्ति बढ़ जाए। शक्तिवर्द्धक दवाइयां लेता रहेगा, कैसे शक्ति बढ़ जाए। ब्रह्मचारी का साधक कैसे शक्ति शांत बन जाए, इसकी चेष्टा करता रहेगा। जब शक्ति शांत बनती है तो भीतर बहती है। और जब शांति भी शक्ति बन जाती है, तो बाहर बहनी शुरू हो जाती है।

आज इतना ही
पांच मिनट रुकें।

ब्रह्मचर्यः कामवासना से मुक्ति (ब्रह्मचर्य-सूत्रः 2)

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य।
 पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए॥
 कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं,
 सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
 जे काइयं माणसियं च किंचि,
 तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरागो॥
 देवदाणव गंधव्वा जक्खरक्खसकिन्नरा।
 बंभयारि नमंसन्ति दुक्करं जे करेन्ति तं॥
 एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिणदेसिए।
 सिद्धासिज्झन्ति चाणेण, सिज्झिस्सन्तितहाऽवरे॥

शब्द, रूप गंध, रस और स्पर्श इन पांच प्रकार के काम गुणों को भिक्षु सदा के लिए त्याग दें।

देवलोक सहित समस्त संसार के शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुख का मूल काम-भोगों की वासना ही है। जो साधक इस संबंध में वीतराग हो जाता है, वह शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुखों से छुट जाता है।

जो मनुष्य इस प्रकार दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सभी नमस्कार करते हैं।

यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिन्नोपदिष्ट है। इसके द्वारा पूर्वकाल में कितने ही जीव सिद्ध हो गए हैं, वर्तमान में हो रहे हैं, और भविष्य में होंगे।

पहले एक प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: "यदि कामवासना जैविक, बायोलॉजिकल है, केवल जैविक है, तब तो तंत्र की पद्धति ही ठीक होगी। लेकिन यदी मात्र आदतन, हैबिचुअल है, तब महावीर की विधि से श्रेष्ठ और कुछ नहीं हो सकता। क्या है--जैविक या आदतन?"

दोनों है और इसीलिए जटिलता है। ऊर्जा तो जैविक है, बायोलॉजिकल है, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति बड़ी मात्रा में आदत पर निर्भर होती है।

पशु और आदमी में जो बड़े से बड़ा अंतर है, वह यही है, कि पशु की आदत भी बायोलॉजिकल है, उसकी आदत भी जैविक है। इसलिए पशुओं में सेक्सुअल पर्वसन, कोई काम विकृतियां दिखाई नहीं पड़तीं। आदमी के साथ सभी कुछ स्वतंत्र हो जाता है। आदमी के साथ कामवासना की जैविक-ऊर्जा भी स्वतंत्र अभिव्यक्तियां लेनी शुरू कर देती है।

जैसे, पशुओं में समलिंगी-यौन, होमोसेक्सुअलिटी नहीं पाई जाती--उन पशुओं को छोड़ कर, जो अजायबघरों में रहते हैं या आदमियों के पास रहते हैं। पशु यह सोच भी नहीं सकते अपनी निसर्ग अवस्था में कि पुरुष, पुरुष के प्रति कामातुर हो सकता है, स्त्री, स्त्री के प्रति कामातुर हो सकती है। आदमी इंस्टिंक्ट से, इसकी

जो निसर्ग के द्वारा दी गई आदतें हैं, उनसे ऊपर उठ जाता है। वह बदलाव कर सकता है। उसकी जो ऊर्जा है, वह नये मार्गों पर बह सकती है। तो एक पुरुष पुरुष के प्रेम में पड़ सकता है, एक स्त्री स्त्री के प्रेम में पड़ सकती है। और यह मात्रा बढ़ती ही जाती है।

किन्से ने वर्षों के अध्ययन के बाद अमेरिका में जो रिपोर्ट दी है वह यह है कि कम से कम साठ प्रतिशत लोग एकाध बार तो जरूर ही समलिंगी यौन का व्यवहार करते हैं। और करीब-करीब पच्चीस प्रतिशत लोग जीवन भर समलिंगी यौन में उत्सुक होते हैं। यह बहुत बड़ी घटना है।

स्त्री का पुरुष के प्रति आकर्षण, पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है, लेकिन पुरुष का पुरुष के प्रति, स्त्री का स्त्री के प्रति अस्वाभाविक है। पर अस्वाभाविक, पशुओं को सोचें तो, आदमी के लिए कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। आदमी जड़ आदतों से मुक्त हो गया है, इसलिए ब्रह्मचर्य पशुओं के लिए अस्वाभाविक है, आदमी के लिए नहीं। आदमी चाहे तो ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है। कोई पशु ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि पशु की कोई स्वतंत्रता नहीं है अपनी ऊर्जा को रूपांतरित करने को, पर आदमी स्वतंत्र है।

तंत्र या योग दोनों ही मनुष्य की काम-ऊर्जा को रूपांतरित करना चाहते हैं। यह रूपांतरण दो तरह से हो सकता है, या तो काम-ऊर्जा के गहन अनुभव में जाया जाए--होशपूर्वक, या फिर सारी आदत बदल दी जाए, ताकि काम ऊर्जा नई आदत के मार्ग को पकड़ कर उध्वगामी हो जाए। रूपांतरण सदा ही अति से होता है एक्सट्रीम से होता है।

अगर आप एक पहाड़ से कूदना चाहते हैं तो आपको किनारे से ही कूदना पड़ेगा, आप पहाड़ के मध्य से नहीं कूद सकते। कूदने का अर्थ ही होता है कि जहां खाई निकट है वहां से आप कूद सकते हैं।

जीवन में जो भी छलांग होती है, वह अति से होती है। मध्यसे कोई छलांग नहीं हो सकती। अति, छोर से आदमी कूदता है। काम-ऊर्जा की दो अतियां हैं--या तो काम ऊर्जा में इतने समग्र भाव से, पूरी तरह उतर जाए व्यक्ति कि छोर पर पहुंच जाए काम के अनुभव के, तो वहां से छलांग हो सकती है। और या फिर इतना अस्पर्शित रहे, बाहर रहे, काम के अनुभव में प्रवेश ही न करे, द्वार पर ही खड़ा रहे तो वहां से भी छलांग हो सकती है। मध्य से कोई छलांग नहीं है। सिर्फ बुद्ध ने कहा है कि मध्य मार्ग है। महावीर मध्य को मार्ग नहीं कहते, तंत्र भी मध्य का मार्ग नहीं कहता। बुद्ध ने कहा है कि "मध्य मार्ग" है। लेकिन अगर बुद्ध की बात को भी हम ठीक से समझें तो वह मध्य को इतनी अति तक ले जाते हैं कि मध्य मध्य नहीं रह जाता, अति हो जाता, वे कहते हैं, इंच भर बाएं भी नहीं, इंच भर दाएं भी नहीं, बिल्कुल मध्य का मतलब है, नई अति। अगर कोई बिल्कुल मध्य में रहने की कोशिश करे तो वह नये छोर को उपलब्ध हो जाता है।

मध्य में जैसा मैंने कल कहा, अगर पानी को हम शून्य डिग्री के नीचे ले जाएं तो बर्फ बन जाए छलांग हो गई। अगर हम उसे भाप बनाना चाहें तो सौ डिग्री गर्मी तक ले जाएं तो छलांग हो गई। लेकिन कुनकुना पानी कोई छलांग नहीं ले सकता। न इस तरफ, न उस तरफ, वह मध्य में है।

अधिक लोग कुनकुने पानी की तरह हैं, ल्युक वार्म। न वे बर्फ बन सकते हैं न वे भाप बन सकते हैं। वे छोर पर नहीं हैं कहीं से जहां से छलांग हो सके। प्रत्येक व्यक्ति को छोर पर जाना पड़ेगा, एक अति पर जाना पड़ेगा।

ये दो अतियां हैं, योग और तंत्र की। योग अभिव्यक्ति को बदलता है, तंत्र अनुभूति को बदलता है। दोनों तरफ से यात्रा हो सकती है।

इन मित्र ने कहा है, अगर तंत्र थाड़े ही लोगों के लिए है तो आप उसकी चर्चा न ही करते तो अच्छा था। वह खतरनाक हो सकता है।

जो चीज खतरनाक हो, उसकी चर्चा ठीक से कर लेनी चाहिए। क्योंकि खतरे से बचने का एक ही उपाय है कि हम उसे जानते हों। दूसरा कोई उपाय नहीं है लेकिन जब मैं कहता हूं, तंत्र बहुत थोड़े लोगों के लिए है, तो आप यह मत समझ लेना कि योग बहुत ज्यादा लोगों के लिए है। बहुत थोड़े लोग ही छलांग लेते हैं, चाहे योग से, चाहे तंत्र से, अधिक लोग तो कुनकुने ही रहते हैं जीवन भर, न कभी उबलते, न कभी ठंडे होते। यहां जो

मिडियाकर, यह जो मध्य में रहने वाला बड़ा वर्ग है, यह कोई छलांग नहीं लेता, और यह छलांग ले भी नहीं सकता। दोनों छोर से छलांग होती है। छोर पर हमेशा थोड़े से लोग पहुंच पाते हैं। छोर पर पहुंचने का अर्थ है, कुछ त्यागना पड़ता है।

ध्यान रहे, किसी भी छोर पर जाना हो तो कुछ त्यागना पड़ता है। अगर तंत्र की तरफ जाना हो, तो भी बहुत कुछ त्यागना पड़ता है। अगर योग की तरफ जाना हो, तो भी बहुत कुछ त्यागना पड़ता है। अलग-अलग चीजें त्यागनी पड़ती हैं, लेकिन त्यागना तो पड़ता ही है। छोर पर पहुंचने का मतलब ही यह है कि मध्य में रहने की जो सुविधा है, वह त्यागनी पड़ती है। मध्य में कभी कोई खतरा नहीं है। वह जो सुरक्षा है, वह त्यागनी पड़ती है।

जैसे-जैसे आदमी छोर पर जाता है, वैसे-वैसे खतरे के करीब आता है। जहां परिवर्तन हो सकता है, वहां खतरा भी होता है। जहां विस्फोट होगा, जहां क्रांति होगी, वहां हम खतरे के करीब पहुंच रहे हैं। इसलिए अधिक लोग बीच में, भीड़ के बीच में जीते हैं। खतरे से सुरक्षा रहती है। दोनों ही खतरनाक हैं। लेकिन जिंदगी केवल वे ही लोग अनुभव कर पाते हैं, जो असुरक्षा में उतरने की हिम्मत रखते हैं।

तंत्र भी साहस है, योग भी। कोई महावीर भी बहुत लोग नहीं हो पाते। वह भी आसान नहीं है। आसान कुछ भी नहीं है। आसान है सिर्फ क्रमशः मरते जाना, जीना तो कठिन है। कठिनाई असुरक्षा में उतरने की है, अज्ञात में उतरने की है।

कुछ लोग तंत्र से पहुंच सकते हैं, कुछ लोग योग से पहुंच सकते हैं। यह व्यक्ति को खोज करनी पड़ती है कि वह किस मार्ग से पहुंच सकता है। लेकिन कुछ सूचनाएं दी जा सकती हैं--एक, अपने अचेतन को थोड़ा टटोलना चाहिए। अगर अचेतन ऐसा कहता है कि तंत्र तो बड़ा मजेदार होगा, कि इसमें तो कुछ छोड़ना भी नहीं, भोग ही भोग है। वही रास्ता ठीक है, तो समझना कि यह रास्ता आपके लिए ठीक नहीं है। यह आप अपने को धोखा दे रहे हैं।

हर आदमी अपने अचेतन वृत्ति को थोड़े से ही निरीक्षण से जांच सकता है। बड़ी जटिल बात नहीं है। भीतरी रस आपको पता ही रहता है कि आप किसलिए कर रहे हैं। अपने को धोखा देना बहुत कठिन है, असंभव है। थोड़ा सा होश रखें तो आपको जाहिर रहेगा कि आप यह किसलिए कर रहे हैं। अगर आपको रस मालूम पड़ रहा हो तंत्र में तो तंत्र आपके लिए मार्ग नहीं है। अगर आपको योग में रस मालूम पड़ रहा हो तो योग भी आपके लिए मार्ग नहीं है।

कुछ लोगों को योग में रस मालूम पड़ता है। आत्मपीड़क, खुद को सताने वाले लोग, मैसोचिस्ट जिनको मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जो अपने को सताने में मजा लेते हैं, ऐसे लोगों को योग में बड़ा रस मालूम पड़ता है। उपवास में, तप में, धूप में खड़ा होने में, नग्न होने में उन्हें बड़ा रस मालूम पड़ता है। किसी भी तरह उन्हें अपने को सताने में रस मालूम पड़ता है।

अगर आपको अपने आपको सताने में रस मालूम पड़ रहा हो, तो आप समझना, योग आपके लिए मार्ग नहीं है। योग आपके लिए बीमारी है। अगर आपको भोग में रस मालूम पड़ रहा हो, इसलिए तंत्र के बहाने आप भोग में उतर रहे हों, तो तंत्र आपके लिए खतरनाक है, बीमारी है।

एक बात ठीक से समझ लेनी चाहिए; चित्त की अस्वस्थता को किसी भी चीज से सहारा देना खतरनाक है। फिर रस न पड़ रहा हो, तो क्या उपाय है? कैसे हम जानें कि इसमें हमें रस नहीं पड़ रहा है? एक बात ध्यान में रखनी जरूरी है--जब भी हम किसी मार्ग से, किसी अंत की तरफ जा रहे हों, तो अंत में रस होना चाहिए, मार्ग में रस नहीं होना चाहिए।

आप एक मंजिल पर जा रहे हैं एक रास्ते से, तो आपको मंजिल में रस होना चाहिए, रास्ते में रस नहीं होना चाहिए। अगर आपको रास्ते में रस है, इसीलिए मंजिल को आपने चुन लिया है कि रास्ता सुखद है, सुंदर

छाया है, वृक्ष हैं, फूल हैं, इसलिए इस मंजिल को चून लें तो खतरा है। रास्ता कभी मत चुनें, मंजिल चुनें और मंजिल के अनुकूल रास्ता चुनें, और रास्ते पर बहुत रस न लें। रास्ते में रस जो लेगा वह अटक जाएगा। हम सारे लोग रास्ते में रस लेते हैं, हम रास्ता ही ऐसा चुनते हैं।

प्रायड ने कहा है कि आदमी इतना कुशल है कि वह सब तरह के रेशनेलाइजेशन कर लेता है, सब तरह की तर्कबद्ध व्यवस्था कर लेता है। वह जो चुनना चाहता है, वही चुनता है और चारों तरफ तर्क का आवरण खड़ा कर लेता है, और अपने को समझा लेता है कि यह मैंने किसी अंतवृत्ति के कारण नहीं, किसी वासना के कारण नहीं, बड़े विवेकपूर्वक चुना है यह धोखा बहुत आसान है। लेकिन अगर कोई सजग हो, तो इसे ताड़ना कठिन नहीं है। हम... हम हमेशा ही जान सकते हैं, देख सकते हैं कि हमारे भीतर दो तल तो नहीं हैं। दो तल का मतलब यह होता है कि ऊपर आप कुछ समझा रहे हैं अपने को, भीतर से बात कुछ और है।

एक आदमी उपवास कर रहा है, ऊपर से समझ रहा है कि यह साधना है। लेकिन उसे जांचना चाहिए, कहीं उसे खूद को भूखा मारने में किसी तरह का गर्हित रस तो नहीं आ रहा है!

ऐसे लोग हैं जो खुद को सताने में रस लेते हैं। और जब तक वे अपने को न सताएं उन्हें किसी तरह का आनंद नहीं आता। खुद को सताने में उन्हें ऐसे ही मजा आने लगता है, जैसे कुछ लोगों को दूसरों को सताने में मजा आता है। अब खुद के साथ एक फासला कर लेते हैं।

मेसोच एक बड़ा लेखक हुआ। वह जब तक अपने को कोड़े न मार ले रोज, कांटे न चुभा ले, तब तक उसको रस ही न आए। इसलिए उसी के नाम पर मैसाचिज्म, आत्मपीड़न सिद्धांत का निर्माण हो गया।

कोई आदमी कांटे बिछा कर उस पर लेटा हुआ है, वह अपने को कितना ही कहे कि हम कोई साधना कर रहे हैं, लेकिन कांटों पर लेटने में यह उसे जांच करनी चाहिए कि कहीं कुल रस इतना ही तो नहीं है कि मैं अपने को सता सकता हूं।

जब आप अपने को सताते हैं तो आपको लगता है कि आप अपने मालिक हो गए। जब आप अपने को सताते हैं तो आपको लगता है, कि अब यह शरीर आपके ऊपर मालिक नहीं रहा। और अगर इसे सताने में भीतरी सुख मिलने लगे, जैसे कि कोई खाज को खुजलाता है और सुख मिलता है, ऐसा ही सताने में सुख मिलने लगे, तो समझना कि आप पैथोलॉजिकल, रुग्ण दिशाओं में यात्रा कर रहे हैं।

यही तंत्र के बावत भी सच है। आदमी कह सकता है कि मैं तो सिर्फ इसलिए कामवासना में उतर रहा हूं, ताकि कामवासना से मुक्त हो सकूं। लेकिन यह दूसरों को धोखा देने में कोई अड़चन नहीं है, खुद तो जानता ही रहेगा कि मैं सच में कामवासना से मुक्त होने के लिए उतर रहा हूं या यह सिर्फ एक बहाना है, एक एक्सक्यूज है, और मैं उतरना चाहता हूं कामवासना में। यह खुद के सामने निरीक्षण सदा बना रहे, तो आज नहीं कल, थोड़ी बहुत भूल-चूक करके आदमी उस रास्ते को पा जाता है, जो मंजिल तक पहुंचाने वाला है।

कौन सा रास्ता आपके लिए मंजिल तक पहुंचाने वाला है, आपके अतिरिक्त निर्णय करना दूसरे को कठिन होगा। अड़चन होगी। लेकिन आप अगर अपने को धोखा ही देते चले जाएं तो आपको भी बहुत अड़चन होगी। लेकिन जो अपने को धोखा देने में लगा है, उसका धर्म से कोई संबंध ही नहीं है। अभी साधना से उसका कोई जाड़ नहीं बैठा है।

आदत भी तोड़ी जा सकती है, अनुभूति भी बदली जा सकती है--ये दो छोर हैं--आदत, अभिव्यक्ति मार्ग; अनुभूति, भीतर बहने वाली ऊर्जा।

ऐसा समझें कि यह बिजली का बल्ब जल रहा है। यहां अंधेरा करना हो तो दो उपाय हैं--या तो बिजली बल्ब तक न आने दी जाए, बटन बंद कर दी जाए, तो अंधेरा हो जाए, या बटन चलती भी रहे तो बल्ब तोड़ दिया जाए, तो भी अंधेरा हो जाए।

तंत्र का प्रयोग, वह जो भीतर ऊर्जा बह रही है, उसको बदलने का है। महावीर का प्रयोग वह जो बाहर अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया, उसे तोड़ देने का है। दोनों से पहुंचा जा सकता है। लेकिन जब भी एक मार्ग की कोई बात करेगा, तो दूसरे मार्ग के विपरीत उसे बोलना पड़ता है, अन्यथा समझना बिल्कुल कठिन और असंभव हो जाए। अगर तंत्र पढ़ेंगे तो लगेगा कि महावीर जैसा व्यक्ति कभी नहीं पहुंच सकता। अगर महावीर को पढ़ेंगे तो लगेगा कि तांत्रिक कभी नहीं पहुंचेंगे। जो जिस मार्ग की बात कर रहा है वह उस मार्ग के लिए पूरा स्पष्ट कर रहा है। और सभी मार्ग अपने आप में पूरे हैं। उनसे पहुंचा जा सकता है। लेकिन उससे यह सिद्ध नहीं होता कि विपरीत से नहीं पहुंचा जा सकता है। महावीर का यह सूत्र हम समझें।

"शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांच प्रकार के काम गुणों को भिक्षु सदा के लिए त्याग दे।"

तंत्र कहता है, समस्त इंद्रियों का पूरा अनुभव। महावीर कहते हैं, समस्त इंद्रियों का अवरोध, समस्त इंद्रियों का निषेध।

कामवासना सिर्फ कामवासना ही नहीं है, और कामेंद्रिय सिर्फ कामेंद्रिय ही नहीं है, सभी इंद्रिय कामेंद्रिय हैं।

जब आप किसी को हाथ से छूते हैं किसी के शरीर को, तभी छूते हैं, ऐसा नहीं। जब आप आंख से छूते हैं, तब भी छूते हैं। आंख भी छूती है किसी के शरीर को, हाथ भी छूता है। और जब किसी की आवाज आपको प्रीतिकर और मधुर लगती है, उत्तेजक लगती है, तब कान भी छूता है, और जब पास से गुजर जाते किसी के शरीर की गंध आपको आंदोलित कर जाती है, तो नाक भी छूती है।

हाथ बहुत स्थूल रूप से छूते हैं, आंख बहुत सूक्ष्म रूप से छूती है, लेकिन स्पर्श सभी इंद्रिय करती हैं। जननेंद्रिय गहनतम स्पर्श करती है, लेकिन सभी स्पर्श हैं।

तो महावीर कहते हैं, अगर वासना से पूरी तरह छूटना है, तो स्पर्श की जो कामना है अनेक-अनेक रूपों में, वह सभी त्याग देनी चाहिए। आंख से भी भोग न हो, कान से भी भोग न हो, स्वाद से भी भोग न हो। भोग की वृत्ति इंद्रियों के द्वार से बाहर यात्रा न करे। जब आप किसी को देखना चाहते हैं, कामवासना शुरू हो गई। किसी की आवाज सुनना चाहते हैं, कामवासना शुरू हो गई।

कामवासना यौन ही नहीं है, यह ख्याल में ले लें।

और जिसने यह समझा हो कि यौन ही कामवासना है, वह गलती में पड़ेगा। यौन तो उसकी चरम निष्पत्ति है, लेकिन यात्रा का प्रारंभ तो दूसरी इंद्रियों से शुरू हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आंख जब देखना चाहे, तब भीतर से ध्यान को आंख से हटा लेना। आंख को

देखने देना, लेकिन भीतर जो रस ध्यान लेता है देखने का, उसे हटा लेना, यह... यह संभव है। इसकी पूरी साधना है।

आप एक फूल को देख रहे हैं, फूल सुंदर है। अगर महावीर को ठीक से समझना हो, आप बड़े हैरान होंगे जान कर कि जहां-जहां सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वहां-वहां यौन उपस्थित होता है।

फूल है क्या? वृक्ष का यौन है, वृक्ष का सेक्स है। कोयल गीत गा रही है, कान को मधुर लगता है, लेकिन कोयल का गीत है क्या? कोयल का यौन है। मोर नाच रहा है, उसके पंख आकाश में छाता बन कर फैल गए हैं, इंद्रधनुष बना दिया है, सुंदर लगता है। लेकिन मोर के पंख हैं क्या? यौन है।

जहां-जहां आपने सौंदर्य देखा है, वहां-वहां यौन छिपा है। इसलिए जब आप किसी स्त्री के चेहरे की प्रशंसा करते हैं, तो शायद मन में थोड़ा संकोच भी होता हो कि करें, न करें। लेकिन जब आप कहते हैं, कितना सुंदर मोर है, तब आपको जरा भी ख्याल नहीं होता कि भेद कुछ भी नहीं है। वह जो मोर पंख फैला कर नाच रहा है वह यौन आकर्षण का निमंत्रण है। वह जो कोयल कुहक रही है, वह साथी की तलाश है, वह जो फूल

सुगंध फेंक रहा है और खिल गया है आकाश में, वह निमंत्रण है कि उस फूल में छिपे हुए वीर्य-कण हैं, मधुमक्खियां आएंगी, तितलियां आएंगी, उन वीर्य-कणों को ले जाएंगी और छितरा दें दूसरे फूलों पर।

अगर हम चारों तरफ जगत में गहरी खोज करें, तो जहां-जहां हमें सौंदर्य का अनुभव होता है वहां-वहां छिपी हुई कामवासना होगी। सुगंध अच्छी लगती है, लेकिन आपको अंदाजा नहीं होगा, बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि सुगंध का जो बोध है वह यौन से जुड़ा हुआ है।

पशु गंध से ही आकर्षित होते हैं, इसलिए पशु एक मादा... नर-मादा एक दूसरे की योनि गंध लेते हुए दिखाई पड़ेंगे। वे गंध से आकर्षित होते हैं। गंध ही निर्णायक है। जब मादाएं पशुओं की कामातुर होती हैं तो उनकी योनि से विशेष गंध फैलनी शुरू हो जाती है। वही गंध निमंत्रण है, वह गंध दूर तक फैल जाती है। और नर को आकर्षित करती है। जैसे ही वह गंध मिलती है, नर आकर्षित हो जाता है।

आदमी भी गंध का बहुत उपयोग करता है। स्त्रियां जानती हैं कि गंध कीमती है और गंध आकर्षण निर्मित कर लेती है। गंध का आदमी दो तरह से उपयोग करता है--एक तो आकर्षित करने को, एक शरीर की गंध को छिपाने के लिए। क्योंकि शरीर की गंध भी यौन निमंत्रण है। उसे छिपाना जरूरी है।

संभोग के क्षण में स्त्री-पुरुषों के शरीर की गंध बदल जाती है, क्रोध के क्षण में स्त्री-पुरुषों के शरीर की गंध बदल जाती है। प्रेम के क्षण में स्त्री-पुरुषों के शरीर की गंध बदल जाती है। आपके शरीर में एक-सी गंध नहीं रहती चौबीस घंटे। आपका मन बदलता है, शरीर की गंध बदल जाती है।

गंध है, स्वाद है, रस है, ध्वनी है, वे सभी के सब कामवासना से जुड़े हुए हैं। अगर हम ऐसा समझें तो कुछ कठिनाई न होगी कि जननेंद्रिय केंद्रीय इंद्रिय है और सारी इंद्रियां उसके उपांग हैं। उसकी शाखाएं हैं। जैसे जननेंद्रिय ने आंख को निर्मित किया है कि खोजो मेरे लिए रूप। जैसे जननेंद्रिय ने कान को निर्मित किया है कि खोजो मेरे लिए ध्वनि। जननेंद्रिय ने सारी इंद्रियों को निर्मित किया है, वे उसके द्वार हैं। जहां से वह जगत में प्रवेश करती है। जहां से वह जगत में तलाश करती है, जहां से वह जगत में खोजती है।

कामवासना इंद्रियों के द्वार से जगत में फैलती है, हर इंद्रिय काम-इंद्रिय है। यह महावीर की बात ठीक से ख्याल में ले लेनी जरूरी है। इसलिए महावीर कहते हैं, भिक्षु वह जो साधना में लीन हुआ है--साधक, वह समस्त इंद्रियों से अपने ध्यान को हटा ले। अगर समस्त इंद्रियों से ध्यान को हटा लिया जाए तो काम-इंद्रियों का नब्बे प्रतिशत द्वार अवरुद्ध हो जाता है, वह बाहर नहीं बह सकती। आप थोड़ा सोचें। आपकी आंखें बंद हों, तो सौंदर्य का कितना अर्थ समाप्त हो जाएगा!

अंधा आदमी भी सौंदर्य का अनुभव करता है, लेकिन हाथ से छूकर ही कर पाता है। लेकिन हाथ से जो छुएगा, उसके सौंदर्य का हिसाब बदल जाएगा। आंख से देखे हुए सौंदर्य की बात और है। आपकी सारी इंद्रियां बंद हो गई हों, तो आपके लिए सौंदर्य का क्या अर्थ होगा? कोई भी अर्थ नहीं रह जाएगा। सारा अर्थ इंद्रियों का अनुदान है।

महावीर कहते हैं, अपने को सिकोड़ लेना, केंद्र पर रोक लेना, किसी इंद्रिय से बाहर नहीं जाना। इंद्रियां जबरदस्ती किसी को बाहर नहीं ले जातीं। हम जाना चाहते हैं, इसलिए जाते हैं। जब हम नहीं जाना चाहते, इंद्रियां व्यर्थ हो जाती हैं।

आपके घर में आग लगी है और एक सुंदर स्त्री सामने से निकलती है, बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ती। आंख देखेगी, आंख का काम देखना है, लेकिन आप आंख के पीछे मौजूद नहीं हैं, अभी, ध्यान मकान में लगी आग की तरफ चला गया है। कोई दिखाई नहीं पड़ेगा। कोई सुंदर गीत गा रहा हो, सुनाई नहीं पड़ेगा। कोई आकर चारों तरफ गुलाब की सुगंध छिड़क दे, नाक को पता नहीं चलेगा। क्या हुआ है? सारा ध्यान आग की तरफ आकर्षित हो गया। अभी आग इतनी महत्वपूर्ण हो गई है कि ध्यान बंट नहीं सकता, और इंद्रियों की तरफ ध्यान नहीं जा सकता।

महावीर कहते हैं, जिसे ब्रह्मचर्य इतना महत्वपूर्ण हो गया हो कि वही उसे मुक्ति का मार्ग है, ऐसी प्रतीति हो रही हो, उसे कठिन नहीं होगा कि वह अपने ध्यान को इंद्रियों से अलग कर ले। हमें कठिन होगा, बहुत कठिन होगा, क्योंकि इंद्रियां ही हमारा जीवन है। इंद्रियों के अतिरिक्त हमारा कोई अनुभव नहीं है। जो हमने जाना है, जो हमने जीया है वह इंद्रियों से ही जाना और जीया है। और बड़ा अदभुत है इंद्रियों का लोभ। क्योंकि इंद्रियों से जो हम जानते हैं, वह स्वप्नवत है।

फूल को आपने देखा है? लेकिन फूल तो बहुत दूर है, आप देखते क्या हैं? वैज्ञानिक से पूछें, या महावीर से पूछें, फूल में आप देखते क्या हैं? फूल को तो देख नहीं सकता कोई आदमी, क्योंकि फूल कभी आंख के भीतर जाता नहीं। आप देखते क्या हैं? फूल से सूरज की किरणें आती हैं लौट कर। वे किरणें आपकी आंख पर पड़ती हैं। वे किरणें भी भीतर नहीं जा सकतीं, सिर्फ आंख की सतह को स्पर्श करती हैं। आंख की सतह के भीतर जो रासायनिक द्रव्य हैं वे उन किरणों से संचलित हो जाते हैं। वे रासायनिक द्रव्य आपकी आंखों के पीछे छिपे हुए तंतुओं का जो जाल है, उसको कंपित करते हैं। वे कंपन आप तक पहुंचते हैं। उन्हीं कंपनों को आपने देखा है।

इसलिए तो एक बड़ी अदभूत घटना घटती है। एक नग्न स्त्री को आप देखें तो जैसे तंतु कंपते हैं, वैसे एक नग्न स्त्री का चित्र देख कर भी कंपते हैं। इसलिए तो पोरनोग्राफी, अक्षील साहित्य का इतना मूल्य है। क्योंकि तंतु तो उसी तरह हिलने लगते हैं, मजा तो उसी तरह आने लगता है। बल्कि सच तो यह है कि नग्न स्त्री को देखकर उतना मजा कभी नहीं आता, जितना नग्न स्त्री के चित्र को देख कर आता है। उसके कई कारण हैं।

स्त्री की वास्तविक मौजूदगी आपके ध्यान में बाधा बनती है। चित्र में कोई मौजूद नहीं होता, आप अकेले होते हैं, ध्यानस्थ हो जाते हैं, और भीतर आपको रस आने लगता है। उतना ही रस आने लगता है, शायद ज्यादा भी आने लगता है। क्योंकि वास्तविक स्त्री के साथ कल्पना का उपाय नहीं रह जाता। वास्तविक स्त्री सामने मौजूद है, अब कल्पना करने को कोई उपाय नहीं है। लेकिन चित्र आपको कल्पना देता है और चित्र कहता है, जब चित्र सुंदर है तो वास्तविक स्त्री कितनी सुंदर न होगी और आपके कल्पना के पंख फैल जाते हैं।

इसलिए जो लोग चित्र में रस लेने लगते हैं, उनको वास्तविक स्त्री फीकी मालूम पड़ने लगती है। इसलिए आपसे स्त्रियां बहुत होशियार हैं। उन्होंने चित्रों में कभी रस नहीं लिया। वास्तविक पुरुष के प्रेम में भी वे आंख बंद कर लेती हैं, क्योंकि कल्पना वास्तविक से सदा ज्यादा सुंदर है। स्त्रियां होशियार हैं। आप उन्हें आलिंगन में ले, वे आंख बंद कर लेंगी। आंख बंद करने का मतलब यह कि अब आप वास्तविक पुरुष कम, काल्पनिक, देवता ज्यादा हो गए। अब उनके भीतर एक कल्पना का देव खड़ा है। इसलिए पुरुष जल्दी स्त्रियों से ऊब जाते हैं, स्त्रियां उतनी जल्दी पुरुषों से नहीं ऊबतीं। यह बड़े मजे की बात है।

फ्रायड ने गहन विश्लेषणों से यह कहा है कि स्त्री और पुरुष हमेशा परिपूरक हैं, हर चीज में। फ्रायड ने दो शब्दों का उपयोग किया है एक को वह कहता है, वीयूर, जो देखने में उत्सुक है। जो देखने में उत्सुक हैं पुरुष, तो वह कहता है वीयूर। वह देखने में उत्सुक है। स्त्री को वह कहता है एक्झिबीशनिस्ट, जो दिखाने में उत्सुक है। दोनों परिपूरक हैं। क्योंकि कोई तो दिखाने वाला चाहिए तब देखने वाले को कोई रस हो, और कोई देखने वाला चाहिए, तब दिखाने वाले को कोई रस हो। स्त्री-पुरुष सब दिशाओं में परिपूरक हैं। इसलिए पुरुष सदा चाहता है कि प्रेम अंधेरे में न हो, प्रकाश में हो। स्त्री सदा चाहती है, प्रेम अंधेरे में हो। प्रकाश में न हो।

पुरुष देखना चाहता है, स्त्री देखना नहीं चाहती। इसलिए पुरुषों ने नग्न स्त्रियों के बहुत चित्र निर्मित किए, लेकिन स्त्रियों ने नग्न पुरुषों में कोई रस... कोई रस ही नहीं लिया कभी। स्त्री को थाड़ी परेशानी ही होती है नग्न पुरुष को देख कर, कोई सुख नहीं मिलता। लेकिन पुरुष के सामने स्त्री कपड़े भी पहने खड़ी हो तो कल्पना में वह उसे नग्न करना शुरू कर देता है।

यह जो हमारे चित्त की कल्पना है, यह जब हम कल्पना करते हैं, तब तो कल्पना होती ही है, जब हम वास्तविक कुछ अनुभव करते हैं, तब भी कल्पना से ज्यादा क्या होता है? एक फूल को देखें, स्त्री को देखें, पुरुष को देखें, आपको भीतर मिलता क्या है? वास्तविक तो कुछ नहीं मिलता, कुछ कंपन उपलब्ध होते हैं। उन्हीं कंपनों के लोक को हम संसार कहते हैं।

जब आपको अच्छी सुगंध मालूम पड़ती है तो होता क्या है? कंपन, वाइब्रेशंस। जब आपको अच्छा स्वाद आता है तो होता क्या है? जीभ में कंपन, वाइब्रेशंस।

हमारा सारा सुख वाइब्रेशंस है। और बड़े मजे की बात है, अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि ये वाइब्रेशंस बिना किसी बाहरी, वास्तविक चीज के पैदा किए जा सकते हैं। जैसे मस्तिष्क में एक इलेक्ट्रोड लगाया जा सकता है, एक बिजली का तार जोड़ा जा सकता है और जिस तरह सुंदर स्त्री को देख कर आपके मन के तंतु कंपते हैं, बिजली से कंपाए जा सकते हैं। और जब वे तंतु बिजली से कंपेंगे, आपको वही मजा आना शुरू हो जाएगा जो आपको सुंदर स्त्री को देख कर आएगा।

अभी एक वैज्ञानिक साल्टर ने चूहों के साथ बहुत से प्रयोग किए। उसका एक प्रयोग बहुत हैरानी का है। वह कभी न कभी आदमी को उस प्रयोग से बहुत कुछ सीखना पड़ेगा। उसने एक प्रयोग किया कि चूहे को जब चूही मादा को देखकर सुख मिलना शुरू होता है, तो उसके मस्तिष्क में क्या होता है, कौन से कंपन होते हैं। चूहों के सारे कंपन उसने अध्ययन किए वर्षों तक। फिर उन कंपनों की सूक्ष्मतम विधि उसने खोज ली, फिर बिजली से उन कंपनों को पैदा करने का उपाय निर्मित कर लिया। फिर एक चूहे को इलेक्ट्रोड लगा दिया, न केवल इलेक्ट्रोड लगा दिया, बल्कि चूहे के पंजे के पास बिजली का बटन भी लगा दिया कि जब भी वह चाहे उन कंपनों को, बटन को दबा दे। भीतर उसके कंपन शुरू हो जाएं और उसे वही मजा आने लगे जो मादा के साथ संभोग में आता है।

आप जानकर हैरान होंगे कि चूहे ने फिर खाना-पीना बिल्कुल छोड़ दिया। मादाएं आस-पास घुमती रहीं, उनमें भी रस छोड़ दिया। फिर तो वह एक ही काम करता रहा, बटन को दबाना। चौबीस घंटे चूहा सोया नहीं। उसने हजारों दफे बटन दबाई, वह बिल्कुल... जब तक बिल्कुल थक कर चूर होकर गिर नहीं गया तब तक वह एक ही काम करता रहा, बटन दबाने का। जैसे ही वह बटन दबाता, भीतर कंपन शुरू होते हैं, वे ही कंपन, जो उसको संभोग में होते हैं।

संभोग में पुरुष को—आपको भी क्या होता है, स्त्री को भी क्या होता है? कुछ वाइब्रेशंस, कुछ कंपन। उन कंपनों के सिवाय कुछ भी नहीं है। वे जो कंपन हैं, अगर बिजली के बटन से पैदा हो जाएं तो आपको पता लगेगा कि आप किस लोक में जी रहे हैं। वह चूहा ही बटन दबाकर जी रहा हो, ऐसा मत सोचना आप, आप भी उन्हीं बटनों को दबा कर जी रहे हैं। बटन आपके प्राकृतिक हैं, चूहे के लिए कृत्रिम थे।

आज नहीं कल आदमी अपने लिए भी कृत्रिम बटन बना लेगा। और मैं मानता हूं कि जिस दिन आदमी ने अपने आंतरिक कंपनों को पैदा करने के लिए छोटे उपाय कर लिए, उस दिन स्त्री-पुरुष के बीच कोई रस नहीं रह जाएगा। क्योंकि तब आप ज्यादा बेहतर ढंग से उन्हीं कंपनों को पैदा कर सकते हैं। तब दूसरे पर निर्भर रहने की कोई जरूरत नहीं। अपने खीसे में एक छोटी सी बैटरी लिए आप चल सकते हैं। जब आपका मन हो, आप बटन दबा लें और भीतर आपके संभोग के कंपन शुरू हो जाएं। और जो बात बैटरी से हो सके, और ज्यादा सुगमता से हो सके और कभी भी हो सके, उसके लिए कौन पति-पत्नी का उपद्रव लेने जाता है!

साल्टर की खोज भविष्य के लिए बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध होने वाली है। पर मैं आपसे इसलिए साल्टर की खोज की बात कर रहा हूं, ताकि आप महावीर को समझ सकें। महावीर कहते हैं। किस बचपन में उलझे हो? जो भी तुम अनुभव कर रहे हो सुख, वे सिर्फ छोटे से कंपन हैं। उन कंपनों का क्या मूल्य है? स्वप्नवत!

और आदमी जन्मों-जन्मों, जीवन-जीवन उन्हीं कंपनों में अपने को गवां देता है। उन्हीं में अपने को खो देता है। कोई स्वाद के लिए जीता है, कोई सुगंध के लिए जीता है, कोई रूप के लिए जीता है, कोई ध्वनि के लिए जीता है। लेकिन यह जीना क्या है? क्या हम कुछ कंपनों से तृप्त हो जाएंगे? होता तो यह है कि जितना पुनरुक्त करते हैं उन कंपनों को, उतनी ऊब बढ़ती चली जाती है। फंसते भी जाते हैं, आदत भी बनती है, ऊबते भी चले जाते हैं, कुछ मिलता भी नहीं मालूम पड़ता। और फिर भी एक मजबूरी, एक ऑब्सेशन, और हम वही करते चले जाते हैं, जिससे कुछ मिलता दिखाई नहीं पड़ता। धीरे-धीरे सब कंपन बोथले हो जाते हैं। फिर उनसे कुछ भी पैदा नहीं होता, लेकिन न उन कंपनों को करें, तो उदासी मालूम पड़ती है, खालीपन मालूम पड़ता है, एंटीनेस मालूम पड़ती है। इसलिए करना भी पड़ता है।

महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति कंपनों में उलझा है, वह संसार में उलझा है। इन कंपनों से ऊपर उठे बिना कोई व्यक्ति आत्मा को उपलब्ध नहीं होता। कैसे ऊपर उठेंगे? तो वे कहते हैं, शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांच प्रकार के काम गुणों को भिक्षु सदा के लिए त्याग दे। क्या करेंगे त्याग में आप? क्या पानी न पीएंगे? क्या भोजन न करेंगे? और जब पानी पीएंगे, भोजन करेंगे तो स्वाद आएगा। क्या आखें न खोलेंगे?

रास्ते पर चलेंगे, आंख खोलनी पड़ेगी। आवाज होगी, कोई गीत गाएगा। कोई मधुर स्वर सुनाई पड़ेगा, कान सुनेंगे। त्याग कैसे करेंगे?

त्याग का एक ही गहन अर्थ है, और वह कि जब भी कोई चीज सुनाई पड़े, स्वाद में आए, दिखाई पड़े तो ध्यान को उससे तोड़ लेना, भीतर ध्यान को तोड़ लेना। आंखें चाहे देखें, तुम मत देखना। जीभ स्वाद ले, तुम स्वाद मत लेना।

जनक को किसी ने पूछा था, किसी संन्यासी ने, कि आप इस महल में, इन रानियों के बीच, इतने वैभाव में रहकर किस प्रकार ज्ञानी हैं? तो जनक ने कहा, कुछ दिन रुको, समय पर उत्तर मिल जाएगा। और उत्तर समय पर ही मिल सकते हैं, समय के पहले दिए गए उत्तर किसी अर्थ के नहीं होते।

संन्यासी जनक के पास रुका--एक दिन, दो दिन, तीन दिन। चौथे दिन सुबह ही सुबह भोजन के लिए संन्यासी आ रहा था, जनक खुद बैठ कर उसे भोजन कराते थे। सिपाहियों की एक टुकड़ी आई, संन्यासी को घेर लिया और संन्यासी को कहा महाराज ने कहा है कि आज सांझ आपको सूली पर चढ़ा दिया जाएगा।

उस संन्यासी ने कहा, लेकिन मेरा अपराध, मेरा कसूर?

सिपाहियों ने का, यह आप महाराज से ही पूछ लेना। हमें जितनी आज्ञा है, वह इतनी है।

फिर वे उसे लेकर भोजन के लिए आए, फिर वह भोजन के लिए थाली पर बैठा। महाराज बैठ कर पंखा झलते रहे। वह भोजन भी करता रहा। लेकिन उस दिन स्वाद नहीं आया। सांझ मौत थी, ध्यान हट गया।

भोजन के बाद जनक ने पूछा कि सब ठीक तो था! कोई कमी तो न थी!

उसने कहा: "क्या ठीक था? क्या कमी न थी?"

सम्राट ने पूछा: "रसोइए ने अभी-अभी खबर दी कि वह नमक डालना भूल गया आपको पता नहीं चला?"

उस संन्यासी ने कहा: "कुछ भी पता नहीं चला, भोजन किया भी या नहीं किया। यह भी ऐसा लगता है, जैसे कोई स्वप्न, सांझ मौत। पूछना चाहता हूं कि क्या है मेरा कसूर?"

जनक ने कहा: "कोई कसूर नहीं, न कोई मौत होने को है। इतना ही कहना था कि अगर मौत का स्मरण बना रहे तो इंद्रियां भोगों में रहकर भी दूर हट जाती हैं।"

तब जीभ पर कंपन होते हैं, लेकिन स्वाद नहीं आता। तब कान पर कंपन होते हैं, लेकिन रस पैदा नहीं होता।

रस पैदा होता है कंपन और ध्यान के जोड़ से।

जीभ पर स्वाद आता है, कंपन पैदा होते हैं। आत्मा ध्यान भेजती है जीभ तक, दोनों का जोड़ होता है, तब रस पैदा होता है।

आंख देखती है रूप को कंपन होते हैं। भीतर से आत्मा ध्यान को भेजती है, कंपन और ध्यान का मिलन होता है, तब सौंदर्य का बोध होता है। तब रस पैदा होता है।

रस दो चीजों का जोड़ है--बाहर से आए कंपन और भीतर से आए ध्यान। ध्यान धन कंपन = रस। अगर ध्यान हट जाए कंपन से तो रस विलीन हो जाता है। इसी को महावीर ने त्याग कहा है। यह त्याग अत्यंत भीतरी घटना है। इस त्याग के दो रूप हैं। जो व्यर्थ के कंपन हों उन्हें छोड़ ही देना उचित है। जो अनिवार्य कंपन हों उनसे ध्यान को अलग कर लेना चाहिए। जो अनिवार्य कंपन हों उनसे ध्यान तोड़ लेना, जो गैर अनिवार्य कंपन हों उन कंपनों का त्याग कर देना। तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे इंद्रियां अलग और आत्मा अलग हो जाती है। जब सब जगह से ध्यान का रस विलीन हो जाता है तो हमें पता चलता है कि शरीर अलग और मैं अलग हूं। हमें पता नहीं चलता, शरीर अलग और मैं अलग हूं, इसका एक ही कारण है कि हमारा ध्यान निरंतर ही बाहर से आए हुए कंपनों से जुड़ जाता है। उस जोड़ के कारण ही हम शरीर से जुड़े हैं। वह जोड़ टूट जाए, हम शरीर से टूट जाते हैं।

आत्म अनुभव रस परित्याग के बिना संभव नहीं है।

"देव लोक सहित समस्त संसार के शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुख का मूल काम भोगों की वासना है। जो साधक इस संबंध में वीतराग हो जाता है वह शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दुखों से छूट जाता है।"

हमारा जानना कुछ और है, हमारा जानना यह है कि समस्त सुखों का मूल इंद्रियों का आनंद है। आपने कोई ऐसा सुख जाना है जो इंद्रियों के अतिरिक्त जाना हो? नहीं जाना होगा। सभी सुखों के मूल में इंद्रियां मालूम पड़ती हैं। कभी भोजन में कुछ आनंद आ जाता है, कभी आंख देख लेती है किस दृश्य को--जरूरी नहीं, वह दृश्य स्त्री-पुरुष का हो, वह काश्मीर का हो, डल झील का हो--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आंख देख लेती है किसी झील को, आंख देख लेती है किसी चांद को, रस आ जाता है, सुख आ जाता है।

आपने कभी कोई ऐसा सुख जाना है, जो इंद्रियों के बिना आपको आया हो? अगर वैसा सुख आपको अनुभव हो जाए, तो उसी को महावीर ने आनंद कहा है। लेकिन हमारा कोई ऐसा अनुभव नहीं है। पर महावीर कहते हैं, समस्त दुखों का मूल वासना है, और हम सोचते हैं समस्त सुखों का आधार। तो थोड़ा सोचना पड़े।

आपने कोई ऐसा दुखा जाना है जो इंद्रियों के बिना आपको मिला हो? न आपने कोई ऐसा सुख जाना है, जो इंद्रियों के बिना मिला हो; न ऐसा कोई दुख जाना है, जो इंद्रियों के बिना मिला हो। महावीर कहते हैं कि इंद्रियों के बिना भी एक सुख मिल सकता है जिसका नाम आनंद है। इंद्रियों के बिना कोई दुख नहीं मिल सकता, इसलिए उसका कोई नाम नहीं है। आनंद के विपरीत कोई नाम नहीं है।

इसलिए महावीर कहते हैं कि इंद्रियों का सुख भ्रंती है, इंद्रियों का दुख ही वास्तविकता है। फिर जिसे हम सुख कहते हैं, उसके कारण ही हमें दुख मिलता है। आज स्वाद में सुख मिलता है, तो क्या होगा इसका परिणाम? इसके दो परिणाम होंगे। अगर यह स्वाद कल न मिले तो दुख मिलेगा अगर यह स्वाद कल भी मिले, परसों भी मिले, तो भी दुख मिलेगा। स्वाद न मिले, तो पीड़ा अनुभव होगी पाने की। स्वाद मिलता रहे, तो बोथला हो जाएगा, ऊब पैदा हो जाएगी। इसलिए जिनको रोज अच्छा भोजन मिलता है उनका स्वाद खो जाता है, उनको फिर स्वाद नहीं आता। जिनको अच्छे बिस्तर पर रोज सोने को मिलता है, उन्हें फिर बिस्तर का पता चलना बंद हो जाता है।

जो भी आपके पास है, उसका आपको पता नहीं चलता। तो सुख अगर मिलता रहे तो विलीन हो जाता है। न मिले तो दुख देता है। सुख हर हालत में दुख देता है। मिले तो, न मिले तो। जिसे हम सुख कहते हैं, वह दुख के लिए एक द्वार ही है, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। जो सुख की तरफ आकर्षित हुआ वह दुख में गिरेगा।

दुख दो तरह के हो सकते हैं--मिलने का दुख हो सकता है, न मिलने का दुख हो सकता है। ज्यादा से ज्यादा हम दुख बदल सकते हैं। इससे ज्यादा संसार में कोई उपाय नहीं है। एक दुख को छोड़ कर दूसरे दुख पर जा सकते हैं। एक दुख को छोड़ कर दूसरे दुख पर जाने में बीच में थोड़ा अंतराल पड़ता है उसे ही लोक सुख कहते हैं। जितनी देर को वे दुखमें नहीं होते, उतनी देर को वह सुख कहते हैं। हमारा सुख नकारात्मक है, निगेटीव है।

इसलिए महावीर कहते हैं, समस्त दुखों का इंद्रियां हैं। जब तक यह हमें दिखाई न पड़ जाए, तब तक हम इंद्रियों से ऊपर उठने की चेष्टा में भी संलग्न न होंगे। अगर हमें यही दिखाई पड़ता रहे, कि समस्त सुखों का मूल इंद्रियां हैं, तो स्वभावतः हम अपने संसार को फैलाए चले जाएंगे।

पुनर्जन्म का एक ही मूल कारण है कि इंद्रियां सुख का आधार हैं। मोक्ष का एक ही कारण है कि इंद्रियां दुख का आधार हैं।

तो हम अपने सुख की थोड़ी तलाश करें। जब भी आपको सुख मिले, आप थोड़ी खोज करना। पहले तो यह देखना कि यह सुख क्या है? जैसे ही आप देखेंगे, निन्यानबे प्रतिशत सुख तिरोहीत हो जाएगा। जिसे आप प्रेम करते हैं, उसका हाथ आपके हाथ में आ गया, तो फिर आंख बंद करके जरा ध्यान करना कि क्या सुख मिल रहा है, तब सिर्फ हाथ-हाथ में रह जाएगा। और थोड़ा ध्यान करेंगे तो वजन हाथ में रह जाएगा। और थोड़ा ध्यान करेंगे तो सिर्फ पसीना हाथ में छूट जाएगा।

कौन-सा सुख मिल रहा था, उसको जरा गौर से देखना। जब मुंह में भोजन डाला हो और रस आ रहा हो, स्वाद मालूम पड़ रहा हो तब जरा आंख भी बंद कर लेना और उस पर ध्यान करना कि कौन सा सुख मिल रहा है। निन्यानबे प्रतिशत सुख तत्काल तिरोहित हो जाएगा। थोड़ी देर में आप पाएंगे कि मुंह सिर्फ एक यांत्रिक काम कर रहा है चबाने का। जीभ एक यांत्रिक काम कर रही है खबर देने की कि कौन सा भोजन ले जाने योग्य है, कौन सा भोजन नहीं ले जाने योग्य है। स्वाद का उतना जीवन के लिए उपयोग है कि कहीं जहर न खा लिया जाए, कि कहीं कड़वी चीज न खा ली जाए, कहीं कुछ व्यर्थ भीतर न चला जाए। उतना तो अस्तित्वगत उपयोग है। उतनी ही जीभ की खबर है। जीभ सचेतन रूप से उतनी खबर देती रहेगी। कान खबर दे रहे हैं, आंखें खबर दे रही हैं। ये जीवन के सर्वाइवल मेजर्स हैं, बचने के उपाय हैं। इससे ज्यादा मूल्य खतरनाक हैं। सुख ज्यादा मूल्य देने की बात है।

इसे ठीक से जो आदमी खोज करेगा अपने भीतर, वह पाएगा कि जब सुख होता है तब कुछ होता नहीं, सिर्फ ख्याल होता है, सिर्फ कल्पना होती है। सिर्फ माना हुआ ख्याल होता है। सिर्फ माना हुआ एक सम्मोहित ख्याल होता है।

आपको कोई एक चमकदार पत्थर लाकर दे-दे और कहे कि बहुमूल्य हीरा है। और आपको भरोसा हो जाए उस आदमी का या उस आदमी पर आपको भरोसा रहा हो, तो उस रात... उस रात आप सो न सकेंगे इतने सुख से भर जाएंगे। सुबह पता चले कि वह पत्थर का ही टुकड़ा है, हीरा नहीं है, सिर्फ कांच है चमकता हुआ, सब सुख तिरोहित हो जाएगा। रात जो सुख आपने लिया वह हीरे के कारण नहीं था क्योंकि हीरा तो वहां है नहीं। आपकी मान्यता के कारण है। आपका प्रोजेक्शन था, आपका "प्रक्षेप" था। आपने एक धारणा हीरे पर फैला ली, वह आपको सुख दे गई। जिस स्त्री में आपको सौंदर्य दिखता है, जिस पुरुष में सौंदर्य दिखता है, जहां आपको रस दिखता है, वह आपकी फैली हुई धारणा है। उस धारणा के कारण ही सारा उपद्रव है।

इस धारणा को ही ठीक से देख ले कोई व्यक्ति तो सुख तिरोहित हो जाता है। और तब दुख का एक सागर दिखाई पड़ता है। तब वास्तविकता दिखाई पड़ती है सुख की छाया के नीचे छिपी हुई, कि हम सिर्फ दुख झेल

रहे हैं। अनेक-अनेक प्रकार के दुख झेल रहे हैं, अभाव के, भाव के; होने के, न होने के; गरीबी के, समृद्धि के; यश के; अपयश; न मालूम कितने दुख झेल रहे हैं।

इतना दुख का यह उदघाटन, पश्चिम में लोगों को लगा कि ये महावीर, ये बुद्ध, से सब दुखवादी हैं। ये क्यों इतना दुख को उघाड़ते हैं? क्यों घाव को उघाड़ते हैं? अच्छा हो कि घाव हो तो पलस्तर करके ढांक देना चाहिए। गंदी नाली हो तो थोड़ी सी सुगंध ऊपर छिड़क कर फूल लगा देना चाहिए।

ये... ये क्यों सारे घावों को उघाड़ कर भीतर पीड़ा को, भीतर की दुर्गंध को बाहर लाना चाहते हैं? ये बड़े खतरनाक लोग मालूम पड़ते हैं। ये तो जीवन को नष्ट कर देंगे, ये तो जीवन के प्रति एक विरक्ती, जीवन के प्रति एक अलगाव पैदा कर देंगे।

लेकिन नहीं, महावीर और बुद्ध का वैसा प्रयोजन नहीं है। वे चाहते हैं कि जो सत्य है वह दिखाई पड़ जाए। जीवन की जो भ्रांति है वह टूट जाए, तो शायद हम किसी और गहरे जीवन की खोज में जा सकें। वह जो हमने ढांक-ढांक कर एक झूठा जीवन बना रखा है उसकी पर्त-पर्त उखड़ जानी चाहिए। वे जो हमने झूठे मुखौटे लगा रखे हैं, वे जा हमने झूठी धारणाएं अपने चारों तरफ फैला रखी हैं, वे सब गिर जानी चाहिए। वे गिर जाएं तो शायद हमारी जीवन उर्जा व्यर्थ कामों में संलग्न न रहे और सार्थक की खोज पर निकल जाए।

इसलिए महावीर कहते हैं कि "जो मनुष्य इस प्रकारण दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, इंद्रियों से अपने को खींच लेता है, भीतर तोड़ देता है रस, उसे देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर सभी नमस्कार करते हैं।"

महावीर और बुद्ध पहले व्यक्ति हैं मनुष्य जाति के इतिहास में--निश्चित ही महावीर पहले, क्योंकि बद्ध महावीर से थोड़े बाद में पैदा हुए--महावीर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने कहा कि एक ऐसा क्षण भी है मनुष्य की चेतना का, जब देवता भी उसे नमस्कार करते हैं, नहीं तो दुनिया के सारे धर्म मानते हैं कि मनुष्य सदा देवताओं को नमस्कार करता है।

देवता मनुष्य को नमस्कार करते हैं, इससे ज्यादा मनुष्य के प्रति महिमा की बात और कुछ और नहीं हो सकती। महावीर ने कहा कि ऐसा भी क्षण है मनुष्य के जीवन में, जब देवता उसे नमस्कार करते हैं। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ कि देवता भ्रांति में हैं। चेतना जब पूरी जागती है मनुष्य की और सुख का भ्रम टूट जाता है, तो स्वर्ग का भ्रम भी टूट जाता है। देवता स्वर्ग के वासी हैं। उसका अर्थ है--सुख के वासी हैं। देवता इंद्रियों में ही जीते हैं। बड़ा मजा है, इसलिए हमने इंद्र नाम दिया है देवताओं के सम्राट को। वह इंद्रियां ही इंद्रियां हैं। इसलिए इंद्र है। देवता सुख में ही जीते हैं। देवता का अर्थ है--जो सुख में ही जी रहा है। लेकिन इसका तो मतलब यह हुआ कि महावीर के हिसाब से कि जो इंद्रियों में और सुख में जी रहा है, वह बड़ी गहन भ्रांति में जी रहा है। वह एक लंबे स्वप्न में डूबा है। वह स्वप्न सुखद होगा, प्रीतिकर होगा, दुखद न होगा, लेकिन एक लंबा स्वप्न है। अगर महावीर को हम ठीक से समझें तो नरक, एक नाइट मेयर, एक दुख स्वप्न, लंबा दुख स्वप्न है। स्वर्ग एक सुख स्वप्न है, एक अच्छा सपना है, लंबा।

इसलिए महावीर ने कहा है कि देवता को भी मोक्ष पाना हो, तो उसे वापस मनुष्य के जन्म में आ जाना पड़ता है। मनुष्य चौराहा है। देवता को भी मोक्ष पाना हो तो मनुष्य तक वापस लौट आना पड़ता है। मनुष्य के अतिरिक्त मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जरूरी नहीं है कि कोई मनुष्य होने से ही मुक्त हो जाए। मनुष्य होने से केवल मुक्ति की संभावना है, लेकिन अगर आप भी स्वप्न में डूबे रहते हैं तो आप उस अवसर को खो देंगे।

मनुष्य का अर्थ है--जहां हम जाग सकते हैं, जहां हम चाहें तो इंद्रियों से अपने को तोड़ ले सकते हैं, जहां हम चाहें तो रस समाप्त हो सकता है और चेतना रसमुक्त हो सकती है। इस स्थिति को महावीर ने वीतराग कहा है। चेतना जब ऐसी स्थिति में होती है तो उसका बाहर कोई भी रस नहीं है, कोई भी। बाहर जाने की कोई

आकांक्षा शेष न रही। किसी से भी कुछ मिल सकता है, यह भाव गिर गया। कहीं से कोई मांगना न रहा, कोई प्रार्थना न रही, कोई अभीप्सा न रही। इस चेतना की अवस्था को महावीर कहते हैं, वीतराग।

"जो वीतराग है वह शारीरिक और मानसिक सभी दुखों से छूट जाता है।"

"यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदिष्ट है।"

यह शब्द जिनोपदिष्ट थोड़ा समझ लेने जैसा है।

हिंदू कहते हैं, वेद ईश्वर के वचन हैं, इसलिए सत्य हैं। मुसलमान कहते हैं कि कुरान ईश्वर का संदेश है, इसलिए सत्य है। ईसाई कहते हैं कि बाइबिल ईश्वर के निजी संदेशवाहक, उनके अपने बेटे जीसस के वचन हैं, ईश्वर से आया हुआ संदेश है आदमी के लिए, इसलिए सत्य है।

महावीर एकदम अशास्त्रीय हैं। वे किसी शास्त्र को प्रमाण नहीं मानते। वे वेद को प्रमाण नहीं मानते। इसलिए हिंदुओं ने तो महावीर को नास्तिक कहा। क्योंकि जो वेद को न माने, वह नास्तिक।

महावीर जैसे परम आस्तिक को भी नास्तिक कहना पड़ा, क्योंकि वेद के प्रति उनकी कोई श्रद्धा नहीं, शास्त्र के प्रति उनकी कोई श्रद्धा नहीं। उनकी श्रद्धा अजीब है, अनूठी है। उनकी श्रद्धा उस आदमी में है, जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया हो--उसके वचन में।

जिनोपदिष्ट का अर्थ होता है, उस आदमी का वचन जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया है। कोई परमात्मा नहीं, कोई ऊपरी शक्ति नहीं, बल्कि उस व्यक्ति की शक्ति ही परम प्रमाण है जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया है। इसलिए महावीर कहते हैं, जिनोपदिष्ट--जिसने अपने को जीता हो। जिन का अर्थ होता है, जिसने अपने को जीता हो। जिसकी सारी इंद्रियों की गुलामी टूट गई हो, जो अपने भीतर स्वतंत्र हो गया हो, जो अपने भीतर मुक्त हो गया हो; इस व्यक्ति के वचन का मूल्य है। देवताओं के वचन को महावीर कहते हैं, कोई मूल्य नहीं, क्योंकि वे अभी वासना ग्रस्त हैं।

अगर हम वेद के देवताओं को देखें, तो इंद्र को आप फुसला ले सकते हैं, जरा सी खुशामद और स्तुति से। राजी कर ले सकते हैं, जो भी आपको करवाना हो। नाराज भी हो सकता है इंद्र अगर आप ठीक-ठीक प्रार्थना, उपासना न करें नियम से आदर, स्तुति न करें तो इंद्र नाराज भी हो सकता है। अगर हम यहूदी ईश्वर को देखें, तो वह खतरनाक बातें कहता हुआ मालूम पड़ता है कि अगर मुझे नहीं माना तो मैं तुम्हें नष्ट कर दूंगा। आग में जलाऊंगा, सड़ाऊंगा।

महावीर कहते हैं कि इन वचनों का क्या मूल्य हो सकता है! वे कहते हैं, वही चेतना परम शास्त्र है, जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया हो। उसकी बात भरोसे योग्य है।

क्यों?

जो अभी इंद्रियों के धोखे में पड़ता है, उसकी बात का भरोसा कुछ भी नहीं। जो अभी इंद्रियों के सपने से नहीं जाग सका, उसकी बात का कुछ भी भरोसा नहीं। महावीर को ज्ञात है, उस समय जो भी देवताओं की चारों तरफ चर्चा थी, उनमें महावीर को कोई भी देवता स्तुति के योग्य नहीं लगा। क्योंकि बड़ी अजीब कहानियां हैं।

कहानी है कि ब्रह्मा ने पृथ्वी को बनाया, अर्थात् पृथ्वी ब्रह्मा की बेटी हुई, और बेटी को देख कर ब्रह्मा एकदम कामातुर हो गए तो बेटी के पीछे कामातुर होकर भागे। बेटी घबड़ा गई तो वह गाय बन गई, तो ब्रह्मा बैल हो गए और गाय के पीछे भागे। महावीर को बड़ी कठिनाई मालूम पड़ेगी कि ऐसे ब्रह्मा के वचन का क्या मूल्य हो सकता है। यह तो साधारण पिता भी अपने को रोकता है, ब्रह्मा न रोक सके! कहानी में मूल्य तो बहुत है, पर मूल्य मनोवैज्ञानिक है।

फ्रॉयड ने कहा है कि हर पिता के मन में अपनी जवान बेटी को भोगने की कामना कहीं न कहीं सरक उठती है। क्योंकि जवान बेटी को देख कर फिर एक बार उसको अपनी पत्नी जब जवान थी, उसका स्मरण सदा हो आता है।

यह कहानी तो बड़ी मनोवैज्ञानिक है कि अगर ब्रह्मा ने अपनी बेटी को पैदा किया और वह इतनी सुंदर थी कि ब्रह्मा खुद आकर्षित हो गए, तो यह बात तो बताती है कि बाप भी बेटी प्रति कामातुर हो सकता है-- ब्रह्मा तक हो गए! लेकिन महावीर के लिए इसमें दूसरी सूचना है। वह सूचना यह है कि जो देवता कामातुर हैं, उनकी स्तुति का कोई भी अर्थ न रहा। इसलिए महावीर बड़े हिम्मतवर आदमी हैं। वे कहते हैं, जब कोई व्यक्ति इस वीतरागता को उपलब्ध होता है, तो देवता उसके चरणों में सिर रख देते हैं। यही बात कष्टपूर्ण भी लगी हिंदू मन को। क्योंकि कहानियां हैं कि जब महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए तो इंद्र और ब्रह्मा सब उनके चरणों में सिर रख दिए। यह बहुत कठिन मालूम पड़ती हैं... यह बात कठिन मालूम पड़ती है।

बुद्ध जब ज्ञान को उपलब्ध हुए तो सारा देवलोक उतरा और चारों-तरफ उनके चरणों में साष्टांग लेट गया।

हिंदू मन को चोट लगी कि जिन देवताओं की हम पूजा करते, प्रार्थना करते, वे इस गौतम बुद्ध के सामने या इस वर्द्धमान महावीर के सामने आकर चरणों में सिर रख दिए! यह बात ही अपवित्र मालूम पड़ती है। लेकिन महावीर और बुद्ध को हम समझें तो इस बात की बड़ी महिमा है। मनुष्य को पहली दफा देवताओं के ऊपर रखने का प्रयास--बड़ा गहन प्रयास है। मनुष्य को पहली दफा वासना के परम छुटकारे की तरफ इशारा है।

महावीर कहते हैं, देवता भी तुम हो जाओ, स्वर्ग भी तुम्हारे हाथ में आ जाए और अगर इंद्रियां तुम्हारी, तुम्हारे नियंत्रण में नहीं, और तुम उनके मालिक नहीं हो, तो तुम गुलाम हो, कीड़े-मकोड़ों जैसे ही गुलाम हो। कीड़ा-मकोड़ा भी क्यों कीड़ा-मकोड़ा है? क्योंकि इंद्रियों का गुलाम है। और देवता भी कीड़ा-मकोड़ा है, क्योंकि वह भी इंद्रियों का गुलाम है।

आदमी जाग सकता है। क्यों? देवता क्यों नहीं जाग सकता? सुख में जागना बहुत मुश्किल है। दुख में जागना आसान है। सुख में नींद सघन हो जाती है, दुख में नींद टूट जाती है। पीड़ा हो तो निखारती है, सुख हो सब धुंधला-धुंधला कर जाती है। सुख में जंग लग जाती है।

दुख में आदमी प्रखर होता है।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि सुखी परिवारों में कभी प्रखर चेतनाएं मुश्किल से पैदा हो जाती हैं। प्रखर बुद्धि, प्रखर प्रतिभा, अगर सब सुख हो तो क्षीण हो जाती मालूम पड़ती है। जंग लग जाती है। कुछ करने जैसा नहीं लगता। रॉकफेलर के घर में लड़का पैदा हो, तो सब पहले से मौजूद होता है, कुछ करने जैसा नहीं मालूम पड़ता। पाने को कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जब तक कि रॉकफेलर के लड़के में बुद्ध या महावीर की चेतना न हो कि इस संसार में पाने योग्य कुछ नहीं, तो चलो दूसरे संसार को पाने निकल पड़ें। जब इस संसार में कुछ पाने योग्य नहीं लगता तो आप बैठ जाते हैं मुर्दे की तरह, आपकी सब चेतना बैठ जाती है।

दुनिया में अधिकतम प्रतिभाएं संघर्षशील घरों से आती हैं, दुख से आती हैं। दुख निखारता है, उत्तेजित करता है, चुनौती देता है। देवता सो जाएंगे, क्योंकि वहां सुख ही सुख है--कल्पवृक्ष, सुख, अप्सराएं, सब यौवन, सब सुगंध।

इंद्रियों की जो वासना है, वह परिपूर्ण रूप से तृप्त हो, ऐसी स्वर्ग की हमारी धारणा है। इंद्रियों की कोई वासना तृप्त न हो, दुख ही दुख भर जाए, ऐसी हमारी नरक की धारणा है। लेकिन महावीर अगर यह कहते हैं कि दुख में आदमी जागता है इसलिए मनुष्य देवता के भी पार जा सकता है तब तो नरक और भी जाग जाना चाहिए। क्योंकि नरक में और भी सघन दुख है।

लेकिन एक बड़ी गहरी बात है। अगर पूरा-पूरा सुख हो, तो भी आदमी नहीं जाग पाता। अगर एकदम दुख ही दुख हो, तो भी आदमी नहीं जाग पाता। क्योंकि दुख ही दुख हो तो भी चेतना दब जाती है। जहां सुख

और दुख दोनों के अनुभव होते हैं वहां चेतना सदा जगी रहती है। सुख ही सुख हो तो भी सो जाता है मन, दुख ही दुख हो तो भी सो जाता है मन। संघर्ष तो पैदा होता है जहां दोनों हों, तुलना हो, चुनाव हो।

एक बड़े मजे की बात है, मनुष्य के इतिहास से भी साबित होती है। जब तक कोई समाज बिल्कुल ही गरीब रहता है तब तक बगावत नहीं करता। हजारों साल से दुनिया गरीब है, लेकिन बगावत नहीं होती है। शायद हम सोचते होंगे कि इसलिए बगावत नहीं होती थी कि लोग बड़े सुखी थे। नहीं, सुख का कोई अनुभव ही नहीं था। दुख शाश्वत था। बगावत नहीं होती थी। अब बगावत सारी दुनिया में हो रही है। और बगावत वहीं होती है जहां आदमी को दोनों अनुभव शुरू हो जाते हैं--सुख के भी और दुख के भी। तब वह और सुख पाना चाहता है, तब वह पूरा सुख पाना चाहता है, तब वह बगावत करता है।

दुखी आदमी, बिल्कुल दुखी आदमी बगावत नहीं करता। ऐसा दुखी आदमी बगावत करता है जिसे सुख की आशा मालूम पड़ने लगती है। नहीं तो बगावत नहीं होती। दुनिया में जितने बगावती स्वर पैदा हुए हैं, वे सब मध्य वर्ग से आते हैं--चाहे मार्क्स हो, और चाहे एंजिल्स हो और चाहे लेनिन हो और चाहे माओ हो, चाहे स्टैलिन हो, य सब मध्यवर्गीय बेटे हैं।

मध्य वर्ग का मतलब है जो दुख भी जानता है और सुख भी जानता है। जिसकी एक टांग गरीबी में उलझी है और एक हाथ अमीरी तक पहुंच गया है। मध्य वर्ग का अर्थ है, जो दोनों के बीच में अटका है। जो जानता है कि एक धक्का लगे तो मैं अभी गरीब हो जाऊं, और अगर एक मौका लग जाए तो अभी मैं अमीर हो जाऊं। जो बीच में है। यह बीच का आदमी बगावत का ख्याल देता है दुनिया को। क्योंकि यह ख्याल देता है, सुख मिल सकता है। सुख पाया जा सकता है। इसके हाथ के भीतर मालूम पड़ता है। मिल न गया हो लेकिन संभावना निकट मालूम पड़ती है। थोड़ा और यह लंबा हो जाए तो सुख मिल जाए। और दुख भी इससे छूटता मालूम पड़ता है। अगर थोड़ी हिम्मत जुटा ले तो दुख छूट जाए। करीब-करीब मनुष्य स्वर्ग और नरक के बीच में मध्यवर्गीय है। देवता हैं ऊपर, नारकीय हैं नीचे, बीच में है मनुष्य। मनुष्य का एक पैर तो नरक में खड़ा ही रहता है पूरे वक्त दुख में, और एक हाथ सुख को छूता रहता है।

इसलिए महावीर कहते हैं, मनुष्य संक्रमण, ट्रांजिटरी अवस्था है। और जहां संक्रमण है वहां क्रांति हो सकती है। जहां संक्रमण है वहां बदलाव हो सकती है। नीचे है नरक, ऊपर है स्वर्ग, बीच में है मनुष्य। मनुष्य चाहे तो नरक में गिरे, चाहे तो स्वर्ग में और चाहे तो दोनों से छूट जाए। नरक का पैर भी बाहर खींच ले, स्वर्ग का हाथ भी नीचे खींच ले। यह जो बीच में आदमी खड़ा हो जाए--महावीर कहते हैं, इस आदमी के देवता भी चरण में गिर जाते हैं। लेकिन कब आप नरक का पैर खींच पाएंगे?

महावीर कहते हैं, जब तक तुम्हारा एक हाथ स्वर्ग पकड़ता है, तब तक तुम्हारा एक पैर नरक में रहेगा। वह स्वर्ग पकड़ने की चेष्टा से ही नरक पैदा हो रहा है। सुख पाने की आकांक्षा

दुख बन रही है। स्वर्ग की अभीप्सा नरक का कारण बन रही है। जब तुम एक हाथ स्वर्ग से नीचे खींच लोगे, तुम अचानक पाओगे, तुम्हारा नीचे का पैर नरक से मुक्त हो गया। वह उस बड़े हुए हाथ का ही दूसरा अंग था।

और जब आदमी न स्वर्ग न नरक--महावीर ने कहा है, स्वर्ग मत चाहना। क्योंकि स्वर्ग की चाहना नरक की ही चाहना है। इसलिए महावीर ने एक नया शब्द गढ़ा। हिंदू विचार में उसके लिए पहले कोई जगह न थी। हिंदू विचार स्वर्ग और नरक में सोचता था। महावीर ने एक नया शब्द दिया, "मोक्ष"।" मोक्ष का अर्थ है: न स्वर्ग, न नरक; दोनों से छुटकारा।

अगर हम वैदिक ऋषियों की प्रार्थना देखें, तो वे प्रार्थना कर रहे हैं स्वर्ग की, सुख की। महावीर की अगर हम धारणा समझें, तो वह स्वर्ग की और सुख की कामना नहीं कर रहे हैं। क्योंकि महावीर कहते हैं, सुख और स्वर्ग की कामना हे तो दुख और नरक का आधार है। महावीर कहते हैं, मैं सुख और दुख से कैसे मुक्त हो जाऊं।

वैदिक ऋषि गाता है कि मैं कैसे दुख से मुक्त हो जाऊं और सुख को पा लूं। महावीर कहते हैं, मैं कैसे सुख और दुख दोनों से मुक्त हो जाऊं? यह बड़ी गहन मनोवैज्ञानिक खोज है। यह अन्वेषण गहरा है।

महावीर मोक्ष की बात करते हैं। बुद्ध निर्वाण की बात करते हैं। यह बात द्वंद्व के बाहर जाने वाली बात है, कैसे दोनों के पार हो जाऊं। यह जो ब्रह्मचर्य है, यह जो यात्रा-पथ है, दोनों के बाहर हो जाने का; यह जो ऊर्जा को भीतर ले जाना है, ताकि सुख और दुख से बाहर हैं

दोनों, उनसे छुटकारा हो जाए, यह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, जिनोपदिष्ट है।

इसके द्वारा पूर्वकाल में अनेक जीव सिद्ध हो गए, वर्तमान में हो रहे हैं, महावीर कहते हैं, और भविष्य में होंगे।

यह शाश्वत है मार्ग। इस विधि से पहले भी लोग जागे, जिन हुए। महावीर कहते हैं, आज भी हो रहे हैं। और महावीर कहते हैं, भविष्य में भी होते रहेंगे। यह मार्ग सदा ही सहयोगी रहेगा।

लेकिन हम बड़े अदभुत लोग हैं। महावीर के साधु-संन्यासी भी लोगों को समझाते हैं कि यह पंचम-काल है, इसमें कोई मुक्त नहीं हो सकता! जैसा हिंदू मानते हैं, कलिकाल है, कलियुग है, ऐसा जैन मानते हैं, पंचम-काल है। इसमें कोई मुक्त नहीं हो सकता। इससे हमको राहत भी मिलती है कि जब कोई हो ही नहीं सकता, तो हम भी अगर हुए तो कई हर्ज नहीं हैं। इससे साधु-संन्यासियों को भी सुख रहता है, क्योंकि आप उनसे भी नहीं पूछ सकते कि आप मुक्त हुए! पंचम-काल है, कोई मुक्त नहीं हो सकता।

महावीर की ऐसी दृष्टि हो नहीं सकती। क्योंकि महावीर कहते हैं, चेतना कभी भी मुक्त हो सकती है। समय कोई बंधन नहीं है। इसलिए वे कहते हैं, यह मार्ग शाश्वत है। पीछे भी लोग मुक्त हुए, आज भी हो रहे हैं, महावीर कहते हैं, और भविष्य में भी होते रहेंगे। जो भी इस मार्ग पर जाएगा वह मुक्त हो जाएगा। इस मार्ग पर जाने की जो कुंजी, जो सीक्रेट की है, वह उतनी ही है कि हम सुख और दुख दोनों को छोड़ने को राजी हो जाएं। इंद्रियां जो हमें संवाद देती हैं उनके साथ हमारा ध्यान जुड़ कर रस का निर्माण न करे। यह रस बिखर जाए भीतर तो शरीर और आत्मा अलग-अलग हो जाते हैं। सेतु गिर जाता है, संबंध टूट जाता है।

और जिस दिन हम जान लेते हैं कि मैं अलग हूं शरीर से। ध्यान अलग है, इंद्रियो से। चेतना अलग है, पार्थिव आवरण से। उस दिन नरक और स्वर्ग दोनों विलीन हो जाते हैं। वे दोनों स्वप्न थे। उस दिन हम पहली बार अपने भीतर छिपी हुई आत्यंतिक स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं। महावीर इस अवस्था को सिद्ध अवस्था कहते हैं।

सिद्ध का अर्थ है--वह चेतना जो अपनी संभावना की परिपूर्णता को उपलब्ध हो गई। जो हो सकती थी, हो गई। जो खिल सकता था फूल, पूरा, खिल गया। इसकी कोई निर्भरता बाहर न रही। यह सब भांति स्वतंत्र हो गई। इसका सारा आनंद अब भीतर से आता है। आंतरिक निर्झर बन गया है। अब इसका कोई आनंद बाहर से नहीं आता, और जिसका कोई आनंद बाहर से नहीं आता,

उसके लिए कोई भी दुख नहीं है।

आज इतना ही।

पांच मिनट रुकें, फिर जाएं।

संग्रहः अंदर के लोभ की झलक (अपरिग्रह-सूत्र)

न सो परिग्रह वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा।
 मुच्छा परिग्रहो वुत्ती, इइ वुत्तं महेसिणा।।
 लोहस्सेस अणुप्फोसी, मन्ने अन्नरामवि।
 जे सिया सन्निहिकामे, गिही पव्वइए न से।।

प्राणीमात्र के संरक्षक ज्ञातपुत्र (भगवान महावीर) ने कुछ वस्त्र आदि स्थूल पदार्थों के रखने को परिग्रह नहीं बतलाया है। लेकिन इन सामग्रियों में असक्ति, ममता व मूर्च्छा रखना ही परिग्रह है, ऐसा उन महर्षि ने बताया है।

संग्रह करना, यह अंदर रहने वाले लोभ की झलक है। अतएव मैं मानता हूं कि जो संग्रह करने की वृत्ति रखते हैं, वे गृहस्थ हैं, साधु नहीं।

पहले एक प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है कि "रस परित्याग का क्या अर्थ है। क्या रस परित्याग का यही अर्थ है कि कोई भी इंद्रियजनित कंपन से ध्यान न जुड़े। फिर तो रस त्यागी को आंख, कान वगैरह बंद करके ही चलना उचित होगा। अंधे, बहरे, गूंगे सर्वश्रेष्ठ त्यागी सिद्ध होंगे। क्या यही महावीर और आपका ख्याल है?"

रस परित्याग का अर्थ अंधापन, बहरापन नहीं है, लेकिन बहुत लोगों ने वैसा अर्थ लिया है। ध्यान को इंद्रियों से तोड़ना तो कठिन, इंद्रियों को तोड़ देना बहुत आसान है। आंख जो देखती है, उससे रस को छोड़ना तो कठिन, आंख को फोड़ देना बहुत कठिन नहीं है। किन्हीं ने तो आंखें फोड़ ही ली हैं वस्तुतः! किन्हीं ने धुंधली कर ली हैं। आंख बंद करके चलने से कुछ भी न होगा, क्योंकि आंख बंद करने की जो वृत्ति पैदा हो रही है वह जिस भय से पैदा हो रही है। वह भय त्याग नहीं है।

और मन के नियम बहुत अदभुत हैं। जिससे हम भयभीत होते हैं, उससे हम बहुत गहरे में प्रभावित भी होते हैं। अगर मैं सौंदर्य को देख कर आंख बंद कर लूं तो वह भी सौंदर्य से प्रभावित होना है। उससे यह पता नहीं चलता कि मैं सौंदर्य की जो वासना थी, उससे मुक्त हो गया। उससे इतना ही पता चलता है कि सौंदर्य की वासना भरपूर है, और मैं इतना भयभीत हूं अपनी वासना से कि भय के कारण मैंने आंख बंद कर ली हैं। लेकिन जिस भय से आंख बंद की है, वह आंख के भीतर चलता रहेगा। आवश्यक नहीं है कि हम बाहर ही देखें, तभी रूप दिखाई पड़े।

अगर रस भीतर मौजूद है तो रस भीतर भी रूप को निर्मित कर लेता है। स्वप्न निर्मित हो जाते हैं, कल्पना निर्मित हो जाती है। और बाहर तो जगत इतना सुंदर कभी भी नहीं है जितना हम भीतर निर्मित कर सकते हैं। जो स्वप्न का जगत है, वह हमारे हाथ में है। अगर रस मौजूद हो और आंख फोड़ डाली जाए तो हम सपने देखने लगेंगे, और सपने बाहर के संसार से ज्यादा प्रीतिकर हैं। क्योंकि बाहर का संसार तो बाधी भी डालता है। सपने हमारे हाथ का खेल है। हम जितना सुंदर बना सकें, बना लें। और हम जितनी देर उन्हें टिकाना चाहें, टिका लें। फिर वे सपने की प्रतिमाएं किसी तरह का अवरोध भी उपस्थित नहीं करतीं।

बहुत लोग संसार से भयभीत होकर स्वप्न के संसार में प्रविष्ट हो जाते हैं। जिनको स्वप्न के संसार में प्रविष्ट होना हो, उन्हें आंखें बंद कर लेना बड़ा सहयोगी होगा, क्योंकि खुली आंख सपना देखना बड़ा मुश्किल है। लेकिन इससे रस विलीन न होगा, रस और प्रगाढ़ होकर प्रकट होगा।

आपके दिन उतने रसपूर्ण नहीं हैं, जितनी आपकी रातें रसपूर्ण हैं। और आपकी जागृति उतनी रसपूर्ण नहीं है, जितने स्वप्न आपके रसपूर्ण हैं। स्वप्न में आपका मन उत्सुक होकर अपने संसार का निर्माण कर लेता है। स्वप्न में हम सभी स्रष्टा हो जाते हैं और अपनी कल्पना का लोक निर्मित कर लेते हैं। बाहर का जगत थोड़ी बहुत बाधा भी डालता होगा, वह बाधा भी नष्ट हो जाती है।

रस परित्याग का अर्थ इंद्रियों को नष्ट कर देना नहीं है। रस परित्याग का अर्थ है इंद्रियों और चेतना के बीच जो संबंध है, जो बहाव है, जो मूर्च्छा है, उस क्षीण कर लेना।

इंद्रियां खबर देती हैं, वे खबर उपयोगी हैं। इंद्रियां सूचनाएं लाती हैं, संवेदनाएं लाती हैं बाहर के जगत की, वे अत्यंत जरूरी हैं। उन इंद्रियों से लाई गई सूचनाओं, संवेदनाओं पर मन की जो गहरी भीतरी आसक्ति है, वह जो मन का रस है, वह जो मन का ध्यान है, जो मन का उन इंद्रियों से लाई गई खबरों में डूब जाना है, खो जाना है, वहीं खतरा है।

मन अगर खोए न, चेतना अगर इंद्रियों की लाई हुई सूचनाओं में डूबे न, मालिक बनी रहे, तो त्याग है। इसे ऐसा समझें, इंद्रियां जब मालिक होती हैं चेतना की, और चेतना अनुसरण करती है इंद्रियों की, तो भोग है। और जब चेतना मालिक होती है इंद्रियों की, और इंद्रियां अनुसरण करती हैं चेतना का, तो त्याग है।

मैं मालिक बना रहूं, इंद्रियां मेरी मालिक न हो जाएं। इंद्रियां जहां मुझे ले जाना चाहें, वहां खींचने न लगे; मैं जहां जाना चाहूं जा सकूं। और मैं जहां जाना चाहूं, वहां जाने वाले रास्ते पर इंद्रियां मेरी सहयोगी हों। रास्ता मुझे देखना हो तो आंख देखे, ध्वनि मुझे सुननी हो तो कान ध्वनि सुने, मुझे जो करना हो इंद्रियां उसमें मुझे सहयोगी हो जाएं, इंस्ट्रूमेंटल हों--यही उनका उपयोग है।

हमारी इंद्रियां और हमारा जो संबंध है वह मालिक का है या गुलाम का, इस पर ही सभी कुछ निर्भर करता है। यह मेरा हाथ, जो मैं उठाना चाहूं वही उठाए, तो मैं त्यागी हूं, और यह मेरा हाथ मुझसे कहने लगे कि यह उठाना ही पड़ेगा, और मुझे उठाना पड़े, तो मैं भोगी हूं, यह मेरी आंख, जो मैं देखना चाहूं, वही देखे तो मैं त्यागी हूं। और यह आंख ही मुझे सुझाने लगे कि यह देखो, यह देखना ही पड़ेगा, इसे देखे बिना नहीं जाया जा सकता, तो मैं भोगी हूं। भोग और त्याग का इतना ही अर्थ है कि इंद्रियां मालिक हैं या चेतना मालिक है? चेतना मालिक है तो रस विलीन हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि इंद्रियां विलीन हो जाती हैं, बल्कि सच तो उल्टी बात है, इंद्रियां परिशुद्ध हो जाती हैं। इसलिए महावीर की आंखें जितनी निर्मलता से देखती हैं, आपकी आंखें नहीं देख सकती। इसलिए, हम महावीर को अंधा नहीं कहते, द्रष्टा कहते हैं, आंख वाला कहते हैं।

बुद्ध के हाथ जितना छूते हैं, उतना आपके हाथ नहीं छू सकते। नहीं छू सकते इसलिए कि भीतर का जो मालिक है, वह बेहोश है। नौकर मालिक हो गए हैं। भीतर की जो बेहोशी है वह संवेदना को पूरा गहरा नहीं होने देती, पूरा शुद्ध नहीं होने देती। बुद्ध की आंखें ट्रांसपेरेंट हैं। आपकी आंखों में धुआं है। वह धुआं आपकी गुलामी से पैदा हो रहा है। अगर ठीक से हम समझें, तो हम अंधे हैं आंखे होते हुए भी; क्योंकि भीतर जो देख सकता था आंखों से, वह मूर्च्छित है, सोया हुआ है। बुद्ध या महावीर जागे हुए हैं, अमूर्च्छित हैं। आंख सिर्फ बीच का काम करती है, मालिकियत का नहीं। आंख अपनी तरफ से कुछ भी जोड़ती नहीं, आंख अपनी तरफ से कोई व्याख्या नहीं करती। भीतर जो है वह देखता है। आप अपनी खिड़की पर खड़े होकर बाहर की सड़क देख रहे हैं। खिड़की भी अगर इस देखने में कुछ अनुदान करने लगे, तो कठिनाई होगी। फिर आप वह न देख पाएंगे जो है।

वह देखने लगेंगे जो खिड़की दिखाना चाहती है। लेकिन खिड़की कोई बाधा नहीं डालती, खिड़की सिर्फ राह है जहां से आप बाहर झांकते हैं।

आंख भी बुद्ध और महावीर के लिए सिर्फ एक मार्ग है, जहां से वे बाहर झांकते हैं। यह आंख सुझाती नहीं, क्या देखो; यह आंख कहती नहीं, ऐसा देखो; यह आंख कहती नहीं, ऐसा मत देखो। यह आंख सिर्फ शुद्ध मार्ग है।

तो महावीर जितनी निर्दोषता से देखते हैं, हम नहीं देख पाते। महावीर अगर आपका हाथ, हाथ में लें, तो वे आपको ही छू लेंगे। जब हम एक दूसरे का हाथ लेते हैं तो सिर्फ हड्डी मांस ही स्पर्श हो पाता है। छू लेंगे आपको ही क्योंकि बीच में कोई वासना का वेग नहीं है। कोई वासना का बुखार नहीं है। सब शांत है। हाथ सिर्फ छूने का ही काम करता है। इस हाथ की अपने तरफ से कोई आकांक्षा, कोई वासना नहीं है, तो महावीर इस हाथ के द्वारा आपके भीतर तक को स्पर्श कर लेंगे।

इंद्रियां महावीर और बुद्ध की अत्यंत निर्मल हो गई हैं। वे शुद्ध हो गई हैं, वे उतना ही काम करती हैं, जितना करना जरूरी हैं। अपनी तरफ से वे कुछ भी जोड़ती नहीं।

हमारी सारी इंद्रियां विक्षिप्त है, और विक्षिप्त होंगी। क्योंकि जब मालिक मूर्च्छित है तो नौकर सम्यक नहीं हो सकते। जब एक रथ का सारथी सो गया हो तो घोड़े कहीं भी दौड़ने लगें, यह स्वाभाविक है। और उन सारे घोड़ों के बीच कोई तालमेल न रह जाए, यह भी स्वाभाविक है।

हमारी इंद्रियों के बीच कोई ताल-मेल भी नहीं है, भोगी की सभी इंद्रियां उसे विपरीत दिशाओं में खींचती रहती हैं। आंख कुछ देखना चाहती है, कान कुछ सुनना चाहता है, हाथ कुछ और छूना चाहते हैं इन सबके बीच विरोध है, इस विरोध से बड़ा कंट्राडिक्शन है, जीवन में बड़ी विसंगतियां पैदा होती हैं।

जैसे, आप एक स्त्री के प्रेम में पड़ गए हैं, एक पुरुष के प्रेम में पड़ गए हैं। आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा कि सभी प्रेम इतनी कठिनाइयों में क्यों ले जाते हैं, और सभी प्रेम अंततः दुख क्यों बन जाते हैं। उसका कारण हैं। किसी का चेहरा आपको सुंदर लगा, यह आंख का रस है। अगर आंख बहुत प्रभावी सिद्ध हो जाए तो आप प्रेम में पड़ जाएंगे। लेकिन कल उसकी गंध शरीर की आपको अच्छी नहीं लगती, तब नाक इनकार करने लगेगी। आप उसके शरीर को छूते हैं, लेकिन उसके शरीर की ऊष्मा आपके हाथ को अच्छी नहीं लगती, तो हाथ इनकार करने लगेंगे।

आपकी सारी इंद्रियों के बीच कोई ताल-मेल नहीं है, इसलिए प्रेम विसंवाद हो जाता है। एक इंद्रिय के आधार पर आदमी चुन लेता है, बाकी इंद्रियां धीरे-धीरे अपना-अपना स्वर देना शुरू करेंगी और तब एक ही व्यक्ति के प्रति कोई इंद्रिय अच्छा अनुभव करती है, दूसरी इंद्रिय बुरा अनुभव करती है। आपके मन में हजार विचार एक ही व्यक्ति के प्रति हो जाते हैं।

और हममें से अधिक लोग आंख का इशारा मान कर चलते हैं। क्योंकि आंख बड़ी प्रभावी हो गई है। हमारे चुनाव में, नब्बे प्रतिशत आंख काम करती है। हम आंख की मान लेते हैं, दूसरी इंद्रियों की हम कोई फिकर नहीं करते। आज नहीं कल कठिनाई शुरू हो जाती है। क्योंकि दूसरी इंद्रियां भी असर्ट करना शुरू करती हैं, अपने वक्तव्य देना शुरू करती हैं।

आंख की गुलामी मानने को कान राजी नहीं है। इसलिए आंख ने कितना ही कहा हो कि चेहरा सुंदर है, इस कारण वाणी को कान मान लेगा कि सुंदर है, यह आवश्यक नहीं है। आंख की आवाज को, आंख की मालिकियत को, नाक मानने को राजी नहीं है। आंख ने कहा हो कि शरीर सुंदर है, लेकिन नाक तो कहेगी कि शरीर से जो गंध आती है, अप्रीतिकर है।

फिर क्या होगा? एक ही व्यक्ति के प्रति पाचों इंद्रियों के अलग-अलग वक्तव्य जटिलता पैदा कर देते हैं। यह जो जटिलता है, केवल उसी व्यक्ति में नहीं होती, जिसका भीतर मालिक जगा होता है।

तो फिर पांचों इंद्रियों को जोड़ने वाला एक केंद्र भी होता है। हमारे भीतर कोई केंद्र नहीं है। हमारी हर इंद्रिय मालिकियत जाहिर करती है। और हर इंद्रिय का वक्तव्य आखिरी है। कोई

दूसरी इंद्रिय उसके वक्तव्य को काट नहीं सकती। हम सभी इंद्रियों के वक्तव्य इकट्ठे करके एक विसंगतियों का ढेर हो जाते हैं।

हमारे भीतर--जिसे हम प्रेम करते हैं--उसके प्रति घृणा भी होती है। क्योंकि एक इंद्रिय प्रेम करती है, एक घृणा करती है। और हम इसमें कभी ताल-मेल नहीं बिठा पाते। तो ज्यादा से ज्यादा हम यही करते हैं कि हम इंद्रिय को रोटेशन में मौका देते रहते हैं। हमारी इंद्रियां रोटरी-क्लब के सदस्य हैं।

कभी आंख को मौका देते हैं तो वह मालिकियत कर लेती है, तब कभी कान को मौका देते हैं, तब वह मालिकियत कर लेता है। लेकिन इनके बीच कभी ताल-मेल निर्मित नहीं हो पाता। कोई संगति कोई सामंजस्य, कोई संगीत पैदा नहीं हो पाता। इसलिए जीवन हमारा एक दुख हो जाता है।

जब भीतर का मालिक जगता है, तो वही संगति है, वही तालमेल है, वही हार्मनी है। सारी इंद्रियां, सारथी जग गया, और लगाम हाथ में आ गई और सारे घोड़े एक साथ चलने लगे। उनकी गति में एक लय आ गई। एक दिशा, एक आयाम आ गया।

मूर्च्छित मनुष्य इंद्रियों के द्वारा अलग-अलग रास्तों पर खींचा जाता है। जैसे एक ही बैलगाड़ी अलग-अलग रास्तों पर, चारों तरफ जुते हुए बैलों से खींची जा रही हो। यात्रा नहीं हो पाती घसीटन होती है, और आखिर में सब अस्थि पंजर ढीले हो जाते हैं। कुछ परिणाम नहीं निकलता। जीवन निष्पत्तिहीन होता है, निष्कर्षरहित होता है।

रस परित्याग का अर्थ है--इंद्रियों की मालिकियत का परित्याग, इंद्रियों का परित्याग नहीं। आंख नहीं फोड़ लेनी, कान नहीं फोड़ देना। वह तो मूढ़ता है। हालांकि वह आसान है। आंख फोड़ने में क्या कठिनाई है? जरा सा जिद्दी स्वभाव चाहिए, जोश चाहिए, हठवादिता चाहिए। आंख फोड़ी जा सकती है। सोच-विचार नहीं चाहिए, आंख आसानी से फोड़ी जा सकती है। और फूट गई तो फिर तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन रस इतना आसानी से नहीं छोड़ा जा सकता। रस लंबा संघर्ष है, बारीक है, डेलिकेट है, सूक्ष्म है, नाजुक है और सतत। आंख तो एक बार में फोड़ी जा सकती है, रस जीवन भर में धीरे-धीरे, धीरे-धीरे छोड़ा जा सकता है। इसलिए त्यागियों को आसान दिखा आंख का फोड़ लेना। कोई हिम्मतवर है, इकट्ठी फोड़ लेते हैं, कोई उतने हिम्मतवर नहीं हैं तो धीरे-धीरे फोड़ते हैं। कोई उतने हिम्मतवर नहीं तो फोड़ते नहीं, सिर्फ आंख बंद करके जीने लगते हैं। लेकिन वह हल नहीं है। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आप नाहक ही आंख खोल कर जीएं।

अधिक लोक नाहक आंख खोल कर जीते हैं। रास्ते से जा रहे हैं, तो दीवारों पर लगे पोस्टर भी उनको पढ़ने ही पड़ते हैं। वह नाहक आंख खोल कर जीना है। जिससे कोई प्रयोजन न था, जिससे कोई अर्थ न था और जिस पोस्टर को हजार दफे पढ़ चुके हैं क्योंकि उसी रास्ते से हजार बार गुजर चुके हैं। आज फिर उसको पढ़ेंगे।

पता नहीं, हमारी आंख पर हमारा कोई भी वश नहीं मालूम होता, इसलिए ऐसा हो रहा है। लेकिन उस पोस्टर को पढ़ लेना सिर्फ पढ़ लेना ही नहीं है, वह आपके भीतर भी जा रहा है और आपके जीवन को प्रभावित करेगा। ऐसा कुछ भी नहीं है जो आप भीतर ले जाते हैं जो आपको प्रभावित न करे। सब भोजन है--चाहे आप आंख से पोस्टर पढ़ रहे हों, वह भी भोजन है, वह भी आपके भीतर जा रहा है।

शंकर ने इन सबको ही आहार कहा है। कान से जो सुनते हैं, वह कान का भोजन है। मुंह से जो लेते हैं, वह मुंह का भोजन है। आंख से जो देखते हैं, वह आंख का भोजन है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि आप व्यर्थ ही आंख खोल कर चलते रहें कि व्यर्थ ही कान खोल कर बाजार के बीच में बैठे जाएं। होश रखना जरूरी है। जो सार्थक है, उपादेय है, उसे ही भीतर जाने दें। जो निरर्थक है, निरुपादेय है, घातक है, उसे भीतर न जाने दें।

चुनाव जरूरी है, और चुनाव के साथ मालिकियत निर्मित होती है। कौन चुने? लेकिन, आंख के पास चुनने की कोई क्षमता नहीं है; देख सकती है। कान सुन सकता है। चुनेगा कौन? आप। लेकिन आपका तो कोई पता नहीं है। आप तो कही हैं ही नहीं। इसलिए जिंदगी में कोई चुनाव नहीं है।

आप कुछ भी पढ़ते हैं, कुछ भी सुनते हैं, कुछ भी देखते हैं, वह सब आपके भीतर जा रहा है। और आपके कचरे का एक ढेर बना देता है। अगर आपके मन को उधाड़ कर रखा जा सके बाहर तो कचरे का एक ढेर मिलेगा, जिसमें कोई संगति न मिलेगी। कबाड़, कुछ भी इकट्ठा कर लिया है। इकट्ठा करते वक्त सोचा भी नहीं। आप अपने घर में एक चीज लाने में जितना विचार करते हैं कि ले जाना कि नहीं, जगह घर में है या नहीं, कहां रखेंगे, क्या करेंगे, उतना भी विचार मन के भीतर ले जाने में आप नहीं करते। जगह है भीतर? वह भी कभी नहीं सोचते। जो ले जा रहे है वह ले जाने योग्य है? वह भी कभी नहीं सोचते। कुछ भी।

कभी आपने किसी आदमी से कहा है कि अब बातचीत आप जो कर रहे हैं, बंद कर दें, मेरे भीतर मत डालें। कभी नहीं कहा है। कुछ भी कोई आपके भीतर डाल सकता है। आप कोई टोकरी हैं, कचरे की? जिसमें कोई भी कुछ डाल सकता है। आप के घर में पड़ोसी कचरा फेंके तो आप पुलिस में रिपोर्ट कर देंगे, और पड़ोसी आपकी खोपड़ी में रोज कचरा फेंकता है, आपने कभी कोई रिपोर्ट नहीं की है। बल्कि एक दिन न फेंके तो आपको लगता है, दिन खाली-खाली जा रहा है। आओ, फेंको।

नहीं, हमें होश ही नहीं कि हम भीतर क्या ले जा रहे हैं। आंख, न तो फोड़नी उचित है और न जरूरत से ज्यादा खोलनी उचित है। इसलिए महावीर ने तो कहा है कि साधु इतना देख कर चले जितना आवश्यक है। महावीर ने कहा है कि आंख चार फीट देखे, चलते वक्त भिक्षु की। अगर आंख चार फीट देखे, तो उसका मतलब हुआ आप को नाक का अग्र हिस्सा दिखाई पड़ता रहेगा, बस। आंख झुकी होगी, चार फीट देखेगी। क्योंकि महावीर ने कहा है, चलने के लिए चार फीट देखना काफी है। फिर आगे बढ़ जाते हैं, चार फीट फिर दिखाई पड़ने लगता है, इतना काफी है। कोई दूर का आकाश चलने के लिए देखना आवश्यक नहीं है। उतना देखें, जितना जरूरी हो, काम के लिए। उतना सुनें जितना जरूरी हो, उतना बोलें जितना जरूरी हो, तो इसके परिणाम होंगे।

इसके दो परिणाम होंगे--एक तो व्यर्थ आपके भीतर इकट्ठा नहीं होगा वह आपकी शक्ति क्षीण करता है। दूसरा आपकी शक्ति बचेगी। वह शक्ति ही आपके उर्ध्वगमन के लिए मार्ग बनने वाली है। उसी शक्ति के सहारे आप अंतर की यात्रा पर निकलेंगे।

हम तो करीब-करीब एक्झास्टेड हैं, खत्म हैं। कुछ बचता ही नहीं सांझ होते-होते, दिन भर में सब चुक जाता है। सांझ हम चुके चुकाए, चली हुई कारतूस की तरह अपने बिस्तर पर गिर जाते हैं। मगर रात भर भी हम शक्ति को इकट्ठा नहीं कर रहे हैं, खर्च कर रहे हैं। इसलिए एक मजे की घटना घटती है, लोग थके हुए बिस्तर में जाते हैं और सुबह और थके हुए उठते हैं। रात भी सपने चल रहे हैं और हम थक रहे हैं। हमारी जिंदगी एक लंबी थकान बन जाती है। एक शक्ति का संचयन नहीं। और जहां शक्ति नहीं है, वहां कुछ भी नहीं हो सकता।

तो दो परिणाम है--एक तो व्यर्थ इकट्ठा न हो, हमारे भीतर स्पेस, खाली जगह चाहिए। जिस आदमी के भीतर आकाश नहीं है, उस आदमी का आत्मा से कोई संबंध नहीं हो सकता। जिस आदमी के भीतर आकाश नहीं है, वह उस परमात्मा के अतिथि को निमंत्रण भी नहीं भेज सकता। उसके भीतर वह मेहमान आ जाए तो ठहराने की जगह भी नहीं है।

भीतरी आकाश, इनर स्पेस, धर्म की अनिवार्य खोज है। हम जिसे बुला रहे, जिसे पुकार रहे, जिसे खोज रहे, उसके लायक हमारे भीतर जगह होनी चाहिए। स्थान होना चाहिए। वह रिक्तता बिल्कुल नहीं है। आप भरे हुए हैं, ठसाठस भरे हुए हैं। परमात्मा की भी सामर्थ्य नहीं, लोग कहते हैं कि सर्वशक्तिमान है, मगर आपके भीतर घुसने की उसकी भी सामर्थ्य नहीं। जगह ही नहीं है वहां और शायद इसलिए आप भी अपने भीतर नहीं

जा पाते, बाहर घूमते रहते हैं। वहां जगह तो चाहिए। और वहां आपने क्या भर रक्खा है, यह कभी आपने सोचा?

कभी दस मिनट बैठ जाएं और एक कागज पर जो आपके मन के भीतर चलता हो, उसको लिख डालें, तब आपको पता चलेगा, आपने क्या भीतर भर रखा है कहीं कोई फिल्म की कड़ी आ जाएगी कहीं पड़ोसी के कुत्ते का भौंकना आ जाएगा, कहीं रास्ते पर सुनी हुई कोई बात आ जाएगी, पता नहीं क्या-क्या कचरा वहां सब इकट्ठा है। और इस पर शक्ति व्यय हो रही है। चाहे आप फिल्म की एक कड़ी दोहराते हों और चाहे आप प्रभु का स्मरण करते हों, एक शब्द का भी भीतर उच्चारण शक्ति का हनास है। फिर उसका क्या उपयोग कर रहे हैं, यह आप पर निर्भर है। अगर व्यर्थ ही खोते चले जा रहे हैं, तो आखिर में जीवन के अगर आप पाएं, आप सिर्फ खो गए, कुछ पाया नहीं, तो इसमें आश्चर्य नहीं है।

हमारी मृत्यु अक्सर हमें उस जगह पहुंचा देती है जहां अवसर था, शक्ति थी, लेकिन हम उसे फेंकते रहे। कुछ सृजन नहीं हो पाया। हमारी मृत्यु एक लंबे विध्वंस का अंत होती है, एक लंबे आत्मघात का अंत, एक सृजनात्मक, एक क्रिएटिव घटना नहीं।

महावीर की सारी उत्सुकता इसमें है कि भीतर एक सृजन हो जाए, व सृजन ही आत्मा है।

इस सूत्र को हम समझें।

"प्राणीमात्र के संरक्षक ज्ञानपुत्र ने कुछ वस्त्र आदि स्थूल पदार्थों के रखने को परिग्रह नहीं बतलाया है।"

महावीर ने नहीं कहा है कि आपके पास कुछ चीजे हैं तो आप परिग्रही हैं। महावीर ने यह भी नहीं कहा है कि आप सब चीजें छोड़ कर खड़े हो गए तो आप अपरिग्रही हो गए, कि आपने सब वस्तुओं का त्याग कर दिया।

वस्तुएं हैं, इससे कोई गृहस्थ नहीं होता; और वस्तुएं नहीं हैं, इससे कोई साधु नहीं होता। लेकिन अधिक साधु यही करते रहते हैं। कितनी कम वस्तुएं हैं, इससे सोचते हैं कि साधुता हो गई। साधुता या गृहस्थ महावीर के लिए आंतरिक घटना है। वे कहते हैं, वस्तुओं में कितनी मूर्च्छा है, कितना लगाव है। इन सामग्रियों में आसक्ति, ममता, मूर्च्छा रखना ही परिग्रह है।

मूर्च्छा परिग्रह है। बेहोशी परिग्रह है, बेहोशी का क्या मतलब है? होश का क्या मतलब है? जब आप किसी चीज के लिए जीने लगते हैं, तब बेहोशी शुरू हो जाती है। एक आदमी धन के लिए जीता है, तो बेहोश है। वह कहता है, मेरी जिंदगी इसलिए है कि धन इकट्ठा करना है। धन मेरे लिए है, ऐसा नहीं, धन किसी और काम के लिए है, ऐसा भी नहीं, मैं धन के लिए हूं। मुझे धन इकट्ठा करना है। मैं एक मशीन हूं, एक फैक्ट्री हूं, मुझे धन इकट्ठा करना है।

जब एक आदमी वस्तुओं को अपने से ऊपर रख लेता है, और जब एक आदमी कहने लगता है कि मैं वस्तुओं के लिए जी रहा हूं, वस्तुएं ही सब कुछ हैं, मेरे जीवन का लक्ष्य, साध्य--तब मूर्च्छा है। लेकिन हम सारे लोग इसी तरह जीते हैं। छोटी सी चीज आपकी खो जाए तो ऐसा लगता है, आत्मा खो गई। कभी आपने ख्याल किया? उस चीज का कितना ही कम मूल्य क्यों न हो, रात नींद नहीं आती। चिंता, भीतर मन में चलती हैं। दिनों तक पीछा करती है। एक छोटी सी चीज का खो जाना।

बच्चों जैसी हमारी हालत है। एक बच्चे की गुड़िया टूट जाए तो रोता है, छाती पीटता है। मुश्किल हो जाता है उसे यह स्वीकार करना कि गुड़िया अब नहीं रही। दो-चार दिन उसके आंखों में आंसू भर-भर आते हैं। लेकिन यह बच्चे की ही बात होती तो क्षम्य थी, बूढ़ों की भी यह बात है। जरा सा कुछ खो जाए। यह बड़े मजे की बात है कि उसके होने से कभी कोई सुख न मिला हो, तो भी खो जाए, तो खोने से दुख मिलता है।

आपके पास कोई चीज है। जब तक थी, तब तक आपको उससे कोई सुख न मिला। आपकी तिजोड़ी में एक सोने की ईंट रखी है, उससे आपको कोई सुख नहीं मिला। ऐसा कभी हुआ कि उसकी वजह से आप नाचे हों,

आनंदित हुए हों, ऐसा कभी नहीं हुआ। लेकिन आज ईंट चोरी चली गई, छाती पीट कर रो रहे हैं। जिस ईंट से कभी कोई खुशी नहीं मिली, उसके लिए रोने का क्या अर्थ है? और जो ईंट तिजोड़ी में ही रखी थी वह सोने की थी कि पत्थर की इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई फर्क नहीं पड़ता। छाती पर वजन ही रखना है तो सोने का रख लो कि पत्थर का रख लो।

महावीर का अर्थ है मूर्च्छा से, वस्तुएं हमसे ज्यादा मूल्यवान हो जाएं तो मूर्च्छा है।

रस्किन ने कहा है कि धनी आदमी तब होता है, जब वह धन को दान कर पाता है। नहीं तो गरीब ही होता है। रस्किन का मतलब यह है कि आप धनी उसी दिन हैं, जिस दिन आप धन को छोड़ पाते हैं। अगर नहीं छोड़ पाते तो आप गरीब ही हैं। पकड़ गरीबी का लक्षण है, छोड़ना मालिकियत का लक्षण है। अगर किसी चीज को आप छोड़ पाते हैं, तो समझना कि आप उसके मालिक हैं; और अगर किसी चीज को आप केवल पकड़ ही पाते हैं तो आप भूल कर मत समझना कि आप उसके मालिक हैं। इसका तो बड़ा अजीब मतलब हुआ। इसका मतलब हुआ कि जो चीजें आप किसी को बांट देते हैं, उनके आप मालिक हैं। और जो चीजें आप पकड़ कर बैठे रहते हैं, उनके आप मालिक नहीं हैं।

दान मालिकियत है; क्योंकि जो आदमी दे सकता है, वह यह बता रहा है कि वस्तु मुझसे नीची है, मुझसे ऊपर नहीं। मैं दे सकता हूं। देना मेरे हाथ में है। और जो व्यक्ति देकर प्रसन्न हो सकता है, उसकी मूर्च्छा टूट गई। जो व्यक्ति केवल लेकर ही प्रसन्न होता है और देकर दुखी हो जाता है, वह मूर्च्छित है। त्याग का ऐसा है अर्थ।

त्याग का अर्थ है: दान की अनंत क्षमता, देने की क्षमता। जितना बड़ा हम दे पाते हैं, जितना ज्यादा हम दे पाते हैं, उतने ही हम मालिक होते चले जाते हैं। इसलिए महावीर ने सब दे दिया। महावीर ने कुछ भी नहीं बचाया। जो भी उनके पास था, सब देकर वे नग्न होकर चले गए। इस सब देने में, सिर्फ एक आंतरिक मालिकियत की उदघोषणा है। इस देने को याद भी नहीं रखा कि मैंने कितना दे दिया! अगर याद भी रखे कोई, तो उसका मतलब हुआ कि वस्तुओं की पकड़ जारी है। अगर कोई कहे कि मैंने इतना दान कर दिया, इसे दोहराए!

एक मित्र मेरे पास आए थे। उन्होंने कहा, पर्चा भी छपाए हुए हैं वे, कि एक लाख रुपया उन्होंने दान किया हुआ है। उन्होंने मुझे कहा कि मैं अब तक लाख रुपया दान कर चुका हूं। नहीं, उनकी पत्नी ने मुझे कहा कि मेरे पति लाख रुपया दान कर चुके हैं। उन्होंने पत्नी की तरफ बड़ी हैरानी से देखा और कहा कि पर्चा पुराना है, अब तो एक लाख, दस हजार!

एक पैसा दान नहीं हो सका इन सज्जन से। एक लाख दस हजार इनके एकाउंट में अब भी उसी भांति हैं जैसे पहले थे, उसी तरह गिनती में है। यह भला कह रहे हों कि दान कर दिया है, दान हो नहीं पाया। क्योंकि जो दान याद रह जाए वह दान नहीं है।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन के घर में कोई मेहमान आया हुआ है। बहुत दिन का पुराना मित्र है और मुल्ला उसे खिलाए चले जा रहे हैं। कोई बहुत बढ़िया मिठाई बनाई है। बार-बार आग्रह कर रहे हैं, तो उस मित्र ने कहा कि बस अब रहने दें। तीन बार तो मैं ले ही चुका हूं। मुल्ला ने कहा, छोड़ो भी, ले तो तुम छह बार चुके हो, लेकिन गिन कौन रहा है? फिकर छोड़ो, ले तुम छह बार चुके हो, लेकिन गिन कौन रहा है?

आदमी का मन ऐसा है, गिन भी रहा है और सोचता है गिन कौन रहा है? त्याग अकसर ऐसा ही चलता है। आदमी कहता है, छोड़ दिया और दूसरी तरफ से पकड़ लेता है, गिनती किए चला जाता है। फिर भी सोचता है, गिन कौन रहा है? पैसा तो मिट्टी है, लेकिन एक लाख दस हजार मैंने दान कर दिया। मिट्टी के दान को कोई याद रखता है। दान तो हम तभी याद रखते हैं जब सोने का होता है। लेकिन अगर मिट्टी ही है तो फिर याददाश्त की कोई जरूरत नहीं।

दान की कोई स्मृति नहीं होती सिर्फ चोरी की स्मृति होती है। चोरी को याद रखना पड़ता है। और अगर दान भी याद रहे तो चोरी के ही समान हो जाता है। अर्थ क्या है? अर्थ इतना है कि हम इस भांति सम्मोहित हो सकते हैं वस्तुओं से, हिप्रोटाइज्ड हो सकते हैं कि हमारी आत्मा वस्तुओं में प्रवेश कर जाए।

एक कार सरसराती रास्ते से गुजर जाती है। कार तो गुजर जाती है, हवा के झोंके के साथ आपकी आत्मा भी कार के साथ बह जाती है। वह छवि आंख में रह जाती है। वह सपनों में प्रवेश कर जाती है। मन में एक बात घूमने लगती है, उस रंग की, वैसी गाड़ी, पकड़ लेती है। इसे अगर हम विज्ञान की भाषा में समझें, तो यह हिप्रोटिज्म है, यह सम्मोहन है। आप उस कार के रंग से, रूप से, आकृति से सम्मोहित हो गए। अब आपके चित्त में एक प्रतिमा बन गई है। वह प्रतिमा जब तक न मिल जाए, आप दुखी होंगे।

हम वस्तुओं से सम्मोहित होते हैं। व्यक्तियों से ही होते हों, तो भी ठीक है, हम वस्तुओं से भी सम्मोहित होते हैं। देख लेते हैं एक आदमी की कमीज, रंग पकड़ लेता है, रूप पकड़ लेता है। आपकी आत्मा बह गई आपके बाहर और कमीज से जाकर जुड़ गई। अपने से बाहर बह जाना और किसी से जुड़ जाना, और फिर ऐसा अनुभव करना कि उसके मिले बिना सुख न होगा, यह सम्मोहन का लक्षण है। जहां-जहां हम सम्मोहित होते हैं, वहां-वहां लगता है, इसके बिना अब सुख न होगा। जब भी आपको लगे कि इसके बिना सुख न होगा, तो आप समझ लेना कि आप हिप्रोटाइज्ड हो गए, आप सम्मोहित हो गए।

सम्मोहन करने के लिए कोई आपकी आंखों में झांक कर घंटे भर तक देखना आवश्यक नहीं है। सम्मोहित करने के लिए आपको किसी टेबल पर लिटाकर किसी मेक्सकोली को या किसी को आपको बेहोश करना आवश्यक नहीं है। आप चौबीस घंटे सम्मोहित हो रहे हैं, और चारों तरफ उपाय किए गए हैं आपको सम्मोहित करने के, क्योंकि सारा व्यवसाय जीवन का, सम्मोहन पर खड़ा है।

ख्याल में नहीं है, सारी एडवर्टाइजमेंट की कला सम्मोहन पर खड़ी है, वह आपको सम्मोहित कर रही है। रोज रेडियो आपसे कह रहा है कि यही सिगरेट, यही साबुन, यही टूथपेस्ट श्रेष्ठतम है। बस इसको कहे चला जा रहा है। अखबार में रोज बड़े-बड़े अक्षरों में आप यही पढ़ रहे हैं। रास्ते पर निकलते हैं, पोस्टर भी यही कहता है। और इस सबको कहने के और सम्मोहित करने के सारे उपाय किए जाते हैं, क्योंकि अगर कोई इतना ही कहे कि बिनाका टूथपेस्ट सबसे अच्छा है, तो मन में बहुत गहरा नहीं जाता। लेकिन पास में एक खूबसूरत अभिनेत्री को भी खड़ा कर दिया जाए, तो मन में ज्यादा जाता है। अब बिनाका अभिनेत्री का सहारा लेकर मन की गहराइयों में चला जाएगा। अभिनेत्री मुस्कुराती हो, झूठे सही, लेकिन मोतियों जैसे चमकते दांत पकड़ लेते हैं मन को। बिनाका गौण हो जाता है, अभिनेत्री प्रमुख हो जाती है। अभिनेत्री का सहज सम्मोहन है क्योंकि सेक्स का सहज सम्मोहन है। वासना, कामवासना का सहज सम्मोहन है। इसलिए आज दुनिया में कोई भी चीज बेचनी हो, तो बिना स्त्री के सहारे के बेचना मुश्किल है; या बिना पुरुष के सहारे के बेचना मुश्किल है।

पहले उसे सम्मोहित करने के लिए काम-आविष्ट करना जरूरी है। अगर अभिनेत्री नग्न खड़ी हो, तो आपको पता नहीं होगा... अब वैज्ञानिक कहते हैं कि आपकी आंखों की जो पुतली है, तत्काल बड़ी हो जाती है, जब नग्न स्त्री को आप देखते हैं। और आप कुछ भी करें, वह नॉन-वालेंटरी है। आपके हाथ में नहीं है मामला। आप कितना ही संयम साधें और कुछ भी करें, आप आंख की पुतली को बड़ा होने से नहीं रोक सकते। जब आप नग्न चित्र देखते हैं, तब आंख की पुतली तत्काल बड़ी हो जाती है। क्यों? क्योंकि आपके भीतर की आसक्ति पूरी तरह देखना चाहती है। तो आंख का जो लेंस है, बड़ा हो जाए, ताकि पूरा चित्र भीतर चला जाए।

और जब आंख की पुतली बड़ी हो जाती है, वही मेक्सकोली आपकी आंख में पांच मिनट देख कर करता है, वह एक नग्न स्त्री बिना आपकी तरफ देखे कर देती है। आंख की पुतली बड़ी हो जाती है, चित्र तत्काल भीतर

चला जाता है, जैसे कैमरे के लेंस से चित्र भीतर चला जाता है। उस स्त्री के साथ बिनाका टुथपेस्ट भी भीतर चला जाता है। यह कंडीशनिंग हो जाती है। अगर रोज-रोज यह होता रहे, तो जब भी आप सुंदर स्त्री के संबंध में सोचेंगे, आपके भीतर बिनाका भी आवाज लगाएगा, और एक दिन आप जब दुकान पर जाकर कहेंगे कि बिनाका टुथपेस्ट दे दें, तो आप बिनाका टुथपेस्ट नहीं मांग रहे हैं, आप अनजाने अचेतन मन से बिनाका के साथ जो स्मृति जुड़ गई है स्त्री की, वह मांग रहे हैं। यह सम्मोहन है। यह सम्मोहन हजार तरह से चलता है, चारों तरफ चलता है। और ऐसा नहीं कि कोई जानकर जब विज्ञापन से आपको सम्मोहित करता है, यह तो अब होश की बात हो गई, विज्ञापनदाता समझ गया है कि आपको कैसे पकड़ना है। मन के पकड़ने के नियम जाहिर हो गए हैं। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। नियम जाहिर नहीं थे, तब भी... आदमी वस्तुओं से सम्मोहित हो रहा था। हम सदा ही वस्तुओं से सम्मोहित होते रहे हैं। इस सम्मोहन का नाम मूर्च्छा है।

मूर्च्छा का अर्थ है: कोई वस्तु इस भांति आपको पकड़ ले कि मन में यह भाव पैदा हो जाए कि इसके बिना अब कोई सुख नहीं मिल सकता। महावीर कहते हैं, जिस आदमी को ऐसा भाव पैदा हो गया, उसको दुख मिलेगा। जब तक वस्तु न मिलेगी, तब तक लगेगा, इसके बिना सुख नहीं मिल सकता, और जब वस्तु मिल जाएगी तो... वस्तु के कारण नहीं दिखाई पड़ रहा था कि सुख मिलेगा कि नहीं मिलेगा, यह आपका सम्मोहन था। वस्तु के मिलते ही टूट जाएगा।

इसे ठीक से समझ लें।

सम्मोहन तभी तक रह सकता है, जब तक आपके हाथ में वस्तु न हो। आपको लगे कि कोहिनूर हीरा मेरे पास हो तो मैं जगत का सबसे बड़ा आदमी हो जाऊंगा, लेकिन जब तक आपके हाथ में कोहिनूर हीरा नहीं है, तभी तक यह सम्मोहन काम कर सकता है। कोहिनूर हीरा आपके हाथ में आ जाए, सम्मोहन नहीं बचेगा। क्योंकि कोहिनूर हीरा हाथ में आ जाएगा और सुख का कोई पता नहीं चलेगा। तो सम्मोहन तत्काल टूट जाएगा। सम्मोहन टूटेगा तो दुख शुरू हो जाएगा। और जितनी बड़ी अपेक्षा बांधी थी सुख की, उतने ही बड़े गर्त में दुख के गिर जाएंगे। अपेक्षा के अनुकूल दुख होता है, ठीक उसी अनुपात में। अगर आपने सोचा था कि कोहिनूर के मिलते ही मोक्ष मिल जाएगा तो फिर कोहिनूर के मिलते ही आपसे बड़ा दुखी आदमी दुनिया में दूसरा नहीं होगा। इसलिए धनी आदमी दुखी हो जाते हैं। गरीब आदमी इतना दुखी नहीं होता। यह जरा अजीब लगेगी मेरी बात।

गरीब आदमी कष्ट में होता है, दुख में नहीं होता। अमीर आदमी कष्ट में नहीं होता, दुख में होता है। कष्ट का मतलब है अभाव और दुख का मतलब है, भाव। कष्ट हम उस चीज से उठाते हैं, जो हमें नहीं मिली है और जिसमें हमें आशा है कि मिल जाए तो सुख मिलेगा। इसलिए गरीब आदमी हमेशा आशा में होता है, सुख मिलेगा, आज नहीं कल, कल नहीं परसों; इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में, मगर सुख मिलेगा। यह आशा उसके भीतर एक थिरकन बनी रहती है। कितना ही कष्ट हो, अभाव हो, वह झेल लेता है, इस आशा के सहारे कि आज है कष्ट, कल होगा सुख। आज को गुजार देना है। कल की आशा उसे खींचे लिए चली जाती है। फिर एक दिन वही आदमी अमीर हो जाता है।

अमीर का मतलब, जो-जो इसने सोचा था आशा में, वह सब हाथ में आ जाता है। इस जगत में इससे बड़ी कोई दुर्घटना नहीं है, जब आशा आपके हाथ में आ जाती है। तब तत्क्षण सब फ्रस्ट्रेशन हो जाता है, सब विषाद हो जाता है। क्योंकि इतनी आशाएं बांधी थीं, इतने लंबे-लंबे सपने देखे थे, वे सब तिरोहित हो जाते हैं। हाथ में कोहिनूर आ जाता है, सिर्फ पत्थर का एक टुकड़ा मालूम पड़ता है। सब आशाएं खो गईं। अब क्या होगा? अमीर आदमी इस दुख में पड़ जाता है कि अब क्या होगा? अब क्या करना है? कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती आगे।

धन बड़े विषाद में गिरा देता है; कष्ट में नहीं, दुख में गिरा देता है। इसलिए दुख जो है वह समृद्ध आदमी का लक्षण है, कष्ट जो है गरीब आदमी का लक्षण है। और कष्ट और दुख, भाषाकोश में भले ही उनका एक ही अर्थ लिखा हो, जीवन के कोष में बिल्कुल विपरीत अर्थ हैं। और मजा यह है कि कष्ट कभी इतना कष्टपूर्ण नहीं है, जितना दुख। क्योंकि दुख आंतरिक होता है और कष्ट बाहरी अभाव है। लेकिन भीतर आशा भरी रहती है

आपको पता नहीं है कि आप खोज रहे हैं कि ईश्वर का दर्शन हो जाए, ईश्वर का दर्शन हो जाए। हो जाए किसी दिन तो उससे बड़ा दुख फिर आपको कभी न होगा। अगर आपने सारी आशाएं इसी पर बांध रखी हैं कि ईश्वर का दर्शन हो जाए।

समझ लो कि किसी दिन ईश्वर आपसे मजाक कर दे--ऐसे वह कभी करता नहीं--और मोरमुकुट बांध कर, बांसुरी बजा कर आपके सामने खड़ा हो जाए, तो थोड़ी बहुत देर देखिएगा फिर! फिर क्या करिएगा? फिर करने को क्या है? फिर आप उससे कहेंगे कि आप तिरोधान हो जाओ, तब आप फिर पहले जैसे लुप्त हो जाओ ताकि हम खोजें।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि ईश्वर को खोजा मैंने बहुत-बहुत जन्मों तक। कभी किसी दूर तारे के किनारे उसकी झलक दिखाई पड़ी, लेकिन जब तक मैं अपनी धीमी सी गति से चलता-चलता वहां तक पहुंचा, तब तक वह दूर निकल गया था। कहीं और जा चुका था। कभी किसी सूरज के पास उसकी छाया दिखाई, और मैं जन्मों-जन्मों उसको खोजता रहा, खोज बड़ी आनंदपूर्ण थी। क्योंकि सदा वह दिखाई पड़ता था कि कहीं है।

फासला था। फासला पूरा हो सकता था। फिर एक दिन बड़ी मुश्किल हो गई। मैं उसके द्वार पर पहुंच गया। जहां तख्ती लगी थी कि भगवान यहीं रहता है। बड़ा चित्त प्रसन्न हुआ छलांग लगा कर सीढ़ियां चढ़ गया। हाथ में सांकल लेकर ठोंकने जाता ही था दरवाजे पर, पुराने किस्म का दरवाजा होगा, कालबेल नहीं रही होगी। रवींद्रनाथ ने कविता भी लिखी, उसको काफी समय हो गया। कालबेल होती तो वह मुश्किल में पड़ जाते क्योंकि वह एकदम से बज जाती।

सांकल हाथ में लेकर ठोंकने ही जाता था कि तभी मुझे ख्याल आया कि अगर आवाज मैंने कर दी और दरवाजा खुल गया और ईश्वर सामने खड़ा हो गया, फिर! फिर क्या करिएगा? फिर तो सब अंत हो गया, फिर तो मरण ही रह गया हाथ में, फिर कोई खोज न बची; क्योंकि कोई आशा न बची। फिर कोई भविष्य न बचा, क्योंकि कुछ पाने को न बचा।

ईश्वर को पाने के बाद और क्या पाइएगा? फिर मैं क्या करूंगा? फिर मेरा अस्तित्व क्या होगा? सारा अस्तित्व तो तनाव है, आशा का, आकांक्षा का, भविष्य का। जब कोई भविष्य नहीं, कोई आशा नहीं, कोई तनाव नहीं, फिर मैं क्या करूंगा? मेरे होने का क्या प्रयोजन है फिर? फिर मैं होऊंगा भी कैसे? वह तो होना बहुत बदतर हो जाएगा।

रवींद्रनाथ ने लिखा है, धीमे से छोड़ दी मैंने वह सांकल कि कहीं आवाज हो ही न जाए। पैर के जूते निकाल कर हाथ में ले लिए, कहीं सीढ़ियों से उतरते वक्त पग ध्वनि सुनाई न पड़ जाए। और जो मैं भागा हूं उस दरवाजे से, तो फिर मैंने लौट कर नहीं देखा। हालांकि अब मैं फिर ईश्वर को खोज रहा हूं, और मुझे पता है कि उसका घर कहां है। उस जगह को भर छोड़ कर सब जगह खोजता हूं।

बहुत मनोवैज्ञानिक है, सार्थक है बात, अर्थपूर्ण है। आप जहां-जहां सम्मोहन रखते हैं, सम्मोहन का अर्थ--जहां-जहां आप सोचते हैं, सुख छिपा है, वहां-वहां पहुंच कर दुखी होंगे। क्योंकि वह आपकी आशा थी, जगत का अस्तित्व नहीं था। वह जगत का आश्वासन न था, आपकी कामना थी, वह आपने ही सोचा था, वह आपने ही कल्पित किया था, वह सुख आपने आरोपित किया था। दूर-दूर रहना, उसके पास मत जाना, नहीं तो वह नष्ट हो जाएगा। जितने पास जाएंगे उतनी मुसीबत होने लगेगी।

इंद्रधनुष जैसा है सुख। पास जाएं, खो जाता है; दूर रहें, बहुत रंगीन।

महावीर कहते हैं इस मूर्च्छा को मैं परिग्रह कहता हूं। यह जो वस्तुओं में सुख रखने की और खोजने की चेष्टा है, इसे मूर्च्छा कहता हूं। पहले हम वस्तुओं में अपनी आत्मा को रख देते हैं, फिर उसको खोजने निकल जाते हैं। फिर जब वस्तु मिल जाती है तो आत्मा को पाते नहीं, ठीकरा वस्तु हाथ में रह जाती है। तब छाती पीट कर रोते हैं। थोड़ी बहुत देर रोना होता है, फिर तत्काल हम किसी दूसरी वस्तु में आत्मा को रख लेते हैं। वस्तुओं का कोई अंत नहीं, इसलिए जीवन की यात्रा का भी कोई अंत नहीं। चलती जाती है यात्रा। आज यहां, कल वहां।

पुरानी कहानियों में बच्चों की, आपने पढ़ा होगा कि सम्राट अपनी आत्मा को पक्षियों में छिपा देते। कोई तोते में अपनी आत्मा को रख देता है। जब तक तोता न मारा जाए, तब तक वह सम्राट नहीं मरता।

यह सम्राट रखते हों या न रखते हों, लेकिन यह कहानी बड़ी प्रतीकात्मक है। हम सब भी अपनी आत्मा को वस्तुओं में रख देते हैं, और जब तक हम उन वस्तुओं को पा न लें, तब तक जिंदगी बड़े मजे से चलती है। उन वस्तुओं को पाने से ही आत्मा उन वस्तुओं से खिसक जाती है। नष्ट हो जाती है। तब जिंदगी मुश्किल में पड़ जाती है।

यह जो मुसीबत है, यह एक आत्म-सम्मोहन, ऑटो-हिप्नोसिस का परिणाम है। इसको महावीर ने मूर्च्छा कहा है। कैसे इसे तोड़ें? वस्तुओं से कैसे मुक्त हों? इसका यह मतलब नहीं कि महावीर को प्यास लगेगी तो पानी नहीं पीएंगे। लेकिन महावीर पानी के प्रति मूर्च्छित नहीं हैं। वह ऐसा नहीं सोचते कि पानी पीने से प्यास मिट जाएगी। वह जानते हैं, प्यास तो फिर दो घड़ी बाद पैदा हो जाएगी। पानी प्यास को थोड़ी देर पोस्टपोन करता है। स्थगित करता है। वे नहीं सोचते कि खाना खाने से पेट भर जाएगा। खाना खाने से पेट का जो गैर भरापन है, वह थोड़ी देर के लिए सरक जाएगा। इसका यह मतलब नहीं है कि वे पेट को खाली रखते, या पानी नहीं पीते। वह पानी भी पीते हैं, पेट को जब जरूरत होती है भोजन भी देते हैं; लेकिन उनका कोई सम्मोहन नहीं है कि पानी स्वर्ग हो जाएगा, ऐसा उनका सम्मोहन नहीं।

हम सब ऐसी हालत में हैं, जैसे एक आदमी रेगिस्तान में पड़ा हो, प्यासा तड़प रहा हो। उस वक्त उसको ऐसा लगता है, अगर पानी मिल जाए, तो सब मिल गया। हमारी हालत ऐसी है कि हम सोच रहे हैं कि अगर पानी मिल जाए तो सब मिल गया।

एक मित्र एक राज्य के मिनिस्टर हैं। वे मेरे पास आते थे। वे मुझसे आकर बोले, मुझे सिर्फ नींद आ जाए तो मुझे स्वर्ग मिल गया। और कुछ नहीं चाहिए। मैं आपके पास न आत्मा जानने आया, न परमात्मा की खोज के लिए आया, मैं तो सिर्फ एक ही आशा से आया हूं कि मुझे नींद आ जाए, तो मुझे सब मिल गया। मैंने उन्हें कुछ श्वास के ध्यान के प्रयोग बताए और मैंने कहा वह तो मिल ही जाएगा, कोई तकलीफ नहीं है। उन्होंने कहा, बस, यह अगर मुझे मिल जाए तो मुझे और कुछ चाहिए भी नहीं।

यह रेगिस्तान में पड़े हुए आदमी की हालत है कि पानी मिल जाए तो सब मिल जाए, और आप सबको पानी मिला हुआ है। और कुछ नहीं मिलता पानी मिलने से। लेकिन रेगिस्तान में ऐसा लगता है कि पानी मिल जाए तो सब मिल जाए। रेगिस्तान पानी के प्रति इतना बड़ा सम्मोहन पैदा कर देता है कि वह पड़ा हुआ आदमी सोच भी नहीं सकता कि पानी के मिलने के बाद कुछ और भी दुनिया में पाने को चीज रह जाएगी।

उन मित्र ने कुछ दिन ध्यान का प्रयोग किया, उनको नींद आ गई। महीने भर बाद वे आए, और बोले, नींद तो आने लगी और कुछ भी नहीं हुआ।

मैंने, जब वह पहले आए थे तो टेप कर लिया था, जो-जो वह कह गए थे। मैंने टेप लगवाया और मैंने कहा, सुनिए। आप कहते थे, नींद मिल जाए तो सब मिल जाए। नींद मिल जाए तो न मुझे ईश्वर चाहिए, न आत्मा चाहिए। और अब जब नींद मिल गई तो आप कहते हैं, नींद तो मिल गई, और कुछ भी नहीं मिला।

उन्होंने मुझे धन्यवाद तक नहीं दिया। स्वर्ग वगैरह तो दूर, बल्कि मुझे उनकी बात सुन कर ऐसा लगा कि मुझसे कोई अपराध हो गया। उन्होंने कहा, नींद तो मिल गई, और कुछ भी नहीं मिला। वह मुझसे शिकायत करने आए हैं, ऐसा उनका भाव लगा कि और कुछ भी नहीं मिला।

मैंने उनसे पूछा: और क्या चाहिए? जिस दिन वह भी मिल जाएगा, आप ऐसा ही आकर कहोगे, ईश्वर तो मिल गया, और कुछ भी नहीं मिला। वह और है क्या? वह और कब मिलेगा? वह और कहीं है नहीं, वह हटता हुआ क्षितिज है, होरीजन है। जो भी चीज मिल जाती है, वह उससे हट जाता है, वह आगे निकल जाता है। हम कहते हैं वह... वह और कुछ है नहीं। वह हमारा सम्मोहन है जो आगे खिसक जाता है।

हम वस्तुओं में नहीं जीते, हम उस और के सम्मोहन में जीते हैं। वह मिल जाए, तो सब मिल जाए। जब वह मिल जाता है, तो हमारा और, और आगे सरक जाता है। आकाश छूता दिखता है जमीन को, उसे हम क्षितिज कहते हैं। कहीं छूता नहीं आकाश जमीन को, लेकिन दिखता है छूता हुआ। आंख से ही देखने से कुछ सच नहीं होता दुनिया में। लोग कहते हैं, हम तो प्रत्यक्ष को मानते हैं। वह आकाश छूता दिखाई पड़ता है प्रत्यक्ष, जमीन को। आंखें भी बड़ा धोखा देती हैं। जाएं, खोजने उस क्षितिज को। आगे बढ़ेंगे, क्षितिज भी आगे बढ़ता जाएगा। लेकिन कहीं भी खड़े रहें, आगे आकाश छूता हुआ दिखाई पड़ता रहेगा। वह है और, क्षितिज, कहीं छूता नहीं। कहीं भी मनुष्य की वासना तृप्ति को नहीं छूती। कहीं आकाश पृथ्वी को नहीं छूता। वासना आगे बढ़ती है, तृप्ति आगे हट जाती है--और। और यह और कभी भी नहीं मिलता।

इसे महावीर मूर्च्छा कहते हैं। मूर्च्छा परिग्रह है। वस्तुओं का होना नहीं, वस्तुओं में स्वर्ग का दिखाई देना। मकान का होना परिग्रह नहीं है; लेकिन मकान में अगर किसी को मोक्ष दिखाई पड़ रहा है, परमात्मा, तो परिग्रह है। धन परिग्रह नहीं है, लेकिन धन में अगर किसी को दिखाई पड़ रहा है परमात्मा, तो परिग्रह है। धन, धन है, मगर बड़े मजे के लोग हैं हम सब। या तो हम कहते हैं, धन परमात्मा है, या हम कहते हैं, धन मिट्टी है। लेकिन, धन, धन है, ऐसा कोई कहनेवाला नहीं मिलता।

धन सिर्फ धन है; न मिट्टी, न परमात्मा। या तो हम शिखर पर रखते हैं, वह भी झूठ है। और जब हम झूठ से परेशान हो जाते हैं, तो हम दूसरा झूठ पैदा करते हैं कि धन मिट्टी है। धन मिट्टी भी नहीं है। धन सिर्फ धन है। वस्तुएं जो हैं, वही हैं, लेकिन हम कुछ न कुछ करेंगे। या तो स्वर्ग से जोड़ेंगे, या नरक से जोड़ेंगे। हम नरक से क्यों जोड़ना चाहते हैं? स्वर से जोड़-जोड़ कर जब हम ऊब जाते हैं और कोई स्वर्ग नहीं पाते, तो क्रोध में हम नरक से जोड़ना शुरू कर देते हैं। जिसको हम पहले कहते थे स्वर्ग, वह जब नहीं मिलता तो हम अपने को समझाने के लिए कहने लगते हैं, वह तो नरक है, पाने योग्य नहीं है। पहले हम धन में कहते थे, मिल जाएगा सब कुछ; अब हम कहते हैं, धन में क्या रखा है? हाथ का मैल है, मिट्टी है। मगर यह भी तरकीब है मन की। धन सिर्फ धन है। धन का मतलब है, वह विनिमय का साधन है।

मिट्टी विनिमय का साधन नहीं है। उससे चीजें बदली जा सकती हैं, मिट्टी से नहीं बदली जा सकतीं। वह चीजों के बदलने का उपयोगी माध्यम है। ठीक है, उतना काफी है। उससे ज्यादा आशा रखना गलत है। वह ज्यादा आशा जब हार जाती है, तो हम नीचे गिराकर देखना शुरू करते हैं। हम दूसरी अति पर हट जाते हैं। एक अति से दूसरी अति पर जाना बहुत आसान है, लेकिन वस्तु के सत्य पर रुक जाना बहुत कठिन है।

धन सिर्फ धन है, उपयोगी है। न उसमें स्वर्ग है, न उसमें नरक है। हां, जो उसमें स्वर्ग देखेगा, उसे उसमें नरक मिलेगा। जो उसमें नरक देखने की कोशिश कर रहा है, उसके भीतर कहीं न कहीं, अभी भी उसमें स्वर्ग दिखाई पड़ रहा है। जो वही देख लेता है, जो धन है, उतना जितना है, उसकी मूर्च्छा टूट गई।

महावीर का अति जोर सम्यक बोध पर है, राइट अंडरस्टैंडिंग पर है। हर चीज को, वह जैसी है वैसा ही जान लेना। इंच भर अपने मन को न जोड़ना। इंच भर अपनी आकांक्षाएं, आशाओं को स्थापित न करना। जो जितना है, जैसा है उतना ही जान लेना अपने प्रोजेक्शन, अपने प्रक्षेप संयुक्त न करना। लेकिन हम नहीं बच सकते। किसी को हम कहेंगे सुंदर है, किसी को हम कहेंगे कुरूप है, किसी को हम कहेंगे मित्र है, किसी को हम कहेंगे शत्रु है। और जब हम यह वक्तव्य देते हैं, तब हमने आकांक्षाएं जोड़नी शुरू कर दीं।

मित्र जब आप किसी को कहते हैं, तो क्या मतलब है आपका? आपका मतलब कै कि इससे कुछ अपेक्षाएं पूरी हो सकती हैं। मित्र है, मुसीबत में काम पड़ेगा। मित्र है, इससे हम आशा रख सकते हैं कि कल ऐसा करेगा। शत्रु से भी आपकी आशाएं हैं कि वह क्या-क्या करेगा। विपरीत आशाएं हैं। आप में बाधा डालेगा, लेकिन आपने कुछ जोड़ दीं आशाएं।

जब आपने किसी को कहा मित्र, तो आपने आशाएं जोड़ लीं, जब आपने किसी को कहा शत्रु, तो आपने आशाएं जोड़ लीं। आप सम्मोहन के जगत में प्रवेश कर गए। जब आपने अ को अ कहा, ब को ब कहा, न मित्र को मित्र कहा, न शत्रु को शत्रु कहा। जब आपने जो है, उतना ही जाना, उसमें कुछ अपनी तरफ से भविष्य न जोड़ा तो आप मूर्च्छा के बाहर हो गए।

मूर्च्छा के बाहर होने की विधि के तीन सूत्र--

एक--वस्तुओं को उनके तथ्य में देखना, आशाओं में नहीं।

दो--वस्तुओं को कभी भी साध्य न समझना, साधन।

तीन--स्वयं की मालिकियत कभी भी वस्तुओं के मरुस्थल में न खो जाए, इसके लिए सचेत रहना।

"सामग्रियों में आसक्ति, ममता, मूर्च्छा रखना ही परिग्रह है, ऐसा उन महर्षि ने बताया है। संग्रह करना, यह अंदर रहने वाले लोभ की झलक है।"

बाहर हम जो भी करते हैं, वह भीतर की झलक है। बाहर का हमारा सारा व्यवहार हमारे अंतः का फैलाव है। आप बाहर जो भी करते हैं, वह आपके भीतर की खबर देता है। जरा सी भी बात आप बाहर करते हैं, वह भीतर की खबर देता है। आप बैठे हैं, या बैठे-बैठे टांग भी हिला रहे हैं कुर्सी पर तो वह आपके भीतर की खबर दे रहा है। क्योंकि टांग ऐसे नहीं मिलती, उसे हिलाना पड़ता है। आप हिला रहे हैं। आपको पता भी न हो, और पता हो जाए तो तत्काल टांग रुक जाए। इस वक्त किसी की भी टांग नहीं हिल रही होगी। तत्काल रुक जाए। लेकिन हिल रही थी, और आपको पता चला तो रुक भी गई। इसका मतलब क्या हुआ, आपके भीतर बहुत-कुछ चल रहा है, जिसका आपको पता नहीं। और आपके भीतर बहुत-कुछ हो रहा है जो बाहर भी प्रकट हो रहा है, लेकिन आपको पता नहीं।

इसलिए बड़े मजे की घटना घटती है। दूसरों के दोष हमें जल्दी दिखाई पड़ जाते हैं, अपने दोष मुश्किल से दिखाई पड़ते हैं; क्योंकि खुद के दोष अचेतन चलते रहते हैं। ऐसा कोई जान कर नहीं करता कि अपने दोष नहीं देखना चाहता, लेकिन खुद के दोष इतने अचेतन हो गए होते हैं, इतने हम आदी हो गए होते हैं कि दिखाई नहीं पड़ते। दूसरे के तत्काल दिखाई पड़ जाते हैं। क्योंकि दूसरा सामने खड़ा होता है। फिर अपने दोषों के साथ हमारे लगाव होते हैं, मूर्च्छाएं होती हैं, अंधापन होता है। दूसरे के दोष के प्रति हम बिल्कुल निरीक्षक, शुद्ध निरीक्षक होते हैं।

इसलिए ध्यान रखना, आपके संबंध में दूसरे जो कहें, उसे बहुत गौर से सोचना। जल्दी उसे इनकार मत कर देना। क्योंकि बहुत मौके ये हैं कि वे सही होंगे।

और आपके संबंध में आप जो मानते चले जाते हैं, उसको जल्दी स्वीकार मत कर लेना, बहुत कारण तो यह है कि वह सिर्फ आदतन है। आप ऐसा मानते रहे हैं। अपने संबंध में अपनी जो धारणा हो, उस पर बहुत

सोच-विचार करना, बहुत कठोरता से। और दूसरे आपके बाबत जो कहते हों, उस पर बहुत विनम्रता से, जल्दबाजी किए बिना सोच-विचार करना। अक्सर दूसरे सही पाए जाएंगे। आप गलत पाए जाओगे। क्योंकि आपको अपने होने का अधिक हिस्सा अचेतन है। आपको पता ही नहीं कि आप क्या कर रहे हैं।

यह जो हमारी स्थिती है, इसमें प्रतिपल हमारा जो भीतर है, भीतरी है, वह बाहर आ रहा है। हमारे द्वार पर उसकी झलक दिखाई पड़ती है।

एक आदमी संग्रह करता है। धन संग्रह करता है। इकट्ठा करता चला जाता है धन। धन मूल्यवान नहीं है बड़ा। धन न हो तो आप पोस्टल स्टैम्प इकट्ठा कर सकते हैं। उसमें कोई अड़चन नहीं पड़ती। यही काम हो जाएगा। सिगरेट की डिब्बियां इकट्ठी कर सकते हैं, वही काम हो जाएगा। कई दफा हमें लगता है कि बड़ी इनोसेंट हॉबी है किसी आदमी की, बड़ी निर्दोष। कि पोस्टल स्टैम्प इकट्ठा करता है। सवाल यह नहीं है कि आप क्या इकट्ठा करते हैं। भीतर कहीं कोई चीज खालीपन अनुभव कर रही है, उसको आप भरते चले जाते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि आप कुछ भी इकट्ठा मत करें। इसका कुल मतलब इतना है कि लोभ के कारण इकट्ठा मत करें।

जरूरत और लोभ में बड़ा फर्क है, आवश्यकता और लोभ में बड़ा फर्क है। बड़े मजे की बात है, लोभी अक्सर अपनी आवश्यकताएं पूरी नहीं कर पाता। क्योंकि लोभ के कारण आवश्यकता पूरी करने में भी जो खर्च करना है, वह उसकी हिम्मत के बाहर होता है। अक्सर ऐसा होता है कि एक धनी आदमी है, लेकिन अपनी बीमारी का इलाज नहीं करता; क्योंकि उसमें खर्च करना पड़े। वह खर्च करना उसे कठिन मालूम पड़ता है। तो यह तो हद्द हो गई। आवश्यकता के लिए धन उपयोगी हो सकता है, लेकिन इस आदमी के लिए आवश्यकता से कोई बड़ी चीज है, और वह है भीतर का गड्ढा, लोभ। वहां चीजें भरी होनी चाहिए, वहां जरा सी भी कोई चीज हट जाए तो उसे खालीपन लगता है। खालीपन में बेचैनी मालूम पड़ती है।

धनी अक्सर कंजूस हो जाते हैं, गरीब कंजूस नहीं होते। इसका मतलब यह नहीं कि अगर यह गरीब कल अमीर हो जाए तो कंजूस नहीं होगा। गरीब कंजूस नहीं होते इसका कुल कारण इतना है कि भीतर वैसे ही खाली हैं, थोड़ा बचाने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता। खाली तो रहेंगे ही, इसलिए गरीब आदमी सहज खर्च कर लेता है लेकिन अमीर आदमी को लगता है कि सब तो भर गया, जरा सा कोना खाली है। इसको भर लें तो तृप्ति हो जाए। वह कोना कभी नहीं भरता वह कोना बड़ा होता जाता है। वह कभी नहीं भरता, एक कोना सदा खाली रह जाता है। क्योंकि हम अपनी आत्मा वस्तुओं से भर नहीं सकते, सिर्फ धोखा दे सकते हैं भरने का। कोई वस्तु भीतर नहीं जाती, वस्तु तो बाहर रह जाती है। इसलिए भीतर के खालीपन को भर नहीं सकती।

लेकिन, यह भीतर का खालीपन, महावीर कहते हैं, लोभ है। जब एक आदमी बाहर संग्रह करता है तो वह इतनी खबर देता है कि भीतर खाली है। वह खालीपन गट्ढे की तरह पुकारता है, भरो। वह लोभ है। इस लोभ को हम हजार ढंग दे सकते हैं, इस लोभ को कोई आदमी धन से भर सकता है, कोई आदमी ज्ञान से भर सकता है, कोई आदमी त्याग से भर सकता है। बड़ा मुश्किल होगा मामला। क्योंकि हम त्यागी को कभी लोभी नहीं कहते।

लेकिन आपने चार उपवास किए, फिर सोचा की आठ कर लें तो पुण्य और ज्यादा होगा। तो यह लाभ है। चार करने वाला सोचता है कि अगले साल आठ कर लूं, तो क्या फर्क हुआ। चार लाख जिसके पास हैं, वह सोचता है अगले साल आठ लाख हो जाएं। गणित में कहां भेद है। इस वर्ष आपने इतनी तपश्चर्या की, सोचते हैं, अगले वर्ष दुगुनी कर लें। कहां भेद है? ज्यादा, और ज्यादा लोभ की मांग है। त्याग से भी लोभ अपने कि भर सकता है। धन से भी भर सकता है, ज्ञान से भी भर सकता है। और जान लूं, और जान लूं तो उससे भी भराव शुरू हो जाएगा।

महावीर कहते हैं, बाहर का संग्रह अंदर के लोभ की झलक है। संग्रह को छोड़ कर भाग जाने से लोभ नहीं मिटेगा।

आइने में आपका चेहरा दिखाई पड़ रहा है, कुरूप है, तो कुरूप दिखाई पड़ रहा है। एक डंडा उठा कर आईना तोड़ दें, झलक नदारद हो जाएगी; लेकिन आप नदारद नहीं हो जाएंगे। और आपका कुरूप चेहरा भी नदारद नहीं हो जाएगा। सिर्फ झलक नदारद हो जाएगी।

मेरे भीतर लोभ है, मैं धन इकट्ठा कर रहा हूं। धन दर्पण है। समझ मे आ गया मुझे कि धन का संग्रह लोभ है, धन छोड़ कर मैं भाग गया। दर्पण मैंने तोड़ दिया, मैं वही का वही हूं, झलक टूट गई। यह समझ लेना।

महावीर कहते हैं, लोभ की झलक है। झलक को तोड़ने से लोभ नहीं टूटेगा, सिर्फ झलक दिखाई पड़नी बंद हो जाएगी।

अब मैं भाग गया जंगल में। अब मैं तपश्चर्या कर रहा हूं, त्याग कर रहा हूं, और अब मैं त्याग का संग्रह कर रहा हूं। वह आदमी मैं वही हूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। घर छोड़ कर चला जाऊं आश्रम। घर के मुकदमें नहीं लड़ूंगा तो आश्रम के मुकदमें लड़ूंगा लेकिन अदालत जाऊंगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

मेरा मकान, मेरा बेटा, मेरी पत्नी, मेरा पति इनको छोड़ दूंगा तो कहूंगा, मेरा धर्म, मेरा शास्त्र, मेरा वेद, मेरे महावीर, मेरे बुद्ध, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वहां लकड़ियां उठ जाएंगी और सिर खुल जाएंगे।

एक मित्र मुझे मिलने आए थे; अभी थे। उनकी पत्नी धार्मिक है, जैसे कि धार्मिक लोग होते हैं तो मुझसे पूछने लगे कि यहां पास में कोई जैन मंदिर हो, तो मेरी पत्नी बिना नमस्कार किए भोजन नहीं करती। तो मैंने कहा यहां बहुत जैन मंदिर हैं। चले जाएं, जो भी जैन मंदिर मिले, नमस्कार करा दें। कोई बड़ी कठिन बात नहीं है, बंबई में। वे गए। एक मित्र को मैंने साथ कर दिया कि इनको किसी जैन मंदिर पहुंचा दें। उस बेचारे को क्या पता? कि जैन मंदिर में भी बड़े फर्क होते हैं। वे थे दिगंबर, वह ले गया श्वेतांबर। उसने बता दिया कि यह रहा मंदिर, आप अंदर जाकर नमस्कार कर लें। लेकिन वे देवी उदास होकर वहीं सीढ़ियों पर बैठ गई। उसने कहा यह हमारा मंदिर नहीं है। ये हमारे महावीर नहीं हैं। हमें तो दिगंबर मंदिर ले चलो। यह तो श्वेतांबर मंदिर है। वह सज्जन अब तक यही सोचते रहे थे बेचारे कि जैन मंदिर, यानी जैन मंदिर। उनको कभी ख्याल न था कि इसमें भी, महावीर में भी टाइप, प्रकार होते हैं।

उस स्त्री ने उस मंदिर में जाकर नमस्कार करने से इन्कार कर दिया। वे उनके महावीर नहीं हैं। ऐसे मंदिर हैं जैनियों के जहां सुबह दस बजे तक महावीर श्वेतांबर रहते हैं, दस बजे के बाद दिगंबर हो जाते हैं। तो दस बजे तक श्वेतांबर नमस्कार करते, दस के बाद दिगंबर नमस्कार करते।

आदमी गुड्डा-गुड्डियों के खेलों के ऊपर कभी नहीं उठ पाता, और इन पर मुकदमे चलते हैं। क्योंकि अगर दस से साढ़े दस बजे तक महावीर श्वेतांबर ही रह गए, तो वह जो दूसरे उपासक हैं, वे लट्टु लेकर खड़े हो जाते हैं। न मालूम कितने जैनियों के मंदिरों पर पुलिस ने ताला डाल रखा है, क्योंकि भक्त तय नहीं कर पाते। महावीर ताले में बंद हैं, क्योंकि भक्त तय नहीं कर पाते कि कैसे बाटें! कैसे आधा-आधा करें! फिर मेरे महावीर, और मेरे बुद्ध, और मेरे राम, और मेरे कृष्ण। मगर वह मेरा खड़ा रहता है, ममता खड़ी रहती है, मूर्च्छा खड़ी रहती है। आदमी झलक को तोड़ दे, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, जब तक आदमी अपने भीतर की स्थिति को न बदल लें।

दर्पणों को मिटाने से कोई भी सार नहीं। दर्पण बड़े मित्र हैं, झलक देते हैं, आपकी खबर देते हैं। अच्छा है, दर्पणों को रहने दें, लेकिन भीतर जो कुरूपता है, उसे मिटाएं। तो दर्पण, जिस दिन कुरूपता नहीं होगी भीतर, उस दिन बता देंगे कि अब आप सुंदर हो गए हैं। अब भीतर लोभ नहीं है।

धन छोड़ने से कोई प्रयोजन हल नहीं होता है, लोभ छोड़ने से प्रयोजन हल होता है। लोभ बड़ी अलग बात है और एक आंतरिक क्रांति है। लोभ कब छूटता है? लोभ है क्यों?

लोभ है इसलिए कि हम भीतर खाली हैं, अर्थहीन, एंटी, रिक्त, कुछ भी वहां नहीं है। इसलिए लोभ है। किसी भी चीज से भर दें, यह बात बुरी नहीं है, भरने की। कठिनाई इसलिए खड़ी हो जाती है कि जिन चीजों से हम भरने जाते हैं, वे भीतर जा नहीं सकतीं। क्या है जो भीतर जा सकता है? उसकी खोज करनी चाहिए। या कहीं ऐसा तो नहीं है कि भीतर हम खाली हैं ही नहीं। यह हमारा ख्याल ही है, और यह ख्याल इसलिए है कि हम भीतर कभी गए नहीं। हमने ठीक जांच पड़ताल न की। या यह ख्याल इसलिए है कि बाहर के जगत से खालीपन का जो अर्थ होता है भीतर के जगत में वहीं नहीं होता।

एक कमरा खाली है। लाओत्सु ने कहा है, एक कमरा खाली है, तो हम कहते हैं खाली है। लेकिन लाओत्सु कहता है, तुम ऐसा भी तो कह सकते हो कि कमरा अपने से भरा है, और कोई चीज से नहीं भरा, अपने से भरा है। तुम ऐसा भी कह सकते हो, कमरा खालीपन से भरा है। खालीपन भी एक भरावट है। लेकिन जो फर्नीचर को ही भरावट समझते हैं, उतको कमरा खाली दिखाई पड़ेगा। खाली दिखाई पड़ने का कारण यह नहीं कि कमरा खाली है, खाली दिखाई पड़ने का कारण यह है कि आपके भरेपन की परिभाषा। हमने अब तक चीजों को ही भरापन समझा है। आत्मा में कोई चीज नहीं है। इसलिए हमको आत्मा खाली दिखाई पड़ती है। फिर हम चीजों से ही भरते चले जाते हैं। फिर लोभ का पागलपन पैदा हो जाता है, कभी भराव पैदा नहीं होता।

महावीर कहते हैं कि भीतर जाकर जो देख ले, वह पाता है, आत्मा तो भरी ही हुई है। अपने से भरी है, किसी और से नहीं। जिस दिन उसका भरपन हमें पता चल जाता है, उस दिन लोभ तिरोहित हो जाता है। क्योंकि फिर भरने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जिस दिन लोभ हट जाता है, उस दिन संग्रह की पागल दौड़ समाप्त हो जाती है।

यह जो संग्रह करने की वृत्ति रखते हैं, ऐसे लोग गृहस्थ हैं, साधु नहीं, फिर यह वृत्ति कुछ भी हो। किस चीज का आप संग्रह करते हैं, इससे भेद नहीं पड़ता। आप संग्रह करते हैं, तो आप गृहस्थ हैं। अगर आप संग्रह नहीं करते हैं, तो आप साधु हैं। इसलिए साधु या गृहस्थ होना ऊपरी घटना नहीं है, बड़ी आंतरिक क्रांति है।

मैंने सुना है, एस्किमो परिवारों में एक रिवाज है। एक फ्रेंच यात्री जब पहली दफा एस्किमो ध्रुवीय देशों में गया, तो उसे कुछ पता नहीं था। बहुत गरीब हैं एस्किमो, गरीब से गरीब हैं, लेकिन शायद उनसे संपन्न आदमी पाना भी बहुत मुश्किल है। उस फ्रेंच लेखक ने लिखा है कि मैंने उनसे ज्यादा समृद्ध लोग नहीं देखे। पता उसे कैसे चला? जिस घर में भी वह ठहरा, फ्रेंच आदत का, उसे कुछ पता नहीं था कि यहां रिवाज क्या है, यहां का हिसाब क्या है? किसी एस्किमो से उसने कह दिया कि तुम्हारे जूते तो बहुत खूबसूरत हैं! उसने तत्काल जूते भेंट कर दिए। उसके पास दूसरी जोड़ी नहीं है। बर्फीली जगह है, नंगे पैर चलना जीवन को जोखिम में डालना है, लेकिन यह सवाल नहीं है।

दो-चार दिन बाद उसे बड़ी हैरानी हुई कि वह जिससे भी कुछ कह दे कि यह चीजे बड़ी अच्छी है, वह तत्काल भेंट कर देता है। तब उसे पता चला कि एस्किमो मानते हैं कि जो चीज किसी को पसंद आ गई, वह उसकी हो गई। उसने पूछा कि इसके मानने का कारण क्या है? तो जिस वृद्ध से उसने पूछा, उस वृद्ध ने कहा, इसके दो कारण हैं, एक तो चीजें किसी की नहीं हैं, चीजें हैं। दूसरा इसके मानने का कारण है कि जिसके पास है, उसके लिए तो अब व्यर्थ हो गई है। जिसके पास नहीं है, वह सम्मोहित हो रहा है। अगर उसे न मिले तो उसका सम्मोहन लंबा हो जाएगा, उसे तत्काल दे देनी जरूरी है ताकि उसका सम्मोहन टूट जाए। और तीसरा कारण यह है कि जिस चीज के हम मालिक हैं, उसकी मालिकियत का मौका ही तभी आता है, जब हम किसी को देते हैं। नहीं तो कोई मौका नहीं आता।

चीजों का होना, आपको गृहस्थ नहीं बनाता; चीजों का पकड़ना, क्लिंगिंग आपको गृहस्थ बनाता है। ये एस्कमो संन्यासी हैं, साधु हैं। जिसे हम साधु कहते हैं, अगर उसके भीतर हम झाँकें तो वहाँ संग्रह मौजूद रहता है। बना रहता है, तो फिर वह गृहस्थ है। बाहर से आप क्या हैं, यह बहुत मूल्य का नहीं है। भीतर से आप क्या हैं, यही मूल्य का है। लेकिन भीतर से आप क्या हैं, यह आपके अतिरिक्त कौन जानेगा? कैसे जानेगा? इसलिए सदा अपने भीतर पर एक आंख रखनी चाहिए निरीक्षण की, कि मैं भीतर क्या हूँ। चीज को पकड़ता हूँ? चीज मूल्यवान है बहुत? चीज न होगी तो मैं मर जाऊंगा, मिट जाऊंगा, मैं चीजों का एक जोड़ हूँ, तो मैं गृहस्थ हूँ। फिर भाग कर जंगल में जाने से कुछ भी न होगा। फिर इस गृहस्थ होने की भीतरी व्यवस्था को तोड़ना पड़ेगा।

संन्यासी होना एक आंतरिक क्रांति है। यह भीतर घटित हो जाए, तो फिर बाहर वस्तुएं हों या न हों, गौण है।

महावीर ने मूर्च्छा को परिग्रह कहा है, अमूर्च्छा को संन्यास कहा है। महावीर का सूत्र है--जो सोता है, वह असाधु है। सुत्ता अमुनि। जो जागता है--वह साधु है। असुत्ता मुनि! जो सोया नहीं है, जागा हुआ है, वह साधु है। भीतरी जागरण साधुता है, भीतरी बेहोशी असाधुता है।

आज इतना ही।

कीर्तन में सम्मिलित हों।

अरात्रि भोजनः शरीर-ऊर्जा का संतुलन (अरात्रि-भोजन-सूत्र)

अत्थंगयंमि आइज्जे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं, भणसा वि न पत्थए॥
पाणिवह-मुसावायाऽदत्त मेहुण-परिग्गहा विरओ।
राइभोयणविरओ, जीवो भवइ अणासवो॥

सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के बाद श्रेयार्थी को सभी प्रकार के भोजन-पान आदि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए। हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह और रात्रि-भोजन से जो जीव विरत रहता है, वह निराश्रव अर्थात् निर्दोष हो जाता है।

सूत्र से पहले एक प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: "पाने योग्य चीज को अधिकतर मात्रा में पाने की चेष्टा करना भी क्या लोभ है? अधिक धन प्राप्त करके अधिक दान करने को आप क्या कहेंगे?"

काम, क्रोधादि शत्रुओं में से आमतौर से लोभ के प्रति हमने थोड़ा अन्याय किया है। क्रोध और मोह जैसा संपूर्णतया अनिष्ट लोभ नहीं है। या तो लोभ को मैंने संपूर्णतया गलत समझा है। लोभ के संबंध में थोड़ी बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।

एक तो काम, क्रोध और मोह, लोभ के मुकाबले कुछ भी नहीं हैं। लोभ बहुत गहरी घटना है। छोटा बच्चा पैदा होता है, तब उसके भीतर काम नहीं होता, पर लोभ होता है। काम तो आएगा बाद में, लेकिन लोभ जन्म के साथ होता है।

क्रोध तो प्रासंगिक है। कभी परिस्थिति प्रतिकूल होती है तब उठता है। लेकिन परिस्थिति प्रतिकूल ही इसलिए मालूम पड़ती है कि लोभ भीतर है।

क्रोध लोभ का अनुसंग है। अगर भीतर लोभ न हो तो क्रोध नहीं होगा। जब आपके लोभ में कोई बाधा डालता है, इसलिए क्रोध पैदा होता है। जब आपके लोभ में कोई सहयोगी नहीं होता, विरोधी हो जाता है तब क्रोध पैदा होता है।

लोभ ही क्रोध के मूल में है। गहरे देखें, तो काम का विस्तार, वासना का विस्तार भी लोभ का ही विस्तार है। बायोलॉजिस्ट, जीवशास्त्री कहते हैं कि मनुष्य की मृत्यु व्यक्ति की तरह तो निश्चित है, लेकिन व्यक्ति मरना नहीं चाहता। अमरता भी एक लोभ है, मैं रहूँ सदा, मैं कभी मिट न जाऊँ। लेकिन इस शरीर को हम मिटते देखते हैं। अब तक कोई उपाय नहीं इस शरीर को बचाने का।

जीवशास्त्री कहते हैं, इसलिए मनुष्य कामवासना को पकड़ता है। मैं नहीं बचूँगा तो भी कोई हर्ज नहीं, मेरा कोई बचेगा। मेरा यह शरीर नष्ट हो जाएगा, लेकिन इस शरीर के जीवाणु किसी और में जीवित रहेंगे।

पुत्र की इच्छा, अमरता की ही इच्छा है। मेरा कोई हिस्सा जीता रहे, बना रहे--वह भी लोभ है।

काम, लोभ का विस्तार है। क्रोध और काम, लोभ के मार्ग में आ गए अवरोध से पैदा हुई वितृष्णा है। मोह--जहां-जहां लोभ रुक जाता है, उसका नाम है--जिस-जिस पर लोभ रुक जाता है।

समझ लें, क्रोध है बाधा, मोह है सहयोग। जो मेरे लोभ में बाधा डालता है, उस पर मुझे क्रोध आता है। जो मेरे लोभ में सहयोगी बनता है, उस पर मुझे मोह आता है। वह लगता है, मेरा है। उससे ममता जगती है।

इसलिए क्रोध, मोह और काम अत्यंत गहरे में ग्रीड, लोभ के ही विस्तार हैं। जिस व्यक्ति का लोभ गिर जाता है उसके ये तीनों, जिनको हम शत्रु कहते हैं, ये भी गिर जाते हैं।

लोभ के बिना क्रोध करिएगा कैसे? हां, यह हो सकता है कि क्रोध के बिना भी लोभ रहे। यह असंभव है कि लोभ के बिना कामवासना हो, लेकिन कामवासना के बिना भी लोभ हो सकता है। कैसे?

ब्रह्मचर्य में भी लोभ हो सकता है। और मैं, और ब्रह्मचारी, और ब्रह्मचारी, हो जाऊं, यह भी लोभ का हिस्सा हो सकता है।

आत्मा में भी लोभ हो सकता है और परमात्मा में भी लोभ हो सकता है। अकसर ऐसा होता है कि लोभी अपने लोभ के लिए, जब संसार हाथ से छूटने लगता है तो दूसरे लोभ की चीजों को पकड़ना शुरू कर देते हैं। जो यहां धन पकड़ता था, वहां धर्म को पकड़ने लगता है। लेकिन पकड़ वही है। लोभ का भाव वही है। संसार खो गया, कोई हर्ज नहीं, स्वर्ग न खो जाए। यहां यश न मिला, प्रतिष्ठा न मिली, कोई हर्ज नहीं, उस परलोक में भी कहीं आनंद न खो जाए, कहीं ऐसा न हो कि यह संसार तो खो ही गया दूसरा संसार भी खो जाए, यह लोभ पकड़ता है।

इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अधिक लोग बूढ़े होकर धार्मिक होने शुरू हो जाते हैं, लोभ के कारण। जवान आदमी से मौत जरा दूर होती है। अभी दूसरे लोक की इतनी चिंता नहीं होती। अभी आशा होती है कि यहीं पा लेंगे, जो पाने योग्य है। यहीं कर लेंगे इकट्ठा। लेकिन मौत जब करीब आने लगती है, हाथ-पैर शिथिल होने लगते हैं और संसार की पकड़ ढीली होने लगती है इंद्रियों की, तो भीतर का लोभ कहता है, यह संसार तो गया ही, अब दूसरे को मत छोड़ देना। "माया मिली न राम।" कहीं ऐसा न हो कि माया भी गई, राम भी गए। तो अब राम को जोर से पकड़ लो।

इसलिए बूढ़े लोग मंदिरों, मस्जिदों की तरफ यात्रा करने लगते हैं। तीर्थयात्रियों में देखें, बूढ़े लोग तीर्थ की यात्रा करने लगते हैं। ये वही लोग हैं जिन्होंने जवानी में तीर्थ के विपरीत यात्रा की है।

कार्ल गुस्ताव जुंग ने, इस सदी के बड़े से बड़े मनोचिकित्सक ने कहा है, कि मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्तियों में जिन लोगों की मैंने चिकित्सा की है, उनमें अधिकतम लोग चालीस वर्ष के ऊपर थे। और उनकी निरंतर चिकित्सा के बाद मेरा यह निष्कर्ष है कि उनकी बीमारी का एक ही कारण था कि पश्चिम में धर्म खो गया है। चालीस साल के बाद आदमी को धर्म की वैसी ही जरूरत है, जुंग ने कहा है, जैसे जवान आदमी को विवाह की। जवान को जैसे कामवासना चाहिए, वैसे बूढ़े को धर्म-वासना चाहिए। जुंग ने कहा है, अधिक लोगों कि परेशानी यह थी कि उनको धर्म नहीं मिल रहा है। इसलिए पूरब में कम लोग पागल होते हैं, पश्चिम में ज्यादा लोग। पूरब में जवान आदमी भला पागल हो जाए, बूढ़ा आदमी पागल नहीं होता। पश्चिम में जवान आदमी पागल नहीं होता, बूढ़ा आदमी पागल हो जाता है। जैसे-जैसे जवानी हटती है, वैसे-वैसे रिक्तता आती है। यौवन की वासना खो आती है और बुढ़ापे की वासना को कोई जगह नहीं मिलती। मन बेचैन और व्यथित हो जाता है।

हमारा बूढ़ा सोचता है आत्मा अमर है, आश्वासन होते हैं। हमारा बूढ़ा सोचता है, माला जप रहे हैं, राम नाम ले रहे हैं, स्वर्ग निश्चित है। सांत्वना मिलती है। पश्चिम के बूढ़े को कोई भी सांत्वना नहीं रही। पश्चिम का बूढ़ा बड़े कष्ट में है, बड़ी पीड़ा में है। सिवाय मौत के आगे कुछ भी देखाई नहीं पड़ता है उस पार।

उस पार लोभ को कोई मौका नहीं। जवानी के लोभ विषय खो गए और बुढ़ापे के लोभ के लिए कोई ऑब्जेक्ट, कोई विषय नहीं मिल रहे। मौत का तो लोभ हो नहीं सकता अमरता का हो सकता है। बूढ़ा आदमी शरीर का क्या लोभ करेगा! शरीर तो खो रहा है, हाथ खिसक रहा है। तो शरीर के ऊपर, पार कोई चीज हो तो लोभ करे।

लोभ अदभुत है, विषय बदल ले सकता है। धन ही पर लोभ हो, ऐसा आवश्यक नहीं। लोभ किसी भी चीज पर हो सकता है। वासना छूट जाए काम की तो लोभ मोक्ष की वासना बन सकता है।

तो लोभ की गहराई हम समझ लें। क्यों, लोभ के साथ अन्याय नहीं हुआ है। जिन्होंने भी समझा है लोभ को, उन्होंने उसे मूल में पाया है। ग्रीड मूल है। तो लोभ शब्द से हमें समझ में नहीं आता, क्योंकि सुन-सुन कर हम बहरे हो गए हैं। इस शब्द में हमें बहुत ज्यादा दिखाई नहीं पड़ता।

लोभ का मतलब है कि भीतर मैं खाली हूं और मुझे अपने को भरना है। और यह खालीपन ऐसा है कि भरा नहीं जा सकता। यह खालीपन हमारा स्वभाव है, खाली होना हमारा स्वभाव है। भरने की वासना लोभ है इसलिए लोभ सदा असफल होगा। और कितना ही सफल हो जाए तो भी असफल रहेगा। हम अपने को भर न पाएंगे। हम चाहे धन से, चाहे पद से, यश से, ज्ञान से, त्याग से, व्रत से, नियम से, साधना से, इन सबसे भी भरते रहें तो भी अपने को भर न पाएंगे। वह भीतर विराट शून्य है।

उस विराट शून्य का नाम ही आत्मा है। तो जब तक कोई व्यक्ति सूना होने को राजी नहीं हो जाता, शून्य होने को, तब तक उस आत्मा का कोई दर्शन नहीं होता। और लोभ हमें शून्य नहीं होने देता, इसलिए लोभ को इतना मूल्य दिया है और इतना उससे छुटकारे की बात की है। लोभ हमें शून्य नहीं होने देता। और लोभ हमें भटकाए रखता है, दौड़ाए रखता है। और जब तक हम भीतर शून्य न हो जाएं, तब तक स्वयं का कोई साक्षात्कार नहीं है। क्योंकि शून्य होना ही स्वयं होना है।

जब तक मैं भरा हूं, मैं किसी और चीज से भरा हूं। इसे ठीक समझ लें।

भरने का मतलब ही किसी और चीज से भरे होना है। हम कहते हैं, बर्तन भरा है, बर्तन भरा है इसका मतलब है कि कुछ और इसमें पड़ा है। अगर बर्तन स्वयं है तो खाली होगा, भरा नहीं हो सकता। हम कहते हैं, मकान भरा है, उसका मतलब है, किसी और चीज से भरा है। अगर मकान स्वयं है तो खाली होगा, भरा नहीं हो सकता। हम कहते हैं, आकाश बादलों से भरा है। इसका मतलब है, बादल कुछ और है। जब बादल न होंगे, तब आकाश स्वयं होगा।

भराव सदा पराए से होता है, स्वयं का कोई भराव नहीं होता। जब भी आप स्वयं होंगे, शून्य होंगे और जब भी भरे होंगे किसी और से भरे होंगे। वह और धन हो, प्रेम हो, मित्र हो, शत्रु हो, संसार हो, मोक्ष हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बट द अदर, हमेशा दूसरा होगा। जिससे आप भरते हैं।

जिसको भरना है, वह दूसरे से भरेगा। जिसको खाली होना है, वही स्वयं हो सकता है। इसका मतलब हुआ कि लोभ स्वयं को भरने की आकांक्षा है। अलोभ, स्वयं के खालीपन में जीने का साहस है। इसलिए लोभ भयंकर है। लोभ ही हमारा संसार है। जब तक मैं सोचता हूं कि किसी चीज से अपने को भर लूं, जब तक मुझे ऐसा लगता है कि भरे बिना मैं चैन में नहीं हूं...।

आप अकेले में कभी चैन में नहीं होते। हर आदमी तलाश कर रहा है साथी की, मित्र की, क्लब की, सभा की, समाज की। हर आदमी खोज कर रहा है दूसरे की, अकेला होने को कोई भी राजी नहीं। अपने साथ किसी को भी चैन नहीं मिलता। और बड़े मजेदार हैं हम लोग। हम खुद अपने साथ चैन नहीं पाते और सोचते हैं, दूसरे हमारे साथ चैन पाएं। हम खुद अपने को अकेले में बरदाश्त नहीं कर पाते और हम सोचते हैं, दूसरे न केवल हमें बरदाश्त करें, बल्कि अहोभाव मानें। हम खुद अपने साथ रहने को राजी नहीं हैं, लेकिन हम चाहते हैं दूसरे समझें कि हमारा साथ उनके लिए स्वर्ग है।

अकेला आदमी भागता है जल्दी, किसी से मिलने को।

मार्क ट्वेन ने मजाक में एक बड़ी ब.ढिया बात कही है। मार्क ट्वेन बीमार था। किसी मित्र ने पूछा कि ट्वेन, तुम स्वर्ग जाना चाहोगे कि नरक? मार्क ट्वेन ने कहा कि इसी चिंतन में मैं भी पड़ा हूं। लेकिन बड़ी

दुविधा है, फॉर क्लाइमेट हेवेन इ.ज बेस्ट, बट फॉर कंपनी हैला। अगर सिर्फ स्वास्थ्य सुधार ही करना हो, मगर अकेला रहना पड़ेगा स्वर्ग में, आबोहवा तो बहुत अच्छी है वहां, लेकिन कंपनी बिल्कुल नहीं है।

महावीर स्वामी बगल में बैठे भी हों आपके, तो भी कंपनी नहीं हो सकती। कंपनी चाहिए तो नरक। वहां जानदार, रंगीले लोग हैं, वहां कंपनी है, वहां चर्चा है, मजाक है, बातचीत है।

उसने तो मजाक में ही कहा था, लेकिन बात में थोड़ी सच्चाई है, लेकिन इसे दूसरे पहलू से देखें तो यह मजाक गंभीर हो जाता है। असल में जो लोग भी भीतर नरक में हैं, वह हमेशा कंपनी की खोज में होते हैं। जो लोग भीतर खुद से दुखी हैं, वे साथी खोजते हैं। जो भीतर आनंदित है, वह अपना साथी काफी है, किसी और साथ की कोई जरूरत नहीं।

सुना है मैंने इकहार्ट के बाबत, ईसाई फकीर हुआ है। पश्चिम ने जो थोड़े से कीमती आदमी दिए हैं, महावीर और बुद्ध की हैसियत के, उनमें से एक। इकहार्ट अकेला बैठा है। एक मित्र रास्ते से गुजरता था। उसने सोचा, बेचारा अकेला बैठा है, ऊब गया होगा। वह मित्र आया और उसने कहा कि अकेले बैठे हो, मैंने सोचा जाता तो हूं जरूरी काम से, लेकिन थोड़ा तुम्हें साथ दे दूं, टु गिव यू कंपनी।

इकहार्ट ने कहा: हे परमात्मा! अब तक मैं अपने साथ था, तुमने आकर मुझे अकेला कर दिया। आई वॉ.ज अप टु नाउ विद मी, यू हैव मेड मी एलोन। अब तक मैं अपने साथ था, तुमने आकर मुझे अकेला कर दिया। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, कि तुम अपनी कंपनी कहीं और ले जाओ। तुम किसी और को साथ दो। हम अपने साथ में काफी हैं, पर्याप्त हैं।

जो अपने भीतर सोचता है, अपर्याप्त हूं, वह साथ खोजता है।

लोभ अपने भीतर से अतृप्ति है। लोभ का मतलब है, मैं अपने से राजी नहीं हूं। कुछ और चाहिए राजी होने के लिए। और जो अपने से राजी नहीं है उसे कुछ भी मिल जाए, वह कभी राजी नहीं हो सकता। क्योंकि कुछ भी मिल जाए, वह मुझसे दूर ही रहेगा मेरे निकट तो मैं ही हूं। कितनी ही सुंदर पत्नी खोज लूं, फासला रहेगा। और कितना ही अच्छा मकान बना लूं, फासला रहेगा। और कितना ही धन का अंबार लग जाए, फासला रहेगा। मेरे पास तो मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं आ सकता। मैं अपने साथ तो रहूंगा ही, धन हो कि गरीबी, साथी हो कि अकेलापन, मैं अपने साथ तो रहूंगा ही। और अगर मैं अपने से ही राजी नहीं हूं तो मैं जगत में कभी भी राजी नहीं हो सकता।

लोभ का मतलब है, अपने से राजी न होना। किसी और से राजी होने की कोशिश है लोभ। जब कोई इस कोशिश में सफलता दे देता है, तो मोह हो जाता है। तब हम कहते हैं, इसके बिना मैं नहीं जी सकता। यह है मोह। कहते हैं, अगर यह हट गया तो मेरी जिंदगी बेकार है, यह है मोह। फिर कोई बाधा डालता है और मेरी इस लोभ की खोज में अवरोध बन जाता है, तो क्रोध उठता है, मिटा डालूंगा इसे। जिससे मोह बनता है, उससे हम कहते हैं, अगर यह मिट जाए तो मैं जी न सकूंगा। और जिससे हमारा क्रोध बनता है, तो हम कहते हैं, जब तक यह है मैं जी न सकूंगा। इसे मिटा डालो।

मोह और क्रोध विपरीत पहलू हैं, एक ही घटना के। और यह जो लोभ है हमारे भीतर,

दूसरे की तलाश--इस दूसरे की तलाश में हमारी जो शक्तियों का नियोजन है, उसका नाम काम है, उसका नाम सेक्स है।

हमारे भीतर जो ऊर्जा है, जीवन की शक्ति है, जब यह शक्ति दूसरे की तलाश में निकल जाती है, तो काम बन जाती है। यह बड़े मजे की बात है, थोड़ी दुरूह भी। हमें ख्याल में नहीं आता है कि जब एक आदमी धन का

दीवाना होता है, तो धन की दीवानगी उसके लिए वैसे ही कामवासना होती है जैसे कोई किसी स्त्री का दीवाना हो। वह रुपये को हाथ में रख कर वैसे ही

देखता है, जैसे कोई सुंदर चेहरे को देखे। तिजोरी को वह वैसे ही प्रेम से खोलता है, जैसे कोई अपनी प्रेयसी को बिठाए। रात सपनों में प्रेयसी नहीं आती, तिजोरी आती है। यह धन जो है, इसके लिए सेक्स ऑब्जेक्ट है। यह धन साथ मैथुन-रत है। इसलिए जो आदमी धन का दीवाना होता है, वह किसी को प्रेम नहीं कर सकता। धन पर्याप्त है। इसलिए धन का दीवाना पत्नी को प्रेम नहीं कर सकता, बच्चों को प्रेम नहीं कर सकता। सभी प्रेम बड़े ईर्ष्यालु हैं। अगर धन से प्रेम हो गया तो धन दूसरे से प्रेम न होने देगा। प्रेम जेलस है। धन ने अगर पकड़ लिया तो फिर नहीं होने देगा।

फैराडे, एक वैज्ञानिक को कोई पूछता था कि तुमने विवाह क्यों नहीं किया? उसने कहा कि जिस दिन विज्ञान से विवाह कर लिया, उस दिन सौतेली पत्नी घर में लाने की हिम्मत फिर मैंने न जुटाई।

अक्सर, वैज्ञानिक हों, चित्रकार हों, कवि हों, संगीतज्ञ हों, पत्नी से बचते हैं। नहीं बचते तो पछताते हैं। पछताना पड़ेगा, क्योंकि दो पत्नियां!

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे पूछ रहा था कि पिताजी कानून ने दो विवाह पर रोक क्यों लगा रखी है? तो नसरुद्दीन ने कहा, जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते, कानून को उनकी रक्षा करनी पड़ती है। जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते, कानून को उनकी रक्षा करनी पड़ती है। एक ही पत्नी काफी है। मगर आदमी कमजोर है, दो, चार, दस इकट्ठी कर ले सकता है। तो कानून को उसकी रक्षा करनी पड़ती है कि ऐसी भूल मत करना।

अक्सर, जिनको किसी खोज में लीन होना है, वे विवाह से बच जाते हैं। उसका और कोई कारण नहीं है, क्योंकि वह खोज ही उनके लिए सेक्स ऑब्जेक्ट है। जो संगीत का दीवाना है, उसके लिए संगीत प्रेयसी है। जो काव्य का दीवाना है, कविता उसकी प्रेयसी है। अब दूसरी पत्नी कठिनाई खड़ी कर देगी। और पत्नियां इसे भलीभांति जानती हैं। कभी-कभी ऐसी भूल-चूक हो जाती है कि कोई कवि शादी कर लेता है, तो पत्नी के बरदाश्त के बाहर होता है कि वह कविता लिखे बैठ कर, उसके सामने। पत्नी मौजूद हो और पति कविता लिखे, तो पत्नी छीन कर फेंक देगी उसकी कविता। वैज्ञानिकों के हाथ से उनके उपकरण छीन लिए हैं। दार्शनिकों के हाथ से उनके शास्त्र छीन लिए हैं। हमें हैरानी लगती है कि आखिर यह पत्नी को क्या हो रहा है! अगर सुकारात अपनी किताब पढ़ रहा है, तो यह झेनथिप्पे उसे किताब पढ़ने क्यों नहीं देती!

हमें लगता है कि पागल औरत है। पागल नहीं है वह। जाने अनजाने वह समझ गई है कि किताब ज्यादा महत्वपूर्ण है सुकारात के लिए पत्नी की बजाय। जब पत्नी मौजूद है, पति अखबार पढ़ रहा है तो बात साफ है कि वहां महत्वपूर्ण कौन है! कौन महत्वपूर्ण है यह बात साफ है। तो अगर पत्नी अखबार को छीन कर फाड़ कर फेंक देती है, तो पत्नी की अंतःप्रज्ञा उसको ठीक-ठीक दिशा दे रही है। वह ठीक समझ रही है।

जो व्यक्ति जिसमें लीन हो जाता है, वही उसके लिए काम-विषय हो जाता है। लीनता, काम-विषय का लक्षण है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपकी लीनता स्त्री और पुरुष के प्रति ही हो। आपकी लीनता किसी भी चीज के प्रति हो जाए, तो जो संबंध है वह काम का हो जाता है। लोभ काम की यात्रा पर निकल जाता है। फिर चाहे धन, चाहे यश, चाहे पुण्य, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

लोभ का एक लक्षण है, अपने से बाहर जाना। दूसरे की खोज। दूसरे के बिना जीना मुश्किल। दूसरा स्वयं से ज्यादा महत्वपूर्ण है। दूसरे की महिमा ज्यादा, स्वयं की महिमा गौण। और जिसकी स्वयं की महिमा गौण है वह कहीं भी भटके, भिखारी ही रहेगा। इसलिए लोभी सदा भिखारी है, सम्राट हो जाए तो भी। उसका भिक्षा-पात्र खाली ही रहता है। और फिर लोभ से पैदा होती हैं सारी संततियां--क्रोध की, मोह की। इसलिए लोभ को पाप का मूल कहा है।

मित्र ने पूछा है कि ज्यादा धन कमा कर ज्यादा दान?

धन से लोभ का संबंध नहीं है। दान से भी लोभ का संबंध नहीं है। ज्यादा-ज्यादा से संबंध है। ज्यादा धन कमाने वाला ज्यादा में अटका हुआ है। कल यह ज्यादा दान भी कर सकता, तब भी ज्यादा में ही अटका होगा।

दान अच्छा है, लेकिन प्रायश्चित की तरह। और उसका कोई विधायक मूल्य नहीं है। जैसे माफी मांगना अच्छा है, लेकिन इसका मतलब नहीं कि ऐसे उपाय करना चाहिए, जिससे माफी मांगनी पड़े। कि पहले गाली देनी चाहिए, फिर माफी मांग लेनी चाहिए। क्योंकि माफी मांगना बहुत अच्छा है। माफी मांगना अच्छा है, प्रायश्चित की तरह। माफी कोई पुण्य नहीं है। माफी केवल पाप का प्रायश्चित है। दान कोई पुण्य नहीं है, केवल जो इकट्ठा किया था धन, उसका प्रायश्चित है। दान की कोई विधायकता नहीं है, कोई पॉजिटिविटी नहीं है दान की। इसलिए जो लोग कहते हैं, खूब दान करो, अगर उसका मतलब यह है कि पहले खूब धन इकट्ठा करो, फिर दान करो तो यह तो गणित के साथ बहुत तरीकब होगी। पहले खूब पाप करो, फिर पुण्य करो।

एक पादरी स्कूल के बच्चों से पूछ रहा था। उसने बहुत समझाया था उनको कि मुक्ति के लिए क्या आवश्यकता है--सालवेशन के लिए, छुटकारे के लिए। समझाया था कि जीसस की प्रार्थना, पूजा, भगवान का स्मरण यह सब जरूरी है, जिसको मुक्त होना हो। फिर उसने सब समझाने के बाद पूछा कि मुक्त होने के लिए सबसे ज्यादा जरूरी चीज क्या है? एक छोटे से बच्चे ने हाथ उठाया, हाथ हिलाया। वह पादरी बहुत खुश हुआ। उसने पूछा, क्या है सबसे जरूरी चीज? उसने कहा, पाप करना।

जब तक पाप न करो, छूटना किससे है? छुटकारे का क्या अर्थ है? छुटकारे का लिए पाप करना पहली जरूरत है। दान के लिए पहले धन इकट्ठा करना। लेकिन यह जाल समझने जैसा है। जो आदमी ज्यादा धन इकट्ठा कर रहा है, वह दान कैसे कर पाएगा? जितना ज्यादा पर उसका जोर होगा, उतना ही छोड़ना मुश्किल होगा। क्योंकि ज्यादा को पकड़ने की आदत हो जाएगी। हां, वह दान कर सकता है, अगर ये दान इनवेस्टमेंट हो। अगर उसको यह पक्का भरोसा हो जाए कि जितना मैं देता हूं, उससे ज्यादा मुझे मिलेगा, तो वह दान कर सकता है। उसे पक्का हो जाए कि यहां देता हूं, स्वर्ग में मिलेगा।

आजकल लोग दान करने में उतने तत्पर नहीं दिखाई पड़ते, उसका कारण, स्वर्ग संदिग्ध हो गया है। और कोई कारण नहीं। उतना भरोसा नहीं रहा साफ-साफ कि है भी। अगर पुराने लोग दानी थे तो आप यह मत समझना कि आपसे कम लोभी थे। स्वर्ग सुनिश्चित था। उसमें कोई शक की बात ही न थी। यहां देना और वहां लेना। नगद था, उसमें कहीं कोई उधारी का मामला न था। अब सब गड़बड़ है। यहां हाथ से जाता हुआ नगद मालूम पड़ता है, वहा स्वर्ग का मिलता हुआ नगद नहीं है।

जिन्होंने दान किए हैं पुराने लोगों ने, लोभ के कारण ही किए हैं, लोभ के विपरीत नहीं। लोभ के विपरीत दान बड़ी और बात है। लोभ के कारण दान बड़ी और बात है। क्या फर्क होगा दोनों में? एक फर्क होगा। ज्यादा मौजूद नहीं होगा दान में। अगर यह लगता है कि ज्यादा दान करूं, तो क्यों लगता है, ताकि ज्यादा पा लूं? यह ज्यादा की दौड़ क्या है? यही दौड़ कल थी कि ज्यादा धन इकट्ठा करूं, अब यही दौड़ है कि ज्यादा दान करूं। क्यों? तुम ज्यादा के बिना क्यों नहीं हो सकते हो? यह ज्यादा--यह बुखार ज्यादा का आवश्यक नहीं है। और जब कोई व्यक्ति ज्यादा से मुक्त हो जाता है तो शांत हो जाता। तब लेभ शांत हो जाता है।

तो जिन्होंने वस्तुतः दान किया है, उन्होंने कुछ पाने के लिए दान नहीं किया है। वह सिर्फ प्रायश्चित है। जो व्यर्थ का इकट्ठा कर लिया था वह वापस लौटा दिया है। उससे आगे कोई पुण्य मिलने वाला नहीं है, पीछे के किए पाप का निपटारा है। वह सिर्फ हिसाब साफ कर लेना है, और कुछ भी नहीं।

मित्र ने पूछा है: "पाने योग्य चीज को अधिकतर मात्रा में पाने की चेष्टा में भी क्या लोभ है?"

असल में पाने योग्य क्या है? जो पाने योग्य है, वह भीतर पहले से ही मिला हुआ है। उसका कोई लोभ नहीं किया जा सकता। और जो भी हम पाने योग्य मानते हैं, वह पाने योग्य नहीं होता। लोभ पहले आ जाता है, इसलिए पाने योग्य मालूम पड़ता है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

हम कहते हैं, जो पाने योग्य है, उसके लोभ में क्या हर्ज है! लेकिन पाने योग्य वह होता ही इसलिए है कि लोभ ने उसे पकड़ लिया है। नहीं तो पाने योग्य नहीं होता। जो चीज आपको पाने योग्य लगती है, आपके पड़ोसी को पाने योग्य नहीं लगती। पड़ोसी का लोभ कहीं और है, आपका लोभ कहीं और है, यही फर्क है।

कोई चीज अपने आप में पाने योग्य नहीं है। जिस दिन आपका लोभ उस चीज से जुड़ जाता है, वह पाने योग्य दिखाई पड़ने लगती है। जब तक लोभ नहीं जुड़ा था, पाने योग्य नहीं थी। पाने योग्य का मतलब ही यह है कि लोभ जुड़ गया। तब तो एक वीसियस-सर्किल पैदा हो जाता है। लोभ पहले जुड़ गया, इसलिए चीज पाने योग्य मालूम पड़ती है। और फिर हम कहते हैं, जो पाने योग्य है, उसके लोभ में हर्ज क्या! यह लोभ जो दूसरा है, धोखा दे रहा है। इसके पहले ही लोभ आ गया।

ऐसा समझें तो आसान हो जाएगा। हम कहते हैं, सुंदर व्यक्ति पाने योग्य मालूम पड़ता है। लेकिन सुंदर ही क्यों मालूम पड़ता है? आप जब कहते हैं, फलां व्यक्ति सुंदर है तो आप सोचते हैं, सौंदर्य कोई गुण है जो वहां व्यक्ति में मौजूद है। लेकिन मनसविद कहते हैं, जिसको आप चाहते हैं, पाना चाहते हैं, वह आपको सुंदर दिखाई पड़ता है। यह तो हमारे अनुभव की बात है। क्योंकि जो आज हमें सुंदर दिखाई पड़ता है, जरूरी नहीं कि कल भी सुंदर दिखाई पड़े। जो हमें सुंदर दिखाई पड़ता है, हमारे मन की तरकीब हैं, हम कहते हैं, वह सुंदर है इसलिए हम पाना चाहते हैं। असलियत और है। हम पाना चाहते हैं, इसलिए वह सुंदर दिखाई पड़ता है। हमारी चाह पहले है। और जहां हमारी चाह जुड़ जाती है, वहीं सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। जहां हमारा लोभ जुड़ जाता है, वहीं पाने योग्य मालूम पड़ने लगता है।

पाने योग्य क्या है? पाने योग्य केवल वहीं है, जो मिला ही हुआ है। जिसे पाने की कोई जरूरत ही नहीं है। और जिसे भी पाने की जरूरत है, वह पाने योग्य नहीं है। यह कंट्राडिक्टरी मालूम पड़े, विरोधी मालूम पड़े। जो पाने योग्य मालूम पड़ता है वह पाने योग्य है ही नहीं, क्योंकि वह पराया है। उसे पाना पड़ेगा। और जिसे भी हम पा लेंगे, उसे छोड़ना पड़ेगा। संसार का इतना ही अर्थ है। कितना ही पाओ, छोड़ना पड़ेगा। सिर्फ एक चीज मुझसे नहीं छीनी जा सकती, वह मेरा होना है। उसे मैंने कभी पाया नहीं, वह मुझे मिला ही हुआ है, आलरेडी गिवेन। जब भी मैंने जाना, वह मुझे मिला हुआ है। उसे मैंने कभी पाया नहीं। बाकी आपने जो भी चीजें पा ली हैं, वह सब छिन जाएंगी।

जो पाया जाता है, वह छिन जाता है, क्योंकि वह हमारा नहीं है। इसलिए तो पाना पड़ता है। एक दिन छिन जाता है। जो हमारा नहीं है वह हमारा नहीं हो सकता। जो मेरा है, उसे मैंने कभी पाया ही नहीं। वह मैं ही हूं।

इसलिए धर्म की दृष्टि में पाने योग्य सिर्फ एक बात है, और वह है स्वयं का स्वरूप। उसको हम आत्मा कहें, परमात्मा कहें, मोक्ष कहें--यह शब्दों का भेद है। बाकी कोई भी चीज पाने योग्य नहीं है।

लोभ दिखाता है, यह पाने योग्य है, यह पाने योग्य है, यह पाने योग्य है। लोभ दिखा देता है, वासना दौड़ पड़ती है। सफलता मिल जाती है, मोह बन जाता है। असफलता मिल जाती है, क्रोध बन जाता है। इसलिए लोभ अधर्म का मूल है।

अब सूत्र।

"सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के बाद श्रेयार्थी को सभी प्रकार के भोजन, पान आदि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए।"

इस संबंध में थोड़ा विचारणीय है। क्योंकि महावीर को मानने वालों ने इस सूत्र को बुरी तरह विकृत कर दिया। जैनों की धारणा केवल इतनी ही रह गई कि रात्रि में भोजन करने से हिंसा होती है, इसलिए नहीं करना चाहिए। यह बड़ा गौण हिस्सा है। यह मूल हिस्सा नहीं है। और अगर यही सच है तो रात्रि में भोजन करने में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। क्योंकि महावीर के वक्त में न बिजली थी, न प्रकाश था, न कुछ था। आज भी गांव के देहात में लोग अंधेरे में रात भोजन करते हैं। अगर इसीलिए महावीर ने कहा था कि रात्रि भोजन करने में कभी कोई कीड़ा है, करकट है, छोटा पतंगा है किड़ा, कोई भोजन में गिर जाए, गिर जाता है। दिन में गिर जाता है तो रात में तो बहुत आसान है। और अंधेरे में भोजन, या छोटे-मोटे दीये के प्रकाश में भोजन--अगर महावीर ने इसलिए कहा था, जैसा कि जैन साधु समझते रहते हैं कि रात्रि में भोजन करने से हिंसा होती है, अगर महावीर ने इसलिए कहा था, तो अब इस सूत्र की कोई सार्थकता नहीं है। अब तो बिजली का प्रकाश है जो दिन से भी ज्यादा हो सकता है। अब तो कोई इसमें अड़चन नहीं है। अगर यही कारण है, तब तो यह परिस्थितिगत बात थी और अब इसका कोई मूल्य नहीं रह जाता है। लेकिन, यही कारण नहीं है और इसका मूल्य कायम रहेगा।

इसके मूल्य को हम समझें।

सूर्योदय के साथ ही जीवन फैलता है। सुबह होती है, सोए हुए पक्षी जग जाते हैं, फूल खिलने लगते हैं, पक्षी गीत गाने लगते हैं, आकाश में उड़ान शुरू हो जाती है। सारा जीवन फैलने लगता है। सूर्योदय का अर्थ है, सिर्फ सूरज का निकलना नहीं, जीवन का जागना जीवन का फैलना। सूर्यास्त का अर्थ है सिकुड़ना, विश्राम में लीन हो जाना।

दिन जागरण है, रात्रि निद्रा है। दिन फैलाव है, रात्रि विश्राम है। दिन श्रम है, रात्रि श्रम से वापस लौट जाना है। सूर्योदय की इस घटना को समझ लें तो ख्याल में आएगा कि रात्रि-भोजन के लिए महावीर का निषेध क्यों है? क्योंकि भोजन है जीवन का फैलाव। तो सूर्योदय के साथ तो भोजन की सार्थकता है। शक्ति की जरूरत है। लेकिन सूर्यास्त के बाद भोजन की जरा भी आवश्यकता नहीं है। सूर्यास्त के बाद किया गया भोजन बाधा बनेगा, सिकुड़ाव में, विश्राम में। क्योंकि भोजन भी एक श्रम है।

आप भोजन ले लेते हैं, तो आप सोचते हैं, काम समाप्त हो गया। गले के नीचे भोजन गया तो आप समझे कि काम समाप्त हो गया। गले तक को काम शुरू ही नहीं होता, गले के नीचे ही काम शुरू होता है। शरीर श्रम में लीन होता है। भोजन देने का अर्थ है, शरीर को भीतरी श्रम में लगा देना। भोजन देने का अर्थ है कि अब शरीर का रोयां-रोयां इसको पचाने में लग जाएगा।

तो अगर आपकी निद्रा क्षीण हो गई है, अगर रात विश्राम नहीं मिलता, नींद नहीं मालूम पड़ती, स्वप्न ही स्वप्न मालूम पड़ते हैं, करवट ही करवट बदलनी पड़ती है, उसमें से अस्सी प्रतिशत कारण तो शरीर को दिया गया काम है जो रात में नहीं दिया जाना चाहिए। तो एक तो भोजन देने का अर्थ है, शरीर को श्रम देना। लेकिन सूरज जब उगता है तो आक्सीजन की, प्राणवायु की मात्रा बढ़ती है। प्राणवायु जरूरी है श्रम को करने के लिए। जब रात्रि आती है, सूर्य डूब जाता है तो प्राण वायु का औसत गिर जाता है हवा में। जीवन को अब कोई जरूरत नहीं है। कार्बन-डाइआक्साइड का, कार्बन द्वि औषद की मात्रा बढ़ जाती है जो विश्राम के लिए जरूरी है। जान कर आप हैरान होंगे कि आक्सीजन जरूरी है भोजन पचाने के लिए। कार्बन द्वि औषध के साथ भोजन मुश्किल से पचेगा।

मनोवैज्ञानिक अब कहते हैं कि हमारे अधिकतर दुख स्वप्नों का कारण हमारे पेट में पड़ा हुआ भोजन है। हमारी निद्रा की जो अस्त-व्यस्तता है, अराजकता है, उसका कारण पेट में पड़ा हुआ भोजन है। आपके सपने अधिक मात्रा में आपके भोजन से पैदा हुए हैं। आपका पेट परेशान है। काम में लीन है। दिन भर चुक गया। काम

का समय बीत गया और अब भी आपका पेट काम में लीन है। बाकी हम तो अदभुत लोग हैं। हमारा असली भोजन तो रात में होता है, बाकी तो दिन भर हम काम चला लेते हैं। जो असली भोजन है, बड़ा भोजन डिनर, वह हम रात में लेते हैं। उससे ज्यादा दुष्टता शरीर के साथ दूसरी नहीं हो सकती।

इसलिए अगर महावीर ने रात्रि भोजन को हिंसा कहा है तो मैं कहता हूं, कीड़े-मकोड़ों के मरने के कारण नहीं, अपने साथ हिंसा के कारण आत्म-हिंसा है। आप अपने शरीर के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं। एक-अवैज्ञानिक है। भोजन की जरूरत है सुबह, सूर्य के उगने के साथ। जीवन की आवश्यकता है, शक्ति की आवश्यकता है। श्रम होगा, शक्ति चाहिए। विश्राम होगा शक्ति नहीं चाहिए। पेट सांझ होते-होते, होते-होते मुक्त हो जाए भोजन से, तो रात्रि शांत होगी, मौन होगी, गहरी होगी। निद्रा एक सुख होगी और सुबह आप ताजे उठेंगे। रात्रि भर भी आपके पेट को श्रम करना पड़े तो सुपह आप थके मांदे उठेंगे।

इसके और भी गहरे कारण हैं। आपने ख्याल किया होगा, जैसे ही पेट में भोजन पड़ जाता है, वैसे ही आपका मस्तिष्क ढीला हो जाता है। इसलिए भोजन के बाद नींद सताने लगती है। लगता है लेट जाओ। लेट जाने का मतलब यह है कि कुछ मत करो अब। क्यों? क्योंकि सारी ऊर्जा शरीर की पेट को पचाने के लिए दौड़ जाती है। मस्तिष्क बहुत दूर है पेट से। जैसे ही पेट में भोजन पड़ता है, मस्तिष्क की सारी ऊर्जा पेट में पचाने को आ जाती है। ये वैज्ञानिक तथ्य हैं। इसलिए आंख झपकने लगती है और नींद मालूम होने लगती है। इसलिए उपवासे आदमी को रात में नींद नहीं आती। दिन भर उपवास किया हो तो रात में नींद नहीं आती। क्योंकि सारी ऊर्जा मस्तिष्क की तरफ दौड़ती रहती है तो नींद नहीं आ पाती। इसलिए, जैसे ही आप पेट भर लेते हैं तत्काल नींद मालूम होने लगती है। यह भरे पेट में नींद इसलिए मालूम होती है कि मस्तिष्क को जो ऊर्जा दी गई थी, वह पेट ने वापस ले ली।

पेट जड़ है। पेट पहली जरूरत है। मस्तिष्क विलास है, लक्जरी है। जब पेट के पास ज्यादा ऊर्जा होती है तब वह मस्तिष्क को दे देता है। नहीं तो पेट में ही ऊर्जा घूमती रहती है।

महावीर ने कहा है, दिन है श्रम, रात्रि है विश्राम, ध्यान भी है विश्राम। इसलिए पूरी रात्रि ध्यान बन सकती है, अगर थोड़ा सा शरीर के साथ समझ का उपयोग किया जाए। अगर रात्रि पेट में भोजन पड़ा है तो रात्रि ध्यान नहीं बन सकती, निद्रा ही रह जाएगी। निद्रा भी उखड़ी-उखड़ी, गहरी नहीं।

आदमी साठ साल जीए तो बीस साल सोता है। बीस साल बड़ा लंबा वक्त है। और हम सारे लोग यह कहते सुने पाए जाते हैं, कब करें ध्यान? समय नहीं है। महावीर कहते हैं, यह बीस साल ध्यान में बदले जा सकते हैं। यह जो रात्रि की निद्रा है, जब आप कुछ भी नहीं कर सकते, तब ध्यान किया जा सकता है।

ध्यान श्रम नहीं है, ध्यान विश्राम है। इसलिए ध्यान का नींद से बड़ा गहरा संबंध है। और नींद ध्यान में रूपांतरित हो जाती है। लेकिन नींद, ध्यान में तभी रूपांतरित हो सकती है, जब पेट ऊर्जा न मांग रहा हो। जब पेट मांग न कर रहा हो, कि शक्ति मुझे चाहिए पचाने के लिए। जब पेट शांत हो, पेट की कोई मांग न हो, ऊर्जा मस्तिष्क में हो। इस ऊर्जा को ध्यान में बदला जा सकता है। अगर इसको ध्यान में बदला जाए तो नींद को तोड़ने वाली हो जाएगी जो कि आम उपवास करने वाले की होती है। अगर यह ध्यान में बदल जाए, यह ऊर्जा तो नींद को बाधा नहीं देगी। नींद अपने तल पर चलती रहेगी, और एक नया आयाम, एक नया डाइमेंशन ऊर्जा का शुरू हो जाएगा, ध्यान।

कृष्ण ने कहा है, कि योगी रात सो कर भी सोता नहीं। महावीर ने भी कहा है, शरीर ही सोता है, चेतना नहीं सोती। यह एक भीतरी कीमिया है। अब इस कीमिया के तीन हिस्से हुए--अगर ऊर्जा पेट में जाए तो मस्तिष्क में जाती नहीं, पहली बात। अगर ऊर्जा मस्तिष्क में जाए और ध्यान न बनाई जाए तो नींद असंभव हो जाएगी। इसलिए तीसरी बात, ऊर्जा पेट में न जाए, मस्तिष्क में जाए और मस्तिष्क में ध्यान की यात्रा पर निकल जाए और तो मस्तिष्क सो सकेगा और ऊर्जा ध्यान बन जाएगी। इसलिए योगी रात में सोता नहीं।

इसका यह मतलब नहीं है कि योगी का शरीर नहीं सोता, शरीर भलीभांति सोता है। आपसे ज्यादा अच्छी तरह सोता है। शायद योगी ही इस अर्थ में ठीक से सोता है। लेकिन फिर भी सोता नहीं, भीतर कोई जागता रहता है। वह जो ऊर्जा पेट के काम नहीं आ रही है, वह जो ऊर्जा मस्तिष्क के काम नहीं आ रही है, वही ऊर्जा बूंद-बूंद ध्यान में टपकती रहती है। और भीतर एक ज्योति जागरण की जगनी शुरू हो जाती है। रात्रि से ज्यादा सम्यक अवसर ध्यान के लिए दूसरा नहीं है। इसलिए महावीर ने कहा है कि रात्रि-भोजन नहीं।

जैन साधुओं को सुन कर बातें बहुत बचकानी लगती हैं। उनकी बातें सुनकर ऐसा लगता है, कि ये ऑब्सेस्ड हैं, इनका ऐसा दिमाग खराब है। रात्रि-भोजन नहीं। और रात्रि-भोजन नहीं, इसको ऐसा बना लिया है कि जैसे इसके बिना मोक्ष न हो सकेगा। तो बात बड़ी टुच्ची मालूम पड़ती है। कहां मोक्ष, कहां रात्रि-भोजन से जोड़ रहे हो। ऐसा लगता है कि रात्रि-भोजन छोड़ दिया तो मुक्ति हो गई। इतना सस्ता! कि रात्रि-भोजन छोड़ दिया तो मुक्ति हो गई?

न, इसमें बीच के सूत्र खो गए हैं, जिनकी वजह से अड़चन है। बीच की सीढ़ियां खो गई हैं। सीढ़ी है--रात्रि सबसे ज्यादा सम्यक अवसर है ध्यान के लिए, अनेक कारणों से। पहला: समस्त अस्तित्व विश्राम में चला जाता है, सूर्य के डूबते ही अस्तित्व विश्राम में चला जाता है। मगर हम उलटे लोग हैं। हमने सब कुछ उलटा कर रखा है। सूर्य के डूबते ही अस्तित्व विश्राम में चला जाता है, हमें भी विश्राम में जाना चाहिए, हमें सूरज के साथ यात्रा करनी चाहिए। शरीर भी विश्राम में जाना चाहिए, मन भी विश्राम में जाना चाहिए। मन के विश्राम का नाम ध्यान है। शरीर के विश्राम का नाम निद्रा है। आपका मन अगर विश्राम में नहीं जाता है तो आप ध्यान में नहीं जा सकते। लेकिन जिनका शरीर ही विश्राम में नहीं जाता, उनका मन कैसे विश्राम में जा सकेगा।

इसलिए महावीर ने कहा, रात्रि-भोजन बिल्कुल नहीं। इसका रात्रि से संबंध नहीं है, इसका आपसे संबंध है, ध्यान से संबंध है।

अब मैं जैनों को देखता हूं, रात्रि-भोजन बिल्कुल नहीं, इसलिए शाम को वह ठूंस-ठूंस कर खा लेते हैं। देखते जाते हैं कि सूरज तो नहीं डूब रहा और ज्यादा खाते जाते हैं।

एक घर में मैं ठहरा हुआ था। जो मेरे अतिथेय थे, मेजमान थे, वे मेरे साथ खाना खाने बैठे। कमरे के भीतर अंधेरा उतरने लगा। उन्होंने जल्दी से अपनी थाली ली और कहा कि मैं बाहर जाकर भोजन करता हूं। मैंने पूछा, क्या हुआ? उन्होंने कहा, बाहर अभी जरा रोशनी है, दिन है। कमरे से वे बाहर चले गए, वहां उन्होंने जल्दी-जल्दी भोजन कर लिया।

बड़े मजे की बात है, कभी-कभी हम सूत्रों का पालन करने में सूत्रों का जो मूल है, उसकी हत्या कर देते हैं। जिस आदमी ने जल्दी-जल्दी भोजन किया है, उसकी रात बड़ी बचैन गुजरेगी। क्योंकि जल्दी-जल्दी भोजन का मतलब है कि कचरे की तरह पेट में भोजन डाल दिया गया, बिना चबाए। पेट को ज्यादा अड़चन होगी इसे पचाने में। इससे तो बेहतर था कि अंधेरे में बैठ कर ठीक से चबा लिया होता, क्योंकि पेट के पास दांत नहीं हैं। दांत का काम मुंह में ही हो सकता है। फिर पेट में नहीं होगा। और फिर पेट को इसे पचाने में अथक कष्ट झेलना पड़ेगा, रात्रि और मुश्किल हो जाएगी।

लेकिन समझ हाथ में न हो, सूत्र हो, तो ऐसे ही अंधापन पैदा होता है। फिर चूंकि रात भर भोजन नहीं करना है, इसलिए खूब कर लेना है! रात पानी नहीं पीना है, इसलिए सूरज डूबते-डूबते खूब पानी पी लेना है! यह हत्या हो गई मूल सूत्र की। लेकिन यह होगी, क्योंकि हमारा कुल ख्याल इतना है कि रात्रि-भोजन छूट गया तो सब कुछ मिल गया। उसके पीछे के पूरे विज्ञान का कोई बोध नहीं है।

रात्रि-भोजन जिसे छोड़ना हो, उसे पूरी जीवनचर्या बदलनी पड़ेगी। इतना आसान नहीं है रात्रि-भोजन छोड़ देना। रात्रि-भोजन तो कोई भी छोड़ सकता है, लेकिन पूरी जीवनचर्या बदलनी पड़ेगी।

महावीर ने तो साधक के लिए एक बार भोजन को कहा है। क्योंकि एक बार भोजन लिया गया हो तो उसके पचने में छह और आठ घंटे लगते हैं। इसलिए दोपहर में अगर ग्यारह बजे भोजन ले लिया तो ही रात्रि-भोजन से बचा जा सकता है, नहीं तो नहीं बचा जा सकता। इसका मतलब यह हुआ कि ग्यारह बजे जो भोजन लिया है, वह सूरज के डूबते-डूबते पच जाएगा। पेट में नहीं रह जाएगा, पचने की कोई क्रिया जारी नहीं रहेगी। अब यह साधक रात में बिना भोजन के सो सकता है। लेकिन अगर सिर्फ इतनी ही मान्यता है, तो रात में नींद मुश्किल हो जाएगी। और जब नींद मुश्किल होगी, तो भोजन के बाबत ही चिंतन चलेगा। जो उपवास करता है रात भर भोजन करता है। भोजन का मजा लेना हो तो उपवास करना चाहिए। फिर ऐसा रस भोजन में आता है, जैसे कभी आया ही नहीं। ऐसी-ऐसी चीजें याद आती हैं, जो कई जमाने हो गए, भूल गईं और बड़ा मन ताजा हो जाता है। अभी व्रत चलते हैं तो कई लोगों का मन भोजन के प्रति बड़ा ताजा हो जाएगा। आठ-दस दिन के बाद जब व्रत छूटेंगे, तब वह जेलखाने से छूटे हुए कैदियों के भांति अपने चौकों में प्रवेश कर जाएंगे। योजनाएं अभी से तैयार हो रही हैं उनके मन में कि क्या-क्या करना है।

महावीर आदमी को भोजन से छुड़ाना चाहते हैं। जैनों को जितना भोजन से बंधा मैं देखता हूं, किसी और को नहीं देखता--चौबीस घंटे भोजन! सूत्र की हत्या हो जाती है, समझ की कमी से।

भोजन महत्वपूर्ण नहीं है, न रात्रि महत्वपूर्ण है। शरीर की ऊर्जा का संतुलन, शरीर की ऊर्जा का रूपांतरण, वह अल्केमी, कीमिया महत्वपूर्ण है। महावीर निश्चित ही मनुष्य के शरीर में गहरे उतरे। कम लोग इतने गहरे गए हैं। उन्होंने ठीक जड़ पकड़ ली, कहां से जड़ें शुरू होती हैं। शरीर का काम शुरू होता है भोजन से, और शरीर चाहता है भोजन के पास रुके रहो, क्योंकि शरीर का काम भोजन से पूरा हो जाता है। उसकी और कोई जरूरत नहीं है। भोजन से जो ऊपर न उठ सके वह शरीर से भी ऊपर न उठ सकेगा। शरीर, यानी भोजन। आपका शरीर है क्या? भोजन का संग्रह है। आपने जो भोजन किया उसका, आपकी मां ने, आपके पिता ने जो भोजन किया, उसका, उनके माता-पिता ने जो भोजन किया उसका, आप भोजन का लंबा सार निचोड़ हैं, आपका शरीर जो है। इसलिए भोजन के प्रति इतना आकर्षण स्वाभाविक हैं, क्योंकि वह हमारे शरीर का मूल आधार है। उससे ही शरीर चल रहा है। अब सवाल यह है कि हमको शरीर को ही अगर चलाते रहना है तो बस भोजन करते रहना है, और भोजन निकालते रहना है, बस यह काम करते रहना है।

यूनान में लोग अपने भोजन की टेबल पर, जैसे आप सीकें रखते हैं दांत साफ करने के लिए, ऐसा पक्षियों के पंख रखते थे। भोजन कर लिया, फिर गले में पंख फिराया, वॉमिट कर दी, फिर भोजन कर लिया। तो मेहमान को अगर आपने दो-चार दफा उलटी न करवाई तो आपने ठीक स्वागत नहीं किया। तो मेहमान के लिए एक बड़ा पंखा पक्षी का रखते थे। और दो आदमी पास खड़े रहते थे जो जल्दी जब उसका भोजन, वह कहे, बस अब नहीं, तो जल्दी से वे बर्तन ले आएंगे, पंखा चला देंगे उसके गले में और वॉमिट करवा देंगे। नीरो ने, सम्राट नीरो ने दो डाक्टर रख छोड़े थे जो दिन में उसे आठ दफा उलटियां करवाते थे ताकि वह और भोजन कर सके।

मगर आप क्या कर रहे हैं? आप न पंखा चला रहे हैं गले में, न आप ने डाक्टर रख छोड़े हैं, लेकिन आप गलती में हैं। आप भी इतना ही कर रहे हैं कि डालो निकालो, डालो निकालो। आप सिर्फ एक यंत्र हैं, जिसमें भोजन डाला जाता है और निकाला जाता है। एक सर्कल है, जब निकल जाए तो फिर डाल लो, जब डल जाए तो निकलने की प्रतीक्षा करो।

आप जिंदगी भर भोजन डालने और निकालने का एक क्रम हैं। यही है जीवन! अगर इस ऊर्जा में से कुछ ऊर्जा मुक्त नहीं होती और ऊपर नहीं जाती, तो आपको शरीर के अतिरिक्त किसी चीज का कभी अनुभव नहीं होगा। इसलिए महावीर भोजन के शत्रु नहीं हैं, भोजन के दुश्मन नहीं हैं, जैसा उनके साधु हो गए हैं।

महावीर--केवल भोजन ही जीवन नहीं है, भोजन के पार जीवन का विस्तार है--इसके उदघाटक हैं। रात्रि भोजन नहीं, महावीर का बहुत आग्रह है। यह आग्रह इस बात की सूचना है कि यह मामला सिर्फ भोजन का नहीं है, यह कोई गहरी, भीतरी क्रांति का मामला है।

"सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के बाद श्रेयार्थी को सभी प्रकार के भोजन-पान आदि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए।"

यह भी जोड़ा है साथ, "मन से इच्छा नहीं करनी चाहिए।" आपने किया या नहीं किया यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना मन से इच्छा नहीं करनी चाहिए। तो मैं तो कहूंगा कि अगर कर लेने से मन की इच्छा मिटती हो तो कर लेना बेहतर। अगर न करने से मन की इच्छा बढ़ती हो तो खतरनाक है। अगर थोड़ा सा भोजन पेट में डालने से रात भर भोजन की, मन की वासना क्षीण हो जाती है तो बेहतर बजाय उपवासे रहने के और रात भर मन भोजन के आस-पास घूमने के। वह ज्यादा खतरनाक है।

महावीर कहते हैं कि रात्रि-भोजन तो करना नहीं है, और रात्रि मन में वासना भी न उठे भोजन की। यह कैसे होगा? यह हमें मुश्किल मालूम पड़ता है। भोजन न करें, यह कोई बड़ी कठिन बात नहीं है, कोई भी कर सकता है। थोड़ा जिद्दी स्वभाव हो तो और आसान मामला है। इसलिए अकसर जिद्दी बच्चे, अभी पर्युषण चलता है, तो जो बच्चे जिद्दी हैं वे भी उपवास कर लेंगे। उनके मां-बाप समझते हैं कि बच्चा बड़ा धार्मिक है। कुल कारण इतना है कि बच्चा उपद्रवी है और पीछे सताएगा। उसका मतलब यह है कि बच्चा, बच्चा नहीं है, जिद्दी है, अहंकारी है। और देखता है कि बड़े कर रहे हैं उपवास, तो हम भी कर के दिखा देते हैं। और जितना लोग समझाते हैं कि मत करो बेटे, तुम अभी छोटे हो, बड़े होकर करना, उतना उसका अहंकार मजबूत होता है कि अच्छा! छोटे हैं! करके दिखा देते हैं। वह करके दिखा देगा।

यह बच्चा आज नहीं कल उपद्रवी सिद्ध होने वाला है। जरूरी नहीं है कि साधु हो जाए उपद्रवी न हो। अधिक साधु तो उपद्रवी होते ही हैं। उपद्रव का मतलब ही इतना है कि यह अहंकार को रस मिलना शुरू हो गया।

आप भी थोड़े अहंकारी हों, तो बराबर भोजन छोड़ सकते हैं। भोजन में क्या अड़चन है? लेकिन मन की वासना कैसे छूटेगी! वह जो रात मन दौड़ेगा भोजन की तरफ, उसका क्या करिएगा? उसको कैसे रोकिएगा? उसको रोका नहीं जा सकता। मन दौड़ेगा ही। उसे जब तक आप मन की ऊर्जा को नई दिशा में प्रवाहित न कर दें, तब तक वह उन्हीं दिशाओं में दौड़ेगा जिसकी उसे आदत है। पेट कहेगा, भूख लगी है, तो मन पेट की तरफ दौड़ेगा। गला कहेगा, प्यास लगी है तो मन गले की तरफ दौड़ेगा। मन का काम ही यह है कि वह शरीर में कहां क्या हो रहा है, इससे आपको सूचित रखे।

एक ही हालत है कि मन किसी इतनी बड़ी चीज में नियोजित हो जाए कि उसे पता ही न चले कि पेट को भूख लगी है कि गले को प्यास लगी है। उसका नाम ही ध्यान है। तो उस दिशा में नियोजित हो जाए। इतना लीन हो जाए किसी और आयाम में कि शरीर भूल ही जाए। जब शरीर भूल जाए तो फिर प्यास नहीं लगती, फिर भूख नहीं लगती है।

भूख लगी है आपको। घर में आग लग गई, फिर भूख नहीं लगती। फिर पता ही नहीं चलता कि भूख लगी है। अभी बिल्कुल सुस्त होकर बैठते थे कि कदम नहीं उठाए उठता है और घर में आग लग गई है, आप ऐसे दौड़ रहें हैं जैसे गलती हो गई कि आपको ओलंपिक क्यों न भेजा! सारी ताकद लगा दी है आपने। मिल्खा सिंह अब आपसे जीत नहीं सकता दौड़ में। क्यों? ध्यान नियोजित हो गया। एकाग्र हो गया, मकान में आग लग गई, शरीर से हट गया। पूरे शरीर से हट गया। ध्यान का नियोजन बड़ी बात है।

मैंने सुना है मिल्खा सिंह के संबंध में। एक रात उसके घर में चोर घुसे। वह विश्व विजेता दौड़ाक। उसके घर में चोर घुसे। मिल्खा सिंह जोश में आ गया, चोरों के पीछे भागा। पुलिस स्टेशन पहुंच गया। जाकर इंस्पेक्टर को कहा कि चोर कहां हैं? मैं उनके ठीक पीछे था।

चोर तो वहां कोई थे नहीं। इंस्पेक्टर ने कहा: कहां के चोर? आप अकेले दौड़े चले आ रहे हैं।

मिलखा सिंह ने कहा: गलती हो गई, आई मस्ट हैव ओवर टेकन देम। रास्ते में मैं भूल गया कि चोरों का पीछा कर रहा हूं, मैं समझा दौड़ चल रही है।

आपका मस्तिष्क जहां नियोजित हो जाए, फिर सब भूल जाता है। चित्त एकाग्र हो जाए कहीं भी तो शेष सब विस्मृत हो जाता है। क्योंकि स्मरण के लिए चित्त का संस्पर्श जरूरी है। पैर में दर्द हो रहा है, तो चित्त पैर तक जाए तो ही पता चलता है। पेट में भूख लगी है, चित्त पेट तक जाए तो ही पता चलता है। पेट को कभी पता नहीं चलता है भूख लगने का। पता तो चित्त को चलता है लेकिन चित्त पेट तक जाए तो ही पता चलता है। अगर चित्त कहीं और चला जाए तो पेट तक नहीं जा सकता। घर में आग लगी है तो चित्त वहां चला गया। एक धारा में चित्त बह जाए तो शेष सारा जगत अनुपस्थित हो जाता है।

काशी के नरेश का आपरेशन हुआ पेट का, तो उसने कहा, मैं कोई दवा नहीं लूंगा। कोई जिंदगी भर दवा नहीं ली थी। नहीं लेने का ख्याल था कि शरीर में कुछ विजातीय रासायनिक द्रव्य नहीं डाल लें। लेकिन बिना दवा आपरेशन... आपरेशन होगा कैसे? बेहोश तो करना पड़ेगा। उसने कहा था कि नहीं, कोई जरूरत नहीं, बस मुझे गीता पढ़ने दी जाए। मैं गीता पढ़ता रहूंगा, तुम पेट का आपरेशन कर डालना।

डाक्टर बड़े चिंतित थे कि यह असंभव मामला दिखता है; गीता पढ़ने में इतना एकाग्र चित्त हो पाएगा? लेकिन कोई उपाय न था। मौत दोनों हालात में होने वाली थी। अगर नहीं आपरेशन करते हैं, तो सम्राट मरेगा। अगर करते हैं तो एक संभावना भी है शायद... इसलिए आपरेशन किया गया। और काशी नरेश गीता पढ़ते रहे और उनका पेट काटा जाता रहा। सी दिया गया, सब ठीक हो गया। यह पहला आपरेशन था, बड़ा आपरेशन था; पहला आपरेशन था, जो बिना किसी अनस्थेसिया के, बिना किसी बेहोशी की दवा के किया गया। डाक्टर तो चकित हो गए। उन्होंने कहा, यह तो चमत्कार है।

लेकिन नरेश ने कहा, कोई चमत्कार नहीं है। क्योंकि पेट तक मेरा जाना जरूरी है, तभी तो मुझे पता चले कि वहां दर्द हो रहा है। लेकिन मैं गीता की तरफ जा रहा हूं, तो फिर वहां नहीं जा सकता।

ध्यान की तरफ जाए बिना रात्रि-भोजन से बचने का कोई अर्थ नहीं है। उपवास का भी कोई अर्थ नहीं है। आप समझते हैं, उपवास और अनशन में यही फर्क है। अनशन का मतलब है, भूखे मर रहे हैं रात, सोच रहे हैं। अनशन उपवास नहीं है। उपवास शब्द का अर्थ होता है, आत्मा के निकट होना। उपवास--आत्मा के पास होना। आत्मा के पास होने का अर्थ ही ध्यान है।

तो जो ध्यान नहीं कर सकता, वह उपवास नहीं कर सकता। इसलिए मैं नहीं कहता कि उपवास की फिकर करो। पहले ध्यान की फिकर करो। ध्यान जिसे आता है उसका अनशन उपवास बन जाता है। जिसे ध्यान नहीं आता, उसका उपवास सिर्फ भूख हड़ताल है--अपने ही खिलाफ। उससे कोई आनंद उत्पन्न होने वाला नहीं है। इसलिए महावीर ने इतना जोर दिया है।

क्या करें? कैसे मन ध्यान बन जाए? कहां मन को ले जाएं? तो मन के धीरे-धीरे अभ्यास करने पड़ते हैं हटाने के। मन को धीरे-धीरे शरीर से हटाने का अभ्यास करना पड़ता है। कभी ऐसा थोड़ा सा प्रयोग करें तो ख्याल में आना शुरू हो जाएगा।

खड़े हैं, आंख बंद कर लें। बाएं पैर में मन ले जाएं, बाएं पैर के अंगूठे तक मन को जाने दें।

दाएं पैर को बिल्कुल भूल जाएं। सारी चेतना बाएं पैर में घूमने लगे। यह कठिन नहीं है। बाएं पैर में चेतना घूमने लगेगी। फिर हटा लें बाएं पैर से। फिर दाएं पैर में ले जाएं, बाएं पैर को बिल्कुल भूल जाएं। दाएं पैर में चेतना को घूमने दें। इसे हर अंग पर बदलें, तो आपको फौरन एक बात पता चल जाएगी की चेतना भी एक प्रवाह है आपके भीतर, और जहां आप ले जाना चाहते हैं वहां जा सकता है, और जहां से आप हटाना चाहते हैं वहां से हट सकता है। अभी आपने इसका कभी अभ्यास नहीं किया है, इसलिए ख्याल में नहीं है।

इसलिए शरीर जहां चाहता है, आपकी चेतना वहां चली जाती है। आप जहां चाहते हैं, वहां नहीं जाती। क्योंकि आपने उसका कोई अभ्यास नहीं किया। अभी भूख लगती है तो चेतना तत्काल पेट में चली जाती है। वह आपसे आज्ञा नहीं लेती कि मैं पेट की तरफ जाऊं। वह चली जाती है। आप कुछ कर नहीं पाते। क्योंकि आपने कभी यह अब तक सोचा ही नहीं कि चेतना का प्रवाह, मेरी इंटेन्शन, मेरी अभीप्सा पर निर्भर है। इसका थोड़ा प्रयोग करें।

रात बिस्तर पर पड़े हैं, सारी चेतना को पैर के अंगूठे में ले जाएं। सब तरफ से भूल जाएं, सिर्फ अंगूठे रह जाएं। ले जाएं, भीतर... भीतर... भीतर... अंगूठे में ठहर जाएं जाकर। जैसे आपकी आत्मा अंगूठे में ठहरी गई। बहुत लाभ होगा, नींद तत्काल आ जाएगी। क्योंकि मस्तिष्क से अंगूठा बहुत दूर है। जब चेतना सारी वहां पहुंच जाती है, मस्तिष्क खाली हो जाए, तो आप गहरी नींद में गिर जाएंगे।

चेतना को थोड़ा हटाना सीखें। आंख बंद कर लें। कहीं भी एक बिंदु पर चेतना को स्थिर करने की कोशिश करें, आप पाएंगे, जिस बिंदु पर चेतना को ले जाएंगे, वहीं प्रकाश पैदा हो जाएगा। आंख बंद कर लें, सोचें कि सारी चेतना हृदय पर आ गई, इंटेन्शनल, अभिप्राय से सारी चेतना को हृदय पर ले आए, हृदय की धड़कन ही केंद्र बन गई। आप अचानक पाएंगे, हृदय के पास धीमा सा प्रकाश होना शुरू हो गया।

चेतना को बदलने के ये प्रयोग करते रहें। कभी भी कर सकते हैं, इसमें कोई अड़चन नहीं है। कुर्सी पर खाली बैठे हैं, ट्रेन में, बस में, कार में बिल्कुल कर सकते हैं। कहीं कोई अलग समय निकालने की जरूरत नहीं है। धीरे-धीरे आपको लगेगा, आपकी मास्टरी हो गई। यह मास्टरी वैसी है जैसे की कोई कार की ड्राइविंग सीखता है। ऐसे ही चेतना की ड्राइविंग सीखनी पड़ती है।

एक आदमी साइकिल चलाना सीखता है। आप भी साइकिल चलाना जानते हैं, लेकिन अब तक कोई बता नहीं सका कि साइकिल कैसे चलाई जाती है। अभी तक तो नहीं बता सकता कोई। चलाकर बता सकते हैं आप, लेकिन कैसे चलाई जाती है, क्या है ट्रिंक, क्या है सीक्रेट? सीक्रेट सूक्ष्म है। अभ्यास से आ जाता है, लेकिन ख्याल में नहीं है।

साइकिल चलाना एक बड़ी दुर्लभ घटना है, क्योंकि पूरे समय ग्रेविटेशन आपको गिराने की कोशिश कर रहा है। जमीन आपको पटकने की कोशिश कर रही है। दो चक्के पर सीधे आप खड़े हैं, लेकिन प्रतिपल आप गति इतनी रख रहे हैं कि आपको इसके पहले कि इस जीमन पर ग्रेविटेशन गिराए, आप आगे हट गए। इसके पहले कि वहां का गुरुत्वाकर्षण आपको पटके, आप फिर आगे हट गए। गति और गुरुत्वाकर्षण के बीच में आप एक संतुलन बनाए हुए हैं। इसके पहले कि बाएं तरफ का गुरुत्वाकर्षण आपको गिराए, आप दाएं झुक गए। इसके पहले दाएं गिरें, बाएं झुक गए। एक गहन संतुलन साइकिल पर चल रहा है।

पहली दफे आप साइकिल क्यों नहीं चला पाते? बिठा दिया आपको, और धक्का दे दिया, चला लें! क्योंकि दुबारा भी कुछ ज्यादा नहीं करेंगे आप, अभी भी कर सकते हैं यही। लेकिन अभी भय है, बस। और पता नहीं कि क्या होगा। वह भय के कारण आप गिर जाते हैं। दो चार दफा गिरकर दो चार दफा धक्के खा कर अक्ल आ जाती है। चलाने लगते हैं।

चेतना एक भीतरी नियंत्रण है, एक संतुलन है। अपने शरीर में चेतना को गतिमान करना सीखें। एक तीन महीने निरंतर अभ्यास से आप समर्थ हो जाएंगे, जहां चेतना को ले जाना चाहें। अगर फिर आपके बाएं हाथ में दर्द हो रहा है, आप चेतना को दाएं हाथ में ले जाएं, दर्द विलीन हो जाएगा। आपके पैर में कांटा गड़ गया है, आप चेतना को पैर से हटा लें, सोख लें भीतर, कांटा विलीन हो जाएगा। जिस दिन आपको यह समझ आ जाए उसी दिन अनशन उपवास बन सकता है, उसके पहले नहीं। उसके पहले भूखे मरते रहें, उससे कुछ होनेवाला नहीं है। कुछ होने वाला नहीं है खुद को सताने में कुछ मजा आए तो आए, कोई जुलूस यात्रा वगैरह आपकी

निकाल दे तो बात अलग। नासमझ मिल जाते हैं, यात्रा निकालने वाले भी। उसका कारण है, ये सब म्युचुअल मामले हैं। कल वे ही नासमझी करेंगे तब आप उनकी यात्रा में सम्मिलित हो जाना।

आदमी इसीलिए यात्राओं में सम्मिलित हो जाता है कि कल अपनी निकली तो कोई सम्मिलित न होगा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपनी पत्नी से कह रहा है कि नहीं, आज मैं जाऊंगा ही नहीं। पत्नी ने कहा: क्या मामला है, कहां जाने की बात है? मुल्ला नसरुद्दीन के मित्र की पत्नी मर गई है। तो नसरुद्दीन कहता है, आज मैं नहीं जाऊंगा। पत्नी कहती है, क्या आप पागल हो गए हैं? जाना ही पड़ेगा।

नसरुद्दीन ने कहा: वह तीन दफे मौका दे चुका मुझे, तीन पत्नीयां मर चुकीं, मैंने उसे अब तक एक भी अवसर नहीं दिया। ऐसे बड़ी हीनता मालूम पड़ती है, कि चले हर बार। अब तक अपने ने कोई मौका ही नहीं दिया। और वह है कि दिए चला जा रहा है।"

म्युचुअल, पारस्परिक है सब लेन-देन। यहां सब लेन-देन का हिसाब है। यहां सारा खेल उस पर टिका हुआ है। तो नासमझ आपको मिल जाएंगे, आपके जुलूस में जाने को। क्योंकि वह भी आशा लगाए बैठे हैं कि कभी न कभी आप भी उनके जुलूस में आएंगे।

शायद इसमें कुछ रस आ जाए तो बात अलग, लेकिन आपका अनशन, अनशन ही रहेगा, उपवास नहीं बन सकता। उपवास तो एक भीतरी विज्ञान है। इस विज्ञान का पहला सूत्र है, चेतना को शरीर के अंगों में प्रवाहित करने की क्षमता, सचेतन, स्वेच्छा से। जब यह क्षमता आ जाती है तो फिर चेतना को शरीर के बाहर ले जाने की दूसरी प्रक्रिया है कि शरीर के, चेतना के बाहर ले जाना। जब शरीर के बाहर चेतना जाने लगती है तभी भूख, प्यास, दुख, पीड़ा का कोई पता नहीं चलता।

तो महावीर ने कहा है, इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। "हिंसा, असत्य चोरी, मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन से जो जीव विरत रहता है, वह निराश्रव, निर्दोष हो जाता है।"

निराश्रव महावीर का अपना शब्द है, और बड़ा कीमती है। आश्रव, महावीर कहते हैं उन द्वारों को, जिनसे हमारे भीतर बाहर से चीजें आती हैं। आश्रव यानी आना। निराश्रव, मतलब बाहर से हमारे भीतर अब कुछ भी नहीं आता। अब हम अपने में आसकाम, अब हम अपने में पूरे हैं। अब कोई मांग न रही बाहर से। अब सारा संसार भी इस क्षण खो जाए, बिल्कुल खो जाए, तो ऐसा ही लगेगा, एक स्वप्न समाप्त हुआ। इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा। इससे कोई भेद नहीं पड़ेगा।

निराश्रव अर्थ है कि बाहर से आने का जो भी यात्रा-पथ था, वह समाप्त हो गया। अब किसी यात्री को हम भीतर नहीं बुलाते। अब हमारे भीतर कोई भी नहीं आता। न धन, न प्रेम, न घृणा, न क्रोध, अब कुछ भी हम भीतर नहीं आने देते। न मित्र, न शत्रु, अब कोई हमारे भीतर प्रवेश नहीं करता। अब हम अपने में पूरे हैं। लेकिन, हम तो आश्रव में ही जाते हैं। हम पूरे वक्त बाहर से हमें कुछ चाहिए। उत्तेजना चाहिए पूरे वक्त बाहर से। ऐसा जैसे बाहर के सहारे ही हम जीते हैं भीतर भी।

एक आदमी आ जाता है और आपसे कह देता है, बड़े सुंदर हैं। चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, फूल खिल जाते हैं, पक्षी उड़ने लगते हैं भीतर। इसका रास्ता आप देख रहे थे कि कोई आकर कहे कि बड़े सुंदर हैं। लोगों की आंखों में आप खोजते रहते हैं कि लोग आपको सुंदर कह रहे हैं कि नहीं। अगर कोई आपकी तरफ ध्यान नहीं देता है, चित्त बड़ा उदास हो जाता है।

मैं एक यूनिवर्सिटी में था। वहां कुछ लड़कियां मुझे आकर शिकायत करती हैं कि किसी ने कंकड़ मार दिया, किसी ने धक्का मार दिया। मैंने उनसे कहा, मारने भी दो! अगर कोई धक्का न मारे और कोई कंकड़ न मारे, तो भी मुसीबत! तो भी चित्त उदास होता है। जिस लड़की को कोई कंकड़ नहीं मारता यूनिवर्सिटी में, उसका कष्ट आपको पता है? वह कष्ट, जिसको कंकड़ मारे जाते हैं उससे बहुत ज्यादा है। सच तो यह है कि जो लड़की

आकर मुझसे शिकायत की है कि फलां लड़के ने कंकड़ मारा, इसने कंकड़ मारा, उस प्रोफेसर तक ने मुझे धक्का दे दिया, वह असल में इसके कहने में रस भी ले रही है। उस रस का उसे पता नहीं है। भीतर उसे मजा भी आ रहा है।

इसलिए जब कोई आकर बताता है कि रास्ते में भीड़ बड़ी धक्का मारने लगी, तो उसकी आंखों में देखना, एक चमक है। अगर भीड़ धक्का न मारती, कोई देखता ही नहीं कि आप थे भी, कि आप थीं भी। तो उदासी चित्त को पकड़ लेती है। कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

हम पूरे समय बाहर से जी रहे हैं, बाहर कौन क्या कर रहा है। यह हमारा आश्रव चित्त है। इसमें हम सिर्फ बाहर के सहारे ही हमारा अस्तित्व है। सब सहारे खींच लो तो हम ऐसे गिर पड़ेंगे जैसे कि खेत में खड़ा हुआ झूठा पुतला गिर जाए। उसकी सब चीजें अलग कर लो। नास्तिक यही कहता है कि तुम्हारे भीतर कुछ है ही नहीं। जो बाहर से आया है, वही है। तुम भीतर कुछ भी नहीं हो, बाहर के जोड़ हो।

चार्वाक ने यही कहा है, यही उसका निवेदन है कि तुम बाहर ही के जोड़ हो। तुम्हारे शरीर में जो खून दौड़ रहा है वह बाहर से आया है। तुम्हारा जो अणु, तुम्हारा जो सेल बन गया है वह बाहर से आई है, तुम्हारी हड्डी-मांस-मज्जा सब बाहर से आई है। तुम जो भी वह सब बाहर से आया हुआ है। भीतर तुम कुछ भी नहीं हो, भीतर होने जैसी कोई बात ही नहीं है। देअर इ.ज नो इनरनेस, सब कुछ बाहर से आया हुआ। भीतर झूठा शब्द है। इसलिए चार्वाक कहता है, बाहर की सब चीजें अलग कर लो, तो भीतर कुछ नहीं बचता। हालत वैसी हो जाती है, जैसे प्याज के छिलके निकालते जाओ, आखिर में कुछ भी हाथ नहीं आता। प्याज हाथ में नहीं आती। प्याज छिलकों का जोड़ थी।

चार्वाक कहता है: तुम भी सिर्फ एक जोड़ हो बाहर के, सब हटा लो और तुम खो जाओगे, तुम्हारी आत्मा वगैरह कुछ भी नहीं है, सिर्फ एक जोड़ है, एक कंपाउंड।

महावीर इसके ही विपरीत हैं। वे कहते हैं, तुम भीतर भी कुछ हो, तुम्हारा भीतरी होना भी तत्व है। लेकिन इस भीतरी तत्व को तुम जानोगे कैसे? तुम तभी जान पाओगे जब तुम बाहर से सब लेना बंद कर दो। शरीर तो बाहर से लेगा ही। इसलिए महावीर कहते हैं, शरीर का कोई भीतरीपन नहीं है। शरीर का सब कुछ बाहरी है। मन भी बाहर से ही लेता है, इसलिए मन का भी कोई भीतरीपन नहीं है।

इसलिए महावीर कहते हैं, शरीर से ऊपर उठो, चेतना को हटा लो शरीर से पूरा। मन को जो-जो बाहर से मिलता है--विचार, क्रोध, लोभ, मोह--जो बाहर से प्रभावित करते हैं मन को आंदोलित करते हैं, मन को भी छोड़ दो। वहां से भी चेतना को हटा लो। तुम हटाए जाओ चेतना को उस समय तक जब तक कि तुम्हें कुछ भी दिखाई पड़े कि यह बाहरी है। उसे तोड़ते चले जाओ। इसको महावीर ने भेद-विज्ञान कहा है--दि साइंस ऑफ डिसक्रिमिनेशन। तुम अपने को तोड़ते चले जाओ उससे, जो भी पराया मालूम पड़ता है, बाहर से आया हुआ मालूम पड़ता है। हट जाओ उससे। एक दिन ऐसा आएगा कि बाहर से आया हुआ कुछ भी न बचेगा, तुम अनाश्रव हो जाओगे। तुम्हारे भीतर कुछ भी बाहर से आया न होगा। उसी दिन अगर तुम बचते हो तो समझना कि आत्मा है। अगर उस दिन नहीं बचते तो समझना कि कोई आत्मा नहीं है।

आदमी के भीतर अगर आत्मा है, तो उसे जानने का एक ही उपाय है कि हमें बाहर से जो भी मिला है, उसका त्याग कर दें; चेतना से त्याग कर दें, चेतना को हटा लें, दूर कर लें। जिस दिन मैं भीतर ही भीतर रह जाऊं और मैं कह सकूँ, यह मेरी मां से नहीं आया, मेरे पिता से नहीं आया, समाज से नहीं आया, शिक्षा से नहीं आया; यह किसी ने मुझे नहीं दिया। यह मेरा भीतरीपन है, यह मेरा अंतः है, उसी दिन समझना कि मैंने आत्मा पा ली।

अनाश्रव मार्ग है हटा देने का, जो बाहर से आया। हमें जोड़ हैं, बाहर के और भीतर के। चार्वाक या नास्तिक कहते हैं कि हम सिर्फ बाहर के जोड़ हैं। महावीर कहते हैं, हम बाहर और भीतर दोनों के जोड़ हैं। जो

बाहर से आया हुआ है, उसके संग्रह का नाम शरीर है, और जो बाहर से नहीं आया हुआ है उसका नाम आत्मा है। लेकिन इस आत्मा को खोजना पड़े क्योंकि हम बाहर में ही जी रहे हैं। हमें कोई पता नहीं है। हम कहते हैं, सुनते हैं, पढ़ते हैं आत्मा है। और यह शब्द कोरा आकाश में खो जाता है धुएं की तरह। इसका कोई बहुत अर्थ नहीं है। इसका अर्थ तो केवल उसी को हो सकता है जिसने अपने भीतर बाहर का सब छोड़ दिया चेतना से, हटा ली चेतना सब तरफ से, और उस बिंदु पर पहुंच कर खड़ा हो गया कि कह सके कि यह बाहर से आया हुआ नहीं है।

बुद्ध घर लौटे बारह वर्ष के बाद, तो पिता ने कहा कि माफ कर दे सकता हूं तुम्हें अभी भी। लौट आओ।

बुद्ध ने कहा कि आप थोड़ा गौर से मुझे देखें! मैं वही नहीं हूं जो आपके घर से गया था। जो आपके घर से गया था, वह केवल काया थी, बाहर का था। अब मैं उसे जान कर लौटा हूं जो भीतर का है, जो काया नहीं है। अब मैं और ही हूं।

लेकिन पिता क्रोध में थे, जैसा कि अक्सर पिता होते हैं। पिता, और पुत्र क्रोध में न हो, यह जरा असंभावना है।

असंभावना इसलिए है कि पिता की आकांक्षाएं पुत्र पर टिकी रहती हैं, और इस दुनिया में कौन किसकी आकांक्षा पूरी कर सकता है। अपनी ही आकांक्षा पूरी कोई नहीं कर पाता, दूसरे की कोई कैसे करेगा? पिता की सब आकांक्षाएं पुत्र पर टिकी रहती हैं, वह कोई पूरी नहीं होती। सभी पिता क्रोध में होते हैं। पिता होने का मतलब क्रोध में होना है। बचना मुश्किल है।

और जो भी पुत्र हुआ, उसे कुपुत्र होने की तैयारी रखनी ही चाहिए। कोई उपाय नहीं है। बुद्ध जैसा पुत्र भी पिता को लगता है, कुपुत्र!

बुद्ध के पिता ने कहा कि हमारे घर में कभी कोई भिक्षापात्र लेकर नहीं घूमा है। छोड़ो यह भिक्षापात्र, तुम सम्राट के बेटे हो। यह सारा राज्य तुम्हारा है। मत करो नष्ट मेरे वंश को। यह क्या लगा रखा है, हटाओ यह सब!

बुद्ध ने कहा: आप मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं। आप जरा क्रोध को कम करें, आंख को धुएं से मुक्त करें, देखें तो, कौन सामने खड़ा है। स्वभावतः पिता और नाराज हो गए होंगे। पिता ने कहा कि मैं तुम्हें नहीं पहचानता! मेरी हड्डी-मांस-मज्जा तू है। मेरा खून तेरी नसों में बह रहा है और मैं तुझे नहीं पहचानता?

बुद्ध ने कहा: जो हड्डी-मांस-मज्जा है, अगर मैं वही हूं तो आप मुझे भलीभांति पहचानते हैं। लेकिन अब मैं जान कर लौटा हूं कि वह मैं नहीं हूं। और मैं आपसे कहता हूं कि मैं आपके द्वारा पैदा हुआ जरूर, लेकिन आपसे पैदा नहीं हुआ हूं। आप एक रास्ते से ज्यादा नहीं थे जिससे मैं गुजरा। जो भी मुझमें दिखाई पड़ता है वह आपका है। लेकिन मेरे भीतर वह भी जो आपको दिखाई नहीं पड़ता, मुझे दिखाई पड़ता है। वह आपका नहीं है।

इस बिंदु का नाम आत्मा है। लेकिन यह अनाश्रव हुए बिना, इसका कोई अनुभव नहीं है।

इसलिए महावीर कहते हैं, जो अनाश्रव हो जाता है वह निर्दोष हो जाता है। सब दोष बाहर से आए हुए हैं। निर्दोषता भीतरी घटना है। सब दोष शरीर के संग के कारण हैं। यह महावीर निरंतर कहते हैं कि अगर हम एक नील-मणि को पानी में डाल दें, तो सारा पानी नीला हो जाता है। होता नहीं है, दिखाई पड़ने लगता है। नीला हो नहीं जाता। मणि को बाहर खींच लें, पानी का रंग खो जाता है। मणि को भीतर डाल दें, पानी फिर नीला हो जाता है। संग-दोष। इसको महावीर कहते हैं कि सिर्फ रंग साथ के कारण पानी नीला दिखाई पड़ने लगता है।

आत्मा पर कोई वस्तुतः दोष लगते नहीं। आत्मा कभी दोषी होती नहीं। आत्मा का होना निर्दोष है, वह इनोसेंस है ही, निर्दोषता है। लेकिन शरीर के संग साथ शरीर का रंग उस पर पड़ जाता है। शरीर की वजह से रंग उसको घेर लेते हैं। शरीर की वजह से लगता है, मेरी सीमा है। शरीर की वजह से लगता है, मैं बिमार हुआ।

शरीर की वजह से लगता है, भूख लगी है। शरीर की वजह से लगता है, सिर में दर्द हो रहा है। शरीर की वजह से सब कुछ पकड़ लेता है।

आत्मा, जैसे-जैसे शरीर से अपने को अलग जानती है, वैसे-वैसे निर्दोषता का अनुभव करने लगती है। सब संग दोष है। न शरीर दोषी है, न आत्मा दोषी है। दोनों के संग साथ में एक दूसरे पर छाया पड़ती है और दोष हो जाता है।

आज इतना ही।

विनय शिष्य का लक्षण है (विनय-सूत्र)

आणा-निदेसकरे, गुरुणमुववायकारए।
 इंगिया-जगारसंपन्ने, से विणीए त्ति वुच्चई॥
 अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चई।
 नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले॥
 अप्पं च अहिक्खिबई, पवन्धं च न कुव्वई।
 मेत्तिज्जमाणो भयई, सुयं लद्धं न मज्जई॥
 नय पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई।
 अप्पियस्साऽवि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई॥
 कलहडमरवज्जिए, बुद्धे अभिजाइए।
 हरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति वुच्चई॥

जो मनुष्य गुरु की आज्ञा पालता हो, उनके पास रहता हो, गुरु के इंगितों को ठीक-ठीक समझता हो तथा कार्य-विशेष में गुरु की शारीरिक अथवा मौखिक मुद्राओं को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वह मनुष्य विनय संपन्न कहलाता है।

निम्नलिखित पंद्रह लक्षणों से मनुष्य सुविनीत कहलाता है--उद्धत न हो, नम्र हो। चपल न हो, स्थिर हो। मायावी न हो, सरल हो। कुतूहली न हो, गंभीर हो। किसी का तिरस्कार न करता हो। क्रोध को अधिक समय तक न टिकने देता हो। मित्रों के प्रति पूरा सदभाव रखता हो। शास्त्रों से ज्ञान पाकर गर्व न करता हो। किसी के दोषों का भंडाफोड़ न करता हो। मित्रों पर क्रोधित न होता हो। अप्रिय मित्र की भी पीठ-पीछे भलाई ही गाता हो। किसी प्रकार का झगड़ा-फसाद न करता हो। बुद्धिमान हो। अभिजात अर्थात् कुलीन हो। आंख की शर्म रखने वाला एवं स्थिरवृत्ति हो।

पहले एक प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: "कल के सूत्र में कहे गए श्रेयार्थी का क्या अर्थ है? क्या श्रेयार्थी और साधक एक ही हैं?"

श्रेयार्थी शब्द बहुत अर्थपूर्ण है। इस देश ने दो तरह के लोग माने हैं। एक को कहा है, प्रेयार्थी--जो प्रिय की तलाश में है और दूसरे को कहा है, श्रेयार्थी--जो श्रेय की तलाश में हैं।

दो ही तरह के लोग हैं जगत में। वे, जो प्रिय की खोज करते हैं। जो प्रीतिकार है, वही उनके जीवन का लक्ष्य है। लेकिन अनंत-अनंत काल तक भी प्रीतिकर की खोज की जाए तो प्रीतिकर मिलता नहीं है। जब मिल जाता है तो अप्रीतिकर सिद्ध होता है। जब तक नहीं मिलता है तब तक प्रीति की संभावना बनी रहती है। मिलते ही जो प्रीतिकर मालूम होता था, वह विलीन हो जाता है, तिरोहित हो जाता है। लगता है प्रीतिकर, चलते हैं तब भी आशा बनी रहती है। पा लेते हैं तब आशा खंडित हो जाती है, डिसइल्यूजनमेंट के अतिरिक्त, विभ्रम, सब भ्रमों के टूट जाने के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता।

प्रेयार्थी, इंद्रियों की मान कर चलता है। जो इंद्रियों को प्रीतिकर है, उसको खोजने निकल पड़ता है। श्रेयार्थी की खोज बिल्कुल अलग है। वह यह नहीं कहता कि जो प्रीतिकर है उसे खोजूंगा। वह कहता है, जो श्रेयस्कर है, जो ठीक है, जो सत्य है, जो शिव है उसे खोजूंगा। चाहे वह अप्रीतिकर ही क्यों न आज मालूम पड़े।

यह बड़े मजे की बात है और जीवन की गहनतम पहेलियों में से एक कि जो प्रीतिकर को खोजने निकलता है वह अप्रीतिकर को उपलब्ध होता है। जो सुख को खोजने निकलता है, वह

दुख में उतर जाता है। जो स्वर्ग की आकांक्षा रखता है, वह नरक का द्वार खोल लेता है। यह हमारा निरंतर सभी का अनुभव है। दूसरी घटना भी इतना ही अनिवार्यरूपेण घटती है।

श्रेयार्थी हम से कहते हैं, जो प्रीतिकर को खोजने नहीं निकलता, जो यह सोचता नहीं कि यह प्रीतिकर है या अप्रीतिकर है, सुखद है या दुखद है। जो सोचता है यह ठीक है, उचित है, सत्य है, श्रेय है, शिव है, इसलिए खोजने निकलता है। श्रेयार्थी की खोज पहले अप्रीतिकर होती है। श्रेयार्थी के पहले कदम दुख में पड़ते हैं। उन्हीं का नाम तप है।

तप का अर्थ है: श्रेय की खोज में जो प्रथम ही दुख का मिलन होता है, होगा ही। क्योंकि इंद्रियां इनकार करेंगी। इंद्रियां कहेंगी कि यह प्रीतिकर नहीं है। छोड़ो इसे। अगर फिर भी आपने श्रेयस्कर को पकड़ना चाहा तो इंद्रियां दुख उत्पन्न करेंगी। वे कहेंगी, यह दुखद है, छोड़ो इसे। सुखद कहीं और है। इंद्रियों के द्वारा खड़ा किया गया उत्पात ही तप बन जाता है। तप का अर्थ है कि इंद्रियां अपने मार्ग से नहीं हटना चाहतीं, और अगर आप किसी नए मार्ग को खोजते हैं जो इंद्रियों के लिए प्रीतिकर नहीं है, तो इंद्रियां बगावत करेंगी। वह बगावत दुख है। इसलिए श्रेय की खोज में दुख मिलेगा पहले, लेकिन जैसे-जैसे खोज बढ़ती है दुख क्षीण होता चला जाता है।

दुख क्षीण होता है, इसका अर्थ है कि इंद्रियां धीरे-धीरे इस नये मार्ग पर चेतना का अनुगमन करने लगती हैं। दुख खो जाता है। और जिस दिन इंद्रियां चेतना का पूरा अनुगमन करती हैं, उसी दिन सुख का अनुभव होता है।

श्रेयार्थी की खोज में पहले दुख है और पीछे आनंद। प्रेयार्थी की खोज में पहले सुख का आभास है, और पीछे दुख। इंद्रियों की जो मानकर चलता है, वह पहले सुख पाता हुआ मालूम पड़ता है, पीछे दुख में उतर जाता है। इंद्रियों की मालकियत करके जो चलता है वह पहले दुख मालूम पड़ता है, पीछे आनंद में बदल जाता है।

श्रेयार्थी का अर्थ है, जिसने जीवन के इस रहस्य को समझ लिया कि जो खोजो वह नहीं मिलता। जिसे खोजने निकलो, वह हाथ से खो जाता है। जिसे पकड़ना चाहो, वह छूट जाता है। अगर सुख खोजते हो तो सुख नहीं मिलेगा, इतना निश्चित है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति दुख के लिए राजी हो जाए, और दुख के लिए स्वयं को तत्पर कर ले, और दुख के प्रति वह जो सहज विरोध है मन का, वह छोड़ दे, तो सुख मिल जाता है।

ऐसा क्यों होता होगा? ऐसा होने का कारण क्या होगा? होना तो यही चाहिए नियमानुसार कि हम जो खोजें, वही मिल जाए। होना तो यही चाहिए कि जो हम न खोजें वह न मिले। ऐसा क्यों है, इसे हम थोड़ा समझ लें।

इंद्रियां अपना रस रखती हैं। आंख सुख पाती है कुछ देखने में। अगर रूप दिखाई पड़े तो आंख आनंदित होती है। लेकिन अगर वही रूप निरंतर दिखाई पड़ने लगे, तो आनंद क्रमशः खोता चला जाता है। क्योंकि जो चीज निरंतर उपलब्ध होती है, वह देखने योग्य नहीं रह जाती। दर्शनीय तो वही है जो कभी-कभी, आकस्मिक, मुश्किल से दिखाई पड़ती हो।

आप जाते हैं काश्मीर और डल झील सुखद मालूम पड़ती है। लेकिन वह जो आपकी नौका खे रहा है, उसे डल झील दिखाई ही नहीं पड़ती, और कई बार उसे हैरानी भी होती है कि लोग कैसे पागल हैं, इतने दूर-दूर से इस डल झील को देखने आते हैं।

इंद्रियां नवीन आघात में सुख पाती हैं। आघात जब सुनिश्चित, पुराना पड़ जाता है तो उबाने वाला हो जाता है। आज जो भोजन आपने किया है, वह सुखद है। कल भी वही, परसों भी वही, दुखद हो जाएगा। इंद्रियों के लिए नये में सुख है। इसलिए इंद्रियों के सभी सुख, दुख बन जाएंगे। क्योंकि जितना आप चाहेंगे... लगता है किसी से आपका प्रेम है तो लगता है, चौबीस घंटे उसके पास बैठे रहें। भूल कर बैठना मत। क्योंकि अगर चौबीस घंटे उसके पास बैठे रहे तो आज नहीं कल यह उबाने वाला हो जाने वाला है। और आज नहीं कल ऐसा होगा, कैसे छुटकारा हो? ये वही इंद्रियां हैं जो कहती थीं, पास रहो, ये ही इंद्रियां कहेंगी, भाग जाओ, दूर निकल जाओ। क्योंकि जो पुराना पड़ जाता है, इंद्रियों का उसमें रस नहीं है। पुराने के साथ ऊब पैदा हो जाती है। इसलिए इंद्रियां जिसे प्रीतिकर कहती हैं कल उसी को अप्रीतिकर कहने लगती हैं।

इंद्रियों की तलाश में प्रीति से प्रारंभ होता है, अप्रीति पर अंत होता है। यह इंद्रियों का स्वभाव हुआ। इससे ठीक विपरीत स्थिति श्रेयार्थी की है। श्रेयार्थी जो परिवर्तनशील है उसकी खोज नहीं कर रहा है जो नया है उसकी खोज नहीं कर रहा है। श्रेयार्थी तो उसकी खोज कर रहा है जो शाश्वत है। जो सदा है।

प्रेयार्थी नये की खोज कर रहा है, नया सेनसेशन, नई संवेदना, नया सुख। वह नये की तलाश में लगा है। श्रेयार्थी उसकी खोज कर रहा है, नये की, न पुराने की; क्योंकि श्रेयार्थी जानता है कि जो नया है अभी, क्षण भर बाद पुराना हो जाएगा। जो भी नया है, वह पुराना होगा ही। जिसको हम आज पुराना कह रहे हैं, कल वह भी नया था। सब नया पुराना हो जाता है। नये में सुख था, पुराने में दुख हो जाता है। नये के कारण ही सुख था, तो पुराने के कारण दुख हो जाता है।

श्रेयार्थी उसकी खोज कर रहा है जो सदा है, शाश्वत है, नित्य है। वह नया और पुराना नहीं है, बस है। उसकी तलाश है। इंद्रियां उसकी तलाश में कोई रस नहीं लेतीं। इंद्रियों को नये का सुख है। इसलिए जब कोई श्रेय की खोज में निकलता है तो इंद्रियां मार्ग में बाधा बन जाती हैं। वह कहती हैं, कहां व्यर्थ की खोज पर जा रहे हो? सुख वहां नहीं है। सुख नये में है।

श्रेयार्थी, इंद्रियों की इस आवाज पर ध्यान नहीं देता। खोज में लगा रहता है जो सत्य है उसकी। प्रारंभ में दुख मालूम पड़ता है। धीरे-धीरे इंद्रियां बगावत छोड़ देती हैं। जिस दिन इंद्रियों की बगावत छूट जाती है, उसी दिन शाश्वत से झलक, संबंध जुड़ना शुरू हो जाता है। इंद्रियां जिस दिन बीच से हट जाती हैं, उसी दिन जो सदा है, उससे हमारा पहला संबंध होता है। वह संबंध, बुद्ध ने कहा है, सदा ही सुखदायी है, महासुखदायी है। क्योंकि वह कभी पुराना नहीं पड़ता क्योंकि वह कभी नया नहीं था। वह है सनातन। श्रेयार्थी का अर्थ है सत्य की, शाश्वत की तलाश। साधक ही उसका अर्थ है।

प्रेयार्थी हम सब हैं। और अगर हम कभी श्रेय की खोज में भी जाते हैं तो प्रिय के लिए ही। अगर हम कभी सत्य को भी खोजते हैं तो इसलिए कि स्वर्ग मिल जाए। अगर हम कभी ध्यान करने भी बैठते हैं तो इसीलिए कि सुख मिल जाए। जो व्यक्ति सुख के लिए ही सत्य भी खोज रहा है वह अभी श्रेयार्थी नहीं है। वह अभी प्रेयार्थी है। अगर परमात्मा का दर्शन भी कोई इसीलिए खोज रहा है कि आंखों की तृप्ति हो जाएगी तो वह श्रेयार्थी नहीं है, प्रयार्थी है। और प्रेयार्थी दुख पाएगा, परमात्मा भी मिल जाए तो भी दुख पाएगा। मोक्ष भी मिल जाए तो भी दुख पाएगा। क्या मिलता है, इससे संबंध नहीं है।

प्रेयार्थी का जो ढंग है जीवन को देखने का, वह दुख में उतारने वाला है। श्रेयार्थी का जो ढंग है जीवन को देखने का, वह आनंद में उतारने वाला है। सुख को खोजेंगे, दुख पाएंगे। सुख की खोज वाला मन ही दुख का निर्माता है। जितनी करेंगे अपेक्षा, उतनी पीड़ा में उतर जाएंगे। अपेक्षा ही पीड़ा का मार्ग है। नहीं करेंगे अपेक्षा, नहीं बांधेंगे आशा, उसकी ही तलाश करेंगे, जो है।

यह तलाश कठोर है, आर्डुअस है, दुर्गम है। क्योंकि हम वह नहीं जानना चाहते जो है। हम वह जानना चाहते हैं जो हमारी इंद्रियां कहती हैं, होना चाहिए। इसलिए हम सत्य के ऊपर इंद्रियों का एक मोह आवरण डाले रहते हैं। हम यह नहीं जानना चाहते, क्या है, हम जानना चाहते हैं वही, जो होना चाहिए। अगर मैं किसी व्यक्ति को भी देखता हूं तो मैं उसको नहीं देखता जो वह है। मैं वही देखता हूं, जो वह होना चाहिए। इसी से झंझट खड़ी होती है। आप मुझे मिलते हैं, आपको मैं नहीं देखता। मैं आप में उस सौंदर्य को देख लेता हूं जो मेरी इंद्रियां चाहती हैं कि हो। वह सत्य नहीं है। आपकी आंखों में मैं वह काव्य देख लेता हूं जो वहां नहीं है, लेकिन मेरी मनोवासना देखना चाहती है कि हो।

कल वह काव्य तिरोहित हो जाएगा, परिचय से टूट जाएगा, जानकारी से, पहचान से, आंखें साधारण आंखें हो जाएंगी और तब मैं पछताऊंगा कि धोखा हो गया। लेकिन किसी ने मुझे धोखा दिया नहीं है, यह धोखा मैंने खाया है। मैंने वह देखना नहीं चाहा जो था। मैंने वह देख लिया जो होना चाहिए। मैंने अपना सपना आप में देख लिया। अब यह सपना टूटेगा। सपने टूटने के लिए ही होते हैं। और जब वास्तविकता उघड़ कर सामने आएगी तो लगेगा कि मैं किसी धोखे में डाल दिया गया। और तब हमारी इंद्रियां कहती हैं, धोखा दूसरे ने दिया। जहां काव्य नहीं था, वहां काव्य दिखलाया, जहां सौंदर्य नहीं था वहां सौंदर्य दिखलाया। दूसरा आपको धोखा नहीं दे रहा है।

इस जगत में सब धोखे अपने हैं। हम धोखा खाना चाहते हैं। हम धोखा निर्मित करते हैं। हम दूसरे के ऊपर धोखे को खड़ा करके धोखा लेते हैं। फिर धोखे टूट जाते हैं, और तब दुख है।

श्रेयार्थी का अर्थ है: जो है वही मैं जानूंगा। कुछ भी जोड़ूंगा नहीं। यह जो है, दैट विच इज, उसको उघाड़ लूंगा, खोल लूंगा। उसको नग्न देख लूंगा, जैसा है। फिर कोई दुख होने वाला नहीं है। क्योंकि सत्य सदा वैसा ही रहेगा। सपने बदल जाते हैं, सत्य सदा वैसा है।

किसी में आप मित्र देखते हैं, किसी में शत्रु देखते हैं। वे सब आपके सपने हैं। किसी में सौंदर्य, किसी में कुरूपता, वे सब आपके सपने हैं। जो है, उसे जो देखने लगता है, उसके लिए इस जगत में फिर कोई दुख नहीं है। क्योंकि जो है, वह कभी भी बदलता नहीं है।

अब हम सूत्र को लें।

इस सूत्र में उतरने के पहले कुछ बुनियादी बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात: गुरु की धारणा मौलिक रूप से भारतीय है। दुनिया में शिक्षक हुए हैं, गुरु नहीं। शिक्षक साधारण सी बात है, गुरु बड़ी असाधारण घटना है। शिक्षक और गुरु का शाब्दिक अर्थ एक है, लेकिन अनुभूतिगत अर्थ बिल्कुल भिन्न है। शिक्षक से हम वह सीखते हैं, जो वह जानता है। गुरु से हम वह सीखते हैं जो वह है। शिक्षक से हम जानकारी लेते हैं, गुरु से जीवन। शिक्षक से हमारा संबंध बौद्धिक है, गुरु से आत्मगत। शिक्षक से हमारा संबंध आंशिक है, गुरु से पूर्ण।

गुरु की धारणा मौलिक रूप से पूर्वीय है। पूर्वीय ही नहीं, भारतीय है। गुरु जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। शिक्षक, टीचर, मास्टर ये शब्द हैं--अध्यापक। लेकिन गुरु जैसा कोई भी शब्द नहीं है। गुरु के साथ हमारे अभिप्राय ही भिन्न हैं।

पहली बात: शिक्षक से हमारा संबंध व्यावसायिक है, एक व्यवसाय का संबंध है। गुरु से हमारा संबंध व्यावसायिक नहीं है। आप किसी के पास कुछ सीखने जाते हैं। ठीक है, लेन-देन की बात है। आप उससे कुछ उसे भेंट कर देते हैं, बात समाप्त हो जाती है--यह व्यवसाय है। एक शिक्षक से आप कुछ सीखते हैं सीखने के बदले में उसे कुछ दे देते हैं, बात समाप्त हो सकती है। गुरु से जो हम सीखते हैं उसके बदले में कुछ भी नहीं दिया जा सकता। कोई उपाय देने का नहीं है। क्योंकि जो गुरु देता है उसका कोई मूल्य नहीं है। जो गुरु देता है, उसे

चुकाने का कोई उपाय नहीं है। उसे वापस करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि शिक्षक देता है सूचनाएं, जानकारीयां, इनफॉर्मेशन। गुरु देता है अनुभव। यह बड़े मजे की बात है कि शिक्षक जो जानकारी देता है, जरूरी नहीं कि वह जानकारी उसका अनुभव हो, आवश्यक नहीं। जो शिक्षक आपको नीति शास्त्र पढ़ाता है और बताता है कि शुभ क्या है, अशुभ क्या है? नीति क्या है, अनीति क्या है? जरूरी नहीं कि वह शुभ का आचरण करता हो। वह सिर्फ शिक्षक है, वह सूचना करता है। गुरु जो कहता है, वह सूचन नहीं है, वह उसके जीवन का आविर्भाव है।

तो हम बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को गुरु कहते हैं। गुरु का अर्थ यह है कि वे जो कह रहे हैं, उन्होंने जीया है, जाना ही नहीं। जानने वाले तो बहुत गुरु हैं। वे गांव-गांव में हैं। यूनिवर्सिटीज उनसे भरी हुई पड़ी हैं। वे शिक्षक हैं, गुरु नहीं। जो कुछ जाना गया है, वह उन्होंने संगृहीत किया है, वे आपको दे रहे हैं। वे केवल माध्यम हैं। उनसे पास अपना कोई उत्स, अपना कोई स्रोत नहीं है। वे उधार हैं। वे जो भी दे रहे हैं उन्होंने कहीं से पाया है। उन्हें किसी और ने दिया है वे बीच के सेतु हैं जिनसे जानकारीयां यात्राएं करती हैं। एक पीढ़ी मरती है तो जो भी वह पीढ़ी जानती है, दूसरी पीढ़ी को दे जाती है। इस देने के क्रम में शिक्षक बीच का काम करता है, बीच की कड़ी का काम करता है। अगर बीच में शिक्षक न हो तो पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को सिखा नहीं सकती कि उसने क्या जाना। पुराना पीढ़ी ने जो भी अनुभव किया है, जो भी जाना है, जो भी उघाड़ा है, जो भी ज्ञान अर्जित किया है वह शिक्षक नई पीढ़ी को सौंपने का काम करता है।

गुरु, जो पुरानी पीढ़ी ने जाना है उसको सौंपने का काम नहीं करता, जो स्वयं उसने अनुभव किया है। और यह जो स्वयं अनुभव किया है, इसे सौंपने का सूचन की तरह कोई उपाय नहीं है। इसे तो जीवन की विधि के रूपांतरण से ही दिया जा सकता है। एक शिक्षक के पास से हम ज्ञानी होकर लौटते हैं, ज्यादा जान कर लौटते हैं, लर्नेड होकर लौटते हैं। एक गुरु के पास हम रूपांतरित होकर लौटते हैं। पुराना आदमी मर जाता है, नये का जन्म होता है। गुरु के पास जब हम जाते हैं तब हम वही नहीं लौट सकते, अगर हम गुरु के पास गए हों। गुरु के पास जाना कठिन मामला है। लेकिन, अगर हम गुरु के पास गए हों तो, जो जाता है, वह फिर कभी वापस नहीं लौटता। दूसरा आदमी वापस लौटता है।

शिक्षक के पास जब हम जाते हैं--और जाना बहुत आसान है--तो हम वही लौटते हैं जो हम गए थे। थोड़े से और समृद्ध होकर लौटते हैं थोड़ा सा और ज्यादा जानकर लौटते हैं। हम जो थे, उसी में शिक्षक जोड़ देता है--एडिशन। हम जो थे उसी में थोड़े रंग-रूप लगा देता है, वस्त्र ओढ़ा देता है। हम जो थे उसमें और शिक्षक के द्वारा जो हम निर्मित होते हैं, दोनों के बीच में कोई डिसकॉन्टिनुइटी, कोई गैप, कोई खाली जगह नहीं होती।

गुरु के पास जब हम जाते हैं तो जो हम थे, वह और आदमी था और जो हम लौटते हैं वह और आदमी है। गुरु हममें जोड़ता नहीं, हमें मिटाता है और नया निर्मित करता है। गुरु हमको ही संवारता नहीं, हमें मारता है और जिलाता है। गुरु के पास जाने के बाद हमारे अतीत में और हमारे भविष्य में एक गैप, एक अंतराल हो जाता है। लौट के आप देखेंगे तो अपनी कथा ऐसी लगेगी, किसी और की कहानी है। अगर गुरु के पास गए। अगर शिक्षक के पास गए तो अपनी कथा अपनी ही कथा है। बीच में कोई खाली जगह नहीं है जहां चीजें टूट गई हों, जहां आपका पुराना रूप बिखर गया हो और नये का जन्म हुआ हो।

इसलिए हमने इस मुल्क में एक शब्द खोजा था, वह है द्विज। द्विज का अर्थ है: ट्वाइस बॉर्न, दुबारा जन्मा हुआ वही आदमी है, जिसे गुरु मिल गया। नहीं तो दुबारा जन्मा हुआ आदमी नहीं है। एक जन्म तो मां-बाप देते हैं, वह शरीर का जन्म है। एक जन्म गुरु के निकट घटित होता है, वह आत्मा का जन्म है। जब वह जन्म घटित होता है तो आदमी द्विज होता है। उसके पहले आदमी एक जन्मा है, उसके बाद दोहरा जन्म हो जाता है, ट्वाइस बॉर्न हो जाता है।

गुरु के लिए हमने जैसी श्रद्धा की धारणा बनाई है, ऐसा पश्चिम के लोग जब सुनते हैं तो भरोसा नहीं कर पाते कि ऐसी श्रद्धा की क्या जरूरत है। जब किसी व्यक्ति से सीखना है तो सीखा जा सकता है। ऐसा उसके चरणों में सिर रखकर मिट जाने की क्या जरूरत है। और उनका कहना भी ठीक है, सीखना ही है तो चरणों में सिर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है अगर सीखना ही है तो सिर और सिर का संबंध होगा, चरणों और सिर के संबंध की क्या जरूरत है?

लेकिन, हमारी गुरु की धारणा कुछ और है। यह सिर्फ सीखना नहीं है, यह सिर्फ बौद्धिक आदान-प्रदान नहीं है। यह संवाद बुद्धि का नहीं है, दो सिरो का नहीं है। क्योंकि जो गहन अनुभव हैं, बुद्धि तो उनको अभिव्यक्त भी नहीं कर पाती। जो गहन अनुभव हैं, उनका संबंध तो हृदय से हो पाता है। बुद्धि से नहीं हो पाता। जो क्षुद्र बातें हैं, वे कही जा सकती हैं शब्दों में। जो विराट से संबंधित हैं, गहन से, ऊंचाइयों से, अनंत गहराइयों से, वे कही नहीं जा सकती शब्दों में, लेकिन प्रेम में अभिव्यक्त की जा सकती हैं। तो गुरु और शिष्य के बीच जो संबंध है वह गहन प्रेम का है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच जो संबंध है वह लेन-देन का है, व्यावसायिक है, बौद्धिक है। गुरु और शिष्य के बीच का जो संबंध है, वह हार्दिक है।

ध्यान रहे, जब बुद्धि लेती है, देती है, तो यह समतल पर घटित होता है। जब हृदय लेता-देता है तो यह समतल पर घटित नहीं होता। हृदय को तो लेना हो तो उसे पात्र की तरह खुला हुआ नीचे हो जाना पड़ता है। जैसे पानी-नीचे की तरफ बहता है। तो जब हृदय को लेना हो...। वर्षा हो रही हो तो पात्र को नीचे रख देना पड़ता है, पानी उसमें भर जाए। पात्र को उस धारा के नीचे होना चाहिए जहां से लेना है, अगर हृदय का लेन-देन है। बुद्धि का लेन-देन समतल पर होता है।

इसलिए पश्चिम में शिक्षक और विद्यार्थी के बीच कोई रिस्पेक्ट, कोई समादर की बात नहीं है। और अगर कोई समादर है तो औपचारिक है, और अगर कोई समादर है तो कक्षा के भीतर है, बाहर तो कोई सवाल नहीं है। शिक्षक और विद्यार्थी का संबंध एक खंड संबंध है। पूरब में गुरु और शिष्य का संबंध एक अखंड संबंध है, समग्र।

यह जो हृदय का लेन-देन है, इसमें शिष्य को पूरी तरह झुक जाना जरूरी है। शिष्य का अर्थ ही है जो झुक गया। हृदय के पात्र को जिसने चरणों में रख दिया। इसलिए इस लेन-देन में श्रद्धा अनिवार्य अंग हो गई। श्रद्धा का केवल इतना ही अर्थ है कि जिससे हम ले रहे हैं, उससे हम पूरा लेने को राजी हैं। उसमें हम कोई जांच-पड़ताल न करेंगे। इसका यह मतलब नहीं है कि जांच-पड़ताल की मनाही है। इसका केवल इतना मतलब है कि खूब जांच-पड़ताल कर लेना, जितनी जांच-पड़ताल करनी हो कर लेना, लेकिन जांच-पड़ताल जब पूरी हो और गुरु के करीब पहुंच जाओ, और चुन लो कि यह रहा गुरु, तो फिर जांच-पड़ताल बंद कर देना और पात्र को नीचे रख लेना। और अब सब द्वार खुले छोड़ देना, ताकि गुरु सब मार्गों से प्रविष्ट हो जाए।

जांच-पड़ताल की मनाही नहीं है, लेकिन उसकी सीमा है। खोज लेना पहले, गुरु की खोज कर लेना जितनी बन सके। लेकिन जब खोज पूरी हो जाए और लगे कि यह आदमी रहा, तो फिर खोज बंद कर देना। फिर खोल देना अपने हृदय को।

शिष्य, इसलिए अलग शब्द है, उसका अर्थ विद्यार्थी नहीं है। शिष्य विद्यार्थी नहीं है, विद्या नहीं सीख रहा है। शिष्य जीवन सीख रहा है और जीवन के सीखने का मार्ग शिष्य के लिए विनय है।

यह सूत्र विनय-सूत्र है। इसमें महावीर ने कहा है, जो मनुष्य गुरु की आज्ञा पालता हो, उनके पास रहता हो, गुरु के इंगितों को ठीक-ठीक से समझता हो, तथा कार्य-विशेष में गुरु की शारीरिक अथा मौखिक मुद्राओं को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वह मनुष्य विनय-सम्पन्न कहलाता है।

विनय, शिष्य का लक्षण है, ह्युमिलिटी, हम्बलनेस, झुका हुआ होना, समर्पित भाग। इस शब्दों को हम एक-एक समझ लें।

"जो गुरु की आज्ञा पालता हो।"

गुरु कहे, बैठ जाओ तो बैठ जाए, कहे खड़े हो जाओ तो खड़ा हो जाए। इसका अर्थ आज्ञापालन नहीं है। आज्ञापालन का अर्थ तो है, जहां आपकी बुद्धि इंकार करती है, वहां पालन।

सुना है मैंने, बायजीद अपने गुरु के पास गया, तो गुरु ने पूछा, कि निश्चित ही तुम आ गए हो मेरे पास? तो वस्त्र उतार दो, नग्न हो जाओ, जूता हाथ में ले लो, अपने सिर पर मारो और पूरे गांव का एक चक्कर लगाओ।

और भी लोग वहां मौजूद थे। उसमें से एक आदमी के बरदाश्त के बाहर हुआ। उसने कहा, यह क्या मामला है, कोई अध्यात्म सीखने आया है कि पागल होने? लेकिन बायजीद ने वस्त्र उतारने शुरू कर दिए। उस आदमी ने बायजीद को कहा, ठहरो भी, पागल तो नहीं हो? और बायजीद के गुरु को कहा, यह आप क्या करवा रहे है? यह जरा ज्यादा है, थोड़ा ज्यादा हो गया। फिर बायजीद की गांव में प्रतिष्ठा है। क्यों उसकी प्रतिष्ठा धूल में मिलाते हैं?

लेकिन बायजीद नग्न हो गया। उसने हाथ में जूता उठा लिया। वह गांव के चक्कर पर निकल गया। वह अपने को जूता मारता जा रहा है। गांव में भीड़ इकट्ठी हो गई है। क्या पागल हो गया हो गया है बायजीद! लोग हंस रहे हैं, लोग मजाक उड़ा रहे हैं। किसी की समझ में नहीं आ रहा, क्या हो गया? वह पूरे गांव में चक्कर लगाकर अपनी सारी प्रतिष्ठा को धूल में मिला कर, मिट्टी होकर वापस लौट आया।

गुरु ने उसे छाती से लगा लिया और गुरु ने कहा, बायजीद अब तुझे कोई भी आज्ञा न दुंगा। पहचान हो गई। अब काम की बात शुरू हो सकती है।

आज्ञा का अर्थ है जो एक्सर्ड मालूम पड़े, जिसमें कोई संगति न मालूम पड़े, आप मत सोचना, आपने आज्ञा मानी। आपने अपनी बुद्धि को माना। अगर मैं आपसे कहूं, कि दो और दो चार होते हैं, यह मेरी आज्ञा है, और आप कहें, बिल्कुल ठीक, मानते हैं आपकी आज्ञा, दो और दो चार होते हैं। आप मुझे नहीं मान रहे हैं, आप अपनी बुद्धि को मान रहे हैं। दो और दो पांच होते हैं और आप कहें कि हां, दो और दो पांच होते हैं, तो आज्ञा।

बाइबिल में घटना है। एक पिता को आज्ञा हुई कि वह जाकर अपने बेटे को फलां-फलां वृक्ष के नीचे काट कर और बलिदान कर दे। उसने अपने बेटे को उठाया, फरसा लिया और जंगल की तरफ चल पड़ा। सोरेन कीर्कगार्ड ने इस घटना पर बड़े महत्वपूर्ण काम किए हैं, बड़े गहरे काम किए हैं। यह बात बिल्कुल फिजूल है, क्योंकि सोरेन कीर्कगार्ड कहता है उस पिता को, यह तो सोचना ही चाहिए था, कहीं यह आज्ञा मजाक तो नहीं है। वह तो सोचना ही चाहिए था कि यह आज्ञा अनैतिक कृत्य है कि पिता बेटे की हत्या कर दे! कुछ तो विचारना था! लेकिन उसने कुछ भी न विचारा। फरसा उठाया और बेटे को लेकर चल पड़ा।

यह हमें भी लगेगी, जरूरत से ज्यादा बात है। और यह तो अंधापन है, और यह तो गूढ़ता है। लेकिन कीर्कगार्ड भी कहता है कि यह सारा परीक्षण पहले कर लेना चाहिए। लेकिन एक बार परीक्षण पूरा हो गया हो तो फिर छोड़ देना चाहिए सारी बात। अगर परीक्षण सदा ही जारी रखना है तो गुरु और शिष्य का संबंध कभी भी निर्मित नहीं हो सकता। महत्वपूर्ण वह संबंध निर्मित होना है।

वक्त पर खबर आ गई कि हत्या नहीं करना है फरसा उठ गया था और गला काटने के करीब था। लेकिन यह गाण बात है। वापस लौट आया है पिता अपने बेटे को लेकर, लेकिन अपनी तरफ से हत्या करने की आखिरी सीमा तक पहुंच गया था। फरसा उठ गया था और गला काटने के करीब था।

यह घटना तो सूचक है। शायद ही कोई गुरु आपको कहे कि जाकर बेटे की हत्या कर आएं। लेकिन, घटना में मूल्य सिर्फ इतना है कि अगर ऐसा भी हो, तो आज्ञापालन ही शिष्य का लक्ष्य है। क्योंकि आज्ञा को इतना मूल्यवान—पहले ही सूत्र के हिस्से में आज्ञा को इतना मूल्यवान महावीर क्यों कह रहे हैं?

आपकी बुद्धि जो-जो समझ सकती है इस जगत में, वह जैसे-जैसे आप भीतर प्रवेश करेंगे, उसकी समझ क्षीण होने लगेगी कि वहां काम नहीं पड़ेगी। और अगर आप यही भरोसा मान कर चलते हैं कि मैं अपनी बुद्धि से ही चलूंगा तो बाहर की दुनिया तो ठीक, भीतर की

दुनिया में प्रवेश नहीं हो सकेगा। भीतर तो घड़ी-घड़ी ऐसे मौके आएंगे जब गुरु कहेगा कि करो। और तब आपकी बुद्धि बिल्कुल इनकार करेगी कि मत करो। क्योंकि अगर ध्यान की थोड़ी-सी गहराई बढ़ेगी तो लगेगा कि मौत घट जाएगी। अब आपका कोई अनुभव नहीं है। जब भी ध्यान गहरा होगा तो मौत का अनुभव होगा। ऐसा लगेगा, मरे।

गुरु कहेगा, मरो, बढ़ो, मरोगे ही न! मर जाना। तब आपकी बुद्धि कहेगी, अभी यह क्या हो रहा है, अब आगे कदम नहीं बढ़ाया जाता।

बेटे की हत्या करना भी इतना कठिन नहीं है, अगर खुद के मरने की भीतर घड़ी आए, तब। बेटा फिर भी दूर है और बेटे की हत्या करने वाले बाप मिल जाएंगे। ऐसे तो सभी बाप थोड़ी बहुत हत्या करते हैं लेकिन वह अलग बात है। बाप की हत्या करने वाले बेटे मिल जाएंगे। एक सीमा पर सभी बेटे बाप से छुटकारा चाहते हैं, लेकिन वह अलग बात है।

लेकिन, आदमी जब अपने की ही हत्या पर उतरने की स्थिति आ जाती है, और जब ध्यान में ऐसी घड़ी आती है कि शरीर छूट तो नहीं जाएगा! सांस बंद तो नहीं हो जाएगी! तब आपकी बुद्धि कोई भी उपयोग की नहीं, क्योंकि आपका कोई अनुभव काम नहीं पड़ेगा। वहां गुरु कहता है कि ठीक है, हो जाने दो बंद सांस। उस वक्त क्या करिएगा? अगर आज्ञा मानने की आदत न बन गई हो। अगर गुरु के साथ असंगत में भी उतरने की तैयारी न हो गई हो, तो आप वापस आएंगे, आप भाग जाएंगे। उस वक्त तो मृत्यु को एक किनारे रख कर वह गुरु जो कहता है, वह ठीक है।

और बड़े मजे की बात है, आप मरेंगे नहीं, बल्कि इस ध्यान में जो मृत्यु घटेगी, इससे ही आप पहली दफा जीवन का स्वाद, जीवन का अनुभव कर पाएंगे। लेकिन उसके लिए आपकी बुद्धि तो कोई भी सहारा नहीं दे सकती। बुद्धि तो वही सहारा दे सकती है जो जानती हो। यह आपने कभी जाना नहीं है। यह तो मामला ठीक ऐसा ही है कि बेटा हाथ बाप का पकड़ लेता है और फिर फिकर छोड़ देता है कि ठीक, बाप साथ है, उसकी चिंता नहीं है कुछ। अब जंगल में शेर भी चारों तरफ भटक रहे हों तो बेटा गुनगुनाता हुआ, गीत गाता, बाप का हात पकड़ कर चलता है। बाप के हाथ में हाथ है, बात खत्म हो गई। अगर बाप उससे कह दे कि यह सामने जो शेर आ रहा है, इससे गले मिल लो, तो बेटा मिल लेगा।

आज्ञा का अर्थ है: असंगत घटनाएं घटेंगी साधना में, जिनके लिए बुद्धि कोई तर्क नहीं खोज पाती। तब कठिनाइयां शुरू होती हैं, तब संदेह पकड़ना शुरू होता है। तब लगता है कि भाग जाओ इस आदमी से, बच जाओ इस आदमी से। तब बुद्धि बहुत-बहुत उपाय करेगी कि यह आदमी गलत है, इसलिए इसकी यह बात मानना भी उचित नहीं है। छोड़ दो।

इसलिए महावीर कहते हैं, जो मनुष्य गुरु की आज्ञा पालन करता हो, उसके पास रहता हो।

पास रहना बड़ी कीमती बात थी। पास रहना एक आंतरिक घटना है। शारीरिक रूप से पास रहना, रहने का उपयोग है लेकिन आत्मिक रूप से, मानसिक रूप से पास रहने का बहुत उपयोग है। यह जो जीवन की आत्यंतिक कला है, इसे सीखना हो तो गुरु के इतने पास होना चाहिए, जितने हम अपने भी पास नहीं। जैसे कोई आपकी छाती में छुरा भोंक दे तो गुरु का स्मरण पहले आए, बाद में अपना, कि मैं मर रहा हूं। यह अर्थ हुआ पास रहने का।

पास रहेन का मतलब है, एक आंतरिक निकटता सामीप्य। हम अपने से भी ज्यादा पास है, अपने से भी ज्यादा भरोसा, अपने से भी ज्यादा स्मरण। यह जो घटना है पास होने की, निकट होने की, यह शारीरिक तल

पर भी बड़ी मूल्यवान है। इसलिए गुरु के पास शारीरिक रूप से रहने का भी बड़ी अर्थ है। अधिकतम गुरु, अगर हम उपनिषद के गुरुओं में लौट जाएं, या महावीर—महावीर के साथ दस हजार साधु-साधवियों का समूह चलता था। महावीर के पास होना ही मूल्य था उसका।

क्या अर्थ है इस पास होने का?

इस पास होने का एक ही अर्थ है कि मेरे मैं की जो आवाज है, वह धीरे-धीरे कम हो जाए। हम जब भी बोलते हैं तो मैं हमारा केंद्र होता है। गुरु के पास रहने का अर्थ है, मैं केंद्र न रह जाए, गुरु केंद्र हो जाए। महावीर के पास दस हजार साधु-साध्वी हैं। उनका अपना होना कोई भी नहीं है। महावीर का होना ही सब कुछ है।

बुद्ध एक गांव के बाहर ठहरे हैं। हजारों भिक्षु-भिक्षुणियां उनके पास हैं। गांव का सम्राट मिलने आया है। पास आकर उसे शक होने लगा। आम्र-कुंज है, उसके बाहर आकर उसने अपनी वजीरों को कहा कि मुझे शक होता है, इसमें कुछ धोखा तो नहीं है? क्योंकि तुम कहते थे कि हजारों लोग वहां ठहरे हैं, लेकिन आवाज जरा भी नहीं हो रही है। जहां हजारों लोग ठहरें हों और तुम कहते हो, बस यह जो आम की कतार है, इसके पीछे के ही वन में वे लोग ठहरे हैं। जरा भी आवाज नहीं है, मुझे शक होता है। उसने अपनी तलवार बाहर खींच ली। उसने कहा इसमें कोई शडयंत्र तो नहीं? उसके वजीरों ने कहा: आप निश्चित रहो, वहां सिर्फ एक ही आदमी बोलता है, बाकी सब चुप हैं। वह बुद्ध के सिवाय वहां कोई बोलता ही नहीं। और जंगल में शांति है, क्योंकि बुद्ध नहीं बोल रहे होंगे, और तो वहां कोई बोलता ही नहीं।

मगर वह जो सम्राट था, उसका नाम था, आजातशत्रु। नाम भी हम बड़े मजेदार देते हैं, जिसका कोई शत्रु पैदा न हुआ हो। हालांकि शांति में भी उसे शत्रु दिखाई पड़ता है, सम्राटे में भी। लेकिन वह तलवार निकाले ही गया। जब उसने देख लिया हजारों भिक्षु बैठे हैं चुपचाप बुद्ध एक वृक्ष की छाया में बैठे हैं, तब उसने तलवार भीतर की। तब उसने बुद्ध से पहला प्रश्न यही पूछा, इतनी चुप्पी, इतना मौन क्यों है? इतने लोग हैं, कोई बात-चीत नहीं, कोई चर्चा नहीं, दिन-रात ऐसे बीत जाते हैं?

बुद्ध ने कहा: ये लोग मेरे पास होने के लिए यहां हैं। अगर ये बोलते रहें तो ये अपने ही पास होंगे। ये अपने को मिटाने को यहां आए हैं। ये यहां हैं ही नहीं। बस इस जंगल में जैसे मैं ही हूं और ये सब मिटे हुए शून्य हैं। ये अपने को मिटा रहे हैं। जिस दिन ये पूरे बिखरे जाएंगे उस दिन ही ये मुझे पूरा समझ पाएंगे। और जो मैं इनसे कहना चाहता हूं, वह इनके मौन में ही कहा जा सकता है। और अगर मैं शब्द का भी उपयोग करता हूं, तो वह यही समझाने के लिए कि वे कैसे मौन हो जाएं। शब्द का उपयोग करता हूं, मौन में ले जाने के लिए, फिर मौन का उपयोग करूंगा सत्य में ले जाने के लिए। शब्द से कोई सत्य में ले जाने का उपाय नहीं है। शब्द से, मौन में ले जाया जा सकता है।

बस शब्द की इतनी ही सार्थकता है कि आपकी समझ में आ जाए कि चुप हो जाना है। फिर सत्य में ले जाया जा सकता है। सामीप्य का यह अर्थ है।

सारिपुत्त बुद्ध का खास शिष्य था। जब वह स्वयं बुद्ध हो गया तो बुद्ध ने उससे कहा, कि अब सारिपुत्त तू जा और मेरे संदेश को लोगों तक पहुंचा। सारिपुत्त उठा, नमस्कार करके चलने लगा।

आनंद बुद्ध का दूसरा प्रमुख शिष्य था। उसे अब तक ज्ञान नहीं हुआ था। उसने बुद्ध से कहा: इस भांति मुझे कभी दूर मत भेज देना। मेरी प्रार्थना, इतना ख्याल रखना, कभी मुझे ऐसी आज्ञा मत देना कि दूर चला जाऊं। मैं तो समीप ही रहना चाहता हूं।

बुद्ध ने कहा: तू समीप नहीं है, इसलिए समीप रहना चाहता है। सारिपुत्त उठा और चल पड़ा। वह कहीं भी रहे, वह मेरे ही समीप रहेगा। बीच का फासला अब कोई फासला नहीं है।

सारिपुत्त चल पड़ा। वह गांव-गांव जगह-जगह संदेश देता रहा। लेकिन रोज सुबह जैसे उठ कर वह बुद्ध के चरणों में सिर रखता था। जिस दिा में बुद्ध होते, रोज सुबह उठ कर उनके चरणों में सिर रखता। उसके शिष्य

उससे पूछते, सारिपुत्त अब तो तुम भी स्वयं बुद्ध हो गए, अब तुम किसके चरणों में सिर रखते हो? अब क्या है जरूरत? सारिपुत्र कहता, जिनके कारण मैं मिट सका जिनके कारण मैं समाप्त हुआ, जिनके कारण मैं शून्य हुआ। फिर उसके शिष्य कहते, लेकिन बुद्ध तो बहुत दूर हैं, सैकड़ों मील दूर हैं, यहां से तुम्हारे चरणों में किए गए प्रणाम कैसे पहुंचेंगे? तो सारिपुत्त कहता, अगर वे दूर होते तो मैं उन्हें छोड़ कर ही न आता। छोड़ कर आ सका इसी भरोसे कि अब कहीं भी रहूं, वे मेरे पास हैं।

एक संबंध है बाहर का जो शरीर से होता है। शरीर कितने ही निकट आ जाए तो भी दूरी बनी रहती है। शरीर के साथ कोई निकटता हो ही नहीं पाती। कितने ही निकट ले जाओ, आलिंगन कर लो किसी का, फिर भी बीच में फासला बना ही रहता है। दो शरीर कभी भी एक शरीर नहीं, नहीं हो सकते। शरीर का होना ही पार्थक्य है। फिर एक और आंतरिक सामीप्य है। सारिपुत्र उसी की बात कर रहा है। वह कह रहा है, अब फासले टूट गए, अब कोई स्पेस, कोई जगह बोच में नहीं है। अब मैं नहीं हूं बुद्ध ही हैं, या कहूं कि मैं हूं, बुद्ध नहीं है, एक ही बात है।

इससे भी ज्यादा मजेदार घटना तो तब घटी, कहते हैं, महाकाश्यप अपने ही पैर छू लेता था। लोगों का बहुत अजीब लगता होगा। महाकाश्यप बुद्ध का दूसरा शिष्य था और शायद उनके सारे शिष्यों में अदभुत था। महाकाश्यप अपने ही पैर छू लेता था और लोगों ने उससे कहा, यह तुम क्या करते हो? वह कहता है कि बुद्ध के चरण छू रहा हूं। लोग कहते हैं, ये पैर तुम्हारे हैं। महाकाश्यप कहता कि अब उनसे इतनी निकटता हो गई कि वह भीतर ही हैं, पैर उनके ही हैं। महाकाश्यप कहता, मैं किसी के भी पैर छूऊं, बुद्ध के ही पैर हैं। इतनी समीपता भी बन सकती है। इस सामीप्य में ही संवाद है। इसलिए महावीर कहते हैं, उनके पास रहता हो, उनके निकट होता हो।

इस निकटता में भौतिक निकटता ही अंतर्निहित नहीं है, आंतरिक सामीप्य भी है, वही है वस्तुतः अंत में।

"गुरु के इंगितों को ठीक-ठीक समझता हो।"

हम तो गुरु के शब्द को भी ठीक से नहीं समझ पाते, इंगित तो बड़ी और बात है। इंगित का अर्थ है, इशारा, जो कह नहीं गया है, फिर भी दिया गया है। शायद इतना बारीक है कि कहने में टूट जाएगा, इसलिए कहा नहीं गया है। सिर्फ दिया गया है। शायद इतना सूक्ष्म है कि शब्द उसके सौंदर्य को नष्ट कर देंगे। स्थूल बना देंगे। इसलिए सिर्फ इशारा दिया गया है।

जो गुरु है, वह धीरे-धीरे शब्दों का सहारा छोड़ता जाता है। जैसे-जैसे शिष्य विनीत होता है, जैसे-जैसे शिष्य झुकता है, वैसे-वैसे गुरु शब्दों का सहारा छोड़ता जाता है। इंगित महत्वपूर्ण हो जाते हैं, इशारे महत्वपूर्ण हो जाते हैं। शब्द भी सहारे हैं, लेकिन बहुत स्थूल, बहुत ऊपरी।

बुद्ध कैसे चलते हैं, महावीर कैसे बैठते हैं, महावीर कैसे उठते हैं, महावीर कैसे सोते हैं इन सब में उनके इंगित हैं। बुद्ध कैसे हाथ उठाते हैं, कैसे आंख उठाते हैं, कैसे आंखें उनकी झपती हैं, उस सबमें उनके इंगित हैं। धीरे-धीरे जो उनके पास है, उनके शरीर की भाषा को समझने लगता है। महारी भी शरीर की भाषा तो होती है, हमें भी पता नहीं होता। हमारे शरीर की भी भाषा होती है, और अब तो पश्चिम में एक साइंस ही किनेटिक्स निर्मित हो रही है, जो शरीर की भाषा पर निर्भर है, बाह्य लैंग्वेज।

और हम सब शरीर से भी बोलते रहते हैं। कभी आपने ख्याल न किया होगा, बच्चे शरीर की भाषा को बिल्कुल ठीक से समझते हैं। फिर धीरे-धीरे शब्द सीखने लगते हैं और शरीर की भाषा भूल जाते हैं। इसलिए बच्चों के साथ मां-बाप को कभी-कभी बड़ा स्ट्रेज, बड़ा विचित्र अनुभव होता है कि मां मुस्कुरा रही है चेहरे से लेकिन बच्चा समझता है कि वह क्रोध में है। मां कर रही है, थपका रही है खिलौने ले आऊंगी बाजार से, और बड़ी प्रसन्नता दिखा रही है जैसे कि बच्चे से बड़ा प्रेम हो, लेकिन बच्चे समझ लेते हैं कि यह सब धोखा है। क्योंकि

वह जो कह रही है, उसके हाथ की थपकी से पता नहीं चलता। बच्चे पहले तो बाड़ी लैंग्वेज सीखते हैं, शरीर की भाषा सीखते हैं। बच्चे जानते हैं कि मां जब उन्हें दूध पिला रही है, तो उसके स्तन का इशारा भी बच्चे समझते हैं कि इस वक्त वह प्रसन्न है, नाखुश है, पिलाना चाहती है, नहीं पिलाना चाहती, हट जाना चाहती है कि पास आना चाहती है। वह सब समझते हैं। क्योंकि पहली भाषा उनकी शरीर की भाषा है। वह मां को देख कर समझते हैं। अभी वह बोल नहीं सकते, न मां क्या

बोलती है, उसे समझ सकते हैं। लेकिन मां की गेस्चर, उसकी मुद्राएं उनके ख्याल में आने लगती हैं। और इसलिए बच्चों को धोखा देना बहुत मुश्किल है। जब तक कि बच्चे थोड़े बड़े न होने लगें। छोटे बच्चों को धोखा नहीं दिया जा सकता।

फिर धीरे-धीरे भाषा आरोपित हो जाती है और हम शरीर की भाषा भूल जाते हैं। और तब बड़ी मजेदार घटनाएं घटती हैं। अक्सर आपको ख्याल में नहीं है। कभी किसी फिल्म में आपको ख्याल में आया हो तो आया हो। कभी फिल्म में ऐसा हो जाता है कि भाषा और भाव-भंगिमा का संबंध टूट जाता है।

एक नाटक में ऐसा हुआ कि एक आदमी को गोली मारी जानी थी, लेकिन गोली का घोड़ा अटक गया। मारने वाले ने बहुत घोड़ा खींचा, लेकिन जैसे उसने घोड़ा खींचा जिसको मरना था, वह धड़ाम से गिरकर मर गया। जब वह मर चुका और चिल्ला चुका कि हाय, मैं मरा! बाद में घोड़ा छूटा और गोली चली। संबंध टूट गया, कृत्य में और भाषा में।

आपको पता नहीं, आपके कृत्य और भाषा में संबंध नहीं होता। आपके होंठ मुस्कराते हैं। आपकी आंख कुछ और कहती है। आप हाथ से हाथ मिलाते हैं, आपके हाथ के भीतर की ऊर्जा पीछे हटती है; हाथ आगे बढ़ा है, ऊर्जा पीछे हट रही है, आप मिलाना नहीं चाहते। हाथ मिलाना नहीं चाहते तो भीतर की ऊर्जा पीछे हट रही है। और आप मिला रहे हैं हाथ। लेकिन अगर दूसरा आदमी भाषा समझता हो शरीर की तो फौरन पहचान जाएगा कि हाथ मिलाया गया और ऊर्जा नहीं मिली। ऊर्जा भीतर खींच ली।

लेकिन हम सभी भाषा भूल गए हैं। इसलिए कोई पता नहीं चलता है। एक आदमी को गले मिलाते हैं और पीछे हट रहे हैं। आपको खुद पता चल जायगा। जरा ख्याल करना अपने कृत्यों में कि जो आप कर रहे हैं, अगर वह नहीं करना चाहते हैं तो भीतर उससे विपरीत हो रहा है। उसी वक्त हो रहा है। वह तो कोई शरीर की भाषा नहीं जानता। भूल गए हैं हम सब। शायद भूल जाना जरूरी है, नहीं तो दुनिया में दोस्ती बनाना, प्रेम करना बहुत मुश्किल हो जाए। अगर हमारे शरीर की भाषा सीधी-सीधी समझ में आ जाए तो बड़ा मुश्किल हो जाए। इसलिए हम सब पर्त बना लिए हैं। उन शब्दों की पर्त में हम जीते हैं।

जब हम किसी आदमी से कहते हैं, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तो बस वह इतना ही सुनता है। न हमारे ओंठ की तरफ देखता कि जब ये शब्द कहे गए, तो ओंठों ने भी कुछ कहा? असली कंटेंट ओंठों में है, शब्दों में नहीं। जब ये शब्द कहे गए तब आंखों ने कुछ कहा? असली विषय-वस्तु आंखों में है, शब्दों में नहीं। जब ये शब्द कहे गए तब इस पूरे आदमी के रोएं-रोएं में पुलक क्या थी? आनंद क्या था? ये कहने से प्राण इसके आनंदित हुए? कि मजबूरी में इसने कह कर कर्तव्य निभाया!

लेकिन शायद खतरनाक है। जैसा हमारी सभ्यता है, समाज है, धोखे का एक लंबा आडंबर। इसलिए हम बच्चों को जल्दी ही ठोंक-पीट कर उनकी जो समझ है उनके ऊपर आरोपण करके, उनकी वास्तविक समझ को भुला देते हैं।

गुरु के पास रह कर फिर शब्दों की भाषा भूलनी पड़ती है। फिर शरीर की भाषा सीखनी पड़ती है। क्योंकि जो गहन है, वह शरीर से कहा जा सकता है। वह जो गहन है वह भाव-भंगिमा से कहा जा सकता है। इसलिए एक पूरा शास्त्र मुद्राओं का, गेस्चर्स का निर्मित हुआ। अब पश्चिम में उसकी पुनः खोज हो रही है। जिसको वह शरीर की भाषा कहते हैं वह हमने मुद्राओं में काफी गहराई तक खोजी है।

आपने बुद्ध की मूर्तियां देखी होंगी विभिन्न मुद्राओं में। अगर आप किसी एक खास मुद्रा में बैठ जाएं तो आप हैरान होंगे कि आपके भीतर भाव परिवर्तन हो जाता है। आपकी मुद्रा भीतर भाव परिवर्तन ले आती है। आपका भाव परिवर्तन हो तो मुद्रा परिवर्तित हो जाती है। जैसे बुद्ध पद्मासन में बैठते हैं, हाथ पर हाथ रख कर, या महावीर बैठते हैं पद्मासन में। सिर्फ वैसे ही आप बैठ जाएं, तो आप तत्काल पाएंगे कि जो आपके मन की धारा चल रही थी वह उसमें विघ्न पड़ गया। बुद्ध ने अनेक मुद्राएं, अभय, करुणा, बहुत सी मुद्राओं की बात की है। अगर उस मुद्रा में आप खड़े हो जाएं तो आप तत्काल भीतर पाएंगे कि भाव में अंतर पड़ गया। अगर आप क्रोध की मुद्रा में खड़े हो जाएं तो भीतर क्रोध का आवेश आना शुरू हो जाता है।

शरीर और भीतर जोड़ है। गुरु के भीतर सारे धोखे मिट गए हैं। उसके भीतर भाव होता है, उसके शरीर तक वह जाता है।

इसलिए महावीर कहते हैं, शिष्य को, गुरु के इंगितों को ठीक-ठीक समझता हो। क्या गुरु कह रहा है, इसे ठीक-ठीक समझता हो, शरीर से भी।

रिंझाई अपने गुरु के पास था। चौबीस घंटे रुकने के बाद उसने कहा, आप कुछ सिखाएंगे नहीं? गुरु ने कहा, चौबीस घंटे मैंने कुछ और किया ही नहीं सिवाय सिखाने के तो रिंझाई ने कहा, एक शब्द आप बोले नहीं! या तो मैं बहरा हूं जो मुझे सुनाई नहीं पड़ा! लेकिन अभी आप बोल रहे हैं, मैं ठीक से सुन रहा हूं। आप एक शब्द नहीं बोले।

गुरु ने कहा, मेरा सब कुछ होना बोलना ही है। तुम जब सुबह मेरे लिए चाय लेकर आए थे, तब मैंने कैसे तुमसे हाथ से चाय ग्रहण की थी, और मेरी आंखों में कैसे अनुग्रह का भाव था! वह तुमने नहीं देखा। काश, तुम वह देख लेते! तो जो नहीं कहा जा सकता, वह मैंने कह दिया था। जब सुबह आकर तुमने मेरे चरणों में सिर रखा था और नमस्कार किया था तो मैंने किस भांति तुम्हारे सिर पर हाथ रख दिया था। काश, तुम वह समझ लेते तो बहुत कुछ समझ में आ गया होता।

शास्त्र नहीं कह सकते, जो एक इशारा कह सकता है।

महावीर कहते हैं: "जो गुरु के इंगितों को समझता हो, कार्य विशेष में गुरु की शारीरिक अथवा मौखिक मुद्राओं को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वह मनुष्य विनय संपन्न कहलाता है।"

तो हमारी तो बड़ी कठिनाई हो जाएगी। हम तो महावीर चिल्ला-चिल्ल कर, डंका बजा-बजा कर कहें कि ऐसा करो, तो भी समझ में नहीं आता। समझ में भी आता है तो हमारी समझ में वही आता है जो हम समझना चाहते हैं। वह क्या कहना चाहते हैं इससे कोई लेना-देना नहीं है। हम अपने पर इस बुरी तरह आरुढ़ हैं, हम अपने आपको इस तरह पकड़े हुए हैं कि जो हम समझते हैं, वह हमारी व्याख्या होती है, इंटरप्रिटेशन होता है। क्या महावीर कहते हैं, वह हम नहीं समझते। हम क्या समझना चाहते हैं, हम क्या समझ सकते हैं, हमारी समझ हम उनके ऊपर आरोपित करके जो व्याख्या कर लेते हैं। फिर हम उसके अनुसार चलते हैं और हम सोचते हैं कि हम महावीर के अनुसार चल रहे हैं। हम अपने ही अनुसार चलते रहते हैं।

कभी आपने ख्याल किया, मैं यहां बोल रहा हूं, मैं एक ही बात बोल रहा हूं; लेकिन यहां जितने लोग हैं, उतनी बातें समझी जा रही हैं। यहां हर आदमी अपने भीतर इंतजाम कर रहा है, समझ रहा है, अपनी बुद्धि को जोड़ रहा है, अर्थ निकाल रहा है।

अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हम इतने चालाक हैं कि जो हमारे मतलब का होता है, हम उसे जल्दी से समझ लेते हैं। जो हमारे मतलब का नहीं होता, हम उसको बाई पास कर जाते हैं। उस पर हम ध्यान ही नहीं देते। जिससे हमारा लाभ होता हो उसे हम तत्काल पकड़ लेते हैं। जिसमें हमें जरा भी हानि दिखाई पड़ती हो,

हम उसको सुनते ही नहीं। हम उसे गुजार जाते हैं। ऐसा नहीं कि हम सुनकर उसे गुजार जाते, हम सुनते ही नहीं। हम उस पर ध्यान ही नहीं देते। हम अपने ध्यान को एक छलांग लगा देते हैं, हम आगे बढ़ जाते हैं।

जब मैं आपसे बोल रहा हूँ तो उसमें से पांच प्रतिशत भी सुन लें तो बहुत कठिन है। उसमें से पांच प्रतिशत भी आप वैसा सुन लें जैसा बोला गया है, बहुत कठिन है। आप अपने को मिलाते चले जाते हैं, इसलिए अंत में जो आप अर्थ निकालते हैं, ध्यान रखना, वह आपका ही है। उसका मुझ से कुछ लेना-देना नहीं।

महावीर कहते हैं कि जो शारीरिक, मौखिक मुद्राओं तक को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वह मनुष्य विनय-संपन्न कहलाता है। वह आदमी विनीत है, वह आदमी हम्बल है। क्या मतलब हुआ विनीत का? विनीत का मतलब हुआ कि आप बीच-बीच में न आते हों, आप अपने को घुमा-घुमा कर बीच में न ले आते हों। जो कहा जा रहा हो, उसको ही समझ लेते हों अपने को बीच में लाए बिना, तो आप शिष्य हैं।

विद्यार्थी को मनाही नहीं है, वह अपने को बीच में लाए, मजे से लाए। शिष्य को मनाही है, क्योंकि विद्यार्थी केवल सूचनाएं ग्रहण कर रहा है। अपने लाभ के लिए। जो उसके लाभ का हो ग्रहण कर ले, जो उसके लाभ का न हो छोड़ दे। इसलिए शिक्षक और विद्यार्थी के बीच संबंध लाभ-हानि का है। जो मेरे काम का नहीं है वह मैं छोड़ दूंगा जो मेरे काम का है वह चुन लूंगा यह उचित ही है। लेकिन शिष्य और गुरु के बीच संबंध लाभ-हानि का नहीं है। यह गुरु को पीने आया है। इसमें यह अगर अपने को बीच-बीच में डालता है तो जो भी यह निष्कर्ष लेगा वह इसके अपने होंगे। गुरु से कोई संबंध न हो पाएगा।

इसलिए कई बार ऐसा होता है कि गुरु के पास लोग वर्षों रहते हैं और फिर भी गुरु को बिना छुए लौट जाते हैं। वर्षों रहा जा सकता है। वर्ष बड़े छोटे हैं, जन्मों रहा जा सकता है। वे अपने को ही सुनते रहते हैं।

विनय का यह तो बहुत गहरा अर्थ हुआ। विनय का अर्थ हुआ, अपने को सब भांति छोड़ देना। असल में विद्यार्थी होना हो तो अज्ञान शर्त नहीं है। शिष्य होना हो तो अज्ञानी होना शर्त है। अपने सारे ज्ञान को तिलांजलि दे देना, खाली स्लेट की तरह, खाली कागज की तरह खड़े हो जाना, ताकि गुरु जो लिखे वही दिखाई पड़े। आपका लिखा हुआ पहले से तैयार हो कागज पर, और फिर गुरु और लिख दे तो सब उपद्रव ही हो जाएगा और जो अर्थ निकलेंगे वे अनर्थ सिद्ध होंगे।

यह अनर्थ घट रहा है, यह हर आदमी पर घट रहा है। हर आदमी एक भीड़ है। उसमें न मालूम कितने विचार हैं। और जब एक विचार उस भीड़ में घुसता है तो वह भीड़ तत्काल उस विचार को बदलने में लग जाती है, अपने अनुकूल करने में लग जाती है। जब तक वह विचार अनुकूल न हो जाए, तब तक आपका पुराना मन बेचैनी अनुभव करता है। जब वह अनुकूल हो जाए, तब आप निश्चित हो जाते हैं।

गुरु के पास आप जब जाते हैं तब गुरु जो विचार देता है, उसको आपके पूर्व विचारों के अनुकूल नहीं बनाना है, बल्कि इस विचार के अनुकूल सारे पूर्व विचारों को बनाना है, तब विनय है, चाहे सब टूटता हो, चाहे सब जाता हो।

आपके पास है भी क्या। हम बड़े मजेदार लोग हैं, जिसको बचाते रहते हैं, कभी यह सोचते नहीं हैं, है भी क्या! मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, मेरा विचार तो ऐसा है। मैं उनसे पूछता हूँ, अगर यह विचार तुम्हें कहीं ले गया हो तो मजे से पकड़े रहो, मेरे पास आओ ही मत। नहीं, वे कहते हैं, कहीं ले तो नहीं गया। तो फिर इस मेरे विचार को कृपा करके छोड़ दो। जो विचार तुम्हें कहीं नहीं ले गया है, उसी को लेकर अगर तुम मेरे पास भी आते हो और मैं तुमसे जो कहता हूँ, उसी विचार से उसकी भी जांच करते हो तो मेरा विचार भी तुम्हें कहीं नहीं ले जाएगा। तुम निर्णायक बने रहोगे। लोग सुनते ही नहीं।

मार्क ट्वैन ने एक मजाक की है, बड़ा संपादक था, बड़ा लेखक था और एक हंसोड़ आदमी था। और कभी-कभी हंसने वाले लोग गहरी बातें कह जाते हैं जो कि रोने वाले लाख रोएं तो नहीं कह पाते। उदास लोगों से सत्यों का जन्म नहीं होता। उदास लोगों से बीमारियां पैदा होती हैं। मार्क ट्वैन ने कहा है, कि जब कोई किताब

मेरे पास आलोचना के लिए, क्रिटिसिज्म के लिए भेजता है, तो मैं पहले किताब पढ़ता नहीं, पहले आलोचना लिखता हूँ। क्योंकि किताब पढ़ने से आदमी अगर प्रभावित हो जाए तो पक्षपात हो जाता है। पहले आलोचना लिख देता हूँ, फिर मजे से किताब पढ़ता हूँ। उसने सलाह दी कि आलोचक को कभी भी आलोचना करने के पहले किताब नहीं पढ़नी चाहिए क्योंकि उससे आलोचक का मन अगर प्रभावित हो जाए तो पक्षपात हो जाता है।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन बुढ़ापे में मजिस्ट्रेट हो गया, जे पी। पहला ही आदमी आया। मिल गया होगा। किसी स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर, उसको जे पी होना। पहला ही आदमी आया, पहला ही मुकदमा था। एक पक्ष बोल पाया था कि उसने जजमेंट लिखना शुरू किया। कोर्ट के क्लर्क ने कहा, महानुभाव, यह आप क्या कर रहे हैं। अभी आपने दूसरे पक्ष को तो सुना ही नहीं।

नसरुद्दीन ने कहा: अभी मेरा मन साफ है और अगर मैं दोनों को सुन लूँ तो सब कनफ्यूजन हो जाएगा, जब तक मन साफ है, मुझे निर्णय लिख लेने दो, फिर पीछे दूसरे को भी सुन लेंगे। फिर कुछ गड़बड़ होने वाली नहीं है। हम सब ऐसे ही कनफ्यूजन में हैं, और हम किसी की भी नहीं सुनता चाहते हैं कि कहीं कनफ्यूज न हो जाएं। हम अपने को ही सुने चले जाते हैं। जब हम दूसरे को भी सुन रहे हैं तब हम पर्दे की ओट से सुनते हैं छांटते रहते हैं, क्या छोड़ देना है, क्या बचा लेना है? फिर जो बचता है, वह आपका ही चुनाव है। लोग अपने विचार को पकड़ कर चलते हों, तो गुरु से उनका कोई संबंध नहीं हो सकता। वे लाख गुरुओं के पास भटकें वे अपने इर्द-गिर्द ही परिक्रमा करते रहते हैं। वे अपने घर को कभी नहीं छोड़ पाते, उसके आस-पास ही घूमते रहते हैं।

इसलिए महावीर ने कहा है, कहता हूँ उसे विनय संपन्न, जो गुरु की मुद्राओं तक को वैसा ही समझ लेता हो, जैसी वे हैं। फिर पंद्रह लक्षण महावीर ने गिनाए। निम्नलिखित पंद्रह लक्षणों से मनुष्य सुविनीत कहलाता है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं--

"उद्धत न हो, एग्रेसिव न हो, आक्रमक न हो।" क्योंकि जो आक्रमक है चित्त से वह ग्रहण न कर पाएगा। रिसेप्टिव हो, ग्राहक हो, उद्धत न हो।

अलग-अलग बात... स्थितियां हैं। जब आप उद्धत होते हैं तब आप दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं। लोग आते हैं, उनके प्रश्न ऐसे होते हैं, जैसे वे प्रश्न न लाकर, एक छुरा लेकर आए हों। प्रश्न पूछने के लिए नहीं होते, हमला करने के लिए होते हैं। प्रश्न कुछ समझने के लिए नहीं होते हैं। कुछ समझाने के लिए होते हैं तो अगर शिष्य गुरु को समझाने आया हो, तो कुछ भी होने वाला नहीं है। यह तो नदी जो है, नाव के ऊपर हो गई, अगर शिष्य गुरु को समझाने आया हो। हालांकि ऐसे शिष्य खोजना मुश्किल है जो गुरु को समझाने न आते हों। तरकीब से समझाने आते हैं और फिर भी यह मन में माने चले जाते हैं कि हम शिष्य हैं।

महावीर कहते हैं: "उद्धत न हो, नम्र हो। आक्रमक न हो, ग्राहक हो, कुछ लेने आया हो। चपल न हो, स्थिर हो।" क्योंकि जितनी चपलता हो, उतना ही ग्रहण करना मुश्किल हो जाता है। चपल आदमी का चित्त वैसा होता है जैसे फूटी बाल्टी हो। ग्राहक भी हो तो किसी काम की नहीं, पानी भरा हुआ दिखाई पड़ेगा जब तक पानी में डूबी रहे। ऊपर निकालो पानी सब गिर जाता है। चपल चित्त छेद वाला चित्त है। जब वह गुरु के पास भी बैठा हुआ है तब तक वह हजार जगह हो आया। बैठे हैं वहां न मालूम कहां-कहां का चक्कर काट आए। तो जितनी देर वह कहीं और रहा उतनी देर गुरु ने जो कहा, वह तो सुनाई भी नहीं पड़ेगा।

"स्थिर हो, मायावी न हो, सरल हो", ... किसी तरह का धोखा देने की इच्छा में न हो।

हम सब होते हैं। गुरु के पास जब कोई जाता है तो वह बताता है कि मैं बिल्कुल ईमानदार हूँ, सच्चा हूँ। नहीं, वह जो हो उसे बता देना चाहिए। क्योंकि गुरु को धोखा देने से वह अपने को ही धोखा देगा। यह तो ऐसा हुआ, जैसे किसी डाक्टर के पास कोई जाए। हो कैंसर और बताए कि कुछ नहीं, जरा फोड़ा-फुंसी है। तो फोड़ा-फुंसी का इलाज हो जाएगा।

डाक्टर को हम धोखा नहीं देते बीमारी बता देते हैं वही जो है। तो ही डाक्टर किसी उपयोग का हो पाता है। गुरु तो चिकित्सक है। उसके पास जाकर तो सब खोल देना जरूरी है, तो ही निदान हो सकता है। लेकिन हम उसके साथ भी वही धोखा चलाए जाते हैं जो हम दुनिया भर में चला रहे हैं। उसके साथ भी हम वह दिखाए चले जाते हैं जो हम नहीं हैं, तो बदलाहट कभी भी संभव नहीं होगी। गुरु के पास तो पूर्ण नग्न--जो हम हैं सब उघाड़ कर रख देने का है। उसमें कुछ भी छिपाने का नहीं है। यह अछिपाव का अर्थ ही सरलता है।

"कुतूहलता न हो, गंभीर हो।"

जिज्ञासा गंभीर बात है, कुतूहल नहीं है, क्युरिआसिटी नहीं है। इंकवायरी और क्युरिआसिटी में फर्क है। बच्चे कुतूहली होते हैं, कुतूहली का आप मतलब समझते हैं? कुछ करना नहीं है पूछ कर, पूछने के लिए पूछना है। आ गया ख्याल कि ऐसा क्यों है पूछ लिया। इससे क्या उत्तर मिलेगा, उससे जीवन में कोई अंतर करना, यह सवाल नहीं है। इसलिए बच्चों के बड़े मजेदार सवाल होते हैं। एक सवाल उन्होंने पूछा उसका आप उत्तर भी नहीं दे पाए कि दूसरा सवाल पूछ लिया। आप जब उत्तर दे रहे हैं, तब उन्हें कोई रस नहीं है, उनका मतलब पूछने से था।

मेरे पास लोग आते हैं। मैं बहुत चकित हुआ। वह एक सवाल--कहते हैं कि बड़ा महत्वपूर्ण सवाल है, आपसे पूछना है। वे पूछ लेते हैं। उन्होंने सवाल पूछा लिया। मैं उनसे पूछता हूं, पत्नी आपकी ठीक, बच्चे आपके ठीक? वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक हैं। वे सवाल ही भूल गए इतने में। वे घंटे भर जमाने भर की बातें करके बड़े खुश वापस लौट जाते हैं। मैं सोचता हूं सवाल का क्या हुआ जो बड़ा महत्वपूर्ण था, जो मैंने इतने से पूछने से कि बच्चे कैसे हैं, समाप्त हो गया। फिर उन्होंने पूछा ही नहीं।

कुतूहल था, आ गए थे पूछने, ईश्वर है या नहीं? मगर इससे कोई मतलब न था, इससे कोई संबंध न था। शायद यह पूछना भी एक रस दिखलाना था कि मैं ईश्वर में उत्सुक हूं। यह भी अहंकार को तृप्ति देता है कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, ईश्वर की खोज कर रहा हूं।

मार्पा अपने गुरु के पास गया, नारोपा के पास। तो तिब्बत में रिवाज था कि पहले गुरु की सात परिक्रमाएं की जाएं, फिर सात बार उसके चरण छूए जाएं, सिर रखा जाए, फिर साष्टांग लेट कर प्रणाम किया जाए, फिर प्रश्न निवेदन किया जाए। लेकिन मार्पा सीधा पहुंचा, जाकर गुरु की गर्दन पकड़ ली और कहा कि यह सवाल है। नारोपा ने कहा कि मार्पा, कुछ तो शिष्टता बरत, यह भी कोई ढंग है? परिक्रमा कर, दंडवत कर, विधि से बैठ, प्रतीक्षा कर। जब मैं तुझसे पूछूं कि पूछ, तब पूछ।

लेकिन मार्पा ने कहा: जीवन है अल्पा और कोई भरोसा नहीं कि सात परिक्रमाएं पूरी हो पाएं! और अगर मैं बीच में मर जाऊं तो नारोपा, जिम्मेवारी तुम्हारी कि मेरी?

तो नारोपा ने कहा कि छोड़ परिक्रमा, पूछ। परिक्रमा पीछे कर लेना।

नारोपा ने कहा है कि मार्पा जैसा शिष्य फिर नहीं आया। यह कोई कुतूहल न था, यह तो जीवन का सवाल था। यह कोई कुतूहल नहीं था। यह ऐसे ही पूछने नहीं चला आया था। जिंदगी दांव पर थी। जब जिंदगी दांव पर होती है, तब जिज्ञासा होती है। और जब ऐसी खुजलाहट होती है दिमाग की, तब कुतूहल होता है।

"किसी का तिरस्कार न करो।"

इसलिए नहीं कि तिरस्कार योग्य लोग नहीं हैं जगत में, काफी हैं। जरूरत से ज्यादा हैं। बल्कि इसलिए कि तिरस्कार करने वाला अपनी ही आत्महत्या में लग जाता है। जब आप किसी का तिरस्कार करते हैं तो वह तिरस्कार योग्य था या नहीं, लेकिन आप नीचे गिरते हैं। जब आप तिरस्कार करते हैं किसी का, तो आपकी ऊर्जा ऊंचाइयां छोड़ देती है और नीचाइयों पर उतर आती है। यह बहुत मजे की बात है कि तिरस्कार जब आप किसी का करते हैं तो आपको उसी के तल पर भीतर उतर आना पड़ता है।

इसलिए बुद्धिमानों ने कहा है, मित्र कोई भी चुन लेना, लेकिन शत्रु सोच-समझ कर चुनना। क्योंकि आदमी को शत्रु के तल पर उतर आना पड़ता है। इसलिए अगर दो लोग जिंदगी भर लड़ते रहें, तो आप आखिर में पाएंगे कि उनके गुण एक जैसे हो जाते हैं। क्योंकि जिससे लड़ना पड़ता है, उसके तल पर होना पड़ता है, नीचे उतरना पड़ता है।

इसलिए महावीर कहेंगे, अगर प्रशंसा बन सके तो करना, क्योंकि प्रशंसा में ऊपर जाना पड़ता है, निंदा में नीचे आना पड़ता है। यह सवाल नहीं है कि दूसरा आदमी निंदा योग्य था या प्रशंसा योग्य था, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि जब आप प्रशंसा करते हैं तो आप ऊपर उठते हैं और जब आप निंदा करते हैं, तो आप नीचे गिरते हैं। वह आदमी कैसा था, यह तो निर्णय करना भी आसान नहीं है।

इसलिए महावीर कहते हैं, कि किसी का तिरस्कार न रखता हो, क्रोध को अधिक समय तक न टिकने देता हो।

यह नहीं कहते कि अक्रोधी हो, क्योंकि शिष्य से यह जरा ज्यादा अपेक्षा हो जाएगी। इतना ही कहते हैं, क्रोध को ज्यादा न टिकने देता हो। क्रोध क्षण भर को आता हो, तब तक जाग जाता हो और क्रोध को विसर्जित कर देता हो। धीरे-धीरे क्रोध नहीं आएगा, लेकिन वह दूर की बात है। यात्रा के पहले चरण में क्रोध को अधिक न टिकने दे, इतना ही काफी है।

आपको पता है, आप क्रोध को कितना टिकने देते हैं? कुछ लोग हैं, उनके बापदादे लड़े थे, अभी तक क्रोध टिका है। अभी तक वे लड़ रहे हैं, क्योंकि वह दुश्मनी बापदादों से चली आ रही है। आज आपको क्रोध हो जाए, आप जिंदगी भर उसको टिकने देते हैं। वह बैठा रहता है भीतर। कब मौका मिल जाए, आप बदला ले लें।

क्रोध अगर एक क्षण में उठने वाली घटना है और खो जाने वाली तो पानी का एक बुलबुला है। बहुत चिंता की जरूरत नहीं है। एक लिहाज से अच्छा है। इसलिए वे लोग अच्छे होते हैं जो क्रोध कर लेते हैं और भूल जाते हैं, बजाय उन लोगों के जो क्रोध को दबाए चले जाते हैं। ये लोग खतरनाक हैं। ये आज नहीं कल कोई उपद्रव करेंगे। इनकी केटली का ढक्कन भी बंद है और नीचे आग भी जल रही हैं। विस्फोट होगा। ये किसी की जान लेंगे। उससे कम में ये मानने वाले नहीं हैं। केटली अच्छी है जिसका ढक्कन खुला है। भाप ज्यादा हो जाती है, ढक्कन थोड़ा उछल जाता है, भाप बाहर निकल जाती है, केटली अपनी जगह हो जाती है।

हर आदमी एक उबलती हुई केटली है, जिंदगी की आग नीचे जल रही है। ढक्कन थोड़ा ढीला रखना अच्छा है। बिल्कुल चुस्त मत कर लेना, जैसा संयमी लोग कर लेते हैं। फिर वे जान लेऊ हो जाते हैं। खुद तो मरेंगे, दो चार को आसपास मार डालेंगे।

महावीर कहते हैं, जिसका ढक्कन थोड़ा ढीला हो। भाप ज्यादा होती हो, छलांग लगा कर बाहर निकल जाती हो, ढक्कन वापस अपनी जगह हो जाता हो।

क्रोध बिल्कुल न हो, यह शिष्य से अपेक्षा नहीं की जा सकती, यह तो आखिरी बात है। लेकिन क्षण भर टिकता हो, बस इतना भी काफी है। असल में क्रोध इतनी बीमारी नहीं है जितना टिका हुआ क्रोध बीमारी है क्योंकि टिका हुआ क्रोध भीतर एक स्थाई धुआं हो जाता है। कुछ लोग ऐसे हैं जो क्रोधित नहीं होते, उनको होने की जरूरत नहीं है। वे क्रोधित रहते ही हैं। उनको होने वगैरह की आवश्यकता नहीं है, वे हमेशा तैयार ही हैं। वे तलाश कर रहे हैं कि कहां खूटी मिल जाए, और हम अपने को टांग दें। तो खूटी न मिले तो भी वे कहीं खिड़की, दरवाजे पर कहीं न कहीं टांगेंगे, निर्मित कर लेंगे खूटी।

क्रोध निकल जाता हो, क्षण भर आता हो तो बेहतर है। वैसा आदमी भीतर क्रोध की पर्त निर्मित नहीं करता। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है, महावीर के मुंह से यह बात कि क्रोध को अधिक समय तक न टिकने देता हो। बड़ी महत्वपूर्ण बात है।

"मित्रों के प्रति सदभाव रखता हो।"

यह बड़ी हैरानी की बात है। हम कहेंगे कि मित्रों के प्रति सदभाव होता ही है। बिल्कुल झूठ है। मित्रों के प्रति सदभाव रखना बड़ी कठिन बात है। क्योंकि मित्र का मतलब, जिसको हम जानते हैं, जिसको हम भलीभांति पहचानते हैं। जिसको नहीं पहचानते उसके प्रति सदभाव आसान है। जिसको जानते हैं, उसके प्रति सदभाव बड़ा मुश्किल है। मित्रों के प्रति सदभाव बड़ा मुश्किल है।

मार्क ट्वेन ने कहा है कि हे परमात्मा! शत्रुओं से मैं निपट लूंगा, मित्रों से तू मुझे बचाना।

मित्र बड़ी अदभुत चीज है। जिसे हम जानते हैं, जिसका सब कुछ हमें पता है, उसके प्रति कैसे सदभाव रखें?

अज्ञान में सदभाव आसान है, ज्ञान में मुश्किल हो जाता है। इसलिए जितना हमारे कोई निकट होता है उतना ही दूर भी हो जाता है। और हम मित्रों के संबंध में भी इधर-उधर जो बातें करते रहते हैं, वे बताते हैं कि सदभाव कितना है। पीठ पीछे हम क्या कहते रहते हैं, उससे पता चलता है, सदभाव कितना है। महावीर कहते हैं, मित्रों के प्रति सदभाव रखता हो, पूरा सदभाव रखता हो।

"शास्त्रों से ज्ञान पाकर गर्व न करता हो।"

क्योंकि शास्त्रों से ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए गर्व व्यर्थ है। और शास्त्रों के ज्ञान से गर्व पैदा होता है, इसलिए विशेष रूप से यह सूचन किया है, क्योंकि शास्त्रों से जब ज्ञान मिल जाता है तो लगता है मैंने जान लिया, बिना जाने। अभी जानना बहुत दूर है। अभी किताब में पढ़ा कि पानी प्यास बुझाता है, अभी पानी नहीं मिला। अभी किताब में पढ़ा कि मिठाई बड़ी मीठी होती है, अभी स्वाद नहीं मिला। अभी किताब में पढ़ा कि सूरज उगता है और प्रकाश ही प्रकाश होता है, जिंदगी अभी अंधेरे में है।

तो किताब को पढ़ कर जो गर्व न करता हो। लेकिन किताब को पढ़ कर गर्व आ ही जाता है, लगता है, जाना। इसलिए शास्त्रीय आदमी हो और अहंकारी न हो, बड़ा मुश्किल है। शास्त्र अहंकार के लिए बोझिल है। इसलिए पंडित की चाल देखें, पंडित की आंख देखें, उनकी भाव-भंगिमा जरा पहचानें, तो वे जमीन पर नहीं चलते। वे चल नहीं सकते। जमीन और उनके बीच बड़ा फासला होता है। इसलिए दो पंडितों को पास बिठा दें, तो जो घटना दो कुत्तों के बीच घट जाती है, वही घट जाती है।

क्या हो जाता है? एकदम कुत्तों के गले में खराश आ जाती है। एकदम भौंकना शुरू कर देते हैं। जब तक एक हार न जाए, तब तक दूसरे को शांति नहीं मिलती।

मैंने तो सुना है कि पंडित मर कर कुत्ते बिल्लियां हो जाते हैं। वे पुरानी आदतवश भौंकते चले जाते हैं।

क्या हो जाता होगा? शास्त्र इतना भौंकता क्यों है? शास्त्र नहीं भौंकता। शास्त्र से अहंकार पोषित हो जाता है। लगता है, मैं जानता हूं, और जब ऐसा लगता है कि मैं जानता हूं तो फिर कोई और जान सकता है, यह मानने का मन नहीं होता। फिर कोई और भी जानता है जो मुझसे भिन्न जानता है, तो शत्रुता निर्मित हो जाती है। फिर सिद्ध करना जरूरी हो जाता है कि मैं ठीक हूं। पंडित सत्य की खोज में नहीं होता, मैं ठीक हूं, इसकी खोज में होता है।

महावीर कहते हैं: "शास्त्रों को पाकर गर्व न करता हो, किसी के दोषों का भंडाफोड़ न करता हो।"

कोई प्रयोजन नहीं है। किसी के दोष पता भी चल जाएं तो उनकी चर्चा का क्या अर्थ है? आपकी चर्चा से उसके दोष न मिट जाएंगे। हो सकता है, बढ़ जाएं। अगर आप सच में ही चाहते हैं कि उसके दोष मिट जाएं तो इन दोषों की सारे जगत में चर्चा करते रहने से कोई मतलब नहीं। लेकिन, एक मामले में हम बड़े सृजनात्मक लोग हैं। किसी का जरा सा दोष दिख जाए तो हमारे पास मैग्निफाइड ग्लास है, हम उसको फिर इतना बड़ा करके देखते हैं कि सारा ब्रह्मांड का विस्तार छोटा मालूम पड़ने लगता है।

सुना है मैंने, मुल्ला ने एक दिन अपनी पत्नी को फोन किया। फोन करना पड़ा, क्योंकि ऐसी घटना हाथ में लग गई थी। बताया कि पड़ोसी अहमद के मित्र रहमान की पत्नी को लेकर भाग गया। दोनों के बच्चे सड़कों पर भीख मांग रहे हैं। और बहुत सी बातें बताईं। पत्नी भी रस से भर गई। क्योंकि पत्नियों को वियतनाम में क्या हो रहा है, इससे मतलब नहीं, पड़ोसी की पत्नी कहां भाग गई, यह बड़ा महत्वपूर्ण है।

पत्नी ने कहा कि जरा मुल्ला विस्तार से बताओ। मुल्ला ने कहा: विस्तार में मत ले जाओ मुझे, जितना मैंने सुना है उससे तीन गुना तुम्हें बता ही चुका हूं। अब और विस्तार में मुझे मत ले जाओ।

जब किसी का दोष हमें दिखाई पड़ जाए, तब हम तत्काल उसे बड़ा कर लेते हैं। इसमें भीतरी एक रस है। जब दूसरे का दोष बहुत बड़ा हो जाता है तो अपने दोष बहुत छोटे दिखाई पड़ते हैं। और अपने दोष छोटे दिखाई पड़ते हैं तब बड़ी राहत मिलती है कि हम क्या, हमारा पाप भी क्या?

दुनिया में यही एक घट रहा है चारों तरफ? तो हम बड़े पुण्यात्मा मालूम पड़ते हैं। इसलिए दूसरे के दोष बड़ा कर लेने में अपने दोष छोटा कर लेने की तरकीब है। खुद के दोष छोटा करना बुरा नहीं है, लेकिन दूसरे के बड़े करके छोटा करने का ख्याल करना पागलपन है। खुद के दोष छोटे करना अलग बात है।

लेकिन दो तरकीबें हैं, या तो खुद के दोष छोटे करो, तब छोटे होते हैं, या फिर पड़ोसियों के बड़े कर लो, तब भी छोटे दिखाई पड़ने लगते हैं। यह आसान है पड़ोसियों के बड़े करना। इसमें कुछ भी नहीं करना पड़ता है।

महावीर कहते हैं: "भंडाफोड़ न करता हो, मित्रों पर क्रोधित न होता हो।"

शत्रुओं पर हमारा इतना क्रोध नहीं होता जितना मित्रों पर होता है। इसलिए मित्र की सफलता कोई भी बर्दाश्त नहीं कर पाता। यह बड़ा मजाक है आदमी का मन। मित्र जब तकलीफ में होता है तब हमें सहानुभूति बताने में बड़ा मजा आता है। लेकिन मित्र अगर तकलीफ में न हो सफल होता चला जाए, तब हमें बड़ी पीड़ा होती है। जो आदमी अपने मित्र की सफलता में सुख न पाता हो, जानना कि मित्रता है ही नहीं। लेकिन हमें बड़ा मजा आता है। अगर कोई दुखी है तो हम संवेदना प्रकट करने पहुंच जाते हैं। संवेदना मे बड़ा मजा आता है। कोई दुखी है, हम दुखी नहीं हैं। कभी आपने देखा है? जब आप संवेदना प्रकट करने जाते हैं तो भीतर एक हलका सा रस मिलता है।

किसी के मकान में आग लग जाए तो आपकी आंख से आंसू गिरने लगते हैं। और किसी का मकान आकाश छूने लगे, तब आपके पैरों में नाच नहीं आता। तो जरूर इसमें कुछ खतरा है। क्योंकि अगर सच में ही किसी के मकान में आग लगने से हृदय रोता है तो उसका मकान गगनचुंबी हो जाए, उस दिन पैर नाचने चाहिए। लेकिन गगनचुंबी मकान देख कर पैर नाचते नहीं। आग लग जाए तो आंखें रोती हैं। निश्चित ही उस रोने के पीछे भी रस है। इसलिए लोग ट्रेजिडी, दुखांत नाटक और फिल्मों को देख कर इतना मजा पाते हैं, नहीं तो दुख को देखने में इतना मजा क्या है!

दुख को देख कर एक राहत मिलती है कि हम इतने दुखी नहीं हैं। अपना मकान अभी कायम है, कोई आग नहीं लगी है। दूसरे को सुखी देख कर जब हम सुखी होते हैं तब समझना कि मित्रता है। मित्रता सूक्ष्म बात है।

महावीर कहते हैं: "मित्रो पर क्रोधित न होता हो।"

यह भी ध्यान रखना कि शत्रुओं पर तो क्रोधित होने का कोई अर्थ नहीं होता, आप क्रोधित हैं। मित्रों पर क्रोधित होने का अर्थ होता है, क्योंकि रोज-रोज होना पड़ता है।

"मित्रों पर क्रोधित न होता हो, अप्रिय मित्र की भी पीठ-पीछे भलाई ही गाता हो।"

क्यों आखिर? यह तो झूठ मालूम होगा न। आप कहेंगे, बिल्कुल सरासर झूठ की शिक्षा महावीर दे रहे हैं। अप्रिय मित्र की भी पीठ पीछे भलाई गाता हो, पीछे भले की ही बात करता हो। नहीं, झूठ के लिए नहीं कह रहे हैं। कोई आदमी इतना बुरा नहीं है कि बिल्कुल बुरा हो। कोई आदमी इतना भला नहीं है कि बिल्कुल भला हो। इसलिए चुनाव है। जब आप किसी आदमी की बुराई की चर्चा करते हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि उस आदमी में भलाई है ही नहीं। आपने बुराई चुन ली। जब आप किसी आदमी की भलाई की चर्चा करते हैं तब भी यह मतलब नहीं होता है कि उसमें बुराई है ही नहीं। आपने भलाई चुन ली।

महावीर कहते हैं कि ऐसा बुरा आदमी खोजना कठिन है, जिसमें कोई भलाई न हो। क्योंकि बुराइयों के टिकने के लिए भी भलाई की जरूरत है। तो तुम चुनाव करना भलाई की चर्चा का। क्यों आखिर?

क्योंकि भलाई की जितनी चर्चा की जाए, उतनी खुद के भीतर भलाई की जड़ें गहरी बैठने लगती हैं। बुराई की जितनी चर्चा की जाए, बुराई की जड़ें गहरी बैठनी लगती हैं। हम जिसकी चर्चा करते हैं, अंततः हम वही हो जाते हैं। लेकिन हम सब बुराई की चर्चा कर रहे हैं। अगर हम अखबार उठा कर देखें तो पता ही नहीं चलता कि दुनिया में कहीं कोई भलाई भी हो रही होगी। सब तरफ बुराई हो रही है। सब तरफ चोरी हो रही है, सब तरफ हिंसा हो रही है। अखबार देख कर लगता है कि शायद अपने से छोटा पापी जगत में कोई भी नहीं है। यह सब क्या हो रहा चारों तरफ? और चेहरे पर एक रौनक आ जाती है। यह सारी बुराई आप संचित कर रहे हैं, अपने भीतर। यह सारी बुराई आपके भीतर प्रवेश कर रही है।

अगर हमें एक अच्छी दुनिया बनानी हो और अच्छे आदमी का जन्म देना हो तो हमें भलाई संचित करनी चाहिए, भलाई की फिकर करनी चाहिए। और जब हम बुराई की चर्चा करते हैं तब हमें पता नहीं कि वह बुराई का संस्कार हम पर निर्मित होता चला जाता है। यह आदमी चोर है, वह आदमी चोर है, सारी दुनिया चोर है। जिस दिन आप चोरी करने जाते हैं भीतर आपको कुछ ऐसा नहीं लगता कि आप कुछ नया करने जा रहे हैं। सभी यही कर रहे हैं। चोरी की जड़ मजबूत होती है।

जब आप कहते हैं, फलां आदमी अच्छा है, ... जब आप चुनते हैं अच्छा तो आपके भीतर अच्छे की मूल्यवत्ता निर्मित होती है। और जब बुराई करने जाते हैं तो आपको लगता है, आप क्या कर रहे हैं! दुनिया में ऐसा कोई भी नहीं कर रहा है।

तो महावीर कहते हैं: "अप्रिय मित्र की भी पीठ पीछे भलाई ही गाता हो।"

हम तो प्रिय मित्र की भी पीठ पीछे बुराई ही गाते हैं।

"किसी प्रकार का झगड़ा-फसाद न करता हो।"

झगड़ा-फसाद की एक वृत्ति होती है। कुछ लोग फसादी होते हैं। फसादी का मतलब यह कि आप ऐसा कोई कारण ही नहीं दे सकते उन्हें, जिसमें से वह झगड़ा न निकाल लें। वह झगड़ा निकाल ही लेंगे। झगड़ा निकालने की एक कला है, एक कुशलता है। कुछ लोग उसमें इतने कुशल हो जाते हैं कि वे किसी भी चीज में से झगड़ा निकाल लेते हैं।

मैं अपने एक मित्र को जानता हूं। उनके पिता बड़े अदभुत थे। ऐसे कुशल थे जिसका कोई हिसाब नहीं। अगर उनका बेटा नहा-धोकर, साफ-सुधरे कपड़े पहन कर दुकान पर आ जाए तो वह ग्राहकों को इकट्ठा कर लेते थे, कि देखो इनको, बाप मर गया कमा-कमा कर, ये मौज उड़ा रहे हैं। हमने कभी साबुन न देखी, आप देवी देवताओं को लजा रहे हैं। देखें।

तो मैंने उनके बेटे को कहा कि तू एक दिन बिना ही नहाए पहुंच जा, गंदे ही कपड़े पहन कर पहुंच जा! क्यों उनको बार-बार कष्ट देता है। वह पहुंच गया। पिता ने फिर भीड़ इकट्ठी कर ली और कहा, देखो, जब मैं मर जाऊं तब इस हालत में घूमना। अभी मैं जिंदा हूं, अभी नहाओ धोओ, अभी ठीक से रहो।

फिर बहुत प्रयोग किए हमने, सब तरह के प्रयोग किए, लेकिन पिता को... उनकी कुशलता अपरिसीम थी। कुछ भी करो, उसमें से फसाद निकाला जा सकता है।

महावीर कहते हैं: "झगड़ा-फसाद न करता हो।"

नहीं तो सीख न पाएगा, जीवन को बदल न पाएगा। ऊर्जा नष्ट हो जाती है, इन मूढ़ताओं में। अपनी ही शक्ति नष्ट होती है, किसी और की नहीं। लेकिन व्यर्थ हो जाती है।

"बुद्धिमान हो।"

बुद्धिमानी का अर्थ ही है कि झगड़ा-फसाद न करता हो, जीवन-ऊर्जा का विध्वंसक उपयोग न करता हो, सृजनात्मक, क्रिएटिव उपयोग करता हो।

"अभिजात हो।"

अभिजात कीमती शब्द है। अरिस्टोक्रैटिक हो। बड़ा अजीब लगेगा, समाजवाद की दुनिया है, वहां अरिस्टोक्रैसी कैसी? अभिजात्य। लेकिन महावीर के अर्थ में कुलीनता और अभिजात्य का अर्थ है, क्षुद्रता पर ध्यान न देता हो, शालीन हो। क्षुद्रताओं को नजर से बाहर कर देता हो, श्रेष्ठता पर ही ध्यान रखता हो। व्यर्थ को चुनता न हो और दूसरे में श्रेष्ठ होना चाहिए। इसकी तलाश करता हो।

अकुलीन का अर्थ होता है, जो पहले से मान कर बैठा है लोग बुरे हैं। कुलीन का अर्थ है, जो पहले से मान कर बैठा है कि लोग भले हैं। मूलतः कभी-कभी भले हो जाते हैं, यह बात और है।

कुलीन आदमी, अभिजात्य चित्त वाला व्यक्ति, दो दिनों के बीच में एक रात को देखता है। अकुलीन व्यक्ति दो रातों के बीच में एक दिन को देखता है। कुलीन व्यक्ति फूलों को गिनता है, कांटों को नहीं। और मानता है कि जहां फूल होते हैं वहां थोड़े कांटे भी होते हैं। और उनसे कुछ हर्जा नहीं होता, कांटे भी फूल की रक्षा ही करते हैं।

अकुलीन चित्त कांटों की गिनती करता है, और जब सब कांटों को गिन लेता है तो वह कहता है, एक दो फूल से होता भी क्या है। जहां इतने कांटे हैं, वहां एक दो फूल धोखा है।

कुलीन, अकुलीनता चुनाव का नाम है, आप क्या चुनते हैं? श्रेष्ठ का दर्शन आभिजात्य है, अश्रेष्ठ का दर्शन शूद्रता है।

"अभिजात हो, आंख की शर्म रखने वाला स्थिर वृत्ति हो।"

मैंने सुना है कि अकबर के तीन पदाधिकारियों ने राज्य को धोखा दिया। राज्य के खजाने को धोखा दिया। पहले पदाधिकारी को बुला कर अकबर ने कहा: तुमसे ऐसी आशा न थी! कहते हैं, उस आदमी ने उसी दिन सांझ जाकर आत्महत्या कर ली।

दूसरे आदमी को साल भर की सजा दी। तीसरे आदमी को पंद्रह वर्ष के लिए जेलखाने में डाला और सड़क पर नग्न करवा कर कोड़े लगवाए। मंत्री बड़े चिंतित हुए। जुर्म एक था, सजाएं बहुत भिन्न हो गईं।

अकबर से पूछा मंत्रियों ने: यह कुछ समझ में नहीं आता, यह न्याययुक्त नहीं मालूम होता। तीनों का जुर्म एक था। एक को आपने सिर्फ इतना कहा, तुमसे इतनी आशा न थी!

अकबर ने कहा: वह आंख की शर्म वाला आदमी था। इतना बहुत था। इतना भी जरूरत से ज्यादा था। सांझ उसने आत्महत्या कर ली।

दूसरे को आपने साल भर की सजा दी!

अकबर ने कहा: वह थोड़ी मोटी चमड़ी का है।

और तीसरे को नग्न करके कोड़े लगवाए, और जेल में डलवाया!

अकबर ने कहा: कि जाकर तीसरे से मिलो, तुम्हें समझ में आ जाएगा।

एक मंत्री भेजा गया जेलखाने में, जिसके कोड़े के निशान भी अभी नहीं मिटे थे, वह वहां बड़े मजे में था, और उसने कहा कि पंद्रह ही

वर्ष की तो बात है, और जितना मैंने खजाने से मार दिया, उतना पंद्रह वर्ष नौकरी करके भी तो नहीं मिल सकता था। और पंद्रह ही वर्ष की तो बात है फिर बाहर आ जाऊंगा। और इतना मार दिया है कि पीढ़ी दर पीढ़ी बच्चे मजा करें। कोई ऐसी चिंता की बात नहीं। फिर यहां भी ऐसी क्या तकलीफ!

मंत्रियों ने कहा: बड़े पागल हो, सड़क पर कोड़े खाए।

उस आदमी ने कहा: बदनामी भी हो तो नाम तो होता ही है। कौन जानता था हमको पहले। आज सारी दिल्ली में अपनी चर्चा है।

आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें।

मनुष्यत्वः बढ़ते हुए होश की धारा (चतुरंगीय-सूत्र)

चत्तारि परमंगणि, टुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं॥
कम्माणं तु पहाणए, आणुपुव्वी क्याई उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययन्त्रि मणुस्सयं॥
माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच सद्दे।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संबुडे निद्धुणे रयं॥

संसार में जीवों को इन चार श्रेष्ठ अंगों का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है—मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा और संयम के लिए पुरुषार्थ।

संसार में परिभ्रमण करते-करते जब कभी बहुत काल में पाप कर्मों का वेग क्षीण होता है और उसके फलस्वरूप अंतरात्मा क्रमशः शुद्धि को प्राप्त करता है, तब कहीं मनुष्य का जन्म मिलता है।

यथार्थ में मनुष्य जन्म उसे ही प्राप्त हुआ जो सद्धर्म का श्रवण कर उस पर श्रद्धा लाता है और तदनुसार पुरुषार्थ कर आस्त्रव रहित हो अंतरात्मा पर से समस्त कर्म-रज को झाड़कर फेंक देता है।

पहले एक दो प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: "कहीं आपने कहा था, कोई भी बात, आपका चिंतन और बुद्धि से तालमेल न बैठ सके तो नहीं मानना, छोड़ देना। बात चाहे कृष्ण की हो या किसी की भी हो, या मेरी हो।"

आपकी बहुत सी बातें प्रीतिकर, श्रेष्ठतर मालूम होती हैं। उनसे जीवन में परिवर्तन करने का यथाशक्ति प्रयत्न भी करता हूं, लेकिन शिष्य-भाव संपूर्णतया ग्रहण करने की मेरी क्षमता नहीं है।

मैं आपकी सूचनाओं से फायदा उठा रहा हूं। अगर मेरी कुछ प्रगति हुई तो किसी दिन कोई प्रार्थना लेकर, अगर शिष्य-भाव से रहित मैं आपके समक्ष उपस्थित हो जाऊं तो आप मेरी सहायता करेंगे या नहीं?

सतयुग में कृष्ण ने कहा था, "मामेकं शरणं ब्रज," सब छोड़ कर मेरी शरण में आ जा, इस युग में ऐसा कोई कहे तो कहां तक कार्यक्षम और उचित होगा?

इस संबंध में दो चार बातें समझ लेनी साधकों के लिए उपयोगी हैं।

पहली बात तो यह, अब भी मैं यही कहता हूं कि जो बात आपकी बुद्धि को उचित मालूम पड़े आपके विवेक से तालमेल खाए, उसे ही स्वीकार करना। जो न तालमेल खाए उसे छोड़ देना, फेंक देना। गुरु की तलाश में भी यह बात लागू है, लेकिन तलाश के बाद यह बात लागू नहीं है। सब तरह से विवेक की कोशिश करना, सब तरह से बुद्धि का उपयोग करना, सोचना-समझना। लेकिन जब कोई गुरु विवेकपूर्ण रूप से तालमेल खा जाए और आपकी बुद्धि कहने लगे कि मिल गई वह जगह, जहां सब छोड़ा जा सकता है, फिर वहां रुकना मत। फिर छोड़ देना। लेकिन अगर कोई यह सोचता हो कि एक बार किसी के प्रति शिष्य-भाव लेने पर फिर इंच-इंच अपनी बुद्धि को बीच में लाना ही है, तो उसकी कोई भी गति न हो पाएगी। उसकी हालत वैसी हो जाएगी जैसे छोटे बच्चे आम की गोई को जमीन में गाड़ देते हैं, फिर घड़ी-घड़ी जाकर देखते हैं कि अभी तक अंकुर फूटा या

नहीं। खोदते हैं, निकालते हैं। उनकी गोई में कभी भी अंकुर फूटेगा नहीं। फिर जब गोई को गाड़ दिया, तो फिर थोड़ा धैर्य और प्रतीक्षा रखनी होगी। फिर बार-बार उखाड़ कर देखने से कोई भी गति और कोई अंकुरण नहीं होगा।

तो कृष्ण ने भी जब कहा है, "मामेकं शरणं ब्रज," तो उसका मतलब यह नहीं है कि तू बिना सोचे-समझे किसी के भी चरणों में सिर रख देना। सब सोच-समझ, सारी बुद्धि का उपयोग कर लेना। लेकिन जब तेरी बुद्धि और तेरा विवेक कहे कि ठीक आ गई वह जगह, जहां सिर झुकाया जा सकता है, तो फिर सिर झुका देना।

इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। इन दोनों में विरोध दिखाई पड़ता है, विरोध नहीं है। और अर्जुन ने भी ऐसे ही सिर नहीं झुका दिया, नहीं तो यह सारी गीता पैदा नहीं होती। उसने कृष्ण की सब तरह परीक्षा कर ली, सब तरह, चिंतन, मनन, प्रश्न, जिज्ञासा कर ली। सब तरह के प्रश्न पूछ डाले, जो भी पूछा जा सकता था, पूछ लिया। तभी वह उनके चरणों में झुका है। लेकिन अगर कोई कहे कि यह जारी ही रखनी है खोज, तो फिर जिज्ञासा तक ही बात रुकी रहेगी और यात्रा कभी शुरू न होगी।

यात्रा शुरू करने का अर्थ ही यह है कि जिज्ञासा पूरी हुई। अब हम कोई निर्णय लेते हैं और यात्रा शुरू करते हैं। नहीं तो यात्रा कभी भी नहीं हो सकती।

तो, एक तो दार्शनिक का जगत है, वहां आप जीवन भर जिज्ञासा जारी रख सकते हैं। धार्मिक का जगत भिन्न है, वहां जिज्ञासा की जगह है, लेकिन प्राथमिक। और जब जिज्ञासा पूरी हो जाती है तो यात्रा शुरू होती है। दार्शनिक कभी यात्रा पर नहीं निकलता, सोचता ही रहता है।

धार्मिक भी सोचता है, लेकिन यात्रा पर निकलने के लिए ही सोचता है। और अगर यात्रा पर एक-एक कदम करके सोचते ही चले जाना है तो यात्रा कभी भी नहीं हो पाएगी। निर्णय के पहले चिंतन, निर्णय के बाद समर्पण।

इन मित्रों ने पूछा है कि "गुरु-पद की आपकी परिभाषा बड़ी अदभुत और हृदयंगम प्रतीत हुई, लेकिन शिष्य-भाव संपूर्णतया ग्रहण करने की मेरी क्षमता नहीं है।"

संपूर्णतया, किस बात को ग्रहण करने की क्षमता किसमें है? आदमी का मन तो बंटा हुआ है, इसलिए हम सिर्फ एक स्वर को मान कर जीते हैं। संपूर्ण स्वर तो हमारे भीतर अभी पैदा नहीं हो सकता। वह तो होगा ही तब, जब हमारे भीतर सारे मन के खंड बिखर जाएं, अलग हो जाएं और एक चेतना का जन्म हो। वह चेतना अभी वहां है नहीं, इसलिए आप संपूर्णतया कोई भी निर्णय नहीं ले सकते। आप जो भी निर्णय लेते हैं, वह प्रतिशत निर्णय होता है। आप तय करते हैं, इस स्त्री से विवाह करता हूं, यह संपूर्णतया है? सौ प्रतिशत है? सत्तर प्रतिशत होगा, साठ प्रतिशत होगा, नब्बे प्रतिशत होगा। लेकिन दस प्रतिशत हिस्सा अभी भी कहता है कि मत करो, पता नहीं, क्या स्थिति बने।

आप जब भी कोई निर्णय लेते हैं, तभी आपका पूरा मन तो साथ नहीं हो सकता क्योंकि पूरा मन जैसी कोई चीज ही आपके पास नहीं है। आपका मन बंटा हुआ ही होगा। मन सदा ही बंटा हुआ है। मन खंड-खंड है। इसलिए बुद्धिमान आदमी इसकी प्रतीक्षा नहीं करता कि जब मेरा संपूर्ण मन राजी होगा तब मैं कुछ करूंगा। हां, बुद्धिमान आदमी इतनी जरूर फिकर करता है कि जिस संबंध में मेरा मन अधिक प्रतिशत राजी है, वह मैं करूंगा। मगर मैंने इधर अनुभव किया कि अनेक लोग यह सोच कर कि अभी पूरा मन तैयार नहीं है, अल्पमतीय मन के साथ निर्णय कर लेते हैं। निर्णय करना ही पड़ेगा, बिना निर्णय के रहना असंभव है। एक बात तय है, आप निर्णय करेंगे ही चाहे निषेध, चाहे विधेय।

एक आदमी मेरे पास आया और उन्होंने कहा कि मेरा साठ-सत्तर प्रतिशत मन तो संन्यास का है, लेकिन तीस-चालीस प्रतिशत मन संन्यास का नहीं है। तो अभी मैं रुकता हूं, जब मेरा मन पूरा हो जाएगा तब मैं निर्णय करूंगा। मैंने उनसे कहा: निर्णय तो तुम कर ही रहे हो, रुकने का कर रहे हो। और रुकने के बावत तीस-चालीस

प्रतिशत मन है और लेने के बावत साठ-सत्तर प्रतिशत मन है। तो तुम निर्णय अल्पमत के पक्ष में ले रहे हो। हालांकि उनका यही ख्याल था कि मैं अभी निर्णय लेने से रुक रहा हूँ। आप निर्णय लेने से तो रुक ही नहीं सकते। निर्णय तो लेना ही पड़ेगा। उसमें कोई स्वतंत्रता नहीं है। हाँ, आप इस तरफ या उस तरफ निर्णय ले सकते हैं।

जब एक आदमी निर्णय लेता है कि अभी मैं संन्यास नहीं ले रहा हूँ तो वह सोचता है मैंने निर्णय अभी नहीं लिया है। निर्णय तो ले लिया। यह न लेना, निर्णय है। और न लेने के लिए तीस-चालीस प्रतिशत मन था और लेने के लिए साठ-सत्तर प्रतिशत मन था। इस निर्णय को मैं बुद्धिमानीपूर्ण नहीं कहूँगा।

फिर एक और मजे की बात है कि जिसके पक्ष में आप निर्णय लेते हैं उसकी शक्ति बढ़ने लगती है। क्योंकि निर्णय समर्थन है। अगर आप तीस प्रतिशत मन के पक्ष में निर्णय लेते हैं कि अभी संन्यास नहीं लूँगा तो यह निर्णय तीस प्रतिशत को कल साठ प्रतिशत कर देगा। और जो आज साठ प्रतिशत मालूम पड़ रहा था वह कल तीस प्रतिशत हो जाएगा। तो ध्यान रखना, जब संन्यास लेने का सत्तर प्रतिशत मन हो रहा था, तब आपने नहीं लिया, तो जब तीस प्रतिशत ही मन रह जाएगा, तब आप कैसे लेंगे। और एक बात तय है कि सौ प्रतिशत मन आपके पास है नहीं। अगर होता तब तो निर्णय लेने की कोई जरूरत भी नहीं।

सौ प्रतिशत मन का मतलब है कि एक स्वर आपके भीतर पैदा हो गया है। वह तो अंतिम घड़ी में पैदा होता है, जब समाधि को कोई उपलब्ध होता है। समाधि के पहले आदमी के पास सौ प्रतिशत निर्णय नहीं होता। छोटी बात हो या बड़ी, आज सिनेमा देखना है या नहीं, इसमें भी, और परमात्मा के निकट जाना है या नहीं, इसमें भी, आपके पास हमेशा बंटा हुआ मन होता है।

दूसरी बात: निर्णय आपको लेना ही पड़ेगा। इन मित्र ने कहा है, संपूर्णतया शिष्य-भाव ग्रहण करने की मेरी क्षमता नहीं है, लेकिन संपूर्णतया शिष्य-भाव से बचने की क्षमता है? अगर संपूर्णतया का ही मामला है तो संपूर्णतया शिष्य-भाव से बचने की क्षमता है? वह भी नहीं है। क्योंकि वह कहते हैं, किसी दिन मैं आपके पास आऊँ प्रार्थना लेकर, कोई प्रश्न लेकर, तो आप मेरी सहायता करेंगे?

दूसरे से सहायता मांगने की बात ही बताती है कि संपूर्ण भाव से शिष्य से बचना भी आसान नहीं है, संभव नहीं है। पर निर्णय आप ले ही रहे हैं। यह निर्णय शिष्यत्व के पक्ष में न लेकर शिष्यत्व के विपरीत ले रहे हैं; क्यों? क्योंकि शिष्यत्व के पक्ष में अहंकार को रस नहीं है। अहंकार को कठिनाई है। शिष्यत्व के विपरीत अहंकार को रस है।

उन मित्र से मैं कहना चाहूँगा, और सभी से, आप शिष्य-भाव से आएं, मित्र-भाव से आएं, गुरु-भाव से आएं, मैं आपकी सहायता करूँगा ही, लेकिन आप उस सहायता को ले नहीं पाएँगे। एक बर्तन नदी से कहे कि मैं ढक्कन बंद तेरे भीतर आऊँ तो पानी तू देगी या नहीं? तो नदी कहेगी, पानी मैं दे ही रही हूँ, तुम ढक्कन बंद करके आओ या खुला करके आओ।

लेकिन नदी का देना ही काफी नहीं है, पात्र को लेना भी पड़ेगा। शिष्यत्व का मतलब कुल इतना ही है कि पात्र लेने को आया है। उतनी तैयारी है सीखने की। और तो कोई अर्थ नहीं है शिष्यत्व का।

भाषा बड़ी दिक्कत में डाल देती है। भाषा में ऐसा लगता है, ठीक सवाल है। अगर मैं बिना शिष्य-भाव लिए आपके पास आऊँ, बिना शिष्य-भाव लिए आपके पास आ कैसे सकते हैं? पास आने का मतलब ही शिष्य-भाव होगा। फिजिकली, शरीर से पास आ जाएँगे, लेकिन अंतः से पास नहीं आ पाएँगे। और बिना शिष्य-भाव लिए आने का अर्थ है कि सीखने की तैयारी मेरी नहीं है, फिर भी आप मुझे सिखाएँगे या नहीं? मैं खुला नहीं रहूँगा, फिर भी आप मेरे ऊपर वर्षा करेंगे या नहीं?

वर्षा क्या करेगी? पात्र अगर बंद हो, उलटा हो! बुद्ध ने कहा है, कुछ पात्र वर्षा में भी खाली रह जाते हैं, क्योंकि वे उलटे जमीन पर रखे होते हैं। वर्षा क्या करेगी? झीलें भर जाएँगी, छोटा-सा पात्र खाली रह जाएगा। शायद पात्र यही सोचेगा कि वर्षा पक्षपातपूर्ण है, मुझे नहीं भर रही है। लेकिन उलटे पात्र को भरना वर्षा के भी सामर्थ्य के बाहर है।

आज तक कोई गुरु उलटे पात्र में कुछ भी नहीं डाल सका है। वह संभव नहीं है। वह नियम के बाहर है। उलटे पात्र का मतलब ही यह है कि आपकी तैयारी पूरी है कि न डालने देंगे।

आपकी इच्छा के विपरीत कुछ भी नहीं डाला जा सकता है, और उचित भी है कि आपकी इच्छा के विपरीत कुछ भी न डाला जा सके, अन्यथा आपकी स्वतंत्रता नष्ट हो जाएगी। अगर आपकी इच्छा के विपरीत कुछ डाला जा सके तो आदमी फिर गुलाम होगा। आपकी स्वेच्छा आपको खोलती है। आपकी विनम्रता आपके पात्र को सीधा रखती है। आपका शिष्य-भाव, आपकी सीखने की आकांक्षा, आपके ग्रहण भाव को बढ़ाती है।

सहायता तो मैं करूंगा ही, लेकिन सहायता होगी कि नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। सहायता पहुंचेगी या नहीं पहुंचेगी, यह नहीं कहा जा सकता। सूरज तो निकलेगा ही, लेकिन आपकी आंखें बंद होगी तो सूरज आपकी आंखों को खोल नहीं सकता। आंखें खुली होंगी तो प्रकाश मिल जाएगा, आंखें बंद होंगी तो प्रकाश बंद रह जाएगा।

इन मित्र को अगर हम ऐसा कहें तो ठीक होगा। वह सूरज से कहे कि अगर मैं बंद आंखें तुम्हारे पास आऊं तो मुझे प्रकाश दोगे कि नहीं? सूरज कहेगा, प्रकाश तो दिया ही जा रहा है, मेरा होना ही प्रकाश का देना है। उस संबंध में कोई शर्त नहीं है। लेकिन अगर तुम्हारी आंखें बंद होंगी तो प्रकाश तुम तक पहुंचेगा नहीं। प्रकाश आंख के द्वार पर आकर रुक जाएगा। सहायता बाहर पड़ी रह जाएगी। वह भीतर तक कैसे पहुंचेगी? भीतर तक पहुंचने की जो ग्रहणशीलता है, उसी का नाम शिष्यत्व है।

उन मित्र ने पूछा है कि कृष्ण ने कहा था कभी: "मामेकं शरणं ब्रजं।" आज कोई कहेगा तो कार्यक्षम होगा कि नहीं?

जिन्हें सीखने की अभीप्सा है, उन्हें सदा ही कार्यक्षम होगा, और जिन्हें सीखने की क्षमता नहीं है, उन्हें कभी कार्यक्षम नहीं होगा। उस दिन भी कृष्ण अर्जुन से कह सके, दुर्योधन से कहने का कोई उपाय नहीं था। उस दिन भी।

सतयुग और कलियुग युग नहीं हैं, आपकी मर्जी का नाम है। आप अभी सतयुग में हो सकते हैं, दुर्योधन तब भी कलियुग में था। व्यक्ति की अपनी वृत्तियों के नाम हैं।

अगर सीखने की क्षमता है तो कृष्ण का वाक्य आज भी अर्थपूर्ण है। नहीं है क्षमता तो उस दिन भी अर्थपूर्ण नहीं था। सीखने की क्षमता बड़ी कठिन बात है। सीखने का हमारा मन नहीं होता। अहंकार को बड़ी चोट लगती है।

कल एक मित्र दो विदेशी मित्रों को साथ लेकर मेरे पास आ गए थे, पति पत्नी थे दोनों। और दोनों ईसाई धर्म के प्रचारक हैं। आते ही उन मित्रों ने कहा कि आई बिलीव इन दि टू गॉड। मेरा सच्चे ईश्वर में विश्वास है। मैंने उनसे पूछा कि कोई झूठा ईश्वर भी होता है? ईश्वर में विश्वास है, इतना ही कहना काफी है, सच्चा और क्यों? हर वाक्य के साथ वे बोलते थे, आई बिलीव इन दिस, वाक्य ही शुरू होता था, आई बिलीव इन दिस, मेरा इसमें विश्वास है। मैंने उनसे पूछा कि जब आदमी जानता है तो विश्वास की भाषा नहीं बोलता। कोई नहीं कहता कि सूरज में मेरा विश्वास है। अंधे कह सकते हैं।

अज्ञान विश्वास की भाषा बोलता है। विश्वास की भाषा आस्था की भाषा नहीं है। आस्था बोली नहीं जाती, आस्था की सुगंध होती है जो बोला जाता है, उसमें से आस्था झलकती है। आस्था को सीधा नहीं बोलना पड़ता।

तो मैंने उनसे कहा कि हर वाक्य में यह कहना कि मेरा विश्वास है, बताता है कि भीतर गहरा अविश्वास है। इसमें से किसी भी चीज का आपको कोई पता नहीं है। फिर वे चौंक गए। तब उन्होंने अपने दरवाजे बंद कर लिए। फिर उन्होंने मुझे सुनना बंद कर दिया। खतरा है। फिर वे जोर-जोर से बोलने लगे, ताकि मैं जो बोल रहा हूं, वह उन्हें सुनाई ही न पड़े। मैं बोलता था, तब भी वे बोल रहे हैं। फिर वे अनर्गल बोलने लगे। क्योंकि जब द्वार कोई बंद कर लेता है तो संगतियां खो जाती हैं। फिर तो बड़ी मजेदार बातें हुईं। वे कहने लगे, ईश्वर प्रेम है।

मैंने उनसे पूछा, फिर घृणा कौन है? तो वे कहने लगे, शैतान है। मैंने पूछा, शैतान को किसने बनाया? उन्होंने कहा, ईश्वर ने। तो फिर मैंने कहा, सच्चा पापी कौन है? शैतान घृणा बनाता है, ईश्वर शैतान को बनाता है। फिर असली, कल्पित, असली उपद्रवी, कौन है। फिर तो ईश्वर ही फंसेगा। और अगर ईश्वर ही शैतान को बनाता है तो तुम कौन हो शैतान के खिलाफ जाने वाले? और जा कैसे पाओगे? मगर नहीं, फिर तो उन्होंने सुनना-समझना बिल्कुल बंद कर दिया। उन्होंने होश ही खो दिया।

हम अपने मन को बिल्कुल बंद कर ले सकते हैं। और जिन लोगों को वहम हो जाता है कि वे जानते हैं—वहम। उनके मन बंद हो जाते हैं।

शिष्य-भाव का अर्थ है, अज्ञानी के भाव से आना। शिष्य-भाव का अर्थ है, मैं नहीं जानता हूं और इसलिए सीखने आ रहा हूं। मित्र-भाव का अर्थ है कि हम भी जानते हैं, तुम भी जानते हो, थोड़ा लेन-देन होगा। गुरु-भाव का अर्थ है, तुम नहीं जानते हो, मैं जानता हूं, मैं सिखाने आ रहा हूं।

अहंकार को बड़ी कठिनाई होती है सीखने में। सीखना बड़ा अप्रीतिकर मालूम पड़ता है। इसलिए कृष्ण का वचन ऐसा लगेगा कि इस युग के लिए नहीं है। लेकिन युग की क्यों चिंता करते हैं? असल में मेरे लिए नहीं, ऐसा लगता होगा। इसलिए युग की बात उठती है। मेरे लिए नहीं। लेकिन, अगर मेरे लिए नहीं है तो फिर मुझे दूसरे से सीखने की बात ही छोड़ देनी चाहिए।

दो ही उपाय हैं, सीखना हो तो शिष्य-भाव से ही सीखा जा सकता है। न सीखना हो तो फिर सीखने की बात ही छोड़ देनी चाहिए। दो में से कोई एक विकल्प है, या तो मैं सीखूंगा ही नहीं, ठीक है, अपने अज्ञान से राजी हूं। अपने अज्ञान से राजी रहूंगा। कोशिश करता रहूंगा अपनी, कुछ हो जाएगा तो हो जाएगा, नहीं होगा, तो नहीं होगा लेकिन दूसरे के पास सीखने नहीं जाऊंगा। यह भी आनेस्ट है, यह भी बात ईमानदारी की है। या जब दूसरे के पास सीखने जाऊंगा तो फिर सीखने का पूरा भाव लेकर जाऊंगा। यह भी बात ईमानदारी की है। लेकिन, हमारे युग की कोई खूबी है कलियुग की, तो वह है बेईमानी। बेईमानी का मतलब यह है कि हम दोनों नाव पर पैर रखेंगे। मुझे एक मित्र बार-बार पत्र लिखते हैं कि मुझे आपसे संन्यास लेना है, लेकिन आपको मैं गुरु नहीं बना सकता।

तो फिर मुझसे संन्यास क्यों लेना है? गुरु बनाने में क्या तकलीफ आ रही है? और अगर तकलीफ आ रही है तो संन्यास लेना क्यों? खुद को ही संन्यास दे देना चाहिए। किसी से क्यों लेना? कौन रोकेगा तुम्हें? दे दो अपने को संन्यास। लेकिन तब भीतर का खालीपन भी दिखाई पड़ता है, अज्ञान भी दिखाई पड़ता है, तो उसके भरने के लिए किसी से सीखना भी है, और यह भी स्वीकार नहीं करना है कि किसी से सीखा है।

कोई हर्जा नहीं है। स्वीकृति का कोई गुरु को मोह नहीं होता कि आप स्वीकार करें कि उससे सीखा है। लेकिन स्वीकृति की जिसकी तैयारी नहीं है वह सीख ही नहीं पाता। अड़चन वहां है। इसलिए कृष्णमूर्ति का आकर्षण बहुत कीमती हो गया, क्योंकि हमारी बेईमानी के बड़े अनुकूल हैं। कृष्णमूर्ति के आकर्षण का कुल कारण इतना है कि हमारी बेईमानी के अनुकूल हैं।

कृष्णमूर्ति कहते हैं, मैं तुम्हारा गुरु नहीं, मैं तुम्हें सिखाता नहीं। यह भी कहते हैं कि मैं जो बोल रहा हूं, वह कोई शिक्षा नहीं है, संवाद है। तुम सुनने वाले, मैं बोलने वाला, ऐसा नहीं है, एक संवाद है हम दोनों का। तो कृष्णमूर्ति को लोग चालीस साल से सुन रहे हैं। उनकी खोपड़ी में कृष्णमूर्ति के शब्द भर गए हैं। वे बिल्कुल ग्रामोफोन रिकार्ड हो गए हैं। वे वही दोहराते हैं, जो कृष्णमूर्ति कहते हैं। सीखे चले जा रहे हैं उनसे, फिर भी यह नहीं कहते कि हमने कुछ सीखा है। एक देवी उनसे बहुत कुछ सीख कर बोलती रहती हैं। बहुत मजेदार घटना घटी है। उन देवी को कृष्णमूर्ति के ही मानने वाले लोग यूरोप-अमरीका ले गए। उनके ही मानने वाले लोगों ने उनकी छोटी गोष्ठियां रखीं। वे लोग बड़े हैरान हुए, क्योंकि वह देवी बिल्कुल ग्रामोफोन रिकार्ड हैं। वह वही बोल रही हैं जो कृष्णमूर्ति बोलते हैं।

लेकिन कोई कितना ही ग्रामोफोन रिकार्ड हो जाए, कार्बनकापी हो होता है। ओरिजिनल तो हो नहीं सकता, कोई उपाय नहीं है।

तो जिन मित्रों ने सुना, उन्होंने कहा कि आप ठीक कृष्णमूर्ति की ही बात कह रही हैं, आप उनका ही प्रचार कर रही हैं, तो उनको बड़ा दुख हुआ। उन्होंने कहा, मैं उनका प्रचार नहीं कर रही हूँ, यह तो मेरा अनुभव है। उन मित्रों ने कहा, इसमें एक शब्द आपका नहीं है, यह आपका अनुभव कैसा! चुकता उधार है।

तो उन देवी ने बड़ी कुशलता की। वह कृष्णमूर्ति के पास गईं। उन देवी ने ही मुझे सब बताया है। कृष्णमूर्ति के पास गईं और कृष्णमूर्ति से उन्होंने कहा कि आप कहिए, लोग कहते हैं कि जो भी मैं बोल रही हूँ वह मैं आपसे सीख कर बोल रही हूँ। और मैं तो अपने भीतरी अनुभव से बोल रही हूँ। तो आप मुझे बताइए कि मैं आपकी बात बोल रही हूँ कि अपने भीतरी अनुभव से बोल रही हूँ? तो कृष्णमूर्ति जैसा विनम्र आदमी क्या कहेगा? कृष्णमूर्ति ने कहा कि बिल्कुल ठीक है। अगर तुम्हें लगता है, तुम्हारे अनुभव से बोल रही हो तो बिल्कुल ठीक है।

यह सर्टिफिकेट हो गया। अब वह देवी कहती फिरती हैं कि कृष्णमूर्ति ने खुद कहा है कि तुम अपने अनुभव से बोल रही हो।

तुम्हारे अनुभव के लिए भी कृष्णमूर्ति के सर्टिफिकेट की जरूरत है, तभी वह प्रामाणिक होता है। शब्द कृष्णमूर्ति के, प्रमाण-पत्र, कृष्णमूर्ति का, और इतनी विनम्रता भी नहीं कहने की कि मैंने तुमसे कुछ सीखा है। यह है हमारी बेईमानी।

लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि चालीस साल नहीं पचास साल कृष्णमूर्ति को कोई सुनता रहे, जो शिष्य-भाव से सुनने नहीं गया है वह कुछ भी सीख नहीं पाएगा। शब्द सीख लेगा। उसके अंतस में कोई क्रांति घटित नहीं होगी। क्योंकि जिसके अंतस में अभी इतनी विनम्रता भी नहीं है कि जिससे सीखा हो उसके चरणों में सिर रख सके, चरणों में सिर रखने की बात दूर है, जो इतना कह सके कि मैंने किसी से सीखा है। इतना भी जिसका विनम्र भाव नहीं है, उसके भीतर कोई क्रांति नहीं हो सकती। उसके चारों तरफ पत्थर की दीवाल खड़ी है अहंकार की। भीतर तक कोई किरण पहुंच नहीं सकती। हां, शब्द हो सकते हैं जो दीवार पर टंक जाएंगे, खुद जाएंगे पत्थर पर, लेकिन उनसे कोई हृदय रूपांतरित नहीं होता।

यह बड़े मजे की बात है, यह तो उचित है कि गुरु कहे कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं। यह उचित नहीं है कि शिष्य कहे, मैं तुम्हारा शिष्य नहीं। क्यों?

क्योंकि इन दोनों के बीच औचित्य का एक ही कारण है। अगर गुरु कहे, मैं तुम्हारा गुरु हूँ तो यह भी अहंकार की भाषा है। और शिष्य अगर कहे कि मैं तुम्हारा शिष्य नहीं तो यह भी अहंकार की भाषा है।

गहरा तालमेल तो वहां खड़ा होता है, जहां गुरु कहता है, मैं कैसा गुरु! और जहां शिष्य कहता है, मैं शिष्य हूँ। वहां मिलन होता है। लेकिन हम हैं बेईमान। जब गुरु कहता है, मैं तुम्हारा गुरु नहीं, तब वह इतना ही कह रहा है कि मेरा अहंकार तुम्हारे ऊपर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। हम बड़े प्रसन्न होते हैं। तब हम कहते हैं, बिल्कुल ठीक, जब तुम ही गुरु नहीं हो, तो हम कैसे शिष्य! बात ही खत्म हो गई।

हम या तो ऐसे गुरु को मानते हैं जो चिल्ला कर हमारी छाती पर खड़े होकर कहे कि मैं तुम्हारा गुरु हूँ। या तो हम उसको मानते हैं--वैसा गुरु व्यर्थ है, जो आपसे चिल्लाकर कहता है कि मैं तुम्हारा गुरु हूँ। जिसको अभी यह भाव भी नहीं मिटा कि जो दूसरे को सिखाने में भी अपने अहंकार का पोषण कर रहा हो, वह गुरु होने के योग्य नहीं है। इसलिए जो गुरु कहे, मैं तुम्हारा गुरु हूँ वह गुरु होने के योग्य नहीं है। जो गुरु कहे, मैं तुम्हारा गुरु नहीं वह गुरु होने के योग्य है।

लेकिन जो शिष्य कहे, मैं शिष्य नहीं हूँ, वह शिष्य होने के योग्य नहीं रह जाता। जो शिष्य है पूरे भाव से, पूरे भाव का मतलब, जितना मेरी सामर्थ्य है, उतना। पूरे का मतलब, संपूर्ण नहीं; पूरे का मतलब, जितनी मेरी सामर्थ्य है। मेरे अत्याधिक मन से मैं समर्पित हूँ।

ऐसा शिष्य और ऐसा गुरु... गुरु जो इनकार करता हो गुरुत्व से, शिष्य जो स्वीकार करता हो शिष्यत्व को, इन दोनों के बीच सामीप्य घटित होता है। वह जो निकटता कल महावीर ने कही, वह ऐसे समय घटित होती है। और तब है मिलन, जब सूरज जबरदस्ती किरणें फेंकने को उत्सुक नहीं, चुपचाप फेंकता रहता है। और जब आंखें, जबरदस्ती आंखें बंद करके सूरज को भीतर ले जाने की पागल चेष्टा नहीं करतीं, चुपचाप खुली रहती हैं। आंखें कहती हैं, हम पी लेंगे प्रकाश को, और सूरज को पता ही नहीं कि वह प्रकाश दे रहा है, तब मिलन घटित होता है। अगर सूरज कहे कि मैं प्रकाश दे रहा हूँ, तो आक्रमण हो जाता है। और शिष्य अगर कहे कि मैं प्रकाश लूंगा नहीं, तुम दे देना, तो सुरक्षा शुरू हो जाती है। सुरक्षित शिष्य तक कुछ भी नहीं पहुंचाया जा सकता। दिया जा सकता है, पहुंचेगा नहीं।

एक बात समझ लेनी चाहिए, जो मुझे पता नहीं है, उसे जानने के दो ही उपाय हैं, या तो मैं खुद कोशिश करता रहूँ, वह भी आसान नहीं है, अति कठिन है वह भी। या फिर मैं किसी का सहारा ले लूं। वह भी आसान नहीं है, अति कठिन है वह भी।

अपने ही पैरों जो चलने की तैयारी हो, तो फिर संकल्प की साधनाएं हैं, समर्पण की नहीं। तब कितना ही अज्ञान में भटकना पड़े, तब सहायता से बचना है, सहायता की खोज में नहीं जाना है। क्योंकि सहायता की खोज में जाने का मतलब ही है, समर्पण की शुरुआत हो गई। तब कहीं से सहायता मिलती हो तो द्वार बंद कर लेना है। कहना है कि मर जाऊंगा, सड़ जाऊंगा, अपने ही भीतर; लेकिन कहीं कोई सहायता लेने नहीं जाऊंगा।

इसे हिम्मत से पूरा करना, यह बड़ा कठिन मामला है। अति कठिन है। कभी-कभी यह होता है, कभी-कभी यह हो जाता है। लेकिन अति कठिन है, दुरुह है। या फिर सहायता लेनी है तो फिर समर्पण का भाव होना चाहिए, फिर संकल्प छोड़ देना चाहिए। जो संकल्प और समर्पण दोनों की नाव पर खड़ा होता है, वह बुरी तरह डूबेगा। और हम सब दोनों नाव पर खड़े हैं। इसलिए कहीं पहुंचते नहीं, सिर्फ घसिते हैं। क्योंकि दोनों नावों के यात्रा-पथ अलग हैं और दोनों नावों की साधना पद्धतियां अलग हैं; और दोनों नावों की पूरी भाव-दशा अलग है। इसे ख्याल रखें।

अब सूत्र।

महावीर ने कहा है: "संसार में जीवों को इन चार श्रेष्ठ अंगों का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है--मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा और संयम के लिए पुरुषार्थ।"

मनुष्यत्व का अर्थ केवल मनुष्य हो जाना नहीं है। ऐसे तो वह अर्थ भी अभिप्रेत है। मनुष्य की चेतना तक पहुंचना भी एक लंबी, बड़ी लंबी यात्रा है। वैज्ञानिक कहते हैं, विकास है, और पहला प्राणी समुद्र में पैदा हुआ है और मनुष्य तक आया। मछली से मनुष्य तक बड़ी लंबी यात्रा है, करोड़ों वर्ष लगे हैं। डार्विन के बाद भारतीय धर्मों की गरिमा बहुत निखर जाती है। डार्विन के पहले ऐसा लगता था कि यह बात काल्पनिक है कि आदमी तक पहुंचने में लाखों-लाखों वर्ष लगते हैं। क्योंकि पश्चिम में ईसाइयत ने एक ख्याल दिया जो कि बुनियादी रूप से अवैज्ञानिक है। वह था, विकास विरोधी दृष्टिकोण, कि परमात्मा ने सब चीजें बनाईं, बना दी। आदमी बना

दिया, घोड़े बना दिए, जानवर बना दिए। एक छह दिन में सारा काम पूरा हो गया और सातवें दिन हॉली-डे। परमात्मा ने विश्राम किया। छह दिन में सारी सृष्टि बना दी। यह बचकाना ख्याल है। और सब चीजें बना दीं। तो फिर विकास का कोई सवाल नहीं रहा, आदमी बन गया। विकास का कोई सवाल न रहा, आदमी जैसा बना दिया।

भारतीय धर्म इस लिहाज से बहुत गहरे और वैज्ञानिक हैं। डार्विन के बहुत पहले भारत जानता रहा है कि चीजें निर्मित नहीं हुई। विकसित, हर चीज विकसित हो रही है। आदमी

आदमी की तरह पैदा नहीं हुआ। आदमी पशुओं में, पौधों में से विकसित होकर आया है। लेकिन भारत की धारणा थी कि आत्मा विकसित हो रही है, चेतना विकसित हो रही है। डार्विन ने पहली दफा पश्चिम में ईसाइयत को धक्का दे दिया और कहा कि विकास है। सृजन नहीं हुआ, विकास हुआ है। तो क्रिएशन की बात गलत है, एवोल्यूशन की बात सही है। सृष्टि कभी बनी नहीं, सृष्टि निरंतर बन रही है। सृष्टि एक क्रम है बनने का। यह कोई पूरा नहीं हो गया है, इतिहास समाप्त नहीं हो गया। कहानी का अंतिम अध्याय लिख नहीं दिया गया, लिखा जाने को है। हम मध्य में हैं। और पीछे बहुत कुछ हुआ है और आगे शायद उससे भी अनंतगुना, बहुत कुछ होगा।

लेकिन डार्विन था बौद्धानिक, इसलिए उसके लिए चेतना का तो कोई सवाल नहीं था। उसने मनुष्य के शरीर के अध्ययन से तय किया कि यह शरीर भी विकसित हुआ है। यह शरीर भी धीरे-धीरे क्रम में लाखों साल के यहां तक पहुंचा है। तो डार्विन ने आदमी के शरीर का सारा विश्लेषण किया और पशुओं के शरीर का अध्ययन किया और तय किया कि पशु और आदमी के शरीर में क्रमिक संबंध है। बड़ा दुखद लगा लोगों को, कम मे कम पश्चिम में ईसाइयत को तो बहुत पीड़ा लगी; क्योंकि ईसाइयत सोचती थी कि ईश्वर ने आदमी को बनाया। और डार्विन ने कहा कि यह आदमी जो है, बंदर का विकास है। कहां ईश्वर था पिता और कहां बंदर सिद्ध हुआ पिता! बहुत दुखद था।

लेकिन, तथ्य तथ्य हैं और दुखद भी, हमारी दृष्टि पर निर्भर है। अगर ठीक से हम समझें तो पहली बात ज्यादा दुखद है कि ईश्वर से पैदा हुआ आदमी, और यह हालत है आदमी की! यह ज्यादा दुखद है। क्योंकि ईश्वर से आदमी पैदा हुआ तो यह पतन है। अगर बंदर से आदमी पैदा हुआ तो यह बात दुखद नहीं है सुखद है, क्योंकि आदमी थोड़ा विकसित हुआ। पिता से नीचे गिर जाना अपमानजनक है, पिता से आगे जाना प्रीतिकर है। यह दृष्टिकोण पर निर्भर है।

लेकिन डार्विन ने शरीर के बाबत सिद्ध कर दिया है कि शरीर क्रमशः विकसित हो रहा है। और आज भी आदमी के शरीर में पशुओं के सारे लक्षण मौजूद हैं। आज भी आप चलते हैं तो आपके बाएं पैर के साथ दायां हाथ हिलता है, हिलने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन कभी आप चारो हाथ पैर से चलते थे, उसका लक्षण है। कोई जरूरत नहीं है, आप दोनों हाथ रोक कर चल सकते हैं, दोनों हाथ काट दिए जाएं तो भी चल सकते हैं। चलने में दोनों हाथों से कोई लेना देना नहीं है। लेकिन जब बायां पैर चलता है तो दायां हाथ आगे जाता है, जैसा कि कुत्ते का जाता है, बंदर का जाता है, बैल का जाता है। वह चार से चलता है, आप दो से चलते हैं; लेकिन आप चार से कभी चलते रहे हैं, इसकी खबर देता है। वह दो हाथों की बुनियादी आदत अब भी अपने पैर के साथ चलने की है।

आदमी के सारे अंग पशुओं से मेल खाते हैं, थोड़े बहुत हेर-फेर हुए हैं, लेकिन वह हेर-फेर उन्हीं के ऊपर हुए; बहुत फर्क नहीं हुआ। जब आप क्रोध में आते हैं तो अभी भी दांत पीसते हैं। कोई जरूरत नहीं है। जब आप क्रोध में आते हैं तो आपके नाखून नोचने, फाड़ने को उत्सुक हो जाते हैं। आपकी मुट्टियां बंध जाती हैं। वह लक्षण है कि कभी आप नाखून और दांत से हमला करते रहे हैं। अब भी वही है, अब भी कोई फर्क नहीं पड़ा है। अब जिस बात की जरूरत नहीं रह गई है, लेकिन वह भी काम करती है।

जब क्रोध आता है... पश्चिम का एक बहुत विचारशील आदमी था अलेक्जेंडर। उसने कहा है, क्रोध जब आता है तो अपनी टेबल के नीचे दोनों हाथ बांध कर, अगर जोर से मुट्ठी बांध कर पांच बार खोली जाए तो क्रोध विलीन हो जाए। करके आप देखना, वह सही कहता है।

क्या होगा, जब आप जोर से मुट्ठी बांधेंगे और पांच बार खोलेंगे टेबल के नीचे। आप अचानक पाएंगे, कि अब सामने के आदमी पर क्रोध करने की कोई जरूरत नहीं, वह विलीन हो गया। क्योंकि शरीर की आदत पूरी हो गई। क्रोध पैदा होता है, एड्रीनल, और दूसरे रस शरीर में छूटते हैं, वह हाथ के फैलाव और सिकोड़ से विकसित हो जाते हैं बाहर निकल जाते हैं। आप हलके हो जाते हैं। आपको पता है, आज भी आपके पेट में कोई जरा गुदगुदा दे तो हंसी छूटती है। और कहीं क्यों नहीं छूटती? गले में छूटती है, पेट में छूटती है। और कहीं क्यों नहीं छूटती?

डार्विन ने बताया है कि पशुओं के वे हिस्से, जिनको पकड़ कर हमला किया जाता है, संवेदनशील होने चाहिए, नहीं तो पशु मर जाएगा। आज आपके पेट पर कोई हमला नहीं कर रहा है, लेकिन छूने से आप सजग हो जाते हैं क्योंकि वह खतरनाक जगह है। कभी आप वहीं पकड़ कर, या पकड़े जाकर हमला किए जाते थे। वहीं हिंसा होती थी। जहां से आपके प्राण लिए जा सकते हैं, मुंह से पकड़ कर, वे हिस्से संवेदनशील हैं। इसलिए आपको गुदगुदी छूटती है। गुदगुदी का मतलब है कि बहुत सेंसिटिव है जगह। जरा सा स्पर्श, और बेचैनी शुरू हो जाती है।

शरीर के अध्ययन से सिद्ध हुआ है कि आदमी पशुओं के साथ जुड़ी हुई एक कड़ी है। शरीर के लिहाज से। लेकिन डार्विन ने आधा काम पूरा कर दिया। और पश्चिम में डार्विन के बाद ही महावीर, बुद्ध और कृष्ण को समझा जा सकता था। उसके पहले नहीं। जब शरीर भी विकसित होता है तो महावीर की बात सार्थक मालूम पड़ती है कि यह चेतना जो भीतर है, यह भी विकसित हुई है। यह भी अचानक पैदा नहीं हो गई है। यह कोई एक्सीडेंट नहीं है, एक लंबा विस्तार है। यह भी विकसित हुई है। इसका भी विकास हुआ है पशुओं से, पौधों से हम आदमी तक आए। इसका मतलब हुआ कि दोहरे विकास चल रहे हैं। शरीर विकसित हो रहा है, चेतना विकसित हो रही है; दोनों विकसित होते जा रहे हैं।

मनुष्य अब तक इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा विकसित प्राणी है। उसके पास सर्वाधिक चेतना है और सबसे ज्यादा संयोजित शरीर है। इसलिए महावीर कहते हैं, मनुष्य होना दुर्लभ है।

आप शिकायत भी तो नहीं कर सकते, अगर आप कीड़े-मकोड़े होते तो किससे कहने जाते कि मैं मनुष्य क्यों नहीं हूं! और आपके पास क्या उपाय है कि अगर आप कीड़े-मकोड़े होते तो मनुष्य हो सकते। यह मनुष्य होना इतनी बड़ी घटना है, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आती क्योंकि हम हैं।

काफ़का ने एक कहानी लिखी है कि एक आदमी--एक पादरी रात सोया। और सपने में उसे ऐसा लगा कि वह एक कीड़ा हो गया। लेकिन सपना इतना गहन था कि उसे ऐसा भी नहीं लगा कि सपना देख रहा है, लगा कि वह जाग गया है, वस्तुतः कीड़ा हो गया। तब उसे घबड़ाहट छूटी। तब उसे पता चला कि अब क्या होगा? अपने हाथों की तरफ देखा, वहां हाथ नहीं, कीड़े की टांगें हैं। अपने शरीर की तरफ देखा, वहां आदमी का शरीर नहीं, कीड़े की देह है। भीतर तो चेतना आदमी की है, चारों तरफ कीड़े की देह है। तब वह पछताने लगा कि अब क्या होगा। आदमी की भाषा अब समझ में नहीं आती, क्योंकि कान कीड़े के हैं। चारों तरफ का जगत अब बिल्कुल बेबूझ हो गया, क्योंकि आंखें कीड़े की हैं और भीतर होश रह गया थोड़ा सा कि मैं आदमी हूं। तब उसे पहली दफा पता चला कि मैंने कितना गंवा दिया। आदमी रह कर मैं क्या-क्या जान सकता था, अब कभी भी न जान सकूंगा। अब कोई उपाय न रहा।

अब वह तड़पता है, चीखता है, चिल्लाता है, लेकिन कोई नहीं सुनता। उसकी पत्नी पड़ोस से गुजर रही है, उसका पिता पास से गुजर रहा है, लेकिन उस कीड़े की कौन सुनता है। उसकी भाषा उनकी समझ में नहीं आती। वे क्या कह रहे हैं, क्या सुन रहे हैं, उसकी समझ में नहीं आता। उसका संताप हम समझ सकते हैं। थोड़ी कल्पना करेंगे, अपने को ऐसी जगह रखेंगे तो उसका संताप हम समझ सकते हैं।

इसलिए महावीर ने कहा है, प्राणियों के प्रति दया। उनका संताप समझो। उनके पास भी तुम्हारी जैसी चेतना है, लेकिन शरीर बहुत अविकसित है। उनकी पीड़ा समझो। एक चींटी को ऐसे ही पैर दबा कर मत निकल जाओ। तुम्हारे ही जैसी चेतना है वहां। शरीर भर अलग है। तुम जैसा ही विकसित हो सके, ऐसा ही जीवन है वहां, लेकिन उपकरण नहीं है। चारों तरफ, शरीर क्या है, उपकरण है।

इसलिए जीव दया पर महावीर का इतना जोर है। वह सिर्फ अहिंसा के कारण नहीं। उसके कारण बहुत गहरे आध्यात्मिक हैं। वह जो तुम्हारे पास चलता हुआ किड़ा है, वह तुम ही हो। कभी तुम भी वही थे। कभी तुम भी वैसे ही सरक रहे थे, एक छिपकली की तरह, एक चींटी की तरह, एक बिच्छू की तरह तुम्हारा जीवन था। आज तुम भूल गए हो, तुम आगे निकल आए हो। लेकिन जो आगे निकल जाए और पीछे वालों को भूल जाए, उस आदमी के भीतर कोई करुणा, कोई प्रेम, कोई मनुष्यत्व नहीं है।

महावीर कहते हैं, यह जो दया है--पीछे की तरफ--यह अपने ही प्रति है। कल तुम भी ऐसी ही हालत में थे। और किसी ने तुम्हें पैर के नीचे दबा दिया होता तो तुम इनकार भी नहीं कर सकते थे। तुम यह भी नहीं कह सकते थे कि मेरे साथ क्या किया जा रहा है!

मनुष्यत्व, हमें लगेगा मुक्त मिला हुआ है, इसमें भी क्या बात है दुर्लभ होने की। मनुष्यत्व मुक्त मिला हुआ है, क्या बात है इसमें दुर्लभ होने की? क्योंकि हम मनुष्य हैं और हमें किसी दूसरी स्थिति का कोई स्मरण नहीं रह गया। महावीर ने जिनसे यह कहा था, उनको महावीर साधना करवाते थे और उनसे पिछले स्मरण याद करवाते थे। और जब किसी आदमी को याद आ जाता था, कि मैं हाथी था, घोड़ा था, गधा था, वृक्ष रहा कभी, तब उसे पता चलता था कि मनुष्यत्व दुर्लभ है। तब उसे पता चलता था कि घोड़ा रहकर, गधा रह कर, बिच्छू रह कर, वृक्ष रह कर मैंने कितनी कामना की थी कि कभी मनुष्य हो जाऊं, तो मुक्त हो जाऊं इस सब उपद्रव से। और आज मैं मनुष्य हो गया हूं तो कुछ भी नहीं कर रहा हूं।

अतीत हमारा विस्मृत हो जाता है। उसके कारण हैं। उसका बड़ा कारण तो यह है कि अगर एक आदमी पशु रहा है पिछले जन्म में, तो पशु की स्मृतियों को समझने में मनुष्य का मस्तिष्क असमर्थ हो जाता है इसलिए विस्मरण हो जाता है। पशु का जगत, अनुभव, भाषा सब भिन्न है, आदमी से उसका कोई तालमेल नहीं हो पाता; इसलिए सब भूल जाता है। इसलिए जितने लोगों को भी याद आता है पिछले जन्मों का, वह कोई नहीं कहते, हम जानवर थे, पशु थे। वे यही बताते हैं कि हम स्त्री थे, पुरुष थे। उसका कारण है कि स्त्री पुरुष ही अगर पिछले जन्म में रहे हो तो स्मरण आसान है। अगर पशु-पक्षी रहे तो स्मरण अति कठिन है। क्योंकि भाषा बिल्कुल ही बदल जाती है। जगत ही बदल जाते हैं, आयाम बदल जाता है। उससे कोई संबंध नहीं रह जाता। अगर याद भी आ जाए तो ऐसा नहीं लगेगा कि यह मेरी याददाश्त आ रही है, लगेगा कि कोई दुःस्वप्न चल रहा है।

महावीर कहते हैं, मनुष्य होना दुर्लभ है। दुर्लभ दिखाई पड़ता है। इसे अगर हम थोड़े वैज्ञानिक ढंग से भी देखें तो समझ में आ जाए।

हमारा सूर्य है, यह एक परिवार है, सौर परिवार। पृथ्वी एक छोटा सा उपग्रह है। सूरज हमारी पृथ्वी से साठ हजार गुना बड़ा है। लेकिन हमारा सूरज बहुत बचकाना है। सूरज है, मिडिआकर! उससे करोड़-करोड़ गुने बड़े सूरज हैं। अब तक विज्ञान ने जितने सूरजों की जांच की है, वह है तीन अरब; तीन अरब सूरज हैं। तीन अरब सूर्यों के परिवार हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि अंदाजन, कम से कम इतना तो होना चाहिए, पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन होना चाहिए। तीन अरब सूर्यों के विस्तार में कम से कम पचास हजार उपग्रह होंगे जिनमें जीवन होना चाहिए। यह कम से कम है, इससे ज्यादा हो सकता है। यह कम से कम प्रोबेबिलिटी है। जैसे कि मैं एक सिक्के को सौ बार फेंकू तो प्रोबेबिलिटी है कि पचास बार वह सीधा गिरे, पचास बार उलटा गिरे, अंदाजन। न

गिरे पचास बार, हम इतना तो कह सकते हैं कि कम से कम पांच बार तो सीधा गिरेगा, पिचानबे बार उलटा गिर जाए। अगर इतना भी हम मान लें, तो कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन होना चाहिए, अरबों-खरबों पृथ्वियां हैं। इन पचास हजार पृथ्वियों पर, सिर्फ एक पृथ्वी पर, हमारी पृथ्वी पर मनुष्य के होने की संभावना प्रकट हुई है। इतना बड़ा विस्तार है तीन अरब सूर्यों का। और तीन अरब सूर्य हमारी जानकारी के कारण। यह अंत नहीं है। हम जहां तक जान पाते हैं, जहां तक हमारे यंत्र पहुंच पाते हैं। अब तो विज्ञान कहता है, हम कभी सीमा को न जान पाएंगे, क्योंकि सीमा आगे ही हटती चली जाती है। वे सपने छूट गए कि किसी दिन हम पूरा जान लेंगे। अब विज्ञान कहता है, नहीं जान पाएंगे। जितना जानते हैं उतना पता चलता है कि आगे और आगे और है। इतने विराट विश्व में जिसकी हम कल्पना और धारणा भी नहीं कर सकते, सिर्फ इस पृथ्वी पर मनुष्य है।

पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन है, लेकिन मनुष्य की कहीं कोई संभावना नहीं मालूम पड़ती। इस पृथ्वी पर मनुष्य है, और यह मनुष्य भी केवल कुछ दस लाख वर्षों से है। इसके पहले पृथ्वी पर मनुष्य नहीं था। जानवर थे, पक्षी थे, पौधे थे; मनुष्य नहीं था।

इन दस लाख वर्षों में मनुष्य हुआ है। और मनुष्य भी कितना है? अगर हम पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों की संख्या का अंदाज करें तो तीन साढ़े तीन अरब मनुष्य कुछ भी नहीं है। एक घर में इतने मच्छर मिल जाएं। अगर शुद्ध भारतीय घर हो तो जरूर मिल जाएं।

असंभव लगता है आदमी का होना। आदमी की घटना असंभव घटना है। अगर आदमी न हो तो हम सोच भी नहीं सकते कि आदमी हो सकता है। क्योंकि जहां तीन अरब सूर्य हैं और करोड़ों अरबों पृथ्वियां हैं और कहीं भी मनुष्य का कोई निशान नहीं है, कोई उसके चरण-चिन्ह नहीं हैं। अगर इस पृथ्वी पर मनुष्य न हो तो क्या कोई कितना ही बड़ा कल्पनाशील मस्तिष्क सोच सकता है कि मनुष्य हो सकता है? कोई भी उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है। मनुष्य दुर्लभ है, सिर्फ उसका होना दुर्लभ है। लेकिन महावीर का मनुष्य शब्द से उतना ही अर्थ नहीं है। मनुष्य होकर भी बहुत कम लोग मनुष्यत्व को उपलब्ध हो पाते हैं। वह और भी दुर्लभ है।

मनुष्य हम पैदा होते हैं शक्ल-सूरत से। मनुष्यता भीतरी घटना है, शक्ल सूरत से उसका बहुत लेना-देना नहीं है। आप शक्ल-सूरत से मनुष्य हो सकते हैं और भीतर हैवान हो सकते हैं, भीतर शैतान हो सकते हैं। भीतर होने का कुछ भी उपाय है। शक्ल-सूरत कुछ निश्चित नहीं करती, केवल संभावना बताती है।

जब एक आदमी मनुष्य की तरह पैदा होता है तो अध्यात्मिक अर्थों में इतना ही मतलब होता है कि वह अगर चाहे तो मनुष्यत्व को पा सकता है। लेकिन यह मिला हुआ नहीं है, सिर्फ संभावना है, बीज है। आदमी पैदा हुआ है, वह चाहे तो व्यर्थ खो सकता है, बिना मनुष्य बने। मनुष्य बन भी सकता है।

किस बात से वह मनुष्य बनेगा? आखिर पशु और मनुष्य में फर्क क्या है? पौधे और मनुष्य में फर्क क्या है? पत्थर और मनुष्य में फर्क क्या है?

चैतन्य का फर्क है, और तो कोई फर्क नहीं है। चैतन्य का फर्क है, कांशसनेस का फर्क है। आदमी के पास सर्वाधिक चैतन्य है, अगर हम पशुओं से तौलें तो। अगर हम पशुओं को छोड़ दें और आदमी का चैतन्य तौलें तो कभी चौबीस घंटे में क्षण भर को भी चेतन हो जाता हो तो मुश्किल है। बेहोश ही चलता है।

मनुष्य को पशुओं से तौलें तो चेतन मालूम पड़ता है। अगर मनुष्य को उसकी संभावना से तौलें, बुद्ध से, महावीर से तौलें, तो बेहोश मालूम पड़ता है। तुलनात्मक है। मनुष्य उसी अर्थ में मनुष्य हो जाता है जिस अर्थ में चेतना बढ़ जाती है। इसलिए हमने मनुष्य कहा है। मनुष्य का अर्थ है, जितना मन निखर जाता है, उतना। आदमी सब पैदा होते हैं, मनुष्य बनना पड़ता है। इसलिए आदमी और मनुष्य का एक ही अर्थ नहीं है। आदमी का तो इतना ही मतलब है कि हमारा जातिसूचक नाम है, आदम के बेटे--आदमी।

यह शब्द बड़ा अच्छा है। इसका भी मूल्य है। भाषाशास्त्री कहते हैं कि अदम, अहम का रूपांतरण है, और बच्चा जब जो पहली आवाजें करता है--आह, अह, अहम--इस तरह की आवाजें करता है। उन आवाजों से अहम बना है, मैं। और उन्हीं आवाजों से अदम बना है, आदमी।

बच्चे की पहली आवाज आदमी का नाम बन गई है, अदम। लड़का बोलता है, आह, लड़की बोलती है, ईह; इसलिए ईव। पहली लड़की जब पैदा होती है तो वह नहीं बोलती, आह। लड़का बोलता, आह, आह। लड़की बोलती, ईह। इसलिए भाषाशास्त्री, हिब्रू भाषाशास्त्री कहते हैं, ईह की आवाज के कारण ईव, आह की आवाज के कारण अदम। आदमी और औरत।

आदमी जातिवाचक नाम है, मनुष्य नहीं। मनुष्य चेतनासूचक नाम है। अंग्रेजी का "मैन" संस्कृत के मनु का ही रूपांतरण है। हम कहते हैं, मनु के बेटे, नहीं अदम के बेटे। अदम के बेटे सभी हैं, लेकिन मनु का बेटा वह बनता है, जो अपने भीतर मनस्वी हो जाता है। जिसका मन जाग्रत हो जाता है, उसको हम मनुष्य कहते हैं।

महावीर ने कहा है, ऐसे तो अदम होना भी बहुत मुश्किल, मनुष्य होना और भी दुर्लभ है। कितनी चेतना है आपके भीतर, उसी मात्रा में आप मनुष्य हैं। कितना होश से जीते हैं, उसी मात्रा में मनुष्य हैं। क्यों? क्योंकि जितने होश से जीते हैं, उतने शरीर से टूटते जाते हैं और आत्मा से जुड़ते जाते हैं। और जितनी बेहोशी से जीते हैं उतने शरीर से जुड़ते जाते हैं और आत्म से टूटते जाते हैं। होश सेतु है, आत्मा तक जाने का। मन द्वार है आत्मा तक जाने का। जितने मनस्वी होते हैं, उतनी आत्मा की तरफ हट जाते हैं। जितने बेहोश होते हैं, उतने शरीर की तरफ हट जाते हैं। इसलिए महावीर ने कहा है, जो-जो कृत्य बेहोशी में किए जाते हैं, वे पाप हैं। क्योंकि जिन-जिन कृत्यों से आदमी शरीर हो जाता है, वे पाप हैं। और जिन-जिन कृत्यों से आदमी आत्मा हो जाती है, वे पुण्य हैं।

कभी आपने देखा है, पाप को बिना बेहोशी के करना मुश्किल है। अगर आपको चोरी करनी है तो बेहोशी चाहिए। किसी की हत्या करनी है तो बेहोशी चाहिए। बड़ी बातें हैं, क्रोध करना है तो बेहोशी चाहिए। होश आ जाए तो हंसी आ जाएगी कि क्या मूढता कर रहे हैं। लेकिन बेहोशी हो तो चलेगा।

इसलिए कुछ लोगों को जब ठीक से पाप करना होता है तो शराब पी लेते हैं। शराब पीकर मजे से पाप कर सकते हैं। होश कम हो जाता है, बिल्कुल कम हो जाता है। होश जितना कम हो जाता है उतना हम शरीर हो जाते हैं--पदार्थवत, पशुवत। होश जितना ज्यादा हो जाता है उतना हम मनुष्य हो जाते हैं--आत्मवत।

मनुष्यत्व का अर्थ है--बढ़ते हुए होश की धारा। जो भी करें वह होशपूर्वक करें। महावीर ने कहा है, विवेक से चलें, विवेक से बैठें, विवेक से उठें, विवेक से खाएं, होश रखें, एक क्षण भी बेहोशी में न जाएं, एक क्षण भी ऐसा मौका न मिले कि शरीर मालिक हो जाए, चेतना ही मालिक रहे। यह मालिकियत जिन अर्थों में निधारीत हा जाए, उसी अर्थ में आप मनुष्य है, अन्यथा आप आदमी हैं।

आदमी-मनुष्य के इस भेद को बढ़ाते जाना क्रमशः आत्मा के निकट पहुंचना है। इस भेद को बढ़ाने में ये तीन बातें काम करेंगी जो और भी दुर्लभ हैं। मनुष्य होना मुश्किल, मनुष्यत्व पाना और भी मुश्किल। धर्म-श्रवण, इसको क्यों इतना मुश्किल कहा है?

सब तरफ धर्म-सभाएं चल रही हैं, गांव-गांव धर्मगुरु हैं! न खोजो तो भी मिल जाते हैं, न जाओ उनके पास तो आपके घर आ जाते हैं। धर्म गुरुओं की कोई कमी है? कोई तकलीफ है? शास्त्रों की कोई अड़चन है? सब तरफ सब मौजूद है।

इसलिए महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण दुर्लभ! मालूम नहीं पड़ता। कितने चर्च, कितने गुरुद्वारे, मंदिर, मस्जिद, तीन हजार धर्म हैं पृथ्वी पर। और महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण दुर्लभ है! अकेले कैथोलिक पादरियों की संख्या दस लाख है। हिंदू संन्यासी एक लाख हैं! जैनियों के मुनि इतने हो गए हैं कि गृहस्थ खिलाने में उनको

असुविधा अनुभव कर रहे हैं। थाईलैंड में चार करोड़ की आबादी है, बीस लाख भिक्षु हैं। सरकार नियम बना रही है कि अब बिना लाइसेंस के कोई संन्यास न ले सकेगा। क्योंकि इतने लोगों को पालेंगे कैसे? और महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण दुर्लभ!

शास्त्र ही शास्त्र हैं, बाइबिलें हैं, कुरानें हैं, धम्मपद हैं, महावीर के सूत्र हैं, गीता है, वेद हैं, धर्म ही धर्म, शास्त्र ही शास्त्र, गुरु ही गुरु। इतना सब शिक्षण है। हर आदमी धार्मिक है। और महावीर का दिमाग खराब मालूम पड़ता है। फिर धर्म-श्रवण दुर्लभ है! उसका कारण है। क्योंकि न तो शास्त्रों से मिलता है धर्म, न उपदेशकों से मिलता है धर्म। कभी-कभी अरबों-खरबों मनुष्य में एक आदमी धर्म के उपलब्ध होता है। अरबों-खरबों आदमियों में कभी-कभी एक आदमी मनुष्यत्व को उपलब्ध होता है। अरबों-खरबों मनुष्य में कभी एक आदमी धर्म को उपलब्ध होता है। और जो धर्म को उपलब्ध हुआ है उस सुनना ही धर्म-श्रवण है। कभी कोई महावीर कभी कोई बुद्ध।

बुद्ध मर रहे हैं, तो आनंद छाती पीट कर रो रहा है। बुद्ध कहते हैं, तू रोता क्यों है? आनंद कहता है कि रोता इसलिए हूं कि आपको सुन कर भी मैं न सुन पाया। आप मौजूद थे, फिर भी आपको न देख पाया। और अब आप खो जाएंगे, और अब कितने कल्प लगेंगे कि दुबारा किसी बुद्ध का दर्शन हो। रो रहा हूं इसलिए कि अब यात्रा बड़ी मुश्किल हो जाने वाली है। अब किसी बुद्ध पुरुष का दर्शन हों, इसके लिए कल्पों-कल्पों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

बुद्ध का जन्म हुआ, तो हिमालय से एक वृद्ध संन्यासी भागा हुआ बुद्ध के गांव आया। नब्बे वर्ष उसकी उम्र थी। सम्राट के द्वार पर पहुंचा। बुद्ध के पिता से उसने कहा कि बेटा तुम्हारे घर मैं पैदा हुआ है, उसके मैं दर्शन करने आया हूं। पिता हैरान हो गए। अभी दो-चार दिन की ही उम्र थी उस बेटे की, और वृद्ध संन्यासी प्रतिभावान तेजस्वी, अपूर्व सौंदर्य से, गरिमा से भरा हुआ। बुद्ध के पिता उस संन्यासी के चरणों में गिर पड़े। उन्होंने सोचा, जरूर सौभाग्य है मेरा कि ऐसा महापुरुष मेरे बेटे का दर्शन करने आया, आर्शीवाद देने आया। कुछ अनुठा बेटा पैदा हुआ है।

शुद्धोधन अपने बेटे को लेकर, सिद्धार्थ को लेकर, बुद्ध को लेकर संन्यासी के चरणों में जाने लगे रखने, तो संन्यासी ने कहा, रुको। मैं उसको चरणों में पड़ने आया हूं। और वह नब्बे वर्ष का वृद्ध, महिमावान संन्यासी उस छोटे से दो दिन के बच्चे के चरणों में गिर पड़ा। और छाती पीट कर रोने लगा।

बुद्ध जब मर रहे थे तो आनंद छाती पीट कर रो रहा था, एक दूसरा संन्यासी। और बुद्ध जब पैदा हुए तो एक और संन्यासी छाती पीट कर रो रहा था।

बुद्ध के पिता बहुत घबड़ा गए। उन्होंने कहा: यह आप क्या अपशकुन कर रहे हैं? यह रोने का वक्त है? आर्शीवाद दें। आप क्यों रोते हैं? क्या यह बेटा बचेगा नहीं? आप क्यों रोते हैं? क्या कुछ अशुभ हुआ है?

उस संन्यासी ने कहा: इसलिए नहीं रोता हूं, इसलिए रोता हूं कि मेरी मौत करीब है, और यह लड़का बुद्ध होगा। मैं चूक जाऊंगा। और यह कल्पों-कल्पों में कभी कोई बुद्ध होता है। मैं रो रहा हूं क्योंकि मैं चूका। मेरी मौत करीब है, और कुछ पक्का नहीं है कि जब यह बुद्ध होगा तब मैं दुबारा जन्म ले सकूं। इसलिए रो रहा हूं।

धर्म श्रवण का अर्थ है, जिसने जाना हो, उससे सुनना। इसलिए महावीर कहते हैं, दुर्लभ है। जिसने सुना हो, उससे सुनना तो बिल्कुल दुर्लभ नहीं है। जिसने जाना हो, उससे सुनना दुर्लभ है।

मगर यह दुर्लभता अनेक आयामी है। एक तो महावीर का होना दुष्कर, बुद्ध का होना दुष्कर, कृष्ण का होना दुष्कर। फिर वे हों भी, वे बोल भी रहे हों तो आपका सुनना दुष्कर। इसलिए कहा कि श्रवण दुष्कर है, क्योंकि महावीर खड़े हो जाएं तो भी आप सुनेंगे, यह जरूरी नहीं है। जरूरी तो यही है कि आप नहीं सुनेंगे।

क्यों नहीं सुनेंगे? क्योंकि महावीर को सुनना अपने को मिटाने की तैयारी है। वह किसी की भी तैयारी नहीं है। महावीर दुश्मन से मालूम होंगे। महावीर की गैर-मौजूदगी में नहीं मालूम होते, महावीर मौजूद होंगे तो दुश्मन से मालूम होंगे। महावीर का साधु दुश्मन नहीं मालूम होगा। वह साधु आपका गुलाम है। वह साधु आपसे इशारे मांग कर चलता है, आपकी सलाह से जीता है। आप पर निर्भर है। उससे आपको कोई तकलीफ नहीं है। वह तो आपकी सामाजिक व्यवस्था का एक हिस्सा है, और एक लिहाज से अच्छा है, लूब्रिकेटिंग है। कार में थोड़ा सा लूब्रिकेशन डालना पड़ता है, उससे चक्के ठीक चलते हैं। आपके संसार में भी आपके साधु लूब्रिकेशन का काम करते हैं। उससे संसार अच्छा चलता है।

दिन भर दुकान पर उपद्रव किए, पाप किए, बेईमानी की, झूठ बोले, सांझ को साधु के चरणों में जाकर बैठ गए, धर्म-श्रवण किया। उससे मन ऐसा हुआ कि छोड़ो भी, हम भी कोई बुरे आदमी नहीं हैं। कल की फिर तैयारी होगी। यह लूब्रिकेटिंग है। यह आपको भी वहम देते हैं की आप भी संसारी नहीं हैं, थोड़े तो धार्मिक हैं। वह थोड़ा धार्मिक होना चक्कों को, पाहियों को तेल डाल देता है और ठीक से चला देता है।

संसार ठीक से चलता है साधुओं की वजह से। क्योंकि साधु आपको समझाए रखते हैं कि कोई बात नहीं, अगर महाव्रत नहीं सधते तो अणुव्रत साधो। अगर बड़ी चोरी नहीं छूटती तो छोटी-छोटी चोरी छोड़ते रहो। तरकीबें बताते रहते हैं कि संसार में भी रहे आओ और तेल भी डालते रहो कि चक्के ठीक से चलते रहें। तुम्हें भ्रम भी बना रहे कि तुम भी धार्मिक हो, और धार्मिक होना भी न पड़े। मंदिर है, पुरोहित है, साधु है, ये काम कर रहे हैं। वे आपके संसार के एजेंट हैं। वे आपको संसार में आपको मोक्ष का भ्रम दिलवाते रहते हैं।

लेकिन महावीर या बुद्ध दुश्मन मालूम पड़ते हैं, शत्रू मालूम पड़ते हैं, क्योंकि वे जो भी कहते हैं वह आपकी आधारशिलाएं गिराने वाली बातें हैं। वे जो भी कहते हैं उससे आपका मकान गिरेगा, जलेगा, आप मिटेंगे। आप मिटेंगे तो ही उन्हें श्रवण कर पाएंगे। नहीं तो उनको श्रवण भी नहीं कर पाएंगे। इसलिए महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण अति दुर्लभ है। आप सुनने को राजी नहीं हैं।

जीसस बार-बार कहते हैं बाइबिल में, जिनके पास कान हैं, वे सुन लें। सबके पास कान थे। जिनसे वे बात कर रहे थे। क्योंकि बहरे तो अपने आप ही नहीं आए होंगे। जिनसे भी वे बात कर रहे होंगे उन सबके पास कान थे। लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है बाइबिल को पढ़ कर कि वे बहरों के बीच बोलते रहे, क्योंकि वे हमेशा कहते हैं कि जिनके पास कान हों, वे सुन लें। जिनके पास आंख हो वे देख लें। यह मामला अजीब है। क्या अंधों के अस्पताल में चले गए थे? कि बहरों के अस्पताल में बोल रहे थे? क्या कर रहे थे वे?

हमारे ही बीच बोल रहे थे, लेकिन हम अंधे और बहरे हैं। आंखें हमारी धोखा हैं, कान हमारे सुनते नहीं। और जब जीसस बोलते हैं तब हम कान-आंख बिल्कुल बंद कर लेते हैं, क्योंकि यह आदमी खतरनाक है। इसकी बात भीतर जाएगी तो दो ही उपाय हैं, यह बचेगा और तुम्हें मिटना पड़ेगा। अपने को हम सब बचाना चाहते हैं।

सेंटपाल ने कहा है, नाउ आई एम नॉट। जीसस लिब्ज इन मी। नाउ ही इ.ज, एण्ड आई एम नॉट। अब मैं नहीं हूं, अब जीसस मुझमें जीता है, अब जीसस ही हैं, मैं नहीं हूं। जो महावीर को सुनेगा, उसे एक दिन अनुभव करना पड़ेगा कि अब मैं नहीं हूं। तो ही सुनेगा।

श्रावक का यही अर्थ है: जो खुद मिटने को राजी है और गुरु को अपने भीतर प्रगट हो जाने के लिए द्वार खोलता है। जो अपने को हटा लेता है, जो अपने को मिटा लेता है, शून्य हो जाता है, एक ग्रहणशीलता, जस्ट ए रिसेप्टिविटी, और आने देता है।

बड़ी मजेदार घटना है। एक बड़ा चोर था, महावीर जिस गांव में ठहरे। उस चोर ने अपने बेटे से कहा, तू और सब कुछ करना, लेकिन इस महावीर से बचना। इसकी बात सुनने मत जाना।

चोर ईमानदार था। आप जैसा होशियार नहीं था, नहीं तो कहता, सुनना, और सुनना भी मत। चोर ने कहा, सुनना ही मत। यह बात समझ की है, अपने काम की नहीं, अपने धंधे से मेल नहीं खाती। और यह आदमी खतरनाक है। इसकी सुन ली तो सदा का चला आया धंधा नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। बड़ी मुश्किल से हम जमा पाए तू खराब मत कर देना। और तेरे लक्षण अच्छे नहीं मालूम पड़ते। तू उधर जाना ही मत, उस रास्ते ही मत निकलना।

बाप की बात बेटे ने मानी। उस जमानों में तो बाप की बात मानते थे। बेटे ने उस रास्ते जाना छोड़ दिया, जहां महावीर बोला करते थे। जहां से गुजरते थे, वहां दूर से देख लेता कि महावीर आ रहे हैं तो वह भाग खड़ा होता, आज्ञाकारी बेटा... ।

एक दिन भूल हो गई। वह अपनी धुन में चला जा रहा था और महावीर बोल रहे थे, एक रास्ते के किनारे। उसे एक वाक्य सुनाई पड़ गया। वह भागा। उसने कहा कि यह बड़ी मुश्किल हो गई। लेकिन, चूंकि वह बचना चाह रहा था, जो बचना चाहता है उसका आकर्षण भी हो जाता है। चूंकि वह सुनना चाहता ही नहीं था, अपने कानों को बंद ही रखने की चेष्टा में लगा था, और कान पर अनजाने में एक वचन पड़ गया। उस वचन ने उसकी सारी जिंदगी बदल दी। उस वचन ने, उसकी सारी जिंदगी को अस्त-व्यस्त कर दिया। फिर वह वही नहीं रह सका, जो था।

क्या हुआ होगा, एक वचन को सुन कर? महावीर का एक वचन भी चिंगारी है, अगर भीतर पहुंच जाए। और चिंगारी छोटी भी काफी है। बारूद तो हमारे भीतर सदा मौजूद है। विस्फोट हो सकता है। वह आत्मा मौजूद है जिसमें विस्फोट हो जाए, एक चिंगारी। लेकिन महावीर को कोई बिल्कुल सारी बातें सुनता रहे तो भी जरूरी नहीं कि चिंगारी पहुंचे।

हम तरकीबें बांध लेते हैं, उनसे हम चीजों को बाहर ही रख देते हैं। उनको हम भीतर नहीं जाने देते। सबसे अच्छी तरकीब यह है कि रोज सुनते रहो महावीर को, अपने आप बहरे हो जाओगे। जिस बात को लोग रोज सुनते हैं, उसे सुनना बंद कर देते हैं।

इसलिए धर्म-श्रवण बड़ी अच्छी चीज है। उससे धर्म से बचने में रास्ता मिलता है। रोज धर्म-सभा में चले जाओ। वहां सोए रहो। अकसर लोग सोते ही हैं धर्म सभा में, और कुछ करते नहीं। जिनको नींद नहीं आती, वे तक सोते हैं। जिनको अनिद्रा की बीमारी है, डाक्टर उनको सलाह देते हैं, धर्म-सभा में चले जाओ। जिनको सर्दी जुकाम हो गया है, वे और कहीं नहीं जाते, सीधे धर्म-सभा में जाकर खांसते-खंखारते रहते हैं। मुझे ऐसा लगता है, धर्म-सभा में जिनको खांसी जुकाम है वही जगे रहते हैं। या उनकी खांसी वगैरह से कोई आसपास जग जाए, बात अलग, नहीं तो गहरी नींद रहती है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक धर्म-सभा में बोल रहा था। एक आदमी उठ कर जाने लगा तो उसने कहा कि प्यारे, बैठ जाओ। मेरे बोलने में तुम्हारे जाने से अड़चन पड़ती है, ऐसा नहीं, जो सो गए हैं, उनकी नींद न तोड़ देना। शांति से बैठ जाओ। सोए हुए लोगों पर दया करो।

धर्म-सभा में हम क्यों सो जाते हैं? सुनते-सुनते कान पक गए हैं वही बातें। हम हजार दफे सुन चुके हैं। अब सुनने योग्य कुछ नहीं बचा। यह सबसे आसान तरकीब है धर्म से बचने की। बेईमान कानों ने तरकीब निकाल ली है, बेईमान आंखों ने तरकीबें निकाल ली हैं।

अगर महावीर सामने भी आपके आकर खड़े हो जाएं तो आपको महावीर नहीं दिखाई पड़ेंगे, दिखाई पड़ेगा कि एक नंगा आदमी खड़ा है। यह आपकी आंखों की तरकीब है। बड़े मजे की बात है, महावीर सामने हों तो भी नंगा आदमी दिखेगा, महावीर नहीं दिखेंगे। आप जो देखना चाहते हैं, वही दिखता है, जो है वह नहीं। इसलिए महावीर को लोगों ने गांवों से खदेड़ा, भगाया। यहां मत रखो, यह आदमी नंगा है। नंगे आदमी को गांव

में घुसने देना खतरनाक है। कुछ न दिखाई पड़ा उनको महावीर की नग्नता दिखाई पड़ी। महावीर में बहुत कुछ था और महावीर बिल्कुल नग्न खड़े थे, कपड़े की भी ओट न थी। देखना चाहते तो उनके बिल्कुल भीतर देख लेते लेकिन सिर्फ उनकी चमड़ी और उनकी नग्नता दिखाई पड़ी।

हम जो देखना चाहते हैं वह देखते हैं, जो सुनना चाहते हैं वह सुनते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, धर्म-श्रवण दुर्लभ है। फिर श्रद्धा और भी दुर्लभ है। जो सुना है उस पर श्रद्धा। जो सुना है, मन हजार तर्क उठाता है। वह कहता है, यह ठीक है, यह गलत है। और बड़ा मजा यह है कि हम कभी नहीं यह पूछते कि कौन कह रहा है गलत है? कौन कह रहा है ठीक? यह मन जो हमसे कह रहा है, यह हमें कहा ले गया? किस चीज तक इसने हमें पहुंचाया? किसकी हम बात मान रहे हैं? इस मन ने हमें कौन सी शांति दी, कौन सा आनंद दिया, कौन सा सत्य? इस मन ने हमें कुछ भी न दिया, मगर यह हमारे सलाहकार हैं, ये हमारे कांस्टेंट, परमानेंट काउंसलर हैं। वे अंदर बैठे हुए हैं, वे कह रहे हैं, यह गलत है।

हम सारी दुनिया पर शक कर लेते हैं, अपने मन पर कभी शक नहीं करते। श्रद्धा का मतलब है, जिसने अपने मन पर शक किया। हम सारी दुनिया पर संदेह कर लेते हैं। महावीर हों तो उन पर संदेह करेंगे, कि पता नहीं ठीक कह रहे हैं, कि गलत कह रहे हैं, कि पता नहीं क्या मतलब है, कि पता नहीं रात में घर ठहराएं और एकाध चादर लेकर नदारद हो जाएं! नंगे आदमी का क्या भरोसा, पता नहीं क्या प्रयोजन है? हमें... और हमारा जो मन है, उसके हम सदा, उस पर श्रद्धा रखते हैं, यह बड़े मजे की बात है। हमारे मन पर हमें कभी अश्रद्धा नहीं आती। उसको हम मान कर चलते हैं।

क्या है उसमें मानने जैसा? क्या है अनुभव पूरे जीवन का, और अनेक जन्मों का क्या है अनुभव? मन ने क्या दिया है? लेकिन वह हमारा है। यह वहम सुख देता है और हम सोचते हैं, हम अपनी मान कर चल रहे हैं। अपनी मानकर हम मरुस्थल में पहुंच जाएं, भटक जाएं, खो जाएं तो भी राहत रहती है कि अपनी ही तो मान कर तो चल रहे हैं। दूसरे की मान कर मोक्ष भी पहुंच जाएं तो मन में एक पीड़ा बनी रहती है कि अरे, दूसरे के पीछे चल रहे हैं। वह अहंकार को कष्टपूर्ण है।

इसलिए महावीर कहते हैं, और भी दुर्लभ, श्रद्धा। श्रद्धा का अर्थ है, जब धर्म का वचन सुना जाए तो अपने मन को हटा कर, उसके प्रति स्वीकृति लाकर जीवन को बदलना। उस पर आस्था, क्योंकि आस्था न हो तो बदलाहट का कोई उपाय ही नहीं है। जो सुना है, जो समझा है, जिसे भीतर जाने दिया है, तो भीतर मन बैठा है, वह हजार तरकीबें उठाएगा। कि इसमें यह भूल है, इसमें यह चूक है, यह ऐसा क्यों है, वह वैसा क्यों है? उन्होंने कल ऐसा कहा, आज ऐसा कहा, हजार सवाल मन उठाएगा। इन सवालों को ध्यानपूर्वक देख कर कि इन सवालों से कोई हल नहीं होता, इनको हटा कर महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्ति के आकाश का दर्शन श्रद्धा है।

श्रद्धा भी दुर्लभ, और फिर साधना के लिए पुरुषार्थ तो और भी दुर्लभ। फिर यह जो सुना, जिस पर श्रद्धा ले आए इसके अनुसार जीवन को बदलना और भी दुर्लभ। इसलिए महावीर कहते हैं, ये चार चीजें दुर्लभ हैं—मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा, पुरुषार्थ। क्योंकि श्रद्धा अगर नपुंसक हो, मान कर बैठी रहेगी, ठीक है, बिल्कुल ठीक है। और हम जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलते रहेंगे। तो उस नपुंसक श्रद्धा का कोई भी अर्थ नहीं है। हम बड़े होशियार हैं, हमारी होशियारी का कोई हिसाब नहीं है। हम इतने होशियार हैं कि अपने ही को धोखा दे जाते हैं। दूसरे को धोखा देने वाले को हम होशियार कहते हैं। हम इतने होशियार हैं, अपने को धोखा दे जाते हैं। हम कहते हैं, मानते तो बिल्कुल हैं आपकी बात। और कभी न कभी करेंगे, लेकिन अभी नहीं।

हम कहते हैं, मोक्ष तो जाना है, लेकिन अभी नहीं। निर्वाण चासिए, लेकिन जरा ठहरें, जरा रुकें।

आचरण तो अभी होगा आशा सदा कल पर छोड़ी जा सकती है। आचरण अभी होगा, अभी के अतिरिक्त हमारे पास कोई भी समय नहीं है; यही क्षण, अगले क्षण का कोई भरोसा नहीं है।

जो अगले क्षण पर छोड़ता है वह मौत पर छोड़ रहा है। जो इस क्षण कर लेता है वह जीवन का उपयोग कर रहा है।

इसलिए महावीर कहते हैं, पुरुषार्थ, जो ठीक लगे उसे कर लेने की क्षमता, साहस, छलांग। क्योंकि इस करने का मतलब यह है, हम खतरे में उतर रहे हैं। पता नहीं क्या होगा?

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, संन्यास तो ले लें, संन्यास में तो चले जाएं, लेकिन फिर क्या होगा? मैं उनसे कहता हूं, जाओ और देखो! क्योंकि अगर हिम्मतवर हो और कुछ न हो तो वापस लौट जाना। डर क्या है? फिर वे कहते हैं, वापस लौट जाना? उसमें भी डर लगता है, कि लोग क्या कहेंगे? अभी भी लोग क्या कहेंगे कि संन्यास लिया? और अगर कुछ न हुआ, वापस लौटे तो लोग क्या कहेंगे? लोग कौन हैं ये? इन लोगों ने क्या दिया, इन लोगों से क्या संबंध है?

नहीं, लोग बहाना हैं, अपने को बचाने की तरकीबें हैं, एक्सक्यूजेज हैं। लोगों के नाम से हम अपने को बचा लेते हैं और सोचते हैं कि आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कभी न कभी, टालते चले जाते हैं।

क्रोध अभी कर लेते हैं, ध्यान कल करेंगे। चोरी अभी कर लेते हैं, संन्यास कभी भी लिया जा सकता है।

यह जो वृत्ति है, इसे महावीर कहते हैं--पुरुषार्थ की कमी।

हम बुरे हैं, पुरुषार्थ के कारण नहीं, इसे ख्याल कर लें। हम बुरे हैं पुरुषार्थ की कमी के कारण। हम अगर चोर हैं तो इसलिए नहीं कि हम हिम्मतवर हैं, हम इसलिए चोर हैं कि हम अचोर होने लायक पुरुषार्थ नहीं जुटा पाते। हम अगर झूठ बोलते हैं तो इसलिए नहीं कि हम होशियार हैं। हम झूठ बोलते हैं इसलिए कि सत्य बोलने में बड़े पुरुषार्थ की, बड़ी सामर्थ्य की, बड़ी शक्ति की जरूरत है। अगर हम अधार्मिक हैं तो शक्ति के कारण नहीं, कमजोरी के कारण क्योंकि धर्म को पालन करना बड़ी शक्ति की आवश्यकता है। और अधर्म में बहे जाने में कोई शक्ति की जरूरत नहीं।

अधर्म है उतार की तरह, आपको लुढ़का दिया जाए, आप लुढ़कते चले जाएंगे पत्थर की तरह। धर्म है पहाड़ की तरह, यात्रा करनी पड़ती है। एक-एक इंच कठिनाई है और एक-एक इंच सामान कम करना पड़ता है क्योंकि बोझ पहाड़ पर नहीं ले जाया जा सकता। आखिर में तो अपने तक को छोड़ देना पड़ता है, तभी कोई शिखर पर पहुंचता है।

आज इतना ही।

प्रवचन-क्रम

1. समय और मृत्यु का अंतर्बोध (अप्रमाद-सूत्र: 1).....	3
2. अलिप्तता और अनासक्ति का भाव-बोध (अप्रमाद-सूत्र: 2).....	21
3. एक ही नियम: होश (प्रमाद-स्थान-सूत्र: 1).....	37
4. सारा खेल काम-वासना का (प्रमाद-स्थान-सूत्र: 2).....	53
5. ये चार शत्रु (कषाय-सूत्र).....	71
6. अकेले ही है भोगना (अशरण-सूत्र).....	90
7. यह निःश्रेयस का मार्ग है (पंडित-सूत्र).....	107
8. आप ही हैं अपने परम मित्र (आत्म-सूत्र : 1).....	126
9. साधना का सूत्र: संयम (आत्म-सूत्र : 2).....	142
10. विकास की ओर गति है धर्म (लोकतत्व-सूत्र: 1).....	158
11. आत्मा का लक्षण है ज्ञान (लोकतत्व-सूत्र: 2).....	178
12. मुमुक्षा के चार बीज (लोकतत्व-सूत्र: 3).....	200
13. पांच ज्ञान और आठ कर्म (लोकतत्व-सूत्र : 4).....	217
14. छह लेश्याएं: चेतना में उठी लहरें (लोकतत्व-सूत्र: 5).....	243
15. पांच समितियां और तीन गुप्तियां (लोकतत्व-सूत्र: 6).....	260
16. कौन है पूज्य? (पूज्य-सूत्र).....	279
17. राग, द्वेष, भय से रहित है ब्राह्मण (ब्राह्मण-सूत्र: 1).....	300
18. अलिप्तता है ब्राह्मणत्व (ब्राह्मण-सूत्र: 2).....	318
19. वर्णभेद जन्म से नहीं, चर्या से (ब्राह्मण-सूत्र: 3).....	340
20. भिक्षु की यात्रा अंतर्यात्रा है (भिक्षु-सूत्र: 1).....	357
21. अस्पर्शित, अकंप है भिक्षु (भिक्षु-सूत्र: 2).....	375
22. भिक्षु कौन? (भिक्षु-सूत्र: 3).....	392

23. कल्याण-पथ पर खड़ा है भिक्षु (भिक्षु-सूत्र: 4).....	411
24. पहले ज्ञान, बाद में दया (मोक्षमार्ग-सूत्र: 1).....	433
25. संयम है संतुलन की परम-अवस्था (मोक्षमार्ग-सूत्र: 2).....	453
26. अंतः-बाह्य संबंधों से मुक्ति (मोक्षमार्ग-सूत्र: 3).....	474
27. संन्यास प्रारंभ है, सिद्धि अंत (मोक्षमार्ग-सूत्र: 4).....	491

समय और मृत्यु का अंतर्बोध (अप्रमाद-सूत्र: 1)

सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी,
न वीससे पंडिए आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अवलं शरीरं,
भारुंडपक्खी व चरप्पमत्ते॥

आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोह-निद्रा में सोए हुए संसारी मनुष्यों के बीच रह कर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए और किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए।

काल निर्दयी है और शरीर दुर्बल, यह जान कर भारुंड पक्षी की तरह अप्रमत्त-भाव से विचरना चाहिए।

पहले कुछ प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: "मनुष्य जीवन है दुर्लभ, लेकिन हम आदमियों को उस दुर्लभता का बोध क्यों नहीं होता? श्रवण करने की कला क्या है? कलियुग, सतयुग मनोस्थितियों के नाम हैं? क्या बुद्धत्व को भी हम एक मनोस्थिति ही समझें?"

जो मिला हुआ है, उसका बोध नहीं होता। जो नहीं मिला है, उसकी वासना होती है, इसलिए बोध होता है।

दांत आपका एक टूट जाए, तो ही पता चलता है कि था। फिर जीभ चौबीस घंटे वहीं-वहीं जाती है। दांत था तो कभी नहीं गई थी; अब नहीं है, खाली जगह है तो जाती है।

जिसका अभाव हो जाता है, उसका हमें पता चलता है। जिसकी मौजूदगी होती है, उसका हमें पता नहीं चलता। मौजूदगी के हम आदी हो जाते हैं।

हृदय धड़कता है, पता नहीं चलता, श्वास चलती है, पता नहीं चलता। श्वास में कोई अड़चन आ जाए तो पता चलता है, हृदय रुग्न हो जाए तो पता चलता है। हमें पता ही उस बात का चलता है जहां कोई वेदना, कोई दुख, कोई अभाव पैदा हो जाए। मनुष्यत्व का भी पता चलता है, हम आदमी थे, इसका भी पता चलता है जब आदमियत खो जाती है हमारी, मौत छीन लेती है हमसे। जब अवसर खो जाता है, तब हमें पता चलता है।

इसलिए मौत की पीड़ा वस्तुतः मौत की पीड़ा नहीं है, बल्कि जो अवसर खो गया, उसकी पीड़ा है। अगर हम मरे आदमी से पूछ सकें कि अब तेरी पीड़ा क्या है तो वह यह नहीं कहेगा कि मैं मर गया, यह मेरी पीड़ा है। वह कहेगा, जीवन मेरे पास था और यों ही खो गया, यह मेरी पीड़ा है।

हमें पता ही तब चलता है जीवन का, जब मौत आ जाती है। इस विरोधाभास को ठीक से समझ लें।

आप किसी को प्रेम करते हैं। उसका आपको पता ही नहीं चलता, जब तक कि वह खो न जाए। आपके पास हाथ है, उसका पता नहीं चलता, कल टूट जाए तो पता चलता है। जो मौजूद है, हम उसके प्रति विस्मृत हो जाते हैं। खो जाए, न हो, तो हमें याद आती है। यही कारण है कि हम आदमी की तरह पैदा होते हैं तो हमें पता नहीं चलता कि कितना बड़ा अवसर हमारे हाथ में है। मछलियों को, कहते हैं, सागर का पता नहीं चलता।

मछली को सागर के बाहर डाल दें रेत पर, तड़फे, तब उसे पता चलता है। जहां वह थी वह सागर था, जीवन था; जहां अब वह है, वहां मौत है।

जिस मछली को सागर में पता चल जाए, वह संतत्व को उपलब्ध हो गई कि सागर है। जिस आदमी को आदमियत खोए बिना, अवसर खोए बिना, पता चल जाए, उसके जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। महावीर हैं, बुद्ध हैं, कृष्ण हैं--उनकी सारी चेष्टा यही है कि हमें पता चल जाए तभी, जब कि अवसर शेष है। तो शायद हम अवसर का उपयोग कर लें। तो शायद अवसर को हम स्वर्णिम बना लें। शायद अवसर हमारे जीवन को और वृहत्तर परम जीवन में ले जाने का मार्ग बन जाए। अगर पता भी उस दिन चला जब हाथ से सब छूट चुकता है तो उस पता चलने की कोई सार्थकता नहीं है, मगर यह मन का नियम है, मन को अभाव का पता चलता है।

गरीब आदमी को पता चलता है धन का, अमीर आदमी को धन का पता नहीं चलता। जो नहीं है हमारे पास वह दिखाई पड़ता है, जो है वह हम भूल जाते हैं।

इसलिए जो-जो आपको मिलता चला जाता है, आप भूलते चले जाते हैं और जो नहीं मिला होता, उस पर आंख अटकी रहती है। यह सामान्य मन का लक्षण है। इस लक्षण को बदल लेना साधना है। जो है, उसका पता चले तो बड़ी क्रांति घटित होती है। अगर जो नहीं है, उसका पता चले तो आपके जीवन में सिर्फ असंतोष के अतिरिक्त कुछ भी न होगा। जो है, उसका पता चले तो जीवन में परम तृप्ति छा जाएगी। जो नहीं है, उसका ही पता चले तो अक्सर अवसर जब खो जाएगा तब आपको पता चलेगा। जो है, उसका पता चले तो जो अवसर अभी मौजूद है, उसका आपको पता चलेगा; और अवसर आने के पहले, अवसर आते ही बोध हो जाए, तो हम अवसर को जी लेते हैं, अन्यथा चूक जाते हैं।

इसलिए ध्यान, जो है, उसको देखने की कला है। और मन, जो नहीं है, उसकी वासना करने की विधि है।

श्रवण करने की कला क्या है? सुनने की कला क्या है? निश्चित ही कला है, और महावीर ने कहा है, धर्म-श्रवण, दुर्लभ चार चीजों में एक है। तो बहुत सोच कर कहा है। श्रवण की कला--सुनते तो हम सब हैं। कला की क्या बात है? हम तो पैदा ही होते हैं कान लिए हुए, सुनना हमें आता ही है।

नहीं, लेकिन हम सुनते नहीं हैं, सुनने के लिए कुछ अनिवार्य शर्तें हैं। पहली--जब आप सुन रहे हों तब आपके भीतर विचार न हों। अगर विचार की भीड़ भीतर है तो आप सुनेंगे वह वही नहीं होगा, जो कहा गया है। आपके विचार उसे बदल देंगे, रूपांतरित कर देंगे। उसकी शक्ल और हो जाएगी। विचार हट जाने चाहिए बीच से। मन खाली हो, शून्य हो और सुने, तभी जो कहा गया है, वह आप सुनेंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप उस पर विचार न करें। लेकिन विचार तो सुनने के बाद ही हो सकता है। सुनने के साथ ही विचार नहीं हो सकता। जो सुनने के साथ ही विचार कर रहा है वह विचार ही कर रहा है, सुन नहीं रहा है।

सुनते समय सुनें, सुन लें पूरा, समझ लें क्या कहा गया है, फिर खूब विचार कर लें। लेकिन विचार और सुनने को जो साथ में मिश्रित कर देता है, वह बहरा हो जाता है। वह फिर अपने ही विचारों की प्रतिध्वनि सुनता है। फिर वह नहीं सुनता जो कहा गया है, वही सुन लेता है, जो उसके विचार उसे सुनने देते हैं।

अपने को अलग कर देना सुनने की कला है। जब सुन रहे हैं, तब सिर्फ सुनें। और जब विचार रहे हैं, तो सिर्फ विचारें। एक क्रिया को एक समय में करना ही उस क्रिया को शुद्ध करने की विधि है। लेकिन हम हजार काम एक साथ करते रहते हैं। अगर मैं आपसे कुछ कह रहा हूं तो आप उसे सुन भी रहे हैं, आप उस पर सोच भी रहे हैं, उस संबंध में आपने जो पहले सुना है, उसके साथ तुलना भी कर रहे हैं। अगर आपको नहीं जंच रहा है, तो विरोध भी कर रहे हैं; अगर जंच रहा है, तो प्रशंसा भी कर रहे हैं। यह सब साथ चल रहा है। इतनी पतें

अगर साथ चल रही हैं तो आप सुनने से चूक जाएंगे। फिर आपको राइट लिसनिंग, सम्यक श्रवण की कला नहीं आती।

महावीर ने तो श्रवण की कला को इतना मूल्य दिया है कि अपने चार घाटों में, जिनसे व्यक्ति मोक्ष तक पहुंच सकता है, श्रावक को भी एक घाट कहा है। जो सुनना जानता है, उसे श्रावक कहा है। महावीर ने तो कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन भी ले तो भी उस पार पहुंच जाएगा। क्योंकि सत्य अगर भीतर चला जाए तो फिर आप उससे बच नहीं सकते। सत्य अगर भीतर चला जाए तो वह काम करेगा ही। अगर उससे बचना है तो उसे भीतर ही मत जाने देना, तो सुनने में ही बाधा डाल देना। उसी समय अड़चन खड़ी कर देना। एक बार सत्य की किरण भीतर पहुंच जाए तो वह काम करेगी, फिर आप कुछ कर न पाएंगे।

इसलिए महावीर ने कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन भी ले, तो भी पार हो सकता है। हमको हैरानी लगेगी कि ठीक से सुनने से कोई कैसे पार हो सकता है!

जीसस ने भी कहा है कि सत्य मुक्त करता है। अगर जान लिया जाए, तो फिर आप वही

नहीं हो सकते जो आप उसके जानने के पहले थे। क्योंकि सत्य को जान लेना, सुन लेना भी, आपके भीतर एक नई घटना बन जाती है। फिर सारा पर्सपेक्टिव, सारा परिप्रेक्ष्य बदल जाता है। फिर उस सत्य का जुड़ गया आपसे संबंध, अब आप देखेंगे और ढंग से, उठेंगे और ढंग से। अब आप कुछ भी करेंगे, वह सत्य आपके साथ होगा। अब उससे बच कर भागने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए जो कुशल हैं भागने में, बचने में, वे सुनते ही नहीं। हमने सुना है कि लोग अपने कान बंद कर लेते हैं, विपरीत बात सुनाई न पड़ जाए, प्रतिकूल बात सुनाई न पड़ जाए। हाथों से कान बंद करने वाले मूढ़ तो बहुत कम हैं, लेकिन हम ज्यादा कुशल हैं। हम भी कान बंद रखते हैं। हाथों से नहीं रखते। हम भीतर विचारों की पर्त कान के आस-पास इकट्ठी कर देते हैं। बाहर से कान बंद नहीं करते, भीतर से विचार से कान बंद कर देते हैं। तब कान पर कोई बात सुनाई पड़ती है, वह विचार की पर्त जांच-पड़ताल कर लेती है। वह हमारा सेंसर है। वहां से पार हम होने देते हैं तभी, जब लगे हमारे अनुकूल है।

और ध्यान रखना, सत्य आपके अनुकूल नहीं हो सकता, आपको ही सत्य के अनुकूल होना पड़ता है। अगर आप सोचते हैं, सत्य आपके अनुकूल हो, तभी गृहीत होगा, तो आप सदा असत्य में जीएंगे। आपको ही सत्य के अनुकूल होना पड़ेगा। इसलिए पहली बात तो ठीक से सुन लेना जरूरी है कि क्या कहा गया है। जरूरी नहीं कि उसे मान लें।

सुनने का अर्थ मानना नहीं है। इससे लोगों को बड़ी भ्रांति होती है। कई को ऐसा लगता है कि अगर हमने सोचा-विचारा न, तो इसका मतलब हुआ कि हम बिना ही सोचे-विचारे मान लें! सुनने का अर्थ मानना नहीं है। सिर्फ सुन लें, अभी मानने न मानने की बात ही नहीं है। अभी तो ठीक तस्वीर सामने आ जाएगी कि क्या कहा गया है। फिर मानना न मानना पीछे कर लेना।

और एक बड़े मजे की बात है, अगर सत्य ठीक से सुन लिया जाए तो पीछे न मानना बहुत मुश्किल है; अगर सत्य है, तो पीछे न मानना बहुत मुश्किल है। अगर सत्य नहीं है तो पीछे मानना बहुत मुश्किल है। पर एक दफा शुद्ध प्रतिबिंब बन जाना चाहिए, फिर मानने न मानने की बात कठिन नहीं है। साफ हो जाएगी। सत्य मना ही लेता है। सत्य कनवर्शन है। फिर आप बच न सकेंगे। फिर तो आपको ही दिखाई पड़ने लगेगा कि मानने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। फिर सोचें खूब, फिर कसौटी करें खूब। लेकिन सोचना और कसौटी भी निष्पक्ष होनी चाहिए।

हमारा सोचने का क्या अर्थ होता है?

हमारा सोचने का अर्थ होता है-पूर्वाग्रह, हमारी जो प्रेजुडिस होती है, जो हमने पहले से मान रखा है उससे अनुकूल खाए, उससे अनुकूल हो तो सत्य है।

एक आदमी हिंदू घर में पैदा हुआ है, एक आदमी मुसलमान घर में, एक आदमी जैन घर में, तो जो उसने पहले से मान रखा है, वही, उससे मेल खा जाए, इसका नाम सोचना नहीं है। यह तो सोचने से बचना है, एस्केपिंग फ्रॉम थिंकिंग। आपने जो मान रखा है, अगर वही सत्य है तब तो आपको खोज ही नहीं करनी चाहिए। आपने जो मान रखा है, अगर उसको ही पकड़ कर कसौटी करनी है, तब तो आपकी सारी कसौटियां झूठी हो जाएंगी। जो आपने मान रखा है, उसको भी दूर रखिए; जो आपने सुना है उसको भी दूर रखिए। आप दोनों से अलग हो जाएं, किसी से अपने को जोड़िए मत। क्योंकि जिससे आप जोड़ रहे हैं, वहां पक्षपात हो जाएगा। दोनों को तराजू पर रखिए, आप दूर खड़े हो जाइए। आप निर्णायक रहिए, पक्षपाती नहीं।

हर बार, जब नई बात सुनी जाए तो पुरानी को अपनी मान कर, नई को दूसरे की मान कर अगर तौलेंगा, तो आप कभी निष्पक्ष चिंतन नहीं कर सकते। अपनी पुरानी को भी दूर रखिए, इस नई को भी दूर रखिए, दोनों पराई हैं। सिर्फ फर्क इतना है कि एक बहुत पहले सुनी थी, एक अब सुनी है। समय भर का फासला है। कोई बात बीस साल पहले सुनी थी, कोई आज सुनी है। बीस साल पुरानी जो थी, वह आपकी नहीं हो गई है, वह भी पराई है। उसे भी दूर रखिए, इसे भी दूर रखिए। और स्वयं को पार, अलग रखिए, और तब दोनों को सोचिए। इस सोचने में पक्ष मत बनाइए, निष्पक्ष दृष्टि से देखिए तो निर्णय बहुत आसान होगा। और बड़ा मजा यह है कि इतना निष्पक्ष जो चित्त हो उसे सत्य दिखाई पड़ने लगता है, सोचना नहीं पड़ता।

इसलिए हमने निरंतर इस मुल्क में कहा है कि सत्य सोच विचार से उपलब्ध नहीं होता, दर्शन से उपलब्ध होता है। यह निष्पक्ष चित्त दर्शन की स्थिति है, देखने में आप कुशल हो गए। अब आपको दिखाई पड़ेगा, कि क्या है सत्य और क्या है असत्य। अब आपकी आंख खुल गई। यह आंख देख लेगी कि क्या है सत्य, क्या है असत्य। लेकिन अगर पक्षपात तय है, आप हिंदू हैं, मुसलमान हैं, जैन हैं। बंधे हैं अपने पक्षपात से, तो फिर आप कुछ भी न देख पाएंगे। वह पक्षपात आपकी आंख को बंद रखेगा।

जो पक्षपात से देखता है, वह अंधा है। जो निष्पक्ष होकर देखता है, वह आंखवाला है। सुनें, फिर आंखवाले का व्यवहार करें।

कलियुग, सतयुग मनोस्थितियां हैं, बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है। स्वर्ग-नरक मनोस्थितियां हैं, बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है, या जिनत्व मनोस्थिति नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें।

हमारे भीतर तीन तल हैं। एक हमारे शरीर का तल है। सुविधाएं असुविधाएं, कष्ट-अकष्ट शरीर की घटनाएं हैं। इसलिए अगर आपका आपरेशन करना है तो आपको एक इंजेक्शन लगा देते हैं। वह अंग शून्य हो जाता है। फिर आपरेशन हो सकता है, आपको कोई तकलीफ नहीं होती है। पैर कट रहा है, आपको कोई तकलीफ नहीं होती। क्योंकि पैर कट रहा है, इसकी खबर मन को होनी चाहिए। जब खबर होगी, तभी तकलीफ होगी।

मन की तकलीफ नहीं है, यह तकलीफ पैर की है। तो पैर और मन के बीच में जिनसे जोड़ है, जिन स्नायुओं से, उनको बेहोश कर दिया तो आप तक तकलीफ पहुंचती नहीं। तकलीफ पहुंचनी चाहिए तो ही!

कष्ट, असुविधाएं शरीर की घटनाएं हैं। इसलिए बड़े मजे की बात है, आपके पैर में तकलीफ हो रही है, इंजेक्शन लगा दिया जाए, आपको पता नहीं चलता। आप मजे से लेटे गप-शप करते रहते हैं। इससे उलटा भी हो सकता है--पैर में तकलीफ नहीं हो रही, और आपके स्नायुओं को कंपित कर दिया जाए, जिनसे तकलीफ की खबर मिलती, तो आपको तकलीफ होगी। आप छाती पीट कर चिल्लाएंगे कि मैं मरा जा रहा हूं; और कहीं कोई तकलीफ नहीं हो रही।

तकलीफ से आपको जानने से रोका जा सकता है। तकलीफ की झूठी खबर मन को दी जा सकती है। मन के पास कोई उपाय नहीं है जांचने का कि सही क्या है, गलत क्या है। शरीर जो खबर दे देता है वह मन मान लेता है। ये शरीर की स्थितियां हैं, आपको भूख लगी है, प्यास लगी है, ये सब शरीर की स्थितियां हैं। इसके पीछे मन की स्थितियां हैं। आपको सुख हो रहा है, आपको दुख हो रहा है, ये मन की स्थितियां हैं।

देखते हैं कि मित्र चला आ रहा है, चित्त प्रसन्न हो जाता है। सुखी हो जाता है। लेकिन पास आकर पता चलता है कि धोखा हो गया, मित्र नहीं है, कोई और है, सुख तिरोहित हो गया। यह मन की स्थिति है, इसका मित्र से कोई संबंध नहीं था। क्योंकि मित्र तो वहां था ही नहीं।

रात निकले हैं, और दिखता है कि अंधेरे में कोई खड़ा है, छाती धड़कने लगी, भय हो गया। पास जाते हैं, देखते हैं, कोई भी नहीं है, लकड़ी का टूठ है, वृक्ष कटा हुआ है, निश्चित हो गए। छाती की धड़कन ठीक हो गई। फिर गुनगुनाने लगे गीत और चलने लगे। यह मन की स्थिति है।

मन, सुख और दुख भोगता है। मन में सतयुग होता है, कलियुग होता है। मन में स्वर्ग होते हैं, नरक होते हैं। शरीर के भी जो पार उठ जाता है, मन के भी जो पार उठ जाता है। उस घड़ी को हम कहते हैं बुद्धत्व, जिनत्वा। उस घड़ी को हमने कहा है, कृष्ण चेतना; उस घड़ी को हमने कहा है, क्राइस्ट हो जाना।

जीसस का नाम तो जीसस है, क्राइस्ट नाम नहीं है। क्राइस्ट चित्त के पार होने का नाम है। बुद्ध का नाम तो गौतम सिद्धार्थ है, बुद्ध उनका नाम नहीं है। बुद्धत्व, उनकी चेतना का मन के पार चले जाना है। महावीर का नाम तो वर्धमान है, जिन उनका नाम नहीं है। जिन का अर्थ है, मन के पार चले जाना।

क्राइस्ट के नाम में बड़ा मजा है। क्राइस्ट का नाम--जो इतिहास की गहरी खोज करते हैं, वे कहते हैं, क्राइस्ट कृष्ण का अपभ्रंश है। जीसस उनका नाम है, जीसस दी कृष्ण, जीसस जो कृष्ण हो गया। कृष्ण का रूप है क्राइस्ट। बंगाली में अब भी कृष्ण को कहते हैं, क्रिस्टो। बंगाली रूप है, क्रिस्टो। अगर कृष्ण का बंगाली रूप क्रिस्टो हो सकता है, तो हिब्रू या अरबी में क्राइस्ट हो सकता है, कोई अड़चन नहीं है।

यह जो, व्यक्ति जहां शरीर और मन, दोनों के पार हट जाता है, उन अवस्थाओं के नाम हैं। बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है, स्टेट ऑफ माइंड नहीं है। बुद्धत्व है स्टेट ऑफ नो माइंड, अ-मन की स्थिति है, जहां मन नहीं है। बुद्ध के पास कोई मन नहीं है, इसलिए हम उनको बुद्ध कहते हैं। महावीर के पास कोई मन नहीं है, इसलिए हम उनको जिन कहते हैं।

मन का क्या अर्थ होता है? मन का अर्थ होता है--विचारों का संग्रह, कर्मों का संग्रह, संस्कारों का संग्रह, अनुभवों का संग्रह। मन का अर्थ होता है--पास्ट, अतीत, जो बीत गया है उसका संग्रह। मन है जोड़ अतीत अनुभव का। जो हमने जाना, जीया, अनुभव किया उन सबका जोड़ हमारा मन है। मन हमारा संग्रह है समस्त अनुभवों का।

हमारा मन बहुत बड़ा है। हम जानते नहीं। आप तो अपना मन उतना ही समझते हैं, जितना आप जानते हैं, वह तो कुछ भी नहीं है। उसके नीचे पर्त-पर्त गहरा मन है। फ्रायड ने खोज की है कि हमारा चेतन मन, उसके नीचे गहरा अचेतन मन है, अनकांशस है। फिर जुंग ने और खोज की कि उसके नीचे हमारा कलेक्टिव अनकांशस, सामूहिक अचेतन मन है। लेकिन ये खोजें अभी प्रारंभ हैं। बुद्ध और महावीर ने जो खोज की है, अभी उस अतल में उतरने की मनोविज्ञान की सामर्थ्य नहीं है। बुद्ध और महावीर तो कहते हैं, कि यह जो हमारा मन है, इसके नीचे बड़ी पर्तें हैं, आपके सारे जन्मों की, जो पशुओं में हुए हैं, उनकी पर्तें हैं। जो पौधों में हुए उनकी पर्तें हैं।

अगर आप कभी एक पत्थर थे, तो उस पत्थर का अनुभव भी आपके मन की गहरी पर्त में दबा हुआ पड़ा है। कभी आप पौधे थे, तो उस पौधे का अनुभव और स्मृतियां भी आपके मन के पर्त में दबी पड़ी हैं। आप कभी

पशु थे, वह भी दबा हुआ पड़ा है। इसलिए कई बार ऐसा होता है कि आपकी उन पतों में से कोई आवाज आ जाती है तो आप आदमी नहीं रह जाते। जब आप क्रोध में होते हैं तो आप आदमी नहीं होते। असल में क्रोध के क्षण में आप तत्काल अपने पशु मन से जुड़ जाते हैं और पशु मन प्रकट होने लगता है।

इसलिए अक्सर क्रोध में आप कुछ कर लेते हैं और पीछे कहते हैं, मेरे बावजूद, इंस्पाइट ऑफ मी--मैं तो नहीं करना चाहता था, फिर भी हो गया। फिर किसने किया, आप नहीं करना चाहते थे तो! कभी आपने अपनी क्रोध की तस्वीर देखी है? कभी आईने के सामने खड़े होकर क्रोध करना, तब आप पाएंगे, यह चेहरा आपका नहीं है। ये आंखें आपकी नहीं हैं। यह कोई और आपके भीतर आ गया। वह कौन है? यह आपका ही कोई पशु-संस्मरण है, कोई स्मृति है, कोई संस्कार; जब आप पशु थे, वह आपके भीतर काम कर रहा है। उसने आपको पकड़ लिया। जब आप अपने को ढीला छोड़ते हैं, तब आपके नीचे का मन आपको पकड़ लेता है।

कई बार कई आदमियों की आंखों में देख कर आपको लगेगा कि वह पथरा गई हैं। लोग कहते हैं, उसकी आंखें पथरा गई हैं। जब हम कहते हैं, किसी की आंखें पथर हो गई, तो उसका क्या मतलब होता है? उसका मतलब है कि इस व्यक्ति के पथर जीवन के अनुभव इसकी आंखों को पकड़ रहे हैं आज भी। इसलिए इसकी आंखों में कोई संवेदना नहीं मालूम होती।

अनेक लोग बिल्कुल मुर्दा मालूम पड़ते हैं। उनका शरीर लगता है, जैसे लाश है। वे चलते हैं तो ऐसा जैसे कि ढो रहे हैं अपने को। क्या हो गया है इनको?

मन की बहुत पतें हैं। इस पत-पत मन का जो लंबा इतिहास है, वह अतीत है। रोज हम इस मन में जोड़ दिए चले जाते हैं। जो भी हम अनुभव करते हैं, वह उसमें जुड़ जाता है। मैं कुछ बोल रहा हूं, यह आपके मन में जुड़ जाएगा। आपका मन रोज बढ़ रहा है, बड़ा हो रहा है, फैलता जा रहा है।

बुद्धत्व, जिनत्व, इस मन के अतीत के पार उठने की घटना है। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने अतीत का त्याग कर देता है, अपने सारे मनो को छोड़ देता है, और अपनी चेतना को मन के पार खींच लेता है--और कहता है, अब मैं न शरीर हूं, न अब मैं मन हूं, अब मैं केवल जानने वाला हूं, जो मन को भी जानता है--वह हूं--अब मैं ऑब्जेक्ट नहीं हूं, जाने-जानी वाली चीज नहीं हूं--ज्ञाता हूं, चिन्मय हूं, चैतन्य हूं।

कहने से नहीं--मन यह भी कह सकता है, यही बड़ा मजा है। मन यह भी कह सकता है कि मैं चैतन्य हूं, आत्मा हूं, परमात्मा हूं। लेकिन अगर यह मन कह रहा है, अगर यह आप सुनी हुई बात कह रहे हैं, तो इसका आत्मा से कोई संबंध नहीं है। यह आपका अनुभव बन जाए और आप मन के पार अपने को पहचान लें कि यह मैं मन से अलग हूं, तब बुद्धत्व है।

बुद्ध से कोई पूछता है। बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। एक ज्योतिषी बड़ी मुश्किल में पड़ गया है। उसने बुद्ध के पैर देख लिए रेत पर बने हुए। वह काशी से लौट ही रहा था अपने पांडित्य की डिग्री लेकर। वह बड़ा ज्योतिषी था। उसने पोथे पंडित, अपनी सारी पोथियां लेकर चला आ रहा था। उसने देखे बुद्ध के चरण, गीली रेत पर, गीली मिट्टी पर पैर के चिह्न थे। वह चकित हो गया। यह आदमी सम्राट होना चाहिए ज्योतिष के हिसाब से। पैर के चिह्न सम्राट के चिह्न हैं। लेकिन कौन सम्राट, नंगे पैर इस साधारण से गरीब गांव की रेत में चलने आएगा!

वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अभी लौटा ही है काशी से। उसने कहा कि अगर इस साधारण से गांव-देहात में सम्राट नंगे पैर रेत में चलते हों, सम्राट मिलते हों, तो पोथी वगैरह यहीं, इसी नदी में डुबा कर हाथ जोड़ लेना चाहिए। कोई मतलब नहीं है। इस आदमी को खोजना पड़ेगा।

वह खोज करके पहुंचा, तो बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। बड़ी मुश्किल में पड़ गया ज्योतिषी। जिसको सम्राट होना चाहिए, वह भिक्षा पात्र लिए बैठा है! अगर यह आदमी सही है, तो ज्योतिष गलत है। अगर ज्योतिष सही है तो इस आदमी को यहां होना ही नहीं चाहिए इस वृक्ष के नीचे।

उसने बुद्ध से जाकर पूछा कि कृपा करें, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। ये पैर के लक्षण सम्राट के हैं, चक्रवर्ती सम्राट के। और आप यहां भिखारी होकर बैठे हुए हैं। क्या करूं, पोथियों को डुबा दूं पानी में?

बुद्ध ने कहा: पोथियों को डुबाने की जरूरत नहीं, क्योंकि मेरे जैसा आदमी दुबारा तुम्हें जल्दी नहीं मिलेगा। होना चाहिए था चक्रवर्ती सम्राट ही। ज्योतिष तुम्हारा ठीक ही कहता है। लेकिन एक और जगत है अध्यात्म का, जो ज्योतिष के पार चला जाता है। पर तुम्हें ऐसा बार-बार नहीं होगा, तुम बहुत चिंता में मत पड़ो। ऐसा जल्दी फिर दुबारा नहीं होगा। चक्रवर्ती सम्राट ही होने को पैदा हुआ था, लेकिन उससे और ज्यादा होने का द्वार खुल गया। तो भिखारी मैं नहीं हूं, सम्राट भी मैं नहीं हूं।

तब आश्चर्य हुआ ज्योतिषी। उसने गौर से--चिंता छोड़ी--बुद्ध के चेहरे को देखा। वहां जो आभा थी, वहां जो गरिमा थी, वहां जो प्रकाश की किरणें फूट रही थीं... उसने पूछा, क्या आप देवता हैं? मुझसे भूल हो गई, मुझे क्षमा कर दें।

बुद्ध ने कहा: मैं देवता भी नहीं हूं।

तो ज्योतिषी पूछता जाता है कि आप यह हैं, आप यह हैं, आप यह हैं। बुद्ध कहते जाते हैं, मैं यह भी नहीं, मैं यह भी नहीं, मैं यह भी नहीं। तब ज्योतिषी पूछता है, फिर आप हैं क्या? न आप पशु हैं, न आप पक्षी हैं, न आप पौधा हैं, न आप मनुष्य हैं, न आप देवता हैं, तो आप हैं क्या?

बुद्ध कहते हैं: मैं बुद्ध हूं।

तो वह ज्योतिषी पूछता है, बुद्ध होने का क्या अर्थ? तो बुद्ध कहते हैं, जो भी परिधियां हो सकती थीं आदमी की, देवता की, पशु की, वे सब मन के खेल थे। मैं उनके पार हूं। मैंने उसे पा लिया है जो उस मन के भीतर छिपा था। अब मैं मन नहीं हूं।

पशु भी मन के कारण पशु है। और आदमी भी मन के कारण मनुष्य है। पौधा भी मन के कारण पौधा है।

आप जो भी हैं, अपने मन के कारण हैं। जिस दिन आप मन को छोड़ देंगे उस दिन आप वह हो जाएंगे जो आप अकारण हैं। वह अकारण होना ही हमारा ब्रह्मत्व है, वह अकारण होना ही हमारा परमात्म है।

कारण से हम संसार में हैं, अकारण से हम परमात्मा में हो जाते हैं। कारण से हमारी देह निर्मित होती है, मन निर्मित होता है। अकारण हमारा अस्तित्व है। वह है, उसका कोई कारण नहीं है।

बुद्धत्व अवस्था नहीं है, अवस्थाओं के पार हो जाना है।

अब हम सूत्र लें।

"आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोहनिद्रा में सोए हुए संसारी मनुष्यों के बीच रह कर भी सभी तरह से जागरूक रहना चाहिए और किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए।"

"काल निर्दयी है, और शरीर दुर्बल। यह जान कर भारंड पक्षी की भांति अप्रमत्त भाव से विचरना चाहिए।"

बहुत सी बातें समझने की हैं।

महावीर अकेला पंडित नहीं कहते, आशुप्रज्ञ पंडित। तो पहले तो इस बात को हम समझ लें।

पंडित का अर्थ होता है, जानने वाला, जानकारी वाला, जिसके पास सूचनाओं का बहुत संग्रह है, लर्नेड। शास्त्र का जिसे पता है, सिद्धांत का जिसे पता है, प्राणियों का जिसे बोध है, तर्क में जो निष्णात है, ऐसा व्यक्ति पंडित है। जानकारीयां जिसके पास हैं। आशुप्रज्ञ पंडित का अर्थ है--जानकारीयां ही जिसके पास नहीं हैं, ज्ञान भी जिसके पास हैं। आशुप्रज्ञ शब्द का अर्थ होता है, ऐसे प्रश्न का उत्तर भी जो दे सकेगा, जिस प्रश्न के उत्तर की कोई जानकारी उसके पास नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें।

हम उस व्यक्ति को आशु कवि कहते हैं जो कविता बना कर नहीं आया है; जिसकी कविता तत्क्षण बनेगी। जो कविता पहले बनाएगा नहीं, फिर गाएगा नहीं; जो गाएगा और गाने में ही कविता निर्मित होगी। उसको कहते हैं, आशु कवि। उसका गाना और बनाना साथ-साथ है। वह पहले बनाता और फिर गाता, ऐसा नहीं। वह गाता है, और कविता बनती चली जाती है।

आशु कवि का अर्थ है, कविता उसके लिए कोई रचना नहीं है, उसका स्वभाव है। वह बोलेगा, तो कविता है। उसके बोलने में ही काव्य होगा। काव्य को उसे बाहर से लाकर आरोपित नहीं करना होता। वह उससे वैसे ही निकलता है, जैसे वृक्षों में पत्ते निकलते हैं। जैसे झरना बहता है वैसे उसकी कविता बहती है, निष्प्रयोजन है, निष्चेष्टित है। उसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। जितना छोटा कवि हो उतना ज्यादा प्रयास करना पड़ता है। जितना बड़ा कवि हो उतना कम प्रयास करना पड़ता है। आशु कवि हो तो प्रयास होता ही नहीं, कविता बहती है। तब कविता एक निर्माण नहीं है, कोई आयोजना, कोई व्यवस्था नहीं है। तब कविता वैसे ही है जैसे श्वास का चलना है। ऐसे व्यक्ति को हम कहते हैं, आशु कवि। आशुप्रज्ञ उसे कहते हैं, जिसका ज्ञान स्मृति नहीं है। आप उससे पूछते हैं।

आप किसी से कुछ पूछते हैं तो दो तरह के उत्तर संभव हैं। एक सवाल आप मुझसे पूछें तो दो तरह के उत्तर संभव हैं। एक--आप सवाल पूछते हैं, मैं तत्काल अपनी स्मृति के संग्रह में जाऊँ और उत्तर खोज लाऊँ। आप मुझसे कुछ पूछें, मैं तत्काल खोजूँ अपने अतीत में, अपने मस्तिष्क में, अपनी स्मृति में, अपने कोश में, अपने संग्रह में उत्तर--उत्तर खींच कर स्मृति से ले आऊँ, उत्तर दे दूँ। यह एक पंडित का उत्तर है।

आप मुझसे प्रश्न पूछें, मैं अपने भीतर चला जाऊँ, स्मृति में नहीं। आप मुझसे उत्तर पूछें, मैं उत्तर के सामने अपनी चेतना को खड़ा कर दूँ, स्मृति को नहीं। आप उत्तर पूछें, मैं दर्पण की तरह आपके उत्तर के सामने खड़ा हो जाऊँ, और मेरी यह चेतना प्रतिध्वनि दे, आपके प्रश्न का उत्तर दे। यह उत्तर स्मृति से न आए, इस क्षण की मेरी चेतना से आए, तो आशुप्रज्ञ। आशुप्रज्ञ का अर्थ है, अभी जिसकी चेतना से उत्तर आएगा, ताजा, सद्यःस्नात, अभी-अभी नहाया हुआ, बासा नहीं।

हमारे सब उत्तर बासे होते हैं। बासे उत्तर में समय लगता है, पता चले या न चले। आशुप्रज्ञ में समय नहीं लगता।

आपसे कोई प्रश्न पूछे, समय लगता है। अगर ऐसा प्रश्न पूछे कि आपका नाम क्या है तो आपको लगता है, कोई समय नहीं लगता। कह देते हैं, राम। लेकिन इसमें भी समय लगता है। असल में आदत हो गई है। आपको पता है कि आपका नाम राम है, इसलिए समय लगता मालूम नहीं पड़ता, लेकिन इसमें भी समय जाता है। लेकिन कोई आपसे पूछे कि आपके पड़ोसी का नाम क्या है? तो आप कहते हैं, जबान पर रखा है, लेकिन याद नहीं आ रहा है।

इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है, स्मृति में है, लेकिन हम स्मृति तक पहुंच नहीं पा रहे, बीच में कुछ दूसरी चीजें अड़ गई हैं, कुछ दूसरी स्मृतियाँ अड़ गई हैं; इसलिए हम ठीक पहुंच नहीं पा रहे। मालूम भी है, लेकिन पकड़ नहीं पा रहे स्मृति में।

आपको जो याद है, उसको आप तत्काल उत्तर दे देते हैं। समय बीत जाता है तो भूल जाता है, फिर आप तत्काल उत्तर नहीं दे पाते। लेकिन अगर आपको थोड़ा समय मिले, सुविधा मिले, तो आप खोज ले सकते हैं उत्तर।

स्मृति से आया हुआ उत्तर पांडित्य का उत्तर है।

आपसे किसी ने पूछा, ईश्वर है? तो आप जो भी उत्तर देंगे वह पांडित्य का हो जाएगा। लेकिन कोई महावीर से पूछे, तो वह उत्तर पांडित्य का नहीं होगा, वह महावीर के जानने से निकलेगा। वह महावीर की जानकारी से नहीं निकलेगा--जानने से निकलेगा। मेमोरी से नहीं, कांशसनेस से, चैतन्य से निकलेगा।

महावीर कोई बंधा हुआ उत्तर तैयार नहीं रखते हैं कि आप पूछेंगे, वह दे देंगे। उनके पास रेडीमेड कुछ भी नहीं है। पंडित के पास सब रेडीमेड है। आप पूछेंगे, वह वही उत्तर देगा जो तैयार है। इसलिए एक बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। महावीर का आज का उत्तर जरूरी नहीं कि कल भी हो, परसों भी हो। पंडित का आज भी वही होगा, कल भी वही होगा, परसों भी वही होगा। क्योंकि पंडित के पास वस्तुतः कोई उत्तर नहीं है, केवल एक जानकारी है। महावीर का उत्तर रोज बदल जाएगा, रोज बदल सकता है, प्रतिपल बदल सकता है। क्योंकि वह कोई जानकारी नहीं है।

महावीर की चेतना जो प्रतिध्वनि करेगी, इस प्रतिध्वनि में अंतर पड़ेगा, क्योंकि पूछने वाला रोज बदल जाएगा। और पूछने वाले पर निर्भर करेगा। इसे ऐसा समझें--एक फोटोग्राफ है, तो फोटोग्राफ आज भी वही शकल बताएगा, कल भी वही शकल बताएगा, परसों भी वही शकल बताएगा। किसी को दे दें देखने के लिए, इससे फर्क नहीं पड़ेगा। एक दर्पण है, दर्पण वही शकल नहीं बताएगा। जो देखेगा, उसकी ही शकल बताएगा। रोज बदल जाएगी शकल।

पांडित्य फोटोग्राफ है। सब पक्का बंधा हुआ है। हम उसी आदमी को बड़ा पंडित कहते हैं जिसका फोटोग्राफ बिल्कुल साफ है, एक-एक रेखा-रेखा साफ दिखाई पड़ती हो।

महावीर और बुद्ध जैसे लोग तो दर्पण की भांति हैं। आपकी शकल दिखाई पड़ेगी। इसलिए जब प्रश्न पूछने वाला बदल जाएगा तो उत्तर बदल जाएगा। पंडित का उत्तर कभी न बदलेगा। आप सोते से उठा कर पूछ लो, कुछ भी करो, उसका उत्तर नहीं बदलेगा। उसका उत्तर वही रहेगा।

इससे एक बड़ी कठिनाई पैदा होती है। महावीर और बुद्ध के वचनों में बड़ी असंगतियां दिखाई पड़ती हैं, दिखाई पड़ेंगी। पंडित ही संगत हो सकता है। आशुप्रज्ञ संगत नहीं हो सकता। क्योंकि प्रतिपल परिस्थिति बदल जाती है, पूछने वाला बदल जाता है, संदर्भ बदल जाता है, उत्तर बदल जाता है, दर्पण का प्रतिबिम्ब बदल जाता है।

आप पर निर्भर करेगा कि महावीर का उत्तर क्या होगा। पूछने वाले पर निर्भर करेगा कि उत्तर क्या होगा। इसलिए महावीर कहते हैं, आशुप्रज्ञ पंडित, जिसकी प्रज्ञा प्रतिपल तैयार है उत्तर देने को। प्रज्ञा, जिसका ज्ञान, प्रतिपल तैयार है उत्तर देने को।

"आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोह-निद्रा में सोए हुए संसारी मनुष्यों के बीच रह कर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए।"

महावीर कहते हैं कि जिसको भी ऐसी प्रज्ञा में थिर रहना है, ऐसे ज्ञान में थिर रहना है, ऐसे ज्ञान में गति करते जाना है, उसे संसारी सोए हुए मनुष्यों के बीच रह कर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए। रहना तो पड़ेगा ही सोए हुए लोगों के बीच। क्योंकि वे ही हैं, और तो कोई है भी नहीं। भागने से कोई सार भी नहीं है। कहीं भी भाग जाओ, सोए हुए लोगों के बीच ही रहना पड़ेगा। यह जरा समझ लेने जैसा है।

अक्सर लोग सोचते हैं कि शहर छोड़ कर गांव चला जाऊं। गांव में भी सोए हुए लोग ही हैं। कोई सोचता है, गांव छोड़ कर जंगल चला जाए। लेकिन आपको कभी ख्याल न आया होगा कि जंगल के पौधे मनुष्य से ज्यादा सोए हुए हैं, इसलिए तो पौधे हैं। और जंगल के पशु-पक्षी मनुष्य से ज्यादा सोए हुए हैं, इसलिए तो पशु-पक्षी हैं। ये मनुष्य भी कभी पशु-पक्षी थे और पौधे थे। ये थोड़े-थोड़े जाग कर मनुष्य तक आ गए हैं।

अगर एक आदमी मनुष्यों को छोड़ कर जंगल जा रहा है तो वह और भी गहन, सोई हुई चेतनाओं के बीच जा रहा है। वहां उसे शांति मालूम पड़ सकती है। उसका कुल कारण इतना है कि वह इन सोए हुए प्राणियों की भाषा नहीं समझ रहा है।

लेकिन सारा जंगल सोया हुआ है। ये सोए हुए वृक्ष, सोए हुए मनुष्य ही हैं। जो कभी मनुष्य हो जाएंगे। जागे हुए मनुष्य जो दिखाई पड़ रहे हैं, ये थोड़े से आगे बढ़ गए वृक्ष ही हैं जो कभी वृक्ष थे। पीछे लौटने में चूंकि

भाषा का पता नहीं चलता, इसलिए आदमी सोचता है, जंगल में ठीक रहेगा। न कोई रहेगा आदमी, न कोई होगा उपद्रव। उपद्रव न होने का कुल कारण इतना है कि आदमी की भाषा जल्दी चोट करती है, और ज्यादा होश रखना पड़ता है, नहीं तो चोट से बचा नहीं जा सकता। आदमी गाली देगा तो क्रोध जल्दी आ जाएगा। पत्थर की चोट पैर में लगेगी तो उतनी जल्दी क्रोध नहीं आएगा क्योंकि हम सोचते हैं, पत्थर है। छोटे बच्चों को आ जाता है। क्योंकि अभी उनको पता नहीं है कि पत्थर और आदमी में फर्क करना है। वह पत्थर को भी गाली देंगे, डंडा उठा कर पत्थर को भी मारेंगे। कभी-कभी आप भी बचकाने होते हैं, तब वैसा कर लेते हैं। कलम ठीक से नहीं चलती तो गाली देकर फर्श पर पटक देते हैं।

लेकिन चाहे कहीं भी चले जाओ, महावीर कहते हैं, संसार में तो रहना ही पड़ेगा। संसार का मतलब ही है, सोई हुई चेतनाओं की भीड़। यह भीड़ चाहे बदल लो, चाहे वृक्षों की हो, चाहे पशुओं की हो, चाहे मनुष्यों की हो, यह भीड़ तो मौजूद है। यह स्थिति है, इससे बचा नहीं जा सकता।

संसार अनिवार्य है, उससे तब तक बचा नहीं जा सकता, जब तक हम पूरी तरह जाग न जाएं। तो आशुप्रज्ञ पंडित को भी, जो इस जागने की चेष्टा में सतत संलग्न है, सोए हुए लोगों के बीच रहना पड़ेगा। तो उसे सदा जागरूक रहना चाहिए।

क्यों?

क्योंकि नींद भी संक्रामक है, इनफ़ेक्शस है। यहां इतने लोग बैठे हैं, हम सब संक्रामक रूप से जीते हैं। अभी एक आदमी खांस दे, तभी पता चलेगा, दस बीस लोग खांसने लगेंगे। क्या हो गया? अभी तक ये चुपचाप बैठे थे, इनके गले को क्या हो गया? अभी तक कोई गड़बड़ न थी। एक आदमी ने खांसना शुरू किया, दस बीस लोग खांसना शुरू कर देंगे। संक्रामक है। हम अनुकरण से जीते हैं। एक आदमी पेशाब करने चला जाए तो कई लोगों को ख्याल हो जाएगा कि पेशाब करने जाना है। संक्रामक है। हम एक दूसरे के हिसाब से जी रहे हैं।

हिटलर अपनी सभाओं में अपने दस पांच आदमियों को दस जगह बिठा रखता था। ठीक वक्त पर दस आदमी ताली बजाते, वह पूरा हाल तालियों से गूंज उठता था। समझ गया था कि ताली संक्रामक है। दस आदमी अपने हैं, वे ताली बजा देते हैं, फिर बाकी दस हजार लोग भी ताली बजा देते हैं। ये दस हजार लोगों को क्या हो गया? इनकी ताली को क्या हो गया?

हमारा मन आस-पास से एकदम प्रभावित होता रहता है। बीमारियां ही नहीं पकड़ती हमको, फलू ही नहीं पकड़ता हमको, एक-दूसरे से क्रोध भी पकड़ता है, मोह भी पकड़ता है, लोभ भी पकड़ता है, कामवासना भी पकड़ती है। शरीर ही नहीं पकड़ता जीवाणुओं को, मन भी पकड़ता है।

इसलिए महावीर कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को सोए हुए लोगों के बीच जागरूक रहना चाहिए, क्योंकि वे चारों तरफ गहन निद्रा में सो रहे हैं। उनकी निद्रा की लहरें तुम्हें छुएंगी। वे चारों तरफ से तुम्हारे भीतर आएंगी। तुम अकेले ही अपनी नींद के लिए जिम्मेवार नहीं हो, तुम एक नींद के सागर में हो जहां चारों तरफ से नींद तुम्हें छुएगी। अगर तुमने बहुत चेष्टा न की तो वह नींद तुम्हें पकड़ लेगी। वह नींद तुम्हें डुबा देगी। कोई तुम्हें डुबाने की उसकी आकांक्षा नहीं है, यह कोई सचेतन प्रयास नहीं है, यह केवल स्थिति है।

कभी आपने ख्याल किया है, अगर दस लोग बैठे हैं और एक आदमी जम्हाई लेने लगे फौरन दूसरे कुछ लोग जम्हाई लेना शुरू कर देंगे। एक आदमी सो जाए दूसरे लोगों को नींद पकड़ने लगेगी।

हम समूह का एक अंग हैं जब तक हम पूरे नहीं जाग गए। जब तक कोई व्यक्ति पूरा नहीं जागा, तब तक वह व्यक्ति नहीं है, भीड़ है। तब तक वह कितना ही समझे कि मैं अलग हूं, वह अलग है नहीं।

इसलिए बड़ी मजे की घटनाएं घटती हैं। दुनिया में बड़े पाप व्यक्ति से नहीं होते, भीड़ से होते हैं। क्योंकि भीड़ में संक्रमण हो जाता है। हजार लोगों की भीड़ मंदिर को जला रही है या मस्जिद में आग लगा रही है। इनमें से एक-एक आदमी को अलग करके पूछें कि मस्जिद में आग लगाना चाहते हो? मंदिर तोड़ना चाहते हो?

क्या होगा? एक-एक आदमी को अलग पूछें, वह कहेगा, नहीं, इससे कुछ होने वाला नहीं है, इसमें कोई सार भी नहीं है। फिर क्या कर रहे थे?

लेकिन हजार आदमियों की भीड़ में वह आदमी था ही नहीं, वह सिर्फ भीड़ का एक हिस्सा था। इसलिए बड़ा पाप भीड़ करती है। छोटे पाप निजी होते हैं। बड़े पाप सामूहिक होते हैं। जितना बड़ा पाप करना हो, उतनी बड़ी भीड़ चाहिए। क्योंकि भीड़ में व्यक्ति को जो निज की जिम्मेवारी है वह खो जाती है। भीड़ में व्यक्ति अपने में नहीं रह जाता। भीड़ में उसे लगता है, एक सागर है जिसमें बहे चले जा रहे हैं। भीड़ में उसे ऐसा नहीं लगता है कि मैं कर रहा हूं, भीड़ कर रही है, मैं सिर्फ साथ हूं।

कभी आपने ख्याल किया, अगर भीड़ तेजी से चल रही हो, आपके पैर भी तेज हो जाते हैं। हिटलर ने अपने सैनिकों को आदेश दे रखे थे कि जब भी तुम चलो तो एक दूसरे के शरीर छूते रहें। अगर पचास आदमी चल रहे हों, और एक दूसरे के शरीर छूते हैं और उनके कदम एक लय में पड़ते हैं, तो आप उस लय में फंस जाएंगे। जब उनका हाथ आपको छुएगा तो उनका जोश भी आपके भीतर चला जाएगा। और जब उनके कदम की चाप आपके सिर में पड़ेगी तो आपका कदम भी वैसा ही पड़ने लगेगा। पचास आदमियों की भीड़ में आप अकेले नहीं रह जाते, आप सिर्फ एक अंग हो जाते हैं, एक बड़ी चेतना का हिस्सा हो जाते हैं। और वह चेतना फिर आपको प्रवाहित कर लेती है। जैसे नदी की धार में कोई बहता हो और जब नदी वर्षा के पूर में आई हो जब कोई बहता हो, वैसा असहाय आदमी हो जाता है भीड़ में।

इसलिए सारे लोग भीड़ बना कर जीते हैं। राष्ट्र भीड़ों के नाम हैं। धर्म भीड़ों के नाम हैं--हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, जैनों की भीड़, हिंदुस्तान, पाकिस्तान, चीन, रूस--ये सब भीड़ों के नाम हैं।

रूस खतरे में है, तो फिर सारा मामला खत्म हो गया। भारत खतरे में है, तो फिर आप व्यक्ति नहीं रह जाते। सिर्फ एक बड़ी भीड़ के हिस्से रह जाते हैं। फिर उसमें आप बहते हैं।

राजनीति भीड़ों को संचालित करने की कला है। इसलिए जहां भी भीड़ है वहां राजनीति होगी। चाहे वह धर्म की भीड़ क्यों न हो, राजनीति आ जाएगी। इसलिए मैं आपसे कहता हूं, धर्म का संबंध है व्यक्ति से और राजनीति का संबंध है भीड़ से। जहां धर्म भी भीड़ से संबंधित होता है वहां राजनीति का रूप है। इसलिए हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, ईसाइयों की भीड़, ये सब राजनीति के रूप हैं, इनका धर्म से कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध है व्यक्ति से। धर्म की चेष्टा ही यही है कि व्यक्ति को हम भीड़ से कैसे मुक्त करें, वह भीड़ के उपद्रव से कैसे बाहर आए, भीड़ के प्रभाव से कैसे छूटे, यही तो धर्म की सारी चेष्टा है। लेकिन धर्म भी भीड़ बन जाता है, और धर्म भीड़ बन जाता है तो उससे मुश्किल हो जाती है, कठिनाई खड़ी होती है। युद्ध में सैनिक ही भीड़ में नहीं लड़ते, लोग मस्जिदों में, मंदिरों में, भीड़ में प्रार्थना भी करते हैं। वह जाएंगे आप। वह जाना निद्रा में भी हो जाएगा, महावीर कहते हैं।

इसलिए जागे हुए व्यक्ति को आस-पास पूरे वक्त सचेत रहना पड़ेगा। सब तरफ से नींद आ रही है, सब तरफ सोए हुए लोग हैं। क्रोध आएगा, लोभ आएगा, मोह आएगा, सब तरफ से बह रहा है, जैसे कि कोई आदमी सब तरफ से गंदी नालियां बह रही हों और उनके बीच में बैठा हो। उसको बहुत सचेत रहना पड़ेगा अन्यथा वे गंदी नालियां उसे भी गंदा कर देंगी। उसकी सचेतना ही उसको पवित्र रख सकती है। इसलिए महावीर कहते हैं, सब तरह से जागरूक रहना चाहिए, सब तरह से। इसलिए बहुत अदभुत वचन उन्होंने कहा है।

"और किसी का भी विश्वास नहीं करना चाहिए।"

इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर अविश्वास सिखा रहे हैं। महावीर कहते हैं, तुमने किसी का विश्वास किया, सोए हुए आदमी का, तो तुम खुद सो जाओगे। तुमने अगर सोए हुए आदमी का विश्वास किया तो तुम सो जाओगे, क्योंकि विश्वास का मतलब यह है कि अब सचेतन रहने की कोई भी जरूरत नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें।

जिसका हम विश्वास करते हैं, उससे हमें सचेतन नहीं रहना पड़ता। एक अजनबी आदमी आपके कमरे में ठहर जाए तो आप रात ठीक से सो न पाएंगे। क्यों?

अजनबी आदमी कमरे में है, पता नहीं क्या करे! नींद उखड़ी-उखड़ी रहेगी, रात में दो-चार दफा आप आंख खोल कर देख लेंगे कि कुछ कर तो नहीं रहा। आपकी पत्नी आपके कमरे में सो रही है, आप मजे से घोड़े बेच कर सो जाते हैं, क्योंकि अब अजनबी नहीं, और जो भी कर सकती थी, कर चुकी। अब सब परिचित है। अब जो कुछ भी होगा, होगा। अब इसमें कुछ ऐसा नया कुछ होने वाला नहीं है। कोई भय नहीं है। आप चेतना खो सकते हैं। आपको चेतन रहने की कोई जरूरत नहीं है।

इसीलिए तो नये मकान में, नये कमरे में नींद नहीं आती। स्थिति नई है, आदतन नहीं है। नये बिस्तर पर नींद नहीं आती, नये लोगों के बीच नींद नहीं आती, क्योंकि स्थिति नई है और थोड़ा सा होश रखना पड़ता है। पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता।

महावीर कहते हैं, जीना जगत में जैसे अजनबियों के बीच ही हो सदा--स्ट्रेंजर्स... ! है ही सच्चाई यह। पति और पत्नी चाहे बीस साल चाहे चालीस साल साथ रहे हों, अजनबी हैं। कभी भी कोई पहचान हो नहीं पाती; स्ट्रेंजर्स हैं। मान लेते हैं बीस साल साथ रहने के कारण कि अब हम परिचित हो गए हैं। क्या खाक परिचित हो गए! कोई परिचित नहीं होते, कोई परिचित नहीं होता, सब आइलैंड बने रहते हैं, अपने-अपने में द्वीप बने रहते हैं। परिचय हो जाता है ऊपरी, नाम-धाम, ठिकाना, यह सब पता हो जाता है, शकल-सूरत, लेकिन भीतर क्या संभावनाएं छिपी हैं, उसका कुछ परिचय नहीं होता, कोई पहचान नहीं होती।

महावीर कहते हैं, किसी का विश्वास मत करना। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यह नहीं है कि अविश्वासी हो जाना, अनट्रस्टिंग हो जाना। इसका यह मतलब नहीं कि हर आदमी को समझना कि बेईमान है, हर आदमी को समझना कि चोर है। इससे कई लोगों को बड़ी प्रसन्नता होगी कि किसी का विश्वास मत करना। वे कहेंगे, यह तो हम कर ही रहे हैं, यह तो हमारी साधना ही है। किसी का विश्वास हम करते कहां हैं? अपना नहीं करते, दूसरे की तो बात ही दूसरी है।

कोई किसी का विश्वास नहीं कर रहा है, मगर वह अर्थ नहीं है महावीर का, इसे ठीक से समझ लें--

हम अविश्वास करते हैं, लेकिन वह अविश्वास महावीर का प्रयोजन नहीं है। महावीर कहते हैं, किसी का विश्वास न करना इस कारण, ताकि तुम सो न जाओ। निकटतम भी तुम्हारे कोई हो तो भी इतना विश्वास मत करना कि अब होश रखने की कोई जरूरत नहीं है। होश तो तुम रखना ही, जागे तो तुम रहना ही। क्योंकि जो निकटतम हैं उन्हीं से बीमारियां आसानी से आती हैं। वे करीब हैं उनका रोग जल्दी लगता है। होश तो रखना ही। अगर तुम होश खोकर अपनी पत्नी या अपने पति, या अपने बेटे, या अपनी मां के पास भी बैठे हो, तो उसकी बीमारियां तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रही हैं। तुम्हारा चित्त पहरदार बना ही रहे और मन की कोई बीमारी तुममें प्रवेश न कर पाए।

बुद्ध कहते थे, कि जिस मकान के बाहर पहर पर कोई बैठा हो, चोर उसमें प्रवेश नहीं करते। जिस मकान का दीया जला हो और घर के बाहर रोशनी आ रही हो, चोर उस मकान से जरा दूर ही रहते हैं। ठीक ऐसे ही जिसके भीतर होश का दीया जला हो, ठीक ऐसे ही जिसने सावधानी को पहर पर रखा हो, उसके भीतर मन की बीमारियां प्रवेश नहीं करतीं। जरा दूर ही रहती हैं।

हम ऐसे जीते हैं कि न कोई पहर पर है, न घर का दीया जला है, अंधकार है घना, चोरों के लिए निमंत्रण है, और चारों तरफ हमारे चोर मौजूद हैं। हम गड्ढा बन जाते हैं, वे हममें बह जाते हैं भीतर।

ख्याल करें, एक उदास आदमी आकर आपके घर बैठ जाता है। कभी आपने ख्याल किया है, थोड़ी देर में आप भी उदास हो जाते हैं! एक हंसता हुआ, मुस्कुराता हुआ आदमी आपके घर में आ जाता है। कभी आपने ख्याल किया, आप भी मुस्कुराने लगते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। छोटे बच्चों को देख कर आपको इतना अच्छा क्यों

लगता है? छोटे बच्चे उसका कारण नहीं हैं। छोटे बच्चे प्रसन्न हैं। उनकी प्रसन्नता संक्रामक हो जाती है। वे नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, संसार का उन्हें अभी कोई पता नहीं, मुसीबतों का उन्हें अभी कोई बोध नहीं। अभी वे नये-नये खिले फूलों जैसे हैं। न उन्होंने तूफान देखे, न आंधियां देखीं, न अभी सूरज की तपती हुई आग देखी, अभी उन्हें कुछ भी पता नहीं।

उनको देख कर आप भी प्रसन्न हो जाते हैं। छोटे बच्चों के बीच भी अगर कोई उदास बैठा रहे तो समझो कि साधु। ... मतलब यह कि उसे बहुत चेष्टा करके उदास रहना पड़े, वह बीमार है, पैथालॉजिकल है, रुग्ण है। छोटे बच्चों के बीच तो कोई प्रसन्न हो ही जाएगा।

नेहरू को छोटे बच्चों से बहुत लगाव था। उसका कारण, छोटे बच्चे नहीं थे, राजनीति की बीमारी थी। बच्चों में जाकर वे दुष्टों को भूल पाते थे, जिनसे घिरे थे, जिनके बीच थे, जिस उपद्रव में पड़े थे। वह बच्चों के बीच जाकर हलका हो जाता था मना। जैसे कि कोई हॉली-डे पर पहाड़ चला गया, छुट्टी मना ली। छोटे बच्चों के बीच उनका होना इस बात का सूचक था कि नेहरू मन से राजनीतिज्ञ नहीं थे, इसलिए छोटे बच्चों की तलाश थी, ताकि इन आदमियों से बचें जो उनको घेरे हुए थे।

नेहरू कम से कम राजनीतिज्ञ आदमी थे, नियति उनकी वह नहीं थी। नियति तो थी कि वह कवि होते। हिंदुस्तान ने एक बड़ा कवि खो दिया, और एक कमजोर राजनीतिज्ञ पाया। वे हो नहीं सकते थे। कोई उपाय नहीं था। उनके लिए कोई वहां गति नहीं थी। इसलिए बचाव करते थे, बच्चों के साथ ही खेलते थे और प्रसन्न हो जाते थे। जैसे वहां उनको निकटता मालूम होती थी, सान्निध्य मालूम होता था।

जहां भी आप हैं, आप प्रभावित हो रहे हैं। कैसे लोगों के बीच आप हैं, आप वैसे हो जाएंगे।

तो महावीर कहते हैं, "किसी का विश्वास मत करना।" इसका मतलब यह हुआ कि अगर कोई और हंसता है और आपको हंसी आ जाती है तो समझना कि आपकी हंसी झूठी है। कोई और रोता है और आपको रोना आ जाता है, तो समझना कि रोना झूठा है। न यह हंसी आपकी है, न यह रोना आपका है। यह सब उधार है।

और हम सब उधारी में जीते हैं, हम बिल्कुल उधारी में जीते हैं। एक फिल्म में आप देख लेते हैं कोई करुण दृश्य और आपकी आंखों में आंसू बहने लगते हैं। ये उधार हैं। कुछ भी तो वहां नहीं हो रहा है। पर्दे पर केवल धूप-छाया का खेल है, मगर आप रोने लगे। वह बता रहा है कि आप किस भांति बाहर से संक्रामित होते हैं। फिर थोड़ी देर में आप हंसने लगेंगे। आपकी हंसी भी बाहर से खींची जाती है और आपका रोना भी बाहर से खींचा जाता है। आपकी अपनी कोई आत्मा है? जिसका सब कुछ बाहर से संचालित हो रहा है, उसके पास कोई आत्मा नहीं है।

महावीर कहते हैं: "जागरूक रहना, किसी का विश्वास मत करना।"

इसका मतलब यह है कि किसी को भी इस भांति मत स्वीकार करना कि वहां तुम्हें असावधान रहने की सुविधा मिले। तुम मान कर चलना कि तुम एक अजनबी देश में हो, अजनबी लोगों के बीच, एक आउट साइडर हो, जहां कोई तुम्हारा अपना नहीं, जहां सब पराए हैं। सब अपने-अपने हैं, कोई किसी दूसरे का नहीं है।

लेकिन हम सब धोखा देते हैं। पत्नी कहती, कि मैं आपकी। पति कहता, कि मैं तुम्हारा। बाप कहता है बेटे से, कि मैं तुम्हारा। बेटा कहता, मां से, कि मैं तुम्हारा। सब अपने-अपने हैं। कोई यहां किसी का नहीं है। चारों तरफ हम इसे रोज देखते हैं, फिर भी एक-दूसरे को कहते हैं, मैं तुम्हारा, मैं तुम्हारे बिना न जी सकूंगा, और सब सबके बिना जी लेते हैं। मगर यह कठोर है, सत्य।

महावीर कहते हैं, कोई अपना नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि सब दुश्मन हैं। इसका कुल मतलब इतना है कि तुम होश रखना। जैसे कि कोई आदमी युद्ध के मैदान पर होश रखता है। एक क्षण भी चूकता नहीं, बेहोशी को आने नहीं देता, तलवार सजग रखता, धार पैनी रखता, आंख तेज रखता, चारों तरफ चौकन्ना होता

है। कभी भी, किसी भी क्षण जरा सी बेहोशी और खतरा हो जाएगा। ठीक वैसे जीना जैसे कि प्रतिपल कुरुक्षेत्र है, प्रतिपल युद्ध है, किसी का विश्वास न करना।

"काल निर्दयी है, और शरीर दुर्बल।"

इन सत्यों को स्मरण रखना कि काल निर्दयी है। समय आपकी जरा भी चिन्ता नहीं करता। समय आपका विचार ही नहीं करता, बहा चला जाता है। समय को आपको

होने का कोई पता ही नहीं है। समय आपको क्षमा नहीं करता। समय आपको सुविधा नहीं देता। समय लौट कर नहीं आता। समय से आप कितनी ही प्रार्थना करें, कोई प्रार्थना नहीं सुनी जाती। समय और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं है। मौत आ जाए द्वार पर और आप कहें कि एक घड़ी भर ठहर जा, अभी मुझे लड़के की शादी करनी है, कि अभी तो कुछ काम पूरा हुआ नहीं, मकान अधूरा बना है।

एक बूढ़ी महिला संन्यास लेना चाहती थी, दो महीने पहले। उसकी बड़ी आकांक्षा थी संन्यास ले लेने की। मगर उसके बेटे खिलाफ थे कि संन्यास नहीं लेने देंगे। मैंने उसके एक बेटे को बुला कर पूछा कि ठीक है, संन्यास मत लेने दो, क्योंकि बूढ़ी स्त्री है, तुम पर निर्भर है और इतना साहस भी उसका नहीं है। लेकिन कल अगर इसे मौत आ जाए तो तुम मौत से क्या कहोगे, कि नहीं मरने देंगे।

जैसे कि कोई भी उत्तर देता, बेटे ने उत्तर दिया। कहा कि मौत कब आएगी, कब नहीं आएगी, देखा जाएगा। मगर संन्यास नहीं लेने देंगे। और अभी दो महीने भी नहीं हुआ और वह स्त्री मर गई। जिस दिन वह मर गई, उसके बेटे की खबर आई कि क्या आप आज्ञा देंगे, हम उसे गैरिक वस्त्रों में माला पहना कर संन्यासी की तरह चिता पर चढ़ा दें!

"काल निर्दयी है।" लेकिन अब कोई अर्थ भी नहीं है, क्योंकि संन्यास कोई ऐसी बात नहीं है कि वह ऊपर से डाल दिया जाए। न जिंदा पर डाला जा सकता है, न मुर्दा पर डाला जा सकता है। संन्यास लिया जाता है, दिया नहीं जा सकता। मरा आदमी कैसे संन्यास लेगा? दिया जा सके तो मरे को भी दिया जा सकता है।

संन्यास दिया जा ही नहीं सकता, लिया जा सकता है। इनटेंशनल है, भीतर अभिप्राय है। वही कीमती है, बाहर की घटना का तो कोई मूल्य नहीं है। भीतर कोई लेना चाहता था। संसार से ऊबा था, संसार की व्यर्थता दिखाई पड़ी थी, किसी और आयाम में यात्रा करने की अभीप्सा जगी थी, वह थी बात। अब तो कोई अर्थ नहीं है, लेकिन अब ये बेटे अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो न समझा पाए, अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो नहीं रोक सकते कि रुको, अभी हम न जाने देंगे। मां को रोक सकते थे। मां भी रुक गई क्योंकि उसे भी मौत का साफ-साफ बोध नहीं था। नहीं तो रुकने का कोई कारण भी नहीं था। मां डरी कि बेटों के बिना कैसे जीएगी! और अब, अब बेटों के बिना ही जीना पड़ेगा। अब इस लंबे यात्रा-पथ पर बेटे दुबारा नहीं मिलेंगे। और मिल भी जाएं तो पहचानेंगे नहीं।

क बूढ़ी औरत का मुर्गा बांग देता था एक गांव में। तो वह सोचती थी, सूरज उसी की वजह से उगता है। न मुर्गा बांग देगा, न सूरज उगेगा। अब यह बिल्कुल तर्कयुक्त था। क्योंकि रोज जब मुर्गा बांग देता था तभी सूरज उगता था। ऐसा कभी हुआ ही नहीं था कि सूरज बिना मुर्गे की बांग के उगा हो, इसलिए यह बात बिल्कुल तर्क शुद्ध थी।

फिर एक दिन बुढ़िया गांव पर नाराज हो गई। किन्हीं लोगों ने उसे नाराज कर दिया, तो उसने कहा, ठहरो। पछताओगे पीछे। चली जाऊंगी अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव। तब रोओगे, छाती पीटोगे, जब सूरज नहीं उगेगा।

नाराजगी में बुढ़िया अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई। दूसरे गांव में मुर्गे ने बांग दी और सूरज उगा। बुढ़िया ने कहा, अब रो रहे होंगे। सूरज यहां उग रहा है, जहां मुर्गा बांग दे रहा है।

तिनका भी सोचता है, मैं न होऊंगा तो नदी कैसे बहेगी। आप भी सोचते हैं, आप न होंगे तो संसार कैसे होगा! हर आदमी यही सोचता है। कब्रों में जाकर देखें, बहुत ऐसे सोचने वाले कब्रों में दबे पड़े हैं जो सोचते थे उनके बिना संसार कैसे होगा। और संसार बड़े मजे में है, संसार उनको बिल्कुल भूल ही गया। संसार को कोई पता ही नहीं है।

हर आदमी के मरने पर हम कहते हैं कि अपूरणीय क्षति हो गई, अब कभी भरी न जा सकेगी, और फिर बिल्कुल भूल जाते हैं, फिर पता ही नहीं चलता कि किसकी अपूरणीय क्षति हुई। ऐसा लगता है, सब अंधकार हो गया। और कोई अंधकार नहीं होता। दीये जलते चले जाते हैं, फूल खिलते चले जाते हैं।

समय की धारा निरपेक्ष है। आपसे कुछ लेना-देना नहीं। समय से आप कुछ कर सकते हैं, समय का आप कोई उपयोग कर सकते हैं। तिनका नदी का उपयोग करके सागर भी पहुंच सकता है, किनारे पर भी अटक सकता है, डूब भी सकता है। लेकिन नदी को कोई प्रयोजन नहीं है।

समय की धारा बही जाती है। आप उसका कोई उपयोग कर सकते हैं। आप सिर्फ एक उपयोग करते हैं, स्थगित करने का। कल करेंगे, परसों करेंगे, छोड़ते चले जाते हैं इस भरोसे कि कल भी होगा! लेकिन कल कभी होता नहीं है।

कल कभी भी नहीं होता है। जब भी हाथ में आता है, तो आता है आज। और उसको भी कल पर छोड़ देते हैं। जीते ही नहीं, स्थगित किए चले जाते हैं। कल जी लेंगे, परसों जी लेंगे। फिर एक दिन द्वार पर मौत खड़ी हो जाती है, वह क्षण भर का अवसर नहीं देती है और तब हम पछताते हैं। वह सब जो स्थगित किया हुआ जीवन है, सब आपके सामने खड़ा हो जाता है कि क्या-क्या जी सकते थे, क्या हो सकता था, कितने अंकुर निकल सकते थे जीवन में, कितनी यात्रा हो सकती थी, वह कुछ भी न हो पाई।

तब पीछे लौट कर देखते हैं तो कुछ तिजोरियों में रुपये दिखाई पड़ते हैं, जिनको भर लिया, जीवन के मूल्य पर। कुछ लड़के-बच्चे दिखाई पड़ते हैं, जिनको बड़ा कर लिया जीवन के मूल्य पर। वे चारों तरफ बैठे हैं खाट के और सोच रहे हैं कि चाबी किसके हाथ लगती है। रो रहे हैं, लेकिन ध्यान चाबी पर है। इनको बड़ा कर लिया जीवन के मूल्य पर। हिसाब-किताब, खाता-बही, बैंक सब चलेगा। आप हट जाएंगे। आपका खाता किसी और के नाम हो जाएगा। आपका मकान किसी और का निवास स्थान बन जाएगा। आपकी आकांक्षाएं किन्हीं और के भूत बन जाएंगी, उन पर सवार हो जाएंगी और आप विदा हो जाएंगे। और आपने सारे जीवन, जो भी मूल्यवान था, उसको स्थगित किया।

हम धर्म को स्थगित करते हैं और अधर्म को जीते हैं। क्रोध हम अभी कर लेते हैं, ध्यान हम कहते हैं, कल कर लेंगे। प्रार्थना हम कहते हैं, कल कर लेंगे, बेईमानी हम अभी कर लेते हैं। धर्म को करते हैं स्थगित, अधर्म को अभी जी लेते हैं। लेकिन क्यों? हमको भी पता है कि जो कल पर स्थगित किया वह हो नहीं जाएगा; इसलिए जो हम करना चाहते हैं, वह आज कर लेते हैं। जो हम नहीं करना चाहते हैं, और केवल दिखाते हैं कि करना चाहते हैं वह हम कल पर छोड़ देते हैं। इसमें गणित है साफ। कोई महावीर को ही पता है, ऐसा नहीं, हमको भी पता है। हमको भी पता है, क्रोध करना हो, अभी कर लो। हम कभी नहीं कहते, कल क्रोध करेंगे।

गुरजिएफ का पिता मरा, तो उसने बेटे के कान में कहा कि तू एक वचन मुझे दे दे। मेरे पास और कुछ तुझे देने को नहीं है। लेकिन जो मैंने जीवन में सर्वाधिक मूल्यवान पाया है वह मैं तुझसे कह देता हूं। वह नौ ही साल का था लड़का, समझ भी नहीं सकता था कि बाप क्या कह रहा है। लेकिन उसने कहा, इतना तू याद कर ले, कभी न कभी समझ जाएगा। जब भी तुझे क्रोध आए, तो चौबीस घंटे बाद करना। कोई गाली दे, सुन लेना, समझ लेना, क्या कह रहा है, उसको ठीक से देख लेना, क्या उसका मतलब है, उसकी पूरी स्थिति समझ लेना ताकि तू ठीक से क्रोध कर सके। और उससे कह आना कि अब मैं चौबीस घंटे बाद आकर उत्तर दूंगा।

गुरजिएफ बाद में कहता था, उस एक वाक्य ने मेरे पूरे जीवन को बदल डाला। वह एक वाक्य ही मुझे धार्मिक बना गया। क्योंकि चौबीस घंटे बाद क्रोध किया ही नहीं जा सका। वह उसी वक्त किया जा सकता है। जो भी किया जा सकता है, उसी वक्त किया जा सकता है। और जब क्रोध न किया जा सका, और बुराई न की जा सकी, तो जो शक्ति बच गई उसका क्या करना?

तो गुरजिएफ ने ध्यान कर लिया आज और क्रोध किया कल। हम क्रोध करते हैं आज, और ध्यान करेंगे कल। शक्ति क्रोध में चुक जाएगी, ध्यान कभी होगा नहीं। गुरजिएफ की शक्ति ध्यान में बह गई, क्रोध कभी हुआ नहीं।

जो हम करना चाहते हैं, हम भी जानते हैं, आज कर लो। समय का कोई भरोसा नहीं। महावीर ही जानते हैं, ऐसा नहीं, हम भी जानते हैं। जो हम करना चाहते हैं, अभी कर लेते हैं। जो हम नहीं करना चाहते--हम बेईमान हैं, नहीं करना चाहते तो साफ कहना चाहिए, नहीं करना चाहते हैं--लेकिन हम होशियार हैं। अपने को धोखा देते हैं। हम कहते हैं करना तो हम चाहते हैं, लेकिन अभी समय नहीं है। कल कर लेंगे।

इसे ठीक से समझ लें। जिसे आप कल पर छोड़ रहे हैं, जान लें, आप करना नहीं चाहते हैं। यह अच्छा होगा, ईमानदारी होगी अपने प्रति कि मैं करना ही नहीं चाहता। इसलिए तो शायद आपको चोट भी लगेगी कि क्या मैं ध्यान करना ही नहीं चाहता? क्या मैं शांत होना ही नहीं चाहता? क्या मैं अपने को जानना ही नहीं चाहता? क्या इस जीवन के रहस्य में मैं उतरना ही नहीं चाहता?

अगर आप ईमानदार हों तो आपको चोट लगेगी। शायद आपको ख्याल आए कि मैं गलती कर रहा हूं। यह करने योग्य जो है, मैं छोड़ रहा हूं। होशियारी यह है कि हम कहते हैं, करना तो हम चाहते हैं। कौन मना कर रहा है?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, साधना में तो हम जाना चाहते हैं। कौन मना कर रहा है? लेकिन अभी नहीं। यह है तरकीब। इस तरकीब में उनको यह नहीं दिखाई पड़ता कि जो हम नहीं करना चाहते, उसे हम भ्रम पाल रहे हैं कि हम करना चाहते हैं।

महावीर कहते हैं: "काल है निर्दई, और शरीर दुर्बल।"

काल पर भरोसा नहीं किया जा सकता, उससे हमारा कोई संबंध नहीं है और शरीर है दुर्बल। शरीर पर हम बहुत भरोसा करते हैं। शरीर पर हम इतना भरोसा करते हैं जो कि आश्चर्यजनक है।

क्या है हमारे शरीर की क्षमता? क्या है शक्ति? 98 डिग्री गर्मी और 110 डिग्री गर्मी के बीच में 12 डिग्री गर्मी आपकी क्षमता है। इधर जरा नीचे उतर जाएं, 95 डिग्री हो जाए, फैसला हो गया। उधर जरा 110 के करीब पहुंचने लगे, फैसला हो गया। 12 डिग्री गर्मी आपके शरीर की क्षमता है।

उम्र कितनी है आपकी? इस विराट अस्तित्व में जहां समय को नापने के लिए कोई उपाय नहीं है, वहां आप कितनी देर जीते हैं? सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष, कोई सौ वर्ष जी गया तो चत्मकार है। सौ वर्ष हमें बहुत लगते हैं। क्या है सौ वर्ष इस समय की धारा में? कुछ भी नहीं है। क्योंकि पीछे है अनंत धारा, जो कभी प्रारंभ नहीं हुई। और आगे है अनंत धारा, जो कभी अन्त नहीं होगी। इस अनन्त में सौ वर्ष का क्या है अर्थ? इस सौ वर्ष में भी क्या करेंगे? वैज्ञानिक हिसाब लागाते हैं तो आदमी आठ घंटे सोता है चौबीस घंटे में। चार घंटे खाना, पीना, स्नान, कपड़े बदलना, उसमें व्यय हो जाते हैं। आठ घंटे रोटी कमाना, घर से दफ्तर, दफ्तर से घर उसमें व्यय हो जाते हैं--बीस घंटे। जो चार घंटे बचते हैं उसमें रेडियो सुनना, फिल्म देखना, अखबार पढ़ना, सिगरेट पीना, दाढ़ी बनाना--ऐसा चौबीस घंटे व्यय हो जाते हैं। बचता क्या है सौ वर्ष में आपके पास? जिससे आप अपनी आत्मा को जान सकें, पा सकें।

अगर आदमी की कहानी हम ठीक से बांटे तो बड़ी फिजूल मालूम पड़ेगी, ए टेल टोल्ड बाई एन इडिएट, फुल ऑफ फ्यूरी एण्ड न्वाइज सिग्निफाइंग नर्थिंग। एक मूर्ख द्वारा कही हुई कथा, शोरगुल बहुत, मतलब बिल्कुल नहीं। शोरगुल बड़ा होता है। हर बच्चा बड़ा शोरगुल करता हुआ संसार में आता है कि तूफान आ रहा है और थोड़े दिन में ठंडे हो जाते हैं। लकड़ी टेक कर चलने लगते हैं। वह सब तूफान, वह सब शोरगुल, सब खो जाता है। आंखें धुंधली पड़ जाती हैं, हाथ-पैर कमजोर हो जाते हैं। बिस्तर पर लग जाते हैं।

झूले से लेकर कब्र तक कहानी क्या है? सामर्थ्य क्या है शरीर की? बड़ा कमजोर है। जरा सा बेक्टीरिया घुस जाए बीमारी का, तब पता चल जाता है कि कितनी आपकी ताकत है। गामा लड़ते होंगे पहलवानों से, लेकिन क्षय रोग से नहीं लड़ पाते। गामा टी. बी. से मरा। और टी. बी. के कीटाणु कितनी छोटी चीज है। आंख से दिखाई भी नहीं पड़ते। बड़े पहलवानों से जीत लिए, छोटे पहलवानों से हार गए। शरीर की ताकत कितनी है? बड़ी-बड़ी बीमारियां छोड़ दीजिए, कामन कोल्ड से लड़ना मुश्किल होता है। साधारण सर्दी-जुकाम पकड़ ले तो उपाय नहीं, सब ताकत रखी रह जाती है।

इस शरीर को अगर हम भीतर गौर से देखें, इसकी क्षमता क्या है? हड्डी-मांस-मज्जा, इसका मूल्य कितना है? वैज्ञानिक कहते हैं, पांच रुपये से ज्यादा नहीं। वह भी मंहगाई की वजह से। आपकी वजह से नहीं। इतना अल्युमिनियम है, इतना लोहा है, इतना तांबा है, इतना फ्लां-ट्रिंका। सब निकाल कर रख लें, पांच रुपये का सामान, पांच रुपये के सामान पर इतने इतरा रहे हैं?

यह जो थोड़ा सा अवसर है जीवन का, उसमें शरीर की कोई क्षमता तो है नहीं। शरीर दुर्बल है, एकदम दुर्बल है। उधर सूरज ठंडा हो जाए, ये साढ़े तीन अरब लोग यहां एकदम ठंडे हो जाएंगे। क्या है क्षमता? जरा सा ताप बढ़ जाए, गिर जाए जमीन का, ठंडे हो जाएंगे। अभी ध्रुव की जमी हुई बर्फ पिघल जाए, सब डूब जाए। वैज्ञानिक कहते हैं, वह पिघलेगी किसी न किसी दिन। अगर ध्रुव प्रदेश में जमी हुई बर्फ किसी भी दिन पिघल गई तो सारे समुद्रों का पानी हजार फीट ऊंचा उठ जाएगा। सारी जमीन डूब जाएगी। वह किसी भी दिन पिघलेगी। नहीं पिघलेगी तो रूसी या अमरीकी उसको पिघलाने का उपाय खोजते हैं। क्योंकि वे इसलिए खोजते हैं कि अगर कोई उपद्रव का, झगड़े का मौका हो तो दूसरे को मौका नहीं मिलना चाहिए दुनिया मिटाने का, हमको ही मिलना चाहिए। हालांकि हम भी उसमें मिटेंगे, लेकिन कहानी रह जाएगी, हालांकि कहानी कहने वाला कोई भी नहीं रहेगा।

कहते हैं, रूसी वैज्ञानिकों ने तो तरकीबें खोज ली हैं कि किसी भी दिन, आनेवाला अगर कोई तीसरा महायुद्ध हुआ, तो वह ध्रुव प्रदेश की, साइबेरिया की बर्फ को पिघला देंगे। कोई सात सेकेंड लगेंगे उनको पिघलाने में। एटामिक एक्सप्लोजन से पिघल जाएगी। तत्काल सारी जमीन बाढ़ में डूब जाएगी। वैसी बाढ़ पुराने ग्रंथों में एक दफा और आई है।

ईसाई कहते हैं, कि नोह ने अपनी नाव में लोगों को बचाया। सारी जमीन डूब गई। अध्यात्म की दिशा में जो गहरे काम करते हैं वे कहते हैं, पूरा महाद्वीप, एटलांटिस डूब गया। पूरा महाद्वीप, जो उस समय की शिखर सभ्यता पर था, जैसे आज अमरीका, वैसे एटलांटिस पूरा का पूरा डूब गया। अभी तक यह समझा नहीं जा सका। दुनिया के सभी धर्मों की कथाओं में उस महान बाढ़, ग्रेट फ्लड की बात है। भारतीय कथाओं में, मिस्री कथाओं में, यूनानी कथाओं में, सारी दुनिया की कथाओं में उस बाढ़ की बात है। बाढ़ जरूर हुई होगी। जबसे वैज्ञानिकों को पता चला है कि ध्रुव की बर्फ पिघलाई जा सकती है, तब से यह संदेह है कि वह बाढ़ भी किसी युद्ध का परिणाम थी। वह अपने आप नहीं हो गई थी, किसी महायुद्ध में, किसी महासभ्यता ने बर्फ को पिघला डाला, सारी जमीन डूब गई। वह महाप्रलय थी। वह कल फिर हो सकती है। आदमी का वश कितना है?

हिरोशिमा पर बम गिरा, जो जहां था वहीं सूख गया, एक सेकेंड में। एक तस्वीर मेरे मित्र ने मुझे भेजी थी। एक बच्ची सीढ़ियां चढ़ कर अपना होमवर्क करने ऊपर जा रही है, रात नौ बजे वह अपनी किताब, बस्ता, बही के साथ सूख कर दीवाल से चिपक गई। राख हो गई। एक लाख बीस हजार आदमी सेकेंडों में राख हो गए। उनकी भी आकांक्षाएं आप ही जैसी थीं। उनकी भी योजनाएं आप ही जैसी थीं। उन्होंने भी समय का बड़ा भरोसा किया था। उन्होंने भी शरीर का बड़ा बल माना था। वह एक सेकेंड नहीं रुकता। अभी हम यहां बैठ कर बात कर रहे हैं, एक सेकेंड में सब रुक जा सकता है। और कोई उपाय नहीं है शिकायत का।

महावीर कहते हैं, "शरीर है, दुर्बल, काल है निर्दयी। यह जान कर भारंड पक्षी की तरह अप्रमत्त भाव से विचरण करना चाहिए।"

भारंड पक्षी एक मिथ, माइथोलॉजिक, पौराणिक पक्षी है, एक काल्पनिक कवि की कल्पना है कि भारंड पक्षी मृत्यु से, समय से, जीवन की क्षणभंगुरता से इतना ज्यादा भयभीत है कि वह सोता ही नहीं। वह उड़ता ही रहता है, जागता हुआ। कि सोए, और कहीं मौत न पकड़ ले, कि सोए और कहीं जीवन समाप्त न हो जाए, कि सोए और कहीं वापस न उठे। काल्पनिक पक्षी है।

तो महावीर कहते हैं, भारंड पक्षी की तरह समय निर्दयी, शरीर दुर्बल, ऐसा जान कर अप्रमत्त-भाव से, बिना बेहोश हुए, होशपूर्वक, विद अवेयरनेस, जागरूकता से जीना ही प्राज्ञ व्यक्ति का, प्रज्ञावान व्यक्ति का लक्षण है।

एक ही सूत्र है कृष्ण का, महावीर का, बुद्ध का, क्राइस्ट का। वह सूत्र है अप्रमत्त-भाव, अवेयरनेस, होशा। इसे हम आगे समझेंगे।

आज इतना ही।

रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें, और फिर जाएं!

अलिप्तता और अनासक्ति का भाव-बोध (अप्रमाद-सूत्र: 2)

वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो,
कुमुयं सारइयं व पाणियं
से सव्वसिणेहवज्जिए,
समयं गोयम! मा पमायए॥
तिण्णो हु सि अण्णवं महं,
किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पारं गमितए,
समयं गोयम! मा पमायए॥

जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता और अलिप्त रहता है, वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटा कर सब प्रकार के स्नेहबंधनों से रहित हो जा। अतः गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर। तू इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका है। भला किनारे पहुंच कर तू क्यों अटक रहा है? उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।

पहले कुछ प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: "कल आपने कहा, प्रश्न के उत्तर देने के दो तरीके हैं। एक स्मृति के संग्रह से, दूसरा स्वयं की चेतना से। जब आप उत्तर देते हैं, तब आपका उत्तर चेतना से होता है, या स्मृति से? क्योंकि आप अब तक हजारों किताबें पढ़ चुके हैं और आपकी स्मरण शक्ति भी फोटोग्राफिक है। यदि आपकी चेतना ही उत्तर देने में समर्थ है, तो इतनी विविध किताबें पढ़ने का क्या प्रयोजन है?"

दो तीन बातें समझनी चाहिए। एक, आपके प्रश्न पर निर्भर होता है कि उत्तर चेतना से दिया जा सकता है या स्मृति से। यदि आपका प्रश्न बाह्य जगत से संबंधित है तो चेतना से उत्तर देने का कोई भी उपाय नहीं है। न महावीर दे सकते हैं, न बुद्ध दे सकते हैं, न कोई और दे सकता है। चेतना से तो उत्तर चेतना के संबंध में पूछे गए प्रश्न का ही हो सकता है। अगर महावीर से जाकर पूछें कि कार पंकचर हो जाती हो तो कैसे ठीक करनी है, तो इसका उत्तर चेतना से नहीं आ सकता। महावीर की स्मृति में हो तो ही आ सकता है।

बाह्य जगत को जानने का सूचनाओं के अतिरिक्त कोई भी उपाय नहीं है। और ठीक ऐसा ही अंतर्जगत को जानने का सूचनाओं के द्वारा कोई उपाय नहीं है। बाहर का जगत जाना जाता है इनफॉर्मेशन से, सूचनाओं से, और भीतर का जगत नहीं जाना जाता है सूचनाओं से। इसलिए अगर कोई व्यक्ति बाहरी तथ्यों के संबंध में चेतना से उत्तर दे तो वे वैसे ही गलत होंगे जैसे कोई चेतना के संबंध में शास्त्रों से पाई गई सूचनाओं से उत्तर दे। वे दोनों ही गलत होंगे।

हम दोनों तरह की भूल करने में कुशल हैं। हमने सोचा कि चूंकि महावीर या बुद्ध, कृष्ण ज्ञान को उपलब्ध हो चुके हैं, इसलिए अब बाहर के जगत के संबंध में भी उनसे जो हम पूछेंगे, वह भी विज्ञान होने वाला है। वहां हमसे भूल हुई, इसलिए हम विज्ञान को पैदा नहीं कर पाए।

विज्ञान पैदा करना है तो भीतर पूछने का कोई उपाय नहीं है, बाहर के जगत से ही पूछना पड़ेगा। अगर पदार्थ के संबंध में कुछ जानना है तो पदार्थ से ही पूछना पड़ेगा। वृक्षों के संबंध में कुछ जानना है तो वृक्षों में ही

खोजना पड़ेगा। लेकिन हमने इस मुल्क में ऐसा समझा कि जो आत्मज्ञानी हो गया, वह सर्वज्ञ हो गया। इसलिए हमने विज्ञान को कोई जन्म न दिया और हम सारी दुनिया में पिछड़ गए।

महावीर जो भी कहते हैं अंतस के संबंध में, वह उनकी चेतना से आया है। लेकिन महावीर भी जो बाहर के जगत के संबंध में कहते हैं, वे सूचनाएं हैं। इसलिए एक और बात समझ लेनी चाहिए।

वे सूचनाएं जो महावीर बाहर के जगत के संबंध में देते हैं, कल गलत हो सकती हैं। क्योंकि महावीर के समय तक बाहर के जगत के संबंध में जो सूचनाएं थीं, वही महावीर देते थे। फिर सूचनाएं बदलेंगी, विज्ञान तो रोज बढ़ता है, बदलता है। नई खोज होती है। तो महावीर ने भी जो बाहर के जगत के संबंध में कहा है, वह कल गलत हो जाएगा। उस कारण महावीर गलत नहीं होते। महावीर तो उसी दिन गलत होंगे जो उन्होंने भीतर के संबंध में कहा है, जब गलत हो जाए। इससे बड़ी तकलीफ होती है।

जीसस ने उस समय जो उपलब्ध सूचनाएं थीं, उसके संबंध में बातें कहीं। कहा कि जमीन चपटी है। क्योंकि उस समय तक यही सूचना थी। जीसस भी नहीं जान सकते थे कि जमीन गोल है। फिर ईसाइयत बड़ी मुश्किल में पड़ गई। जब पता चला कि जमीन गोल है और जमीन चपटी नहीं है तो बड़ा संकट आया। तो ईसाइयत ने पूरी कोशिश की कि जमीन चपटी ही है, क्योंकि जीसस ने कहा है। और जीसस गलत तो कह ही नहीं सकते। इसमें डर था। अगर जीसस एक बात गलत कह सकते हैं तो फिर दूसरी भी गलत हो सकती है, यह संदेह था।

अगर जीसस इतनी गलत बात कह सकते हैं कि जमीन चपटी है गोल की बजाय, तो क्या भरोसा? ईश्वर के संबंध में जो कहते हैं, आत्मा के संबंध में कहते हैं, वह भी गलत कहते हों। जब किसी की एक बात गलत हो जाए तो दूसरी बातों पर भी संदेह निर्मित हो जाता है। इसलिए ईसाइयत ने भरसक कोशिश की कि जो जीसस ने कहा है, सभी सही है। लेकिन उसका परिणाम घातक हुआ। क्योंकि विज्ञान ने जो सिद्ध किया, हजार जीसस भी कहें, उसको गलत नहीं किया जा सकता।

गैलिलियो को सजा दी जाए, सताया जाए, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। और तब आखिर में, मजबूरी में ईसाइयत को मानना पड़ा कि जमीन गोल है। तब ईसाइयों के मन में ही संदेह उठना शुरू हो गया कि फिर क्या होगा! जीसस जो कहते हैं और चीजों के संबंध में, कहीं वह भी तो गलत नहीं है!

महावीर के मानने वाले सोचते हैं कि महावीर ने कहा है कि चंद्रमा देवताओं का आवास है। उस समय तक ऐसी बाहरी जानकारी थी। उस समय तक जो श्रेष्ठतम जानकारी थी, वह महावीर ने दी है। लेकिन यह महावीर के कहने की वजह से सच नहीं होती। यह तो वैज्ञानिक तथ्य है, बाहर का तथ्य है। इसमें महावीर क्या कहते हैं, सिर्फ उनके कहने से सही नहीं होता।

अब जैन मुनि तकलीफ में पड़ गए हैं। क्योंकि चांद पर आदमी उतर गया है, कोई देवता नहीं है। तो अब जैन मुनि उसी दिक्कत में पड़ गए हैं जिस दिक्कत में ईसाइयत पड़ गई थी। अब क्या करें? तो अब वे सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं! सिद्ध करने की तीन-चार कोशिशें हैं, वह पिटी-पिटाई हैं, वही कोशिशें की जाती हैं। पहली तो यह, कि यह चांद वह चांद ही नहीं है, एक यह कोशिश है। तो कौन सा चांद है? दूसरी यह कोशिश की जा रही है कि इस चांद पर वैज्ञानिक उतरे ही नहीं हैं, यह झूठ है, यह अफवाह है। यह भी पागलपन है। तीसरी कोशिश यह की जा रही है, कि वे उतर तो गए हैं--एक जैन मुनि कोशिश कर रहे हैं--वे उतर तो गए हैं, अफवाह भी नहीं है, चांद भी यही है, लेकिन वे चांद पर नहीं उतरे हैं। चांद के पास देवी-देवताओं के जो बड़े-बड़े यान, उनके बड़े-बड़े रथ, विराटकाय रथ और यान ठहरे रहते हैं चांद के आस-पास, उन पर उतर गए हैं। उसी को वे समझ रहे हैं कि चांद है।

यह सब पागलपन है। लेकिन इस पागलपन के पीछे तर्क है। तर्क यह है कि अगर महावीर की यह बात गलत होती है, तो बाकी बातों का क्या होगा? तो मैं आपसे कहना चाहता हूं, महावीर, बुद्ध या कृष्ण किसी ने भी बाहर के जगत के संबंध में जो भी कहा है, वह उस समय तक की उपलब्ध जानकारी में जो श्रेष्ठतम था, वही कहा है। वह उस समय तक जो सत्यतर था, वही कहा है। लेकिन, बाहर की जानकारी रोज बढ़ती चली जाती है। और आज नहीं कल, महावीर और बुद्ध से आगे बात निकल जाएगी। जब आगे बात निकल जाएगी तो भक्त को, अनुयायी को परेशान होने की जरूरत नहीं है। एक विभाजन साफ कर लेना चाहिए। वह विभाजन यह कि महावीर ने जो बातें बाहर के जगत के संबंध में कही हैं, वे सूचनाएं हैं। और महावीर ने जो अंतः-जगत के संबंध में बातें कही हैं, वे अनुभव हैं।

उचित होगा कि हम आर्मस्ट्रांग की बात मान लें चांद के संबंध में, बजाय महावीर की बात के। हम आइंस्टीन की बात मान लें पदार्थ के संबंध में, बजाय कृष्ण के। उसका कारण यह है कि बाहर के जगत में जो खोज चल रही है वह खोज रोज बढ़ती चली जाएगी। आज मैं आपसे जो बातें कह रहा हूं, उसमें जब भी मैं बाहर के जगत के संबंध में कुछ कहता हूं तो वह आज नहीं कल गलत हो जाएगा। गलत हो जाएगा, उससे ज्यादा ठीक खोज लिया जाएगा। लेकिन तब भी जो मैं भीतर के जगत के संबंध में कह रहा हूं, वह गलत नहीं हो जाएगा। वह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं।

सूचना और ज्ञान का अगर यह फासला हम न रख पाए तो आज नहीं कल, बुद्ध, महावीर, कृष्ण सब नासमझ मालूम होने लगेंगे। यह फासला रखना जरूरी है।

आपके प्रश्न पर निर्भर करता है कि मैं उत्तर कहां से दे रहा हूं। कुछ उत्तर तो केवल स्मृति से ही दिए जा सकते हैं। क्योंकि बाहर के संबंध में स्मृति ही होती है, ज्ञान नहीं होता है। भीतर के संबंध में ज्ञान होता है, स्मृति नहीं होती। तो आप क्या पूछते हैं, इस पर निर्भर करता है।

दूसरी बात पूछते हैं कि "अगर भीतर का ज्ञान हो गया हो तो फिर शास्त्र, साहित्य, पुस्तक, इसका क्या प्रयोजन है?"

इसका प्रयोजन है, आपके लिए, मेरे लिए नहीं। आज मेरे पास कोई आ जाता है पूछने, या महावीर के पास, या बुद्ध के पास आ जाता था पूछने, चांद के संबंध में, तो महावीर कुछ कहते थे। महावीर को कोई प्रयोजन नहीं है चांद से, लेकिन जो पूछने आया था, उसका प्रयोजन है। लेकिन इसे भी कहने की क्या जरूरत है?

कारण हैं। मेरे पास ऐसे लोग आते हैं। कोई फ्रॉयड को पढ़ कर विक्षिप्त हुआ जा रहा है, तो वह मेरे पास आता है। जब तक मैं फ्रॉयड के संबंध में उसे कुछ न कह सकूं तब तक उससे मेरा कोई सेतु निर्मित नहीं होता। जब उसे यह समझ में आ जाता है कि मैं फ्रॉयड को समझता हूं, तभी आगे चर्चा हो पाती है, तभी आगे बात हो पाती है। मेरे पास कोई आदमी आइंस्टीन को समझ कर आता है, और अगर मैं पिटी-पिटार्ड तीन हजार साल पुरानी फिजिक्स की बातें उससे कहूं, तो मैं तत्काल ही व्यर्थ हो जाता हूं। आगे कोई संबंध ही नहीं जुड़ पाता। अगर मुझे उसे कोई भी आंतरिक सहायता पहुंचानी है तो उसे मैं बाहर के जगत में उतना तो कम से कम मैं जानता ही हूं, जितना वह जानता है, इतना भरोसा दिलाना अत्यंत आवश्यक है। इस भरोसे के बिना उससे गति नहीं हो पाती, उससे संबंध नहीं बन पाता।

आज साधुओं संन्यासियों से आम आदमी का जो संबंध टूट गया है, उसका कारण यह है कि आम आदमी उनसे ज्यादा जानता है बाहर के जगत के संबंध में। और जब आम आदमी भी उनसे ज्यादा जानता है तो यह भरोसा करना आदमी को मुश्किल होता है कि जिन्हें बाहर के जगत के संबंध में भी कुछ पता नहीं, वह भीतर के संबंध में कुछ जानते होंगे। आज हालत यह है कि आपका साधु आपसे कम जानकार है। महावीर के वक्त का साधु आम आदमी से ज्यादा जानकार था।

आपसे अगर कोई भी संबंध निर्मित करना है, तो पहले तो आपका जो बाह्य ज्ञान है, उससे ही संबंध जुड़ता है और जब तक मैं आपके बाह्य-ज्ञान को व्यर्थ न कर दूं तब तक भीतर की तरफ इशारा असंभव है। अपने लिए नहीं पढ़ता हूं, आपके लिए पढ़ता हूं। उसका पाप आपको लगेगा, मुझको नहीं।

और यह, मैं ऐसा कर रहा हूं, ऐसा नहीं है। बुद्ध या महावीर या कृष्ण सभी को यही करना पड़ा है। करना ही पड़ेगा। अगर कृष्ण अर्जुन से कम जानते हों बाहर के जगत के संबंध में, तो बात आगे नहीं चल सकती। अगर महावीर गौतम से कम जानते हों बाहर के जगत के संबंध में तो बात आगे नहीं चल सकती। महावीर गौतम से ज्यादा जानते हैं। आपको पता होना चाहिए, गौतम महावीर का प्रमुख शिष्य है, जिसका नाम इस सूत्र में आया है। उसके संबंध में थोड़ा समझना अच्छा होगा, ताकि सूत्र समझा जा सके।

गौतम उस समय का बड़ा पंडित था। हजारों उसके शिष्य थे, जब वह महावीर को मिला, उसके पहले। वह एक प्रसिद्ध ब्राह्मण था। महावीर से विवाद करने ही आया था। गौतम, महावीर से विवाद करने ही आया था। महावीर को पराजित करने ही आया था। अगर महावीर के पास गौतम से कम जानकारी हो, तो गौतम को रूपांतरित करने का कोई उपाय नहीं था। गौतम पराजित हुआ महावीर की जानकारी से। और गौतम ज्ञान से पराजित नहीं हो सकता था, क्योंकि ज्ञान का तो कोई सवाल ही नहीं था। जानकारी से ही पराजित हो सकता था। जानकारी ही उसकी संपदा थी। जब महावीर से वह जानकारी में हार गया, गिर गया, तभी उसने महावीर की तरफ श्रद्धा की आंख से देखा। और तब महावीर ने कहा कि अब मैं तुझे वह बात कहूंगा, जिसका तुझे कोई पता ही नहीं है। अभी तो मैं वह कह रहा था जिसका तुझे पता है। मैंने तुझसे जो बातें कहीं हैं वह तेरे ज्ञान को गिरा देने के लिए, अब तू अज्ञानी हो गया। अब तेरे पास कोई ज्ञान नहीं है। अब मैं तुझसे वे बातें कहूंगा जिससे तू वस्तुतः ज्ञानी हो सकता है। क्योंकि जो ज्ञान विवाद से गिर जाता है, उसका क्या मूल्य है? जो ज्ञान तर्क से कट जाता है, उसका क्या मूल्य है?

गौतम महावीर के चरणों में गिर गया, उनका शिष्य बना। गौतम इतना प्रभावित हो गया महावीर से, कि आसक्त हो गया, महावीर के प्रति मोह से भर गया। गौतम महावीर का प्रमुखतम शिष्य है, प्रथम शिष्य, श्रेष्ठतम। उनका पहला गणधर है। उनका पहला संदेशवाहक है। लेकिन, गौतम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सका। गौतम के पीछे हजारों-हजारों लोग दीक्षित हुए और ज्ञान को उपलब्ध हुए, और गौतम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सका। गौतम महावीर की बातों को ठीक-ठीक लोगों तक पहुंचाने लगा, संदेशवाहक हो गया। जो महावीर कहते थे, वही लोगों तक पहुंचाने लगा। उससे ज्यादा कुशल संदेशवाहक महावीर के पास दूसरा न था। लेकिन वह ज्ञान को उपलब्ध न हो सका। वह उसका पांडित्य बाधा बन गया। वह पहले भी पंडित था, वह अब भी पंडित था। पहले वह महावीर के विरोध में पंडित था, अब महावीर के पक्ष में पंडित हो गया। अब महावीर जो जानते थे, कहते थे, उसे उसने पकड़ लिया और उसका शास्त्र बना लिया। वह उसी को दोहराने लगा। हो सकता है, महावीर से भी बेहतर दोहराने लगा हो। लेकिन ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ, वह पंडित ही रहा। उसने जिस तरह बाहर की जानकारी इकट्ठी की थी, उसी तरह उसने भीतर की जानकारी भी इकट्ठी कर ली। यह भी जानकारी रही, यह भी ज्ञान न बना।

गौतम बहुत रोता था। वह महावीर से बार-बार कहता था, मेरे पीछे आए लोग, मुझसे कम जानने वाले लोग, साधारण लोग, मेरे जो शिष्य थे वे, आपके पास आकर ज्ञान को उपलब्ध हो गए। यह दीया मेरा कब जलेगा? यह ज्योति मेरी कब पैदा होगी? मैं कब पहुंच पाऊंगा?

जिस दिन महावीर की अंतिम घड़ी आई, उस दिन गौतम को महावीर ने पास के गांव में संदेश देने भेजा था। गौतम लौट रहा है गांव से संदेश देकर, तब राहगीर ने रास्ते में खबर दी कि महावीर निर्वाण को उपलब्ध हो गए। गौतम वहीं छाती पीटकर रोने लगा, सड़क पर बैठ कर। और उसने राहगीरों को पूछा कि वह निर्वाण

को उपलब्ध हो गए? मेरा क्या होगा? मैं इतने दिन तक उनके साथ भटका, अभी तक मुझे तो वह किरण मिली नहीं। अभी तो मैं सिर्फ उधार, वह जो कहते थे, वही लोगों को कहे चला जा रहा हूँ। मुझे वह हुआ नहीं, जिसकी वह बात करते थे। अब क्या होगा? उनके साथ न हो सका, उनके बिना अब क्या होगा। मैं भटका, मैं डूबा। अब मैं अनंत काल तक भटकूंगा। वैसा शिक्षक अब कहां? वैसा गुरु अब कहां मिलेगा? क्या मेरे लिए भी उन्होंने कोई संदेश स्मरण किया है, और कैसी कठोरता की उन्होंने मुझ पर? जब जाने की घड़ी थी तो मुझे दूर क्यों भेज दिया?

तो राहगीरों ने यह सूत्र उसको कहा है। यह जो सूत्र है, राहगीरों ने कहा है। राहगीरों ने कहा कि तेरा उन्होंने स्मरण किया और उन्होंने कहा है कि गौतम को यह कह देना। गौतम यहां मौजूद नहीं है, गौतम को यह कह देना। यह जो सूत्र है, यह गौतम के लिए कहलाया गया है।

"जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता और अलिप्त रहता है वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटा कर सब प्रकार के स्नेह-बंधनों से रहित हो जा। अतः गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।"

"तू इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका, भला किनारे पहुंच कर तू क्यों अटक गया है। उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।"

ये जो आखिरी शब्द हैं कि तू सारे संसार के सागर को पार कर गया--गौतम पत्नी को छोड़ आया, बच्चों को छोड़ आया, धन, प्रतिष्ठा, पद। प्रख्यात था, इतने लोग जानते थे, सैकड़ों लोगों का गुरु था, उस सबको छोड़ कर महावीर के चरणों में गिर गया, सब छोड़ आया। तो महावीर कहते हैं, तूने पूरे सागर को छोड़ दिया गौतम, लेकिन अब तू किनारे को पकड़ कर अटक गया। तूने मुझे पकड़ लिया। तूने सब छोड़ दिया, तूने महावीर को पकड़ लिया। तू किनारा भी छोड़ दे, तू मुझे भी छोड़ दे। जब तू सब छोड़ चुका तो मुझे क्यों पकड़ लिया? मुझे भी छोड़ दे।

जो श्रेष्ठतम गुरु हैं, उनका अंतिम काम यही है कि जब उनका शिष्य सब छोड़ कर उन्हें पकड़ ले, तो तब तक तो वे पकड़ने दें जब तक यह पकड़ना शेष को छोड़ने में सहयोगी हो, और जब सब छूट जाए तब वे अपने से भी छूटने में शिष्य को साथ दें। जो गुरु अपने से शिष्य को नहीं छुड़ा पाता, वह गुरु नहीं है। यह महावीर का वचन है, कि अब तू मुझे भी छोड़ दे, किनारे को भी छोड़ दे। सब छोड़ चुका, अब नदी भी पार कर गया, अब किनारे को पकड़ कर भी नदी में अटका हुआ है, नदी को नहीं पकड़े हुए है। किनारे को पकड़े हुए है। किनारा नदी नहीं है। लेकिन कोई आदमी किनारे को पकड़ कर भी तो नदी में हो सकता है। और फिर किनारा भी बाधा बन जाएगा। किनारा चढ़ने को है, बाधा बनने को नहीं। इसे भी छोड़ दे और इसके भी पार हो जा।

इस सूत्र को हम समझेंगे। उसके पहले एक दो सवाल और हैं।

जिन मित्र ने यह पूछा है: "ज्ञान और स्मृति का, वे ठीक से समझ लें। स्मृति व्यर्थ नहीं है। स्मृति सार्थक है बाहर के जगत के लिए। पांडित्य व्यर्थ नहीं है, सार्थक है, बाहर के जगत के लिए। भीतर के जगत के लिए व्यर्थ है। मगर उलटी बात, इससे विपरीत बात भी सही है।"

अंतःप्रज्ञा भीतर जगत के लिए सार्थक है, लेकिन बाहर के जगत के लिए सार्थक नहीं है। विज्ञान बाहर के जगत के लिए, धर्म भीतर के जगत के लिए। विज्ञान है स्मृति, धर्म है अनुभव। इसलिए विज्ञान दूसरों के सहारे बढ़ता है, धर्म केवल अपने सहारे। अगर हम न्यूटन को हटा लें तो आइंस्टीन पैदा नहीं हो सकता। हालांकि मजे की बात है कि आइंस्टीन न्यूटन को ही गलत करके आगे बढ़ता है, लेकिन फिर भी न्यूटन के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। न्यूटन ने जो कहा है, उसके ही आधार पर आइंस्टीन काम शुरू करता है। फिर पाता है कि वह गलत है।

तो फिर छांटता है। लेकिन अगर न्यूटन हुआ ही न हो तो आइंस्टीन कभी नहीं हो सकता, क्योंकि बाहर का ज्ञान सामूहिक है, पूरे समूह पर निर्भर है।

ऐसा समझ लें कि अगर हम विज्ञान की सारी किताबें नष्ट कर दें, तो क्या आप समझते हैं कि आइंस्टीन पैदा हो सकेगा, बिल्कुल पैदा नहीं हो सकेगा। अब स से शुरू करना पड़ेगा। अगर हम विज्ञान की सब किताबें नष्ट कर दें तो क्या आप सोचते हैं, अचानक कोई आदमी हवाई जहाज बना लेगा? नहीं बना सकता। बैलगाड़ी के चक्के से शुरू करना पड़ेगा, और कोई दस हजार साल लगेगे, बैलगाड़ी के चक्के से हवाई जहाज तक आने में। और यह दस हजार साल में एक आदमी का काम नहीं होने वाला है, हजारों लोग काम करेंगे। विज्ञान परंपरा है, ट्रेडिशन है। हजारों लोगों के श्रम का परिणाम है।

धर्म? महावीर न हों, बुद्ध न हों, तो भी आप महावीर हो सकते हैं। कोई बाधा नहीं है। जरा भी बाधा नहीं है। क्योंकि मेरे महावीर या मेरे बुद्ध होने में महावीर और बुद्ध के ऊपर उनके कंधे पर खड़े होने की कोई जरूरत नहीं है। कोई खड़ा हो भी नहीं सकता। धर्म के जगत में हर आदमी अपने पैर पर खड़ा होता है, विज्ञान के जगत में हर आदमी दूसरे के कंधे पर खड़ा होता है। इसलिए विज्ञान की शिक्षा दी जा सकती है, धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती। विज्ञान की शिक्षा हमें देनी ही पड़ेगी। अगर हम एक बच्चे को गणित न सिखाएं, तो कैसे समझेगा आइंस्टीन को?

धर्म का मामला उलटा है। अगर हम एक बच्चे को बहुत धर्म सिखा दें तो फिर महावीर को न समझ सकेगा। धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। शिक्षा बाहर की होती है, भीतर की नहीं होती, भीतर की साधना होती है। बाहर की शिक्षा होती है। शिक्षा से स्मृति प्रबल होती है, साधना से ज्ञान के द्वार टूटते हैं। इसको और इस तरह से समझ लें—कि बाहर के संबंध में हम जो जानते हैं वह नई बात है, जो कल पता नहीं थी और अगर हम खोजते न तो कभी पता न चलती। भीतर के संबंध में जो हम जानते हैं वह सिर्फ दबी थी। पता थी गहरे में। खोज लेने पर जब हम उसे पाते हैं तो वह कोई नई चीज नहीं है। बुद्ध से पूछें, महावीर से पूछें, वे कहेंगे, जो हमने पाया, वह मिला ही हुआ था। सिर्फ हमारा ध्यान उस पर नहीं था।

आपके घर में हीरा पड़ा हो, रोशनी न हो, दीया जले, रोशनी हो जाए, हीरा मिल जाए तब आप ऐसा नहीं कहेंगे कि हीरा कोई नई चीज है जो हमारे घर में जुड़ गई, थी ही घर में। प्रकाश नहीं था, अंधेरा था, दिखाई नहीं पड़ता था।

आत्म-ज्ञान आपके पास है, सिर्फ ध्यान उस पर पड़ जाए। लेकिन विज्ञान आपके पास नहीं है, उसे खोजना पड़ता है। जैसे हीरे को खदान से खोज कर, निकाल कर घर लाना पड़े। इस फर्क के कारण विज्ञान सीखा जा सकता है। जो खदान तक गए हैं, जिन्होंने हीरा खोदा है, कैसे लाए हैं, क्या है तरकीब? वह सब सीखी जा सकती है। धर्म सीखा नहीं जा सकता, साधा जा सकता है। साधने और सीखने में बुनियादी फर्क है। सीखना, सूचनाओं का संग्रह है। साधना, जीवन का रूपांतरण है। अपने को बदलना होता है। इसलिए कम पढ़ा लिखा आदमी भी धार्मिक हो सकता है। लेकिन कम पढ़ा लिखा आदमी वैज्ञानिक नहीं हो पाता। बिल्कुल साधारण आदमी, जो बाहर के जगत में कुछ भी नहीं जानता है, वह भी कबीर हो सकता है, कृष्ण हो सकता है, क्राइस्ट हो सकता है।

क्राइस्ट खुद एक बूढ़े के लड़के हैं, कबीर एक जुलाहे के, कुछ जानकारी बाहर की नहीं है। कोई पांडित्य नहीं है, कोई बड़ा संग्रह नहीं है, फिर भी अंतःप्रज्ञा का द्वार खुल सकता है। क्योंकि जो पाने जा रहे हैं, वह भीतर छिपा ही हुआ है, थोड़े से खोदने की बात है। हीरा पास है, मुट्ठी बंद है, उसे खोल लेने की बात है। यह जो मुट्ठी खोलना है, यह साधना है। हीरा क्या है, कहां छिपा है, किस खदान में मिलेगा, कैसे खोदा जाएगा, इन सबकी जानकारी बाह्य सूचना है। शास्त्रों में अगर हम यह भेद कर लें तो हम शास्त्रों को बचाने में सहयोगी हो

जायेंगे, अन्यथा हमारे सब शास्त्र डूब जाएंगे। क्योंकि कृष्ण के मुंह से ऐसी बातें निकलती हैं जो जानकारी की हैं। वह गलत होंगी आज नहीं कल। महावीर ऐसी बातें बोलते हैं, जो जानकारी की हैं, वह गलत हो जाएंगी।

विज्ञान के जगत में कोई कभी सदा सही नहीं हो सकता। रोज विज्ञान आगे बढ़ेगा और अतीत को गलत करता जाएगा। बुद्ध ने ऐसी बातें कही हैं जो गलत हो जाएंगी। जीसस ने, मोहम्मद ने, ऐसी बातें कही हैं जो गलत हो जाएंगी। लेकिन इससे कोई भी धर्म का संबंध नहीं है। धर्मशास्त्र में दोनों बातें हैं, वे भी जो भीतर से आई हैं, और वे भी जो बाहर से आई हैं। अगर भविष्य में हमें धर्मशास्त्र की प्रतिष्ठा बचानी हो तो हमें धर्मशास्त्र के विभाजन करने शुरू कर देने चाहिए। जानकारी एक तरफ हटा देनी चाहिए, अनुभव एक तरफ।

अनुभव सदा सही रहेगा, जानकारी सदा सही नहीं रहेगी।

तो मैं कुछ जानकारी की बातें आपसे कहता हूं। जरूरी नहीं है कि आपसे कहूं, और आपकी तैयारी बढ़ जाए तो नहीं कहूंगा। लेकिन जहां आप हैं वहां जो जानकारी की बातें हैं वही आपकी समझ में आती हैं। वह जो अनुभव की बातें कहता हूं वह तो आपको सुनाई ही नहीं पड़तीं। इस आशा में जानकारी की बात कहता हूं कि शायद उसी के बीच में एकाध अनुभव की बात भी आपके भीतर प्रवेश हो जाए। वह जानकारी की बात करीब-करीब ऐसी है जैसी एक कड़वी दवा की गोली पर थोड़ी शक्कर लगा दी जाए। वह शक्कर देने के लिए आपको नहीं लगाई गई है, उस शक्कर के पीछे कुछ छिपा है जो शायद साथ चला जाए। अगर आप समझदार हैं तो शक्कर लगाने की जरूरत नहीं है, दवा सीधी ही दी जा सकती है। लेकिन दवा थोड़ी कड़वी होगी। उसको समझदार ले सकेगा, बाल-बुद्धि के लोग नहीं ले सकेंगे।

सत्य, वह जो अनुभव का सत्य है वह थोड़ा कड़वा होगा। क्योंकि वह आपकी जिंदगी के विपरीत होगा। उसे आप तक पहुंचाना हो तो जानकारी केवल एक साधन है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या सिद्ध पुरुष को भी सोए हुए लोगों के बीच रहने में खतरा है, या केवल साधकों के लिए यह निर्देश है?

सिद्ध पुरुष को कोई खतरा नहीं है, क्योंकि वह मिट ही गया। खतरा तो उसको है जो अभी है। ऐसा समझें, कि क्या बीमारों के बीच मरे हुए आदमी को रहने में कोई खतरा है? कोई बीमारी न लग जाए। लगेगी नहीं अब। मरे हुए आदमी को बीमारी नहीं लगती। चारों तरफ प्लेग हो, चारों तरफ हैजा हो, मरे हुए आदमी को बिठा दें बीच में आसन लगाकर, वे मजे से बैठे रहेंगे। न हैजा पकड़ेगा, न प्लेग पकड़ेगी। क्योंकि बीमारी लगने के लिए होना जरूरी है, पहली शर्त। वह मरा हुआ आदमी है ही नहीं अब। लगेगी किसको? सिद्ध पुरुष को तो कोई खतरा नहीं है। क्योंकि सिद्ध पुरुष एक गहरे अर्थों में मर गया है, भीतर से वह अहंकार मर गया, जिसको बीमारियां लगती हैं। लोभ लगता है, क्रोध लगता है। वह अहंकार अब नहीं है। अब सिद्ध पुरुष को कोई खतरा नहीं है। सिद्ध पुरुष का अर्थ ही यह है कि जो अब नहीं है। खतरा तो रास्ते पर है। जब तक आप सिद्ध नहीं हो गए हैं तब तक खतरा है।

मगर एक बड़े मजे की बात है अगर आपको ऐसा पता चलता है कि मैं सिद्ध हो गया हूं, तो अभी खतरा है। क्योंकि अगर आपको पता चलता है कि मैं मर गया हूं तो अभी आप जिंदा हैं। आंख बंद करके बैठे और आप सोच रहे हैं कि मैं मर गया हूं, अब मुझे कोई बीमारी लगने वाली नहीं है तो आप पक्का समझना, अभी सावधानी बरतें। अभी काफी जिंदा हैं, अभी बीमारी लगेगी।

सिद्ध पुरुष का अर्थ है--जो हवा पानी की तरह हो गया। अब जिसे कुछ भी नहीं है, जिसे यह भी नहीं है कि मैं सिद्ध पुरुष हो गया हूं। ऐसा भाव ही मैं का जहां खो गया है वहां कोई बीमारी नहीं है। क्योंकि बीमारी लगने के लिए मैं की पकड़ने की क्षमता चाहिए, और मैं बीमारी पकड़ने का मैग्नेट है। वह जो मैं का भाव है, जो अहम है, वह है मैग्नेट, वह बीमारियों को खींचता है। और आप ऐसा मत सोचना कि दूसरा ही आपको बीमारी दे देता है। आप लेने के लिए तैयार होते हैं तभी देता है।

आपने कभी ख्याल किया होगा, प्लेग है और डाक्टर घूमता रहता है और उसको प्लेग नहीं पकड़ती, और आपको पकड़ लेती है। क्या मामला है? खुद चिकित्सक बहुत परेशान हुए हैं इस बात से कि डाक्टर है, वहीं घूम रहा है। दिन भर हजारों मरीजों की सेवा कर रहा है, इंजेक्शन लगा रहा है, भाग-दौड़ कर रहा है। उन्हीं कीटाणुओं के बीच में भटक रहा है। जहां आपको बीमारी पकड़ती है, उसे बीमारी नहीं पकड़ती। कारण क्या है? कारण सिर्फ एक है कि डाक्टर की उत्सुकता मरीज में है, अपने में नहीं है। इसलिए मैं क्षीण हो जाता है। वह उत्सुक है दूसरे को ठीक करने में। वह इतना व्यस्त है दूसरे को ठीक करने में कि उसके होने की उसे सुविधा ही नहीं है जहां बीमारी पकड़ती है। वह नॉन-रिसेप्टिव हो जाता है, क्योंकि उसको पता ही नहीं रहता है कि मैं हूं।

जब बीमारी जोर की होती है, महामारी होती है, तो डाक्टर अपने को भूल ही जाता है। न भूले, तो बीमार पड़ेगा। यह भूलना बाहर की बीमारी तक को रोक देता है। वे जो दूसरे लोग हैं चारों तरफ, वे भयभीत हो जाते हैं कि कहीं बीमारी मुझे न पकड़ जाए। यह कहीं बीमारी मुझे न पकड़ जाए, यह मैं भाव ही बीमारी को पकड़ने का द्वार बन जाता है। रिसेप्टिव हो जाता है।

यह तो बाहर की बीमारी के संबंध में है, भीतर की बीमारी के संबंध में तो और जटिलता हो जाती है।

ये सारी सूचनाएं साधक के लिए हैं। यही सूचनाएं नहीं, सूचनाएं मात्र साधक के लिए हैं। सिद्ध पुरुष के लिए क्या सूचना है। सिद्ध पुरुष का अर्थ ही यह है कि जिसको करने को अब कुछ न बचा। सिद्ध का अर्थ क्या होता है? सिद्ध का अर्थ होता है जिसे करने को कुछ न बचा, सब पूरा हो गया, सब सिद्ध हो गया। उसके लिए तो कोई भी सूचना नहीं है। ये सारी सूचनाएं मार्ग पर चलने वाले के लिए हैं, साधक के लिए हैं।

एक और प्रश्न है।

आशुप्रज्ञ होना प्रकृति-दत्त आकस्मिक घटना है या साधना-जन्य परिणाम?

प्रकृति-दत्त घटना नहीं है, आकस्मिक घटना नहीं है, साधना-जन्य परिणाम है। प्रकृति है अचेतन। आपको भूख लगती है, यह प्रकृति-दत्त है। आपको प्यास लगती है, यह प्रकृति-दत्त है। आप सोते हैं रात, यह प्रकृति-दत्त है। आप जागते हैं सुबह, यह प्रकृति-दत्त है। यह सब प्राकृतिक है, यह अचेतन है। इसमें आपको कुछ भी नहीं करना पड़ा है, यह आपने पाया है। यह आपके शरीर के साथ जुड़ा हुआ है। लेकिन एक आदमी ध्यान करता है, यह प्रकृति-दत्त नहीं है। अगर आदमी न करे तो अपने आप यह कभी भी न होगा। भूख लगेगी अपने आप, प्यास लगेगी अपने आप, ध्यान अपने आप नहीं लगेगा। कामवासना जगेगी अपने आप, मोह के बंधन निर्मित हो जाएंगे अपने आप, लोभ पकड़ेगा, क्रोध पकड़ेगा अपने आप। धर्म नहीं पकड़ेगा अपने आप। इसे ठीक से समझ लें।

धर्म निर्णय है, संकल्प है, चेष्टा है, इन्टेंशन है। बाकी सब इंस्टिंक्ट है। बाकी सब प्रकृति है। आपके जीवन में जो अपने आप हो रहा है, वह प्रकृति है। जो आप करेंगे तो ही होगा और तो भी बड़ी मुश्किल से होगा। वह धर्म है। जो आप करेंगे, तभी होगा, बड़ी मुश्किल से होगा क्योंकि आपकी प्रकृति पूरा विरोध करेगी कि यह क्या कर रहे हो? इसकी क्या जरूरत है? पेट कहेगा, ध्यान की क्या जरूरत है? भोजन की जरूरत है। शरीर कहेगा, नींद की जरूरत है, ध्यान की क्या जरूरत है? काम-ग्रंथियां कहेंगी कि काम की, प्रेम की जरूरत है। धर्म की क्या जरूरत है?

आपके शरीर को अगर सर्जन के टेबल पर रखकर पूरा परीक्षण किया जाए तो कहीं भी धर्म की कोई जरूरत नहीं मिलेगी, किसी ग्रंथि में। सब जरूरतें मिल जाएंगी। किडनी की जरूरत है, फेफड़े की जरूरत है, मस्तिष्क की जरूरत है, वह सब जरूरतें सर्जन काट कर अलग-अलग बता देगा कि किस अंग की क्या जरूरत है, लेकिन एक भी अंग मनुष्य के शरीर में ऐसा नहीं जिसकी जरूरत धर्म है।

तो धर्म बिल्कुल गैरजरूरत है। इसीलिए तो जो आदमी केवल शरीर की भाषा में सोचता है वह कहता है, धर्म पागलपन है, शरीर के लिए कोई जरूरत है नहीं। बिहेवियरिस्ट्स हैं, शरीरवादी मनोवैज्ञानिक हैं; वे कहते हैं, क्या पागलपन है? धर्म की कोई जरूरत ही नहीं है। और जरूरतें हैं, धर्म की क्या जरूरत है? समाजवादी हैं, कम्युनिस्ट हैं, वे कहते हैं, धर्म की क्या जरूरत है? और सब जरूरतें हैं। और जरूरतें समझ में आती हैं। क्योंकि उनको खोजा जा सकता है। धर्म की जरूरत समझ में नहीं आती। कहीं कोई कारण नहीं है। इसलिए पशुओं में सब है जो आदमी में है। सिर्फ धर्म नहीं है। और जिस आदमी के जीवन में धर्म नहीं है, उसको अपने को आदमी कहने का कोई हक नहीं है। क्योंकि पशु के जीवन में सब है जो आदमी के जीवन में है। ऐसे आदमी के जीवन में, जिसके जीवन में धर्म नहीं है, वह कहां से अपने को अलग करेगा पशु से?

पशु प्रकृति-जन्य है। आदमी भी प्रकृति-जन्य है, जब तक धर्म उसके जीवन में प्रवेश नहीं करता। जिस क्षण धर्म जीवन में प्रवेश करता है, उसी दिन मनुष्य प्रकृति से परमात्मा की तरफ उठने लगा।

प्रकृति है निम्नतम, अचेतन छोर; परमात्मा है अंतिम, आत्यंतिक चेतन छोर। जो अपने आप हो रहा है, अचेतना में हो रहा है, वह है प्रकृति। जो होगा चेष्टा से, जागरूक प्रयत्न से, वह है धर्म। और जिस दिन यह प्रश्न इतना बड़ा हो जाएगा कि अचेतन कुछ भी न रह जाएगा, भूख भी लगेगी तो मेरी आज्ञा से, प्यास भी लगेगी तो मेरी आज्ञा से, चलूंगा तो मेरी आज्ञा से, उठूंगा तो मेरी आज्ञा से, शरीर भी जिस दिन प्रकृति न रह जाएगा, अनुशासन बन जाएगा, उस दिन व्यक्ति परमात्मा हो गया।

अभी तो हम जो भी कर रहे हैं, सोचते भी हैं तो, मंदिर भी जाते हैं तो, प्रार्थना भी करते हैं तो, ख्याल कर लेना, प्रकृति-जन्य तो नहीं है। हमारा तो धर्म भी प्रकृति-जन्य होगा। इसलिए धर्म नहीं होगा, धोखा होगा। जिसको हम धर्म कहते हैं, वह धोखा है धर्म का। इसलिए जब आप दुख में होते हैं तो धर्म की याद आती है। सुख में नहीं आती।

बर्ट्रेड ने तो कहा है कि जब तक दुख है, तभी तक धर्मगुरु भगवान से प्रार्थना करें कि बचे हुए हैं। जिस दिन दुख नहीं होगा उस दिन धर्मगुरु नहीं होगा। वह ठीक कहता है। निन्यानबे प्रतिशत बात ठीक है। कम से कम आपके धर्मगुरु तो नहीं बच सकते, अगर दुख समाप्त हो जाए। क्योंकि दुखी आदमी उनके पास जाता है। दुख जब होता है तब आपको धर्म की याद आती है, क्यों? क्योंकि आप सोचते हैं कि अब यह दुख मिटता नहीं दिखता है, अब कोई उपाय नहीं दिखता मिटाने का, तो अब धर्म की तलाश में जायें। जब आप सुखी होते हैं तो निश्चित हैं, तब कोई बात नहीं। आप ही अपने मसले हल कर रहे हैं, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है। जब आपकी समस्या कहीं ऐसी उलझ जाती है--प्रकृतिगत समस्या--जो आप हल नहीं कर पाते, तब आप परमात्मा की तरफ जाते हैं।

आदमी की असमर्थता उसका धर्म है? आदमी की नपुंसकता उसका धर्म है? उसकी विवशता? जब वह कुछ नहीं कर पाता तब वह परमात्मा की तरफ चल पड़ता है। तब तो उसका मतलब यह हुआ कि वह परमात्मा की तरफ भी किसी प्रकृति-जन्य प्यास या भूख को पूरा करने जा रहा है। अगर आप परमात्मा के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं कि मेरे लड़के की नौकरी लगा दे, कि मेरी पत्नी की बीमारी ठीक कर दे, तो उसका अर्थ क्या हुआ? उसका अर्थ हुआ कि आपकी भूख तो प्रकृति-जन्य है, और आप परमात्मा के सामने हाथ जोड़कर खड़े हैं। आप परमात्मा से भी थोड़ी सेवा लेने की उत्सुकता रखते हैं। थोड़ा अनुगृहीत करना चाहते हैं उसको भी, कि थोड़ा सेवा का अवसर देना चाहते हैं। इसका, ऐसे धर्म का कोई भी संबंध धर्म से नहीं है।

यह जो आशुप्रज्ञ होना है, यह प्रकृति-दत्त नहीं है। यह आपकी इंस्टिंक्ट, आपकी मूल वृत्तियों से पैदा नहीं होगा। कब होगा पैदा यह? अगर यह प्रकृति से पैदा नहीं होगा तो फिर पैदा कैसे होगा? यह कठिन बात मालूम होती है। यह तब पैदा होता है जब हम प्रकृति से ऊब जाते हैं, यह तब पैदा होता है जब हम प्रकृति से भर जाते

हैं। यह तब पैदा होता है जब हम देख लेते हैं कि प्रकृति में कुछ भी पाने को नहीं है। यह दुख से पैदा नहीं होता। जब हमें सुख भी दुख जैसा मालूम होने लगता है, तब पैदा होता है। यह अतृप्ति से पैदा नहीं होता है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

प्रकृति की सब भूख प्यास कमी से पैदा होती है। शरीर में पानी की कमी है तो प्यास पैदा होती है। शरीर में भोजन की कमी है तो भूख पैदा होती है। शरीर में वीर्य ऊर्जा ज्यादा इकट्ठी हो गई तो कामवासना पैदा होती है। फेंको उसे बाहर, उलीचो उसे, फेंक दो उसे, खाली हो जाओ, ताकि फिर भर सको।

शरीर की दो तरह की जरूरतें हैं--भरने की और निकालने की। जो चीज नहीं है उसे भरो, जो चीज ज्यादा हो जाए उसे निकालो। यह शरीर की कुल दुनिया है। वीर्य भी एक मल है। जब ज्यादा हो जाए तो उसे फेंक दो बाहर, नहीं तो वह बोझिल करेगा, सिर को भारी इसलिए फ्रायड ने तो कहा है कि संभोग से ज्यादा अच्छा ट्रैक्लाइजर कोई भी नहीं है। नींद के लिए अच्छी दवा है। क्योंकि अगर शक्ति भीतर है तो सो न पाएंगे। उसे फेंक दो बाहर, हलके हो जाओ, खाली हो जाओ। नींद लग जाएगी।

तो दो ही जरूरतें हैं--जब कमी हो तो भरो, जब ज्यादा हो जाए तो निकाल दो। इसलिए दुनिया में इतनी कामवासना दिखाई पड़ रही है आज, उसका कारण यह है कि भरने की जरूरतें काफी दूर तक काफी लोगों की पूरी हो गई हैं, निकालने की जरूरत बढ़ गई है, भूखा आदमी है, गरीब आदमी है, मकान नहीं, कपड़ा नहीं, प्रतिपल भरने की चिंता है, तो निकालने की चिंता का सवाल नहीं उठता। इसलिए आज अगर अमरीका में एकदम कामुकता है, तो उसका कारण आप यह मत समझना कि अमरीका अनैतिक हो गया है। जिस दिन आप भी इतनी समृद्धि में होंगे, इतनी ही कामुकता होगी। क्योंकि जब भरने का काम पूरा हो गया, तब निकालने का ही काम बचता है। जब भोजन की कोई जरूरत न रही, तो सिर्फ संभोग की ही, सेक्स की ही जरूरत रह जाती है, और कोई जरूरत बचती नहीं है।

भोजन है भरना, और संभोग है निकालना। तो जब भोजन ज्यादा होगा, तो तकलीफ शुरू होगी। इसलिए सभी सभ्यताएं जब भोजन की जरूरत पूरी कर लेती हैं, तब कामुक हो जाती हैं। इसलिए हम बड़े हैरान होते हैं कि समृद्ध लोग अनैतिक क्यों हो जाते हैं! गरीब आदमी सोचता है, हम बड़े नैतिक हैं। अपनी पत्नी से तृप्त हैं। ये बड़े आदमी, समृद्ध आदमी, तृप्त क्यों नहीं होते, शांत क्यों नहीं हो जाते? ये क्यों भागते रहते हैं।

मोरक्को का सुलतान था, उसके पास अनगिनत पत्नियां थीं, कभी गिनी नहीं गईं। लेकिन अनगिनत होंगी--उसके पास दस हजार बच्चे पैदा करने की कामना थी, उसकी। काफी दूर तक सफल हुआ। एक हजार छप्पन लड़के और लड़कियां उसने पैदा किए। गरीब आदमी को लगेगा, यह क्या पागलपन है! लेकिन एक सुलतान को नहीं लगेगा। भरने की जरूरतें सब पूरी हैं, जरूरत से ज्यादा पूरी हैं, अब निकालने की ही जरूरत रह गई है।

यह जो स्थिति है, यह तो प्रकृतिगत है। धर्म कहां से शुरू होता है? धर्म वहां से शुरू होता है, जहां भरना भी व्यर्थ हो गया, निकालना भी व्यर्थ हो गया। जहां दुख तो व्यर्थ हो ही गए, सुख भी व्यर्थ हो गए। जहां सारी प्रकृति व्यर्थ मालूम होने लगी।

एक स्त्री से असंतुष्ट हैं तो आप दूसरी स्त्री की तलाश पर जायेंगे। लेकिन अगर स्त्री-मात्र से असंतुष्ट हो गए, तब धर्म का प्रारंभ होगा। इस भोजन से असंतुष्ट हैं, दूसरे भोजन की तलाश में जाएंगे। लेकिन भोजन मात्र, एक व्यर्थ का क्रम हो गया, तो धर्म की खोज शुरू होगी। यह सुख भोग लिया, इससे असंतुष्ट हो गए तो दूसरे सुख की खोज शुरू होगी। सब सुख देखे, और व्यर्थ पाए, तो धर्म की खोज शुरू होगी। जहां प्रकृति व्यर्थता की जगह पहुंच जाती है, मीनिंगलेसनेस, वहां आदमी आशुप्रज्ञता की तरफ, उस अंतःसंचेतन्य, उस भीतरी ज्योति की तरफ यात्रा करता है। क्यों?

क्योंकि प्रकृति है बाहर। जब बाहर से कोई व्यर्थता अनुभव करता है तो भीतर की तरफ आना शुरू होता है। एक है जगत, जो खाली है उसे भरो, जो भरा है उसे खाली करो ताकि फिर भर सको, ताकि फिर खाली कर

सको। एक है जगत इस सर्कल, विसियस सर्कल का। और एक और जगत है, कि बाहर व्यर्थ हो गया, भीतर की तरफ चलो। प्रकृति व्यर्थ हो गई, परमात्मा की तरफ चलो।

इसलिए प्रकृति की ही मांग के लिए अगर आप परमात्मा की तरफ जाते हों, तो जानना कि अभी गए नहीं। जिस दिन आप परमात्मा के लिए ही परमात्मा की तरफ जाते हैं, उस दिन जानना कि धर्म का प्रारंभ हुआ।

अब हम सूत्र लें।

"जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता, और अलिप्त रहता है।"

कमल को देखा आपने? कमल हमारा बड़ा पुराना प्रतीक है। महावीर बात करते, कृष्ण बात करते, बुद्ध बात करते, उनकी बातों में कितने ही फर्क पड़ते हों; लेकिन कमल जरूर आ जाता है।

इस मुल्क में तीन बड़े धर्म पैदा हुए, हिन्दू, जैन, बौद्ध, और फिर सैकड़ों महत्वपूर्ण संप्रदाय पैदा हुए। लेकिन अब तक एक सदगुरु ऐसा नहीं हुआ जो कमल को भूल गया हो। कमल की बात करनी ही पड़ती है। कुछ मामला है, कुछ एक सत्य भीतर सब धर्मों की आवाज के भीतर दौड़ता हुआ एक स्वर है--चाहे कोई भी हो सिद्धांत। अलिप्तता मार्ग है, इसलिए कमल की बात आ जाती है।

भारत के बाहर जिन मुल्कों में कमल नहीं होता, उन मुल्कों के सदगुरुओं को बड़ी कठिनाई रही है। कोई उदाहरण नहीं है उनके पास संन्यासी का, कि संन्यासी का क्या अर्थ है?

संन्यासी का अर्थ है: कमलवत्। कमल के पत्ते पर बूंद गिरती है पानी की, पड़ी रहती है, मोती की तरह चमकती है। जैसी पानी में भी कभी नहीं चमकी थी, वैसी कमल के पत्ते पर चमकती है। मोती हो जाती है। जब सूरज की किरण पड़ती, तो कोई मोती भी क्या; फीका हो जाए, वैसी कमल के पत्ते पर बूंद चमकती है। लेकिन पत्ते को कहीं छूती नहीं, पत्ता अलिप्त ही बना रहता है। ऐसी चमकदार बूंद, ऐसा मोती जैसा अस्तित्व उसका, और पत्ता अलिप्त बना रहता है। भागता भी नहीं छोड़ कर पानी को, पानी में ही रहता है। पानी में ही उठता है, पानी के ही ऊपर जाता है और कभी छूता नहीं, अछूता बना रहता है, कुआं बना रहता है।

एक यह अलिप्तता का जो भाव है, यह संसार के बीच संन्यास का अर्थ है। इसलिए कमल प्रतीक हो गया। पर कमल एक और कारण से भी प्रतीक है। मिट्टी से पैदा होता है, गंदे कीचड़ से पैदा होता है। ऊपर उठ जाता है और कमल हो जाता है। कमल में और कीचड़ में कितना फासला है! जितना फासला हो सकता है दो चीजों में। कहां कमल का निर्दोष अस्तित्व! कहां कमल का सौंदर्य! और कहां कीचड़! पर कीचड़ से ही कमल निर्मित होता है।

इस कारण से भी कमल की बड़ी मीठी चर्चा जारी रही सदियों-सदियों तक। आदमी संसार में पैदा होता है कीचड़ में, पर कमल हो सकता है। कीचड़ में ही पैदा होना पड़ता है। चाहे महावीर हों, चाहे बुद्ध हों, कीचड़ में ही पैदा होते हैं। चाहे आप हों, चाहे कोई हो--सभी को कीचड़ में पैदा होना पड़ता है। संसार कीचड़ है। थोड़े से लोग इस कीचड़ के पार जाते हैं और कमल हो जाते हैं। वे ही लोग इस कीचड़ के पार जाते हैं जो अलिप्तता को साध लेते हैं।

अलिप्तता ही कीचड़ के पार जाने की पगडण्डी है। उससे ही वे दूर हो पाते हैं। कीचड़ नीचे रह जाती है, कमल ऊपर आ जाता है। जिस दिन कमल ऊपर आ जाता है, कमल को देख कर कीचड़ की याद भी नहीं आती। कभी कमल आपको दिखाई पड़े, कीचड़ की याद आती है? वह याद भी नहीं आती। इसलिए बड़ी अदभुत घटनाएं घटीं।

जीसस के मानने वाले कहते हैं कि जीसस सामान्य संभोग से पैदा नहीं हुए, कुआरी मां से पैदा हुए हैं। यह बात बड़ी मीठी है और बड़ी गहरी है। असल में जीसस को देख कर ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि दो व्यक्तियों की कामवासना से पैदा हुए हों। कमल को देख कर कहां कीचड़ का ख्याल आता है। जीसस को देख कर ख्याल नहीं

आता कि दो व्यक्ति जानवरों की तरह कामवासना में गुंथ गए हों, और उनके शरीर की बेचैनी, और उनके शरीर की अस्त-व्यस्तता, अराजकता, पशुता और उनके शरीर की वासना की दुर्गंध की कीचड़ से जीसस पैदा हुए।

कमल को देख कर कीचड़ का ख्याल ही भूल जाता है। और अगर हमें पता ही न हो कि कीचड़ से कमल पैदा होता है, और जिस आदमी ने कभी कीचड़ न देखी हो और कमल ही देखा हो, वह कहेगा यह असंभव है कि यह कमल और कीचड़ से पैदा हो जाए।

इसलिए जीसस को देख कर अगर लोगों को लगा हो कि ऐसा व्यक्ति कुंआरी मां से ही पैदा हो सकता है, तो वह लगना वैसा ही है, जैसे कमल को देख कर किसी को लगे कि ऐसा कमल जैसा फूल तो मक्खन से ही पैदा हो सकता है, कीचड़ से नहीं। लेकिन मक्खन से कोई कमल पैदा नहीं होता। अभी तक कोई मक्खन कमल पैदा नहीं कर पाया। कमल कीचड़ से ही पैदा होता है। असल में पैदा होने का ढंग कीचड़ में ही संभव है। इसलिए हमने कहा जो एक दफा कमल हो जाता है, फिर वह दुबारा पैदा नहीं होता, क्योंकि दुबारा पैदा होने का कोई उपाय नहीं रहा। अब वह कीचड़ में नहीं उतर सकता है इसलिए दुबारा पैदा नहीं हो सकता। इसलिए हम कहते हैं, उसकी जन्म-जन्म की यात्रा समाप्त हो जाती है, जिस दिन व्यक्ति कमल हो जाता है। कमल तक यात्रा है कीचड़ की। कीचड़ कमल हो सकती है लेकिन फिर कमल कीचड़ नहीं हो सकता। वापस गिरने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए भी कमल बड़ा मीठा प्रतीक हो गया। अगर हम भारतीय चेतना का, पूव्र्य चेतना का कोई एक प्रतीक खोजना चाहें तो वह कमल है।

महावीर कहते हैं: "जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता।"

बड़ी मजे की बात कही है। गंदे जल को तो छूता ही नहीं--निर्मल, शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता। जिसको छूने में कोई हर्जा भी न होगा, लाभ भी शायद हो जाए, उसको भी नहीं छूता। छूता ही नहीं। लाभ-हानि का सवाल नहीं है। गंदे और पवित्र का भी सवाल नहीं है। छूना ही छोड़ दिया है। पाप को तो छूता ही नहीं, पुण्य को भी नहीं छूता है।

"शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता, जैसे कमल, अलिप्त रहता है। वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटा कर सब प्रकार के स्नेह-बंधनों से रहित हो जा गौतम!"

वह गौतम को कह रहे हैं कि ऐसा ही तू भी हो जा। जहां-जहां हमारा स्नेह है, वहां-वहां स्पर्श है, स्नेह हमारे छूने का ढंग है। जब आप स्नेह से किसी को देखते हैं, छू लिए, चाहे कितने ही दूर हों।

एक आदमी क्रोध से आकर छुरा मार दे आपको, तो भी छूता नहीं है। छुरा आपकी छाती में चला जाए, लहलुहान हो जाए सब, तो भी आपको छूता नहीं है। दूर है बहुत। और एक आदमी हजारों मील दूर हो और आपकी याद आ जाए स्नेह-सिक्त, तो छू लेता है, उसी वक्त। स्नेह स्पर्श है। जब आप स्नेह से किसी की तरफ देखते हैं, तब आपने अलिंन कर ही लिया, छू लिया। छूना हो गया। मन छू ही गया।

महावीर कहते हैं, जब तक यह स्पर्श चल रहा है बाहर, यह आकांक्षा चल रही है कि किसी का स्पर्श सुख देगा, यही स्नेह का अर्थ है। तब तक व्यक्ति संसार में ही होगा संन्यास में नहीं हो सकता।

जब तक कमल कीचड़ को छूने को आतुर है, तब तक दूर कैसे जाएगा, उठेगा कीचड़ से पार कैसे? जब तक कमल खुद ही छूने को आतुर है, तब तक मुक्त कैसे होगा। स्नेह बंधन है। जहां-जहां हम छूने की आकांक्षा से भरते हैं, जहां-जहां हम दूसरे में, दूसरे से सुख पाने की आकांक्षा से भरते हैं, वहां-वहां हम लिप्त हो जाते हैं। असल में, जहां दूसरा महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, वहीं हम लिप्त हो जाते हैं।

जहां दूसरे पर ध्यान जाता है, वहीं हम लिप्त हो जाते हैं। आपका ध्यान चारों तरफ तलाश करता रहता है कि किसको देखें, किसको छुएं। आपका ध्यान चारों तरफ दौड़ता रहता है। जैसे आक्टोपस के पंजे चारों तरफ ढूंढते रहते हैं किसी को पकड़ने को। आपका ध्यान आपकी सारी इंद्रियों से बाहर जाकर तत्पर रहता है, किसको

छुएं! आप अपने को रोकते होंगे, सम्हालते होंगे। जरूरी है, उपयोगी है, सुविधापूर्ण है। लेकिन आपका ध्यान भागता रहता है चारों तरफ। आप अपने मन की खोज करेंगे तो पायेंगे कि कहां-कहां आप लिप्त हो जाना चाहते हैं, कहां-कहां आप छू लेना चाहते हैं।

यह जो भागता हुआ, चारों तरफ बहता हुआ मन है आपका, यह जो सारे संसार को छू लेने के लिए आतुर मन है आपका... वायरन ने कहीं कहा है कि एक स्त्री से नहीं चलेगा, मन तो सारी स्त्रियों को ही भोग लेना चाहता है। रिल्के ने अपने एक गीत में कड़ी लिखी है और कहा है कि यह नहीं है कि एक स्त्री को मैं मांगता हूं। एक स्त्री के द्वारा मैं सारी स्त्रियों को मांगता हूं। और ऐसा भी नहीं है कि सारी स्त्रियों को भोग लूं तो भी तृप्त हो जाऊंगा। तब भी मांग जारी रहेगी। छूने की मांग है, वह फैलती चली जाती है--स्त्री हो या पुरुष हो, धन हो या मकान हो--वह फैलती चली जाती है।

महावीर कहते हैं: "अलिप्त हो जा समस्त आसक्तियां मिटा कर, सब तरफ से अपने स्नेह-बंधन को तोड़ ले। यह जो फैलता हुआ वासना का विस्तार है, इसे काट दे।"

यह कैसे कटेगा?

तो महावीर कहते हैं, गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

प्रमाद का अर्थ है: बेहोशी। प्रमाद का अर्थ है: गैर-ध्यानपूर्वक जीना, प्रमत्त, मूर्च्छा में। यह जब-जब भी हम संबंध निर्मित करते हैं स्नेह के, तब तक मूर्च्छा में ही निर्मित करते हैं। यह कोई होश में निर्मित नहीं करते। होशपूर्वक जो व्यक्ति जीएगा, वह कोई स्नेह के बंधन निर्मित नहीं करेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि वह पत्थर हो जाएगा, और उसमें प्रेम नहीं होगा। सच तो यह है कि उसी में प्रेम होगा, लेकिन उसका प्रेम अलिप्त होगा। यह कठिनतम घटना है जगत में, प्रेम का और अलिप्त होना!

महावीर जब गौतम को यह कह रहे हैं, तो यह बड़ा प्रेमपूर्ण वक्तव्य है कि गौतम, तू ऐसा कर कि मुक्त हो जा, कि तू ऐसा कर गौतम कि तू पार हो जाए। इसमें प्रेम तो भारी है, लेकिन स्नेह जरा भी नहीं है, मोह जरा भी नहीं है। अगर गौतम मुक्त नहीं होता तो महावीर छाती पीटकर रोने वाले नहीं है। अगर गौतम मुक्त नहीं होता, तो यह कोई महावीर की चिंता नहीं बन जाएगी। अगर गौतम महावीर की नहीं सुनता तो इसमें महावीर कोई परेशान नहीं हो जाएंगे।

महावीर जब गौतम से कह रहे हैं कि तू मुक्त हो जा, और ये करुणापूर्ण वचन बोल रहे हैं, तब वे ठीक कमल की भांति हैं, जिस पर पानी की बूंद पड़ी है। बिल्कुल निकट है बूंद, और बूंद को यह भ्रम भी हो सकता है कि कमल ने मुझे छुआ। और मैं मानता हूं, कि बूंद को होता ही होगा यह भ्रम। क्योंकि बूंद यह कैसे मानेगी कि जिस पत्ते पर मैं पड़ी थी उसने मुझे छुआ नहीं। जिस पत्ते पर मैं रही हूं, जिस पत्ते पर मैं बसी हूं, जिस पत्ते पर मेरा निवास रहा, उस पत्ते ने मुझे नहीं छुआ, यह बूंद कैसे मानेगी! बूंद को यह भ्रम होता ही होगा कि पत्ते ने मुझे छुआ। पत्ता बूंद को नहीं छूता है।

गौतम को भी लगता होगा कि महावीर मेरे लिए चिंतित हैं। महावीर चिंतित नहीं हैं। महावीर जो कह रहे हैं, इसमें कोई चिंता नहीं है, सिर्फ करुणा है। ध्यान रहे, करुणा अपेक्षारहित प्रेम है। मोह, अपेक्षा से परिपूर्ण प्रेम है। अपेक्षा जहां है वहां स्पर्श हो जाता है। जहां अपेक्षा नहीं है, वहां कोई स्पर्श नहीं होता। प्रमाद है स्पर्श का द्वार, आसक्ति का द्वार, मूर्च्छित।

कभी आपने खयाल किया, जब आप किसी के प्रेम में पड़ते हैं तो होश में नहीं रह जाते। बेहोशी पकड़ लेती है। बायोलाजिस्ट कहते हैं कि इसका कारण ठीक वैसा ही है, जैसा शराब पीकर आपके पैर डगमगाने लगते हैं, वैसा ही है। या एल. एस. डी., मारिजुआना लेकर जगत बहुत रंगीन मालूम होने लगता है। एक साधारण सी स्त्री या एक साधारण सा पुरुष, जब आप उसके प्रेम में पड़ जाते हैं, तो एकदम अप्सरा हो जाती है, देवता हो जाता है।

एक साधारण सी स्त्री अचानक, जिस दिन आप प्रेम में पड़ जाते हैं। कल भी इस रास्ते से गुजरी थी, परसों भी इस रास्ते से गुजरी थी, हो सकता है, बचपन से आप उसे देखते रहे हों, और कभी नहीं सोचा था कि यह स्त्री अप्सरा है। अचानक एक दिन कुछ हो जाता है आपके भीतर। आपको भी पता नहीं चलता क्या होता है, और एक स्त्री अप्सरा हो जाती है। उस स्त्री का सब कुछ बदल जाता है, मेटामॉर्फोसिस हो जाती है। उस स्त्री में आपको वह सब दिखाई पड़ने लगता है, जो आपको कभी दिखाई नहीं पड़ा था। सारा संसार उस स्त्री के आसपास, इर्द-गिर्द इकट्ठा हो जाता है। सारे सपने उस स्त्री में पूरे होते मालूम होने लगते हैं। सारे कवियों की कविताएं एकदम फीकी पड़ जाती हैं, वह स्त्री काव्य हो जाती है।

क्या हो जाता है?

बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि आपके शरीर में भी सम्मोहित करने के केमिकल्स हैं। कोई आदमी ऊपर से एल ए डी लेता है, एल. एस. डी. लेने से ही; जब हक्सले ने एल. एस. डी. लिया तो जिस कुर्सी के सामने बैठा था, वह कुर्सी एकदम इंद्रधनुषी रंगों से भर गई। लिया एल एस डी, भीतर एक केमिकल डाला, उससे सारी आंखें आच्छादित हो गईं। कुर्सी--साधारण कुर्सी, जिसको उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया था, जो उसके घर में सदा से थी, वह उसके सामने रखी थी--उस कुर्सी में से रंग-विरंगी किरणें निकलने लगीं। वह कुर्सी एक इंद्रधनुष बन गई।

हक्सले ने लिखा है, कि उस कुर्सी से सुंदर कोई चीज ही नहीं थी उस क्षण में। ऐसा मैंने कभी देखा ही नहीं था। हक्सले ने लिखा है कि क्या कबीर ने जाना होगा अपनी समाधि में, क्या इकहार्ट को पता चला होगा, जब वह कुर्सी ऐसी रंगीन हो गई, स्वर्गीय हो गई। देवताओं के स्वर्ग की कुर्सियां फीकी पड़ गईं। सारा जगत ओछा मालूम पड़ने लगा।

क्या हो गया उस कुर्सी को? उस कुर्सी को कुछ नहीं हुआ। कुर्सी अब भी वही है। हक्सले को कुछ हो गया। हक्सले को भीतर कुछ हो गया। वह जो भीतर केमिकल गया है, खून में दौड़ गया है, उसने हक्सले की मनोदशा बदल दी। हक्सले अब सम्मोहित है। अब यह कुर्सी अप्सरा हो गई। छह घंटे बाद जब नशा उतर गया एल. एस. डी. का, तो, कुर्सी वापस कुर्सी हो गई। कुर्सी, कुर्सी थी ही; हक्सले वापस हक्सले हो गए। फिर कुर्सी साधारण है।

इसलिए हनीमून के बाद अगर स्त्री साधारण हो जाए, पुरुष साधारण हो जाए घबड़ाना मत। कुर्सी, कुर्सी हो गई। कोई आदमी सुहागरात में ही जिंदगी बिताना चाहे तो गलती में है। पूरी रात भी सुहागरात हो जाए तो जरा कठिन है। कब नशा टूट जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता।

मुल्ला नसरुद्दीन स्टेशन पर खड़ा था। पत्नी को बिदा कर रहा था। गाड़ी छूट गई। किसी परिचित ने पूछा कि नसरुद्दीन! पत्नी कहां जा रही है?

मुल्ला ने कहा: हनीमून पर, सुहागरात पर।

मित्र थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, "क्या कहते हो? तुम्हारी ही पत्नी है न?"

मुल्ला ने कहा: मेरी ही है।

तो अकेली कैसे जा रही है हनीमून पर?

मुल्ला ने कहा: हम पिछले साल हनीमून पर हो आए, यह सस्ता भी था, अलग-अलग जाना, सुविधापूर्ण भी था।

और फिर मैंने सुना है कि हनीमून के बाद विवाह फीका हो जाता है। तो हम अलग-अलग हो आए हैं, ताकि विवाह जो है फीका न हो। हनीमून पर हो भी आए हैं नियमानुसार, और हनीमून अभी हुआ भी नहीं।

वह जो हनीमून है, वह जो सुहागरात है, वह जो दिखाई पड़ता है, वह आपके भीतर केमिकल्स ही हैं। इसलिए बहुत ख्याल रखें, जहां अमरीका में या यूरोप में शादी के पहले यौन के संबंध निर्मित होने लगे हैं, वहां

हनीमून तिरोहित हो गया। वहां हनीमून पैदा होता था--अगर बीस पच्चीस वर्ष की उम्र तक आपने अपनी काम-ऊर्जा को संगृहीत किया हो तो ही वे केमिकल्स निर्मित होते थे संग्रह के कारण, जो एक स्त्री और पुरुष को देवी और देवता बना देते थे। अब वे संग्रहीत ही नहीं होते। इसलिए हनीमून वैसा ही साधारण होता है जैसा कि साधारण रोज के दिन होते हैं।

हमारे भीतर रासायनिक उपक्रम हैं, जैविक विज्ञान के अनुसार, जिससे हम सम्मोहित होते रहते हैं। जब आप एक स्त्री के प्रेम में गिरते हैं तो आप मूर्छित हैं। इसे महावीर ने प्रमाद कहा है। जिसको जीव विज्ञानी बेहोशी के रासायनिक द्रव्य कहता है उसको महावीर ने प्रमाद कहा है। आप बेहोश हो जाते हैं।

इस बेहोशी को जो नहीं तोड़ता रहता है निरंतर, वह आदमी कभी भी कमलवत नहीं हो पाएगा। और जो कमलवत नहीं हो पाएगा, वह इस कीचड़ में कीचड़ ही रहेगा। इस कीचड़ के जगत में उसे फूल के होने का आनंद उपलब्ध नहीं हो सकता। उसे कीचड़ की ही पीड़ा झेलनी पड़ेगी।

प्रमाद मिटता है ध्यान से। ध्यान प्रमाद के विपरीत है। ध्यान का अर्थ है होश। जो भी करें, होश से करना। अगर प्रेम भी करें तो होश से करना। यह कठिन मामला है। न चोरी हो सकती होश से, न क्रोध हो सकता होश से, न प्रेम हो सकता होश से। बेहोशी उनकी अनिवार्य शर्त है। बेहोश हों तो ही वे होते हैं।

इसलिए अंग्रेजी में शब्द अच्छा है। हम कहते हैं कि कोई आदमी प्रेम में गिर गया, वन हैज फालन इन लवा कहना चाहिए, वन हैज राइजन इन लवा कहते हैं, गिर गया बेचारा; वह गिर गया, ठीक ही कहते हैं। क्योंकि बेहोशी का अर्थ है गिर जाना, होश खो दिया, सिर गंवा दिया।

इसलिए प्रेमी सबको पागल मालूम पड़ता है। इसका यह मतलब नहीं, कि जब आप प्रेम में गिरेंगे तब आपको पागलपन पता चलेगा। तब आपको सारी दुनिया पागल मालूम पड़ेगी। आप भर समझदार मालूम पड़ेंगे, और सारी दुनिया आपको पागल समझेगी। ऐसा नहीं है कि उनकी कोई बुद्धि बढ़ गई है। वे भी गिरते रहे हैं, गिरेंगे। लेकिन जब तक नहीं गिरे हैं, तब तक वे समझते हैं, देखते हैं, किसके पैर डगमगा रहे हैं, कौन बेहोशी में चल रहा है।

आसक्ति प्रमाद है, ध्यान, अनासक्ति है, कितने होश से जीते हैं। एक-एक पल होश में रह गौतम।

"इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका तू। भला किनारे पहुंच कर तू क्यों अटक रहा है?"

महावीर कहते हैं, गौतम! तेरा स्नेह मुझसे अटक गया है। अब तू मुझे प्रेम करने लगा है। यह भी छोड़। पत्नी का, पति का, मित्र का, स्वजन का मोह छोड़ दिया, यह गुरु का मोह भी छोड़। यह स्नेह मत बना। यह आसक्ति मत बना।

"उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।"

एक क्षण को भी बेहोश मत जी। उठ, तो यह जानते हुए उठ, कि तू उठ रहा है। बैठ तो जानते हुए बैठ, कि तू बैठ रहा है। श्वास भी ले तो यह जानते हुए ले, कि तू श्वास ले रहा है। यह श्वास भीतर गई तो महावीर ने कहा है, जान कि भीतर गई। यह श्वास बाहर गई, तो जान कि बाहर गई। तेरे भीतर कुछ भी न हो पाए जो तेरे बिना जाने हो रहा है।

यह कठिनतम साधना है, लेकिन एकमात्र साधना है। अनेक-अनेक रास्तों से लोग इसी साधना पर पहुंचते हैं। क्योंकि जब कोई व्यक्ति एक क्षण भी बेहोशी नहीं करता है और निरंतर होश की चेष्टा में लगा रहता है। भोजन करे तो होशपूर्वक, बिस्तर पर लेटने जाए तो होशपूर्वक, करवट ले तो रात में होशपूर्वक, इतना जो होश से जीता है, धीरे-धीरे होश सघन हो जाता है, इंटेंस हो जाता है। और जब होश सघन होता है तो अंतर-ज्योति बनती है। होश की सघनता ही भीतर की ज्योति है। होश का बिखर जाना ही भीतर का अंधकार है। जितना होश सघन हो जाता है, उतने हम प्रकाशित हो जाते हैं। और यह प्रकाश भीतर हो, तो फिर आसक्ति निर्मित नहीं होती। अंधेरे में निर्मित होती है। यह प्रकाश भीतर हो तो आपको मिल गई वह व्यवस्था, जिससे कीचड़ से

कमल अपने को दूर करता जाएगा। होश बीच की डण्डी है, जिससे कीचड़ से कमल दूर चला जाता है। पार हो जाता है। फिर कुछ भी उसे स्पर्श नहीं करता। फिर वह अस्पर्शित और कुंआरा रह जाता है।
कमल का कुंआरापन संन्यास है।

आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें।

एक ही नियम: होश (प्रमाद-स्थान-सूत्र: 1)

पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहावरं।
तब्भावादेसओ वावि, बालं पंडियमेव वा।।
दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो,
मोहो हओ जस्स न होई तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होई लोहो,
लोहो हओ जस्स न किंचणाइं।।

प्रमाद को कर्म कहा है और अप्रमाद को अकर्म अर्थात् जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं वे कर्म-बंधन करने वाली हैं और जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करतीं। प्रमाद के होने और न होने से मनुष्य क्रमशः बाल-बुद्धि (मूर्ख) और पंडित कहलाता है।

जिसे मोह नहीं उसे दुख नहीं, जिसे तृष्णा नहीं उसे मोह नहीं, जिसे लोभ नहीं उसे तृष्णा नहीं, और जो ममत्व से अपने पास कुछ भी नहीं रखता, उसका लोभ नष्ट हो जाता है।

पहले एक-दो प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है कि "स्नेहयुक्त प्रेम और स्नेहमुक्त प्रेम में क्या अंतर है। साथ ही काम, प्रेम और करुणा की आंतरिक भिन्नता पर भी कुछ कहें।"

जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह एक बंधन है, मुक्ति नहीं। और जो प्रेम बंधन है उसे प्रेम कहना भी व्यर्थ ही है। प्रेम का बंधन पैदा होता है अपेक्षा से। मैं किसी को प्रेम करूं तो मैं सिर्फ प्रेम करता नहीं, कुछ पाने को प्रेम करता हूं। प्रेम करना शायद साधन है, प्रेम पाना साध्य है। मैं प्रेम पाना चाहता हूं, इसलिए प्रेम करता हूं।

मेरा प्रेम करना एक इनवेस्टमेंट है। उसके बिना प्रेम पाना असंभव है। इसलिए जब मैं प्रेम करता हूं प्रेम पाने के लिए, तब प्रेम करना केवल साधन है, साध्य नहीं। नजर मेरी पाने पर लगी है। देना गौण है, देना पाने के लिए ही है। अगर बिना दिए चल जाए तो मैं बिना दिए चला लूंगा। अगर झूठा धोखा देने से चल जाए कि मैं प्रेम दे रहा हूं, तो मैं धोखे से चला लूंगा, क्योंकि मेरी आकांक्षा देने की नहीं, पाने की है। मिलना चाहिए।

जब भी हम देते हैं कुछ पाने को, तो हम सौदा करते हैं। स्वभावतः सौदे में हम कम देना चाहेंगे और ज्यादा पाना चाहेंगे। इसलिए सभी सौदे के प्रेम व्यवसाय हो जाते हैं, और सभी व्यवसाय कलह को उत्पन्न करते हैं। क्योंकि सभी व्यवसाय के गहरे में लोभ है, छीनना है, झपटना है, लेना है। इसलिए हम इस पर तो ध्यान ही नहीं देते कि हमने कितना दिया। हम सदा इस पर ध्यान देते हैं कि कितना मिला। और दोनों ही व्यक्ति इसी पर ध्यान देते हैं कि कितना मिला। दोनों ही देने में उत्सुक नहीं हैं, पाने में उत्सुक हैं।

वस्तुतः हम देना बंद ही कर देते हैं और पाने की आकांक्षा में पीड़ित होते रहते हैं। फिर प्रत्येक को यह ख्याल होता है कि मैंने बहुत दिया और मिला कुछ भी नहीं।

इसलिए हर प्रेमी सोचता है कि मैंने इतना दिया और पाया क्या? मां सोचती है, मैंने बेटे को इतना प्रेम दिया और मिला क्या? पत्नी सोचती है कि मैंने पति को इतना प्रेम दिया और मिला क्या? पति सोचता है, मैंने पत्नी के लिए सब कुछ किया, मुझे मिला क्या?

जो आदमी भी आपको कहीं कहते मिले कि मैंने इतना किया और मुझे मिला क्या, आप समझ लेना, उसने प्रेम किया नहीं, सौदा किया। दृष्टि ही जब पाने पर लगी हो, तो प्रेम जन्मता ही नहीं। यही अपेक्षा से भरा हुआ प्रेम बंधन बन जाता है। और तब इस प्रेम से सिवाय दुख के, पीड़ा के, कलह के और जहर के कुछ भी पैदा नहीं होता।

एक और प्रेम भी है जो व्यवसाय नहीं है, सौदा नहीं है। उस प्रेम में देना ही महत्वपूर्ण है, लेने का सवाल ही नहीं उठता। देने में ही बात पूरी हो जाती है, देना ही साध्य है। तब वैसा व्यक्ति प्रेम मिले, इसकी भाषा में नहीं सोचता, प्रेम दिया, इतना काफी है। मैं प्रेम दे सका, इतना काफी है। और जिसने मेरा प्रेम लिया उसका अनुग्रह है, क्योंकि लेने से भी इनकार किया जा सकता है।

फर्क को समझ लें।

मैं अगर आपको प्रेम दूं और मेरी नजर लेने पर हो तो बंधन निर्मित होगा। और अगर मैं प्रेम दूं, और मेरी नजर देने पर ही हो तो प्रेम मुक्ति बन जाएगा। और जब प्रेम मुक्ति होता है, तभी उसमें सुवास होती है। क्योंकि जब आगे कुछ मांग नहीं है तो पीड़ा का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब प्रेम देना ही होता है, मात्र देना, तो जो ले लेता है उसके अनुग्रह के प्रति, उसकी दया के प्रति, उसने स्वीकार किया, इसके प्रति भी मन गहरे आभार से भर जाता है, अहोभाव से भर जाता है। जो मांगता है, वह सदा कहेगा कि मुझे कुछ मिला नहीं। जो देता है वह कहेगा कि इतने लोगों ने मेरा प्रेम स्वीकार किया, इतना स्वीकार किया, इतना मेरे प्रेम में कुछ था भी नहीं कि कोई स्वीकार करे।

जिसका जोर देने पर है, उसका अनुग्रह भाव बढ़ता जाएगा। जिसका जोर लेने पर है उसका भिक्षा भाव बढ़ता जाएगा। और भिखारी कभी भी धन्यवाद नहीं दे सकता, क्योंकि भिखारी की आकांक्षाएं बहुत हैं और जो मिलता है, वह हमेशा थोड़ा है। सम्राट धन्यवाद दे सकता है, क्योंकि देने की बात है, लेने की कोई बात नहीं है। ऐसा प्रेम बंधन मुक्त हो जाता है।

इसमें और एक बात समझ लेनी जरूरी है जो बड़ी मजेदार है और जीवन के जो गहरे पैराडाक्सेज, जीवन के जो गहरे विरोधाभास हैं, पहेलियां हैं, उनमें से एक है। जो मांगता है उसे मिलता नहीं और जो नहीं मांगता उसे बहुत मिल जाता है। जो देता है पाने के लिए उसके हाथ की पूंजी समाप्त हो जाती है, लौटता कुछ नहीं है। जो देता है पाने के लिए नहीं, दे देने के लिए, बहुत वर्षा हो जाती है उसके ऊपर; बहुत लौट आता है।

उसके कारण हैं।

जब भी हम मांगते हैं, तब दूसरे आदमी को देना मुश्किल हो जाता है। जब भी हम मांगते हैं तो दूसरे आदमी को लगता है कि उससे कुछ छीना जा रहा है। जब भी हम मांगते हैं तो दूसरे आदमी को लगता है, वह परतंत्र हो रहा है। जब हमारी मांग उसे चारों तरफ से घेर लेती है तो उसे लगता है कि कारागृह हो गया है यह। अगर वह देता भी है तो मजबूरी है, प्रसन्नता खो जाती है। और बिना प्रसन्नता के जो दिया गया है वह कुम्हलाया हुआ होता है, मरा हुआ होता है। अगर वह देता भी है तो कर्तव्य हो जाता है, एक भार हो जाता है कि देना पड़ेगा। और प्रेम इतनी कोमल, इतनी डेलिकेट, इतनी नाजुक चीज है कि कर्तव्य का ख्याल आते ही मर जाती है।

जहां ख्याल आ गया कि यह प्रेम मुझे करना ही पड़ेगा, यह मेरा पति है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा मित्र है, यह तो प्रेम करना ही पड़ेगा। जहां प्रेम करना पड़ेगा बन जाता है, कर्तव्य बन जाता है, वहीं वह प्राण तिरोहित हो गए जिससे पक्षी उड़ता था। अब मरा हुआ पक्षी है, जिसके पंख सज ाकर रखे जा सकते हैं, लेकिन उड़ने के काम में नहीं आ सकते। वह जो उड़ता था, वह थी स्वतंत्रता। कर्तव्य में कोई स्वतंत्रता नहीं है, एक बोझ है, एक ढोने का ख्याल है।

प्रेम इतना नाजुक है कि इतना सा बोझ भी नहीं सह सकता। प्रेम सूक्ष्मतम घटना है मनुष्य के मन में घटने वाली। जहां तक मन का संबंध है, प्रेम बारीक से बारीक घटना है। फिर प्रेम के बाद मन में और कोई बारीक घटना नहीं है। फिर तो जो घटता है वह मन के पार है, जिसको हम प्रार्थना कहते हैं। वह मन के भीतर नहीं है। लेकिन मन की आखिरी सीमा पर, मन का जो सूक्ष्मतम रूप घट सकता है, वह प्रेम है। शुद्धतम, मन की जो आत्यंतिक, अल्टीमेट पासिविलिटी है, आखिरी संभावना है, वह प्रेम है। वह बहुत नाजुक है। हम वह भी काम करता है चित्रों के बेचने का। वह एक दुकानदार है, वह चित्र बेचने का काम करता है। उसकी कल्पना के ही बाहर है, समझ के ही बाहर है कि चित्र बनाने में ही कोई बात हो सकती है, जब तक चित्र बिके न, तब तक बेमानी है। तब तक व्यर्थ गया श्रम।

उसने सोचा कि यह वानगाग जीवन भर हो गया बनाते-बनाते, इसका एक चित्र न बिका। कितना दुखी न होता होगा मन में! स्वभावतः व्यवसायी को लगेगा कि कितना दुखी न होता होगा मन में, कभी कुछ मिला नहीं। सारा जीवन व्यर्थ गया। तो उसने एक मित्र को कुछ पैसे दिए और कहा कि जाकर वानगाग का एक चित्र खरीद लो, कम से कम एक चित्र तो उसका बिके। उसको लगे कि कुछ मेरा चित्र भी बिका।

वह मित्र गया। उसे तो खरीदना था, यह कर्तव्य था। उसे कोई चित्र से लेना-देना तो था नहीं। वानगाग चित्र दिखा रहा है, वह चित्र वगैरह देखने में उतना उत्सुक नहीं है, वह एक चित्र देख कर कहता है कि यह मैं खरीदना चाहता हूं। देखने में उसने कोई रस न लिया, डूबा भी नहीं, चित्रों में उतरा भी नहीं, चित्रों से उसका कोई स्पर्श भी नहीं हुआ। वानगाग खड़ा हो गया, उसकी आंख से आंसू गिरने लगे। उसने कहा, कि मालूम होता है, मेरे भाई ने तुम्हें पैसे देकर भेजा। तुम बाहर निकल जाओ और कभी दुबारा लौट कर यहां मत आना। चित्र बेचा नहीं जा सकता।

वह आदमी तो हैरान हुआ। वानगाग का भाई भी हैरान हुआ कि यह पता कैसे चला! जब उसने वानगाग को पूछा तो वानगाग ने कहा, इसमें भी कुछ पता चलने की बात है! उस आदमी को मतलब ही न था चित्रों से। उसे तो खरीदना था। खरीदने में उसका कोई भाव नहीं था। मैं समझ गया कि तुमने ही भेजा होगा।

जीवन भर जिसके चित्र नहीं बिके, हमें भी लगेगा, कितनी पीड़ा रही होगी, लेकिन वानगाग पीड़ित नहीं था। आनंदित था। आनंदित था इसलिए कि वह बना पाया।

प्रेम भी ऐसा ही है। वह चित्र बनाना वानगाग का प्रेम था। जब आप किसी को प्रेम करते हैं तो पीछे कुछ मिलेगा, ऐसा नहीं, जब आप प्रेम करते हैं तभी आपके प्राण फैलते हैं, विस्तृत होते हैं। जब आप प्रेम के क्षण में होते हैं तभी आपकी चेतना छलांग लगा कर ऊंचाइयों पर पहुंच जाती है। जब आप प्रेम के क्षण में होते हैं, जब आप दे रहे होते हैं, तभी वह घटना घट जाती है जिसे आनंद कहते हैं। अगर आपको वह घटना नहीं घटी है तो आप समझना कि आप व्यवसायी हैं, प्रेम के काव्य को आपने जाना नहीं है।

अगर आप पूछते हैं कि मिलेगा क्या, तब फिर बहुत फर्क नहीं रह जाता, तब बहुत फर्क नहीं रह जाता। एक वेश्या भी प्रेम करती है, वह भी मिलने के लिए क्या मिलेगा? इसमें उत्सुक है, प्रेम में उत्सुक नहीं है। एक पत्नी भी प्रेम करती है, वह भी क्या मिलेगा, इसमें उत्सुक है। प्रेम में उत्सुक नहीं है। मिलना सिक्कों में हो सकता है, साड़ियों में हो सकता है, मिलना गहनों में हो सकता है, मकान में हो सकता है, सुरक्षा में हो सकता है, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। यह सब इकोनामिकली हैं, सभी आर्थिक मामले हैं, चाहे नगद रुपए हों, चाहे नगद साड़ियां हों, चाहे नगद गहने हों, चाहे नगद मकान हो, चाहे भविष्य की सुरक्षा हो, बुढ़ापे में सेवा की व्यवस्था हो, कुछ भी हो, यह सब पैसे का ही मामला है।

तो वेश्या में और फिर प्रेयसी में फर्क कहां है? इतना ही फर्क है कि वेश्या तत्काल इंतजाम कर रही है, प्रेयसी लंबा इंतजाम कर रही है, लांग टर्म प्लानिंग। लेकिन फर्क कहां है? अगर मिलने पर ध्यान है तो कोई फर्क

नहीं है। प्रेम वहां नहीं है, व्यवसाय है। फिर व्यवसाय कई ढंग के होते हैं--पत्नी के ढंग का भी होता है, वेश्या के ढंग का भी होता है।

यह वेश्या और पत्नी में कोई बुनियादी अंतर तब तक नहीं हो सकता, जब तक ध्यान मिलने पर लगा हुआ है। बुनियादी अंतर उस दिन पैदा होता है जिस दिन प्रेम अपने में पूरा है, उसके पार कुछ भी नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि उसके पार कुछ घटित नहीं होगा,

बहुत घटित होगा, लेकिन मन से उसका कोई लेना-देना नहीं है। उसकी कोई अपेक्षा नहीं है, उसकी कोई आयोजना नहीं है। क्षण काफी है, क्षण अनंत है। जो मौजूद है वह बहुत है।

इसलिए प्रेम में एक गहन संतृप्ति है, एक गहन संतोष है। एक इतनी गहन तृप्ति का भाव है, फुलफिलमेंट का, सब आसकाम मन हो जाता है। लेकिन हम प्रेमियों को देखें, वहां कोई फुलफिलमेंट नहीं है। वहां, सिवाय दुख, छीना-झपटी, कलह, और ज्यादा, और ज्यादा मिलना चाहिए, उसकी दौड़, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या ऐसी हजार तरह की बीमारियां हैं, तृप्ति का कोई भी भाव नहीं है।

जिस प्रेम में मांग है, वह बंधनयुक्त है। और जिस प्रेम में दान है, वह बंधनमुक्त है। यह जो मुक्त दान है प्रेम का, इसमें अगर काम की घटना घटती हो; यह जो दान है मुक्त प्रेम का इसे ठीक से समझ लें।

जिसमें मांग है उसमें तो काम घटेगा ही। घटेगा नहीं, काम के लिए ही प्रेम होगा। सेक्स ही आधार होगा सारे प्रेम का जिसमें व्यवसाय है। वहां प्रेम तो बहाना होगा। वैज्ञानिक कहते हैं, वह जस्ट ए फोर प्ले--वह कामवासना में उतरने के पहले की थोड़ी क्रिया।

इसलिए जब नया-नया संबंध होता है दो व्यक्तियों का, तो काफी काम-क्रीड़ा चलती है। पति-पत्नी की काम-क्रीड़ा बंद हो जाती है। सीधा काम ही हो जाता है। फोर प्ले, वह जो पहले का खेल है वह सब बंद हो जाता है। उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती, लोग आश्वस्त हो जाते हैं।

जिसमें लक्ष्य कुछ और है, कुछ पाना है, वहां यौन केंद्र होगा। जहां लक्ष्य कोई और नहीं है, प्रेम देना है, वहां भी यौन घटित हो सकता है, लेकिन गौण होगा। छाया की तरह होगा। यौन के लिए वहां प्रेम नहीं होगा, प्रेम की घटना में यौन भी घट सकता है। लेकिन तब वह यौन सेक्सुअल नहीं रह जाएगा। उसमें दृष्टि ही पूरी बदल जाएगी। वह प्रेम की विराट घटना के बीच घटती हुई एक घटना होगी। प्रेम यौन के लिए नहीं होगा, प्रेम में कहीं यौन समाविष्ट हो जाएगा।

यह दूसरी स्थिति है, लेकिन यौन संभव है। इसकी शुद्धतम तीसरी स्थिति है जहां यौन तिरोहित हो जाता है। उसी को हम करुणा कहते हैं। जहां प्रेम बस प्रेम रह जाता है। न तो यौन लक्ष्य रहता, और न यौन, प्रेम के बीच में घटने वाली कोई चीज रहती है। सिर्फ प्रेम रह जाता है।

जैसे हम दीया जलाएं, तो थोड़ा सा धुआं उठे। जैसे हम धुआं करें, तो थोड़ी सी लपट जले। एक आदमी धुआं करे तो थोड़ी सी लपट जल जाए। ऐसा पहले ढंग का प्रेम। यौन, धुआं असली चीज है। अगर उस धुएं के करने में कहीं लपट जल जाती है प्रेम की, तो गौण है, बात अलग है। जल जाए तो ठीक, न जले तो ठीक। और जले भी तो उसके जलाने का मजा इतना ही है कि धुआं ठीक से दिखाई पड़ जाए। बाकी और कोई प्रयोजन नहीं है।

दूसरी स्थिति, जहां हम दीये की ज्योति जलाते हैं। लक्ष्य ज्योति का जलाना है। थोड़ा धुआं भी पैदा हो जाता है। धुएं के लिए ज्योति नहीं जलाई है। ज्योति जलाते हैं तो थोड़ा धुआं पैदा हो जाता है। प्रेम जलाते हैं तो थोड़ा सा यौन सरक आता है।

तीसरी अवस्था है, जहां सिर्फ शुद्ध ज्योति रह जाती है, कोई धुआं नहीं रहता--स्मोकलेस फ्लेम, धूम्ररहित ज्योति। उसका नाम करुणा है।

हम पहले प्रेम में जीते हैं। कभी-कभी कोई कवि, कोई चित्रकार, कोई संगीतज्ञ, कोई कलात्मक, एस्थेटिक बुद्धि की प्रज्ञा, दूसरे प्रेम को उपलब्ध होती है। लाखों में एक और कभी करोड़ों में एक व्यक्ति तीसरे प्रेम को उपलब्ध होता है--बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट, कृष्ण यह है शुद्ध प्रेम। यहां अब लेने का तो कोई सवाल ही नहीं है, यहां अब देने का भी भाव नहीं है।

इसको ठीक से समझ लें। यहां लेने का तो कोई सवाल ही नहीं है, यहां देने का भी कोई भाव नहीं है। यहां तो करुणा ऐसे ही बहती है

जैसे फूल से गंध बहती है। राह निर्जन हो तो भी बहती है। कोई न निकले तो भी बहती है। जैसे दीये से रोशनी बहती है। कोई न हो देखने वाला तो भी बहती है।

पहले तरह के प्रेम में कोई देने वाला हो, तो बहता है। दूसरे तरह के प्रेम में कोई लेने वाला हो, तो बहता है। तीसरे तरह के प्रेम में जिसको हमने करुणा कहा है, कोई भी न हो, न लेने वाला, न देने वाला, तो भी बहता है; स्वभाव है।

बुद्ध अकेले बैठे हैं तो भी करुणापूर्ण हैं। कोई आ गया तो भी करुणापूर्ण हैं। कोई चला गया तो भी करुणापूर्ण हैं।

पहला प्रेम मांग करता है कि मेरे अनुकूल जो है वह दो, तो मेरे प्रेम को मैं दूंगा। दूसरा प्रेम अनुकूल की मांग नहीं करता, लेकिन जहां प्रतिकूल होगा वहां से हट जाएगा। तीसरा प्रेम, प्रतिकूल हो, तो भी नहीं हटेगा।

मैं दूँ पहले प्रेम में आप भी लौटाएं तो ही टिकेगा। दूसरे प्रेम में आप न लौटाएं, सिर्फ लेने को राजी हों तो भी टिकेगा। तीसरे प्रेम में आप द्वार भी बंद कर लें, लेने को भी राजी न हों, नाराज भी हो जाते हों, क्रोधित भी होते हों, तो भी बहेगा।

तीसरा प्रेम अबाध है, उसे कोई बाधा नहीं रोक सकती। उसे लेने वाला भी नहीं रोक सकता। वह बहता ही रहेगा। वह अपने को लेने से रोक सकता है, लेकिन प्रेम की धारा को नहीं रोक सकता। उसको हमने करुणा कहा है।

करुणा प्रेम का परम रूप है।

पहला प्रेम, शरीर से बंधा होता है। दूसरा प्रेम, मन के घेरे में होता है। तीसरा प्रेम, आत्मा के जीवन में प्रवेश कर जाता है। ये हमारे तीन घेरे हैं--शरीर का, मन का, आत्मा का।

शरीर से बंधा हुआ प्रेम यौन होता है मूलतः। प्रेम सिर्फ आस-पास चिपकाए हुए कागज के फूल होते हैं। दूसरा प्रेम मूलतः प्रेम होता है। उसके आस-पास शरीर की घटनाएं भी घटती हैं, क्योंकि मन शरीर के करीब है। तीसरे प्रेम में शरीर बहुत दूर हो जाता है, बीच में मन का विस्तार हो जाता है, शरीर से कोई संबंध नहीं रह जाता। तीसरा प्रेम शुद्ध आत्मिक है।

एक प्रेम है शारीरिक, बंधन वाला। दूसरा प्रेम है शुद्ध मानसिक, निर्बंध। तीसरा प्रेम है शुद्ध आत्मिक। न बंधन है, न अबंधन है। न लेने का भाव है, न देने का भाव है। तीसरा प्रेम है स्वभाव।

बुद्ध से कोई पूछे, महावीर से कोई पूछे कि क्या आप हमें प्रेम करते हैं, तो वे कहेंगे कि नहीं। वे कहेंगे, हम प्रेम हैं, करते नहीं हैं। करते तो वे लोग हैं जो प्रेम नहीं हैं। उन्हें करना पड़ता है, बीच-बीच में करना पड़ता है। लेकिन जो प्रेम ही है, उसे करना नहीं पड़ता, करने का ख्याल ही नहीं उठता। करना तो हमें उन्हीं चीजों को पड़ता है--जो हम नहीं हैं। करना अभिनय है--होना--तो डूंग और बीडंग का, करने और होने का फर्क है। करते हम वह हैं, जो हम हैं नहीं। मां कहती है, मैं बेटे को प्रेम करती हूँ, क्योंकि वह प्रेम है नहीं। पति कहता है, मैं पत्नी को प्रेम करता हूँ, क्योंकि वह प्रेम है नहीं। बुद्ध नहीं कहते कि मैं प्रेम करता हूँ, महावीर नहीं कहते हैं कि मैं प्रेम करता हूँ, क्योंकि वे प्रेम हैं। प्रेम उनसे हो ही रहा है। करने के लिए कोई चेष्टा, कोई आयोजन, कोई विचार भी आवश्यक नहीं है।

अब सूत्र--

"प्रमाद को कर्म कहा है, अप्रमाद को अकर्म। जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं, वे कर्म-बंधन करने वाली हैं। जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करतीं। प्रमाद के होने न होने से मनुष्य क्रमशः मूढ़ और प्रज्ञावान कहलाता है।"

जो मैं कह रहा था, उससे जुड़ा हुआ सूत्र है। महावीर करने को कर्म नहीं कहते, न करने को अकर्म नहीं कहते। हम करते हैं तो कहते हैं कर्म, और नहीं करते हैं तो कहते हैं अकर्म। हमारा जानना बहुत ऊपरी है। आपने क्रोध नहीं किया तो आप कहते हैं कि मैंने क्रोध नहीं किया। आपने क्रोध किया तो आप कहते हैं मैंने क्रोध किया। जब आप कुछ करते हैं तो उसको कर्म कहते हैं, और कुछ नहीं करते हैं तो उसे अकर्म कहते हैं।

महावीर प्रमाद को कर्म कहते हैं, करने को नहीं। महावीर कहते हैं, मूर्खा से किया हुआ हो तो कर्म, होशपूर्वक किया हो तो अकर्म। जरा जटिल है और थोड़ा गहन उतरना पड़ेगा।

अगर आपने कोई भी काम बेहोशीपूर्वक किया हो, आपको करना पड़ा हो, आप अचेतन हो गए हों करते वक्त, आप अपने मालिक न रहे हों करते वक्त, आपको ऐसा लगा हो कि जैसे आप पजेस्ट हो गए हों, किसी ने आपसे करवा लिया है, आप मुक्त नियंता न रहे हों, तो कर्म है।

अगर आप अपने कर्म के मालिक हों, नियंता हों, किसी ने करवा न लिया हो, आपने ही किया हो पूरी सचेतनता से, पूरे होश से, अप्रमाद से, तो महावीर कहते हैं; अकर्म।

इसे हम उदाहरण लेकर समझें।

आपने क्रोध किया। क्या आप कह सकते हैं कि आपने क्रोध किया? या आपसे क्रोध करवा लिया गया? एक आदमी ने गाली दी, एक आदमी ने आपको धक्का मार दिया, एक आदमी ने आपके पैर पर पैर रख दिया, एक आदमी ने आपको इस ढंग से देखा, इस ढंग का व्यवहार किया कि क्रोध आप में हुआ, क्रोध आप में किसी से पैदा हुआ। यह आदमी गाली न देता, यह आदमी पैर पर पैर न रख देता, यह आदमी इस भद्दे ढंग से देखता नहीं तो क्रोध नहीं होता। क्रोध आपने नहीं किया, किसी और ने आपसे करवा लिया--पहली बात। मालिक कोई और है, मालिक आप नहीं हैं। इसको कर्म कहना ही फिजूल है, करने वाले ही जब आप नहीं हैं, तो इसे कर्म कहना फिजूल है। बटन हमने दबाई और पंखा चल पड़ा। पंखा नहीं कह सकता कि यह मेरा कर्म है। या कि कह सकता है? बटन बंद कर दी, पंखा चलना बंद हो गया। यह पंखे से करवाया गया। पंखा मालिक नहीं है, पंखा अपने वश में नहीं है। पंखा किसी और के वश में है।

और के वश में होने का मतलब होता है, बेहोश होना। जब आप क्रोध करते हैं तब आप होश में करते हैं? कभी आपने होश में क्रोध किया है? करके देखना चाहिए। पूरा होश संभालकर कि मैं क्रोध कर रहा हूं, और तब आप अचानक पायेंगे कि पैर के नीचे से जमीन खिसक गई, क्रोध तिरोहित हो गया।

होशपूर्वक आज तक क्रोध नहीं हो सका। और जब भी होगा तब बेहोशी में होगा। जब आप क्रोध करते हैं तब आप मौजूद नहीं होते, आप यंत्रवत हो जाते हैं। कोई बटन दबाता है, क्रोध हो जाता है। कोई बटन दबाता है, प्रेम हो जाता है। कोई बटन दबाता है, ईर्ष्या हो जाती है। कोई बटन दबाता है, यह हो जाता है, वह हो जाता है। आप हैं कि सिर्फ बटनों का एक जोड़ हैं, एक मशीन हैं जिसमें कई बटनें लगी हैं। यहां से दबाओ ऐसा हो जाता है, वहां से दबाओ वैसा हो जाता है।

एक आदमी मुस्कुराते हुए आकर कह देता है कुछ दो शब्द प्रशंसा के, भीतर कैसे गीत लहराने लगते हैं, वीणा बजने लगती है। और एक आदमी जरा तिरछी आंख से देख लेता है और एक तिरस्कार का भाव आंख से झलक जाता है। भीतर सब फूल मुरझा जाते हैं, सब धारा रुक जाती है गीत की। आग जलने लगती है, धुआं फैलने लगता है। आप हैं या सिर्फ चारों तरफ से आने वाली संवेदनाओं का आघात आपको चलायमान करता रहता है?

महावीर कहते हैं, मैं उसे ही कर्म कहता हूं, जो प्रमाद में किया गया हो। उसी से बंधन निर्मित होता है, इसलिए कर्म कहता हूं। जिसको आपने मूर्खी में किया है, उससे आप बंध जाएंगे। करने में ही बंध गए हैं, करने के पहले भी बंधे थे, इसीलिए किया है। वह बंधन है।

अगर हम अपने कर्मों की जांच-पड़ताल करें तो हम पाएंगे, वे सभी ऐसे हैं। वे सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। उसमें हम कहीं भी उसे अकर्म कहते हैं।

महावीर प्रमाद को कर्म कहते हैं, करने को नहीं। महावीर कहते हैं, मूर्खी से किया हुआ हो तो कर्म, होशपूर्वक किया हो तो अकर्म। जरा जटिल है और थोड़ा गहन उतरना पड़ेगा।

अगर आपने कोई भी काम बेहोशीपूर्वक किया हो, आपको करना पड़ा हो, आप अचेतन हो गए हों करते वक्त, आप अपने मालिक न रहे हों करते वक्त, आपको ऐसा लगा हो कि जैसे आप पजेस्ड हो गए हों, किसी ने आपसे करवा लिया है, आप मुक्त नियंता न रहे हों, तो कर्म है।

अगर आप अपने कर्म के मालिक हों, नियंता हों, किसी ने करवा न लिया हो, आपने ही किया हो पूरी सचेतनता से, पूरे होश से, अप्रमाद से, तो महावीर कहते हैं; अकर्म।

इसे हम उदाहरण लेकर समझें।

आपने क्रोध किया। क्या आप कह सकते हैं कि आपने क्रोध किया? या आपसे क्रोध करवा लिया गया? एक आदमी ने गाली दी, एक आदमी ने आपको धक्का मार दिया, एक आदमी ने आपके पैर पर पैर रख दिया, एक आदमी ने आपको इस ढंग से देखा, इस ढंग का व्यवहार किया कि क्रोध आप में हुआ, क्रोध आप में किसी से पैदा हुआ। यह आदमी गाली न देता, यह आदमी पैर पर पैर न रख देता, यह आदमी इस भद्दे ढंग से देखता नहीं तो क्रोध नहीं होता। क्रोध आपने नहीं किया, किसी और ने आपसे करवा लिया--पहली बात। मालिक कोई और है, मालिक आप नहीं हैं। इसको कर्म कहना ही फिजूल है, करने वाले ही जब आप नहीं हैं, तो इसे कर्म कहना फिजूल है। बटन हमने दबाई और पंखा चल पड़ा। पंखा नहीं कह सकता कि यह मेरा कर्म है। या कि कह सकता है? बटन बंद कर दी, पंखा चलना बंद हो गया। यह पंखे से करवाया गया। पंखा मालिक नहीं है, पंखा अपने वश में नहीं है। पंखा किसी और के वश में है।

और के वश में होने का मतलब होता है, बेहोश होना। जब आप क्रोध करते हैं तब आप होश में करते हैं? कभी आपने होश में क्रोध किया है? करके देखना चाहिए। पूरा होश सभ्हाल कर कि मैं क्रोध कर रहा हूं, और तब आप अचानक पाएंगे कि पैर के नीचे से जमीन खिसक गई, क्रोध तिरोहित हो गया।

होशपूर्वक आज तक क्रोध नहीं हो सका। और जब भी होगा तब बेहोशी में होगा। जब आप क्रोध करते हैं तब आप मौजूद नहीं होते, आप यंत्रवत हो जाते हैं। कोई बटन दबाता है, क्रोध हो जाता है। कोई बटन दबाता है, प्रेम हो जाता है। कोई बटन दबाता है, ईर्ष्या हो जाती है। कोई बटन दबाता है, यह हो जाता है, वह हो जाता है। आप हैं कि सिर्फ बटनों का एक जोड़ हैं, एक मशीन हैं जिसमें कई बटनें लगी हैं। यहां से दबाओ ऐसा हो जाता है, वहां से दबाओ वैसा हो जाता है।

एक आदमी मुस्कुराते हुए आकर कह देता है कुछ दो शब्द प्रशंसा के, भीतर कैसे गीत लहराने लगते हैं, वीणा बजने लगती है। और एक आदमी जरा तिरछी आंख से देख लेता है और एक तिरस्कार का भाव आंख से झलक जाता है। भीतर सब फूल मुरझा जाते हैं, सब धारा रुक जाती है गीत की। आग जलने लगती है, धुआं फैलने लगता है। आप हैं या सिर्फ चारों तरफ से आने वाली संवेदनाओं का आघात आपको चलायमान करता रहता है?

महावीर कहते हैं, मैं उसे ही कर्म कहता हूं, जो प्रमाद में किया गया हो। उसी से बंधन निर्मित होता है, इसलिए कर्म कहता हूं। जिसको आपने मूर्खी में किया है, उससे आप बंध जायेंगे। करने में ही बंध गए हैं, करने के पहले भी बंधे थे, इसीलिए किया है। वह बंधन है।

अगर हम अपने कर्मों की जांच-पड़ताल करें तो हम पाएंगे, वे सभी ऐसे हैं। वे सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। उसमें हम कहीं भी मालिक नहीं हैं। हम केवल तंतुओं का एक जोड़ हैं और जगह-जगह से तंतु खींचे जाते हैं, और हमारे भीतर कुछ होता है। इसे महावीर कहते हैं, प्रमाद, मूर्च्छा, बेहोशी, अचेतना।

एक आदमी ने गाली दी, क्रोध हो गया। दोनों के बीच में जरा भी अंतराल नहीं है, जहां आप सजग हुए हों। और जहां आपने होशपूर्वक सुना हो कि गाली दी गई, और जहां आपने होशपूर्वक भीतर देखा हो कि कहां क्रोध पैदा हो रहा है, आप अगर दूर खड़े हो गए हों, गाली दी गई है, गाली सुनी गई है, गाली देने वाले के भीतर क्या हो रहा है, गाली सुनने वाले के भीतर क्या हो रहा है, अगर इन दोनों के पार खड़े होकर आपने देखा हो क्षण भर, तो उसका नाम होश है।

कहां लगी गाली, कहां घाव किया उसने, कहां छू दिया कोई पुराना छिपा हुआ घाव, कहां हरा हो गया कोई दबा हुआ घाव, कहां पड़ी चोट, क्यों पड़ी चोट, कहां भीतर मवाद बहने लगी। इसको अगर आपने खड़े होकर निष्पक्ष भाव से देखा हो जैसे यह गाली किसी और को दी गई हो, और ने तो दी है, किसी और को दी गई हो, अगर यह भी आपने देखा हो तो आप होश के क्षण में हैं। तो अप्रमाद है। और फिर आपने निर्णय किया हो कि क्या करना, और यह निर्णय शुद्ध रूप से आपका हो। यह निर्णय आपसे करवा न लिया गया हो, यह निर्णय आपका हो।

बुद्ध को कोई गाली दे, महावीर को कोई पत्थर मारे, जीसस को कोई सूली लगाए, तो भी वह साक्षी बने रहते हैं। यह जो साक्षी भाव है तो भी वे देखते रहते हैं। जीसस मरते वक्त भी प्रार्थना करते हैं, हे प्रभु! इन सबको माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

यह वही आदमी कह सकता है जो अपने शरीर से भी दूर खड़ा हो। नहीं तो यह कैसे कह सकते हैं आप? आपको कोई सूली दे रहा हो, और आप यह कह सकते हैं कि इनको माफ कर देना?

जीसस के शिष्य नहीं सोच रहे थे ऐसा। जीसस के शिष्य सोच रहे थे, इस वक्त होगा चमत्कार। पृथ्वी फटेगी, आग बरसेगी आकाश से, महाप्रलय हो जाएगी। जीसस का एक इशारा और भगवान से यह कहना कि नष्ट कर दो इन सबको, अभी चमत्कार हो जाएगा।

लेकिन जीसस ने जो कहा वह असली चमत्कार है। अगर जीसस ने यह कहा होता, कि नष्ट कर दो इन सबको, आग लगा दो, राख कर दो इस पूरी भूमि को, जिन्होंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया। मैं जो ईश्वर का इकलौता बेटा हूं। हे पिता, नष्ट कर दे इन सबको, तो शिष्य समझते कि चमत्कार हुआ।

लेकिन यह चमत्कार नहीं था, यह तो आप भी करते। यह तो कोई भी कर सकता था। यह चमत्कार था ही नहीं, क्योंकि यह तो जिसको सूली लगती है वह करता ही है, हो या न हो यह दूसरी बात है। सूली तो बहुत दूर है, कांटा गड़ता है तो सारी दुनिया में आग लगवा देने की इच्छा होती है। जरा सा दांत में दर्द होता है तो लगता है, कोई ईश्वर वगैरह नहीं है। सब नरक है।

यह तो सभी करते। आप थोड़ा सोचें, आप सूली पर लटके होते, क्या भाव उठता आपके भीतर? न तो पृथ्वी फटती आपके कहने से, क्योंकि ऐसे फटने लगे तो एक दिन भी बिना फटे नहीं रह सकती। एक क्षण नहीं रह सकती। न कोई सूरज आग बरसाता, न और कुछ होता। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आपका मन तो यही होता कि हो जाए ऐसा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो ज़िंदगी में दस-पांच बार हत्याएं करने का विचार न करता हो। दस-पांच बार अपनी हत्या करने का विचार न करता हो। दस-पांच बार सारी दुनिया को नष्ट कर देने का जिसे ख्याल न आ जाता हो, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है।

जीसस ने यह जो कहा कि इनको माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं, इसमें कई बातें निहित हैं।

पहली बात, ये जीसस के साथ कर रहे हैं, ऐसा जीसस को अगर लगता हो तो यह बात पैदा नहीं हो सकती। जिसके साथ ये कर रहे हैं वह जीसस से उतना ही दूर है जितना कि ये करने वाले लोग दूर हैं। यह चेतना भीतर अलग खड़ी है। एक तीसरा कोण मौजूद हो गया है।

साधारण आदमी की जिंदगी में दो कोण होते हैं--करने वाला, जिस पर किया जा रहा है, वह।

होश वाले आदमी की जिंदगी में तीन कोण होते हैं--जो कर रहा है वह, जिस पर किया जा रहा है वह, और जो दोनों को देख रहा है वह।

यह जो थर्ड, यह जो तीसरा है, यह जो तीसरी आंख है, यह जो देखने का तीसरा स्थान है, इसे महावीर कहते हैं, अप्रमाद।

बड़ा मुश्किल है, सूली पर चढ़े हों, हाथ में खिले ठोंके जा रहे हों, होश बचाए रखना मुश्किल है। जरा सा एक आदमी धक्का देता है होश खो जाता है। हमारा होश है ही कितना? किसी आदमी का होश मिटाना हो, जरा सी, कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। जरा सा कुछ और सारा होश खो जाता है। होश जैसे है ही नहीं। एक झिनी पर्त है, झूठी पर्त है ऊपर-ऊपर। जरा सा कंपन, सब टूट जाता है।

किसी भी आदमी को पागल करने में कितनी देर लगती है। आप जरूर दूसरों के बाबत सोच रहे होंगे, जिन-जिन को आपने पागल किया है। अपने बाबत सोचिए। पत्नी एक शब्द बोल देती है, और आप पागल हो जाते हैं। पत्नी को भी तब तक राहत नहीं मिलती, जब तक आप पागल हो न जायें। अगर न हों तो उसको लगता है, वश के बाहर हो गए।

एक मित्र मेरे पास आते हैं। पत्नी कर्कशा है, उपद्रवी है। वे मुझसे बार-बार कहते हैं, क्या करूं! सब सम्हाल कर घर जाता हूं, लेकिन उसका एक शब्द, और आग में घी का काम हो जाता है। बस उपद्रव शुरू हो जाता है।

मैंने उनसे कहा कि एक दिन सम्हाल कर मत जाओ, क्योंकि सम्हाल कर तुम जो जाते हो वही तुम्हारे भीतर इकट्ठा हो जाता है। फिर पत्नी जरा सा घी छिड़क देती है तो आग तो तुम सम्हाल कर ला रहे हो। एक दिन तुम सम्हाल कर जाओ ही मत। गीत गुनगुनाते जाओ, नाचते जाओ, सम्हाल कर मत जाओ, कोई फिकर ही मत करो, जो होगा देखा जाएगा। और जब पत्नी कुछ करे, क्योंकि तुमने आज तक बहुत क्रोध पत्नी पर कर लिया, कोई परिणाम तो होता नहीं, कोई हल तो होता नहीं। एक नई तरकीब का उपयोग करो। जब पत्नी कुछ करे तो तुम मुस्कुराते रहना। कुछ नहीं करना है, ऐसा नहीं, कुछ नहीं करोगे तो मुश्किल पड़ेगी। तुम मुस्कुराते रहना। यह कुछ करना रहेगा, एक बहाना रहेगा। हंसते रहना।

पांच-सात दिन बाद उनकी पत्नी ने आकर कहा कि मेरे पति को क्या हो गया है। बिल्कुल हाथ के बाहर जाते हुए मालूम पड़ते हैं। उनका दिमाग तो ठीक है? पहले मैं कुछ कहती थी तो क्रोधित होते थे, वह समझ में आता था। अब मैं कुछ कहती हूं तो वे हंसते हैं। इसका मतलब क्या है? उनका दिमाग तो ठीक है! जब उनका दिमाग बिगड़ जाता था तब पत्नी मानती थी कि ठीक है, क्योंकि वह नार्मल था। अब ठीक हो रहा है तो पत्नी समझती है कि दिमाग कुछ खराब हो रहा है।

स्वभावतः जब कोई गाली दे तो हंसना। तो अगर जीसस को सूली देने वाले लोगों को लगा हो कि यह आदमी पागल है, तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि एब-नार्मल था, असाधारण थी यह बात। जो सूली दे रहे हैं इनके लिए प्रार्थना करनी कि हे प्रभु, इन्हें माफ कर देना।

हम सब जीते हैं प्रमाद में, इसलिए प्रमाद में होना हमारी साधारण, नार्मल अवस्था हो गई है। हमारे बीच कोई जरा होश से जीए तो हमें अड़चन मालूम होती है। क्योंकि होश से जीने वाला हमारे बंधन के बाहर

होने लगता है। होश से जीने वाला हमारे हाथ के बाहर खिसकने लगता है। क्योंकि होश से जीनेवाले का अर्थ है कि हम बटन दबाते हैं, उसके भीतर क्रोध नहीं होता। हम बटन दबाते हैं, उसके भीतर आनंद नहीं होता, वह अपना मालिक होता जा रहा है। अब जब वह आनंदित होता है, होता है।

एक और ध्यान रखने की बात है कि आनंदित आप अकेले हो सकते हैं, लेकिन क्रोधित आप अकेले नहीं हो सकते। आनंद के लिए किसी की आपको अपेक्षा नहीं है कि कोई आपकी बटन दबाए। इसलिए हमने कहा है कि जब कोई व्यक्ति अपना परम मालिक हो जाता है तो परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

कुछ चीजें हैं जो दूसरों पर निर्भर हैं। जो दूसरों पर निर्भर हैं वह प्रमाद में ही हो सकती हैं। कुछ चीजें हैं जो किसी पर निर्भर नहीं--स्वतंत्र हैं--वे अप्रमाद में हो सकती हैं।

इसलिए महावीर कहते हैं प्रमाद को कर्म, कर्म-बंधन के कारण। जब भी हम बेहोशी में कुछ कर रहे हैं, हम बंध रहे हैं। और यह कर्म-बंधन हमें लंबी यात्राओं में उलझा देगा, लंबे जाल में डाल देगा।

अप्रमाद को अकर्म, होश को अकर्म कहा है महावीर ने। अगर आप होशपूर्वक क्रोध कर सकते हैं तो महावीर कहते हैं कि आपको क्रोध का कोई बंधन नहीं होगा। लेकिन होशपूर्वक क्रोध होता ही नहीं। अगर आप होशपूर्वक चोरी कर सकते हैं, तो महावीर कहते हैं चोरी अकर्म है। इसमें फिर कोई कर्म-बंधन नहीं है। लेकिन होशपूर्वक चोरी होती ही नहीं। अगर आप होशपूर्वक हत्या कर सकते हैं, तो महावीर हिम्मतवर हैं, वे कहते हैं, इसमें कोई कर्म का बंधन नहीं है। आप होशपूर्वक हत्या करें। लेकिन होशपूर्वक हत्या होती ही नहीं। हत्या होती है अनिवार्य रूप से बेहोशी में।

तो महावीर कहते हैं, एक ही है नियम, होशपूर्वक। एक ही है पुण्य, होशपूर्वक। एक ही है धर्म, होशपूर्वक। फिर सारी छूट है। होशपूर्वक जो भी करना हो करो। धर्म को इतना इसेंशिएल, इतना सारभूत कम ही लोगों ने समझा और कहा है। इसलिए महावीर की सारी उपदेशना, उनकी सारी धर्मदेशना इस एक ही शब्द के आस-पास घूमती है--होश, विवेक, जागरूकता, अप्रमाद। इतना मूल्य दिया है उन्होंने तो सोचने जैसा है। नीति की दूसरी कोई आधारशिला नहीं रखी। यह करना बुरा है, यह करना अच्छा है, इस पर महावीर का जोर नहीं है, लेकिन तब बड़ी हैरानी होती है। महावीर को जिन्होंने पच्चीस सौ साल अनुगमन किया है, उनको होश की कोई फिकर नहीं है! उनको कर्मों की फिकर है। वे कहते हैं--यह कर्म ठीक, वह कर्म गलत।

इस फर्क को समझ लें।

जब मैं कहता हूं, यह कर्म ठीक, यह कर्म गलत, तो होश का कोई सवाल नहीं है। जब मैं कहता हूं, होश ठीक, बेहोशी गलत, तो कर्म का कोई सवाल नहीं है। जिस कर्म के साथ भी मैं होश जोड़ लेता हूं वह ठीक हो जाता है। वह अकर्म हो जाता है, उसका कोई बंधन नहीं रह जाता। और जिस कर्म के साथ मैं होश नहीं जोड़ पाता हूं वह पाप है, वह बंधन है, वह अधर्म है, वह कर्म है।

रहस्य यह है कि जो भी गलत है, उसके साथ होश नहीं जोड़ा जा सकता। गलत होने का मतलब ही यह है कि वह केवल बेहोशी में ही संभव है। गलत होने का एक ही गहरा मतलब है कि जो बेहोशी में ही संभव है। सही होने का एक ही मतलब है कि जो केवल होश में ही होता है, बेहोशी में कभी नहीं होता।

इसका क्या मतलब हुआ?

इसका मतलब हुआ कि आप अगर बेहोशी से दान करते हैं तो वह बंधन है।

एक आदमी रास्ते पर भीख मांगता हुआ खड़ा है। आप अकेले जा रहे हैं तो आप भीख मांगने वाले की फिकर नहीं करते। चार लोग आपके साथ हैं और भीख मांगने वाला हाथ फैला देता है तो आपको कुछ देना पड़ता है। यह भीख मांगने वाले को आप नहीं देते, अपनी इज्जत को, जो चार लोगों के सामने दांव पर लगी है। इसलिए भिखारी भी जानता है कि अकेले आदमी से उलझना ठीक नहीं। चार आदमियों के सामने हाथ फैला देता है, पैर पकड़ लेता है। उस वक्त सवाल यह नहीं है कि भिखारी को देना है, उस वक्त सवाल यह है कि लोग

क्या कहेंगे कि दो पैसे न दे सके। आपका हाथ खीसे में जाता है। यह लोगों के लिए जा रहा है, जो मौजूद हैं। यह दान नहीं है, यह मूर्च्छा है। आप भिखारी को दे रहे हैं, लेकिन कहीं कोई दया-भाव नहीं है। यह मूर्च्छा है।

आप दान करते हैं कि मंदिर पर मेरे नाम का पत्थर लग जाए। यह मूर्च्छा है। आप ही न बचे, मंदिर का पत्थर कितने दिन बचेगा? और जरा जाकर देखें पुराने मंदिरों पर जो पत्थर लगे हैं कौन उनको पढ़ रहा है। वह भी आप ही जैसे लोग लगवा गए हैं। आप भी लगवा जाएंगे।

अगर दान मूर्च्छा है तो कर्म-बंधन है। लेकिन दान मूर्च्छा से हो ही नहीं सकता। अगर हो रहा है तो उसका मतलब वह दान नहीं है। आप धोखे में हैं, वह कुछ और है। चार लोगों में प्रशंसा मिलेगी, यह दान नहीं है। हजारों साल तक नाम रहेगा, यह दान नहीं है। यह तो सौदा है, यह तो सीधा सौदा है। अगर अकेले भी हैं आप, कोई देखने वाला नहीं है और भिखारी हाथ फैलाता है, तब भी जरूरी नहीं है कि दान ही हो।

कई बार ऐसा होता है कि इनकार करना ज्यादा मंहगा और दे देना सस्ता होता है। एक दो पैसे दे देने में ज्यादा सस्ता मालूम पड़ता है मामला, बजाय यह कहने में कि नहीं देंगे। यह नहीं देना ज्यादा मंहगा मालूम पड़ता है। आप दो पैसे दे देते हैं।

भिखारियों को लोग अक्सर दान नहीं देते, सिर्फ टालने की रिश्त देते हैं कि जाओ, आगे बढ़ो। वह रिश्त है, और भिखारी भी अच्छी तरह जानते हैं कि ज्यादा शोरगुल मचाओ, डटे रहो।

आप देखेंगे कि भिखारी डटा ही रहता है। वह भी जानता है कि एक सीमा है, वहां तक रुको। एक सीमा है, जहां यह आदमी रिश्त देगा कि अब जाओ। भिखारी भी जानते हैं कि दान कोई नहीं देता, इसलिए भिखारी भी आप यह मत सोचना कि अनुगृहीत होते हैं। भिखारी भी जानते हैं, अच्छा बुद्धू बनाया। जब वह लेकर आपसे चले जाते हैं तो आप यह मत सोचना कि वह समझते हैं कि बड़ा दानी आदमी मिल गया था।

आप रिश्त देते हैं। भिखारी भी जानता है कि यह रिश्त है। इसलिए जानता है कि आपकी सहनशीलता की सीमा को तोड़ना जरूरी है, तब आपका हाथ खीसे में जाता है। कितनी सहनशीलता है, इस पर निर्भर करता है।

अकेले में भी अगर आप देते हैं तो टालने के लिए, हटाने के लिए। तो फिर दान नहीं है, मूर्च्छा है। दान मूर्च्छा से हो ही नहीं सकता। अगर मूर्च्छा है, दान नहीं हो सकता।

चोरी बिना मूर्च्छा के नहीं हो सकती। अगर आप होशपूर्वक चोरी करने जायें, तो जा ही न सकेंगे। अगर आप होशपूर्वक किसी की चीज उठाना चाहें, उठा ही न सकेंगे। और अगर उठा लें तो जरा भीतर गौर करके देखना। जिस क्षण उठाएंगे, उस क्षण होश खो जाएगा, मोह पकड़ लेगा, तृष्णा पकड़ लेगी, होश खो जाएगा।

एक बारीक संतुलन है भीतर होश और बेहोशी का। जो आदमी होशपूर्वक जी रहा है, उससे पाप नहीं होता। इसका मतलब यह नहीं है कि महावीर चलेंगे तो कोई चींटी कभी मरेगी ही नहीं, महावीर चलेंगे तो चींटी मर सकती है, मरेगी। फिर भी महावीर कहते हैं, उसमें पाप नहीं, क्योंकि महावीर अपने तई पूरे होशपूर्वक चल रहे हैं। अपने होश में कोई कमी नहीं है। अब अगर चींटी मरती है तो यह केवल प्रकृति की व्यवस्था है, महावीर का कोई हाथ नहीं है।

और आप, आप भी चल रहे हैं उसी रास्ते पर, और चींटी मरती है तो आपको पाप लगेगा। यह जरा अजीब सा गणित मालूम पड़ता है। महावीर चलते हैं, पाप नहीं लगता। आप चलते हैं, पाप लगता है, चींटी वही मरती है। क्या फर्क है?

आप बेहोशी से चल रहे हैं। इसलिए प्रकृति-दत्त मरना नहीं है चींटी का, आपका हाथ है। आप अपनी तरफ से होश से चले होते, आपने मारने के लिए न जाने, न अनजाने कोई चेष्टा की होती, आपने सब भांति अपने होश को सम्हाल कर कदम उठाया होता, फिर चींटी मर जाती, वह चींटी जाने, प्रकृति जाने, आप जिम्मेवार नहीं थे। आप जो कर सकते थे, वह किया था।

लेकिन आप बेहोशी से चल रहे हैं। आपको पता ही नहीं कि आप चल रहे हैं। आपको यह पता ही नहीं कि पैर आपका कहाँ पड़ रहा है, क्यों पड़ रहा है? आपका सिर कहीं आसमान में घूम रहा है, पैर जमीन पर चल रहे हैं। आप मौजूद यहाँ हैं शरीर से, मन कहीं और है।

यह जो बेहोश चलना है, इसमें जो चींटी मर रही है, उसमें आप जिम्मेवार हैं। वह जिम्मेवारी बेहोशी की जिम्मेवारी है, चींटी के मरने की नहीं। चींटी तो आपके होश में भी मर सकती है, लेकिन तब जिम्मेवारी आपकी नहीं।

महावीर चालीस साल जीए, और यह बड़ी गहन चिंतना का विषय रहा है, तत्व-दार्शनिकों को, तत्वज्ञों को, कि महावीर को ज्ञान हुआ, उसके बाद वह चालीस साल जिंदा थे। तो कर्म तो कुछ किया ही होगा। इन चालीस सालों में जो कर्म किया, उसका बंधन महावीर पर हुआ या नहीं? कितना ही कम किया हो, कुछ तो किया ही होगा, उठें होंगे, बैठें होंगे, नहीं उठें, नहीं बैठें, सांस तो ली होगी। सांस लेने में भी तो जीवाणु मर रहे हैं, लाखों मर रहे हैं। एक श्वास में कोई एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। बहुत छोटे हैं, सूक्ष्म हैं।

और जब महावीर ने पहली दफे इनकी बात कही थी तो लोगों को भरोसा नहीं आया कि श्वास में कहाँ के जीवाणु। लेकिन अब तो विज्ञान कहता है कि वे हैं, और महावीर ने जितनी संख्या बताई थी, उससे ज्यादा संख्या है।

आपके ख्याल में नहीं है, आप एक चुंबन लेते हैं तो एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। दो ओंठों के संस्पर्श के दबाव में एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। यह वैज्ञानिक कहते हैं। महावीर ने तो बहुत पहले इशारा किया था कि श्वास लेते हैं तो भी जीवाणु मर जाते हैं।

इसलिए आप जानकर हैरान होंगे कि महावीर ने प्राणायाम जैसी क्रियाओं को जरा भी जगह नहीं दी। यह हैरानी की बात है। क्योंकि योग प्राणायाम पर इतना जोर देता हो, उसके कारण बिल्कुल दूसरे हैं। लेकिन महावीर ने बिल्कुल जोर नहीं दिया। क्योंकि इतने जोर से श्वास का लेना, छोड़ना, महावीर को लगा, अकारण हिंसा को बढ़ा देना हो जाएगा।

इसलिए महावीर उतनी ही श्वास लेते हैं जितने के बिना नहीं चल सकता, जितने के बिना नहीं चल सकता। श्वास लेने में भी महावीर होश में हैं, जिसके बिना नहीं चल सकता है। अनिवार्य है जो होने के लिए, बस उतनी ही श्वास, वह भी होश में हैं वह, इसलिए दौड़ते नहीं कि श्वास तेज न हो जाए। चिल्लाते नहीं कि श्वास तेज न हो जाए। उतना ही बोलते हैं जितना अपरिहार्य है। चुप रह जाते हैं। क्योंकि जब कुछ भी हम कर रहे हैं उसमें अगर बेहोशी है, तो हिंसा हो रही है।

पर फिर भी महावीर बोले, फिर भी महावीर चले। नहीं कुछ किया तो श्वास तो ली। रात जमीन पर लेटे तो, शरीर का वजन पड़ा होगा। जब एक चुंबन में एक लाख कीटाणु मर जाते हैं, तो जब आदमी जमीन पर लेटेगा, कितना ही साफ-सुथरा करके लेटे करोड़ों कीटाणु मर जाएंगे, करोड़ों जीवाणु मर जाएंगे।

महावीर रात करवट नहीं लेते हैं, फिर भी एक करवट तो लेनी ही पड़ेगी, सोते वक्त। एक बार तो पृथ्वी छूनी ही पड़ेगी।

महावीर रात में करवट नहीं बदलते कि बार-बार बहुत सी हिंसा अकारण है। एक करवट से काम चल जाता है तो बस एक करवट काफी है। एक ही करवट सोए रहते हैं। फिर भी एक करवट तो सोते ही हैं।

आप ज्यादा हिंसा करते होंगे, वे कम करते हैं, लेकिन नहीं करते हैं ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। तो सवाल है कि महावीर ने चालीस साल में इतनी हिंसा की, उसका कर्म-बंधन अगर हुआ हो तो फिर वह मोक्ष कैसे जा सकते हैं? उनका पुनर्जन्म होगा। उतना बंधन, उतना संस्कार फिर जीवन में ले आएगा। लेकिन नहीं कोई कर्म-बंधन नहीं होता क्योंकि महावीर की कर्म की परिभाषा हम समझ लें।

जो हम मूर्च्छापूर्वक करते हैं, तभी कर्म-बंधन होता है। जो हम होशपूर्वक करते हैं, कोई कर्म-बंधन नहीं होता। तो महावीर यह नहीं कहते, आप क्या करते हैं। महावीर यह कहते हैं कि आप कैसे करते हैं। क्या महत्वपूर्ण नहीं है, भीतर का होश महत्वपूर्ण है।

"प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म कहा है, अर्थात् जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं वे कर्म-बंधन करने वाली हैं और जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करती हैं।"

इसलिए उन प्रवृत्तियों की खोज कर लेना जो मूर्च्छा के बिना नहीं हो सकतीं। उनको छोड़ना। उन प्रवृत्तियों की भी खोज कर लेना जो बेहोशी में हो ही नहीं सकतीं, सिर्फ होश में हो सकती हैं, उनकी खोज करना, उनका अभ्यास करना। लेकिन यह अभ्यास बहिर्मुखी न हो, भीतरी हो, और होश से प्रारंभ होता हो। होश को बढ़ाना, ताकि वे प्रवृत्तियां बढ़ जाएं जीवन में, जो होश में ही होती हैं।

जैसे मैंने कहा, प्रेम। अगर आप बेहोश हैं तो पहले तरह का प्रेम होगा। अगर थोड़े से होश में हैं और थोड़े से बेहोश में हैं तो दूसरे तरह का प्रेम होगा। अगर बिल्कुल होश में हैं तो तीसरे तरह का प्रेम होगा। प्रेम करुणा बन जाएगी। अगर बेहोश हैं तो करुणा कामवासना बन जाती है। अगर दोनों के मध्य में हैं तो काम और करुणा के बीच में वह जो कवियों का प्रेम है, वह होता है।

प्रमाद के होने और न होने से; ज्ञान के होने या न होने से नहीं, प्रमाद के होने या न होने से, महावीर कहते हैं, मैं किसी को मूढ़ और किसी को ज्ञानी कहता हूं। वह कितना जानता है, इससे नहीं; कितना होशपूर्वक जीता है, इससे। उसकी जानकारी कितनी है, इससे मैं उसे ज्ञानी नहीं कहता हूं, और उसकी जानकारी बिल्कुल नहीं है, इससे अज्ञानी भी नहीं कहता हूं। जानकारी का ढेर लगा हो और आदमी बेहोश जी रहा हो।

मैंने सुना है एडिसन के बाबत। शायद इस सदी का बड़े से बड़ा जानकार आदमी था। एक हजार आविष्कार एडिसन ने किए हैं, कोई दूसरे आदमी ने किए नहीं। आपकी जिंदगी अधिकतर एडिसन से घिरी है। चाहे आप कहते कितने ही हों कि हम भारतीय हैं और हम महावीर और बुद्ध से घिरे हैं। भूल में मत रहना, महावीर और बुद्ध से आपके फासले अनंत हैं। घिरे आप किसी और से हैं। एडिसन से ज्यादा घिरे हैं, बजाय महावीर या बुद्ध के।

विजली का बटन दबाओ, तो एडिसन का आविष्कार है। रेडियो खोलो तो एडिसन का आविष्कार है। फोन उठाओ, तो एडिसन का आविष्कार है। हिलो-डुलो, सब तरफ एडिसन है। एक हजार आविष्कार हैं, जो हमारी जिंदगी के हिस्से बन गए हैं। इस आदमी के पास जानकारी का अंत नहीं था। बड़ा अदभुत जानकार आदमी था।

लेकिन एक दिन एडिसन का एक मित्र मिलने आया है। एडिसन सुबह-सुबह अपना नाश्ता करता है। नाश्ता रखा हुआ है। और एडिसन किसी सवाल को हल करने में लगा हुआ है। नौकर को आज्ञा नहीं है कि वह कहे, चुपचाप नाश्ता रख जाए। मित्र ने देखा, एडिसन उलझा है अपने काम में। नाश्ता तैयार है, उसने नाश्ता कर लिया। प्लेट साफ करके, ढांक करके रख दी। थोड़ी देर बाद जब एडिसन ने अपनी आंख उठाई कागज के ऊपर, देखा, मित्र आया है। कहा कि बड़ा अच्छा हुआ आए। नजर डाली खाली प्लेट पर। एडिसन ने कहा जरा देर से आए। पहले आते तो तुम भी नाश्ता कर लेते। मैं नाश्ता कर चुका। खाली प्लेट।

जानकारी अदभुत है इस आदमी की, लेकिन होश? होश बिल्कुल नहीं है।

होश और बात है, जानकारी और बात है। आप कितना जानते हैं, यह अंततः निर्णायक नहीं है धर्म की दृष्टि से। आप कितने हैं, कितने चेतन हैं, कितने जगे हुए हैं, इस पर निर्भर करेगा।

कबीर की जानकारी कुछ भी नहीं है, लेकिन होश अनूठा है। मोहम्मद की जानकारी बहुत ज्यादा नहीं है, लेकिन होश अनूठा है। जीसस की जानकारी क्या है? कुछ भी नहीं, एक बड़ई के लड़के की जानकारी हो भी क्या सकती है? लेकिन होश अनूठा है।

एडिसन नाशते में भी बेहोश हो जाता है और जीसस सूली पर भी होश में हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, प्रमाद को मैं कहता हूं, मूर्खता। अप्रमाद को मैं कहता हूं, पांडित्य, प्रज्ञा।

"जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।"

जो प्रज्ञावान है, उसको यह सूत्र ख्याल में आ जाएगा जीवन की व्यवस्था का। जीवन की जो आंतरिक व्यवस्था है वह यह है, जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं। अगर आपको दुख है, तो आप जानना कि मोह है। दुख हम सभी को है। कम ज्यादा, और हर आदमी सोचता है, उससे ज्यादा दुखी आदमी संसार में दूसरा नहीं है। हर आदमी यह सोचता है, सारे दुख के हिमालय वही ढो रहा है।

"जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।" अगर आपको ऐसा लगता हो कि दुख के हिमालय ढो रहे हैं तो समझ लेना कि मोह के प्रशांत सागर भी आपके भीतर होंगे। मोह के बिना दुख होता ही नहीं। जब भी दुख होता है, मोह से होता है।

मोह का अर्थ है--ममत्वा। मोह का अर्थ है--मेरा का भाव। मकान में आग लग गई, मेरा है तो दुख होता है। मेरा नहीं है तो दुख नहीं होता। मेरा नहीं है तो सहानुभूति दिखा सकते हैं आप, लेकिन उसमें भी एक रस होता है। मेरा है, तब दुख होता है। मकान वही है, लेकिन अगर इनशयर्ड है तो उतना दुख नहीं होता। बीमा कंपनी का जाता होगा, सरकार का जाता होगा; अपना क्या जाता है?

अपना है, तो दुख होता है। आपका बेटा मर गया, छाती पीट रहे हैं। और तभी एक चिट्ठी आपके हाथ लग जाए, जिससे पता चले कि यह बेटा आपसे पैदा नहीं हुआ। पत्नी का किसी और से संबंध था, उससे पैदा हुआ। आंसू तिरोहित हो जाएंगे, दुख विलीन हो जाएगा। छुरी निकाल कर पत्नी की तलाश में लग जायेंगे कि पत्नी कहां है।

क्या हो गया?

वही व्यक्ति मरा हुआ पड़ा है सामने। मरने में कोई कमी नहीं होती है, आपकी इस जानकारी से, इस पत्र से। मौत हो गई है, लेकिन मौत का दुख नहीं है, मेरे का दुख है। जो हमारा नहीं है उसे हम मारना भी चाहते हैं। जो हमारे विपरीत है, उसको हम नष्ट भी करना चाहते हैं। जो अपना है, उसे बचाना चाहते हैं।

महावीर कहते हैं: "जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।" अगर दुख है तो जानना कि मोह है।

"जिसे तृष्णा नहीं, उसे मोह नहीं।" अगर मोह है तो उसके भीतर तृष्णा होती है। "मेरा", हम कहते ही क्यों हैं? क्योंकि बिना "मेरे" के "मैं" को खड़े होने की कोई जगह नहीं। जितना मेरे "मेरे" का विस्तार होता है उतना बड़ा मेरा "मैं" होता है। इसलिए मैं की एक ही तृष्णा है, एक ही वासना है कि बड़ा, बड़ा हो जाऊं।

जिसके पास बड़ा राज्य है, उसके पास बड़ा मैं है। एक राजा का राज्य छीन लो, राज्य ही नहीं छिनता उसका, मैं भी छिन जाता है, सिकुड़ जाता है। एक धनी का धन छीन लो, धन ही नहीं छिनता, धनी सिकुड़ जाता है।

जो भी आपके पास है, वह आपका फैलाव है। मैं की एक ही तृष्णा है कि मैं ही बचूं। यह सारा ब्रह्मांड मेरे अहंकार की भूमि बन जाए। यह जो वासना है कि मैं फैलूं, मैं बचूं, सुरक्षित रहूं, सदा रहूं, अमरत्व को उपलब्ध हो जाऊं, मेरी कोई सीमा न हो, अनंत हो जाए मेरा साम्राज्य, तो यह है तृष्णा, यह है डिजायर।

महावीर कहते हैं: "जिसे तृष्णा नहीं, उसे मोह नहीं।" जिसको अपने मैं को बढाना ही नहीं है, वह मेरे से क्यों जुड़ेगा?

छोटे झोपड़े में जब आप रहते हैं तो आपका मैं भी उतना ही छोटा रहता है, झोपड़े वाले का मैं। बड़े महल में रहते हैं तो बड़े महल वाले का मैं। मैं आपका खोज करता है, कितनी बड़ी जगह घेर ले। स्पेस चाहिए मैं को फैलने के लिए।

इसलिए आप देखते हैं कि अगर एक नेता चल रहा हो भीड़ में, तो बिल्कुल भीड़ के साथ नहीं चलता, थोड़ी स्पेस, थोड़ा आगे चलेगा, भीड़ थोड़ी पीछे चलेगी, जगह चाहिए। अगर भीड़ बिल्कुल पास आ जाए तो नेता को तकलीफ शुरू हो जाती है। तकलीफ इसलिए शुरू हो जाती है कि उसका जो विस्तार था मैं का, वह छीना जा रहा है।

और कोई आदमियों के नेता की ही ऐसी बात नहीं, अगर बंदरों का झुंड चल रहा हो, तो जो नेता है, उसमें जो बॉस है, उसके आस-पास एक आदरपूर्ण स्थान होता है, जिसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। बाकी बंदर की जो भीड़ है, वह थोड़ी दूर जगह पर बैठेगी।

अगर आप नेता से मिलने गए हैं तो बिल्कुल पास नहीं बैठ सकते। अपने-अपने स्थान पर बैठना पड़ता है। एक जगह है, उसको वैज्ञानिक कहते हैं, टैरिटोरियल। एक अहंकार है जो प्रदेश घेरता है। फिर कितना बड़ा प्रदेश घेरता है? जितना बड़ा घेरता है उतना "मैं" को मजा आता है। उतना लगता है कि अब मैं मजबूत हूं, शक्तिशाली हूं। इसलिए किसी सम्राट के कंधे पर हाथ जाकर मत रख देना।

कहा जाता है कि हिटलर की जिंदगी में कोई उसके कंधे पर हाथ नहीं रख सका। इतना फासला ही कभी मिटने नहीं दिया। गोबेल्स हो कि उसके और निकट के मित्र हों, वह भी एक फासले पर खड़े रहेंगे, दूर, कंधे पर कोई हाथ नहीं रख सकता।

हिटलर का कोई मित्र नहीं था। मित्र बनाए नहीं जा सकते, क्योंकि मित्र का मतलब है कि वह जो जगह है अहंकार की, उसको आप दबायेंगे। छीनेंगे। राजनीतिज्ञ के आप अनुयायी हो सकते हैं, शत्रु हो सकते हैं, मित्र नहीं हो सकते।

यह जो महावीर कहते हैं, जिसे मोह है, उसे तृष्णा है। अगर दुख है तो जानना कि मोह का सागर भरा है नीचे। अगर मोह है तो जानना कि तृष्णा की दौड़ है पीछे।

"जिसे लोभ नहीं, उसे तृष्णा नहीं।"

और इसलिए लोभ गहरे से गहरा है। तृष्णा भी लोभ का विस्तार है, ग्रीड का। मैं ज्यादा हो जाऊं। ज्यादा होने की जो दौड़ है, वह तृष्णा है। ज्यादा होने की जो वृत्ति है, वह लोभ है।

तृष्णा परिधि है, लोभ केंद्र है। परिधि सफल हो जाए तो मोह निर्मित होता है। परिधि असफल निर्मित हो जाए, असफल हो जाए तो क्रोध निर्मित होता है। जितनी तृष्णा सफल होती जाए, मोह बनता जाता है, और जितनी असफल हो उतना दुख। असफल हो, तो दुख।

"जिसे लोभ नहीं, उसे तृष्णा नहीं। और जो ममत्व से अपने पास कुछ भी नहीं रखता, उसका लोभ नष्ट हो जाता है।"

क्या है उपाय फिर?

एक ही उपाय है, "मेरे" को क्षीण करते जाना। पत्नी होगी, पर मेरे का भाव क्षीण कर लें। बेटा होगा, पर मेरे का भाव क्षीण कर लें। मकान को रहने दें, मकान को गिराने से कुछ न गिरेगा। मेरे को हटा लें। मकान पर वह जो मेरे को चिपका दिया है, वह जो आपके प्राण भी मकान के ईंट-गारे में समा गए हैं, उनको वापस हटा लें।

मेरे को हटाते जाएं, ममत्व को तोड़ते चले जाएं, और एक दिन ऐसी स्थिति आ जाए कि मकान तो दूर, यह जो और पास का मकान है--देह, शरीर--इससे भी पीछे हटा लें। ये हड्डियां भी मेरी नहीं; हैं भी नहीं। यह मांस भी मेरा नहीं, यह खून भी मेरा नहीं, यह चमड़ी भी मेरी नहीं। है भी नहीं। मैं नहीं था, तब ये हड्डियां किसी और की हड्डियां थीं, और मैं नहीं रहूंगा तब यह मांस किसी और का मांस हो जाएगा। यह खून किसी और की नसों में बहेगा। और यह चमड़ी किसी और के मकान का घेरा बनेगी। यह मेरा है नहीं। यह मेरे पहले भी था और मेरे बाद भी होगा। इससे भी अपने को हटा लें।

फिर और भीतर में का एक मकान है, मन का। कहते हैं, मेरे विचार। तो जरा गौर से देखें, कौन सा विचार आपका है? सब विचार पराए हैं। सब संग्रह हैं, सब स्मृति है। वहां से भी अपने को तोड़ लें। तोड़ते चले जाएं ममत्व से उस घड़ी तक, उस समय तक, जब तक कि मेरा कहने योग्य कुछ भी बचे। जब कुछ भी न बचे मेरा कहने योग्य, तब जो शेष रह जाता है, उसका नाम आत्मा है।

लेकिन हम तो ऐसे हैं कि हम कहते हैं, मेरी आत्मा। मेरी आत्मा जैसी कोई चीज नहीं होती। जहां तक मेरा होता है, वहां तक आत्मा का कोई अनुभव नहीं होता।

इसलिए बुद्ध ने तो कह दिया कि आत्मा शब्द ही छोड़ दो, क्योंकि इससे मेरे का भाव पैदा होता है, यह शब्द ही मत उपयोग करो, क्योंकि इससे लगता है मेरा, आत्मा का मतलब ही होता है मेरा। यह छोड़ ही दो। तो बुद्ध ने कहा, यह शब्द ही छोड़ दो, ताकि यह मेरा पूरी तरह टूट जाए। कहीं मेरा न बचे, तब भी आप बचते हैं।

जब सब मेरा छूट जाता है तब जो बचता है, वही है आपका अस्तित्व, वही है आपकी चेतना, वही है आपकी आत्मा। वह जो शून्य निराकार, होना, बच रहता है, वही है आपकी मुक्ति, वही है आनंद।

आज इतना ही।

रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें।

सारा खेल काम-वासना का (प्रमाद-स्थान-सूत्र: 2)

रसा पगामं न निसेवियव्वा,
पायं रसा दित्तिकरा नराणं।
दित्तं च कामा समभिद्वन्ति,
दुमं जहा साउफलं व पक्खी॥
न कामभोगा समयं उवेन्ति,
न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य,
सो तेसु मोहा विगइं उवेइ॥

दूध, दही, घी, मक्खन, मलाई, शक्कर, गुड़, खांड, तेल, मधु, मद्य, मांस आदि रस वाले पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे मादकता पैदा करते हैं और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसी ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष की ओर पक्षी।

काम-भोग अपने आप न किसी मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं और न किसी में राग-द्वेष रूप विकृति पैदा करते हैं, परंतु मनुष्य स्वयं ही उनके प्रति राग-द्वेष के नाना संकल्प बनाकर मोह से विकारग्रस्त हो जाता है।

पहले एक दो प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: "यदि महावीर की साधना विधि में अप्रमाद प्राथमिक है, तो क्या अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम उसके ही परिणाम हैं या वे साधना के अलग आयाम हैं?"

जीवन अति जटिल है, और जीवन की बड़ी से बड़ी और गहरी से गहरी जटिलता यह है कि जो भीतर है, आंतरिक है, वह बाहर से जुड़ा है, और जो बाहर है, वह भी भीतर से संयुक्त है। यह जो सत्य की यात्रा है यह कहां से शुरू हो, यह गुह्यतम प्रश्न रहा है मनुष्य के इतिहास में।

हम भीतर से यात्रा शुरू करें या बाहर से, हम आचरण बदलें या अंतस, हम अपना व्यवहार बदलें या अपना चैतन्य? स्वभावतः दो विपरीत उत्तर दिए गए हैं। एक ओर हैं वे लोग, जो कहते हैं, आचरण को बदले बिना अंतस को बदलना असंभव है। उनके कहने में भी गहरा विचार है। वे यह कहते हैं, कि अंतस तक हम पहुंच ही नहीं पाते, बिना आचरण को बदले। वह जो भीतर छिपा है उसका तो हमें कोई पता नहीं है, जो हमसे बाहर होता है उसका ही हमें पता है। तो जिसका हमें पता ही नहीं है उसे हम बदलेंगे कैसे? जिसका हमें पता है उसे ही हम बदल सकते हैं। हमें अपने केंद्र का तो कोई अनुभव नहीं है, परिधि का ही बोध है। हम तो वही जानते हैं जो हम करते हैं।

मनसविदों का एक वर्ग है जो कहता है, मनुष्य उसके कर्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कहलर ने कहा है--यू आर वॉट यू डू। जो करते हो, वही हो तुम, उससे ज्यादा नहीं। उससे ज्यादा की बात करनी ही नहीं चाहिए। हमारा किया हुआ ही हमारा होना है। इसलिए हम जो करते हैं, उससे ही हम निर्मित होते हैं।

सार्त्र ने भी कहा है कि प्रत्येक कृत्य तुम्हारा जन्म है, क्योंकि प्रत्येक कृत्य से तुम निर्मित होते हो, और प्रत्येक व्यक्ति प्रतिपल अपने को जन्म दे रहा है। आत्मा कोई बंधी हुई, बनी हुई चीज नहीं है, बल्कि एक लंबीशृंखला है निर्माण की। तो जो हम करते हैं, उससे ही वह निर्मित होती है।

आज मैं झूठ बोलता हूं तो मैं एक झूठी आत्मा निर्मित करता हूं। आज मैं चोरी करता हूं तो मैं एक चोर आत्मा निर्मित करता हूं। आज मैं हिंसा करता हूं तो मैं एक हिंसक आत्मा निर्मित करता हूं, और यह आत्मा मेरे कल के व्यवहार को प्रभावित करेगी, क्योंकि कल का व्यवहार इससे निकलेगा।

पहले, क्योंकि अंडे के पहले मुर्गी हो कैसे सकेगी! और ऐसा नहीं कि गैर-बुद्धिमान इस तरह के तर्क में पड़ते हैं, बड़े-बड़े विचारशील लोग, बड़े दार्शनिकों ने भी इस पर चिंतन किया है कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले।

एक भारतीय विचारक राहुल सांकृत्यायन ने बड़ी मेहनत की है इस विचार पर कि मुगू पहले कि अण्डा पहले। हमको भी लगता है कि प्रश्न तो सार्थक है, पूछा जा सकता है। लेकिन प्रश्न व्यर्थ है, पूछा ही नहीं जा सकता। प्रश्न भाषा की भूल से पैदा होता है, लिंग्विस्टिक फैलिसी है।

असल में जब हम मुर्गी कहते हैं तो अंडा आ गया। जब हम अंडा कहते हैं तो मुर्गी आ गई। हम बाहर से मुर्गी-अंडे को दो में कर लेते हैं, लेकिन मुर्गी-अंडे दो नहीं हैं। एकशृंखला के हिस्से हैं। हम तोड़ लेते हैं कि यह रही मुर्गी और यह रहा अंडा। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी, तो मुर्गी में अंडा छिपा है। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी तो यह मुर्गी अंडे से ही पैदा हुई है। यह अंडे का ही फैलाव है, यह अंडे का ही आगे का कदम है। यह अंडा ही तो मुर्गी बना है।

जब हम आपसे कहते हैं बूढ़ा, तो आपका बचपन उसमें छिपा हुआ है। आपकी जवानी उसमें छिपी हुई है। बूढ़ा आदमी जवानी लिए हुए है, बचपन लिए हुए है। जब हम कहते हैं बच्चा, तो बच्चा भी बुढ़ापा लिए हुए है, जवानी लिए हुए है जो कल होगा वह अभी छिपा हुआ है। जो कल हो गया, वह भी छिपा है। लेकिन हम भाषा में तोड़ लेते हैं, मुर्गी अलग मालूम पड़ती है, अंडा अलग मालूम पड़ता है। और ठीक भी है, जरूरी भी है।

अगर दुकानदार से मैं जाकर कहूं कि मुझे अंडा चाहिए और वह मुझे मुर्गी दे दे, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी। दुकानदार के लिए और मेरे लिए जरूरी है कि अंडा अलग समझा जाए, मुर्गी अलग समझी जाए। लेकिन मुर्गी और अंडे की जीवन व्यवस्था में वे अलग नहीं हैं। अंडे का अर्थ होता है, होने वाली मुर्गी। मुर्गी का अर्थ होता है, हो गया अंडा।

देकार्त ने मजाक में कहा है--यह सवाल किसी ने देकार्त को पूछा है, तो देकार्त ने कहा कि मुझे मुश्किल में मत डालो। पहले तुम मेरी मुर्गी की परिभाषा समझ लो। देकार्त ने कहा कि मुर्गी है अंडे का एक ढंग और अंडे पैदा करने का। ए मेथड ऑफ दि एग्ग टु प्रोड्यूस मोर एग्ग्स। मुर्गी बस केवल एक विधि है अंडे की और अंडे पैदा करने की। इससे उलटा भी हम कह सकते हैं, कि अंडा केवल एक विधि है मुर्गी की, और मुर्गियां पैदा करने की। एक बात साफ है, कि अंडा और मुर्गी अस्तित्व में दो नहीं हैं, एकशृंखला के दो छोर हैं। एक कोने पर अंडा है, दूसरे कोने पर मुर्गी है। जो अंडा है वही मुर्गी हो जाता है, जो मुर्गी है वही अंडा हो जाती है। इसलिए जो इसे दो में तोड़ कर हल करने की कोशिश करते हैं, वे कभी हल न कर पाएंगे। भाषा की भूल है। अस्तित्व में दोनों एक हैं, भाषा में दो हैं।

ठीक ऐसा ही बाहर और भीतर भाषा की भूल है। जिसको हम बाहर कहते हैं, वह भीतर का ही फैलाव है। जिसको हम भीतर कहते हैं, वह बाहर की ही भीतर प्रवेश कर गई नोक है। बाहर और भीतर हमारे लिए दो हैं, अस्तित्व के लिए एक हैं। वह जो आकाश आपके बाहर है मकान के, और जो मकान के भीतर है वह दो नहीं हो गया है आपकी दीवाल उठा लेने से, वह एक ही है।

मैंने अपनी गागर सागर में डाल दी है। वह जो पानी मेरी गागर में भर गया है वह, और वह जो पानी मेरी गागर के बाहर है, दो नहीं हो गया है मेरी गागर की वजह से। वह जो भीतर है, वह जो बाहर है, वह एक ही है। आकाश अखंडित है, आत्मा भी अखंडित है। आत्मा का अर्थ है: भीतर छिपा हुआ आकाश। आकाश का अर्थ है: बाहर फैली हुई आत्मा।

यह मैं क्यों कह रहा हूँ? यह मैं इसलिए कह रहा हूँ ताकि आपको यह दिखाई पड़ जाए कि चाहे बाहर से शुरू करो, चाहे भीतर से शुरू करो। बाहर से शुरू करो तो भी भीतर से शुरू करना पड़ता है, भीतर से शुरू करो तो भी बाहर से शुरू करना पड़ता है।

पहले, क्योंकि अंडे के पहले मुर्गी हो कैसे सकेगी! और ऐसा नहीं कि गैर-बुद्धिमान इस तरह के तर्क में पड़ते हैं, बड़े-बड़े विचारशील लोग, बड़े दार्शनिकों ने भी इस पर चिंतन किया है कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले।

एक भारतीय विचारक राहुल सांकृत्यायन ने बड़ी मेहनत की है इस विचार पर कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले। हमको भी लगता है कि प्रश्न तो सार्थक है, पूछा जा सकता है। लेकिन प्रश्न व्यर्थ है, पूछा ही नहीं जा सकता। प्रश्न भाषा की भूल से पैदा होता है, लिंग्विस्टिक फैलिसी है।

असल में जब हम मुर्गी कहते हैं तो अंडा आ गया। जब हम अंडा कहते हैं तो मुर्गी आ गई। हम बाहर से मुर्गी-अंडे को दो में कर लेते हैं, लेकिन मुर्गी-अंडे दो नहीं हैं। एकशृंखला के हिस्से हैं। हम तोड़ लेते हैं कि यह रही मुर्गी और यह रहा अंडा। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी, तो मुर्गी में अंडा छिपा है। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी तो यह मुर्गी अंडे से ही पैदा हुई है। यह अंडे का ही फैलाव है, यह अंडे का ही आगे का कदम है। यह अंडा ही तो मुर्गी बना है।

जब हम आपसे कहते हैं बूढ़ा, तो आपका बचपन उसमें छिपा हुआ है। आपकी जवानी उसमें छिपी हुई है। बूढ़ा आदमी जवानी लिए हुए है, बचपन लिए हुए है। जब हम कहते हैं बच्चा, तो बच्चा भी बुढ़ापा लिए हुए है, जवानी लिए हुए है जो कल होगा वह अभी छिपा हुआ है। जो कल हो गया, वह भी छिपा है। लेकिन हम भाषा में तोड़ लेते हैं, मुर्गी अलग मालूम पड़ती है, अंडा अलग मालूम पड़ता है। और ठीक भी है, जरूरी भी है।

अगर दुकानदार से मैं जाकर कहूँ कि मुझे अंडा चाहिए और वह मुझे मुर्गी दे दे, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी। दुकानदार के लिए और मेरे लिए जरूरी है कि अंडा अलग समझा जाए, मुर्गी अलग समझी जाए। लेकिन मुर्गी और अंडे की जीवन व्यवस्था में वे अलग नहीं हैं। अंडे का अर्थ होता है, होने वाली मुर्गी। मुर्गी का अर्थ होता है, हो गया अंडा।

देकार्त ने मजाक में कहा है--यह सवाल किसी ने देकार्त को पूछा है, तो देकार्त ने कहा कि मुझे मुश्किल में मत डालो। पहले तुम मेरी मुर्गी की परिभाषा समझ लो। देकार्त ने कहा कि मुर्गी है अंडे का एक ढंग और अंडे पैदा करने का। ए मैथड ऑफ दि एग्ग टु प्रोड्यूस मोर एग्ग्स। मुर्गी बस केवल एक विधि है अंडे की और अंडे पैदा करने की। इससे उलटा भी हम कह सकते हैं, कि अंडा केवल एक विधि है मुर्गी की, और मुर्गियां पैदा करने की। एक बात साफ है, कि अंडा और मुर्गी अस्तित्व में दो नहीं हैं, एकशृंखला के दो छोर हैं। एक कोने पर अंडा है, दूसरे कोने पर मुर्गी है। जो अंडा है वही मुर्गी हो जाता है, जो मुर्गी है वही अंडा हो जाती है। इसलिए जो इसे दो में तोड़ कर हल करने की कोशिश करते हैं, वे कभी हल न कर पाएंगे। भाषा की भूल है। अस्तित्व में दोनों एक हैं, भाषा में दो हैं।

ठीक ऐसा ही बाहर और भीतर भाषा की भूल है। जिसको हम बाहर कहते हैं, वह भीतर का ही फैलाव है। जिसको हम भीतर कहते हैं, वह बाहर की ही भीतर प्रवेश कर गई नोक है। बाहर और भीतर हमारे लिए दो हैं, अस्तित्व के लिए एक हैं। वह जो आकाश आपके बाहर है मकान के, और जो मकान के भीतर है वह दो नहीं हो गया है आपकी दीवाल उठा लेने से, वह एक ही है।

मैंने अपनी गागर सागर में डाल दी है। वह जो पानी मेरी गागर में भर गया है वह, और वह जो पानी मेरी गागर के बाहर है, दो नहीं हो गया है मेरी गागर की वजह से। वह जो भीतर है, वह जो बाहर है, वह एक ही है। आकाश अखंडित है, आत्मा भी अखंडित है। आत्मा का अर्थ है, भीतर छिपा हुआ आकाश। आकाश का अर्थ है, बाहर फैली हुई आत्मा।

यह मैं क्यों कह रहा हूं? यह मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि आपको यह दिखाई पड़ जाए कि चाहे बाहर से शुरू करो, चाहे भीतर से शुरू करो। बाहर से शुरू करो तो भी भीतर से शुरू करना पड़ता है, भीतर से शुरू करो तो भी बाहर से शुरू करना पड़ता है।

महावीर जैसे व्यक्ति मनुष्य के अस्तित्व को देखते हैं उसकी अखंडता में। इसलिए महावीर ने कहा है, कहां से शुरू करो, यह गौण है, क्योंकि बाहर और भीतर जुड़े हुए हैं। अगर एक व्यक्ति अहिंसाक आचरण से शुरू करे, तो भी उसको अप्रमाद साधना पड़ेगा। उसको होश साधना पड़ेगा। क्योंकि बिना होश के अहिंसा नहीं हो सकती। और अगर बिना होश के अहिंसा हो रही है तो वह महावीर की अहिंसा नहीं है, वह जैनियों की अहिंसा भले हो। महावीर की अहिंसा में तो अप्रमाद आ ही जाएगा, क्योंकि महावीर की अहिंसा का मतलब दूसरे को मारने से बचाना नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि दूसरे को हम मार ही कहां सकते हैं। इसलिए जो लोग सोचते हैं, अहिंसा का अर्थ है दूसरे को न मारना--उनसे ज्यादा मूढ़, चिंतना करने वाले लोग खोजने मुश्किल हैं। लेकिन यही समझाया जाता है कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को न मारना। दूसरे की हत्या न करना, दूसरे को दुख न पहुंचाना।

इसे हम थोड़ा समझ लें।

महावीर कहते हैं, आत्मा अमर है, इसलिए दूसरे को मार कैसे सकते हैं। दूसरे को मारने का उपाय कहां है? अगर मैं एक चींटी को पैर रख कर पिसल डालता हूं, तो भी मैं मार नहीं सकता। चींटी मर नहीं सकती मेरे पिसल देने से। अगर चींटी मर ही नहीं सकती, और उसकी आत्मा अमृत है, तो फिर दूसरे को मारना, नहीं मारना--ऐसी बातें करना अहिंसा के संबंध में बेमानी हैं। मार तो हम सकते ही नहीं--पहली बात। मारने का तो कोई उपाय ही नहीं है। और अगर हम मार ही सकते और आत्मा मिट जाती तो फिर आत्मा को खोजने का भी कोई उपाय नहीं था। फिर व्यर्थ थी सारी खोज। क्योंकि अगर मेरे मारने से किसी की आत्मा मर जाती है तो कोई मुझे मार डाले, मेरी आत्मा मर जाएगी। तो जो मर जाती है, उस आत्मा को पाकर भी क्या करेंगे? वह तो जरा सा पत्थर फेंक दिया जाए और आत्मा खत्म हो जाएगी।

अमृत की तलाश है, इसलिए महावीर यह नहीं कह सकते कि दूसरे को मत मारो, यह अहिंसा की परिभाषा है। दूसरा तो मारा जा नहीं सकता--पहली बात। फिर अहिंसा का क्या अर्थ होगा?

महावीर के लिए अहिंसा का अर्थ है दूसरे को मारने की धारणा मत करो। दूसरे को मारा नहीं जा सकता, लेकिन दूसरे को मारने का विचार किया जा सकता है। वही विचार पाप है। दूसरे को मारने का तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन दूसरे को मारने का विचार किया जा सकता है, वही पाप है।

इसलिए महावीर ने कहा, मारो या विचार करो, बराबर है। इसलिए भाव-हिंसा को भी उतना ही मूल्य दिया, जितना वास्तविक हिंसा को। हम कहेंगे, ज्यादाती है। अदालत भाव-हिंसा को नहीं पकड़ती। अगर आप कहें कि मैं एक आदमी को मारने का विचार कर रहा हूं, तो अदालत आपको सजा नहीं दे सकती। आप कहें कि मैंने सपने में एक आदमी की हत्या कर दी है तो अदालत आपको सजा नहीं दे सकती। अपराध जब तक कृत्य न हो तब तक अपराध नहीं है। लेकिन महावीर ने कहा है, पाप और अपराध में यही फर्क है। अदालत तो तभी पकड़ेगी जब कृत्य हो, लेकिन धर्म तभी पकड़ लेता है, जब भाव हो।

एक आदमी को मैं मारूं, या एक आदमी को मारने का विचार करूं, बराबर पाप हो गया, बराबर। जरा भी फर्क नहीं है। क्यों? क्योंकि वास्तविक मार कर भी मैं मार कहां पाता हूं? वह भी मेरा विचार ही है मारने का। और कल्पना में भी मार कर मैं मारता नहीं, मेरा विचार ही है, लेकिन जो मारने के विचार करता है, वह हिंसक है। कोई मरता नहीं मेरे मारने से, लेकिन मार-मार कर मैं अपने भीतर सड़ता हूं।

हम कहते हैं आमतौर से कि दूसरे को दुख नहीं देना है, दूसरे को दुख देना हिंसा है, लेकिन यह भी बात महावीर की नहीं हो सकती। क्योंकि दूसरे को मैं दुख दे कैसे सकता हूं? आप महावीर को दुख देकर देखें, तब आपको पता चलेगा। आप लाख उपाय करें, आप महावीर को दुख नहीं दे सकते। दूसरे को दुख देना मेरे हाथ में कहां है, जब तक दूसरा दुखी होने को तैयार न हो। यह मेरी स्वतंत्रता नहीं है कि मैं दूसरे को दुख दे दूं। जीसस को हमने सूली देकर देख ली, और हम दुख नहीं दे पाए। और मंसूर के हमने हाथ पैर काट डाले और गर्दन तोड़ डाली, तो भी हम दुख नहीं दे पाए। मंसूर हंस रहा था। और हमने वह लोग भी देख लिए हैं कि उनको सिंहासनों पर बिठा दो तो भी उनके चेहरे पर हंसी नहीं आती।

हम न सुख दे सकते हैं, न दुख दे सकते हैं। यह हमारे हाथ में नहीं है। यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है। हम आमतौर से सोचते हैं, किसी को दुख मत दो। आप दे कब सकते हो दूसरे को दुख? यह कहा किसने? यह वहम आपको पैदा कैसे हुआ? यह वहम एक गहरे दूसरे वहम पर खड़ा हुआ है। हम सोचते हैं, हम दूसरे को सुख दे सकते हैं। इसलिए यह जुड़ा हुआ है।

सब आदमी सुख दे रहे हैं। मां बेटों को सुख दे रही हैं। बेटे मां को सुख दे रहे हैं। पति पत्नियों को सुख दे रहे हैं। भाई भाई को, मित्र मित्र को सुख देने की कोशिश में लगे हैं और कोई किसी को सुख नहीं दे पा रहा है। अभी तक मुझे ऐसा आदमी नहीं मिला जो कहे कि मुझे मेरी मां ने सुख दिया। कि मां मिले, कहे कि मेरे बेटे ने मुझे सुख दिया। कोई किसी को सुख नहीं दे पा रहा है। और सारी दुनिया सुख देने की कोशिश में लगी है। इतनी सुख देने की चेष्टा, और सुख का कहीं कोई पता नहीं चलता। बल्कि अक्सर ऐसा लगता है कि जितना सुख देने की चेष्टा करो उतना दुख पहुंचता मालूम पड़ता है।

क्या, हो क्या रहा है? हम सुख दे सकते हैं दूसरे को, तब तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती थी, कभी की बन जाती, कोई कमी नहीं है इसमें। कभी कोई कमी नहीं रही है। लेकिन यह पृथ्वी स्वर्ग बन नहीं पाती, क्योंकि हम दूसरे को सुख दे नहीं सकते। कितने ही उपकरण जुटा लें हम, और कितना ही धन हो, और कितना ही वैभव हो, कितना ही धान्य हो, कितनी ही खुशहाली हो, एफ्लुएंस कितना ही हो जाए, समृद्धि कितनी ही हो जाए, हम सुख नहीं दे सकते, क्योंकि सुख दिया नहीं जा सकता। कोई सुखी होना चाहे तो सुखी हो सकता है, लेकिन कोई किसी को सुखी कर नहीं सकता।

इस बात को ठीक से समझ लें।

सुख दूसरे के द्वारा, दूसरे से, निर्मित नहीं होता। आप चाहें तो सुखी हो सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहे तो सुखी हो सकता है। लेकिन महावीर की भी यह हैसियत नहीं है कि किसी को सुखी कर दें। आप अगर महावीर के पास भी हों तो दुखी रहेंगे। आपसे महावीर हारेंगे, जीतने का कोई उपाय नहीं है। आप जीत कर ही लौटेंगे। अपनी रोती हुई शक्ल लेकर ही आप लौटेंगे। महावीर भी आपको हंसा नहीं सकते। विजेता अंत में आप ही होंगे। इसका कारण यह नहीं कि महावीर कमजोर हैं और आप बड़े शक्तिशाली हैं।

इसका कुल कारण इतना है कि दूसरे को सुखी करने का कोई उपाय ही नहीं है। दूसरे को दुखी करने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर सुखी करने का उपाय होता तो दुखी करने का भी उपाय होता। जो अपने हैं, जिनके साथ हमारा ममत्व का बंधन है, उनको हम सुखी करने का उपाय करते हैं। जिनके साथ हमारा ममत्व के विपरीत संबंध है, जिनसे हमारी घृणा है, ईर्ष्या है, जलन है, क्रोध है, उन्हें हम दुखी करने का उपाय करते हैं। हम दोनों में असफल होते हैं। न हम मित्रों को सुखी कर पाते, न हम शत्रुओं को दुखी कर पाते।

अगर मित्र सुखी होते हैं तो यह उनका ही कारण होगा; अगर शत्रु दुखी होते हैं तो यह उनका ही कारण होगा। आप इसमें नाहक अपने को न लाएं। क्योंकि अगर मैं दुखी होना न चाहूं तो कोई दुनिया की शक्ति मुझे दुखी नहीं कर सकती। अगर मैं सुखी न होना चाहूं तो कोई दुनिया की शक्ति मुझे सुखी नहीं कर सकती। सुख और दुख व्यक्ति के निर्णय हैं, निजी, आत्मगत और व्यक्ति स्वतंत्र है।

तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि अहिंसा का यह अर्थ भी करना ठीक नहीं कि हम दूसरे को दुखी न करें, यह अर्थ भी ठीक नहीं है। दूसरे को दुखी करने की चेष्टा न करें, इतना है अहिंसा का अर्थ। क्योंकि दूसरे को हम दुखी तो कर ही न पाएंगे, लेकिन दूसरे को दुखी करने की चेष्टा में हम अपने को दुखी कर लेते हैं। ठीक अगर इसको हम और गहरा समझें तो हम दूसरे को सुखी तो कर ही न पायेंगे, लेकिन दूसरे को सुखी करने की चेष्टा में हम अपने को दुखी कर लेते हैं।

यह बड़े मजे की बात है, अगर आप अपने को सुखी करने में लग जायें तो शायद आपके आसपास के लोग भी थोड़े सुखी होने लगेंगे। लेकिन हम उनको सुखी करने में लगे रहते हैं। उसमें वह तो सुखी हो नहीं पाते, हम दुखी हो जाते हैं। अगर आप अपने आस-पास के लोगों को पूरी स्वतंत्रता दे सकें, यही अहिंसा है। इसे ठीक से समझ लें।

अगर मैं दूसरे को परिपूर्ण स्वतंत्रता दे सकूँ कि न तो मैं तुम्हें दुखी करूँगा, और न तुम्हें मैं सुखी करूँगा, मैं तुम्हें परिपूर्ण स्वतंत्रता देता हूँ। तुम जो होना चाहो हो जाओ, मैं कोई बाधा नहीं डालूँगा, इस भाव का नाम अहिंसा है। अहिंसा जरा जटिल मामला है। इतना आसान नहीं है, जितना आप सोचते हैं। कई लोग कहते हैं, हम किसी को दुखी नहीं कर रहे। फिर भी अहिंसा नहीं हो जाएगी। यह ख्याल भी कि आप दूसरे को दुखी कर सकते थे और अब नहीं कर रहे हैं, भ्रम है।

अहिंसा का अर्थ है, व्यक्ति परम स्वतंत्र है और मैं कोई बाधा नहीं डालूँगा। इतनी बाधा भी नहीं डालूँगा कि उसे सुखी करने की कोशिश करूँ। मैं सुखी हो जाऊँ तो शायद मेरे आस-पास जो आभा निर्मित होती है सुख की, वह किसी के काम आ जाए, लेकिन वह भी मेरी चेष्टा से काम नहीं आएगी। वह भी उसका ही भाव होगा काम में लाने का, तो काम में आएगी।

अहिंसा का इतना ही मतलब है कि मेरे चित्त में दूसरे को कुछ करने की धारणा मिट जाए। अगर कोई आदमी अहिंसा से शुरू करेगा तो भी अप्रमाद पर पहुंच जाएगा। क्योंकि बड़ा होश रखना पड़ेगा। हमें पता ही नहीं रहता है कि हम किन-किन मार्गों से, कितनी-कितनी तरकीबों से दूसरे को बाधा देते हैं—हमें पता ही नहीं रहता। हमारे उठने में, हमारे बैठने में, निंदा, प्रशंसा सम्मिलित रहती है। हमारे देखने में, समर्थन और विरोध शामिल रहता है। हम दूसरे को स्वतंत्रता देना ही नहीं चाहते। और जितने निकट हमारे कोई हो, हम उसको उतना परतंत्र करने की कोशिश में संलग्न रहते हैं। हमारी चेष्टा ही यही है कि दूसरा स्वतंत्र न हो जाए। इसका नाम हिंसा है, इस चेष्टा का नाम।

कोई आप परतंत्र कर पाएँगे, इस भ्रम में मत पड़ें। कोई परतंत्र हो नहीं पाता। पति अपने मन में कितना ही सोचता हो कि हम मालिक हैं, पति हैं और पत्नी उसको चिट्ठी में लिखती भी हो, स्वामी, आपके चरणों की दासी; मगर इससे कुछ हल नहीं होता। घर लौट कर पता चलेगा कि दासी क्या करती है। पत्नी कितनी ही सोचती हो कि मालिकियत मेरी है, और पति के शरीर पर नहीं, उसकी आत्मा पर भी मेरा कब्जा है और उसकी आंख भी किस तरफ देखे और किस तरफ न देखे, यह भी मेरे इशारे पर चलता है। वह कितनी ही चेष्टा करती हो, लेकिन वह भ्रम में है। कोई किसी को परतंत्र कर नहीं पाता। हां, करने की चेष्टा में कलह, संघर्ष, संताप, धुंआ, चारों तरफ जीवन में जरूर पैदा हो जाता है।

महावीर का अहिंसा से अर्थ है—प्रत्येक व्यक्ति की जो परम स्वतंत्रता है, उसका समादर। एक चींटी की भी परम स्वतंत्रता है, उसका समादर। न हमने उसे जन्म दिया है, न हमने उसे जीवन दिया है, हम उसे मृत्यु कैसे दे

सकते हैं। जो जीवन हमने दिया नहीं, वह हम छीन कैसे सकते हैं। वह अपनी हैसियत से जीती है, लेकिन हम बाधा डालने की कोशिश कर सकते हैं। उस कोशिश में चींटी को नुकसान होगा, यह महावीर का कहना नहीं है। उस कोशिश में हमको नुकसान हो रहा है। वह कोशिश हमें पथरीला बनाएगी और डुबा देगी जिंदगी में।

जो व्यक्ति दूसरे को परतंत्र करने चला है, या दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा डालने चला है वह गुलाम की तरह मरेगा। जो व्यक्ति सबको स्वतंत्र करने चला है और जिसने सारे बंधन ढीले कर दिए हैं, और जिसने जाना भीतर कि प्रत्येक व्यक्ति परम गुह्य रूप से स्वतंत्र है,

आत्यंतिक रूप से स्वतंत्र है, और दूसरे की आत्मा का अर्थ ही यह होता है कि उसे परतंत्र नहीं किया जा सकता।

इसे ठीक से समझ लें।

परतंत्र हम कर ही सकते हैं किसी को तब, जब कि उसमें आत्मा न हो। मशीन परतंत्र हो सकती है। मशीन के लिए स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन व्यक्ति कभी परतंत्र नहीं हो सकता, और हम व्यक्ति को मशीन की तरह व्यवहार करना चाहते हैं। वह व्यवहार ही हिंसा है। तब तो बड़ा होश रखना पड़ेगा। व्यवहार के छोटे-छोटे हिस्से में होश रखना पड़ेगा कि मैं किसी की परतंत्रता लाने की चेष्टा में तो नहीं लगा हूं। आएगी तो है ही नहीं, लेकिन चेष्टा, मेरा प्रयास, मुझे दुख में डाल जाएगा। अप्रमाद तो रखना पड़ेगा, होश तो रखना पड़ेगा।

आप रास्ते से गुजर रहे हैं और एक आदमी की तरफ आप किसी भांति देखते हैं। अगर उसमें निंदा है, और भले आदमी बड़े निंदा के भाव से देखते हैं। एक साधु के पास आप सिगरेट पीते चले जाएं, फिर उसकी आंखें देखें कैसी हो गईं। उसका वश चले तो अभी इसी वक्त आपको नरक भेज दे। साधु नहीं है यह आदमी, क्योंकि आपकी स्वतंत्रता पर गहन बाधा डाल रहा है, चेष्टा कर रहा है।

साधुओं के पास जाओ तो उनके पास बात ही इतनी है, ऐसा मत करो, वैसा मत करो। जैसे ही साधु के पास जाएंगे वहां आपकी स्वतंत्रता को छीनने की चेष्टा में संलग्न हो जाएगा। उसको वह कहता है, व्रत दे रहा हूं। कौन किसको व्रत दे सकता है? इसीलिए साधुओं के पास जाने में डर लगता है लोगों को, कि वहां गए तो यह छोड़ दो, यह पकड़ लो। ऐसा मत करो, वैसा मत करो; यह नियम ले लो।

मगर सारी चेष्टा का मतलब क्या है कि साधु आपको बरदाश्त नहीं कर सकता, कि आप जैसे हैं। आप में फर्क करेगा, आपके पंख काटेगा, आपकी शक्ति-सूरत में थोड़ा सा हिसाब-किताब बांटेगा। तब, आप जैसे हैं इसकी परम स्वतंत्रता का कोई समादर साधु के पास नहीं है। और जिसके पास आपकी स्वतंत्रता का समादर नहीं है, वह साधु कहां? साधुता का मतलब ही यह है कि मैं कौन हूं जो बाधा दूं। मुझे जो ठीक लगता है वह मैं निवेदन कर सकता हूं, आग्रह नहीं।

महावीर ने कहा है, साधु उपदेश दे सकता है, आदेश नहीं। उपदेश का मतलब अलग होता है, आदेश का मतलब अलग। उपदेश का मतलब होता है, ऐसा मुझे ठीक लगता है, वह मैं कहता हूं। आदेश का मतलब है, ऐसा ठीक है, तुम भी करो। मुझे जो ठीक लगता है वह जरूरी नहीं कि ठीक हो। यह मेरा लगना है। मेरे लगने की क्या गारंटी है? मेरे लगने का मूल्य क्या है? यह मेरी रुचि है, यह मेरा भाव है। यह परम सत्य होगा, यह मैं कैसे कहूं?

असाधुता वहीं से शुरू होती है जहां मैं कहता हूं, मेरा सत्य तुम्हारा भी सत्य है, बस असाधुता शुरू हो गई, हिंसा शुरू हो गई। जब तक मैं कहता हूं, मेरा सत्य मेरा सत्य है। निवेदन करता हूं कि मुझे क्या ठीक लगता है। शायद तुम्हारे काम आ जाए, शायद काम न भी आए, शायद तुम्हें सहयोगी हो, शायद तुम्हें बाधा बन जाए। सोच-समझ कर, अप्रमाद से, होशपूर्वक, तुम्हें जैसा लगे करना। आदेश मैं नहीं दे सकता हूं। लेकिन जब मैं आदेश

देता हूं तब उसका मतलब हुआ कि मैं कह रहा हूं, मेरा सत्य सार्वभौम सत्य है, माई दूथ मींस दि दूथ, मेरा जो सत्य है वही सत्य है, और कोई सत्य नहीं है। अगर मेरे सत्य के विपरीत किसी का सत्य है तो वह असत्य है, उसे छोड़ना होगा। अगर उसे नहीं छोड़ते हो तो नरक जाना पड़ेगा, वह नरक की व्यवस्था मेरी है। जो मुझे नहीं मानेगा वह नरक जाएगा, यह उसका अर्थ है। जो मुझे नहीं मानेगा वह आग में सड़ेगा, इसका यह अर्थ है। जो मुझे मानेगा उसके लिए स्वर्ग का आश्वासन है, उसे स्वर्ग के सुख हैं।

यह क्या हुआ? यह साधु का भाव न हुआ। यह असाधु हो गया आदमी। यह हिंसा हो गई।

महावीर की अहिंसा गुह्य है, एसोटेरिक है, गुप्त है। अहिंसा का मतलब यह है, यह स्वीकृति कि प्रत्येक आत्मा परमात्मा है, उससे नीचे नहीं। यह अहिंसा का अर्थ है। अहिंसा का अर्थ है कि मैं तुमसे ऐसा व्यवहार करूंगा कि तुम परमात्मा हो, इससे कम नहीं। और मैं अपने को तुम्हारे ऊपर थोपूंगा नहीं। और अगर तुम मेरे विपरीत जाते हो, तो तुम्हें नरक में नहीं डाल दूंगा। और तुम अनुकूल आते हो तो तुम्हारे लिए स्वर्ग का आयोजन नहीं करूंगा। तुम अनुकूल आते हो या प्रतिकूल, यह तुम्हारा अपना निर्णय है, और मेरा कोई भाव इस निर्णय पर आरोपित नहीं होगा।

तो अहिंसा साधते वक्त अप्रमाद अपने आप सध जाएगा। तो चाहे कोई अहिंसा से शुरू करे, अलोभ से शुरू करे, अक्रोध से शुरू करे, वह अप्रमाद पर उसे जाना ही होगा। वह अंडे से शुरू करे, मुर्गी तक उसे जाना ही होगा। और चाहे कोई अप्रमाद से शुरू करे वह अप्रमाद से शुरू करेगा, हिंसा गिरनी शुरू हो जाएगी। क्योंकि अप्रमाद में कैसे, होश में कैसे, हिंसा टिक सकती है? हिंसा गिरेगी, परिग्रह गिरेगा, पाप हटेगा, पुण्य अपने आप प्रवेश करने लगेगा।

तो जब मुझसे कोई पूछता है कि इसमें महावीर की विधि क्या? वह बाहर पर जोर देते हैं कि भीतर पर? महावीर इस बात पर जोर देते हैं कि तुम कहीं से भी शुरू करो, दोनों सदा मौजूद रहेंगे। और अगर एक मौजूद रहता है तो विधि में भूल है और खतरा है। अगर कोई व्यक्ति कहता है, मैं तो भीतर से ही मैं बाहर से ध्यान नहीं दूंगा, वह अपने को धोखा दे सकता है। क्योंकि वह बाहर हिंसा कर सकता है और कहे कि मैं तो भीतर से अहिंसक हूं। ऐसे बहुत लोग हैं जो भीतर से साधु और बाहर से असाधु हैं। और वे कहते चले जायेंगे, यह तो मामला बाहर का है। बाहर में क्या रखा हुआ है, बाहर तो माया है।

एक बौद्ध भिक्षु कहता था कि सारा संसार माया है। बाहर क्या रखा है? है ही नहीं कुछ, सपना है। इसलिए वेश्या के घर में भी ठहर जाएगा, शराब भी पी लेगा। क्योंकि अगर सपना ही है तो पानी और शराब में फर्क कैसे हो सकता है? अगर शराब में कुछ वास्तविकता है, तो ही फर्क हो सकता है। नहीं तो पानी में और शराब में क्या फर्क है, अगर सब माया है? तो आपको मैं मारूं कि जिलाऊं, कि जहर दूं, कि दवा दूं क्या फर्क है? फर्क तो सच्चाइयों में होता है। दो झूठ बराबर झूठ होते हैं। और अगर आप कहते हैं, एक झूठ थोड़ा कम झूठ है, तो उसका मतलब है कि वह थोड़ा सच हो गया।

अगर सारा जगत माया है तो ठीक है। तो वह जो मन में आए करता था। एक सम्राट ने उससे अपने द्वार पर बुलाया। विवाद में जीतना उस आदमी से मुश्किल था। असल में विवाद की जिसे कुशलता आती हो, उससे जीतना किसी भी हालत में मुश्किल है। क्योंकि तर्क वेश्या की तरह है। कोई भी उसका उपयोग कर ले सकता है। और यह तर्क गहन है कि सारा जगत माया है। सिद्ध भी कैसे करो कि नहीं है।

पर सम्राट था बुद्धू, इसलिए कभी-कभी बुद्धू तार्किकों को बड़ी मुश्किल में डाल देते हैं। तो उसने कहा, अच्छा! सब माया है? तो उसने कहा, अपना जो पागल हाथी है, उसे ले आओ। वह भिक्षु घबराया कि यह झंझट होगी। तर्क का मामला था तो वह सिद्ध कर लेता था। तर्क के मामले में आप जीत नहीं सकते, जो आदमी कहता है कि सब असत्य है, उसको कैसे सिद्ध करिएगा कि सत्य है? क्या उपाय है? कोई उपाय नहीं है।

उस सम्राट ने कहा कि बैठें, अभी पता चलता है। वह पागल हाथी बुला कर उसने महल के आंगन में छोड़ दिया और भिक्षु को खींचने लगे सिपाही, तो वह चिल्लाने लगा। कि यह क्या कर रहे हैं! विचार से विचार करिए।

पर सम्राट ने कहा कि हाथी पागल है। हमारी समझ में वास्तविकता है यह, तुम्हारी समझ में तो सब माया है। माया के हाथी से ऐसा भय क्या?

उस भिक्षु ने कहा: क्या मेरी जान लोगे?

उस सम्राट ने कहा कि माया का हाथी है, क्या जान ले पाएगा!

भिक्षु चिल्लाता रहा। जबरदस्ती उसे आंगन में छोड़ दिया। भिक्षु भागता है। और हाथी उसके पीछे चिंघाड़ता है। भिक्षु चिल्लाता है कि क्षमा करो, वापस लेता हूं अपना सिद्धांत। अब कभी ऐसी भूल की बात न करूंगा। ऐसा मैंने कभी देखा नहीं था कि तर्क का और यह! बहुत रोता-गिड़गिड़ाता है, आंसू बहने लगते हैं। सम्राट उसे उठवा लेता है और कहता है, अब शांत होकर बैठ जायें, भूल जायें अपनी बात।

भिक्षु ने कहा: कौन सी बात?

"वह जो अभी आप माफी मांग रहे थे, चिल्ला रहे थे।"

भिक्षु ने कहा: सब माया है--वह रोना, चिल्लाना, तुम्हारा बचाना।

जहां तक तर्क का मामला है, उससे बचना मुश्किल है।

सम्राट ने कहा: क्या मतलब?

उसने कहा: लेकिन दुबारा उस झंझट को खड़ा करने की

अगर पागल हाथी फिर पागल मालूम पड़ता है, तो फर्क है। भेद अगर दिखाई पड़ता है जरा सा भी, तो फर्क है। तो फिर हम अपने को धोखा दे सकते हैं। हम कह सकते हैं कि बाहर की तो हमें कोई चिंता नहीं है। बाहर तो सब ठीक है, असली चीज भीतर है। लेकिन अगर असली चीज भीतर है, तो उसके प्रमाण बाहर भी मिलेंगे, क्योंकि भीतर बाहर आता रहता है, प्रतिपल। वह जो झरना भीतर छिपा है वह बाहर छलांग लगा कर उचकता रहता है। बाहर फेंकता रहता है अपनी धारा को। अगर कोई झरना यह कहे, कि हम तो भीतर भीतर हैं, बाहर कुछ भी नहीं, बाहर रेगिस्तान है, तो झरना झूठा है। झरने का मतलब ही क्या जो फूटे न। फूटे तभी झरना है।

अगर भीतर मेरे अप्रमाद है तो बाहर परिणाम होंगे। बाहर हिंसा गिरेगी। अगर भीतर मेरे अप्रमाद है, तो बाहर लोभ गिरेगा। अगर भीतर मेरे अप्रमाद है तो बाहर, वह जो आसक्ति है, मोह है, क्षीण होगा।

भीतर की बात करके आदमी अपने को धोखा दे सकता है। बाहर से भी आदमी अपने को धोखा दे सकता है। बाहर इंतजाम कर लेता है वह कि मैं अहिंसा पालन करूंगा, लोभ नहीं करूंगा, दान करूंगा और भीतर प्रमाद घना होता है। बेहोशी घनी होती है। बाहर सम्हल कर चलने लगता है। चींटी पर पैर नहीं रखता। लेकिन भीतर दूसरे को दुख-सुख पहुंचाने का भाव घना होता है। वह साधु हो जाता है, लेकिन नरक और स्वर्ग की बातें करता रहता है। वह साधु हो जाता है, लेकिन दूसरों को ऐसे देखता है जैसे वे कीड़े-मकोड़े हों।

शायद साधु होने का गहरा मजा यही है कि दूसरे कीड़े-मकोड़े दिखाई पड़ने लगते हैं। हम सभी एक दूसरे को कीड़ा-मकोड़ा देखना चाहते हैं। तरकीबें अलग-अलग हैं। कोई एक बहुत बड़ा मकान बना कर उस पर खड़ा हो जाता है, झोपड़ों के लोग कीड़े-मकोड़े हो जाते हैं। कोई आदमी चढ़ जाता है राजधानी के शिखर पर, भीड़ कीड़ा-मकोड़ा हो जाती है। एक आदमी त्याग के शिखर पर खड़ा हो जाता है, भोगी कीड़े-मकोड़े हो जाते हैं। और बड़ा मजा यह है कि झोपड़े वाला आदमी तो शायद अकड़ कर भी चल सके महल वाले के सामने कि तुम शोषक, हत्यारे, हिंसक। भीड़ का आदमी राजनीति के शिखर पर खड़े आदमी के सामने अकड़ कर भी चल सके कि तुम बेईमान, झूठे; लेकिन भोगी, त्यागी के सामने अकड़ कर नहीं चल सकता।

तो त्याग बारीक से बारीक अकड़ है, जिसका जवाब देना मुश्किल है। भोगी को खुद ही लगता है, हम गलत, तुम ठीक। यह भोगी को इसीलिए लगता है कि त्यागी हजारों साल से उसको समझा रहे हैं, बिल्ट इन कंडीशनिंग कर दी है उसके दिमाग में कि तुम गलत हो। उसको भी लगता है कि गलत तो मैं हूं। त्यागी ठीक, त्यागी शिखर पर हो जाता है, भोगी नीचे पड़ जाता है। सारी दुनिया में एक चेष्टा चलती रहती है कि मैं दूसरे से ऊपर, यही हिंसा है।

तो चींटी से बच कर चलने में बहुत कठिनाई नहीं है। अगर जो चींटी से बच कर नहीं चलता, उसको मैं देखता हूं कि वह कीड़ा-मकोड़ा है, तो कोई कठिनाई नहीं है, चींटी से बच कर चलने में अगर यही मजा है कि जो बच कर नहीं चलते, उनको मैं पापी की तरह देख सकता हूं, तो चींटी से बचा जा सकता है। लेकिन यह हिंसा और गहरी हो गई। चींटी का मर जाना, उसको बेहोशी से दबा देना, हिंसा थी, अप्रमाद था। यह अप्रमाद और गहरा हो गया। इसने रास्ता बदल दिया, रुख बदल दिया। बीमारी दूसरी तरफ चली गई, लेकिन मौजूद है, और गहरी हो गई।

चाहे तो कोई बाहर के आचरण को ठोंक-पीट कर ठीक कर ले, और भीतर बेहोश बना रहे। चाहे तो कोई भीतर बेहोशी न टूटे, और बाहर के आचरण में जैसा है वैसा ही चलता रहे, जरा भी न बदले, धोखा दे सकता है।

महावीर जैसे व्यक्ति अखंड व्यक्ति को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, पूरा व्यक्ति ही बदलना है। बाहर और भीतर दो टुकड़े नहीं हैं। एक धारा के अंग हैं। कहीं से भी शुरू करो, दूसरा भी अंतर्निविष्ट है, दूसरा भी अंतर्निहित है।

अब सूत्र।

"रस वाले पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे मादकता पैदा करते हैं और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसी ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष की ओर पक्षी।"

अप्रमाद की बात कही, वह भीतर की बात थी। तत्काल रस की बात कही, वह बाहर की बात है। कहा कि भीतर जागते रहो, होश सम्हाले रखो, और फिर तत्काल यह कहा कि बाहर से भी वही लो अपने भीतर जो बेहोशी न बढ़ाता हो। नहीं तो एक आदमी ध्यान करता रहे और शराब पीता रहे, तो यह ऐसे हुआ कि एक कदम आगे गए और एक कदम पीछे आए। फिर जिंदगी के आखिर में पाए कि वहीं खड़े हैं। खड़े नहीं, गिर पड़े हैं, वहीं जहां पैदा हुए थे। तो इसमें हैरानी न होगी, लेकिन हम सब यही कर रहे हैं। एक कदम जाते हैं, तत्काल एक कदम उलटा वापस लौट आते हैं। तो इससे बेहतर है, जाओ ही मत। शक्ति और श्रम नष्ट मत करो।

अगर भीतर अप्रमाद की साधना चल रही है, भीतर ध्यान की साधना चल रही है, तो महावीर कहते हैं, फिर ऐसे पदार्थ मत लो जो बेहोशी बढ़ाते हैं। और पदार्थ ऐसे हैं जो बेहोशी बढ़ाते हैं। मादक हैं। ऐसे पदार्थ हैं जो हमारे भीतर के प्रमाद को सहारा देते हैं।

इसलिए आप देखें—एक आदमी शराब पी लेता है, तत्काल दूसरा आदमी हो जाता है, इसलिए तो शराबी को भी शराब का रस है, कि एक ही आदमी रहते-रहते ऊब जाता है, अपने से ऊब जाता है। जब शराब पी लेता है तो जरा मजा आता है। नई जिन्दगी हो जाती है, नया आदमी हो जाता है, यह नया आदमी कौन है?

यह शराब से नहीं आता, यह नया आदमी भीतर छिपा था। शराब इसको सिर्फ सहारा दे सकती है। शराब आपके भीतर कुछ पैदा नहीं करती। जो छिपा है, उसको उकसा सकती है। जगा सकती है। इसलिए बहुत मजे की घटनाएं घटती हैं।

एक आदमी शराब पीकर उदास हो जाता है। एक आदमी शराब पीकर प्रसन्न हो जाता है, एक आदमी गाली-गलौज बकने लगता है, एक आदमी बिल्कुल मौन ही हो जाता है। मौन साध लेता है। एक आदमी नाचने

कूदने लगता है और एक आदमी बिल्कुल शिथिल होकर मुर्दा हो जाता है, सोने की तैयारी करने लगता है। शराब एक, फर्क इतने! शराब कुछ भी नहीं करती। जो आदमी के भीतर पड़ा है, उसको भर उत्तेजित करती है।

तो अक्सर उलटा हो जाता है। जो आदमी आमतौर से हंसता रहता है वह शराब पीकर उदास हो जाता है, क्योंकि हंसी झूठी थी, ऊपर-ऊपर थी, उदासी भीतर थी, असली थी। शराब ने झूठ को हटा दिया। शराब सत्य की बड़ी खोजी है। शराब ने असत्य को हटा दिया, वह जो हंसते रहते थे बन-बन कर। अब उतना भी होश रखना मुश्किल है कि बन कर हंस सकें। अब बनावट नहीं टिकेगी। हंसी खो जाएगी। और वह जो हंसी के नीचे छिपा रखा था, अम्बार लगा रखा था उदासी का, दुख का, आंसुओं का, वह बाहर आने लगेंगे।

इसलिए गुरजिएफ के पास जब भी कोई जाता था, पंद्रह दिन तो वह धुआंधार शराब पिलाता था। सिर्फ उसकी डाइग्रोसिस, उसके निदान के लिए। पंद्रह दिन वह उसे शराब पिलाता जाता था, जब तक कि उसे बेहोश न कर दे इतना कि जो उसने ऊपर-ऊपर से थोपा है वह टूट जाए। और जो भीतर-भीतर है वह बाहर आने लगे। तब वह उसका निरीक्षण करता।

गुरजिएफ ने कहा है कि जब तक कोई साधक मेरे पास आकर पंद्रह दिन जितनी शराब मैं कहूं, उतना पीने को राजी न हो, तब तक मैं साधना शुरू नहीं करता। क्योंकि मुझे असली आदमी का पता ही नहीं चलता कि असली आदमी है कौन। जो वह बताता है, मैं हूं, वह, वह है नहीं। उस पर मैं मेहनत करूं, वह बेकार जाएगी, वह पानी पर खींची गई लकीरें सिद्ध होंगी। और जो वह है, उसका उसको भी पता नहीं, उसको वह दबा चुका है जन्मों-जन्मों। उसका उसे भी पता नहीं कि वह कौन है।

इधर मुझे भी निरंतर यह अनुभव आता है, एक आदमी आकर मुझे कहता है कि यह मेरी तकलीफ है। वह उसकी तकलीफ ही नहीं है। वह कहता है, यह मेरा रोग है, वह उसका रोग ही नहीं है। वह समझता है कि वह उसका रोग है। यह रोग उसकी पर्त का रोग है, और पर्त वह है नहीं। पर्त उसने बना ली है।

एक आदमी आता है और कहे कि मेरी कमीज पर यह दाग लगा है, यह मेरी आत्मा का दाग है। अब इसको मैं धोने में लग जाऊं, यह धुल भी जाए तो भी आत्मा नहीं धुलेगी क्योंकि यह दाग कमीज पर था, आत्मा पर नहीं। यह न भी धुले, तो भी आत्मा पर नहीं है। इस आदमी को मुझे नग्न करके देखना पड़ेगा कि इसकी आत्मा पर दाग कहां है। उसको धोने में ही कोई सार है, इसकी कमीज को धोने में समय गंवाना व्यर्थ है।

गुरजिएफ पंद्रह दिन शराब पिलाता, पूरी तरह बेहोश कर देता, डुबा देता बुरी तरह। और जिसने कभी नहीं पी है, वह बिल्कुल मतवाला हो जाता, बिल्कुल पागल हो जाता। तब वह अध्ययन करता उस आदमी का, कि यह आदमी असलियत में क्या है।

फ्रायड जिन लोगों का अध्ययन करता, वह उनसे कहता कि अपने सपने बताओ, और बातें नहीं चाहिए। अपने सिद्धांत मत बताओ। अपनी फिलासफी अपने पास रखो, सिर्फ अपने सपने बताओ। जब पहली दफे फ्रायड ने सपनों पर खोज शुरू की, तो उसने अनुभव किया कि सपने में असली आदमी प्रकट होता है। ऊपरी चेहरे झूठे हैं।

एक आदमी को देखें, अपने बाप के पैर छू रहा है, और सपने में बाप की हत्या कर रहा है। आप आमतौर से यह सोचेंगे कि सपना तो सपना है, असली तो वही है, वह जो सुबह हम रोज पैर छूते हैं। वह असली नहीं है, ध्यान रख लें। सपना आपकी असलियत से ज्यादा असली हो गया है, क्योंकि आप बिल्कुल झूठे हैं। वह जो सुबह आप पैर छूते हैं पिता का, वह सिर्फ सपने में जो असली काम किया, उसका पश्चाताप है। सपना असली है। क्यों? सपने में धोखा देने में अभी आप कुशल नहीं हो पाए। सपना गहरा है, बेहोश है। आप का जो होश है, उस वक्त आप आदर दिखा रहे हैं। आपका जो होश है उस वक्त पत्नी कह रही है पति से कि तुम मेरे परमात्मा हो, और सपने में उसे दूसरा पति और दूसरा परमात्मा दिखाई पड़ रहा है। वह कहती है, यह तो सब सपना है।

बाकी यह सपना ज्यादा गहरा है। क्योंकि सपने में न सिद्धांत काम आते हैं, न समाज काम आता है, न सिखावन काम आती है। सपने में तो वह जो असली मन है, अचेतन, वह प्रकट होता है। इसलिए फ्रायड ने कहा कि अगर असली आदमी को जानना है तो सपनों का अध्ययन जरूरी है। बात एक ही है।

गुरजिएफ ने कहा है कि शराब पिला कर उघाड़ लेंगे, अनकांशस, अचेतन को। उसने कहा कि हम आपका सपना; गुरजिएफ का मैथड ज्यादा तेज है। पंद्रह दिन में पता चल जाता है। फ्रायड के मैथड में पांच साल लग जाते हैं। पांच साल सपनों का अध्ययन करना पड़ेगा तब वह नतीजा निकालेगा कि तुम आदमी कैसे हो, तुम्हारे भीतर असलियत क्या है, तुम्हारा मूल रोग क्या है? लेकिन यह निदान बहुत लंबा हो गया।

महावीर कहते हैं कि जो भी हम बाहर से भीतर ले जाते हैं, वह भीतर किसी चीज को पैदा नहीं कर सकता, लेकिन अगर भीतर कोई चीज पड़ी है तो उसके लिए सहयोगी हो सकता है, या विरोधी हो सकता है।

तो जो आदमी भीतर अप्रमाद की साधना करने में लगा है, जो इस साधना में लगा है कि मैं होश को जगा लूं, वह साथ में शराब पीता रहे और होश जगाने की कोशिश करता रहे, सांझ शराब पी ले और सुबह प्रार्थना करे और पूजा करे और ध्यान करे, वह आदमी असंगत है। अपने ही साथ उलटे काम कर रहा है, कंट्राडिक्ट्री है। वह आदमी कभी कहीं पहुंचेगा नहीं। उसकी गाड़ी का एक बैल एक तरफ जा रहा है, दूसरा बैल दूसरी तरफ जा रहा है। एक चक्का एक तरफ जा रहा है, दूसरा चक्का दूसरी तरफ जा रहा है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्रा में था। जब ऊपर की बर्थ पर सोने लगा तो उसने नीचे के आदमी से पूछा कि मैं यह तो पूछना ही भूल गया कि आप कहां जा रहे हैं? उस नीचे के आदमी ने कहा कि मैं बम्बई जा रहा हूं।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: गजब! विज्ञान का चमत्कार! मैं कलकत्ता जा रहा हूं, एक ही गाड़ी में हम दोनों! विज्ञान का चमत्कार देखो कि नीचे की बर्थ बंबई जा रही है, ऊपर की बर्थ कलकत्ता जा रही है।

और मुल्ला शान से सो गया।

मुल्ला पर हमें हंसी आएगी, लेकिन हमारी जिंदगी ऐसी ही है; एक बर्थ बंबई जा रही है, एक कलकत्ता जा रही है। आदमी का चमत्कार देखो। आप विरोधी काम किए चले जा रहे हैं, पूरे वक्त। बड़ा मजा यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, करीब-करीब उससे विपरीत भी कर रहे हैं। और जब तक विपरीत नहीं करते, तब तक भीतर एक बेचैनी मालूम पड़ती है। विपरीत कर लेते हैं, सब ठीक हो जाता है।

एक आदमी क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। आप आमतौर से सोचते होंगे कि पश्चात्ताप करने वाला आदमी अच्छा आदमी है। लेकिन आपको पता नहीं, एक बर्थ कलकत्ता जा रही है, एक बंबई जा रही है। क्रोध करता है, पश्चात्ताप करता है। फिर क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। जिंदगी भर यही चलता है। कभी आपने ख्याल किया? और हमेशा सोचता, अब क्रोध न करूंगा। क्रोध करके पश्चात्ताप कर लेता है। होता क्या है? आमतौर से आदमी सोचता है, क्रोध करके पश्चात्ताप कर लिया, अच्छा ही हुआ, अब कभी क्रोध न करेंगे। लेकिन यह तो बहुत बार पहले भी हो चुका है, हर बार क्रोध किया, पश्चात्ताप किया, पश्चात्ताप से क्रोध कटता नहीं।

सचाई उलटी है। सचाई यह है कि पश्चात्ताप से क्रोध बचता है, कटता नहीं। क्योंकि जब आप क्रोध करते हैं तो आपकी जो अपनी प्रतिमा है, अपनी आंखों में, अच्छे आदमी की, वह खंडित हो जाती है। अरे, मैंने क्रोध किया! मैंने क्रोध किया! इतना सज्जन आदमी हूं मैं! इतना साधु चरित्र, और मैंने क्रोध किया! तो आपको जो पीड़ा अखरती है, खटकती है, अपनी प्रतिमा अपनी आंखों में गिर गई। पश्चात्ताप करके प्रतिमा फिर अपनी जगह खड़ी हो जाती है। फिर आप सज्जन हो जाते हैं कि मैंने पश्चात्ताप कर लिया। मांग ली क्षमा, मिच्छामि दुक्कडम, निपटारा हो गया, आदमी फिर अच्छे हो गए। फिर अपनी जगह खड़ी हो गई प्रतिमा। यही प्रतिमा

क्रोध करने के पहले अपनी जगह खड़ी थी, क्रोध करने से गिर गई थी। पश्चात्ताप ने फिर इसे खड़ा कर दिया। जहां यह क्रोध करने के पहले खड़ी थी, वहीं फिर खड़ी हो गई। अब आप फिर क्रोध करेंगे, जगह आ गई वापस, स्थान पर आ गए आप अपने।

पश्चात्ताप तरकीब है। जैसे मुर्गी तरकीब है अंडे की और अंडा पैदा करने की। पश्चात्ताप तरकीब है क्रोध की, और क्रोध करने की।

अब आप फिर क्रोध कर सकते हैं। अब आप फिर अपनी जगह आ गए। तो दो में से एक भी टूट जाए, फिर दूसरा नहीं टिक सकता। मुर्गी मर जाए तो फिर अंडा नहीं हो सकता, अंडा फूट जाए तो फिर मुर्गी नहीं हो सकती। क्रोध को तो छोड़ने की बहुत कोशिश की, अब कृपा करके इतना करो कि पश्चात्ताप ही छोड़ दो, मत करो पश्चात्ताप। रहने दो क्रोध को वहीं, तो आपकी प्रतिमा वापस खड़ी न हो पाएगी, और वही प्रतिमा खड़े होकर क्रोध करती है। लेकिन हम होशियार हैं। हम हर कृत्य से दूसरे कृत्य को बैलेंस कर लेते हैं। तराजू को हम हमेशा सम्हाल कर रखते हैं। अच्छाई करते हैं थोड़ी, तत्काल थोड़ी बुराई कर लेते हैं। थोड़ा हंसते हैं, थोड़ा रो लेते हैं, थोड़े रोते हैं, थोड़े हंस लेते हैं। सम्हाले रहते हैं अपने को।

हम नटों की तरह हैं जो रस्सियों पर चल रहे हैं, पूरे वक्त सम्हाल रहे हैं। बाएं झुकते हैं, दाएं झुक जाते हैं। दायें गिरने लगते हैं, बाएं झुक जाते हैं। अपने को सम्हाले हुए रस्सी पर खड़े हैं।

आदमी तभी पहुंचता है मंजिल तक, जब उसके जीवन की यात्रा यह इस चमत्कार से बच जाती है, कि एक बर्थ बंबई, एक बर्थ कलकत्ता। जब आदमी एक दिशा में यात्रा करता है तो परिणाम, निष्पत्तियां, उपलब्धियां आती हैं, नहीं तो जीवन व्यर्थ हो जाता है, अपने ही हाथों व्यर्थ हो जाता है।

तो महावीर कहते हैं, ऐसे रस का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए।

महावीर बहुत ही सुविचारित बोलते हैं। उन्होंने ऐसा भी नहीं कहा कि सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह अति हो जाएगी। कभी सेवन करने की जरूरत भी पड़ सकती है। कभी जहर भी औषधि होता है।

महावीर बहुत ही सुविचारित हैं। एक-एक शब्द उनका तुला हुआ है। कहीं भी वे अति नहीं करते, क्योंकि अति में हिंसा हो जाती है। वे ऐसा नहीं कहते कि ऐसा करना ही नहीं चाहिए, वे इतना ही कहते हैं कि अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए।

ध्यान रहे, औषधि की मात्रा होती है, शराब की कोई मात्रा नहीं होती। शराब का मजा ही अधिक मात्रा में है। औषधि की मात्रा होती है। औषधि मात्रा से ली जाती है, शराब कोई मात्रा से नहीं ली जाती। और जितनी मात्रा से आप लेते हैं, कल मात्रा बढ़ानी पड़ती है, क्योंकि उतने आप आदी होते चले जाते हैं। जितनी आप शराब पीते चले जाते हैं उतनी शराब बेकार होती चली जाती है। फिर और पियो, और पियो, तो ही कुछ परिणाम होता दिखाई पड़ता है।

ध्यान रहे अगर एक आदमी शराब पी रहा है तो मात्रा बढ़ती जाएगी। और अगर एक आदमी शराब को दवा की तरह ले रहा है तो मात्रा घटती जाएगी। क्योंकि जैसे-जैसे बीमारी कम होगी, मात्रा कम होगी। और जिस दिन बीमारी नहीं होगी, मात्रा विलीन हो जाएगी। और अगर एक आदमी शराब नशे की तरह ले रहा है, तो मात्रा रोज बढ़ेगी। क्योंकि हर शराब बीमारी को बढ़ाएगी, और ज्यादा शराब की मांग करेगी।

मुल्ला नसरुद्दीन कहता था कि मैं कभी एक पैग से ज्यादा नहीं पीता। उसके मित्रों ने कहा: हद्द कर दी! झूठ की भी एक सीमा होती है। अपनी आंखों से तुम्हें पैग पर पैग ढालते देखते हैं! तो मुल्ला ने कहा: मैं तो पहला ही पीता हूं। फिर पहला पैग दूसरा पीता है, फिर दूसरा, तीसरा। अपना जिम्मा एक का ही है। उससे सिलसिला शुरू हो जाता है। बाकी के हम जिम्मेवार नहीं हैं। हम अपने होश में एक ही पीते हैं। फिर होश ही कहां, फिर हम कहां, फिर पीने वाला कहां, फिर तो बस शराब ही शराब को पीए चली जाती है।

वह ठीक कहता है। बेहोशी का पहला कदम आप उठाते हैं। फिर पहला कदम दूसरा कदम उठाता है, फिर दूसरा तीसरा उठाता है।

जिसे बेहोशी को रोकना हो, उसे पहले कदम पर ही रुक जाना चाहिए, क्योंकि वहीं उसके निर्णय की जरूरत है। दूसरे कदम पर रुकना मुश्किल है। तीसरे पर असंभव हो जाएगा। हर रोग हमारे मानसिक जीवन में पहले कदम पर ही रोका जा सकता है। दूसरे कदम पर रोकना बहुत मुश्किल है। जितना हम आगे बढ़ते हैं उतना ही रोग भयंकर होता चला जाता है और जो पहले पर ही नहीं रोक पाया, वह अगर सोचता हो कि तीसरे पर रोक लेंगे तो वह अपने को धोखा दे रहा है। क्योंकि पहले पर वह वजनी था, ताकतवर था, तब नहीं रोक पाया, अब तीसरे पर रोकेगा, जब कमजोर हो जाएगा!

इसलिए महावीर कहते हैं, "अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे मादकता पैदा करते हैं। और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसे ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष की ओर पक्षी।"

लेकिन हम तो चाहते हैं कि लोग हमारे चारों तरफ दौड़े हुए आएँ, हम तो चाहते हैं कि स्वादिष्ट फल बन जायें हम, लदे हुए वृक्ष। सारे पक्षी हम पर ही डेरा करें। तो जहाँ नहीं भी हैं फल, वहाँ हम झूठे नकली फल लटका देते हैं ताकि वृक्ष पर दौड़े हुए लोग आयें। पक्षी तो धोखा नहीं खाते नकली फलों से, आदमी धोखा खाते हैं।

हर आदमी बाजार में खड़ा है अपने को रसीला बनाए हुए कि चारों तरफ से लोग दौड़ें और मधुमक्खियों की तरह उस पर छा जायें। जब तक किसी को ऐसा न लगे कि मैं बहुत लोगों को पागल कर पाता हूँ तब तक आनंद ही नहीं मालूम होता है जीवन में। जब भीड़ चारों तरफ से दौड़ने लगे तब आपको लगता है कि आप मैग्नेट हो गए, करिश्मैटिक हो गए। अब आप चमत्कारी हैं।

राजनीतिक का रस यह है, नेता का रस यह है कि लोग उसकी तरफ दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं। अभिनेता का, अभिनेत्री का रस यह है कि लोग उसकी तरफ दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं।

तो हम तो अपने को एक मादक बिंदु बनाना चाहते हैं, जिसमें चारों तरफ, जिसके व्यक्तित्व में शराब हो और खिंच ले। और महावीर कहते हैं कि जो दूसरे को खिंचने जाएगा, वह पहले ही दूसरों से खिंच चुका है। जो दूसरों के आकर्षण पर जीएगा वह दूसरों से आकर्षित है। और जो अपने भीतर मादकता भरेगा, बेहोशी भरेगा, लोग उसकी तरफ खिंचेंगे जरूर, लेकिन वह अपने को खो रहा है और डुबा रहा है। और एक दिन रिक्त हो जाएगा और जीवन के अवसर से चूक जाएगा।

निश्चित ही, एक स्त्री जो होशपूर्ण हो, कम लोगों को आकर्षित करेगी। एक स्त्री जो मदमत्त हो, ज्यादा लोगों को आकर्षित करेगी। क्योंकि जो मदमत्त स्त्री पशु जैसी हो जाएगी—सारी सभ्यता, सारा संस्कार, सारा जो ऊपर था वह सब टूट जाएगा। वह पशुवत हो जाएगी। एक पुरुष भी, जो मदमत्त हो, ज्यादा लोगों को आकर्षित, ज्यादा स्त्रियों को आकर्षित कर लेगा, क्योंकि वह पशुवत हो जाएगा। उसमें ठीक पशुता जैसी गति आ जाएगी। और सब वासनाएं पशु जैसी हों तो ज्यादा रसपूर्ण हो जाती हैं। इसलिए जिन मुल्कों में भी कामवासना प्रगाढ़ हो जाएगी, उन मुल्कों में शराब भी प्रगाढ़ हो जाएगी। सच तो यह है कि फिर बिना शराब पीए कामवासना में उतरना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि वह थोड़ी सी जो समझ है, वह भी बाधा डालती है। शराब पीकर आदमी फिर ठीक पशुवत व्यवहार कर सकता है।

यह जो हमारी वृत्ति है कि हम किसी को आकर्षित करें, अगर आप आकर्षित करना चाहते हैं किसी को, तो आपको किसी न किसी मामले में मदमत्त होना चाहिए। जो राजनीतिज्ञ नेता पागल की तरह बोलता है, जो पागल की तरह आश्वासन देता है, जो कहता है कि कल मेरे हाथ में ताकत होगी तो स्वर्ग आ जाएगा पृथ्वी पर, वह ज्यादा लोगों को आकर्षित करता है। जो समझदारी की बातें करता है, उससे कोई आकर्षित नहीं होता। जिस अभिनेत्री की आंखों से शराब आपकी तरफ बहती हुई मालूम पड़ती है, वह आकर्षित करती है। अभिनेत्री

के पास बुद्ध जैसी आंख हो, तो आप पागल जैसे गए हों तो शांत होकर घर लौट आयेंगे। उसके पास आंख चाहिए जिसमें शराब का भाव हो। मदहोश आंख चाहिए। उसके चेहरे पर जो रौनक हो, वह आपको जगाती न हो, सुलाती हो।

जहां भी हमें बेहोशी मिलती है, वहां हमें रस आता है। जिस चीज को भी देख कर आप अपने को भूल जाते हैं, समझना कि वहां शराब है। जिस चीज को भी देख कर आप अपने को भूल जाते हैं, अगर एक अभिनेत्री को देख कर आपको अपना ख्याल नहीं रह जाता, तो आप समझना कि वहां बेहोशी है, शराब है। और शराब ही आपको खींच रही है। शराब, शराब की बोतलों में ही नहीं होती, आंखों में भी होती है, वस्त्रों में भी होती है, चेहरों में भी होती है, हाथों में भी होती है, चमड़ी में भी होती है। शराब बड़ी व्यापक घटना है।

महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति इस तरह के रसों का सेवन करता है जो मादक हैं, और जो अपने भीतर की मादकता को मिटाता नहीं, बढ़ाता है, उसकी तरफ वासनाएं ऐसे ही दौड़ने लगेंगी जैसे फल भरे वृक्ष के पास पक्षी दौड़ आते हैं। और जो व्यक्ति अपने पास वासनाएं बुला रहा है वह अपने हाथ से अपने बन्धन आकर्षित कर रहा है। वह अपनी हथकड़ियों और अपनी बेड़ियों को निमंत्रण दे रहा है कि आओ, वह अपने हाथ से अपने कारागृहों को बुला रहा है कि आओ, और मेरे चारों तरफ निर्मित हो जाओ। वह व्यक्ति कभी मुक्त, वह व्यक्ति कभी शांत, वह व्यक्ति कभी शून्य, वह व्यक्ति कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि सत्य की पहली शर्त है, स्वतंत्रता। सत्य की पहली शर्त है, एक मुक्त भाव। और वासनाओं से कोई कैसे मुक्त हो सकता है?

"काम-भोग अपने आप न किसी मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं, और न किसी में राग-द्वेष रूपी विकृति पैदा करते हैं। परंतु मनुष्य स्वयं ही उनके प्रति राग-द्वेष के नाना संकल्प बना कर मोह से विकारग्रस्त हो जाता है।"

यह सूत्र कीमती है।

महावीर कहते हैं कि सारा खेल कामवासना का तुम्हारा अपना है।

मैं कुंभ के मेले में था। एक मित्र मेरे साथ थे। मेला शुरू होने में अभी देर थी कुछ। हम दोनों बैठे थे गंगा के किनारे, दूर बहुत दूर नहीं, दिखाई पड़े इतने दूर। एक महिला अपने बाल संवार रही थी स्नान करने के बाद। उसकी पीठ ही दिखाई पड़ती थी। मित्र बिल्कुल पागल हो गए। बातचीत में उनका रस जाता रहा। उन्होंने मुझसे कहा कि रुकें। मैं इस स्त्री का चेहरा न देख लूं तब तक मुझे चैन न पड़ेगा। मैं जाऊं, चेहरा देख आऊं। वह गए, और वहां से बड़े उदास लौटे। वह स्त्री नहीं थी, एक साधु था जो अपने बाल संवार रहा था। गए, तब उनके पैरों की चाल, लौटे तब उनके पैरों का हाल! मगर संकोची होते, शिष्ट होते, मन में ही रख लेते, और जिंदगी भर परेशान रहते।

सच में ही पीछे से आकृति आकर्षक मालूम पड़ी थी। पर वह आकर्षण वहां था या मन में था? क्योंकि वहां जाकर पता चला कि पुरुष है, तो आकर्षण खो गया।

आकर्षण स्त्री में है या स्त्री के भाव में है? आकर्षण पुरुष में है या पुरुष के भाव में?

गहरा आकर्षण भीतर है, उसे हम फैलाते हैं बाहर। बाहर खूंटियां हैं सिर्फ, उन पर हम टांगते हैं अपने आकर्षण को। और ऐसा भी नहीं है कि ऐसी घटना घटे, तभी पता चलता है। आज आप किसी के लिए दीवाने हैं, बड़ा रस है। और कल सब फीका हो जाता है, और आप खुद ही नहीं सोच पाते कि क्या हुआ, कल इतना रस था, आज सब फीका क्यों हो गया? व्यक्ति वही है, सब रस फीका हो गया!

मन का जो आकर्षण था, वह पुनरुक्ति नहीं मांगता। अगर व्यक्ति का ही आकर्षण हो तो वह आज भी उतना ही रहेगा, कल भी उतना था, परसों भी उतना ही रहेगा। लेकिन मन नये को मांगता है। इसलिए जिसे आज आकर्षित जाना है, पक्का समझ लेना, कल वह उतना आकर्षित नहीं रहेगा। परसों और फीका हो जाएगा। नरसों धूमिल हो जाएगा, आठ दिन बाद दिखाई भी नहीं पड़ेगा, सब खो जाएगा।

यह मन तो नये को मांगता है। पुराने में इसका रस खोने लगता है। यह मन का स्वभाव है। कुछ भूल नहीं है इसमें, सिर्फ उसका स्वभाव है। आज जो भोजन किया, कल जो भोजन किया, परसों जो भोजन किया, तो चौथे दिन घबड़ाहट हो जाएगी। मन तो ऐसा ही मांगता है; आज भी वही पत्नी है, कल भी वही पत्नी है, परसों भी वही पत्नी है। चौथे दिन मन उदास हो जाएगा। मन तो नये को मांगता है। इसलिए अगर पत्नी में आकर्षण जारी रखना है, तो नये के सब उपाय बिल्कुल बंद कर देने चाहिए, तो मार-पीट कर आकर्षण चलता रहता है। इसलिए हमने विवाह के इतने इंतजाम किए हैं, ताकि बाहर कोई उपाय ही न रह जाए।

जिन मुल्कों ने बाहर के उपाय छोड़ दिए, वहां विवाह टूट रहा है। विवाह बच नहीं सकता। विवाह एक बड़ी आयोजना है, वह आयोजना ऐसी है कि पुरुष फिर किसी और स्त्री को ठीक से देख भी न पाए। स्त्री फिर किसी और पुरुष के निकट पहुंच भी न पाए। तो फिर मजबूरी में उन दोनों को हमने छोड़ दिया। उसका मतलब यह हुआ कि मुझे आज भी वही भोजन दें, कल भी वही भोजन दें, परसों भी वही भोजन दें, और अगर किसी और भोजन का कोई उपाय ही न हो, और मेरी कालकोठरी में वही भोजन मुझे उपलब्ध होता हो, तो चौथे दिन भी मैं वही भोजन करूंगा। पांचवें दिन भी करूंगा। लेकिन अगर मुझे और भोजन उपलब्ध हो सकते हों, कोई अड़चन न आती हो, कोई असुविधा न होती हो, तो नहीं करूंगा।

इसलिए एक बात पक्की है, विवाह तभी तक टिक सकता है दुनिया में, जब तक हम बाहर के सारे आकर्षणों को पूरी तरह रोक रखते हैं। और बाहर के आकर्षण में जितना आकर्षण मिलता है, उससे ज्यादा खतरा मिले, उपद्रव मिले, झंझट मिले, परेशानी मिले, तो रुक सकता है। नहीं तो विवाह टूट जाएगा। लेकिन यह विवाह जो टूट जाएगा, झूठा ही होगा। जिस दुनिया में सारा आकर्षण मिलता हो और विवाह बच जाए, तो ही समझना कि विवाह है। नहीं तो धोखा था इसलिए जिस दिन विवाह के कोई दिन बंधन नहीं होंगे, उसी दिन हमें पता चलेगा कि कौन पति-पत्नी है, उसके पहले कोई पता नहीं चल सकता--कोई उपाय नहीं पता चलने का।

मुझे क्या पसंद है, मेरा किसके साथ गहरा नाता है, आंतरिक, वह तभी पता चलेगा जब बदलने के सब उपाय हों, और बदलाहट न हो, जब बदलने के कोई उपाय ही न हों, और बदलाहट न हो तो सभी पत्नियां सतियां हैं। कोई अड़चन नहीं है, और सभी पति एक पत्नीव्रती हैं। जितना हमारे चारों तरफ खूंटियां हों, उतना ही हमें पता चलेगा कि कितना प्रोजेक्शन है, कितना हमारा मन एक खूंटी से दूसरी खूंटी, दूसरी से तीसरी पर नाचता रहता है। जो हम रस पाते हैं उस खूंटी से, वह भी हमारा दिया हुआ दान है, यह महावीर कह रहे हैं। उससे कुछ मिलता नहीं है हमें।

एक कुत्ता है, वह एक हड्डी को मुंह में लेकर चूस रहा है। कुत्ता जब हड्डी चूसे, तो बैठ कर ध्यान करना चाहिए उस पर क्योंकि वह बड़ा गहरा काम कर रहा है, जो सभी आदमी करते हैं। कुत्ता हड्डी चूसता है, तो हड्डी में कुछ रस तो होता नहीं, लेकिन कुत्ते के खुद ही मुंह में जख्म हो जाते हैं। हड्डी चूसने से, उनसे खून निकलने लगता है। वह जो खून निकलने लगता है, वह कुत्ता समझता है, हड्डी से आ रहा है। वह खून गले में जाता है, स्वादिष्ट मालूम पड़ता है, अपना ही खून है। लेकिन कुत्ता समझे भी कैसे कि हड्डी से नहीं निकल रहा है। जब हड्डी चूसता है, तभी निकलता है। स्वभावतः तर्कयुक्त है, गणित साफ है कि जब हड्डी चूसता हूं, तभी निकलता है, हड्डी से निकलता है। लेकिन वह निकलता है अपने ही मसूढ़ों के टूट जाने से, अपने ही मुंह में घाव हो जाने से। कुत्ता मजे से हड्डी चूसता रहता है, और अपना ही खून पीता रहता है।

जब आप किसी और से रस लेते हैं, तब आप हड्डी चूस रहे हैं। रस आपके ही मन का है, अपना ही खून झरता है। किसी दूसरे से कोई रस मिलता नहीं, मिल सकता नहीं। अगर एक व्यक्ति संभोग में भी सोचता है, सुख मिल रहा है तो वह अपने ही खून झरने से मिलता है, किसी दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं है। हड्डी चूसना है। लेकिन कठिन है, न कुत्ते की समझ में आता है, न आदमी की समझ में आता है। खुद को समझना जटिल है।

महावीर कहते हैं। काम-भोग अपने आप न मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं, न तो सोचना कि काम-भोग से कोई समता उपलब्ध होती है, सुख उपलब्ध होता है, शांति उपलब्ध होती है। इससे विपरीत भी मत सोचना। साधु-संन्यासी यही सोचते हैं, काम-भोग से दुख उत्पन्न होता है। कठिनाई आती है, राग-द्वेष पैदा होते हैं, नरक निर्मित होता है। ध्यान रखना कि यह वही आदमी है जो कल सोचता था कि काम-भोग से स्वर्ग मिलता है। यह वही आदमी है, अब शीर्षासन करने लगा। अब यह कहता है कि काम-भोग से नरक मिलता है।

महावीर कहते हैं, काम-भोग से न स्वर्ग मिलता है, न नरक मिलता है। काम-भोग पर स्वर्ग भी तुम्हारा मन ही आरोपित करता है, काम-भोग पर तुम्हारा मन ही तुम्हारा नरक भी निर्मित करता है। तुम काम-भोग से वही पाते हो जो तुम डाल देते हो उसमें। तुम्हें वही मिलता है जो तुम्हारा ही दिया हुआ है। और तुम देना, डालना बंद कर दो तो काम-भोग विलीन हो जाता है, तिरोहित हो जाता है। खूंटियां खड़ी रहें अपनी जगह, तुम अपनी वृत्तियों को उन पर टांगना बंद कर देते हो।

और जिस दिन कोई व्यक्ति यह जान लेता है कि सुख भी मेरे, दुख भी मेरे--सब भाव मेरे हैं, उस दिन व्यक्ति मुक्त हो जाता है। जब तक मुझे लगता है कि दुख किसी और से आता है, सुख किसी और से आता है, तब तक मैं परतंत्र होता हूं, निर्भर होता हूं।

मुक्ति का यही है अर्थ--जिस दिन मुझे लगता है कि सब कुछ मेरा फैलाव है। जहां मैंने चाहा, सुख पाऊं, वहां मैंने सुख देख लिया। जहां मैंने चाहा दुख पाऊं वहां मैंने दुख देख लिया। जो मैंने देखा वह मेरी आंख से गए हुए चित्र थे, जगत ने केवल पर्दे का काम किया, चित्र मेरे थे। प्रोजेक्टर मैं हूं। लेकिन प्रोजेक्टर दिखाई नहीं पड़ते। फिल्म में भी आप बैठ कर देखते हैं, प्रोजेक्टर पीठ के पीछे होता है। वह वहां छिपा रहता है, दीवार के भीतर, छोटे से छेद से निकलते रहते हैं चित्र, दिखाई पड़ते हैं पर्दे पर, जहां होते नहीं। जहां होते हैं, वह होती है पीठ के पीछे, वहां कोई देखता नहीं। पर्दे पर कुछ होता नहीं। पर्दे पर केवल जो प्रोजेक्टर फेंकता है वही दिखाई पड़ता है।

ध्यान रहे, जब मैं किसी स्त्री, किसी पुरुष, किसी मित्र, किसी शत्रु के प्रति किसी भाव में पड़ जाता हूं, तो प्रोजेक्टर मेरे पीछे भीतर छिपा है जहां से मैं चित्र फेंकता हूं, और दूसरा व्यक्ति केवल एक पर्दा है, जिस पर वह चित्र दिखाई पड़ता है। मैं ही दिखाई पड़ता हूं बहुत लोगों पर।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब किसी आदमी में तुम्हें कोई बुराई दिखाई पड़े, तो बहुत गौर से सोचना। ज्यादा मौके ये हैं कि वह बुराई तुम्हारी होगी। जैसे एक बाप है--अगर बाप गधा रहा हो स्कूल में, तो बेटे को गधा बिल्कुल बरदाश्त नहीं कर सकेगा, बेटे को वह बुद्धिमान बनाने की कोशिश में लगा रहेगा। और जरा-सा बेटा कुछ नासमझी और मूढ़ता करे, जरा नंबर उसके कम हो जाएं तो भारी शोरगुल मचाएगा। बुद्धिमान बाप इतना नहीं मचाएगा। बुद्धू बाप जरूर मचाएगा। उसका कारण है, कि बेटा सिर्फ प्रोजेक्शन का पर्दा है। जो उनमें कम रह गया है वह उसमें पूरा करने की कोशिश कर रहे हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा एक दिन अपना स्कूल से प्रमाण-पत्र लेकर लौटा सालाना परीक्षा का। मुल्ला ने बहुत हाय-तौबा मचाई, बहुत उछला-कूदा। और कहा कि बरबाद कर दिया, नाम डुबा दिया। किसी विषय में बेटा उत्तीर्ण नहीं हुआ है। अधिकतर में शून्य प्राप्त हुआ है।

लेकिन बेटा नसरुद्दीन का ही था। वह खड़ा मुस्कुराता रहा। जब बाप काफी शोरगुल कर लिया और काफी अपने को उत्तेजित कर लिया, तब उसने कहा कि जरा ठहरिए, यह प्रमाण-पत्र मेरा नहीं है, पुरानी कुरान की किताब में मिल गया है। यह आपका है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "तो ठीक, तो जो मेरे बाप ने मेरे साथ किया था वही मैं तेरे साथ करूंगा।"

उसके लड़के ने पूछा, "तुम्हारे बाप ने तुम्हारे साथ क्या किया था?"

उसने कहा, "नंगा करके चमड़ी उधेड़ दी थी।"

"तो ठीक! मेरा ही सही, कोई हर्जा नहीं। तेरा कहां है?"

उसके बेटे ने कहा, "मेरी भी हालत यही है। इसीलिए तो मैंने आपका दिखाया है, शायद आप थोड़े नरम हो जायें।"

उसने कहा कि नरम का कोई उपाय नहीं। जो मेरे बाप ने मेरे साथ किया था, वही मैं तेरे साथ करूंगा।

जो हमें दूसरों में दिखाई पड़ता है--आपको दिखाई पड़ता है कि फलां आदमी बहुत ईर्ष्यालु है, थोड़ा ख्याल करना, कहीं वह आदमी पर्दा तो नहीं है, और आपके भीतर ईर्ष्या है। आपको दिखाई पड़ता है, फलां आदमी बहुत अहंकारी है, थोड़ा ख्याल करना, वह पर्दा तो नहीं है, और अहंकार आपके भीतर है। आपको लगता है, फलां आदमी बेईमान है, थोड़ा ख्याल करना, थोड़ा मुड़-मुड़ कर देखना शुरू करो, ताकि प्रोजेक्टर का पता चले। पर्दे पर ही मत देखते रहो।

महावीर कहते हैं, सब पीछे से, भीतर से आ रहा है और बाहर फैल रहा है। सारा खेल तुम्हारा है। तुम्हीं हो नाटक के लेखक, तुम्हीं हो उसके पात्र, तुम्हीं हो उसके दर्शक। दूसरे को मत खोजो, अपने को खोज लो। जो इस खोज में लग जाता है, वह एक दिन मुक्त हो जाता है।

आज इतना ही।

ये चार शत्रु (कषाय-सूत्र)

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्डमाणो।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचन्ति भूलाइं पुण्णभवस्स।।
पुढवी साली जवा चेव,
हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं नालमेगस्स,
इह विज्जा तवंचरे।।

अनिगृहित क्रोध और मान तथा बढ़ते हुए माया और लोभ, ये चारों काले कुत्सित कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार-वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं।

चावल और जौ आदि धान्यों तथा सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समस्त पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त कर सकने में असमर्थ है, यह जान कर संयम का ही आचरण करना चाहिए।

सूत्र के पूर्व कुछ प्रश्न।

महावीर ने अप्रमाद को साधना का आधार कहा है, होश को, सतत जागृति को। एक मित्र ने पूछा है कि जो होश के बारे में कहा गया है वह हम अपने काम-काज में, आफिस में, दुकान में कार्य करते समय कैसे आचरण में लाएं? होश में रहने पर ध्यान जाये तो काम कैसे हो? काम में होते हुए होश का क्या स्थान और साधना हो सकती है?

दो तीन बातें ख्याल में लेनी चाहिए।

एक--होश कोई अलग प्रक्रिया नहीं है। आप भोजन कर रहे हैं, तो होश कोई अलग प्रक्रिया नहीं है कि भोजन करने में बाधा डाले। जैसे मैं आपसे कहूँ कि भोजन करें और दौड़ें। तो दोनों में से एक ही हो सकेगा, दौड़ना या भोजन करना। आपसे मैं कहूँ कि दफ्तर जाएं, तब सोएं, तो दोनों में से एक ही हो सकेगा, सोएं या दफ्तर जाएं।

होश कोई प्रतियोगी प्रक्रिया नहीं है। भोजन कर सकते हैं, होश को रखते हुए या बेहोशी में। होश भोजन के करने में बाधा नहीं बनेगा। होश का अर्थ इतना ही है कि भोजन करते समय मन कहीं और न जाए, भोजन करने में ही हो। मन कहीं और चला जाए तो भोजन बेहोशी में हो जाएगा। आप भोजन कर रहे हैं, और मन दफ्तर में चला गया। शरीर भोजन की टेबल पर, मन दफ्तर में, तो न तो दफ्तर में हैं आप, क्योंकि वहां आप हैं नहीं, और न भोजन की टेबल पर हैं आप, क्योंकि मन वहां नहीं रहा। तो वह जो भोजन कर रहे हैं, वह बेहोश है, आपके बिना हो रहा है।

इस बेहोशी को तोड़ने की प्रक्रिया है होश, भोजन करते वक्त मन भोजन में ही हो, कहीं और न जाए। सारा जगत जैसे मिट गया, सिर्फ यह छोटा सा काम भोजन करने का रह गया। पूरी चेतना इसके सामने है। एक कौर भी आप बनाते हैं, उठाते हैं, मुंह में ले जाते हैं, चबाते हैं, तो यह सारा होशपूर्वक हो रहा है। आपका सारा ध्यान भोजन करने में ही है, इस फर्क को आप ठीक से समझ लें।

अगर मैं आपसे कहूँ कि भोजन करते वक्त राम-राम जपें, तो दो क्रियाएं हो जाएंगी। राम-राम जपेंगे तो भोजन से ध्यान हटेगा। भोजन पर ध्यान लाएंगे तो राम-राम का ध्यान टूटेगा। मैं आपको कहीं और ध्यान ले जाने को नहीं कह रहा हूँ, जो आप कर रहे हैं उसको ही ध्यान बना लें। इससे आपके किसी काम में बाधा नहीं पड़ेगी, बल्कि सहयोग बनेगा। क्योंकि जितने ध्यानपूर्वक काम किया जाए, उतना कुशल हो जाता है।

काम की कुशलता ध्यान पर निर्भर है। अगर आप अपने दफ्तर में ध्यानपूर्वक कर रहे हैं, जो भी कर रहे हैं तो आपकी कुशलता बढ़ेगी, क्षमता बढ़ेगी, काम की मात्रा बढ़ेगी और आप थकेंगे नहीं। और आपकी शक्ति बचेगी। और आप दफ्तर से भी ऐसे वापस लौटेंगे जैसे ताजे लौट रहे हैं। क्योंकि जब शरीर कुछ और करता है, मन कुछ और करता है तो दोनों के बीच तनाव पैदा होता है। वही तनाव थकान है। आप होते हैं दफ्तर में, मन होता है सिनेमा-गृह में। आप होते हैं सिनेमा में, मन होता है घर पर, तो मन और शरीर के बीच जो फासला है वह तनाव ही आपको थकाता है और तोड़ता है।

जब आप जहां होते हैं वहीं मन होता है। इसलिए आप देखें, जब आप कोई खेल-खेल रहे होते हैं तो आप ताजे होकर लौटते हैं। खेल में शक्ति लगती है, लेकिन खेल के बाद आप ताजे होकर लौटते हैं। बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। आप बेडमिंटन खेल रहे हैं कि आप कबड्डी खेल रहे हैं, या कुछ भी, या बच्चों के साथ बगीचे में दौड़ रहे हैं। शक्ति व्यय हो रही है, लेकिन इस दौड़ने के बाद आप ताजे होते हैं। और यही काम अगर आपको करना पड़े तो आप थकते हैं।

काम और खेल में एक ही फर्क है, खेल में पूरा ध्यान वहीं मौजूद होता है, काम में पूरा मौजूद नहीं होता। इसलिए अगर आप किसी को नौकरी पर रख लें खेलने के लिए, तो वह खेलने के बाद थक कर जाएगा। क्योंकि वह फिर खेल नहीं है, काम है। और जो होशियार हैं, वे अपने काम को भी खेल बना लेते हैं। खेल का मतलब यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, इतने ध्यान, इतनी तल्लीनता, इतने आनंद से डूब कर कर रहे हैं कि उस करने के बाहर कोई संसार नहीं बचा है। आप इस करने के बाहर ज्यादा ताजे, सशक्त लौटेंगे। और कुशलता बढ़ जाएगी।

जो भी हम ध्यान से करते हैं, उसकी कुशलता बढ़ जाती है। लेकिन, अनेक लोग ध्यान का मतलब समझते हैं, जोर जबरदस्ती से की गई एकाग्रता। तो आप थक जाएंगे। अगर आप जबरदस्ती अपने को खींच कर किसी काम पर मन को लगाते हैं, तो आप थक जाएंगे। तब तो यह ध्यान भी एक काम हो गया। जो भी जबरदस्ती किया जाता है, वह काम हो जाता है।

ध्यान को भी आनंद समझें। इसको भी बेचैनी मत बनाएं। यह आपके सिर पर एक बोझ न हो जाए कि मुझे ध्यानपूर्वक ही काम करना है। इसको चेष्टा और प्रयत्न का बोझ न दें, हलके-हलके इसे विकसित होने दें, इसको सहारा दें। जब भी ख्याल आ जाए, तो होशपूर्वक करें। भूल जाए, तो चिंता न लें। जब ख्याल आ जाए, फिर होशपूर्वक करने लगें।

अगर आपने तय किया है कि अब मैं काम अपना होशपूर्वक करूंगा, तो आप कर पाएंगे आज ही, ऐसा नहीं है; वर्षों लग जाएंगे। क्षण भर भी होश रखना मुश्किल है। तय करेंगे कि होशपूर्वक चलूंगा, दो कदम नहीं उठा पाएंगे और होश कहीं और चला जाएगा, कदम, कहीं और चलने लगेंगे। उससे चिन्तित न हों, पश्चात्ताप न करें। लाखों-लाखों जीवन की आदत है बेहोशी की, इसलिए दुखी होने का कोई कारण नहीं है। हमने ही साधा है बेहोशी को, इसलिए किससे शिकायत करने जाएं? और परेशान होने से कुछ हल नहीं होता।

जैसे ही ख्याल आ जाए कि पैर बेहोशी में चलने लगे, मेरा ध्यान कहीं और चला गया था, आनंदपूर्वक फिर ध्यान को ले आए। इसको पश्चात्ताप न बनाएं। इससे मन में दुखी न हों, इससे पीड़ित न हों, इससे ऐसा न समझें कि यह अपने से न होगा। यह भी न समझें कि मैं तो बहुत दीन-हीन हूँ, कमजोर हूँ, मुझसे होने वाला नहीं है। होता होगा महावीर से, अपने वश की बात नहीं है। बिल्कुल न सोचें। महावीर भी शुरू करते हैं तो ऐसा ही

होगा। कोई भी शुरू करता है तो ऐसा ही होता है। महावीर इस यात्रा का अंत हैं, प्रारम्भ पर वे भी आप जैसे हैं। अंत आपको दिखाई पड़ा है, महावीर के प्रारंभ का आपको कोई पता नहीं है। प्रारम्भ में सभी के पैर डगमगाते हैं।

छोटा बच्चा चलना शुरू करता है, अगर वह आपको देख ले चलता हुआ, और सोचे कि यह अपने से न होगा। आप भी ऐसे ही चले थे, आपने भी ऐसे ही कदम उठाए थे और गिरे थे, और दो कदम उठाने के बाद बच्चा फिर चारों हाथ पैर से चलते लगता है, सोच कर कि यह अपने वश की बात नहीं। यह अब भूल ही जाता है कि दो कदम से चलना था, फिर चारों से घिसटने लगता है।

बढ़ेगी, क्षमता बढ़ेगी, काम की मात्रा बढ़ेगी और आप थकेंगे नहीं। और आपकी शक्ति बचेगी। और आप दफ्तर से भी ऐसे वापस लौटेंगे जैसे ताजे लौट रहे हैं। क्योंकि जब शरीर कुछ और करता है, मन कुछ और करता है तो दोनों के बीच तनाव पैदा होता है। वही तनाव थकान है। आप होते हैं दफ्तर में, मन होता है सिनेमा-गृह में। आप होते हैं सिनेमा में, मन होता है घर पर, तो मन और शरीर के बीच जो फासला है वह तनाव ही आपको थकाता है और तोड़ता है।

जब आप जहां होते हैं वहीं मन होता है। इसलिए आप देखें, जब आप कोई खेल-खेल रहे होते हैं तो आप ताजे होकर लौटते हैं। खेल में शक्ति लगती है, लेकिन खेल के बाद आप ताजे होकर लौटते हैं। बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। आप बेडमिंटन खेल रहे हैं कि आप कबड्डी खेल रहे हैं, या कुछ भी, या बच्चों के साथ बगीचे में दौड़ रहे हैं। शक्ति व्यय हो रही है, लेकिन इस दौड़ने के बाद आप ताजे होते हैं। और यही काम अगर आपको करना पड़े तो आप थकते हैं।

काम और खेल में एक ही फर्क है, खेल में पूरा ध्यान वहीं मौजूद होता है, काम में पूरा मौजूद नहीं होता। इसलिए अगर आप किसी को नौकरी पर रख लें खेलने के लिए, तो वह खेलने के बाद थक कर जाएगा। क्योंकि वह फिर खेल नहीं है, काम है। और जो होशियार हैं, वे अपने काम को भी खेल बना लेते हैं। खेल का मतलब यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, इतने ध्यान, इतनी तल्लीनता, इतने आनंद से डूब कर कर रहे हैं कि उस करने के बाहर कोई संसार नहीं बचा है। आप इस करने के बाहर ज्यादा ताजे, सशक्त लौटेंगे। और कुशलता बढ़ जाएगी।

जो भी हम ध्यान से करते हैं, उसकी कुशलता बढ़ जाती है। लेकिन, अनेक लोग ध्यान का मतलब समझते हैं, जोर जबरदस्ती से की गई एकाग्रता। तो आप थक जाएंगे। अगर आप जबरदस्ती अपने को खींच कर किसी काम पर मन को लगाते हैं, तो आप थक जाएंगे। तब तो यह ध्यान भी एक काम हो गया। जो भी जबरदस्ती किया जाता है, वह काम हो जाता है।

ध्यान को भी आनंद समझें। इसको भी बेचैनी मत बनाएं। यह आपके सिर पर एक बोझ न हो जाए कि मुझे ध्यानपूर्वक ही काम करना है। इसको चेष्टा और प्रयत्न का बोझ न दें, हलके-हलके इसे विकसित होने दें, इसको सहारा दें। जब भी ख्याल आ जाए, तो होशपूर्वक करें। भूल जाए, तो चिंता न लें। जब ख्याल आ जाए, फिर होशपूर्वक करने लगे।

अगर आपने तय किया है कि अब मैं काम अपना होशपूर्वक करूंगा, तो आप कर पाएंगे आज ही, ऐसा नहीं है; वर्षों लग जाएंगे। क्षण भर भी होश रखना मुश्किल है। तय करेंगे कि होशपूर्वक चलूंगा, दो कदम नहीं उठा पाएंगे और होश कहीं और चला जाएगा, कदम, कहीं और चलने लगेंगे। उससे चिंतित न हों, पश्चात्ताप न करें। लाखों-लाखों जीवन की आदत है बेहोशी की, इसलिए दुखी होने का कोई कारण नहीं है। हमने ही साधा है बेहोशी को, इसलिए किससे शिकायत करने जाएं? और परेशान होने से कुछ हल नहीं होता।

जैसे ही ख्याल आ जाए कि पैर बेहोशी में चलने लगे, मेरा ध्यान कहीं और चला गया था, आनंदपूर्वक फिर ध्यान को ले आए। इसको पश्चात्ताप न बनाएं। इससे मन में दुखी न हों, इससे पीड़ित न हों, इससे ऐसा न

समझें कि यह अपने से न होगा। यह भी न समझें कि मैं तो बहुत दीन-हीन हूं, कमजोर हूं, मुझसे होनेवाला नहीं है। होता होगा महावीर से, अपने वश की बात नहीं है। बिल्कुल न सोचें। महावीर भी शुरू करते हैं तो ऐसा ही होगा। कोई भी शुरू करता है तो ऐसा ही होता है। महावीर इस यात्रा का अंत हैं, प्रारंभ पर वे भी आप जैसे हैं। अंत आपको दिखाई पड़ा है, महावीर के प्रारंभ का आपको कोई पता नहीं है। प्रारंभ में सभी के पैर डगमगाते हैं।

छोटा बच्चा चलना शुरू करता है, अगर वह आपको देख ले चलता हुआ, और सोचे कि यह अपने से न होगा। आप भी ऐसे ही चले थे, आपने भी ऐसे ही कदम उठाए थे और गिरे थे, और दो कदम उठाने के बाद बच्चा फिर चारों हाथ पैर से चलते लगता है, सोच कर कि यह अपने वश की बात नहीं। यह अब भूल ही जाता है कि दो कदम से चलना था, फिर चारों से घिसटने लगता है।

ठीक, प्रमाद को तोड़ने में भी ऐसा ही होगा। दो कदम आप होश में चलेंगे, फिर अचानक चार हाथ-पैर से आप बेहोशी में चलने लगेंगे। जैसे ही होश आ जाए, फिर खड़े हो जाएं। चिंता मत लें इसकी कि बीच में होश क्यों खो गया। इस चिंता में समय और शक्ति खराब न करें। तत्काल होश को फिर से साधने लगें। अगर चौबीस घंटे में चौबीस क्षण भी होश सध जाए, तो आप महावीर हो जाएंगे। काफी है, इतना भी बहुत है। इससे ज्यादा की आशा मत रखें, अपेक्षा भी मत करें। चौबीस घंटे में अगर चौबीस क्षणों को भी होश आ जाए तो बहुत है। धीरे-धीरे क्षमता बढ़ती जाएगी। और वह जो बच्चा आज सोच रहा है कि अपने वश के बाहर है दो पैर से चलना, एक दिन वह दो पैर से चलेगा और कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा, कोई प्रयास नहीं रह जाएगा।

तो यह ध्यान रख लें, ध्यान को काम नहीं बना लेना है। नहीं तो बहुत से धार्मिक लोग ध्यान को ऐसा काम बना लेते हैं कि उनके सिर पर पत्थर रखा है। उसकी वजह से उनका क्रोध बढ़ जाता है। क्योंकि फिर जिससे भी उन्हें बाधा पड़ जाती है, उस पर वे क्रोधित हो जाते हैं। जो काम में उनका ध्यान नहीं टिकता, वह उस काम को छोड़ कर भागना चाहते हैं। जिनके कारण असुविधा होती है, उनका त्याग करना चाहते हैं। यह सब क्रोध है। इस क्रोध से कोई हल नहीं होगा।

साधक को चाहिए धैर्य, और तब दुकान भी जंगल जैसी सहयोगी हो जाती है। साधक को चाहिए अनंत प्रतीक्षा, और तब घर भी किसी भी आश्रम से महत्वपूर्ण हो जाता है। निर्भर करता है आपके भीतर के धैर्य, प्रतीक्षा और सतत, सहज प्रयास पर। प्रयास तो करना ही होगा, लेकिन उस प्रयास को एक बोझिलता जो बनाएगा, वह हार जाएगा।

जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह प्रतीक्षा से, सहजता से, बिना बोझ बनाए प्रयास से उपलब्ध होता है। सच तो यह है कि हम कोई भी चीज आज भी कर सकते हैं, लेकिन अधैर्य ही हमारा बाधा बन जाता है। उससे उदासी आती है, निराशा आती है, हताशा पकड़ती है, और आदमी सोचता है, नहीं, यह अपने से न हो सकेगा। यह जो बार-बार हताशा पकड़ती है, यह अहंकार का लक्षण है।

आप अपने से बहुत अपेक्षा कर लेते हैं पहले, फिर उतनी पूरी नहीं होती। वह अपेक्षा आपका अहंकार है। एक क्षण भी होश सधता है तो बहुत है। एक क्षण जो सधता है, कल दो क्षण भी सध जाएगा। और ध्यान रहे, एक क्षण से ज्यादा तो आदमी के हाथ में कभी होता नहीं। दो क्षण तो किसी को इकट्ठे मिलते नहीं। इसलिए दो क्षण की चिंता भी क्या? जब भी आप के हाथ में समय आता है, एक ही क्षण आता है। अगर आप एक क्षण में होश साध सकते हैं, तो समस्त जीवन में होश सध सकता है। इसका बीज आपके पास है। एक ही क्षण तो मिलता है हमेशा, और एक क्षण का होश साधने की क्षमता आप में है।

आदमी एक कदम चलता है एक बार में, कोई मील की छलांग नहीं लगाता। और एक-एक कदम चल कर आदमी हजारों मील चल लेता है। जो आदमी अपने पैर को देखेगा और देखेगा, एक कदम चलता हूं, एक फीट पूरा नहीं हो पाता; हजार मील कहां पार होने वाले हैं! यहीं बैठ जाएगा। लेकिन जो आदमी यह देखता है

कि अगर एक कदम चल लेता हूं, तो एक कदम हजार मील में कम हुआ। और अगर जरा सा भी कम होता है तो एक दिन सागर को भी चुकाया जा सकता है। फिर कुछ भी अड़चन नहीं है। इतना चल लेता हूं तो एक हजार मील भी चल लूंगा। दस हजार मील भी चल लूंगा। लाओत्से ने कहा है, पहले कदम को उठाने में जो समर्थ हो गया, अंतिम बहुत दूर नहीं है। कितना ही दूर हो।

जिसने पहला उठा लिया है, वह अंतिम भी उठा लेगा। पहले में ही अड़चन है, अंतिम में अड़चन नहीं है। जो पहले पर ही थक कर बैठ गया, निश्चित ही वह अंतिम नहीं उठा पाता है। पहला कदम आधी यात्रा है, चाहे यात्रा कितनी ही बड़ी क्यों न हो। जिसने पहले कदम के रहस्य को समझ लिया, वह चलने की तरकीब समझ गया, विज्ञान समझ गया। एक-एक कदम उठाते जाना है, एक-एक पल को प्रमाद से मुक्त करते जाना है। जो भी करते हों, होशपूर्वक करें। होश अलग काम नहीं है, उस काम को ही ध्यान बना लें। महावीर और बुद्ध इस मामले में अनूठे हैं।

दुनिया में और जो साधन पद्धतियां हैं, वे सब ध्यान को अलग काम बनाती हैं, वे कहती हैं, रास्ते पर चलो तो राम को स्मरण करते रहो। वे कहती हैं कि बैठे हो खाली, तो माला जपते रहो। कोई भी पल ऐसा न जाए जो प्रभु स्मरण से खाली हो। इसका मतलब हुआ कि जिंदगी का काम एक तरफ चलता रहेगा और भीतर एक नये काम की धारा शुरू करनी पड़ेगी।

महावीर और बुद्ध इस मामले में बहुत भिन्न हैं। वे कहते हैं कि यह भेद करने से तनाव पैदा होगा, अड़चन होगी।

मेरे पास एक सैनिक को लाया गया था। सैनिक था, सैनिक के ढंग का उसका अनुशासन था मन का। फिर उसने किसी से मंत्र ले लिया। तो जैसा वह अपनी सेना में आज्ञा मानता था, वैसे ही उसने अपने गुरु की भी आज्ञा मानी। और मंत्र को चौबीस घंटे रटने लगा। अभ्यास हो गया। दो तीन महीने में मंत्र अभ्यस्त हो गया। तब बड़ी अड़चन शुरू हुई, उसकी नींद खो गई। क्योंकि वह मंत्र तो जपता ही रहता। धीरे-धीरे नींद मुश्किल हो गई, क्योंकि मंत्र चले तो नींद कैसे चले। फिर धीरे-धीरे रास्ते पर चलते वक्त उसे भ्रम पैदा होने लगे। कार का हार्न बज रहा है, उसे सुनाई न पड़े, क्योंकि वहां भीतर मंत्र चल रहा है। वह इतना एकाग्र होकर मंत्र सुनने लगा कि कार का हार्न कैसे सुनाई पड़े। उसकी मिलिटरी में उसका कैप्टन आज्ञा दे रहा है, बाएं घूम जाओ, वह खड़ा ही रहे। भीतर तो वह कुछ और कर रहा है।

उसे मेरे पास लाएं। मैंने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? इसमें तुम पागल हो जाओगे। उसने कहा, अब तो कोई उपाय नहीं है। अब तो मैं न भी जपूं राम-राम, भीतर का मंत्र न भी जपूं तो भी चलता रहता है। मैं अगर उसे छोड़ दूं, तो मेरा मामला नहीं अब, उसने मुझे पकड़ लिया है। मैं खाली भी बैठ जाऊं तो कोई फर्क नहीं पड़ता है, मंत्र चलता है।

इस तरह की कोई भी साधना पद्धति जीवन में उपद्रव पैदा कर सकती है। क्योंकि जीवन की एक धारा है, और एक नई धारा आप पैदा कर लेते हैं। जीवन ही काफी बोझिल है। और एक नई धारा तनाव पैदा करेगी। और अगर इन दोनों धाराओं में विरोध है, तो आप अड़चन में पड़ जाएंगे।

महावीर और बुद्ध अलग धारा पैदा करने के पक्ष में नहीं हैं। वे कहते हैं, जीवन की जो धारा है, इसी धारा पर ध्यान को लगाओ। इसमें भेद मत पैदा करो, द्वैत मत पैदा करो। ध्यान ही चाहिए न, तो राम-राम पर ध्यान रखते हो, क्या सवाल हुआ? श्वास चलती है, इसी पर ध्यान रख लो। ध्यान ही बढ़ाना है तो एक मंत्र पर ध्यान बढ़ाते हो, पैर चल रहे हैं, यह भी मंत्र है। इसी पर ध्यान को कर लो। भीतर कुछ गुनगुनाओगे उस पर ध्यान करना है, बाजार पूरा गुनगुना रहा है, चारों तरफ शोरगुल हो रहा है, इसी पर ध्यान कर लो। ध्यान को अलग क्रिया मत बनाओ, विपरीत क्रिया मत बनाओ। जो चल रहा है, मौजूद है उसको ही ध्यान का आब्जेक्ट, उसको

ही ध्यान का विषय बना लो। और तब इस अर्थों में, महावीर की पद्धति जीवन विरोधी नहीं है, और जीवन में कोई भी अड़चन खड़ी नहीं करती।

महावीर ने सीधी सी बात कही है, चलो, तो होशपूर्वक। बैठो, तो होशपूर्वक। उठो, तो होशपूर्वक। भोजन करो, तो होशपूर्वक। जो भी तुम कर रहे हो जीवन की क्षुद्रतम क्रिया, उसको भी होशपूर्वक किए चले जाओ। क्रिया में बाधा न पड़ेगी, क्रिया में कुशलता बढ़ेगी और होश भी साथ-साथ विकसित होता चला जाएगा। एक दिन तुम पाओगे, सारा जीवन होश का एक द्वीप-स्तंभ बन गया, तुम्हारे भीतर सब होशपूर्ण हो गया है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि कल आपने कहा, प्रत्येक व्यक्ति की परम स्वतंत्रता का समादर करना ही अहिंसा है। दूसरे को बदलने का, अनुशासित करने का, उसे भिन्न करने का प्रयास हिंसा है। तो फिर गुरजिएफ और झेन गुरुओं द्वारा अपने शिष्यों के प्रति इतना सख्त अनुशासन और व्यवहार और उन्हें बदलने के तथा नया बनाने के भारी प्रयत्न के संबंध में क्या कहिएगा? क्या उसमें भी हिंसा नहीं छिपी है?

दूसरे को बदलने की चेष्टा हिंसा है। अपने को बदलने की चेष्टा हिंसा नहीं है। दूसरे की जीवन पद्धति पर आरोपित होने की चेष्टा हिंसा है। अपने जीवन को रूपांतरण करना हिंसा नहीं है, और यहीं फर्क शुरू हो जाता है।

जब भी एक व्यक्ति किसी झेन गुरु के पास आकर अपना समर्पण कर देता है तो गुरु और शिष्य दो नहीं रहे। अब यह दूसरे को बदलने की कोशिश नहीं है। झेन गुरु आपको आकर बदलने की कोशिश नहीं करेगा, जब तक कि आप जाकर बदलने के लिए अपने को उसके हाथ में नहीं छोड़ देते हैं। जब आप बदलने के लिए अपने आपको उसके हाथ में छोड़ देते हैं, समग्ररूपेण समर्पण कर देते हैं, यह सरेंडर टोटल, पूरा है, तो अब गुरु आपको अलग नहीं देखता, अब आप उसका ही विस्तार हैं, उसका ही फैलाव हैं। अब वह आपको ऐसे ही बदलने में लग जाता है, जैसे अपने को बदल रहा हो। इसलिए झेन गुरु सख्त मालूम पड़ सकता है बाहर से, देखने वालों को। शिष्यों को कभी सख्त मालूम नहीं पड़ा है।

हुई हाई ने कहा है कि जब मेरे गुरु ने मुझे खिड़की से उठा कर बाहर फेंक दिया, तो जो भी देखने वाले थे, सभी ने समझा कि यह गुरु दुष्ट है, यह भी कोई बात हुई। शिष्य को खिड़की से उठा कर बाहर फेंक देना, यह भी कोई बात हुई! और यह भी कोई सदगुरु का लक्षण हुआ!

लेकिन हुई हाई ने कहा है कि सब ठीक चल रहा था मेरे मन में, सब शांत होता जा रहा था, लेकिन मैं का भाव बना हुआ था। मैं शांत हो रहा हूं, यह भाव बना हुआ था। मेरा ध्यान सफल हो रहा है, यह भाव बना ही हुआ था। मैं बना हुआ था। सब टूट गया था, सिर्फ मैं रह गया था, और बड़ा आनंद मालूम हो रहा था। और उस दिन जब अचानक मेरे गुरु ने मुझे खिड़की से उठा कर बाहर फेंक दिया, तो खिड़की से बाहर जाते और जमीन पर गिरते क्षण में वह घटना घट गई, जो मैं नहीं कर पा रहा था। वह जो मैं था, उतनी देर को मुझे बिल्कुल भूल गया। वह जो खिड़की के बाहर जाकर झटके से गिरना था, वह जो शाक था, समझ में नहीं पड़ा। मेरी बुद्धि एकदम मुश्किल में पड़ गई। कुछ समझ न रही कि यह क्या हो रहा है। एक क्षण को "मैं" से मैं चूक गया और उसी क्षण में मैंने उसके दर्शन कर लिए जो मैं के बाहर है।

हुई हाई कहता था कि मेरे गुरु की अनुकंपा अपार थी। कोई साधारण गुरु होता तो खिड़की के बाहर मुझे फेंकता नहीं। और जिस काम में मुझे वर्षों लग जाते वह क्षण में हो गया।

आप जानकर हैरान होंगे कि झेन गुरु के शिष्य जब ध्यान करने बैठते हैं तो गुरु घूमता रहता है, एक डंडे को लेकर। झेन गुरु का डंडा बहुत प्रसिद्ध चीज है। वह डंडे को लेकर घूमता रहता है। जब वह, लगता है कि कोई भीतर प्रमाद में पड़ रहा है, होश खो रहा है, झपकी आ रही है, तभी वह कंधे पर डंडा मारता है। और बड़े मजे की बात तो यह है कि जिनको वह डंडा मारता है, वे झुक कर प्रणाम करते हैं, अनुगृहीत होते हैं। इतना ही नहीं, जिनको ऐसा लगता है कि गुरु उन्हें डंडा मारने नहीं आया और भीतर प्रमाद आ रहा है तो वे दोनों अपने हाथ छाती के पास कर लेते। वह निमंत्रण है कि मुझे डंडा मारें, मैं भीतर सो रहा हूं।

तो साधक बैठे रहते हैं, गुरु घूमता रहता है या बैठा रहता है। जब भी कोई साधक अपने दोनों हाथ छाती के पास ले आता है उठा कर, पैरों से उठा कर छाती के पास ले आता है, वह खबर दे रहा है कि कृपा करें, मुझे मारें, भीतर मैं झपकी खा रहा हूं। जिन लोगों ने झेन गुरुओं के पास काम किया है, उनका अनुभव यह है कि गुरु का डंडा बाहर के लोगों को दिखाई पड़ता होगा, कैसी हिंसा है! लेकिन गुरु का डंडा जब कंधे पर पड़ता है, कंधे पर हर कहीं नहीं पड़ता, खास केंद्र हैं जिन पर झेन गुरु डंडा मारते हैं। उन केंद्रों पर चोट पड़ते ही भीतर का पूरा स्नायु तंतु झनझना जाता है। उस स्नायु तंतु की झनझनाहट में निद्रा मुश्किल हो जाती है, झपकी मुश्किल हो जाती है, होश आ जाता है।

तो हमें बाहर से दिखाई पड़ेगा। बाहर से जो दिखाई पड़ता है, उसको सच मत मान लेना। जल्दी निष्कर्ष मत ले लेना। भीतर एक अलग जगत भी है। और गुरु और शिष्य के बीच जो घटित हो रहा है वह बाहर से नहीं जाना जा सकता। उसे जानने का उपाय भीतरी ही है। उसे शिष्य होकर ही जाना जा सकता है। उसे बाहर से खड़े होकर देखने में आपसे भूल होगी। निर्णय गलत हो जाएंगे, निष्पत्तियां भ्रांत होंगी। क्योंकि बाहर से जो भी आप नतीजे लेंगे—अगर आप एक रास्ते से गुजर रहे हैं और एक मठ के भीतर एक झेन गुरु किसी को बाहर फेंक रहा है खिड़की के, तो आप सोचेंगे, पुलिस में खबर कर देनी चाहिए। आप सोचेंगे, यह आदमी कैसा है। अगर आप इस आदमी से मिलने आए थे तो बाहर से ही लौट जाएंगे। लेकिन, भीतर क्या घटित हो रहा है, वह है सूक्ष्म। और वह केवल हुइ हाई और उसका गुरु जानता है कि भीतर क्या हो रहा है।

पश्चिम में शाक ट्रीटमेंट बहुत बाद में विकसित हुआ है। आज हम जानते हैं, मनसविद, मनोचिकित्सक जानते हैं कि अगर व्यक्ति ऐसी हालत में आ जाए पागलपन की कि कोई दवा काम न करे, तो भी शाक काम करता है। अगर हम उसके स्नायु तंतुओं को इतना झनझना दें कि एक क्षण को भी सातत्य टूट जाए, कंटीन्युटी टूट जाए।

एक आदमी अपने को नेपोलियन समझ रहा है, या अपने को हिटलर माने हुए है। इसके सब इलाज हो चुके हैं, लेकिन कोई उपाय नहीं होता। जितना इलाज करो वह उतना और मजबूत होता चला जाता है। क्या करो? इसके मन की एक धारा बंध गई है, एक सातत्य हो गया है। एक कंटीन्युटी हो गई है, यह दुहराए चला जा रहा है कि मैं हिटलर हूं, आप कुछ भी करो, यह उस सबसे यही नतीजा लेगा कि मैं हिटलर हूं। इसे समझाने का कोई उपाय नहीं है। समझाने की सीमा के बाहर चला गया है यह।

मैं निरंतर कहता हूं कि एक आदमी को अब्राहम लिंकन होने का ख्याल पैदा हो गया। नाटक में काम मिला था उसको अब्राहम लिंकन का। और अमरीका अब्राहम लिंकन की कोई विशेष जन्म-तिथि मना रहा था। इसलिए एक वर्ष तक उसको अमरीका के नगर-नगर में जाकर लिंकन का पार्ट करना पड़ा। उसका चेहरा लिंकन से मिलता-जुलता था। एक वर्ष तक निरंतर अब्राहम का, लिंकन का पार्ट करते-करते उसे यह भ्रांति हो गई कि वह अब्राहम लिंकन है। फिर नाटक खत्म हो गया, पर उसकी भ्रांति खत्म न हुई। उसकी चाल अब्राहम लिंकन की हो गई। अब्राहम लिंकन जैसा हकलाता था बोलने में, वैसा वह हकलाने लगा। साल भर लंबा अभ्यास था। मुस्कराए तो लिंकन के ढंग से, छड़ी उठाए तो लिंकन के ढंग से, बैठे उठे तो लिंकन के ढंग से।

थोड़े दिन घर के लोगों ने मजाक लिया, फिर घबड़ाहट हुई। वह अपना नाम भी अब्राहम लिंकन बताने लगा। घर के लोगों ने बहुत समझाया कि तुम्हें क्या हो गया है, तुम पागल तो नहीं हो गए हो? लेकिन जितना उसे समझाया, उतना ही वह उन पर मुस्कराता था। लोग उससे पूछते थे कि तुम क्यों मुस्करा रहे हो, तो वह कहता, तुम सब पागल हो गए, क्या हुआ? मैं अब्राहम लिंकन हूं। हालत यहां तक पहुंची कि लोग कहने लगे, कि जब तक इसको गोली न मारी जाए, तब तक यह मानेगा नहीं। अब्राहम लिंकन को गोली मारी गई तब तक यह चैन नहीं लेगा। चिकित्सकों ने समझाया, मनो-विश्लेषण किया, कोई उपाय नहीं था।

अमरीका में एक लाइ-डिटेक्टर उन्होंने एक छोटी मशीन बनाई है जिसमें झूठ आदमी बोले तो पकड़ जाता है। क्योंकि जब आप झूठ बोलते हैं तो हृदय में सातत्य टूट जाता है। आपसे मैंने पूछा, आपका नाम? आपने कहा, राम। आपकी उम्र? आपने कहा, पैंतालीस साल। आज की तारीख? आपने कहा यह, दिन? सब ठीक बोला। तब मैंने अचानक आपसे पूछा, आपने चोरी की? तो आपके भीतर से तो आएगा, हां। क्योंकि आपने की है। और उसको आप बदलेंगे बीच में। भीतर से--उठेगा हां, गले तक आएगा, हां। फिर हां को आप नीचे दबाएंगे और कहेंगे--नहीं। यह पूरा का पूरा झटका जो है, नीचे जो मशीन लगी है, उस पर आ जाएगा। जैसे कि आपके हृदय की धड़कन का ग्राफ आता है, वैसे ही ग्राफ में ब्रेक आ जाएगा, झटका आ जाएगा। वह झटका बताएगा कि किस प्रश्न को आपने झूठा उत्तर दिया है।

तो इन सज्जन को लाइ-डिटेक्टर पर खड़ा किया गया, कि अगर यह आदमी झूठ बोल रहा है तो पकड़ जाएगा। यह भीतर गहन में तो जानता ही होगा कि मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। वह आदमी भी परेशान हो गया था, यह सब इलाज, चिकित्सा, समझाने से। उसने आज तय कर लिया था कि ठीक है, आज मान लूंगा। जो कहते हो, वही ठीक है।

पूछे बहुत से प्रश्न। फिर पूछा गया कि तुम्हारा नाम क्या अब्राहम लिंकन है? उसने कहा: नहीं। और मशीन ने नीचे बताया कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। तब तो मनोचिकित्सक ने भी सिर ठोंक लिया। उसने कहा: अब कोई उपाय ही न रहा। आखिरी हद हो गई। वह लाइ-डिटेक्टर कह रहा है कि यह झूठ बोल रहा है। क्योंकि भीतर तो उसे आया हां, लेकिन कब तक इस उपद्रव में पड़ा रहूं, एक दफा न कहकर झंझट छुड़ाऊं। उसने ऊपर से कहा कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं।

इस आदमी के लिए क्या किया जाए? तो शॉक-ट्रीटमेंट है, अब कोई उपाय नहीं। ऐसे आदमी के मस्तिष्क को बिजली से धक्का पहुंचाना पड़ेगा। धक्के का एक ही उपयोग है कि वह जो सतत धारा चल रही है कि मैं अब्राहम लिंकन हूं, मैं अब्राहम लिंकन हूं, उस धारा को समझाने से कोई उपाय नहीं है, क्योंकि धारा उससे टूटती नहीं। बिजली के धक्के से वह धारा टूट जाएगी, छिन्न-भिन्न हो जाएगी। एक क्षण को, इस आदमी के भीतर का जो सातत्य है वह खंडित हो जाएगा, गैप, अंतराल हो जाएगा। शायद उस गैप के कारण दुबारा इसको ख्याल न आए कि मैं अब्राहम लिंकन हूं। इसलिए मनोविज्ञान अब शॉक-ट्रीटमेंट का उपयोग करता है। अंतिम उपाय वही है। धक्का पहुंचा कर स्नायु तंतुओं की धारा को तोड़ देना। ज्ञेन गुरु बहुत प्राचीन समय से, हजार साल से, डेढ़ हजार साल से उसका उपयोग कर रहे हैं। यह जो शिष्य के साथ ज्ञेन गुरु का इतना तीव्र हिंसात्मक दिखाई पड़ने वाला व्यवहार है, यह तो कुछ भी नहीं है।

एक ज्ञेन गुरु बांकेई की आदत थी कि जब भी वह ईश्वर के बाबत कुछ बोलता तो एक अंगुली ऊपर उठा कर इशारा करता। जैसा कि अक्सर हो जाता है, जहां गुरु और शिष्य, एक दूसरे को प्रेम करते हैं, शिष्य पीठ पीछे गुरु की मजाक भी करते हैं। यह बहुत आत्मीय निकटता होती है, तब ऐसा हो जाता है। इतना परायापन भी नहीं होता कि

तो वह जो उसकी आदत थी अंगुली ऊपर उठा कर बात करने की सदा, यह मजाक का विषय बन गई थी, जब कोई बात कहता शिष्यों में, तो वह अंगुली ऊपर उठा देता। उसमें एक छोटा बच्चा भी था, जो आश्रम में झाड़ू-बुहारी लगाने का काम करता था। वह भी बड़े-बड़े साधकों के बीच कभी-कभी ध्यान करने बैठता था, और जो बड़ों से नहीं हो पाता था, वह उससे हो रहा था। क्योंकि छोटे बच्चे अभी सरल हैं, बूढ़े जटिल हैं। बूढ़े काफी बीमारी में आगे जा चुके हैं, बच्चे अभी बीमारी की शुरुआत में हैं। उसे ध्यान भी होने लगा था, और वह अपनी उंगली को उठाकर गुरु जैसी चर्चा भी करने लगा था।

एक दिन सब बैठे थे और बांकेई ने कहा: "ईश्वर के संबंध में कुछ बोल"--उस बच्चे से। उसने कहा: ईश्वर। उसकी अंगुलियां अनजाने ऊपर उठ गईं। वह भूल गया कि गुरु मौजूद है। मजाक पीछे चलता है, सामने नहीं। जल्दी से उसने अंगुली छिपाई, लेकिन गुरु ने कहा, नहीं, पास आ।

चाकू पास में पड़ा था, उठा कर उसकी अंगुली काट दी। चीख निकल गई उस बच्चे के मुंह से। हाथ में खून की धारा निकल गई। बांकेई ने कहा: अब ईश्वर के संबंध में बोल! उस बच्चे ने अपनी टूटी हुई अंगुली वापस उठाई, और बांकेई ने कहा कि तुझे जो पाना था, वह पा लिया है।

वह दर्द खो गया, वह पीड़ा मिट गई। एक नये लोक का प्रारंभ हो गया। बड़ा गहन शॉक ट्रीटमेंट हुआ। आज शरीर व्यर्थ हो गया।

जो अंगुली नहीं थी, वह भी उठाने की सामर्थ्य आ गई। अब अंगुली के होने में, न होने में कोई फर्क न रहा। जो अंगुली कट गई थी, हाथ से खून बह रहा था, लेकिन बच्चा मुस्कुराने लगा। क्योंकि जब गुरु ने अंगुली कटने पर फिर दुबारा पूछा कि ईश्वर के संबंध में? तो जैसे शरीर की बात भूल ही गया वह। एक क्षण में गुरु की आंखों में झांका, और उसके मुंह पर हंसी फैल गई। वह बच्चा, जिसको झेन में सतोरी कहते हैं, समाधि, उसको उपलब्ध हो गया। उस बच्चे ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि चमत्कार था उस गुरु का कि अंगुली ही उसने नहीं काटी, भीतर मुझे भी काट डाला। लेकिन बाहर जो बैठे थे, बाहर से जो देख रहे होंगे, उनको तो लगा होगा कि यह तो पक्का कसाई मालूम होता है।

तो झेन गुरु की जो हिंसा दिखाई पड़ती है, वह दिखाई ही पड़ती है, उसकी अनुकंपा अपार है। और जिस साधना पद्धति में गुरु की इतनी अनुकंपा न हो, वह साधना पद्धति मर जाती है। हमारे पास भी बहुत साधना पद्धतियां हैं, लेकिन करीब-करीब मर गई हैं। क्योंकि न गुरु में साहस है, न इतनी करुणा है कि वह रास्ते के बाहर जाकर भी सहायता पहुंचाए। नियम ही रह गए हैं। नियम धीरे-धीरे मुर्दा हो जाते हैं। उनका पालन चलता रहता है, मरी हुई व्यवस्था की तरह। हम उन्हें ढोते रहते हैं। लेकिन उनमें जीवन नहीं है।

दूसरे को बदलने की चेष्टा नहीं है झेन गुरु की, लेकिन जिसने अपने को समर्पित किया है बदलने के लिए, वह दूसरा नहीं है, एक। दूसरे को बदलने में कोई अपने अहंकार की तृप्ति नहीं है। जिसने समर्पित कर दिया है--यह बहुत मजे की बात है, जब कोई व्यक्ति किसी के प्रति पूरा समर्पित हो जाता है तो उन दोनों के बीच जो सीमाएं तोड़ती थीं, अलग करती थीं अहंकार की, वे विलीन हो जाती हैं। यह मिलन इतना गहरा है जितना पति-पत्नी का भी कभी नहीं होता। प्रेमी और प्रेयसी का भी कभी नहीं होता, जितना गुरु और शिष्य का हो सकता है। लेकिन अति कठिन है, क्योंकि पति और पत्नी का मामला तो बायोलॉजिकल है, शरीर भी साथ देते हैं। गुरु और शिष्य का संबंध स्प्रिचुअल है, बायोलॉजिकल नहीं है। जैविक कोई उपाय नहीं है। तो पति और पत्नी तो पशुओं में भी होते हैं, प्रेमी और प्रेयसी तो पक्षियों में भी होते हैं, कीड़े-मकोड़ों में भी होते हैं। सिर्फ गुरु और शिष्य का एकमात्र संबंध है जो मनुष्यों में होता है। बाकी सब संबंध सब में होते हैं।

इसलिए जो व्यक्ति गुरु-शिष्य के गहन संबंध को उपलब्ध न हुआ हो, एक अर्थ में ठीक से अभी मनुष्य नहीं हो पाया है। उसके सारे संबंध पाशविक हैं। क्योंकि वे सब संबंध तो पशु होने में भी हो जाते हैं। कोई अड़चन नहीं है। कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन पशुओं में गुरु और शिष्य का कोई संबंध नहीं होता, हो नहीं सकता। यह जो संबंध है, इस संबंध के हो जाने के बाद फासला नहीं है--कि हम दूसरे को बदल रहे हैं, हम अपने को ही बदल रहे हैं। इसलिए बुद्ध का जब कोई शिष्य मुक्त होता है, तो बुद्ध कहते हुए सुने गए कि आज मैं फिर तेरे द्वारा पुनः मुक्त हुआ।

महायान बौद्ध धर्म एक बड़ी मीठी कथा कहता है। वह कथा यह है कि बुद्ध का निर्वाण हुआ, शरीर छूटा, वे मोक्ष के द्वार पर जाकर खड़े हो गए, लेकिन उन्होंने पीठ कर ली। द्वारपाल ने कहा: आप भीतर आएं, युगों-युगों से हम प्रतीक्षा कर रहे हैं आपके आगमन की, और आप पीठ फेर कर क्यों खड़े हो गए हैं! तो बुद्ध ने कहा:

जिन-जिन ने मेरे प्रति समर्पण किया, जिन-जिन ने मेरा सहारा मांगा, जब तक वे सभी मुक्त नहीं हो जाते, तब तक मेरा मोक्ष में प्रवेश कैसे हो सकता है? तब तक मैं कहीं न कहीं बंधा ही हुआ रहूंगा। इसलिए मैं अकेला नहीं जा सकता हूं।

इसलिए महायान बौद्ध धर्म कहता है कि जब तक पूरी मनुष्यता मुक्त न हो जाए, तब तक बुद्ध द्वार पर ही खड़े रहेंगे। यह कहानी मीठी है, कहानी सूचक है। यह कहानी बहुत गहरे अर्थ लिए हुए है। कहीं कोई बुद्ध खड़े हुए नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। खड़े होने का कोई उपाय भी नहीं है। मुक्त होते ही तिरोहित हो जाना पड़ता है। कहीं कोई द्वार नहीं है। लेकिन यह एक मीठी सूत्र की खबर देती है कि गुरु शिष्य के द्वारा पुनः-पुनः मुक्त होता है। और यह संबंध इतना आत्मीय और निकट है कि वहां पराया कोई भी नहीं है।

इसी संदर्भ में पूछा है कि यह भी समझाएं कि हिंसक वृत्ति के कारण निकले आदेश, और करुणा के कारण निकले उपदेश में साधक कैसे फर्क कर पाए?

साधक फर्क कर ही नहीं पाएगा। करना भी नहीं चाहिए। साधक को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसे ठीक से समझ लें।

गुरु ने चाहे हिंसा भाव से ही साधक को आदेश दिया हो। यह हिंसा अगर होगी तो गुरु के सिर होगी। साधक को तो आदेश का पालन कर लेना चाहिए। वह तो रूपांतरित होगा ही, चाहे आदेश करुणा से दिया गया हो और चाहे आदेश हिंसक भाव से दिया गया हो। चाहे मैं किसी को बदलने में इसलिए मजा ले रहा हूं कि बदलने में तोड़ने का मजा है, मिटाने का मजा है। चाहे मैं इसलिए दूसरे को आदेश दे रहा हूं कि नये के जन्म का आनंद है, नये के जन्म की करुणा है। पुराने को मिटाने में हिंसा हो सकती है, नये को बनाने में करुणा है। मैं किसी भी कारण से आदेश दे रहा हूं, यह मेरी बात है। लेकिन जिसको आदेश दिया गया है, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता।

एक मकान को गिराना है और नया बनाना है। हो सकता है मुझे गिराने में ही मजा आ रहा हो, इसलिए बनाने की बातें कर रहा हूं। इसलिए उसको तोड़ने में मुझे रस है। या मैं बनाने में इतना उत्सुक हूं कि तोड़ना मजबूरी है, तोड़ना पड़ेगा। लेकिन यह मेरी बात है। मकान के बनने में कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसलिए साधक को यह चिंता नहीं करनी चाहिए कि गुरु ने जो खिड़की के बाहर फेंक दिया है, यह तोड़ने का रस था, कोई हिंसा थी या कोई महा करुणा थी।

और अगर साधक यह फर्क करता है, तो समर्पित नहीं है। शिष्य नहीं है। यह तो उसे पहले ही गुरु के पास आने के पहले सोच लेना चाहिए। यह समर्पण के पहले सोच लेना चाहिए। गुरु के चुनाव की स्वतंत्रता है, गुरु के आदेशों में चुनाव की स्वतंत्रता नहीं है। मैं "अ" को गुरु चुनूँ कि "ब" को, कि "स" को, मैं स्वतंत्र हूँ। लेकिन "अ" को चुनने के बाद स्वतंत्र नहीं हूँ कि "अ" का--"अ" आदेश मानूँ कि "ब" आदेश मानूँ, कि "स" आदेश मानूँ।

गुरु को चुनने का अर्थ समग्र चुनना है। इसलिए जैन ने, सूफियों ने, जहां बहुत गहन गुरु की परम्परा विकसित हुई है, और बड़े आंतरिक रहस्य उन्होंने खोले हैं।

सूफी शास्त्र कहते हैं कि गुरु को चुनने के बाद खंड-खंड विचार नहीं किया जा सकता कि वह क्या ठीक कहता है और क्या गलत कहता है। अगर लगे कि गलत कहता है, तो पूरे ही गुरु को छोड़ देना तत्काल। ऐसा मत सोचना कि यह बात न मानेंगे, यह गलत है। यह बात मानेंगे, यह सही है। इसका तो मतलब हुआ कि गुरु के ऊपर आप हैं, और अंतिम निर्णय आपका ही चल रहा है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। तो परीक्षा गुरु की चल रही है, आपकी नहीं। और इस तरह के लोग जब मुसीबत में पड़ते हैं तो जिम्मा गुरु का है।

सूफी कहते हैं कि जब गुरु को चुन लिया तो पूरा चुन लिया। यह टोटल एक्सेप्टेंस है। अगर किसी दिन छोड़ना हो तो टोटल छोड़ देना, पूरा छोड़ देना। हट जाना वहां से। लेकिन आधा चुनना और आधा छोड़ना मत करना। बहुत कीमती बात है कि यह ठीक लगता है, इसलिए चुनेंगे। तो आखिर में आप ही ठीक हैं। जो ठीक लगता है वह चुनते हैं। जो गलत लगता है, वह नहीं चुनते हैं। तो आपको ठीक और गलत का तो राज मालूम ही

है। अब बचा क्या है चुनने को? जब आप यह भी पता लगा लेते हैं कि क्या ठीक है और क्या गलत है, तो आपको बचा ही क्या है? शिष्य होने की कोई जरूरत ही नहीं है। लेकिन अगर शिष्य होने की जरूरत है तो आपको पता नहीं है कि क्या ठीक है और क्या गलत है।

गुरु का चुनाव समग्र है। छोड़ना हो तो सूफी कहते हैं, पूरा छोड़ देना। बड़ी मजे की बात सूफियों ने कही है। बायजीद ने कहा है कि अगर गुरु को छोड़ना हो तो जितने आदर से स्वीकार किया था, जितनी समग्रता से, उतने ही आदर से, उतनी ही समग्रता से छोड़ देना। कठिन है मामला। किसी को आदर से स्वीकार करना तो आसान है, आदर से छोड़ना बहुत मुश्किल है। हम छोड़ते ही तब हैं जब अनादर मन में आ जाता है। लेकिन बायजीद कहता है, जिसको तुम आदर से न छोड़ सको, समझ लेना आदर से चुना ही नहीं था। क्योंकि यह तुमने चुना था। तुम निर्णायक न थे कि गुरु ठीक होगा कि गलत होगा। यह चुनाव तुम्हारा था। आदरपूर्वक तुमने चुना था। अगर तुम मेल नहीं खाते तो बायजीद ने कहा है कि समझना कि यह गुरु मेरे लिए नहीं है। ठीक और गलत तुम कहां जानते हो? तुम इतना ही कहना कि इस गुरु से मैं जैसा हूं, उसका मेल नहीं खा रहा है।

बायजीद का मतलब यह है कि जब भी तुम्हें गुरु छोड़ना पड़े तो तुम समझना कि मैं इस गुरु का शिष्य होने के योग्य नहीं हूं। छोड़ देना। लेकिन हम गुरु को तब छोड़ते हैं, जब हम पाते हैं कि यह गुरु हमारा गुरु होने के योग्य नहीं है।

मैं शिष्य होने के योग्य नहीं हूं, इसका यही भाव हो सकता है, शिष्यत्व का। गुरु के शिखर को नहीं समझा जा सकता है। अब यही, हुई हुई को फेंक दिया है खिड़की के बाहर। यह समग्र स्वीकार है। इसमें भी कुछ हो रहा होगा, इसलिए गुरु ने फेंक दिया है, इसलिए हुई हुई स्वीकार कर लेगा।

गुरजिएफ के पास लोग आते थे, तो गुरजिएफ अपने ही ढंग का आदमी था। सभी गुरु अपने ढंग के आदमी होते हैं, और दो गुरु एक से नहीं होते। हो भी नहीं सकते। क्योंकि गुरु का मतलब यह है कि जिसने अपनी अद्वितीय चेतना को पा लिया--बेजोड़। तो वह अलग तो हो ही जाएगा।

गुरजिएफ के पास कोई आता तो वह क्या करेगा, इसके कोई नियम न थे। हो सकता है वह कहे, एक वर्ष तक रहो आश्रम में, लेकिन मुझे देखना मत। मेरे पास मत आना। यह काम है साल भर का। यह काम करना। कि सड़क बनानी है, कि गिट्टी फोड़नी हैं, कि गड्ढा खोदना है, कि वृक्ष काटने हैं, यह काम सालभर करना। और साल भर के बीच एक बार भी मेरे पास मत आना।

एक रूसी साधक हार्टमन गुरजिएफ के पास आया। एक वर्ष तक--पहले दिन जो पहला सूचन मिला वह यह कि एक वर्ष तक मेरे पास दुबारा मत आना। रहना छाया की तरह। सुबह चार बजे से हार्टमन को काम दे दिया गया सालभर के लिए। वह करेगा दिन-रात काम। गुरजिएफ के मकान में रात रोज दावत होगी, सारा आश्रम आमंत्रित होगा, सिर्फ हार्टमन नहीं। रात संगीत चलेगा दो-दो बजे तक। गुरजिएफ के बंगले की रोशनी बाहर पड़ती रहेगी और हार्टमन अपनी कोठरी में सोया रहेगा। सभाएं होंगी, लोग आएंगे, भीड़ होगी, अतिथि आएंगे, चर्चा होगी, प्रश्न होंगे, हार्टमन नहीं होगा। साल भर!

जिस दिन साल भर पूरा हुआ, उस दिन गुरजिएफ हार्टमन के झोपड़े पर गया और गुरजिएफ ने हार्टमन से कहा कि अब तुम जब भी आना चाहो, आधी रात भी जब मैं सो रहा हूं तब भी, जिस क्षण, चौबीस घंटे तुम आ सकते हो। अब तुम्हें किसी से पूछने की जरूरत नहीं है, कोई आज्ञा लेने की जरूरत नहीं है।

और हार्टमन ने उसके चरण छुए और कहा कि अब तो जरूरत भी न रही। यह साल भर दूर रख कर तुमने मुझे बदल दिया। यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन यह मुश्किल मामला है। हार्टमन सोच सकता था, यह भी क्या बात हुई, एक प्रश्न का उत्तर नहीं मिला, कुछ चर्चा नहीं, कुछ बात नहीं, यह क्या एक साल! दिन दो दिन की बात भी नहीं है। लेकिन गुरु को चुनने का मतलब है, पूरा चुनना, या पूरा छोड़ देना। फिर गुरु क्या करता है, वह तभी कर सकता है जब इतना समर्पण हो, अन्यथा नहीं कर सकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप महावीर, बुद्ध, लाओत्सु पर न बोल कर अपनी निजी और आंतरिक बातें बताएं। और यह भी लिखा है--बिना दस्तखत किए--कि आपको मैं इतना कायर नहीं मानता हूं कि आप अपनी निजी बातें नहीं बताएंगे।

आप तो नहीं मानते हैं मुझे इतना कायर, लेकिन मैं आपको इतना बहादुर नहीं मानता हूं कि मेरी निजी बातें सुन पाएंगे। और जिस दिन तैयारी हो जाए निजी बातें सुनने की, उस दिन मेरे पास आ जाना। क्योंकि निजी बातें निजता में ही कही जा सकती हैं, पब्लिक में नहीं। मगर उसके पहले कसौटी से गुजरना पड़ेगा। बहादुरी की मैं जांच कर लूंगा। चूंकि क्या मैं आपको दूं, यह आपके पात्र की क्षमता पर निर्भर है।

मेरे निजी जीवन में कुछ भी छिपाने जैसा नहीं है, लेकिन आप देख भी पाएंगे, समझ भी पाएंगे, उसका उपयोग भी कर पाएंगे, आपके जीवन में वह सृजनात्मक भी होगा, सहयोगी भी होगा, यह सोचना जरूरी है। क्योंकि जो भी मैं कह रहा हूं, वह आपके काम पड़ सके, तो ही उसका कोई अर्थ है।

तो जिसकी भी तैयारी हो मेरे निजी जीवन में उतरने की, वह जरूर मेरे पास आ जाए। लेकिन उसे तैयारी से गुजरना पड़ेगा, यह ख्याल रख कर आए। अभी तो दस्तखत करने की भी हिम्मत नहीं है।

अब हम सूत्र लें।

"क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों काले कुत्सित कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं।"

"चाव० और जौ आदि धान्यों तथा सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समस्त पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त कर सकने में असमर्थ है, यह जान कर संयम का आचरण करना चाहिए।"

चार कषाय महावीर ने कहे--क्रोध, मान, माया, लोभ। ये चारों शब्द हमारे बहुत परिचित हैं--शब्द। ये चारों बिल्कुल अपरिचित हैं। शब्द के परिचय को हम भूल से सत्य का परिचय समझ लेते हैं। हम सभी को मालूम है, क्रोध का क्या मतलब है? और क्रोध से हमारा मिलना हुआ नहीं। हालांकि क्रोध हम पर हुआ है बहुत बार, हमसे हुआ है। क्रोध में हम डूबे हैं। लेकिन क्रोध इतना डुबा लेता है कि जो देखने की तटस्थता चाहिए, जो क्रोध को समझने की दूरी चाहिए वह नहीं बचती। इसलिए क्रोध हमसे हुआ है लेकिन क्रोध को हमने जाना नहीं। हमारे क्रोध को दूसरों ने जाना होगा, हमने नहीं जाना। इसलिए मजे की घटना घटती है। क्रोधी आदमी भी अपने को क्रोधी नहीं समझता। सारी दुनिया जानती है कि वह क्रोधी है, लेकिन वह भर नहीं जानता है कि मैं क्रोधी हूं। क्या मामला है? सब देख लेते हैं क्रोध को, वह खुद क्यों नहीं देख पाता?

असल में क्रोध की घटना में वह मौजूद ही नहीं रहता। वह जो ऑब्जर्वर है, निरीक्षक है, वह डूब जाता है। उसका कोई पता ही नहीं रहता। बाकी तो कोई क्रोध में नहीं है इसलिए वे लोग देख लेते हैं कि यह आदमी क्रोध में है। आपको पता नहीं चलता। यह बात इतनी भी दब सकती है गहन, कि कई तथ्य जो वैज्ञानिक हो सकते थे वे भी खो गए हैं।

मैं कल ही एक लियोनल टाइगर की एक किताब देख रहा था। उसने बड़ी महत्वपूर्ण खोज की है। उसने काम किया है स्त्रियों के मासिक-धर्म पर। तो वह कहता है कि जब मासिक-धर्म के चार-पांच दिन होते हैं, तब स्त्रियां ज्यादा क्रोधी होती हैं। ज्यादा चिड़चिड़ी होती हैं, ज्यादा परेशान होती हैं, ज्यादा हिंसक हो जाती हैं। उनकी सारी वृत्तियां निम्न हो जाती हैं। न केवल इतना, बल्कि उन पांच दिनों में उनका बौद्धिक स्तर भी गिर जाता है, उनकी इंटेलिजेंस भी गिर जाती है। उनका आई-क्यू, उनका जो बुद्धि-माप है वह नीचे गिर जाता है, पंद्रह प्रतिशत।

इसलिए परीक्षा के समय स्त्रियों के लिए विशेष सुविधा होनी चाहिए। मेंसेस में किसी लड़की की परीक्षा नहीं होनी चाहिए, अकारण पिछड़ जाएगी। ठीक पीरिएड के मध्य में, पिछले पीरिएड और दूसरे पीरिएड के ठीक बीच में चौदह दिन के बाद स्त्रियों के पास सबसे ज्यादा प्रसन्न भाव होता है और उस समय वे कम क्रोधी

होती हैं, कम चिड़चिड़ी होती हैं। और उस समय उनका बुद्धि-माप पंद्रह प्रतिशत बढ़ जाता है। इसलिए अगर मध्य पीरिएड में लड़की हो और लड़के के साथ परीक्षा दे तो वह फायदे में रहेगी, पंद्रह प्रतिशत ज्यादा।

अगर मेंसेस में हो तो नुकसान में रहेगी पंद्रह प्रतिशत कम। और दोनों मिल कर तीस प्रतिशत का फर्क हो जाता है। जो कि बड़ा फर्क है।

इस पर जितना काम चलता है उससे धीरे-धीरे यह भी ख्याल में आना शुरू हुआ। लेकिन इतने हजार साल लग गए और ख्याल में नहीं आया कि स्त्री और पुरुष दोनों एक ही जाति के पशु हैं। तो स्त्रियों में ही मासिक-धर्म हो, यह आवश्यक नहीं है, कहीं न कहीं पुरुष में भी मासिक धर्म जैसी कोई समान घटना होनी चाहिए। लेकिन पुरुषों को अब तक ख्याल नहीं आया। होनी चाहिए ही, क्योंकि दोनों की शरीर रचना एक ही ढांचे में होती है। दोनों की सारी व्यवस्था एक जैसी है। जो भेद है वह थोड़ा सा ही भेद है, और वह भेद इतना है कि स्त्री ग्राहक है और पुरुष दाता है, जीवाणुओं के संबंध में। बाकी तो सारी बात एक है। तो स्त्री में अगर मासिक-धर्म जैसी कोई घटना घटती है तो पुरुष में भी घटनी चाहिए।

सौ वर्ष पहले एक आदमी ने इस संबंध में थोड़ी खोज-बीन की है, एक जर्मन सर्जन ने। और उसे शक हुआ कि पुरुष में भी मासिक-धर्म होता है। लेकिन चूंकि कोई बाह्य घटना नहीं घटती रक्तस्राव की, इसलिए आदमी भूल गया है। तो उसने आदमी के क्रोध और चिड़चिड़ेपन के रिकार्ड बनाए और पाया कि हर अट्टाइसवें दिन पुरुष भी चार-पांच दिन के लिए उसी तरह अस्त-व्यस्त होता है, जैसे स्त्री अस्त-व्यस्त होती है। और अभी, एक दूसरे विचारक ने एक नये विज्ञान को जन्म दे दिया है--पैट्रिक विनियम्स उसका नाम है, बायो डायनेमिक्स। और उसने समस्त रूप से वैज्ञानिक अर्थों में सिद्ध कर दिया है कि पुरुष का भी मेंसेस होता है। कोई बाहर घटना नहीं घटती, लेकिन भीतर वैसी ही घटना घटती है, जैसी स्त्री को घटती है। और उन चार-पांच दिनों में आप क्रोधी, चिड़चिड़े, परेशान, नीचे गिर जाते हैं चेतना में।

यह हर महीने हो रहा है। जिस दिन आदमी पैदा होता है, उसको पहला दिन समझ लें, तो उसके हिसाब से हर अट्टाइसवें दिन का पूरा कैलेंडर बना सकते हैं जीवन का। वह पहला दिन है, फिर हर अट्टाइसवें दिन पुरुष का कैलेंडर बन सकता है। और जब आपके कैलेंडर में आपका मेंसेस आ जाए तो दूसरे को भी बता दें और खुद भी सावधान रहें। और आज नहीं कल, हमें स्त्री-पुरुष का विवाह करते वक्त ध्यान रखना चाहिए कि दोनों का मेंसेस साथ न पड़े। ऐसा लगता है स्त्री-पुरुषों को, पति-पत्नियों को देख कर कि बहुत मात्रा में साथ पड़ता होगा। क्योंकि दोनों का मेंसेस साथ पड़ जाए तो भारी उपद्रव और कलह होने वाली है।

यह इसलिए संभव हो सका कि आज तक ख्याल नहीं आया कि पुरुष का भी मासिक-धर्म होता है, क्योंकि हम क्रोध से परिचित ही नहीं हैं, नहीं तो यह ख्याल आ जाता। इसलिए मैं कह रहा हूं। अगर हम क्रोध की धारा का निरीक्षण करते तो हमको भी पता चल जाएगा कि हर महीने आपका बंधा हुआ दिन है, बंधा हुआ समय है जब आप ज्यादा क्रोधी होते हैं। और हर महीने आपके बंधे हुए दिन हैं, जब आप कम क्रोधी होते हैं। लेकिन यह तो बड़ी यांत्रिक बात हुई, यह तो आप मशीन की तरह घूम रहे हैं। आपकी मालिकियत नहीं मालूम पड़ती।

जैसा क्रोध है, वैसा ही लोभ भी है, वैसी ही माया भी है, वैसा ही मोह भी है। उन सबमें आप बंधे हुए हैं। और यह जो बंधन हैं, यह बड़ा अदभुत है। आपको ख्याल, सिर्फ भ्रम रहता है कि आप मालिक हैं।

अभी चूहों पर बहुत वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए। छोटा सा हार्मोन जो पुरुष में होता है, पुरुष चूहे में--जरा सी मात्रा उसकी अगर मादा चूहे को इंजेक्ट कर दी जाए, तो बड़ी हैरानी की बात है, मादा चुहिया जो है, वह पुरुष चूहे की तरह व्यवहार करना शुरू कर देती है। वही अकड़, वही चाल, जो पुरुष चूहे की होती है वही झगड़ालू वृत्ति, हमले का भाव, वह सब आ जाता है। इतना ही नहीं, पुरुष हार्मोन के इंजेक्शन के बाद मादा चुहिया जो है, पुरुष चुहिया पर चढ़ कर संभोग करने की कोशिश करती है, जो कि वह कर नहीं सकती। पुरुष चूहों को स्त्री हार्मोन के इंजेक्शन देकर देखा गया, वे बिल्कुल स्त्री हो जाते हैं, दबू हो जाते हैं, भागने लगते हैं,

भयभीत हो जाते हैं और होने का कोई पता ही नहीं है। समय आपको क्षमा नहीं करता। समय आपको सुविधा नहीं देता। समय लौट कर नहीं आता। समय से आप कितनी ही प्रार्थना करें, कोई प्रार्थना नहीं सुनी जाती। समय और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं है। मौत आ जाए द्वार पर और आप कहें कि एक घड़ी भर ठहर जा, अभी मुझे लड़के की शादी करनी है, कि अभी तो कुछ काम पूरा हुआ नहीं, मकान अधूरा बना है।

एक बूढ़ी महिला संन्यास लेना चाहती थी, दो महीने पहले। उसकी बड़ी आकांक्षा थी संन्यास ले लेने की। मगर उसके बेटे खिलाफ थे कि संन्यास नहीं लेने देंगे। मैंने उसके एक बेटे को बुला कर पूछा कि ठीक है, संन्यास मत लेने दो, क्योंकि बूढ़ी स्त्री है, तुम पर निर्भर है और इतना साहस भी उसका नहीं है। लेकिन कल अगर इसे मौत आ जाए तो तुम मौत से क्या कहोगे, कि नहीं मरने देंगे।

जैसे कि कोई भी उत्तर देता, बेटे ने उत्तर दिया। कहा कि मौत कब आएगी, कब नहीं आएगी, देखा जाएगा। मगर संन्यास नहीं लेने देंगे। और अभी दो महीने भी नहीं हुआ और वह स्त्री मर गई। जिस दिन वह मर गई, उसके बेटे की खबर आई कि क्या आप आज्ञा देंगे, हम उसे गैरिक वस्त्रों में माला पहना कर संन्यासी की तरह चिता पर चढ़ा दें।

"काल निर्दयी है।" लेकिन अब कोई अर्थ भी नहीं है, क्योंकि संन्यास कोई ऐसी बात नहीं है कि वह ऊपर से डाल दिया जाए। न जिंदा पर डाला जा सकता है, न मुर्दा पर डाला जा सकता है। संन्यास लिया जाता है, दिया नहीं जा सकता। मरा आदमी कैसे संन्यास लेगा? दिया जा सके तो मरे को भी दिया जा सकता है।

संन्यास दिया जा ही नहीं सकता, लिया जा सकता है। इंटेन्शनल है, भीतर अभिप्राय है। वही कीमती है, बाहर की घटना का तो कोई मूल्य नहीं है। भीतर कोई लेना चाहता था। संसार से ऊबा था, संसार की व्यर्थता दिखाई पड़ी थी, किसी और आयाम में यात्रा करने की अभीप्सा जगी थी, वह थी बात। अब तो कोई अर्थ नहीं है, लेकिन अब ये बेटे अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो न समझा पाए, अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो नहीं रोक सकते कि रुको, अभी हम न जाने देंगे। मां को रोक सकते थे। मां भी रुक गई क्योंकि उसे भी मौत का साफ-साफ बोध नहीं था। नहीं तो रुकने का कोई कारण भी नहीं था। मां डरी कि बेटों के बिना कैसे जीएगी! और अब, अब बेटों के बिना ही जीना पड़ेगा। अब इस लंबे यात्रापथ पर बेटे दुबारा नहीं मिलेंगे। और मिल भी जाएं तो पहचानेंगे नहीं।

हर छोटी चीज से कंपने लगते हैं।

क्या इसका यह अर्थ हुआ कि छोटे-छोटे हार्मोन इतने प्रभावी हैं और आपकी चेतना इतनी दीन है कि एक इंजेक्शन आपको स्त्री और पुरुष बना सकता है! और एक इंजेक्शन आपको बहादुर और कायर बना सकता है! तो फिर जिसको आप कहते हैं कि भयभीत है, कायर है, जिसको आप कहते हैं, बहादुर है, हिम्मतवर है, जिसको आप कहते हैं साहसी है, दुस्साहसी है, इनके बीच जो फर्क है, वह छोटे से हार्मोन का है।

आमतौर से यही है बात। आपकी कुछ ग्रंथियां निकाल ली जाएं, आप क्रोध नहीं कर पाएंगे। कुछ ग्रंथियां निकाल ली जाएं, आपकी कामवासना तिरोहित हो जाएगी। तो क्या यह शरीर आप पर इतना हावी है और आपकी आत्मा की कोई स्वतंत्रता नहीं है?

इसीलिए महावीर इनको चार शत्रु कहते हैं, क्योंकि जब तक कोई इन चार के ऊपर न उठ जाए, तब तक उसको आत्मा का कोई अनुभव नहीं होता। जब तक क्रोध के हार्मोन आपके भीतर मौजूद हैं और फिर भी आप क्रोध नहीं करते, और कामवासना के हार्मोन आपके भीतर मौजूद हैं और फिर भी आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाते हैं, लोभ की सारी की सारी रासायनिक प्रक्रिया भीतर है और फिर भी आप अलोभ को उपलब्ध हो जाते हैं, तभी आपको आत्मा का अनुभव होगा।

आत्मा का अर्थ है: शरीर के पार सत्ता का अनुभव।

लेकिन हम तो शरीर के पार होते ही नहीं, शरीर ही हमें चलाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि आप सोचते हैं कि आप पार हो गए। सुबह उठते हैं, पत्नी कुछ बोल रही है कि बच्चे कुछ गड़बड़ कर रहे हैं कि नौकर कुछ उपद्रव कर रहा है और आप हंसते रहते हैं। तो आप सोचते हैं कि मैंने तो क्रोध पर विजय पा ली। यही घटना सांझ को घटती है तो आप विक्षिप्त हो जाते हैं। सुबह हार्मोन ताजे हैं, शरीर थका हुआ नहीं है। आप ज्यादा आश्वस्त हैं। सांझ थक गए हैं, हार्मोन टूट गए हैं, शक्ति क्षीण हो गई है। सांझ आप वल्लरेबल हैं, ज्यादा खुले हैं। जरा सी बात आपको पीड़ा और चोट पहुंचा जाएगी। तो सुबह जिसको आपने सह लिया, सांझ को नहीं सह पाते हैं। लेकिन सुबह भी आप आत्मा को नहीं पा गए थे, सुबह भी शरीर ही कारण था। सांझ भी शरीर ही कारण है।

आत्मा को पाने का अर्थ तो यह है कि शरीर कारण न रह जाए। आपके जीवन में ऐसे अनुभव शुरू हो जाएं, जिनमें शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं का हाथ नहीं है, उनके पार। इसीलिए इन चार को शत्रु कहा है। और महावीर ने कहा है, इन चारों से ही हम पुनर्जन्म रूपी संसार के वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं। इन चारों से ही हम फिर से अपने जन्म को निर्मित करने का उपाय करते रहते हैं। जो इन चार में फंसा है, उसका अगला जन्म उसने बना ही लिया।

लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, कैसे आवागमन से छुटकारा हो? छुटकारा भी मांगते हैं और जड़ों को अच्छी तरह पानी भी सींचते चले जाते हैं। इस वृक्ष से कैसे छुटकारा हो? सांझ को कहते हैं और सुबह वहीं पानी सींचते पाए जाते हैं। उनको पता ही नहीं कि वृक्ष की जड़ों में पानी सींचना और वृक्ष के पत्तों का आना एक ही क्रिया के अंग हैं। यह एक ही बात है। कभी मत पूछें कि आवागमन से कैसे छुटकारा हो, पूछें ही मत, यही पूछें कि क्रोध, माया, मोह और लोभ से कैसे छुटकारा हो। आवागमन से छुटकारा पूछने की बात ही गलत है। यही पूछें कि कैसे मैं अपने को वृक्ष को पानी देने से रोकूं। वृक्ष कैसे न हो, यह मत पूछें। क्योंकि अगर ध्यान आपने वृक्ष के पत्तों पर रखा और हाथ पानी देते रहे वृक्ष को--वृक्ष के साथ हम ऐसा नहीं करते, क्योंकि हमें पता है कि यह पानी देना और वृक्ष में पत्तों और फूलों का आना, एक ही क्रिया का अंग है।

आपको अपने जीवन वृक्ष का कोई पता नहीं है कि उसके साथ आप क्या कर रहे हैं। इधर कहे चले जाते हैं, दुख मुझे न हो, और सब तरह से दुख को सींचते हैं। हर उपाय करते हैं कि दुख कैसे हो और हर वक्त चिल्लाते रहते हैं कि दुख मुझे न हो। शायद आपको जीवन वृक्ष आप खुद हैं, इसलिए अपनी जड़ों और अपने पत्तों को जोड़ नहीं पाते। समझ नहीं पाते कि क्या मामला है। जब दुख हो, तब दुख के पत्ते को पकड़कर पीछे उतरना चाहिए जड़ तक, कि कहां से दुख हुआ, और जड़ को काटने की चिंता करनी चाहिए।

इसलिए महावीर कहते हैं, ये चार हैं जड़ें--क्रोध, मान, माया, लोभ। चारों इतने अलग-अलग नहीं हैं, एक ही चीज के चार चेहरे हैं--एक ही चीज के, एक ही घटना के। बुद्ध ने उस घटना को नाम दिया है, जीवेषणा, लस्ट फार लाइफ।

अब यह बड़ी कठिन बात है। लोग कहते हैं, आवागमन हमारा कैसे रुके। पूछो, क्यों? किसलिए, आवागमन से दिक्कत क्या हो रही है आपको? चले जाओ मजे से, पैदा होते जाओ बार-बार, हर्ज क्या है?

नहीं, पैदा होने से उन्हें भी तकलीफ नहीं है। जीवन से उन्हें भी कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन जीवन में दुख मिलता है, उससे कठिनाई है। दुख न हो और जीवन हो, दुख कट जाए और जीवन हो। हम ऐसी दुनिया चाहते हैं जिसमें रातें न हों, दिन ही दिन हों। हम ऐसी दुनिया चाहते हैं, जहां जवानी ही जवानी हो, बुढ़ापा न हो। स्वास्थ्य हो, बीमारी न हो। मित्र ही मित्र हों, शत्रु न हों। प्रेम ही प्रेम हो, घृणा न हो।

इस दुनिया में एक हिस्सा काट देना चाहते हैं और एक को बचा लेना चाहते हैं। और मजा यह है कि वह दूसरा हिस्सा इसीलिए बचा हुआ है कि हम इस एक को बचाना चाहते हैं, हम चाहते हैं दुनिया में मित्र ही मित्र हों। इसलिए शत्रु ही शत्रु हो जाते हैं। हम चाहते हैं, दुनिया में सुख ही सुख हों, इसलिए दुख ही दुख हो जाता

है। सुख को बचाना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं, लेकिन सुख जड़ है और दुख पत्ता है। जिसे हम बचाना चाहते हैं, उसी को बचाने में उसे बचा लेते हैं जिसे हम बचाना नहीं चाहते हैं, जिससे हम छूटना चाहते हैं।

आदमी जब कहता है, कि आवागमन से मुक्ति हो, तो वह यह नहीं कहता कि मैं समाप्त हो जाऊं। वह कहता है, मैं मोक्ष में रहूँ, मैं स्वर्ग में रहूँ। दुख न हो वहाँ दुख से छुटकारा हो जाए। तो बुद्ध ने कहा है, जीवेषणा, होने की वासना कि मैं रहूँ, यही तुम्हारे समस्त दुखों का मूल है।

महावीर कहते हैं कि ये जो चार शत्रु हैं, ये भी जीवेषणा से पैदा होते हैं।

क्रोध क्यों आता है? जब कोई आपके जीवन में बाधा बनता है, तब। जब कोई आपको मिटाना चाहता है, या आपको लगता है कि कोई मिटाना चाहता है तब, जब आपको कोई बचाना चाहता है, तब आपको क्रोध नहीं आता।

अगर मैं एक छुरा लेकर आपके पास जाऊँ तो आप डरेंगे। छुरे से नहीं डर रहे हैं आप, क्योंकि सर्जन उससे भी बड़ा छुरा लेकर आपके पास आता है। तब आप निश्चित टेबल कि वृक्ष की जड़ों में पानी सींचना और वृक्ष के पत्तों का आना एक ही क्रिया के अंग हैं। यह एक ही बात है। कभी मत पूछें कि आवागमन से कैसे छुटकारा हो, पूछें ही मत, यही पूछें कि क्रोध, माया, मोह और लोभ से कैसे छुटकारा हो। आवागमन से छुटकारा पूछने की बात ही गलत एक ही गहरे में भय है, कहीं मैं न मिट जाऊँ।

तो जहाँ लगता है कि कोई मुझे मिटाने आ रहा है, वहाँ क्रोध खड़ा होता है। जहाँ लगता है कि कोई मुझे बचाने आ रहा है, वहाँ मोह खड़ा होता है। जहाँ लगता है कि मैं बच न सकूँगा, तो बचाने की जो हम चेष्टा करते हैं, वह सब हमारा लोभ है। जब मुझे लगता है कि मैं अच्छी तरह बच गया हूँ और अब मुझे कोई नहीं मिटा सकता, तो वह जो अहंकार पैदा होता है, वह हमारा मान है।

लेकिन ये चारों के चारों जीवेषणा के हिस्से हैं। यह चतुर्भूति इनके भीतर जो छिपी है, वह है जीवेषणा। ये चारों चेहरे उसी के हैं। अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग चेहरे दिखाई पड़ते हैं, लेकिन भाव एक है कि मैं बचूँ। तो जब तक जो आदमी स्वयं को बचाना चाहता है, वह आदमी आत्मा को न पा सकेगा। इसे थोड़ा और हम समझ लें।

जो आदमी स्वयं को बचाना चाहता है, वह दूसरों को मिटाना चाहेगा। क्योंकि स्वयं को बचाने का दूसरे को मिटाए बिना कोई उपाय नहीं है। महावीर का अहिंसा पर इतना जोर इसीलिए है। वे कहते हैं, दूसरे को मिटाने की बात ही छोड़ दो, और ध्यान रखना, दूसरे को मिटाने की बात वही छोड़ सकता है, जो स्वयं को बचाने की बात छोड़ दे।

जब आप दूसरे को, किसी को भी नहीं मिटाना चाहते, तब एक बात पक्की हो गई, कि आपको अपने को बचाने का कोई मोह नहीं है। अगर अपने को बचाने का कोई भाव नहीं बचा है, तो फिर कोई क्रोध नहीं है, फिर कोई मोह नहीं, कोई माया नहीं, कोई मान नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि जो अपने को बचाने का भाव छोड़ देता है वह नहीं बचता है। मामला उलटा है। जो नहीं बचाता अपने को, वही बचता है और जो बचाता है, वह बार-बार मरता है।

जीसस ने कहा है: "जो बचाएगा वह मिटेगा, और जो अपने को खोने को तैयार है, उसको कोई भी मिटा नहीं सकता है।" लेकिन ऐसा मत सोचना कि अगर ऐसा है कि खोने की तैयारी से हम सदा के लिए बच जाएंगे, इसलिए हम खोने को तैयार हैं, तो आप न बचेंगे। आपका मनोभाव बचने के लिए ही है। वही वासना, जन्मों का कारण है।

कोई आपको जन्म देता नहीं, आप ही अपने को जन्म देते हैं। आप ही अपने पिता हैं, आप ही अपने माता हैं, आप ही अपने को जन्म दिए चले जाते हैं। यह जन्म का जो उपद्रव है, इसके कारण आप ही हैं। इसलिए तो

मौत से इतनी घबड़ाहट होती है, इतनी बेचैनी होती है। और मरते वक्त भी आदमी कहता है कि जन्म-मरण से छुटकारा हो जाए। लेकिन मतलब उसका इतना ही होता है कि मरण से छुटकारा हो जाए। जन्म तो वह भाषा की भूल से कह रहा है, फिर से सोचेगा तो नहीं कहेगा।

सोचें, जन्म से छुटकारा चाहते हैं? जीवन से छुटकारा चाहते हैं? जिस दिन आप जन्म से छुटकारा चाहते हैं, उस दिन मरण से छुटकारा हो जाएगा। हम सब मरण से छुटकारा चाहते हैं इसलिए नये जन्म का सूत्रपात हो जाता है। हम छोर से बचना चाहते हैं, जड़ से नहीं। मरण है पत्ता आखिरी, जन्म है जड़। तो जड़ ही काटनी होगी।

संन्यास का अर्थ है: जड़ को काटना। संसार का अर्थ है: पत्तों को काटना, काटते दोनों हैं। संन्यासी बुद्धिमान है। वह वहां से काटता है जहां से काटना चाहिए। संसारी मूढ़ है। वह वहां काटता है, जहां काटने का कोई अर्थ नहीं है, बल्कि खतरा है। क्योंकि पत्ते समझते हैं कि कलम की जा रही है। तो एक पत्ता काटो, चार निकल आते हैं।

महावीर कहते हैं कि इन जड़ों को सींचते रहने से तो होगा बार-बार जन्म, बार-बार मृत्यु। और घूमोगे चक्र में, नीचे-ऊपर, सुख में, दुख में, हार में, जीत में, और यह चक्र है अनंत। और ऐसा मत सोचना कि दुख इसलिए है कि मुझे अभी अभाव है। सब मिल जाए तो दुख न रहेगा।

तो महावीर कहते हैं कि तुम्हें अगर सभी मिल जाए स्वर्ण पृथ्वी का, सभी मिल जाए धन-धान्य, हो जाए समस्त पृथ्वी तुम्हारी दास तो भी तुम्हें तृप्त करने में असमर्थ है।

तृप्ति का संबंध क्या तुम्हारे पास है, इससे नहीं है, क्या तुम हो, इससे है। और जो अतृप्त है उसके पास कुछ भी हो तो अतृप्त होगा। और जो तृप्त है उसके पास कुछ हो या कुछ भी न हो तो भी तृप्त होगा।

तृप्ति या अतृप्ति अंतर्दशाएं हैं। बाहर की वस्तुओं से उनका कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं, सब तुम्हारे पास हो जाए तो भी तुम तृप्त न होओगे। क्योंकि न हमने सिकंदर को तृप्त देखा, न हमने नेपोलियन को तृप्त देखा, न रॉकफेलर तृप्त है, न मार्गन तृप्त है, न कारनेगी तृप्त है। सब उनके पास है, जो हो सकता है। शायद नेपोलियन के पास भी नहीं था जो रॉकफेलर के पास है। लेकिन तृप्ति? तृप्ति का कोई पता नहीं।

और महावीर जो कहते हैं, अनुभव से कहते हैं। उनके पास भी सब था। इसलिए यह कोई सड़क पर खड़े भिखारी की बात नहीं है। सड़क पर खड़े भिखारी की बात में तो धोखा भी हो सकता है, सांत्वना भी हो सकती है। अक्सर होती है। सड़क का भिखारी कहता है, क्या मिलेगा यदि सारी पृथ्वी भी मिल जाए? उसका यह मतलब नहीं कि वह सारी पृथ्वी नहीं पाना चाहता। वह यह कह रहा है कि हम पाने योग्य ही नहीं मानते। इसलिए नहीं कि पाने योग्य नहीं मानता, इसलिए कि जानता है कि पाने योग्य मानो तो भी कोई सार नहीं है। छाती पीटनी पड़ेगी, रोना पड़ेगा। होने वाला नहीं है। अंगूर खट्टे हैं, क्योंकि दूर हैं।

भिखारी भी कहता है, अपने मन को समझाने के लिए कहता है। इसलिए अध्यात्म के इतिहास में एक बड़ी विचित्र घटना घटती है। सम्राट भी कहते हैं, भिखारी भी कहते हैं। वचन एक ही हो सकता है, अर्थ एक ही नहीं होते। जब सम्राट कहते हैं, कि नहीं है कोई सार सारी पृथ्वी में, तो यह एक अनुभव का वचन है। और जब भिखारी कहता है तब अक्सर, हमेशा नहीं, अक्सर अनुभव का वचन नहीं, सांत्वना की चेष्टा है। समझाना है अपने को, बेकार है। कुछ होगा नहीं। तृप्ति होने वाली नहीं, पूरी पृथ्वी मिल जाए तो भी। यह अपने को संतुष्ट करने की चेष्टा है।

महावीर जो कह रहे हैं, यह संतुष्ट करने की चेष्टा नहीं है, यह असंतोष के गहन अनुभव का परिणाम है। तो महावीर कहते हैं, सब भी तुम्हें मिल जाए, तो भी कुछ न होगा। क्योंकि सबके मिलने से भी तुम, तुमको नहीं मिलोगे। सब भी मिल जाए, पूरी पृथ्वी भी मिल जाए तो अपने से मिलन नहीं होगा।

और तृप्ति है अपने से मिलन का नाम। दूसरे से मिलने में सिवाय अतृप्ति के कुछ भी पैदा नहीं होता। वह धन हो, कि व्यक्ति हो, कि कुछ भी हो, दूसरे से मिलन, अतृप्ति का ही जन्मदाता है। और अतृप्ति होगी, और मिलने की आकांक्षा होगी, और भ्रम पैदा होगा कि और मिल जाए तो शायद सब ठीक हो जाए।

अपने से ही मिलने पर तृप्ति होती है, क्योंकि फिर खोजने को कुछ भी नहीं रह जाता। लेकिन अपने से वह मिलता है, जो जीवेषणा छोड़ देता है। अपने से वह मिलता है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के पागलपन को छोड़ देता है। क्योंकि यह पागलपन दूसरे में ही उलझाए रखते हैं। यह अपने पास आने ही नहीं देते।

क्रोध का मतलब है--दौड़ गए आग में दूसरे की तरफ। अक्रोध का अर्थ है: लौट आए आग से अपनी तरफ। मोह का अर्थ है--जुड़ गए दूसरे से पागल की तरह। अमोह का अर्थ है, लौट आए बुद्धिमान की तरह, अपनी तरफ। अहंकार का अर्थ है: दूसरे की आंखों में दिखने की चेष्टा। पागलपन है, क्योंकि सब दूसरे भी इसी कोशिश में लगे हैं। मान अहंकार छोड़ देने का अर्थ है, अपनी ही आंख में अपने को देखने की चेष्टा, आत्म-दर्शन। अहंकार का अर्थ है: दूसरे की आंखों में दिखने की चेष्टा। निर-अहंकार का अर्थ है: अपना दर्शन। अपनी आंखों में अपने को देखने की चेष्टा। अपने को मैं देख लूं, अपने को मैं पा लूं, अपने साथ मैं हो जाऊं, अपने में मैं जी लूं, तो है परम तृप्ति। दूसरे में मैं दौड़ता रहूं, दौड़ता रहूं, दौड़ है जरूर, पहुंचना बिल्कुल नहीं है। यात्रा बहुत होती है, मतलब कुछ नहीं निकलता।

इसलिए महावीर कहते हैं कि इन चार को ठीक से पहचान लेना। और जब ये चार तुम्हें पकड़ें, तो एक बात का ध्यान रखना, स्मरण रखना कि समस्त पृथ्वी को पा लेने पर भी कुछ होता नहीं है।

"जान कर संयम का आचरण करना।"

संयम का क्या अर्थ है? संयम का अर्थ है, यह जो चार पागलपन हैं हमारे बाहर ले जानेवाले, इनसे बचना। संयम का अर्थ है संतुलन। क्रोध में संतुलन खो जाता है। आप वह करते हैं जो नहीं करना चाहते थे। वह करते हैं जो नहीं कर सकते थे, वह भी कर लेते हैं। लोभ में संतुलन टूट जाता है। मोह में ऐसी बातें निकल जाती हैं, संतुलन छूट जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था, और उसने कहा: अगर तुमने मुझसे विवाह न किया, तो पक्का जान रखो, आत्महत्या कर लूंगा। उस स्त्री ने पूछा: सच? वह डर गई, "सच आत्महत्या कर लोगे? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: दिस हैज बीन माई यूजुअल प्रोसीजर। यह मैं सदा ऐसा ही करता रहा हूं। जब भी किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता हूं, तो सदा यही करता हूं, आत्महत्या!

जब आप भी प्रेम में होते हैं तो आप ऐसी बातें कहते हैं, जो आप न करते हैं, न कर सकते हैं। वह पागलपन है--एक हारमोनल डिजीज। आपके भीतर ऐसे रासायनिक तत्व दौड़ रहे हैं कि अब आप होश में नहीं हैं। जो आप कह रहे हैं, उसका कोई मतलब नहीं है ज्यादा।

मुल्ला नसरुद्दीन अपनी प्रेयसी से कहता है कि कल तो मैं आऊंगा। न पहाड़ मुझे रोक सकते हैं, न आग की वर्षा। भगवान भी बीच में आ जाए, तो मुझे रोक नहीं सकता। फिर जाते वक्त कहता है कि अगर पानी न गिरा तो पक्का आऊंगा।

अपनी एक प्रेयसी से बिदा ले रहा है। बिदा लेते वक्त उससे कहता है, तेरे बिना मैं जी न सकूंगा। तुझ से ज्यादा सुंदर स्त्री इस पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। शरीर ही जा रहा है, आत्मा यहीं छोड़े जा रहा हूं। फिर सीढ़ियां उतरते कहता है; लेकिन कुछ ज्यादा इसका ख्याल मत करना, ऐसा मैं बहुत स्त्रियों से पहले भी कह चुका हूं, आगे भी कहूंगा।

जब आप मोह में हैं--जिसको आप प्रेम कहते हैं, और प्रेम शब्द को खराब करते हैं--तब आप जो बोल रहे हैं, वह बेहोशी है। जब आप क्रोध में हैं, तब आप जो कह रहे हैं, वह भी बेहोशी है।

संयम का अर्थ है: होश। ये बेहोशियां न पकड़ें, आदमी संतुलित हो जाए, संयमी हो जाए, अपने में खड़ा हो जाए। ऐसी बातें न करे, ऐसा व्यवहार न करे, ऐसा जीवन चेतना का, समय का उपयोग न करे, जिसके लिए वह खुद भी होश में आने पर कहेगा, पागलपन था।

इसलिए सभी बूढ़े जवानों पर नाराज दिखाई पड़ते हैं। इसका और कोई कारण नहीं है, अपनी जवानी का दुख। सभी बूढ़े जवानों को शिक्षा देते दिखाई पड़ते हैं। असल में अगर उनको मौका मिलता अपनी जवानी को शिक्षा देने का, जो किसी को मिलता नहीं, वह दूसरों पर निकाल रहे हैं। लेकिन वे भूल कर रहे हैं। उनके मां-बाप भी उनको ऐसी शिक्षा दिए थे, कोई कभी सुनता नहीं। जवानों को बड़ा गुस्सा आता है कि क्या बकवास लगा रखी है, लेकिन बूढ़े बेचारे अनुभव से कह रहे हैं। उन्होंने ये दुख उठा लिए हैं और ये पागलपन कर लिए हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है एक बगीचे की बेंच पर अपनी पत्नी के साथ। सांझ हो गई है। वृक्षों की छाया में कोई नया युगल, एक नया युवक और नई युवती प्रेम की बातें कर रहे हैं। पत्नी बेचैन हो गई है। आखिर पत्नी ने मुल्ला से कहा कि ऐसा मालूम पड़ता है कि यह लड़का और यह लड़की शादी करने की तैयारी कर रहे हैं। तुम जाकर कुछ रोकने की कोशिश करो। जरा खांसो खंखारो।

मुल्ला ने कहा, "मुझको किसने रोका था? सब अपने अनुभव से सीखते हैं, बीच में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है।"

वह जब काम पकड़े, क्रोध पकड़े, मोह पकड़े, मान पकड़े तब ख्याल करना, कितने अनुभव से सीखिएगा! काफी अनुभव नहीं हो सका है, नहीं हो चुका है। कितना अनुभव हो चुका है? पुनरुक्ति कर रहे हैं। हां, एक अनुभव जरूरी है, लेकिन पुनरुक्ति मूढ़ता है। एक भूल आवश्यक है, लेकिन उसी को दुबारा दोहराना मूढ़ता है।

मूढ़ वे नहीं हैं, जो भूलें करते हैं, और बुद्धिमान वे नहीं हैं, जो भूलें नहीं करते। बुद्धिमान वे हैं जो एक ही भूल दुबारा नहीं करते। मूढ़ वे हैं जो एक ही भूल को अभ्यास से बार-बार करते हैं।

तो ये चार जब पकड़ें तो थोड़ी बुद्धिमानी बरतना और जरा होश रखना कि बहुत बार यह हो चुका है। क्या है परिणाम? क्या है निष्पत्ति? और अगर कोई परिणाम, कोई निष्पत्ति न दिखाई पड़े तो संयम रखना। ठहराना अपने को, खड़े हो जाना, मत दौड़ पड़ना पागल की तरह। जो इन विक्षिप्तताओं से अपने को रोक लेता है, वह धीरे-धीरे उसको जान लेता है, जो विक्षिप्तताओं के पार है। उसका नाम ही आत्मा है।

आज इतना ही।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें और फिर जाएं।

अकेले ही है भोगना (अशरण-सूत्र)

जमिणं जगई पूढो जगा,
कम्मेहिं लुप्पन्ति पाणिणो।
सयमेव कडेहि गाहई,
नो तस्स मुच्चेज्ज पुट्ठयं॥
न तस्य दुक्खं विभयन्ति नाइओ,
न भित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोई दुक्खं,
कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं॥

संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं। अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता।

पापी जीव के दुख को न जाति वाले बंटा सकते हैं, न मित्र वर्ग, न पुत्र, और न भाई-बंधु। जब दुख आ पड़ता है, तब वह अकेला ही उसे भोगता है। क्योंकि कर्म अपने कर्त्ता के ही पीछे लगते हैं, अन्य किसी के नहीं।

पहले कुछ प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: कल आपने समझाया कि मनुष्य की जीवेषणा ही उसके पुनर्जन्म को, संसार के दुख-चक्र को चलाए रखने का कारण है। लेकिन आप हमेशा कहते हैं कि "जीवन ही है परमात्मा" और आपकी पूरी देशना जीवन स्वीकार पर केंद्रित है। जीवेषणा का दुख मूल कारण है, ऐसा कहना जीवन-निषेधक लगता है।

जीवेषणा है कल, भविष्य में, और जीवन है अभी और यहीं। जो जीवेषणा से घिरा है वह जीवन से वंचित रह जाता है। और जिसे जीवन को जानना हो उसे जीवेषणा छोड़ देनी पड़ती है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

वासना कभी भी वर्तमान में नहीं होती, हमेशा भविष्य में होती है। और अस्तित्व सदा वर्तमान में होता है। आपका होना तो सदा होता है, अभी और यहीं। लेकिन आपकी वासना सदा होती है कहीं और, कहीं दूर। आप हैं अभी और यहीं, और आपका मन है कहीं और। आपकी आकांक्षा, अभीप्सा, वासना सदा भविष्य में है। भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है, सिवाय आपकी वासना को छोड़ कर। भविष्य है ही आपकी वासना का विस्तार। अतीत है, आपकी स्मृतियों का संग्रह, भविष्य है आपकी वासनाओं का विस्तार। समय तो सदा वर्तमान है।

हम आमतौर से समय का विभाजन करते हैं--वर्तमान, अतीत, भविष्य--तीन टुकड़ों में तोड़ देते हैं समय को, वह भ्रान्त है। अतीत और भविष्य समय के खंड नहीं हैं। अतीत है हमारी स्मृति और भविष्य है हमारी वासना। समय तो सदा वर्तमान है। समय तो सदा अभी है। समय के तीन टुकड़े नहीं हैं, समय तो एक अखंड धारा है, जो अभी है।

साधारणतः हम कहते हैं, समय बीत जाता है। ज्यादा अच्छा हो कहना कि हम बीत जाते हैं। समय को आपने कभी बीतते देखा है? कभी अतीत से आपका मिलना हुआ है? कभी भविष्य से आपकी मुलाकात हुई है? जब भी मिलन होता है, वर्तमान से ही होता है। लेकिन कभी आप बच्चे थे, अब आप जवान हैं--आप बीत गए।

अभी आप जवान हैं, कल आप बूढ़े हो जाएंगे, और भी बीत जाएंगे। कभी पैदा हुए थे, कभी मर जाएंगे। कभी भरे थे, कभी चुक जाएंगे।

आदमी बीतता है। समय नहीं बीतता। हम खर्च होते हैं, समय खर्च नहीं होता। घड़ी चल कर यह नहीं बताती कि समय चल रहा है। घड़ी चल कर यह बताती है कि आप चूक रहे हैं, आप समाप्त हो रहे हैं। घड़ी आपके संबंध में कुछ बताती है, समय के संबंध में कुछ भी नहीं।

अगर इसे ठीक से समझ लें तो ख्याल में आ जाएगा कि जीवेषणा और जीवन में क्या फर्क है। जीवेषणा का मतलब है, कल जीऊंगा। मुझे कल चाहिए जीने के लिए। आज नहीं जी सकता हूं। आज जो भी है, व्यर्थ है। जो भी सार्थक है, वह कल होगा। जो भी सुंदर है, जो भी सुखद है, वह कल में छिपा है। जो भी दुखद है, अप्रीतिकर है, वह आज में प्रकट हुआ है। लेकिन कल तो कभी आता नहीं, जब भी आता है, आज ही आता है। कल भी आज ही आएगा। और आज सदा व्यर्थ मालूम पड़ता है, और कल सदा सपनों से भरा मालूम पड़ता है।

तो हम ऐसे जीवन को स्थगित करते हैं। हम कहते हैं, कल जी लेंगे। आज तो जीने में असमर्थ पाते हैं अपने को, आज तो जीवन से जुड़ने की कला नहीं जानते, आज तो जीवन में डूबने और सरोबोर होने का रास्ता नहीं जानते, आज तो जीवन ऐसे ही बीत जाता है; कल जी लेंगे, इस आशा में, इस भरोसे में आज को हम बिता देते हैं। लेकिन कल कभी आता नहीं, कल फिर आज आ जाता है। उस आज को भी हम वही करेंगे जो हमने आज किया, आज के साथ। कल फिर हम वही करेंगे। फिर हम आगे, कल पर टाल देंगे।

ऐसे आदमी टालता चला जाता है। मौत जब आती है, तो हमें जो दुख और पीड़ा होती है, वह मृत्यु की नहीं है। जो असली पीड़ा है, वह कल के समाप्त हो जाने की है। मौत जब द्वार पर खड़ी हो जाती है तो आज ही बचता है, कल नहीं बचता। मौत आपको नहीं मारती, भविष्य को मार देती है। मौत आपका अन्त नहीं है, भविष्य की समाप्ति है। अब आप अपनी वासना को आगे नहीं फैला सकते, अब कोई कल नहीं है। वह कल कभी भी नहीं था, लेकिन जो आपको जिंदगी न बता सकी वह आपको मौत बताती है कि अब कल नहीं है। तब दीवार के किनारे आप अटके खड़े हो गए, अब यही क्षण बचा। अब क्या करें? जीवन भर की आदत है। आज तो जी नहीं सकते, कल ही जी सकते हैं। अब क्या करें?

इसलिए मौत की दीवाल से टकराते लोग स्वर्ग की, मोक्ष की, पुनर्जन्म की भाषा में सोचने लगते हैं। उसका मतलब? अब वह कल को फिर फैला रहे हैं। अब वह यह कह रहे हैं, मरने के बाद भी शरीर ही मरेगा, आत्मा तो रहेगी। हम फिर जिएंगे, भविष्य में जिएंगे। उसका यह मतलब नहीं है कि आत्मा मर जाती है। लेकिन जितने लोग यह सोचते हैं कि आत्मा रहेगी, उनमें से शायद ही किसी को पता है, आत्मा के रहने का। उनके लिए यह फिर एक ट्रिक, एक तरकीब है मन की, वे फिर भविष्य को निर्मित कर रहे हैं।

एक बात तय है कि हम आज जीना नहीं जानते। वही अधर्म है। पर हम कैसे आज जीना जानेंगे? एक ही उपाय है कि हम कल की आशा में न जीएं, और आज चेष्टा करें जीने की, अभी। यह जो समय हमारे साथ अभी जुड़ा है, इसमें ही हम प्रवेश कर जाएं, इस क्षण में हम उतर जाएं।

जो आदमी बुद्धिमान है, वह ऐसा मान कर चलता है कि दूसरे क्षण मौत है। है भी। एक क्षण मेरे हाथ में है, दूसरे क्षण का कोई भरोसा नहीं। इस क्षण का मैं क्या उपयोग करूं, इस क्षण को मैं कैसे उसकी परिपूर्णता में निचोड़ लूं, कैसे इस क्षण को मैं पूरा जी लूं, कैसे यह क्षण व्यर्थ न चला जाए? ऐसी चिंता है बुद्धिमान की।

बुद्धिहीन की चिंता यह है कि इस क्षण को अगले क्षण के विचार में खो दूं, अगले क्षण को और अगले क्षण के विचार में खो दूंगा। ऐसे पूरे जीवन भ्रम होगा कि जीया, और जीऊंगा बिल्कुल भी नहीं। हम सिर्फ पोस्टपोन

करते हैं, स्थगित करते हैं--कल कल कल। एक दिन पाते हैं, मौत आ गई। अब आगे कोई कल नहीं। तब छाती पर धक्का लगता है कि पूरा अवसर व्यर्थ खो गया।

जीवेषणा का अर्थ है: जीवन चूकने की तरकीब। इसलिए जीवन तो प्रभु है, जीवेषणा संसार है। जीवन तो धर्म है, जीवेषणा पाप है। क्या यह नहीं हो सकता कि हम इस क्षण से ही जुड़ जाएं, डूब जाएं, इसमें ही लीन और एक हो जाएं? अगला क्षण भी आएगा। लेकिन जो व्यक्ति इस क्षण में डूबकी लगाने में समर्थ है, वह अगले क्षण में भी डूबकी लगा लेगा।

जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, देखो! खेतों में खिले हुए लिली के फूलों को, वे कल की चिंता नहीं करते। वे अभी और यहीं खेल गए हैं। ऐसे ही तुम भी हो जाओ। डू नाट थिंक आफ टुमारो। कल की मत सोचो। लिली का फूल भी अगर कल की सोच सके, अगर किसी तरकीब से हम उसमें भी जीवेषणा पैदा कर दें, तो अभी कुम्हला जाएगा। आदमी का कुम्हलाना कल की चिन्ता का परिणाम है। बच्चे फूल की तरह खिले मालूम पड़ते हैं। क्या है कारण, क्या है राज! बच्चों के लिए अभी जीवेषणा नहीं है, जीवन ही है। अभी वे खेल रहे हैं, तो जैसे यहीं सब समाप्त हो गया, इसी खेल में सब पूरा है। इस खेल में वे अपनी समग्र आत्मा से उतर गए हैं, कल नहीं है। जिस दिन बच्चा कल की सोचने लगता है, समझना कि वह बूढ़ा होना शुरू हो गया।

जब तक बच्चा आज में जीता है, अभी में जीता है, तब तक समझना, अभी वह बचपन का सौंदर्य है। जिस दिन वह कल की सोचने लगे, समझो कि बुढ़ापे ने उसे पकड़ लिया। अब दुबारा बचपन बहुत मुश्किल हो जाएगा।

जीसस ने कहा है, वही मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करेंगे, जो बच्चों की भांति हैं। बच्चों की भांति होने का एक ही अर्थ है कि जो अभी और यहीं जीने में समर्थ हैं, वे स्वर्ग में प्रवेश कर जाएंगे। स्वर्ग कहीं और नहीं है, इसी क्षण में है। नरक कहीं और नहीं है, स्थगित जीवन में है, कल में है। अस्तित्व पास खड़ा है।

स्वामी राम एक कहानी कहा करते थे, वे कहते कि एक प्रेमी दूर चला गया। जो समय दिया था, नहीं लौट सका। पत्र उसके आते रहे, आऊंगा, जल्दी आता हूं, जल्दी आता हूं। वह टालता रहा आना। फिर प्रेयसी थक गई प्रतीक्षा करते-करते और एक दिन उसके द्वार पर पहुंच गई। सांझ हो गई थी, अंधेरा उतर रहा था, छोटा सा दीया जला कर वह अपने कमरे में बैठ कर कुछ लिख रहा था। प्रेयसी ने बाधा न डालनी उचित समझी। वह सामने बैठ गई। वह पत्र लिखता रहा--वह पत्र ही लिख रहा था। इसी प्रेयसी को लिख रहा था!

प्रेमियों के पत्र, उनका अंत नहीं आता। वह लंबा होता चला गया। रात आगे बढ़ती चली गई। उसने आंख भी न उठाई, आंख से आंसू बह रहे हैं। और वह पत्र लिख रहा है, और फिर समझा रहा है कि आऊंगा, जल्दी आऊंगा। अब ज्यादा देर नहीं है। और जिसके लिए पत्र लिख रहा है, वह सामने बैठी है। पर आंसुओं से धूमिल आंखें, पत्र में लीन उसका मन, भविष्य में डूबी हुई उसकी वासना, जो मौजूद है उसे नहीं देख पा रहा है।

फिर आधी रात गए उसका पत्र पूरा हुआ। आंखें उसने ऊपर उठाईं, भरोसा न आया। जिस दिन आप भी आंखें उठाएंगे भरोसा न आएगा कि जीवन सामने ही बैठा है। वह घबरा गया। घबड़ा कर उसने पूछा। अभी यही सोच रहा था कि कब देखूंगा अपनी प्रेयसी को, कब होंगे दर्शन? और अब दर्शन सामने हो गए हैं तो वह घबरा गया। समझा कि कोई भूत है, प्रेत है। घबड़ा कर जोर से पूछा, कौन है तू?

उसकी प्रेयसी ने कहा: क्या मुझे भूल ही गए मैं बड़ी देर से आकर बैठी हूं। तुम लिखने में लीन थे, सोचा, बाधा न डालूं।

उसने सिर ठोंक लिया। उसने कहा: मैं तुझे ही पत्र लिखता था।

हम सब भी, जिसे पत्र लिख रहे हैं जिस जीवन को, वह अभी और यहीं मौजूद है। जिसकी हम कामना कर रहे हैं, वह यहीं बिल्कुल हाथ के पास निकट ही खड़ा है, लेकिन आंखें हमारी दूर भटक गई हैं, कल्पना हमारी दूर चली गई है, इसलिए पास नहीं देख पाती।

हम पास के लिए सभी अंधे हो गए हैं। दूर का हमें दिखाई पड़ता है, पास का हमें बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। पास देखने की क्षमता ही हमारी खो गई है। अभ्यास ही हमारा दूर के देखने का है। जितना दूर हो, उतना साफ दिखाई पड़ता है। जितना पास हो उतना धुंधला हो जाता है।

जीवन है अभी और जीवेषणा है कल। जो अपने प्राणों को कल पर लगाए हुए है, उस विक्षिप्त चेतना का नाम जीवेषणा है। जो जीवेषणा को छोड़ देता है और अभी जीता है, यहीं, कल जैसे मिट ही गया। समय समाप्त हुआ। यह क्षण ही सारा जीवन हो गया। वह व्यक्ति उस द्वार को खोल लेता है जो जीवन का द्वार है।

जीवेषणा का विरोध जीवन का विरोध नहीं है, जीवेषणा का विरोध जीवन का स्वीकार है। यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। क्योंकि पश्चिम के विचारकों को भी ऐसा लगा कि महावीर, बुद्ध, ये सब जीवन विरोधी हैं। इन सबकी चिंतना लाइफ निगेटिव है। अलबर्ट श्वाइत्जर ने बहुत गहरी आलोचना की है, भारतीय चिंतन की, चिंतना की; समस्त भारतीय विचारधारा की। और कहा है, कि कितनी ही सुन्दर बातें उन्होंने कही हों, लेकिन जीवन निषेधक, लाइफ निगेटिव हैं। जीवन के दुश्मन हैं ये लोग।

और श्वाइत्जर विचारशील मनुष्यों में से एक है। उसके कहने में अर्थ है। वह भी यही समझा कि सब छोड़ दो। जीवन की कामना ही छोड़ दो, तब तो जीवन की दुश्मनी हो गई, शत्रुता हो गई। तो धर्म फिर जीवन का साथी न रहा। फिर तो ऐसा लगता है कि अधर्म ही जीवन का साथी है और धर्म मृत्यु का।

इसलिए श्वाइत्जर ने कहा है, बुद्ध और महावीर और इस तरह के सारे चिंतक मृत्युवादी हैं। और कहीं न कहीं शत्रु हैं वे जीवन के, और जीवन को उजाड़ डालना चाहते हैं, नष्ट कर देना चाहते हैं।

फिर फ्रायड ने एक बहुत महत्वपूर्ण खोज की है इस सदी की। इस सदी में मनुष्य के मन के संबंध में जो महत्वपूर्ण जानकारी मिली हैं, उनमें बड़ी से बड़ी जानकारी फ्रायड की यह खोज है। फ्रायड ने पूरे जीवन, जीवन की कामना पर श्रम किया है। लिबिडो वह नाम देता था, वासना को, कामना को--यौन, सेक्स, लेकिन इनसे भी बेहतर शब्द उसने खोज रखा था, लिबिडो। उसे हम जीवेषणा कह सकते हैं।

सब आदमी जीवेषणा से चल रहे हैं, और जिस दिन जीवेषणा बुझ जाएगी, उसी दिन आदमी बुझ जाएगा। लेकिन जीवन के अंत-अंत में फ्रायड को लगा कि यह आधी ही बात है। आदमी में जीवन की इच्छा तो है ही, यह बड़ी प्रबल कामना है। लेकिन उसे लगा कि यह अधूरी बात है, इसका दूसरा छोर भी है, क्योंकि इस जगत में कोई भी सत्य बिना द्वंद्व के नहीं होता, डायलेक्टिकल होता है। जब जन्म होता है तो मृत्यु भी होती है। तो अगर जीवन की वासना गहरे में है तो कहीं न कहीं मृत्यु की वासना भी होनी चाहिए, अन्यथा आदमी मरेगा कैसे? अगर जीवन की वासना से जन्म होता है तो फिर मृत्यु की भी कोई गहरी छिपी कामना होनी चाहिए।

तो जीवन की वासना को फ्रायड ने कहा, लिबिडो, और मृत्यु की वासना को उसने एक नया नाम दिया, थानाटोस--मृत्यु की आकांक्षा। क्योंकि एक आदमी आत्महत्या भी कर लेता है। एक आदमी बूढ़ा होकर सोचने लगता है, जीवन व्यर्थ है, नहीं जीना है। सिकोड़ लेता है अपने को। एक घड़ी आ जाती है जब लगता है, अब नहीं जीना है। ऐसा नहीं कि किसी विषाद से आ जाती हो, किसी फ्रस्ट्रेशन से। नहीं, सारे जीवन को देखकर ही ऊब हो जाती है और आदमी सोच लेता है, बस ठीक है, देख लिया, जान लिया। पुनरुक्ति है, वही-वही है, बार-बार वही-वही है। उठो सुबह, सांझ सो जाओ। खाओ-पियो, लेकिन अर्थ क्या है?

एक दिन आदमी को लगता है कि वह सब बचपना था, जिसमें मैंने अर्थ समझा, अभिप्राय देखा, कुछ भी न था वहां, राख सब हो जाती है। नहीं, कि असफल हो गया आदमी, हार गया, इसलिए मरने की सोच रहा है, कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो इसलिए मरने की सोचते हैं कि उनके जीवन की कामना बहुत प्रबल है।

आप एक स्त्री को चाहते थे, वह नहीं मिल सकी, आप कहते हैं कि हम नहीं जीएंगे। इसका मतलब यह नहीं कि आप जीवन से उदास हो गए। आपका जीवन सशर्त जीवन था, एक कन्डीशन थी कि यह स्त्री मिलेगी तो ही जीएंगे। यह मकान बनेगा तो ही जीएंगे, यह धन मिलेगा तो ही जीएंगे, नहीं तो नहीं जीएंगे।

आप जीवन के प्रति बड़े मोह-ग्रस्त थे। आपने शर्त बना रखी थी। शर्त पूरी नहीं हुई, इसलिए मर रहे हैं। आप जीवन के विरोधी नहीं हैं, आप जीवन के बड़े मोही थे। और मोह ऐसा भारी था कि ऐसा होगा तो ही जीएंगे। यह लगाव इतना गहरा हो गया था, यह विक्षिप्तता इतनी तीव्र थी, इसलिए आप मरने की तैयारी कर रहे हैं।

यह नहीं है थानाटोस। यह मृत्यु-एषणा नहीं है। मृत्यु-एषणा तो तब है जब कि जीवन में न कोई असफलता है, न जीवन में कोई विषाद है, लेकिन सब चीजें पूरी हो गईं और सूर्यास्त हो रहा है। शरीर भी डूब रहा है, और मन भी अब जीने की बात से ऊब गया और मन भी डूब रहा है। ऐसा आदमी आत्महत्या नहीं करता, ध्यान रखना। आत्महत्या तो वही करता है जो अभी जीवन की आकांक्षा से भरा था। यह उल्टा मालूम पड़ेगा। लेकिन जितने आत्महत्यारे हैं, बड़े जीवन-एषणा से भरे हुए लोग होते हैं।

ऐसा आदमी आत्महत्या नहीं करता, आत्महत्या भी व्यर्थ मालूम पड़ती है। जिसे जीवन ही व्यर्थ मालूम पड़ रहा है, उसे आत्महत्या सार्थक नहीं मालूम पड़ती। वह कहता है, न जीवन में कुछ रखा है, न जीवन के मिटाने में कुछ रखा है। ऐसा आदमी चुपचाप डूबता है, जैसे सूरज डूबता है। झटके से छलांग नहीं लगाता, डूबता चला जाता है। लेकिन डूबने का कोई विरोध नहीं करता।

अगर ऐसा आदमी पानी में डूब रहा हो तो हाथ-पैर भी नहीं चलाएगा। न बचने में कोई अर्थ है, न ही वह अपने हाथ से डूबकी लगा कर मरना चाहेगा, गला घोटेंगा। न घोटने में कोई अर्थ है। पानी के साथ हो जाएगा कि डुबाए तो डुबाए, न डुबाए तो न डुबाए। जो हो जाए। सब बेकार है, इसलिए कुछ करने का भाव नहीं रह जाता।

इसको फ्रायड ने थानाटोस कहा है। बूढ़ी उम्र के, ज्यादा उम्र के लोगों को अकसर यह आकांक्षा पकड़ लेती है। यह आकांक्षा बूढ़ी उम्र के लोगों को भी पकड़ती है, और फ्रायड का कहना है, बूढ़ी सभ्यताओं को भी पकड़ती है। जब कोई सभ्यता बूढ़ी हो जाती है, जैसे, भारत। बूढ़ी से बूढ़ी सभ्यता है इस जमीन पर। हम इसमें गौरव भी मानते हैं।

सीरिया अब कहां है? मिस्र की पुरानी सभ्यता अब कहां है? यूनान कहां रहा? सब खो गए। बेबीलोन कहां है अब? खंडहरों में, सब खो गए। पुरानी सभ्यताओं में एक ही सभ्यता बाकी है--भारत। बाकी सब सभ्यताएं जवान हैं। कुछ तो बिल्कुल अभी दुधमुंही, दूध पीती हुई बच्चियां हैं--जैसे अमेरिका। अभी उम्र ही तीन सौ साल की है। तीन सौ साल की कुल सभ्यता है। तीन सौ साल हमारे लिए कोई हिसाब ही नहीं होता। दस हजार साल से तो हम अपना स्मरण और अपना इतिहास भी सम्भालते रहे हैं। लेकिन तिलक ने कहा है कि कम से कम भारत की सभ्यता नब्बे हजार वर्ष पुरानी है। और बड़े प्रामाणिक आधारों पर कहा है। सम्भावना है कि इतनी पुरानी है।

तो फ्रायड कहता है, जैसे आदमी बूढ़ा होता है, ऐसे सभ्यताएं भी बच्ची होती हैं, जवान होती हैं, बूढ़ी होती हैं। जब सभ्यताएं बचपन में होती हैं तब खेल-कूद में उनकी उत्सुकता होती है, जैसे अमेरिका है। अमेरिका की सारी उत्सुकता मनोरंजन है, खेल-कूद है, नाच-गान है। हमें बहुत हैरानी होती है, उनका जाज, उनके बीटल, उनके हिप्पी, हमें देख कर बड़ी हैरानी होती है, लेकिन हमको समझ में नहीं आता। छोटे-छोटे बच्चे जैसे होते हैं, ऐसे छोटी सभ्यताएं होती हैं।

आज हिप्पी लड़के और लड़कियों को देखें! उनके रंगीन कपड़े, उनके घूंघर, उनके गले में लटकी हुई मालाएं, यह सब छोटे बच्चों का खेल है। सभ्यता अभी ताजी है। बूढ़ी सभ्यताएं बहुत हिकारत से देखती हैं। जैसे बूढ़े बच्चों को देखते हैं--नासमझ।

फिर जवान सभ्यताएं होती हैं। जवान सभ्यताएं जब होती हैं, तब वे युद्धखोर हो जाती हैं, क्योंकि जवान लड़ना चाहता है, जीतना चाहता है। जैसे अभी चीन जवान हो रहा है, वह लड़ेगा, जीतेगा। अभी भाव विजय-यात्रा का है। फिर बूढ़ी सभ्यताएं होती हैं।

तो फ्रायड ने कहा है, जैसे व्यक्ति के जीवन में बचपन, जवानी, बुढ़ापा होता है, ऐसे सभ्यताओं के जीवन में भी होता है। अगर हम श्वाइत्जर और फ्रायड दोनों के ख्यालों को ध्यान में ले लें तो ऐसा लगेगा कि महावीर और बुद्ध की बातें एक बूढ़ी सभ्यता की बातें हैं जो अब मरने के लिए उत्सुक हो गई हैं। जो कहती हैं, कुछ सार नहीं है जीवन में, कुछ अर्थ नहीं जीवन में। जीवन असार है। छोड़ो आशा, छोड़ो सपने, मरने के लिए तैयार हो जाओ।

और निर्वाण शब्द ने और भी सहारा दे दिया। बुद्ध का निर्वाण शब्द मृत्यु-सूचक है। निर्वाण का अर्थ होता है, बुझ जाना, मिट जाना, समाप्त हो जाना। निर्वाण का अर्थ होता है, दीये का बुझना। जब दीया बुझता है, तब हम कहते हैं, दीया निर्वाण को उपलब्ध हो गया। ऐसे ही जब आदमी के भीतर जीवेषणा की ललक, जीवेषणा की आकांक्षा, जीवेषणा की ज्योति बुझ जाती है, खो जाती है; उसको बुद्ध ने कहा है निर्वाण।

तो स्वभावतः श्वाइत्जर और फ्रायड को लगे कि यह कौम बूढ़ी हो गई है। और केवल बूढ़ी नहीं हो गई है, इतनी बूढ़ी हो गई है कि जीने की कोई आकांक्षा नहीं रह गई। फिर महावीर की, संथारा की धारणा ने और भी ख्याल दे दिया। अकेले महावीर ही ऐसे व्यक्ति हैं पूरी पृथ्वी पर, जिन्होंने संन्यासी को मरने की सुविधा दी है और जिन्होंने कहा है कि अगर कोई संन्यासी मरना चाहे, तो हकदार है मरने का। इतनी हिम्मत की बात किसी और ने नहीं कही।

महावीर कहते हैं कि अगर कोई मरना चाहे, तो यह उसका हक है, अधिकार है। हम न मानना चाहेंगे, हम कहेंगे, पुलिस पकड़ेगी, अदालत में मुकदमा चलेगा। अगर पकड़ लिए गए, अगर असफल हो गए, और हम असफल करने का सारा उपाय करेंगे। इसका तो मतलब हुआ, महावीर ने स्युसाइड की, आत्महत्या की आज्ञा दी, कि कोई संन्यासी मरना चाहे तो मर सकता है। किसी को हक नहीं है उसे जबरदस्ती रोकने का।

इससे और भी ख्याल साफ हो गया कि यह धारणा मृत्युवादी है, डेथ ओरिएण्टेड है। जीवन से इसका संबंध कम और मृत्यु से संबंध ज्यादा है। तो यह लिबिडो के खिलाफ है। इसलिए ब्रह्मचर्य के पक्ष में है, काम के खिलाफ है। सिकोइने के पक्ष में है, फैलने के खिलाफ है। प्रेम के खिलाफ है, विरक्ति के पक्ष में है और अन्ततः मृत्यु के पक्ष में है, और जीवन के खिलाफ है। और महावीर से तो सहारा पूरा मिल गया, क्योंकि महावीर कहते हैं, आदमी को हक है मरने का।

लेकिन भूल हो गई है। महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्तियों को समझना सिर्फ ऊपर से, आसान नहीं है, भीतर उतरना बहुत जरूरी है। महावीर ने आत्महत्या की आज्ञा नहीं दी है, क्योंकि महावीर की शर्तें हैं। महावीर कहते हैं, वह आदमी मरने का हकदार है जिसको जीवन की कोई भी आकांक्षा शेष नहीं रह गई, कोई भी।

इसलिए महावीर ने नहीं कहा कि जहर लेकर मर जाना। क्योंकि धोखा हो सकता है। एक क्षण में कभी ऐसा लग सकता है कि सब आकांक्षा खत्म हो गई और आदमी मर सकता है। इसलिए महावीर ने कहा है कि जहर लेकर मत मर जाना। क्योंकि क्षण में धोखा हो सकता है। महावीर ने कहा, उपवास कर लेना। उपवास करके कोई मरेगा तो कम से कम नब्बे दिन लग जाते हैं। नब्बे दिन सोच विचार के लिए लंबा अवसर है।

दुनिया में कोई आदमी नब्बे दिन तक आत्महत्या के विचार पर थिर नहीं रह सकता, और अगर रह जाए तो अपूर्व ध्यान को उपलब्ध हो गया। नब्बे दिन की बात अलग, वैज्ञानिक कहते हैं कि एक सेकेंड भी आत्महत्या

में चूके कि चूक गए। उसी वक्त कर लो तो कर लो। क्योंकि वह भावावेश में होती हैं, तीव्र भावावेश में। कोई दुख लगा और एक आदमी छलांग लगा कर छत से कूद गया। फिर अब बीच में समझ में भी पड़े तो कोई उपाय नहीं है। अब कूद ही गए, अब मरना ही पड़ेगा।

जितने लोग आत्महत्या करके मरते हैं, अगर हम उनको जिला सकें तो वे सभी कहेंगे कि हमसे गलती हो गई। क्षण के आवेश अकेले ही है भोगना में आदमी कुछ भी कर लेता है। इसलिए महावीर ने कहा, आवेश नहीं चलेगा, नब्बे दिन का वक्त चाहिए। भोजन त्याग कर दो, पानी का त्याग कर दो।

जिस आदमी को जीवन का सब रंग चला गया है, उसको प्यास की पीड़ा भी अखरेगी नहीं। अगर अखरती है, तो अभी जीवन को जीने का रस बाकी है। जिस आदमी को जीवन का ही अर्थ चला गया, वह अब यह नहीं कहेगा कि मुझे भूख लगी है और पेट में बड़ी तकलीफ होती है, क्योंकि पेट की तकलीफ जीवन का अंग थी। वे सारी चीजें कि तकलीफ हो रही है, पीड़ा हो रही है, वह जीवेषणा को ही हो रही थी। अगर जीवेषणा नहीं रही तो ठीक है; भूख भी ठीक है, भोजन भी ठीक है, प्यास भी ठीक है, पानी भी ठीक है। न मिला तो भी ठीक है। मिला तो भी ठीक है। ऐसी विरक्ति आ जाएगी।

तो महावीर ने कहा है, नब्बे दिन तक जो शांतिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा कर सके, अशांत न हो जाए, इसमें भी जल्दबाजी न करे, उसे आज्ञा है कि वह मर सकता है।

यह आत्महत्या नहीं है। यह जीवन से मुक्त होना है, जीवन की मृत्यु नहीं है। और जीवन से मुक्त होना कहना भी ठीक नहीं है, यह जीवेषणा से मुक्त होना है। लेकिन समझना कठिन है। और उन्होंने जो जो बातें कही हैं, जिनमें हमें लगता है कि निषेधक हैं, वे कोई भी निषेधक नहीं हैं। महावीर तो कहते ही यह हैं कि जब कोई व्यक्ति अपने ही मन से मृत्यु को अंगीकार करता है, तभी परिपूर्ण जीवन को समझ पाता है।

इसे थोड़ा हम समझ लें। है भी यही बात। जब हमें सफेद लकीर खींचनी होती है तो हम काले ब्लैक-बोर्ड पर खींचते हैं, सफेद दीवाल पर नहीं। सफेद दीवाल पर खींची गई सफेद लकीर दिखाई भी नहीं पड़ेगी। जितना होगा काला तख्ता, उतनी उभर कर दिखाई पड़ेगी। जब बिजली चमकती है पूर्णिमा की रात में, तो पता भी नहीं चलती। और जब बिजली चमकती है अमावस को, तभी पता चलती है।

महावीर की समझ यह है कि जब कोई व्यक्ति मृत्यु को अपने हाथ से वरण कर लेता है, मृत्यु को स्वीकार कर लेता है, तो मृत्यु का जो दंश है, दुख है, पीड़ा है वह तो खो गई। मृत्यु एक काली रात्रि की तरह चारों तरफ घिर जाती है। और जब कोई व्यक्ति इसका कोई निषेध नहीं करता, कोई इनकार नहीं करता; तो मृत्यु पृष्ठभूमि बन जाती है, बैकग्राउंड बन जाती है। और पहली दफे जीवन की जो आभा है, जीवन की जो चमक है, बिजली है, जीवन की जो ज्योति है, इस चारों तरफ घिरी हुई मृत्यु के बीच में दिखाई पड़ती है।

जो जीवेषणा से घिरा है, वह जीवन को कभी नहीं देख पाता, क्योंकि वह सफेद दीवाल पर लकीरें खींच रहा है। जो मृत्यु से घिर कर जीवन को देखने में समर्थ हो जाता है, वही जान पाता है कि मैं अमृत हूं, मेरी कोई मृत्यु नहीं है। यह जरा उलटा मालूम पड़ता है, लेकिन जीवन के नियम के अनुकूल है।

मृत्यु की सघनता में घिर कर ही जीवन भी सघन हो जाता है। मृत्यु जब चारों तरफ से घेर लेती है तो जीवन भी अखंड होकर बीच में खड़ा हो जाता है। और जब हम मृत्यु में भी जानते हैं कि "मैं हूं", जब हम मृत्यु में डूबते हुए भी जानते हैं कि "मैं हूं", जब मृत्यु सब तरफ से हमें घेर लेती है, तब भी हम जानते हैं कि "मैं हूं", जब मृत्यु हमें शरीर के बाहर भी ले जाती है, तब भी हम जानते हैं कि "मैं हूं", तभी कोई जानता है कि मैं के होने का क्या अर्थ है। क्या है जीवन? वह हम मृत्यु में ही जानते हैं।

मरते हम सब हैं, लेकिन हमारी मृत्यु बेहोश है। मरते हम सब हैं, लेकिन नहीं मरने की आकांक्षा इतनी प्रबल होती है कि मृत्यु को हम दुश्मन की तरह लेते हैं। और जब दुश्मन की तरह लेते हैं तो हम मृत्यु से लड़ते हैं।

हम मरते नहीं, हम लड़ते हुए मरते हैं। हम मरते नहीं-शांत, मौन, ध्यानपूर्वक देखते हुए। हम इतना लड़ते हैं, इतना उपद्रव मचाते हैं, इतना बचना चाहते हैं कि उस चेष्टा में बेहोश हो जाते हैं।

मृत्यु की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। जैसे कि सर्जन आपकी कोई हड्डी काट रहा हो तो अनस्थेसिया दे देता है, बेहोशी की दवा दे देता है। क्योंकि डर है कि जब वह हड्डी काटेगा तो आप लड़ेंगे काटने से कि न काटी जाए। घबड़ाएंगे, पीड़ित होंगे, परेशान होंगे। रेसिस्टेंस खड़ा होगा। तो आपके शरीर में दो तरह की धाराएं हो जाएंगी, एक तरफ काटने की बात है, और एक तरफ आप बचाने की चेष्टा करेंगे। अगर आपको सुई भी चुभाई जाए तो आप बचाने की चेष्टा करेंगे अपने को। स्वाभाविक है। तो बेहोश करना जरूरी है, ताकि आप उपद्रव खड़ा न करें।

मृत्यु सबसे बड़ी सर्जरी है। एक हड्डी नहीं कटती, सारी हड्डियों से संबंध कटता है। एक मांस-पेशी नहीं कटती, सारे मांस से संबंध टूट जाता है। जिस शरीर के साथ आप सत्तर वर्ष तक एक होकर जीए थे, और जिसके खून-खून और रोएं-रोएं में आपकी चेतना समाविष्ट हो गई थी, और जिसमें समाविष्ट ही नहीं हो गई थी, आपने एकात्म बना लिया था कि मैं शरीर हूं, उससे अलग होना बड़ी से बड़ी सर्जरी है।

आप होश में तभी रह सकते हैं, जब आपका मृत्यु से विरोध न हो। अगर विरोध न हो, आप मौन और शांति स्वीकारपूर्वक अगर मृत्यु में डूबें--उसी को महावीर ने संथारा कहा है, आत्म-मरण कहा है--तो आप बेहोशी में नहीं होंगे, तो मृत्यु को अनस्थेसिया की जरूरत नहीं पड़ेगी।

लेकिन हम इतने घबड़ा जाते हैं और इतने तनाव से भर जाते हैं और इतना बचना चाहते हैं और अपनी खाट को इतने जोर से पकड़ लेते हैं कि कहीं मृत्यु छीन कर न ले जाए। इतने तनाव में भर जाते हैं कि वह तनाव एक सीमा पर आ जाता है। उस सीमा के आगे जाना असंभव है। तत्काल शरीर अनस्थेसिया को छोड़ देता है और हम बेहोश हो जाते हैं। अधिक लोग अधिकतम लोग बेहोशी में मरते हैं, इसलिए हमें मृत्यु की फिर नये जन्म में कोई याद नहीं रह जाती। जो लोग होश में मरते हैं, उनको दूसरे जन्म में याद रह जाती है। क्योंकि याद हमेशा होश की रह सकती है, बेहोशी की याद नहीं रह सकती।

यह जो बेहोशी की घटना घटती है मृत्यु में, यह हमारी ही जीवेषणा का परिणाम है। तो महावीर कहते हैं, जीवेषणा छोड़ दो, जीयो। और जो जीवन को जीता है, अभी और कल की फिकर नहीं करता, वह मृत्यु को भी जी लेगा, जब मृत्यु आएगी, और कल की फिकर नहीं करेगा। मृत्यु भी उसे जीवन की परिपूर्णता बन जाएगी, विरोध नहीं। वह मृत्यु को भी देख लेगा, पहचान लेगा। और जिसने होश से मृत्यु को देख लिया, उसने जीवन को भी देख लिया, क्योंकि वह होश, जो मृत्यु के मुकाबले भी टिक गया, वही है जीवन। वह जागृति जो मृत्यु भी न बुझा सकी, वह समझ जो मृत्यु भी मिटा न सकी, वह बोध जो मृत्यु भी धुंधला न कर सकी, वही बोध है जीवन।

महावीर जीवन विरोधी नहीं हैं, जीवेषणा विरोधी हैं। और जीवेषणा मिटे, तो ही जीवन का अनुभव संभव है।

अब हम उनके सूत्र को लें।

"संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं। अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।"

"पापी जीव के दुख को न जाति वाले बंटा सकते हैं, न मित्र, न पुत्र, न भाई, न बंधु। जब दुख आ पड़ता है तब अकेला ही उसे भोगना है, क्योंकि कर्म अपने कर्त्ता के पीछे लगते हैं, अन्य किसी के नहीं।"

इसमें कुछ क्रमिक रूप से हम बिंदु समझ लें।

संसार में जितने प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं--पहली बात। यह आधारभूत है। अगर आप दुखी होते हैं तो अपने ही कारण। लेकिन हम सभी सोचते हैं कि दूसरे के कारण। कभी आपने ऐसा समझा है कि दुखी आप हो रहे हैं, अपने कारण?

कभी भी नहीं। क्योंकि जिस दिन आप ऐसा समझ लेंगे, उस दिन आपके जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो गई, उस दिन आपने धर्म के मंदिर में प्रवेश करना शुरू कर दिया।

हम सदा सोचते हैं, दुखी हो रहे हैं दूसरे के कारण। कभी ऐसा नहीं लगता कि अपने कारण दुखी हो रहे हैं। न वह गाली देता, न हम दुखी होते। न उस आदमी ने हमारी चोरी की होती, न हम दुखी होते। न वह आदमी पत्थर मारता, न हम दुखी होते। साफ ही है बात कि दूसरे हमें दुख दे रहे हैं इसलिए हम दुखी हो रहे हैं। अगर कोई हमें दुख न दे तो हम दुखी न होंगे।

यह बात इतनी तर्कपूर्ण लगती है हमारे मन को कि दूसरी बात का ख्याल ही नहीं आता कि हम अपने कारण दुखी हो रहे हैं। पति पत्नी के कारण, बेटा मां के कारण, भाई भाई के कारण, हिंदुस्तान पाकिस्तान के कारण, पाकिस्तान हिंदुस्तान के कारण, हिंदू मुसलमान के कारण, मुसलमान हिंदुओं के कारण; सब किसी और की वजह से दुखी हो रहे हैं।

राजनीति का मौलिक आधार यह सूत्र है, कि दुख दूसरे के कारण है। और धर्म का यह मौलिक सूत्र है, कि दुख अपने कारण है। सारी राजनीति इस पर खड़ी है कि दुख दूसरे के कारण है। इसलिए दूसरे को मिटा दो, दुख का कारण मिट जाएगा। या दूसरे को बदल डालो, दुख का कारण मिट जाएगा। या परिस्थिति को दूसरा कर लो, दुख मिट जाएगा।

दुनिया में दो तरह की बुद्धियां हैं--राजनीतिक और धार्मिक। और ये दो सूत्र हैं उनके आधार में, अगर आप सोचते हैं कि दूसरे के कारण दुखी हैं तो आप राजनीतिक चिंतवाले व्यक्ति हैं।

आपको कभी ख्याल भी न आया होगा, कि पत्नी सोच रही है, पति के कारण दुख है। इसमें कोई राजनीति है। पूरी राजनीति है। इसलिए राजनीति में जो होगा, वह यहां भी होगा। कलह खड़ी होगी। संघर्ष खड़ा होगा, एक-दूसरे को बदलने की चेष्टा होगी, एक-दूसरे को अपने ढंग पर लाने का प्रयास होगा, एक-दूसरे को मिटाने की चेष्टा होगी।

हम इस भाषा में कभी सोचते नहीं। क्योंकि भाषा अगर सख्त हो तो हमारे भ्रम तोड़ सकती है। इसलिए हम ऐसा कभी नहीं कहते कि हम एक-दूसरे को मिटाने की चेष्टा में लगे हैं, हम कहते हैं, एक-दूसरे को बदल रहे हैं।

बदलने का मतलब क्या है?

तुम जैसे हो, वैसे मेरे दुख के कारण हो। तुमको मैं बदलूंगा। जब तुम अनुकूल हो जाओगे मेरे, तो मेरे सुख के कारण हो जाओगे।

दूसरी बात ध्यान में ले लें। चूंकि हम सोचते हैं कि दूसरा दुख का कारण है, इसलिए हम यह भी सोचते हैं कि दूसरा सुख का कारण है। न दूसरा दुख का कारण है, न दूसरा सुख का कारण है। सदा कारण हम हैं। जिस दिन आदमी इस सत्य को समझना शुरू कर देता है, उस दिन धार्मिक होना शुरू हो जाता है।

क्यों? यह जोर इतना क्यों है महावीर का कि दुख या सुख के कारण हम हैं। इसके जोर के गहरे अवलोकन पर निर्भर यह बात है। और यह कोई महावीर अकेले का कहना नहीं है। इस पृथ्वी पर जिन लोगों ने भी मनुष्य के सुख-दुख के संबंध में गहरी खोज की है, निरपवाद रूप से वे इस सूत्र से राजी हैं। इसलिए मैं नहीं कहता कि ईश्वर का मानना धर्म का मूल सूत्र है। क्योंकि बहुत धर्म ईश्वर को नहीं मानते खुद महावीर नहीं मानते। बुद्ध नहीं मानते। ईश्वर मूल आधार नहीं है धर्म का। कोई सोचता हो, वेद मूल आधार है तो गलती में है, कोई सोचता हो बाइबिल मूल आधार है तो गलती में है। कोई सोचता हो कि यह है मूल आधार धर्म का कि दुख और सुख का कारण मैं हूं, तो गलती में नहीं। तो धर्म की मौलिक पकड़ उसकी समझ में आ गई। यह निरपवाद सत्य है।

वेद माने, कोई कुरान, कोई बाइबिल, महावीर, बुद्ध, जीसस, मोहम्मद, किसी को माने, अगर इस सूत्र पर उसकी समझ आ गई है तो कहीं से भी रास्ता मिल जाएगा। अगर यह सूत्र उसके ख्याल में नहीं आया तो वह किसी को भी मानता रहे, कोई रास्ता मिल नहीं सकता।

क्यों? मैं ही क्यों जिम्मेवार हूं अपने सुख और दुख का? जब कोई मुझे गाली देता है, स्वभावतः दिखाई पड़ता है कि वह गाली दे रहा है और मैं दुखी हो रहा हूं। लेकिन यह पूरी शृंखला नहीं है। आप आधी शृंखला देख रहे हैं।

मेरा कोई अपमान करता है, गाली देता है, मुझे दुख होता है। लेकिन यह शृंखला अधूरी है। यह दुख असली में इसलिए होता है कि मैं मान चाहता था, सम्मान चाहता था और कोई गाली देता है, अपमान करता है। जो मैं चाहता था, वह नहीं होता। दुखी होता हूं। मेरे दुख का कारण आपका अपमान करना नहीं है, मेरी मान की आकांक्षा है। मान की आकांक्षा जितनी ज्यादा होगी, उतना ही अपमान का दुख बढ़ता जाएगा। मान की आकांक्षा न होगी, अपमान का दुख कम होता जाएगा। मान की आकांक्षा शून्य हो जाएगी, अपमान में कोई भी दुख नहीं रह जाता।

तो दुख अपमान में नहीं है, मान की आकांक्षा में है। और ध्यान रहे, अपमान तो कोई बाद में करता है, पहले मान की आकांक्षा मेरे पास होनी चाहिए। मेरे पास मान की आकांक्षा हो तो ही कोई अपमान कर सकता है। जो मैंने चाहा ही नहीं है, उसके न मिलने पर कैसा दुख?

अगर चोर आपको दुख देता है, आपकी चीज छीन ले जाता है, तो ऊपर से साफ दिखता है कि चोर की वजह से दुख हो रहा है। लेकिन चीज को पकड़ने का मोह, परिग्रह का जो भाव था, उसके कारण दुख हो रहा है, वह ख्याल में नहीं आता। मूल में चोर नहीं है, मूल में आप ही हैं। मूल में पकड़ना चाहते थे, यह चीज मेरी है। इसे कोई न छीने। और फिर कोई छीन लेता है तो दुख होता है। अपना ही लोभ, अपना ही परिग्रह चोर को दुख देने के लिए अवसर बनता है।

इसे हम खोजें ठीक से तो जहां भी हम दुख पाएंगे, वहां शृंखला की एक कड़ी हम देखते नहीं। उसे हम छोड़ जाते हैं। हम अपने को बचा कर सोचते हैं सदा। दूसरे से शुरू करते हैं, जहां से कड़ी की शुरुआत नहीं है। वहां से शुरू नहीं करते जहां से कड़ी की असली शुरुआत है।

कौन सी चीज आपकी है? प्रूथो ने कहा है, सब संपत्ति चोरी है। इस अर्थ में कहा है कि आप नहीं थे तब भी वह संपत्ति थी, आप नहीं होंगे तब भी होगी। कोई संपत्ति आपकी नहीं है। आपने नहीं चुराई होगी, आपके पिता ने चुराई होगी। पिता ने नहीं चुराई होगी, उनके पिता ने चुराई होगी। लेकिन सब संपत्ति चोरी है, छीना-झपटी है। फिर कोई दूसरा चोर आपसे छीन ले जाता है। आप दुखी हो रहे हैं। चोरों का समाज है, उसमें एक चोर दूसरे चोर को सुखी कर रहा है, दुखी कर रहा है।

इसे अगर कोई ठीक से देखेगा कि जिसको भी मैं कहता हूं, मेरा, वहीं मैंने दुख की शुरुआत कर दी, क्योंकि मेरा कुछ भी नहीं है। मैं आता हूं खाली हाथ, बिना कुछ लिए और जाता हूं खाली हाथ, बिना कुछ लिए। इन दोनों के बीच में बहुत कुछ मेरे हाथ में होता है। इसमें कुछ भी मेरा नहीं है। जब मेरा कुछ भी नहीं है, ऐसा जिसको दिखाई पड़ जाए, चोर उसे दुखी नहीं करेगा।

रिंझाई के बाबत सुना है मैंने, एक रात चोर उसके घर में घुस गया। कुछ भी न था घर में। रिंझाई बहुत दुखी होने लगा। अकेला एक कंबल था, जिसे वह ओढ़ कर सो रहा था। वह बड़ा चिंतित हुआ कि चोर आया, खाली हाथ लौटेगा। रात ठंडी है, इतनी दूर आया, गांव से पांच मील का फासला है। और फकीर के घर में कहां चोर आते हैं! और जो चोर फकीर के घर में आया, उसकी हालत कैसी बुरी न होगी। तो वह बड़ा चिंतित होने लगा, और कैसे इसकी सहायता करूं, एक कंबल है, वह मैं ओढ़े हूं। तो जो मैं ओढ़े हूं, वह तो यह ले न जा सकेगा। तो कंबल को दूर रख कर सरक कर सो गया।

चोर बड़ा हैरान हुआ कि आदमी कैसा है! घर में कुछ है भी नहीं, एक कंबल ही दिखाई पड़ता है, वह भी अलग रखकर अलग क्यों सो गया मुझे देख कर। वह लौटने लगा तो रिंझाई ने कहा, ऐसे खाली हाथ मत जाओ। मन में पीड़ा रह जाएगी। कभी तो कोई चोरी करने आया। ऐसा अपना सौभाग्य कहा कि कोई चोरी करने आए! है ही नहीं कुछ, यह कंबल लेते जाओ। और अब जब दुबारा आओ तो जरा पहले से खबर करना। गरीब आदमी हूं, कुछ इंतजाम कर लूंगा।

चोर तो घबड़ाहट में कंबल लेकर भागा कि कहां के आदमी के चक्कर में पड़ गया हूं। लेकिन रास्ते में जाकर उसे ख्याल आया कि भागने की कोई जरूरत न थी। पुरानी आदत से भाग आया हूं। इस आदमी से भागने की क्या जरूरत थी? वापस लौटा। वापस लौटा तो नग्न रिंझाई लंगोटी लगाए खिड़की पर बैठा था, चांद को देख रहा था और उसने एक गीत लिखा था। चोर वापस आया तो वह गीत गुनगुना रहा था। उसका गीत बहुत प्रसिद्ध हो गया। उस गीत में वह चांद से कह रहा है कि मेरा वश चले तो चांद को आकाश से तोड़ कर उस चोर को भेंट कर दूं।

चोर ने गीत सुना। वह चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा, "तुम कह क्या रहे हो? मैं चोर हूं, मुझे तुम चांद भेंट करना चाहते हो? मैं गलती से भाग गया, मुझे पास ले लो। कब ऐसा दिन आएगा कि मैं भी तुम जैसा हो जाऊंगा! अब तक जिनके घर में मैं गया, वे भी सब चोर थे। मालिक, मुझे पहली दफा मिला।"

कोई बड़े चोर हैं, कोई छोटे चोर हैं। कोई कुशल चोर हैं, कोई अकुशल चोर हैं। कुछ न्यायसंगत चोरी करते हैं, कुछ न्याय-विपरीत चोरी करते हैं।

पर उस चोर ने कहा: जिनके घर में भी गया, सब चोर थे। एक दफा पहला आदमी मिला है जो कि चोर नहीं है। और वे सब भी मुझे शिक्षा देते रहे हैं कि चोरी मत करो, लेकिन उनकी बात मुझे जंची नहीं, क्योंकि वह चोरों की ही बात थी। तुमने कुछ भी न कहा, लेकिन मेरी चोरी छूट गई। मुझे अपने जैसा बना लो कि मैं भी चोर न रह जाऊं।

क्या हम अनुभव करते हैं, वह हम पर निर्भर है। यह रिंझाई की करुणा चोर के प्रति, रिंझाई की ही बात है। चोर के प्रति आपमें दुख पैदा होता, क्रोध पैदा होता, घृणा पैदा होती, लेकिन करुणा पैदा नहीं हो सकती थी। जो हममें पैदा होता है वह हमारे भीतर है। दूसरा तो सिर्फ बहाना है, दूसरा है सिर्फ बहाना। जो निकलता है वह हमारा है, लेकिन हमें अपना कोई पता नहीं; इसलिए जब बाहर आता है तब हम समझते हैं कि दूसरे का दिया हुआ है।

अगर आपके बाहर दुख आता है तो दूसरा केवल बहाना है। दुख आपके भीतर है। दूसरा तो सिर्फ सहारा बन जाता है बाहर लाने का। इसलिए जो आपके दुख को बाहर ले आता है, उसका अनुग्रह मानना। क्योंकि वह बाहर न लाता तो शायद आपको अपने भीतर छिपे हुए दुख के कुओं का पता ही न चलता। सुख भी दूसरा बाहर लाता है, दुख भी दूसरा बाहर लाता है, सिर्फ निमित्त है।

निमित्त शब्द का महावीर ने बहुत उपयोग किया है। यह शब्द बड़ा अदभुत है। ऐसा कोई शब्द दुनिया की दूसरी भाषा में खोजना मुश्किल है, निमित्त। निमित्त का मतलब है, जो कारण नहीं है और कारण जैसा मालूम पड़ता है।

आपने मुझे गाली दी, दुख हो गया, तो महावीर नहीं कहते कि गाली देने से दुख हुआ। वे कहते हैं निमित्त, गाली निमित्त बनी, दुख तैयार था, वह प्रगट हो गया। गाली कारण नहीं है, कारण तो सम्मान की आकांक्षा है। गाली निमित्त है। निमित्त का मतलब: सूडो कॉ.ज, झूठा कारण, मिथ्या कारण। दिखाई पड़ता है यही कारण है, और यह कारण नहीं है। निमित्त का मतलब: कारण को छिपाने की तरकीब। असली कारण छिप जाए भीतर, और झूठा कारण बना लेने का उपाय।

इसलिए महावीर कहते हैं, संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने ही कारण दुखी होते हैं। और यह कारण क्यों उनके भीतर इकट्ठा हुआ है? कृतकर्मों के कारण। जो-जो उन्होंने पीछे किया है, उससे उनकी आदतें

निर्मित हो गई हैं। जो-जो उन्होंने पीछे किया है उससे उनके संस्कार निर्मित हो गए हैं, उनकी कंडीशनिंग हो गई है। जो उन्होंने किया है, वही उनका चित्त है। जो-जो वे करते रहे हैं वही उनका चित्त है। उस चित्त के कारण वे दुखी होते हैं। चित्त है हमारे अनंत-अनंत कर्मों का संस्कार।

समझें, कल भी आपने कुछ किया, परसों भी आपने कुछ किया, इस जन्म में भी, पिछले जन्म में भी, वह जो सब आपने किया है उसने आपको ढांचा दे दिया है, एक पैटर्न। एक सोचने, समझने, व्याख्या करने की एक व्यवस्था आपके मन में दे दी। आप उसी व्याख्या से चलते हैं और सोचते हैं। उसी व्याख्या के कारण आप सुखी और दुखी होते रहते हैं और उस व्याख्या को आप कभी नहीं बदलते। सुख-दुख को बदलने की बाहर कोशिश करते हैं और भीतर की व्याख्या को पकड़कर रखते हैं। और आपकी हर कोशिश उस व्याख्या को मजबूत करती है। आपके चित्त को मजबूत करती है, आपके माइंड को और ताकत देती चली जाती है। जिसके कारण दुख होता है, उसको आप मजबूत करते जाते हैं और निमित्त को बदलने की चेष्टा में लगे रहते हैं। कारण छिपा रहता है, निमित्त हम बदलते चले जाते हैं। फिर बड़े मजे की घटनाएं घटती हैं--कितना ही निमित्त बदलो, कारण नहीं बदलता।

एक मित्र परसों मेरे पास आए। अमरीका में उन्होंने शादी की। काफी पैसा कमाया शादी के बाद। वह सारा का सारा पैसा अमरीका के बैंकों में अपनी पत्नी के नाम से जमा किया। खुद के नाम से कर नहीं सकते जमा, पत्नी के नाम से वह सारा पैसा जमा किया। अचानक पत्नी चली गई और उसने वहां से जाकर खबर दी कि मुझे तलाक करना है। अब बड़ी मुश्किल में पड़ गए। पत्नी भी हाथ से जाती है, वह जो चार लाख रुपया जमा किया है, वह भी हाथ से जाता है। अब किसी को कह भी नहीं सकते कि चार लाख जमा किया है, क्योंकि उसमें पहले यहां फंसेंगे कि वह चार लाख वहां ले कैसे गए। वह जमा कैसे किया?

मेरे पास वे आए। वे कहने लगे कि मैं पत्नी को इतना प्रेम करता हूं कि उसके बिना बिल्कुल नहीं जी सकता। तो कोई योग में ऐसा चमत्कार नहीं है कि मेरी पत्नी का मन बदल जाए? वह खिंची चली आए? लोग योग वगैरह में तभी उत्सुक होते हैं जब उनको कोई चमत्कार खिंची चली आए, ऐसा कुछ कर दें।

मैंने उनसे कहा कि पहले तुम सच-सच मुझे बताओ कि पत्नी से मतलब है कि चार लाख से? क्योंकि योग में अगर पत्नी को खिंचने का चमत्कार है तो चार लाख खिंचने का भी चमत्कार हो सकता है। तुम सच-सच बताओ।

उन्होंने कहा: क्या कह रहे हैं, रुपया अकेला आ सकता है? तो पत्नी से कोई लेना-देना नहीं है। भाड़ में जाए, रुपया निकल आए। कहने लगे कि मैं तो उससे बहुत प्रेम करता था, क्यों मुझे छोड़ कर चली गई, समझ में नहीं आता। क्यों मुझे इतना दुख दे रही है? समझ में नहीं आता।

मैंने कहा: बिल्कुल साफ समझ में आ रहा है, पत्नी को कभी तुमने भूलकर भी प्रेम नहीं किया होगा। तुमने भी पत्नी को शायद यह रुपया जमा करने के लिए ही चुना होगा। और पत्नी भी इन रुपयों के कारण ही तुम्हारे पास आई होगी। मामला बिल्कुल साफ है। वे कहने लगे, एक अवसर मुझे मिल जाए, पत्नी वापस आ जाए। तो मैंने, जो-जो भूलें आप बताते हैं, अब दुबारा नहीं करूंगा। आप मुझे समझा दें, कैसा व्यवहार करूं, क्या प्रेम करूं; लेकिन एक अवसर तो मुझे मिल जाए सुधरने का।

यह जो आदमी कह रहा है, एक अवसर मुझे मिल जाए सुधरने का, इसे अवसर मिले, यह सुधरेगा? यह हो सकता है पत्नी की हत्या कर दे। इसके सुधरने का आसार नहीं है कोई, सुधरना यह चाहता भी नहीं है। यह मान भी नहीं रहा है कि यह गलत है।

वह जो हमारे भीतर मन है, उसको तो हम मजबूत किए चले जाते हैं। मैंने उनसे कहा कि दूसरी शादी कर लो, छोड़ो भी। दूसरी शादी कर लो, इस बात को छोड़ो। पैसा फिर कमा लोगे। लेकिन अब दुबारा जमा मत करना अमेरिका में। तुम भी चोर थे, पत्नी भी चोर साबित हुई, चोर चोरों को खोज लेते हैं। लेकिन यह मत

सोचो कि इसमें दुख का कारण पत्नी है। वे बड़े दुखी हैं, आंसू निकल-निकल आते हैं। ये वह चार लाख पर निकल रहे हैं, पत्नी से कोई लेना-देना नहीं है। बड़े दुखी हैं, लेकिन दुख का कारण वे सोच रहे हैं, पत्नी का दगा है। और दगा यह आदमी पत्नी को पहले से ही दे रहा है। इसका कोई लेना-देना नहीं है पत्नी से। वह रुपया ही सारा-सारा हिसाब-किताब है। यह मन तो भीतर वही का वही है। अगर यह कल फिर शादी कर ले तो फिर यही करेगा।

पश्चिम में मनसविद जिन लोगों के तलाकों का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है, आदमी एक स्त्री से शादी करता है, तलाक देकर दूसरी से शादी करता है। फिर दूसरी बार भी वैसी ही स्त्री चुन लेता है जैसी पहली बार चुनी थी। एक आदमी ने आठ बार तलाक किया। सॉल्टर ने उसकी पूरी जिन्दगी का विवरण दिया है, और हर बार उसने सोचा कि अब दुबारा ऐसी पत्नी नहीं चुनूंगा। और हर बार फिर वैसी ही पत्नी चुन ले। छह महीने बाद उसे पता चला कि वह फिर वैसी ही पत्नी चुन लाया है।

भारतीय इसलिए कुशल थे कि नाहक परेशान क्यों करना! एक ही पत्नी चुननी है बार-बार, तो एक से निपटा लेने में हर्जा क्या है? कम से कम इतनी राहत तो रहेगी कि मौका मिलता तो दूसरी भी चुन सकते थे। चुन नहीं सकते हैं आप। और इसलिए भारतीय बड़े अदभुत थे कि वे पत्नी के चुनाव का काम खुद को नहीं देते थे, मां-बाप से करवा लेते थे, जो ज्यादा अनुभवी थे। जो जिंदगी देख चुके थे और जिंदगी की नासमझियां समझ चुके थे। इसलिए हमने व्यक्तियों के ऊपर नहीं छोड़ा था चुनाव।

अमरीका में सॉल्टर ने कहा कि इस आदमी ने आठ दफा शादी की और हर बार वैसी ही पत्नी फिर चुन लाया। कारण क्या है? चुनाव जिस मन से होता है वह तो वही है। इसलिए मैं दूसरा चुन भी कैसे सकता हूं? मुझे एक स्त्री की आवाज अच्छी लगती है, आंख अच्छी लगती है, चलने का ढंग अच्छा लगता है, शरीर की बनावट अच्छी लगती है, अनुपात पसंद पड़ता है, उठना-बैठना पसंद पड़ता है, व्यवहार पसंद पड़ता है, इसलिए मैं चुनता हूं।

जब मैं एक स्त्री को चुनता हूं तो मैं अपने मन को ही चुनता हूं, उसको नहीं चुनता, मेरी पसंदगी को चुनता हूं। फिर यह स्त्री उपद्रवी मालूम पड़ती है, झगड़ालू मालूम पड़ती है। फिर इसमें दूसरे गुण दिखाई पड़ने शुरू होते हैं, तब मैं इसे तलाक देता हूं। फिर दुबारा मैं एक स्त्री चुनता हूं। मैं फिर वही गुण खोजूंगा जो मैंने पहली स्त्री में खोजे थे, और हर गुण के साथ जुड़ा हुआ दुर्गुण है। जो स्त्री एक खास ढंग से चलती है उसमें खास तरह का दुर्गुण होगा, और जो स्त्री एक खास तरह से मुझे पसंद पड़ती है, उसका दूसरा पहलू भी खास ढंग का होगा, जो मुझे दिक्कत देगा। पहली स्त्री में मैंने उसका चेहरा चुन लिया, मैंने पूर्णिमा चुन ली, लेकिन अमावस भी है। और वह अमावस भी आएगी। और जब अमावस आएगी तब मुझे तकलीफ होगी। तब मैं कहूंगा, यह मैंने फिर भूल कर ली। लेकिन फिर तीसरी बार मैं चुनूंगा, लेकिन फिर मैं पूर्णिमा चुनूंगा। फिर अमावस होगी।

हर व्यक्तित्व के कैरेक्टर हैं। जो मुझे पसंद पड़ता है उसके साथ जुड़ी हुई बात भी है। वह बात मुझे दिखाई नहीं पड़ रही है। वह जब दिखाई पड़ेगी, तब समझ में आएगा। वह आदमी आठ दफा हर बार एक सी स्त्रियां चुन लेता है।

इसे समझें। एक आदमी को ऐसी स्त्री पसंद है जो बिल्कुल दब्बू हो। हर बात में उसकी मान कर चले। लेकिन दब्बूपन भी एक तरकीब है दूसरे को दबाने की। दब्बू भी बिल्कुल दब्बू नहीं होते। वह अपने दब्बूपन से भी दबाते हैं।

तो एक स्त्री आपने चुन ली कि दब्बू है, मान कर चलेगी, सब ठीक है। लेकिन यह पहला चेहरा है। यह सिर्फ शुरुआत है, यह खेल का प्रारंभ है, नियम हैं खेल के। आपको दब्बू स्त्री पसंद है तो पसंद पड़ गई, लेकिन कोई आदमी दब्बू नहीं है भीतर से। कोई हो ही नहीं सकता दब्बू। तो जैसे ही काम पूरा हो गया, शादी हो गई, रजिस्टरी हो गई, अब वह दब्बूपन खिसकना शुरू हो जाएगा। वह तो सिर्फ तरकीब थी। वह उस व्यक्ति की तरकीब थी आपको पकड़ने की। वह तो मछली के लिए कांटे पर जो आटा लगा था, वही था।

लेकिन कोई आटा खिलाने के लिए नहीं बैठा रहता जाकर मछलियों को। वह कांटा खिलाने के लिए बैठा रहता है। जरूरी नहीं कि उसको भी पता हो, वह भी शायद सोचता हो कि आटा खिला रहे हैं मछलियों को। लेकिन आटा जब मुंह में चला जाएगा तो कांटा अटक जाएगा। वह जो दबू मालूम पड़ रही थी, वह धीरे-धीरे शेर होने लगेगी। हालांकि उसके शेर होने के ढंग में भी दबूपन होगा। जैसे, अगर दबू स्त्री आपको सताना चाहे तो रोएगी, चिल्लाएगी नहीं, क्रोध नहीं करेगी; लेकिन रोना भी जानखाऊ हो जाता है। और कभी-कभी तो क्रोधी स्त्री कम जानखाऊ मालूम पड़ेगी, निपट जाएगी। रोने वाली स्त्री ज्यादा कुशलता से सताती है। आप यह भी नहीं कह सकते कि वह गलत है, क्योंकि रोने वाले को क्या गलत कहो। वह आपको दोहरी तरह से मारती है। नैतिक रूप से भी आपको लगता है कि आप गलती कर रहे हैं। वह आपको अपराधी सिद्ध कर देगी। लेकिन तब, तब लगेगा कि फिर वही चुन लाए।

दुबारा फिर चुनने जाएंगे, फिर आपकी पसंद, आपका जो मन है वह भीतर बैठा है। वह फिर दबू स्त्री पसंद करता है। अब की दफा वह और भी ज्यादा दबू खोजेगा, क्योंकि पहली दफा भूल हो गई, उतनी दबू साबित नहीं हुई। ध्यान रखना, और बड़ी दबू खोजेंगे तो और बड़ी उपद्रवी स्त्री मिल जाएगी। मगर यह चलेगा। क्योंकि हम जो मूल कारण है, उसे नहीं देखते, बाहर के निमित्त देखते हैं। और बाहर के निमित्त काम नहीं पड़ते।

महावीर कहते हैं: "अपने ही कृतकर्मों के कारण हम दुखी होते हैं।"

अब अगर मैं दबू स्त्री पसंद करता हूं तो यह मेरे लम्बे कर्मों, विचारों, भावों का जोड़ है। लेकिन मैं पसंद क्यों करता हूं दबू स्त्री? मैं किसी को दबाना पसंद करता हूं, इसलिए जब कोई मुझसे नहीं दबेगा तो मैं दुखी हो जाऊंगा। असल में दबाना पसंद करना ही पाप है। किसी को दबाना पसंद करना ही हिंसा है। यह मैं गलत कर रहा हूं कि मैं किसी को दबाया हुआ पसंद करूं।

स्वभावतः मैं भी दबाना चाहता हूं, दूसरे भी दबाना चाहते हैं। फिर कलह होगी, फिर दुख होगा और दुख मैं दूसरे पर थोपने चला जाऊंगा।

"अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसके फल को भोगे बिना छुटकारा नहीं है।"

कैसा भी कर्म हो, कर्म का फल होकर ही रहता है। उसका कोई उपाय ही नहीं। उसका कारण? क्योंकि कर्म और फल दो चीजें नहीं हैं, नहीं तो बचना हो सकता है। कर्म और फल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मैं एक रुपये को उठा कर मुट्ठी में रख लूं और मैं कहूं कि मैं तो सिर्फ सीधे पहलू को ही मुट्ठी में रखूंगा, और वह जो उलटा हिस्सा है वह मुट्ठी में नहीं रखूंगा, तो मैं पागल हूं। क्योंकि सिक्के में दो पहलू हैं। और कितना ही बारीक सिक्का बनाया जाए, कितना ही पतला सिक्का बनाया जाए, दूसरा पहलू रहेगा ही। कोई उपाय नहीं है एक पहलू के सिक्के को बनाने का। कोई उपाय नहीं है कर्म को फल से अलग करने का। कर्म और फल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कर्म एक बाजू, फल दूसरी बाजू छिपा है, पीछे ही खड़ा है। हम सब इसी कोशिश में लगे हैं कि फल से बच जाएं। और कभी-कभी जिंदगी की व्यवस्था में हम बचते हुए मालूम पड़ते हैं।

एक आदमी चोरी कर लेता है, अदालत से बच जाता है तो वह सोचता है कि वह फल से बच गया। वह फल से नहीं बचा, समाज के दण्ड से बच गया। फल से नहीं बचा। फल तो आत्मिक घटना है। अदालतों से उसका कोई लेना-देना नहीं है। कानून से उसका कोई संबंध नहीं है। फल से कोई नहीं बच सकता। सामाजिक व्यवस्था से बच सकता है, छूट सकता है। लेकिन बचने और छूटने का जो कर्म कर रहा है, उसके फल से भी नहीं बच सकता। भीतर तो बचाव का कोई उपाय ही नहीं है। मैंने किया क्रोध और मैंने भोगा फल, मैंने किया मोह और मैंने भोगा फल। मैंने किया ध्यान और मैंने भोगा फल। उससे बचने का कोई उपाय ही नहीं है। नहीं है उपाय इसलिए कि कर्म और फल दो चीजें नहीं हैं। नहीं तो हम एक को अलग कर सकते हैं, दूसरे को अलग कर सकते हैं। वे पहलू हैं।

इस संबंध में एक बात और खयाल में ले लेनी जरूरी है। कुछ लोग सोचते हैं कि मैंने एक बुरा कर्म किया। फिर एक अच्छा कर्म कर दिया तो बुरे को काट देगा। वे गलत सोचते हैं। कोई अच्छा कर्म किसी बुरे कर्म को

नहीं काट सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगना पड़ेगा। ऐसी काट-पीट नहीं चलती। यह कोई लेन-देन नहीं है कि मैंने आपको-आपने मुझे पांच रुपये उधार दिए, मैंने आपको पांच रुपये लौटा दिए, हिसाब-किताब साफ हो गया। इधर मैंने चोरी की, उधर दान कर दिया, मामला खत्म हो गया। इधर मैंने किसी की हत्या की, वहां एक बेटे को जन्म दे दिया, मामला खत्म हो गया।

आपके अच्छे और बुरे कर्म एक-दूसरे को काट नहीं सकते, क्योंकि अच्छा कर्म अपने में पूरा है, बुरा कर्म अपने में पूरा है। बुरे कर्म का आपको दुखद फल और अच्छे कर्म का सुखद फल मिलता रहेगा। आप यह नहीं कह सकते कि हमने एक आम का बीज बो दिया, पहले एक नीम का बीज बोया तो नीम का कड़वा वृक्ष लग गया, फिर हमने एक आम का वृक्ष बो दिया तो आम का मीठा वृक्ष लग गया तो अब नीम का फल कड़वा नहीं होगा।

दोनों अलग-अलग हैं। नीम का फल अब भी कड़वा होगा। आम का फल अब भी मीठा होगा। आम की मिठास नीम की कड़वाहट को नहीं काटेगी। नीम की कड़वाहट आम की मिठास को नहीं काटेगी। बल्कि यह भी होगा कि जिसने नीम को भी चखा--अकेला नीम को चखा, शायद नीम उतनी कड़वी न मालूम पड़े, जिसने आम को भी चखा, नीम ज्यादा कड़वी मालूम पड़ेगी। जिसने नीम को भी चखा, आम ज्यादा मीठा मालूम पड़ेगा। कंट्रास्ट होगा, लेकिन कटाव नहीं होगा। दोनों साथ-साथ होंगे।

इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छे का फल अच्छा है, बुरे का फल बुरा है। अच्छा बुरे को नहीं काटता, बुरा अच्छे को नष्ट नहीं करता। इसलिए हमें मिश्रित व्यक्ति मिलते हैं जिनको देख कर मुसीबत होती है। एक आदमी में हम देखते हैं कि वह चोर भी है, बेईमान भी है, फिर भी सफल हो रहा है। तो हमें बड़ी अड़चन होती है कि क्या मामला है? क्या भगवान चोरों और बेईमानों को सफल करता है? और एक आदमी को हम देखते हैं कि ईमानदार है, चोर भी नहीं है और असफल हो रहा है और जहां जाता है, तो ऐसे आदमी कहते हैं, सोना छुओ तो मिट्टी हो जाता है; कहीं भी हाथ लगाओ, असफलता हाथ लगती है। क्या मामला है?

मामला इस वजह से है, क्योंकि प्रत्येक आदमी अच्छे और बुरे का जोड़ है। जो आदमी चोर है, बेईमान है वह सफल हो रहा है, क्योंकि सफलता के लिए जिन अच्छे कर्मों का होना आवश्यक है साहस, दांव, असुरक्षा में उतरना, जोखिम--वे उसमें हैं; जिसको हम कहते हैं, ईमानदार आदमी और अच्छा आदमी असफल हो रहा है। न जोखिम, न दांव, न साहस, वह घर बैठ कर सिर्फ अच्छे रह कर सफल होने की कोशिश कर रहे हैं। वह बुरा आदमी दौड़ रहा है। अच्छा आदमी बैठा है। वह बुरा आदमी पहुंच जाएगा। दौड़ रहा है, कुछ कर रहा है, और ये दोनों मिश्रित हैं।

हर आदमी एक मिश्रण है, इसलिए इस जगत में इतने विरोधाभास दिखाई पड़ते हैं। अगर कोई बुरा आदमी भी सफल हो रहा है और किसी तरह का सुख पा रहा है तो उसका अर्थ है कि उसके पास कुछ अच्छे कर्मों की संपदा है। और अगर कोई अच्छा आदमी भी दुख पा रहा है तो जान लेना, उसके पास बुरे कर्मों की संपदा है। और एक दूसरे का कटाव नहीं होता।

इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छे कर्म कर करके कोई मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि अच्छे कर्म का फल बुरे कर्म केवल छोड़ देने से कोई मुक्त नहीं हो सकता। अच्छा और बुरा जब दोनों छूट जाते हैं तब कोई मुक्त होता है। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य से मुक्ति नहीं होती, पुण्य से सुख मिलता है। पाप के छोड़ने से मुक्ति नहीं होती, केवल दुख नहीं मिलता। लेकिन पाप और पुण्य जब दोनों छूट जाते हैं--न अच्छा, न बुरा--तब आदमी मुक्त होता है।

मुक्ति, अच्छे और बुरे से मुक्ति है। मुक्ति, द्वंद्व से मुक्ति है। मुक्ति, विरोध से मुक्ति है। मोक्ष का अर्थ--अच्छे कर्मों का फल नहीं है। मोक्ष फल नहीं है।

महावीर की भाषा में स्वर्ग फल है, अच्छे कर्मों का। नरक फल है बुरे कर्मों का। और हर आदमी स्वर्ग और नरक में एक-एक पैर रखे हुए खड़ा है, क्योंकि हर आदमी मिश्रण है बुरे और अच्छे कर्मों का। आदमी की एक

टांग नरक तक पहुंचती है और एक टांग स्वर्ग तक पहुंचती है। और निश्चित ही स्वर्ग और नरक के फासले पर जो आदमी खड़ा है उसको बड़ी बेचैनी, खिंचाव आज नरक, कल स्वर्ग, सुबह नरक, सांझ स्वर्ग, इसमें तनाव, चिंता पैदा होगी।

महावीर कहते हैं, ये दोनों पैर हट जाते हैं स्वर्ग और नरक से, जब आदमी के सारे कर्म शून्य हो जाते हैं। कर्म की शून्यता मोक्ष है, कर्म का फल नहीं; शून्यता, जब सब कर्म क्षीण हो जाते हैं।

इसलिए महावीर कहते हैं, पापी जीव के दुख को न जाति वाले बंटा सकते हैं, न मित्र, न पुत्र, न भाई, न बंधु। दुख आता है, तब अकेले ही भोगना है। क्योंकि कर्म कर्ता के पीछे लगते हैं, अन्य के नहीं। कर्म का फल आपको ही भोगना पड़ेगा, क्योंकि कर्म आपका है। कर्म दूसरे का नहीं है। मेरी पत्नी का कर्म नहीं है, मेरा कर्म मेरा है, मुझे भोगना पड़ेगा।

इस अर्थ में महावीर मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति परम स्वतंत्र है, दूसरे से बंधा नहीं है। और इसलिए कोई लेन-देन का उपाय नहीं है कि मैं दुख आपको दे दूं। हालांकि हम कहते हैं हम कहते हैं किसी को प्रेम करते हैं तो हम कहते हैं कि सब दुख मुझे दे दो। कोई उपाय नहीं है। और शायद इसीलिए आसानी से कहते हैं, क्योंकि कोई उपाय नहीं है। अगर ऐसा हो सके तो मैं नहीं मानता कि कोई किसी से कहेगा कि सब दुख मुझे दे दो। तब प्रेमी ऐसा सोचेंगे कि कब दूसरा मांग ले सब दुख। अभी हम बड़े मजे से कहते हैं कि तुम्हारी पीड़ा मुझे लग जाए, मेरी उम्र तुम्हें लग जाए। वह लगती-वगती नहीं है, इसलिए। लगने लगे तो फिर कोई कहने वाला नहीं मिलेगा।

असल में प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। भीड़ में भी अकेला है। कितने ही संगसाथ में हो, अकेला है। वह जो चैतन्य की भीतर धारा है उसकी अपनी निजता है, इंडिविजुएलिटी है। और जो भी उस चेतना की धारा ने किया है, उसी धारा को भोगना पड़ेगा।

गंगा बहती है एक रास्ते से, नर्मदा बहती है दूसरे रास्ते से। तो गंगा जिन पत्थरों से बहती है, जिस मिट्टी से बहती है उसका रंग गंगा को मिलेगा। और नर्मदा जिस मिट्टी से बहती है, जिन पत्थरों से बहती है, उनका रंग नर्मदा को मिलेगा। और कोई उपाय नहीं है, कोई उपाय नहीं है। हम सब धाराएं हैं, हम सब के जीवन पथ अलग-अलग हैं। कितने ही पास-पास और कितने ही एक दूसरे को हम काटते मालूम पड़े, और कितने ही चौरस्तों पर मुलाकात हो जाए, हमारा अकेलापन नहीं कटता। हम अकेले हैं और दूसरे पर बांटने का कोई उपाय नहीं है।

इस पर बहुत जोर है महावीर का, क्योंकि यह बहुत महत्वपूर्ण है। अगर यह ख्याल में आ जाए तो व्यक्ति अपनी पूरी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेता है। और जिस व्यक्ति ने समझा कि सारी जिम्मेवारी मेरी है, वह पहली दफे मैच्योर, प्रौढ़ होता है। नहीं तो हम बच्चे बने रहते हैं।

प्रौढ़ता का एक ही अर्थ है--बच्चा सोचता है, मां की जिम्मेवारी, बाप की जिम्मेवारी--पढ़ाओ-लिखाओ, बड़ा करो। प्रौढ़ आदमी सोचता है, अपने पैरों पर खड़ा होऊँ। एक आध्यात्मिक प्रौढ़ता है। उस प्रौढ़ता का अर्थ है कि कोई के लिए मैं जिम्मेवार नहीं हूँ, कोई मेरे लिए जिम्मेवार नहीं है। मैं बिल्कुल अकेला हूँ। और कोई उपाय नहीं है कि हम बांट सकें, साझा कर सकें। तो जो भी मैं हूँ, उसे मुझे स्वीकार कर लेना है और जो भी मैं हूँ उसको ही मुझे रूपांतरित करना है, और जो भी परिणाम आएँ, किसी की शिकायत का कोई कारण नहीं है। जो भी फल आएँ, उनका बोझ मुझे ही ढो लेना है।

यह जोर इसलिए है कि अगर दूसरे हमारे लिए जिम्मेवार हैं तो फिर हम कभी मुक्त न हो सकेंगे। जब तक सारा जगत मुक्त न हो जाए, तब तक मेरी मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।

अगर मैं ही जिम्मेवार हूँ तो मैं मुक्त भी हो सकता हूँ। अगर दूसरे भी जिम्मेवार हैं अगर आप मुझे दुख दे सकते हैं, सुख दे सकते हैं, अगर आप मुझे आनंदित कर सकते हैं और पीड़ित कर सकते हैं तो फिर मेरी मुक्ति का

कोई उपाय नहीं है। फिर आपके ऊपर मैं निर्भर हूं। आप मेरी मजू पर निर्भर हैं, मैं आपकी मजू पर निर्भर हूं। तब तो सारा संसार एक जाल है। उस जाल में से कोई हिस्सा नहीं छूट सकता।

महावीर कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति कितने ही संसार के बीच में खड़ा हो, अकेला है, टोटली अलोन, एकांतरूपेण, अकेला है। इस अकेलेपन को समझ ले तो संन्यास फलित हो जाता है, वह जहां भी है। इस अकेलेपन के भाव को समझ ले तो संन्यास फलित होता है, चाहे वह कहीं भी हो। अपने को अकेला जानना संन्यास है, अपने को साथियों में जानना संसार है। मित्रों में, परिवार में, समाज में, देश में, बंधा हुआ अंश की तरह जानना संसार है। मुक्त, अलग, टूटा हुआ, अकेला, आणविक, एटामिक, अकेला अपने को जानना संन्यास है।

आज इतना ही।

पांच मिनट कीर्तन करें।

यह निःश्रेयस का मार्ग है (पंडित-सूत्र)

जे य कंते पिए भोए,
लद्वे विपिट्ठीकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए,
से हु चाइ त्ति वुच्चई॥
वत्थगंधमलंकारं,
इत्थियो सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुंजंति,
न से चाइ त्ति वुच्चई॥
तस्सेस मग्गो गुरु विद्धसेवा,
विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झायएगन्तनिसेवणा य,
सुत्तत्थसंचिन्तणया धिई य॥

जो मनुष्य सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग करता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है।

जो मनुष्य किसी परतंत्रता के कारण वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता।

सद्गुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत शास्त्रों का अभ्यास करना और उनके गंभीर अर्थ का चिंतन करना, और चित्त में धृतिरूप अटल शांति प्राप्त करना, यह निःश्रेयस का मार्ग है।

पहले एक-दो प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है: "कल आपने कहा कि महावीर की चिंतना में प्रत्येक कृत्य और कर्म के लिए मनुष्य अकेला पूरा खुद ही जिम्मेवार है। जब कि दूसरी चिंतनाएं कहती हैं कि इतने बड़े संचालित विराट में मनुष्य की बिसात ही क्या? परमात्मा की मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। इस चिंतना में कर्म को कहाँ रखिएगा? एक ओर स्वतंत्रता की घोषणा और दूसरी ओर परतंत्रता की बात है। या यों कहें कि डूइंग एण्ड हैपनिंग में तालमेल कैसे बैठेगा?"

तालमेल बिठाने की बात से ही परेशानी शुरू हो जाती है। तालमेल बिठाना ही मत। दो मार्गों में तालमेल कभी भी नहीं बैठता। दोनों की मंजिल एक हो सकती है, लेकिन मार्गों में तालमेल कभी भी नहीं बैठता। और जो बिठाने की कोशिश करता है, वह मंजिल तक कभी भी नहीं पहुंच पाता।

यह हो सकता है कि पहाड़ पर चलने वाले बहुत से रास्ते एक ही शिखर पर पहुंच जाते हों, लेकिन दो रास्ते दो ही रास्ते हैं और उनको एक करने की कोशिश व्यर्थ है। और जो व्यक्ति दो रास्तों पर तालमेल बिठा कर चलने की कोशिश करेगा, वह चल ही नहीं पाएगा।

मंजिल में समन्वय है, मार्गों में कोई समन्वय नहीं है। लेकिन हम सब मार्गों में समन्वय बिठाने की कोशिश करते हैं और उससे बड़ी कठिनाई होती है।

महावीर का मार्ग है संकल्प का मार्ग, मीरा का मार्ग है समर्पण का मार्ग। ये बिल्कुल विपरीत मार्ग हैं, और मंजिल एक है। मीरा कहती है : "तू" ही सब कुछ है, "मैं" कुछ भी नहीं। मेरा कोई होना ही नहीं है, तेरा ही होना है। इसमें "मैं" को पूरी तरह मिटा देना है। इतना मिटा देना है कि कुछ शेष न रह जाए, शून्य हो जाए। "तू" ही एक मात्र सत्ता बचे, "मैं" बिल्कुल खो जाए। जिस दिन "तू" की ही सत्ता बचेगी, उस दिन "तू" का भी कोई अर्थ न रह जाएगा। क्योंकि "तू" में जो भी अर्थ है वह "मैं" के कारण है। अगर मैं अपने "मैं" को बिल्कुल मिटा दूं, तो "तू" में क्या अर्थ होगा? यह कहना भी व्यर्थ होगा कि "तू" ही है। यह कौन कहेगा, यह कौन अनुभव करेगा? अगर मैं "मैं" को पूरी तरह मिटा दूं तो "तू" में "तू" का अर्थ ही न रह जाएगा। एक मिट जाए तो दूसरा भी मिट जाएगा।

मीरा कहती है, "मैं" को हम मिटा दें। चैतन्य कहते हैं, "मैं" को हम मिटा दें। कबीर कहते हैं, "मैं" को हम मिटा दें। ये समर्पण के मार्ग हैं। महावीर कहते हैं, "तू" को हम मिटा दें, "मैं" ही बच रहे। यह बिल्कुल उलटा है, लेकिन गहरे में उलटा नहीं भी है, क्योंकि मंजिल एक है। महावीर कहते हैं, "तू" को भूल ही जाओ, उससे कुछ लेना-देना नहीं है, उससे कोई संबंध नहीं है। जैसे "तू" है ही नहीं। आपके लिए बस "मैं" ही है। इस "मैं" को ही अकेला बचा लेना है। जिस दिन "मैं" अकेला बचता है, "तू" बिल्कुल नहीं होता, उस दिन "मैं" का अर्थ खो जाता है। क्योंकि "मैं" में सारा अर्थ "तू" के द्वारा डाला गया है।

"मैं" और "तू", साथ-साथ ही हो सकते हैं, अलग-अलग नहीं हो सकते। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई कहता है, सिक्के का सीधा पहलू फेंक दो, तो उल्टा भी उसके साथ फिंक जाएगा। कोई कहता है, सिक्के का उल्टा पहलू फेंक दो, सीधा भी उसके साथ फिंक जाएगा।

महावीर कहते हैं, "मैं" ही है अकेला अस्तित्व। जिस दिन "तू" बिल्कुल मिट जाएगा, न कोई परमात्मा, इसलिए महावीर परमात्मा को कोई जगह नहीं देते। परमात्मा का मतलब है "तू" को जगह देना। कोई "तू" नहीं "मैं" ही हूं। तो सारा जिम्मा मेरा है, सारा फल मेरा है, सारे परिणाम मेरे हैं। जो भी भोग रहा हूं, वह "मैं" हूं, जो भी हो सकूंगा, वह भी "मैं" हूं। इस भांति अकेला "मैं" ही बचे एक दिन, और सब "तू" विलीन हो जाएं, उन दिन "मैं" में कोई अर्थ न रह जाएगा, "मैं" भी गिर जाएगा।

चाहे "तू" को बचाएं, चाहे "मैं" को बचाएं, दो में से एक को बचाना मार्ग है। और अंत में जब एक बचता है तो एक भी गिर जाता है, क्योंकि वह दूसरे के सहारे के बिना बच नहीं सकता। कहां से आप शुरू करते हैं, यह अपनी वृत्ति, अपने व्यक्तित्व, अपनी रुझान की बात है, टाइप की बात है। लेकिन दोनों में मेल मत करना। दोनों में कोई मेल नहीं हो सकता, अन्यथा उनका जो नियोजित प्रयोजन है, वही समाप्त हो जाता है। इन दोनों में कोई मेल नहीं है।

महावीर और मीरा को कभी भूल कर मत मिलाना। वे बिल्कुल एक दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े हैं। जहां से वे चलते हैं, वहां उनकी पीठ है। जहां वे मिलते हैं, वहां वे दोनों ही खो जाते हैं।

मीरा नहीं बचती, क्योंकि "मैं" को खोकर चलती है। और जब "मैं" खो जाता है तो "तू" भी खो जाता है। महावीर भी नहीं बचते, क्योंकि "तू" को खोकर चलते हैं, और जब "तू" बिल्कुल खो जाता है, तो "मैं" में कोई अर्थ नहीं रह जाता, वह गिर जाता है। दोनों पहुंच जाते हैं परम शून्य पर, परम मुक्ति पर, लेकिन मार्ग बड़े विपरीत हैं।

और हमारी सबकी तकलीफ यह है कि हम सोचते हैं सदा द्वंद्व की भाषा में, कि या तो महावीर ठीक होंगे, या मीरा ठीक होगी। दोनों में से कोई एक ठीक होगा। ऐसा हमारी समझ में पड़ता है। क्योंकि दोनों कैसे ठीक हो सकते हैं! वहीं गलती शुरू हो जाती है। दोनों ठीक हैं। अगर हम यह भी समझ लेते हैं कि दोनों ठीक हैं, तो

फिर हम तालमेल बिठाते हैं। हम सोचते हैं, दोनों ठीक हैं, तो दोनों का मार्ग एक होगा। फिर भूल हो जाएगी। दोनों ठीक हैं और दोनों का मार्ग एक नहीं है।

इस दुनिया में समन्वयवादियों ने जितना नुकसान किया है, उतना और किन्हीं ने भी नहीं किया है। जो हर चीज को मिलाने की कोशिश में लगे रहते हैं वे खिचड़ियां बना देते हैं। सारा अर्थ खो जाता है। भले मन से ही करते हैं वे, कि कोई कलह न हो, कोई झगड़ा न हो, कोई विरोध न हो, लेकिन विरोध है ही नहीं। जिसको वे मिटाने चलते हैं, वह है ही नहीं।

महावीर और मीरा में विरोध नहीं है, मंजिल की दृष्टि से। मार्ग की दृष्टि से भिन्नता है। अलग-अलग छोर से उनकी यात्रा शुरू होती है। और यात्रा हमेशा वहां से शुरू होती है, जहां आप हैं।

ध्यान रखें, मंजिल से उसका कम संबंध है, आपसे ज्यादा संबंध है, कहां आप हैं; मैं पूरब में खड़ा हूं, आप पश्चिम में खड़े हैं। हम दोनों के मार्ग एक से कैसे हो सकते हैं। मैं जहां खड़ा हूं, वहीं से मेरी यात्रा शुरू होगी। आप जहां खड़े हैं, वहीं से आपकी यात्रा शुरू होगी। मीरा जहां खड़ी है, वहीं से चलेगी। महावीर जहां खड़े हैं, वहीं से चलेंगे।

मीरा है स्त्रैण-चित्त की प्रतीक। महावीर हैं पुरुष चित्त के प्रतीक। स्त्रैण चित्त से मतलब स्त्रियों का नहीं है और पुरुष चित्त से मतलब पुरुषों का नहीं है। अनेक स्त्रियों के पास पुरुष चित्त होता है। अनेक पुरुषों के पास स्त्री चित्त होता है। चित्त बड़ी और बात है। स्त्रैण चित्त का अर्थ है: समर्पण का भाव, अपने को किसी की शरण में खो देने की क्षमता; अपने को मिटा देने की। इतनी ग्राहकता कि मैं न रहूं और दूसरा ही रह जाए।

स्त्री जब प्रेम करती है तो उसका प्रेम बनता है समर्पण। प्रेम का अर्थ है: मिट जाना। वह जिसे प्रेम करती है, वही रह जाए। इतनी एक हो जाए प्रेम करने वाले के साथ कि कोई भिन्नता न रह जाए। यह है स्त्रैण-चित्त, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता, समर्पण, सरेंडर।

पुरुष प्रेम करता है तो समर्पण नहीं है। पुरुष के प्रेम का अर्थ यह होता है कि वह समर्पण को पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। जब प्रेमी उसे समर्पित होता है तो वह पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। वह इतना आत्मसात कर लेता है अपने में अपनी प्रेयसी को कि प्रेयसी नहीं बचती, वही बचता है। और प्रेयसी इतनी आत्मसात हो जाती है प्रेमी में कि खुद नहीं बचती, प्रेमी ही बचता है। लेकिन पुरुष समर्पण नहीं करता है, इसलिए अगर कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करे और समर्पण कर दे उसके चरणों में, तो वह स्त्री उसे प्रेम ही न कर पाएगी। क्योंकि समर्पण करने वाला पुरुष स्त्री जैसा मालूम पड़ेगा।

पुरुष है शिखर जैसा, स्त्री है खाई जैसी। वे दोनों की भाव-दशाएं भिन्न हैं। तो मीरा मिट जाती है और कृष्ण को अपने में समा लेती है। समर्पण उसका रास्ता है। वह कहती है, मैं नहीं हूं, तू ही है, और तेरी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। बुरा हो मुझ से, तो तेरा। भला हो मुझ से, तो तेरा। पाप हो मुझसे, तो तेरा, पुण्य हो मुझसे तो तेरा। मेरा कुछ भी नहीं है।

यह मत सोचना कि मीरा यह कह रही है कि भला हो तो मेरा, और बुरा हो तो तेरा। भला करूं तो मैं, और पाप और बुरा हो जाए तो तू-विधि। न, मीरा कह रही है, तू ही है, मैं हूं ही नहीं। इसलिए कुछ भी हो, अब मेरी कोई भी जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि जब मैं नहीं हूं तो मेरी जिम्मेवारी का कोई सवाल ही नहीं है। तू डुबाए, तू बचाए, तू मोक्ष में ले जाए, तू नरक में डाल दे, तेरी मर्जी मेरी खुशी है। अब यह भी नहीं है कि तू मुझे मोक्ष में ले जाएगा तो ही मेरी खुशी होगी। तू ले जाएगा, यही मेरी खुशी है। कहां ले जाएगा, यह तू जान।

इतने समग्र से अपने को छोड़ सके कोई, फिर कोई कर्म का बंधन नहीं है। क्योंकि कर्ता ही न रहा।

ठीक से समझ लें, जब तक करने वाले का भाव है तभी तक कर्म का बंधन है। मैं करनेवाला ही नहीं हूं, वही करने वाला है। यह विराट जो अस्तित्व है, वही कर रहा है। फिर कोई कर्म का बंधन नहीं है। कर्म बनता है

कर्ता के भाव को, अहंकार को। इसलिए मीरा स्त्रैण-चित्त की परिपूर्ण अभिव्यक्ति में अपने को खो देती है। मीरा ही ऐसा करती है, ऐसा नहीं। चैतन्य भी यही करते हैं। इसलिए पुरुष स्त्री का सवाल नहीं है, प्रतीक हैं।

महावीर बिल्कुल भिन्न हैं। महावीर कहते हैं, समर्पण कैसा? किसके प्रति समर्पण? और महावीर कहते हैं कि समर्पण भी मैं ही करूंगा। वह भी मेरा ही कृत्य है। महावीर सोच ही नहीं सकते समर्पण की भाषा, वे पुरुष चित्त के शिखर हैं। इसलिए ईश्वर को उन्होंने इनकार ही कर दिया, क्योंकि ईश्वर होगा तो समर्पण करना ही पड़ेगा।

कोई और नहीं है, मैं ही हूं। इसलिए सारी जिम्मेवारी का बोझ मेरे ही ऊपर है। वह मुझे ही खींचना है। मुझे ही तय करना है, कि क्या करूं और क्या न करूं। और जो भी परिणाम हो, वह मुझे जानना है कि मेरे ही द्वारा हुआ है। इसलिए "मैं" छोड़ने का कोई उपाय नहीं है। मुझे अपने को बदलना है और शुद्धतर, और शुद्धतर, और शून्यतर; इतना शुद्ध हो जाना है, इतना ट्रांसपेरेंट, पारदर्शी हो जाना है कि कुछ बुरा मुझमें न रह जाए।

इस शुद्ध करने की प्रक्रिया में ही "मैं" विलीन होगा, लेकिन समर्पित नहीं होगा। इसका फर्क समझ लें।

पुरुषों का नहीं है। अनेक स्त्रियों के पास पुरुष चित्त होता है। अनेक पुरुषों के पास स्त्री चित्त होता है। चित्त बड़ी और बात है। स्त्रैण चित्त का अर्थ है-समर्पण का भाव, अपने को किसी की शरण में खो देने की क्षमता; अपने को मिटा देने की। इतनी ग्राहकता कि मैं न रहूं और दूसरा ही रह जाए।

स्त्री जब प्रेम करती है तो उसका प्रेम बनता है समर्पण। प्रेम का अर्थ है: मिट जाना। वह जिसे प्रेम करती है, वही रह जाए। इतनी एक हो जाए प्रेम करने वाले के साथ कि कोई भिन्नता न रह जाए। यह स्त्रैण-चित्त, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता, समर्पण, सरेंडर।

पुरुष प्रेम करता है तो समर्पण नहीं है। पुरुष के प्रेम का अर्थ यह होता कि वह समर्पण को पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। जब प्रेमी उसे समर्पित होता है तो वह पूरी तरह स्वीकारकर लेता है। वह इतना आत्मसात कर लेता है अपने में अपनी प्रेयसी को कि प्रेयसी नहीं बचती, वही बचता है। और प्रेयसी इतनी आत्मसात हो जाती है प्रेमी में कि खुद नहीं बचती, प्रेमी ही बचता है। लेकिन पुरुष समर्पण नहीं करता है, इसलिए अगर कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करे और समर्पण कर दे उसके चरणों में, तो वह स्त्री उसे प्रेम ही न कर पाएगी। क्योंकि समर्पण करने वाला पुरुष स्त्री जैसा मालूम पड़ेगा।

पुरुष है शिखर जैसा, स्त्री है खाई जैसी। वे दोनों की भाव-दशाएं भिन्न हैं। तो मीरा मिट जाती है और कृष्ण को अपने में समा लेती है। समर्पण उसका रास्ता है। वह कहती है, मैं नहीं हूं, तू ही है, और तेरी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। बुरा हो मुझ से, तो तेरा। भला हो मुझ से, तो तेरा। पाप हो मुझसे, तो तेरा, पुण्य हो मुझसे तो तेरा। मेरा कुछ भी नहीं है।

यह मत सोचना कि मीरा यह कह रही है कि भला हो तो मेरा, और बुरा हो तो तेरा। भला करूं तो मैं, और पाप और बुरा हो जाए तो तू, विधि। न, मीरा कह रही है, तू ही है, मैं हूं ही नहीं। इसलिए कुछ भी हो, अब मेरी कोई भी जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि जब मैं नहीं हूं तो मेरी जिम्मेवारी का कोई सवाल ही नहीं है। तू डुबाए, तू बचाए, तू मोक्ष में ले जाए, तू नरक में डाल दे, तेरी मर्जी मेरी खुशी है। अब यह भी नहीं है कि तू मुझे मोक्ष में ले जाएगा तो ही मेरी खुशी होगी। तू ले जाएगा यही मेरी खुशी है। कहां ले जाएगा, यह तू जाना।

मीरा समर्पण करेगी, "मैं" खो जाएगा। महावीर शुद्ध करेंगे, शून्य करेंगे और "मैं" खो जाएगा। लेकिन महावीर श्रम करेंगे, मीरा समर्पण करेगी। इसलिए महावीर और बुद्ध संस्कृति को हम कहते हैं, "श्रमण संस्कृति।"

श्रम पर उनका जोर है, पुरुषार्थ पर उनका बल है, कुछ करो। इसलिए महावीर कहते हैं, मैं श्रम करूंगा अपने साथ और जो भी परिणाम होगा- नरक होगा तो भी जानूंगा कि मेरे द्वारा, और मोक्ष होगा तो भी जानूंगा कि मेरे द्वारा। लेकिन किसी और पर जिम्मेवारी नहीं रखूंगा।

यह पुरुष चित्त का लक्षण है कि वह किसी और पर जिम्मेवारी नहीं रखेगा। आप कहां हैं, इसे सोच लेना चाहिए। क्या आप पुरुष हैं, क्या आप स्त्री हैं? चित्त की दृष्टि से, शरीर की दृष्टि से नहीं।

आपका भाव भीतर समर्पण करने का है या संकल्प को सम्हाले रखने का है? तो एक बात तय कर लें, दोनों के बीच मत दौड़ना। क्योंकि नपुंसक के लिए कोई भी जगह नहीं है। वे जो समझौते वाले हैं, वे अक्सर नपुंसक पैदा कर देते हैं। वे जो समन्वयवादी हैं, जो कहते हैं, दोनों में थोड़ा तालमेल कर लो, थोड़ा मीरा का भी लो, थोड़ा महावीर का भी लो, थोड़ा कुरान का भी, थोड़ा गीता का भी--अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, दोनों को जोड़ो, फिर उनको मिला कर चलो--इस तरह के लोग सारे मार्गों को भ्रष्ट कर देते हैं।

हर मार्ग की अपनी शुद्धता है, प्योरिटी है। और बड़े से बड़ा अन्याय जो हम कर सकते हैं, वह किसी मार्ग की शुद्धता को नष्ट करना है। हर मार्ग पूरा है। पूरे का अर्थ यह है कि उससे मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। दूसरे मार्ग की कोई भी जरूरत नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे मार्ग से नहीं पहुंचा जा सकता। दूसरा मार्ग भी इतना ही पूरा है, उससे भी पहुंचा जा सकता है। आप मार्गों को मिलाने की बजाय यही सोचना कि आप कहां खड़े हैं। कहां से आपके लिए निकटतम मार्ग मिल सकता है। फिर दूसरे की भूल कर मत सुनना।

क्योंकि हम बड़े अजीब लोग हैं। हम इसकी फिक्र ही नहीं करते कि कौन कहां खड़ा है।

एक मित्र हैं। उनकी पत्नी का भाव है भक्ति का, समर्पित होने का, छोड़ देने का, परमात्मा के चरणों में। मित्र का भाव नहीं है। उनका भाव है अपने को शुद्ध करने का, रूपांतरित करने का, बदलने का, ठीक है। लेकिन वह मित्र अपनी पत्नी को भी भक्ति में नहीं जाने देते। क्योंकि वे मानते हैं, कि वे जो कहते हैं, वही ठीक है। वह उनके लिए ठीक है, उनकी पत्नी के लिए ठीक नहीं है। लेकिन जो पति के लिए ठीक है वह पत्नी के लिए भी ठीक होना चाहिए, ऐसी उनकी धारणा है। अगर कल पत्नी भी उनकी उन पर जोर देने लगे कि तुम भी चलो मंदिर में, और नाचो और कीर्तन करो, और गाओ। तो मैं कहूंगा, वह भी गलती कर रही है। क्योंकि जो उसके लिए ठीक है, वह उसके पति के लिए ठीक है, ऐसा मानने का कोई भी कारण नहीं है।

असल में दूसरे पर कभी मत थोपना अपना ठीक होना। क्योंकि आपको पता नहीं, दूसरा कहां खड़ा है। आप जहां खड़े हैं, अपना रास्ता आप चुन लेना। दूसरा जहां चल रहा है, उसे चलने देना। अक्सर बहुत लोग दूसरों के रास्ते पर बड़ी बाधाएं उपस्थित करते हैं। उसका कारण है, कि वह समझ ही नहीं पाते कि दूसरा रास्ता भी हो सकता है।

हम सबको ऐसा ख्याल है कि सत्य एक है, बिल्कुल ठीक है। लेकिन उसके कारण हमको एक ख्याल और पैदा हो गया कि सत्य का मार्ग भी एक है, वह बिल्कुल गलत है। सत्य एक है, सौ प्रतिशत ठीक। सत्य का मार्ग एक है, सौ प्रतिशत गलत।

सत्य के मार्ग अनन्त हैं, अनेक हैं। असल में जितने पहुंचने और चलने वाले लोग हैं, उतने मार्ग हैं। हर आदमी पगडंडी से चलता है, अपनी ही पगडंडी से चलता है। और अस्तित्व की यात्रा में हम अलग-अलग जगह खड़े हैं, और अस्तित्व की यात्रा में हमने अलग-अलग चित्त निर्मित कर लिया है, जन्मों-जन्मों में हम सबके पास अलग-अलग भाव-दशा निर्मित हो गई है। हम उससे ही चल सकते हैं। कोई उपाय नहीं है दूसरे के मार्ग पर चलने का, कोई उपाय नहीं है। जैसे दूसरे के पैरों से चलने का कोई उपाय नहीं है। दूसरे के मार्ग पर भी चलने का कोई उपाय नहीं है। और जब एक दूसरे को लोग अपने मार्गों पर घसीटते हैं तो पंगु कर देते हैं, उनके पैर काट डालते हैं। बहुत हिंसा होती है ऐसे, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आती।

तालमेल बिठाना मत। अगर यह बात ठीक लगती हो कि परमात्मा की मजू के बिना पत्ता भी नहीं हिलता तो फिर पूरे के पूरे इसमें डूब जाना, ताकि मैं मिट जाए। लेकिन यह समग्र फिर एक आदमी आकर पत्थर मार जाए सिर में तो यह मत सोचना कि इस आदमी ने पत्थर मारा। फिर सोचना कि परमात्मा की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

लेकिन हम जिनको बहुत विचारशील लोग कहते हैं, वे भी भ्रांतियां करते हैं, और हम भी उन भ्रांतियों को समझ नहीं पाते, क्योंकि अगर हमें रुचिकर लगती हैं, तो समझने की हम फिर ही नहीं करते।

महात्मा गांधी की हत्या की बात चलती थी, हत्या के पहले। तो सरदार वल्लभ भाई पटेल ने उनसे जाकर कहा कि मैं सुरक्षा का इंतजाम करूं? तो गांधी जी ने जो कहा वह पूरे मुल्क को प्रीतिकर लगा, लेकिन बिल्कुल नासमझी से भरी हुई बात है।

गांधीजी ने कहा कि उसकी मर्जी के बिना मुझे कोई हटा भी कैसे सकेगा। यह बात बिल्कुल ठीक है। अगर ईश्वर चाहता है तो मुझे उठा लेगा, तुम मुझे कैसे बचाओगे। यह उसकी मर्जी के बिना पत्ता नहीं हिलता, इस विचार का अनुषंग है। अगर वह मुझे बचाना चाहता है तो कोई मुझे उठा नहीं सकता, और वह मुझे उठाना चाहता है तो कोई मुझे बचा नहीं सकता।

सरदार वल्लभ भाई को भी लगा, तर्क करने का कोई उपाय न रहा। मैं उनकी जगह होता तो गांधीजी को कहता कि वह खुद तो हत्या करने आएगा नहीं, नाथूराम गोडसे का उपयोग करेगा, और अगर उसको बचाना है तो भी खुद बचाने नहीं आएगा, वल्लभ भाई पटेल का उपयोग करेगा।

तो आधी बात कह रहे हैं आप। आप कहते हैं कि अगर वह उठाना चाहेगा तो कोई बचा नहीं सकेगा। और जो उठानेवाले हैं वे चारों तरफ घूम रहे हैं। और जिनके द्वारा वह बचा सकता है, वे इसलिए रुक जाएंगे कि हम क्या बचा सकते हैं। अगर मैं गांधीजी की जगह होता तो मैं कहता कि तुम अपनी कोशिश करो, नाथूराम गोडसे को अपनी कोशिश करने दो। आखिर उसकी मजू जो होगी, लेकिन तुम दोनों अपनी कोशिश करो, क्योंकि उसकी मजू भी तो किसी के द्वारा।

गांधी जी ने आधी बात कही। उसमें उन्होंने एक पत्ते को तो हिलने दिया, दूसरे पत्ते को रोकने की कोशिश की। तो सब उसकी मर्जी से हो रहा है, उन्होंने कहा जरूर, लेकिन उनको भी साफ नहीं है, नहीं तो वल्लभ भाई को भी रोकने का कोई अर्थ नहीं है। अगर उसकी ही मर्जी से यह सरदार भी हिल रहे हैं तो इनको भी हिलने दो। लेकिन गोडसे हिलता रहेगा उसकी मर्जी से और सरदार गांधी जी की मर्जी से रुक रहे हैं।

जीवन जटिल है, इसलिए मैं मानता हूं कि गांधीजी का पूरा भरोसा नहीं है उसकी मर्जी पर, नहीं तो वे कहते कि ठीक है। किसी को वह इशारा कर रहा होगा मुझे मारने का, तुम्हें इशारा करता है मुझे बचाने का; जो उसकी मजू, वह हो। मैं बीच में नहीं आऊंगा। लेकिन वे बीच में आए और उन्होंने सरदार को रोका। नाथूराम को तो नहीं रोक सकते, सरदार को रोक सकते हैं।

उसकी मर्जी पर पूरा भरोसा नहीं है। हालांकि ऐसी आलोचना किसी ने भी नहीं की। किसी ने भी यह नहीं कहा कि गांधी जी को उसकी मर्जी पर पूरा भरोसा नहीं है। पूरा भरोसा नहीं है। बाएं हाथ को तो मानते हैं उसका हाथ और दाएं हाथ को नहीं मानते हैं उसका हाथ।

हम भी ऊपर से देखेंगे तो हमें भी ख्याल में नहीं आएगा। लेकिन जिंदगी ज्यादा गहरी है, जैसा हम ऊपर से देखते हैं, उतनी उथली नहीं है।

अगर सच में ही इस बात का भरोसा है कि उसकी मर्जी, तो फिर ठीक है। फिर आपके लिए कुछ भी अपनी तरफ से जोड़ने का कोई सवाल नहीं है। फिर आप बहते हैं, फिर आप पूरे ही बहें और जो भी हो, ठीक है। अगर इसमें आपको अड़चन मालूम पड़ती हो कि ऐसे हम अपने को कैसे छोड़ सकते हैं, नदी कहीं भी बहा ले जाए, पता नहीं कहां; तो फिर नदी के बाहर निकल कर खड़े हो जाएं। फिर यह बात ही छोड़ दें कि उसकी मजू के बिना पत्ता नहीं हिलता। फिर तो एक ही बात स्मरण रखें कि पत्ता हिलेगा तो मेरी मर्जी से, नहीं हिलेगा तो मेरी मर्जी से। हिलता है तो मैंने चाहा होगा, इसलिए हिलता है, चाहे मुझे पता न हो; और नहीं हिलता है तो मैंने चाहा होगा कि न हिले, चाहे मुझे पता न हो। मैंने जो किया है, उसके कारण हिलता है और मैं जो किया हूं, उसके कारण रुकता है। फिर सारी जिम्मेवारी अपने पर ले लेना।

दोनों तरह से लोग पहुंच गए हैं, लेकिन दोनों को मिलाकर अब तक सुना नहीं कि कोई पहुंचा हो। दोनों को मिलाने वाला वही आदमी है, जो चलना ही नहीं चाहता। असल में दोनों को मिलाना एक तरकीब है, एक डिसेप्शन, एक वंचना है, खुद को धोखा है। उसका मतलब यह कि जब जैसा मतलब होगा, जब जैसा अपने अनुकूल होगा, उसको कह लेंगे। जब कोई बुरी बात घटेगी तो कहेंगे, उसकी मजू और जब कुछ ठीक हो जाएगा तो कहेंगे, अपना संकल्प।

मिलाने का मतलब यह होता है कि हम दोनों नावों पर पैर रखेंगे। इसमें होशियारी तो है, चालाकी तो है, लेकिन बहुत बुद्धिमानी नहीं है।

चालाक आदमी दोनों नाव पर पैर रखता है, पता नहीं किसकी कब जरूरत पड़ जाए। चालाकी उनकी ठीक है, लेकिन मूढ़तापूर्ण है, क्योंकि दो नाव पर कोई भी सवार होकर चल नहीं सकता। दो नावों पर जो सवार होता है, वह डूबेगा। और अगर नहीं डूबना है तो नावों को खड़ा रखना पड़ेगा, चलाना नहीं पड़ेगा। फिर वहीं खड़ा रहेगा। वह भी डूबना ही है।

महावीर को समझते वक्त मीरा को बीच में मत लाएं। महावीर के रास्ते पर मीरा से कहीं भी मिलन नहीं होगा। और मीरा के रास्ते पर महावीर से कोई मुलाकात नहीं होगी। आखिर में जहां महावीर भी खो जाते हैं और मीरा भी खो जाती है, वहां मिलन है।

जब तक महावीर हैं, तब तक संकल्प रहेगा। जब तक मीरा है, तब तक समर्पण रहेगा। और जहां समर्पण भी समाप्त हो जाता है, संकल्प भी समाप्त हो जाता है। मंजिल जब आती है तो रास्ते समाप्त हो जाते हैं।

मंजिल का मतलब क्या है? मंजिल का मतलब है, रास्ते का समाप्त हो जाना, रास्ते से मुक्त हो जाना। मंजिल का मतलब है, रास्ता खत्म हुआ। मंजिल रास्ते की पूर्णता है। और जो भी चीज पूर्ण हो जाती है वह मर जाती है, मृत्यु हो जाती है। फल पक जाता है, गिर जाता है। रास्ता पक जाता है, खो जाता है। फिर मंजिल रह जाती है।

मंजिल पर मिलन है। सागर में नदियां मिल जाती हैं। जो नदी पूरब की तरफ बही, वह भी जाकर गिर जाती है हिंद महासागर में। जो पश्चिम की तरफ बही है, वह भी जाकर गिर जाती है हिंद महासागर में। अगर रास्ते में उन दोनों का कहीं मिलना हो तो वे नहीं मान सकतीं कि हम दोनों सागर में जा रहे हैं। पूरब चलनेवाली नदी कहेगी पागल हो गई हो, पश्चिम जा रही हो, सागर पूरब है। पश्चिम जाने वाली नदी कहेगी, पागल तू है, सागर पश्चिम है। सदा से हम गिरते रहे हैं और जानते रहे हैं कि सागर पश्चिम है।

सागर सब ओर है। सागर का मतलब ही है जो सब ओर है। कहीं से भी जाओ, पहुंचना हो सकता है। एक ही बात ध्यान रखना, जाना, रुक मत जाना। तालाब भर नहीं पहुंचते, नदियां तो सब पहुंच जाती हैं। और समझौतावादी तालाब की तरह हो जाते हैं। ठहर जाते हैं, थोड़ा पूरब भी चलते हैं, थोड़ा पश्चिम भी चलते हैं। फिर चारों दिशाओं में चलने की वजह से चक्कर लगाने लगते हैं, फिर अपनी जगह पर ही घूमते रहते हैं। वहीं सूखते हैं, सड़ते हैं।

समझौता नहीं है मार्ग धर्म में, दर्शन में भला हो, विचार में भला हो। जिनको चलना है उनके लिए समझौता मार्ग नहीं है, उनके लिए तो स्पष्ट चुनाव। और वह चुनाव करना अपनी आंतरिक भाव-दशा के अवलोकन से, दूसरे की बातों से नहीं। अपने को सोचना कि मैं क्या कर सकता हूं, समर्पण या संकल्प।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं तो हूं बहुत पापी। आकांक्षा होती है प्रभु तक पहुंचने की; क्या मुझ जैसे पापी के लिए प्रभु का द्वार खुला होगा? मैं बहना ही चाहूं, बहता ही रहूं, तो भी क्या परमात्मा के सागर को पा सकूंगा?

यह महत्वपूर्ण है भाव, क्योंकि जो जान लेता है कि मैं पापी हूं, उसके जीवन में पुण्य का प्रारंभ हो जाता है। यह एक पंडित का प्रश्न नहीं है, एक धार्मिक व्यक्ति का प्रश्न है। पंडित ज्ञान की बातों में से प्रश्न उठाता है,

धार्मिक व्यक्ति अपनी अंतर-दशा में से प्रश्न उठाता है। पंडित के प्रश्न शास्त्रों से आते हैं, धार्मिक व्यक्ति के प्रश्न अपनी स्थिति से आते हैं।

यह भाव, कि मैं पापी हूं, धार्मिक भाव है। यह जानना कि मेरा पहुंचना मुश्किल है, पहुंचने के लिए पहला कदम है। यह मानना कि क्या मेरे लिए भी प्रभु के द्वार खुले होंगे, द्वार पर पहली दस्तक है।

वे ही पहुंच पाते हैं जो इतने विनम्र हैं। जो बहुत अकड़ से चलते हैं, जो सोचते हैं कि दरवाजे का क्या सवाल, परमात्मा बीच में स्वागत के लिए खड़ा होगा वंदनवार बनाकर, वे कभी नहीं पहुंच पाते। क्योंकि उस परम सत्ता में लीन होना है। लीनता यहीं से शुरू होगी, आपकी तरफ से शुरू होगी। परम सत्ता के कोई द्वार नहीं हैं कि बंद हों।

समझ लें।

उसके कोई दरवाजे नहीं हैं, उसके महल के, कि बंद हों। परम सत्ता खुलापन है। परम सत्ता का अर्थ है: खुला हुआ होना। खुली ही हुई है परम सत्ता। सवाल उसकी तरफ से नहीं है कि वह आपको रोके, बुलाए, खींचे। सवाल सब आपकी तरफ से है कि अब आप भी उस खुलेपन में उतरने को तैयार हैं? आप कहीं बंद तो नहीं हैं? परमात्मा बंद नहीं है। बंद आप तो नहीं हैं?

सूरज निकला है और मैं अपने द्वार दरवाजे बंद करके घर में आंख बंद किए बैठा हूं और सोच रहा हूं कि अगर मैं द्वार के बाहर जाऊं तो सूरज से मेरा मिलन होगा? मैं आंख खोलूं तो सूरज मुझ पर कृपा करेगा?

सूरज की कृपा बरस ही रही है। अकृपा कभी होती ही नहीं। वह सदा मौजूद ही है द्वार पर, आप द्वार खोलें। और द्वार आपने बंद किए हैं, उसने बंद नहीं किए हैं। आंख आपकी है, आप आंख खोलें। आंख आपने बंद की है।

परमात्मा है सदा खुला हुआ, हम हैं बंद। और हमारे बंद होने में सबसे बड़ा कारण क्या है? सबसे बड़ा कारण यह है हम यह मान कर चलते हैं कि हम तो खुले हुए हैं। अंधे को अगर यह ख्याल हो कि मेरी आंखें तो खुली हुई हैं, तब बहुत अड़चन हो जाती है। हम सब मानते हैं, हम तो खुले ही हुए हैं।

हम खुले हुए नहीं हैं, हम बिल्कुल बंद हैं। और अगर परमात्मा हमारे द्वार पर भी आ जाए तो शायद ही संभावना है कि हम उसे भीतर आने दें। बहुत मुश्किल है कि हम उसके लिए दरवाजा खोलें, क्योंकि वह इतना अजनबी होगा, हमने उसे कभी देखा नहीं। उससे ज्यादा अजनबी कोई भी न होगा।

हम पहले पूछेंगे, कहां के रहने वाले हो? हिंदू हो कि मुसलमान कि जैन? कोई कैरेक्टर सर्टिफिकेट साथ लाए हो? परमात्मा तो इतना स्ट्रेंजर होगा, अगर हमारे द्वार पर आ जाए, अगर परम सत्य हमारे पास आ जाए तो हम भाग खड़े होंगे। क्योंकि हम उसे बिल्कुल न पहचान पाएंगे। हम पहचानते उसे हैं जिसे हम पहले से जानते हैं। जिसे हमने कभी जाना नहीं, हम उसे पहचानेंगे कैसे! हम उससे ऐसे सवाल पूछेंगे, हम उसकी इंक्वायरी करेंगे। हम जाकर पुलिस दफ्तर में पूछताछ करेंगे कि यह आदमी कैसा है? घर में ठहरना चाहता है। और हम द्वार बंद कर लेंगे।

अजनबियों के लिए हमारे द्वार खुले हुए नहीं हैं। और परमात्मा से ज्यादा अजनबी कौन होगा? और हमारी नीति, हमारे चरित्र के नियम सब छोटे पड़ जाएंगे। उनसे हम उसे नाप न पाएंगे। बड़ी अड़चन होगी। हमने बहुत बार यह किया है।

हम, महावीर मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। बुद्ध मौजूद हों तो नाप नहीं पाते। जीसस मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। हम ऐसे बेहूदे सवाल पूछते हैं बुद्ध से, महावीर से, जीसस से, वह असल में हम अजनबीपन के कारण पूछते हैं।

जीसस एक वेश्या के घर में ठहर गए। आपने क्या पूछा होता सुबह? जीसस को घेर कर आप क्या सवाल उठाते?

हम वही सवाल उठा सकते हैं, जो हम वेश्या के घर ठहरे होते तो जो हमने किया होता, वही सवाल हम उठाएंगे। हम यह सोच ही नहीं सकते कि जीसस के होने का कोई और अर्थ हो सकता है।

जीसस को कोई बुद्ध समझ सकता था।

बुद्ध का एक शिष्य एक वेश्या के घर ठहर गया। सारे भिक्षु परेशान हो गए और उन्होंने आकर बुद्ध को शिकायत की कि यह तो बहुत अशोभन बात है कि हमारा एक भिक्षु और वेश्या के घर ठहर जाए।

ये जो भिक्षु थे, ये ठहरना चाहते होंगे वेश्या के घर। यह ईर्ष्या से उठा हुआ सवाल था। बुद्ध ने कहा कि अगर तुम ठहर जाते तो चिंता होती। जो ठहर गया उसे मैं जानता हूँ। लेकिन शिष्यों ने कहा कि आप यह अन्याय कर रहे हैं। इससे तो रास्ता खुल जाएगा। इससे तो और लोग भी ठहरने लगेंगे। और लोग—मतलब वे अपने को सोच रहे हैं कि क्या गुजरेगी उन पर अगर वे वेश्या के घर ठहर जाएं।

हम हमेशा अपने से सोचते हैं। और तो कोई उपाय भी नहीं है, हम अपने से ही सोचते हैं।

और वेश्या सुंदरी है, उन भिक्षुओं ने कहा, बहुत सुंदरी है। और उसके आकर्षण से बचना बहुत मुश्किल है। रातभर भिक्षु वहीं ठहर गया। और हमने तो यह भी सुना है कि रात, आधी रात तक गीत भी चलता रहा, नाच भी चलता रहा, यह क्या हो रहा है?

बुद्ध ने कहा, मैं उस भिक्षु को भलीभांति जानता हूँ। और अगर मेरा भिक्षु वेश्या के घर ठहरता है, तो मेरा भिक्षु वेश्या को बदलेगा, न कि वेश्या मेरे भिक्षु को। और अगर मेरे भिक्षु को वेश्या बदल लेती है तो वह भिक्षु इस योग्य ही न था कि अपने को भिक्षु कहे। वह ठीक ही हुआ। इसमें बिगड़ा क्या? जो बदला जा सकता था वही बदला जाएगा। और सुबह ऐसा हुआ कि भिक्षु वापस आया और पीछे उसके वेश्या आई। और बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा, इस वेश्या को देखो।

उस वेश्या ने कहा कि मैं आपके चरणों में आना चाहती हूँ, क्योंकि पहली दफे मुझे एक पुरुष मिला, जिसको मैं डाँवाडोल न कर सकी। अब मेरे मन में भी यह भाव उठा कि कब ऐसा क्षण मुझे भी आएगा कि कोई मुझे डाँवाडोल न कर सके। जो इस भिक्षु के भीतर घटा है, वही मेरे भीतर भी घट जाए, अब इसके सिवाय और कोई आकांक्षा नहीं है। तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि तुम देखो।

लेकिन कठिन है। हम जो हैं, वही हम सोच पाते हैं। इसलिए बुद्ध हों, महावीर हों, हम अपनी तरफ से सोचते हैं। हम अपने ढंग से सोचते हैं। कोई उपाय भी नहीं है। हमारी भी मजबूरी है। हम वही ढंग जानते हैं, हम वही दृष्टि जानते हैं, हम अपनी आंख से ही तो देखेंगे! किसी और की आंख से कैसे देख सकते हैं?

परमात्मा अगर आपके द्वार पर भी आ जाए तो आप नहीं पहचानेंगे, यह पक्का है। और आप उसको ठहरने भी नहीं देंगे, यह पक्का है। नहीं, लेकिन परमात्मा आपके द्वार पर आता भी नहीं। वह सदा खुला हुआ आकाश है चारों तरफ।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा है खुला हुआ आकाश। परमात्मा है स्पेस, चारों तरफ। आप कूद जाएं, वह आकाश आपको लीन करने में सदा तत्पर है। आप खड़े रहें, तो वह आकाश आपको खींच कर जबरदस्ती लीन नहीं करना चाहता है। क्योंकि उतनी हिंसा भी अस्तित्व को स्वीकार नहीं है। आप स्वतंत्र हैं रुकने को, कूद जाने को। सागर मौजूद है, नदियों को निमंत्रण भी नहीं देता, बुलाता भी नहीं। नदियां स्वतंत्र हैं, रुक जाएं, तालाब बन जाएं, छलांग ले लें, सागर में खो जाएं।

जिस व्यक्ति को यह ख्याल हो रहा हो कि मैं पापी हूँ, यह ख्याल महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस ख्याल में ही अहंकार गलता है। जिसको यह ख्याल हो रहा हो कि मेरे लिए उसके द्वार न खुले होंगे, वह निश्चित रहे, उसके लिए द्वार बिल्कुल ही खुले हुए हैं। और बहता रहे और धीरे-धीरे अपने को डुबाता रहे। एक न एक दिन वह घड़ी घटती है, जब भीतर वह जो अहंकार की छोटी सी टिमटिमाती ज्योति है, वह बुझ जाती है। और जिस दिन वह टिमटिमाती ज्योति बुझती है, उसी दिन हमें पता चलता है उस सूर्य का, जो हमेशा मौजूद था; लेकिन हम अपनी टिमटिमाती ज्योति में इतने लीन थे कि सूर्य की तरफ आंख भी नहीं जाती थी। जब तक मैं न बुझ जाऊँ,

तब तक मुझे उसका पता नहीं चलता जो चारों तरफ मौजूद है; क्योंकि मैं अपने में ही संलग्न हूं, अपने में ही लगा हुआ हूं। टू मच आक्युपाइड विद माईसेल्फ, सारी व्यस्तता अपने में लगी है।

जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस दिन गांव में एक आदमी की दाढ़ में दर्द था। सारा गांव जीसस को सूली देने जा रहा है। जीसस कंधे पर अपना क्रास लेकर उस मकान के सामने से निकल रहे हैं, और वह आदमी बैठा है, और जो भी रास्ते से निकलता है वह अपने दाढ़ के दर्द की उससे चर्चा करता है। वह कहता है, आज बड़ी तकलीफ है दांत में। लोग कहते हैं, छोड़ो भी। पता है कुछ? आज मरियम के बेटे जीसस को सूली दी जा रही है। वह आदमी सुनता है, लेकिन सुनता नहीं। वह कहता है, होगा। लेकिन दांत में बहुत दर्द है।

जिस दिन जीसस को सूली हुई उस दिन वह आदमी अपने दांत में ही उलझा था। उस दिन इस पृथ्वी का बड़े से बड़ा चमत्कार घट रहा था, लेकिन वह आदमी अपने दांत के दर्द में उलझा था। और हम सब ऐसे ही लोग हैं जिनकी दाढ़ में दर्द है। अपनी अपनी दाढ़ का दर्द लिए बैठे हैं। चारों तरफ विराट घटना घट रही है, हर पल। वह मौजूद है सब तरफ, लेकिन हमारी दाढ़ दुख रही है। हम उसी में लीन हैं।

और अहंकार बड़ी पीड़ा का घाव है। दाढ़ भी वैसा दर्द नहीं देती, जैसा अहंकार देता है। ख्याल है आपको, दाढ़ के दर्द में थोड़ी मिठास भी होती है, दर्द भी होता है, मिठास भी होती है। अहंकार के दर्द में बड़ी मिठास होती है। दर्द होता है, तब हम सोचते हैं छोड़ दें, लेकिन मिठास इतनी होती है कि छोड़ भी नहीं पाते। उस मिठास के कारण हम दर्द को भी झेलते हैं। जब कोई गाली देता है तब चोट लगती है, दर्द होता है। जब कोई फूलमाला गले में डालता है, तब मिठास भर जाती है। सारे शरीर में रोयां-रोयां पुलकित हो जाता है।

ये दोनों बातें एक साथ छोड़नी पड़ेंगी। अगर गाली का दुख छोड़ना है तो फिर फूलमाला का सुख भी छोड़ देना पड़ेगा। वह सुख इतना मीठा है कि हम कितने ही दुख उसके लिए झेल लेते हैं। हजार कांटे हम झेल लेते हैं, एक फूल के लिए। हजार निन्दा झेल लेते हैं, एक प्रशंसा के लिए। मिठास है बहुत। इस मिठास को और पीड़ा को एक साथ देखना होगा और धीरे-धीरे इस "मैं" के घाव को छोड़ते जाना होगा। एक दिन, जिस दिन "मैं" नहीं रहता, उस दिन मिलन हो जाता है।

इस "मैं" के न रहने के दो रास्ते हैं--एक रास्ता है महावीर का, एक है मीरा का। एक रास्ता है कि इस "मैं" को इतना शुद्ध करो, इतना परिशुद्ध करो कि उसकी शुद्धता के कारण ही वह शून्य होकर तिरोहित हो जाए। एक रास्ता है, यह जैसा है, वैसा ही परमात्मा के चरणों में रख दो। क्योंकि उसके चरण में रख देना आग में रख देना है। वह आग जला लेगी, निखार लेगी। दोनों कठिन हैं, ध्यान रखना।

आमतौर से लोग सोचते हैं कि दूसरी बात सरल मालूम पड़ती है। समर्पण कर दिया, खत्म हुआ मामला। लेकिन समर्पण कर दिया, समर्पण आसान नहीं है। न तो संकल्प आसान है, न समर्पण आसान है, दोनों एक से कठिन हैं या एक से आसान हैं। कभी भूलकर भी यह मत सोचना कि यह सरल है। सरल का मतलब यह कि जिसमें आपको धोखा देने की सुविधा हो, उसको आप सरल समझते हैं। कहा कि कर दिया समर्पण। लेकिन समर्पण आसान है!

कोई आकर मेरे पास कहते हैं कि मैं सब समर्पण आपको करता हूं। अब आप जो चाहें करें। उनसे मैं कहता हूं, कूद जाओ वुडलैंड के ऊपर से। वे कूदनेवाले नहीं हैं। कह रहे थे कि समर्पण कर दिया। मैं भी कुदाने वाला नहीं हूं, लेकिन क्या भरोसा! कूदने वाले वे नहीं हैं। जैसे ही मैं यह कहूंगा, वैसे ही वे कहेंगे कि क्या कह रहे हैं आप! वे भूल गए समर्पण।

समर्पण का अर्थ क्या होता है?

बोधधर्म भारत से चीन गया तो नौ साल तक दीवाल की तरफ मुंह रखता था और पीठ लोगों की तरफ रखता था। बोलता था तो मेरे जैसा नहीं। आपकी तरफ पीठ, मुंह दीवाल की तरफ। हालांकि बहुत फर्क नहीं

पड़ता, क्योंकि जब मैं बोल रहा हूँ, तब आप पीठ मेरी तरफ किए हुए हैं, फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। मुंह आपका दीवार की तरफ है।

बोधधर्म से लोग पूछते हैं, यह क्या करते हो? तो बोधधर्म कहता कि जब ठीक आदमी आ जाएगा, जो समर्पण करने को तैयार है, तो मुंह उस तरफ कर लूंगा। अभी व्यर्थ के लोगों की शक्ल देखने से फायदा भी क्या है? क्या तुम हो, वह आदमी जो समर्पण करेगा? वह आदमी कहते कि अभी लड़की की शादी करनी है, अभी लड़के बड़े हो रहे हैं, जरा व्यवस्था कर लें, पिता बूढ़े हैं, उनकी सेवा करनी है। फिर कभी आएंगे।

फिर आया हुई-नेंग नाम का आदमी। उसने आकर कुछ कहा नहीं। उसने अपना एक हाथ काटा और बोधधर्म के सामने कर दिया, और कहा कि तत्काल इस तरफ मुंह करो, नहीं तो गर्दन काटकर रख दूंगा। बोधधर्म तत्काल लौटा, क्योंकि अभी यह आदमी बोधधर्म ने कहा, तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी, हुई-नेंग। तुम आ गए वक्त पर, तो जो मुझे कहना है, तुमसे कह दूँ और अब मैं मर जाऊँ। मर मुझे जाना चाहिए बहुत पहले। वक्त मेरा बहुत पहले पूरा हो चुका है। सिर्फ उस आदमी की तलाश में था जिसे मैं जो जान गया हूँ, वह दे दूँ। क्योंकि हजारों-हजारों वर्षों में कभी कोई आदमी यह जान पाता है। अगर मैं इसे बिना बताए मर जाऊँ तो हजारों वर्ष तक अंतराल पड़ जाएगा। तो उस आदमी की तलाश में था, लेकिन मैं यह उससे ही कह सकता हूँ जो मरने को तैयार हो। क्योंकि यह एक बहुत गहरी भीतरी मौत है।

हुई-नेंग को शिष्य की तरह स्वीकार किया बोधधर्म ने और हुई-नेंग को सारी बात कह दी, जो उसे कहनी थी।

क्या है वह बात? अपने को मिटाने की तैयारी का एक मार्ग है समर्पण। लेकिन लोग सोचते हैं, सरल है। बहुत कठिन है। धोखा देने में आपको लगता है, लेकिन बहुत कठिन है। दूसरा भी कोई सरल नहीं है। कोई सोचता है कि ठीक है, अपने को शुद्ध कर लेंगे। चोरी न करेंगे, बेईमानी न करेंगे, यह न करेंगे, वह न करेंगे, शुद्ध कर लेंगे। वह भी इतना आसान नहीं है, क्योंकि चोरी बहुत गहरी है। चोरी आपका कृत्य नहीं है, आप चोर हो। हजारों-हजारों जन्मों तक चोरी की है, वह चोरी का जो जहर है, वह धीरे-धीरे प्राण की तलहटी तक पहुंच गया है। झूठ छोड़ देंगे। झूठ अगर कोई वचन होता तो छूट जाता। आपकी आत्मा झूठ हो गई है। यह कोई कपड़े उतार कर रख देने जैसा मामला नहीं है। चमड़ी खींच कर रखने जैसा मामला है। इतना सब जुड़ गया है।

एक आदमी कहता है, झूठ छोड़ देंगे। झूठ अगर कोई वक्तव्य होते तो हम छोड़ देते; हम झूठ हो गए हैं बोलते-बोलते, करते-करते हम झूठ हो गए हैं।

हमें पता ही नहीं है कि हम कब झूठ बोल रहे हैं और कब सच बोल रहे हैं। छोड़ेंगे कैसे? पता भी नहीं चलता कि कब झूठ बोल रहे हैं। होश ही नहीं रहता और झूठ निकल जाता है। झूठ हमारी आत्मा हो गई है।

कहते हैं, हिंसा छोड़ देंगे, इसको नहीं मारेंगे, उसको नहीं मारेंगे। लेकिन हिंसा भीतर है। ऊपर से छोड़ना बहुत कठिन नहीं मालूम पड़ता, लेकिन भीतर गहरे में दबा हुआ है।

बहुत मजेदार घटनाएं घटती हैं। अभी मैं एक हिंदी के विचारक प्रभाकर माचवे का एक लेख पढ़ता था। बहुत मजा आया। क्षमा पर लेख लिखा है। उदाहरण जो दिया है, वह दिया है कि चर्चिल ने महात्मा गांधी के लिए कुछ अपशब्द कहे हैं, अपशब्द है कि गांधी भी क्या है, एक नंगा फकीर।

तो माचवे ने अपने लेख में लिखा है कि गांधीजी ने चर्चिल को उत्तर दिया--क्षमा का उदाहरण दे रहे हैं--गांधीजी ने उत्तर दिया कि आपने आधी बात तो ठीक कही कि मैं फकीर हूँ। गरीब मुल्क का आदमी हूँ और पूरा मुल्क मेरा फकीर है, उनका मैं प्रतिनिधि हूँ इसलिए मैं फकीर हूँ। लेकिन दूसरी बात आपने जरा ज्यादा कह दी। नंगा होना जरा मुश्किल है। और बाइबिल का एक वचन उद्धृत किया अपने पत्र में, जिसमें जीसस ने कहा है कि परमात्मा के सामने जो पूर्णतया नग्न है, वही नग्न है। तो गांधी ने लिखा है कि परमात्मा के सामने पूर्णतया

नग्न होने की हिम्मत मेरी अभी भी नहीं है, लेकिन कभी यह आकांक्षा है कि उसके सामने परिपूर्ण नग्न हो सकूँ ताकि आपका वचन पूरा हो जाए।

प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि गांधीजी ने ऐसा जवाब देकर चर्चिल को खूब नीचा दिखाया। क्षमा का उदाहरण दे रहे हैं, क्षमा की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन नीचा दिखाना नीचा दिखाने का मजा ले रहे हैं।

पता नहीं, गांधी ने नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया या नहीं दिया, लेकिन माचवे को ख्याल में भी नहीं आ रहा है कि नीचा दिखाने में क्षमा हो कैसे सकती है! और नीचा दिखाना ही तो क्रोध है। कोई आदमी गाली देकर नीचा दिखा देता है और कोई आदमी क्षमा करके नीचा दिखा दे, तो भी वही बात है। क्योंकि नीचा दिखाना, वही तो हिंसा है।

अब यह तरकीब की बात है कि आप किस तरह नीचा दिखाते हैं। अगर आप किसी को क्षमा करके नीचा दिखा रहे हैं तो ख्याल रखना कि यह क्षमा नहीं है। आप ज्यादा चालाक हैं, उस आदमी से ज्यादा बेईमान हैं जो गाली देकर नीचा दिखाता है। वह जरा अकुशल है। उसके ढंग नीचा दिखाने के सीधे-साफ हैं, आपके ढंग चालबाजी के हैं। घूम फिर के हैं।

मुझे पता नहीं कि गांधीजी ने नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया होगा। लेकिन, जैसा माचवे कहते हैं, अगर नीचा दिखाया है तो फिर यह क्षमा नहीं है। तब चर्चिल ज्यादा ईमानदार और गांधी ज्यादा बेईमान हो जाते हैं। क्योंकि चर्चिल को लगता है कि नंगा फकीर, तो वह कहता है कि नंगा फकीर। इसमें ज्यादा ऑनेस्टी है, ज्यादा सच्चाई मालूम पड़ती है। लेकिन, अगर यह नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया गया है तो ज्यादा बेईमानी दिखाई पड़ती है।

लेकिन हमें ख्याल नहीं आता कि हिंसा बहुत गहरी है, हिंसा बड़ी गहरी है। और अहिंसक होने की चेष्टा में भी प्रकट हो सकती है। और क्रोध बहुत गहरा है और अक्रोध में भी उसकी झलक आ जाती है। अपने को संकल्प से बदलना भी इतना आसान नहीं है।

मार्ग तो दोनों कठिन हैं, फिर भी अगर आप वह मार्ग चुन लें जो आपके व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता तो असंभव हो जाएगा; कठिन नहीं, असंभव। अगर मीरा महावीर का मार्ग चुन ले तो असंभव है। अपने ही मार्ग पर चले तो कठिन है, सरल नहीं। अगर महावीर मीरा का मार्ग चुन लें तो असंभव है, अपने ही मार्ग पर चले तो कठिन है, सरल नहीं।

सरल तो कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए नहीं कि सत्य कठिन है, बल्कि इसलिए कि लाखों-लाखों जन्मों की हमारी आदतें कठिन हैं, उनको तोड़ना कठिन है। सत्य तो सरल है। सागर में गिरते समय नदी को क्या कठिनाई है? लेकिन नदी को आना पड़ता है हिमालय की कंदराओं को, पहाड़ों को पार करके, पत्थरों को काटकर। वह जो मार्ग है, वह कठिन है।

हम कठिन हैं। हमें अपने से ही गुजरकर तो सत्य तक पहुंचना है। सत्य है सरल, हम हैं कठिन। अगर हम अपने विपरीत मार्ग चुन लें तो यात्रा है असंभव।

अब हम सूत्र को लें।

"जो मनुष्य सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग कर देता है, वही सच्चा त्यागी है।"

भोग मौजूद न हो, भोग का उपाय न हो, भोग को भोगने की क्षमता न हो, असहाय हो आदमी, तब भी त्याग कर सकता है। लेकिन महावीर कहते हैं, तब त्याग का कोई भी अर्थ नहीं है। जो भोग ही नहीं सकता, उसके त्याग का क्या अर्थ है? जिसके पास भोगने की सुविधा नहीं, उसके त्याग का क्या अर्थ है? उसका त्याग कोई भी अर्थ नहीं रखता।

त्याग का सभी अर्थ भोग के संदर्भ में है। इसलिए जब बूढ़ा ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेता है तो उसका कोई भी अर्थ नहीं है। बूढ़ा अपने को धोखा दे रहा है। जवान जब ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेता है, तब उसकी कोई सार्थकता

है। जब मरता हुआ आदमी अन्न-जल का त्याग कर देता है, जब डाक्टर बता देते हैं कि घड़ी दो घड़ी से ज्यादा नहीं, जब बिल्कुल पक्का हो जाता है कि मर ही रहे हैं, तो अन्न-जल का त्याग कर देता है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन जो जीवन को पूरी तरह अभी स्वस्थ मानकर अन्न-जल का त्याग कर देता है और मृत्यु की प्रतीक्षा करता है आनंदपूर्वक, तो उसका कोई अर्थ है।

आप अपनी बेबसी में जब त्याग करते हैं तो अपने को धोखा दे रहे हैं। अपने को दे सकते हैं, जगत की व्यवस्था को धोखा आप न दे सकेंगे। इसलिए, दो बातें ठीक से समझ लें। एक, बेबसी का नाम त्याग नहीं है, सामर्थ्य का नाम त्याग है। इसलिए त्याग के पहले समर्थ हो जाना अत्यंत जरूरी है और त्याग के क्षण में सामर्थ्य हो तो ही त्याग में त्वरा, तेजी, चमक, ओज उत्पन्न होता है। इसलिए महावीर ने हिंदू व्यवस्था की, जो वर्ण की कल्पना थी, आश्रम की कल्पना थी, वह बिल्कुल तोड़ दी। और उन्होंने कहा कि जब प्रखर हो ऊर्जा जीवन को भोगने की, तभी रूपांतरण है। जब सारा जीवन बहता हो कामवासना की तरफ, तभी लौट पड़ना।

जब रिक्त हो जाती हो—जैसे, बंदूक की गोली चल चुकती हो, और फिर अहिंसक हो जाए। चली चलाई बंदूक की कारतूस कहे कि अब मैंने अहिंसा का व्रत ले लिया, उसमें कोई भी सार्थकता नहीं है। लेकिन हम यही करते हैं। या तो हमारे पास सुविधा नहीं होती, तो हम त्याग कर देते हैं, या हम असमर्थ हो जाते हैं, सुविधा भोगने में, तो हम त्याग करते हैं।

त्याग का बिंदु वही है जो भोग का बिंदु। क्षण एक है, क्षण दो नहीं हैं। दिशा अलग है। त्याग अलग दिशा में जाता है, भोग अलग दिशा में, लेकिन है। त्याग और भोग एक ही क्षण की घटनाएं हैं, रुख अलग है, दिशा अलग है; लेकिन जहां से यात्रा होती है, वह बिंदु एक है।

इसलिए महावीर कहते हैं, सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी जो पीठ फेर लेता है। सब प्रकार से स्वाधीन, किसी परतंत्रता में नहीं, किसी परवशता में नहीं, स्वतंत्र रूप से परित्याग कर देता है। परित्याग करना नहीं पड़ता, कर देता है। यह उसका संकल्प है। संकल्प से त्याग फलित होना चाहिए तो सामर्थ्य बढ़ती है, शक्ति बढ़ती है। असमर्थता से त्याग होता है तो दीनता बढ़ जाती है।

"जो मनुष्य किसी परतंत्रता के कारण वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता।"

"सदगुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत शास्त्रों का अभ्यास, उनके गंभीर अर्थ का चिंतन, चित्त में धृतिरूप अटल शांति प्राप्त करना, यह निःश्रेयस का मार्ग है।"

इस सूत्र के दो हिस्से हैं—एक त्याग क्या है, और त्याग के बाद क्या करने योग्य है। क्योंकि त्याग सिर्फ एक निषेध नहीं है कि छोड़ दिया, बात खत्म हो गई। छोड़ने से कुछ मिलता नहीं। छोड़ने से सिर्फ बाधाएं कटती हैं। छोड़ने से कुछ उपलब्धि नहीं होती, छोड़ने से भटकाव बचता है। छोड़ने से गलत यात्रा रुकती है, सही यात्रा शुरू नहीं होती। लेकिन बहुत लोग इस भ्रान्ति में रहते हैं। बहुत लोग यह सोचते हैं कि अरे मैंने पत्नी छोड़ दी, घर छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, अब और क्या करना है? हमारे अनेक साधु इसी निषेध में जीते हैं, और हम भी इसी निषेध को बड़ा मूल्य देते हैं कि बेचारे ने पत्नी छोड़ दी, घर छोड़ दिया, बच्चे छोड़ दिए, महात्यागी है।

फिर पाया क्या? यह तो छोड़ दिया, बहुत अच्छा किया, फिर पाया क्या? फिर कुछ मिला भी? और अगर पत्नी छोड़ दी और पत्नी से श्रेष्ठतर कुछ न मिला, तो क्या अर्थ हुआ छोड़ने का? और जिसने पत्नी छोड़ दी, और कुछ मिला नहीं, उसके मन में पत्नी की तरफ दौड़ जारी रहेगी। क्योंकि इस अस्तित्व में खाली जगह को बरदाश्त करने का उपाय नहीं है। प्रकृति खाली जगह को बरदाश्त नहीं करती। अंतस जीवन में भी खाली जगह बरदाश्त नहीं होती। अगर पत्नी की जगह परमात्मा न आ जाए तो पत्नी झांकती ही रहेगी उस खाली जगह में। झांकने की तरकीबें बहुत हो सकती हैं।

अगर धन छोड़ दिया और धर्म भीतर न उठा, तो यह इस छोड़े हुए आदमी की स्थिति त्रिशंकु की हो जाएगी। इसलिए हमारे साधु छोड़ तो देते हैं, पा कुछ नहीं पाते। फिर परेशान होते हैं। और वह इसी आशा में छोड़ देते हैं कि छोड़ने से ही पाना हो जाएगा।

छोड़ना आवश्यक है, पर्याप्त नहीं।

मैंने कुछ छोड़ दिया, इससे जो अगर मैं पकड़े रहता उसे तो जो-जो भूलें मुझसे होतीं, वे नहीं होंगी--यह निषेधक है। लेकिन अब मुझे कुछ करना होगा। तो क्या करना होगा।

महावीर कहते हैं, "सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा करना।"

महावीर बहुत ही सशर्त बोलते हैं, क्योंकि उन्हें पक्का पता है कि जो सुननेवाले लोग हैं, उन्हें जरा सा भी छिद्र मिल जाए तो वे इस छिद्र में से अपना बचाव खोज लेते हैं।

तो महावीर वृद्ध की सेवा नहीं बोलते, क्योंकि वृद्ध होने से कोई ज्ञानी नहीं होता। सिर्फ बूढ़े होने से कोई ज्ञानी नहीं होता। सिर्फ बूढ़े होते जाना तो प्राकृतिक घटना है, उसमें आपका काम ही क्या है? लेकिन बूढ़े बूढ़े होकर समझते हैं कि कुछ पा लिया।

सिर्फ खोया है, कुछ पाया नहीं। जिंदगी खोई है। मगर वे समझते हैं कि बूढ़े हो गए तो कुछ पा लिया। सिर्फ बूढ़े हुए हैं, और इस होने में उनका हाथ ही क्या है? उन्होंने तो पूरा चाहा था कि न हों, फिर भी हो गए। अपनी सब कोशिश की थी, फिर भी हो गए। अब इसको ही वे गुण मान रहे हैं, यह भी कोई योग्यता है!

तो महावीर कहते हैं: अनुभवी वृद्धों की सेवा।

बड़ा मुश्किल है! वृद्ध और अनुभवी, बड़ी कठिन बात है। बूढ़े तो सभी हो जाते हैं, अनुभवी सभी नहीं होते। अनुभव का मतलब है-वह जो-जो जीवन में हुआ, वह सिर्फ हुआ नहीं, उससे कुछ सीखा भी गया।

अब एक बूढ़ा आदमी भी अगर क्रोध करता है तो समझना, अनुभवी नहीं है। क्योंकि जिंदगीभर क्रोध करके अगर इतना भी नहीं सीख पाया कि क्रोध व्यर्थ है, तो यह जिंदगी बेकार गई। एक बूढ़ा आदमी भी अगर उन्हीं क्षुद्र बातों में उलझा है, जिनमें बच्चे उलझे होते हैं, तो समझना कि यह आदमी बूढ़ा तो हो गया, वृद्ध नहीं हुआ। सिर्फ बुढ़ा गया, सिर्फ उमर पक गई, लेकिन धूप में पक गए, अनुभव में नहीं। लेकिन आप हैरान होंगे कि बूढ़े भी वही करते रहते हैं जो बच्चे करते हैं। हालांकि निश्चित ही बूढ़े करते हैं तो ज्यादा सोफिस्टिकेटेड, ज्यादा ढंग से करते हैं। बच्चे उतने ढंग से नहीं करते। अब बच्चे हैं छोटे, गुड्डा-गुड्डी का विवाह कर रहे हैं। बूढ़े हैं, राम सीता का जुलूस निकाल रहे हैं। बच्चे गुड्डा-गुड्डी के श्रृंगार में लगे हैं, बूढ़े महावीर स्वामी का श्रृंगार कर रहे हैं। लेकिन गुड्डियां बड़ी हो गई हैं, बदलीं नहीं। विवाह है, बच्चे भी मजा ले रहे थे, गुड्डों का कर रहे थे, अब ये राम-सीता की बारात निकाल रहे हैं। यह बूढ़ों का बचपना है।

बच्चे इतने गंभीर भी नहीं थे, ये भारी गंभीर हैं। बस इतना ही फर्क पड़ा है। और बच्चे के गुड्डा-गुड्डी के मामले में कभी कोई हिंदू-मुस्लिम दंगा नहीं होता, इनमें हो जाएगा। बूढ़े ज्यादा उपद्रवी हैं। क्योंकि वे जो भी करते हैं, उसको खेल नहीं मान सकते, क्योंकि उनको उम्र का अनुभव है। लेकिन सीखा उन्होंने कुछ भी नहीं। वहीं के वहीं खड़े हैं। कहीं कोई अंतर न पड़ा। वे वहीं खड़े हैं, उनकी चेतना वहीं खड़ी है, शरीर सिर्फ बूढ़ा हो गया।

इसलिए महावीर ने कहा, अनुभवी वृद्ध, सदगुरु।

सिर्फ गुरु नहीं कहा, साथ में जोड़ा सदगुरु।

क्या फर्क है गुरु और सदगुरु में?

गुरु से मतलब तो सिर्फ इतना ही है कि जो आपको खबर दे दे, सूचना दे दे, शास्त्र समझा दे। उसके स्वयं के अस्तित्व से इसका कोई जरूरी संबंध नहीं है-शिक्षक। सदगुरु से मतलब है, जो स्वयं शास्त्र है। जो-जो कह

रहा है, वह किसी से सुन कर नहीं कह रहा है, यह उसका अपना अनुभव, अपनी प्रतीति है। वेद में ऐसा कहा है, ऐसा नहीं। गीता में ऐसा कहा है इसलिए ठीक होना चाहिए, ऐसा नहीं। महावीर ने ऐसा कहा है, इसलिए ठीक होगा; क्योंकि महावीर ने कहा है, ऐसा नहीं। ऐसा जो कहता है, वह शिक्षक है साधारण। लेकिन जो अपने अनुभव में परखता है और जो अपने अनुभव में देखता है और अगर कभी कहता भी है कि वेद में ठीक कहा है, तो इसलिए कहता है, कि मेरा अनुभव भी कहता है। वेद कहता है, इसलिए ठीक नहीं, मेरा अनुभव कहता है, इसलिए वेद ठीक।

इस फर्क को आप समझ लें।

वेद ठीक कहता है, इसलिए मेरा अनुभव ठीक, यह उधार है आदमी। मेरा अनुभव कहता है इसलिए वेद ठीक या वेद गलत। वह आदमी वहीं खड़ा है ज्ञान के स्रोत पर, जहां खुद अपनी आंख से देखता है। किताब नंबर दो हो जाती है, शास्त्र नंबर दो हो जाते हैं। गुरु के लिए शास्त्र होता है नंबर एक, सदगुरु के लिए शास्त्र होता है नंबर दो। शास्त्र भी प्रामाणिक होता है इसलिए कि मेरा अनुभव शास्त्र की गवाही देता है। मैं हूं गवाह।

जीसस से कोई पूछता है कि पुराने शास्त्रों के संबंध में तुम्हारा क्या कहना है? जीसस कहते हैं, आई एम दि विटनेस। बड़ी मजे की बात कहते हैं। मैं हूं गवाह। जो मैं कहता हूं, उससे मिलान कर लेना। मेरे अनुभव से जो बात मेल खा जाए, समझना कि ठीक है। नहीं तो गलत है।

सदगुरु का मतलब है: जो सत हो गया। जो अब शिक्षाएं नहीं दे रहा है, स्वयं शिक्षा है। गुरु एकशृंखला है, एक परंपरा है। गुरु एक काम कर रहा है। सदगुरु एक जीवन है।

इसलिए महावीर ने कहा है: "सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा।"

बड़े मजे की बात है कि महावीर कहते हैं, सेवा के अतिरिक्त सत्संग नहीं है। क्योंकि सेवा से ही निकट आना होगा। सेवा से ही विनम्रता होगी। सेवा से ही चरणों में झुकना होगा। सेवा से आंतरिकता होगी। सेवा से धीरे-धीरे अहंकार गलेगा। और सदगुरु की उपस्थिति और शिष्य में अगर सेवा की वृत्ति हो, तो वह घटना घट जाएगी, जिसको हम आंतरिक जोड़ कहते हैं। सिर्फ बैठ कर सुनने से नहीं हो जाएगा।

महावीर कहते हैं: जिससे सीखो, जिसके जीवन को अपने भीतर ले लेना हो, उसकी सेवा में डूब जाना पड़ेगा।

इसलिए महावीर ने सेवा को बड़ा मूल्य दिया है। लेकिन यह सेवा, जिसको हम आज सर्विस कहते हैं, जिसको हम सेवा कहते हैं, उससे बहुत भिन्न है। अभी हम भी सेवा की बात करते हैं। रोटरी-क्लब अपने सिंबल में लिखता है, सर्विस, सेवा। क्रिश्चियन मिशनरी सेवा कर रही है, सर्वोदयवादी सेवा कर रहे हैं। गरीब की सेवा करो, दुखी की सेवा करो, यह सेवा सामाजिक घटना है। महावीर की सेवा एक साधना का अंग है। महावीर दुखी की सेवा के लिए नहीं कह रहे हैं, गरीब की सेवा के लिए नहीं कह रहे हैं।

महावीर कह रहे हैं, अनुभवी वृद्ध, सदगुरु की सेवा। इस सेवा में और रोटरी-क्लब वाली सेवा में फर्क है। दूसरी सेवा केवल एक सामाजिक बात है। अच्छी है, कोई करे, हर्जा नहीं है। लेकिन महावीर की सेवा का अर्थ दूसरा है। वह सेवा एक साधन का अंग है। उसकी सेवा, जो तुमसे सत्य की दिशा में आगे जा चुका है। क्योंकि जब तुम उसकी सेवा के लिए झुकोगे--और सेवा में झुकना पड़ता है--जब तुम उसकी सेवा के लिए झुकोगे तो उसकी ऊंचाईयों से जो वर्षा हो रही है, वह तुममें प्रवेश कर जाएगी। जब तुम उसके चरणों में सिर रखोगे तो जो उसमें प्रवाहित हो रहा है ओज, वह तुम्हें भी छुएगा और तुम्हारे रोएं-रोएं को स्नान करा जाएगा।

यह बड़ा सोचने जैसा मामला है। इस पर तो बहुत चिंतन करने जैसी बात है। क्योंकि जब भी आप किसी की सेवा कर रहे हैं तो आपको झुकना पड़ता है। और जिसकी आप सेवा कर रहे हैं, वह आपमें प्रवाहित हो सकता है।

यह खतरनाक भी है। क्योंकि अगर आप ऐसे आदमी की सेवा कर रहे हैं, जो आपसे चेतना की दृष्टि से नीचे है, तो आपको नुकसान होगा। अगर आपसे ऊंची चेतना के व्यक्ति से आपको लाभ होगा तो आपसे नीची चेतना के व्यक्ति से आपको नुकसान होगा। इसलिए हमने कहा है, वृद्ध जवानों की सेवा न करें। इसलिए हमने कहा है कि मां-बाप बेटे के पैर न छुएं। और बेटा छुए। इसके पीछे कुल एक ही कारण है कि श्रेष्ठतर प्रवाहित हो, कहीं निकृष्ट श्रेष्ठ के साथ संयुक्त न हो, उसे विकृत और अशुद्ध न करे।

इसलिए एक बहुत महत्वपूर्ण बात इस संदर्भ में आपको कहूं। यही कारण है कि भारत ने ईसाइयत जैसी सेवा की धारणा विकसित नहीं की, क्योंकि भारत को सेवा के संबंध में आंतरिक गहरे अनुभव हैं। इसलिए पश्चिम में बहुत लोग हैरान होते हैं कि भारत के धर्म कैसे हैं; गरीब की सेवा की कोई बात ही नहीं है, बीमार की सेवा की कोई बात नहीं है; रुग्ण की, कोढ़ी की सेवा की कोई बात नहीं है। यह सेवा के लिए, इनके बाबत कोई नहीं इनके पास मामला, ये धर्म कैसे हैं?

गांधी जी बहुत प्रभावित थे ईसाइयत से, इसलिए उन्होंने कहा कि सेवा धर्म है। हमने कभी नहीं कहा इस मुल्क में, न महावीर ने, न बुद्ध ने; और ये सब सेवा को धर्म कहने वाले लोग महावीर के ऐसे वचनों को उठा कर गलत अर्थ निकालते हैं। महावीर जब सेवा शब्द का उपयोग कर रहे हैं तो उनका प्रयोजन ही अलग है। हमने जान कर यह बात नहीं कही है।

शूद्र को हमने नीचे रखा है, ब्राह्मण को ऊपर रखा है, इस आशा में कि शूद्र ब्राह्मण की सेवा करे, ब्राह्मण शूद्र की नहीं। बहुत अजीब लगता है, आज की चिंतन की हवा में बहुत अजीब लगता है कि यह क्या बात हुई? अगर ब्राह्मण सच्चा ब्राह्मण है, तो शूद्र की सेवा करे, क्योंकि सेवा से ही वह ब्राह्मण होगा। लेकिन हमारे लिए मूल्य शूद्र और ब्राह्मण का सामाजिक नहीं है, आत्मिक है। हम शूद्र उसको कहते हैं जो शरीर में जी रहा है, जिसका और कोई जीवन नहीं है। और ब्राह्मण हम उसको कहते हैं जो ब्रह्म में जी रहा है। जिसका और कोई जीवन नहीं है। तो जो ब्रह्म में जी रहा है, उसकी कोई भी सेवा करे तो उसे लाभ होगा।

सेवा का अर्थ है: झुक जाना। और जो झुकता है, वह गड्ढा बन जाता है। और जो गड्ढा बन जाता है, उसमें वर्षा संगृहीत हो जाती है।

तो महावीर कहते हैं, सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा। मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना।

मगर मूर्खों का संसर्ग बड़ा प्रीतिकर होता है। एक तो फायदा होता है कि मूर्खों के बीच आप बुद्धिमान मालूम पड़ते हैं, इसलिए हर आदमी मूर्खों की तलाश करता है। जब तक आपको दो-चार मूर्ख न मिल जाएं, आप बुद्धिमान नहीं। और कोई उपाय भी तो नहीं बुद्धिमानी का, एक ही उपाय है कि दो चार मूर्ख इकट्ठे कर लो।

इसलिए कोई पति अपने से बुद्धिमान पत्नी पसंद नहीं करता। अपने से ज्यादा पढ़ी लिखी हो, ज्यादा समझदार हो तो पसंद नहीं करता। क्योंकि फिर पति को मजा नहीं आएगा बुद्धिमान होने का। मूर्ख पत्नी पसंद की जाती है। फिर निश्चित, मूर्ख जो कर सकती है, वह करती है। वह सहा जा सकता है, लेकिन अहंकार को रस आता है।

हम सब ऐसी कोशिश करते हैं कि अपने से छोटे तल के लोग हमारे आसपास इकट्ठे हो जाएं। उसमें रस आता है। मजा आता है।

क्या मजा है उनके बीच? वह जो अकबर के सामने बीरबल ने किया था, एक लकीर खींच दी थी, छोटी लकीर के सामने एक बड़ी लकीर खींच दी थी। और अकबर ने कहा था कि इस लकीर को बिना छुए छोटा कर दो। तो बीरबल ने एक बड़ी लकीर नीचे खींच दी थी। दरबार में कोई भी उसे छोटा न कर सका, क्योंकि सभी ने कहा, बिना छुए कैसे छोटा कर दें? जब छोटा करना है तो छूना पड़ेगा। बीरबल ने कहा, छूने की कोई जरूरत नहीं। एक बड़ी लकीर खींच दी। लकीर छोटी हो गई।

हम सब होशियार हैं उतने, जितना बीरबल था।

अपने को बुद्धिमान कैसे करना, सीधा रास्ता है। अपने से छोटी लकीरें आसपास इकट्ठी कर लो, आप बड़ी लकीर हो गए।

महावीर कहते हैं, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना। क्योंकि वह संसर्ग मंहगा है। आपकी लकीर बड़ी भला दिखाई पड़े, लेकिन वह जो छोटी लकीरें इकट्ठी हो गई हैं, वे धीरे-धीरे आपकी लकीर को और छोटा करती जाएंगी। क्योंकि जिनके साथ आप रहते हैं, आप धीरे-धीरे उन जैसे होने लगते हैं। साथ संक्रामक है। जिनके साथ आप रहते हैं, धीरे-धीरे वे आपको बदलने लगते हैं। उनसे बचना मुश्किल है। इतना मुश्किल है बचना कि साथ जिनके रहते हैं, उनसे तो बचना मुश्किल है ही, जिनके आप दुश्मन हो जाते हैं उन तक से बचना मुश्किल है, क्योंकि उनका भी संग-साथ हो जाता है भीतर।

मोहम्मद अली जिन्ना गवर्नर जनरल हुए। तो उन्होंने, जैसा कि गवर्नर जनरल्स को करना चाहिए, एक अंग्रेज ए.डी.सी. रखा। वह अंग्रेज ए.डी.सी. जिन्ना को बहुत समझाया कि आपकी सुरक्षा का ठीक इंतजाम होना चाहिए, और आपके बंगले के चारों तरफ बड़ी दीवाल होनी चाहिए। जिन्ना ने कहा कि मैं कोई तुम्हारे गवर्नर जनरल जैसा गवर्नर जनरल नहीं हूँ। मैं एक लोकप्रिय नेता हूँ। मुझे कौन मारने वाला है? कोई जरूरत नहीं है बड़ी दीवाल की और सुरक्षा की। मेरा कोई दुश्मन नहीं है। मैं पाकिस्तान का जन्मदाता हूँ। तुम्हारे गवर्नर जनरल को दीवाल की जरूरत थी, क्योंकि तुम हमारे दुश्मन थे, लेकिन मुझे कोई जरूरत नहीं है।

ए.डी.सी. बहुत समझाता रहा, लेकिन जिन्ना नहीं माना। जिस दिन गांधी की हत्या हुई और खबर पहुंची-जिन्ना अपने बगीचे में बैठा था। जैसे ही खबर मिली, जिन्ना चिंतित हो गए, परेशान हो गए। उठ कर उसने अपने ए.डी.सी. से कहा कि पूरी खबर का पता लगाओ, क्या हुआ है? और सीढ़ियां चढ़ते वक्त उसने लौटकर ए.डी.सी. से कहा, और ठीक है, वह जो दीवाल के संबंध में तुम कहते थे, उसका इंतजाम कर लो।

जिन्ना जीवन भर गांधी जो करें, उससे ही बंधा हुआ चलते रहे। चाहे हां करें, चाहे ना। जिन्ना तब तक कोई उत्तर न देगा, जब तक गांधी क्या कहते हैं, यह पता न चल जाए। सारी पॉलिटिक्स इतनी थी जिन्ना की। वह गांधी की दुश्मनी से तय होती थी।

यह बड़े मजे की बात है, जिंदगी भर भी जिन्ना गांधी की दुश्मनी से तय हुआ। और गांधी की मौत से भी जिन्ना तय हुआ। उस दिन के बाद फिर जिन्ना कभी भी नहीं समझा कि मैं लोकप्रिय नेता हूँ, सुरक्षा की कोई जरूरत नहीं। फिर दीवाल खड़ी हो गई और सारा इंतजाम कर लिया गया।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि गांधी और जिन्ना में इतनी दुश्मनी! लेकिन यह दुश्मनी भी एक दूसरे को तय करती है। मित्रता तो एक दूसरे को बनाती है, दुश्मनी तक बनाती होगी, दुश्मनी भी एक तरह की मित्रता है। जिनके साथ हम हैं, या जिनके विरोध में हम हैं, वे हमें निर्मित करते हैं।

इसलिए महावीर कहते हैं: "मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत शास्त्रों का अभ्यास करना।

मूर्ख कौन है? क्या वे जो कुछ नहीं जानते? वे मूर्ख नहीं हैं, वे अज्ञानी हैं। उनको मूर्ख कहना उचित नहीं है। मूर्ख वे हैं, जो बहुत कुछ जानते हैं बिना कुछ जाने। उनसे बचना।

अब एक आदमी आपको बता रहा है कि ईश्वर है, और उसे कोई पता नहीं। उससे पहले पूछना कि तुझे पता है? उसे कुछ पता नहीं है। वह आपको बता रहा है कि ईश्वर है। एक आदमी बता रहा है, ईश्वर नहीं है। उससे पूछना, तूने पूरी-पूरी खोज कर ली है?

एक ईसाई पादरी अभी मुझे मिलने आए थे। उन्होंने कहा कि गॉड इ.ज. इनडिफाइनैबल, ईश्वर अपरिभाष्य, अनंत, असीम, उसकी कोई थाह नहीं ले सकता। मैंने उनसे पूछा: यह तुम थाह लेकर कह रहे हो, कि बिना थाह लिए ही कह रहे हो? वह जरा मुश्किल में पड़ गए। मैंने कहा कि अगर तुमने पूरी थाह ले ली है, तब तुम कह रहे हो कि अथाह है, तब तुम्हारा वचन बिल्कुल गलत है। क्योंकि थाह तुम ले चुके। अगर तुम कहते

हो कि मैं पूरी थाह नहीं ले पाया तो तुम इतना ही कहो कि मैं पूरी थाह नहीं ले पाया। पता नहीं, एक कदम आगे थाह हो! तुम अथाह कैसे कह रहे हो?

और तुम कहते हो कि ईश्वर की कोई परिभाषा नहीं हो सकती, यह परिभाषा हो गई। तुमने परिभाषा कर दी। तुमने ईश्वर का एक गुण बता दिया कि उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। यह तुम क्या कह रहे हो? तो वह फौरन उन्होंने कहा कि बाइबिल में ऐसा लिखा है। मैंने कहा, बाइबिल में लिखा होगा। तुम्हें पता है?

वहीं सारी बात अटकती है। दुनिया ज्ञानी मूर्खों से भरी है, लर्नेड इंडियट्स से। उनका कोई अंत ही नहीं है। पढ़े-लिखे गंवार, उनका कोई अंत ही नहीं है, उनसे दुनिया भरी है। और ध्यान रखना, गैर पढ़े-लिखे गंवार तो अपने आप कम होते जा रहे हैं, क्योंकि सब शिक्षित होते जा रहे हैं। अब गैर पढ़े-लिखे गंवार खोजना जरा मुश्किल मामला है। अब तो पढ़े-लिखे गंवार ही मिलेंगे। और एक खोजो, हजार मिलते हैं।

महावीर कहते हैं: "मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना।"

जिनको कुछ पता नहीं है और जिनको यह वहम है कि पता है, वह तुम्हें नुकसान पहुंचा सकते हैं।

"एकाग्र चित्त से सत शास्त्रों का अभ्यास करना।"

शास्त्र, वह भी सत हो। सत का अर्थ इतना है: शास्त्र जिसका रस पांडित्य में न हो, सत्य में हो, जिसका रस विवाद में न हो, साधना में हो। शास्त्र, जो आपको कोई सिद्धांत, कोई संप्रदाय देने में उत्सुक न हो, जीवन रूपांतरित करने का विज्ञान देने में उत्सुक हो। तो ऐसे शास्त्र हैं जिनसे आपको सिद्धांत मिल सकते हैं, और ऐसे शास्त्र हैं जिनसे आपको जीवन-रूपांतरण की विधि मिल सकती है। सत शास्त्र वही है जिससे आपको विधि मिलती है। असत शास्त्र वही है जिससे आपको बकवास मिलती है। और बकवास लोग सीख कर बैठ जाते हैं। और जब बकवास बिल्कुल मजबूत हो जाती है तो वह भूल ही जाते हैं कि हम क्या कर रहे हैं। यह जो खोपड़ी में भर लिया, यह कोई आत्मा का रूपांतरण नहीं होने वाला है।

महावीर का जोर है, सत शास्त्रों का अभ्यास करना एकाग्र चित्त से, क्यों? क्योंकि अगर कोई आदमी एक सत शास्त्र को पढ़ते वक्त पच्चीस सत शास्त्रों को सोचता रहे, तो चित्त एकाग्र नहीं होगा। जब पतंजलि को पढ़ना तो सारे जगत को भूल जाना। पतंजलि को ही पढ़ना। और जब महावीर को पढ़ना तो महावीर को ही पढ़ना फिर सारे जगत को, पतंजलि को बिल्कुल भूल जाना। लेकिन हमारी तकलीफ यही है कि जो हमने और जान लिया है, वह हमेशा बीच में खड़ा हो जाता है। चित्त कभी एकाग्र नहीं हो पाता, और शास्त्र से कोई संबंध न जुड़ेगा, अगर चित्त पूरी तरह एकाग्र न हो।

सारे जगत को भूल जाना। फिर यही समझना कि पतंजलि तो पतंजलि, बुद्ध तो बुद्ध और महावीर तो महावीर। फिर सब कुछ भी नहीं है और। फिर इसमें ही पूरे डूब जाना। इस डुबकी से ही संभव होगा कि जीवन बदले।

"गंभीर अर्थ का चिंतन करना।"

हम अर्थों का चिंतन नहीं करते। हम केवल अर्थों के साथ विवाद करते हैं। आपने अगर मुझे सुना तो आप इसकी फिकर नहीं करते कि जो मैंने कहा है, उसके क्या गंभीर से गंभीर अर्थ हो सकते हैं। आप इसकी फिकर नहीं करते। आप तो अर्थ अभी समझ गए। गंभीर का और कोई सवाल नहीं है। अब यह अर्थ ठीक है या गलत, इसका आप विचार करते हैं। सत्य के संबंध में ठीक और गलत का विचार करने से कोई हल होने वाला नहीं है। क्या कहा है, उसमें कितने और गंभीर उतरा जा सकता है, कितने गहरे जाया जा सकता है।

महावीर जैसे व्यक्तियों की वाणी एक पर्त नहीं होती, उसमें हजार पर्तें होती हैं। इसलिए हमने पाठ पर बहुत जोर दिया है। हम नहीं कहते कि पढ़ लेना और किताब रख देना। हम कहते हैं, फिर-फिर पढ़ना। फिर-फिर पढ़ने का क्या मतलब है? फिर-फिर पढ़ने का मतलब है कि कल मैंने एक अर्थ देखा था, आज फिर से

पढ़ूंगा। फिर खोजूंगा कि क्या और भी कोई अर्थ हो सकता है, और भी कोई गहरा अर्थ हो सकता है? और महावीर जैसे लोगों की वाणी में जीवन भर अर्थ निकलते जाएंगे। आप जितने गहरे होते जाएंगे, उतने गहरे अर्थ आपको मिलते जाएंगे। जिस दिन आपको अपने भीतर आखिरी गहराई मिलेगी, उस दिन महावीर का आखिरी अर्थ आपको पता चलेगा। इसलिए भाषाकोश में अर्थ मत खोजना, अपने भीतर की गहराई में, एकाग्र ध्यान की गहराई में अर्थ को खोजना।

"चित्त में धृतिरूप अटल शांति और धैर्य रखना।"

जल्दी मत करना, क्योंकि यात्रा है लंबी। इसमें ऐसा मत करना कि आज पढ़ लिया और बात खत्म हो गई, आज सुन लिया और सब हो गया। यह यात्रा लम्बी, अनंत है यात्रा। तो बहुत धैर्यपूर्वक गति करना। प्रतीक्षा करना, शांति रखना।

"यही निःश्रेयस का मार्ग है।"

मोक्ष का मार्ग यही है। छोड़ना, जो गलत है। खोजना, जो सही है और धैर्य रखना अनंत। श्रम, साधना, पर अत्यंत धैर्य से, अत्यंत शांति से।

यह मत सोचना कि अभी मिल जाएगा सत्य। अभी भी मिल सकता है। लेकिन अभी उन्हें मिल सकता है जो अनंत तक प्रतीक्षा करने को तैयार हैं। उन्हें अभी इसी क्षण भी मिल सकता है, क्योंकि उतने धैर्य की क्षमता अगर हो, कि अनंतकाल तक रुका रहूंगा, तो अभी भी मिल सकता है। वही धैर्य मिलने का कारण बन जाता है। लेकिन हम जल्दी में होते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं, दो दिन हो गए, ध्यान करते। अभी तक कुछ दर्शन हुआ नहीं। इनक्योरेबल। इनका कोई इलाज भी करना मुश्किल है। दो दिन! काफी समय हो गया! अगर बहुत उन्हें समझाओ बुझाओ तो वे चार दिन कर लेंगे! कितने जन्मों की बीमारी है? कितना कचरा है इकट्ठा?

अभी म्युनिसिपल के कर्मचारी हड़ताल पर चले गए थे, तो दो-चार दिन में कितना कचरा इकट्ठा हो गया था? और आप कितने दिन से हड़ताल पर हैं, आपको पता है?

थोड़ा उसका ध्यान करें कि कितने दिन से हड़ताल पर हैं! आत्मा कचरा ही कचरा हो गई है।

थोड़ा धैर्य! थोड़ी शांति! लेकिन, जो भी गलत को छोड़ने को तैयार है और ठीक को पकड़ने के लिए साहस रखता है; धैर्य, श्रम, प्रतीक्षा कर सकता है; उसकी प्रार्थना एक दिन निश्चित ही पूरी हो जाती है।

आज इतना ही।

पांच मिनट कीर्तन करेंगे।

आप ही हैं अपने परम मित्र (आत्म-सूत्र : 1)

अप्पा कत्ता विकत्त य,
 दुक्खाण य सुहाण य।
 अप्पा मित्तममित्तं च,
 दुप्पट्ठि सुप्पट्ठिओ॥
 पंचिन्दियाणि कोहं,
 माणं मायं तहेव लोहं च।
 दुज्जयं चेव अप्पाणं,
 सब्बमप्पे जिए जियं॥

आत्मा ही अपने सुख और दुख का कर्ता है तथा आत्मा ही अपने सुख और दुख का नाशक है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा मित्र है और बुरे मार्ग पर चलनेवाला आत्मा शत्रु।

पांच इन्द्रियां, क्रोध, मान, माया, और लोभ तथा सबसे अधिक दुर्जेय अपनी आत्मा को जीतना चाहिए। एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है कि "संकल्प और समर्पण के मार्गों को न मिलाया जाए, तालमेल न बिठाया जाए, ऐसा आपने कहा। लेकिन, महावीर-वाणी की चर्चा जिससे शुरू हुई उस नमोकार मंत्र के शरण-सूत्र में समर्पण का स्थान है। और आप भी जिस भांति ध्यान के प्रयोग करवाते हैं, उसमें संकल्प से शुरुआत होती है और चौथे चरण में समर्पण पर समाप्ति। तो इन दोनों में कोई तालमेल है या नहीं?"

संकल्प और समर्पण में तो कोई तालमेल नहीं है साधना की पद्धतियों में; समर्पण की अपनी पूरी पद्धति है, संकल्प की अपनी पूरी पद्धति है। लेकिन मनुष्य के भीतर ताल-मेल है। इसे थोड़ा समझना पड़े।

ऐसा मनुष्य खोजना मुश्किल है जो पूरा संकल्पवान हो। ऐसा मनुष्य भी खोजना मुश्किल है, जो पूरा समर्पण की तैयारी में हो। मनुष्य तो दोनों का जोड़ है। एंफेसिस का फर्क हो सकता है। एक व्यक्ति में संकल्प ज्यादा है, समर्पण कम, एक व्यक्ति में समर्पण ज्यादा, संकल्प कम!

इसे हम ऐसा समझें।

जैसा मैंने कहा कि समर्पण स्त्री चित्त का लक्षण है, संकल्प पुरुष चित्त का। लेकिन मनस्विद कहते हैं कि कोई पुरुष पूरा पुरुष नहीं, कोई स्त्री पूरी स्त्री नहीं। आधुनिकतम खोजें कहती हैं कि हर मनुष्य के भीतर दोनों हैं। पुरुष के भीतर छिपी हुई स्त्री है, स्त्री के भीतर छिपा हुआ पुरुष है। जो फर्क है स्त्री और पुरुष में, वह प्रबलता का फर्क है, एंफेसिस का फर्क है। इसलिए पुरुष स्त्री में आकर्षित होता है, स्त्री पुरुष में आकर्षित होती है।

कार्ल गुस्ताव जुंग का महत्वपूर्ण दान इस सदी के विचार को है। उनकी अन्यतम खोजों में जो महत्वपूर्ण खोज है, वह है कि प्रत्येक पुरुष उस स्त्री को खोज रहा है, जो उसके भीतर ही छिपी है, और प्रत्येक स्त्री उस पुरुष को खोज रही है, जो उसके भीतर ही छिपा है। और इसलिए यह खोज कभी पूरी नहीं हो पाती।

जब आप किसी को पसंद करते हैं तो आपको पता नहीं कि पसंदगी का एक ही अर्थ होता है कि आपके भीतर जो स्त्री छिपी है या पुरुष छिपा है, उससे कोई पुरुष या स्त्री बाहर मेल खा रही है; इसलिए आप पसंद करते हैं। लेकिन वह मेल पूरा कभी नहीं हो पाता, क्योंकि आपके भीतर जो प्रतिमा छिपी है, वैसी प्रतिमा बाहर खोजनी असम्भव है। इसलिए कभी थोड़ा मेल बैठता है, लेकिन फिर मेल टूट जाता है। या कभी थोड़ा मेल बैठता है, थोड़ा नहीं भी बैठता है। इसी के बीच बाहर सब चुनाव है। लेकिन चुनाव की विधि क्या है? हमारे भीतर एक प्रतिमा है, एक चित्र है, उसे हम खोज रहे हैं कि वह कहीं बाहर मिल जाए।

तो एक तो उपाय यह है कि हम उसे बाहर खोज लें, जो कि असफल ही होनेवाला है। और एक सुख है, जो मेरे भीतर की स्त्री से बाहर की स्त्री का मेल हो जाए तो मुझे मिलता है। वह क्षणभंगुर है। फिर एक और मिलन भी है कि मेरे भीतर का पुरुष मेरे भीतर की स्त्री से मिल जाए। वह मिलन शाश्वत है।

सांसारिक आदमी बाहर खोज रहा है, योगी उस मिलन को भीतर खोजने लगता है। और जिस दिन भीतर की दोनों शक्तियां मिल जाती हैं, उस दिन पुरुष-पुरुष नहीं रह जाता, स्त्री-स्त्री नहीं रह जाती। उस दिन दोनों के पार चेतना हो जाती है। उस दिन व्यक्ति खंडित न होकर अखंड आत्मा हो जाता है।

तो जब हम कहते हैं कि संकल्प का मार्ग, तो इसका मतलब हुआ कि जो व्यक्ति बहुलता से पुरुष है, गौण रूप से स्त्री है, उसका मार्ग है। लेकिन उसके मार्ग पर भी थोड़ा सा संकल्प, संकल्प के पीछे थोड़ा सा समर्पण होगा, क्योंकि वह जो छाया की तरह उसकी स्त्री है, उसका भी अनुदान होगा। और जो व्यक्ति समर्पण के मार्ग पर चल रहा है, उसके भी भीतर छिपा हुआ पुरुष है, और छाया की तरह संकल्प भी होगा। इसका क्या--व्यक्ति के भीतर क्या तालमेल है? साधनाओं में कोई तालमेल नहीं है। इसे ऐसा समझें।

जब कोई व्यक्ति समर्पण के लिए तय करता है, तब यह तय करना तो संकल्प है। अगर आप तय करते हैं कि किसी के लिए सब कुछ समर्पित कर दें, तो अभी समर्पण का यह जो निर्णय आप ले रहे हैं, यह तो संकल्प है। इतने संकल्प के बिना तो समर्पण नहीं होगा। जो व्यक्ति तय करता है कि मैं संकल्प से ही जीऊंगा, जो निर्णय करता हूं, उसको ही श्रम से पूरा करूंगा, यह संकल्प से शुरुआत हो रही है। लेकिन जो निर्णय किया है वह निर्णय कुछ भी हो सकता है। उस निर्णय के प्रति पूरा समर्पण करना पड़ेगा।

जो संकल्प से शुरू करता है उसे भी समर्पण की जरूरत पड़ेगी। जो समर्पण से शुरू करता है उसे भी संकल्प की जरूरत पड़ेगी, लेकिन वे गौण होंगे, छाया की तरह होंगे। व्यक्ति तो दोनों का जोड़ है, स्त्री-पुरुष का। इसलिए क्या महत्वपूर्ण है आपके भीतर, वह आपकी साधना-पद्धति होगी। लेकिन दोनों साधना पद्धतियां अलग होंगी। दोनों के मार्ग, व्यवस्थाएं, विधियां अलग होंगी।

मैं जिस साधना पद्धति का प्रयोग करता हूं, वह संकल्प से शुरू होती है। लेकिन पद्धति वह समर्पण की है। लेकिन कोई भी समर्पण संकल्प से ही शुरू हो सकता है, लेकिन संकल्प सिर्फ शुरुआत का काम करता है। और धीरे-धीरे समर्पण में विलीन हो जाना होता है। लेकिन पद्धति वह समर्पण की है।

पूछा जा सकता है कि फिर जो लोग संकल्प की ही पद्धति पर जाने वाले हैं, उनका इस पद्धति में क्या होगा? संकल्प की पद्धति पर जानेवाले लोग कभी लाख में एकाध होता है, करोड़ में एकाध होता है। क्योंकि संकल्प की पद्धति में जाने का अर्थ है, अब किसी का कोई भी सहारा न लेना। संकल्प के मार्ग पर वस्तुतः गुरु की भी कोई आवश्यकता नहीं है, शास्त्र की भी कोई आवश्यकता नहीं है, विधि की भी कोई आवश्यकता नहीं है, इसलिए कभी करोड़ में एक आदमी और यह आदमी भी इसलिए संकल्प पर जा सकता है कि अनेक-अनेक जीवन में उसने समर्पण के मार्ग पर इतना काम कर लिया है कि अब बिना गुरु के, बिना विधि के, वह स्वयं ही आगे बढ़ सकता है।

इस सदी में कृष्णमूर्ति ने संकल्प के मार्ग की प्रबलता से बात की है। इसलिए वे गुरु को इनकार करते हैं, शास्त्र को इनकार करते हैं, विधि को इनकार करते हैं। कृष्णमूर्ति जो कहते हैं, बिल्कुल ही ठीक है, लेकिन जिन लोगों से कहते हैं, उनके बिल्कुल काम का नहीं है। और इसलिए खतरनाक है।

कृष्णमूर्ति शायद ही किसी व्यक्ति को मार्ग दे सके हों। हां, बहुत लोग जो मार्ग पर थे, उनको वे विचलित जरूर कर सके हैं। होगा ही, अगर करोड़ में एक व्यक्ति संकल्प के मार्ग पर चल सकता है तो संकल्प की चर्चा खतरनाक है। क्योंकि वह जो करोड़ हैं, जो नहीं चल सकते, वे भी सुन लेंगे। और संकल्प के मार्ग का जो बड़ा खतरा यह है कि अहंकारियों को बड़ा प्रीतिकर लगता है कि ठीक है--न गुरु की जरूरत, न विधि की, न शास्त्र की--मैं काफी हूं। यह अहंकार को बहुत प्रीतिकर लगता है।

तो करोड़ लोग अगर सुनें, उनमें से एक चल सकता है। और बड़े मजे की बात यह है कि वह एक जो चल सकता है, शायद ही कृष्णमूर्ति को सुनने जाएगा। वह जाएगा ही क्यों? वह जो चल सकता है, वह जाएगा नहीं क्योंकि वह चल ही सकता है। और जो नहीं चल सकते हैं, वे ही जाएंगे। और सुन कर उन सबको यह भ्रम पैदा होगा कि हम अकेले ही चल सकते हैं। न किसी गुरु की जरूरत, न किसी शास्त्र की, न विधि की। वे केवल भटकेंगे और परेशान होंगे। क्योंकि अगर उन्हें गुरु की जरूरत न होती तो वे कृष्णमूर्ति के पास भी न आए होते। यह किसी की तलाश में उनका आना ही बताता है कि वे अपनी तलाश में अकेले नहीं जा सकते। लेकिन उनके अहंकार को भी तृप्ति मिलेगी क्योंकि गुरु बनाने में विनम्र होना जरूरी है। गुरु इनकार करने में कोई विनम्रता की आवश्यकता नहीं।

विधि स्वीकार करने में कुछ करना पड़ेगा। कोई विधि नहीं है तो कुछ करने का सवाल ही समाप्त हो गया। काहिल, सुस्त, अहंकारी, कृष्णमूर्ति से प्रभावित हो जाएंगे। और वे बिल्कुल गलत लोग हैं। उनसे तो यह बात की ही नहीं जानी चाहिए। और बड़ा मजा यह है कि कृष्णमूर्ति भी जहां पहुंचे हैं, बिना गुरु के नहीं पहुंचे हैं। इस सदी में किसी व्यक्ति को अधिकतम गुरु मिले हों तो वह कृष्णमूर्ति हैं। एनीबीसेंट जैसा गुरु, लीडबीटर जैसा गुरु खोजना बहुत मुश्किल है। लेकिन एक उपद्रव हुआ, और वह उपद्रव यह था कि कृष्णमूर्ति ने इन गुरुओं को नहीं खोजा था, इन गुरुओं ने कृष्णमूर्ति को खोजा, यही उपद्रव हो गया। और ये गुरु इतनी तीव्रता में थे, इतनी जल्दी में थे किन्हीं कारणों से--एक बहुत उपद्रवी सदी की शुरुआत हो रही थी और धर्म का कोई निशान भी न बचे, इसका भी डर था। और लीडबीटर और एनीबीसेंट और उनके साथी इस कोशिश में थे कि धर्म की जो शुभ्रतम ज्योति है, वह कहीं से प्रगट हो सके। तो वे किसी की तलाश में थे कि कोई व्यक्ति पकड़ लिया जाए, जो इस काम के लिए आधार बन जाए, मीडियम बन जाए।

कृष्णमूर्ति को उन्होंने चुना। कृष्णमूर्ति पर वर्षों मेहनत की; कृष्णमूर्ति को निर्मित किया, कृष्णमूर्ति को बनाया, खड़ा किया। कृष्णमूर्ति जो कुछ भी हैं, उसमें नित्यानबे प्रतिशत उनका दान है। लेकिन खतरा यह हुआ कि कृष्णमूर्ति ने स्वयं चुना नहीं था, वे चुने गए थे। और अगर हम अच्छा भी किसी को बनाने की चेष्टा करें, और यह उसकी मर्जी न रही हो, यह स्वेच्छा से न चुना गया हो, तो वह आज नहीं कल अच्छे बनाने वालों के भी विपरीत हो जाएगा। उन्होंने इतनी चेष्टा की कृष्णमूर्ति को निर्मित करने की कि यही चेष्टा कृष्णमूर्ति के मन में प्रतिक्रिया बन गई। गुरु उनको बोझ की तरह मालूम पड़े, जिन्होंने जबरदस्ती उन्हें बदलने की कोशिश की, ऐसा उन्हें लगा। वह प्रतिक्रिया बन गई। वह आज भी उसका सूखा संस्कार उनके ऊपर रह गया। वह आज भी उन्हीं के खिलाफ बोले जाते हैं।

जब कृष्णमूर्ति गुरु के खिलाफ बोलते हैं तो आपको ख्याल में भी नहीं आता होगा कि वह लीड बीटर के खिलाफ बोल रहे हैं, एनीबीसेंट के खिलाफ बोल रहे हैं। बहुत देर हो गई उस बात को हुए। लेकिन वह बात जो गुरुओं ने उनके साथ की है, उनको बदलने की जो सतत अनुशासन देने की चेष्टा वह उनको गुलामी जैसी लगी, क्योंकि वह स्वेच्छा से चुनी नहीं गई थी। उसके खिलाफ उनका मन बना रहा।

वे कहते चले गए हैं। उनको सुनने वाला वर्ग है, और वह वर्ग चालीस साल में कहीं नहीं पहुंच रहा है। वह सिर्फ शब्दों में भटकता रहता है। क्योंकि जो सुनने आता है, वह गुरु की तलाश में है। और जो वह सुनता है वह यह है कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। वह मान लेता है कि गुरु की जरूरत नहीं है और फिर भी कृष्णमूर्ति को सुनने आता चला जाता है। वर्षों तक फिर सुनने की कोई जरूरत नहीं है, अगर गुरु की कोई भी जरूरत नहीं। और यह भी बड़े मजे की बात है कि यह भी एक गुरु से सीखी हुई बात है कि गुरु की कोई भी

जरूरत नहीं है। यह भी खुद की बुद्धि से आई हुई बात नहीं है। यह भी एक गुरु की शिक्षा है कि गुरु की कोई भी जरूरत नहीं है। इसको भी जो स्वीकार कर रहा है, उसने गुरु को स्वीकार कर लिया।

लेकिन करोड़ों में कभी एकाध आदमी जरूर ऐसा होता है, वह भी अनंत जन्मों की यात्रा के बाद। उसे पता हो या न हो।

कल ही एक मित्र मलाया से मुझे मिलने आए। तो मलाया में एक महत्वपूर्ण घटना घटी है, सुबुह। और मुहम्मद सुबुह नाम के एक व्यक्ति पर अचानक, अनायास प्रभु की ऊर्जा का अवतरण हुआ। लेकिन मुसलमान मानते हैं कि एक ही जन्म है। इसलिए मोहम्मद सुबुह को भी लगा कि मुझ साधारण आदमी पर परमात्मा की कृपा हुई है। उनके मानने वाले भी यही मानते हैं कि यह सिर्फ एक संयोग की बात है कि मोहम्मद सुबुह चुना गया। मैंने उनसे कहा: हम ऐसा नहीं मान सकते। कोई आकस्मिक घटना नहीं होती। सिर्फ मुसलमान थियोलॉजी के कारण पाक सुबुह को लगता है कि अचानक मुझ पर प्रभु की कृपा हुई। लेकिन यह जन्मों-जन्मों की साधना का परिणाम है, नहीं तो यह हो नहीं सकता।

तो जब कभी कोई व्यक्ति अचानक भी संकल्प की स्थिति में आ जाता है, तब भी वह यह न सोचे कि गुरुओं का हाथ नहीं है। हजारों-हजारों गुरुओं का हजारों-हजारों जन्मों में हाथ है।

पानी को कोई गरम करता है, सौ डिग्री पर भाप बनता है, नित्यानबे डिग्री तक तो भाप नहीं बनता। लेकिन जिस अंगार ने नित्यानबे तक पहुंचाया है, उसके बिना सौवीं डिग्री भी नहीं आती। सौवीं डिग्री पर भाप बन कर उड़ता हुआ पानी सोच सकता है कि नित्यानबे डिग्री तक तो मैं कुछ भी नहीं था, सिर्फ पानी था। यह जो घटना घट रही है, अचानक घट रही है, लेकिन शून्य डिग्री से सौ डिग्री तक की जो लम्बी यात्रा है, उस यात्रा में न मालूम कितने ईंधन ने साथ दिया है। आखिरी घटना आकस्मिक घटती मालूम होती है; लेकिन इस जगत में कुछ आकस्मिक नहीं है। नहीं तो विज्ञान का कोई उपाय न रह जाएगा।

हिंदू चिंतन इसलिए बहुत गहरा गया है और उसने कहा कि इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं है। अगर कृष्णमूर्ति अचानक ज्ञान को उपलब्ध होते हैं तो यह भी अचानक हमें लगता है। या पाक सुबुह पर अचानक प्रभु की अनुकंपा मालूम होती है, तो यह भी हमें लगता है, अचानक हुआ। जन्मों-जन्मों की तैयारी है।

नित्यानबे पॉइंट नौ तक भी पानी, पानी ही होता है। फिर एक पॉइंट और भाप हो जाता है। तो पाक सुबुह को नित्यानबे पॉइंट नौ तक भी पता नहीं है कि भाप बनने का क्षण करीब आ गया। जब भाप बनेंगे, तभी पता चलेगा। तब एकदम आकस्मिक लगेगा, कि क्षणभर पहले मैं एक साधारण दुकानदार था, कि साधारण कर्मचारी था, एक साधारण आदमी था, बाल-बच्चे वाला, पत्नी वाला, कुछ पता नहीं था, अचानक यह क्या हो गया? यह भी अचानक नहीं है। पीछे कार्य-कारण की लंबी शृंखला है, और वह लंबी है शृंखला, बहुत लंबी है।

तो हजारों जन्मों के बाद कभी कोई व्यक्ति इस हालत में भी आ जाता है कि स्वयं ही खोज ले। क्योंकि अब एक ही बिंदु की बात रह जाती है। सब तैयारी पूरी होती है। जरा सा संकल्प, और यात्रा शुरू हो जाती है। लेकिन यह पहुंचने में भी न मालूम कितने समर्पणों का हाथ है। जो व्यक्ति कभी-कभी अचानक समर्पण को उपलब्ध हो जाता है, उसके पीछे भी न मालूम कितने संकल्पों का हाथ है। जीवन दोनों का गहरे में जोड़ है। पद्धतियां अलग-अलग हैं, व्यक्ति अलग नहीं है।

आज एक व्यक्ति मेरे पास आता है, कहता है कि सब समर्पण करता हूं। लेकिन सब समर्पण करना कितना बड़ा संकल्प है, इसका आपको पता है? इससे बड़ा कोई संकल्प क्या होगा? और यह इतना बड़ा संकल्प कर

पाता है, इसका अर्थ हुआ है कि इसने बहुत छोटे-छोटे संकल्प साधे हैं, तभी इस योग्य हुआ है कि इस परम संकल्प को भी करने की तैयारी कर लेता है। पद्धतियों में कोई मेल नहीं है, लेकिन व्यक्ति तो एक है। बल का, एंफेसिस का फर्क हो सकता है। तो आपको जो खोजना है वह पद्धतियों में मेल नहीं खोजना है। आपको जो खोजना है वह अपनी दशा खोजनी है कि मेरे लिए संकल्प ज्यादा या समर्पण ज्यादा उपयोगी है, और मेरे प्राण किसमें ज्यादा सहजता से लीन हो सकेंगे।

मगर यह भी थोड़ा कठिन है, क्योंकि हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं, इसलिए यह कठिन है। पर अगर कोई व्यक्ति आत्म-निरीक्षण में लगे, तो शीघ्र ही खोज लेगा कि क्या उसका मार्ग है। अब जो व्यक्ति चालीस साल से कृष्णमूर्ति को सुनने बार-बार जा रहा हो और फिर भी कहता हो, मुझे गुरु की जरूरत नहीं, वह खुद को धोखा दे रहा है। वह सिर्फ शब्दों का खेल कर रहा है। चुकता बातें कृष्णमूर्ति की दोहरा रहा है और कहता है कि गुरु की मुझे कोई जरूरत नहीं है। गुरु की कोई जरूरत नहीं है तो यह सीखने कृष्णमूर्ति के पास जाने का कोई प्रयोजन नहीं है। अपने तई एक पल खड़ा नहीं हो सकता। साफ है कि समर्पण इसका मार्ग होगा, मगर अपने को आत्मवंचना कर रहा है।

एक आदमी कहता है कि मैं तो समर्पण में उत्सुक हूँ। एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि मैंने तो मेहरबाबा को समर्पण कर दिया था, मगर अभी तक कुछ हुआ नहीं। तो यह समर्पण नहीं है, क्योंकि आखिर में तो यह अभी सोच ही रहा है, कि कुछ हुआ नहीं। अगर समर्पण कर ही दिया था, तो हो ही गया होता। क्योंकि समर्पण से होता है, मेहरबाबा से नहीं होता। इसमें मेहरबाबा से कुछ लेना-देना नहीं है। मेहरबाबा तो सिर्फ प्रतीक हैं। वह कोई भी प्रतीक काम देगा, राम, कृष्ण कोई भी काम दे देगा। उससे कोई मतलब नहीं है। राम न भी हुए हों, न भी हों तो भी काम दे देगा। महत्वपूर्ण प्रतीक नहीं है, महत्वपूर्ण समर्पण है।

यह आदमी कहता है, मैंने सब उन पर छोड़ दिया, लेकिन अभी कुछ हुआ नहीं। लेकिन की गुंजाइश समर्पण में नहीं है। छोड़ दिया, बात खत्म हो गई। हो, न हो, अब आप बीच में आने वाले नहीं हैं। तो यह धोखा दे रहा है अपने को। यह समर्पण किया नहीं है। लेकिन सोचता है कि समर्पण कर दिया और अभी हिसाब-किताब लगाने में लगा हुआ है। समर्पण में कोई हिसाब-किताब नहीं है।

अगर हिसाब-किताब ही करना है तो संकल्प; अगर हिसाब-किताब नहीं ही करना है, तो समर्पण।

और जब एक दिशा में आप लीन हो जाएं, तो वह जो दूसरा हिस्सा आपके भीतर रह जाएगा छाया की तरह, उसे भी उसी के उपयोग में लगा दें। इसे उसके विपरीत खड़ा न रखें।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

आपके भीतर थोड़ा सा संकल्प भी है, बड़ा समर्पण है। आप समर्पण में जा रहे हैं तो अपने संकल्प को समर्पण की सेवा में लगा दें। उसको विपरीत न रखें; नहीं तो वह कष्ट देगा। और आपकी सारी साधना को नष्ट कर देगा। अगर आप संकल्प की साधना में जा रहे हैं और समर्पण की वृत्ति भी भीतर है, जो कि होगी ही, क्योंकि अभी आप अखण्ड नहीं हैं, एक नहीं हैं, बंटे हुए हैं, टूटे हुए हैं। दूसरी बात भी भीतर होगी ही। तो आपके भीतर जो समर्पण है, उसको भी संकल्प की सेवा में लगा दें।

इसलिए महावीर ने शब्द प्रयोग किया है, आत्मशरण। महावीर कहते हैं; दूसरे की शरण मत जाओ, अपनी ही शरण आ जाओ। संकल्प का अर्थ हुआ कि मेरे भीतर जो समर्पण का भाव है, वह भी मैं अपने ही प्रति लगा दूँ, अपने को ही समर्पित हो जाऊँ। वह भी बचना नहीं चाहिए, वह सक्रिय काम में आ जाना चाहिए।

ध्यान रहे, हमारे भीतर जो बच रहता है बिना उपयोग का, वह घातक हो जाता है, डिस्ट्रिक्टिव हो जाता है। हमारे भीतर अगर कोई शक्ति ऐसी बच रहती है जिसका हम कोई उपयोग नहीं कर पाते, तो वह विपरीत चली जाती है। इसके पहले कि हमारी कोई शक्ति विपरीत जाए, उसे नियोजित कर लेना जरूरी है। नियोजित शक्तियाँ सृजनात्मक हैं, क्रिएटिव हैं। अनियोजित शक्तियाँ घातक हैं, डिस्ट्रिक्टिव हैं, विध्वंसक हैं।

तो जो संकल्प कर रहा है, उसे समर्पण को भी संकल्प के कार्य में लगा देना चाहिए। हजार मौके आएंगे जब संकल्प का उपयोग समर्पण के साथ हो सकता है। जैसे एक आदमी ने संकल्प किया कि मैं चौबीस घंटे खड़ा रहूंगा। तो अब संकल्प के प्रति पूरा समर्पित हो जाना चाहिए, अब चौबीस घंटे में एक बार भी सवाल नहीं उठाना चाहिए कि मैंने यह क्या किया, करना था कि नहीं करना था। अब पूरा समर्पित हो जाना चाहिए। अपने ही संकल्प के प्रति अपना पूरा समर्पण कर देना चाहिए। अब चौबीस घंटे यह सवाल नहीं है।

एक आदमी ने संकल्प किया कि किसी के चरण पकड़ लिए, यही आसरा है, तो फिर अब बीच-बीच में सवाल नहीं उठाने चाहिए संकल्प से कि मैंने ठीक किया कि नहीं ठीक किया, कि यह मैं क्या कर रहा हूं। अब सारे संकल्प को इसी समर्पण में डुबा देना चाहिए। तो मेरे भीतर कोई अनियोजित हिस्सा नहीं बचे, तो मैं साधक हूं। अगर अनियोजित हिस्सा बच जाए तो मैं संदेह से घिरा रहूंगा, और अपने को ही अपने ही हाथ से काटता रहूंगा। खुद की विपरीत जाती शक्ति व्यक्ति को दीन कर देती है। खुद की सारी शक्तियां समाहित हो जाएं तो व्यक्ति को शक्तिशाली बना देती हैं।

तो जब मैंने कहा, संकल्प और समर्पण के मार्गों का तालमेल मत करना, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि आप अपने भीतर की शक्तियों का ताल-मेल मत करना। संकल्प के मार्ग पर चलें तो समर्पण के मार्ग की जो विधियां हैं, उनका उपयोग मत करना। आपके भीतर जो समर्पण की क्षमता है, उसका तो जरूर उपयोग करना। जब समर्पण के मार्ग पर चलें तो संकल्प की जो विधियां हैं, वे फिर आपके लिए नहीं रहें। लेकिन आपके भीतर जो संकल्प की क्षमता है, उसका पूरा उपयोग करना।

मैं समझता हूं, मेरी बात आपको साफ हुई होगी।

जैसे कि एक आदमी एलोपैथिक दवाएं लेता है, एक आदमी होम्योपैथिक दवाएं लेता है या एक आदमी नैचरोपैथी का इलाज करता है। पैथीज को मिलाना मत। ऐसा मत करना कि एलोपैथी की भी दवा ले रहे हैं, होम्योपैथी की भी दवा ले रहे हैं और नैचरोपैथी भी चला रहे हैं। इसमें बीमारी से शायद ही मरें, पैथीज से मर जाएंगे। बीमारी से बचना आसान है, लेकिन अगर कई पैथी का उपयोग कर रहे हैं तो मरना सुनिश्चित है। जब एलोपैथी ले रहे हों, तो फिर शुद्ध एलोपैथी लेना, फिर बीच में दूसरी चीजों को बाधा मत डालना। जब होम्योपैथी ले रहे हों तो पूरी होम्योपैथी लेना, दूसरी चीज को बाधा मत डालना।

लेकिन चाहे एलोपैथी लें, चाहे होम्योपैथी लें, चाहे नैचरोपैथी लें, भीतर वह जो क्षमता है ठीक होने की, उसका पूरा उपयोग करना। वह एलोपैथी के साथ जुड़े कि होम्योपैथी के साथ, कि नैचरोपैथी के साथ, यह अलग बात है, लेकिन भीतर वह जो ठीक होने की क्षमता है, उसका पूरा उपयोग करना।

आप कहेंगे, वह तो हम करते ही हैं। जरूरी नहीं है। कुछ लोग ऊपर से दवा लेते रहते हैं और भीतर बीमार रहना चाहते हैं, तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। अगर बीमारी आपकी तरकीब है, तो दवा आपको ठीक नहीं कर पाएगी। आप कहेंगे, कौन आदमी बीमार रहना चाहता है? आप गलती में हैं। फिर आपको मनुष्य के मन का कोई भी पता नहीं है।

मनस्विद कहते हैं कि सौ में से पचास प्रतिशत बीमारियां बीमारों के आन हैं, वे उन्होंने बुलाई हैं। बचपन से बीमारी का सिखावन हो जाता है। बच्चा अगर स्वस्थ है, घर में कोई ध्यान नहीं देता है। बच्चा अगर बीमार है, सारे घर का केंद्र हो जाता है। बच्चा समझ लेता है एक बात कि जब भी केंद्र होना हो, बीमार हो जाना जरूरी है। और बच्चा ही नहीं सीख लेता, आपके भीतर छिपा है वह बच्चा। आपको भी ख्याल होगा, पत्नी पति को देख कर कूल्हने लगती है, पहले नहीं कूल्ह रही थी। पति पत्नी को देख कर एकदम सिर पर हाथ रख कर लेट जाता है। अभी बिल्कुल ठीक बैठा हुआ था।

क्या, मामला क्या है?

अगर सिर में दर्द था, तो कमरे में जब कोई नहीं था तब भी कूल्हना चाहिए था। अगर कूल्हना बीमारी से आ रहा है, तो किसी से क्या लेना-देना! लेकिन दूसरे को देखकर बीमारी एकदम कम-बढ़ क्यों होती है? रस है बीमारी में।

और मनस्विद कहते हैं कि स्त्रियों की तो अधिक बीमारियां उस रस से पैदा होती हैं, क्योंकि उनको और कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता कि कैसे वह पति का आकर्षण कायम रखें। पहले तो उन्होंने सौंदर्य से रख लिया, सजावट से रख लिया। थोड़े दिन में वह बासा हो जाता है, परिचित हो जाता है। तो अब पति का ध्यान किस तरह आकर्षित करना! तो स्त्रियां बीमार रहना शुरू कर देती हैं। उनको भी पता नहीं है कि वह क्यों बीमार हैं? तो वह दवा भी लेंगी, लेकिन बीमारी में रस भी जारी रहेगा। तो दवा भी जारी रहेगी और भीतर से उनका दवा के लिए सहयोग भी नहीं है। वह ठीक होना नहीं चाहतीं। क्योंकि ठीक होते ही, वह जो ध्यान पति दे रहा था, वह विलीन हो जाएगा। जब पत्नी बीमार है तो पति खाट के पास आकर बैठता भी है, सिर पर हाथ भी रखता है। जब वह ठीक है तब कोई हाथ नहीं रखता, कोई ध्यान भी नहीं देता।

अगर दुनिया में बीमारी कम करनी है तो बच्चों के साथ जब वे बीमार हों तब बहुत ज्यादा प्रेम मत दिखाना। क्योंकि वह खतरनाक है। बीमारी और प्रेम का जुड़ना बहुत खतरनाक है। बीमारी से ज्यादा बड़ी बीमारी आप पैदा कर रहे हैं। बच्चे जब स्वस्थ हों, तब उनके प्रति प्रेम प्रकट करना और ज्यादा ध्यान देना। जब बीमार हों, तब थोड़ी तटस्थता रखना। तब उतना प्रेम, उतना शोरगुल मत मचाना। लेकिन जब कोई बीमार होता है। तब हम एकदम वर्षा कर देते हैं। जब कोई ठीक होता है, तो हमें कोई मतलब नहीं।

हम भी सोचते हैं कि जब ठीक है, तब मतलब की बात क्या? लेकिन आपको पता नहीं, आपका यह ध्यान बीमारी का भोजन है। इसलिए बच्चा जब भी चाहेगा कि कोई ध्यान दे, चाहे वह कितना ही बड़ा हो जाए, तब वह बीमारी को निमंत्रण देगा। यह निमंत्रण भीतरी होगा। दवा ऊपर से लेगा और भीतर ठीक नहीं होना चाहेगा। तब उपद्रव हो जाएगा। तो चाहे एलोपैथी लें, चाहे कोई पैथी लें, एक काम सब में जरूरी होगा कि अपना पूरा भाव ठीक होने का जोड़ दें।

चाहे संकल्प के मार्ग पर चलें, चाहे समर्पण के मार्ग पर, जो भी आपकी ऊर्जा है वह सारी की सारी उस मार्ग पर जोड़ दें। दो मार्गों को नहीं जोड़ना है, साधक को भीतर अपनी दो ऊर्जाओं को जोड़ना है। ये दोनों ऊर्जाएं जुड़ कर किसी भी मार्ग पर चली जाएं तो यात्रा अन्त तक पहुंच जाएगी। भीतर तो ऊर्जाएं बंटी रहें और आदमी मार्गों को जोड़ने में लगा रहे तो कभी भी नहीं पहुंच पाएगा। पैथीज जुड़ कर जहर हो जाती हैं। अलग-अलग अमृत हैं। दो मार्ग जुड़ कर भटकाने वाले हो जाते हैं। अलग-अलग पहुंचाने वाले हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि परमात्मा शब्द में नहीं, सत्य में है, ऐसा आपसे जाना। मैं भी इन शब्दों के जाल से छूटना चाहता हूं। लेकिन डर लगता है। डूबते को तिनके का सहारा है। गीता के पाठ से लगता है, सब ठीक चल रहा है। अगर छोड़ दूं तो आध्यात्मिक पतन न हो जाए। कहीं पापी न हो जाऊं।

यह भय स्वाभाविक है। लेकिन इसे समझ लें।

अगर मुझे सुन कर ही जाना कि शब्द में सत्य नहीं, अगर मुझे सुन कर ही जाना तो मुझसे तो शब्द ही सुने होंगे। तब खतरा है। तब गीता छूट सकती है, मैं पकड़ जाऊं और गीता छोड़ कर मुझे पकड़ने में कोई सार नहीं है। फिर तो पुराने को ही पकड़े रहना बेहतर है। क्योंकि पकड़ का अभ्यास है। नाहक बदलने से क्या सार होगा।

मुझे सुनकर ही न जाना हो, मुझे सुन कर भीतर यह बोध जगा हो, मेरा सुनना केवल निमित्त रहा हो, मेरे सुनने से ही यह बात भीतर पैदा न हुई हो, मेरे सुनने का ही कुल जमा परिणाम न हो, मेरा सुनना केवल बाहर से निमित्त बना हो और भीतर एक बोध का जन्म हुआ

हो कि शब्द में कोई सत्य नहीं है। तब मेरे शब्द में भी सत्य नहीं है और गीता के शब्द में भी सत्य नहीं है। तब सत्य साधना में है, स्वयं के अनुभव में है। अगर ऐसा हुआ हो तो गीता को छोड़ने में कोई भी भय न लगेगा।

क्या भय है? अगर भीतर ही यह बोध हो गया तो छोड़ने में जरा भी भय न लगेगा। बोध के लिए कोई भय नहीं है। भय का कारण यह है कि मेरा शब्द लग रहा है प्रीतिकर। तो अब गीता के शब्द को छोड़ना है। जगह खाली करनी है, तब मेरे शब्द को भीतर रख पाएंगे। इससे भय लग रहा है कि इतना पुराना शब्द, इसको छोड़ना और नये शब्द को पकड़ना।

पुराना तिनका छोड़ना और नये तिनके को पकड़ने में भय लगेगा। क्योंकि पुराना तिनका, तिनका नहीं मालूम पड़ता, नाव मालूम पड़ता है, इतने दिन से पकड़ा हुआ है। जब उसको छोड़ेंगे और नये तिनके को पकड़ेंगे तो नया तिनका अभी तिनका दिखाई पड़ेगा। धीरे-धीरे वह भी नाव बन जाएगा। जैसे-जैसे आंख बंद होने लगेगी, वह भी नाव मालूम पड़ने लगेगा। इसलिए पुराने को नये से बदलने में भय लगता है। क्योंकि पुराने के साथ तो सम्मोहन जुड़ जाता है। नये के साथ सम्मोहित होना पड़ेगा, वक्त लगेगा, समय लगेगा। जितनी देर समय लगेगा उतने दिन भीतर एक भय और घबड़ाहट रहेगी।

नहीं, कोई गीता के शब्द को मेरे शब्द से बदलने की जरूरत नहीं है। सब शब्द एक जैसे हैं। अगर बदलना ही है तो सत्य से शब्द को बदलना। लेकिन सत्य है आपके भीतर, न मेरे शब्द में है, न गीता के शब्द में है, न महावीर के शब्द में है। इनके शब्द भी आपके भीतर की तरफ इशारा हैं। वह जो मील का पत्थर कह रहा है, मंजिल आगे है, तीर बना हुआ है; उस मील के पत्थर में कोई मंजिल नहीं है। वह सिर्फ इशारा है। और सब इशारे छोड़ देने पड़ते हैं तो ही यात्रा होती है। मील के पत्थर को छाती से लगाकर कोई बैठ जाए तो हम उसे पागल कहेंगे। लेकिन गीता को कोई छाती से लगा कर बैठा हो तो हम उसको धार्मिक आदमी कहते हैं।

गीता मील का पत्थर है, कृष्ण के द्वारा लगाया गया पत्थर है, इशारा है। मैं भी एक पत्थर लगा सकता हूं, वह भी इशारा बनेगा। आप एक पत्थर छोड़ कर दूसरा पत्थर पकड़ लें, इससे कोई हल नहीं है। थोड़ी राहत भी मिल सकती है। जैसा कि मरघट लोग ले जाते हैं अश्रू को, तो एक कंधे से दूसरे पर रख लेते हैं। थोड़ी देर राहत मिलती है क्योंकि एक कंधा थक गया, दूसरे पर रख लिया। अगर कृष्ण से आप थक गए हैं तो मुझे रख सकते हैं। लेकिन थोड़ी देर में मुझसे थक जाएंगे। जब कृष्ण से ही थक गए तो मुझसे कितनी देर बचेंगे बिना थके। मुझसे भी थक जाएंगे, फिर कंधा बदलना पड़ेगा। कंधे तो बदलते-बदलते जन्म बीत गए। कितने कंधे आप बदल नहीं चुके। कंधे बदलने से कोई सार नहीं है।

इशारा! इशारा क्या है? इशारा इतना ही है कि जो कहा जाता है, वह केवल प्रतीक है। जो अनुभव किया जाता है, वही सत्य है। आपने प्रेम का अनुभव किया और कहा कि मैंने प्रेम जाना। लेकिन जो सुन रहा है आपके शब्द, वह आपके शब्द सुन कर प्रेम नहीं जान लेगा।

मैंने कहा: पानी मैंने पीया और प्यास बुझ गई। अब मेरे वचन को पकड़ कर आपकी प्यास नहीं बुझ जाएगी। पानी पीएंगे तो प्यास बुझ जाएगी। पानी शब्द में पानी बिल्कुल भी नहीं है। तो कितना ही पानी शब्द को पीते रहें, प्यास न बुझेगी। धोखा हो भी सकता है कि आदमी अपने को समझा ले कि इतना तो पानी पी रहे हैं-पानी शब्द, पानी शब्द सुबह से शाम तक दोहरा रहे हैं। कहां की प्यास? यह भी हो सकता है कि पानी शब्द में इतनी तल्लीनता बढ़ा लें कि प्यास का पता न चले, लेकिन प्यास बुझेगी नहीं। और जब भी पानी शब्द की रटन छोड़ेंगे, भीतर की प्यास का पता चलेगा, कि प्यास मौजूद है। पानी पीना पड़ेगा, पानी शब्द से कुछ हल नहीं है।

इसलिए भय लगेगा, अगर शब्द से शब्द को बदलना है। लेकिन कोई भय की जरूरत नहीं, अगर शब्द को सत्य से बदलना है। लेकिन सत्य कहीं बाहर से मिलने वाला नहीं है--न कृष्ण से, न महावीर से, न बुद्ध से। सत्य है छिपा आपके भीतर। ये सारे कृष्ण, बुद्ध, महावीर, एक ही काम कर रहे हैं कि जो भीतर छिपा है, उसकी तरफ इशारा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि तुम हो सत्य।

रिन्झाई से किसी ने आकर पूछा, बुद्ध क्या हैं? रिन्झाई ने कहा, तुम कौन हो? कोई संगति नहीं मालूम पड़ती। बेचारा पूछ रहा है कि बुद्ध कौन हैं? बुद्ध क्या हैं? बुद्धत्व का क्या अर्थ है? और रिन्झाई जो उत्तर दे रहा है, हमें भी लगेगा, क्या उत्तर दे रहा है। वह उत्तर नहीं दे रहा है, वह एक दूसरा सवाल पूछ रहा है। वह कह रहा है कि तुम कौन हो? लेकिन जवाब उसने दे दिया। वह यह कह रहा है कि बुद्ध कौन हैं, इसे तुम सब तक न जान पाओगे, जब तक तुम यह न जान लो कि तुम कौन हो। वह यह कह रहा है, तुम ही हो बुद्ध, और तुम्हीं पूछ रहे हो! तो रिन्झाई ने कह रखा था कि अगर कोई पूछेगा बुद्ध के बाबत तो ठीक नहीं होगा। क्योंकि बुद्ध ही बुद्ध के बाबत पूछे, यह उचित नहीं है।

रिन्झाई ने तो बड़ी हिम्मत की बात कही। सारी दुनिया में उसके वचन का कोई मुकाबला नहीं है। और कई धर्मशास्त्री और पंडित तो उसका वचन सुन कर बिल्कुल घबरा जाते हैं। ऐसा लगता है कि इससे ज्यादा अपवित्र बात और क्या होगी। खुद बुद्ध को मानने वाले लाखों लोग रिन्झाई का वचन सुनने में समर्थ नहीं हैं। लेकिन अगर बुद्ध ने सुना होता तो बुद्ध नाच उठे होते।

रिन्झाई अपने शिष्यों से कहता था, इफ एनी व्हेयर यू मीट दि बुद्धा, किल हिम इमीजिएटली--अगर कहीं बुद्ध मिल भी जाएं तो फौरन सफाया कर देना, खात्मा कर देना, एक मिनट बचने मत देना।

किसी ने रिन्झाई से कहा कि क्या कह रहे हैं आप, खात्मा कर देना! तो रिन्झाई ने कहा: जब तक तुम बाहर के बुद्ध का खात्मा न करोगे, तुम्हें अपने बुद्ध का पता नहीं चलेगा। और जब तक तुम्हें बाहर बुद्ध दिखाई पड़ रहा है, तब तक तुम भ्रांति में हो। जिस दिन तुम्हें भीतर दिखाई पड़ेगा उसी दिन। तो मिल जाएं अगर बुद्ध, तो तुम खात्मा कर देना, और मैं तुमसे कहता हूँ।

रिन्झाई ने कहा: मेरे वचन को याद रखना और खत्म करते वक्त बुद्ध से भी कह देना कि रिन्झाई ने ऐसा कहा है, और बुद्ध भी इसको पसंद करेंगे। रिन्झाई बड़े अधिकार से कह रहा है क्योंकि रिन्झाई ठीक वहीं खड़ा है, जहां गौतम बुद्ध खड़े हैं। कोई फर्क नहीं है।

रिन्झाई अपने शिष्यों से कहता था कि तुम्हारे मुंह में बुद्ध का नाम आ जाए तो कुल्ला कर लेना, सफा कर लेना, मुंह गंदा हो गया। शिष्य घबरा जाते थे, वे कहते थे, आपसे ऐसी बातें सुन कर मन बड़ा बेचैन है, यह आप क्या कहते हैं! वह कहता, जब तक तुम्हें लगता है कि बुद्ध के नाम-स्मरण से कुछ हो जाएगा, तब तक भीतर के बुद्ध की तुम खोज कैसे करोगे? और जब बुद्ध ही बुद्ध का नाम ले रहा है, तो इससे ज्यादा बुद्धूपन और क्या है?

नहीं, बुद्ध हों, कृष्ण हों, महावीर हों, उनके इशारे--पर हम हैं पागल। हम इशारे पकड़ लेते हैं। और जिस तरफ इशारा है, वह जो भीतर छिपा है, उसकी कोई फिक्र नहीं करते।

कोई भय नहीं है, और जब पता ही चल गया कि तिनके को पकड़े हुए हैं, तो छोड़ने में डर क्या है? तिनके को पकड़े रहो, तो भी डूबोगे। शायद अकेले बच भी जाओ, क्योंकि आदमी को अगर कोई भी सहारा न हो तो तैर भी सके। और सोच रहा है कि तिनका सहारा है, तब पक्का डूबेगा। कोई तिनका तो बचा नहीं सकता। लेकिन तिनके की वजह से तैरेगा भी नहीं।

छोड़ो, जब पता चल गया कि तिनका है, तो अब पकड़ने में कोई सार नहीं है। जब तक नाव मालूम होती थी, तभी तक पकड़ने में कोई सार था। छोड़ो, तैरो। बेसहारा होना एक लिहाज से अच्छा है। झूठे सहारे किसी काम के नहीं हैं।

लेकिन एक बहुत मजे की बात है, जो आदमी परमरूप से बेसहारा हो जाता है उसे परम सहारा मिल जाता है। वह तो भीतर ही छिपा है आपके, जिसके सहारे की जरूरत है। तिनके की कोई जरूरत नहीं है, वह जो भीतर छिपा है वही सहारा है। शब्द को छोड़ो, शास्त्र को छोड़ो। इसलिए नहीं कि शास्त्र कुछ बुरी बात है, बल्कि इसीलिए कि उसको पकड़ कर कहीं ऐसा न हो कि सब्स्टीट्यूट जो है, परिपूरक जो है, उससे ही तृप्ति हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि शब्द से ही राजी हो जाएं।

खतरा है बड़ा शब्द के साथ। सत्य के साथ कोई खतरा नहीं है। लेकिन हमें सत्य के साथ खतरा मालूम होता है, शब्द के साथ कोई खतरा नहीं मालूम होता। क्या कारण है? एक ही कारण है कि शब्द के साथ चुपचाप जीने में सुविधा रहती है—कोई उपद्रव नहीं, कोई परिवर्तन नहीं, कोई क्रांति नहीं। पढ़ते रहो गीता रोज और करते रहो जो करना है। और मजे से करो, क्योंकि हम तो गीता पढ़ने वाले हैं। दिल खोल कर पाप करो, क्योंकि आखिर तीर्थ किसलिए हैं? नहीं तो तीर्थ क्या करेंगे, अगर आप पाप न करेंगे। मंदिर किसलिए हैं, अगर पाप न करेंगे, तो पूजा का क्या सार है, और फिर परमात्मा किसलिए है? दया के लिए ही, रहमान, दयालु। तो अगर आप पाप ही न करेंगे तो परमात्मा का, वह रहमान होने का क्या होगा? रहीम होने का क्या होगा? वह दया किस पर करेगा? किस पर रहम खाएगा? उस पर कुछ दया करो और पाप करो, ताकि वह आप पर रहम खा सके!

इसलिए आदमी शब्दों में जीता रहता है। और जिन्दगी? जिंदगी वृत्तियों में, वासनाओं में विक्षिप्त दौड़ती रहती है। शब्द को छोड़ने का अर्थ केवल इतना ही है कि जिन्दगी को देखो, शब्दों में मत उलझे रहो और अगर चाहिए है किसी दिन स्वतंत्रता, मुक्ति, आनंद, तो जिंदगी को बदलो। शब्दों को बदलने से कुछ भी होनेवाला नहीं है।

अब सूत्र।

"आत्मा ही अपने सुख और दुख का कर्ता है तथा आत्मा ही अपने सुख और दुख का नाशक भी। अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा मित्र है, और बुरे मार्ग पर चलनेवाला आत्मा शत्रु है।"

महत्वपूर्ण बात महावीर ने कही है कि आप ही अपने शत्रु हो, आप ही अपने मित्र। कोई दूसरा शत्रु नहीं है, और कोई दूसरा मित्र भी नहीं। दूसरे से छुटकारा हमारा हो जाए, इसकी चिन्ता ही महावीर को है। दूसरे पर हम जिम्मेवारियां रखना छोड़ दें, यह सारे उनके वचनों का सार है, और सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लें।

महावीर कहते हैं कि जब तुम ठीक मार्ग पर चलते हो, तो तुम अपने ही मित्र हो, और जब तुम गलत मार्ग पर चलते हो तो तुम अपने ही शत्रु हो।

इसे हम थोड़ा समझें।

अगर मैं किसी पर क्रोध करता हूं तो पता नहीं, उसे दुख पहुंचता है या नहीं। यह कोई पक्का नहीं है, लेकिन मुझे दुख मैं देता हूं, यह पक्का है। अगर मैं महावीर को गाली दूं तो महावीर को कोई दुख नहीं पहुंचता। लेकिन गाली देने में मैं तो पीड़ित होता ही हूं। क्योंकि गाली शांति से नहीं दी जा सकती। उसके लिए उबलना और जलना जरूरी है, रातें खराब करना जरूरी है, आगे पीछे दोनों तरफ चिंता, बेचैनी, जलन, क्योंकि तभी वह जलन और बेचैनी ही तो गाली बनेगी। वह जो मेरे भीतर पीड़ा होगी, वही जब इतनी भारी हो जाएगी कि उसे समहालना मुश्किल हो जाएगा, तभी तो मैं किसी को चोट पहुंचाऊंगा।

ध्यान रहे, जब मैं किसी को चोट पहुंचाता हूं तो खुद को चोट पहुंचाए बिना नहीं पहुंचा सकता। असल में जब भी मैं किसी को चोट पहुंचाता हूं, उसके पहले ही मैं अपने को चोट पहुंचा लेता हूं। मेरा घाव भीतर न हो तो मैं दूसरे को घाव करने जा नहीं सकता। घाव ही घाव करवाता है।

कभी सोचें कि आप बिल्कुल शांत, आनंदित, और अचानक किसी को गाली देने लगें तो आपको खुद हंसी आ जाएगी कि यह क्या हो रहा है, और दूसरे को भी गाली मजाक मालूम पड़ेगी, गाली नहीं मालूम पड़ेगी। गाली की तैयारी चाहिए, उसकी बड़ी साधना है। पहले साधना पड़ता है, पहले मन ही मन उसमें काफी पागलपन पैदा करना पड़ता है। पहले मन ही मन सारी योजना बनानी पड़ती है।

और जब आप इतने तैयार हो जाते हैं भीतर कि अब विस्फोट हो सकता है, तभी। कोई बम ऐसे ही नहीं फूटता, पीछे भीतर बारूद चाहिए। असल में बम फूटता ही इसलिए है कि भीतर विक्षिप्त बारूद मौजूद है। और जब आप भी फूटते हैं तो भीतर बारूद आपको निर्मित करनी पड़ती है।

जब एक आदमी किसी पर क्रोध करता है, तो अपने को दुख देता है, पीड़ा देता है, वह अपना शत्रु है। बुद्ध ने भी ठीक यही बात कही है कि बड़े पागल हैं लोग, दूसरों की भूलों के लिए अपने को सजा देते हैं। आपने गाली दी मुझे, यह भूल आपकी रही, और मैं अपने को सजा देता हूँ क्रोधित होकर। क्रोधित होकर आपको सजा दे सकता हूँ, यह कोई जरूरी नहीं है। अपने को सजा देता हूँ। गलती थी आपकी, चोट अपने को पहुंचाता हूँ--तब मैं अपना ही शत्रु हूँ। अगर हम अपना जीवन खोजें तो हमें पता लगेगा कि हम चौबीस घंटे अपनी शत्रुता कर रहे हैं।

दो तरह के शत्रु हैं जगत में। एक, वे जो भोग की दिशा में भूल करते हैं, वे अपने को सजा दिए जा रहे हैं, अपने को सताए चले जा रहे हैं, अपने को काटे जा रहे हैं, मारे जा रहे हैं। फिर तो वे इतने आदी हो जाते हैं कि वे समझते भी हैं कि अब यह नहीं करना, फिर भी रुक नहीं पाते।

अभी मेरे पास एक युवक को लाया गया। एल. एस. डी. और मारीजुआना और सब तरह के ड्रग्स ले-ले कर उसने ऐसी हालत कर ली है, अब तो वह दिन में दो दफा इंजेक्शन अपने हाथ से लगा ले, तभी जी पाता है, नहीं तो जिंदगी बेकार मालूम पड़ती है। सारे हाथों में छेद हो गए हैं, सारा खून खराब हो गया है, सारे शरीर पर फोड़े-फुंसियां, रोग फैल गए हैं। अब वह कहता है कि मैं रुकना चाहता हूँ, लेकिन कोई उपाय नहीं। जब सुबह होती है तो जिंदगी बेकार मालूम पड़ती है, जब तक कि मैं एक इंजेक्शन और न लगा लूं।

आज यूरोप और अमरीका के अनेक-अनेक अस्पताल भरे हुए हैं ऐसे युवक-युवतियों से जो बिल्कुल पागल हो गए हैं, अपनी हत्या कर रहे हैं, रोज जहर डाल रहे हैं। लेकिन अब वे यह भी जानते हैं कि अब हम जो कर रहे हैं, यह करने योग्य नहीं है। अब हम मरेंगे इसमें, यह भी जानते हैं। लेकिन रुक भी नहीं सकते। जब सुबह आती है तो बस, नहीं लगाए बिना जिंदगी बेकार मालूम पड़ती है, लगाओ तो लगता है, अपनी हत्या कर रहे हैं।

क्या हो गया इनको?

लेकिन, यह जरा अतिशय रूप है। कर हम भी यही रहे हैं। जरा हमारे डो.ज हलके हैं, छोटे हैं। इनके डो.ज मजबूत हैं। हम भी रोज-रोज जहर लेते हैं, लेकिन होम्योपैथिक डो.ज हैं हमारे, इसलिए पता नहीं चलता। रोज लेते रहते हैं। उसके बिना हमारा भी नहीं चलता। कभी एक महिना बिना क्रोध किए देखें, तब पता चलेगा कि चलता है इसके बिना कि नहीं। वह भी डो.ज है, क्योंकि क्रोध होने से शरीर में विषाक्त द्रव्य छूट जाते हैं और खून पागल हो जाता है। यह आपको करना पड़ता है बार-बार। यह आदमी बाहर से इंजेक्शन लेकर भीतर जहर डाल रहा है और आप भीतर की ग्रंथियों से जहर को ले रहे हैं, लेकिन फर्क कुछ भी नहीं है। दस-पांच दिन कामवासना से बच जाते हैं तो बुखार मालूम होने लगता है, भारी हो जाती है वासना ऊपर। किसी तरह शरीर की शक्ति को बाहर फेंका जाए तो ही हलकापन लगेगा, नहीं तो नहीं लगेगा। फेंक कर अनुभव होता है, कुछ सार पाया नहीं। लेकिन दो-चार दिन बाद फिर फेंके बिना कोई रास्ता नहीं मालूम पड़ता। क्या कर रहे हैं हम जिंदगी के साथ?

महावीर कहते हैं, हम अपने शत्रु हैं। भोग में भी हम शत्रुता कर रहे हैं, क्योंकि भोग से कभी आनंद पाया नहीं। एक बात को सूत्र समझ लें कि जहां से दुख ही मिलता हो, उस मार्ग का अर्थ है कि हम अपने साथ शत्रुता कर रहे हैं। जहां से आनंद कभी मिलता ही न हो, वहां से मित्रता का क्या अर्थ? जिंदगी में आपने दुख ही पाया है। सारी जिंदगी दुख से भरी हुई है। इस दुख से भरी जिंदगी का अर्थ क्या है? कि हम जिन भी रास्तों पर चल रहे हैं, जो भी कर रहे हैं जीवन में, वह सब अपने साथ शत्रुता है। लेकिन हम अपने को बचा लेते हैं। हम कहते हैं, दूसरे शत्रु हैं, इसलिए तकलीफ पा रहे हैं। यह बचाव है, यह पलायन है, यह होशियारी है आदमी की कि वह कहता है कि दूसरों की वजह से। इस तरह वह टाल देता है, असली कारण को छिपा लेता है और दुख भोगता चला जाता है।

अगर मैं यह मानता हूं कि दूसरे मेरे शत्रु हैं, इसलिए मैं दुख पा रहा हूं, तो फिर मेरे दुख से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है, किसी जगत् में, किसी व्यवस्था में मुझे रहना हो, मैं दुखी रहूंगा। क्योंकि मैंने मौलिक कारण ही छोड़ दिया और एक झूठे कारण पर अपनी नजर बांध ली। लेकिन, एक और भी शत्रुता है, जो इस तरह के शत्रु कभी-कभी इससे ऊब जाते हैं तो करते हैं।

आदमी भोग में अपने को सताता है, यह सुनकर हैरानी होगी। हम तो सोचते हैं, भोग में आदमी बड़ा सुख पाता है। भोग में आदमी अपने को सताता है, फिर इससे ऊब जाता है तो फिर त्याग में अपने को सताता है। पहले खूब खा-खा कर अपने को सताया। आदमी ज्यादा खा-खाकर अपने को सता रहा है। फिर इससे ऊब गया, परेशान हो गया, तो फिर उपवास कर-कर के अपने को सताना शुरू कर देता है, लेकिन सताना जारी रखता है। पहले क्रोध कर-कर के अपने को सताया, दूसरों पर क्रोध कर-कर के, फिर अपने पर क्रोध करना शुरू कर देता है, फिर अपने को सताता है।

तो जिनको हम त्यागी कहते हैं, अकसर वे शीर्षासन करते हुए भोगी होते हैं। उनमें कोई अंतर नहीं होता है, सिर्फ खोपड़ी वे नीचे कर लेते हैं, पैर ऊपर कर लेते हैं। वे भी आप ही जैसे लोग हैं, लेकिन खड़े होने का ढंग उन्होंने उलटा चुना है। पहले एक आदमी स्त्रियों के पीछे दौड़-दौड़ कर अपने को सताता है, फिर स्त्रियों से दूर भाग-भाग कर सताना शुरू कर देता है। लेकिन अपने को सताना जारी रखता है। और दोनों से दुख पाता है।

मैं ऐसे संन्यासी को नहीं मिल पाया खोज-खोज कर, जो कहे कि संन्यास लेकर मैं आनंदित हो गया हूं। इसका क्या मतलब हुआ फिर? संसारी दुखी हैं, यह समझ में आने वाली बात है। ये संन्यासी क्यों दुखी हैं? एक बड़े जैन मुनि से मेरी बात हो रही थी। बड़े आचार्य हैं, आनंद की कोई उन्हें खबर नहीं है। दुख ही दुख का पता है। तो संसारी दुखी है, छोड़ो, क्षमा योग्य है। सब छोड़ कर जो त्यागी खड़ा हो गया, यह भी दुखी है। संसारी की तरकीब है कि वह कहता है, मैं दुखी हूं दूसरों के कारण। और त्यागी की तरकीब यह है कि वह कहता है, दुखी हूं मैं पिछले जन्मों के कारण। मगर दोनों कुशल हैं, कहीं और टाल देते हैं। संसारी टाल देता है दूसरे लोगों पर, संन्यासी टाल देता है दूसरे जन्मों पर। संसारी भी मानता है, मैं जैसा हूं बिल्कुल ठीक हूं, दूसरे गलत हैं। यह त्यागी भी मानता है कि मैं तो अब बिल्कुल ठीक हूं, लेकिन पिछले जन्मों में जो किया है, वह दुख भोगना पड़ रहा है। दोनों का तर्क एक ही है, ये कहीं टाल रहे हैं।

यह बड़े मजे की बात है कि कोई अगर आपसे कहे कि आप अभी पापी हो, तो दुख होता है। और कहे कि पिछले जन्मों का पाप है, तो दुख नहीं होता। क्या मामला है? पिछले जन्म अपने मालूम ही कहां पड़ते हैं! इतना डिस्टेंस है, इतना फासला है कि जैसे किसी और के हों। होगा, इसको तो छोड़ दें, आदमी का मन कैसा है, उसे समझें।

अगर मैं आपसे कहूं, आपने कल भी मुझे गीत सुनाया और आज भी मुझे गीत सुनाया और मैं कहूं कि कल का गीत बढ़िया था, तो आपको दुख होता है। क्योंकि कल से भी संबंध टूट गया। आज मैं आपका अपमान कर रहा हूं, मैं कह रहा हूं कि आज का गीत बढ़िया नहीं था, कल का गीत बढ़िया था। कल तो दूर हो गया। अगर मैं आपसे यह कहूं कि आज का गीत कल से भी बढ़िया है तो खुशी होती है, दोनों गीत आपके हैं। आज का गीत कल से बढ़िया है, खुशी होती है, और मैं कहता हूं, कल का गीत आज से बढ़िया था तो दुख होता है। क्यों? क्योंकि आप अभी के क्षण से अपने को जोड़ते हैं। कल के क्षण से अपने को तोड़ चुके हैं। वह तो जा चुका है।

तो जब कल इतना दूर हो जाता है, तो पिछला जन्म तो बहुर दूर है। हुआ कि नहीं हुआ, बराबर है; किसी और का। बड़े मजे से कह सकते हैं कि पिछले जन्म में पापी था। पाप किए, इसलिए दुख भोग रहा हूं। लेकिन अभी? अभी बिल्कुल ठीक हूं। फिर भी दुख भोग रहा हूं, दूसरों के कारण, दूसरे जन्मों के कारण; लेकिन दूसरा शब्द महत्वपूर्ण है। चाहे वह जन्म हों, चाहे लोग हों।

जो व्यक्ति इस भाषा में सोच रहा है वह महावीर के सूत्र को नहीं समझा अभी। महावीर कहते हैं, दुख भोग रहे हो तो तुम अभी अपने शत्रु हो। उसी शत्रुता के कारण हम दुख भोग रहे हैं। दुख लाक्षणिक है, तुम्हारी शत्रुता का अपने साथ।

कल एक मित्र आए थे, वे जैन संन्यासी साधुओं की तरफ से खबर लाए थे, कुछ साधुओं की तरफ से कि वह वहां से छूटना चाहते हैं, उस जंजाल से। मैंने कहा, जंजाल! वे छूटना चाहते हैं, लेकिन हिम्मत भी नहीं है छूटने की। क्योंकि जब संन्यास लिया था तो बड़ा स्वागत समारंभ हुआ था, और जब छोड़ेंगे तो अपमान होगा, निंदा होगी। लोग कहेंगे, पतन हो गया। इसलिए हिम्मत भी नहीं है, लेकिन वहां बड़ा दुख पा रहे हैं। तो उन्होंने आपके पास खबर भेजी है कि अगर आप कोई उनका इंतजाम करवा दें तो वहां से निकल आएंगे।

मैंने कहा, क्या इंतजाम चाहते हैं? इंतजाम के लिए ही वहां भी गए थे। अगर साधुता के लिए गए होते तो वहां भी साधुता खिल जाती। इंतजाम के लिए वहां भी गए थे। और इंतजाम साधु का बढ़िया है। संन्यासी का संसारी से ज्यादा अच्छा इंतजाम है। कुछ शर्तें उसको पूरी करना पड़ती हैं। तो हजार शर्तें, संसारी को भी पूरी करनी पड़ती हैं। लेकिन उसका इंतजाम बढ़िया है। और संसारी को तो हजार तरह की योग्यताएं होनी चाहिए, तब थोड़ा बहुत इंतजाम कर पाता है। साधु के लिए एक ही योग्यता काफी है कि उन्होंने संसार छोड़ दिया। बाकी सब तरह की अयोग्यता चलेगी।

मुझे साधु मिलते हैं, वे कहते हैं कि आपकी बात ठीक लगती है और हम इस उपद्रव को छोड़ना चाहते हैं; लेकिन अभी जो हमारे पैर छूते हैं, कल वे हमें चपरासी की भी नौकरी देने को तैयार न होंगे। और वे ठीक कहते हैं, ईमानदारी की बात है। देखें अपने साधुओं की तरफ, अगर कल ये साधारण कपड़े पहन कर आपके द्वार पर आ जाएं और कहें कि कोई काम वगैरह दे दें, तो आप उनको काम देने वाले नहीं हैं। पूछेंगे कि सर्टिफिकेट लाओ। पिछली जगह कहां काम करते थे, वहां से कैसे छोड़ा? पुलिस स्टेशन में तो नाम नहीं है! लेकिन इन्हीं साधु के चरण छूने जाते हैं तब इन सबकी इंकवायरी की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि चरण छूने का खर्चा ही नहीं, न कुछ आपको झंझट, न कुछ। पांव छूए, अपने रास्ते पर गए। कुछ लेना-देना नहीं है।

जो लोग संसार से भागते हैं बिना संसार को समझे वे भोग के विपरीत त्याग में पड़ जाते हैं। भोग के विपरीत जो त्याग है, वह त्याग नहीं है, वह भी शत्रुता है। भोग के ऊपर जो त्याग है--भोग के विपरीत नहीं, भोग के पार जो त्याग है, भोग को छोड़ना नहीं पड़ता और त्याग को ग्रहण नहीं करना पड़ता। भोग समझपूर्वक गिरता जाता है और त्याग खिलता जाता है--भोग के पार, बियांडा भोग के विपरीत, अपोजिट नहीं। उसी तल पर नहीं, उस तल के पार। भोग की समझ से जो त्याग निकलता है, भोग के दुख से जो त्याग निकलता है, इनमें फर्क है।

भोग के दुख से जो त्याग निकलता है वह फिर दुख हो जाता है। दुख से दुख ही निकल सकता है। भोग की समझ--और भोग में क्यों दुख पाया? भोग के कारण नहीं, दूसरे के कारण दुख पाया, यह जब ख्याल आता है तो आदमी भोग के पार हो जाता है।

महावीर कहते हैं, जो इस तरह का आदमी है वह अपना मित्र है। साधु को महावीर अपना मित्र कहते हैं, असाधु को शत्रु। लेकिन परीक्षण क्या है कि आप अपने मित्र हैं? मित्र का क्या परीक्षण है?

जिससे सुख मिले, वह मित्र है और जिससे दुख मिले वह शत्रु है। अगर आपको अपने से ही सुख नहीं मिल रहा है तो आप शत्रु हैं। अपने से ही आपको सुख मिलने लगे तो आप मित्र हैं। लेकिन आपको कोई ऐसी बात पता है, जब आपको अपने से सुख मिला हो? एकाध ऐसा क्षण आपको ख्याल है? जब आप अचानक अपने से सुखी हो गए हों?

नहीं, कभी कोई मकान सुख दिया, कभी कोई लाटरी सुख दी, कभी कोई स्त्री सुख दी, पुरुष सुख दिया, कभी कोई हीरा सुख दिया, कभी कोई आभूषण सुख दिया, कभी कोई कपड़ा सुख दिया।

कभी आपको ऐसा ख्याल है कि आपने भी अपने को सुख दिया हो? ऐसी कोई याद है? बड़ी हैरानी की बात है, हमने कभी अपने को आज तब सुख नहीं दिया। हमें पता ही नहीं कि खुद को सुख देने का क्या मतलब होता है। सुख का मतलब ही दूसरे से जुड़ा हुआ है। तब एक बड़ी मजेदार दुनिया बनती है। जिस दुनिया में कोई आदमी अपने को सुख नहीं दे पा रहा है, उस दुनिया में सब एक दूसरे को सुख दे रहे हैं। पत्नी पति को सुख दे रही है, पति पत्नी को सुख दे रहा है। न पति अपने को सुख दे पा रहे हैं, न पत्नी अपने को सुख दे पा रही है और जो आपके पास है ही नहीं, वह आप कैसे दूसरे को दे रहे हैं, बड़ा मजा है।

जो है ही नहीं, वह आप दूसरे को दे रहे हैं। इसलिए आप सोचते हैं, दे रहे हैं। दूसरे तक पहुंचता ही नहीं। पहुंचेगा कैसे? इसलिए पत्नी कहे चली जाती है कि तुम मुझे सुख नहीं दे रहे हो, पति कहे चला जाता है कि तू मुझे सुख नहीं दे रही है। मैं तुझे सुख दे रहा हूं, और तू मुझे सुख नहीं दे रही है। हम सब एक दूसरे से कह रहे हैं कि हम सुख दे रहे हैं और तुम सुख नहीं दे रहे हो। सारी शिकायत यही है जिंदगी की, सारा शिकवा यही तो है कि कोई सुख नहीं दे रहा है और हम इतना बांट रहे हैं। और आप अपने तक को दे नहीं पाते, और दूसरों को बांट रहे हैं।

थोड़ा अपने को दें। और ध्यान रहे, जो अपने को दे सकता है, उसे दूसरों को देना नहीं पड़ता। उसके आसपास की हवा में दूसरे सुखी हो सकते हैं, हो सकते हैं, हो नहीं जाते। वह भी उनकी मर्जी है। नहीं तो महावीर के पास खड़े होकर भी आप दुखी ही होंगे। लोग इतने कुशल है दुख पाने में, कहीं से भी दुख खोज लेंगे। उनको मोक्ष भी भेज दो तो घड़ी दो घड़ी में वे सब पता लगा लेंगे कि क्या-क्या दुख है। मोक्ष भी उनसे बच नहीं सकता। यह जो महावीर वगैरह कहते हैं मोक्ष में आनंद ही आनंद है, इनको पता नहीं आदमियों का। असली आदमी पहुंच जाएं तब पता चलेगा कि वहां दुख ही दुख बता देंगे कि इसमें क्या आनंद है।

महावीर ने मोक्ष की बात कही है कि "सिद्ध-शिला" पर शाश्वत आनंद है। बर्ट्रेड रसल को इससे बहुत दुख हुआ। बर्ट्रेड रसल ने लिखा है कि "शाश्वत!" सदा रहेगा! फिर कभी उससे छुटकारा न होगा! फिर बस आनंद ही आनंद में रहना पड़ेगा! फिर बदलाहट नहीं होगी! इससे मन बहुत घबड़ाता है।

बर्ट्रेड रसल ने कहा है कि इससे तो नरक बेहतर। कम से कम अदल-बदल तो कर सकते हैं। और यह क्या कि सिद्ध शिला पर बैठे हैं, न हिल सकते, न डुल सकते, और आनंद ही आनंद बरस रहा है। कब तक? कितनी देर बरदाश्त करिएगा? थोड़ा सोचें आप भी, आपको भी लगेगा कि प्रास्पेक्ट्स बहुत अच्छे नहीं हैं। इसमें से भी दुख दिखाई पड़ने लगेगा कि नहीं-कभी तो "जस्ट फार ए चेंज", कभी तो कुछ और उपद्रव भी होना चाहिए, बस आनंद ही आनंद! मिठास ज्यादा हो जाएगी। इतनी हम न झेल पाएंगे। हमें थोड़ा तिक्त, नमकीन भी चाहिए। थोड़ा कड़वा, तो उससे थोड़ा जीभ सुधर जाती है। और फिर स्वाद लेने के लिए तैयार हो जाती है।

हमें दुख भी चाहिए तो ही हम सुख को अनुभव कर पाएंगे। तो महावीर का जो परम आनंद है, वह बर्ट्रेड रसल को भयदायी मालूम पड़ा, पड़ेगा। हमको भी पड़ेगा। वह तो हम बिना समझे कहते रहते हैं कि हे भगवान, कब मोक्ष होगा? अभी पता नहीं कि मोक्ष का मतलब क्या है? अगर हो जाए मोक्ष तो बस एक ही प्रार्थना रहेगी, हे भगवान, मोक्ष के बाहर जाना कब हो?

आदमी अपना दुश्मन है, और जब तक उसकी यह दुश्मनी अपने से नहीं टूटती, उसके लिए कोई आनंद नहीं है। आदमी अपना मित्र हो सकता है। बड़ी स्वार्थ की बात मालूम पड़ेगी कि महावीर कहते हैं अपने मित्र हो जाओ। लेकिन, स्वार्थ की बात है नहीं, क्योंकि जो अपना ही मित्र नहीं है, वह किसी का भी मित्र नहीं हो सकता।

महावीर कहते हैं, खुद पहले आनंद को उपलब्ध हो जाओ, यह काफी है। खुद ज्योतिर्मय हो जाओ, प्रकाशित हो जाओ, तभी सोचना कि किसी दूसरे के घर में भी प्रकाश डाल दें। खुद का दीया बुझा हुआ, दूसरों के दीये जलाने चल पड़ते हैं। उस झगड़े में अक्सर ऐसा होता है कि दूसरे का भी जल रहा हो थोड़ा बहुत तो

बुझा आते हैं। क्योंकि अपने बुझे दीये को जो जला हुआ मानता है, जब तक आपका न बुझा दे, तब तक उसको भी जला हुआ नहीं मानेगा। जब बुझ जाता है, तब वह कहता है, जला दिया। अब निश्चित हुए। हम सब एक दूसरे को बुझाने की कोशिश में लगे हैं। खुद बुझे हुए हैं। यही होगा, और कुछ हो भी नहीं सकता।

"पांच इंद्रियां, क्रोध, मान, माया और लोभ तथा सबसे अधिक दुर्जेय अपनी आत्मा को जीतना चाहिए। एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।"

यह एक मित्र हो जाए, जो भीतर छिपा है मेरे। इस एक से ही तालमेल बन जाए, इस एक से ही प्रेम हो जाए, यह एक ही मैं जीत लूं, तो महावीर कहते हैं; सब जीत लिया। इस एक को जीत लेने को महावीर कहते हैं--सब जीत लिया। सारा संसार जीत लिया मगर दुर्जेय है बहुत।

कहते हैं, क्रोध, मान, मोह, लोभ--ये कठिन हैं, इनको जीतना। लेकिन और भी कठिन है स्वयं को जीतना।

क्या कठिनाई होगी स्वयं को जीतने की?

स्वयं को जीतने की कठिनाई सूक्ष्म है। क्रोध को जीतने की कठिनाई स्थूल है, ग्रास है। हम भी समझते हैं कि क्रोध को जीतना चाहिए। जो क्रोधी है, वह भी मानता है कि क्रोध को जीतना चाहिए। जो लोभी है, वह भी मानता है कि लोभ को जीतना चाहिए, क्योंकि लोभ से दुख मिलता है, इसलिए कोई भी जीतना चाहता है। क्रोध से दुख मिलता है--क्रोधी को भी मिलता है। वह भी मानता है कि गलती है हमारी, कष्ट पाते हैं, और जीतना चाहिए, और महावीर ठीक कहते हैं।

महावीर ठीक कहते हैं कि इसका कुल कारण इतना है कि वह क्रोध से दुख पाता है। क्रोध को जीतने में उसका जो रस है वह दुख को जीतने में है। लोभ से भी दुख पाता है, इसलिए कहता है कि ठीक कहते हैं महावीर। दुख जीतना चाहिए। लोभ में दुख है, लेकिन रस उसका दुख जीतने में है।

फिर यह स्वयं को जीतना अति कठिन क्यों है? महावीर कहते हैं, दुर्जेय। क्योंकि आपको ख्याल ही नहीं है कि आपने स्वयं से कभी दुख पाया, यही सूक्ष्मता है। जिस-जिस से दुख पाया, उसको तो हम जीतना चाहते हैं। न जीत पाते हों, कमजोरी है। लेकिन आपको यह ख्याल में ही नहीं है, स्मरण ही नहीं है कि आपने अपने से दुख पाया है। हालांकि सब दुख आपने अपने से पाया।

इसलिए स्वयं को जीतने का कोई सवाल ही नहीं उठता। हम सोचते हैं, स्वयं से तो हमने कभी दुख पाया नहीं, दूसरे से दुख पाया है। दुश्मन को जीतना चाहिए; जो दुख देता हो, उसको सफाया कर देना चाहिए।

अपने से हमने कभी दुख पाया नहीं, यद्यपि पाया सदा अपने से है। तो फिर तरकीब है हमारे मन की एक कि दुख पाते हैं अपने से, आरोपित करते हैं सदा दूसरों पर। दूसरे को सदा शत्रु बना लेते हैं, ताकि खुद को शत्रु न बनाना पड़े। और दूसरे को मिटाने में लग जाते हैं। यह सारी दृष्टि बदले, तो ही व्यक्ति धार्मिक होता है। हटा लें दूसरों पर, जहां-जहां आपने फैलाव किया है, जहां-जहां आपने अड्डे बना रखे हैं दुखों के--हटा लें वहां से।

दुख का घाव भीतर है। वह आप ही हैं दुख। वहां लौट आएं। और जब भी दुख मिले, तो जिसने दुख दिया है उसको भूल जाएं। जिसको दुख मिलता है, उसी को देखें। जिसको दुख मिलता है, वही दुख का कारण है। जो दुख देता है, वह दुख का कारण नहीं है।

यह फैलेसी है, यह भ्रान्ति है। सदा भीतर लौट आएं। कोई गाली दे, तो हमारा ध्यान, पता है कहां जाता है? देने वाले पर जाता है। सदा जब कोई गाली दे तो ध्यान वहां जाए, जिसको गाली दी गई है। जब कोई क्रोध में आगबबूला हो, तो उस पर ध्यान न दें, उस क्रोध का जो परिणाम आप पर हो रहा है, भीतर जो क्रोध उबल रहा है, उस पर ध्यान दें।

जब भी कहीं कोई आपको लगे कि ध्यान का कारण बाहर है, तत्काल आंख बंद कर लें और ध्यान को भीतर ले जाएं, तो आपको अपने परम शत्रु से मिलन हो जाएगा। वह आप ही हैं। और जिस दिन आपको अपने परम शत्रु से मिलन होगा, उसी दिन आप जीतने की यात्रा पर निकलेंगे।

और मजा यह है कि स्वयं को न जानने से ही वह शत्रु है। और जैसे-जैसे ध्यान भीतर बढ़ने लगेगा, वैसे-वैसे स्वयं का जानना बढ़ने लगेगा। और जो शत्रु था, वह एक दिन मित्र हो जाएगा। जो जहर है, वह अमृत हो जाता है, सिर्फ ध्यान के जोड़ को बदलने की बात है। सारी कीमिया, सारी अल्केमी एक है। ट्रांसफर ऑफ अटेंशन, ध्यान का हटाना। गलत जगह ध्यान दे रहे हैं, और जहां देना चाहिए, वहां नहीं दे रहे हैं।

बस, इतना ही हो पाए कि मैं ध्यान ऑब्जेक्ट से हटा कर सब्जेक्ट पर बदल दूं, विषय से हटा लूं, विषयी पर चला जाऊं। जो कुछ भी हो रहा है, मेरा जगत मैं हूं, और सारे कारण मेरे भीतर हैं। अपमान हो, सुख हो, दुख हो, प्रीति हो, सम्मान हो, जो कुछ भी हो, तत्काल मौके को मत चूकें। फौरन ध्यान को भीतर ले जाएं और देखें, भीतर क्या हो रहा है। जल्दी ही भीतर का शत्रु मिल जाएगा। फिर ध्यान को बढ़ाए चले जाएं। उसी शत्रु के भीतर छिपा हुआ परम मित्र भी मिल जाएगा। उस परम मित्र को महावीर ने आत्मा कहा है। वह परम मित्र सबके भीतर छिपा है, लेकिन हमने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया है।

आज इतना ही।

कीर्तन करें, और फिर जाएं।

साधना का सूत्र: संयम (आत्म-सूत्र : 2)

जस्सेवमप्पा उ हवेज्ज निच्छिओ,
 चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं॥
 तं तारिसं नो पइलेन्ति इन्दिया,
 उर्वित्तिवाया व सुदंसणं गिरिं॥
 सरीरमाहु नाव त्ति,
 जीवो वुच्चई नाविओ।
 संसारो अण्णवो वुत्तो,
 जं तरन्ति महेसिणो॥

जिस साधक की आत्मा इस प्रकार दृढ़-निश्चयी हो कि देह भले ही चली जाए, पर मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता, उसे इंद्रियां कभी भी विचलित नहीं कर सकतीं। जैसे भीषण बवंडर सुमेरु पर्वत को विचलित नहीं कर सकता।

शरीर को नाव कहा गया है और जीव को नाविक तथा संसार को समुद्र। इसी संसार समुद्र को महर्षिजन पार कर जाते हैं।

सूत्र के पहले थोड़े से सूत्र।

एक मित्र ने पूछा है कि सदगुरु की खोज हम अज्ञानी जन कर ही कैसे सकते हैं?

यह थोड़ा जटिल सवाल है और समझने योग्य। निश्चय ही, शिष्य सदगुरु की खोज नहीं कर सकता है। कोई उपाय नहीं है आपके पास जांचने का कि कौन सदगुरु है। और संभावना इसकी है कि जिन बातों से प्रभावित होकर आप सदगुरु को खोजें, वे बातें ही गलत हों।

आप जिन बातों से आंदोलित होते हैं, आकर्षित होते हैं, सम्मोहित होते हैं, वे बातें आपके संबंध में बताती हैं, जिससे आप प्रभावित होते हैं उसके संबंध में कुछ भी नहीं बतातीं। यह भी हो सकता है, अक्सर होता है कि जो दावा करता हो कि मैं सदगुरु हूं, वह आपको प्रभावित कर ले। हम दावों से प्रभावित होते हैं और बड़ी कठिनाई निर्मित हो जाती है कि शायद ही जो सदगुरु है, वह दावा करे। और बिना दावे के तो हमारे पास कोई उपाय नहीं है पहचानने का।

हम चरित्र की सामान्य नैतिक धारणाओं से प्रभावित होते हैं, लेकिन सदगुरु हमारी चरित्र की सामान्य धारणाओं के पार होता है। और अक्सर ऐसा होता है कि समाज की बंधी हुई धारणा जिसे नीति मानती है, सदगुरु उसे तोड़ देता है। क्योंकि समाज मान कर चलता है अतीत को और सदगुरु का अतीत से कोई संबंध नहीं होता। समाज मानकर चलता है सुविधाओं को और सदगुरु का सुविधाओं से कोई संबंध नहीं होता। समाज मानता है औपचारिकताओं को, फार्मेलिटीज को और सदगुरु का औपचारिकताओं से कोई संबंध नहीं।

तो यह भी हो जाता है कि जो आपकी नैतिक मान्यताओं में बैठ जाता है, उसे आप सदगुरु मान लेते हैं। संभावना बहुत कम है कि सदगुरु आपकी नैतिक मान्यताओं में बैठे। क्योंकि महावीर नैतिक मान्यताओं में नहीं बैठ सके, उस जमाने की। बुद्ध नहीं बैठ सके, कृष्ण नहीं बैठ सके, क्राइस्ट नहीं बैठ सके। जो छोटे-छोटे

तथाकथित साधु थे, वे बैठ सके। अब तक इस पृथ्वी पर जो भी श्रेष्ठजन पैदा हुए हैं, वे अपनी समाज भी मान्यताओं के अनुकूल नहीं बैठ सके। क्राइस्ट नहीं बैठ सके अनुकूल, लेकिन उस जमाने में बहुत से महात्मा थे, जो अनुकूल थे। लोगों ने महात्माओं को चुना, क्राइस्ट को नहीं। क्योंकि लोग जिन धारणाओं में पले हैं, उन्हीं धारणाओं के अनुसार चुन सकते हैं।

सदगुरु का संबंध होता है सनातन सत्य से। साधुओं, तथाकथित साधुओं का संबंध होता है सामयिक सत्य से। समय का जो सत्य है, उससे एक बात है संबंधित होना; शाश्वत जो सत्य है उससे संबंधित होना बिल्कुल दूसरी बात है। समय के सत्य रोज बदल जाते हैं, रूढ़ियां रोज बदल जाती हैं, व्यवस्थाएं रोज बदल जाती हैं। दस मील पर नीति में फर्क पड़ जाता है, लेकिन धर्म में कभी भी कोई फर्क नहीं पड़ता।

इसलिए अति कठिन है पहचान लेना कि कौन है सदगुरु। फिर हम सबकी अपने मन में बैठी व्याख्याएं हैं। जैसे अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं तो आप कृष्ण को सदगुरु कभी भी न मान सकेंगे। इसका यह कारण नहीं है कि कृष्ण सदगुरु नहीं हैं। इसका कारण यह है कि आप जिन मान्यताओं में पैदा हुए हैं, उन मान्यताओं से कृष्ण का कोई तालमेल नहीं बैठेगा। अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं तो राम को सदगुरु मानने में कठिनाई होगी। अगर आप कृष्ण की मान्यता में पैदा हुए हैं तो महावीर को सदगुरु मानने में कठिनाई होगी। और जिसने महावीर को सदगुरु माना है, वह मोहम्मद को सदगुरु कभी भी नहीं मान सकता।

धारणाएं हमारी हैं, और कोई सदगुरु धारणाओं में बंधता नहीं। बंध नहीं सकता। फिर हम एक सदगुरु के आधार पर निर्णय कर लेते हैं कि सदगुरु कैसा होगा। सभी सदगुरु बेजोड़ होते हैं, अद्वितीय होते हैं, कोई दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं होता। मोहम्मद के हाथ में तलवार है, महावीर के हाथ में तलवार हम सोच भी नहीं सकते। महावीर नग्न खड़े हैं, कृष्ण आभूषणों से लदे बांसुरी बजा रहे हैं। इनमें कहीं कोई मेल नहीं हो सकता। राम सीता के साथ पूजे जाते हैं। एक दम्पति का रूप है। कोई जैन तीर्थंकर पत्नी के साथ नहीं पूजा जा सकता। क्योंकि जब तक पत्नी है, तब तक वह तीर्थंकर कैसे हो सकेगा! तब तक वह गृही है, तब तक तो वह संन्यासी भी नहीं है। हम तो राम का नाम भी लेते हैं तो सीता-राम लेते हैं, पहले सीता को रख न डालें। तब डर लगेगा कि फिर कहीं ऐसे न असदगुरु हमें चुन लें। यहां जरा और बारीक बात है। जिस तरह मैंने कहा कि शिष्य का अहंकार होता है और इसलिए उसे ऐसा भास होना चाहिए कि मैंने चुना। उसी तरह असदगुरु का अहंकार होता है, उसे इसी में मजा आता है कि शिष्य ने उसे चुना। थोड़ा समझ लें।

असदगुरु को तभी मजा आता है, जब आपने उसे चुना हो। असदगुरु आपको नहीं चुनता। सदगुरु आपको चुनता है। असदगुरु कभी आपको नहीं चुनता। उसका तो रस ही यह है कि आपने उसे माना, आपने उसे चुना। इसलिए आप चुनने की बहुत फिकर न करें, खुलेपन की फिकर करें। संपर्क में आते रहें, लेकिन बाधा न डालें, खुले रहें।

इजिप्शियन साधक कहते हैं, व्हेन दि डिसाइपल इज रेडी, दि मास्टर एपीयर्स। और आपकी रेडीनेस, आपकी तैयारी का एक ही मतलब है कि जब आप पूरे खुले हैं, तब आपके द्वार पर वह आदमी आ जाएगा, जिसकी जरूरत है। क्योंकि आपको पता नहीं है कि जीवन एक बहुत बड़ा संयोजन है। आपको पता नहीं है कि जीवन के भीतर बहुत कुछ चल रहा है पर्दे की ओट में। आपके भीतर बहुत कुछ चल रहा है पर्दे की ओट में।

जीसस को जिस व्यक्ति ने दीक्षा दी, वह था जान द बैप्टिस्ट, बप्तिस्मा वाला जान। बप्तिस्मा वाला जान एक बूढ़ा सदगुरु था, जो जोर्डन नदी के किनारे चालीस साल से निरंतर लोगों को दीक्षा दे रहा था। बहुत बूढ़ा और जर्जर हो गया था, और अनेक बार उसके शिष्यों ने कहा कि अब बस, अब आप श्रम न लें। लाखों लोग इकट्ठे होते थे उसके पास। हजारों लोग उससे दीक्षा लेते थे। जीसस के पूर्व बड़े से बड़े गुरुओं में वह एक था। लेकिन बप्तिस्मा वाला जान कहता है कि मैं उस आदमी के लिए रुका हूं, जिसे दीक्षा देकर मैं अपने काम से मुक्त हो जाऊंगा। जिस दिन वह आदमी आ जाएगा, उस दिन मैं विलीन हो जाऊंगा। जिस दिन वह आदमी आ जाएगा,

उसके दूसरे दिन तुम मुझे नहीं पाओगे, और फिर एक दिन आकर जीसस ने दीक्षा ली, और उस दिन के बाद बसिस्मा वाला जान फिर कभी नहीं देखा गया। शिष्यों ने उसकी बहुत खोज की, उसका कोई पता न चला कि वह कहाँ गया। उसका क्या हुआ।

वह जीसस के लिए रुका हुआ था। इस आदमी को सौंप देना था। लेकिन इसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जब यह आदमी आए। और इस आदमी के पास जान जा सकता था। जीसस का गांव जोर्डन से बहुत दूर न था। वह जाकर भी दीक्षा दे सकता था, लेकिन तब भूल हो जाती। तब शायद जीसस उस दीक्षा को ऐसे ही न झेल पाते, जैसा कृष्णमूर्ति को मुसीबत हो गई।

पास ही था गांव, लेकिन जान वहां नहीं गया उसने प्रतीक्षा की कि जीसस आ जाए। जीसस को यह ख्याल तो होना चाहिए कि मैंने चुना है। बुनियादी अंतर पड़ जाते हैं। इतना ख्याल देने के लिए बूढ़ा आदमी श्रम करता रहा और प्रतीक्षा करता रहा। जीसस के आने पर तिरोहित हो गया।

एक आयोजन है जो भीतर चल रहा है, उसका आपको पता नहीं है। आपको पता हो भी नहीं सकता। आप सतह पर जीते हैं। कभी अपने भीतर नहीं गए तो जीवन के भीतरी तलों का आपको कोई अनुभव नहीं है। जब आप खिंचे चले जाते हैं; किसी आदमी की तरफ, तो आप इतना ही मत सोचना कि आप ही जा रहे हैं। कोई खींच भी रहा है। सच तो यह है कि जब चुंबक खींचता होगा लोहे के टुकड़े को तो लोहे का टुकड़ा नहीं जानता है कि चुंबक ने खींचा। चुंबक का उसे पता भी नहीं है। लोहे का टुकड़ा अपने मन में कहता होगा, मैं जा रहा हूं। लोहा जाता है। चुंबक खींचता है, ऐसा लोहे के टुकड़े को पता नहीं चलता।

सदगुरु एक चुंबक है, आप खिंचे चले जाएंगे। आप अपने को खुला रखना। फिर यह भी जरूरी नहीं है कि सब सदगुरु आपके काम के हों। असदगुरु तो काम का है ही नहीं। सभी सदगुरु भी काम के नहीं हैं, जिससे आपका तालमेल बैठ जाए, जिसके साथ आपकी भीतरी रुझान तालमेल खा जाए। तो आप खुले रहना।

जापान में झेन गुरु अपने शिष्यों को एक दूसरे के पास भी भेज देते हैं। यहां तक भी हो जाता है कभी कि एक सदगुरु जो दूसरे सदगुरु के बिल्कुल सैद्धांतिक रूप से विपरीत है, विरोध में है, जो उसका खंडन करता रहता है, वह भी कभी अपने किसी शिष्य को उसके पास भेज देता है। और कहता है कि अब तू वहां जा।

बोकोजू के गुरु ने उसे अपने विरोधी सदगुरु के पास भेज दिया। बोकोजू ने कहा कि आप अपने शत्रु के पास भेज रहे हैं। और अब तक तो मैं यही सोचता था, कि वह आदमी गलत है। तो बोकोजू के गुरु ने कहा: हमारी पद्धतियां विपरीत हैं। कभी मैंने कहा नहीं कि वह गलत है। इतना ही कहा कि उसकी पद्धति गलत है। पद्धति उसकी भी गलत नहीं है, लेकिन मेरी पद्धति समझने के लिए उसकी पद्धति को जब मैं गलत कहता हूं तो तुम्हें आसानी होती है। और मेरी पद्धति जब वह गलत कहता है तो उसके पास जो लोग बैठे हैं, उन्हें समझने में आसानी होती है; कंट्रास्ट, विरोध से आसानी हो जाती है। जब हम कहते हैं, फलां चीज सही है और फलां चीज गलत है तो काले और सफेद की तरह दोनों चीजें साफ हो जाती हैं। लेकिन बोकोजू, तू वहां जा, क्योंकि तेरे लिए वही गुरु है। मेरी पद्धति तेरे काम की नहीं। लेकिन किसी को यह बताना मत। जाहिर दुनिया में हम दुश्मन हैं, और भीतरी दुनिया में हमारा भी एक सहयोग है।

बोकोजू दुश्मन गुरु के पास जाकर दीक्षित हुआ, ज्ञान को उपलब्ध हुआ। जिस दिन ज्ञान को उपलब्ध हुआ, उसके गुरु ने कहा, अपने पहले गुरु को जाकर धन्यवाद दे आ, क्योंकि उसने ही तुझे मार्ग दिखाया। मैं तो निमित्त हूं। उसने ही तुझे भेजा है। असली गुरु तेरा वही है। अगर वह असदगुरु होता तो तुझे रोक लेता। सदगुरु था इसलिए तुझे मेरे पास भेजा है। लेकिन किसी को कहना मत। जाहिर दुनिया में हम दुश्मन हैं। पर वह दुश्मनी भी हमारा शङ्कंत्र है। उसके भीतर एक गहरी मैत्री है। मैं भी वहीं पहुंचा रहा हूं लोगों को, जहां वह पहुंचा रहा है। मगर यह किसी को बताने की बात नहीं है। हमारा जो खेल चल रहा है, उसको बिगाड़ने की कोई जरूरत नहीं है।

एक अन्तर्जगत है रहस्यों का, उसका आपको पता नहीं है। इतना ही आप कर सकते हैं कि आप खुले रहें। आपकी आंख बंद न हो। और आप इतने ग्राहक रहें कि जब कोई आपको चुनना चाहे, और कोई चुम्बक आपको खींचना चाहे तो आपसे कोई प्रतिरोध न पड़े। एक दिन आप सदगुरु के पास पहुंच जाएंगे। यह तैयारी अगर हुई तो आप पहुंच जाएंगे। थोड़ी बहुत भटकन बुरी नहीं है। और ऐसा मत सोचें कि भटकना बुरा ही है। भटकना भी एक अनुभव है। और भटकने से भी एक प्रौढ़ता, एक मैच्योरिटी आती है। जिन गुरुओं को आप व्यर्थ समझ कर छोड़ कर चले जाते हैं, उनसे भी आप बहुत कुछ सीखते हैं। जिनसे आप कुछ भी नहीं सीखते, उनसे भी कुछ सीखते हैं। जिनको आप व्यर्थ पाते हैं, अपने काम का नहीं पाते और हट जाते हैं, वे भी आपको निर्मित करते हैं।

जिंदगी बड़ी जटिल व्यवस्था है, और उसका सृजन का जो काम है, उसके बहु आयाम हैं। भूल भी ठीक की तरफ ले जाने का मार्ग है। इसलिए भूल करने से डरना नहीं चाहिए, नहीं तो कोई आदमी ठीक तक कभी पहुंचता नहीं। भूल करने से जो डरता है वह भूल में ही रह जाता है। वह कभी सही तक नहीं पहुंच पाता। खूब दिल खोल कर भूल करनी चाहिए। एक ही बात ध्यान रखनी चाहिए कि एक ही भूल दुबारा न हो। हर भूल इतना अनुभव दे जाए कि उस भूल को हम दुबारा नहीं करेंगे, तो फिर हम धन्यवाद दे सकते हैं उसको भी, जिससे भूल हुई, जिसके द्वारा हुई, जिसके कारण हुई, जिसके साथ हुई, जहां हुई; उसको भी हम धन्यवाद दे सकते हैं। लेकिन कुछ लोग जीवन की, सृजन की, जो बड़ी प्रक्रिया है उसको नहीं समझते। वे कहते हैं, आप तो सीधा-साधा ऐसा बता दें कि कौन है सदगुरु? हम वहां चले जाएं। आपको जाना पड़ेगा।

भूल, भटकन अनिवार्य हिस्सा है। थोड़ी सी भूलें कर लेने से आपकी गहराई बढ़ती है। और भूलें करके ही आपको पता चलता है कि ठीक क्या होगा। इसलिए असदगुरु का भी थोड़ा सा उपयोग है। वह भी बिल्कुल व्यर्थ नहीं है।

एक बात ध्यान रखें कि परमात्मा के इस विराट आयोजन में कुछ भी व्यर्थ नहीं है। यहां जो आपको व्यर्थ दिखाई पड़ता है, वह भी सार्थक की ओर इशारा है। और यहां अगर असदगुरु हैं, तो वे भी पृष्ठभूमि का काम करते हैं, जिनमें सदगुरु चमक कर दिखाई पड़ जाते हैं, नहीं तो वह भी दिखाई नहीं पड़े। जिंदगी विरोध से निर्मित है। सत्य की खोज असत्य के मार्ग से भी होती है। सही की खोज भूल के द्वार से भी होती है। इसलिए भयभीत न हों, अभय रखें और खुले रहें। भय की वजह से आदमी बंद हो जाता है। वह डरा ही रहता है कि ऐसा न हो कि किसी गलत आदमी से जोड़ हो जाए। इस भय से वह बंद ही रह जाते हैं। बंद आदमी का, गलत आदमी से तो जोड़ नहीं होता, सही आदमी से भी कभी जोड़ नहीं होता। खुले आदमी का गलत आदमी से जोड़ होता है, लेकिन जो खुला है, वह जल्दी ही गलत आदमी के पार चला जाता है। और खुले होने के कारण और गलत के पार होने के अनुभव से जल्दी ही सही के निकट होने लगता है।

इतना स्मरण रखें, सदगुरु आपको चुन ही लेगा। वह सदा मौजूद है। शायद आपके ठीक पड़ोस में हो।

एक दिन हसन ने परमात्मा से प्रार्थना की कि दुनिया में सबसे बुरा आदमी कौन है, बड़े से बड़ा पापी? रात उसे स्वप्न में संदेश आया, तेरा पड़ोसी इस समय दुनिया में सबसे बड़ा पापी है।

हसन बहुत हैरान हुआ। पड़ोसी बहुत सीधा-सच्चा आदमी था। साधारण आदमी था। कोई पाप ऐसी कोई खबर नहीं थी, कोई अफवाह भी न थी। बड़ा चकित हुआ कि पापी पास में है जगत का सबसे बड़ा, और मुझे अब तक कोई पता न चला।

उसने उस रात दूसरी प्रार्थना की कि एक प्रार्थना और मेरी पूरी कर। इस जगत में सबसे बड़ा पुण्यात्मा, सबसे बड़ा ज्ञानी, सबसे बड़ा संत पुरुष कौन है? एक तो तूने बता दिया, अब दूसरा भी बता दें। रात संदेश आया कि तेरा दूसरा पड़ोसी। एक तरफ बाईं तरफ वाला कल था, दाईं तरफ वाला आज है। वह दुनिया में सबसे बड़ा ज्ञानी और सबसे बड़ा रहस्यदर्शी है।

हसन तो हैरान हो गया। यह भी एक साधारण आदमी था। एक चमार था जो जूते बेचता था। यह पहलेवाले आदमी से भी साधारण था। हसन ने तीसरी रात फिर प्रार्थना की कि परमात्मा, तू मुझे और उलझनों

में डाल रहा है। पहले हम ज्यादा सुलझे हुए थे, तेरे इन उत्तरों से हम और मुसीबत में पड़ गए। कैसे पता लगे कि कौन अच्छा है, कौन बुरा है?

तो तीसरे दिन संदेश आया कि जो बंद हैं, उन्हें कुछ भी पता नहीं चलता। जो खुले हैं, उन्हें सब पता चल जाता है। तू एक बंद आदमी है, इसलिए दोनों तरफ तेरे पड़ोस में लोग मौजूद हैं, नरक और स्वर्ग तेरे पड़ोस में मौजूद हैं और तुझे पता नहीं चला। तू बंद आदमी है। तू खुला हो, तो तुझे पता चल जाएगा।

खुला होना खोज है। आपका मस्तिष्क एक खुला मस्तिष्क हो, जिसमें कहीं कोई दरवाजे बंद नहीं, ताले नहीं डाल रखे हैं आपने, जहां से हवाएं गुजरती हैं ताजी, रोज। जहां सूरज की किरणें प्रवेश करती हैं, जहां चांद की चांदनी भी आती है। जहां वर्षा हो तो उसकी बूंदें भी पड़ती हैं। जहां धूप निकले तो भीतर रोशनी पहुंचती है। बाहर अंधेरा हो तो अंधेरा भी भीतर प्रवेश करता है। मन आपका एक खुला आकाश हो, तो सदगुरु आपको चुन लेगा।

सदगुरु ही चुनता है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है: जागृति की, होश की साधना में भय का जन्म हो जाता है, और हर समय डर लगता रहता है कि जीवन-चर्या अस्त-व्यस्त न हो जाए। फिर ऐसा भी लगता है कि क्रोध, काम आदि उठते हैं, तो कर लेने से पांच-सात मिनट में निपट जाते हैं। उनसे मुक्ति हो जाती मालूम पड़ती है। न करो तो दिनों तक उनकी प्रतिध्वनि, उनकी तरंगें भीतर गूंजती रहती हैं। और तब ऐसा लगता है कि इससे तो कर ही लिया होता तो निपट गए होते। तो क्या करें? ऐसी जागृति दमन नहीं है?

दो बातें हैं, एक तो, अगर, जागृति से क्रोध—जो पांच मिनट में निपट जाता है, दो दिन चल जाता है, तो समझना कि वह जागृति नहीं है, दमन ही है। क्योंकि दमन से ही चीजें फैल जाती हैं। भोग से भी ज्यादा उपद्रव खड़ा हो जाता है। अगर कामवासना उठती है और क्षण भर में निपट जाती है। और जागृति से दिनों सरकती है और सघन होने लगती है और मन पर बोझ बन जाती है, तो समझना कि जागृति नहीं है, दमन ही है।

हममें से बहुत से लोग ठीक से समझ नहीं पाते कि जागृति और दमन में क्या फर्क है? उसे समझ लें।

दमन का मतलब है, जो भीतर उठा है, उसे भीतर ही दबा देना, बाहर न निकलने देना। भोग का अर्थ है; उसे बाहर निकलने देना किसी पर।

फर्क समझ लें। दमन का अर्थ है, अपने पर दबा देना; भोग का अर्थ है, दूसरे पर निकाल लेना। जागृति तीसरी बात है—शून्य में निकाल लेना, न अपने पर दबाना, न दूसरे पर निकालना। शून्य में निकाल लेना।

समझें। क्रोध उठा, द्वार बंद कर लें, एक तकिया अपने सामने रख लें और तकिए पर पूरी तरह क्रोध निकाल लें। जितनी आग उबल रही हो, जो-जो करने का मन हो रहा हो, घूंसा मारना हो, पीटना हो तकिए को, पीटें। उसके ऊपर गिरना हो, गिरें, चीड़ना-फाड़ना हो, चीड़ें-फाड़ें। काटना हो, काटें। जो भी करना हो, पूरी तरह कर लें। और यह करते वक्त पूरा होश रखें कि मैं क्या कर रहा हूं, मुझसे क्या-क्या हो रहा है।

इसको ठीक से समझ लें।

यह करते वक्त पूरा होश रखें कि मेरे दांत काटना चाह रहे हैं और मैं काट रहा हूं। मन कहेगा कि यह क्या बचकानी बात कर रहे हो, इसमें क्या सार है? यह वह मन बोल रहा है, जो कह रहा है, असली आदमी को काटो तो सार है, असली आदमी को मारो तो सार है। लेकिन आपको पता है कि घूंसा चाहे आप तकिए में मारें और चाहे असली आदमी में, भीतर की जो प्रक्रिया है, वह बराबर एकसी हो जाती है, उसमें कोई फर्क नहीं है।

शरीर में जो क्रोध के अणु फैल गए खून में, वह तकिए में मारने से भी उसी तरह निकल जाते हैं जैसा असली आदमी में मारने से निकलते हैं। हां असली आदमी में मारने से शृंखला शुरू होती है, क्योंकि अब उसका भी क्रोध जगेगा। अब वह भी आप पर निकालना चाहेगा। तकिया बड़ा ही संत है। वह आप पर कभी नहीं निकालेगा। वह पी जाएगा। अगर आप महावीर को मारने पहुंच जाते तो जिस तरह वे पी जाते, उसी तरह यह

तकिया पी जाएगा। आपको दबाना भी न पड़ेगा, रोकना भी नहीं पड़ेगा और निकालने भी किसी पर नहीं जाना पड़ेगा।

इसको ठीक से समझ लें, तो कैथार्सिस, रेचन की प्रक्रिया समझ में आ जाएगी, रेचन में ही जागरण आसान है। यह है रेचन, निकालना। और आप सोचते होंगे कि हमसे नहीं निकलेगा तो आप गलत सोचते हैं। मैं सैकड़ों लोगों पर प्रयोग करके कह रहा हूँ—आप ही जैसे लोगों पर, बहुत दिल खोल कर निकलता है। सच तो यह है कि दूसरे पर निकालने में थोड़ा दमन तो हो ही जाता है। पूरा नहीं निकल पाता। तो वह जो थोड़ा दमन हो जाता है, वह जहर की तरह घूमता रहता है। दूसरे पर दिल खोलकर कभी निकाला ही नहीं जा सकता, क्योंकि कितना ही बुरा आदमी हो, फिर भी दूसरे आदमी के साथ कितना निकाल सकता है।

एक युवक पर मैं प्रयोग कर रहा था, तो वह पहले तो हंसा। उसने कहा कि आप भी कैसी मजाक करते हैं, तकिए पर! मैंने उससे कहा, मजाक ही सही, तुम शुरू तो करो। पहले तो वह हंसा, थोड़ा उसने कहा कि यह तो एक्टिंग हो जाएगी, अभिनय हो जाएगा। मैंने कहा, होने दो। दो मिनट बाद गति आनी शुरू हो गई। पांच मिनट बाद वह पूरी तरह तल्लीन था।

पांच दिन के भीतर तो वह इतना आनंदित था उस तकिए के साथ, और उसने मुझे तीसरे दिन बताया कि यह चकित होनेवाली बात है। अब मेरा क्रोध मेरे पिता पर है, सारा क्रोध। और अब मैं तकिए में तकिए को नहीं देख पाता, मुझे पिता पूरी तरह अनुभव होने लगे। सातवें दिन वह एक छुरा लेकर आ गया। मैंने कहा, यह छुरा किसलिए ले आए हो? उसने कहा कि अब रोकें मत। जब कर ही रहा हूँ तो अब पूरा ही कर लेने दें। जब इतना निकला है, और मैं इतना हल्का हो गया हूँ, तो पिता की हत्या करने का मेरे मन में न मालूम कितनी दफे ख्याल आया। अपने को दबा लिया हूँ कि यह तो बड़ी गलत बात है, पिता और हत्या!

वह लड़का अमरीका से हिंदुस्तान आया सिर्फ इसलिए कि पिता से इतनी दूर चला जाए कि कहीं हत्या न कर दे। फिर उसने पिता की हत्या कर दी सिंबालिका। छुरा लेकर उसने तकिए को चीर फाड़ डाला, हत्या कर डाली। उस युवक का चेहरा देखने लायक था। जब वह पिता की हत्या कर रहा था और जब मैंने उसे आवाज दी कि अब तू होशपूर्वक कर, तो वह दूसरा ही आदमी हो गया, तत्काल। इधर हत्या चलती रही बाहर, उधर भीतर एक होश का दीया भी जलने लगा। वह अपने को देख पाया। अपनी पूरी नग्नता में, अपनी पूरी पशुता में। और सात दिन के इस प्रयोग के बाद अब वह होश रख सकता है क्रोध में, अब तकिए पर मारने की जरूरत नहीं है। अब क्रोध आता है तो आंख बंद कर लेता है। अब वह क्रोध को देख सकता है सीधा। अब तकिए के माध्यम की कोई जरूरत न रही। क्योंकि असली माध्यम से नकली माध्यम चुन लिया। अब नकली माध्यम से गैर-माध्यम पर उतरा जा सकता है।

तो जिनको भी क्रोध का दमन करना हो, अगर वे जागृति का उपयोग कर रहे हों तो उनको जागृति से कोई संबंध नहीं है। वह सिर्फ क्रोध को दबाना चाह रहे हैं। जिन्हें क्रोध का विसर्जन करना हो, उन्हें क्रोध का प्रयोग करना चाहिए, क्रोध पर ध्यान करना चाहिए। अकेले महावीर ने सारे जगत में दो ध्यानों की बात की है, जिसको किसी और ने कभी ध्यान नहीं कहा। महावीर ने चार ध्यान कहे हैं। दो ध्यान, जिनसे ऊपर उठना है, और दो ध्यान, जिनमें जाना है। दुनिया में ध्यान की बात करने वाले लाखों लोग हुए हैं, लेकिन महावीर ने जो बात कही है वह बिल्कुल उनकी है, वह किसी ने भी नहीं कही।

महावीर ने कहा है, दो ध्यान ऐसे, जिनके ऊपर जाना है, और दो ध्यान ऐसे, जिनमें जाना है। तो हम सोचते हैं, ध्यान हमेशा अच्छा होता है। महावीर ने कहा, दो बुरे ध्यान भी हैं। उनको महावीर कहते हैं, आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान, दो बुरे ध्यान, यह ठीक संतुलन हो जाता है दो भले ध्यान का। भले ध्यान को महावीर कहते हैं—धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। चार ध्यान हैं। रौद्र ध्यान का अर्थ है क्रोध, आर्त ध्यान का अर्थ है दुःख।

जब आप दुख में होते हैं तब आपको पता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। कोई मर गया, उस वक्त आपका चित्त बिल्कुल एकाग्र हो जाता है। आपका प्रेमी मर गया। जितना जिंदे थे वे, तब उन पर कभी एकाग्र नहीं हुआ। अब मर गए तो उन पर चित्त एकाग्र हो जाता है। अगर जिंदे थे, तभी इतना चित्त एकाग्र कर लेते तो शायद उन्हें मरना भी न पड़ता इतनी जल्दी! लेकिन जिंदे में चित्त कहीं कोई एकाग्र होता है? मर गए, इतना धक्का लगता है कि सारा चित्त एकाग्र हो जाता है।

दुख में आदमी चित्त एकाग्र कर लेता है। क्रोध में भी आदमी का चित्त एकाग्र हो जाता है। क्रोधी आदमी को देखो, क्रोधी आदमी बड़े ध्यानी होते हैं। जिस पर उनका क्रोध है, सारी दुनिया मिट जाती है, बस वही एक बिंदु रह जाता है। और सारी शक्ति उसी एक बिंदु की तरफ दौड़ने लगती है। क्रोध में एकाग्रता आ जाती है। महावीर ने कहा है, ये भी दोनों ध्यान हैं। बुरे ध्यान हैं, पर ध्यान हैं। अशुभ ध्यान हैं, पर ध्यान हैं। इनसे ऊपर उठना हो तो इनको करके इनमें जाग कर ही ऊपर उठा जा सकता है।

जब दुख हो, द्वार बंद कर लें। दिल खोल कर रोएं, पीटें, छाती पीटें, जो भी करना हो करें। किसी दूसरे पर न निकालें। हम दुख भी दूसरे पर निकालते हैं। इसलिए अगर लोगों की चर्चा सुनो तो लोग अपने दुख एक दूसरे को सुनाते रहते हैं। यह निकालना है। लोगों की चर्चा का नब्बे प्रतिशत दुखों की कहानी है। अपनी बीमारियां, अपने दुख, अपनी तकलीफें, दूसरे पर निकाल रहे हैं।

मन-लोग कहते हैं, कह देने से हलका हो जाता है। आपका हो जाता होगा, दूसरे का क्या होता है, इसका भी तो सोचें। आप हलके होकर घर आ गए और उनको जिनको फंसा आए आप? इसलिए लोग दूसरे के दुख की बातें सुन कर भी अनसुनी करते हैं, क्योंकि वे अपना बचाव करते हैं। आप सुना रहे हैं, वे सुन रहे हैं, लेकिन सुनना नहीं चाहते।

जब आपको लगता है कि कोई आदमी बोर कर रहा है तो उसका कुल मतलब इतना ही होता है कि वह कुछ सुनाना चाह रहा है, निकालना चाह रहा है, हल्का होना चाह रहा है और आप भारी नहीं होना चाह रहे हैं। आप कह रहे हैं, क्षमा करो। या यह हो सकता है कि आप खुद ही उसको बोर करने का इंतजाम किए बैठे थे, वह आपको कर रहा है।

दुख भी दूसरे पर मत निकालें। दुख को भी एकांत ध्यान बना लें। क्रोध भी दूसरे पर मत निकालें, एकांत ध्यान बना लें। शून्य में होने दें विसर्जन और जागरूक रहें--होशपूर्वक। आप थोड़े ही दिन में पाएंगे कि एक नई जीवन दिशा मिलनी शुरू हो गई, एक नया आयाम खुल गया। दो आयाम थे अब तक--दबाओ या निकालो। अब एक तीसरा आयाम मिला, विसर्जन। यह तीसरा आयाम मिल जाए तो ही आपका होश सधेगा, और होश से अस्त-व्यस्तता न आएगी। और जीवन ज्यादा शांत, ज्यादा मौन, ज्यादा मधुर हो जाएगा।

अगर आपने दमन कर लिया होश के नाम पर, तो जीवन ज्यादा कड़वा, ज्यादा विषाक्त हो जाएगा। अगर मुझसे पूछते हो कि अगर भोग और दमन में ही चुनना हो तो मैं कहूंगा, भोग चुनना, दमन मत चुनना। क्योंकि दमन ज्यादा खतरनाक है। उससे तो भोग बेहतर। लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भोग चुनना। इन दोनों से भी बेहतर एक है विसर्जन। अगर विसर्जन चुन सकें, तो ही भोग छोड़ना। अगर विसर्जन न चुन सकें तो भोग ही कर लेना बेहतर है। तब वह मित्र ठीक कहते हैं कि पांच मिनट में क्रोध निकल जाता है। फिर देखेंगे जब दुबारा, जब दूसरा आदमी निकालेगा, देखा जाएगा। फिलहाल शांति हुई। लेकिन अगर दबा लें तो वह चौबीस घण्टे चलता है।

और ध्यान रखें, कोई भी दबाई हुई चीज की मात्रा उतनी ही नहीं रहती जितनी आप दबाते हैं। वह बढ़ती है, भीतर बढ़ती चली जाती है। जैसे आप पत्नी पर नाराज हो गए। अब आपने क्रोध दबा लिया। अब आप दफ्तर गए, अब चपरासी जरा सी भी बात कहेगा, जो कल बिल्कुल चोट नहीं खाती, आज चोट दे देगी। उसको भी दबा गए। आपने मात्रा बढ़ा ली। अब आपका मालिक बुलाता है और कुछ कहता है। वह कल आपको बिल्कुल नहीं अखरती थी उसकी बात, आज उसकी आंख अखरती है, उसका ढंग अखरता है। वह आपके भीतर जो इकट्ठा

है, वह कलर दे रहा है आपकी आंखों को। रंग दे रहा है। अब उस रंग में सब उपद्रव दिखाई पड़ता है। यह आदमी दुश्मन मालूम पड़ता है। वह जो भी कहता है, उससे क्रोध और बढ़ता है। वह भी आपने इकट्ठा कर लिया।

वह सुबह आप लेकर पत्नी से चले गए थे दफ्तर, सांझ जब आप लौटते हैं तो जो बीज था, वह वृक्ष हो गया। सुबह ही निकाल लिया होता तो मात्रा कम होती, सांझ निकलेगा अब मात्रा काफी होगी। और यह अन्याययुक्त होगा। सुबह तो हो सकता था, न्यायपूर्ण भी होता। इसमें दूसरों पर भी जो क्रोध होता है, वह भी संयुक्त हो गया।

दबाएं मत, उससे तो भोग लेना बेहतर है। इसलिए जो लोग भोग लेते हैं, वे सरल लोग होते हैं। बच्चों को देखें, उनकी सरलता यही है। क्रोध आया, क्रोध कर लिया। खुशी आई खुशी कर ली, लेकिन खींचते नहीं। इसलिए जो बच्चा अभी नाराज हो रहा था कि दुनिया को मिटा देगा, ऐसा लग रहा था, थोड़ी देर बाद गीत गुनगुना रहा है। निकाल दिया जो था, अब गीत गुनगुनाना ही बचा। आप न दुनिया को मिटाने लायक उछल-कूद करते हैं और न कभी तितलियों जैसा उड़ सकते हैं और न पक्षियों जैसा गीत गा सकते हैं। आप अटके रहते हैं बीच में। धीरे-धीरे आप मिक्सचर, एक खिचड़ी हो जाते हैं सब चीजों की। जिसमें न कभी क्रोध निकलता शुद्ध, न कभी प्रेम निकलता शुद्ध, क्योंकि शुद्ध कुछ बचता ही नहीं। सब चीजें मिश्रित हो जाती हैं। और यह जो मिश्रित आदमी है, यह रुग्ण और बीमार आदमी है, पैथालॉजिकल है। इसके प्रेम में भी क्रोध होता है। इसके क्रोध में भी प्रेम भर जाता है। यह अपने दुश्मन से भी प्रेम करने लगता है, अपने मित्र से भी घृणा करने लगता है। इसका सब एक दूसरे में घोल-मेल हो जाता है, इसमें कोई चीजें साफ नहीं होतीं। बच्चे साफ होते हैं। जो करते हैं, उसी वक्त कर लेते हैं। फिर दूसरी चीज में गति कर जाते हैं, फिर पीछे नहीं ले जाते। हम साफ नहीं होते। और जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है वैसे-वैसे सब गड़ु-मड़ु हो जाता है। आत्मा नाम की कोई चीज उनके भीतर नहीं रहती है-एक गड़ु-मड़ु, कनफ्यूजन।

भोग चुन लें, अगर दमन करना हो तो। दमन तो कतई बेहतर नहीं है। लेकिन भोग दुख देगा। दमन दुख देगा। भोग कम देगा शायद, लम्बे अस० में देगा शायद, टुकड़े-टुकड़े में, खंड-खंड में, अलग-अलग मात्रा में देगा शायद। दमन इकट्ठा दे देगा, भारी कर देगा, लेकिन दोनों दुखदायी हैं। मार्ग तो तीसरा है, विसर्जन-न भोग, न दमन। यह जो विसर्जन है, यह है शून्य में वृत्तियों का रेचन, और जब आप शून्य में करते हैं तो जागना आसान है, जब आप किसी पर करते हैं तो जागना आसान नहीं है। जब आप किसी को घूंसा मारते हैं, तो आपको दूसरे पर ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि घूंसे का उत्तर आएगा। जब आप तकिए को घूंसा मारते हैं तो अपने पर पूरा ध्यान रख सकते हैं, क्योंकि तकिए से कोई घूंसा नहीं आ रहा।

अपने पर ध्यान रखें और रेचन हो जाने दें। धीरे-धीरे ध्यान बढ़ता जाएगा और रेचन की कोई जरूरत न रह जाएगी। एक दिन आप पाएंगे, भीतर क्रोध उठता है, होश भी साथ में उठता है। होश के उठते ही क्रोध विसर्जित हो जाता है। अभी जिसे आप होश समझ रहे हैं वह होश नहीं है, दमन की ही एक प्रक्रिया है। रेचन के माध्यम से होश को साधें।

एक छोटा सा प्रश्न और।

एक बहन ने लिखा है कि जब भी मैं आंख बंद करके शून्य में खो जाना चाहती हूं, तभी थोड़ी देर शांति महसूस होती है और फिर भीतर घना अंधेरा छा जाता है। प्रकाश का कब अनुभव होगा? क्या कभी कोई प्रकाश की किरण दिखाई न पड़ेगी?

थोड़ा समझ लें पहली तो बात यह, अंधेरा बुरा नहीं है। और ऐसी जिद्द मत करें कि प्रकाश का ही अनुभव होना चाहिए। आपकी कोई भी जिद्द, कि यह अनुभव होना चाहिए, बाधा है गहराई में जाने में। गहराई में जाना हो तो जो अनुभव हो, उसको पूरे आनंद से स्वीकार कर लेना चाहिए। अंधेरे को स्वीकार कर लें, अंधेरे का

अपना आनंद है। किसने कहा कि अंधेरे में दुख है? अंधेरे की अपनी शांति है, अंधेरे का अपना मौन है, अंधेरे का अपना सौंदर्य है। किसने कहा?

लेकिन हम जीते हैं धारणाओं में। अंधेरे से हम डरते हैं, क्योंकि अंधेरे में पता नहीं कोई छुरा मार दे, जेब काट ले। इसलिए बच्चे को हम अंधेरे से डराने लगते हैं। धीरे-धीरे बच्चे का मन निश्चित हो जाता है कि प्रकाश अच्छा है, अंधेरा बुरा है। क्योंकि प्रकाश में कम से कम दिखाई तो पड़ता है!

मैं एक प्रोफेसर के घर रुकता था। उनका लड़का नौ साल का हो गया। उन्होंने मुझसे कहा कि कुछ समझाएं इसको, इसको रात में भी पाखाना जाना हो--पुराना ढंग का मकान, बीच में आंगन, उस तरफ पाखाना--तो इसके साथ जाना पड़ता है। इतना बड़ा हो गया, अब अकेला जाना चाहिए। रात में इसके पीछे कोई जाए और दरवाजे के बाहर खड़ा रहे तो ही यह जा सकता है। तो मैंने उस लड़के से कहा कि अगर तुझे अंधेरे का डर है तो लालटेन लेकर क्यों नहीं चला जाता? उस लड़के ने कहा, खूब कह रहे हैं आप। अंधेरे में तो मैं किसी तरह भूत-प्रेत से बच जाता हूं, लालटेन में तो वे सब मुझे देख ही लेंगे। अंधेरे में तो मैं ऐसा चकमा देकर, इधर-उधर से निकल जाता हूं।

धारणाएं बचपन से हम निर्मित करते जाते हैं, कुछ भी, चाहे भूत-प्रेत की, चाहे प्रकाश की, चाहे अंधेरे की। फिर वे धारणाएं हमारे मन में गहरी हो जाती हैं। फिर जब हम अध्यात्म की खोज में चलते हैं तब भी उन्हीं धारणाओं को लेकर चलते हैं। उससे भूल होती है। न तो परमात्मा के लिए अंधेरे से कोई विरोध है, न प्रकाश से कोई लगाव है। परमात्मा दोनों में एक सा मौजूद है। जिद्द मत करें कि हमें प्रकाश ही चाहिए। यह जिद्द बचकानी है।

यह जान कर आपको हैरानी होगी कि प्रकाश से ज्यादा शांति मिल सकती है अंधेरे में, क्योंकि प्रकाश में थोड़ी उत्तेजना है, अंधेरा बिल्कुल ही उत्तेजना शून्य है। और प्रकाश में तो थोड़ी चोट है, अंधेरा बिल्कुल ही अहिंसक है। अंधेरा कोई चोट नहीं करता। और प्रकाश की तो सीमा है, अंधेरा असीम है। और प्रकाश को तो कभी करो, फिर बुझ जाता है। अंधेरा सदा है, शाश्वत है। तो क्या घबड़ाहट अंधेरे से?

प्रकाश को जलाओ, बुझाओ, लेकिन अंधेरा न जलता, न बुझता, वह सदा है। थोड़ी देर प्रकाश जला लेते हैं, वह दिखाई नहीं पड़ता। फिर प्रकाश बुझा, अंधेरा अपनी जगह ही था। आप भ्रम में पड़ गए थे। बड़े-बड़े सूरज जलते हैं और बुझ जाते हैं, अंधेरे को मिटा नहीं पाते। वह है। फिर प्रकाश तो कहीं न कहीं सीमा बांधता है। अंधेरा असीम है, अनन्त है। क्या घबड़ाहट, अंधेरे से?

छोड़ दें अंधेरे में अपने को। अगर ध्यान में अंधेरा आ जाता है, लीन हो जाएं अंधेरे में। जो व्यक्ति अंधेरे में भी लीन होने को राजी है, उसे प्रकाश तो दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन स्वयं का अनुभव होना शुरू हो जाएगा, वही प्रकाश है।

जो अंधेरे में भी लीन होने को राजी है, उसने परम समर्पण कर दिया। वह एक होने को राजी हो गया, अनंत के साथ। यह जो अनुभव है एक हो जाने का, उसको ही सिम्बालिक रूप से प्रकाश कहा है, ज्योति कहा है। इन शब्दों में मत पड़ें, इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं है। ईसाई फकीर अकेले हुए हैं दुनिया में जिन्होंने अंधेरे को आदर दिया है, और उन्होंने कहा है: डार्क नाइट ऑफ दि सोल। जब आदमी ध्यान में जाता है तो आत्मा की अंधेरी रात से गुजरता है। वह परम सुहावनी है। है भी। कोई भय न लें।

ध्यान में जो भी अनुभव आए, उस पर आप अपनी अपेक्षा न थोपें कि यह अनुभव होना चाहिए। जो अनुभव आए, उसे स्वीकार कर लें, और आगे बढ़ते जाएं। अंधेरे के साथ दुश्मनी छोड़ दें। जिसने अंधेरे के साथ दुश्मनी छोड़ दी, उसे प्रकाश मिल गया। और जिसने अंधेरे से दुश्मनी बांधी, वह झूठा, कल्पित प्रकाश बनाता रहेगा। लेकिन उसे असली प्रकाश कभी भी मिल नहीं सकता। क्यों? क्योंकि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। और प्रकाश भी अंधेरे का ही एक छोर है। ये दो चीजें नहीं हैं। इनको दो मान कर मत चलें। यह द्वैत छोड़ दें।

परमात्मा अंधेरा दे रहा है तो अंधेरा सही, परमात्मा रोशनी दे रहा है तो रोशनी सही। हमारा कोई आग्रह नहीं। वह जो दे, हम उसके लिए राजी हैं। ऐसे राजीपन का नाम ही समर्पण है।

अब सूत्र।

"जिस साधक की आत्मा इस प्रकार दृढनिश्चयी हो कि देह भले चली जाए, पर मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता, उसे इंद्रियां कभी भी विचलित नहीं कर पातीं। जैसे भीषण बवंडर भी सुमेरु पर्वत को विचलित नहीं कर सकता।"

इस सूत्र के कारण बड़ी भ्रांतियां भी हुई हैं। ऐसे सूत्र कुरान में भी मौजूद हैं, ऐसे सूत्र गीता में भी मौजूद हैं, और उन सबने दुनिया में बड़ा उपद्रव पैदा किया है। उनका अर्थ नहीं समझा जा सका, और उनका अनर्थ समझा गया। इस तरह के सूत्रों की वजह से अनेक लोग सोचते हैं कि अगर कोई धर्म पर खतरा आ जाए धर्म पर-मतलब हिंदू धर्म पर, जैन धर्म पर--तो अपनी जान दे दो। क्योंकि महावीर ने कहा कि चाहे देह भले चली जाए, मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता।

तो अनेक शहीद हो गए नासमझी में। वे यह सोचते हैं कि जैन धर्म छोड़ नहीं सकता, चाहे देह चली जाए। और मजा यह है कि जैन धर्म पकड़ा कभी है ही नहीं, छोड़ने से डर रहे हैं। सिर्फ जैन घर में पैदा हुए हैं, पकड़ा कब था जो आपसे छूट जाएगा? हिंदू धर्म नहीं छोड़ सकते, बस! जब छोड़ने का सवाल आता है, तभी पकड़ने का पता चलता है, और कभी पता नहीं चला। मस्जिद में नहीं जा सकते, क्योंकि हम मंदिर में जाने वाले हैं, लेकिन मंदिर में गए कब? मंदिर में जाने की कोई जरूरत नहीं, जब मस्जिद से झंझट हो तभी मंदिर का ख्याल आता है।

इसलिए बड़ा मजा है। जब हिंदू-मुस्लिम दंगे होते हैं, तब ही पता चलता है कि हिंदू कितने हिंदू, मुस्लिम कितने मुस्लिम। तभी पता चलता है कि सच्चे धार्मिक कौन हैं। वैसे कोई पता नहीं चलता।

मामला क्या है? जिस धर्म को आपने कभी पकड़ा ही नहीं, उसको छोड़ने का कहां सवाल उठता है? जन्म से कोई धर्म नहीं मिलता, क्योंकि जन्म की प्रक्रिया से धर्म का कोई संबंध ही नहीं है। जन्म की प्रक्रिया है बायोलॉजिकल, जैविक। उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। आपके बच्चे को मुसलमान के घर में बड़ा किया जाए, मुसलमान हो जाएगा, हिंदू के घर में बड़ा किया जाए हिंदू हो जाएगा। ईसाई के घर में बड़ा किया जाए ईसाई हो जाएगा। यह जो धर्म मिलता है, यह तो संस्कार है, शिक्षा है घर की। इसका जन्म से, खून से कोई लेना-देना नहीं है। ऐसा नहीं है कि आपके बच्चे को, पहले दिन पैदा हो और ईसाई घर में रख दिया जाए तो कभी वह पता लगा ले कि मेरा खून हिंदू का है। इस भूल में मत पड़ना।

लोग बड़ी भूलों में रहते हैं। माताएं कहती हैं लड़के से कि मेरा खून। और बच्चा पैदा हो, जैसे मैटरनिटी होम में बच्चे पैदा होते हैं, बीस बच्चे एक साथ रख दिए जाएं जो अभी पैदा हुए हैं और बीसों माताएं छोड़ दी जाएं, एक न खोज पाएगी कि कौन सा बच्चा उसका है। आंख बंद करके बच्चे पैदा करवा दिए जाएं, बीसों बच्चे रख दिए जाएं, बीसों माताओं को छोड़ दिया जाए, एक मां न खोज पाएगी कि कौन सा खून उसका है। कोई उपाय नहीं है।

खून का आपको कोई पता नहीं चलता, सिर्फ दिए गए शिक्षाओं और संस्कारों का पता चलता है। खोपड़ी में होता है धर्म, खून में नहीं। तो जिसको मिला मौका आपकी खोपड़ी में डालने का धर्म, वही धर्म आपका हो जाता है। यह सिर्फ अवसर की बात है। लेकिन इससे कोई पकड़ भी पैदा नहीं होती, क्योंकि जो धर्म मुफ्त मिल जाता है, वह धर्म कभी गहरा नहीं होता। जो धर्म खोजा जाता है, और जिसमें जीवन रूपांतरित किया जाता है, और इंच-इंच श्रम किया जाता है, वह धर्म होता है।

तो महावीर कहते हैं: "दृढ-निश्चयी की आत्मा ऐसी होती है कि देह भली चली जाए, धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता।"

धर्म-शासन का अर्थ है कि वह जो अनुशासन, मैंने स्वीकार किया है। वह जो विचार, वह जो साधना, वह जो जीवन पद्धति मैंने अंगीकार की है, उसे मैं नहीं छोड़ूंगा। शरीर तो आज है, कल गिर जाएगा। लेकिन वह जो मैंने जीवन को रूपांतरित करने की कीमिया खोजी है, उसे मैं नहीं छोड़ूंगा।

बुद्ध को ध्यान हुआ, परम ज्ञान हुआ। उस दिन सुबह वे बैठ गए थे वृक्ष के तले और उन्होंने कहा था अपने मन में, सब हो चुका, कुछ होता नहीं। अब तो सिर्फ इस बात को लेकर बैठता हूं इस वृक्ष के नीचे कि अगर कुछ भी न हुआ तो अब उठूंगा भी नहीं यहां से। फिर सब करना छोड़ कर वे वहीं लेट गए। फिर उन्होंने कहा, अब उठूंगा नहीं, अब बात खत्म हो गई। अब सब यात्रा ही व्यर्थ हो गई तब इस शरीर को भी क्यों चलाए फिरना? कहीं कुछ मिलता भी नहीं, तो अब जाना कहां है? कुछ करने से कुछ होता भी नहीं, तो अब करने का भी क्या सार है? अब कुछ भी न करूंगा, मैं जिंदा ही मुर्दा हो गया। अब तो इस जगह से न हटूंगा। यह शरीर यहीं सड़ जाए, गल जाए, मिट्टी में मिल जाए। उसी रात ज्ञान की किरण जग गई। उसी रात दीया जल उठा। उसी रात उस महासूर्य का उदय हो गया। क्या हुआ मामला? पहली दफा, आखिरी चीज दांव पर लगा दी। आखिरी दांव लगाते ही घटना घट जाती है।

हम दांव पर भी लगाते हैं तो बड़ी छोटी-मोटी चीजें लगाते हैं। कोई कहता है कि आज उपवास करेंगे। क्या दांव पर लगा रहे हैं? इससे आपको लाभ ही होगा, दांव पर क्या लगा रहे हैं? क्योंकि गरीब आदमी तो उपवास वगैरह करते नहीं। ज्यादा जो खा जाते हैं, ओवर फैड, वे करते हैं। तो आपको थोड़ा लाभ ही होगा। डाक्टर कहेंगे, अच्छा ही हुआ, कर लिया। थोड़ा ब्लडप्रेशर कम होगा, उम्र थोड़ी बढ़ जाएगी।

यह बड़े मजे की बात है, जिन समाजों में ज्यादा भोजन उपलब्ध है, वे ही उपवास को धर्म मानते हैं। जैसे जैनी, वे उपवास को धर्म मानते हैं। इसका मतलब, ओवर फैड लोग हैं। ज्यादा खाने को मिल रहा है, इसलिए उपवास में धर्म दिखाई पड़ा है। गरीब आदमी का धर्म देखा? जिस दिन धर्म दिन होता है, उस दिन वह मालपुआ बनाता है। गरीब आदमी का धर्म का दिन होता है भोजन का उत्सव। अमीर आदमी के धर्म का दिन होता है, अनशन। ये दोनों ठीक हैं, बिल्कुल, लॉजिकल हैं। होना भी ऐसा ही चाहिए। होना भी यही चाहिए, क्योंकि साल भर तो मालपुआ गरीब आदमी खा नहीं सकता, धर्म के दिन ही खा सकता है। जो साल भर मालपुआ खाते हैं इनके लिए धर्म के दिन ये क्या खाएंगे, कोई उपाय नहीं। उपवास कर सकते हैं। कुछ नया कर लेते हैं।

लोग कहीं उपवास करके दांव पर लगाते हैं। कोई टुश्ची चीजें छोड़ते रहता है। कोई कहता है, नमक छोड़ दिया। कोई कहता है, घी छोड़ दिया। इनसे कुछ भी न होगा। ये दांव दांव नहीं हैं, धोखे हैं। यह ऐसा है जैसा एक करोड़पति जुआ खेल रहा हो और एक कौड़ी दांव पर लगा दे, ऐसा। जुए का मजा ही नहीं आएगा। जुए का मजा ही तब है कि करोड़पति सब लगा दे। और एक क्षण को ऐसी जगह आ जाए कि अगर हारा तो भिखारी होता हूं। उस क्षण में जुआ भी ध्यान बन जाता है। उस क्षण में सब विचार रुक जाते हैं।

आपको जान कर हैरानी होगी, जुए का मजा ही यही है कि यह भी एक ध्यान है। जब पूरा दांव पर कोई लगाता है, तो छाती की धड़कन रुक जाती है एक सेकेंड को कि अब क्या होता है; इस पार या उस पार, नरक या स्वर्ग, दोनों सामने होते हैं और आदमी बीच में हो जाते हैं। सस्पेंस हो जाता है, सारा विचार, चिंतन बंद हो जाता है। प्रतीक्षा भर रह जाती है कि अब क्या होता है। सब कंपन रुक जाता है, श्वास रुक जाती है कि कहीं श्वास के कारण कोई गड़बड़ न हो जाए। उस क्षण में, जो थोड़ी सी शांति मिलती है, वही जुए का मजा है। इसलिए जुए का इतना आकर्षण है।

और जब तक सारी दुनिया ध्यान को उपलब्ध नहीं होती, तब तक जुआ बंद नहीं हो सकता क्योंकि जिनको ध्यान का कोई अनुभव नहीं, वह अलग-अलग तरकीबों से ध्यान की झलक लेते रहते हैं, जुए से भी मिलती है झलक। पर झलक काहे की? दांव की। धर्म भी एक बड़ा दांव है।

महावीर कहते हैं, शरीर चाहे चला जाए, लेकिन वह जो धर्म का अनुशासन मैंने स्वीकार किया है, उसे मैं नहीं छोड़ूंगा। ऐसा जो दृढ़ निश्चय कर लेता है, ऐसा जो संकल्प कर लेता है, उसे फिर इंद्रियां कभी भी विचलित नहीं कर पातीं, जैसे सुमेरु पर्वत को हवाओं के झोंके विचलित नहीं कर पाते।

शरीर को कहा है नाव, जीव को कहा नाविक, संसार को कहा है समुद्र। इस संसार-समुद्र को महर्षिजन पार कर जाते हैं।

शरीर को कहा है नाव।

इस वचन को समझ लेना ठीक से। क्योंकि महावीर को मानने वाले भूल गए मालूम होता है इस वचन को। अगर शरीर है नाव, तो नाव मजबूत होनी चाहिए, नहीं तो सागर पार नहीं होगा। देखो जैन-साधुओं के शरीर। कोई उनकी नाव में बैठने को तैयार भी न हो कि कहां डुबा दें, कुछ पता नहीं। डूबी हालत ही है उनकी। और शरीर का वह एक ही उपयोग कर रहे हैं जैसे कोई नाव का उपयोग कर रहा हो, उसमें और छेद करता चला जाए। इसको हम तपश्चर्या कहते हैं। महावीर नहीं कह सकते, क्योंकि महावीर कहते हैं, शरीर है नाव।

नाव तो स्वस्थ होनी चाहिए--अच्छिद्र। उसमें कोई छेद नहीं होना चाहिए। बीमारी छेद है। शरीर तो ऐसा स्वस्थ होना चाहिए कि उसपार तक ले जा सके। महावीर के पास ऐसा शरीर था। लेकिन कहीं कोई भूल हो गई है। उनका मानने वाला शरीर का दुश्मन हो गया है। वह समझता है गलाओ शरीर को, मिटाओ शरीर को। जितना मिटाए, उतना बड़ा आदमी है। अगर भक्तों को पता चल जाए कि थोड़ा ठीक से खाना खा रहे हैं उनके गुरु, तो प्रतिष्ठा चली जाती है। अगर भक्तों को पता चल जाए कि थोड़ा ठीक से विश्राम कर लेते हैं लेट कर, तो सब गड़बड़ हो जाता है। तो अगर जैन साधुओं को ठीक से लेटना भी हो, ठीक से भोजन भी करना हो, उसके लिए भी चोरी करनी पड़ती है। क्योंकि वह जो भक्त-गण हैं चारों तरफ, दुश्मन की तरह लगे हैं। वे पता लगा रहे हैं, क्या कर रहे हो, क्या नहीं कर रहे हो।

एक दिगंबर जैन मुनि एक गांव में ठहरे थे। तो दिगंबर जैन मुनि तो किसी चीज पर सो नहीं सकता-किसी वस्त्र पर, बिस्तर पर--किसी चीज पर सो नहीं सकता। सर्द रात्रि थी। तो क्या किया जाए, तो दरवाजा बंद कर दिया जाता है, थोड़ी-बहुत गर्मी हो जाए। और किस तरह के पागलपन चलते रहते हैं। घासफूस डाल दिया जाता है कमरे में, वह भी भक्त गण डालते हैं। क्योंकि अगर मुनि खुद कहे कि घास-फूस डाल दो, तो उसका मतलब हुआ, तुम शरीर के पीछे पड़े हो? तुम्हें शरीर का मोह है। जब आदमी आत्मा ही है, तो फिर क्या सर्दी और क्या गर्मी। तो पुआल डाल देते हैं। लेकिन वह पुआल भी भक्त ही डालें। वह मुनि कह नहीं सकता कि तुम डाल दो। डली है, इसलिए मजबूरी में उस पर सो जाता है।

मैं उस गांव में था, मुझे पता चला कि रात में जिन भक्तों ने पुआल डाली थी, वे जाकर देख भी आते हैं कि पुआल ऊपर तो नहीं कर ली, नीचे डली रहे। ऐसे दुष्ट भक्त भी मिल जाते हैं कि वह पुआल कहीं ऊपर तो नहीं कर दी। नहीं की हो तो निश्चित लौट आते हैं कि ठीक आदमी है। अगर कर ली हो, तो सब भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसा होता है कि पर-दुख का रस है। और पर-दुख का जिनको रस है वे वैसे आदमी को आदर दे सकते हैं, जिसको स्व-दुख का रस हो। अगर इसको मनोविज्ञान की भाषा में कहें, तो दो तरह के लोग हैं दुनिया में, सैडिस्ट और मैसोचिस्ट। सैडिस्ट वे लोग हैं जो दूसरे को दुख देने में मजा लेते हैं, और मैसोचिस्ट वे लोग हैं जो खुद को दुख देने में मजा लेते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि हिंदुस्तान में इन दोनों के बड़े तालमेल हो गए हैं। मैसोचिस्ट हो गए हैं गुरु और सैडिस्ट हो गए हैं शिष्य।

तो गुरु को कितनी तकलीफ--गुरु अपने हाथ सिर उठा रहा है, उतना शिष्य चर्चा करते हैं कि क्या तुम्हारा गुरु, हमारा गुरु तो कांटों पर सोया हुआ है। जैसे कि यह कोई सर्कस है। यहां कौन कहां सोया हुआ है, इसका सब निर्णय होनेवाला है। कौन खा रहा है, कौन नहीं खा रहा है, इसका निर्णय होनेवाला है। कौन पानी पी रहा है, कौन नहीं पी रहा है, इसका निर्णय होने वाला है। निर्णायक एक ही बात है कि शरीर की कौन कितनी बुरी तरह से हिंसा कर रहा है।

महावीर का यह मतलब नहीं हो सकता। महावीर कहते हैं, शरीर को कहता हूं नाव। इससे ज्यादा आदर शरीर के लिए और क्या होगा? क्योंकि नाव के बिना नदी पार नहीं हो सकती। इसलिए शरीर मित्र है, शत्रु नहीं। शरीर साधन है, शत्रु नहीं। शरीर मार्ग है, शत्रु नहीं। शरीर उपकरण है, शत्रु नहीं। और उपकरण का जैसा उपयोग करना चाहिए वैसा शरीर का उपयोग करना चाहिए। कि कोई कहे कि कार से पार करनी है यात्रा और पेट्रोल हम देंगे न कार को। कोई कहे कि शरीर से करनी है यात्रा और भोजन डालेंगे न शरीर में, तो फिर वह शरीर के यंत्र को नहीं समझ पा रहा है।

महावीर ने कहा है कि किसी भी दिशा में असंतुलित न हो जाओ, न तो इतना भोजन डाल दो कि नाव भोजन से ही डूब जाए, और न इतना अनशन कर दो कि नाव के प्राण बीच नदी में ही निकल जाएं। सम्यक-- इतना जितना पार होने में सहयोगी हो, बोझ न बने। इतना कम भी नहीं कि अशक्य हो जाए और बीच में डूब जाए। सम्यक भाव शरीर के प्रति हो, और शरीर का पूरा ध्यान रखना जरूरी है।

"जीव को नाविक और संसार को समुद्र।"

वह जो भीतर बैठी हुई आत्मा है, वह जो चेतना है, वह है यात्री। और सारा संसार है समुद्र, उससे पार होना है। वह बुरा है, ऐसा नहीं है। उसके साथ कोई दुर्भाव पैदा करना है, ऐसा भी नहीं। लेकिन वहां कोई किनारा नहीं है, वहां कोई विश्राम की जगह नहीं है। वहां अशांति रहेगी, तूफान रहेंगे, आंधियां रहेंगी। अगर आंधियों, अशांतियों और दुखों और पीड़ाओं से बचना हो तो इस संसार सागर को पार करके, तट पर पहुंच जाना चाहिए, जहां आंधियों और तूफानों का कोई प्रभाव नहीं है। और जब तक कोई सागर में है तब तक डूबने का डर बना ही रहेगा, कितनी ही अच्छी नाव हो। नाव पर ही डूबना, न डूबना निर्भर नहीं है, सागर की उताहल तरंगें भी हैं। भयंकर आघात होते हैं, तूफान हैं, आंधियां उठती हैं, वर्षा आती है। इससे जितनी जल्दी कोई पार हो सके।

अगर हम इस प्रतीक को ठीक से समझें और अपने चारों तरफ संसार को देखें तो वहां क्रोध है, दुख है, पीड़ा है, संताप है, उपद्रव ही उपद्रव है। और हम उसके बीच में खड़े हैं। और यह एक शरीर ही मार्ग है जिससे हम उसके पार उठ सकें।

अगर संसार को कोई समुद्र की तरह देख पाए तो बराबर समुद्र की तरह दिखाई पड़ेगा। और महावीर के समय में तो छोटा-मोटा समुद्र था, अब तो बड़ा समुद्र दिखाई पड़ता है। महावीर के जमाने में भारत की आबादी भी दो करोड़ से ज्यादा नहीं थी। अब भारत दुनिया को मात किए दे रहा है, आबादी में। अब ऐसा समझो, जमीन हमने बचने नहीं दी, समुद्र ही समुद्र हुआ जा रहा है। सारी दुनिया की आबादी साढ़े तीन अरब हो गई है। इस सदी के पूरे होते-होते भारत की ही आबादी एक अरब होगी। आदमियों का सागर है। और आदमियों के सागर में, आदमियों की वृत्तियों, इंद्रियों, क्रोध, रोष, मान, अपमान, इन सबका भयंकर झंझावात है।

अगर महावीर इस सागर को देखें तो वे कहें, अब जरा नाव को और ठीक से संभालना। क्योंकि आदमी अकेला पैदा नहीं होता, अपने सारे पाप, अपने सारे रोग, अपनी सारी वृत्तियों को लेकर पैदा होता है। और हर आदमी इस पूरे सागर में तरंगें पैदा करता है। जैसे मैं सागर में एक पत्थर फेंक दूं, तो वह एक जगह गिरता है, लेकिन उसकी लहरें पूरे सागर को छूती हैं। जब एक बच्चा इस जगत में पैदा होता है तो एक पत्थर और गिरा।

उसकी लहरें सारे जगत को छूती हैं। वह हिटलर बनेगा, कि मुसोलिनी बनेगा, कि तोजो बनेगा, कि क्या बनेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। उसकी लहरें सारे जगत को कंपाएंगी।

यह जो सागर है हमारा, इसको महर्षिजन पार कर जाते हैं। सांसारिक आदमी और धार्मिक आदमी में एक ही है फर्क। सांसारिक आदमी वह है जो इस सागर में गोल-गोल चक्कर काटता रहता है। कभी आपने नाव देखी? उसमें दो डांड लगाने पड़ते हैं। एक डांड बंद कर दें और एक ही डांड चलाएं, तब आपको पता लगेगा कि सांसारिक आदमी कैसा होता है। एक ही डांड चलाएं तो नाव गोल-गोल चक्कर खाएगी। जगह वही रहेगी, यात्रा बहुत होगी। पहुंचेंगे कहीं भी नहीं, लेकिन पसीना काफी झरेगा। लगेगा कि पहुंच रहे हैं, और गोल-गोल चक्कर खाएंगे।

आपकी जिंदगी गोल चक्कर तो नहीं है? एक व्हिशियस सर्कल तो नहीं है? क्या कर रहे हैं आप, गोल-गोल घूम रहे हैं? कल जो किया था, वही आज भी कर रहे हैं, वही परसों भी किया था, वही पूरी जिंदगी किया है रोज-रोज, वही और जिंदगियों में भी किया है। एक ही नाव का डांड मालूम पड़ती चल रही है और आप गोल-गोल घूम रहे हैं।

धार्मिक आदमी गोल नहीं घूमता, एक सीधी रेखा में तट की तरफ यात्रा करता है। दोनों डांड हाथ में होने चाहिए, दोनों पतवार। न तो बाएं झुके, और न दाएं। ठीक से समझ लें, यही संयम का अर्थ है। अगर नाव को बिल्कुल ठीक चलाना हो तो दोनों साधने पड़ेंगे, न बाएं झुक जाए नाव, न दाएं। जरा दाएं झुके तो बाएं झुका लें, जरा बाएं झुके तो दाएं झुका लें और बीच सीधी रेखा में लीनियर, एक रेखा में यात्रा करें। तो आप किसी दिन तट पर पहुंच पाएंगे।

संयम का इतना ही अर्थ है कि दोनों तरफ विषमताएं हैं। भोग की है, त्याग की है, दोनों के बीच संयम है। नरक की, स्वर्ग की दोनों के बीच संयम। सुख की, दुख की, दोनों के बीच संयम। शत्रु भी झुकाते हैं। मित्र भी झुकाते हैं। दोनों के बीच संयम है। कोई न झुका पाए और आपकी नाव बीच में चल पाए। ऐसा अगर आप बीच में नाव को चला सकें सीधी रेखा में, तो किसी दिन आप तट पर पहुंच सकते हैं। लेकिन सीधी रेखा में चलने वाले आदमी के अनुभव बदल जाएंगे। उसके जीवन में पुनरुक्ति नहीं होनी चाहिए। जिसके जीवन में पुनरुक्ति हो रही है, वह आदमी गोल-गोल घूम रहा है। लेकिन इसका मतलब यह मत समझना आप कि रोज नया भोजन होगा तो पुनरुक्ति न होगी। कि रोज नये कपड़े पहन लेंगे तो पुनरुक्ति न होगी। कपड़े-भोजन का सवाल नहीं है, वृत्ति का सवाल है। आपकी वृत्तियां पुनरुक्ति में तो नहीं घूम रही हैं। सरकुलर तो नहीं है, इसका ध्यान रखना चाहिए।

कभी आपने ख्याल किया कि जब भी आप क्रोध करते हैं, फिर वैसे ही करते हैं जैसा पहले किया था। कुछ भी न सीखा जीवन से। जब फिर प्रेम में गिरते हैं तब फिर वैसे ही गिरते हैं जैसे पहले गिरे थे। फिर वही बातें करने लगते हैं जो पहले करके उपद्रव खड़ा कर चुके हैं। फिर वही मूढ़ता, फिर पुनरुक्ति कर रहे हैं आप। जिंदगी को थोड़ा जांचें, पीछे लौट कर एक नजर फेंकें। जिंदगी पर एक सर्च लाइट फेंकना जरूरी है पीछे जिंदगी पर। उसमें देखें कि आप जिंदगी जी रहे हैं कि चक्कर में घूम रहे हैं। अगर आप चक्कर में घूम रहे हैं तो समझें कि यही संसार है।

हम संसार का अर्थ ही चक्कर करते हैं। इस मुल्क में हमने संसार शब्द को ही इसलिए चुना है। संसार का मतलब होता है: दि व्हील, चक्का। वह गोल-गोल घूमता रहता है। भ्रम होता है यात्रा का, मंजिल नहीं आती। जिसे भी मंजिल लानी है, उसे एक रेखा में चलने की कला सीखनी पड़ती है, वही धर्म है।

जो कल हो चुका, उससे सीखें और पार जाएं, दुहराएं मत। और जिंदगी में जिन रास्तों से गुजर गए उन पर से बार-बार गुजरने का मोह छोड़ दें। कोई सार नहीं है। जहां से गुजर गए, वहां से गुजर ही जाएं, उसको पकड़े मत रखें। कल किसी ने गाली दी थी, वह बात हो गई। उस रास्ते को छोड़ दें, आगे बढ़ें लेकिन वह गाली

अटकी हुई है। जिसके मन में कल की गाली अटकी हुई है, वह वहीं रुक गया। उसने गाली को मील का पत्थर बना लिया। जमीन में गाड़ दिया खम्बा और उसने कहा, अब हम यहीं रहेंगे। अब हम आगे नहीं जाते।

अगर आपको कल अब भी सता रहा है, बीता हुआ कल, तो आप वहीं रुक गए हैं। अगर इसको हम सोचें तो हमें तो बड़ी हैरानी होगी कि हम कहां रुक गए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं आमतौर से लोग बचपन में ही रुक जाते हैं। फिर शरीर ही बढ़ता रहता है। न बुद्धि बढ़ती है, न आत्मा बढ़ती है, कुछ नहीं बढ़ता है, वहीं रुक जाते हैं। इसलिए आपके बचपन को जरा में निकाला जा सकता है। अभी एक आदमी आप पर हमला बोल दे तो आप एकदम चीख मार कर नाचने-कूदने लगेंगे। आप भूल जाएंगे कि आप क्या कर रहे हैं। अगर आपका चित्र उतार लिया जाए, या आपको स्मरण दिलाया जाए तो यह शायद आप जब पांच साल के बच्चे थे, जो करते, वही आपने किया। मतलब, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, आपका रिग्रेशन हो गया, आप पीछे लौट गए बचपन में। उस खूँटे पर पहुंच गए, जहां आप बंधे हैं।

इसलिए मनस्विद किसी भी व्यक्ति की मानसिक बीमारी दूर करना चाहते हैं तो पहले उसके अतीत जीवन में उतरते हैं, खासकर उसके बचपन में उतरते हैं। वे कहते हैं, जब तक हम तुम्हारा बचपन न जान लें तब तक हम जान नहीं सकते, तुम कहां रुक गए हो। कहां रुक जाने से तुम्हारा सारा उपद्रव पैदा हो रहा है। हम सब रुके हुए लोग हैं। गति नहीं है जीवन में, यात्रा नहीं है।

महावीर कहते हैं: "महर्षिजन पार कर जाते हैं इस सागर को। पार करने का मार्ग है, संयम।"

अतियों से बच जाना। दो अतियों के बीच जो बच जाता है, वह तट पर पहुंच जाता है। लेकिन हम क्या करते हैं? हम घड़ी के पेंडुलम की तरह हैं।

घड़ी का पेंडुलम, पुरानी घड़ियों का-नई घड़ियों में ख्याल नहीं आता, कुछ पुरानी घड़ी पर जरा ध्यान करना चाहिए। दीवाल घड़ी का पेंडुलम जाता है बाएं, दाएं, घूमता रहता है। जब वह दाएं जाता है तब ऐसा लगता है कि अब बाएं कभी न आएगा। वहां भूल कर रहे हैं आप। जब वह दाएं जा रहा है तब वह बाएं आने की ताकत जुटा रहा है, मोमेंटम इकट्ठा कर रहा है। वह बाएं जा ही इसलिए रहा है कि दाएं जाने की ताकत इकट्ठी हो जाए। फिर वह दाएं जाएगा। जब वह दाएं जाता है तब वह फिर बाएं जाने की ताकत इकट्ठी करता है। और इसी तरह वह घूमता रहता है। हम भीहममें से एक आदमी कहता है कि उपवास करना है। ये अब बाएं जा रहे हैं। अब ये फिर भोजन जोर से करने की ताकत जुटाएंगे। एक आदमी कहता है, ऊब गए हम तो वासनाओं से, अब त्याग करना है, अब यह बाएं जा रहे हैं।

अतियों में डोलना बहुत आसान है। इसलिए एक बहुत बड़ी घटना घटती है दुनिया में। क्रोध अगर चाहे तो एक क्षण में क्षमावान हो जाते हैं। दुष्ट अगर चाहें तो एक क्षण में शांति को धारण कर लेते हैं। भोगी अगर चाहें तो एक क्षण में त्यागी हो जाते हैं। देर नहीं लगती। क्योंकि एक अति से दूसरी अति पर लौट जाने में कोई अड़चन नहीं है। बीच में रुकना कठिन है। भोगी संयम पर आ जाए, यह कठिन है। त्याग पर जा सकता है। त्यागी भोग में आ जाए, यह आसान है। संयम में आना कठिन है। एक उपद्रव से दूसरा उपद्रव चुनना आसान है, क्योंकि उपद्रव की हमारी आदत है, उपद्रव कोई भी हो, उसे हम चुन सकते हैं। बीच में रुक जाना, निरुपद्रवी हो जाना अति कठिन है।

महावीर संयम को सूत्र कहते हैं, धर्म का। यह शरीर है नाव। इसका उपकरण की तरह उपयोग करें। यह आत्मा है यात्री, इसे वर्तुलों में मत घुमाएं, इसे एक रेखा में चलाएं। यह संसार है सागर, इसमें एक डांड की नाव मत बनें। इसमें दोनों पतवार हाथ में हों, और दोनों पतवार बीच में सधने में सहयोगी बनें, इस पर दृष्टि हो। तो एक दिन व्यक्ति जरूर ही संसार के पार हो जाता है।

संसार के पार होने का अर्थ है: दुख के पार हो जाना, संताप के पार हो जाना।

संसार के पार होने का अर्थ है: आनंद में प्रवेश।

जिसे हिंदुओं ने "सच्चिदानंद" कहा है, उसे महावीर ने "मोक्ष" कहा है। उसे ही बुद्ध ने "निर्वाण" कहा है। उसे जीसस ने "किंगडम ऑफ गॉड" कहा है, ईश्वर का राज्य कहा है। कोई भी हो नाम, जहां हम हैं उपद्रव में, वहां वह नहीं है। इस उपद्रव के पार कोई तट है, जहां कोई आंधी नहीं छूती, जहां कोई तूफान नहीं उठता, जहां सब शून्य और शांत है।

इतना ही।

अब हम कीर्तन करें।

विकास की ओर गति है धर्म (लोकतत्व-सूत्र: 1)

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जन्तवो।
 एस लोगो त्ति पण्णतो, जिणेहिं वरदंसिहि॥
 गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
 भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं॥
 वत्तणालक्खणो कालो,
 जीवो उवओगलक्खणो।
 नाणेणं दंसणेणं च,
 सुहेणं य दुहेण य॥

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव--ये छह द्रव्य हैं। केवल दर्शन के धर्ता जिन भगवानों ने इन सबको लोक कहा है।

धर्म द्रव्य का लक्षण गति है; अधर्म द्रव्य का लक्षण स्थिति है, सब पदार्थों को अवकाश देना--आकाश का लक्षण है।

काल का लक्षण वर्तना (बरतना) है, और उपयोग अर्थात् अनुभव जीव का लक्षण है। जीवात्मा ज्ञान से, दर्शन से, दुख से तथा सुख से जाना पहचाना जाता है।

ऐसा मनुष्य खोजना मुश्किल है जो जीवन के संबंध में प्रश्न न उठाता हो; जिसकी कोई जिज्ञासा न हो, जो पूछता न हो। मनुष्य और पशु में वही भेद भी है। पशु जीवन जैसा है, उसे स्वीकार कर लिया है। कोई प्रश्न पशु चेतना में नहीं उठता, कोई जिज्ञासा नहीं जगती। आदमी जैसा है, उतना होने से राजी नहीं है। आदमी जानना भी चाहता है कि "मैं क्या हूं, क्यों हूं, किसलिए हूं" प्रश्न मनुष्य का चिह्न है। इसलिए जिस मनुष्य ने प्रश्न नहीं उठाए, वह अभी पशु के जीवन से ऊपर नहीं उठा। और जिस मनुष्य के जीवन में जिज्ञासा का जन्म नहीं हुआ, अभी-अभी उस मनुष्य का मनुष्य की तरह जन्म भी नहीं हुआ है। इसलिए कठिन है खोजना ऐसा मनुष्य, जो प्रश्न न पूछ रहा हो, जिसके लिए जीवन एक जिज्ञासा न हो।

प्रश्न सभी पूछते हैं, लेकिन कुछ लोग दूसरों के उत्तर को अपना उत्तर मान लेते हैं और अटक जाते हैं, कुछ लोग जब तक अपना उत्तर नहीं खोज लेते, तब तक अथक श्रम करते हैं। जो दूसरों का उत्तर स्वीकार करके रुक जाते हैं, उनमें प्रश्न का जन्म तो हुआ, लेकिन प्रश्न की भ्रूण हत्या हो गई, एबार्शन हो गया। प्रश्न का बीज तो पैदा हुआ, लेकिन उन्होंने इसके पहले कि बीज अंकुरित होता और वृक्ष बनता, उसकी हत्या कर दी।

हत्या की विधि है : उधार उत्तर को स्वीकार कर लेना। ध्यान रहे, प्रश्न आपका है और जब तक आप अपना उत्तर न खोज लेंगे, तब तक हल न होगा। प्रश्न दूसरे का होता, तो दूसरे के उत्तर से हल भी हो जाता। प्रश्न आपका, उत्तर दूसरे के। इन दोनों में कहीं कोई मिलन नहीं होता। इसलिए जब भी आप दूसरों के उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, तो आपने जल्दी ही प्रश्न की गर्दन घोट दी। आपने प्रश्न को पूरा काम न करने दिया। प्रश्न तो तभी पूरा काम कर पाता है, जब जीवन की खोज और प्यास बन जाता है; जब प्रश्न जीवन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो

जाता है। यह जानना कि "जीवन क्या है", जिस दिन जीवन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है, उस दिन साधना का जन्म होता है। जिस दिन आप इस खोज के लिए जीवन को भी समर्पित करने को राजी हो जाते हैं, उस दिन आप जिज्ञासु न रहे, मुमुक्षु हो गए। उस दिन प्रश्न सिर्फ बौद्धिक न रहा, बल्कि आपके रोएं-रोएं का हो गया। आपके समग्र जीवन का हो गया और जिस दिन भी प्रश्न इतना गहन हो जाता है कि हमारी श्वास-श्वास पृच्छने लगती है, उस दिन उत्तर दूर नहीं है।

और ध्यान रहे, जिस भांति प्रश्न भीतर से आता है, उसी भांति उत्तर भी भीतर से ही आएगा। प्रश्न बाहर से नहीं आते। और बाहर से जो प्रश्न आते हैं, उनका कोई भी मूल्य नहीं है, उन्हें बाहर के ही उत्तरों से निपटाया जा सकता है। लेकिन जो प्रश्न आपकी ही श्वासों से और आपके ही प्राण की गहनता से उठते हैं, जो आपकी ही अंतरात्मा से जगते हैं, उन प्रश्नों का उत्तर भी आपकी अंतरात्मा में ही छिपा है। और जहां से प्रश्न आया है, उसी गहराई में खोजने पर उत्तर भी उपलब्ध होगा। धर्म और दर्शन का यही फर्क है। दर्शन है--प्रश्नों की बौद्धिक खोज। और धर्म है 3 प्रश्नों की जीवंत खोज।

बौद्धिक खोज का अर्थ है: आपकी बुद्धि संलग्न है, आप पूरे के पूरे संलग्न नहीं हैं। एक खरड जीवन का लगा है, लेकिन पूरा जीवन--पूरा जीवन दूर है।

धार्मिक खोज का अर्थ है कि बुद्धि ही नहीं, आपका हृदय भी--हृदय ही नहीं, आपकी देह भी--आपकी समग्र आत्मा, आप जो भी हैं अपनी पूर्णता में, वह पूरी की पूरी खोज में लग गई है। और जिस दिन खोज अखंड होती है, पूरी होती है, उस दिन उत्तर दूर नहीं है।

महावीर ने जो भी कहा है, ये एक दार्शनिक के वचन नहीं हैं, एक फिलासफर के वचन नहीं हैं--प्लेटो या अरस्तू या कांट और हीगल के वचन नहीं हैं। महावीर ने जो भी कहा है, ये एक धार्मिक, अनुभूति को उपलब्ध व्यक्ति के वचन हैं। महावीर ने जो भी कहा है, सोच कर नहीं कहा, देख कर कहा है।

इस भेद को ठीक से समझ लें, क्योंकि यह बहुत मौलिक है। सोच कर बहुत सी बातें कही जा सकती हैं। लेकिन सोच कर जो कहा जाता है, वह कितना ही ठीक मालूम पड़े, ठीक नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति प्रेम के संबंध में बहुत सी बातें सोच कर कह सकता है। शास्त्र उपलब्ध हैं, प्रेम पर लिखे हुए काव्य उपलब्ध हैं; प्रेम की कथाएं, विश्लेषण उपलब्ध हैं; जिन्होंने प्रेम को जाना है, उनके भी शब्द उपलब्ध हैं--ये सब पढ़े जा सकते हैं, और आप भी प्रेम के संबंध में कोई धारणा बना सकते हैं, वह बुद्धि की होगी। लेकिन अगर आपको प्रेम का अपना निजी अनुभव नहीं है, तो आप जो भी कहेंगे, वह कितना ही ठीक मालूम पड़े, ठीक हो नहीं सकता। उसका ठीक मालूम पड़ना बहुत ऊपरी होगा, तार्किक होगा, शब्दगत होगा। क्योंकि जिसने प्रेम नहीं जाना, वह प्रेम के संबंध में क्या कह सकता है?

प्रेम की कोई फिलासफी नहीं हो सकती, प्रेम का सिर्फ अनुभव हो सकता है। लेकिन, तब बड़ी कठिनाई है। क्योंकि जो जान ले प्रेम को, उसे कहना मुश्किल हो जाता है। जो प्रेम को न जाने, उसे कहना बहुत आसान है, क्योंकि उसे उस कठिनाई का पता ही नहीं है जो अनुभव से पैदा होती है। जिसने प्रेम को नहीं जाना, वह दूसरों के शब्द दोहरा सकता है, और सोचेगा बात पूरी हो गई। और जिसने प्रेम को जाना है, उसके सामने एक बड़ा कठिन, दुर्गम सवाल है, जो उसने जाना है, उसे कैसे शब्दों में प्रविष्ट करे। क्योंकि जो जाना है, वह विराट है, शब्द बहुत क्षुद्र हैं। जो जाना है, वह आकाश की भांति है, और शब्द छोटी मटकियों की भांति हैं, वह उनसे भी छोटे हैं। उस बड़े आकाश को उन मटकियों में भरना, उस सागर को गागर में डालना अति कठिन है, असंभव है।

महावीर जो भी कह रहे हैं, वह उनका जाना हुआ है। वह उन्होंने सोचा नहीं है, वह उन्हें ध्यान से उपलब्ध हुआ है, विचार से नहीं। और, विचार और ध्यान की प्रक्रियाएं विपरीत हैं।

महावीर इस बोध के पहले बारह वर्ष तक मौन में रहे। तब उन्होंने सब विचार करना छोड़ दिया। तब उन्होंने सारी बुद्धि को तिलांजलि दे दी। तब उन्होंने चिंतना एक तरफ हटा दी। वे सिर्फ मौन होते चले गए। बारह वर्ष लम्बा समय है। निश्चित ही, मौन होना कठिन है। और महावीर को बारह वर्ष लगते हैं, तो सोच सकते हो, साधारण व्यक्ति को जीवन लग जाएंगे।

चुप होना कठिन है, क्योंकि चुप होना एक तरह की मृत्यु है। आप जीते ही विचार में हैं। और जब विचार चलता होता है, तब आप को लगता है आप हैं; जब विचार खोने लगते हैं, तो आप भी खोने लगते हैं। विचार बिखरने लगते हैं, आप भी बिखरने लगते हैं। और जब विचार के सब बादल खो जाते हैं तो शून्य रह जाता है भीतर। वह शून्य महामृत्यु जैसा मालूम होता है। उस महामृत्यु के लिए जो तैयार होता है, वह ध्यान में प्रवेश पाता है। और ध्यान के बाद ही अनुभव है। विचार से कोई अनुभव नहीं होता। सच, विचार तो अनुभव में बाधा है। जब आप सोचने लगते हैं, तब आप अनुभव से टूट जाते हैं। जब आप सोचते नहीं, केवल होते हैं, तब आप अनुभव से जुड़ते हैं।

तो महावीर बारह वर्ष तक अपने विचार को काटते हैं, छोड़ते हैं। एक-एक ग्रंथि, विचार की एक-एक गांठ खोलते हैं; और जब विचार की सब गांठें खुल जाती हैं, और सब बादल बिखर जाते हैं। सिर्फ खाली आकाश रह जाता है स्वयं का, तब अनुभव शुरू होता है। इस अनुभव से जो वाणी प्रगट हुई है, उस पर ही हम विचार करने जा रहे हैं। इसे सोचेंगे आप तो भूल में पड़ जाएंगे। इसे सोचना कम, हृदय को खोलना ज्यादा, ताकि यह ऐसे प्रवेश कर सके भीतर, जैसे बीज जमीन में प्रवेश कर जाता है। जमीन बीज के संबंध में कोई विचार करने लगे, कि पहले सोच लूं, समझ लूं, इस बीज को गर्भ देना है या नहीं देना, तो जमीन कुछ भी न सोच पाएगी। क्योंकि बीज में कोई फूल प्रकट नहीं है; बीज में कोई वृक्ष भी प्रकट नहीं है। होगा--वह संभावना है। अभी वास्तविक नहीं है। अभी सब भविष्य में छिपा है। लेकिन जमीन बीज को स्वीकार कर लेती है। बीज टूट जाता है भीतर जाकर। जमीन उसे पचा लेती है। बीज मिट जाता है, खो जाता है। और जब बीज खो जाता है बिल्कुल, कि जमीन को पता भी नहीं चलता कि मुझसे अलग कुछ है, तब अंकुरित होता है। तब एक नये जीवन का जन्म होता है और एक वृक्ष पैदा होता है।

महावीर के वचनों को अगर आप सोच-विचार में उलझा लेंगे, तो वे आपके भीतर उस जगह तक नहीं पहुंच पाएंगे, जहां हृदय की भूमि है। आप सोचना मत। आप सिर्फ हृदय की ग्राहक भूमि में उनको स्वीकार कर लेना। अगर वे व्यर्थ हैं, अगर वे निर्जीव हैं, तो अंकुर पैदा न होगा, बीज यूं ही मर जायेगा। अगर वे सार्थक हैं, अगर अर्थपूर्ण हैं, अगर उनमें कोई छिपा जीवन है, अगर कोई विराट उनमें छिपी संभावना है, तो जिस दिन आप उन्हें भीतर पचा लेंगे, हृदय में जब वे मिल कर एक हो जाएंगे, और जब आपको याद भी न रहेगा कि यह विचार महावीर का है या मेरा, जब यह विचार आपका ही हो जाएगा, घुल जाएगा, पिघल जाएगा, एक हो जाएगा भीतर, तब आपको पता चलेगा, इस विचार का अर्थ क्या है। क्योंकि तभी आपके भीतर इस विचार के माध्यम से एक नये जीवन का जन्म होगा; एक नई सुगंध, एक नया अर्थ, एक नये क्षितिज का उदघाटन।

तो विचार के साथ हम दो तरह का व्यवहार कर सकते हैं : एक तो आलोचक का व्यवहार है कि वह सोचेगा, काटेगा, विषण करेगा, तर्क करेगा। आपको मना नहीं करता। अगर महावीर के साथ आपको आलोचक होना है आप हो सकते हैं। लेकिन आप महावीर जो दे सकते हैं, उससे वंचित रह जाएंगे। दूसरा ग्राहक का, प्रेमी का, भक्त का दृष्टिकोण--सोचता नहीं, सिर्फ रिसेप्टिविटी, सिर्फ संवेदनशील होता है, स्वीकार कर लेता है। हृदय

में छिपा लेता है और प्रतीक्षा करता है उस दिन की, जिस दिन इस बीज में से अंकुर पैदा होगा। तभी, पूरा अर्थ प्रकट होगा।

यहां मैं आपको समझाने की कोशिश करूंगा कि महावीर का प्रयोजन क्या है। लेकिन उस कोशिश से आप अर्थ को न जान पाएंगे। उस कोशिश से तो इतना ही हो सकता है कि आप राजी हो जाएं और हृदय को खुला छोड़ दें। द्वार-दरवाजे खोल दें, ताकि यह किरण भीतर प्रवेश कर जाए। मेरी कोशिश आपके हृदय का दरवाजा खोलने की होगी, आपकी बुद्धि को समझाने की नहीं। अर्थ तो तभी प्रकट होगा, जब बीज आपके भीतर प्रविष्ट हो जाएंगे और आप उन्हें पचा लेंगे।

ध्यान रहे, किसी चीज का आहार कर लेना ही काफी नहीं है, उसका पचना जरूरी है। इसलिए महावीर को दो तरह के लोग अपने भीतर लेते हैं। पंडित भी अपने भीतर ले लेता है, लेकिन वह पचा नहीं पाता है। वह जो आहार कर लेता है, वह अनपचा रह जाता है। इसलिए पंडित का मस्तिष्क बोझिल होता चला जाता है उस अनपचे आहार से। उसका अहंकार प्रगाढ़ होता चला जाता है। उसकी आत्मा तो खाली बनी रहती है, लेकिन उसकी स्मृति भरती चली जाती है। ज्ञानी भी आहार करता है विचार का, लेकिन उसे पचाने की कोशिश करता है। और जब तक वह खून न बन जाए, अपना न हो जाए, जब तक बहने न लगे रग-रग में, जब तक अपने जीवन का एक भाग न हो जाए, तब तक चैन नहीं लेता।

अगर आपको पंडित बनना हो तो आलोचक की दृष्टि से सोचना और अगर आपको ज्ञानी की तरफ यात्रा करनी हो तो एक भक्त के भाव से सोचना।

जैसा हमारा जीवन है, वहां कोई चाहिए, जो हमें झकझोर दे। और हमारी यात्रा को पलट दे। जैसा हमारा जीवन है, वहां कोई चाहिए, जो हमें एक जोर का धक्का दे, एक शाक हमें लगे कि हमारी यात्रा की दिशा बदल जाए।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन शिकागो से एक संध्या एक ट्रेन में सवार हुआ। जिस डिब्बे में था, उस डिब्बे में एक और वृद्ध महिला भी थी। बस, वे दो ही थे। गाड़ी को छूटे पांच-सात मिनट हुए ही होंगे कि वृद्ध महिला को ख्याल आया कि जो यात्री साथ में है, वह रो रहा है। सोचा उसने किसी प्रियजन से बिछुड़ना हुआ होगा। बोलना उचित न समझा।

नसरुद्दीन अपने माथे को पैरों में झुकाए, हाथों में दबाए रोए चला जा रहा है। उसकी हिचकियां उसके पूरे शरीर को हिला रही हैं। रात हो गई, वृद्धा सो गई, लेकिन सुबह जब फिर जागी तो देखा कि वह अभी भी रोए चला जा रहा है। आंसू पोंछता है, फिर हिचकियां आ जाती हैं, फिर थोड़ी देर रुकता है, फिर रोने लगता है। फिर उसने सोचा मैं अजनबी हूं, और पता नहीं कितने दुख में है वह आदमी। मेरा बीच में बोलना, या कुछ कहना कहीं दुख को और न बढ़ा दे, कहीं घाव को और न छेड़ दे।

दूसरा दिन भी बीत गया, और तीसरे दिन की सुबह होने लगी। तब तो वृद्धा को भी सम्हालना मुश्किल हो गया अपने को। वह पास आई। उसने नसरुद्दीन के सिर पर हाथ रखा, थपथपाया और कहा कि क्या हो गया है? मुझे कुछ कहें, शायद कहने से भी भार हलका हो जाए। तो नसरुद्दीन ने कहा कि मत पूछें। सोच कर ही मन और दुखी होता है। नाउ इट इज श्री डेज दैट आई हैव बीन राइडिंग ऑन दि रांग ट्रेन--तीन दिन हो गए हैं और मैं गलत गाड़ी में सवार हूं।

इस गाड़ी से कभी भी उतरा जा सकता था!

नसरुद्दीन पर आपको हंसी आ सकती है, लेकिन उस हंसी में आप मत भूल जाना कि करीब-करीब वैसी ही अवस्था आपकी है। तीन दिन ही नहीं, न मालूम कितने जन्मों से आप गलत गाड़ी में सवार हैं। रो भी रहे हैं, ऐसा भी नहीं कि नहीं रो रहे हैं। बुरी तरह रो रहे हैं, हिचकियां बंधी हैं। आंखें गीली हैं, सुख कहीं दिखाई नहीं

पड़ता, दुख ही दुख है, फिर भी गाड़ी में बैठे हुए हैं। और जिससे दुख हो रहा है, जिससे गलत दिशा में जा रहे हैं, उसको आपका पूरा सहयोग है।

इसे थोड़ा ठीक से अपनी तरफ देखेंगे तो ख्याल में आ जाएगा कि जहां-जहां आप गलत जा रहे हैं, वहीं-वहीं आपकी ऊर्जा सहयोग कर रही है; जो-जो जीवन में गलत है, उसी-उसी के आप सहयोगी और साथी हैं। और जीवन में जो-जो श्रेष्ठ है, जहां से यात्रा का रुख बदल सकता है, पूरे जीवन का ढंग बदल सकता है, उस तरफ आपका कोई सहयोग नहीं है। उसे आप सुन भी लेते हैं, तो भी वह कभी आपके जीवन की मूलधारा नहीं बन पाता। मूलधारा तो आपकी गलत ही बनी रहती है। फिर इस गलत मूलधारा के बीच जो आप ठीक भी सुन लेते हैं, उसकी भी आप जो व्याख्या करते हैं, वह भी इस गलत को सहयोग देने वाली होती है। क्योंकि व्याख्या आप करेंगे।

इसलिए मैंने कहा कि आप सोचना-विचारना मत। महावीर की तरफ एक सहानुभूति, एक प्रेम के रुख की जरूरत है। क्योंकि जो भी आप सोचेंगे, वह "आप" सोचेंगे। और "आप" गलत हैं। आपके निर्णय के ठीक होने का कोई उपाय नहीं है। अगर आपके निर्णय ठीक हो सकते, तो आप खुद कभी के महावीर हो गए होते, महावीर को सुनने, समझने की कोई जरूरत नहीं थी। एक जिसको पश्चिम के सौंदर्यशास्त्री सिम्पेथेटिक पार्टिसिपेशन कहते हैं--एक सहानुभूतिपूर्ण मिलन, एक रेपर्ट--जहां आप लड़ नहीं रहे हैं, बल्कि उन्मुक्त हैं समझने को, जीने को, नये कोण को देखने को राजी हैं।

महावीर का मिजाज आपसे बिल्कुल अलग है। यह आदमी बिल्कुल और ढंग का है। इसकी यात्रा अलग है। यह किसी और ही ट्रेन में सवार है। इसकी दिशा भिन्न है। तो जैसे आप हैं, अगर वहीं से आप सोचेंगे, तो आप महावीर को चूक जाएंगे। जैसे महावीर हैं, अगर उनके रुख में आप झुकने को राजी होंगे, तो ही आप समझ पाएंगे।

इसलिए धर्मों ने श्रद्धा का बड़ा मूल्य माना है। नहीं कि संदेह व्यर्थ है। संदेह उपयोगी है; पर धर्म की दिशा में नहीं, विज्ञान की दिशा में उपयोगी है। संदेह बहुमूल्य है अगर पदार्थ को समझना हो, क्योंकि पदार्थ के साथ किसी सहानुभूति की जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि अगर पदार्थ को समझना हो, और सहानुभूति हो, तो आप समझ ही न पाएंगे। अगर एक वैज्ञानिक पदार्थ को समझने में सहानुभूति रखता हो, तो पदार्थ को समझ नहीं पाएगा, क्योंकि वह निरपेक्ष नहीं रह जाएगा। उसके पक्षपात जुड़ जाएंगे। उसे तो पूरी तरह निरपेक्ष, तटस्थ होना चाहिए--कोई सहानुभूति नहीं, जैसे वह है ही नहीं; उसे जरा भी प्रविष्ट नहीं होना चाहिए पदार्थ को समझने में। उसे तो सिर्फ एक निरीक्षक होना चाहिए। जिससे उसका कोई भी संबंध नहीं तो ही विज्ञान और वैज्ञानिक सफल हो पाता है।

ठीक उलटी है बात धर्म की। वहां अगर आप बहुत तटस्थ हैं, दूर खड़े हैं, सिर्फ निरीक्षक हैं, तो आप प्रवेश ही न कर पाएंगे। धर्म में तो प्रवेश हो पाएगा, अगर आप अति सहानुभूति से भरे हैं। जैसे मां अपने बच्चे को गोद में ले लेती है, अगर महावीर के वचनों को ऐसे ही आप अपने हृदय के पास ले सकेंगे, तो ही-तो ही संबंध जुड़ पाएगा। और एक बार संबंध जुड़ जाए, तो आपका मिजाज बदल जाता है, आपके होने का ढंग बदल जाता है। फिर महावीर की बातें समझ में आनी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि आपकी आंखों की दिशा, आपकी आंखों का ढंग, आपके देखने का ढंग, आपके होने का ढंग, सब बदल जाता है। इसके पहले कि महावीर आपके साथी बन सकें, आपको उनका साथी बन जाना बहुत जरूरी है और इसके पहले कि वे आपकी समझ में आ सकें, आपकी समझ का पूरा ढंग बदल जाना जरूरी है।

जैसे आप हैं, वैसे ही महावीर को समझने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए कोई महावीर को मानने वालों की कमी नहीं है, लेकिन समझने वाला मुश्किल से कोई दिखाई पड़ता है। जो माननेवाले हैं, वे भी सोचनेवाले

हैं। उन्होंने भी महावीर की व्याख्या कर रखी है अपने हिसाब से। अपने को पोंछ कर, अपने को मिटा कर जो समझने चलेगा, वही केवल समझ पा सकता है।

अब हम सूत्र में प्रवेश करें।

ये सूत्र--प्राथमिक सूत्र थोड़े कठिन होंगे, क्योंकि महावीर अपने अनुभव को एक ढांचा दे रहे हैं, एक व्यवस्था दे रहे हैं। वह व्यवस्था समझ में आ जाए तो फिर बाद का प्रवेश बहुत आसान है।

"धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव--ये छह द्रव्य हैं। केवलदर्शन के धर्ता जिन भगवानों ने इन सबको लोक कहा है।"

पहली बात : महावीर और जैनो के बाकी तेईस तीर्थंकर किसी शास्त्र में विश्वास नहीं करते--किसी वेद, किसी कुरान, किसी बाइबिल में उनका विश्वास नहीं है। क्योंकि उनकी दृष्टि यह है कि अनुभव शब्द में संरक्षित नहीं किया जा सकता। इसलिए मूल-स्रोत सदा व्यक्ति है, शास्त्र नहीं।

जैसे हिंदू-धारणा है, वेद पर भरोसा है। मूल विश्वास वेद पर है--शास्त्र पर। जो वेद कहता है, वह ठीक है। और अगर कोई व्यक्ति कुछ कहता हो, वह वेद के विपरीत जाता हो, तो व्यक्ति गलत होगा, वेद गलत नहीं होगा। लेकिन महावीर की दृष्टि बिल्कुल उलटी है।

महावीर कहते हैं, भरोसा व्यक्ति का है और अगर व्यक्ति कुछ कहता हो, और वेद विपरीत हो, तो वेद गलत हैं, व्यक्ति गलत नहीं है।

इस फर्क को ठीक से समझ लें।

शास्त्र मृत हैं, व्यक्ति जीवित है। मृत पर बहुत भरोसा उचित नहीं है। और मृत का अगर कोई मूल्य भी है, तो भी इसीलिए है कि किसी जीवित व्यक्ति के वचन हैं वहां। लेकिन शास्त्र कितना ही प्राचीन हो, कितना ही मूल्यवान हो, किसी भी जीवित व्यक्ति के अनुभव को गलत करने के काम नहीं लाया जा सकता।

महावीर व्यक्ति पर इतना भरोसा करते हैं, जितना पृथ्वी पर किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं किया है। व्यक्ति की चरम मूल्यवत्ता महावीर को स्वीकार है। तो वेद जैसे कीमती शास्त्र को भी महावीर कह देते हैं, छोड़ देना होगा, अगर व्यक्ति के अनुभव के अनुकूल न हो। जीवित व्यक्ति चरम-मूल्य है, अंतिम इकाई है।

यह बहुत बड़ी क्रांतिकारी धारणा है। मन को भी बड़ी चोट पहुंचाती है। और मजे की बात यह है कि जैन भी इस धारणा के अनुकूल नहीं चल पाए। जैन भी अब महावीर के वचन को सुनते हैं। अगर किसी व्यक्ति का अनुभव महावीर के वचन के विपरीत जाता हो, तो वे कहेंगे कि यह व्यक्ति गलत है। फिर महावीर का वचन वेद बन गया है। इसलिए जैन हिंदू धर्म का एक हिस्सा होकर मर गए। उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है--हो नहीं सकता। क्योंकि महावीर की मौलिक धारणा ही नष्ट हो गई। महावीर की धारणा यह है कि व्यक्ति का सत्य चरम है। और इसलिए निरंतर महावीर बार-बार कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, यह उनका अनुभव है, जो "केवलज्ञान" को उपलब्ध हुए हैं। यह अनुभव है। किसी शास्त्र की गवाही महावीर नहीं देते। हमेशा गवाही व्यक्तियों की है।

"केवलदर्शन के धर्ता जिन भगवानों ने इस सबको लोक कहा है।"

और भी कुछ बातें इसमें ख्याल ले लेनी जरूरी हैं।

केवलदर्शन का अर्थ है, जो उस अवस्था को उपलब्ध हो गए जहां मात्र ज्ञान रह आता है और जानने को कुछ भी नहीं। हम जब भी कुछ जानते हैं, तो कुछ जानते हैं--कोई ऑब्जेक्ट।

आप यहां बैठे हैं, मैं आपको देख रहा हूं, तो मैं आपको जान रहा हूं। लेकिन आपको जान रहा हूं, फिर आप यहां से हट जाएं और जानने को कुछ भी न बचे, सिर्फ मेरा जानने वाला रह जाए--सो न जाए, मूर्छित न हो जाए, होश में हो, जानने को कुछ भी न बचे और सिर्फ जानने वाला बच जाए; मन के पर्दे पर से सारी तस्वीरें खो जाएं, सिर्फ चेतना का प्रवाह बच जाए, उस अवस्था को महावीर "केवलज्ञान" कहते हैं, शुद्ध-ज्ञान--

मात्र-ज्ञान। जो ऐसे मात्र-ज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं, उनको महावीर "जिन" कहते हैं। जिन का अर्थ है, जिन्होंने जीत लिया, जिन्होंने जीवन की परम विजय उपलब्ध कर ली, जिनको जीतने को अब कुछ भी न बचा। और ऐसे जिनों को महावीर "भगवान" कहते हैं।

यह भी समझ लेना जरूरी है कि महावीर के लिए "भगवान" का वही अर्थ नहीं है, जो हिंदुओं के लिए है, ईसाइयों के लिए है, मुसलमानों के लिए है। महावीर की "भगवान" की बड़ी अनूठी अवधारणा है।

तीन बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं :

एक तो महावीर कहते हैं, उतने ही भगवान हैं, जितनी आत्माएं हैं। भगवान एक नहीं है। एक भगवान की धारणा बहुत डिक्टेटोरियल है, बहुत तानाशाहीपूर्ण है। महावीर कहते हैं, प्रत्येक आत्मा भगवान है। जिस दिन पता चल जाएगा, उस दिन प्रकट हो जाएगी। जब तक पता नहीं चला है, तब तक वृक्ष बीज में छिपा है।

अनंत भगवानों की धारणा है महावीर की, अनंत-जितने जीव हैं। आप ऐसा नहीं सोचना कि आप ही हैं। चींटी में जो जीव है, वह भी छिपा हुआ भगवान है। आज नहीं कल, वह भी प्रकट होगा। वृक्ष में जो है, वह भी भगवान है। आज नहीं कल, वह भी प्रकट होगा। समय की भर देर है। एक घड़ी जो भी छिपा है, वह प्रकट हो जाएगा।

अनंत भगवानों की धारणा दुनिया में कहीं भी नहीं है। और उस के पीछे भी व्यक्ति का मूल्य है। महावीर को यह ख्याल दुखद मालूम पड़ता है कि एक ब्रह्म है, जो सबका मालिक है। यह बात ही तानाशाही की मालूम पड़ती है। यह भी बात महावीर को उचित नहीं मालूम पड़ती कि "उस एक" में ही सब खो जाएंगे। यह भी बात उचित नहीं मालूम पड़ती कि "उस एक" ने सबको बनाया है, "वह एक" सृष्टा है। यह बात बेहूदी है।

क्योंकि महावीर कहते हैं कि अगर मनुष्य की आत्मा बनाई गई है तो वह आत्मा ही न रही, वस्तु हो गई। जो बनाई जा सकती है, वह क्या आत्मा है। महावीर कहते हैं, जो बनाई जा सकती है वह वस्तु है, आत्मा नहीं। इसलिए अगर किसी परमात्मा ने आत्माएं बनाई हैं, तो वे सब वस्तुएं हो गईं। फिर हम परमात्मा के हाथ की गुड़ियां हो गए, कोई मूल्य न रहा।

महावीर इसलिए सृष्टा की धारणा को अस्वीकार कर देते हैं। वे कहते हैं, कोई सृष्टा नहीं। क्योंकि अगर सृष्टा है तो आत्मा का मूल्य नष्ट हो जाता है। आत्मा का मूल्य ही यही है कि वह असृष्ट है, अनक्रिएटेड है। उसे बनाया नहीं जा सकता। जो भी चीज बनाई जा सकती है, वह वस्तु होगी, यंत्र होगी-कुछ भी होगी-लेकिन जीवंत चेतना नहीं हो सकती।

थोड़ा सोचें। जीवंत चेतना अगर बनाई जा सके, तो उसका मूल्य, उसकी गरिमा, उसकी महिमा-सब खो गई। इसलिए महावीर कहते हैं, कोई सृष्टा परमात्मा नहीं है। फिर महावीर कहते हैं, जो बनाई जा सकती है, वह नष्ट भी की जा सकती है।

ध्यान रहे, जो भी बनाया जा सकता है, वह मिटाया जा सकता है। अगर कोई परमात्मा है आकाश में, जिसने कहा बन जाओ और आत्माएं बन गईं, वह किसी भी दिन कह दे कि मिट जाओ और आत्माएं मिट जाएं, तो यह मजाक हो गया, जीवन के साथ व्यंग हो गया। इसलिए महावीर कहते हैं, न तो आत्मा बनाई जा सकती और न मिटाई जा सकती। जो न बनाया जा सकता, जो न मिटाया जा सकता, उसको महावीर "द्रव्य" कहते हैं--सब्सटेंस।

यह उनकी परिभाषा को समझ लेना आप। द्रव्य उसको कहते हैं, जो न बनाया जा सकता और न मिटाया जा सकता है--जो है। इसलिए महावीर कहते हैं, जगत में जो भी मूल द्रव्य हैं, वे हैं सदा से। उनको किसी ने बनाया नहीं है और उनको कभी कोई मिटा भी नहीं सकेगा।

आधुनिक विज्ञान महावीर से राजी है। जैनों की वजह से महावीर का विचार वैज्ञानिकों तक नहीं पहुंच पाता, अन्यथा आधुनिक विज्ञान जितना महावीर से राजी है, उतना किसी से भी राजी नहीं है। अगर आइंस्टीन

को महावीर की समझ आ जाती तो आइंस्टीन महावीर की जितनी प्रशंसा कर सकता था, उतनी कोई भी नहीं कर सकता है। लेकिन जैनों के कारण बड़ी कठिनाई है।

एक मित्र मेरे पास आए थे। महावीर की पच्चीस-सौवीं वर्ष गांठ आती है। वे मुझसे कहने लगे कि "किस भांति हम इसको मनाएं कि सारे जगत को महावीर के ज्ञान का प्रसार मिल जाए?" तो मैंने उनको कहा कि "आप जब तक हैं, तब तक बहुत मुश्किल है। आप ही उपद्रव हैं, आप ही बाधा हैं।"

महावीर विराट हो सकते हैं, लेकिन जैनों का बड़ा संकीर्ण घेरा है और जैनों की संकीर्ण बुद्धि के कारण महावीर की जो तस्वीर दुनिया के सामने आती है, वह बड़ी संकीर्ण हो जाती है। महावीर का खुल कर अध्ययन भी नहीं हो पाता। बंधी लकीरोंवाले लोग कुछ भी नहीं खोज सकते। महावीर की पुनः खोज की जरूरत है, लेकिन तब बंधी लकारें तोड़ देनी पड़ेंगी।

महावीर की यह धारणा कि "द्रव्य" उसको कहते हैं, महावीर जिसे आज विज्ञान "एलिमेंट" कहता है। वह कभी नष्ट नहीं होता और कभी बनाया भी नहीं जाता--रूपांतरित होता है, बनता है, बिगड़ता है। लेकिन बनना और बिगड़ना सिर्फ रूप का होता है, मूल तत्व न ही बनता और न बिगड़ता। इस तरह के छह द्रव्य महावीर ने कहे हैं।

पहला द्रव्य है धर्म, दूसरा अधर्म, तीसरा आकाश, चौथा काल, पांचवां पुद्गल, छठवां जीव। परमात्मा की कोई जगह नहीं है, ये छह मूल द्रव्य हैं। ये छह सदा से हैं और सदा रहेंगे। और जो कुछ भी हमें बीच में दिखाई पड़ता है वह इन छह का मिलन और बिछुड़न है। इनका आपस में जुड़ना और अलग होना है। सारा संसार संयोग है, ये छह मूल द्रव्य हैं।

अनंत आत्माएं हैं और हर आत्मा परमात्मा होने की क्षमता रखती है, इसलिए महावीर की परमात्मा की धारणा को ठीक से समझ लें। महावीर कहते हैं, आत्मा की तीन अवस्थाएं हैं : एक अवस्था है आत्मा की--बहिर-आत्मा। जब चेतना बाहर की तरफ बहती रहती है। दूसरी अवस्था है आत्मा की--अंतरात्मा। जब चेतना भीतर की तरफ बहती है।

वासना में बहती है बाहर की तरफ, विचार में बहती है बाहर की तरफ तब आप बहिर आत्मा हैं--आत्मा की निम्नतम अवस्था। ध्यान में बहती है भीतर की तरफ, मौन में बहती है भीतर की तरफ, तब आप अंतरात्मा हैं--आत्मा की दूसरी अवस्था। और आत्मा की तीसरी अवस्था है, जब चेतना कहीं भी नहीं बहती--न बाहर की तरफ, न भीतर की तरफ, सिर्फ होती है। बहना बंद हो जाता है। कोई गति और कोई कंपन नहीं रह जाता--समाधि। उस तीसरी अवस्था में आत्मा का नाम परमात्मा है।

बहिर आत्मा से अंतरात्मा, अंतरात्मा से परमात्मा। और अनंत आत्माएं हैं, इसलिए अनंत परमात्मा हैं। और कोई आत्मा किसी में लीन नहीं हो जाती, क्योंकि प्रत्येक आत्मा अपने में स्वतंत्र द्रव्य है। अंतिम अवस्था में कोई भेद नहीं रह जाता, दो आत्माओं में कोई भेद नहीं रह जाता, कोई दीवार नहीं रह जाती, कोई अंतर नहीं रह जाता, किसी तरह का विवाद-विरोध नहीं रह जाता लेकिन फिर भी प्रत्येक आत्मा निजी होती है, इनडिविजुअल होती है।

ये छह द्रव्य भी महावीर के बड़े अनूठे हैं, इनकी व्याख्या समझने जैसी है :

"धर्म द्रव्य का लक्षण है, गति।" बहुत अनूठी दृष्टि है। महावीर कहते हैं, जिससे भी गति होती है, वह धर्म है; और जिससे भी गति रुकती है, वह अधर्म है। जिससे भी विकास होता है, वह धर्म है; जिससे भी अभिव्यक्ति अपनी पूर्णता की तरफ पहुंचती है, वह धर्म है, और जिससे भी विकास रुकता है, वह अधर्म है।

अधर्म को महावीर कहते हैं, स्थिति का तत्व रोकने वाला; और धर्म को महावीर कहते हैं, गति का तत्व बढ़ाने वाला। दोनों हैं, आप पर निर्भर है कि आप किस तत्व के साथ अपने को जोड़ लेते हैं। अगर आप अधर्म के

साथ अपने को जोड़ लेते हैं, तो आप रुक जाते हैं। जन्मों-जन्मों तक रुके रह सकते हैं। अगर आप धर्म के साथ अपने को जोड़ लेते हैं, तो बढ़ने शुरू हो जाते हैं।

एक मछली है, तैरने की क्षमता है उसमें, लेकिन वह भी पानी का सहारा न ले तो तैर न पाएगी; क्षमता है--पानी का सहारा ले तो तैर पाएगी। आपकी क्षमता है, क्षमता है परमात्मा होने की, लेकिन धर्म का सहारा लें तो तैर पाएंगे, अधर्म का सहारा लें तो रुक जाएंगे। अगर आप बहिर-आत्मा होकर रह गए हैं तो उसका कारण है कि आपने कहीं अधर्म का सहारा ले लिया है।

यह बहुत सोचने जैसी बात है, महावीर बुराई को अधर्म नहीं कहते। जो भी रोक लेती है बात, वही अधर्म है। तो बुरे की व्याख्या भी नई हो जाती है। तब बुरे का अर्थ, अशुभ का अर्थ, पाप का अर्थ बड़ा नया हो जाता है। जीवन में जहां-जहां रोकने वाले तत्व हैं, उनके साथ आपका जो गठबंधन है, वही अधर्म है।

धर्म खोलेगा, मुक्त करेगा, स्वतंत्र करेगा, बंधनों को काटेगा। नाव बंधी है किनारे से, उसे किनारे की खूंटियों से अलग करेगा और जैसे-जैसे किनारे की खूंटियां हटती जाएंगी, नाव मुक्त होती जाएगी गति करने को। कहां-कहां हम बंधे हैं?

जो-जो हमारी वासनाएं हैं, वे-वे हमारी खूंटियां हैं--नदी के किनारे जिनसे हमारी नाव बंधी है। और खूंटियों को हम मजबूत रखते हैं कि कहीं खूंटियां टूट न जाएं। खूंटियों को हम बल देते हैं, ताकि खूंटियां कमजोर न हो जाएं। हम अपने बंधनों को पोषण देते हैं। जो हमें बांध रहा है, जो हमारा कारागृह है, उसे ही हम जीवन समर्पित कर रहे हैं। जिससे हम अटक गए हैं, उसे हम सहारा समझ रहे हैं। और जब तक हमें यह दिखाई न पड़ जाए कि क्या सहारा है और क्या बाधा है--जब तक यह साफ न हो जाए, तब तक कोई गति नहीं हो सकती है।

अगर महावीर अपने राजमहल को छोड़कर चले जाते हैं, तो आप यह मत सोचना कि राजमहल में कुछ बुराई है, जिसकी वजह से छोड़कर चले जाते हैं। धन वैभव छोड़ देते हैं, तो आप यह मत सोचना कि धन, वैभव में कोई बुराई है। महावीर को दिखाई पड़ता है कि वे खूंटियां हैं, और जब तक उनके इर्द-गिर्द मैं हूं, तब तक धर्म के तत्व के साथ मेरा संबंध नहीं हो पाएगा। तो मैं गति नहीं कर पाऊंगा।

अगर ठीक से समझें तो महावीर धन को नहीं छोड़ते, धन से अपने को छुड़ाते हैं। बुनियादी फर्क है। धन छोड़ना बहुत आसान है, धन से अपने को छुड़ाना बहुत कठिन है। क्योंकि धन छोड़ कर आप भाग सकते हैं, लेकिन तत्काल आप दूसरा धन पैदा कर लेंगे, जिसको आप पकड़ लेंगे। धन कुछ रुपयों-सिक्कों में बंद नहीं है, जहां भी सुरक्षा है, वहीं धन है, और जहां भी भविष्य का आश्वासन है, वहीं धन है।

धन का मतलब क्या है?

धन का मतलब है कि मेरे पास अगर एक हजार रुपये हैं, तो कल मेरा सुरक्षित है। कल मुझे भूखा नहीं मरना पड़ेगा। रहने को मकान होगा, भोजन होगा, कपड़े होंगे, मैं कल के लिए सुरक्षित हूं। धन की इतनी पकड़ भविष्य की सुरक्षा के लिए है। अगर आपको अचानक पता चल जाए कि कल सुबह दुनिया नष्ट हो जानेवाली है, धन पर आपकी पकड़ इसी वक्त छूट जाएगी; कंजूस से कंजूस आदमी धन लुटाता हुआ दिखाई पड़ेगा।

अगर दुनिया कल सुबह खत्म हो रही हो तो धन का मूल्य क्यों खतम होता है?

धन का मूल्य है भविष्य की सुरक्षा में, अगर भविष्य ही नहीं, तो धन का कोई मूल्य नहीं। आप धन छोड़ सकते हैं, लेकिन भविष्य की सुरक्षा आपके साथ अगर लगी है, तो आप नया धन पैदा कर लेंगे।

तो एक आदमी धन को छोड़ जाता है फिर पुण्य को पकड़ लेता है। फिर पुण्य धन हो जाता है। फिर वह सोचता है कि पुण्य मेरे पास है तो स्वर्ग मुझे मिलेगा। आपके लिहाज से वह आदमी और भी बड़े भविष्य का इंतजाम कर रहा है। आप तो मरने तक भविष्य का उपयोग कर सकते हैं, वह मरने के बाद भी पुण्य का उपयोग कर सकता है। वह जिस करेसी को इकट्ठा कर रहा है, वह जीवन के उस तरफ भी चलती है। आपके नोट उस

तरफ नहीं चलेंगे। इसलिए साधु-संन्यासी गृहस्थियों को समझाते हैं कि "क्या धन को पकड़ रहे हो, क्षणभंगुर है! पुण्य को पकड़ो, जो कि सदा साथ रहेगा।"

लेकिन, यह बड़े मजे की बात है कि, "पकड़ो जरूर।" उनका कहना कुल इतना ही है कि "तुम गलत धन को पकड़ रहे हो, ठीक धन को पकड़ो। तुम जिस धन को पकड़ रहे हो, यह मौत तक काम देगा, मौत के बाद तुम मुश्किल में पड़ोगे। हमने ठीक धन पकड़ा है। तुमने गलत बैंक का सहारा लिया है, हमने ठीक बैंक का सहारा लिया है।"लेकिन सहारा है!

धन को छोड़ना बहुत आसान है, क्योंकि आप नया धन पैदा कर लेंगे। जिस मन में असुरक्षा है, वह धन को पैदा कर ही लेगा। धन, असुरक्षित मन की संतान है। फिर वह धन कई तरह का हो सकता है।

लेकिन महावीर ने धन नहीं छोड़ा, धन से अपने को छुड़ाया। यह प्रक्रिया अलग है। धन पर ध्यान नहीं है, अपने पर ध्यान है, कि जो-जो चीज मुझे पकड़ती है, उसकी पकड़ मेरे ऊपर क्यों है। वह पकड़ मेरी न रह जाए।

फिर ध्यान रहे, धन आपको पकड़े हुए भी नहीं है, आप ही धन को पकड़े हुए हैं। इसलिए असली सवाल धन छोड़ने का नहीं है, असली सवाल अपनी पकड़ छोड़ने का है। इसलिए यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन के बीच भी पकड़ छोड़ दे-हुआ है। और यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन छोड़ कर भी पकड़ न छोड़े--यह रोज हो रहा है।

बारीक है दोनों के बीच मार्ग। महावीर छुड़ा रहे हैं, अपनी पकड़। जहां-जहां पकड़ है, छोड़ रहे हैं। जहां-जहां सहारा है, छोड़ रहे हैं। क्योंकि अनुभव में आ रहा है कि सब सहारे बाधा बन गए हैं। उन्हीं की वजह से नाव रुकी है।

धर्म है, गति का तत्व। विज्ञान को बड़ी कठिनाई थी सौ साल पहले, तो विज्ञान ने एक तत्व की कल्पना की थी "ईथर।" क्योंकि विज्ञान को कठिनाई थी कि सूर्य की किरणें आती हैं, यात्रा होती है, तो कोई न कोई तत्व चाहिए जिसमें यात्रा हो। तो ईथर परिकल्पित था, कि कोई न कोई तत्व होना चाहिए, नहीं तो किरण कैसे यात्रा करेगी। तो यह महाकाश जो शून्य है, इसमें कोई तत्व होना चाहिए। उस तत्व का कोई पता नहीं था। ईथर परिकल्पित था। क्योंकि यात्रा हो रही है इसलिए कोई तत्व चाहिये। अब ईथर की मान्यता क्षीण हो गई है। लेकिन, कहीं न कहीं चित्त में यह बात घूमती ही है विज्ञान के भी कि अगर कोई चीज यात्रा कर रही है, तो माध्यम जरूरी है। एक नदी बह रही है, तो दो किनारे जरूरी हैं। उन दो किनारों के माध्यम के बिना नदी नहीं बह पाएगी।

डार्विन ने सिद्ध किया कि मनुष्य विकास कर रहा है, लेकिन डार्विन को ख्याल नहीं है, जो महावीर को ख्याल है। अगर मनुष्य विकास कर रहा है, तो गति हो रही है। तो गति की एक धारणा, और गति का एक मूल द्रव्य होना चाहिए, अन्यथा गति नहीं होगी। मनुष्य यात्रा कर रहा है। पशु से मनुष्य हो गया है, या बंदर से मनुष्य हो गया है। डार्विन के हिसाब से मछली की और यात्रा चल रही है। डार्विन के हिसाब से पहला जीवन का तत्व था, पहला नदियों के किनारे लगी पत्थर पर जो काई होती है, वह है। हरी काई, वह जीवन का पहला तत्व है। उस हरी काई से आप तक यात्रा हो गई। आप तक ही नहीं, महावीर तक भी यात्रा हो गई।

तो महावीर कहते हैं, यह जो इतना एवोल्यूशन हो रहा है, इतनी गति हो रही है, इस गति का एक तत्व चाहिए। उसे वे "धर्म" कहते हैं। और जो उस गति के तत्व को पहचान लेता है अपने जीवन में, और उसका संगी-साथी हो जाता है, उसमें अपने को छोड़ देता है, वह विकास की चरम अवस्था पर पहुंच जाता है। वह चरम अवस्था परमात्मा है। इसलिए धर्म वहां समाप्त हो जाता है, जहां आप परमात्मा होते हैं। वहां यात्रा पूरी हो जाती है। मंजिल आ गई।

अगर एक पत्थर को आप रास्ते पर पड़ा देखते हैं तो आप कभी भी नहीं सोचते कि वह रुका क्यों है? आपमें और पत्थर में फर्क क्या है? पत्थर के पास ही एक पौधा उग रहा है, उस पत्थर और पौधे में फर्क क्या है?

पौधा बढ़ रहा है, गतिमान है; पत्थर अगतिमान है, रुका है, ठहरा है। उसकी अगति के कारण ही उसकी चेतना कुंद है। वहां भी परमात्मा छिपा है, लेकिन अधर्म को बड़े जोर से पकड़ा है। इतने जोर से पकड़ा है कि कोई भी गति नहीं हो रही है।

गति के दो बिंदु हम ख्याल में ले लें। एक पत्थर-जैसी अवस्था, बंद, सब तरफ से कुछ प्रवेश नहीं करता, कोई प्रवाह नहीं है; सब ठहरा हुआ, फ्रोजन, जमा हुआ; और फिर एक तरल अवस्था महावीर की, जहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं, कुछ भी अटका हुआ नहीं, कुछ भी रुका हुआ नहीं; जीवंत प्रवाह है, मात्र प्रवाह है।

"अधर्म और धर्म"—हम आमतौर से सोचते हैं अधर्म को अनीति की भाषा में, धर्म को नीति की भाषा में। महावीर सोचते हैं विज्ञान की भाषा में, नीति की भाषा में नहीं। इसलिए जो चीज भी आपको परमात्मा की तरफ ले जा रही है, वह धर्म है।

यह भी प्रत्येक व्यक्ति को सोचने जैसा है कि क्या उसे परमात्मा की तरफ ले जाएगा। जरूरी नहीं है कि दूसरा जिस ढंग से परमात्मा की तरफ जा रहा है, उसी ढंग से आप भी जा सकेंगे; क्योंकि दूसरा अलग बिंदु पर खड़ा है और आप अलग बिंदु पर खड़े हैं, दूसरा अलग स्थिति में खड़ा है, आप अलग स्थिति में खड़े हैं। और कभी-कभी दूसरे के पीछे चल कर आप उलझन में पड़ जाते हैं। और ऐसा भी नहीं है कि दूसरा गलत था, अपने लिए ठीक रहा हो। इसलिए धर्म बड़ी व्यक्तिगत खोज है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन लंगड़ा-लंगड़ा कर चल रहा है रास्ते पर। एक मित्र मिल गया और मित्र ने कहा कि यही तकलीफ मुझे भी थी। दांत मैंने निकलवा दिए, तब से बिल्कुल चंगा हो गया।

नसरुद्दीन ने सोचा कि कोई हर्ज तो है नहीं। दांत निकलवाने में क्या हर्ज है। दांत निकलवा दिए। लंगड़ाना तो जारी रहा, मुंह और खराब हो गया! दूसरा मित्र मिल गया। मित्रों की कोई कमी तो है नहीं। उसने कहा कि क्या! दांत से कुछ होनेवाला नहीं। तकलीफ यही मुझे भी थी, अपेंडिक्स निकलवा दी, तब से बिल्कुल चंगा हो गया हूं!

मुल्ला ने सोचा कि अपेंडिक्स का कोई उपयोग तो है नहीं, निकलवा दी। हालत और खराब हो गई, कमर और झुक गई। तीसरा मित्र मिल गया, उसने कहा कि क्या कर रहे हो? अपेंडिक्स और दांतों से कुछ होनेवाला नहीं—टांसिल्स असली तकलीफ है। मैंने निकलवा दिए, तब से बिल्कुल जवान हो गया।

मुल्ला ने टांसिल्स भी निकलवा दिए, कुछ लाभ न हुआ। लेकिन एक दिन पहला मित्र मिला, और देखा कि मुल्ला बिना लंगड़ाए शान से चल रहा है। उसने कहा कि अरे, मालूम होता है कि दांत निकलवा दिए, फायदा हो गया।

मुल्ला ने कहा कि दांत निकलवाने से भी नहीं हुआ, अपेंडिक्स निकलवाने से भी नहीं हुआ, टांसिल्स निकलवाने से भी नहीं हुआ—जूते में एक कील थी, उसको निकलवाने से सब ठीक हो गया!

मित्रों से सावधान! गुरुओं से सावधान! हो सकता है उनको दांत निकलवाने से लाभ हुआ हो। कोई उनकी गलती नहीं है। लाभ हो सकता है। तकलीफ क्या थी, इस पर निर्भर है।

आप अपनी तकलीफ पहचान लें, अपनी स्थिति, अपना बिंदु, वहीं से यात्रा होगी। आप, जहां से महावीर बोल रहे हैं, वहां से यात्रा नहीं कर सकते; जहां से मैं बोल रहा हूं, वहां से यात्रा नहीं कर सकते, जहां से कोई भी बोल रहा हो, वहां से यात्रा नहीं कर सकते; आप तो यात्रा वहीं से करेंगे, जहां आप खड़े हैं।

इसलिए अपने जीवन में एक सतत निरीक्षण चाहिए कि क्या है जो मुझे रोक रहा है? क्या है जिससे मैं कुंद हो गया, पत्थर हो गया? क्या है जिससे मैं जड़ हो गया हूं? और क्या है जो मुझे खोलेगा? और क्या मुझे खोलता है?

तब आपको किसी गुरु के पीछे चलने की जरूरत न होगी। आप अपने गुरु हो जाएंगे। और जब व्यक्ति अपना गुरु हो जाता है, और शांत निरीक्षण करता है अपनी जीवन स्थिति का, तो बहुत कठिन नहीं होता धर्म को जान लेना कि धर्म क्या है?

आप अगर खुद ही निरीक्षण करेंगे, तो आप पाएंगे क्रोध आपको बांधता है, रोकता है, जड़ कर देता है, मूर्च्छित करता है, होश खो जाता है, आप रुग्ण होते हैं, अस्थायी रूप से पागल हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं क्रोध, टेम्प्रेरी मैडनेस है। पागल जो स्थायी रूप से होता है क्रोध में, आप अस्थायी रूप से हो जाते हैं! बाकी आप हो वही जाते हैं।

आप नीचे गिर रहे हैं, बहिर-आत्मा हो रहे हैं। जब आप किसी के प्रति दया और करुणा से देखते हैं, तो ठीक उल्टी घटना घटती है, क्रोध से उल्टी। आप खुलते हैं-बंधते नहीं, मुक्त होते हैं। खूटी टूटती है, नाव खुलती है, आप बहते हैं।

जब भी आप करुणा के क्षण में होते हैं, तब आप पाते हैं शरीर का बोझ खो गया। जब आप क्रोध में होते हैं, तो पूरा ग्रेविटेशन, सारी जमीन आपको नीचे की तरफ खींचती है। जब आप क्रोध में होते हैं, तब आप वजनी हो जाते हैं। जब आप करुणा में होते हैं, तब आप हल्के हो जाते हैं।

अपने ही भीतर निरंतर कसना है और खोजना है कि क्या मुझे मुक्त करता है और क्या मुझे बांधता है? क्या है अधर्म और क्या है धर्म? ये प्रत्येक व्यक्ति को रोज-रोज कस कर जानने की बातें हैं। इनके कोई बंधे सूत्र वेद में उपलब्ध नहीं हैं। यही महावीर का आग्रह है, कोई किताब नहीं है जो आपके लिए काम दे देगी। किसी किताब के सहारे चल कर आपके भटकने की संभावना है, बजाय पहुंचने की; क्योंकि हर किताब किसी व्यक्ति का निजी अनुभव है। और व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। और धर्म का प्रत्येक व्यक्ति का अपना प्राथमिक अनुभव अलग-अलग होगा।

गुरजिएफ के पास लोग पहुंचते थे, तो गुरजिएफ कभी-कभी बड़ी हैरानी की बातें खड़ी कर देता था जो हम सोच भी नहीं सकते कि धर्म हो सकती हैं। एक आदमी गुरजिएफ के पास पहुंचता है जिसने कभी सिगरेट नहीं पी, और एक आदमी पहुंचता है जो सिगरेट का आदी है और सिगरेट नहीं छोड़ सकता। तो जो सिगरेट का आदी है, उसको गुरजिएफ कहेगा कि "सिगरेट बंद", और जिसने कभी नहीं पी, और जो दुश्मन है, जो कहता है कि "पी लूं तो मुझे उलटी हो जाए", उसको कहेगा कि "तू शुरू कर!" हम सोच भी नहीं सकते कि उसका क्या प्रयोजन है! आदत बांधती है। फिर चाहे वह सिगरेट पीने की हो और चाहे सिगरेट न पीने की हो। आदत अधर्म है।

तो गुरजिएफ बड़ी उलटी बात कह रहा है। वह जिसने कभी नहीं पी है, जो कहता है "मैं, अगर कोई दूसरा भी पी रहा हो तो मेरे भीतर मतली खड़ी हो जाती है, उल्टी होने लगती है", उसे गुरजिएफ कहता है : तू पी, क्योंकि तू भी एक आदत में कुंद है, और यह भी एक आदत में कुंद है। इसको भी इसकी आदत के बाहर लाना है, तुझे भी तेरी आदत के बाहर लाना है। आदत अधर्म है।

गुरजिएफ को महावीर का कोई पता नहीं था, नहीं तो वह बड़ा खुश हुआ होता। लेकिन आपको पता है कि महावीर को मानने वालों को यह ख्याल है कि आदत अधर्म है? नहीं, वे कहते हैं कि अच्छी आदतें धर्म हैं, बुरी आदतें अधर्म हैं।

अच्छी और बुरी आदत का बड़ा सवाल नहीं है। आदत आपको जड़ बनाती है, तरलता खो जाती है। फिर आदत कुछ भी हो, चाहे रोज सुबह उठकर सामायिक करने की हो, या प्रार्थना करने की हो--अगर आदत है!

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, "आज ध्यान नहीं किया तो अच्छा नहीं लग रहा।" और जो आदमी सिगरेट पीता है, अगर वह भी नहीं पीता है तो उसको भी अच्छा नहीं लगता, फर्क क्या है? मगर जो सिगरेट न

पीए और अच्छा न लगे तो हम कहेंगे--हिम्मत रखो, डटे रहो, ध्यान वाले से हम कहेंगे नहीं, ध्यान करना चाहिए था! मगर यह भी एक आदत का गुलाम हो रहा है, एक आदत इसके आस-पास घेरा बांध रही है।

बड़े मजे की बात है, लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान से कुछ आनंद तो नहीं आता, लेकिन अगर न करो तो तकलीफ होती है। वही तो सिगरेट वाले की भी तकलीफ है। वह भी कहता है--सिगरेट पीने से कुछ मिल नहीं रहा है, लेकिन न पीओ तो बेचैनी होती है।

आदत का अर्थ यह है कि कुछ करने की एक यांत्रिक व्यवस्था बन गई है। उस यांत्रिकता में चलो तो ठीक लगता है, उस यांत्रिकता से हटो तो गलत लगता है।

आयांत्रिक होना, धार्मिक होना, नॉन-मेकेनिकल होना है। कोई आदत पकड़े न, कारागृह न बने। और आदत से चेतना सदा मुक्त रहे। चेतना कभी आदत के नीचे न दबे, सदा आदत के ऊपर हावी रहे, और हमारे हाथ में हो।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप ध्यान न करें, इसका मतलब सिर्फ इतना है कि ध्यान भी आदत न हो। नहीं तो प्रेम भी आदत हो जाता है, ध्यान भी आदत हो जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी भाग गई थी तो वह छाती पीट-पीट कर रो रहा था। मित्रों ने सलाह दी कि ऐसा भी क्या है, छह महीने में सब घाव भर जाएगा, तुम फिर किसी के प्रेम में गिरोगे, फिर तुम शादी करोगे, ऐसा मत .जार-जार होकर रोओ। सभी घाव भर जाते हैं, सिर्फ समय की बात है। मुल्ला ने कहा: छह महीने, और आज रात मैं क्या करूंगा?

वे पत्नी के लिए रो भी नहीं रहे हैं। एक आदत है।

तो सेक्स भी आदत हो जाती है, प्रेम भी आदत हो जाती है। अच्छी हैं, बुरी आदतें हैं, पर धर्म की फिकर इस बात की है कि आदत न हो, आप मुक्त हों। कोई भी चीज बांधती न हो, किसी चीज का व्यसन न हो। ऐसी मुक्ति आपको धर्म की दिशा में ले जाएगी। और व्यसन कुछ भी हों--धार्मिक व्यसन हों, कि रोज जाकर धर्म की चर्चा सुननी, कि रोज मंदिर जाना है, नहीं कह रहा हूं कि रोज मंदिर मत जाएं। लेकिन रोज मंदिर जाना आदत बन जाए, तो मुर्दा बात हो गई, आप यंत्र की भांति जाते हैं और आते हैं, कोई परिणाम नहीं है। मंदिर तो चेतना को मुक्त करे, ऐसा चाहिए।

महावीर का यह सूत्र बड़ा विचारणीय है : धर्म द्रव्य का लक्षण है, गति। तो जहां-जहां आप गत्यात्मक हैं, डाइनैमिक हैं, वहां-वहां धर्म है। लेकिन जैन साधुओं को देखें, उनसे ज्यादा अगति में लोगों को पाना कठिन है। जैन साधु को कोई गत्यात्मक नहीं कह सकता, कि उसमें गति है। उसमें गति है ही नहीं। ढाई हजार साल पहले जो जैन साधु की लक्षणा थी, वही अब भी है। ढाई हजार साल में समय जैसे बहा ही नहीं, चीजें बदली ही नहीं। वह अभी भी वहीं जी रहा है, जहां वह ढाई हजार साल पहले था। सब कुछ बदल गया है, लेकिन वह अपनी आदतों से जकड़ा है, वह वहीं खड़ा है। फिर भी वह सूत्र रोज पढ़ता है कि धर्म का लक्षण है गति। अगर धर्म का लक्षण है गति, तो जैन साधु से ज्यादा क्रांतिकारी व्यक्तित्व दूसरा नहीं होना चाहिए। उसे तो रुकना ही नहीं चाहिए। उसे तो जीवन के प्रवाह में गतिमान होना चाहिए।

लेकिन वह ठहरा हुआ है जड़ की तरह, पत्थर की तरह। और जितना पथरीला हो, उतने अनुयायी कहते हैं कि तपस्वी है। और अगर उसमें जरा सी भी हलन-चलन दिखाई पड़े, जरा सा कुछ अंकुरित होता दिखाई पड़े, तो वह आदमी विद्रोही है, वह आदमी ठीक नहीं है, वह मार्ग से च्युत हो गया। अगर गति दिखाई पड़े तो मार्ग से च्युत है, अगर अगति दिखाई पड़े तो बिल्कुल ठीक है।

हम सब अगति के पूजक हैं, हम सब अधर्म के पूजक हैं, इसलिए हम सब आर्थाडाक्स हैं। ध्यान रहे, अगर महावीर की बात हमारे ख्याल में आ जाए तो आर्थाडाक्स धर्म जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, या हो सकती

है? जो भी आर्थाडाक्स होगार रूढ़ होगा, वह अधर्म होगा। धर्म तो सिर्फ क्रांतिकारी ही हो सकता है। धर्म का कोई रूप जड़ नहीं हो सकता। धर्म प्रवाहमान होगा, उसमें गति होगी।

मैं तो कहता हूँ कि धर्म यानी क्रांति। और जिस दिन धर्म क्रांति नहीं रहता उस दिन संप्रदाय बन जाता है। और जैसे ही संप्रदाय बनता है, वैसे ही व्यर्थ बोझ और कारागृह हो जाता है।

धर्म का लक्षण है, गति। अधर्म का लक्षण है, स्थित, स्टेटिक, ठहरे होना। आप अगर ठहरे हैं, तो अधार्मिक हैं; चाहे रोज मंदिर जा रहे हों, चाहे रोज पूजा कर रहे हों; अगर ठहरे हैं, तो अधार्मिक हैं। अगर गति कर रहे हैं, नदी की तरह बह रहे हैं, तालाब की तरह बन्द नहीं हैं- रोज सागर की तरफ जा रहे हैं, और भयभीत भी नहीं हैं कि कल क्या होगा, कल का आनंदपूर्ण स्वीकार है, स्वागत है, तो आप धार्मिक हैं। लेकिन हमारा मन स्थिति को पकड़ता है। इसे थोड़ा समझ लें।

हमारा मन सदा स्थिति को पकड़ता है, क्यों? क्योंकि मन के लिए सुविधापूर्ण है। जब भी कुछ नई बात होती है, तो मन को असुविधा होती है। क्योंकि मन को नई बात सीखनी पड़ती है। जब भी कोई नई घटना घटती है, तो मन को फिर से समायोजित होना पड़ता है, री-एडजस्टमेंट करना पड़ता है। इसलिए मन हमेशा आदतें पसंद करता है। क्योंकि आदतों के साथ कुछ नया नहीं है, सब पुराना है, इसलिए पुराने की धारा में आप बहे चले जाते हैं, नये से अड़चन होती है।

इसलिए मन नये को पसंद नहीं करता। जब आप कोई नई बात सुनते हैं, आप फौरन पाएंगे कि भीतर रेजिस्टेंस है, भीतर विरोध है। जब आप कोई पुरानी बात सुनते हैं, जो आप पहले से ही जानते हैं, और मानते हैं, आप बिल्कुल स्वीकार कर लेते हैं, कि बिल्कुल ठीक है, इसलिए नहीं कि बिल्कुल ठीक है बल्कि इसलिए कि आप आदी हैं, आपको पता है कि ऐसा है। मन को कुछ सीखना नहीं पड़ता। मन सीखने का दुश्मन है। सीखने में प्रवाह है। मन चाहता है, सीखो मत; जो है, वहीं ठहरे रहो।

पशुओं को देखें, पशु कुछ भी नहीं सीखते। सीखने की कोई संभावना ही नहीं पशु में। बामुश्किल, थोड़ा बहुत सर्कस के लिए उनको राजी किया जा सकता है। बाकी, वह भी बामुश्किल! बिल्कुल स्थित हैं।

अगर अधर्म का आप अर्थ समझते हों, तो पक्के अधार्मिक हैं; क्योंकि जहां उनके बापदादे थे, वहीं वे हैं, बापदादों के बापदादे थे, वहीं वे हैं। कहीं कोई फर्क नहीं हुआ है। बंदर दस लाख साल पहले का था, तो बंदर अभी भी ठीक वैसे ही है। बंदर बड़ा पक्का अनुयायी है अपने बापदादों का। प्राचीन का अनुयायी है। सनातन, वही उसकी धारणा है। वह कभी नहीं बदलता। कोई उपद्रव नहीं, कोई क्रांति नहीं, किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं।

आपके हिसाब से तो बंदर ही धार्मिक होना चाहिए। महावीर के हिसाब से वह अधर्म में जी रहा है। आदमी बदलता है। बदलता है, इसलिए आदमी गति करता है, सीखता है, नया अनुसंधान करता है, आविष्कार करता है, खोजता है। नये क्षितिज खोलता चला जाता है और आदमी हमेशा तैयार है, अपने पुराने को छोड़ने, काटने, बदलने को।

इसलिए मैं कहता हूँ, महावीर की दृष्टि वैज्ञानिक है। विज्ञान कभी भी दावा नहीं करता कि जो हम जानते हैं, वह ठीक है। वह कहता है, अभी तक जो जानते हैं, उस हिसाब से ठीक है। कल जो हम जानेंगे, उस हिसाब से गलत भी हो सकता है। इसलिए महावीर कभी भी नहीं कहते कि यही ठीक है। वे कहते हैं कि इसके विपरीत भी ठीक हो सकता है, इससे भिन्न भी ठीक हो सकता है। यह एक दृष्टि है, और दृष्टियां भी हैं, उनसे ये चीज गलत भी हो सकती है।

एक प्रवाह है जीवन सीखने का, जानने का। हम ज्ञान को पकड़ते हैं, जानने से बचना चाहते हैं। ज्ञान मुर्दा चीज है। मैंने आपसे कुछ कहा, आपने पकड़ लिया, कहा कि बिल्कुल ठीक है। लेकिन जानने की प्रक्रिया से आप

नहीं गुजरे। ज्ञान को हम पकड़ लेते हैं, जानने से हम बचते हैं। क्योंकि जानना बड़ा कष्टपूर्ण है, जैसे कोई खाल उतारता हो। पुराना सब उतरता है, नये में प्रवेश करना पड़ता है।

इसलिए आप देखेंगे कि हमारे तथाकथित धर्मों में युवक उत्सुक नहीं होते, बूढ़े उत्सुक होते हैं। होना उलटा चाहिए। महावीर ने जब अपने जीवन का रूपांतरण किया, तब वे जवान थे। लेकिन मेरे पास जैन भी आते हैं, वे कहते हैं कि अभी तो काफी समय बाकी है, और ये बातें तो अंतिम समय की हैं। अभी कुछ संसार को देख लें, फिर आखिर में!

असल में मरता हुआ आदमी सीखने में बिल्कुल असमर्थ हो जाता है। तब सब जड़ हो जाता है, सब ठहर गया होता है। उस ठहराव में आदमी धार्मिक हो जाते हैं, क्योंकि जिसको हम धर्म कहते हैं, वह खुद एक ठहराव हो गया है।

अगर धर्म जीवित हो तो जवान उत्सुक होंगे, अगर धर्म मुर्दा हो तो बूढ़े उत्सुक होंगे। मंदिर में कौन इकट्ठे हैं, इससे पता चल जाएगा कि मंदिर जिंदा है या मर गया है। अगर मंदिर में बूढ़े इकट्ठे हैं तो मंदिर मर चुका है, बहुत पहले मर चुका है। बूढ़ों से मेल खाता है। अगर जवान इकट्ठे हैं तो मंदिर अभी जिंदा है। यह मतलब नहीं है कि बूढ़े मंदिर न जाएं। लेकिन अगर मंदिर जवान हो तो बूढ़ों को जवान होना पड़ेगा, और अगर मंदिर बूढ़ा हो, और जवान उसमें जाएं तो उनको बूढ़ा होना पड़ेगा। तभी तालमेल बैठ सकता है।

महावीर का धर्म, युवा का धर्म है। एक बड़ी क्रांति महावीर ने की। हिंदू विचार था कि धर्म अंतिम बात है। चौथे चरण में जीवन के संन्यास, पहले पूरे संसार का अनुभव। ब्रह्मचर्य--शिक्षण का काल; फिर गृहस्थ--भोग का समय; फिर वानप्रस्थ--संन्यास की तैयारी का समय; और फिर पचहत्तर वर्ष की उम्र में, आखिरी पच्चीस वर्ष में संन्यास।

यह हिंदू धारणा थी। हिंदू धारणा दो चीजों पर टिकी थी--एक चार वर्ण : और चार आश्रम। महावीर ने दोनों तोड़ दिए। महावीर ने कहा: न तो कोई वर्ण है। जन्म से कोई वर्ण नहीं होता। जन्म से तो सभी शूद्र पैदा होते हैं। इन शूद्रों में से कभी-कभी कोई-कोई ब्राह्मण हो पाता है। वह ब्राह्मण होना उपलब्धि है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता।

इसलिए जब हम महावीर की ब्राह्मण की परिभाषा पढ़ेंगे, बड़ी अनूठी है। महावीर किसको ब्राह्मण कहते हैं? जिसको ब्रह्म का अनुभव हो गया हो। तो जन्म से कोई कैसे ब्राह्मण हो सकता है, जन्म से सभी शूद्र होते हैं।

तो महावीर ने वर्ण की धारणा तोड़ दी थी, कि कोई ऊंचा-नीचा नहीं है जन्म से। और महावीर ने चार आश्रम की धारणा भी तोड़ दी, और कहा, ऐसी कोई बात नहीं है कि मरते समय धर्म। असल में ये तो बात ही गलत है। धर्म तो तब जब जीवन अपनी पूरी ऊर्जा पर है, युवा है। जब जीवन अपने पूरे शिखर पर है, जब कामवासना पूरे प्रवाह में है, तब उसको बदलने का जो मजा है, और जो रस है, वह रस बुढ़ापे में नहीं हो सकता। क्योंकि बुढ़ापे में तो सब चीजें अपने आप उदास होकर क्षीण हो गई हैं।

वृद्धावस्था में ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होता है? पचहत्तर वर्ष के बाद ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होगा? शरीर शिथिल हो गया, इंद्रियां काम नहीं करतीं, रुग्ण देह कुरूप हो गई, कोई आकर्षित भी नहीं होता, अब सब प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब आप विदा हों, तब अगर आप कहते हैं कि अब मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूं तो आप भी बड़े गजब के आदमी हैं।

जब सारे शरीर का रोआं-रोआं वासना से भरा हो, और जब शरीर का एक-एक कोष्ठ मांग कर रहा हो, जब शरीर की सारी जीवन चेतना एक ही तरफ बहती हो, काम, तब कोई ठहर जाए, ट्रेन से उतर जाए, तब जो चरम अनुभव होता है, जीवन के प्रवाह को बदलने का, वह वृद्धावस्था में नहीं हो सकता। इसलिए महावीर ने युवकों को संन्यास दिया।

महावीर पर बहुत नाराज थे लोग। नाराजगी की बहुत-सी बातों में सबसे बड़ी नाराजगी यह थी कि युवक संन्यास लें। क्योंकि आपको पता नहीं, युवक के संन्यास का मतलब क्या होता है? युवक के संन्यास का मतलब होता है, सारी गृहस्थी का जाल अस्त-व्यस्त हो जाएगा। बाप बूढ़ा है, वह युवक पर निर्भर है; पत्नी नई घर में आई है, वह युवक पर निर्भर है। छोटे बच्चे हैं, वह युवक पर निर्भर हैं।

समाज का पूरा जाल चाहता है कि आप पचहत्तर साल के बाद संन्यास लें। समाज में इससे बड़ी बगावत नहीं हो सकती थी कि युवक संन्यासी हो जाए। क्योंकि इसका मतलब था कि समाज की पूरी व्यवस्था अराजक हो जाए। महावीर अनार्किस्ट हैं, अराजक हैं। लाखों युवक संन्यासी हुए, लाखों युवतियां संन्यासिनी हुईं। आप सोच सकते हैं, उस समय के समाज का पूरा जाल कैसा अस्त-व्यस्त हो गया होगा।

सब तरफ कठिनाई खड़ी हो गई होगी। सब तरफ अड़चन आ गई होगी। लेकिन महावीर ने कहा कि यह अड़चन उठाने जैसी है। क्योंकि जब ऊर्जा अपने उद्दाम वेग में हो, तभी क्रांति हो सकती है, और तभी छलांग हो सकती है। जैसे-जैसे ऊर्जा शिथिल होती है, वैसे-वैसे छलांग मुश्किल होती जाती है। फिर आदमी मर सकता है, समाधिस्थ नहीं हो सकता। शिथिल होती हुई इंद्रियों के साथ कुछ भी नहीं हो सकता; क्योंकि शरीर ही तो यात्रा का रथ है।

इसलिए महावीर ने युवकों को संन्यास दिया, उसका भी कारण इसलिए है कि धर्म गति है, और युवक गतिमान हो सकता है। बूढ़ा गतिमान नहीं हो सकता। हिंदुओं ने एक समाज पैदा किया था, जो स्टेटिक है, जो ठहरा हुआ है तालाब की तरह। हिंदुओं के इस समाज में कभी कोई लहर नहीं उठी, इसलिए हिंदू माफ नहीं कर पाए महावीर को। आप हैरान होंगे कि उनकी नाराजगी का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि हिंदुओं ने महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया, अपने किसी शास्त्र में।

और ध्यान रहे, यह आखिरी बात है। अगर मैं आपसे प्रेम करूं, यह एक संबंध है। आपसे घृणा करूं, यह भी एक संबंध है। क्योंकि मेरा नाता जारी रहता है। लेकिन मैं आपसे न प्रेम करूं, न घृणा करूं, उपेक्षा करूं तो यह आखिरी बात है। क्योंकि जब भी हम किसी को घृणा करते हैं, तब भी मूल्य देते हैं।

महावीर के साथ हिंदुओं ने आखिरी उपाय किया। उनकी उपेक्षा की। उनके नाम की भी चर्चा नहीं उठाई। जैसे यह आदमी हुआ ही नहीं। इसे भूल ही जाओ। इसकी चर्चा भी खतरनाक है। इसकी चर्चा चलाए रखने का मतलब है कि वे बिंदु जो उसने उठाए थे, वह जारी रहेंगे।

महावीर की बिल्कुल, जैसे घटना घटी ही नहीं। अगर सिर्फ हिंदू-ग्रंथ उपलब्ध हों, तो महावीर गैर-ऐतिहासिक व्यक्ति हो जाएंगे। महावीर का कोई उल्लेख नहीं है। आदमी बड़ा खतरनाक रहा होगा, जिस वजह से इसकी इतनी उपेक्षा करनी पड़ी। इतना अराजक रहा होगा कि समाज ने इनका नाम भी संरक्षित करना उचित नहीं समझा।

बड़ी क्रांति यह थी कि युवक, ऊर्जा-प्रवाह में है, तभी धार्मिक हो सकता है। युवा चेतना धार्मिक हो सकती है, क्योंकि त्वरा चाहिए, वीर्य चाहिए, क्षमता चाहिए।

"सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश का लक्षण है।" आकाश यानी अवकाश देने की क्षमता; स्पेस। यह भी बहुत सोचने जैसा है। महावीर कहते हैं, सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश है। आप जो भी करना चाहें, आकाश आपको अवकाश देता है करने को। आप चोरी करना चाहें, तो चोरी। आप पत्थर होना चाहें, तो पत्थर। आप परमात्मा होना चाहें, तो परमात्मा। आकाश आपको सभी तरह के अवकाश देता है।

यह जो हमारे चारों तरफ घिरी हुई स्पेस है, यह आपको कुछ भी बनाने के लिए जोर नहीं डालती। यह बिल्कुल तटस्थ है। यह आपसे कहती नहीं कि आप ऐसे हो जाएं। आप जैसे हो जाएं, इसे स्वीकार है। और यह आपको पूरा सहारा देती है। आकाश किसी का दुश्मन नहीं है, और किसी का मित्र नहीं है। सिर्फ अवकाश की क्षमता है।

तो आप जो भी हैं, अपने कारण हैं। ऐसा दबा नहीं रहा है, और कोई आपको बना नहीं रहा है। हिंदू-धारणा भिन्न थी। हिंदू-धारणा थी कि आप ऐसे हैं, क्योंकि परमात्मा, नियति, भाग्य! आपकी विधि में कुछ लिखा है, इसलिए आप ऐसे हैं, आप परतंत्र हैं। महावीर कहते हैं, आप पूर्ण स्वतंत्र हैं। और परमात्मा घेर रहा है सब को, हिंदू-धारणा में। महावीर की धारणा में आकाश घेर रहा है। आकाश आपको कुछ भी बनाने के लिए उत्सुक नहीं है। आप जो बनना चाहते हैं, आकाश राजी है। आपको वही जगह दे देगा।

एक बीज वृक्ष बनता है, बरगद का वृक्ष बन जाता है, तो आकाश बाधा नहीं देता। उसे जगह देता है। रिसेप्टिव है, ग्राहक है। एक गुलाब का पौधा है। आकाश उसे गुलाब होने की सुविधा देता है।

आकाश बिल्कुल तटस्थ सुविधा का नाम है। जो हमें घेरे हुए है, वह कोई परमात्मा नहीं है जिसकी अपनी कोई धारणा है कि हमें क्या बनाए? कोई भाग्य हमें घेरे हुए नहीं है। हमारे अतिरिक्त हमारा कोई भाग्य नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है। यह स्वतंत्रता भी है, और एक महान जिम्मेवारी भी।

निश्चित ही, जहां भी स्वतंत्रता होगी, वहां रिस्पांसिबिलिटी, वहां उत्तरदायित्व हो जाएगा। परमात्मा के साथ एक खतरा है कि आप परतंत्र हैं, लेकिन एक लाभ है क्योंकि आप जिम्मेवार हैं; फिर आप पाप भी कर रहे हैं तो वही जिम्मेवार है। फिर आप नरक में भी पड़ते हैं, तो वही जिम्मेवार है; फिर जो भी हो रहा है, वही जिम्मेवार है। परतंत्र जरूर है, लेकिन परतंत्रता में एक लाभ है, एक सौदा है, वह यह कि आपकी कोई जिम्मेवारी नहीं, कोई चिंता नहीं। आप निश्चित हैं। उसकी जो मर्जी। उसकी बिना मर्जी के पत्ता भी नहीं हिलता।

महावीर परमात्मा की जगह आकाश की धारणा को स्थापित करते हैं। और वे कहते हैं, पत्ता अपनी ही मर्जी से हिलता है, और किसी की मर्जी से नहीं। आकाश की अपनी कोई मर्जी नहीं है आपको हिलाने-डुलाने की। आकाश सिर्फ अवकाश देता है। पत्ता हिलना चाहता है, तो अवकाश देता है, पत्ता ठहरना चाहता है, तो ठहरने के लिए सुविधा देता है।

निरपेक्ष अस्तित्व है चारों ओर। यह अस्तित्व आपको न तो खींच रहा है, और न आपको धक्के दे रहा है। आप जो भी कर रहे हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी जिम्मेवार नहीं है। आप परम स्वतंत्र हैं। लेकिन तब चिंता पैदा हो जाती है। क्योंकि तब उसका अर्थ हुआ अगर गलत हो रहा है, तो मैं जिम्मेवार हूं, उसका अर्थ हुआ अगर मैं दुख पा रहा हूं तो मैं जिम्मेवार हूं। कोई ऊपर परमात्मा नहीं है।

इसलिए बहुत बड़ी संख्या में महावीर के अनुयायी नहीं बन सके; क्योंकि लोग चिंता छोड़ना चाहते हैं, चिंता पकड़ना नहीं चाहते। गुरु के पास लोग आते हैं कि मेरा बोझ आप ले लो। और ये महावीर खतरनाक आदमी हैं, ये सारे संसार का बोझ आप पर रखे दे रहे हैं। गुरु के पास आप जाते हैं, उसके चरणों में सिर रखते हैं कि सम्हालो! बस, अब आप ही हो। आपकी जो मर्जी, वैसा ही--कि आप एक आकाश में बैठे परमात्मा को समर्पण करते हैं।

समर्पण क्या करेंगे? आपके पास है क्या समर्पण करने को, सिवाय दुख और उपद्रव के? जब आप कहते हैं कि आपकी ही मजू, तो आप छोड़ क्या रहे हो? बीमारियां, उपाधियां, उपद्रव, पागलपन!

लेकिन एक लाभ है। हो परमात्मा या न हो, जब आप अनुभव करते हैं कि किसी पर छोड़ा, तो आप निश्चित हो पाते हैं।

महावीर की प्रक्रिया बिल्कुल उलटी है। महावीर कहते हैं कि धार्मिक व्यक्ति अति चिंता से भर जाएगा। इसे समझ लें, क्योंकि बिल्कुल विपरीत है। समर्पण नहीं है महावीर की धारणा में--संकल्प है। महावीर कहते हैं, कि धार्मिक व्यक्ति ही चिंतित होगा, अधार्मिक व्यक्ति चिंतित होता ही नहीं। और यह बात सच है। धार्मिक चिंता से बड़ी चिंता और नहीं हो सकती; क्योंकि धार्मिक चिंता का अर्थ है कि मैं जो भी हूं, मैं जिम्मेवार हूं। और

कल में जो भी होऊंगा, मैं ही जिम्मेवार होऊंगा। इसलिए एक-एक कदम फूंक-फूंक कर रखना है; और किसी दूसरे पर दायित्व नहीं डाला जा सकता; और किसी के कंधों पर बोझ नहीं रखा जा सकता; और दोष दूसरों को नहीं दिए जा सकते। सब दोष मेरे हैं।

खतरा है। भारी चिंता का बोझ सिर पर हो जाएगा। अकेला हो जाऊंगा मैं, कोई सहारा नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं, असहाय है, असहाय है आदमी। हिंदू भी कहते हैं, आदमी असहाय है। लेकिन हिंदू कहते हैं, आदमी असहाय है, इसलिए परमात्मा का सहारा खोजो। महावीर कहते हैं, आदमी असहाय है और कोई सहारा है नहीं, इसलिए अपने ही सहारे खड़े होने की चेष्टा करो।

निश्चित ही महाचिंता घेरेगी सिर पर। पर ध्यान रहे, इस चिंता झेलने को जो राजी है, उसके आनंद का मुकाबला कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि इसी चिंता से विकास है। इसी चिंता और संघर्ष से निखार है। इसी चिंता से फौलाद जन्मेगा, इसी आग से। कोई सहारा नहीं। इस असहाय अवस्था में ही खड़े रहने की हिम्मत साहस है जो आत्मा का जन्म बनेगी और एक ऐसी घड़ी आएगी कि जब किसी सहारे की कोई जरूरत भी नहीं रह जाएगी, आकांक्षा भी नहीं रह जाएगी। आदमी अपने ही पैरों पर पूरी तरह खड़ा हो जाएगा।

महावीर कहते हैं, जब भी कोई आत्मा अपनी अवस्था में पूरी तरह खड़ी हो जाती है, जब बाहर के सहारे की कोई जरूरत नहीं होती, तब सिद्ध की अवस्था है। जब तक बाहर का सहारा चाहिए, तब तक संसार है। इसलिए महावीर की धारणा में भक्ति की कोई गुंजाइश नहीं है। मगर जैन बड़े अदभुत लोग हैं। वे महावीर के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। वे उन्हीं की पूजा-प्रार्थना कर रहे हैं। जबकि महावीर कहते हैं, भक्ति का कोई उपाय नहीं है।

और महावीर से कोई सहारा नहीं मिल सकता। अगर सहारा चाहिए तो दूसरी जगह जाना पड़ेगा। कृष्ण के पास जाना पड़ेगा। कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, छोड़ सब, मेरी शरण में आ। वह अलग मार्ग है, अलग पद्धति है। महावीर कहते हैं, छोड़ मुझे, और अपने पैरों पर खड़ा हो।

महावीर कभी कृष्ण की बात नहीं कह सकते। और जैनों ने कृष्ण को अगर नरक में डाल रखा है तो उसका कारण है। इसलिए महावीर की दृष्टि बिल्कुल विपरीत है। महावीर कहेंगे यह बात ही उपद्रव की है कि कोई किसी की शरण जाए। यह तो खतरा है। यह तो इस आदमी की आत्मा का हनन है। अगर कहीं अर्जुन महावीर के पास गया होता तो वे कहते, तू भी किस के चक्कर में पड़ गया है! और कृष्ण कह रहे हैं, सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज। सब धर्म-वर्म छोड़ मेरी शरण आ। महावीर कहते कि सब शरण छोड़, निज शरण बन। महावीर का शब्द है, अशरण बन। और जब तू अशरण बन जाएगा, तभी तू सिद्ध हो सकता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि कृष्ण के मार्ग से लोग नहीं पहुंच पाते। उस मार्ग से भी पहुंचते हैं। ज्यादा लोग उसी मार्ग से पहुंचते हैं। लेकिन महावीर का मार्ग अनूठा है। जिसमें साहस है, उनके लिए चुनौती है। जिनमें थोड़ी हिम्मत है, जिनमें थोड़ा पुरुषार्थ है, उनके लिए महावीर का मार्ग है।

कृष्ण का मार्ग स्त्री है, स्त्री-चित्त के लिए है, समर्पण। महावीर का मार्ग पौरुषेय है। पुरुष का है, संकल्प। लेकिन पुरुष बहुत कम हैं, स्त्रियां बहुत ज्यादा हैं। पुरुषों में भी स्त्री-चित्त ज्यादा हैं; क्योंकि आदमी इतना कमजोर और भयभीत है कि उसके मन की आकांक्षा है, कोई सहारा मिल जाए, कोई कह दे!

इसलिए तो इतने गुरु पैदा हो जाते हैं दुनिया में। कितने गुरु हैं? कोई उपाय नहीं है। ये गुरु हैं, ये आपकी खोज है किसी सहारे की। इसलिए एक गधे को भी खड़ा कर दो, शिष्य मिल जाएंगे। इसमें गधे की कोई खूबी नहीं है, ये आपके सहारे की खोज हैं। तो उसको भी शिष्य मिल जाएंगे। एक पत्थर को भी रख दो, उस पर भी सिंदूर लगा दो, थोड़ी देर बाद आप देखोगे, कोई आदमी फूल रख कर उसके सामने सिर झुका रहा है। सिर झुकाने की जरूरत है किसी को। यह पत्थर मूल्यवान नहीं है, यह पत्थर जरूरत की पूर्ति है।

महावीर का मार्ग निर्जन है, अकेले का है--एकाकी का। जिनमें साहस है, केवल उनके लिए है। जिनमें हिम्मत है अकेले होने की, उनके लिए है।

"आकाश का लक्षण है, अवकाश देना। काल का लक्षण है, वर्तना।"

समय--समय का अर्थ है: चलना, वर्तन होना। समय पर कोई दोष मत दें कभी। लोग समय को दोष देते रहते हैं। लोग कहते हैं, समय बुरा है। जैसे आकाश जगह देता है आपको दिशाओं में, वैसे ही समय भी आपको जगह देता है भविष्य और अतीत की दिशा में। आइंस्टीन ने तो अभी सिद्ध किया कि समय भी आकाश का ही एक अंग है, वह भी एक दिशा है। चार दिशाएं आकाश की हैं। ये दो दिशाएं भी आकाश की हैं। फर्क इतना है कि इनमें आगे-पीछे की यात्रा है।

समय भी आपको अवकाश देता है। समय भी आपके ऊपर जोर नहीं डालता। लेकिन इधर मैं सुनता हूं, जैन भी कहते हुए सुने जाते हैं कि यह पंचम-काल है। इसमें कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता। इसमें कोई सिद्ध नहीं हो सकता। इसमें कोई केवलज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता। यह काल ही खराब है।

समय खराब नहीं होता, समय तो सिर्फ शुद्ध परिवर्तन है। आप समय पर बोझ डालते हैं और खुद निश्चित हो जाते हैं। आप निश्चित होना चाहते हैं तीर्थंकर होने की चिंता से। क्योंकि तीर्थंकर अगर हुआ जा सकता था, तो आपको भी बेचैनी होगी कि मैं क्यों नहीं हो रहा हूं। अगर कोई आदमी घोषणा कर दे कि वह तीर्थंकर है, तो आप सब मिल कर सिद्ध करने की कोशिश करेंगे कि नहीं तुम, तीर्थंकर नहीं हो सकते, यह काल ही तीर्थंकर होने का नहीं है। यह बात ही गलत है।

आप असल में किस बात से लड़ रहे हैं, आपको पता नहीं है। मन बड़ा चालाक है। आप इस बात से लड़ रहे हैं कि अगर तीर्थंकर हुआ जा सकता है, तो फिर मैं तीर्थंकर क्यों नहीं हो सकता? वह अड़चन है।

नीत्से ने लिखा है कि अगर कहीं कोई ईश्वर है, तो फिर मुझे बड़ी अड़चन हो जाएगी कि फिर मैं ईश्वर क्यों नहीं हूं? इसलिए दो ही उपाय हैं : एक उपाय नीत्से का है। वह कहता है, ईश्वर है ही नहीं, और निश्चित हो जाता है। दूसरा उपाय महावीर का है। तर्क दोनों का एक है। महावीर ईश्वर होने की कोशिश में लग जाते हैं, और ईश्वर हो जाते हैं। चिंता एक ही है। नीत्से कहता है, इफ देयर इज गॉड, देन हाउ आई कैन रिमेन विदाउट बीइंग ए गॉड। देअरफोर देअर इज नो गॉड--अगर ईश्वर है, तो मैं ईश्वर हुए बिना कैसे रुक सकता हूं। इसलिए कोई ईश्वर नहीं है। महावीर भी कहते हैं कि अगर ईश्वर है तो मैं ईश्वर हुए बिना कैसे रुक सकता हूं, इसलिए ईश्वर होकर रहते हैं, ईश्वर हो जाते हैं।

तो एक चिंता पैदा होती है। हम कह देते हैं कि यह तो काल खराब है, कलयुग है, पंचम काल है, समय खराब है। खुद खराब होने के लिए सुविधा चाहते हैं, इसलिए कहते हैं, समय खराब है। सुविधा मिल जाती है। क्योंकि समय सुविधा देता है। आप खराब होना चाहते हैं, समय खराब होने की सुविधा देता है। आप महावीर होना चाहें, समय आपको वह भी सुविधा देता है। समय पर कोई पक्षपात नहीं है। समय जीवन प्रवाह की शुद्ध धारा है। ये सारे तत्व निष्पक्ष हैं।

"और उपयोग अर्थात् अनुभव जीव का लक्षण है। जीवात्मा ज्ञान से, दर्शन से, सुख से तथा दुख से पहचाना जाता है।"

अंतिम तत्व है, जीवात्मा। जैसे आकाश का लक्षण है--अवकाश, और काल का लक्षण--वर्तन, और धर्म का लक्षण--गति, और अधर्म का लक्षण--अगति, वैसे जीव का लक्षण--अनुभव।

जैसे-जैसे आपके अनुभव की क्षमता प्रगाढ़ होती है, वैसे-वैसे आप आत्मा बनने लगते हैं। जितनी आपके अनुभव की क्षमता कम होती है, उतने आप पदार्थ के करीब होते हैं और आत्मा से दूर होते हैं। और अंतिम

अनुभव है, शुद्ध अनुभव, जब अनुभव करने को कुछ भी नहीं बचता, सिर्फ अनुभोक्ता रह जाता है, दि एक्सपीरियंसर। सब खो जाता है, सिर्फ शुद्ध ज्ञाता, अनुभोक्ता बचता है। वह अंतिम क्षमता है।

एक पत्थर में और आप में फर्क क्या है?

सुबह होगी, सूरज निकलेगा, पत्थर खिल नहीं जाएगा, और नहीं कहेगा कि कितनी सुंदर सुबह है। आप खिल सकते हैं। जरूरी नहीं कि आप खिलेंगे, सौ में से निन्यानबे आदमी भी नहीं खिलते। सूरज उगता रहे, उन्हें मतलब ही नहीं कब उगता है, कब डूबता है। फूल खिलते रहें, उन्हें मतलब नहीं, कब वसंत आती है, कब पतझड़। उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। वे भी अपने में बंद एक पत्थर की तरह जी रहे हैं।

चेतना का लक्षण है, अनुभव, सूरज सुबह उगता है, आपके भीतर भी कुछ उगता है। एक अनुभव प्रगाढ़ हो जाता है। आप जानते हैं, कुछ हो रहा है। फूल खिलता है, आपके भीतर भी कुछ खिलता है। पत्थर पड़ा रहता है, जैसे कुछ भी नहीं हुआ।

सुख है, दुख है, ज्ञान है, बोध है--सब जीवन के लक्षण हैं। जिस मात्रा में बढ़ते चले जाएं, उतनी जीवन की गहराई बढ़ती चली जाती है। जीवन उस दिन परम गहराई पर होता है, जब हम पूरे जीवन का अनुभव उसके शुद्धतम रूप में कर लेते हैं। उसे ही महावीर सत्य कहते हैं। वह जीवन का परम अनुभव है। सुख, दुख प्राथमिक अनुभव हैं, आनंद परम अनुभव है। इसे हम आगे विस्तार से समझने की कोशिश करेंगे।

आज इतना ही।

आत्मा का लक्षण है ज्ञान (लोकतत्व-सूत्र: 2)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
 वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं॥
 सद्दंधयार उज्जोओ, पहा छायातवे इ वा॥
 वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाण तु लक्खणं॥
 जीवाजीवा य बन्धो य पुण्णं पावासवा तहा।
 संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्तेए तहिया नवा॥
 तहियाणं तु भावाणं,
 सव्भावे उवस्सणं।
 भावेणं सद्दहन्तस्स,
 सम्मत्तं तं वियाहियं॥

ज्ञान, दर्शन, चारिष्य, तप, वीर्य और उपयोग अर्थात् अनुभव--ये सब जीव के लक्षण हैं।
 शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप (धूप), वर्ण, रस, गंध और स्पर्श--ये सब पुद्गल के लक्षण हैं।
 जीव, अजीव, बंध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष--ये नौ सत्यतत्व हैं।
 जीवादिक सत्य पदार्थों के अस्तित्व में सदगुरु के उपदेश से, अथवा स्वयं ही अपने भाव से श्रद्धान करना, सम्यक्त्व कहा गया है।

चेतना का लक्षण है, उपयोग या अनुभव। अनुभव को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। अस्तित्व तो पदार्थ का भी है। राह पर पड़े हुए पत्थर का भी अस्तित्व है, एक्झिस्टेंस है, लेकिन उस पत्थर को अपने अस्तित्व का कोई बोध नहीं है, कुछ पता नहीं है, कुछ पता नहीं कि "मैं हूं।" अनुभव नहीं है।

अस्तित्व के बोध का नाम "अनुभव" है--और वही चैतन्य में और अजीव में, आत्मा में और पदार्थ में भेद है। अस्तित्व दोनों का है--पदार्थ का भी और आत्मा का भी, लेकिन आत्मा के साथ एक नये तत्व का उदभावन है। एक नया आयाम खुलता है कि आत्मा को यह पता भी है कि "मैं हूं।"

होने में कोई फर्क नहीं है। पत्थर भी है, आत्मा भी है, पर आत्मा को यह भी पता है कि "मैं हूं।" और यह बहुत बड़ी घटना है। इस घटना के इर्द-गिर्द ही जीवन की सारी साधना, जीवन की सारी यात्रा है। यह तो पता है कि "मैं हूं", और जिस दिन यह भी पता चल जाता है कि "मैं क्या हूं", उस दिन यात्रा पूरी हो जाती है।

पदार्थ है, उसे, पता नहीं है कि वह है। आत्मा है, उसे यह भी है, पता है कि "मैं हूं" लेकिन यह पता नहीं है कि "मैं कौन हूं"। और परमात्मा उस अवस्था का नाम है, जहां तीसरी घटना भी घट जाती है, जहां यह भी पता है कि "मैं कौन हूं"।

तो अस्तित्व की तीन स्थितियां हुईं: एक कोरा अस्तित्व--बोधहीन; दूसरा भरा हुआ अस्तित्व--अनुभव से; और तीसरा परिपूर्ण विकसित अस्तित्व--जहां यह भी अनुभव हो गया कि मैं कौन हूं, मैं क्या हूं।

और ऐसा नहीं कि ये अवस्थाएं पत्थर की, आदमी की और परमात्मा की हैं, आप इन तीनों अवस्थाओं में भी बराबर रूपांतरित रहते हैं। किसी क्षण में आप पत्थर की तरह होते हैं, जहां आप होते हैं और आपको अपने

होने का पता नहीं होता। किसी क्षण में आप आदमी की तरह होते हैं, जहां आपको अपने होने का भी बोध है। और किसी क्षण में आप परमात्मा को भी छू लेते हैं, जहां आपको यह भी पता होता है कि "हम कौन हैं।"

तो ये तीन पदार्थ--अस्तित्व की ही अवस्थाएं नहीं हैं--चेतना, इन तीनों में निरंतर डोलती रहती है। किसी-किसी क्षण में आप बिल्कुल परमात्मा के करीब होते हैं। कुछ क्षणों में आप मनुष्य होते हैं। बहुत अधिक क्षणों में आप पत्थर ही होते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बाल बनवाने एक नाई की दूकान पर गया है। दाढ़ी पर साबुन लगा दी गई है, गले में कपड़ा बांध दिया गया है--और नाई बिल्कुल तैयार ही है काम शुरू करने को कि एक लड़का भागा हुआ आया और उसने कहा: शेख, तुम्हारे घर में आग लगी है। नसरुद्दीन ने कपड़ा फेंका, भूल गया अपना कोट उठाना भी, चेहरे पर लगी हुई साबुन, और उस लड़के के पीछे भागा घबड़ा कर। लेकिन पचास कदम के बाद अचानक ठहर गया, और कहा कि मैं भी कैसा पागल हूं! क्योंकि पहले तो मेरा नाम शेख नहीं, मेरा नाम मुल्ला नसरुद्दीन है; और दूसरा, मेरा कोई मकान नहीं जिसमें आग लग जाए!

ऐसे क्षण आपके जीवन में भी हैं। आपको भी न तो अपने नाम का पता है और न अपने घर का पता है। न तो आपको पता है कि आप कौन हैं और न आपको पता है कि आप कहां से आते हैं और कहां जाते हैं। न आप अपने मूलस्रोत से परिचित हैं और न अपने अंतिम पड़ाव से और नाम जो आप जानते हैं कि आपका है, वह बिल्कुल कामचलाऊ है, दिया हुआ है। राम की जगह कृष्ण भी दिया जाता, तो भी चल जाता काम। कृष्ण की जगह मोहम्मद दिया जाता, तो भी चल जाता काम। नाम दिया हुआ है, नाम कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन इस झूठे नाम को हम मान कर जी लेते हैं कि मैं हूं। और एक घर बना लेते हैं, जो कि घर नहीं है। क्योंकि जो छूट जाए, उसे घर कहना व्यर्थ है। और जिसे बनाना पड़े, वह मिटेगा भी। उस घर की तलाश ही धर्म की खोज है, जो हमारा बनाया हुआ नहीं है और जो मिटेगा भी नहीं। और जब तक हम उस घर में प्रविष्ट न हो जाएं--जिसे महावीर "मोक्ष" कहते हैं; जिसे शंकर "ब्रह्म" कहते हैं; जिसे जीसस ने "किंगडम ऑफ गॉड" कहा है--जब तक उस घर में हम प्रविष्ट न हो जाएं तब तक जीवन एक बेचैनी और एक दुख की एक यात्रा रहेगी।

महावीर जीव का पहला लक्षण कहते हैं, अनुभव--यह बोध कि "मैं हूं"। लेकिन यह पहला लक्षण है, यह यात्रा की शुरुआत है। यह भी अनुभव में आ जाए कि "मैं कौन हूं?" तो यात्रा पूरी हो गई; वह यात्रा का अंत है।

"ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और उपयोग--ये सब जीव के लक्षण हैं।"

थोड़ा-थोड़ा इन लक्षणों के संबंध में समझ लें, क्योंकि आगे हम विस्तार से इनकी बात कर पाएंगे।

ज्ञान से महावीर का अर्थ है, जानने की क्षमता--सामग्री नहीं, क्षमता; इनफॉर्मेशन नहीं, सूचनाओं का संग्रह नहीं, क्योंकि सूचनाओं का संग्रह तो यंत्र भी कर सकता है। आप के मस्तिष्क में जो-जो सूचनाएं इकट्ठी हैं, वे तो टेप-रिकॉर्डर पर भी इकट्ठी की जा सकती हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं, आपका मस्तिष्क टेपरेकार्ड से कुछ भिन्न नहीं है! इसलिए आपके मस्तिष्क को अगर चोट पहुंचाई जाए, तो आपकी स्मृति खो जाएगी। आपके मस्तिष्क से कुछ स्मृतियां बाहर भी निकाली जा सकती हैं, जिनका आपको फिर कभी भी पता नहीं चलेगा। और आपके मस्तिष्क में ऐसी स्मृतियां भी डाली जा सकती हैं, जिनका आपको कभी कोई अनुभव नहीं हुआ।

नवीनतम खोजें कहती हैं कि मेमोरी ट्रांसप्लांट भी की जा सकती है। आइंस्टीन मरता है तो आइंस्टीन के साथ उसकी स्मृतियों का पूरा का पूरा संग्रह भी नष्ट हो जाता है। यह बड़ा भारी नुकसान है। अब विज्ञान कहता है कि दस-बीस वर्ष के भीतर हम इस जगह पहुंच जाएंगे--प्राथमिक प्रयोग सफल हुए हैं--जहां मरते हुए आइंस्टीन को तो मरने देंगे, लेकिन उसकी स्मृति को बचा लेंगे; उसके मस्तिष्क में जो उसकी स्मृतियों का तानाबाना है, उसे बचा लेंगे और एक नवजात बच्चे के ऊपर ट्रांसप्लांट कर देंगे। एक नये बच्चे को उन स्मृतियों के साथ जोड़ देंगे। वह बच्चा स्मृतियों के साथ ही बड़ा होगा। और जो उसने कभी नहीं जाना, वह भी उसे लगेगा

कि मैं जानता हूँ। अगर आइंस्टीन की पत्नी सामने आ जाए तो वह कहेगा, यह मेरी पत्नी है; जिसे उसने कभी देखा भी नहीं। क्योंकि अब स्मृति आइंस्टीन की काम करेगी।

छोटे प्रयोग इसमें सफल हो गए हैं, पशुओं पर प्रयोग सफल हो गए हैं। इसलिए आदमी पर प्रयोग बहुत दूर नहीं हैं। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि महावीर पहले व्यक्ति हैं मनुष्य जाति के इतिहास में जिन्होंने स्मृति को पदार्थ कहा, जिन्होंने स्मृति को चेतना नहीं कहा; जिन्होंने कहा, स्मृति भी सूक्ष्म पदार्थ है। आपके मस्तिष्क को खास जगह अगर इलेक्ट्रिकली स्टिम्युलेट किया जाए, विद्युत से उत्तेजित किया जाए, तो खास स्मृतियाँ पैदा होनी शुरू हो जाती हैं। जैसे आपके मस्तिष्क में बचपन की स्मृतियाँ किसी कोने में पड़ी हैं, उनको विद्युत से जगाया जाए, तो आप तत्काल बचपन में वापस चले जाएंगे और सारी स्मृतियाँ सजीव हो उठेंगी। उत्तेजन बंद कर दिया जाए, स्मृति बंद हो जाएगी। फिर से उत्तेजित किया जाए, फिर से वही स्मृति वापस लौटेगी, फिर से वही कथा वापस होगी। जैसे टेप-रिकॉर्डर पर आप एक ही बात को कितनी ही बार सुन सकते हैं, हजार बार उसी जगह को उत्तेजित करने पर वही स्मृति फिर लौटने लगेगी।

मस्तिष्क शरीर का हिस्सा है, इसलिए स्मृति भी शरीर की ही प्रक्रिया है--आणविक पदार्थ।

ज्ञान का अर्थ स्मृति नहीं है। ज्ञान का अर्थ, स्मृति को भी जानने वाला जो तत्व है भीतर, उससे है। इसे ठीक से समझ लें, अन्यथा भूल होनी आसान है। आप जो जानते हैं, उससे ज्ञान का संबंध नहीं है। अगर आप अपने जानने को भी जानने में समर्थ हो जाएं, तो ज्ञान का संबंध शुरू होगा।

आपके मन में एक विचार चल रहा है। आप चाहें तो दूर खड़े होकर इस विचार को चलते हुए भी देख सकते हैं। अगर यह संभव न होता, तो ध्यान का कोई उपाय भी न था। ध्यान इसीलिए संभव है कि आप अपने विचार को भी देख सकते हैं। और जिसको आप देख रहे हैं, वह पराया हो गया, वह देखने वाला आप हो गए।

तो महावीर का ज्ञान से अर्थ है--जानने की क्षमता; संग्रह नहीं जानने का, ज्ञान का संग्रह नहीं--ज्ञान की प्रक्रिया के पीछे साक्षी का भाव। वहीं चेतना का पता चलेगा। अन्यथा अगर स्मृति ही मनुष्य की चेतना हो, तो बहुत जल्दी मनुष्य को पैदा किया जा सकेगा। कोई कठिनाई नहीं है। स्मृति तो पैदा की जा सकती है। कंप्यूटर हैं, उनकी स्मृति आदमी से ज्यादा प्रगाढ़ है। और आदमी से भूल भी हो जाए, कंप्यूटर से भूल होने की भी कोई संभावना नहीं है।

आज नहीं कल, हम मनुष्य से भी बेहतर मस्तिष्क विकसित कर लेंगे। कर ही लिया है। लेकिन, फिर भी एक कमी रह जाएगी, इस बात की कोई संभावना नहीं है कि कंप्यूटर ध्यान कर सके। कंप्यूटर विचार कर सकता है--और आप से अच्छा विचार कर सकता है, नवीनतम कंप्यूटर उस जगह पहुंच गए हैं। मैं एक आंकड़ा पढ़ रहा था कि अगर दुनिया के सारे बड़े गणितज्ञ--समझ लें दस हजार गणितज्ञ--एक सवाल को हल करने में लगे, तो जिस सवाल को दस हजार गणितज्ञ दस हजार वर्ष में हल कर पाएंगे, उसे कंप्यूटर एक सेकेंड में हल कर दे सकता है।

स्मृति की क्षमता तो बहुत विकसित हो गई है यंत्र के पास। आदमी की स्मृति का यंत्र तो आउट ऑफ डेट है। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं रह गया। लेकिन, इतना सब करने के बाद भी, दस हजार आइंस्टीन का काम, दस हजार वर्ष में जो हो पाता, वह कंप्यूटर एक सेकेंड में कर देगा, लेकिन एक महावीर का काम जरा भी नहीं कर सकता। क्योंकि महावीर का काम स्मृति से संबंधित नहीं, स्मृति के पीछे जो साक्षी है, वह जो विटनेस है, जो स्मृति को भी देखता है, उससे संबंधित है। कंप्यूटर साक्षी नहीं हो सकता। वह अपने को बांट नहीं सकता, कि खुद खड़े होकर देख सके भीतर कि क्या चल रहा है। हम बांट सकते हैं। वह जो बांटने की कला है, उससे ही ज्ञान का जन्म होता है।

तो महावीर कहते हैं, आत्मा का लक्षण है--ज्ञान, दर्शन। जो पहली झलक है स्वयं की, उसका नाम ज्ञान है। और जब हम उस झलक को सारे जगत और अस्तित्व के साथ संयुक्त करके देखने में समर्थ हो जाते हैं, गेस्टाल्ट पैदा हो जाता है, अपनी झलक के साथ जब सारे जगत की झलक का भी हमें बोध हो जाता है।

ध्यान रहे, जो भी मैं अपने संबंध में जानता हूं, उससे ज्यादा मैं किसी के संबंध में नहीं जान सकता। मेरा ज्ञान ही, अपने संबंध में फैल कर जगत के संबंध में ज्ञान बनता है। अगर आप कहते हैं कि कहीं कोई परमात्मा नहीं है, तो उसका अर्थ यही हुआ कि आपको अपनी आत्मा का कोई अनुभव नहीं है। अगर आपको अपनी आत्मा का अनुभव हो, तो पहला ज्ञान तो यही होगा कि आत्मा है। दर्शन यह होगा कि सभी तरफ आत्मा है। जिस क्षण अपने भीतर जाने हुए तत्व को आप फैला कर काज्मिक, जागतिक कर लेंगे, उस क्षण दर्शन की स्थिति निर्मित हो जाएगी।

किसी पशु के पास दर्शन नहीं है, क्योंकि ज्ञान भी नहीं है। पशु अपने से पीछे खड़ा नहीं हो सकता। स्मृति तो पशु के पास है। आप का कृता आपको पहचानता है। आपकी गाय आपको पहचानती है। स्मृति तो पशु के पास है, वृक्षों के पास भी स्मृति है!

अभी वैज्ञानिक प्रयोग करते हैं कि अगर आप वृक्ष के पास रोज प्रीतिपूर्ण ढंग से जाएं, तो वृक्ष का रिस्पांस, उसका उत्तर भिन्न होता है। अगर आप क्रोध से जाएं, घृणा से जाएं, तो भिन्न होता है। जब आप प्रेम से वृक्ष के पास खड़े होते हैं, तो वृक्ष खुलता है। अब इसके वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं और जब प्रेम से कोई वृक्ष को थपथपाता है, तो वृक्ष भीतर संवेदित होता है। वृक्ष भी अपने मित्र को और अपने शत्रु को पहचानता है। शत्रु करीब आता है तो वृक्ष सिकुड़ता है, जैसे आप सिकुड़ जाएंगे। कोई छुरा लेकर आपके पास आए तो आप भीतर सिकुड़ जाएंगे बचने की आकांक्षा में। वृक्ष भी सिकुड़ता है। और जब कोई मित्र करीब आता है तो वृक्ष भी फैलता है।

अब जाना गया है कि वृक्ष के पास भी स्मृति है। लेकिन, ध्यान सिर्फ मनुष्य के पास है। और इसलिए जब तक कोई ध्यान को उपलब्ध न हो जाए, तब तक मनुष्य होने की पूरी गरिमा को उपलब्ध नहीं होता। सिर्फ मनुष्य के शरीर में जन्म ले लेने से कोई मनुष्य नहीं हो जाता। सिर्फ संभावना है कि मनुष्य हो सकता है। द्वार खुला है, लेकिन यात्रा करनी पड़ेगी। मनुष्य कोई जन्म के साथ पैदा नहीं होता। मनुष्यता एक उपलब्धि है, एक अर्जन है। और इस अर्जन की जो दिशा है, वह ज्ञान और दर्शन है।

महावीर के इस सूत्र को ठीक से समझें।

ज्ञान का अर्थ है, पहली बार उसकी झलक पाना जो सबसे गहराई में मेरे भीतर साक्षी की तरह छिपा है। फिर उस झलक को जागतिक संबंध में जोड़ना और जो भीतर देखा है उसे बाहर देख लेना दर्शन है। और फिर जो भीतर देखा है, उसे जीवन में उतर जाने देना, चारिष्य है। वह जो भीतर देखा है और बाहर पहचाना है, वह जीवन भी बन जाए, सिर्फ बौद्धिक झलक न रहे। क्योंकि आप कह सकते हैं कि मैं आत्मा हूं, ऐसी मुझे झलक मिल गई है, लेकिन आपका आचरण कहेगा कि आप शरीर हैं, आपका व्यवहार कहेगा कि आप शरीर हैं; आपका ढंग, उठना, बैठना कहेगा कि आप शरीर हैं; आपकी आंखें, आपकी नाक, आपकी इंद्रियां खबर देंगी कि आप शरीर हैं। तो आपकी सिर्फ बौद्धिक झलक से कुछ भी न होगा। यह आपका आचरण हो जाए--हो ही जाएगा, अगर आपका ज्ञान वास्तविक हो, और ज्ञान दर्शन बने, तो आचरण अनिवार्य है। उसे महावीर "चारिष्य" कहते हैं।

किसी पशु के पास चरित्र नहीं है--हो नहीं सकता, क्योंकि ज्ञान के बिना दर्शन नहीं, दर्शन के बिना चरित्र नहीं।

मनुष्य की क्षमता है कि वह जैसा देखे, वैसा ही जी भी सके। और ध्यान रहे, इस जीने में चेष्टा नहीं करनी पड़ती। यह जरा जटिल है। जैन साधुओं ने पूरी स्थिति को उलटा कर दिया है, पहले चरित्र। महावीर पहले

चरित्र का उपयोग नहीं करते, महावीर कहते हैं--ज्ञान, दर्शन, चरित्र। जैन साधु से पूछें, वह कहता है चरित्र पहले। जब चरित्र पहले होगा--ज्ञान के पहले होगा, दर्शन के पहले होगा, तो झूठा और पाखंडी होगा। क्योंकि जो मैंने जाना नहीं है, उसे मैं जी कैसे सकता हूं? जो मैंने देखा नहीं है, वह वस्तुतः मेरा आचरण कैसे बन सकता है? थोप सकता हूं, जबरदस्ती कर सकता हूं अपने साथ।

आदमी हिंसा करने में कुशल है--दूसरों के साथ भी, अपने साथ भी। आप चाहें तो आप अहिंसक हो सकते हैं, मगर वह अहिंसा झूठी होगी और भीतर हिंसा उबलती होगी। आप चाहें तो आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकते हैं, वह थोथा होगा, भीतर कामवासना भरी होगी।

लेकिन महावीर जिस ढंग से चल रहे हैं, वह बिल्कुल वैज्ञानिक है बात। पहली झलक ज्ञान--अपने होने की--फिर दर्शन। अपने होने और दूसरों के होने के बीच का पूरा तारतम्य ख्याल में आ जाए, क्योंकि मैं तभी अहिंसक हो सकता हूं, अगर मुझे पता चले कि मैं तो आत्मा हूं और पता चले कि आप आत्मा नहीं हैं, तो अहिंसक होने की कोई जरूरत नहीं है। जिस दिन मुझे लगता है कि जैसा मेरे भीतर है, वैसा ही आपके भीतर भी है, जिस दिन मेरा भीतर और आपका भीतर एक होने लगते हैं, जिस दिन मैं आपमें अपने को ही देख पाता हूं और मुझे लगता है कि आप को पहुंचाई गई चोट खुद को ही पहुंचाई गई चोट होगी, उस दिन अहिंसा का जन्म हो सकता है।

महावीर चींटी पर भी पैर रखने में हिचकिचाते हैं, सम्हल कर चलते हैं, इसलिए नहीं कि चींटी को दुख हो जाएगा, चींटी का दुख महावीर का अपना ही दुख होगा। कोई चींटी की फिकर नहीं कर सकता इस जगत में, सब अपनी ही फिकर करते हैं। लेकिन जिस दिन अपना इतना फैलाव हो जाता है कि चींटी भी उसमें समाहित हो जाती है--इसे "दर्शन" कहेंगे। महावीर को लगा कि जो मैं हूं, वही सब और सबके भीतर है। यह प्रतीति जब प्रगाढ़ हो जाती है, तब आचरण में उतरनी शुरू हो जाती है। उतरेगी ही।

तो ध्यान रहे, जब आचरण को जबरदस्ती लाना पड़ता है, तब आप व्यर्थ की चेष्टा में लगे हैं। तब ज्यादा से ज्यादा हिपोक्रेट, एक पाखंडी आदमी पैदा हो जाएगा जो बाहर कुछ होगा भीतर कुछ होगा--ठीक उलटा होगा, और बड़ी बेचैनी में होगा; क्योंकि उसके जीवन की व्यवस्था सहज नहीं हो सकती; उसके भीतर से कुछ बह नहीं रहा है; अहिंसा भीतर से नहीं आ रही है, ऊपर से थोपी जा रही है। तो एक बड़े मजे की घटना घटेगी, एक तरफ अहिंसा थोप लेगा तो हिंसा दूसरी तरफ से शुरू हो जाएगी। क्योंकि हिंसा भीतर है तो उसे बहाव चाहिए। किसी झरने को हम रोक दें पत्थर से, तो झरना दूसरी तरफ से फूटना शुरू हो जाएगा। बहुत पत्थर लगा देंगे तो झरना रिस-रिस कर बूंद-बूंद बहुत जगह से फूटने लगेगा। झरना नहीं रह जाएगा, बूंद-बूंद झरने लगेगा।

जो लोग आचरण को ऊपर से थोप लेते हैं, उनका दुराचरण बूंद-बूंद होकर झरने लगता है। और ऐसे ढंग से झरता है कि वे खुद भी नहीं पहचान पाते। मवाद हो जाती है भीतर, सब सड़ जाता है, सिर्फ ऊपर शुभ्र आवरण होता है।

महावीर चारिष्य उसे कहते हैं, जो ज्ञान और दर्शन के बाद घटता है। उसके पहले घट नहीं सकता। मनुष्य को बदलना हो तो वह क्या करता है, उसे बदलने से शुरू नहीं किया जा सकता। वह क्या है, उसकी ही बदलाहट से ज्ञान बदलता है तो कर्म अनिवार्यरूपेण बदल जाता है। वह उसकी छाया है।

तो महावीर कहते हैं: "ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, वीर्य और अनुभव--ये जीव के लक्षण हैं।"

"तप" भी महावीर का समझने जैसा शब्द है। हम आमतौर से तप का अर्थ समझते हैं--अपने को सताना; तपाना। इससे बड़ी कोई भ्रांति नहीं हो सकती, भ्रान्ति पुरानी है, लेकिन परंपरागत है। और जैन साधु निरंतर अपने को सताने और तपाने में गौरव अनुभव करते हैं। लेकिन तप एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है--अल्केमिकल।

मनुष्य की जीवन-ऊर्जा एक तरह की अग्नि है। और अगर हम ठीक से समझें तो जिन लोगों ने भी जीवन को समझने की कोशिश की है, वे मानते हैं कि जीवन एक प्रगाढ़ अग्नि का नाम है। हेराक्लतु ने यूनान में यही बात कही--करीब-करीब महावीर के समय में--कि अग्नि जीवन का मौलिक तत्व है। और अब विज्ञान कहता है कि "विद्युत" जीवन का मौलिक तत्व है। लेकिन "विद्युत" अग्नि का ही एक रूप है, या "अग्नि" विद्युत का एक रूप है।

आपके शरीर में प्रतिपल अग्नि पैदा हो रही है। आप एक दीया हैं। जैसे दीया जलता है, वैसे ही आपका जीवन जलता है। और ठीक वैज्ञानिक हिसाब से भी जो कुछ दीये में घटता है, वही आप में घटता है।

दीया जल रहा है, वह क्या कर रहा है? आस-पास जो आक्सीजन है, प्राणवायु है, उसको अवशोषित कर रहा है। वह प्राणवायु ही दीये में जल रही है। इसलिए कभी ऐसा हो सकता है कि तूफान आ रहा हो और आप सोचें कि दीया बुझ न जाए, तो उसे बर्तन से ढंक दें। हो सकता था तूफान दीये को न बुझा पाता, लेकिन आपका बर्तन दीये को बुझा देगा। क्योंकि बर्तन के भीतर की आक्सीजन थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाएगी। और जैसे ही आक्सीजन समाप्त हुई कि दीया बुझ जाएगा।

आक्सीजन के बिना अग्नि नहीं हो सकती। आप भी यही कर रहे हैं। श्वास लेकर, जीवन के दीये को आक्सीजन दे रहे हैं। आपकी श्वास बंद हुई कि आप भी बुझ जाएंगे। तो वैज्ञानिक तो कहते हैं कि जीवन आक्सीडाइजेशन है। विज्ञान की भाषा में ठीक कहते हैं। सारा जीवन आक्सीजन पर निर्भर है। आप आक्सीजन को जला रहे हैं। और जब जल जाती है आक्सीजन, तो कार्बन-डाइआक्साइड को बाहर फेंक रहे हैं। एक क्षण को भी हवा से आक्सीजन तिरोहित हो जाए, जीवन पृथ्वी से तिरोहित हो जाएगा।

आक्सीजन जब भीतर जलती है, तो जीवन की ज्योति पैदा होती है।

यह जो जीवन की ज्योति है, इसके दो उपयोग हो सकते हैं। एक उपयोग है, कामवासना में इस जीवन की ज्योति को बाहर निष्कासित करना।

और ध्यान रहे, जीवन जब भर जाता है भीतर, अगर आप उसका कोई भी उपयोग न करें तो बोझिल हो जाएंगे, परेशान हो जाएंगे। प्रवाह रुक जाए तो बेचैनी हो जाएगी।

कामवासना का इसीलिए इतना आकर्षण है। क्योंकि कामवासना जीवन की बड़ी हुई शक्ति को फेंकने का उपाय है। आप फिर खाली हो जाते हैं, फिर श्वास लेकर जीवन को भरने लगते हैं। फिर जीवन इकट्ठा हो जाता है। फिर आप खाली हो जाते हैं।

"तप" ठीक इसी से संबंधित दूसरी प्रक्रिया है। वह जो जीवन की अधिक ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती है, उस ऊर्जा को काम वासना में न बहने देने का नाम "तप" है। उस गर्मी को, उस अग्नि को बाहर न जाने देना और भीतर की तरफ ऊर्ध्वगामी करने का नाम तप है। वह जो जीवन की ज्योति है, वह भीतर की तरफ बहने लगे--बाहर की तरफ नहीं, दूसरे की तरफ नहीं।

कामवासना का अर्थ है: दूसरे की तरफ, साधना का अर्थ है: अपनी ही तरफ। अंतर्यात्रा पर जीवन ऊर्जा बहने लगे, वह जो अग्नि जीवन की पैदा हो रही है, वह बाहर न जाए, बल्कि भीतर उसकी यात्रा शुरू हो जाए। अग्नि की अंतर्यात्रा का नाम तप है। उसके वैज्ञानिक उपाय हैं कि वह कैसे भीतर बहना शुरू हो सकती है।

ध्यान रहे, जो चीज भी बाहर बह सकती है, वह भीतर भी बह सकती है। जो चीज भी बह सकती है, उसकी दिशा बदली जा सकती है। अगर बहाव है पूरब की तरफ, तो पश्चिम की तरफ भी हो सकता है। प्रक्रिया का पता होना चाहिए कि वह पश्चिम की तरफ कैसे हो जाए। हमारी सारी जीवनऊर्जा बाहर बह रही है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन मरने के करीब था। उसकी पत्नी ने कहा कि नसरुद्दीन, अगर तुम पहले मर जाओ तो मरने के बाद संपर्क साधने की कोशिश करना। मैं जानना चाहती हूं कि ये हिंदू जो कहते हैं कि आत्मा फिर से जन्म लेती है, यह सच है या नहीं? अगर मैं मरूं तुमसे पहले तो मैं कोशिश करूंगी तुमसे संपर्क साधने की।

नसरुद्दीन मरा पहले। साल भर तक उसकी विधवा पत्नी राह देखती रही। कुछ हुआ नहीं। कोई खबर न मिली। फिर धीरे-धीरे बात ही भूल गई। एक दिन अचानक सांझ को चाय बनाती थी चौके में और नसरुद्दीन की आवाज आई--फातिमा! घबड़ा गई। आवाज वैसी ही थी जैसे नसरुद्दीन रोज सांझ को जब जीवित था और बाजार से, दुकान से वापस लौटता था और--नसरुद्दीन ने कहा: घबड़ा मत, वायदे के अनुसार तुझे खबर करने आया हूं। मेरा जन्म हो गया है। और दूसरे खेत में देख, एक खूबसूरत गाय खड़ी है। सफेद काला रंग है।

पत्नी को थोड़ी हैरानी हुई कि गाय की चर्चा उठाने की क्या जरूरत है? पर उसने बात टाली। उसने कहा: कुछ और अपने संबंध में कहो--प्रसन्न तो हो, आनंदित तो हो? नसरुद्दीन ने कहा: बहुत आनंदित हूं, थोड़ा मुझे गाय के संबंध में और बताने दो। बड़ी प्यारी और आकर्षक गाय है, उसकी चमड़ी बड़ी चिकनी और कोमल है। पत्नी ने कहा कि छोड़ो भी गाय की बकवास, गाय से क्या लेना-देना है। मैं तुम्हारे संबंध में जानने को आतुर हूं, और तुम एक मूर्ख गाय के संबंध में कहे चले जा रहे हो। नसरुद्दीन ने कहा: क्षमा कर, इट सीम्स आई फारगेट टु टैल यू दैट नाउ आई एम ए बुल इन पंजाब--मैं भूल गया बताना कि मैं एक बैल हो गया हूं, सांड हो गया हूं पंजाब में।" सांड की उत्सुकता गाय में ही हो सकती है।

जीवन कामवासना है, जैसा जीवन हम जानते हैं। पुरुष उत्सुक है स्त्री में, स्त्री उत्सुक है पुरुष में। तप का अर्थ है: यह उत्सुकता अपने में आ जाए, दूसरे से हट जाए। जब तक यह उत्सुकता दूसरे में है--महावीर कहते हैं--संसार है। जिस दिन यह सारी उत्सुकता अपने में लौट कर वर्तुल बन जाती है, तप शुरू हुआ। तप कहना उचित है, क्योंकि अति कठिन है यह बात--दूसरे से उत्सुकता अपने में ले आना। होनी तो नहीं चाहिए, कठिन होनी तो नहीं चाहिए क्योंकि दूसरे में भी हम उत्सुक अपने लिए ही होते हैं। गहरे में तो उत्सुकता अपने ही लिए है। दूसरे के द्वारा घूमकर, अपने में लौटते हैं।

उपनिषद कहते हैं कोई पति, पत्नी को प्रेम नहीं करता, पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। कोई मां बेटे को प्रेम नहीं करती, बेटे के द्वारा अपने को ही प्रेम करती है। प्रेम तो हम अपने को ही करते हैं, लेकिन हमारा प्रेम वाया--किसी से होकर आता है। जब हमारा प्रेम किसी से होकर आता है, तो उसका नाम अब्रह्मचर्य है। और जब हमारा प्रेम किसी से होकर नहीं आता है, सीधा अपने में ठहर जाता है--तपश्चर्या है, ब्रह्मचर्य है।

तप शब्द चुनना जरूरी था, क्योंकि जब कोई व्यक्ति अपनी ऊर्जा को बाहर जाने से रोकता है, तो उत्तप्त होता है; सारा जीवन एक नई अग्नि से भर जाता है। वह अग्नि बड़े अदभुत काम करती है, जीवन की पूरी कीमिया को बदल देती है। जीवन का एक-एक कोष्ठ उस अग्नि के प्रवाह में बदल जाता है। अलकेमिस्ट कहते हैं कि लोहा सोना हो जाता है, अगर अग्नि पास हो। तप उसी अग्नि का नाम है, जिसमें आपकी साधारण धातु लोहा स्वर्ण बन जाएगी। जो कचरा है वह जल जाएगा।

उपनिषदों ने नचिकेत--अग्नि की बात कही है। वह इसी अग्नि की चर्चा है। कठोपनिषद में नचिकेता पूछता है यम से कि किस भांति उस परम तत्व को पाया जा सकता है, जो मृत्यु के पार है। तो नचिकेता को यम ने कहा है कि तीन तरह की अग्नियों से गुजरना जरूरी है, और चूंकि तू पहला पूछने वाला है, इसलिए वे अग्नियां तेरे ही नाम से पहचानी जाएंगी; नचिकेत--अग्नि कही जाएंगी। वे तीन अग्नियां--महावीर उन्हीं तीन अग्नियों की प्रक्रिया को तप कहते हैं।

दूसरे से अपने पर लौटना पहली अग्नि है। दूसरे से अपने पर लौटना, दूसरे को खोना, छोड़ना--पहली अग्नि है। दूसरी अग्नि में स्वयं को भी छोड़ना है। पहली अग्नि में दूसरा जल जाएगा, सिर्फ मैं बचूंगा। लेकिन मैं का कोई उपयोग नहीं है, जब तू खो जाए। वह तू का ही संदर्भ है, उसका ही अटका हुआ हिस्सा है। दूसरी अग्नि में मुझे भी जल जाना है; मैं भी न बचूं, शून्य रह जाए। और तीसरी अग्नि में शून्य का भाव भी न रह जाए; इतनी शून्यता हो जाए कि यह भी भाव न रहे कि अब मैं शून्य हो गया, कि अब मैं निर-अहंकारी हो गया।

इन तीन अग्नियों का नाम तप है। और इस तप से जो गुजरता है वह उस परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है, जिसे महावीर ने "मुक्ति" कहा है; परम स्वतंत्रता, "मोक्ष" कहा है।

"वीर्य और उपयोग--ये सब जीव के लक्षण हैं।"

वीर्य का अर्थ है: पुरुषार्थ। और वीर्य का अर्थ काम-ऊर्जा भी है। काम-ऊर्जा के संबंध में एक बात ख्याल में ले लें कि काम-ऊर्जा के दो हिस्से हैं। एक तो शारीरिक हिस्सा है, जिसे हम वीर्य कहते हैं। महावीर उसे वीर्य नहीं कह रहे। एक उस शारीरिक हिस्से वीर्य के साथ, सीमेन के साथ जुड़ा हुआ आंतरिक हिस्सा है, जैसे शरीर और आत्मा है, वैसे ही प्रत्येक वीर्यकण भी शरीर और आत्मा है। इसीलिए तो वीर्यकण जाकर नये बच्चे का जन्म हो जाता है। प्रत्येक वीर्यकण दो हिस्से लिए हुए हैं। एक तो उसकी खोल है, जो शरीर का हिस्सा है। और दूसरा उसके भीतर छिपा हुआ जीव है, वह उसकी आत्मा है।

इस भीतर छिपे हुए जीव के दो उपयोग हो सकते हैं: एक उपयोग है नये शरीर को जन्म देना, और एक उपयोग है कि यह वीर्य की खोल तो पड़ी रह जाए और भीतर की जीवन-धारा है, वह ऊर्ध्वमुखी हो जाए स्वयं के भीतर। तो स्वयं का नया जन्म हो जाता है, स्वयं का नया जीवन हो जाता है।

मनुष्य दो तरह के जन्म दे सकता है: एक तो बच्चों को जन्म दे सकता है, जो उसके शरीर की ही यात्रा है; और एक अपने को जन्म दे सकता है, जो उसकी आत्मा की यात्रा है। अपने को जन्म देना हो तो वीर्य में छिपी हुई ऊर्जा जो उसको मुक्त करना है, देह से और ऊर्ध्वमुखी करना है।

महावीर ने, उसके बड़े अदभुत सूत्र खोजे हैं, कैसे वह वीर्य-ऊर्जा मुक्त हो सकती है; खोल पड़ी रह जाएगी शरीर में, उसके भीतर छिपी हुई शक्ति अन्तर्मुखी हो जाएगी। इसलिए जोर इस बात पर नहीं है कि कोई वीर्य का संग्रह करे, जोर इस बात पर है कि वीर्य से शक्ति को मुक्त करे।

महावीर उसमें सफल हो पाए, इसलिए हमने उन्हें "महावीर" कहा। उनका नाम इसी कारण "महावीर" पड़ा। नाम तो वर्धमान था उनका, लेकिन जब वे वीर्य की ऊर्जा को मुक्त करने में सफल हो गए, तो यह इतने बड़े संघर्ष और इतनी बड़ी विजय की बात थी कि हमने उन्हें "महावीर" कहा। वर्धमान नाम को तो लोग धीरे-धीरे भूल ही गए, महावीर ही नाम रह गया।

महावीर ने कहा है कि मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा विजय का क्षण उस समय होता है, जब वह अपने जीवन को ही अपने नये जन्म का आधार बना लेता है; अपने को ही पुनर्जीवित करने के लिए अपने जीवन की प्रक्रिया को मोड़ दे देता है और अपनी जीवन शक्ति का मालिक हो जाता है।

उसे महावीर "पुरुषार्थ" कहते हैं। और अनुभव यह जीव के लक्षण हैं।

"शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गंध और स्पर्श--ये पुदगल के लक्षण हैं।"

महावीर अति वैज्ञानिक हैं अपने दृष्टिकोण में। उनका दृष्टिकोण दार्शनिक का नहीं, वैज्ञानिक का है। इसलिए शंकर से वे राजी नहीं होंगे कि जगत माया है, कि जगत असत्य है। इसलिए वे उन लोगों से भी राजी नहीं होंगे जो कहते हैं एक ही ब्रह्म है और सब स्वप्न है। क्योंकि महावीर कहते हैं कि तुम्हारा सिद्धांत सवाल नहीं है; जीवन को परखो, सिद्धांत को जीवन पर थोपो मत। जीवन ही निर्णायक है, तुम्हारा सिद्धांत निर्णायक नहीं है। तो महावीर कहते हैं कि जीवन को देखकर तो साफ पता चलता है कि जीवन दो हिस्सों में बंटा है: एक चैतन्य और एक अचैतन्य, एक आत्मा और एक पदार्थ। तुम्हारे सिद्धांतों का सवाल नहीं है।

महावीर सिद्धांतवादी नहीं हैं, ठीक प्रयोगवादी हैं। वे कहते हैं, जीवन को देखो, तर्क का सवाल नहीं है। और तर्क से भी आदमी पहुंचता कहाँ है?

शंकर बड़ी कोशिश करते हैं कि जगत असत्य है, लेकिन कुछ असत्य हो नहीं पाता। शंकर से भी पूछा जा सकता है कि अगर जगत असत्य है तो इतनी चेष्टा भी क्या करनी उसको असत्य सिद्ध करने की? जो है ही नहीं

उसकी चर्चा भी क्यों चलानी? इतना तो शंकर को भी मानना पड़ेगा कि है जरूर, भले ही असत्य हो। पदार्थ की सत्ता है, उसे इनकार नहीं किया जा सकता। और महावीर का एक और दृष्टिकोण समझ लेने जैसा है।

महावीर कहते हैं दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जिनको हम ब्रह्मवादी कहते हैं, जो कहते हैं--ब्रह्म है, पदार्थ नहीं है। दूसरे, जो बिल्कुल इनका ही शीर्षासन करता हुआ रूप हैं, वे कहते हैं--ब्रह्म नहीं है, पदार्थ है। पर दोनों ही मोनिस्ट हैं, दोनों ही एकवादी हैं। एक तरफ मार्क्स, दिदरो, एपीकुरस, चार्वाक जैसे लोग हैं--जो कहते हैं कि सिर्फ पदार्थ है, ब्रह्म नहीं है; ब्रह्म मनुष्य की कल्पना है। ठीक इनके विपरीत खड़े हुए शंकर और अद्वैतवादी हैं, बर्कले और-और लोग हैं जो कहते हैं कि पदार्थ असत्य है, ब्रह्म सत्य है। लेकिन दोनों में एक बात की सहमति है कि एक ही सत्य हो सकता है। और महावीर कहते हैं कि दोनों ही यथार्थ से दूर हैं, दोनों अपनी मान्यता को थोपने की कोशिश में लगे हैं। और दोनों सहमत हैं, दोनों में भेद ज्यादा नहीं है। भेद इतना ही है कि उस एक तत्व को शंकर कहते हैं "ब्रह्म" और मार्क्स कहता है "पदार्थ"--"मैटर।" और कोई भेद नहीं है। लेकिन पदार्थ एक ही होना चाहिए।

महावीर कहते हैं, मेरा कोई सिद्धांत नहीं है थोपने को। मैं जीवन को देखता हूं तो पाता हूं कि वहां दो हैं: वहां "पदार्थ" है और "चैतन्य" है। शरीर में भी झांकता हूं तो पाता हूं कि दो हैं: पदार्थ है और चैतन्य है। और दोनों में कोई भी एकता नहीं है; और दोनों में कोई समता नहीं है; और दोनों में कोई तालमेल नहीं है। दोनों बिल्कुल विपरीत हैं, क्योंकि पदार्थ का लक्षण है, "अचेतना"; और जीव का लक्षण है, "चेतना।" ये चैतन्य एक भेद हैं--जो महावीर कहते हैं, इतने स्पष्ट हैं कि इसे झुठलाने की सारी चेष्टा निरर्थक है। इसलिए महावीर दोनों को स्वीकार करते हैं।

पर महावीर पदार्थ को जो नाम देते हैं, वह बड़ा अदभुत है, वैसा नाम दुनिया की किसी दूसरी भाषा में नहीं है। और दुनिया के किसी भी तत्वचिंतक ने पदार्थ को पुदगल नहीं कहा है--पदार्थ कहा है, मैटर कहा है, और हजार नाम दिए हैं। लेकिन पुदगल अनूठा है, इसका अनुवाद नहीं हो सकता किसी भी भाषा में।

पदार्थ का अर्थ है: जो है। मैटर का भी अर्थ है: मैटीरियल--जो है, जिसका अस्तित्व है। पुदगल बड़ा अनूठा शब्द है। पुदगल का अर्थ है: जो है, नहीं होने की क्षमता रखता है; और नहीं होकर भी नहीं, नहीं होता। पुदगल का अर्थ है: प्रवाह। महावीर कहते हैं--पदार्थ कोई स्थिति नहीं है, बल्कि एक प्रवाह है।

पुदगल में जो शब्द है "गल", वह महत्वपूर्ण है--जो गल रहा है। आप देखते हैं पत्थर को, पत्थर लग रहा है--है, लेकिन महावीर कहते हैं--गल रहा है। क्योंकि यह भी कल मिट कर रेत हो जाएगा। गलन चल रहा है, परिवर्तन चल रहा है। है नहीं पत्थर, पत्थर भी हो रहा है। नदी की तरह बह रहा है। पहाड़ भी हो रहे हैं।

जगत में कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। पुदगल गत्यात्मक शब्द है। पुदगल का अर्थ है: मैटर इन प्रोसेस, गतिमान पदार्थ। महावीर कहते हैं, कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, बह रही हैं चीजें। पदार्थ न तो कभी पूरी तरह मिटता है, और न पूरी तरह कभी होता है। सिर्फ बीच में है, प्रवाह में है।

आप देखें अपने शरीर को: बच्चा था, जवान हो गया, बूढ़ा हो गया। एक दफा आप कहते हैं--बच्चा है शरीर, एक दफा कहते हैं--जवान है, एक दफा कहते हैं--बूढ़ा है, लेकिन बहुत गौर से देखें, शरीर कभी भी "है" की स्थिति में नहीं है--सदा हो रहा है। जब बच्चा है, तब भी "है" नहीं, तब वह जवान हो रहा है। जब जवान है, तब भी "है" नहीं, तब वह बूढ़ा हो रहा है। शरीर हो रहा है, एक नदी की तरह बह रहा है।

पुदगल का अर्थ है, प्रवाह। पदार्थ एक प्रवाह है। न तो कभी पूरी तरह होता है कि आप कह सकें, "है" और न पूरी तरह कभी मिटता है कि कह सकें, "नहीं है", दोनों के बीच में सधा है--है भी, नहीं भी है। बड़ी गहरी दृष्टि है, क्योंकि विज्ञान राजी है अब महावीर से। क्योंकि विज्ञान कहता है, पदार्थ भी जहां हमें ठहरा हुआ दिखाई पड़ता है, वहां भी ठहरा नहीं है।

आप जिस कुर्सी पर बैठे हैं, वह भी गतिमान है, उसके भी इलेक्ट्रांस घूम रहे हैं। बड़ी तेजी से घूम रहे हैं। इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि आप गिर नहीं पाते हैं, संभले हुए हैं। जैसे बिजली का पंखा अगर बहुत तेजी से घूमे, तो आपको उसकी तीन पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़तीं। पंखा इतनी तेजी से घूम रहा है कि बीच की खाली जगह दिखाई नहीं पड़ती। इसके पहले कि खाली जगह दिखाई पड़े, पंखुड़ी आ जाती है और आपको पूरा एक गोला, घूमता हुआ वर्तुल दिखाई पड़ता है।

अगर बिजली का पंखा उतनी गति से घुमाया जा सके, जितनी गति से आपकी कुर्सी के इलेक्ट्रांस घूम रहे हैं, तो आप बिजली के पंखे पर बड़े मजे से बैठ सकते हैं--जैसे कुर्सी पर बैठे हैं। आपको पता भी नहीं चलेगा कि नीचे कोई चीज घूम रही है। क्योंकि गति इतनी तेज होगी कि आपको पता चलने के पहले पंखुड़ी आपके नीचे आ जाएगी। बीच के खड़े में आप गिर न पाएंगे। क्योंकि गिरने में जितना समय लगता है, उससे कम समय पंखुड़ी के आने में लगेगा। आप संभले रहेंगे।

अब विज्ञान कहता है कि हर चीज घूम रही है, हर चीज गतिमान है। वह जो पत्थर का टुकड़ा है, वह भी ठहरा हुआ नहीं है, वह भी बह रहा है। अपने भीतर ही बह रहा है। महावीर का शब्द बड़ा सोचने जैसा है। आज से पच्चीस सौ साल पहले महावीर का पुदगल कहना, कि पदार्थ गतिमान है, गत्यात्मक है; जगत में कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। बहुत बाद में एडिंग्टन ने कहा, अभी तीस साल पहले कि मनुष्य की भाषा में एक शब्द गलत है, और वह है--रेस्ट: कोई चीज ठहरी हुई नहीं है; सब चीजें चल रही हैं। महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले, पदार्थ के लिए जो शब्द दिया, वह है--पुदगल। और पुदगल का अर्थ है--रेस्टलेसनेस।

इसलिए एक और बात समझ लेनी जरूरी है: जब तक आप शरीर से जुड़े हैं, रेस्ट इ.ज नॉट पॉसिबल। जब तक आप शरीर से जुड़े हैं, तब तक रेस्टलेसनेस है। तब तक बेचैनी रहेगी ही। इसलिए महावीर कहते हैं, शरीर से मुक्त होकर ही कोई शांत हो सकता है। क्योंकि शरीर का स्वभाव परिवर्तन है। इसके पहले कि आप ठहरें, शरीर बदल जाता है। अभी स्वस्थ है, अभी बीमार है। अभी ठीक है, अभी गलत है।

शरीर बदल रहा है। अगर ठीक से कहें तो शरीर स्वस्थ कभी भी नहीं होता। जिसको आप स्वास्थ्य कहते हैं वह भी स्वास्थ्य नहीं होता। शरीर स्वस्थ हो ही नहीं सकता, ठीक अर्थों में, सिर्फ आत्मा ही स्वस्थ हो सकती है। इसलिए हमने जो शब्द दिया है स्वास्थ्य के लिए वह बड़ा समझने जैसा है। उसका अर्थ है, स्वयं में स्थित हो जाना--स्वस्थ। शरीर कभी स्वयं में स्थित नहीं हो सकता वह हमेशा बह रहा है। और उसे हमेशा पर की जरूरत है--भोजन चाहिए, श्वास चाहिए, वह "पर" पर निर्भर है, वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता, सिर्फ आत्मा ही स्वस्थ हो सकती है।

यह जो महावीर का शब्द है पुदगल, यह पूरे जगत में चेतना को छोड़ कर सभी पर लागू है। सिर्फ चेतना पुदगल नहीं है। बुद्ध ने चेतना के लिए भी पुदगल शब्द का प्रयोग किया है। क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि वह भी बदल रही है। यहां बुद्ध और महावीर का बुनियादी भेद है। महावीर ने पदार्थ को पुदगल कहा है, बुद्ध ने आत्मा को भी पुदगल कहा है। क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि पदार्थ ही नहीं बदल रहा है, आत्मा भी बदल रही है। आत्मा के लिए अपवाद करने की क्या जरूरत है? सब चीजें बदल रही हैं। जैसे सांझ को हम दीया जलाते हैं और सुबह दीये को बुझाते हैं, तो हम सुबह कहते हैं उसी दीये को बुझा रहे हैं, पर बुद्ध कहते हैं कि नहीं, क्योंकि वह दीया तो रात भर बदलता रहा--ज्योति बदलती रही, धुआं बनती रही, नई ज्योति आती रही; दीये की ज्योति तो प्रवाह थी। तो तुमने जो दीया जलाया था, उसे तुम बुझा नहीं सकते। वह तो न मालूम कब का बुझ गया, उसकी संतति बची है, उसकी संतान बची है, उसकी धारा बची है। वह किसी दूसरी ज्योति को जन्म दे गया है। तो सुबह तुम उसकी संतान को बुझा रहे हो, उसको नहीं बुझा रहे, बुद्ध कहते हैं चेतना भी ऐसे ही दीये की लौ की तरह जल रही है।

बुद्ध कहते हैं, जगत में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है, सभी पुद्गल हैं। लेकिन महावीर की बात ज्यादा वैज्ञानिक मालूम पड़ती है--कारण है। और कारण यह है कि जगत में हर चीज विपरीत से बनी है। अगर सभी कुछ परिवर्तन है, तो परिवर्तन को नापने और जानने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर परिवर्तन पता चलता है तो जरूर कोई तत्व होना चाहिए जो परिवर्तित नहीं होता। नहीं तो परिवर्तन का पता किसको चलेगा? परिवर्तन से विपरीत कुछ होना जरूरी है।

जगत में विपरीत के बिना कोई उपाय नहीं है। अगर सिर्फ अंधेरा हो तो आपको अंधेरे का पता नहीं चल सकता, या कि चल सकता है? क्योंकि प्रकाश के बिना कैसे अंधेरे का पता चलेगा? विपरीत चाहिए। अगर सिर्फ जीवन हो मृत्यु न हो, तो आपको जीवन का पता नहीं चलेगा। जीवन का पता मृत्यु के साथ ही चल सकता है। सिर्फ प्रेम हो, घृणा न हो, तो आपको प्रेम का पता नहीं चलेगा। सिर्फ मित्रता हो, शत्रुता न हो, तो आपको मित्रता का पता नहीं चलेगा। द्वंद्व है जीवन।

अगर पता चलता है--तो महावीर कहेंगे कि अगर किसी को पता चल रहा है कि सब प्रवाह है, तो एक बात पक्की है कि वह खुद प्रवाह नहीं हो सकता क्योंकि प्रवाह से बाहर किसी का खड़ा होना जरूरी है। लगता है, नदी बह रही है, क्योंकि आप खड़े हैं। तो नदी बहती हुई नहीं मालूम पड़ेगी, अगर आप भी बह रहे हों!

इसे ऐसा समझें:

आइंस्टीन कहा करता था कि दो ट्रेनें शून्य आकाश में चलाई जाएं, दोनों एक ही गति से चल रही हों, तो क्या पता चलेगा कि चल रही हैं? दो ट्रेन, एक साथ समानांतर, शून्य आकाश में जहां आस-पास कुछ भी नहीं है--क्योंकि वृक्ष हों तो पता चल जाएगा कि चल रही हैं, वे खड़े हैं--शून्य आकाश में दो ट्रेनें साथ चल रही हों एक समानांतर, दोनों बराबर एक गति से चल रही हों, तो दोनों ट्रेनों के यात्रियों को पता नहीं चल सकता कि आप खिड़की के बाहर मुंह निकालिए, तो उस तरफ जो आदमी था, वह सदा वही है, वही खिड़की, वही नंबर। आप कभी पता नहीं लगा सकते कि चल रही हैं, क्योंकि चलने का पता कोई चीज ठहरी हो तो चलता है। इसलिए जब एक ट्रेन खड़ी रहती है और एक ट्रेन चलती है, तो कभी-कभी खड़ी ट्रेन वालों तक को शक हो जाता है कि उनकी ट्रेन चल पड़ी है। और जब एक ट्रेन खड़ी होती है और एक ट्रेन चलती है--समझें कि एक ट्रेन खड़ी है, और दूसरी ट्रेन उसके पास से गुजरती है, पचास मील की रफ्तार से तो अभी उसकी गति पचास मील प्रति घंटा है। दूसरी कल्पना करें कि पहली ट्रेन भी पचास मील की रफ्तार से विपरीत दिशा में जा रही है और फिर एक ट्रेन उसके करीब से गुजरती है जो पचास मील की रफ्तार से दूसरी दिशा में जा रही है, तो जब वे दोनों करीब होती हैं, तो उनकी रफ्तार सौ मील होती है--एक-दूसरे की तुलना में। इसलिए जब एक ट्रेन आपके करीब से गुजरती है, तो आपको लगता है कि आपकी ट्रेन--अगर चल रही है, तो बहुत तेजी से चलने लगी है। क्योंकि दूसरी ट्रेन पचास मील रफ्तार से पीछे जा रही है, आपकी पचास मील की रफ्तार से आगे जा रही है। दोनों ट्रेनें एक-दूसरे की तुलना में सौ मील की रफ्तार से चल रही हैं।

वृक्ष खड़े हैं किनारे पर, उनकी वजह से आपको पता चलता है कि आपकी ट्रेन चल रही है। किसी दिन वृक्ष तय कर लें और साथ चल पड़ें तो जिस ट्रेन से आप चल रहे हैं, थोड़ी देर में आप समझ जाएंगे कि ट्रेन चल नहीं रही है, स्टेशन के साथ ही चली जा रही है।

गति की प्रतीति हो रही है, क्योंकि कहीं कोई गति से विपरीत है। जीवन की सब प्रतीतियां विपरीत पर निर्भर हैं। पुरुष को अनुभव होता है, क्योंकि स्त्री है; स्त्री को अनुभव होता है, क्योंकि पुरुष है--सारा विपरीत, दि पोलर अपोजिट!

ध्रुवीय विपरीतता है, अभी तो विज्ञान भी इस नतीजे पर पहुंचा है। अभी विज्ञान साफ नहीं हो पा रहा है, लेकिन विज्ञान में एक नई धारणा पैदा हुई है। वह है, एंटी-मैटर--वह कहते हैं कि पदार्थ है, तो विपरीत--पदार्थ भी चाहिए। और बहुत अनूठी बात अभी पैदा हुई है, और इस आदमी को नोबल प्राइज भी मिला जिसने

यह अनूठी बात कही है कि एंटी-मैटर होना चाहिए। और उसने एक और अजीब बात कही कि समय बह रहा है, अतीत से भविष्य की तरफ, तो समय की एक विपरीत धारा भी चाहिए, जो भविष्य से अतीत की तरफ बह रही हो। नहीं तो समय बह नहीं सकता।

यह बहुत अजीब धारणा है, और इसकी कल्पना करना बहुत घबड़ाने वाली है। इसका मतलब यह है--हेजनबर्ग का कहना है कि कहीं न कहीं कोई जगत होगा, इसी जगत के किनारे, जहां समय उलटा बह रहा होगा। जहां बूढ़ा आदमी पैदा होगा, फिर जवान होगा, फिर बच्चा होगा, और फिर गर्भ में चला जाएगा। और हेजनबर्ग को नोबल प्राइज भी मिली है, क्योंकि उसकी बात तात्विक है।

जगत में विपरीतता होगी ही, यह एक शाश्वत नियम है। इसलिए बुद्ध की बात किसी और अर्थ में अर्थपूर्ण हो, लेकिन वैज्ञानिक अर्थों में महत्वपूर्ण नहीं है। महावीर ठीक कह रहे हैं कि विपरीतता है; वहां पुदगल है और यहां भीतर अपुदगल, एंटी-मैटर है। वहां सब चीजें बाहर बह रही हैं--पदार्थ में, यहां कुछ भी नहीं बह रहा है, सब कुछ खड़ा है, सब ठहरा हुआ है।

इस ठहरी हुई स्थिति का अनुभव "मुक्ति" है। और इस बहते हुए के साथ जुड़े रहना "संसार" है। संसार का अर्थ है, बहाव। पदार्थ के लक्षण महावीर ने कहे, "शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श--ये सब पदार्थ के लक्षण हैं।"

"जीव, अजीव, बंध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष--ये नौ सत्य-तत्व हैं।"

पहले छह महातत्व कहे हैं महावीर ने। वे महातत्व मैटाफिजिकल हैं। जगत, जागतिक रूप से इन छह तत्वों में समा गया है। अब जिन नौ तत्वों की बात वे कर रहे हैं, वे नौ तत्व--साधक, साधक के आयाम, और साधक के मार्ग के संबंध में हैं। जगत की बात छह तत्वों में पूरी हो गयी, फिर एक-एक साधक एक-एक जगत है अपने भीतर। विराट है जगत, फिर वह विराट एक-एक मनुष्य में छिपा है। उस मनुष्य को साधना की दृष्टि से जिन तत्वों में विभक्त करना चाहिए, वे नौ तत्व हैं।

"जीव", "अजीव"--यह पहला विभाजन है। अजीव पुदगल है, जीव चैतन्य जिसे अनुभव की क्षमता है। यह जो अनुभव की क्षमता है, यह सात स्थितियों से गुजर सकती है। उन सात स्थितियों का इतना मूल्य है, इसलिए महावीर ने उनको भी "तत्व" कहा है--वे तत्व हैं नहीं। वे सात स्थितियां हैं--बंध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनको एक-एक को बारीकी से समझना जरूरी है, क्योंकि महावीर का पूरा का पूरा साधना-पथ इन सात की समझ पर निर्भर होगा।

"जीव" और "अजीव" दो विभाजन हुए जीवन के: पदार्थ और परमात्मा। पदार्थ से परमात्मा तक जाने का, पदार्थ से परमात्मा तक मुक्त होने की सात सीढ़ियां हैं, या परमात्मा से पदार्थ तक उतरने की भी सात सीढ़ियां हैं। ये सात सीढ़ियां--महावीर के हिसाब से बड़ी अनूठी इनकी व्याख्या है।

"बंध": महावीर कहते हैं, बंध भी एक तत्व है--बांडेज, परतंत्रता। किसी ने भी परतंत्रता को तत्व नहीं कहा है। महावीर कहते हैं, परतंत्रता भी एक तत्व है। इसे समझें, क्या अर्थ है? आप वस्तुतः स्वतंत्र होना चाहते हैं? सभी कहेंगे, "हां", लेकिन थोड़ा गौर से सोचेंगे तो कहना पड़ेगा, "नहीं"।

एरिफ फ्रोम ने अभी एक किताब लिखी है, किताब का नाम है--फियर ऑफ फ्रीडम; स्वतंत्रता का भय। लोग कहते जरूर हैं कि हम स्वतंत्र होना चाहते हैं, लेकिन कोई भी स्वतंत्र होना नहीं चाहता। थोड़ा सोचें, सच में आप स्वतंत्र होना चाहते हैं? खोजते तो रोज परतंत्रता हैं--और जब तक परतंत्रता न मिल जाए तब तक आश्वस्त नहीं होते। रोज खोजते हैं--कोई सहारा, कोई आसरा, कोई शरण, कोई सुरक्षा। खोजते तो परतंत्रता हैं।

एक आदमी धन इकट्ठा कर रहा है। वह सोचता है कि धन होगा, तो मैं स्वतंत्र हो जाऊंगा। क्योंकि जितना धन होगा, उतनी शक्ति होगी। लेकिन होता यह है कि जितना धन हो जाता है, उतना वह परतंत्र होता

है। अमीर आदमी से गरीब आदमी खोजने बहुत मुश्किल हैं। उनका ख्याल होता है कि पैसों की मालकियत उनके पास है, लेकिन पैसा मालिक हो जाता है। एक कौड़ी भी छोड़ना मुश्किल हो जाता है, एक पैसा भी छोड़ना मुश्किल हो जाता है।

राकफेलर लंदन आया तो एक होटल में ठहरा और उसने आते ही पूछा कि सबसे सस्ता कमरा कौन सा है? अखबारों में फोटो उसका निकला था। मैनेजर पहचान गया। उसने कहा कि आप राकफेलर मालूम होते हैं, और आप सस्ता कमरा खोजते हैं? और आपके बेटे यहां आते हैं तो सबसे कीमती कमरा खोजते हैं। तो राकफेलर ने ठंडी श्वास भर कर कहा कि दे आर मोर फार्चुनेट, दे हैव ए रिच फादर, आई एम नॉट सो--मैं इतना भाग्यशाली नहीं हूं, मैं एक गरीब बाप का बेटा हूं। वे मौज कर रहे हैं, उड़ा रहे हैं, वे एक अमीर बाप के बेटे हैं।

धन स्वतंत्रता देता होगा, ऐसा हमारा ख्याल है--देता नहीं, परतंत्रता देता है। सम्राट को लगता होगा कि वह स्वतंत्र है, क्योंकि इतनी शक्ति उसके पास है। लेकिन जितनी शक्ति इकट्ठी होती है, उतना परतंत्र हो जाता है, उतना घिर जाता है, उतना मुश्किल में पड़ जाता है।

प्रेम में हमें लगता है कि प्रेम से स्वतंत्रता मिलेगी--मिलनी चाहिए, लेकिन मिलती नहीं। जिसके भी प्रेम में आप पड़ते हैं, परतंत्रता शुरू हो जाती है। पत्नी पति को बांधने की कोशिश में लगी है, पति पत्नी को बांधने की कोशिश में लगा है। दोनों के हाथ एक दूसरे की गर्दन पर हैं। दोनों कोशिश में लगे हैं कि दूसरे को किस भांति बिल्कुल वस्तु की तरह, पदार्थ की तरह कर दें। और दोनों सफल हो जाते हैं, एक दूसरे को गुलाम बना लेते हैं। इसलिए बहादुर से बहादुर पति जब घर की तरफ आता है, तब देखें, तब उसके हाथ-पैर कंपने लगते हैं। तब वह तैयारी करने लगता है कि अब क्या करें। क्योंकि जिससे भी हम प्रेम करते हैं, वहीं परतंत्रता शुरू हो जाती है।

प्रेम का मतलब हुआ कि हमने अपने को जरा भी शिथिल छोड़ा कि दूसरे ने हम पर कब्जा किया। हमने जरा ही अपने अस्त्र-शस्त्र हटा कर रखे कि दूसरा हम पर हावी हुआ। और आप भी उसी कोशिश में लगे हैं कि आप हावी हो जाएं। बाप बेटे पर हावी होने की कोशिश में लगा है, बेटे बाप पर हावी होने की कोशिश में लगे हैं।

हमारे पूरे जीवन की चेष्टा यही है कि हम मालिक हो जाएं। लेकिन आखिरी परिणाम यह होता है कि हम न मालूम कितने लोगों के गुलाम हो जाते हैं। निश्चित ही, कहीं गहरे में हम स्वतंत्रता से डरते हैं। थोड़ी देर सोचें कि अगर आप अकेले रह जाएं पृथ्वी पर तो क्या आप पूरे स्वतंत्र होंगे क्योंकि कोई परतंत्र करने वाला नहीं होगा, तो कोई उपाय ही नहीं होगा। लेकिन क्या आप अकेले होने पसंद करेंगे पृथ्वी पर? सब भोजन की सुविधा हो--सब हो, लेकिन आप अकेले हों, सारा जीवन का रस चला जाएगा। पूरी तरह स्वतंत्र होंगे, लेकिन रस बिल्कुल खो जाएगा।

स्वतंत्रता में हमारा रस ही नहीं है, इसलिए लोग मोक्ष की बात सुनते हैं, लेकिन मोक्ष को खोजने नहीं जाते। महावीर कहते हैं कि बंध, परतंत्रता हमारे जीवन का एक तथ्य है। हम बंधन चाहते हैं--कोई बांध ले। फिर बड़े मजे की बात है कि कोई न बांधे, तो हमें बुरा लगता है, और कोई बांधे, तो बुरा लगता है।

एक फिल्म अभिनेता से उसका एक मित्र पूछ रहा था कि "तुम जरूर थक जाते होओगे, क्योंकि जहां भी तुम जाते हो, वहीं इतनी भीड़ घेर लेती है, लोग हस्ताक्षर मांगते हैं, धक्कम-धुक्की होती है--तुम जरूर थक जाते होओगे? तुम जरूर ऊब गए होओगे?" तो उसने कहा कि "बिल्कुल ऊब गया हूं, लेकिन इससे भी एक बुरी चीज है, और वह यह है कि कोई न घेरे और कोई हस्ताक्षर न मांगे--उससे यह बेहतर है।"

मैं एक कालेज में शिक्षक था। और एक युवती ने मुझसे आकर कहा कि एक युवक उसे कभी चिट्ठियां फेंकता है लिख कर, कभी कंकड़ मारता है। वह बहुत नाराज थी। मैंने उससे कहा: तू बैठ, और तू इस तरह सोच कि तू छह साल कालेज में रहे, कोई कंकड़ न मारे, कोई चिट्ठी न फेंके, फिर क्या हो? वह थोड़ी बेचैन हो गई। उसने कहा कि आप किस तरह की बातें करते हैं, वह ज्यादा दुखद होगा। तो मैंने कहा: फिर फेंकने दे चिट्ठी। और

तू जो यहां कहने आई है उसमें सिर्फ तेरा क्रोध ही नहीं, तेरा गौरव और गरिमा भी मालूम हो रही है, तेरे चेहरे पर शान भी है कि कोई पत्थर मारता है, कोई चिट्ठी फेंकता है। तू फिर से सोच कर, इस पर ध्यान करके आना कि तू इसका रस भी ले रही है या नहीं ले रही है? क्योंकि मैं उन लड़कियों को भी जानता हूं, जिनकी तरफ कोई नहीं देख रहा है, तो वे परेशान हैं।

सुना है मैंने कि एक स्त्री ने--जो पचास साल की हो गई और विवाह नहीं कर पाई, क्योंकि कोई बांधने नहीं आया, कोई बंधने नहीं आया--एक दिन सुबह-सुबह फायर ब्रिगेड को फोन किया, बड़ी घबड़ाहट में कि दो जवान आदमी मेरी खिड़की में घुसने की कोशिश कर रहे हैं, शीघ्रता करें। तो फायर ब्रिगेड के लोगों ने कहा कि क्षमा करें, आपसे भूल हो गई, यह तो फायर डिपार्टमेंट है, आप पुलिस स्टेशन को खबर करें।" उस स्त्री ने कहा कि, "पुलिस स्टेशन से मुझे मतलब नहीं, मुझे फायर डिपार्टमेंट से ही मतलब है। तो उन्होंने पूछा कि क्या मतलब है? हम क्या कर सकते हैं? उस स्त्री ने कहा कि बड़ी सीढ़ी ले आए, वे लोग छोटी सीढ़ी से घुसने की कोशिश कर रहे हैं। बड़ी सीढ़ी की जरूरत है।

पचास साल जिसे किसी ने कंकड़ न मारा हो, चिट्ठी न लिखी हो, उसकी हालत ऐसी हो ही जाएगी।

आदमी बंधने के लिए आतुर है। न बंधे तो मुसीबत में पड़ता है। लगता है मैं बेकार हूं, मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है। बांध ले कोई तो लगता है कि बंधन हो गया, कैसे छुटकारा हो? आदमी एक उलझन है, और उलझन का कारण यह है कि वह चीजों को साफ-साफ नहीं समझ पाता कि क्या, क्या है?

पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि बंध हमारे भीतर एक तत्व है, हम बंधना चाहते हैं। और जब तक हम बंधना चाहते हैं तब तक दुनिया में कोई भी हमें मुक्त नहीं कर सकता।

मजे की बात यह है कि हम अगर बंधना चाहते हैं, तो जो हमें मुक्त करने आएगा, हम उसी से बंध जाएंगे; महावीर से बंधे हुए लोग हैं। वह बंध-तत्व काम कर रहा है। वे कह रहे हैं कि हम जैन हैं। आपके जैन होने का क्या मतलब है? महावीर को मरे पच्चीस सौ साल हो गए, आप क्यों पीछा कर रहे हैं?

इधर मैं देखता हूं, जब मैं महावीर पर बोलता हूं तो दूसरी शक्लें दिखाई पड़ती हैं, जब मैं लाओत्सु पर बोलता हूं, दूसरी शक्लें दिखाई पड़ती हैं। लाओत्सु से आपका कोई बंधन नहीं है, बंध-तत्व महावीर से लगता है। तब आप दिखाई नहीं पड़ते, आपका कोई रस नहीं है लाओत्से में। आप वहीं दिखाई पड़ते हैं, जहां आपका बंध है। जहां आपकी गर्दन बंधी है, वहां आप चले जाते हैं। गुलाम हैं।

महावीर आपको मुक्त करना चाहते हैं, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। महावीर क्या करेंगे, आप बंधना चाहते हैं। महावीर कहते हैं, अपने पैर पर खड़े हो जाओ। आप कहते हैं, आप ही हमारी शरण हैं। महावीर कहते हैं, कोई किसी का सहारा नहीं, कोई किसी का आसरा नहीं, आप कहते हैं कि आपके बिना यह भवसागर से कैसे पार हों? और वे कह रहे हैं कि हमारे ही कारण डूब रहे हो भवसागर में।

दूसरे के कारण आदमी डूबता है, अपने कारण उबरता है। कोई गुरु उबार नहीं सकता। लेकिन आपने डूबना पक्का कर रखा है। आपकी पूरी चेष्टा यही है कि किसी तरह डूब जाएं।

इस भीतर के तत्व को ठीक से समझ लेना जरूरी है। और जब तक बंध की वृत्ति काम कर रही है, तब तक मोक्ष से आपका कोई संपर्क नहीं हो सकता, मुक्ति की हवा भी आपको नहीं लग सकती। आप पहचानें इस मानसिक बात को कि आप जहां भी जाते हैं, वहां जल्दी से बंधने को आतुर हो जाते हैं। स्वतंत्र रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है, मुक्त रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है, क्यों?

क्योंकि अकेले रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है। अकेले में आप बैठ नहीं पाते--अखबार खोल लेते हैं, किताब खोल लेते हैं, रेडियो खोल लेते हैं, टेलिविजन--कोई नहीं मिलता, होटल, क्लब, रोटरी, लायंस; सब

इंतजाम हैं, वहां भागे जाते हैं, क्यों? थोड़ी देर अकेले होने में इतनी अड़चन क्या है? अपने साथ होने में इतना दुख क्या है? दूसरे का साथ क्यों इतना जरूरी है?

अकेले में डर लगता है, भय लगता है। अकेले में जीवन की सारी समस्या सामने खड़ी हो जाती है। अगर ज्यादा देर अकेले रहेंगे तो सवाल उठेगा, मैं कौन हूं? भीड़ में रहते हैं तो पता रहता है कि मैं, कौन हूं, क्योंकि भीड़ याद दिलाती रहती है--आपका नाम, आपका गांव, आपका घर, आपका पेशा--भीड़ याद दिलाती रहती है। अकेले में भीड़ याद नहीं दिलाती।

और भीड़ के दिए हुए जितने लेबल हैं, वे भीड़ के साथ ही छूट जाते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति बंधन से मुक्त होना चाहता है, उसे एकांत में रस लेना चाहिए, अकेले में रस लेना चाहिए, अपने में रस लेना चाहिए। धीरे-धीरे दूसरे की निर्भरता छोड़नी चाहिए। उस जगह आ जाना चाहिए, जहां अगर मैं अकेला हूं तो पर्याप्त हूं।

अगर कोई व्यक्ति अकेले में पर्याप्त है, तो बंधन का तत्व गिर गया। अगर कोई अकेले में पर्याप्त नहीं है, वह बंधेगा ही, वह खोजेगा ही कुछ न कुछ। उसे कोई न कोई डूबने के लिए सहारा चाहिए। तब एक सुविधा है कि जब दूसरा हमें डुबाता है, तो हम दोष दूसरे को दे सकते हैं, दूसरे में दोष दिखाई पड़ते हैं। लेकिन हम दूसरे की तलाश क्यों करते हैं? और जब आप एक गलत आदमी से मैत्री बना लेते हैं, या विवाह कर लेते हैं एक गलत स्त्री से, तो आप सोचते हैं--गलती हो गई, गलत स्त्री से विवाह कर लिया। आपको पता नहीं है कि आप गलत स्त्री से ही विवाह कर सकते हैं। ठीक स्त्री की आप तलाश ही मत करना।

मैंने सुना है कि एक आदमी एक बार ठीक स्त्री की तलाश करते-करते अविवाहित मरा। उसने पक्का ही कर लिया था कि जब तक पूर्ण स्त्री न मिले, तब तक मैं विवाह न करूंगा। फिर जब वह बूढ़ा हो गया, नब्बे साल का हो गया, तब किसी ने पूछा कि आप जीवन भर तलाश कर रहे हैं पूर्ण स्त्री की, क्या पूर्ण स्त्री मिली ही नहीं इतनी बड़ी पृथ्वी पर? उसने कहा: पहले तो बहुत मुश्किल था, मिली नहीं, फिर मिली भी।

तो उस आदमी ने पूछा: आपने विवाह क्यों नहीं कर लिया? तो उस आदमी ने कहा कि "वह भी पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही थी। तब हमको पता चला कि यह असंभव है मामला। यह नहीं होनेवाला

वह भी अविवाहित ही मरी होगी, उसका कुछ पता नहीं है।

हम जो हैं, उसी को हम खोजते हैं। वही हमें मिल भी सकता है। तो जो भी आपको मिल जाए, वह आपकी ही खोज है, और आपके ही चित्त का दर्शन है उसमें। अगर आपने गलत स्त्री खोज ली है, तो आप गलत स्त्री खोजने में बड़े कुशल हैं। और आप दूसरी भी खोजेंगे तो ऐसी ही गलत स्त्री खोजेंगे। आप अन्यथा नहीं खोज सकते, क्योंकि आप ही खोजेंगे।

हम जो भी कर रहे हैं अपने चारों तरफ--दुख, चिंता, पीड़ा--वे सब हमारे ही उपाय हैं। और आप चकित होंगे जान कर कि अगर आपके दुख आपसे छीन लिए जाएं, तो आप राजी नहीं होंगे। क्योंकि वे आपने खड़े किए हैं। उनका कुछ कारण है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे ऐसी चिंताएं बताते हैं। मैं उनसे कहता हूं कि आप कहते तो जरूर हैं, लेकिन आप चिंताएं बताते वक्त ऐसे लगते हैं, जैसे कि बड़ा भारी काम कर रहे हैं, कि कोई बड़ी उपलब्धि कर ली है आपने!

आप चिंताओं में रस लेते हैं। लोग अपने दुख को कितने रस से सुनाते हैं। आप ऊबते हैं, वे नहीं ऊबते। उनकी दुख कथा आप सुनो, कितना रस लेते हैं। पश्चिम में तो पूरा धंधा खड़ा हो गया है साइकोएनालिसिस का। वह पूरा धंधा इस बात पर निर्भर है कि लोग अपना दुख सुनाने में रस लेते हैं। और अब कोई राजी नहीं है सुनने को, किसी के पास समय नहीं है। तो प्रोफेशनल सुनने वाला चाहिए। यह जो साइकोएनालिस्ट है, वह प्रोफेशनल

सुनने वाला है, वह पैसा लेता है। उसको कोई मतलब नहीं है। वह बड़े गौर से सुनता है। लेकिन पता नहीं कि वह गौर और उसका ध्यान, सिर्फ दिखावा भी हो सकता है।

मैंने सुना है कि एक दिन फ्रायड को उसके एक युवक शिष्य ने पूछा कि मैं तो थक जाता हूँ, दो-चार-पांच मरीजों को सुनने के बाद, और आप शाम को भी ताजे दिखाई पड़ते हैं। फ्रायड ने कहा: सुनता ही कौन है? सिर्फ चेहरे का ढंग होता है कि हां, सुन रहे हैं। मगर वह आदमी हलका होकर ठीक भी हो जाता है।

दुख की चर्चा करने में रस आता है, उससे लगता है कि आप महत्वपूर्ण हैं, कुछ आपकी जिंदगी में भी हो रहा है।

मैंने सुना है कि एक स्त्री एक डाक्टर के पास गई। और उसने कहा कि कोई न कोई आपरेशन कर ही दें। डाक्टर ने कहा: लेकिन तुझे कोई जरूरत ही नहीं है, तू बिल्कुल स्वस्थ है। उसने कहा: वह तो सब ठीक है, लेकिन जब भी स्त्रियां मिलती हैं--कोई कहती है किसी का अपेंडिक्स का आपरेशन हो गया है, किसी का टांसिल का हो गया है, मेरा कुछ भी नहीं हुआ है। तो जिंदगी बेकार ही जा रही है--कुछ भी कर दें, चर्चा के लिए ही सही।

आदमी अपनी बीमारी में, अपने दुख में, अपनी पीड़ा में, अपनी चिंता में रस ले रहा है। महावीर उस रस को ही बंध कहते हैं।

"पुण्य", "पाप"--महावीर के हिसाब से पुण्य-पाप की बड़ी अलग धारणा है। महावीर पुण्य, पाप को भी पौदगलिक कहते हैं, मैटीरियल कहते हैं। वे कहते हैं, जब आप पाप करते हैं तब आप की चेतना के पास खास तरह के परमाणु इकट्ठे हो जाते हैं, जब आप पुण्य करते हैं तब खास तरह के परमाणु इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य करने से कोई मुक्त नहीं होगा, क्योंकि पुण्य भी परमाणुओं को इकट्ठा करता है। पुण्य करने से अच्छा शरीर मिल सकता है, पुण्य के परमाणु होंगे। और पाप करने से बुरा शरीर मिल सकता है, बुरे परमाणु होंगे।

महावीर कहते हैं, पाप है, जैसे लोहे की हथकड़ियां और पुण्य है, जैसे सोने की हथकड़ियां। लेकिन सोने की हथकड़ियों को हथकड़ियां नहीं कहते, उनको आभूषण कहते हैं। जब आपको किसी स्त्री को बांधना हो, तो लोहे की हथकड़ी भेंट मत करना--सोने की, उनको लोग आभूषण कहते हैं। सोना जिस तरह बांध लेता है, उतना लोहा कभी भी नहीं बांध सकता, क्योंकि लोहे में कोई रस पैदा होता नहीं मालूम होता। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य भी बांधता है।

बुरे कर्म तो बांधते ही हैं, अच्छे कर्म भी बांध लेते हैं। और हर कर्म पौदगलिक है--यह बड़ी क्रांतिकारी धारणा है। महावीर कहते हैं जब तुम शुभ कर्म करते हो तो तुम्हारे पास शुभ परमाणु इकट्ठे होते हैं, वस्तुतः। तुम्हारी चेतना के आस-पास अच्छे तत्व इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिए तुम्हें अच्छा लगता है। जैसे चारों तरफ फूल खिले हों और किसी को अच्छा लगे, ऐसा ही पुण्य करते वक्त अच्छा लगता है। पाप करते वक्त बुरा लगता है, जैसे कोई दुर्गंध के बीच बैठा हो।

तो जब आप चोरी करते हैं तो मन को बुरा लगता है, झूठ बोलते हैं तो मन को बुरा लगता है, क्रोध करते हैं तो मन को बुरा लगता है; उस बुरे लगने का कारण है कि आप गलत, विकृत, दुर्गन्धयुक्त परमाणुओं को अपने पास बुला रहे हैं, निमंत्रण दे रहे हैं। और जब आप किसी पर दया करते हैं, किसी पर करुणा प्रकट करते हैं, किसी गिरे को उठने का सहारा दे देते हैं--कोई छोटा सा कृत्य भी--कि एक बूढ़े आदमी को देख कर मुस्कुरा देते हैं, जिसको देख कर अब कोई नहीं मुस्कुराता, तो आपके भीतर एक हलकापन छा जाता है; आप उड़ने लगते हैं, पंख निकल आते हैं।

यह जो आपको उड़ने का हलकापन मालूम होता है, यह जो ग्रेवीटेशन कम हो जाता है, कशिश कम हो जाती है जमीन की, यह जो प्रसादयुक्त अवस्था है, इसको महावीर "पुण्य" कहते हैं।

महावीर के हिसाब से जो करके भी आपको हल्कापन मालूम होता हो, प्रसन्नता मालूम होती हो, खिलते हों आप, फूल की तरह बनते हों, वह पुण्य है। और जिससे भी आप भारी होते हों, पथरीले होते हों, डूबते हों नीचे, और जिससे बोझिलता बढ़ती हो--वह पाप है। जो नीचे लाता हो, डुबाता हो, वजन देता हो, वह पाप है; और जो ऊपर ले जाता हो, हल्का करता हो, आकाश में खोलता हो, वह पुण्य है।

इसका अर्थ अगर ख्याल में आ जाए तो आप बहुत हैरान होंगे। अगर आपका धर्म भी आपको भारी करता है, सीरियस करता है, तो पाप है। अगर आपका धर्म आपको उत्सव देता है, आनंद देता है, नृत्य देता है, तो ही पुण्य है। पुण्य का लक्षण है कि आप हलके हो जाएंगे, बच्चे की तरह नाचने लगेंगे; पाप का अर्थ है, आप भारी हो जाएंगे, बैठ जाएंगे पत्थर की तरह।

अपने साधु संन्यासियों को जाकर गौर से देखें, क्या उनके जीवन में उत्सव है? और जिनके जीवन में उत्सव ही नहीं है, उनके जीवन में मोक्ष तो बहुत दूर है। अभी पुण्य भी जीवन में नहीं है। क्या आपका साधु हंस सकता है? बच्चे की तरह किलकारी ले सकता है? नाच सकता है? प्रफुल्लित हो सकता है?

नहीं, वह भारी है। और न केवल खुद भारी है, अगर आप हंसते हुए उसके पास पहुंच जाएं, तो अपमान अनुभव करेगा। वह आपको भी भारी करता है। तो जब आप मंदिर में पहुंचते हैं, तो आप जूते ही बाहर नहीं उतारते, सब हल्कापन भी बाहर रख देते हैं। एकदम गंभीर होकर, रीढ़ को सीधी करके, आंखें भारी करके, नीची करके आप अंदर प्रवेश करते हैं।

मंदिर में जिंदा आदमी के लिए कोई जगह नहीं मालूम होती, मरे-मराए लोग, इसलिए अगर मंदिर में बच्चे आ जाएं, तो सबको लगता है कि डिस्टर्बन्स कर रहे हैं। सच्चाई उलटी है। बच्चे मंदिर में पुण्य ला रहे हैं। और अगर आप भी बच्चों की तरह कूद सकें, और नाच सकें, और गीत गा सकें, तो ही, तो ही मंदिर पुण्य के तत्व देगा।

मैं निरंतर कहता हूं कि कभी एक बगीचे में भी पुण्य के तत्व हो सकते हैं, कभी एक नदी के किनारे भी, कभी एक पहाड़ के एकांत में भी। जरूरी नहीं है कि मंदिर में ही हों। क्योंकि मंदिर पर गंभीर लोगों ने बड़े पुराने दिनों से कब्जा कर रखा है। गंभीर लोग एक लिहाज से खतरनाक हैं, क्योंकि जहां भी गंभीर लोग हों, वे हलके-फुलके लोगों को निकाल कर बाहर कर देते हैं।

इकाॅनामिक्स का एक नियम है कि जब भी बुरे सिक्के हों तो अच्छे सिक्के चलन के बाहर हो जाते हैं। रद्दी नोट अगर आपके खीसे में पड़ा हो, तो पहले आप रद्दी को चलाएं कि असली को? रद्दी पहले चलेगा, असली को आप छिपा कर रखेंगे। रद्दी हमेशा असली को चलन के बाहर कर देता है।

गंभीर लोग प्रफुल्लता को सदा बाहर कर देते हैं। और उन्होंने ऐसी हालत पैदा कर दी है कि प्रफुल्लता पाप मालूम होने लगी है। अगर आप हंसते हैं, तो आप पापी हैं। आपको एक रोती हुई लम्बी शक्ल चाहिए, तब आप पुण्यात्मा मालूम होंगे।

महावीर कहते हैं, पुण्य का तत्व प्रफुल्ल करने वाला तत्व है। और यह निश्चित सही है। और इससे ज्यादा सही कोई और बात नहीं हो सकती। अगर आपने जीवन में कभी भी कोई हल्कापन अनुभव किया है, तो आप समझ लेना कि वहां पुण्य का तत्व आपने आकर्षित किया था। अगर आपको भारीपन अनुभव होता है, बोझिलता अनुभव होती है, तो उसका मतलब है कि शरीर वजनी हो रहा है, आत्मा ताकत खो रही है, शरीर ज्यादा भारी होकर छा रहा है।

प्रफुल्लता की तलाश, पुण्य की तलाश है। और ध्यान रहे, जो खुद प्रफुल्लित रहना चाहता है, वह दूसरे को प्रफुल्लित करेगा; क्योंकि प्रफुल्लता संक्रामक है। अगर यहां इतने लोग रो रहे हों, तो आप प्रफुल्लित नहीं हो सकते अकेले। आप दब जाएंगे। तो जो आदमी आनंदित होना चाहता है, वह दूसरे को दुख नहीं देना चाहेगा; क्योंकि आनंदित होने की बुनियादी शर्त ही यह है कि आनंद चारों तरफ हो, तो ही आप आनंदित हो पाएंगे।

और जो आदमी दुखी होना चाहता है, वह अपने चारों तरफ दुखी चेहरे पैदा करेगा; क्योंकि दुख के बीच ही दुखी हुआ जा सकता है।

जब धर्म जन्म लेता है, तो नाचता हुआ होता है, और जब धर्म संप्रदाय बनता है तो मुर्दा हो जाता है, लाश हो जाता है--गंभीर। और उसके आस-पास बैठे हुए लोग वैसे ही हो जाते हैं, जब घर में कोई मर जाता है तो पड़ोस के लोग आकर आस-पास बैठ जाते हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में, गुरुद्वारों में बैठे हैं लोग--जैसे लाश के आस-पास।

महावीर के पास जो प्रफुल्लता रही होगी, वह महावीर की मूर्ति के पास नहीं बची। जरा महावीर का चेहरा देखें, जाकर अपने ही मंदिर की मूर्ति में जरा गौर से देखें। यह चेहरा बिल्कुल हलका है, इस चेहरे पर लेशमात्र भी बोझ नहीं है; यह छोटे बच्चे की भांति निर्दोष है; इस पर कोई भार नहीं, कोई चिंता नहीं। महावीर इसीलिए नग्न भी खड़े हो गए। छोटा बच्चा ही नग्न खड़ा हो सकता है।

नहीं कि आप नग्न खड़े हो जाएं तो छोटे बच्चे हो जाएंगे। कुछ पागल भी नग्न खड़े हो जाते हैं। लेकिन अगर आप नग्न खड़े हैं और आपको पता है कि आप नग्न खड़े हैं तो आप छोटे बच्चे नहीं हैं।

महावीर इतने हल्के हो गए, कि नग्न खड़े हो गए। उन्हें पता भी नहीं चला होगा कि वे नग्न हैं। और उनकी नग्नता का दूसरों को भी पता नहीं चलता कि वे नग्न हैं। एक निर्दोष, एक इनोसेंस, एक कुंआरापन भीतर आ गया, जहां सब बोझ गिर गए।

महावीर कहते हैं: पुण्य हलका करने वाला तत्व है, पाप बोझिल करने वाला तत्व है। लेकिन ध्यान रहे, पुण्य से ही कोई मुक्त नहीं हो जाएगा। पुण्य पाप से मुक्त करेगा। और आखिरी घड़ी आती है, जब आदमी को पुण्य से भी मुक्त हो जाना पड़ता है, क्योंकि वह कितना ही हलका करता हो, फिर भी थोड़ा तो भारी होगा ही। तत्व है तो उसका थोड़ा तो बोझ होगा ही। आपने कितना ही पतला कपड़ा पहन रखा हो, मलमल पहन रखी हो ढाका की, तो भी थोड़ा सा बोझ देगी। उतना बोझ भी मोक्ष के लिए बाधा है।

तो महावीर कहते हैं: पहला पड़ाव है पाप से मुक्ति, पाप के तत्वों से छुटकारा; और दूसरा पड़ाव है पुण्य से मुक्ति, और तीसरा पड़ाव नहीं है, मंजिल है आखिरी, क्योंकि वहां फिर कुछ भी नहीं बचता जिससे छूटना है।

"आस्रव" का अर्थ है: बुलाना, निमंत्रण, आने देना। आप खुले होते हैं कुछ चीजों के लिए। एक सूबसूरत स्त्री पास से निकलती है, आपके भीतर एक दरवाजा खुल जाता है। साथ में पत्नी हो तो बात अलग है। तो आप दरवाजे को पकड़े रखते हैं, खुलने नहीं देते। पत्नी न हो तो दरवाजा एकदम खुल जाता है।

"आस्रव" का अर्थ है: आपकी वृत्ति खुलने की, पाप की तरफ। जहां-जहां गलत है, आप एकदम से खुल जाते हैं। शराब की दुकान है, भीतर कोई कहने लगता है, चलो।

"आस्रव" का अर्थ है: खुलने की वृत्ति पाप की तरफ। वह हमारे भीतर है। हम सब आस्रव में जी रहे हैं। यह हो सकता है कि सबके आस्रव की अपनी-अपनी शर्तें हैं।

मैंने सुना है, एक साधु अपनी आजीविका के लिए एक छोटी सी नाव चलाता था, इस किनारे से उस किनारे तक नदी के। एक दिन एक स्मगलर ने उससे कहा कि यह सोने का इतना पाट है, इसको ले चलो, मैं सौ रुपये दूंगा। उसने कहा कि भूल कर ऐसी बात मत करना।

मैं किसी पाप में नहीं उतर सकता। मैं सिर्फ आजीविका के लिए, दो पैसे कमाने के लिए नाव चलाता हूं।"

स्मगलर नाव में चढ़ आया और उसने कहा कि "मैं हजार रुपये दूंगा।" साधु ने कहा कि "छोड़ रुपयों की बात ही छोड़। तू रुपयों से मुझे प्रलोभित न कर पाएंगा।" उसने कहा कि "मैं तुझे दस हजार दूंगा।"

जैसे ही उसने कहा, दस हजार दूंगा, साधु ने उसे जोर से धक्का दिया और नीचे गिरा दिया। उस आदमी ने कहा: सीधी तरह बात क्यों नहीं करते? साधु ने कहा कि तू बिल्कुल मेरे करीब आया जा रहा है, मेरे आस्रव के करीब आया जा रहा है। दस हजार... ! मेरा दरवाजा खुला जा रहा है। तू हट, भाग यहां से।

हर एक की सीमा है। हम सबने सीमाएं बांध रखी हैं। कोई पांच रुपये पर प्रलोभित हो जाता है, कोई पचास रुपये पर, कोई पांच सौ पर, कोई लाख पर। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इसका--क्योंकि मतलब इतना ही है कि आपके आस्रव का दरवाजा अपनी एक शर्त रखे हुए है। और जब भी आप बेचैन होते हैं, तो उसका मतलब है दरवाजा खुलने के करीब है। बहुत सी स्त्रियों के पास से आप बिल्कुल शांत गुजर जाते हैं। उसका मतलब है कि उनकी स्थिति आपका दरवाजा खोलने के लिए काफी दस्तक नहीं है। जिस स्त्री के पास आप बेचैन होने लगते हैं, उसका अर्थ है कि दरवाजा खुलना चाहता है। बेचैनी का मतलब है कि भीतर अब कुछ खुलना चाहता है और बाहर से भीतर कुछ प्रवेश करना चाहता है।

हम किस चीज के प्रति खुले हैं, इसका निरंतर ध्यान रखना जरूरी है। अगर हम पाप के प्रति खुले हैं तो पाप इकट्ठा होता चला जाएगा; अगर हम पुण्य के प्रति खुले हैं तो पुण्य इकट्ठा होता चला जाएगा। जिस तरफ आप खुले हैं, उसकी आप तलाश करते हैं। हर आदमी अपने ही आस्रव के लिए खोज कर रहा है। अगर आप चोर हैं, तो बहुत जल्दी आप चोरों से मिल जुल जाएंगे, अगर आप धार्मिक हैं तो बहुत जल्दी आप धार्मिक लोगों की तलाश कर लेंगे, अगर आपके जीवन में साधुता की तरफ खुलाव है, तो आप किसी साधु को खोज लेंगे, सत्संग करने लगेंगे, अगर आप बेईमान हैं, तो आपके आस-पास बेईमान इकट्ठे हो जाएंगे।

आप जो भी भीतर से हैं, आप उसी तरफ सरक रहे हैं। हर आदमी अपना जगत खोज लेता है। जरूरी नहीं कि आप महावीर के गांव में होते, तो महावीर के पास जाते। बहुत से नहीं गए। महावीर अपना जगत खोज लेता है। जरूरी नहीं कि आप महावीर के गांव में होते, तो महावीर के पास जाते। बहुत से लोग नहीं गए। महावीर से कुछ लेना देना नहीं मालूम पड़ा।

मैं एक मकान में रहता था आठ वर्ष तक। मेरे मकान के ऊपर ही एक प्रोफेसर रहते थे। आठ वर्ष! जब वे चलते थे, तो ठीक उनके पैर की आवाज मुझे सुनाई पड़ती थी। नीचे हम बात करते थे, तो उसकी आवाज उन तक जाती होगी। लेकिन कभी नमस्कार भी होने का कोई संबंध नहीं बना। फिर उनका ट्रांसफर हो गया। वे कहीं प्रिंसिपल होकर चले गए। कोई दो वर्ष बाद उनके कालेज में मैं बोलने गया, नये गांव में। वे एकदम रोने लगे मुझे सुनकर। कहने लगे, कि "क्या हुआ, आठ वर्ष तक ठीक मैं आपके सिर पर बैठा हुआ था... !"

संबंध बनता है तब, जब भीतर कुछ खुलता है। आप किस तरफ खुले हैं, इसे ध्यान रखना। महावीर आस्रव को एक तत्व कहते हैं--खुलेपन को। अगर पाप की तरफ खुले हैं, तो जीव नीचे उतरता चला जाएगा। और लक्षण यह होगा कि आप भारी होते जाएंगे, दुखी होते जाएंगे, चिंतित होते जाएंगे, विक्षिप्त होते चले जाएंगे; अगर पुण्य की तरफ खुले हैं, तो जीवन हलका होता जाएगा, आप प्रफुल्लित होने लगेंगे, जीवन एक गीत बन जाएगा, अनजाने फूल खिलने लगेंगे और अनूठी सुगंध आपको घेर लेगी। "संवर"ः महावीर कहते हैं आस्रव है आने देना, संवर है रोकना। बाहर से भीतर आने देना एक बात है, और भीतर से बाहर जाने देना दूसरी बात है। बहुत सी ऊर्जा आपकी निरंतर बाहर जा रही है, अकारण सिर्फ अज्ञान में। उसे संवरित कर लेना, उसे रोक लेना वह भी एक तत्व है।

आप रास्ते पर चले जा रहे हैं। जो भी आस-पास विज्ञापन लगे हैं, पढ़ते चले जा रहे हैं--किसलिए? लेकिन जो भी आप पढ़ते हैं, वह आपको अछूता नहीं छोड़ेगा। वह आपके भीतर जा रहा है, तो आस्रव हो रहा है। कुछ भी कचरा भीतर जा रहा है। "पनामा सरस सिगरेट छे"--उसको भी पढ़े जा रहे हैं। उसको भीतर लिए जा रहे हैं। वह भरता जा रहा है। वह काम करेगा, क्योंकि आस्रव हो रहा है। और जब आप पढ़ रहे हैं, तो आपकी ऊर्जा बाहर जा रही है, आपकी चेतना बाहर जा रही है, आपकी शक्ति बाहर जा रही है।

छोटे से कृत्य में भी शक्ति का अपव्यय हो रहा है। इसलिए महावीर कहते हैं कि जमीन पर चार कदम देखकर साधु चले। ज्यादा देखने की जरूरत नहीं है, चार कदम काफी है। जब चार कदम चल लेंगे, तो आंखें चार कदम और देख लेगीं। पर जमीन पर देख कर चलें, कई कारणों से: जमीन पर जब आप देख कर चलते हैं, आप हैरान होंगे आपकी आंखें थकेंगी नहीं। और कहीं भी आप देख कर चलेंगे तो आंखें थकेंगी, क्योंकि जमीन हमारी जीवन-दात्री है, वहां से हम पैदा हुए हैं। शरीर भी एक वृक्ष है, जो जमीन से पैदा हुआ है। मिट्टी इसके कण-कण में है।

जब आप जमीन पर देखकर चलते हैं, तो जो ऊर्जा जमीन पर जा रही है, वह वापस लौट आती है, द्विगुणित होकर वापस लौट आती है। जब आप घास पर देख कर चलते हैं; तो ऊर्जा वापस लौट आती है। आदमी के कृत्यों को देख कर मत चलें, और आदमी को मत देखें। आदमी से थोड़ा बचें। आदमी खतरनाक है। उसकी छोटी-छोटी बात भी आपको बाहर ले जा रही है।

लेकिन हम ऊर्जा नष्ट करने में लगे हैं। हमें संवरित करने का ख्याल ही नहीं है। संवर का सुख हमें पता नहीं है। महावीर कहते हैं कि संवर का एक सुख है। शुद्ध ऊर्जा जब भीतर होती है, आप कुछ उसका उपयोग नहीं करते, सिर्फ ऊर्जा होती है, ऊर्जा उबलती है, ऊर्जा नाचती है, कोई उपयोग नहीं करते, सिर्फ शक्ति का शुद्ध आनंद-संवर है। और जो व्यक्ति आस्रव से बचे और संवर करे अपनी ऊर्जा का--वह शक्तिशाली होता चला जाएगा। उसके पास वीर्य होगा; उसके पास पुरुषार्थ होगा; उसके पास साहस होगा। अगर वह आदमी आपकी आंख में आंख डाल देगा, तो आपके भीतर कुछ हिल जाएगा। लेकिन आपकी आंख तो खर्च हो चुकी है। वह वैसे ही है, जैसे चला हुआ कारतूस होता है। उससे आप किसी को देखें भी, तो कहीं उसके भीतर कुछ नहीं होता।

आप एक प्रयोग करें। एक सात दिन तक सिर्फ जमीन पर देख कर चलें और सात दिन बाद जरा किसी की तरफ देखें। अनूठा अनुभव होगा। अगर सात दिन आप जमीन पर देख कर चलते रहे हैं और फिर कोई आदमी जा रहा हो आपके सामने, तो सिर्फ उसके सिर के पीछे दोनों आंखें गड़ा कर कहें कि पीछे लौट कर देख, तो वह आदमी उसी वक्त लौट कर देखेगा। अब आपके पास शक्ति है। करने की जरूरत नहीं है, एकाध ऐसा प्रयोग करके देख लेना। करने की जरूरत नहीं है क्योंकि उसमें भी शक्ति--ऊर्जा नष्ट हो रही है।

अगर महावीर जैसे व्यक्तियों के पास लोग जाकर सम्मोहित हो जाते हैं, तो ऐसा नहीं है कि महावीर सम्मोहित कर रहे हैं। महावीर का क्या प्रयोजन हो सकता है? लेकिन महावीर इतनी ऊर्जा से भरे हैं कि स्वभावतः उस विराट ऊर्जा की तरफ आप चुंबक की तरह खिंचे आते हैं। आपको भला लगेगा कि आप सम्मोहित हो गए, हिप्रोटाइज हो गए, महावीर ने कुछ खींच लिया, महावीर खींच नहीं रहे हैं। लेकिन संवरित ऊर्जा आकर्षित करती है, मैग्नेटिक हो जाती है।

"निर्जरा" और "मोक्ष"।

निर्जरा महावीर का विशेष शब्द है और बड़ा बहुमूल्य शब्द है। निर्जरा का अर्थ है: वे जो हमने जन्मों-जन्मों में कर्म इकट्ठे किए हैं, वे जो हमने जन्मों-जन्मों में बंध किए हैं, पाप किए हैं, पुण्य किए हैं, वे हमारे चारों तरफ इकट्ठे हैं, जैसे धूल--कोई यात्री चले रास्ते पर और धूल इकट्ठी हो जाए वस्त्रों पर। वस्त्रों से धूल को झाड़ दें, उस धूल के झड़ जाने का नाम निर्जरा है।

निर्जरा का अर्थ है, वह जो हमने जन्मों-जन्मों में इकट्ठा किया है, वह सब झड़ जाए, हम फिर से खाली हो जाएं, शून्य हो जाएं। निर्जरा का अर्थ है, हमने जो संग्रह किया है, वह सब झड़ जाए। बड़े सूक्ष्म संग्रह हैं हमारे: हमारा ज्ञान, हमारी स्मृति, हमारे कर्म, हमारे जन्मों-जन्मों के संस्कार, वे सब इकट्ठे हैं। निर्जरा में वे गिरने शुरू हो जाते हैं। निर्जरा की प्रक्रिया ही महावीर का योग है, कि वे कैसे गिरें?

आस्रव बदलें। गलत के द्वार को खुला न रखें, शक्ति को व्यर्थ मत जाने दें; जब जरूरी हो तभी जाने दें; संवर करें। और भी बहुत इकट्ठा है, पुराना इकट्ठा है। नया इकट्ठा होना बंद हो जाएगा, अगर आस्रव और संवर का ध्यान रहे। लेकिन जो पुराना रखा है, उसके प्रति साक्षी का भाव रखें; उसे सिर्फ देखें, उसे शक्ति मत दें।

एक आदमी आपको गाली देता है। जैसे ही वह गाली देता है, आपको भी गाली देने की इच्छा होती है। इस इच्छा को देखें; यह इच्छा पुरानी आदत है। यह पुराना संस्कार है। जब जब आपको गाली दी गई है, आपने भी गाली दी है। यह सिर्फ उसकी लकीर है। इसे देखें, इसे काम मत करने दें। क्योंकि अगर आप गाली दे रहे हैं, तो आप ऊर्जा भी बाहर भेज रहे हैं। फिर नया संस्कार बन रहा है, फिर नया कर्म बन रहा है।

महावीर एक जंगल में खड़े हैं। एक ग्वाला आया और उसने कहा कि मैं जरा जल्दी में हूं, मेरी गाएं यह बैठी हैं यहां, तुम जरा ध्यान रखना। उस ग्वाले को यह पता नहीं है कि वे मौन में हैं। और उन्होंने सुना भी नहीं, उन्होंने "हां-हूं" कुछ भी नहीं कहा। ग्वाला जल्दी में था, जल्दी चला गया। सांझ को लौट कर जब वह आया, तो महावीर वहीं मौन खड़े थे। उन्होंने "हां-ना" कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने "हां-ना" कहना तो बंद कर दिया था। उन्होंने तो बाहर के सब संबंध शिथिल कर दिए थे, सब सेतु तोड़ डाले थे। गाएं अपने आप उठ कर जंगल की तरफ चली गई थीं। वह ग्वाला आया और उसने देखा कि गाएं वहां नहीं हैं। उसने पूछा: कहां हैं मेरी गाएं? महावीर को चुपचाप खड़ा देख कर उसने समझा कि आदमी चालबाज है। बताता क्यों नहीं है कि मेरी गाएं कहां हैं? जब महावीर चुपचाप ही खड़े रहे, तो उसने सोचा कि हो सकता है, यह आदमी पागल हो! किस तरह का आदमी है? न आंख खोलता है, न बोलता है! मैंने गलत आदमी से कह दिया। तो वह गया जंगल में अपनी गायों को खोजने। वह जब गायों को जंगल में खोज रहा था, तब गाएं जंगल से चर कर सांझ हो जाने के कारण वापस लौट आई थीं। जब वह आदमी लौट कर आया, तो उसने देखा कि गाएं महावीर के पास इकट्ठी हैं। उसने सोचा कि यह आदमी तो गायों को लेकर भागने का इरादा रखता है। इसने पहले गाएं छिपा दी थीं और अब गाएं निकाल ली हैं। अब अंधेरा हुआ, अब यह गाएं लेकर भाग जाता। तो उसने उनकी अच्छी पिटाई की, और उनको बोलते-सुनते न देख कर उसने कहा: क्या तुम बहरे हो? और उसे इतना गुस्सा आया कि उसने दो लकड़ियां उठाकर उनके कान में ठोक दीं। महावीर सब देखते रहे। वह आदमी चला गया।

बड़ी प्यारी कथा है कि इंद्र को पीड़ा हुई। शुभ को पीड़ा होगी ही, इतना ही मतलब है। दिव्य जो है, उसको पीड़ा होगी ही, किसी को अकारण सताए जाने पर। तो कथा है कि इंद्र आया, और उसने महावीर के अंतस्तल में, क्योंकि ऊपर से तो वे चुप थे, कहा कि दुख होता है, अकारण आपको सताया गया। महावीर ने भीतर कहा कि अकारण कुछ भी नहीं होता है, मैंने कभी न कभी कुछ किया होगा, यह उसका फल है। अच्छा हुआ, निर्जरा हो गई; एक संबंध छूटा, एक झंझट मिटी। उस आदमी को जो करना था, वह कर गया। इंद्र ने कहा कि हमें कुछ कहें, हम कुछ इंतजाम करें, कोई प्रतिबंध करें। तो महावीर ने कहा: तुम कुछ मत करो। क्योंकि मैं तुमसे कुछ भी करने को कहूं, तो वह कहना एक नया बंध हो जाएगा--एक नया कर्म। फिर मुझे उससे भी निबटना पड़ेगा। तुम मुझे छोड़ो। पुराना लेन-देन चुक जाए, इतना काफी है। मुझे कोई नया लेन-देन शुरू नहीं करना है; मैं व्यापार सिकोड़ रहा हूं, समेट रहा हूं।

निर्जरा का अर्थ है: वह जो पुराना लेन-देन है, वह चुक जाए। जब कोई गाली दे, तो उसे देख लेना। ताकि जो पुराना लेन-देन है, वह चुक जाए। धीरे-धीरे एक क्षण आता है, जब सब संस्कार झर जाते हैं। ऐसी निर्जरा की अवस्था के पूरे होने पर जो बच रहता है वह मोक्ष है, वह मुक्त अवस्था है--जहां चेतना पर कोई भी बंधन नहीं, कोई भी बोझ नहीं, कोई कंडिशनिंग नहीं, कोई संस्कार नहीं। ये नौ सत्य तत्व हैं। ऐसे सत्य तत्वों के संबंध में सदगुरु के उपदेश से या स्वयं अपने ही भाव से श्रद्धान करना (श्रद्धा करना) सम्यक्त्व कहा गया है।

सम्यकत्व का अर्थ है: सम्यसंतुलित हो जाना--टोटली बैलेंस्ड। यह घटना दो तरह से घट सकती है: सदगुरु के उपदेश से, या अपने ही प्रयास से।

सदगुरु के उपदेश का क्या अर्थ है? सदगुरु का मतलब है कि जिसने स्वयं जाना हो। पंडित के उपदेश से यह घटना नहीं घट सकती। जिसने स्वयं जाना हो, उसके उपदेश से घट सकती है। लेकिन सदगुरु के उपदेश से भी नहीं घटेगी, अगर आप उपदेश लें ही न, अगर कुछ आप में प्रवेश ही न करे। तो वर्षा के पानी की तरह आपके शरीर पर गिर कर उपदेश विदा हो जाएगा, धूल में खो जाएगा।

वर्षा का पानी गिरता है। अगर आप उसे आकाश से सीधे ही ले लें अपने मुंह में, तो वह शुद्ध होता है। और अगर जमीन पर गिर जाए, तो अशुद्ध हो जाता है। पंडितों से सुनना, जमीन पर गिरे हुए पानी को इकट्ठा करना है; और महावीर जैसे व्यक्ति से सुनना, सीधे आकाश से गिरी शुद्ध बूंद को मुंह में ले लेना है।

सदगुरु का अर्थ है: जिसने स्वयं जाना है, जो दूसरों के जाने हुए को नहीं कह रहा है, जिसकी अपनी प्रतीति, अपना दर्शन है; जिसका अपना साक्षात्कार है--उसके उपदेश से यह घटना घटती है। लेकिन उसके उपदेश को लेने की तैयारी हो, मन खुला हो, हृदय के द्वार उन्मुक्त हों, तो ही श्रद्धा घटित होती है। सुनकर ही घटित हो जाती है, अगर सुनने वाला तैयार हो। इसलिए महावीर ने सुनने वालों को अलग ही नाम दिया। उन्होंने सुनने वालों को "श्रावक" कहा है।

सभी सुनने वाले श्रावक नहीं होते हैं। यहां इतने लोग सुन रहे हैं, सभी श्रावक नहीं हैं। जो श्रावक है, वह सुन कर ही श्रद्धा को उपलब्ध हो जाएगा। श्रावक का अर्थ है: जो इतना हार्दिक रूप से सुन रहा है, इतनी सहानुभूति से सुन रहा है, इतने प्रेम से सुन रहा है कि भीतर कोई भी विरोध, कोई रेसिस्टेंस नहीं है, कोई बचाव नहीं है। वह सब तरह से बह जाने को राजी है। गुरु जहां ले जाए उस धारा में बह जाने को राजी है। गुरु चाहे मौत में ही क्यों न ले जाए, तो भी वह जाने को राजी है। ऐसे सरल भाव से सुनी गई बात से श्रद्धा का जन्म होता है। और या फिर अपने ही प्रयास से।

सौ में से एक व्यक्ति अपने प्रयास से भी कर सकता है। लेकिन उसका अपना प्रयास भी इसलिए सफल होता है कि पिछले जन्मों में सदगुरु के पास कुछ जाना है; उसे कुछ झलक मिल गई है, कोई संपर्क मिल चुका है।

जैसे जन्म अपने ही द्वारा नहीं मिलता, मां-बाप से मिलता है; वैसे ही श्रद्धा भी वस्तुतः अपने ही द्वारा नहीं मिलती, वह भी सदगुरु से ही मिलती है। कोई आदमी जैसे अपने को ही जन्म देने की कोशिश करे कि मैं अपना ही मां-बाप भी बन जाऊं, तो बहुत मुसीबत होगी, बहुत झंझट होगी। शायद यह हो भी नहीं सकता है। वैसे ही ज्ञान का जन्म भी, जहां ज्ञान घटा हो, उस आदमी के निकट आसानी से हो जाता है।

यह इसलिए नहीं कि गुरु आपको ज्ञान दे देता है। ज्ञान कुछ दी जाने वाली चीज नहीं है। पर गुरु कैटेलिटिक एजेंट है, गुरु उत्प्रेरक तत्व है। उसकी मौजूदगी में घटना घट जाती है। घटना तो आपके भीतर ही घटती है, घटना आपसे ही घटती है, पर उसकी मौजूदगी आपको हिम्मत और साहस दे देती है। उसकी मौजूदगी में आप निर्दोष हो पाते हैं। उसकी मौजूदगी में उसका संगीत आपको शांत कर पाता है। उसकी उपस्थिति आपको उठा लेती है उन ऊंचाइयों पर, जिन पर आप अपने ही बल नहीं उठ सकते। उन ऊंचाइयों पर सत्य का दर्शन हो जाता है। उस सत्य के दर्शन की स्थिति को "सम्यकत्व" कहा है।

ऐसा व्यक्ति संतुलित हो जाता है, सम्यक हो जाता है। और जो व्यक्ति सम्यकत्व को उपलब्ध हो गया, उसके जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई हट गई; दिशा बदल गई, यात्रा का रुख बदल गया। संसार की तरफ उसने पीठ कर ली, और मोक्ष की तरफ उसका मुंह हो गया।

आज इतना ही।

मुमुक्षा के चार बीज (लोकतत्व-सूत्र: 3)

नाणेण जाणइ भावे,
दंसणेण य सदहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ,
तवेण परिसुज्झइ॥

नाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तथा।
एयं मग्गमणुप्पत्ता,
जीवा गच्छंति सोग्गइ॥

मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है, चारिष्य से भोग-वासनाओं का निग्रह करता है, और तप से कर्ममलरहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।

ज्ञान, दर्शन, चारिष्य और तप--इस चतुष्टय अध्यात्म मार्ग को प्राप्त होकर मुमुक्षु जीव मोक्षरूप सदगति पाते हैं।

ज्ञान का कोई शिक्षण संभव नहीं है। शिक्षण सूचनाओं का हो सकता है। ज्ञान का उदभावन होता है, आविर्भाव होता है। ज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो बाहर से भीतर डाली जा सके। ज्ञान जीवन की उस धारा का नाम है, जो भीतर से बाहर की ओर आती है। सूचनाएं बाहर से भीतर की ओर आती हैं, ज्ञान भीतर से बाहर की ओर आता है। इसलिए कोई विद्यालय, कोई विद्यापीठ ज्ञान नहीं दे सकता; सूचनाएं दे सकता है, इनफर्मेंशंस दे सकता है। कोई शास्त्र, कोई गुरु ज्ञान नहीं दे सकता, सूचनाएं दे सकता है। जो ज्ञान दिया जा सकता है, वह ज्ञान नहीं होगा, इस मौलिक बात को ठीक से ख्याल में ले लें।

ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। उसे लेकर ही आप पैदा हुए हैं, जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो--वैसे ज्ञान आपमें छिपा है। इसलिए ज्ञान को पाने के लिए कुछ और नहीं करना, सिर्फ बीज को तोड़ना है। बीज मिट्टी में खो जाए, मिट जाए, तो ज्ञान का अंकुरण शुरू हो जाएगा।

ज्ञान को हम लेकर ही पैदा होते हैं। ज्ञान हमारे होने की आंतरिक स्थिति है। जो बीज की खोल है, वह बाधा है। इसलिए ज्ञान को पाने की प्रक्रिया नकारात्मक है, निगेटिव है। कुछ तोड़ना है, कुछ पाना नहीं है; कुछ मिटाना है, कुछ बनाना नहीं है, कुछ गिराना है, कुछ निर्मित नहीं करना है। अस्मिता टूट जाए, "मैं" का भाव टूट जाए, ज्ञान का जन्म हो जाता है।

इसलिए महावीर ने कहा है: अहंकार के अतिरिक्त और कोई अज्ञान नहीं। और जिस ज्ञान को हम बाहर से भीतर ले जाते हैं, वह भी हमारे अहंकार को ही मजबूत करता है। अहंकार टूटना चाहिए; उलटा मजबूत होता है। जितना हम जानने लगते हैं, जितना हमें ख्याल आता है कि मैं जान गया, उतना ही "मैं" मजबूत हो जाता है। जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह हमारे अहंकार का भोजन बन जाता है। महावीर जिसे ज्ञान कहते हैं, वह अहंकार की मृत्यु पर घटित होता है। इस फर्क को ठीक-से समझ लेना जरूरी है। और हमारे "मैं" की कोई सीमा

नहीं है। हम कहते हैं कि "परमात्मा असीम है", हम कहते हैं कि "आत्मा असीम है," हम कहते हैं, "सत्य असीम है", लेकिन वे सब सुने हुए शब्द हैं। हमारी अपनी अनुभव की तो बात इतनी ही है कि "अहंकार असीम है" और अहंकार असत्य है।

मैंने सुना है, जनरल दीगाल एक रात अपने बिस्तर पर सोए हैं। मैडम दीगाल ने आधी रात कहा: माई गॉड, इट इज सो कोल्ड--हे भगवान, रात बहुत सर्द है। दीगाल ने करवट बदली और कहा: मैडम, इन बेड यू कैन काल मी चार्ल्स--रात बिस्तर में तुम मुझे चार्ल्स कह कर बुला सकती हो।

पत्नी कह रही है, "हे भगवान, रात बड़ी सर्द है", और दीगाल ने समझा कि "हे भगवान" पत्नी उनसे कह रही है!

अहंकार असीम है।

मैंने सुना है यह भी कि जनरल दीगाल ने एक बार अमरीका के प्रेसिडेंट जान्सन को कहा कि फ्रांस को बचाने के लिए परमात्मा से मुझे सीधे आदेश प्राप्त हुए थे; आई रिसिब्ड डाइरेक्ट ऑर्डर फ्रॉम दि डिवाइन टु सेव फ्रांस।" जान्सन ने कहा: स्ट्रेज, बिका.ज आई डॉट रिमेंबर टु हैव गिवन एनी आर्डर्स टु यू! मैंने कभी कोई आज्ञाएं तुम्हें भेजी नहीं!

हर आदमी अपने अहंकार में बड़ा विस्तीर्ण है, बड़ा असीम है। एक ही असीम तत्व हम जानते हैं; वह है अस्मिता, वह है अहंकार, और उससे बड़ा झूठ कुछ भी नहीं है; क्योंकि मनुष्य के जो होने की जो शुद्धता है, वहां "मैं" का कभी कोई अनुभव नहीं होता। जितना अशुद्ध होता है मनुष्य, उतना ही "मैं" का अनुभव होता है। जैसे-जैसे शुद्ध होता जाता है, वैसे-वैसे "मैं" तिरोहित होता चला जाता है। परम शुद्धि की अवस्था में "मैं" बिल्कुल भी नहीं बचता। जैसे सोने से कचरा जल जाता है अग्नि में, वैसा ही जीवन से अहंकार जल जाता है। अहंकार की खोल है बीज के चारों तरफ, अंकुर भीतर छिपा है।

इसका यह मतलब नहीं कि अहंकार व्यर्थ ही है; बीज की खोल भी सार्थक है। क्योंकि वह जो भीतर अंकुर छिपा है; वह, अगर बीज की खोल न हो तो हो भी नहीं सकता। इसलिए बीज की खोल जरूरी है एक सीमा तक, क्योंकि रक्षा करती है, बचाती है। और एक सीमा तक जो रक्षा करती है, वही फिर बाधा बन जाती है। फिर अगर खोल इनकार कर दे टूटने से, मिटने से तो भी बीज मर जाएगा।

तो अहंकार बिल्कुल जरूरी है जीवन के बचाव के लिए, सुरक्षा के लिए। जो बच्चा बिना अहंकार के पैदा हो जाए, वह बच नहीं सकेगा, क्योंकि जीवन संघर्ष है। उस संघर्ष में "मैं" का भाव चाहिए। अगर "मैं" का कोई भाव न हो तो वह मिट जाएगा। उसे दूसरे "मैं" मिटा देंगे। उसे "मैं" चाहिए, यह प्राथमिक जरूरत है। लेकिन एक सीमा पर यह "मैं" इतना मजबूत हो जाए, कि जब इसे छोड़ने का क्षण आए तब भी हम छोड़ न सकें, तो खतरा हो गया। फिर जो सीढ़ी थी, वह बाधा बन गई, फिर जिसका सहारा लिया था, वह गुलामी हो गई।

अहंकार जरूरी है प्राथमिक चरण में, और अंतिम चरण में टूट जाना जरूरी है। इसलिए जैसे ही बच्चा पैदा होगा, हम उसे अहंकार सिखाना शुरू करते हैं। लेकिन अगर कोई मरते वक्त भी अहंकार में ही मर जाए, तो बीज खोल में ही मर गया, अंकुरित नहीं हो पाया, और न उस अंकुर ने--उसने आकाश जाना ही न सूर्य का प्रकाश जाना। वह अंकुर छिपा-छिपा अंधा अंधेरे में ही मर गया। वह अवसर खो गया।

जन्म के साथ तो अहंकार जरूरी है, मृत्यु के पहले खो जाना जरूरी है। और जिस व्यक्ति का अहंकार मृत्यु के पहले खो जाता है, उस की मृत्यु, महावीर कहते हैं, मोक्ष बन जाती है।

मरते हम सब हैं। अगर अहंकार के साथ मरते हैं, तो नये जीवन में फिर प्रवेश करना होगा, क्योंकि जीवन से अभी परिचय ही नहीं हो पाया। फिर नया जीवन, ताकि जीवन से हम परिचित हो सकें। अगर अहंकार के साथ ही हम मर गए, खोल के साथ ही मर गए तो फिर हमें बीज में जन्म लेना पड़ेगा। अगर खोल

टूट गई और खुला आकाश मोक्ष, मुक्ति का हमें अनुभव हो गया, और जीवन खोल से मुक्त होकर आकाश की तरफ उड़ने लगा, तो फिर दूसरे जन्म की कोई जरूरत न रह जाएगी। शिक्षण पूरा हो गया; अवसर का लाभ उठा लिया गया; जो हम हो सकते थे, हो गए; जो होना हमारी नियति थी, वह पूर्ण हो गई; अर्थ, अभिप्राय, सिद्धि उपलब्ध हो गई। फिर दूसरे जन्म की कोई भी जरूरत नहीं।

अहंकार मर जाए मृत्यु के पहले, तो मोक्ष उपलब्ध हो जाता है।

अब हम सूत्र को लें।

क्योंकि महावीर कहते हैं: "मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है।"

दो बातें: तो एक "मुमुक्षु-आत्मा" को समझ लेना जरूरी है। दो तरह के लोग हैं: एक जो कोरी जिज्ञासा करते रहते हैं। उस जिज्ञासा के पीछे कोई प्राण नहीं होता। वे कुछ करना नहीं चाहते, वे सिर्फ पूछते रहते हैं। पूछ कर जान भी लें तो उनके जीवन में कोई अंतर नहीं आता, सिर्फ जानकारी बढ़ जाती है। वे जो भी इकट्ठा करते हैं, स्मृति में इकट्ठा करते हैं। उनका जीवन उससे रूपांतरित नहीं होता। ऐसी आत्माओं को महावीर ने जिज्ञासु आत्माएं कहा है।

जिज्ञासा शुभ है, बुरी नहीं है। लेकिन सिर्फ जिज्ञासा आत्मघातक है। एक आदमी पूछता ही रहे, पूछता ही रहे और इकट्ठा करता रहे जन्मों-जन्मों तक, तो भी कोई रूपांतरण नहीं होगा। और आनंद का कोई अनुभव जानकारी इकट्ठी करने से नहीं होता। हां, जानकारी से सिर्फ इतना ही हो सकता है कि वह आदमी जानकारी के अहंकार से और भी मूर्च्छित हो जाए। इसलिए पंडित अज्ञानियों से भी ज्यादा गहन अंधकार में भटक जाते हैं। ज्ञान का अहंकार, इस जगत में बड़े से बड़ा अहंकार है; धन का अहंकार भी उतना बड़ा नहीं है। इसलिए ज्ञान का अहंकार बचाने के लिए आदमी धन भी छोड़ सकता है, यश भी छोड़ सकता है, पद भी छोड़ सकता है। सब छोड़ सकता है, लेकिन ज्ञान का अहंकार अगर बच जाए तो सब छोड़ने को राजी है।

इस मुल्क में ब्राह्मणों के साथ ऐसा हुआ है। ब्राह्मण के पास न तो धन था और न पद था, लेकिन सम्राट भी उसके पैर छूते थे। ज्ञान का अहंकार मजबूत था। धनी भी उसके पैर छूते थे। धनी भी अनुभव करते थे कि हम ब्राह्मण के सामने निर्धन हैं, और सम्राट भी अनुभव करते थे कि हम ब्राह्मण के सामने शक्तिहीन हैं। तो ब्राह्मण गरीब रह कर भी प्रसन्न था; दीन रह कर भी प्रसन्न था; झोपड़े में रह कर भी प्रसन्न था। इसलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो सकी। क्योंकि क्रांति हमेशा ब्राह्मणों के द्वारा होती है। भारत के ब्राह्मण बड़े संतुष्ट थे। कोई क्रांति का उपाय नहीं था। शूद्र क्रांति नहीं करते, क्योंकि क्रांति का ख्याल ही उनको आता है, जिनके पास बड़ी बौद्धिक बेचैनी होती है।

मार्क्स ब्राह्मण है, लेनिन ब्राह्मण है, ट्राट्स्की ब्राह्मण है, माओ ब्राह्मण है। ये सब इंटेलेक्चुअल्स हैं। ये सब बुद्धिवादी लोग हैं। भारत में माओ और मार्क्स और लेनिन और ट्राट्स्की पैदा नहीं हो सके, क्योंकि भारत का सम्राट और धनी भी ब्राह्मण के चरण छू रहा था। व्यवस्था इतनी प्रीतिकर थी, ब्राह्मण के अहंकार को इतनी पोषक थी कि क्रांति का कोई सवाल ही नहीं था। रूस में भी क्रांति होनी बहुत मुश्किल है, क्योंकि जो भारत ने किया था वही रूस कर रहा है। रूस में बुद्धिजीवी का बहुत आदर है। यूनीवर्सिटी का प्रोफेसर, लेखक, कवि, संगीतज्ञ परम आदृत हैं। उनके आदर की कोई कमी नहीं है। और जब तक वह आदृत हैं, तब तक कोई उपद्रव नहीं हो सकता।

ज्ञान का अहंकार सूक्ष्मतम है। और महावीर के हिसाब से जिज्ञासा, मात्र कोरी जिज्ञासा, सिर्फ आपको अहंकार से भर देगी, इसलिए मुमुक्षा चाहिए। जिज्ञासा काफी नहीं है। मुमुक्षा का अर्थ है कि मैं जानने में उत्सुक नहीं हूं। और अगर मैं जानना भी चाहता हूं, तो अपने को रूपांतरित करने के लिए जानना चाहता हूं। जानना मेरे लिए उपाय है, लक्ष्य नहीं। जान कर ही मैं राजी नहीं हो जाऊंगा, जान कर मैं अपने को बदलना चाहूंगा। जीवन में मुझे रूपांतरण करना है, वह मेरा लक्ष्य है। जीवन की शुद्धि लानी है, मुक्ति लानी है, वह मेरा लक्ष्य है।

जीवन में कहीं कोई कलुष न रह जाए, कोई कषाय न रह जाए, जीवन में कोई बंधन न रह जाए, जीवन में कुछ दुख का कांटा न रह जाए, वह मेरा लक्ष्य है। और जानना चाहता हूं तो सिर्फ इसलिए जानना चाहता हूं कि कैसे यह हो सके। ज्ञान साधना है। जिज्ञासु के लिए ज्ञान साध्य है; मुमुक्षु के लिए ज्ञान साधन है, मुक्ति लक्ष्य है।

बुद्ध का उल्लेख कीमती है। बुद्ध निरंतर कहते थे, एक आदमी को तीर लगा और वह गिर पड़ा। और वह बेहोश होने के करीब है। और गांव के लोग इकट्ठे हो गए। वे उसका तीर खींचना चाहते हैं। बुद्ध भी उस गांव से गुजरते हैं। वे भी वहां पहुंच गए। लेकिन वह आदमी कहता है, "पहले तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाए कि तीर किसने मारा? तीर निकालने के पहले मुझे यह तो

पता हो जाए कि तीर किस दिशा से आया? तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाए कि तीर विषाक्त है या नहीं?" बुद्ध ने कहा: "पागल, तीर को पहले निकल जाने दे, फिर तू सब जिज्ञासाएं कर लेना। क्योंकि तेरी जिज्ञासाएं इतनी लंबी हैं कि अगर उनको तृप्त करने की कोशिश की जाए तो हो सकता है, इसके पहले कि जिज्ञासाएं पूरी हों, तेरे जीवन का दिया बुझ जाए!"

फिर तो बुद्ध ने इस घटना को अपना आधार बना लिया। फिर तो वे लोगों से कहते थे, "मत पूछो कि ईश्वर क्या है? मत पूछो कि आत्मा क्या है? सिर्फ इतना ही पूछो कि दुख से कैसे निवृत्ति हो, तीर से कैसे छुटकारा हो?" जीवन बिंधा है तीरों से, जीवन जल रहा है प्रतिपल, और हम जिज्ञासाएं कर रहे हैं बचकानी! लगती हैं बड़ी तात्विक; परमात्मा की बातें बड़ी तात्विक लगती हैं, लेकिन बुद्ध कहते हैं, जरा भी तात्विक नहीं हैं। तत्व की बात तो इतनी है कि तुम दुखी हो। तुम क्यों दुखी हो, और कैसे दुख का निवारण हो जाए, तत्व की बात तो इतनी है कि तुम कारागृह में पड़े हो। कहां है द्वार, कहां है चाबी, कि तुम कारागृह के बाहर हो जाओ। कैसे जीवन मुक्त हो सकें उस उपद्रव से, जिसमें हम घिरे हैं, जिस पीड़ा और संताप में हम पड़े हैं, कैसे इस गर्त अंधेरे से जीवन प्रकाश में आ सके, वही बात तात्विक है।

तो मुमुक्षु और जिज्ञासु में एक बुनियादी फर्क है, और वह कीमती है। क्योंकि अगर जिज्ञासा के रास्ते पर कोई चलता रहे तो दर्शन में प्रवेश कर जाएगा--फिलासफी में। अगर मुमुक्षा के रास्ते पर कोई चले तो धर्म में प्रवेश करेगा, फिलासफी में नहीं। धर्म बहुत व्यावहारिक है, वास्तविक है, वैज्ञानिक है। जो वास्तविक है उसे कैसे बदला जाए? व्यर्थ की बकवास से धर्म का कोई संबंध नहीं है।

लेकिन मुमुक्षा होनी चाहिए। आपके प्रश्न बुद्धि से न उठें, जीवन के अनुभव से उठें, तो मुमुक्षा बन जाते हैं। कोई मेरे पास आता है, वह पूछता है, "ईश्वर है या नहीं?" मैं उससे पूछता हूं कि "तुम्हारे जीवन के किस अनुभव से प्रश्न उठ रहा है। अगर ईश्वर है तो तुम क्या करोगे, अगर नहीं है तो तुम क्या करोगे?" वह आदमी कहता है, "मैं बस जानना चाहता हूं, है या नहीं।"

है, तो भी यह आदमी ऐसा ही रहेगा, जैसा है। नहीं है, तो भी यह ऐसा ही रहेगा, जैसा है।

क्या फर्क पड़ता है, एक आदमी जैन दर्शन में विश्वास करता है, एक आदमी हिंदू दर्शन में विश्वास करता है; एक आदमी इस्लाम में, एक आदमी ईसाई, उनके दर्शन अलग-अलग हैं, फिलासफी अलग-अलग हैं, लेकिन ये आदमी बिल्कुल एक जैसे हैं। किसी को भी गाली दो, वह क्रोध करेगा, भला ईश्वर हो उसके दर्शन में या न हो, भला वह मानता हो कि आत्मा बचती है मृत्यु के बाद या न मानता हो, भला वह मानता हो कि पुनर्जन्म होता है या नहीं होता। गाली से परीक्षा हो जाएगी कि ये चारों आदमी एक जैसे हैं।

क्या फर्क है हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन में?

फर्क बातचीत में होगा, अंतस्तल में जरा भी फर्क नहीं है। आदमी को भीतर खोदो, बिल्कुल एक जैसा है। बस, ऊपर चमड़ी-चमड़ी के फर्क हैं।

मुमुक्षा का अर्थ है कि जो मैं जानना चाहता हूं, उससे मैं जीवन को बदलने का काम लूंगा; वह मेरे लिए एक उपकरण होगा, उससे मैं नया आदमी बनूंगा। अन्यथा ज्ञान भी मूर्छा बन जाएगा, शराब की तरह हो जाएगा। बहुत लोग ज्ञान का उपयोग शराब की तरह ही करते हैं। उसमें अपने को भुलाए रखते हैं। शराब का मतलब ही इतना है, जिसमें हम अपने को भुला सकें, और जिसमें भुला कर अकड़ पैदा हो जाए। तो पंडितों की अकड़ आप देखते हैं! ब्राह्मण जैसी अकड़ दुनिया में कहीं देखी नहीं जा सकती। और अकड़ इतनी स्वाभाविक हो गई है, खून में मिल गई है कि उसे पता भी नहीं चलता कि अकड़ है।

जितने हम मूर्च्छित होते हैं, उतना अहंकार मजबूत होता है।

सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन गया शराबघर में। एक गिलास शराब उसने बुलाई, लोग चकित हुए देख कर कि वह क्या कर रहा है। थोड़ी सी शराब उसने अपने कोट के खीसे में डाल ली और बाकी पी गया। फिर दूसरा गिलास, तब लोग और चौंक कर देखने लगे कि वह क्या कर रहा है। फिर उसने थोड़ी सी शराब खीसे में डाली गिलास से और बाकी पी गया।

ऐसे पांच गिलास, और हर बार!

सभी उत्सुक हो गए कि वह कर क्या रहा है? पांच गिलास पी जाने के बाद उसकी रीढ़ सीधी हो गई और अकड़ कर खड़े होकर उसने कहा: "नाउ आई कैन डिफीट एनीबडी इन दिस प्लेस--अब किसी को भी मैं चारों खाने चित्त कर सकता हूं, कोई है?"

दुबला-पतला नसरुद्दीन, किसी को भी चित्त वहां कर नहीं सकता। लेकिन बेहोशी अहंकार को मजबूत कर देती है। और तभी चमत्कार की घटना घटी कि उसके खीसे से एक चूहा बाहर निकला, और उसने कहा: दि सेम गोज फार एनी राटन कैट टू--कोई भी सड़ी बिल्ली हो, उसके लिए भी यही चुनौती है।

आदमी ही नहीं, चूहा भी, होश में हो तो बिल्ली से डरता है। अपनी अवस्था जानता है। बेहोश हो जाए, तो बिल्ली को भी चुनौती देता है।

अहंकार मूर्छा के साथ घना होता है, जागृति के साथ पिघलता है। जितना जागा हुआ व्यक्ति, उतना निरहंकारी हो जाएगा; जितना सोया हुआ व्यक्ति होगा, उतना अहंकार से भर जाएगा।

मुमुक्षु की खोज अहंकार को भरने की नहीं है। ज्ञान उसके लिए शराब नहीं है; ज्ञान उसके लिए जीवन रूपांतरण की प्रक्रिया है। वह उतना ही जानना चाहेगा, जितने से जीवन बदल जाए। वह उतने में ही उत्सुक होगा, जिसको व्यवहार में लाया जा सके।

इसलिए महावीर कहते हैं: "मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से तत्वों को जानता है।"

जिन तत्वों की हमने बात की। छह महातत्व, फिर नौ तत्व, मुमुक्षु-आत्मा इन तत्वों को समझने की कोशिश करता है। सिर्फ इसलिए कि इनके द्वारा कैसे मैं अपने जीवन को नया कर सकूं, कैसे मेरा नया जन्म हो सके?

यह ध्यान में बना रहे, तो ज्ञान आपके लिए मूर्च्छा नहीं बनेगा, मुक्ति बन जाएगा। अगर यह ध्यान से उतर जाए, तो आप ज्ञान का अंवार लगाए जा सकते हैं, जैसे कोई धन का अंवार लगाता है। फिर तिजोरी जितनी बड़ी होने लगती है, उस आदमी की अकड़ बढ़ने लगती है। आपका ज्ञान बढ़ने लगेगा, आपकी अकड़ बढ़ने लगेगी।

ज्ञान अकड़ न बने, यह ध्यान रखना जरूरी है। इसलिए हमने इस देश में ज्ञान का मौलिक लक्षण किया कि जिससे विनम्रता बढ़ती जाए, वही ज्ञान है। नहीं तो उसे ज्ञान कहना व्यर्थ है; वह ज्ञान के नाम पर शराब है। और जब कोई व्यक्ति मुमुक्षा की दृष्टि से, अपने को बदलने की दृष्टि से ज्ञान की खोज करता है तो शीघ्र ही उसे दर्शन होना शुरू हो जाता है। उसे चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। वह जो-जो अनुभव करता है, जो-जो समझता

है, जिस-जिस बात की अंडरस्टैंडिंग पैदा हो जाती है; वह-वह उसकी प्रतीति भी बनने लगती है। होना ही चाहिए। क्योंकि जिस बात को मैं ठीक-से समझ लूं, वह मेरे अनुभव में आ जानी चाहिए।

आपने कितनी बार सुना है कि क्रोध पाप है, क्रोध बुरा है, क्रोध जहर है, क्रोध पागलपन है। यह आपने सुना है, लेकिन यह आपका दर्शन नहीं बन पाया। क्योंकि क्रोध तो आप किए ही चले जाते हैं। यह सुना है, यह ज्ञान बन गया। अगर दूसरे को समझाना हो, तो आप समझा सकते हैं। पांडित्य दूसरे के लिए है, अपने लिए नहीं। आप तो अभी भी क्रोध किए चले जाएंगे। तो यह समझ दर्शन नहीं बन पाई, समझ ही नहीं है। सिर्फ कचरे की तरह आपने मस्तिष्क में शब्द भर लिए हैं। उनको आप दोहरा सकते हैं। आप ग्रामोफोन के रिकॉर्ड हो गए लेकिन आपका अंतस्तल बिल्कुल अछूता है।

अगर सच में ही आपने अनुभव किया हो कि क्रोध जहर है। इसका आपकी प्रतीति और आपका ज्ञान सघन हुआ हो; आपने इसे जीवन के अनुभव में परखा हो, निरीक्षण किया हो, क्रोध करके देखा हो; आंख बंद करके ध्यान किया हो कि जहर फैल रहा है शरीर में, मन में धुआं उठ रहा है--मैं उसी हालत में हूं जिसमें मैं पहले था, या कि बेहोश हूं? मेरा मन धुंधला है या प्रखर और साफ है? मेरे भीतर धुआं घिर गया है, सब चीजें अस्त-व्यस्त हो गई हैं, या चीजें सम्यक् रूप से अपनी जगह पर हैं और मैं सुव्यवस्थित हूं? मैं सम्यक् हूं या असम्यक् हो गया? क्रोध करके क्रोध को अनुभव में--वह जो जाना है, अगर इसकी प्रतीति हो जाए, तो दर्शन शुरू हो जाता है। तब आप ऐसा नहीं कहेंगे कि शास्त्र कहते हैं कि क्रोध जहर है। आप कहेंगे कि मैं जानता हूं कि क्रोध जहर है, और जिस क्षण आप जानते हैं कि क्रोध जहर है उसी क्षण क्रोध करना असंभव होने लगेगा क्योंकि कौन जहर को जान कर पीता है? कौन पत्थर को पत्थर जान कर रोटी की तरह खाता है?

ज्ञान क्रांति बन जाता है। लेकिन ज्ञान तभी क्रांति बनता है, जब समझ दर्शन में रूपांतरित होने लगे। तो जो सुना है सदगुरु से, जैसा महावीर ने कहा है कि सदगुरु के उपदेश से, जिस व्यक्ति में आपको लगा है कि कोई क्रांति घटी है, उसके पास जो सुना है, उसे अपने जीवन के अनुभव के साथ जोड़ने का नाम "साधना" है।

सुना, और वह सुना हुआ ही रह गया, कान का हिस्सा रह गया, व्यर्थ चला गया। व्यर्थ ही नहीं चला गया, हानिकर भी हो गया। क्योंकि अब आप बकवासी हो जाएंगे, आप उसको बोलने लगेंगे, आप दूसरों से कहने लगेंगे।

हमारी हालत ऐसी ही है, जैसे कोई हमें बताए कि यहां हीरे की खदान है और हम चले जाएं बाजार में और लोगों को समझाएं कि जाओ, वहां हीरे की खदान है, और खुद भिक्षा मांगें।

क्या कोई आपका भरोसा करेगा कि आपको हीरे की खदान का पता है? और आप भिक्षा मांग रहे हैं और जो आपको दो पैसे दान दे देता है, उसको आप समझा रहे हैं कि तू जा, हीरे की खदान फलां जगह है, करोड़ों के हीरे वहां पड़े हैं।

अगर आपको हीरे की खदान पता चलेगी, तो पहला काम यह करेंगे आप, कि किसी और को पता न चल जाए। पहली जरूरत यह हो जाएगी मन में कि यह किसी और को तो पता नहीं। और इसके पहले कि किसी और को पता चले, यह खदान खाली कर ली जाए न कि आप बाजार में लोगों को समझाते फिरेंगे?

मुमुक्षु और जिज्ञासु में यही फर्क है। मुमुक्षु को जैसे ही पता चलता है कि यहां हीरा है, वह खोदने में लग जाता है। और जिस दिन हीरा उसके पास होता है और हीरे की चमक उसके जीवन में आ जाती है, उस दिन लोग उससे खुद ही पूछने लगते हैं कि क्या हो गया, क्या मिल गया? कौन-सा रस, कौन-सा नया द्वार, कौन-सा संगीत तुम्हारे जीवन में आ गया, जिसकी सुगंध, जिसकी ध्वनि दूसरे को भी छूती है।

"मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है।"

और अनुभव जब तक न हो, तब तक श्रद्धा नहीं होती। लोग कहे जाते हैं, "श्रद्धा करो", लेकिन श्रद्धा कैसे हो सकती है जब तक अपना अनुभव न हो। कोई कहता है कि "शक्कर मीठी है", सुन कर कैसे श्रद्धा हो? और जान कर कैसे अश्रद्धा होगी? जिस दिन शक्कर कोई मुंह में रख देगा और मीठे का अनुभव होगा, श्रद्धा हो जाएगी। मुंह में मीठे का अनुभव हो रहा हो, तो फिर आपसे कोई नहीं कहेगा कि "श्रद्धा करो" कि "शक्कर मीठी है"।

समझ दर्शन बने, अनुभव बने, तो अनुभव श्रद्धा बन जाती है।

दुनिया में श्रद्धा की कमी नहीं है, दुनिया में मुमुक्षा की कमी है। लोग जिज्ञासु हैं। और इस जिज्ञासा को बढ़ाने में शिक्षा ने बड़ा साथ दिया है, क्योंकि हमारा पूरा शिक्षाशास्त्र जिज्ञासा पर खड़ा है, मुमुक्षा पर नहीं। यही पूरब और पश्चिम की शिक्षा व्यवस्था का भेद है।

हमारी शिक्षा मुमुक्षा के आधार पर खड़ी थी: "वह सीखो, जिससे जीवन बदलता हो।" आज की शिक्षा इस आधार पर खड़ी है कि "वह सीख लो, जिससे आजीविका चलती हो।" जीवन बदलने का कोई सवाल नहीं है, जीवन चल जाए, इतना भर काफी है। सुविधा मिल जाए, धन मिल जाए, जीवन चल जाए। आजीविका आधार है, जीवन नहीं।

पूरी चेष्टा थी हमारी पूरब में कि बच्चा जब पहले दिन गुरुकुल जाए, तो मुमुक्षा के भाव से जाए। वहां से बदल कर लौटने का ख्याल हो। वहां से नया आदमी होकर लौटे, वहां से द्विज होकर लौटे। गुरु के पास जा रहा है, वहां से नया होकर लौटे। वहां से कुछ बातें सीख कर आ जाए, यह मूल्यवान नहीं है। मूल्यवान यह है कि वहां से बीइंग, वहां से अस्तित्व का नया अनुभव लेकर आ जाए। वह अनुभव ही उसके जीवन की आधारशिला बनेगा, उस आधारशिला पर कभी मोक्ष तक भी उठा जा सकता है।

मुमुक्षा से ज्ञान, ज्ञान से दर्शन, दर्शन से श्रद्धा का जन्म है। आपसे महावीर नहीं कहते कि आप मान लो कि मोक्ष है। वे आपसे नहीं कहते कि संसार दुख है, यह मान लो। वे कहते हैं, इसे अनुभव करो। और सभी अनुभोक्ताओं का अनुभव एक ही निष्कर्ष पर ले आता है। सभी अनुभव करनेवालों का सार सदा एक होगा। बातचीत करने वालों का कभी भी कोई तालमेल नहीं हो सकता, यह जरा सोचने जैसी बात है।

दुनिया में हजारों तरह की फिलासफीज हैं, लेकिन विज्ञान एक तरह का है। आखिर क्या कारण है कि फिलासफीज इतनी हों, और विज्ञान एक हो? कारण सीधा है--क्योंकि फिलासफीज अक्सर बातचीत है, कहीं कोई अनुभव नहीं है जहां कि दो व्यक्ति मिल सकें। विज्ञान अनुभव है, प्रयोग है--मिलना ही पड़ेगा। तो दुनिया में कहीं भी विज्ञान की खोज हो, सारी दुनिया के वैज्ञानिक, आज नहीं कल, उससे राजी हो जाएंगे--होना ही पड़ेगा। अगर सत्य है, तो राजी होना ही पड़ेगा। और कसौटी अनुभव है। आप इनकार कर नहीं सकते, आप यह नहीं कह सकते कि मैं मुसलमान हूं, मेरे घर में पानी सौ डिग्री पर भाप नहीं बनता; तुम हिंदू हो, तुम्हारे घर में बनता होगा, हमारे दर्शन अलग हैं, मेरे घर में पानी डेढ़ सौ डिग्री पर भाप बनता है।

मुसलमान हो कि हिंदू, कि तिब्बत में हों कि इंग्लैंड में, कोई फर्क नहीं पड़ेगा-पानी तो सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। लेकिन यह प्रयोग है, इससे राजी होना पड़ेगा। इसे चार आदमी कर सकते हैं। और उनके अनुभव में जब एक ही बात आएगी, तो कोई उपाय नहीं है लेकिन कोई आदमी कहता है कि ईश्वर के चार हाथ हैं और कोई आदमी कहता है, चार नहीं, अनंत हाथ हैं, और कोई कहता है, सिर्फ दो हाथ हैं, और कोई कहता है कि ईश्वर के हाथ हैं ही नहीं, वह निराकार है--तो इसमें कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिसकी बात की जा रही है, उसको अनुभवगत बनाना असंभव है, कल्पनाजन्य है, विचारजन्य है।

महावीर बहुत ही एम्पिरिकल हैं, व्यावहारिक हैं। वे कहते हैं जो अनुभवगम्य हो सके, वही श्रद्धा बन सकेगी। इसलिए ऊंची आकाश की बातों में मत भटको, जीवन के आधार से चलना शुरू करो। आधार है: मुमुक्षा, मुक्ति की खोज। मुक्ति की खोज उसी को होगी, जिसको बंधन अनुभव हो रहा है।

गुरजिएफ कहा करता था: अगर किसी कारागृह में लोग बंद हों, और भूल गए हों कि यह कारागृह है, तो स्वभावतः वे निकलने की कोई चेष्टा नहीं करेंगे कि जेल से बाहर निकल जाएं, क्योंकि जेल है ही कहां? कारागृह में रहने वाले लोग अगर समझ रहे हों कि यही घर है, तो उनकी चेष्टा यही होगी कि इस घर को कैसे सुंदर बनाएं? कैसे इसकी दीवारों पर रंग रोगन करें, कैसा फर्नीचर जमाएं? कैसा सजाएं इस घर को? और अगर कोई उनसे कहे कि बाहर आ जाओ, तो वे नाराज होंगे। कोई उनसे कहे, बाहर खुला आकाश भी है, इन अंधेरी कोठरियों में मत रहो, तो वे प्रसन्न नहीं होंगे। क्योंकि जिन्हें तुम अंधेरी कोठरियां कह रहे हो, वह उनके जीवन का सार-सर्वस्व है, वह उनका घर है।

मुमुक्षा का अर्थ है: आपको यह अनुभव होना शुरू हो गया कि जीवन बंधन है, पीड़ा है, संताप है, दुख है। इससे दो यात्राएं शुरू हो सकती हैं। अनुभव हो जाए कि जीवन दुख है, तो आप अपने को बेहोश करने की कोशिश कर सकते हैं, ताकि दुख भूल जाए। सभी लोग यही कर रहे हैं। कोई कामवासना में डूब रहा है, कोई शराब में डूब रहा है; कोई संगीत में, कोई फिल्म में, कोई कहीं और, कोई कहीं और; कोई जुआ खेल रहा है, कोई रेस में जाकर दांव लगा रहा है। वे भूलने के लिए उपाय हैं, कहीं, जहां मुझे अपनी याद न रहे।

बड़े मजे की बात है। घोड़ों की दौड़ में आदमी कितने उत्सुक रहते हैं, कोई घोड़ा आदमी की दौड़ में इतना उत्सुक नहीं है! घोड़ों को आदमी की दौड़ में कोई भी रस नहीं है। एक धेला भी देने को घोड़े राजी नहीं होंगे। आदमी इतना घोड़े की दौड़ में रस ले रहा है, जरूर कहीं आदमी में कोई विकृति है। वह कहीं भी अपने को भुलाने की कोशिश कर रहा है। कहीं कोई उत्तेजना, जहां थोड़ी देर को अपनी याद न रहे। घोड़ों की दौड़ हो, तो वह रीढ़ को सीधा करके बैठ जाए और देखने लगे। घोड़ा इतना ज्यादा ध्यान में हो जाए कि अपना विस्मरण हो जाए, फॉरगेटफुलनेस हो जाए। उत्तेजना, किसी भी तरह की उत्तेजना चाहिए।

आदमी ने हजार-हजार तरह की उत्तेजनाएं खोजी हैं। यूनान में शेरों के सामने, सिंहों के सामने आदमियों को फेंक देते थे, और जब सिंह आदमियों को चीड़ेंगे, फाड़ेंगे, तो लाखों लोग बैठ कर देखेंगे, आनंद लेंगे। क्या रस रहा होगा? फर्क नहीं पड़ा है आदमी में बहुत अभी भी जब दो पहलवान लड़ते हैं और आप गौर से देखते हैं, तो क्या देख रहे हैं? या फिल्म में जब कोई खून, हत्या और भाग-दौड़ होती है, तो आप क्यों इतने उत्सुक हो जाते हैं? या दुनिया में जब युद्ध चलता है, तो आपकी प्रसन्नता क्यों बढ़ जाती है? घटनी चाहिए युद्ध के चलने से, पर आप प्रसन्न हो जाते हैं! सुबह जल्दी ब्रह्ममुहूर्त में उठने लगते हैं। क्या हो रहा है? कुछ हो रहा है चारों तरफ।

उत्तेजना आपको अपने में आने से रोकती है, बाहर ले जाती है। उत्तेजना में आप दूसरे में डूब जाते हैं, खुद को भूल जाते हैं। कोई न कोई उत्तेजना चाहिए। ऐसा भी हो सकता है कि आप उत्तेजना में प्रसन्न न होते हों, दुखी होते हों। समझ लें कि आपके सामने सिंह किसी को फाड़ कर खा रहा हो और आपकी आंखों से आंसू झर रहे हों, लेकिन तब भी, आप--वह भी आपका भूलना ही है। उस आंसू गिरने में भी वह सिंह और आदमी प्रमुख हो गए हैं, आप अपने को भूल गए हैं।

मैंने सुना है कि एक यहूदी बुढ़िया को उसका बेटा पहली दफा फिल्म दिखाने ले गया। वह फिल्म एक पुरानी रोमन कथा पर आधारित थी। और उसमें वह अनिवार्य दृश्य आया, जिसमें ईसाइयों को रोमन सम्राट फेंक रहे हैं सिंहों के सामने, बुढ़िया की आंखों से आंसू बहने लगे। उसके मुंह से चीत्कार निकलने को थी कि उसके बेटे ने कहा: इतना क्यों परेशान हो रही हो? उसने कहा कि देखो, बेचारे आदमियों को सिंह किस तरह फाड़ कर खा रहे हैं।" तो उसने कहा कि "वे आदमी नहीं हैं, ईसाई हैं।

यहूदी थी बुढ़िया। वे आदमी नहीं हैं, ईसाई हैं--बुढ़िया ने कहा: अच्छा। तब उसने अपने आंसू पोंछ लिए। वह प्रसन्नता से देखने लगी। लेकिन दो ही मिनट बाद फिर उसके आंसू बहने लगे। फिर जब चीत्कार निकलने को थी तो उसके लड़के ने कहा कि अब क्या मामला है? उसने कहा कि देखो, एक बेचारा सिंह खड़ा है और उसको एक भी आदमी नहीं मिला। पहले वे बेचारे आदमी थे जिनको सिंह खा रहा था, लेकिन अब वे ईसाई हैं, अब एक बेचारा सिंह अकेला खड़ा है, उसको कोई आदमी नहीं मिला। अब वह उसके लिए रो रही है!

आदमी चाहे रोए और चाहे हंसे, जब तक दूसरे पर ध्यान है, तब तक अपना विस्मरण है। इसीलिए ट्रैजिडि का भी उतना रस है। बड़े मजे की बात है कि दुनिया में इतनी ट्रैजिडि है, इतना दुख है, फिर भी आप दुखांत नाटक देखने जाते हैं!

और ध्यान रहे, दुखांत नाटक ज्यादा चलते हैं सुखांत नाटक के बजाय। यह बड़ी अजीब बात है। दुनिया में काफी दुख है। अभी आपको दुख का अनुभव नहीं हुआ है कि आप दुखांत नाटक देखने जा रहे हैं? लेकिन अगर कहानी में दुख न हो और दुख पर कहानी का अंत न हो, तो उतनी उत्तेजना पैदा नहीं होती, क्यों?

अगर कहानी बिल्कुल सुखांत हो तो उसमें रस ज्यादा नहीं आएगा, क्योंकि सुख दूसरे को मिल रहा हो तो हमें कोई रस नहीं आता। दुख दूसरे को मिल रहा हो, तो ही हमें रस आता है। इसलिए दुनिया में नब्बे प्रतिशत कहानियां दुखांत लिखी जाती हैं, केवल दस प्रतिशत सुखांत लिखी जाती हैं। और वह दस प्रतिशत भी बाजार में टिक नहीं पाती हैं, दुखांत कहानियों के मुकाबले।

आदमी अजीब है। अगर दुख का अनुभव हो तो वह उसे भूलने की कोशिश करता है। जीवन के ढंग को बदलने की नहीं, ताकि दुख से ऊपर उठ जाए, और वे कारण मिट जाएं जिनसे दुख पैदा होता है। जब कोई व्यक्ति दुख को मिटाने की तैयारी करता है, भुलाने की नहीं तो मुमुक्षा का जन्म होता है, तो मोक्ष की खोज शुरू हो जाती है।

दर्शन से श्रद्धा और चारिष्य श्रद्धा से। श्रद्धावान ही चारिष्य को उपलब्ध होता है। जब अपना अनुभव बता देता है कि क्या सही है और क्या गलत है, और जब अपने अनुभव पर भरोसा प्रगाढ़ हो जाता है, तो चरित्र बदलना शुरू हो जाता है। जो सही है, उस दिशा में चरित्र अपने आप बहने लगता है। वैसे ही, जैसे पानी ढाल की तरफ बहता है। जो गलत है, उस तरफ से जीवन अपने आप मुड़ना शुरू हो जाता है। गलत की तरफ से मुड़ना पड़ता है हमें, क्योंकि हमारे जीवन में कोई श्रद्धा और कोई अनुभव नहीं है। सही को लाने की कोशिश करनी पड़ती है, क्योंकि हमारे जीवन में कोई श्रद्धा नहीं है।

मुमुक्षा हो, ज्ञान हो, दर्शन हो, श्रद्धा हो तो चारिष्य ऐसे आता है, जैसे छाया आपके पीछे आती है। उसको लाना नहीं पड़ता। आप रुक-रुक कर पीछे देखते नहीं कि छाया आ रही है, कि नहीं आ रही है--आती है। श्रद्धा की छाया है चारिष्य।

अश्रद्धावान दुष्चरित्र हो जाता है, श्रद्धावान चरित्र को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन श्रद्धा का आप अर्थ समझ लेना, महावीर का अर्थ श्रद्धा का क्या है? श्रद्धा कोई ऐसी बात नहीं है कि आपने मेरी बात मान ली तो श्रद्धा हो गई। जब तक आपके अनुभव से मेल न खा जाए, तब तक श्रद्धा न होगी। तो महावीर की बात आप सुन रहे हैं, उसे थोड़ा जीवन में प्रयोग करना। जहां-जहां लगेगा कि महावीर जो कहते हैं, वह जीवन से मेल खाता है, वहीं-वहीं श्रद्धा का जन्म होगा। जहां-जहां श्रद्धा का जन्म होगा, वहीं-वहीं चरित्र की छाया पीछे चलने लगेगी।

ठीक के विपरीत जाना असंभव है, लेकिन सभी लोग ठीक के विपरीत चले गए हैं। यूनान में बहुत पुराना विवाद था, सुकरात ने उठाया। सुकरात ने कहा कि ठीक के विपरीत जाना असंभव है। सैंकड़ों वर्ष तक विवाद चला, और सैंकड़ों दार्शनिकों ने कहा कि सुकरात की बात ठीक नहीं है, क्योंकि हमें पता है कि ठीक क्या है?

फिर भी हम विपरीत जाते हैं। अनुभव तो यही कहता है बाहर का, जगत का कि लोगों को मालूम है कि ठीक क्या है। आपको मालूम नहीं है कि ठीक क्या है? आपको बिल्कुल मालूम है कि ठीक क्या है, फिर भी आप विपरीत जाते हैं। लेकिन ये सुकरात, महावीर, बुद्ध, कृष्ण--ये बड़ी उलटी बातें कहते हैं। ये कहते हैं कि ठीक के विपरीत जाना असंभव है।

ज्ञान चरित्र है। तब जरूर कहीं न कहीं कोई भूल-चूक हो रही है, हमारे शब्दों में कहीं कोई अड़चन हो रही है। हम जिसको ठीक का ज्ञान कहते हैं, वह ज्ञान ही नहीं है, सिर्फ जानकारी है। वही अड़चन हो रही है। आपको भी पता है कि सत्य बोलना चाहिए। आपको इसका बोध है। लेकिन यह सुना हुआ बोध है। किसी ने आपको कहा है; पिता ने कहा है, गुरु ने कहा है, शास्त्र से पढ़ा है, हवा है चारों तरफ कि सत्य बोलना चाहिए, लेकिन जब कठिनाई आती है तो आप जानते हैं कि झूठ बोल कर बचा जा सकता है। वह अनुभव आपका वही है कि सत्य बोल कर फंसेंगे, झूठ बोल कर बचेंगे। और सभी बचना चाहते हैं। वह बचाव--असल में आपका ज्ञान यही है कि झूठ बोल कर बचा जा सकता है।

सभी शास्त्र और सभी तीर्थंकर कहते रहें, इससे क्या फर्क पड़ता है। सभी तीर्थंकर जगत के मिल कर भी आपके छोटे से अनुभव के मुकाबले कमजोर हैं, आपका अनुभव सच है। आपको पता है कि झूठ बोल कर बचूंगा। पहले भी झूठ बोल कर बचे हैं, पहले भी सच बोल कर फंसे हैं। अनुभव आपका यही है; यही आपका ज्ञान है। आपके वास्तविक शास्त्र में लिखा है कि "झूठ ही धर्म है", क्योंकि वही बचाव है। लेकिन आपकी अवास्तविक बुद्धि में लिखा है, "सत्य धर्म है", वही परम श्रेय है। इन दोनों में कोई तालमेल नहीं है। अपने ही शास्त्र से आप चलते हैं। आपका आचरण आपके ही ज्ञान की छाया की तरह चलता है। महावीर का आचरण महावीर के ज्ञान की छाया है। महावीर का ज्ञान आप में छाया पैदा नहीं कर सकता। महावीर की छाया आपके पीछे कैसे चल सकती है? उनके ही पीछे चलेगी।

यह ठीक से समझ लेना जरूरी है कि हम जिसे ठीक जानना कहते हैं, वह जानना ही नहीं है, ठीक तो बहुत दूर। हमारी सारी कठिनाई इस बात में है कि हमारे मस्तिष्क सुशिक्षित कर दिए गए हैं, और हमारी चेतना अशिक्षित रह गई है। तो एक अर्थ में हमें सभी कुछ मालूम है और एक अर्थ में हमें कुछ भी नहीं मालूम। इसलिए जिस व्यक्ति को मोक्ष के मार्ग पर जाना हो, पहले तो उसे अपने इस ज्ञान के झूठे ख्याल से मुक्ति पानी जरूरी है। उसे एक दफा अज्ञानी हो जाना जरूरी है। उसे ठीक-ठीक साफ कर लेना चाहिए कि मेरा ज्ञान क्या कहता है, नहीं तो धोखा हो रहा है।

महावीर का ज्ञान आप अपना ज्ञान समझ रहे हैं तो धोखा हो रहा है--आप भटकेंगे। आपका ज्ञान क्या है? अपने पास एक छोटा अपना शास्त्र, निजी शास्त्र, प्रत्येक को बनाना चाहिए। उसमें अपना ज्ञान लिखना चाहिए, शुद्ध मेरा ज्ञान यह है कि "झूठ धर्म है।" क्योंकि धर्म वही है जो रक्षा करे। झूठ रक्षा करता है। अपना छोटा सा शास्त्र, निजी, और तब आप पाएंगे कि आपका चरित्र हमेशा आपके शास्त्र की छाया है। तब आपको कभी कोई भूल-चूक नहीं मिलेगी। जो आपके शास्त्र में लिखा है, वही आपका जीवन होगा। लेकिन शास्त्र आपके पास महावीर का है और चरित्र अपना है। इसमें बड़ी अड़चन है। और आप बड़े धोखे में पड़े हैं। और तब प्रश्न उठता है कि जानने से क्या होगा? जान तो लिया, लेकिन जीवन तो बदलता नहीं। तो महावीर की बात समझ में नहीं आएगी।

अगर जानने से जीवन न बदलता हो, उसका एक ही अर्थ हुआ कि जाना नहीं है। उस जानने को छोड़ें और जानने की कोशिश में लगे। जानने की कोशिश में वही लगेगा, जिसे अज्ञान का बोध हो रहा है। आप सब ज्ञानी हैं, अज्ञान का बोध होता ही नहीं, तो जानने का कोई सवाल ही नहीं उठता। और जब तक सम्यक ज्ञान न हो, तब तक सम्यक चरित्र नहीं हो सकता है।

चरित्र एक कड़ी है, जिसके पहले कुछ अनिवार्य कड़ियां गुजर जानी चाहिए। जब तक वे अनिवार्य कड़ियां न गुजर जाएं, चरित्र की कड़ी हाथ में नहीं आती। लेकिन आप झूठा कागजी चरित्र पैदा कर सकते हैं, आप आवरण बना सकते हैं, आप पाखंडी हो सकते हैं, आप चेहरे ओढ़ सकते हैं। और चेहरे कभी-कभी इतने गहरे हो जाते हैं, कि इतने पुराने हो जाते हैं कि लगता है, कि आपका यही असली चेहरा है।

रिलके ने, एक कवि ने अपने बचपन का एक संस्मरण लिखा है। उसने लिखा है कि मैं छोटा था और मेरे पिता को बड़ी सांस्कृतिक गतिविधियों में बड़ी रुचि थी। नाटक, कविता, संगीत--और घर में निरंतर कलाकार ठहरते थे। एक बार एक नाटक मंडली घर में ठहरी। उन दिनों अभिनेता चेहरे ओढ़ कर अभिनय करता था--नाटक में मास्क--तो उनके पास बड़े अजीब-अजीब चेहरे थे।

और घर में ही वह ठहरे थे। तो यह छोटा बच्चा रिलके एक दिन उनके कमरे में घुस गया, जब कि सब लोग खाना खाने में लगे थे। वह उनके सजावट के कमरे में पहुंच गया। उसने भी सोचा कि मैं भी एक चेहरा ओढ़ कर देखूं। तो उसने एक भयंकर--बच्चों को बड़ा रस होता है भयंकर में--एक राक्षस का चेहरा लगा लिया, उसे ठीक से बांध लिया। उसके ऊपर एक पगड़ी बांध ली, ताकि उसकी कोरें ढंक जाएं। वह चेहरा उसके चेहरे पर बिल्कुल आ गया। फिर वह राक्षस की तरह चलना उसने शुरू किया कमरे में, एक तलवार उठा ली नकली, और छोटे बच्चे--उनकी कल्पना प्रगाढ़ होती है--और वह बिल्कुल भूल गया, जोश में आ गया। जोश इतना आ गया कि उसने तलवार चला दी। तलवार चलाने से पास की टेबल पर रखी हुई शीशियां गिर गई, उनका रंग नीचे बिखर गया, कोई सामान टूट गया तो वह घबड़ा गया सामान इकट्ठा करने में कि कोई आ न जाए। शीशियां जमाने में वह बिल्कुल भूल ही गया कि "मैं कौन हूं?" और जब सब जमा कर, सब ठीक हो गया तो वहां से भागा कि इसके पहले कि मैं पकड़ जाऊं; लेकिन अपना चेहरा उतारना भूल गया। जब अपने कमरे में जाकर पहुंचा और आईने में उसे खुद का चेहरा दिखाई पड़ा, तो उसने चीख मार दी। वह घबड़ा गया कि यह क्या हो गया? बेहोश होकर गिर पड़ा। लोग दौड़े हुए आए। परिवार के लोग इकट्ठे हो गए। परिवार के लोग हंसने लगे, देख कर सब उसका नाटक।

लेकिन रिलके ने लिखा है, मेरी पीड़ा को कोई भी नहीं समझा। उनकी हंसी देख कर मैं और घबड़ाने लगा। उनकी हंसी देख कर मुझे और भरोसा आने लगा कि कुछ गड़बड़ हो ही गई है; अब इस चेहरे से कोई छुटकारा नहीं दिखाई पड़ता। यह स्मरण ही न रहा कि मैं अलग हूं और यह चेहरा अलग है।

और सभी की जिंदगी में उपद्रव बचपन से ही शुरू होता है, क्योंकि बचपन से ही बच्चों को चेहरे ओढ़ने पड़ते हैं। बाप कहता है, कब हंसो, इसकी भी आज्ञा बाप देता है। इसकी भी आज्ञा मां देती है कि कब हंसो, कब मत हंसो। तो जब बच्चे को हंसी आती है, तब वह उसको रोक लेता है। तब उसको दूसरा चेहरा ओढ़ना पड़ता है, जो हंसी का नहीं है।

और बच्चे की हंसी के वक्त अलग होंगे आपकी हंसी से, क्योंकि आपके सोचने के ढंग और उसके सोचने के ढंग बिल्कुल अलग हैं। वह बूढ़ा नहीं है। वह किन्हीं और चीजों पर हंसता है, जिन पर आप हंस ही नहीं सकते। और आप जिन चीजों पर हंसते हैं, उसकी समझ में भी नहीं आ सकता है कि उसमें हंसी की क्या बात है?

एक छोटे बच्चे को उसकी मां ने कहा कि एक मेहमान घर में आ रहा है, ध्यान रखना, उनकी नाक की बात मत उठाना क्योंकि नाक उन मेहमान की थी नहीं, आपरेशन हो गया था। मां परेशान थी कि यह बच्चा एकदम पूछ न ले कि नाक का क्या हुआ? तो मेहमान कहीं अड़चन में न पड़े।

तो मां ने समझा दिया कि नाक की बिल्कुल बात ही मत उठाना। ध्यान रखना, सब कुछ कहना, नाक की भर बात मत उठाना।

अब बच्चा और भी उत्सुक होकर बैठ गया कि मामला क्या है? अब तक ऐसा कभी नहीं हुआ है। और जब वह आदमी आया तो उस बच्चे ने कहा कि मां, नाक तो है ही नहीं, चर्चा किस बात की करनी, नाक होती तो चर्चा भी हो सकती थी! नाक तो है ही नहीं!

बच्चे का जगत अलग है, उसके सोचने का गणित अलग है। हम उसको बता रहे हैं, कब हंसो, कब रोओ, कब उठो, कैसे बैठो; क्या करो, क्या न करो। हम उसको झूठ सिखा रहे हैं। उसको चेहरे दे रहे हैं। मजबूरी है, वह कमजोर है, उसे हमारी बात माननी ही पड़ेगी। वह हम पर निर्भर है। चेहरे जितने ओढ़ने लगेगा, हम कहेंगे बच्चा सुंस्कृत है, मैनरली है। उतना बच्चा शिष्ट होने लगा, जितना चेहरे ओढ़ने लगा। वर्षों के बाद उसे याद भी नहीं रहेगा कि उसका असली चेहरा कहां है? यही चेहरे उसकी जिंदगी हो जाएंगे। वह हंसेगा, वह हंसी झूठी ऊपर से, चिपकाई हुई होगी। वह रोएगा, उस रोने में कहीं कोई रुदन नहीं होगा। वह कहेगा, आप को देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है, और उसे कोई प्रसन्नता नहीं हो रही होगी।

सब झूठा हो जाएगा।

हम सब इसी झूठ में खड़े हैं, समाज एक महा-असत्य है। लेकिन इतने बचपन में इतने चेहरे ओढ़ाए जाते हैं कि हमें भूल ही जाता है कि हमारा कोई असली चेहरा था। आइने में सदा यही चेहरे देखे हैं, इन्हीं से हमारी पहचान हो गई है।

आप जान कर हैरान होंगे कि अगर किसी व्यक्ति को तीन महीने गहन ध्यान कराया जाए और आइना न देखने दिया जाए, तो तीन महीने बाद आइने में देख कर वह खुद को पहचानने में कठिनाई अनुभव करेगा कि यह चेहरा मेरा है। क्योंकि सब पर्तें उतर जाएंगी और एक नये ही चेहरे का आविर्भाव होगा।

जापान में तो वे कहते ही हैं साधक को--जो भी साधक गुरु के पास आता है, वे उससे कहते हैं कि फाइंड आउट योअर ओरिजिनल फेस--अपना मूल चेहरा खोजो। बस, यही ध्यान है।

महावीर कहते हैं कि जब ज्ञान श्रद्धा बन जाता है, अनुभव श्रद्धा बन जाता है तो चरित्र अपने आप पीछे आता है। अगर आपके ज्ञान के पीछे आपका चरित्र न आ रहा हो, तो आप चरित्र को दोष देना बंद करो, आप ज्ञान को दोष देना शुरू करो।

लेकिन आपके साधु-संन्यासी आपको समझा रहे हैं कि चरित्र आपका खराब है, ज्ञान तो बिल्कुल ठीक है। यहीं बुनियादी भूल हो रही है। मनुष्य के मन को समझने में इससे बड़ी भूल नहीं हो सकती। साधु-संन्यासी समझा रहे हैं कि चरित्र ठीक करो, ज्ञान तो तुम्हारा ठीक है। क्योंकि तुम्हें कंठस्थ हैं शास्त्र। चरित्र ठीक करो। साधु-संन्यासी भी अपना चरित्र ठीक करने में लगे हैं। ज्ञान उनका भी ठीक है।

चरित्र को ठीक करना ही नहीं पड़ता, सिर्फ ज्ञान को ठीक करना पड़ता है। जब ज्ञान ठीक हो जाता है, चरित्र एकदम से ठीक होने लगता है। चरित्र का ठीक होना सिर्फ लक्षण है, ज्ञान के ठीक हो जाने का।

जीवन की क्रांति ज्ञान पर निर्भर है, चरित्र पर निर्भर नहीं है। इसीलिए दुनिया इतनी चरित्रहीन है, क्योंकि सभी लोग चरित्र को ठीक करने में लगे हैं। जिस दिन दुनिया ज्ञान को ठीक करने में लगेगी, चरित्र अपने आप आ जाएगा।

महावीर ज्ञानी हैं, नैतिक चरित्र के उपदेशक नहीं। लेकिन बड़ी भ्रांति है। पश्चिम में, पूरब में, सब तरफ भ्रांति है। एक तो महावीर को लोग बहुत कम जानते हैं, क्योंकि उनके आस-पास जो लोग उन्हें घेरे हैं, उन्होंने महावीर की प्रतिष्ठा ऐसी कर दी है कि वह जानने योग्य मालूम ही नहीं पड़ते। जैन साधुओं को देखकर कौन महावीर को जानना चाहेगा? इनको देख कर ऐसा लगता है कि परमात्मा न करे कि ऐसा कभी अपने जीवन में हो जाए--ऐसी रुग्णता, ऐसी उदासी, ऐसी कठोरता, ऐसा सब जड़-भाव, और जिंदगी से ऐसी लड़ाई। अहोभाव का खो जाना, उत्सव का बिल्कुल विनष्ट हो जाना, मुर्दे की तरह जीना, लाश की तरह तैरना--कोई देख कर जैन साधुओं को, जैनियों को छोड़ कर, क्योंकि उनको तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है, उनके पास एक चश्मा है,

दुनिया में किसी को भी जैन साधु को दिखाओ--उसको लगेगा कि पैथालॉजिकल है, कुछ रुग्ण है। कहीं न कहीं कोई गड़बड़ हो गई है। शरीर भी खराब है, मन भी ठीक नहीं है। और दुष्ट है, जिसका हमें ख्याल भी नहीं आ सकता।

जिसका हमें ख्याल भी नहीं आ सकता--जैन को ख्याल नहीं आ सकता कि जैन साधु दुष्ट है। हिंसा का एक रस है--वह चाहे दूसरे को सताने में लो, चाहे खुद को सताने में, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। सताने का मजा है--कुछ लोग दूसरे को सताते हैं, कुछ लोग अपने को सताते हैं।

ध्यान रहे, अक्सर ताकतवर दूसरों को सताते हैं, कमजोर अपने को सताने लगते हैं। क्योंकि दूसरे को सताने में खतरा है। दूसरे को सताने जाइएगा तो झंझट है, क्योंकि दूसरा भी बैठा नहीं रहेगा। इसलिए जो कमजोर हैं, कायर हैं, नपुंसक हैं, वे दूसरों को सताने का मजा तो ले नहीं सकते, उनके लिए सिर्फ एक ही रास्ता है कि अपने को सताओ, भूखा रखो, नंगा रखो, बीमार रखो, सब तरह से अपने को सताओ और मजा लो।

कठोरता, क्रूरता, हिंसा छिपी हुई दिखाई पड़ेगी। लेकिन उसमें जैन को अहिंसा दिखाई पड़ रही है। उसका कारण कुल चश्मा है।

किसी मनस्विद से पूछो, दुनिया भर के सारे मनस्विद भी इकट्ठे हो जाएं, तो मैं जो कह रहा हूं, यही गवाही देंगे कि यह आदमी रुग्ण है, बीमार है, पैथालॉजिकल है। यह अपने को सता रहा है, मैसोचिस्ट है।

दो तरह की वृत्तियां हैं हिंसा की: दूसरे को सताने की और अपने को सताने की। अहिंसक वही है, जो किसी को भी नहीं सता रहा है, न दूसरों को, न अपने को। सताने की धारणा ही जिसकी गिर गई। लेकिन वह आपको साधु ही नहीं मालूम पड़ेगा, जो अपने को नहीं सता रहा है। क्योंकि साधु कैसा है? यह आराम से बैठा है, अपने को भी नहीं सता रहा है।

तपश्चर्या करो कुछ, कुछ उपवास करो, कुछ भूखे रहो, कुछ मर कर दिखाओ तो ही साधु मालूम पड़ेगा, कि आपको लगे कि साधु आराम से शांत बैठा है, प्रसन्न है, आनंदित है--आपको शक हो जाएगा कि यह आदमी साधु नहीं है। क्योंकि हमने कठोरता और हिंसा को साधुता का अंग बना लिया है।

महावीर की बात बिल्कुल अन्यथा है। महावीर के शरीर को देख कर कोई भी नहीं कह सकता कि पैथालॉजिकल है, बीमार है। महावीर के चेहरे की प्रसन्नता को देख कर कोई नहीं कह सकता है कि इन्होंने अपने को सताया है, वह तो चेहरा मुरझा जाता है। सताए हुए का चेहरा नहीं दिखता महावीर का। उस प्रफुल्लित व्यक्ति का चेहरा दिखता है जो सताना भूल ही गया, न किसी और को, न अपने को।

मगर महावीर की यह धारणा और महावीर की यह प्रतिमा दुनिया के सामने प्रगट नहीं हो पा रही है। कारण दिखाई पड़ता है और कारण यही है कि महावीर ने जो बातें कहीं, महावीर ने जो विचार दिया, उस विचार की बड़ी ही भ्रांत व्याख्या हो गई। होने की संभावना थी; उसमें बीज थे। महावीर नग्न खड़े हो गए।

तो पश्चिम में मनस्विद कहते हैं कि कुछ लोगों को नग्न खड़े होने में सुख मालूम पड़ता है, कोई उनको नंगा देख ले। ये वे ही लोग हैं जिनकी कामवासना ठीक नहीं है, विकृत हो गई है। इनको इतने में ही रस आ जाता है कि कोई इनको नग्न देख ले। तो ऐसे आदमी को महावीर में रस आ जाएगा। वह कहेगा कि यह तो बिल्कुल ठीक है। धर्म की आड़ मिलती है और मैं नग्न खड़ा हो जाऊं तो लोग उलटे पूजा करते हैं।

आदमी को अपने को सताने में विजय का रस मिलता है, कि मैं जीत रहा हूं, मैं मालिक हूं। आखिर दूसरे को सताने में आपको क्या रस मिलता है? यही रस न कि वह आपसे बदला नहीं ले सकता, और आप मालिक हैं; वह कमजोर और आप ताकतवर हैं? आदमी जब अपने को सताता है, तब भी उसके अहंकार को मजा आता है कि "मैं ताकतवर हूं। देखो, पंद्रह दिन से भूखा हूं, उपवास किया है; और सारा शरीर ताकत लगा रहा था, कि भूख लगी है, लेकिन मैंने एक न सुनी।"

यह कौन है, जो एक नहीं सुन रहा है? यह दुष्ट अहंकार है। नहीं तो शरीर जब कह रहा है, भूख लगी है, तो चाहे दूसरे का शरीर कह रहा हो, चाहे अपना शरीर कह रहा हो, फर्क क्या है? एक दूसरा आदमी बैठा हो, उसको भूख लगेगी—आप कहते हैं, नहीं खाना खाने देंगे, और आपका शरीर कह रहा है कि भूख लगी है, और आप कहते हैं, कि नहीं खाना खाने देंगे, क्योंकि मैंने व्रत लिया है। यह व्रत कौन ले रहा है?

सब व्रत अहंकार के हिस्से हैं। क्योंकि व्रत से मजा आ रहा है कि मैं पंद्रह दिन करके दिखा दूंगा। इस शरीर को दिखा दूंगा करके। यह शरीर है कौन? यह आपका यंत्रभर है। आप वैसा ही पागलपन कर रहे हैं, जैसे कोई गाड़ी को चलाता रहे और कहे कि पेट्रोल नहीं दूंगा। चखा दूंगा मजा बिना पेट्रोल के चलाकर।

बिल्कुल पागलपन की बात कर रहे हैं। गाड़ी को पेट्रोल नहीं देने से गाड़ी क्या चखेगी मजा, मजा आप ही चख रहे हैं। लेकिन कोई भी आदमी अगर गाड़ी के साथ ऐसा व्यवहार करेगा खड़े होकर तो आप कहेंगे यह पागल है। लेकिन शरीर के साथ इस तरह के व्यवहार करने वाले लोग पूज्य हो जाते हैं, महात्मा हो जाते हैं। आप भी उनके पागलपन में सहभागी हैं। एक पार्टनरशिप चल रही है, साझेदारी चल रही है।

महावीर का चरित्र तो श्रद्धा का अपरिहार्य परिणाम है। और श्रद्धा, अनुभव की अनुसंगी है। अनुभव ज्ञान से उत्पन्न होता है। ज्ञान मुमुक्षा के बीज से जन्मता है।

"चारिष्य से भोग-वासनाओं का निग्रह हो जाता है, और तप से कर्मफलरहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।"

बड़े मजे की बात है। महावीर तप को चरित्र के बाद रखते हैं। सब से पहले मुमुक्षा, ज्ञान, अनुभव, श्रद्धा, फिर चरित्र, और फिर तप। जब व्यक्ति के जीवन से वासनाएं क्षीण हो जाती हैं, चरित्र का जन्म होता है। जब गलत की ओर जाने की बात रुक जाती है, जब गलत तरफ जाती हुई ऊर्जा ठहर जाती है, तभी तप का जन्म हो सकता है। क्योंकि तप महा-ऊर्जा में पैदा होता है। वह अग्नि जो आपको जला कर निखार दे, उस अग्नि के इकट्ठे होने के पहले चरित्र का पैदा हो जाना जरूरी है। क्योंकि जिनके पास ऊर्जा ही नहीं है, जिनके पास ईंधन नहीं है, वे भीतर की अग्नि को जला नहीं पाएंगे।

असल में चरित्रहीन पापी नहीं है, सिर्फ मूढ़ है; चरित्रहीन सिर्फ नासमझ है। वह उस ऊर्जा को नष्ट कर रहा है, जिस ऊर्जा से महातप पैदा हो सकता है, और जिससे वह निखर कर नये जन्म को पा सकता है। अमृत जिससे झर सकता है, उसको वह व्यर्थ खो रहा है। वह सिर्फ मूढ़ है।

इसलिए महावीर कहते हैं, कि वह सिर्फ अज्ञानी है। पापी पर दया करो, वह सिर्फ अज्ञानी है। उसको दंड देने की व्यवस्था मत करो, क्योंकि वह सिर्फ भूल कर रहा है। दोष है उसकी समझ में, वह लुटा रहा है चीजें, जिनसे वह बहुमूल्य को खरीद सकता था। अमूल्य को खरीद सकता था, उनको वह क्षुद्र चीजों में लुटा रहा है। लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता।

चरित्र कोई नैतिक लक्ष्य नहीं है महावीर के लिए, आध्यात्मिक रूपांतरण का अनिवार्य अंग है। और चरित्र, इसलिए मूल्यवान है कि वह आपकी शक्तियों को संवरित कर देगा। आपकी शक्तियां बच रहेंगी, संगृहीत हो जाएंगी। और एक सीमा पर जब संग्रह आता है तो जैसा विज्ञान का नियम है कि क्वांटिटी, क्वालिटेटिव परिवर्तन बन जाती है। जब एक जगह मात्रा आती है तो गुण का रूपांतरण होता है।

यह थोड़ा समझ लेना चाहिए, यह जैसा विज्ञान का सिद्धांत है, वैसा ही अध्यात्म का भी—आप पानी को गरम करते हैं, नित्यानबे डिग्री तक गर्म किया पानी भाप नहीं बनता, सौ डिग्री सीमा आई, एवोपरेटिंग पॉइंट आया। सौ डिग्री पर फर्क क्या पड़ रहा है? सिर्फ एक डिग्री गर्मी बढ़ रही है, और कुछ नहीं हो रहा है। लेकिन सौ डिग्री पर गर्मी आते ही पानी अचानक भाप बनना शुरू हो जाता है, क्रांति शुरू हो गई। पानी ने अपना रूप छोड़ दिया पुराना, और नया रूप लेने लगा।

गर्मी की एक खास मात्रा पर पानी भाप बनता है। गर्मी की एक खास मात्रा पर हर चीज बदलती है। हर चीज गर्मी को नीचे गिराते जाएं, एक सीमा पर पानी बर्फ बन जाएगा। लोहा भी भाप बन कर उड़ता है, गर्मी की एक सीमा पर। गर्मी की एक सीमा पर हर चीज बदलती है। इसका मतलब यह हुआ कि सारी बदलाहट के पीछे गर्मी है, अग्नि है।

ऐसी कोई भी बदलाहट नहीं है, जो बिना गर्मी के हो जाए। आपको ख्याल है, ऐसी कोई भी बदलाहट जो बिना गर्मी के हो जाए--चाहे पदार्थ की, चाहे जीव की। जब आप प्रेम से भरते हैं, तो आपको पता है खास तरह की गर्मी से भर जाते हैं? इसलिए हम प्रेम को उष्ण कहते हैं, वार्म कहते हैं। और जब कोई आदमी ठंडा होता है, जिसमें प्रेम बिल्कुल नहीं, तब हम उसको कोल्ड कहते हैं, ठंडा कहते हैं। एक तरह की गर्मी है जो प्रेम में आपको परिव्यास कर लेती है। संभोग के क्षण में आप उत्तप्त हो जाते हैं पूरी तरह से। आप इतने उत्तप्त हो जाते हैं, तभी एक नये व्यक्ति का जन्म आपसे हो पाता है।

अभी तो पश्चिम के एक विचारक ने बड़ी महत्वपूर्ण प्रस्तावना की है। और उसने कहा कि शायद स्वीकृत हो जाए, क्योंकि बात कीमती और वैज्ञानिक और प्रयोगसिद्ध मालूम होती है। बहुत पुराने शास्त्र दुनिया के कहते, कि गर्भ के समय में स्त्री के साथ संभोग न किया जाए। लेकिन अब तक उसके लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। लेकिन अभी पश्चिम के वैज्ञानिक ने आधार दिया है। और उसका कहना है कि संभोग के क्षण में इतना उत्ताप पैदा होता है, वह उत्ताप बच्चे के कोमल मस्तिष्क तंतुओं को नष्ट कर देता है। इसलिए संभोग अगर गर्भ की अवस्था में किया जाए तो बच्चे विकलांग पैदा होते हैं, और मस्तिष्क उनका क्षीण होता है।

दो कारणों से: एक तो उत्ताप बढ़ जाता है स्त्री के शरीर में और बच्चे के अभी जन्म तो हुए स्मरण तंतु इतने कोमल हैं कि जरा सी गर्मी और वे जल जाते हैं। और स्त्री के शरीर में आक्सीजन की कमी हो जाती है। इसलिए संभोग के क्षण में आप जोर से श्वास लेते हैं, जैसे दौड़ रहे हों। क्योंकि भीतर गर्मी मिले तो आक्सीजन जलने लगती है। आक्सीजन जलती है तो आपको जोर से श्वास लेनी पड़ती है। स्त्री बड़े जोर से श्वास लेती है। उसका पूरा खून उत्तप्त हो जाता है। उस उत्तप्त खून के क्षण में बच्चे के स्नायु भी जलते हैं और आक्सीजन की कमी की स्थिति में उसका आई. क्यू., उसका बुद्धिमाप नीचे गिर जाता है।

इस वैज्ञानिक के हिसाब से दुनिया में जो बढ़ती जाती मानसिक बीमारी का कारण है, उनमें एक बुनियादी कारण है कि सारी दुनिया में अब सारे धर्मों के हिसाब को छोड़ कर, लोग गर्भ के समय भी संभोग कर रहे हैं।

यह बड़े मजे की बात है कि कोई पशु गर्भ के समय संभोग नहीं करता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। कोई पशु पूरी पृथ्वी पर गर्भ के समय संभोग नहीं करता, सिर्फ मनुष्य करता है। तो मनुष्य से ज्यादा विकृत कोई पशु पैदा भी नहीं होता। यह बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है कि कोई भी रूपांतरण ऊर्जा का, गर्मी का, फायर का, अग्नि का रूपांतरण है।

तप अंतिम रूपांतरण है, जहां व्यक्ति शरीर से अपने सारे संबंध छोड़ देता है, जहां आत्मा सब तरह के कर्मफल से अलग हो जाती है। एक महागर्मी की जरूरत है। उस गर्मी के पहले चरित्र की घटना घट जानी चाहिए। क्योंकि दुश्चरित्र का मतलब है, लीकेज। उसके जीवन से ऊर्जा इधर-उधर भटक रही है, जैसे नाव में छेद हो, या बाल्टी में छेद हो और आप पानी भर रहे हैं--जब पानी में होती है बाल्टी, बिल्कुल भरी मालूम पड़ती है। जैसे ऊपर उठाने लगते हैं, पानी बहने लगता है। जब तक ऊपर उठ कर आती है, पानी बूंद भी नहीं बचता। सब पानी छेदों से बह जाता है।

मरने के समय में आपकी बाल्टी बिल्कुल खाली होती है। दुख मृत्यु का नहीं है, दुख खाली जीवन का है, जो मरने के क्षण में हाथ आता है। होना उलटा चाहिए। अगर जीवन में चरित्र की आधारशिला निर्मित की होती, तो मृत्यु के समय में आप सबसे ज्यादा भरे हुए होते। और जो व्यक्ति भरा हुआ मर सकता है, उसका फिर

कोई जन्म नहीं है। जो खाली मरता है, वह फिर भरने की आकांक्षा से मरता है, फिर नया जन्म शुरू हो जाता है।

जब आपकी खाली बाल्टी आ जाएगी कुएं के पाट पर, स्वभावतः आप फिर से बाल्टी को पानी में डालेंगे। क्योंकि भरने के लिए तो सारी चेष्टा थी। लेकिन उसी बाल्टी को पानी में डाल रहे हैं, जिसके छिद्रों ने पानी को बहा दिया। फिर, फिर वही होगा। बाल्टी के छेद "दुश्चरित्रता" है। बाल्टी के छेदों का भर जाना, रुक जाना, बंद हो जाना "चरित्र" है।

यह बहुत मजे की बात है कि जितना भी चरित्रवान व्यक्ति हो, वह ऊर्जा नहीं खोता। चरित्र से ऊर्जा बढ़ती है, और दुश्चरित्रता से ऊर्जा खोती है। तो जिस काम को भी करके आपको लगता हो कि आप और भी शक्तिशाली हो गए, उस काम को आप चरित्र समझना; जिस काम को लगता हो करके कि आप थक गए और टूट गए, आप अपने को दुश्चरित्र समझना।

मोटी धारणाओं में मत पड़ना; क्योंकि मोटी धारणाएं तो सभी समाजों में अलग होती हैं। कहीं कोई चीज चरित्र समझी जाती है, कहीं कोई चीज दुश्चरित्र समझी जाती है। एक बात यहां चरित्र हो सकती है भारत में, और पाकिस्तान में दुश्चरित्र हो सकती है। इतनी दूर जाने की जरूरत नहीं है। आपके घर में जो बात चरित्र हो, पड़ोसी के घर में दुश्चरित्र हो सकती है।

इससे कोई संबंध नहीं है महावीर का। महावीर का संबंध है, उस चरित्र से जो ऊर्जा को बचाता है। तो आप कहीं भी हों दुनिया में एक ही बात ख्याल में रखने की है कि मेरी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ तो नहीं खोती है? मैं उसका व्यर्थ अपव्यय तो नहीं करता हूं?

पर यह बोध भी क्रमशः ही कड़ी-कड़ी पैदा होगा।

और तप से कर्मफलरहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।

और जब ऊर्जा पूरी इकट्ठी होती है, तो सिर्फ ऊर्जा का इकट्ठा होते ही एक बिंदु आता है, एक एवोरेटिंग पाइंट आता है, जहां इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि जो व्यर्थ है, वह जल जाता है। संसार जल जाता है और सिर्फ शुद्धतम शेष रह जाता है। उस अग्नि से गुजर कर जो बच रहता है, वही मुक्ति है, वही मोक्ष है।

ज्ञान, दर्शन, चारिष्य और तप--इस चतुष्टय आध्यात्म मार्ग को प्राप्त होकर मुमुक्षु जीवन मोक्षरूप सदगति को पाते हैं।

मुक्त हो जाना ही एकमात्र--एकमात्र लक्ष्य है सारे जीवन की दौड़ का, ऊहापोह का। लेकिन मोक्ष का यह विज्ञान है: मुमुक्षा से शुरू करें, ज्ञान को अनुभव बनाएं, श्रद्धा बनेगी, श्रद्धा से चारिष्य का जन्म होगा, चरित्र से जन्म पर ऊर्जा इकट्ठी होनी शुरू होगी। आप एक झील बन जाएंगे शक्ति की। एक मात्रा पर, उस मात्रा का कोई माप नहीं है, क्योंकि किसी वैज्ञानिक ने कभी अब तक उसे मापने की कोशिश नहीं की कि अंतर-ऊर्जा किसी बिंदू पर मोत्र में प्रवेश करा देती है। लेकिन मैं समझता हूं कि आज नहीं कल, हम उसको भभ माप सकेंगे।

विज्ञान विकसित हो रहा है और धीरे-धीरे गहरा हो रहा है। अब तक विज्ञान बहुत सी चीजें नहीं माप पाता था, अब उसने मापना शुरू कर दिया है। अब आपकी रात नींद मापी जा सकती है कि कब गहरी और कब हलकी है, कब स्वप्न चल रहा है, कब नहीं चल रहा है। क्योंकि मस्तिष्क की तरंगें बदल जाती हैं। जब स्वप्न चलता है, तरंगें और होती हैं; जब नहीं चलता, तब और होती हैं। जब गहरी, प्रगाढ़ निद्रा होती है, तो तरंगें और होती हैं। तो पूरी रात ग्राफ बनता रहता है। कि आपने कब स्वप्न लिया। अब तो इस बात की भी पकड़ आ गई है, कब आपके भीतर कामवासना से भरा हुआ स्वप्न चल रहा है। वह भी ग्राफ पर--क्योंकि जब कामवासना भीतर होती है, तो गर्मी बदल जाती है।

आपने छोटे बच्चों को देखा होगा, रात सोते कई बार उनकी जननेंद्रिय सक्रिय हो जाती है? पुरुषों की भी होती है, मरते दम तक होती है। रात नींद में कम से कम दस बार, सामान्य स्वस्थ व्यक्ति की जननेंद्रिय सक्रिय

हो जाती है। जब भी सक्रिय होती है, तभी उसके शरीर का सारा का सारा गर्मी का तल बदल जाता है। उसकी श्वास बदल जाती है। वह सब ग्राफ पर आ जाता है। इस बात की संभावना बढ़ती जाती है कि हम चरित्र के भी ग्राफ ले सकेंगे। क्योंकि जैसे-जैसे ऊर्जा भीतर इकट्ठी होगी, भीतर रासायनिक परिवर्तन हो रहे हैं, उन परिवर्तनों का कोई न कोई उपाय खोजा जा सकता है, मापा जा सकता है। और तब एक घड़ी भी तय की जा सकती है कि इस घड़ी पर ऊर्जा के पहुंच जाने पर व्यक्ति की चेतना पदार्थ से छूट जाती है, मुक्त हो जाती है।

गर्मी एक खास डिग्री, और व्यक्ति शरीर और संसार से अलग हो जाता है। उस अलग होने की घटना का नाम मोक्ष है।

आज इतना ही।

पांच ज्ञान और आठ कर्म (लोकतत्व-सूत्र : 4)

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं।
 ओहिनाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं॥
 नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा।
 वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव च॥
 नामकम्मं च गोत्तं च,
 अंतरायं तहेव च।
 एवमेयाइं कम्माइं,
 अट्ठेव उ समासओ॥

श्रुत, मति, अवधि, मन-पर्याय और कैवल्य--इस भांति ज्ञान पांच प्रकार का है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय--इस प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म बतलाए हैं।

मनुष्य-जाति के इतिहास में महावीर ने ज्ञान का पहला विभाजन किया है। ज्ञान के कितने आयाम हो सकते हैं, कितनी दिशाएं हो सकती हैं। ज्ञान कितने प्रकार का हो सकता है, या होता है--महावीर का वर्गीकरण प्रथम है। अभी पश्चिम में इस दिशा में काफी काम हुआ है। महावीर ने पांच प्रकार के ज्ञान बताए हैं। इस सदी के प्रथम चरण तक सारी मनुष्यता मानकर चलती थी कि ज्ञान एक ही प्रकार का है। वैज्ञानिक ज्ञान का एक ही रूप स्वीकार करते थे। लेकिन अब वैज्ञानिकों ने भी महावीर के पहले तीन ज्ञान स्वीकार कर लिए हैं। और वह दिन ज्यादा दूर नहीं है, जब बाद के दो ज्ञान भी स्वीकार करने पड़ेंगे।

ज्ञान के इस वर्गीकरण को ठीक से समझ लेना जरूरी है। मनुष्य की चेतना का यह पहला वैज्ञानिक निरूपण है। पहले तीन ज्ञान सामान्य मनुष्य में भी हो सकते हैं, होते हैं। अंतिम दो ज्ञान साधक के जीवन में प्रवेश करते हैं, और अंतिम, पांचवां ज्ञान केवल सिद्ध के जीवन में होता है। इसलिए पश्चिम के मनोवैज्ञानिक पहले तीन ज्ञानों को स्वीकार करने लगे हैं; क्योंकि उनकी झलक सामान्य मनुष्य के जीवन में भी मिल सकती है। साधक की चेतना में क्या घटित होता है, और सिद्ध की चेतना में क्या घटित होता है, अभी देर है कि उस संबंध में जानकारी साफ हो सके; लेकिन महावीर की दृष्टि बहुत साफ है।

पहला ज्ञान, महावीर कहते हैं, "श्रुत", दूसरा "मति", तीसरा "अवधि।" "श्रुत" ज्ञान: जो सुन कर होता है, जिसका स्वयं कोई अनुभव नहीं है। हमारा अधिक ज्ञान, श्रुत-ज्ञान है। न तो हमारी अंतरात्मा को उसकी कोई प्रतीति है, और न हमारी इंद्रियों को उसका कोई अनुभव है। हमने सुना है, सुन कर वह हमारी स्मृति का हिस्सा हो गया है। इसे ही जो ज्ञान मान कर रुक जाता है, वह ज्ञान के पहले चरण पर ही रुक गया। यह तो ज्ञान की शुरुआत ही थी। जो सुना है, जब तक देखा न जा सके; जो सुना है, जब तक जीवन न बन जाए; जो सुना है, जब तक जीवन की धारा में प्रविष्ट न हो जाए, तब तक उसे ज्ञान कहना औपचारिक रूप से ही है। हमारा अधिक ज्ञान इसी कोटि में समाप्त हो जाता है। और मजा यह है कि हम इसी ज्ञान को समझ लेते हैं; पूर्णता हो गई!

श्रुत-ज्ञान को ही जिसने पूरा ज्ञान समझ लिया, वह पंडित हो जाता है, ज्ञानी कभी भी नहीं हो पाता। स्कूल हैं, कालेज हैं, गुरु हैं, शास्त्र हैं-इनसे जो भी हमें मिलता है, वह श्रुति-ज्ञान ही हो पाता है। वह श्रुत है। और कान आपका पूरा अस्तित्व नहीं है; और कान से जो स्मृति में चला गया, वह जीवन का एक बहुत क्षुद्र हिस्सा है, वह सिर्फ रिकार्डिंग है। सुना आपने कि "ईश्वर है", ये शब्द कान में चले गए, स्मृति के हिस्से बन गए; बार-बार सुना तो स्मृति प्रगाढ़ होती चली गई; इतनी बार सुना कि आप यह भूल ही गए कि यह सुना हुआ है।

एडोल्फ हिटलर कहा करता था : किसी भी असत्य को बार-बार दुहराते चले जाओ, सुनने वाले की फिकर मत करो, सुनाए चले जाओ, तो आज नहीं कल सुननेवाला भूल जाएगा कि जो कहा जा रहा है, वह असत्य है।

जिन्हें हम सत्य मान कर जानते हैं, उनमें बहुत से इसी तरह के असत्य हैं, जो इतनी बार कहे गए हैं कि आपको ख्याल भी नहीं रहा कि वे असत्य हो सकते हैं। और असत्य से कोई अड़चन भी बहुत नहीं आती। सच तो यह है, सत्य से अड़चन आनी शुरू होती है। असत्य बड़ा कनविनिफ़ेंट, सुविधापूर्ण है।

फ्रेड्रिक नीत्शे ने तो बड़ी अनूठी बात कही है। उसने कहा यह है कि जैसे-जैसे मनुष्य के जीवन में सत्य आएगा, वैसे-वैसे मनुष्य को जीवन में कठिनाई होगी; क्योंकि मनुष्य जीता ही असत्य के सहारे है। वह उसका पोषण है।

नीत्शे ने यह भी कहा है: इसलिए किसी के असत्य मत तोड़ो। उसको बेचैनी मत दो; उसको कष्ट मत दो। और अगर तुमने तोड़ भी दिए उसके असत्य, तो वह नये असत्य गढ़ लेगा। और नये असत्यों की बजाय पुराने असत्य ज्यादा सुविधापूर्ण होते हैं, क्योंकि उन्हें गढ़ना नहीं पड़ता। और वे हमें वसीयत में मिलते हैं, सुनकर मिलते हैं। उन पर भरोसा मजबूत होता है।

आज दुनिया में जो बेचैनी है, नीत्शे का कहना यही है कि यह बेचैनी इसी कारण है कि पुराने सत्य सब असत्य मालूम होने लगे हैं, जैसे कि वे थे। सब असत्य प्रकट हो गए, और नये असत्य खोजना बड़ा कठिन हो रहा है। और आदमी बड़ी दुविधा में पड़ गया है। नीत्शे की बात में थोड़ी सच्चाई है। जैसा आदमी है-रुग्ण, विक्षिप्त, वह असत्य के सहारे ही जीता है। लेकिन अगर उसे पता चल जाए कि यह असत्य है, तो कठिनाई शुरू हो जाती है। असत्य के सहारे वह जीता है तभी तक, जब तक उसे लगता है, ये असत्य सत्य हैं--तब तक बड़ी शांति होती है।

ध्यान रहे, अगर आप संतोष की खोज कर रहे हैं, सिर्फ बेचैनी से बचना चाहते हैं, तो असत्य भी काम दे सकते हैं। लेकिन अगर आप मुक्ति की खोज कर रहे हैं, तो असत्य काम नहीं दे सकते। चाहे फिर सत्य कितना ही पीड़ादायी हो, उसके अनुभव को उपलब्ध होना ही पड़ेगा।

श्रुत-ज्ञान नित्यानबे प्रतिशत असत्य है; क्योंकि जिनसे हम सुनते हैं, उनका जीवन असत्य है। लेकिन परखा हुआ है वह असत्य ज्ञान। हजारों साल से काम दे रहा है!

इसे हम ऐसा समझें:

आप एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हैं। तो आप उस स्त्री को कहते हैं कि "बस तेरे अतिरिक्त इस जगत में न तो कोई सुंदर है, न कोई प्रेम का पात्र है। बस, तेरे अतिरिक्त मेरे लिए कोई भी नहीं है।" क्योंकि यही बात आप पहले दूसरी स्त्रियों से भी कह चुके हैं। और आप भी जानते हैं कि यह सत्य नहीं है। और यह भी आप जानते हैं, अगर थोड़ी खोज करेंगे तो यही बात आप और स्त्रियों से भी कहेंगे, क्योंकि अभी जीवन का अंत नहीं हो गया है। लेकिन यह असत्य बड़ा मधुर है, और कहने में बड़ा उपयोगी है। और वह स्त्री भी जानती है कि यह बात बिल्कुल सही तो नहीं हो सकती, लेकिन फिर भी इस पर भरोसा करती है; क्योंकि सुनने में यह प्रीतिकर है। और इस असत्य के सहारे आपका प्रेम खड़ा होता है।

यह प्रेम कितनी देर चल सकता है?

और जब यह प्रेम टूटता है, तो आप यह नहीं देखते कि हमने एक असत्य के सहारे इसको खड़ा किया था। आप समझते हैं कि जो पात्र हमने चुना था, वह ही गलत था। बात तो हमने जो कही थी, वह ठीक थी, लेकिन व्यक्ति जो हमने चुना वह गलत था। हम अब दूसरे व्यक्ति को चुन कर वही ठीक बात फिर से कहेंगे।

आप दूसरे से भी कहेंगे, और तीसरे से भी कहेंगे। और हर बार यह बात कारगर होगी। क्योंकि मन असत्य में पला है। अगर प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहे कि तू मुझे सुंदर मालूम पड़ती है तुलनात्मक रूप से : जितनी स्त्रियों को मैं जानता हूं, उनमें तू सबसे सुंदर मालूम पड़ती है, लेकिन और स्त्रियां भी सुंदर हो सकती हैं, जिन्हें मैं जानता नहीं हूं! तो कविता नष्ट हो जाएगी। तो प्रेम खड़ा ही नहीं हो पाएगा। वह स्त्री कहेगी कि आप कोई गणित का हिसाब कर रहे हैं--रिलेटिव, सापेक्ष? कल हो सकता है, तुझसे अच्छी स्त्री मिल जाए, तो मैं उससे प्रेम करूंगा, तो प्रेम खड़ा ही नहीं होगा।

सत्य के आधार पर प्रेम को खड़ा करना बड़ा मुश्किल है; असत्य के आधार पर प्रेम खड़ा हो जाता है, फिर टूटता है--टूटेगा ही। आप रेत के भवन बना सकते हैं, लेकिन उन्हें गिरने से नहीं बचा सकते। आप ताश के महल खड़े कर सकते हैं, लेकिन हवा का छोटा सा झोंका उन्हें गिरा जाएगा।

पर हमारी पूरी जिंदगी ऐसे असत्यों पर खड़ी है। मां सोचती है कि उसका बेटा उसे सदा प्रेम करेगा। बाप सोचता है, बेटा उसकी सदा मानेगा। लेकिन इस बाप ने भी अपने बाप की कभी नहीं मानी। इसे इसका ख्याल ही नहीं कि सत्य क्या है? एक घड़ी आएगी ही, जब बेटे को अपने बाप को इनकार करना पड़ेगा। और जो बेटा अपने बाप को इनकार न कर सके, वह ठीक अर्थों में जीवित ही नहीं हो सकेगा। जैसे मां के गर्भ से अलग होना ही पड़ेगा बेटे को, वैसे ही बाप की आज्ञा के गर्भ के भी बाहर जाना पड़ेगा।

मैंने सुना है कि एक बहुत प्रसिद्ध यहूदी फकीर जोसुआ मरा। वह बड़ा सात्विक, शीलवान, शुद्धतम व्यक्ति जैसे हों, वैसा व्यक्ति था। स्वर्ग में उसके स्वागत का आयोजन हुआ। बड़े बैंड-बाजे, बड़ा नृत्य, बड़ा संगीत, बड़ी सुगंध, बड़ी फुलझड़ियां, पटाखे--लेकिन वह स्वागत में सम्मिलित नहीं होना चाहता। उसने अपनी आंखें छुपा लीं, जैसे कोई बड़ी गहरी पीड़ा उसे हो। और वह रोने लगा। बहुत समझाया, लेकिन वह राजी नहीं हुआ। तो फिर उसे ईश्वर के सामने ले जाया गया। और ईश्वर ने उससे कहा : "जोसुआ, यह स्वागत तेरे योग्य है। तूने जीवन ऐसा जिया है--पवित्र, कि स्वर्ग के द्वार पर तेरा स्वागत हो--यह जरूरी है, तू इतना चिंतित और बेचैन क्यों है? तेरी जिंदगी में कहीं कोई कलुष नहीं, कहीं कोई दाग नहीं; तेरे जैसा शुद्ध व्यक्ति मुश्किल से कभी पृथ्वी से स्वर्ग में आता है। इसलिए स्वर्ग प्रसन्न है; उस प्रसन्नता में सम्मिलित होओ।"

जोसुआ ने कहा, "और तो सब ठीक है, लेकिन एक पीड़ा मेरे मन में है। जरूर मेरे जीवन में कोई पाप रहा होगा, अन्यथा यह नहीं होता, मेरा बेटा! जोसुआ यहूदी है--मेरा बेटा मेरी सारी चेष्टा के बावजूद, मेरे उदाहरण के बावजूद, मेरे जीवन के बावजूद ईसाई हो गया। वह पीड़ा मेरे मन में है।"

ईश्वर ने कहा कि तू मत भयभीत हो, मत चिंतित हो, मैं तुझे समझ सकता हूं--आई कैन अंडरस्टैंड यू, बिकाज दि सेम वा.ज डन विथ माई ओन सन, जीसस--वह मेरा बेटा जो जीसस है, वही उपद्रव उसने भी किया, वह भी ईसाई हो गया।

लेकिन बेटे एक सीमा पर बाप से पृथक हो जाएंगे--अनिवार्य है। लेकिन न बेटा इस सत्य को स्वीकार करने को राजी है, न बाप इस सत्य को स्वीकार करने को राजी है। मां सोचती है, बेटा उसे सदा प्रेम करता रहेगा। अगर बेटा मां को सदा प्रेम करता रहे, जैसा उसने बचपन में किया था, तो बेटे का जीवन ही व्यर्थ हो जाएगा। एक सीमा पर मां के घेरे के बाहर उसे जाना पड़ेगा। वह किसी स्त्री को चुनेगा, मां फीकी पड़ती जाएगी, संबंध औपचारिक रह जाएगा। क्योंकि जीवन की धारा आगे की तरफ है, पीछे की तरफ नहीं।

अगर बेटा मां को प्रेम करता चला जाए, तो धारा उल्टी हो जाएगी। मां बेटे को प्रेम करेगी, यह बेटा भी अपने बेटे को प्रेम करेगा; लेकिन प्रेम की धारा पीछे की तरफ नहीं है। पीछे की तरफ तो मधुर संबंध बाकी रह जाएं, इतना काफी है। वह भी नहीं हो पाता। लेकिन हर मां यही भरोसा करेगी, इसलिए हर मां दुखी होगी। हर बाप पीड़ित होगा। पीड़ा का कारण बेटा नहीं है, पीड़ा का कारण एक असत्य का आधार है। और ऐसा नहीं कि बुरे बेटे का बाप दुखी है, भले बेटे का बाप भी दुखी होता है।

महावीर के पिता अगर जिंदा होते तो दुखी होते। महावीर के पिता से महावीर ने कहा कि "मैं संन्यस्त हो जाना चाहता हूं।" तो उन्होंने कहा, "बस, यह बात अब दोबारा मत उठाना। जब तक मैं जिंदा हूं, तब तक यह बात अब दोबारा मत उठाना। मेरी मौत पर ही तू संन्यासी हो सकता है।"

सोचें, अगर महावीर न मानते और संन्यासी हो जाते, तो बाप छाती पीटकर रोते। बुद्ध के बाप रोए। बुद्ध घर से जब चले गए, तो पीड़ित हुए--दुखी! बुद्ध ज्ञान को भी उपलब्ध हो गए, महासूर्य प्रकट हो गया लेकिन बाप अपनी ही पीड़ा से परेशान है। और जब बुद्ध वापस लौटे तो बाप ने कहा कि "देख, बाप का हृदय है यह, मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूं, तू वापस लौट आ! छोड़ यह भिखारीपन, हमारे कुल में कभी कोई भिखारी नहीं हुआ। शर्म आती है, तेरी खबरें सुनता हूं कि तू भीख मांगता है तो सिर झुक जाता है। क्या है कमी, जो तू भीख मांगे? और हमारे कुल में कभी किसी ने भीख नहीं मांगी, तू कुल को डुबानेवाला है।"

तो ऐसा नहीं कि आप का बेटा दुष्ट हो जाए, पापी, हत्यारा हो जाए, तो आप दुखी होंगे। बुद्ध हो जाए, तो भी दुखी होंगे। बाप और बेटे के बीच एक फासला निर्मित होगा ही। बेटा बाप की आकांक्षाओं के पार जाएगा। लेकिन इस सत्य पर हम जीवन को खड़ा नहीं करते, हम असत्य पर खड़ा करते हैं। और असत्य सुविधापूर्ण मालूम पड़ते हैं। अंत में कष्ट लाते हैं, लेकिन सुविधापूर्ण मालूम पड़ते हैं। अगर आप अपने ज्ञान की जांच करेंगे, तो पाएंगे उसमें निन्यानबे प्रतिशत असत्य के आधार हैं। वे सुने हुए हैं।

हमारा ज्ञान करीब-करीब अज्ञान है। महावीर इस ज्ञान को श्रुत-ज्ञान कहते हैं, कि सुनकर सीख लिया है दूसरों से, उधारा। यह बहुत मूल्यवान नहीं है; यह संसार के लिए उपयोगी है। बाजार में इसकी जरूरत है, क्योंकि बाजार झूठ पर खड़ा है। वहां आप सच्चे होने लगेंगे, तो आप असुविधा में पड़ जाएंगे, और बाजार के बाहर फेंक दिए जाएंगे।

लेकिन, इस ज्ञान को ही हम धर्म के जगत में भी ले जाना चाहते हैं। किसी ने वेद पढ़ा, किसी ने गीता, किसी ने कुरान, किसी ने महावीर के वचन। वह पढ़ते ही समझ लेता है कि सब हो गया। यह तो पहला चरण भी नहीं है। और इसे जो ज्ञान समझ लेता है, उसके आगे के चरण उठने असंभव हो जाएंगे।

दूसरे ज्ञान को महावीर कहते हैं, "मति।" और आप जान कर हैरान होंगे कि सुने हुए ज्ञान को वह पहला कहते हैं। मति का अर्थ है, इंद्रियों से जाना हुआ। इसको वे श्रुत से ऊपर रखते हैं। यह जरा चिंता की बात मालूम होगी। मन से सुना हुआ नीचे रखते हैं, इंद्रियों से जाने हुए को ऊपर रखते हैं। क्योंकि, आखिर अंततः इंद्रियों से जाना हुआ, सिर्फ सुने हुए से ज्यादा बहुमूल्य, ज्यादा जीवंत है। आंखें देखती हैं, हाथ छूते हैं, जीभ स्वाद लेती है--इनसे जो जाना हुआ है, वह ज्यादा वास्तविक है। लेकिन, हम इंद्रियों को भी अशुद्ध कर लिए हैं अपने सुने हुए ज्ञान के कारण। वह उसमें भी बाधा डालता है। आप जो देखते हैं, वह आप वही नहीं देखते हैं, जो मौजूद है। आप उसकी भी व्याख्या कर लेते हैं।

हमारी इंद्रियों का ज्ञान भी हमने अशुद्ध कर लिया है। आप व्याख्या कर लेते हैं। आप वही नहीं देखते, जो है; आप वही देखते हैं, जो आप देखना चाहते हैं; वही छूते हैं, जो आप छूना चाहते हैं। वही आपकी समझ में इंद्रियां भी पकड़ती हैं।

इंद्रियों के संबंध में भी चुनाव करते हैं, वह भी परिशुद्ध नहीं है। जैसे कि आप बाजार में गए हैं, अगर आप भूखे हैं तो आपको होटल और रेस्टॉरेंट दिखाई पड़ेंगे; भूखे नहीं हैं तो बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेंगे, आप उनके बोर्ड नहीं पढ़ेंगे। तो जो दिखाई पड़ रहा है, वही सवाल नहीं है, आप क्या देखना चाहते हैं, वही आपको दिखाई पड़ेगा। एक स्त्री बाजार में निकलती है, तो उसे आभूषणों की दुकानें, हीरे-जवाहरात की दुकानें दिखाई पड़ती हैं।

मैंने सुना है, एक पुलिस स्टेशन पर एक आदमी को पकड़ कर लाया गया, जो बुर्का ओढ़ कर रास्ते पर चल रहा था। वह किसी दूसरे राष्ट्र का जासूस था। लेकिन उसने बुर्का ऐसा बनाया था और कपड़े उसने पूरे स्त्रियों के पहन रखे थे कि पुलिस आफिसर ने जो आदमी उसे पकड़कर लाया था, उससे कहा कि तुम पहचाने कैसे कि यह आदमी स्त्री नहीं है? उसने कहा कि यह रास्ते से चला जा रहा था, हीरे-जवाहरात की दुकानें थी, उन पर इसने नजर भी नहीं डाली! शक हो गया कि यह स्त्री नहीं हो सकती, यह बुर्का ही है, अंदर कोई और है।

नसरुद्दीन घर में सफाई कर रहा था। मक्खियां घर में काफी थीं। पत्नी और वह दोनों मक्खियां मार रहे थे। उसने चार मक्खियां मारीं और आकर कहा कि "दो स्त्रियां हैं और दो पुरुष।" उसकी स्त्री ने कहा कि तुम भी गजब के खोजी हो गए। तुम मक्खियों को पहचाने कैसे कि कौन नर, कौन मादा? उसने कहा कि दो आइने पर बैठी थीं, वे स्त्रियां होनी चाहिए।

आप क्या देखते हैं, क्या सुनते हैं, क्या छूते हैं--वह भी चुनाव है। गहरे में आप व्याख्या कर रहे हैं। इसलिए आप एक ही किताब को अगर हर वर्ष बार-बार पढ़ें तो आप अलग-अलग अर्थ निकालेंगे, क्योंकि अर्थ निकालने वाला बदल जाएगा। किताब वही है।

इसलिए हमने इस देश में यह तय किया था कि गीता या उपनिषद जैसी किताबें सिर्फ पढ़कर रख न दी जाएं, जैसा कोई उपन्यास पढ़कर रख देता है, उनका पाठ किया जाए--बार-बार पाठ किया जाए। क्योंकि जो अर्थ आपको दिखाई पड़ेगा, वह गीता का नहीं है। वह, आपकी समझ उस समय जैसी होगी!

इसलिए एक व्यक्ति अगर गीता को दस वर्ष बार-बार पढ़े और विकासमान व्यक्ति हो, तो हर बार नये अर्थ खोज लेगा, अर्थ की गहराई बढ़ती चली जाएगी। अनंत जन्मों में पढ़ने के बाद ही कृष्ण का अर्थ पकड़ में आ सकता है, जब अपनी खुद की गहराई उतनी हो जाए। उसके पहले पकड़ में नहीं आ सकता।

लेकिन महावीर इंद्रिय, शुद्ध इंद्रिय ज्ञान को ऊंचाई पर रखते हैं। पंडित से ऊंचाई पर रखते हैं बच्चे को, क्योंकि बच्चे का इंद्रिय ज्ञान ज्यादा शुद्ध है। वह चीजों को सफाई से देखता है। अभी उसके पास कोई बुद्धि नहीं है कि जल्दी से व्याख्या करे कि क्या गलत, क्या ठीक? देखता है। एक छोटे बच्चे की आंख चाहिए, तो आपके ज्ञान में एक वास्तविकता आ जाएगी।

ध्यान रहे, सब धर्म आमतौर से "श्रुत" से उलझे हुए हैं, विज्ञान "मति" पर चला गया है। विज्ञान इंद्रिय पर भरोसा करता है, शब्दों पर नहीं। इसलिए वैज्ञानिक कहता है : जो दिखाई पड़ता है, वह भरोसे योग्य है; जो अनुभव में आता है, वह भरोसे योग्य है।

चार्वाक की पूरी परम्परा का जोर यही था कि जो प्रत्यक्ष है, वह भरोसे योग्य है। इस सुने हुए से क्या अर्थ कि वेद में लिखा है कि परमात्मा है! परमात्मा को प्रत्यक्ष करके बताओ; अगर वह सामने है, तो ही माना जा सकता है छुआ जा सके, देखा जा सके!

चार्वाक के कहने में भी अर्थ है। उनका जोर दूसरे ज्ञान पर है। और पहले ज्ञान से दूसरा ज्ञान जरूर कीमती है। इसलिए पश्चिम में विज्ञान का जन्म हुआ, क्योंकि वे इंद्रियवादी हैं। पूरब में विज्ञान का जन्म नहीं हो सका, क्योंकि हम श्रुत से अटके रह गए। हमने इंद्रिय के ज्ञान की कोई फिकर नहीं की कि इंद्रिय के ज्ञान को प्रगाढ़ किया जाए, शुद्ध किया जाए; और इंद्रिय से जो जाना जाता है, उसको सत्य के करीब लाया जाए। विज्ञान

की सारी कोशिश यही है कि चीजें ठीक से देखी जा सकें। सारे प्रयोग--सारी प्रयोगशालाएं एक ही काम कर रही हैं कि जो इंद्रियां जानती हैं, उसको और शुद्धता से कैसे जाना जा सके।

महावीर "मति" को दूसरे नंबर पर रखते हैं। अभी पश्चिम में एक नया आंदोलन चलता है, एनकाउंटर ग्रुप्स, सेंसिटिविटी ट्रेनिंग--संवेदनशीलता का प्रशिक्षण कि लोग संवेदनशीलता को बढ़ाएं। अगर महावीर को पता चले तो वे कहेंगे कि अच्छा है; "श्रुत" से "मति" बेहतर है। पश्चिम में सैकड़ों प्रयोगशालाएं काम कर रही हैं, जहां लोग जाते हैं, और अपनी इंद्रियों की संवेदना को बढ़ाते हैं। आपको पता भी नहीं कि इंद्रियों की संवेदना आपकी मर चुकी है। जब आप किसी को छूते हैं--सच में छूते हैं? जब किसी का हाथ, हाथ में लेते हैं तो मुर्दे की तरह, आपकी जीवन-ऊर्जा आपके हाथ से बहती है! उस व्यक्ति को प्रवेश करती है; उसको छूती है--या बस, हाथ हाथ में ले लेते हैं?

अगर आप पचास लोगों के हाथ हाथ में लें, तो आप अलग-अलग अनुभव करेंगे। अगर आप सचेत हैं तो कोई हाथ बिल्कुल मुर्दा मालूम पड़ेगा कि वह आदमी मिलना नहीं चाहता था। हाथ तो उसने हाथ में दे दिया है, लेकिन खुद को पीछे खींच लिया है। तो सिर्फ हाथ है वहां, आत्मा नहीं है। कोई आदमी तटस्थ मालूम पड़ेगा, कि ठीक है वह हाथ तक आया है, लेकिन आप में प्रवेश नहीं करेगा, वहीं हाथ पर खड़ा रहेगा। जैसे दो व्यक्ति अपनी-अपनी सीमाओं पर, अपने-अपने घर के घेरे में खड़े हैं। कोई व्यक्ति को लगेगा कि उसके हाथ से ऊर्जा ने एक छलांग ली है और वह आप में प्रवेश कर गया है। उसने हाथ ही नहीं छुआ, आपके हृदय तक अपने हाथ को फैलाया।

अलग-अलग हाथ अलग-अलग स्पर्श देगा। लेकिन यह भी उसको ही देगा, जिसको स्पर्श बोध की क्षमता है। वह हमारा मर गया है। हमें किसी चीज में कुछ पता ही नहीं चलता। हमें ख्याल ही नहीं आता कि हम चारों तरफ प्रतिक्षण अनंत संवेदनाओं से घिरे हैं, लेकिन उनका हम अनुभव नहीं कर रहे।

कभी आराम से कुर्सी पर बैठ कर ही अनुभव करें कि कितनी संवेदनाएं घट रही हैं : कुसू पर आपके शरीर का दबाव, कुसू का आपको स्पर्श; जमीन पर रखे आपके पैर; हवा का झोंका जो आपको छू रहा है; फूल की गंध जो खिड़की से भीतर आ गई है; चौके में बर्तनों की आवाज, बनते हुए भोजन की गंध जो आपके नासापुटों को छू रही है; छोटे बच्चे की किलकारी जो आपको छूती है और आह्लादित कर जाती है; किसी का चीत्कार, किसी का रोना जो आपको भीतर कंपित कर जाता है।

अगर रोज पंद्रह मिनट कोई चुप बैठ कर अपने चारों तरफ की संवेदनाओं का ही अनुभव करे तो भी बड़े गहरे ध्यान को उपलब्ध होने लगेगा।

इंद्रियां द्वार हैं--अदभुत द्वार हैं, और उनसे हम जीवन में प्रवेश करते हैं। लेकिन हमारी इंद्रियां बिल्कुल मुर्दा हो गई हैं। द्वार बंद है, हम उनको खोलते ही नहीं। एक हैरानी की बात है कि हमारी इंद्रियां पशुओं से कमजोर हो गई हैं। कुत्ता आपसे ज्यादा सूंघता है, आश्चर्य की बात है! घोड़ा मीलों दूर से गंध ले लेता है, हम नहीं ले पाते! ध्वनि, पशु हमसे ज्यादा गहराई से सुनते हैं।

सांप को आपने नाचते देखा? मदारी बजा रहा है अपनी बांसुरी या तुरही और सांप नाच रहा है। और वैज्ञानिक कहते हैं, सांप को कान नहीं हैं तो सांप सुन नहीं सकता। यह बड़ी मुश्किल की बात है। लेकिन हजारों साल की धारणा है कि सांप संगीत से आंदोलित होता है। और वैज्ञानिक कहते हैं, सांप को कान हैं ही नहीं, इसलिए सवाल ही नहीं उठता आंदोलित होने का। लेकिन वैज्ञानिक भी देखते हैं कि सांप बांसुरी की आवाज सुन कर नाचता है, तो मामला क्या है? खोज से पता चला कि, सांप पूरे शरीर से सुनता है। कान नहीं है। उसका रोआं-रोआं ध्वनि से आंदोलित होता है। उसके रोएं-रोएं से ध्वनि प्रवेश करती है। इसलिए उसके नाच की जो मस्ती है, वह आपके पास कितने ही अच्छे कान हों, तो भी नहीं है। लेकिन आप भी रोएं-रोएं से सुन सकते हैं; क्योंकि रोएं-रोएं से वायु प्रवेश करती है, और वायु के साथ ध्वनि प्रवेश करती है।

आश्चर्य न होगा कि किसी आदि समय में मनुष्य पूरे शरीर से सुनता रहा हो; क्योंकि आप सिर्फ नाक से ही श्वास नहीं लेते हैं, आप पूरे शरीर से श्वास लेते हैं। और अगर आपकी नाक खुली छोड़ दी जाए, और पूरे शरीर को लीप-पोत कर बंद कर दिया जाए, तो आप तीन घंटे में मर जाएंगे, कितनी ही श्वास लें। क्योंकि हवा ध्वनि को ले जानेवाली है, सिर्फ कान में ही ध्वनि नहीं जा रही, पूरे शरीर में ध्वनि जा रही है। पूरे शरीर से श्वास जा रही है भीतर। और अगर हवा पूरे शरीर से भीतर जा रही है, तो ध्वनि भी भीतर जा रही है।

थोड़ी कल्पना करें, अगर आपके पूरे शरीर से ध्वनि का अनुभव हो, तो संगीत का जो आनंद आप ले पाएंगे, और जो अनुभव, और जो ज्ञान होगा, वह अभी आपको नहीं हो सकता। लेकिन थोड़ा आपको भी ख्याल होता है कि जब भी आप संगीत सुनते हैं तो आपका पैर नाचने लगता है, हाथ थपकी देने लगता है, उसका मतलब इतना है कि हाथ भी सुन रहा है, पैर भी पकड़ रहा है। अगर कोई व्यक्ति संगीत को सुनकर नाचने लगे, उसका रोआं-रोआं नाचने लगे, तो उसे पूरा अनुभव होगा ध्वनि का। नहीं तो उसे पूरा ध्वनि का अनुभव नहीं होगा।

मति-ज्ञान का अर्थ है: हमारी इंद्रियां परिशुद्ध हों, द्वार उन्मुक्त हों, और जीवन को भीतर लेने की हमारी तैयारी हो। और हमारी तैयारी जीवन में बाहर जाने की भी हो।

आप स्नान करते हैं, लेकिन आप व्यर्थ कर लेते हैं। मैं जैसा कहूं, ऐसा स्नान करें : फव्वारे के नीचे खड़े हो जाएं, सब विचार छोड़ दें, दुनिया को भूल जाएं। जो मंदिर में नहीं हो सकता, वह आपके स्नान-गृह में हो सकता है। लेकिन सिर्फ पानी के स्पर्श को, जो आपके सिर पर गिर रहा है और शरीर पर जिसकी धाराएं बही जा रही है, उसके सिर्फ स्पर्श का पीछा करें। पूरे शरीर से उसके स्पर्श को पीएं। रोएं-रोएं से पानी की ताजगी को भीतर जाने दें।

आप पचहत्तर प्रतिशत पानी हैं--आपका शरीर। तो जब पानी आपको बाहर से स्पर्श करता है, अगर आपका पूरा शरीर संवेदनशील हो तो भीतर का पानी भी आंदोलित होने लगेगा। आप पानी ही हैं, पचहत्तर प्रतिशत। इसलिए चांद की जब पूरी रात होती है तो आपको बहुत आनंद मालूम होता है। वह आपको मालूम नहीं हो रहा, वह आपके भीतर का पचहत्तर प्रतिशत पानी सागर की तरह आंदोलित होने लगता है। पूरे चांद की रात, आपको जो अच्छा लगता है, वह अच्छा इसलिए लगता है कि आपके भीतर का पानी अभी भी सागर का हिस्सा है। आप जान कर हैरान होंगे कि आपके शरीर के पानी में उतने ही तत्व हैं, जितने सागर के पानी में हैं। वैसा ही नमक, वैसे ही केमिकल्स--ठीक उसी अनुपात में। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, आदमी का पहला जन्म मछली की तरह हुआ, वह पहली यात्रा है। अब भी आप बहुत विकसित हो गए हैं; लेकिन भीतर आपका जीवन अभी भी सागर की ही जरूरत मानता है। वहां अब भी सागर है।

जब आप सागर के किनारे बैठे हैं, तो सागर के आंदोलन को गौर से देखें और इतने लीन हो जाएं कि आपके भीतर का सागर एक छलांग लगाकर बाहर के सागर से मिलने लगे तो आपको इंद्रिय ज्ञान होगा।

महावीर उसे "मति" कहते हैं। छोटे बच्चों को होता है। जैसे-जैसे आप बड़े होते जाते हैं, वैसे-वैसे भूलता जाता है। फिर तो उन्हीं को होता है, जो ध्यान में प्रवेश करते हैं, जो फिर छोटे बच्चों की तरह हो जाते हैं। तब हवा का हलका झोंका भी स्वर्ग की खबर देता है; जब फूल का छोटा सा स्पंदन भी जीवन का नृत्य बन जाता है; दीये की लपटती-भागती लौ सारे प्राण की ऊर्जा का अनुभव बन जाती है, तब आपको मति ज्ञान होना शुरू होता है।

पश्चिम में चल रही ट्रेनिंग कि लोग अपनी इंद्रियों को फिर सजग कर लें, हमें बहुत बचकानी मालूम पड़ेगी; क्योंकि हमारे ख्याल में नहीं है। तीन सप्ताह, चार सप्ताह के लिए लोग इकट्ठे होते हैं किसी केंद्र पर--सब तरह से जीवन को अनुभव करने की कोशिश करते हैं। समुद्र की रेत में आंख बंद करके लेटते हैं, ताकि रेत का

स्पर्श अनुभव हो सके; पानी के झरने में सिर झुका कर बैठते हैं, ताकि पानी का अनुभव हो सके, आंख बंद करके एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं, ताकि एक-दूसरे के शरीर के स्पर्श की प्रतीति हो सके।

दो प्रेमी भी एक-दूसरे के शरीर से बड़े आर्थाडाक्स, बंधे-बंधाए ढंग से परिचित होते हैं। कभी आपने अपनी प्रेयसी को अपनी पीठ और उसकी पीठ को भी मिलाकर देखा है कि दोनों कैसा अनुभव करते हैं? बड़ा भिन्न अनुभव होगा, अगर आप अपनी प्रेयसी की पीठ

के साथ अपनी पीठ मिलाकर, आंख बंद करके खड़े हो जाएं। तो आपको पहली दफा एक नये व्यक्ति का अनुभव होगा, क्योंकि पीठ की तरफ से प्रेयसी बिल्कुल भिन्न है।

लेकिन सब चीजें बंधी, रूटीन हो गई हैं। कभी आप अपने बच्चे को पास लेकर, उसके गाल को अपने गाल से लगा कर थोड़ी देर शांत बैठे हैं? क्योंकि बच्चा अभी शुद्ध है, अभी उसकी जीवन-ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। अगर आप बैठ जाएं अपने बच्चे के पास उसके गाल को गाल से लगा कर, और अनुभव कर सकें, तो आपका बच्चा आपको भी जीवनदायी सिद्ध होगा, आपकी उम्र थोड़ी ज्यादा हो जाएगी।

यह अनुभव हुआ है कि कभी-कभी वृद्ध उम्र के लोग जब नई उम्र की लड़कियों से विवाह कर लेते हैं तो उनकी उम्र बढ़ जाती है। क्योंकि नई उम्र की लड़की के साथ उनको भी अपनी उम्र नीचे लानी पड़ती है। उससे मिलने को, उससे संबंध बनाने को उन्हें नीचे उतरना पड़ता है; उनके शरीर की जो जड़ता है, उसको उन्हें नीचे लाना पड़ता है।

यह कुछ आश्चर्य न होगा कि बर्ट्रेड रसल जैसा व्यक्ति अपने मरते हुए, आखिरी नब्बे वर्ष की उम्र तक भी युवा रहा। क्योंकि अस्सी वर्ष की उम्र तक वह नए विवाह करता चला गया। अस्सी वर्ष की उम्र में बर्ट्रेड रसल ने शादी की एक बीस वर्ष की लड़की से। वह जो युवापन है, वह जो ताजगी है इंद्रियों की, वह बनी रही होगी।

रसल इंद्रियवादी था। वह मानता था कि इंद्रिय की जितनी शुद्धता हो जीवन में और इंद्रियों का जितना प्रगाढ़ अनुभव हो, उतना ही जीवन चरम पर पहुंचता है। महावीर ऐसा नहीं मानते। वे मानते हैं, और जीवन के आयाम हैं आगे।

लेकिन, हम तो "श्रुत" पर अटक जाते हैं। हम "मति" तक भी नहीं पहुंच पाते। पशुओं जैसी शुद्ध इंद्रियां चाहिए साधक के पास, तभी वह सिद्ध हो पाएगा। नहीं तो नहीं हो पाएगा। मगर हमारा तो उल्टा चल रहा है सारा हिसाब। हम साधक उसको कहते हैं, जो इंद्रियों को मार रहा है, जो इंद्रियों को दबा रहा है। अगर आपका साधु संगीत सुन रहा हो, तो आपको शक हो जाए कि बात क्या है? अगर आपका साधु बहुत रस से भोजन कर रहा हो, तो आपको शक हो जाए कि मामला गड़बड़ है! लेकिन साधु की कोशिश यह है हमारी कि वह स्वाद दे नहीं इंद्रिय को, जिह्वा को बिल्कुल मार दे कि उसमें कुछ पता ही न चले।

लेकिन, ध्यान रहे उसका मति-ज्ञान कुंद हो जाएगा; उसके जानने की इंद्रिय-क्षमता कम हो जाएगी। और जितनी ही यह क्षमता कम होगी, उतना ही उसके जीवन का विस्तार सिकुड़ जाएगा, संकुचित हो जाएगा।

इसलिए साधु संकुचित हो जाता है, सिकुड़ जाता है। इसलिए साधु का जीवन आमतौर से आत्मघाती मालूम पड़ता है। वह सब तरफ से अपने को सिकोड़ता जाता है, सिकोड़ता जाता है--कुंद होता जाता है; खुलता नहीं, मुक्त आकाश नहीं बनता।

महावीर की बात समझने जैसी है। महावीर कहते हैं, पहला ज्ञान "श्रुत", दूसरा ज्ञान "मति", तीसरा ज्ञान "अवधि", लेकिन तीसरा ज्ञान उसी में होगा, जिसका मति-ज्ञान काफी प्रगाढ़ हो। क्योंकि मनुष्य की प्रत्येक इंद्रिय के पीछे छिपी एक सूक्ष्म इंद्रिय भी है। अवधि-ज्ञान उस सूक्ष्म इंद्रिय का ज्ञान है--जैसे आप घटनाएं सुनते हैं!

हरकोस पश्चिम में बहुत प्रसिद्ध है--पीटर हरकोस। वह दूसरे महायुद्ध में गिर पड़ा। साधारण आदमी था; गिरने से बेहोश हो गया। सिर में चोट लगी, अस्पताल में भरती किया गया। जब अड़तालीस घंटे बाद होश में

आया तो वह बड़ा चकित हुआ। उसे खुद भी भरोसा न आया कि उसकी कोई अंतर-इंद्रिय खुल गई है इस चोट में आकस्मिक, एक्सीडेंटल! वह जो नर्स पास खड़ी थी, उसे उस नर्स के भीतर क्या हो रहा है, वह समझ में आने लगा। वह थोड़ा बेचैन भी हुआ। उसने नर्स से पूछा कि "क्या तुम अपने किसी प्रेमी से मिलने का विचार कर रही हो?" उस नर्स ने कहा कि "क्या मतलब?" वह भी चौंक गई, क्योंकि भीतर जल्दी इस मरीज को निबटाकर उसका

प्रेमी बाहर खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है--उससे भागी जाने को, मिलने को है। इस मरीज को तो वह निबटा रही है सोए-सोए। उसका मन तो प्रेमी के पास चला गया है।

हरकोस को लोग कोई उसके पास आए तो उसके भीतर की बात अनुभव में आने लगी। किसी की चीज, किसी का रूमाल उसे दे दें, तो वह रूमाल का ख्याल करके उस आदमी का वर्णन करने लगा है। दस साल तक तो वह परेशान रहा इससे। क्योंकि बड़ी परेशानी की बात है। हर आदमी रास्ते पर निकले और आपको उसके भीतर का थोड़ा सा ख्याल आ जाए, कि आप अपनी पत्नी को प्रेम कर रहे हों और आपको ख्याल आ जाए कि वह अपने किसी प्रेमी का विचार कर रही है? अक्सर करते हैं। अक्सर पति-पत्नी किसी और का सोचते रहते हैं, लेकिन पकड़ में नहीं आता। क्योंकि सूक्ष्म इंद्रियां हमारी जड़ हैं। हमारी स्थूल इंद्रियां जड़ हैं, तो सूक्ष्म तो जड़ होंगी ही।

जब स्थूल इंद्रियां संवेदनशील हो जाती हैं तो उनके पीछे छिपी हुई सूक्ष्म इंद्रियां गतिमान होती हैं। उन सूक्ष्म इंद्रियां का जो अनुभव है, उसको महावीर अवधि-ज्ञान कहते हैं। टेलिपैथी, क्लेरव्हायंस सब अवधि-ज्ञान हैं।

पश्चिम में साइकिक साइंस अवधि-ज्ञान पर काम कर ही रही है बड़े जोर से, और हजारों आयाम खुल गए हैं। अनेक तरह के प्रामाणिक प्रयोग हो गए हैं, जिनसे पता चलता है कि आदमी के पास कुछ सूक्ष्म इंद्रियां भी हैं, जिनसे वह बिना देखे देख लेता है, बिना सुने सुन लेता है। आपको भी कभी-कभी इसकी झलक मिलती है, लेकिन आप उसको टाल देते हैं, आप उसका हिसाब नहीं रखते।

कभी आप बैठे हैं घर में अचानक आपको ख्याल अपने मित्र का आता है, और आप देखते हैं कि वह मित्र भीतर चला आ रहा है। ख्याल पहले आ जाता है, मित्र दरवाजे से बाद में भीतर आता है। आप सोचते हैं, संयोग की बात है। संयोग की बात नहीं है।

इस जगत में संयोग जैसी बात होती ही नहीं। इस जगत में सब वैज्ञानिक है, सब कार्य-कारण से बंधा है। उस मित्र का दरवाजे पर आना आपकी सूक्ष्म इंद्रिय ने पहले पकड़ लिया, आपकी स्थूल इंद्रिय बाद में पकड़ी।

कभी आपका कोई प्रियजन मर रहा हो, बहुत दूर हो--हजारों मील दूर--तो भी आपके भीतर कुछ पीड़ा शुरू हो जाती है। आप पकड़ नहीं पाते, क्योंकि आपको साफ नहीं है। अगर साफ हो जाए, और आप उस दिशा में काम करने लगें, तो आपकी पकड़ में आना शुरू हो जाएगा।

इसको अनुभव किया गया है कि जुड़वां बच्चे एक साथ बीमार पड़े हैं, चाहे हजारों मील दूर हों। एक ही अंडे से पैदा हुए जुड़वां बच्चे एक साथ बीमार पड़े हैं। यहां एक बच्चे को सर्दी हो, और दूसरा बच्चा पेकिंग में हो, तो उसको वहां सर्दी हो जाएगी। बड़ी हैरानी की बात है, क्योंकि मौसम अलग है, देश अलग है, हवा अलग है। अगर इसको इनफेक्शन हुआ है, तो उसी दिन उसको इनफेक्शन होने का कोई कारण नहीं है। यहां फ्लू चल रहा है, वहां फ्लू नहीं चल रहा है; लेकिन दोनों को एक साथ सर्दी पकड़ जाएगी!

वैज्ञानिक बड़े चिंतित थे कि यह कैसे होता है? लेकिन अब साइकिक खोज कहती है कि दोनों बच्चे इतने एक साथ पैदा हुए हैं, इतने एक जैसे हैं कि उनकी सूक्ष्म-इंद्रियां इतनी संयुक्त हैं कि एक में जरा सा स्पंदन हो तो दूसरे को खबर मिल जाती है। एक बच्चे को सर्दी पकड़े तो दूसरे की सूक्ष्म इंद्रियां अनुभव करने लगती हैं कि सर्दी हो गई। उस कारण दूसरे को भी सर्दी हो जाती है। वह मानसिक सर्दी है, लेकिन हो जाएगी।

एक अंडे से पैदा हुए बच्चे करीब-करीब साथ-साथ मरते हैं। ज्यादा से ज्यादा फर्क तीन महीने का होता है। क्योंकि मृत्यु जब एक की घट जाती है, तो दूसरे की सूक्ष्म इंद्रियों पर चोट पहुंच जाती है, वह मरने के करीब हो जाता है। आप कभी छोटे-छोटे प्रयोग करें, तो आपको अपनी सूक्ष्म इंद्रियों का ख्याल आ सके।

सभी व्यक्तियों को तीन ज्ञान संभव हैं आसानी से: श्रुत, मति, अवधि। इन तीन में कोई विशेषता नहीं है। इसलिए तीसरा ज्ञान देख कर जब आप चमत्कृत होते हैं, तो आप नासमझ हैं। तीसरे ज्ञान के कारण लोग महात्मा हो जाते हैं। लेकिन तीसरे ज्ञान से कोई जीवन की स्थिति ऊपर नहीं उठती।

आप गए किसी महात्मा के पास, और उसने जाने से ही बता दिया आपका नाम क्या है, आप कहां से आते हैं, आपका घर कैसा है, घर के सामने एक वृक्ष है--बस, आप गए! अब आपने कहा कि मिल गए गुरु, सदगुरु से मिलना हो गया!

इस आदमी ने थोड़ा सा सूक्ष्म इंद्रियों का प्रयोग किया है, जो कि सभी के पास है। आप प्रयोग न करें, यह बात और है। आपके पास भी रेडियो है, आप न ट्यून करें और न स्टेशन लगाएं, तो लटकाए घूमते रहें! इस आदमी ने ट्यून कर लिया, इसमें कोई बड़ी कला नहीं है। मगर इसके रेडियो से आवाज आनी शुरू हो गई, और आप रेडियो लटकाए घूम रहे हैं।

अवधि ज्ञान तक तीनों बातें बिल्कुल सामान्य हैं, उसमें कुछ भी असाधारण नहीं है। लेकिन तीसरा ज्ञान हमें बहुत प्रभावित करता है। कभी आपने ख्याल किया कि तीसरा ज्ञान अक्सर अशिक्षित लोगों में ज्यादा होता है--ग्रामीण, गंवार, गांव के, उनमें ज्यादा होगा। आदिवासी, उनमें ज्यादा होगा। क्योंकि आप भूल ही गए हैं कि सूक्ष्म इंद्रियां होती हैं। आप तो सिर्फ बुद्धि से जी रहे हैं--श्रुत आपकी सारी युनिवर्सिटीज श्रुत-ज्ञान पर आधारित हैं। अभी कोई विश्वविद्यालय नहीं जो आपको मति ज्ञान दे। जंगल में जो आदमी है, उसको कोई बुद्धि की ट्रेनिंग तो होती नहीं; और जंगल में कोई सुविधा भी नहीं है उसके पास कि बुद्धि से ज्यादा जी सके। उसको जीना पड़ता है सूक्ष्म से। शेर हमला करे--तो हमला कर दे, तब बुद्धि काम कर सकती है कि अब क्या करना है, लेकिन हमला कर देने के बाद करने को कुछ बचता नहीं। वह जो जंगल में आदमी रह रहा है उसको इंद्रियों से ही सजग नहीं रहना पड़ता, उसको सूक्ष्म इंद्रियों से भी सजग रहना पड़ता है कि कोई शेर की आहट भी न मिल जाए। शेर हमला करे इसके पहले उसे पता होना चाहिए, तो ही बचाव हो सकता है, नहीं तो बचाव नहीं हो सकता है।

आस्ट्रेलिया में छोटा सा एक कबीला है, जिसका वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है। वह सबसे चमत्कारी कबीला है। उस कबीले का हर आदमी आपको महात्मा मालूम पड़ेगा, मगर वह कबीला बिल्कुल साधारण है। सिर्फ बहुत पुराना है; और सभ्यता से उसका संबंध नहीं है। बड़ी अजीब घटना उस कबीले में घटती है। एक वैज्ञानिक वहां ठहरा हुआ था अध्ययन करने के लिए कि क्या मामला है?

ज्यादा वैज्ञानिक अध्ययन करने जाएंगे तो ये अध्ययन कर पाएंगे कि नहीं, यह तो शक है, लेकिन उनको जरूर बिगाड़ आएंगे। क्योंकि उनमें भी शक पैदा कर आते हैं। और शक जहां आ गया, वहां अवधि से आदमी नीचे उतर जाता है। अवधि आस्था का तत्व है, भरोसे का।

उस कबीले में कोई आदमी चिट्ठी नहीं लिखता। चिट्ठी लिखना वे जानते नहीं। भाषा, लिपि उनके पास नहीं। पोस्टमैन भी नहीं है, पोस्ट-आफिस भी नहीं है। लेकिन कभी-कभी मित्रों को, प्रियजनों को खबर भेजने की जरूरत पड़ती है। तो हर उस गांव के कबीले में एक छोटा--सा पौधा होता है--गांव के बीच। उस पौधे का उपयोग करते हैं वे। अगर मां का बेटा दस मील दूर है और वह चाहती है कि जल्दी वापस आ जाए, तो वह पौधे के पास जाएगी। और वहां जाकर अपने बेटे से बात करेगी, जैसा आप फोन के पास करते हैं। वह अपने बेटे से कहेगी कि सुन, मेरी तबियत खराब है, तू जल्दी वापस आ जा, सांझ होते-होते तू वापस आ जाना। और बेटा

सांझ होते-होते वापस आ जाएगा। और बेटे से अगर आप पूछें तो वह कहेगा कि "दोपहर में मुझे मेरी मां की आवाज सुनाई पड़ी कि मां कह रही है कि जल्दी घर आ जा, मेरी तबियत खराब है।"

इसका वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है, और वैज्ञानिक चकित हुए कि यह क्या मामला है?

मामला कुछ भी नहीं है। ये लोग सीधे-साधे पशुओं जैसे लोग हैं।

मनुष्य की सूक्ष्म इंद्रियां बड़ी शक्तिशाली हैं, बड़ी दूरगामी हैं; समय और स्थान की कोई बाधा नहीं है। अगर हम इसे ऐसा समझाएं कि प्राचीन समय में भी विज्ञान विकसित हुआ था, लेकिन सारा विज्ञान सूक्ष्म इंद्रियों के आधार पर था। आधुनिक विज्ञान स्थूल इंद्रियों के आधार पर है। तो प्राचीन समय के आदमी ने भी दूर-संवाद की कला खोज ली थी। हमने भी खोज ली है, लेकिन हमारा बाह्य इंद्रियों के आधार पर है। तो हमारे पास टेलीफोन है, रेडियो है, टेलीविजन है--ये सब बाह्य इंद्रियों का विस्तार है। प्राचीन आदमी ने अंतर-इंद्रिय का विस्तार किया था, और उनके आधार पर उसने बहुत से काम कर लिए थे, जो हमारी पकड़ के बाहर हैं। जैसा कि हमारे यंत्र उनकी पकड़ के बाहर हैं।

मनुष्य की हर इंद्रिय के पीछे सूक्ष्म इंद्रिय है। आंख के पीछे एक सूक्ष्म आंख है, जो आपके भीतर छिपी है। उसे विकसित किया जा सकता है। आप थोड़े-से प्रयोग करें तो आपको ख्याल में आ जाए। और हर सौ आदमी में से कम से कम तीस आदमी आसानी से सफल हो जाएंगे। इतने लोग यहां मौजूद हैं, इनमें से अनेक लोग सफल हो जाएंगे। सौ में से तीस आदमियों की अवधि--स्थिति अभी भी बिगड़ी नहीं है।

आप एक छोटा सा प्रयोग करें। ताश के पत्ते हाथ में ले लें, आंख बंद कर लें। गड्डी में से एक पत्ता निकालें, और सोचें मत--देखें कि यह पत्ता क्या है? राजा है कि रानी, कि जोकर, कि क्या? सोचें मत, सोचने से तो बिगड़ जाएगा मामला। क्योंकि सोचने में तो आप अनुमान लगाने लगेंगे कि शायद राजा हो। तब आप दुविधा में पड़ जाएंगे, बेचैनी में। नहीं, आप सिर्फ आंख बंद करके देखें। आंख बंद करके देखें--क्या है? और सोचें मत। और जो चीज पहली दफा आए, उसका भरोसा करें, दूसरे का ध्यान मत करें। पहले आए कि जोकर, आंख खोलें और देखें।

एक दो-चार दिन प्रयोग करें। आप चकित हो जाएंगे कि आप आंख बंद करके ताश की गड्डी में से देख पाते हैं कि क्या है?

यह सिर्फ इसलिए कह रहा हूं, ताकि आपको ख्याल आ जाए कि सूक्ष्म इंद्रिय हैं। ख्याल आ जाए तो भरोसा हो जाए, भरोसा हो जाए तो काम शुरू हो जाए।

तय कर लें अपने किसी मित्र से कि रोज रात को ठीक आठ बजे, वह कलकत्ते से आपको संदेश भेजेगा; सिर्फ आंख बंद करके बैठ जाएगा और एक वाक्य का संदेश भेजेगा। और ठीक आठ बजे आप रिसेप्टिव होकर बैठ जाएंगे कि कोई संदेश आए तो उसे पकड़ लें। सोचें नहीं, जो भी वचन पहला आ जाए, वह कितना ही एब्सर्ड और व्यर्थ मालूम पड़े, उसे नोट कर लें। और एक तीन महीने इस प्रयोग को करें। आप चकित हो जाएंगे कि तीन महीने के भीतर आपकी सूक्ष्म पकड़ने की क्षमता, ग्रहण की क्षमता बढ़ गई है। और एक इंद्रिय के साथ सभी इंद्रियां इसी तरह से जुड़ी हुई हैं। आप हैरान हो जाएंगे कि इस पर काफी काम होता है।

गुरजिएफ के साथ अनेक स्त्रियों को अनुभव होता था, कि जब गुरजिएफ से वे मिलें तो उन्हें एकदम लगता था कि उनके सेक्स-सेंटर पर कोई चोट की गई। कई स्त्रियां घबड़ा जाती थीं कि यह क्या मामला है? यह आदमी कुछ शैतान मालूम होता है। लेकिन कुल मामला इतना था कि जैसे हर इंद्रिय के पीछे सूक्ष्म इंद्रिय है, वैसी जननेंद्रिय के पीछे भी सूक्ष्म इंद्रिय है। उससे चोट की जा सकती है। और गुरजिएफ सिर्फ इतना कर रहा है कि वह सूक्ष्म इंद्रियों पर काम कर रहा है। उससे चोट की जा सकती है।

कई बार अनजाने भी चोट हो जाती है, जब आपको पता भी नहीं होता। कोई स्त्री पास से गुजरती है, आप अचानक कामातुर हो जाते हैं; या कोई पुरुष पास से गुजरता है और स्त्री अचानक संकुचित हो जाती है। लगता है, कुछ हो रहा है। कोई कुछ न भी कर रहा होता, कभी अचानक भी होता है; क्योंकि अचानक कभी

सूक्ष्म इंद्रिय सक्रिय हो जाती है। वस्तुतः जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह अवधि-ज्ञान की भाषा में सूक्ष्म इंद्रियों का सक्रिय हो जाना है।

आप एक स्त्री से बिल्कुल मोहित हो जाते हैं। जब आप मोहित हो जाते हैं तो सारी दुनिया आपको पागल कहेगी। लोग कहेंगे कि, क्या देखते हो उस स्त्री में? पर उस आदमी को कुछ दिखाई पड़ रहा है, जो किसी को दिखाई नहीं पड़ रहा। उसको क्या दिखाई पड़ रहा है? उसकी कोई सूक्ष्म इंद्रिय उस स्त्री के संपर्क में सक्रिय हो जाती है। उस संघात में कोई सूक्ष्म इंद्रिय सक्रिय हो जाती है। वह उस स्त्री को, जो वह ऊपर से दिखाई पड़ती है, वैसा नहीं देख रहा है; बल्कि वह जैसी भीतर से है, वैसा आपको प्रतीत होने लगा है।

प्रेम की घटना अवधि ज्ञान की घटना है। महावीर कहते हैं, ये तीन ज्ञान सामान्य हैं। सारे चमत्कार तीसरे ज्ञान में आ जाते हैं। आप बीमार हैं और एक महात्मा के पास जाते हैं चमत्कारी! और वह कहता है, जाओ, तीन दिन में ठीक हो जाओगे।" आप सोचते हैं कि उसने तीन दिन में ठीक हो जाओगे कहा, इसलिए मैं तीन दिन में ठीक हो रहा हूं। बात बिल्कुल दूसरी है। उसकी सूक्ष्म इंद्रियां सक्रिय हैं, और वह देखता है कि तीन दिन बाद तुम ठीक होने वाले हो, इसलिए वह कहता है, तीन दिन में ठीक हो जाओगे। और जब तुम तीन दिन में ठीक हो जाते हो, तो तुम सोचते हो कि चमत्कार हो गया, उस महात्मा ने ठीक कर दिया। उस महात्मा को सिर्फ इतना बोध हुआ कि तीन दिन में तुम ठीक हो जाओगे। यह बोध आज नहीं कल, वैज्ञानिक यंत्रों से भी हो सकेगा।

रूस में ऐसे कैमरे विकसित किए जा रहे हैं, जो बीमारी कितने दिन में समाप्त हो जाएगी, इसका चित्र ले सकें। वे ठीक एक्सरे जैसे हैं। बीमारी है, इसका पता चल सके; और बीमारी कितनी देर में ठीक हो जाएगी, इसका पता चल सके; और बीमारी कितने दिन बाद शुरू होने वाली है, इसका पहले से पता चल सके--इन तीनों दिशाओं पर रूस में काफी काम हो रहा है। और सफलतापूर्वक काम हो रहा है। कोई भी बीमारी आपके जीवन में आए, उसके छह महीने पहले उसके फोटोग्राफ लिए जा सकते हैं। और अगर छह महीने पहले बीमारी का चित्र लिया जा सके, तो आने के पहले ही आपका इलाज किया जा सकता है।

जो-जो मन भीतर से कर सकता है, वह-वह विज्ञान यंत्र के सहारे से बाहर से कर सकता है।

चौथे ज्ञान को महावीर कहते हैं, "मन-पर्याय।" यहां से साधक, योगी की यात्रा शुरू होती है। "मन-पर्याय" का अर्थ है : स्वयं के मन के भीतर जो पर्याय हैं, जो रूप हैं, उनका साक्षी-दर्शन। और जब कोई व्यक्ति अपने मन की पर्यायों का साक्षी-दर्शन करने में समर्थ हो जाता है, तो वह दूसरों के मन-पर्यायों का भी साक्षी-दर्शन करने में समर्थ हो जाता है। जब कोई व्यक्ति अपने मन की पूरी पतों को देखने में समर्थ हो जाता है, तो उसको अपने पूरे पिछले जन्म दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं; क्योंकि वे सब मन की पतों में मौजूद हैं। कोई भी स्मृति खोती नहीं, सब संग्रहीत होती चली जाती है। उन सबको फिर से खोला जा सकता है, देखा जा सकता है।

मन की पर्यायों का जिसको अनुभव होने लगे आपने गाली दी, तो मन-पर्यायवाला व्यक्ति आपकी गाली की फिकर नहीं करेगा, न आपकी फिकर करेगा, वह भीतर देखेगा कि आपकी गाली से मेरे मन में कैसे रूप, कैसे फार्मस पैदा होते हैं? मेरे भीतर क्या होता है? क्योंकि असली सवाल मैं हूं, असली सवाल आप नहीं हैं। आपसे क्या लेना-देना है? आपने गाली दी, मैंने आंख बंद की और देखा कि मेरे भीतर क्या होता है?

इस साक्षी-दर्शन से धीरे-धीरे बाहर से दृष्टि भीतर की तरफ मुड़ती है; हम मन के पीछे सरकते हैं। और जो व्यक्ति मन के पीछे सरकता है, उसे आत्मा का अनुभव शुरू होता है। तो "मन-पर्याय" की अवस्था में आत्मा की पहली झलक मिलनी शुरू होती है। "मैं कौन हूं"? और तब मन ऐसा ही लगता है, जैसे आकाश में घिरे बादल हों, और मैं सूर्य हूं, जो छिप गया हूं। इन बादलों के साथ हमारा इतना तादात्म्य है कि हम भूल ही जाते हैं कि हम इनसे अलग हैं। हम इनके साथ एक हो जाते हैं।

जब आप क्रोध से भरते हैं तो आपका क्रोध अलग नहीं रहता, आप क्रोध के साथ बिल्कुल एक हो जाते हैं; आप क्रोधी हो जाते हैं। जब आप भूख से भरते हैं, तो आप भूखे हो जाते हैं। लेकिन मन-पर्यायवाला व्यक्ति जानेगा कि शरीर को भूख लगी है और मैं जान रहा हूं। यह स्पष्ट भेद होगा। आपने गाली दी है, मन उद्विग्न हो गया, मैं जान रहा हूं। मन की उद्विग्नता मेरी उद्विग्नता नहीं है; मन की बेचैनी मेरी बेचैनी नहीं है। मन एक यंत्र है। मन परेशान है, मैं परेशान नहीं हूं।

लेकिन इस मन के घेरे के बाहर उतरना बड़ा साहस है, बड़े से बड़ा साहस है; क्योंकि हमारा पूरा जीवन ही मन का जीवन है। जो भी हम जानते हैं अपने बाबत, वह मन ही है। जो व्यक्ति मन के बाहर उतरता है, उसे लगता है कि मैं मरने की अवस्था में जा रहा हूं।

ध्यान मृत्यु का प्रयोग है। ध्यान से मन-पर्याय पैदा होता है। लेकिन हम तो डरते हैं थोड़ा सा भी बाहर निकलने में, क्योंकि मन के बाहर निकलने का मतलब कि मैं खोया। मेरा सारा होना ही मन है। कभी-कभी एकाध कदम भी रखते हैं तो घबड़ा कर फिर पीछे रख लेते हैं।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के घर कुछ बदमाशों ने हमला किया। दरवाजे उन्होंने सब बंद कर दिए। मुल्ला को हाथ-पैर बांध कर खड़ा कर दिया और उसके चारों तरफ चाक से एक लकीर खींच दी, और कहा कि इस घेरे के बाहर निकले कि समझना कि हत्या हो जाएगी। इस घेरे के बाहर भर मत निकलना। उसकी पत्नी को घसीट कर दूसरे कमरे में ले गए। घंटे भर बाद वे सब--मुल्ला खड़ा था अपने घेरे में--घर छोड़ कर चले गए। पत्नी भीतर से अत्यंत दयनीय अवस्था में--कपड़े फटे हुए, खून के दाग--बाहर भागी हुई आई, और उसने नसरुद्दीन से कहा: यू मिजरेबल कावर्ड, डू यू नो वॉट दे वेअर डूइंग टु मी इन दैट रूम? क्या कर रहे थे वे लोग उस कमरे में मेरे साथ? तुम अत्यंत कायर हो।

नसरुद्दीन ने कहा: कायर, यू काल मी ए कावर्ड, एण्ड यू नो वॉट आई डिड, व्हेन दे वेअर विद यू इन दि रूम? आन श्री सेपरेट आकेजंस, आई स्टेप्ड आउट ऑफ दि सर्कल! तुम्हें पता है कि मैंने क्या किया, जब वे तुम्हारे साथ कमरे में थे? तीन अलग-अलग मौकों पर घेरे के बाहर मैंने कदम रखा, और तुम मुझे कावर्ड, मुझे कायर कहती हो।"

बस, ऐसे ही हम भी कभी-कभी मन के घेरे के बाहर जरा सा कदम रखते हैं, बड़ी बहादुरी समझते हैं, फिर भीतर खींच लेते हैं। वे आदमी तो जा चुके हैं, नसरुद्दीन अभी भी घेरे में खड़ा था। और बहादुर भी अपने को समझ लेते हैं। डर है! डर क्या था नसरुद्दीन को--कि मौत न हो जाए, कि हत्या न कर दें वे लोग?

ध्यान में भी वही डर है। और गुरु से बड़ा हत्यारा खोजना मुश्किल है। इसलिए हमने तो उपनिषदों में गुरु को मृत्यु ही कहा है। और जब कठोपनिषद में नचिकेता का बाप उससे कहता है नाराज होकर क्योंकि नचिकेता के पिता ने एक उत्सव किया है और वह दान कर रहा है। तो जैसा कि लोग दान करते हैं, मरी, मुर्दा चीजें-गाएं, जिनका कि दूध सूख चुका है, वह दान कर रहा है; घोड़े, जो अब बोझ नहीं ढो सकते; रथ, जो अब चल नहीं सकता--जैसे कि लोग दान करते हैं--दानी। जो आपके काम नहीं आता, लोग उसको दान कर देते हैं।

क्वेकर समाज में एक नियम है कि दान उसी चीज का करना जो तुम्हें सबसे ज्यादा पसंद हो, नहीं तो मत करना। नहीं तो उसका कोई मूल्य नहीं है। दान का मतलब ही है, जो तुम्हें सबसे ज्यादा प्यारी चीज हो, उसका दान करना, तो ही किसी मूल्य का है।

मैं मानता हूं कि क्वेकर की समझ जो दान के संबंध में है, वैसी समझ दुनिया में किसी धर्म में पैदा नहीं हुई। वे कहते हैं; हर सप्ताह एक चीज दान करना, लेकिन वही चीज जो तुम्हें सबसे ज्यादा प्यारी हो। तो उससे क्रान्ति घटित होगी।

हम भी दान करते हैं! वह जो कचरा-कूड़ा इकट्ठा हो जाता है, उसको हम दान कर देते हैं! और अक्सर दान की चीजें दूसरे लोग भी दूसरों को दान करते चले जाते हैं। क्योंकि किसी के काम की नहीं होती।

नचिकेता का पिता दान कर रहा है, नचिकेता पास में बैठा देख रहा है। उसे बड़ी हैरानी होती है। वह पूछता है कि "ए गाएं, जिनमें दूध नहीं है, इनसे क्या फायदा है दान करने से?" बाप नाराज होता चला जाता है।

बेटे सरल होते हैं। स्वभावतः क्योंकि अभी उनकी उम्र क्या है? अभी नचिकेता भोलाभाला है। उसे चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं। बाप समझ रहा है कि वह दान कर रहा है--उसको दिखाई पड़ रहा है, बेटे को, कि कैसा दान? यह गाय तो दूध दे ही नहीं सकती, उलटे जिसको तुम दे रहे हो उस पर बोझ हो जाएगी। उसको और घास का इंतजाम करना पड़ेगा, पानी पिलाना पड़ेगा। यह बूढ़ी गाय देने से क्या फायदा है? पर बाप उसको कहता है कि तू चुप रह, तू क्या जानता है? लेकिन उससे भी चुप रहा नहीं जाता। आखिर में वह पूछता है कि आप सभी-कुछ दान कर दोगे? बाप कहता है, हां, सभी कुछ। तो वह कहता है, मुझे किसको दान करोगे? क्योंकि मैं भी तो आपका बेटा हूं। बाप नाराजगी में कहता है कि तुझे मौत को दे दूंगा, यम को दे दूंगा।

लेकिन बड़ी मीठी कथा है कठोपनिषद में कि नचिकेता फिर मृत्यु को दे दिया जाता है। और मृत्यु से नचिकेता जीवन के गहरे से गहरे सवाल पूछता है, और जीवन की परम गुह्य साधना को लेकर वापस लौटता है। गहरा प्रतीक यह है कि बाप जब कहता है, तुझे मृत्यु को दे दूंगा, तब वह कहता है तुझे गुरु को दे दूंगा। क्योंकि गुरु का अर्थ ही मृत्यु है। गुरु से गुजर कर तू नया होकर लौट आएगा! नचिकेता नया होकर लौटता है। अमृत का तत्व सीख कर लौटता है।

हमारा डर यही है। ध्यान? समाधि? कि हम मर तो नहीं जाएंगे, मिट तो नहीं जाएंगे। हम अपने को बचा कर ध्यान करना चाहते हैं। ध्यान नहीं हो सकता। हमें अपने को छोड़ना ही पड़ेगा, तोड़ना ही पड़ेगा, हटना ही पड़ेगा। मन-पर्याय केवल उन्हीं लोगों के जीवन में उतरेगा, जो मन से दूर हट जाते हैं।

क्या करें?

मन के साथ जहां-जहां तादात्म्य हो, वहां-वहां तादात्म्य न होने दें। क्रोध उठे--पूरा प्राण आपका कहेगा कि क्रोधी हो जाओ--उस समय भीतर शांत बने रहें। क्रोध को घूमने दें चारों तरफ, दबाने की कोई जरूरत नहीं है। हाथ पैर फड़कें, फड़कने दें; मुट्टियां बंधें, बंध जाने दें। क्रोध शरीर के खून को उत्तप्त कर दे; श्वास तेज चलने लगे, चलने दें। लेकिन भीतर केंद्र पर अलग खड़े देखते रहें कि क्रोध घट रहा है मेरे शरीर और मन में, लेकिन मैं पृथक् हूं, मैं अन्य हूं, मैं अलग हूं। मैं सिर्फ देखने वाला हूं। जैसे यह किसी और को घट रहा है।

कामवासना पकड़े, ऐसे ही दूर खड़े हो जाएं, लोभ पकड़े, ऐसे ही दूर खड़े हो जाएं, विचारों का झंझावात पकड़ ले, दूर खड़े हो जाएं। रात पड़े हैं बिस्तर पर, नींद नहीं आ रही है। विचार पकड़े हुए हैं। विचारों के कारण नींद में बाधा नहीं पड़ती; आप विचारों के साथ तादात्म्य जोड़ लेते हैं, इससे बाधा पड़ती है। अब दोबारा जब ऐसा हो रात नींद न आए और विचार पकड़े हो, तब कुछ न करें, सिर्फ आंख बंद किए इतना ही अनुभव करें कि मैं अन्य हूं, ये विचार अन्य हैं। जैसे आकाश में बदलियां चल रही हैं, ऐसे मन में विचार चल रहे हैं; जैसे रास्ते पर कारें चल रही हैं, ऐसे मन में विचार चल रहे हैं, मैं अपने घर में बैठा देख रहा हूं--सिर्फ देखते रहें। थोड़ी ही देर में आप पाएंगे, विचार खो गए, आप गहरी निद्रा में प्रवेश कर गए।

ध्यान की प्रक्रिया भी यही है कि विचार से अपने को तोड़ लेना। विचार से टूटते ही व्यक्ति को "मन-पर्याय" की अवस्था शुरू हो जाती है। महावीर मन-पर्याय को चौथा ज्ञान कहते हैं। चौथा ज्ञान साधक को उपलब्ध होता है। और पांचवें ज्ञान को महावीर कहते हैं, "कैवल्य।" सिर्फ--मात्र ज्ञान, जहां कुछ भी जानने को नहीं रह जाता। क्योंकि चौथे ज्ञान में मन जानने को रहता है। मन की पर्याय जानते-जानते, साक्षी होते-होते मन की पर्याय गिर जाती हैं, रूपान्तरण गिर जाते हैं, मन खो जाता है; आकाश खाली हो जाता है। उस खालीपन में

सिर्फ सूर्य का प्रकाश रह जाता है, सिर्फ सूर्य रह जाता है। वह सिद्ध की अवस्था है--कैवल्य। ये पांच ज्ञान हैं। उस सिद्ध की अवस्था में जो जाना जाता है, वही सत्य है।

इस बात को ठीक-से समझ लें। महावीर का जोर बड़ा अनूठा है। वे कहते हैं : आप जैसे हैं, वैसी अवस्था में सत्य नहीं जाना जा सकता। इसलिए सत्य की खोज छोड़ो, अपनी अवस्था बदलो। आप जैसे हैं, इसमें तो असत्य ही जाना जा सकता है। आप असत्य को आकर्षित करते हैं।

"श्रुत" की अवस्था में असत्य ही जाना जा सकता है। "मति" की अवस्था में इंद्रिय-सत्य जाना जा सकता है-वस्तुओं का सत्य। मन "अवधि" की अवस्था में सूक्ष्म इंद्रियों का सत्य जाना जा सकता है। "मन-पर्याय" की अवस्था में, मन के जो पार है, उसकी झलक और मन के सब रूपांतरणों का सत्य जाना जा सकता है। और "कैवल्य"--शुद्ध सत्य जाना जा सकता है, जो है--अस्तित्व, मात्र अस्तित्व। उसे हम परमात्मा कहें, या जो भी नाम देना चाहें: निर्वाण कहें, मोक्ष कहें।

महावीर ने ये पांच ज्ञान कहे हैं। और मेरे जाने, किसी दूसरे व्यक्ति ने ज्ञान का इतना सूक्ष्म वैज्ञानिक विषय नहीं किया है। और इसकी कोई संभावना नहीं है कि इन पांच के अतिरिक्त छठवां ज्ञान हो सकता है। इसकी कोई संभावना नहीं है। विज्ञान तीन तक पहुंच गया है, चौथे पर चरण रख रहा है। ध्यान पर पश्चिम में बड़े प्रयोग हो रहे हैं; चौथे पर चरण रखने की कोशिश की जा रही है। आज नहीं कल, पांचवें का भी स्मरण आना शुरू हो जाएगा। महावीर इस सदी के पूरे होते-होते, मन के संबंध में बड़े से बड़े वैज्ञानिक सिद्ध हो सकते हैं।

"ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय--इस प्रकार संक्षेप में ये आठ कर्म बतलाए हैं।"

ये पांच ज्ञान और इन पांच ज्ञानों को ढंक लेने वाले; इस कैवल्य को ढंक लेने वाले, इस शुद्ध ज्ञान को ढंक लेने वाले आठ कर्मों के रूप हैं।

महावीर की पकड़ ठीक विषय, वैज्ञानिक की पकड़ है। जैसे कि कोई निदान करता है मरीज का कि क्या बीमारी है, क्या कारण है, क्या उपाय है--ऐसे एक-एक चीज का निदान करते हैं। महावीर कवि नहीं हैं। इसलिए उपनिषद में जो काव्य है, वह महावीर की भाषा में नहीं हैं। महावीर बिल्कुल शुद्ध गणित और वैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति हैं। शायद इसलिए महावीर का प्रभाव जितना पड़ना था उतना नहीं पड़ा; क्योंकि लोग गणित से कम प्रभावित होते हैं, काव्य से ज्यादा प्रभावित होते हैं, क्योंकि लोग कल्पना से ज्यादा प्रभावित होते हैं, सत्य से कम प्रभावित होते हैं। महावीर के कम प्रभाव पड़ने का एक कारण यह भी है--बुनियादी कारणों में से एक कारण। कि वे बिल्कुल गणित की तरह चलते हैं। सीधा हिसाब है।

लेकिन जिसको साधना के पथ पर जाना है, कविता काम नहीं देगी। जिसे घर में बैठकर आंखें बंद करके सपने देखने हैं, बात अलग है। लेकिन जिसे यात्रा तय करनी है, उसे तो नक्शे चाहिए साफ। खतरों का पता चाहिए--खाई खड़े कहां हैं, भटकाने वाले मार्ग कहां हैं? और क्या-क्या कारण हैं, जिनके कारण मैं संसार में खड़ा हूँ; और एक-एक कारण को कैसे अलग किया जा सके, ताकि मैं संसार के बाहर हो जाऊँ।

महावीर एक शुद्ध चिकित्सक की तरह व्यवहार कर रहे हैं, जीवन की विचारणा में। आठ, वे कहते हैं, मनुष्य की शुद्धता को रोक लेने वाले कर्म-फल हैं। इनको, एक-एक को हम ख्याल में लें, समझ में आ जाएंगे।

ज्ञान को आवृत्त करने वाला, पहला--कौन सी चीज आपके ज्ञान को आवृत्त करती है, वही "ज्ञानावरणीय" है। जो-जो चीजें आपके ज्ञान को रोकती हैं, ढांकती हैं और आपके अज्ञान को परिपुष्ट करती हैं, वे सभी ज्ञान पर आवरण हैं।

कौन सी चीजें आपके अज्ञान को परिपुष्ट करती हैं?

पहली तो बात यही कि आप अपने को अज्ञानी मानने को राजी नहीं होते। आप ज्ञानी हैं, यह आवरण हो गया--खोज बंद हो गई। यह बीमारी हो गई। यह ऐसा ही है, जैसे कि कोई बीमार आदमी कहे कि मैं स्वस्थ हूं, कौन कहता है कि मैं बीमार हूं? अगर बीमार आदमी भी इसको एक तरह का आक्रमण समझ ले कि उसको कोई बीमार कहे, तो वह लड़ने लगे कि कौन कहता है कि मैं बीमार हूं? मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं; शर्म नहीं आती मुझे बीमार कहते हुए! तो फिर उसके इलाज का कोई उपाय न रहा।

अज्ञानी यही कर रहा है। वह कहता है, "कौन कहता है, मैं अज्ञानी हूं?" अगर कोई आपकी बात को गलत सिद्ध करे, तो आप लड़ने को तैयार हो जाएंगे। गलत सिद्ध करने में क्या खतरा है? वह आपको सिद्ध कर रहा है कि आप अज्ञानी हैं, यही खतरा है।

दुनिया में लोग सत्य के लिए नहीं लड़ते--मेरी बात सच है, इसलिए लड़ते हैं। ये इतने जो संप्रदाय दिखाई पड़ते हैं, इतने अड़ें दिखाई पड़ते हैं; इनका झगड़ा कोई सत्य का झगड़ा नहीं है। सत्य के लिए क्या झगड़ा हो सकता है? झगड़ा इस बात का है कि जो मैं कहता हूं, वही सत्य है, और कोई सत्य नहीं हो सकता।

मैंने सुना है कि एक फकीर मरा--एक सूफी फकीर मरा। स्वर्ग पहुंचा, तो उसने परमात्मा से पहली प्रार्थना की, कि सबसे पहले तो मैं यह जानना चाहता हूं कि स्वर्ग का पूरा विस्तार कितना है? और मैं पूरे स्वर्ग में एक भ्रमण करना चाहता हूं, इसके पहले कि कहीं निवास बनाऊं।

परमात्मा ने कहा कि यह उचित नहीं है, नियम विपरीत है। तुम सूफी हो, तुम्हारी जगह तय है। स्वर्ग का वह हिस्सा, जहां सूफी बसते हैं, तुम वहां चले आओ।

पर उस सूफी ने जिद बांध ली। उसने कहा कि चाहे मुझे नर्क भेज दें, लेकिन इसके पहले कि मैं अपनी जगह चुनूं, मैं पूरे स्वर्ग को जितना है, देख लेना चाहता हूं।

पर परमात्मा ने कहा: जिद्द क्या यह? कोई ऐसी जिद्द नहीं करता; क्योंकि सभी मानते हैं कि उनका स्वर्ग ही बस स्वर्ग है। जैनी आते हैं, वे अपने स्वर्ग में चले जाते हैं, हिंदू आते हैं, वे अपने स्वर्ग में चले जाते हैं; मुसलमान। और सभी यही मानते हैं कि उनका स्वर्ग ही मात्र स्वर्ग है, बाकी कोई स्वर्ग है नहीं। तू कैसा आदमी है? यह बात ही ठीक नहीं, नियम विपरीत है! लेकिन तू नहीं मानता और मुझे प्यारा है, इसलिए तुझे मौका देता हूं। लेकिन किसी को बताना मत।

तो एक देवदूत साथ कर दिया गया फकीर के। और वह देवदूत उसे ले गया, उसने दिखाया मुसलमानों का स्वर्ग--करोड़ों करोड़ों मुसलमान! यहूदी, ईसाइयों के स्वर्ग--सब दिखाता चला गया। लेकिन सब जगह वह बिल्कुल फुस-फुसा फुस-फुसा कर बात करता था। आखिर में उस आदमी से--सूफी से न रहा गया, उसने कहा: यह तो ठीक है, लेकिन इतना फुस-फुसा कर क्यों बात करते हो?

उसने कहा कि इन लोगों को पता नहीं चलना चाहिए। यही केवल स्वर्ग में हैं। ये सब हर एक की यही मान्यता है कि मैं ही स्वर्ग में हूं। अगर मुसलमान को पता चल जाए कि ईसाई भी स्वर्ग में है, तो वह उदास हो जाएगा। सब मजा ही चला गया। ईसाई सब नरक में पड़े हैं। जैन को पता चल जाए कि हिंदू भी चले आ रहे हैं स्वर्ग में तो उसकी सारी भूमि खिसक जाएगी। इनका मजा ही यही है। ये जो इतने आनंदित दिखाई पड़ रहे हैं, इनका मजा ही यह है कि ये समझते हैं कि ये ही केवल स्वर्ग में हैं, बाकी सब नरक में हैं।

हर आदमी अपने सत्य को सत्य की सीमा समझता है। सोचता है, जो वह मानता है वही ठीक है। और सारी दुनिया उसको मान लेगी, उसकी चेष्टा होती है। ऐसा व्यक्ति मतवादी होता है, और ऐसा व्यक्ति सदा अज्ञान में घिरा रह जाता है।

ज्ञान की तरफ जानेवाले व्यक्ति को इस तरह के कर्म-मल को अपने आसपास इकट्ठा नहीं करना चाहिए। उसे सदा विनम्र, मुक्त, राजी होना चाहिए कि सत्य कहीं से भी आता हो, मैं खुला हूं। सत्य कहां से आता है,

इसका कोई सवाल नहीं। मैं प्यासा हूँ, पानी गंगा का है कि यमुना का, इससे कोई सवाल नहीं है-पानी चाहिए। पानी किन हाथों से आया, इसका भी कोई सवाल है?

लेकिन, कुछ नासमझ, वे आम खाने जाते हैं लेकिन गुठलियां गिन कर जीवन बिता देते हैं। आम खाने का मौका ही नहीं आ पाता, गुठलियां काफी हैं।

महावीर कहते हैं, ज्ञानावरणीय उन सारी वृत्तियों को, जो आपके ज्ञान के प्रस्फुटन में बाधा हैं : आपका अहंकार, आपका मतवाद, आपके पक्षपात, आपका यह आग्रह कि यही ठीक है।

अनाग्रह-चित्त चाहिए। इसलिए महावीर ने पूरे अनाग्रह-चित्त का दर्शन विकसित किया, जिसको वे "स्यातवाद" कहते हैं। वे कहते हैं, कोई भी चीज को ऐसा मत कहो कि यही ठीक है, क्योंकि जगत बहुत बड़ा है। और भी स्वर्ग हैं। दूसरा भी ठीक हो सकता है। विपरीत बात भी ठीक हो सकती है; क्योंकि जीवन बड़ा जटिल है। यहां एक आदमी जो भी कहता है, वह आंशिक ही होगा, पूर्ण नहीं होगा। जो भी कहा जा सकता है, वह आंशिक होगा।

इसलिए भी महावीर का प्रभाव बहुत नहीं पड़ा, क्योंकि महावीर का विचार संप्रदाय बनाने वाला विचार नहीं है। जिन्होंने बना लिया उनके पीछे, वे चमत्कारी लोग हैं। महावीर के पीछे संप्रदाय बन नहीं सकता, बनना नहीं चाहिए। क्योंकि महावीर, संप्रदाय की जो मूल भित्ति है, मैं ही ठीक हूँ, उसको तोड़ रहे हैं।

कोई संप्रदाय, जो कहे कि आप भी ठीक हैं, वह कैसे बन सकता है? मंदिर कहे कि मस्जिद भी ठीक है, कोई हर्जा नहीं, वहां भी चले गए तो चलेगा, मंदिर का धंधा टूट जाएगा। मंदिर को तो कहना ही चाहिए कि सब गलत हैं। और जितनी ताकत से मंदिर कहे कि मस्जिद गलत है, चर्च गलत और जितना सुननेवाले को भरोसा दिला दे कि सिर्फ मंदिर सही है, उसका संदेह मिटा दे, तो ही कोई आने वाला है।

ये सब दुकान की ही बात है। अगर दुकानदार कहने लगे कि जो माल मेरी दुकान पर है, वही सब दुकानों पर है; जो दाम मेरे, वही सबके, कहीं से भी ले लो, सब एक है--यह दुकान खो जाएगी। ये दुकान नहीं बच सकती। दुकानदार को कहना ही चाहिए कि माल तो सिर्फ यहीं है, बाकी सब नकल है।

महावीर अजीब दुकानदार हैं! वे कहते हैं कि दूसरा भी ठीक हो सकता है। वे किसी को गलत कहते ही नहीं। उनकी चेष्टा यही है, कहीं कोई कितना ही गलत हो, उसमें भी थोड़ा सच जरूर होगा। उस सच को चुन लो। क्योंकि कोई बिल्कुल झूठी बात टिक नहीं सकती, खड़ी नहीं हो सकती। खड़े होने के लिए थोड़ा-सा सच का सहारा चाहिए। इसलिए जब तुम किसी असत्य को भी चलते देखो, तो महावीर कहते हैं, खोज करना, क्योंकि वह चल रहा है तो उसके पीछे जरूर कहीं कुछ सत्य होगा। क्योंकि सत्य के बिना प्राण नहीं, असत्य चल नहीं सकता। असत्य को भी सत्य के ही पैर चाहिए, तो ही चल सकता है। उस सत्य को पकड़ लो, असत्य की तुम फिकर छोड़ो। असत्य पर जोर ही क्यों देते हो, तुम उस सत्य को पकड़ लो।

महावीर से कोई आकर कहता है कि निर्वाण है या नहीं? महावीर कहते हैं, है; नहीं भी है। संप्रदाय मुश्किल है। क्योंकि वह आदमी एक कोई पक्की बात ही नहीं कह रहा--कभी कुछ, कभी कुछ। यह आदमी कभी कहता "है", कभी कहता "नहीं है"। वह आदमी पूछता है, क्या मतलब आपका। या तो "है", कहो "है" या कहो, "नहीं", "नहीं है"।

संप्रदाय बनाने के लिए साफ बातें चाहिए। ऐसा नहीं कि महावीर की बातें गैर-साफ हैं। लेकिन बातें इतनी साफ हैं कि हम जैसे अंधों को उनमें सफाई नहीं दिखाई पड़ सकती। हमारी आदतें हैं बंधी हुई चीजों को देखने की। महावीर का सत्य आकाश की तरह बड़ा है,

हम आंगन की तरह छोटे-छोटे सत्य वाले लोग हैं।

तो महावीर कहते हैं कि निर्वाण है उसके लिए, जो "कैवल्य" में पहुंच गया। निर्वाण नहीं है उसके लिए, जो अभी श्रुत में पड़ा है। संसार में जो खड़ा है, उसके लिए निर्वाण नहीं है। कहां है? क्योंकि जो मेरा अनुभव नहीं है, उसके होने का क्या अर्थ है?

महावीर से कोई पूछता है, क्या संसार माया है? क्योंकि मायावादी हैं, वे कहते हैं, संसार माया है। महावीर कहते हैं, "है" भी, "नहीं" भी। क्योंकि जो संसार में खड़ा है, उसके लिए संसार माया नहीं है, और जो संसार के पार उठ गया, उसके लिए संसार माया है। वहां कुछ भी नहीं बचा, स्वप्न छूट गया। इंद्रधनुष दूर से देखे जाने पर है, पास से देखे जाने पर नहीं है।

तो महावीर कहते हैं : सभी सत्य जो हम कहते हैं, आंशिक हैं, और उनसे विपरीत भी सच हो सकता है। ऐसा व्यक्ति अपने ज्ञान के आवृत करनेवाले कर्मों को काट देता है। मताग्रह बंधन है--अनाग्रह चित्त!

महावीर बड़े अदभुत हैं। अभी महात्मा गांधी ने एक शब्द चलाया--सत्याग्रह। महावीर उसको भी राजी नहीं हैं। कहते हैं, सत्य का भी आग्रह नहीं; क्योंकि जहां आग्रह आया, वहां असत्य आ जाता है। महावीर कहते हैं--अनाग्रह।

हम तो असत्य का भी आग्रह करते हैं। क्योंकि मेरा असत्य आपके सत्य से मुझे ज्यादा प्रीतिकर मालूम पड़ता है। क्योंकि "मेरा" है। मेरे असत्य के लिए मैं लड़ूंगा, मैं कहूंगा, यही सत्य है। क्यों? इतनी लड़ाई क्या है? कारण है। अगर यह असत्य टूटता है, तो मैं टूटता हूं। इसके सहारे मैं खड़ा हूं। अगर मेरी सारी धारणाएं गलत हो जाएं, तो मैं गलत हो गया।

लेकिन जो व्यक्ति ज्ञान की खोज में चला है, वह तैयार है पूरी तरह गलत होने को। जो पूरी तरह गलत होने के लिए तैयार है, वह पूरी तरह सही हो जाएगा। उसकी यात्रा शुरू हो गई।

महावीर कहते हैं, दूसरा है दर्शन को आवृत्त करने वाला--कर्मों का जाल। आपकी आंखों पर, आपके दर्शन पर भी पर्दा है। आप जो देखते हैं उसमें आपकी व्याख्या प्रविष्ट हो जाती है। समझिए।

मैंने सुना है, अमरीका का एक करोड़पति पिकासो के चित्र को खरीद कर ले गया। लाखों रुपये पिकासो के चित्र के दाम हैं। उसने लाखों रुपये खर्च किए, पिकासो का चित्र ले गया। उसने अपने बैठकखाने में उस चित्र को लगाया। वह उस की बड़ी प्रशंसा करता था। जो भी आता, उसे दिखाता कि कितने रुपये खर्च किए, कैसा अदभुत चित्र है।

फिर एक दिन पता चला खोज बीन से कि वह पिकासो का चित्र नकली है; पिकासो का बनाया हुआ नहीं, किसी ने नकल की है। बात खत्म हो गई। वह जो सुंदर चित्र था बहुमूल्य, उसका सौंदर्य खो गया, मूल्य खो गया। वह चित्र उसने उठा कर कबाड़खाने में डाल दिया।

इस आदमी को सच में सौंदर्य दिखाई पड़ता था या सिर्फ ख्याल था? अगर इसने अपनी आंखों से चित्र का सौंदर्य देखा होता तो यह कहता, क्या फर्क पड़ता है कि किसने बनाया? चित्र सुंदर है और बैठक में रहेगा। और लाखों रुपये का है, चाहे नकल ही क्यों न की गई हो। उससे फर्क पड़ता है? यह चित्र अपने आप में सुंदर है, और जिसने नकल की है, वह पिकासो से बड़ा कलाकार है; क्योंकि पिकासो की नकल कर सका। शायद पिकासो भी अपने चित्र की नकल न कर सके। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

लेकिन चित्र उठा कर फेंक दिया गया, क्योंकि असली सवाल चित्र से नहीं था। पिकासो का है, इससे था। लेकिन कुछ महीने बाद पता चला कि वह धारणा गलत थी, चित्र पिकासो का ही है। चित्र उठा कर वापस बैठकखाने में लगा दिया गया। झाड़-पोंछ की गई उसकी फिर से, क्योंकि कचरा-कूड़ा उस पर जम गया था। और वह फिर से कहने लगा कि कैसा अदभुत चित्र है!" आपकी आंखें हैं या क्या--आप भी यही कर रहे हैं।

अगर कोई बांसुरी बजा रहा है आपको भी पता है कि ऐसे ही कोई ऐरा-गैरा बजा रहा है, तो आप कहेंगे कि क्यों सिर खा रहे हो? , और अगर आपको पता चले कि कोई महान कलाकार है, तो आप बिल्कुल रीढ़ सीधी करके बैठ जाएंगे कि क्या गजब का संगीत है!

लोग शास्त्रीय संगीत सुनते रहते हैं! उनको बिल्कुल पता नहीं कि क्या हो रहा है? लेकिन शास्त्रीय हो रहा है, तो शास्त्रीय सुनने से वे भी सुसंस्कृत मालूम होते हैं। वे भी सिर हिलाते हैं! "दर्शनावरणीय!"

आपके पास अपनी आंखें नहीं, अपने कान नहीं, अपने हाथ नहीं--एक्सपर्ट बता रहा है कि "यह कीमती है, यह सुंदर है, यह बहुमूल्य हैं!"

आपके हाथ में हीरा रख दिया जाए और बताया न जाए कि हीरा है, और कह दिया जाए कि एक चमकदार कंकड़ है, आप उसे बच्चों को खेलने को दे देंगे। और एक दिन आपको पता चले कि एक्सपर्ट्स कह रहे हैं कि "कोहिनूर है"--छीन लेंगे बच्चे से, तिजोड़ी में बंद करके रख लेंगे।

आपके पास अपनी कोई भी प्रतीति नहीं है; आपका दर्शन विशुद्ध नहीं है--अशुद्ध है, उधार है। आंखें अपनी और आंखों पर पर्दे किन्हीं और के हैं। सब चीजें ऐसी हैं। सब चीजें ही ऐसी हैं! मैं रोज देखता हूं। आप रोज अनुभव करते होंगे, चारों तरफ यह घट रहा है।

मैं एक मित्र को एक मूर्ति दिखाने ले गया। मूर्ति महावीर की है, लेकिन कुछ अनअर्थार्थाडाक्स है। जैसी होनी चाहिए महावीर की, वैसी नहीं है, कुछ भिन्न है। तो वे खड़े रहे। मैंने कहा कि झुको, नमस्कार करो। उन्होंने कहा: क्या झुकने का है? मैंने कहा: जरा नीचे देखो गौर से, महावीर का चिह्न बना हुआ है। नीचे गौर से देखा, साष्टांग सिर रख कर लेट गए!

आखिर आपके भीतर से अपना कुछ उदभावन होता है या नहीं होता? सब दूसरों से संचालित है?

तो जिसकी दृष्टि अपनी नहीं है, निज की नहीं है, उसको महावीर कहते हैं, उसके दर्शन पर आवरण है।

अपनी आंखें खोजें। और अगर आपको एक पत्थर प्रीतिकर लगता हो, तो हीरे की तरह उसे अपनी तिजोड़ी में सम्हाल कर रखें, और अगर एक हीरा आपको साधारण लगता हो तो कचरे में फेंक दें!

इतनी हिम्मत चाहिए। इतनी हिम्मत न हो तो आदमी कभी भी दर्शन की क्षमता को उपलब्ध नहीं होता। और जिसके पास आंख अपनी नहीं है, वह क्या अपने परमात्मा को खोज सकेगा! कोई उपाय नहीं है।

निजता मूल्यवान है।

तीसरी कर्म की एक प्रक्रिया है जो हमें चारों तरफ से घेरे है, उसे महावीर "वेदनीय" कहते हैं। दुख के परमाणु हमारे चारों तरफ हैं। उनके कारण हम निरंतर दुखी होते रहते हैं। कुछ लोग, आप जानते होंगे--कुछ क्या, अधिक लोग, जिनको आप सुखी कर ही नहीं सकते। आप कुछ भी करें, वे उसमें से दुख निकाल लेंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन हर साल रोता था कि फसल खराब गई, फसल खराब गई, इस साल वर्षा आ गई, इस साल ज्यादा धूप हो गई, इस साल जानवर चर गए, इस साल पक्षी आ गए। लेकिन, एक साल ऐसा हुआ अनहोना कि न पक्षी आए, न कीड़े लगे, न ज्यादा धूप पड़ी, न ज्यादा वर्षा हुई, न कम वर्षा हुई। फसल ऐसी अदभुत हुई कि लोग कहने लगे कि हजारों वर्ष में ऐसा शायद ही हुआ हो। बूढ़े से बूढ़े गांव के लोग कहने लगे, बड़ी अदभुत फसल हुई, कुछ भी सड़ा नहीं, कुछ भी गला नहीं, कुछ भी खराब नहीं हुआ। लेकिन मुल्ला है कि अपने दरवाजे पर सिर लटकाए दुखी बैठा है। उसके पड़ोस के लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, अब तो खुश हो जाओ, अब तो कुछ भी उदासी का कारण नहीं है। उसने कहा कि कारण क्यों नहीं है, कुछ भी सड़ा-गला नहीं है, जानवरों को क्या खिलाएंगे?

"वेदनीय"--दुख खोज ही लेंगे! ऐसा हो ही नहीं सकता कि कहीं दुख न हो।

हम सबके पास जन्मों-जन्मों से ऐसे वेदनीय परमाणु हैं, जो हमें उकसाते हैं कि खोजो दुख, दुख खोजो। और ऐसा असंभव है कि आदमी को कहीं खोजने से दुख न मिल जाए। जीवन में दुख हैं-काफी हैं, और आप खोजने को उत्सुक हैं, तब तो कहना ही क्या!

हमारी हालत वैसी ही है, जैसे कभी आपको होता होगा कि पैर में चोट लग गई, तो फिर दिन भर उसी में चोट लगती है। आप सोचते होंगे, कैसा अजीब मामला है, दुनिया का नियम कैसा बेहूदा है कि जब चोट नहीं थी तो इसमें चोट नहीं लगती थी, अब चोट लगी है, एक घाव है, तो दिन भर चोट लग रही है?

आप गलती में हैं। दुनिया आपके घाव की कोई फिकर नहीं करती। और न दरवाजे को कोई मतलब है कि आपके घाव में लगे; न कुर्सी को मतलब है, न टेबल को मतलब है। न बच्चे को मतलब है कि आपके घाव पर खड़ा हो जाए। किसी को कोई मतलब नहीं है आपके घाव से। लेकिन जब आपके पास घाव होता है, तो वेदनीय कर्म आपके घाव के आसपास होते हैं। सारे दुख तब हर चीज छूती है, और बहुत दुखद मालूम होती है। कल भी हर चीज छूती थी, लेकिन आपके पास दुख को पकड़ने की क्षमता नहीं थी, घाव नहीं था। कल भी लड़के ने पैर वहीं रख दिया था, लेकिन कुछ पता नहीं चला था। आज भी वहीं रख दिया है, लेकिन आज पता चलता है; क्योंकि आज घाव है।

ध्यान रहे, आपके दुख कोई आपको दे नहीं रहा है, आप ले रहे हैं। दुनिया में कोई किसी को दुख दे नहीं सकता। यह हमें कठिन लगेगा। इससे उलटा समझ लें तो आसानी हो जाएगी। क्या दुनिया में कोई किसी को सुख दे सकता है? पत्नी पति को सुख देने की कोशिश कर रही है, पति पत्नी को सुख देने की कोशिश कर रहा है। और दोनों दुखी हैं, नरक में मरे जा रहे हैं। कोई किसी को सुख नहीं दे सकता है तो कोई किसी को दुख भी कैसे दे सकता है?

मां-बाप कोशिश कर रहे हैं बेटे को सुख देने की, और बेटा सोच रहा है : कब इनसे छुटकारा हो, कैसे छूटें इनके जाल से। क्या मामला है?

कोई किसी को सुख दे नहीं सकता, न कोई किसी को दुख दे सकता है। इस जगत में दुख लिया जा सकता है, सुख लिया जा सकता है-दिया नहीं जा सकता। यह एक मौलिक सिद्धांत है, आधारभूत। इसलिए अगर आप दुख में जी रहे हों, तो समझना कि आप दुख लेने में बड़े कुशल हैं। उस कुशलता का नाम वेदनीय कर्म है।

आप कुशल हैं: आप सदा दुख लेने को उत्सुक हैं। एक आदमी आपकी दिनभर सेवा करे, आपको ख्याल भी नहीं आएगा। और जरा आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर दे कि बस, सब नष्ट हो गया। एक पत्नी आपकी जीवन भर सेवा करती रहे, पैर दबाती रहे, कुछ पता नहीं चलता। कोई ख्याल भी नहीं, धन्यवाद भी आप कभी नहीं देते। और एक दिन कह दे कि नहीं, आज चाय मुझे नहीं बनानी, आप बना लें, सब जीवन नष्ट हो गया, सब गृहस्थी बर्बाद हो गई। मन में तलाक के विचार आने लगते हैं।

नसरुद्दीन खड़ा था अदालत में जाकर और कह रहा था कि अब बस हो गया, अब बहुत हो गया, अब तो तलाक चाहिए। उससे मजिस्ट्रेट ने पूछा कि बात क्या है? नसरुद्दीन ने कहा कि बात हृद से ज्यादा आगे बढ़ गई है। एक ही कमरा है रहने का और उसमें पत्नी ने तीन बकरियां पाल रखी हैं। इतनी गंदगी हो रही है और इतनी बास आ रही है कि अब मर जाएंगे, या फिर तलाक। इन दोनों के अतिरिक्त अब और कोई उपाय नहीं है। जज ने कहा कि बात तो समझ में आती है; हालत तो बुरी है, लेकिन खिड़कियां क्यों नहीं खोल देते कि बास जरा बाहर निकल जाए। नसरुद्दीन ने कहा: क्या कहा, खिड़कियां? और मेरे पांच सौ कबूतर उड़ जाएं!

खिड़कियां खोल नहीं सकते, क्योंकि पांच सौ कबूतर खुद रखे हुए हैं--वेदनीय-कर्म! आदमी दुख को खोज रहा है। नहीं मिलता, तो भी तकलीफ होती है। अगर दिन भर कोई न मिले जो आपको क्रोध दिलाए, तो भी

ऐसा लगता है कि कुछ खाली-खाली गया। कोई न मिले, जो आपको दुख दे, तो भी ऐसा लगता है कि आज कुछ हुआ नहीं। सब बेरौनक मालूम पड़ता है। आदमी सुख भी झेल नहीं सकता, उसमें भी दुख बना लेगा!

आपके जीवन में जो घटता है, वह आपकी ग्राहकता है। महावीर का जोर इस बात पर है कि आपके पास वेदनीय कर्म हैं। आपने जन्मों-जन्मों में दुख पाया है, इकट्ठा किया है, उसके कारण आप दुखी होते चले जाते हैं। इस सिलसिले को तोड़ें। यह तभी टूटेगा, जब आप दूसरे को जिम्मा देना बंद कर दें। यह कहना बंद कर दें कि दूसरा मुझे दुख दे रहा है। यह तभी टूटेगा, जब आप समझेंगे कि मैं दुख चुन रहा हूँ। तो जब भी आप दुखी हों, तत्काल निरीक्षण करें कि आपने कैसे चुना, दुख कैसे चुना? और उस चुनाव को बंद करें। धीरे-धीरे चुनाव बंद होता जाएगा, सेतु टूट जाएंगे। और तब आप दूसरी प्रक्रिया भी सीख सकते हैं, कि सुख चुनें।

जो आदमी दुख छोड़ने की प्रक्रिया सीख जाता है, वह सुख चुनने लगता है। वह गलत से गलत स्थिति में से भी सुख को निचोड़ लेगा। उसी को जीवन की कला आती है, वही जीवन का रस पी पाता है। वही जीवन को भोग पाता है, उसमें से सुख चुन लेता है गलत से गलत स्थिति में से भी सुख चुन लेता है।

मेरे एक मित्र बीमार पड़े थे--बड़े परेशान। मैंने उनको कहा कि अच्छा ही हुआ कि महीने भर के लिए फुरसत मिली! वैसे तो शायद फुरसत कभी मिलती नहीं। परमात्मा की अनुकंपा है कि उसने बीमार किया, कि तुम बिस्तर पर पड़े हो! अब बिस्तर का आनंद लो! अब क्यों परेशान हो रहे हो? जा सकते नहीं दुकान पर, उठ सकते नहीं, कुछ कर सकते नहीं। और काफी कर लिया, पचास साल से कर ही रहे हो, कुछ पाया भी नहीं। एक महीना बिस्तर में पड़े रहो शांति से तो क्या हर्ज है? लोग इसी की तो आशा रखते हैं मोक्ष में कि पड़े हैं, कोई काम नहीं, कोई झंझट नहीं! मोक्ष नहीं चाहिए? महीना भर के लिए मिला है, कंप्लसरी मिला है--लो! कुछ पढ़ो, कुछ संगीत सुनो, कुछ ध्यान करो। बहुत से काम आपा-धापी में नहीं कर पाए हो, छूट गए हैं। फिजूल काम हैं--बच्चों से बात करनी हैं, पत्नी के पास बैठ जाना है। कुछ करो, आनंद लो इतने दिन का--एक महीना मिल गया है अवकाश का!

वह बोले कि नहीं, अभी कहां अवकाश। अभी बड़े काम उलझे हैं। पर मैं उनको कह रहा हूँ कि काम उलझे हैं, तो उलझे हैं, तुम जा सकते नहीं, कोई उपाय है नहीं। मगर वे पड़े हैं अपने बिस्तर पर और दुकान की चिंता खींच रही है, आफिस की चिंता खींच रही है!

अगर आपको कोई अनिवार्य रूप से भी मोक्ष भेज दे, आप वापस आ जाएंगे--"काम बहुत बाकी हैं, अभी हम जा नहीं सकते!"

चौथे कर्म को महावीर कहते हैं, "मोहनीय कर्म।" जब आप किसी से आकर्षित होते हैं, तो आपकी धारणा होती है कि आकर्षण का विषय आपको आकर्षित कर रहा है। महावीर कहते हैं, नहीं। सारे जीवन की प्रक्रिया आपसे पैदा होती है। आप आकर्षित हो रहे हैं, कोई आकर्षित कर नहीं रहा है।

कहा जाता है कि लैला कुरूप थी, सुंदर नहीं थी, और मजनू आकर्षित था। कहा जाता है कि गांव में सबसे कुरूप लड़की लैला थी और मजनू दीवाने थे। मजनू की दीवानगी इतनी ज्यादा थी कि अब जब भी कोई दीवाना होता है, तो लोग उसको मजनू कहते हैं। सम्राट ने बुलाया मजनू को और कहा कि तेरी दीनता, तेरा दुख, तेरा रुदन देख कर दया आती है। पागल, उस लड़की में कुछ भी नहीं है, तू नाहक परेशान हो रहा है। और तुझ पर मुझे इतनी दया आने लगी है कि रात तुझे रोता हुआ निकलता देखता हूँ सड़कों से चिल्लाता--लैला, लैला, कि मैंने गांव की सब सुंदर लड़कियां बुलाई हैं। लड़कियां खड़ी हैं, इनमें से तू चुन ले। मजनू ने कहा: लैला तो इनमें कहीं भी नहीं है। सम्राट ने कहा: लैला बिल्कुल साधारण है। तो मजनू ने कहा: लेकिन आप कैसे पहचानेंगे? लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। वह असाधारण है। निश्चित ही, मजनू के लिए लैला असाधारण है। लैला का सवाल नहीं है, मजनू की आंख का सवाल है। आपको क्या चीज आकर्षित करती है, उसका सवाल है।

एक दिन नसरुद्दीन निकल रहा है सड़क से। पत्नी जरा पीछे रह गई। नसरुद्दीन ने सड़क से झुक कर कुछ उठाया, फिर क्रोध से फेंका। पत्नी तब तक पास आ गई थी। नसरुद्दीन ने कहा कि अगर यह आदमी मुझे मिल जाए, तो इसकी गर्दन उतार लूं। तो उसकी पत्नी ने पूछा: मामला क्या है? कौन आदमी? यहां तो कोई है नहीं! उसने कहा: वह आदमी जो इस तरह थूकता है, जैसी अठन्नी मालूम पड़े अगर मुझे मिल जाए, तो उसकी गर्दन उतार लूं!

अठन्नी से कुछ लेना-देना नहीं है। अपना ही "मोहनीय-कर्म" आपके भीतर का आकर्षण, मोह, लोभ--वह आपको पकड़े हुए है।

पांचवें को महावीर कहते हैं, "आयु।" महावीर कहते हैं, आयु जो उपलब्ध होती है, वह कर्मों के अनुसार उपलब्ध होती है। इसलिए उसे कम-ज्यादा करने की चेष्टा व्यर्थ है। और उसे ज्यादा करने की जो चेष्टा करता है, उससे उसकी उम्र ज्यादा नहीं हो पाती, नया जन्म निर्मित होता है।

महावीर कहते हैं, हर आदमी अपने कर्मों के अनुसार उम्र लेकर पैदा होता है। एक आदमी को सत्तर साल जीना है, लेकिन कोई आदमी सत्तर साल जीना नहीं चाहता। सात सौ साल भी कम मालूम पड़ते हैं। सात हजार साल भी कोई कहे, तो भी आप कहेंगे : "क्या कुछ और नहीं बढ़ सकती?" यह जो बढ़ने की आकांक्षा है, इससे उम्र नहीं बढ़ती, महावीर कहते हैं, लेकिन नया जन्म बढ़ जाता है। यह शरीर तो सत्तर साल में गिरेगा, लेकिन अगर आप सात सौ साल जीना चाहते हैं, तो आपको और पंद्रह-बीस जन्म लेने पड़ेंगे। क्योंकि आपकी वासना आपको जन्म दिलाती है।

आयु कर्म से उपलब्ध होती है। इसलिए आयु जितनी हो, उसकी स्वीकृति चाहिए, तो नये जन्म की दौड़ बंद हो जाती है। महावीर कहते हैं, न तो फिकर करनी चाहिए कि ज्यादा जियूं, न फिकर करनी चाहिए कि कम जीऊं। दोनों हालत में गलती हो रही है।

कुछ लोग जीवन से उदास हो जाते हैं। घर जल जाए, बैंक डूब जाए, या दिवाला निकल जाए--कुछ हो जाए तो वे कहते हैं, "मर जाएंगे।" वे अपनी उम्र कम करना चाहते हैं। लेकिन कर्मों से जितनी उम्र मिली है, वह भोगनी ही पड़ेगी। अगर किसी आदमी को सत्तर साल जीना हो और वह चालीस में मर जाए, तो वह जो बीस सालों का कर्म बाकी रह जाएगा, वह उसे नये जन्म में ले जाएगा। किसी आदमी को सत्तर साल जीना है, और सात सौ की कामना रखता है, तो वह कामना उसे अगले जन्मों में ले जाएगी।

महावीर कहते हैं कि आयु मिलती है पिछले जन्मों के कर्मों से। इसलिए जितनी आयु मिली है, उसको उतना स्वीकार कर लेना चाहिए। न अपने मरने की चेष्टा करनी चाहिए, और न जिलाने की। साक्षीभाव से जितनी है, वह हमारा पिछला ऋण है--चुका जाए। और सब शांत हो जाए। जीवेषणा अगर बनी रहे, तो आदमी को खींचती चली जाती है। उस जीवेषणा के कारण अनंत भव का भटकाव हो जाता है।

यह जो आयु है, यह आपके हाथ में नहीं है, यह आपके पिछले कर्मों पर निर्भर है। यह बात बहुत दूर तक सही है, वैज्ञानिक रूप से भी सही है। हालांकि वैज्ञानिक राजी नहीं होंगे इस बात से। वे कहेंगे अगर हम आदमी को ठीक सुविधा दें, स्वस्थ रखने की व्यवस्था दें, इलाज दें, तो वह सत्तर साल जी सकता है। और उसको खाने-पीने न दें, इलाज न दें, तो चालीस साल में मर सकता है। महावीर कहते हैं, चालीस साल में वह मर सकता है, चालीस साल क्या, चार दिन में मर सकता है, अगर गोली मार दें, जहर दे दें, लेकिन इससे उसका आयु-कर्म कम नहीं किया जा सकता। वह नये जन्म में उतने आयु-कर्म को पूरा करेगा। उससे फर्क नहीं पड़ता है। वह जो उसका कर्म है, जितना उसने इकट्ठा किया है; जीने की जितनी वासना उसने इकट्ठी की है, उतनी वासना उसे पूरी करनी पड़ेगी। वह मोमेंटम है, वह पूरा करना पड़ेगा।

महावीर कहते हैं कि जीवन चलता है कार्य-कारण के नियम से। यहां जो भी इकट्ठा हो गया है, उसका प्रतिफल पूरा करना होगा। इसलिए उसे सहज स्वीकृति से जो जी लेता है, वह मुक्त हो जाता है।

"नाम"--महावीर कहते हैं कि नाम, अहंकार, यश, पद, कुल, प्रतिष्ठा ये सब भी कर्म हैं। एक आदमी ब्राह्मण के घर पैदा होता है, अच्छे घर में पैदा होता है, जहां ज्ञान का वातावरण है, शुभ मौजूद है। वह वहां इसलिए पैदा होता है कि पिछले जन्मों में, महावीर कहते हैं, वह विनम्र रहा होगा, शांत रहा होगा। लेकिन ब्राह्मण का बेटा होकर वह अकड़ जाता है कि मैं ब्राह्मण हूं, शूद्र से ऊंचा हूं--अब वह ऐसा इंतजाम कर रहा है कि अगले जन्म में शूद्र हो जाए।

नाम, कुल, आकार--मूर्त पर जोर न दें, अमूर्त को ध्यान में रखें तो कर्म कटते हैं। मूर्त पर बहुत जोर दें तो कर्म बढ़ते हैं। तो महावीर कहते हैं कि कुल की, नाम की, पद की, प्रतिष्ठा की चर्चा ही उठानी उचित नहीं है। इसलिए महावीर किसी से भी नहीं पूछते, जब उनके पास कोई दीक्षा लेने आता है, संन्यस्त होता है तो वे उससे नहीं पूछते : तू जाति से क्या है? कुल से क्या है? तेरा नाम क्या है? धन कितना था परिवार में? कुलीन घर से आता है कि अकुलीन घर से आता है? नहीं, उसके मूर्त जीवन के संबंध में वे कुछ भी नहीं पूछते। झांकते हैं उसके अमूर्त जीवन में।

तो आप अपने आसपास जो आकार हैं, उस पर जोर न दें; क्योंकि आकार पर जोर देंगे तो आकार निर्मित होते चले जाएंगे। निराकार जो भीतर छिपा है, उस पर जोर दें। वह, आकारों की जो प्रक्रिया है, उसको काटने का उपाय है।

"गोत्र"--गोत्र से महावीर का अर्थ है, वैषम्य का भाव कि मैं ऊंचा हूं, तुम नीचे हो। महावीर ने ऊंच-नीच के भाव को तोड़ने की बड़ी चेष्टा की, क्योंकि वे कहते हैं कि यह बहुत सूक्ष्म है अहंकार कि "मैं ऊंचा हूं।"

लेकिन उस धारणा में हम सभी जीते हैं। आपको कोई ऊंचा लगता है, कोई नीचा लगता है; किसी को आप देखते हैं कि वह नीचे है, किसी को आप देखते हैं कि वह ऊपर है। और खुद को ऊपर होना चाहिए, इसकी चेष्टा में लगे रहे हैं, महावीर कहते हैं जो खुद ऊपर होने की चेष्टा में लगा है, प्रतिस्पर्धा में लगा है, वह अपने ही हाथों नीचे डूबता जा रहा है। जो बिल्कुल सहज खड़ा हो जाता है और ऊंचे-नीचे के भाव को छोड़ देता है, गोत्र का भाव छोड़ देता है, वही केवल इस चक्कर से मुक्त हो पाता है।

लेकिन, आसान है अपने को ऊंचा समझना। इससे उल्टा भी आसान है, अपने को नीचा समझना भी आसान है।

एडलर ने पश्चिम में खोज की है कि मनुष्य में दो वृत्तियां हैं, एक सुपिरियारिटी काम्पलेक्स और इनफिरियारिटी काम्पलेक्स--एक ऊंचे की भावना और एक नीचे की भावना। इन दोनों में से कोई भी आप पकड़ लेंगे। या तो अपने को ऊंचा समझेंगे या अपने को नीचा समझेंगे। कुछ लोग सदा अपने को ऊंचा समझते रहते हैं, कुछ लोग सदा अपने को नीचा समझते रहते हैं। इसी वजह से वे डरे रहते हैं, सिकुड़े रहते हैं, हमेशा भयभीत रहते हैं।

महावीर कहते हैं, दोनों ही कर्म-फल हैं, दोनों भाव छोड़ दें। सिर्फ जानें अपने को कि मैं हूं--न ऊंचा, न नीचा। किसी तुलना में अपने को न रखें, और किसी से अपने को तौलें भी नहीं, क्योंकि किसी से तौलने की जरूरत नहीं है, कम्पेरिजन का कोई सवाल नहीं है। आप आप हैं, और आप जैसा कोई भी नहीं जगत में। इसलिए तौलने का कोई उपाय नहीं है, तौल तो वहां हो सकती है, जहां आप जैसा कोई और हो।

तो कोई आपसे नीचा भी नहीं हो सकता, ऊंचा भी नहीं हो सकता। आप कह सकते हैं क्या, कि आम जो है, इमली से नीचा है? वैसा कहना पागलपन की बात है। हां, आप यह कह सकते हैं कि यह राजा आम है, ये साधारण आम से ऊंचा है। दो आमों में तुलना हो सकती है, एक आम और एक इमली में तुलना नहीं हो सकती।

महावीर कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय परमात्मा है--यूनीक, बेजोड़ा। उसकी कोई तुलना नहीं है। इसलिए महावीर ने जब वर्ण का विरोध किया तो वह कोई सामाजिक क्रांति नहीं थी, वह आध्यात्मिक विचारणा थी। गांधी भी विरोध करते थे वर्ण का, केशवचंद्र सेन भी विरोध करते थे, राममोहन राय भी विरोध करते थे, लेकिन उनका विरोध सामाजिक धारणा थी। महावीर का विरोध बहुत आंतरिक और गहरा है। वे यह कह रहे हैं कि हर मनुष्य अद्वितीय है, कि तुलना का कोई उपाय नहीं है। और जब आप अपने को तौलते हैं, तो नाहक ही अपने को कर्म के जाल में डालते हैं। न तो अपने को ऊंचा, न तो अपने को नीचा--दूसरे से तौलें ही मत, तो गौत्र का कर्म नष्ट होता है।

और अंतिम आठवां है, "अंतराय।" अंतराय बड़ा काम कर रहा है आपके जीवन में।

एक मित्र मेरे पास आए, कहने लगे कि आप इम्पाला में क्यों चलते हैं? मैंने कहा: किसी भक्त ने अभी तक राल्स रायस दी ही नहीं, और तो कोई कारण नहीं है इम्पाला में चलने का। उन्होंने कहा कि नहीं, और तो आपकी बात सब मुझे समझ में आती है, बस ये इम्पाला में चलना!

अब यह "अंतराय" हो गया। इम्पाला में आपको चलने को कह नहीं रहा, इम्पाला आपको मिल जाए तो मत चलना! मेरे इम्पाला में चलने से उनको!

मेरी सब बात ठीक लगती है, लेकिन इम्पाला की वजह से सब गड़बड़ हुआ जा रहा है। इम्पाला अंतराय बन रही है। अंतराय का मतलब बीच में व्यवधान बन रही है, और ऐसा नहीं कि इम्पाला ही बनती रही है, अजीब-अजीब चीजें बन जाती हैं।

मैं जबलपुर था, तो एक वकील हाईकोर्ट के, बड़े वकील, एक दिन मुझसे मिलने आए, और आकर उन्होंने कहा कि "और सब तो ठीक है, आपकी बात सब समझ में आती है, लेकिन आप इतनी लंबी बांह का कुर्ता क्यों पहनते हैं?"

मेरा कुर्ता आपको? मेरी बांह है!

तो उन्होंने कहा कि इससे मुझे बड़ी अड़चन होती है। आपको मैं सुनने भी आता हूं, तो मेरा ध्यान आपके कुर्ता पर ही लगा रहता है कि आप इतना लम्बा कुर्ता क्यों पहनते हैं? कई दफा तो मैं आपका सुनना ही चूक जाता हूं।

अंतराय का अर्थ होता है : कोई व्यर्थ की चीज जो सार्थक में बाधा बन जाए। और आप सब इस तरह ही जीते हैं। जीवन को जिन्हें खोजना है, उन्हें अंतराय तोड़ने चाहिए। उन्हें जो ठीक लगे, उतना चुन लेना चाहिए; जो गलत लगे, उसकी बात ही क्या उठानी? उससे आपका लेना-देना क्या है? उससे आपको प्रयोजन क्या है?

एक मित्र मेरे पास आए। किसी सदगुरु के पास हैं। और निश्चित ही, जिस गुरु के पास हैं, वह कीमती आदमी हैं। वे कहने लगे, बस एक बात सब खराब कर देती है। वे कभी-कभी गाली दे देते हैं। ज्ञानी को गाली तो नहीं देना चाहिए?

मैंने कहा कि तुम्हें क्या पता कि ज्ञानी को गाली देनी चाहिए कि नहीं? सब ज्ञानियों का हिसाब लगाओ, फिर पता लगाओ कि कितने ज्ञानियों ने दी है गाली, कितनों ने नहीं दी। रामकृष्ण देते थे। किताब में नहीं लिखा है, क्योंकि किताब में लिखना मुश्किल मालूम पड़ता है। ठीक से गाली देते थे, अच्छी तरह देते थे! लेकिन किताब में यह बात नहीं लिखी है, क्योंकि किताब में कौन लिखे?

कहने लगे, रामकृष्ण गाली देते थे? हद हो गई! मैं तो उनकी किताबें अब तक पढ़ता रहा!

अंतराय खड़ा हो गया। अब वह देते थे कि नहीं देते थे, यह भी सवाल नहीं है! अभी तक किताब बड़े मजे से पढ़ रहे थे!

उनकी गाली से तुम्हें क्या लेना-देना? रामकृष्ण गाली देकर नरक जाएंगे तो वह जाएंगे। इम्पाला में बैठ कर कोई नरक जाएगा तो वह जाएगा। इससे तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम अपने जीवन की चिंता करो!

तुम्हें वह चुन लेना चाहिए जो तुम्हारे लिए सार्थक मालूम पड़ता है। लेकिन बड़े अंतराय भीतर हैं। अब ध्यान रहे, जो आदमी कहता है, इम्पाला परेशान कर रही है, वह जरूर इम्पाला में बैठना चाहता होगा। और तो परेशानी का कोई कारण नहीं हो सकता। कहीं न कहीं भीतर कोई रस इम्पाला में बैठने का अवश्य मौजूद होगा। उसे रस मेरी बात से ज्यादा गाड़ी में हो, तो समझ में आता है कि मामला क्या है? लेकिन उसे यह दिखाई नहीं पड़ेगा कि उसका रस उसे बाधा दे रहा है, उसे दिखाई पड़ेगा कि मेरा बैठना बाधा दे रहा है।"

मैंने उस वकील को कहा कि ऐसा करें, आपके मन में कोई वासना लम्बी बांह का कुर्ता पहनने की है, उसे पूरा कर लें। उन्होंने कहा कि क्या बात करते हैं आप? कभी नहीं! मैंने कहा कि आप इतने जोश में आते हैं, इतने जोर से इनकार करते हैं, उसका मतलब ही यह होता है कि है। नहीं तो इतने जोश में आने की क्या बात है? हंस भी सकते थे। आपके मन में कोई वासना है, लेकिन उसे पूरा करने की हिम्मत नहीं है।

वे थोड़े चिंतित हुए, हलके हुए। कहने लगे, हो सकता है, क्योंकि मेरे बाप मुझे कुर्ता नहीं पहनने देते थे। बाप भी वकील थे, वे कहते थे कि टाई बांधो। आपने शायद ठीक नब्ज पकड़ ली है। मेरे बाप ने मुझे कभी कुर्ता नहीं पहनने दिया। फिर हाईकोर्ट का वकील हो गया तो हाईकोर्ट के ढंग से जाना चाहिए, नियम से जाना चाहिए। शायद कुर्ता पहनने की कोई वासना भीतर रह गई है।

तो मैंने कहा कि तुम उसकी फिकर करो। मेरे कुर्ते से तुम्हें क्यों?

तुम्हें मेरा कुर्ता चाहिए तो ले जाओ। और क्या कर सकता हूं?

आदमी हमेशा बाहर सोचता रहता है, लेकिन सब सोचने के मूल कारण भीतर होते हैं। ये अंतराय बड़ा कष्ट देते हैं बड़ा कष्ट देते हैं, जिनसे कोई प्रयोजन नहीं है।

अब एक मित्र अफ्रीका से आए। वह कहने लगे कि वहां एक महात्मा आए थे। और तो सब ठीक था, लेकिन बीच में बोलते-बोलते वह कान खुजलाते थे।

तुम्हें क्या मतलब उनके कान खुजलाने से?

नहीं, जरा शिष्टाचारपूर्ण मालूम नहीं होता। अब अगर इस व्यक्ति का मनोविक्षेपण किया जाए तो कान खुजलाने से कहीं न कहीं कोई दबी बात पकड़ में आ जाएगी। कहीं कोई अड़चन इसे होनी चाहिए।

अब यह महात्मा पर छोड़ो! महात्मा को कम से कम इतनी स्वतंत्रता तो दो कि अपना कान खुजलाए तो कोई बाधा न दे! मगर वह भी नहीं, वह भी नहीं कर सकते आप।

अंतराय से महावीर का अभिप्राय है, जिन व्यर्थ की बातों के कारण सार्थक तक पहुंचने में बाधा आ जाती है।

ये आठ कर्म हैं। और इन आठ के प्रति जो सचेत होकर इनका त्याग करने लगता है, वह धीरे-धीरे केवल-ज्ञान की तरफ उठने लगता है।

महावीर के पास अनेक लोग इसलिए आने से रुक गए कि वे नग्न थे। वह अंतराय हो गया। मेरे शिविर में कई लोग आने से घबड़ाते हैं कि वहां कोई नग्न हो जाता है।

कोई नग्न होता है! आपको करे तो दिक्कत भी है। होनी तो तब भी नहीं चाहिए; क्योंकि कपड़ा ही तो छुड़ा कर ले गया। लेकिन कोई आपको करे तो भी आपकी स्वतंत्रता पर बाधा है, कोई खुद अपने कपड़े उतार कर रखे तो भी आपको बेचैनी होती है।

जरूर नग्नता के साथ आपका कोई आंतरिक उपद्रव है। या तो आप नग्न होना चाहते हैं और हो नहीं पाते, और या फिर दूसरों को नग्न देख कर आपके मन में कुछ बातें उठती हैं, जो आप चाहते हैं न उठें, लेकिन आंतरिक घटना ही है पीछे कारण।

एक नग्न स्त्री जा रही हो, तो आपको बेचैनी इसलिए नहीं होती है कि वह नग्न है, बेचैनी इसलिए होती है कि वह नग्न है, कहीं मैं कुछ कर न गुजरूं। आपको अपने पर भरोसा नहीं है, इसलिए नग्न स्त्री से आपको घबड़ाहट होती है कि कहीं मैं कुछ कर न गुजरूं। कहीं इतना पागल न हो जाऊं नग्न देख कर उसे कि मुझे कुछ हो जाए। तो आप बजाय अपनी इस वृत्ति को समझने के, कानून बनाते हैं कि कोई नग्न नहीं हो सकता। और आपको कानून बनाने में लोग सहयोगी मिल जाएंगे, क्योंकि उनका भी रोग यही है। बराबर मिल जाएंगे। वे कहेंगे, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, कोई नग्न नहीं हो सकता।

मैं एक छोटी सी कहानी पढ़ रहा था। एक छोटे बच्चे को लेकर उसकी चाची समुद्र के किनारे घूमने गई है। वहां एक भिखमंगा अधनंगा बैठा है खुली धूप में। चाची उस भिखमंगे को एकदम देख कर घबड़ा गई, वह लड़के को खींचने लगी। लड़का कहने लगा, रुको भी तो, यह भिखमंगा कितनी मस्ती से बैठा है! वह बोली, वहां देख ही मत। तो वह लड़का, जब उसको रोका गया, तो उसका और देखने का मन हुआ कि मामला क्या है? इस तरह से पहले चाची ने कभी उसे खींचा नहीं! लेकिन चाची उसे बदहवास खींच रही है, और वह लौट-लौट कर पीछे देख रहा है। चाची कह रही है कि तू शैतान है बिल्कुल। लड़का कहता है, मगर वह कितनी मस्ती से बैठा हुआ है--झाड़ के नीचे, अधनंगा!

फिर वे घर आ जाते हैं। चाची मां से बात करती है, दोनों परेशान हो जाती हैं। पुलिस को फोन करती हैं, पुलिस आ जाती है। वह लड़का बड़ा हैरान है कि उस आदमी ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, कुछ बोला भी नहीं, अपनी मस्ती में बैठा हुआ है--लेकिन यह क्या हो रहा है? उसने कुछ भी तो नहीं किया है करने के नाम पर!

तो वह छत पर चला जाता है और देखता है कि पुलिस उस भिखमंगे को मार रही है डंडों से। उसकी जननेंद्रिय पर जूते से चोट कर रही है। वह लड़का चीखता है, रोता है, लेकिन उसकी समझ से बाहर है मामला। शाम को वह अपने बाप से पूछता है कि बात क्या है? उस आदमी को क्यों सताया गया? तो बाप कहता है कि वह बहुत बुरा आदमी है। वह लड़का कहता है कि उसने कुछ किया ही नहीं तो बुरा कैसे हो सकता है? तो बाप कहता है कि तू अभी नहीं समझेगा, बाद में समझेगा। यह बात समझाने की नहीं है; उसने बहुत बुरा काम किया है। उस लड़के ने कहा: पर उसने कुछ किया ही नहीं! मैं मौजूद था, और चाची झूठ बोल रही है!"

उस आदमी ने कुछ भी नहीं किया है, कुछ चाची को हुआ है। मगर यह लड़का कैसे समझ सकता है, क्योंकि यह अभी इतना बीमार नहीं हुआ। अभी यह नया है इन पागलों की जमात में। अभी इसकी दीक्षा नहीं हुई। अभी इसकी समझ के बाहर है।

तो बाप कहता है कि वह बहुत बुरी बात थी और इसकी तू चर्चा मत उठाना, इसे बिल्कुल भूल जा। तो वह कहता है, पुलिस का मारना उस गरीब आदमी को निश्चित ही बुरा था। तो बाप कहता है, पुलिस का मारना बुरा नहीं था नालायक, वह आदमी जो कर रहा था!

और वह कर कुछ भी नहीं रहा था, सिर्फ अधनंगा बैठा था! हमारे भीतर कुछ होता रहता है, उसको तो हम दबा लेते हैं और बाहर दोष खड़ा कर देते हैं।

अंतराय पर जिसका ध्यान चला जाए, वह व्यक्ति धीरे-धीरे हलका होने लगता है और उसका बोझ, उस की जंजीरें गिरने लगती हैं। जंजीर आपने पकड़ रखी है, छोड़ दें। मुक्ति आपका स्वभाव है।

छह लेश्याएं: चेतना में उठी लहरें (लोकतत्व-सूत्र: 5)

किण्हा नीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य।
 सुक्कलेसा य छट्ठा य, नामाई तु जहक्कमं॥
 किण्हा नीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
 एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जई॥
 तेऊ पम्हा सुक्का,
 तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
 एयाहि तिहि वि जीवो,
 सुग्गइं उववज्जई॥

कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पदम और शुक्ल--ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम हैं।
 कृष्ण, नील, कापोत--ये तीन अधर्म-लेश्याएं हैं। इन तीनों से युक्त जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है।
 तेज, पदम और शुक्ल--ये तीन धर्म-लेश्याएं हैं। इन तीनों से युक्त जीव सदगति में उत्पन्न होता है।

महावीर की उत्सुकता न तो काव्य में है, और न तर्क में। उनकी उत्सुकता है जीवन के तथ्य, जीवन की वैज्ञानिक खोज, आविष्कार में। इसलिए महावीर ने समाधि के कोई गीत नहीं गाए। और न ही महावीर ने जो कहा है उसके लिए कोई तर्क उपस्थित किए हैं। तर्क उपस्थित किए जा सकते हैं, हर बात के लिए। और ऐसी कोई भी बात नहीं, जिसके पक्ष में या विपक्ष में तर्क उपस्थित न किए जा सकें। तर्क दुधारी तलवार है। तर्क मंडन भी कर सकता है, खंडन भी। लेकिन तर्क से कोई सत्य की निष्पत्ति नहीं होती।

काव्य अभिव्यक्ति है। जो अनुभव हुआ है, उसके आनंद की झलक उसमें मिल सकती है। लेकिन आनंद कैसे अनुभव हुआ है, उसका विज्ञान उससे निर्मित नहीं होता। अधिक शास्त्र तार्किक हैं, जिनको बुद्धि की खुजली है, उनके लिए उनमें रस हो सकता है। शेष शास्त्र काव्यात्मक हैं, जिन्हें अनुभव हुआ है, उन्हें उन शास्त्रों में अपनी अभिव्यक्ति मिल सकती है। बहुत थोड़े से शास्त्र वैज्ञानिक हैं; उनके लिए जिन्हें न तो बुद्धि की खुजली की बीमारी है, और न जो पहुंच गए हैं। जो जीवन में उलझे हैं और मार्ग की तलाश कर रहे हैं।

महावीर उस तीसरे कोण से ही बोल रहे हैं।

मैंने सुना है, एक यहूदी पंडित की मृत्यु हुई। वह ईश्वर के सामने उपस्थित किया गया। ईश्वर ने उससे पूछा कि पृथ्वी पर तुम क्या कर रहे थे पूरे जीवन? तो उस पंडित ने कहा: मैं धर्म का, शास्त्र का, शास्त्र को सिद्ध करने वाले तर्कों का अध्ययन कर रहा था। ईश्वर ने कहा: मैं खुश हूं, मेरे आनंद के लिए तुम कोई तर्क, "ईश्वर है", इसके प्रमाण में उपस्थित करो।

पंडित ने जीवन भर तर्क किए थे, लेकिन ईश्वर को सामने पाकर उसकी बुद्धि अड़चन में पड़ गई। क्या तर्क उपस्थित करे ईश्वर के होने का? दो क्षण तो वह सोचता रहा, फिर कुछ सूझा नहीं, बुद्धि खाली मालूम पड़ी, तो उसने कहा कि बड़ी मुश्किल है--आपको बातों के योग्य मैं कुछ कह सकूं, ऐसा खोज नहीं पाया, अच्छा तो यह हो कि खुद ही कोई तर्क उपस्थित करें--यू परफार्म सम पॉइंट, एण्ड आई विल शो यू हाउ टु रिफ्यूट इट--आप ही कोई तर्क उपस्थित कर दें और मैं तरकीब बताऊंगा कि उसका खंडन कैसे किया जा सकता है।

ठीक से समझें तो तर्क सदा खंडनात्मक है, निषेधात्मक है। वस्तुतः बुद्धि का स्वभाव नकार है। इसे समझ लें, ठीक से। बुद्धि का स्वभाव निगेटिव है, नकारात्मक है। जब बुद्धि कहती है नहीं--तभी होती है। और जब आप कहते हैं हां, तब बुद्धि विसर्जित हो जाती है, हृदय होता है। जब भी आपके भीतर "हां" होती है, "यस" होता है, तब हृदय होता है। और जब "नहीं" होती है, "नो" होता है, तब बुद्धि होती है। इसलिए जो व्यक्ति जीवन को पूरी तरह "हां" कह सकता है, वह आस्तिक है; और जो व्यक्ति "नहीं" पर जोर दिए चला जाता है, वह नास्तिक है। नास्तिक होने से कोई संबंध नहीं कि वह ईश्वर को अस्वीकार करता है या नहीं करता। नास्तिक होने का अर्थ है कि "नहीं" उसके जीवन की व्यवस्था है; "न" कहना उसका सुख है, "हां" कहने में उसे अड़चन है, कठिनाई है।

इसलिए आप देखते हैं, जैसे ही बच्चे में बुद्धि आनी शुरू होती है वह इंकार करना शुरू कर देता है। जैसे ही बच्चा जवान होने लगता है, उसकी अपनी बुद्धि चलने लगती है, उसे "न" कहने में रस आने लगता है, "हां" कहना मजबूरी मालूम पड़ती है।

बुद्धि का स्वभाव संदेह है, हृदय का स्वभाव श्रद्धा है। तो कुछ लोग हैं जिनको तर्क की ही कुल जमा बेचैनी है, पक्ष में या विपक्ष में। और कोई अंतर नहीं पड़ता, जो तर्क पक्ष में है वही विपक्ष में हो सकता है। तर्क वेश्या है। वह कोई गृहिणी नहीं है, कोई पत्नी नहीं है; किसी एक पति से उसका संबंध नहीं है। जो उसे पैसे दे, उसी के साथ है।

मैंने सुना है, एक बहुत बड़े वकील डाक्टर हरिसिंह गौर, जिन्होंने सागर विश्वविद्यालय की स्थापना की, प्रिवी कौंसिल में एक मुकदमा लड़ रहे थे। भुलक्कड़ स्वभाव के आदमी थे। तो जो उनका सहयोगी वकील था, वही उनको सब सूचनाएं दे देता था रास्ते में कि अदालत में क्या-क्या, किस-किस संबंध में उनको विवाद करना है। उस दिन सहयोगी वकील बीमार था और हरिसिंह गौर भूल गए कि वे किसके पक्ष में हैं और किसके विपक्ष में। प्रिवी कौंसिल में जाकर उन्होंने बोलना शुरू कर दिया।

न्यायाधीश भी चकित हुए, विरोधी वकील भी हैरान हुआ; क्योंकि वे अपने ही मुवक्किल के खिलाफ बोल रहे थे, और ऐसे तर्क दे रहे थे कि अब कोई उपाय ही न रहा। विरोधी वकील हैरान हुआ कि अब मैं क्या कहूंगा? उसको कहने को कुछ बचा ही नहीं। तभी असिस्टेंट को ख्याल आया कि वह तो बीमार पड़ा है, लेकिन कुछ गड़बड़ न हो जाए, तो वह भागा हुआ आया। तब तक वे फैसला ही कर चुके थे अपने मुवक्किल का पूरी तरह से। आकर उसने उनका कोट हिलाया और कान में कहा कि आप क्या कर रहे हैं? यह अपना मुवक्किल है! तो उन्होंने कहा कि कोई फिकर न करो।

उन्होंने कहा: न्यायाधीश महोदय! अब तक मैंने वे दलीलें दीं, जो मेरा विरोधी पक्ष का वकील देना चाहेगा, अब मैं उनका खंडन शुरू करता हूं। और उन्होंने खंडन किया। और जितनी प्रबलता से समर्थन किया था, उतनी ही प्रबलता से खंडन भी किया।

वकील और वेश्या में बड़ा संबंध है। वेश्या अपना शरीर बेचती है, वकील अपनी बुद्धि बेचता है। उसके पास अपना कोई पक्ष नहीं है। जो भी पक्ष खरीद सकता है, वही उसका पक्ष है।

तर्क वेश्या है। इसलिए महावीर, बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों की उत्सुकता तर्क में नहीं है, और मैंने कहा कि उनकी उत्सुकता काव्य में भी नहीं है; क्योंकि काव्य तो आखिरी फूल है। जब कोई व्यक्ति समाधि को उपलब्ध होता है, तो उसके जो गीत की स्फुरण होती है, वह जो संगीत उससे बहने लगता है, उसके उठने-बैठने में काव्य आ जाता है, वह अंतिम चीज है। उसका रस लिया जा सकता है। लेकिन उसका रस वे ही ले सकते हैं जो उस जगह तक पहुंच गए हैं। साधक के लिए उसका कोई मूल्य नहीं है। खतरा भी है।

सोलोमन के गीत हैं बाइबिल में। वे समाधिस्थ व्यक्ति के गीत हैं। लेकिन बड़ा खतरा हुआ है। क्योंकि सोलोमन ने अपनी उस परम समाधि को स्त्री-पुरुष के प्रतीक से प्रकट किया है। क्योंकि उससे बेहतर कोई प्रतीक हो भी नहीं सकता। जीवन में मिलन का जो आत्यंतिक अनुभव हो सकता है साधारण मनुष्य को, वह दो प्रेमियों

का मिलन है। इसलिए सोलोमन ने अपने समाधि की पूरी व्यवस्था को, पूरी अनुभूति को स्त्री और पुरुष के प्रेम से प्रकट किया है।

लेकिन खुद बाइबिल पर भक्ति रखने वाले लोग भी सोलोमन के गीतों से डरते हैं; क्योंकि लगता है कि वे गीत तो अत्यन्त पार्थिव हैं। लेकिन मजबूरी है। उस परम तत्व को भी अगर गीत में प्रकट करना हो तो इस जगत में गीत की जो भाषा है--"प्रेम", उसी में प्रकट करना पड़ेगा। इसलिए अनेकों को मीरा के गीत में कामवासना की झलक मिल सकती है। क्योंकि मीरा कह रही है कि आओ, मेरी सेज पर सोओ। मैं तैयार बैठी हूं, तुम कहां हो? मैंने फूल बिछा दिए हैं, सेज तैयार है; दिया जला लिया है, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूं। और जब तक तुम आकर मेरी सेज पर मेरे साथ न सो जाओ, तब तक मुझे चैन नहीं आएगा।

यह भाषा प्रेमियों की है। इसलिए अगर फ्रायड को मानने वाले लोग मीरा का अध्ययन करें तो उन्हें लगेगा कि जरूर कोई कामवासना भीतर दबी रह गई है। गीत में अगर प्रकट करना हो उस परम सत्य को तो भाषा प्रेम की ही चुननी पड़ेगी, और कोई उपाय नहीं। क्योंकि इस पृथ्वी पर निकटतम--उस परम तत्व के करीब, प्रेम ही आता है।

लेकिन तब खतरा है। और डर यह है कि पढ़नेवाले लोग समाधि की तरफ तो न झुकें, संभोग की तरफ झुक जाएं। और डर यह है कि उनके मन में इससे उस परम का विचार तो पैदा न हो, लेकिन क्षुद्र वासना का जन्म हो जाए।

महावीर तर्क की चिंता नहीं करते। महावीर गीत की भी चिंता नहीं करते। महावीर आत्मिक जीवन का शुद्ध विज्ञान उपस्थित करना चाहते हैं। वह दिशा बिल्कुल अलग है। क्या अनुभव हुआ है, उसे प्रकट करना व्यर्थ है, उन लोगों के सामने जिन्हें कोई अनुभव नहीं हुआ। कैसे अनुभव हो सकता है, उसकी प्रक्रिया ही प्रकट करनी आवश्यक है। और अनुभव के मार्ग पर क्या-क्या घटित होगा, उसका नक्शा देना जरूरी है। क्योंकि अनंत है यात्रा और कहीं से भी भटकाव हो सकता है। अनंत हैं पहेलियां, अनंत हैं मोड़, अनंत पगडंडियों का जाल है, उसमें अगर नक्शा साफ न हो तो आप एक भूलभुलैया में भटक जाएंगे।

इसलिए महावीर की पूरी चेष्टा है, एक स्प्रिचुअल मैप, एक आध्यात्मिक नक्शा निर्मित करने की : कि आपके हाथ में एक ठीक गाइड हो और आप एक-एक कदम जांच कर सकें; और एक-एक पड़ाव को पहचान सकें कि यात्रा ठीक चल रही है, दिशा ठीक है। और जिस तरफ मैं जा रहा हूं वहां अंततः मुक्ति उपलब्ध हो पाएगी। यह दृष्टि ख्याल में रहे तो महावीर को समझना बहुत आसान हो जाएगा। अब उनका हम सूत्र लें।

"कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल--ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम हैं।"

यह किताब ऐसी मालूम पड़ती है, महावीर के वचनों की--जैसे फिजिक्स की हो, केमिस्ट्री की हो, गणित की हो। इसलिए बहुत कम लोग इसमें रस ले पाएंगे। गीता का पाठ किया जा सकता है, एक महाकाव्य छिपा है। महावीर की बातें सीधी गणित की हैं, जैसे कि यूक्लिड थ्योरम लिख रहा हो, ज्यामिती की।

"कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल--ये लेश्याओं के क्रमशः छह नाम हैं।"

तो पहले तो समझ लें कि "लेश्या" क्या है? महावीर के कुछ खास परिभाषिक शब्दों में लेश्या भी एक है।

ऐसा समझें कि सागर शांत है, कोई लहर नहीं है। फिर हवा का एक झोंका आता है, लहरें उठनी शुरू हो जाती हैं, तरंगें उठती हैं, सागर डांवाडोल हो जाता है, छाती अस्त-व्यस्त हो जाती है, सब अराजक हो जाता है। महावीर कहते हैं, शुद्ध आत्मा तो शांत सागर की तरह है, अशुद्ध आत्मा अशांत सागर की तरह है, जिस पर लहरें ही लहरें भर गई हैं। उन लहरों का नाम "लेश्या" है। मनुष्य की चेतना में जो लहरें हैं, उनका नाम लेश्या है। और जब सब लेश्याएं शांत हो जाती हैं, तब शुद्ध आत्मा की प्रतीति होती है। इन लेश्याओं में भी छह तरह की लेश्याओं का महावीर ने विभाजन किया है। तो लेश्या का अर्थ हुआ चित्त की वृत्तियां।

जिसको पतंजलि ने "चित्त-वृत्ति" कहा है, उसको महावीर "लेश्या" कहते हैं। चित्त की वृत्तियां, चित्त के विचार, वासनाएं, कामनाएं, लोभ, अपेक्षाएं, ये सब लेश्याएं हैं। अनंत लेश्याओं से आदमी घिरा है। प्रतिपल कोई न कोई तरंग पकड़े हुए है।

और ध्यान रहे, जब सागर में तरंगें होती हैं तो आपको तरंगें ही दिखाई पड़ती हैं, सागर तो बिल्कुल छिप जाता है। जब तरंगें नहीं होतीं, तभी सागर होता है, तभी सागर दिखाई पड़ता है। तो जितनी ज्यादा तरंगें होंगी चित्त की, उतना ही ज्यादा भीतर का जो गहन सागर है, वह अनुभव में नहीं आएगा। और हम चित्त की तरंगों से ही उलझे रह जाते हैं, अटके रह जाते हैं, अंतर्गता नहीं हो पाती।

अनंत हैं ये लेश्याएं, अनंत हैं ये तरंगें लेकिन महावीर कहते हैं, उनके छह रूप हैं। और छह रूप बड़े वैज्ञानिक हैं। और अब विज्ञान भी सिद्ध कर रहा है कि महावीर ने जिस ढंग से इन लेश्याओं का वगूकरण किया है, शायद वही एक मात्र आधार है वगूकरण करने का, और कोई आधार नहीं हो सकता।

महावीर ने रंग के आधार पर वर्गीकरण किया है। कलर--पश्चिम में रंग के ऊपर बड़ा गहन अध्ययन चल रहा है। और रंग के आधार पर कई चीजें पैदा हो रही हैं। कलर थेरेपी पैदा हुई है। रंग के द्वारा मनुष्य के चित्त की चिकित्सा, शरीर की चिकित्सा है, और अदभुत परिणाम उपलब्ध होते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि आदमी के अंतर-जगत में रंग की कोई बड़ी बहुमूल्य स्थिति है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपके कमरे को सब तरफ से लाल रंग दिया जाए, खून के रंग में--सब चीजें लाल हों, प्रकाश लाल हो, फर्श लाल हो, दीवालें लाल हों तो आप तीन घंटों में विक्षिप्त हो जाएंगे। क्योंकि लाल आपको उद्विग्न करेगा; रक्त को उत्तेजित करेगा, हृदय की धड़कन बढ़ जाएगी; ब्लड-प्रेसर बढ़ जाएगा और मस्तिष्क पर बुरे परिणाम होंगे।

हरे को जब आप देखते हैं, मन शांत हो जाता है। इसलिए जंगल में जाकर आपको लगता है, "कैसी शांति है।" उस शांति में ज्यादा हिस्सा हरे रंग का है। हरियाली मन को एक शीतलता से भर जाती है। लाल रंग उत्तेजना दे सकता है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि कम्युनिस्टों ने और क्रांतिकारियों ने लाल झंडा चुना है। वह खून का, उपद्रव का प्रतीक है।

आकस्मिक नहीं है, आकस्मिक इस जगत में कुछ भी नहीं होता। जिनका भरोसा खून पर, हत्या पर है, स्वाभाविक है कि वह लाल रंग को प्रतीक की तरह चुनें।

इस्लाम ने हरा रंग चुना है अपने झंडे के लिए, उसका कारण है, "इस्लाम" शब्द का अर्थ ही "शांति" होता है। इसलिए शांति को ख्याल में रख कर हरे रंग को चुना। यह दूसरी बात है कि मुसलमानों ने न हरे रंग के सबूत दिए और न शांति के। लेकिन इसमें मोहम्मद का कसूर नहीं है। इस्लाम शब्द का अर्थ होता है शांति और इसलिए हरे रंग को चुना, क्योंकि हरा रंग गहरे रूप से शांतिदायी है।

रंग आपको चालित करते हैं, उत्तेजित करते हैं। पश्चिम में एडवर्टाइजमेंट की सलाह देने वाले लोग इसकी भी सलाह देते हैं कि आप अपनी चीजें बेचें तो किस रंग के डिब्बे में बेचें; क्योंकि सभी रंगों के डिब्बे एक से नहीं दिखते; क्योंकि सभी रंग अलग-अलग तरह से पकड़ते हैं। आप चकित होंगे कि बहुत बार ऐसा हुआ है कि कोई एक ही चीज, जैसे कोई साबुन, पीले रंग के डिब्बे में बिक रही थी और उसकी बिक्री बाजार में कम थी। और फिर सलाहकारों ने सलाह दी कि रंग का उपद्रव हो रहा है; साबुन तो ठीक है लेकिन डिब्बे का रंग गलत है, इतना आकर्षक नहीं है कि लोगों को पकड़ ले। और जहां हजारों साबुन के डिब्बे रखे हों दुकान पर, वहां रंग ऐसा होना चाहिए जो आकर्षित कर ले, पकड़ ले, सम्मोहित कर ले--कि नौ सौ नित्यानवे डिब्बे पीछे छूट जाएं और एक डिब्बे पर हाथ पहुंच जाए।

तो डिब्बे का रंग बदल देने से साबुन की बिक्री बढ़ गई। किताबों के कवर का रंग बदल देने से बिक्री बढ़ जाती है, घट जाती है। एक्सपर्ट जाकर बाजारों में जांच करते रहते हैं कि स्त्रियां जो खरीदने आती हैं,

सुपरमार्केट में, वे किस रंग से आंदोलित होती हैं। किस उम्र की स्त्री किस रंग से आंदोलित होती है। तो जिस उम्र की स्त्री को बेचना हो चीज को, उसके रंग का ख्याल रखना जरूरी है।

आप जैसे कपड़े पहनते हैं, वे भी आपके चित्त की लेश्या की खबर देते हैं। ढीले कपड़े--कामुक आदमी एक तरह के कपड़े पहनेगा, कामवासना से हटता हुआ आदमी दूसरे तरह के कपड़े पहनेगा। रंग बदल जाएंगे, कपड़े के ढंग बदल जाएंगे। कामुक आदमी चुस्त कपड़े पहनेगा, गैर-कामुक आदमी ढीले कपड़े पहनना शुरू कर देगा। क्योंकि चुस्त कपड़ा शरीर को वासना देता है, हिंसा देता है।

सैनिक को हम ढीले कपड़े नहीं पहना सकते। ढीले कपड़े पहन कर सैनिक लड़ने जाएगा तो हार कर वापस लौटेगा। साधु को चुस्त कपड़े पहनाना बिल्कुल नासमझी की बात है, क्योंकि चुस्त कपड़े का काम नहीं साधु के लिए, इसलिए साधु निरंतर ढीले कपड़े चुनेगा, जो शरीर को छूते भर हैं, बांधते नहीं।

आपको ख्याल में नहीं होगा कि बहुत छोटी-छोटी बातें आपके जीवन को संचालित करती हैं; क्योंकि चित्त क्षुद्र चीजों से ही बना हुआ है। अगर आप चुस्त कपड़े पहने हुए हैं तो आप दो-दो सीढ़ियां चढ़ने लगते हैं, एक साथ। अगर आप ढीले कपड़े पहने हुए हैं तो आपकी चाल शाही होती है, एक सीढ़ी भी आप मुश्किल से एक दफे में चढ़ते हैं। चुस्त कपड़े पहन कर आप में गति आ जाती है; ढीले कपड़े पहन कर एक सौम्यता आ जाती है, गति खो जाती है।

आप जो रंग चुनते हैं, वह भी खबर देता है आपके चित्त की। क्योंकि चुनाव अकारण नहीं है, चित्त चुन रहा है।

महावीर ने रंग के आधार पर चित्त की तरंगों के छह विभाजन किए हैं। तीन को महावीर कहते हैं, "अधर्म-लेश्याएं", जिनसे मनुष्य पतित होता है। और तीन को महावीर कहते हैं, "धर्म-लेश्याएं", जिनसे मनुष्य शुद्ध होता है, पवित्र होता है।

पहली लेश्या को महावीर कहते हैं, "कृष्ण"--काली। दूसरी लेश्या को "नील"--नीली। तीसरी लेश्या को "कापोत"--कबूतर के कंठ के रंग की। चौथी लेश्या को "तेज"--अग्नि के रंग की, सुर्ख लाल। पांचवीं को "पदम"--पीत, पीली। छठवीं को "शुक्ल"--शुभ्र, सफेद। ये छह लेश्याएं हैं। इनमें प्रथम तीन अधर्म-लेश्याएं हैं और अंतिम तीन धर्म-लेश्याएं हैं।

रंग से चुनने का कारण यह है कि जब आपके चित्त में एक वृत्ति होती है तो आपके चेहरे के आसपास एक आँरा, एक प्रभामंडल निर्मित होता है। इस प्रभामंडल के अब तो चित्र भी लिए जा सकते हैं। आपके प्रभामंडल का चित्र भी कह सकता है कि आपके भीतर क्या चल रहा है? कारण हैं, क्योंकि आपका पूरा शरीर विद्युत का एक प्रवाह है। आपको शायद ख्याल न हो कि पूरा शरीर वैद्युतिक यंत्र है।

स्केंडेनेविया में ऐसा हुआ, कोई छह-सात वर्ष पहले, कि एक स्त्री छत से गिर पड़ी और उसके शरीर की वैद्युतिक-व्यवस्था गड़बड़ हो गई, शार्ट-सर्किट हो गई। तो वह स्त्री जिसको छुए उसे शाक लगने लगे। उसके पति ने अदालत में तलाक के लिए अजू दी, क्योंकि उस स्त्री के पास ही जाना कठिन हो गया। उसको छूते से ही शाक लगेगा। और जब उस स्त्री के वैज्ञानिक परीक्षण किए गए तो बड़ी आश्चर्य की बात हुई, उस स्त्री के हाथ में पांच कैंडल का बल्ब रख कर जलाया जा सकता था।

जो विद्युत वर्तुल की तरह घूमती है शरीर में, वह वर्तुल टूट गया, शार्ट-सर्किट हो गया कहीं। कहीं तार अस्त-व्यस्त हो गए और विद्युत शरीर के बाहर जाने लगी। ऐसे भी विद्युत शरीर के बाहर जाती है, लेकिन उसकी मात्रा बड़ी धीमी होती है।

आप पूरे जीवन विद्युत से जी रहे हैं। सारे जगत का जो मूल आधार है, वह विद्युत-कण है, इलेक्ट्रान है। शरीर भी उसी पदार्थ से बना है। और सारे शरीर की यात्रा विद्युत की यात्रा है।

अभी स्त्रियों के संबंध में एक खोज पूरी हुई है। उस खोज ने स्त्रियों के मन के संबंध में बड़ी गहरी बातें साफ कर दी हैं, जो अब तक साफ नहीं थी। लेकिन खोज विद्युत की है। मनोवैज्ञानिक जिसे साफ नहीं कर पाता था।

हजारों साल से स्त्री एक समस्या रही है। वह किस तरह का व्यवहार करेगी किस क्षण में, अनिश्चित है। स्त्री अनप्रीडिक्टेबल है, उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। ज्योतिषी उससे बुरी तरह हार चुके हैं। अभी क्षण भर को प्रसन्न दिखाई पड़ रही थी, क्षण भर बाद एकदम अप्रसन्न हो जाएगी और पुरुष के तर्क में बिल्कुल नहीं आता कि कोई कारण उपस्थित नहीं हुआ, वह क्षण भर पहले बड़ी भली चंगी, आनंदित थी, और क्षण भर बाद दुखी हो गई! और आंसू बहने लगे, छाती पीट कर रोने लगी! बड़ी बेबूझ मालूम होती है!

फ्रायड ने चालीस साल अध्ययन के बाद कहा कि स्त्री के संबंध में कुछ कहने की संभावना नहीं है। और जिन लोगों ने कुछ कहा भी है, उनका कहा हुआ भी पक्षपातपूर्ण मालूम पड़ता है। वह उनकी दृष्टि है, उससे स्त्री की बात जाहिर नहीं होती।

बड़ी प्रसिद्ध घटना है : चेखव ने खुद लिखा कि चेखव खुद, टालस्टाय और गोर्की--रूस के तीन महालेखक, एक पार्क की बेंच पर बैठ कर बात कर रहे हैं। बात स्त्री पर पहुंच गई। पुरुषों की बात अकसर ही स्त्री पर पहुंच जाएगी, और बात करने को कुछ है भी नहीं। टालस्टाय बिल्कुल बूढ़ा हो चुका था, लेकिन तब तक उसने स्त्रियों के बाबत कोई वक्तव्य नहीं दिया था। तो चेखव और गोर्की ने उससे कहा कि तुम कुछ कहो। उसने कहा कि मैं कहूंगा, लेकिन जब मेरा एक पैर कब्र में हो और एक बाहर, तब मैं कह कर एकदम से कब्र में चला जाऊंगा! क्योंकि अगर मैं सत्य कहूं तो अभी भी स्त्रियों से मैं जुड़ा हूं, वे मेरी जान ले लेंगी, और असत्य मैं कहना नहीं चाहता!

लेकिन बायो-एनर्जी की खोज से एक नई बात पता चली है, और वह यह कि जैसे ही स्त्री की माहवारी शुरू होती है, उसके शरीर का विद्युत-प्रवाह प्रति दस मिनट में सिकुड़ता है, कांटेक्ट होता है। और यह चलता है तब तक, जब तक कि माहवारी बंद नहीं हो जाती, पैंतालीस-पचास साल तक। प्रति दस मिनट में स्त्री को भी पता नहीं चलता कि उसके पूरे शरीर की विद्युत सिकुड़ती है, फिर फैलती है, फिर सिकुड़ती है, फिर फैलती है। इस हर दस मिनट के परिवर्तन के कारण उसका चित्त हर दस मिनट में परिवर्तित होता है।

और यह जो संकुचन है, फैलाव है, यह बच्चे के लिए जरूरी है। बच्चे के विकास के लिए जरूरी है। जब बच्चा उनके गर्भ में होता है तो यह संकुचित होना, फैलना बच्चे को एक तरह का आंतरिक व्यायाम देता है। एक एक्सरसाइज देता है, इससे बच्चा बढ़ता है। इसलिए माहवारी शुरू होने और माहवारी अंत होने के बीच, तीस साल-पैंतीस साल, स्त्री का शरीर दस मिनट में एक झंझावात से गुजरता है। और यह झंझावात उसके चित्त को प्रभावित करता है। इसलिए जब स्त्री बहुत परेशान हो तो आप परेशान न हों; थोड़ी देर रुकें, थोड़ी देर प्रतीक्षा करें; वह झंझावात वैद्युतिक है। और स्त्री को भी अगर ख्याल में आ जाए, तो वह उस झंझावात से परेशान न होकर उसकी साक्षी हो सकती है।

पुरुष के शरीर में ऐसा कोई झंझावात नहीं है। इसलिए पुरुष ज्यादा तर्कयुक्त मालूम होता है। एक सीमा होती है उसकी बंधी हुई। उसके बाबत भविष्यवाणी हो सकती है कि वह क्या करेगा। उसके भीतर कोई झंझावात नहीं चल रहा है। विद्युत की एक सीधी धारा है। इस विद्युत की सीधी धारा के कारण उसके चित्त की लेश्याओं का ढंग सीधा-साफ है। स्त्री की चित्त की लेश्याएं ज्यादा बड़ी तरंगें लेंगी, क्योंकि विद्युत सिकुड़ेगी, फैलेगी, सिकुड़ेगी, फैलेगी यह संकोच और फैलाव स्त्री को प्रतिपल झंझावात में और तरंगों में रखता है।

महावीर ने रंग के आधार पर विषण किया, शायद वही एकमात्र रास्ता हो सकता है। जब भी चित्त में कोई वृत्ति होती है तो उसके चेहरे के आस-पास उसके रंग-आभा आ जाती है। आपको दिखाई नहीं पड़ती। छोटे बच्चों को ज्यादा प्रतीत होती है। आपको भी दिखाई पड़ सकती है, अगर आप थोड़े सरल हो जाएं। जब कोई

व्यक्ति सच में साधु-चित्त हो जाता है, तो वह आपकी आभा से ही आपको नापता है; आप क्या कहते हैं, उससे नहीं। वह आपको नहीं देखता, आपकी आभा को देखता है।

अब एक आदमी आ रहा है। उसके आस-पास कृष्ण-आभा है, काला रूप है चारों तरफ; उसके चेहरे के आस-पास एक पर्त है काली, तो वह कितनी ही शुभ्रता की बातें करे, वे व्यर्थ हैं, क्योंकि वह काली पर्त असली खबर दे रही है। अब तो सूक्ष्म कैमरे विकसित हो गए हैं, जिनसे उसका चित्र भी लिया जा सकता है। वह चित्र बताएगा कि आपकी क्या भीतरी अवस्था चल रही है। और यह आभा प्रतिपल बदलती रहती है।

महावीर, बुद्ध, कृष्ण और राम, और क्राइस्ट के आस-पास, सारी दुनिया के संतों के आस-पास हमने उनके चेहरे के आसपास एक प्रभामंडल बनाया है। हमारे कितने ही भेद हों--ईसाई में, मुसलमान में, हिंदू में, जैन में, बौद्ध में--एक मामले में हमारा भेद नहीं है कि इन सभी ने अपने जाग्रत महापुरुषों के चहरों के आस-पास प्रभामंडल बनाया है। वह प्रभामंडल खबर देता है उस अंतिम की घड़ी की, जहां, जब चेहरे के आस-पास श्वेत आभा प्रकट होती है, शुभ्र आभा प्रकट होती है।

हमारे चेहरे के आस-पास सामान्यतया काली आभा होती है, और या फिर बीच की आभाएं होती हैं। प्रत्येक आभा भीतर की अवस्था की खबर देती है। अगर आपके आस-पास काला आभा-मंडल है, और है, तो आपके भीतर भयंकर हिंसा, क्रोध, भयंकर कामवासना होगी। आप उस अवस्था में होंगे, जहां आपको खुद भी नुकसान हो तो कोई हर्ज नहीं, दूसरे को नुकसान हो तो आपको आनंद मिलेगा। खुद को नुकसान पहुंचा कर भी अगर दूसरे को नुकसान पहुंचा सकें तो आप प्रसन्न होंगे। कृष्ण-लेश्या की अवस्था का आदमी ऐसा होगा।

मैंने सुना है कि एक आदमी मरा, तो उसने अपने बेटों को पास बुलाया और उनसे कहा कि मेरी आखिरी मज्जू पूरी कर देना। लेकिन बड़े बेटे तो सब समझदार थे, बाप को भलीभांति जानते थे कि वह उपद्रवी है। और आखिरी मर्जी कुछ ऐसी न उलझा जाए कि हम फंस जाएं जिंदगी भर को तो, वे तो दूर ही बैठे रहे। छोटा बेटा नासमझ था; उसे कुछ पता नहीं था बाप की हरकतों का। वह पास आ गया और मरता बाप! उसने कहा: पहले वचन दे कि मेरी बात तू पूरी करेगा। उसने कहा कि मरते हुए पिता की बात पूरी नहीं करूंगा तो क्या करूंगा? आप कहें। तो उसने कहा कि तू ही मेरा असली बेटा है। उसके कान में कहा: एक काम करना, जब मैं मर जाऊं तो मेरी लाश के टुकड़े करके मोहल्ले के लोगों के घरों में फेंक देना, और पुलिस में रिपोर्ट कर देना कि इन लोगों ने मार डाला। मेरी आत्मा को इतनी प्रसन्नता होगी, जब मैं देखूंगा कि चले हैं हथकड़ियों में बंधे सब!

यह कृष्ण-लेश्या का आदमी है। इसको अपनी फिकर नहीं है।

पंचतंत्र में बड़ी पुरानी कथा है कि एक आदमी भक्त था शिव का, और बड़े दिनों से प्रार्थना, बड़े दिनों से पूजा कर रहा था। आखिर शिव ने कहा कि "भाई, तू क्यों पीछे पड़ा है, क्या चाहता है?"

आखिर आपकी प्रार्थना-पूजा से निश्चित घबड़ा जाते होंगे!

शिव के संबंध में एक और कथा है, कि भक्त इतनी ज्यादा पूजा-प्रार्थना करने लगे कि उन्होंने नाराज होकर कहा कि तुम जाओ, सब कबूतर हो जाओ। वह जो शिव की पिंडी के आस-पास कबूतर घूमते हैं, वे भक्त हैं पुराने।

इस आदमी ने जब बहुत परेशान कर दिया तो शिव ने पूछा: तू आखिर चाहता क्या है? उसने कहा कि बस, एक कि जो भी मैं मांगू, वह सदा पूरा किया जाए। तो शिव ने एक बड़ी उलटी शर्त रख दी। उन्होंने कहा कि होगा पूरा, लेकिन जो भी तू मांगेगा, वह तेरे लिए तो पूरा होगा ही, उससे दोगुना तेरे पड़ोसियों के लिए होगा।

उस आदमी ने कहा: मार डाला! मतलब ही खत्म हो गया! मैं मांगूं महल, पड़ोसी को मिल जाएं दो महल। मैं मांगूं हीरा, पड़ोसियों को, सबको मिल जाएं दो-दो हीरे। मतलब ही खो गया; बेकार कर दी सारी बात!

बड़ा चिंतित रहा। कई दिन तक कुछ भी नहीं मांगा। फिर सोचा कि किसी वकील से सलाह ले लूं, कुछ तो रास्ता हो ही सकता है। हर कानून से कोई न कोई रास्ता तो निकल ही आता है। वकील ने कहा कि इसमें घबड़ाने की क्या बात है? तू ऐसी चीजें मांग कि पड़ोसी मुश्किल में पड़ जाएं। तू कह कि मेरी एक आंख फोड़ दे भगवान, उनकी दोनों फूट जाएंगी।

वह आदमी नाचता हुआ घर लौटा। उसने कहा, गजब हो गया! यह ख्याल ही नहीं आया। फिर तो सूत्र हाथ लग गया। फिर तो उसने कहा कि मेरी एक आंख फोड़ दे। उसकी एक आंख फूटी, पड़ोसियों की दोनों फूट गईं। इतने से मन न भरा--उसने कहा कि मेरे घर के सामने एक कुआं खोद दे। उसके घर के सामने एक कुआं खुदा, पड़ोसियों के सामने दो कुएं खुद गए। अब जब लोग गिरने लगे कुओं में--अंधे सारे पड़ोसी--तब उसके आनंद की सीमा न रही। कृष्ण-लेश्या अपनी आंख फोड़ सकती है, अगर दूसरे की दो फूटती हों। अपने लाभ का कोई सवाल नहीं है, दूसरे की हानि ही जीवन का लक्ष्य है। ऐसे व्यक्ति के आस-पास काला वर्तुल होगा।

महावीर कहते हैं, यह निम्नतम दशा है, जहां दूसरे का दुख ही एकमात्र सुख मालूम पड़ता है। ऐसा आदमी सुखी हो नहीं सकता, सिर्फ वहम में जीता है। क्योंकि हमें मिलता वही है जो हम दूसरों को देते हैं--वही लौट आता है। जगत एक प्रतिध्वनि है।

इसलिए हमने यम को, मृत्यु को काले रंग में चित्रित किया है; क्योंकि उसका कुल रस इतना है कि कब आप मरें, कब आपको ले जाया जाए। आपकी मृत्यु ही उसके जीवन का आधार है, इसीलिए काले रंग में हमने यम को पोता है। आपकी मृत्यु उसके जीवन का आधार है--कुल काम इतना है कि आप कब मरें, प्रतीक्षा इतनी है।

यह जो काला रंग है, इसकी कुछ खूबियां, वैज्ञानिक खूबियां समझ लेनी जरूरी हैं। काला रंग गहन भोग का प्रतीक है। काले रंग का वैज्ञानिक अर्थ होता है जब सूर्य की किरण आप तक आती है, तो उसमें सभी रंग होते हैं। इसलिए सूर्य की किरण सफेद है, शुभ्र है। सफेद सभी रंगों का जोड़ है, एक अर्थ में अगर आपकी आंख पर सभी रंग एक साथ पड़ें तो सफेद बन जाएंगे। छोटे बच्चों को स्कूल में एक सभी रंगों का वर्तुल दे दिया जाता है, जब उस वर्तुल को जोर से घुमाया जाता है, तो सभी रंग गड़गड़ हो जाते हैं और सफेद बन जाता है।

सफेद सभी रंगों का जोड़ है। जीवन का समग्र स्वीकार सफेद में है, कुछ अस्वीकार नहीं है, कुछ निषेध नहीं है। काला सभी रंगों का अभाव है, वहां कोई रंग नहीं है। जीवन में रंग होते हैं, मौत में कोई रंग नहीं--वहां कोई रंग नहीं है। जीवन रंगीन है, मौत रंग-विहीन है।

काले का अर्थ है काला कोई रंग नहीं है, काला रंग का अभाव है। सभी रंगों के अभाव का नाम है, काला। और सभी रंगों के भाव का नाम है सफेद। और इन दोनों के बीच में बाकी रंगों की सीढियां हैं, वैज्ञानिक अर्थों में। पर पुराने प्रतीक बड़े कीमती मालूम पड़ते हैं। मृत्यु को हमने काला रंग दिया है, क्योंकि वहां जीवन की सब रंगीनी समाप्त हो जाती है। वहां कोई रंग नहीं बचता।

दुख का रंग काला है। कोई मर जाता है तो हम काले कपड़े पहनते हैं। सब जीवन का रंग शून्य हो जाता है। जब आप काले कपड़े पहनते हैं तो वैज्ञानिक रूप से क्या घटता है? सूर्य की किरणें जब काले कपड़े पर पड़ती हैं तो कोई भी किरण वापस नहीं लौटती। काले कपड़े में सभी किरणें डूब जाती हैं। जब आपकी आंख देख रही है, उसका मतलब यह कि काला कपड़ा दिखाई पड़ रहा है। उसका मतलब यह कि उस कपड़े से आपकी आंख तक कोई भी किरण का हिस्सा नहीं आ रहा। काले कपड़े में सभी किरणें डूब गई हैं; आप तक कोई भी किरण नहीं आ रही है, इसलिए कपड़ा काला दिखाई पड़ रहा है।

ध्यान रहे, रंग आपको दिखाई पड़ते हैं उन किरणों से जो आपकी आंखों तक आती हैं। अगर आपको लाल साड़ी दिखाई पड़ रही है, तो उसका मतलब है कि उस कपड़े से लाल किरण वापस आ रही है। प्रकाश पड़ रहा है और लाल किरण कपड़े से वापस लौट कर आपकी आंख पर आ रही है। लाल कपड़े का मतलब है कि उसने

सब रंग पी लिए, सिर्फ लाल को नहीं पीया--वह लाल वापस लौट आया। पीले कपड़े का अर्थ है कि सब रंग पी लिए, पीला रंग नहीं पीया--पीला वापस लौट आया।

तो जो आपको दिखाई पड़ता है लाल, वह सब रंग पी गया, सिर्फ लाल को उसने छोड़ दिया है--तो लाल किरण आपकी आंख पर आ रही है। सफेद कपड़े का अर्थ है, उसने सभी किरणें वापस लौटा दीं, कुछ भी नहीं पीया--इसलिए आपको सफेद दिखाई पड़ रहा है।

तो एक अर्थ में काला सभी रंगों का अभाव है, क्योंकि आंख तक कोई भी किरण नहीं आती। आंख के लिए सभी रंगों का अभाव हो गया काला। और सफेद सभी रंगों का भाव है, क्योंकि आंख तक सब किरणें आती हैं--एक अर्थ में। दूसरे अर्थ में सफेद कपड़े का अर्थ है: उसने सभी त्याग दिया, सभी किरणें वापस लौटा दीं, कुछ भी लिया नहीं।

इसलिए महावीर ने सफेद को त्याग का प्रतीक कहा है और काले को भोग का प्रतीक कहा है। उसने सभी पी लिया, कुछ भी छोड़ा नहीं--सभी किरणों को पी गया। तो जितना भोगी आदमी होगा, उतनी कृष्ण-लेश्या में डूबा हुआ होगा। जितना त्यागी व्यक्ति होगा, उतना ही कृष्ण-लेश्या से दूर उठने लगेगा।

दान और त्याग की इतनी महिमा लेश्याओं को बदलने का एक प्रयोग है। जब आप कुछ देते हैं किसी को, आपकी लेश्या तत्क्षण बदलती है। लेकिन जैसा मैंने कहा कि अगर आप व्यर्थ चीज देते हैं तो लेश्या नहीं बदल सकती। कुछ सार्थक, जो प्रतिकर है, जो आपके हित का था और काम का था, और दूसरे के भी काम पड़ेगा--जब भी आप ऐसा कुछ देते हैं, आपकी लेश्या तत्क्षण परिवर्तित होती है। क्योंकि आप शुभ्र की तरफ बढ़ रहे हैं, कुछ छोड़ रहे हैं।

महावीर ने अंत में वस्त्र भी छोड़ दिए, सब छोड़ दिया। उस सब छोड़ने का केवल अर्थ इतना ही है कि कोई पकड़ न रही। और जब कोई पकड़ नहीं रहती तो श्वेत, शुक्ल, शुभ्र-लेश्या का जन्म होता है। वह अंतिम लेश्या है; उसके पार लेश्याएं नहीं हैं।

यह सघनतम लेश्या है, काली। तो काली निम्नतम स्थिति है, और शुभ्र श्रेष्ठतम स्थिति है।

कृष्ण-लेश्या पहली लेश्या।

"नील" दूसरी लेश्या है। जो व्यक्ति अपने को भी हानि पहुंचा कर दूसरे को हानि पहुंचाने में रस लेता है, वह कृष्ण-लेश्या में डूबा है। जो व्यक्ति अपने को हानि न पहुंचा कर दूसरे को हानि पहुंचाने की चेष्टा करता है, वह नील-लेश्या में डूबा है। जो व्यक्ति अपने को हानि न पहुंचाए, खुद को हानि पहुंचाने लगे तो रुक जाए, लेकिन दूसरे को हानि पहुंचाने की चेष्टा करे, वैसा व्यक्ति नील-लेश्या में है।

नील-लेश्या कृष्ण लेश्या से बेहतर है। थोड़ा हलका हुआ कालापन, थोड़ा नीला हुआ। जो लोग निहित स्वार्थ में जीते हैं यह जो पहला आदमी--जिसके बारे में मैंने कहा कि मेरी एक आंख फूट जाए--यह तो स्वाश्रु नहीं है, यह तो स्वार्थ से भी नीचे गिर गया है। इसको अपनी आंख की फिकर ही नहीं है। इसको दूसरे की दो फोड़ने का रस है। यह तो स्वार्थ से भी नीचे खड़ा है।

नील-लेश्या वाला आदमी वह है, जिसको हम सेलफिश कहते हैं, जो सदा अपनी चिंता करता है। अगर उसको लाभ होता हो तो आपको हानि पहुंचा सकता है। लेकिन खुद हानि होती हो तो वह आपको हानि पहुंचाएगा। ऐसे ही आदमी को, नील-लेश्या के आदमी को हम दंड देकर रोक पाते हैं। पहले आदमी को दंड देकर नहीं रोका जा सकता। जो कृष्ण-लेश्या वाला आदमी है, उसको कोई दंड नहीं रोक सकते पाप से क्योंकि उसे फिकर ही नहीं कि मुझे क्या होता है। दूसरे को क्या होता है उसका रस उसको नुकसान पहुंचाना। लेकिन नील-लेश्या वाले आदमी को पनिशमेंट से रोका जा सकता है। अदालत, पुलिस, भयकि पकड़ जाऊं, सजा हो जाए तो वह दूसरे को हानि करने से रुक सकता है।

तो ध्यान रहे, जो अपराधी इतने अदालत-कानून के बाद भी अपराध करते हैं उनके पास निश्चित ही कृष्ण-लेश्या पाई जाएगी। और आप अगर डरते हैं अपराध करने से कि नुकसान न पहुंच जाए। और आप देख लेते हैं कि पुलिसवाला रास्ते पर खड़ा है, तो रुक जाते हैं लाल लाइट देख कर। कोई पुलिसवाला नहीं है--नील लेश्या--कोई डर नहीं है, कोई नुकसान हो नहीं सकता है। निकल जाओ, एक सेकेंड की बात है।

मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र के साथ कार से जा रहा था। मित्र कार को भगाए लिए जा रहा है। आखिर मोटर साइकिल पर चढ़ा हुआ एक पुलिस का आदमी पीछा कर रहा है। जोर से साइरन बजा रहा है, लेकिन वह आदमी सुनता नहीं है।

दस मिनट के बाद मुश्किल से वह पुलिस का आदमी जाकर पकड़ पाया और उसने कहा कि मैं गिरफ्तार करता हूं चार कारणों से। बीच बस्ती में पचास-साठ मील की रफ्तार से तुम गाड़ी चला रहे हो। तुम्हें प्रकाश की कोई फिकर नहीं है। रेड लाइट है तो भी तुम चलाए जा रहे हो। जिस रास्ते से तुम जा रहे हो, यह वन-वे है और इसमें जाना निषिद्ध है। और मैं दस मिनट से साइरन बजा रहा हूं, लेकिन तुम सुनने को राजी नहीं हो।

नसरुद्दीन, जो बगल में बैठा था मित्र के, खिड़की से झुका और उसने कहा: यू मस्ट नाट माइंड हिम आफिसर, ही इज डेड ड्रंक। वह पांचवा कारण बता रहे हैं। इस पर ख्याल मत करिए, वह बिल्कुल बेहोश है, शराब में धुत है, माफ करने योग्य है।

जब भी आप कुछ गलत करते हैं तब आप शराब में धुत होते ही हैं। क्योंकि गलत हो ही नहीं सकता मूर्ख के बिना। लेकिन मूर्ख भी इतना ख्याल रखती है कि खुद को नुकसान न पहुंचे, इतनी सुरक्षा रखती है। हममें से अधिक लोग कृष्ण-लेश्या में नहीं जीते। कभी-कभी कृष्ण लेश्या में उतरते हैं। वह हमारे जीवन का रोजमर्रा का ढंग नहीं है। लेकिन कभी-कभी हम कृष्ण-लेश्या में उतर जाते हैं।

कोई क्रोध आ जाए, तो हम उतर जाते हैं और इसीलिए क्रोध के बाद हम पछताते हैं। और हम कहते हैं, जो मुझे नहीं करना था वह मैंने किया। जो मैं नहीं करना चाहता था, वह मैंने किया। बहुत बार हम कहते हैं, "मेरे बावजूद यह हो गया।" यह आप कैसे कह पाते हैं? क्योंकि यह आपने ही किया। आप एक सीढ़ी नीचे उतर गए। जो आपके जीवन का ढांचा था; जिस सीढ़ी पर आप सदा जीते हैं--नील लेश्या--उससे जब आप नीचे उतरते हैं तो ऐसा लगता है कि किसी और ने आप से करवा लिया। क्योंकि उस लेश्या से आप अपरिचित हैं। नील-लेश्या शुद्ध स्वार्थ है, लेकिन कृष्ण लेश्या से बेहतर।

तीसरी लेश्या को महावीर ने "कापोत" कहा है--कबूतर के कंठ के रंग की। नीला रंग और भी फीका हो गया, आकाशी रंग हो गया। ऐसा व्यक्ति खुद को थोड़ी हानि भी पहुंच जाए, तो भी दूसरे को हानि नहीं पहुंचाएगा। खुद को थोड़ा नुकसान भी होता हो तो सह लेगा, लेकिन इस कारण दूसरे को नुकसान नहीं पहुंचाएगा। ऐसा व्यक्ति पराश्रु होने लगेगा। उसके जीवन में दूसरे की चिंतना और दूसरे का ध्यान आना शुरू हो जाएगा।

ध्यान रहे, पहली दो लेश्याओं वाले लोग प्रेम नहीं कर सकते। कृष्ण-लेश्या वाला तो सिर्फ घृणा कर सकता है। नील-लेश्या वाला व्यक्ति सिर्फ स्वार्थ के संबंध बना सकता है। कापोत-लेश्या वाला व्यक्ति प्रेम कर सकता है, प्रेम का पहला चरण उठा सकता है; क्योंकि प्रेम का अर्थ ही है कि दूसरा मुझसे ज्यादा मूल्यवान है। जब तक आप ही मूल्यवान हैं और दूसरा कम मूल्यवान है, तब तक प्रेम नहीं है। तब तक आप शोषण कर रहे हैं। तब तक दूसरे का उपयोग कर रहे हैं। तब तक दूसरा एक वस्तु है, व्यक्ति नहीं। जिस दिन दूसरा भी मूल्यवान है, और कभी आपसे भी ज्यादा मूल्यवान है, कि वक्त आ जाए तो आप हानि सह लेंगे लेकिन उसे हानि न सहने देंगे। तो आपके जीवन में एक नई दिशा का उदभव हुआ।

यह तीसरी लेश्या अधर्म की धर्म-लेश्या के बिल्कुल करीब है, यहीं से द्वार खुलेगा। परार्थ, प्रेम, दया, करुणा की छोटी सी झलक इस लेश्या में प्रवेश होगी, लेकिन बस छोटी सी झलक।

आप दूसरे पर ध्यान देते हैं, लेकिन वह भी गहरे में अपने ही लिए। आपकी पत्नी है, अगर कोई हमला कर दे तो आप बचाएंगे उसको--यह कापोत-लेश्या है। आप बचाएंगे उसको--लेकिन आप बचा इसलिए रहे हैं कि वह आपकी पत्नी है। किसी और की पत्नी पर हमला कर रहा हो तो आप खड़े देखते रहेंगे!

"मेरे" का विस्तार हुआ, लेकिन "मेरा" मौजूद है। और अगर आपको यह भी पता चल जाए कि यह पत्नी धोखेबाज है, तो आप हट जाएंगे। आपको पता चल जाए कि इस पत्नी का लगाव किसी और से भी है, तो सारी करुणा, सारा प्रेम, सारी दया खो जाएगी। इस प्रेम में भी एक गहरा स्वार्थ है कि पत्नी मेरी है, और पत्नी के बिना मेरा जीवन कष्टपूर्ण होगा; पत्नी जरूरी है, आवश्यक है। उस पर ध्यान गया है, उस को मूल्य दिया है, लेकिन मूल्य मेरे लिए ही है।

कापोत-लेश्या अधर्म की पतली से पतली कम से कम भारी लेश्या है। लेकिन, अधर्म वहां है। हममें से मुश्किल से कुछ लोग ही इस लेश्या तक उठ पाते हैं कि दूसरा मूल्यवान हो जाए। लेकिन इतना भी जो कर पाते हैं, वह भी काफी बड़ी घटना है। अधर्म के द्वार पर आप आ गए, जहां से दूसरे जगत में प्रवेश हो सकता है। लेकिन आमतौर से हमारे संबंध इतने भी ऊंचे नहीं होते। नील-लेश्या पर ही होते हैं। और कुछ के तो प्रेम के संबंध भी कृष्ण-लेश्या पर होते हैं।

आपने "दि सादे" का नाम सुना होगा। फ्रांस का एक बहुत बड़ा लेखक, जिसके नाम का पूरा एक रोग पैदा हो गया--सैडिज्म। दि सादे जब भी किसी स्त्री को प्रेम करता था, तो पहले उसे मारेगा, पीटेगा, कोड़े लगाएगा, नाखून चुभाएगा, कीलें लगाएगा, लहलुहान कर देगा--तभी उससे संभोग कर सकेगा, उससे प्रेम कर सकेगा। दि सादे का कहना था कि जब तक सताओ न, तब तक दूसरा व्यक्ति जगता ही नहीं। तो पहले उसे जगाओ, जब उसको कोड़े मारो, उसका खून तेजी से बहने लगे और उत्तेजित हो जाए और विक्षिप्त हो जाए, तब जो रस है संभोग का, वह साधारणतया चुपचाप संभोग कर लेने में नहीं हो सकता। यह आदमी कृष्ण-लेश्या का आदमी है। इसका प्रेम भी हिंसा से आता है। और जब तक हिंसा तीव्र न हो जाए तब तक इसके प्रेम में उत्तेजना नहीं मालूम होगी। जैसे आप भोजन करते हैं तो मिर्च के बिना स्वाद नहीं आता, ऐसा दि सादे को जब तक मार-पीट न कर ले तब तक कोई रस नहीं आता।

लेकिन दूसरी तरह के लोग भी हैं। एक दूसरा लेखक हुआ, मैसोच, वह उलटा था। वह जब तक अपने को न पीट ले, खुद को न मार ले, तब तक वह प्रेम में नहीं उतर सकता था। तो प्रेमिका खड़ी देखेगी, वह खुद को मारेगा और प्रेमिका से भी कहेगा कि वह सहायता करे। मारे, पीटे, लहलुहान कर दे, तब।

दो तरह के लोग हैं कृष्ण-लेश्या में : मैसोचिस्ट और सैडिस्ट, मैसोचिवादी और सादेवादी। अगर इन दोनों का मिलन हो जाए तो विवाह बड़ा सुखद होता है। एक स्वयं को दुख देने वाला--स्व-पीड़क, और पर-पीड़क। अगर ये पति-पत्नी हो जाएं तो इनसे अच्छा जोड़ा खोजना मुश्किल है। क्योंकि पति मारे तो पत्नी रस ले, या पत्नी पीटे तो पति रस ले। इसको कहते हैं, राम मिलाई जोड़ी। इनमें बिल्कुल तालमेल है। दोनों कृष्ण-लेश्या पर एक-दूसरे के परिपूरक हैं।

कभी-कभी सौभाग्य से ऐसी जोड़ी भी बन जाती है, लेकिन कभी-कभी। अक्सर तो ऐसा नहीं हो पाता, क्योंकि हम इस विचार से सोचते नहीं विवाह करते वक्त। हम और सब चीजें सोचते हैं, यह कभी नहीं सोचते कि इन दोनों में एक पीड़ा देने वाला और एक पीड़ा लेने वाला होना चाहिए, नहीं तो जिंदगी कैसे चलेगी।

अगर मनोवैज्ञानिक के हाथ में हमने दिया कि वह तय करे कि कौन सा जोड़ा ठीक होगा, तो वह इस जोड़े को पहले तय करेगा कि यह जोड़ा बिल्कुल ठीक रहेगा। इसमें कभी कलह नहीं होगी। कलह का कोई कारण नहीं है।

यह जो कृष्ण-लेश्या है इसमें प्रेम का भी जन्म हो तो वह भी हिंसा के ही माध्यम से होगा। ऐसे प्रेमियों की अदालतों में कथाएं हैं, जिन्होंने अपनी प्रेयसी को मार डाला सुहागरात में ही! और बड़े प्रेम से विवाह किया

था। थोड़ी-बहुत तो आप में भी, सब में यह वृत्ति होती है--दबाने की, नाखून चुभाने की। वात्स्यायन ने अपने काम-सूत्रों में इसको भी प्रेम का हिस्सा कहा है : दांत से काटो। इसको उसने जो प्रेम की जो प्रक्रिया बताई है : कैसे प्रेम करें? उसने दांत से काटना भी कहा है। नाखून चुभाओ, शरीर पर निशान छूट जाएं--इनको लव मार्क्स, प्रेम के चिह्न कहा है।

वात्स्यायन अनुभवी आदमी था, बड़ी गहरी उसकी दृष्टि रही होगी; क्योंकि वह जानता है कि कृष्ण-लेश्या वाले लोग हैं, ये जब तक सताएंगे नहीं, तब तक इनको रस ही नहीं आ सकता। जब तक ये एक-दूसरे को परेशान नहीं करेंगे, मरोड़ेंगे-तोड़ेंगे नहीं, तब तक इनको रस नहीं आ सकता। इनका रस ही पीड़ा है।

छोटे बच्चे में भी जग जाता है, कोई बड़ों में ही जगता है, ऐसा नहीं। छोटा बच्चा भी, कीड़ा दिख जाए, फौरन मसल देगा उसको पैर से। तितली दिख जाए--पंख तोड़ कर देखेगा, क्या हो रहा है? मेढक को पत्थर मार कर देखेगा, क्या हो रहा है, कुत्ते की पूंछ में डिब्बा बांध देगा छोटा बच्चा! वह भी पीड़ा में रस ले रहा है।

छोटा बच्चा भी आपका ही छोटा रूप हैबड़ा हो रहा है। आप कुत्ते की पूंछ में डिब्बा नहीं बांधते, आप आदमियों की पूंछ में डिब्बा बांधते हैं--रस लेते हैं, फिर क्या हो रहा है? कुछ लोग उसको राजनीति कहते हैं, कुछ लोग उसको व्यवसाय कहते हैं, कुछ लोग जीवन की प्रतिस्पर्धा कहते हैं; लेकिन दूसरे को सताने में बड़ा रस आता है। जब दूसरे को बिल्कुल चारों खाने चित्त कर देते हैं, तब आपको बड़ी प्रसन्नता होती है कि जीवन में कोई परम गुह्य की उपलब्धि हो गई।

नील-लेश्या वाला व्यक्ति आमतौर से, जिसको हम विवाह कहते हैं, वह नील-लेश्या वाले व्यक्ति का लक्षण है--दूसरे से कोई मतलब नहीं है, प्रेम की कोई घटना नहीं है। इसलिए भारतीयों ने अगर विवाह पर इतना जोर दिया और प्रेम-विवाह पर बिल्कुल जोर नहीं दिया, तो उसका बड़ा कारण यही है कि सौ में से नित्यानबे लोग नील-लेश्या में जीते हैं। प्रेम उनके जीवन में है ही नहीं, इसलिए प्रेम को कोई जगह देने का कारण नहीं। उनको जीवन में कुल एक स्त्री चाहिए, जिसका वे उपयोग कर सकें--एक उपकरण।

मुल्ला नसरुद्दीन का विवाह होने को था। लड़की दिखाई नहीं गई थी। पुराने जमाने की बात थी। फिर जिस दिन सगाई का मुहूर्त होने को था, उस दिन बाप और गांव के कुछ लोग नसरुद्दीन को सजा-धजा कर लड़की वालों के गांव ले गए। पास ही गांव था। तब तक लड़की देखी नहीं गई थी, न लड़की वालों का घर देखा गया था, न परिवार के लोग देखे गए थे। वहां लड़की भी सज-धज कर तैयार थी, उसकी सखियां भी सज-धज कर सब तैयार थीं। कोई पंद्रह-बीस युवतियां स्वागत के लिए थीं।

नसरुद्दीन के बाप ने ऐसे ही नसरुद्दीन से पूछा, वह जानता तो था कि यह लड़का कुछ तिरछा-तिरछा है, ऐसे ही पूछा कि क्या तू बता सकता है, नसरुद्दीन, कि इनमें से, बीस लड़कियों में से कौन सी लड़की तेरी पत्नी होने वाली है? नसरुद्दीन ने कहा: निश्चित! उसने एक नजर डाली और कहा कि यह लड़की।

बाप हैरान हो गया। वह लड़की ठीक वही लड़की थी, जिससे शादी होने वाली थी। उसने कहा कि हद कर दी, नसरुद्दीन! तूने कैसे पहचाना? क्योंकि तूने कभी देखा नहीं। तो नसरुद्दीन ने कहा: इसका कारण है, अभी उसको देख कर मुझे घबड़ाहट हो रही है। यही मेरी पत्नी होने वाली है, इसमें कोई शक नहीं है। अभी से मेरा डर हृदय कंपित हो रहा है।

कोई प्रेम का संबंध नहीं है, कोई प्रेम की बात नहीं है, उपकरण चाहिए। इसलिए विवाह एक लंबी कलह है, जिसमें पति पत्नी का उपयोग कर रहा है, पत्नी पति का उपयोग कर रही है। बस दोनों साथ-साथ जी लेते हैं, इतना ही काफी है कि साथ-साथ चल लेते हैं। साथ-साथ रह कर दोनों अकेले ही रहते हैं--अलोन टुगेदर। कोई मेल नहीं हो पाता, क्योंकि मेल तो सिर्फ प्रेम से ही हो सकता है।

"कापोत" आकाशी रंग की जो लेश्या है, उसमें प्रेम की पहली किरण उतरती है। इसलिए अधर्म के जगत में प्रेम सबसे ऊंची घटना है। ज्यादा से ज्यादा धर्म की घटना है। और अगर आपके जीवन में प्रेम मूल्यवान है, तो उसका अर्थ है कि दूसरा व्यक्ति मूल्यवान हुआ। यद्यपि वह भी अभी आपके लिए ही है। इतना मूल्यवान नहीं है कि आप कह सकें कि मेरा न हो तो भी मूल्यवान है। अगर मेरी पत्नी किसी और के भी प्रेम में पड़ जाए तो भी मैं खुश होऊंगा--खुश होऊंगा, क्योंकि वह खुश है। वह इतनी मूल्यवान नहीं है; उसके व्यक्तित्व का कोई इतना मूल्य नहीं है कि मेरे सुख के अलावा किसी और का सुख उससे निर्मित होता हो, तो भी मैं सुखी रहूँ।

फिर तीन लेश्याएं हैं : "तेज", "पदम" और "शुक्ल"। तेज का अर्थ है, अग्नि की तरह सुर्ख लाल। जैसे ही व्यक्ति तेज-लेश्या में प्रवेश करता है, वैसे ही प्रेम गहन प्रगाढ़ हो जाता है। अब यह प्रेम दूसरे व्यक्ति का उपयोग करने के लिए नहीं है। अब यह प्रेम लेना नहीं है, अब यह प्रेम सिर्फ देना है, यह सिर्फ दान है। और इस व्यक्ति का जीवन प्रेम के इर्द-गिर्द निर्मित होता है।

यह जो लाल रंग है, इसके संबंध में कुछ बातें समझ लेनी चाहिए; क्योंकि धर्म की यात्रा पर यह पहला रंग हुआ। आकाशी, अधर्म की यात्रा पर संन्यासी रंग था। लाल, धर्म की यात्रा पर पहला रंग हुआ। इसलिए हिंदुओं ने लाल को, गैरिक को संन्यासी का रंग चुना; क्योंकि धर्म के पथ पर वह पहला रंग है। हिंदुओं ने साधु के लिए गैरिक रंग चुना है, क्योंकि उसके शरीर की पूरी आभा लाल से भर जाए। उसका आभामंडल लाल होगा, उसके वस्त्र भी उसमें तालमेल बन जाएं, एक हो जाएं। तो शरीर और उसकी आत्मा में, उसके वस्त्रों और आभा में किसी तरह का विरोध न रहे; एक तारतम्य, एक संगीत पैदा हो जाए।

हिंदुओं ने गैरिक को, लाल को संन्यासी का रंग चुना, क्योंकि वहां से मंजिल शुरू होती है। जैनों ने "शुभ्र" को, सफेद को संन्यासी का रंग चुना, क्योंकि वहां मंजिल अंत होती है, वहां मंजिल पूरी होती है।

दोनों सही और गलत हो सकते हैं, हिंदू कह सकते हैं कि जो अभी हुआ नहीं, उस रंग को चुनना ठीक नहीं, प्रथम को ही चुनना ठीक है; क्योंकि साधक अभी यात्रा शुरू कर रहा है, अभी मंजिल मिली नहीं। और जैन कह सकते हैं कि मंजिल को ही ध्यान में रखना उचित है। जो आज है वह मूल्यवान नहीं है, जो वस्तुतः कल होगा; अंत में, वही मूल्यवान है। उसी पर नजर होनी चाहिए।

दोनों सही हो सकते हैं, दोनों गलत हो सकते हैं। लेकिन दोनों मूल्यवान हैं।

हिंदुओं ने लाल रंग चुना है संन्यासियों के लिए। जैनों ने सफेद रंग चुना है। बौद्धों ने पीला रंग चुना है--दोनों के बीच। बुद्ध हमेशा मध्य-मार्ग के पक्षपाती थे, हर चीज में।

ये तीन धर्म के रंग हैं--तेज, पदम, शुक्ल। "तेज" हिंदुओं ने चुना है। "शुक्ल" जैनों ने चुना है। "पदम"--पीला, पीत-वस्त्र बुद्ध ने अपने भिक्षुओं के लिए चुने हैं; क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि जो है वह मूल्यवान नहीं, क्योंकि उसे छोड़ना है, और जो अभी हुआ नहीं वह भी बहुत मूल्यवान नहीं, क्योंकि उसे अभी होना है--दोनों के बीच में साधक है।

लाल यात्रा का प्रथम चरण है, शुभ्र यात्रा का अंतिम चरण है--पूरी यात्रा तो पीत की है। इसलिए बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए पीला रंग चुना है। तीनों चुनाव अपने आप में मूल्यवान हैं; कीमती, बहुमूल्य हैं।

यह जो लाल रंग है, यह आपके आस-पास तभी प्रकट होना शुरू होता है, जब आपके जीवन से स्वार्थ बिल्कुल शून्य हो जाता है, अहंकार बिल्कुल टूट जाता है। यह लाल आपके अहंकार को जला देता है। यह अग्नि आपके अहंकार को बिल्कुल जला देती है। जिस दिन आप ऐसे जीने लगते हैं जैसे "मैं नहीं हूँ", उस दिन धर्म की तरंगें उठनी शुरू हो जाती हैं। जितना आपको लगता है कि "मैं हूँ", उतनी ही अधर्म की तरंगें उठती हैं। क्योंकि "मैं" का भाव ही दूसरे को हानि पहुंचाने का भाव है। मैं हो ही नहीं सकता हूँ, जब मैं आपको दबाऊँ। जितना

आपको दबाऊं, उतना ज्यादा मेरा "मैं" मजबूत होता है। सारी दुनिया को दबा दूं पैरों के नीचे, तभी मुझे लगेगा कि "मैं हूं।"

अहंकार दूसरे का विनाश है। धर्म शुरू होता है वहां से, जहां से हम अहंकार को छोड़ते हैं। जहां से मैं कहता हूं कि अब मेरे अहंकार की अभीप्सा, वह जो अहंकार की महत्वाकांक्षा थी, वह मैं छोड़ता हूं। प्रतिस्पर्धा छोड़ता हूं, संघर्ष छोड़ता हूं, दूसरे को हराना, दूसरे को मिटाना, दूसरे को दबाने का भाव छोड़ता हूं। अब मेरे प्रथम होने की दौड़ बंद होती है। अब मैं अंतिम भी खड़ा हूं, तो भी प्रसन्न हूं।

संन्यासी का अर्थ ही यही है कि जो अंतिम खड़े होने को राजी हो गया। जीसस ने कहा है, मेरे प्रभु के राज्य में वे प्रथम होंगे, जो यहां पृथ्वी के राज्य में अंतिम खड़े होने को राजी हैं।

ध्यान रहे, "अंतिम खड़े हैं", ऐसा नहीं कहा है--"अंतिम खड़े हैं, लेकिन वे अंतिम खड़े होने को राजी हैं।" अंतिम तो बहुत लोग खड़े नहीं रहना चाहते हैं वहां। मजबूरी है कि क्यू में कोई आगे जाने ही नहीं देता, ज्यादा ताकतवर लोग आगे खड़े हैं। क्यू से निकल नहीं पाते हैं, लेकिन इच्छा तो निकलने की है। दिल तो क्यू में आगे ही खड़े होने का है। लेकिन खड़े पीछे हैं, यह मजबूरी है। इस मजबूरीवाले को प्रभु के राज्य में प्रथम मौका मिल जाएगा, ऐसा नहीं है।

जीसस कहते हैं--जो अंतिम खड़ा होने को राजी है। जो पहले की तलाश ही नहीं करता, जो चुपचाप पीछे खड़ा है, और पीछे है, संतुष्ट है। और हैरान है कि आगे होने की इतनी दौड़ क्यों चल रही है? क्या होगा? आगे होकर क्या होगा?

संन्यासी का अर्थ है : जिसने महत्वाकांक्षा छोड़ दी, जिसने संघर्ष छोड़ दिया; जिसने दूसरे अहंकारों से लड़ने की वृत्ति छोड़ दी। इस घड़ी में चेहरे के आस-पास लाल, गैरिक रंग का उदय होता है। जैसे सुबह का सूरज जब उगता है, जैसा रंग उस पर होता है, वैसा रंग पैदा होता है। इसलिए संन्यासी अगर सच में संन्यासी हो, तो उसके चेहरे पर जो रक्ताभ, जो लाली होगी, जो सूर्य के उदय के क्षण की ताजगी होगी, वही खबर दे देगी।

"पदम"... महावीर कहते हैं, दूसरी धर्म-लेश्या है: "पीता" इस लाली के बाद जब जल जाएगा अहंकार... स्वभावतः अग्नि की तभी तक जरूरत है जब तक अहंकार जल न जाए। जैसे ही अहंकार जल जाएगा, तो लाली पीत होने लगेगी। जैसे, सुबह का सूरज जैसे-जैसे ऊपर उठने लगेगा, वैसा लाल नहीं रह जाएगा, पीला हो जाएगा। स्वर्ण का पीत रंग प्रकट होने लगेगा। जब स्पर्धा छूट जाती है, संघर्ष छूट जाता है, दूसरों से तुलना छूट जाती है और व्यक्ति अपने साथ राजी हो जाता है--अपने में ही जीने लगता है--जैसे संसार हो या न हो कोई फर्क नहीं पड़ता--यह ध्यान की अवस्था है।

लाल रंग की अवस्था में व्यक्ति पूरी तरह प्रेम से भरा होगा, खुद मिट जाएगा, दूसरे महत्वपूर्ण हो जाएंगे। पीत की अवस्था में न खूँद रहेगा, न दूसरे रहेंगे, सब शांत हो जाएगा। पीत ध्यान की अवस्था है--जब व्यक्ति अपने में होता है, दूसरे का पता ही नहीं चलता कि दूसरा है भी। जिस क्षण मुझे भूल जाता है कि "मैं हूं", उसी क्षण यह भी भूल जाएगा कि दूसरा भी है।

पीत, बड़ा शांत, बड़ा मौन, अनउद्विग्न रंग है। स्वर्ण की तरह शुद्ध, लेकिन कोई उत्तेजना नहीं। लाल रंग में उत्तेजना है, वह धर्म का पहला चरण है।

इसलिए, ध्यान रहे, जो लोग धर्म के पहले चरण में होते हैं, बड़े उत्तेजित होते हैं। धर्म उनके लिए खींचता है--जोर से--धर्म के प्रति बड़े आबसेज्ज होते हैं। धर्म भी उनके लिए एक ज्वर की तरह होता है। लेकिन, जैसे-जैसे धर्म में गति होती जाती है, वैसे-वैसे सब शांत हो जाता है।

पश्चिम के धर्म हैं--ईसाइयत, वह लाल रंग को अभी भी पार नहीं कर पाई; क्योंकि अभी भी दूसरे को कन्वर्ट करने की आकांक्षा है। इस्लाम लाल रंग को पार नहीं कर पाया। गहन दूसरे पर ध्यान है, कि दूसरों को बदल देना है, किसी भी तरह बदल देना है उसकी वजह से एक मतांधता है।

आप जान कर हैरान होंगे कि दुनिया के दो पुराने धर्म--हिंदू और यहूदी, दोनों पीत अवस्था में हैं। हिंदुओं और यहूदियों ने कभी किसी को बदलने की कोशिश नहीं की। बल्कि, कोई आ भी जाए तो बड़ा मुश्किल है उसको भीतर लेना। द्वार जैसे बंद हैं, सब शांत है। दूसरे में कोई उत्सुकता नहीं है। संख्या कितनी है, इसकी कोई फिकर नहीं है।

व्यक्ति जब पहली दफा धार्मिक होना शुरू होता है, तो बड़ा धार्मिक जोश खरोश होता है। यही लोग उपद्रव का कारण भी हो जाते

हैं, क्योंकि उनमें इतना जोश-खरोश होता है कि वे फेनेटिक हो जाते हैं; वे अपने को ठीक मानते हैं, सबको गलत मानते हैं। और सबको ठीक करने की चेष्टा में लग जाते हैं दयावश! लेकिन वह दया भी कठोर हो सकती है।

जैसे ही ध्यान पैदा होता है, प्रेम शांत होता है। क्योंकि प्रेम में दूसरे पर नजर होती है, ध्यान में अपने पर नजर आ जाती है। पीत-लेश्या--पदम-लेश्या ध्यानी की अवस्था है। बारह वर्ष तक महावीर उसी अवस्था में थे। और पीला भी जब और बिखरता जाता है, विलीन होता जाता है तो शुभ्र का जन्म होता है। जैसे सांझ जब सूरज डूब जाता है--रात नहीं आई और सूरज डूब गया, और संध्या फैल जाती है--शुभ्र, कोई उत्तेजना नहीं, वह समाधि की अवस्था है। उस क्षण में सभी लेश्याएं शांत हो गयीं, सभी लेश्याएं सफेद बन गईं--शुभ्र बच रहा है। वह अंतिम अवस्था है चित्त की तरफ से।

ये छह चित्त की लेश्याएं हैं। "शुभ्र" चित्त की आखिरी अवस्था है। झीने से झीना पर्दा बचा है, वह भी खो जाएगा। तो सातवीं को महावीर ने नहीं गिनाया; क्योंकि सातवीं फिर चित्त की अवस्था नहीं, आत्मा का स्वभाव है। वहां सफेद भी नहीं बचता। उतनी उत्तेजना भी नहीं रह जाती, सब रंग खो जाते हैं।

मृत्यु में जैसे खोते हैं, वैसे नहीं, जैसा काले में खोते हैं, वैसे नहीं--मुक्ति में जैसे खोते हैं। काले में तो सारे रंग इसलिए खो जाते हैं कि काला सभी रंगों को हजम कर जाता है, पी जाता है, भोग लेता है। मुक्ति में सभी रंग इसलिए खो जाते हैं कि किसी रंग पर पकड़ नहीं रह जाती; जीवन की कोई वासना, जीवन की कोई आकांक्षा, जीवेषणा नहीं रह जाती--सभी रंग खो जाते हैं। इसलिए सफेद के बाद जो अंतिम छलांग है, वह भी रंग-विहीन है।

और ध्यान रहे, मृत्यु और मोक्ष बड़े एक जैसे हैं और बड़े विपरीत भी; दोनों में इसलिए रंग खो जाते हैं। एक में रंग खो जाते हैं कि जीवन खो जाता है, दूसरे में इसलिए रंग खो जाते हैं कि जीवन पूर्ण हो जाता है, और अब रंगों की कोई इच्छा नहीं रह जाती।

मोक्ष मृत्यु जैसा है, इसलिए मुक्त होने से हम डरते हैं। जो जीवन को पकड़ता है, वही मुक्त हो सकता है। जो जीवन को पकड़ता है, वह बंधन में बना रहता है। "जीवेषणा", जिसको बुद्ध ने कहा है, लस्ट फॉर लाइफ, वही इन रंगों का फैलाव है। और अगर जीवेषणा बहुत ज्यादा हो तो दूसरे की मृत्यु बन जाती है--वह कृष्ण-लेश्या है। अगर जीवेषणा तरल होती जाए, कम होती जाए, फीकी होती जाए, तो दूसरे का जीवन बन जाती है--वह प्रेम है।

ये महावीर ने छह लेश्याएं कही हैं। अभी पश्चिम में इस पर खोज चलती है तो अनुभव में आता है कि ये छह रंग करीब-करीब वैज्ञानिक सिद्ध होंगे। और मनुष्य के चित्त को नापने की इससे कुशल कुंजी दूसरी नहीं हो सकती, क्योंकि यह बाहर से नापा जा सकता है, भीतर जाने की कोई जरूरत नहीं। जैसे एक्सरे लेकर कहा जा सकता है, कि भीतर कौन सी बीमारी है वैसे आपके चेहरे का आँरा पकड़ा जाए तो उस आँरे से पता चल सकता

है कि चित्त किस तहर से रुग्ण है, कहां अटका है। और तब मार्ग खोजे जा सकते हैं कि क्या किया जाए कि चित्त इस लेश्या से ऊपर उठे।

अंतिम घड़ी में लक्ष्य तो वही है, जहां कोई लेश्या न रह जाए। लेश्या का अर्थ : जो बांधती है, जिससे हम बंधन में होते हैं, जो रस्सी की तरह हमें चारों तरफ से घेरे रहती है। जब सारी लेश्याएं गिर जाती हैं तो जीवन की परम ऊर्जा मुक्त हो जाती है। उस मुक्ति के क्षण को हिंदुओं ने "ब्रह्म" कहा है--बुद्ध ने "निर्वाण" कहा है--महावीर ने "कैवल्य" कहा है।

"कृष्ण, नील, कापोत--ये तीन अधर्म-लेश्याएं हैं। इन तीनों से युक्त जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है।"

"तेज, पदम और शुक्ल--ये तीन धर्म-लेश्याएं हैं। इन तीनों से युक्त जीव सदगति में उत्पन्न होता है।"

ध्यान रहे, शुभ्र-लेश्या के पैदा हो जाने पर भी जन्म होगा। अच्छी गति होगी, सदगति होगी, साधु का जीवन होगा। लेकिन जन्म होगा क्योंकि लेश्या अभी भी बाकी है, थोड़ा सा बंधन शुभ्र का बाकी है। इसलिए पूरा विज्ञान विकसित हुआ था प्राचीन समय में--मरते हुए आदमी के पास ध्यान रखा जाता था कि उसकी कौन सी लेश्या मरते क्षण में है, क्योंकि जो उसकी लेश्या मरते क्षण में है, उससे अंदाज लगाया जा सकता है कि वह कहां जाएगा, उसकी कैसी गति होगी।

सभी लोगों के मरने पर लोग रोते नहीं थे, लेश्या देख कर अगर कृष्ण-लेश्या हो तो ही रोने का कोई अर्थ है। अगर कोई अधर्म-लेश्या हो तो रोने का अर्थ है, क्योंकि यह व्यक्ति फिर दुर्गति में जा रहा है, दुख में जा रहा है, नरक में भटकने जा रहा है।

तिब्बत में बारदो पूरा विज्ञान है, और पूरी कोशिश की जाती थी कि मरते क्षण में भी इसकी लेश्या बदल जाए, तो भी काम का है। मरते क्षण में भी इसकी लेश्या काली से नील हो जाए, तो भी इसके जीवन का तल बदल जाएगा। क्योंकि जिस क्षण में हम मरते हैं--जिस ढंग से, जिस अवस्था में--उसी में हम जन्मते हैं। ठीक वैसे, जैसे रात आप सोते हैं, तो जो विचार आपका अंतिम होगा, सुबह वही विचार आपका प्रथम होगा।

इसे आप प्रयोग करके देखें। बिल्कुल आखिरी विचार रात सोते समय जो आपके चित्त में होगा, जिसके बाद आप खो जाएंगे अंधेरे में नींद के--सुबह जैसे ही जागेंगे, वही विचार पहला होगा। क्योंकि रातभर सब स्थगित रहा, तो जो रात अंतिम था वही पहले सुबह प्रथम बनेगा। बीच में तो गैप है, अंधकार है, सब खाली है। इसलिए हमने मृत्यु को महानिद्रा कहा है। इधर मृत्यु के आखिरी क्षण में जो लेश्या होगी, जन्म के समय में वही पहली लेश्या होगी।

इसलिए मरते समय जाना जा सकता है कि व्यक्ति कहां जा रहा है। मरते समय जाना जा सकता है कि व्यक्ति जाएगा कहीं या नहीं जाएगा और महाशून्य के साथ एक हो जाएगा। जन्म के समय भी जाना जा सकता है। ज्यातिष बहुत भटक गया, और कचरे में भटक गया। अन्यथा जन्म के समय सारी खोज इस बात की थी कि व्यक्ति किस लेश्या को लेकर जन्म रहा है। क्योंकि उसके पूरे जीवन का ढंग और ढांचा वही होगा।

बुद्ध पैदा हुए। और जब भी कोई व्यक्ति श्वेत-लेश्या के साथ मरता है, तो जो लोग भी धर्म-लेश्याओं में जीते हैं, पीत या लाल में, उन लोगों को अनुभव होता है; क्योंकि यह घटना जागतिक है। और जब भी कोई व्यक्ति शुभ्र लेश्या में जन्म लेता है तो जो लोग भी लाल और पीत लेश्याओं के करीब होते हैं, या शुभ्र लेश्या में होते हैं, उनको अनुभव होता है कि कहां कौन पैदा हो रहा है।

जीसस के जन्म पर पूरब से तीन व्यक्ति जीसस की खोज में निकले। जीसस का जन्म हुआ बेथलहम की एक घुड़साल में, जहां जानवर बांधे जाते हैं, उस पशुशाला में गरीब बढई के घर। और पूरब के तीन मनीषी यात्रा पर निकले कि कहीं कोई शुभ्र-लेश्या का व्यक्ति जन्मा है। इन तीन की वजह से हेरोत को पता चला, सम्राट को पता चला, क्योंकि ये तीन पहले हेरोत के पास पहुंचे। इन्हें क्या पता? इन्होंने कहा, सम्राट खुश होगा। इन्होंने जाकर हेरोत को कहा कि तुम्हारे राज्य में कोई व्यक्ति पैदा हुआ है, क्योंकि हम तीनों को संकेत

मिले हैं। और हम तीनों ने ध्यान में यह जाना है। हम तीनों को यात्रा कराता हुआ आकाश में एक शुभ्र तारा चला है, और वह तारा बेथलहम पर आकर रुक गया है, तुम्हारे राज्य में। इस गांव में जरूर कोई व्यक्ति जन्मा है जो सच में सम्राट है।

यह बात हेरोत को अखर गई--सच में सम्राट! तो उसने कहा कि तुम जाओ और उसका पता लगाओ, और लौटते में मुझे खबर करते जाना। हेरोत ने तय कर लिया कि हत्या कर देगा इस बच्चे की। क्योंकि सच में कोई सम्राट जन्म जाए तो मेरा क्या होगा? अहंकार, प्रतिस्पर्धा!

वे तीनों व्यक्ति खोज करते हुए उस जगह पहुंचे। उस पशुशाला में जहां जीसस का जन्म हुआ था--घुड़साल में, उन्होंने जीसस की मां को भेंटें दीं, जीसस के चरण छुए। और उसी रात उनको स्वप्न आया कि तुम लौट कर हेरोत के पास मत जाओ, तुम भाग जाओ यहां से। और जीसस की मां को कह दो कि वह बच्चे को लेकर जितनी जल्दी हो सके बेथलहम छोड़ दे। उसी रात वे तीनों मनीषी राज्य को छोड़ कर चले गए, और जीसस की मां और पिता को लेकर इजिप्त चले गए।

बुद्ध का जन्म हुआ तो हिमालय से एक महर्षि भागा हुआ बुद्ध की राजधानी में आया। उस वृद्ध तपस्वी को देख कर बुद्ध के पिता बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा कि तुम्हें पता कैसे चला? तो उसने कहा कि "पता चल गया; क्योंकि जिस लेश्या में मैं हूं, जिस क्षण में मैं हूं, वहां से दिखाई पड़ सकता है। अगर कोई इतना शुभ्र तारा जमीन पर पैदा हो। तुम्हारा बच्चा तीर्थंकर होने को है, बुद्ध होने को है।"

बच्चे को लाया गया। बुद्ध के पिता तो बहुत हैरान हुए! उनको तो भरोसा न आया कि यह आदमी पागल तो नहीं है, क्योंकि उसने बच्चे के चरणों में सिर रख दिया। अभी कुछ ही दिन का बच्चा, और वह मनीषी रोने लगा .जार-.जार! बुद्ध के पिता डरे, और उन्होंने कहा कि क्या कुछ अशुभ होने को है? तुम रोते क्यों हो?

तो उसने कहा कि नहीं, मैं इसलिए नहीं रोता हूं कि कुछ अशुभ होने को है। इसलिए रोता हूं कि मेरी मृत्यु करीब है; और जिस क्षण यह व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होगा, उस समय मैं इसका सान्निध्य न पा सकूंगा। और ऐसी घड़ी को उपलब्ध होने की घटना कभी-कभी हजारों वर्षों में घटती है। तो मैं अपने लिए रो रहा हूं, इसके लिए नहीं रो रहा हूं। इसका तो यह आखिरी जीवन का शिखर है।

श्वेत-लेश्या लेकर जो व्यक्ति पैदा होता है, वह निर्वाण को उपलब्ध हो सकता है इसी जन्म में। क्योंकि धर्म की अंतिम सीमा पर पहुंच गया, अब धर्म के भी पार जा सकता है।

निर्वाण, ब्रह्म, मोक्ष-अधर्म के तो पार हैं ही, धर्म के भी पार हैं।

पांच मिनट रुकें। कीर्तन करें, फिर जाएं।

पांच समितियां और तीन गुप्तियां (लोकतत्व-सूत्र: 6)

अट्ट पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।
 पंचेव य समिईओ, तओ गुत्तीओ आहिया॥
 इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय।
 मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती य अट्टमा॥
 एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।
 गुत्ती नियत्तणे बुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो॥
 एसा पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी।
 से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए॥

पांच समिति और तीन गुप्ति--इस प्रकार आठ प्रवचन-माताएं कहलाती हैं।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उच्चार या उत्सर्ग--ये पांच समितियां हैं। तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति--ये तीन गुप्तियां हैं। इस प्रकार दोनों मिलकर आठ प्रवचन-माताएं हैं।

पांच समितियां चारिष्य की दया आदि प्रवृत्तियों में काम आती हैं, और तीन गुप्तियां सब प्रकार के अशुभ व्यापारों से निवृत्त होने में सहायक होती हैं।

जो विद्वान मुनि उक्त आठ प्रवचन-माताओं का अच्छी तरह आचरण करता है, वह शीघ्र ही अखिल संसार से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

साधना के आठ सूत्र महावीर ने इन वचनों में कहे हैं। जीवन के दो पहलू हैं। एक उसका विधायक रूप है--सक्रिय, एक उसका निषेधक रूप है--निष्क्रिय। जीवन में जो हम करते हैं, जीवन में जो हम होते हैं, उसमें दोनों का हाथ होता है। पुण्य भी किया जा सकता है सक्रिय होकर, और पुण्य किया जा सकता है निष्क्रिय होकर भी। पाप भी किया जा सकता है सक्रिय होकर, और पाप किया जा सकता है निष्क्रिय होकर भी।

साधारणतः हम सोचते हैं कि पाप या पुण्य सक्रिय होकर ही किए जा सकते हैं। एक व्यक्ति लूटा जा रहा है। जो लूट रहा है वह पाप कर रहा है, लेकिन आप खड़े होकर देख रहे हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं, तो भी महावीर कहते हैं पाप हो गया; आप नकारात्मक रूप से सहयोगी हैं। आप रोक सकते थे, नहीं रोक रहे हैं; आप पाप कर नहीं रहे हैं; लेकिन पाप होने दे रहे हैं। वह होने देना भी आपकी जिम्मेवारी है।

तो जो आप पाप करते हैं, वे तो आपके पाप हैं ही--जो पाप दूसरे करते हैं, और आप होने देते हैं--उनकी जिम्मेवारी भी आपके ऊपर है।

इस पृथ्वी पर कहीं भी कोई पाप हो रहा है, तो हम सब भागीदार हो गए, क्योंकि हम चाहते तो उसे रोक सकते थे--निष्क्रिय भागीदार। वे जो पाप करनेवाले लोग हैं, इसीलिए पाप कर पा रहे हैं--इसलिए नहीं कि दुनिया में बहुत पापी हैं--बल्कि इसलिए कि दुनिया में बहुत नकारात्मक पापी हैं; वे जो पाप को होने देंगे।

दुनिया में बुरे लोग ज्यादा नहीं हैं, यह सुन कर हैरानी होगी। निश्चित ही दुनिया में बुरे लोग ज्यादा नहीं हैं, लेकिन दुनिया में निष्क्रिय बुरे लोग ज्यादा हैं, जो बुरा करते नहीं, लेकिन बुरा होने देते हैं--जो बुरे को होने से रोकने की तत्परता नहीं दिखाते।

महावीर इन सूत्रों में दो हिस्से कर रहे हैं साधना के, एक विधायक और निषेधक। पांच विधायक तत्व हैं साधक के लिए, और तीन निषेधक तत्व हैं। इन आठ के बीच जो जीने की कला सीख लेता है, उसे धर्म का स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। और जिसे धर्म की स्वयं की अनुभूति हुई हो, वही धर्म के संबंध में कुछ बोल सकता है। इसलिए महावीर ने इन्हें "प्रवचन-माताएं" कहा है। इन आठ को जो उपलब्ध नहीं है, उसके बोलने का कोई भी मूल्य नहीं है। खतरा भी हो सकता है; क्योंकि जो हम नहीं जानते उस संबंध में कुछ भी कहना खतरनाक है।

जीवन बड़ी सूक्ष्म और जटिल बात है। अनजाने, बिना जाने अज्ञान में दी गई सलाह जहर हो जाती है। शुभ इच्छा से भी दी गई सलाह जहर हो जाती है, अगर आपको ठीक-ठीक सत्य का पता न हो। दुनिया में अधर्म कम हो सकता है, यदि वे लोग जिन्हें धर्म का स्वयं अनुभव नहीं है, बोलना बंद कर दें, लेकिन वे बोले चले जाते हैं।

बोलना बहुत कारणों से पैदा हो सकता है। अक्सर तो अहंकार को रस मिलता है। जब कोई बोलता है और कोई सुनता है, तो बड़ी अनूठी घटना घट रही है। बोलने वाला बिना जाने भी बोल सकता है, क्योंकि और भी रस हैं। जब कोई बोलता है और कोई सुनता है, तो जो बोलता है वह मालिक हो गया और सुनने वाला गुलाम हो गया; जो बोलता है वह ऊपर हो गया, जो सुनने वाला है वह नीचे हो गया; जो बोलता है वह हिंसक हो गया और सुनने वाला हिंसा का शिकार हो गया।

जब कोई बोल रहा है तो आप पर हमला कर रहा है, आप पर हावी हो रहा है, आपके मस्तिष्क पर सवार हो रहा है। इसमें रस है। गुरु होने में बड़ा मजा है। उस मजे के कारण बिना इसकी चिंता किए कि मैं जानता हूं या नहीं जानता--लोग बोले चले जाते हैं, लिखे चले जाते हैं, समझाए चले जाते हैं।

सलाह की कोई कमी नहीं, मार्ग-निर्देशक सब जगह खड़े हैं। जिनका खुद का भी कोई मार्ग नहीं है, वे भी मार्ग-निर्देश कर सकते हैं; क्योंकि निर्देश करने में अहंकार को बड़ी तृप्ति है। खुद अपनी तरफ सोचें तो आपको ख्याल आएगा। कोई आपसे पूछे--सलाह बिना पूछे आप देते हैं--कोई पूछे तब तो रुकना बहुत मुश्किल है! तब तो टेम्पटेशन, तब तो उत्तेजना बहुत हो जाती है, फिर आप सलाह देते ही हैं!

कभी आपने सोचा है कि जो सलाह आप दे रहे हैं, वह आपका निश्चित अपना अनुभव है, या सिर्फ एक आदमी की मजबूरी का लाभ उठा रहे हैं! क्योंकि वह परेशानी में है, आप सलाहकार बन सकते हैं! इसलिए दुनिया में सलाह मुफ्त मिलती है, जरूरत से ज्यादा मिलती है, हालांकि कोई उसे मानता नहीं।

दुनिया में शिष्यों की बजाय गुरु सदा ज्यादा हैं। और वह जो शिष्य है, वह भी शायद इसीलिए शिष्य है कि गुरु होने की तैयारी कर रहा है। और गुरु को भी सलाह दिए बिना आप बचते नहीं! उसको भी आप सलाह देंगे ही!

आदमी का अहंकार तृप्त होता है इस प्रतीति से कि मैं जानता हूं, दूसरा नहीं जानता है। दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने में बड़ा मजा है। यह बड़ा सूक्ष्म संघर्ष है। एक सूक्ष्म पहलवानी है, जिसमें दूसरे को गलत सिद्ध करके अपने को सही सिद्ध करने का अहंकार पुष्ट होता है।

महावीर ने कहा है: जो इन आठ सूत्रों की साधना से न गुजर जाए उसे बोलने का हक भी नहीं है। महावीर खुद बारह वर्ष तक मौन रह गए। बहुत मौके आए जब सलाह देने की तीव्र वासना उठी होगी, लेकिन उसे उन्होंने रोक लिया। एक ही बात सदा ध्यान रखी कि जब तक मैं पूरा मौन नहीं हो जाता, तब तक शब्द पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।

यह बड़ा उल्टा दिखाई पड़ेगा। जो मौन हो जाता है, वही शब्द का अधिकारी है; जो शून्य हो जाता है, वही प्रवचन का हकदार है। जो भीतर शब्दों से भरा है, वह जो भी बोल रहा है, वह बोलना वमन है, उलटी है। वह इतना भरा है कि उसे निकालने की उसे जरूरत है। आप सिर्फ एक पात्र हैं, जिसमें वह वमन कर देता है।

लेकिन आपकी जरूरत का सवाल नहीं है कि आपको क्या चाहिए, असली जरूरत बोलने वाले की है कि उसे क्या अपने से निकालना है।

आप खुद भी जानते हैं कि अगर कुछ आप पढ़ लें सुबह अखबार में, तो बेचैनी शुरू हो जाती है कि जल्दी किसी को जाकर कहें। कोई कुछ खबर दे दे, किसी की अफवाह सुना दे, किसी की बदनामी कर दे, किसी की निंदा कर दे--तो फिर आपसे रुका नहीं जाता, जल्दी ही इस संवाद को, इस सुखद समाचार को आप दूसरे को देना चाहते हैं। और निश्चित ही देते वक्त आप थोड़ी कल्पना का भी उपयोग करते हैं। आप भी थोड़े कवि हैं, आप उसमें कुछ जोड़ते हैं; उसको सजाते हैं; संवारते हैं। सुबह की अफवाह शाम अगर उसी आदमी के पास वापस लौट आए, जिसने शुरू की थी, तो वह पहचान नहीं सकेगा कि यह बात मैंने ही कही थी। इतने लोगों के हाथ से निखर जाएगी। सुबह पांच रुपये की चोरी हुई हो तो सांझ तक पांच लाख की हो जाना कुछ अड़चन की बात नहीं है।

मन में कुछ आया कि आप जल्दी उसे देना चाहते हैं; क्यों? क्योंकि फिर आप हल्के हो जाएंगे; जब तक नहीं देते, तब तक मन पर बोझ बना रहता है। इसलिए किसी बात को गुप्त रखना बड़ा कठिन है। और जो लोग किसी बात को गुप्त रख सकते हैं, बड़ी गहरी क्षमता है उनकी। और जब आप शब्द तक को गुप्त नहीं रख सकते, तो और क्या गुप्त रखेंगे। इसलिए गुरुमंत्र का नियम है: मंत्र में कुछ भी न हो, लेकिन उसे गुप्त रखना है। गुप्त रखने में ही सारी साधना है, मंत्र उतना मूल्यवान नहीं है। क्योंकि कहने का मन इतना नैसर्गिक है, इतना स्वाभाविक है कि किसी चीज को रोकना बिल्कुल अस्वाभाविक मालूम होता है। आप किसी न किसी भांति किसी न किसी से कह देना चाहते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन के पास कोई आया, और आकर उसने कहा: मैंने सुना है कि तुम्हें जीवन के रहस्य की कुंजी मिल गई है, वह कुंजी तुम मुझे दे दो। नसरुद्दीन ने कहा कि वह बड़ी गुप्त बात है, बड़ा सीक्रेट है। उस आदमी ने कहा कि मैं भी उसे गुप्त रखने की कोशिश करूंगा। नसरुद्दीन ने कहा कि तू पक्की कसम खा कि उसे गुप्त रखेगा। उस आदमी ने कसम खाई; उसने कहा: मैं गुप्त रखूंगा। नसरुद्दीन ने कसम सुनने के बाद कहा: अब जा। पर उसने कहा: अभी आपने मुझे वह कुंजी बताई नहीं। नसरुद्दीन ने कहा कि जब तू गुप्त रख सकता है तो मैं गुप्त नहीं रख सकता? और जब मैं ही न रख सकूंगा तो तेरा क्या भरोसा?

कठिन है, अति अप्राकृतिक है कि कोई बात आपके मन में चली जाए और आप उसे न कहें। एक ही उपाय है कि वह बात शब्द न रह जाए, खून बन जाए, हड्डी हो जाए, पच जाए, मांस-मज्जा हो जाए, तो ही गुप्त रह सकती है। इसलिए गुप्त रखने की एक कला है। उस कला के माध्यम से जो शब्द आपके भीतर जाते हैं, उनको आप बाहर नहीं फेंकते, ताकि वे पच जाएं--वे समय लेंगे। आप बाहर फेंक देते हैं, इसलिए मैंने कहा--वमन, उलटी, कय हो गई। जो आपने खाया था, वह वापस मुंह से फेंक दिया गया। वह पच नहीं पाया। मौन पचाएगा--और तभी बोलेगा, जब इतनी शांति गहन हो जाएगी भीतर कि अब कोई अशांति नहीं है, जिसे किसी पर फेंकना है; अब किसी को शिकार नहीं बनाना है।

मौन व्यक्ति ही सहयोगी हो सकता है, मार्ग-निर्देशक हो सकता है। हिंदुओं ने अपने संन्यासी को "स्वामी" कहा, इस अर्थ में कि वह अपना मालिक हो गया। बुद्ध ने अपने संन्यासी को "भिक्षु" कहा, इस अर्थ में कि इस दुनिया में सभी अपने को मालिक समझ रहे हैं--और गलत। कोई अपने को भिक्षु नहीं समझता, कोई अपने को अंतिम नहीं समझता। मेरा संन्यासी अपने को अंतिम समझेगा, भिखारी समझेगा, ताकि महत्वाकांक्षा की दौड़ से टूट जाए।

महावीर ने अपने साधु को "मुनि" कहा। इस कारण से मुनि कहा कि महावीर का मौन पर सर्वाधिक जोर है। और महावीर कहते हैं, जो मौन को उपलब्ध नहीं हो जाता, मुनि नहीं हो जाता, उससे सत्य की कोई किरण प्रकट नहीं हो सकती।

ये आठ सूत्र बड़े अनूठे हैं। इनमें, एक-एक सूत्र पर हम क्रमशः विचार करें।

"पांच समिति और तीन गुप्ति--इस प्रकार आठ प्रवचन-माताएं हैं।" जो आपको बोलने के योग्य बना सकेंगी। बोलते तो आप हैं, लेकिन बोलने की कोई योग्यता नहीं है। बोलना आपकी एक बीमारी है, एक रोग है। इसलिए बोलकर आप अपने को हलका अनुभव करते हैं, बोझ उतर जाता है। दूसरे से प्रयोजन नहीं है--अगर आपको कोई बोलने को न मिले तो आप अकेले में भी बोलेंगे। अगर आपको बंद कर दिया जाए एक कोठरी में, और कोई न मिले, तो थोड़ी ही देर में आप अकेले बोलना शुरू कर देंगे।

अभी भी रास्ते पर अगर आप खड़े हो जाएं तो कई लोग आपको दिखाई पड़ेंगे, जो अपने से बातचीत करते चले जा रहे हैं। कोई हाथ हिला रहा है, कोई जवाब दे रहा है--किसी को जो मौजूद नहीं है। उसके ओंठ हिल रहे हैं, उसकी आंखें कंप रही हैं--वह किसी के साथ है। पागलखाने में जाकर देखें, लोग अपने से बातें कर रहे हैं।

आप में भी बहुत फर्क नहीं है। जब आप दूसरे से बात कर रहे हैं तो दूसरा तो केवल बहाना है, बात आप अपने से ही कर रहे हैं। इसलिए दो लोगों की बातचीत सुनें, शांत मौन होकर, तो आप हैरान होंगे कि वे एक-दूसरे से बातचीत नहीं कर रहे--दोनों अपना-अपना बोझ फेंक रहे हैं। न उसको प्रयोजन है, न इसको प्रयोजन है। दूसरे से कोई संबंध नहीं है, दूसरा खूटी की तरह है। आप आए अपना कोट खूटी पर टांग दिया। कोई खूटी से मतलब नहीं है, कोट टांगने से मतलब है। कोई भी खूटी काम दे देगी। तो जो भी मिल जाए, जो भी अभागा आपके हाथ में पड़ जाए, उस पर आप फेंक रहे हैं!

महावीर कहते हैं: बोलने का अधिकार उसको ही है, जो न बोलने की कला को उपलब्ध हो गया। लेकिन न बोलने की कला एक गहन प्रक्रिया है। पूरे जीवन की धारणा, दृष्टि, आधार बदलने पड़ेंगे। उन आधार को बदलने वाली ये आठ वैज्ञानिक प्रक्रियाएं हैं: पांच समिति और तीन गुप्ति।

समितियां हैं विधायक--पाजिटिव, और गुप्तियां हैं निगेटिव--नकारात्मक। समिति में ख्याल रखना है उसका जो आप करते हैं, और गुप्ति में ख्याल रखना है उसका जो आप नहीं करते हैं। और, विधायक और नकार दोनों सम्मिलित जाएं तो आप दोनों के पार हो जाते हैं।

"ईर्या, भाषा, एषणा, आदान और उच्चार--ये पांच समितियां हैं।"

"ईर्या" का अर्थ है: साधक जो भी प्रवृत्ति करे, उसमें सावधानी रखे। महावीर ने कहा है: उठो, बैठो, चलो--होशपूर्वक, अवेयरनेस। कोई भी प्रवृत्ति करो, वह बेहोशी से न हो, इसका नाम "ईर्या-समिति" है।

हम जो भी कर रहे हैं, बेहोशी में कर रहे हैं। चलते हैं, लेकिन चलने से कोई मतलब नहीं, मन कुछ और करता रहता है। और जब मन कुछ और करता रहता है, तो चलने में हम बेहोश हो जाते हैं। भोजन करते हैं, मन कुछ और करता रहता है--तो भोजन करने में बेहोश हो जाते हैं। किसी से बात भी आप कर रहे हैं तो भी बात ऊपर चल रही है, भीतर आपका मन कुछ और कर रहा है--तो आप बात में भी बेहोश हो जाते हैं।

महावीर ने कहा है कि साधक का प्राथमिक चरण है, उसकी सारी क्रियाएं होशपूर्वक हो जाएं। जिसको गुरजिएफ ने "सेल्फ-रिमेंबरिंग" कहा है, और जिस पर गुरजिएफ ने अपने पूरे साधना का आधार रखा है, या जिसको कृष्णमूर्ति "अवेयरनेस" कहते हैं, उसे महावीर ने "ईर्या-समिति" कहा है। वह उनका पहला तत्व है, अभी सात तत्व और हैं। लेकिन पहला इतना अदभुत है कि अगर उसे कोई पूरा साधने लगे तो सात के बिना भी सत्य तक पहुंच सकता है।

जो भी आप कर रहे हैं, करते वक्त क्रिया के साथ आपकी चेतना संयुक्त होनी चाहिए। कठिन है, क्योंकि चौबीस घंटे आप कुछ न कुछ कर रहे हैं। हजार तरह की क्रियाएं हो रही हैं। उन सारी क्रियाओं में अगर आप बोध रखें तो आप चकित हो जाएंगे, एक सेकेंड भी बोध रखना मुश्किल मालूम पड़ेगा। तब आपको पहली दफे पता चलेगा कि आप अब तक बेहोशी में जी रहे थे। एक सेकेंड भी आप चलने का ख्याल रख कर चलें कि आपकी

चेतना पूरी चलने की क्रिया पर अटकी रहे। बायां पैर उठा तो उसके साथ चेतना उठे, बायां पैर नीचे गया और दायां उठा तो उसके साथ चेतना उठे। आप पाएंगे, एकाध सेकेंड मुश्किल से यह हो पाता है--कि चेतना खो गई, पैर अपने आप उठने लगे, मन कहीं और चला गया, कुछ और सोचने लगा। तब आपको फिर ख्याल आएगा--मैं सो गया!

महावीर ने कहा है: मैं उसी को साधु कहता हूं, जो जागा हुआ है; असाधु उसको कहता हूं, जो सोया हुआ है। सुत्ता अमुनि, असुत्ता मुनि--जो जागा हुआ है, असोया हुआ है वह "मुनि", जो सोया हुआ है वह "अमुनि"।

तो आप क्या करते हैं, यह बड़ा सवाल नहीं है। कैसे करते हैं? होशपूर्वक या बेहोशी में। यह भी हो सकता है कि दान करनेवाला असाधु हो, अगर बेहोशी से कर रहा है; और चोरी करने वाला साधु हो जाए, अगर होशपूर्वक कर रहा है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप जाकर होशपूर्वक चोरी करें। मैं यह कह रहा हूं इतनी दूर तक संभावना है होश की, कि अगर होशपूर्वक कोई चोरी करे तो भी साधु होगा, और बेहोशी से कोई दान दे तो भी असाधु होगा। सचाई तो यह है कि होशपूर्वक चोरी हो नहीं सकती और न बेहोशी में दान हो सकता है। बेहोशी का दान झूठा है, उसके प्रयोजन दूसरे हैं। होश में चोरी असंभव है, क्योंकि चोरी के लिए बेहोशी अनिवार्य तत्व है। जो भी बुरा है जीवन में, उसके लिए मूर्खता चाहिए।

इसलिए जब भी आप बुरा करते हैं, तब आप मूर्च्छित होते हैं। जब भी आप मूर्च्छित हो जाते हैं, बुरा करने की संभावना प्रगाढ़ हो जाती है। हिंसा में, हत्या में, झूठ में, चोरी में, पाप में, वासना में आप होश में नहीं होते, आप बेहोश हो जाते हैं। कुछ भीतर आपके सो जाता है। आप पछताते हैं बहुत बार, जब जागते हैं, जब क्षणभर को होश वापस लौटता है, तो ख्याल आता है--"यह मैंने क्या किया? यह मुझे नहीं करना था! और यह मैं जानता था कि यह नहीं करना है! न मालूम कितनी बार निर्णय किया था कि नहीं करूंगा, फिर भी हो गया!" कैसे हुआ आपसे यह? निश्चित ही बीच में किसी धुएं ने घेर लिया, आपका चित्त खो गया निद्रा में।

महावीर कहते हैं--साधु ईर्ष्या से चले, उठे-बैठे, प्रवृत्ति करे। जो भी करे, क्षुद्रतम प्रवृत्ति भी होशपूर्वक हो। क्यों? क्योंकि प्रवृत्ति दूसरे से जोड़ती है। बेहोश आदमी के संबंध हिंसात्मक होंगे। वह दूसरे को चोट पहुंचा देगा। जैसे कोई आदमी नशे में यहां से चले और आपके पैर पर पैर रख दे, तो आप क्या कहेंगे? कहेंगे कि यह आदमी नशे में है। लेकिन हम ऐसे ही जीवन में चल रहे हैं--नशे में।

नशे बहुत तरह के हैं, तरह-तरह के हैं। हर आदमी का अपना-अपना नशा है। कोई आदमी धन के नशे में चल रहा है। देखें--जब किसी के पास धन होता है, तो उसकी चाल अलग होती है। आपके खीसे में भी जब पैसे ज्यादा होते हैं तो आपकी चाल वही नहीं होती। आप अनुभव करना। जब खीसे में पैसा नहीं होता तो आप और ढंग से चलते हैं। नशा ही नहीं है। चाल में जान नहीं मालूम पड़ती। जब खीसे में पैसे होते हैं, तब रीढ़ सीधी हो जाती है! कुंडलिनी जागृत हो जाती है! आप बहुत अकड़कर चलते हैं।

राजनीतिज्ञ जब पद पर होता है, तब उसकी चाल देखें; जैसे कपड़े पर नया-नया कलफ किया गया हो! और जब पद से उतर जाता है, तब उसकी चाल देखें; जैसे रात भर उन्हीं कपड़ों को पहन कर सोया हो! सब अस्त-व्यस्त हो जाता है। सब चमक चली जाती है। सब शान चली जाती है। धनी निर्धन हो जाए तो देखें। स्वस्थ आदमी बीमार हो जाए तो देखें।

नशे हैं। कोई ज्ञान के नशे में है--तब ज्ञान की अकड़ होती है कि मैं जानता हूं। हजार तरह के नशे हैं। नशा उसको कहते हैं, जिससे आप अकड़ते हैं, और बेहोश होते हैं, और होशपूर्वक नहीं चल पाते।

साधना का अर्थ ही है कि नशों को तोड़ना। जहां-जहां चीजें हमें बेहोश करती हैं, उन-उन से संबंध विच्छिन्न करना, और एक ऐसी सरल स्थिति में आ जाना जहां सिर्फ चेतना हो और किसी तरह की बेहोशी के तत्व से संबंध न रहा हो।

धन में खतरा नहीं है। धन से जो नशे से भर जाते हैं, उसमें खतरा है। तो निर्धन होने से काम न चलेगा; क्योंकि आदमी इतना चालाक है कि निर्धन होने का भी नशा हो सकता है।

सुकरात से मिलने एक फकीर आया। उस फकीर ने चीथड़े पहन रखे थे, जिनमें छेद थे। उस फकीर का नियम था कि अगर कोई नया कपड़ा भी उसको दे दे तो वह नया कपड़ा नहीं पहनता था। फकीर--वह पहले उसमें छेद कर लेता, कपड़े को गंदा करता, फाड़ता--तब पहनता! गुदड़ी बना लेता, तब कपड़े का उपयोग करता!

फटे-पुराने, गंदे कपड़े पहने हुए फकीर आया सुकरात से मिलने। सुकरात ने उससे कहा कि तुम कितने ही फटे कपड़े पहनो, तुम्हारे छिद्रों से तुम्हारा अहंकार ही झांकता है। तुम्हारे छिद्र भी तुम्हारे अहंकार का हिस्सा हैं; वे भी तुम्हें भर रहे हैं। तुम जिस अकड़ से चल रहे हो, सम्राट भी नहीं चलता! क्योंकि वह आदमी, समझ रहा है, मैं फकीर हूं, त्यागी हूं! त्यागियों को देखें! उनकी अकड़ देखें! जैसे सब क्षुद्र हो गए हैं उनके सामने। भोगी को वे ऐसे देखते हैं, जैसे कीड़ा-मकोड़ा-पाप में गिरा हुआ, पाप की गर्द में गिरा हुआ। उनके ऊपर बोझ है कि आपको पाप से उठाएं। अब नरक आपका निश्चित है। जब भी वे आपको देखते हैं तो उनको लगता है--बेचारा! नरक में सड़ेगा! लेकिन उन्हें ख्याल नहीं आता कि नरक में सड़ाने का यह ख्याल बड़े गहरे अहंकार का ख्याल है।

त्याग नशा दे रहा है। तो त्यागी और ढंग से उठता है, और ढंग से बैठता है। उसकी अकड़--उसकी अकड़ मजेदार है। वह कहता है, मैंने रुपयों पर लात मार दी, तिजोरी को ठुकरा दिया; पत्नी सुंदर थी, आंख फेर ली! तुम अभी तक पाप में पड़े हो! वह अपनी हर प्रक्रिया से--मैं कुछ ज्यादा हूं, कुछ महत्वपूर्ण हूं, कुछ खास हूं, इसकी कोशिश कर रहा है।

और आदमी ने खास होने की इतनी कोशिशें की हैं कि जिसका हिसाब नहीं। आदमी कोई भी नालायकी कर सकता है, अगर खास होने का मौका मिले। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अधिक लोग अपराध की तरफ इसलिए प्रवृत्त हो जाते हैं कि अपराधी होकर वे खास हो जाते हैं। हजारों अपराधियों का अध्ययन करके इस नतीजे पर पहुंचा गया है कि अगर उनके अहंकार को तृप्त करने का कोई और रास्ता खोजा गया होता तो उन्होंने अपराध न किए होते। अनेक हत्यारों ने वक्तव्य दिए हैं, और वक्तव्य बड़े गहरे हैं कि वे सिर्फ अखबार में अपना नाम छपा एक दफा देखना चाहते थे। जब उन्होंने किसी की हत्या कर दी तो अखबार में सुर्खियों में नाम छप गया।

हमारे अखबार भी हत्याओं में सहयोगी हैं। आप किसी को बचा लें, कोई अखबार में कोई खबर न छापेगा; किसी को मार डालें, अखबार में खबर छप जाएगी। ऐसा लगता है कि बुरा करना प्रसिद्ध होने के लिए बिल्कुल आवश्यक है। शुभ की कोई चर्चा नहीं होती। शुभ जैसे प्रयोजन ही नहीं है!

मनस्विद कहते हैं कि जब तक हम अशुभ को मूल्य देंगे, तब तक कुछ लोग अशुभ से अपने अहंकार को भरते रहेंगे।

खास होने का मजा है। राबर्ट रिप्ले ने लिखा है कि वह जवान था, और प्रसिद्ध होना चाहता था। जवानी में सभी प्रसिद्ध होना चाहते हैं--स्वाभाविक है, जवानी इतनी पागल है, इतनी बेहोश है। चिंता तो तब होती है, जब बुढ़ापे में कोई उसी पागलपन में पड़ा रहता है।

तो रिप्ले प्रसिद्ध होना चाहता था, लेकिन कोई उसे उपाय नहीं सूझता था, कैसे प्रसिद्ध हो जाए।

दुनिया इतनी बड़ी है अब, और इतनी करीब आ गई है कि प्रसिद्धि के मौके कम हो गए हैं। दुनिया में, मनस्विद कहते हैं कि मानसिक रोग बढ़ते जाते हैं, क्योंकि प्रसिद्धि के मौके कम होते जाते हैं। पुरानी दुनिया में हर गांव अपने में एक दुनिया था। गांव का कवि "महान-कवि" था, क्योंकि दूसरे गांव से कोई तुलना नहीं थी। गांव का चमार भी "महान-चमार" था, क्योंकि उस जैसे जूते बनाने वाला कोई भी नहीं था। गांव में सैकड़ों लोगों का अहंकार तृप्त हो रहा था। अब पूरे मुल्क में जब तक आप "राष्ट्रीय-चमार" न हो जाएं, "राष्ट्र-कवि" न हो जाएं, तब तक आपकी कोई कीमत नहीं है। हजारों कवि हैं, हजारों चमार हैं, हजारों दुकानदार हैं, हजारों कोई

पूछनेवाला नहीं है इस संख्या में। और दुनिया सिकुड़ती जाती है। जब तक विश्व-कवि न हो जाएं, तब तक बहुत मजा नहीं, जब तक नोबल प्राइज न मिल जाए तब तक कुछ मजा नहीं। कठिन होता जाता है; अधिक लोगों के अहंकार तृप्त नहीं हो पाते। अधिक लोगों की मूर्च्छा तृप्त नहीं हो पाती तो बीमार हो जाते हैं, रुग्ण हो जाते हैं।

रिप्ले जवान था और प्रसिद्ध होना चाहता था। तो जब उसे कुछ नहीं सूझा तो उसने एक आदमी से सलाह ली। जिससे सलाह ली वह एक सर्कस का मालिक था। उसने कहा: यह भी कोई खास बात है, बिल्कुल सरल बात है। तू आधी खोपड़ी के बाल काट दे, आधी दाढ़ी काट दे, आधी मूंछ काट दे--और सड़क से सिर्फ गुजर, कुछ मत बोल किसी से। लोगों को देखने दे, कोई कुछ पूछे तो मुस्कुरा।

रिप्ले ने कहा: इससे क्या होगा? उसने कहा कि तीन दिन के बाद तू आना।

तीन दिन बाद आने की जरूरत न रही, सारे अखबारों में खबरें छप गईं। जगह-जगह लोग खड़े होकर देखने लगे। नाम व पता उसने अपनी छाती पर लिख रखा था। लोग उससे पूछते कि आप कौन हैं? तो वह सिर्फ मुस्कुराता। सड़कों पर सिर्फ घूमता रहता। तीन दिन में वह न्यूयार्क में प्रसिद्ध हो गया। तीन महीने के भीतर पूरी अमेरिका उसको जानती थी। तीन साल के भीतर दुनिया में बहुत कम लोग थे जो उसको नहीं जानते थे। फिर तो उसने जिंदगी भर इस तरह के काम किए। और इस जमीन पर कम ही लोग इतने प्रसिद्ध होते हैं, जैसा राबर्ट रिप्ले हुआ। फिर तो वह इसी तरह के उलटे-सीधे काम में लग गया।

मगर प्रसिद्धि मिलती है, अहंकार तृप्त होता है, अगर आप सिर्फ खोपड़ी के बाल काट लें आधे तो। जिसको आप साधु कहते हैं, वह जो साधु नाम का जीव है, उनमें से सौ में से निन्यानबे लोग खोपड़ी के आधे बाल काटे हुए हैं! मगर उससे प्रसिद्धि मिलती है, सम्मान मिलता है, आदर मिलता है, मूर्च्छा तृप्त होती है।

मूर्च्छा के लिए अहंकार भोजन है। अहंकार के लिए मूर्च्छा सहयोगिनी है।

महावीर कहते हैं, "ईर्या-समिति" पहली समिति है। व्यक्ति जो भी करे, होशपूर्वक करे। करने की फिकर छोड़ दे कि वह क्या कर रहा है, इसकी फिकर करे कि मैं होशपूर्वक कर रहा हूं कि नहीं।

हम सब की चिंता होती है कि "हम क्या कर रहे हैं?"--गलत तो नहीं कर रहे हैं, सही तो कर रहे हैं। चोरी तो नहीं कर रहे हैं, दान कर रहे हैं। हिंसा तो नहीं कर रहे, अहिंसा कर रहे हैं।

"क्या कर रहे हैं"--इस पर हमारा जोर है। महावीर का सारा जोर इस पर है कि वह जो कर रहा है, वह जागकर कर रहा है या सोकर कर रहा है?

तो आप अहिंसा कर सकते हैं--सोए-सोए, और दूसरी तरफ हिंसा जारी रहेगी।

कलकत्ते में, एक घर में मैं मेहमान था। बहुत बड़े धनपति हैं। सांझ को मैंने देखा कि बाहर कुछ खाटें लगा रखी हैं। तो पूछा कि "यह क्या मामला है?" उन्होंने कहा कि "अहिंसा के कारण। खटमल पैदा हो गए हैं खाट में, मार तो सकते नहीं, लेकिन उनको धूप में डाल देंगे तो वे मर ही जाएंगे। तो रात को नौकरों को उन पर सुला देते हैं। नौकरों को दो रुपये रात दे देते हैं सोने के लिए।"

अब यह बड़ा मजेदार मामला हुआ। अहिंसक होने की कोशिश चल रही है--"खटमल न मर जाए!" लेकिन दो रुपये देकर जिस आदमी को सुलाया है, उसको रातभर खटमल खा रहे हैं! पर उसको दो रुपये मैंने दे दिए हैं, इसलिए कोई अड़चन नहीं मालूम होती! सब मामला साफ हो गया, सुथरा हो गया!

एक तरफ अहिंसा करो, अहिंसा करने की कोशिश होगी, दूसरी तरफ हिंसा होती चली जाएगी। क्योंकि भीतर से चेतना तो बदल नहीं रही, सिर्फ कृत्य का रूप बदल रहा है; भीतर से आदमी तो बदल नहीं रहा, सिर्फ उसका व्यवहार बदल रहा है। जो व्यवहार को बदलने की कोशिश करेंगे वे पाएंगे कि जो चीज उन्होंने बदली है, वह दूसरी तरफ से भीतर प्रवेश कर गई।

बड़े आश्चर्य की बात है कि शिकारी, जिनको हम शुद्धतम हिंसक कहें, हमेशा मिलनसार और अच्छे लोग होते हैं। अगर आपको किसी शिकारी से दोस्ती है, तो आप चकित होंगे कि वह कितना मिलनसार है--है

हत्यारा! लेकिन अहिंसा की चेष्टा करने वाला व्यक्ति, जिसने अपनी चेतना को नहीं बदला, अकसर मिलनसार नहीं होगा--दुष्ट मालूम पड़ेगा, कठोर मालूम पड़ेगा। उसे आप झुका नहीं सकते। वह झुकेगा भी नहीं, मिलने आएगा भी नहीं।

क्या कारण है कि शिकारी इतने मिलनसार होते हैं, जो हिंसा कर रहे हैं! उनकी हिंसा शिकार में निकल जाती है, आदमी की तरफ निकलने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जो सब तरफ से हिंसा को रोक लेता है, उसकी हिंसा आदमी की तरफ निकलनी शुरू हो जाती है। अगर अहिंसा को माननेवाले जैनों ने इस देश में किसी भी दूसरे समाज के मुकाबले ज्यादा पैसा इकट्ठा किया है, तो उसका कारण है। क्योंकि हिंसा का सारा रुख बाकी तरफ से तो बच गया, हिंसा और कहीं तो निकल न सकी, सिर्फ धन की खोज में, धन को खींचने में निकल सकी।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, जो मैं कह रहा हूँ कि आपकी वृत्तियाँ अगर एक तरफ से रोक दी जाएं तो दूसरी तरफ से निकलती हैं। आप जान कर हैरान होंगे कि अगर कोई दौड़ने वाला, तेज दौड़ने वाला प्रतियोगी पंद्रह दिन दौड़ने के पहले संभोग न करे तो उसकी दौड़ की गति ज्यादा होती है, अगर संभोग कर ले तो कम हो जाती है। अगर परीक्षार्थी सुबह परीक्षा दे और रात संभोग कर ले, तो उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता कम हो जाती है; अगर परीक्षा के समय में संभोग न करे तो उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता ज्यादा होती है। सैनिकों को पत्नियाँ नहीं ले जाने दिया जाता, क्योंकि अगर वे संभोग कर लें तो उनकी लड़ने की क्षमता कम हो जाती है। उनको वासना से दूर रखा जाता है, ताकि वासना इतनी इकट्ठी हो जाए कि छुरे में प्रवेश कर जाए। जब वे किसी की हत्या करें तो हत्या कामवासना का कृत्य बन जाए।

यह जानकर आप चकित होंगे कि जब भी कोई समाज समृद्ध हो जाता है तो उसके हार के दिन करीब आ जाते हैं, क्योंकि उसके सैनिक भी आराम से रहने लगते हैं। जब कोई समाज दीन-दरिद्र होता है तो उसके हारने के दिन नहीं होते। कभी भी अत्यंत दरिद्र समाज अगर समृद्ध समाज से टक्कर में पड़ जाए, तो समृद्ध को हारना पड़ता है। यह भारत इस अनुभव से गुजर चुका है। तीन हजार साल निरंतर भारत पर हमले होते रहे। और जो भी हमलावर था इस मुल्क पर--वह हमेशा गरीब था, दीन था, दुखी था, परेशान था। लेकिन उसकी परेशानी इतनी ज्यादा थी कि हिंसा बन गई। हम यहां बिल्कुल सुखी थे, खाते-पीते थे, प्रसन्न थे, आनंदित थे, हमारी कुछ इतनी वासना इकट्ठी नहीं थी कि हिंसा बन जाए।

आप देखें, अगर आप दो-चार दिन ब्रह्मचर्य का साधन करें, तो आप पाएंगे, आपका क्रोध बढ़ गया है। बड़े मजे की बात है। क्रोध बढ़ना नहीं चाहिए ब्रह्मचर्य के साधने से, घटना चाहिए। लेकिन आप अगर पंद्रह दिन ब्रह्मचर्य का साधन करें, आपका क्रोध बढ़ जाएगा; क्योंकि जो शक्ति इकट्ठी हो रही है, अब वह दूसरा मार्ग खोजेगी। जब तक आपको ध्यान का मार्ग न मिल जाए, तब तक ब्रह्मचर्य खतरनाक है; क्योंकि ब्रह्मचारी आदमी दुष्ट हो जाएगा। आप दो-चार दिन उपवास करके देखें, आप बंद ही हो जाएंगे, क्रोधी हो जाएंगे।

सभी को अनुभव है कि घर में एकाध आदमी धार्मिक हो जाए तो पूरे घर में उपद्रव हो जाता है; क्योंकि वह धार्मिक आदमी सबको सताने की तरकीबें खोजने लगता है। उसकी तरकीबें भली होती हैं, इसलिए उनसे बचना भी मुश्किल है। वह तरकीबें भी ऐसी करता है कि आप यह भी नहीं कह सकते कि "तुम गलत हो।" क्योंकि वह इतना अच्छा है, उपवास करता है, ब्रह्मचर्य साधता है, सुबह से उठ कर योगासन करता है--बुराई तो उसमें आप खोज ही नहीं सकते। न सिगरेट पीता है, न शराब पीता है, न होटल में जाता है, न सिनेमा देखता है; घर में ही बैठ कर गीता, रामायण पढ़ता रहता है। मगर वह जितना इकट्ठा कर रहा है उतना निकालेगा, चिड़चिड़ा हो जाएगा। बहुत मुश्किल है धार्मिक आदमी पाना, जो चिड़चिड़ा न हो। जब धार्मिक आदमी चिड़चिड़ा न हो तो समझना कि ठीक धार्मिक आदमी है। लेकिन धार्मिक आदमी चिड़चिड़ा होगा, सौ में निन्यानबे मौके पर; क्योंकि जो उसने रोका है, वह कहीं से निकलेगा। वह चिड़चिड़ाहट बन जाएगा उपद्रव!

आप अहिंसा को थोप सकते हैं, फिर हिंसा नई तरफ से बहने लगेगी।

यह जानकर आप चकित होंगे कि पूरा जीवन एक इकॉनामिक्स है, शक्ति का एक अर्थशास्त्र है। आप इस अर्थशास्त्र को सीधा नहीं बदल सकते, जब तक कि भीतर का मालिक न बदल जाए तब तक एक तरफ से झरने को रोकते हैं, दूसरी तरफ से बहना शुरू हो जाता है।

महावीर का जोर कृत्य पर नहीं है, कर्ता पर है। आप क्या करते हैं, यह बात बहुत विचारणीय नहीं है। आप होशपूर्वक करें, बस इतना ही विचारणीय है। और मजे की बात यह है कि होशपूर्वक करने पर जो बुरा है, वह होता ही नहीं; क्योंकि बुरे की अनिवार्य शर्त है, बेहोशी। यह गणित है। होशपूर्वक करने पर वही होता है, जो शुभ है, जो ठीक है; क्योंकि होश से गैर-ठीक निकलता ही नहीं। इसलिए महावीर ने "ईर्या" पहली समिति कही--होशपूर्वक प्रवृत्ति।

"भाषा"--होशपूर्वक भाषा का व्यवहार, संयमपूर्वक भाषा का व्यवहार। यह संयम उस सीमा तक जाना चाहिए, जहां भाषा मौन हो जाए।

"ईर्या" जागरूकता बन जाए, इतना होश हो जाए कि उसका होश न रखना पड़े--कि उसकी अलग से चेष्टा न करनी पड़े कि होश रखूं। होश सहज हो जाए तो "ईर्या" पूरी हुई। भाषा की पूर्णता या भाषा का बोध और भाषा की समिति तब पूरी होती है, जब मौन सहज हो जाए। भाषा का उपयोग तभी हो जब अत्यंत जरूरी संवाद हो, आवश्यक हो कि बोलना जरूरी है। और जब बोलें तब भाषा का उपयोग हो, जब न बोलें तब भीतर भाषा न चलती रहे। अभी आप नहीं भी बोलते तो भी भीतर भाषा चलती रहती है; भीतर तो आप बोलते ही रहते हैं। बाहर कभी-कभी चुप रहते हैं, भीतर तो कभी चुप नहीं रहते। सपने तक में चर्चा चलती रहती है।

यह जो भीतर चलने वाली भाषा है, यह जीवन की ऊर्जा को पीए जा रही है, सोखे जा रही है। आपका मस्तिष्क विक्षिप्त है--ऐसा ही, जैसे कि आप बैठे हैं और पैर चला रहे हैं। कुछ लोग बैठ कर चलाते रहते हैं। चलते वक्त पैर का चलाना ठीक है, क्योंकि पैर के चलने की जरूरत है। लेकिन कुर्सी पर बैठ कर पैर क्यों हिला रहे हैं? अनावश्यक है। लेकिन आमतौर से अगर कोई कहेगा कि व्यर्थ है तो आपको ख्याल में आ जाएगा। जब आप बोल रहे हैं तब भाषा की जरूरत है, जब आप चुप बैठे हैं तब भीतर भाषा क्यों चल रही है? पैर का हिलना क्यों चल रहा है?

महावीर भी बारह वर्ष तक निरंतर मौन में डूबे रहे, सिर्फ भाषा-समिति को उपलब्ध होने को--कि मालिक हो जाएं शब्द के, शब्द मालिक न रहे।

अभी शब्द आपका मालिक है। आप चाहें भी कि भाषा को बंद करें, वह नहीं होती, वह चलती ही जाती है। आप कहें भी अपने मन से कि चुप हो जा, वह आपकी सुनता नहीं। आप कितना ही कसते रहें, पर वह बोले ही चला जाता है। अंततः आप थक जाते हैं, और कहते हैं कि "ठीक है, चलने दो।" धीरे-धीरे आप भूल ही जाते हैं कि आप गुलाम हो गए हैं, और मन मालिक हो गया है। मन की मालिकियत तोड़ने का उपाय मौन है, और कोई उपाय नहीं है।

मन की मालिकियत तोड़ने का एक ही ढंग है कि आप भीतर चलते शब्दों से अपना सहयोग हटा लें, को-आपरेशन अलग कर लें। भीतर शब्द चलता भी हो तो भी आप उसमें रस न लें। भीतर शब्द चलता भी हो तो आप ऐसा ही समझें कि कहीं और दूर चल रहा है, मेरा कोई प्रयोजन नहीं है--तटस्थ हो जाएं। जब धीरे-धीरे आप रस लेना बंद कर देंगे, भाषा गिरने लगेगी, बीच में अंतराल आने लगेंगे, कभी-कभी मौन आकाश आ जाएगा। और मौन--आकाश इतना अदभुत अनुभव है कि जीवन की पहली झलक तभी मिलती है।

दूसरे से बात करने के लिए भाषा, अपने से बात करने के लिए मौन। दूसरे से जुड़ने के लिए भाषा का सेतु चाहिए, और अपने से जुड़ने के लिए भाषा का सेतु खत्म हो जाना चाहिए। मौन की धारा पैदा हो जानी

चाहिए। खुद से जुड़ने के लिए बोलने की क्या जरूरत है? लेकिन बोलना इतना रुग्ण हो गया है कि आप खुद को दो हिस्सों में तोड़ लेते हैं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा था। वकीलों से परेशान आ गया था तो उसने अदालत से कहा कि मैं अपनी वकालत खुद ही करना चाहता हूं। चोरी का मामला था, चोरी का इल्जाम था; कानून में कोई बाधा नहीं थी। मजिस्ट्रेट ने कहा कि ठीक है, अगर तुम खुद ही कर सकते हो तो खुद ही करो। तो मुल्ला खड़ा होता कटघरे में, कटघरे से बाहर निकलता, वकील की तरह खड़ा होता। एक काला कोट ले आया था, काला कोट पहनकर बाहर खड़े होकर कटघरे की तरफ देखता और पूछता--नसरुद्दीन, तेरह तारीख की रात तुम कहाँ थे? क्या तुमने चोरी की? क्या तुम उस घर में घुसे? फिर कोट उतार कर, भाग कर कटघरे में जाकर खड़ा होता और कहता--क्या मतलब, तेरह तारीख की रात? मुझे तो कुछ पता ही नहीं! किसकी चोरी हुई? क्या हुआ? वह जवाब-सवाल कर रहा है!

आप चौबीस घंटे यही कर रहे हैं। अपने को बांट लेते हैं ताकि बातचीत आसान हो जाए। बेटा अपनी तरफ से भी बोल रहा है, बाप की तरफ से भी बोल रहा है जवाब भी दे रहा है! पत्नी अपनी तरफ से भी बोल रही है; पति क्या कहेगा, वह भी बोल रही है--जवाब-सवाल भीतर चल रहे हैं!

भीतर आप खंड कर लिए हैं; खंड किए बिना बोलना बहुत मुश्किल हो जाएगा, पागलपन मालूम पड़ेगा। जरा भीतर देखें कि कैसा द्वंद्व आपने खड़ा कर लिया है। महावीर कहते हैं, मौन होगा तो द्वंद्व विसर्जित होगा। जब मौन होंगे तो आप एक हो जाएंगे। जब तक बोलेंगे, तब तक बटे रहेंगे। यह बंटाव हटना चाहिए।

भाषा-समिति का अर्थ है: जब दूसरे से बोलना हो, तभी बोलना--पहली बात। जब दूसरे से न बोलना हो तो बोलना ही बंद कर देना, भीतर चुप हो जाना। दूसरी बात--दूसरे से भी बोलना हो, तो दूसरे के हित को ध्यान में रख कर बोलना, मुझे बोलना है, इसलिए मत बोलना। दूसरा फंस गया है, सुनेगा ही--इसलिए मत बोलना। तीसरी बात--जो मैं बोल रहा हूं वह सत्य ही है, ऐसा पक्का हो तो ही बोलना, अन्यथा मत बोलना। क्योंकि जो बोला जा रहा है, वह दूसरे में प्रवेश कर रहा है और दूसरे के जीवन को प्रभावित करेगा--अनंत जन्मों तक प्रभावित करेगा। इसलिए खतरनाक बात है। दूसरे के जीवन को गलत मार्ग दे देना, उसे भटका देना पाप है।

इसलिए महावीर कहते हैं: जो पूर्णनिश्चय से स्वयं का अनुभव हो, वही बोलना। दूसरे के हित में हो तो ही बोलना। क्योंकि पूर्ण अनुभव भी हो आपको सत्य का, और दूसरे को उसकी जरूरत ही न हो, अभी वह घड़ी न आई हो जब वह सत्य को सुन सके, अभी वह समय न आया हो जब वह सत्य को समझ सके, अभी उसके ऊपर यह बोझ हो जाए और उसके जीवन को बोझिल कर दे--तो मत बोलना। और उतने शब्दों में बोलना, जिसमें एक भी शब्द ज्यादा न हो--टेलिग्राफिक बोलना। जो काम पांच शब्दों में हो सके वह पांच में ही करना, पचास में मत करना।

अगर भाषा पर कोई व्यक्ति इतना होश साध ले, तो ध्यान अपने आप घटित होना शुरू हो जाए। भाषा की विक्षिप्तता ध्यान में बाधा है। और अगर आप भाषा से पीछे हट सकें तो आप बच्चे की तरह सरल हो जाएंगे। जैसे आप जन्मे थे--बिना भाषा के, बिना शब्दों के थे लेकिन कोई भी आवरण न था विचार का--वैसे ही आप फिर हल्के, ताजे, शुद्ध और नये हो जाएंगे।

ध्यानी पुनः बचपन को उपलब्ध हो जाता है, उसी निर्दोषता को। तीसरी समिति है--"एषणा।"

महावीर कहते हैं, जब तक शरीर है तब तक शरीर को सम्हालने की जरूरत होगी--सम्हालने की! सजाने की जरूरत नहीं है! लेकिन सम्हालने की जरूरत होगी। भोजन चाहिए, देना पड़ेगा; पानी चाहिए, देना पड़ेगा। वस्त्र चाहिए, देने पड़ सकते हैं। कहीं छाया की जरूरत होगी।

तो महावीर एषणा-समिति में कहते हैं कि जीवन को चलाने के लिए जो अत्यंत जरूरी हो उसका होशपूर्वक विचार करके, अत्यंत होश से उतना ही स्वीकार करना।

एषणा को, वासना को सीमित कर लेना अत्यंत आखिरी तल पर। अगर एक बार भोजन से जीवन पर्याप्त चल जाता हो, तो दो बार का भोजन व्यर्थ होगा, वासना हो जाएगी। अगर चार घंटे सोने से नींद पूरी हो जाती हो, शरीर ताजा हो जाता हो, जीवन चल जाता हो तो आठ घंटे की नींद भोग होगी; रोग पैदा करेगी। जितने से चल जाता हो, जीवन!

इस फर्क को समझ लें, हम जीवन को चलाने के लिए नहीं जीते, जीवन को चलाने के लिए नहीं भोगते--बल्कि भोगने के लिए ही जीते हैं। कितना भोग लें, कितना ज्यादा भोग लें उसके लिए ही जीते हैं। जीवन का जैसे लक्ष्य ही एक है कि इंद्रियों को कितना भर लें।

महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति अपने ही हाथों अपनी ही वासनाओं में डूब कर नष्ट हो जाता है, अपनी ही दौड़-धूप में नष्ट हो जाता है। ऐसा नहीं कि उसे कोई सुख भी मिल पाता हो, कोई सुख नहीं मिल पाता। स्वस्थ भी नहीं हो पाता, सुख होना तो बहुत दूर है। जितना इन वासनाओं की दौड़ बढ़ती है, उतना टूटता जाता है, उतना बोझ से भरता जाता है।

यह बड़े मजे की बात है कि गरीब आदमी को तो शायद भोजन में रस भी आता हो; अमीर आदमी को भोजन में कुछ रस नहीं आता, सिर्फ और नई बीमारियों के दर्शन होते हैं। चिकित्सक कहते हैं कि दुनिया में भूख से कम लोग मरते हैं, भोजन से ज्यादा लोग मरते हैं। पचास प्रतिशत बीमारी तो ज्यादा भोजन से ही पैदा होती है। जितना आप खाते हैं, उस से आधे से आपका पेट भरता है, आधे से आपके डाक्टर का पेट भरता है। इससे कोई सुख तो उपलब्ध नहीं होता, स्वास्थ्य भी खो जाता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक गांव की सबसे गरीब गली में दजू का काम करता था। इतना कमा पाता था मुश्किल से कि रोटी-रोजी का काम चल जाए, बच्चे पल जाएं। मगर एक व्यसन था उसे कि हर रविवार को एक रुपया जरूर सात दिन में बचा लेता था लाटरी का टिकट खरीदने के लिए। ऐसा बारह साल तक करता रहा, न कभी लाटरी मिली, न कभी उसने सोचा कि मिलेगी। बस, यह एक आदत हो गई थी कि हर रविवार को जाकर लाटरी की एक टिकट खरीद लेनी है। लेकिन एक रात आठ-नौ बजे, जब वह अपने काम में व्यस्त था, काट रहा था कपड़े कि दरवाजे पर एक कार आकर रुकी। उस गली में तो कार कभी आती भी नहीं थी; बड़ी गाड़ी थी। कोई उतरा दो बड़े सम्मानित व्यक्तियों ने दरवाजे पर दस्तक दी। नसरुद्दीन ने दरवाजा खोला; उन्होंने पीठ ठोकी नसरुद्दीन की और कहा कि "तुम सौभाग्यशाली हो, लाटरी मिल गई, दस लाख रुपये की!"

नसरुद्दीन तो होश ही खो बैठा! कैंची वहीं फेंकी, कपड़ों को लात मारी! बाहर निकला, दरवाजे पर ताला लगाकर चाबी कुएं में फेंकी! सालभर उस गांव में ऐसी कोई वेश्या न थी जो नसरुद्दीन के भवन में न आई हो; ऐसी कोई शराब न थी जो उसने न पी हो; ऐसा कोई दुष्कर्म न था जो उसने न किया हो। सालभर में दस लाख रुपये उसने बर्बाद कर दिए। और साथ ही, जिसका उसे कभी ख्याल ही नहीं था, जो जिंदगी से उसके साथ था स्वास्थ्य--वह भी बर्बाद कर दिया। क्योंकि रात सोने का मौका ही न मिले--रात भर नाच-गान, शराब। साल भर बाद जब पैसा हाथ में न रहा, तब उसे ख्याल आया कि मैं भी कैसे नरक में जी रहा था।

वापस लौटा; कुएं में उतर कर अपनी चाबी खोजी। दरवाजा खोला; दुकान फिर शुरू कर दी। लेकिन पुरानी आदतवश वह रविवार को एक रुपये की टिकट खरीदता रहा। दो साल बाद फिर कार आकर रुकी; कोई दरवाजे पर उतरा--वही लोग। उन्होंने आकर फिर पीठ ठोकी और कहा: इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ,

दुबारा तुझे लाटरी का पुरस्कार मिल गया, दस लाख रुपये का! नसरुद्दीन ने माथा पीट लिया। उसने कहा: माई गॉड हेव आई टु गो दैट हैल--श्रो दैट, आल दैट हैल अगेन; क्या उस नरक से फिर मुझे गुजरना पड़ेगा?

गुजरना पड़ा होगा, क्योंकि दस लाख हाथ में आ जाएं तो करोगे भी क्या? लेकिन उसे अनुभव है कि वह एक वर्ष नरक हो गया।

धन स्वर्ग तो नहीं लाता, नरक के सब द्वार खुले छोड़ देता है। और जिनमें जरा भी उत्सुकता है, वे नरक के द्वार में प्रविष्ट हो जाते हैं।

एषणा का अर्थ है: लस्ट फॉर लाइफ, जीवन की एषणा। और जीवन की एषणा वासना बन जाती है।

महावीर कहते हैं कि जिन्हें परम जीवन जानना है, उन्हें अपनी ऊर्जा को खींच लेना होगा व्यर्थ की वासनाओं से। मिनिमम, जो न्यूनतम जीवन के लिए जरूरी है--उतना ही। उतना ही, जितने जीवन से साधना हो सके; उतना ही, जितना जीवन ध्यान बन सके। उतना ही, जितने से जीवन की ऊर्जा प्रवाहित रह सके और मोक्ष की तरफ बह सके।

महावीर यह नहीं कहते कि जीवन की धारा को तोड़ देना, लेकिन शुद्धतम कर लेना। अत्यंत अनिवार्य पर ले आना ही त्याग है। एषणा का अर्थ हुआ--उतना ही मांगना, उतना ही लेना, उतना ही साथ रखना जिससे रस्तीभर ज्यादा जरूरी न हो। संग्रह मत करना।

जीसस ने कहा है, अपने शिष्यों से--देखो पक्षियों की तरफ, वे कोई संग्रह नहीं करते; देखो लिली के फूलों की तरफ, उन्हें कल की कोई चिंता नहीं है। जिस दिन तुम भी पक्षियों की तरह संग्रह नहीं करोगे और फूलों की तरह कल की चिंता से मुक्त हो जाओगे, उस दिन तुम्हारे और परमात्मा के राज्य में कोई भी फासला नहीं होगा।

कल की चिंता वासनाग्रस्त व्यक्ति को करनी ही पड़ेगी, क्योंकि वासना के लिए भविष्य चाहिए। ध्यान करना हो तो अभी हो सकता है, भोग करना हो तो कल ही हो सकता है। भोग के लिए विस्तार चाहिए; समय चाहिए; तैयारी चाहिए; साधन चाहिए। किसी दूसरे को खोजना पड़ेगा, भोग अकेले नहीं हो सकता। ध्यान अभी हो सकता है।

लेकिन बड़ी अदभुत दुनिया है। लोग कहते हैं--ध्यान कल करेंगे, भोग अभी कर लें। भोग तो भविष्य में ही हो सकता है। जिन्होंने जीवन का परम सत्य जाना है, उनका कहना है कि समय की खोज ही वासना के कारण हुई है; वासना ही समय का फैलाव है। यह जो इतना भविष्य दिखलाई पड़ता है, यह हमारी वासना का फैलाव है; क्योंकि हमें इतने में पूरा होता नहीं दिखाई पड़ता। और कुछ लोग कहते हैं, और ठीक ही कहते हैं!

बुद्ध ने कहा है कि लोग अगले जन्म में भी इसलिए विश्वास करते हैं, क्योंकि उन्हें पक्का पता है कि वासनाएं इतनी ज्यादा हैं कि इसी जन्म में पूरी नहीं हो पाएंगी। अगला जन्म चाहिए। है या नहीं यह सवाल नहीं है, लेकिन अगला जन्म चाहिए।

जब कोई दो व्यक्ति प्रेम में पड़ जाते हैं तो अक्सर प्रेमी पुनर्जन्म में विश्वास करने लगते हैं। प्रेमी और पुनर्जन्म में विश्वास न करें, यह जरा मुश्किल है! मुसलमान प्रेमी भी, ईसाई प्रेमी भी, पुनर्जन्म में विश्वास करने लगते हैं। क्योंकि उसे लगता है कि प्रेम इतने से जीवन में पूरा कैसे हो सकता है; और जीवन चाहिए।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि पुनर्जन्म का सिद्धांत प्रेमियों ने खोजा होगा; क्योंकि उनके लिए जीवन छोटा मालूम पड़ता है और वासना बड़ी मालूम पड़ती है। इतनी बड़ी वासना के लिए इतना छोटा जीवन तर्कहीन मालूम होता है, संगत नहीं मालूम होता। अगर दुनिया में कोई भी व्यवस्था है, तो जितनी वासना उतना ही जीवन चाहिए। इसलिए अनंत फैलाव है।

महावीर कहते हैं: तुम रुक जाना क्षण पर, कल की भी चिंता आज मत लेना, नहीं तो संसार निर्मित होता है। आज की चिंता आज काफी है। और आज की चिंता, चिंता नहीं होती।

तो महावीर तो, सुबह उठ कर अपने पेट को देखेंगे कि भूख लगी है तो ही गांव में भिक्षा के लिए जाएंगे। ऐसा भी नहीं है कि आदतवश रोज भिक्षा के लिए जाना है ग्यारह बजे, तो रोज भिक्षा के लिए चले जाएंगे। महावीर के बारह वर्षों के साधना काल में कहा जाता है कि कुल तीन सौ पैसठ दिन उन्होंने भिक्षा मांगी। मतलब बारह साल में एक साल भिक्षा मांगी। कभी महीना भीख मांगने नहीं गए, कभी दो महीना नहीं गए, कभी दस दिन, कभी आठ दिन, कभी चार दिन। कोई नियम नहीं था, कोई कसम भी नहीं थी, कोई व्रत भी नहीं लिया था। यह समझने जैसी बात है--यह नहीं तय किया था कि दस दिन खाना नहीं खाऊंगा; क्योंकि वह दूसरी तरफ की ज्यादाती है। महावीर प्रतीक्षा करेंगे, जब शरीर ही कहेगा कि अब भोजन चाहिए, तो वे उठेंगे। और उन्होंने एक और अदभुत सूत्र निकाला था, जो सिर्फ महावीर का है। जो दुनिया में किसी दूसरे सिद्ध पुरुष ने जिसकी बात नहीं कही। वह बहुत ही अनूठा है।

महावीर ने एक सूत्र निकाला था कि जब पेट में भूख लगती तो वे सोचते कि भूख लगती है, देखते, साक्षी बनते--भूख इतनी है कि भोजन की जरूरत है, तो भिक्षा मांगने जाते। लेकिन वे कहते; तय कर लेते वे सुबह ही कि ऐसी-ऐसी स्थिति में भिक्षा मिलेगी तो ही समझूंगा कि मेरे भाग्य में है, नहीं तो नहीं लूंगा।

जैसे, उस घर के सामने एक काली गाय खड़ी होगी; जो स्त्री भिक्षा देगी वह गर्भिणी होगी; कि एक बच्चे को अपनी गोदी में लिए होगी; कि दो आदमी दरवाजे पर लड़ रहे होंगे। कुछ तय कर लेते सुबह और फिर भिक्षा मांगने निकलते। अगर उस दिन उस जैसी कुछ स्थिति बन जाती, बड़ी संयोग की बात है--बन जाती तो भिक्षा ले लेते, नहीं बनती तो वापस लौट आते, कहते कि मेरे भाग्य में नहीं है। शरीर को भूख लगी जरूर, लेकिन मेरी नियति में नहीं है, मेरे पिछले कर्मों का हिस्सा नहीं है। भूख मेरी नियति में है तो आज मैं भूखा रहूंगा।

आश्चर्य है कि बारह वर्ष में तीन सौ पैसठ बार भी मिल गई भिक्षा। लेकिन महावीर निश्चित लौट आते कि जो भाग्य में नहीं है, वह नहीं; जो नियति में नहीं है, वह नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि मैं अब कर्ता नहीं रहा, अब मैं भीख मांगने नहीं जा रहा हूं। अगर यह पूरा अस्तित्व मुझे जिलाए रखना चाहता है आज, तो भिक्षा का इंतजाम जुटा देगा, मेरी शर्त पूरी कर देगा। नहीं शर्त पूरी करता है तो इसका मतलब हुआ कि अस्तित्व को आज मुझे भोजन देने की कोई जरूरत नहीं है।

और बड़े आश्चर्य की बात है कि महावीर रुग्ण नहीं हुए; महावीर दीन-हीन नहीं हो गए इन बारह वर्षों में; सूख नहीं गए। इतना संतोषी व्यक्ति किसी और ही दिशा से भोजन को पाना शुरू कर देता है। इतने संतुष्ट व्यक्ति को, जिसने नियति पर सब छोड़ दिया--भोजन भी, जैसे पूरा अस्तित्व अपने हाथों में सम्हाल लेता है। और अगर अस्तित्व चांद-तारों को चला सकता है, फूलों को खिला सकता है, वृक्षों को बड़ा कर सकता है, नदियों को बहा सकता है, अगर इतना बड़ा आयोजन अस्तित्व करता है, तो महावीर के छोटे से पेट और शरीर की चिंता नहीं कर सकता, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है।

तो महावीर कहते हैं कि अगर अस्तित्व चलाना चाहता है तो ही मैं चलने को हूं, मेरी कोई वासना चलने की नहीं है।

आप चलने की वासना से जब तक जीते हैं तब तक संसार को निर्मित करते हैं। जिस दिन आप ठहर जाते हैं; संसार की धारा जहां ले जाती है वहां जाते हैं, उस दिन आप मुक्त होने लगते हैं।

तो महावीर ने "एषणा"ः भोजन, वस्त्र, सुरक्षा सब को सीमित कर देना है अंतिम बिंदु पर--कि उसके पार मृत्यु है, उसके इस पार जीवन है--ठीक मध्य में।

चौथा--"आदान-निक्षेप।" लोग जो दें, उसमें भी सीमा रखनी, और होश रखना।

संन्यासी को अक्सर लोग देने को उत्सुक हो जाते हैं। जिसके पास कुछ नहीं है, जिसने सब छोड़ा, एक अर्थ में सभी लोग उसको देने के लिए आतुर हो जाते हैं। तो महावीर ने कहा, आदान-निक्षेपः लोग दें सिर्फ

इसलिए कि किसी ने दिया, मत ले लेना; सिर्फ इसलिए कि मिल रहा था, क्या करें--हमने तो कुछ मांगा न था, हमने कुछ कहा न था बिना कहे मिला, बिना मांगे मिला! तो भी महावीर कहते हैं कि तुम्हारी जरूरत हो तो ही लेना, अन्यथा धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना--मत लेना।

और पांचवां है--"उच्चार" या "उत्सर्ग" निक्षेप। यह बहुत बहुमूल्य है। महावीर ने कहा है कि मल-मूत्र, किसी को दुख हो, किसी को पीड़ा हो, दुर्गंध आए, किसी जीव का जीवन नष्ट हो--ऐसी जगह मल-मूत्र मत छोड़ना। ऐसी जगह खोजना साफ सुथरी, सीधी-सपाट, देख कर होशपूर्वक कि कोई कीड़ा-मकोड़ा, कोई जीव-जंतु आपके मल-मूत्र में दब कर तो नहीं मर जाएगा। ऐसी जगह खोजना कि किसी को आपके मल-मूत्र से कठिनाई तो न होगी; कोई देख कर पीड़ा तो अनुभव नहीं करेगा; कोई दुर्गंध से तो परेशान नहीं होगा।

यह तो इसका मोटा अर्थ है, जो जैन साधु पकड़े हुए हैं; इसका सूक्ष्म अर्थ बहुत गहरा है, जिस पर पकड़ खो गई है। मल-मूत्र ही केवल मल-मूत्र नहीं है, आप जो भी अपने बाहर छोड़ते हैं, वह सभी मल-मूत्र है। आपकी सभी इंद्रियों से जो व्यर्थ हो गया है, वह बाहर छूटता है। आपको पता नहीं कि आपकी आंख भी कचरा बाहर फेंकती है; आपके हाथ का स्पर्श भी कचरा बाहर फेंकता है; आपके कान, आपकी जीभ--सब कचरा बाहर फेंकते हैं। असल में जो भी आप भीतर लेते हैं, उस सब को किसी न किसी रूप में बाहर फेंकना पड़ता है।

जो भी बाहर से आया है, उसे बाहर फेंकना पड़ेगा। आपने भोजन किया, तो या तो वह पच जाएगा, खून बन जाएगा, मल होकर निकल जाएगा, नहीं पचा तो वमन हो जाएगी। लेकिन जो भी बाहर से लिया है, वह बाहर जाएगा। जो भीतर का है वही भीतर रहेगा, बाकी तो सब बाहर जाएगा। आपने शास्त्र पढ़ लिया, अगर पच गया तो आपका जीवन बन जाएगा, अगर नहीं पचा तो आप किसी की खोपड़ी पर उसे मल-मूत्र की तरह छोड़ेंगे। आपने कुछ भी भोगा, अगर पच गया तो ठीक, नहीं पचा तो आपका भोग भी कचरे की तरह चारों तरफ दिखाई पड़ेगा।

आप पूरे समय अपने से रेडिएट कर रहे हैं विद्युत की तरंगें, जो आपके भीतर कचरा हो गई हैं। तो महावीर कहते हैं कि अपने कचरे को, अपने मल-मूत्र को--इसमें सभी कुछ सम्मिलित है, जो आपके भीतर गया और जो बाहर फेंकना पड़ेगा। सभी कुछ सम्मिलित है: आपके शब्द, आपका शास्त्र, आपका ज्ञान; आपने आंखों से जो पीआ, कानों से जो सुना, नाक से जो गंध ली--वह सब बाहर फेंकी जाएगी। इससे दूसरे को कोई भी पीड़ा और कष्ट न हो, इससे दूसरे की हिंसा न हो।

इसको महावीर ने "उच्चार समिति" कहा है: जो भी बाहर जाए, उससे किसी को पीड़ा न हो।

अब यह बड़े मजे की बात है, और कई दफा कितनी जटिल हो जाती है। जैन-साधु किसी को छुएगा नहीं। मगर वह इसलिए नहीं छू रहा है कि कहीं दूसरे को छूने से वह अपवित्र न हो जाए! महावीर का प्रयोजन बिल्कुल दूसरा है। दूसरों को मत छूना कि कहीं दूसरा तुम्हारी अपवित्रता से न भर जाए। मगर आदमी का अहंकार बड़ा कुशल है। उसमें से रास्ते निकाल लेता है। जैन साधु सम्हल कर चलता है, किसी को छू न ले। वह सोच रहा है कि वह अपवित्र न हो जाए कोई पापी को छू ले तो कोई अपवित्र न हो जाए।

नहीं, महावीर कहते हैं, दूसरे को छूते वक्त आपके हाथ से जो ऊर्जा जा रही है, शरीर से जो ऊर्जा जा रही है, वह दूसरे को दुख, कष्ट, हानि न पहुंचाए। ये हानियां कई तरह की हो सकती हैं।

जैन-साधु स्त्री को नहीं छुएगा, इस कारण कि कहीं स्त्री की वासना उसमें प्रवेश न कर जाए। यह मूढ़तापूर्ण बात है। साधु को तो कम से कम इस स्थिति में होना चाहिए कि दूसरे उसे प्रभावित न कर सकें। कारण बिल्कुल दूसरा है। महावीर की नजर बिल्कुल दूसरी है। महावीर कहते हैं, स्त्री को मत छूना कि कहीं तुम्हारी वासना उसे सजग न कर दे, कहीं तुम्हारी वासना उसमें प्रविष्ट होकर उसे पीड़ा और हिंसा का कारण न बन जाए।

महावीर की पूरी चिंता एक है कि तुम्हारे कारण किसी को किसी तरह की हानि और दुख और पीड़ा का उपाय न हो--तुम अपने से जो भी छोड़ना हो, वह इस तरह छोड़ना।

यह अगर ठीक से पकड़ा जाए तो बहुमूल्य है, अगर क्षुद्रता से पकड़ा जाए तो इससे बड़ी मजाक की स्थिति पैदा हो जाती है, हास्यास्पद हो जाता है। जैन साधुओं का एक वर्ग है जो मुंह पर पट्टी बांधे हुए है। वह इसी उच्चार-समिति के कारण कि कहीं श्वास से कोई कीड़ा-मकोड़ा, कोई हवा का जीव-जंतु न मर जाए।

बात तो ठीक है! बात तो ठीक है, लेकिन हास्यास्पद हो गई है। मजाक कर लिया, क्षुद्र पर ले आए चीजों को। तब तो हिलने-डुलने से भी कोई मर रहा है। श्वास लेने से भी कोई मर ही रहा है, एक श्वास में कोई एक लाख कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, महावीर के हिसाब से नहीं, विज्ञान के हिसाब से। वह तो नष्ट हो ही रहे हैं। कागज की या कपड़े की पट्टी उनको रोक नहीं सकती, वे इतने सूक्ष्म हैं। वे इतने सूक्ष्म हैं कि आंखों से देखे नहीं जा सकते, सिर्फ खुरदबीन से देखे जा सकते हैं। इसीलिए तो लाखों एक श्वास में नष्ट हो जाते हैं। वे तो नष्ट हो ही रहे हैं, लेकिन एक मजाक कर लिया। लेकिन मुंह पर पट्टी बांध कर आदमी समझ रहा है, सब ठीक हो गया, समिति पूरी हो गई। समिति को बहुत क्षुद्र जगह ले आए।

बुरा नहीं है, बांध लेने में कुछ हर्जा नहीं है। लेकिन बांध लेने को बड़ा गौरव समझ लेना नासमझी है। बांध लेना ठीक है, जितना कम हिंसा हो उतना ठीक है। लेकिन इसे साधना समझ लेना या सिद्धि समझ लेना; और समझ लेना कि कोई बहुत ऊंची बात हो गई; और जो नाक पर पट्टी नहीं बांधे हैं वे पापी हैं, नरक जाएंगे भ्रांति हो गई!

ये पांच समितियां हैं और तीन गुप्तियां हैं--मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।

गुप्ति का अर्थ है: सिकोड़ना और गुप्त करना। "मनोगुप्ति" का अर्थ है, अपने मन के फैलाव को सिकोड़ना। आपका मन बड़ा फैला हुआ है। यह आकाश भी छोटा है, इससे भी ज्यादा फैला हुआ है। आप फैलाते रहते हैं मन को। बम्बई में रहते होंगे, लेकिन मन न्यूयार्क में घूमता रहता है; कि लंदन में घूमता रहता है कि कब यात्रा पर निकल जाएं। मन फैलता चला जाता है।

जापान की एक कंपनी उन्नीस सौ पचहत्तर के लिए चांद पर जाने के टिकट बेच रही है। काफी दाम हैं। लेकिन सभी लोगों को मिल नहीं रही, क्यू लग गया है। आदमी का मन! अभी उन्नीस सौ पचहत्तर को देर है। आप बचेंगे कि नहीं बचेंगे। और चांद पर कुछ है नहीं, कुछ है भी नहीं देखने योग्य। लेकिन, फिर भी चांद पर जाने का मन है।

मन फैलना चाहता है। मन जितना फैल जाए उतना रस लेता है। तो महावीर कहते हैं, मन को सिकोड़ना। उसे इतना सिकोड़ लेना कि वह सिर्फ तुम्हारे हृदय में रह जाए, कहीं भी उसका फैलाव न हो। किसी वासना में, किसी इच्छा में, किसी एषणा में उसको मत फैलाना। खींचते जाना और जिस दिन मन शुद्ध हृदय में ठहर जाता है, उस दिन अदभुत आनंद का जन्म होता है।

नरक है हमारे मन का फैलाव, और आप फैलाए चले जाते हैं। शेखचिल्ली की कहानी आपने पढ़ी होगी, जो फैलाए चला जाता है और बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। दूध बेचने जा रहा है। सिर पर दूध की मटकी रखे हुए है; और ख्याल आता है कि दूध अगर बिक गया तो चार आने मिलेंगे। और अगर ऐसा होता रहा तो आधे साल में एक भैंस अपनी खरीद लूंगा। अगर भैंस खरीद ली, उसके बच्चे होंगे। बढ़ता जाएगा धन, फिर शादी कर लूंगा। शादी हो जाएगी, बच्चे होंगे। छोटा बच्चा किलकारी मारेगा और गोदी में बैठेगा, दाढ़ी खींचेगा और कहेगा, "बाबा!"

गिर न जाए, उसे सम्हालने को बच्चे को, उसने हाथ नीचे किया वह जो सिर पर मटकी थी, वह नीचे गिर कर फूट गई! वे चार आने भी हाथ से गए!

मगर ये शेखचिल्ली की कहानी नहीं है, आदमी के मन की कहानी है। मन शेखचिल्ली है। आपका सबका मन हिसाब लगा रहा है, ऐसा हो जाएगा, फिर ऐसा हो जाएगा, फिर ऐसा होता चला जाएगा। और डर यह है कि कहीं मटकी न फूट जाए। अक्सर फूट जाती है। अंत में जीवन के आदमी पाता है कि मटकी फूट गई! चार आने हाथ के भी खो गए!

महावीर कहते हैं, मन को सिकोड़ना। जितना फैला हुआ मन उतना दुख, यह सूत्र है। जितना सिकुड़ा हुआ मन, उतना सुख। मन अगर बिल्कुल शून्य पर आ जाए तो ध्यान हो जाता है। जब मन इतना सिकुड़ जाता है कि कुछ भी सिकोड़ने को नहीं बचता; बिल्कुल सेंटर पर, केंद्र पर आ गया; सब किरणें सिकुड़ कर आ गईं वापस; अपने ही घोंसले में लौट आया मन--उसको महावीर कहते हैं, "मनोगुप्ति।"

"वचनगुप्ति" शब्दों को भी मत फैलाना, क्योंकि शब्द जाल में डाल देते हैं। किसी से बोले कि उपद्रव शुरू हुआ, संबंध निर्मित हुआ। बोलने का अर्थ है दूसरे तक पहुंचे। बोलना एक सेतु है; दूसरे से संबंध निर्माण करना है। झंझट होगी। आपने अच्छी ही बात कही हो तो भी जरूरी नहीं कि दूसरा अच्छी ही तरह ले, दूसरा अपने ढंग से लेगा।

बोल कर उपद्रव बनता है। आप ख्याल करें अपनी जिंदगी में। आपने जितने उपद्रव, झगड़े-झांसे खड़े किए होंगे, वे सब बोल कर किए होंगे। काश, आप चुप रह जाते तो शायद जिंदगी और ढंग की होती। तो जब बोलना ऐसा लगे कि किसी के हित में नहीं है, तब रोक लेना। लेकिन हम चाहते हैं, बोले चले जाते हैं, कुछ भी कहे चले जाते हैं।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में चल रहा है। पास में ही एक आदमी बैठा हुआ शांति से अपना अखबार पढ़ रहा है। लेकिन मुल्ला बेचैन है कि अखबार अलग करे तो कुछ बातचीत हो।

इसलिए ट्रेन में लोग जल्दी बातचीत शुरू कर देते हैं। और ऐसी बातें कह देते हैं अजनबियों से, जो उन्होंने अपने घर में अपनी पत्नी या अपने पति से भी न कही होतीं। अजनबियों से कनफेशन शुरू कर देते हैं, क्योंकि बोलने की बेचैनी है। गाड़ी में बैठे-बैठे बेचैनी होती है।

नसरुद्दीन ने पूछा कि आप, आप मुसलमान हैं क्या? मुसलमान मालूम होते हैं। उस आदमी ने सिर्फ अखबार से नजर उठा कर कहा कि नहीं, मैं मुसलमान नहीं हूं। वह थोड़ा डरा भी कि यह आदमी मुसलमान दिखता है--मुसलमान हूं, ऐसा कहूं भी, या मुसलमान होता तो झंझट होती, ये फिर आगे बढ़ाता बात को। मामला खत्म हो गया। वह आदमी मुसलमान है भी नहीं। वह फिर अपना अखबार पढ़ने लगा। लेकिन नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल निश्चित, निश्चित ही मुसलमान नहीं हो?

उस आदमी ने कहा कि कह तो दिया आपसे, इसमें निश्चय की क्या बात है? मुसलमान नहीं हूं। नसरुद्दीन फिर थोड़ी देर में बोला, एब्सोल्यूटली? बिल्कुल पक्का? उस आदमी ने झंझट छुड़ाने के लिए, कि अखबार न पढ़ने देगा यह आदमी, कहा कि हां भाई हूं, गलती हो गई जो कह दिया कि नहीं हूं। तो नसरुद्दीन ने कहा: फनी, यू डोंट लुक लाइक ए मोहम्मद--मुसलमान जैसे दिखाई नहीं पड़ते।

इसी ने उसको "मुसलमान हूं"--ऐसा कहलवा दिया और अब कह रहा है कि आप मुसलमान जैसे दिखाई नहीं पड़ते!

महावीर कहते हैं कि वचन व्यर्थ बाहर न जाएं। और सार्थक कितने वचन हैं? अगर आप चौबीस घंटे देखेंगे, हिसाब रखेंगे तो आप पाएंगे कि मुश्किल से दस-पांच वाक्य से काम चल जाता है; गूंगे रहने से भी काम चल जाता है। लेकिन बोले जा रहे हैं; गूंगे तक बोले जाते हैं। गूंगों तक को भी चैन नहीं है।

मैंने सुना है कि एक फैक्टरी में गूंगी स्त्रियों को काम देने का मालिक ने इंतजाम किया। और एक दस-बारह स्त्रियों का मंडल, गूंगी स्त्रियों का काम ऐसा था कि हाथ से ही करने का था। लेकिन गूंगी स्त्रियां इशारे से एक दूसरे से बातचीत करती जाती हैं। फिर एक पुरुष को भी, जो गूंगा था, उसी डिपार्टमेंट में भेज दिया कि

ठीक रहेगा--वहां इतने गूंगे हैं, तुम भी उनके साथ रहो। उसने तीन दिन बाद आकर कागज पर लिख कर कहा कि मेरा इस्तीफा स्वीकार कर लें। मालिक ने पूछा: क्या बात है? --वे औरतें बहुत बातें करती हैं। मेरा सिर खा गई हैं। मालिक ने कहा: लेकिन वे तो सब गूंगी हैं! तो उस गूंगे ने लिखा, लेकिन गूंगी होने से क्या होता है? वे सब इशारा कर रही हैं एक-दूसरे को, मैं अकेला वहां फंस गया हूं।

औरतें गूंगी हों तो भी क्या फर्क पड़ता है, औरतें ही हैं। उसने कहा: वहां तो मेरी जान ही निकल जाएगी। और मैं तो समझता हूं उनके इशारे का मतलब क्या है, क्योंकि मैं भी गूंगा हूं।

बड़ी बातचीत हो रही है। गूंगे तक बातचीत में लगे हैं।

तो हम जो बोलने वाले हैं, महावीर कहते हैं, उनको धीरे-धीरे गूंगे होने की कला सीखनी चाहिए।

वचन को रोक लेना है, "वचनगुप्ति।" सम्हालना है भीतर; जल्दी नहीं करनी है। व्यर्थ को तो रोक ही लेना है--सार्थक को भी भीतर रोकना है, ताकि वह बीज की तरह भूमि में रुका रह जाए और अंकुरित हो सके। पर हम सार्थक--व्यर्थ सब फेंके जा रहे हैं, उलीचे जा रहे हैं।

और तीसरा महावीर कहते हैं, "कायगुप्ति।" शरीर को भी सिकोड़ना है: यह एक प्रक्रिया है महावीर की, खासा चलते, उठते, बैठते--ऐसे चलना है जैसे शरीर सिकुड़ता जा रहा है, छोटा होता जा रहा है।

आप जान कर हैरान होंगे कि शरीर का विस्तार आपकी वासना का विस्तार है; शरीर का विस्तार आपकी कल्पना पर निर्भर है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिन मुल्कों में लोग लंबे होते हैं, उनमें वे लंबे होते चले जाते हैं। उसका कारण वंशानुगत तो है ही, लेकिन आस-पास लंबे लोगों को देख कर बच्चे को लंबे होने की कल्पना प्रगाढ़ होती है। जहां ठिगने लोग होते हैं वहां ठिगने होने की कल्पना प्रगाढ़ होती है।

बर्नार्ड शॉ मरने के पहले--कुछ वर्ष पहले लंदन के आस-पास के सब मरघटों में गया, यह देखने कि किस गांव में सबसे ज्यादा लम्बी उम्र तक लोग जीते हैं। आखिर उसने एक गांव खोज लिया, जिसमें एक कब्र पर पत्थर लगा हुआ था कि यह आदमी सत्रहवीं सदी में जन्मा, और अठारहवीं सदी में, कम उम्र में ही, सौ वर्ष बाद मर गया। बर्नार्ड शॉ ने उसी गांव में रहने का तय कर लिया। उसके मित्रों ने पूछा: तुम्हारा मतलब क्या है? उसने कहा: जिस गांव में लोग सोचते हैं कि सौ वर्ष में मरना कम उम्र में मरना है, उस गांव में ज्यादा जीने का उपाय है, कल्पना को फैलाव है।

अगर पुराने ऋषि बच्चों को आशीर्वाद देते थे कि शतायु हो! सौ वर्ष तक जीओ--तो उनके आशीर्वाद से कोई सौ वर्ष तक नहीं जी सकता। लेकिन जहां सब बड़े-बूढ़े कह रहे हों कि सौ वर्ष तक जीओ, वहां बच्चे की कल्पना सौ वर्ष तक जीने की प्रगाढ़ हो जाती है। वह कल्पना शरीर को खींचती है।

कई बार ज्योतिषी आदमियों को मार देते हैं। वे कह देते हैं कि बस, अब तो अंतिम समय आ गया है, दो ही साल में आपका मरना है। ज्योतिषी कह रहा है, ये इसलिए नहीं कि यह आदमी दो साल में मरने ही वाला था--बल्कि यह आदमी मर जाएगा दो साल में, क्योंकि ज्योतिषी ने कहा है। अब यह दो साल सिर्फ सोचता ही रहेगा कि मरे, अब दिन करीब आ रहे हैं। वह सिकुड़ने लगेगा, भीतर से मरने लगेगा; मरने की तैयारी जुटाने लगेगा, यह मर भी जाएगा।

भविष्यवाणियां मृत्यु की सफल हो जाती हैं, क्योंकि भविष्यवाणियां कल्पना को गति दे देती हैं। आपका मन बड़ा शक्तिशाली है। तो महावीर कहते हैं, "कायगुप्ति"--शरीर को सिकोड़ना और शरीर को ऐसा अनुभव करना कि छोटा होता जा रहा है, छोटा होता जा रहा है।

दो प्रयोग हैं। एक प्रयोग ब्रह्मवादियों ने, शंकर ने, उपनिषद के ऋषियों ने किया है। वे कहते हैं, शरीर को फैलाना फैलाना फैलाना--इतना फैलाने की कल्पना करना कि सारा ब्रह्मांड शरीर में समा जाए। जिस दिन ऐसा

अनुभव होने लगे कि चांद तारे मेरे भीतर चलने लगे, सूर्य मेरे भीतर उगने लगा, वृक्ष मेरे भीतर खिलने लगे, सारा जगत मेरे भीतर चल रहा है--उस दिन ब्रह्म का अनुभव हो जाएगा।

यह भी सच है। अगर इतना फैलाव हो जाए कि मैं ही बचूँ और सब मेरे भीतर समा जाए, तो भी व्यक्ति सत्य को उपलब्ध हो जाता है; क्योंकि क्षुद्र अहंकार से मुक्त हो जाता है।

दूसरा उपाय है: मैं को इतना सिकोड़ते जाना; इतना सिकोड़ते जाना शरीर को सम्हाल कर छोटा करते जाना छोटा करते जाना--शरीर इतना छोटा हो जाए कि मैं भी उसके भीतर न रह सकूँ; इतना छोटा हो जाए, इतना एटामिक हो जाए कि मैं खुद भी उसके भीतर न रह सकूँ; जगह ही न बचे और मैं उसके बाहर छिटक जाऊँ।

महावीर कायगुप्ति का भरोसा करते हैं। ये दोनों प्रयोग एक से हैं विपरीत दिशाओं से। महावीर कहते हैं: छोटा छोटा शरीर को छोटा मानते जाना। एक ऐसी जगह आ जाती है, जहां शरीर इतना छोटा हो जाता है कि आपको बेचैनी लगेगी कि इसके भीतर मैं हो कैसे सकता हूँ? अगर यह बेचैनी बढ़ गई और शरीर को आप छोटा ही करते गए, एटामिक कर लिया, अणु की तरह हो गया--आप छिटक कर बाहर हो जाएंगे; वही स्थिति उपलब्ध हो जाएगी जो विराट हो जाने पर होती है।

या तो शून्य की तरह छोटे हो जाएं, या ब्रह्म की तरह विराट हो जाएं।

भभमहावीर ने "पांच समितियां चरित्र, दया आदि प्रवृत्तियों के काम में आती हैं," ऐसा कहा, "और तीन गुप्तियां सब प्रकार के अशुभ व्यापारों से निवृत्त होने में सहायक होती हैं।"

"जो विद्वान मुनि उक्त आठ प्रवचन-माताओं का अच्छी तरह आचरण करता है, वह शीघ्र ही अखिल संसार से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।"

मुक्ति के सूत्र हैं: जहां-जहां हम बंधे हैं, वहां-वहां से एक-एकशृंखला को तोड़ देने की प्रक्रियाएं हैं। इन्हें थोड़ा प्रयोग करें और देखें क्योंकि मेरे कहने से समझ में नहीं आएगा। कोई भी एक छोटा प्रयोग इन आठ में से करके देखें, अनूठा अनुभव होगा। इतना ही सोचने लगे कि शरीर छोटा होता जा रहा है। चलते, उठते, बैठते--शरीर छोटा होता जा रहा है; सोते शरीर छोटा होता जा रहा है। आप चकित हो जाएंगे कि शरीर के इस छोटे होने की धारणा के पैदा होते ही आपके शरीर के बहुत से व्यापार बदल जाएंगे; क्योंकि वे आपके शरीर की जो पुरानी धारणा थी, उसके साथ जुड़े थे। धारणा के गिरते ही वे व्यापार गिर जाएंगे।

अगर आप एक भी प्रयोग इन आठ में से करने में थोड़ा सा स्वाद ले लें, तो बाकी सात भी आपको करने जैसे मालूम होने लगेंगे। कोई भी एक प्रयोग इक्कीस दिन के लिए चुन लें। शरीर को छोटा करने का प्रयोग बड़ा सरल है। ख्याल करते जाएं और आप पाएंगे कि शरीर की धारणा बदली, आप छोटे होने लगे, इतने छोटे होने लगे कि आप हैरान हो जाएंगे कि आपका व्यवहार लोगों से बदलने लगा।

अब एक आदमी आपको कहता है कि तुम क्या हो, कुछ भी नहीं--आपको बिल्कुल ठीक जंचेगा। यही बात अगर इसने पहले कही होती कि तुम क्या हो, कुछ भी नहीं; क्षुद्र, ना-कुछ--आप अकड़ कर लड़ने खड़े हो गए होते। अगर आपका शरीर सिकुड़ रहा है तो आप कहेंगे, बिल्कुल ठीक कह रहे हो, ठीक ही कह रहे हो कि मैं बिल्कुल क्षुद्र हूँ। और अगर आप ऐसा कह सकें कि मैं बिल्कुल क्षुद्र हूँ, तो शायद वह आदमी भी धारणा बदलने को मजबूर हो जाए; क्योंकि जो क्षुद्र है वह कभी स्वीकार नहीं करता कि क्षुद्र है; जो छोटा है वह कभी स्वीकार नहीं करता कि मैं छोटा हूँ। जो अज्ञानी है, वह राजी नहीं होता कि मैं अज्ञानी हूँ; वह कहता है, मैं ज्ञानी हूँ। हम सदा विपरीत की घोषणा करते हैं।

आप छोटे होते जाएं, सिकुड़ते जाएं शरीर के साथ-साथ, या मन को छोटा करें, सिकोड़ते जाएं, मत फैलने दें--और आप पाएंगे कि धीरे-धीरे दुनिया दूसरी होने लगी; आपका आकार बदलने लगा और दुनिया की आकृति बदलने लगी।

दुनिया तो यही की यही रहती है--अमुक्त को, मुक्त को--लेकिन मुक्त बदल जाता है, इसलिए संसार बदल जाता है। संसार ही मोक्ष हो जाता है, अगर आप भीतर मुक्त हैं। जैसे आप हैं, अगर भूल-चूक से कहीं मोक्ष में प्रवेश कर जाएं, कोई रिश्त दे दें कहीं, किसी गुरु-कृपा से कहीं मोक्ष में आप घुस जाएं, तो आपको वहां संसार के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। इसलिए मोक्ष में रिश्त देकर जाने का कोई उपाय नहीं है। आप चले भी जाएं तो आपको वहां संसार ही दिखाई पड़ेगा। आप वहां भी संसार निर्मित कर लेंगे। आप संसार हैं; आप मोक्ष हैं।

पांच मिनट रुकें। कीर्तन करें और फिर जाएं।

कौन है पूज्य? (पूज्य-सूत्र)

आयारमट्टा विणयं पउंजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरुं तु नासाययई स पुज्जो॥
अन्नायउंछं चरई विसुद्धं, जवणट्टया समुयाणं च निच्चं।
अलद्धुयं नो परिदेवएज्जा, लद्धुं न विकत्थई स पुज्जो॥
संथारसेज्जासणभत्तपाणे अपिच्छाया अइलाभे वि सन्ते।
जो एवमप्पाणभित्तोसएज्जा, संतोसपाहन्नरए स पुज्जो॥
गुणेहि साहू अगुणेहि साहू, गिण्हाहि साहू गुण मुंच साहू।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो॥

जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो भक्तिपूर्वक गुरु-वचनों को सुनता है एवं स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है, जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।

जो केवल संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए अपरिचित भाव से दोष-रहित उच्छ-वृत्ति से भिक्षा के लिए भ्रमण करता है, जो आहार आदि न मिलने पर भी खिन्न नहीं होता और मिल जाने पर प्रसन्न नहीं होता है, वही पूज्य है।

जो संस्तारक, शय्या, आसन और भोजन-पान आदि का अधिक लाभ होने पर भी अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़ा ग्रहण करता है, संतोष की प्रधानता में रत होकर अपने आपको सदा संतुष्ट बनाए रखता है, वही पूज्य है।

गुणों से ही मनुष्य साधु होता है और अगुणों से असाधु। अतः हे मुमुक्षु! सदगुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़। जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है।

मैंने सुना है, एक अंधेरी रात में भयंकर आंधी-तूफान उठा, साथ में भूकंप के धक्के भी आए। मुल्ला नसरुद्दीन का पूरा मकान गिर गया। कुछ बचा भी नहीं, सब नष्ट हो गया। नसरुद्दीन, लेकिन बिना चोट खाए बाहर भाग कर आ गया। घबड़ा तो बहुत गया, हाथ-पैर उसके कांपते थे, लेकिन हाथ में एक शराब की बोतल बचाए हुए बाहर आ गया। जो बचाने योग्य उसे लगा, उस गिरते हुए, टूटते घर में, वह शराब की बोतल थी!

बाहर आकर बैठ गया; आंख से आंसू बहने लगे। सब जीवन की कमाई नष्ट हो गई। पड़ोस के लोग आ गए। पड़ोस के ही एक चिकित्सक ने आकर नसरुद्दीन को कहा कि थोड़ी सी यह शराब ले लो तो थोड़ी स्नायुओं को ताकत मिले। तुम बहुत घबड़ा गए हो, थोड़े आश्वस्त हो सकते हो।

नसरुद्दीन ने कहा: नर्थिंग डूइंग, दैट आई एम सेर्विंग फॉर सम इमरजेंसी! यह जो शराब की बोलत है, किसी दुर्घटना के लिए है; इसे किसी आपत्कालीन, संकटकालीन स्थिति के लिए बचा रहा हूं!

जीवन में आप भी जीवन की निधि को किसलिए बचा रहे हैं? जीवन की ऊर्जा को किसलिए बचा रहे हैं? कल पर टाल रहे हैं, परसों पर टाल रहे हैं, और दुर्घटना अभी घट रही है। प्रतिपल जीवन मृत्यु में फंसा है, और जिसे आप जीवन कहते हैं, वह सिवाय मरने के और कुछ भी नहीं है।

नीत्से ने कहा है कि जीवन अपना अतिक्रमण कर सके, सेल्फ ट्रांसेंडेंस, तो ही जीवन है। जो जीवन अपने ही भीतर घूम-घूम कर नष्ट हो जाए, वह जीवन नहीं है। जब मनुष्य स्वयं को पार करता है, जिन क्षणों में पार होता है, उन्हीं क्षणों में जीवन की वास्तविक परम अनुभूति उपलब्ध होती है। जब आप अपने से ऊपर उठते हैं, तभी आप परमात्मा के निकट सरकते हैं। जितना ही कोई व्यक्ति स्वयं के पार जाने लगता है, उतना ही प्रभु के निकट पहुंचने लगता है। लेकिन आप जीवन की ऊर्जा का क्या उपयोग कर रहे हैं? किस संकट के लिए बचा रहे हैं? संकट अभी है--इसी क्षण। और जिसे आप जीवन कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है, उसे कैसे जीवन कह पाते हैं--सिवाय दुख, और पीड़ा और संताप के वहां कुछ भी नहीं है--न कोई आनंद का संगीत है; न कोई अस्तित्व की सुगंध है; न कोई शांति का अनुभव है--न किसी समाधि के फूल खिलते हैं, और न किसी परमात्मा का साक्षात्कार होता है। क्षुद्र में व्यतीत होता जीवन... उसे जीवन कहना ही शायद उचित नहीं।

प्रथम महायुद्ध के पहले जब एडोल्फ हिटलर दुनिया की सारी ताकतों का मनोबल तोड़ने में लगा था, युद्ध के पहले उनका संकल्प तोड़ने में लगा था, तब इंग्लैंड का एक बड़ा राजनीतिज्ञ उससे मिलने गया--एक बड़ा कूटनीतिज्ञ। सातवीं मंजिल पर हिटलर अपने आफिस में बैठ कर उससे बात कर रहा था। और हिटलर ने उससे कहा कि ध्यान रखो, जाकर अपने मुल्क में कह देना कि जर्मनी से उलझने में लाभ नहीं है। मेरे पास ऐसे सैनिक हैं, जो मेरे इशारे पर जीवन को ऐसे फेंक दे सकते हैं, जैसे कोई हाथ से कचरे को फेंक दे।

तीन सैनिक द्वार पर खड़े थे। इतना कह कर एडोल्फ हिटलर ने पहले सैनिक से कहा कि खिड़की से कूद जा! वह पहला सैनिक दौड़ा। अंग्रेज कूटनीतिज्ञ तो समझ ही नहीं पाया, वह खिड़की से छलांग लगा गया। उसने यह भी नहीं पूछा, क्यों? अंग्रेज राजनीतिज्ञ की छाती कांपने लगी। वह बहुत परेशान हो गया; उसे पसीना आ गया। और हिटलर ने कहा: शायद इतने से तुझे भरोसा न हो--दूसरे सैनिक को कहा: खिड़की से कूद जा! दूसरा सैनिक भी खिड़की से कूद गया! हिटलर ने कहा कि शायद अभी भी भरोसा नहीं आया। और तीसरे सैनिक से कहा: तू भी खिड़की से कूद जा! तब तक अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने हिम्मत जुटा ली। वह भागा खिड़की से कूदते सैनिक को बांह पकड़ कर रोका और कहा: पागल हो गए हो? जीवन को ऐसे खोने की क्या आतुरता है? उस सैनिक ने कहा: यू काल दिस लाइफ? छुड़ा कर वह खिड़की से कूद गया। इसे तुम जीवन कहते हो?

जिसे हम जीवन कहते हैं, वह भी जीवन नहीं है। लेकिन हम उसे ही जानते हैं, उसके अतिरिक्त जीवन का हमें कोई अनुभव नहीं है। अगर हमें थोड़ी सी भी प्रतीति हो जाए वास्तविक जीवन की, तो इस जीवन को हम भी वैसे ही छोड़ने को राजी हो जाएंगे जैसे एडोल्फ हिटलर का सैनिक उसके नीचे हिटलर की ज्यादातियों से परेशान होकर जीवन को छोड़ने को उत्सुक है, आतुर है। लेकिन हमें किसी और जीवन का अनुभव न हो तो बड़ी कठिनाई है। जो है, उसे ही हम सब कुछ मान कर जी लेते हैं। क्षुद्र सब कुछ मालूम होता रहता है, क्योंकि विराट का कोई स्वाद नहीं मिलता। और हमने इस ढंग की व्यवस्था कर ली है कि विराट का स्वाद मिल भी नहीं सकता। हमने कोई जगह भी नहीं छोड़ी कि विराट हम में उतर सके।

महावीर का यह सूत्र कहता है, कौन पूज्य है। पूज्य वही है जो विराट को उतरने की अपने में जगह दे। क्षुद्र वही है, अपूज्य वही है, जो सब तरफ से अपने को बंद कर ले और अपनी क्षुद्रता में ही डूब मरे, लेकिन हम तो पूजते भी उन्हीं को हैं, जो अपनी क्षुद्रता को ही जीवन का शिखर बना लेते हैं। हम पूजते ही उनको हैं, जो अपने अहंकार को गौरीशंकर बना लेते हैं। पूजते हैं हम राजनीतिज्ञों को; पूजते हैं हम शक्तिशालियों को; पूजते हैं हम अभिनेताओं को, हमारे मन में पूज्य की धारणा भी बड़ी अजीब है। जहां पूज्य जैसा कुछ भी नहीं, जहां

विराट का कोई संस्पर्श नहीं हुआ है जीवन में, जहां अंधेरे हृदय में कोई प्रकाश की किरण नहीं उतरी है--वहां हमारी पूजा है।

समझ लेना जरूरी है कि हम क्या--क्यों इस तरह के लोगों को पूजते हैं, जहां पूज्य कुछ भी नहीं है। शायद आप ख्याल भी न किए होंगे। आप वही पूजते हैं, जो आप होना चाहते हैं। पूज्य आपका भविष्य है। अगर आप अभिनेता को पूजते हैं, और उसके आस-पास भीड़ इकट्ठी हो जाती है पागलों की, तो उसका अर्थ है कि वे सब पागल हैं, जीवन का एक लक्ष्य मन में लिए हुए हैं कि वे भी अभिनेता हो सकते हैं, नहीं हो पाए, हो जाएं किसी दिन, उसी आशा से जी रहे हैं।

आप जिसे पूजते हैं, उससे खबर देते हैं कि आपके जीवन का आदर्श क्या है? अगर राजनीतिज्ञों के आस-पास भीड़ इकट्ठी होती है, तो उसका अर्थ है कि आप भी शक्ति, पद, यश को पूजते हैं। और जिसे आप पूजते हैं, वह आपकी महत्वाकांक्षा की खबर है। आप जहां दिखाई पड़ते हैं, वहां अकारण दिखाई नहीं पड़ते। जिन चरणों में आपके सिर झुकते हैं, अकारण नहीं झुकते। आप उन्हीं चरणों में सिर झुकाते हैं, जो आपके भविष्य की प्रतिमा हैं, जो आप चाहते हैं कि हो जाएं।

तो महावीर पूज्य-सूत्र में कुछ सूत्र दे रहे हैं कि "कौन पूज्य है?"

मैंने सुना है कि एक इजरायली तेल-अबीव के एक बड़े अस्पताल में गया, उसका मस्तिष्क जीर्ण-जर्जर हो गया था, और उसने चिकित्सकों से कहा कि मैं चाहता हूं कि किसी और का मस्तिष्क ट्रांसप्लांट कर दिया जाए।

यह भविष्य की कथा है। जैसे आज खून के बैंक हैं, ऐसे मस्तिष्क के बैंक भी भविष्य में हो जाएंगे।

उस इजरायली ने कहा कि मेरे चिकित्सक कहते हैं कि मेरा मस्तिष्क अब ज्यादा दिन काम नहीं दे सकता, इसे हटा दिया जाए, रिप्लेस कर दिया जाए। तो मैं पता लगाने आया हूं कि बैंक में कितने प्रकार के मस्तिष्क उपलब्ध हैं।

तो चिकित्सक उसे ले गया। उसने एक पहला मस्तिष्क दिखलाया और कहा: "इसके पांच हजार रुपये होंगे। यह एक साठ वर्ष के गणितज्ञ का मस्तिष्क है और साठ वर्ष के बूढ़े आदमी का मस्तिष्क है, इसलिए दाम थोड़े कम हैं।" पर उस इजरायली ने कहा कि साठ वर्ष! मेरी उम्र से बहुत ज्यादा हो गया। इतना बूढ़ा मस्तिष्क नहीं, कुछ थोड़ा जवान तो दिखाया कि यह एक स्कूल शिक्षक का मस्तिष्क है, यह आदमी तीस साल में मर गया, तो उस इजरायली ने कहा: "स्कूल शिक्षक की हैसियत मुझसे बड़ी नीची है, जरा मेरे योग्य!" तो उसने एक धनपति का मस्तिष्क दिखाया कि इसकी कीमत पंद्रह हजार रुपये है। यह आदमी पचास साल में मरा।

और तभी इजरायली की नजर गई एक खास कांच के बर्तन में, जिस पर एक बल्ब जल रहा है। "इस बर्तन में जो मस्तिष्क रखा है, वह किसका है?" तो उस डाक्टर ने कहा: "वह जरा महंगी चीज है। उसके दाम हैं पांच लाख रुपये। क्या वह आपकी हैसियत में पड़ेगा?"

उस इजरायली ने कहा कि मैं इसके संबंध में ज्यादा जानना चाहूंगा। इतने दाम की क्या बात है? पांच लाख रुपये! तो उस डाक्टर ने कहा कि यह एक राजनीतिज्ञ का मस्तिष्क है, एक पोलिटीशियन का।

तो भी इजरायली ने कहा कि इतनी कीमत की क्या जरूरत है? तो उस डाक्टर ने कहा: अब आप नहीं मानते तो मैं बताए देता हूं, इट हैज बीन नेवर यूज्ड--इसका कभी उपयोग नहीं किया गया है!

राजनीतिज्ञ को मस्तिष्क का उपयोग करने की जरूरत भी नहीं है। मस्तिष्क जितना कम हो उतनी संभावना सफलता की ज्यादा है। लेकिन बुद्धिहीनता को हम आदर देते हैं, अगर बुद्धिहीनता अहंकार के शिखर पर चढ़ जाए। मूढ़ता आदृत है--हम भी मूढ़ हैं इसलिए, और हम भी वही चाहते हैं इसलिए।

आप जिसे पूजते हैं, उस पर विचार कर लेना। आपकी पूजा आपका मनोविश्लेषण है। किसे आप पूजते हैं? कौन है आपका आदृत? तो आपकी जीवन-दिशा कहां जा रही है, उसका पता चलता है। अगर आप सफल हो

जाएं तो आप वही हो जाएंगे। अगर असफल हो जाएं तो बात अलग है, लेकिन असफल भी आप उसी मार्ग पर होंगे।

अपने हृदय के कोने में इसकी जांच-पड़ताल कर लेनी जरूरी है कि कौन है मेरा पूज्य? और किस कारण मैं पूजता हूं? जो पूज्य है, उसका सवाल नहीं है, इससे आप अपने को समझने में समर्थ हो पाएंगे। यह आत्मविषण होगा। और अगर आप अपने को बदलते हैं तो आपकी पूजा का भाव भी बदलता जाएगा, पूजा के पात्र भी बदलते जाएंगे।

पीछे लौटें। आज जैसा अभिनेता पूज्य है, वैसा कभी संन्यासी पूज्य था, क्योंकि लोग संन्यास को जीवन का परम मूल्य समझते थे। आज अभिनेता पूज्य है, जीवन इतना झूठा हो गया है! अभिनेता से ज्यादा झूठा और क्या होगा? अभिनेता का होने का मतलब ही झूठा होना है--एक असत्य। संन्यास अगर सत्य का प्रतीक था तो अभिनेता असत्य का प्रतीक है। संन्यास अगर निर-अहंकार भाव का प्रतीक था तो नेता अहंकार भाव का प्रतीक है। अगर भिक्षु त्याग का प्रतीक था तो धनपति भोग का प्रतीक है।

किसे आप पूजते हैं? नेता से भी ज्यादा कीमत अभिनेता की बढ़ती जा रही है। यह किस बात की खबर है? किस मौसम की खबर है यह? आपके भीतर झूठ की प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है; मनोरंजन की प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है, सत्य की कम होती जा रही है।

और ध्यान रहे, मनोरंजन की प्रतिष्ठा तभी बढ़ती है, जब लोग बहुत दुखी होते हैं, क्योंकि दुखी आदमी ही मनोरंजन खोजता है। सुखी आदमी मनोरंजन नहीं खोजेगा। अगर आप प्रसन्नचित्त हैं, आनंदित हैं, तो आप फिल्म में जाकर नहीं बैठेंगे, क्योंकि तीन घंटा व्यर्थ की मूढ़ता हो जाएगी। समय खराब होगा; मस्तिष्क खराब होगा; तीन घंटे में आंखें खराब होंगी; स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचेगा, और मिलेगा कुछ भी नहीं।

लेकिन दुखी आदमी भागता है, दुखी आदमी मनोरंजन खोजता है। तो जितना मनोरंजन की तलाश बढ़ती है, उससे पता चलता है कि आदमी ज्यादा दुखी होता जा रहा है। सुखी आदमी एक झाड़ के नीचे बैठ कर भी आनंदित है; अपने घर में भी बैठ कर आनंदित है; अपने बच्चों के साथ खेल कर भी आनंदित है; अपनी पत्नी के पास चुपचाप बैठ कर भी आनंदित है। कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। कहीं जाने का मतलब यह है कि जहां आप हैं, वहां दुख है--वहां से बचना चाहते हैं।

अभिनेता असत्य है, लेकिन उसकी कीमत बढ़ती जाती है। नेता मनुष्य में निम्नतम का प्रतीक है। राजनीति मनुष्य के भीतर जो निम्नतम वृत्तियां हैं, उनका खेल है; लेकिन वह आदृत है। झूठ हमारा आदर्श होता चला जा रहा है।

सुना है मैंने, एक स्त्री एक पुल के पास से गुजरती थी। पुल के किनारे पर उसने एक अंधे आदमी को बैठे देखा, तख्ती लगाए हुए है, जिस पर उसने लिखा है, प्लीज हेल्प दि ब्लाइंड--कृपया अंधे की मदद करें। उसकी दशा इतनी दुखद है कि उस स्त्री ने पांच रुपये का एक नोट निकाल कर उसके हाथ में दिया। उस अंधे ने कहा: नोट बदल दें तो अच्छा है। थोड़ा पुराना, फटा सा मालूम पड़ता है; पता नहीं, चले, न चले। उस स्त्री ने कहा: अंधे होकर तुम्हें पता कैसे चला कि नोट पुराना, गंदा सा मालूम होता है? उस आदमी ने कहा: क्षमा करें, अंधा मैं नहीं हूं, मेरा मित्र अंधा है। वह आज सिनेमा देखने चला गया है; मैं उसकी जगह काम कर रहा हूं--सिर्फ प्रतिनिधि हूं। और जहां तक मेरी बात है, मैं गूंगा-बहरा हूं।"

"अंधा फिल्म देखने चला गया है; मैं गूंगा-बहरा हूं"; वह कह रहा है! मगर करीब-करीब ऐसी ही असत्य हो गई है जीवन की सारी व्यवस्था। तख्तियों से कुछ पता नहीं चलता है कि पीछे कौन है? नामों से कुछ पता नहीं चलता है कि पीछे कौन है? प्रचार से कुछ पता नहीं चलता कि पीछे कौन है? एक झूठा चेहरा है सबके ऊपर, भीतर कोई और है; भीतर कुछ और चल रहा है। अभिनय की पूजा इस पाखंड का सबूत है। पद की,

प्रतिष्ठा की पूजा आपके भीतर एक रोग की खबर देती है कि आप पागल हैं, आप चाहते हैं कि आप विशिष्ट हो जाएं। आप चाहते हैं, सबकी छाती पर चढ़ जाएं, सबसे ऊपर हो जाएं। चढ़ने की सीढ़ियां कोई भी हो सकती हैं--धन, पद, ज्ञान, त्याग भी। अगर चढ़ने की ही सीढ़ी बनानी हो तो कोई भी चीज सीढ़ी बन सकती है।

महावीर किसे पूज्य कहते हैं? महावीर जैसे आदमी जिसे पूज्य कहते हैं, उस पर विचार कर लेना जरूरी है।

"जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है।"

बड़ी कठिन शर्त है। आप भी आचारवान होना चाहते हैं, लेकिन महावीर विनय की शर्त लगा रहे हैं, जो कि बड़ी उलटी है। हम बचपन से ही बच्चों को सिखाते हैं कि तुम्हारा चरित्र ऊंचा रखना, क्योंकि चारिष्य का सम्मान है। अगर तुम चरित्रवान हो तो सभी तुम्हें आदर देंगे। अगर तुम चरित्रवान हो तो कोई तुम्हारी निंदा नहीं करेगा। अगर तुम चरित्रवान हो तो समाज की श्रद्धा तुम्हारी तरफ होगी, तुम पूज्य बन जाओगे।

हम बच्चे को अहंकार सिखा रहे हैं, आचरण नहीं। हम बच्चे को यह कह रहे हैं कि अगर तुझे अपने अहंकार को सिद्ध करना है, तो आचरण जरूरी है। क्योंकि जो आचारहीन है उसको कोई श्रद्धा नहीं देता; कोई आदर नहीं देता; लोग उसकी निंदा करते हैं। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि मां-बाप आचरण सिखा रहे हैं, पर मां-बाप अहंकार सिखा रहे हैं। मां-बाप यह नहीं कह रहे हैं कि तू विनम्र होना, कि तू निर-अहंकारी होना। मां-बाप यह कह रहे हैं कि तू चालाक होना, कर्निंग होना, क्योंकि अगर तेरे पास आचरण है तो समाज तुझे कम असुविधा देगा, सुविधा ज्यादा देगा। अगर तू आचरणहीन है तो समाज असुविधाएं देगा; दिक्कतें डालेगा; दंड देगा, परेशान करेगा--समाज दुश्मन हो जाएगा। तो तुझे जो भी पाना है जीवन में--धन, पद, प्रतिष्ठा, वह तुझे मिल नहीं सकेगी।

और हमारा आचार इसी प्रतिष्ठा के आग्रह में निर्मित होता है। हमारे बीच जो आचारवान भी मालूम पड़ते हैं, भीतर उनका आचार भी विनय पर आधारित नहीं है; ह्युमिलिटी पर आधारित नहीं है, अहंकार पर आधारित है। महावीर कहते हैं, बात खराब हो गई, यह तो जड़ में ही जहर डाल दिया। जो फूल आएंगे वे जहरीले होंगे। विनय आधार है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि विनय में सारा आचार समा जाता है। विनय का अर्थ है निर-अहंकार भाव; "मैं कुछ हूं", इस पागलपन का त्याग। यह अकड़ भीतर से खो जाए कि "मैं कुछ हूं।" मगर दूसरी अकड़ फौरन हम बिठा लेते हैं।

आदमी की चालाकी को ठीक से समझ लेना जरूरी है--हम यह कह सकते हैं कि "मैं कुछ भी नहीं हूं", और यह अकड़ बन सकती है--"मैं ना-कुछ हूं" लेकिन इसके कहते वक्त एक प्रबल अहंकार भीतर कि "मैं विनम्र हूं"; कि "मुझसे ज्यादा विनीत और कोई भी नहीं... !"

आदमी तरकीबें निकाल लेता है और जब तक होश न हो, तरकीबों से बचना मुश्किल है। तो आप विनीत भी हो सकते हैं और भीतर अहंकार हो सकता है। विनम्र होने का अर्थ है--न तो इस बात की अकड़ कि "मैं कुछ हूं", और न इस बात की अकड़ कि "मैं ना-कुछ हूं"--इन दोनों के बीच में विनम्रता है। जहां मुझे यह पता ही नहीं है कि "मैं हूं"--मेरा होना सहज है, इस सहजता को महावीर कहते हैं, आचार का आधार।

"जो आचार-प्राप्ति के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो भक्तिपूर्वक गुरु-वचनों को सुनता है एवं स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है, जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।"

"विनय" का अर्थ है, अपने को शून्य समझना और जब तक आप शून्य नहीं हो जाते तब तक गुरु उपलब्ध नहीं हो सकता। आप गुरु को नहीं खोज सकते, ध्यान रखना। आप तो जिसको खोजेंगे वह आप--जैसा ही गुरु-घंटाल होगा, गुरु नहीं हो सकता। आप खोजेंगे न! आप अपने से अन्यथा कुछ भी नहीं खोज सकते। आप सोचेंगे, आप व्याख्या करेंगे--आप करेंगे न! गुरु तो गौण होगा, नंबर दो होगा! नंबर एक तो आप होंगे, आप पता लगाएंगे कि कौन ठीक है, कौन गलत है? गुरु कैसा होना चाहिए, यह आप पता लगाएंगे। आप तय करेंगे कि

आचरणवान है कि आचरणहीन है। आप--जिनको कुछ भी पता नहीं है। आप गुरु के निर्धारक होंगे, तो जिसे आप चुन लेंगे वह आपका ही प्रतिबिंब होगा, आपकी ही प्रतिध्वनि होगा, और अगर आप गलत हैं तो गुरु सही नहीं हो सकता; आप गलत गुरु ही चुन लेंगे।

गुरु की खोज का पहला सूत्र है कि आप न हों। तब आप नहीं चुनते, गुरु आपको चुनता है। तब आप अपने को बीच में नहीं लाते; आप कोई शर्त नहीं लगाते; आप परीक्षक नहीं होते।

इधर मैं देखता हूं, लोग गुरुओं की परीक्षा करते घूमते हैं। देखते हैं कि कौन गुरु ठीक, कौन गुरु ठीक नहीं। आप अगर इतना ही तय कर सकते हैं और परीक्षक हैं, आपको शिष्य होने की जरूरत ही नहीं है; आप गुरु के भी महा-गुरु हैं! आप अपने घर बैठिए, जिनको सीखना है वे खुद ही आपके पास आ जाएंगे। आप मत जाइए।

और आप कितने ही भटके, आपको गुरु नहीं मिल सकता। आपको गलत आदमी ही प्रभावित कर सकता है, जो आपकी शर्तें पूरी करने को राजी हो। कौन आपकी शर्तें पूरी करेगा? कोई महावीर, कोई बुद्ध आपकी शर्तें पूरी करेगा? कोई क्षुद्र आपकी शर्तें पूरी कर सकता है। अगर वह आपका गुरु होना चाहता है, आपकी शर्तें पूरी कर दे सकता है। आपकी शर्तें जाहिर हैं, उसमें कुछ कठिनाई नहीं है। क्षुद्र आदमी के मन की क्या भावनाएं हैं, वे सब जाहिर हैं। जो आदमी चालाक है, वह आपकी शर्तें पूरी कर देगा और आपका गुरु बन बैठेगा। अगर आप उपवास को आदर देते हैं, उपवास किया जा सकता है। अगर आप गंदगी को आदर देते हैं, तो आदमी गंदा रह सकता है।

जैन साधु हैं, उनके भक्त महावीर के वचनों का ऐसा अनर्थ कर लिए हैं, जिसका हिसाब नहीं है। महावीर ने कहा है, शरीर को सजाना मत, सजाने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह कामवासना से भरे हुए व्यक्ति की बात है।

शरीर को आप अपने लिए तो नहीं सजाते, शरीर को आप सदा दूसरे के लिए सजाते हैं--कोई देखे, कोई आकर्षित हो, किसी में वासना जगे, चाहे आप सचेतन न हों--यह तो आदमी की दुविधा है कि वह अचेतन में सब करता जाता है। सड़कों पर चलती हुई स्त्रियों को देखें कोई उनको धक्का मार दें तो वे नाराज होती हैं, लेकिन घर से वे पूरी तरह सजावट करके चली हैं कि धक्का मारने का निमंत्रण छिपा है। कोई धक्का न मारे तो भी वे उदास लौटेंगी, शायद सजावट में कोई कमी रह गई--कोई धक्का मार दे तो परेशानी खड़ी कर देंगी, लेकिन निमंत्रण साथ लेकर चलेंगी।

यह बड़े मजे की बात है कि स्त्रियां घर में तो महाकाली बनी बैठी रहती हैं--चंडी का अवतार और घर से निकलते वक्त? उसका कारण है कि पति को आकर्षित करने की अब कोई जरूरत नहीं है--टेकन फॉर ग्रांटेड, वह स्वीकृत है। लेकिन पूरा बाजार भरा है--और फिर कोई धक्का मार दे; कोई ताना कस दे; कोई गाली फेंक दे, कुछ बेहूदी बात कह दे, तो अड़चन है!

आदमी बड़ा अचेतन जी रहा है, वह क्या करना चाहता है, क्या कर रहा है उसे कुछ ठीक-ठीक साफ भी नहीं है।

मैंने सुना है, एक दिन एक आदमी अपनी पत्नी के साथ नसरुद्दीन के घर पर दस्तक दिया। दरवाजा खुला तो वे दोनों चकित हो गए। पत्नी तो बहुत भयभीत हो गई। नसरुद्दीन बिल्कुल नंगा खड़ा है, सिर्फ एक टोप लगाए हुए। आखिर स्त्री से नहीं रहा गया, उसने कहा कि क्या आप घर में ऐसा दिगंबर वेश ही रखते हैं?

नसरुद्दीन ने कहा: "हां, क्योंकि मुझे कोई मिलने-जुलने आता नहीं।" तो स्त्री की जिज्ञासा और बढ़ गई। उसने कहा: "अगर ऐसा ही है तो फिर वह टोप और काहे के लिए लगाए हुए हैं?"

नसरुद्दीन ने कहा: "कभी-कभार कोई आ ही जाए तो, उस ख्याल से।"

कोई मिलने नहीं आता, इस ख्याल से नंगे हैं, और टोप इसलिए लगाए हैं कि कभी-कभार कोई आ ही जाए, तो उसके लिए!

आदमी बड़े द्वंद्व में बंटा हुआ है। कुछ साफ नहीं है। महावीर ने कहा है, शरीर की सजावट भोगी के लिए है; योगी के लिए शरीर की सजावट नहीं। लेकिन जब भोगियों ने महावीर के मार्ग पर कदम रखे तो उन्होंने इसका बड़ा अनूठा अर्थ लिया। सजावट एक बात है, स्वच्छता बिल्कुल दूसरी बात है। स्वच्छता अपने लिए है, सजावट दूसरे के लिए होगी। स्वच्छता का तो अपना निजी सुख है, दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं। लेकिन, स्वच्छता भी सजावट हो गई है। तो जैन मुनि स्नान नहीं करेगा, शरीर से बदबू आती रहेगी; दातौन नहीं करेगा, मुंह से बदबू आती रहेगी।

अब यह बड़े मजे की बात है कि जैसे सजावट दूसरों को प्रभावित करने के लिए थी, यह गंदगी भी दूसरों को प्रभावित करने के लिए है। और अगर जैन श्रावक को पता चल जाए कि मुनि जी के मुंह से मैक्लीन्स की बास आ रही है, सब गड़बड़ हो गया! वह जाकर फौरन प्रचार कर देगा कि यह आदमी भ्रष्ट हो गया है; दातौन कर रहा है। दातौन ही नहीं कर रहा, ब्रश कर रहा है।

आप दांत में सुगंध भी चाहते हैं दूसरे के लिए और दुर्गंध भी दूसरे के लिए, तो कुछ फर्क नहीं हुआ। महावीर का जोर इस बात का है कि दूसरे को भूल जाएं। अपने लिए, स्वयं के लिए, निज के लिए जो हितकर है, स्वस्थ है, उस दिशा में खोज करें।

जैसा मैंने कल आपको कहा कि कैसी विकृतियां संभव हो जाती हैं। मैंने आपको कहा कि महावीर ने कहा है, मल-मूत्र विसर्जित करते वक्त ख्याल रखना जरूरी है, किसी को दुख न हो, किसी को पीड़ा न हो। महावीर ने बहुत विचार किया है, सूक्ष्म, गंदगी से किसी को कष्ट न हो। पच्चीस सौ साल पहले न तो सेप्टिक टैंक थे और न फ्लश लैट्रिन थीं। और भारत तो पूरा का पूरा गांव के बाहर ही मल-मूत्र विसर्जन करता रहा है। तो महावीर ने कहा है, गीली जगह पर घास उगी हो, जहां कि कीड़े-मकोड़े के होने की संभावना है--जीवन की। घास भी जीवन है। तुम्हारे मल-मूत्र से घास को भी नुकसान पहुंच जाएगा--वह भी नहीं। तो सूखी जमीन पर, साफ जमीन पर, जहां कोई जीवन की कोई संभावना न हो, वहां तुम मल-मूत्र का विसर्जन करना।

अब बड़ा पागलपन हो गया! अब बंबई में जैन साधु-साधवियां ठहरे हैं। जहां सपाट जमीन खोजनी मुश्किल है, सिवाय रोड के। तो वे रोड का उपयोग कर रहे हैं। तरकीब से कर रहे हैं! अब मजा यह है कि बर्तनों में इकट्ठा कर लेंगे पेशाब को, मल-मूत्र को और रात के अंधेरे में सड़कों पर उ.ंडेल देंगे।

अब किसी नियम से कैसी मूढता का जन्म हो सकता है, सोचें। फ्लश लैट्रिन इस समय सर्वाधिक उपयोगी होगी। लेकिन वहां नियम में उलटा हो गया, क्योंकि गीली जगह पर... वहां पानी है फ्लश का, तो उस पानी की वजह से शास्त्र... !

शास्त्र लोगों को अंधा कर सकते हैं। और जो इस तरह अंधे हो जाते हैं उनके जीवन में कैसे प्रकाश होगा, कहना बहुत मुश्किल है। शास्त्र की लकीर के फकीर हैं वे। उसमें लिखा है, "गीली जमीन पर नहीं"... तो वहां फ्लश का पानी है, इसलिए वहां पेशाब भी नहीं कर सकते, वहां मल-विसर्जन भी नहीं कर सकते। तो सूखी थाली या बर्तन में कर लेंगे, फिर सम्हाल कर रखे रहेंगे और जब रात हो जाएगी, अंधेरा हो जाएगा तो सड़क पर, सूखी जमीन पर छोड़ देंगे।

अब यह पागलपन हो गया। लाओत्सु कभी-कभी ठीक लगता है कि पैगंबरों से बड़ी मूढता पैदा होती है। महावीर को कल्पना भी नहीं रही होगी, हो भी नहीं सकती। फ्लश लैट्रिन का उनको पता होता तो शास्त्र में थोड़ा फर्क करते। लेकिन उनको यह ख्याल भी नहीं रहा होगा कि उनके पीछे ऐसे पागलों की जमात आ जाएगी, जो उसको नियम बना लेगी।

कोई शास्त्र नियम नहीं हैं। सब शास्त्र निर्देशक हैं; सिर्फ सूचना मात्र हैं। उनका भाव पकड़ना चाहिए; शब्द पकड़ेंगे तो गड़बड़ हो जाएगी, क्योंकि सभी शब्द पुराने पड़ जाएंगे। महावीर ने जिनसे कहा है, उनके लिए ठीक थे। समय बदलेगा, स्थिति बदलेगी, व्यवस्था बदलेगी, उपकरण बदलेंगे--शब्द वही रह जाएंगे। शास्त्र कोई वृक्ष तो हैं नहीं कि बड़ें, उनमें नये फूल लगें। शास्त्र तो मुर्दा हैं। उन मुर्दा शास्त्रों को जकड़ कर लोग बैठ जाते हैं।

महावीर ने कहा है कि "आचार-प्राप्ति के लिए विनय का उपयोग करता है जो व्यक्ति..."।

लेकिन आप गौर से देखें, जब भी कभी आप आचार-प्राप्ति का कोई उपयोग करते हैं, तो उसमें अहंकार कारण होता है। इसलिए आचारवान व्यक्ति अकड़ कर चलता है; दुराचारी चाहे डर कर चले। दुराचारी थोड़ा चिंतित भी होता है कि किसी को पता न चल जाए। दुराचारी डरता है कि मेरे आचरण का पता न चल जाए। जिसको हम सदाचारी कहते हैं, वह कोशिश करता है कि उसके आचरण का आपको पता चलना चाहिए। मगर आप ही बिंदु हैं।

तो दुराचारी अंधेरे में छिपता है, सदाचारी प्रचार करता है अपने आचरण का। वह हिसाब रखता है कि किस वर्ष कितने उपवास किए, कितनी पूजा की, कितने मंत्र का जाप किया; सब हिसाब रखता है, कितने लाख जाप कर लिया।

किसके लिए यह हिसाब है?

हिसाब बता रहा है कि भीतर चालाक आदमी मौजूद है, मिटा नहीं है, बही-खाते रख रहा है।

"विनय" है पहली शर्त। विनय का अर्थ है: स्वयं को "ना-कुछ" की अवस्था में ले आना। "ना-कुछ" हूं, ऐसा बोध भी न पकड़े। इतना जो विनम्र आदमी है, उसे गुरु उपलब्ध होगा। और अगर आप उसे खोजने भी न जाएं तो वह आपको खोजते हुए आ जाएगा।

जीवन के अंतर-नियम हैं। जहां भी जरूरत होती है गुरु की, वहां जिनके जीवन में भी जागृति का फूल खिला है, उनको अनुभव होना शुरू हो जाता है। जैसे प्रकृति में होता है कि जहां बहुत गर्मी हो जाएगी वहां हवा के झोंके भागते हुए आ जाएंगे। जब हवा आती है तो आपको पता है, क्यों आती है? हवा अपने कारण नहीं आती। जहां गर्म हो जाता है बहुत, विज्ञान के हिसाब से जहां गर्मी ज्यादा हो जाती है वहां की हवा विरल हो जाती है, कम सघन हो जाती है, ऊपर उठने लगती है गर्म होकर--वहां गड्ढा हो जाता है। उस गड्ढे को भरने के लिए आस-पास की हवाएं दौड़ पड़ती हैं। आप पानी भरते हैं, एक मटकी में नदी से, गड्ढा हो जाता है। जैसे ही गड्ढा हुआ कि आस-पास का पानी दौड़ कर गड्ढे को भर देता है।

ठीक ऐसा ही आत्मिक जीवन का नियम है कि जब भी कोई व्यक्ति मिट जाता है, तो कोई जो शिखर को उपलब्ध है, दौड़ कर उसको भर देता है। लेकिन वे सूक्ष्म-जगत के नियम हैं; इतने साफ नहीं हैं। जिसमें कहा जाता है कि व्हेन दि डिसाइपल इज रेडी, दि मास्टर एपियर्स--जब शिष्य तैयार है, तो गुरु उपस्थित हो जाता है। शिष्य को गुरु खोजना नहीं पड़ता, गुरु शिष्य को खोजता है; क्योंकि जरूरत पैदा हो गई, तो जिसके पास है वे देने को दौड़ पड़ेंगे। पात्र तैयार हो गया। जिनके पास है, वे उसे भर देंगे, क्योंकि जिनके पास है, वे अपने होने से भी बोझिल होते हैं--ध्यान रखें।

जैसे वर्षा के बादल होते हैं, भर जाते हैं पानी से तो बोझिल हो जाते हैं; अगर न बरसें तो भार होता है। जैसे मां है : गर्भ हो गया, बच्चा आ गया, तो उसके स्तन भर जाते हैं दूध से। वह न बच्चे को दे, तो पीड़ा होगी। अगर बच्चा मर भी जाए तो वह पड़ोस के किसी बच्चे को दूध देगी, क्योंकि देना हिस्सा है अब--भर गई है। नहीं निकलेगा दूध तो कठिनाई होगी। तो यंत्र बनाए गए हैं। अगर बच्चा मर जाए तो स्तन से दूध निकालने के लिए यंत्र बनाए गए हैं, जो बच्चे की तरह दूध को खींच लें।

जब कहीं ज्ञान सघन होता है, जब कहीं ज्ञान उत्पन्न होता है, तो जैसे स्तन मां के भर जाते हैं, ऐसे गुरु का हृदय भर जाता है। वह चाहता है कि कोई आ जाए और उसे हलका कर दे।

तो जब आप तैयार हैं तो गुरु मौजूद हो जाता है। आप खोजने जाते हैं, तो गलती में हैं। पहले आप मिटें और मिट कर आप चल पड़ें; गुरु आपको पकड़ लेगा। और आप निर्णय करेंगे तो भटकते रहेंगे। आप निर्णय करने की स्थिति में नहीं हैं; हो भी नहीं सकते। तब डर लगता है कि यह अंधश्रद्धा हो जाएगी। तर्क कहेगा कि यह तो अंधी बात हो जाएगी, तब हम कुछ भी नहीं!

अगर तर्क अभी न थका हो तो तर्क करके कुछ और उपाय करके खोजने की व्यवस्था कर लें। एक घड़ी आएगी कि आप तर्क से थक जाएंगे। और एक घड़ी आएगी कि आप जान लेंगे इस बात को कि जिसे भी आप खोजते हैं, वह आप ही जैसा गलत है। इस विषाद के क्षण में ही आदमी अपनी खोज बंद करता है; खुद मिट कर एक सूना पात्र होकर घूमता है। जहां भी कोई भरा हुआ व्यक्ति होता है--जैसे हवा दौड़ पड़ती है खाली जगह की तरफ, पानी दौड़ पड़ता है गड्ढे की तरफ, मां का दूध बहता है बच्चे की तरफ--ऐसा गुरु बहने लगता है शिष्य की तरफ।

इस घड़ी में जो मिलन है, इस घड़ी में जो गुरु शिष्य के बीच मिलन है, वह इस जगत की महत् से महत् घटना है। जिनके जीवन में वह घटना नहीं घटी, वे अधूरे मर जाएंगे। उन्होंने एक अनूठे अनुभव से अपने को वंचित रखने का उपाय कर रखा है।

इससे बड़े सुख का क्षण पृथ्वी पर कभी भी नहीं होता, जब आप पात्र की तरह खाली होते हैं, और कोई भरा हुआ व्यक्ति आपकी तरफ बहने लगता है। लेकिन इस बहाव के लिए ग्राहक होना जरूरी है, और ग्राहक वही हो सकता है जो आलोचक नहीं है। आलोचक तो अकड़ा हुआ सोचता है, खुद ही जांच-परख करता है। इसलिए विज्ञान और धर्म के सूत्र अलग हैं। विज्ञान आलोचना से जीता है, तर्क से जीता है। धर्म अतर्क है, श्रद्धा से जीता है, समर्पण से जीता है।

एक मित्र, मेरे साथ एक पर्वतीय स्थल पर गए थे; बीमार आलोचक हैं। आलोचक बीमार होते ही हैं। कोई भी चीज देख कर, क्या गलती है, यही उनके ध्यान में आता है। ठीक कुछ हो सकता है, इस पर उनका भरोसा नहीं है। जो भी होगा, गलत ही होगा।

तो जहां भी उन्हें मैं ले जाता--उन्हें एक सुंदर जल-प्रपात के पास ले गया, तो उन्होंने कहा: क्या रखा है इसमें? जरा पानी को हटा लो, फिर कुछ भी नहीं है।

खूबसूरत पहाड़ पर ले गया, जहां सूर्यास्त देखने जैसा है। उन्होंने कहा, "ऐसा कुछ खास नहीं है। इतनी दूर चल कर आने का कोई मतलब नहीं है। क्षणभर में सूर्य अस्त हो जाएगा, फिर क्या रखा है?" लौटते वक्त उन्होंने कहा कि बेकार ही आना हुआ! सिवाय पहाड़, झरने, सूरज--इनको हटा लो, सब सपाट मैदान है।

ऐसा आदमी गुरु को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। उसने गलत तरफ से खोज शुरू कर दी। ठीक तरफ खोज का अर्थ है, संवेदनशीलता, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता। जितना विनम्र होगा व्यक्ति, उतना ग्राहक होगा। उतनी शीघ्रता से गुरु उसकी तरफ दौड़ सकता है।

"जो भक्तिपूर्वक गुरु-वचनों को सुनता है।"

"भक्तिपूर्वक"--जैसे प्रेमी सुनता है प्रेयसी के वचन। और आपको पता है कि वचनों का अर्थ बदल जाता है, कैसे आप सुनते हैं।

एक नई स्त्री के प्रेम में पड़ गए हैं आप। वह जो भी बोलती है वह स्वर्णिम मालूम होता है। कोई दूसरा पास से गुजरता हुआ सुने तो समझेगा कि बचकाना है। आपको स्वर्णिम मालूम पड़ता है, स्वर्णीय मालूम पड़ता है। आप जो भी उससे कहते हैं, क्षुद्र सी बातें भी, बहुत क्षुद्र सी साधारण सी बातें भी, वे भी हीरे-मोतियों से जड़ जाती हैं, वे भी बहुमूल्य हो जाती हैं। जरा सा इशारा भी कीमती हो जाता है। कोई दूसरा सुनेगा तो कहेगा कि ठीक है, क्या रखा है?

उसे कुछ भी नहीं रखा है। लेकिन प्रेम से भरा हुआ हृदय बहुत गहरे तक चीजों को ले जाता है, क्योंकि उतना खुल जाता है। चीजों के अर्थ अलग हो जाते हैं। एक साधारण सा फूल उठा कर आपका प्रेमी आपको दे दे, तो वह फूल स्मरणीय हो जाता है। कोई कोहिनूर से भी बदलना चाहे तो आप बदलने को राजी न होंगे। कोहिनूर दो कौड़ी का है उस फूल के मुकाबले। फूल में कुछ और आ गया। क्या आ गया? फूल सिर्फ फूल है; वैज्ञानिक परीक्षण से कुछ भी ज्यादा नहीं मिलेगा। लेकिन फूल आपके हृदय में गहरे उतर गया है; किसी प्रेम के क्षण में लिया गया है। तब आप खुले थे और चीजें भीतर तक संकृत हो गईं। इसलिए प्रेमी पत्थर का टुकड़ा भी भेंट कर दें, तो कीमती हो जाता है।

गुरु जो वचन बोल रहा है, वे साधारण मालूम पड़ सकते हैं, अगर भक्ति से नहीं सुने गए हैं। अगर भक्ति से सुने गए हैं, तो उसके साधारण वचन भी क्रांतिकारी हो जाते हैं। वचनों में कुछ भी नहीं है, भक्ति से सुनने में सब-कुछ है। इसलिए आप कुरान को पढ़ें अगर आप मुसलमान नहीं हैं तो पाएंगे, क्या रखा है? कुरान पढ़नी हो, तो मुसलमान का हृदय चाहिए, तो ही कुरान का अर्थ प्रकट होगा। जैन गीता पढ़ता है; "कहता है, क्या रखा है? क्यों हिंदू इतना शोरगुल मचाए रखते हैं?" गीता के लिए फिर हिंदू का हृदय चाहिए। अगर जैन भागवत पढ़ेगा तो कहेगा, "यह क्या हो रहा है? रासलीला है कि सब पाखंड हो रहा है?" उसकी अपनी धारणा प्रवेश कर जाएगी। चैतन्य से पूछो, या मीरा से भागवत का रस, तो वे पागल होकर नाचने लगते हैं। पर वह जो नाच है, वह चैतन्य की अपनी ग्राहकता से आता है, भागवत से नहीं आता है। भागवत तो सिर्फ सहारा है, निमित्त है।

गुरु निमित्त है; आनंद तो आप से जगेगा। लेकिन निमित्त को आप भीतर ही न घुसने दें तो कठिनाई है। और ध्यान रखें एक बात, गुरु आक्रामक नहीं हो सकता, एग्रेसिव नहीं हो सकता, क्योंकि जो आक्रामक हो सकता है, वह तो गुरु होने की योग्यता को भी उपलब्ध नहीं होगा। गुरु तो बिल्कुल अनाक्रामक है। वह जबरदस्ती आपकी गर्दन पकड़ कर नहीं कुछ पिला देगा। आप खुले होंगे, तो उस खुले क्षण में ही वह प्रवेश करेगा। वह द्वार पर दस्तक भी नहीं देगा आपके, क्योंकि वह भी हिंसा है। अगर आप सो रहे हों गहरे, मधुर स्वप्न देख रहे हों, और आप राजी ही न हों अभी लेने को, तो जो राजी नहीं है उसे कुछ भी नहीं दिया जा सकता।

तो गुरु आप पर जबरदस्ती नहीं करेगा। लेकिन हमें ख्याल है जबरदस्ती का। जिनको भी हमने जाना है, मां-बाप, स्कूल, कालेज, विद्यालय, वहां सब जबरदस्ती चल रही है। वे सब हिंसा के उपाय हैं। ठोका जा रहा है जबरदस्ती आपके सिर में। आध्यात्मिक जीवन उस तरह नहीं ठोका जा सकता।

एक महिला के घर मैं मेहमान था—बहुत सुशिक्षित, सुसंस्कृत, पश्चिम में पढ़ी हुई महिला हैं। जब भी उनके घर जाता था तो वह हमेशा एक ही रोना रोती थीं कि मेरे मां-बाप ने मुझे जबरदस्ती प्यानो बजाना सिखाया, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था। और ठीक भी है उसकी बात, क्योंकि वह "टोन डेफ" है। उसे कोई ध्वनियों में बहुत रस नहीं है। ध्वनियों के प्रति बहरी है, वह संवेदना उसमें है नहीं। लेकिन मां-बाप पीछे पड़े थे कि लड़की को प्यानो बजाना जानना ही चाहिए; तो उन्होंने जबरदस्ती सब तरह से उसे ठोक-पीट कर प्यानो बजाना सिखा दिया। किसी तरह रट कर, कंठस्थ करके पाठ करके परीक्षाएं भी उसने पास कर लीं। तो मैंने एक दिन जब वह अपना रोना रो रही थी फिर से सुबह-सुबह, तो उससे मैंने कहा कि जो तुम्हारे मां-बाप ने तेरे साथ किया, इतना कम से कम ख्याल रखना कि अपनी लड़की के साथ तू मत करना। क्योंकि उस महिला ने मुझे कहा कि मैं तो नाचना सीखना चाहती थी, और मां-बाप ने प्यानो में लगा दिया। काश! मैं नृत्य सीख लेती। तो उस स्त्री ने बड़े जोर से कहा कि निश्चित ही, मैं यह भूल अपनी लड़की के साथ कभी भी नहीं करूंगी। व्हेदर शी लाइक्स इट आर नॉट, शी विल हैव टु लर्न डांसिंग।

यही चल रहा है। मां-बाप थोप रहे हैं, विद्यालय थोप रहा है, स्कूल का शिक्षक थोप रहा है। सब तरफ आदमी पर चीजें थोपी जा रही हैं। इससे आपको एक भ्रांति पैदा होती है कि शायद गुरु भी आप पर थोपेगा। आप सिर्फ पहुंच जाएं मिट्टी के लौंदे की तरह और वह आपको ठोक-पीट कर मूर्ति बना देगा।

ध्यान रहे, जो गुरु आप पर थोपता हो उसे अध्यात्म की खबर भी नहीं है। वह इसी दुनिया का गुरु है। बेहतर था, किसी स्कूल में शिक्षक होता। शिक्षक और गुरु में फर्क है। शिक्षक सिखाने के लिए उत्सुक है। शिक्षक आपको बनाने के लिए आतुर है। शिक्षक आक्रामक है। इसलिए अगर सारे विश्वविद्यालयों में हिंसा फूट पड़ रही है तो उसका कारण विद्यार्थी तो नंबर दो है, नंबर एक तो शिक्षक है।

अब तक शिक्षक थोपता रहा। अब वक्त आ गया है कि लोग-उनके ऊपर कुछ भी थोपा जाए, इसके लिए राजी नहीं हैं। हिंसा शिक्षक करता रहा है हजारों साल से, बच्चे अब बगावत कर रहे हैं। अब बच्चे हिंसा कर रहे हैं। और जब तक शिक्षक नहीं रोकता हिंसा करना, तब तक अब विश्वविद्यालय शांत नहीं हो सकते।

लेकिन हमारा सारा सोचने का ढंग ही आक्रामक है। गुरु ऐसा नहीं कर सकता, वह असंभव है। अगर आप राजी हैं पीने को, लेने को तो वह देगा, बेशर्त, अथक, असीम आप में उंडेल देगा। आपकी छोटी सी गागर में पूरा सागर भर देगा। लेकिन पुकार आपकी तरफ से आएगी। प्यास आपकी तरफ से आएगी, इस प्यास और पुकार का नाम है भक्तिभाव।

"जो गुरु-वचनों को भक्तिभाव से सुनता है, स्वीकृत कर वचनानुसार कार्य पूरा करता है।"

यह एक अलग कीमिया है; अध्यात्म की अपनी एलकेमी है, अपना रसायन-विज्ञान है। गुरु कुछ कहे, तो पहले तो मन यही होगा कि पहले हम सोच लें, ठीक भी कह रहा है कि गलत। क्या सोचेंगे आप? कैसे सोचेंगे आप? आपको ठीक का पता है, तो आप पता लगा सकते हैं कि गुरु जो कह रहा है, वह ठीक कह रहा है या गलत। अगर आपको ठीक का पता ही नहीं है, और निश्चित ही पता नहीं है, नहीं तो गुरु के पास आने की कोई आवश्यकता न थी, आप कैसे सोचेंगे कि क्या ठीक है और क्या गलत? और जिस बुद्धि से आप सोचेंगे, वह तो आपका ज्ञान है अब तक का इकट्ठा किया हुआ; उससे आप कहीं भी नहीं पहुंचेंगे। उसी से सोचेंगे अतीत के अनुभव और ज्ञान को आगे ले आकर गुरु का भविष्य में जाता हुआ ज्ञान आप परखेंगे। गुरु वह कह रहा है जो आप भविष्य में होंगे और आप उस ज्ञान से जांचेंगे जो आप अतीत में थे।

कोई मिलना नहीं हो पाएगा। आपको, जैसे आप जूते बाहर उतार देते हैं मंदिर के, ऐसे ही अपनी खोपड़ी भी बाहर ही रख कर आनी होगी। तो ही गुरु के साथ कोई मिलन हो सकता है। ऐसा नहीं कि गुरु आपके पूछने से इनकार करता है। पूछने की कोई मनाही नहीं है, लेकिन पूछने का ढंग स्वीकार करने के लिए हो। आप इसलिए पूछते हैं, ताकि और जान सकें; इसलिए नहीं पूछते हैं कि आप विरोध में कोई बात खड़ी कर रहे हैं। आप अपने को ला रहे हैं और आप जांचेंगे।

जांचना हो तो पहले काफी जांच लेना चाहिए, लेकिन एक बार किसी के पास गुरु-भाव उत्पन्न हुआ हो तो फिर सब जांच-परख नीचे रख देनी चाहिए। करीब-करीब ऐसे ही जैसे आपको आपरेशन करवाना हो, डेलिकेट, नाजुक आपरेशन हो, तो आप पता लगाते हैं, कौन सबसे अच्छा सर्जन है। ठीक है, पहले पता लगा लें। लेकिन एक बार आपरेशन की टेबल पर लेट जाने के बाद कृपा करके अब कुछ न करें। यह मत कहें कि यह चमचा उठा, वह कांटा उठा, यह छुरी से काम कर और इस तरह काट, और इस तरह निकाल! आप बिल्कुल अब कुछ न करें। अब आप पूरी तरह छोड़ दें सर्जन के हाथ में। एक भरोसा, एक ट्रस्ट चाहिए। अगर आप पूरी तरह छोड़ दें तो आपको कम से कम कष्ट होगा।

मनोविज्ञान तो यह अनुभव करता है कि अगर सर्जन की टेबल पर मरीज अपने को पूरी तरह छोड़ दे, तो उसे बेहोश करने की जरूरत नहीं होगी। अगर वह इतना स्वीकार कर ले—ठीक है, तो उसे बेहोश भी करने की जरूरत नहीं होगी। बेहोश भी इसीलिए करना पड़ता है कि वह जो भीतर बैठा हुआ अहंकार है, वह बीच में

दखलंदाजी करेगा कि यह आप क्या कर रहे हो? कहीं गलती तो नहीं कर दोगे? कहीं जान तो नहीं ले लोगे? यह क्या हो रहा है? उसे बेहोश करना इसलिए जरूरी है ताकि वह बिल्कुल सो जाए और सर्जन उन्मुक्त-भाव से मरीज को भूल कर, मरीज का आपरेशन कर सके।

अध्यात्म बड़ी गहरी सर्जरी है। कोई सर्जन इतनी गहरी सर्जरी तो नहीं करता है। क्योंकि हड्डी नहीं काटनी, न मांस-मज्जा काटना है; आपकी पूरी आत्मा के साथ जुड़े हुए संस्कार, आत्मा के साथ जुड़े हुए परमाणु, उनको काटना है। इससे बड़ी और कोई शल्य-चिकित्सा नहीं हो सकती। इतनी बड़ी शल्य-चिकित्सा तभी संभव है, जब कोई इतने सहज भाव से गुरु के हाथ में छोड़ दे कि अगर वह मारता भी हो, तो भी संदेह न उठाए।

इस निस्संदिग्ध अवस्था में सुने हुए वचन सहज ही स्वीकृत हो जाते हैं। बुद्धि बीच में नहीं आती, पूरे जीवन में प्रविष्ट हो जाते हैं। दरवाजे पर कोई पहरेदार नहीं रोकता, हृदय तक बात चली जाती है। और उसके स्वीकृत वचनों के अनुसार कार्य पूरा करता है।

"जो गुरु की कभी अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।"

गुरु की अवज्ञा करनी हो तो गुरु को छोड़ देना चाहिए, अवज्ञा की कोई जरूरत नहीं है। कोई और गुरु की तलाश में निकल जाना चाहिए। गुरु का मतलब ही यह है कि आपने वह आदमी खोज लिया जिसकी आप अवज्ञा न करेंगे। गुरु का और कोई मतलब नहीं होता। आपने ढूंढ ली वह जगह, जहां आप अपने को छोड़ सकते हैं पूरा किसी के हाथ में, पूरे भरोसे के साथ। अब अवज्ञा नहीं करेंगे। और गुरु निश्चित ही बहुत सी ऐसी बातें कहेगा, जिनमें मन होगा कि अवज्ञा की जाए, निश्चित ही! क्योंकि अगर गुरु ऐसी ही बातें कहे जिनकी आप अवज्ञा कर ही नहीं सकते, तो आपके शिष्यत्व का जन्म नहीं होगा। इसे समझ लें, अगर गुरु सच में ही गुरु है तो वह बहुत सी ऐसी बातें कहेगा और करेगा जिनमें अवज्ञा करना बिल्कुल स्वाभाविक मालूम हो। और जब उस स्वाभाविक अवज्ञा को भी आप छोड़ देते हैं, तभी, तभी शिष्य का पूरा जन्म होता है।

लेकिन, हम बड़े होशियार हैं। हम वह मान लेंगे जो हम मानना चाहते हैं। मेरे पास बहुत तरह के लोग हैं। एक व्यक्ति आया, उसे मैंने कहा: संन्यासी है--कि अच्छा हो कि तू कुछ दिन के लिए भ्रमण करती कीर्तन-मंडली में सम्मिलित हो जा। उसने कहा: "मेरी तबियत ठीक नहीं है, तो मैं तो किसी यात्रा पर न जा सकूंगा।" फिर मैंने थोड़ी देर दूसरी बात की। और फिर मैंने कहा: "अच्छा, ऐसा कर, तुझे मैं अमरीका भेज देता हूं। वहां एक आश्रम है, उसको तू सम्हाल ले।" उसने कहा कि जैसे आपकी आज्ञा! जब सभी आपको समर्पित कर दिया, तो फिर क्या! फिर थोड़ी देर बात चली। मैंने कहा कि ऐसा है, अमरीका तो तुझे भेज दूंगा, पहले तू कीर्तन-मंडली में एक छह महीने।

उसने कहा: "आप जानते ही हैं कि मेरी तबियत ठीक नहीं रहती।"

मगर वह आदमी यही सोचता है कि वह मेरी अवज्ञा कभी नहीं करता!

आज्ञाकारी होना बहुत आसान है, जब आज्ञा आपके अनुकूल हो। तब आज्ञाकारी होने का कोई अर्थ ही नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा रो रहा है। मुल्ला उससे कह रहा है, "रोना बंद कर। मैं तेरा बाप हूं, मेरी आज्ञा मान।" मगर वह रोना बंद नहीं करता। बाप भी क्या कर सकता है, अगर बच्चा रोना बंद न करे। नसरुद्दीन उसकी पिटाई करता है। पिटाई करता है तो वह और रोता है। इतने में ही एक आदमी नसरुद्दीन से मिलने आ गया। उस आदमी को देख कर नसरुद्दीन ने कहा: "बेटा, दिल खोल करो! जितना रोना है, रो! मेरी आज्ञा है!"

वह लड़का भी थोड़ा चौंका और उस आदमी ने भी पूछा कि यह क्या मामला है? क्यों उसको रोने को कह रहे हो? उसने कहा: "सवाल रोने का नहीं है। मैं तो चाहता हूं कि यह रोए न, लेकिन उसमें मेरी आज्ञा टूटती है। और हर हालत में मुझे अपने पिता का गौरव बचाना जरूरी है। इसलिए इसे कह रहा हूं कि रो, यही मेरी आज्ञा है।"

लेकिन वह बेटा भी चुप हो गया। अब नसरुद्दीन कह रहा है कि नालायक, कोई भी हालत में मेरी आज्ञा मानने को तैयार नहीं है।

आप भी, जब मन की बात होती है तो मानने को तैयार होते हैं, जब मन की बात नहीं होती तो अड़चनें डालते हैं; पचीस बहाने करते हैं; होशियारियां निकालते हैं।

गुरु के पास ये होशियारियां न चलेंगी। आपकी सब होशियारी अज्ञान है। आपको बिल्कुल निर्दोष होकर जाना पड़ेगा।

"कभी गुरु की अवज्ञा नहीं करता, वही पूज्य है।"

"जो केवल संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए अपरिचित भाव से दोष-रहित उच्छ्र वृत्ति से भिक्षा के लिए भ्रमण करता है, जो आहार आदि न मिलने पर भी खिन्न नहीं होता और मिल जाने पर प्रसन्न नहीं होता, वही पूज्य है।"

"संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए।"

महावीर कहते हैं, जीवन का एक ही उपयोग है कि महाजीवन उपलब्ध हो जाए। अगर जीवन उपकरण बन जाता है, साधन बन जाता है महाजीवन को पाने के लिए, परमात्म-जीवन को पाने के लिए, तो ही उसका उपयोग हुआ। उसका और कोई उपयोग नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं कि अगर जीना है, तो बस एक ही जीने योग्य बात है कि जितने से संयम सध जाए, जितनी शक्ति की जरूरत है शरीर को, ताकि साधना हो सके। इस भाव से निर्वाह; बस, इतना।

"अपरिचित घरों से।"

महावीर की शर्तें बड़ी अनूठी हैं। महावीर कहते हैं कि उनका भिक्षु, उनका साधु परिचित घरों में भीख मांगने न जाए, क्योंकि जहां परिचय है वहां मोह बन जाता है; जहां मोह बन जाता है वहां देनेवाला ऐसी चीजें देने लगता है, जो वह चाहता है कि दी जाएं।

अगर भिक्षु रोज आपके घर आता है--आपका मोह बन जाए, तो आप मिठाइयां देने लगेंगे, अच्छा भोजन बनाने लगेंगे। और, महावीर कहते हैं कि वह जो गृहस्थ है, जिसके घर आप परिचित भाव से भीख मांगने लगेंगे, आपके लिए तैयारी में जुट जाएगा। उसके लिए चिंता पैदा होगी। वह विचार करेगा। वह कल रात से ही सोचेगा कि कल मुनि जी आते हैं, तो उनके लिए क्या तैयार करना है? तो उसकी चिंता, विचार का आप कारण बनते हैं और यह चिंता, विचार कर्म हैं, और ये बांधते हैं। इसलिए अपरिचित घर में भिक्षा मांगना। अचानक पहुंच जाना, ताकि उसे कोई तैयारी न करनी पड़े।

और महावीर कहते हैं, आपके लिए विशेष रूप से तैयारी करनी पड़े तो उससे भी अहंकार निर्मित होता है, विशिष्टता। अपरिचित घर के सामने खड़े हो जाना, जिसको पता ही नहीं था कि आप भिक्षा मांगेंगे वहां। फिर वह जो दे दे, और वह वही देगा जो वह रोज खाता है। जो उसने अपने लिए तैयारी किया था, वही देगा। विशिष्ट आपके लिए कोई चिंता नहीं करनी पड़ेगी।

लेकिन अपरिचित घर के सामने हो सकता है, वह दे या न दे। इसलिए तो हम परिचित घर खोजना पसंद करेंगे। अपरिचित घर के सामने वह दे या न दे, इसलिए महावीर कहते हैं : दे तो प्रसन्न मत होना, न दे तो खिन्न मत होना। क्योंकि अपरिचित का मतलब ही यह है कि सब अनिश्चित है, कि देगा कि नहीं देगा।

और ध्यान रहे, जितना अपरिचित घर होगा उतनी ही खिन्नता असंभव होगी क्योंकि अपेक्षा नहीं होगी। आप मुझे जानते हैं, और मैं आपके द्वार पर भिक्षा मांगने आ जाऊं और आप न दें, तो खिन्नता पैदा होने की संभावना ज्यादा है। क्योंकि जिस आदमी को जानते थे, जिस पर भरोसा किया था, उसने दो रोटी देने से इनकार कर दिया। अपरिचित आदमी कह दे कि नहीं है, तो खिन्नता की संभावना कम है।

ध्यान रहे, खिन्नता की मात्रा उतनी ही होती है जितनी एक्सपेक्शन, अपेक्षा की मात्रा होती है। लेकिन एक बड़े मजे की बात है; इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। अगर आप परिचित आदमी के घर जाएं और वह आपको भिक्षा न दे!

महावीर अपने भिक्षुओं से बोल रहे हैं, अपने मुनियों से, साधकों से। इसे आप अपने जीवन में भी समझ लेना, क्योंकि बहुत तरह के संदर्भ गृहस्थ के लिए भी वही हैं।

अगर आप परिचित आदमी के घर जाएं और वह भिक्षा न दे तो बड़ी खिन्नता होगी, एक बात; अगर वह भिक्षा दे तो बहुत प्रसन्नता नहीं होगी, क्योंकि देनी ही थी। इसमें कोई खास बात ही न थी। न दे तो दुख होगा, दे तो कोई सुख नहीं होगा। अपरिचित आदमी अगर न दे तो खिन्नता कम होगी; लेकिन अगर दे तो प्रसन्नता बहुत होगी, कि कितना अच्छा आदमी है। जरूरी नहीं था कि देता और दिया।

तो ध्यान, महावीर कहते हैं, दोनों बातों का रखना जरूरी है--प्रसन्नता भी न हो। अपरिचित के घर मांगना, खिन्नता की संभावना कम है। लेकिन संभावना है, अपेक्षा आदमी कर लेता है और खासकर मुनि, साधु, स्वामी बड़ी अपेक्षा कर लेते हैं। वे मान ही लेते हैं कि मैं इतना बड़ा त्यागी, और मुझे दो रोटी देने से इनकार किया। क्या समझ रखा है इन लोगों ने? मैंने सारा संसार छोड़ दिया; लात मार दी सब चीजों को और मुझे दो रोटी देने से इनकार कर दिया!

हिंदू ऋषियों की तो आपको कथाएं पता ही हैं कि जरा में श्राप दे दें; अभिशाप दे दें, नाराज हो जाएं, अभी भी हिंदू भिक्षु जब द्वार पर आकर खड़ा हो जाता है, तो आपमें डर पैदा हो जाता है कि अगर नहीं दिया तो पता नहीं? चाहे वह कुछ जानता हो या न जानता हो, अगर अपना चिमटा ही हिलाने लगे, आंख बंद कर ले, कुछ मंत्र वगैरह पढ़ने लगे, तो आपको जल्दी देना पड़ता है कि निबटाओ।

महावीर कहते हैं, खिन्न मत होना, प्रसन्न मत होना, वही पूज्य है--और भिक्षा अपरिचित के घर मांगना, ताकि उसे कोई चिंता न हो। अपरिचित के घर मांगना ताकि तुम्हें भी विचार न हो एक क्या मिलेगा? नहीं तो तुम भी सोचोगे। अनजान में जाना, भविष्य को निश्चित मत करना।

लेकिन जैन साधु ऐसा कर नहीं रहा है। जैन साधु परिचित के घर भिक्षा मांग रहा है। जैन साधु अजैन के घर भिक्षा नहीं मांगता, जैनी का पता लगाता है, और उन्हीं घरों में भिक्षा मांगता है, जहां उसे अच्छा भोजन मिलता है। जैन साधु जिस गांव से गुजरते हैं पद-यात्रा में, वहां अगर जैन न हों तो उनके साथ गृहस्थ चलते हैं, बैलगाड़ी में सामान लाद कर। तो हर गांव में जाकर वे चौका तैयार करते हैं।

अब यह साधारण गृहस्थ से भी ज्यादा खर्चीला धंधा है। दस-पांच आदमी साथ चलते हैं। और ये श्वेतांबर साधुओं का तो उतना मामला नहीं है; क्योंकि एक आदमी भी चले और वही भोजन तैयार कर दे, तो भी चल जाएगा। लेकिन दिगंबर मुनि की और भी तकलीफ है, क्योंकि दिगंबर मुनि एक ही जगह से भोजन नहीं लेता, जैसा कि महावीर के सूत्र में लिखा है। वह अनेक जगह से भोजन लेता है। दस, पंद्रह, बीस आदमियों का जत्था उसके पीछे चलता है; क्योंकि सभी जगह जैन नहीं हैं, अजैन के घर वह भिक्षा ले नहीं सकता, तो दस-पचीस चौके तैयार होंगे हर गांव में, ये पचीस जो उसके पीछे चल रहे हैं, पचीस चौके बनाएंगे, एक आदमी के भोजन के लिए! फिर वह इन सब चौकों से थोड़ा-थोड़ा मांग कर ले जाएगा!

चीजें कितनी पागल हो जाती हैं! ये पचीस आदमियों का भोजन एक आदमी खराब कर रहा है। ये पचीस चौके व्यर्थ ही मेहनत उठा रहे हैं; ये पचीस आदमियों के साथ चलने का खर्च, सामान ढोना। यह सब फिजूल चल रहा है। और महावीर कहते हैं, अपरिचित के घर। निश्चित ही ये पचीस आदमी जो चौका लेकर चलेंगे मुनि के साथ, ये थोड़े ही दिनों में मुनि की आदतों से परिचित हो जाएंगे, क्या उसे पसंद है, क्या उसे पसंद नहीं है और अच्छी-अच्छी चीजें बनाने लगेंगे। और मुनि सहजभाव से लेता रहेगा।

यह सहजभाव धोखे का है। महावीर कहते हैं, अपरिचित के घर से भिक्षा, उच्छ्र वृत्ति से... और एक ही घर से भी मत लेना, क्योंकि किसी पर ज्यादा बोझ पड़ जाए! तो थोड़ा-थोड़ा, जैसे कबूतर चलता है, एक दाना यहां से उठा लिया, फिर दूसरा दाना कहीं और से उठा लिया, फिर तीसरा... ।

उच्छ्र-वृत्ति का मतलब है, कबूतर की तरह, एक घर के सामने आधी रोटी मिल गई, आगे बढ़ गए; दूसरे घर के सामने कुछ दाल मिल गई, आगे बढ़ गए; तीसरे घर के सामने कोई सब्जी मिल गई... ताकि किसी पर बोझ न हो। और रोज उसी घर में मत पहुंच जाना, अपरिचित घरों की तलाश करना।

महावीर ने कहा है कि तीन दिन से ज्यादा एक गांव में रुकना भी मत। बड़ी अदभुत बात है। क्योंकि मनस्विद कहते हैं कि तीन दिन का समय चाहिए कोई भी मोह निर्मित होने के लिए। अगर आप घर बदलते हैं तो आपको तीन दिन नया लगेगा, चौथे दिन से पुराना हो जाएगा। अगर आप किसी नये घर में सोते हैं तो तीन दिन तक, ज्यादा से ज्यादा आपको नींद की तकलीफ होगी, चौथे दिन सब ठीक हो जाएगा, आदी हो जाएंगे। तीन दिन कम से कम का समय है, जिसमें मन चीजों को पुराना कर लेता है।

तो महावीर कहते हैं, तीन दिन से ज्यादा एक गांव में मत रुकना, ताकि कोई मोह निर्मित न हो। और जब रुकना ही नहीं है तो मोह निर्मित करने का कोई प्रयोजन नहीं है; आगे बढ़ जाना है। अभी जैन साधु करते हैं यह काम, मगर गणित से करते हैं। विलेपाले को अलग गांव मानते हैं; फिर सांताक्रुज चले गए तो अलग गांव; फिर मैरीन ड्राइव आ गए तो अलग गांव; तो पच्चीसों साल बंबई में बिता देते हैं।

आदमी की चालाकी इतनी है कि महावीर हों, कि बुद्ध, कि कृष्ण, वह सबको रास्ते पर रख देता है। तुम कुछ भी करो, वह तरकीब निकाल लेता है, और सब योजना से चलता है। महावीर का मतलब इतना है केवल कि साधक योजना न बनाए, प्लानिंग न करे, आयोजित। गृहस्थ का अर्थ है कि वह योजना करेगा, कल का विचार करेगा, परसों का विचार करेगा, वर्ष का, दो वर्ष का, पूरे जीवन का विचार करेगा। वह संसारी का लक्षण है। साधु का लक्षण महावीर कहते हैं, वह कल का विचार न करे, आज जो हो--उसे जीता रहे। और जो उनकी साधना को मान कर चलते हैं, उन्हें चालाकियां नहीं खोजनी चाहिए। चालाकियां ही खोजनी हों तो उनकी साधना नहीं माननी चाहिए। और साधनाएं हैं दूसरी, हट जाना चाहिए। जिस गुरु के पीछे चलना हो, पूरा चलना चाहिए, तो ही कहीं पहुंचना हो सकता है। अन्यथा बेहतर है, किसी और गुरु के पीछे चलो।

पूरे चलने से कोई पहुंचता है। पूरे भाव से संयुक्त होने से कोई पहुंचता है। गुरुओं का उतना सवाल नहीं है। महावीर के पीछे चलो, कि बुद्ध, कि कृष्ण, कि क्राइस्ट, कि मोहम्मद, कोई बड़ा फर्क नहीं है। रास्ते अलग-अलग हैं, लेकिन एक शर्त सबके साथ है कि जिसके साथ चलो, फिर पूरे भाव से चलो, फिर चालाकियां मत खोजो। गुरु के साथ खेल मत खेलो, क्योंकि खेल में तुम्हीं हारोगे, गुरु को हराने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि हराने का कोई सवाल नहीं है।

मेरे पितामह, मेरे दादा कपड़े की दुकान करते थे। मैं जब छोटा था, तब मुझे उनकी बातें सुनने में बड़ा रस आता था। क्योंकि वे कभी-कभी कम बोलते थे, लेकिन ग्राहकों से कभी-कभी वह ऐसी बात कह देते थे जो बड़ी मतलब की होती थी। ग्रामीण थे, अशिक्षित थे, मगर बड़ी चोट की बात कहते थे। वे ग्राहक को एक ही भाव कहना पसंद करते थे। तो एक ही भाव कह देते कि यह साड़ी दस रुपये की है। अगर ग्राहक मोल-भाव करता तो वे उसे कहते कि देख, तरबूज छुरी पर गिरे कि छुरी तरबूज पर, दोनों हालत में तरबूज कटेगा। अगर तुझे मोल-भाव करना हो तो वैसा कह दे; यह साड़ी अलग कर देते हैं, दूसरी साड़ी तेरे सामने लाते हैं। मगर ध्यान रखना, कटेगा तू ही; चाहे मोल-भाव कर और चाहे एक भाव कर। छुरी कटने वाली नहीं है। दुकानदार कैसा कटेगा?

जब भी मैं गुरु-शिष्य के संबंध में सोचता हूं, मुझे उनकी बात याद आ जाती है। शिष्य ही कटेगा; गुरु के कटने का कोई उपाय नहीं है। वह अब है ही नहीं जो कट सके। इसलिए चालाकी कम से कम गुरु के साथ मत करना। लेकिन सारे साधु-संन्यासी यही कर रहे हैं; अपने को बचाए रखते हैं तरकीबें निकालकर, और धोखा भी देते रहते हैं कि वे पालन कर रहे हैं, और महावीर के साथ चल रहे हैं।

मत चलो। कोई महावीर का आग्रह नहीं है। कोई जरूरत भी नहीं है चलने की, अगर पसंद नहीं है। वहां चलो जो पसंद है, लेकिन जहां भी चलो, पूरे मन से।

"जो संस्तारक, शय्या, आसन, और भोजन-पान आदि का अधिक लाभ होने पर भी अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़ा ग्रहण करता है, संतोष की प्रधानता में रत होकर अपने आपको सदा संतुष्ट बनाए रखता है, वही पूज्य है।"

गृहस्थ का लक्षण है, सदा अभाव में जीना। वह उसका मूल लक्षण है। हमेशा जो उसे चाहिए, वह उसके पास नहीं है। जिस मकान में आप रह रहे हैं, वह आपको चाहिए नहीं। आपको चाहिए कोई बड़ा, जो नहीं है। जिस कार में आप चल रहे हैं वह आपके लिए नहीं है। आपको कोई और गाड़ी चाहिए, जो नहीं है। जो कपड़े आप पहन रहे हैं, वह आपके योग्य नहीं हैं। आपको कोई और कपड़े चाहिए। जिस पत्नी के साथ आपका विवाह हो गया है, वह आपके योग्य नहीं है। आपको कोई और स्त्री चाहिए।

पूरे वक्त जो नहीं है, वह चाहिए। जो है, वह व्यर्थ मालूम पड़ता है, और जो नहीं है, वह सार्थक मालूम पड़ता है। वह भी मिल जाएगा, उसको भी आप व्यर्थ कर लेंगे, क्योंकि आप कलाकार हैं। ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जिसको आप एक न एक दिन तलाक देने को राजी न हों, क्योंकि तलाक स्त्री से नहीं आते, आपकी वृत्ति से आते हैं। जो आपके पास नहीं होता, वह पाने योग्य मालूम पड़ता है; जो आपके पास होता है, वह जाना-माना परिचित है; कुछ पाने योग्य मालूम नहीं होता।

ऐसा पति अगर आप खोज लें, जो अपनी पत्नी को ही प्रेम किए जा रहा है, अनूठा है, साधु है। बड़ा कठिन है अपनी पत्नी को प्रेम करना; बड़ी साधना है। दूसरे की पत्नी के प्रेम में पड़ना एकदम आसान है। जो दूर है, वह आकर्षित करता है। दूर के ढोल ही सुहावने नहीं होते, दूर की सभी चीजें सुहावनी होती हैं।

साधु का लक्षण है, संतोष। गृहस्थ का लक्षण है, अभाव। गृहस्थ उस पर आंख टिकाए रखता है, जो उसके पास नहीं है और जो उसके पास है वह बेकार है। साधु उस पर आंख रखता है, जो है; वही सार्थक है। जो नहीं है, उसका उसे विचार भी नहीं होता। जो है वही सार्थक है, ऐसी प्रतीति का नाम संतोष है। इसलिए जरूरी नहीं है कि आप घर-द्वार छोड़ें तब साधु हो पाएंगे। जो है, अगर आप उससे संतुष्ट हो जाएं, तो साधुता आपके पास-- जहां आप हैं वहीं आ जाएगी।

संतुष्ट जो हो जाए, वह साधु है। असाधुता गिर गई। लेकिन जिनको आप साधु कहते हैं, वे भी संतुष्ट नहीं हैं। हो सकता है उनके असंतोष की दिशा बदल गई हो। वे कुछ नई चीजों के लिए असंतुष्ट हो रहे हों, जिनके लिए पहले नहीं होते थे। मगर असंतुष्ट हैं। वहां भी बड़ी प्रतिस्पर्धा है। कौन महात्मा का नाम ज्यादा हुआ जा रहा है, तो बेचैनी शुरू हो जाती है। कौन महात्मा की प्रसिद्धि ज्यादा हुई जा रही है, तो छोटे महात्मा उसकी निंदा में लग जाते हैं। क्योंकि उसे नीचे खींचना, सीमा में रखना जरूरी है।

महात्माओं की बातें सुनें तो बड़ी हैरानी होगी कि वे उसी तरह की चर्चाओं में लगे हुए हैं, जैसे आम आदमी लगा हुआ है। सिर्फ फर्क इतना है कि उनका धंधा जरा अलग है, इसलिए जब वे एक महात्मा के खिलाफ बोलते हैं तो आपको ऐसा नहीं लगता है कि कुछ गड़बड़ कर रहे हैं। लेकिन जब एक दुकानदार दूसरे दुकानदार के खिलाफ बोलता है तो आप समझते हैं कि कुछ गड़बड़ कर रहा है; नुकसान पहुंचाना चाहता है। उनकी भी आकांक्षाएं हैं। वहां भी चेष्टा बनी हुई है कि और और। ऐसा भी हो सकता है कि वे परमात्मा को पाने के लिए ही

चिंतारत हों और सोच रहे हों, और परमात्मा कैसे मिले, और परमात्मा कैसे मिले? अभी एक समाधि मिल गई है, अब और गहरी समाधि कैसे मिले? लेकिन ध्यान भविष्य पर लगा हुआ है, तो गृहस्थ ही चल रहा है।

संन्यस्त का अर्थ है कि जो है, हम उससे इतने राजी हैं कि अगर अब कुछ भी न हो, तो असंतोष पैदा न होगा।

कठिन बात है! घर छोड़ना बड़ा आसान है, अभाव की दृष्टि छोड़ देना बड़ा कठिन है। जो मुझे मिला है, अगर मैं इसी वक्त मर जाऊं तो मरते क्षण में मुझे ऐसा नहीं लगेगा कि कोई चीज की कमी रह गई, कि कुछ और पाने को था, अगर कल जिंदा रह जाता तो उसे भी पा लेता। ऐसी भावदशा कि मृत्यु अचानक आ जाए तो आपको बिल्कुल राजी पाए, और आप कहें कि मैं तैयार हूं। क्योंकि जो भी होना था हो चुका, जो पाना था पा लिया, जो मिल सकता था मिल गया, मैं संतुष्ट हूं। इससे ज्यादा की कोई मांग न थी। जीवन अपने पूरे अर्थ को खोल गया है।

सोचें, अगर मृत्यु अभी आ जाए तो आपको राजी पाएंगी? आप कहेंगे कि दो दिन तो ठहर जा! एक धंधे में पैसा उलझाया है, कम से कम नतीजे का तो पता चल जाए! कि लाटरी की टिकट खरीदी है, अभी परसों ही तो वह खुलने वाली है, खबर आने वाली है; कि लड़की का विवाह करना है; कि बेटा युनिवर्सिटी गया है; परीक्षा दे दी है, रिजल्ट खुलने को दो दिन हैं... या आप राजी पाएंगे? मौत आकर कहे कि तैयार हैं, आप खड़े हो जाएंगे कि चलता हूं?

अगर आप खड़े हो सकें, तो आप संन्यस्त हैं। अगर आप समय मांगें, तो आप गृहस्थ हैं। महावीर कहते हैं, संतोष पूज्य है, जो संतुष्ट है, वही पूज्य है।

"गुणों से ही मनुष्य साधु होता है, और अगुणों से असाधु। अतः हे मुमुक्षु! सदगुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़। जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है।"

गुणों से मनुष्य साधु होता है, घर छोड़ने से नहीं; वस्त्र छोड़ने से नहीं; पति, पत्नी, परिवार छोड़ने से नहीं; धंधा-दुकान, बाजार छोड़ने से नहीं। गुणों से व्यक्ति साधु होता है। लेकिन दुनिया के अधिक साधु गुण की फिकर नहीं करते, क्योंकि गुणों को बदलना कठिन है, जटिल है। परिस्थिति को बदलते हैं, मनःस्थिति को नहीं। जिसको भी साधु होने का ख्याल हो जाता है, वह सोचता है, छोड़ो घर-द्वार; भागो। सच तो यह है कि घर-द्वार किसके सुखद हैं। जो रह रहे हैं, बड़े साधक हैं। जो भाग गए हैं, वे केवल इतनी ही खबर देते हैं कि कमजोर रहे होंगे। कमजोरी पलायन बन जाती है।

महावीर का पलायन कमजोरी का पलायन नहीं है। महावीर कहते हैं: संसार छोड़ा जा सकता है, लेकिन शक्ति से, कमजोरी से नहीं। उस दिन संसार छोड़ना जिस दिन वह व्यर्थ हो जाएं। लेकिन हम दुख के कारण छोड़ते हैं, व्यर्थता के कारण नहीं। यह बड़ा फर्क है। महावीर संसार छोड़ते हैं, क्योंकि वहां कुछ है ही नहीं जिसको पकड़ने की जरूरत हो। सब व्यर्थ है। तो संसार ऐसे गिर जाता है जैसे सांप की केंचुली गिर जाती है और सांप आगे सरक जाता है। फिर सांप लौट-लौट कर नहीं देखता है कि कितनी बहुमूल्य केंचुली दिया... "अरे, कोई तो समझो! कोई तो आओ, देखो कि त्याग कर दिया! महात्यागी हूं, खोल छोड़ दी अपनी!"

सांप खोल से बाहर निकल जाता है, खोल व्यर्थ हो गई। महावीर कहते हैं: संसार छोड़ा जा सकता है, लेकिन तभी, जब संसार इतना व्यर्थ हो जाए कि छोड़ने-जैसा भी मालूम न पड़े।

ध्यान रहे, आपको वही चीज छोड़ने-जैसी मालूम पड़ती है, जो पकड़ने जैसी मालूम पड़ती थी पहले। छोड़ने का ख्याल, पकड़ने की वृत्ति का हिस्सा है। अगर एक-एक आदमी से हम पूछें कि अगर तुझे सच में पूरा

मौका हो भागने का घर से, और कोई असुविधा नहीं आएगी इससे बड़ी वहां जो यहां आ रही है, तो सभी लोग राजी हो जाएंगे। वे इसी डर से नहीं छोड़ते हैं कि छोड़ कर जाओगे कहां? और जहां जाओगे वहां फिर असुविधाएं हैं। लेकिन कमजोर आदमी भाग जाता है। कमजोर आदमी दुखी की भाषा ही समझता है।

मैंने सुना है, एक बड़ी फर्म में मालिक कुछ इकसेंट्रिक--थोड़ा सा झक्की आदमी था; मौजी और झक्की, उसने अचानक एक दिन घोषणा की अपने सारे कर्मचारियों को इकट्ठा करके कि मैं तुम सबको तुम्हारी पेंशन का जो पुराना हिसाब था वह तो दूंगा ही और हर व्यक्ति को जब वह रिटायर होगा, तो उसको पचास हजार रुपए दूंगा। सब लोग लेने को राजी हैं, तो सब लोग महीने के भीतर दस्तखत कर दें फार्म पर। शर्त एक ही है: सबके दस्तखत होने चाहिए; अगर एक ने भी दस्तखत न किया तो यह नियम लागू न होगा।

पर लोगों ने कहा, यह शर्त तो बड़ी मजेदार है, कौन दस्तखत न करेगा! लोगों का क्यू लग गया एकदम जल्दी दस्तखत करने को कि कहीं महीना न निकल जाए। पहले दिन ही सब लोगों ने, सिर्फ मुल्ला नसरुद्दीन को छोड़ कर, दस्तखत कर दिए। मुल्ला नहीं आया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन--आखिर लोग चिंतित होने लगे। लोगों ने कहा, "भाई, दस्तखत क्यों नहीं कर रहे हो? मुल्ला ने कहा: दिस इज टू कांप्लिकेटेड, एण्ड आई डोंट अंडरस्टैंट, एण्ड अनलेस आई अंडरस्टैंड राइटली, आई एम नॉट गोइंग टु साइन। जरा जटिल है--यह पूरी योजना, और भरोसा भी नहीं आता, और समझ में भी नहीं बैठता कि कोई आदमी क्यों पचास हजार रुपए देगा? जरूर इसमें कोई चाल होगी। यह फंसा रहा है!

सबने समझाया--मित्रों ने, आफिसर्स ने, मैनेजर ने, यूनियन के लोगों ने, लेकिन मुल्ला अपनी जिद्द पर अड़ा रहा कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता। सब सुन कर वह कहता कि मेरी समझ में नहीं आता। इस मामले में कोई चाल है। पचास हजार किसलिए? और एक आदमी का सवाल नहीं है; कोई पांच सौ कर्मचारी हैं। --ढाई करोड़ रुपया! मान नहीं सकते! बुद्धि में नहीं घुसता!

आखिर सब लोगों ने आकर कहा कि यह तो मार डालेगा सबको। आखिरी दिन आ गया, पर कोई रास्ता नहीं निकला। आखिर मैनेजर ने जाकर मालिक को कहा कि वह आदमी, मुल्ला नसरुद्दीन दस्तखत नहीं कर रहा है। हम सब फंस गए और आपने भी खूब शर्त लगाई। हम सोचते थे, आप ही एक झक्की हो--एक हमारे बीच भी है आपसे भी पहुंचा हुआ है।

मालिक ने कहा: उसे बुलाओ। बीसवीं मंजिल पर मालिक का आफिस था। नसरुद्दीन लाया गया; दरवाजे के भीतर प्रविष्ट हुआ। मालिक ने फार्म, कलम तैयार रखी है दस्तखत करने के लिए। दरवाजा बंद किया, तब नसरुद्दीन ने देखा कि पांच पहलवान आदमी दरवाजे के पास खड़े हैं।

मालिक ने कहा: इस पर दस्तखत कर दो। मैं दस तक गिनती करूंगा, इस बीच अगर दस्तखत नहीं किए तो पीछे पहलवान जो खड़े हैं, वे उठा कर तुम्हें खिड़की के बाहर फेंक देंगे! नसरुद्दीन ने बड़ी प्रसन्नता से दस्तखत कर दिए। ना तो सवाल उठाया, न कोई झंझट खड़ी की; न कोई तर्क, न कोई शंका। और ऐसा भी नहीं कि दुख से किए, बड़ी प्रसन्नता से, आह्लादित।

मालिक भी हैरान हुआ। उसने कहा कि नसरुद्दीन, तब तुमने पहले ही दस्तखत क्यों नहीं कर दिए? नसरुद्दीन ने कहा: नो वन एक्सप्लेन्ड मी सो क्लीयरली। बात बिल्कुल साफ है, पर कोई समझाए तब ना।

हम भी दुख की, मृत्यु की भाषा समझते हैं। अगर आप संन्यस्त भी होते हैं तो मरने के डर से; अगर संन्यस्त होते हैं तो गृहस्थी के दुख से, पीड़ा से, संताप से। बस, हम समझते ही हैं मौत की भाषा से। आनंद की भाषा का हमें कोई पता भी नहीं है। महावीर संन्यस्त हुए महा-आनंद से। उनके पीछे जो साधुओं का समूह चल रहा है, वह दुखी लोगों की जमात है। कोई परेशान था कि पत्नी सता रही थी। कोई परेशान था कि पत्नी मर गई। स्त्रियों की बड़ी संख्या है जैन साधुओं में, साध्वियों में काफी बड़ी--पांच-सात गुनी ज्यादा पुरुषों से। उनमें

अधिक विधवाएं हैं, जिनके जीवन में कोई सुख का उपाय नहीं रहा, या गरीब घर की लड़कियां हैं, जिनका विवाह नहीं हो सकता था, क्योंकि दहेज की कोई व्यवस्था नहीं थी, या कुरूप स्त्रियां हैं, जिन्हें कोई पुरुष चाह नहीं सकता था, या बीमार और रुग्ण स्त्रियां हैं, जो अपने शरीर से इतनी परेशान हो गई थीं कि उससे छुटकारा चाहती थीं।

साधु-साधवियों की मनो-कथा इकट्ठी करने जैसी है कि कोई क्यों साधु हुआ है। अगर कोई दुख से साधु हुआ है तो उसका महावीर से कोई संबंध नहीं जुड़ सकता। क्योंकि महावीर आनंद की भाषा... आप जानते हों, तो ही महावीर से जुड़ सकते हैं।

मनुष्य कुछ छोड़ने से साधु नहीं होता, गुणों से साधु होता है। गुण पैदा करने पड़ते हैं। गुणों का आविर्भाव करना पड़ता है। और यह भी ख्याल में ले लें कि महावीर पहले कहते हैं, गुणों से मनुष्य साधु होता है और अगुणों से असाधु। ये भी ध्यान में ले लें कि दुर्गुण छोड़े नहीं जा सकते, क्योंकि छोड़ने की प्रक्रिया नकारात्मक है। सदगुण पैदा किए जा सकते हैं, वह विधायक हैं। और सदगुण जब पैदा हो जाते हैं तो दुर्गुण छूटने लगते हैं। अगर आप दुर्गुणों पर ही ध्यान रखें और उनको ही छोड़ने में लगे रहे, तो आप व्यर्थ ही नष्ट हो जाएंगे, क्योंकि दुर्गुण तो सिर्फ इसलिए हैं कि सदगुण नहीं हैं।

दुर्गुणों की फिकर ही मत करें; सदगुणों को पैदा करने की चेष्टा करें। समझें कि एक आदमी सिगरेट पी रहा है, शराब पी रहा है, वह कोशिश में लगा रहता है कि इसको छोड़ें; छोड़ नहीं पाता, क्योंकि वह यह देख ही नहीं पा रहा है कि कोई बहुमूल्य चीज की भीतर कमी है, जिसके कारण शराब मूल्यवान हो गई है।

एक मित्र हैं मेरे; यहां मौजूद हैं। वे शराब पीए चले जाते हैं। भले आदमी हैं। पत्नी उनके पीछे लगी रहती है कि छोड़ो। पत्नी जरूरत से ज्यादा भली है; उनसे भी ज्यादा भली है, इसलिए पीछे लगी रहती है, पिंड ही नहीं छोड़ती उनका कि छोड़ो, शराब पीना छोड़ो। न पत्नी की यह समझ में आता है कि निरंतर बीस साल से उसकी यह कोशिश कि शराब छोड़ो छोड़ो, उनको शराब पीने की तरफ धक्का दे रही है। पत्नी मुझे कह रही थी आकर कि वैसे तो वे मेरे सामने बिल्कुल शांत रहते हैं, दबू रहते हैं, जब होश में रहते हैं; लेकिन रात जब वे पीकर आ जाते हैं तो बड़ा ज्ञान बघारने लगते हैं और बड़ी ऊंची बातें! और आपको सुन लेते हैं, तो वह जो सुन लेते हैं उसको आकर रात दो-दो, तीन-तीन बजे तक प्रवचन करते हैं और फिर वे बिल्कुल नहीं दबते मुझसे। फिर वे सोने को भी राजी नहीं होते। फिर तो वे डरते ही नहीं; किसी को कुछ समझते ही नहीं। लेकिन दिन में बिल्कुल दबू रहते हैं!

अब इसको थोड़ा समझना जरूरी है कि हो सकता है वे दबूपन मिटाने के लिए ही शराब पीना शुरू कर दिए हों। पत्नी ने इतना दबा दिया है कि जब तक वे होश में हैं, तब तक हीन मालूम पड़ते हैं; जब होश खो जाता है, तब फिर वे फिकर नहीं करते पत्नी की और बीस साल निरन्तर किसी की खोपड़ी को सताते रहो कि मत पीओ, मत पीओ, मत पीओ, बिना इसकी फिकर किए कि वह क्यों पी रहा है।

कोई व्यक्ति शराब पीने ऐसे ही नहीं चला जाता। जीवन में कुछ दुख है, कुछ भुलाने योग्य है। सभी जानते हैं कि शराब नुकसान कर रही है, फिर भी नुकसान को झेल कर भी आदमी पीए जाता है, क्योंकि कुछ जो भुलाने योग्य है, वह इतना ज्यादा है कि नुकसान सहना बेहतर है, बजाय उसको याद रखने के।

लेकिन हम दुर्गुण छोड़ने पर जोर देते हैं। दुर्गुण छुड़ाने से नहीं छूटते। वह पत्नी भूल में है। वह शराब कभी भी नहीं छूटेगी। वह शराब को पिलाने में पचास प्रतिशत उसका भी हाथ है; ज्यादा भी हो सकता है, क्योंकि पत्नी से पति डरने लगा है। जहां डर है, वहां प्रेम खो जाता है, और जहां प्रेम नहीं है, वहां आदमी अपने को भुलाने की चेष्टा शुरू कर देता है। मैंने उनकी पत्नी को कहा कि कम से कम तू तीन महीने के लिए इतना कर कि छोड़ दे कहना। उसने कुछ ही दिन बाद आकर मुझे कहा कि बड़ी मुश्किल है! जैसे उनकी आदत पड़ गई पीने की, वैसे ही मेरी आदत पड़ गई छुड़ाने की।

अब आपको पक्का ख्याल नहीं हो सकता, अगर पति सच में ही छोड़ दे शराब पीना, तो पत्नी परेशान हो जाएगी; जितनी वह अभी है उससे ज्यादा, क्योंकि छोड़ने को कुछ भी न बचेगा।

मैंने उस पत्नी को कहा कि जब तुझे लगता है कि तू कहना नहीं छोड़ सकती, तो पीना छोड़ना कितना कठिन होगा, यह तो सोच! तो थोड़ी दया कर और तेरे कहने से नहीं छूटती है, यह भी तुझे अनुभव है। बीस साल, काफी अनुभव है।

कोई दुर्गुण सीधा नहीं छोड़ा जा सकता। जो भी छोड़ने की कोशिश करते हैं वे नासमझ हैं। वे दुर्गुण को और बढ़ाते हैं। सदगुण पैदा किया जाए। कोई आदमी अपने को भुलाने के लिए शराब पी रहा है, तो उस आदमी के जीवन में कुछ सुखद नहीं है। उस आदमी के जीवन में सुखद पैदा हो, तो वह स्वयं को भुलाना छोड़ देगा, क्योंकि कोई भी सुख को नहीं भूलना चाहता; सभी दुख को भूलना चाहते हैं। और इस आदमी को भी खुद ख्याल नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूं। वह भी छोड़ने की कोशिश करते हैं कि छोड़ दूं, छोड़ दूं, पर कुछ नहीं होता। छोड़ कर क्या होगा? कुछ भीतर खो रहा है। कोई मौलिक तत्व भीतर मौजूद नहीं है। उसको पहले पैदा करना पड़ेगा।

सभी शराब पीने वाले अपराधी नहीं हैं, सिर्फ मूर्च्छित हैं; मानसिक रूप से रुग्ण हैं और जीवन का आह्लाद नहीं है; भीतर तो शराब की जरूरत पड़ रही है। इन मित्र को मैं कहता हूं कि जीवन का आह्लाद पैदा करो; नाचो, गाओ, ध्यान करो, प्रसन्न होओ, और प्रसन्नता की थोड़ी सी रेखा तुम्हारे भीतर आ जाए तो तुम शराब पीना बंद कर दोगे, क्योंकि जब भी तुम शराब पीओगे, वह प्रसन्नता की रेखा मिट जाएगी। अभी दुख है भीतर, शराब पीने से दुख मिटता है; आनंद होगा, आनंद मिटेगा। आनंद को कोई नहीं मिटाना चाहता। तो तुम आनंदित होने की कोशिश करो, शराब का बिल्कुल ख्याल ही छोड़ दो। पीते रहो और आनंदित होने की कोशिश करो। गुण को पैदा करो; दुर्गुण से मत लड़ो।

दुर्गुण से लड़ना मूढ़तापूर्ण है। इसलिए महावीर कहते हैं : गुणों से मनुष्य साधु हो जाता है, दुर्गुणों से असाधु।

"... हे मुमुक्षु! सदगुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़।"

दुर्गुण छूट ही जाते हैं सदगुण करने से, छोड़ने की चेष्टा भी नहीं करनी पड़ती; गिरने लगते हैं, जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं।

"जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है।"

जीवन के दो ही द्वंद्व हैं। कोई आकर्षित करता है तो "राग" पैदा होता है; कोई विकर्षित करता है तो "द्वेष" पैदा होता है। किसी को हम चाहते हैं हमारे पास रहे, और किसी को हम चाहते हैं पास न रहे। किसी को हम चाहते हैं सदा जीए, चिरंजीवी हो, और किसी को हम चाहते हैं, अभी मर जाए। हम जगत में चुनाव करते हैं कि यह अच्छा है और यह बुरा है; ये मेरे लिए हैं मित्र, और ये शत्रु हैं, मेरे खिलाफ हैं।

महावीर कहते हैं, साधु वही है, वही पूज्य है, जो न राग करता है, न द्वेष। क्योंकि महावीर कहते हैं कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे लिए कोई भी नहीं है। तुम ही तुम्हारे मित्र हो और तुम ही एकमात्र तुम्हारे शत्रु हो। महावीर ने बड़ी अनूठी बात कही है कि आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही शत्रु है। बाहर मित्र-शत्रु मत खोजो। वहां न कोई मित्र है, न कोई शत्रु। वे सब अपने लिए जी रहे हैं, तुम्हारे लिए नहीं। तुमसे उन्हें प्रयोजन भी नहीं है। तुम भी अपने भीतर ही अपने मित्र को खोजो, और अपने शत्रु को विसर्जित करो।

और तब एक बड़ी अदभुत घटना घटती है। जैसे ही कोई व्यक्ति यह समझने लगता है कि मैं ही मेरा मित्र हूं और मैं ही मेरा शत्रु, वैसे ही जीवन रूपांतरित होना शुरू हो जाता है; क्योंकि दूसरों पर से नजर हट जाती है,

अपने पर नजर आ जाती है। तब जो बुरा है, वह उसे काटता है, क्योंकि वह शत्रु है। तब जो शुभ है, वह उसे जन्माता है, क्योंकि वही मित्र है। और जिस दिन कोई व्यक्ति भीतर अपनी आत्मा की पूरी मित्रता को उपलब्ध हो जाता है, उस दिन इस जगत में उसे कोई भी शत्रु नहीं दिखाई पड़ता।

ऐसा नहीं कि शत्रु मिट जाएंगे। शत्रु रहे आएंगे, लेकिन वे अपने ही कारण शत्रु होंगे, आपके कारण नहीं, और उन शत्रुओं पर भी आपको दया आएगी, करुणा आएगी, क्योंकि वे अकारण परेशान हो रहे हैं; कुछ लेना-देना नहीं है।

महावीर कहते हैं : अपने को ही अपने द्वारा जान कर राग-द्वेष से जो मुक्त होता जाता है, और धीरे-धीरे स्वयं में जीने लगता है; दूसरों से अपने संबंध काट लेता है... । इसका यह मतलब नहीं है कि वह दूसरों से संबंधित न रहेगा। लेकिन तब एक नये तरह के संबंध का जन्म होता है। वह बंधन नहीं है। अभी हम संबंधित हैं; वह बंधन है, जकड़ा हुआ जंजीरों की तरह। एक और संबंध का जन्म होता है, जब व्यक्ति अपने में थिर हो जाता है। तब उसके पास लोग आते हैं, जैसे फूल के पास मधुमक्खियां आती हैं। अनेक लोग उसके पास आएंगे। अनेक लोग उससे संबंधित होंगे, लेकिन वह असंग ही बना रहेगा। मधुमक्खियां मधु ले लेंगी और उड़ जाएंगी; फूल अपनी जगह बना रहेगा। फूल रोएगा नहीं कि मधुमक्खियां चली गईं। फूल चिंतित नहीं होगा कि वे कब आएंगी। नहीं आएंगी तो फूल मस्त है; मधुमक्खियां आएंगी तो फूल मस्त है। न उनके आने से, न उनके न आने से कोई फर्क पड़ता है। संबंध अब भीतर से बाहर की तरफ नहीं जाता।

जो व्यक्ति स्वयं में थिर हो जाता है, उसके आस-पास बहुत लोग आते हैं; संबंधित होते हैं लेकिन वे भी अपने कारण संबंधित होते हैं। वह व्यक्ति असंग बना रहता है।

भीड़ के बीच अकेला हो जाना संन्यास है। गृहस्थी के बीच अकेला हो जाना संन्यास है। संबंधों के बीच असंग हो जाना संन्यास है। महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति पूज्य है।

आज इतना ही।

राग, द्वेष, भय से रहित है ब्राह्मण (ब्राह्मण-सूत्र: 1)

जो न सज्जइ आगन्तुं, पव्वयन्तो न सोयई।
 रमइ अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं॥
 जायरुवं जहामट्ठं, निद्धन्तमल-पावगां।
 राग-दोस-भयाईयं, तं वयं बूम माहणं॥
 तवस्सियं किसं दन्तं, अवचियमंससोणियं।
 सुव्वयं पत्तनिव्वाणं,
 तं वयं बूम माहणं॥

जो आने वाले स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नहीं करता, जो आर्य-वचनों में सदा आनंद पाता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जो अग्नि में डाल कर शुद्ध किए हुए और कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जो तपस्वी है, जो दुबला-पतला है, जो इंद्रिय-निग्रही है, उग्र तपसाधना के कारण जिसका रक्त और मांस भी सूख गया है, जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

ईसप की एक कथा है। एक दिन एक सिंह, एक गधा और एक लोमड़ी शिकार को निकले साथ-साथ। उन्होंने काफी शिकार किया। फिर जब सूर्य ढलने लगा और सांझ हो गई, तो सिंह ने लोमड़ी को कहा कि तू समझदार भी है, चालाक भी, गणितज्ञ भी, तार्किक भी; उचित होगा कि तू ही इस शिकार के तीन विभाजन कर दे, बराबर-बराबर, ताकि तीनों शिकार में भाग लेने वाले साथियों को बराबर भोजन उपलब्ध हो सके।

बड़े चमत्कारिक ढंग से लोमड़ी ने विभाजन किए जो बिल्कुल बराबर थे, तीन हिस्से किए। लेकिन सिंह बहुत नाराज हो गया। उसने कुछ कहा भी नहीं; लोमड़ी की गर्दन दबाई और उसको भी शिकार के ढेर में फेंक दिया और गधे से कहा कि तू अब दो हिस्से कर दे, एक मेरे लिए और एक तेरे लिए, बिल्कुल बराबर-बराबर।

गधे ने सारे शिकार का एक ढेर लगा दिया और एक मरे हुए कौए की लाश को एक तरफ कर दिया और कहा कि महानुभाव! यह मेरा आधा भाग कौआ और वह आपका आधा भाग। सिंह ने कहा: गधे, मित्र गधे! तूने इतना समान विभाजन करने की कला कहां से सीखी? किसने तुझे सिखाया ऐसा शुद्ध गणित? तूने बिल्कुल बराबर विभाजन कर दिए!

और विभाजन क्या है, एक तरफ कौआ मरा हुआ और एक तरफ सारे शिकार का ढेर।

गधे ने कहा: दिस डेड फाक्स--इस मरी हुई लोमड़ी ने मुझे यह कला सिखाई बराबर विभाजन करने की!

ईसप ने कहा है कि गधे भी अनुभव से सीख लेते हैं, लेकिन आदमी नहीं सीखता। आदमी अनुभव से सीखता हुआ मालूम ही नहीं पड़ता। हजारों-हजार साल वही अनुभव, वही अनुभव बार-बार दोहरता है, फिर भी आदमी वैसा ही बना रहता है। उसमें कोई फर्क पड़ता हुआ मालूम नहीं पड़ता। जैसे अनुभव बह जाता है उसके ऊपर से; कहीं भी दे नहीं पाता उसके रोओं में, उसकी चमड़ी में, उसकी हड्डियों में, उसके हृदय तक तो

पहुँचने की बात ही दूर। ऊपर-ऊपर वर्षा के जल की तरह गिरता है और बह जाता है और आदमी वैसे का वैसे बना रहता है।

मनुष्य को हजारों साल के अनुभव में यह बात साफ हो जानी चाहिए थी, इसमें कोई भी अड़चन नहीं है कि जन्म से धर्म का कोई भी संबंध नहीं है। एक आदमी मुसलमान के घर में पैदा हो सकता है, लेकिन इससे मुसलमान नहीं हो सकता। एक आदमी हिंदू के घर में पैदा हो सकता है, लेकिन पैदा होने से धर्म का क्या लेना-देना है? एक आदमी जैन कुल में पैदा होता है, लेकिन वह कुल का धर्म होगा, व्यक्ति का निजी चुनाव नहीं।

धर्म का प्रारंभ ही तब होता है जब व्यक्ति अपनी स्वेच्छा से चुनता है। जब बोधपूर्वक निर्णय लेता है, जब समझपूर्वक संकल्प करता है, जब दीक्षित होता है स्वयं एक धारा में, तब धर्म का जन्म होता है।

दुनिया में इतना अधर्म है, उसके बुनियादी कारणों में एक कारण यह भी है कि हमारा धर्म उधार है। उधार धर्म जिंदा नहीं हो सकता, मरा हुआ होगा।

आपके पिता ने ही नहीं चुना है; न मालूम कितनी पीढ़ियों पहले किसी ने चुना। कोई व्यक्ति महावीर के पास दीक्षित हुआ। कोई व्यक्ति महावीर से आकर्षित हुआ; आंदोलित हुआ। किसी व्यक्ति को महावीर के पास तरंगें मिलीं परम सत्य की। वह दीक्षित हुआ। उसकी दीक्षा बहुमूल्य थी। वह उसका निर्णय था। वह शायद हिंदू घर में पैदा हुआ था; दीक्षित हुआ, जैन बना। उस आदमी के लिए जैन होने का कोई मूल्य था, क्योंकि जैन होने के लिए उसने कुछ चुकाया था, कुछ खोया था, कुछ मिटाया था। कुछ पाने के लिए कुछ त्यागा था; मोह छोड़े थे, संस्कार छोड़े थे, बचपन से पड़ी हुई धारणाएं छोड़ी थीं। जो सिखाया गया ज्ञान था, उसे फेंका था और एक नई यात्रा पर, अनजाने मार्ग पर चला था। उसका साहस था; उस साहस के परिणाम हुए। फिर उसका बेटा है, वह जैन हो जाता है पैदाइश से। फिर आप तो न मालूम कितनी पीढ़ियों के बाद जैन हैं।

सब उधार है, कचरा है। आपके जैन होने का कोई मूल्य नहीं है। आप भी जानते हैं कि आपका जैन होना झूठा है, हिंदू होना झूठा है, मुसलमान होना झूठा है, क्योंकि जो आपने नहीं चुना वह सत्य नहीं हो सकता। निज का चुनाव सत्य की तरफ पहला कदम है।

यह हमें अनुभव है कि पैदाइश से कोई धार्मिक नहीं हो सकता, लेकिन हम पैदाइश से धार्मिक हो गए हैं, तो वस्तुतः धार्मिक होने का उपाय भी बंद हो गया है, क्योंकि हम सब को ख्याल है कि हम धार्मिक हैं।

अनुभव कहता है कि धर्म सदा व्यक्ति का निजी संकल्प है। समूह धार्मिक नहीं होता, व्यक्ति धार्मिक होता है। भीड़ धार्मिक नहीं होती, व्यक्ति धार्मिक होता है। क्योंकि जीवन का, चेतना का अनुभव व्यक्ति के पास है, समूह के पास नहीं है। समूह तो बंधी हुई लकीरों से चलता है सुविधा के लिए; व्यवस्था के लिए, अराजकता न हो जाए इसलिए; नियम का घेरा बांध लेता है और चलता है।

अगर व्यक्ति भी उस घेरे में बंध कर चलता है और अपने निजी पथ की खोज नहीं करता, तो वह समाज का एक हिस्सा ही रहेगा; उसकी आत्मा उत्पन्न नहीं होगी। आत्मा उसी दिन उत्पन्न होती है, जिस दिन निजता का मूल्य समझ में आता है, जिस दिन मैं अपना मार्ग चुनता हूँ ताकि अपने सत्य तक पहुँच सकूँ। और प्रत्येक व्यक्ति का सत्य तक पहुँचने का मार्ग भिन्न होगा, उसके अपने अनुसार होगा।

जैसे कोई व्यक्ति अगर कम्युनिस्ट घर में पैदा हो जाए, तो हम नहीं कहते कि वह कम्युनिस्ट है। और कोई व्यक्ति सोशलिस्ट घर में पैदा होकर सोशलिस्ट नहीं हो जाता। सोशलिस्ट होने के लिए विचार करना पड़े, सोचना पड़े, निर्णय लेना पड़े।

कोई भी विचार जब तक आपके भीतर उगता नहीं है, तब तक बासा है, बोझ है। महावीर ने यह घोषणा आज से पचीस सौ साल पहले की, और महावीर ने कहा, जन्म से धर्म का कोई संबंध नहीं है। कहाँ आप पैदा हुए

हैं, यह बात मूल्यवान नहीं है; क्या आप बनते हैं, खुद अपने श्रम से, वही बात मूल्यवान है। तो महावीर ने वर्ण की व्यवस्था तोड़ दी; आश्रम की व्यवस्था तोड़ दी। और महावीर ने नये अर्थ दिए पुराने शब्दों को।

यह सूत्र ब्राह्मण-सूत्र है। इसमें महावीर ब्राह्मण की व्याख्या करते हैं कि ब्राह्मण कौन है। ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं है, लेकिन हम उसी को ब्राह्मण कहते हैं, जो ब्राह्मण घर में पैदा हुआ है। तो ब्राह्मण की जो महान धारणा थी वह नष्ट हो गई; वह एक क्षुद्र बात हो गई।

ब्राह्मण के घर में पैदा होना बड़ी क्षुद्र बात है; ब्राह्मण हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। ब्राह्मण होना एक यात्रा है। ब्राह्मण होना एक श्रम है, एक तपश्चर्या है। ब्राह्मण तभी कोई हो सकता है, जब ब्रह्म से उसका सम्पर्क सध जाए।

उद्दालक ने अपने बेटे श्वेतकेतु को कहा है उपनिषदों में कि श्वेतकेतु, ध्यान रखना एक बात, हमारे परिवार में कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं हुआ। वह बड़ी बदनामी की बात है। हमारे परिवार में हम चेष्टा से ब्राह्मण होते रहे हैं। तू भी यह मत सोच लेना कि तू मेरे घर पैदा हुआ तो ब्राह्मण हो गया। तुझे ब्राह्मण होने के लिए अथक श्रम करना होगा, तुझे ब्राह्मण होने के लिए खुद ही साधना करनी होगी। ब्राह्मण होने के लिए तुझे स्वयं को ही जन्म देना होगा; मां-बाप तुझे जन्म नहीं दे सकते हैं। क्योंकि जब तक तेरा अनुभव ब्रह्म के निकट न आने लगे, तब तक तू ब्राह्मण नहीं है।

महावीर की बात निश्चित ही जातिगत ब्राह्मणों को बहुत कठिन मालूम पड़ी होगी। सत्य हमेशा ही स्वार्थ को कठिन मालूम पड़ता है। क्योंकि कितनी सुगम बात है जन्म से ब्राह्मण हो जाना और श्रम से ब्राह्मण होना तो बहुत दुर्गम है। जन्म से तो हजारों ब्राह्मण हो जाते हैं; श्रम से तो कभी कोई एकाध ब्राह्मण होता है।

तो जो ब्राह्मण थे जन्म से, उनको बहुत कष्टपूर्ण मालूम पड़ा होगा। महावीर उनकी पूरी बपौती छीन ले रहे हैं; उनकी शक्ति छीन ले रहे हैं। इससे भी खतरनाक मालूम पड़ी होगी बात, और भी दूसरा खतरा था और वह यह कि ब्राह्मण से उसका ब्राह्मणत्व ही नहीं छीन ले रहे हैं—जातिगत, जन्मगत; बल्कि महावीर कह रहे हैं कि कोई भी ब्राह्मण हो सकता है, तो शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है, श्रम से। तो ब्राह्मण की सत्ता छीन रहे हैं और जिनके पास सत्ता कभी नहीं थी, उनको सत्ता का, उस परम सत्ता के अनुभव का अवसर खोल रहे हैं।

महावीर की क्रांति गहरी है। महावीर कहते हैं, सभी लोग जन्म से शूद्र पैदा होते हैं। क्योंकि शरीर से पैदा होने में कोई कैसे ब्राह्मण हो सकता है? शरीर शूद्र है शरीर से; आदमी पैदा होता है, तो सभी जन्म से शूद्र पैदा होते हैं। फिर इस शूद्रता के बीच अगर कोई श्रम करे, निखारे अपने को, तपाए, तो सोने की तरह निखर आता है। पर अग्नि से गुजरना पड़ता है, तब कोई ब्राह्मण होता है।

शूद्र पैदा हो जाने से ब्राह्मण होने में बाधा नहीं है। शूद्रता ब्राह्मणत्व का आधार है। जैसे देह आत्मा का आधार है, ऐसे शूद्रता ब्राह्मणत्व का आधार है। इसलिए कोई भी शूद्र होने से वंचित नहीं है। सभी शूद्र हैं। लेकिन कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को ब्राह्मण समझ रखा है। कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को वैश्य समझ रखा है। कुछ शूद्रों ने जन्म से अपने को क्षत्रिय समझ रखा है। और कुछ शूद्रों को समझा दिया गया है कि तुम जन्म से ही शूद्र नहीं हो, तुम्हें सदा ही शूद्र रहना है; तुम जन्म से लेकर मृत्यु तक शूद्र रहोगे।

यह बड़ी खतरनाक बात है। इससे न मालूम कितनी संभावनाएं ब्राह्मण होने की खो गईं। जो ब्राह्मण हो सकता था वह रोक दिया गया। जो ब्राह्मण नहीं था, वह ब्राह्मण मान लिया गया। उसकी भी संभावना को नुकसान हुआ, क्योंकि वह भी हो सकता, उसकी फिकर छूट गई। उसने मान लिया कि मैं शूद्र हूं।

महावीर कहते हैं, ब्राह्मण होना जीवन का अंतिम फूल है, इसलिए जन्म पर कोई ठहर न जाए। कीचड़ से कमल पैदा होता है; शूद्रता से ब्राह्मणत्व पैदा होता है। कीचड़ पीछे छूट जाती है; कमल ऊपर उठने लगता है। एक घड़ी आती है, कीचड़ बहुत पीछे छूट जाती है; कमल जल के ऊपर उठ आता है। और कमल को देख कर आपको ख्याल भी पैदा नहीं हो सकता कि वह कीचड़ से पैदा हुआ है।

शूद्रता कीचड़ है। उसी में पड़े रहने की कोई भी जरूरत नहीं है। उससे ऊपर उठने का विज्ञान है। अध्यात्म, धर्म, योग कीचड़ को कमल में बदलने की कीमिया है। और एक बार कीचड़ कमल बन जाए, तो नीचे भूमि में जो कीचड़ पड़ी है, वह भी फिर उसे कीचड़ नहीं बना सकती। बल्कि उस कीचड़ से भी कमल रस लेता है; उस कीचड़ को निरंतर बदलता रहता है सुगंध में। उस कीचड़ की दुर्गंध बनती रहती है सुगंध, कमल के माध्यम से। उस कीचड़ का जो-जो कुरूप है उस कीचड़ में, वह सब कमल में आकर सुंदर होता रहता है।

आदमी कीचड़ की तरह पैदा होता है, लेकिन कीचड़ की तरह मरने की कोई भी जरूरत नहीं है। कमल होकर मरा जा सकता है।

उस कमल होने की कला का नाम धर्म है।

महावीर के सूत्र को अब हम समझें।

"जो आने वाले स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नहीं करता, जो आर्य-वचनों में सदा आनंद पाता है, उसे हम "ब्राह्मण" कहते हैं।"

एक-एक कदम समझना जरूरी है।

"जो स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता।" इसका यह अर्थ नहीं है कि वह स्नेह नहीं रखता, नहीं तो स्नेही-जन कहने का कोई कारण नहीं है। प्रेम भरपूर है; आसक्ति नहीं है। शूद्र-मन में प्रेम बिल्कुल नहीं होता, आसक्ति ही आसक्ति होती है। ब्राह्मण-मन में आसक्ति खो जाती है और प्रेम ही रह जाता है।

आसक्ति कीचड़ है; प्रेम कमल है। लेकिन प्रेम को आसक्ति से मुक्त करना बड़ी दुर्गम बात है, क्योंकि हम तो जैसे ही किसी को प्रेम करते हैं, प्रेम कर ही नहीं पाते कि आसक्ति पकड़ लेती है। आसक्ति का मतलब है या तो हम गुलाम हो जाते हैं, या दूसरे को गुलाम बनाने लगते हैं। दोनों ही गुलामी की प्रक्रियाएं हैं।

किसी व्यक्ति को आप प्रेम करते हैं, प्रेम करते ही आप निर्भर हो जाते हैं उस पर। आपका सुख उस पर निर्भर हो जाता है। आपका दुख उस पर निर्भर हो जाता है। दूसरा आदमी मालिक हो गया। अगर वह चाहे तो दुखी कर सकता है; अगर चाहे तो सुखी कर सकता है। उसका एक इशारा आपको नचा सकता है। उसका एक इशारा आपको दुख में डाल सकता है। आपकी आत्मा की अपनी मालिकियत दूसरे व्यक्ति के हाथ में चली गई।

और ध्यान रहे, जब भी हम अपने प्रेम में किसी को अपना मालिक बना लेते हैं, तो उससे हमारी घृणा भी शुरू हो जाती है, क्योंकि मालिकियत कोई किसी की कभी पसंद नहीं करता। इसलिए जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे ही घृणा भी करते हैं; और जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे ही हम नष्ट भी करना चाहते हैं। क्योंकि वह दुश्मन भी मालूम पड़ता है।

पड़ेगा ही! प्रेमी दुश्मन मालूम पड़ते हैं एक दूसरे को, क्योंकि एक-दूसरे की स्वतंत्रता को छीन लेते हैं और एक-दूसरे को वस्तुएं बना देते हैं, व्यक्तियों से मिटा कर।

हर पति की कोशिश है कि उसकी पत्नी एक वस्तु बन जाए। वह जैसा कहे वैसा उठे-बैठे। वह जैसा इशारा करे वैसा चले। पत्नी की भी पूरी चेष्टा यही है कि पति उसका गुलाम हो जाए। वह कहे रात, तो रात। वह कहे दिन, तो दिन। दोनों इसी संघर्ष में लगे हैं। एक दूसरे को डामिनेट करना है। एक दूसरे को मिटा डालना है।

क्यों? दूसरे से इतना भय क्या है? और जिससे हमारा प्रेम है, उससे इतना भय क्या है? भय इस बात का है कि हमारा प्रेम तत्काल आसक्ति बन जाता है; अटैचमेंट बन जाता है। और जैसे ही आसक्ति बनता है, तो दो में से कोई एक मालिक बन जाता है। तो मैं मालिक बना रहूं; दूसरा मालिक न बन जाए। लेकिन दूसरा भी इसी कोशिश में लगा है।

क्या प्रेम आसक्ति से मुक्त हो सकता है?

अगर प्रेम आसक्ति से मुक्त हो सके, तो प्रेम घृणा से भी मुक्त हो जाता है।

महावीर कहते हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं, जो स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता। जिसका स्नेह भरपूर है। जिसके प्रेम देने में कोई कमी नहीं। लेकिन जो अपने प्रेम के कारण न तो किसी का गुलाम बनता है, और न किसी को गुलाम बनाता है। जिसका प्रेम दो स्वतंत्र व्यक्तियों के बीच एक आनंद का संबंध है। जिसका प्रेम दो परतंत्र व्यक्तियों के बीच एक दुख का संबंध नहीं है।

मन की ठीक-ठीक जांच की जाए, तो प्रेम से बड़ी बीमारी खोजनी मुश्किल है। उससे जितना दुख आदमी पाता है; उतना किसी और चीज से नहीं पाता। आपके सभी दुख प्रेम के दुख हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पश्चिम में एक ऐसी घटना विकसित हो रही है रोज पिछले बीस-तीस वर्षों में कि लोग कहते हैं, प्रेम की बात ही मत करो। काम, सेक्स काफी है। क्योंकि सेक्स कम से कम स्वतंत्र तो रखता है; प्रेम तो उपद्रव खड़ा कर देता है।

इसलिए पश्चिम में प्रेम डूब रहा है; सिर्फ सेक्स उभर रहा है। दो व्यक्तियों के बीच सिर्फ सेक्स का संबंध काफी है, पश्चिम की नई धारणाएं कहती हैं। क्योंकि जैसे ही प्रेम आया कि बुखार आया; कि उपद्रव शुरू हुआ; कि एक ने दूसरे को दबाना शुरू किया, इसलिए सिर्फ सेक्स का संबंध पर्याप्त है। यह बड़ी खतरनाक बात है।

भारत ने भी प्रयोग किया है आसक्ति से मुक्त होने का; पश्चिम भी प्रयोग कर रहा है। भारत ने प्रयोग किया है, जो महावीर कह रहे हैं। महावीर कह रहे हैं, प्रेम तो प्रगाढ़ हो जाए, आसक्ति खो जाए। तो जो दुख है प्रेम का वह नष्ट हो जाएगा और प्रेम एक आनंद की वर्षा हो जाए।

पश्चिम भी यही चाहता है कि जो उपद्रव है आसक्ति का वह मिट जाए। पर वह नीचे गिर कर आसक्ति का उपद्रव मिटा रहा है। वह कह रहा है, दो शरीरों का संबंध काफी है। इससे ज्यादा जिम्मेवारी लेनी ठीक नहीं।

जैसे ही आप किसी के प्रेम में पड़ते हैं, उपद्रव शुरू होता है। इसलिए एक ही व्यक्ति से भी काम के संबंध ज्यादा देर तक बनाना ठीक नहीं है। काम के संबंध भी बदलते रहने चाहिए। आज एक स्त्री, कल दूसरी स्त्री; आज एक पुरुष, परसों दूसरा पुरुष। ये बदलते रहें ताकि कहीं कोई ठहराव न हो जाए और आसक्ति न बन जाए।

दृष्टि तो दोनों ही एक ही कोण पर निर्भर हैं। पूरब ने भी यही अनुभव किया है कि प्रेम दुख देता है। तो दुख से उठने का क्या उपाय है? महावीर कहते हैं, उपाय यह है कि प्रेम तो रह जाए, हृदय तो प्रेमपूर्ण हो लेकिन किसी को गुलाम बनाने की और किसी को मालिक बनाने की वृत्ति का निषेध हो जाए।

पश्चिम भी इसी परेशानी में है, लेकिन पश्चिम का सुझाव बड़ा अजीब है और बड़ा खतरनाक है। महावीर प्रेम को दिव्य बना देते हैं और पश्चिम प्रेम को पाशविक बना देता है।

प्रेम उपद्रव है, यह बात जाहिर है। यह पूरब, पश्चिम दोनों के मनीषियों ने अनुभव किया है। जिसको हम प्रेम कहते हैं, वहां झंझट है। तो या तो उससे नीचे उतर आओ और जैसे पशुओं का संबंध है... वहां कोई झंझट नहीं है। न विवाह है, न तलाक है, न कोई कलह है; सिर्फ संबंध शरीर का है। पशु मिलते हैं शरीर से क्षण भर के लिए, अलग हो जाते हैं। उससे कोई मोह निर्मित नहीं करते, कोई आसक्ति नहीं बनाते कि अब यह जो मादा है मेरी पत्नी हो गई; अब कोई दूसरा पुरुष इसकी तरफ आंख उठाएगा तो मैं उपद्रव खड़ा करूंगा या यह जो पुरुष है पशु, मेरा पति हो गया, और अगर इसने अपनी नजर किसी और मादा की तरफ उठाई तो कलह शुरू होगी।

नहीं, पशु सिर्फ शरीर के संबंध से जीते हैं, अलग हो जाते हैं। वहां कोई आसक्ति नहीं है। इसलिए प्रेम की जो पीड़ा हमें है, पशुओं को नहीं है।

पश्चिम गिर रहा है प्रेम के उपद्रव से मुक्त होने के लिए। लेकिन गिर कर कुछ भी हल न होगा, क्योंकि कितना ही सेक्स हो जीवन में, अगर प्रेम का फूल न खिले तो प्राण अतृप्त रह जाते हैं, और जीवन की जो चमक है, जीवन की जो प्रतिभा है, जो आभा है, वह प्रकट नहीं हो पाती। मनुष्य पशु होकर तृप्त नहीं हो सकता। मनुष्य केवल दिव्य होकर ही तृप्त हो सकता है। नीचे गिर कर कोई कभी तृप्त नहीं होता; जिम्मेवारी से मुक्त हो

सकता है, लेकिन तृप्ति को उपलब्ध नहीं हो सकता। इसलिए पूरे पश्चिम में अनुभव किया जा रहा है कि एक मीनिंगलेसनेस, एक अर्थहीनता छा गई है। क्योंकि प्रेम है अर्थ जीवन का।

महावीर कहते हैं, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं, जो प्रेम कर सकता है और आसक्ति में नहीं बंधता। यह हो सकता है। यह तब हो सकता है जब हमारा प्रेम दूसरे व्यक्ति पर निर्भर न हो, बल्कि हमारी क्षमता हो।

इस फर्क को ठीक से समझ लें।

आप इसलिए प्रेम करते हैं कि दूसरा व्यक्ति प्यारा है, तो दूसरे पर निर्भर हैं। महावीर कहते हैं, इसलिए प्रेम कि आप प्रेमपूर्ण हैं। जोर इस बात पर है कि आपका हृदय प्रेमपूर्ण हो। जैसे दीया जल रहा है तो दीये की रोशनी पड़ रही है; फिर कोई भी पास से निकले दीये की उस पर रोशनी पड़ेगी। दीया यह नहीं कहेगा कि तुम सुंदर हो, इसलिए तुम पर रोशनी डाल रहा हूं; कि तुम कुरूप हो इसलिए अपने को बुझा लेता हूं और अंधकार कर देता हूं। दीये की रोशनी बहती रहेगी; कोई न भी निकले तो शून्य में दीये की रोशनी बहती रहेगी।

महावीर उसे ब्राह्मण कहते हैं, जिसका प्रेम उसकी हार्दिक ज्योति बन गया। जो इसलिए प्रेम नहीं करता कि आप प्यारे हैं; कि आप सुंदर हैं; कि भले हैं; कि मुझे अच्छे लगते हैं, कि मुझे पसंद हैं। नहीं, जो सिर्फ इसलिए प्रेम करता है कि प्रेमपूर्ण है; कुछ और करने का उपाय नहीं। आप उसके पास होंगे तो उसके प्रेम की किरणें आप पर पड़ती रहेंगी।

प्रेम संबंध नहीं, स्थिति है। और जब ऐसे प्रेम का जन्म हो जाता है--यह तभी होगा जब व्यक्ति दूसरों से अपने को हटाए, अपनी दृष्टि को "पर" से हटाए और "स्वयं" में गड़ाए, जिसे हम ध्यान कहते हैं। जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है, वैसे-वैसे प्रेम संबंध से हट कर स्थिति बनने लगता है। वह मनुष्य का स्वभाव हो जाता है।

महावीर भी प्रेम देते हैं, करते नहीं। करने में तो कृत्य है। महावीर प्रेम देते हैं। उनके होने का ढंग प्रेमपूर्ण है। आप उनके पास जाएं तो प्रेम मिलेगा। और आपको ऐसा भी वहम हो सकता है कि उन्होंने आपको प्रेम किया; क्योंकि आप करने की भाषा समझते हैं, होने की भाषा नहीं समझते। महावीर प्रेमपूर्ण हैं। जैसे फूल में गंध है, ऐसे उनमें प्रेम है।

"जो आने वाले स्नेही-जनों में आसक्ति नहीं रखता, जो उनसे दूर जाता हुआ शोक नहीं करता।"

और ध्यान रखें, शोक तभी होगा जब आसक्ति होगी। जिससे हम बंधे हैं, जिसके बिना हमें होने में अड़चन है, अगर वह न हो तो हमें बहुत कठिनाई हो जाएगी।

जब कोई मरता है तो आप इसलिए नहीं रोते कि कोई मर गया। आप इसलिए रोते हैं कि आपके भीतर जो निर्भरता थी, वह टूट गई। जब कोई मरता है तो आप अपने लिए रोते हैं। कुछ खंड आपका टूट गया जो उस आदमी से भरा था। कुछ हृदय का कोना उसने भरा था, रोशन कर रखा था, वह दीया बुझ गया। आपके भीतर अंधेरा हो गया।

कोई किसी के मरने पर इसलिए नहीं रोता कि कोई मर गया। मृत्यु पर हम इसलिए रोते हैं कि हमारे भीतर कुछ मर गया। और तभी तक रोएंगे आप, जब तक वह कोना फिर से न भर जाए; जिस दिन वह कोना फिर से भर जाएगा, रोना बंद हो जाएगा।

आदमी अपने लिए ही रोता है। तो जब आप शोक करते हैं किसी से दूर हटते या किसी के दूर जाने पर, वह खबर देता है कि उसके पास रहने पर आसक्ति पैदा हो गई थी।

महावीर गुजरते हैं एक गांव से; प्रेमपूर्ण हैं, कुछ और होने का उपाय भी नहीं है। गांव पीछे छूट जाता है, तो महावीर की स्मृति अगर उस गांव से अटकी रहे तो महावीर ब्राह्मण नहीं हैं। गांव छूट गया, स्मृति भी छूट गई। जहां महावीर होंगे, वहीं उनका बोध होगा, वहीं उनका प्रकाश होगा। वे लौट-लौट कर पीछे के गांव के संबंध में नहीं सोचेंगे कि जिस आदमी ने भोजन दिया था; कि जिस आदमी ने आश्रय दिया था; कि जिसने पैर दबा दिए थे; कि जिसने इतना प्रेम दिया था... ।

अगर यह मन पीछे लौट रहा है पीछे लौटता मन ब्राह्मण नहीं है। अगर यह मन आगे दौड़ रहा है कि आने वाले गांव में कोई प्रियजन मिलने वाला है और पैरों में गति आ गई, तो यह मन ब्राह्मण नहीं है। ब्राह्मण का मन वहीं होता है, जहां ब्राह्मण होता है। जहां होते हैं हम वहीं होना काफी है; न पीछे लौटते हैं किसी आसक्ति के कारण, न किसी शोक के कारण; न आगे जाते हैं किसी आसक्ति के कारण, न किसी सुख के कारण। वर्तमान में होना ब्राह्मण है।

महावीर कहते हैं कि जो न आसक्ति करता है और जो न उनसे दूर जाता हुआ शोक करता है। जो आर्य-वचनों में सदा आनंद पाता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

आर्य-वचन, इसको समझ लेना चाहिए। महावीर के लिए कोई जाति अर्थ नहीं रखती। महावीर "आर्य" किसी जातिगत अर्थों में नहीं कह रहे हैं। जैसी हिंदुओं की धारणा है कि हिंदुओं का पुराना नाम "आर्य" है। महावीर और बुद्ध, दोनों ही "आर्य" का बड़ा अनुठा अर्थ करते हैं। वे कहते हैं, "आर्य"--उसको जो अंतिम श्रेष्ठता को उपलब्ध हो गया। वह कोई जातिगत धारणा नहीं है।

कोई जाति आर्य नहीं है। इससे बड़े खतरे हुए हैं। हिंदू हजारों साल तक मानते रहे कि वे "आर्य" हैं, उन्हीं के पास शुद्ध रक्त है, बाकी सब अशुद्ध हैं। ब्राह्मण श्रेष्ठता से दूसरों को हीन बनाता रहा। इसके उपद्रव कई बार हुए। "आर्य" शब्द कई दफे खतरनाक बन गया। अभी जो पिछला युद्ध हुआ, दुसरा महायुद्ध, वह इस "आर्य" शब्द के आस-पास हुआ। हिटलर को फिर यह वहम पैदा हो गया कि वह "आर्य" है और नारडिक जाति "आर्य" है, शुद्ध "आर्य", तो सारी दुनिया पर नारडिक जाति को, जर्मन्स को अधिकार करना चाहिए, क्योंकि बाकी सब शूद्र हैं।

हिटलर को प्रभावित करने वाले लोगों में नीत्शे था, और नीत्शे को प्रभावित करने वालों में मनु; तो हिटलर सीधा मनु से जुड़ा है। और मनु से ज्यादा जातिवादी व्यक्ति नहीं हुआ। महावीर का सारा विरोध मनु से है।

कोई जाति श्रेष्ठ नहीं है, हो नहीं सकती। खून में कोई श्रेष्ठता नहीं है। खून में क्या श्रेष्ठता हो सकती है? ब्राह्मण का खून निकालें और शूद्र का, कोई भी दुनिया का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी दोनों की जांच करके नहीं कह सकता कि कौन सा खून शूद्र का है और कौन सा खून ब्राह्मण का।

हड्डियों में कुछ जाति नहीं होती। मांस-मज्जा में कोई जाति नहीं होती। महावीर कहते हैं, जाति होती है चेतना की श्रेष्ठता में। आर्य कहते हैं महावीर उसको, जो परम श्रेष्ठता को उपलब्ध हो गया। इस परम श्रेष्ठता को उपलब्ध व्यक्ति के विचारों में, शब्दों में जिसको भरसा है, ट्रस्ट है, उसे महावीर ब्राह्मण कहते हैं।

यह थोड़ा समझने जैसा है, "आर्य-वचनों में जो सदा आनंद पाता है।"

आप हैरान होंगे जान कर कि आपको हमेशा अनार्य-वचनों में आनंद मिलता है--क्यों? क्योंकि जब भी कोई अनार्य-वचन आप सुनते हैं, क्षुद्र, तो पहली तो बात, आप उसे एकदम समझ पाते हैं, क्योंकि वह आपकी ही भाषा है। दूसरी बात, उसे सुन कर आप आश्चर्य होते हैं कि मैं ही बुरा नहीं हूं, सारा जगत ऐसा ही है। तीसरा, उसे सुनते ही आपको जो श्रेष्ठता का चुनाव है, वह जो चुनौती है आर्यत्व की, उसकी पीड़ा मिट जाती है, सब उत्तरदायित्व गिर जाता है।

ऐसा समझें, फ्रायड ने कहा कि मनुष्य एक कामुक प्राणी है। यह अनार्य-वचन है; असत्य नहीं है, सत्य है, लेकिन शूद्र सत्य है, निकृष्टतम सत्य है। आदमी की कीचड़ के बाबत सत्य है; कि आदमी के बाबत सत्य नहीं है कि आदमी सेक्सुअल है; कि आदमी के सारे कृत्य कामवासना से बंधे हैं, वह जो भी कर रहा है वह कामवासना ही है।

छोटे से बच्चे से लेकर बड़े आदमी तक सारी चेष्टा कामवासना की चेष्टा है; यह सत्य है, लेकिन शूद्र सत्य है। यह निम्नतम सत्य है--

कीचड़ का। लेकिन सारी दुनिया में इस कीचड़ के सत्य ने लोगों को बड़ा आश्वासन दिया। लोगों ने कहा, तब ठीक है, तब हम ठीक हैं, जैसे हैं फिर कुछ बुराई नहीं है। फिर अगर मैं चौबीस घंटे कामवासना के संबंध में ही सोचता हूं, और नग्न स्त्रियां मेरे सपनों में तैरती हैं, तो जो कर रहा हूं वह नैसर्गिक है। अगर मैं शरीर में ही जीता हूं तो यह जीना ही तो वास्तविक है, फ्रायड कह रहा है।

फ्रायड ने हमारे निम्नतम को परिपुष्ट किया, इसलिए फ्रायड के वचन थोड़े ही दिनों में सारे जगत में फैल गए। जितनी तीव्रता से साइको एनालिसिस का, फ्रायड का आंदोलन फैला, दुनिया में कोई आंदोलन नहीं फैला। महावीर को पचीस सौ साल हो गए। उपनिषदों को लिखे और पुराना समय हुआ। गीता कहे और भी समय व्यतीत हो गया, पांच हजार साल हो गए। पांच हजार सालों में भी उन्होंने कहा है, वह इतनी आग की तरह नहीं फैला, जो फ्रायड ने पिछले पचास सालों में सारी दुनिया को पकड़ लिया--साहित्य, फिल्म, गीत, चित्र सब फ्रायडियन हो गए हैं। हर चीज फ्रायड के दृष्टिकोण से सोची और समझी जाने लगी। क्या कारण होगा?

अनार्य-वचन हमारे निम्नतम को पुष्ट करते हैं। जब भी कोई हमारे निम्नतम को पुष्ट करता है, तो हमें राहत मिलती है। हमें लगता है कि ठीक है, हममें कोई गड़बड़ नहीं है। अपराध का भाव छूट जाता है। बेचैनी छूट जाती है कि कुछ होना है, कि कहीं जाना है, कि कोई शिखर छूना है। सीधी जमीन पर चलने की स्वीकृति आ जाती है कि ठीक है, आदमी सभी ऐसे हैं।

इसलिए हम सब दूसरों के संबंध में बुराई सुन कर प्रसन्न होते हैं। कोई निंदा करता है किसी की, हम प्रसन्न होते हैं; क्योंकि उस निंदा से हमारे भीतर एक राहत मिलती है कि ठीक है। अगर कोई किसी महात्मा की निंदा करे तो हमें प्रसन्नता और भी ज्यादा होती है; क्योंकि यह पक्का हो जाता है कि महात्मा-वहात्मा कोई हो नहीं सकता, सब ऊपरी बातचीत हैं। हैं तो सब मेरे ही जैसे; किसी का पता चल गया है और किसी का पता नहीं चला है।

तो जब भी आपको किसी की निंदा में रस आता है, तब आप समझना कि आप क्या कर रहे हैं। आप अपने निम्नतम को पुष्ट कर रहे हैं। आप यह कह रहे हैं कि अब कोई चुनौती नहीं, कोई चैलेंज नहीं; कहीं जाना नहीं, कुछ होना नहीं। जो मैं हूं--इसी कीचड़ में मुझे जीना है और मर जाना है। यही कीचड़ जीवन है।

अनार्य-वचन बड़ा सुख देते हैं। बहुत अनार्य-वचन प्रचलित हैं। हम सबको पता है कि अनार्य-वचन तीव्रता से फैलते जा रहे हैं; और धीरे-धीरे हम यह भी भूल गए हैं कि वे अनार्य हैं। सब चीजों को जो लोएस्ट डिनामिनेटर है, जो निम्नतम तत्व है, उससे समझाने की कोशिश चल रही है। आदमी को रिड्यूस करके आखिरी चीज पर खड़ा कर देना है। जैसे हम आदमी को काटें-पीटें तो क्या पाएंगे? हड्डी-मांस-मज्जा--तो हम कहेंगे कि मनुष्य हड्डी-मांस-मज्जा का एक जोड़ है। बात खतम हो गई, चेतना वहां नहीं मिलेगी।

जो श्रेष्ठतम है, वह हमारे उपकरणों से छूट जाता है। अगर आदमी के व्यवहार की हम जांच-पड़ताल करें, तो क्या मिलेगा? कामवासना मिलेगी, वासना मिलेगी, दौड़ मिलेगी महत्वाकांक्षा की। फिर हर श्रेष्ठ चीज को हम निकृष्ट से समझा लेंगे, ऐसे ही जैसे हम कहेंगे, कमल में क्या रखा है, कीचड़ ही तो है।

यह एक ढंग हुआ। इससे हम कीचड़ को राजी कर लेंगे कि कमल होने की मेहनत में मत लग। कमल में भी क्या रखा है, बस कीचड़ ही है। तो कीचड़ की कमल होने की जो आकांक्षा पैदा हो सकती थी, वह कुंद हो जाएगी। कीचड़ शिथिल होकर बैठ जाएगी अपनी जगह; क्यों व्यर्थ दौड़-धूप करना, क्यों परेशान होना।

अनार्य-वचन सुख देते हैं। आर्य-वचन दुख देते हैं। महावीर कहते हैं, जो आर्य-वचन में आनंद ले सके, वह ब्राह्मण है। भला वह अभी आर्य हो न गया हो, लेकिन आर्य-वचनों में आनंद लेने का अर्थ यह है कि चुनौती स्वीकार कर रहा है। जीवन के शिखर तक पहुंचने की आकांक्षा को जगने दे रहा है। जो है क्षुद्र उससे राजी नहीं है, जब तक विराट न हो जाए।

आर्य-वचन में आनंद लेने का अर्थ है कि मैं--आर्य-वचन जो कह रहे हैं, वहां तक पहुंचना चाहता हूं। दूर है मंजिल, लेकिन आंखें मेरी उसी तरफ लगी हैं। पैर मेरे कमजोर हों, लेकिन चलने की मेरी चेष्टा है। गिरूं, न पहुंच पाऊं, यह भी हो सकता है, लेकिन पहुंचने की चेष्टा मैं जारी रखूंगा।

आर्य वचन में आनंद लेने का अर्थ है कि हम संभावना का द्वार खोल रहे हैं।

लोग हैं, जिन्हें यह सुन कर प्रसन्नता होती है कि ईश्वर नहीं है। लोग हैं जिन्हें सुन कर प्रसन्नता होती है कि आत्मा नहीं है। लोग हैं जिन्हें सुन कर सुख होता है कि मोक्ष नहीं है। बस, यही जीवन सब कुछ है; खाओ, पीओ और मौज करो। अगर उनको ख्याल आ जाए कि परमात्मा है, तो उनके सुख में एक कंकड़ पड़ गया। उन्हें ख्याल आ जाए कि इस जीवन के समाप्त होने पर और जीवन है, तो सिर्फ खाओ, पीओ और मौज करो काफी नहीं मालूम होगा। फिर कुछ और भी करो। फिर जीवन अपने में लक्ष्य नहीं रह जाता, साधन हो जाता है, किसी और परम जीवन को पाने के लिए।

हम जो इनकार करते हैं कि ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, मोक्ष नहीं है, वह इनकार हम अपने को बचाने के लिए करते हैं। क्योंकि अगर ये तत्व हैं, तो फिर हम क्या कर रहे हैं। फिर समय नहीं है। फिर जीवन बहुत छोटा है और शक्ति को व्यर्थ खोना उचित नहीं है।

अगर पश्चिम में इतना भौतिकवाद फैला, तो उसके फैलने का एक कारण तो यह था कि ईसाइयत ने कहा कि कोई पुनर्जन्म नहीं है। पश्चिम में भौतिकता के इतनी तीव्रता से फैल जाने का एक कारण बना ईसाइयत की यह धारणा कि कोई पुनर्जन्म नहीं है, एक ही जीवन है। अगर एक ही जीवन है, तो लोगों को लगा कि फिर इसी जीवन को लक्ष्य बना कर जी लेना उचित है। कोई और जीवन नहीं है जिसके लिए इस जीवन को समर्पित किया जाए, त्यागा जाए, साधना में लगाया जाए। समय हाथ से छूटा जा रहा है, इसे भोग लो।

पश्चिम में भोगवाद एक जीवन की धारणा के कारण बड़ी आसानी से फैल सका। जीसस के प्रयोजन दूसरे थे। मगर जीसस, महावीर या बुद्ध के प्रयोजनों से हमें कुछ लेना-देना नहीं। हम उनके प्रयोजन से भी अपना स्वार्थ निकाल लेते हैं।

जीसस का प्रयोजन था इस बात पर जोर देने के लिए कि एक ही जन्म है, ऐसा नहीं कि जीसस को पता नहीं था। जीसस ने ऐसी बहुत सी बातों का उल्लेख किया है जिनसे साबित होता है कि उन्हें पता है कि पुनर्जन्म है। क्योंकि जीसस से किसी ने पूछा कि तुम्हारी उम्र क्या है, तो जीसस ने कहा कि इब्राहिम के पहले भी मैं था। इब्राहिम को हुए तब दो हजार साल हो चुके थे।

तो जीसस को पूरा पता है; होगा ही। इतने ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति को अगर इतना भी पता न हो कि जीवन एक अनंत धारणा है, एक अनंत फैलाव है... लेकिन फिर भी जीसस ने लोगों से कहा कि एक ही जीवन है। और प्रयोजन यह था कि ताकि लोग तीव्रता से मोक्ष को पाने की चेष्टा में लग जाएं। क्योंकि ज्यादा समय नहीं है खोने को, समय कम है, लेकिन लोग बड़े होशियार हैं। उन्होंने देखा कि समय इतना कम है, कहां का मोक्ष, कहां का परमात्मा! पहले इसे तो भोग लो! हाथ की आधी रोटी, दूर सपनों की पूरी रोटी से बेहतर है। लोग अपने मतलब से लेते हैं।

मैंने सुना है, बाजार से एक संभ्रांत आदमी गुजर रहा था। अपने व्यवसाय की वेशभूषा में सजा-धजा। और एक छोटे से गरीब लड़के ने आकर कहा: महानुभाव, क्या आप बता सकेंगे कि कितना समय है?

उसने इतने आदर से पूछा कि व्यापारी रुक गया। खीसे से शान से उसने अपनी सोने की घड़ी निकाली, देखा, घड़ी वापस रखी और कहा कि अभी तीन बजने में पंद्रह मिनट कम हैं।

उस लड़के ने कहा: धन्यवाद! ठीक तीन बजे तुम मेरा पैर चूमोगे। और भाग खड़ा हुआ।

स्वभावतः व्यवसायी क्रोध से भर गया। भागा आगबबूला होकर उसके पीछे। कोई दो मील भाग पाया होगा, हांफ रहा है, उम्र ज्यादा है, कि नसरुद्दीन मिल गया, पुराना परिचित। उसने व्यापारी को रोका और कहा कि कहां भागे जा रहे हैं? क्या हो गया है, इस उम्र में हांफ रहे हैं, पसीना-पसीना हो रहे हैं!

उस व्यापारी ने कहा कि वह देखते हैं, नालायक, वह लड़का! उसने मुझसे पूछा कि कितना समय है? तो मैंने घड़ी निकाली उसके लिए रुका और मैंने कहा कि अभी पौने तीन बजे हैं। तो उसने कहा कि ठीक तीन बजे तुम मेरा पैर चूमोगे।

नसरुद्दीन ने कहा: देन वाट इ.ज दि हरी, यू हैव इनफ टाइम--एट टेन मिनट लेफ्ट। इतनी तेजी से क्यों दौड़ रहे हो? अरे, पैर ही चूमना है न तीन बजे! इतनी जल्दी क्या है?

क्या आदमी अर्थ लेगा, आदमी पर निर्भर है। जीसस ने कहा कि एक ही जन्म है, तेजी से लगो, समय ज्यादा नहीं, ताकि परमात्मा खो न जाए; क्योंकि दूसरा अवसर नहीं है। लोगों ने कहा, इतना ही जीवन है, दूसरे का हमें कुछ पता नहीं; ठीक से इसे भोग लो।

महावीर, बुद्ध और कृष्ण ने कहा कि अनंत जीवन हैं। उन्होंने भी किसी प्रयोजन से ऐसा कहा। उन्होंने कहा कि अनंत जीवन हैं। बड़ा लंबा संघर्ष है; एक ही जीवन में पूरा न हो पाएगा। लेकिन चेष्टा करोगे तो अनंत जीवन में सत्य के निकट पहुंच जाओगे।

अनंत जीवन का ख्याल इसलिए दिया ताकि तुम चेष्टा कर सको। अनंत जीवन का इसलिए ख्याल दिया ताकि तुम इस जीवन को सब कुछ न समझ लो। इसे तुम उपकरण बनाओ, साधन बनाओ, अगले जीवन में और श्रेष्ठतर स्थिति पाने के लिए। यह जीवन सब कुछ न हो जाए, अनंत जीवन की धारणा दी। हमने क्या मतलब निकाला! हमने कहा, अनंत पड़े हैं जीवन; पहले इसे तो भोग लें। जल्दी क्या है? वांट इ.ज दि हरी? जल्दी क्या है, इस जन्म में नहीं हुआ तो अगले जन्म में कर लेंगे। अगले जन्म में नहीं हुआ, और अगले जन्म में करेंगे। अनंत अवसर हैं; जल्दी कुछ भी नहीं है, पहले इसे तो भोग लें जो हाथ में है।

आदमी बहुत बेईमान है। सभी सिद्धांतों से वह अपना मतलब और स्वार्थ खींच लेता है।

महावीर कहते हैं कि आर्य-वचनों में जो आनंद पाता है, जो अपना स्वार्थ नहीं खोजता और आर्य-वचनों को अपने तल पर नहीं खींच लेता, बल्कि स्वयं को आर्य-वचनों के तल पर खींचने की कोशिश करता है, वह व्यक्ति ब्राह्मण है।

उसे हम ब्राह्मण कहते हैं, "जो अग्नि में डाल कर शुद्ध किए हुए और कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"

"... अग्नि में डाल कर शुद्ध किए, कसौटी पर कसे हुए सोने के समान निर्मल है।"

जिस अग्नि को आप जानते हैं वही अग्नि नहीं है, और भी अग्नियां हैं। जो बाहर दिखाई पड़ती है वही अग्नि नहीं है, भीतर भी अग्नि है। सारा जीवन अग्नि का ही फैलाव है। और जिस सोने को आप बाहर देखते हैं, वही सोना नहीं है, भीतर भी सोने की संभावना है। लेकिन वहां सब मिट्टी मिला हुआ है, कचरा मिला हुआ है। हमने कभी उसे शुद्ध नहीं किया। असल में हम बाहर के सोने की चिंता में इतने पड़े रहते हैं कि भीतर के सोने की फिकर कौन करे। और बाहर के सोने को ही खोजने में जीवन समाप्त हो जाता है; भीतर के सोने को खोजने का मौका ही नहीं आता। कभी दुख, पीड़ा में, परेशानी में हम भीतर का ख्याल भी करते हैं, तो सुख में फिर भूल जाते हैं। सुख बहिर्गामी है। दुख में थोड़े से भीतर भी जाते हैं, तो सुख के आते ही!

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत बीमार था, बहुत दुखी था। एक दिन बीमारी, पीड़ा की चिंता में मस्जिद चला गया; वैसे जाता नहीं था। मौलवी से जाकर कहा: मेरे लिए प्रार्थना करो। मैं तो पापी हूं, तुम तो पुण्यात्मा हो। तुम्हारी प्रार्थना जरूर स्वीकार होगी। मैं तो किस मुंह से प्रार्थना करूं, मेरे लिए प्रार्थना करो। अगर मैं बच गया इस बीमारी से, चिकित्सक कहते हैं कि बच न सकूंगा, बीमारी घातक है, अगर बच गया इस बीमारी से तो पांच रुपये--पांच रुपये काफी थे--पांच रुपया मस्जिद को दान करूंगा!

मुल्ला के ये वचन सुन कर मौलवी को भरोसा तो न आया कि वह पांच रुपये दान करेगा, लेकिन उसने सोचा दुख में आदमी कभी-कभी कर भी देता है। दुख में कभी-कभी धर्म और परमात्मा स्मरण भी आ जाता है। और फिर कौन जाने दुख में कभी आदमी बदल भी जाता है।

मौलवी ने प्रार्थना की। संयोग की बात, मुल्ला बच भी गया। बच जाने के बाद, स्वस्थ हो जाने के बाद, मौलवी ने कई दफा कोशिश की और उसके घर का दरवाजा खटखटाया। लेकिन उसने खबर दे रखी थी अपने लड़कों को, पत्नी को, सबको कि जब भी मौलवी दिखे तो उसे फौरन कह देना कि मुल्ला घर में नहीं है।

दो महीने मौलवी चक्कर काटता रहा मस्जिद के उन पांच रुपयों के लिए। आखिर एक दिन उसने बाजार में पकड़ ही लिया कि नसरुद्दीन, रुको! हृद कर दी! बीमारी से बच भी गए, प्रार्थना स्वीकृत भी हो गई, पांच रुपयों का क्या हुआ?

नसरुद्दीन ने कहा: कैसा पांच रुपया? क्या मैं इतना ज्यादा बीमार था कि पांच रुपया बोल गया दान? मैं होश में न रहा होऊंगा। इससे तुम समझ सकते हो! नसरुद्दीन ने कहा कि मैं कितना बीमार था!

आदमी दुख के क्षण में कभी घबड़ा जाता है, तो भीतर सोचता भी है। लेकिन उसका सोचना क्षणभर का होता है; सुख का क्षण आया कि फिर बाहर बहने लगता है।

भीतर भी कुछ है, इसका हमें पता ही नहीं चल पाता। और भीतर ही सब कुछ है। सोना भीतर है, खजाना भीतर है, और हम भिक्षापात्र लिए बाहर मांगते रहते हैं। मरते वक्त भिक्षापात्र ही हाथ में होता है, खाली। होगा ही, क्योंकि सोना बाहर नहीं है। बाहर का सोना जुटाने में जो लगे हैं, उनसे ज्यादा नासमझ कोई दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि इसी समय का उपयोग भीतर के सोने को खोदने में हो सकता था। वहां अनंत खान है। जिसे हम आत्मा कहते हैं, वह भीतरी सोने की खदान है। लेकिन उस तरफ हमारे हाथ नहीं पहुंच पाते।

महावीर कहते हैं कि जो भीतर के सोने की खोज में लग जाए, वह ब्राह्मण है। न केवल खोज में लगे, बल्कि भीतर के सोने को खोज कर अग्नि में शुद्ध करे। अग्नि यानी तप, अग्नि यानी साधना, तपश्चर्या, योग, तंत्र—जो भी हम नाम देना चाहें।

अग्नि का अर्थ है कि भीतर अपने को तपाए। आप अपने को कभी तपाते हैं किसी भी क्षण में? कभी भीतर अपने को तपाते हैं किसी क्षण में? आप हमेशा कमजोरी की तरफ झुक जाते हैं। आप कभी सबल होने की तरफ नहीं झुकते। क्रोध उठा—यह बिल्कुल स्वाभाविक, सहज है कि आप क्रोध प्रकट करते हैं, पशु भी कर रहे हैं। कुछ खास नहीं। कुछ क्रोध करके आप खास हो नहीं जाएंगे। पाशविक वृत्ति है लेकिन क्या कभी आपने सोचा है कि यह जो निर्बल धारा है कि क्रोध उठा, बाहर शरीर से ऊर्जा जा रही है? रुक जाऊं, क्रोध को बैठ जाने दूं भीतर। दबाऊं भी नहीं, क्योंकि दबाने से जहर बन जाएगा। निकालूं भी नहीं, क्योंकि निकालने से दूसरे पर जहर चला जाएगा। सिर्फ साक्षीभाव से देखता रहूं कि क्रोध उठा है, और कोई प्रतिक्रिया न करूं।

आप अग्नि से गुजर रहे हैं। क्रोध अग्नि बन जाएगी, लपट बन जाएगी। और अगर आप बिना कुछ किए इस लपट को देखते रहे, बिना कुछ किए... कोई निर्णय नहीं लेना। न तो यह कहना कि यह बुरा है, क्योंकि बुरा कहा कि दबाना शुरू हो गया, तो खुद के शरीर में जहर फैल जाएगा। अगर कहा कि बिल्कुल ठीक है, स्वाभाविक है; दुनिया में सभी क्रोध करते हैं, मैं क्यों न करूं, और किया, तो दूसरे के शरीर पर जहर पहुंच गया। और क्रोध अगर किया तो और क्रोध को करने का द्वार खुल गया। आदत निर्मित हुई। कल और जल्दी क्रोध आ जाएगा। परसों और जल्दी क्रोध आ जाएगा। धीरे-धीरे क्रोध जीवन हो जाएगा।

लेकिन अगर न अपने क्रोध को दबाया और न क्रोध को प्रकट किया, बल्कि चेतना को संभाला और क्रोध को देखा, कोई निर्णय न लिया कि अच्छा या बुरा, करूं या न करूं, सिर्फ देखा कि क्या है क्रोध, तो आप एक अग्नि से गुजर रहे हैं। जो आग दूसरे को जलाती, जो आग अगर दबा दी जाती तो आपके स्नायुओं को नष्ट करती

और आपके शरीर को विषयुक्त करती, अगर उस आग का कोई भी उपयोग न किया जाए, वह तप हो जाती है। उस आग को अगर सिर्फ देखा जाए, तो वह आग आपके सोने को निखारने लगती है।

और अगर आप एक क्रोध को सिर्फ देखने में समर्थ हो जाएं तो आप इतने आनंदित होंगे इस अनुभव के बाद, कि आप कल्पना नहीं कर सकते। इतना बल मालूम होगा। आप अपने मालिक हुए। अब कोई दूसरा आदमी आपको क्रोधित नहीं करवा सकता। इसका मतलब हुआ कि अब दूसरे लोग आपके ऊपर हावी नहीं हो सकते। अब दुनिया की कोई ताकत आपको परेशान नहीं कर सकती। आप, चाहे सारी दुनिया आपको परेशान कर रही हो, तो भी निश्चित रह सकते हैं।

इसका नाम जिनत्व है, ऐसी निश्चितता जो दूसरे से मुक्त होकर उपलब्ध होती है। जब आप क्रोध करते हैं, तब आप दूसरे के गुलाम हैं। यह सुन कर हैरानी होगी, क्योंकि क्रोध करने वाला सोचता है, मैं दूसरे को ठीक कर रहा हूँ। क्रोध करने वाला समझता है अगर मैंने क्रोध न किया तो दूसरा मेरा मालिक हुआ जा रहा है।

आपको पता नहीं है कि जीवन बड़ी जटिल बात है। जब आप क्रोध करते हैं, तो आपने दूसरे को मालिक स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसने आपको क्रोधित करवा दिया। आपकी चाबी उसी के हाथ में है। किसी ने आपको गाली दी, उसने चाबी घुमा दी, आपका ताला खुल गया। उसकी चाबी घूमती रहे और ताला नहीं खुले, तो चाबी बेकार हो गई। वह चाबी फेंकने जैसी हो गई।

अगर दुनिया में अधिक लोग अपने क्रोध को, अपने सोने को निखारने का उपाय बना लें, तो दूसरे लोगों को भी अपनी चाबियां फेंकने का मौका मिले; क्योंकि उनका कोई अर्थ न रहेगा। जो चाबी लगती ही नहीं उसका क्या करोगे? अगर कोई गाली देता हो और उसकी गाली की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, तो दुनिया से गालियां गिर जाएं।

गालियों में वजन है, क्योंकि गालियों से लोग प्रभावित होते हैं। सच तो यह है कि आप चाहे किसी और चीज से प्रभावित न भी हों, गाली से जरूर प्रभावित होते हैं। कोई जरा गाली दे दे, आप एकदम आंदोलित हो जाते हैं, जैसे तैयार ही बैठे थे। बारूद तैयार थी, किसी की चिनगारी की जरूरत थी। जरा सी चिनगारी और भभक उठ आएगी।

कामवासना उठती है; अग्नि है, वस्तुतः अग्नि है। रोआं-रोआं आग से भर जाता है, खून गरम हो जाता है, स्नायु तन जाते हैं। इस आग को आप किसी पर उड़ेल दे सकते हैं। यह कामवासना किसी पर उड़ेली जा सकती है और यह कामवासना खुद में भी दबाई जा सकती है। दोनों ही गलत हैं। क्योंकि खुद में दबाने पर हर चीज रोग बन जाती है; दूसरे पर उड़ेलने पर रोग और फैलता है। और रोग की आदत निर्मित होती है।

कामवासना जगी है और आप चुपचाप साक्षीभाव से देख रहे हैं। भीतर खड़े हो गए हैं, भीतर के मंदिर में, आंख बंद कर ली है और देख रहे हैं कि शरीर में कैसी कामवासना फैल रही है, कैसा रोआं-रोआं उससे कंपित और आंदोलित हो रहा है। उसे देखते रहें। यह आग आपकी चेतना को निखार जाएगी। इस आग की चमक में आप जग जाएंगे। इस आग की तप्तता में आपके भीतर का कचरा जल जाएगा।

जीवन की समस्त वासनाएं अग्रियां बन सकती हैं। उनके तीन उपयोग हैं: या तो दूसरे को नुकसान पहुंचाएं, या अपने को नुकसान पहुंचाएं, और या फिर अपनी आत्मा को उस अग्नि से निखारें।

इस निखार के लिए महावीर कह रहे हैं कि जो अग्नि में डाल कर शुद्ध किए हुए, कसौटी पर कसे हुए सोने के समान हैं!

कसौटी पर भी कसा जाना जरूरी है। क्योंकि पता नहीं अग्नि सोने को निखार पाई या नहीं निखार पाई। इसकी कसौटी कहां होगी? अग्नि में सोना डाल देना काफी नहीं है। हो सकता है अग्नि कमजोर ही हो, सोने का कचरा मजबूत रहा हो, पर्तें गहरी रही हों, सोना न शुद्ध हो पाया हो--कैसे कहां?

इस संबंध में एक बात समझ लेनी बहुत आवश्यक है। महावीर, बुद्ध, मोहम्मद या क्राइस्ट या कोई भी कुछ समय के लिए समाज से हट जाते हैं। वह समाज से हटने का वह समय आग को जलाने का समय है। लेकिन फिर समाज में लौट आते हैं। वह लौटना कसौटी का समय है। कसौटी कहां है?

मैं एकांत में जाकर बैठ जाऊं और मुझे क्रोध न उठे, क्योंकि वहां कोई गाली देने वाला नहीं है। वर्षों बैठा रहूं, क्रोध न उठे, तो मुझे वहम भी पैदा हो सकता है कि अब मैं क्रोध का विजेता हो गया। कसौटी कहां है? मुझे लौट कर आना पड़ेगा। मुझे भीड़ में खड़ा होना पड़ेगा। मुझे लोगों से संबंधित होना पड़ेगा। कोई मुझे गाली दे, कोई मुझे नुकसान पहुंचाए, और तब मेरे भीतर क्रोध की झलक भी न आए, तब अग्नि की एक लपट भी न उठे, मेरे भीतर कुछ भी जले नहीं, तो कसौटी होगी।

समाज कसौटी है। उचित है, जरूरी है कि साधक कुछ समय के लिए समाज से हट जाए। लेकिन सदा एकांत में रहना खतरनाक है। आग से तो आप गुजरे, लेकिन कसौटी कहां है? इसलिए जो साधक वन में ही रह जाते हैं सदा के लिए, अधूरे रह जाते हैं। जंगल की तरफ जाना जरूरी है। आग से पक जाने और गुजर जाने के बाद वापस लौट आना भी उतना ही जरूरी है क्योंकि यहीं कसौटियां हैं। यहां चारों तरफ कसौटियां घूम रही हैं, वे आपको ठीक से कसौटी करवा देंगीं। यहां धन है, यहां वासना है, यहां काम के सब उपकरण हैं, यहां आपको पता चलेगा।

अभी एक कैप था माउंट आबू में। एक जैन मुनि बड़ी हिम्मत करके बड़ी हिम्मत! क्योंकि उन्होंने कहा कि मैं देखने आना चाहता हूं कि वहां ध्यान लोग कैसा कर रहे हैं? मैंने उनसे कहा कि देखने से क्या दिखाई पड़ेगा, आप करें ही। तो उन्होंने कहा कि वह तो जरा मुश्किल हो जाएगा--डर क्या है? तो वह कहने लगे कि वहां तो अभिव्यक्ति होती है, किसी के भीतर कुछ भी हो वह बाहर निकालना है। तो मैंने कहा: भीतर कुछ है तो निकलेगा, नहीं है, तो नहीं निकलेगा। डर क्या है? है तो निकाल कर जान लेना जरूरी है; कसौटी हो जाएगी कि भीतर पड़ा है। नहीं है, तो भी आनंद का अनुभव होगा कि भीतर कुछ भी नहीं पड़ा है। पर उन्होंने कहा कि नहीं, आप तो इतनी ही आज्ञा दें कि मैं बैठ कर देख सकूं। आपकी मर्जी--लेकिन जो कर नहीं सकता, मैंने कहा: वह ठीक से देख भी नहीं पाएगा।

और यही हुआ। जब लोगों ने ध्यान करना शुरू किया तो वह कोई दो मिनट तक तो देखते रहे, फिर सामने ही एक युवती ने अपना वस्त्र अलग कर दिया। मुनि ने तत्काल आंखें बंद कर लीं। फिर वह देख नहीं सके! ... नग्न स्त्री!

स्त्री को देखने की ही घबड़ाहट है, तो नग्न स्त्री को देखने में तो बहुत घबड़ाहट हो जाएगी। लेकिन घबराहट बाहर है या भीतर?

भीतर कोई कंपित हो गया। भीतर कोई वासना उठ गई, भीतर कोई परेशानी खड़ी हो गई। आंख उस स्त्री से थोड़े ही बंद की जा रही है। आंख बंद करके वह जो भीतर उठ रहा है, उसे दबाया जा रहा है। यह जो दबाया जा रहा है इससे कभी मुक्ति न हो पाएगी। यह दबा हुआ सदा पीछा करेगा, जन्मों-जन्मों तक सताएगा। मैंने उन्हें कहा कि आप सोचते थे, देख पाएंगे, लेकिन देख नहीं पाए। क्योंकि जो डर करने में था, वही डर देखने में भी है।

वासना भीतर खड़ी है। एकांत में इसका निरीक्षण, इसका साक्षीभाव उचित है। और अच्छा है कि प्रारंभ में साधक एकांत में चला जाए, ताकि और चीजों के उपद्रव न रह जाएं। एक ही बात रह जाए जीवन में साधना की। लेकिन वन अंत नहीं है, लौट तो समाज में ही आना पड़ेगा।

तो महावीर कहते हैं कि जो अग्नि में डाले हुए शुद्ध किए हुए और कसौटी पर कसे हुए निर्मल सोने की तरह है; जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

"... राग, द्वेष तथा भय से रहित है।"

राग, द्वेष से रहित कौन हो सकता है? राग और द्वेष दो चीजें नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो राग से भरा है, वह द्वेष से भी भरा होगा; जो द्वेष से भरा है, वह राग से भी भरा होगा। लेकिन इसे समझा नहीं गया है। आमतौर से तो हालत बड़ी उलटी हो गई है। दुनिया में दो तरह के लोग हैं इस वक्त: राग से भरे हुए लोग, जिन्हें हम गृहस्थ कहते हैं और द्वेष से भरे हुए लोग, जिनको हम साधु-संन्यासी कहते हैं। जिस-जिस चीज से आपको राग है, साधु को उसी-उसी से द्वेष है। लेकिन महावीर कहते हैं, राग और द्वेष दोनों से जो मुक्त है, वह ब्राह्मण है। क्योंकि द्वेष राग का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है।

एक आदमी स्त्री के पीछे दीवाना है, पागल है, बस उसे सिर्फ स्त्री दिखाई पड़ती है। यह आदमी कल संन्यस्त हो सकता है। तब यह स्त्री से बचने के लिए पागल हो जाएगा। तब कहीं कोई स्त्री छू न ले, कोई स्त्री पास न आ जाए, कहीं कोई स्त्री एकांत में न मिल जाए। तब यह भयभीत हो जाएगा, यह भागेगा, यह डरेगा।

पहले भी भाग रहा था। पहले यह स्त्री की तरफ भाग रहा था, अब स्त्री की तरफ से भाग रहा है। लेकिन ध्यान स्त्री पर ही लगा हुआ है। पहले राग था, अब द्वेष है। पहले धन इकट्ठा कर रहा था, अब धन को देखता है तो आंख बंद कर लेता है। पहले धन को छूकर बड़ा मजा आता था। जैसे धन में भी प्राण हो। अब कोई धन को पास ले आए तो हाथ सिकोड़ लेता है कि कहीं छू न जाए, जैसे धन में अब भी प्राण है और धन इसको बिगाड़ सकता है। फर्क नहीं पड़ रहा है।

राग और द्वेष में फर्क नहीं है। द्वेष राग की ही उलटी तस्वीर है। जो भी राग करते हैं, किसी भी दिन द्वेष कर सकते हैं। जो भी द्वेष करते हैं, किसी भी दिन फिर राग कर सकते हैं। और राग, द्वेष घड़ी के पेंडुलम की तरह बदलते रहते हैं। सुबह द्वेष, सांझ राग; सांझ राग, सुबह द्वेष। आप अपने ही जीवन में अनुभव करेंगे तो पता चलेगा, प्रतिपल यह बदलाव होती रहती है। यह बदलाव, यह द्वंद्व हमारे विक्षिप्त मन का हिस्सा है।

महावीर कहते हैं, राग, द्वेष से मुक्ति, दोनों से एक साथ। न तो किसी चीज के प्रति आसक्ति और न किसी चीज के प्रति विरक्ति। यह बड़ी कठिन है क्योंकि हम तो विरक्त को संन्यासी कहते हैं; महावीर नहीं कहते। महावीर ने एक नया शब्द खोजा, उसे वे कहते हैं, "वीतराग।" आसक्ति में बंधा हुआ आदमी और विरक्त, दोनों एक-जैसे हैं। वीतराग का अर्थ है: दोनों से पार। वीत-दोनों से पार चला गया, अब वहां दोनों नहीं हैं--आदमी सरल हो गया, सहज हो गया।

एक बड़ी अदभुत शर्त साथ में लगाई है कि जो राग, द्वेष और भय से रहित है।

क्योंकि यह भी हो सकता है कि हम राग, द्वेष से रहित होने की कोशिश भय के कारण करें। हममें से बहुत से लोग धार्मिक भय के कारण होते हैं, डर के कारण। डर नरक का, डर पाप का, डर अगले जन्म का, मृत्यु के बाद सताए तो नहीं जाएंगे? पता नहीं क्या होगा!

आदमी मृत्यु से उतना नहीं डरता, जितना दुख से डरता है। मेरे पास बूढ़े लोग आते हैं, वे कहते हैं कि मृत्यु का हमें डर नहीं है, इतना ही आशीर्वाद दे दें कि सुख से मरें। कोई दुख न पकड़े, कोई बीमारी न पकड़े; सड़ें-गलें नहीं।

मृत्यु का डर नहीं है, डर दुख का है। मृत्यु में क्या है, कोई फिकर नहीं है। लेकिन कैंसर हो जाए, टी. बी. हो जाए, सड़ें-गलें, दुख पाएं, उसका डर है। जैसे हैं, स्वस्थ मर जाएं।

मृत्यु से भी ज्यादा डर दुख का है। और पुरोहितों को पता चल गया है कि आदमी दुख से डरता है, इसलिए उन्होंने बड़े नरक का इंतजाम कर दिया है। उन्होंने नरक बना दिया कि अगर तुमने पाप किया, अगर राग किया, द्वेष किया, यह किया, वह किया तो नरक में सड़ोगे। नरक के डर के कारण बहुत से लोग धार्मिक बने हैं।

अब यह नरक का डर रोज-रोज कम होता जा रहा है, लोगों का धर्म भी कम होता जा रहा है उसी अनुपात में। जिस दिन नरक बिल्कुल समाप्त हो जाएगा, आप बिल्कुल अधार्मिक हो जाएंगे, क्योंकि आपका धर्म सिवाय भय के कुछ भी नहीं है। भगवान की मूर्ति के सामने जब आप घुटने टेकते हैं, वह भय में टेके गए घुटने हैं। और भय से क्या संबंध सत्य से हो सकता है!

महावीर कहते हैं, अभय सत्य की खोज का पहला चरण है। और जो अभय नहीं है, वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। इसलिए महावीर ने तो प्रार्थना तक को विसर्जित कर दिया। महावीर ने कहा: प्रार्थना में भय छिपा रहता है, मांग छिपी रहती है। प्रार्थना की भी कोई जरूरत नहीं है, सिर्फ अभय हो जाने की जरूरत है। कौन आदमी अभय हो सकता है? भय मौजूद है, वास्तविक है। मौत है, दुख है, पीड़ा है।

तो एक तो उपाय यह है कि कोई दुख न रह जाए, तब आदमी निर्भय हो जाए, अभय हो जाए। पर दुख तो रहेंगे। कोई दुनिया का विज्ञान आदमी को दुख से मुक्त नहीं कर सकता; एक दुख को बदल कर दूसरे दुख में ही डाल सकता है। कोई स्थिति नहीं हो सकती जमीन पर, जब कोई दुख न हो। पांच हजार साल का अनुभव है। पुराने दुख हट जाते हैं, नये दुख आ जाते हैं। पुरानी बीमारियां चली जाती हैं। प्लेग नहीं है अब। बहुत से मुल्कों से मलेरिया विदा हो गया। प्लेग खो गई। काला बुखार नहीं रहा; लेकिन क्या फर्क पड़ता है, उससे भी भयंकर बीमारियां मौजूद हो गई हैं।

आदमी सुख में नहीं हो सकता, अकेले सुख में नहीं हो सकता; दुख सुख के साथ जुड़ा है। हम इधर सुख का इंतजाम करते हैं, उतने ही दुख का इंतजाम उसके साथ ही हो जाता है। तो महावीर कहते हैं कि दुख से मुक्त होने की कोशिश एक ही अर्थ रखती है कि मेरी चेतना दुख और सुख से पृथक हो जाए। और कोई उपाय नहीं है।

विज्ञान मनुष्य को आनंद में नहीं उतार सकता; बड़े सुख में ले जा सकता है, लेकिन साथ ही बड़े दुख में भी ले जाएगा। इसलिए जितना विज्ञान सुविधा जुटाता है, उतना ही आदमी को असुविधा का अनुभव होने लगता है। एक आदमी धूप में दिन भर काम करता है, उसे धूप का दुख निरंतर अनुभव से कम हो जाता है। एक आदमी छाया में बैठकर काम करता है। छाया में निरंतर बैठने से छाया का सुख होता है, लेकिन धूप का दुख बढ़ जाता है। धूप में जाएगा तो बहुत दुख पाएगा, जो धूप में काम करनेवाला कभी नहीं पाएगा।

आप जितना सुख बढ़ाते हैं, उनके साथ ही दुख की क्षमता बढ़ती जाती है। क्योंकि सुख के साथ ही साथ आप डेलिकेट होते जाते हैं, नाजुक होते जाते हैं और जितने नाजुक होते हैं, उतना रेसिस्टेंस कम हो जाता है, प्रतिरोध कम हो जाता है। तो हमने सब बीमारियों का इंतजाम कर लिया, लेकिन आदमी का प्रतिरोध कम हो गया और आदमी का प्रतिरोध कम हो जाने से हजार नई बीमारियां खड़ी हो गईं।

हम आदमी को जितना सुख देंगे, उतना ही उसके साथ दुख की खाई बढ़ती जाएगी। विज्ञान बड़े सुख दे सकता है; बड़े दुख देगा।

महावीर कहते हैं, आनंद की तो एक ही संभावना है कि सुख दुख से मैं अपनी चेतना को पृथक कर लूं। राग, द्वेष से अलग होने का अर्थ है, मैं साक्षी हो जाऊं। न तो मैं किसी के खिलाफ, न किसी के पक्ष में, न तो सुख की आकांक्षा और न दुख का विरोध। जो भी घटित हो, मैं उसका देखने वाला रह जाऊं।

महावीर का धर्म अभय पर खड़ा धर्म है। अंग्रेजी में एक शब्द है, गॉड-फियरिंग। हिंदी में भी एक शब्द है, ईश्वर-भीरु--ईश्वर से डरने वाला, महावीर ऐसे शब्द को धर्मशास्त्र में जगह नहीं देंगे। महावीर कहेंगे, जो डरता है, वह तो कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। भयभीत चित्त का कोई संबंध सत्य से होने की संभावना नहीं है। तो महावीर कहते हैं: राग, द्वेष और भय से जो रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

"जो तपस्वी है...।"

जो भीतर जीवन की वासना की जो अग्नि है, उसको यज्ञ बना रहा है। जो भीतर अपने को निखार रहा है। अपने जीवन की पूरी ऊर्जा का उपयोग जो व्यर्थ बाहर नहीं खो रहा है। बल्कि सारा ईंधन एक ही काम में ला रहा है कि मेरे भीतर का सोना निखर जाए, वह तपस्वी है।

"... जो दुबला-पतला है।"

यह जरा सोचने जैसा है, क्योंकि महावीर की प्रतिमा दुबली-पतली नहीं है। इससे बड़ी भ्रांति पैदा हुई है। महावीर की प्रतिमा बड़ी बलिष्ठ और स्वस्थ है, दुबली-पतली जरा भी नहीं है। और महावीर की एक भी प्रतिमा उपलब्ध नहीं है, जिसमें वे दुबले-पतले हों। हां, बुद्ध की एक प्रतिमा उपलब्ध है, जिसमें वे हड्डी-हड्डी रह गए हैं, महातप उन्होंने किया जिसमें वे बिल्कुल सूख गए हैं, और उनकी पीठ और पेट एक हो गए। वे इतने कमजोर हो गए हैं कि उठ भी नहीं सकते। नदी में स्नान करने गए हैं निरंजना में, इतने कमजोर हो गए हैं कि नदी से बाहर निकलने की ताकत नहीं तो एक वृक्ष की जड़ को पकड़ कर लटके हुए हैं।

जरूर महावीर और बुद्ध की तपश्चर्या में कुछ बुनियादी फर्क है। बुद्ध जरूर कुछ गलत तपश्चर्या कर रहे हैं। और इसीलिए बुद्ध को छह साल के बाद तपश्चर्या छोड़ देनी पड़ी। और बुद्ध ने कहा कि तप से कोई मुक्त नहीं हो सकता। उनका अनुभव ठीक था। उन्होंने जो तप किया था, उससे कभी कोई मुक्त नहीं हो सकता। वह उस तप को छोड़ कर मुक्त हुए।

लेकिन इस पर बहुत गंभीर विचारणा नहीं हुई, क्योंकि महावीर तप से ही मुक्त हुए। लेकिन महावीर ने वैसा तप कभी नहीं किया, जैसा बुद्ध ने किया। बुद्ध के तप में कोई भ्रांति थी। बुद्ध एक तरफ भोगी थे; फिर एकदम विपरीत तपस्वी हो गए। उन्होंने शरीर को सुखा डाला; खून, मांस सब सूख गया; हड्डी-हड्डी हो गए; इतने कमजोर हो गए कि ऊर्जा ही न बची जो कि भीतर के सोने को निखार सके। तो उन्हें उस तप को छोड़ देना पड़ा। लेकिन महावीर कभी हड्डी-हड्डी नहीं हुए।

तो महावीर का यह वचन समझने जैसा है। महावीर कहते हैं, "जो दुबला-पतला है, जो इंद्रिय-निग्रही है, उग्र तपसाधना के कारण जिसका रक्त और मांस सूख गया है, जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"

महावीर की प्रतिमा को ख्याल में रख कर इस वचन को समझना जरूरी है, नहीं तो भ्रांति महावीर के अनुयायी भी करते रहे हैं। महावीर कहते हैं कि मनुष्य के शरीर में रक्त और मांस अकारण नहीं होता। रक्त और मांस के होने के दो कारण हैं। एक तो शरीर की जरूरत है कि शरीर बिना रक्त और मांस के जी नहीं सकता। वह शरीर का भोजन है, शरीर का ईंधन है। लेकिन जितना शरीर को चाहिए, उतने से ज्यादा आदमी इकट्ठा कर लेता है और वह जो ज्यादा इकट्ठा किया हुआ है, वह मनुष्य को वासनाओं में ले जाता है। ध्यान रहे, अगर आपको अचानक लाख रुपये मिल जाएं, तो आप क्या करेंगे? आप एकदम, आपकी जो-जो बुझी पड़ी वासनाएं हैं, उनको सजग कर लेंगे। एक लाख का ख्याल आते ही से आपकी वासनाएं भागने लगेंगी। क्या कर लूं? कहां भोग लूं?

नया-नया धनी हुआ आदमी बड़ा पागल हो जाता है। नया धनी अपनी सारी वासनाओं को जगा हुआ पाता है। इसलिए नये धनी को पहचानने में कठिनाई नहीं है। उसका धन उछलता हुआ दिखाई पड़ता है। उसका धन वासना की दौड़ बन जाता है। जैसे ही आपके शरीर में जरूरत से ज्यादा खून, मांस मज्जा इकट्ठी हो जाती है, आप इसका क्या करेंगे? और मनुष्य के पास संग्रह करने का उपाय है।

मनुष्य के शरीर में उपाय है। तीन महीने के लायक तो भोजन हम अपने शरीर में इकट्ठा रखते ही हैं। इसलिए कोई भी आदमी तीन महीने तक उपवास कर सकता है, मरेगा नहीं। स्वस्थ, सामान्य स्वस्थ आदमी अगर नब्बे दिन भूखा तक रहे तो मरेगा नहीं, क्योंकि नब्बे दिन के लिए भोजन शरीर में रिजर्व, सुरक्षित रहता है। हम अपना मांस पचाते जाएंगे नब्बे दिन तक। इसलिए जब आप उपवास करते हैं तो हर रोज पौंड, डेढ़ पौंड

वजन गिरने लगता है। कैसे गिर रहा है वजन? यह वजन कहाँ जा रहा है? शरीर को बाहर से भोजन नहीं दिया जा रहा है, तो शरीर के पास एक दोहरी व्यवस्था है, शरीर अपने ही मांस को पचाने लगता है।

उपवास एक तरह का मांसाहार है, अपना ही मांस पचाना है। डेढ़ पौंड, दो पौंड मांस रोज पचा जाएगा। स्वस्थ आदमी के शरीर में तीन महीने तक के लायक सुरक्षित व्यवस्था होती है। लेकिन इस तीन महीने से ज्यादा भी हम इकट्ठा कर लेते हैं। हम बड़े कृपण हैं, कंजूस हैं। हम सब चीजें इकट्ठी करते रहते हैं। हम इतना इकट्ठा कर लेते हैं कि उसे फेंकना जरूरी हो जाता है। उसे न फेंकें तो वह बोझ हो जाएगा। वह जो अतिरिक्त बोझ हो जाता है, वह हमारी वासनाओं में फिंकने लगता है।

तो महावीर जब कहते हैं, "दुबला-पतला", तो उनका मतलब है सामान्य, स्वस्थ, जो कृपण नहीं है, जो मांस-मज्जा को इकट्ठा करने में नहीं लगा है; क्योंकि वह इकट्ठी मांस-मज्जा गलत मार्गों पर ले जाएगी; बोझ हो जाएगा।

पश्चिम में अगर आज वासना का ज्वार आ गया है, तो उसका एक कारण यह है कि जरूरत से ज्यादा भोजन आज पश्चिम में पहली दफा उपलब्ध है। इतना भोजन उपलब्ध है कि बड़ी हैरानी की बात है, उस भोजन का उपयोग क्या किया जाए? अगर आपको बहुत ज्यादा दूध और पौष्टिक पदार्थ मिलें, तो कामवासना बढ़ जाएगी। इतनी भी ज्यादा बढ़ सकती है कि आपको चौबीस घंटे कामवासना ही घेरे रहे। क्योंकि इतना वीर्य आप रोज उत्पन्न कर लेंगे कि उसे फेंकना जरूरी हो जाएगा।

महावीर कहते हैं, शरीर पर दृष्टि रखनी जरूरी है। एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है कि शरीर में अतिरिक्त इकट्ठा न हो। अतिरिक्त इकट्ठा होगा तो वासना में खींचेगा। शरीर में उतना ही हो जितना जरूरी है ताकि जितना आत्मा को जगाने और रोशन करने के लिए काफी है उतना दीया भीतर जल जाए और बाहर की तरफ की वासना न उठे।

तो महावीर कहते हैं कि जो दुबला-पतला है, जिसका रक्त और मांस सूख गया है।

इसका यह मतलब नहीं कि उसका रक्त और मांस बिल्कुल सूख गया है। रक्त, मांस सूख गया है, मतलब: अतिरिक्त रक्त, मांस सूख गया है। जिसके पास व्यर्थ ईंधन नहीं है, जो उसे गलत मार्ग पर ले जाए।

"जो शुद्धव्रती है, जिसने निर्वाण पा लिया है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"

इस आखिरी शब्द-निर्वाण को समझ लेना जरूरी है। निर्वाण बड़ा कीमती शब्द है। इस शब्द का मतलब होता है, दीये का बुझ जाना। जब किसी दीये को हम फूंक देते हैं और उसकी ज्योति बुझ जाती है, तो कहते हैं: दीया निर्वाण को उपलब्ध हो गया।

महावीर कहते हैं: जो निर्वाण को उपलब्ध हो गया, वह ब्राह्मण है।

तो किस दीये की बात कर रहे हैं?

जब तक अहंकार है, तब तक हम जल रहे हैं व्यक्ति की तरह। जैसे ही अहंकार की ज्योति बुझ जाती है, हम व्यक्ति की तरह समाप्त हो जाते हैं; अहंकार खो जाता है। अब हम होते हैं; लेकिन व्यक्ति की तरह नहीं होते हैं; अहंकार की तरह नहीं होते, अस्मिता नहीं होती। हमारी कोई सीमा नहीं रह जाती, हमारी कोई दीवालें नहीं रह जातीं, और "मैं" का कोई भाव नहीं रह जाता।

"मैं-भाव" का बुझ जाना निर्वाण है। जिस क्षण मैं हूँ, और मुझे पता नहीं चलता कि मैं हूँ, मेरा होना शुद्ध हो गया। इस शुद्धतम अवस्था को महावीर कहते हैं, "मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"

महावीर ने जितना आदर "ब्राह्मण" शब्द को दिया है, उतना किसी और ने कभी भी नहीं दिया है। "ब्राह्मण" शब्द की ऐसी पराकाष्ठा न तो उपनिषदों में उपलब्ध है और न वेदों में उपलब्ध है। लेकिन फिर भी ब्राह्मणों ने समझा कि महावीर ब्राह्मणों के दुश्मन हैं। समझने का कारण था, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मण की जन्मजात बपौती छीन ली, स्वार्थ छीन लिया, उसका धंधा छीन लिया, उसका व्यवसाय छीन लिया।

लेकिन अगर कोई ठीक से समझे तो महावीर ब्राह्मण के दुश्मन नहीं हैं, ब्राह्मण ही ब्राह्मण के दुश्मन हैं। महावीर तो परम प्रेमी मालूम पड़ते हैं ब्राह्मणत्व के। ब्राह्मण को उन्होंने ठीक ब्राह्मण के निकट बिठा दिया। और ब्राह्मण तभी कहने का कोई अपने को अधिकारी है, जब महावीर की परिभाषा पूरी करता है। जन्म से जो ब्राह्मण है, उसका ब्राह्मणत्व औपचारिक है, फारमल है। उसका कोई मूल्य नहीं है। ब्राह्मण की उपलब्धि और ब्रह्म की उपलब्धि के मार्ग पर चलते हुए, पड़ते हुए कदम और पड़ाव, वे ही ब्राह्मण होने के पड़ाव हैं।

आज इतना ही।

अलिप्तता है ब्राह्मणत्व (ब्राह्मण-सूत्र: 2)

दिव्व-माणुस-तेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा काय-वक्केणं, तं वयं बूम माहणं॥
जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं॥
आलोलुयं मुहाजीविं,
अणगारं अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु,
तं वयं बूम माहणं॥

जो देवता, मनुष्य तथा तिर्यच संबंधी सभी प्रकार के मैथुन का मन, वाणी और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो संसार में रह कर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जो अलोलुप है, जो अनासक्त-जीवी है। जो अनगार (बिना घर-बार का) है। जो अकिंचन है, जो गृहस्थों के साथ आने वाले संबंधों में अलिप्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

इस सदी के प्राथमिक चरण में सिगमंड फ्रायड ने पश्चिम के लिए और आधुनिक मनुष्य के लिए एक बड़ी महत्वपूर्ण खोज की। खोज नई नहीं है। पूरब के मनीषी उससे सदा से परिचित रहे हैं। पुनर्खोज है; लेकिन आधुनिक मनुष्य के लिए नये की तरह ही है।

फ्रायड ने मनुष्य का विश्लेषण किया और पाया कि कामवासना मनुष्य के प्राणों में सबसे गहरी पर्त है; जैसे मनुष्य का जीवन कामवासना के आस-पास ही घूमता और भटकता है। स्वाभाविक है कि ऐसा हो। क्योंकि मनुष्य का जन्म होता है कामवासना से। मनुष्य के शरीर का प्रत्येक कण काम-कण है। जिन पहले परमाणुओं से, जीव-कोष्ठों से मनुष्य निर्मित होता है, वे ही कामवासना के कण हैं। फिर उन्हीं कणों का विस्तार मनुष्य के पूरे शरीर को निर्मित करता है। इसलिए कामवासना तो रोएं-रोएं में समाई हुई है। एक-एक कोष्ठ शरीर का कामवासना से ही भरा हुआ है। स्वाभाविक है कि कामवासना की प्रगाढ़ पकड़ आदमी के जीवन में हो। वह जो भी करे, जिस भांति भी जीए, जो भी सोचे, स्वप्न देखे, उन सब में कहीं न कहीं कामवासना मौजूद होगी।

फ्रायड की यह खोज तो कीमती है। कीमती इस लिहाज से कि सत्य है; लेकिन खतरनाक भी, क्योंकि अधूरी है, और अधूरे सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं।

यह मनुष्य की प्राथमिक भूमिका है कामवासना, लेकिन यह उसका अंत नहीं है। यह बीज है। यह फूल नहीं है। यहां से मनुष्य शुरू होता है, लेकिन यहां समाप्त नहीं होता। और जो प्राथमिक जीवन की पर्त पर ही नष्ट हो जाते हैं, वे जीवन के शिखर को और जीवन के गौरव को जानने से वंचित रह जाते हैं।

ईसाइयत ने बड़ा विरोध किया फ्रायड का। वह विरोध निकम्मा साबित हुआ। क्योंकि उस विरोध में सिर्फ भय था, सत्य नहीं था। ईसाइयत डरी कि अगर लोग समझ लें कि कामवासना ही जीवन का मूल आधार है,

उत्स है, स्रोत है, तो फिर लोगों को परमात्मा तक ले जाना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन पूरब इस बात से राजी है कि कामवासना उत्स है, स्रोत है, गंगोत्री है जहां से धारा बहती है। लेकिन वह अंतिम सागर नहीं है, जहां से गंगा गिरती है, और हमें कभी कोई अड़चन नहीं रही कि हम स्वीकार करें कि निम्न से परम का जन्म हो सकता है। क्योंकि हमारी दृष्टि में निम्न और श्रेष्ठ में बुनियादी रूप से कोई अंतर नहीं है। निम्न हम उसे ही कहते हैं, जहां श्रेष्ठ बीज में छिपा हुआ है और श्रेष्ठ हम उसे ही कहते हैं जहां निम्न रूपांतरित हुआ, प्रकट हुआ, अभिव्यक्त हुआ, परिशुद्ध हुआ।

निम्न और श्रेष्ठ विरोधी नहीं हैं, एक ही उर्जा के दो आयाम हैं। जैसा मैंने कल कहा मिट्टी और कमल। हम कामवासना को मिट्टी मानते हैं। और इस कामवासना में अगर समाधि का फूल खिल जाए, तो उसे हम कमल मानते हैं। मिट्टी और कमल में विरोध नहीं है, गहरी मैत्री है। कला आनी चाहिए मिट्टी को कमल बनाने की।

तो पूरब ने दो तरह की कलाएं विकसित कीं मनुष्य को कामवासना के पार ले जाने वाली। उनमें एक कला है "तंत्र" की और एक कला है "योग" की। तंत्र कहता है, जहर का उपयोग अमृत की तरह किया जा सकता है। और तंत्र कहता है, जो विकृत है, जो रुग्ण है, उसे भी स्वस्थ किया जा सकता है। जहां जीवन नीचा मालूम पड़ता है, उस नीची सीढ़ी का उपयोग भी ऊपर चढ़ने के लिए किया जा सकता है। पत्थर भी, मार्ग के रोड़े भी, सोपान बनाए जा सकते हैं।

तो तंत्र निषेध नहीं करता कामवासना का। और तंत्र कहता है, कामवासना का इस भांति उपयोग किया जा सकता है कि उसके उपयोग से ही व्यक्ति उसके पार चला जाए। योग ठीक दूसरी तरफ से खोज करता है। योग कहता है, कामवासना के उपयोग की भी कोई जरूरत नहीं है। कामवासना का बिना उपयोग किए ही कामवासना के प्रति साक्षीभाव साधा जा सकता है। और जिस मात्रा में साक्षीभाव सधता है, उसी मात्रा में कामवासना से आत्मा के संबंध टूटते चले जाते हैं।

ये दोनों परंपराएं बिल्कुल विपरीत हैं और बिल्कुल एक ही मंजिल पर ले जाती हैं। और जो ज्ञानी इस बात को नहीं समझ पाता, वह कुछ भी नहीं समझ पाया है।

विपरीत मार्गों से भी एक मंजिल पर पहुंचा जा सकता है। तंत्र और योग में कोई संघर्ष नहीं है, साधन का संघर्ष है, अंतिम लक्ष्य का कोई संघर्ष नहीं है। महावीर महायोगी हैं। इसलिए महावीर तंत्र की किसी प्रक्रिया के समर्थन में नहीं हैं। महावीर कहते हैं: कामवासना जैसी है, उसका बिना उपयोग किए छोड़ देना जरूरी है। वे कहते हैं; जितना उपयोग किया जाए, उतना ही डर है कि आदत प्रगाढ़ होती चली जाए।

उनका भय भी ठीक है। सौ में से निन्यानबे आदमियों के लिए यही ठीक मालूम पड़ेगा कि खतरे से दूर रहें। क्योंकि खतरे की आदत भी बन सकती है। और हम न भी चाहें, तो भी एक यांत्रिक आदत के जाल में फंस जाते हैं। अधिक लोग कामवासना में इसलिए उतरते हैं कि वह एक रोज की आदत हो गई है; कुछ रस भी नहीं पाते; कुछ सुख भी नहीं मिलता। शायद कामवासना से गुजर कर दुख ही मिलता है; विषाद मिलता है, रुग्णता मिलती है और ऐसा लगता है कुछ खोया। लेकिन फिर भी एक बंधी हुई आदत है और आदमी उस आदत के पीछे दौड़ा चला जाता है।

महावीर कहते हैं कि कठिन है यह बात कि आदमी कामवासना के बीच कामवासना का उपयोग करके पार हो सके; क्योंकि कामवासना इतनी प्रगाढ़ है; उसका पंजा इतना मजबूत है। तो उचित यही है कि उसका उपयोग ही न किया जाए और उससे साक्षीभाव साधा जाए। लेकिन जैसा तंत्र का खतरा है कि आदत बन जाए, वैसे ही योग का खतरा है कि दमन बन जाए।

खतरे तो हर मार्ग पर हैं। जो चलेगा उसके लिए खतरा है; जो नहीं चलता, उसके लिए कोई खतरा नहीं है। जो चलेगा वह भटक सकता है, इसलिए भटकने से मत डरना। क्योंकि जो भटकने से बहुत डरता है, वह चलता ही नहीं। भटकने वाले भी कभी न कभी पहुंच जायेंगे, लेकिन जो चलते ही नहीं, वे कभी भी नहीं पहुंच

सकते। इसलिए भूल करने से कभी भयभीत मत होना। भूल सुधारी जा सकती है। लेकिन भूल से कोई इतना भयभीत हो जाए कि कुछ करे ही नहीं कि कहीं भूल न हो जाए, तो फिर सुधार का कोई उपाय नहीं है।

जीवन में एक ही असलफता है, और वह है प्रयास ही न करना। गलत प्रयास भी कभी न कभी सफल हो जाता है। लेकिन प्रयास ही कोई न करे, तब तो सफलता का कोई उपाय नहीं है।

हिम्मत से भूल करना, हिम्मत से भटकने की तैयारी रखना; क्योंकि जो भटक सकता है, वह पहुंच भी सकता है। भटकने में भी पैर ही चलते हैं, श्रम होता है, संकल्प होता है। एक बात निश्चित है कि अगर कोई चलता ही जाए तो कितना ही लंबा भटकाव हो, पार हो जाएगा। क्योंकि जो चलने को तैयार है, वह आज नहीं कल समझने लगेगा कि मैं भटक रहा हूं। जहां-जहां भटक रहा हूं, वहां-वहां से पैर मुड़ने लगेंगे।

तंत्र का खतरा है कि हम अपने को धोखा न दे लें कि हम सोचें कि हम कामवासना का उपयोग कर रहे हैं, और उपयोग कर-कर के हम धीरे-धीरे मुक्ति की अवस्था में पहुंच जाएंगे, और यह कामवासना हमारी आदत बन जाय। और निकलना तो दूर हो, हम और इसमें, गहरे जाल में फंसते चले जाएं। क्योंकि जितना अभ्यास होता चला जाता है, उतनी आदतें जंजीर की तरह मजबूत होती चली जाती हैं।

योग का भी खतरा है। योग का खतरा है कि साक्षीभाव के नाम पर कहीं हम दमन न करने लगें, कहीं हम वासनाओं को दबा न लें; क्योंकि दबी हुई वासनाएं जहर हो जाती हैं; और दबा हुआ चित्त बुरी तरह कामुक हो जाता है।

आप जान कर हैरान होंगे, साधारण मनुष्य इतना कामुक नहीं होता, जितना दमित व्यक्ति कामुक हो जाता है और दमित व्यक्ति को सब तरफ कामवासना ही दिखाई पड़ने लगती है। क्योंकि जो आप दबाते हैं, उसकी पर्त आपकी आंख पर फैल जाती है। वह आपका चश्मा बन जाता है। और कामवासना को दबाया हुआ आदमी खोद-खोद कर जगह-जगह कामवासना देखने लगता है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने पुलिस में रिपोर्ट की कि मेरे मकान के पास ही जो नदी बहती है, वहां कुछ युवक नग्न स्नान कर रहे हैं। मेरे चौके की खिड़की से वे मुझे दिखाई पड़ते हैं। यह बरदाश्त के बाहर है। यह अशोभन है; अश्लील है। पुलिस को तत्क्षण कुछ करना चाहिए।

पुलिस आई; युवकों को समझाया। युवक पहले तो थोड़े रुष्ट हुए, फिर राजी हो गए, और आधा मील दूर नदी में नीचे चले गए। लेकिन घंटे भर बाद फिर श्रीमती नसरुद्दीन का फोन पुलिस स्टेशन आया कि पुलिस कुछ करे; लड़के अभी भी नदी में नहा रहे हैं और नग्न हैं। लेकिन पुलिस के अधिकारी ने कहा कि देवी, अब वे आधा मील दूर चले गए हैं। अब तुम्हारी खिड़की से उन्हें देखने का कोई उपाय भी नहीं है।

श्रीमती नसरुद्दीन ने कहा: उपाय है! विद माई बायनाक्यूल्स आई कैन सी देम--मैं अपनी दूरबीन से देख सकती हूं।

कठिनाई नग्न लड़कों के स्नान में नहीं थी, कठिनाई कहीं श्रीमती नसरुद्दीन के मन में ही है। दमित व्यक्ति ऐसी कठिनाई से भर जाता है। वह दूरबीन ले लेता है और सब तरफ वह एक ही चीज की तलाश करता रहता है।

होगा ही। क्योंकि जो दबाया है, वह बदला लेगा। जीवन बदला लेगा। जिस वासना को आपने जोर से दबा लिया है, वह प्रतीक्षा कर रही है कि कब आप पर कब्जा कर ले, कब आपको जकड़ ले।

लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता। योग का खतरा हमें कम दिखाई पड़ता है तंत्र का खतरा ज्यादा दिखाई पड़ता है। इसी कारण तंत्र सार्वभौम नहीं बन पाया और योग का काफी प्रभाव हुआ। क्योंकि दमन ज्यादा सूक्ष्म है और व्यक्ति को अपने भीतर करना होता है; और उसकी खबर किसी को भी नहीं मिलती।

मैं साधुओं से मिलता हूं। और जब भी साधु मुझे एकांत में मिलते हैं, तो उनकी परेशानी कामवासना होती है। और वे मुझे कहते हैं, कोई रास्ता बताएं। वर्षों हो गए; उपवास करते हैं, सामायिक करते हैं, शास्त्र

पढ़ते हैं, अध्ययन, मनन, स्वाध्याय सब करते हैं। अपने को सब भांति रोका है, निग्रहीत किया है; लेकिन वासना जाती नहीं, बल्कि बढ़ती चली जाती है।

अगर साधुओं के स्वप्न जांचे जाएं, तो वे सदा ही कामवासना के होंगे। क्योंकि जो दिन में दबाया है, वह रात चेतना को पकड़ लेता है। इसलिए साधु रात सोने तक से डरने लगते हैं, भयभीत हो जाते हैं।

जीवन इतनी आसान बात नहीं है। जीवन जटिल है, और उसके साथ अत्यंत कलात्मक व्यवहार करने की जरूरत है। दमन कोई कला नहीं है, बिल्कुल ग्रामीण, असंस्कृत, अज्ञान से भरी हुई प्रक्रिया है।

किसी चीज को आप दबाते हैं; जब आप दबाते हैं तो आप क्या कर रहे हैं? उसे और भीतर सरका रहे हैं। वह जितने भीतर चली जाएगी, आप पर उसकी शक्ति उतनी ही ज्यादा हो जाएगी। इसलिए यह अक्सर हो जाता है कि जो लोग कामवासना में ही जीते रहते हैं, वे धीरे-धीरे कामवासना से ऊब जाते हैं। उनका रस चला जाता है। लेकिन जो लोग कामवासना से लड़ते रहते हैं, मरते दम तक उनका रस नहीं जाता है। साधारण गृहस्थ, जीवन की साधारण धारा में बहते-बहते एक दिन ऊब जाता है, लेकिन साधु नहीं ऊब पाता; क्योंकि ऊबने का उसे मौका ही नहीं मिला। उसकी वासना ताजी और जवान बनी रहती है। मरते दम तक वासना उसका पीछा करती है। और कठिनाई यह है कि जितना उसका पीछा करती है, उतना ही वह दबाता है। जितना वह दबाता है वासना उतने ही नये रूप धरती है, और ये नये रूप विकृत होते चले जाते हैं। ये नये रूप स्वस्थ भी नहीं रह जाते, प्राकृतिक भी नहीं रह जाते; अप्राकृतिक और एबनार्मल हो जाते हैं।

महावीर ब्राह्मण की परिभाषा में कह रहे हैं: "जो देवता, मनुष्य तथा तिर्यच संबंधी सभी प्रकार के मैथुन का मन, वाणी और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"

सुन कर थोड़ी हैरानी होगी कि महावीर कहते हैं, जो देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी किन्हीं का भी मन, वाणी और काया से मैथुन का सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। तो ब्राह्मण एक उपलब्धि है; एक चित्त की दशा है जहां वासना बिल्कुल तिरोहित हो गई है, जहां वासना किसी भी रूप में नहीं पकड़ती।

अगर आप मनुष्य के साथ अपने संबंधों को विकृत करेंगे, तो आपकी वासना पशुओं के साथ जुड़नी शुरू हो जाएगी।

पश्चिम में बड़ा खतरा पैदा हुआ है। और पश्चिम में जगह-जगह ऐसी समितियां निर्मित हुई हैं, जो पशुओं को आदमी की कामवासना से बचाने का उपाय कर रही हैं। क्योंकि मनुष्य मनुष्य के साथ ही कामवासना के संबंध जोड़ रहा हो ऐसा नहीं है, पशुओं से भी जोड़ रहा है। और एक पूरा रोग-पशुओं के साथ मनुष्य की कामवासना के संबंधों का--विकसित होता जा रहा है।

महावीर का वचन सुन कर लगता है कि महावीर मनुष्य के बहुत गहरे तक देख रहे हैं। अगर आदमी को रोका जाए, जबरदस्ती रोका जाए तो उसकी वासना नीचे गिर सकती है। वह पशुओं के साथ संबंध जोड़ना शुरू कर सकता है। एक सुविधा है; क्योंकि मनुष्य के साथ जब कामवासना के संबंध जोड़े जाते हैं, तो उत्तरदायित्व भी जुड़ता है। अगर किसी स्त्री को आप प्रेम करते हैं, तो आप जिम्मेवारी भी अनुभव करते हैं। वह स्त्री कल गर्भिणी हो जाए, उस स्त्री का जीवन आपके लिए मूल्यवान हो गया। उस स्त्री को दुख-पीड़ा न हो, वह सारी जिम्मेवारी आपके ऊपर है। लेकिन पशु के साथ अगर आप कोई काम-संबंध निर्मित कर लेते हैं, तो कोई जिम्मेवार नहीं है। और पशु अबोध है। और पशु निषेध भी नहीं कर सकता। और पशु लड़ भी नहीं सकता।

पश्चिम में कुत्तों के साथ इतने ज्यादा काम-संबंध निर्मित हो रहे हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। मनोवैज्ञानिक बहुत चिंतित हैं कि यह क्या हो रहा है! आदमी कैसे नीचे गिर रहा है! गिरने का कारण है। क्योंकि मनुष्य और मनुष्य के बीच इतनी जटिलता हो गई है पश्चिम में, स्त्री और पुरुष के बीच संबंध इतना भारी मालूम पड़ता है, और उसमें इतना कलह और इतना उपद्रव है कि उस तरफ से आदमी हटा रहा है अपने को।

पशुओं तक भी बात नहीं है। अभी डेनमार्क में एक सेक्स फेयर था, एक कामवासना का मेला था, जिसमें स्त्री और पुरुषों के गुड्डे पूरे शरीर की माप के बेचे गए। इन गुड्डों में पूरी कामवासना का इंतजाम है, और विद्युत का उपयोग किया गया है। स्त्री गुड्डे से पुरुष संभोग कर सकता है, और जब उस गुड्डे के स्तन को आप छुएंगे तो वह गुड्डियां अपनी आंख बंद कर लेगी जैसी स्त्री अपनी आंख बंद कर लेती है। उसके स्तन में उभार आएगा और जननेंद्रिय में विद्युत की व्यवस्था की गई है कि वह आपके वीर्य को शोषित कर लेगी। ठीक ऐसे ही पुरुषों के गुड्डे भी तैयार किए गए हैं।

पशु से ही नहीं, महावीर को ख्याल भी नहीं। महावीर ने तीन की गिनती गिनाई है, लेकिन उन्होंने यह नहीं कहा है, वस्तुओं के साथ भी मनुष्य काम-संबंध निर्मित कर सकता है। मनुष्य का मैथुन इतनी प्रगाढ़ बात है कि उसे एक तरफ से हटाओ वह दूसरी तरफ से प्रगट होना शुरू हो जाता है।

देवताओं के साथ भी मनुष्य की कामना होती है। वह हमें जरा कठिन लगेगा। पशुओं का भी समझ में आ सकता है, क्योंकि पशु हमारे चारों तरफ मौजूद हैं। वस्तुओं का भी समझ में आ सकता है, क्योंकि वस्तुएं हम निर्मित कर सकते हैं, यंत्र भी निर्मित कर सकते हैं। लेकिन जिस तरह हमें आज पशु और यंत्र निकट मालूम पड़ते हैं, महावीर के वक्त में देवताओं की उपस्थिति भी उतनी ही निकट थी। आज भी इतनी ही निकट है, हमारी संवेदनशीलता क्षीण हो गई है।

आप जान कर हैरान होंगे कि मनुष्य के आस-पास अशरीरी आत्माएं हैं। बुरी आत्माओं को हम प्रेत कहते हैं, अच्छी आत्माओं को देवता कहा जाता है। पर मनुष्य के आस-पास अशरीरी आत्माएं मौजूद हैं। और कोई व्यक्ति अगर बहुत प्रगाढ़ मन से मैथुन की आकांक्षा करे तो उन अशरीरी आत्माओं को आकर्षित कर सकता है और मैथुन हो सकता है। कई बार जब आप स्वप्न में मैथुन कर लेते हैं, तो जरूरी नहीं कि वह स्वप्न ही हो। इसकी बहुत संभावना है कि कोई अशरीरी आत्मा संबंधित हो। इस संबंध में बहुत खोज-बीन की जरूरत है। मनुष्य की कामना आकर्षण का बिंदु बन जाती है। और जहां भी वासना हो, वहां से खिंचाव शुरू हो जाता है।

एक घटना जो पिछले सौ वर्षों से निरंतर अध्ययन की जा रही है, मनसशास्त्री अध्ययन में लगे हैं, वह मैं आपको कहना चाहूंगा तो ख्याल में आ सके। बहुत बार ऐसा होता है, आपको भी शायद अनुभव हो, सुना हो या किसी के घर में हुआ हो, बहुत बार ऐसा हो जाता है कि घर में अचानक चीजें हिलने-डुलने लगती हैं, और कोई प्रगट कारण नहीं मालूम होता। आपने किताब टेबल पर रखी है, वह गिर कर नीचे आ जाती है। आपने बर्तन बीच में टेबल पर रखे हैं, वह सरक कर किनारे पर आ जाते हैं। आपने खूंटी पर कोट टांगा है, वह एक खूंटी से उतर कर दूसरी खूंटी पर चला जाता है। लोग कहते हैं कि घर में प्रेत-बाधा हो गई है। मनस्विद सौ साल से इसका अध्ययन कर रहे हैं कि क्या हो क्या रहा है! और हर बार यह पाया गया कि ऐसी घटना जब भी किसी घर में घटती है, तो उस घर में कोई जवान युवती होती है, जिसका मैनसीज शुरू होने के करीब होता है या शुरू हो रहा होता है। हमेशा! जब भी ऐसी घटना किसी घर में घटती है तो कोई युवती होती है जो अभी कामवासना की दृष्टि से प्रौढ़ हो रही है, और उसकी प्रौढ़ता इतनी प्रबल है कि उस प्रबलता के कारण प्रेतात्माएं आकर्षित हो जाती हैं। अब इस पर वैज्ञानिक अध्ययन काफी निर्णय ले चुका है। उस स्त्री को, उस युवती को घर से हटा दिया जाए, यह उपद्रव बंद हो जाता है। वह जिस घर में जाएगी, वहां उपद्रव शुरू हो जाएगा। यह भी पाया गया है कि कुछ घरों में अचानक कपड़ों में आग लग जाती है। कोई कारण नहीं मालूम पड़ता। और जितने अब तक अध्ययन किए गए हैं इस तरह के मामलों में, पाया गया है कि घर में कोई युवक हस्तमैथुन करता होता है। इस हस्तमैथुन करने वाले युवक को हटा दिया जाए, तो घर में आग लगने की घटना बंद हो जाती है।

हस्तमैथुन की स्थिति में प्रेतात्माएं सक्रिय हो सकती हैं। जब भी व्यक्ति कामवासना से बहुत ज्यादा भरा होता है तो अदेही आत्माएं भी संलग्न हो जाती हैं, और सक्रिय हो जाती हैं, और उनकी सक्रियता बहुत तरह की घटनाओं का कारण बन सकती है। प्रेतात्माएं भी अक्सर उन्हीं लोगों में प्रवेश कर पाती हैं, जो कामवासना को

इतना दबा लिए हैं कि जीवन के सहज शारीरिक संबंध स्थापित नहीं कर पाते; तो फिर उनके देहरहित आत्माओं से वासना के संबंध स्थापित होने शुरू हो जाते हैं।

फ्रायड ने हिस्टीरिया का अध्ययन किया पूरे चालीस वर्ष और उसने पाया की सभी हिस्टीरिया... और हिस्टीरिया की बीमारी सारी दुनिया में फ्रायड के पहले प्रेतात्माओं की बाधा समझी जाती थी। अगर किसी स्त्री को अचानक चक्कर आने लगते हैं, बेहोश हो जाती है, मुंह से फसूकर आ जाता है, चीखने चिल्लाने लगती है और स्त्रियों को ज्यादा मात्रा में हिस्टीरिया होता है पुरुषों को नहीं। क्योंकि स्त्रियां ज्यादा कामवासना का दमन करती हैं बजाय पुरुषों के। पुरुष बातें कुछ भी करें, ब्रह्मचर्य की कितनी ही चर्चा करें लेकिन वे उपाय खोज लेते हैं अपनी कामवासना को तृप्त करने के। स्त्रियां बातें ही नहीं करतीं, बातों पर ही भले मन से भरोसा कर लेती हैं और भरोसा करके संयम साधने की कोशिश में लग जाती हैं। उस संयम में कोई साक्षी-भाव तो होता नहीं, दमन ही होता है। इसलिए स्त्रियां ही हिस्टीरिया की बीमारी से परेशान होती रहीं।

फ्रायड बहुत हैरान हुआ जब उसने हिस्टीरिया का अध्ययन शुरू किया। उसने इनकार ही कर दिया; कि उसमें प्रेतात्माओं का कोई हाथ नहीं है। क्योंकि जिन स्त्रियों पर भी हिस्टीरिया पाया गया, वे वही स्त्रियां थीं जिन्होंने अपनी कामवासना को किसी कारण दबाया था। पति नपुंसक था, या स्त्री विधवा थी; पति मर चुका था, या पति बीमार था; संभोग की कोई संभावना न थी, या स्त्री को बचपन से इस तरह की धार्मिक शिक्षा दी गई थी कि कामवासना में उतरना उसके लिए असंभव हो गया था। खास कर ईसाई नन्स, ईसाई साधवियां हिस्टीरिया से भयंकर रूप से परेशान थीं। और मध्ययुग में तो पूरे यूरोप में नन्स के ऊपर प्रेतात्माओं का उतरना बिल्कुल रोज की घटना थी।

फ्रायड ने इनकार कर दिया। उसने कहा कि कामवासना के दमन के कारण यह घटना घट रही है; इसमें प्रेतात्माओं का कोई संबंध नहीं है। फ्रायड की बात आधी ही ठीक है। वह ठीक कह रहा है, कामवासना के रिप्रेशन से ही घटना घट रही है। लेकिन रिप्रेशन, दमन केवल अवसर बनता है। उस अवसर में मन इतना ज्यादा वासनापूरित हो जाता है, और इतने जोर से पुकारता है, और पूरा शरीर इतने जोर से खींचने लगता है कि आस-पास की अदेही आत्माएं भी उस प्रचंड झंझावात में खिंच के पास आ सकती हैं और प्रेतात्माओं का प्रवेश हो सकता है।

तो महावीर कहते हैं कि जो देवता, मनुष्य, तिर्यच संबंधी सभी प्रकार के मैथुन का मन, वाणी और शरीर से कभी सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

तब तो ब्राह्मण खोजना बहुत मुश्किल हो जाएगा। और जिन्हें हम ब्राह्मण कहते हैं, उन्हें ब्राह्मण कहने का कोई अर्थ न रह जाएगा। आदमी इतने गहन में डूबा है कामवासना के साथ, कि कोई उपाय नहीं दिखता, कि वह कैसे ब्राह्मण हो सके!

सुना है मैंने, इंग्लैंड का राजा जार्ज द्वितीय बहुत बुद्धिमान नहीं था। और सारा काम, सारे राज्य की व्यवस्था उसकी पत्नी कैरोलीन ही सम्हालती थी। लेकिन इतना बुद्धिमान वह था कि कैरोलीन की बात मान लेता था सदा। कैरोलीन सुंदर थी, योग्य थी, प्रतिभाशाली थी, लेकिन असमय में उसका निधन हो गया। कोई संघातक बीमारी थी, इलाज नहीं हो सका। मरते क्षण कैरोलीन ने सम्राट से कहा--आगे की व्यवस्था भी उसी को करनी थी, उसने कहा कि तुम मेरे मरने के बाद शीघ्र ही विवाह कर लेना। एक तो तुम बिना विवाह के रह न सकोगे, दूसरे तुम्हें एक योग्य सलाहकार की भी जरूरत है और तीसरे यह विवाह उपयोगी होगा अंतर्राष्ट्रीय संबंध निर्धारित करने में। तो तुम कहां विवाह करना, कौन-कौन सी राजकुमारियां योग्य हैं, और किससे संबंध बनाना राजनीतिक अर्थों में कीमती है।

लेकिन जार्ज द्वितीय, जार-जार आंसू गिराने लगा और उसने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं! जीवन में अपनी पत्नी को उसने पहली बार "नहीं" कहा था। उसने कहा कि नो, नेवर! आफ्फटर यू नो वाइव्स! पत्नी बड़ी

प्रसन्न हुई। उसने आंख खोली, लेकिन प्रसन्नता क्षण भर में खो गई क्योंकि जार्ज आंसू बहा रहा था, छाती पर हाथ रखे था और कह रहा था, नहीं, कभी नहीं--नो मोर वाइप्स आफ्टर यू, ओनली मिस्ट्रेसेस--कोई पत्नी नहीं, सिर्फ रखैल स्त्रियां!

वासना बड़ी गहरी है, और उसकी गहराई को बिना समझे जो उसके साथ कुछ भी करने में लग जाता है, वह झंझट में पड़ेगा। सब सिद्धांत ऊपर रह जाते हैं। सब शास्त्र ऊपर रह जाते हैं। कामवासना बड़े केंद्र पर है वहां तक कोई शास्त्र पहुंच नहीं पाता, कोई सिद्धांत नहीं पहुंच पाता। आप ऊपर से प्रभावित होकर निर्णय और संकल्प ले सकते हैं। वे निर्णय ऊपर कागज के लेबल की तरह चिपके रह जाएंगे और आप झूठे आदमी हो जाएंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन निकल रहा है अपने घोड़े पर बैठ कर। एक मकान से रोने की आवाज सुनाई पड़ती है। कोई रात के बारह बजे हैं। तो रुक जाता है दयावश; भीतर जाता है। एक नग्न स्त्री बिस्तर पर बांध दी गई है। किसी ने बुरी तरह उसे सताया है। शरीर पर चोट के निशान हैं, और वह स्त्री रो रही है। वह नसरुद्दीन को देख कर कहती है कि बड़ी कृपा की, आप आ गए। मुझे मुक्त करें। डाकुओं ने हमला किया। उन्होंने मेरे पति को बेहोश कर दिया है। मेरे साथ व्यभिचार किया है, और मेरे पति को बेहोश हालत में घसीट करके घर के बाहर ले गए हैं। पास-पड़ोस में कोई भी नहीं है। लोग किसी निकट के मेले में चले गए हैं। हम अकेले हैं। मुझे बचाओ, बड़ी कृपा कि तुम आ गए।

नसरुद्दीन को आंसू आ जाते हैं दया से। उसे बड़ी पीड़ा होती है। लेकिन बजाय स्त्री के बंधन खोलने के, वह अपने कपड़े उतारना शुरू कर देता है। वह स्त्री कहती है, "यह आप क्या कर रहे हैं?" नसरुद्दीन कहता है कि "माफ करें--एक्सक्यूज मी, लेडी! बट दिस डे इज नॉट लकी फॉर यू--आज का दिन तुम्हारे लिए सौभाग्यपूर्ण नहीं है। मैं तुम्हें बचाना चाहता हूं, लेकिन बचा नहीं सकता हूं!"

सारी दया, सारे ब्रह्मचर्य, सारे शास्त्र, सारे उपदेश ऊपर रह जाते हैं। अवसर मिले आपको, तो आप सबको अलग रख कर अपनी वासना को पूरा कर लेंगे। अवसर न मिले तो आप सिद्धांतों की बातें करते रह सकते हैं। सोचें, एक सुंदर युवती नग्न पड़ी हो, आस-पास कोई भी नहीं, कोई खतरा नहीं, पति को डाकू उठा कर ले गए हैं बहुत कठिन हो जाएगा!

शायद आपने सुना हो कि मिश्र की खूबसूरत महारानी क्लियोपैट्रा जब मर गई, तो उसकी कब्र से उसकी लाश चुरा ली गई और तीन दिन बाद लाश मिली। और चिकित्सकों ने कहा कि मुर्दा लाश के साथ अनेक लोगों ने संभोग किया है।

मरी हुई लाश के साथ! और निश्चित ही ये कोई साधारण जन नहीं हो सकते थे जिन्होंने क्लियोपैट्रा की लाश चुराई होगी। क्योंकि क्लियोपैट्रा की लाश पर भयंकर पहरा था। ये जरूर मंत्री, वजीर, राजा के निकट के लोग, राजा के मित्र, शाही महल से संबंधित लोग, सेनापति इसी तरह के लोग थे। क्योंकि क्लियोपैट्रा की लाश तक भी पहुंचना साधारण आदमी के लिए आसान नहीं था। और चिकित्सकों ने कहा कि अनेक लोगों ने संभोग किया है। तीन दिन के बाद लाश वापस मिली।

आदमी की वासना कहां तक जा सकती है, कहना बहुत मुश्किल है। एकदम कठिन है। और महावीर कहते हैं, ब्राह्मण वही है, जो कामवासना के ऊपर उठ गया हो। जिसे किसी तरह की वासना न पकड़ती हो। क्या यह संभव है? संभव है असंभव जैसा दिखता है, लेकिन संभव है। असंभव इसलिए दिखता है कि हमें ब्रह्मचर्य के आनंद का कोई भी अनुभव नहीं है। हमें सिर्फ कामवासना से मिलने वाला जो क्षण भर का सुख है सुख भी कहना शायद ठीक नहीं, क्षणभर की जो राहत है, क्षणभर के लिए हमारे शरीर से जैसे बोझ उतर जाता है।

बायोलाजिस्ट कहते हैं कि कामसंभोग छींक से ज्यादा मूल्यवान नहीं है। जैसे छींक बेचैन करती है और नासापुट परेशान होने लगते हैं, और लगता है किसी तरह छींक निकल जाए; तो हलकापन आ जाता है। ठीक करीब-करीब साधारण कामवासना छींक से ज्यादा राहत नहीं देती है। बायोलाजिस्ट कहते हैं जननेंद्रिय की छींक-शक्ति इकट्ठी हो जाती है भोजन से, श्रम से; उससे हलके होना जरूरी है। इसलिए वे कहते हैं, कोई सुख तो

उसमें नहीं है, लेकिन एक बोझ उतर जाता है। जैसे सिर पर किसी ने बोझ रख दिया हो और फिर उतार कर आपको अच्छा लगता है। कितनी देर अच्छा लगता है? जितनी देर तक बोझ की याद रहती है। बोझ भूल जाता है, अच्छा लगना भी भूल जाता है।

यह जो कामवासना जिसका हम बोझ उतारने के लिए उपयोग करते रहे हैं और हमने इसके अतिरिक्त कोई आनंद नहीं जाना है, छोड़ना मुश्किल मालूम पड़ती है। क्योंकि जब बोझ घना होगा, तब हम क्या करेंगे? और आज की सदी में तो और भी मुश्किल मालूम पड़ती है, क्योंकि पूरी सदी के वैज्ञानिक यह समझा रहे हैं लोगों को कि छोड़ने का न तो कोई उपाय है कामवासना, न छोड़ने की कोई जरूरत है। न केवल यह समझा रहे हैं, बल्कि यह भी समझा रहे हैं कि जो छोड़ता है वह नासमझ है, रुग्ण हो जाएगा; जो नहीं छोड़ता, वह स्वस्थ है।

शायद आप आधुनिक साहित्य से जरा भी परिचित नहीं होंगे। क्योंकि भारत करीब-करीब दो-तीन सौ साल पीछे की हालतों में मन से भी जीता है। लेकिन अभी सौ वर्षों में पश्चिम में ऐसा साहित्य निर्मित हुआ है जिसका वैज्ञानिक समर्थन है। जो कहता है कि नियमित कामवासना में जाना आदमी के स्वस्थ होने के लिए जरूरी है। जो आदमी नहीं जाएगा नियमित कामवासना में, वह अस्वस्थ हो जाएगा।

वैज्ञानिकों की खोजें समझा रही हैं आदमी को कि कामवासना मनुष्य का चरम अर्थ है; उसके आगे न कोई अर्थ है, न कोई प्रयोजन है, न कोई आनंद है। धर्म की बातचीत सब बकवास है। आदमी एक पशु है और पशु से ज्यादा होने की कामना ही सिर्फ भ्रम है, एक सपना है।

और बड़े बेहूदे प्रयोग भी विज्ञान के नाम पर चल रहे हैं। अमरीका में सेक्स लैब बनाए गए हैं, जहां मनुष्य की कामवासना का वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है; जो कि बड़ा अजीब और बड़ा अमानवीय है; जिसको हम सोच भी नहीं सकते। एक प्रयोगशाला में सात सौ स्त्री-पुरुषों ने वैज्ञानिकों के सामने, कैमरों के प्रकाश के सामने फिल्में ली जा रही हैं, चित्र उतारे जा रहे हैं, थर्मामीटर जांच कर रहे हैं, पुरुष की इंद्रिय में क्या घटनाएं घट रही हैं, उनका रिकार्ड लिया जा रहा है, स्त्री की योनि में भीतर क्या शारीरिक घटनाएं हो रही हैं, उनका रिकार्ड लिया जा रहा है। पच्चीसों यंत्र लगे हुए हैं, पच्चीसों लोग खड़े हुए हैं।

सात सौ लोगों ने इस समूह के सामने संभोग करके दिखाया ताकि अध्ययन किया जा सके। अध्ययन हुआ भी और कीमती नतीजे भी हाथ आए। लेकिन मेरा मानना है कि जो दो व्यक्ति पचास लोगों के सामने मंच पर संभोग कर सकते हैं इतने यांत्रिक व्यवस्था और आयोजन के बीच उनका संभोग यांत्रिक होगा, उसमें से मनुष्य तो विदा हो गया। वह सिर्फ दो शरीरों का संभोग होगा, और वह भी एकदम यांत्रिक। और वे मनुष्य भी ऐसे होने चाहिए, जिनकी चेतना करीब-करीब मर चुकी है। अन्यथा, सहज ही आदमी प्रेम में प्राइव्सी खोजता है; एकांत खोजता है; क्योंकि प्रेम इतनी एकांत की घटना है, दो व्यक्तियों के बीच का इतना निजी संबंध है कि कोई तीसरा उसे न देखे। लेकिन जब आदमी रुग्ण हो जाता है, तो वह चाहता है कि कोई तीसरा देखे।

ये जो सात सौ लोग जो स्वेच्छा से, वालेंटियर किए और जिन्होंने संभोग करके दिखाया प्रयोगशाला में, ये जरूर रुग्ण रहे होंगे। और ये ही रुग्ण रहे हों यह भी नहीं, है जो लोग चित्र लेने को खड़े हैं, जांचने को खड़े हैं, इनके मन का भी ठीक से परिक्षण किया जाए तो ये भी रुग्ण हैं अन्यथा दूसरे को काम-संभोग में देखने की वासना, देखने की इच्छा, देखने के लिए बहाना खोजना स्वस्थ मन का लक्षण नहीं हो सकता।

और जो परिणाम आए, वे स्वाभाविक रूप से भौतिक हैं। तो यंत्र की तरह सारी बात तय कर दी गई कि क्या-क्या घटना घटती है शरीर में। आत्मा का कोई संबंध नहीं है। कामवासना का कोई संबंध मनुष्य से नहीं है, दो शरीरों के बीच शक्तियों का आदान-प्रदान है, और वह भी राहत के लिए है। और यह राहत वैज्ञानिक समझा रहे हैं कि बिल्कुल जरूरी है। और जो व्यक्ति इस राहत से अपने को रोकेगा, वह रुग्ण हो जाएगा।

उनकी बात में थोड़ी सच्चाई है। अगर कोई सिर्फ रोकेगा, तो रुग्ण हो जाएगा। उनकी बात में झूठ भी है। कोई अगर सिर्फ भोगता ही चला जाएगा, तो भी नष्ट हो जाएगा।

पूरब की दृष्टि न तो भोग और न दमन, वरन दोनों के ऊपर उठने की है ताकि चेतना शरीर को अपने नीचे पा सके। शरीर की जो पकड़ चेतना के ऊपर है, गर्दन पर है चेतना के, वह छूट जाए। मालिक हो सके चेतना, और शरीर उसकी छाया रह जाए।

कामवासना में जब भी आप डूबते हैं, तब शरीर मालिक हो जाता है और आत्मा उसकी छाया रह जाती है, उसके पीछे सरकती है। बहुत बार तो आप नहीं भी चाहते तो भी कामवासना में डूबते हैं। तब आपकी आत्मा का कोई मूल्य नहीं रह जाता। तब उसकी कोई सुनवाई नहीं रह जाती। तब शरीर इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि आत्मा को दबा देता है; उसकी छाती पर बैठ जाता है।

महावीर कहते हैं: हम उसे ब्राह्मण कहते हैं, जो मैथुन की समस्त कामना के पार और ऊपर हो गया है। यह हुआ जा सकता है; दमन से नहीं। लेकिन महावीर के साधु भी दमन ही कर रहे हैं। क्योंकि दमन आसान है; सुगम है। साक्षीभाव बहुत कठिन है, बहुत दुर्गम है।

वासना जब उठे, तब उससे दूर खड़े रहना और तादात्म्य को तोड़ लेना। वासना को उठने देना। न तो उसे बाहर किसी पर प्रकट करने जाना, और न उसे भीतर दबाना। निष्पक्ष खड़े रहना भीतर और जो हो रहा है, उसे देखते रहना, और होने देना भीतर जो हो रहा है। लेकिन दूर खड़े होकर देखने की क्षमता विकसित करना। जितना डिस्टेंस, जितना फासला आप में और आपकी वासना के धुएं में हो जाए, उतने आप मालिक होते जाएंगे। और जैसे-जैसे दूरी बढ़ेगी, वैसे-वैसे आप चकित होंगे कि एक नये आनंद की धुन बजने लगी, जिससे आप अपरिचित हैं।

यह आप ठीक संभोग करते क्षण में भी दूरी रख सकते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। एक महिला ने मुझे आकर कहा कि साक्षीभाव मैं रखना चाहती हूं, लेकिन पति हैं। और अगर मैं संभोग में नहीं उतरती हूं, तो पति दुखी और परेशान और पीड़ित होते हैं, चिड़चिड़े हो जाते हैं; झगड़ा करते हैं, उपद्रव खड़ा करते हैं। तो मुझे संभोग में उतरना तो मेरा कर्तव्य है।

मैंने कहा: "तू संभोग में उतर, लेकिन संभोग के क्षण में भी दूरी बनाए रखना, जैसे संभोग तुझसे नहीं हो रहा है, सिर्फ शरीर से हो रहा है और तू पार होकर दूर रहना। जितनी तू शांत रहेगी, शांति के लक्षण साफ हो जाएंगे, तेरी श्वास में फर्क नहीं होगा। पति संभोग करता रहेगा, उसकी श्वास में फर्क हो जाएगा। श्वास तेज चलने लगेगी। श्वास सीमा के बाहर हो जाएगी। लेकिन तेरी श्वास शांत बनी रहे।"

"श्वास पर ध्यान रखना और अपने को दूर रखना, और देखना कि पति जैसे किसी और के साथ संभोग कर रहा है।"

तो ठीक संभोग के क्षण में भी साक्षीभाव साधा जा सकता है। और एक बार इसका ख्याल आ जाए कि मैं शरीर से दूर हूं, शरीर के साथ क्या हो रहा है वह मेरे साथ नहीं हो रहा है, शरीर में क्या हो रहा है वह मुझमें नहीं हो रहा है, ऐसी प्रतीति सघन होने लगे, तो एक नई धुन बजनी शुरू हो जाती है। क्योंकि जैसे ही हम शरीर से दूर हटते हैं, वैसे ही हम आत्मा के करीब आते हैं।

आनंद का अर्थ है आत्मा के करीब आने से जो सुवास मिलती है, जो हलका शीतल हवा का झोंका आता है, वह जो गंध आती है अनूठी, जिसे कभी हमने जाना नहीं। और एक दफा उसका हमें स्वाद पकड़ ले, तो हम शरीर की तरफ पीठ करके उसकी तरफ दौड़ने लगते हैं।

बड़ा आनंद छोटे आनंद से निश्चित ही मुक्ति दिला देता है। और कोई उपाय भी नहीं है। और जब तक आपको बड़े आनंद का पता नहीं है, तब तक छोटे, क्षुद्र आनंद से छूटने में आप व्यर्थ ही परेशान होंगे। कुछ होगा नहीं। बड़े आनंद को जन्मा लें, छोटे आनंद से हाथ छूटने लगता है। आप पीछे हटने लगते हैं।

ठीक गृहस्थ रह कर भी। जरूरी नहीं है कि आप भाग कर जंगल में जाएं। जंगल में भागना तो तभी जरूरी मालूम पड़ता है, जब दमन करना हो आपको। सिर्फ साक्षीभाव जगाना हो, तो घर में रह कर भी हो सकता है। पति-पत्नी के बीच भी हो सकता है। कोई अड़चन नहीं है। एक बार ठीक से कला आ जानी चाहिए। और कला ऐसी है कि आप प्रयोग करें तो आ जाती है। जैसे कोई आपसे पूछे कि साइकिल चलाना है, क्या करें? तो आप कहेंगे चलाना शुरू करो! गिरोगे दो-चार बार।

कोई बताने का उपाय नहीं है। साइकिल जो चलाना जानता है, वह भी नहीं बता सकता है कि कैसे। वह भी लिख कर नहीं दे सकता कि यह-यह नियम है; इस-इस तरह करोगे तो साइकिल चल जाएगी। वह भी इतना ही कह सकता है कि तुम साइकिल चलाओ। क्योंकि सच्चाई यह है कि साइकिल चलाने में सीखना साइकिल चलाना नहीं होता; साइकिल चलाने में सीखना होता है बैलेंस, संतुलन। वह भीतरी घटना है। साइकिल से उसका कोई लेना-देना नहीं है। साइकिल तो सिर्फ बहाना है। उसके ऊपर आप संतुलित होना सीखते हैं। वह संतुलित होना तो आप प्रयोग करेंगे, गिरेंगे, अनुभव करेंगे कि बाएं ज्यादा झुक जाता हूं तो गिर जाता हूं, दाएं ज्यादा झुक जाता हूं तो गिर जाता हूं; अनुभव करेंगे कि अगर पैडल की गति थोड़ी धीमी हो जाती है तो साइकिल गिर जाती है, अगर बहुत ज्यादा हो जाती है तो गिरने का डर है।

तो धीरे-धीरे प्रयोग से आप अनुभव कर लेंगे दो-चार दिन में कि वह बिंदु कहां है, जहां साइकिल सधी रहती है और गिरती नहीं वह आपका भीतरी अनुभव आप दूसरे को भी बता नहीं सकेंगे। आप निकाल कर कह नहीं सकते कि बस, यह सूत्र है; तुम भी ऐसा करो।

साक्षीभाव एक आंतरिक संतुलन है। शरीर से दूर हटना एक भीतरी घटना है। उसे आप प्रयोग करेंगे तो वह आ जाएगा। वह करीब-करीब तैरने की तरह है। जो तैरना सिखाते हैं, वे भलीभांति जानते हैं कि कुछ करना नहीं होता।

मुल्ला नसरुद्दीन पूछने गया है किसी से कि एक युवती को मुझे तैरना सिखाना है। तो जो तैराक था, जो तैरना सिखाने वाला मास्टर था, गुरु था, उसने बताया कि किस तरह उसके कमर में हाथ डालना, किस तरह उसे पानी में उतारना सम्हाल कर। तभी नसरुद्दीन ने कहा कि इतने विस्तार में मत जाओ, वह मेरी बहन है। तो उस ने कहा कि फिर हाथ-वाथ डालने की कोई जरूरत नहीं, सीधा पानी में उठा कर उसे फेंक देना! असली बात तो पानी में फेंकना है। अपने आप तड़फड़ाएगी। जीवन अपने बचने की कोशिश करेगा। वह जो तड़फड़ाना है, वही तैरना हो जाएगा दो-चार दिन के अभ्यास से। बस, तुम इतना ही ख्याल रखना कि कहीं वह डूब कर खत्म ही न हो जाए। बस, बचाने का ख्याल रखना, सिखाने की कोई जरूरत नहीं है।

जीवन खुद ही तड़पता है बचने के लिए; हाथ-पैर फेंकना शुरू करता है। तैरने वाले में गैर-तैरने वाले में ज्यादा फर्क नहीं है। दोनों हाथ-पैर फेंकते हैं। एक व्यवस्था से फेंकता है, दूसरा गैर-व्यवस्था से फेंकता है। बस, और कोई अंतर नहीं है। एक निर्भय होकर फेंकता है, एक भयभीत होकर फेंकता है। भय के कारण परेशानी होती है। इसलिए ठीक तैराक तो बिना हाथ-पैर चलाए भी नदी में पड़ा रह सकता है क्योंकि निर्भय हो गया है। वह जानता है कि तैर सकता हूं, कोई डर नहीं है। बिना हाथ-पैर चलाए भी वह नदी में तैर जाता है।

आपको पता है कि जिंदा आदमी डूब जाता है, मुर्दा आदमी कभी नहीं डूबता। जिंदा मर जाता है पानी में डूब कर, मुर्दा ऊपर आकर तैरने लगता है। मुर्दा को कोई कला आती है, जो जिंदा को भी नहीं आती। मुर्दा कोई सूत्र जानता है। वह सूत्र है अभय। भय का कोई कारण नहीं है। जो होना था हो चुका। वह ऊपर तैरता रहता है। मुर्दे को कोई पानी डुबा नहीं पाता। तैरने वाला उतनी ही कला सीख रहा है, जो मुर्दा सीख लेता है अपने आप।

तैरने या साइकिल चलाने जैसा है साक्षीभाव। घटना घटने दें और आप देखने वाले हो जाएं, करने वाले न रहें। यह मूल सूत्र है।

कर्ता न रहें, द्रष्टा हो जाएं। इसे थोड़ा उपयोग करें। जरूरी नहीं कि सीधा संभोग से ही शुरू करें। इसे कहीं भी उपयोग करें। भोजन करते वक्त कर्ता न बनें, साक्षी हो जाएं। रास्ते पर चलते वक्त चलने वाले न बनें, शरीर चल रहा है, आप देख रहे हैं। इसे जीवन के सब पहलुओं पर फैलाएं, और धीरे-धीरे साक्षी को सम्हालें। जैसे-जैसे साक्षी भीतर सम्मिलता है, एक नये जीवन का उदय होता है। आपके शरीर में पंख लग जाते हैं। अब आप आकाश में उड़ सकते हैं। अब परमात्मा दूर नहीं है। और जैसे-जैसे दूरी बढ़ती है शरीर से, वैसे-वैसे नये सुख के स्रोत टूटते हैं, बुद्ध ने कहा है महासुख। और जैसे ही उस स्रोत के झरने टूटने लगते हैं, फिर शरीर के सुखों में कोई अर्थ नहीं रह जाता है; मूढ़ता हो जाती है।

ध्यान रहे, जब तक कामवासना में अर्थ है, तब तक आप छुटकारा नहीं पा सकेंगे, तब तक ब्राह्मण का जन्म नहीं होगा। जिस दिन कामवासना में अर्थ ही नहीं रह जाता है, कामवासना से भी बड़े आनंद का झरना फूट पड़ता है और कामवासना सिर्फ मूढ़ता रह जाती है, नासमझी रह जाती है; ठीक वैसे ही जैसे आपके हाथ में हीरा है, और कोई आपको गाली दे दे, तो आप हीरा उठा कर पत्थर की तरह फेंक नहीं देंगे। आप कहेंगे, पागलपन है। हीरा बहुत कीमती है, इस आदमी को मारने की बजाय। लेकिन आपको अगर पता न हो और आप समझें कि यह पत्थर है, तो बराबर मार देंगे; हीरा है, तो नहीं फेंक कर मारेंगे।

कामवासना में जिस शक्ति को आप फेंक रहे हैं अपने बाहर, आपको पता नहीं है वह क्या है। वह जीवन की धारा है। वह जीवन का परम गुह्य रहस्य है। एक बार आपको पता चल जाए कि यह धारा भीतर की तरफ बह सकती है और सुखों के महल खुल जाते हैं, और नये द्वार खुलते ही चले जाते हैं। फूल खिलते ही चले जाते हैं। वीणा का संगीत बढ़ता ही चला जाता है।

लेकिन यह आपको अपने अनुभव से जब आए! महावीर के कहने से कुछ भी न होगा। मेरे कहने से कुछ भी न होगा। किसी के कहने से कुछ नहीं हो सकता। इतना ही हो सकता है कि स्मरण आ जाए कि यह भी एक संभावना है, बस। लेकिन जब आप प्रयोग करें!

प्रयोग बहुत से लोग करते हैं, लेकिन उनको ठीक प्रक्रिया का ख्याल न होने से दमन में उलझ जाते हैं; शरीर से लड़ने लगते हैं। शरीर से लड़ना नहीं है, शरीर से दूर होना है; क्योंकि लड़ने में भी आप शरीर के करीब ही होते हैं। भोगने में भी करीब होते हैं, लड़ने में भी करीब होते हैं। भोगने में भी शरीर से जुड़े होते हैं, लड़ने में भी शरीर से जुड़े होते हैं। और दोनों हालत में शरीर का मूल्य आप से ज्यादा होता है। उस मूल्य को कम करना है। जो शरीर से लड़ रहा है उसका मूल्य कम नहीं होता है। देखें साधुओं को! उनके शरीर का मूल्य और बढ़ जाता है--कोई छू न ले, वे किसी को छू न लें। घबड़ाहट बढ़ जाती है। शरीर से इतनी घबड़ाहट का मतलब है कि और करीब हो गए शरीर के।

मेरे पास कुछ मित्र आते हैं। वे कहते हैं कि कुछ जैन साधु यहां सुनने आना चाहते हैं, बैठने का अलग इंतजाम करना पड़ेगा। क्या जरूरत है अलग इंतजाम करने की? मैंने कहा कि मंच पर बैठ जाएंगे। पर वे कहते हैं वहां कई स्त्रियां बैठती हैं। अब स्त्रियों से साधुओं को क्या लेना-देना? जब स्त्रियां नहीं डर रही हैं साधुओं से, तो साधु क्यों डर रहे हैं स्त्रियों से? ये साधु तो स्त्रियों से भी कमजोर और स्त्रीण मालूम पड़ते हैं। इतनी कमजोरी का मतलब है कि शरीर के और करीब आ गए--कि दूर गए? अगर दूर जाएं तो स्त्री और पुरुष के शरीर में फर्क कम हो जाना चाहिए; बढ़ना नहीं चाहिए। तब शरीर ही हैं दोनों, फर्क क्या है? स्त्री और पुरुष के शरीर में साधु को क्या फर्क है? क्यों होना चाहिए फर्क? फर्क पैदा होता है वासना से।

एक अजायबघर में एक हिपोपोटेमस पानी में तैर रहा है। दूसरा हिपोपोटेमस भी उसी के पास विश्राम कर रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन गया है देखने। तो अजायबघर के आदमी से पूछता है कि इसमें कौन स्त्री है और कौन पुरुष? हिपोपोटेमस, इसमें कौन स्त्री और कौन पुरुष? वह अजायबघर का आदमी कहता है कि हमने कभी

फिकर नहीं की। यह तो हिपोपोटेमस को पता लगाने की बात है। अपने को करना भी क्या है? तुम पहले आदमी हो, जो इस चिंता में पड़े हो!

निश्चित ही, आदमी को क्या मतलब है कि कौन स्त्री है और कौन पुरुष है; कौन मादा है, कौन नर है। मादा और नर की उत्सुकता तो वासना से पैदा होती है। इसलिए आप दुनिया भर की मादाओं को देखते रहें, कोई रस नहीं मालूम पड़ता, लेकिन मनुष्य की मादा में रस मालूम पड़ता है।

आप यह मत सोचना कि ऐसा ही दुनिया के जानवर मनुष्य की मादाओं में रस लेते हैं। उन्हें कोई मतलब नहीं है। एक हाथी चला जा रहा है, कितनी ही सुंदर स्त्री हो, क्या मतलब है? क्या प्रयोजन? प्रयोजन और अर्थ तो आता है भीतर की वासना से, और भीतर की वासना हो जितनी प्रगाढ़, उतना ही विपरीत यौन का व्यक्ति मूल्यवान होता चला जाता है। जिनकी कामवासना प्रगाढ़ है, अगर वे पुरुष हैं, तो स्त्री के अतिरिक्त उनका कोई परमात्मा नहीं; अगर वे स्त्री हैं तो पुरुष के अतिरिक्त उनका कोई परमात्मा नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र पंडित रामचरणदास के साथ बैठा हुआ है। चर्चा चल रही है। दोनों शराब पी रहे हैं। जब नशा थोड़ा गहरा हो गया, तो पंडित रामचरणदास ने कहा कि "नसरुद्दीन, अगर तुम्हें एक एकांत निर्जन द्वीप पर महीने भर अटक जाना पड़े, नाव डूब जाए, कोई कारण हो जाए, या तुम्हें भेज दिया जाए, तो तुम अपने साथ क्या ले जाना पसंद करोगे? श्रेष्ठतम चीज कौन सी है, जिसे तुम अपने साथ ले जाना पसंद करोगे? वॉट डू यू कनसीडर दि बेस्ट?" नसरुद्दीन ने कहा: "साफ है कि मैं पूरी मधुशाला, पूरे गांव की मधुशाला अपने साथ ले जाना पसंद करूंगा।"

"और पंडित जी, आप अगर ऐसी हालत में उलझ जाएं, नसरुद्दीन ने पूछा, तो आप क्या करेंगे? आप क्या ले जाना पसंद करेंगे?" पंडित रामचरणदास ने थोड़ा झिझकते हुए कहा: हेमामालिनी!"

वे इतना ही कह पाए थे कि नसरुद्दीन ने जोर से घूंसा मारा टेबल पर; टेबल उलट दी और कहा कि "गलत! स्टिक टु दि टर्म्स। यू सेड दि बेस्ट, नॉट दि वेरी बेस्ट। शर्त पर बंधे रहो। तुमने कहा था श्रेष्ठ, सबसे श्रेष्ठ नहीं, नहीं तो हम ही हेमामालिनी को न ले जायें!"

आदमी का मन कामवासना से भरा हो, तो स्त्री परमात्मा है, पुरुष परमात्मा है। सारा धर्म वहीं समाप्त हो जाता है। कामवासना गहरी हो, तो कामवासना के अतिरिक्त कोई धर्म नहीं है। बाकी सब धर्म बहाना है, झूठ है। धर्म का जन्म तो तभी शुरू होता है, जब हम विपरीत की वासना से हटना शुरू होते हैं। और यह हटाव ब्राह्मणत्व है।

साक्षीभाव से, शरीर से फासला बढ़ने से जैसे ही, जितने ही आप अपने शरीर से दूर होंगे, उतने ही आप दूसरे के शरीर से दूर हो जाएंगे। इसे आप गणित समझें भीतर का। जितना आपको दूसरे का शरीर आकर्षक मालूम होता है, उसका अर्थ है कि अपने शरीर से उतने ही जुड़े हैं; क्योंकि आपके शरीर को ही दूसरे का शरीर आकर्षक मालूम होता है, आत्मा को नहीं। आत्मा को शरीर से कोई संबंध नहीं है। जैसे-जैसे आप पीछे हटते हैं अपने शरीर से, वैसे-वैसे दूसरे के शरीर भी खोने लगते हैं। इस कामवासना के धुएं के खो जाने पर जो प्रकाश जन्मता है, इस अंधेरे से हट कर, शरीर के अंधेपन और अंधेरे से हट कर जो रोशनी उपलब्ध होती है, महावीर कहते हैं, वही ब्राह्मणत्व है।

"जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो संसार में रह कर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"

इसमें कई बातें समझने जैसी हैं। "जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता!" आदमी पैदा तो वासना में ही हुआ है। कामवासना स्रोत है जीवन का। उसकी निंदा की भी कोई जरूरत नहीं है। निंदा वे ही करते हैं, जो उससे परेशान हैं। उससे लड़ना पागलपन है, क्योंकि जिससे आप पैदा हुए हैं, उससे लड़

नहीं सकते। उससे लड़ कर क्या हाथ लगेगा? और अतीत से लड़ने की जरूरत क्या है? भविष्य की चिंता करनी चाहिए। जो पीछे छूट गया है, उससे लड़ने की जरूरत क्या है? जो आगे हो सकता है, उसके होने का उपाय जुटाना चाहिए। महावीर कहते हैं, जैसे कमल जल में ही पैदा होता है, फिर भी जल उसे छूता नहीं। ऐसे ही चेतना शरीर में है, शरीर में ही रहती है, लेकिन शरीर उसे छूता नहीं।

चेतना का जन्म वासना में हुआ है। उसके चारों तरफ वासना का जल है। लेकिन कमल की तरह चेतना अलग हो जाती है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। यह जो कमल की तरह अलग हो जाना है, यह कई तरह से सोचने-जैसा है, क्योंकि महावीर कहते हैं, उसी प्रकार जो संसार में रह कर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। संसार से भागने की सलाह नहीं है, संसार में रह कर भी, क्योंकि संसार से भागने का तो मतलब हुआ कि कमल पानी से डर कर दूर हट जाए। डर ही बताता है कि कमल को भय था कि पानी छू सकता था। भय खबर देता है। लेकिन कमल निर्भय है। वह जानता है कि पानी छू नहीं सकता, तो पानी में रहे कि पानी के बाहर रहे, कोई भेद नहीं है।

संसार को छोड़ कर भागने का मतलब एक ही हो सकता है सौ में निन्यानबे मौके पर। एक मौके को मैं छोड़ देता हूं। उसकी मैं पीछे बात करूंगा। उस एक मौके पर महावीर, बुद्ध और शंकर आते हैं। सौ में निन्यानबे मौके पर संसार से भागने का एक ही अर्थ है कि हम इतने डरे हुए हैं कि संसार में रह कर तो हमारा कमल पानी को छूएगा ही। कोई उपाय हमें दिखाई नहीं पड़ता। वहां तो हम उलझ ही जाएंगे। तो अवसर ही न रहने दें, बाहर की परिस्थिति ही बदल दें; ऐसी जगह चले जाएं, जहां कोई मौका ही न हो।

लेकिन ध्यान रहे, मौका बाहर से नहीं पैदा होता। बाहर तो खूंटियां हैं। वासना भीतर है। आप जंगल में चले जाएंगे, दो पक्षियों को संभोग करते देखेंगे; कठिनाई शुरू हो जाएगी। आप कहां भागेंगे, ऐसी जगह चले जाएंगे, जहां पक्षी नहीं, वृक्ष नहीं, पौधे नहीं; क्योंकि सब में वासना है। फूल खिल रहा है कामवासना से; तितलियां उड़ रही हैं कामवासना से; हवाओं में सुगंध चल रही है फूलों की कामवासना से; क्योंकि उस सुगंध के साथ बीजकण जा रहे हैं। सारा जगत कामवासना है। भाग कर जाएंगे कहां? फिर भी, समझ लें कि भाग गए; एक गुहा में छिप गए, पर अपने से भाग कर कहां जाएंगे? वह जो भीतर कामवासना है, वह तो साथ है; तो आटोइरोटिक हो जाएंगे, खुद के ही साथ वासना जगने लगेगी।

मनोवैज्ञानिकों को शक है इस बात का कि जहां-जहां हम पुरुषों को स्त्रियों से दूर करते हैं, वहां-वहां मस्टरबेशन शुरू हो जाता है, हस्तमैथुन शुरू हो जाता है। ऐसी घटना बहुत जगह घटी है। पहली दफा जब अफ्रीका के एक कबीले में ईसाई मिशनरी पहुंचे, और ईसाई मिशनरी जहां पहुंचे हैं, वहां उपद्रव पहुंचा है; क्योंकि उनकी धारणाएं अत्यंत कुंद हैं, और अत्यंत उथली हैं। जब उस कबीले में ईसाई मिशनरी पहुंचे, तो उन्होंने तत्काल। कुछ लोग हैं जो दूसरों को सुधारने में ही लगे रहते हैं बिना इसकी फिकर किए कि वे दूसरे सुधारने की अवस्था में हैं या हम सुधारने की अवस्था में हैं।

उस गांव में लड़के-लड़कियां सब साथ खेलते थे, कुंदते थे। ग्रामीण आदिवासी कबीला था, और बहुत से आदिवासी कबीलों में, गांव के बीच में, एक भवन होता है जो युवकों का भवन होता है, "यूथ हाल।" वहां लड़के और लड़कियां जब जवान हो जाते हैं, तब वे सब वहीं सोते हैं, सब साथ। उस कबीले को मस्टरबेशन का, हस्तमैथुन का पता ही नहीं था कि कोई आदमी हस्तमैथुन भी कहीं करता है, या स्त्रियां करती हैं। लेकिन जाकर ईसाई पादरियों ने कहा कि यह तो अनाचार हो रहा है, लड़के और लड़कियां साथ! यह अनाचार बंद करना पड़ेगा! उन्होंने हॉस्टल अलग-अलग बना दिए; लड़के और लड़कियों को अलग-अलग छांट कर रख दिया; बीच में दीवाल खड़ी कर दी। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जिस दिन दीवाल खड़ी की गई, उसी दिन हस्तमैथुन उस कबीले में प्रविष्ट हुआ।

आटोइरोटिक हो जाता है आदमी। तो आप भाग कर जाएंगे कहां? आप अपनी वासना को अपने हाथों ही पूरा करने लगेंगे। और अगर आपने अपने हाथ भी बांध लिए, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि स्वप्न में आपकी वासना आपको पकड़ेगी। स्वप्न में स्वलन हो जाएगा। भाग नहीं सकते संसार से, क्योंकि संसार भीतर है। हां, भीतर से संसार विसर्जित कर दिया जाए तो संसार में रह कर भी आदमी संन्यस्त हो जाता है।

महावीर विरोध में नहीं हैं कि कोई संसार न छोड़े। वे कहते हैं, संसार छोड़े लेकिन तभी छोड़े, जब संसार छूट चुका हो। इसे थोड़ा समझ लें। कच्चा न छोड़े, क्योंकि कच्चा आदमी दिक्कत में पड़ेगा। वह भाग कर जाएगा, मुसीबत खड़ी करेगा। नये रोग, नई विकृतियां, परवरशंस खड़े हो जाएंगे। संसार छोड़े तभी, जब पक्का अनुभव हो जाए कि संसार भीतर से छूट चुका है। अब यहां रहने की कोई जरूरत नहीं। यह परीक्षा पूरी हो गई। यह विद्यालय की शिक्षा पूर्ण हो चुकी।

तो एक तो वे हैं, जो विद्यालय से भाग खड़े होते हैं कि परीक्षा न देनी पड़े, निन्यानबे प्रतिशत, और एक वे हैं, जो विद्यालय की सब परीक्षाएं पार कर जाते हैं, और विद्यालय उनसे कहता है कि अब आप कृपा करके जाइए; अब यहां होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

महावीर और बुद्ध इस संसार के विद्यालय को पास करके छोड़ते हैं। यह व्यर्थ हो जाता है इसलिए छोड़ते हैं। जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता है, कच्चा पत्ता उस शान से नहीं गिर सकता, क्योंकि कच्चा पत्ता गिरेगा तो पीड़ा होगी; पत्ते को भी होगी, वृक्ष को भी होगी, घाव भी छूट जाएगा। सूखा पत्ता टूटता है; न पत्ते को पता चलता है, न वृक्ष को खबर होती है कि कब छूट गया, न कोई घाव होता है।

महावीर कहते हैं: ब्राह्मण वह है जो संसार में रह कर कामवासना से ऐसे अलिस हो गया, जैसे कमल का पत्ता पानी से अलग है। ऐसा ब्राह्मण संन्यस्त हो तो संन्यास में गरिमा होती है, गौरव होता है; संन्यास में एक स्वास्थ्य होता है। ऐसे संन्यास में संसार का विरोध नहीं होता, संसार का अतिक्रमण होता है, ट्रांसेंडेंस होता है। यह आदमी संसार से भयभीत होकर नहीं गया है। यह आदमी संसार को पार करके ऊपर उठ गया है। यह बियांड हो गया है। यह संसार से जरा भी भयभीत नहीं है। संसार में होने में अब कोई अर्थ नहीं रहा, इसलिए गया है।

जो भय से भागता है, उसे अर्थ अभी है। इसलिए जब भी संन्यासी को आप संसार से भयभीत देखें तो समझ लेना कि अभी यह आदमी जल्दी में चला गया, कच्चा पत्ता था, इसे अभी रुकना था। बेहतर था, अभी यह संसार में और जी लेता। एक साठ वर्ष के बूढ़े साधु ने मुझे कहा कि मैं जब नौ वर्ष का था, तब मेरे पिता ने मुझे दीक्षा दी। पिता भी साधु थे। और अक्सर पिताओं की इच्छा होती है कि जो वे हैं, वही उनके बेटे भी हो जाएं! लेकिन पिता ने संन्यास लिया भी पैंतालिस साल की उम्र में; बेटे को संन्यास दे दिया नौ साल की उम्र में। यह बेटा अब साठ साल का हो गया, लेकिन इसकी बुद्धि नौ साल से आगे नहीं बढ़ी।

बढ़ नहीं सकती। क्योंकि इसको बढ़ने का कोई मौका ही नहीं है, अवसर ही नहीं है।

साठ साल का बूढ़ा, लेकिन बुद्धि अटक कर रह गई नौ साल पर। अभी हालत इसकी वही है कि अगर इसको कुल्फी बेचने वाला दिखाई पड़ जाए तो कुल्फी खाने का मन होता है। सिनेमा घर के सामने क्यू लगा होता है, तो इसका मन होता है कि भीतर पता नहीं क्या हो रहा है; मैं भी देख लूं। स्त्री देख कर उसे बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि इस स्त्री में क्या छिपा है, जो इतना आकर्षित करती है; अपरिचित है। इसकी सारी साधना सिर्फ संघर्ष है, और अतिक्रमण कुछ भी नहीं हो रहा है। हो नहीं सकता। अनुभव अतिक्रमण लाता है।

जीवन से सस्ते छूटने का कोई उपाय नहीं है, और जो सस्ता छूटना चाहता है, वह भटकेगा बहुत बार। जीवन में शार्टकट होते ही नहीं। कोई उपाय नहीं है। यहां कोई अपवाद नहीं है। महावीर भी जन्मों-जन्मों के अनुभव के बाद संन्यस्त होते हैं। बुद्ध भी जन्मों-जन्मों के अनुभव के बाद संन्यस्त होते हैं। आप को तो पिछले जन्मों की कोई याद ही नहीं है। आपका कोई अनुभव ही नहीं बना है। अनुभव बनता तो याद होती। आपने

पिछले जन्मों में कुछ सार निचोड़ा होता जीवन से, तो वह आपके साथ होता। वह दीये की तरह आपको रोशनी करता। वह तो है नहीं। कुछ अनुभव तो इकट्ठा किया नहीं है। फूलों के साथ आप रहे हैं, लेकिन इत्र बिल्कुल नहीं निकाल पाए। इत्र साथ जाता है, फूल साथ नहीं ले जाए जा सकते। जब एक आदमी मरता है तो उस जीवन में जो उसने इत्र निकाल लिया है, एसेंस, वह उसके साथ हो जाता है। फूल ही फूल के साथ खेलता रहा है, फूल तो पीछे छूट जाते हैं। शरीर पर थोड़ी-बहुत सुगंध जो रहती है, वह भी शरीर के साथ छूट जाती है। नये जन्म में फिर से इकट्ठा करना पड़ता है। और हर जन्म में हम इकट्ठा करते हैं और खोते हैं। जब तक आप परिपक्व न हो जाएं, मैच्योरिटी न आ जाए, तब तक महावीर कहते हैं, संसार में ही अलिप्त होकर रहना ब्राह्मण होना है।

अलिप्तता ब्राह्मणत्व है।

"जो अलोलुप है, जो अनासक्त-जीवी है, जो अनगार, बिना घर-बार का है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थों के साथ आनेवाले संबंधों में अलिप्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।"

एक-एक शब्द को गौर से समझें, क्योंकि हर शब्द के साथ खतरा है कि आप गलत समझ लेंगे और गलत समझने की संभावना सदा ज्यादा है ठीक समझने की बजाय; क्योंकि हम गलत हैं। हमें एकदम से गलत चीज एकदम से समझ में आती है। वह हमारे लिए स्वाभाविक है, वह हमें ज्यादा प्राकृतिक है कि गलत हमको एकदम से समझ में आ जाए।

महावीर कहते हैं, जो अलोलुप है, जिसका लोभ चला गया है। हमें क्या समझ में आता है? हमें समझ में आता है कि धन छोड़ दो तो लोभ चला गया! धन छोड़ने से लोभ नहीं जाता है। धन पकड़ा जाता है लोभ के कारण। धन के पहले भी लोभ मौजूद रहता है, नहीं तो धन को कोई पकड़ेगा क्यों। धन आदमी इकट्ठा करता है लोभ के कारण। तो एक बात तो पक्की है कि धन के पहले लोभ था, नहीं तो धन को कोई पकड़ता क्यों। तो जो पहले था, वह धन को छोड़ने से मिट नहीं सकता। वह पीछे छिपा मौजूद रह जाएगा। धन पीछे आया है, तो धन छोड़ दो, कोई फर्क नहीं पड़ता। लोभ मौजूद रहेगा।

महावीर कहते हैं, जो अलोलुप है, और हम समझते हैं कि जो निर्धन है। तो हम समझते हैं कि साधु धन छोड़ दे तो बस साधु हो गया। धन छोड़ने से लोभ जाता होता, तो बड़ी आसान बात हो जाती। इसका तो मतलब हुआ कि वस्तुओं को छोड़ने से आत्मा बदलती है। तब तो आत्मा कमजोर है; वस्तुएं ज्यादा सबल हैं।

नहीं, वस्तुओं को छोड़ने से कुछ भी नहीं बदलता; हां, धोखा हो जाता है। अगर धन न हो, तो ऐसा लगता है कि अब मेरा कोई लोभ न रहा। और किसी को दिखाई भी नहीं पड़ता। क्योंकि जब धन नहीं है तो किसी को दिखाई भी कैसे पड़ेगा! दिखाई धन पड़ता है, लोभ तो दिखाई नहीं पड़ता। लोभ तो खुद को ही देखना पड़ता है। धन दूसरों को दिखाई पड़ता है। जो दूसरों को दिखाई पड़ता है, उसे छोड़ना बहुत आसान है। जो दूसरों को दिखाई नहीं पड़ता, मेरे भीतर छिपा है, असली सवाल वही है।

तो महावीर नहीं कहते कि निर्धन ब्राह्मण है। महावीर कहते हैं अलोलुप। ये दोनों बड़े फर्क हैं। तब यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन के बीच भी अलोलुप हो, और यह भी हो सकता है कि कोई आदमी निर्धन होकर भी लोलुप हो। लोलुपता मन की एक वृत्ति है, चीजों को पकड़ने की। लोलुपता मन की एक तरंग है। वस्तुओं से उसका संबंध नहीं है। वस्तुओं के सहारे वह फैलती है बाहर, लेकिन छिपी भीतर है। वस्तुएं हटा दें; वह भीतर जाकर सिकुड़ जाती है, लेकिन मौजूद रहती है। वह नई चीजों से जुड़ने लगती है।

तो देखें, एक लंगोटी वाला संन्यासी जिसके पास सिर्फ लंगोटी है, वह लंगोटी के प्रति भी लोलुप हो सकता है।

सुना है मैंने कि ऐसा हुआ कि एक संन्यासी बड़ी यात्रा करता था; जगह-जगह गुरुओं के पास जाता था, लेकिन कहीं उसे ज्ञान न हुआ। तो उसके अंतिम गुरु ने कहा: "हम तुझे ज्ञान न दे सकेंगे। तू बेहतर हो, जनक के

पास चला जा।" उसने कहा: "जनक मुझे क्या ज्ञान देगा, जब बड़े-बड़े त्यागी, महात्यागी ज्ञान नहीं दे सके, तो यह भोगी मुझे क्या ज्ञान देगा!" लेकिन उसके गुरु ने कहा: "हम हार गए। अब वही तुझसे जीत सकता है। तू वहीं चला जा।"

वह गया; जाकर देखा तो बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि जनक जमे थे, उनकी बैठक जमी थी। वहां पीना चल रहा था, भोजन चल रहा था, रास-रंग, नृत्य हो रहा था। उस संन्यासी ने कहा कि मैं भी कहां आ गया! भोगियों और पापियों के बीच! इस नर्क में मुझे किसलिए भेज दिया मेरे गुरु ने? लेकिन अब आ गया हूं, तो रात तो रुकना ही पड़ेगा। तो उसने सम्राट से कहा कि रात रुक जाऊं? आ तो गया। गलती तो हो गई। पूछने कुछ आया था। अब नहीं पूछूंगा। सुबह विदा हो जाऊंगा। सम्राट ने कहा कि कोई हर्ज नहीं, इतनी जल्दी निर्णय मत लो।

सुबह सम्राट उसे लेकर नदी पर स्नान करने गया, और जब वे दोनों नदी में स्नान कर रहे थे, तो सम्राट के महल में आग लग गई। भयंकर लपटें उठने लगीं। सारे गांव में कोलाहल मच गया। तो उस फकीर ने कहा कि "जनक, क्या देख रहे हो, मकान से लपटें निकल रही हैं, मकान जल रहा है!" और वह यह कह कर संन्यासी भागा वहां से। सम्राट ने कहा कि "तू कहां जा रहा है?" उसने कहा: मैं अपनी लंगोटी घाट पर छोड़ आया हूं। अगर आग बढ़ती आ गई तो लंगोटी साफ हो जाएगी।

जनक ने कहा: "महल जल रहा है; मैं नहीं जल रहा हूं, और अभी तेरी लंगोटी नहीं जल रही है, लेकिन तूने जलना शुरू कर दिया! अभी आग बहुत दूर है। जब पूरे गांव को पार करेगी, तब घाट तक आएगी, लेकिन तू जल उठा और रखा क्या है? वहां एक लंगोटी रख आया है किनारे पर!"

लोलुपता से संबंध नहीं है कि किस चीज से जुड़े; किसी भी चीज से जुड़ सकती है। और अक्सर ऐसा होता है कि धनी की लोलुपता तो फैली रहती है बहुत सी चीजों में; धन को छोड़ कर जो भाग जाते हैं, उनकी लोलुपता इंटेंस हो जाती है। थोड़ी सी चीजें रहती हैं, सारी लोलुपता उन्हीं थोड़ी सी चीजों पर लग जाती है।

तो संन्यासी का मोह नष्ट नहीं होता, सिकुड़ कर थोड़ी सी चीजों पर लग जाता है। लेकिन वह मोह वहीं खड़ा है। धन छोड़ना शर्त नहीं है, धन को पकड़ने का जो आग्रह है भीतर, उसका छूट जाना! यह कब होगा? यह कैसे होगा? धन को हम पकड़ना ही क्यों चाहते हैं? जब तक उसकी जड़ ख्याल में न आए तब तक कटेगी भी नहीं।

धन को हम इसलिए पकड़ना चाहते हैं, क्योंकि हम अपने प्रति आश्वस्त नहीं हैं। हमें भय है, कल का भरोसा नहीं है; बीमारी है, स्वास्थ्य है, मृत्यु है, आज मित्र हैं, कल मित्र न हों; आज घर है, कल घर न हो। और जिंदगी जीनी है तो आदमी धन पर भरोसा करता है। धन सुरक्षा है, सिक्युरिटी है। और जब तक आप असुरक्षित रहने को राजी नहीं हैं, तब तक आप लोलुपता के बाहर नहीं जा सकते। असुरक्षित, इनसिक्युरिटी में रहने को जो राजी है; जो कहता है, जो कल होगा, वह हम कल देखेंगे; जो आज हो रहा है, वह आज के लिए काफी है। यह क्षण पर्याप्त है। मैं किसी और क्षण की चिंता नहीं करूंगा। जो क्षण-जीवी है और जो कल चाहे मुसीबत हो, तो उसे झेलेगा, लेकिन कल ही झेलेगा; आज से तैयारी नहीं करेगा। ऐसा व्यक्ति अलोलुप हो सकता है और ऐसा व्यक्ति ही संन्यस्त हो सकता है।

जो अलोलुप है!

आप अपनी लोलुपता को खोजें कहां है। भय में छिपी है, और मजा यह है कि आप कितना ही धन इकट्ठा कर लें, भय तो मिटता नहीं, बढ़ता ही चला जाता है। कितना ही इंतजाम कर लें, मृत्यु तो आएगी ही, और कितनी ही व्यवस्था जुटा लें, रोग तो पकड़ेगा ही। मित्र खोएंगे ही, पत्नी मरेगी, पति विदा होगा, दुख आएगा। इस पृथ्वी पर कोई भी कभी सुरक्षित नहीं रहा। सुरक्षा इस पृथ्वी का नियम नहीं है, मगर हर आदमी अपने को

अपवाद मान लेता है, और फिर उसी कोशिश में लग जाता है, जिसमें सिकंदर, नेपोलियन, चंगेज डूब जाते हैं; फिर उसी कोशिश में लग जाता है कि मैं अपने को सुरक्षित कर लूं, मुझ पर कोई खतरा न रहे।

और हम जिंदगी भर खतरे से बचने में जिंदगी को गंवा देते हैं; जिंदगी का रस ही नहीं ले पाते और न ही जिंदगी का उपयोग कर पाते हैं। महावीर इसलिए अलोलुपता को ब्राह्मणत्व का आधार बनाते हैं, क्योंकि जो आदमी अलोलुप है, वह जीवन का ठीक उपयोग कर पाएगा। जो लोलुप है, वह डरा हुआ, भयभीत, इंतजाम करने में ही लगा रहेगा। और जो यहीं इंतजाम करने में लगा है, उसका ब्रह्म से क्या संबंध स्थापित होगा! उसका परम से कोई संबंध स्थापित नहीं हो सकता। वह क्षुद्र में ही व्यतीत हो जाएगा।

"जो अलोलुप है, जो अनासक्त-जीवी है।"

हम भी जीते हैं, ब्राह्मण भी जीता है, लेकिन महावीर कहते हैं, ब्राह्मण जीता है अनासक्त; इसलिए जीता है कि जीवन है; इसलिए नहीं जीता कि जीवन से कल एक बड़ा मकान बनाना है, एक बड़ी जमीन खरीदनी है, एक बड़ा बगीचा लगाना है, खेती-बाड़ी करनी है, धन इकट्ठा करना है; कल कुछ करना है जीवन से, कोई वासना पूरी करनी है, ऐसी किसी आसक्ति से नहीं जीता। जीवन है; जब तक है, तब तक जीएगा; जिस दिन श्वास छूट जाएगी, इतनी भी प्रार्थना नहीं करेगा कि एक श्वास और मुझे मिल जाए। मृत्यु, तो मृत्यु स्वीकार; जीवन, तो जीवन स्वीकार। जो भी घटित हो, वह उसे स्वीकार है। उसमें कोई अस्वीकार नहीं है।

अनासक्त का अर्थ है कि मैं जीवन पर अपनी कोई धारणा नहीं थोपता। जीवन जहां ले जाए, जीवन जो करे, मैं सहज भाव से उसे स्वीकार करता हूं। हमारी कठिनाई है, हम जीवन पर धारणा थोपते हैं। हम जीवन को स्वीकार नहीं करते। हम जीवन को चाहते हैं वासना के अनुकूल। उमर खय्याम ने कहा है कि अगर परमात्मा मुझे मौका दे, तो मैं सारी दुनिया को मिटा कर फिर से बनाऊं। तभी शायद मुझे तृप्ति हो सके।

लेकिन तब भी शायद ही तृप्ति हो सके। तब भी शायद ही तृप्ति हो सके, क्योंकि मन का नियम यह है कि जो भी आप बना पाते हैं उसकी अतृप्ति आगे बढ़ जाती है। एक मकान आप बनाते हैं; सोचते हैं तृप्त हो जाऊंगा; बनते ही सब समाप्त हो जाता है। नई कल्पनाएं, नये स्वप्न जग जाते हैं। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में वासनाएं लगती हैं। पुराने गिर नहीं पाते कि नये लग जाते हैं। मन तो नई अतृप्तियां खोजता चला जाता है।

ब्राह्मण वही है, जो अनासक्त-जीवी है; जो जीवन में ऐसे जी रहा है जैसे कल है ही नहीं, जैसे भविष्य होगा ही नहीं। हम लेकिन, गलत समझ लेते हैं। जीसस ने अपने शिष्यों को कहा कि कल नहीं है। बस, आज ही है। और दुनिया का समझो कि जैसे कल अंत होनेवाला है। इस भांति जीओ कि जैसे कल मृत्यु होनेवाली है, कल सब समाप्त हो जाएगा, महाप्रलय हो जाएगी।

बड़ा मजा है! आदमी का मन कैसी गलती करता है! शिष्यों ने समझा कि ऐसा मामला है, ऐसा खतरा आ रहा है कि जल्दी दुनिया का कल अंत हो जाने वाला है, तो बजाय आज शांति से जीने के, वे कल की चिंता में लग गए कि अंत हो जाएगा, तो क्या करें! और जीसस से वे बार-बार पूछते हैं, जब कल आ जाता है, कि अभी अंत नहीं हुआ, प्रलय कब होगी? जीसस कहते हैं, बहुत निकट है, दि लास्ट डे इज वेरी क्लोज। और दो हजार साल हो गए, लेकिन अभी भी ईसाई समाज में कभी न कभी कोई संप्रदाय खड़ा हो जाता है, जो कहता है, बस, उन्नीस सौ पचहत्तर आखिरी। फिर उन्नीस सौ पचहत्तर की तैयारी चलने लगती है कि आखिरी दिन आ रहा है, तो थोड़ा अच्छा काम कर लो। फिर उन्नीस सौ पचहत्तर आ जाता है, वह आखिरी दिन नहीं आता। फिर कोई दूसरा संप्रदाय पैदा होता है।

इन दो हजार सालों में ईसाइयों में हजार दफा ऐसी तारीखें तय हो चुकी हैं, जब कि आखिरी प्रलय होने वाली है। किस तरह हम जीसस को, महावीर और बुद्ध को गलत समझते हैं! जीसस का कुल प्रयोजन इतना है

कि कल जैसे सब नष्ट हो जाएगा, इस बात को समझकर आज जीओ। लेकिन हम आज तो जी ही नहीं सकते। हम तो सदा कल में ही जीते हैं। कल! और वह कल हमारे पूरे जीवन को चूस लेता है; कभी आता नहीं।

अनासक्त-जीवी का अर्थ है: वर्तमान में जीने वाला।

ध्यान रहे, वासनाओं के लिए भविष्य चाहिए, जीवन के लिए भविष्य की कोई भी जरूरत नहीं है। जीवन के लिए यही क्षण काफी है। अभी मैं जीवित हूँ पूरा। आप पूरे जीवित हैं। जीने के लिए कल की क्या जरूरत है? लेकिन वासना के लिए कल की जरूरत है, क्योंकि वासनाएं बड़ी हैं; आज कैसे पूरी होंगी? कल चाहिए। वासनाएं भविष्य निर्मित करती हैं।

वासनाएं ही समय का निर्माण हैं।

"जो अनासक्त-जीवी है, जो अनगार है, बिना घर-बार का है।"

अब यह भी बड़ा मुश्किल हो गया। "अनगार" का सीधा अर्थ ले लिया गया कि जो घर-बार छोड़ दे। जो घर-बार में न रहे, वह अनगार है।

लेकिन बड़े मजे की बात है कि जैन साधु को भी रहना पड़े तो किसी के घर में ही रहना पड़ता है! कितना ही इंतजाम करो, घर तो बनाना ही पड़ता है; कोई छाया, छप्पर डालना पड़ता है। धर्मशाला में ठहरो कि स्थानक में ठहरो, ठहरना कहीं होगा, घर तो होगा ही।

घर-बार न हो जिसका, अनगार है जो, तो जरूर महावीर कुछ चेतना की स्थिति की बात कर रहे हैं। महावीर यह कह रहे हैं कि जिसकी चेतना के आस-पास किसी तरह की दीवाल नहीं, किसी तरह का घर, किसी तरह का कारागृह, कुछ भी नहीं है। जिसकी चेतना खुले आकाश की तरह है, जो अनगार है। फिर ऐसा अनगार व्यक्ति छप्पर के नीचे भी सोए तो वह छप्पर उसके भीतर के आकाश को छोटा नहीं कर पाता। और आप-जिसकी आत्मा घर-घूलों में बंधी है, दीवारों से घिरी है-आप खुले आकाश के भी नीचे सोएं तो कोई फर्क नहीं पड़ता। आप अपने घर में ही सो रहे हैं।

खुला आकाश क्या करेगा, जिसके भीतर का आकाश बंद है? खुला आकाश भीतर होना चाहिए। तब बाहर भी सब खुला हुआ है। लेकिन शब्द दिक्कत में डाल देते हैं; क्योंकि हमारे पास शब्द आते हैं, शब्द की आत्मा तो नहीं आती।

मार्क ट्वेन अमरीका का एक बहुत विचारशील लेखक हुआ, एक हंसोड़ व्यक्तित्व। और कभी-कभी हंसोड़ व्यक्तित्व बड़े गहरे, बड़ी गहरी चोटें कर जाते हैं; बड़े गहरे सत्य कह जाते हैं। असल में सत्य कहना हो तो हंसी के बिना कहा ही नहीं जा सकता। जिंदगी ऐसे ही काफी उदास है। और उदास सत्य डाल-डाल कर आदमी को मारने का कोई अर्थ भी नहीं है।

मार्क ट्वेन को आदत थी भयंकर रूप से गालियां देने की। जरा सी बात हो जाए, तो वह गालियां देना शुरू कर दे, और ऐसा नहीं कि आदमियों को ही दे, चीजों को भी दे। दरवाजा न खुल रहा हो, तो वह गाली देने लगे। उसकी पत्नी बड़ी परेशान थी। और वह इतना नामी, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का आदमी था कि उसकी पत्नी कहती थी कि कोई सुन ले कि तुम इस तरह की गालियां बकते हो, तो क्या लोग कहेंगे! लेकिन कोई उपाय नहीं था। गालियां उसके लिए अनिवार्य थीं। एक दिन सुबह ही सुबह, ब्रह्ममुहूर्त में, कहीं जाने को वह निकला; कमीज पहनी, बटन टूटा है--बस, उसने गाली देना शुरू की, पत्नी भी परेशान हो गई। वह दरवाजे पर खड़ी सुनती रही एक-एक गाली उसकी। वह इतने रस से दे रहा था, जैसे संगीत का मजा ले रहा हो! बड़ी भद्दी गालियां दे रहा था, जिनको स्त्रियां उपयोग भी नहीं कर सकतीं। पर उसकी पत्नी ने कहा यह भी करके देख लेना चाहिए। तो जैसे ही उसने बंद किया, उसकी पत्नी ने, जो-जो गालियां उसने दी थीं, उतनी ही जोर से उनको दोहराया। उसने सोचा, शायद इससे घबड़ा जाएगा, सोचेगा कि पड़ोसी क्या कहेंगे? कि मार्क ट्वेन की पत्नी ऐसी भद्दी गालियां बकती है! मार्क ट्वेन गौर से सुनता रहा, और उसने कहा कि राइट, यू हैव कॉट दि वटर्स,

बट यू हैव मिस्ड दि स्पिरिट--शब्द तो पकड़ लिए, शब्द में क्या रखा है? आत्मा! वह गाली देने में जो मैं आत्मा डाल रहा था, वही नहीं है!

सभी सत्यों के साथ करीब-करीब यही दिक्कत है, कि शब्द पकड़ में आ जाते हैं और आत्मा खो जाती है। शब्द झंझट की बात है। और शब्द के अनुसार फिर हम चलना शुरू कर देते हैं। और शब्द का अर्थ भाषाकोश में लिखा है, महावीर से पूछने की जरूरत नहीं है। अनगार यानी जिसका कोई घर नहीं--बात खत्म हो गई। और अगर घर है तो आप ब्राह्मण नहीं हैं; घर छोड़ दें तो ब्राह्मण हो गए! आसान हो गई बात; सरल हो गई।

घर छोड़ने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। घर में रहने से कोई अब्राह्मण नहीं होता। अनगार एक चेतना की अवस्था है, ऐसी भाव-दशा, जहां मैं अपनी तरफ कोई सीमाएं खड़ी नहीं करता, जहां मैं बंधा हुआ नहीं हूं।

घर का अर्थ है, बंधन। जगत से आप भयभीत हैं, चारों तरफ से घर की दीवाल खड़ी कर रखी है। उसके भीतर आप सुरक्षित हैं। घर के बाहर खुले आकाश के नीचे असुरक्षा शुरू हो जाती है। तो महावीर कहते हैं: जो असुरक्षित जीता है, जो कोई दीवाल खड़ी नहीं करता; और जो दूसरे से अपने को फासला नहीं करता, किसी सीमा को बना कर कि तुम अलग हो।

समझें, अगर आप कहते हैं, मैं जैन हूं--आपने एक घर बना लिया। हिंदू से आपका घर अलग हो गया। आप दोनों के आंगन अलग हो गए। मुसलमान से आपका घर अलग हो गया। ईसाई से आपका घर अलग हो गया। इन्हीं घरों के अलग होने के कारण तो हमें मंदिर, मस्जिद और चर्च बनाने पड़े। हमारे घर ही अलग नहीं हो गए, हमें भगवान के घर भी अलग कर देने पड़े।

महावीर कहते हैं कि तुम उस दिन ब्राह्मण होओगे, जिस दिन तुम्हारा कोई घर न रह जाए चेतना पर, और हमने तो ब्रह्म को भी घरों में बांध दिया है। हम बड़े होशियार लोग हैं! महावीर आपको मुक्त करना चाहते हैं कि ब्रह्म हो जाएं, हमने ब्रह्म को भी बांध कर नीचे खड़ा कर दिया है!

लोगों के अपने-अपने ब्रह्म हैं। चर्च के सामने आपका दिल हाथ झुकाने को नहीं होता। जीसस को सूली पर लटके देख कर आपके मन में कोई भाव नहीं उठता। महावीर को अपने सिद्धासन में बैठे देख कर आपका सिर झुक जाता है। लेकिन जीसस का अनुयायी निकलता है, उसे कोई भाव नहीं होता। उसे सिर्फ इतना दिखाई पड़ता है कि आदमी नग्न बैठा है। आपको जीसस को देख कर लगता है कि क्या है इसमें, सूली पर लटका है! किसी पाप का फल भोग रहा होगा; किया होगा कर्म, तो भोगेगा। कि कहीं तीर्थंकर कहीं सूली पर लटकते हैं? तीर्थंकर को तो कांटा भी नहीं चुभता, सूली तो बहुत दूर की बात है! तीर्थंकर तो चलता है, तो कांटा अगर सीधा पड़ा हो, तो जल्दी से उलटा हो जाता है; क्योंकि तीर्थंकर ने कोई पाप तो किया नहीं जो कांटा चुभे। तो जीसस को सूली लगी है, जरूर किसी महापाप का फल है।

जैनी के मन में यह भाव आएगा जीसस को देख कर। हाथ नहीं जुड़ेगा। जीसस के अनुयायी को महावीर को देख कर ख्याल आएगा कि परम स्वार्थी मालूम पड़ता है। दुनिया इतने कष्ट में पड़ी है और तुम सिद्धासन लगाए बैठे हो! सारा संसार जल रहा है, तुम आंखें बंद किए हो! हमारा जीसस सबके लिए सूली पर लटका, और तुम अपने लिए बैठे हो! जीसस जगत का कल्याण करने आए और तुम--तुम सिर्फ अपने ही घेरे में बंद हो! उसके हाथ नहीं जुड़ेंगे।

जीसस और महावीर तो दूर हैं। इधर पास भी देखें, महावीर और राम तो बहुत दूर नहीं हैं! दोनों क्षत्रिय हैं, एक ही धारा के हिस्से हैं। लेकिन जैनी के हाथ राम को देख कर नहीं जुड़ सकते! वह सीता मैया जो पास खड़ी हैं, वह उपद्रव है। भगवान होकर और पत्नी! यह कल्पना ही के बाहर है! और धनुषबाण किसलिए लिए हो? किसी से लड़ना है? तीर्थंकर, और धनुषबाण लिए हो! सोच भी नहीं सकते! और पत्नी खड़ी है। सब गड़बड़ हो गया। अभी कामवासना में ही पड़े हो!

लेकिन, राम के मानने वाले को महावीर को देख कर भी कोई भाव नहीं उठता, क्योंकि महावीर उसे पलायनवादी मालूम होते हैं कि जहां जीवन संघर्ष है, वहां तुम भगोड़े हो! जहां जरूरत थी कि लड़ते और

दुनिया को बदलते, वहां तुम जंगल में जाकर आंख बंद किए बैठे हो। राम को देखो! धनुषबाण लिए युद्ध में, संघर्ष में खड़े हैं। और जब परमात्मा ने ही स्त्री-पुरुष को बनाया, तो तुम छोड़ने वाले कौन हो! और जब परमात्मा ने ही चाहा कि वे दोनों साथ हों, तो परमात्मा की मर्जी के खिलाफ जो जा रहा है वह नास्तिक है।

हम अपनी धारणाओं के घर बनाए हैं। उनको हम मंदिर कहते हैं। हमने अपनी धारणाओं के भगवान बनाए हैं। वे हमारी धारणाओं के प्रोजेक्शन हैं, प्रक्षेप हैं। महावीर कहते हैं, अनगार चेतना चाहिए--जिसका कोई घर नहीं, जिसका कोई मंदिर नहीं, जिसका कोई संप्रदाय नहीं, जिसका कोई धर्म नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं; जो शुद्ध "होने" में ही जीता है। न जो ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है, न हिंदू है, न मुसलमान है। न जो कहता है मैं भारतीय हूं, न जो कहता है कि मैं चीनी हूं, जो किसी तरह के घेरे नहीं बनाता। जो न कहता है कि मैं धनी हूं, न कहता है निर्धन हूं। न जो कहता है मैं शूद्र हूं, न जो कहता है कि मैं ब्राह्मण हूं। जो न कहता है मैं ऊंचा हूं, न नीचा हूं। जो न कहता है मैं पुरुष हूं, स्त्री हूं। जो कुछ भी नहीं कहता। जो अपनी तरफ कोई भी विशेषण नहीं लगाता।

विशेषण-शून्य व्यक्ति अनगार है। उसने सब घर गिरा दिए। वह खुले आकाश के नीचे आ गया। आकाश ही अब उसका घर है। यह इतना विस्तार, यह विराट ही उसका अब घर है। ऐसे व्यक्ति को महावीर कहते हैं, मैं ब्राह्मण कहता हूं, जो अनगार है।

"जो अकिंचन है।"

"अकिंचन" शब्द भी बड़ा मूल्यवान है। अकिंचन का अर्थ नहीं होता कि निर्धन है, दीन है। नहीं, अकिंचन का अर्थ होता है: जो अपने को "कुछ भी हूं," ऐसा नहीं मानता। समबडी, कुछ होने का ख्याल जिसे नहीं है। एक नोबडीनेस, एक ना-कुछ होने का भाव कि मैं कुछ भी नहीं हूं। यह "कुछ भी नहीं हूं"--यह भी विधायक रूप से न पकड़ ले कि "मैं कुछ भी नहीं हूं," नहीं तो यह भी अकड़ बन जाए। बस, होने का भाव न हो।

बोकोजू अपने गुरु के पास गया--एक झेन फकीर। और उसने अपने गुरु से जाकर कहा कि तुमने कहा था: ना-कुछ हो जाओ बिकम ए नोबडी। नाउ आई हैव बिकम ए नोबडी--अब मैं ना-कुछ हो गया। उसके गुरु ने डंडा उठाया और कहा: "दरवाजे के बाहर हो जा, इस नोबडी को बाहर छोड़ कर आ। यह जो "ना-कुछ" को तू भीतर ला रहा है, नालायक! यह वही है, "कुछ" हूं। इसमें कोई फर्क नहीं हुआ। अब दुबारा यहां मत आना, जब तक तू कुछ है।"

फिर बोकोजू की हिम्मत नहीं पड़ी आने की। क्योंकि, असल में दावा करना ही जब हो, तो कुछ का ही दावा हो सकता है। "ना-कुछ" का कहीं कोई दावा होता है?" ना-कुछ" के दावे का मतलब ही खो गया, बात ही उलटी हो गई।

तो फिर बोकोजू नहीं आया। वर्ष बीतते चले गए। तीन साल बाद गुरु गया खोजने कि बोकोजू कहां है। शिष्यों ने कहा कि वह उस झाड़ के नीचे बैठा रहता है। गुरु उसके पास गया। बोकोजू उठ कर खड़ा भी नहीं हुआ! क्योंकि उठना था, वह औपचारिक था। गुरु आए तो शिष्य को उठना था; लेकिन जब कुछ भी न रहा, तो शिष्य कौन, गुरु कौन? कहते हैं, गुरु ने उसके चरणों में सिर झुकाया और कहा कि तू अकिंचन हो गया। अब कोई भाव नहीं रहा कि तू कौन है। अब ना-कुछ का भी भाव नहीं है।

अकिंचन का अर्थ है: जब मुझे भाव ही न रह जाए कि मैं क्या हूं; सिर्फ होना रह जाए अपनी परिशुद्धता में।

महावीर कहते हैं: अकिंचन होना, ब्राह्मण होना है। ब्राह्मण की ऐसी महिमापूर्ण व्याख्या महावीर के अतिरिक्त और किसी ने भी नहीं की है।

महावीर चाहते थे, पूरी पृथ्वी ब्राह्मण हो जाए। ऊपर से देखने पर लगता है कि महावीर ने तोड़ दिए सारे समाज के सारे नियम, वर्ण की व्यवस्था, लेकिन महावीर की कल्पना थी कि सारी पृथ्वी ब्राह्मण हो जाए।

और जब तक सारी पृथ्वी ब्राह्मण नहीं हो जाती, तब तक धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है, पृथ्वी धार्मिक भी नहीं हो सकती। पृथ्वी ब्राह्मण हो सकती है। लेकिन, कोई तिलक-टीकाधारी ब्राह्मण, चोटी धारी ब्राह्मण, यज्ञोपवीत वाला ब्राह्मण अगर कोशिश करे कि सारी दुनिया यज्ञोपवीत पहन ले, चोटी रख ले, तिलक लगा ले और ब्राह्मण हो, तो पृथ्वी ब्राह्मण नहीं हो सकती। और इस तरह का ब्राह्मणत्व फैल भी जाए तो दो कौड़ी का है। उसका कोई मूल्य नहीं है।

ब्राह्मण के लक्षणों को शरीर से हटा कर महावीर आत्मा पर ले जा रहे हैं। हमारी व्याख्या ब्राह्मण की जो महावीर के पहले थी, वह शरीर पर थी कि ब्राह्मण-कुल में जो पैदा हुआ, ब्राह्मण घर में बड़ा हुआ, ब्राह्मण-जाति के नियम मानता है--शास्त्र पढ़ता है, शास्त्र पढ़ाता है, गुरु है--वह ब्राह्मण है। महावीर ने शरीर से सारी व्याख्या हटा दी।

"जो अकिंचन है।"

ध्यान रहे, जिसको हम ब्राह्मण कहते हैं, वह अकिंचन कभी नहीं होता चाहे उसके पास कौड़ी भी न हो। और जब भी आप उसके सामने खड़े होते, तो वह देखता है कि छुओ पैर! अकिंचन कभी नहीं होता। अगर आप उसके पैरों में सिर न रखें तो अभिशाप देने को जरूर तैयार रहता है। अकिंचन वह कभी नहीं होता, महान अहंकार से पीड़ित होता है।

ब्राह्मण के चेहरे पर देखें एक अकड़... जो कि उन सभी लोगों में आ जाती है, जो बहुत समय तक अभिजात्य रहते हैं; ऊपर रहते हैं, छाती पर रहते हैं समाज की। उन सभी में आ जाती है। जैसे कि अंग्रेज चलता था हिंदुस्तान में, जब उसकी मालकियत थी, उसकी चाल, उसकी आंखें।

ब्राह्मण हजारों साल से ऊपर हैं, और ऊपर होने का कुल आधार शरीर है। इसलिए ब्राह्मणों को रुचिकर नहीं लगा महावीर का यह कहना कि ब्राह्मण होना आत्मा की गुणवत्ता है। क्योंकि उनको लगा कि इससे तो हमारा सारा ब्राह्मणत्व, जो कि शरीर पर निर्भर है, बिखरता है। इसलिए ब्राह्मणों ने महावीर का गहन विरोध किया। महावीर की विचारधारा को मुल्क में न जमाने दिया जाए, इसकी पूरी चेष्टा की। महावीर घोर नास्तिक हैं और लोगों को अधार्मिक बना रहे हैं--ऐसा प्रचार किया। महावीर कोई ज्ञानी पुरुष नहीं हैं, इसकी पूरी धारणा फैलाई।

यह जान कर आपको हैरानी होगी कि महावीर--जैसे आस्तिक व्यक्ति के विचार को ब्राह्मणों ने--जाति, जन्म से बंधे ब्राह्मणों ने--नास्तिकता सिद्ध करने की चेष्टा की, और उन्होंने इतने जोर से प्रचार किया है महावीर के नास्तिक होने का कि भारत के परंपरागत दर्शनशास्त्र के ग्रंथों में महावीर का नाम हमेशा नास्तिक परंपरा में गिना जाता है।

यह बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना है कि महावीर और बुद्ध--जैसे परम आस्तिक, नास्तिक व्यक्ति क्यों मालूम पड़े उन्होंने जो कहा था उसके कारण नहीं; बल्कि उन्होंने जातिगत स्वार्थों को जो नुकसान पहुंचाया उसका बदला लेना जरूरी था। और एक बार किसी के नास्तिक होने की घोषणा कर दो, तो लोग अंधे हो जाते हैं, फिर लोग सुनना बंद कर देते हैं। किसी के भी संबंध में कह दो कि वह नास्तिक है, लोग डर जाते हैं।

जैसे आज, आज किसी आदमी के बारे में कह दो कि वह कम्युनिस्ट है, फिर लोग सोच लेते हैं कि इसकी बात सुनने की जरूरत नहीं। जैसे आज किसी को कम्युनिस्ट कह देना काफी है निंदा के लिए। कम्युनिस्ट भी अपने को कम्युनिस्ट बताने में दो दफा सोचता है कि बताना कि नहीं। ठीक आज से ढाई हजार साल पहले "नास्तिक" इससे भी ज्यादा खतरनाक सत्य था। और चारवाक के साथ महावीर को गिनना एकदम बेहूदी बात है। क्योंकि कहां चारवाक, जो सिर्फ खाने, पीने और मौज उड़ाने की शिक्षा दे रहा है। जो कहता है कि न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई परम जीवन है--सिवाय पदार्थ के और कुछ भी नहीं। उसके साथ महावीर को गिनना या बुद्ध को गिनना ज्यादाती है।

लेकिन, ब्राह्मणों ने यह ज्यादाती की। करने का कारण यह नहीं था कि महावीर नास्तिक थे। करने का कारण यह था कि महावीर ने ब्राह्मण की व्याख्या को इतना महान बना दिया कि सभी ब्राह्मणों को साफ हो गया कि उनमें से कोई भी ब्राह्मण नहीं है। यह व्याख्या गिरनी चाहिए। उनका ब्राह्मणत्व छीन लिया। इतनी बड़ी लकीर खींच दी ब्राह्मण की, कि उसके नीचे ब्राह्मण एकदम क्षुद्र मालूम होने लगा। कि इस आदमी का वचन नहीं सुनना चाहिए।

ऐसा उल्लेख है शास्त्रों में कि अगर कोई ब्राह्मण निकलता हो रास्ते से और सामने पागल हाथी आ जाए, और जैन-मंदिर करीब हो, तो पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना बेहतर, जैन-मंदिर में शरण नहीं लेनी चाहिए। क्योंकि पता नहीं वहां कोई नास्तिक वचन कान में पड़ जाए।

मगर आप ऐसा मत सोचना कि ऐसा हिंदुओं ने ही किया। जैनों ने भी ठीक यही किया पीछे। उन्होंने भी लिखा है अपने शास्त्रों में कि कोई जैन अगर हिंदू-मंदिर के पास पागल हाथी के सामने पड़ जाए, तो बेहतर है मर जाना पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर, हिंदू-मंदिर में शरण मत लेना। क्योंकि वहां कुदैव की पूजा हो रही है, कुशास्त्र पढ़ा जा रहा है।

बड़े मजे की बात है, महावीर ने कहा कि कोई ब्राह्मण जन्म से नहीं होता लेकिन सब जैन जन्म से जैन हैं! महावीर ने जैन की कोई व्याख्या नहीं की, क्योंकि उस दिन कोई जैन था नहीं। ब्राह्मण की व्याख्या की। अब जरूरत है कि कोई तीर्थंकर जैन की व्याख्या करे, कौन है "जैन"? "जैन" शब्द "ब्राह्मण" शब्द से ज्यादा कीमती है, कम कीमती नहीं है।

ब्राह्मण बनता है "ब्रह्म" से; कि जो ब्रह्म को उपलब्ध होने लगा। और जैन बनता है "जिन" से; जो स्वयं का स्वामी होने लगा, जीतने लगा अपने को। जिसने अपने को पूरी तरह जीत लिया वह "जिन" है। और जो जीतने के मार्ग पर चल पड़ा वह "जैन" है। लेकिन जैन घर में पैदा होने से कोई जीतने के मार्ग पर चलता है?

लेकिन, जैसा उस दिन ब्राह्मण मूढ़ था, और सोच रहा था ब्राह्मण कुल में पैदा होकर मैं ब्राह्मण हो गया। वैसा ही जैन आज मूढ़ है। वह सोचता है जैनकुल में पैदा होकर मैंने सब पा लिया, संपदा मिल गई।

जन्म से कुछ भी नहीं मिलता--हड्डी-मांस-मज्जा मिलती है। उसका धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। धर्म तो उपलब्ध करना होता है, चाहे ब्राह्मण बनो और चाहे जैन। अथक साधना, जन्मों-जन्मों की चेष्टा का फल है। जिनत्व या ब्राह्मणत्व उपलब्धि है। जन्म के साथ नहीं मिलती, खुद पानी होती है।

वर्णभेद जन्म से नहीं, चर्या से (ब्राह्मण-सूत्र: 3)

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो।
 न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण ण तावसो भ॥
 समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
 नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो॥
 कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
 वइसो कम्मुणा होइ, सुदो हवइ कम्मुणा॥
 एवं गुणसमाउत्ता, जे भवन्ति दिउत्तमा।
 ते समत्था समुद्धत्तुं,
 परमप्पाणमेव चे॥

सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता, "ओम" का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता, और न कुशा के बने वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी ही हो सकता है।

समता से मनुष्य श्रमण होता है; ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है; ज्ञान से मुनि होता है; और तप से तपस्वी बना जाता है।

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किए कर्मों से ही होता है। (अर्थात् वर्ण-भेद जन्म से नहीं होता। जो जैसा अच्छा या बुरा कार्य करता है, वह वैसा ही ऊँच या नीच हो जाता है)

इस भांति पवित्र गुणों से युक्त जो द्विजोत्तम (श्रेष्ठ ब्राह्मण) हैं, वास्तव में वे ही अपना तथा दूसरों का उद्धार कर सकने में समर्थ हैं।

सत्य के अनुसंधान में अपरिसीम साहस चाहिए--प्रतिष्ठा को चुनौती देने का, स्वीकृत धारणाओं को खंडित करने का, आदृत मूर्तियों को भंजित करने का। असत्य चाहे कितना ही प्रतिष्ठित हो, उसे असत्य की तरह ही घोषित करना, असत्य की तरह ही जानना साधक के लिए अत्यंत अनिवार्य है। बहुत बार प्रतिष्ठित को हम सत्य मान लेते हैं। परंपरागत को सत्य मान लेते हैं, बहुजन के द्वारा स्वीकृत को सत्य मान लेते हैं। स्वार्थ में भी यही होता है कि व्यर्थ की उलझन में हम न पड़ें, सभी जैसा मानते हैं वैसा ही हम भी मान लें और सभी के साथ भीड़ में खड़े हो जाएं। लेकिन भीड़ कभी सत्य को उपलब्ध नहीं होती, समूह तो अंधकार में ही भटकता है। भीड़ से दूर उठने की हिम्मत चाहिए।

भीड़ से दूर उठने में कठिनाई भी होगी, अड़चनें होंगी, असुविधा होगी, लेकिन वह भी सत्य की खोज-तपश्चर्या है। चाहे विज्ञान हो चाहे धर्म, इस संबंध में दोनों राजी हैं, और वह प्रतिष्ठा को, परंपरा को, भीड़ को, क्राउड का जो चित्त है, उसको चुनौती देने की बात।

महावीर शुद्ध सत्य के अन्वेषक हैं। जहां-जहां स्वार्थ ने असत्य के मंदिर खड़े कर रखे हैं, वहां-वहां चोट करना जरूरी है। वह चोट मनुष्यों पर नहीं है, मनुष्यों की भूलों पर है।

विश्व के वैज्ञानिक-वर्तुल में एक छोटी सी बड़ी मधुर कथा प्रचलित है। आस्ट्रीयन वैज्ञानिक वुल्फगैंग पावली उन्नीस सौ अठ्ठावन में मरा। कथा है कि ईश्वर बहुत दिन से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह कब मरे और कब आए; क्योंकि पावली जैसे आदमी मुश्किल से कभी होते हैं। असत्य को पकड़ने की, लोग कहते हैं, ऐसी क्षमता मनुष्य जाति के इतिहास में, विज्ञान की परंपरा में दूसरे व्यक्ति के पास नहीं थी। क्षणभर में असत्य को पकड़ लेना, भूल को पकड़ लेना पावली की कुशलता थी। और चाहे कितना ही खोना पड़े, कितना ही दांव पर लगाना पड़े, भूल को अस्वीकार करना या भूल को मद्देनजर करना या छिपाना उसके लिए असंभव था।

हो सकता हो ईश्वर उसकी प्रतीक्षा करता हो, क्योंकि सत्य के खोजी की प्रतीक्षा ही ईश्वर कर सकता है।

पावली मरा, और कथा है कि ईश्वर ने पावली से कहा कि तू भी अनूठा आदमी है। छोटी-छोटी भूलों के लिए तूने अपनी न मालूम कितनी रातें बिना सोए बिताई हैं। और निश्चित ही जीवन के बहुत से रहस्य--वह भौतिकविद था, फिजिसिस्ट था--भौतिक शास्त्र के बहुत से रहस्य तुझे अनजाने रह गए होंगे और तू प्रतीक्षा कर रहा होगा कि कब परमात्मा से मिलना हो तो उनसे पूछ सके।

तुझे कुछ पूछना तो नहीं है? मैं खुश हूं।

पावली ने कहा कि धन्यभागी, हे प्रभु, एक सवाल मुझे वर्षों से चिंतित कर रहा है, और मेरे मित्रों ने, मेरे साथियों ने जितने भी सिद्धांत खोजे वह सब गलत थे और मामला हल नहीं हो पाया। जब आप ही मौजूद हैं, जिन्होंने जगत को बनाया तो अब हल होने में कोई कठिनाई नहीं है।

उसने भौतिक-शास्त्र का एक उलझा हुआ सवाल ईश्वर से पूछा। उसने कहा कि प्रोटान और इलेक्ट्रान दोनों के मास में अठारह सौ गुना का फर्क है। प्रोटान का मास इलेक्ट्रान के मास से अठारह सौ गुना ज्यादा है। लेकिन दोनों का विद्युत चार्ज बराबर है; यह बड़ी हैरान करनेवाली बात है। ऐसा कैसे हो पाया? क्या कारण है? जरूर कोई कारण होगा।

ईश्वर ने अपनी टेबिल के ऊपर से कुछ कागजात उठाए और पावली को दिए और कहा कि यह रहा सारा सिद्धांत, इस भेद का सारा सिद्धांत, इस भेद का सारा रहस्य! पावली गौर से पढ़ गया। फिर से दुबारा लौट कर उसने पढ़ा। तीसरी बार फिर नजर डाली और ईश्वर के हाथ में देते हुए कहा: स्टिल रांग--अभी भी गलत है।"

कहानी कहती है कि ईश्वर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि मैंने गलत ही तुझे पकड़ाया था। मैं जानना चाहता था कि ईश्वर को भी गलत कहने की क्षमता तुझ में है या नहीं।

ईश्वर की प्रतिष्ठा से और बड़ी कोई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती; लेकिन सत्य के खोजी की आड़ में अगर ईश्वर भी आता हो तो उसे भी हटा देना आवश्यक है। महावीर सत्य के अनुसंधान में लगे थे, और बहुत सी बातें आड़ में थीं। वेद की प्रतिष्ठा थी। और वेद ईश्वर से कम प्रतिष्ठित नहीं था इस देश में। वेद ईश्वर का वचन था। कहना चाहिए ईश्वर से भी ज्यादा प्रतिष्ठित था। अगर ईश्वर भी वापस आ जाए और वेद के खिलाफ बोले, तो ईश्वर अस्वीकृत हो जाएगा, वेद स्वीकृत रहेगा। वेद परम वचन था। महावीर ने वेद को अस्वीकार कर दिया। क्योंकि उन्होंने कहा कि अनुभूति ही परम हो सकती है, शब्द परम नहीं हो सकते। और महावीर ने जो-जो प्रतिष्ठित परंपरा थी, सब पर आघात किए। ब्राह्मण प्रतिष्ठित था। महावीर ने ब्राह्मण की पूरी व्याख्या बदल दी। उस समय कोई सोच भी नहीं सकता था कि शूद्र भी अपने कर्म से ब्राह्मण हो सकता है, ब्राह्मण भी अपने कर्म से शूद्र हो सकता है। लेकिन महावीर ने जन्म की पूरी व्यवस्था तोड़ दी और कहा कि व्यक्ति अपनी चेतना से ब्राह्मण होता है या शूद्र होता है, शरीर से नहीं।

स्वभावतः परंपरा को जब चोट पहुंचाई जाए, तो परंपरा प्रतिशोध लेती है। लेगी ही; क्योंकि न मालूम कितने स्वार्थ गिरेंगे, निहित स्वार्थों को चोट पहुंचेगी-वे बदला भी लेंगे। उन्होंने बदला लिया भी। लेकिन उससे सत्य में कोई फर्क नहीं पड़ता। सत्य प्रतिशोध की अग्नि से गुजरकर और भी निखरकर स्वर्ण हो जाता है।

इस सूत्र में प्रवेश करने के पहले एक बात प्राथमिक रूप से समझ लेनी चाहिए कि धर्म के लिए सबसे बड़ा उपद्रव सदा से एक रहा है, और वह उपद्रव है कि जो आंतरिक है उसे हम बाह्य से तौलते हैं। कारण भी साफ है,

क्योंकि मनुष्य का बाह्य हमें दिखाई पड़ता है, अंतस तो दिखाई नहीं पड़ता। अंतस को तौलने का हमारे पास कोई उपाय भी नहीं है। और अंतस मूल्यवान है, बाह्य तो केवल आवरण है, वस्त्रों की भांति।

एक आदमी सफेद वस्त्र पहन सकता है, इससे शुभ्र हृदय का नहीं हो जाता। एक आदमी काले वस्त्र पहने हो, इससे ही काले हृदय का नहीं हो जाता। हृदय का वस्त्रों से क्या लेना-देना? वस्त्र हृदय को नहीं बदल सकते। यद्यपि उलटी बात हो सकती है कि हृदय अगर शुभ्र हो तो काला वस्त्र प्रीतिकर न लगे, और आदमी काला वस्त्र न पहनना चाहे। लेकिन, सिर्फ काला वस्त्र पहन लेने से किसी का हृदय काला नहीं हो जाता। यह हो सकता है कि हृदय काला हो और आदमी सफेद वस्त्र पहनकर उसे छिपा लेना चाहे। बहुत लोग यह करते हैं। हृदय जितना काला हो, उतना सफेद आवरण में, सफेद वस्त्रों में छिपा लेना जरूरी है। वस्त्र खादी के हों तो और भी अच्छा है। तो भीतर वह जो काला है, वह छिप जाता है।

वस्त्रों से भीतर को पहचानने का कोई उपाय नहीं है। भीतर की क्रांति तो वस्त्रों तक आ जाती है, लेकिन वस्त्रों का परिवर्तन भीतर तक नहीं जाता। लेकिन मनुष्य की कठिनाई है कि हमें बाहर से आदमी दिखाई पड़ता है, भीतर पहुंचने का कोई उपाय भी तो नहीं है। और, धर्म की घटना घटती है भीतर से, और हम देख पाते हैं केवल व्यवहार--अंतरात्मा नहीं। इसी कारण पूरे धर्म की परंपराएं रोगग्रस्त हो जाती हैं।

महावीर नग्न हुए; नग्न होकर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, ऐसा नहीं। लेकिन परम ज्ञान जैसा उनके जीवन में घटा, वे इतने निर्दोष हो गए कि नग्नता आ गई। नग्नता पीछे आई; निर्दोषता पहले घटी। निर्दोषता को हम नहीं देख सकते, लेकिन उनका बच्चे की तरह नग्न खड़े हो जाना हमें दिखाई पड़ा। हममें से बहुत से लोगों को भी उन्होंने प्रभावित किया। उनके जीवन की सुगंध ने, उनका प्रकाश हमें छुआ। हमारे हृदय की वीणा पर कुछ अनुगूंज हुई; कोई गीत हमारे भीतर भी जगा, कोई प्रतिध्वनि हम में भी गूंजी। हम जो कि बिल्कुल जड़ हैं, वे भी थोड़े हिले। लेकिन हमें महावीर की निर्दोषता नहीं दिखाई पड़ी, नग्नता दिखाई पड़ी। तो हमने सोचा: हम भी नग्न खड़े हो जाएं तो महावीर जैसा ज्ञान हमें भी उपलब्ध हो जाएगा। बात बिल्कुल उलटी हो गई।

हम नग्न खड़े हो सकते हैं, और नग्न खड़े होने का अभ्यास कठिन बात नहीं है। एकाध, दो दिन अड़चन होगी। जब सभी को जाहिर हो जाएगा कि आप नग्न रहते हैं तो बात समाप्त हो जाएगी। दो-चार दिन के बाद नग्नता वैसे ही सहज हो जाएगी, जैसे अभी वस्त्र हैं।

पश्चिम में बहुत से न्यूड-क्लब हैं। जो लोग उन नग्न क्लबों के सदस्य बनते हैं, उनको एक-दो दिन अड़चन होती है। सच तो यह है कि सिर्फ पहले दिन ही अड़चन होती है, दूसरे दिन से तो वे भूल ही जाते हैं। तीसरे दिन पता ही नहीं रहता कि कोई नग्न भी है, क्योंकि सभी नग्न हैं।

मेरे एक मित्र एक नग्न क्लब के सदस्य थे अमरीका में। उन्होंने मुझे बताया कि हम भूल ही गए थे कि कोई नग्न है। हमें याद तो तब आया, जब एक दिन एक कपड़े पहने हुए आदमी भीतर आ गया। जहां पांच सौ लोग नग्न थे, वहां एक आदमी के कपड़े पहने हुए भीतर आने से तत्काल हमें पता चला कि अरे, हम नग्न हैं। अन्यथा नग्नता का हमें कोई पता नहीं था।

मन अभ्यस्त हो जाता है। लेकिन नग्न-क्लबों में जो बैठे हैं, वे महावीर नहीं हो जाएंगे। नग्न क्लब की सदस्यता से कोई महावीर नहीं हो जाता।

तो यहां हिंदुस्तान में जैन मुनि हैं, जो नग्न हैं। वे नग्न होने से महावीर नहीं हो जाएंगे। महावीर को मरे हुए पच्चीस सौ साल हो गए। इस बीच बहुत लोग उनके पीछे नग्न हुए, एक में भी महावीर की चमक नहीं आई। कहीं कुछ भूल हो गई। जो घटना भीतर से बाहर की तरफ घटी थी, जो झरना सदा भीतर से बाहर की तरफ बहता है, हमने उसे बाहर से भीतर की तरफ ले जाना चाहा। फूल निकलते हैं पौधे में; वे भीतर से आते हैं, फिर खिलते हैं। हम जाकर बाजार से फूल ले आएंगे और पौधे की डाल पर चिपका दें, शायद किसी अजनबी को धोखा भी हो जाए, और जो नहीं जानता है फूल का अंतर-जीवन, वह शायद चमत्कृत भी हो; कहे, "कैसा सुंदर फूल

है!" लेकिन माली को धोखा नहीं दिया जा सकता। और, साधारण आदमी को भी ज्यादा देर धोखा नहीं दिया जा सकता; क्योंकि बाहर से चिपकाया फूल अलग ही मुरझाया हुआ, लटका हुआ होगा। भीतर से आते हुए फूल में जो जीवन है, जो प्रवाह है, जो गति है, वह बाहर से लटकाए हुए फूल में नहीं हो सकती।

तो महावीर की नग्नता का फूल तो भीतर से आता है, फिर महावीर के पीछे चलने वाला नग्नता को ऊपर से आरोपित कर लेता है और सोचता है कि जब बाहर हम महावीर जैसे हो गए तो भीतर भी महावीर जैसे हो जाएंगे। यह गणित बिल्कुल ठीक दिखाई पड़ता है, और बिल्कुल गलत है।

यह सभी के साथ होगा, सभी परंपराओं में होगा। महावीर फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं, कोई हिंसा न हो जाए उनके जीवन में यह उनको चारों तरफ से घेरे हवा है कि कोई हिंसा न हो जाए; किसी को दुख, किसी को पीड़ा, किसी को कष्ट न हो जाए लेकिन, इसका कारण आंतरिक है। महावीर ने जिस दिन जाना कि "मैं कौन हूं," उसी दिन उन्हें ज्ञात हुआ कि सभी के भीतर ऐसा ही चैतन्य विराजमान है, और किसी को भी चोट पहुंचाना अतंतः अपने को ही चोट पहुंचाना है।

तो महावीर की अहिंसा उनके ज्ञान की छाया है। फिर उनके पीछे जैनों का समूह है, वह भी अहिंसक होने की कोशिश करता है। उसकी अहिंसा ज्ञान की छाया नहीं है। वह उलटी कोशिश में लगा है। वह सोचता है, जब मैं अहिंसक हो जाऊंगा तो मुझे ज्ञान उपलब्ध होगा। महावीर का आचरण आता है अंतरात्मा की क्रांति से, जैन का आचरण आता है, आचरण से, और सोचता है कि पीछे अंतरात्मा की क्रांति होगी

हम करीब-करीब बिल्कुल पागलपन का काम कर रहे हैं, जो असंभव है। ईंधन लगाते हैं हम भट्टी में, आग जलती है। आग पीछे आती है, ईंधन पहले लगाना पड़ता है। हम आग को पहले रख कर फिर पीछे ईंधन को लाने की कोशिश में लगे हैं। वह होगा नहीं, लेकिन होता हुआ दिखता है। धोखा हो जाता है। आदमी आचरण को चिपका लेता है। तब खुद को तो धोखा नहीं होता, खुद तो वह जैसा था वैसा ही होता है, लेकिन दूसरों को धोखा हो जाता है। पूजा, सम्मान, सत्कार मिल जाता है।

बाहर इंगित बड़ी दिक्कतें खड़ी कर देते हैं। दुनिया भर के धार्मिक लोगों के अगर वस्त्र अलग कर लिए जाएं धार्मिकता के, तो भीतर अधार्मिक आदमी बैठा हुआ है। लेकिन इशारे में सब छिप गया है और इशारे का अर्थ हम लगा रहे हैं बाहर से।

मैंने सुना है, मध्य युग में ऐसा हुआ कि रोम के पोप के पास कुछ लोगों ने, ईसाइयों ने अत्यंत गहरा निवेदन किया, खुशामद की, यहूदियों की बड़ी निंदा की और कहा रोम में, जो कि ईसाइयों का गढ़ है, वहां तो एक भी यहूदी का रहना ठीक नहीं है। रोम से यहूदी निकाल बाहर कर दिए जाएं।

पोप, आदमी भला था; लेकिन भले आदमी भी पद पर होकर बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। पद किसी को भी बुरा कर सकता है। और, अगर पद पर रहने की थोड़ी सी भी आकांक्षा हो, तो फिर बुरे के साथ समझौता जरूरी हो जाता है।

आदमी भला था, लेकिन पद पर रहने की आकांक्षा। वह उसे लगा कि यह बात तो ज्यादाती की है, लेकिन अगर ईसाई धनपति सब नाराज हो जाएं तो कठिनाई होगी। तो उसने कहा, अच्छा! पर उसने कहा एक तरकीब—हम यहूदियों को अलग कर देंगे, लेकिन पहले एक अवसर देना जरूरी है! तो उसने ये अवसर दिया कि यहूदियों में जो भी उनका प्रधान हो जो भी उनका नेतृत्व करे, वह आकर मुझ से विवाद करे। पूरा रोम इकट्ठा होगा। और अगर विवाद में वह मुझसे जीत जाए तो यहूदी रह सकते हैं रोम में, अगर वह हार जाए तो यहूदियों को रोम छोड़ना पड़ेगा। कम से कम इतना न्याययुक्त तो मालूम पड़ेगा कि हार गए। इसलिए रोम छोड़ना पड़ा।

यहूदी बड़े बेचैन हुए। उनके नेता, उनके गुरु, उनके पुरोहित इकट्ठे हुए सिनागाग में, और उन्होंने कहा कि हम तो बड़ी मुश्किल में पड़ गए। और सिनागाग का जो प्रधान पुरोहित था, उसने कहा कि इस विवाद में तो

हार निश्चित है, क्योंकि निर्णायक भी पोप है। विवाद भी वही करेगा एक तरफ से, और निर्णायक भी वही है कि कौन जीता कौन हारा! हमारे जीतने का कोई उपाय नहीं है। यह चाल है।

और प्रधान पुरोहित ने कहा कि मैं विवाद में जाने को राजी नहीं; क्योंकि इसका कोई अर्थ ही नहीं है। और अगर मैं हार गया, जो कि निश्चित है, तो मेरे मन में सदा के लिए एक पाप का भाव रह जाएगा कि मेरे हार जाने के कारण सारे यहूदियों को रोम छोड़ना पड़ा। इसलिए मैं नहीं जाता। हम बिना हारे रोम छोड़ दें, वह उचित है।

लेकिन इतनी जल्दी छोड़ने को यहूदी राजी न थे; तो पुरोहितों से पूछा, लेकिन कोई राजी न हुआ। सिनागॉग में जो आदमी बुहारी लगाता था, वह बड़ी देर से सुन रहा था, सफाई भी कर रहा था। उसने कहा: अच्छा तो मैं चला जाऊंगा! लोगों ने कहा, तू पागल है, तू समझता क्या है? तू सिर्फ बुहारी लगाता रहा है। उसने कहा, थोड़ा-बहुत जो भी समझ गया हूं जब कोई जाने को राजी ही नहीं है, तो किसी का जाना जरूरी है--तो मैं जाता हूं।

कोई उपाय न देख कर बुहारी लगाने वाले उस बूढ़े को यहूदी विवाद में भेजने के लिए राजी हो गए। सारे रोम के यहूदी और ईसाई बीच चौक में रोम के इकट्ठे हुए। पोप भी थोड़ा चिंतित हुआ यह देख कर कि एक बुहारी लगाने वाला बूढ़ा यहूदी विवाद करने आया है। लेकिन कोई उपाय नहीं था, क्योंकि यहूदियों ने उसे अपना नेता चुना था। पोप ने विवाद शुरू किया उसने आकाश की तरफ हाथ उठाकर यहूदी को आकाश दिखाया। जब पोप ने आकाश की तरफ इस तरह हाथ करके दिखाया तो यहूदी ने अपना हाथ जमीन की तरफ करके दिखाया। पोप बड़ा प्रसन्न हुआ कि जब का आदमी है, जभी तो चुना होगा इसको। फिर पोप ने एक अंगुली ठीक उस यहूदी के सामने कर दी। उस यहूदी ने तीन अंगुलियां पोप के सिर के सामने कर दी।

पोप को पसीना आ गया कि यह आदमी तो जीत जाएगा! कोई उपाय न देख कर पोप ने अपने खीसे से एक सेव निकाला और उस सेव को यहूदी के सामने किया। उसने भी झट अपनी कमर में बंधे हुए एक बैग में से एक रोटी निकाली और पोप के सामने कर दी।

पोप ने कहा कि दिस मैन इ.ज डिक्लेयर्ड विक्टोरियस एण्ड ज्यू.ज कैन रिमेन इन रोम--यह आदमी जीत गया। यहूदी रह सकते हैं रोम में।

सारे ईसाई पादरी चकित हुए। वो पास आए। जैसे ही यहूदियों का झुंड चला गया अपने नेता को लेकर, उन्होंने पोप से पूछा: इतनी जल्दी लेन-देन हुआ आप दोनों के बीच, और इतने चमत्कारी ढंग से कि हम तो कुछ समझ ही नहीं पाए कि हो क्या रहा है! और वह जीत भी गया! मामला क्या था, हमें समाझाइए।

पोप ने कहा कि मैंने उस बूढ़े को इशारा किया कि सारे जगत में एक ही परमात्मा का राज्य है। यहूदी बड़ा होशियार था--ही वा.ज ए मास्टर ऑफ डिबेट्स। उसने कहा: और नीचे शैतान का भी राज्य है, जमीन के नीचे पाताल। उसको मत भूल जाओ।

बात सच्ची थी। मैंने उसके सामने फिर भी कहा, लेकिन परमात्मा एक ही है, दो कैसे हो सकता है? तो मैंने एक अंगुली उसके सामने की। उसने तीन अंगुली मेरे मुंह के सामने करके मुझको ही हरा दिया। ट्रिनिटी--तीन का सिद्धांत: कि परमात्मा तीन है, एक नहीं है।

ईसाई मानते हैं कि परमात्मा तीन है, जैसा कि हिंदु मानते हैं त्रिमूर्ति। ईसाई मानते हैं, परमात्मा, होली घोस्ट और उसका पुत्र।

तो कोई उपाय ही नहीं था। मेरी ही चीज मेरे ही सिर पर मार दी उसने तीन बता कर। तो मैंने सोचा कि सिद्धांतों में इसको उलझाना मुश्किल है। कोई और सरल-सा उपाय निकालूं, शायद उसमें हार जाए। तो मैंने अपने खीसे से एक सेव निकाला, कि कुछ नासमझ कहते हैं कि जमीन गोल है सेव की तरह। उस समय विज्ञान की नई खोजें चल रही थीं; और विज्ञान सिद्ध कर रहा था कि जमीन वर्तुलाकार है, चपटी नहीं।

यहूदी भी जब का था; रोटी के साथ लेकर आया था। उसने रोटी दिखा दी; कहा कि कोई कुछ भी कहे, लेकिन जैसा बाइबिल में कहा है किजमीन रोटी की तरह सपाट और चपटी है। हारने के सिवा कोई उपाय नहीं था।

सिनागॉग भागा हुआ उस यहूदी के पास पहुंचा। उन्होंने उस बुहारी लगाने वाले से कहा कि तूने हद कर दी! क्या गजब का आदमी है! हुआ क्या? उसने कहा: एवरीथिंग वा.ज जस्ट नॉनसेंस। दैट मैंन इ.ज मैड। और अगर चौथा सवाल पूछता तो मैं उसको झपट्टा मार देता। बहुत गुस्सा मुझे आ रहा था।

फिर भी हुआ क्या? तू जीत तो गया!

उसने कहा कि वह तो मेरी समझ में भी नहीं आता। जब पोप ने ऐसा हाथ किया तो मैंने समझा कि वह कह रहा है कि निकलो यहूदियों रोम से। मैंने कहा कि दुनिया की कोई ताकत हमें इस जगह से नहीं हटा सकती। हम यहीं रहेंगे। उस आदमी ने मेरी आंख के सामने एक अंगुली की; और कहा कि ड्राप डेड--मर जाओ। तो मैंने तीन अंगुली की और कहा कि यू ड्राप डेड थ्राइस। और तब मैंने देखा--देन आई सा दैट ही इ.ज ब्रिंगिंग आउट हिज लंच, सो आई ब्राट आउट माइन--वह अपना भोजन निकाल रहा है। तो मैं भी अपना भोजन तो साथ रोज रखता ही हूं। गरीब आदमी हूं, रोज दोपहर घर जाना आसान नहीं होता। जब तुम अपना भोजन निकाल रहे हो, हम भी निकालते हैं। और वह जो चौथा उसने नहीं पूछा, सो ठीक ही किया।

बाहरी प्रतीक कुछ भी खबर नहीं देते, और उनसे भीतर का अंदाज आप जो लगाते हैं, वह अनुमान है। लेकिन हम यही कर रहे हैं। एक आदमी मंदिर जा रहा है, तो हम समझते हैं, धार्मिक है। मंदिर जाना बाहरी प्रतीक है। पता नहीं, वह किसलिए जा रहा है, किस कारण से जा रहा है? कि मंदिर में स्त्रियां इकट्ठी हैं, इसलिए जा रहा है, कि मंदिर में गांव के सब लोग, भले लोग इकट्ठे हैं, वे देख लें कि मैं भी भला आदमी हूं, इसीलिए जा रहा है। वह मंदिर किसलिए जा रहा है, इतने से कुछ पता नहीं चलता कि वह धार्मिक है।

एक आदमी उपवास कर रहा है, पूजा-प्रार्थना कर रहा है, इससे कुछ पता नहीं चलता कि वह धार्मिक है। ये तो बाहर के प्रतीक हैं; हम अनुमान लगाते हैं। और एक आदमी चुप बैठा है; मंदिर नहीं जा रहा है, तो हम सोचते हैं, अधार्मिक है। लेकिन कुछ आवश्यक नहीं, जो मंदिर जा रहा है, वह धार्मिक न हो। जिंदगी जटिल है। और जो एकांत में चुप बैठा हो, वह धार्मिक हो। कहना मुश्किल है। लेकिन, हम बाहर से देखते हैं और इसलिए दुनिया में पाखंड फैलता चला जाता है, हिपोक्रेसी फैलती जाती है। हमारे बीच जो चालाक हैं, वे बाहर का इंतजाम कर लेते हैं और हमारे बीच जो चालाक नहीं हैं, वे उलझ जाते हैं, फंस जाते हैं।

जो अपराधी फंस जाते हैं, वे सब छोटे अपराधी हैं। बड़े अपराधी फंस नहीं पाते। बड़े अपराधी तो अधिकार में, पद में प्रतिष्ठा में होते हैं; उन्हें फंसाना मुश्किल है। वे काफी होशियार हैं। वे बाहर का इंतजाम कर रखते हैं।

ऐसा कहा जाता है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मंदिर के पुरोहितों को कभी भरोसा नहीं होता कि "ईश्वर है।" यह उनका धंधा होता है--यह प्रोफेशनल सीक्रेट है। ईश्वर में उन्हें कभी भरोसा नहीं होता, हो भी नहीं सकता। मंदिर के पुरोहित को क्या खाक भरोसा होगा, क्योंकि जो नौकरी कर रहा है पूजा के लिए, नौकरी कर रहा है प्रार्थना के लिए; प्रार्थना जैसे निजी संबंध को जिसने व्यवसाय बना लिया है, उसे परमात्मा का कोई अनुभव नहीं हो सकता।

मंदिर का पुरोहित जानता है कि भगवान वगैरह कुछ भी नहीं है, लेकिन निरंतर घोषणा करता रहता है अपने सारे आचरण से, कि है, क्योंकि उसका सारा जीवन, सारा व्यवसाय, सारा धंधा भगवान के होने पर निर्भर है। इसलिए जब कोई कहता है कि भगवान नहीं है, तो पुरोहित की नाराजगी यह नहीं है कि आप असत्य बोल रहे हैं, पुरोहित की नाराजगी यह है कि सत्य बोल कर आप उसका पूरा धंधा खराब किए दे रहे हैं।

पुरोहितों को कभी भरोसा नहीं होता। हो नहीं सकता; लेकिन पाखंड का जाल उनके चारों तरफ होता है, जिससे दूसरों को भरोसा मिलता रहता है कि वे भरोसा करते हैं।

महावीर का यह सूत्र सारे पाखंड की जड़ काट देने का सूत्र है। महावीर कहते हैं: "सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता।"

जैसे "ब्राह्मण" शब्द बहुमूल्य है, वैसे ही महावीर के लिए "श्रमण" शब्द महत्वपूर्ण है। और भारत में दो संस्कृतियों की धारा है। एक ब्राह्मण संस्कृति की धारा है और एक श्रमण संस्कृति की धारा है। श्रमण संस्कृति में बुद्ध और महावीर आते हैं और शेष सारे विचारक ब्राह्मण संस्कृति में आते हैं। ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति का मौलिक भेद समझ लेना चाहिए।

ब्राह्मण समर्पण की संस्कृति है, सरेंडर की। ब्राह्मण संस्कृति का मौलिक आधार है कि जब तक कोई व्यक्ति अपने अहंकार को परमात्मा के चरणों में न छोड़ दे, तब तक ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। ब्रह्म उपलब्ध होगा, जब अहंकार समर्पित हो जाएगा।

तो समर्पण, श्रद्धा ब्राह्मण संस्कृति का सूत्र है। श्रमण संस्कृति बिल्कुल भिन्न है। श्रमण शब्द बना है श्रम से। श्रमण संस्कृति का आग्रह है कि समर्पण से परमात्मा नहीं मिलेगा; श्रम से मिलेगा—प्रयास से, साधना से। सिर्फ असहाय हूं और पतितपावन, मुझे बचाओ, इन प्रार्थनाओं से नहीं मिलेगा। जीवन को बदलना होगा। मेहनत करनी होगी। एक-एक इंच जीवन को रूपांतरित करना होगा। कोई प्रार्थना सफल नहीं हो सकती, साधना सफल होगी।

अहंकार मिटाना है। लेकिन श्रमण धारा कहती है कि अहंकार समर्पण करने से नहीं मिट सकता। क्योंकि पहली तो बात यह है कि जो है, उसी का समर्पण किया जा सकता है; जो है ही नहीं, उसका समर्पण कैसे होगा? श्रमण धारा कहती है कि "अहंकार नहीं है", इस सत्य को जानने की साधना करनी पड़ेगी। समर्पण से क्या होगा? छोड़ेंगे कहां जो है ही नहीं, होता कुछ, तो छोड़ देते।

और फिर श्रमण संस्कृति कहती है कि अगर दूसरे के चरणों में छोड़ेंगे तो अहंकार यहां से हटा, लेकिन वहां मौजूद होगा जहां छोड़ेंगे। और इसलिए भक्त का अहंकार अपने भीतर से हट कर भगवान के साथ जुड़ जाता है। भक्त को आप गाली दें, वह नाराज नहीं होगा; उसके भगवान को गाली दें, वह लड़ने को तैयार हो जाएगा।

तो अहंकार शिफ्ट हुआ। कल तक अपने साथ था कि मैं महान हूं। अब मैं महान हूं, यह छोड़ दिया, लेकिन मेरा भगवान, मेरा कृष्ण, मेरा राम, मेरा जीसस, मेरा महावीर महान है। अहंकार दूसरी तरफ हट गया, लेकिन सूक्ष्म रूप से अब भी आपका ही अहंकार है; क्योंकि न वहां राम है, न वहां कृष्ण है, न महावीर है उसको झेलने को। आप अपने ही हाथ में संभाले हुए हैं। भगवान भी आपका, अहंकार भी आपका। वे दोनों आपके भीतर ही छिपे हैं।

श्रमण संस्कृति है—अहंकार मिटाना है, समर्पण करने का कोई उपाय नहीं है। और मिटाने का अर्थ है कि इतना श्रम करना है कि स्वयं दिखाई पड़ जाए कि अहंकार है ही नहीं। वह श्रम से ही तिरोहित हो जाए। जैसे सुबह की ओस की बूंद सूरज के उगने पर तिरोहित हो जाती है, ऐसे ही जीवन की धारा जब संगृहीत होती है, इंटिग्रेट होती है, समग्र होती है, तो अहंकार का कुहासा समर्पित नहीं होता है, विसर्जित हो जाता है। श्रमण संस्कृति "स्वयं" पर भरोसा रखती है; ब्राह्मण संस्कृति "ब्रह्म" पर भरोसा रखती है। श्रमण संस्कृति "व्यक्तिवादी" है; ब्राह्मण संस्कृति "अद्वैतवादी" है। ब्राह्मण संस्कृति में एक ब्रह्म है, और श्रमण संस्कृति में उतने ही ब्रह्म हैं जितनी चेतनाएं हैं। और हर व्यक्ति ब्रह्म होने का अधिकारी है। ये दो धाराएं हैं।

महावीर कहते हैं: "सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता।"

जैन साधु हो जाते हैं लोग। उनका सिर मुंडा दिया, वस्त्र बदल दिए, हाथ में उपकरण दे दिए साधु के; साधु हो गए! कल तक यह आदमी साधु नहीं था; एक क्षण वस्त्र बदल लेने से, सिर मुंडा लेने से एक क्षण में साधु

हो गया! कल तक इसके चरण कोई छूता नहीं, शायद यह चरण छूता तो लोग अपने चरण को हटा लेते; अब लोग इसके चरणों पर सिर रखते हैं! इसलिए महावीर कहते हैं: "सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं हो जाता।"

बाह्य आचरण पूरा भी कर लिया जाए, तो भी भीतर के श्रमण का जन्म नहीं होता। हां, भीतर के श्रमण का जन्म हो, तो बाहर का आचरण भी पीछे आ सकता है, लेकिन बड़े फर्क हैं। बुनियादी फर्क यह है कि अगर कोई भीतर से श्रमण की स्थिति को उपलब्ध हो जाए, तो बाहर का आचरण बदलेगा जरूर, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति का अलग बदलेगा। इसे जरा समझ लें, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का ढंग भिन्न है, बेजोड़ है। तो महावीर नग्न खड़े हो जाएंगे। बुद्ध भी श्रमण को उपलब्ध हुए, लेकिन नग्न खड़े नहीं हुए। महावीर नग्न खड़े हुए। यह उनका निजी ढंग है। जो घटना घटी है, उस घटना को अभिव्यक्त करने का उनका निजी ढंग है। बुद्ध को यह निजी ढंग नहीं जमा; यह ख्याल में भी नहीं आया। जब कोई व्यक्ति भीतर की क्रांति को उपलब्ध होता है तो बाहर को व्यवस्था नहीं देता; बाहर जैसा भी घटित होने लगता है उस चेतना के प्रकाश में, वैसा घटित होने देता है। तो दुनिया के सारे ज्ञानी एक जैसा व्यवहार करते नहीं दिखाई पड़ते।

यह बात बड़े मजे की और समझ लेने जैसी बात है कि अगर ज्ञान भीतर हो, तो दो ज्ञानियों का व्यवहार एक जैसा नहीं होगा, लेकिन अगर आचरण थोपा जाए तो हजारों ज्ञानियों का व्यवहार एक जैसा होगा। मगर वे ज्ञानी नहीं हैं।

पांच सौ जैन साधुओं को खड़ा कर दें, अगर वे तेरापंथी हैं तो सब मुंह पर पट्टी बांधे हुए खड़े हैं; जैसा कि सैनिक या सिपाही खड़े हों। सैनिक और सिपाही का एक जैसा, एक यूनिफार्म में खड़े हो जाना समझ में आता है; एक ढंग से खड़े हो जाना समझ में आता है; उसका कारण है, क्योंकि सैनिक के व्यक्तित्व को मिटाने की पूरी कोशिश की जाती है; ताकि उसमें कोई आत्मा न रह जाए; आत्मा रहे, तो युद्ध में वह कुशल नहीं हो पाएगा। वह जड़ मशीन की तरह हो जाए, उसका सारा काम यांत्रिक हो जाए।

तो आप पांच सौ सैनिकों को खड़ा करके देखें, आपको पांच सौ लोग दिखाई पड़ेंगे, लेकिन व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ेंगे। सब चेहरे एक जैसे मालूम होंगे। एक सा कपड़ा, एक सी बंदूक, एक सी टोपी, एक से बाल कटे, सब एक जैसे मालूम होंगे। व्यक्तित्व खो जाता है, भीड़ रह जाती है। इसलिए, मिलिटरी में हम नंबर दे देते हैं, नाम हटा देते हैं, क्योंकि नाम से थोड़ा व्यक्तित्व का पता चलता है। अगर एक आदमी मर जाता है, तो तख्ती पर खबर लग जाती है कि ग्यारह नंबर गिर गया। ग्यारह नंबर गिरने से कुछ नंबर भी पता नहीं चलता, कौन गिर गया? वह कवि था, वैज्ञानिक था, साधु था, असाधु था; उसके बच्चे हैं, पत्नी है? ... कुछ पता नहीं चलता। ग्यारह नंबर का न कोई परिवार होता है, न कोई बच्चे होते हैं, न पत्नी होती है। ग्यारह नंबर के क्या बच्चे होंगे? ग्यारह नंबर नंबर गिर जाता है, तख्ती पर लोग पढ़ लेते हैं। बात खतम हो गई। ग्यारह नंबर की जगह दूसरा आदमी ग्यारह नंबर हो जाता है।

ध्यान रहे, नंबर रिप्लेस किए जा सकते हैं, व्यक्ति रिप्लेस नहीं किए जा सकते। कोई उपाय नहीं है। आपमें से एक व्यक्ति हट जाए, कोई उपाय नहीं है जगत में कि उसकी जगह दूसरा व्यक्ति रखा जा सके। क्योंकि उसकी पत्नी कहेगी कि कितना ही दूसरा व्यक्ति प्यारा हो, मेरा पति नहीं है। उसके बेटे कहेंगे कि कितना ही अच्छा आदमी हो, लेकिन मेरा पिता नहीं है; उसके मित्र कहेंगे कि सब ठीक है, लेकिन वह मित्रता कहां? उसकी मां कहेगी कि सब ठीक है, लेकिन मेरा बेटा जिसे मैंने जन्मा था... !

व्यक्ति को स्थान पर रखा नहीं जा सकता, बदला नहीं जा सकता; नंबर बदले जा सकते हैं। एक फिएट कार की जगह दूसरी फिएट कार रखें, तीसरी रखें, कोई फर्क नहीं पड़ता। यंत्र बदले जा सकते हैं। तो मिलिटरी पूरी कोशिश करती है कि व्यक्ति मिट जाए और यंत्र रह जाए। और उस व्यक्ति को पूरी ऐसी चेष्टा करवाई जाती

है कि धीरे-धीरे आज्ञा उसके लिए मेकेनिकल हो जाए, सोच-विचार समाप्त हो जाए। तो इसलिए उसको लेफ्ट-राइट करवाते रहते हैं वर्षों तक। लेफ्ट-राइट की कोई जरूरत नहीं है कि बाएं घूमो, दाएं घूमो, आगे चलो, पीछे जाओ--उसको करवाते रहते हैं। नया-नया सैनिक भी हैरान होता है कि इतना यह करवाने से क्या मतलब है, और वर्षों तक! लेकिन इसका उपयोग है। धीरे-धीरे "बाएं घूमो" यह सुनते ही उसे सोचना नहीं पड़ता, वह बाएं घूमता है। सोचने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जिस दिन बिना सोचे शरीर बाएं-दाएं घूमने लगता है, उस दिन यह आदमी अब सैनिक हो गया; इसकी आत्मा खो गई। अब इससे कहो, गोली चलाओ, तो इसका हाथ सीधा बंदूक के घोड़े पर जाएगा; गोली चलेगी। अब वह सोचेगा नहीं कि मैं किसको मार रहा हूं? क्यों मार रहा हूं? मारने का क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है? न, अब वह यंत्रवत हो गया।

तो सैनिक के लिए तो पोंछ मिटा देना तो शायद उचित हो, लेकिन साधु के लिए पोंछ कर मिटा देना बिल्कुल गलत है। लेकिन पांच सौ तेरापंथी साधु खड़े कर दें, कि स्थानकवासी साधु खड़े कर दें, कि दिगंबर साधु खड़े कर दें, वे सब बिल्कुल एक जैसे लकीर के फकीर होकर चल रहे हैं। इससे लगता है कि भीतर कोई अपनी चेतना नहीं है जो मार्ग खोज सके। शास्त्र ने जो मार्ग दिया है उसको नाप-नाप कर चल रहे हैं, अपना कोई बोध नहीं है जो आचरण बन सके। आचरण शास्त्र से पकड़ा है; उसको थोपते चले जा रहे हैं। इससे एक बड़ी अशोभन घटना घटती है कि आत्मा खो जाती है साधु की भी। औपचारिक व्यवस्था रह जाती है, आत्मा खो जाती है।

महावीर कहते हैं कि यह होगा ही, अगर कोई बाह्य को ज्यादा मूल्य देगा आंतरिक से, और पहले बाह्य को बदलने की कोशिश करेगा, और सोचेगा, पीछे भीतर को बदल लूंगा।

सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता। हालांकि यह हो सकता है कि जो श्रमण हो गया है, वह सिर मुंडा ले। यह दूसरी बात हो सकती है, जरूरी नहीं है कि हो। और ध्यान रखना कि जो सिर न मुंडाए तो ऐसा मत समझ लेना कि वह श्रमण नहीं हुआ। लेकिन यह घटना भी घट सकती है कि कोई श्रमण होकर सिर मुंडा ले।

बालों का एक सौंदर्य है। बालों का एक आकर्षण है। बाल बहुत कामुक हैं, खींच सकते हैं; इसलिए हम सिर मुंडाने में भयभीत होते हैं। कोई आपका सिर मुंडा दे तो आप घर से निकलना पसंद नहीं करेंगे कि लोग क्या कहेंगे! हम तो तब सिर मुंडाते हैं आदमी का, जब वह मर जाता है। तब उसका सिर सफा कर देते हैं, न अब कोई देखने की दिक्कत है, न कोई डर है, न अब किसी को आकर्षित करना है।

बालों का एक कामुक आकर्षण है। इसलिए पुरुष तो सिर मुंडा भी ले, स्त्री सिर मुंडाने को बिल्कुल राजी नहीं हो सकतीं। और स्त्री सिर मुंडी हुई बिल्कुल पुरुष जैसी मालूम होने लगती है; स्त्री जैसी मालूम नहीं होती। स्त्री का बहुत सा सौंदर्य उसके बालों में छिपा है।

तो महावीर कहते हैं, श्रमण होकर कोई सिर मुंडा सकता है, क्योंकि अब उसे कोई प्रयोजन नहीं रहा दूसरे को आकर्षित करने में। अब अपनी सुविधा की बात है। और श्रमण को बाल दिक्कत दे सकते हैं। महावीर कहते हैं कि बाल अगर रखना हो तो दूसरों पर बालों को कटवाने के लिए निर्भर होना पड़ता है। अकारण निर्भरता बढ़ती है। या साथ में साधन रखो, रेजर रखो, उस्तरा रखो कि बालों को साफ करो। अगर न साफ करो तो गंदगी बढ़ती है। अगर बालों को बढ़ने दो तो उनकी सफाई का ध्यान रखना पड़ता है। अगर सफाई न करो तो जुएं पड़ जाएं और दूसरा मल इकट्ठा हो जाए। वह सब कष्टपूर्ण है। तो महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति श्रमण हो गया है, वह हो सकता है कि बालों को साफ कर दे। बालों को साफ कर देना एक गौण घटना है; क्योंकि अब उसे कोई उत्सुकता नहीं है कि उसके शरीर को कोई सुंदर माने। और उसके स्वास्थ्य के लिए हितकर होगा, स्वच्छता में सहायक होगा और व्यर्थ की व्यवस्था उसे नहीं जुटानी पड़ेगी।

महावीर कहते हैं कि साधक को व्यवस्था न जुटानी पड़े, ऐसे जीना चाहिए। कुछ भी उसे ढोना न पड़े। तो बाल अकारण है, लेकिन इससे उलटा सही नहीं है कि आप बाल घुटा लें तो आप श्रमण हो गए। बालों को घुटाने

के पीछे और भी कारण हैं। जो लोग महावीर की साधना में उतरेंगे और भीतर की साधना में प्रवेश करेंगे, वे चाहेंगे कि बाल न घोट ले।

आपको शायद ख्याल में नहीं है, बाल भी अकारण नहीं हैं और कुछ कर रहे हैं। शायद आपको ख्याल हो, कि मनुष्य अतीत में, कोई दस लाख साल पहले, मनुष्य के पूरे शरीर पर बाल थे, क्योंकि पूरे शरीर को रक्षा की जरूरत थी। जैसे-जैसे आदमी की रक्षा की व्यवस्था बदलती गई और शरीर को रक्षा की जरूरत न रही, शरीर से बाल तिरोहित होने लगे। अब सिर्फ उन जगहों पर बाल रह गए हैं, जहां अभी भी रक्षा की जरूरत है। कुछ ग्लैंड्स भीतर छिपे हैं जिनको रक्षा की जरूरत है।

महावीर की साधना का एक हिस्सा है कि भीतर का जो ताप है, भीतर की जो ऊर्जा है, गर्मी है, उस गर्मी को, उस ऊर्जा को, उस अग्नि को काम-केंद्र से उठाकर सहस्रार तक लाना है। बाल उस गर्मी को बिखरने में बाधा देंगे, उस गर्मी को मस्तिष्क में रोक लेंगे। वह गर्मी आकाश में तिरोहित हो जानी चाहिए, अन्यथा मस्तिष्क भारी और रुग्ण हो जाएगा। तो सहस्रार के स्थान पर बाल नहीं होने चाहिए ताकि ऊर्जा सीधी आकाश में लीन हो जाए।

ध्यान रहे, शरीर में ऊर्जा पैदा हो रही है। उसको विसर्जित करने के दो उपाय हैं। एक तो संभोग के द्वारा, तो वह निम्नतम केंद्र से जगत में चली जाती है, प्रकृति में चली जाती है, और दूसरा उपाय है सहस्रार के मार्ग से, श्रेष्ठतम केंद्र से।

ये दो छोर हैं। और जैसे विद्युत केवल छोर से ही विसर्जित हो सकती है, ऐसे ही इन दो छोरों से जीवन-ऊर्जा विसर्जित होती है। जो व्यक्ति सहस्रार से अपनी जीवन-ऊर्जा को आकाश में छोड़ने में समर्थ हो जाता है, महावीर उसको ही श्रमण कहते हैं। वह कामवासना से बिल्कुल... जितनी दूर संभव हो सकता है, उतनी दूर चला गया है, और उसकी ऊर्जा ने नई दिशा और नया आयाम ले लिया। यह गुणात्मक अंतर है, इसलिए श्रमण चाहेगा कि बालों को घोट दे।

आप जान कर हैरान होंगे कि जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु बाल घोटते रहे हैं और हिंदू ऋषि-मुनि बाल बढ़ाते रहे हैं, घोटते नहीं रहे हैं। शंकराचार्य ने जरूर हिंदू संन्यासियों के लिए बाल घुटवाने शुरू किए, क्योंकि शंकराचार्य ने अपनी साधना का अधिकतम हिस्सा बौद्धों से उधार लिया। लेकिन हिंदू ऋषि-मुनि, अगर आप उपनिषदों और वेदों के ऋषि-मुनियों को देखें, तो वे सब दाढ़ी और बालों को पूरी तरह बढ़ाते रहे हैं। उनकी साधना-प्रक्रिया बिल्कुल भिन्न है। उस प्रक्रिया में बाल सहयोगी हो जाते हैं।

जैन साधना में ऊर्जा को विसर्जित करना है। अनंत ब्रह्मांड में ऊर्जा खो जाए, क्योंकि वह ऊर्जा शरीर की ही है, आत्मा की नहीं है। हिंदू साधना में—विशेषकर पतंजलि की साधना में उस ऊर्जा को विसर्जित नहीं करना है, उस ऊर्जा को सहस्रार पर इकट्ठा करना है। दोनों रास्ते अलग हैं। हिंदू साधना में उस ऊर्जा को इकट्ठा करना है एक खास सीमा तक, और जब वह एक खास सीमा तक इकट्ठी हो जाए तभी परमात्मा को समर्पित करनी है।

तो बाल उस ऊर्जा को रोकने में सहयोगी हैं। हिंदू संन्यासियों का बाल का घोटना, सिर को मुंडाना शंकराचार्य के बाद प्रारंभ हुआ और गति पकड़ गया लेकिन वह बौद्ध परंपरा से आई हुई धारणा है। साधकों ने जो भी चुना है, उसके पीछे कुछ कारण हैं। और, अगर कारण ख्याल में न हों और अंधों की भांति लोग चलते जाएं, तो उससे कोई लाभ नहीं होता, कभी नुकसान भी हो सकता है।

महावीर और बुद्ध शीर्षासन के पक्ष में नहीं और उन्होंने योगासनों को कोई मूल्य नहीं दिया। पतंजलि, हिंदू योग का मूल आधार जिसने रखा, वह शीर्षासन के बहुत पक्ष में है। जो आदमी शीर्षासन करता है उसके लिए बालों का होना बिल्कुल जरूरी है, नहीं तो खतरा होगा, नुकसान होगा। क्योंकि जब आप शीर्षासन में खड़े होते हैं तो जीवन-धारा पूरी की पूरी सिर की तरफ बहती है। अगर उसको रोकने का कोई उपाय न हो तो शीर्षासन के बाद आप अपने को बिल्कुल निस्सत्व और कमजोर पाएंगे। उसे रोकना चाहिए। इसलिए हिंदू मुनि

जटाएं बढ़ाता था, जितनी बड़ी कर सकता था। कभी नहीं कटाता था, उनको बढ़ाते चला जाता था। उनकी वह पगड़ी बना लेता था, और उस पगड़ी पर शीर्षासन करता था। वह पगड़ी सिर और पृथ्वी के बीच अंतराल का काम करती थी, नहीं तो पृथ्वी झटके से ऊर्जा को खींच लेती। और वह झटके से ऊर्जा का खींचना बड़ा खतरनाक हो सकता है। वह शरीर को कई तरह के नुकसान पहुंचा सकता है। कई दफा जिंदगी में बड़ी उलझनें हो जाती हैं। शंकराचार्य ने मुंडा तो कर दिया हिंदू संन्यासियों को, लेकिन शीर्षासन करने से नहीं रोका।

अकारण कुछ भी नहीं है। छोटा सा नियम भी जब जानियों ने चुना है, तो उसके पीछे उनके अपने कारण हैं। महावीर किसी और प्रक्रिया पर काम कर रहे हैं, तो वे कहते हैं कि यह हो सकता है कि श्रमण होकर कोई सिर मुंडा ले, लेकिन सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता। और अच्छा है उन्होंने यह कह दिया। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि चार हजार साल के बाद बच्चे मुंडे ही पैदा होंगे। जैन साधु को बड़ी तकलीफ होगी तब।

आपको पता है, सिर से बाल कम होते जा रहे हैं। जैसे-जैसे आदमी की बुद्धि विकसित होती जाती है, वैसे-वैसे सिर से बाल कम होते जाते हैं। पुरुषों के सिर से बाल ज्यादा गिरते हैं, स्त्रियों के कम गिरते हैं; क्योंकि उन्होंने बुद्धि का उतना उपयोग किया नहीं है। तो वह सबूत है इस बात का कि बुद्धि की प्रक्रिया पर उन्होंने काम नहीं किया; इतनी ऊर्जा उनके सिर में इकट्ठी नहीं होती कि बाल गिर जाएं। इसलिए स्त्रियां गंजी नहीं हो पातीं, पुरुष गंजे हो जाते हैं। और जितनी ज्यादा प्रतिभा का उपयोग किया जाए, उतने ही जल्दी गंजे हो जाते हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं, चार हजार साल में आदमी बुद्धि का इतना उपयोग कर रहा होगा कि बच्चा जन्म से ही गंजा पैदा होगा। गंजे होने का डर नहीं रह जाएगा। अच्छा कहा महावीर ने कि सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता, नहीं तो चार हजार साल बाद सभी श्रमण पैदा होते।

"और ओम का जाप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता।"

ब्राह्मण होने से ओम का जाप पैदा होता है। जब कोई व्यक्ति सब भांति समर्पित कर देता है अपने को अनंत शक्ति में, अपने मस्तिष्क को सब भांति छोड़ देता है "उसके" हाथों में, अपने विचार को, अपनी चिंतना को, अपने मनन को; सभी को "उसके" चरणों में उतार कर रख देता है; वह चरण सही हो या झूठ, यह सवाल नहीं है, उतार कर रख देता है, अपनी तरफ से निर्भर हो जाता है, तब उसके भीतर एक परम ध्वनि गूंजने लगती है। उस ध्वनि का नाम "ओंकार" है। उसके भीतर ओम का सहज आवर्तन होने लगता है, उसे करना नहीं पड़ता।

लेकिन हम तो हमेशा उलटा चलते हैं। हम बैठ कर ओम का जाप करते हैं। ओम का जाप हमारा व्यर्थ है; क्योंकि ओम का जाप भी हम बुद्धि से ही करते हैं; और बुद्धि ही बाधा है। ओम का जाप भी हमारे लिए एक विचार का पुनरावर्तन होगा; और विचार ही तो अवरोध है।

महावीर कहते हैं कि ओंकार का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता यद्यपि कोई ब्राह्मण हो जाए तो ओंकार का जाप प्रकट होता है; उसके भीतर ओम की ध्वनि गूंजने लगती है; उसके रोएं-रोएं से ओंकार गूंजने लगता है।

ओंकार मनुष्य के द्वारा पैदा की गई ध्वनि नहीं है, बल्कि प्रकृति की स्वाभाविक ध्वनि-व्यवस्था है। अगर सब शून्य हो जाए जगत में, तो ओंकार का नाद शेष रह जाएगा। वह नाद इस जगत का मौलिक ध्वनि-स्वर है। उसे पैदा नहीं करना होता।

इसलिए ओंकार को हिंदुओं ने "अनाहत" कहा है।

दो तरह के नाद हैं। एक तो "आहत" नाद है। मैं ताली को बजाऊं, तो यह "आहत नाद" है; क्योंकि दो चीजें टकराईं, आहत हुई। उनके परस्पर चोट से ध्वनि पैदा हुई। ओंकार "अनाहत नाद" है। वह दो चीजों के टकराने से पैदा नहीं होता। जब सब टकराव भीतर बंद हो जाता है, तब जो शेष रह जाता है; जब भीतर बुद्धि

की सारी कलह बंद हो जाती है, संघर्ष बंद हो जाता है, सब विचार खो जाते हैं, सब शून्य हो जाता है; उस शून्य में जो ध्वनि अनुभव होने लगती है, वह ध्वनि व्यक्ति नहीं करता, वह ध्वनि ब्रह्मांड का स्वरूप है।

तो महावीर कहते हैं: "ओम का जाप कर लेने से कोई ब्राह्मण नहीं होता।"

"निर्जन वन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता।"

आप अकेले में जाकर रह सकते हैं, लेकिन आप अकेले नहीं हो सकते। क्योंकि भीड़ तो आपकी खोपड़ी में भरी है, वह आपके साथ चली जाएगी, एक दुकानदार को उठा कर ले जाएं जंगल में। वहां बैठ कर वह दुकान का ही विचार करेगा, ग्राहकों से बातें करेगा, सामान लेगा-देगा, सौदा पटाएगा; वह करेगा क्या!

मुल्ला नसरुद्दीन कपड़ा बेचता था। एक दिन आधी रात में उठा और एकदम से उसने अपनी चादर फाड़ दी। उसकी पत्नी ने पूछा: नसरुद्दीन, यह क्या कर रहे हो? उसने कहा: तू कम से कम दुकान में दखल न दे, ग्राहक कपड़ा खरीदने आया है।

वह सपने में कपड़ा फाड़ कर ग्राहक को दे रहा है। सपने में भी ग्राहक! सपने में भी दुकान! सपने में भी वही चलेगा न, जो दिन में चला है!

आप कहां भाग कर जाएंगे अपने से? तो एकांत निर्जन में आप जा सकते हैं, लेकिन आप अकेले नहीं हो सकते। अकेले होने की कला दूसरी है। जो आदमी अकेले होने की कला जान लेता है, वह भीड़ में भी अकेला है। उसके लिए भीड़ में भी एकांत है। महावीर को आप बाजार में ला ही नहीं सकते। इसका मतलब यह नहीं है कि उनको आप बाजार में नहीं निकाल सकते। बिल्कुल निकाल सकते हैं। लेकिन महावीर को बाजार में नहीं लाया जा सकता। बाजार में से भी वह ऐसे ही गुजर जाएंगे, जैसे कि एकांत से गुजर रहे हों। क्योंकि उनके भीतर कोई भीड़ नहीं है।

भीड़ में अकेले होने की कला। और हम तो एक ही कला जानते हैं, अकेले में भी भीड़ में होने की कला। अकेले भी बैठे हैं, तो भी भीतर कुछ चलता रहता है।

निर्जन वन में रहने से कोई मुनि नहीं होता, हालांकि कोई मुनि हो जाए तो निर्जन उसे उपलब्ध हो जाता है।

"और न कुशा के वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी होता है।"

अपने को कष्ट देने से कोई तपस्वी नहीं हो जाता, यद्यपि कोई तपस्वी हो तो कष्टों को झेलने की क्षमता आ जाती है।

इस फर्क को समझ लें। ये दोनों बातें बड़ी बुनियादी और भिन्न हैं।

एक आदमी अपने को कष्ट दे रहा है; कांटे बिछा कर लेटा हुआ है; आग जला लिया है और उसके पास बैठ कर तप रहा है; धुनी लगा ली है, पसीना-पसीना हो रहा है; सर्दी है, बर्फ पड़ रही है और वह बाहर खड़ा कंप रहा है; यह आदमी आयोजन करके, इंतजाम करके अपने को कष्ट दे रहा है। इस आदमी के चित्त में कहीं न कहीं रोग है। यह आदमी खुद को कष्ट देने में रस ले रहा है। यह अपने को सताने में प्रसन्न है। यह आदमी बीमार है।

और, इस आदमी में और आप में फर्क नहीं है। आप सुख का आयोजन कर रहे हैं, यह दुख का आयोजन कर रहा है। यह आपसे उल्टा चला गया आदमी है; पर यह है आप ही जैसा। इंतजाम करना यह भी नहीं छोड़ रहा है। आप चाहते थे सुख मिले, यह चाहता है दुख मिले। यह भी हो सकता है कि सुख पाने की इसने बहुत कोशिश की और नहीं पा सका, तो अब ये अंगूर खट्टे हैं, ऐसा मान कर दुख पाने की कोशिश कर रहा है। इसका अहंकार हार गया; सुख न जुटा पाया। अब इसका अहंकार कम से कम इतना तो जीत ही सकता है कि दुख जुटा सकता है।

यह आदमी अहंकार से जी रहा है और रुग्ण है। बहुत लोग हैं जो अपने को कष्ट देने में रस पाते हैं; और वे अपने आस-पास इस तरह के लोग इकट्ठे कर लेते हैं जो उन्हें कष्ट दें। और फिर रोते हैं और चिल्लाते हैं कि यह आदमी मुझे कष्ट दे रहा है। लेकिन आपको पता नहीं है कि आप ने ही उस आदमी को अपने पास इकट्ठा कर

लिया है; और आप चाहते हैं कि वह आपको कष्ट दे। और अगर वह चला जाए, तो आपको खालीपन लगेगा और जल्दी ही आप किसी दूसरे आदमी से जगह भर लेंगे। कोई चाहिए जो आपको कष्ट दे।

महावीर कहते हैं, अपने को कष्ट देने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता, यद्यपि कोई तपस्वी हो जाए तो कष्ट को झेलने की क्षमता आ जाती है। वह बिल्कुल दूसरी बात है। कांटे बिछा कर लेटना एक बात है और जीवन में कांटे आ जाएं तो उनके बीच से साक्षीभाव से गुजर जाना बिल्कुल दूसरी बात है। जीवन में कांटे आएंगे, दुख आएंगे। तपस्वी वह है जो न सुख की आकांक्षा करता है, न दुख की; जो आ जाता है उसके जीवन में उससे बिना चिंता के अपने को गुजारता है। जो भी हो, वह हर हालत में अपने को अनुद्विग्न रखता है। न तो सुख से रस बांधता है, न दुख से।

दुख आएंगे, क्योंकि हमारे बहुत से जन्मों की शृंखला है, हमारे कर्मों का गहन संस्कार है। और हम आज एकदम नये नहीं हो सकते हैं। हमारा कल हमारा पीछा कर रहा है। कल हमने किसी को गाली दी थी, वह आज गाली देने आएगा। दुख आएगा।

तो, तपस्वी चाहता नहीं कि कोई आकर उसे गाली दे, ऐसी उसकी कामना नहीं है, लेकिन कोई गाली दे, तो वह साक्षीभाव से सहेगा। इसको महावीर ने "परिशय" कहा है, दुख को साक्षीभाव से सहने की कला; कोई प्रतिक्रिया न करते हुए जो भी हो उसे चुपचाप सह लेना, उसके प्रति कोई भी धारणा न बनाना--यह कि बुरा है, नहीं होना था, ऐसा नहीं होना था, ऐसा क्यों हुआ, परमात्मा ने ऐसा मुझे क्यों दिखाया, कौन से कर्मों का पाप है--कुछ भी प्रतिक्रिया न करना, सिर्फ ऐसा भाव रखना कि एक लेन-देन था पुराना, वह निपट गया; संबंध समाप्त हुआ, एक कड़ी जुड़ी थी, वह टूट गई।

दुख आए तो उसे सह लेना तपश्चर्या है। दुख की खोज रोग है। लेकिन आप देखें, जब भी आप साधना में उत्सुक होते हैं तो आप दुख की तलाश करते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, अगर मैं उन्हें सीधा-सीधा उपाय बताता हूं तो वे कहते हैं कि यह इतना सीधा है कि इससे क्या होगा? कुछ उपद्रव उनको न बताया जाए तो जमता नहीं। उपद्रव की इच्छा है।

अगर मैं उनको कहूं कि पहले पूरी रात सर्दी में खड़े रहो, फिर दिन भर उपवास करो, फिर कुछ उठक-बैठक, कवायद, कुछ आसन करो, फिर ध्यान पर बैठना, तो जंचेगा। तब वे कहेंगे कि हां, इससे कुछ हो सकता है, क्योंकि कुछ करने जैसा दिखता है।

खुद को कष्ट देने में विजय मालूम पड़ती है कि मैं मालिक हो रहा हूं। दुनिया में धर्मों के नाम पर स्वयं को जो इतना कष्ट दिया जाता है, जो इतनी सेल्फ-टार्चरिंग चलती है, वह इसलिए चलती है कि लोग अपने को कष्ट देना चाहते हैं। बहाने कोई भी खोज लेते हैं, फिर अपने को कष्ट देते हैं। यह जो कष्ट देना है, यह स्वस्थ मन का सबूत नहीं है। और महावीर कहते हैं, तपस्वी का इससे कोई लेना-देना नहीं है।

"समता से मनुष्य श्रमण होता है।"

भीतर के समत्व से, भीतर के संतुलन से, भीतर के सयुक्त से, व्यक्ति श्रमण होता है।

"ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है।"

और जिसका आचरण ब्रह्म-जैसा होने लगता है... ।

ब्रह्मचर्य का मतलब केवल वीर्य-रक्षण नहीं है। वह क्षुद्रतम अर्थ है। ब्रह्मचर्य का ठीक-ठीक अर्थ है: ब्रह्म जैसी चर्या जैसा आचरण। अगर ईश्वर ही पृथ्वी पर उतर आए, तो वह कैसे चलेगा, वह कैसे उठेगा-बैठेगा, वह कैसे बोलेगा, कैसे व्यवहार करेगा? "उस" जैसा आचरण जिसका हो जाए, वह ब्राह्मण है।

और भीतर जो इतना संतुलित हो जाए कि बाहर की कोई भी चीज उसे हिला न सके; डिगा न सके; कोई तूफान जिसकी चेतना की लौ को जरा भी कंपित न कर सके; जो भीतर अंकप हो जाए, वह श्रमण है; और जो ब्रह्म जैसे आचरण को उपलब्ध हो जाए वह ब्राह्मण है।

"ज्ञान से मुनि होता है; और तप से तपस्वी बन जाता है।"

ज्ञान, वह जो हमें शास्त्र से मिल जाए, वह नहीं है। वह तो किसी को भी मिल सकता है। उससे आदमी पंडित होता है; शास्त्रीय होता है; शब्दजाल फैल जाता है और वैसे पंडित दूसरों को भी पंडित बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं। वह खुद भटके हैं और दूसरों को भटकाए चले जाते हैं।

दूसरों को भटकाने का भी एक मजा है। और जब खुद भटका हुआ आदमी दो-चार आदमियों को भटका देता है, तो उसे अपनी भटकन कम मालूम पड़ती है कि हम कोई अकेले थोड़े ही भटक रहे हैं। और उसकी बात को मान कर अगर बहुत से लोग भटकने लगते हैं तो वह भूल ही जाता है कि मैं भटक रहा हूं। क्योंकि तब उसे लगता है कि मैं इतने लोगों का नेता हूं, इतने लोग मेरे पीछे चल रहे हैं, मेरे भटकने का सवाल ही नहीं है। नेता को अपने पीछे चलते अनुयायियों को देखकर भरोसा आता है कि मैं ठीक चल रहा हूं, अन्यथा इतने लोग मेरे पीछे क्यों चलते।

पंडितों के कारण--थोथा और उधार ज्ञान जिन्होंने इकट्ठा कर लिया है--ऐसे गुरुओं के कारण आपको रास्ता मिल भी सकता तो नहीं मिल पाता।

मुल्ला नसरुद्दीन का एक रुपया गिर गया है। वह सड़क पर खोज रहा है। आधे घंटे में पसीना-पसीना हो गया खोजते-खोजते। उसकी पत्नी भी उसका साथ दे रही है। आखिर पत्नी ने पूछा: नसरुद्दीन, मिला? नसरुद्दीन ने कहा: मिल सकता था, अगर तूने इतनी सहायता न की होती।

उसको डर है कि यह स्त्री पा गई। वह कह रहा है कि मिल सकता था, अगर तूने खोजने में इतनी सहायता न की होती।

बहुत से गुरु आपको खोजने में इतनी सहायता कर रहे हैं कि जो मिल सकता था वह भी मिल नहीं पा रहा है। लेकिन उधार ज्ञान का दंभ करे, यह भी स्वाभाविक है, क्योंकि दंभ करे तो ही ज्ञान जैसा मालूम पड़ सकता है।

महावीर कहते हैं, ऐसे ज्ञान से कोई मुनि नहीं होता। जो ज्ञान बाहर से आ सकता है, वह आपकी बुद्धि को भरेगा। लेकिन जो ज्ञान भीतर से जन्मता है, जो स्वयं की अनुभूति से आता है, वही आपको मौन कर जाएगा। जो ज्ञान बाहर से आता है, वह आपको मुखर करेगा; बुद्धि और बेचैन होकर चलने लगेगी। जो ज्ञान भीतर से आता है, वह आपको मौन कर जाएगा; बुद्धि को चलने की जरूरत न रह जाएगी। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। ज्ञानी की बुद्धि चलती नहीं। जरूरत नहीं है। अज्ञानी की बुद्धि चलती है। और जितना ज्यादा अज्ञानी हो, उतना बुद्धि को चलाना पड़ता है, क्योंकि उतनी ज्यादा जरूरत होती है।

अगर आंख वाला आदमी इस हाल के बाहर जाएगा, तो वह टटोलेगा नहीं। क्या जरूरत है टटोलने की? आंखें हैं, सोचेगा भी नहीं कि दरवाजा कहां है। सोचने की भी क्या जरूरत है? दरवाजा दिखाई पड़ता है। बस, वह दरवाजे से निकल जाएगा। अगर आप उससे बाद में पूछें कि तुम्हें पता है कि दरवाजा कहां है, तो वह कहेगा कि मैंने ख्याल नहीं किया, किस दिशा में है, मुझे कुछ ख्याल नहीं। दरवाजा था--मैं तो बस निकल आया, मैंने सोचा भी नहीं। लेकिन अंधा आदमी अगर इस हाल के बाहर जाना चाहे, तो पहला सवाल उसके सामने यह उठेगा कि दरवाजा कहां है? फिर अंधा लकड़ी से टटोलेगा, फिर अंधा किसी से पूछेगा कि दरवाजा कहां है? अगर आप अंधे से पूछें तो जितनी व्यवस्था से वह जवाब देगा कि दरवाजा कहां है, आंखवाला कभी नहीं दे सकता।

यह बड़े मजे की बात है। अंधे से अगर आप बाद में मिलें, तो वह आपको पूरा ब्यौरा बता देगा कि दरवाजा कहां है। कितनी कुर्सियों के बाद उसको दरवाजा मिला। कितनी जगह उसने टटोला। कितनी खिड़कियां बीच में पड़ीं। बाएं है कि दाएं है, कि कहां है--अंधा जितना ठीक जवाब देगा, आंखवाला नहीं देगा। क्यों?

क्योंकि अंधे को सोचना पड़ा; आंख वाला निकल गया।

जैसे-जैसे भीतर का ज्ञान जन्मेगा, बुद्धि की जरूरत न रहेगी, क्योंकि बुद्धि सब्स्टीट्यूट है। वह भीतर का ज्ञान नहीं है, इसलिए हमें बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है। जब भीतर का ज्ञान आना शुरू होता है, बुद्धि का उपयोग बंद हो जाता है। बुद्धि जहां शांत होती है, वहां मुनि का जन्म होता है।

तप से मनुष्य तपस्वी बन जाता है; लेकिन तप की जो मैंने बात कही, वह ख्याल में रखना। भीतर की अग्नि को जगा कर--जो चेतना के स्वर्ण को उसमें निखार लेता है, उस निखरी हुई चेतना को--जो जीवन-जगत के संघर्ष में--जो कसौटी पर कस लेता है, उसे महावीर तपस्वी कहते हैं।

"मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किए गए कर्मों से ही होता है। अर्थात् जन्म से कोई वर्ण-भेद नहीं है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही हो जाता है।"

ऊँच या नीच चेतना की अवस्थाएं हैं, शरीर की नहीं।

"इस भांति पवित्र गुणों से युक्त जो द्विजोत्तम (श्रेष्ठ ब्राह्मण) हैं, वास्तव में वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं।"

तीन बातें ख्याल में ले लें--

एक, कहां आप पैदा हुए हैं, किस घर में पैदा हुए हैं, किस कुल में पैदा हुए हैं, यह बात बिल्कुल गौण है। इसे बहुत मूल्य मत दें। यह मूल्य महंगा पड़ सकता है। ब्राह्मण घर में पैदा होकर अगर आपने समझ लिया कि मैं ब्राह्मण हो गया, तो ब्राह्मण होने की आपकी जो संभावना थी, वह बंद हो गई।

महावीर द्वार को खोलते हैं। वे कहते हैं, जन्म के साथ तुम समाप्त नहीं हो गए, जन्म के साथ सिर्फ तुम शुरू हुए हो। मौत के साथ अध्याय बंद होगा। लेकिन जो कहता है कि मैं जन्म से ब्राह्मण हूं, उसने अध्याय बंद कर लिया। अब करने को कुछ नहीं बचा; आखिरी बात पा ली गई। महावीर कहते हैं, जन्म शुरुआत है संभावनाओं की। उनको अंत मत करो, बंद मत करो। सबकी संभावनाएं खुली हैं। द्वार खुला है। यात्रा करनी जरूरी है। और यात्रा पर निर्भर होगा कि आप क्या हैं।

बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा, अस्सी वर्ष की उम्र थी उसकी तब, कि क्या तुम अपने संबंध में अब कोई सत्य कह सकते हो? बर्नार्ड शॉ ने कहा कि जब तक मैं मर न जाऊं, तब तक संभावनाएं खुली हैं। जिस दिन मैं मर जाऊं, उसी दिन अध्याय बंद होगा। उसी दिन कोई निर्णय लिया जा सकता है। तब तक कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता।

जीवन एक खुलाव है। उसमें सब खुला है। बंद थी भारत में व्यक्तित्व की संभावना। शूद्र शूद्र था; और कुछ होने का उपाय नहीं था उसे। उसकी जिंदगी बस झाड़-बुहारी लगाने में, मल-मूत्र साफ करने में, जूते-चमड़े का सामान बनाने में व्यतीत होने वाली थी। करोड़ों-करोड़ों लोगों का जीवन एकदम बंद था। वहां से इंच भर हटने का कोई उपाय नहीं था। हिलने-डुलने की कोई सुविधा नहीं थी। समाज स्टैटिक था, अवरुद्ध था, जैसे तालाब का पानी जम गया हो। नदी की धारा नहीं थी। महावीर ने तालाब के पानी को तोड़ा, धारा बनाई--शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है, और ब्राह्मण को भी कहा कि तू आश्वस्त मत रह, क्योंकि ब्राह्मण होना भी एक अर्जन है। तूने कुछ न किया तो तू भी शूद्र हो जाएगा; तू भी शूद्र रह जाएगा।

महावीर ने ब्राह्मण की आस्था तोड़ दी ताकि वह भी खुले और बह सके; और शूद्र का बंधन तोड़ दिया ताकि वह भी खुले और बह सके। लेकिन जैन महावीर के पीछे चल नहीं पाए।

जैनों में यद्यपि कोई वर्ण नहीं है; जैनों के भीतर कोई जैन ब्राह्मण, जैन क्षत्रिय, जैन वैश्य या जैन शूद्र नहीं हैं, लेकिन जैन अपने को वैश्य मानते हैं; और घर में अगर पूजा करवानी हो, विवाह करवाना हो तो ब्राह्मण को निमंत्रित करते हैं; और घर का अगर पाखाना साफ करवाना हो तो शूद्र को खोजते हैं।

जैन भी महावीर को मान नहीं सके। जैनों के लिए तो कोई शूद्र नहीं होना चाहिए। कैसी दुर्घटना इतिहास में घटती है कि जब यहां हिंदुस्तान में आंदोलन शुरू हुआ कुछ वर्षों पहले कि शूद्र-हरिजन मंदिरों में प्रवेश करें, तो जैनों को तो सबसे पहले अपने मंदिर खोल देने थे! क्योंकि महावीर ने कहा है कि कोई जन्म से शूद्र नहीं है। लेकिन जैनों ने सबसे पहले अपने मंदिर बंद कर लिए। उन्होंने कहा कि हम तो हिंदू हैं ही नहीं, इसलिए हमारे मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश का तो कोई सवाल ही नहीं है। शूद्र हिंदू हैं; वे हिंदुओं के मंदिर में जाएं, हिंदुओं से लड़ें-झगड़ें। जैन मंदिर तो जैनों का है।

लेकिन जैनों ने ब्राह्मणों को कभी नहीं रोका जैन मंदिरों में जाने से। अगर उन्होंने ब्राह्मणों को भी रोका होता, तो तर्क समझ में आता था। लेकिन ब्राह्मण तो सदा जाते रहे, शूद्र को उन्होंने रोक दिया कि जैन मंदिर में वह नहीं आ सकता, क्योंकि जैन धर्म तो धर्म ही अलग है। और महावीर कहते हैं कि जन्म से कोई शूद्र नहीं है; जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं है; जन्म से कोई कुछ नहीं है। जैन का मंदिर तो बिल्कुल खुला होना चाहिए था, लेकिन शूद्र तो बहुत दूर, दिगंबर का मंदिर श्वेतांबर के लिए खुला हुआ नहीं है; श्वेतांबर का मंदिर दिगंबर के लिए खुला हुआ नहीं है। और श्वेतांबर और दिगंबर तो दोनों जैन हैं, न कोई शूद्र है, न कोई ब्राह्मण; वे एक-दूसरे का सिर खोलते हैं, अदालतों में लड़ते रहते हैं। ... आश्चर्यजनक है!

आदमी इतना मूढ़ है कि महावीर कितना ही हिलाएं, वह जा भी नहीं पाते हैं कि उनकी पत्थर की शिला फिर अपनी जगह पर वापस बैठ जाती है; वे जहां के तहां पाए जाते हैं। तीर्थकर छोड़ गया था--वह वहीं फिर आसन लगाए बैठा है। कोई अंतर नहीं पड़ता। क्योंकि अंतर डालने के लिए सिद्धांत काफी नहीं हैं, शब्द काफी नहीं हैं। अंतर डालने के लिए स्वार्थ भी छोड़ना पड़ेगा; अंतर डालने में खुद के निहित स्वार्थों को हानि भी पहुंचेगी, और अंतर डालने के लिए खुद को बदलना पड़ेगा।

शूद्र जन्म से शूद्र नहीं है, यह कहना, यह बातचीत काफी नहीं है। अगर शूद्र जन्म से शूद्र नहीं है, तो आपकी लड़की अगर एक शूद्र के प्रेम में पड़ जाए और आप जैन हों, तो आप को इनकार नहीं करना चाहिए। देखना इतना चाहिए कि शूद्र के पास चरित्र है, आचरण है, जीवन है? और अगर उसका आचरण ठीक न हो, वह शराबी हो, जुआरी हो, तो ही इनकार करना चाहिए।

लेकिन तब अड़चनें होंगी; और अड़चनें उठाने से हम बचना चाहते हैं। हम सिर्फ कनवीनियंस खोज रहे हैं--शांति से मर जाएं; कोई झंझट न हो।

मुल्ला नसरुद्दीन को सूली की सजा सुनाई गई। उसका साथी और वह दोनों सूली पर लटकाए जाने के करीब हैं। दोनों ने हत्या की है। आखिरी क्षण में सूली देने वाले ने नियमानुसार दोनों से पूछा: कोई आखिरी इच्छा हो तो बताओ, सिगरेट तो नहीं पीना चाहते हो; तो मैं ला दूं?

तो मुल्ला ने कहा: हत्यारे! सिगरेट अपने पास रख। झंझट खड़ी मत कर।

नसरुद्दीन ने कहा कि--आखिरी समय में झंझट से डर रहा है--झंझट खड़ी मत कर। अब झंझट खड़ी करने से भी क्या होनेवाला है! लेकिन यह कह रहा है उससे कि अब शांत रह, आखिरी समय में झंझट खड़ी मत कर।

हम जिंदगीभर इसी कोशिश में रहते हैं, कहीं कोई झंझट न हो जाए। झंझट से बचाते-बचाते पूरी जिंदगी हमारी असत्य हो जाती है। क्योंकि जहां-जहां हम समझौता करते हैं, झंझट से बचते हैं, वहां-वहां सुविधा के कारण असत्य को स्वीकार कर लेते हैं।

कौन है शूद्र, कौन है ब्राह्मण, अगर महावीर की बात मानें तो हर बार सोचना पड़ेगा। जो आदमी आपके घर में बुहारी लगाता है वह ब्राह्मण हो सकता है, और जो आदमी आपके घर पूजा करता है, वह शूद्र हो सकता है। तब बड़ी झंझट खड़ी होगी; क्योंकि तब रोज-रोज यह सोचना पड़ेगा कि यह आदमी शूद्र है कि ब्राह्मण; किसके पैर पड़ो और किसको घर में मत आने दो, रोज-रोज सोचने से यह बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए हमने लेबलिंग कर रखी है कि यह आदमी शूद्र के घर में पैदा हुआ है, इसलिए शूद्र है; और यह आदमी ब्राह्मण के घर

में पैदा हुआ है, इसलिए ब्राह्मण है। लेबल लगा देने से सुविधा हो जाती है; जैसे कि दुकानों में लोग डब्बों पर लेबल लगा देते हैं कि इसमें यह-यह चीजें हैं।

आदमी डब्बा नहीं है, उस पर लेबल लगाया नहीं जा सकता कि इसमें मिर्च रखी है, इसमें नमक रखा है; ऐसा कुछ उसमें रखने का कुछ उपाय नहीं है। आदमी एक प्रवाह है। लेकिन महावीर से राजी होने के लिए सतत प्रवाह की असुविधा, संकट और संघर्ष झेलना जरूरी है।

द्विज वही है, महावीर कहते हैं, जो पवित्र गुणों से युक्त है; जिसने धीरे-धीरे अपनी चेतना में परमात्मा की क्षमता को प्रकट करना शुरू किया है; जो ट्रांसपैरेंट हो गया है, पारदर्शी हो गया है; जिसने अपनी सारी अशुद्धि छोड़ दी; और भीतर का प्रकाश जिससे बाहर आने लगा है।

"द्विज" शब्द समझने जैसा है। द्विज का अर्थ है: दुबारा जिसका जन्म हो गया--दुवाइस बार्न। एक जन्म तो मां के पेट से होता है। वह असली जन्म नहीं है। उससे तो सभी शूद्र पैदा होते हैं। दूसरा जन्म है जो व्यक्ति अपनी आत्मा को स्वयं के श्रम से देता है। उस श्रम से जब आप स्वयं ही अपने माता-पिता बनते हैं और एक नई आत्मा को जन्माते हैं, आप द्विज होते हैं।

द्विज का अर्थ है, जिसने दूसरा जन्म भी इसी जन्म में पा लिया; जिसने नया जन्म पा लिया। इस नये जन्म पा लिए व्यक्ति से आशा की जा सकती है कि वह अपना और दूसरों का उद्धार कर सकेगा। लेकिन अपना उद्धार पहले है; क्योंकि जिसका अपना दिया बुझा हो, वह दूसरों के दीये नहीं जला सकता। जिसका अपना दीया जला हो, उससे दूसरों की ज्योति भी जल सकती है। जिनके खुद के दीये बुझे हैं वे दूसरों के दीये जलाना तो दूर, डर यह है कि किसी का जलता हुआ दिया बुझा न दें।

अंधे तो गड्ढों में गिरते ही हैं, उनके पीछे जो चलते हैं, वे भी गड्ढों में गिर जाते हैं। आंखवाले की तलाश गुरु की तलाश है। आंखवाले की खोज द्विज की खोज है जिसका दूसरा जन्म हो चुका है इसी जन्म में; जो शरीर ही नहीं रहा अब, बल्कि शरीर के पार कुछ और भी जिसके भीतर घटित होना शुरू हो गया है; जो अब कह सकता है कि मैं वही नहीं हूं, जो मां-बाप ने मुझे पैदा किया था मैं कुछ और भी हूं।

बुद्ध लौटे बारह वर्ष बाद। सारा गांव बुद्ध को घेर कर इकट्ठा खड़ा हो गया। ऐसी रोशनी देखी नहीं गई थी। ऐसे संगीत का अनुभव पहले किसी व्यक्ति के करीब नहीं हुआ था। लेकिन बुद्ध के पिता को कुछ नहीं दिखाई पड़ा। बुद्ध के पिता नाराज थे। वे द्वार पर खड़े थे राजमहल के। उन्होंने गौतम सिद्धार्थ से कहा: सिद्धार्थ, मेरे पास बाप का हृदय है, मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूं। तू वापस आजा।

बुद्ध ने निवेदन किया कि आप शायद मुझे देख नहीं पा रहे हैं कि मैं बिल्कुल बदल कर आया हूं। जो बेटा घर से गया था, वही लौट कर नहीं आया है। मैं बिल्कुल नया होकर आया हूं; जो गया था उसकी रेखा भी नहीं छूटी है। यह जो आया है; बिल्कुल नया है, आप जरा गौर से देखें।

पिता नाराज हो गए। पिता, जैसा अक्सर... नाराज हो ही जाएंगे। पिता ने कहा कि मैंने तुझे पैदा किया और मैं तुझे पहचान नहीं पा रहा हूं? मेरा खून-मांस-हड्डी तेरे भीतर है और मुझे तुझे पहचानना पड़ेगा? मैं तेरा बाप हूं; मैंने तुझे जन्माया है; मेरा खून है तू; मैं तुझे भलीभांति जानता हूं। तुझे देखने की क्या जरूरत है?

बुद्ध ने कहा: आप ठीक कहते हैं। जो आपको दिखाई पड़ रहा है, उसके आप पिता हैं। लेकिन अब मैं कुछ और भी लेकर आया हूं, जो आपसे नहीं जन्मा है। अब मैं द्विज होकर आया हूं; नया जन्म हुआ है।

जीसस से निकोडैमस ने पूछा है कि कैसे मैं प्रभु के राज्य को पा सकूंगा? तो जीसस ने कहा: जब तक तेरा नया जन्म न हो जाए; जब तक तू द्विज न हो जाए। द्विज जो है, वह अपना और दूसरे का उद्धार करने में समर्थ है।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें और फिर जाएं।

भिक्षु की यात्रा अंतर्यात्रा है (भिक्षु-सूत्र: 1)

रोइय-नायपुत्त-वयणे, अप्पसमे मन्नेज्ज छप्पि काए।
 पंच य फासे महव्वयाइं, पंचासवसंवरे जे स भिक्खू।।
 सम्मदिट्ठि सया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे संजमे य।
 तवसा धुणइ पुराणपावगं,
 मण-वय-कायसुसंवुडे जे स भिक्खू।।

जो ज्ञातपुत्र--भगवान महावीर के प्रवचनों पर श्रद्धा रख कर छह प्रकार के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है, जो अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करता है, जो पांच आस्रवों का संवरण अर्थात् निरोध करता है, वही भिक्षु है।

जो सम्यग्दर्शी है, जो कर्तव्यविमूढ नहीं है, जो ज्ञान, तप और संयम का दृढ़ श्रद्धालु है, जो मन, वचन और शरीर को पाप-पथ पर जाने से रोक रखता है, जो तप के द्वारा पूर्व-कृत पाप-कर्मों को नष्ट कर देता है, वही भिक्षु है।

जो अज्ञात है, जो अननुभूत है, जो अदृश्य है, जिसे हमने अब तक जाना नहीं, जिसका कोई भी स्वाद हमें उपलब्ध नहीं हुआ, जिसकी एक भी किरण से हम परिचित नहीं हैं--उसकी खोज कैसे शुरू हो? उसे हम खोजें कैसे? खोज के लिए भी थोड़ा सा परिचय जरूरी है, उस दिशा में हम बढ़ें, उस दिशा की थोड़ी सी झलक चाहिए। और उस यात्रा में हम अपने पूरे जीवन को लगा दें, यह तो तभी हो सकता है, जब जीवन से मूल्यवान है--वह अज्ञात, ऐसी हमारी प्रतीति हो। पर ऐसी कोई प्रतीति नहीं है, इसलिए श्रद्धा अति मूल्यवान हो जाती है।

श्रद्धा का अर्थ समझ लेना चाहिए। श्रद्धा का अर्थ है कि हमें कुछ भी पता नहीं परमात्मा का, हमें कुछ भी पता नहीं मोक्ष का, हमें कुछ भी पता नहीं कि मनुष्य के भीतर शरीर को पार करने वाली कोई आत्मा भी है। लेकिन हमें ऐसे व्यक्ति से मिलन हो सकता है, जिसकी मौजूदगी इस अज्ञात की हमें खबर दे; ऐसे व्यक्ति के हम संपर्क में आ सकते हैं, जो परमात्मा को देख पा रहा है, जो मुक्त है, और जिसकी चेतना शरीर के पार जा चुकी है, जा रही है। ऐसे व्यक्ति में हमें झलक मिल सकती है। वह झलक सीधी नहीं होगी; प्रत्यक्ष नहीं होगी। परोक्ष होगी, उस व्यक्ति के माध्यम से होगी। लेकिन इसके अतिरिक्त धर्म की यात्रा में और कोई उपाय नहीं है। ऐसे व्यक्ति की निकटता में हमें जो प्रतीति होती है, उसका नाम श्रद्धा है।

महावीर को जब लोग देखते हैं तो एक बात तय हो जाती है अगर देखते हैं तो, अगर सुनते हैं तो; अगर आंखें बंद किए हैं और कान बंद किए हैं, और उन्होंने तय कर रखा है कि वे अपने से ऊपर कुछ भी नहीं देखेंगे--क्योंकि अपने से ऊपर कुछ भी देखते ही पीड़ा शुरू होती है, संताप शुरू होता है, चिंता का जन्म होता है। जैसे ही हमें दिखाई पड़ता है कि कोई हमसे पार है, और हम जहां खड़े हैं, वही जीवन की अंतिम मंजिल नहीं है, वैसे ही बेचैनी शुरू होगी; प्यास जगेगी, और हमें चलना पड़ेगा; बैठे-बैठे फिर काम नहीं चल सकता। इस भय से कि

कहीं यात्रा न करनी पड़े, हम अपने से ऊपर देखते ही नहीं। अगर महावीर जैसा व्यक्ति हमारे करीब भी आ जाए, तो हम उसे झुठलाने की सब तरह से कोशिश करते हैं।

लेकिन अगर कोई सरलता से, सहजता से महावीर, बुद्ध या कृष्ण को देखे तो एक बात पक्की हो जाएगी कि हम जैसे हैं, यह हमारा अंतिम होना नहीं है; यह हमारी नियति नहीं है, हमारा भविष्य महावीर में प्रकट हो जाएगा।

जिस आनंद से भरे हुए महावीर खड़े हैं, जिस मौन और शांति का उनके चारों तरफ वर्षण हो रहा है, उनकी आंखों से जिस अलौकिक की झलक आ रही है, उनके शब्दों से जिस शून्य का स्वर उठ रहा है, वह हमारा भी भविष्य हो सकता है; हम भी उस जगह कभी हो सकते हैं, ऐसी प्रतीति का नाम श्रद्धा है।

श्रद्धा का अर्थ अंधापन नहीं है। और श्रद्धा का अर्थ हर किसी को मान लेना नहीं है। श्रद्धा का अर्थ है ऐसे ग्राहक, रिसेप्टिव, संवेदनशील चित्त की अवस्था, जब हमसे पार का कोई व्यक्तित्व निकट हो तो हम उसके प्रति बंद न हों, खुले हों, हम तैयार हों उसके साथ थोड़ा दो कदम चलने को—क्योंकि वह किन्हीं रास्तों पर चला है, जो हमसे अपरिचित हैं, उसने कुछ जाना है, जो हमने नहीं जाना; उसने कुछ देखा है, जिसके लिए हम अभी अंधे हैं; उसको कुछ स्वाद मिला है, जिसका हमें कोई भी पता नहीं है, उसके साथ दो कदम चलने का नाम श्रद्धा है। और प्राथमिक यात्रा उसके साथ ही शुरू होगी।

जीवन जटिल है; एक बड़ी पहेली है। और उसमें सबसे बड़ी जटिलता है वह यह है कि हम जहां हैं, वहां से हिलने में तकलीफ होती है। चाहे हम दुख में ही क्यों न हों, दुख को छोड़ने में भी तकलीफ होती है। क्योंकि दुख परिचित है, अपना है, और छोड़ कर जहां हम जाएंगे, वह होगा अपरिचित, अनजान; वहां भय लगता है। अनजान रास्तों पर जाने में भय लगता है, इसलिए हम अनजान रास्तों पर नहीं जाते। और अगर हम जाने-माने रास्तों पर ही भटकते रहे तो हम एक वर्तुल में घूम रहे हैं; जो जाना है, उसे फिर से जान लेंगे, फिर-फिर जान लेंगे, लेकिन जीवन में कोई नया सूरज, इस जीवन में कोई नया जन्म संभव नहीं होगा। हम पिटी हुई लकीर पर घूमते रहेंगे।

श्रद्धा का अर्थ है, किसी के साथ अनजान में उतरने का साहस। यह किसी के साथ ही होगा; क्योंकि उस दूसरे को देख कर भरोसा आ जाएगा। और उस दूसरे के व्यक्तित्व में ऐसे लक्षण हैं, जो भरोसा दिला सकते हैं। अगर महावीर कहते हैं कि एक ऐसा आनंद है, जिसका कोई अंत नहीं होता; एक ऐसे आनंद की अवस्था है, जहां दुख की एक तरंग नहीं उठती, तो हम महावीर को देख कर भी अनुभव कर सकते हैं। महावीर का पूरा जीवन सामने है। वहां दुख की एक भी तरंग नहीं है; दुख के सब अवसर हैं तो भी महावीर को दुखी करना असंभव है। सब तरह की कोशिश की गई है कि उन्हें दुखी किया जाए, लेकिन सभी कोशिश असफल हो गई। जिस व्यक्ति को दुखी नहीं किया जा सकता, एक बात पक्की है कि उसे कुछ मिल गया है, जो हमारे सब दुखों के पार चला जाता है। वह किसी नये केंद्र पर प्रतिष्ठित हो गया है। कोई एक नई तरह की सेंट्रिंग उसके भीतर हो गई है, जिसे हम हिला नहीं पाते। हम तो हिल जाते हैं हवा के थोड़े से झोंके से, झोंके का ख्याल भी आ जाए, तो हिल जाते हैं। महावीर अकंप हैं। कैसा भी तूफान हो उनके चारों तरफ, कितनी ही बड़ी आंधी उठे, महावीर के भीतर कोई आंधी प्रवेश नहीं कर पाती। निश्चित ही, कोई बहुत गहन केंद्र उन्हें उपलब्ध हो गया है। पर हमें वह केंद्र दिखाई नहीं पड़ता; सिर्फ महावीर दिखाई पड़ते हैं।

और महावीर को देखकर उस केंद्र का अनुमान हो सकता है। वह अनुमान हमारी श्रद्धा बनेगा। लेकिन इस श्रद्धा के लिए महावीर के प्रति खुले होना जरूरी है। अगर आप आलोचक की तरह महावीर के पास जाते हैं, तो आप पहले से ही धारणाएं बनाकर जा रहे हैं। आपकी धारणाएं आपके जाने हुए जगत से संबंधित हैं, महावीर एक नये जगत के पथिक हैं; ऐसा समझें कि किसी और लोक के व्यक्ति हैं। आपकी भाषा, आपका अनुभव उन पर

कुछ भी लागू नहीं होता। तो जो भी आप अपनी धारणाओं को लेकर उनके संबंध में सोचेंगे, वह गलत होगा। उस गलती से महावीर को कोई हानि होनेवाली नहीं है। स्मरण रहे, उस गलती से आप बंद हो जाएंगे, और श्रद्धा का जो अंकुरण हो सकता था, वह नहीं हो पाएगा।

श्रद्धा इस जगत में सबसे अनूठी बात है, प्रेम से भी अनूठी; क्योंकि प्रेम तो वासना के प्रवाह में जग जाता है; श्रद्धा निर्वासना के प्रवाह में जगती है। जैसे-जैसे व्यक्ति की वासना सबल होती है, प्रगाढ़ होती है, प्रेम जग जाता है। प्रेम एक प्राकृतिक घटना है, जिसमें शरीर के कोष्ठ भाग लेते हैं। वह एक बायलाजिकल, एक जैविक घटना है। आपको कुछ करना नहीं पड़ता। बच्चा जवान होता है, और उसके चारों तरफ प्रेम पकने लगता है। वह प्रेम में गिरेगा।

श्रद्धा एक अर्थ में प्रेम जैसी है, और एक अर्थ में प्रेम से बिल्कुल उलटी है। श्रद्धा अलौकिक घटना है, क्योंकि शरीर का कोई भी कण उससे सहयोगी नहीं होता। और अगर वैज्ञानिक जांच करे, तो आपके प्रेम का तो फार्मूला निकाल लेगा कि आपके शरीर में किन हार्मोंस के कारण प्रेम पैदा होता है। लेकिन श्रद्धा का कोई फार्मूला वैज्ञानिक नहीं निकाल सकता। कितना ही श्रद्धालु की जांच की जाए, उसके भीतर कोई भौतिक तत्व नहीं मिलेगा, जिसके कारण श्रद्धा समझी जा सके।

श्रद्धा बेबूझ है; लेकिन श्रद्धा घटी है। और श्रद्धा ऐसी घटी है कि लोगों ने अपने पूरे जीवन को उस पर दांव पर लगा दिया है। जिनके जीवन में श्रद्धा घटी है उन्होंने उसे जीवन से भी ज्यादा मूल्यवान पाया है; अन्यथा कौन जीवन को नष्ट करेगा? कौन पूरे जीवन को दांव पर लगा देगा? जीवन को दांव पर लगाना बताता है कि जीवन के भीतर कुछ ऐसा भी घट सकता है, जो जीवन के पार जाता है; जीवन की सीमा में जिसकी कोई परिभाषा नहीं है।

श्रद्धा मनुष्य के जीवन में अलौकिक फूल है; इस पृथ्वी पर किसी और लोक का अवतरण है। और जब आप का हृदय आंदोलित होता है श्रद्धा से, तो आप पृथ्वी के हिस्से नहीं रह जाते; ग्रेविटेशन--जमीन की कशिश से आप मुक्त हो जाते हैं। लेकिन उस घटना के लिए क्या करें? एक बात समझ लेनी जरूरी है कि उस घटना के लिए पाजिटिवली, विधायक रूप से कुछ भी नहीं किया जा सकता; नकारात्मक रूप से कुछ किया जा सकता है।

आप प्रेम करने के लिए क्या कर सकते हैं? क्या आप चेष्टा करके प्रेम कर सकते हैं? अगर आपसे कहा जाए कि इस व्यक्ति को प्रेम करो, और आपके भीतर प्रेम न घट रहा हो, तो क्या आप प्रेम करके बता सकते हैं? क्या प्रेम का अनुभव पैदा हो सकता है चेष्टा से?

प्रेम का अनुभव भी चेष्टा से पैदा नहीं होता। आप सिर्फ इतना ही कर सकते हैं कि बाधा न डालें। व्यक्ति को निकट आने दें, खुद को निकट पहुंचने दें, आंतरिकता बढ़ने दें। आप कुछ और कर नहीं सकते। घट जाए, घट जाए; न घटे, न घटे--आपके हाथ की बात नहीं है।

श्रद्धा और भी कठिन है। क्योंकि प्रेम के लिए तो शरीर में एक धक्का है, एक ज्वार है, एक चोट है; शरीर भी मांग कर रहा है। श्रद्धा तो शरीर की मांग नहीं है; श्रद्धा आत्मा की मांग है। और जैसे प्रेम शरीर की घटना है, ऐसे श्रद्धा आत्मा की घटना है। और जब हम प्रेम तक को पैदा नहीं कर पाते, तो श्रद्धा को पैदा करना तो बहुत मुश्किल है।

तो आप क्या करें?

आप अपने को छोड़ें। एक लेट-गो, एक विश्राम चाहिए। जहां श्रद्धा पैदा हो सकती हो, उस व्यक्ति के पास आपका एक विश्राम से भरा हुआ चित्त चाहिए। आपका द्वार खुला रहे। आप सूरज को घसीट कर मकान के भीतर नहीं ला सकते; लेकिन सूरज बाहर हो, और दरवाजा बंद हो, तो सूरज दरवाजा तोड़ कर भीतर आएगा नहीं। आप दरवाजा खुला छोड़ सकते हैं। सूरज बाहर होगा, उसकी किरणें भीतर आ जाएंगी। किरणों को बांध

कर लाने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन किरणों को आप आने से न रोकें, इतना काफी है। इसलिए मैं कहता हूं, श्रद्धा का जन्म नकारात्मक है।

आप महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट के करीब रह चुके हैं। इस जमीन पर कोई भी नया नहीं है। न मालूम कितने तीर्थंकर और अवतार आपके पास से गुजर चुके हैं। लेकिन आपने श्रद्धा का मौका नहीं दिया। आपके ऊपर, जैसे उलटे घड़े पर से पानी बह जाए, ऐसे ही श्रद्धा की सारी संभावनाएं बह गई हैं। निश्चित ही, आप अपने को समझा लेते हैं। जब महावीर आपके पास होते हैं, तो आप--आप अपने को समझा लेते हैं कि आदमी ही ऐसा नहीं है कि श्रद्धा पैदा हो।

ध्यान रहे, महावीर से कोई संबंध नहीं है श्रद्धा का; श्रद्धा का संबंध आपसे है। वह आपकी निजी घटना है। हो जाए, तो महावीर का रस आप में प्रविष्ट हो जाए; महावीर की धुन आप में समा जाए, महावीर की शराब आप में भी उतर जाए--वह नशा, वह मस्ती। लेकिन आप समझा लेते हैं कि नहीं, श्रद्धा योग्य आदमी नहीं है; इसलिए अभी अपने को खुला रखना ठीक नहीं।

आपको श्रद्धा योग्य आदमी कभी भी न मिलेगा; क्योंकि वह उसे ही मिलता है, जो खुला हुआ है।

ध्यान रखें, एक आंखें बंद किए हुए आदमी रास्ते पर चलता हो और वह कहे कि अभी सूरज निकला नहीं; जब निकलेगा, तब मैं आंखें खोलूंगा; जब प्रकाश होगा तब मैं आंखें खोलूंगा, लेकिन जिसने आंखें नहीं खोलीं, उसे पता भी कैसे चलेगा कि प्रकाश कब है?

आप महावीर, बुद्ध, कृष्ण के करीब से गुजरते वक्त सोचते हैं, अभी सूरज कहां है? अभी महावीर के लिए आप बहुत से कारण खोज लेते हैं कि श्रद्धा की कोई जरूरत नहीं है। अश्रद्धा के लिए आप सब तरह के कारण खोज लेते हैं। और अश्रद्धा के लिए कारणों से रोकना असंभव है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक सुबह अपने घर से बाहर निकला, और देखा कि पुराने मित्र पंडित रामचरणदास रास्ते से गुजर रहे हैं। नसरुद्दीन ने जाकर उसके कंधे पकड़ लिए और कहा: "पंडित जी, हद्द हो गई! मैंने तो सुना कि आप मर चुके! तीन दिन हो गए, मैं तो रो भी लिया। मैंने तो सब दुख झेल लिया; रात सो नहीं सका तीन दिन, खबर मिली कि आप मर गए हैं।"

रामचरणदास ने कहा: "भूल जाओ! अब तो मैं सामने खड़ा हूं जिंदा, अफवाह रही होगी।"

नसरुद्दीन ने कहा: "इंपासिबल, असंभव! क्योंकि जिस आदमी ने मुझे कहा है, उस पर मेरी श्रद्धा आप से ज्यादा है--जितनी श्रद्धा मेरी आप पर है--दैट मैंन इज मोर रिलायबल दैन यू।"

जिंदा आदमी भी अगर सामने खड़ा हो, और श्रद्धा न हो, तो उसका जीवन दिखाई नहीं पड़ सकता।

श्रद्धा हो तो असत्य में भी जीवन का अंकुरण हो जाता है, श्रद्धा न हो तो सत्य भी निर्जीव हो जाता है। और श्रद्धा आपकी घटना है, उसका किसी और से संबंध नहीं है। श्रद्धेय से श्रद्धा का कोई संबंध नहीं है, श्रद्धालु से संबंध है। घटना आपके भीतर घटती है। अगर आप श्रद्धालु हैं, तो आप महावीर को हर काल में खोज ही लेंगे; और अगर आप श्रद्धालु नहीं हैं, तो कितने ही महावीर कतारबद्ध होकर आपके पास से निकलते रहें, उनसे आपका कोई संबंध नहीं हो सकता।

इसलिए, एक बुनियादी बात ख्याल में ले लें, अश्रद्धा के लिए तैयारी मत करें; उससे कुछ लाभ होने वाला नहीं है। श्रद्धा की तैयारी रखें, उससे कोई हानि होनेवाली नहीं है। अश्रद्धा से जो महानतम है, वह खो जाएगा; और श्रद्धा से जो महानतम है, उसका द्वार खुलेगा। लेकिन हम बड़े सचेत रहते हैं कि कहीं श्रद्धा न हो जाए।

एक मित्र एक दिन मुझे सुनने आए। फिर मुझे उन्होंने पत्र लिखा कि मैं अब दुबारा सुनने नहीं आ सकूंगा, क्योंकि मुझे डर लगता है कि कहीं श्रद्धा पैदा न हो जाए; आपकी बातों से कहीं श्रद्धा पैदा न हो जाए, नहीं तो मेरा पूरा जीवन अस्त व्यस्त हो जाएगा। मैं भयभीत हो गया हूं, इसलिए अब मैं तब तक सुनने नहीं आऊंगा, जब तक जीवन को बदलने की पूरी तैयारी न हो।

यह तैयारी कब होगी? कैसे होगी? और इस तैयारी को कल पर छोड़ने की जरूरत क्या है?

कुछ भय है। श्रद्धा से भय है, जैसा प्रेम से भय है। आदमी प्रेम करने से डरता है। क्योंकि प्रेम करते ही दूसरा व्यक्ति बड़ा मूल्यवान हो जाता है। और प्रेम में पड़ते ही दूसरा व्यक्ति इतना मूल्यवान हो जाता है कि अपना मूल्य भी कम हो जाता है। प्रेम से आदमी डरते हैं; प्रेम से भयभीत होते हैं। प्रेम खतरनाक है। इसलिए बहुत लोग तो प्रेम करते ही नहीं, सिर्फ प्रेम का दिखावा करते हैं। इन्हीं समझदार लोगों ने विवाह की संस्था ईजाद की। बिना प्रेम में पड़े काम वासना का संबंध स्थापित हो जाए, विवाह का मतलब यही है। क्योंकि प्रेम में खतरा है, डर है। और दूसरा आदमी शक्तिशाली हो जाता है, और हम एक उलझन में पड़ जाते हैं। विवाह में कोई डर नहीं है, प्रेम की घटना ही नहीं घटती। बिना प्रेम के दो व्यक्ति साथ रहने लगते हैं और एक-दूसरे के शरीर का उपयोग करने लगते हैं।

विवाह चालाक, चतुर लोगों की ईजाद है। इसलिए विवाह में जो भरोसा करते हैं, वे प्रेम में पड़ने वाले लोगों को पागल कहते हैं। उनके हिसाब से वे बिल्कुल ठीक कहते हैं। क्योंकि उनको गणित नहीं आता, तर्क नहीं आता। वे बिल्कुल भूल कर रहे हैं। प्रेम में झंझट में पड़ेंगे, लेकिन जो झंझट में पड़ने से बचता है, वह जीवित ही नहीं रह जाता; और जितनी झंझट से बचता है, उतना मुर्दा होता चला जाता है। मरा हुआ आदमी बिल्कुल झंझट में नहीं होता। आपको झंझट से बिल्कुल हंड्रेड परसेंट बचना हो--सौ प्रतिशत, तो आप मर जाएं; आप जिंदा न रहें। श्वास लेने में भी खतरा है इन्फेक्शन का, डर है बीमारी का। उठने-बैठने में खतरा है।

जीना बड़ा खतरनाक है। और जो आदमी जितना ज्यादा जीना चाहता है, उतने बड़े खतरे में उसे उतरना होगा। प्रेम बड़ा खतरा है--शिखर छूते हैं आप, लेकिन खाई में गिरने का डर भी पैदा हो जाता है। जो आदमी सपाट जमीन पर चलता है--विवाह सपाट जमीन है, उसमें कभी कोई गिरता नहीं। कोई शिखर भी नहीं छूता गौरीशंकर के, कोई गिरता भी नहीं। लेकिन जो गौरीशंकर के शिखर पर चढ़ने की कोशिश कर रहा है, वह खतरा हाथ में ले रहा है। लेकिन ध्यान रहे, जहां खतरा इतना बड़ा होता है, जैसा गौरीशंकर के नीचे की खाई, उस खतरे की चुनौती में ही जीवन भी अपने पूरे शिखर पर उठता है। जिसके जीवन में एडवेंचर नहीं है, दुस्साहस नहीं है, वह आदमी जीवित ही नहीं है। वह पैदा ही नहीं हुआ। वह अभी अपनी मां के गर्भ में है। अभी वहां से उसका छुटकारा नहीं हुआ।

प्रेम खतरे में ले जाता है। लेकिन, श्रद्धा महाखतरे में ले जाती है। क्योंकि प्रेम तो एक साधारण व्यक्ति का भरोसा है; और श्रद्धा एक असाधारण व्यक्ति का भरोसा है। प्रेमी तो हमें इस जगत के बाहर नहीं ले जाएगा; इसके भीतर ही परिभ्रमण होगा--श्रद्धेय हमें इस जगत के बाहर ले जाने लगेगा। वह हमें उठाने लगेगा उन अछूती ऊंचाइयों की तरफ, जिनको कभी-कभार ही सदियों में कोई आदमी छू पाता है।

वासना प्रेम का खतरा उठाने की तैयारी करवा देती है। श्रद्धा उस अनंत, असीम, अनजान, अज्ञात, और अज्ञात ही नहीं, अज्ञेय घटना के लिए साहस दे देती है। श्रद्धा में भय है सिर्फ एक: अपने को खोने का भय। श्रद्धा में अहंकार खोएगा। क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है, आप अपने अहंकार को कहीं छोड़ रहे हैं और किसी को कह रहे हैं कि आज से तुम मेरी आंख हुए, अब मैं तुम्हारे द्वारा देखूंगा; तुम मेरे कान हुए, तुम्हारे द्वारा मैं सुनूंगा; तुम मेरे हृदय हुए, तुम्हारे द्वारा मैं धड़कूंगा। अब मैं गौण हुआ छाया की तरह, तुम मेरी आत्मा हो गए।

श्रद्धा का अर्थ है: किसी व्यक्ति में प्रकाश की घटना को अनुभव करके अपने को उस प्रकाश के साथ जोड़ देना; उसकी छाया बन जाना। लेकिन वासना से भरा व्यक्ति, अनंत वासनाओं से भरा हुआ व्यक्ति अपने अहंकार को छोड़ने से डरता है। क्योंकि अहंकार के छूटते ही सारी वासनाएं भी गिरती हैं और अहंकार को हम बढ़ाए जाना चाहते हैं, जब तक कि असंभव ही न हो जाए।

सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन ज्यादा पी गया है और मधुशाला में लड़ने के मिजाज से भर गया; लड़ने का मूड आ गया। तो उसने खड़े होकर चारों तरफ देखा और कहा कि इस मधुशाला में अगर कोई हो माई का लाल तो बाहर निकल आए, उसे मैं चारों खाने अभी चित्त कर दूँ!

लेकिन किसी ने उस पर ध्यान न दिया। और लोग भी अपने नशे में लीन थे। उससे उसकी हिम्मत बढ़ी और उसने कहा कि छोड़ो, मधुशाला में क्या रखा है! इस पूरे गांव में भी अगर कोई माई का लाल हो तो खबर कर दो।

फिर भी किसी ने ध्यान न दिया तो उसकी आवाज और बढ़ गई, और उसने कहा: "इस पूरे देश में, अगर किसी ने अपनी मां का दूध पीया हो तो प्रकट हो जाए! फिर भी कोई प्रकट न हुआ।" तो उसने कहा, "इस पूरी पृथ्वी पर है कोई मर्द?"

एक आदमी जो बड़ी देर से सुन रहा था, उसे बड़ी हैरानी हुई कि यह आदमी बढ़ता ही चला जा रहा है। तो उसने अपना गिलास सरकाया और आकर मुल्ला को दो-चार घूसे मारे। मुल्ला नशे में तो था ही, जमीन पर गिर पड़ा। वह आदमी उसकी छाती पर बैठ गया।

मुल्ला सोचने लगा, और उसने उस आदमी से कहा: लगता है मैं जरा अपनी सीमा के बाहर बढ़ गया--आई रेकन आई हैव गान बियांड माई लिमिट--उतर भाई, देश तक ही हम दावा करते हैं; नीचे उतर, पृथ्वी का हम दावा ही छोड़ते हैं।"

आपका अहंकार भी बढ़ता चला जाता है, जब तक कि आप उस जगह नहीं पहुंच जाते, जहां अड़चन हो जाती है, जहां उलझ जाते हैं। लेकिन पीछे हटना भी बहुत मुश्किल है। आगे बढ़ नहीं पाते; पीछे हटना बहुत पीड़ा देता है, चोट देता है--अटके रह जाते हैं। अनुभव में भी आने लगे कि सीमा से बाहर बढ़ गए तो भी मुल्ला नसरुद्दीन जैसी हालत में आप नहीं होते कि वापस इतनी बाहर सरलता से लौट जाएं। दावे को मुकरना, छोड़ना बहुत कठिन हो जाता है।

हम सब दावों के साथ जी रहे हैं। अहंकार बाधा बनता है, क्योंकि हमने इतनी घोषणाएं कर रखी हैं। हर आदमी ने अपने मन में सोच रखा है कि है ही नहीं पृथ्वी पर कोई जिसके सामने मैं झुकूं। चाहे आपको पता हो और चाहे न पता हो, ये मन की धारणा है। और आपका मन ऐसा सोचता है कि मुझसे श्रेष्ठ हो भी कैसे कोई सकता है! ऐसी धारणा से भरा हुआ अहंकार श्रद्धा को कैसे उपलब्ध होगा! श्रद्धा का अर्थ ही है इस बात की प्रतीति कि मुझसे महान की संभावना है। और यह संभावना आपको क्षुद्र नहीं बनाती, क्योंकि यह आपके भी महान होने का द्वार खोलती है।

महावीर पर श्रद्धा आपके महावीर होने की संभावना बनेगी ही। अपने पर ही श्रद्धा से आप जो हैं, वही रह जाएंगे। जैसे बीज अपने पर ही भरोसा कर ले और आस-पास के वृक्षों को देख कर भी अनदेखा कर दे, तो फिर उसमें अंकुर कैसे फूटे! अंकुर फूटता है अज्ञात की उठान से, उमंग से।

फिर, समर्पण--श्रद्धा एक तरह का विश्राम है। आपके चित्त में इतना कोलाहल है कि विश्राम कहां है? इसलिए जो लोग श्रद्धा को उपलब्ध हो जाते हैं, उनकी शांति देखने जैसी है। क्योंकि उन्हें फिर कोई अशांति नहीं कर सकता। असल में उन्होंने अशांति का कारण ही किसी और के हाथ में सौंप दिया। किसी और के चरणों में जाकर उन्होंने कह दिया कि सारा बोझ अब मैं छोड़ता हूँ, अब "तू" समझ।

ऐसा सदा होने वाला नहीं है, लेकिन प्राथमिक चरण में बड़ा बहुमूल्य है। धीरे-धीरे तो शिष्य गुरु से मुक्त हो जाता है। अगर गुरु से शिष्य मुक्त न हो पाए, तो गुरु सदगुरु नहीं था। गुरु की पूरी चेष्टा यह है कि शिष्य जल्दी से जल्दी उससे मुक्त हो जाए; अपनी यात्रा पर निकल जाए, जहां श्रद्धा की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि सत्य का प्रकाश स्वयं आने लगता है। अपनी आंखों से देखने लगे; क्योंकि दूसरों की आंखों से कितना भी देखा

जाए, तो भी धुंधला ही होगा। अपने पैरों से चलने लगे; क्योंकि मोक्ष तक कोई भी दूसरे के कंधों पर सवार होकर नहीं पहुंच सकता। लंगड़े-लूनों के लिए वहां कोई जगह नहीं है।

लेकिन प्राथमिक चरण में किसी का सहारा बड़ा कीमती हो जाता है। वह सहारा वैसे ही है, जैसे एक दीये की निकटता से दूसरे दीये में ज्योति पकड़ जाती है, फिर तो दूसरा दीया अपनी यात्रा पर खुद चल पड़ता है। फिर तो पहला दीया बुझ भी जाए, तो भी दूसरे दीये को कोई बाधा नहीं आती। फिर पहला दीया खो भी जाए, तो भी दूसरा दीया अपनी यात्रा पर होता है।

श्रद्धा प्राथमिक है--पहला स्पार्क, एक पहली चोट--जहां पहली अग्नि पैदा होती है, वहीं उपयोगी है। अंततः उसका कोई उपयोग नहीं, लेकिन प्रथम का बड़ा मूल्य है। चित्त बहुत ज्यादा वासना से ग्रस्त हो, तो हम विश्राम नहीं कर पाते। और जब तक विश्राम न कर पाए मन, तब तक हम इकट्ठे नहीं हो पाते। यह थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

हम बंटे कटे रहते हैं। महावीर पर थोड़ी श्रद्धा भी होती है, थोड़ी अश्रद्धा भी होती है, थोड़ा उनके विपरीत वाला जो कह रहा है, उस पर भी थोड़ा भरोसा होता है; थोड़ा अपने पर भी भरोसा होता है। ऐसा खंड-खंड होते हैं। लेकिन श्रद्धा अखंड ही हो सकती है, खंड-खंड नहीं। आप अगर बहुत खंडों में बंटे हैं, तो आप की हालत ऐसी है, जैसे किसी व्यक्ति के बहुत से परिचित हों, लेकिन मित्र कोई भी न हो।

लेकिन परिचित और मित्र में बड़ा फर्क है। एक्वेंटेंस--परिचय, परिचय है, ऊपरी है। मित्रता एक गहन संबंध है, एक आंतरिक तीव्रता है--एक मिलन है, जहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में प्रविष्ट हो जाता है।

तो आप बहुत व्यक्तियों से परिचित हो सकते हैं, वह मित्रता नहीं है। और आप बहुत खण्डों में बंटे हो सकते हैं--थोड़ी श्रद्धा महावीर पर भी, थोड़ी श्रद्धा बुद्ध पर भी, थोड़ी श्रद्धा कृष्ण पर भी लेकिन किसी से भी मित्रता न बनेगी। इस सदी में इस तरह का एक खतरा हुआ है। कुछ अति समझदार लोगों ने, लोगों को ऐसा समझाना शुरू किया है कि महावीर भी वही कहते हैं, कृष्ण भी वही कहते हैं, बुद्ध भी वही कहते हैं, यह बात निहायत गलत है। और उन सभी का मतलब एक है। यह सबको लीप पोत देने जैसा है। उनके मतलब बड़े भिन्न हैं। उनकी मंजिल एक है, उनके रास्ते बड़े भिन्न हैं--अंतिम परिणाम एक है। लेकिन अंतिम परिणाम से क्या लेना-देना? आप वहां अभी हैं नहीं। जहां आप हैं, वहां महावीर और बुद्ध बिल्कुल भिन्न हैं, जैसे पूरब-पश्चिम। जहां आप हैं, वहां कृष्ण और क्राइस्ट बिल्कुल भिन्न हैं। वहां अगर आपने खिचड़ी बनाने की कोशिश की, जिसको कुछ लोग "धर्म-समन्वय" कहते हैं--वह खिचड़ी है, समन्वय नहीं है। और खिचड़ी में भी कुछ पौष्टिक तत्व हो--है! इस धर्मों की खिचड़ी में कोई पौष्टिक तत्व नहीं रह जाता; क्योंकि आप सभी रास्तों की खिचड़ी नहीं बना सकते। चलना तो एक ही रास्ते पर पड़ता है। और जब आप एक रास्ते पर चलते हैं, तब उचित है कि सभी रास्तों से आपका चित्त हट जाए ताकि पूरी शक्ति एक प्रवाह से लग जाए।

लेकिन जो चित्त खंडित है बहुत चीजों में, वह कोई श्रद्धा पैदा नहीं कर पाता। जो कहता है, हमारी श्रद्धा सभी में है, समझना कि उसकी श्रद्धा किसी में भी नहीं है। असल में आपको अगर सबमें से किसी से भी श्रद्धा का संबंध जोड़ने से बचना हो, तो सबमें श्रद्धा करना--अच्छा है। आज सुबह कुरान भी पढ़ ली, थोड़ी गीता भी पढ़ ली, और फिर पीछे गीत गा लिया--"अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवाना।"

नहीं, गीता और कुरान बड़े भिन्न रास्तों पर जाते हैं। और गीता मांगती है पूरी श्रद्धा, और कुरान भी मांगता है पूरी श्रद्धा; महावीर भी मांगते हैं पूरी श्रद्धा।

श्रद्धा का यह अर्थ नहीं है कि आप अंधे हो जाएं। श्रद्धा का अर्थ यह है कि आप पूरे महावीर के साथ खड़े हो जाएं, अधूरे खड़े होने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन हम सब चीजों में अधूरे हैं। न तो हमने कभी प्रेम किसी को ऐसे किया है कि पूरी पृथ्वी से हमारा सारा प्रेम सिकुड़ कर एक धारा में बहने लगे; न हमने कभी मित्रता

ऐसी की है कि हमारे पूरे जीवन का प्रकाश, हमारे पूरे जीवन की ऊर्जा एक ही व्यक्ति के साथ गहनता से जुड़ जाए।

इसका यह मतलब नहीं है कि सब दुश्मन हो जाएंगे। जिंदगी बड़ी बेबूझ है। अगर आप एक व्यक्ति से इतने गहरे जुड़ जाएं जितना कि जुड़ सकते हैं, आप सारे जगत के प्रति मैत्रीपूर्ण हो जाएंगे। लेकिन मित्रता एक से होगी। वह एक द्वार होगा सारे जगत के प्रति मैत्री का। अगर आप एक व्यक्ति से इतना प्रेम कर लें कि आप भूल ही जाएं; यह संभावना ही खो जाए कि यह प्रेम किसी खंड में बंट सकता है, तो आप सारे जगत के प्रति प्रेम से भर जाएंगे। इस व्यक्ति के माध्यम से वह प्रेम की गंगा बहेगी और सारे जगत में फैल जाएगी, लेकिन बहेगी सदा गंगोत्री से। गंगोत्री पर द्वार बड़ा सकरा होता है; होगा ही। श्रद्धा भी अगर एक पर हो जाए, तो धीरे-धीरे श्रद्धा का प्रकाश सब तरफ पड़ने लगेगा, लेकिन धारा एक से ही बहेगी।

हम इतने खंडित हैं, इस कारण ही किसी तरह के विश्राम को उपलब्ध नहीं होते। मैंने सुना है, मनसविद कहते भी हैं, अनेक लोग सो तक नहीं पाते रात में, और उसका कुल कारण इतना है कि मन इतना बंटा होता है, और नींद एक को आ सकती है, भीड़ को नहीं आ सकती। अगर आप एक हैं, तो सो जाएंगे; अगर भीड़ खड़ी है मस्तिष्क में, तो कैसे सोएंगे?

आपका कोई हिस्सा अभी सिनेमा देखने जाना चाहता है; कोई हिस्सा किताब पढ़ना चाहता है; कोई हिस्सा ध्यान करना चाहता है; कोई हिस्सा सोना चाहता है; कोई हिस्सा कह रहा है कि क्यों रात बर्बाद कर रहे हो सोकर? ऐसे तो जिंदगी खराब हो जाएगी। अगर आदमी साठ साल जीए, तो बीस साल तो नींद में ही नष्ट हो जाते हैं--भोग लो, जिंदगी हाथ से जा रही है। तो चलो किसी क्लब-घर में, किसी नृत्य-घर में।

पच्चीस खंड हैं, उस कारण आप नहीं सो पा रहे हैं। नींद तक असंभव हो गई। क्योंकि नींद के लिए भी थोड़ी एकजुटता चाहिए। प्रेम और भी मुश्किल हो गया है। क्योंकि जब नींद के लिए एकजुटता चाहिए, तो प्रेम के नशे के लिए तो और भी गहरी एकजुटता चाहिए। श्रद्धा करीब-करीब, करीब-करीब खो गई है, क्योंकि उसके लिए बहुत ही अखंडता चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन पूछता है अपने मनस्विद से कि मैं सो नहीं पाता, कोई उपाय मुझे बताएं। सब विचार करके उसके मनस्विद ने कहा कि तुम्हें थोड़ी विश्राम की कला सीखनी होगी। तो रात आज तुम स्नान करके आराम से बिस्तर पर लेट जाना और फिर अपने शरीर से थोड़ी बात करना, और शरीर को थोड़ी आज्ञा देना। अंगूठे से शुरू करना; कहना, पैर के अंगूठे सो जाओ--टोज, नाउ गो टु स्लीप। और तब अनुभव करना। फिर कहना--पंजे सो जाओ, फिर पैर सो जाओ। ऐसे ऊपर बढ़ते जाना और आखिर में सिर तक आना। और फिर अंत में आंखों के लिए कहना--"नाउ आइज गो टु स्लीप।" और आंखों तक आते-आते तुम सो ही चुके होगे।

नसरुद्दीन भागा हुआ घर आया। कई दिन से सो नहीं पाया था। रात की राह देखी, स्नान किया, बिस्तर ठीक से तैयार किया, फिर लेट गया अपने बिस्तर पर। पत्नी स्नान करने बाथरूम में चली गई। वह लेट गया अपने बिस्तर पर और उसने शुरू किया, जैसा मनस्विद ने कहा था। पैर से शुरू किया कि--नाउ टोज गो टु स्लीप; नाउ फीट गो टु स्लीप, नाउ माई लेग्स गो टु स्लीप; माई हिप्स... और ऐसे-ऐसे वह बढ़ता गया ऊपर। वह बस करीब-करीब आ ही रहा था, जब वह कहने वाला था कि मेरा सिर, माइ हेड, गो टु स्लीप, पत्नी नहा कर बाथरूम से बाहर निकली। उसे देख कर ही उसने जोर से अपने हाथ अपने शरीर पर मारे और कहा: एवरीबडी अवेक इमीजिएटली--एवरीबडी अवेक--सब जाग जाओ।"

वासना सोने तक नहीं देती, तो वासना समर्पण कैसे करने देगी! वासना विश्राम तक में नहीं उतरने देती, तो वासना श्रद्धा मैं कैसे उतरने देगी! क्योंकि श्रद्धा परम विश्राम है, जहां मन कुछ भी नहीं चाह रहा है, और जहां मन कहता है, अब कुछ चाहना भी नहीं है, अब सिर्फ होना है--जस्ट बीइंग। अब सिर्फ मैं होना चाहता हूं। मेरी कोई चाह नहीं है। तब महावीर से संबंध जुड़ता है।

अब हम इस सूत्र में उतरें।

"जो ज्ञातपुत्र--भगवान महावीर के प्रवचनों पर श्रद्धा रख कर छह प्रकार के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है, जो अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करता है, जो पांच आस्रवों का संवरण अर्थात् निरोध करके जीता है, वही भिक्षु है।"

"भिक्षु" शब्द को थोड़ा ख्याल में ले लेना चाहिए क्योंकि जगत में सिर्फ भारत अकेला देश है जिसने भिक्षु को सम्राट होने, के भी ऊपर रखा है। वैसी घटना पृथ्वी पर कहीं नहीं घटी। वह घटना अलौकिक है। सम्राट से ऊपर पृथ्वी पर कहीं भी कोई नहीं रहा है। सिर्फ भारत अकेला देश है, जहां हमने सम्राट के ऊपर भिक्षु को स्थापित किया है। क्योंकि सम्राट भोग का शिखर है, और भिक्षु त्याग का। सम्राट चीजों को संग्रह करता चला गया है, सब कुछ संग्रह करता चला गया है पागल की तरह, और भिक्षु ने सिर्फ अपने को बचाया है; बाकी कुछ भी नहीं बचाया है। सम्राट वस्तुओं को इकट्ठा कर रहा है, भिक्षु सिर्फ अपनी आत्मा को इकट्ठा कर रहा है। सम्राट चीजों में खोया हुआ है, भिक्षु चीजों से अपने को मुक्त कर रहा है ताकि अपने में प्रवेश कर सके। सम्राट की यात्रा बहिर्यात्रा है; भिक्षु की यात्रा अंतर्यात्रा है।

"भिक्षु" शब्द परम आदरणीय है। भिक्षु का अर्थ है कि अब जिसके पास अपना कहने योग्य कुछ भी नहीं सिवाय स्वयं के होने के। जो किसी चीज का मालिक नहीं रहा है। जिसका कोई पजेशन नहीं। जिसका कोई परिग्रह नहीं। जो कहता है, मेरा कुछ भी नहीं है; सिर्फ मैं हूं, जिसके पास एक दाना भी अपना कहने को नहीं है। जिसका सब-कुछ संसार का है और जिसने एक भेद रेखा स्पष्ट अनुभव कर ली है कि मेरा मैं ही अकेला हो सकता हूं, कोई संपदा मेरी नहीं हो सकती; क्योंकि जब मैं नहीं था, तब संपदा थी, महल थे, जमीन थी, जायदाद थी, हीरे थे, मोती थे; जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी वे होंगे; मैं व्यर्थ ही बीच में अपना परिग्रह स्थापित करके परेशान हूं। उससे हीरे-मोती परेशान नहीं होते, उससे मैं ही परेशान होता हूं।

जब आप मर जाएंगे तो आपका घर नहीं रोएगा; बड़ा मजा है। लेकिन आपका घर जल जाए तो आप रोएंगे। मालिक कौन है? आपका हीरा खो जाए, तो हीरा आपकी जरा भी चिंता नहीं करेगा। हीरा सोचगा ही नहीं कि आप कहां खो गए। आप जैसे बहुत लोग आए और खो गए। लेकिन आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। और आप सोचते थे कि आप मालिक हैं। मालिक मुश्किल में पड़ता है।

नहीं, जिन चीजों को हम सोच रहे हैं, हम उनके मालिक हैं, वे हमारी मालिक हो गई हैं। मालिकियत हमारा बिल्कुल वहम है, असत्य है। इसलिए इस देश ने भिक्षु को सर्वोत्तम जीवन की आखिरी ऊंचाई का फूल कहा है, जहां एक व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है कि परिग्रह का कोई उपाय नहीं है। वस्तुएं किसी की भी नहीं हो सकती हैं। सिर्फ एक ही घटना है जो मेरी हो सकती है; वह मेरी आत्मा है।

लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम सब चीजों पर दावा करते हैं, सिर्फ उस एक पर दावा नहीं करते, जिस पर दावा हो सकता है। इसलिए अगर ठीक से समझें तो अर्थ यह हुआ कि हम बहुत चीजों के मालिक नहीं हो पाते, बहुत चीजों के प्रति भिखारी हो जाते हैं। असल में तो हम भिखारी हैं, लेकिन हमको मालिक होने का ख्याल है।

महावीर जिसको भिक्षु कहते हैं, वही मालिक है। लेकिन, वह हम सब अपने को मालिक कहते हैं, इसलिए महावीर ने उसे मालिक कहना उचित नहीं समझा--क्योंकि उससे भ्रान्ति होगी। हम सभी अपने को मालिक समझते हैं, तो हम सबको ठीक चोट देने के लिए महावीर और बुद्ध दोनों ने उस परम घटना को भिक्षु कहा। बुद्ध अपने को "भिक्षु" कहते हैं, जिनके पास अपनी मालिकियत है; और हम अपने को "मालिक" कहते हैं, जो वस्तुओं के गुलाम हैं।

तो जिस दुनिया में गुलाम अपने को मालिक समझते हों, यह उचित ही है कि मालिक अपने को भिक्षु कहे; नहीं तो भाषा में बड़ी गड़बड़ हो जाएगी।

इसलिए हिंदुओं का जो शब्द है, स्वामी, वह जैनों और बौद्धों ने चुनना पसंद नहीं किया। वह शब्द बिल्कुल सही है--एकदम सही है। "स्वामी" का अर्थ है: "मालिक", जो अपना सचमुच मालिक है। हिंदुओं ने अपने संन्यासी को स्वामी कहा। बिल्कुल ठीक कहा है। यही मतलब लेकिन बुद्ध और महावीर ने उलटा शब्द चुना, "भिक्षु"। उनका व्यंग गहरा है। वे यह कह रहे हैं कि यहां तो सभी अपने को "स्वामी" समझ रहे हैं, यहां तुम भी अपने को स्वामी कहोगे तो भाषा बड़ी गड़बड़ हो जाएगी। और जहां सभी पागल अपने को स्वस्थ समझते हों; वहां स्वस्थ आदमी को अपने को पागल कहना ही उचित है।

कौन है भिक्षु? सच में जो मालिक हो गया। लेकिन सच की मालिकियत सिर्फ अपने पर हो सकती है, और किसी पर भी नहीं हो सकती। और जब तक कोई व्यक्ति दूसरे पर मालिकियत करने की कोशिश करता है, तब तक अपने जीवन का अपव्यय करता है। वह शक्ति व्यर्थ जा रही है। उसका कोई अर्थ नहीं होने वाला है। वह कहीं भी पहुंचेगा नहीं। वह सिर्फ अपने को रिक्त कर रहा है, चुका रहा है, खत्म कर रहा है; वह नष्ट कर रहा है। वह आत्महंता है--क्योंकि जो नहीं हो सकता, वह नहीं होगा; वह कभी नहीं हुआ है। अलेक्जेंडर और नेपोलियन गुजरते हैं रास्तों से मालिक होने की कोशिश में, और दीन-दरिद्र ही मरते हैं।

ठीक उलटा प्रयोग है महावीर का कि तुम मालिक होने की कोशिश छोड़ दो बाहर की तरफ। भीतर एक संसार है। भीतर एक साम्राज्य है--एक विस्तार है, एक आकाश है। तुम उसके मालिक हो। तुम उस मालिकियत को "क्लेम" कर लो। तुम उस मालिकियत के दावेदार हो जाओ। लेकिन ऐसा दावा वही कर पाएगा, जो श्रद्धा से शुरू करे किसी मालिक पर; श्रद्धा से शुरू करे किसी सम्राट पर--महावीर, या बुद्ध, या कृष्ण, या क्राइस्ट, या मोहम्मद जैसे किसी मालिक पर भरोसा करे जिसमें उसे स्वामित्व दिखा हो। जिसमें उसने झलक पाई हो कि यह आदमी गुलाम नहीं है, किसी बात का गुलाम नहीं है। उस पर श्रद्धा से शुरू होगा।

तो जो ज्ञातपुत्र महावीर के वचनों पर श्रद्धा रख कर सब जीवों के भीतर अपनी ही जैसी आत्मा का विचार करता है; अनुभव करता है; अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम, अप्रमाद--पंचमहाव्रतों में जो गति करता है, उनका पालन करता है; रोकता है शक्ति को व्यर्थ जाने से; आस्रवों का ध्यान रखता है, संवरण करता है; और जीवन बाहर भटक न जाए, मरुस्थल में जीवन की ऊर्जा व्यर्थ न हो, भीतर सृजनात्मक हो जाए, अपनी आत्मा को ऐसा निरंतर निरोध करता है व्यर्थ में जाने से, वही भिक्षु है।

हम तो व्यर्थ के लिए आतुर होते हैं। खबर भर मिल जाए, हम दौड़ पड़ते हैं। व्यर्थ को हम न मालूम कितना मूल्य देते हैं। शायद हम कभी सोचते भी नहीं कि हम भेद करें सार्थक और व्यर्थ का; कि हम सार और असार का ठीक विवेचन करें; कि ठीक विवेक करें कि क्या सही है और क्या गलत है।

शंकर ने कहा है: सार और असार को जो ठीक पहचान लेता है, वही संन्यासी है। क्योंकि जो सार को पहचान लेता है, फिर वह असार से अपने को रोकने लगता है, संवरण करने लगता है। और जो सार को पहचान लेता है, वह चुपचाप, अनजाने ही सार की तरफ बढ़ने लगता है।

गलत की तरफ जाना असंभव है; ठीक की तरफ जाने से रुकना असंभव है। लेकिन ठीक और गलत का बोध होना चाहिए, क्या गलत है और क्या ठीक है। वह हमें जरा भी बोध नहीं है। तो महावीर कहते हैं: वह बोध भी हमें तभी पैदा होगा जब हम किसी पर श्रद्धा करें, जिसे ठीक और गलत जिसके जीवन में आ गए हैं।

सूफी फकीर, बायजीद, अपने गुरु के पास गया और उसने अपने गुरु को कहा: मुझे कुछ शिक्षा दें। तो उसके गुरु ने कहा कि तू सिर्फ मेरे पास रह और मुझको देख, और मेरा निरीक्षण कर--उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना, सब तू मेरा देख, और मेरा निरीक्षण कर। उसी निरीक्षण से तुझे विवेक उत्पन्न होगा। बायजीद ने कहा: यह बड़ा कठिन मामला दिखता है। सीधा मुझे कह दिया होता कि क्या करूं, तो मैं कर लेता; कह दिया होता--यह मत करो, तो मैं नहीं करता।

हम सब पचा-पचाया भोजन चाहते हैं। कोई हमारे लिए चबा कर हमारे मुंह में डाल दे। चबाने तक का कष्ट नहीं उठाना चाहते। लेकिन ध्यान रहे, ऐसा पचाया हुआ भोजन अपच ही कर सकता है। वह आपके जीवन में ठीक-ठीक प्रवेश नहीं कर पाएगा। बायजीद के गुरु ने ठीक कहा कि तू बस बैठ और मेरा निरीक्षण कर; मेरे पास बैठ और देख क्या-क्या होता है।

बायजीद बैठ गया। पहले दिन ही एक घटना घटी। एक आदमी आया और बड़ी गालियां देने लगा; बायजीद के गुरु को बड़े अशोभन शब्द बोलने लगा। बायजीद को कई दफा हुआ कि उठ कर एक हमला इस आदमी पर बोल दे। लेकिन गुरु ने कहा था, तुझे कुछ करना नहीं है। तुझे मुझे देखना है। तू कृपा करके बीच में कुछ मत करने लगना, क्योंकि तू यहां करनेवाला नहीं है--तू सिर्फ यहां देखना।

तो उसे बड़ी तकलीफ हो रही है। उसका दिल तो उस आदमी को देखने का हो रहा है, जो गालियां दे रहा है। लेकिन आज्ञा उसे हुई थी कि वह गुरु को देखे।

गलत को देखने का मन होता है। ठीक में ज्यादा रस नहीं मालूम पड़ता। गुरु चुपचाप बैठा है। वहां देखने योग्य भी कुछ नहीं लगता। गुरु शांत बैठा है। बायजीद को बड़ी बेचैनी होती है। उसका दिल तो वहां देखने का होता है। लेकिन फिर वह अपने को समझाता है कि देखूं गुरु को ही, इस आदमी से मुझे सीखना भी क्या है जो मैं देखूं। यह असार है। फिर गुरु ने भी कहा है कि मुझे ही देखो।

गुरु बैठा है, चुप। वह हंसता रहता है। वह आदमी गालियां देकर चला जाता है, बायजीद अपने गुरु से पूछता है कि इस आदमी ने इतनी गालियां दीं और आप चुपचाप बैठे रहे? उसके गुरु ने कहा कि तू सुबह यहां नहीं था, अब कल सुबह तुझे पता चल जाएगा। क्योंकि सुबह-सुबह एक भक्त मेरा यहां आता है और मेरी इतनी प्रशंसा करता है कि तराजू के एक पलड़े को बिल्कुल जमीन से लगा देता है। एक पलड़े को यह उसको ठीक कर गया है। यह मुझे बिल्कुल बैलेंस कर गया है। यह आदमी बड़ा गजब का है। यह कभी-कभी आता है।

दूसरे दिन सुबह वह आदमी आया जो प्रशंसा के पुल बांधने लगा। बायजीद का फिर मन हुआ उसकी बातें सुनने का, लेकिन उसने ख्याल रखा कि वह गुरु को देखे। भक्त के चले जाने के बाद गुरु ने बायजीद से कहा: "तूने देखा? जगत एक संतुलन है। वहां प्रशंसा भी है, वहां गाली भी है, प्रशंसा से फूल मत जाओ, गाली से पीड़ित मत हो जाओ। वे दोनों एक-दूसरे को काट कर अपने आप शून्य हो जाएंगे। तुम अपनी जगह रहो, तुम बेचैन मत हो--न गाली देने वाले से कुछ प्रयोजन है, न प्रशंसा करने वाले से कुछ प्रयोजन है। वे दोनों आपस में निपट रहे हैं। तुम अलग ही हो--बायजीद से कहा: तू बस मुझे देखता रह और उसी देखने में से तुझे सार का पता चलने लगेगा। और उसी सार पर तू चल पड़ना, और असार से अपने को बचाना। क्योंकि मन असार की तरफ खींचता है। क्योंकि मन बिना असार के जी नहीं सकता। कचरा ही उसका भोजन है। अपने को रोकना असार की तरफ जाने से, संवरित करना संयम है। सार की तरफ अपने को ले जाना साधना है।

तो महावीर कहते हैं, वही भिक्षु है, जो श्रद्धा से--जैसा महावीर जीते हैं। महावीर के लिए जीवन तो सहज है, क्योंकि उन्हें सबके भीतर एक ही आत्मा का दर्शन होता है; आपको नहीं होता। तो महावीर का जो जीवन है, उस जीवन को गौर से देखकर, उसको आत्मीयता से अपने साथ सम्हाल कर, सार को पहचान कर वैसे ही जीवन में बहने का जो प्रयास है!

प्रथम में वह प्रयास ही होगा। शुरू-शुरू में चेष्टा करनी पड़ेगी; धीरे-धीरे खुद भी दिखाई पड़ने लगेगा। महावीर की आंखों की फिर जरूरत न होगी। फिर भिक्षु स्वयं अपनी यात्रा पर चल पड़ेगा।

महावीर के पास दस हजार भिक्षुओं का समूह था। जैसे-जैसे कोई भिक्षु पक जाता था, वैसे-वैसे महावीर उससे कह देते कि अब तू, जो तुझे मिला है, उसे बांटने निकल जा। अब मेरे पास होने की जरूरत नहीं है। अब मेरे सहारे की कोई आवश्यकता नहीं है।

ठीक वैसे ही, जैसे छोटे बच्चे को मां-बाप चलाते हैं, तो मां हाथ पकड़ लेती है। यह कोई जीवन भर का उपक्रम नहीं है कि मां जीवन भर हाथ पकड़े रहे। कुछ मां नहीं छोड़ती हैं। वे दुष्ट हैं, खतरनाक हैं; वे बच्चे की

जान ले लेती हैं। कुछ बाप चाहते हैं कि लड़के का हाथ सदा ही पकड़े रहें। वे सदा चाहते हैं कि वे ही लड़के को चलाते रहें। वे बाप नहीं हैं, वे दुश्मन हैं।

लेकिन पहले दिन जब बच्चा खड़ा होता है, तो मां या बाप उसका हाथ अपने हाथ में ले लेते हैं। भलीभांति जानते हुए कि बच्चे के पैर खुद ही थोड़े दिनों में समर्थ हो जाएंगे--समर्थ हैं, लेकिन अभी बच्चे को आत्म-श्रद्धा नहीं है; अभी बच्चे को भरोसा नहीं है कि मैं चल पाऊंगा। वह अभी डरता है। वह कभी चला नहीं है। उसे चलने का कोई अनुभव नहीं है। वह भयभीत होता है। इस भय के कारण कहीं वह ऐसा न हो कि घसीटता ही रहे और चले न, उसका भय भर कम करना है।

श्रद्धा से पैरों में चलने की ताकत नहीं आएगी। सिर्फ बाप हाथ पकड़े है तो लड़का शक्तिपूर्वक खड़ा हो जाएगा, क्योंकि वह कहेगा, कि जब बाप हाथ पकड़े हैं तो मैं निश्चित हूँ, गिरूंगा तो वह बचाएगा। और एक बार उसके पैर चलने लगे, बहुत जल्दी उसे अनुभव हो जाएगा कि बाप का हाथ मुझे नहीं चला रहा है, मेरे पैर चला रहे हैं। फिर लड़का खुद ही अपने हाथ को अलग करना चाहेगा, क्योंकि खुद पैरों पर खड़े होने का आनंद ही और है।

लेकिन सदगुरु चाहता ही है कि जल्दी से जल्दी वह अपना हाथ छुड़ा ले। इसलिए सदगुरु पूरी कोशिश करता है कि उसका हाथ छोड़ दे। असदगुरु उसका हाथ जोर से पकड़ लेता है, असदगुरु इसलिए हाथ पकड़ लेता है कि उसको चलाए--वह चले, इसमें रस नहीं है। वह मुझ पर निर्भर रहे, इसमें रस है।

इसलिए मां-बाप बन जाना बहुत आसान है, सच में मातृत्व और पितृत्व पाना बहुत कठिन है; क्योंकि मां-बाप तो पशु भी बन जाते हैं। उसमें कुछ बहुत बड़े गुण की जरूरत नहीं है। लेकिन फिर कब बच्चे को चलते वक्त छोड़ देना है, कब उसको अपने पैरों पर धक्का दे देना है, कब उसको मुक्त कर देना है निर्भरता से, इस कला को जानने का नाम ही मातृत्व और पितृत्व है।

ठीक पिता वही है, जो जल्दी से जल्दी बच्चे को स्वतंत्र कर दे, मुक्त कर दे; उस जगह खड़ा कर दे, जहां वह खुद चल सकता है। लेकिन हमें भी मजा आता है कि कोई हम पर निर्भर हो। क्योंकि कोई निर्भर हो तो हमको लगता है कि हम भी कुछ हैं। मां-बाप को दुख होता है, जब बच्चा मुक्त होता है। मां पीड़ा पाती है, जब बच्चा अपने पैरों पर चलने लगता है।

उसे पता नहीं है, साफ नहीं है। पहले तो वह बहुत खुश होती है कि बच्चा अपने पैरों पर चल रहा है। लेकिन उसे पता नहीं है। क्योंकि यह पैरों पर चलना तो प्राथमिक घटना है। अभी और बहुत आयामों में बच्चा पैरों पर चलेगा। कल तक वह अपनी मां की गोद में बैठ जाता था छिपके; जल्दी ही वह शर्म अनुभव करने लगेगा; वह मां की गोद में नहीं बैठना चाहेगा। वह मां के साथ सोता था रात; जल्दी ही वह जल्दी ही वह अपना अलग बिस्तर मांग करेगा कि वह मां के साथ नहीं सोना चाहता है पीड़ा शुरू हो गयी। इस जगत में मां के अतिरिक्त कोई भी स्त्री उसके लिए मूल्यवान नहीं थी; शीघ्र ही कोई स्त्री उसके लिए मां से ज्यादा मूल्यवान हो जाएगी। मां की तरफ पीठ हो गई। मां दिक्कत देनी शुरू करेगी।

सास-बहुएं जो लड़ रही हैं; उसके पीछे यह मां की झंझट है। वह बेटा, जो उसका एक मात्र प्रेमी था, वह अचानक एक दूसरी स्त्री ने उसे छीन लिया। तो बहू सास को निरंतर ही दुश्मन की तरह मालूम पड़ती है। वह कितना ही अपने को समझाए, उसे लगता है उसका बेटा छीन लिया गया।

यह मां ठीक मां नहीं है। इसे मां होने की कला का पता नहीं है। इसे आनंदित होना चाहिए कि बेटा अब पूरी तरह मुक्त हो गया; पूरी तरह गर्भ के बाहर हो गया। अब दूसरी स्त्री महत्वपूर्ण हो गई। बेटा अब स्वयं एक यूनिट, एक इकाई बन गया। अब वह खुद परिवार बना सकता है। मां से जुड़ा हुआ, उसके पल्ले को पकड़े हुए जो बेटा है, वह यूनिट नहीं है।

शिष्य जब तक गुरु न हो जाए, तब तक गुरु को चैन नहीं है; क्योंकि जब तक वह गुरु न हो जाए, तब तक धर्म उसके आस-पास फैल नहीं सकता; तब तक उसका अपना परिवार निर्मित नहीं हो सकता। तो गुरु चाहेगा

कि जल्दी वह श्रद्धा से मुक्त हो। लेकिन श्रद्धा से वे ही मुक्त हो सकते हैं, जिन्होंने श्रद्धा की है। आप यह मत सोचना कि हम पहले से ही मुक्त हैं; झंझट में ही क्यों पड़ना कि पहले श्रद्धा में पड़ो और फिर मुक्त हो जाओ। जब मुक्त ही होना है, तो श्रद्धा ही क्यों करूं? तो आप श्रद्धा से कभी मुक्त न हो पाएंगे।

ऐसा हो रहा है। जे. कृष्णमूर्ति को सुनने वालों को ऐसी भ्रांति पैदा होती है। जे. कृष्णमूर्ति जो कह रहे हैं, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। वही गुरु का काम है कि वह व्यक्ति को श्रद्धा से मुक्त करे। लेकिन एक पहलू खोया हुआ है। और सुनने वाला बहुत प्रसन्न हो रहा है कि मैं किसी पर भी श्रद्धा नहीं करता; मैं ठीक उसी अवस्था में पहुंच गया हूं, जिसकी कृष्णमूर्ति बात कर रहे हैं।

महावीर और कृष्णमूर्ति की, दोनों की बात अगर आपके जीवन में मिल जाए, तो ही आप पूरे हो पाएंगे। महावीर प्राथमिक बात कह रहे हैं, क्योंकि प्रथम से ही शुरू करना है। कृष्णमूर्ति अंतिम बात कह रहे हैं, जहां पूरा करना है। वह कहना ठीक है। लेकिन जिनसे वे कह रहे हैं, उनमें अक्सर गलत लोग हैं। उनमें वे ही लोग हैं, जो श्रद्धा करने में असमर्थ हो गए हैं। जिनकी श्रद्धा बिल्कुल सूख गई है। जो नपुंसक हैं श्रद्धा की दृष्टि से, इंपोटेंट हैं। जिनमें कोई संभावना नहीं है। जो अपने को समर्पित कर ही नहीं सकते, वे उनको सुन कर प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं, तब हमारे लिए भी मार्ग है। कोई चिन्ता की बात नहीं। किसी को गुरु बनाने की जरूरत नहीं, अपने ही पैरों पर चलना है।

ये वे ही छोटे बच्चे हैं, जो अभी पालने में पड़े हैं, और जिनको कोई समझा दे कि बाप का हाथ मत पकड़ना, क्योंकि हाथ पकड़ने से आदमी निर्भर हो जाता है--ये बच्चे झूलनों में ही पड़े रह जाएंगे; और ये जिंदगी भर घुटनों से ही सरकते रहेंगे। क्योंकि कोई जो खड़ा हो सकता है अपने पैरों पर, और कोई जो इनसे काफी बड़ा है, जो इनको भरोसा दे सके; जिसको देख कर इनको आस्था आए और इनको लगे कि ठीक है, जब यह आदमी खड़ा है, और इतना शक्तिशाली आदमी खड़ा है, बाप से ज्यादा शक्तिशाली आदमी बेटे के लिए और कोई नहीं होता। मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक उल्लेख है। उसका बेटा बड़ा होने लगा। एक दिन उसने अपने बेटे को कहा कि तू इस सीढ़ी से ऊपर चढ़ जा। बेटा ऊपर चढ़ गया। वह सदा मुल्ला नसरुद्दीन की बात मानता था। बेटे के ऊपर चढ़ जाने के बाद नसरुद्दीन ने सीढ़ी अलग कर ली, और बेटे से कहा कि अब तू कूद पड़। बेटे ने कहा कि कूद पड़ूं? हाथ-पैर टूट जाएंगे!

नसरुद्दीन ने कहा कि मैं मौजूद हूं, तेरा पिता। मैं तुझे सम्हाल लूंगा। कूद पड़ डर मत। लड़के ने बड़ी हिम्मत बांधी कई बार, और फिर रुक गया। उसने कहा: लेकिन दूरी काफी है। अगर जरा चूका, तो हड्डी-पसली एक हो जाएगी।

नसरुद्दीन ने कहा कि जब मैं मौजूद हूं, तो तू डरता क्यों है? लड़का हिम्मत करके, बाप पर भरोसा करके कूद गया। कूदते ही नसरुद्दीन दूर हो गया। लड़का नीचे गिरा, दोनों पैर लहलुहान हो गए। उस लड़के ने कहा कि क्या मतलब?

नसरुद्दीन ने कहा, अपने बाप पर भी अब भरोसा मत करना। अब किसी पर भरोसा नहीं, अपने बाप का भी नहीं। अब तुझे मैं स्वतंत्र करता हूं। अब तू अपनी बुद्धि से चल। अब बहुत हो गया।

एक दिन गुरु भी कहेगा कि कूद पड़, अब किसी पर भरोसा नहीं। लेकिन यह संभावना तभी है, जब भरोसा पैदा हुआ हो। श्रद्धा चाहिए, ताकि अंततः श्रद्धा से मुक्त हुआ जा सके। और जो श्रद्धा नहीं कर पाते, वे श्रद्धा-मुक्ति को कभी उपलब्ध नहीं होते। कृष्णमूर्ति को सुनने वाले लोग श्रद्धा से कभी मुक्त नहीं हो सकेंगे। यह बात बड़ी उलटी मालूम पड़ेगी क्योंकि जिन्होंने श्रद्धा ही नहीं की, वहां उनके पास मुक्त होने को भी कुछ नहीं है। महावीर पर श्रद्धा करनेवाला मुक्त हो सकेगा, क्योंकि मुक्त होना श्रद्धा के भीतर ही छिपा है।

"जो सम्यकदर्शी है; जो समूढ़ नहीं है, जो ज्ञान, तप और संयम का दृढ़ श्रद्धालु है, जो मन, वचन, और शरीर को पाप-पथ पर जाने से रोक रखता है; जो तप के द्वारा पूर्व-कृत, पाप-कर्मों को नष्ट कर देता है; वही भिक्षु है।"

"जो सम्यकदर्शी है"--यह शब्द महावीर को बहुत प्रिय है। यह शब्द है भी बड़ा मूल्यवान--राइट वि. जना। सम्यक दर्शक--जिसे ठीक-ठीक देखने की कला आ गई। जिसकी आंखों पर से सारे पर्दे और धारणाएँ अलग हो गईं। जिसकी आंखें नग्न और शुद्ध हो गईं; और जो देखता है तो देखते वक्त अपने आरोपण नहीं करता, उसका नाम है, "सम्यक दृष्टि।"

हम जब भी देखते हैं तो हमारा आरोपण हो जाता है। हम जो देखते हैं उसमें हम अपने को मिश्रित कर लेते हैं। हमारा देखना शुद्ध नहीं है। जब आप किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हैं, तो आपको स्त्री सुंदर दिखाई पड़ती है। मनस्विद से पूछें, वह कहता है कुछ और। आप कहते हैं, स्त्री सुंदर है। इसलिए मैं प्रेम में पड़ गया; और मनस्विद कहता है, आप प्रेम में पड़ गए, इसलिए यह स्त्री सुंदर दिखाई पड़ रही है। क्योंकि यह स्त्री और किसी को सुंदर दिखाई नहीं पड़ रही है। यह अगर सुंदर होती--ऑब्जेक्टिवली, तो सारा जगत इसके प्रेम में कभी का पड़ गया होता; आपको मौका भी नहीं मिलता। इतने दिन तक यह प्रतीक्षा करती रही, कोई प्रेम में नहीं पड़ा। आपकी यह राह देखती रही! उसका कारण है, क्योंकि जो प्रेम में पड़ जाए, उसी को यह सुंदर दिखाई पड़ेगी।

सौंदर्य प्रेम का प्रोजेक्शन है। आप अपने प्रेम को आरोपित करते हैं किसी चेहरे पर, किसी शरीर पर। और ऐसा मत समझना कि यह स्त्री सदा सुंदर रहेगी। हो सकता है, कल ही यह असुंदर हो जाए। यह कल यही रहेगी, जो आज है। लेकिन तुम्हारा अगर प्रेम तिरोहित हो गया तो यह असुंदर हो जाएगी।

हम सभी चीजें आरोपित कर रहे हैं। जहां आपको साधुता दिखाई पड़ती है, वह भी आपका आरोपण है। यह बड़े मजे की बात है, अगर मुसलमान साधु जैन के सामने खड़ा हो, तो जैन को वह साधु नहीं मालूम होता। जैन का साधु हिंदू को साधु नहीं मालूम पड़ता, हिंदू का साधु बौद्ध का साधु नहीं मालूम होता। बौद्ध भिक्षु, बौद्ध का साधु नहीं है। साधुता कुछ हमारी धारणा में है, जो हम आरोपित करते हैं।

अब जैसे देखें--बौद्ध का साधु मांसाहार कर लेता है; शर्त एक ही है कि मरे हुए जानवर का मांस हो--अपने आप मर गए जानवर का मांस हो। बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है। क्योंकि बुद्ध ने कहा, मारने में हिंसा है। अगर कोई किसी गाय को मारकर खाता है, तो हिंसा कर रहा है। लेकिन गाय अपने से मर गई तब इसके मांस को खाने में क्या हिंसा है? बात साफ है। लेकिन बुद्ध का भिक्षु जब मांस खाता है तो जैन का मुनि तो सोच ही नहीं सकता कि यह आदमी... और साधु! इससे ज्यादा असाधु और क्या होगा; मांसाहार कर रहा है। बौद्ध भिक्षु कहता है, गाय मर गई, और उसका मांस न खाओ तो इतने भोजन को तुम व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। यह किसी के काम आ सकता था। इस भोजन को नष्ट करना हिंसा है।

बड़ा कठिन है। तो हमारी धारणा पर निर्भर है कि हमारी धारणा क्या है। अगर गांधी जी के आश्रम में जाएं तो चाय पीना वर्जित है। सिर्फ राजगोपालाचार्य के लिए विशेष सुविधा गांधी जी करते थे। उनके लिए छूट थी, क्योंकि समधी थे; थोड़ी छूट रखनी जरूरी भी थी। वे दिन भर चाय पीते थे। चाप पाप है।

लेकिन सारी दुनिया के बौद्ध भिक्षु चाय पीते हैं; ध्यान करने के पहले चाय पीते हैं, फिर ध्यान करते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, चाय सजग करती है, और सजगता ध्यान में ले जाने में सहयोगी है। बात में थोड़ी जान मालूम पड़ती है, क्योंकि चाय थोड़ा सजग तो करती ही है, शरीर को थोड़ा ताजा तो करती है। उसमें निकोटिन है। निकोटिन खून में दौड़ कर थोड़ी गति बढ़ाता है। खून में थोड़ी गति आती है; आदमी थोड़ा ताजा हो जाता है।

बौद्ध भिक्षु पहले उठ कर चाय पीएगा, फिर ध्यान में लगेगा--क्यों? वह कहता है, सुस्ती के साथ ध्यान करना ठीक नहीं है, ताजगी के साथ करना ठीक है। तो चाय धर्म का हिस्सा है। और जापान में हर घर में चाय

का कमरा अलग है--संपन्न घर में। और चाय के कमरे की वही प्रतिष्ठा है, जो मंदिर की होती है। क्योंकि जो जगाए, वही मंदिर है।

अब बड़ा मुश्किल है। और जापानी घर में, कुलीन, संपन्न घर में, सुबह चाय का वक्त, या सांझ चाय का वक्त प्रार्थना का समय है। और जिस ढंग से जापानी चाय पीते हैं, वह निश्चित ही प्रार्थनापूर्ण है। वे शांतिपूर्ण ढंग से चाय के कमरे में बैठते हैं। वहां कोई बातचीत नहीं करेगा, क्योंकि बातचीत व्याघात है। सब लोग मौन होकर भीतर आएंगे। गृहिणी खास तरह के कपड़े पहने होगी, जो उसी कमरे के लिए बनाए गए हैं--बिल्कुल ढीले, साधु-वेश के। फिर वह चाय बनाना शुरू करेगी। और चाय बनाना पूरा एक रिचुअल है, जैसे पूजा कर रही हो। एक-एक चीज को इतनी व्यवस्था से करेगी, और सारे लोग बैठ कर निरीक्षण करेंगे। केतली उबलने लगेगी। चाय की धीमी-धीमी आवाज आने लगेगी। और सब शांत बैठ कर उस चाय की आवाज को सुन रहे हैं।

यह भी ध्यान का हिस्सा हो गया। फिर वह चाय जब दी जाएगी तो उसको बड़े पवित्र भाव से ग्रहण करना है, वह पूजा है। फिर उस चाय की चुस्कियां लेते वक्त ध्यान रखना है कि सजगता बढे और चाय के बाद ध्यान में उतर जाना है।

अब बड़ा मुश्किल है। किसको साधु कहिए, किसको असाधु कहिए? मुसलमान फकीर को देख कर हम मान नहीं सकते कि साधु है। मुसलमान फकीर हमारे संन्यासी को देख कर नहीं मान सकता कि साधु है।

मोहम्मद ने नौ विवाह किए--नौ! हम तो एक के लिए भी महावीर को आज्ञा नहीं दे सकते। महावीर ने विवाह किया है, ऐसा लगता है। लेकिन उनका एक संप्रदाय, दिगंबर, मानता है कि नहीं, नहीं किया। क्योंकि दिगंबर संप्रदाय को यह बात ही बेहूदी लगती है कि महावीर और विवाह करे! यह बात ही बेहूदी है। किया भी हो--लगता है कि किया है, क्योंकि उनकी लड़की के नाम का उल्लेख है; उनके दामाद के नाम का उल्लेख है तो लगता है कि किया है क्योंकि झूठ लड़की का नाम और दामाद का नाम कहां से आ जाता है? और कौन फिक्र करता है कि झूठ उनका विवाह करवाओ! लेकिन मानने वालों को जरा पीड़ा लगती है क्योंकि बड़ी सख्ती से उसने ब्रह्मचर्य की धारणा को पकड़ा है, और अपनी धारणा को वह महावीर पर आरोपित करता है, उनको विवाह नहीं करने देता।

मोहम्मद नौ विवाह करते हैं, तो दिगंबर जैन सोच भी नहीं सकता कि मोहम्मद में कुछ भी हो सकता है। वह सोचेगा, उससे तो हम ही बेहतर, कम से कम एक ही विवाह किया है। लेकिन अगर मुसलमान से पूछें, जिसने मोहम्मद को प्रेम किया है और श्रद्धा की है, तो वह पायेगा कि मोहम्मद की साधुता है।

बड़ा मुश्किल है! क्योंकि मोहम्मद के वक्त में अरब में स्त्रियों की संख्या चार-गुनी ज्यादा थी पुरुषों से। क्योंकि पुरुष युद्ध में जाते, सैनिक बनते, कट जाते, पिट जाते, मर जाते; स्त्रियां बढ़ती चली जातीं। तो सारा मुल्क व्यभिचार में डूबा था। जहां एक पुरुष हो, चार स्त्रियां हों--सोचें, वहां क्या हालत होगी। सारा मुल्क व्यभिचार में था।

तो मोहम्मद ने नियम बनाया कुरान में कि चार विवाह प्रत्येक व्यक्ति करे, कर सकता है, ताकि उस व्यभिचार से छुटकारा हो। और मोहम्मद से जिस स्त्री ने भी निवेदन किया--विधवाएं, गरीब स्त्रियां, उन्होंने सबसे विवाह कर लिया--नौ विवाह किए, और इन सभी नौ स्त्रियों को मोहम्मद ध्यान, पूजा और प्रार्थना की तरफ ले गए।

आपकी कितनी स्त्रियां हैं, यह सवाल नहीं है। आप उनको कहां ले जा रहे हैं, यह सवाल है। अपनी स्त्री को आप अपने साथ नरक ले जाएंगे। वह भी साथ दे रही है। दोनों का कोआपरेशन है। दोनों नरक की यात्रा कर रहे हैं। दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं; नरक की तरफ जा रहे हैं।

मोहम्मद उन नौ स्त्रियों को, जितनी ऊंचाई पर ले जाया जा सकता है, ले गए। और मोहम्मद का विवाह निश्चित ही, आप जैसा विवाह करते हैं, वैसा विवाह नहीं है, क्योंकि मोहम्मद की उम्र थी चौबीस वर्ष, उन्होंने

जब पहला विवाह किया, और उस स्त्री की उम्र थी चालीस वर्ष। चौबीस वर्ष के जवान लड़के से पूछिए कि वह चालीस वर्ष की बूढ़ी स्त्री से शादी करने को तैयार है? चालीस वर्ष मोहम्मद के जमाने के, अब के नहीं है, क्योंकि अब तो चालीस वर्ष में भी स्त्री उतनी बूढ़ी नहीं हो पाती। मोहम्मद के वक्त में तो चालीस वर्ष खातमा था क्योंकि तब अठारह या बीस साल औसत उम्र थी। चालीस साल तो आखिरी बात थी। चालीस साल की स्त्री से जवान लड़के का विवाह करना है। साधुता थी। बड़ा मुश्किल है। हां पुरुष अपने से छोटी उम्र की लड़की से शादी करना एकदम आसान पाता है। चाहता ही है कि करे, लेकिन अपने से बड़ी उम्र की लड़की से शादी करना बड़ा उलटा मालुम होता है। लेकिन मोहम्मद ने किया।

निश्चित ही, यह विवाह साधारण कामुक-यौन संबंध नहीं था। और जिस पहली स्त्री से उन्होंने विवाह किया, उस स्त्री ने सबूत भी दिया; क्योंकि वही स्त्री पहली मुसलमान होनेवाली थी--पहली। जिस दिन इलहाम हुआ मुहम्मद को, जिस दिन कुरान की पहली आयत उन पर उतरी, तो वे इतने घबड़ा गये, क्योंकि वे बिल्कुल गैर पढ़े-लिखे थे, और बहुत सीधे-सीधे आदमी थे। उन्होंने कभी सोचा नहीं था कि परमात्मा की कोई शक्ति मुझे अपना वाहन चुन सकती है। वे इतने घबड़ा गये कि उनके हाथ पैर कंपने लगे। वे घर आकर कंबल ओढ़कर सो गये। उनकी पत्नी ने कहा कि तुम्हें हुआ क्या? तुम बिल्कुल ठीक गये थे। उन्होंने कहा कि पूछ ही मत। तीन दिन तू मुझसे बात ही मत कर। मैं बहुत घबड़ा गया हूं।

तीन दिन में वे आश्चर्यचकित हुए। हिम्मत उन्होंने जुटायी कि मैं कहूं। क्योंकि उन्हें लगा कि लोग क्या कहेंगे: कि एक गंवार, अपढ़, मुहम्मद यह पैगम्बर हो गया! अहंकार--लोग कहेंगे कि अहंकारी हो गया। मैं सीधा-साधा आदमी, पैगंबर होने की कभी सोची भी नहीं।

तीन दिन बाद उन्होंने अपनी पत्नी को डरते हुए कहा कि तू किसी से कहना मत। मेरे भीतर कुछ घटा है। और मैं वही नहीं रहा, जो मैं था। और कोई आवाज मुझ पर उतरी है, जो अनंत की मालूम पड़ती है, परमात्मा की; मुझे पता नहीं है, किसकी है। लेकिन आवाज बलशाली है, और उसने मुझे पूरी तरह तोड़ डाला है और बदल दिया है। तू किसी को कहना मत, खादीजा!

खादीजा को श्रद्धा आ गयी मुहम्मद की आंखों में देखकर--और उसने कहा कि तुम मुझे दीक्षित करो, खादीजा पहली मुसलमान थी। उसने भरोसा किया। यह प्रेम, यह विवाह साधारण यौन तल पर नहीं था। यह प्रेम-विवाह, सच में पूछा जाये, तो गुरु-शिष्य के तल पर ही था। यह श्रद्धा का ही एक संबंध था।

पर मुश्किल है। हम सोच नहीं सकते; क्योंकि अपनी धारणा हम आरोपित करते हैं। हमारी अपनी साधु की धारणा है, वह हम आरोपित करते हैं। जब कोई आदमी उस धारणा में फिट बैठ जाता है, ठीक बैठ जाता है, तो हम कहते हैं, "साधु"; नहीं बैठता, तो "असाधु"।

महावीर सम्यक-दर्शी उसको कहते हैं, जो अपनी धारणायें दूसरों पर नहीं लादता। जो दूसरों को देखता है, जैसे वे हैं--निष्पक्ष; हर चीज को वैसा ही देखता है, जैसी वह है। जो अपनी तरफ से कोई ताल-मेल नहीं बिठाता। जो अपने को चीजों में नहीं डालता।

बड़ी हैरानी होगी; जो है; आपकी जिंदगी बदल जाए, अगर आप सम्यक-दर्शी हो जायें। क्योंकि तब आपके हाथ में कोहिनूर कोई रख दे, तो आप वही देखेंगे, जो है; कोहिनूर का इतिहास नहीं पढ़ेंगे। आप समझ भी नहीं पायेंगे कि कोई सैकड़ों लोग मर गये हैं इसके पीछे--इस पत्थर के पीछे। आप कहेंगे, यह पत्थर ही है।

एक छोटे बच्चे को कोहिनूर दे दें, वह थोड़ी देर में खेल-खालकर, फेंककर भूल जायेगा; क्योंकि उसके पास कोई प्रोजेक्शन नहीं है अपना डालने को। लेकिन आपके हाथ में कोहिनूर आ जाए तो आप दीवाने हो जायेंगे। फिर आप चैन से नहीं रह सकते; फिर रात सो नहीं सकते। फिर आप पागल हो जायेंगे। वह पागलपन कौन पैदा कर रहा है? कोहिनूर पैदा कर रहा है, आप कुछ धारणा कोहिनूर पर डाल रहे हैं; लेकिन कोहिनूर तो पत्थर है।

और अगर पत्थर हंसते हैं, तो जरूर हंसते होंगे आदमियों पर कि आदमी भी कैसे पागल हैं कि पत्थरों के पीछे इस बुरी तरह उलझे हैं! इस बुरी तरह पागल हैं!

हम अपनी धारणायें हर चीज में डाल रहे हैं, और हर चीज को हम वैसा देखते हैं, जैसा हम देखना चाहते हैं; वैसा नहीं जैसी वह है। वस्तुएं जैसी अपने में हैं, उनको शुद्धता से देखने का नाम सम्यक दृष्टि है। और जो व्यक्ति वस्तुओं को वैसा ही देखने लगे, जैसी वे हैं--वह मुक्त होना शुरू हो जाता है, क्योंकि फिर उसे कोई भी नहीं बांध सकता। जिसकी दृष्टि मुक्त है, उसकी आत्मा को बांधने का कोई उपाय नहीं है।

"जो सम्यक दृष्टि है, जो अमूढ़ है!"

मूढ़ता एक तरह की मूर्च्छा है, जिसमें हम सोए-सोए चलते हैं--जैसे होश नहीं है; क्या कर रहे हैं, इसका कुछ पता नहीं है; क्या हो रहा है, इसका कुछ पता नहीं है--किए जा रहे हैं। आप अपनी जिंदगी से कभी एक दिन की छुट्टी ले लें, चौबीस घंटे की बिल्कुल छुट्टी ले लें और बैठ कर सोचें कि आप क्या कर रहे हैं? यह क्या हो रहा है? आप कहां हैं? आप सारी ताकत लगाए दे रहे--लेकिन कहां पहुंचने के लिए? कोई मंजिल है? कुछ इससे उपलब्ध होने वाला है? कुछ सार इससे निकलेगा? कभी निकला है किसी को? लेकिन दौड़ में इतने उलझे हैं कि सोचने की फुरसत कहां है!

मुल्ला नसरुद्दीन पैंतालीस साल तक नौकरी करता रहा। पैंतालीस साल बाद जब वह रिटायर हो गया, तो एक दिन उसने पत्नी से कहा कि चाय बहुत ज्यादा गर्म है। इतनी ज्यादा गर्म चाय मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। उसकी पत्नी ने कहा: "हृद् करते हो, नसरुद्दीन! पैंतालीस साल इससे भी ज्यादा गर्म चाय तुम पीते रहे; कभी तुमने कहा क्यों नहीं?" उसने कहा: "फुरसत कहां थी; अब रिटायर हो गया हूं, अब फुरसत है। अब तुझे बताता हूं कि एक दिन भी मैं इतनी गर्म चाय नहीं पीना चाहता।"

आप जिंदगी के आखिर में बैठ कर पाएंगे कि आप--क्या करना चाहते थे, वह तो किया नहीं, और जो करना नहीं चाहते थे, वह रते रहे। फुरसत भी नहीं थी कि सोच लेते। अगर आपको आज ही पता चल जाए कि कल सुबह आप समाप्त हो जाएंगे, आपकी जिंदगी का पूरा मूल्यांकन बदल जाएगा। तत्काल आप सोचेंगे कुछ चीजें जो आपने सदा से करना चाहा और टालते रहे; और कुछ चीजें जिन्हें आप सदा करना चाहते थे, चाहेंगे कि अब बंद कर दें--उनका अब कोई सार नहीं है।

लेकिन असलियत यही है कि अगला क्षण भरोसे का नहीं है। आप अगले क्षण समाप्त हो सकते हैं; कल तो बहुत दूर है, अगले क्षण आप समाप्त हो सकते हैं। लेकिन मूढ़ता है। एक मूर्च्छा है, चले जा रहे हैं। भीड़ में धक्कम-धुक्का है; और भी सब लोग जा रहे हैं, उसी में हम भी चले जा रहे हैं। अगर अकेले भी रास्ते पर होते, तो शायद थोड़े आप चौंकते। इतनी बड़ी भीड़ चली जा रही है, जरूर कहीं जा रही होगी। इतने पैर, इतने हाथ, चारों तरफ लोग दबाए दे रहे हैं; सब भागम-भाग, इतनी प्रतिस्पर्धा है कि ये जरूर कहीं पहुंच रहे होंगे। और हमें इतना भरोसा है अपने चारों तरफ की भीड़ पर, उनके शब्दों पर, उनकी इच्छाओं, वासनाओं पर कि वे वासनाग्रस्त लोग हमें भी उन्हीं वासनाओं से भर देते हैं।

नसरुद्दीन जिस दफ्तर में काम करता था। एक दिन जब वह अपने आफिस में आया तो देखा कि उसकी टेबल पर एक तार रखा है। तो वह भागा, तार में खबर थी कि यौर मदर हेज एक्सपायर्ड--तुम्हारी मां चल बसी है, शीघ्र पहुंचो; तो वह स्टेशन पर पहुंच गया। स्टेशन पर उसके ही दफ्तर के एक क्लर्क ने उससे आकर कहा कि क्षमा करिए, मैं आपको बहुत ढूंढता रहा, आप मिले नहीं। मेरी मां मर गई है, घर से तार आया है। आपकी टेबल पर मैं वह तार छोड़ आया हूं।

नसरुद्दीन ने कहा: धत तेरे की। यही मैं सोचता था कि मेरी मां को मरे तो दस साल हो गए, तार आज क्यों आया है। लेकिन तार ने ही ऐसी हालत पैदा कर दी कि मैंने कहा, कुछ भी हो, कुछ न कुछ होगा मामला, जाना जरूरी है।

अभी यहां कोई जोर से चिल्ला दे कि आग लग गई, तो आपके हृदय की धड़कन बढ़ जाएगी, पैर तैयार हो जाएंगे भागने को। फिर कोई खबर भी दे दे कि आग नहीं लगी, आप बैठ भी जाएं, तो भी हृदय थोड़ी देर तक धड़कता ही रहेगा। श्वास जोर से चलती रहेगी, पसीना थोड़ा ही रहेगा।

सपने तक में आप घबड़ा जाते हैं, तो जगकर भी थोड़ी देर घबड़ाये रहते हैं।

चारों तरफ की भीड़ घबड़ाई हुई है। चारों तरफ के लोग भागे जा रहे हैं अंधों की तरह--उस में आप भी भागे जा रहे हैं। महावीर इसको "मूढ़ता" कहते हैं। संन्यासी तो वही है, जो इस मूढ़ता के बाहर आ जाए। वही भिक्षु है। अमूढ़--जो जग जाये और जो जिंदगी की भीड़ के धक्के में न जिये, बल्कि होशपूर्वक सोचे और जिये; देखे और जिये; निर्णय करे और चले, ऐसे ही न चलता जाये।

बेहतर है कुछ न करना, बजाय कुछ करने के जो कि मूढ़ है, जो कि अंधा है। अच्छा है रुक जायें कुछ देर के लिए; कुछ न करें, खाली छोड़ दें और एक दफा जिंदगी को पुनर्विचार कर लें, रिकन्सिडरेशन कर लें; और एक दफा लौटकर पिछला इतिहास देख लें अपना कि क्या कर रहे हैं, कहां जा रहे हैं--अगर सफल भी हो जायेंगे तो कहां पहुंचेंगे, क्या उपलब्ध हो जायेगा?

ऐसी मूढ़ता तोड़ने की जब तक कोई तैयारी न करे, तब तक उसके जीवन में संन्यास नहीं उतरता। संन्यास या भिक्षु होने की संभावना उतरती है मूढ़ता का सिलसिला तोड़कर अमूढ़ होने से होश से भरने से। जो होश से भर जाता है, वह नये पाप नहीं करता। सब पाप मूढ़ता में किये जाते हैं। जो होश से भर जाता है, उसके होश की अग्नि उसके अतीत के किये गये पापों को भी जलाने लगती है। लेकिन मूढ़ आदमी अभी तो पाप करता ही है, भविष्य की योजना भी बनाता है और अतीत के लिए भी दुखी रहता है।

मुल्ला मरते वक्त जो वक्तव्य दिया था, वह याद रखने जैसा है। पुरोहित ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, अगर तुम्हें फिर से जिंदगी मिले, तो तुमने जो पाप किये हैं, क्या तुम उसे फिर से करना चाहोगे?

नसरुद्दीन ने कहा, "निश्चय ही, लेकिन जरा जल्दी शुरू करूंगा! इस बार काफी देर कर दी।" पुरोहित तो समझा भी नहीं। उस पुरोहित ने कहा कि प्रार्थना करो परमात्मा से, पश्चाताप करो। क्या पागलपन की बात कह रहे हो?

नसरुद्दीन ने कहा, "पश्चाताप मैं भी कर रहा हूं, लेकिन उन पापों के लिए नहीं, जो मैंने किये हैं; बल्कि उन पापों के लिए, जो मैं नहीं कर पाया; नाहक चूक गया; जिंदगी हाथ से निकल गयी।"

मूढ़ता अतीत में भी पाप करना चाहती है, जो कि जा चुका; जहां अब कुछ नहीं किया जा सकता। होशपूर्वक व्यक्ति भविष्य के पापों की योजना छोड़ देता है, वर्तमान के पापों से उसका हाथ अलग हो जाता है, अतीत के पाप उसके इस होश की अग्नि में गिरने लगते हैं, जलने लगते हैं; कुसंस्कार अपने आप जल जाते हैं। उनका जो प्रतिपल है, वह भोग लिया जाता है। मैंने किसी को गाली दी थी, तो मैं गाली पा लूंगा; भोग लूंगा। वह दुख, वह कांटा छिदेगा, उसे मैं साक्षी-भाव से सुन लूंगा और समझूंगा कि एक सौदा, एक संबंध, एक लेने देन पूरा हो गया। इस आदमी से अब हमारा कुछ लेना देना न रहा। मैं ऋण से मुक्त हो गया।

अतीत धीरे-धीरे होश की अग्नि में जल जाता है। और जिस दिन न कोई अतीत का पाप पकड़ता है; न भविष्य की कोई कामना पकड़ती है; न वर्तमान में कोई पाप की मूढ़ता होती है, उस दिन व्यक्ति जहां होता है--वहीं संन्यास है, वहीं भिक्षु का स्वरूप है।

पांच मिनट रुकें।

कीर्तन करें, फिर जायें।

अस्पर्शित, अकंप है भिक्षु (भिक्षु-सूत्र: 2)

जो सहइ हु गामकंटए,
 अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य।
 भय-भेरव-सद्-सप्पहासे,
 समसुह-दुक्खसहे अ जे स भिक्खू
 हत्थसंजए पायसंजए,
 वायसंजए संजइन्दिए।
 अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा,
 सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू॥

जो कान में कांटे के समान चुभने वाले आक्रोश-वचनों को, प्रहारों को, तथा अयोग्य उपालंभो (तिरस्कार या अपमान) को शांतिपूर्वक सह लेता है, जो भयानक अट्टहास और प्रचंड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है, जो सुख-दुख दोनों को समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है।

जो हाथ, पांव, वाणी और इंद्रियों का यथार्थ संयम रखता है, जो सदा अध्यात्म-चिंतन में रत रहता है, जो अपने आपको भलीभांति समाधिस्थ करता है, जो सूत्रार्थ को पूरा जानने वाला है, वही भिक्षु है।

जीवन दो प्रकार का संभव है: एक शरीर के लिए, एक स्वयं के लिए। जो शरीर के लिए ही जीते हैं, मृत्यु के अतिरिक्त उनकी कोई और दूसरी नियति नहीं है। जो स्वयं के लिए जीना शुरू करते हैं, वे अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं।

मनुष्य मृत्यु और अमृत का जोड़ है। शरीर मरणधर्मा है। शरीर में जो छिपा है, वह अमरण-धर्मा है। अगर शरीर ही सब-कुछ हो जाए, और जीवन की आधारशिला बन जाए, तो हम सिर्फ मरते हैं, जीते नहीं हैं। जब तक शरीर में जो छिपा है--अदृश्य, चैतन्य, आत्मा, परमात्मा--जो भी नाम हम उसे दें, जब तक वह हमारे जीवन का आधार नहीं बनता, तब तक हम वास्तविक जीवन को जानने से वंचित ही रह जाते हैं।

शरीर का जीवन इंद्रियों का जीवन है, दिखाई नहीं पड़ता; खुद स्मरण भी नहीं आता, क्योंकि हम उसमें इतने डूबे हैं कि देखने के लिए जितनी दूरी चाहिए, वह भी नहीं है; परिप्रेक्ष्य चाहिए, फासला चाहिए, वह भी नहीं है। अधिक लोग इंद्रियों के सुख के लिए ही अपने को समर्पित करते रहते हैं। इंद्रियों की बलिवेदी पर ही उनका जीवन नष्ट हो जाता है।

सुना है मैंने, पुराने दिनों में यूनान में भोजन की टेबल पर भोजन के साथ-साथ, थाली के पास ही पक्षियों के पंख भी रखे जाते थे, ताकि अगर भोजन बहुत पसंद आया हो, तो आप पंख को उठा कर वमन कर लें, गले में छुआ कर, और फिर से भोजन कर सकें।

सम्राट नीरो के संबंध में कहा जाता है कि वह दिन में कम से कम बीस बार भोजन करता था। बीस बार भोजन करने के लिए जरूरी है कि हर बार भोजन करने के बाद उलटी की जाए, ताकि शरीर में भोजन न पट्टुच पाए, भूख बनी रहे। तो सम्राट नीरो के पास दो चिकित्सक सिर्फ वमन करवाने के लिए सदा रहते थे।

सिर्फ स्वाद के लिए व्यक्ति जीवित है। और उस स्वाद के लिए कष्ट भी सहने की तैयारी है। बीस दफा वमन करना, भोजन करना--तो जैसे सारा जीवन ही एक ही काम में लीन हो गया। जैसे आदमी सिर्फ एक यंत्र है, जिसमें भोजन डालना है। और आदमी का जैसे सारा सुख स्वाद में ठहर गया।

नीरो अतिशयोक्ति मालूम पड़ता है, लेकिन हम भी बहुत भिन्न नहीं हैं। बीस बार हम भोजन न करते हों, लेकिन बीस बार आकांक्षा जरूर करते हैं। हमारी जो आकांक्षा है, नीरो ने उसे सत्य बना लिया; वास्तविक बना लिया था, इतना ही फर्क है। लेकिन बहुत लोग हैं जो चौबीस घंटे भोजन का चिंतन कर रहे हैं। चिंतन भी भोजन करने जैसा ही है; क्योंकि चिंतन में भी जीवन, उतनी ही शक्ति, उतनी ही ऊर्जा नष्ट होती है।

कुछ लोग हैं जो कामवासना के लिए ही जीते रहते हैं; जैसे जीवन का एक ही लक्ष्य है कि शरीर किसी भांति कामवासना का सुख ले ले; क्षण भर को डूब जाए बेहोशी में। फिर उनका चित्त चौबीस घंटे वही सोचता रहता है। फिर उनकी कविता हो, कि उनका उपन्यास हो, कि उनकी फिल्म हो, कि उनका संगीत हो, नृत्य हो, सभी कामवासना से आपूर होता है।

अगर हम आधुनिक जीवन को ठीक से देखें, और आधुनिक मन का ठीक विश्लेषण करें, तो ऐसा लगता है जैसे आदमी जमीन पर सिर्फ इसलिए है, उसका शरीर सिर्फ इसलिए है कि किसी तरह कामोत्तेजना में उसको नष्ट कर लिया जाए। और यह पागलपन इतनी दूर तक प्रवेश कर जाता है कि जिन चीजों से कामवासना का कोई भी संबंध नहीं है, उन्हें भी हम कामवासना से ही जोड़ कर चलते हैं।

अखबार देखें। विज्ञापन देखें। जिनका कोई संबंध कामवासना से नहीं है, उन चीजों को भी बेचना हो तो उनको काम-प्रतीकों के साथ जोड़ना पड़ता है। कार का क्या संबंध है कामवासना से? लेकिन उसके पास एक सुंदर, नग्न स्त्री को खड़ा कर दिया जाए तो कार का विज्ञापन ज्यादा प्रभावकारी हो जाता है। लोग कार को नहीं खरीदते, जैसे उस नग्न स्त्री को कार के पास खड़ा हुआ खरीद लेते हैं।

सिगरेट बेचनी हो, कि कुछ भी बेचना हो--सारी चिंतना इस बात की है कि मनुष्य का मन शायद कामवासना से ही प्रभावित होता है, और किसी चीज से नहीं। तो जिस चीज को हम सेक्स से जोड़ दें, वह बिक जाती है।

करीब-करीब नब्बे प्रतिशत लोग काम भोगने में नष्ट हो जाते हैं। कुछ दस प्रतिशत ऐसे लोग भी हैं, जो काम से लड़ने में नष्ट होते हैं। उनका पूरा जीवन भोगी से ठीक विपरीत है। वे चौबीस घंटे लड़ रहे हैं कि कामवासना मन को न पकड़ ले। लेकिन ध्यान रहे, दोनों ही कामवासना के इर्द-गिर्द घूम कर मिट जाते हैं; और दोनों की नजर कामवासना पर ही लगी रहती है।

ऐसे ही हमारी सारी इंद्रियां हैं। किसी को कान का सुख है, तो वह संगीत सुन-सुन कर जीवन को व्यतीत कर रहा है। किसी को स्पर्श का सुख है, किसी को गंध का सुख है--लेकिन हम कहीं न कहीं किसी इंद्रिय के पास अपने को ठहरा लेते हैं। और जो इंद्रिय हमारे जीवन में प्रमुख बन जाती है, वही हमारी आत्मा की हत्या का कारण हो जाती है।

शरीर के भीतर जो छिपा है, उसकी कोई भी इंद्रिय नहीं। शरीर में इंद्रियां हैं। और इंद्रियां उपयोगी हो सकती हैं, लेकिन उसी के लिए, जो बुद्धिमान है। इंद्रियां सेवक हो सकती हैं, सेवक होनी चाहिए यही उनका प्रयोजन है। यह शरीर भी सीढ़ी बन सकता है उस तक पहुंचने की जो अशरीरी है। और जब तक कोई व्यक्ति इस शरीर की सीढ़ी नहीं बना लेता, साधन नहीं बना लेता, इसके पार जाने का, इससे ऊपर उठने का, तब तक वह मूढ़ है, अज्ञानी है।

शरीर में मनुष्य है, लेकिन शरीर ही नहीं है; शरीर के भीतर है, निवासी है, लेकिन शरीर से भिन्न और अलग है। उस भिन्नता का अनुभव जब तक न हो, तब तक आनंद का कोई भी पता न चलेगा। सुख का छोटा सा अनुभव हो सकता है इंद्रियों से, लेकिन जितना सुख आप खरीदेंगे, उतना ही दुख भी आप खरीदते चले जाएंगे।

हर इंद्रिय के साथ सुख-दुख संयुक्त मात्रा में जुड़े हैं। दुख कीमत है जो चुकानी पड़ती है इंद्रिय के सुख पाने के लिए। लेकिन हम दुख चुकाने को राजी हैं, और इसी आशा में जीते हैं कि ये जो बबूले की तरह थोड़े से सुख मिलते हैं, ये कभी ठहर जाएंगे। पानी के बबूले हैं, छू भी नहीं पाते और मिट जाते हैं। और पूरा जीवन, हमारा अनुभव कहता है कि कोई सुख ठहरता नहीं, फिर भी न ठहरने वाले सुख के लिए हम संघर्षरत रहते हैं। और इसी संघर्ष में मृत्यु हमें पकड़ लेती है--नष्ट हो जाते हैं।

धर्म की शुरुआत उस व्यक्ति की चेतना में होती है, जिसे यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है कि जिनका मैं पीछा कर रहा हूं, वे पानी के बबूले हैं; उन्हें पा भी लूं तो कुछ मिलता नहीं है; और पाकर बबूला टूट जाता है, और दुख लाता है; उन्हें न पा सकूं तो पीड़ा होती है।

इन बबूलों को जब कोई देखता रहता है तटस्थ भाव से और बह जाने देता है; न उन्हें पकड़ने की कोशिश करता है, न उनके फूट जाने से चिंतित होता है; उनसे अपने को दूर कर लेता है--वही व्यक्ति भिक्षु है। लेकिन मरते दम तक हम बच्चों की तरह।

छोटे बच्चे तितलियों के पीछे दौड़ते रहते हैं। बूढ़े उन पर हंसते हैं कि क्या तितलियों के पीछे दौड़ रहे हो! लेकिन बूढ़े भी तितलियों के पीछे ही दौड़ते रहते हैं। तितलियां बदल जाती हैं। इनकी अपनी तितलियां हैं। बूढ़ों की अपनी तितलियां हैं; बच्चों की अपनी तितलियां हैं; जवानों की अपनी तितलियां हैं। लेकिन सभी लोग रोशनी में चमक गए, प्रकाश में चमक गए रंगों के पीछे दौड़ते रहते हैं--इंद्रधनुषों के पीछे। अंत समय तक भी यह पीछा छूटता नहीं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की काफी उम्र की हो गई; तीस वर्ष की हो गई, और उसे पति नहीं मिल रहा है। खोज की जाती है, मां-बाप भी परेशान हो गए हैं खोज-खोज कर; उम्र ढलती जाती है। अब संदेह होने लगा है कि अब शायद विवाह न हो सकेगा।

तो अपनी लड़की की चिंता में नसरुद्दीन की पत्नी सो भी नहीं पाती। एक दिन उसे ख्याल आया कि अखबार में खबर दे दी जाए। और उसने एक बहुत सुंदर विज्ञापन बनाया और लिखा कि एक बहुत सुंदर युवती के लिए, जिसके पास काफी दहेज भी है, एक साहसी युवक की जरूरत है। अति साहसी युवक चाहिए, क्योंकि लड़की को पर्वतारोहण का शौक है। और जिसमें दुस्साहस हो इतनी सुंदर और साहसी लड़की के लिए, वही केवल निवेदन करे।

तीन दिन तक मां-बेटी प्रतीक्षा करती रहीं कि कोई पत्र आए। तीन दिन तक कोई पत्र नहीं आया तो मां चिंतित होने लगी। लेकिन तीसरे दिन एक पत्र आया। मां भागी हुई बाहर आई, तब तक लड़की ने पत्र ले लिया और छिपा लिया। मां ने कहा कि पत्र मुझे देखना है, किसका पत्र आया है। लड़की ने कहा कि आप न देखें तो अच्छा है। तो मां ने कहा कि यह विचार मेरा ही था--यह विज्ञापन का विचार, तो मैं जोर देती हूं कि मैं पत्र देखूंगी। और मां जिद पर अड़ गई। लड़की ने कहा कि आप नहीं मानती तो देख लें।

पत्र नसरुद्दीन की तरफ से था। क्योंकि विज्ञापन में कोई पता तो था नहीं--अखबार के नाम केयर ऑफ था, नसरुद्दीन ही निवेदन कर दिया।

बूढ़ा आदमी भी वहीं खड़ा है, जहां जवान खड़े हैं। कोई भेद नहीं है। जरा भी भेद नहीं है। बूढ़े मन की भी वे ही कामनाएं हैं; वे ही वासनाएं हैं; वे ही इच्छाएं हैं।

अंत समय तक भी आदमी शरीर में ही जीता चला जाता है; इसलिए मृत्यु इतनी दुखद है। मृत्यु में कोई भी दुख नहीं है; हो नहीं सकता--क्योंकि मृत्यु तो महाविश्राम है। मृत्यु में दुख की कोई संभावना ही नहीं है। लेकिन दुख होता है। कभी लाख में एकाध आदमी मृत्यु में आनंदपूर्वक प्रवेश करता है। सभी लोग तो दुख में ही प्रविष्ट होते हैं।

लेकिन दुख का कारण मृत्यु नहीं है। दुख का कारण हमारा इंद्रियों से संयोग है, जोड़ है। और दुख का कारण हमारी वासनाएं हैं। जैसे ही मृत्यु करीब आने लगती है, हम इंद्रियों से तोड़े जाते हैं। वह जो चेतना

चिपक गई है, जुड़ गई है, बंध गई है, वह टूटती है। उस टूटने के कारण दुख प्रतीत होता है। और अब वासनाओं के होने का कोई उपाय न रहेगा। अब इंद्रियां खो रही हैं। हाथ-पैर शिथिल होने लगे। शरीर टूटने लगा।

दुख है इस बात का कि कोई भी वासना तृप्त नहीं हो पाई और मौत आ गई--दुख मृत्यु का नहीं है। इसलिए वे लोग, जो वासनाओं के पार हो जाते हैं, जो इंद्रियों से अपना संबंध, इसके पहले कि मृत्यु तोड़े, स्वयं तोड़ लेते हैं--वे भिक्षु हैं। और वे आनंद से मरते हैं।

यह बड़े मजे की बात है: जो आनंद से मर सकता है, वही आनंद से जी सकता है। और जो दुख से मरता है, वह दुख से ही जीएगा। क्योंकि मृत्यु जीवन का चरम उत्कर्ष है। वह आपके सारे जीवन का निचोड़ है, सार है, इत्र है। सारे जीवन में कितने ही फूल खिले हों, सबकी सुगंध मृत्यु के क्षण में आ जाती है।

अगर मृत्यु महादुख है, तो पूरा जीवन दुख की एक लंबी यात्रा थी। मृत्यु महासुख हो सके, यही धार्मिक व्यक्ति की खोज है। और जो विरोधाभास है, वह यह है कि जिसकी मृत्यु महासुख हो पाती है, उसके पूरे जीवन पर सुख की छाया और सुख का संगीत फैल जाता है।

आप मृत्यु से डरते हैं। डर का कारण ही यही है कि आपको अभी जीवन का कोई पता नहीं चला। जिस दिन आपको जीवन का पता चल जाएगा, मृत्यु मित्र है।

मृत्यु जीवन को नष्ट नहीं करती, केवल शरीर से जीवन को अलग करती है। जीवन को नष्ट करने का कोई आधार नहीं है मृत्यु में। मृत्यु तो केवल उस जीवन से आपको अलग कर लेती है, जिसको आपने एकमात्र जीवन बना रखा था। जैसे कोई आदमी एक दीवाल के छेद से आकाश को देख रहा हो, और उसे कुछ पता न हो कि बाहर जाकर पूरे आकाश को देखा जा सकता है, जीआ जा सकता है, और हम उसे उसके छेद से छीनने लगे, खींचने लगे, तो वह चिल्लाने लगे कि मेरा आकाश मत छीनो, मैं मर जाऊंगा। यही तो मेरा जीवन है, यही तो मेरी मुक्ति है, यही तो मेरा सुख है कि सूरज उगता है, कि पक्षी उड़ते हैं, कि फूल खिलते हैं, इसी छिद्र से तो मैं देख पाता हूं। वह रोएगा, चिल्लाएगा। उसे कुछ भी पता नहीं कि हम उसे पूरे आकाश के नीचे ही ले जा रहे हैं, जहां फूलों की तरह वह खुद भी खिल सकता है; जहां पक्षियों की तरह वह खुद भी उड़ान भर सकता है; जहां सूरज की तरह वह भी रोशन हो सकता है। लेकिन वह अपने छिद्र को ही आकाश समझ रहा है। और जो सदा छिद्र के पास ही बैठा रहा हो, उसे यह भ्रांति होनी स्वाभाविक है।

हमारी इंद्रियां जीवन की तरफ छोटे-छोटे छेद हैं। हमारी आंख क्या है? वह जो भीतर छिपा है, उसके लिए एक छोटा सा छेद है शरीर में, जिससे हम बाहर देख पाते हैं। हमारा कान क्या है? एक छोटा सा छेद है, जिससे बाहर की ध्वनि भीतर आ पाती है। हमारी इंद्रियां छिद्र हैं, उन छिद्रों को ही हम जीवन समझ लिए हैं।

मृत्यु हमें छिद्रों से अलग करती है। हम दुखी होते हैं, क्योंकि हमारा सब कुछ छीना जा रहा है। कुछ भी छीना नहीं जा रहा है। अगर हम भीतर के निवासी को पहचान लें, तो मृत्यु हमें केवल क्षुद्रता से अलग कर रही है। इसलिए जो व्यक्ति भीतर के निवासी को पहचानने लगता है, उसकी मृत्यु मोक्ष हो जाती है। हमारा जीवन भी मृत्यु जैसा है, उसकी मृत्यु भी मुक्ति बन जाती है।

मैंने सुना है कि नसरुद्दीन एक दिन अपने मित्रों से बात कर रहा है और शिकार की अतिशयोक्तिपूर्ण घटनाएं और अनुभूतियां सुना रहा है। एक जगह जाकर तो बात बिल्कुल आखिरी हद पर पहुंच गई। उसने कहा: मैं अफ्रीका गया था, और सिर्फ शिकार के लिए गया था। चांदनी रात थी। तो बंदूक बिना लिए झोपड़े के बाहर घूमने निकल गया। एक भयंकर सिंह अचानक एक वृक्ष के नीचे आ गया। दस फीट की दूरी रही होगी... ।

मित्र भी श्वास रोक लिए।

बंदूक हाथ में नहीं है, नसरुद्दीन ने कहा, सिंह दस कदम की दूरी पर तैयार खड़ा है।

एक मित्र ने पूछा: फिर क्या हुआ?

नसरुद्दीन ने कहानी को छोटा करने के लिहाज से कहा: सिंह ने हमला किया और मेरा खात्मा कर दिया। उस मित्र ने कहा: नसरुद्दीन, डू यू मीन दि लायन किल्ड यू? बट यू आर अलाइव, सिटिंग जस्ट बिफोर मी--और तुम भलीभांति जिंदा हो। मतलब तुम्हारा क्या है, उस सिंह ने तुम्हें खत्म कर दिया?

नसरुद्दीन ने कहा: हां, यू काल दिस बीइंग अलाइव--यह मेरी जिंदगी को तुम जिंदगी कहते हो?

जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, उसे हम भी जिंदगी कह नहीं सकते। भला सिंह ने आपको खत्म किया हो या न किया हो, आपने खुद ही अपने को खत्म कर लिया है। आपका होना राख जैसा है, अंगार जैसा नहीं है; बुझे बुझे हैं--किसी तरह--अगर कोई जिंदगी के जीने का न्यूनतम ढंग हो, मिनिमम पर--जैसे दीया जलता है आखिरी वक्त में जब तेल चुक गया है; बाती ही जलती है, तेल तो चुक गया है। तो वैसा, जैसा पीला सा प्रकाश उस आखिरी दीये में होता है, हमारा जीवन है।

जर्मनी की एक बहुत क्रांतिकारी महिला हुई, रोजा लक्जम्बर। उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं ऐसे जीना चाहती हूं, जैसे कोई मशाल को दोनों तरफ से जला दे; चाहे एक क्षण को, मगर भभक कर जीना चाहती हूं--मैक्सिमम; वह जो पराकाष्ठा है जीवन की, जो तीव्रता है, इन्टेंसिटी है, उस पर जीना चाहती हूं ताकि मुझे जीवन का दर्शन हो जाए। यह जो न्यूनतम पर जीना है, इससे तो सिर्फ राख ही राख का स्वाद आता है।

आप अपनी जबान को टटोलें--जिंदगी राख का एक स्वाद हो गई है, जहां कुछ होता नहीं लगता; घसीटते से मालूम होते हैं। नसरुद्दीन ठीक ही कह रहा है कि तुम इसे जिंदगी कहते हो?

पर यह राख कैसे जिंदगी हो गई? हर बच्चा अंगारे की तरह पैदा होता है। जीवन प्रगाढ़ता से, सघनता से उसमें चमकता है। हर बच्चा पूरी क्षमता लेकर पैदा होता है कि जीवन का आखिरी और गहरे से गहरा स्वाद ले ले। लेकिन कहां खो जाता है वह सब, और मरते दम क्षण हम क्यों बुझे-बुझे मर जाते हैं? और इसे हम जीवन की प्रगति कहते हैं!

यह तो हास है। यह तो पतन है। बच्चे कहीं ज्यादा जीवित होते हैं, बजाय बूढ़ों के। होना उलटा चाहिए--अगर आदमी ठीक-ठीक जीआ हो, जिसको महावीर सम्यक जीवन कहते हैं; अगर ठीक-ठीक जीआ हो तो बुढ़ापे में जीवन अपने पूरे निखार पर होगा; क्योंकि इतना अनुभव, इतनी अग्नि, इतने-इतने जीवन के पथ, इतने प्रयोग जीवन को और भी साफ-सुथरा कर गए होंगे; कुंदन की तरह निखार गए होंगे। बूढ़ा तो बिल्कुल शुद्ध हो जाएगा। लेकिन बूढ़ा तो बिल्कुल मरने के पहले मर चुका होता है।

हम सब बुढ़ापे से भयभीत हैं। जीवन में कहीं कोई बुनियादी भूल हो रही है। और वह बुनियादी भूल यह है कि जहां जीवन का स्रोत है, वहां हम जीवन को नहीं खोजते; और जहां जीवन के अनुभव के छिद्र हैं, वहीं हम जीवन को टटोलते हैं।

इंद्रियों में नहीं, इंद्रियों के पीछे जो छिपा है, उसमें ही जीवन को पाया जा सकता है। लेकिन आप दो काम कर सकते हैं आसानी से--या तो इन इंद्रियों को भोगने में लगे रहें, और या जब थक जाएं, परेशान हो जाएं, तो इंद्रियों से लड़ने में लग जाएं। लेकिन दोनों हालत में आप चूक जाएंगे मंजिल। न तो भोगने वाला उसे पाता है, और न लड़ने वाला उसे पाता है। सिर्फ भीतर जागने वाला उसे पाता है। भोगने वाला भी इंद्रियों से ही उलझा रहता है, और लड़ने वाला भी इंद्रियों से उलझा रहता है।

आप संसारी हों कि संन्यासी हों, कि गृहस्थ हों कि साधु हों--आप दोनों हालत में इंद्रियों से ही उलझते रहते हैं। आप दिन-रात स्वाद का चिंतन करते रहते हैं, और साधु, दिन-रात स्वाद का चिंतन न आए, इस कोशिश में लगा रहता है। लेकिन बड़ा मजा यह है कि जिसे विस्मरण करना हो, उसे स्मरण करना असंभव है।

विस्मरण स्मरण की एक कला है, एक ढंग है। सच तो यह है कि आप किसी को स्मरण करना चाहें तो शायद भूल भी जाएं, और किसी को विस्मरण करना चाहें तो भूल नहीं सकते।

कोशिश करके देखें। किसी को भूलने की कोशिश करें और आप पाएंगे कि भूलने की हर कोशिश याद बन जाती है। क्योंकि भूलने में भी याद तो करना ही पड़ता है।

तो गृहस्थ शायद भोजन का उतना चिंतन नहीं करता जितना साधु करता है। वह भुलाने की कोशिश में लगा है। भोगी शायद स्त्री-पुरुष के संबंध में उतना नहीं सोचता, जितना साधु सोचता है। वह भुलाने में लगा है। मगर दोनों ही घिरे हैं एक ही बीमारी से--छिद्रों से पीड़ित हैं। और उस तरफ ध्यान की धारा नहीं बह रही है, जहां मालिक छिपा है। शरीर एक यंत्र है, और बड़ा कीमती यंत्र है। अभी तक पृथ्वी पर उतना कीमती कोई दूसरा यंत्र नहीं बन सका। किसी दिन बन जाए।

मैंने सुना है ऐसा, उन्नीसवीं सदी पूरी हो गई; बीसवीं सदी भी पूरी हो गई और इक्कीसवीं सदी का अंत आ गया। इन तीन सदियों में कंप्यूटर का विकास होता चला गया है। तो मैंने एक घटना सुनी है कि बाईसवीं सदी के प्रारंभ में एक इतना महान विशालकाय कंप्यूटर यंत्र तैयार हो गया है कि दुनिया के सारे वैज्ञानिक उसके उदघाटन के अवसर पर इकट्ठे हुए, क्योंकि वह मनुष्य की अब तक बनाई गई यांत्रिक खोजों में सर्वाधिक श्रेष्ठतम बात थी। यह कंप्यूटर, ऐसा कोई भी सवाल नहीं, जिसका जवाब न दे सकता हो। ऐसा कोई प्रश्न नहीं, जिसको यह क्षण में हल न कर सकता हो। जिसको मनुष्य का मस्तिष्क हजारों साल में हल न कर सके, उसे यह क्षण में हल कर देगा।

स्वभावतः, सारी दुनिया के वैज्ञानिक इकट्ठे हुए। और उदघाटन किया जाना था किसी सवाल को पूछ कर; और दो हजार वैज्ञानिक सोचने लगे कि क्या सवाल पूछें। सभी सवाल छोटे मालूम पड़ने लगे, क्योंकि वह क्षण में जवाब देगा। कोई ऐसा सवाल पूछें कि यह यंत्र भी थोड़ी देर को चिंता में पड़ जाए। लेकिन कोई सवाल ऐसा नहीं सूझ रहा था क्योंकि वैज्ञानिकों को भी पता था कि ऐसा कोई सवाल नहीं जिसे यह यंत्र जवाब न दे दे। और तभी बुहारी लगाने वाले एक आदमी ने, जो ऊब गया था, परेशान हो गया था प्रतीक्षा करते-करते कि कब पूछा जाए... कब पूछा जाए... और देर होती जाती थी, तो उसने जाकर यंत्र के सामने पूछा: इ.ज. देयर ए गॉड--क्या ईश्वर है?

यंत्र चल पड़ा। बल्ब जले-बुझे, खट-पट हुई, भीतर कुछ सरकन हुई और भीतर से आवाज आई: नाउ देअर इ.ज., क्योंकि यंत्र अब यह कह रहा है, कि मैं हूं--नाउ देअर इ.ज.!

वैज्ञानिक बहुत परेशान हुए कि ईश्वर अब है, उन्होंने पूछा कि क्या मतलब? तो उस यंत्र ने कहा कि मेरे पहले कोई ईश्वर नहीं था।

आदमी का यंत्र अभी सर्वाधिक श्रेष्ठतम है। लेकिन यंत्र भी इक्कीसवीं सदी में यह अनुभव कर सकता है कि मैं ईश्वर हूं। अगर प्रतिभा इतनी विकसित हो जाए तो उसके भीतर भी प्राणों का संचार हो जाए। और आप उस यंत्र में न मालूम कितने जन्मों से जी रहे हैं, जहां प्रतिभा का संचार है। लेकिन आपको अभी अनुभव नहीं हो पाया कि ईश्वर है।

और लोग पूछते ही चले जाते हैं कि ईश्वर कहां है? और ईश्वर उनके भीतर छिपा है। जो पूछ रहा है, वही ईश्वर है--वही चैतन्य की धारा। लेकिन उस तरफ हमारी नजर नहीं है। हमारी धारा बाहर की तरफ बहती है, दूसरों की तरफ बहती है, अपनी तरफ नहीं बहती। जब धारा अपनी तरफ बहने लगती है, तो संन्यास फलित होता है। महावीर के सूत्र को हम समझें। इस सूत्र में बड़ी सरलता से बहुत सी कीमत की बातें कही गई हैं।

"जो कान में कांटे के समान चुभने वाले आक्रोश-वचनों को, प्रहारों को, अयोग्य उपालंभों (तिरस्कार या अपमान)को शांतिपूर्वक सह लेता है, जो भयानक अट्टहास और प्रचंड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है, जो सुख-दुख दोनों को समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है।"

सब शब्द सीधे-सीधे हैं, समझ में आते हैं। लेकिन उनके भीतर बहुत कुछ छिपा है, जो एकदम से ख्याल में नहीं आता।

आमतौर से यह समझा जाता है कि जिसको हम गाली दें, अपमान करें, वह अगर शांति से सह ले, तो बड़ा शांत आदमी है; अच्छा आदमी है। इतनी ही बात नहीं है। इतनी बात तो स्वार्थी आदमी भी कर सकता है; इतनी बात तो चालाक आदमी भी कर सकता है; इतनी बात तो जिसको थोड़ी सी बुद्धि है, जो जीवन में व्यर्थ के उपद्रव नहीं खड़े करना चाहता है, वह भी कर सकता है।

महावीर इतने पर समाप्त नहीं हो रहे हैं। महावीर का यह कहना कि बाहर से अगर कांटों की तरह चुभने वाले वचन भी कानों में पड़ें; आग जला देने वाले वचन आस-पास आ जाएं; अपमान और तिरस्कार फेंका जाए, जलते हुए तीर की तरह छाती में चुभ जाएं, तो भी शांत रहना। शांत रहने का यहां प्रयोजन शांति नहीं है। शांत रहने का

यहां प्रयोजन है कि दूसरे को मूल्य मत देना।

हम उसी मात्रा में मूल्य देते हैं वचनों को, जितना हम दूसरे को मूल्य देते हैं। इसे थोड़ा समझें। अगर आपका मित्र गाली दे तो ज्यादा अखरेगा। शत्रु गाली दे, उतना नहीं अखरेगा। गाली वही होगी। गाली एक ही है। शत्रु देता है तो नहीं अखरती, मित्र देता है तो अखरती है; क्योंकि शत्रु से अपेक्षा ही है कि देगा और मित्र से अपेक्षा नहीं है कि देगा। कौन देता है, इससे अखरने का संबंध है।

अगर एक शराबी आपके पैर पर पैर रख दे, तो अखरता नहीं। आप समझते हैं कि बेहोश है। और एक होश से भरा हुआ आदमी आपके पैर पर पैर रख दे, तो अखर जाता है। तो कलह शुरू हो जाती है।

एक बच्चा आपका अपमान कर दे तो नहीं अखरता, लेकिन एक बूढ़ा आपका अपमान कर दे तो अखरता है; क्योंकि बच्चे को हम माफ कर सकते हैं, बूढ़े को माफ करना मुश्किल हो जाता है।

हमें क्या अखरता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिसने गाली दी, अपमान किया, उसका मूल्य कितना था। उस मूल्य पर सब निर्भर होता है।

दूसरे का मूल्य है, इसलिए अपमान अखरता है। दूसरे का मूल्य है, इसलिए सम्मान अच्छा लगता है। दूसरे का कोई भी मूल्य न रह जाए, तो व्यक्ति संन्यासी है।

तो दूसरा सम्मान करे तो ठीक, अपमान करे तो ठीक। यह दूसरे का अपना काम है; इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। मैंने दूसरे के ऊपर से अपना सारा मूल्यांकन अलग कर लिया है। दूसरा दूसरा है--और अगर गाली निकलती है, तो यह उसके भीतर की घटना है। इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। जैसे किसी वृक्ष में कांटा लगता है, यह वृक्ष की भीतरी घटना है। इससे मैं नाराज नहीं होता। या कि मैं नाराज होऊं कि बबूल में बहुत कांटे लगे हैं?

जब आप बबूल के पास से निकलते हैं, तो आप कभी भी यह नहीं सोचते कि मेरे लिए कांटे लगाए गए हैं। यह बबूल का अपना गुण-धर्म है। और गुलाब के पौधे में जब फूल खिलता है, तब भी सोचने का कोई कारण नहीं है कि फूल आपके लिए खिल रहा है। यह गुलाब का गुण-धर्म है।

महावीर कहते हैं, दूसरा क्या कर रहा है, यह उसकी अपनी भीतरी व्यवस्था की बात है। उसके जीवन से गाली निकल रही है, यह उसके भीतर लगा हुआ कांटा है। उसके भीतर से प्रशंसा आ रही है, यह उसके भीतर खिला फूल है। आप क्यों परेशान हैं? आपसे इसका कोई भी लेना-देना नहीं है। यह संयोग की बात है कि आप बबूल के कांटे के पास से निकले। यह संयोग की बात है कि गुलाब का फूल खिल रहा था और आप रास्ते से निकले।

इसे थोड़ा समझें, क्योंकि जिस आदमी ने आपको गाली दी है, अगर आप न भी मिलते, तो मनस्विद कहते हैं, वह गाली देता; किसी और को देता। गाली देने से वह नहीं बच सकता था। गाली उसके भीतर इकट्ठी

हो रही थी। अपमान उसके भीतर भारी हो रहा था आप कारण नहीं है। आप सिर्फ निमित्त हैं। निमित्त कोई भी-एक्स, वाइ, जेड हो सकता था।

यह आप अपने अनुभव से देखें तो आपको ख्याल में आ जाएगा। कभी आप बैठे हैं, क्रोध उबल रहा है। और छोटा बच्चा अपने खिलौने से खेल रहा है। तो उसको ही आप डांट-डपट शुरू कर देते हैं। बच्चे में कोई कारण नहीं है। वह कल भी खेलता था, परसों भी खेलता था। वह रोज ही अपने खिलौने से ऐसे ही खेलता था। लेकिन परसों आपके भीतर क्रोध नहीं उबल रहा था, तो आप चुपचाप मुस्कुराते रहे। उसका शोरगुल भी आनंददायी मालूम हो रहा था। वह नाच रहा था तो आप प्रसन्न थे। घर में जीवन मालूम हो रहा था। आज वह नाच रहा है, कूद रहा है, तो आपको क्रोध उठ रहा है। क्रोध उठ रहा है--उसका नाचना, कूदना निमित्त बन रहा है। वह बच्चा आपके क्रोध का भागीदार हो जाएगा।

और छोटे बच्चों को कभी समझ में नहीं आता कि क्यों उन पर क्रोध किया गया। क्योंकि उनको अभी दूसरे से इतना संबंध नहीं बना है। वे अभी अपने में जीते हैं। इसलिए छोटे बच्चे हैरान हो जाते हैं कि अकारण, कोई भी कारण नहीं था, और मां-बाप उन पर टूट पड़ते हैं।

अगर बच्चा न मिले तो आप अपनी पत्नी पर टूट पड़ेंगे। अगर कुछ भी न हो तो यह भी हो सकता है कि आप निर्जीव वस्तुओं पर टूट पड़ें--कि आप अखबार को जोर से गाली देकर पटक दें; कि आप रेडियो को गुस्से से बंद कर दें कि उसकी नाँब ही टूट जाए।

जिस दिन स्त्रियां नाराज होती हैं, उस दिन घर में बर्तन ज्यादा टूटते हैं। ऐसे महंगा नहीं है यह--पति का सिर टूटे, इससे एक प्लेट का टूट जाना बेहतर है। यह सस्ता ही है। स्त्री भी भरोसा नहीं कर सकती कि उसने प्लेट छोड़ दी। वह भी सोचती है कि छूट गई। लेकिन कभी नहीं छूटी थी। कल नहीं छूटी; परसों नहीं छूटी। और रोज अनुपात अलग-अलग होता है।

अगर आप अपने क्रोध का हिसाब रखें, और बर्तनों के टूटने का हिसाब रखें, आप जल्दी ही पूरा आंकड़ा निकाल लेंगे। जिस दिन क्रोध ज्यादा होता है, उस दिन हाथ छोड़ना चाहते हैं--अनकांशस। कोई जान कर भी पत्नी नहीं छोड़ रही है। क्योंकि नुकसान तो घर का ही हो रहा है। लेकिन छूटता है।

मनस्विद कहते हैं कि ड्राइवरों के द्वारा जो मोटर दुर्घटनाएं होती हैं, उनमें पचास प्रतिशत का कारण क्रोध है, कारें नहीं। क्रोध में आदमी एक्सीलरेटर को जोर से दबाए चला जाता है। वह दबाने में रस लेता है, किसी को भी दबाने में; एक्सीलरेटर को ही दबाता है। क्रोधी आदमी तेज रफ्तार से कार दौड़ा देता है। क्रोधी आदमी कोई भी चीज पर त्वरा से जाना चाहता है, गति से जाना चाहता है।

तो रास्तों पर जो दुर्घटनाएं हो रही हैं, वे पचास प्रतिशत तो आपके क्रोध के कारण हो रही हैं। और थोड़ी घटनाएं नहीं हो रहीं हैं। दूसरे महायुद्ध में एक वर्ष में जितने लोग मरे, उससे दो गुने लोग कारों की दुर्घटनाओं से हर वर्ष मर रहे हैं। महायुद्ध वगैरह का कोई मूल्य नहीं है। कितना ही बड़ा महायुद्ध करो, जितने लोग सड़कों पर लोगों को मार रहे हैं, उतना आप युद्ध करके भी नहीं मार सकते।

ये कौन लोग हैं? और आप कभी ख्याल करना कि जब आप क्रोध में होते हैं, तो आप जोर से हार्न बजाते हैं; जोर से एक्सीलरेटर दबाते हैं; कार को भगाते हैं। सामने वाला आदमी लगता है कि बिल्कुल धीमी रफ्तार से जा रहा है--हर एक हट जाए, सारी दुनिया रास्ता दे दे, तो आप अपनी पूरी गति में आ जाएं।

यह जो क्रोध है, इसका एक्सीलरेटर से कोई भी संबंध नहीं है। अगर एक्सीलरेटर को भी होश होता आप जैसा, तो वह भी कहता कि क्यों मुझे परेशान कर रहे हो? वह भी दुखी होता।

महावीर यह कह रहे हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जीता है अपनी भीतरी नियति से। उससे जो भी बाहर आता है, वह उसके भीतर से आ रहा है। उसका संबंध उससे है, उसका संबंध आपसे नहीं है।

आप शांत रह सकते हैं। अगर यह बात समझ में आ जाए तो शांत रहने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ेगा। अगर शांत रहने का आप प्रयास करेंगे, तो वह प्रयास भी अशांति है। किसी ने गाली दी और आपने अपने को समझाया, और अपने को शांत रखा, और अपने को दबाया, तो अशांत तो आप हो चुके। अब इतना ही होगा कि यह जो आदमी गाली दे रहा है, इसने जो क्रोध पैदा किया है, वह इस पर नहीं निकलेगा, किसी और पर निकलेगा। इतना ही होगा। कहीं जाकर यह बह जाएगा। और जब तक नहीं बहेगा, तब तक आप भारी रहेंगे।

आखिर क्रोध का मजा क्या है? क्रोध करके आपको क्या सुख मिलता है? इतना सुख मिलता है कि क्रोध से जो भारीपन और ज्वार और बुखार आ जाता है, जो फीवरिशनेस छा जाती है, वह निकल जाती है।

जापान में... और जापान मनुष्य के मन के संबंध में काफी कुशल है... हर फैक्ट्री में, बड़ी फैक्ट्रियों में पिछले महायुद्ध के बाद मैनेजर और मालिक के पुतले रख दिए गए हैं कि जब भी किसी कर्मचारी को गुस्सा आए, वह जाकर पिटाई कर सके। एक कमरा है हर बड़ी फैक्ट्री में, जहां मालिक, मैनेजर और बड़े अधिकारियों के पुतले रखे हुए हैं। गुस्सा तो आता ही है, तो आदमी चले जाते हैं, उठा कर डंडा उनकी पिटाई कर देते हैं, गाली-गलौज बक देते हैं--हलके होकर मुस्कराते हुए बाहर आ जाते हैं।

लोग पुतले जलाते हैं, जब नाराज हो जाते हैं। और कभी-कभी हजारों साल लग जाते हैं... होली पर हम होलिका को अभी तक जलाए चले जा रहे हैं। पुरानी नाराजगी है; हजारों साल पुरानी है, लेकिन अभी भी राहत मिलती है। होली पर जितने लोग हलके होते हैं, उतने किसी अवसर पर नहीं होते। होली राहत का अवसर है। क्रोध, गाली-गलौज, जो भी निकालना हो, वह आप सब निकाल लेते हैं। एक दिन के लिए सब छूट होती है। कोई नीति नहीं होती; कोई धर्म नहीं होता। कोई महावीर, बुद्ध बीच में बाधा नहीं देते। उस एक दिन के लिए आप बिल्कुल मुक्त हैं। जो आप वर्षों से कहना चाहते थे, करना चाहते थे, वह कह सकते हैं, कर सकते हैं।

बहुत समझदार लोगों ने होली खोजी होगी, जो मनुष्य के मन को समझते थे कि उसमें कोई नाली भी चाहिए, जिससे गंदा पानी बाहर निकल जाए। अभी इस समय के बहुत से बुद्धिमान समझाते हैं कि यह बात ठीक नहीं है, होली पर सद्व्यवहार करो; गाली-गलौज मत बको; भजन-कीर्तन करो। ये नासमझ हैं। इन्हें कुछ पता नहीं है आदमी का।

होली आदमी को हलका करती है। और जब तक आदमी जैसा है, तब तक होली जैसे त्यौहार की जरूरत रहेगी। आदमी जिस दिन बुद्ध, महावीर जैसा हो जाएगा, उस दिन होली गिर जाएगी। उसके पहले होली गिराना खतरनाक है। सच तो यह है कि जैसा आदमी है, उसे देख कर ऐसा लगता है, हर महीने होली होनी चाहिए। हर महीने एक दिन आपके सब नीति नियम के बंधन अलग हो जाने चाहिए ताकि जो-जो भर गया है, जो-जो घाव में मवाद पैदा हो गई है, वह आप निकाल सकें।

एक बड़े मजे की बात है कि होली के दिन अगर कोई आपको गाली दे, तो आप यह नहीं समझते कि आपको गाली दे रहा है। आप समझते हैं कि अपनी गाली निकाल रहा है। लेकिन गैर-होली के दिन कोई आपको गाली दे, तो आपको गाली देता है। महावीर कहते हैं, उस दिन भी वह अपनी ही गाली निकालता है। होली या गैर-होली से फर्क नहीं पड़ता।

हम जो भी करते हैं, वह हमारे भीतर से आता है। दूसरा केवल निमित्त है, खूंटी की तरह है--उस पर हम टांग देते हैं। अगर यह बोध हो जाए तो जीवन में एक शांति आएगी, जो प्रयास से नहीं आती; जीवन में एक शांति आएगी, जो मुर्दा नहीं होगी; दमन की नहीं होगी--जीवंत होगी।

मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा था कि उसने अपनी पत्नी के सिर पर कुल्हाड़ी मार दी, पत्नी मर गई। और मजिस्ट्रेट ने पूछा कि नसरुद्दीन, और तुम बार-बार कहे जाते हो कि यू आर ए मैन ऑफ पीस। तुम कहे चले जाते हो कि तुम बड़े शांतिवादी हो, और बड़े शांति को प्रेम करने वाले हो।

नसरुद्दीन ने कहा कि निश्चित, मैं शांतिवादी हूं। और जब कुल्हाड़ी मेरी पत्नी के सिर पर पड़ी, तो जैसी शांति मेरे घर में थी, वैसी उससे पहले कभी नहीं देखी थी। जो शांति का क्षण मैंने देखा है उस वक्त, वैसा पहले कभी नहीं देखा था।

आप अपने चारों तरफ लोगों को मार कर भी शांति अनुभव कर सकते हैं; जो आप सब कर रहे हैं। जब आप पत्नी को दबा देते हैं, और बेटे को दबा देते हैं, जब आप अपने नौकर को गाली दे देते हैं और दबा देते हैं, और जब आप बर्तन तोड़ देते हैं--तब आप क्या वैज्ञानिकों ने खोजा कि पृथ्वी केंद्र नहीं है जगत का, तो मनुष्य के अहंकार को बड़ी चोट पहुंची। और आदमी ने बड़ी जिद की कि यह हो ही नहीं सकता। सूरज, चांद, तारे--सब पृथ्वी के चारों तरफ घूम रहे हैं। पृथ्वी बीच में है; सारे जगत का केंद्र है।

लेकिन जब वैज्ञानिकों ने सिद्ध ही कर दिया कि पृथ्वी केन्द्र नहीं है, और बजाय इसके कि सूरज पृथ्वी के चारों तरफ घूम रहा है, ज्यादा सत्य यही है कि पृथ्वी सूरज के चारों तरफ घूम रही है--मनुष्य के अहंकार को भयंकर चोट पहुंची; क्योंकि जिस पृथ्वी पर मनुष्य रह रहा है, सभी कुछ उसके चारों तरफ घूमना चाहिए।

बर्नार्ड शॉ कहता था कि वैज्ञानिक जरूर कहीं भूल कर रहे हैं। यह हो ही नहीं सकता कि पृथ्वी--और सूरज का चक्कर काटे! सूरज ही पृथ्वी का चक्कर काट रहा है। और एक दफा वह बोल रहा था तो किसी ने खड़े होकर कहा कि बर्नार्ड शॉ, आप भी हृद बेहूदी बात कर रहे हैं! अब यह सिद्ध हो चुका है। अब इसको कहने की कोई जरूरत नहीं है। और आपके पास क्या प्रमाण है कि सूरज पृथ्वी का चक्कर काट रहा है?

बर्नार्ड शॉ ने कहा: प्रमाण की क्या जरूरत है? जिस पृथ्वी पर बर्नार्ड शा रहता है, सूरज उसका चक्कर काटेगा ही। और अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं है।

वह व्यंग कर रहा था। बर्नार्ड शॉ ने गहरे व्यंग किए हैं।

आदमी अपने को हमेशा केंद्र में मान कर चलता है।

भिषु वह है, जिसने अपने को केंद्र मानना छोड़ दिया। जिसने तोड़ दी यह धारणा कि मैं केंद्र हूं दुनिया का; सारी दुनिया मेरी ही प्रशंसा में या क्रोध में, या उपेक्षा में, या प्रेम में, या घृणा में, चल रही है। सारी दुनिया मेरी तरफ देख कर चल रही है; और जो कुछ भी किया जा रहा है, वह मेरे लिए किया जा रहा है। जिसने यह धारणा छोड़ दी, वही व्यक्ति अपमान सह सकेगा। और उसे सहना नहीं पड़ेगा। सहना शब्द ठीक नहीं है, अपमान उसे छुएगा ही नहीं। वैसा व्यक्ति अस्पर्शित रह जाएगा। सहने का तो मतलब यह है कि छू गया, फिर सम्हाल लिया अपने को।

नहीं, सम्हालने की भी जरूरत नहीं है--छुएगा ही नहीं। अपमान दूर ही गिर जाएगा। अपमान उस व्यक्ति के पास तक नहीं पहुंच पाएगा। अपमान पहुंच सकता है, इसीलिए कि हम दूसरे से मान की अपेक्षा करते थे। न मान की अपेक्षा है, न अपमान की अपेक्षा है; न प्रशंसा की, न निंदा की। दूसरे का हम मूल्य नहीं मानते। दूसरा कुछ भी करे, वह उसकी अपनी अंतर-धारा और कर्मों की गति है; और मैं जो कर रहा हूं, वह मेरी अंतर-धारा और मेरे कर्मों की गति है।

लेकिन यह बात अगर ठीक से ख्याल में आ जाए तो इसका एक दूसरा महत परिणाम होगा। और वह यह होगा कि जब मैं गाली देना चाहूंगा, तब भी मैं समझूंगा कि मैं गाली देना चाह रहा हूं, दूसरा कसूर नहीं कर रहा है। और जब मैं प्रशंसा करना चाहूंगा, तब भी मैं समझूंगा कि मेरे भीतर प्रशंसा के गीत उठ रहे हैं, दूसरा सिर्फ निमित्त है। और तब दोष देना और प्रशंसा देना भी गिर जाएगा। और तब व्यक्ति अपनी जीवन-धारा के सीधे संपर्क में आ जाता है। तब वह दूसरों के साथ उलझ कर व्यर्थ भटकता नहीं। और तब जो भी करना है, जो भी नहीं करना है, उसका अंतिम निर्णायक मैं हो जाता हूं। फिर जिससे मुझे सुख मिलता है, वह बढ़ता जाता है अपने आप। जिससे मुझे दुख मिलता है, वह छूटता जाता है। क्योंकि मेरे अतिरिक्त अब मेरा कोई मालिक न रहा। अब मैं ही नियंता हूं।

तो जब महावीर कह रहे हैं कि जो कान में कांटे के समान चुभने वाले आक्रोश-वचनों को, प्रहारों को, अयोग्य उपालंभों को (तिरस्कार या अपमान)को शांतिपूर्वक सह लेता है... ।

इसमें एक उन्होंने बड़ी अच्छी शर्त लगाई है--"अयोग्य उपालंभों को।" कोई गाली दे रहा है, और वह गाली गलत है। लेकिन कभी गाली सही भी हो सकती है। कोई आपको चोर कह रहा है, और आप चोर हैं। तो महावीर कहते हैं, अयोग्य उपालंभों को शांति से सह लेना, लेकिन योग्य-उपालंभों को सोचना, सिर्फ सह मत लेना। क्योंकि दूसरा एक मौका दे रहा है, जहां आप अपनी धारा की परख कर सकते हैं। कोई आपको चोर कह रहा है।

लेकिन हम बड़ी अजीब हालत में हैं। अगर हमें ऐसी गालियां दे रहा हो जो हम पर लागू नहीं होती, तब तो हम उन्हें नजरअंदाज भी कर सकते हैं, लेकिन अगर कोई हमारे संबंध में सत्य ही कह रहा है, तो फिर नजरअंदाज करना बहुत मुश्किल हो जाता है। तो फिर उसे छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है।

सत्य जितनी चोट करता है, उतना असत्य नहीं करता। इसलिए जब आपसे कोई कहे, "चोर", और आप बहुत बेचैन हो जाएं तो उसका मतलब है, बेचैनी खबर दे रही है कि आप चोर हैं। अगर आप चोर न होते तो इतनी बेचैनी नहीं हो सकती थी; आप हंस भी सकते थे। आप कहते, कहीं कुछ भूल हो गई होगी। जब कोई बिल्कुल छू देता है घाव को, तभी आप बेचैन होते हैं। अगर कोई घाव को नहीं छूता तो बेचैन नहीं होते।

मैंने सुना है कि अब्राहिम लिंकन ने अपने एक विरोधी नेता के संबंध में आलोचना की। आलोचना कठोर थी। उस विरोधी नेता ने पत्र लिखा लिंकन को, और कहा कि आप मेरे संबंध में असत्य बोलना बंद कर दें, अन्यथा उचित न होगा। लिंकन ने जवाब दिया कि तुम फिर से सोच लो। अगर तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे संबंध में असत्य बोलना बंद कर दूँ, तो मुझे तुम्हारे संबंध में सत्य बोलना शुरू करना पड़ेगा। और दोनों में तुम चुन लो कि क्या तुम पसंद करोगे।

वह आदमी भी घबड़ा गया कि बात तो ठीक ही थी। उसने खबर भेजी कि आप असत्य ही बोले चले जाएं। सत्य तो और खतरनाक है।

बर्नार्ड शॉ ने अपने संस्मरणों में कहा है कि किसी के संबंध में असत्य कहने से ज्यादा चोट नहीं पहुंचाई जा सकती। ठीक-ठीक सत्य कह देने से जैसा घाव हो जाता है, वैसा असत्य कहने से कभी नहीं होता। असत्य बड़ा मधुर है। असत्य का लेप बड़ा प्रीतिकर है। सत्य की चोट भारी है।

तो जब आप ज्यादा उद्विग्न होते हों किसी के अपमान से; बेचैन और विक्षिप्त हो जाते हों, तब शांत बैठ कर सोचना, उसने जरूर सत्य को छू दिया है। तब भी उस पर विचार करने की जरूरत नहीं है, अपने भीतर ही अपने सत्य को परखने की कोशिश करना। और, अगर ऐसा सत्य आपके भीतर है, जो घाव की तरह है, जो छूने से पीड़ा देता है, तो दूसरे को दोष मत देना कि दूसरा छूकर आपको पीड़ा पहुंचाता है। अपने घावों को भरना, अपने घावों को मिटाना और उस जगह आ जाना, जहां कोई कुछ भी कहे, पर आपको स्पर्श न कर पाए।

जीवन एक अंतर-सृजन है; एक इनर क्रिएटिविटी है। लेकिन हम अवसर खो देते हैं। अगर कोई गाली देता है तो हमारा ध्यान गाली देने वाले पर अटक जाता है। हम अपने को तो छोड़ ही देते हैं, भूल ही जाते हैं। वह क्या कह रहा है, वह कौन है; गलत है! और गाली देने वाला गलत होगा ही। हम उसकी भूल-चूक खोजने में लग जाते हैं। उस गाली के क्षण में हमें अपने भीतर खोजना चाहिए। अगर गाली असत्य है, तब तो कोई कारण ही नहीं है। अगर गाली सत्य है तो हमें अंतर-निरीक्षण और अंतर्चिंतन, और अंतर्मथन में लग जाना चाहिए। और मैं क्या करूँ कि मैं भीतर से बदल जाऊँ, वही हमारा ध्यान होना चाहिए।

जरूरी नहीं है कि आप बदल जाएं तो लोग गालियां देना बंद कर देंगे। जरूरी नहीं है कि आपके सब घाव मिट जाएं तो लोग आपका अपमान न करेंगे। संभावना तो यह है कि जितना ही आप कम प्रभावित होंगे, उतने ही लोग ज्यादा चोट करेंगे। क्योंकि लोग मजा लेते हैं आपको प्रभावित करने में। अगर कोई गाली दे और आप

प्रभावित न हों, तो और वजनदार गाली वह आपको देगा। क्योंकि आपने उसको बड़ा दुखी कर दिया। उसने गाली दी और आप प्रभावित न हुए, इसका मतलब आप उसके नियंत्रण के बाहर हो गए। आप पर अब उसका कोई वश नहीं है, कोई ताकत नहीं है। आप ताकतवर हो गए; वह कमजोर पड़ गया--वह और वजनी गाली खोजेगा।

जब कोई व्यक्ति सचमुच ही साधु होना शुरू होता है, तो सारा समाज उसे सब तरफ से कसता है और सब तरफ से कोशिश करता है कि छोड़ो यह साधुता, आ जाओ उसी जगह जहां हम सब खड़े हैं। उस वक्त परेशानियां बढ़ जाती हैं। महावीर ने कहा है, साधु के परिश्रय, उसके कष्ट गहन हो जाते हैं। क्योंकि जिन-जिन के नियंत्रण के वह बाहर होने लगता है, वे-वे पूरी चेष्टा करते हैं नियंत्रण करने की।

यहूदियों में एक पुरानी कहावत है कि जब भी कोई तीर्थंकर या पैगंबर पैदा होता है, कोई प्रॉफेट, तो पहले लोग उसको गालियां देते हैं; निंदा करते हैं। अगर वह निंदा और गालियों के पार हो जाए, जो कि बड़ा मुश्किल हो जाता है...। अगर वह भी निंदा और गालियों में पड़ जाए, तो लोग उसे भूल जाते हैं, क्योंकि वह उन्हीं जैसा हो गया। लेकिन अगर वह उनके पार चला जाए, तो फिर लोग उपेक्षा करते हैं।

ध्यान रहे, गाली से भी ज्यादा पीड़ा उपेक्षा में है। यह आपको पता नहीं है। उपेक्षा, इनडिफरेंस लोग ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसे वह है ही नहीं। उसके पास से लोग ऐसे गुजर जाते हैं, जैसे उसे देखा ही नहीं।

आप ख्याल करें। अगर लोग आपकी उपेक्षा करें तो आप पसंद करेंगे कि लोग गाली दें, वही बेहतर है--कम से कम ध्यान तो देते हैं। इसीलिए लोग अपराध करने को उत्सुक हो जाते हैं। जो नेता नहीं बन सकते हैं, वे गुंडे बन जाते हैं। गुंडों और नेताओं में जरा भी फर्क नहीं है। गुण का कोई फर्क नहीं है, दिशाएं थोड़ी भिन्न हैं। अगर गुंडों को ठीक मौका मिले तो वे नेता बन जाएं, और नेताओं को ठीक मौका न मिले तो वे गुंडे बन जाएं।

गुंडे और नेता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। नेता भी, दूसरे लोग ध्यान दें, इस बीमारी से पीड़ित है। जितने ज्यादा लोग ध्यान दें, उतना ही उसका अहंकार तृप्त होता है। और गुंडा भी उसी बीमारी से पीड़ित है। लेकिन वह कोई रास्ता नहीं खोज पाता; और अगर कुछ न करे तो लोग उपेक्षा किए चले जाते हैं। तब फिर वह बुरा करना शुरू कर देता है। बुरे पर तो ध्यान देना ही पड़ेगा; उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

एक दफा भले की उपेक्षा संभव हो, बुरे की उपेक्षा संभव नहीं है। उस पर ध्यान देना ही पड़ेगा। अदालत, कोर्ट, मजिस्ट्रेट, पुलिस, अखबार--सब उसकी तरफ ध्यान देने को खड़े हो जाएंगे। वह तृप्त होता है। अपराधियों से पूछा गया है--तो वे तृप्त होते हैं, जब उनका नाम छपता है अखबारों में। लोग उनकी चर्चा करते हैं, तब वे तृप्त होते हैं। तब उन्हें लगता है कि मैं भी कुछ हूं।

उपेक्षा सबसे ज्यादा कठिन बात है।

यहूदी कहते हैं कि पहले निंदा होती है पैगंबर की। और जब निंदा से वह नहीं पीड़ित होता और पार निकल जाता है, तो उपेक्षा करना लोग शुरू कर देते हैं कि ठीक है, कुछ खास नहीं। कोई चिंता की जरूरत नहीं है। और जब वह उपेक्षा को भी पार कर जाता है, जो कि बड़ी कठिन साधना है, परिश्रय है, तब लोग श्रद्धा करना शुरू करते हैं। तो उन्होंने जिनकी निंदा की है और जिनकी उपेक्षा की है, लंबे अर्से में, वे उनकी श्रद्धा कर पाते हैं।

महावीर कहते हैं, जो इन सारी बाहर से घटने वाली घटनाओं को ऐसे सह लेता है, जैसे मेरा उनसे कोई संबंध नहीं है--शांतिपूर्वक, वही भिक्षु है।

"जो भयानक अट्टहास और प्रचंड गर्जना वाले स्थानों में भी निर्भय रहता है...।"

अभय पर महावीर का बहुत जोर है--फिरलेसनेस पर। क्योंकि महावीर कहते हैं, जो अभय को नहीं साधेगा वह मृत्यु से भयभीत रहेगा। सारा भय मृत्यु का भय है। भयमात्र मूल में मृत्यु से जुड़ा है। जो भी चीज

हमें मिटाती मालूम पड़ती है, उससे हम भयभीत हो जाते हैं। जो भी चीज हमें संभालती मालूम पड़ती है, उससे हम चिपट जाते हैं। उसे हम आग्रहपूर्वक अपने पास रखने लगते हैं।

महावीर कहते हैं कि अभय का जन्म अत्यंत आवश्यक है। तो कुछ भी स्थिति हो--तूफान हो कि गर्जना हो, अंधकार हो कि एकांत हो--जहां मौत किसी भी क्षण घट सकती है, वहां भी जो शांत रहे, वहां भी जो मौन रहे, अडिग रहे, अकंप रहे। क्यों?

यह अकंप रहने का इशारा इसलिए है कि अगर कोई ऐसे क्षण में अकंप रहे, तो उसका इंद्रियों से संबंध छूट जाता है और आत्मा से संबंध जुड़ जाता है। अगर कंपित हो जाए, तो आत्मा से संबंध छूट जाता है और इंद्रियों से संबंध जुड़ जाता है।

इस सूत्र को ठीक से समझ लें। अकंपता आत्मा का स्वभाव है। इसलिए जब भी आप अकंप होते हैं, आत्मा से जुड़ जाते हैं। और कंपना इंद्रियों का स्वभाव है। इसलिए जितना आप कंपते हैं, उतने ही इंद्रियों से जुड़ जाते हैं। जितना भयभीत और कंपित व्यक्ति, उतना इंद्रियों से जुड़ा हुआ होगा। जितना अकंप और निर्भय व्यक्ति, उतना आत्मा से जुड़ने लगेगा।

अकंपता, कृष्ण ने कहा है, ऐसी है, जैसे कि घर में हवा का एक झोंका भी न आता हो जब कोई दिया जलता है--और उसकी लौ अकंप होती है। वैसी ही आत्मा है--अकंप।

तो मौका खोजना चाहिए, जहां चारों तरफ भय हो, और आप भीतर शांत और अकंप रह सकें। कठिन होगा। शुरू-शुरू में भय आपको कंपा जाएगा। लेकिन उस कंपन को भी देखते रहें।

आप बैठे हैं निर्जन एकांत में और सिंह की गर्जना हो रही है--छाती धकधका जाएगी; खून तेजी से दौड़ेगा; श्वास ठहर जाएगी। लेकिन यह सब आप शांति से देखते रहें। आप सिंह की फिकर न करें। आपके चारों तरफ जो हो रहा है, चेतना के दीये के चारों तरफ, उसको आप शांति से देखते रहें। और एक ही ख्याल रखें कि हृदय कितनी ही जोर से धड़के--धड़के, श्वास कितनी ही तेजी से चले--चले, रोएं खड़े हो जाएं--हो जाएं, पसीना बहने लगे--बहने लगे, लेकिन भीतर में मौन और शांत बना रहूंगा; भीतर में नहीं हिलूंगा।

इस न हिलने को जो पकड़ता जाता है, धीरे-धीरे इंद्रियों से उसकी चेतना धारा मुड़ती है और आत्मा के अनुभव में प्रविष्ट हो जाती है। ऐसी घड़ी आने लगे, तो ही मृत्यु में आप बिना कंपे रह सकेंगे, अन्यथा असंभव है। अन्यथा असंभव है।

मैंने सुना है, एक झेन फकीर मरने के करीब था। तो उसने अपने शिष्यों से पूछा कि सुनो, मैं मरने के करीब हूं, मौत करीब है, और यह सूरज के अस्त होते-होते मैं शरीर छोड़ दूंगा; जरा मैं तुमसे एक सलाह चाहता हूं। कोई रास्ता बताओ मरने का कुछ ऐसा अनूठा, जैसे पहले कभी कोई न मरा हो। मरना तो है, लेकिन थोड़ा मरने का मजा ले लें।

शिष्य तो छाती पीट कर रोने लगे। उनकी समझ में भी न आया कि गुरु पागल तो नहीं हो गया है मरने के पहले। एक शिष्य ने कहा कि आप खड़े हो जाएं, क्योंकि खड़े होकर कभी किसी का मरना नहीं सुना। गुरु ने कहा कि नहीं, मेरे गुरु ने कहा है कि एक दफा एक फकीर खड़े-खड़े मरा था। तो यह नहीं जंचेगा; यह हो चुका।

किसी दूसरे शिष्य ने सिर्फ मजाक में कहा कि आप शीर्षासन लगा कर खड़े हो जाएं। ऐसा कभी नहीं हुआ होगा कि कोई सिर के बल खड़ा हुआ हो और मर गया हो।

फकीर ने कहा, यह बात जंचती है। वह हंसा और शीर्षासन लगा कर खड़ा हो गया। उसके पास के ही विहार में उसकी बड़ी बहन भी भिक्षुणी थी। उस तक खबर पहुंची कि उसका भाई मरने के करीब है और वह शीर्षासन लगा कर खड़ा हो गया है। वह आई और उसने जोर से उसे धक्का दिया, और कहा कि बंद करो यह शरारत, बूढ़े हो गए और शरारत नहीं छोड़ी! सीधे मरो, जैसा मरा जाता है।

तो फकीर हंसा और सीधा लेट गया, और मर गया--जैसे मौत एक खेल है।

उसने कहा: सीधे मरो! और फकीर हंसा भी। उसने कहा: मेरी बड़ी बहन आ गई, अब इसके आगे मेरा न चलेगा। तो अब मैं लेट जाता हूं और मर जाता हूं।

मौत को जो ऐसे हलके से ले सकते होंगे, ये वे ही लोग हैं जिन्होंने इसके पहले अकंपता साधी हो। इसलिए महावीर कहते हैं, अभय... !

"सुख-दुख दोनों को जो समभावपूर्वक सहन करता है, वही भिक्षु है।"

यह जरा समझ लेने जैसा है। सुख-दुख दोनों को समभावपूर्वक सहन करता हो--जैसे सुख भी एक दुख है, दुख तो दुख है ही। आपने कभी ठीक से सुख को देखा हो तो आपको पता चल जाए कि वह भी दुख है।

सुख और दुख दोनों उत्तेजित स्थितियां हैं। आप सुख में भी उत्तेजित हो जाते हैं। कभी-कभी कुछ लोग सुख में मर तक जाते हैं। दुख में भी आप उत्तेजित हो जाते हैं। सुख और दुख दोनों का स्वभाव ऐसा है कि आप कंपित हो जाते हैं। सब डांवाडोल हो जाता है, भीतर तूफान हो जाता है।

एक तूफान को आप अच्छा कहते हैं; क्योंकि आप मानते हैं कि वह सुख है। एक तूफान को बुरा कहते हैं; क्योंकि धारणा है कि वह दुख है। यह सिर्फ धारणाओं की बात है, व्याख्या की बात है। लेकिन दोनों स्थितियों में अगर हम वैज्ञानिक से पूछें कि शरीर की जांच करे, तो वह कहेगा कि शरीर दोनों स्थितियों में अस्त-व्यस्त है; उत्तेजित है।

कभी-कभी सुख ऐसा भी हो सकता है कि हृदय की धड़कन ही बंद हो जाए, आप खत्म ही हो जाएं--इतना बड़ा सुख हो सकता है। और दुख तो हम जानते हैं। लेकिन सुख को हमने ठीक से कभी नहीं परखा है कि उससे भी हमारा स्वास्थ्य खो जाता है; शांति नष्ट हो जाती है; भीतर की समता डिग जाती है; तराजू चेतना का डांवाडोल हो जाता है। महावीर कहते हैं, आनंद है अनुत्तेजित चित्त की अवस्था।

सुख भी उत्तेजना है, दुख भी उत्तेजना है--और सुख और दुख इसलिए हमारी व्याख्याएं हैं। वही चीज दुख हो सकती है और वही चीज सुख भी हो सकती है, जरा परिस्थिति बदलने की जरूरत है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन और उसके साथी पंडित रामशरण दास दोनों एक साझेदारी में व्यापार कर रहे थे। और उन्होंने बहुत से कोट पतलून खरीद लिए--बड़े सस्ते मिल रहे थे। लेकिन, फिर बेचना मुश्किल हो गया; सारा पैसा उलझ गया। अब वे बड़े घबड़ाए। नया-नया धंधा किया था और फंस गए। अब दोनों चिंतित और परेशान थे, और सोच रहे थे, क्या करें--मुफ्त बांट दें या क्या करें इनका। क्योंकि इनको रखने का किराया और बढ़ता जाता था। कोई खरीददार नहीं था। और सोमवार की संध्या की बात है, एक खरीददार आ गया। और वह इतना आंदोलित हो गया उन सबको देख कर--पैट-पतलून को, जो बिक नहीं रहे थे कि उसने कहा, मैं सब खरीदता हूं, और मुंहमांगा दाम देता हूं जो तुम कहो; चुकता लाट खरीदता हूं! लेकिन एक शर्त है कि तीन दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी--आज सोमवार है; मंगल, बुद्ध, बृहस्पति--बृहस्पति की शाम पांच बजे तक। मुझे अपने परिवार से पूछना पड़ेगा, क्योंकि सभी का साझेदारी का धंधा है। तो मैं तार करूंगा। मेरे परिवार के लोग बाहर हैं। तीन दिन बाद, ठीक पांच बजे तक अगर मेरा इनकार का तार आ जाए, तो सौदा कैसिल; अगर इनकार का तार न आए, तो सौदा पक्का। जो तुम्हारा दाम है, हिसाब तैयार रखो, मैं दो-चार दिन में सब सामान उठवा लूंगा।

फांसी लग गई। अब वे दोनों बैठे हैं, और एक-एक दिन गुजरने लगा। तीसरा दिन भी आ गया। अब चार बज गए।

अभी तक कुछ नहीं हुआ, तो उनकी श्वास अटकी है कि कहीं ऐसा हो कि पांच के पहले टेलीग्राम वाला कैन्सिलेशन का तार लिए द्वार पर दस्तक दे दे।

फिर साढ़े चार बज गए। फिर पौने पांच! अब तो जीना बिल्कुल मुश्किल हुआ जा रहा है। और ठीक पौने पांच बजे तार वाले ने दस्तक दी। उसने कहा: टेलीग्राम!

दोनों की श्वास वहीं रुक गई। अब कोई से उठते न बने। आखिर ताकत लगा कर मुल्ला नसरुद्दीन उठा; बाहर गया। पैर चलते नहीं, हाथ कंप रहे हैं; पसीना छूट रहा है। पंडित जी तो आंख बंद किए वहीं राम-स्मरण करते रहे।

मुल्ला ने जाकर तार खोला, हाथ कंप रहे हैं, और जोर से खुशी से चीखा, पंडित रामशरण दास! योर फादर हैज डाइड--ए गुड न्यूज।

बाप का मरना भी किसी क्षण में गुड न्यूज हो सकता है, एक सुखद समाचार--कि पिता चल बसे!

दोनों प्रसन्न हो गए। वह जो सामान बिकना है।

क्या दुख है और क्या सुख, निर्भर करता है परिस्थिति पर, व्याख्या पर। जो सुख है, वह दुख जैसा मालूम हो सकता है। जो दुख है, वह सुख जैसा मालूम हो सकता है। किसी से प्रेम है; और गले लगे खड़े हैं! कितनी देर सुख रहेगा यह गले लगना? अगर वह छोड़ने से इनकार ही कर दे, तो चार-पांच मिनट में आप अपनी गर्दन हिलाकर बाहर होना चाहेंगे। लेकिन हाथ जंजीरों की तरह जकड़ जाएं, तो जो बड़ा सुख मालूम हो रहा था--कितना फूल की तरह कोमल था, वह पत्थर की तरह दुख हो जाएगा। यही दुख हो गया है परिवार--परिवार में कि जो आलिंगन था किसी क्षण, वह अब जंजीर हो गई है। अब उससे छूटने का उपाय नहीं है।

महावीर कहते हैं, सुख भी दुख का ही एक रूप है। और यह बड़ी वैज्ञानिक बात है। जैसे हम कहते हैं कि गर्मी और सर्दी दो चीजें नहीं हैं। हमको दो चीजें मालूम पड़ती हैं। वैज्ञानिक कहता है, वे एक ही तापमान की दो डिग्रियां हैं। एक ही चीज हैं, गर्मी और सर्दी। अंधेरा और प्रकाश एक ही चीज हैं; एक ही चीज की दो डिग्रियां हैं। जो आपको गर्मी मालूम पड़ती है, वह सर्दी मालूम पड़ सकती है; जो सर्दी मालूम है, वह गर्मी मालूम पड़ सकती है। यह निर्भर करता है कि किस हालत में आप हैं। अगर आप एअरकंडीशंड कमरे से बाहर आए, तो आपको गर्मी मालूम पड़ती है। जो वहां खड़ा है, उसको गर्मी का कोई पता नहीं है। आप धूप से आ रहे हैं एअरकंडीशंड कमरे में, तो आपको बड़ा शीतल मालूम पड़ता है। जो वहां बैठा है, उसे कुछ पता नहीं कि शीतलता है। सापेक्ष है। सुख-दुख भी सापेक्ष घटनाएं हैं भीतर।

महावीर कहते हैं, जो दोनों को समभाव से सहन कर लेता है; जो न उत्तेजित होता दुख में और न उत्तेजित होता सुख में; जो दोनों का समभावी साक्षी हो जाता है, वही भिक्षु है।

"जो हाथ, पांव, वाणी और इंद्रियों का यथार्थ संयम रखता है, जो सदा अध्यात्म में रत रहता है, जो अपने आपको भलीभांति समाधिस्थ करता है, जो सूत्रार्थ को पूरा जाननेवाला है, वही भिक्षु है।"

दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए।

निश्चित ही जैसे-जैसे साक्षीभाव बढ़ता है जीवन में, संयम बढ़ता है, तब हाथ भी अकारण नहीं हिलता, तब आंख भी अकारण नहीं उठती, तब जीवन का रंच-रंच विवेकपूर्ण हो जाता है। तब आप वही देखते हैं, जो देखना चाहते हैं। तब आप वही करते हैं, जो करना चाहते हैं।

बुद्ध के पास एक आदमी बैठा है सामने और बैठ कर अपने पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध बोलना बंद कर देते हैं और कहते हैं, मित्र, यह अंगूठा क्यों हिलता है? उस आदमी का अंगूठा, जैसे ही बुद्ध यह कहते हैं, रुक जाता है। रोकने की जरूरत नहीं पड़ती, होश आ जाता है; उसे खुद ही ख्याल आ जाता है। वह कहता है, छोड़िए भी, आप भी कहां की बात में पड़ गए। यह तो यों ही हिलता था, मुझे कुछ पता ही नहीं था।

बुद्ध ने कहा: तेरा अंगूठा, और तुझे पता न हो और हिलता रहे, तो तू बड़ा खतरनाक आदमी है। तू किसी की गर्दन भी काट सकता है, तेरा हाथ हिल जाए। तेरा अंगूठा और तुझे पता नहीं है, और हिलता है, तो तू मालिक नहीं है। होश सम्हाल।

तो महावीर कहते हैं: हाथ, पांव, वाणी, इंद्रियां जिसकी सभी संयमित हो गई हैं, जिसके विवेक ने सभी चीजों की मालिकियत आत्मा को दे दी है; और अब कोई भी इंद्रिय अपने ढंग से, अपने आप कहीं नहीं जा सकती; आपकी बिना मर्जी के रोआं भी नहीं हिल सकता।

जो सदा अध्यात्म में रत है; जिसका जीवन, जिसकी चेतना, जिसकी ऊर्जा प्रतिपल एक ही बात की खोज कर रही है कि "मैं कौन हूं?" जो हर अनुभव से अनुभोक्ता को पकड़ने की चेष्टा में लगा है। जो हर घड़ी बाहर से भीतर की तरफ मुड़ रहा है। जो हर अवसर को बदल लेता है और चेष्टा करता है कि हर अवसर में मुझे मेरा स्मरण सजग हो जाए। जो हर स्थिति में आत्म-स्मृति को जगाने की कोशिश में लगा है। जो भीतर के दीये को उकसाता रहता है, ताकि वहां ज्योति मद्धिम न हो जाए, और बाहर का कितना भी अंधेरा हो, भीतर के प्रकाश को आच्छादित न कर ले। ऐसे व्यक्ति को महावीर भिक्षु कहते हैं।

"जो अपने को सब भांति समाधिस्थ करता है, सूत्रार्थ को जानने वाला है, वही भिक्षु है।"

समाधि शब्द बड़ा अदभुत है। समाधान शब्द से हम परिचित हैं। समाधि समाधान का अंतिम क्षण है। जो व्यक्ति सब भांति अपना समाधान खोज लिया है; जिसके जीवन में अब कोई समस्या नहीं है, कोई प्रश्न नहीं है; जो हर तरह से समाधिस्थ है।

यह थोड़ा सोचने जैसा है। हम सब पूछते चले जाते हैं। जितना हम पूछते हैं, उतने उत्तर मिल जाते हैं। लेकिन हर उत्तर और नये प्रश्न खड़े कर देता है। हजारों साल से आदमी पूछ रहा है। किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। हर प्रश्न कुछ उत्तर लाता है, लेकिन फिर उत्तर से नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं।

कोई पूछता है, किसने बनाया जगत? कोई कहता है, ईश्वर ने बनाया। अब फिर सवाल ईश्वर का हो जाता है कि ईश्वर कौन है? क्यों बनाया? और इतने दिन तक क्या करता रहा, जब तक नहीं बनाया? और ऐसा जगत किसलिए बनाया, जहां दुख ही दुख है?

हजार प्रश्न खड़े होते हैं एक उत्तर से। दर्शनशास्त्र, फिलासाफी--प्रश्न, उत्तर और उत्तर से हजार प्रश्न--इस तरह बढ़ता जाता है वृक्षा।

धर्म समाधि की खोज है, उत्तर की नहीं। तो धर्म की यात्रा बिल्कुल अलग है। प्रश्न का उत्तर नहीं खोजना है, बल्कि प्रश्न गिर जाए, ऐसी चित्त की अवस्था खोजनी है। एक प्रश्न उठता है, किसने जगत बनाया, अब इसके उत्तर की खोज में आप निकल जाएं तो अनंत जीवन आप चलते रहेंगे।

लेकिन धार्मिक व्यक्ति, जिसको महावीर भिक्षु कह रहे हैं--संन्यासी, वह यह नहीं पूछता कि किसने जगत बनाया? वह कहता है, यह निष्प्रयोजन है। किसी ने बनाया हो, न बनाया हो--मुझे क्या लेना-देना है! असली सवाल यह नहीं है कि जगत किसने बनाया। असली सवाल यह है कि मैं ऐसी अवस्था में कैसे पहुंच जाऊं, जहां कोई प्रश्न न हो; जहां मेरा चित्त निस्तरंग हो जाए; जहां कोई समस्या न हो। यह रास्ता बिल्कुल अलग है। अगर प्रश्न छोड़ने हैं तो ध्यान करना पड़ेगा। अगर प्रश्नों के उत्तर खोजने हैं तो विचार करना पड़ेगा। विचार से उत्तर मिलेंगे; उत्तरों से नये प्रश्न मिलेंगे, और जाल फैलता चला जाएगा।

अगर प्रश्न छोड़ने हैं तो ध्यान करना पड़ेगा। एक प्रश्न उठता है, उसके उत्तर की खोज में मत जाएं; उस प्रश्न को देखते हुए खड़े रहें; और तब तक खड़े रहें भीतर, जब तक कि वह प्रश्न तिरोहित न हो जाए; आंख से ओझल न हो जाए; परदे से हट न जाए। हर चीज हट जाती है, आप थोड़ी हिम्मत से लगे रहें।

सोचें, आपको पता होगा कि आपके पिता का चेहरा कैसा है। जब तक आपने गौर नहीं किया, तब तक पता है। आंख बंद करें, हलकी सी छवि आएगी। फिर गौर से देखें, आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे--पिता का चेहरा अस्त-व्यस्त होने लगा। अपने ही पिता का चेहरा, और पकड़ में ठीक से नहीं आता। और गौर से देखें... रेखाएं घूमिल हो गईं, चेहरा हटने लगा। और गौर से देखें... देखते चले जाएं। थोड़ी देर में आप पाएंगे, परदा खाली हो गया, वहां पिता का कोई चेहरा नहीं है।

चित्त से किसी भी चीज को विसर्जित करना हो--गौर से देखना कला है। टु बी अटेंटिव--पूरा ध्यान उसी पर हो जाए, वह नष्ट हो जाएगी।

ध्यान अग्नि है। वह किसी भी विचार को जला देती है। आप करें और देखें। किसी भी विचार को सोचें मत, सिर्फ देखें। खड़े हो जाएं और देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें--थोड़ी देर में आप पाएंगे, वह तिरोहित हो गया; वहां खाली जगह रह गई। वह खाली जगह समाधान है। और जब कोई व्यक्ति ऐसी कला से चलते, चलते, चलते उस जगह पहुंच जाता है, जहां प्रश्न उठते ही नहीं, खाली जगह रह जाती है, वह समाधिस्थ है।

इस समाधि में आत्मा का अनुभव होता है, क्योंकि इस समाधि में मन नहीं रह जाता। मन है विचार, जब विचार खो गए; मन है प्रश्न, जब प्रश्न खो गए--तब कोई मन नहीं बचता--अ-मन, नो-माइंड।

कबीर ने कहा है: अ-मनी स्थिति आ गई, अब अमृत झरता ही रहता है। जब मन नहीं रह जाता, अ-मनी स्थिति आ जाती है--उसको महावीर कहते हैं, "समाधि।"

इस समाधि को उपलब्ध हो जाना जीवन का परम लक्ष्य है। इस समाधि को उपलब्ध होकर ही आपके भीतर परमात्मा का फूल खिल जाता है। और जब तक वह फूल न खिल जाए, तब तक जीवन से दुख, उत्तेजना, बेचैनी, तकलीफ, चिंता, संताप के मिटने का कोई उपाय नहीं है।

उस फूल के खिलने के लिए ही यह सारा आयोजन है।

तो महावीर कहते हैं: वही है भिक्षु, जो शांत है इतना कि बाहर से उसका कोई संबंध न रहा। जो अभय है इतना कि बाहर से कोई भी चीज उसे कंपित नहीं कर सकती। और जो समाधिस्थ है; जिसके भीतर भी प्रश्न उठने बंद हो गए, वही भिक्षु है।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें और फिर जाएं!

भिक्षु कौन? (भिक्षु-सूत्र: 3)

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे, अन्नायउच्छं पुलनिप्पुलाए।
 कयविक्रयसन्निहिओ विरए, सव्वसंगावगए य जे स भिक्खू।।
 अलोल भिक्खू न रसेसु गिद्धे,
 उच्छं चरे जीविय नाभिकंखे।
 इड्ढिं च सक्कारण-पूयणं च,
 चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू।।

जो अपने संयम-साधक उपकरणों तक में भी मूर्च्छा (आसक्ति) नहीं रखता, जो लालची नहीं है, जो अज्ञात परिवारों के यहां से भिक्षा मांगता है, जो संयम-पथ में बाधक होने वाले दोषों से दूर रहता है, जो खरीदने-बेचने और संग्रह करने के गृहस्थोचित धंधों के फेर में नहीं पड़ता, जो सब प्रकार से निःसंग रहता है, वही भिक्षु है।

जो मुनि अलोलुप है, जो रसों में अगृद्ध है, जो अज्ञात कुल की भिक्षा करता है, जो जीवन की चिन्ता नहीं करता, जो ऋद्धि, सत्कार और पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है, जो स्थितात्मा तथा निस्पृही है, वही भिक्षु है।

साधारण जीवन एक यांत्रिक प्रवाह है। जैसे हम उसे नहीं जीते, बल्कि जीवन ही जैसे हमें जीता है। वासनाओं का, इच्छाओं का एक धक्का है जो हमें चलाए रखता है। हम चलते हैं, ऐसा कहना उचित नहीं; क्योंकि चलने में न तो हमारा कोई अपना निर्णय है, न चलने में हमारा कोई संकल्प है, न कोई दिशा है, न कोई गंतव्य है। जैसे पानी की धार में कोई तिनका बहा जाता हो, ऐसे ही जीवन की धार में हम बहे जाते हैं। अहंकार के कारण ही हम सोच लेते हैं कि हम अपने जीवन के नियंता हैं। थोड़ा भी निष्पक्ष होकर कोई देखेगा, तो जीवन को यंत्रवत पाएगा।

पैदा हो जाते हैं; भूख है, प्यास है, कामवासना जगती है, महत्वाकांक्षा पैदा होती है, फिर चलते रहते हैं, दौड़ते रहते हैं और एक दिन गिर कर समाप्त हो जाते हैं। यह सारी दौड़ अंधेरे में, मूर्च्छा में है। हम उस शराबी की तरह हैं, जो चल रहा है, लेकिन जिसे पता नहीं कि कहां जा रहा है; और जिसे यह भी पता नहीं कि कहां से आ रहा है; और जिसे यह भी पता नहीं कि क्यों चलने की जरूरत है। नशा है और चले जा रहे हैं।

और ऐसा प्रत्येक आदमी का जीवन एक वर्तुल की तरह है। और सभी आदमियों के जीवन, जो यंत्रवत हैं, करीब-करीब एक से ही घूमते हैं और एक से ही समाप्त हो जाते हैं। जैसे प्रकृति में ऋतुएं आती हैं, और फिर घूम कर वे ही ऋतुएं आ जाती हैं—फिर वर्षा आती है, फिर सर्दी आती है, फिर गर्मी आती है, फिर वर्षा आ जाती है—ऐसे ही हम सबके जीवन में भी बचपन है, जवानी है, बुढ़ापा है; फिर बचपन है, फिर जवानी है, फिर बुढ़ापा है। सब पुराना वर्तुल एक चक्के की भांति घूमता चला जाता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अचानक अपने विद्यार्थी जीवन की स्मृति से भर गया। भरने का कारण था, जहां से गुजर रहा था, वहीं वह विद्यापीठ था, वह छात्रावास था, जहां विद्यार्थी जीवन में नसरुद्दीन रहा था। प्रबल कामना मन को पकड़ गई कि जाकर देखूं उस कक्ष को, उस कमरे को, जहां मैं वर्षों रहा हूं—कैसा है

वह कक्ष अब? वैसा ही है या सब बदल गया है? जाकर उसने द्वार पर दस्तक दी। कोई दूसरा विद्यार्थी वहां रह रहा था। भीतर कुछ हलचल हुई। विद्यार्थी ने दरवाजा खोला। विद्यार्थी थोड़ा घबड़ाया हुआ था।

नसरुद्दीन ने कहा: क्षमा करना, अकारण ही राह से गुजरता था, और याद आ गया कि अपने छात्रावास के कमरे को एक दफा हो आऊं वर्षों बाद।

कमरे के भीतर गया, देख कर उसने कहा कि दि सेम फर्नीचर--वही पुरानी कुर्सी है, वही मेज है। और तब वह गया आलमारी के पास। उसने आलमारी खोली और वहां देखा उसने, एक अर्धनग्न युवती छिपी है। तो नसरुद्दीन ने कहा: दि सेम ओल्ड रोमांस--वही पुराना प्रेम भी चल रहा है।

लेकिन जैसे ही उसने दरवाजा खोला आलमारी का, वह युवक-विद्यार्थी, जो कमरे में रहता था, घबड़ा गया। और उसने हकलाते हुए कहा कि सर, शी इ.ज माई सिस्टर। तो नसरुद्दीन ने कहा: दि सेम ओल्ड लाइ--वही पुराना झूठ। सब वही चल रहा है।

हर आदमी के जीवन में करीब-करीब वही दुहर रहा है, जो हर दूसरे आदमी के जीवन में दुहरा है। लेकिन एक सुविधा है, क्योंकि हमें दूसरे जीवन का कोई पता नहीं।

हमसे पहले कितने लोग पृथ्वी पर हुए हैं! असंख्यात! वैज्ञानिक कहते हैं, जिस जगह पर आप बैठे हैं, कम से कम वहां दस आदमियों की लाशें दब चुकी हैं। पूरी पृथ्वी लाशों से भरी है। सारी जमीन की मिट्टी किसी न किसी आदमी के शरीर का हिस्सा रह चुकी है। लेकिन हमें उनके जीवन का कोई पता नहीं। इसलिए जब आप पहली दफा प्रेम में पड़ते हैं, तो आप सोचते हैं, ऐसा प्रेम पृथ्वी पर कभी नहीं हुआ।

ऐसा ही प्रेम हुआ है। ऐसा ही अनुभव भी हुआ है दूसरे लोगों को, जब वे प्रेम में पड़े हैं कि बस, ऐसा कभी नहीं हुआ। जब आप सफल होते हैं तो शायद सोचते हैं, ऐसी सफलता की चमक जमीन पर कभी नहीं घटी। या जब आप असफल होते हैं, और उदासी से भर जाते हैं, तो सोचते हैं, शायद ऐसा दुख का पहाड़ कभी नहीं टूटा।

यही सदा होता रहा है। हर आदमी के जीवन में मौसम की तरह चीजें वैसी ही घूमती रही हैं। लेकिन हमें दूसरे आदमियों का कोई पता नहीं है। इसलिए हर आदमी को लगता है, सब नया हो रहा है।

कुछ भी नया नहीं हो रहा है। बहुत पुराना सूत्र है कि "सूर्य के नीचे कुछ भी नया नहीं।" मगर प्रत्येक को ऐसा ही लगता है कि सब कुछ नया है।

यह भ्रान्ति है। और जब तक यह भ्रान्ति न टूट जाए, तब तक हम मुक्त होने की चेष्टा में संलग्न नहीं होते। मुक्त होने की चेष्टा पैदा ही तब होती है, जब हमें ऐसा लगता है कि हम एक जाल में फंसे हैं, जैसे कि गाड़ी के चाक से हमें बांध दिया गया हो और गाड़ी घूमती चली जाती हो, और हम चाक के साथ घूमते चले जाते हैं।

इसलिए पूरब के मनीषियों ने जीवन की इस लंबी यात्रा को "आवागमन" कहा है; "संसार" कहा है। संसार का अर्थ होता है: चाक--दि व्हील। जिसमें वे ही आरे वापस लौट आते हैं, और यह चक्र घूमता चला जाता है।

यह जो चक्र है, जब तक आपको लग रहा है कि आप कुछ नया जी रहे हैं, तब तक इससे छूटने का आपको ख्याल भी पैदा नहीं होगा। जैसे ही आपकी यह प्रतीति सघन हो जाए कि नया कुछ भी नहीं है, वही-वही दोहर रहा है, ऊब पैदा हो जाएगी। और वही ऊब अध्यात्म की तरफ पहला झुकाव बनती है। इसलिए बुद्ध और महावीर तो निरंतर अपने शिष्यों को कहते थे कि तुम याद करो अपने पिछले जन्मों को। और उन्होंने रास्ते खोजे थे ध्यान के जिनसे पिछले जन्मों की स्मृति सजग हो जाती है।

उसे महावीर "जाति-स्मरण" कहते हैं। खोजो अपने पिछले जन्मों को, और जब तुम्हारी स्मृति जगेगी, तब तुम बहुत हैरान हो जाओगे कि तुम जो आज कर रहे हो, ये तुम लाख बार कर चुके हो। यही लोभ, यही काम, यही आकांक्षा, यही दुख, यही दुख तुम इतनी बार कर चुके हो कि अगर याद भी आ जाए, तो मन विरक्त हो जाए। पुनरुक्ति इतनी हो चुकी है कि अब कहीं कोई रस नहीं है।

लेकिन प्रकृति एक खेल खेलती है कि हर जन्म के बाद हमारा पिछले जीवन का पूरा का पूरा स्मृति का संग्रह बन्द हो जाता है। हर नये जन्म के साथ पुरानी स्मृतियों के संग्रह का द्वार बंद हो जाता है। तब हमें सब फिर नया मालूम होने लगता है। फिर हम अब स से शुरू करते हैं।

मेरे एक मित्र हैं; डाक्टर हैं। एक दुर्घटना में ट्रेन से वे गिर पड़े; भीड़ बहुत थी और दरवाजे से लटके हुए खड़े थे। हाथ छूट गया और गिर गये। गिरने से सिर पर भयानक चोट लगी। ऊपर से तो कुछ चोट पता नहीं चलती थी, लेकिन भीतर से सारी स्मृतियां भूल गईं। खुद का नाम भी याद न रहा। अपनी मां और अपने पिता को भी नहीं पहचान सकते थे। सारी जानकारी, मेडिकल साइंस का सारा अध्ययन--सब तिरोहित हो गया। फिर से--अब स से सब शुरू करना पड़ा। तीन साल में इस हालत में हो पाए कि ठीक से बातचीत कर सकें, भाषा समझ सकें, अखबार पढ़ सकें। जब गिरे तब उनकी उम्र कोई पैंतीस-छत्तीस वर्ष थी। वे पैंतीस वर्ष तिरोहित हो गए। वे कहां खो गए!

हमारा सारा का सारा बोध तो स्मृति पर निर्भर है। वह जो हमारी स्मृति है, अगर वह खो जाए, तो सब अतीत खो जाता है। तीन साल के बाद धीरे-धीरे मस्तिष्क स्वस्थ हुआ और पुरानी स्मृतियां फिर जगनी शुरू हो गईं।

जो लोग जीवन के संबंध में गहन खोज किए हैं, उनका ख्याल है कि मृत्यु इतना बड़ा शाक है, इतना बड़ा धक्का है कि ट्रेन से गिरने से इतना बड़ा धक्का नहीं लग सकता। उस धक्के में पुरानी स्मृतियों से हमारा संबंध छूट जाता है। फिर जन्म भी बहुत बड़ा धक्का है। दोनों ही बड़े ट्रॉमैटिक, बड़े धक्के हैं।

जब एक आदमी मरता है तो सारा स्मृतियों का जगत अस्त-व्यस्त हो जाता है; सब संबंध विच्छिन्न हो जाते हैं; सब तार खो जाते हैं। फिर जब जन्मता है, तब फिर एक धक्का लगता है। ये दो धक्कों के कारण अतीत से हम बन्द हो जाते हैं। और हर बार हमें लगता है कि सब नया हो रहा है।

यह जो नये का भाव है, जब तक न टूट जाए, तब तक जीवन से मुक्ति की आकांक्षा पैदा नहीं होती। महावीर कहते हैं कि पीछे लौट कर स्मरण करो। और जरा सी भी स्मृति आनी शुरू हो जाए तो जीवन से रस खोना शुरू हो जाता है। इस जीवन से, जिसे हम अभी जीवन समझते हैं; और एक नया रस, और एक नया संगीत, और एक नई दिशा खुलने लगती है, जिसे महावीर ने "मोक्ष" कहा है।

संन्यस्त व्यक्ति का अर्थ है, जिसे इस जीवन में ऊब पैदा हो गई। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। इस जीवन में सुख अनुभव हो, तो आदमी संसारी रहेगा; और इस जीवन में दुख अनुभव हो, तो भी आदमी संसारी रहेगा। सुख और दुख दोनों में ऊब पैदा हो जाए, बोर्डम पैदा हो जाए, तो आदमी संन्यस्त होता है।

बहुत से लोग जीवन के दुख के कारण जीवन को छोड़ कर संन्यास ले लेते हैं। उनका संन्यास वास्तविक नहीं है; क्योंकि दुख की प्रतीति ही इसी बात की खबर है कि उनमें सुख की आकांक्षा अभी मौजूद है। हमें दुख मिलता इसलिए है कि हम सुख चाहते हैं। जो दुख के कारण जगत को छोड़ता है, वह सुख के लिए जगत को छोड़ रहा है। और जो सुख के लिए छोड़ रहा है, वह छोड़ ही नहीं रहा है। क्योंकि सुख की आकांक्षा ही संसार है।

बहुत से लोग दुख में संसार छोड़ते हैं--शायद सौ में नित्यानबे संन्यासी दुख में ही छोड़ते हैं। उनका संन्यास वास्तविक नहीं हो पाता।

"ऊब"--इस शब्द को बहुत याद रख लें; बोर्डम। जो आदमी जगत को इतना व्यर्थ पाता है कि उसके सुख भी उबाते हैं और दुख भी उबाते हैं; दोनों बराबर हो जाते हैं, और दोनों में विरसता आती है--उस व्यक्ति के जीवन की यात्रा नई होती है।

इस संबंध में यह भी ख्याल में ले लेना जरूरी है कि आदमी अकेला प्राणी है जगत में, जो ऊब सकता है। कोई दूसरा पशु ऊब नहीं सकता। किसी भैंस को, किसी घोड़े को, किसी सिंह को कभी भी बोर्डम की हालत में नहीं देखा गया है कि वे ऊबे हुए हों। भैंस रोज अपना वही चारा चबाती रहती है, जुगाली करती रहती है,

लेकिन ऊबती नहीं। ऊब बिल्कुल मनुष्य के जीवन की घटना है। ऊब बड़ी महत्वपूर्ण घटना है; बहुत आध्यात्मिक घटना है।

कोई पशु ऊबता नहीं। आप किसी पशु की आंखों में ऊब नहीं देख सकते। पशु जैसे हैं, तृप्त हैं--जहां हैं, तृप्त हैं--जो कुछ भी उन्हें जीवन में उपलब्ध हुआ है, जहां उन्होंने जीवन को पाया है, उससे रत्ती भर आगे जाने, ऊपर उठने का कोई सवाल नहीं है। वे अपने वर्तुल को पूरा करके समाप्त हो जाते हैं। उन्हें अपनी यांत्रिकता का कोई पता नहीं चलता। और जीवन व्यर्थ है, इसका उन्हें कोई होश नहीं आता।

मनुष्य अकेला प्राणी है, जो ऊब सकता है। और ध्यान रखें, मनुष्य में जितनी प्रतिभा ज्यादा होगी, उतनी ज्यादा ऊब आएगी। मनुष्य में भी जो बहुत कम विकसित लोग हैं, उनमें ऊब नहीं दिखाई पड़ेगी। ऊब आएगी प्रतिभा के विकास के साथ। जितना विचारशील व्यक्ति होगा, जीवन से उतना ऊबेगा, जल्दी ऊबेगा।

बर्ट्रेड रसेल ने कहा है कि मैं आदिवासियों को देखता हूं, उनकी प्रसन्नता देख कर ईर्ष्या पैदा होती है। लेकिन रसेल को ख्याल नहीं है कि आदिवासी इतने प्रसन्न क्यों हैं। आदिवासियों की प्रसन्नता का मौलिक कारण तो यही है कि वे पशुओं के बहुत निकट हैं। अभी भी ऊब पैदा नहीं हुई। अभी भी जीवन से दूर खड़े होकर जीवन के पुरानेपन को, पुनरुक्ति को देखने की सामर्थ्य उनमें नहीं आई। अभी वे ठीक प्रकृति में डूबे हुए जी रहे हैं।

रसेल को ऊब मालूम होती है। अगर रसेल पूरब के मुल्कों में पैदा हुआ होता, या पूरुब जीवन-दृष्टि का उसे कुछ ख्याल होता, तो यह ऊब उसके लिए आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत हो सकती थी। लेकिन दुर्भाग्य से वह पश्चिम में था। रसेल के जीवन में महावीर और बुद्ध जैसी घटना घट सकती थी--उतनी ही प्रतिभा थी। लेकिन पूरे पश्चिम की हवा, पूरे पश्चिम का तर्कजाल ऊब तो पैदा कर देता है, लेकिन इस ऊब के ऊपर उठने की कोई कला पश्चिम विकसित नहीं कर पाता है; इस ऊब को भुलाने की भर कला विकसित कर पा रहा है।

इसलिए पश्चिम मनोरंजन के साधन खोजता चला जाता है। मनोरंजन के साधन इस बात की खबर देते हैं कि आदमी ऊबा हुआ है। उसे किसी तरह भुलाओ। फिल्म है, संगीत है, नाटक है, नृत्य है, शराब है, भोज है, उत्सव है--उसे किसी तरह भुलाओ। उसकी ऊब प्रकट न हो पाए।

तो पश्चिम मनोरंजन के साधन खोज रहा है; उसी अवस्था में है, जिस अवस्था में महावीर के वक्त भारत था; उसी तरह संपन्न है; उसी तरह स्वर्ण शिखर पर खड़ा है। लेकिन पूरब ने ऊब की स्थिति में अध्यात्म खोजा, और पश्चिम ऊब की स्थिति में मनोरंजन खोज रहा है। स्थिति एक ही है।

अगर मनोरंजन खोजते हैं, तो आप ऊब से वापस नीचे गिर जाते हैं। मनोरंजन का अर्थ है--कुछ नया खोज लिया, कुछ नये में रस आ गया और इसलिए भूल गए कि जिंदगी एक पुनरुक्ति है। इसलिए आप एक ही फिल्म दुबारा नहीं देख सकते। तीन बार तो बहुत मुश्किल है। चौथी बार तो दंड मालूम पड़ेगा। पांचवीं बार तो आप बगावत कर देंगे। ... क्यों? जिंदगी तो आप रोज वही-वही देख लेते हैं, लेकिन फिल्म आप दोबारा क्यों नहीं देख सकते?

फिल्म का प्रयोजन ही खत्म हो जाता है दोबारा देखने से। क्योंकि फिल्म है ही नये का अनुभव देने की चेष्टा, ताकि थोड़ी देर के लिए भूल जाए कि जिंदगी एक पुरानी बकवास है। जिंदगी की ऊब को तोड़ने के लिए ही तो मनोरंजन है। अगर मनोरंजन भी ऊब पैदा करे, पुनरुक्त हो, तो कठिनाई हो जाएगी।

इसलिए फैशन रोज बदलता है। और जितना समाज सचेतन होने लगता है, उतना जल्दी बदलने लगता है। जितना समाज पुराना होता है--प्रकृति के करीब होता है, पशुओं के निकट होता है, उतने फैशन जल्दी नहीं बदलते। लेकिन जैसे-जैसे समाज सजग, सचेत होता है, फैशन रोज बदलते हैं। हर साल कार का माडल बदल जाता है--ऊब पैदा न हो।

पश्चिम में वस्तुओं को बदलने के साथ-साथ व्यक्तियों को बदलने की भी प्रवृत्ति गहरी हो गई है। वह भी ऊब का ही परिणाम है। हर साल पत्नी भी बदल लेना चाहिए। नये माँडल उपलब्ध हो जाते हैं। पुराने माँडल के साथ जीना सिर्फ पुरानी आदतों की वजह से चल रहा है।

मैंने सुना है, एक फिल्म अभिनेत्री ने अपना सत्रहवां तलाक दिया। और जब उसने अठारहवीं शादी की, तो शादी करने के बाद उसे पता चला कि यह आदमी एक दफा पहले भी उसका पति रह चुका है।

जिंदगी छोटी है, और अठारह विवाह, और सबकी याददाश्त रखना कठिन है, और जिंदगी इतनी जोर से भागती हुई है। तो व्यक्ति भी बदलो, भोजन बदलो, कपड़े बदलो, फिल्म बदलो--सब कुछ बदलते रहो ताकि ऊब का पता न चले। लेकिन कितना ही बदलो, ऊब जिंदगी के भीतर छिपी है। क्योंकि जिंदगी पुनरुक्ति है। और कितना ही फिल्म को बदलो, कहानी तो वही रहती है। कोई कहानी में फर्क नहीं आता।

कोई भी फिल्म रामायण से आगे नहीं जा पाती; जा नहीं सकती। वही द्रायंगल--वही राम, रावण, सीता। वही द्रायंगल है। कहानी के थोड़े डिटेल्स हम बदल लेते हैं, लेकिन वही त्रिकोण चलता रहता है; दो प्रेमी हैं; एक प्रेयसी है। रामायण से आगे फिल्म को ले जाना मुश्किल मालूम पड़ता है। वही कथा है--लेकिन कथा के नाम बदल जाते हैं। थोड़े से विस्तार की बातें बदल जाती हैं, लेकिन मौलिक बात वही चलती चली जाती है।

क्या करिएगा! जब जिंदगी ही पुरानी पड़ जाती है, तो कहानी कितनी देर नई रह सकती है, जो जिंदगी से ही पैदा होती है।

पश्चिम और पूरब का भेद यहां है। दोनों ऊब की अवस्था में पहुंच गए। जब पूरब ऊब की अवस्था में पहुंचा, तो उसने सोचा कि इस ऊब के पार कैसे जाया जाए? इस जीवन से कैसे मुक्त हों? उससे संन्यास का जन्म हुआ। उससे भिक्षु पैदा हुए, जिन्होंने जीवन से अपने को ऊपर उठा लिया।

पश्चिम में भी ऊब की अवस्था आ गई। इस ऊब को कैसे भूला जाए? तो पश्चिम में मनोरंजन के साधन पैदा हो रहे हैं। और कुल चेष्टा इतनी रह गई है कि शराब, एल. ए. डी., मारिजुआना से किसी तरह अपने को भुला कर हम जिंदगी गुजार लें। इसलिए आज पश्चिम की सरकारें, विचारशील नैतिक लोग, पुरोहित, पंडित--सब इस कोशिश में लगे हैं कि नई पीढ़ियां सम्मोहित करने वाले, बेहोश करने वाले रासायनिक तत्वों, एल. ए. डी., मारिजुआना से कैसे बचें।

उनकी कोशिश सफल नहीं हो सकती। उनकी कोशिश असंभव है कि सफल हो। जब तक कि पश्चिम में पूरब का संन्यास स्थापित न हो, उनकी कोशिश सफल नहीं हो सकती। क्योंकि जिंदगी दुख दे रही है; दुख ही नहीं दे रही है, जिंदगी ऊब दे रही है। उस ऊब को या तो भुलाओ, या ऊब के पार चले जाओ।

ऊब के पार जाने के सूत्र, महावीर, भिक्षु कौन है, इस संदर्भ में कह रहे हैं। उनके सूत्र को हम समझें।

"जो अपने संयम-साधक उपकरणों तक में मूर्च्छा नहीं रखता, जो लालची नहीं है, जो अज्ञात परिवारों से भिक्षा मांगता है, जो संयम-पथ में बाधक होने वाले दोषों से दूर रहता है, जो खरीदने-बेचने और संग्रह करने के गृहस्थोचित धंधों के फेर में नहीं पड़ता, जो सब प्रकार से निःसंग है, वही भिक्षु है।"

मनुष्य की आसक्ति वस्तुओं के कारण नहीं होती, मनुष्य की आसक्ति अपनी ही बेहोश होने की वृत्ति के कारण होती है। आसक्ति बेहोश होने का एक ढंग है। जब भी आप किसी चीज में बहुत आसक्त हो जाते हैं, तब वह चीज आपको नशा देने लगती है। इसे आपने अनुभव भी किया होगा।

अगर आप किसी स्त्री के प्रेम में हैं, तो आपकी चाल बदल जाती है; आप नशे में चलने लगते हैं। कोई भी देख कर कह सकता है आपको कि अब आप प्रेम में पड़ गए हैं। आपके पैर ठीक जगह पर नहीं पड़ते। आपकी आंखें ठीक देखती नहीं मालूम पड़तीं। आपके कान ठीक सुनते मालूम नहीं पड़ते। जिस स्त्री को आप प्रेम करते हैं, अगर हजार लोगों की भीड़ हो, तो नौ सौ निन्यानबे आदमी आपको दिखाई ही नहीं पड़ते, वही स्त्री दिखाई पड़ती है। अगर वह स्त्री उठ जाए, तो पूरी सभा उठ गई; वहां अब कोई नहीं है। और आप इस तरह जीने लगते हैं कि जैसे अब इस स्त्री के बिना जीना असंभव है; या इस पुरुष के बिना जीना असंभव है।

एक नशा है। वह नशा आपको जिंदगी को भूलने में सुविधा देता है। यह नशा मनुष्यों के आपसी संबंधों में ही होता है, ऐसा नहीं है, वस्तुओं से भी हो सकता है। जो आदमी धन को प्रेम करता है, वह भी नशे में होता है।

जैसे-जैसे उसकी तिजोड़ी में संग्रह बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे उसकी चाल अनूठी होने लगती है; वैसे-वैसे उसका सीना फूलने लगता है; वैसे-वैसे वह जमीन पर नहीं होता, आकाश में उड़ने लगता है। जो आदमी राजनीति के नशे में है, पद के नशे में है, वह जैसे-जैसे पदों के करीब पहुंचने लगता है, उसकी हालत देखें, उसकी हालत बिल्कुल वही है, जो शराबी की हो सकती है।

सच तो यह है कि शराबी सबसे कमजोर नशेवाला आदमी है। असल में शराब को वही खोजता है, जो और कोई मजबूत नशा नहीं खोज पाता। जिन्दगी में बड़े नशे हैं। इसलिए यह हो सकता है कि नेता लोगों को समझा रहा है कि शराब मत पीयो, और उसे पता ही नहीं कि वह सिर्फ इसलिए नहीं पी रहा है कि उसे नेता होने की सुविधा है। और नेता होने में इतना मजा है, और इतनी बेहोशी है कि वह शराब का काम कर रही है।

आदमी, जैसी जिंदगी है, इस जिंदगी में कोई न कोई नशा खोजेगा। वह नशा कोई भी हो सकता है। इसलिए हमने तो इस देश में विद्या तक को व्यसन कहा है। वह भी नशा हो सकती है। वह भी अपने को भुलाने का उपाय हो सकती है। जिस किसी चीज में भी आत्मस्मृति खोती हो, वही नशा है। और जिससे आत्मस्मृति बढ़ती हो, वही नशे के पार जाना है।

और पृथ्वी पर हजारों साल से लोग समझा रहे हैं कि नशा छोड़ो। नशा छूटता नहीं, बढ़ता चला जाता है। ऐसा कोई युग नहीं हुआ, जब लोग नशा न कर रहे हों। नशे के उन्होंने बहाने अलग-अलग खोजे, लेकिन वेद से लेकर आज तक आदमी नशा करता ही रहा है। कभी यह सोमरस पीता है। और अल्डुअस हक्सले, पश्चिम का विचारशील अन्वेषक कहता है कि सोमरस, एल. ए. डी. जैसी ही चीज है। और वैज्ञानिक खोज में लगे हैं, तो वे कहते हैं, सोमरस का जो-जो वर्णन ऋग्वेद में दिया है, वह वर्णन ठीक एल. एस. डी. से मिलता-जुलता है। और हम जल्दी ही इस सदी के पूरे होते-होते एल. एस. डी. में और सुधार कर लेंगे, तो वह बिल्कुल सोमरस हो जाएगा, जिसको पीकर ऋषि-मुनि देवताओं से बात करने लगते थे; और जिसको पीकर वे परम आनंदित होकर नाचने लगते थे।

हिप्पी वही कर रहे हैं।

अल्डुअस हक्सले ने तो, बीसवीं सदी के बाद जब वैज्ञानिक आविष्कार और गहरे हो जाएंगे और एल. ए. डी. में परिष्कार हो जाएंगे, तो इक्कीसवीं सदी में जो एल. ए. डी. का परिष्कृत रूप होगा, उसको नाम ही "सोमा" दिया है--सोमरस के कारण। तो उसका नाम "सोमा" होगा।

आदमी सदा से ही नशे की तलाश करता रहा है; मूर्च्छित होने के उपाय खोजता रहा है। आदमी क्यों मूर्च्छित होना चाहता है, यह सोचना जरूरी है। होने के पीछे कारण हैं। आदमी अपने को, जैसा वह है, देखता है, तो बड़ी बैचेनी अनुभव करता है। जैसा आदमी है, अगर जागता है, तो बड़ी उदासी, ऊब पैदा होती है। आप जैसे हैं, अगर आपको पूरा-पूरा अपना दर्शन होने लगे, तो आप बहुत बैचेन हो जाएंगे, और घबड़ा जाएंगे। शायद आप आत्महत्या करना चाहेंगे। आप कहेंगे, इसमें क्या रखा है? मैं क्या कर रहा हूं? मेरे होने का क्या अर्थ है; क्या प्रयोजन है?

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने से बचता है। अपने से बचने का नाम नशा है। आप चाहे अपने मित्र के पास जाकर गपशप में अपने को भूल जाते हों, चाहे मंदिर में जाकर आप धर्म-प्रवचन सुन कर उसमें अपने को भूल जाते हों, चाहे होटल में बैठ कर नशा कर लेते हों--कुछ भी करते हों; जहां भी आप अपने को भूलने की कोशिश कर रहे हैं, वह कोशिश आपको धार्मिक बनने से रोक रही है।

तो महावीर कहते हैं कि भिक्षु वह है, जो उन उपकरणों तक में मूर्च्छा नहीं रखता, जिनके माध्यम से वह मुक्ति की तरफ जा रहा है। मोक्ष ले जानेवाले जो साधन हैं, उनमें भी जिसकी मूर्च्छा नहीं है--जो उनमें भी बेहोश नहीं होता--जो उनमें भी अपने को खोता नहीं।

लेकिन साधुओं को देखें। अगर साधु सुबह पांच बजे उठता है ब्रह्ममुहूर्त में और अपनी प्रार्थना करता है-- एक दिन न उठ पाए पांच बजे, तो बेचैन, परेशान हो जाता है। तो वह ब्रह्ममुहूर्त में उठना भी एक मूर्च्छित आदत हो गई। अगर एक दिन प्रार्थना न कर पाए तो बेचैनी हो जाती है। तो इस बेचैनी में और शराब पीनेवाले की बेचैनी में बुनियादी फर्क नहीं है। एक दिन शराब न मिले तो बेचैनी हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपनी सहेलियों को कह रही थी कि मेरा दुर्भाग्य कि शराबी से मेरा संबंध हो गया; शराबी से मैंने विवाह कर लिया। लेकिन सहेलियों ने कहा कि विवाह किए तो दो साल भी हो गए, लेकिन तुमने कभी शिकायत न की? उसने कहा कि दो साल वह रोज शराब पीकर आता था, तो पता ही नहीं चला; कल रात बिना पिए आ गया, तो पता चला कि यह आदमी शराबी है। क्योंकि रात भर वह बेचैन और परेशान रहा।

जिस चीज से भी आपका संबंध ऐसा बन जाए कि उसके बिना आप बेचैन होने लगें, तो आप समझना कि आपने शराब का संबंध निर्धारित कर लिया, निश्चित कर लिया। जिसके बिना भी आप अपने को मुश्किल में पाएं--वह चाहे ध्यान हो, प्रार्थना हो, पूजा हो, तो आप समझना कि आपने धार्मिक ढंग की शराब अपने आस-पास इकट्ठी कर ली।

महावीर कहते हैं, भिक्षु तो वह है, जो अपने साधनों में भी, उपकरणों में भी, जिनके सहारे वह जा रहा है परमगति की ओर, उनमें भी मूर्च्छित नहीं है।

यह तो गहरी बात है। इसका एक स्थूल रूप भी है। क्योंकि आखिर भिक्षु होगा, तो भी वस्त्र थोड़े से पहनेगा, भिक्षा पात्र रखेगा, कुछ थोड़ी सी साधन सामग्री उसके पास होगी। जीवन के निर्वाह के लिए इतना जरूरी होगा। इसमें भी मूर्च्छा पकड़ जाती है। वह जो दो वस्त्र पास में है, उनमें भी रस पकड़ जाता है। वह भी खो जाए तो दुख होगा, तो लगेगा लुट गए। उनको भी सम्हाल कर रखता है। उनको भी बचा कर रखता है कि कहीं चोरी न हो जाएं।

जापान का एक सम्राट रात को निकलता था अपनी राजधानी देखने कि क्या स्थिति है--वेश बदल कर। वह बड़ा हैरान हुआ। और सब तो ठीक था, जब भी वह जाता तो एक भिखारी को जागते हुए पाता एक वृक्ष के नीचे। आखिर उसकी उत्सुकता बढ़ गई। और एक दिन उसने पूछा कि रात भर तू जागता क्यों है? तो उस भिखारी ने कहा कि अगर सो जाऊं और कोई चोरी कर ले, तो? वृक्ष के नीचे बैठा हूं, कोई और तो सुरक्षा है नहीं, तो दिन में सो लेता हूं। क्योंकि दिन में तो सड़क चलती रहती है, लोग होते हैं; रात तो जगना ही पड़ता है।

सम्राट ने उसके आस-पास पड़े हुए चीथड़ों का ढेर देखा, दो-चार भिक्षा के टूटे-फूटे पात्र देखे, उनके बचाव के लिए वह रात भर जग रहा है।

भिखारी भी चिंतित है कि चोरी न हो जाए। साधु भी चिंतित है कि उसका कुछ सामान न खो जाए। तो उसकी गृहस्थी छोटी हो गई, सिकुड़ गई, लेकिन मिटी नहीं। उसके लालच का फैलाव कम हो गया, लेकिन मिटा नहीं।

और ध्यान रहे, लालच का फैलाव जितना कम हो जाए, लालच उतना ही ज्यादा नशा देता है; क्योंकि इंटेंसिटी बढ़ जाती है। यह जरा समझने जैसा है। जैसे कि सूरज की किरणें पड़ रही हैं, आग पैदा नहीं होती; लेकिन आप एक लेन्स से सूरज की किरणों को इकट्ठा कर लें एक कागज पर, सारी किरणें इकट्ठी हो जाएंगी, आग पैदा हो जाएगी। किरणें तो पड़ रही थीं, लेकिन बिखरी हुई थीं; इकट्ठी पड़ती हैं तो कागज जल उठता है, आग पैदा हो जाती है।

ध्यान रहे, साधारण गृहस्थ आदमी की वासना की किरणें तो बिखरी हुई हैं। साधु के पास तो ज्यादा सामान नहीं रह जाता, जिस पर वह अपनी वासना को फैला दे; बहुत थोड़ा रह जाता है, इसलिए बहुत इंटेंस, बड़ी तीव्रता से वासना इकट्ठी हो जाती है। और कई बार ऐसा होता है कि फैला हुआ गृहस्थ उतना गृहस्थ नहीं

होता, जितना सिकुड़ा हुआ साधु गृहस्थ हो जाता है; जकड़ जाता है। थोड़ी जगह वासना इकट्ठी होकर आग पैदा करने लगती है। इसीलिए मनुष्य का मन अनजाने ही, जैसे सहज वृत्ति से सत्य को जानता है।

अगर आप एक स्त्री को प्रेम करते हैं तो वह बरदाश्त नहीं करेगी कि आप किसी और स्त्री को प्रेम करें। यह सहज है। कोई चेष्टा नहीं है। लेकिन सहज ही दूसरी स्त्री के प्रति आपका जरा सा भी लगाव उसे कष्ट देगा। अगर आपकी पत्नी किसी दूसरे में जरा ज्यादा उत्सुकता लेती है, तो आपको कष्ट होना शुरू हो जाएगा।

कारण है। और कारण यह है कि जितनी वासना फैल जाती है, उसकी तीव्रता कम हो जाती है--तो जो आग पैदा हो सकती है वासना से, वह फिर पैदा नहीं होती।

इसलिए प्रेमी डरते हैं कि कहीं वासना ज्यादा लोगों पर न फैल जाए। तो सब तरफ से वासना की किरणें एक ही व्यक्ति पर इकट्ठी हों। इसलिए प्रेमी एक-दूसरे को मोनोपलाइज करते हैं; पजेस करते हैं, एक-दूसरे को बिल्कुल अपने पर रोक लेना चाहते हैं--जरा सी भी वासना कहीं न जाए ताकि वासना की तीव्रता और चोट आग पैदा कर सके।

इसलिए इतना भय प्रेमियों को लगा रहता है; और इतनी ईर्ष्या, और इतनी जलन, और इतना उपद्रव पकड़े रहता है।

इस सबके पीछे कोई बड़ी नैतिकता नहीं है। इस सबके पीछे कोई धर्म नहीं है और कोई समाज नहीं है। इस सबके पीछे मनुष्य का सहज अनुभव है कि वासना अगर बिखर जाए तो कुनकुनी हो जाती है; उसमें आग नहीं रह जाती। अगर वासना बहुत लोगों पर फैल जाए तो फिर उससे गहरे संबंध निर्मित नहीं हो सकते। फिर सतह पर ही मिलना हो पाता है।

साधु अपनी वासना को सिकोड़ लेता है सब तरफ से; घर छोड़ देता; पत्नी छोड़ देता; धन छोड़ देता; लेकिन तब उसकी वासना, जो उसके आस-पास रह जाता है, उस पर केंद्रित होने लगती है।

यह बड़े मजे की बात है कि बाप नहीं मिलेंगे ऐसे, जो अपने बेटे के प्रति इतने आसक्त हैं, जितने गुरु मिल जाएंगे, जो अपने शिष्य के प्रति इतने आसक्त हैं। गुरु जितना बेचैन रहता है कि कहीं शिष्य और कहीं न चला जाए, किसी और को गुरु न बना ले, कहीं और न भटक जाए--उतना बाप भी चिंतित नहीं रहता; उतना बाप भी परेशान नहीं रहता।

और निश्चित ही अगर गुरु को संन्यस्त होने का पूरा अनुभव नहीं हुआ है अभी, तो ही यह हो सकता है। गुरु नहीं है ठीक अर्थों में, तो ही यह हो सकता है। बुरी तरह शिष्य को जकड़ लेता है, सब तरफ से बांध लेता है, पजेसिव हो जाता है।

यह न केवल व्यक्तियों के संबंध में होगा, चीजों के संबंध में भी हो जाएगा। जो थोड़ी सी चीजें साधु के पास रह जाएंगी, उन पर वह सारा संसार आरोपित करेगा। वही उसका संसार है। आप लाख रुपये की चीज को भी इतना सम्हाल कर नहीं रखेंगे, जितना साधु दो कौड़ी की चीज को सम्हाल कर रखेगा।

महावीर कहते हैं, ऐसी मूर्च्छा अगर हो तो भिक्षु अभी भिक्षु नहीं है।

"जो लालची नहीं है, गृद्ध नहीं है, लोभी नहीं है... ।"

लोभ बड़ी सूक्ष्म वृत्ति है। और इसका संबंध धन से, मकान से, जमीन-जायदाद से नहीं है। इसका संबंध भीतर की एक गहरी आकांक्षा से है। और वह आकांक्षा है--और ज्यादा, और ज्यादा--किसी भी संबंध में।

अगर धन लाख रुपया आपके पास है, तो आपका लोभ कहेगा--और ज्यादा। अगर आपको उम्र सत्तर वर्ष की मिली है, तो लोभ की वासना कहेगी--और ज्यादा। अगर आपको ध्यान में थोड़ी सी शांति मिल रही है, तो लोभ की आकांक्षा कहेगी--और ज्यादा। अगर आपको मोक्ष के थोड़े से दर्शन होने लगे हैं, तो लोभ की आकांक्षा कहेगी--और ज्यादा।

लोभ की आकांक्षा का सूत्र है--और ज्यादा; जितना है, उतना काफी नहीं। तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आप घर छोड़ कर चले गए, दुकान छोड़ कर चले गए। "और ज्यादा" में कोई फर्क नहीं पड़ता।

मेरे पास लोग आते हैं; ध्यान कर रहे हैं। उन्हें शांति मिलती है। जब उन्हें शुरू-शुरू में शांति मिलती है, वे बड़े प्रसन्न होते हैं। फिर थोड़े दिन बाद आकर वे कहने लगते हैं कि अब ठीक है, यह शांति तो ठीक है--अब और आगे क्या? और अब कुछ आगे बढ़ाएं। आनंद कब मिलेगा? उनको पता नहीं कि जब "और ज्यादा" का ख्याल छूट जाएगा, तभी आनंद मिलेगा। वही अड़चन है। क्योंकि "और ज्यादा" का ख्याल ही दुख देता है। वही बाधा है। और आप "और ज्यादा" को हर जगह लगा लेते हैं। कुछ भी हो, वह लग जाता है। कहीं भी वह वृत्ति जुड़ जाती है और बेचैनी शुरू हो जाती है।

आपको परमात्मा भी मिल जाए, तत्क्षण जो बात आपके मन में उठेगी, वह यह होगी कि अच्छा, ठीक है--यह तो ठीक, अब और ज्यादा। आप सोचें, खुद अपने मन के बाबत सोचें कि मिल गया परमात्मा--तृप्ति नहीं होगी!

मन कुछ ऐसा है कि अतृप्त रहना उसका स्वभाव है। लोभ मन की आधारभूत वृत्ति है। जहां लोभ मिट जाता है, वहां मन मिट जाता है। जहां लोभ नहीं वहां मन के निर्मित होने का कोई उपाय नहीं है। मन कहता है, जो है यह काफी नहीं है, और ज्यादा हो सकता है।

और वह जो नहीं हो रहा है, उससे पीड़ा आती है; जो हो रहा है, उसका सुख खो जाता है। इसे थोड़ा समझें।

आप अपना दुख इसी वृत्ति के कारण पैदा कर रहे हैं। इसको महावीर कहते हैं, गृद्ध-वृत्ति-गीध के जैसी वृत्ति। अगृद्ध होगा भिक्षु। जो भी है, वह कहेगा, इतना ज्यादा है कि मेरी क्षमता नहीं थी, वह मुझे मिला। वह हमेशा अनुगृहीत भाव से भरा होगा। ... एक ग्रेटिचूड होगा उसमें।

आप जब तक लोभ से भरे हैं, आपमें अनुग्रह नहीं हो सकता। आपको कुछ भी मिल जाए, तो भी शिकायत होगी। आपकी जिंदगी एक लंबी शिकायत है। उसमें कभी भी अहोभाव नहीं हो सकता। क्योंकि आप सदा जानते हैं, और ज्यादा मिल सकता था; और ज्यादा मिल सकता था, जो नहीं मिला।

भिक्षु का अर्थ है; संन्यस्त का अर्थ है--ऐसा व्यक्ति, जिसे जो भी मिल जाए, तो वह हमेशा अनुभव करता है कि जो मुझे नहीं मिल सकता था, वह मिल गया; जो मेरी पात्रता नहीं थी, वह मुझे मिल गया; जिसको पाने का मैं अधिकारी नहीं था, वह मुझ पर बरस गया। वह हमेशा अनुगृहीत है। ग्रेटिचूड उसका स्वभाव हो जाएगा। जो भी मिल जाए, वह उसे इतनी परम तृप्ति देगा कि आनंद के द्वारा ज्यादा देर तक बंद नहीं रह सकते, कि मोक्ष ज्यादा दूर नहीं रह सकता।

और ध्यान रहे कि संन्यस्त व्यक्ति मोक्ष में प्रवेश नहीं करता, संन्यस्त व्यक्ति में मोक्ष प्रवेश करता है। मोक्ष कोई भौगोलिक जगह नहीं है, जिसमें आप चले गए। अगर ऐसी कोई जगह कहीं होती तो आपमें से कोई न कोई रिश्वत का रास्ता, पीछे का दरवाजा जरूर खोज लिया होता इतने लंबे समय में। आदमी काफी कुशल है।

लेकिन अच्छा ही है कि मोक्ष कोई भौगोलिक जगह नहीं है, नहीं तो शैतान और चालाक उस पर कब्जा कर लेते; निरीह, सीधे-साधे लोग बाहर रह जाते। जो योग्य होते, वे बाहर रह जाते; जो अयोग्य होते, वे भीतर सिंहासनों पर विराजमान हो जाते। लेकिन मोक्ष में राजनीतिज्ञ नहीं घुस पाते; चालाक नहीं घुस पाते; बेईमान नहीं घुस पाते। उसका कारण यह है कि मोक्ष कोई जगह नहीं है जिसमें प्रवेश किया जा सके। मोक्ष एक अवस्था है जो आपमें प्रवेश करती है। जब आप तैयार होते हैं, वह प्रविष्ट हो जाती है। ठीक तो कहना यह होगा कि वह कोई अवस्था नहीं जो आपमें बाहर से आती है--भीतर मौजूद है। जैसे ही "और ज्यादा" की वृत्ति खो जाती है, उसका अनुभव शुरू हो जाता है।

"और ज्यादा" में उलझा हुआ आदमी उसे नहीं देख पाता, जो भीतर मौजूद है। संतुष्ट, अहोभाव से भरा व्यक्ति दौड़ता नहीं, उसका मन कहीं और जाता नहीं। वह उससे तृप्त हो जाता है, जो भीतर है।

आदमी का मन किसी भी चीज से तृप्त नहीं होता। थोड़ी देर सोचें कि ऐसी कौन सी चीज है, जो आपको मिल जाए, तो आप तृप्त हो जाएंगे।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन जब मरा, स्वर्ग पहुंचा, तो उसने सेंट पीटर से कहा कि मेरी एक आकांक्षा जीवन भर रही है। एक व्यक्ति से मैं मिलना चाहता हूं, जो स्वर्ग में है। और मुझे कोई सवाल पूछना है।

सेंट पीटर ने कहा कि मिलने का इंतजाम करवा देंगे, अगर वह व्यक्ति, जिससे तुम मिलना चाहते हो, स्वर्ग में हो तो। नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल निश्चित है कि वह स्वर्ग में है, आप सिर्फ इंतजाम करवाएं। मैं जीसस की मां मेरी से मिलना चाहता हूं।

पीटर भी थोड़ा हैरान हुआ कि क्या प्रयोजन होगा! वह भी उत्सुक हुआ। उसने कहा: क्या मैं भी मौजूद रह सकता हूं तुम्हारी मुलाकात के वक्त? तुम क्या पूछना चाहते हो आखिर, जीसस की मां से?

नसरुद्दीन ने कहा: एक प्रश्न मेरे मन में सदा से अटका है; बस, वही पूछना है।

जीसस की मां मेरी के पास उसे ले जाया गया। मेरी का भव्य रूप-चारों तरफ गिरती प्रकाश की किरण--आभामंडल--आनंद का सागर चारों तरफ, नसरुद्दीन बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा कि मैं तुझसे एक ही सवाल पूछना चाहता हूं। मेरे मन में सदा यह उठता रहा है, क्योंकि मेरे लड़के सब नालायक निकल गए। मैं दुखी रहा हूं उनकी वजह से। मेरी पत्नी दुखी है अपने बेटों की वजह से। और मैंने पृथ्वी पर ऐसा कोई मां और बाप नहीं देखा, जो दुखी नहीं है। मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि तुम्हें तो जीसस जैसा बेटा मिला--जिसे लोग, हजारों-लाखों लोग ईश्वर की प्रतिमा मानते हैं--परमात्मा ही मानते हैं, तो जब तुम जमीन पर थीं और जीसस पैदा हुआ और जब जीसस ऐसा प्रभावी हो गया कि लाखों लोग उसे ईश्वर मानने लगे, तब तुम्हारे मन को कैसा हुआ? तुम तो कम से कम तृप्त रही हो?

मेरी ने कहा: टु बी फ्रैंक, नसरुद्दीन, आई एण्ड माई हसबैंड, वी बोथ वेअर होपिंग दैट ही शुड बिकम ए गुड कारपेंटर--अच्छा बढई बन जाएगा, ऐसा हम दोनों का ख्याल रहा, आशा थी। और हम दोनों बड़े उदास हुए, जब उसने सब धंधा छोड़ दिया और फिजूल की बातों में लग गया। बट, नसरुद्दीन, डोंट टैल इट टु एनीबडी, दे डोंट बिलीव इट--अब तुम पूछ ही रहे हो तो मैं सच्ची बात कहे देती हूं कि उस वक्त तो हमारे मन में यही भाव था।"

क्योंकि जीसस का बाप बढई था। और बढई चाहता होगा कि उसका बेटा अच्छा बढई बने। दूर-दूर तक उसकी ख्याति पहुंचे--उसके सामानों की, उसके फर्नीचर की, उसकी बनाई हुई चीजों की। तो मेरी बड़ी सच्ची बात कह रही है। और मेरी--जैसी मां ही कह सकती है, इतनी सच्ची बात।

आदमी का मन ऐसा है। उसकी वासनाएं क्या हैं, चाहता क्या है--अगर परमात्मा भी उपलब्ध हो, तो भी तृप्ति नहीं होने वाली--तो भी कुछ अतृप्त रह जाएगा। कहीं कुछ खटकता ही रहेगा। कहीं कोई शिकायत मौजूद रह जाएगी।

अगर आप शिकायत से भरे हैं, तो उसका कारण यह नहीं है कि आपकी जिंदगी में शिकायत है। अगर आप शिकायत से भरे हैं, तो उसका कारण यह है कि जैसा मन आपके पास है, वह मन शिकायत से भरा ही हो सकता है।

हम पूरे जीवन इन शिकायतों को मिटाने की कोशिश करते हैं। महावीर कहते हैं: संन्यस्त वह है, जो शिकायत के मूल आधार को भीतर तोड़ देता है। वह मूल आधार लोभ है, लालच है--"और ज्यादा" का भाव।

"जो अज्ञात परिवारों से भिक्षा मांग लाता है... ।"

महावीर का बहुत जोर है कि भिक्षु अज्ञात परिवारों से भिक्षा मांगे। क्योंकि ज्ञात परिवारों से संबंध निश्चित होने शुरू हो जाते हैं। और जैसे ही संबंध बनने लगते हैं, भिक्षु की आकांक्षाएं सजग हो सकती हैं। अनजाने, अचेतन में भी वह आशा कर सकता है कि क्या मिलेगा। तो अज्ञात परिवारों से इसलिए, ताकि भविष्य सदा अनजान रहे। जैसे ही भविष्य जाना-माना होता है, मन सक्रिय हो जाता है। भविष्य बिल्कुल अननोन रहे। यह भी अंदाज न हो कि जिस द्वार पर खड़े होकर मैं भीख मांगूंगा, वहां भीख मिलेगी भी या नहीं। भीख मिलेगी तो रूखी-सूखी रोटी मिलने वाली है या कुछ मिष्ठान्न मिलने वाले हैं। गाली मिलेगी; अपमान मिलेगा; दरवाजे से हट जाने की आज्ञा मिलेगी... ।

एक बौद्ध भिक्षु की कथा है कि वह एक ब्राह्मण के द्वार पर भिक्षा मांगने गया। ब्राह्मण का घर था, बुद्ध से ब्राह्मण नाराज था। उसने अपने घर के लोगों को कह रखा था कि और कुछ भी हो, बौद्ध भिक्षु भर को एक दाना भी मत देना कभी इस घर से। ब्राह्मण घर पर नहीं था, पत्नी घर पर थी; भिक्षु को देख कर उसका मन तो हुआ कि कुछ दे दे। इतना शांत, चुपचाप, मौन भिक्षापात्र फैलाए खड़ा था, और ऐसा पवित्र, फूल जैसा। लेकिन पति की याद आई कि वह पति पंडित है और पण्डित भयंकर होते हैं, वह लौट कर टूट पड़ेगा। सिद्धांत का सवाल है उसके लिए। कौन निर्दोष है बच्चे की तरह, यह सवाल नहीं है, सिद्धांत का सवाल है--भिक्षु को, बौद्ध भिक्षु को देना अपने धर्म पर कुल्हाड़ी मारना है। वहां शास्त्र मूल्यवान है, जीवित सत्यों का कोई मूल्य नहीं है। तो भी उसने सोचा कि इस भिक्षु को ऐसे ही चले जाने देना अच्छा नहीं होगा। वह बाहर आई और उसने कहा: क्षमा करें, यहां भिक्षा न मिल सकेगी।

भिक्षु चला गया। पर बड़ी हैरानी हुई कि दूसरे दिन फिर भिक्षु द्वार पर खड़ा है। वह पत्नी भी थोड़ी चिंतित हुई कि कल मना भी कर दिया। फिर उसने मना किया।

कहानी बड़ी अनूठी है; शायद न भी घटी हो, घटी हो। कहते हैं, ग्यारह साल तक वह भिक्षु उस द्वार पर भिक्षा मांगने आता ही रहा। और रोज जब पत्नी कह देती कि क्षमा करें, यहां भिक्षा न मिल सकेगी, वह चला जाता। ग्यारह साल में पण्डित भी परेशान हो गया। पत्नी भी बार-बार कहती कि क्या अदभुत आदमी है! दिखता है कि बिना भिक्षा लिए जाएगा ही नहीं। ग्यारह साल काफी लंबा वक्त है। आखिर एक दिन पंडित ने उसे रास्ते में पकड़ लिया और कहा कि सुनो, तुम किस आशा से आए चले जा रहे हो, जब तुम्हें कह दिया निरंतर हजारों बार?

उस भिक्षु ने कहा: अनुगृहीत हूं। क्योंकि इतने प्रेम से कोई कहता भी कहां है कि जाओ, भिक्षा न मिलेगी! इतना भी क्या कम है? भिखारी के लिए द्वार तक आना और कहना कि क्षमा करो, भिक्षा न मिलेगी, क्या कम है? मेरी पात्रता क्या है! अनुगृहीत हूं! और तुम्हारे द्वार पर मेरे लिए साधना का जो अवसर मिला है, वह किसी दूसरे द्वार पर नहीं मिला है। इसलिए नाराज मत होओ, मुझे आने दो। तुम भिक्षा दो या न दो, यह सवाल नहीं है।

महावीर कहते हैं, अज्ञात द्वार से--जानी-मानी जगह भिक्षा मिल जाएगी, भिक्षा मूल्यवान नहीं है। भिक्षु के लिए, संन्यस्त के लिए भोजन मूल्यवान नहीं है, भोजन के प्रति जो उसका रुख है, दृष्टिकोण है, वह मूल्यवान है।

तो अज्ञात द्वार पर, जहां कोई अपेक्षा नहीं है, जहां संभावना है इनकार की, वहां से भिक्षा मांग लाता है जो।

किसी तरह की अपेक्षा का फैलाव न हो जीवन में, तो संसार बिखर जाता है। हम तो ऐसी अपेक्षाएं बना लेते हैं, जिनका हमें पता नहीं है। अगर आप रास्ते पर मुझे मिलते हैं, मैं रोज नमस्कार कर लेता हूं; एक दिन नमस्कार न करूं तो आप दुखी हो जाते हैं कि इस आदमी ने नमस्कार क्यों नहीं किया? ... क्या मतलब?

नमस्कार तक की हम अपेक्षा बना लेते हैं कि कौन करेगा। जो आदमी आपको देख कर रोज मुस्कुराता है, अगर न मुस्कुराए, तो आप बेचैन हैं। तब फिर आदमियों को झूठा मुस्कुराना पड़ता है। आप देखें कि वे मुस्कुरा रहे हैं, उन्होंने मुंह फैला दिया--अकारण, कोई कारण नहीं है। लेकिन आप--नाहक उपद्रव खड़ा करना कोई उचित भी नहीं है--आप भी मुस्कुरा रहे हैं, वह भी मुस्कुरा रहे हैं। दो झूठी मुस्कुराहटें, जिनके पीछे आदमियों को कोई लेना-देना नहीं है!

अपेक्षाएं जीवन को झूठा कर जाती हैं।

महावीर कहते हैं: न तो खुद झूठे हों, और न दूसरों को झूठा होने का मौका देना, क्योंकि वह भी पाप है। अगर दो-चार दिन तुम एक जगह से भिक्षा मांग लाए और पांचवें दिन गए, तो उस घर के लोग भी सोचेंगे, भिक्षु अपेक्षा रखता है। अगर न देंगे तो दुखी होगा। और अगर न देंगे तो हमारी प्रतिष्ठा को भी चोट पहुंचती है। अगर न देंगे तो हमें भी अच्छा नहीं लगेगा। तो शायद उन्हें देना पड़े, जब कि वे नहीं देना चाहते थे। तो तुम अज्ञात द्वार पर जाना, जहां कोई अपेक्षा का संबंध नहीं है।

"जो संयम-पथ में बाधक होने वाले दोषों से दूर रहता है...।"

संयम-पथ पर बहुत सी बाधाएं हैं--होंगी ही। उन बाधाओं से जो दूर रहता है। दूर रहने का प्रयोजन इतना है कि अकारण उनमें उलझने की कोई जरूरत नहीं है।

आप जहां रह रहे हैं, वहां चारों तरफ हजारों तरह के लोग हैं। एक संन्यस्त व्यक्ति अगर आपके गांव में आता है, हजार तरह की बाधाएं आप मौजूद कर देंगे बिना सचेतन रूप से जाने हुए। आप गांव की गपशप जाकर उसे सुनाने लगेंगे; किसी की निंदा, किसी की प्रशंसा करने लगेंगे। उस आदमी को भी आप पक्ष विपक्ष में बांटने लगेंगे।

यदि संयम-पथ का सच में कोई साधक हो, तो इन सारी चीजों से ऐसे दूर रहेगा, जैसे यह सब घटनाएं उसके आस-पास नहीं घट रहीं। वह तभी बोलेगा, जब उसकी साधना के लिए सहयोगी हो। अन्यथा चुप होगा। वह किसी चीज में सहमति असहमति नहीं देगा, जब तक कि वह उसकी साधना के लिए कुछ सहयोगी न हो। वह व्यर्थ की बातें सुनना भी नहीं चाहेगा, सुनाना भी नहीं चाहेगा। वह ऐसी कोई चीज खड़ी नहीं करना चाहेगा, जिससे आज नहीं कल जाकर परेशानी शुरू हो जाए।

परेशानियां बड़ी छोटी चीजों से शुरू होती हैं।

आपने सुनी होगी, बहुत प्राचीन कथा है। एक संन्यासी जंगल में रहता है अकेला। भिक्षा मांगने जाता है। भिक्षा लेकर आता है तो घर में कभी थोड़ी देर को रोटी रख देता है; भोजन रख देता है। थोड़ी देर रोटी भोजन रुक जाता है, तो चूहे धीरे-धीरे घर में पैदा हो गए; आने लगे पड़ोस से, जंगल से, खेतों से। तो किसी मित्र ने सलाह दी--एक भक्त ने--कि ऐसा करो, एक बिल्ली पाल लो। बिल्ली चूहों को खा जाएगी।

संन्यासी को तो जंचा। उसने अगर महावीर का सूत्र पढ़ा होता, तो बिल्कुल नहीं जंचती यह बात। क्योंकि बिल्ली पालने से झंझट ही शुरू होने वाली थी। बिल्ली के पीछे पूरा संसार आ सकता है; क्योंकि पालने की वृत्ति, वह गृहस्थ का लक्षण है। लेकिन बिल्ली पालना उसको भी निर्दोष लगा--मामला कोई झंझट का नहीं है। कोई संसार तो है नहीं। बिल्ली से किसी का मोक्ष कभी अटका हो, ऐसा सुना भी नहीं। बिल्ली ने किसी संन्यासी को भ्रष्ट किया हो, इसका कोई इतिहास भी नहीं।

कोई कारण नहीं था। शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं कि बिल्ली मत पालना। शास्त्र भी कितना इंतजाम कर सकते हैं! संसार बड़ा है, शास्त्र बड़े छोटे हैं। तो सूत्र दिए जा सकते हैं, लेकिन डिटेल्स, विस्तार में तो कुछ नहीं कहा जा सकता।

संन्यासी ने बिल्ली पाल ली। बिल्ली तो पाल ली, लेकिन अड़चन शुरू हुई। क्योंकि बिल्ली के लिए अब दूध मांग कर लाना पड़ता। भक्त ने, किसी ने सलाह दी कि क्यों इतना परेशान होते हो, गाय हम भेंट किए देते हैं, तुम एक गाय रख लो।

संन्यासी ने कहा: गाय तो वैसे भी गऊ-माता है। इसमें तो कोई हर्ज है नहीं। गऊ-माता की पूंछ पकड़ कर कोई मोक्ष भला पहुंचा हो, बाधा तो किसी को नहीं पड़ी। और वैतरनी पार करनी हो तो गऊ-माता की पूंछ ही पकड़नी पड़ती है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। बिल्ली तो शायद कुछ शैतान से संबंध भी रखती हो, गाय तो एकदम शुद्ध परमात्मा से जुड़ी है।

गाय भी रख ली। गाय रखते ही अड़चन शुरू हुई, क्योंकि घास-पात की जरूरत पड़ने लगी। अब रोज घास खरीद कर लाओ, या मांग कर लाओ... किसी भक्त ने... !

... और भक्त सदा मौजूद हैं, जो सलाह देने को तैयार हैं। और बेचारे नेक सलाह देते हैं। उनकी तरफ से कुछ भूल नहीं है।

भक्त ने कहा: इतनी झंझट क्यों करते हो? थोड़ी सी खेती-बाड़ी आस पास ही कर लो। तो गाय का भी काम चले, तुम्हारा भी काम चले, बिल्ली का भी काम चले।

अब काफी संसार बड़ा हो गया। बेचारे ने खेती-बाड़ी शुरू कर दी। मजबूरी थी, अब यह गाय मर न जाए। दूध की भी जरूरत थी। फिर उस गाय को चराने भी ले जाना पड़ता। फिर खेती-बाड़ी काटनी भी पड़ती। वक्त पर फसल भी बोनी पड़ती। फिर ये उसे थोड़ा ज्यादा मालूम पड़ने लगा। प्रार्थना-पूजा का समय ही न बचता, ध्यान का कोई उपाय न रहा।

तो एक परम भक्त ने कहा: ऐसा करो कि तुम विवाह कर लो। एक पत्नी रहेगी, साथी-सहयोगी होगी। वह सब देखभाल कर लेगी, तुम अपना ध्यान करना। अब तुम्हें ध्यान का बिल्कुल समय ही नहीं बचा।

साधु को भी बात तो समझ में आई। क्योंकि इतना उपद्रव फैल गया कि उसको कौन सम्हाले।

अगर आपने घर बसा लिया तो घरवाली ज्यादा देर दूर नहीं रह सकती। वह आएगी। उसके बिना घर बस भी नहीं सकता। अड़चन होगी।

उसने शादी भी कर ली। लेकिन शादी से किसी को ध्यान करने का समय मिला है! जो थोड़ा-बहुत मिलता था, गाय-बिल्ली से बचता था, वह भी खो गया।

फिर जब वह साधु मर रहा था तो उसके शिष्यों ने उससे पूछा कि तुम्हारा कोई आखिरी संदेश? तो उसने मरते वक्त कहा कि बिल्ली भूल कर मत पालना! बिल्ली संसार है!

महावीर कहते हैं: संयम के पथ पर बहुत सचेत होने की जरूरत है कि कौन सी चीज बाधा बन जाएगी। आज चाहे दिखाई भी न पड़ती हो। क्योंकि चीजें जब शुरू होती हैं, बड़ी सूक्ष्म होती हैं। धीरे-धीरे उनका स्थूल रूप निर्मित होना शुरू होता है। बहुत सूक्ष्म होती हैं। किसी ने भिक्षा दी, और आपने धन्यवाद दिया। वह धन्यवाद देने में कहीं कोई संसार नहीं आ रहा है, लेकिन आ सकता है। उस धन्यवाद में ही संसार आ सकता है।

तो महावीर कहते हैं, धन्यवाद भी मत देना। भिक्षा किसी ने दी तो, न तो सुख अनुभव करना और न दुख। चुपचाप हट जाना जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

धन्यवाद देने तक की भी मनाही करते हैं, क्योंकि वह धन्यवाद भी संबंध निर्मित करता है। और जिसको तुमने धन्यवाद दिया, उससे तुम्हारा भीतरी एक नाता बनना शुरू हो गया। और अगर बिल्ली से संसार आ सकता है, तो धन्यवाद से भी आ सकता है।

इसलिए महावीर कहते हैं, होश रखना। कोई भी सूक्ष्म ऐसा कृत्य मत करना जिसके पीछे स्थूल जाल निर्मित हो जाए। और हर चीज के पीछे स्थूल निर्मित हो सकता है। इसलिए संयम का पथ अत्यंत होश का और सावधानी का, सावचेतता का पथ है।

"जो खरीदने-बेचने और संग्रह करने के गृहस्थोचित धंधों के फेर में नहीं पड़ता।"

गृहस्थी सवाल नहीं है, गृहस्थी के कुछ विशेष धंधे हैं जिनके आस-पास गृहस्थी निर्मित होती है। गृहस्थी का मतलब वह स्थूल घर नहीं है, जहां आप रहते हैं; वह पत्नी नहीं है, जहां आप रहते हैं; वह बच्चे नहीं है, जहां आप रहते हैं। गृहस्थी का मतलब है कि आप कुछ अर्थशास्त्र के जगत में जुड़े हैं; कुछ इकॉनामिक्स के जगत में जुड़े हैं।

मेरे एक मित्र हैं। उनको घर बनाने का बड़ा शौक है। फिर वे संन्यासी हो गए। जब वे संन्यस्त नहीं थे, तब भी वे घर बनाते थे। अपने मित्रों के घर भी बनवा देते थे। छाता लगा कर धूप में खड़े रहते, और बड़े खुश होते थे, जब कोई नई चीज बनवा देते। उनको एक ही शौक है, कि अच्छे घर। उनमें नई डिजाइन, नये ढंग, नये प्रयोग। फिर वे संन्यस्त हो गए। कोई दस साल बाद मैं उनके गांव के करीब से गुजरता था, जहां वे संन्यस्त होकर रहने लगे थे।

तो जो मित्र ड्राइव कर रहे थे, उनसे मैंने कहा कि दस मील का चक्कर तो जरूर होगा, लेकिन मैं देखना चाहता हूं कि वे क्या कर रहे हैं। जरूर वे छाता लिए खड़े होंगे।

उन्होंने कहा: आप भी पागल हो गए हैं! अब वे संन्यस्त हो गए हैं। दस साल हो गए उन्हें संन्यस्त हुए, और अब क्यों छाता लेकर खड़े होंगे? मैंने कहा: वे जरूर खड़े होंगे, फिर भी चल कर देख लें।

आश्चर्य की बात, वे खड़े थे! आश्रम बनवा रहे थे। छाता लगाए धूप में खड़े थे, आश्रम बनवा रहे थे। वे कहने लगे कि यह जरा आश्रम बन जाए तो शांति हो। मैंने कहा: यह शांति कभी होने वाली नहीं। तुम इसी सब उपद्रव से छूट कर संन्यासी हुए थे। लेकिन उपद्रव बाहर नहीं, उपद्रव भीतर है। पर उन्होंने कहा: वह गृहस्थी की बात थी, यह तो आश्रम बन रहा है।

शंकराचार्य तक अदालतों में खड़े होते हैं, क्योंकि आश्रम का मुकदमा चल रहा है। फर्क क्या है? आप अपने घर के मुकदमे के लिए अदालतों में खड़े होते हैं; शंकराचार्य अपने आश्रम के मुकदमे के लिए खड़े होते हैं।

लेकिन मुकदमा चल रहा है!

महावीर कहते हैं: गृहस्थोचित धंधों में--लेन-देन, खरीदना-बेचना--इस तरह की जो वृत्तियां हैं उनसे जरा भी भिक्षु संबधित न हो। अन्यथा उसे पता भी नहीं चलेगा, कब छोटे से छिद्र से पूरा संसार भीतर चला आया।

"जो सब प्रकार से निःसंग रहता है, वही भिक्षु है।"

निःसंगता बड़ा मौलिक तत्व है; कठिन भी बहुत है। क्योंकि हम सदा संग चाहते हैं। संग की चाह हममें बड़ी गहरी है--कोई साथ हो। अकेले होने में बड़ा बुरा लगता है। अकेला कोई भी नहीं होना चाहता। आप जब भी अकेले छूट जाते हैं, तब बेचैनी अनुभव करते हैं कि क्या करें, क्या न करें। कुछ सूझता नहीं। अकेले होने में बड़ी मुसीबत है।

एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ, लियोपोल गोडवस्की, अनिद्रा से पीड़ित था। और अनिद्रा से पीड़ित लोगों की तकलीफ नींद का न आना नहीं है, रात अकेला छूट जाना है। सारी दुनिया सो गई, पत्नी घुरटि ले रही है। बच्चे मजे से सोए हुए हैं। और आप जग रहे हैं। बिल्कुल अकेले रह गए। सारा संसार खो गया। धीरे-धीरे रास्ते का ट्रैफिक बंद हो गया। शोरगुल शांत हो गया। अब कहीं कोई हिलता डुलता नहीं। पशु-पक्षी तक सो गए। वृक्ष तक चुप हो गए। अब आप अकेले रह गए। जैसे पृथ्वी समाप्त हो गई तीसरे महायुद्ध में। सब लाशें पड़ी हैं। और आप अकेले जग रहे हैं।

लियोपोल गोडवस्की के संस्मरणों में लिखा गया है कि उसका लड़का उसके पास रहता था। तो रात को जब उसे बहुत मुश्किल हो जाती--और लड़का बहुत भयंकर सोने वाला था; जोर से घुरटि भरता, और बड़ी गहरी नींद में--अगर कोई भूकम्प हो जाए, तो भी जगे नहीं--तो लियोपोल रात में दो-चार बार उसके पास जाकर कहता, उसे जोर से हिलाता और कहता: क्यों बेटा, आज तुमको भी नींद नहीं आई क्या?

वह सो रहा है; घुरटि ले रहा है। उसको हिलाता कि क्यों बेटे, आज तुमको भी नींद नहीं आई क्या? पहले उसे जगा देता। उसके बेटे ने लिखा है कि मैं चकित था कि यह मामला क्या है? लेकिन कुल मामला इतना था, आदमी साथ खोजता है। अगर दूसरे को भी नींद नहीं आई तो हम संगी-साथी हो गए।

दो तो हैं कम से कम--साथ हैं।

हम जीवन में जिस वृत्ति से सर्वाधिक ग्रसित हैं, वह है संगी खोजने की, साथी खोजने की। अकेला होना बड़ा कठिन मालूम होता है--क्यों? ... कई कारणों से।

एक: जब कोई संगी-साथी होता है, तो हम दुख का सारा दायित्व उस पर दे सकते हैं। जब कोई संगी-साथी नहीं है, तो सारा दुख अपने ही हाथों पैदा किया हो जाता है। इसे झेलना बहुत कठिन है।

जब कोई संगी-साथी होता है, तो उसमें हम अपने को भूल सकते हैं। वह नशे का काम करता है। जब कोई संगी-साथी नहीं होता, तो भूलने की कोई जगह नहीं रह जाती।

जब कोई संगी-साथी होता है, तो हम अपनी झूठी तस्वीरें खड़ी कर सकते हैं। क्योंकि हम अभिनय कर सकते हैं उसके सामने। हम धोखा दे सकते हैं उसको। और उसको धोखा देकर अपने को धोखा दे सकते हैं।

लेकिन, जब कोई संगी-साथी नहीं, कोई दर्पण नहीं, तो धोखा किसको देना? आदमी की नग्नता, उसकी पशुता, उसके भीतर जो भी है बुरा-भला--सब सामने आ जाता है। उससे बचने का कोई उपाय नहीं रहता। उससे दुख होता है; नरक अनुभव होता है। अकेला आदमी अपने को नरक में अनुभव करता है।

महावीर कहते हैं: असंगता भिक्षु का लक्षण है; संगी की तलाश संसारी का लक्षण है। अकेले होने में आनंद; और जितनी देर अकेला होना मिल जाए, उतनी प्रसन्नता। और जितनी देर संग-साथ हो, अनिवार्य हो तो ही, अन्यथा उसको विदा करना। उतने ही देर के लिए, जितना बिल्कुल जरूरी हो, संग-साथ ठीक। अधिक समय असंग बीते। और धीरे-धीरे भीतर असंगता ऐसी बढ़ जाए कि जब कोई मौजूद भी हो, तो भी संन्यासी अपने को अकेला ही अनुभव करे। वह दूसरे को अपने भीतर न ले। वह भीड़ में भी खड़ा रहे, तो भी भीड़ उसमें प्रवेश न कर पाए, वह भीड़ के बाहर बना रहे।

इतने असंग होने की जो साधना है, वही व्यक्ति को आत्मवान बनाएगी। जितना असंग हो सकेगा आदमी, उतना आत्मवान हो सकेगा; और जितना भीड़ में खो जाता है, उतना आत्महीन हो जाता है। आप सब भीड़ में खोने को उत्सुक रहते हैं। आत्महीन होने में सारी जिम्मेवारी हट जाती है।

ध्यान रहे, दुनिया में जो बड़े पाप होते हैं, वे निजी अकेले में नहीं किए जाते। उनके लिए भीड़ चाहिए। एक हिंदुओं की भीड़ मस्जिद को जला रही है, या मुसलमानों की भीड़ मंदिर को जला रही है। इस भीड़ में जितने मुसलमान हैं, अगर उनको एक-एक से अलग-अलग पूछा जाए कि क्या तुम अकेले मंदिर को जलाने की जिम्मेवारी लेते हो? मुसलमान इनकार करेगा। अगर हिंदू से पूछा जाए कि क्या तुम अकेले इस मस्जिद को आग लगाने का विचार करोगे? वह कहेगा कि नहीं। लेकिन भीड़ में आसान हो जाता है। क्योंकि भीड़ में मैं जिम्मेवार नहीं हूं। जब भीड़ हत्या कर रही हो, तो आप भी दो हाथ लगा देते हैं। इस दो हाथ लगाने में आपकी निजी जिम्मेवारी नहीं है।

और ध्यान रहे, भीड़ आपको निम्नतम जगत में ले आती है। क्योंकि जैसा पानी का स्वभाव है, एक लेवल पर आ जाना... अगर आप पानी को डाल दें? तो फौरन लेवल बना लेगा। पानी निकाल लें नदी से, नदी फिर लेवल पर हो जाएगी। आपका चित्त भी एक लेवलिंग करता रहता है पूरे वक्त। जब आप हजार आदमियों की भीड़ में खड़े होते हैं, तो हजार आदमियों के चित्त की जो निम्नतम सतह है, वहीं आपकी सतह हो जाती है। तत्क्षण आप छोटे आदमी हो जाते हैं।

भीड़ में पाप बड़ा आसान है करना। अकेले में पाप करना बहुत कठिन है। क्योंकि अकेले में आपको कोई दूसरे पर जिम्मा छोड़ने का मौका नहीं होता। तो महावीर कहते हैं कि जब तक कोई व्यक्ति भीड़ से मुक्त न होने

लगे, तब तक आत्मवान नहीं होगा। जैसे-जैसे व्यक्ति अकेला होने लगता है, वैसे-वैसे बुराई गिरने लगती है। और जिस दिन व्यक्ति बिल्कुल अकेले होने में समर्थ हो जाता है, तो महावीर कहते हैं, वह असंग स्थिति कैवल्य का जन्म बन जाती है।

"जो मुनि अलोलुप है, जो रसों में अगृह्य है, जो अज्ञात कुल की भिक्षा करता है, जो जीवन की चिंता नहीं करता, जो ऋद्धि, सत्कार, पूजा और प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है, जो स्थितात्मा तथा निस्पृही है, वही भिक्षु है।"

"जो जीवन की चिंता नहीं करता... ।"

जो जीता है, लेकिन चिंता निर्मित नहीं करता।

हम जीते कम हैं, चिंता ज्यादा करते हैं। अगर ऐसा हो जाए, तो क्या होगा? अगर ऐसा न हुआ होता, तो कितना अच्छा होता। हम इस तरह की चिंताएं अतीत के प्रति भी निर्मित करते हैं, भविष्य के प्रति भी। चिंताएं इतना हमें पकड़ लेती हैं कि जीने की जगह ही नहीं बचती; स्पेस भी नहीं बचती, जिसमें हम चल सकें और जी सकें।

आप अपने मन को सोचें। कल आपने किसी से कुछ कहा, आप सोचते हैं, न कहा होता। कोई अर्थ है? जो कहा, वह कहा। उसको न कहने का अब कोई उपाय नहीं। लेकिन सोच रहे हैं--अगर न कहा होता। और चिंतित हो रहे हैं। कल क्या कहना है, उसके लिए चिंतित हो रहे हैं।

और ध्यान रहे, जो भी आप तय करके जाएंगे, वह आप कल कहने वाले नहीं हैं, क्योंकि जिंदगी रोज बदल जाती है। और आप जो भी तय करते हैं, वह सब बासा और पुराना हो जाता है। जिंदगी तो नई, प्रतिपल परिवर्तनशील धारा है। वह नया प्रतिसंवेदन चाहती है। वह जो आप तय करके जाते हैं, बंधे हुए उत्तर हो जाते हैं। बंधे हुए उत्तर दिक्कत दे देते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में सम्राट आ रहा है। और गांव का वह प्रतिष्ठित आदमी था। तो गांव के लोगों ने कहा कि तुम्हीं उसका स्वागत करना। लेकिन नसरुद्दीन, जरा ख्याल रखना; कुछ ऐसी-वैसी बात मत कर देना। सम्राट है, नाराज न हो जाए।

तो नसरुद्दीन ने कहा: फिर बेहतर यही होगा कि तुम मुझे बता ही दो कि मैं क्या कहूं। जिसमें कि गलती का कोई सवाल ही न रहे। तो दरबारियों ने पूरा इंतजाम कर लिया; सम्राट को कहा कि आप दो ही सवाल पूछना इस आदमी से। और वह दो ही जवाब देगा। ज्यादा झंझट खड़ी नहीं करनी है। तो आप उससे पूछना कि तुम्हारी उम्र क्या है? तो वह अपनी उम्र बता देगा। उसकी उम्र सत्तर साल है। और फिर आप उससे पूछना कि तुम धर्म में कब से रुचि ले रहे हो? कब से तुम मौलवी, मुल्ला हो गए हो? वह बीस साल से धर्म में रुचि ले रहा है। तो वह कहेगा, बीस साल से। बस, ऐसे औपचारिक बातें पक्की कर लेना।

नसरुद्दीन को भी समझा दिया गया। लेकिन सब गड़बड़ हो गई बात। क्योंकि नसरुद्दीन ने बिल्कुल तय कर लिया कि पहले का उत्तर सत्तर साल, दूसरे का उत्तर बीस साल। सम्राट गलती कर गया। उसने दूसरा सवाल पहले पूछ लिया। उसने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम धर्म में कितने दिन से रुचि ले रहे हो? कब से मुल्ला हो? नसरुद्दीन ने कहा: सत्तर साल से! और सम्राट ने पूछा: और तुम्हारा जन्म कब हुआ? तुम्हारी उम्र कितनी है? नसरुद्दीन ने कहा: बीस साल!

सम्राट ने कहा: नसरुद्दीन, तुम पागल तो नहीं हो? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं तो ठीक ही जवाब दे रहा हूं, पागल वह है जो गलत सवाल पूछ रहा है।

जिंदगी रोज बदल रही है। आपकी आज की चिंता कल काम नहीं आएगी। और अगर आप बहुत मजबूत होकर बैठ गए, तो आप कल पाएंगे कि उत्तर ही सब गलत हुए जा रहे हैं। क्योंकि सवाल ही नये हैं।

महावीर कहते हैं, भिक्षु वह है, जो चिंता नहीं करता। जो बीत गया, उसे जान लेता है कि बीत गया। जो नहीं आया, जानता है अभी नहीं आया। जो सामने है, उसमें जीता है।

और ध्यान रहे, जो सामने है, उसमें जो जी लेता है उससे भूलें नहीं होतीं। भूलें होती ही इसीलिए हैं कि हम "यहां" तो मौजूद नहीं होते, जहां जीना है। या तो पीछे होते हैं, या आगे होते हैं। हम "यहां" बेहोश होते हैं। जो न पीछे है, न आगे है—जो निश्चित है, वह "यहां" है। अपनी पूरी चेतना के साथ "यहां" मौजूद है, उससे भूलें नहीं होंगी।

चिंताओं से भूलें नहीं मिटतीं, चिंताओं के कारण भूलें होती हैं। इसलिए अक्सर यह होता है कि विद्यार्थी परीक्षा-भवन में जाता है और सब गड़बड़ हो जाता है। बाहर तक उसे सब मालूम था कि क्या क्या है। परीक्षा-भवन में बैठते ही सब अस्त व्यस्त हो गया। परीक्षा हाल से निकलते ही फिर सब ठीक हो जाता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। परीक्षा का हाल बड़ा चमत्कारी है। और बाहर आकर उसको ठीक-ठीक उत्तर आने लगते हैं। और पहले भी आ रहे थे। और एक तीन घण्टे के लिए सब गड़बड़ हो गया, क्या कारण है?

तीन घंटे वह इतना चिंतित हो गया, ... इतना चिंतित हो गया कि उस चिंता के कारण जो भी सामने है, उससे संबंध नहीं जुड़ पाता। तीन घंटे पहले इतनी चिंता नहीं थी। तीन घंटे के बाद फिर चिंता नहीं रह जाएगी।

चिंता हमारे जीवन को विकृत कर रही है। और हम सीधे संबंधित नहीं हो पाते। समस्याएं हल नहीं होतीं, उलझती चली जाती हैं।

महावीर कहते हैं, भिक्षु वही है जो चिंता नहीं करता, जो जीवन की चिंता नहीं करता। जीवन जैसा आता है, उसके साथ जो भी स्पॉटेनियस, सहज-स्फूर्त घटना घटती है, घटने देता है। न तो पीछे के लिए पश्चात्ताप करता है, और न आगे के लिए योजना करता है।

जिसने अतीत भी छोड़ दिया, और जिसने भविष्य भी त्याग दिया। जो शुद्ध वर्तमान में खड़ा है, वही भिक्षु है।

"जो ऋद्धि, सत्कार, और पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देता है...।"

मोह पकड़ता है, क्योंकि जैसे ही व्यक्ति साधना के जगत में प्रवेश करता है, अनेक घटनाएं घटनी शुरू हो जाती हैं। उन घटनाओं में अगर थोड़ा सा भी ऋद्धि, चमत्कार, सिद्धि का आग्रह बना रहे, तो जीवन मदारी का जीवन हो जाता है। मोक्ष की तरफ जाने के बजाय आदमी मदारी की तरफ जाना शुरू हो जाता है।

बहुत घटनाएं घटती हैं। क्योंकि जीवन में बड़ी पतें छिपी हैं; बड़े रहस्यमय लोक छिपे हैं। बड़ी शक्तियां हैं, जो आपके पास हैं। जैसे ही आप भीतर प्रवेश करेंगे, वे शक्तियां सक्रिय होना शुरू होंगी।

रामकृष्ण के आश्रम में एक सीधा-सादा आदमी था, कालू उसका नाम था। वह बड़ा सरल था। वह इतना सरल था और इतना ग्राहक था, जिसका हिसाब नहीं। उसका मस्तिष्क सीधा खुला था। विवेकानंद साधना शुरू किए तो एक दिन विवेकानंद को ध्यान लगा—पहली दफा। ध्यान लगते ही विवेकानंद को ऐसा लगा कि मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं चाहूं तो किसी का भी विचार प्रभावित कर सकता हूं। वह कालू बेचारा निरीह, सीधा आदमी था। उसको याद आया—विवेकानंद को कि कालू से चाहो तो कुछ भी करवाया जा सकता है। और किसी में तो अड़चन भी होगी, क्योंकि लोग चालाक हैं; बाधा डालेंगे—कालू सीधा है। कालू अपनी पूजा कर रहे थे। वह अपने कमरे में सभी तरह के देवी-देवता रखे थे—सैकड़ों; और सभी की पूजा करते थे। उनको कोई छह-आठ घंटे सभी को फूल रखने में और घण्टी हिलाने में लग जाते। वे पूजा कर रहे थे। घंटी की आवाज आ रही थी।

विवेकानंद ने कहा: कालू, बांध एक पोटली सब देवी-देवताओं की और फेंक गंगा में। कालू ने बांधी पोटली; चले हैं गंगा की तरफ। वहां से रामकृष्ण स्नान करके आ रहे थे। तो उन्होंने कहा: रुक, कहां जा रहा है? उसने कहा कि बस, ऐसा भाव आ गया।

यह तेरा भाव नहीं है। तू वापस चल।

जाकर विवेकानंद का दरवाजा खटखटाया और कहा कि बस, यह तू क्या कर रहा है? अगर ऐसा ही तुझे करना है तो तेरे ध्यान की चाबी मैं अपने हाथ में ले लेता हूं।

जैसे ही व्यक्ति के जीवन में भीतर की ऊर्जाएं जगनी शुरू होती हैं, बड़ा भरोसा आना शुरू होता है। और उस भरोसे में आदमी कर सकता है वह सब जो अब इस मुल्क में कई चमत्कारी बहुत से तरह के काम करते दिखाई पड़ रहे हैं। महावीर उनमें से किसी को भी संन्यासी नहीं कहेंगे। सच तो यह है कि वे संन्यास का दुरुपयोग कर रहे हैं। कोई ताबीज निकाल रहा है। किसी के हाथ से भस्म गिर रही है। कोई घड़ियां बांट रहा है। मिठाइयां आ रही हैं; हाथों में प्रकट हो रही हैं।

यह सब हो सकता है। इस सबके होने में जरा भी अड़चन नहीं है; बड़े मूल्य पर होता है लेकिन। संन्यास खो जाता है, मदारीपन हाथ में रह जाता है।

तो महावीर कहते हैं, भिक्षु वही है, जो ऋद्धि-सिद्धि से बचे; जो सत्कार, पूजा-प्रतिष्ठा का मोह छोड़ दे। क्योंकि तब बड़ा सत्कार मिल सकता है क्षुद्र बातों से।

हमारे आस-पास जो भीड़ खड़ी है, वह क्षुद्र बातों की तो आकांक्षा करती है। अब यह क्या बड़ी आकांक्षा है--किसी के हाथ से राख गिरने लगे; बस, आप चमत्कृत हो गए। साधु के पास आप गए। उसने हाथ बंद किया--खुला हाथ था, खाली आपने देखा था--बंद किया और एक ताबीज आपको भेंट कर दिया। बस, मोक्ष आपको भी मिल गया; साधु को भी मोक्ष मिल गया।

न तो कोई ज्ञान से प्रभावित होता है, न कोई जीवन से प्रभावित होता है। लोग क्षुद्र चमत्कारों से प्रभावित होते हैं। लोग क्षुद्र हैं; उनकी क्षुद्र वासनाएं हैं। उन क्षुद्र वासनाओं से उनका तालमेल बैठता है।

असल में जब आप एक आदमी के हाथ से ताबीज को प्रकट होते देखते हैं, तो आपको लगता है, जो ताबीज प्रकट कर सकता है शून्य से, वह मेरी शून्य में भटकती सारी वासनाओं को भी चाहे तो पूरा कर सकता है। लड़का नहीं है मुझे; एक लड़का पैदा हो सकता है। जब ताबीज निकल सकता है शून्य से, तो लड़का क्यों नहीं निकल सकता! और अभी मुझे असफलता लगती है हाथ; सफलता क्यों नहीं आ सकती है, जब शून्य से ताबीज निकल सकता है।

आपकी भटकती हुई वासनाएं हैं, जो शून्य में हैं; जिनको कोई पूरा करने का उपाय नहीं दिखता। जब भी आप किसी आदमी के पास शून्य से कुछ प्रकट होते देखते हैं, तब आपको भरोसा पड़ता है। तब आप चरणों पर गिर जाते हैं।

कोई भी व्यक्ति धर्म को नमस्कार करने की तैयारी में नहीं दिखता। इसलिए महावीर के भिक्षुओं को कभी भी आज्ञा नहीं रही है कि वे किसी तरह का भी चमत्कार करें। बुद्ध के भिक्षुओं को भी आज्ञा नहीं रही कि वे किसी तरह का चमत्कार करें। हो सकता है, शायद बुद्ध और महावीर के भिक्षुओं का प्रभाव इस देश पर इसीलिए ज्यादा नहीं पड़ सका। क्योंकि मदारी होने की उन्हें आज्ञा नहीं है, निषेध है। और निषेध कीमती है।

काश, हिंदू संन्यासियों को भी इसी तरह का निषेध साफ-साफ हो। और हिंदू मन में भी यह बात साफ बैठ जाए कि चमत्कार दिखाता ही वह आदमी है, जो किसी तरह पूजा पाना चाहता है; प्रतिष्ठा पाना चाहता है; जो आपकी क्षुद्र वासना का शोषण कर रहा है। तो जिन्हें हम अभी महात्मा कहते हैं, उन्हें हम महात्मा न कह पाएं। और जिन्हें अभी हम पहचान भी नहीं पाते, और जो महात्मा है, उनकी पहचान, उनकी प्रतिभिज्ञा होनी शुरू हो जाए।

"जो स्थितात्मा है..."

जो हर स्थिति में थिर है, और जिसे हिलाने का कोई उपाय नहीं है।

"जो निस्पृही है...।"

जिसकी कोई स्पर्धा नहीं; कोई स्पृहा नहीं; कोई महत्वाकांक्षा नहीं। जो न किसी से जीतना चाहता है, न किसी से हारना चाहता है। जो न कहीं पहुंचना चाहता है, न जिसका कोई लक्ष्य है इस संसार की भाषा में। जो किसी का प्रतियोगी नहीं है--वही भिक्षु है।

वस्तुतः प्रतियोगिता अहंकार का ज्वर है। और जब तक अहंकार है, तब तक प्रतियोगिता रहेगी। जिनको हम साधु-महात्मा कहते हैं, वे भी बड़े प्रतियोगी हैं। एक-दूसरे से प्रतियोगिता चलती रहती है। किसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है, किसकी घटती है; कौन ज्यादा सम्मान को प्राप्त होता है, कौन कम सम्मान को प्राप्त होता है--उसकी सबकी चेष्टा चलती रहती है।

महावीर कहते हैं, भिक्षु वही है, जिसकी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। जो ना-कुछ होने को राजी है। और जो ना-कुछ ही मर जाए, तो उसे जरा सी भी चिंता पैदा न होगी। और जो सब-कुछ भी हो जाए, तो भी उसमें कोई गर्व निर्मित न होगा। जो सिंहासन पर हो तो ऐसे ही होगा, जैसे सूली पर हो। सूली और सिंहासन पर जो समभाव से हो सके, ऐसा निस्पृही, प्रतिस्पर्धारहित, समभावी व्यक्ति संन्यस्त है। वही भिक्षु है।

पांच मिनट कीर्तन करें, फिर जाएं... !

कल्याण-पथ पर खड़ा है भिक्षु (भिक्षु-सूत्र: 4)

न परं वइज्जासि अयं कुसीले, जेणं च कुप्पेज्ज न तं वएज्जा।
 जाणिय पत्तेयं पुण्ण-पावं, अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू।।
 न जाइमत्ते न य रूवमत्ते, न लाभमत्ते न सुएण मत्ते।
 मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता, धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू।।
 पवेयए अज्जपयं महामुणी, धम्मे ठिओ ठावयई परं पि।
 निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंगं, न यावि हासंकुहए जे स भिक्खू।।
 तं देहवासं असुइं असासयं, सया चए निच्चहियट्ठियप्पा।
 छिंदित्तु जाईमरणस्स बंधणं, उवेइ
 भिक्खू अपुणागमं गइं।।

जो दूसरों को "यह दुराचारी है" ऐसा नहीं कहता, जो कटु वचन--जिससे सुनने वाला क्षुब्ध हो--नहीं बोलता, "सब जीव... अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख भोगते हैं।"--ऐसा जान कर जो दूसरों की निन्द्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिन्ता करता है, जो अपने आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नहीं बनाता, वही भिक्षु है।

जो जाति का, रूप का, लाभ का, श्रुत (पांडित्य)का अभिमान नहीं करता; जो सभी प्रकार के अभिमानों का परित्याग कर केवल धर्म-ध्यान में ही रत रहता है, वही भिक्षु है।

जो महामुनि आर्यपद (सद्धर्म) का उपदेश करता है; जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को भी धर्म में स्थित रखता है; जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकल कर सदा के लिए कुशील लिंग (निन्द्यवेश) को छोड़ देता है; जो किसी के साथ हंसी-ठट्टा नहीं करता, वही भिक्षु है।

इस भांति अपने को सदैव कल्याण-पथ पर खड़ा रखने वाला भिक्षु अपवित्र और क्षणभंगुर शरीर में निवास करना हमेशा के लिए छोड़ देता है तथा जन्म-मरण के बंधनों को सर्वथा काट कर अ-पुनरागम-गति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

जीवन को बदलने वाले तीन सूत्र समझ लेने जरूरी हैं। एक: एक भी सदगुण व्यक्ति में हो, तो शेष सारे सदगुण अपने आप आनाफू/15शुरू हो जाते हैं। एक भी दुर्गुण व्यक्ति में हो, तो शेष सारे दुर्गुण आना शुरू हो जाते हैं। एक सदगुण या एक दुर्गुण काफी है अपने सजातीय सभी बंधुओं को आपके जीवन में बुला लेने के लिए। सदगुणों में या दुर्गुणों में एक पारिवारिक संबंध है।

एक सदस्य आ जाता है, तो शेष आना शुरू हो जाते हैं। किसी को जीवन में दुर्गुण साधने हों, तो सभी को साधना जरूरी नहीं है। एक को साध लेना काफी है। शेष अपने से सध जाते हैं। और यही सदगुणों के संबंध में भी सच है। एक सदगुण जीवन में आधार ले ले, उसकी जड़ें जम जाएं, तो शेष सारे सदगुण छाया की तरह अपने आप चले आते हैं। बहुत को साधने वाला भटक जाता है; एक को साधने वाला सभी को साध लेता है। उपनिषदों ने कहा है; महावीर ने भी कहा है; एक के सध जाने से सब सध जाता है। यह जीवन-रूपांतरण का एक आधारभूत नियम है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा है; और जज उससे पूछता है, नसरुद्दीन, तुम शराब पीते हो?

नसरुद्दीन कहता है, नहीं, कभी नहीं।

तुमने कभी चोरी की है?

नसरुद्दीन कहता है, नहीं, कभी नहीं।

तुम कभी पराई स्त्री के साथ संबंधित हुए हो? व्यभिचार किया है?

नसरुद्दीन कहता है, भूल कर भी नहीं। सोचा भी नहीं।

किसी को धोखा दिया है? बेईमानी की है?

नसरुद्दीन इनकार करता चला जाता है। आखिर में जज पूछता है, क्या नसरुद्दीन, तुम्हारे जीवन में एक भी दुर्गुण नहीं?

तो नसरुद्दीन कहता है, श्योर, देअर इ.ज वन, आई जस्ट टेल लाइज--सिर्फ झूठ बोलना!

और वह जो उसने सदगुणों की सारी व्याख्या की है, वह सब मिट्टी में मिल जाती है।

एक सभी को डुबा देता है; एक सभी को उबार भी लेता है। इसलिए व्यक्ति को बहुत की चिंता नहीं करनी चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर अपना आधारभूत दुर्गुण खोज लेना चाहिए।

गुरजिएफ अपने शिष्यों से कहता था, तुम्हारे जीवन की जो सबसे बड़ी कमजोरी है, उसे तुम पकड़ लो, क्योंकि वही सीढ़ी बन जाएगी। जो सबसे बड़ी कमजोरी है, उसे पकड़ लो और उस कमजोरी को मिटाने में लग जाओ। या वह कमजोरी जिससे मिट जाएगी, उस गुण को साधने में लग जाओ--तुम्हारा पूरा जीवन रूपांतरित हो जाएगा।

हमें इस सूत्र का पता नहीं है चेतन रूप से, लेकिन अचेतन रूप से भलीभांति पता है। और हम इसका एक उपयोग करते हैं, जो आत्मघाती है। वह उपयोग हम यह करते हैं कि व्यक्ति अपनी मौलिक कमजोरी से नहीं लड़ता अपनी क्षुद्र कमजोरियों से लड़ता रहता है।

उनके बदलने से कुछ बदलाव न होगी। जब तक आप अपनी आधारभूत कमजोरी से लड़ना नहीं शुरू कर देंगे, तब तक जीवन नहीं बदलेगा। आप क्षुद्र कमजोरियों को बदल सकते हैं, उनसे कोई अंतर नहीं पड़ता। एक आदमी शराब पीना छोड़ सकता है; सिगरेट पीना छोड़ सकता है; मांसाहार छोड़ सकता है; ब्रह्ममुहूर्त में उठ सकता है; प्रार्थना-पूजा कर सकता है, लेकिन अगर उसकी मौलिक कमजोरियों के साथ इनका कोई संबंध नहीं है, तो उसका जीवन बिल्कुल बदलेगा नहीं।

कितने लोग हैं जो शराब नहीं पीते हैं। लेकिन शराब न पीने से कोई मोक्ष उपलब्ध नहीं हो गया है। अगर आप भी नहीं पीएंगे, तो उनसे कुछ बेहतर हालत में तो नहीं पहुंच जाएंगे, जो नहीं पीते हैं। कितने लोग हैं जो मांसाहार नहीं करते। लेकिन मांसाहार न कर लेने से उन्हें कोई आत्मा का ज्ञान नहीं हो गया है। आप भी छोड़ देंगे, तो भी क्या होगा?

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप मत छोड़ना। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि आप शराब पीए जाएं और मांसाहार करते जाएं। मैं यह कह रहा हूं कि आप अपने जीवन में मौलिक को पकड़ें, जिससे क्रांति होगी। अगर मौलिक को, मूल को नहीं पकड़ा और पत्तों को काटते रहे, और जड़ नहीं काटी, तो एक पत्ता काटने से चार पत्ते पैदा हो जाते हैं। तो एक दुर्गुण आदमी काटता है, अगर वह आधारभूत नहीं है, जड़ में नहीं है, तो दस नये दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। और आप पत्तों से लड़ते रहें जीवन भर, समय खो जाएगा। जीवन में जड़ को खोजना जरूरी है।

और दूसरा सूत्र ख्याल में ले लेना जरूरी है कि हर व्यक्ति की कमजोरी अलग है; दुर्गुण अलग है; इसलिए किसी की नकल करने से कुछ भी न होगा। हर व्यक्ति की कमजोरी मौलिक रूप से भिन्न है। वही उसका व्यक्तित्व है। और इसलिए हर व्यक्ति को कुछ भिन्न गुण साधना पड़ेगा, जो उसकी मौलिक कमजोरी को काट दे

और जीवन को बदल दे। इसलिए किसी का अनुकरण, अध्यानुकरण काम का नहीं है। जीवन का सचेत विश्लेषण चाहिए।

कोई आदमी है, क्रोध जिसकी मौलिक कमजोरी है। जिसकी मौलिक कमजोरी क्रोध है, वह दान देता रहे, लोभ न करे, ब्रह्मचर्य साध ले--कोई अंतर न पड़ेगा। बल्कि बड़े मजे की बात है कि क्रोधी आदमी ब्रह्मचर्य आसानी से साध लेगा। क्रोधी आदमी लोभ को छोड़ सकता है। क्रोधी आदमी क्रोध के पीछे अपना जीवन छोड़ सकता है, लोभ क्या है! वह क्रोध के पीछे खुद सब कुछ नष्ट कर सकता है; दान दे सकता है; संन्यास ले सकता है; साधु हो सकता है; नग्न खड़ा हो सकता है--सब त्याग कर सकता है। लेकिन उसका त्याग बाहर-बाहर हो जाएगा, जब तक कि उसका क्रोध नहीं चला जाता।

लोभी आदमी सब छोड़ सकता है--लोभ को छोड़ कर। और सब छोड़ने में भी लोभ बच जाएगा। और त्याग के द्वारा भी वह भविष्य में, अगले जन्म में, मोक्ष में, स्वर्ग में कुछ कमाने की आकांक्षा रखेगा। छोड़ने में भी लोभ बच रहेगा।

अहंकारी व्यक्ति सब छोड़ सकता है। इसीलिए छोड़ेगा ताकि अहंकार मजबूत होता चला जाए; सघन होता चला जाए। अहंकारी आदमी तो धन, आप उससे कहें, छोड़ सकता है, अगर अहंकार बढ़ता हो। पद कहें, छोड़ सकता है, अगर अहंकार बढ़ता हो। सिंहासन पर लात मार सकता है, अगर लात मारने से अहंकार बढ़ता हो। लेकिन अहंकार को जरा सी चोट पहुंचती हो, तो कठिनाई हो जाएगी।

मैंने सुना है कि हॉलीवुड में ऐसा हुआ, एक बड़ी फिल्म अभिनेत्री विवाह करने के तीन घंटे के भीतर अपने वकील के पास पहुंच गई। और जाकर उसने कहा कि तलाक का इंतजाम कर दो। वह वकील बोला कि हॉलीवुड के इतिहास में भी ऐसा पहले नहीं हुआ! तीन घंटे! अभी जो मेहमान तुम्हारे विवाह में शरीक हुए थे, वे घर भी नहीं पहुंच पाए हैं। चर्च में जो दीये जले थे विवाह की खुशी में, वे अभी जल रहे हैं, अभी बुझे नहीं। इतनी जल्दी क्या है? इतनी जल्दी ऐसा कौन सा उपद्रव हो गया तीन घंटे के भीतर?

उस स्त्री ने कहा: इन दि चर्च ही साइंड हिज नेम इन बिगर लेटर दैन माइन!

पति ने मुझसे बड़े अक्षरों में हस्ताक्षर किए हैं। यह उपद्रव शुरू हो गया। इस आदमी के साथ बन नहीं सकता। अहंकार बड़े अक्षर भी बरदाश्त नहीं कर सकता है। सिंहासन छोड़ सकता है। अगर अहंकार तृप्त होता हो, तो सब कुछ छोड़ सकता है। लेकिन अगर अहंकार टूटता हो, तो रत्तीभर का फर्क असंभव है।

साधक को पहले यह खोज लेना चाहिए, उसकी मौलिक कमजोरी क्या है; उसकी बीमारी क्या है। यह निदान आवश्यक है। क्योंकि अगर ठीक बीमारी का पता ही न हो, तो ठीक औषधि कभी नहीं मिल सकती। निदान आधी चिकित्सा है। ठीक डाइग्नोसिस आधा इलाज है। अगर आपको ठीक से पकड़ में आ जाए कि आपकी कमजोरी क्या है, आपकी पीड़ा, आपका दुर्गुण क्या है, तो उसी दुर्गुण के आस-पास सारे दुर्गुण इकट्ठे हैं। और जब तक उस दुर्गुण से ऊपर उठने की व्यवस्था न बने, तब तक सदगुणों का आगमन शुरू न होगा। और बीच में आप जन्मों-जन्मों तक चेष्टा कर सकते हैं। वह चेष्टा वैसे ही है जैसे कोई टी. बी. से बीमार है, उसका कैंसर का इलाज चल रहा है; कि कोई कैंसर से बीमार है, और उसका कुछ और इलाज चल रहा है। जब तक चिकित्सा-विधि, औषधि बीमारी से संयुक्त न होती हो, तब तक कुछ भी करना खतरनाक है। तब तक बेहतर कुछ न करना है। क्योंकि बीमारी तो बीमारी ही रहेगी, गलत औषधि और बड़ी बीमारी हो जाएगी।

मैं साधुओं को देखता हूं; साधकों को देखता हूं; उन्हें अपनी बीमारी का कोई बोध ही नहीं है। और वे लड़े चले जा रहे हैं; औषधि लिए चले जा रहे हैं; साधना किए चले जा रहे हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि क्या मिटाना है। और उन्हें यह भी पक्का नहीं है, कि क्या प्रकट करना है। इसलिए बहुत कोशिश के बाद भी कोई परिणाम नहीं होता।

तीसरी बात समझ लेनी जरूरी है, और वह यह है कि आपके भीतर जो बुनियादी रोग होगा, वही आपको दूसरे लोगों में दिखाई पड़ेगा; खुद में दिखाई नहीं पड़ेगा। बीमारी बच ही सकती है, जब तक छिपी रहे। प्रकट हो जाए, तो मिटनी शुरू हो जाती है। जैसे जड़ें तभी तक सक्रिय होती हैं, जब तक जमीन में दबी रहें; जैसे ही जमीन के बाहर आई कि मरनी शुरू हो गई।

जड़ को जमीन के बाहर निकाल लेना उसकी मौत का आयोजन है। आपके भीतर भी जो बीमारियां हैं वे तभी तक चल सकती हैं, जब तक अचेतन के गर्भ में अनकांशस में दबी रहें; आपको उनका पता न हो। जैसे ही आपके बोध में जड़ें आनी शुरू हुई, कि उनकी मृत्यु शुरू हो गई। इसलिए कुछ साधनाएं तो यह कहती हैं कि बीमारी को मिटाने के लिए कुछ भी नहीं करना है; सिर्फ बीमारी के प्रति परिपूर्ण होश से भर जाना है।

कृष्णमूर्ति की पूरी साधना, जो भीतर रोग है, उसके प्रति पूरी अवेयरनेस, पूरा साक्षात बोध—इतना काफी है। बुद्ध ने भी कहा है कि अपनी बीमारी का पूर्ण स्मरण उससे छुटकारा है। ज्ञान मुक्ति है। क्योंकि जड़ जैसे ही बाहर आती है जमीन के, तभी दिखाई पड़ती है। जब आपके अचेतन के गर्भ से जड़ें बाहर आती हैं, तो दिखाई पड़ती हैं। दिखाई पड़ते ही कुम्हलानी शुरू हो जाती हैं। इधर जड़ें कुम्हलाई, उधर उनके पत्तों का फैलाव, शाखाओं का फैलाव, फूलों का फैलाव, सब मरने लगा।

इसलिए एक तीसरी बात ख्याल में ले लेनी चाहिए: आपको अपनी बीमारी स्वयं में दिखाई नहीं पड़ सकती। इसीलिए तो वह है। लेकिन जो बीमारी है, उसका कहीं न कहीं प्रतिफलन होगा। दूसरे लोग दर्पण का काम करते हैं। आपको अपनी बीमारी दूसरे लोगों में जाएगी। जो सबसे बड़ी कमजोरी है, उसे पकड़ लो और उस कमजोरी को मिटाने में लग जाओ। या वह कमजोरी जिससे मिट जाएगी, उस गुण को साधने में लग जाओ—तुम्हारा पूरा जीवन रूपांतरित हो जाएगा।

हमें इस सूत्र का पता नहीं है चेतन रूप से, लेकिन अचेतन रूप से भलीभांति पता है। और हम इसका एक उपयोग करते हैं, जो आत्मघाती है। वह उपयोग हम यह करते हैं कि व्यक्ति अपनी मौलिक कमजोरी से नहीं लड़ता अपनी क्षुद्र कमजोरियों से लड़ता रहता है।

उनके बदलने से कुछ बदलाहट न होगी। जब तक आप अपनी आधारभूत कमजोरी से लड़ना नहीं शुरू कर देंगे, तब तक जीवन नहीं बदलेगा। आप क्षुद्र कमजोरियों को बदल सकते हैं, उनसे कोई अंतर नहीं पड़ता। एक आदमी शराब पीना छोड़ सकता है; सिगरेट पीना छोड़ सकता है; मांसाहार छोड़ सकता है; ब्रह्ममुहूर्त में उठ सकता है; प्रार्थना-पूजा कर सकता है, लेकिन अगर उसकी मौलिक कमजोरियों के साथ इनका कोई संबंध नहीं है, तो उसका जीवन बिल्कुल बदलेगा नहीं।

कितने लोग हैं जो शराब नहीं पीते हैं। लेकिन शराब न पीने से कोई मोक्ष उपलब्ध नहीं हो गया है। अगर आप भी नहीं पीएंगे, तो उनसे कुछ बेहतर हालत में तो नहीं पहुंच जाएंगे, जो नहीं पीते हैं। कितने लोग हैं जो मांसाहार नहीं करते। लेकिन मांसाहार न कर लेने से उन्हें कोई आत्मा का ज्ञान नहीं हो गया है। आप भी छोड़ देंगे, तो भी क्या होगा?

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप मत छोड़ना। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि आप शराब पीएं जाएं और मांसाहार करते जाएं। मैं यह कह रहा हूं कि आप अपने जीवन में मौलिक को पकड़ें, जिससे क्रांति होगी। अगर मौलिक को, मूल को नहीं पकड़ा और पत्तों को काटते रहे, और जड़ नहीं काटी, तो एक पत्ता काटने से चार पत्ते पैदा हो जाते हैं। तो एक दुर्गुण आदमी काटता है, अगर वह आधारभूत नहीं है, जड़ में नहीं है, तो दस नये दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। और आप पत्तों से लड़ते रहें जीवनभर, समय खो जाएगा। जीवन में जड़ को खोजना जरूरी है।

और दूसरा सूत्र ख्याल में ले लेना जरूरी है कि हर व्यक्ति की कमजोरी अलग है; दुर्गुण अलग है; इसलिए किसी की नकल करने से कुछ भी न होगा। हर व्यक्ति की कमजोरी मौलिक रूप से भिन्न है। वही उसका व्यक्तित्व है। और इसलिए हर व्यक्ति को कुछ भिन्न गुण साधना पड़ेगा, जो उसकी मौलिक कमजोरी को काट दे

और जीवन को बदल दे। इसलिए किसी का अनुकरण, अध्यानुकरण काम का नहीं है। जीवन का सचेत विश्लेषण चाहिए।

कोई आदमी है, क्रोध जिसकी मौलिक कमजोरी है। जिसकी मौलिक कमजोरी क्रोध है, वह दान देता रहे, लोभ न करे, ब्रह्मचर्य साध ले--कोई अंतर न पड़ेगा। बल्कि बड़े मजे की बात है कि क्रोधी आदमी ब्रह्मचर्य आसानी से साध लेगा। क्रोधी आदमी लोभ को छोड़ सकता है। क्रोधी आदमी क्रोध के पीछे अपना जीवन छोड़ सकता है, लोभ क्या है! वह क्रोध के पीछे खुद सब कुछ नष्ट कर सकता है; दान दे सकता है; संन्यास ले सकता है; साधु हो सकता है; नग्न खड़ा हो सकता है--सब त्याग कर सकता है। लेकिन उसका त्याग बाहर-बाहर हो जाएगा, जब तक कि उसका क्रोध नहीं चला जाता।

लोभी आदमी सब छोड़ सकता है--लोभ को छोड़ कर। और सब छोड़ने में भी लोभ बच जाएगा। और त्याग के द्वारा भी वह भविष्य में, अगले जन्म में, मोक्ष में, स्वर्ग में कुछ कमाने की आकांक्षा रखेगा। छोड़ने में भी लोभ बच रहेगा।

अहंकारी व्यक्ति सब छोड़ सकता है। इसीलिए छोड़ेगा ताकि अहंकार मजबूत होता चला जाए; सघन होता चला जाए। अहंकारी आदमी तो धन, आप उससे कहें, छोड़ सकता है, अगर अहंकार बढ़ता हो। पद कहें, छोड़ सकता है, अगर अहंकार बढ़ता हो। सिंहासन पर लात मार सकता है, अगर लात मारने से अहंकार बढ़ता हो। लेकिन अहंकार को जरा सी चोट पहुंचती हो, तो कठिनाई हो जाएगी।

मैंने सुना है कि हॉलीवुड में ऐसा हुआ, एक बड़ी फिल्म अभिनेत्री विवाह करने के तीन घंटे के भीतर अपने वकील के पास पहुंच गई। और जाकर उसने कहा कि तलाक का इंतजाम कर दो। वह वकील बोला कि हॉलीवुड के इतिहास में भी ऐसा पहले नहीं हुआ! तीन घंटे! अभी जो मेहमान तुम्हारे विवाह में शरीक हुए थे, वे घर भी नहीं पहुंच पाए हैं। चर्च में जो दीये जले थे विवाह की खुशी में, वे अभी जल रहे हैं, अभी बुझे नहीं। इतनी जल्दी क्या है? इतनी जल्दी ऐसा कौन सा उपद्रव हो गया तीन घंटे के भीतर?

उस स्त्री ने कहा: इन दि चर्च ही साइंड हिज नेम इन बिगर लेटर दैन माइन!

पति ने मुझसे बड़े अक्षरों में हस्ताक्षर किए हैं। यह उपद्रव शुरू हो गया। इस आदमी के साथ बन नहीं सकता। अहंकार बड़े अक्षर भी बरदाश्त नहीं कर सकता है। सिंहासन छोड़ सकता है। अगर अहंकार तृप्त होता हो, तो सब कुछ छोड़ सकता है। लेकिन अगर अहंकार टूटता हो, तो रत्तीभर का फर्क असंभव है।

साधक को पहले यह खोज लेना चाहिए, उसकी मौलिक कमजोरी क्या है; उसकी बीमारी क्या है। यह निदान आवश्यक है। क्योंकि अगर ठीक बीमारी का पता ही न हो, तो ठीक औषधि कभी नहीं मिल सकती। निदान आधी चिकित्सा है। ठीक डाइग्नोसिस आधा इलाज है। अगर आपको ठीक से पकड़ में आ जाए कि आपकी कमजोरी क्या है, आपकी पीड़ा, आपका दुर्गुण क्या है, तो उसी दुर्गुण के आस-पास सारे दुर्गुण इकट्ठे हैं। और जब तक उस दुर्गुण से ऊपर उठने की व्यवस्था न बने, तब तक सदगुणों का आगमन शुरू न होगा। और बीच में आप जन्मों-जन्मों तक चेष्टा कर सकते हैं। वह चेष्टा वैसे ही है जैसे कोई टी. बी. से बीमार है, उसका कैंसर का इलाज चल रहा है; कि कोई कैंसर से बीमार है, और उसका कुछ और इलाज चल रहा है। जब तक चिकित्सा-विधि, औषधि बीमारी से संयुक्त न होती हो, तब तक कुछ भी करना खतरनाक है। तब तक बेहतर कुछ न करना है। क्योंकि बीमारी तो बीमारी ही रहेगी, गलत औषधि और बड़ी बीमारी हो जाएगी।

मैं साधुओं को देखता हूं; साधकों को देखता हूं; उन्हें अपनी बीमारी का कोई बोध ही नहीं है। और वे लड़े चले जा रहे हैं; औषधि लिए चले जा रहे हैं; साधना किए चले जा रहे हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि क्या मिटाना है। और उन्हें यह भी पक्का नहीं है, कि क्या प्रकट करना है। इसलिए बहुत कोशिश के बाद भी कोई परिणाम नहीं होता।

तीसरी बात समझ लेनी जरूरी है, और वह यह है कि आपके भीतर जो बुनियादी रोग होगा, वही आपको दूसरे लोगों में दिखाई पड़ेगा; खुद में दिखाई नहीं पड़ेगा। बीमारी बच ही सकती है, जब तक छिपी रहे। प्रकट हो जाए, तो मिटनी शुरू हो जाती है। जैसे जड़ें तभी तक सक्रिय होती हैं, जब तक जमीन में दबी रहें; जैसे ही जमीन के बाहर आई कि मरनी शुरू हो गई।

जड़ को जमीन के बाहर निकाल लेना उसकी मौत का आयोजन है। आपके भीतर भी जो बीमारियां हैं वे तभी तक चल सकती हैं, जब तक अचेतन के गर्भ में अनकांशस में दबी रहें; आपको उनका पता न हो। जैसे ही आपके बोध में जड़ें आनी शुरू हुई कि उनकी मृत्यु शुरू हो गई। इसलिए कुछ साधनाएं तो यह कहती हैं कि बीमारी को मिटाने के लिए कुछ भी नहीं करना है; सिर्फ बीमारी के प्रति परिपूर्ण होश से भर जाना है।

कृष्णमूर्ति की पूरी साधना, जो भीतर रोग है, उसके प्रति पूरी अवेअरनेस, पूरा साक्षात बोध—इतना काफी है। बुद्ध ने भी कहा है कि अपनी बीमारी का पूर्ण स्मरण उससे छुटकारा है। ज्ञान मुक्ति है। क्योंकि जड़ जैसे ही बाहर आती है जमीन के, तभी दिखाई पड़ती है। जब आपके अचेतन के गर्भ से जड़ें बाहर आती हैं, तो दिखाई पड़ती हैं। दिखाई पड़ते ही कुम्हलानी शुरू हो जाती हैं। इधर जड़ें कुम्हलाई, उधर उनके पत्तों का फैलाव, शाखाओं का फैलाव, फूलों का फैलाव, सब मरने लगा।

इसलिए एक तीसरी बात ख्याल में ले लेनी चाहिए: आपको अपनी बीमारी स्वयं में दिखाई नहीं पड़ सकती। इसीलिए तो वह है। लेकिन जो बीमारी है, उसका कहीं न कहीं प्रतिफलन होगा। दूसरे लोग दर्पण का काम करते हैं। आपको अपनी बीमारी दूसरे लोगों में दिखाई पड़ती है। अहंकारी व्यक्ति को सारे लोग अहंकारी मालूम पड़ेंगे। और हरेक लगेगा कि अपनी अकड़ में जा रहा है। और उसको हरेक की अकड़ चोट पहुंचाएगी।

यह बड़े मजे की बात है कि आप, जो आदमी विनम्र होता है, हंबल होता है, निर-अहंकारी होता है, उसका इतना आदर क्यों करते हैं? आपने कभी सोचा? सब समाज दुनिया के विनम्र आदमी का आदर करते हैं; और कहते हैं: "बड़ा श्रेष्ठ आदमी है, उसको अहंभाव बिल्कुल भी नहीं।" लेकिन क्यों दुनिया के सभी लोग निर-अहंकारी का आदर करते हैं?

निर-अहंकारी के आदर का बुनियादी कारण आपका अहंकार है। क्योंकि निर-अहंकारी आपको चोट नहीं पहुंचाता। और आप उसको कितनी ही चोट पहुंचाएं, तो भी प्रत्युत्तर नहीं देता। अहंकारी आपको अखरता है। अखरने का कुल कारण इतना है कि आपके भीतर के अहंकार को चोट लगती है।

यह अभिनेत्री जो अपने पति के बड़े हस्ताक्षर देख कर तलाक देने को तैयार हो गई, जरूर इसके मन में पति से बड़े हस्ताक्षर करने की वासना छिपी रही होगी। उसी को चोट पहुंची। अन्यथा दिखाई भी नहीं पड़ सकता था। यह ख्याल में भी न आता कि किसने बड़े हस्ताक्षर किए हैं।

जो दिखाई पड़ता है, वह कहीं भीतर छिपा है। जब आपको आस-पास के लोग पापी दिखाई पड़ते हैं, तो उनके पाप का जो भी ढंग हो, समझना कि वह आपकी बीमारी का निदान है। इस जगत में हर दूसरा व्यक्ति दर्पण है। और अगर हम ठीक से उसमें अपनी छवि देखें, तो हमें अपनी साधना का मार्ग स्पष्ट हो सकता है।

इसे थोड़ा सोचना आप कि आपको क्या-क्या खामियां दूसरे लोगों में दिखाई पड़ती हैं; क्यों दिखाई पड़ती हैं; और कौन-कौन सी चीजें चोट की तरह आपके भीतर घाव बनाती हैं; जरा सी चोट, और आपका घाव भीतर कंपित और दुख से भर जाता है। कौन सी चीजें हैं? तो वही, जिनमें आप भीतर से रस ले रहे हैं। लेकिन वह रस अचेतन है।

जीवन के निदान में यह तीसरा सूत्र बहुत जरूरी है कि जो आपको दूसरों में दिखाई पड़ता हो, दूसरों की फिकर छोड़ कर उसे अपने में खोजने लग जाना। ये तीन बातें ख्याल में लें; फिर हम महावीर के सूत्र में प्रवेश करें। महावीर कहते हैं—

"जो दूसरों को "यह दुराचारी है" ऐसा नहीं कहता, जो कटु वचन—जिससे सुनने वाला क्षुब्ध हो—नहीं बोलता, "सब जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख भोगते हैं।"—ऐसा जान कर जो दूसरों की

निंद्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिंता करता है, जो अपने आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नहीं बनाता, वही भिक्षु है।"

बहुत सी बातें हैं। एक: जो दूसरों को "यह दुराचारी है" ऐसा नहीं कहता। कहने का ही सवाल नहीं है, जो अपने भीतर भी ऐसा भाव निर्मित नहीं करता कि दूसरा दुराचारी है। क्योंकि कहने से क्या फर्क पड़ेगा? जो अपने भीतर भी ऐसा अनुभव नहीं करता, यह दुराचारी है।

लेकिन साधुओं के पास जाएं। साधुओं की आंखों में आपकी निंदा के सिवाय और कुछ भी नहीं। साधुओं को जितना मजा आता है आपकी निंदा करने में, उतना किसी और बात में नहीं आता। साधु देख कर ही आपको आनंद अनुभव करता है कि पापियों के सामने वह पुण्यात्मा मालूम पड़ता है--कि तुम भोगी, कि तुम नारकीय, कि तुम नरक की योजना बना रहे हो, कि तुम कामी, कि तुम शरीर की वासना में डूबे हुए हो, कि तुम संसार में भटक रहे हो, अज्ञानी। साधु की आंखों में निंदा का स्वर है। और शायद आप भी उसके पास इसीलिए जाते हैं, शायद आप भी उसको इसीलिए आदर देते हैं कि अपनी निंदा का स्वर आप वहां पाते हैं।

यह बड़े मजे की बात है। इस जगत में हर व्यक्ति अपने विपरीत से आकर्षित होता है। जैसे स्त्री पुरुष से आकर्षित होती है; पुरुष स्त्री से आकर्षित होता है। यह आकर्षण जीवन के सभी आयामों में फैला हुआ है। आप अपने विपरीत से आकर्षित होते हैं। भोगी त्यागी से आकर्षित होता है। पापी पुण्यात्मा से आकर्षित होता है। पापी जाता है पुण्यात्मा के पास, लेकिन अगर पुण्यात्मा उसको यह बोध ही न दे कि तू पापी है, तो उसके जाने का मजा समाप्त हो जाए। एक खुजली है, जिसको वह खुजलाता है।

तो जब आप साधु के पास जाते हैं, और साधु आपकी निंदा करता है, तो चाहे ऊपर से आपको बुरा भी लगता हो, लेकिन भीतर से अच्छा लगता है। यह भीतर से अच्छा लगना एक रोग है--आपका भी और साधु का भी। आप उस साधु के पास शायद जाना पसंद ही नहीं करेंगे, जिसके मन में आपके प्रति कोई निंदा नहीं है। क्योंकि आपको उसके प्रति कोई आदर ही मालूम नहीं होगा। आपको आदर उसी के प्रति मालूम हो सकता है, जिसके द्वारा आपके प्रति अनादर बहता है। जो आपसे ऊंचा मालूम होता है, उसी के प्रति आदर मालूम होता है।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि परम साधुओं को लोग पहचान ही नहीं पाते; सिर्फ उनको पहचान पाते हैं, जो साधु नहीं हैं। तो साधु के धंधे की एक व्यवस्था है कि वह आपकी जितनी निंदा करे, उतना आप उसके निकट जाएंगे।

जाकर साधुओं के प्रवचन सुनें। वे जितनी आपको गालियां दें और आपकी निंदा करें, आप उतने ही मुस्कराते हैं, और आप कहते हैं कि बात तो बिल्कुल ठीक है। सच में तो यह है कि आप भी अपने को कभी भी इस हालत में नहीं मानते कि ऐसी कोई बुराई है, जो आपने नहीं की है। और जब कोई आपकी निंदा करता है, तो आपको भी लगता है कि सत्य कह रहा है--आप भला उसके सत्य को मान न पाते हों। जीवन की असुविधाएं हैं, कठिनाइयां हैं--आप पूरा न कर पाते हों; लेकिन उसकी निंदा से आप भी राजी हैं।

सच में, आप खुद ही आत्म-निंदा से, सेल्फ कंडेमनेशन से इतने भरे हैं कि जो भी आपकी निंदा करता है, उससे आप राजी हो जाते हैं। लेकिन महावीर साधु की व्याख्या में पहली बात यह कहते हैं कि जो, दूसरा दुराचारी है, न तो ऐसा कहता है, न ऐसा मानता है; न ऐसा सोचता है, न ऐसा भाव करता है; दूसरे के संबंध में बुराई की धारणा छोड़ देता है, ऐसा व्यक्ति साधु है।

लेकिन ऐसा साधु आपको बहुत अपील नहीं करेगा। जो आपको अपराधी सिद्ध न करे, वह आपको सच ही मालूम न पड़ेगा। अगर कोई साधु आपको समभाव से ले--नीचे-ऊंचे का भाव न करे; आपके कंधे पर हाथ रख दे; मित्र की तरह आपसे बात करे--आप उस साधु के पास जाना बंद कर देंगे।

आप तलाश कर रहे हैं किसी की, जो आपकी निंदा करे। क्योंकि आप अपनी ही निंदा में लीन हैं। लेकिन महावीर कहते हैं, साधु का पहला लक्षण यह है...। अगर यह लक्षण साधु का है, तो सौ में से नित्यानबे साधु, साधु सिद्ध नहीं होंगे। वे आपकी बीमारी का हिस्सा हैं। आप जो चाहते हैं, वे कर रहे हैं।

जगत में स्वयं को दुख देने वाले लोगों की बड़ी कतार है। और जहां भी उनको दुख मिलता है, वहां उनको रस आता है। साधु आपको एक तरह से दुख दे रहा है। क्योंकि वह कह रहा है कि आप निंदित हैं, पापी हैं। नरक और नरक की जलती हुई लपटें जिन्होंने विकसित की हैं, जिन्होंने धारणाएं बनाई हैं ये, महावीर उन्हें साधु नहीं कह सकते। क्योंकि जब दूसरे को दुराचारी ही नहीं विचार करना है, तो दूसरे को नरक में डालने का ख्याल ही क्या!

बर्ट्रेड रसल ने एक किताब लिखी है बड़ी अनूठी: वाई आई एम नॉट ए क्रिश्चियन? मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? और जो दलीलें दी हैं... और दलीलें तो ठीक हैं, लेकिन एक दलील सच में बहुत महत्वपूर्ण है। महावीर भी उससे राजी होते। और वह दलील यह है कि जीसस के मुंह से इस तरह के वचन कहलवाए गए हैं बाइबिल में, जिनसे ऐसा लगता है कि जीसस लोगों को नरक में डालने में रस ले रहे हैं--कि तुम सताए जाओगे; कि तुम छेदे जाओगे; कि कीड़े-मकोड़े तुम्हारे शरीर से गुजरेंगे; कि अग्नि में तुम पटके जाओगे; कि उबलते हुए तेल में तुम्हें उबाला जाएगा। तुम प्यासे होओगे। आग बरसती होगी। पानी पास होगा। लेकिन तुम्हें पानी पीने को नहीं दिया जाएगा।

रसेल यह कहता है कि जीसस के ये जो वचन हैं, अगर जीसस ने ही कहे हैं, तो जीसस साधु होने का गुण ही खो देते हैं। क्योंकि साधु दूसरे को ऐसा कष्ट देने की कल्पना भी करे, वह कल्पना भी बताती है कि दूसरे को कष्ट देने में रस है; हिंसा है। दूसरे को बुरा कहना हिंसा है। दूसरे को बुरा मानना हिंसा है। निश्चित ही, जीसस ने ये वचन कहे नहीं हैं--पीछे जोड़े गए हैं। क्योंकि जीसस के मर जाने के डेढ़ सौ वर्ष बाद बाइबिल का संकलन शुरू हुआ। जिन लोगों ने संकलन किया, उनकी धारणाएं हैं ये।

मैं यहां बोल रहा हूं; आप इतने लोग यहां बैठे हैं; अगर बाहर आपसे जाकर पूछा जाए कि मैंने क्या कहा--अभी, डेढ़ सौ वर्ष बाद नहीं--तो जितने यहां लोग हैं, उतने वक्तव्य होंगे। और मुश्किल हो जाएगा यह तय करना कि मैंने क्या कहा। क्योंकि आप वही नहीं सुनते, जो मैं कह रहा हूं। आप वही सुनते हैं, जो आप सुनना चाहते हैं। आप उसी को चुन लेते हैं; उसी को बड़ा कर लेते हैं; कुछ छोड़ देते हैं, कुछ बचा लेते हैं।

जीसस के आठ शिष्यों ने बाइबिल के आठ वक्तव्य दिए हैं। वे सब भिन्न-भिन्न हैं; अपना-अपना वक्तव्य हैं असल में। डेढ़ सौ साल बाद जो लिखा गया है, वह उन लोगों का है जिन्होंने डेढ़ सौ साल बाद लिखा। ये वे लोग थे जो चाहते थे कि ईसाई होने से स्वर्ग; और जो ईसाई नहीं होता, उसे नरक। लेकिन रसेल का तर्क सही है। अगर जीसस ने ही ये वचन कहे हैं, तो जीसस सारा गुण खो देते हैं। जिन्होंने नरक सोचा है, उन्होंने सोच कर ही बता दिया कि उनके मन में भीतर गहरी हिंसा छिपी है। लेकिन साधु इसमें रस लेता है। लेकिन रस का कारण भी समझ लें।

आप भोग रहे हैं--स्त्री को, धन को, महल को। साधु ने स्त्री छोड़ी, धन छोड़ा, महल छोड़ा--भूखा है, प्यासा है, नग्न है, सड़क पर पैदल चल रहा है। आप सब तरह का सुख भोग रहे हैं; वह सब तरह का दुख भोग रहा है। गणित साफ है। अगर वह कहीं आगे भविष्य में आपके लिए दुख का आयोजन न कर ले, तो उसे खुद का दुख भोगना मुश्किल हो जाएगा। गणित को साफ कर लेगा वह: अपने लिए भविष्य में सुख का आयोजन; आपके लिए भविष्य में दुख का आयोजन। बात साफ हो गई। और यह भी पक्का कर लेगा कि तुम जो सुख भोग रहे हो, वह क्षणिक है; और मैं जो सुख भोगूंगा स्वर्ग में, मोक्ष में, वह शाश्वत है। और तुम जो सुख भोग रहे हो, वह तो क्षणिक है; लेकिन तुम जो दुख भोगोगे नरक में, वह अनंतकालीन है।

यह बड़े मजे की बात है। क्षणिक सुख के लिए अनंतकालीन दुख कैसे मिल सकता है? बर्ट्रेड रसल ने वह भी तर्क उठाया है। ईसाइयत मानती है कि नरक जो है, वह इटरनल है; उसका कभी अंत नहीं होगा। जो एक दफे नरक में पड़ गया, वह पड़ गया। उससे निकलने की कोई जगह नहीं है। शाश्वत नरक!

अब यह बड़े मजे की बात है कि क्षणिक सुख, उसके बदले में शाश्वत नरक! कहीं साथ नहीं बैठता। रसल ने कहा है कि मुझ पर अगर कोई ठीक न्यायोचित व्यवस्था की जाए मेरे पापों की, तो जो मैंने पाप किए हैं वे और जो मैंने सोचे हैं, अगर वे भी जोड़ लिए जाएं--तो भी मुझे सख्त अदालत चार साल, और चार साल से ज्यादा की सजा नहीं दे सकती। तो अनंत... ! इसमें जरूर देने वालों का कुछ हाथ है। अनंत नरक, जिसका फिर कोई अंत नहीं होगा!

उलटी बात भी समझ लेने जैसी है। क्षणिक सुख छोड़ने वाले लोग शाश्वत सुख पाएंगे। क्षणिक को छोड़ कर शाश्वत कैसे पाया जा सकता है? आखिर गणित कुछ तो साफ होना चाहिए। सिर्फ क्षणिक सुख भोगनेवाले लोग शाश्वत नरक पाएं। क्षणिक सुख छोड़ने वाले शाश्वत सुख पाएं। इसमें देने वालों का, हिसाब लगाने वालों का हाथ है।

जगत में वही मिल सकता है, जो छोड़ा जाता है। सब चीजों के मूल्य अंततः समान हो जाते हैं। अगर क्षणिक सुख ही छोड़ा है, तो महावीर कहते हैं, स्वर्ग मिल सकता है। लेकिन वह स्वर्ग भी क्षणिक होगा। अगर मोक्ष चाहिए, तो क्षणिक सुख को छोड़ने से नहीं मिलने वाला है; शाश्वत आत्मा को जानने से मिलने वाला है। उसका त्याग से कोई संबंध नहीं। उसका भोग से कोई संबंध नहीं। उसका आत्म-बोध से संबंध है। शाश्वत जो मेरे भीतर छिपा है, उसको जानने से मेरा शाश्वत से संबंध जुड़ जाएगा। क्षणिक जो मेरी देह है, उसके माध्यम से जितने भी संबंध मैं जोड़ता हूं, वे भी क्षणिक ही होंगे।

साधु का आधारभूत लक्षण है कि दूसरे में उसे बुरा दिखाई न पड़े। लेकिन क्यों? यह तभी हो सकता है, जब स्वयं के भीतर से बुरा गिर जाए। क्योंकि हमें वही दिखाई पड़ता है दूसरे में, जो हमारे भीतर होता है--मैग्निफाई होकर दिखाई पड़ता है; खूब बड़ा होकर दिखाई पड़ता है। हमारे चारों तरफ दर्पण घूम रहे हैं। सारा जगत दर्पण है, जिसमें हम ही लौट-लौट कर गूँजते हैं और दिखाई पड़ते हैं। जिस दिन कोई व्यक्ति भीतर से दुर्गुणों से शून्य हो जाता है, इन दर्पणों में भी दिखाई पड़ना बंद हो जाता है।

लेकिन आप उस तरह के लोग हैं कि अगर दर्पण में आपका कुरूप चेहरा दिखाई पड़े, तो आपको ख्याल आता है कि दर्पण में जरूर कोई भूल है। मेरा चेहरा और कुरूप कैसे हो सकता है! तो आप दर्पण तोड़ देने को तैयार हो सकते हैं, चेहरा बदलने को नहीं। हम यही कर रहे हैं। चारों तरफ हर संबंध, जीवन का हर संबंध प्रतिफलन कर रहा है।

जब आप पाते हैं कि आपको एक बुरी पत्नी मिल गई, तो आपके ख्याल में नहीं आता कि यह बुरे पति का परिणाम है; यह होने ही वाला है। आप पत्नी बदल सकते हैं; दर्पण बदल सकते हैं, लेकिन हर पत्नी बुरी सिद्ध होगी। वह तो अच्छा है, जिन मुल्कों में पत्नी बदलने की बहुत सुविधा नहीं, तो यह दुख अनुभव नहीं हो पाता कि हर पत्नी बुरी सिद्ध होती है। यह आशा बनी ही रहती है कि यह एक भूल हो गई है; बाकी इतनी स्त्रियां थीं, जो अच्छी पत्नी हो सकती थीं। लेकिन जिन मुल्कों में सुविधा हो गई तलाक की, वहां जीवन बड़ी उदासी से भर गया है। हर बार उसी तरह की पत्नी आदमी खोज लेता है, जैसी उसने पहले खोजी थी। क्योंकि खोजने वाला तो बदलता नहीं। तो खोजी जाने वाली चीज भी बदलने वाली नहीं है।

आप कितना ही कुछ भी करें, दर्पण के बदलने से आप बदलने वाले नहीं हैं। हर दर्पण आपका ही प्रतिफलन देगा। और आप इतने ज्यादा अंधेरे से भरे हैं कि दर्पण से रोशनी आने का कोई उपाय नहीं है। जब आपको कोई भी दुख चारों तरफ से मिलता है, तो ध्यान रखना--लोग बुरे हैं, इसलिए दुख मिल रहा है--यह धारणा सामान्य आदमी की है। मैं बुरा हूं, इसलिए दुख पा रहा हूं--यह धारणा साधु की है। और यही क्रांति

साधारण व्यक्ति को साधु बनाती है। दूसरों को बदल दूं, यह चेष्टा साधारण चेष्टा है। अपने को बदल लूं, यह साधु का संकल्प है। लेकिन अपने को बदलने का ख्याल ही तब आएगा, जब हर परिस्थिति में मैं देख पाऊं अपने को ही; खोज पाऊं अपने को ही।

"जो दूसरों को "यह दुराचारी है" ऐसा नहीं कहता, ऐसा अनुभव भी नहीं करता; जो कटु वचन--जिससे सुनने वाला क्षुब्ध हो--नहीं बोलता... !"

ध्यान रहे, जब भी आप कटु वचन बोलते हैं, तो आप किसी को क्षुब्ध करना चाहते हैं--चेतन या अचेतन; होशपूर्वक या अनजाने। लेकिन आप किसी को क्षुब्ध करना चाहते हैं। एक बड़े मजे की बात है, आप कटु वचन बोलें और दूसरा क्षुब्ध न हो, तो आप क्षुब्ध हो जाएंगे। आप किसी को गाली दें, और वह मुस्कराता रहे, गाली लौट आई। उस आदमी ने स्वीकार नहीं की। वह गाली आपकी ही छाती में तीर बन कर चुभ जाएगी। अगर आप क्षुब्ध करना चाहें, और कोई क्षुब्ध न हो, तो आप बड़ी बेचैनी और बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। और अगर कोई क्षुब्ध हो जाए, तो आप कहते हैं कि क्षुब्ध होने वाले की भूल है, मैंने तो ऐसा कुछ कहा नहीं; और अगर वचन तीखा भी था, तो सत्य था।

हम सत्य भी बोलते हैं तभी, तो जब हिंसा उससे हो सकती है। सत्य भी हम तभी बोलते हैं, जब उसका उपयोग हम छुरी की तरह कर सकें; किसी को काट सकें, चोट पहुंचा सकें। हमारे सत्य भी असत्यों से बदतर होते हैं। लेकिन साधु की सदा कोशिश यह होगी कि वह जो भी बोल रहा है, जो भी कर रहा है...। वह क्यों कर रहा है; क्यों बोल रहा है? उसका मूल भीतर क्या है? किसी को मैं क्षुब्ध क्यों करना चाहता हूं? किसी को क्षुब्ध करने की वृत्ति क्यों है?

जब तक आप किसी को क्षुब्ध न कर सकें, तब तक आपको अपनी मालिकियत नहीं मालूम पड़ती। जिसको आप क्षुब्ध कर लेते हैं, उसके आप मालिक हो जाते हैं।

मनस्विद कहते हैं कि अगर हिटलर को बचपन में प्रेम मिला होता, तो शायद हिटलर पैदा नहीं होता। उसे कोई प्रेम नहीं मिला, तो उसने एक ही कला सीखी दूसरे पर मालिकियत की--वह थी हिंसा, घृणा, दूसरे को नष्ट करना।

जब आप किसी को नष्ट करते हैं तो आपको लगता है, आप मालिक हैं।

ध्यान रहे, दो तरह की मालिकियत अनुभव की जा सकती है। या तो आप कुछ सृजन करें, कुछ क्रिएट करें...। एक चित्रकार एक पेंटिंग बनाता है। पेंटिंग बना कर प्रसन्न होता है, क्योंकि उसने कुछ बनाया; और बनाने के माध्यम से वह ईश्वर का हिस्सेदार हो गया। किसी अर्थ में ईश्वर हो गया। ईश्वर ने बनाई होगी यह सारी दुनिया; उसने भी एक छोटी दुनिया बनाई है। एक मूर्तिकार एक मूर्ति बनाता है। एक संगीतज्ञ एक धुन खोजता है; एक लय बिठाता है। एक नर्तक एक नृत्य को जन्म देता है। वे प्रसन्न होते हैं; वे आनंदित होते हैं--उन्होंने कुछ बनाया। और जिसको वे बना लेते हैं, उसके मालिक हो जाते हैं।

वह जो क्रिएटर है, वह जो स्रष्टा है किसी चीज का, वह उसका मालिक है। यह एक उपाय है मालिक होने का। दूसरा उपाय यह है कि किसी चीज को आप तोड़ दें, मिटा दें, नष्ट कर दें--तब भी आप मालिक हो जाते हैं। न हुए ब्रह्मा, हो गए शिव--लेकिन ईश्वर के हिस्सेदार हो गए। कुछ मिटाया। मिटा सकते हैं आप।

और ध्यान रहे, बनाना बहुत कठिन है, मिटाना बहुत आसान है। एक जीवन को जन्म देना बहुत कठिन है। एक जीवन को नष्ट करने में क्या लगता है! हिटलर ने लाखों लोगों को मिटा दिया। जितने लोग मिटते गए, उसे लगता गया, वह कुछ है। ईश्वर होने का अनुभव उसे होने लगा होगा। अगर सारी दुनिया को मिटाने की ताकत उसके हाथ में आ जाती, जिसकी वह कोशिश कर रहा था, तो उसे लगता कि अब मेरे सिवा और कोई परमात्मा नहीं है। मैं मिटा सकता हूं।

धर्म और अधर्म इसी जगह से भिन्न होते हैं। अधर्म है मिटा कर मालिक बनने की कोशिश, और धर्म है सृजन करके मालिक बनने की कोशिश। दोनों मालिकियत हैं। लेकिन सृजन प्रेम है, विध्वंस हिंसा है। आप तलवार से ही मिटाते हैं, ऐसा नहीं है; एक छोटा सा शब्द भी किसी के प्राणों को मिटा सकता है। आंख का एक इशारा, आपके चलने का ढंग; किसी को तोड़ सकता है, नष्ट कर सकता है।

महावीर कहते हैं, साधु वह है जो वचन भी कठोर नहीं बोलता, इतना भी नहीं कि कोई जरा सा क्षुब्ध हो जाए। और जब भी कोई क्षुब्ध होता है, तब वह अनुभव करता है कि मैंने कुछ किया है, जिससे क्षोभ पैदा हुआ है। और वह अपने द्वारा पैदा किए क्षोभ को हर तरह से मिटाने की कोशिश करता है। ऐसा व्यक्ति अपने चारों तरफ फूल खिलाने लगता है। विनाश की शक्ति सृजन बननी शुरू हो जाती है।

बुद्ध के संबंध में कहा जाता है कि वे जहां से गुजरते, वहां वृक्षों में असमय फूल आ जाते। यह तो कहानी है, लेकिन बड़ी सूचक है। बुद्ध जैसा व्यक्ति, जिसकी सारी ऊर्जा विध्वंस से हट कर सृजन बन गई, उसका प्रतीक है यह। असमय भी वृक्षों में फूल आ जाएं, तो कुछ असंभव नहीं। इतना ही मतलब है। जहां भी यह व्यक्ति जाएगा, वहां कुछ खिलेगा बजाय मुरझाने के। इसके होने का ढंग ऐसा हो गया है कि चीजें नाचेंगी, हंसेंगी, प्रसन्न होंगी, प्रफुल्लित होंगी।

महावीर इसी को अहिंसा कहते हैं। आप हो सकता है मांसाहार न करें, पानी छान कर पीएं, रात भोजन न करें, आप सब तरह से हिंसा को भोजन से बचा लें; लेकिन तब हिंसा आपके दूसरे पहलुओं में प्रवेश कर जाए। आप कठोर वचन बोलने लगें; कटु वचन बोलने लगें; साधुओं के वचन देखें, अति कठोर मालूम होंगे। उनकी कठोरता भी हमें लगती है कि शायद उनकी अनासक्ति का प्रतीक है; शायद उनकी कटुता उनके सत्य होने का प्रतीक है। यह बात गलत है। इन्हीं कारणों से हमने एक कहावत बना रखी है कि सत्य कटु होता है। यह बात गलत है। क्योंकि जो सत्य कटु हो जाता है, वह कटु होने के कारण ही असत्य हो जाता है।

सत्य से मधुर और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन बोलने का हकदार वही है, जिसके भीतर माधुर्य का जन्म हो गया है; नहीं तो वह जो सत्य बोलेगा, वह जहर होगा। आप जहर से भरे हैं--आपके भीतर से सत्य निकलेगा, वह जहर बुझा हो जाएगा। आपसे सत्य भी निकल जाए, तो आपसे बच नहीं सकता। वह जहर से बुझा तीर हो जाएगा; और जहां जाएगा, वहीं अहित करेगा।

नीलेश ने तो कहीं व्यंग में कहा है कि असत्य भी मधुर हो, तो हितकर है उस सत्य की बजाय जो कटु है। यह बात समझ में आने जैसी है। मेरी अपनी धारणा यह है कि असत्य भी अगर पूर्ण माधुर्य से निकले, तो सत्य हो जाता है। और सत्य भी अगर कटुता से निकले, तो असत्य हो जाता है। आंतरिक माधुर्य ही कसौटी है सत्य और असत्य की। और कोई कसौटी नहीं है। आंतरिक माधुर्य उसे ही प्राप्त होता है, जो विध्वंस की सारी क्षमता से शून्य हो गया है। उसकी आत्मा से मधु बहने लगता है। उससे फिर जो भी निकले, वह सत्य है। उससे फिर जो भी निकले, वह प्रेम है। महावीर कहते हैं--

"जो कटु वचन--जिससे सुनने वाला क्षुब्ध हो--नहीं बोलता, "सब जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख भोगते हैं"--ऐसा जान कर जो दूसरों की निंद्य चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिंता करता है...।"

इस सूत्र को ठीक से समझ लेना चाहिए। क्योंकि महावीर की आधारभूत शिक्षाओं में यह एक है कि प्रत्येक व्यक्ति जो भी अनुभव कर रहा है, जो भी कर रहा है, वह उसकी अपनी आंतरिक कर्मों की शृंखला का हिस्सा है। आप अगर गाली देते हैं, तो यह गाली आपके अतीत से संबंधित है; जिसको आप गाली देते हैं, उससे संबंधित नहीं है। वह सिर्फ निमित्त है। अगर आप प्रेम करते हैं, तो यह भी आपके अतीत-अनुभवों की सारशृंखला

है। उससे इसका कोई संबंध नहीं है, जिसको आप प्रेम करते हैं। वह सिर्फ निमित्त है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है, और बाहर केवल निमित्त हैं।

जीवन की धारा भीतर से आती है; बाहर तो केवल अवसर है। लेकिन हम उलटा सोचते हैं। हम सोचते हैं: भीतर से क्या आता है, सब कुछ बाहर है; सब कुछ बाहर से हो रहा है। एक आदमी आपको गाली देता है, थोड़ा सोचें। आपका मिजाज खराब हो तो गाली बहुत गाली मालूम पड़ेगी। मिजाज अच्छा हो तो गाली बहुत छोटी गाली मालूम पड़ेगी। अगर आप सच में ही आनंदित हों, ध्यान में मग्न हों, तो गाली गाली मालूम ही नहीं पड़ेगी। और अगर आप नरक में बैठें हों, दुख और पीड़ा से भरे हों, तो गाली आपके लिए पूरे जीवन को बदलने का आधार हो जाएगी। हिंसा, हत्या में आप उतर जाएंगे।

गाली में क्या है। गाली सिर्फ निमित्त है। जो है, वह आपके भीतर है। जैसे हम कुएं में बाल्टी डालते हैं, कुआं सूखा हो तो बाल्टी खाली लौट आती है। वैसे ही गाली एक बाल्टी की तरह आप में जाती है। आप खाली हों तो खाली लौट आती है। आप माधुर्य से भरे हों तो गाली की बाल्टी भी माधुर्य ही लेकर लौटती है और आप नरक की अग्नि से भरे हों, तो लपटें उबलती हुई उस बाल्टी में बाहर आ जाती हैं। बाल्टी जो लेकर लौटती है, वह बाल्टी का नहीं है; जो लेकर लौटती है, वह आपका है।

महावीर कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अपने जगत में जी रहा है, जो उसके भीतर है। बाहर से मौके मिलते हैं, उन मौकों को मूल्य मत दो, ध्यान दो भीतर। और अगर कोई आदमी सुख भोग रहा है; कोई आदमी दुख भोग रहा है; कोई आदमी पाप कर रहा है; और कोई आदमी पुण्य कर रहा है, तो इससे परेशान मत हो जाओ। वे सभी लोग अपने-अपने कर्मों के अनुसार चल रहे हैं।

इसमें एक बात और बड़ी सोच लेने जैसी है। क्योंकि वह विचारणीय हो गई है इस सदी में--ईसाइयत के कारण। ईसाइयत ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि दूसरे को, जो दुखी है, उसकी सेवा करो। उसके दुख को मिटाओ। उसके दुख को कम करो। दूसरे का सुख बढ़ाओ। ऐसी सेवा की धारणा ही धर्म है।

ईसाइयत के प्रभाव में... राजा राममोहनराय, केशवचंद्र, विवेकानंद, गांधी, ये सारे लोग ईसाइयत के भारी प्रभाव में थे--कहना चाहिए, बहुत गहरे अर्थों में ईसाई थे। इन सारे लोगों ने कहा कि सेवा धर्म है। और इन सारे लोगों ने कहा कि अगर कोई दुखी है, तो उसके दुख को मिटाने की कोशिश करो। महावीर कहते हैं कि कोई दुखी है, तो वह अपने कारण से दुखी है। तुम उसका दुख मिटा नहीं सकते। तुम्हारे दुख मिटाने का कोई उपाय कारगर नहीं हो सकता।

इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम दुख मिटाने की कोशिश मत करो। यह बहुत सोचने जैसा सूक्ष्म बिंदु है। महावीर कहते हैं कि तुम दूसरे का दुख तो मिटा नहीं सकते--इसका यह मतलब नहीं है कि तुम दूसरे का दुख मिटाने की कोशिश मत करो। तुम अगर दूसरे का दुख मिटाने की कोशिश कर रहे हो, तो इससे तुम्हारा अपना दुख मिट सकता है। यह चेष्टा कि तुम दूसरे को सुखी करने का उपाय कर रहे हो, इससे कोई दूसरा सुखी नहीं हो सकता--लेकिन यह भाव कि दूसरा सुखी हो, तुम्हें सुख की तरफ ले जाएगा। और यह भाव ही कि दूसरा दुखी न हो, तुम्हारे अपने दुखों से तुम्हें छुटकारा दिलाएगा। दूसरे से इसका कोई संबंध नहीं है, संबंध तुमसे ही है। लेकिन बड़ी भूल हुई।

एक तरफ तो यह हुआ कि जैनों में एक संप्रदाय पैदा हुआ, तेरापंथ; जो कहता है, दूसरे के दुख को मिटाने की कोशिश ही मत करना, क्योंकि महावीर कहते हैं, वह अपना दुख भोग रहा है। इसलिए तेरापंथ ने बड़ी बेहूदी धारणाएं विकसित कीं, बेहूदी से बेहूदी, जो धर्म के इतिहास में पैदा हो सकती हैं। अगर कोई आदमी भूखा मर रहा है, तो तुम उसमें बाधा मत डालना। वह अपन कर्मों का फल भोग रहा है। कोई आदमी बीमार है; कोढ़ से सड़ रहा है, तुम सेवा में मत पड़ना। क्योंकि तुम क्या कर सकते हो! वह अपना कर्म-फल भोग रहा है।

बात बिल्कुल सच है। वह अपना कर्म-फल भोग रहा है। तुम क्या कर सकते हो! और यह भी संभावना है कि तुम उसके कर्म-फल के बीच में व्यवधान बन जाओ और उसको ठीक से कर्म-फल न भोगने दो; तो जो वह अभी भोग लेता, वह उसे कल भोगना पड़े जब तुम हट जाओगे। इसलिए तुम चुपचाप अपने रास्ते पर चलना। प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है, तुम बीच में बाधा मत डालना।

इसलिए तेरापंथ ने अहिंसा के नाम पर एक बड़ा हिंसक रुख पैदा किया। बात तो बिल्कुल तर्कयुक्त है कि अगर हर व्यक्ति अपने ही कर्म भोग रहा है, तो आप कौन हैं? और आप क्या कर सकते हैं? तो करने की फिजूल झंझट में क्यों पड़ते हैं? इतनी शक्ति और श्रम अपनी ही साधना में लगाएं; दूसरे की तरफ उन्मुख मत हों।

तो तेरापंथ में सेवा का कोई उपाय नहीं है। और सेवा करने वाला अज्ञानी है--पापी भी हो सकता है; क्योंकि दूसरे में दखलंदाजी करनी, दूसरे को बाधा डालनी एक तरह का पाप है।

महावीर के तर्क से यह बात निकली है। दूसरी तरफ ईसाइयत का तर्क है, जो कहती है दूसरे की सेवा करो और दूसरे को सुखी करने की कोशिश करो। तुम सुखी कर सकते हो। वह भी गलत है। आज तक दुनिया में कोई किसी को सुखी नहीं कर पाया। अक्सर तो यह भी हो जाता है कि सुखी करने की कोशिश में आप किसी को और दुखी कर देते हैं। और कोई किसी का दुख भी नहीं छीन सकता, क्योंकि दुख आते हैं भीतरी कारणों से। बाहर कोई उपाय नहीं है।

लेकिन ध्यान रहे, ईसाइयत की इस धारणा में एक खतरा और भी छिपा है। और वह यह कि अगर मुझे यह ख्याल आ जाए कि मैं अपने कर्मों से किसी को सुखी कर सकता हूं और किसी को दुखी कर सकता हूं, तो इसी का अनुसांगिक तर्क भी है कि दूसरे अपने कर्मों से मुझे सुखी और दुखी कर सकते हैं। तब सारी बात अस्त-व्यस्त हो जाएगी। क्योंकि अगर दूसरे मुझे सुखी और दुखी कर सकते हैं, तो मेरे मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। अगर मोक्ष में भी आप पहुंच जाएं और मुझे दुखी करने लगे, तो मैं क्या करूंगा? और मोक्ष में भी तो कुछ लोग होंगे ही, जो सेवा भी करना चाहेंगे। क्या करूंगा मैं?

महावीर का तर्क बहुत शुद्ध है। महावीर कहते हैं, दूसरा कुछ भी नहीं कर सकता, यह तुम्हारी मुक्ति का आधार है। तो ही आत्मा मुक्त हो सकती है, अगर दूसरा बिल्कुल असमर्थ है कुछ करने में। नहीं तो आत्मा के मुक्त होने का कोई उपाय नहीं। इसलिए महावीर ने ईश्वर को भी अलग हटा दिया अपनी धारणा से और कहा कि अगर ईश्वर है तो मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।

लोग सोचते हैं कि ईश्वर के बिना मुक्ति कैसे होगी! और महावीर कहते हैं कि अगर ईश्वर है तो मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह गड़बड़ कर सकता है। वह परम शक्तिशाली है। उसी ने तुम्हें बनाया, वह तुम्हें मिटा सकता है। वह तुम्हें गुलाम कर सकता है। वह तुम्हें मुक्त कर सकता है। उसकी प्रार्थना-पूजा से तुम मुक्त हो सकते हो, तो फिर मुक्ति का कोई अर्थ नहीं। जो मोक्ष प्रार्थना से मिल सकता है, वह मोक्ष नहीं है--हो नहीं सकता। क्योंकि कोई दूसरा जिसे दे रहा है, वह मेरी मुक्ति नहीं है। और जब दूसरा दे सकता है, तो दूसरा वापस भी ले सकता है।

इसलिए महावीर ने कहा, जब तक ईश्वर की धारणा है, तब तक जगत में मोक्ष का कोई उपाय नहीं है। इसलिए ईश्वर को अलग कर दिया बिल्कुल, और प्रत्येक व्यक्ति को आंतरिक रूप से नियंता घोषित किया कि तुम जो भी कर रहे हो, जो भी भोग रहे हो, जो भी पा रहे हो, नहीं पा रहे हो--तुम ही कारण हो।

व्यक्ति मूल कारण है अपने जीवन का, बाकी सब निमित्त हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं जैसा तेरापंथ ने लिया है। जिन्होंने तेरापंथ की धारणा विकसित की, वे जरूर वे ही लोग होंगे, जो महावीर को ठीक से नहीं समझ पा रहे हैं।

दूसरे की सेवा करने का भाव, दूसरे को सुख में ले जाएगा ऐसा नहीं है; लेकिन तुम्हारा श्रम तुम्हें सुख में ले जाएगा। दूसरे को दुखी करने से दूसरा दुखी होगा--ऐसा नहीं, लेकिन दूसरे को दुखी करने की वासना स्वयं का दुख निर्मित करती है।

कृष्ण ने गीता में कहा है कि आत्मा मरती नहीं। तो अर्जुन को कहा है कि तू मार बेफिकरी से, क्योंकि कोई आत्मा मरती नहीं। इसलिए अहिंसा का और हिंसा का कोई सवाल ही नहीं उठता। महावीर भी कहते हैं, आत्मा मरती नहीं; कोई मार सकता नहीं। पर महावीर हिंसा-अहिंसा का बड़ा सवाल उठाते हैं।

कृष्ण की दलील समझने जैसी है। कृष्ण कहते हैं, जब कोई मारा ही नहीं जा सकता, तो लोगों को यह समझाना कि मत मारो, मूढ़तापूर्ण है। जब मारने का कोई उपाय ही नहीं है, तो यह कहने का क्या अर्थ है कि मत मारो! और अगर कोई नहीं भी मार रहा है तो कौन सा गुण उपलब्ध कर रहा है। क्योंकि मार सकता कहां है? जब हम एक आदमी को काटते हैं, तो शरीर ही कटता है। वह मरा ही हुआ है। उसको मारने का कोई उपाय नहीं है। आत्मा कटती नहीं।

कृष्ण कहते हैं: न हन्यमाने शरीरे। काटो कितना ही, तो भी कटती नहीं। छेदो तो छिदती नहीं। जलाओ तो जलती नहीं। तर्क कृष्ण का बहुत साफ है कि जब कोई मारने से मरता ही नहीं, मारा नहीं जाता, तो अर्जुन, तू फिजूल की बकवास में क्यों पड़ा है कि लोग मर जाएंगे? यह अज्ञान है।

बड़ा कठिन है। महावीर भी जानते हैं कि आत्मा मरती नहीं; आत्मा मिट नहीं सकती। सच तो यह है कि कृष्ण से भी ज्यादा महावीर का मानना है कि आत्मा को मिटाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि कृष्ण तो कहते हैं, परमात्मा की लीला है कि वह बनाता है और चाहे तो मिटा सकता है। महावीर के लिए तो कोई मिटाने वाला भी नहीं है। परमात्मा भी नहीं है। आदमी की तो सामर्थ्य नहीं है।

आत्मा को न कोई पैदा करता है, और न कोई मिटा सकता है। आत्मा शाश्वत है; अमृतत्व उसका गुण है। फिर भी महावीर कहते हैं--हिंसा और अहिंसा। तो समझ लें इस संदर्भ में।

महावीर कहते हैं कि जब तुम हिंसा करते हो, तो तुम दूसरे को नहीं मारते, लेकिन हिंसा के भाव से खुद के लिए दुख पैदा करते हो। तुम मारने की धारणा बनाते हो, उस धारणा से ही तुम पीड़ित होते हो। दूसरे के मरने से पाप नहीं होगा। क्योंकि दूसरा मर नहीं सकता। लेकिन तुमने पाप करना चाहा। तुम पाप के विचार से भरो। तुमने दूसरे को नुकसान पहुंचाना चाहा; उसका जीवन छीन लेना चाहा। तुम नहीं छीन पाते। यह तुम्हारे हाथ की बात नहीं है। यह जगत का नियम है। लेकिन तुमने अपनी पूरी कोशिश की। उस कोशिश, उस विचार, उस भावना, उस वासना, उस दुष्ट वासना के कारण तुम अपने लिए दुख पैदा करोगे। हिंसा दुख लाएगी--दूसरे के लिए मृत्यु नहीं, तुम्हारे लिए दुख। अहिंसा दूसरे को बचाएगी नहीं, क्योंकि दूसरा बचा हुआ है अपने आंतरिक जीवन से। कोई उसे बचा नहीं सकता। लेकिन दूसरे को बचाने की धारणा तुम्हारे जीवन में सुख के फूल खिलाएगी।

महावीर कहते हैं, तुम जो भी करते हो, वह तुम्हीं को हो रहा है; और निरंतर तुम्हीं को होता चला जाता है। तो दूसरे कैसे हैं--अच्छे या बुरे--इसका विचार नहीं करना। अच्छे हैं तो अपने कारण; बुरे हैं तो अपने कारण। यह उनकी निजी बात है। इससे दूसरों को कोई लेना-देना नहीं है। वे नरक जाएंगे कि स्वर्ग जाएंगे, यह उनकी चिंता है। इसमें दूसरों को चिंता लेने का कोई कारण नहीं है।

जो दूसरों की चिंता छोड़ कर अपने सुधार की चिंता करता है।

हम सारे लोग बड़े सुधारक हैं। हम जैसा सुधारक खोजना मुश्किल है। हम सारे जगत को भी सुधारने में लगे रहते हैं--सिर्फ अपने को छोड़ कर। और अपने को सुधारने का कोई सवाल ही नहीं है। क्योंकि वहां हम सोचते हैं, सुधरे ही हुए हैं। सारा जगत बिगड़ा हुआ मालूम पड़ता है। इसलिए सुधारो। इसलिए सुधार करने वाले लोग जितना मिस्त्रीफ पैदा करते हैं दुनिया में, कोई दूसरा पैदा नहीं करता। ये असली उपद्रवी हैं। ये किसी को चैन से नहीं रहने देते। ये सभी को बदलने में लगे हैं। ये हर हालत में बदल के रहेंगे। इनका रस सचमुच बदलने में नहीं है कि कोई अच्छी दुनिया पैदा हो। इनका रस बदलने की प्रक्रिया में है। क्योंकि जब ये बदलते हैं किसी को, तो तोड़ते हैं; मिटाते हैं; नया करते हैं। दूसरा खिलौना हो जाता है, ये मालिक हो जाते हैं।

असल में दूसरों को बदलने के लिए जो बहुत आतुर हैं, वे हिंसक हैं। जो अपने को बदलने को आतुर हैं, वे साधु हैं। और बड़े मजे की बात यह है कि जो अपने को बदल लेता है, उसके पास बहुत से लोग बदलना शुरू हो जाते हैं। और जो दूसरे को बदलना चाहता है, उसके पास कोई नहीं बदलता। साधुओं के आश्रम में जाकर देखें, जहां बदलने की भयंकर चेष्टा चलती है। वहां कोई बदलता दिखाई नहीं पड़ता।

गांधी जी अपने आश्रम में ब्रह्मचर्य को बड़े जोर से थोपते थे। लेकिन रोज उपद्रव खड़ा होता था। ब्रह्मचर्य कभी फलित नहीं हुआ। खुद उनके निजी, प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलाल उलझ गए। ब्रह्मचर्य मुश्किल था। और गांधी की चेष्टा भारी थी। जितने जोर से थोपा जा सके ब्रह्मचर्य, उतना थोप देना। लेकिन वह हुआ नहीं। और गांधी ने जो-जो थोपना चाहा अपने शिष्यों पर, शिष्य ठीक उसके विपरीत चले गए। इधर पिछले तीस साल का इतिहास कहता है। जो-जो उन्होंने चाहा था, शिष्य उसके उलटे गए--सादगी चाही थी, तो भोग पैदा हुआ; चाहा था दीन-दरिद्र, संन्यस्त की तरह रहें, वह नहीं को सका। ब्रह्मचर्य का तो कोई सवाल ही नहीं है।

कहां भूल है?

दूसरे को बदला नहीं जा सकता। असल में जब हम बदलने की बहुत कोशिश करते हैं, तो दूसरे के अहंकार में प्रतिरोध पैदा होता है, रेसिस्टेंस पैदा होता है।

मनस्विद कहते हैं कि दुनिया में अच्छे बच्चे पैदा हो सकते हैं, अगर मां-बाप अच्छा बनाने की थोड़ी कोशिश कम करें। वे इतना अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं, कि बच्चों को बिगाड़ देते हैं। इसलिए अच्छे बाप का अच्छा बेटा पाना बड़ा मुश्किल है--कभी बुरे बाप का अच्छा बेटा हो भी जाए।

एक शराबी का बेटा साधु हो जाए, यह हो सकता है। साधु का बेटा शराबी न हो, यह जरा मुश्किल है। बहुत मुश्किल है। खुद महात्मा गांधी का बेटा, हरिदास, ठीक उलटा गया। और हरिदास कीमती आदमी था; और कीमती था इसलिए उलटा गया। बाकी मिट्टी के थे। मिट्टी के पुतलों को आप कैसा भी बना दें, ढाल दें, वे कुछ इनकार न करेंगे। लेकिन जिंदगी इनकार करेगी; लड़ेगी, क्योंकि जिंदगी का लक्षण प्रतिरोध है।

हरिदास ने इनकार किया। तो हरिदास मुसलमान हो गए; शराब पीने लगे। अपना नाम उन्होंने रख लिया, अब्दुल्ला गांधी। वह गांधी के विपरीत जा रहा है। और जाने का कारण गांधी की चेष्टा में है। गांधी की पूरी चेष्टा है। गांधी कहते हैं, हिंदू-मुसलमान सब एक हैं। तो हरिदास हो गया मुसलमान। और जब उसे पता चला कि गांधी पीड़ित हुए, तो उसने कहा कि पीड़ित होने की क्या बात है? हिंदू-मुसलमान सब एक, तो पीड़ित होने की क्या बात है? और हरिदास शराब पीने लगा। और गांधी पीड़ित हुए। बाप पीड़ित होगा ही। और बाप की बड़ी इच्छा थी कि अच्छा बना ले। भली इच्छा है। इच्छा में कुछ बुराई भी नहीं है। लेकिन विज्ञान का बोध नहीं है।

तो हरिदास ने कहा: जब प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, तो मैं क्या करता हूं, क्या नहीं करता हूं, यह मेरी बात है। इससे किसी को क्या लेना-देना? और इतनी आसक्ति क्यों रखते हैं मुझ पर वे कि मेरा बेटा है? यह भी ममत्व है। मेरा बेटा बुरा न हो जाए, इसमें भी अहंकार है। मेरा बेटा अच्छा हो, इसमें भी अहंकार है।

हरिदास लड़ रहा है एक भले बाप से। सभी हरिदास लड़ते हैं। भले बाप खतरनाक होते हैं। क्योंकि वे भला करने की इतनी चेष्टा करते हैं कि प्रतिरोध पैदा कर देते हैं।

महावीर कहते हैं, साधु दूसरे को बदलने की चिंता में नहीं पड़ता। इसका यह मतलब नहीं कि उसकी शुभाकांक्षा नहीं है। लेकिन महावीर गणित को जानते हैं जीवन के। शुभाकांक्षा तभी कारगर हो सकती है, जब आक्रमक न हो। और जब मैं दूसरे को बदलना चाहता हूं, तो मैं आक्रमक हूं; हिंसक हूं। आखिर दूसरा दूसरा है। उसकी अपनी निजी जीवन की धारा है। अगर मुझे कुछ ठीक लगता है तो वैसा मैं हो जाऊं। अगर मेरे होने से वह आंदोलित और प्रभावित हो तो ठीक, और न हो तो मेरे वश के बाहर है। फिर मैं हूं कौन? फिर मैं कौन हूं कि किसी को ठीक करने का जिम्मा अपने सिर लूं। यह अहंकार ही हो सकता है, अच्छे आदमी का अहंकार--कि

दूसरे को भी मैं मेरे जैसा बना लूं। लेकिन क्यों? मेरी अपनी आत्मा है, उसकी अपनी आत्मा है। और दोनों की अपनी परम सत्ता है। महावीर कहते हैं कि जो अपने को बदलने की फिकर करता है; जो दूसरों की निंदा चेष्टा भी हो, उसे लगता भी हो कि बिल्कुल गलत हो रहा है, तो भी उसकी निंदा में नहीं पड़ता।

एक ही उपाय है साधु के पास--अनाक्रमक जीवन। उसके जीवन की ज्योति ऐसी होनी चाहिए कि कोई प्रभावित हो, तो हो जाए। और कोई पतंगे होंगे ज्योति के तो चले आएंगे ज्योति की तरफ। और कोई ज्योति फिरे पतंगों के पीछे उनको पकड़ने को, तो पतंगे कोई आते भी होंगे, फिर दुबारा नहीं आएंगे। क्योंकि ऐसी ज्योति भरोसे की नहीं है, जो पतंगों का पीछा कर रही है कि आओ। ज्योति का मतलब ही यह है कि वह है तो पतंगे आ जाएंगे।

ज्योति की तरह अनाक्रमक, अनाग्रह से जीता हुआ, अपने को बदलता हुआ, अपने को रूपांतरित करता हुआ व्यक्ति साधु है।

"जो अपने आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नहीं बनाता, वही भिक्षु है।"

यह शर्त ध्यान रखना जरूरी है, क्योंकि गर्व सब तरह से उद्धत होना चाहता है; कई उपाय खोजता है। मैं त्यागी हूं; मैं भोगी नहीं हूं; मैं ध्यानी हूं; मैं समाधिस्थ हो गया--ये सारे जाल हैं जो अहंकार भीतर की तरफ फैलाता है। बाहर की संपदा छोड़ दी, तो अब भीतर की संपदा पैदा हो रही है। बाहर के खजाने छोड़ दिए, तो अब भीतर के खजाने पैदा हो रहे हैं।

साधकों के पास जाएं, तो वे सब फिकर रखते हैं कि कौन किस चक्र तक जाग गया। किसकी कुंडलिनी कितनी जाग्रत हुई--सहस्रार तक पहुंची या नहीं पहुंची। वे सब हिसाब रखते हैं। एक दूसरे से सर्टिफिकेट मांग रहे हैं कि मैं कहां तक पहुंच गया। सिद्ध हो गया कि नहीं हो गया? क्या प्रयोजन है?

अस्मिता को निर्मित करना ही असाधुता है। वह किस कारण निर्मित होती है, यह सवाल नहीं है। उसे निर्मित होने देना कि मैं कुछ हूं, दूसरों से खास, दूसरों से ऊपर... ।

बस, मेरा खास होना ही रोग है। और यह रोग सूक्ष्म है। यह दिखाई नहीं पड़ता, और बढ़ता चला जाता है। और जैसे-जैसे दूसरे लोग आदर देने लगते हैं, वैसे-वैसे पक्का होने लगता है कि बात ठीक ही है, तभी तो लोग आदर दे रहे हैं। लोग चरणों पर सिर रख रहे हैं--कुछ हो गया है तभी तो। जरूरी नहीं है। कई लोगों की जरूरत है कि वे चरणों पर सिर रखे। उन्हें बिना रखे चैन नहीं है। कुछ लोग हैं जिन्हें झुकने में रस है। उन्हें बिना झुके आनंद नहीं आता। आप इसकी फिकर मत करें कि वे आपके लिए झुक रहे हैं। आप यही जानें कि उनको झुकने में कुछ रस होगा; कोई व्यायाम होगा। वे अपने लिए झुक रहे हैं। यह उनकी अपनी निजी बात है, मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है।

लेकिन वहम पैदा होता है। वहम पैदा हो जाता है, क्योंकि चारों तरफ हजार तरह की बीमारियों से भरे हुए लोग हैं। वे साधु को उद्धत कर देते हैं। और एक दफा अहंकार निर्मित होने लगे, तो फिर उसकी कोई सीमा नहीं है। फिर बढ़ता चला जाता है। जैसे-जैसे भरोसा बढ़ने लगता है कि लोग झुक रहे हैं, लोग आदर दे रहे हैं, जरूर मैं कुछ हूं, वैसे-वैसे कठिनाई शुरू हो जाती है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्री के साथ ट्रेन में बैठा हुआ था। कुछ बात चलाने के सिलसिले में उसने पूछा कि जरा आपका हाथ देखूं। आदमी उत्सुक हो गया।

हाथ दिखाने को सभी उत्सुक हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो भविष्य में उत्सुक न हो। भविष्य में वही उत्सुक नहीं होगा, जिसकी कोई वासना नहीं है। जिसकी वासना है, वह भविष्य में उत्सुक होगा ही। इसलिए हाथ देखने से सुविधापूर्ण मित्रता का उपाय और नहीं है।

मुल्ला ने हाथ गौर से देखा और उस आदमी का चेहरा देखा, और कहा कि मालूम होता है, यू आर ए बैचलर--आप ब्रह्मचारी हैं।

वह आदमी चकित हुआ। उसने कहा: अमेजिंग! यह सच है कि मैं अभी तक ब्रह्मचारी हूं। तुमने कैसे पता लगाया?"

नसरुद्दीन की हिम्मत बढ़ी। उसने कहा कि पता? मनुष्य स्वभाव का मुझे अनुभव है। और यहीं तक नहीं, आइ कैन सी इवन फरदर, योर फादर वा.ज आल्सो ए बैचलर--यह कुछ नहीं है, आगे तक देख सकता हूं कि तुम्हारा बाप भी ब्रह्मचारी था।

जरा सी हिम्मत बढ़ी कि आदमी ने उपद्रव शुरू किया। और चारों तरफ लोग हैं, जो आपकी हिम्मत बढ़ाने को तैयार हैं। आप उनसे सावधान रहना। महावीर यही कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं: साधु, सावधान रहना दूसरे लोगों से, क्योंकि वे अपनी बीमारियों से पीड़ित हैं।

कोई झुकना चाहता है। ढेर लोग हैं, जो इनफिरियारिटी काम्प्लेक्स से पीड़ित हैं--जिनको हीनता की ग्रंथि है। जो सीधे खड़े हो ही नहीं सकते। जिनको सीधा खड़ा होने में डर लगता है। तो उन्होंने एक डिफेंस मेजर, एक सुरक्षा का उपाय बना लिया है--झुको। झुकने से दूसरा आदमी आक्रमण नहीं करता। क्योंकि जैसे ही कोई आदमी झुक गया, दूसरे को आक्रमण करने का मजा ही चला गया।

तो कुछ लोग झुके हुए ही जी रहे हैं। उनका झुका हुआ होना उनकी बीमारी है। साधु-संन्यासियों को वे मिल जाते हैं। जगह-जगह वे मौजूद हैं। एकदम झुक जाते हैं। फिर कुछ लोगों में अपराध का भाव है, गिल्ट काम्प्लेक्स है, जो अपने को अपराधी मानते हैं। अकारण भी नहीं, जीवन में बहुत अपराध हैं। आदमी अपराधों से भरा हुआ है।

तो अपराधी आदमी हमेशा अपने को झुकाना चाहता है। झुकना एक तरह का कनफेशन है, एक तरह की स्वीकृति है कि मैं अपराधी हूं; पापी हूं। लेकिन दूसरा आदमी इससे गौरवान्वित समझता है। वह समझता है कि जो आदमी झुक रहा है, वह यह कह रहा है कि तुम ऊपर हो, इसलिए मैं झुक रहा हूं।

यह आदमी झाड़ के नीचे झुकता है। यह आदमी पत्थर के सामने झुकता है। यह आदमी नदी के सामने झुकता है। इसका भरोसा मत करना। इसे कुछ प्रयोजन आपसे नहीं है। यह झुकने के बहाने, निमित्त खोजता है। यह किसी को आदर देना चाहता है, क्योंकि यह अपने को आदर नहीं दे पाता। और आदर की एक भूख रह जाती है। किसी को सम्मान देना चाहता है, क्योंकि अपने प्रति सम्मानित नहीं है।

साधु अपना त्याग, अपनी साधना, तप, इनके कारण उद्धत न हो जाए; अहंकार पोषित न करे; विनम्र बना रहे। विनम्र का मतलब, ना-कुछ बना रहे। कुछ भी उसके चारों तरफ होता रहे, वह कभी भी अपने को किसी से श्रेष्ठता की स्थिति में न रखे।

"जो जाति का, रूप का, लाभ का, श्रुत (पांडित्य)का अभिमान नहीं करता; जो सभी प्रकार के अभिमानों का परित्याग कर केवल धर्म में, ध्यान में रत रहता है, वही भिक्षु है।"

"जो महामुनि सद्धर्म का उपदेश करता है; जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को भी धर्म में स्थित करता है; जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकल कर सदा के लिए कुशील लिंग (निन्द्यवेश)को छोड़ देता है; जो किसी के साथ हंसी-ठट्टा नहीं करता, वही भिक्षु है।"

यहां कुछ बड़ी कीमती और सूक्ष्म बातें हैं। जो व्यक्ति अहंकार से भरा है, वह ध्यान न कर पाएगा। उसकी चिंतना सदा अहंकार के आस-पास ही घूमती रहेगी। वह सोचेगा और सिंहासनों के लिए, और पदों के लिए, और प्रतिष्ठा के लिए। उसका चित्त अहंकार की ही बढ़ती... अहंकार की ही सीढ़ियां गिनने में लगा रहेगा। ध्यान में तो वही व्यक्ति प्रविष्ट हो सकता है, जिसने अहंकार की सीढ़ियां तोड़ दी हैं; जिसको अब अहंकार की यात्रा नहीं है; जिसका अहंकार का पथ बंद हो गया, और जिसने कहा, इस ओर जाना नहीं है।

अहंकार में जाने का अर्थ है: बाहर जाना। क्योंकि अहंकार की तृप्ति दूसरे कर सकते हैं।

ध्यान रहे, अगर आप जंगल में अकेले हैं, तो अहंकार की तृप्ति नहीं हो सकती। अहंकार की तृप्ति के लिए दूसरा चाहिए। इसलिए अहंकार बंधन है। क्योंकि दूसरे के बिना हो ही नहीं सकता। अहंकार गुलामी है, क्योंकि दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है--दूसरे की आंख, दूसरे का इशारा, दूसरे का ढंग, दूसरे की बात। इसलिए साधु चिंतित रहता है--जिसको हम साधु कहते हैं। महावीर उसे साधु नहीं कहते। जिसको हम साधु कहते हैं, वह चिंतित रहता है कि आपको उसकी किसी बात में गलती तो नहीं लग रही है, कुछ पता तो नहीं चल रहा है; आप ऐसा तो नहीं सोचेंगे, वैसा तो नहीं सोचेंगे।

एक तेरापंथी साधु मेरे पास ध्यान करने आए। तो मैंने उनसे कहा कि श्वास काफी तेज लेनी होगी, आप यह मुंह-पट्टी निकाल कर ध्यान करें। तो उन्होंने कहा: निकाल तो लूंगा लेकिन आप किसी को बताना मत। मुंह-पट्टी तो उन्होंने मजे से निकाल दी। उन्हें कोई अड़चन भी नहीं हुई निकालने में। खुद भी अड़चन हो, तो मेरी समझ में आती है बात। उन्होंने कहा: मेरी निजी अनुभूति यह है कि मुंह-पट्टी निकालनी मुझे सहायता दे रही है, लेकिन चिंता सिर्फ इतनी है कि किसी को पता न चले।

किसी को पता न चले, यह असाधु की चिंता है। साधु को दूसरे से प्रयोजन नहीं है। दूसरा निंदा ही करेगा। दूसरा सम्मान नहीं देगा। दूसरा सिर नहीं झुकाएगा। पर उसे झुकाने की जरूरत ही कहां है? प्रयोजन ही नहीं है। साधु की चिंता नहीं है कि दूसरा क्या कहेगा। पब्लिक ओपिनियन असाधु की चिंता है। राजनैतिक नेता चिंता करे कि दूसरे क्या कहेंगे--समझ में आता है। क्योंकि सारी जिंदगी दूसरे पर निर्भर है; उसके वोट पर सारी आत्मा टिकी है। लेकिन साधु को दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन हम देखते हैं, जिसे हम साधु कहते हैं, उसे भी दूसरे से प्रयोजन है। वह भी राजनीति का ही हिस्सा है। धर्म से उसका कोई लेना-देना नहीं रहा है।

महावीर कहते हैं, जो अभिमान, अहंकार, दूसरों की धारणा को छोड़ देता है, वही ध्यान की तरफ लीन हो सकता है। क्योंकि अहंकार ले जाता है बाहर, दूसरे के पास; ध्यान ले जाता है भीतर, अपने पास। साधु वही है, जो ध्यान में लीन है। असाधु वही है, जो अभिमान में लीन है। ध्यान और अभिमान विपरीत आयाम हैं।

"जो महामुनि आर्यपद का उपदेश करता है, सद्धर्म का उपदेश करता है... ।"

और महावीर सद्धर्म किसे कहते हैं? महावीर सद्धर्म उसे कहते हैं, जो स्वयं अनुभूत है। अन्यथा पांडित्य है। अन्यथा उधार है, बासा है।

सत्य बासा नहीं हो सकता। सत्य उधार नहीं हो सकता। और अगर उधार है, तो सत्य नहीं होगा। आप गीता कंठस्थ कर ले सकते हैं, लेकिन आप गीता को कंठस्थ करके जो लोगों को उपदेश देंगे, वह सद्धर्म नहीं होगा--जब तक आप कृष्ण न हो जाएं। जब तक गीता आपसे सहज-स्फूर्त न होने लगे, तब सद्धर्म होगा। सदगुरु जहां नहीं है, वहां सद्धर्म नहीं हो सकता।

तो साधु का लक्षण है कि उधार को न समझाए; बासे को न समझाए; पिटे-पिटाए को न समझाए; कचरे को न समझाए। वह कचरा कभी बहुमूल्य रहा होगा--कभी, जब पहली दफे जन्मा था। लेकिन हमारी हालतें ऐसी हैं...

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन हर सर्दियों में वहीं कोट पहनता है। ऐसा लोग पचास साल से देख रहे हैं। वह कोट इतना गंदा गया है, उससे ऐसी बास आती है। थैगड़े निकल गए हैं। बिल्कुल खंडहर है कोट के नाम पर। आखिर एक दिन एक मित्र ने कहा कि नसरुद्दीन, तुम्हारे बाप को भी हमने देखा है। क्या शानदार आदमी थे! क्या कपड़े पहनते थे! दूर-दूर से कपड़े मंगवाते थे! और तुम यह कोट ही पहन रहे हो?

नसरुद्दीन ने कहा कि लो, यह वही कोट तो है जो मेरे बाप पहनते थे!

महावीर जब कुछ कहते हैं तो वह जीवित है। जब जैन पंडित दोहराता है, तो मुर्दा है--वही कोट है, माना।

महावीर कहते हैं, सद्धर्म का उपदेश करता है साधु। सद्धर्म से अर्थ है--जिसे जाना हो, जीया हो; जो जीवंत हो गया हो; जो सत्य बन गया स्वयं के लिए। जो स्वयं के लिए सत्य नहीं है, वह दूसरे के लिए सत्य कैसे हो सकता है? जो मेरे लिए बासा है, वह आपके लिए और भी बासा हो गया। एक हाथ और चल गया। लोग दूसरे के जूते में पैर डालना पसंद नहीं करते! उधार जूता कौन पहनना पसंद करेगा? लेकिन लोग दूसरे की आत्माएं पहन लेते हैं। जूते तक से डरते हैं, लेकिन आत्माएं पहन लेने में उन्हें कठिनाई नहीं होती।

साधु नहीं पहनेगा। साधु खोज करेगा। और निश्चित ही जब कोई अपने भीतर धर्म की लकीर की खोज कर लेता है, वह वही होगी जो महावीर की है, बुद्ध की है, कृष्ण की है। उसमें कोई भेद नहीं होने वाला है। लेकिन वह खोज अपनी होनी चाहिए।

हम सब ऐसे हैं, जैसे छोटे बच्चे हों। उनकी गणित की किताब होती है, पीछे उत्तर लिखे होते हैं--जल्दी से किताब उलटा कर पीछे देख लेते हैं। उत्तर तो हाथ में आ जाता है, लेकिन विधि हाथ में नहीं आने से उत्तर का क्या मूल्य! और बच्चे उत्तर के हिसाब से विधि भी बना कर लिख देते हैं। मगर वह हमेशा गलत होती है--होगी ही। विधि की खोज जरूरी है, उत्तर तो अपने आप आ जाता है।

सद्धर्म का अर्थ है: जिसने विधिपूर्वक स्वयं की साधना से जाना है; जो उसका ही उपदेश करता है, जो उसने जाना है।

ध्यान रहे, जगत में अधर्म कम हो जाए, अगर वे लोग उपदेश करना बंद कर दें जिन्होंने स्वयं नहीं जाना है। उनके कारण बड़ा उपद्रव है। दुनिया में अधर्म अधार्मिक लोगों के कारण नहीं है, मरे-मराए धार्मिक लोगों के कारण है। जिनके पास कोई जीवन की ज्योति नहीं है; जो भीतर अंधेरे से भरे हैं और जिनकी चर्चा में प्रकाश के शब्द तैरते रहते हैं; जिनके भीतर मृत्यु है और अमृत की बात करते हैं, उनसे अधर्म चलता है--अधार्मिक लोगों से नहीं चलता, झूठे धार्मिक लोगों से चलता है।

जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को धर्म में स्थित करता है--वह शर्त है, "जो घर-गृहस्थी के प्रपंच से निकल कर सदा के लिए कुशील लिंग को छोड़ देता है..." यह कुशील लिंग महावीर की समझने जैसी बात है। महावीर कहते हैं कि तुम जो भी पहनते हो वेश-भूषा, वह अकारण नहीं है। तुम्हारा प्रयोजन है; भीतर वासना है उससे।

एक वेश्या निकलती है सड़क पर, उसके कपड़े आमंत्रण देते हुए हैं। वह अपने शरीर को बेचने निकली है; शरीर को ढांकती नहीं कपड़ों से, उघाड़ती है। उसके कपड़े ढांकने का काम नहीं करते, प्रकट करने का काम करते हैं; शरीर को उछालते हैं। वेश्या वैसे चले, समझ में आता है। लेकिन एक स्त्री जो कहती है, मैं अपने पति के लिए ही हूं और सिवा मेरे पति के मेरे मन में कोई भी नहीं, वह भी वेश्या की तरह शरीर को उभार कर सड़क पर चलती है, तो समझने में अड़चन मालूम होती है।

क्योंकि वेश्या बाजार में खड़ी है, उसे ग्राहक को आमंत्रित करना है। यह गृहिणी क्यों बाजार में वेश्या की तरह खड़ी है? कहीं अनजाने में, अचेतन में यह भी वेश्या है। इसका पति के साथ, एक के साथ संबंध ऊपरी है; ऊपर-ऊपर है; चेतन में है, अचेतन में नहीं है अचेतन में ये अभी भी दूसरे पुरुषों में उत्सुक है। दूसरे पुरुष आकर्षित हों तो इसे अच्छा लगता है। इसकी चाल तेज हो जाती है। कोई इसमें आकर्षित न हो तो यह धीमी हो जाती है। दूसरों का निमंत्रण इसके भीतर कहीं छिपा है।

महावीर कहते हैं, हम जो भी पहनते हैं, जिस ढंग से उठते-बैठते हैं, उस सब में हमारी वासना भीतर काम करती है। तो महावीर उस वेश को कुशील लिंग कहते हैं। जिससे शील पैदा न होता हो।

तो वस्त्र भी ऐसे हों, जो न तो खुद में वासना जगाते हों और न दूसरे में वासना जगाते हों। उठना-बैठना भी ऐसा हो, जो शरीर को उभारता न हो; आत्मा को प्रगट करता हो। लेकिन वासना से भरा हुआ चित्त जानता भी नहीं--अनजाने सब चलता है।

फ्रायड ने काफी विश्लेषण किया है। फ्रायड तो कहता है, हमारी कारें, लंबी कारें; फैलिक हैं। जननेंद्रिय के प्रतीक हैं--कि जब कोई लंबी कार, जो जननेंद्रिय की तरह लंबी है, उसमें तेजी से चलता है, तो वह वही आनंद अनुभव करता है, जो पुरुष स्त्री से संभोग में करता है।

यह बड़े मजे की बात है कि नपुंसक लोग गाड़ियां बड़ी तेजी से चलाना पसंद करते हैं। फ्रायड के जीवन भर के अनुभवों का सार यह है कि चूंकि नपुंसक के पास अपनी कामेंद्रिय नहीं है, वह किसी प्रतीक कामेंद्रिय के साथ जीना शुरू कर देता है। तो पश्चिम में कारें इतनी ज्यादा महत्वपूर्ण होती चली जाती हैं कि आदमी अपनी स्त्री की उतनी फिकर नहीं करता, जितनी अपनी कार की देखभाल करता है। एक दफा स्त्री खो भी जाए, तो दूसरी पा लेना बहुत आसान मालूम होता है। कार से मनुष्य का ज्यादा निजी संबंध हो गया है। पशुओं से संबंध हो जाते हैं, वस्तुओं से संबंध हो जाते हैं। लेकिन हमारी वासना हमारी हर चीज में चलती है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनसचिकित्सक के पास गया है, बेचैन है। और चिकित्सक पूछता है, तुम्हारी परेशानी क्या है? नसरुद्दीन कहता है कि क्षमा करें, आप बुरा तो नहीं मानेंगे? और मेरी बहुत निंदा तो नहीं करेंगे? मैं एक घोड़े के प्रेम में पड़ गया हूं। चिकित्सक ने कहा कि इसमें चिंता की कोई ऐसी बात नहीं है। बहुत लोग पशुओं से स्नेह-भाव रखते हैं। मैं खुद ही अपने कुत्ते को बहुत प्रेम करता हूं। नसरुद्दीन ने कहा: आप समझे नहीं, आई लव माई हार्स वेरी रोमांटिकली, जस्ट लाइक वन वुड लव ए वुमन--मैं ऐसे ही प्रेम करता हूं रोमांस से भरा हुआ, जैसे कोई किसी स्त्री को प्रेम करे।

चिकित्सक थोड़ा सा चिंतित हुआ। फिर भी उसने अपना प्रोफेशनल, व्यावसायिक थिर स्थिति बनाए रखी। और उसने कहा: यह जो घोड़ा है, नर है या मादा?

नसरुद्दीन ने कहा: फीमेल ऑफकोर्सी! वॉट डू यू थिंक, एम आई फूल? --क्या मैं कोई मूर्ख हूं? मादा ही है!

घोड़े को प्रेम करने में उसे मूर्खता नहीं मालूम पड़ रही है, लेकिन नर घोड़े को प्रेम करने में मूर्खता मालूम पड़ रही है।

गहरा अचेतन कामवासना को, सारे जगत को, दो हिस्सों में बांट देता है--स्त्री और पुरुष--सारे जगत को। जिन चीजों से आप प्रभावित होते हैं, उनमें कुछ स्त्रीण होता है अगर आप पुरुष हैं। अगर आप स्त्री हैं, तो उनमें कुछ पुरुष-तत्व होता है तब आप प्रभावित होते हैं। पुरुष और स्त्री की पसंदगियों में विपरीत मौजूद होता है। हर चीज में मौजूद होता है। इसलिए पुरुष एक जीप को उतना पसंद नहीं करता, जितना एक सुकोमल, ठीक से ढाली हुई कार को पसंद करता है। जीप पुरुष जैसी मालूम पड़ती है। ठीक से ढाली हुई गाड़ी, जिसके अंग गोल हैं, स्त्रीण मालूम पड़ती है।

महावीर कहते हैं कि हमारा प्रत्येक कृत्य हमारी वासनाओं से प्रभावित होता है। साधु वही है, जो सब भांति कुशील लिंग छोड़ देता है। जो सब भांति अपने व्यवहार--वस्त्र, उठने-बैठने, भोजन, अपनी पसंदगी, नापसंदगी--हर चीज में से कामवासना के तत्व को अलग कर लेता है; शील के तत्व को स्थापित करता है।

"जो किसी का हंसी-मजाक नहीं करता...।"

यह थोड़ा समझने जैसा है, क्योंकि फ्रायड ने इस पर बड़ा काम किया। फ्रायड की खोज यह है कि हम किसी का हंसी-मजाक तभी करते हैं, जब हम परोक्ष रूप से उसे नुकसान पहुंचाना चाहते हैं। हमारा हंसी-मजाक भी हमारी हिंसा का हिस्सा है। जो बात आप सीधे नहीं कर सकते किसी से, वह आप मजाक में कहते हैं। मजाक में क्षमा कर दी जाएगी। क्योंकि आप कह सकते हैं, "सिर्फ मजाक था, ऐसी कोई बात नहीं थी। सिर्फ मजाक कर रहा था" क्षम्य हो जाएगा। अगर सीधा आप कहते हैं तो अक्षम्य हो सकता है; उपद्रव हो सकता है।

हमारा मजाक भी अकारण नहीं होता, उसके पीछे मानसिक कारण होते हैं। कल ही मुझसे कोई पूछ रहा था कि यूरोप में यहूदियों के संबंध में सबसे ज्यादा मजाक प्रचलित हैं, जैसे भारत में सरदारों के संबंध में ज्यादा

प्रचलित हैं। उस मित्र ने मुझसे पूछा कि ऐसा क्यों है? यहूदियों के संबंध में इतने मजाक क्यों प्रचलित हैं यूरोप में? तो मैंने कहा, उसका कारण है। यहूदियों में कई क्षमताएं हैं। और उनसे ईर्ष्या पैदा होती है। और उस ईर्ष्या का बदला मजाक से लिया जाता है। यहूदी से अगर आप धन में प्रतिस्पर्धा करें--आप जीत न पाएंगे। अगर यहूदी से आप चालाकी में प्रतिस्पर्धा करें--आप हारेंगे।

पिछले सौ वर्षों में यहूदियों ने सर्वाधिक नोबल प्राइज जीते हैं। इस सदी के तीन बड़े मस्तिष्क, जो किसी भी सदी के बड़े मस्तिष्क हो सकते हैं--आइंस्टीन, फ्रायड और मार्क्स तीनों यहूदी हैं। यहूदी से ईर्ष्या पैदा होती है। ईर्ष्या का बदला लेने का सीधा कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। मजाक से बदला लिया जाता है।

मजाक एक बदला है। उससे यहूदियों के संबंध में कुछ पता नहीं चलता, जो मजाक कर रहे हैं, उनके संबंध में पता चलता है। सरदारों से भी कई लोगों को कई तरह की पीड़ा है। ज्यादा शक्तिशाली भी मालूम पड़ता है। ज्यादा पुरुषोचित भी मालूम पड़ता है। जीतने का उपाय भी कम दिखाई पड़ता है। गुजराती के संबंध में तो कोई मजाक करे! कोई कारण नहीं है। कारण होने चाहिए।

मजाक हमारा बदला है। वह हम उससे लेते हैं, जिसके पीछे कोई पीड़ा सरक रही है। और उस पीड़ा को सीधा हल करने का उपाय नहीं होता, तो हम व्यंग निर्मित करते हैं।

लेकिन साधु, महावीर कहते हैं किसी का हंसी-ठट्टा नहीं करे। उसका प्रयोजन क्या है? उसका प्रयोजन यह है कि उसकी किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं है; प्रतियोगिता नहीं है। इसलिए कोई छिपा हुआ बदला लेने का सवाल भी कहां है! यह महावीर की बड़ी अंतर्दृष्टि है, जो फ्रायड के पहले कोई भी ठीक से पकड़ नहीं पाया।

दुनिया के किसी भी धर्मशास्त्र ने, साधु हंसी-मजाक न करे किसी का, ऐसा नियम नहीं बनाया। सिर्फ महावीर ने कहा कि साधु किसी से... ।

जरूर महावीर को बड़ी गहरी प्रतीति है कि आदमी किसी के प्रति जब व्यंग करे तो, करने का कारण भीतर छिपी हुई कोई हिंसा होती है। आप अपनी ही देखना, जब आप किसी का मजाक करने लगें, तो आप क्या चाह रहे हैं भीतर? आप उसको किसी तरह नीचे दिखाना चाहते हैं। और नीचे दिखाने का कोई सीधा रास्ता नहीं पा रहे हैं, इसलिए उलटा रास्ता पकड़ रहे हैं।

साधु अपनी हंसी-मजाक कर सकता है; अपने प्रति व्यंग कर सकता है। महावीर ने जरूर बर्नार्ड शां को साधु कहा होता। बर्नार्ड शां एक दिन थिएटर में खड़ा है। उसका नाटक पूरा हुआ है। नाटक अदभुत था और सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर पूरा हाल तालियां बजाया और प्रशंसा के स्वर से स्वागत किया। तभी वह आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा: शां, योर प्ले स्टिंग्स--सड़ा हुआ है तुम्हारा नाटक, और बदबू आती है। एक क्षण को सन्नाटा हो गया। लोग भी चौंक गए कि अब क्या होगा।

शां ने कहा: आई कंप्लीटली एग्री विथ यू, बट वॉट वी टू कैन डू अगेन्स्ट दिस ग्रेट मैजार्टी--मैं राजी तुमसे पूरी तरह हूं, लेकिन हम दो करेंगे भी क्या इतने लोगों के खिलाफ?"

यह आदमी अपने पर हंस सकता है। अपने पर वही हंस सकता है, जो इतना आश्वस्त है अपने प्रति। दूसरे पर हंसने की चेष्टा, दूसरे को किसी तरह व्यंग के माध्यम से गिराने की चेष्टा, क्षुद्र मन का लक्षण है।

"इस भांति अपने को सदैव कल्याण-पथ पर खड़ा रखने वाला भिक्षु अपवित्र और क्षणभंगुर शरीर में निवास करना हमेशा के लिए छोड़ देता है तथा जन्म-मरण के बंधनों को सर्वथा काट कर अ-पुनरागमन-गति (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।"

जहां से वापस नहीं लौटा जा सकता--पाइंट ऑफ नो रिटर्न--उस स्थिति को उपलब्ध हो जाता है, जहां से वापस गिरना नहीं है। ऐसी जीवनचर्या में जीने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे शरीर से भिन्न होने लगता है। उसे स्पष्ट होने लगता है कि मैं शरीर नहीं हूं, और चैतन्य के साथ तादात्म्य जोड़ने लगता है। धीरे-धीरे दीये की खोल छूट जाती है, और सिर्फ ज्योति का स्मरण रह जाता है। इस ज्योति के साथ जब पूरी एकता सध जाती है, तो शरीर को पुनः ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। मुक्त ज्योति--शरीर से मुक्त ज्योति का नाम मुक्ति है।

महावीर कहते हैं, ऐसी ज्योतियां लोक के अंतिम स्तल पर शाश्वत आनंद में लीन रहती हैं--आखिरी सीमा लोक की। महावीर जगत को दो हिस्सों में बाटते हैं: लोक और अलोक। लोक--जिसे हम जानते हैं; जिसका विज्ञान अध्ययन कर सकता है। और अलोक--जिसमें प्रवेश का कोई उपाय नहीं है।

इस संबंध में भी महावीर बड़े अदभुत हैं। क्योंकि अभी-अभी वैज्ञानिकों ने खोज की है कि इस जगत के ठीक विपरीत एंटी-यूनिवर्स होना चाहिए। क्योंकि जगत में विपरीत के बिना कोई भी चीज नहीं हो सकती। तो हमारा यह जो जगत है, यह जो ब्रह्मांड है--सूर्य, चंद्र, तारों का--इससे ठीक विपरीत प्रक्रिया वाला कोई लोक होना चाहिए, जो इसके ठीक बगल में होगा। लेकिन जिसमें हम प्रवेश नहीं कर सकते। क्योंकि हमारे प्रवेश का सारा ढंग लोक में ही होगा।

महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले दो बातें कही हैं कि एक तो यह लोक है, जिसे हम जानते हैं; और एक अलोक है, जिसे हम कभी नहीं जान सकते। लेकिन उसका होना इसलिए जरूरी है कि जगत द्वंद्व के बिना नहीं होता। यह जो मुक्त आत्मा है, जो शरीर से छूट जाती है, यह लोक और अलोक के मध्य में, सीमांत पर ठहर जाती है। लोक से इसका छुटकारा हो जाता है। यह पदार्थ और शून्य के बीच में अशरीरी चैतन्य सदा आनंद में लीन रह जाता है।

यह जो आनंद की शाश्वत धारा है, यह उन्हें ही उपलब्ध होती है जो क्रमशः अपने को क्षुद्र शरीर से, क्षणभंगुर शरीर से मुक्त करने की चेष्टा में रत रहते हैं। ऐसी चेष्टा में लगा हुआ व्यक्ति साधु है; और ऐसी चेष्टा की पूर्णता को पा लिया व्यक्ति सिद्ध है।

आज इतना ही।

पहले ज्ञान, बाद में दया (मोक्षमार्ग-सूत्र: 1)

कहं चरे? कहं चिट्ठे? कहमासे? कहं सए?
 कहं भुंजन्तो भासन्तो पावं कम्मं न बंधइ?
 जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
 जयं भुंजन्तो भासन्तो पावं कम्मं न बन्धइ॥
 सव्वभूयप्पभूयस्य, सम्मं भयाइं पासओ।
 पिहियासवस्स दन्तस्य पावं कम्मं न बंधइ॥
 पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
 अन्नाणी किं कही, किं वा नाहिइ छेय-पावगं?
 सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइ पावगं।
 उभयं पि जाणइ सोच्चा,
 जं छेयं तं समायरे॥

भंते! साधक कैसे चले? कैसे खड़ा हो? कैसे बैठे? कैसे सोए? कैसे भोजन करे? कैसे बोले--जिससे की पाप-कर्म का बंधन न हो?

आयुष्मान! साधन विवेक से चले; विवेक से खड़ा हो; विवेक से बैठे; विवेक से सोए; विवेक से भोजन करे; और विवेक से ही बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बांध सकता।

जो सब चीजों को अपने समान समझता है, अपने-पराए, सबको समान दृष्टि से देखता है, जिससे सब आस्रवों का निरोध कर लिया है, जो चंचल इंद्रियों का दमन कर चुका है, उसे पाप-कर्म बंधन नहीं होता।

पहले ज्ञान है, बाद में दया। इसी क्रम पर समस्त त्यागी वर्ग अपनी संयम-यात्रा के लिए ठहरा हुआ है। भला, अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा? श्रेय तथा पाप को वह कैसे जान सकेगा?

सुन कर ही कल्याण का मार्ग जाना जाता है। सुन कर ही पाप मार्ग जाना जाता है। दोनों ही मार्ग सुन कर जाने जाते हैं। बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे और फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे।

पाप क्या है, पुण्य क्या है; कृत्य जो हम करते हैं, उसमें पाप है या कर्ता में, जो करता है उसमें; चोरी में पाप है या चोर की भावदशा में? दान में पुण्य है या दानी की अंतश्चेतना में? कृत्य महत्वपूर्ण है या भीतर का अभिप्राय? और अभिप्राय से भी ज्यादा भीतर की चेतना--मनुष्य के लिए पुराने से पुराना शाश्वत सवाल है।

नीति कृत्य का विचार करती है; क्या न करें, क्या करें। धर्म कर्ता का विचार करता है; करने वाला कैसा हो, कैसा न हो।

जब पहली बार उपनिषदों का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद हुआ तो वहां के विचारक बड़े हैरान हुए, क्योंकि उनमें दस आज्ञाओं, टेन कमांडमेंट्स की तरह कोई भी बातें नहीं हैं। चोरी मत करो; व्यभिचार मत करो; न करो, या करो--ऐसा कोई आदेश नहीं है। और यहूदी और ईसाई धर्म तो करने के आदेश पर ही खड़े हैं। दस आज्ञाएं मो.जे.ज की, वे ही आधार-स्तंभ हैं।

उपनिषदों में भी उन्होंने सोचा कि कुछ आज्ञाएं होंगी, लेकिन कोई आज्ञाएं नहीं थीं। उन्हें लगा कि शायद उपनिषद धर्मग्रंथ नहीं हैं। लेकिन उपनिषद धर्मग्रंथ हैं। उपनिषद की दृष्टि से कृत्य की आज्ञा देना या न देना नीति का काम है, धर्म का नहीं। और नैतिक उसे होना पड़ता है जो धार्मिक नहीं है। इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लें।

नैतिकता एक सब्स्टिट्यूट है, एक परिपूरक है। जो व्यक्ति धार्मिक नहीं है, उसे नीति की जरूरत है। जो व्यक्ति धार्मिक है, उसे नीति की कोई भी जरूरत नहीं।

इसका यह अर्थ नहीं कि वह अनैतिक हो जाएगा। इसका यह अर्थ है कि उसने नीति का इतना मूलस्रोत पा लिया है कि अब ऊपरी व्यवस्था और नियम की कोई आवश्यकता नहीं रही।

ऐसा समझें, एक अंधा आदमी है, तो लकड़ी से टटोल कर चलता है। आंख वाला आदमी लकड़ी से टटोल कर नहीं चलता। क्योंकि लकड़ी से टटोलने की जरूरत है, आंख न हो तो। आंख हो तो लकड़ी से टटोलने की जरूरत नहीं है। अगर अंधे आदमी को हम समझाएं कि जब तेरी आंख ठीक हो जाएगी तो तू लकड़ी फेंक देगा, तो वह बहुत हैरान होगा। वह कहेगा, बिना लकड़ी के मैं चलूंगा कैसे? जीवन भर लकड़ी से ही चला है। लकड़ी उसकी आंख हो गई है। लेकिन लकड़ी क्या आंख हो सकती है? वह तो बस कामचलाऊ है।

नीति कभी धर्म नहीं है, कामचलाऊ लकड़ी है जो अधार्मिक आदमी के हाथ में पकड़नी पड़ती है। जिसके पास भीतर की आंख नहीं है, उसे बाहर के नियम पकड़ाने पड़ते हैं। और जिसके पास भीतर की आंख है, उसे बाहर के नियम पकड़ाने की कोई भी जरूरत नहीं है। उसकी भीतर की आंख जहां उसे ले जाएगी, वही ठीक है।

यह भारतीय और गैर-भारतीय धर्मों के बीच बुनियादी फर्क है। इस्लाम या ईसाइयत दोनों इस अर्थों में नैतिक धर्म हैं। उनका सारा आधार नीति पर है। जैन, बौद्ध और हिंदू इस अर्थ में अतिनैतिक धर्म हैं, सुपर मॉरल धर्म हैं। उनका आधार नीति पर नहीं है। उनकी सारी फिकर इस बात की है कि भीतर की चेतना परिशुद्ध हो। और अगर भीतर की चेतना परिशुद्ध है, तो आचरण अपने आप परिशुद्ध हो जाएगा।

आचरण को नहीं बदलना है, अंतरात्मा को बदलना है। आप क्या करते हैं, वह मूल्यवान नहीं है। आप क्या हैं, वही मूल्यवान है। आपको डूइंग का बहुत मूल्य नहीं है, आपके बीइंग का, आपके अस्तित्व का मूल्य है। और गलत अस्तित्व हो भीतर और ठीक आचरण हो, तो सिवाय पाखंड के कुछ भी नहीं है। और ठीक अस्तित्व हो भीतर, तो गलत आचरण के होने का कोई उपाय नहीं है।

यह मौलिक भेद है धर्म और नीति का। नीति सामाजिक व्यवस्था है। इसलिए अधार्मिक समाज में भी नीति की जरूरत होगी।

सोवियत रूस धर्म से इनकार कर सकता है, नीति से नहीं। उसको भी नैतिक नियम बनाने पड़े। आदमी कैसा व्यवहार करे, इसकी चिंता नास्तिक को भी करनी पड़ेगी। अगर पूरी पृथ्वी भी नास्तिक हो जाए, तो नीति नष्ट नहीं होगी। नीति तो रहेगी, धर्म नष्ट हो जाएगा। और अगर पूरी पृथ्वी धार्मिक हो जाए, तो नीति की कोई जरूरत नहीं रहेगी। वह ऊपरी खोल की तरह फेंकी जा सकती है।

अगर लोग सच में भीतर से अच्छे हों, तो बाह्य-आचरण, नियम, व्यवस्था की कोई भी आवश्यकता नहीं है। जितनी हमें बाहर की व्यवस्था करनी पड़ती है, उतनी ही खबर मिलती है कि भीतर हम विकृत और रुग्ण हैं। वह जो सड़क पर खड़ा हुआ पुलिस का सिपाही है, अदालत में बैठा हुआ मजिस्ट्रेट है, वह आपकी वजह से वहां बैठा है; चूंकि आप गलत हैं। अगर लोग ठीक हों तो पुलिसवाले और मजिस्ट्रेट की कोई जरूरत नहीं। वह विदा हो जाएगी। उसे रखना फिजूल हो जाएगा; व्यर्थ हो जाएगा। कानून इसलिए हैं कि आप गलत हैं।

लाओत्सु ने कहा है, नीति का जन्म तभी होता है, जब धर्म खो जाता है। जब भीतर का ताओ नष्ट हो जाता है, तो बाहर आचरण का हमें इंतजाम करना पड़ता है। जब प्रेम नहीं होता तो कर्तव्य को जगह देनी पड़ती है।

एक बेटा अपनी मां की सेवा कर रहा हो। अगर यह प्रेम के कारण है तो बेटा यह कभी भी नहीं कहेगा कि मेरा कर्तव्य है, इसलिए मैं मां की सेवा करता हूं। प्रेम के लिए झूठी और कर्तव्य से ज्यादा कुरूप और भद्दा कोई शब्द नहीं है। प्रेम, इसलिए सेवा करता है कि सेवा आनंद है। जब प्रेम नहीं रह जाता, तो फिर बेटे को समझाना पड़ता है कि तुम्हारा कर्तव्य है, कि तुम मां की सेवा करो; तुम्हारी मां है; उसने तुम्हें जन्म दिया है, उसने तुम्हें बड़ा किया है; कि बूढ़े बाप के पैर दबाओ, यह तुम्हारा कर्तव्य है। और जब भी आप कहने लगते हैं, "मेरा कर्तव्य है" तब आप समझना कि भीतर का प्रेम खो गया।

एक पति कहता है कि मैं पत्नी के लिए काम कर रहा हूं; धन कमा रहा हूं--क्योंकि कर्तव्य है, झूठी है--इसका अर्थ हुआ कि प्रेम समाप्त हो गया। जो पति प्रेम में है वह यह भूल कर भी सोच नहीं सकता कि यह कर्तव्य है। वह कहेगा, यह मेरा आनंद है। जिसे मैं प्रेम करता हूं, उसके लिए मैं सब कुछ करूंगा। यह मेरा आनंद है, कर्तव्य नहीं; करने योग्य नहीं है, यही मेरा रस है। अगर मैं न करूं तो दुखी होऊंगा, करता हूं तो आनंदित हूं।

कर्तव्य वाले आदमी को अगर मौका मिल जाए कर्तव्य से बचने का, तो वह सुखी होगा। तो अगर वह नर्स को खोज सके मां की सेवा के लिए, तो नर्स को लगाना पसंद करेगा; क्योंकि कर्तव्य ही है। और नर्स कर्तव्य आपसे ज्यादा बेहतर ढंग से कर सकेगी--ट्रेड है, प्रशिक्षित है। अगर मां अपने बेटे को इसलिए पाल रही है, क्योंकि कर्तव्य है, तो उचित होगा कि वह दाई को रख ले। दाई वह रख ही लेगी। वह अपने स्तन से दूध भी नहीं पिलाना पसंद करेगी--एक काम है, जो कोई और भी कर सकता है।

प्रेम काम नहीं है। उसे कोई दूसरा नहीं कर सकता। प्रेम में हम किसी दूसरे को नहीं रख सकते। प्रेम हम खुद ही करेंगे; वह कर्तव्य नहीं है। वह हमारे प्राणों की भीतरी स्वर है, वह बाहरी व्यवस्था नहीं है।

धर्म प्रेम की तरह है; नीति कर्तव्य ही तरह है। इसलिए नीति करने की भाषा में बोलती है; यह करो, यह मत करो। और धर्म होने की भाषा में बोलता है; ऐसे हो जाओ, और ऐसे मत हो जाओ।

महावीर के ये सूत्र धर्म के सूत्र हैं। इन्हें समझाने के पहले यह ख्याल में ले लेना जरूरी है कि जोर बीड़ंग पर है, अंतरात्मा पर है; कर्म पर, कृत्य पर नहीं है। इसलिए महावीर से जब पूछा जाता है, तो वे यह नहीं कहते कि यह-यह काम मत करना। वे यह कहते हैं, इस भांति की चेतना हो जाना। बस, पाप-कर्म अपने आप बंद हो जाएंगे।

संत अगस्तीन से किसी ने पूछा है कि मैं क्या करूं कि पाप न हो; क्या करूं कि पुण्य हो? तो अगस्तीन ने कहा कि अगर मैं कर्तव्यों को गिनाने बैठूं तो बड़ी लंबी फेहरिस्त हो जाएगी; यह करो, यह मत करो। अगर एक-एक कर्तव्य को विस्तार से गिनाते बैठूं तो फेहरिस्त का कभी अंत नहीं होगा। और कितनी ही बड़ी फेहरिस्त हो, फिर भी तुम उसके भीतर से तरकीब निकला लोगे जो तुम्हें करना है उसकी।

इसलिए कानून किसी को अपराध से नहीं रोक पाता। कानून के बीच से हमेशा रास्ता निकल आता है अपराध करने का। असल में कानून लोगों को सिर्फ कुशल अपराधी बनाता है। अकुशल अपराधी पकड़े जाते हैं, कुशल अपराधी सिंहासनों की यात्रा करते रहते हैं। कानून सिर्फ आपको समझदार बनाता है; चालाक बनाता है; होशियार बनाता है; गैर-अपराधी नहीं बनाता।

अगस्तीन ने उस आदमी को कहा: इसलिए तुझे मैं एक ही बात कह दूं, क्योंकि लंबी फेहरिस्त से कुछ न होगा। अगर तू प्रेम कर सकता है, तो फिर तू जो भी करेगा, वह ठीक होगा। और अगर तू प्रेम नहीं कर सकता, तो तू जो भी करेगा, वह गलत होगा।

अगस्तीन कह रहा है कि प्रेम एकमात्र नियम है। बात वही है, क्योंकि प्रेम कृत्य नहीं है, भीतरी अवस्था है। आपके कृत्य से प्रेम का पता नहीं चलता, आपके होने के ढंग से ही पता चलता है कि आप प्रेमपूर्ण हैं या नहीं।

आप कितने ही कृत्य करें, तो भी प्रेम को आप भर नहीं सकते। अगर प्रेम खो गया है, तो कितनी ही भेंट लाएं प्रेयसी के लिए और कितना ही इंतजाम करें, कितना ही अच्छा मकान बनाएं, बगीचा लगाएं, सब साधन-

सुविधाएं जुटाएं; अगर प्रेम खो गया है, तो कोई भी चीज परिपूरक नहीं हो सकती। बड़े से बड़ा मकान, बड़े से बड़ी गाड़ी, बड़े से बड़ी व्यवस्था, नौकर-चाकर कुछ भी पूरा नहीं कर सकते। और अगर प्रेम है, तो सड़क पर भीख भी आप मांगते हों, तो भी घटना घट सकती है।

प्रेम आंतरिक है। आपके करने से उसका संबंध नहीं है, आपके होने के ढंग से संबंध है। इसलिए प्रेम धर्म के निकटतम है। और अगर जीसस ने कहा कि लव इज गॉड, ईश्वर प्रेम है, तो उसका अर्थ यही है कि हमारे जीवन में प्रेम, जैसे आंतरिक है, ऐसी ही आंतरिकता जब ईश्वर की हमारे भीतर होनी शुरू हो जाए तो हम धर्म के जगत में प्रवेश करते हैं।

सूत्र को लें।

"भंते!"

कोई पूछता है महावीर से, कोई जिज्ञासा करता है:

"भंते! साधक कैसे चले? कैसे खड़ा हो? कैसे बैठे? कैसे सोए? कैसे भोजन करे? कैसे बोले--जिससे पाप-कर्म का बंध न हो?"

पूछने वाला कृत्यों के संबंध में पूछ रहा है। कैसे चले, कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे भोजन करे, कैसे बोले? यह सब कृष्ण से अर्जुन ने पूछा है गीता में कि स्थितप्रज्ञ की भाषा क्या है? वह कैसे बोलता है? समाधिस्थ का व्यवहार क्या है? वह कैसा व्यवहार करता है? ऐसा ही कोई साधक, कोई जिज्ञासु महावीर से पूछ रहा है कि हम क्या करें? जोर, ध्यान दें, करने पर है; हम क्या करें, जिससे कि पाप-कर्म का बंध न हो।

पाप-कर्म के बंध से अर्थ है, जिससे मैं बंधूं न, गुलाम न होऊं; जिससे मैं कारागृह में बंद न होऊं; जिससे मेरी आंतरिक स्वतंत्रता नष्ट न हो; जिससे मैं भीतर खुले आकाश में विचरण कर सकूँ; मुझे कोई बांधे न; कोई भी घटना मुझे बांधे न; मैं मुक्त हूँ; मेरा भीतरी मोक्ष नष्ट न हो।

यह समझ लेने जैसा है कि आदमी की गहनतम आकांक्षा स्वतंत्रता की है; गहनतम आकांक्षा मुक्ति की है। और जहां भी आप पाते हैं कि आपकी आकांक्षा स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है, वहीं कष्ट शुरू हो जाता है।

इसलिए जो भी आपकी स्वतंत्रता में बाधा डालते हैं--वे चाहे मित्र ही क्यों न हों--वे दुश्मन की भांति मालूम होने लगते हैं। जिनसे आप प्रेम करते हैं, अगर वे भी आपके जीवन में बाधा बन जाएं और परतंत्रता लाएं, तो प्रेम कड़वा हो जाता है; जहरीला हो जाता है और पाय-जन हो जाता है। फिर उस प्रेम से रस नहीं बहता। फिर उस प्रेम में दुख और पीड़ा समाविष्ट हो जाती है।

जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है जो आपको सुख दे सके, अगर आपकी स्वतंत्रता को नष्ट करता हो। इसलिए मनीषियों ने कहा है कि मोक्ष परम तत्व है। इसका अर्थ आप समझ लेना। इसका अर्थ हुआ, टु बी फ्री--टोटल फ्री--समग्र रूप से मुक्त। जहां कोई चीज बाधा नहीं बनती, और जहां मैं अपने निज-स्वभाव में पूरी तरह रह सकता हूँ। जहां कोई मजबूरी नहीं है।

ऐसे चित्त की दशा ही मनुष्य की खोज है।

तो न धन से पूरी होती वह चीज, क्योंकि धन भी चारों तरफ दीवाल बन जाता है। वह भी मुक्त कम करता और बांधता ज्यादा है।

धनी आदमी को देखें। वह धन से मुक्त नहीं मालूम पड़ता; धन से और भी बंधा हुआ मालूम पड़ता है। इसका यह मतलब नहीं है कि आप गरीब हैं तो धन से मुक्त होंगे। गरीब तो और भी मुक्त नहीं हो सकता। जो नहीं है धन उसके पास, वह उसे बांधे रहता है।

तो दुनिया में गरीब और अमीर नहीं हैं। दुनिया में धन के आकांक्षी और जिसको धन उपलब्ध हो गया, धनिक; दो तरह के लोग हैं। एक जिसको धन अभी उपलब्ध नहीं हुआ; ऐसे धनी; और एक जिसको धन उपलब्ध हो गया है, ऐसे धनी। गरीब तो खोजना बहुत मुश्किल है; गरीब का मतलब यह है कि जिसे धन की आकांक्षा ही

नहीं है; जो धन की दौड़ में ही नहीं है। लेकिन वैसा गरीब सम्राट हो जाता है। धन मिल जाता है तो धन मुक्त नहीं करता दिखाई पड़ता; और भी बांध लेता है, कस कर बांध लेता है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक अमीर आदमी था। जैसा कि अमीर होते हैं, महाकृपण था। कपड़े भी कभी धोता था, इसमें शक था; क्योंकि धोने से कपड़े जल्दी नष्ट हो जाते। घर में बीमारी आ जाए तो इलाज नहीं करवाता था! क्योंकि बीमारी तो अपने से ही ठीक हो जाती है, इलाज तो नाहक पैसे का खर्च है! उसने सब तरह के सिद्धांत बना रखे थे जो उसके पैसे को बचाते थे।

फिर गांव में जादूगर, एक मदारी आया और उसकी बड़ी चर्चा फैली कि वह बड़े गजब के खेल दिखा रहा है। उसके खेल का नाम था: दि मिरेकल--चमत्कार। आखिर उस कंजूस को भी खेल देखने का ख्याल उठने लगा। लेकिन मन में बड़ी पीड़ा होती थी, अगर तुम गये तो मैं भी जाऊंगी; बेटा कहता था, अगर तुम गए तो मैं भी जाऊंगा। तो तीन रुपये का खर्च था; एक रुपया टिकिट था एक-एक आदमी का।

तो तीन रुपये के मारे वह बड़ा परेशान था। मगर रोज खबरें आतीं कि बड़ा चमत्कार हो रहा है; बड़ा अदभुत जादू है, ऐसा कभी देखा नहीं। उसकी जिज्ञासा बढ़ती गई। आखिर संयम टूट गया। आखिरी दिन जब कि वह मदारी जाने वाला था, वह भी पहुंच गया अपनी पत्नी, बच्चे को लेकर। क्यू में खड़ा हो गया।

नसरुद्दीन भी यह देख कर कि कंजूस तीन रुपये खर्च करने जा रहा है, उसके पीछे-पीछे गया। वह भी क्यू में खड़ा हो गया कि क्या होता है। जब कंजूस पहुंचा खिड़की पर तो उसने मोल-भाव करना शुरू किया। खिड़की पर बैठी लड़की ने बहुत बार कहा कि मोल-भाव का सवाल ही नहीं है, तुम्हें देखना हो तो तीन रुपये खर्च करने होंगे। और अब देर मत करो, पहली घंटी हो चुकी है।

वह बार-बार खीसे में हाथ डालता और बाहर निकाल लेता। वह कहता कि आखिर डेढ़ रुपये में नहीं हो सकता क्या? और अब क्यू में कोई भी नहीं है, हम तीन ही बचे हैं; एक मुल्ला नसरुद्दीन भर पीछे खड़ा है।

उस लड़की ने कहा: अब आप टिकिट लेते हैं या मैं खिड़की बंद करूं? आखिर उसने तीन रुपये... उसकी आंखों में आंसू भी आ गए। उसने तीन रुपये निकाल कर दिए। नसरुद्दीन ने कहा: नाउ आई कैन गो टु माई होम, आई हैव सीन द मिरेकल--अब मुझे अंदर जाने की कोई जरूरत ही नहीं है, चमत्कार तो मैंने देख ही लिया।

धन भी पकड़ लेता है; प्रेम भी जिसे हम कहते हैं, वह भी पकड़ लेता है और जकड़ लेता है। हम जीवन में जो कुछ भी करते हैं, वह सब हमें गुलाम ही किए चला जाता है।

जिज्ञासु महावीर से पूछ रहा है कि वह कौन सी कला है, किस ढंग से उठें, बैठें, चलें, व्यवहार करें कि कोई बंधन हमें न बांधे।

"पाप-कर्म" बंधन का पुराना नाम है। वह पुरानी भाषा है, जिससे हमारी स्वतंत्रता नष्ट न हो और हम उस अवस्था में पहुंच जाएं, जहां हम परम स्वतंत्र हैं। वही आनंद है। इसलिए महावीर ब्रह्म को भी परम अवस्था नहीं कहते--मोक्ष को परम अवस्था कहते हैं। क्योंकि जहां ब्रह्म भी मौजूद हो, दूसरा भी मौजूद हो, वहां थोड़ा बंधन होगा। जहां कोई भी न रह जाए; जहां सिर्फ स्वयं का होना ही आखिरी स्थिति है, उस कैवल्य को कैसे पाया जाए? लेकिन पूछने वाला पूछ रहा है कर्म की भाषा में। जिज्ञासु कर्म की भाषा में ही पूछेगा।

महावीर ने उससे कहा:

"आयुष्मान! साधन विवेक से चले; विवेक से खड़ा हो; विवेक से बैठे; विवेक से सोए; विवेक से भोजन करे; विवेक से बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बांधता।" क्रांतिकारी फर्क हो गया। महावीर का जोर कैसे चले, इस पर नहीं है; कैसे बैठे, इस पर नहीं है; कैसे उठे, इस पर नहीं है। सभी क्रियाओं के बीच उन्होंने विवेक को जोड़ दिया; विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे।

उठने-बैठने का मूल्य नहीं है, विवेक का मूल्य है। और "विवेक" महावीर का कीमती शब्द है। विवेक से महावीर का अर्थ है, अवेयरनेस, होश। लेकिन जैन-परंपरा ने सोचा कि भेद करके चलें कि यह गलत है, यह न करूं; और यह ठीक है, यह करूं; यह विवेक का अर्थ लिया।

अगर यह विवेक का अर्थ लिया तो जिज्ञासु की और परमज्ञानी की भाषा में कोई फर्क ही नहीं हुआ। जिज्ञासु भी यही पूछ रहा था। इसलिए पंडितों को भी लगा कि अर्थ यही होगा महावीर का कि "विवेक से चले"--इसका मतलब यह कि देख कर चले कि जमीन पर कोई कीड़ा-मकोड़ा तो नहीं चल रहा है, हरी घास तो नहीं उगी है।

"विवेक से सोए", देख कर सोए कि कोई स्त्री तो कमरे में मौजूद नहीं है।

"विवेक से भोजन करे", देख ले कि जो भोजन दिया गया है, वह सब तरह से शुद्ध है। शुद्ध हाथों से बनाया गया है। और उसमें कोई अशुद्धि तो नहीं है।

एक अर्थ में पंडितों ने जो अर्थ लिया, वह ठीक मालूम पड़ेगा। क्योंकि साधक ने जो पूछा था, जिज्ञासु ने जो सवाल उठाया था, अगर महावीर उसी तल पर जवाब दे रहे हैं, तो पंडितों ने जो अर्थ किए हैं जैन-परंपरा में, वे ठीक हैं। लेकिन जहां अज्ञानी पूछता है और ज्ञानी उत्तर देता है, वहां डाइमेंशन--आयाम बदल जाते हैं; अज्ञानी की भाषा और ज्ञानी की भाषा में बुनियादी अंतर हो जाता है। जहां अज्ञानी की भाषा बहिर्मुखी होती है, ज्ञानी की भाषा अंतर्मुखी हो जाती है।

इसमें समझ लेना यह है कि सारी क्रियाओं के बीच जिस बात पर जोर है, वह विवेक है। क्रियाएं गौण हैं, विवेक महत्वपूर्ण है। और विवेक का अर्थ डिसक्रिमिनेशन नहीं है, भेद नहीं है। विवेक का अर्थ होश है, अमूर्च्छा है, अप्रमाद है, जागरूकता है। अगर विवेक का अर्थ--भेद है--सही और गलत में, तो बात बाहरी हो गई कि मैं चोरी न करूं, दान करूं। लेकिन अगर विवेक का अर्थ आंतरिक जागरूकता है, तो बाहर भेद करने का कोई सवाल नहीं है; भीतर मैं जागरूक रहूं। अगर भीतर मैं जागरूक हूं, तो चोरी होगी ही नहीं; नहीं करने का सवाल नहीं है। दान होगा; करने का सवाल नहीं है।

विवेक से जागा हुआ व्यक्ति बांटता ही रहता है। बांटना उसका आनंद हो जाता है। विवेक से जीता हुआ व्यक्ति दूसरे से छीनने का सोच भी नहीं सकता, क्योंकि दूसरे के पास न छीनने को कुछ है, न दूसरे से कुछ छीना जा सकता है। और छीनने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जो भी हो सकता है, वह मेरे भीतर स्वयं मौजूद है। विवेक से जागा हुआ व्यक्ति अपनी अपार संपदा को देखता है।

इस अपार संपदा का मालिक चोरी करने जाएगा, किसी से छीनेगा, झपटेगा; यह सवाल ही नहीं उठता है। और इस विवेक में एक महत्वपूर्ण बात दिखाई पड़नी शुरू होती है कि जो मैं देता हूं, उसी का मैं मालिक हूं; जो मैं दे सकता हूं, वही मेरी संपदा है; जो मैं रोक लेता हूं, उसका मैं मालिक नहीं हूं।

इसलिए ध्यान रहे, जो भी आप दे पाते हैं, आप सिर्फ उसके ही मालिक हैं। दान ही खबर देता है कि आप मालिक थे। कंजूस मालिक नहीं है अपने धन का, धन ही कंजूस का मालिक है। जो दे सकता है, आनंद से दे सकता है! ध्यान रहे, सामान्य आदमी आनंद से ले सकता है, दे नहीं सकता। देने में पीड़ा है, लेने में सुख है। लेकिन अगर लेने में सुख है और देने में पीड़ा है, तो आपका जीवन पूरा का पूरा पीड़ा से भरा रहेगा।

जैसे ही व्यक्ति के जीवन में क्रांति घटित होती है, होश आता है, सारे नियम बदल जाते हैं। लेने की जगह देना नियम हो जाता है। लेने में सुख नहीं, देने में सुख शुरू हो जाता है। इसलिए चोरी का तो प्रश्न नहीं है। दूसरे को नुकसान पहुंचाने का सवाल नहीं है। क्योंकि हम नुकसान दूसरे को इसीलिए पहुंचाना चाहते हैं कि हम भयभीत हैं कि दूसरा हमें नुकसान न पहुंचा दे।

मेक्यावली ने कहा है कि इसके पहले कि कोई तुम पर आक्रमण करे, तुम आक्रमण कर देना; क्योंकि पहले आक्रामक कर देना सुरक्षा का सुगमतम उपाय है, एकमात्र डिफेंस है जगत में। जहां हम खड़े हैं अंधेरे में, वहां पहले हमला कर देना, इसके पहले कि कोई हमला करे।

इसके पहले कि कोई मुझसे छीन ले, मैं छीन लूं; इससे पहले कि कोई मुझे दुख दे, मैं उसे दुख दे दूं; यही इस अंधेरे में चलती हुई व्यवस्था है। जैसे ही कोई भीतर होश से भरता है, यह सारी व्यवस्था बदल जाती है। इसके पहले कि कोई मुझसे छीने, मैं दे दूं, और देने से आनंदित हो जाऊं।

जीसस ने कहा है, कोई अगर तुम्हारा कोट छीने, तो तुम कमीज भी दे देना। और कोई अगर तुमसे एक मील बोझ ढोने को कहे, तो तुम दो मील तक चले जाना।

जीसस के इस वचन को ईसाइयत ठीक से समझ नहीं पाई। यह वचन जीसस को भारत से ही मिला। यह वचन बौद्ध विश्वविद्यालयों की हवा से जीसस को मिला। और इसके पीछे दान का सवाल नहीं है, इसके पीछे होश का सवाल है। जितना होशपूर्ण व्यक्ति हो, उतना छीनने से मुक्त हो जाता है और देने में सरल हो जाता है।

महावीर को ध्यान रखें। चलें, खड़े हों, बैठें, सोएं, भोजन करें, बोलें—यह सब गौण है। सबके भीतर एक शर्त है, विवेक से। अगर विवेक सध जाए, तो सब सध जाएगा।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन को उसके चिकित्सक ने कहा कि तू शराब पीना बंद कर दे। अब नशा बहुत ज्यादा बढ़ने लगा है।

... गया था चिकित्सक के पास। तो हाथ जब चिकित्सक ने उसका अपने हाथ में नाड़ी देखने को लिया, तो उसका हाथ इतना कंप रहा था कि उसके चिकित्सक ने कहा कि मालूम होता है, जरूरत से ज्यादा पीने लगे हो! बहुत पी रहे हो! हाथ इतना कंप रहा है!

नसरुद्दीन ने कहा: कहां पी जाता हूं! ज्यादा तो जमीन पर ही गिर जाती है। तो चिकित्सक ने कहा, अब बहुत हो गया, अब रुको! तुम्हारे गिरने का वक्त करीब आया जा रहा है। तुम यह शराब बंद करो, इसी से नशा हो रहा है।

नसरुद्दीन ने कहा कि मैं थोड़ा वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी हूं। पक्का नहीं कि नशा किस बात से हो रहा है, क्योंकि मैं शराब में सोडा मिला कर पिता हूं। पता नहीं, सोडा से हो रहा है।

चिकित्सक ने कहा: क्या तुम पागल हो गए हो, नसरुद्दीन?

नसरुद्दीन ने कहा: मुझे कुछ दिन का वक्त दो। मेरे पास जरा वैज्ञानिक बुद्धि है, मैं प्रयोग करके देख लूं।

तो उसने एक दिन ब्रांडी में सोडा मिला कर पीया। फिर दूसरे दिन उसने व्हिस्की में सोडा मिला कर पीया। फिर तीसरे दिन तीसरी तरह की शराब में सोडा मिला कर पीया। ऐसे सात दिन उसने देखा कि हर हालत में नशा होता है--और एक कामन एलिमेंट है, सोडा।

तो उसने चिकित्सक को जाकर कहा कि तुम गलती में हो, और जिसने भी तुमको कहा कि शराब में नशा होता है, वह नासमझ है। मैंने हर हालत में, हर चीज में सोडा मिला कर पीकर देख लिया है। लेकिन सोडा ही नशे का कारण है। तो अब मैं सोडा छोड़ता हूं, खाली शराब पीऊंगा।

महावीर ने अनुभव से जाना है कि मूर्च्छा हर कृत्य के पीछे पाप है। हर कृत्य के पीछे मूर्च्छा पाप है। आप क्या करते हैं, यह बात बहुत मूल्यवान नहीं है। उसके पीछे मूर्च्छा है, बेहोशी है। वही बेहोशी उपद्रव है। बेहोशी का कारण कोई भी हो सकता है।

मैं एक बहुत बड़े सिने-दिग्दर्शक सी.बी. डिमायल का जीवन पढ़ता था। उसने बड़े अनूठे चित्र निर्मित किए हैं। अरबों रुपये के खर्च से एक-एक दृश्य बनाया। मरते वक्त डिमायल का ख्याल था कि एक दृश्य और मैं ले लूं--जगत की सृष्टि का दृश्य, जब परमात्मा छह दिन में जगत बनाता है--कैसे बनता है जगत। अरबों-अरबों डालर खर्च था। लेकिन उसने हिम्मत की और स्पेन में एक घाटी खरीदी। और एकांत निर्जन घाटी में अरबों

रूपों का वैज्ञानिक इंतजाम किया; दस मिनट की व्यवस्था की कि कैसे प्रकाश पैदा होता है। फिर कैसे पृथ्वी का जन्म होता है। फिर कैसे पौधे पैदा होते हैं। फिर कैसे जीवन का अवतरण होता है--और छह दिन में परमात्मा कैसे प्रकृति को पूरा निर्मित करता है।

जगत का, विश्व का जन्म! यह इतना खर्चीला मामला था, और दस मिनट में अरबों का खर्च था। और एक ही बार यह हो सकता था। अगर इसका दुबारा फिर से चित्र लेना पड़े, अगर एक दफे में फिल्म गलत हो जाए, कैमरामैन भूल-चूक कर जाए, तो फिर दस गुना खर्च होगा। और बड़ा उपद्रव था।

इसलिए डिमायल ने चारों तरफ पहाड़ियों पर चार कैमरामैन के समूह खड़े किए; और सबको हर हालत में चेतावनी दी कि सब चित्र लेना ताकि कोई भूल-चूक न हो जाए। एक ही बार में यह घटना हो जानी चाहिए।

फिर जन्म हुआ उस वैज्ञानिक व्यवस्था से प्रकाश का, खुद डिमायल रोने लगा, इतना अदभुत दृश्य था; कंपने लगा; आनंदविभोर हो गया। और जब दृश्य पूरा हुआ दस मिनट के बाद, तो उसने पहला काम किया कि पहले कैमरामैन को फोन किया और पूछा कि क्या हालत है? उस कैमरामैन ने कहा कि क्षमा करें, मैं शघमदा हो रहा हूं कि क्या कहूं। मैं तो भूल ही गया। दृश्य इतना अदभुत था कि मैं देखने में लग गया, चित्र तो ले नहीं गया।

डिमायल की जैसी आदत थी, उसने दो-चार भट्टी गालियां दीं, और उसने कहा कि मुझे पता ही था कि यह उपद्रव होने वाला है, इसलिए मैंने चार इंतजाम किए।

दूसरे को फोन किया। उसने कहा कि सब ठीक था, लेकिन फिल्म चढ़ाना भूल गए। यह तो जब दृश्य खत्म हो गया, कैमरे में झांका तो पता लगा कि हम नाहक ही शटर दबाते रहे, फिल्म तो थी ही नहीं।

अब तो डिमायल का हृदय धड़कने लगा कि यह तो बहुत मुश्किल मामला दिखता है।

तीसरे को डरते हुए फोन किया। तीसरे ने कहा कि क्या आपको कहूं, मर जाने का मन होता है। सब ठीक था; फिल्म ठीक चढ़ी थी; कैमरा बिल्कुल तैयार था--लेंस से टोपी उतारना भूल गया। दृश्य ही ऐसा था डिमायल, कि हम क्या करें।

चौथे को तो उसे भय होने लगा फोन करने में। लेकिन जब चौथे को फोन किया तो आशा बंधी। उसने कहा: हलो सी. बी... चौथे आदमी ने कहा, उसकी आवाज से ऐसा लगा कि कम से कम इतने ठीक अवस्था में चित्र ले लिया होगा। तो डिमायल ने पूछा कि कोई गड़बड़ तो नहीं? उसने कहा कि बिल्कुल नहीं, सब ठीक है। उसने कहा: ऐसा ठीक कभी नहीं था, जैसा ठीक अब है।

फिल्म चढ़ी है?

बिल्कुल फिल्म चढ़ी है।

तुमने टोपी अलग कर ली थी लेंस की?

बिल्कुल अलग है।

डिमायल ने कहा: धन्यवाद परमात्मा का!

उसे चौथे आदमी ने कहा: रिलैक्स सी. बी., जस्ट गिव ए हिंट; व्हेन यू आर रेडी, वी आर रेडी--बस, जरा इशारा करो, हम बिल्कुल तैयार हैं।

पता चला वह चौथे आदमी में जो जान मालूम पड़ रही थी, वह नशा किए था। वह शराब पी गया था। अभी उनको यह पता ही नहीं था कि वह दृश्य हो चुका!

महावीर जीवन की सारी भूल, सारे पाप के पीछे, मूर्च्छा को, बेहोशी को... ।

बेहोशी का कारण कुछ भी हो। चाहे उत्तेजना आ जाए, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। क्रोध आ जाए, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। कामवासना आ जाए, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। लोभ जकड़ ले, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है। अहंकार पकड़ ले, तो भी आदमी बेहोश हो जाता है।

एक तत्व ख्याल में रखने जैसा है कि जब भी कोई बुराई पकड़ती है, तो उसमें एक अनिवार्य भीतरी शर्त है कि आप बेहोश होने चाहिए। आपने क्रोध में देखा होगा कि आप ऐसा कर लेते हैं, जो आप कभी कर नहीं सकते थे। बाद में पछताते हैं, रोते हैं, सोचते हैं, यह कैसे किया? लेकिन वह किया इसलिए कि आप उस वक्त होश में नहीं थे।

लोभ में आदमी कुछ भी कर लेता है। अहंकार में आदमी कुछ भी कर लेता है। कामवासना से भरा हुआ आदमी कुछ भी कर लेता है। विक्षिप्तता पकड़ लेती है। महावीर का निदान यह है कि आप जब भी बुरा करते हैं, तो क्या बुरा करते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है; उस बुरे करने के पीछे एक अनिवार्य बात है कि आप होश में नहीं होते।

इसलिए कृत्यों को बदलने का कोई सवाल नहीं है। भीतर से होश सम्हालने का सवाल है। और मूर्च्छा छोड़ने का सवाल है। उठते, बैठते सोते, भोजन करते होशपूर्वक करना है।

आप चलते हैं—आपका चलना बेहोश है। आपको चलते वक्त बिल्कुल पता नहीं होता कि आप चल भी रहे हैं। चलने का काम शरीर करता है। यह आटोमेटिक है, यांत्रिक है।

चलने को भी छोड़ दें। एक आदमी साइकिल चला रहा है; उसे पता भी नहीं होता है कि वह चला रहा है। आप अपनी कार चला रहे हैं। आप कहां मुड़ जाते हैं, कब घर के दरवाजे पर आप आ जाते हैं, कब अपने गैरेज में चले जाते हैं, इस सबके लिए आपको सोचने की जरूरत नहीं है। इस सबका होश भी रखने की जरूरत नहीं है। यह सब होता है रोज की यांत्रिकता से। अगर बीच में कोई एक्सीडेंट होने की अवस्था आ जाए, तो क्षण भर को होश आता है, अन्यथा यंत्रवत सब चलता रहता है।

आपने कभी देखा, आप कार चलाते हो और अचानक एक्सीडेंट होने की हालत आ जाए, तो एक झटका लगता है नाभि पर; सारा शरीर का यंत्र हिल जाता है। विचार बंद हो जाते हैं। एक सेकेंड को होश आता है, अन्यथा सब बेहोशी में चलता चला जाता है।

हमारी जिंदगी पूरी बेहोशी में चलती चली जाती है। जैसे हम सोए हुए चल रहे हों। हमें पता ही नहीं होता, हम क्या कर रहे हैं। बस, यंत्रवत करते चले जाते हैं। रोज वही करते हैं, फिर रोज वही करते चले जाते हैं। ठीक वक्त पर भोजन कर लेते हैं; ठीक वक्त पर सो जाते हैं; ठीक वक्त पर प्रेम कर लेते हैं; ठीक वक्त पर स्नान कर लेते हैं। सब बंधा हुआ है। उस बंधे में आपको सोच-विचार की, होश की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

इस अवस्था को महावीर सोई हुई अवस्था कहते हैं, एक तरह से हिप्रोटाइज्ड, नशे में। और महावीर कहते हैं, यही पाप का मूल कारण है। इसलिए जो भी हम करते हैं, उस करने में होश न होने की वजह से हम बंधते हैं। हम प्रेम करें तो बंध जाते हैं। हम धर्म करें तो बंध जाते हैं। हम मंदिर जाएं तो गुलामी हो जाती है, हम न जाएं तो गुलामी हो जाती है।

जो कुछ भी हम करें, मूर्च्छा से गुलामी का जन्म होता है। मूर्च्छा गुलामी की जननी है। इसलिए महावीर कहते हैं, विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे, विवेक से सोए, विवेक से भोजन करे, विवेक से बोले, तो उसे पाप-कर्म नहीं बांधता।

प्रत्येक कृत्य में विवेक समाविष्ट हो जाए। प्रत्येक कृत्य की माला मनके की तरह हो जाए और भीतर विवेक का धागा फैल जाए। चाहे किसी को दिखाई पड़े या न पड़े लेकिन आपको विवेक भीतर बना रहे।

कैसे करेंगे इसे? हमें आसान होता है, अगर कोई मूल्य बदलने को कह दे। कह दे कि दुकान छोड़ दो, मंदिर बैठ जाओ; समझ में आता है; सरल बात है; क्योंकि छोड़ने वाला तो बदलता नहीं है। वह तो पकड़ने वाला ही बना रहता है।

मकान छोड़ देते हैं, मंदिर पकड़ लेते हैं। पकड़ने में कोई फर्क नहीं आता। मुट्ठी बंधी रहती है। धन छोड़ते हैं, त्याग पकड़ लेते हैं। गृहस्थ का वेश छोड़ते हैं, साधु का वेश पकड़ लेते हैं। पकड़ना जारी रहता है। मूर्च्छा में कोई अंतर नहीं पड़ता है।

ऊपरी चीजें बदल जाती हैं; लेबल बदल जाते हैं; नाम बदल जाते हैं; भीतर की वस्तु वही की वही बनी रहती है। इसलिए बहुत आसान है कि कोई हम से कह दे कि हिंसा मत करो। मांसाहार मत करो। रात पानी मत पीओ। बिल्कुल आसान है, छोड़ देते हैं।

लेकिन कोई हमसे कहे, चौबीस घंटे होश रखो। यह बड़ा कठिन है। एक सेकेंड भी होशपूर्वक जीना अत्यंत दूभर है। अत्यंत दूभर! अगर आप कोशिश करें पांच मिनट रास्ते पर चलने की कि मैं होशपूर्वक चलूंगा, तो आप पाएंगे कि एक सेकेंड भी नहीं चल पाए, दो कदम भी नहीं उठा पाए कि मन कहीं और चला गया। आप फिर यंत्र की भांति चलने लगे।

भीतर से इस यांत्रिकता को तोड़ने का सवाल है। भीतर यह यंत्रवत्ता न रह जाए। कुछ भी हो मेरे जीवन में, हाथ भी हिले, आंख भी झपके, तो मेरी जानकारी के बिना न हो। मैं होश से भरा रहूं, तो ही हो।

कठिन होगा। तपश्चर्या होगी। और बड़ी चेष्टा के बाद ही, वर्षों और जन्मों की चेष्टा के बाद ऐसी क्षमता भीतर आनी शुरू होती है, ऐसा इंटीग्रेशन और क्रिस्टलाइजेशन होता है, जब आदमी होशपूर्वक होता है।

गुरजिएफ पश्चिम में एक महत्वपूर्ण संत था अभी, इस सदी में। मरने के कुछ दिन पहले उसने डेढ़ सौ मील की रफ्तार से कार चलाई और जान कर दुर्घटना की। दुर्घटना भयंकर थी; जान कर की गई थी। एक चट्टान, एक वृक्ष से जाकर टकरा गया। कोई डेढ़ सौ फ्रैक्चर हुए। पूरे शरीर की हड्डी-हड्डी टूट गई। कुछ बचा ही नहीं साबित। लेकिन वह पूरे होश में था, होश खोया नहीं था। तो जब उसके मित्रों ने, शिष्यों ने पूछा कि यह आपने क्या किया? डेढ़ सौ मील की रफ्तार से गाड़ी चलाने का कोई कारण न था इतने संकरे रास्ते पर। कोई प्रयोजन भी नहीं था। कोई जल्दी भी नहीं थी।

तो गुरजिएफ ने कहा कि यह सब जानकर किया गया है। मैं मरने के पहले यह देखना चाहता था कि मेरा शरीर चकनाचूर हो जाए, तो भी मेरा होश न खोए। अब मैं निश्चित हूं। अब मरते वक्त मौत मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती; मेरा होश कायम रहेगा। इससे ज्यादा मौत क्या करेगी! सारा शरीर टूट गया है, लेकिन एक क्षण को होश नहीं खोया है!

गुरजिएफ के शिष्य आस्पेंस्की ने भी मरते वक्त अपने मित्रों को अपने साथ लिया और कार से यात्रा पर निकल गया। कहीं रुके ही नहीं। रात आ जाए, तो भी गाड़ी चलाता रहे। आखिर उसके मित्रों ने कहा, यह क्या कर रहे हो? तीन दिन हो गए, न तुम रुकते, न तुम सोते।

तो आस्पेंस्की ने कहा कि मैं जागते हुए ही मरना चाहता हूं। नींद में पता नहीं, मैं मौत के वक्त ठीक होश रख सकूं, न रख सकूं। तो मैं चलते ही रहना चाहता हूं इस कार में; चलाते ही रहना चाहता हूं इसको। मैं मरना चाहता हूं जाता हुआ, ताकि मुझे पक्का पता हो कि जब मौत आई, तो मैंने भीतर होश जरा भी नहीं खोया।

महावीर इसे विवेक को कह रहे हैं। उनका विवेक कोई नैतिक बात नहीं है, एक बड़ी यौगिक प्रक्रिया है। आप कुछ भी करते हैं, आपको पता ही नहीं। आप बैठे हैं, आपका पैर हिल रहा है कुर्सी पर। आप कोई कारण बता सकते हैं, क्यों हिल रहा है? अगर आपको मैं कहूं कि आपका पैर हिल रहा है, आप नाहक पैर हिला रहे हैं; क्योंकि चल नहीं रहे हैं, बैठे हैं, तो पैर क्यों हिला रहे हैं? तो पैर रुक जाएगा। क्योंकि आपको होश आ गया। लेकिन कारण आप भी नहीं बता सकते।

महावीर कहेंगे कि अगर कुर्सी पर बैठ कर पैर ही हिल रहा है, तो होशपूर्वक ही हिलाओ, जानते हुए हिलाओ कि कोई कारण है। कारण जरूर है वहां; एक बेचैनी है भीतर। वह बेचैनी पैर से बह रही है। आप बैठे हैं, तो करवट ही बदलते रहेंगे बैठे हुए। वह बेचैनी करवट बदल रही है। भीतर एक बेचैनी का विक्षिप्त ज्वर चल रहा है। कोई चैन नहीं है।

इस बेचैनी को जानो और निकालो—लेकिन होशपूर्वक। इसको बेहोशी में मत बहने दो। क्योंकि यह बेहोशी में अगर बह रही है, तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम न तो अपने मालिक हो, न अपने कृत्यों के

मालिक हो सकते हो। क्योंकि जो इतने छोटे कृत्यों का मालिक नहीं है, वह सोचे कि मैं चोरी नहीं करूंगा, मैं क्रोध नहीं करूंगा, मैं हत्या नहीं करूंगा, उनका आप भरोसा मत करना।

कभी सोचते हैं कि आप हत्या करेंगे? आप कभी नहीं सोचते। जिन्होंने हत्या की हैं, उन्होंने भी करने के पहले कभी नहीं सोचा था कि हत्या करेंगे। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जो लोग निरंतर सोचते रहते हैं कि हत्या करेंगे, वे हत्या नहीं करते। अक्सर वे लोग हत्या करते हैं, जिन्होंने कभी सोचा ही नहीं। लेकिन किसी ज्वर के क्षण में, विक्षिप्तता के क्षण में घटना घट जाती है। वे किसी की गर्दन दबा देते हैं। दबाने के बाद ही उनको पता चलता है कि यह क्या कर बैठे! यह क्या हो गया!

लेकिन, यह आप भी कर सकते हैं! क्योंकि जिन्होंने किया है, वे आप ही जैसे भले लोग थे। उनमें कोई अंतर नहीं था करने के पहले। करने के पहले वे भी भरोसा नहीं कर सकते थे कि उनसे और हत्या हो सकती है! लेकिन उनसे हो गई। आपसे भी हो सकती है।

होने का सारा कारण मौजूद है--क्योंकि आप बेहोश हैं। आप जा रहे हैं, आपने कभी चोरी नहीं की, लेकिन आपको लाख रुपये के नोट रखे हुए दिखाई पड़ जाएं, चोर भी भीतर सोया है, फौरन जग जाएगा। वह आपको हजार दलीलें दे देगा। वह हजार विधियां खोज लेगा। वह दलीलें फिर बुद्धि को समझाने के लिए हैं ताकि होश न जाए; ताकि बुद्धि सो जाए। चोरी आपसे हो जाएगी। यह जो चोरी है, यह आप किसी भी क्षण कर सकते हैं। आप कहेंगे कि मैं नहीं कर सकता। उसका कारण है कि पांच रुपये का नोट रहा होगा, पांच लाख नहीं रहे होंगे। पांच रुपये के नोट की आप चोरी नहीं करते--उतना आपकी मूर्च्छा के लिए काफी नहीं है। हर आदमी की चोरी की सीमा है। गरीब आदमी पांच रुपये की कर लेता है, अमीर आदमी पांच लाख की करता है। और अमीर आदमी है, पांच करोड़ की करता है। वह पांच करोड़ की करने वाला पांच की चोरी नहीं करता, इससे आप यह मत समझ लेना कि अचोर है। पांच रुपये की चोरी करने वाला पांच कौड़ी की नहीं करेगा, इससे आप यह मत समझना कि वह अचोर है।

तब तक चोरी नहीं मितेगी, जब तक मूर्च्छा नहीं मिटती। यह हो सकता है कि आपकी चोरी की कीमत हो कि कितनी कीमत पर आप चोरी करेंगे। छोटे आदमी छोटी चोरी करते हैं, बड़े आदमी बड़ी चोरी करते हैं। छोटे आदमी बहुत सी चोरी करते हैं--क्योंकि छोटी-छोटी करते हैं। बड़े आदमी थोड़ी चोरी करते हैं; कभी करते हैं; एकाध करते हैं--लेकिन बड़ी करते हैं। वह सब पूरा कर लेते हैं। पूरी जिंदगी की चोरी एक दफा में निपटा लेते हैं।

हर आदमी की कीमत है। और कीमत परिस्थिति पर निर्भर है, आपके होश पर निर्भर नहीं है। आप सभी तरह के पाप कर सकते हैं, जो किसी मनुष्य ने कभी किए हों।

इसे ध्यान में रखें। हर आदमी के भीतर पूरी मनुष्यता बैठी हुई है। जो पाप कभी भी हुआ है इस पृथ्वी पर, वह आप भी कर सकते हैं। उलटी बात भी सही है, जो पुण्य इस पृथ्वी पर कभी भी हुआ है, वह आप भी कर सकते हैं। आपके भीतर चंगीजखान बैठा है और महावीर भी बैठे हैं। दोनों की मौजूदगी है। और दोनों की मौजूदगी इस बात पर निर्भर करती है कि कौन सक्रिय हो जाएगा।

मूर्च्छा बढ़ती चली जाए तो आप चंगीजखान की तरह गिरने लगते हैं। होश बढ़ने लगे तो महावीर की तरफ उठने लगते हैं। परम होश के क्षण में वही आपके भीतर से भी होगा जो बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट को हुआ है। परम बेहोशी के क्षण में वही आपसे होगा जो हिटलर से, नेपोलियन से, सिकंदर से, चंगीजखान से, तैमूरलंग से हुआ है।

आपके भीतर दोनों छोर मौजूद हैं। और ये जो सीढ़ियां हैं बीच की, ये होश या मूर्च्छा की सीढ़ियां हैं। नीचे की तरफ उतरें तो मूर्च्छित होते चले जाते हैं। ऊपर की तरफ उठें तो होश से भरते चले जाते हैं। होश से भरते चले जाएं तो आप ऊपर उठते हैं। यह महावीर की मौलिक आधारशिला है।

"जो सब जीवों को अपने समान समझता है, अपने-पराए, सबको समान दृष्टि से देखता है, जिसने सब आश्रवों का निरोध कर लिया है, जो चंचल इंद्रियों का दमन कर चुका है, उसे पाप-कर्म का बंधन नहीं होता।"

जैसे-जैसे होश बढ़ता है, वैसे-वैसे सभी जीवों के भीतर वही ज्योति दिखाई पड़ती लगती है, जो मेरे भीतर है। जैसे-जैसे बेहोशी बढ़ती है, खुद के भीतर ही आत्मा का पता नहीं चलता, दूसरों के भीतर तो पता चलने का कोई सवाल ही नहीं है। जिसे मैं अपने भीतर नहीं जानता, उसे मैं दूसरे के भीतर कभी भी नहीं जान सकता हूँ। जो मैं अपने भीतर जानता हूँ, वही मुझे दूसरों के भीतर भी दिखाई पड़ सकता है।

ज्ञान का पहला चरण भीतर घटेगा। फिर उसकी किरणें दूसरों पर पड़ती हैं। मुझे यही पता नहीं है कि मेरे भीतर कोई आत्मा भी है। इतना बेहोश हूँ कि तो भीतर मौजूद है, वह भी दिखाई नहीं पड़ता। आंखों पर धुंध है, नशा है। धुआँ घिरा है भीतर, कुछ दिखाई नहीं पड़ता; लेकिन हम चलते चले जाते हैं।

मैंने सुना है, एक दिन जोर की वर्षा हो रही है और मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी को लेकर कहीं जा रहा है। गाड़ी चला रहा है। वर्षा इतने जोर की है, लेकिन उसने वाइपर नहीं चलाया। तो उसकी पत्नी कहती है कि नसरुद्दीन अपनी को लेकर कहीं जा रहा है। गाड़ी चला रहा है। वर्षा इतनी जोर की है, लेकिन उसने वाइपर नहीं चलाया। तो उसकी पत्नी कहती है कि नसरुद्दीन, वाइपर तो चला लो, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। नसरुद्दीन ने कहा: कोई मतलब नहीं, क्योंकि मैं चश्मा घर ही भूल आया हूँ। मुझे वाइपर ही नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। इसलिए वाइपर चले, न चले, मुझे क्या फर्क पड़ने वाला है!

और जोर से गाड़ी भगाए जा रहा है। एक पुलिसवाला उसको रोकता है और पूछता है कि क्या तुम पागल हो गए हो? इतनी जोर से गाड़ी भगा रहे हो! इतना धुंध छाया हुआ है और वाइपर तुम्हारे चल नहीं रहे।

नसरुद्दीन कहता है कि एक्सीडेंट होने के पहले मैं घर पहुंच जाना चाहता हूँ, इसलिए तेजी से चला रहा हूँ।

मूर्च्छा में ऐसा ही हो रहा है। और आप जो भी कर रहे हैं, सुरक्षा ही के लिए कर रहे हैं। वह तेजी से चला रहा है, ताकि एक्सीडेंट होने के पहले घर पहुंच जाए। जो आपके भीतर अगर ऐसी घनी मूर्च्छा है, जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है, जहां खुद का होना नहीं दिखाई पड़ रहा है, वहां दूसरे का होना दिखाई पड़ने का तो सवाल ही नहीं है। आपको अपना पता नहीं है, दूसरे का पता तो कैसे हो सकता है!

आत्मज्ञान समस्त ज्ञान का आधार है, स्रोत है। तो महावीर कहते हैं: "सब जीवों को अपने समान समझता है...।" यह होश के बाद ही होगा।

"जो अपने-पराए को समान दृष्टि से देखता है...।"

क्योंकि जैसे ही होश निर्मित होना शुरू होता है, यह साफ हो जाता है कि न कोई अपना है, और न कोई पराया है। क्योंकि अपने-पराए के सब संबंध मूर्च्छा से निर्मित हुए थे। किसी को अपना कहा था, क्योंकि वह मूर्च्छा को भरता था; मेरे स्वार्थ को पूरा करता था; मेरे शोषण का आधार। किसी को पराया कहा था, क्योंकि वह बाधा डालता था। कोई मित्र था, क्योंकि सहयोगी था। कोई दुश्मन था, क्योंकि बाधक था।

लेकिन जैसे-जैसे होश बढ़ता है, यह साफ होने लगता है कि न कोई सहयोगी हो सकता है, न कोई बाधक; न मुझे कोई सुख दे सकता है, न दुख; इसलिए न कोई मित्र हो सकता है, और न कोई शत्रु। तो अपना-पराया होने लगता है।

"जिसने आश्रवों का निरोध कर लिया है...।"

जैसे ही होश बढ़ता है, पाप ग्रहण करना बंद हो जाता है। अभी तो हम आतुर होते हैं। कहीं से खबर हमें मिल जाए पाप की, तो हम एकदम आकर्षित होते हैं। हमारी सारी चेतना जैसे पाप के लिए तैयार बैठी थी। पाप में हमें रस है।

अखबार देखते हैं; कहीं हत्या, कहीं लूट, कहीं किसी की पत्नी भाग गई किसी के साथ--आंखें एकदम अटक जाती है। बिना पढ़े फिर आगे नहीं बढ़ा जाता। जिस फिल्म में सभी कुछ शुभ हो, उसे देखने कोई जाएगा ही नहीं। अशुभ हमें खींचता है। जिस कहानी में सिर्फ संतों की चर्चा हो, उसमें कुछ कहानी जैसा न रह जाएगा।

आस्कर वाइल्ड ने कहा है: अच्छे आदमियों का कोई चरित्र ही नहीं होता। उसने ठीक कहा है। अच्छे आदमी का कोई चरित्र नहीं होता, चरित्र बुरे आदमी का होता है। इसलिए अच्छे आदमी के आस-पास कहानी खड़ी नहीं हो सकती--चरित्र ही नहीं है! बुरे आदमी के आस-पास कहानी खड़ी होती है।

अच्छा आदमी निश्चरित्र होता है, ऐसा समझना चाहिए: शून्य होता है; खाली होता है। कुछ घटना उसके आस-पास घटती नहीं। न हत्या होती है, न चोरी होती है, न बेईमानी होती है--कुछ नहीं होता। वह खाली होता है, जैसे न होता, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अच्छा आदमी हट जाए तो कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि अच्छा आदमी कुछ कर ही नहीं रहा है।

महावीर कहते हैं: जैसे ही होश बढ़ना शुरू होता है, वैसे ही पाप के प्रति जो हमारा प्रबल आकर्षण है, जो आश्रव है, जो हमें खींच रहा है और हम खिंचे जा रहे हैं, वह गिरने लगता है। पाप के प्रति हमारी रुचि क्षीण होने लगती है। आप चाहे पाप न कर रहे हों, लेकिन कोई पाप करता है, उसमें आपका रस है। वह रस भी पाप करने जैसा ही है। वह पाप है प्राक्सी के द्वारा। दूसरे के माध्यम से आप पाप का मजा ले रहे हैं।

आपने देखा, फिल्म देखते वक्त आप आइडेंटिफाइड हो जाते हैं किसी पात्र से, आप एक हो जाते हैं किसी पात्र से। और वह पात्र आपके जीवन को जीने लगता है। आप अपने भीतर से जो निकालना चाहते थे और नहीं निकाल पाए हैं, वह आप उस पात्र में निकालते हैं। यह प्राक्सी से जीवन है। यह अभिनेता के माध्यम से आप काम कर रहे हैं। इसमें आपको निकास होता है--मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कैथार्सिस होता है। वे ठीक कहते हैं। अगर आप खून से भरी फिल्म, हत्याओं से भरी फिल्म देख कर घर लौटते हैं, तो आपकी खुद की हत्या करने की वृत्ति और खून करने की वृत्ति थोड़ी सी राहत पाती है। किसी के द्वारा आपने यह काम कर लिया। घर आप हलके होकर लौटते हैं।

मनोवैज्ञानिकों का तो कहना है कि यह फिल्में हत्या आप में बढ़ाती नहीं, कम करती हैं। उनकी बात में सत्य हो सकता है। क्योंकि ये आपको थोड़ा सा हत्या करने का मौका दे देती हैं; और बिना किसी झंझट के, बिना किसी अपराध में फंसे। थोड़े से पैसे फेंक कर और तीन घंटे अपराध करके आप घर वापस आ जाते हैं।

क्या आपने देखा है, अगर फिल्म में कोई अली, कामुक दृश्य हो, तो आप कामोत्तेजित हो जाते हैं। उसका अध्ययन नहीं किया गया: किया जाना चाहिए। लोगों पर यंत्र लगाए जा सकते हैं, जो उनके मस्तिष्क की खबर दें। जब कोई नग्न स्त्री चित्र में आती है, तो आप कामोत्तेजित हो जाते हैं। वह कामोत्तेजना एक तरह को संभोग है: प्राक्सी... ।

मुल्ला नसरुद्दीन एक फिल्म में बैठा हुआ है। खूब पी गया है। पहला शो खत्म हो गया है, लेकिन वह वहां से हटता नहीं। नौकर आकर उसे कहते हैं कि यह शो खत्म हो गया है। वह कहता है, दूसरी टिकट लाकर यहीं दे दो। दूसरा शो भी खत्म हो गया। वह कहता है, तीसरी टिकट भी लाकर... । मैनेजर भागा हुआ आता है... आप होश में हैं, नसरुद्दीन?

नसरुद्दीन कहता है कि जरा कुछ कारण है।

मैनेजर पूछता है, कारण क्या है?

फिल्म में एक दृश्य है कि कुछ स्त्रियां कपड़े उतारकर तालाब में कूदने की तैयारी कर रही हैं। वे बिल्कुल उन्होंने कपड़े उतार दिए हैं। आखिरी कपड़ा उतारने को रह गया है और तभी एक रेलगाड़ी दृश्य को ढांक लेती है। पानी में कूदने की आवाज आती है, लेकिन तब तक उस रेलगाड़ी ने सब गड़बड़ कर दिया। वे पानी में खड़ी हैं। वह रेलगाड़ी चली गई।

नसरुद्दीन कहता है, कभी तो रेलगाड़ी लेट होगी। मैं यहां से हटने वाला नहीं हूं, कब तक ठीक वक्त पर आती चली जाएगी! एक सेकेंड भी लेट हो गई कि... !

आदमी पाप के लिए बिल्कुल आतुर है। महावीर इस पाप की आतुरता को "आश्रव" कहते हैं। जैसे होश बढ़ता है, वैसे ही ये आश्रव क्षीण होने लगते हैं।

"जो चंचल इंद्रियों का दमन कर चुका है... ।"

यह "दमन" शब्द समझ लेना जरूरी है। क्योंकि जिन अर्थों में महावीर ने ढाई हजार साल पहले इसका उपयोग किया, उस अर्थ में आज इसका उपयोग नहीं होता। दमन का आज अर्थ होता है, रिप्रेशन। और फ्रायड ने इसका अलग अर्थ साफ कर दिया है, किसी चीज को दबा लेने का नाम दमन है।

महावीर के लिए दमन का अर्थ था: किसी चीज का शांत हो जाना। दम का अर्थ है: शांत हो जाना। दमन का अर्थ है, कोई चीज इतनी शांत हो गई कि अब आप में हिलती-डुलती नहीं। महावीर के लिए दमन का अर्थ दमन नहीं था, रिप्रेशन नहीं था। महावीर के लिए अर्थ था: किसी चीज का बिल्कुल शांत हो जाना, निर्जीव हो जाना।

तो जिसकी चंचल इंद्रियां इतनी शांत हो गई हैं। वह जैसे ही होश बढ़ता है, चंचल इंद्रियां शांत हो जाती हैं। उनकी चंचलता हमारी बेहोशी के कारण है। जैसे हवा चलती है तो वृक्ष के पत्ते कंपते हैं; हवा रुक जाती है तो पत्ते रुक जाते हैं। आप पत्तों को रोक कर हवा को नहीं रोक सकते। कि एक-एक पत्ते को पकड़ कर रोकेंगे? और पत्ते आप पकड़ कर रोक भी लें तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा--हवा चल रही है। पत्तों को रोकना बिल्कुल पागलपन होगा, क्योंकि हवा धक्के मारती ही रहेगी। हवा रुक जाए, पत्ते रुक जाते हैं।

आपकी इंद्रियां चंचल हैं, क्योंकि भीतर मूर्च्छा है, हवा चल रही है। मूर्च्छा में चंचलता होगी। सिर्फ होश में स्थिरता हो सकती है। तो जैसे ही भीतर की हवा चलनी बंद हो जाती है, इंद्रियां थिर हो जाती हैं। कोई इंद्रियों को थिर करके मूर्च्छा से नहीं ऊपर उठता, लेकिन मूर्च्छा से ऊपर उठ जाए तो इंद्रियां थिर हो जाती हैं।

"चंचल इंद्रियों का जो दमन कर चुका है... ।"

जो पार हो चुका है इंद्रियों की अशांति के, और इंद्रियां शांत हो गईं--उसे पाप-कर्म का बंधन नहीं होता।

"पहले ज्ञान है, बाद में दया--पढमं नाणं तओ दया।"

यह सूत्र बड़ा अदभुत है। और जैन इस सूत्र को बिल्कुल भी नहीं समझ पाए या बिल्कुल ही गलत समझे। इस सूत्र से क्रांतिकारी सूत्र खोजना कठिन है--पहले ज्ञान बाद में दया।

महावीर कहते हैं: अहिंसा पहले नहीं हो सकती--पहले आत्मज्ञान है। पहले भीतर का ज्ञान न हो, तो जीवन का आचरण दयापूर्ण नहीं हो सकता; अहिंसापूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि जिसके भीतर ज्ञान का ही उदय नहीं हुआ, उसके जीवन में हिंसा होगी ही। वह लक्षण है। उसे हम ठीक से समझ लें।

एक आदमी को बुखार चढ़ा है। शरीर का गर्म हो जाना लक्षण है, बीमारी नहीं है। लेकिन कोई नासमझ यह कर सकता है कि ठंडे पानी से इसको नहलाओ ताकि इसकी गर्मी कम हो जाए; बीमारी ठीक हो जाएगी। बुखार बीमारी नहीं है, बुखार तो केवल लक्षण है। बीमारी तो भीतर है। उस बीमारी के कारण शरीर उत्तप्त है। क्योंकि शरीर के कोष्ठ आपस में लड़ रहे हैं। शरीर में एक संघर्ष छिड़ा है। शरीर में कोई विजातीय जीवाणु प्रवेश कर गए हैं, और शरीर के जीवाणु उन जीवाणुओं से लड़ रहे हैं। उस लड़ने के कारण गर्मी पैदा हो गई है। शरीर एक कुरुक्षेत्र बना है। उस कुरुक्षेत्र में शरीर उत्तप्त हो गया है।

उत्तप्तता बीमारी नहीं है। उत्तप्तता केवल बीमारी की खबर है। और उत्तप्तता शुभ है, क्योंकि वह खबर दे रही है कि कुछ करो--जल्दी करो। ठंडे पानी से उसको ठंडा किया जा सकता है, लेकिन इससे बुखार के मिटने की संभावना कम, मरीज के मिट जाने की संभावना ज्यादा है।

लक्षणों से लड़ना अज्ञान है। आप हिंसक हैं, क्योंकि भीतर कोई मूर्च्छा है। हिंसा लक्षण है, बीमारी नहीं। आप चोर हैं, दुष्ट हैं, कामुक हैं, पापी हैं--ये लक्षण हैं। इनसे लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। इनसे जो लड़ता है, वह भटक जाएगा। उसने चिकित्सा-शास्त्र का प्राथमिक नियम भी नहीं समझा। यह केवल खबर दे रहे हैं कि भीतर आत्मा सोई हुई है--बस, इतनी खबर दे रहे हैं। आत्मा को जगाओ, ये बदल जाएंगे।

अहिंसक होने से कोई आत्मज्ञानी नहीं होता, आत्मज्ञानी होने से अहिंसक होता है। पहले ज्ञान, फिर दया। लेकिन जैन इसको बिल्कुल ख्याल में नहीं ले पाए। वे "पहले दया, फिर ज्ञान" की पूरी कोशिश कर रहे हैं। पहले अहिंसा साधो, आचरण साधो, व्रत-नियम साधो--सब तरह से बाहर की पहले व्यवस्था करो, फिर भीतर की। वे कहते हैं कि पहले बाहर और फिर भीतर। और महावीर कहते हैं: पहले भीतर और फिर बाहर।

बाहर अटक जाना साधक के लिए सबसे खतरनाक है। क्योंकि वह अटकाव इतना लंबा है कि जन्मों लग सकते हैं और उससे छुटकारा न हो; और छुटकारा होगा नहीं।

हिंसा को बाहर से रोको, बुखार को बाहर से रोका--बुखार दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जाएगा। और जब दूसरी तरफ से निकलेगा तो ज्यादा खतरनाक होगा। पहला निकलना नैसर्गिक था; दूसरा विकृत, परवर्तित होगा।

कामवासना को बाहर से रोक लो, कामवासना दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जाएगी। और जब दूसरी तरफ से निकलना रोगपूर्ण होगा। पहला तो कम से कम प्राकृतिक था, यह अप्राकृतिक होगा।

कामवासना से लड़ने से कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता, लेकिन स्वयं का बोध आना शुरू हो जाए, ब्रह्मचर्य उसकी छाया की तरह पीछे आने लगता है।

आचरण छाया है। छाया को खींचने की कोशिश मत करो। उसे कोई भी खींच नहीं सकता। आप जहां होओगे, वहां छाया पहुंच जाएगी। अगर आप आत्मा में हो, तो छाया आत्मिक हो जाएगी। अगर आप शरीर में हो, तो छाया शारीरिक होगी। फिर आप कुछ भी करो, आपके करने से कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए मौलिक करने की जो बात है, गहरी करने की जो बात है, वह आत्मिक ज्ञान है।

महावीर कहते हैं, वह विवेक से फलित होगा। जितना भीतर होश जगेगा, उतनी भीतर की प्रतीति होगी। वही ज्ञान है।

पहले ज्ञान, बाद में दया। इसी क्रम पर--यह क्रम बहुत मूल्यवान है--त्यागी अपनी संयम यात्रा पूरी करता है। इसी क्रम पर--पहले ज्ञान फिर दया। लेकिन आदमी होशियार है, और अपने मतलब की बातें निकालता रहता है और गणित बिठाता रहता है।

इस सूत्र को बदलना तो बहुत मुश्किल है।

मैं एक जैन मंदिर में गया। एक मुनि को बड़ी इच्छा थी कि मुझसे मिलें। वे आ नहीं सकते थे मिलने क्योंकि उनके आस-पास जो गृहस्थों का जाल है, कारागृह है, वह उन्हें आने नहीं देता।

यह बड़े मजे की बात है। मुनि जाता है मुक्त होने। एक गृहस्थी से छूटता है, पच्चीस गृहस्थियों के चक्कर में फंस जाता है।

उन मुनि ने खुद मुझे खबर भेजी कि मैं आ नहीं सकता, क्योंकि श्रावक बाधा डालते हैं। वे कहते हैं, आपको जाने की क्या जरूरत? तो मैंने कहा कि मैं खुद आऊंगा, क्योंकि मुझे बाधा डालने वाला कोई भी नहीं है। मैं श्रावकों को बाधाएं डालता हूं, मुझे बाधा डालने वाला कोई नहीं है।

मैं गया। पर मैंने उनसे कहा कि आप भ्रान्ति में हैं कि श्रावक आपको बाधा डालते हैं। श्रावकों से आप डरते हैं, उसका कुछ कारण है। और कारण यह है कि आप उनसे साफ क्यों नहीं कहते कि मुझे पता नहीं है, मैं पूछने जाना चाहता हूं। श्रावकों को आप यही समझाए जा रहे हैं कि मुझे ज्ञान उपलब्ध हो गया है, और ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ है। इसलिए मुझसे मिलने आना चाहते हैं।

वे कहने लगे, जोर से मत बोलिए। वे लोग पास ही बैठे हैं। वे सब दरवाजे पर बैठे सुन रहे हैं।

वे आपको नहीं बांधे हुए हैं--आपका भ्रांत अहंकार कि आपको ज्ञान हो गया है। और उनके पीछे तख्ती लगी है, "पढमं नाणं तओ दया।" मैंने कहा: यह पीछे तख्ती किसलिए लगा रखी है? तो उन्होंने क्या व्याख्या की, वह मैं आपको कहना चाहता हूं। उन्होंने कहा कि नहीं, इसका मतलब यह है कि पहले शास्त्रज्ञान, पहले पढ़ कर शास्त्र से जानना पड़ेगा और फिर अहिंसा साधनी पड़ेगी।

महावीर विवेक के सूत्र की बात कर रहे हैं। इसमें शास्त्र का कहीं कोई संबंध नहीं है। और महावीर शास्त्र की बात तो कह ही नहीं सकते, क्योंकि महावीर जैसा शास्त्र-विरोधी आदमी ही नहीं हुआ। महावीर हिंदू धर्म के विपरीत गए--सिर्फ इसलिए कि हिंदू धर्म शास्त्रवादी धर्म हो गया। वेद परम हो गया। तो महावीर अवैदिक हैं। वे कहते हैं, वेद परम नहीं है। जो आदमी कहता है, वेद परम नहीं है, वह शास्त्र को परम नहीं कह सकता। और शास्त्रज्ञान से कहीं ज्ञान हुआ है?

तो मैंने उनसे पूछा कि शास्त्र तो आप पढ़ चुके हैं, ज्ञान हो चुका? अगर हो चुका तो आपकी व्याख्या ठीक है, और अगर ज्ञान नहीं हुआ तो व्याख्या में भूल है।

महावीर सीधा कह रहे हैं कि पहले ज्ञान, फिर दया। पहले भीतर का होश--अवेयरनेस, अप्रमत्तता, जागरूकता, सावधानी--फिर बाहर का आचरण अपने साथ-साथ चलने लगता है। जो हमें दिखाई पड़ जाए कि गलत है, वह बंद हो जाता है जीवन से। जो हमें दिखाई पड़ जाए कि सही है, वह होना शुरू हो जाता है।

और अगर आपको पता चलता है कि क्या सही है और क्या गलत है, फिर भी गलत आप करते हैं और सही नहीं करते, तो उसका मतलब है: वह शास्त्रज्ञान है, ज्ञान नहीं। और शास्त्रज्ञान अज्ञान से भी खतरनाक हो सकता है, क्योंकि उसमें भ्रांति होती है कि मैं जानता हूं--बिना जाने लगता है कि मैं जानता हूं।

इसलिए पंडित पापी से भी ज्यादा भटक जाता है। और पापी तो कभी-कभी मोक्ष में पहुंच जाते सुने हैं, पंडित कभी नहीं पहुंच पाता। हालांकि पंडित गणित बिठाता रहता है। और हर गणित जिसको वह दूसरे से सरल करता है, जिससे वह हल करता है पहले को, जिस दूसरे गणित से हल करता है, वह दूसरा पहले से भी ज्यादा उपद्रव में ले जाता है। फिर उसको दस तरकीबें और दस तर्क और खोजने पड़ते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन जा रहा है ट्रेन से अपनी पत्नी के साथ। ट्रेन भागी जा रही है साठ-सत्तर मील की रफ्तार से। एक खेत में, एक पहाड़ की खाई के करीब, एक भेड़ों का बड़ा भारी झुंड है। पत्नी कहती है, कितनी भेड़ें हैं।

नसरुद्दीन कहता है, ठीक सत्रह सौ चौरासी! पत्नी कहती है, क्या कह रहे हो? इतनी शीघ्रता से तुमने गिन भी लिया? ठीक सत्रह सौ चौरासी?

नसरुद्दीन ने कहा कि सीधा गिनना तो संभव नहीं है--इट इज इंपासिबल टु काउंट डाइरेक्टली। आइ डिड इट इनडाइरेक्टली--मैंने जरा यह परोक्ष रूप से किया। पत्नी ने उससे पूछा कि वह कौन सा परोक्ष रूप?

तो नसरुद्दीन ने कहा-- एक छोटे से छोटा बच्चा भी जानता है--ईवन ए स्कूल बाय नोज द ट्रिक: फर्स्ट द लेग्स, देन डिवाइड देम बाई फोर--पहले पैर गिन लो, फिर चार से भाग दे दो। पहले मैंने पैर गिने, फिर चार से भाग दे दिया। ठीक सत्रह सौ चौरासी भेड़ें हैं।

पंडितों के सारे गणित ऐसे हैं। जिस बात से वे पहले उपद्रव हो हल करते हैं, वह और भी ज्यादा उपद्रव के हैं। फिर उनसे और पूछिए तो वे और चार तर्क खड़े कर देते हैं। एक रेशेलाइजेशन का जाल है। वे खड़ा करते चले जाते हैं। लेकिन उससे मूल भूल मिटती नहीं। हां, जो नहीं समझ पाते हैं गणित को, उनको शायद चमत्कार हो जाता हो। शायद वे सोचते हों कि जरूर कोई रहस्य होगा, अभी इतना गणित हल हो रहा है। लेकिन पहली, प्राथमिक भूल मिटती नहीं।

बुनियादी भूल यह है कि कोई भी चरित्र पैदा नहीं होता बोध के बिना। अगर बोध के बिना चरित्र पैदा करने की कोशिश की, तो चरित्र थोथा और पाखंड होगा--हिपोक्रेसी होगा। और ऐसा चरित्र नरक भला ले जाए, मोक्ष नहीं ले जा सकता। और ऐसा चरित्र यहां भी पीड़ा देगा; यहां भी कष्ट देगा--क्योंकि झूठा होगा, जबरदस्ती होगा।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि जिंदगी भर हमने कोई चोरी नहीं की; बेईमानी नहीं की--लेकिन कैसा नियम है जगत का कि चोर और बेईमान धनपति हो गए हैं; आनंद लूट रहे हैं; कोई पद पर है; कोई प्रतिष्ठा पर है; कोई सिंहासन पर बैठा हुआ है, और हम ईमानदार रहे और दुख भोग रहे हैं!

उनको मैं कहता हूं कि तुम सच्चे ईमानदार नहीं हो। नहीं तो ईमानदारी से ज्यादा सुख तुम्हें महल में दिखाई नहीं पड़ सकता था। तुम्हारी ईमानदारी पाखंड है। तुम भी बेईमान हो, लेकिन कमजोर हो। वह बेईमान ताकतवर है। वह साहसी है। वह कर गुजरा, तुम बैठे सोचते रह गए। तुम सिर्फ कायर हो, पुण्यात्मा नहीं हो। तुममें बेईमानी करने की हिम्मत भी नहीं है, लेकिन बेईमानी का फल मिलता है, उसमें रस है। तुम चाहते हो कि बेईमानी न करूं और महल हमें मिल जाए। तब तुम जरा ज्यादा मांग रहे हो। बेईमान बेचारे ने कम से कम बेईमानी तो की; कुछ तो किया; दांव पर तो लगाया ही; झंझट में तो पड़ा ही; वह जेल में भी हो सकता है। उतनी उसने जोखम ली।

जोखम हमेशा हिम्मतवर का लक्षण है। तुम सिर्फ कमजोर हो, और कमजोरी को तुम ईमानदारी कह रहे हो। तुम नहीं कर सकते बेईमानी, इसका मतलब यह नहीं है कि तुम ईमानदार हो। इसका कुल मतलब इतना है कि तुममें साहस की कमी है। अगर तुम ईमानदार होते, तो तुम कहते कि बेचारा महलों में सड़ रहा है। बेईमानी करके देखो--यह फल मिला--कि महलों में सड़ रहा है; कि सिंहासन पर सड़ रहा है। तुम्हें दया आती, और तुम आनंदित होते।

लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि बेईमान कभी ईमानदारों की ईर्ष्या नहीं करते। यह बड़े मजे की बात है। और ईमानदार हमेशा बेईमानों की ईर्ष्या करते हैं। इससे बात साफ है कि वह जो ईमानदार है, झूठ है; धोखा है। उसकी ईमानदारी ऊपरी कवच है, उसका आंतरिक प्रकाश नहीं है। और वह जो बेईमान है, वह कम से कम सच्चा है; साफ है, कम से कम जटिल नहीं है; उलझा हुआ नहीं है।

भला आदमी... उसका भला होना ही इतना बड़ा आनंद है कि वह क्यों ईर्ष्या करेगा? दया कर सकता है। लेकिन आप सब भले आदमियों को ईर्ष्या करते पाएंगे। वे समझते हैं कि अपनी भलाई की वजह से वे असफल हो गए हैं।

भलाई की वजह से दुनिया में कोई अभी असफल नहीं होता और बुराई की वजह से दुनिया में कोई सफल नहीं होता। सफलता का कारण है: बुराई के साथ कोई साहस जुड़ा है; कोई सच्चाई जुड़ी है; यह जरा समझ लें। असफलता का कारण है: भलाई के साथ कोई कमजोरी, कोई कायरता, कोई नपुंसकता जुड़ी है।

बेईमान अपनी बेईमानी में जितना साहसी है, ईमानदार अपनी ईमानदारी में उतना साहसी नहीं है, वह साहस प्राण ले लेता है, उसकी कमी सब गड़बड़ कर जाती है। जगत में सफलता आर्थिक, प्रामाणिक को मिलती है, चाहे वह प्रामाणिक अपनी बेईमानी में ही क्यों न हो; निष्ठावान को मिलती है, चाहे उसकी निष्ठा गलत में ही क्यों न हो।

सत्य भी कमजोर है अगर निष्ठा उसके पीछे नहीं है। लेकिन पाखंडी... । यह तो आप पक्का जानते हैं कि आपको बेईमान पाखंडी मिलना मुश्किल है कि ऊपर-ऊपर बेईमानी और भीतर-भीतर ईमानदार। कभी आपने ऐसा कोई पाखंड देखा है कि ऊपर-ऊपर बेईमानी, ऊपर-ऊपर चोरी, असत्य; भीतर-भीतर सब ठीक।

नहीं, अधर्म में कोई पाखंडी होते ही नहीं। सिर्फ में पाखंडी होते हैं--भीतर बेईमानी, चोरी, बदमाशी, सब--बाहर-बाहर अच्छा, कपड़ों पर सब रंग-रोगन, भीतर सब गंदगी। इस पाखंड, इस द्वंद्व, इस आंतरिक और बाह्य के विरोध के कारण, जिसको हम भला आदमी कहते हैं, वह असफल होता है।

सफलता उसको मिलती है तो एकजुट है। और मैं कहता हूं कि बुराई तक सफल हो जाती है अगर एकजुट हो, तो जिस दिन भलाई एकजुट होती है, उसकी सफलता का तो कोई मुकाबला नहीं कर सकता। सारा जगत उसके विपरीत हो जाए, तो भी उसकी सफलता का कोई मुकाबला नहीं हो सकता। लेकिन हम हमेशा बुरे में निष्ठावान होते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक कुत्ता बेचना चाहता है। बाजार में खड़ा है। कुत्ता बड़ा खूबसूरत है; बड़ा शानदार है; देखने में बड़ा ताकतवर है। एक आदमी खरीदने आता है। मुल्ला कहता है कि तीन सौ रुपया।

वह आदमी कहता है कि जरा ज्यादा दाम बता रहे हैं! दिस इ.ज टू मच।

मुल्ला नसरुद्दीन कहता है, पहले इस कुत्ते को तो देखो ठीक से। दिस डाग इ.ज आलसो टू मच! इस कुत्ते की शान देखो! इसका सौंदर्य देखो!

वह आदमी कहता है, वह तो बात ही मत करो! डोंट टॉक अबाउट हिज फेथफुलनेस। आइ हैव सोल्ड हिम सेवन टाइम्स, ही कम्स बैक विदिन ट्वेल्फ आवर्स--इसकी निष्ठा की तो बात मत करो! सात दफे बेच चुके, बारह घंटे में वापस आ जाता है। इसकी तुम फिकर ही मत करो। मालिक के प्रति इसकी निष्ठा तो बिल्कुल अटूट है!

जहां हम जी रहे हैं, वहां अगर दुख है, पीड़ा है और हम सोचते हैं कि हम शुभ हैं, धार्मिक हैं, तो समझना, कहीं भूल हो रही है। धार्मिक व्यक्ति को पीड़ा होती ही नहीं, हो नहीं सकती। वह असंभव है। शुभ के साथ दुख का कोई संबंध ही नहीं है। और अगर दुख है, तो समझना कि सुख झूठ है, धोखा है। महावीर इसीलिए कहते हैं--पहले ज्ञान बाद में दिया।

"इस क्रम पर त्यागी वर्ग अपनी संयम-यात्रा के लिए ठहरा हुआ है।" यही क्रम है, पहले ज्ञान फिर दिया। पहले आंतरिक बोध, पहले भीतर का दीया जले, फिर आचरण में प्रकाश।

"भला, अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा? श्रेय तथा पाप को वह जान ही कैसे सकेगा?" जिसके भीतर का दीया बुझा हुआ है, उसे कैसे पता चलेगा, क्या प्रकाश है और क्या अंधेरा है? क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है? कहां जाऊं, कहां न जाऊं? उसे दिशाओं का कोई भी पता नहीं हो सकता है। इसलिए विवेक, होश पहली शर्त है।

"सुन कर ही कल्याण का मार्ग जाना जाता है। सुन कर ही पाप का मार्ग जाना जाता है। दोनों ही मार्ग सुन कर जाने जाते हैं। बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे, फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे।"

यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिए। और महावीर की परंपरा में इसका बड़ा मूल्य है। इतना मूल्य है कि महावीर ने अपने साधक को "श्रावक" कहा है।

श्रावक का अर्थ है: ठीक सुनने वाला--राइट लिसनर। हम सभी सुनते हैं। इसलिए महावीर कुछ ज्यादाती करते करते मालूम पड़ते हैं। वह ठीक सुनने का क्या मतलब? जिसके कान ठीक हैं, वह ठीक सुनने वाला है। कान खराब हों तो ठीक सुनने वाला नहीं है।

लेकिन महावीर कहते हैं: ठीक सुनने वाला वह है जो सुनते समय विचार का बिल्कुल ही त्याग कर देता है। जो सिर्फ सुनता है। जिसकी सारी ऊर्जा और सारी चेतना सुनने में लग जाती है। जो सुनते वक्त न तो पक्ष सोचता है, न विपक्ष सोचता है। न तो कहता ठीक, न कहता गलत। न कोई तर्क खड़े करता, न भीतर द्वंद्व करता। न अपने शास्त्रों से मिलाता, न अपने अतीत के साथ तुलना करता। जो सुनते वक्त एक शून्य की भांति हो जाता है।

इसका यह मतलब नहीं है कि सुन कर वह अंधा हो जाता है। महावीर कहते हैं, पहले सुन ले साधक पूरा, फिर सोचे। लेकिन सुनने की घटना पहले घट जाए। आमतौर से ऐसा नहीं होता है। जब आप सुनते हैं, तभी आप सोचते रहते हैं। और आपका सोचना सुनने को विकृत कर देता है। फिर जो आप सुन कर जाते हैं उसमें जो कहा गया है वह शायद ही होता है। आपने जो जोड़ लिया वही होता है। आपकी व्याख्याएं सम्मिलित हो जाती हैं।

आपका मन अगर सम्मिलित हो जाए; आपके अतीत का कचरा, आपकी स्मृतियां अगर सुनते वक्त हमला बोल दें, तो जो भी आपने सुना वह अशुद्ध हो गया। उस अशुद्ध के आधार पर कोई साधना के जगत में जा नहीं सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं: पाप भी सुन कर जाना जाता है, पुण्य भी सुन कर जाना जाता है।

प्राथमिक चरण में, जहां हम अंधेरे में खड़े हैं, हम उनसे ही सुनेंगे, जो प्रकाश में पहुंचे हैं। पहली आवाज इस अंधेरे में हमें सुनाई पड़ेगी उनकी, जो कि प्रकाश को उपलब्ध हो गए हैं। उनकी आवाज के सहारे हम भी बाहर जा सकते हैं। लेकिन पहले सुन लेना, बिल्कुल ठीक से सुन लेना जरूरी है।

हम अगर रेडियो भी सुनने बैठते हैं, तो ठीक से ट्यूनिंग करते हैं। दो-तीन स्टेशन एक साथ लगे हों, तो आप नहीं मानेंगे कि आप जो सुन रहे हैं, वह ठीक है। रेडियो के साथ हम जितनी समझदारी बरतते हैं, उतनी अपने भीतर नहीं बरतते। वहां कई स्टेशन एक साथ लगे रहते हैं।

अब मैं बोल रहा हूं--आपके भीतर कई स्टेशन साथ में बोल रहे हैं। कुछ आपने पढ़ा है, वह बोल रहा है। कुछ और सुना है, वह बोल रहा है। किसी धर्म को आप मानते हैं, वह बोल रहा है। किसी गुरु को आप मानते हैं, वह बोल रहा है। और आप तो बोल ही रहे हैं निरंतर! और आप कोई एक नहीं हैं, आप पूरी एक भीड़ हैं! आपके भीतर बाजार है--शेयर मार्केट, जो भीतर चल रहा है। वहां कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है कि क्या हो रहा है।

महावीर कहते हैं: श्रवण, शुद्ध श्रवण। जब मन बिल्कुल शून्य है। सिर्फ सुन रहा है, सोच नहीं रहा है और पूरी तरह आत्मसात कर रहा है, जो कहा जा रहा है, ताकि एक दफा पूरा का पूरा भीतर साफ हो जाए, फिर सोच लेंगे; फिर अपनी बुद्धि का पूरा प्रयोग कर लेंगे। इसलिए महावीर अंधश्रद्धा के आग्रही नहीं हैं। कोई यह न समझे कि महावीर कहते हैं: जो मैं कहता हूं, वह मान लो। महावीर कहते हैं, सुन लो। मानने की जल्दी नहीं है। न मानने की भी जल्दी मत करो। पहले सुन लो ताकि तुम न्यास कर सको। और फिर पीछे सोच लेना।

"सुन कर कल्याण का मार्ग जाना जाता है। सुन कर ही पाप का मार्ग जाना जाता है। दोनों ही मार्ग सुन कर जाने जाते हैं। बुद्धिमान साधक का कर्तव्य है कि पहले श्रवण करे और फिर अपने को जो श्रेय मालूम हो, उसका आचरण करे।"

अंततः आचरण के पहले, साधना में उतरने के पहले निर्णय करे। लेकिन वह निर्णय तभी किया जाए, जब शुद्ध श्रवण घट चुका हो। इसलिए महावीर ने कहा कि चार तीर्थ हैं जिनसे मोक्ष जाया जा सकता है: श्रावक, श्राविका, साध्वी, साधु। चार तीर्थ हैं।

यह बड़े मजे की बात है कि महावीर के कहा कि अगर कोई ठीक से सुन भी ले, तो भी मोक्ष जा सकता है। ठीक सुनना भी एक बड़ी आंतरिक घटना है। कृष्णमूर्ति बहुत जोर देते हैं: राइट लिसनिंग, ठीक से सुनो। पर उनके सामने लोग बैठे हैं, जो नोट करते रहते हैं। वे सुनेंगे कैसे! उनकी फिकर इसमें है कि नोट करने में कोई चूक न जाए, घर जाकर फिर...। जिंदा आदमी बोल रहा है, वे नोट कर रहे हैं।

एक सज्जन को मैं यहां भी देखता हूं, वे नोट करते रहते हैं। वे लेखक हैं। वे किताबें लिखते हैं। उनको यहां सुनने से मतलब नहीं है। उनको कुछ समझने से भी मतलब नहीं है। उन्हें यहां से कुछ इकट्ठा कर लेना है, जिसको जाकर वे किताब में लिख देंगे। आपको सुनने का एक क्षण मिले, उसको आप गंवा देते हैं। आप कुछ और कर रहे हैं, जब सुना जा सकता था। और जब सुना नहीं जा सकेगा, तब आप सोचेंगे। सब विकृत हो जाएगा।

महावीर कहते हैं कि अगर कोई ठीक से सुन ले, श्रावक हो, तो भी सीधा मोक्ष जा सकता है। उनकी आवाज ठीक से सुन ले, जो प्रकाश में उठ गए हैं--तो उस आवाज की दिशा को पकड़ कर...।

ध्यान रखें, यह बड़ा फर्क है। क्या कहा गया है, वह उतना मूल्यवान नहीं है। किस दिशा से आवाज आई है, उस दिशा को पकड़ कर श्रावक भी मुक्त हो सकता है। आप अंधेरे में खड़े हैं और एक आवाज आती है। आवाज में क्या कहा गया है, वह उतना सवाल नहीं है, आवाज किस दिशा से आती है, अगर उस दिशा को आप पकड़ लें, तो थोड़ी ही देर में अंधेरे के बाहर हो जाएंगे।

महावीर और बुद्ध या कृष्ण के वचन अर्थों से नहीं समझे जाते, दिशाओं के बोध... । जब महावीर बोलते हैं, तो किस दिशा से बोलते हैं? कहां से, किस महाशून्य से वह आवाज आती है? उस दिशा को आप पकड़ लें, आप महाशून्य के पथ पर चल पड़ें। और फिर, फिर आप सोचें, आचरण करें, निर्णय करें--क्या श्रेय है, क्या अश्रेय है।

जो नासमझ हैं, वे जल्दी निर्णय कर लेते हैं। जो समझदार हैं, वे प्रतीक्षा करते हैं; आत्मसात हो जाने देते हैं; खून-हड्डी में मिल जाने देते हैं उस आवाज को, ताकि दिशा का बोध होने लगे। और दिशा का बोध असली बात है।

महावीर मूल्यवान नहीं हैं, किस दिशा से महावीर की आवाज आ रही है, वह मूल्यवान है। अगर वह दिशा आपको दिखाई पड़नी शुरू हो जाए, तो आप समझेंगे कि यह दिशा वही है, जहां से क्राइस्ट की आवाज आती है; कृष्ण की आती है; मोहम्मद की आती है। लेकिन अगर आप शब्दों को पकड़ें, तो शब्द अलग हैं। क्योंकि मोहम्मद अरबी बोलते हैं; महावीर प्राकृत बोलते हैं; कृष्ण संस्कृत बोलते हैं; जीसस हिब्रू बोलते हैं। वे आवाजें बड़ी अलग-अलग हैं।

पंडित आवाजों से उलझ जाते हैं। श्रावक दिशा के बोध से भर जाता है और उस दिशा में सरकने लगता है। अगर आप ठीक सुनें तो आपके भीतर रेडार पैदा हो जाता है। उस रेडार में पकड़ आने लगती है, कौन सी दिशा।

महावीर मूल्यवान नहीं हैं। कहां से आती है यह आवाज; कौन बोलता है महावीर के भीतर से; कौन सा महाशून्य, कौन सा महासत्य, उस तरफ आप हटने शुरू हो जाते हैं एक-एक कदम। जल्दी ही आप पाएंगे, अंधेरे के बाहर आ गए हैं; महाप्रकाश आपको चारों ओर से घेरे हुए है।

आज इतना ही।

संयम है संतुलन की परम-अवस्था (मोक्षमार्ग-सूत्र: 2)

जो जीवे वि न जाणे, जीवे वि न जाणइ।
 जीवा जीवे याणंतो, कहं सो नाहिइ संजमं॥
 जो जीवे वि वियाणाइ, जीवे वि वियाणइ।
 जीवा जीवे वियाणंतो, सो हु नाहिइ संजमं॥
 जया गइ बहुविहं, सब्वजीवाण जाणइ।
 तया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणइ॥
 जया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणइ।
 तया निव्विंदए मोए
 जे दिव्वे जे य माणुसे॥

जो न तो जीव अर्थात् चेतनतत्त्व को जानता है, और न अजीव अर्थात् जड़तत्त्व को जानता है, वह जीव-अजीव के स्वरूप को न जानने वाला साधक, भला किस तरह संयम को जान सकेगा?

जो जीव को जानता है और जीव को भी, वह जीव और जीव दोनों को भलीभांति जानने वाला साधक ही संयम को जान सकेगा।

जब वह सब जीवों की नानाविध गतियों को जान लेता है, तब पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष को भी जान लेता है।

जब (साधक) पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष को जान लेता है, तब देवता और मनुष्य संबंधी काम-भोगों की व्यर्थता जान लेता है--अर्थात् उनसे विरक्त हो जाता है।

आत्मा का शरीर के पीछे छाया की तरह चलना असंयम है। आत्मा का प्रवाह शरीर की तरफ जाने से रुक जाए, ठहर जाये, आत्मा में ही फिर लीन हो जाए; और आत्मा गुलाम न रहे, मालिक हो जाए--उस अवस्था का नाम संयम है।

इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि महावीर की पूरी साधना-पद्धति संयम की ही पद्धति है। संयम का अर्थ शरीर को दबा रखना नहीं है; क्योंकि जिसे हम दबाते हैं, उससे हम दब भी जाते हैं।

अगर किसी व्यक्ति की छाती पर आप बैठ जाएं उसे दबा कर, तो आप छाती पर बैठे हैं, यह सच है, और वह नीचे आपके दबा है, यह भी सच है--लेकिन आप वहां से हट भी नहीं सकते। क्योंकि आपके हटते ही वह व्यक्ति मुक्त हो जाएगा। तो जहां वह पड़ा है, वहीं आप भी पड़े रहेंगे। उसे दबाए रखने का अर्थ होगा कि आप भी उससे रत्तीभर आगे नहीं जा सकते।

इसलिए जो व्यक्ति शरीर को दबा लेते हैं, वे शरीर के मालिक तो नहीं होते, मालिकियत के वहम में होते हैं। और जहां शरीर को दबाए रखते हैं, वहीं उनकी आत्मा भी रुकी रह जाती है; अटकी रह जाती है। इसलिए तथाकथित साधु शरीर से बंधा हुआ होता है उसी तरह, जैसा तथाकथित गृहस्थ बंधा होता है।

घर से बंधे हुए आदमी का नाम गृहस्थ है। घर है आपका शरीर, जहां चेतना आवास कर रही है। फिर इस शरीर की मालिकियत भोग के लिए हो आपके ऊपर या योग के लिए हो आपके ऊपर--दोनों ही स्थितियों का नाम असंयम है।

संयम का अर्थ है: मेरे भीतर ऐसे साफ हो जाए मेरी चेतना; शरीर साफ हो जाए; दोनों के बीच कोई सेतु न रह जाए, कोई संबंध न रह जाए--न भोग और न योग का। इसलिए महावीर "योग" शब्द का उपयोग नहीं करते हैं। बल्कि बड़ी हैरानी होगी आपको जान कर कि महावीर योग शब्द का अर्थ मनुष्य का परमात्मा से जुड़ जाना, ऐसा नहीं करते, जैसा पतंजलि करते हैं।

महावीर कहते हैं, योग का अर्थ है, संसार और मनुष्य का शरीर से जुड़ जाना। इसलिए महावीर ने परम स्थिति को "अयोगी" कहा है--जहां संबंध टूट जाता है। योग का अर्थ है जोड़। तो तब तक शरीर और आत्मा जुड़े हैं, तब तक योग की अवस्था है। जिस दिन शरीर और आत्मा का संबंध छूट जाता है; टूट जाता है सेतु बीच से, उस दिन "अयोगी!"

इसलिए महावीर ने अयोग को परम अवस्था कहा है, जहां कोई संबंध नहीं रह जाते, सब जोड़ टूट जाते हैं।

इस अयोग को साधने के लिए दमन, दबाना मार्ग नहीं हो सकता। इस संयम को साधने का मार्ग बोध होगा, ज्ञान होगा--महावीर ने कहा: विवेक होगा--इस बात का ठीक-ठीक बोध कि शरीर अलग है और मैं अलग हूं।

जिस व्यक्ति को यह बोध हो जाता है, वह न तो शरीर को भोगता है और न शरीर को दबाता है। वह शरीर से कोई संबंध ही स्थापित नहीं करता। अगर वह भोजन भी करता है, तो शरीर ही भोजन करता है--वह भीतर देखता ही रहता है। अगर वह बीमार पड़ता है, तो शरीर ही बीमार पड़ता है--वह भीतर देखता ही रहता है। वह हर हालत में अयोग में ठहरा रहता है। वह भीतर साक्षी बना रहता है। शरीर जीए कि मरे, कि भूखा हो कि पेट भरा हो, कि शरीर को सुविधा हो कि असुविधा हो--सभी कुछ शरीर को हो रहा है। इस संसार में जो भी हो रहा है, वह शरीर के साथ हो रहा है, मेरे साथ नहीं हो रहा है।

मेरे और शरीर के बीच फासला, स्पेस पैदा हो जाए--उस फासले का नाम संयम है। न तो भोगी फासला पैदा कर पाता है, क्योंकि वह शरीर के माध्यम से भोगता है। और जिस माध्यम से हम भोगते हैं, उससे हम जुड़ जाते हैं। और न तथाकथित योगी फासला पैदा कर पाता है, क्योंकि वह शरीर के माध्यम से लड़ता है। और जिससे हम लड़ते हैं, उससे भी जुड़ जाते हैं।

मित्र से भी संबंध हो जाता है, शत्रु से भी। शत्रुता संबंध का एक नाम है। जैसे मित्रता एक संबंध है, वैसे शत्रुता एक संबंध है। तो जो शरीर से मित्रभाव रखे हुए हैं, भोग रहे हैं, वे भी बंधे हैं; जो शरीर से शत्रु-भाव रखते हैं, वे भी उतने ही बंधे हैं। एक का बंधन प्रेम का है, एक का बंधन घृणा का है--लेकिन बंधन मौजूद है।

महावीर संयम तब कहते हैं, जब कोई बंधन न रहे--न मित्रता के, न शत्रुता के। न शरीर में कोई रस है, न शरीर से कोई विरसता है। न शरीर से कोई राग है, न कोई विराग है। शरीर अलग है, मैं अलग हूं--ऐसी स्पष्ट प्रतीति का नाम संयम है।

शरीर में हम जन्मों-जन्मों से रह रहे हैं, लेकिन हमें इस बात का पता नहीं कि शरीर में हम रह रहे हैं। शरीर के साथ हमारा तादात्म्य, आइडेंटिटी हो गई है; हम जुड़ गए हैं। ऐसा लगने लगा है, मैं शरीर हूं। यंत्र के साथ चैतन्य जुड़ गया और एक हो गया है!

महावीर कहते हैं, यह योग ही संसार है। इस योग के पार हो जाना ही मुक्ति है, विमुक्ति है; परम आनंद और परम सत्य की प्रतीति है। शरीर में हम कितना ही जीए हों, इससे कुछ भी न होगा। बच्चे तो बंधे ही होते हैं--उनका बंधा होना स्वाभाविक है--बूढ़े भी बंधे होते हैं! भोगी तो बंधे होते हैं--उनका बंधा होना स्वाभाविक है--जिनको हम योगी मानते हैं, वे भी बंधे होते हैं!

भोग का एक तरह का असंयम है, योग का दूसरी तरह का असंयम है। संयमी वह है, जिसने असंयम की संभावना ही तोड़ दी। संभावना है शरीर से जुड़े होना। संभावना है शरीर और अपने को एक मान लेना। यह

एकता जितनी गहरी हो जाए, उतना असंयम होगा। यह एकता जितनी कम हो जाए, उतना संयम होगा। और जिस दिन यह एकता बिल्कुल टूट जाए और साफ हो जाए--जैसा कि पुरानी कथाएं कहती हैं कि हंस जैसे पानी और दूध को अलग-अलग कर लेता है--जिस दिन हमारा विवेक शरीर और चेतना को अलग-अलग कर ले हंस की तरह, उस दिन संयम की अंतिम सीढ़ी उपलब्ध होती है; मंजिल उपलब्ध होती है।

इसलिए ज्ञानियों ने आत्मा को हंस भी कहा है; विवेक को, चेतना को हंस भी कहा है; और जो व्यक्ति इस स्थिति को पैदा हो जाता है, उसे परमहंस कहा है। परमहंस का अर्थ है कि जिसने अपने भीतर हंस की तरह दूध और पानी को अलग-अलग कर लिया।

हंस करता है या नहीं, पता नहीं--कविता की बात है! लेकिन आदमी कर सकता है। और दूध और पानी चाहे अलग न भी किए जा सकें--क्योंकि दूध और पानी दोनों ही एक तल के पदार्थ हैं--शरीर और चेतना अलग किए जा सकते हैं, क्योंकि अलग हैं ही। दोनों का आयाम अलग। दोनों का ढंग अलग। दोनों का होना अलग। दोनों का मिलना ही चमत्कार है, दोनों का अलग होना तो बड़ा सरल है। आपने बड़ी मेहनत की है दोनों को एक कर लेने की, तब भी एक नहीं हो गए हैं। सिर्फ भ्रान्ति है एक हो जाने की। सिर्फ ख्याल है एक हो जाने का। इसलिए महावीर कहते हैं, बंधन सिर्फ मन के हैं, भाव के हैं--प्रोजेक्शन हैं। वस्तुतः कोई बंधन नहीं है।

लेकिन आदमी बूढ़ा हो जाए, जीवन के सब दुख-सुख भोग ले, तो भी शरीर की वासना खींचती ही चली जाती है। अक्सर तो ऐसा होता है कि बूढ़ा होते-होते आदमी और भी कामवासना से भर जाता है।

इसलिए कोई उम्र से ही कभी मुक्त नहीं होता; और न उम्र से कोई कभी ज्ञानी होता है; और न उम्र से कभी कोई अनुभवी होता है। उम्र से तो कोई भी कितना ही बूढ़ा हो जाए, लेकिन जीवन की प्रौढ़ता उम्र से नहीं आती। और कितना ही आपको अनुभव हो जाए जीवन का, अनुभव अकेला आपको कहीं भी नहीं ले जाता--हो सकता है और गर्त में ले जाए; क्योंकि जितना हमें अनुभव होता जाता है, उतनी ही हमारी आदत भी मजबूत होती जाती है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन का जवान लड़का है। बीस वर्ष उसकी उम्र है, लेकिन थोड़ा शमूला है। न तो ज्यादा बोलता है, न ज्यादा लोगों से मिलता-जुलता है। और उसकी उम्र में जो स्वाभाविक है कि लड़कियों के पीछे घूमे, वह भी नहीं करता है--बंद अपनी किताबों में, द्वार बंद किए रहता है।

लेकिन एक दिन सांझ वह अपने कपड़े पहन कर, ठीक सज-धज कर नीचे उतरा सीढ़ियों से और उसने बूढ़े नसरुद्दीन से कहा कि पिता जी, अब बहुत हो चुका! और अब मैं वहीं करूंगा, जो मेरी उम्र में सभी लोग कर रहे हैं। और मैं शहर की तरफ जा रहा हूं सुंदर लड़कियों की तलाश में। और आज मैं खूब डट कर पीऊंगा भी ताकि मेरा यह सारा संकोच और यह मेरी सारी जड़ता टूट जाए। और आज तो अभियान और दुस्साहस की रात है। आज जो भी हो सकता है, वह मैं करूंगा। जो भी मेरी उम्र के लोग कर रहे हैं, वह मैं करूंगा। और ध्यान रहे, डोंट ट्राय एण्ड स्टॉप मी, कोशिश मत करना मुझे रोकने की!

नसरुद्दीन उठ कर खड़ा हो गया। उसने कहा: ट्राय एण्ड स्टॉप यू, होल्ड आन माई ब्वाय, आई एम कर्मिंग विथ यू--दृढ़ रहना अपने ख्याल पर, मैं तेरे साथ आ रहा हूं। रोकने का कोई सवाल ही कहां है!

बाप भी बेटों से बहुत भिन्न नहीं है! बूढ़ा होकर भी आदमी वहीं भटकता रहता है, जहां जवान भटकता है। जवान का भटकना क्षम्य है, बूढ़े का भटकना बिल्कुल अक्षम्य हो जाता है।

लेकिन कोई सिर्फ बूढ़ा होकर मुक्त नहीं हो पाता वासना से। कोई हो भी नहीं सकता। वासना से तो केवल वे ही मुक्त होते हैं, जो विवेक में गति करते हैं। उम्र की गति से वासना से मुक्त होने का कोई संबंध नहीं है। शरीर बूढ़ा हो जाए, वासना कभी बूढ़ी नहीं होती--मरते दम तक पकड़े रखती है। वासना तो बूढ़ी होती है तभी, जब विवेक जगता है। विवेक वासना की मौत है!

इसलिए बूढ़ा आदमी वासना को पूरा करने में अक्षम हो जाता है, लेकिन वासना मन को घेरे रखती है-- घेरे रखती है; घूमती रहती है। और जवान की वासना में तो एक सौंदर्य भी होता है, बूढ़े की वासना बड़ी कुरूप हो जाती है और गंदी हो जाती है। हो ही जाएगी, क्योंकि शरीर अब साथ अपने आप छोड़ रहा है। शरीर अपने आप आत्मा से अलग हो रहा है। लेकिन वासना के कारण बूढ़ा आदमी अपने शरीर को अभी भी जकड़े हुए है। मृत्यु करीब आ रही है और शरीर आत्मा से टूट जाएगा।

अगर जीवन ठीक से विकसित हो तो मृत्यु का क्षण मोक्ष का क्षण भी बन सकता है। अगर उम्र ही न बढ़े और शरीर ही न पके--बोध भी पके, विवेक भी पके और भीतर समझ भी बढ़ती चली जाए, और साक्षीभाव भी गहन होता चला जाए जीवन के अनुभव कोरे अनुभव न रहें, उनके पीछे विवेक का जागरण भी निर्मित होता चला जाए, तो मृत्यु के पहले ही व्यक्ति मुक्त हो सकता है।

और जब कोई व्यक्ति मृत्यु के पहले जान लेता है कि मैं शरीर से पृथक् हूं, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। तब वह मर सकता है ऐसे, जैसे पुराने वस्त्र बदले जा रहे हों। तब वह मर सकता है ऐसे, जैसे ऊपर का कचरा झड़ रहा हो और भीतर का सोना निखर रहा हो। तब मृत्यु एक मित्र है एक अग्नि की भांति, जो जलाएगी कचरे को और बचाएगी मुझे।

और जो व्यक्ति जीवन में वासना से इतना भरा है कि विवेक को जगने का मौका नहीं दिया; और जो हर क्षण हर तरह से शरीर के साथ अंधा होकर चलने को राजी है, वह मरते वक्त बहुत पछताएगा; बहुत पीड़ित होगा। क्योंकि जब मृत्यु छीनने लगेगी शरीर को, तब उसकी पीड़ा का अंत नहीं रहेगा। क्योंकि उसने अपने को शरीर ही जाना है।

मृत्यु में कोई भी दुख नहीं है, हमारे अज्ञान में दुख है। क्योंकि हम शरीर से अपने को जोड़े हुए हैं। और जब शरीर मिटने लगता है, तब हम चीखते-चिल्लाते हैं कि मैं मरा।

मैं कभी भी नहीं मरता हूं! मेरे मरने का कोई उपाय नहीं है! लेकिन जिससे मैंने अपने को एक समझ रखा है, जब वह टूटता है, मिटता है, तो लगता है; मैं मर रहा हूं। मृत्यु केवल उनके लिए दुख है, जो विवेकशून्य हैं। जो विवेकपूर्ण हैं, उनके लिए मृत्यु भी एक आनंद है।

महावीर के ये सूत्र: "संयम क्या है"--उसकी व्याख्या में हैं। एक-एक सूत्र को समझने की कोशिश करें।

"जो न तो जीव अर्थात् चेतनतत्त्व को जानता है, और न अजीव अर्थात् जड़तत्त्व को जानता है, वह जीव-अजीव के स्वरूप को न जानने वाला साधक, भला किस तरह संयम को जान सकेगा?

"जो जीव को जानता है और अजीव को भी, वह जीव और अजीव दोनों को भलीभांति जानने वाला साधक ही संयम को जान सकेगा।"

मनुष्य दोहरा अस्तित्व है। एक है परिधि--जहां शरीर है, पदार्थ है, मिट्टी का जोड़ है; और एक है भीतर का बोध, चैतन्य, प्रकाश--जो पदार्थ नहीं है, जो परमात्मा है। मनुष्य इस दो का जोड़ है। और जब तक साफ न हो जाए कि शरीर कहां समाप्त होता है और कहां मैं शुरू होता हूं; और यह बात प्रतीत न हो जाए कि शरीर पृथक् है और मैं पृथक् हूं, तब तक, महावीर कहते हैं, संयम असंभव है।

जो जीव को और अजीव को अलग-अलग नहीं जानता; क्या मेरे भीतर सिर्फ पदार्थ है और क्या मेरे भीतर चैतन्य है, इसकी जिसे प्रतीति नहीं; जिसने भीतर प्रकाश को जला कर यह नहीं देख लिया कि मैं दो हूं; और जिसे साफ नहीं हो गया है कि परिधि मेरी नहीं है, परिधि संसार से मुझे मिली है, और मैं सिर्फ भीतर बसा हुआ अतिथि हूं, मेहमान हूं, और यह घर सदा रहने वाला नहीं है, बहुत बार इस घर में मैं रहा हूं, बहुत से घर मुझे मिले हैं और छूट गए हैं... ।

रोशनी चाहिए भीतर। उस रोशनी में ही यह भेद, यह भिन्नता स्पष्ट हो सकती है। हम अंधेरे में चल रहे हैं, जहां कुछ भी रेखाएं नहीं दिखाई पड़तीं। अंधेरे का मतलब ही होता है, जहां भेद दिखाई न पड़े।

इस कमरे में अंधेरा छा जाए, तो उसका क्या अर्थ है? उसका इतना ही अर्थ है कि मैं देख न पाऊंगा कि कौन कौन है, क्या क्या है। कहां कुर्सी समाप्त होती है, कहां आप शुरू होते हैं। कहां आप समाप्त होते हैं, कहां आपका पड़ोसी शुरू होता है।

अंधेरे का मतलब है, जहां भेद खो जाएंगे और जहां सीमाएं दिखाई न पड़ेगी। अंधेरा सारी सीमाओं को तोड़ देता है और अपने में लीन कर लेता है।

प्रकाश का क्या अर्थ है? प्रकाश का अर्थ है, जहां सीमाएं फिर उभर आएंगी। कुर्सी कुर्सी होगी, बैठने वाला बैठने वाला होगा। घर घर होगा, मेहमान मेहमान होगा। घर के भीतर ठहरने वाला अलग होगा, घर की दीवारें अलग होंगी। प्रकाश चीजों को प्रकट कर देता है--उनकी सीमाएं, उनके लक्षण, उनके भेद। अंधेरा सब सीमाओं को तोड़ देता है।

मैंने सुना है कि नसरुद्दीन युवा था; और एक रात बड़ा सज-धज कर तैयार था और अपनी लालटेन साफ कर रहा था। तो उसके पिता ने पूछा कि नसरुद्दीन, लालटेन क्यों साफ कर रहा है? क्या इरादे हैं? उसने कहा कि मैं जरा जा रहा हूं अभिसार को। पत्नी की तलाश आखिर मुझे भी करनी होगी! तो मैं जरा पत्नी की तलाश पर जा रहा हूं।

उसके पिता ने कहा कि पत्नी की तलाश हमने भी की थी, बाकी लालटेन लेकर हम कभी न गए! यह लालटेन किसलिए ले जा रहा है?

नसरुद्दीन ने कहा कि देखें, दैट काउंट्स फार इट; लुक एट योर वुमन, माई मदर! अंधेरे में ढूंढोगे तो ऐसा ही पाओगे। यह भूल मैं नहीं करने वाला हूं। मैं ठीक प्रकाश में चीजें खोजना चाहता हूं!

भीतर भी हम अंधेरे में ही खोज रहे हैं। और अगर हमें वहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता...

कभी आपने आंख बंद करके भीतर देखा है? सिवाय अंधेरे के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि आप कहते हैं, भीतर देखो। लेकिन भीतर देखें कैसे? आंख बंद करते हैं, वहां अंधेरा है। वहां कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। देखना क्या है?

रोशनी बाहर है, अंधेरा भीतर है। बाहर सब दिखाई पड़ता है, भीतर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और बाहर हमने रोशनी को बढ़ाने के बड़े उपाय कर लिए हैं। कभी आदमी गहन अंधकार में था, गुहाओं में था। फिर आग खोजी तो गुहाओं का अंधेरा मिट गया। फिर विकास होता चला गया। फिर आज बिजली है और रातें रातों जैसी नहीं रह गई हैं, दिन से भी ज्यादा प्रकाशवान हो गई हैं।

बाहर हमने प्रकाश की बड़ी खोज कर ली है। बाहर भी ऐसा ही अंधेरा था। पर हमने वहां रात मिटा दी। भीतर हम प्रकाश की कोई खोज नहीं करते हैं, अन्यथा वहां भी प्रकाश की संभावना है। जहां-जहां अंधेरा है, वहां-वहां प्रकाश हो सकता है। अंधेरे का मतलब ही यह है कि जहां प्रकाश हो सकता है, इसकी संभावना है।

सारी साधना-पद्धतियां भीतर की अग्नि खोजने का प्रयास है। भीतर रोशनी कैसे जले। भीतर कैसे थोड़ा सा प्रकाश और थोड़ी सी किरणें पैदा हो जाएं ताकि वहां भी चीजें साफ हो सकें कि क्या क्या है।

अभी तो हम आंख बंद करके बैठ जाते हैं तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और अगर कुछ दिखाई भी पड़ता है तो वह बाहर का ही होता है--कोई मित्र की तस्वीर, कोई याददाश्त, कोई घटना, बाजार, दुकान। आंख भी बंद करते हैं तो आंख बंद होती नहीं, चित्त तो बाहर की तरफ ही खुला रहता है।

बंद आंख में भी तस्वीरें बाहर की ही चलती हैं--तो हम भीतर नहीं हैं। और इसका इतना अभ्यास हो गया है कि हम यह बात ही भूल गए हैं कि भीतर भी ऐसा कोई क्षण हो सकता है, जब बाहर की कोई तस्वीर न चलती हो; जब बाहर का कोई प्रतिबिंब न बनता हो; जब बाहर से हमारा संबंध ही छूट जाता हो और हम निपट भीतर होते हों।

शुरुआत में अंधेरा अनुभव होगा। क्योंकि बाहर की रोशनी ने आंखों को बाहर की रोशनी का आदी कर दिया है।

और ध्यान रहे, बाहर की रोशनी को भीतर ले जाने का कोई उपाय नहीं है। आप दीये को भीतर नहीं ले जा सकते; न बिजली को भीतर ले जा सकते हैं। बाहर की कोई रोशनी भीतर काम न देगी, क्योंकि भीतर के अंधेरे का गुण-धर्म अलग है। बाहर का अंधेरा और तरह का अंधेरा है; और बाहर के अंधेरे को मिटाने के लिए और तरह का प्रकाश चाहिए। भीतर का अंधेरा और तरह का अंधेरा है--उसे मिटाने के लिए और तरह का प्रकाश चाहिए। उस प्रकाश का गुण-धर्म अलग होगा।

इसलिए बाहर का प्रकाश तो भीतर लाया नहीं जा सकता, एक बात। और बाहर के प्रकाश के कारण भीतर हमें गहन अंधेरा मालूम पड़ता है, क्योंकि प्रकाश की हमें आदत हो गई है।

कभी आप एक अंधेरे रास्ते से जा रहे हैं और अचानक एक कार निकल जाए तीव्र प्रकाश के साथ, तो कार के निकल जाने के बाद रास्ता और भी अंधेरा हो जाएगा--जितना कार के निकलने के पहले भी नहीं था! वह तीव्र रोशनी आपकी आंखों को भटका जाएगी। और उस तीव्र रोशनी की तुलना में बाद में अंधेरा बहुत भयंकर मालूम होगा।

ध्यान रहे, आदिम मनुष्य को भीतर इतना है अंधेरा, नहीं मालूम होता था, जितना आधुनिक मनुष्य को मालूम होता है। बाहर काफी रोशनी है। आदिम मनुष्य के लिए बाहर भी अंधेरा ही था, या बहुत कम रोशनी थी। भीतर इतना अंधेरा नहीं मालूम होता था। जितना मनुष्य की सभ्यता बाहर के जगत में विकसित होती चली जाती है, उतना ही भीतर का अंधेरा घना मालूम होता है। वह घना हो नहीं रहा है, तुलना में घना मालूम होता है। क्योंकि हमारे सभी अनुभव सापेक्ष हैं।

तो जिस व्यक्ति को भीतर के प्रकाश की खोज करनी है, उसे दो काम करने होंगे। पहला तो, उसे भीतर के अंधेरे के प्रति आंखों को राजी करना होगा, एडजस्ट करना होगा।

चोर अंधेरे में ज्यादा देख पाता है आपकी बजाय--अंधेरे का अभ्यास करता है। और आप भी जब कमरे में आते हैं--अंधेरे कमरे में बाहर से--तो बिल्कुल अंधेरा मालूम पड़ता है। थोड़ी देर बैठें, कुछ न करें--कुछ करने की जरूरत नहीं, सिर्फ बैठें और आंखों को एडजस्ट होने दें, समायोजित होने दें--थोड़ी ही देर में अंधेरा कम मालूम होने लगेगा, थोड़ी ही देर में थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।

अगर आप यह अभ्यास रोज करते चले जाएं, जो कि चोर को करना पड़ता है, तो आपको इतना अंधेरा मालूम नहीं होगा कि आप किसी चीज से टकराएं। आप बिल्कुल अंधेरे कमरे में भी बिना टकराए चल सकेंगे, उठ सकेंगे, काम कर सकेंगे। थोड़े से आंख के अभ्यास की जरूरत है ताकि आंख अंधेरे में देखने लगे।

ध्यान रहे, अंधेरा उतना ही मालूम होता है, जितना हमारा अभ्यास कम है। तो जिन्हें भीतर की रोशनी खोजनी हो उन्हें भीतर के अंधेरे के लिए थोड़े दिन राजी होना पड़ेगा। जल्दी नहीं करनी है, आंख बंद करके ही बैठा रहना चाहिए।

जापान में झेन फकीर और झेन गुरु अपने शिष्यों को कहते हैं कि तुम कुछ मत करो--क्लोज द आइज एण्ड जस्ट सिट। मंत्र भी मत पढ़ो, किसी भगवान का स्मरण भी मत करो। किसी मूर्ति, प्रतिमा के आस-पास भी मन को मत घुमाओ। क्योंकि यह भी सब बाहर की ही रोशनियां हैं। तुम सिर्फ आंख बंद करो और बैठो। छह महीने, साल भर झेन गुरु के पास जो साधक होता है, उसको एक ही साधना करनी होती है कि वह दिन में घंटों बैठा रहे--कुछ न करे।

पहले करने का बहुत मन होता है, क्योंकि बिना किए आपको लगता है, जिंदगी बेकार जा रही है। हालांकि जिंदगी बेकार जा रही है करने में। न करने से किसी की जिंदगी बेकार क्या जाएगी! जिंदगी बेकार जा ही रही है--कुछ भी करो! लेकिन आकुपाइड, व्यस्त रहने से ऐसा लगता है, कुछ हो रहा है; वहम बना रहता है कि कुछ हो रहा है, कुछ कर रहे हैं। खाली बैठने में बेचैनी लगती है।

खाली बैठना साधक की पहली क्षमता है--कि वह बिना कुछ किए बैठा है। मन कई बार कहेगा, कुछ करो; क्या बैठे हो! और मन समझाएगा कि खाली अगर बैठे रहे तो शैतान का कारखाना हो जाओगे।

खाली बैठे लोगों ने आज तक कोई शैतानी नहीं की, ध्यान रखना। जो काफी कर्मठ हैं, जिनको हम कर्मयोगी कहते हैं--सब उपद्रव उनके कारण हैं। वे खाली नहीं बैठ सकते, उन्हें कुछ न कुछ करना है। कुछ भी हो, उन्हें कुछ करके दिखाना है। कोई कारण नहीं है, क्योंकि करके देखने वाला कोई नहीं है; न कोई प्रयोजन है। न इस जमीन पर कहीं रेखा छूट जाती है करने वालों की।

लेकिन बड़ा उपद्रव है। जब तक होते हैं, बड़ा उपद्रव मचा लेते हैं। राजनीतिज्ञ हैं, समाज-सुधारक हैं, क्रांतिकारी हैं--बस, करने में भिड़े हैं। उनका सारा जोर करने पर है।

झेन गुरु कहते हैं कि तुम कुछ करो मत, साल भर तो न करने की हिम्मत जुटाओ, सिर्फ बैठे रहो। तो झेन साधक छह-छह घंटे दिन में बैठा रहेगा आंख बंद किए। न हिलेगा, न डुलेगा; क्योंकि उतने में भी मन बाहर जा सकता है। पहले तो बड़ी बेचैनी होगी, सारी ताकत लगाएगा मन कि लगे, कुछ करो। कुछ नहीं तो कम से कम सोचो। कोई दिवास्वप्न देखो। कोई योजना करो, कुछ कामना करो--भीतर कुछ तो करो।

लेकिन अगर आप बैठे ही रहे और कुछ न किया, और अगर न करने का साहस दिखा सके, तो थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि भीतर का अंधेरा कम होने लगा। भीतर कुछ-कुछ दिखाई पड़ने लगा। धूमिल रेखाएं प्रकट होने लगीं।

छह महीने और साल भर का वक्त लग जाता है, जब आदमी को पहली दफा भीतर धूमिल रेखाएं प्रकट होती हैं। और जैसे ही यह धूमिल रेखाएं प्रकट होती हैं, अहोभाव पैदा होता है, एक आनंदभाव पैदा होता है कि मैं तो बिल्कुल अलग हूं, यह शरीर तो बिल्कुल अलग है।

और ध्यान रहे, शास्त्र पढ़ने से यह पता नहीं चलेगा। बहुत लोग यह कर रहे हैं--कि शास्त्र पढ़ रहे हैं कि आत्मा भिन्न है शरीर भिन्न है--मैं आत्मा हूं; मैं शरीर नहीं हूं, इसको शास्त्र में पढ़ रहे हैं। और रोज सुबह बैठ कर इसको दोहरा रहे हैं कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं आत्मा हूं।

दोहराने का मतलब नहीं है। दोहराने से कुछ भी न होगा। दोहराने से प्रकाश पैदा नहीं होता। दोहराने से तो केवल इतनी ही खबर लगती है कि अभी तुम्हें पता नहीं चला; अभी तुम किसी और की उधार बात दोहरा रहे हो। और तुम दोहरा-दोहरा कर इस भ्रम में भी पड़ सकते हो कि तुम्हें ऐसा लगने लगे कि शरीर और आत्मा अलग हैं। लेकिन यह तुम्हारे प्रकाश का भीतरी अनुभव नहीं है। इसका कोई मूल्य नहीं है। यह दो कौड़ी का है। तुम जीवन खराब किए।

किसी की मानने की जरूरत नहीं है। यह तो स्वयं अनुभव हो सकता है। लेकिन भीतर के अंधेरे के साथ आंखों का समायोजन करना होगा। और जन्मों-जन्मों से हमारा समायोजन हो गया है बाहर की रोशनी के साथ, इसे तोड़ना प्रतीक्षा और धैर्य की बात है।

तो महावीर कहते हैं: जो न तो जानता कि चेतन क्या है, जो न जानता कि जड़ क्या है; जो जीव-अजीव को नहीं पहचानता, वह साधक भला किस तरह संयम साधेगा?

लेकिन कितने लोग संयम साध रहे हैं, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है कि जीव क्या है, अजीव क्या है। जब मैं कहता हूं, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है तो मेरा मतलब यह नहीं है कि उन्होंने शास्त्र से नहीं सुना है। शास्त्र में लिखा है कि जीव और अजीव भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन शास्त्र से कोई आपका ज्ञान नहीं निर्मित होता। शास्त्र से तो सिर्फ आपका अज्ञान ढंकता है--रहते तो आप अज्ञानी हैं; शास्त्र के वचनों में छिप जाते हैं और भ्रान्ति पैदा होती है कि ज्ञान लिया।

अज्ञान उतना खतरनाक नहीं है, जितना थोथा ज्ञान खतरनाक है। शास्त्र जितने लोगों को डुबाते हैं, उतनी और कोई चीज किसी को नहीं डुबाती। कई लोग कागज की नाव में बैठ कर सागर में उतर जाते हैं।

शास्त्र की नाव कागज की नाव है। उससे तो बेहतर है कि बिना नाव के उतर जाना। क्योंकि नाव का भरोसा न हो तो कम से कम अपने हाथ-पैर चलाने की कुछ कोशिश होगी। और जो बिना नाव के उतरेगा, वह

तैरना सीख कर उतरेगा। जो नाव में बैठ कर उतर जाएगा--और कागज की नाव में--वह इस भरोसे में उतरेगा कि मुझे क्या करना है, नाव पार कर देगी। वह डूबेगा!

लेकिन कागज की नाव में बैठने को कोई राजी न होगा, शास्त्र की नाव में बैठने को करीब-करीब पूरी पृथ्वी राजी हो गई है। कोई बाइबिल की नाव में बैठा है, कोई गीता की नाव में बैठा है, कोई कुरान की नाव में बैठा है; कोई महावीर के वचनों की नाव में, कोई बुद्ध के वचनों की नाव में।

लेकिन नाव लोगों ने कागज की बना ली है। इसलिए लोग डूब रहे हैं और जगह-जगह दुर्घटनाएं हैं। और धर्म के नाम पर इतना शोरगुल चलता है, लेकिन धर्म का कोई प्रकाश जीवन में कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। तो धर्म एक उत्सव हो गया है--कभी-कभी मना लेने की बात; कभी-कभी शोरगुल मचा लेने की बात है कि हम आत्मवादी लोग हैं; कि हम पदार्थ को ही सब कुछ नहीं मानते, हम आत्मा को भी मानते हैं। लेकिन मानने से कुछ भी होने वाला नहीं है, जानना जरूरी है।

इसलिए महावीर कहते हैं, जिसे अभी यह ही पता नहीं है कि आत्मा क्या है और शरीर क्या है, वह संयम नहीं साध सकेगा। लेकिन आप साधुओं से जाकर पूछें। दूसरे साधुओं को छोड़ दें, महावीर के ही साधुओं से जाकर पूछें कि तुम्हें अनुभव हुआ है भीतर कि शरीर कहां खत्म होता है और आत्मा कहां शुरू होती है? कहां सीमांत है? कहां दोनों मिलते हैं? और कहां दोनों में फासला है? और अगर अनुभव नहीं हुआ है, तो तुम जो संयम साध रहे हो--महावीर तो कहते हैं, ऐसा साधक संयम साधेगा ही कैसे!

लेकिन साधु संयम साध रहे हैं। संयम में उनके कोई कमी नहीं है। क्या भोजन करना, कितना करना, कब सोना, कब उठना, कितनी सामायिक करनी, कितना ध्यान करना--सब कर रहे हैं; कितना प्रतिक्रमण--सब नियम से चल रहा है, यंत्रवत। उसमें कहीं कोई भूल-चूक नहीं। संयम पूरा चल रहा है।

लेकिन उनका संयम, संयम नहीं है--हो नहीं सकता। क्योंकि महावीर की पहली शर्त ही पूरी नहीं हो पा रही है।

लेकिन उनकी कोशिश यह है कि संयम के द्वारा वे जान लेंगे कि शरीर और आत्मा क्या है। और महावीर उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, जो जान लेगा कि शरीर और आत्मा क्या है, उसके जीवन में ही संयम हो सकता है।

हम चीजों को उलटा लेते हैं। उलटा लेने का कारण है--हम उलटे खड़े हैं। हमें हर चीज उलटी दिखाई पड़ती है। महावीर को भी जब हम देखते हैं, तो हम उनको उलटा देखते हैं। जो पहले है उसे पीछे कर देते हैं, जो पीछे है, उसे पहले कर देते हैं। फिर हमें सुविधा हो जाती है। अगर हम महावीर की बात को वैसा ही रहने दें, जैसी वह है, तो हमारे जीवन को हमें बदलना पड़ेगा।

क्या फर्क है?

महावीर कहते हैं, भीतरी बोध पहले होगा, फिर बाहरी संयम होगा।

हम क्या करते हैं?

हम पहले बाहरी संयम साधते हैं, फिर सोचते हैं, भीतरी बोध अपने आप आ जाएगा। हमारे लिए बाहर का मूल्य इतना ज्यादा है कि संयम को भी जब हम साधते हैं तो बाहर से ही शुरू करते हैं। हमारी आंखें बाहर से इस तरह ऑब्सेस्ड हो गई हैं, इस तरह बंध गई हैं। और हमारी वासनाओं ने हमें बाहर से इस तरह चिपका दिया है कि हम अगर साधना भी करते हैं तो भी बाहर से ही शुरू करते हैं। और साधना शुरू ही हो सकती है भीतर से। बाहर से जो शुरू होगी, वह संसार में ले जाएगी। लेकिन वासनाएं आदमी को मूर्च्छित कर देती हैं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक होटल में ठहरा हुआ है। वह सांझ को लौट रहा है अपने कमरे की तरफ। एक दरवाजे के भीतर से उसे आवाज सुनाई पड़ती है एक स्त्री और एक पुरुष की--शायद अपना हनीमून मनाने आए होंगे। तो वह दरवाजे पर खड़े होकर सुनता है। तो वह पति अपनी पत्नी से कह रहा है कि तेरे जैसा

सौंदर्य कभी-कभी सदियों में होता है। मैं चाहूंगा कि इस जगत का सबसे श्रेष्ठ कलाकार तेरी मूर्ति को या तेरे चित्र को निर्मित कर दे ताकि भविष्य की पीढ़ियां भी जान सकें कि ऐसा सौंदर्य भी कभी हुआ है।

नसरुद्दीन ने फौरन दरवाजे पर दस्तक दी। पति ने चिढ़ कर पूछा: कौन है?

नसरुद्दीन ने कहा: दि ग्रेटेस्ट पेंटर ऑफ दि वर्ल्ड, पिकासो!

जब नसरुद्दीन यह कह चुका तभी उसको ख्याल आया कि मैं क्या कह रहा हूं वह दरवाजा खुल जाएगा तो पकड़ा जाऊंगा। भागा अपने कमरे में। फिर बहुत सोचता रहा कि ऐसा कैसे हुआ? मैं पिकासो नहीं हूं!

लेकिन सौंदर्य की चर्चा। शरीर को देखने का मन। वासना का जग जाना। फिर इस मूर्च्छित अवस्था में आप कुछ भी हो सकते हैं।

तो निकल गया उसके मुंह से कि जगत का सबसे बड़ा चित्रकार! खोलो दरवाजा!

दरवाजा खुलना आकांक्षा है। दरवाजा खुल जाए, वह स्त्री दिखाई पड़ जाए--वह वासना है। उस वासना में उसके मुंह से यह भी निकल गया कि मैं पिकासो हूं। यह उसने सोचा नहीं था। यह उसने कभी विचारा नहीं था। इसकी कोई योजना नहीं थी। एक क्षण की वासना में तादात्म्य बदल गया।

हम जहां-जहां वासना से घिरते हैं। वहीं-वहीं हम वही हो जाते हैं, जो होने से हमारी वासना तृप्त होगी। हमारी वासनाएं हमारे तादात्म्य को निर्धारित करती हैं। अगर आप पुरुष हो गए हैं, तो भी वासना के कारण; अगर स्त्री हो गए हैं, तो भी वासना के कारण। अगर आप मनुष्य हो गए हैं, तो भी वासना के कारण। अगर आप कीड़े-मकोड़े थे, पशु-पक्षी थे, तो भी वासना के कारण।

जहां हमारी वासना सघन हो जाती है--महावीर, बुद्ध और कृष्ण कहते हैं--उस सघनता के कारण हम वैसा ही रूप ग्रहण कर लेते हैं। हम वही हो जाते हैं, जो हमारी वासना हो जाती है। अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि मनुष्य के शरीर की जो घटना है।

जैसा डार्विन ने कहा था कि मनुष्य इसलिए इस तरह विकसित हो रहा है कि प्रकृति में एक संघर्ष है, उसमें श्रेष्ठतम बच जाता है--सरवाइवल ऑफ दि फिटेस्ट। वह जो सबसे ज्यादा ताकतवर है, वह बच जाता है। लेकिन इधर डार्विन के बाद जो काम हुआ है विकासवाद पर, उससे हालतें बिल्कुल बदल गई हैं। नये विकासवादी कहते हैं कि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि श्रेष्ठ बच जाता है। आप यह भला कह सकते हैं कि जो बच जाता है, उसको आप श्रेष्ठ कहने लगे। लेकिन श्रेष्ठ के बचने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

और आदमी का विकास संघर्ष के कारण नहीं दिखाई पड़ता, भीतरी वासना के कारण दिखाई पड़ता है--बाहरी संघर्ष के कारण नहीं। आंखें इसलिए शरीर पर प्रकट हुई हैं कि आदमी देखने की वासना से भरा हुआ है। वह देखने की वासना जब प्रगाढ़ हो जाती है तो तीर की तरह भीतर से छेद देती है और आंखें निर्मित होती हैं। और आदमी सुनने की वासना से भरा हुआ है, इसलिए कान निर्मित होते हैं। आदमी छूने की वासना से भरा है, इसलिए शरीर निर्मित होता है।

जो-जो वासना भीतर प्रगाढ़ है, उसके अनुरूप पदार्थ चारों तरफ आत्मा के इकट्ठा हो जाता है। लेकिन यह बड़ी पुरानी खोज है, महावीर, बुद्ध और कृष्ण की कि आदमी का जन्म उसकी वासना से हो रहा है; उसके तादात्म्य, उसके रूप, नाम, उसकी भीतरी वासना से निर्धारित हो रहे हैं।

आप जो भी हैं, वह अपनी वासना के फल हैं। इस वासना को अगर आप बल देते चले जाते हैं, तो आप इसी चक्कर में घूमते चले जाएंगे; यही वर्तुल बार-बार घूमता रहेगा; आप पुनरुक्त होते रहेंगे। लेकिन अगर इस वर्तुल से बाहर होना है, तो भीतर से वासना का जो संबंध है शरीर से, उसे थोड़ा शिथिल करना होगा।

आप इस बुरी तरह जुड़ गए हैं कि बीच में जरा सी जगह भी नहीं है कि फर्क दिखाई पड़ सके कि मैं कौन हूं। इस फर्क को देखने के लिए थोड़ी सी शिथिलता बंधनों की चाहिए। लेकिन हम तो बंधन के लिए बड़े आतुर रहते हैं। असल में बंधन जब तक न मिल जाए तब तक हमको चैन नहीं होती। बंधन में हमें बड़ी सुविधा मालूम पड़ती है। जब तक बंधन न हो, तब तक हम परेशान होते हैं, जैसे ही बंधन निर्मित हो जाए, हम व्यस्त हो जाते हैं।

मैंने सुना है, एक मुसलमान फकीर एक ट्रेन में सफर कर रहा है। सारी जगहें भरी हुई हैं। कई लोग खड़े भी हुए हैं। और तभी एक स्त्री, गर्भिणी, आकर खड़ी हो गई है। वह मुसलमान फकीर के बिल्कुल बगल में खड़ी है। बाजार से कुछ रस्सियां खरीद कर लाई है, तो रस्सियों का बंडल उसके हाथ में है। फकीर आंख बंद कर लेता है उसे देख कर। उसका पड़ोसी यात्री कहता है कि तुम क्या सो गए हो या तबियत खराब है? तो वह फकीर कहता है कि नहीं, यह बात नहीं। मैं किसी स्त्री को खड़े हुए देखना ट्रेन में नफरत करता हूं! इसलिए आंख बंद कर ली है--न देखेंगे, न यह ख्याल उठेगा कि स्त्री खड़ी है और मैं बैठा हूं। तो उस आदमी ने कहा कि अगर तुम इतने दयावान हो, तो उठ कर उसको जगह क्यों नहीं दे देते? तो उस फकीर ने कहा, मेरे गुरु ने कहा है कि जहां भी बंधन की कोई व्यवस्था दिखाई पड़े, वहां जरा सावधान रहना। और वह स्त्री जो हाथ में रस्सी का बंडल लिए है, उससे मैं बोल भी नहीं सकता; उसकी तरफ मैं देख भी नहीं सकता।

बहुत से साधु यही कर रहे हैं। जहां-जहां उन्हें बंधन की संभावना दिखाई पड़ती है, वहां वे देखते नहीं; वहां से भाग खड़े होते हैं। लेकिन बंधन बाहर नहीं है, जिससे भागा जा सके; जिससे आंख बंद की जा सके। बंधन तो भीतर की वासना में है कि मैं बंधना चाहता हूं। और स्त्री से बचना आसान है, लेकिन अपने ही शरीर से बंधा हुआ हूं, उसी बंधन में सारा संसार उपस्थित हो गया है।

मेरा बंधन मेरे शरीर के बाहर कहीं भी नहीं है। मेरा संसार भी मेरे शरीर के बाहर कहीं भी नहीं है। बाहर तो सब एक्सटेंशंस हैं। लेकिन बुनियादी संसार मेरे भीतर है। और वहां से तोड़ने की बात है।

यह तोड़ना--महावीर के हिसाब से--एक भेद, एक विवेक, एक बोध का परिणाम है। वह बोध भीतर रुकने की क्षमता से, अंधेरे में रुकने की क्षमता से, धैर्यपूर्वक अंधेरे में डूबे रहने की क्षमता से, प्रतीक्षा करने से अपने आप पैदा होना शुरू हो जाता है।

ध्यान रहे चेतना का अपना प्रकाश है। हम इस जगत में जहां-जहां चीजों पर देखते हैं, वहां-वहां हमारी चेतना प्रकाश डालती है, रोशनी डालती है। यह रोशनी सिर्फ सूरज की नहीं है। सूरज की रोशनी काफी नहीं है। हमारी चेतना भी रोशन करती है हर चीज को, जिसे हम देखते हैं। हमारी आंखों से भी रोशनी बाहर जाती है।

और यह कोई मैटाफिजिकल, कोई पारलौकिक सिद्धांत नहीं है। अब तो विज्ञान इसके समर्थन में है कि जब भी आप देखते हैं, तो आपकी जीवन-ऊर्जा जिन चीजों पर आप फेंकते हैं, उनको रोशन करती है। उनके भीतर गति भी शुरू हो जाती है। और देख कर आप अपनी रोशनी को पदार्थ से जोड़ते हैं।

अगर कोई व्यक्ति न देखने की साधना करे: कुछ समय तक देखे ही नहीं--आंख को बंद ही रखे; सुने ही नहीं--कान को बंद ही रखे; छुए ही नहीं--हाथ को बंद ही रखे, तो जो ऊर्जा इन इंद्रियों से बाहर जा रही थी, वह सारी की सारी ऊर्जा भीतर इकट्ठी होने लगेगी; सघन होने लगेगी। उस सघनता में एक घड़ी आती है, जब भीतर का प्रकाश-बिंदु पैदा हो जाता है।

यह प्रकाशबिंदु वैसा ही है, जैसे हम सूरज की किरणों को इकट्ठा कर लें तो आग पैदा हो जाए। जैसे ही भीतर की किरणें इकट्ठी हो जाती हैं, भीतर की आग जल जाती है। लेकिन प्रतीक्षा चाहिए। और कोई समय पक्का नहीं हो सकता कि किसको कितनी देर लगेगी--इंटेंसटी पर, तीव्रता पर निर्भर करेगा।

कोई एक क्षण में भी इस भीतर के प्रकाश को उपलब्ध हो सकता है अगर बाहर से अपने को पूरा का पूरा रोक ले। इस रोक लेने की विधि का नाम ही "ध्यान" है। इस रोक लेने की विधि को "सामायिक", महावीर ने कहा है।

सामायिक शब्द बड़ा बहुमूल्य है, ध्यान से भी ज्यादा बहुमूल्य है। क्योंकि ध्यान में थोड़ी सी भ्रान्ति हो सकती है। सामायिक जैसा शब्द सारी दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। जब भी हम कहते हैं "ध्यान", तो ऐसा लगता है, किसी चीज पर ध्यान।

मेरे पास लोग आते हैं--उनसे मैं कहता हूं, "ध्यान करो!" तो वे कहते हैं, "किस चीज पर ध्यान करें?" तो ध्यान लगता है, बहिर्मुखी है। अंग्रेजी में शब्द है, मेडिटेट--उसका मतलब ही होता है, किसी चीज पर। तो किसी से कहो, मेडिटेट करो, तो वह पूछता है, आन वॉट--ओम पर? राम पर? क्राइस्ट पर? मेरी पर? ... किस पर?

महावीर ने ध्यान शब्द का उपयोग नहीं किया, क्योंकि ध्यान में भ्रान्ति है। ध्यान का मतलब ही होता है, किसी चीज पर ध्यान; बाहर हो गया। महावीर ने कहा; सामायिक। सामायिक शब्द उनका अपना है। "समय" आत्मा का नाम है महावीर के लिए। समय का अर्थ है: आत्मा और सामायिक का अर्थ है: आत्मा में होना--टु बी इन वनसेल्फ।

ध्यान उतना मूल्यवान शब्द नहीं है। लेकिन महावीर को माननेवाले भी सामायिक करते वक्त ध्यान कर रहे हैं, सामायिक नहीं; नमोकार मंत्र पढ़ रहे हैं--यह ध्यान हुआ, सामायिक नहीं हुई। महावीर स्वामी का नाम जप रहे हैं--यह ध्यान हुआ, सामायिक न हुई।

महावीर कहते हैं: भीतर की वैसी अवस्था, जब तुम ही तुम रह गए--यू अलोन; जहां न कोई शब्द है, न कोई ध्वनि है, न कोई रूप है। जहां कुछ भी बाहर का नहीं है। जहां कुछ भी पराया नहीं है। जहां कुछ भी अन्य नहीं है। जहां तुम्हारा होना, अकेला होना है। जहां होना मात्र रह गया है--जस्ट बीइंग--उस अवस्था का नाम सामायिक है।

यह बड़े मजे की बात है। इसका अर्थ यह हुआ कि सामायिक की नहीं जा सकती। आप सामायिक में हो सकते हैं, सामायिक कर नहीं सकते--क्योंकि करने का मतलब ही होगा कि बाहर चले गए। कृत्य बाहर ले जाता है।

तो सामायिक कोई क्रिया नहीं है। सामायिक एक अवस्था है--अपने में डूबने की अवस्था; अपने में बंद हो जाने की अवस्था; अपने को सब तरफ से तोड़ लेने की, अलग कर लेने की अवस्था।

इसके लिए कोई जंगल जाना जरूरी नहीं है। जहां आप हैं, वहीं यह कला आप सीख सकते हैं। लेकिन थोड़ा सा अभ्यास करें। घड़ी दो घड़ी रोज आंख बंद कर लें और भीतर के अंधेरे में जीएं। थोड़े ही दिनों में, बिना कुछ और किए, सिर्फ भीतर के अंधेरे में रहने की क्षमता विकसित करते-करते आप अचानक पाएंगे कि बीच-बीच में जैसे झपकी लग जाती है; आप अपने में डूब जाते हैं क्षण भर को।

और वह क्षण भी अपने में डूबना इतना आह्लादकारी है कि आप अनंत-अनंत जन्मों के सुख उसके लिए छोड़ सकते हैं। जरा सी झपकी भीतर; जरा सी देर के लिए डूब जाना; एक क्षण के लिए जगत से टूट जाना; शरीर से अलग हो जाना और अपने में डूब जाना--वह डूबकी एक दफा आपको मिलनी शुरू हो जाए, फिर संसार को छोड़ना नहीं पड़ता, संसार कचरा मालूम होने लगता है।

छोड़ना तो उसे पड़ता है, जिसमें मूल्य मालूम पड़े। कचरे को कोई नहीं छोड़ता। आप घर के बाहर जाकर रोज चिल्ला कर घोषणा नहीं करते कि आज फिर कचरे का हम त्याग कर रहे हैं। हां, जब आप सोने का त्याग करते हैं, तब आप जरूर खबर चाहते हैं कि छपे--क्योंकि सोना आपके लिए कचरा नहीं है।

लेकिन जैसे ही भीतर के सोने का पता चलता है, बाहर का सब सोना कचरा हो जाता है। और एक क्षण के लिए भी वैसी सुरति बंध जाए, वैसी स्मृति जग जाए, वैसी सामायिक हो जाए, तो उसके बाद शास्त्रों में नहीं खोजना पड़ता, आप खुद जानते हैं कि शरीर और मैं अलग हूं।

एक किरण इस बोध की कि मैं शरीर से भिन्न हूं, मैं चैतन्य हूं और शरीर पदार्थ है--महावीर कहते हैं--फिर संयम बिल्कुल आसान है। फिर संयम को तोड़ना मुश्किल है, अभी संयम को साधना मुश्किल है, फिर संयम को तोड़ना मुश्किल है। अभी गलत से बचना मुश्किल है, फिर गलत को करना इससे भी ज्यादा मुश्किल हो जाएगा।

"जो जीव को जानता है और अजीव को भी, वह जीव और अजीव दोनों को भली भांति जाननेवाला साधक ही संयम को जान सकेगा।"

संयम के दो अर्थ हैं। एक संयम का बाहरी अर्थ कि जो गलत है, वह न हो। और एक संयम का भीतरी अर्थ कि जो मेरी सत्ता है, उसमें मेरा होना हो जाए। संयम का अर्थ है : बैलेन्स की, संतुलन की आखिरी अवस्था, जहां दोनों तराजू के पलड़े बिल्कुल एक रेखा में आ जाते हैं और तराजू का कांटा जरा भी कंपन नहीं दिखाता। संयम का अर्थ है: बैलेन्स की आखिरी अवस्था, जहां कोई कंपन नहीं रह जाता।

असंयम में कंपन है; इसलिए असंयमी चित्त हमेशा कंपित होता रहता है--कभी इस तरफ, कभी उस तरफ; कभी यह चाहता है, कभी वह चाहता है। और असंयमी चित्त चाहता ही रहता है और कभी शांत नहीं हो पाता। चाह का कोई अंत नहीं, चाह कंपाती जाती है। कंपाना एक दुख में डुबा देता है। क्योंकि कंपन एक पीड़ा है, एक तरह का बुखार है।

स्वस्थ चेतना कंपेगी नहीं, अंकपित होगी। मांग चलती ही चली जाती है मन की और मन कंपता चला जाता है। वासना के झोंके हिलाते ही रहते हैं--जड़ों तक को हिला देते हैं। और अपेक्षाएं बढ़ती ही चली जाती हैं और कुछ भी मिल जाए, शांति नहीं मिलती--क्योंकि मिलते ही वासना आगे बढ़ जाती है।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन उदास बैठा है। कुछ मित्र मिलने आए हैं। वे पूछते हैं कि नसरुद्दीन, बड़े उदास हो, क्या कारण आ गया? नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, कारण तो ऐसा कुछ खास नहीं, लेकिन दो सप्ताह पहले मेरे चाचा मर गये। बड़े गजब के अच्छे आदमी थे; भले आदमी थे और असमय मर गये। अभी कोई मरने का वक्त था! अल्लाह उनकी आत्मा को शांति दे! लेकिन मरने के पहले पांच हजार रुपये मेरे नाम वसीयत कर गये। फिर एक सप्ताह पहले मेरे मामा मर गये! बड़े अच्छे आदमी थे। और अभी तो जिंदगी बहुत थी, लेकिन असमय में परमात्मा ने उनको उठा लिया। भले आदमियों को परमात्मा जल्दी उठा लेता है। और मरने के पहले पंद्रह हजार रुपये मेरे नाम कर गये!... ऐण्ड दिस वीक नर्थिंग... और यह सप्ताह पूरा गुजर रहा है, अभी तक कुछ भी नहीं हुआ--इसलिए उदास हूं!

चाह दूसरे की मौत से भी शोषण करती है। वासना बस अपने लिए जीती है। सारी दुनिया भी मर जाए, मिट जाए, तो भी वासना अपने लिए जीती है। वासना एक तरह की विक्षिप्तता है।

और उसका कोई अंत नहीं है। कितना ही मिल जाए, हमेशा उदास होगी। क्योंकि जितना मिल सकता है, उससे ज्यादा की कामना की जा सकती है। आपकी कामना की कोई सीमा नहीं है। संसार की सीमा है, आपकी कामना की कोई सीमा नहीं। आप सदा और ज्यादा के लिए सोच सकते हैं, इसलिए दुखी होंगे।

संयम का अर्थ है ऐसा चित्त, जो मांगता ही नहीं; जिसकी कोई मांग नहीं है; जो डोलता ही नहीं; जो डोलकर कहीं भी नहीं जाता कि यह मिल जाए, वह मिल जाए--यह मिले, वह मिले; जिसकी कोई मांग नहीं है; जिसकी कोई वासना नहीं है। लेकिन यह किस व्यक्ति की होगी?

महावीर कहते हैं, उसी व्यक्ति की जो शरीर को और अपने को अलग जान लेता है। क्यों? शरीर और अपने को अलग जानने से वासना क्यों मिट जाएगी? क्योंकि सारी वासनाएं शरीर की हैं, आत्मा की कोई वासना है ही नहीं। और जिस दिन आपको पता चल जाए कि शरीर की वासनाओं के लिए मैं परेशान हो रहा था और उसे खो रहा था जो मेरी निजी संपदा है--जहां परम आनंद है; जहां परम प्रकाश है और जहां अमृत का झरना है--उसे मैं खो रहा था क्षुद्र शरीर के पीछे चल कर, उसकी वासनाओं में पड़ कर--वासना गिर जाएगी।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप शरीर की हत्या कर देंगे; मार डालेंगे। लेकिन अब शरीर को आप उतना दे देंगे, जितना शरीर के चलने के लिए जरूरी है। आवश्यकता और वासना का यही फर्क है।

आवश्यकता नहीं बांधती, वासना बांधती है। आवश्यकता का मतलब है; शरीर यंत्र है, उसके लिए जरूरी है--जैसा कार को पेट्रोल जरूरी है और तेल देना जरूरी है। और यंत्र की जो भी जरूरत है, उसको पूरा कर देना जरूरी है। न कम देने की जरूरत है, न ज्यादा देने की जरूरत है। जितना जरूरी है, उतना ही देने की जरूरत है।

जिसकी वासना हट जाती है, वहां आवश्यकता रह जाती है। आवश्यकता में कोई पीड़ा नहीं है। आवश्यकता जरूरत है। और जरूरत भी तभी तक--महावीर कहते हैं--रहेगी, जब तक पिछले कर्मों का जो मोमेंटम है, वह पूरा नहीं हो जाता। और जैसे ही पिछले कर्मों की पूरी की पूरी गति समाप्त हो जाती है और पिछले सारे कर्म झड़ जाते हैं--शरीर से संबंध अलग हो जाएगा। फिर उसे भोजन देने की भी कोई जरूरत नहीं है। फिर शरीर से छुटकारा सहज हो जाएगा। उस यंत्र की कोई जरूरत न रही। हमने उसे छोड़ दिया।

शरीर और मैं अलग हूं, इसका बोध ही काफी है कि हमारी वासनाएं एकदम निज्रूव हो जाएं। मैं शरीर हूं, यही वासना का प्राण है; वासना का केंद्र है।

"जब वह सब जीवों की नानाविध गतियों को जान लेता है, तब पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष को भी जान लेता है।"

और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने भीतर की भेद-रेखा को पहचान लेता है, वह यह भी जान लेता है कि क्या है पुण्य और क्या है पाप--क्या है बंध, क्या है मोक्ष।

क्यों? जैसे ही मुझे पता चलता है कि मैं अलग और शरीर अलग, तब शरीर की मान कर चलना पाप और अपनी मान कर चलना पुण्य; तब शरीर की मान कर चल कर पाप करने से बंधन का जन्म, और अपनी मान कर चलने से मोक्ष का जन्म।

क्योंकि शरीर की मैं जितनी मानूं उतना वह मनाता है। हम जितने दबें, उतना वह दबाता है। हम जितना अनुसरण करें, उतना वह आश्वस्त हो जाता है कि तुम सदा पीछे आते हो। जितना हम अपने में लीन होने लगे, उतना ही धीरे-धीरे शरीर को पता चलने लगता है कि मेरी मालिकियत विसर्जित हो गई; अब मैं मालिक नहीं हूं। धीरे-धीरे वह आपके पीछे आने लगता है। और जिस दिन शरीर आपके पीछे आता है, और आपके भीतर का स्वामी, आपके भीतर का मालिक प्रकट हो जाता है--महावीर कहते हैं उस अवस्था को मुक्त।

एक बंधा हुआ मन है जो चलता चला जाता है बिना सोचे-समझे कि वह क्या मांग रहा है। कभी आप विचार करते हैं बैठ कर कि आपका मन आपको कहां-कहां ले जाता है; क्या-क्या करवाता है। ऐसा कोई पाप नहीं, जो आप छोड़ते हों। मनस्विद कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने वे सब पाप मन में न किए हों, जो मनुष्यता ने पूरे इतिहास में किए हैं।

मन में आप सभी पाप कर लेते हैं। हत्या कर लेते हैं, व्यभिचार कर लेते हैं, चोरी कर लेते हैं--ऐसा कुछ नहीं है जो आप छोड़ देते हैं, जहां तक मन का संबंध है। शरीर से नहीं कर पाते, क्योंकि बहुत उपद्रव बाहर है। अगर आपको पूरी छूट हो तो आप जरूर करेंगे।

कभी सोचें कि अगर आपको पूरी स्वतंत्रता हो, शक्ति हो और आपको कोई बाधा देने वाला न हो और न कोई दंड देने वाला हो, तो आप कौन सा पाप है जो नहीं करेंगे? आप सभी पाप कर लेंगे।

इसीलिए पद भ्रष्ट करता है। क्योंकि शक्ति हाथ में आती है तो जो-जो पाप नहीं किए, उनको करने की वृत्ति हाथ में आती है।

लार्ड एक्टन ने कहा है : पाँवर करप्ट्स एण्ड करप्ट्स एक्सोल्यूटली। वह ठीक कहा है कि शक्ति आदमी को दुराचारी बनाती है, और बुरी तरह दुराचारी बनाती है। लेकिन सच बात एक्टन के वचन में नहीं है। सच बात यह नहीं है कि शक्ति किसी को दुराचारी बनाती है। दुराचारी लोग हैं, शक्ति सिर्फ अवसर देती है।

तो आप देखें, जो राजनीति के पद पर है उसके आलोचक, उसके विरोधी उसकी निंदा करते हैं कि वह भोग रहा है, पैसा लूट रहा है, रिश्तत ले रहा है, स्त्रियां रखे हुए है, व्यभिचारी है--सब कर रहा है।

यह जो विरोधी कह रहा है, इससे आप इस भ्रांति में पड़ जाते हैं कि यह ऐसा काम नहीं करेगा। इसके पास शक्ति नहीं है। जब यह ताकत में जाएगा, यह सब वही काम करेगा जो ताकत में पहले वाले आदमी ने किए थे।

यह बड़े मजे की बात है कि ताकत में जाते ही आदमी अपने दुश्मनों जैसा हो जाता है--किसी को भी शक्ति में बिठा दें! क्यों ऐसा होता है?

इसका कारण है, हर आदमी मन से तो करना ही चाहता है--सदा करना चाहता है। यह विरोध भी इसीलिए कर रहा है कि तुम कर रहे हो और मुझे मौका नहीं मिल रहा है। एक मौका हमें भी दो। इसके विरोध का इतना ही मतलब है--अब तुम काफी कर लिए।

लेकिन यह आपसे ऐसा कह नहीं सकता। शायद इसको भी साफ नहीं है कि यह ऐसा ही करना चाहता है। इसके भी कांशस, चेतन में यह बात नहीं होगी। यह तो अभी यही चाहता है कि जनता की सेवा करनी है, जगत का उद्धार करना है, समृद्धि बढ़ानी है, गरीबी मिटानी है--सब करना है। अभी शायद चेतन मन इसका भी यही कह रहा है। लेकिन अचेतन का इसे भी पता नहीं है कि इन सब बातों के पीछे अचेतन वृत्तियां वही हैं। क्योंकि जो इसके पहले बैठे हैं, वे भी इसीलिए वहां तक पहुंचे हैं।

पहुंचते ही सारी चीज बदल जाती है। सिंहासन पर बैठते ही दूसरे आदमी से मिलन होता है। जिसको हम जानते थे सिंहासन के पहले, वह आदमी खो ही जाता है। यह क्यों होता है? और इतना अनिवार्य रूप से होता है कि इसमें अपवाद नहीं है।

यह इसलिए होता है कि सिंहासन के नीचे हर आदमी के अचेतन में वे ही वासनाएं हैं। मौका नहीं है, धन नहीं है, ताकत नहीं है कि जो भी करना चाहता है वह कर सके, इसका उपाय नहीं है। तो अपने मन को समझा लेता है कि जो वह नहीं कर सकता, वह करने योग्य नहीं है।

ध्यान रहे, अंगूर खट्टे हैं, ऐसा समझा लेता है। जहां तक पहुंच नहीं होती है--वह बात करने योग्य ही नहीं है। लेकिन शक्ति इसे मिल जाए तो जो-जो सोया था, जो-जो दबाया था, वह सब प्रकट हो जाएगा। शक्ति हाथ में आते ही सब सक्रिय हो जाएगा। वैसे ही, जैसे एक बीज पड़ा है जमीन में और पानी न हो, तो बीज पड़ा रहेगा--पानी पड़ा कि अंकुर फूटा। बीज में अंकुर छिपा था, तैयार था, पानी की प्रतीक्षा थी--ठीक मौका और पानी मिलने पर प्रकट हो जाएगा।

शक्ति, पद, सामर्थ्य, धन लोगों को बिगाड़ता है--इसलिए नहीं कि धन किसी को बिगाड़ सकता है। लोग बिगड़ने के लिए बिल्कुल तैयार हैं, सिर्फ धन की प्रतीक्षा है। संयोग आते ही बिगड़ जाते हैं। और मैं कहता हूं यह निरपवाद रूप से होता है--विदाउट एक्सेप्शन। क्यों? क्या ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिसकी कोई दबी वासना न हो, और जो पद पर पहुंचे और पद उसे बिगाड़े नहीं?

ऐसे आदमी हैं। लेकिन ऐसा आदमी पद पर जाने की कोशिश नहीं करता क्योंकि पद पर जाने का कोई धक्का ही नहीं रह जाता। धक्का तो भीतर की वासना से आता है। ऐसा आदमी पद पर जाने की कोशिश नहीं करता। और यहां कोशिश करनेवाले जहां नहीं पहुंच पाते, बिना कोशिश करने वाला कैसे पद पर पहुंच पाएगा?

उसका कोई उपाय नहीं है। जो पद से व्यभिचारित नहीं होता, वह पद तक नहीं पहुंच पाता। उसके पहुंचने का कोई कारण नहीं है। और जो व्यभिचारित हो सकता है, वही पहुंचने की कोशिश करता है। और जितना ज्यादा तीव्र वेग हो दबी हुई वासना का, उतनी तीव्रता से पहुंचने की कोशिश करता है। दबे वेग शक्ति बन जाते हैं।

महावीर कह रहे हैं कि आप अगर अवसर से दूर हैं--इसका नाम संयम नहीं है। स्त्री पास नहीं है--आप ब्रह्मचारी हैं। धन पास नहीं है--आप सादगी से जी रहे हैं। किसी को मार नहीं सकते, क्योंकि डरते हैं। क्योंकि मार वही सकता है, जो पिटने को तैयार है।

आप ध्यान रखना, जो पिटने को तैयार नहीं है, वह मार नहीं सकता। मारने की क्षमता उसी में आती है, जो पिटने के लिए बिल्कुल तैयार है। आप पिटने को तैयार नहीं हैं, इसलिए मार नहीं सकते--तो सोचते हैं, अहिंसक हैं।

आदमी ऐसा है कि अपनी सब वृत्तियों के लिए रेशनेलाइजेशन खोज लेता है। कायर अपने को अहिंसक कहता है। क्योंकि कायरता तो बड़ा दुख देती है कि कोई कहे कि मैं कायर हूँ। कायर अपने को अहिंसक कहता है कि मैं हिंसा नहीं करना चाहता।

इसलिए बड़ी हैरानी की बात है कि महावीर खुद क्षत्रिय थे, जैनों के बाकी तेइस तीर्थंकर भी क्षत्रिय थे--सब क्षत्रिय घरों से आए चौबीस तीर्थंकर। और उनको मानने वाले सब वणिक हैं, बनिया हैं। यह बड़ी हैरानी की बात है! इसमें कोई तालमेल नहीं दिखाई पड़ता। चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हों जिनके, उनके सब मानने वाले दुकानदार हों, इसमें जरूर कोई न कोई बात बड़ी महत्वपूर्ण है।

असल में अहिंसा की बात कायरों को ठीक लगी--रेशनेलाइजेशन। उनको जंची कि यह बात बिल्कुल ठीक है: कायर के कायर रहो और अहिंसक भी हो जाओ। कोई कुछ कह भी नहीं सकता कि तुम कायर हो। कायरता को छिपाने के लिए अहिंसा का सिद्धांत--इससे सुंदर और क्या हो सकता था! जो-जो डरते थे, भयभीत थे, वे अहिंसा के भीतर खड़े हो गए। अहिंसा उनके लिए कवच बन गई।

लेकिन अहिंसा उसी के जीवन में फल सकती है जो कायर नहीं है। क्योंकि अहिंसा आखिरी वीरता है। हिंसा बड़ी वीरता नहीं है। दूसरे को मारने की तैयारी इसी बात की घोषणा है कि मैं कहीं मार डाला न जाऊँ। वह डर का ही हिस्सा है। कोई मुझे मार न दे, इस डर से मैं पहले ही मार देता हूँ।

हिंसक भयभीत व्यक्ति है। हिंसक पूरा बहादुर नहीं है, उसकी बहादुरी अधूरी है। वह डरा हुआ है कि मुझे मार न डाला जाए। इस भय से ही उसकी हिंसा है। आपके हाथ में तलवार है, वह तलवार खबर देती है कि आप भीतर कहीं डरे हुए हैं। वह डर हिंसा बन सकता है।

लेकिन अगर कोई व्यक्ति डरा ही हुआ नहीं है, तो ही दूसरे को मारने का ख्याल विदा होता है। जब मैं इतना निर्भय हूँ कि मुझे कोई मारे तो भी मुझे मार नहीं सकता, भीतर मैं अमृत हूँ--तो फिर दूसरे को मारने का कोई सवाल न रहा।

अहिंसा आखिरी वीरता है। लेकिन जगत में बड़ी विडंबना है; जो आखिरी वीरता है, वह प्राथमिक कायरता का कवच बन गई है। ऐसा रोज हो रहा है। सभी सिद्धांतों के साथ ऐसा हो रहा है। झूठ आप बोल नहीं सकते, क्योंकि फंसने का डर है। तो आप सच बोलते हैं, लेकिन वह सच निर्जीव है। उसके पीछे कोई आत्मा नहीं है। वह कायर का सत्य है।

यह जो हम इस भांति संयम साध लेते हैं, यह संयम हमें मोक्ष तक तो नहीं ले जाता; हमें संसार से ऊपर भी नहीं उठाता; हमें संसार के भीतर ही बांध रखता है--एक कैप्सूल में। हम एक अपने ही संयम के कैप्सूल में बंद हो जाते हैं। न हम संसार को भोग पाते हैं--क्योंकि भोग भी शायद कभी संयम का मार्ग बन जाए। क्योंकि भोगते-भोगते भी आदमी को ऊब पैदा होती है। जिस चीज को हम बार-बार भोगते हैं, उससे ऊब पैदा हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बड़ी नाराज थी एक दिन, क्योंकि नसरुद्दीन ने थाली नीचे फेंक दी भोजन के समय। नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा: यह तुम क्या कर रहे हो?

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे मार डालेगी! रोज भिंडी का साग!

पर उसकी पत्नी ने कहा: कैसी बात कर रहे हो? सोमवार को तुमने कहा था कि साग बहुत अदभुत है। और मंगलवार को भी तुमने कहा कि साग अच्छा बना है। और बुधवार को भी तुमने पसंद किया और वृहस्पतिवार को भी पसंद किया; शुक्रवार को भी पसंद किया--और आज शनिवार है; और आज अचानक तुम कहने लगे कि मार डालोगी!

सोमवार को जो पसंद है, मंगलवार को कम पसंद हो जाएगा। बुधवार को और कम पसंद हो जाएगा। अनुभव भी उबा देता है। शनिवार को थाली फेंकने की नौबत आ जाएगी। जो स्वादिष्ट भोजन था, वह जहर जैसा मालूम पड़ने लगेगा।

लेकिन पत्नी यह कह रही है, उसकी बात बड़ी तर्कपूर्ण है। वह यह कह रही है कि जब तुमको छह दिन जो चीज पसंद थी, तो आज अचानक सात दिन का तुम अपना मन कैसे बदल रहे हो? तुम तर्क संगत नहीं हो। जो चीज छह दिन पसंद थी, वह सातवें दिन और भी ज्यादा पसंद होनी चाहिए।

नहीं, मन ऊब जाता है। इसलिए पति-पत्नी एक दूसरे से ऊब जाते हैं। निरंतर एक का ही अनुभव उबाने वाला हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक पति-पत्नी जगत में हैं, तब तक व्यभिचार को मिटाना मुश्किल है। जब तक विवाह है, तब तक व्यभिचार को मिटाना मुश्किल है। वे शायद ठीक ही कहते हैं, क्योंकि विवाह उबाता है। ऊब से आदमी यहां-वहां भागता है, उससे व्यभिचार पैदा होता है।

अब यह बड़ी मुश्किल की बात है--मनस्विद कहते हैं कि वेश्याएं विवाह की संस्था का अनिवार्य अंग हैं। और जब तक विवाह है तब तक वेश्याएं होंगी। और अगर वेश्याओं को मिटाना तो ध्यान रखना, विवाह मिट जाएगा। विवाह ही मिट जाए तो ऊब मिट जाए, ऊब मिट जाए तो फिर कोई सवाल नहीं है। लेकिन विवाह के साथ वेश्या जुड़ी हुई है।

जिंदगी बड़ी अजीब है और बड़ी जटिल है। तो जो आदमी भोग से भी अपने को रोक लेता है और आत्म-ज्ञान को भी उपलब्ध नहीं होता, वह तो संयम की आखिरी संभावना भी बंद किए दे रहा है। एक संभावना तो यह है कि वह दुख में पड़े, नरक में उतरे और भोगे, और भोग-भोग कर परेशान हो जाए--इतना परेशान हो जाए कि वह परेशानी ही उसे बाहर निकालने लगे--वह भी बंद हो गया। और दूसरा उपाय यह है कि वह भीतर के प्रकाश को जलाए, शरीर और आत्मा को पृथक्ता से देखे--उस पृथक्ता के कारण शरीर की वासना गिर जाए। या फिर शरीर में कोई इतना जाए कि ऊब जाए, ऊब से संयम का जगत शुरू हो।

लेकिन जिसको हम संयमी कहते हैं, वह दोनों से बच जाता है। न तो वह आत्म-ज्ञान को उपलब्ध हो रहा है, न तो भोग के नरक से गुजर रहा है ताकि नरक छोड़ने जैसा मालूम पड़ने लगे। वह रुका हुआ है। उसने अपने चारों तरफ एक कारागृह बना लिया है अपनी कायरता का, अपने डर का, भय का। वह उसमें बंद है।

इस भय में बंद आदमी को मोक्ष से सर्वाधिक दूर समझना। भोगी भी इतना दूर नहीं है। यह जो तथाकथित योगी है, इससे ज्यादा दूर मोक्ष से कोई भी नहीं। भोगी भी इससे थोड़ा करीब है। क्योंकि आज नहीं कल, जिंदगी का अनुभव ही उसे बार-बार दुख देकर बता देगा कि यह जिंदगी कुछ सार्थक नहीं है। लेकिन इस संयमी को, तथाकथित संयमी को जिंदगी में जो-जो गलत है, उसका रस बना ही रहेगा। वह गलत का रस इसके संयम से पैदा हो रहा है। क्योंकि जिस-जिस चीज को आप रोकते हैं, उस-उस में रस पैदा हो जाता है।

आदमी के अधिक पापों का कारण संयम की शिक्षा और नीति की शिक्षा है। जिन-जिन पापों से आदमी को रोकने के लिए कहा जाता है, उन-उन में रस आ जाता है। जरा फिल्म में लगा दें कि ओनली फार एडल्ट्स--सिर्फ वयस्कों के लिए, फिर जिनकी मूछ की रेखा भी नहीं आई, वह भी दो आने की मूछ खरीद कर लगाकर क्यू में खड़े हो जाते हैं। फिर पत्रिकाएं निकलती हैं--"ओनली फॉर मैना" सिर्फ औरतें पढ़ती हैं उस पत्रिका को, आदमी पढ़ते ही नहीं। "ओनली फॉर वुमन"--आदमी पढ़ेगा ही, स्त्रियां उसकी फिकर नहीं करतीं। क्योंकि वे उसे जानती हैं कि स्त्री में क्या होने वाला है।

जहां निषेध है वहां रस पैदा हो जाता है। जिस चीज में रस पैदा करना हो उसका निषेध करना जरूरी है। आप बड़े हैरान होंगे--इसको मैं जिंदगी की विडंबना कहता हूं। और यह समझ में न आए तो बड़ी अड़चन हो जाती है। आपके सब तथाकथित साधु-संत आपकी जिंदगी में जो-जो गलत चल रहा है, उसके लिए जिम्मेवार

हैं। क्योंकि वे निषेध किए चले जाते हैं और रस पैदा किए चले जाते हैं। और जिस चीज का निषेध कर दो, बहुत निषेध करो, उसमें शक होने लगता है कि जरूर कोई बात होनी चाहिए।

बाप बेटे को समझाता है, सिगरेट मत पीना। अभी बेटे को ख्याल ही नहीं आया था। सच तो यह है कि अगर बेटे अपने पर ही छोड़ दिए जाएं तो हजारों साल लग जाएंगे उनको सिगरेट खोजने में। क्योंकि धुआं बाहर-भीतर करना इतनी नालायकी का काम है--इसको कौन करना चाहेगा! और किसलिए करना चाहेगा! इसमें कुछ भी तो अर्थ नहीं मालूम पड़ता।

लेकिन चारों तरफ समझाने वाले लोग हैं कि धूम्रपान है, सिगरेट मत पीना! बाप यह भी कहता है: क्या करूं, मेरी तो खराब आदत कि मैं पीने लगा, बाकी तू मत पीना! बेटे को रस शुरू होता है कि जरूर कुछ न कुछ मामला है।

जो भी चीज रोकी जाती है, उसमें कुछ होना चाहिए। नहीं तो रोकेगा कौन! क्यों रोकेगा! और ए सारे समाज के पंडे-पुरोहित क्यों इसके खिलाफ पंडे अगर कुछ भी नहीं है! आखिर साधु-संन्यासी अपनी आत्मा की बात छोड़कर क्यों समझाते रहे हैं लोगों को कि धूम्रपान मत करो, सिगरेट मत पीओ; यह मत करो...। जरूर सिगरेट में कोई आनंद होना चाहिए कि इतने लोग दीवाने हैं करने को। और इतना समझाने वालों के बाद भी कोई रुकता नहीं कोई रुकता नहीं। एक आदमी को नहीं बदल पाते इतना समझाकर!

तो बच्चे को भी यह दिखाई पड़ना शुरू होता है कि इतने लोग धुआं बाहर-भीतर कर रहे हैं। अरबों रुपये की सिगरेट--बीड़ी पीई जा रही है। और इतने हजारों साल से साधु-संत समझा रहे हैं, कोई इनकी सुनता नहीं। जरूर साधु-संतों में उतना रस नहीं है, जितना इस धूम्रपान में है।

पहली दफा जब बच्चा सिगरेट पीता है तो जरा भी रस नहीं आता। वमन भी हो सकता है, खांसी आ सकती है, आंख से आंसू आ जाएंगे--क्योंकि बात ही बेहूदी है। लेकिन वह देखता है कि कोई सुख बिना दुख के तो मिलते नहीं... तप के बिना। तो थोड़ी साधना करनी पड़ेगी; अभ्यास करना पड़ेगा। बिना अभ्यास के कहीं कुछ हुआ है! और जब इतने लोग पा चुके इस अवस्था को... धूम्रपान का मोक्ष--मैं भी कोशिश किए चला जाऊं।

फिर वह अभ्यस्त हो जाता है। नरक के लिए भी अभ्यस्त हो सकता है आदमी! दुख के लिए भी अभ्यस्त हो सकता है! और जब अभ्यस्त हो जाता है तब एक बड़ी मजेदार घटना घटती है; एक कंडिशनिंग हो जाती है। धूम्रपान एक कंडिशनिंग है। एक संस्कार आबद्ध हो गया। और सारी दुनिया उसमें रस देखती है। जो पीते हैं, वे भी रस देखते हैं; जो नहीं पीते हैं, वे भी रस देखते हैं। तो सारी दुनिया की हवा उसको राजी कर देती है कि इसमें जरूर रस है। और अगर मुझे नहीं दिखाई पड़ता; तो अपनी ही बुद्धि की भूल है। थोड़ा अभ्यास! वह कर लेता है अभ्यास। जब अभ्यास हो जाता है, तो रस तो बिल्कुल नहीं मिलता, लेकिन अब न पीए तो दुख मिलता है।

गलत का यही आधार है। अगर आप करें तो कोई सुख नहीं पाते, न करें तो दुख पाते हैं। क्योंकि न करें तो एक आदत, एक तलफ, एक बेचैनी कि कुछ करना था वह नहीं किया। तब फिर इस दुख से बचने के लिए आदमी पीए चला जाता है।

हमारे जीवन के अधिक पाप, हमारे चारों तरफ पाप के खिलाफ जो चर्चा है, उससे पैदा हुए हैं। और जब तक यह चर्चा बंद नहीं होती, तब तक उन पापों का हटाने का कोई उपाय नहीं है।

अभी कल ही मैंने देखा अखबार में कि दिल्ली में साधु-संन्यासियों ने एक सम्मेलन किया अश्लील पोस्टरों के खिलाफ।

साधु-संन्यासियों को क्या प्रयोजन अश्लील पोस्टरों से? इनको क्या अड़चन है?

कोई अश्लील पोस्टर देख रहा है, यह उसकी निजी स्वतंत्रता है। और उसे कोई रस आ रहा है तो वह हकदार है उस रस को लेने का। तुम्हें रस नहीं आ रहा--तुम साधु-संन्यासी हो गए हो; तुमने सब छोड़ दिया। लेकिन अब भी तुम... अब भी तुम परेशान क्यों हो?

जरूर ये साधु-संन्यासी भी अील पोस्टर देखते होंगे। इनको पीड़ा क्या हो रही है? और ये अपना मोक्ष, सामायिक, ध्यान छोड़ कर इस तरह के सम्मेलन क्यों करते हैं? इतनी अड़चन क्यों उठाते हैं?

यह बड़े मजे की बात है कि "अक्षील पोस्टर होने चाहिए" इसका कोई सम्मेलन नहीं करता, और वे चलते हैं। और यह सम्मेलन करते रहे हजारों साल से, कोई रुकता नहीं। अक्षील पोस्टर में ये साधु-संन्यासी रस को बढ़ाते हैं, कम नहीं करते। ये जिम्मेवार हैं।

अक्षील पोस्टर हट जाएंगे उस दिन, जिस दिन हम कह देंगे, यह व्यक्ति की निजी बात है कि वह नग्न चित्र देखना चाहता है, मजे से देखे। नग्न चित्रों को न तो जमीन के नीचे दबा कर बेचने की जरूरत है, न छिपा कर रखने की जरूरत है। नग्न चित्रों को तो प्रकट कर देने की पूरी जरूरत है कि लोग देख कर ही ऊब जाएं कि अब कब तक देखते रहें।

मैंने सुना है कि एक सर्जन एक आर्ट एक्झिबीशन में गया एक चित्र खरीदने। चित्र का उसे शौक था। प्रदर्शनी में बड़े-बड़े चित्रकारों की पेंटिंग्स थीं--सब उसे दिखाई गई, पर उसे कोई जंची नहीं। तब जो उसे दिखा रहा था, गाइड, उसने कहा, फिर ऐसा करिए, आप अंडरग्राउंड पेंटिंग्स देखें। आपको ये कुछ जंच नहीं रही हैं, तो इस प्रदर्शनी में छिपा हुआ हिस्सा भी है जहां सिर्फ न्यूइस, नग्न स्त्रियों के चित्र हैं--वे आपको जरूर जंचेंगे।"

तो उसने कहा: छोड़ो! मैं सर्जन हूं मैं इतनी नग्न स्त्रियां देख चुका हूं कि अब मैं डरता हूं, जब फिर से मुझे नग्न स्त्री देखनी पड़ती है। नग्न स्त्रियां देख-देख कर मेरा न केवल नग्न स्त्रियों को देखने में रस खत्म हो गया है--मेरा सारा रोमांस, स्त्री के प्रति मेरा आकर्षण, काम वासना का उद्दाम वेग, वह सब शिथिल पड़ गया है।"

कपड़े ढांक-ढांक कर हम शरीर में आकर्षण बढ़ा रहे हैं। जिस दिन दुनिया नग्न होगी, उस दिन कोई नग्न पोस्टर लगाने की जरूरत नहीं रह जाएगी। नग्न पोस्टर तरकीब है। इधर कपड़े से ढांको, तो फिर उघाड़ कर दिखाने में रस आना शुरू हो जाता है। आदमी जब तक इस पूरे भीतरी उलझाव को, उपद्रव को न समझ ले, तब तक जीवन में संयम की जगह संयम के नाम पर एक कारागृह पैदा हो जाता है।

या तो भोग के अनुभव से गुजरो ताकि ऊब जाओ; और या फिर भीतर के विवेक को जगाओ ताकि शरीर की पकड़ खो जाए। इन दोनों से बच कर साधु तीसरे काम में लगा रहता है।

ये साधु जो सम्मेलन करते हैं कि अील पोस्टर नहीं होने चाहिए, इनको जरूर कुछ बेचैनी है। बेचैनी यह है कि तुम सब मजा ले रहे हो! और ये बेचारे बड़े परेशान हैं। इनकी परेशानी का अंत नहीं है।

अगर ये सच में ही संयम को उपलब्ध हुए होते और अगर इनको पता चला होता कि आत्मा और शरीर अलग हैं, तो ये कहते कि ठीक है, ये शरीर के नग्न चित्र हैं, शरीर कोई आत्मा नहीं है--इसमें चिंता की क्या बात है?

लेकिन यह ज्ञानी भी, अगर स्त्री इसको छू ले, तो हट कर खड़ा हो जाता है। और यह कहता रहता है कि शरीर और आत्मा अलग हैं! और स्त्री का शरीर, तो बहुत दूर, उसका कपड़ा छू जाए तो भी इसमें रोमांस पैदा होता है। यह हट कर खड़ा हो जाता है।

जो साधु स्त्रियों को अपने पैर नहीं छूने देता, स्त्रियां उसमें बड़ी उत्सुक होती हैं कि जरूर गजब का आदमी है! स्त्री उसी आदमी में उत्सुक होती है जो स्त्रियों में उत्सुक न हो। क्योंकि तब उसे लगता है कि जरूर अदभुत है!

तो साधु स्त्री को पैर न छूने दे, पास न आने दे तो स्त्री भी मानती है, महात्मा पूरा है। लेकिन यह महात्मा को अभी इतना भी पता नहीं चल रहा है कि स्त्री की आत्मा तो कुछ स्त्री होती नहीं; पुरुष की आत्मा कोई पुरुष होती नहीं--शरीर ही में स्त्री और पुरुष होते हैं। और शरीर में भी क्या रखा है?

स्त्री-पुरुष का भेद क्या है? अगर जीवशास्त्री से पूछें तो वह कहता है, बच्चा जब पैदा होता है, तो उसके शरीर में दोनों ही अंग होते हैं--स्त्री-पुरुष के। कोई तीन सप्ताह बाद फर्क होना शुरू होता है। फर्क भी बड़ा

मजेदार है। फर्क वही है जो शीर्षासन में होता है। पुरुष की इंद्रियां बाहर आ जाती हैं, वे ही इंद्रियां स्त्री में भीतर की तरफ मुड़ जाती हैं--जैसे कोट के खीसे को आप उलटा कर लें। बस, इतना फर्क है!

जरा भी फर्क नहीं है। जो शरीर की चमड़ी बाहर लटक जाती है वह पुरुष की इंद्रिय बन जाती है, वही चमड़ी भीतर की तरफ सरक जाती है तो स्त्री की इन्द्रिय बन जाती है। बस, इतना ही फर्क है: कोट का पाकेट उलटा या सीधा!

लेकिन यह शरीर का जिनको अनुभव हो रहा है कि शरीर-आत्मा अलग हैं, उनको भी इतने फर्क में इतना रस मालूम पड़ता है। वह रस उनके रोग की खबर देता है। उन्होंने जबरदस्ती अपने को रोक लिया है, कोई ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ।

जबरदस्ती मुक्त नहीं कर सकती, सिर्फ समझ, अंडरस्टैंडिंग, होश मुक्त कर सकता है।

महावीर कहते हैं: जब कोई व्यक्ति अपने इस आंतरिक भेद को जान लेता है तब पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष सभी जान लिए जाते हैं। जब पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष जान लिए जाते हैं, तब देवता और मनुष्य संबंधी काम-भोगों की व्यर्थता स्पष्ट हो जाती है। उनसे विरक्ति सहज फलित होती है।

यह जरा समझने जैसा है। क्योंकि जो आदमी जबरदस्ती दमन के द्वारा अपने को संयमी बना लेता है, भीतर पूरा अंधेरा रहता है, बाहर-बाहर इंतजाम कर लेता है अपने को रोकने का, इसकी वासना... इस जगत से भला यह अपनी वासना को भीतर रोक ले, दूसरे जगत में संलग्न हो जाती है। यह स्वर्ग की कामना करने लगता है।

आपको पता होगा, कथाएं हैं कि जब भी कोई ऋषि-मुनि अपनी तपश्चर्या में पूर्ण होने लगता है तो इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है।

यह बड़े मजे की बात है कि इंद्र का सिंहासन किसी ऋषि-मुनि के तपस्या में ऊपर उठ जाने से क्यों डोलता है? इसमें क्या संबंध है? और इंद्र के सिंहासन में ऐसा क्या ऋषि-मुनि को रस हो सकता है? और इंद्र इतना भयभीत क्यों होता है कि एक काम्पिटीटर, एक प्रतियोगी पैदा हो गया? और इंद्र वहां कर क्या रहा है--सिवाय नाच-गाने, खाने-पीने के और वहां कुछ हो नहीं रहा है!

स्वर्ग का मतलब है : जहां इस संसार के सब दुख काट दिए हैं, और इस संसार के सब सुख अपनी पराकाष्ठा में रख दिए हैं। स्त्रियां वहां सोलह साल पर रुक जाती हैं, उससे ज्यादा उनकी उम्र नहीं बढ़ती।

यहां भी कोशिश तो बहुत करती हैं। मजबूरी है, कितनी ही कोशिश करो, शरीर तो उम्र पा ही लेता है। लेकिन वहां वह कोशिश सफल हो गई है। स्वर्ग में सोलह वर्ष पर सारी अप्सराएं रुक गई हैं--उससे ज्यादा उम्र नहीं होती।

शरीर स्वर्ण-कांचन के पारदर्शी हैं। ट्रांसपेरेंट कपड़े ही नहीं हैं--"सीश्रु" कि कपड़ों के पीछे से देख लो, शरीर भी "सीश्रु", पारदर्शी है; सब दिखाई पड़ेगा। कल्पवृक्ष हैं--जिनके नीचे जो ऋषि-मुनि तपश्चर्या करके पहुंच जाते हैं, वे बैठे हैं। जो भी वासना करो, तत्क्षण पूरी हो जाती है। यहां संसार में समय लगता है। कोई वासना करो, मेहनत करो, उपद्रव करो, भारी दौड़-धूप करो--जब तक पहुंचो, अधमरे हो चुके होते हैं। तो वासना भोगने की क्षमता उस वासना को प्राप्त करने की चेष्टा में ही नष्ट हो गई होती है। लेकिन वहां स्वर्ग में, कल्पवृक्ष के नीचे, वासना का उठना और पूरा होना तत्क्षण है; युगपत है--साइमलटेनियस!

किन्होंने यह स्वर्ग-कामना की है? किन्होंने यह स्वर्ग बनाया है? किनके सपनों का यह साकार रूप है? संयमी का? तो इसका मतलब हुआ कि यहां स्त्रियां छोड़ो ताकि वहां बेहतर स्त्रियां मिल सकें। कहां क्षुद्र धन की खोज में पड़े हो, कल्पवृक्ष की खोज करो।

तो भोगी कौन है?

दो तरह के भोगी हुए: एक जो नासमझ हैं, क्षुद्र के पीछे दौड़ रहे हैं; एक जो समझदार हैं, जो शाश्वत के पीछे दौड़ रहे हैं--जो ज्यादा चालाक हैं; ज्यादा होशियार हैं। महावीर इसको संयमी नहीं कहते।

महावीर कहते हैं कि अगर यहां किसी ने अपने को दबाया, तो वह किसी परलोक में भोगने की कामना से भर जाएगा। और यह कामना इतनी बेहूदी हो सकती है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। एक धर्म में न केवल वहां दूरों और स्त्रियों का इंतजाम है, वहां गिल्मों, खूबसूरत लड़कों का भी इंतजाम है--बहिश्त में। क्योंकि जब वह धर्म पैदा हुआ तो उस देश में होमो-सेक्सुअलिटी प्रचलित थी। और पुरुष पुरुषों से भी प्रेम कर रहे थे। जब वह धर्म पैदा हुआ तो उसको अपने स्वर्ग में यह भी इंतजाम करना पड़ा कि वहां दूरों तो हैं ही खूबसूरत, लेकिन गिल्में, लौंडे भी वहां उपलब्ध हैं।

जिनके मन से यह वासना उठती होगी, इनको महावीर संयमी किस हालत में कह सकते हैं। यह संयम नहीं है। यह तो यहां दबाना और वहां इसको पाने की कोशिश है। यह तो दमित वासना का विकृत रूप है। इसलिए महावीर कहते हैं, स्वर्ग का आकांक्षी वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति नहीं है। मोक्ष का आकांक्षी धार्मिक व्यक्ति है।

यह जरा समझने--जैसा है कि महावीर स्वर्ग और नरक को तो आपका ही फैलाव मानते हैं। उसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। नरक वह जगह है, जहां आप दूसरों को भेजना चाहते हैं और स्वर्ग वह जगह है जहां आप जाना चाहते हैं। और कोई फर्क नहीं है।

महावीर कहते हैं कि मोक्ष वह जगह है जहां आप हैं--अभी भी, इस क्षण भी। जो आपका स्वभाव है। वह कोई स्थान नहीं है, एक आंतरिक बोध की अवस्था है। इसलिए उस अवस्था को हम "बुद्धत्व" कहते हैं।

जहां बोध पूरा जग गया, वहां बुद्धत्व है।

"जब साधक पुण्य, पाप, बंध, और मोक्ष को जान लेता है, तब देवता और मनुष्य संबंधी काम-भोगों की व्यर्थता को जान लेता है।"

तो देवता भी व्यर्थ ही भटक रहे हैं। इंद्र भी इंद्रियों के पार नहीं है। इसीलिए हमने उसको "इंद्र" नाम दिया है कि वह इंद्रियों का सबसे श्रेष्ठ रूप है। इन्द्रियों को भोगने की जो पराकाष्ठा है, वह इंद्र है।

और बड़े मजे बात है; उसने भी बड़ी तपश्चर्या से यह अवस्था पाई है। इसलिए जब भी कोई दूसरा वैसी तपश्चर्या करने लगता है, इंद्र घबड़ा जाता है। तब वह क्या करता है, तब वह उर्वशी को या किसी और अप्सरा को भेजता है कि जाकर जरा इस साधु महाराज को थोड़ा डिगाओ; इन्हें थोड़ा हिलाओ, मेरा सिंहासन हिल रहा है--इन्हें थोड़ा हिलाओ तो मेरा सिंहासन थिर हो जाए। यह आदमी प्रतियोगी मालूम पड़ता है।

और बड़ा मजा यह है कि अप्सराएं साधु-महात्माओं को डिगा जाती हैं। ये उसी साधु-महात्मा को डिगा सकती हैं, जिसने भीतर के बोध से संयम को नहीं पाया है; जो भीतर तो अंधेरे में खड़ा है, जिसने बाहर से जबरदस्ती थोप लिया है।

तो आप स्त्रियों से बच सकते हैं थोपकर, अप्सराओं से नहीं बच सकते; क्योंकि अप्सराएं बाहर खड़ी नहीं होती, मन में खड़ी होती हैं। अप्सराएं कल्पना के रूप हैं। इसलिए जो साधु जिस चीज का दमन करता है, उसी के सपने आने शुरू हो जाते हैं।

अब यह बड़े मजे की बात है, जिन समाजों में... जैसे यहूदी हैं, वे अपने साधु को भी विवाह का मौका देते हैं। तो एक भी यहूदी संत के जीवन में ऐसा उल्लेख नहीं है कि जब वह परमज्ञान के पास आया, तो अप्सराओं ने उसे परेशान किया। करने का कोई कारण नहीं है। अप्सराएं पहले ही काफी परेशान कर चुकी हैं। अब कोई अप्सरा परेशान नहीं कर सकती।

तो यहूदी धर्म एक बहुत वैज्ञानिक बात मानता है कि उसके पुरोहित तो शादीशुदा होने ही चाहिए; उनका संत तो शादीशुदा होना ही चाहिए, नहीं तो वह स्त्रियों के पार नहीं जा पाएगा। और तब फिर आखिर में स्त्रियां सताती हैं।

जिन-जिन धर्मों ने स्त्री से बचने को संयम का प्राथमिक चरण बना दिया, उन-उन धर्मों में स्त्रियां सताती हैं। निश्चित ही कोई कारण है।

कारण साफ है: जो दबाया जाता है बाहर से, वह भीतर से उभरना शुरू हो जाता है। जिसे हम बाहर से छोड़ देते हैं, वह भीतर कल्पना में, स्वप्न में पकड़ लेता है। वह वहां सताने लगता है। अप्सराएं कहीं आती नहीं बाहर से। उनके घुंघरू ऋषियों को ही सुनाई पड़ते हैं। उन्हीं के पास ग्वाले अपनी गाएं चरा रहे हैं, उनको सुनाई नहीं पड़ते; उनको दिखाई नहीं पड़तीं वे अप्सराएं--ऋषि ही परेशान होते हैं।

दमित वासना विकृत होकर स्वप्न बन जाती है। जो अपने को उपवास की साधना में लगा देते हैं बिना भीतर के ज्ञान के, उनको भोजन सताने लगता है। उनके सारे स्वप्न भोजन से भर जाते हैं। आप जरा किसी दिन उपवास करके देखें, बात साफ हो जाएगी। दिन में उपवास करें, रात सम्राट, जो अब बचे ही नहीं, वे आपको निमंत्रण देंगे--राज-भोज! वहां छप्पन प्रकार के व्यंजन आपके लिए तैयार हैं।

ये छप्पन प्रकार के व्यंजन ऋषि-मुनियों ने देखे नहीं, सिर्फ उपवास में इन्हें दिखाई पड़े हैं। यह कहीं हैं नहीं। फिर उनका रंग और उनकी सुगंध--बात ही और है! वह अलौकिक है। वह इस लोक की है नहीं। इस पृथ्वी से उसका कोई संबंध नहीं है।

दमित चित्त विकृत हो जाता है। महावीर की साधना में कहीं भी दमन नहीं है--बोध पर जोर है, विवेक पर जोर है, जागरूकता पर जोर है।

लेकिन यह हुआ नहीं है। उनकी परंपरा में जो हुआ है, वह दमन है। और जितना उनके पीछे चलने वालों ने दमन किया, इस जमीन पर किसी दूसरी धार्मिक परंपरा ने नहीं किया। जितना दमित जैन साधु है, उतना दमित कोई भी नहीं है।

दमन आसान है, जागरण कठिन है। जो आसान है वह हम कर लेते हैं, जो कठिन है उसे बाद के लिए पोस्टपोन करते चले जाते हैं। लेकिन जब तक वह कठिन न हो जाए, तब तक सब किया हुआ व्यर्थ है। उससे कोई मोक्ष की तरफ नहीं जाता और नये जन्मों के बंधनों की तरफ उतर जाता है।

पांच मिनट कीर्तन करें; फिर जाएं।

अंतस-बाह्य संबंधों से मुक्ति (मोक्षमार्ग-सूत्र: 3)

जया निर्विंदए भोए जे दिव्वे जे य माणुसे।
 तया चयइ संजोगं, सब्भित्तरं बाहिरं॥
 जया चयइ संजोगं, सब्भित्तरं बाहिरं।
 तया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वयइ अणगारियं॥
 जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वयइ अणगारियं।
 तया संवरमुक्किट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं॥
 जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।
 तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं॥
 जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं।
 तया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ॥

जब देवता और मनुष्य संबंधी समस्त काम-भोगों से (साधक) विरक्त हो जाता है, तब अंदर और बाहर के सभी सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है।

जब अंदर और बाहर के समस्त सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है, तब मुंडित (दीक्षित) होकर (साधक) पूर्णतया अनगार वृत्ति (मुनिचर्या) को प्राप्त करता है।

जब मुंडित होकर अनगार वृत्ति को प्राप्त करता है, तब (साधक) उत्कृष्ट संवर एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।

जब (साधक) उत्कृष्ट संवर एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है, तब (अंतरात्मा पर से) अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल को झाड़ देता है।

जब (अंतरात्मा पर से) अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल को दूर कर देता है, तब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है।

काम-भोग से विरक्ति महावीर के साधना-पथ की अत्यंत अनिवार्य भूमिका है। कामवृत्ति का अर्थ है: मैं अपने से बाहर जा रहा हूं। कामवृत्ति का अर्थ है: मेरा सुख किसी और में निर्भर है। कामवृत्ति का अर्थ है: मैं स्वयं अपने में पर्याप्त नहीं हूं, कोई और मुझे पूरा करने को जरूरी है।

साफ है कि कामवृत्ति से घिरा हुआ व्यक्ति कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। जब तक दूसरा मेरे सुख का कारण है, तब तक दूसरा ही मेरे दुख का कारण भी होगा। और जब तक दूसरा मेरे जीवन का कारण बना है, तब तक मैं स्वतंत्र नहीं हूं।

जब तक हम दूसरे पर निर्भर रहे चले जाते हैं, तब तक स्वतंत्रता का कोई स्पर्श भी नहीं हो सकता। इसलिए कामवृत्ति मौलिक बंधन है। और जो कामवृत्ति से विरक्त हो जाता है, वह अनिवार्यतः अपनी ओर मुड़ना शुरू हो जाता है। लेकिन लोग कामवृत्ति से विरक्त क्यों नहीं हो पाते? सुख की झलक दिखाई पड़ती है, सुख कभी मिलता नहीं; दुख काफी मिलता है। लेकिन सुख की आशा में आदमी झेले चला जाता है।

इस बात को थोड़ा ठीक से, गौर से देख लेना जरूरी है कि हम जीवन की इतनी पीड़ाएं क्यों झेले चले जाते हैं। आशा में कि आज सुख नहीं मिला, कल मिलेगा; इस व्यक्ति से सुख नहीं मिला, दूसरे व्यक्ति से मिलेगा;

इस संबंध से सुख नहीं मिला तो दूसरे संबंध से सुख मिलेगा। लेकिन सुख दूसरे से मिल सकता है, यह हमारी स्वीकृत धारणा है। और यही धारणा सबसे ज्यादा खतरनाक धारणा है।

सुख मिल सकता है, दूसरे से कभी किसी को नहीं मिला। कभी यह घटना ही इतिहास में नहीं घटी कि कोई दूसरे से सुखी हो गया हो। हां, दूसरे से सुख मिलने की आशा बांधे हुए व्यक्ति बहुत दुखी जरूर होता है। लेकिन फिर भी आशा बंधी रहती है। हम भविष्य में ताकते रहते हैं, झांकते रहते हैं।

यह आशा जब तक न टूट जाए जीवन के अनुभव से, तब तक विरक्ति का कोई जन्म नहीं है। और जब हम दूसरे से सुख पाने की आशा रखते हैं, तो स्वभावतः जो भी हमारे जीवन में घटित हो, हम दूसरे को ही उसके लिए जिम्मेवार माने चले जाते हैं। इसलिए खुद की अंतरजीवनधारा से सम्पर्क स्थापित नहीं होता। और वही सम्पर्क क्रांति ला सकता है।

चाहे सुख हो, चाहे दुख; चाहे सुविधा हो, चाहे असुविधा; हम सदा दूसरे की तरफ आंखें लगाए रखते हैं। यह दूसरे की तरफ लगी हुई आंखें ही कामवृत्ति है। अगर कोई परमात्मा की तरफ भी आंखें लगाए हुए है कि उससे सुख मिलेगा, आनंद मिलेगा, तो महावीर कहेंगे, वह भी कामवृत्ति है; वह भी कामना का ही दिव्य रूप है--लेकिन कामना ही है।

इस मन की साधारण जकड़ को अपने ही जीवन के अनुभव में खोजना चाहिए। जब भी कुछ घटता है, आप तत्क्षण दूसरे को जिम्मेवार ठहरा देते हैं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपने वकील के पास गई थी। और उससे बोली कि अब बहुत हो चुका, और अब आगे सहना असंभव है। अब तलाक का इंतजाम करवा ही दें।

उसके वकील ने पूछा कि ऐसा क्या कारण आ गया है? तो उसने कहा कि मुल्ला नसरुद्दीन विश्वासघाती है। उसने मुझे धोखा दिया है। निश्चित ही उसके दूसरी स्त्रियों से संबंध हैं। और, अब और सहना असंभव है।

वकील ने पूछा: कोई प्रमाण? क्योंकि प्रमाण की जरूरत होगी। और कैसे तुम्हें पता चला, इसका कोई ठीक-ठीक सबूत, कोई गवाह?

उसकी पत्नी ने कहा: किसी गवाह की कोई जरूरत नहीं है। आई एम प्रेटी श्योर दैट ही इ.ज नॉट दि फादर ऑफ माई चाइल्ड--पूर्ण निश्चय है मुझे कि मेरे बच्चे का पिता मुल्ला नसरुद्दीन नहीं है।

लेकिन हमारा जैसा मन है, उसमें हम सदा दूसरे को ही जिम्मेवार ठहराते हैं। हम दूसरे को परदे की तरह बना लेते हैं और जो कुछ भी है उसे प्रोजेक्ट करते हैं, उसे परदे पर डालते चले जाते हैं। धीरे-धीरे प्रोजेक्टर तो दिखाई पड़ना बंद हो जाता है... ।

आप फिल्म गृह में बैठते हैं, तो आप पीछे लौट कर कभी नहीं देखते जहां असली फिल्म चल रही है; परदे पर ही देखते रहते हैं, जहां केवल छाया पड़ रही है। प्रोजेक्टर तो आपकी पीठ के पीछे लगा होता है--जहां से फिल्म आ रही है; जहां से प्रकाश की किरणें आ रही हैं; लेकिन दिखाई परदे पर पड़ती हैं। आप वहीं देखते रहते हैं। परदा सब कुछ हो जाता है, जो मूल नहीं है।

हर दूसरा व्यक्ति, जिससे हम संबंधित होते हैं, परदे का काम करता है। भीतर से वृत्तियां आती हैं, जो हम उस पर डालते चले जाते हैं। इसलिए जो हमारे निकट होते हैं, वे ही हमारे लिए परदा बन जाते हैं। और फिर हम यह भूल ही जाते हैं कि हमारे भीतर कुछ घट रहा है, जो उनमें दिखाई पड़ता है; उनकी आंखों में, उनके चेहरों में, उनके व्यवहार में।

यह सारा जगत एक परदा है और सारे संबंध परदे हैं और प्रोजेक्टर हमारा अपना मन है। और अगर इस परदे पर हम कुछ बदलाहट करना चाहें तो असंभव है। अगर कोई भी बदलाहट करनी हो तो पीछे प्रोजेक्टर को ही बदलना होगा, जहां से स्रोत है।

धर्म की खोज ही तब शुरू होती है, जब मैं परदे को भूलकर उसे देखना शुरू कर देता हूं जहां से मेरे जीवन का स्रोत है; जहां से सारी वृत्तियां आ रही हैं और जग रही हैं। जैसे ही मुझे यह दिखाई पड़ने लगता है कि मैं ही जिम्मेवार हूं, सुख और दुख मैं ही पैदा कर रहा हूं, मेरे संबंध भी मेरे ही भीतर से आ रहे हैं, दूसरा केवल बहाना है, वैसे ही व्यक्ति कामवृत्ति के ऊपर उठना शुरू हो जाता है।

लेकिन, जीवन के गणित को पकड़ने में थोड़ी सी कठिनाई है। एक स्त्री को आप प्रेम करते हैं, दुख पाते हैं; कलह है, संघर्ष है।

बाइबिल में पुरानी कथा है--बाइबिल में दो कथाएं हैं--एक कथा आपने सुनी है, दूसरी आमतौर से प्रचलित नहीं है; उसे भुला दिया गया है।

एक कथा है कि परमात्मा ने अदम को बनाया और अदम के साथ ही लिलिथ नाम की स्त्री को बनाया। दोनों को एक सा बनाया, समान बनाया। बनाकर वह निपटा भी नहीं था कि दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। झगड़ा इस बात का था कि कौन ऊपर सोए, कौन नीचे सोए। लिलिथ ने कहा: मैं तुम्हारे समान हूं। मुझे भी परमात्मा ने बनाया है, और उसी मिट्टी से बनाया है जिस मिट्टी से तुम्हें बनाया। और मेरे भी प्राणों में श्वास डाली; और तुम्हारे भी प्राणों में श्वास डाली; हम दोनों एक के ही निर्माण हैं और एक ही मिट्टी और एक ही प्राण से बने हैं। तो नीचे-ऊपर कोई भी नहीं है।

यह कलह इतनी बढ़ गई कि इस कलह को सुलझाने का कोई उपाय न रहा। तो लिलिथ ने परमात्मा से प्रार्थना की कि मुझे अपने में विलीन कर लो। लिलिथ विलीन हो गई। फिर दूसरी कथा यह है कि फिर आदमी अकेला हो गया और अकेले में भी उसको बेचैनी होने लगी।

आदमी की बड़ी कठिनाई है। अकेला भी नहीं रह सकता और किसी के साथ भी नहीं रह सकता। अकेला रहे तो लगता है, जीवन में कुछ भी नहीं है और किसी के साथ रहे तो जीवन कलह से भर जाता है।

तो उसको अकेला, उदास, परेशान देख कर परमात्मा ने फिर स्त्री बनाई। लेकिन इस बार उसका ही एक स्पेअर पार्ट, उसकी एक हड्डी निकाल कर बनाई। दूसरी स्त्री ईव, यह दूसरी स्त्री परमात्मा ने बनाई नंबर दो, ताकि कलह न हो।

ये दोनों कहानियां बड़ी प्रीतिकर हैं। पहली कहानी भूल गई है, दूसरी कहानी जारी है। सोचा उसने जरूर होगा कि अब कलह न होगी, क्योंकि मनुष्य की ही हड्डी से बनाई हुई स्त्री है। लेकिन कलह में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

असल में जब भी हम दूसरे पर निर्भर होते हैं, तो कलह शुरू हो चुकी; और दूसरा हम पर निर्भर हो चुका। और जिस पर हम निर्भर होते हैं, उसके साथ बेचैनी, तकलीफ, क्योंकि हमारी स्वतंत्रता खो रही है; हमारी आत्मा खो रही है।

सभी संबंध आत्माओं का हनन करते हैं। जैसे ही हम संबंधित होते हैं कि मेरी जो निजता थी, मेरा जो अपना होना था, टू बी माई सेल्फ, वह नष्ट होने लगा। दूसरा प्रविष्ट हो गया। दूसरा भी अपना काम शुरू करेगा। वह चाहेगा कि मैं ऐसा होऊं। और मैं भी यही चाहूंगा कि दूसरा ऐसा हो। कलह शुरू हो गई।

बाइबिल की कथा के हिसाब से पिछले पांच हजार सालों में अदम और उसकी स्त्री, दोनों के बीच जो संबंध थे, उसमें अदम मालिक था और स्त्री गुलाम थी। यह अदम और ईव की कथा चलती रही। लेकिन अब पश्चिम में ईव ने लिलिथ बनना शुरू कर दिया है। अब वह समान हक मांग रही है। दूसरी कहानी आनेवाली सदी में महत्वपूर्ण हो जाएगी।

स्त्रियां यहां तक पश्चिम में दावा कर रही हैं, जो बड़े महत्वपूर्ण हैं, सही भी हैं--समानता के दावे... । लेकिन जैसे ही समानता खड़ी होती है, कलह कम नहीं होती और बढ़ जाती है। स्त्रियां सोचती हैं, समानता हो जाए तो कलह कम हो जाएगी।

असल में दो व्यक्ति जब भी संबंधित होंगे और एक-दूसरे पर निर्भर होंगे, और एक-दूसरे को बदलने की कोशिश करेंगे अपने अनुसार, तब कलह होगी ही--क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की आत्मा में प्रवेश कर रहा है और गुलामी निर्मित करने की कोशिश कर रहा है।

पश्चिम में एक स्त्री, जो कि एक समूह का नेतृत्व कर रही थी, और पुलिस ने उस समूह पर हमला किया और उस स्त्री के पास खड़ी एक स्त्री को चोट लग गई और वह रोने लगी, तो उस स्त्री ने कहा: घबड़ाओ मत, गॉड इज सीइंग एवरीथिंग। एण्ड शी विल डू जस्टिस। ईश्वर सब देख रहा है--लेकिन शी विल डू।

ईश्वर को भी "ही" कहना पश्चिम में स्त्रियों ने बंद कर दिया है, क्योंकि वह पुरुष सूचक है। परमात्मा भी स्त्री है। और पुरुषों ने ज्यादाती की है अब तक उसको पुरुष कहकर।

कलह आखिरी सीमा पर पश्चिम में आकर खड़ी है, जहां परिवार पूरी तरह टूट जाने को है। लेकिन परिवार पूरी तरह टूट जाए, इससे कलह बंद नहीं होती, कलह सिर्फ फैल जाती है; एक स्त्री से न होकर बहुत स्त्रियों से होने लगती है।

संबंध के भीतर कलह क्यों है, इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। और संबंध को हम कैसा ही बनाएं, कलह होगी। महावीर का क्या सूत्र है इस कलह के बाहर जाने का?

महावीर कहते हैं: कलह दूसरे के कारण नहीं है, कलह मेरी ही कामना के कारण है। अगर ऐसा संबंध कोई हो सके, जहां दोनों ही व्यक्ति कामवृत्ति से भरे हुए नहीं हैं, तो कलह विदा हो जाएगी। अगर जरा सी भी कामवृत्ति मौजूद है, तो कलह जारी रहेगी।

जो आदमी दूसरे से सुख या दुख पाने की कोशिश कर रहा है, या स्त्री सुख या दुख पाने की कोशिश कर रही है, वे दुख में और पीड़ा में, और नरक में अपने को उतार ही रहे हैं। क्योंकि महावीर कहते हैं, और सभी ज्ञानियों की सहमति है, कि आनंद का स्रोत भीतर है, दूसरे की तरफ आंख रखना भ्रांति है, वहां भिक्षापात्र फैलाना व्यर्थ है, वहां से न कुछ कभी मिला है और न मिल सकता है।

इसे हम अनुभव भी करते हैं। लेकिन जब एक स्त्री से दुख पाते हैं; एक पुरुष से दुख पाते हैं, तो हम सोचते हैं कि यह स्त्री गलत है, यह पुरुष गलत है; इतनी बड़ी पृथ्वी है, जरूर कोई ठीक पुरुष, कोई ठीक स्त्री होगी, जिससे मेरा संबंध हो तो यह पीड़ा नहीं होगी।

यही सारी भूल का गणित है। और हम कितनी ही स्त्रियों को बदलते चले जाएं, तो भी पृथ्वी बड़ी है। और कितने ही पुरुषों को बदलते चले जाएं--पृथ्वी बड़ी है। स्त्रियां सदा बाकी रहेंगी, पुरुष सदा बाकी रहेंगे, और वह भ्रांति कायम रहेगी कि शायद कोई न कोई पुरुष, कोई न कोई स्त्री हो सकती थी, जिससे मेरा संबंध स्वर्ग बन जाता!

वह कभी नहीं हुआ है। वह कभी होगा भी नहीं। लेकिन आशा को उपाय है। और वह आशा भटकाए चली जाती है। जब तक यह आशा न टूट जाए; जब तक एक स्त्री का अनुभव स्त्री मात्र का अनुभव न समझ लिया जाए; और जब तक एक पुरुष का अनुभव पुरुष मात्र का अनुभव न बन जाए; जब तक एक संबंध की व्यर्थता सारे संबंधों को व्यर्थ न कर दे, तब तक कोई व्यक्ति कामवृत्ति से ऊपर नहीं उठता।

हम कभी भी पूरा अनुभव नहीं कर पाते। पूरा अनुभव कर भी नहीं सकते। विज्ञान तक, जो कि सार्वभौम-युनिवर्सल नियम खोजने की कोशिश करता है, वह भी पूरे अनुभव नहीं कर पाता। और संदेह जो लोग करते हैं, वे किए जा सकते हैं।

डेविड ह्यूम--बहुत कीमती विचारक हुआ इंग्लैंड में, उसने संदेह किया है विज्ञान के ऊपर। ह्यूम कहता है कि विज्ञान कहता है कि कहीं भी पानी को गर्म करो सौ डिग्री पर, तो पानी भाप बन जाएगा। लेकिन ह्यूम कहता है: क्या तुमने सारे पानी को भाप बना कर देख लिया है? क्या तुमने सारे जगत के पानी को भाप बना कर देख लिया है? तो जल्दी मत करो! क्योंकि कहीं ऐसा पानी मिल भी सकता है, जो सौ डिग्री पर भाप न

बने। तो यह वैज्ञानिक नहीं है घोषणा। तुमने जितने पानी को भाप बनाकर देखा है, उतने पानी के बाबत कहो कि यह भाप बन जाता है सौ डिग्री पर; लेकिन शेष पानी बहुत है। उस पानी के संबंध में तुम्हारी कोई भी घोषणा अवैज्ञानिक है।

बात तो वह ठीक कह रहा है। विज्ञान की भी सामर्थ्य नहीं है कि वह सारे पानी को पहले भाप बना कर देखे। दस पचास हजार बार प्रयोग दोहराया जा सकता है और फिर विज्ञान मान लेता है कि यह असंदिग्ध है; क्योंकि सभी जगह पानी एक ही नियम का पालन करेगा। पानी का स्वभाव सौ प्रयोगों से पकड़ लिया जाता है। अब सारे पानी को भाप बनाने की जरूरत नहीं है। लेकिन तर्क की तरह तो ठीक कह रहा है ह्यूम। ठीक वही मुसीबत आदमी के मन की भी है।

एक स्त्री का अनुभव स्त्री तत्व का अनुभव है। लेकिन हम समझते हैं यह केवल एक व्यक्ति-स्त्री का अनुभव है। गलत ख्याल है! एक-एक स्त्री उसी तरह स्त्री तत्व का प्रतीक है, जैसे पानी की एक बूंद सारे जगत के पानी का प्रतीक है; एक पुरुष सारे पुरुष तत्व का प्रतीक है। जो फासले हैं, फर्क हैं, वे गौण हैं, मौलिक बात एक पुरुष में मौजूद है।

और जैसे एक पुरुष का स्वभाव जिस ढंग से बरतता है, उसी ढंग से सारे पुरुष बरतते हैं। उनमें जो फर्क हैं वे डिटेल्स के हैं, विस्तार के हैं कि कहीं किसी नदी का पानी थोड़ा नीला है, और किसी नदी का पानी थोड़ा मटमैला है, और किसी नदी का पानी थोड़ा हरा है, और किसी नदी का पानी थोड़ा शुभ्र है--ये डिटेल्स के फर्क हैं। इनसे सौ डिग्री पर पानी गर्म होगा, इसमें कोई भेद नहीं पड़ता।

किसी स्त्री की नाक थोड़ी लंबी है और किसी स्त्री की नाक थोड़ी छोटी है, और कोई स्त्री थोड़ी गोरी है, और कोई स्त्री थोड़ी काली है--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। और कोई स्त्री हिंदू घर में पैदा हुई है और कोई मुसलमान घर में--इसमें भी कोई फर्क नहीं पड़ता। उसकी जो मौलिक स्थिति है--स्त्रीता--वह वैसी ही है, जैसे सारे जगत का पानी। एक बूंद खबर दे देती है; लेकिन हम जन्मों-जन्मों से अनेक बूंदों का अनुभव करके भी निष्कर्ष नहीं ले पाते; क्योंकि सारे जगत का पानी तो कायम रहता है।

महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति एक अनुभव को इतना गहराई से ले और उसको सार्वभौम बना ले, उसको फैला ले पूरे जीवन पर--वही कामवृत्ति से मुक्त हो पाएगा--अन्यथा स्त्रियां सदा शेष हैं, पुरुष सदा शेष हैं, संबंध सदा शेष हैं; आशा कायम रहती है।

जैसा विज्ञान तय करता है थोड़े से अनुभव के बाद सार्वभौम नियम, वैसे ही धर्म भी तय करता है थोड़े से अनुभव के बाद सार्वभौम नियम। मैं न मालूम कितने लोगों का निकट से अध्ययन करता रहा हूं। सारे फर्क ऊपरी हैं, भीतर रंचमात्र फर्क नहीं है। सारे फर्क वस्त्रों के हैं, कहना चाहिए--भाषा के, व्यवहार के, आचरण के--सब ऊपर हैं। क्योंकि हरेक व्यक्ति का जन्म अलग ढंग में हुआ है, अलग व्यवस्था में, अलग नियम, नीति, समाज--सब फर्क ऊपरी हैं। जरा ही चमड़ी के भीतर प्रवेश करो, वहां एक ही पानी बह रहा है।

एक का अनुभव ठीक से ले लिया जाए तो हम इस बोध को उपलब्ध हो सकते हैं कि बहुत अनुभवों में भटकने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन कोई चाहे तो बहुत अनुभवों में भी भटके, लेकिन कभी न कभी उसे यह नियम की तरह स्वीकार कर लेना पड़ेगा कि इतने अनुभव काफी हैं, अब मैं कुछ निष्कर्ष लूं। जिस दिन व्यक्ति सोचता है, इतने अनुभव काफी हैं, अब मैं कुछ निष्कर्ष लूं, उस दिन जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन काफी बूढ़ा हो गया था। वह और उसकी पत्नी अदालत में खड़े हैं। और मजिस्ट्रेट ने कहा कि हद कर दी नसरुद्दीन! अब इस उम्र में तलाक देने का पक्का किया?

नसरुद्दीन ने कहा कि उम्र से इसका क्या संबंध?

मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम्हारी उम्र कितनी है?

नसरुद्दीन ने कहा कि चौरानवे वर्ष। और उसकी पत्नी से पूछा। उसने शर्मते हुए कहा: चौरासी वर्ष।

मजिस्ट्रेट भी थोड़ा बेचैन हुआ। उसने नसरुद्दीन से पूछा: और तुम्हारी शादी हुए कितना समय हुआ?

नसरुद्दीन ने कहा: कोई सड़सठ वर्ष!

मजिस्ट्रेट बड़े अविश्वास से भर गया, उसने कहा कि करीब-करीब सत्तर साल तुम्हारी शादी को हो चुके हैं, और अब तुम तलाक करना चाहते हो? सत्तर साल साथ रहने के बाद!

नसरुद्दीन ने कहा: योर आनर, व्हिचएवर वे यू लुक, इनफ इ.ज इनफ--अब, बहुत हो गया, काफी हो गया। और काफी काफी है!

आप अपने जीवन में करीब-करीब पुनरुक्त करते चले जाते हैं चीजों को, और इनफ इ.ज इनफ कभी भी नहीं आ पाता। ऐसा कभी अनुभव नहीं होता कि अब काफी है। और जिस व्यक्ति को ऐसा अनुभव हो, उसके जीवन में विरक्ति की पहली किरण उतरती है।

महावीर कहते हैं: जब देवता और मनुष्य संबंधी समस्त काम-भोगों से साधक विरक्त हो जाता है, तब अंदर और बाहर के सभी सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है।

"विरक्त हो जाता है।" विरक्ति कोई आयोजना नहीं हो सकती। आप चेष्टा करके विरक्त नहीं हो सकते। अनुभव की परिपक्वता ही विरक्ति ला सकती है। आप कच्चे में ही विरक्त नहीं हो सकते। आप जीवन से भाग कर और पलायन करके विरक्त नहीं हो सकते। आप ऐसा सोच कर, महावीर को पढ़ कर, ज्ञानियों को सुन कर विरक्त नहीं हो सकते। उतना काफी नहीं है। आपके अनुभव से मेल बैठना चाहिए।

ज्ञानी तो कहते रहे हैं, कहते चले जाते हैं, लेकिन आपको कोई फर्क नहीं पड़ता। हां, आपमें से कुछ नासमझ कभी-कभी बिना परिपक्व हुए, बिना जीवन के अनुभव से विरक्ति को निकाले, प्रभावित होकर किसी की चर्चा, विचार तर्क से संन्यस्त हो जाते हैं। उनका संन्यास कच्चा है। और उनका संन्यास कभी भी मुक्ति नहीं बन सकेगा। उनके संन्यास का मूल आधार ही गलत है। वे जीवन से विरक्त होकर संन्यस्त नहीं बने हैं, बल्कि साधु से आसक्त होकर संन्यस्त बने हैं। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

साधु में बड़ा प्रभाव है। साधुता का अपना आकर्षण है। साधुता मैग्नेटिक है। उससे बड़ा कोई मैग्नेट दुनिया में होता नहीं। महावीर खड़े हों तो आप साधु हो जाएंगे।

लेकिन ध्यान रहे, यह साधुता आपके अनुभव से आ रही है या महावीर के आकर्षण से, प्रबल आकर्षण से? अगर महावीर के प्रबल आकर्षण से यह साधुता आ रही है तो विरक्ति को थोपना पड़ेगा। जो महावीर के लिए सहज है, वह हमारे लिए प्रयास होगा।

सहज मोक्ष तक ले जाता है, प्रयास कहीं भी नहीं ले जाता। प्रयास सिर्फ असत्य तक ले जाता है। जिस चीज को भी हमें प्रयास कर-कर के थोपना पड़ता है वह झूठ हो जाता है। हमारा पूरा जीवन इसी तरह झूठ हो गया है प्रयास कर-कर के।

मां कह रही है कि मैं तेरी मां हूं, प्रेम करो। तो बेटा प्रयास करके प्रेम कर रहा है। बाप कह रहा है, मैं तेरा बाप हूं, प्रेम करो। तो बेटा प्रयास करके प्रेम कर रहा है। जिस दिन उसके जीवन में प्रेम का फूल खिलता, उस दिन वह अनायास होता। अभी यह सब प्रयास हो रहा है। और खतरा यह है कि इस प्रयास से वह इतना आवृत हो जाएगा कि उसके जीवन में प्रेम का सहज फूल कभी खिल ही न सकेगा।

इस दुनिया में हजारों में कभी एकाध आदमी प्रेम को उपलब्ध हो पाता है, नौ सौ निन्यानबे नष्ट हो जाते हैं। वे बीज कभी अंकुरित ही नहीं होते; क्योंकि इसके पहले कि बीज से अंकुर फूटता, उन पर जबरदस्ती थोप-थोप कर कुछ चीजें लाद दी गईं, जिनकी वे चेष्टा करने लगे। फिर चेष्टा इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि सहजता को जन्मने का मौका नहीं रहता।

सहज और चेष्टा में विपरीतता है। एक विरक्ति है, जो आपके अनुभव से आती है--जीवन के दुख का प्रगाढ़ अनुभव, जीवन की पीड़ा का प्रगाढ़ अनुभव, जीवन की व्यर्थता की प्रतीति, स्पष्ट आपके ही जीवन और बोध में। महावीर के वचन और बुद्ध के वचन काम कर सकते हैं कि आपके अनुभव को सही साबित करें, गवाह बन जाएं

तब तो ठीक है; कि आपने अपने जीवन में जो जाना, उनके वचनों से आपको लगा कि ठीक आपने जो अपने जीवन में जाना था, महावीर भी वही कह रहे हैं कि जीवन व्यर्थ है।

यह आपकी प्रतीति पहले थी, महावीर केवल गवाही हैं--इस फर्क को थोड़ा ठीक से समझ लें। वे सिर्फ एक विटनेस हैं। उनका कहना भी आपके ही अनुभव को प्रगाढ़ कर रहा है। तो विरक्ति जो आपमें खिलेगी वह अनायास होगी, सहज होगी। उसकी सुगंध अलग है। और अगर महावीर आपको आकृष्ट कर लेते हैं--उनका आनंद, उनकी शांति, उनका उठना, उनका बैठना, उनका मोहक जादू भरा व्यक्तित्व, वह आपको आकर्षित कर लेता है--तो आप उस आसक्ति में अगर संसार से विरक्त होते हैं, तो आप कच्चे ही टूट जाएंगे और आप बुरी तरह भटकेंगे; क्योंकि आपके पैर के नीचे जमीन नहीं है। और यह विरक्ति झूठी है। सच में तो यह एक नई तरह की आसक्ति है। गुरु की आसक्ति है, ज्ञानी की आसक्ति है--तीर्थकर, पैगंबर, अवतार की आसक्ति है।

और ध्यान रहे, कोई स्त्री क्या आकर्षित करेगी किसी पुरुष को, कोई पुरुष क्या आकर्षित करेगा किसी स्त्री को, जैसा कि एक तीर्थकर लोगों को आकर्षित कर लेता है। नहीं कि वह करना चाहता है--उसका होना ही, उसकी मौजूदगी चुंबक की तरह आपको खींचने लगती है।

जो व्यक्ति किसी से प्रभावित होकर धार्मिक हो जाता है, वह धार्मिक होने का अवसर खो देता है। बहुत सचेत होने की जरूरत है। और जब तीर्थकरों और पैगंबरों के करीब से गुजरने का मौका मिले, तब तो बहुत सचेत होने की जरूरत है; तब बहुत सावधान होने की जरूरत है। नहीं तो खाई से निकले और गड्ढे में गिरे। कोई फर्क नहीं रह जाता। मोह नये ढंग से पकड़ लेता है, आसक्ति नये ढंग से पकड़ लेती है।

अगर आपके अनुभव में ऐसी रेखा आ गई है कि जीवन सिर्फ दुख है।

बहुत लोगों को लगता है कि जीवन दुख है। लेकिन उनके लगने से विरक्ति पैदा नहीं होती। क्या कारण होगा? आपको भी बहुत बार लगता है, जीवन दुख है, लेकिन ऐसा नहीं लगता कि जीवन का स्वभाव दुख है। आपको ऐसा लगता है कि मैं असफल हो गया, इसलिए दुख है; कि ठीक परिवार न मिला, ठीक जगह न मिली, ठीक समय न मिला, सहयोग न मिला, संगी-साथी न मिले, प्रेमी न मिले, मैं असफल हो गया, इसलिए जीवन दुख है।

जीवन दुख है, ऐसा आपको नहीं लगता। अपनी असफलता मालूम पड़ती है, क्योंकि कई लोगों का जीवन सुख मालूम होता है। यह बड़े मजे की बात है कि अपने को छोड़ कर सभी का जीवन लोगों को सुख मालूम पड़ता है। और यह सभी को ऐसा लगता है। खुद को छोड़ कर सब लोग लगते हैं कि सुखी हैं--कैसे मुस्कराते, आनंदित सड़कों पर गीत गाते चल रहे हैं! एक मैं दुखी हूं। मगर यही प्रतीति सबकी है।

बहुत लोग हैं, जो आपको भी सुखी मान रहे हैं। बहुत लोग आपसे ईर्ष्या कर रहे हैं। ईर्ष्या पैदा ही न हो, अगर यह प्रतीति हो जाए कि सभी लोग दुखी हैं। कोई अपनी गरीबी में दुखी है, कोई अपनी अमीरी में दुखी है। कोई सफलता में दुखी है, कोई असफलता में दुखी है, लेकिन दुख का कोई भेद नहीं है, लोग दुखी हैं।

जीवन दुख है, व्यक्ति का कोई सवाल नहीं है। अगर आपको ऐसा लगता है कि मैं दुखी हूं, तो फिर आप विरक्त नहीं हो सकते, आप नये जीवन की तलाश करेंगे। यही तो हम करते रहे हैं। यही तो हम करते रहे हैं जन्मों-जन्मों से। ऐसे जीवन की तलाश करेंगे--जहां सफलता मिले, धन मिले, समृद्धि मिले, यश मिले, पद-प्रतिष्ठा मिले। इस बार चूक गए, कोई हर्जा नहीं, अगली बार नहीं चूकेंगे।

जीवन व्यर्थ नहीं होता, एक जीवन व्यर्थ होता है--लेकिन हम दूसरे जीवन की तलाश में निकल जाते हैं। पुनर्जन्म का सूत्र यही है कि हमारी वासना जीवन से नहीं छूटती। एक जीवन व्यर्थ होता है तो दूसरे जीवन को पकड़ती है, दूसरा व्यर्थ होता है तो तीसरे को पकड़ती है। अंतहीन है यह शृंखला।

जब महावीर कहते हैं, जीवन व्यर्थ है या बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख है, तो उनका मतलब नहीं है कि आपका जीवन दुख है। उनका कहना यह है कि जीवन का स्वभाव, जीवन के होने का ढंग ही पीड़ा है। जब ऐसा

स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे तो जो विरक्ति पैदा होती है, वह विरक्ति अंदर और बाहर के सभी सांसारिक संबंधों को तोड़ देती है।

यहां एक और मजे की बात समझ लेना है। महावीर यह नहीं कहते कि संबंधियों को छोड़ देती है, कहते हैं, संबंधों को छोड़ देती है। यह जरा गहन है, नाजुक है।

मेरी पत्नी है, तो जब मुझे विरक्ति का अनुभव होगा तो मैं पत्नी को छोड़ दूंगा--यह बहुत गौण और सीधी दिखाई पड़ने वाली बात है, स्थूल है। लेकिन महावीर यह नहीं कहते कि संबंधियों को छोड़ देती है, महावीर कहते हैं, संबंधों को छोड़ देती है।

संबंध बड़ी अलग बात है। पत्नी वहां है, और पत्नी से मैं हजार मील दूर भी हो जाऊं, तो भी संबंध के टूटने का कोई मतलब नहीं है। संबंध बहुत इलास्टिक है; इनफिनिटली इलास्टिक है। पत्नी दस हजार मील दूर हो, तो दस हजार मील दूर तक मेरा संबंध फैल जाएगा। वह धागा बना रहेगा। उसको तोड़ना मुश्किल है।

पत्नी को चांद पर भेज दो--कोई फर्क नहीं पड़ता, यहां से लेकर चांद तक संबंध का धागा फैल जाएगा। वह कोई भौतिक घटना नहीं है कि उसको कोई अड़चन हो। वह मानसिक घटना है। शायद पत्नी दूर हो, तो संबंध ज्यादा भी हो जाए।

अकसर तो ऐसा ही होता है लोगों को। पत्नी को फिर से प्रेम करना हो, तो मायके भेज देना जरूरी होता है। थोड़ा फासला हो, फिर रस भर आता है। थोड़ा फासला हो, फिर आकांक्षा जग जाती है। व्यक्ति दूर हो, तो उसकी बुराइयां दिखनी बंद हो जाती हैं, और भलाइयों का ख्याल आने लगता है। व्यक्ति पास हो, तो बुराइयां दिखती हैं और भलाइयां भूल जाती हैं।

थोड़ा फासला चाहिए। ज्यादा फासला कभी-कभी हितकर हो जाता है। महावीर कहते हैं, संबंधी नहीं, संबंध छूट जाते हैं। वह जो मेरे भीतर से निकलता है धागा संबंध का, वह गिर जाता है। पत्नी अपनी जगह होगी, मैं अपनी जगह होऊंगा। कोई घर से भाग जाना भी आवश्यक नहीं है; लेकिन बीच से वह जो पति और पत्नी का पागलपन था, वह विदा हो जाएगा। वह जो पजेस करने की धारणा थी, वह छूट जाएगी। वह जो दूसरे का शोषण करने की व्यवस्था थी, वह टूट जाएगी। दूसरे से सुख या दुख मिलता है, यह भाव गिर जाएगा। पत्नी पहली दफा एक व्यक्ति बनेगी, और मैं भी पहली दफा एक व्यक्ति बनूंगा, जिनके बीच खुला आकाश है, कोई संबंध नहीं; जिनके बीच संबंधों की जंजीरें नहीं हैं; जो दो निजी व्यक्तित्व हैं और परिपूर्ण स्वतंत्र हैं।

जब दो व्यक्ति परिपूर्ण स्वतंत्र हो जाते हैं, तो छोड़ने या पकड़ने का दोनों ही सवाल नहीं रह जाते। तब यह भी आवश्यक नहीं है कि मैं पत्नी के साथ घर में रहूं ही और यह भी आवश्यक नहीं है कि मैं पत्नी को छोड़ कर चला ही जाऊं। दोनों घटनाएं घट सकती हैं। जनक घर में ही रह जाते हैं, महावीर घर छोड़ कर चले जाते हैं। यह व्यक्तियों पर निर्भर होगा। लेकिन इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

जो आसक्त व्यक्ति है, उसके लिए यह समझना बहुत कठिन है। आसक्त दो काम कर सकता है: या तो जिससे आसक्त है, उसके पास रहे और अगर विरक्त हो जाए, तो उससे दूर जाए।

आसक्ति जिससे है, उसके हम पास रहना चाहते हैं। इसे थोड़ा समझें। जिससे हमारी आसक्ति है, हम चाहते हैं चौबीस घंटे उसके पास रहें, क्षणभर को न छोड़ें। और अकसर हम अपने प्रेम को इसी में नष्ट कर लेते हैं। क्योंकि चौबीस घंटे जिसके साथ रहेंगे, उसके साथ रहने का मजा ही खो जाएगा। और चौबीस घंटे जिसके साथ रहेंगे, उसके साथ सिवाय कलह और दुख के कुछ भी न बचेगा।

लेकिन आसक्ति का एक स्वभाव है कि जिससे हमारा लगाव है, उसके पास ही रहें चौबीस घंटे, एक क्षण को न छोड़ें। विरक्ति जिससे हमारी हो जाए, जिसको हम विरक्ति कहते हैं, मतलब आसक्ति उलटी हो जाए--तो उसके हम पास नहीं होना चाहते क्षण भर। उससे हम दूर हटना चाहते हैं।

जो विरक्ति दूर हटना चाहती है, वह आसक्ति का ही उलटा रूप है। वह वास्तविक विरक्ति नहीं है। क्योंकि नियम काम कर रहा है; नियम वही है कि जिसे हम चाहते हैं, उसके पास और जिसे हम नहीं चाहते उससे दूर। लेकिन चाह, और चाह के विपरीत जो चाह है, उनमें कोई फर्क नहीं है।

विरक्ति का अर्थ यह है कि न तो हमें पास होने से अब फर्क पड़ता है, न दूर होने से फर्क पड़ता है। अब हम पास हों तो ठीक, और दूर हों तो ठीक। दूर हों तो याद नहीं आती, पास हों तो रस नहीं आता। न तो दूर होने में अब कोई रस है और न पास होने में कोई रस है। तब आप संबंध के ऊपर उठें। अगर दूर होने में रस है, तो अभी आसक्ति मौजूद है--सिर्फ उलटी हो गई है।

तो बुद्ध ने कहा है कि प्रियजनों के पास होने से सुख मिलता है; अप्रियजनों के दूर होने से सुख मिलता है--लेकिन सुख दोनों ही हालत में दूसरे से मिलता है। प्रियजन दूर जाएं तो दुख देते हैं, अप्रियजन पास आएँ तो दुख देते हैं--लेकिन दुख दूसरे से ही मिलता है दोनों हालत में।

"प्रिय" का भी संबंध है, "अप्रिय" का भी संबंध है। विरक्ति का अर्थ अप्रिय का पैदा हो जाना नहीं है; क्योंकि अप्रिय एक संबंध है। विरक्ति का अर्थ है, संबंध ही न रहा, निर्भरता न रही; पास हूं कि दूर हूं, बराबर है। पास और दूरी में रंचमात्र का फर्क न रह जाए; निकट हूं या न निकट हूं, रंचमात्र का फर्क न रह जाए, तो व्यक्ति संबंध के ऊपर गया। अब दूसरा मूल्यवान नहीं रहा। अब मैं अपने लिए मूल्यवान हूं, दूसरा अपने लिए मूल्यवान है। दूसरे की आत्मा स्वतंत्र है, मेरी आत्मा स्वतंत्र है। ऐसी दो स्वतंत्रताओं का जन्म जब हो जाता है, तो बीच की गुलामी गिर जाती है। महावीर कहते हैं कि सभी सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है, अंदर और बाहर के।

क्योंकि ध्यान रहे, आप उनसे ही नहीं बंधे हैं जिनके पास हैं, उनसे भी बंधे हैं जिनके आप पास नहीं हैं। जिस फिल्म अभिनेत्री को आप चित्रपट पर, तस्वीर पर देख लेते हैं, उससे भी बंधे हैं। उससे कोई मुलाकात नहीं है, पहचान नहीं है, कभी देखा नहीं है; तस्वीर देखी है--उससे भी बंधे हैं। सपना देखते हैं उसका, उससे भी बंधे हैं।

तो बाहर के ही संबंध नहीं है कि जिस घर में आप बैठे हैं, जो बच्चा आपका है, जो पत्नी आपकी है, पति आपका है, पिता-मां हैं--उनसे ही आप बंधे हैं, ऐसा नहीं है। शायद उनका तो आपको कभी स्मरण भी नहीं आता।

ऐसा पति खोजना मुश्किल है, जिसको पत्नी का सपना आता हो! खोज लें तो मुझे आप बताना। पत्नी का सपना आता ही नहीं। पति का भी सपना नहीं आता। सपने तो उनके आते हैं, जिनसे हमारी वासना अतृप्त है। सपने का मतलब ही अतृप्त वासना होती है। जिसको हम नहीं उपलब्ध कर पाते, उसका सपना आता है। जिसे उपलब्ध ही कर लिया, उसके सपने का कोई सवाल ही नहीं है। जिसका पेट भरा है, उसे रात भोजन के सपने नहीं आते। भूखे पेट आदमी को भोजन के सपने आते हैं। जो कमी है, अभाव है, उसका सपना निर्मित होता है।

तो जो आपके पास हैं स्थूल रूप से, जिनसे आप जुड़े हैं, उनसे शायद ज्यादा जोड़ है भी नहीं। लेकिन जिनसे आप नहीं जुड़े हैं, उनसे आपके सपने जुड़े हैं और भीतरी जोड़ है।

एक परिवार आपके आस-पास दिखाई पड़ता है, जो वस्तुतः है। और एक परिवार आपके चित्त का है, जो आप बना रखे हैं। जो आप चाहते हैं कि होता। जो आपकी कामना का है। जो कभी पूरा नहीं होगा। क्योंकि पूरा होते ही वह आपकी कामना का नहीं रह जाएगा। पूरा होते ही आप दूसरा परिवार अपने आसपास बसाने लगेंगे। तो एक तो बाहर के संबंधों का जाल है और एक भीतर के संबंधों का जाल है।

बायरन अंग्रेज कवि था, बहुत सी स्त्रियां उसके लिए दीवानी थीं और पागल थीं। जब बायरन को इंग्लैंड से निष्कासित कर दिया गया, तो अनेक स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली, जिन्होंने उसे देखा भी नहीं था--तस्वीर देखी थी या कभी दूर से किसी कवि सम्मेलन में भीड़ में से देखा था। वे अपने निकटतम पति के लिए आत्महत्या करने वाली नहीं थीं। लेकिन इस आदमी से कोई संबंध नहीं था, किसी तरह का स्थूल संबंध नहीं था--लेकिन

मन के जाल थे। बायरन को उनका पता ही नहीं था, जिन्होंने उसके लिए आत्महत्या कर ली। जो अपने जीवन को दे सकते हैं, जरूर उनके बड़े गहरे भीतरी संबंध रहे होंगे, उनके सपनों में बायरन समाया रहा होगा।

बाहर के संबंध हैं; भीतर के संबंध हैं। आप बाहर के संबंध से भाग सकते हैं, बहुत आसान है। क्योंकि घर से भाग जाने में कोई बड़ी अड़चन नहीं है। लेकिन भीतर के संबंधों से भाग कर कहां जाइएगा? वह तो जब तक विरक्ति पैदा न हो जाए, तब तक भीतर के संबंध से कोई भी भाग नहीं सकता है। इसलिए साधु हो जाते हैं लोग, जंगल में बैठे जाते हैं, लेकिन मन की गृहस्थी जारी रहती है--और फैल जाती है सच तो; और बड़ी हो जाती है; और रसपूर्ण हो जाती है।

संसार जितना रसपूर्ण अधूरे भागे साधु को मालूम पड़ता है, उतना गृहस्थ को कभी मालूम नहीं पड़ता। थोड़े दिन छोड़ कर देखें, संसार से थोड़े दिन हट कर देखें, और आप पाएंगे कि सब चीजों में रस आना शुरू हो गया।

मुल्ला नसरुद्दीन कभी-कभी पहाड़ पर जाता था एकांतवास के लिए। कभी अपने मालिक को कह कर जाता कि पंद्रह दिन बाद लौटूंगा और पांच दिन में लौट आता; और कभी कह कर जाता, पांच दिन में लौटूंगा और पंद्रह दिन में लौटता। तो उसके मालिक ने एक दिन पूछा कि मामला क्या है, तुम छुट्टी पंद्रह दिन की मांगते हो, फिर पांच दिन में लौट क्यों आते हो? जब तय ही करके पंद्रह दिन का गए, तो तुम्हारा हिसाब क्या है?

नसरुद्दीन ने कहा: वह जरा एक भीतरी गणित है, आपकी शायद समझ में भी न आए। पहाड़ पर मैंने एक छोटा बंगला ले रखा है और एक बूढ़ी बदशक्ल औरत को उसकी देखभाल के लिए रख दिया है। और यह मेरा गणित है। वह इतनी बदशक्ल स्त्री है कि उसके पास बैठने का भी मन नहीं हो सकता--दांत बाहर निकले हैं, हड्डी-हड्डी हो गई है, काफी बूढ़ी है, कुरूप है। यह मेरा नियम है कि जब मैं पहाड़ पर जाता हूं, तो एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, पांच दिन--धीरे-धीरे उस स्त्री में भी मुझे सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। और जिस दिन वह स्त्री मुझे सुंदर मालूम पड़ती है, मैं भाग खड़ा होता हूं। मैं समझता हूं बस, एकांत पूरा हो गया, अब यहां रुकना खतरनाक है।

तो कभी ऐसा पंद्रह दिन में होता है, कभी पांच दिन में हो जाता है। तो वह मेरा भीतरी हिसाब है। वह स्त्री मेरा थर्मामीटर है। जैसे ही मुझे लगता है कि इस स्त्री में भी रस आने लगा है मुझे, मैं भाग खड़ा होता हूं। क्योंकि अब हृद हो गई! अब यहां रुकना खतरे से खाली नहीं है। और अब मैं एकांत नहीं चाह रहा हूं। तो मैं वापिस लौट आता हूं।

आप अपने भीतर के संसार का थोड़ा ख्याल करेंगे तो आपकी समझ में आ जाएगा। बाहर की भीड़ में आप भूले रहते हैं भीतर के संसार को, लेकिन वह आपके भीतर है। वह आपके भीतर काम करता है। और भीतर का संसार भी थोड़ा समय नहीं लेता। आदमी अगर साठ साल जीए तो बीस साल सोता है; बीस साल सपनों में होता है। बीस साल थोड़ा वक्त नहीं है। सच तो यह है कि चालीस साल जिस समय वह जागता है, उस समय कितने लोगों से कितना संबंध बना पाता है--अधिक समय तो भोजन कमाने में, मकान बनाने में, व्यवस्था जुटाने में, दफ्तर से घर आने और घर से दफ्तर जाने में व्यतीत हो जाता है। अगर हम ठीक से हिसाब लगाएं तो चालीस साल में मुश्किल से चार साल उसको मिलते होंगे, जिनमें वह अपने स्थूल संबंधों में डूबता है; लेकिन बीस साल अपने सूक्ष्म संबंधों में डूबता है, जो उसके स्वप्न का जाल है। वह ज्यादा उसकी गहरी पकड़ है और ज्यादा उसे समय और अवसर है।

और ऐसे जब आप अपने स्थूल संबंधों में डूबे होते हैं, तब भी भीतर आपके सूक्ष्म संबंध चलते रहते हैं। मनोवैज्ञानिक जानते हैं हजारों घटनाओं के आधार पर कि पति पत्नी से संभोग करता रहता है, तब भी वह किसी फिल्म अभिनेत्री की धारणा करता रहता है। पत्नी पति से संभोग करती रहती है, लेकिन मन में किसी और से संभोग करती रहती है। और जब तक उसके मन में धारणा न आ जाए उसके प्रेमी की या प्रेयसी की, तब

तक पति-पत्नी में कोई रस-संबंध निर्मित नहीं हो पाता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बड़ी अजीब घटना है: बाहर का संबंध बहुत गौण मालूम पड़ता है और भीतर के संबंध बहुत गहन मालूम पड़ते हैं।

महावीर कहते हैं, विरक्त जब कोई होगा, तो बाहर और भीतर के सारे सांसारिक संबंध छूट जाते हैं। एक ढंग से जैसे जाल हमें पकड़े था, वह गिर जाता है। जैसे मछली जाल के बाहर आ जाती है।

लेकिन अभी तो हम कामवासना में इस तरह घिरे हुए हैं, कामवृत्ति में इस तरह डूबे हुए हैं कि हम सोच ही नहीं सकते विरक्त आदमी को क्या रस होगा। विरक्त आदमी तो रसहीन हो जाएगा--क्योंकि हम एक ही रस जानते हैं। हमारी हालत वैसी ही है, जैसे नाली का कीड़ा हो; उसे नाली में ही रस है। वह सोच भी नहीं सकता कि आकाश में उड़ते पक्षी क्यों जीवन व्यर्थ गवां रहे हैं! नाली में सारा रस है!

मुल्ला नसरुद्दीन एक व्याख्यान सुनने गया है। एक वैज्ञानिक बोल रहा है। वह मछलियों के संबंध में कुछ समझा रहा है। और वह कहता है कि मादा मछलियां अंडे रख देती हैं और फिर नर मछलियां उन अंडों के ऊपर से गुजरते हैं और उन अंडों को वीर्यकण दे देते हैं, और तब वह अंडा सजीव हो जाता है।

तो नसरुद्दीन बड़ा बेचैन होता है। आखिर जब व्याख्यान खत्म हो जाता है, वह पहुंचता है वैज्ञानिक के पास और उससे कहता है, क्या आपका मतलब है कि मछलियां संभोग नहीं करतीं?

उस वैज्ञानिक ने कहा: आप बिल्कुल ठीक समझे। मादा अंडे दे देती है, पुरुष अंडों को आकर फर्टिलाइज कर देता है। कोई संभोग नहीं होता।

तो नसरुद्दीन थोड़ी देर चिंतित रहा और फिर उसके चेहरे पर चमक आ गई! उसने कहा कि नाउ आइ अंडरस्टैंड, व्हाइ पीपुल कॉल फिशेज पुअर फिश--क्यों लोग मछली को गरीब मछली कहते हैं, मैं समझ गया। यही कारण है!

वह जो काम में डूबा हुआ है, उसके लिए सारा जीवन दीन-हीन है अगर कामवासना नहीं है। तब जीवन में कोई अर्थ नहीं दिखाई पड़ेगा। क्योंकि सारा अर्थ ही हमारे जीवन का कामवासना के आधार पर टिका हुआ है। हम सारी चीजों को तौल ही रहे हैं एक ही जगह से।

तो हम सोच भी नहीं सकते कि महावीर का आनंद क्या हो सकता है। एक आनंद ऐसा भी है, जो किसी पर निर्भर नहीं है और किसी का मुहताज नहीं है, और किसी की मांग नहीं करता, और किसी के सामने भिक्षा का पात्र नहीं फैलाता।

एक ऐसा निज में डूबने का आनंद भी है। उसकी हमें कोई खबर नहीं है; उसकी खबर हो भी नहीं सकती। उसकी खबर हमें तभी होगी, जब हमारी आसक्ति शुद्ध पीड़ा बन जाए और हमें दिखाई पड़ने लगे कि हम जो भी कर रहे हैं, वह सब दुख है। और यह प्रतीति इतनी सघन हो जाए कि यह प्रतीति ही हमें उपर उठा दे।

और एक क्षण को भी हमें अनुभव हो जाए अपने शुद्ध होने का, जहां दूसरे की कोई मौजूदगी नहीं थी, कल्पना में भी कोई दूसरा मौजूद नहीं था, हम अकेले थे--टोटल लोनलीनेस--एकांत पूरा भीतर अनुभव हो जाए एक क्षण को भी, तो आपने खुला आकाश जान लिया। फिर आप कामवासना के कारागृह में लौटने को राजी नहीं होंगे।

महावीर कहते हैं: "जब साधक विरक्त हो जाता है, तब अंदर-बाहर के सभी सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है।"

"जब अंदर और बाहर के समस्त सांसारिक संबंधों को छोड़ देता है, तब दीक्षित होकर पूर्णतया अनगार वृत्ति को प्राप्त होता है।"

और जब तक विरक्ति न हो, तब तक दीक्षा का कोई उपाय नहीं है। दीक्षा का अर्थ है: उस विराट में इनिशिएशन। जब तक आप संसार से जकड़े हुए हैं, तब तक गुरु से कोई संबंध नहीं हो सकता; तब तक गुरु से कोई लेना-देना नहीं है; तब तक आप गुरु के पास भी संसार के लिए ही जाते हैं।

इसलिए जो गुरु आपका संसार बढ़ाता हुआ मालूम पड़ता है, आश्वासन देता है, भरोसा दिलाता है, उसके पास बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। अगर सत्य साईबाबा जैसे लोगों के पास लाखों लोग इकट्ठे हो जाते हैं, तो उसका कुल कारण इतना ही है कि सत्य साईबाबा से किसी विरक्ति की आशा नहीं है; आपके आसक्ति के जाल को सघन करने की संभावना है। किसी को लड़का चाहिए, किसी को बीमारी मिटानी है, किसी को धन पाना है, किसी को लंबी उम्र पानी है, किसी को मुकदमा जीतना है--वे सारे लोग इकट्ठे हो जाते हैं।

जिस साधु के पास ज्यादा भीड़ मालूम पड़े, समझ लेना कि जरूर उस साधु के पास संसार की घटना घट रही है। अन्यथा साधु के पास ज्यादा भीड़ नहीं हो सकती; होनी मुश्किल है। इस विराट संसार में बहुत थोड़े से लोग हैं, जो विरक्त हैं। वे ही लोग साधु के पास हो सकते हैं--चूजन फ्यू। बहुत चुने हुए लोगों का मामला है। गुरु के पास आना बहुत थोड़े से लोगों का मामला है--करोड़ों में एक!

लेकिन जिस गुरु के पास एक को छोड़ कर पूरा करोड़ पहुंच जाता हो, समझना कि वहां गुरु मूल्यवान नहीं है, वहां इस भीड़ में इकट्ठे हुए लोगों की वासना मूल्यवान है। इतनी बड़ी भीड़ विरक्त नहीं है, नहीं तो यह संसार दूसरा हो जाए। इतनी बड़ी भीड़ गहरी तरह से आसक्त है--इसकी आसक्ति में कोई भी सहारा देता हो।

मेरे पास मित्र आते हैं--भले, शुभ, चाहक--वे मुझसे कहते हैं कि आप कब तक थोड़े से लोगों को समझाते रहेंगे। आप कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाते कि लाखों लोग आ जाएं।

मगर जो लाखों लोग चमत्कार के कारण आते हैं, उनसे मेरा कोई संबंध नहीं जुड़ सकता; उनसे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। वे मेरे लिए आ ही नहीं रहे हैं। वे किसी और वासना से पीड़ित होकर आ रहे हैं। उनका इनिशिएशन, उनकी दीक्षा नहीं हो सकती। भीड़ दीक्षित नहीं हो सकती। बहुत चुने हुए लोग, जिनके जीवन का अनुभव परिपक्व हुआ है और जिन्होंने अपने अनुभव से जाना है कि व्यर्थ है सब कुछ जो हम कर रहे हैं, जिनको यह दिखाई पड़ जाता है कि जहां हम हैं वहां व्यर्थता है, वे ही उस यात्रा पर निकलने की चेष्टा करते हैं जहां सार्थक का जन्म हो सके।

दीक्षा का अर्थ है, इनिशिएशन का अर्थ है: यह संसार व्यर्थ हुआ, अब हमारी चेतना किस आयाम में प्रवेश करे? ऐसे लोग द्वार खोजते हैं। तभी गुरु ऐसे लोगों को द्वार दिखा सकता है।

आप मंदिर में भी जाते हैं, गुरु के पास भी जाते हैं, तो कुछ मांगने जाते हैं, कुछ होने नहीं जाते; चाहते हैं अदालत में मुकदमा जीत जाएं; टी. बी. हो गया, कैंसर हो गया--दूर हो जाए। कुछ संसार का हिस्सा आपका अधूरा लग रहा है, वह गुरु पूरा कर दे। और जो गुरु आपके संसार के हिस्से को पूरा करता है या करता हुआ दिखाने का धोखा देता है, वह आपका मित्र नहीं है, वह आपका शत्रु है! क्योंकि वह जीवन में आपको धक्का दे रहा है--उसी संसार में। जहां से शायद कैंसर आपको उबा देता। उसका चमत्कार वापस लौटा रहा है। जहां शायद टी. बी. आपको कह देती कि शरीर व्यर्थ है और सड़ा हुआ है, और इसके पार होना उचित है, वहां उसका चमत्कार आपको शरीर में वापस भेज रहा है।

चमत्कारी गुरु धर्म की तरफ नहीं ले जाते, वे संसार के ही एजेंट हैं। लेकिन उसमें एक सुविधा है, म्युचुअल संबंध है। क्योंकि जितनी बड़ी भीड़ इकट्ठी होती है, उतना अहंकार को तृप्ति मिलती है गुरु के। लगता है मैं कुछ हूं। और भीड़ इकट्ठी करनी हो तो भीड़ सिर्फ चमत्कार से इकट्ठी होती है।

ज्ञान से किसी को प्रयोजन नहीं है; महात्मा से किसी का संबंध नहीं है, मदारी की मांग है। और जब महात्मा के वेश में मदारी दिखता है, तो आपकी आत्मा को बड़ी तृप्ति होती है। क्योंकि आशा बंधती है कि जो-जो हम नहीं कर पाए, शायद इस आदमी की कृपा से हो जाए।

एक भी ऐसा राजनीतिज्ञ नहीं है दिल्ली में, जो किसी न किसी महात्मा के चरणों में जाकर न बैठता हो। और जो हारे हुए राजनीतिज्ञ हैं, वे तो अनिवार्य रूप से महात्माओं के पास मिलेंगे। अगले इलेक्शन की वे तैयारी कर रहे हैं महात्मा के द्वारा--आशा! और महात्मा कह रहा है कि मत घबड़ाओ, सब हो जाएगा। जरूरी नहीं है

कि महात्मा कुछ करता हो। जब कहा जाता है, सब हो जाएगा--सौ आदमियों से कहो, पचास को तो हो ही जाता है। न कहते तो भी हो जाता!

यह महात्मा का काम ऐसा है, जैसा इंग्लैंड में वे कहते हैं कि सर्दी-जुकाम का अगर इलाज करो, तो सात दिन में ठीक हो जाता है; और अगर इलाज न करो, तो एक सप्ताह में ठीक हो जाता है।

एक सप्ताह में ठीक हो ही जाता है। सवाल यह नहीं है कि आप इलाज करो कि न करो। अगर मेरे पास सौ लोग आएँ बीमार और उनको मैं कहूँ कि आशीर्वाद, जाओ, ठीक हो जाओगे--पचास तो होते ही हैं। इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। वे कहीं भी न जाते, तो भी होते।

जिंदगी में आदमी हजारों दफे बीमार पड़ता है, तब मरता है। कोई पहली बीमारी में तो कोई मरता हुआ देखा नहीं जाता। उन्हीं हजारों बीमारियों पर जिनसे आप ठीक होते चले जाते हैं, महात्मा जीते हैं।

मुकदमे में जब लोग लड़ते हैं, तो कोई न कोई जीतता ही है। और अक्सर तो ऐसा हो जाता है कि एक ही महात्मा के पास दोनों पार्टी पहुँच जाती हैं। और वे दोनों को आशीर्वाद दे देते हैं!

मेरे एक मित्र ज्योतिषी हैं। और जब सुब्बाराव राष्ट्रपति के लिए खड़े हुए, तो मेरे वे मित्र सुब्बाराव और जाकिर हुसैन दोनों के पास गए। और जाकिर हुसैन को भी कह आए कि आपकी जीत सुनिश्चित है, यह ज्योतिष में साफ है; सुब्बाराव को भी कह आए कि आपकी जीत सुनिश्चित है, यह ज्योतिष से साफ है। और दोनों से लिखवा लाए कि यह भविष्यवाणी मैं कर रहा हूँ, आप लिखित दें।

सुब्बाराव हार गए, उनका लिखा हुआ फाड़ कर फेंक दिया। फिर जाकिर हुसैन के पास गए और कहा कि देखिए! और जाकिर हुसैन ने कहा कि आपकी भविष्यवाणी बिल्कुल सच निकली, आप महान ज्योतिषी हैं! सर्टिफिकेट लिख कर दिया, साथ में फोटो उतरवाई। अब सुब्बाराव तो उनका कोई पता लगाते फिरेंगे नहीं। जो हार गया वह तो फिकर ही नहीं करता।

वे उस दिन से महान ज्योतिषी हो गए हैं। उनके पास मिनिस्ट्रों ने आना जाना शुरू कर दिया है। क्योंकि जो आदमी राष्ट्रपति को घोषणा कर दे... और उनके पास सर्टिफिकेट है, फोटो है--सब प्रमाण है। लेकिन भीतरी राज किसी को पता नहीं है कि वे दोनों को जाकर घोषणा कर आए।

लेकिन वासनाओं से भरा हुआ आदमी उसकी पूर्ति की तलाश कर रहा है। वह साधना के माध्यम से भी वासना को ही खोजता है। ऐसा व्यक्ति दीक्षित नहीं हो सकता। तो महावीर कहते हैं, अंदर-बाहर के समस्त सांसारिक संबंध जब छूट जाते हैं, तब कोई दीक्षित हो सकता है। और दीक्षित होकर पूर्णतया अनगार वृत्ति को प्राप्त होता है।

अनगार वृत्ति का अर्थ है: इस जगत में मेरा कोई घर नहीं है, मैं अगृही हूँ। यह जगत घर नहीं है--ऐसी वृत्ति का नाम--दिस वर्ल्ड इज नॉट दि होम। यह संसार जो दिखाई पड़ रहा है, यह घर नहीं है। यहां मैं बेघरबार हूँ। मेरा घर कहीं और है। चेतना के किसी लोक में मेरा घर है। और यहां जब तक मैं घर खोज रहा हूँ और घर बना रहा हूँ, तब तक मैं व्यर्थ समय नष्ट कर रहा हूँ। यहां मैं विदेशी हूँ। यहां मैं एक अजनबी हूँ, एक आउट साइडर हूँ। यह यात्रा है, मंजिल नहीं है।

महावीर कहते हैं, जब कोई पूर्ण साधक होकर दीक्षित होता है किसी गुरु के माध्यम से, उस द्वार को खटखटाता है जहां से असली घर खुलेगा... । लेकिन वह तभी उस द्वार को खटखटा सकता है, जब यहां से अनगार वृत्ति हो जाए, इस जगत में घर खोजने की धारणा खो जाए। इस जगत में जो घर खोज रहे हैं, वे तो नया शरीर खोजते चले जाएंगे। वे जन्मेंगे, फिर मरेंगे--जन्मेंगे, फिर मरेंगे और घर को खोजते रहेंगे।

इस जगत में दो तरह के लोग हैं--वे जो यहां घर खोज रहे हैं, और वे जो यहां घर नहीं खोज रहे हैं। जो यहां घर नहीं खोज रहा है, वह अनगार हो गया है। और अनगार होकर यह पात्रता मिलती है कि दूसरा, असली घर खोजा जा सके। वह भीतर है, वह बाहर नहीं है। उसे बनाने की भी कोई जरूरत नहीं है, वह मौजूद है। वह

मेरे जीवन का मूल उत्स और स्रोत है। उसे कहीं भी पाने जाने का कोई सवाल नहीं है। वह सदा से मौजूद है, सिर्फ मैं भीतर मुड़ूं।

दीक्षा का अर्थ है, वह व्यक्ति, वह गुरु जो तुम्हें भीतर मोड़ दे।

"जब दीक्षित होकर कोई अनगार वृत्ति को प्राप्त करता है, तब साधक उत्कृष्ट संवर एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।"

एक तो धर्म है जिसे हम शास्त्रों से सुनते हैं, सदगुरुओं से सुनते हैं, जो प्रचलित है। वह साधारण धर्म है। और जब कोई व्यक्ति दीक्षित होकर भीतर जाता है तो अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है। तो उसे वास्तविक धर्म की खबर मिलती है। इसे हम ऐसा समझें, वह साधारण धर्म भी, जो बाहर हमें दिखाई पड़ता है--चर्च है, मंदिर है, गुरुद्वारा है, मस्जिद है, कुरान है, बाइबिल है, गीता है, महावीर-बुद्ध के वचन हैं, सदगुरु हैं, जो कह रहे हैं, बोल रहे हैं। यह कितना ही सही हो तो भी मूल नहीं है--मूल से थोड़ा हट कर है, सेकेंड हैंड है।

और कुछ भी कहें--वह जो सेकेंड हैंड है, वह जीवन में क्रांति नहीं ला सकता। और उससे आप अपने को समझाने की कोशिश मत करना। लोग हैं, जो अपने को समझा लेते हैं।

एक मित्र मुझसे आकर कह रहे थे, मुझसे आकर बोले कि आई हैव परचेज्ड ए ब्रैंड न्यू सेकेंड हैंड कार।

ब्रैंड न्यू सेकेंड हैंड कार! बिल्कुल नई सेकेंड हैंड गाड़ी खरीदी है। अब सेकेंड हैंड गाड़ी बिल्कुल नई कैसे हो सकती है।

लेकिन आप महावीर के वचन कितने ही समझ लें, कृष्ण को कितना ही पी जाएं, वे सेकेंड हैंड हैं। उनसे वास्तविक धर्म का संबंध नहीं हो रहा है। वास्तविक धर्म की खबर मिल रही है--संबंध नहीं हो रहा है। वास्तविक धर्म की तरफ से चुनौती, निमंत्रण मिल रहा है--संबंध नहीं हो रहा है। यात्रा करनी पड़ेगी।

तो महावीर कहते हैं, जब कोई दीक्षित होकर भीतर प्रवेश करता है, तब अनुत्तर धर्म--शुद्ध, वास्तविक, मौलिक, निज का धर्म अनुभव होता है।

"जब साधक उत्कृष्ट संवर एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है, तब अंतरात्मा पर से अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल सब झड़ जाते हैं।"

"जब अंतरात्मा से अज्ञानकालिमाजन्य कर्म-मल दूर हो जाता है, तब सर्वत्रगामी, केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होता है।"

इसे थोड़ा समझ लें। महावीर और सभी जानने वालों की यह दृष्टि है कि आपकी अंतरात्मा शुद्ध ज्ञान है--प्योर नोइंग। अगर आपको उस शुद्ध ज्ञान का पता नहीं चल रहा है, तो उसका कारण है कि आपके आस-पास बहुत से कर्मों का जाल है। जैसे एक दीया जल रहा है, एक लालटेन जली है और कांच पर कालिमा है, तो प्रकाश बाहर नहीं आता; अंधेरा है कमरे में। दीया जल रहा है और कमरे में अंधेरा है। लेकिन अंधेरे का कारण यह नहीं है कि भीतर ज्योति नहीं है। अंधेरे का कुल कारण इतना है कि ज्योति बाहर आ सके, इसके बीच में बाधाएं हैं।

तो धर्म सिर्फ बाधाओं को अलग करने का नाम है। भीतर ज्योति जली हुई है, सिर्फ बाधाएं गिर जाएं। वह जो लैंप के कांच पर जम गई कालिमा है, काजल है, वह हट जाए तो प्रकाश प्रकट हो जाए। प्रकाश को किसी से मांगने नहीं जाना है, उसे आप लेकर ही पैदा हुए हैं, वही आप हैं। वह आपका स्वरूप है।

इसलिए महावीर कहते हैं, जब कोई अनुत्तर धर्म से संस्पर्शित होता है जब भीतर की निजता का स्वभाव समझ में आता है और जब भीतर के जीवन की वास्तविकता प्रतीत होती है, और जब भीतर का स्पर्श और स्वाद मिलता है, तो सारे कर्म की जो कालिमा है चारों तरफ से, वह गिर जाती है। वह इसीलिए थी कि हमें भीतर का कोई स्वाद न था--इसलिए बाहर के स्वाद की तड़प थी। और उसके लिए हमने सारे कर्मों का जाल निर्मित किया था। वह इसीलिए थी कि भीतर का आनंद जाना नहीं--इसलिए बाहर के सुख की दौड़ थी। उस दौड़ में हमने बड़ी-बड़ी दीवालें खड़ी कर ली थीं। उस दौड़ के लिए हमने बड़े साधन-सामग्री जुटा ली थी। वही सारे

सामग्री-साधन हमारे चारों तरफ घिर गए थे और हम भीतर अंधेरे में बंद हो गए थे। रोशनी कहीं दिखाई नहीं पड़ती थी, और रोशनी सदा भीतर मौजूद थी।

यह जो भीतर की रोशनी है, इसको महावीर कहते हैं कि जैसे ही कर्म-मल झड़ जाते हैं, सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होता है। और तब सब दिशाओं में जानेवाला प्रकाश उपलब्ध हो जाता है। तब कोई दिशा अंधेरी नहीं रह जाती। और तब कोई कोना अज्ञान से भरा नहीं रह जाता। तब जीवन पूरा प्रकाशोज्ज्वल हो जाता है। तब पूरा जीवन एक सूर्य बन जाता है।

ऐसा महावीर किसी सिद्धांत के कारण नहीं कह रहे हैं। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं, कोई फिलासफर नहीं हैं। यह उनकी कोई हाइपोथिसिस, कोई परिकल्पना नहीं है। ऐसा महावीर अपने निज के अनुभव से कह रहे हैं। वे एक यात्री हैं, जो उसी रास्ते से गुजरे हैं, जहां से आप गुजर रहे हैं। लेकिन ऐसे यात्री हैं, जो मंजिल पर पहुंच गए हैं और जो अपने पीछे वाले लोगों को कह रहे हैं कि जिस यात्रा पर तुम चल रहे हो उसमें वर्तुल में मत घूमते रहना, नहीं तो तुम कहीं पहुंच न पाओगे, घूमते ही रहोगे। सीधी रेखा पकड़ना। और सीधी रेखा पकड़ने के सूत्र दे रहे हैं। और मंजिल दूर नहीं है।

अगर आसक्ति का वर्तुल टूट जाए, तो मंजिल बहुत निकट है। और आसक्ति का वर्तुल न टूटे, तो मंजिल निकट होकर भी बहुत दूर है।

आप ऐसा समझिए कि इस कमरे में हम एक गोल घेरा खींच दें और आप उस गोल घेरे में घूमते रहें, घूमते रहें--कमरे से बाहर जाना है और घूमते रहें, घूमते रहें--और कोई आपको कहे कि कितना ही चलो, इससे आप कहीं पहुंच न पाओगे। लेकिन आप कहोगे कि चलने से आदमी पहुंचता है। अगर मैं नहीं पहुंच पा रहा हूं, तो उसका मतलब है कि मैं ठीक से नहीं चल रहा हूं। वह आदमी कहेगा, आप ठीक से भी चलो, तो भी जिस रेखा-पथ पर आप चल रहे हो, ठीक से चलकर भी नहीं पहुंच पाओगे। तो आपको उसकी बात समझ में नहीं आएगी। आप कहोगे, यह हो सकता है कि ठीक से चलकर भी न पहुंच पाऊं, क्योंकि मेरी चाल की गति धीमी है। तो मुझे दौड़ना चाहिए। तो अगर मैं दौड़ूंगा तो जरूर पहुंच जाऊंगा--क्योंकि ऐसी कोई भी मंजिल हो, कितनी ही दूर हो, आखिर दौड़ने से मिल ही जाएगी। वह आदमी आपसे कहे कि आप दौड़ो, तो भी नहीं पहुंचोगे, सिर्फ थक कर गिरोगे। क्योंकि जिस वर्तुल में आप चल रहे हो, वह वर्तुल बाहर जाता ही नहीं है। इस वर्तुल को छोड़ो, दरवाजे को देखो और दरवाजे से बाहर निकलने की कोशिश करो--तो इतना चलने की जरूरत नहीं है, दरवाजा बहुत निकट है।

आपका वर्तुल कई बार दरवाजे के करीब से ही जाता है। बिल्कुल दरवाजे के करीब से--लेकिन आप अपने वर्तुल में मुड़ जाते हैं। कितनी बार आपकी आसक्ति आपको विरक्ति के करीब नहीं ले आती। कितनी बार आपका जीवन आपको आत्मघात के करीब नहीं ले आता! और कितनी बार संसार व्यर्थ नहीं होने लगता, लेकिन व्यर्थ होते ही होते आप फिर मुड़ जाते हैं। नई आसक्ति और वर्तुल फिर वापस निर्मित हो जाता है। दरवाजा बहुत बार करीब आता है, लेकिन छूट जाता है।

यह होता रहेगा। महावीर इसलिए विरक्त के लिए ही कहते हैं कि द्वार खुल सकता है। आसक्ति जिसे व्यर्थ हुई अनुभव से, वह विरक्त। जो विरक्त हुआ, वह अब द्वार खोजेगा नया। इस संसार में जिसका कोई घर न रहा, वह हुआ अनगार, अगृही। अब वह असली घर की खोज में लगेगा। यह खोज दीक्षा बन सकती है।

तो जिन्होंने वह घर पा लिया है, जो उस घर में प्रवेश कर गए हैं--अब वह उनकी आवाज समझने की कोशिश करेगा, उनके इशारे।

और जो व्यक्ति दीक्षित हो जाता है, उसे अनुत्तर धर्म का अनुभव शुरू होता है। महावीर धर्म का अर्थ करते हैं--"स्वभाव।" महावीर कहते हैं जैसे आग का स्वभाव है उष्णता और जल का स्वभाव है नीचे की तरफ बहना, ऐसे ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है--ज्ञान, बोध, बुद्धत्व।

जैसे ही कोई व्यक्ति भीतर मुड़ता है, इस ज्ञान की किरणें उसे घेर लेती हैं। और इस ज्ञान की किरणों का अनुभव अनुत्तर धर्म का, कभी न जाने गए धर्म का अनुभव है। दूसरों ने जाना है, आपने कभी नहीं जाना है। आपके लिए नई घटना है, एक मौलिक घटना है। और यह कोई उधार बात नहीं है अब। अब आपको गीता और कुरान और बाइबिल में खोजने की जरूरत नहीं है। अब आपको वह मिल गया है, जो जीसस को पता था, कृष्ण को पता था, मोहम्मद को पता था। अब आप वहां खड़े हैं, जहां खड़े होने वालों ने बोला है, और बोल कर नंबर दो के, द्वितीय मूल्य के शास्त्र निर्मित हुए हैं।

महावीर कहते हैं, शास्त्र प्रतिध्वनि है, मूल नहीं। और जब कोई व्यक्ति अपने भीतर प्रवेश करता है, तो मूल में प्रवेश करता है। इस व्यक्ति से प्रतिध्वनियां होंगी, वे शास्त्र बन जाएंगे। और जो लोग प्रतिध्वनियां को ही सब कुछ समझ कर जी लेते हैं, वे भटक जाते हैं।

मूल की खोज जरूरी है। गीता पढ़ कर, कृष्ण कहां थे, उस जगह की खोज करनी चाहिए। महावीर को सुन कर, अंधे की तरह महावीर को मान लेने की जरूरत नहीं है। महावीर कहां थे, उस जगह की खोज की जरूरत है। मोहम्मद को सुन कर मुसलमान बनने से कुछ भी न होगा, मोहम्मद बनना पड़ेगा।

दुनिया में मुसलमान बहुत हैं, जैनी बहुत हैं, हिंदू बहुत हैं, ईसाई बहुत हैं--उनसे कुछ भी नहीं होता। क्राइस्ट को सुन कर क्रिश्चियन बनना धोखा है, क्राइस्ट बनने की जरूरत है। तो अनुत्तर धर्म उपलब्ध होगा। लेकिन कोई क्राइस्ट नहीं बनना चाहता। क्रिश्चियन बनने में सुविधा है, क्योंकि क्रिश्चियन बनने में सारी जिम्मेवारी क्राइस्ट पर है, हम तो सिर्फ पीछे चल रहे हैं। अगर भटके तो तुम जिम्मेवार।

और क्रिश्चियन को बड़ी सुविधाएं हैं जीवन में--कुछ बदलना नहीं पड़ता। क्रिश्चियन को क्राइस्ट को मानने तक की जरूरत नहीं है। जैन को कहां महावीर को मानने की जरूरत है! सिर्फ इतना मानने की जरूरत है कि हम मानते हैं। और कुछ करने की जरूरत नहीं है। एक रत्ती भर बात मानने की जरूरत नहीं है।

बर्ट्रेड रसल ने लिखा है, तब बायन्ड विन इंग्लैंड का प्रधानमंत्री था। बायन्ड विन निष्ठावान क्रिश्चियन था और रसल ने मजाक में लिखा है कि बायन्ड विन निष्ठावान क्रिश्चियन है, हर रविवार चर्च में मौजूद होता है--प्रधानमंत्री हो जाने के बाद भी। रोज बाइबिल पढ़ कर सोता है। लेकिन, ध्यान रखना, कोई जाकर बायन्ड विन को चांटा मत मार देना। हालांकि जीसस ने कहा है कि जो चांटा मारे, उसके सामने तुम दूसरा गाल कर देना। बायन्ड विन नहीं करेगा तब तुम भूल में पड़ोगे।

वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि चर्च में जाने से क्या होगा! बाइबिल पढ़ने से क्या होगा! बायन्ड विन को भी अगर चांटा मारोगे तो दिक्कत में पड़ जाओगे। वह गाल आगे नहीं करने वाला है दूसरा!

क्राइस्ट होना एक बात है, क्रिश्चियन होना एक बात है। क्रिश्चियन होना शायद खुद को धोखा देना है, आत्मवंचना है। अगर महावीर से प्रेम ही है, तो जिन होने की कोशिश करनी चाहिए, जैन होने की नहीं। अगर महावीर से प्रेम ही है, तो महावीर जहां है, वहां पहुंचने की चेष्टा करनी चाहिए।

महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति भीतर के धर्म का स्पर्श कर लेता है, उसके सारे कर्म-मल गिर जाते हैं। कुछ करना नहीं होता। जैसे यहां कोई रोशनी जला दे, तो अंधेरा समाप्त हो जाएगा। ऐसे ही भीतर की रोशनी जलते ही जीवन का सारा अंधेरा गिर जाता है। उस अंधेरे में जितने उपद्रव हमने पाले थे, वे भी गिर जाते हैं। जो भय, जो आसक्तियां, जो मोह बनाए थे अंधेरे के कारण, अंधेरे के गिरते ही खो जाते हैं।

जैसे इस कमरे में अंधेरा हो, और आप डरते हैं कि पता नहीं कमरे में कोई छिपा न हो। तो भय है। या आप सोचते हैं कि मेरी प्रेयसी इस कमरे के भीतर होगी, तो आप अंधेरे में बड़े रस से टटोल कर खोज रहे हैं। फिर रोशनी हो जाए, वहां कोई भी नहीं है। तो भय भी खो गया, प्रेम भी खो गया और अंधेरा भी चला गया।

हमने अंधेरे में जी-जी कर संसार के जो भी संबंध बनाए हुए हैं, वे ऐसे ही हैं। जिस दिन भीतर की रोशनी होती है--अंधेरा भी खो जाता है, वे सारे संबंध और कर्मों का जाल भी गिर जाता है।

महावीर कहते हैं, उस दिन सब दिशाओं को आलोकित करने वाला प्रकाश जन्मता है। वही सिद्ध की अवस्था है। उसे महावीर ने केवलज्ञान कहा है। वह परम निर्वाण, परम मुक्त चेतना का अनुभव है। जहां सिर्फ ज्ञान ही रह जाता है। जहां सिर्फ प्रकाश ही रह जाता है। कोई चीज प्रकाशित भी नहीं रह जाती, सिर्फ शुद्ध प्रकाश रह जाता है। और अनंत आयामों तक प्रकाश फैल जाता है--जिसके लिए कोई बाधा नहीं रहती। निर्बाध प्रकाश का सागर।

लेकिन विरक्ति से शुरुआत है यात्रा की और निर्बाध प्रकाश के सागर पर अंत है।

जो विरक्ति में कच्चा है, वह यहां तक कभी भी नहीं पहुंच पाएगा। पहला कदम ही जिसका भटक गया है, उसकी मंजिल कभी आने वाली नहीं है। और जो उधार धर्म को ही लेकर चल रहा है, वह भी कभी सत्य तक नहीं पहुंच पाएगा। धर्म प्रतिध्वनि है जानने वालों की। मगर हमारी बड़ी अजीब हालत है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है एक रेलवे स्टेशन के विश्रामालय में। उसका मित्र पंडित रामशरण दास उसके पास ही अखबार पढ़ रहा है। नसरुद्दीन कहता है, पंडित जी, कागज तो नहीं है?

वह अपने खीसे से बिना आंख उठाए एक कागज निकाल कर नसरुद्दीन को दे देता है।

फिर थोड़ी देर बाद नसरुद्दीन कहता है, पंडित जी, कलम तो नहीं है?

तो वह एक कलम निकाल कर अपने खीसे से दे देता है।

नसरुद्दीन कुछ लिखता है; फिर कहता है, "लिफाफा?"

तो पण्डित रामशरण दास लिफाफा दे देते हैं।

फिर वह लिफाफा में रख कर कहता है, "स्टैम्प?"

तो वे क्रोध में अपनी डायरी खोल कर स्टैम्प निकाल कर दे देते हैं। तो वह स्टैम्प लगा देता है। फिर वह कहता है, पंडित जी, वॉट इज दि एड्रेस ऑफ योर गर्ल-फ्रेंड--तुम्हारी प्रेयसी का पता क्या है?

वे चिट्ठी लिख रहे हैं। कागज भी उधार, कलम भी उधार, लिफाफा भी उधार, स्टैम्प भी उधार। यहां तक भी ठीक। वह प्रेयसी भी उनकी नहीं है, जिसको वे पत्र लिख रहे हैं। वह भी पंडित जी की प्रेयसी! और उनकी प्रेयसी का पता पूछ रहे हैं।

करीब-करीब हमारी जिंदगी ऐसी ही उधार है।

परमात्मा को भी चिट्ठी लिखते हैं, तो वह परमात्मा शंकर का, नागार्जुन का, वसुबंधु का। मोक्ष को चिट्ठी लिखने की कोशिश करते हैं, वह मोक्ष महावीर का, बुद्ध का। ब्रह्म की कुछ खोज-खबर लेते हैं--तो वह ब्रह्म कृष्ण का!

किसी और का हमेशा!

प्रेयसी भी अपनी न हो, तो पत्र लिखना व्यर्थ है। परमात्मा अपना न हो, तो सारी प्रार्थनाएं व्यर्थ हो जाती हैं। इसे स्मरण जो व्यक्ति रखता है, आज नहीं कल उधार से बच जाता है, और अपने निज-परमात्मा की खोज करने लगता है। और जिस दिन खोज निज होती है, उसका आनंद ही और है। क्योंकि तभी उदघाटन होना शुरू होता है! अंधेरे से प्रकाश की तरफ, मृत्यु से अमृत की तरफ यात्रा शुरू होती है।

पांच मिनट रुकें; कीर्तन करें।

संन्यास प्रारंभ है, सिद्धि अंत (मोक्षमार्ग-सूत्र: 4)

जया सव्वत्तणं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ।
 तया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली॥
 जया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली।
 तया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ॥
 जया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ।
 तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ॥
 जया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ।
 तया लोगमत्थयत्थो
 सिद्धो हवइ सासओ॥

जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है, तब जिन तथा केवली होकर लोक और अलोक को जान लेता है।

जब केवलज्ञानी जिन लोक-अलोकरूप समस्त संसार को जान लेता है, तब (आयु समाप्ति पर)मन, वचन और शरीर की प्रवृत्तिका निरोध कर शैलेशी (अचल-अकंप)अवस्था को प्राप्त होता है।

जब मन, वचन और शरीर के योगों का निरोध कर आत्मा शैलेशी अवस्था पाती है, पूर्ण रूप से स्पंदन-रहित हो जाती है, तब सब कर्मों का क्षयकर सर्वथा मल-रहित होकर सिद्धि (मुक्ति)को प्राप्त होती है।

जब आत्मा सब कर्मों का क्षयकर सर्वथा मलरहित होकर सिद्धि को पा लेती है, तब लोक के मस्तक पर, ऊपर के अग्रभाग पर स्थित... होकर सदा काल के लिए सिद्ध हो जाती है।

एकमात्र बीमारी है। मन को स्वस्थ करने का कोई भी उपाय नहीं है, मन को शून्य करने का जरूर उपाय है। बीमारी मिट सकती है, बीमारी स्वस्थ नहीं हो सकती। साधारणतः लोग कहते हैं, उनका मन अशांत है, बेचैन है, परेशान है; तो पूछते हैं, कैसे मन को शांत करें?

मन कभी भी शांत नहीं होता। मन के शांत होने का कोई उपाय नहीं है। अशांत होना मन का स्वभाव है। ठीक से समझें तो अशांति ही मन है। मन से मुक्त हुआ जा सकता है। मन के पार हुआ जा सकता है। मन को छोड़ा जा सकता है। मन को शांत नहीं किया जा सकता। मन के शांत होने का एक ही अर्थ है, जहां मन न रह जाए।

इसका यह अर्थ हुआ: शांति और मन का कोई संबंध कभी भी नहीं हो पाता। जब तक मन है, तब तक शांति नहीं और जब शांति होती है, तब मन नहीं होता। मन को मिटाना, मन से मुक्त होना, मन के पार होना समस्त साधना का आधारभूत सूत्र है। तो मन को हम ठीक से समझ लें तो महावीर के इन अंतिम सूत्रों में प्रवेश हो जाए।

मन है क्या? क्योंकि बीमारी ठीक से न समझी जा सके, निदान न हो पाए, डायग्नोसिस न हो, तो उपचार नहीं हो सकेगा। निदान आधे से ज्यादा उपचार है। और बिना निदान किए जो उपचार में लग जाए, हो सकता है बीमारी को और बढ़ा ले; नई बीमारियों को निमंत्रण दे दे।

अधिक लोग मन को बिना समझे उपचार करने में लग जाते हैं। ऐसे लोग या तो मन को दबाने लगते हैं या ऐसे लोग मन को मूर्च्छित करने लगते हैं।

मन को दबाना हम सभी जानते हैं। क्रोध आ जाए तो उसे कैसे पी जाना, उसे कैसे गटक जाना गले के नीचे, हम सभी जानते हैं। क्योंकि जिंदगी में सभी मौकों पर क्रोध नहीं किया जा सकता। वासना मन में उठे, तो कैसे उसे पीते रहना, दबाते रहना, वह हम सभी जानते हैं। क्योंकि हर क्षण वासना को पूरा करने का उपाय नहीं है।

तो मन को हम सभी दबाते हैं। लेकिन इस दबाने से कोई कभी मुक्त होता है? ये दबी हुई जो वृत्तियां हैं, ये धक्का मारती रहती हैं; ये भीतर चोट करती रहती हैं और अवसर की तलाश करती हैं। जब भी कमजोर क्षण मिल जाएगा, ये प्रकट हो जाएंगी। ये इकट्ठी होती रहती हैं।

और मनस्विद कहते हैं कि जो आदमी बहुत ज्यादा क्रोध को दबाता रहता है, वह एक न एक दिन क्रोध के भयानक भूकंप से भर जाता है। जो लोग रोज-रोज क्रोध करते रहते हैं, छोटी-छोटी बातों में क्रोध करते रहते हैं, ऐसे लोग बड़े अपराध नहीं कर पाते। ऐसे लोग हत्या नहीं कर सकते, क्योंकि हत्या करने के लिए जितना क्रोध इकट्ठा होना चाहिए, उतना उनके पास कभी इकट्ठा ही नहीं होता। इसलिए अक्सर जो लोग छोटी-छोटी बातों में क्रोध कर लेते हैं, बुरे लोग नहीं होते। और जो आदमी दबाए चला जाता है, वर्षों तक दबाता रहता है, उसके भीतर ज्वालामुखी इकट्ठा हो जाता है। जब भी इसका विस्फोट होगा, तब यह छोटी-मोटी घटना होने वाली नहीं है। यह कोई महा-उपद्रव करेगा।

तो जिनको आप साधारणतः शांत समझते हैं, वे भयंकर अशांति के जन्मदाता हो सकते हैं। तो जो आदमी कभी-कभी क्रोध करता है, उसके क्रोध से जरा सावधान रहना। जो अक्सर करता है, उसके क्रोध का कोई मतलब नहीं है--हवा आई और गई।

छोटे बच्चे बड़े अपराध नहीं कर सकते। और उसका कारण यह है कि वे छोटा-छोटा क्रोध करके दिन भर निकाल लेते हैं। इसलिए छोटे बच्चे क्षण भर में क्रोध करेंगे, क्षण भर बाद बिल्कुल शांत हो जाएंगे--जैसे तूफान कभी आया ही न हो। भरोसा ही न आएगा कि इस बच्चे ने थोड़ी देर पहले एक भयंकर क्रोध किया था। वह मुस्कुरा रहा है, नाच रहा है, प्रसन्न है। बच्चे से बड़े अपराध की संभावना नहीं है।

जो लोग अपने जीवन को सहज प्रकट करते रहते हैं, ये कोई महात्मा तो नहीं हो सकते, लेकिन ये महा-अपराधी भी नहीं हो सकते। इनके महा-अपराधी होने का कोई उपाय नहीं है।

दमन से महा-अपराध पैदा होता है। अपराध से बचना हो जाता है, महा-अपराध पैदा हो जाता है; क्योंकि ऊर्जा का एक नियम है कि आप उसे इकट्ठी करके रख नहीं सकते--उबल जाएगी, ओवरफ्लो हो जाएगी। एक सीमा है जब तक आप सम्हाल सकेंगे, और फिर सम्हालने के बाहर हो जाएगी। इस तरह अगर आप सम्हालते गए, सम्हालते गए, तो वह सीमा आ जाती है जहां आपके भीतर इकट्ठी शक्ति प्रकट होगी, और अगर वह आपके विपरीत प्रकट हो जाए तो आप विक्षिप्त भी हो सकते हैं।

मनस्विद कहते हैं कि पागल आदमी वही है, जिसने बहुत दबाया है। दबाना इतना ज्यादा हो गया है कि अब होश में उसे निकालने का कोई उपाय न रहा, तो उसने होश भी खो दिया है। अब वह बेहोशी में निकाल रहा है। पागलखानों में जो लोग बंद हैं, वे दमित स्थिति के आखिरी परिणाम हैं।

तो आप दमन कर-कर के विक्षिप्त हो सकते हैं, विमुक्त कभी नहीं हो सकते। विमुक्त होना हो, तो दबाना कोई रास्ता नहीं है। और जिसे हम दबाते हैं, हम उससे और ज्यादा बुरी तरह ग्रसित हो जाते हैं। उसकी जकड़ हम पर बढ़ जाती है।

तो दबाने से तो कोई कभी पहुंचता नहीं, पर मन को बिना समझे बहुत लोग दबाने की कोशिश में लग जाते हैं। वह सरल दिखता है, सुगम दिखता है, तात्कालिक परिणामकारी दिखता है--लेकिन लंबे अरसे में भयानक है, खतरनाक है।

दूसरा, कुछ लोग मन को मूर्च्छित करने में लग जाते हैं। उन्हें लगता है, अगर मन मूर्च्छित हो जाए, न पता चलेगा, न मन की उद्विग्नता, पीड़ा सताएगी।

मूर्च्छा के कई उपाय हैं। शराब कोई पी ले तो सीधा उपाय है--केमिकल्स, रासायनिक तत्व शरीर को मूर्च्छित कर देते हैं। मस्तिष्क भी शरीर का हिस्सा है, वह भी मूर्च्छित हो जाता है। मूर्च्छित हो जाने से फिर कुछ दुख, पीड़ा, तनाव, परेशानी, चिंता, संताप--कुछ भी पता नहीं चलता। लेकिन जो मूर्च्छित हो गया है, वह मिट नहीं जाता है। होश आएगा, सारी बीमारियां फिर खड़ी हो जाएंगी।

सारे धर्मों ने शराब का विरोध किया है--इसलिए नहीं कि शराब में कोई अपने आप में बुराई है। सारे धर्मों ने विरोध किया है, क्योंकि धर्म जिस बीमारी को मिटाना चाहते हैं, शराब उसे केवल भुलाती है। भुलाने से कोई चीज मिटती नहीं।

शराब में अपने आप में कोई बुराई नहीं है। बुराई है इसमें कि जो बीमारी मिट सकती थी, उसे हम भुला कर स्थगित कर रहे हैं, टाल रहे हैं। वह जीवन में और गहरी होती चली जाएगी। और एक ऐसी घड़ी आ जाएगी कि हम इतने कमजोर हो जाएंगे बेहोश होते-होते कि बीमारी हमसे सबल होगी और उसे मिटाने का कोई उपाय न रह जाएगा।

लेकिन, शराब अगर अकेली मूर्च्छा की बात होती तो भी ठीक था, बहुत सी अच्छी शराबें हैं। धार्मिक शराबें भी हैं, जिनमें पता ही नहीं चलता कि हम अपने को भुला रहे हैं। एक आदमी बैठा है और राम-राम, राम-राम जप रहा है। आपको पता नहीं होगा कि एक ही शब्द को बार-बार दोहराने से मस्तिष्क में रासायनिक परिवर्तन होते हैं, जो मूर्च्छा ले आते हैं। एक ही शब्द की ध्वनि बार-बार चोट करती रहे तो ऊब पैदा करती है, उदासी पैदा करती है, तंद्रा पैदा करती है, नींद पैदा हो जाती है।

तो एक आदमी सुबह से बैठ कर एक घंटा अगर राम-राम या ओंकार, या नमोकार करता रहे--एक ही शब्द को दोहराता रहे--तो उस पुनरुक्ति के कारण मूर्च्छा पैदा हो जाती है। उस मूर्च्छा में और शराब की मूर्च्छा में कोई बुनियादी अंतर नहीं है। यह ध्वनि के माध्यम से मस्तिष्क को सुलाना है।

छोटे-छोटे बच्चे को मां यही करती है, लोरी सुना देती है: राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। थोड़ी देर में राजा बेटा सो जाता है। मां समझती है कि उसके संगीत के कारण सो रहा है, तो गलती में है--राजा बेटा सिर्फ ऊब रहा है। बार-बार कहे जा रहे हो, राजा बेटा सो जा--इतनी ऊब पैदा हो जाती है कि इस ऊब से बचने का एक ही उपाय रहता है कि वह नींद में खो जाए। इसको आप ठीक से समझ लें।

ऊब पैदा हो जाती है, तो ऊब से बच्चा भाग भी तो नहीं सकता। मां को छोड़ कर कहां भागे--विस्तर पर उसको पकड़े बैठी हुई है। उसको छोड़ कर बच्चा कहीं जा भी नहीं सकता। जाने का कोई उपाय नहीं है। एक ही भीतरी उपाय है कि नींद में डूब जाए, तो इस उपद्रव से छुटकारा हो।

लेकिन जो लोरी का सूत्र है, वही जिनको हम मंत्र कहते हैं, उनका सूत्र है। छोटे बच्चे को मां कह रही है: राजा बेटा सो जा। जरा बच्चा बड़ा हो गया है, वह खुद ही राम-राम, राम-राम जप रहा है। उसका खुद चित्त ऊब जाता है। ऊब से झपकी लग जाती है। नींद में डूब जाता है। यह झपकी थोड़ा फायदा भी कर सकती है, जैसा नींद करती है--स्वस्थ करेगी; थोड़ा ताजा करेगी।

आज पश्चिम में महर्षि महेश योगी के ट्रांसडेंटल मेडिटेशन का जोर से प्रचार है। लोरी से ज्यादा नहीं है वह। जो भी किया जा रहा है, वह सिर्फ इतना है कि एक शब्द दिया जा रहा है, एक मंत्र दिया जा रहा है--इसे दोहराए चले जाओ। इस दोहराने से तंद्रा पैदा होती है।

पूरब में इतना प्रभाव नहीं पड़ रहा है। भारत में कोई प्रभाव नहीं है, अमरीका में बहुत प्रभाव है, कारण? अमरीका में नींद खो गई है, भारत में अभी भी लोग सो रहे हैं।

अमरीका में नींद सबसे बड़ा सवाल हो गया है। बिना ट्रैक्लाइजर के सोना मुश्किल है। फिर धीरे-धीरे ट्रैक्लाइजर का भी शरीर आदी हो जाता है। फिर उनसे भी सोना मुश्किल है। और नींद इतनी ज्यादा व्याघात से

भर गई है कि ट्रांसेंडेंटल मेडिटेशन, भावातीत--ध्यान जैसे प्रयोग फायदा पहुंचा सकते हैं, और नींद आ सकती है।

लेकिन नींद ध्यान नहीं है, नींद मूर्च्छा है। इसके अच्छे परिणाम भी हो सकते हैं। नींद स्वास्थ्यकृत है, स्वास्थ्य को देगी, थोड़ा सुख भी देगी। नींद के बाद थोड़ा हलकापन भी लगेगा। और सच्चाई तो यह है कि साधारण नींद की अपेक्षा मंत्र के द्वारा जो नींद आती है, वह ज्यादा गहरी होती है। क्योंकि मंत्र के द्वारा जो नींद आती है, वह हिप्नोसिस है, वह सम्मोहन है। हिप्नोसिस शब्द का अर्थ भी निद्रा ही होता है--चेष्टा से पैदा की गई निद्रा; कोशिश से लाई गई निद्रा; और मन के तंतुओं को शिथिल करके लाई गई निद्रा।

आपको जब रात नींद आती, तो कारण आप जानते हैं क्या होता है? कारण यह होता है कि मन के तंतु खिंचे होते हैं, विचार में लगे होते हैं। इतने विचार में लगे होते हैं कि खून दौड़ता ही चला जाता है। इस खून के दौड़ने के कारण नींद मुश्किल हो जाती है। इसलिए बिना तकिए के आप सोएं तो नींद नहीं आती, क्योंकि खून सिर की तरफ दौड़ता रहता है। तकिया आप रख लें तो खून सिर की तरफ नहीं दौड़ता, नहीं दौड़ने के कारण जल्दी नींद आ जाती है।

इसलिए जैसे-जैसे लोग बौद्धिक होते जाते हैं, वैसे-वैसे तकियों की संख्या बढ़ती जाती है। जंगली आदमी बिना तकिए के सो सकता है। जानवरों को तकिए की कोई फिकर ही नहीं है। जंगली आदमी सोच भी नहीं सकता कि तकिए की क्या जरूरत है। बड़ी गहरी नींद सोता है। असल में विचार न होने से खून की गति मस्तिष्क में वैसे ही कम होती है। लेकिन आपके मन में इतने विचार चल रहे होते हैं, कि जब तक विचार चल रहे होते हैं, तब तक खून दौड़ता रहता है। क्योंकि बिना खून दौड़े विचार नहीं चल सकते।

तो मंत्र के द्वारा ये विचार बंद हो जाते हैं। और मंत्र पुनरुक्ति हैं एक शब्द की। एक शब्द के दोहराने से मन के तंतु शिथिल होने लगते हैं। शिथिल होने से निद्रा आ जाती है। अगर आपको कोई भी एक मोनोटोनस वातावरण दिया जाए, वह नींद के लिए अच्छा होता है। ... मोनोटोनस चाहिए।

आपका सोने का जो कमरा है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बहुत से रंगों से उसको नहीं रंगना चाहिए। क्योंकि बहुत रंग मन को उत्तेजित करते हैं। एक रंग होना चाहिए--और वह भी मोनोटोनस, जिससे ऊब आए, उदासी आए, तंद्रा मालूम पड़े। कमरे में ज्यादा चीजें नहीं होनी चाहिए।

और हर आदमी के सोने का रिचुअल होता है। वह उसी को रोज दोहराता है। जैसे छोटे बच्चे हैं--कोई छोटा बच्चा अपनी गुड़ी को हाथ में पकड़ कर सो जाता है; कोई छोटा बच्चा अपने अंगूठे को मुंह में ले लेता है। वह मोनोटोनस हो गया है। वह रोज वही करता है। अगर आप उसका अंगूठा उसके मुंह से निकाल लें, तो उसकी नींद तोड़ देंगे। वह जैसे ही अंगूठा मुंह में डाल लेता है, अंगूठा मंत्र हो जाता है। वह ऊब हो गई। वही पुराना अंगूठा रोज-रोज--वह सो जाता है।

आप ऐसा मत सोचना कि छोटे बच्चे ही ऐसा करते हैं। आपका भी क्रियाकांड है। हर आदमी का क्रियाकांड है। सोते वक्त वह वही क्रियाकांड करेगा, उसके बाद नींद आ जाएगी। नींद आ जाएगी, अगर आपने वही क्रियाकांड किया।

इसलिए नये कमरे में नींद नहीं आती, क्योंकि मोनोटोनी टूट जाती है। नये मकान में नींद नहीं आती। नया आदमी कमरे में सो रहा हो, तो जरा अड़चन होती है। वही पत्नी सो रही हो, वही पति सो रहा हो, वही घुर्राटा चल रहा हो सदा का--ऊब पैदा होनी चाहिए, नींद का सूत्र है। जरा भी नई चीज अड़चन पैदा करती है।

तो मन को कुछ लोग उबा कर मूर्च्छित कर लेते हैं। ऐसे लोग, महावीर जिसको सिद्धावस्था कह रहे हैं, उस तक कभी भी नहीं पहुंच सकते। ये दो ढंग हैं। दबाने वाला विक्षिप्त हो जाता है, सुलाने वाला धीरे-धीरे सुस्त हो जाता है। वह शांत भला दिखाई पड़ने लगे, लेकिन उसकी शांति मुर्दा है, मरे हुए आदमी की शांति है, मरघट की शांति है। वह कोई जीवंत शांति नहीं है, जहां भीतर जीवन प्रवाह ले रहा है और अशांति न हो।

इन दो बातों से बचना जरूरी है। लेकिन वही बच सकता है, जो मन का स्वभाव समझ ले।

मन का स्वभाव क्या है?

मन है विचार की प्रक्रिया। मन कोई यंत्र नहीं है। मन कोई वस्तु नहीं है। मन एक प्रवाह है। मन को अगर हम ठीक से समझें तो मन कहना ठीक नहीं--मनन, चिंतन, विचारों की धारा, नदी। ये विचार बहे चले जाते हैं। और जब तक ये बहते रहते हैं, तब तक आप शांत नहीं हो सकते। क्योंकि हर विचार आपको आंदोलित कर जाता है; हर विचार आपको हिला जाता है।

कंपित होना संसार में होना है महावीर के हिसाब से। अकंप हो जाना संसार के बाहर हो जाना है। और हम प्रतिक्षण इसी कोशिश में लगे हैं कि थोड़ा सा कंपन मिले। उसे हम सेंसेशन कहते हैं।

थ्रिल... हमारी पूरी कोशिश यह है कि जिंदगी ऊब न जाए, तो कुछ नया हो जाए। एक नया वस्त्र भी आप ले आते हैं, तो थोड़ी जिंदगी में रौनक मालूम पड़ती है। एक नई चीज खरीद लाते हैं। तो लोग पागल हो गए हैं खरीदने में। बिना किसी फिकर के चीजें खरीदते चले जाते हैं। क्योंकि हर नई चीज थोड़ी सी थ्रिल देती है। थोड़ी देर को ऐसा लगता है, जिंदगी आई। क्योंकि थोड़ी सी ऊब टूटती है, बोर्डम टूटती है। मन की पूरी कोशिश यह है कि आप नया-नया खोजते रहें रोज।

यह जान कर आप हैरान होंगे कि पूरब के मनीषियों ने पुराने दिनों में इस बात की फिकर की थी कि समाज बहुत न बदले, चीजें बहुत नई न हों, घटनाओं में बहुत नयापन न हो ताकि मन को तरंगित होने का कम से कम उपाय हो। वह जो पूरब का समाज स्टैटिक था, स्थिर था, उसके पीछे मनीषियों का हाथ था। आज पश्चिम में ठीक उससे उलटी हालत हो गई है। हर चीज नई हो, हर दिन नई हो। दूसरे दिन पुरानी चीज ऊब देने लगती है। सब कुछ नया होता चला जाए।

अमरीका के आंकड़े मैं पढ़ता था। कोई भी आदमी एक मकान में तीन साल से ज्यादा नहीं रहता। यह औसत है। हर आदमी तीन साल के भीतर तो मकान बदल ही लेता है। कार तो आदमी हर साल बदल लेता है। तलाक की संख्या पचास प्रतिशत को पार कर गई है। सौ विवाह होते हैं, तो पचास तलाक हो जाते हैं। इस सदी के पूरे होते-होते जितने विवाह होंगे, उतने ही तलाक होंगे। ये विवाह और तलाक भी मौलिक रूप से नये की खोज है।

मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक चर्च था। और चर्च का पादरी कभी-कभी नसरुद्दीन को शिक्षण दिया करता था। देखता था उसका जीवन, तो कभी-कभी समझाता था। एक दिन नसरुद्दीन ने उससे कहा कि आप ठीक ही कहते हैं, मैंने अब पक्का कर लिया है कि आज जाकर मैं अपनी पत्नी से क्षमा मांग लूंगा, और अब किसी स्त्री की तरफ आंख उठा कर भी नहीं देखूंगा! बहुत हो गया। और आप ठीक ही कहते थे, लेकिन मैं माना नहीं। यह मन की दौड़ थी, वासना थी, चलती रही। लेकिन अब उम्र भी हो गई। तो आज जाकर पत्नी से क्षमा मांग लेता हूं। सब कनफेशन कर लूंगा कि मैं उसे धोखा दे रहा हूं।

दूसरे दिन सुबह पादरी प्रतीक्षा करता रहा कि कब नसरुद्दीन घर से निकले। नसरुद्दीन बड़ी शान से, बड़ी ताजगी से जोर से कदम रखता हुआ चर्च के पास से निकला। बड़ा प्रसन्न था। तो पादरी ने कहा: मालूम होता है, नसरुद्दीन, पत्नी ने तुम्हें क्षमा कर दिया!

नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, पत्नी ने क्षमा तो नहीं किया, लेकिन अभी बात न करो। दो-चार दिन बाद... !

पादरी ने कहा: लेकिन, ऐसा क्या मामला हुआ है? प्रसन्न तुम बहुत दिखते हो?

नसरुद्दीन ने कहा: मैंने अपनी पत्नी को कहा कि मैं तुझे धोखा दे रहा हूं। एक दूसरी स्त्री से मेरा संबंध है। तो वह बड़ी बेचैन हो गई और कहने लगी, उसका नाम बताओ। तो नाम बताना तो उचित नहीं था, क्योंकि उस दूसरी स्त्री की इज्जत का भी सवाल है; उसके पति का भी सवाल है; उसके बच्चों का भी सवाल है। तो मैंने कहा कि नाम तो मैं नहीं बता सकूंगा, माफी मांगता हूं, क्षमा कर दे। तो पत्नी नाराज हो गई। उसने कहा कि जब तक तुम नाम नहीं बताओगे, मैं क्षमा न करूंगी। और फिर कहने लगी, अच्छा, अगर तुम नहीं बताते तो मैं खुद ही

ख्याल कर लेती हूं। तुम पादरी की पत्नी के प्रेम में तो नहीं हो? और जब मैं चुप रहा तो उसने कहा कि नहीं- नहीं, पादरी की बहन! और जब मैं फिर भी चुप रहा तो उसने कहा कि नहीं-नहीं, अब तो पक्का है कि तुम पादरी की लड़की से!

मैं चुप ही रहा।

तो पादरी ने कहा: लेकिन इससे तुम इतने प्रसन्न क्यों हो?

तो नसरुद्दीन ने कहा कि और तो कुछ हल न हुआ, बट शी हैब गिवन मी श्री न्यू कांटेक्ट्स और अभी अब बीच में पड़ो मत!

मन फिर गतिमान हो गया। अब तीन नये पते उसने और बता दिए। इन तीन स्त्रियों का ख्याल ही नहीं था नसरुद्दीन को।

कई बार आप संयम के करीब पहुंचने लगते हैं और फिर कोई तरंग हिला जाती है। आप सोचते हैं, संयम की इतनी जल्दी भी क्या है, कुछ देर और रुका जा सकता है। और अक्सर लोग मरते क्षण तक संयम नहीं साध पाते। आखिरी क्षण तक भी जीवन हिलाता ही रहता है।

महावीर कहते हैं, जिसे बाहर की स्थितियां कंपित कर देती हैं, आंदोलित कर देती हैं--आंदोलन का अर्थ है, जो बाहर जाने को उत्सुक हो जाता है, वह आदमी संसार में है। वह चेतना कभी भी सिद्ध नहीं हो सकती।

महावीर का शब्द है, "शैलेशी अवस्था", हिमालय की तरह थिर। जहां कोई कंपन न हो। हिंदुओं ने शिव का घर कैलाश पर बनाया है सिर्फ इसी कारण। कोई कैलाश पर ढूँढने से शिव मिलेंगे नहीं। और अब तो करीब-करीब सारा हिमालय खोज डाला गया है। और कुछ बचा होगा तो चीनी छोड़ेंगे नहीं। वे खोजे ले रहे हैं। और शिव अगर मिलते होते, तो आपको ही मिलते, चीनियों को तो कभी मिल ही नहीं सकते।

शिव वहां हैं भी नहीं, सिर्फ प्रतीक है, कि शिवत्व की जो आखिरी अवस्था है, वह कैलाश जैसी थिर होगी। इसलिए महावीर ने शैलेशी अवस्था कहा है उसे। शैलेश जैसी, हिमालय जैसी थिर। जहां कोई कंपन नहीं है।

लेकिन अगर वैज्ञानिकों से पूछें तो वे कहेंगे कि यह शब्द ठीक नहीं है, क्योंकि हिमालय कंप रहा है। सच तो यह है कि हिमालय से ज्यादा कंपने वाला कोई पहाड़ ही दुनिया में नहीं है। विंध्याचल है, सतपुड़ा है--ये ठहरे हुए हैं। आलपस--ये सब ठहरे हुए हैं, कंप नहीं रहे हैं; हिमालय कंप रहा है--उसका कारण है--क्योंकि हिमालय जवान है। विंध्या और सतपुड़ा बूढ़े हैं।

भू-तत्त्वविद कहते हैं कि विंध्याचल जगत का सबसे पुराना पर्वत है, सबसे बूढ़ा पर्वत है। हमारी भी कहानियां कहती हैं कि ऋषि अगस्त्य जब दक्षिण गए, तो वे विंध्या से कह गए कि मैं जब तक लौट न आऊं, तुम झुके रहना, क्योंकि मैं बूढ़ा आदमी हूं और मुझे चढ़ने में बड़ी तकलीफ होती है।

उनके लिए ही वह झुका था। लेकिन फिर वे लौटे नहीं, उनकी मृत्यु हो गई दक्षिण में। तब से वह झुका है। कहानी बड़ी मीठी है। वह यह कहती है कि बूढ़ा पहाड़ है, गर्दन झुक गई है, कमर झुक गई है।

विंध्या सबसे पुराना पहाड़ है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। वह बढ़ नहीं रहा है; घट रहा है। हिमालय रोज बढ़ रहा है। उसकी ऊंचाई रोज बढ़ती जाती है। उसमें रोज कंपन है। वह अभी जवान है।

जितना जवान चित्त होगा, उतना कंपित होगा। अगर चित्त कंपित ही होता रहता है, तो आपका वार्धक्य शरीर का है--लेकिन चित्त के अर्थों में अभी आप जवान की वासना से भरे हैं। लेकिन महावीर का प्रयोजन है--महावीर को ख्याल भी नहीं होगा कि हिमालय कंप रहा है। उस समय तक इस बात का कोई उदघाटन नहीं हुआ था कि हिमालय कंपित हो रहा है और बढ़ता जा रहा है।

रोज कुछ इंच हिमालय ऊपर उठ रहा है जमीन से। अभी जवान है, अभी वह वयस्क नहीं हुआ। अभी बाढ़ रुकी नहीं। लेकिन महावीर का प्रयोजन साफ है, क्योंकि हिमालय जैसी थिर और कोई चीज जगत में मालूम नहीं पड़ती। ऊपर से देखने पर तो कम से कम हिमालय बिल्कुल थिर मालूम होता है।

सब बदल जाता है, हिमालय बदलता हुआ नहीं मालूम होता--इस अर्थ में प्रतीक है। ऐसी चित्त की अवस्था हो जाए, जहां कोई परिवर्तन नहीं होता, कोई कंपन नहीं होता, कोई बढ़ता नहीं, कोई गिरता नहीं। सब ठहर जाता है; जैसे कोई झील बिल्कुल निस्तरंग हो जाए; शून्य आकाश हो, जहां बादल का एक टुकड़ा भी न तैरता हो; हवा का एक झोंका भी न आता हो--ऐसी अवस्था में चित्त नहीं रह जाता, मन नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था में सिर्फ आत्मा रह जाती है।

तो हम ऐसी व्याख्या कर सकते हैं कि जब तक आत्मा कंपती है, उस कंपन का नाम मन है। मन कोई वस्तु नहीं है, मन सिर्फ कंपती हुई आत्मा का नाम है। और जब आत्मा नहीं कंपती, और ठहर जाती है, स्वस्थ हो जाती है, स्वयं में रुक जाती है, शैलेशी बन जाती है, तब मन नहीं रह जाता। जब मन नहीं रह जाता है, तो जो शेष रह जाता है, वहां कोई कंपन नहीं है।

इस अवस्था को पाने के लिए जरूरी होगा कि हम नई की जो विक्षिप्त तलाश करते हैं, वह न करें। और मन जब मांग करता है नई उत्तेजनाओं की, तब हम सावधान रहें। और जब मन कहता है, खोजो नये को, तो हम समझें कि मन क्या मांग रहा है। मन मांग रहा है कि मुझे नया इंधन दो, ताकि मैं कंपता रहूं।

पुराने से मन बड़े जल्दी ऊब जाता है--नये से भी ऊब जाएगा। आज नया है, कल पुराना हो जाएगा। मन की वृत्ति को जो निरंतर भरता रहे नये से, बिना यह समझे कि मन सिर्फ कंपने की कोशिश कर रहा है, नये कंपन तलाश कर रहा है--वह आदमी कभी भी समाधि को उपलब्ध नहीं होगा।

और ऐसी अवस्था में हम सदा ही दूसरे पर भटकते रहते हैं। दूसरा ही उत्तेजना दे सकता है। उत्तेजना सदा बाहर से आती है। बाहर से शांति के आने का कोई उपाय नहीं है। शांति सदा भीतर जन्मती है, उत्तेजना सदा बाहर से आती है। अशांति बाहर से आती है, शांति भीतर से बहती है। और जब तक हम बाहर लगे हुए हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन युद्ध के दिनों में सेना में भर्ती हुआ था। उसका नया शिक्षण चल रहा था। और उसके कैप्टन ने एक दिन उससे पूछा कि नसरुद्दीन, जब तुम बंदूक साफ करते हो, तो सबसे पहले क्या करते हो? बंदूक साफ करने के पहले सबसे पहला काम क्या है?

नसरुद्दीन ने कहा: सबसे पहला काम, पहले मैं नंबर देखता हूं। उस कैप्टन ने कहा कि नंबर से सफाई का क्या संबंध? नसरुद्दीन ने कहा: जस्ट टु बी श्योर दैट दिस इज माई ओन, आई एम नॉट क्लीनिंग समबडी एल्स--यह पक्का करने के लिए कि बंदूक अपनी ही है, किसी और की बंदूक साफ नहीं कर रहे हैं।

यह जो नसरुद्दीन कह रहा है, बड़ी कीमत की बात कह रहा है। जिंदगी में करीब-करीब हम दूसरों की बंदूकें साफ करते रहते हैं, अपनी बंदूक तो गंदी ही रह जाती है। दूसरों की साफ करने के कारण फुर्सत ही नहीं मिलती कि अपने पर ध्यान चला जाए।

जो व्यक्ति भी उत्तेजनाओं में रसलीन है, वह दूसरों की बंदूकें साफ करने में जीवन बिता देता है। दूसरों को ठीक करने में, दूसरों को सुधारने में, दूसरों को सुंदर बनाने में, दूसरों को मित्र बनाने में, दूसरों को अपने निकट लाने में, दूसरों का भोग करने में--पर सारा जीवन दूसरे पर लगा रहता है। और दूसरे काफी हैं! दूसरों का कोई अंत नहीं है।

सार्त्र ने एक अदभुत बात कही है। कहा है कि अदर इज दि हेल--दूसरा नरक है। बात थोड़ी सही है। हम अपना नरक दूसरे के ही माध्यम से पैदा करते हैं। आप खुद अपने नरक को देखें। आदमी-आदमी का अपना-अपना नरक है। हर आदमी अपने-अपने नरक में जी रहा है। मुस्कुराहटें तो ऊपर हैं और धोखे की हैं, और चिपकाई गई हैं, पेंटेड हैं--भीतर नरक है। और हर आदमी अपने-अपने नरक में जी रहा है; लेकिन वह नरक आप अकेले पैदा नहीं कर सकते हैं; उसके लिए आपको दूसरों की जरूरत है। दूसरों के बिना नरक पैदा नहीं हो सकता।

थोड़ा सोचें, क्या आप अकेले नरक पैदा कर सकते हैं? दूसरों के बिना नरक पैदा नहीं हो सकता। लेकिन, अगर यह सच है कि दूसरों के बिना नरक पैदा नहीं हो सकता, तो हम दूसरों के पीछे इतने पागल क्यों हैं?

क्योंकि यह आशा बंधी है, कि दूसरों के बिना स्वर्ग भी पैदा नहीं हो सकता। दूसरे के द्वारा स्वर्ग पैदा हो सकता है, इसी कोशिश में तो हम नरक पैदा कर लेते हैं।

स्वर्ग का स्वप्न नरक को जन्म देता है। सब नरकों के द्वार पर लिखा है, स्वर्ग। तो जिस दरवाजे पर आप स्वर्ग लिखा देखें, जरा सोच कर प्रवेश करना, क्योंकि नरक बनाने वाले काफी कुशल हैं। वे अपने दरवाजे पर नरक नहीं लिखते, फिर कोई प्रवेश ही नहीं करेगा। नरक के दरवाजे पर सदा स्वर्ग लिखा होता है--वह दरवाजे पर ही होता है। भीतर जाकर, जैसे-जैसे भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे-वैसे प्रकट होने लगता है।

दूसरे से जो स्वर्ग की आशा करता है, दूसरे के द्वारा उसका नरक निर्मित हो जाएगा। सार्त्र ठीक कहता है कि "द अदर इ.ज दि हेला।" पर सार्त्र ने कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया कि दूसरा नरक क्यों है।

वह दूसरे के कारण नरक नहीं है। दूसरे में स्वर्ग की वासना ही नरक का जन्म बनती है। तो बहुत गहरे में देखने पर मेरी वासना ही, कि दूसरे से मैं स्वर्ग बना लूं, नरक का कारण होती है। और जो व्यक्ति दूसरे में उलझा है, वह सदा कंपित रहेगा।

आपने कभी देखा कि आपके जितने कंपन हैं, वे दूसरे के संबंध में होते हैं? क्रोध के, प्रेम के, घृणा के, मोह के, लोभ के--सब दूसरे के संबंध में होते हैं। थोड़ी देर को सोचें कि आप इस पृथ्वी पर अकेले रह गए हैं, क्या आपके भीतर कोई कंपन रह जाएगा? सारा संसार अचानक खो गया, आप अकेले हैं, तो कोई कंपन नहीं रह जाएगा। क्योंकि कंपन के लिए दूसरे से संबंधित होना जरूरी है; दूसरे और मेरे बीच वासना का सेतु बनना जरूरी है, तब कंपन होगा।

आदमी जब गहन भीतर डूबता है आंख बंद करके, बाहर को भूल जाता है--तो वह ऐसे ही हो जाता है, जैसे पृथ्वी पर अकेला है; जैसे और कोई भी न रहा। सब होंगे--लेकिन जैसे नहीं रहे; मैं अकेला हो गया। इस अकेलेपन में शैलेशी अवस्था पैदा होती है। इस अकेलेपन में, इस नितांत भीतरी एकांत में, सब कंपन ठहर जाते हैं और अकंप का अनुभव होता है।

सूत्र महावीर का हम लें।

"जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है साधक, तब जिन तथा केवली होकर लोक और अलोक को जान लेता है।"

"जब केवलज्ञानी जिन लोक-अलोक रूप समस्त संसार को जान लेता है, तब मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का निरोध हो जाता है और शैलेशी (अचल, अकंप) अवस्था प्राप्त होती है।"

महावीर ने पिछले सूत्र में कहा है कि जब अंतर प्रकाश का उदय होता है, जब कोई जीवन-ऊर्जा पूरी तरह भीतर की तरफ मुड़ जाती है... ।

इस भीतर की तरफ मुड़ जाने का नाम ही प्रतिक्रमण--अपनी तरफ आना है।

तो प्रतिक्रमण कोई क्रिया नहीं है कि आपने बैठकर कर ली। प्रतिक्रमण चेतना का, ऊर्जा का अपनी तरफ लौटना है। यह बड़ी गहन घटना है।

लोग मुझे आकर कहते हैं कि आज प्रतिक्रमण करके आ रहे हैं। प्रतिक्रमण करके कहीं कोई आता है? प्रतिक्रमण का मतलब ही है कि बाहर आना नहीं, भीतर जाना शुरू हुआ। प्रतिक्रमण ऊर्जा का भीतर की तरफ लौटना है। आपने देखे होंगे, अनेक इसोटेरिक, गुह्य समाजों ने सांप के प्रतीक को चुना है, जिसमें सांप अपनी पूंछ को पकड़े हुए है, वह सांप का अपनी पूंछ को पकड़ना प्रतिक्रमण है। जब चेतना अपने ही द्वारा अपने को पकड़ लेती है, और एक वर्तुल निर्मित हो जाता है, तब प्रतिक्रमण है।

जब तक मैं दूसरे की तरफ ध्यान दे रहा हूँ, तब तक आक्रमण जारी है। और आक्रमण जब तक जारी है, तब तक मैं अपने को व्यर्थ कर रहा हूँ; व्यर्थ खो रहा हूँ--तब तक मैं नष्ट हो रहा हूँ। क्योंकि जितनी ऊर्जा बाहर जा रही है, वह व्यर्थ जा रही है। जब तक भीतर जोड़ न हो जाए ऊर्जा का, जब तक अंतर्संभोग न हो जाए, जब तक मैं स्वयं से भीतर न मिल जाऊँ, तब तक आनंद उपलब्ध नहीं होगा।

दूसरे से मिल कर जो थोड़ा-बहुत सुख उपलब्ध हो सकता है, वह केवल राहत है। वह शक्ति का क्षीण होना है। और जब भी शक्ति भारी हो जाती है, और दूसरे के माध्यम से बाहर निकल जाती है, तो हलकापन लगता है।

कभी-कभी, आपको ख्याल होगा कि बुखार जब ठीक होता है, तो बड़ा हलकापन लगता है, जैसे उड़ सकते हैं। लेकिन वह हलकापन कमजोरी के कारण लगता है, शक्ति के कारण नहीं। शक्ति भीतर नहीं है, इसलिए बिल्कुल हलके लगते हैं। बुखार के बाद बिल्कुल हलकापन लगता है--जैसे सब शांत हो गया। दूसरे से मिलकर जिस ऊर्जा का हम व्यय करते हैं, वह बुखारवाला हलकापन है, जहाँ एक उत्तेजना आई और उत्तेजना विलीन हो गई।

अमरीका में मास्टर्स और जान्सन ने संभोग के संबंध में बड़े वैज्ञानिक अध्ययन किए हैं। और पहला अध्ययन उनका यह है कि संभोग के क्षण में दो व्यक्ति, स्त्री-पुरुष, दोनों ही बुखार की अवस्था में आ जाते हैं, फीवरिश हो जाते हैं। दोनों का शरीर उत्तप्त हो जाता है, गर्मी बढ़ जाती है, टेम्परेचर ज्यादा हो जाता है, श्वास जोर से चलने लगती है। शरीर का रोआं-रोआं बेचैन और परेशान हो जाता है। कुछ ही क्षणों में दोनों ही उत्तप्त होकर जलने लगते हैं। और जब दोनों का स्वल्पन हो जाता है, तो इस बुखार से छुटकारा हो जाता है। वापस लौट आते हैं।

यह जो बुखार से छूट जाना है, इसमें राहत मिलती है, सुख नहीं मिल सकता। दूसरे से हमारा कोई भी संबंध ज्यादा से ज्यादा रिलीफ का हो सकता है। स्वयं से संबंध आनंद का हो सकता है।

महावीर इस स्वयं से संबंध को कहते हैं, प्रतिक्रमण। जब चेतना अपने पर लौट आती है। जैसे ही चेतना अपने पर लौटती है, वैसे ही कर्म-मल गिर जाते हैं। क्योंकि कर्म-मल हमने इकट्ठे ही किए थे दूसरे के लिए, दूसरे से संबंधित होने के लिए। इसे हम थोड़ा समझें।

हम बोलते हैं; भाषा हम सीखते हैं। लेकिन भाषा हम सीखते हैं दूसरों के लिए। भाषा का कोई उपयोग अपने लिए नहीं है। भाषा सामाजिक है, दूसरे से जुड़ने का उपाय है। अगर आप अकेले रह जाएं जगत में, तो भाषा छूट जाएगी, भाषा की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। क्योंकि भाषा थी ही दूसरे से जुड़ने के लिए।

आप कार में बैठते हैं कहीं जाने के लिए, अगर कहीं जाना ही न हो, तो आप कार के बाहर निकल आएंगे। और अगर सारा जाना ही बंद हो जाए, कहीं जाने का सवाल ही न हो, कोई मंजिल ही न हो, तो कार को आप भूल ही जाएंगे।

आप वस्त्र पहनते हैं ताकि दूसरे को आपकी नग्नता न दिखाई पड़े। लेकिन अगर जगत में कोई भी न हो, आप घने जंगल में हों, जहाँ कोई भी नहीं है--आप निर्वस्त्र घूमने लगेंगे। वस्त्र की चिंता नहीं रहेगी।

आप घर से निकलते हैं, आइने में चेहरा देखते हैं। क्योंकि कोई दूसरा आपके चेहरे में गंदगी न देख ले, कुरूपता न देख ले--अभद्र न मालूम पड़े। लेकिन आप जंगल में अकेले हों--दर्पण पड़ा-पड़ा टूट जाएगा, आप देखना बंद कर देंगे।

हम जीवन में जो भी कर रहे हैं, वह दूसरे के कारण, दूसरे के लिए। महावीर कहते हैं, हमने जीवन-जीवन में, जन्मों-जन्मों में, जो भी कर्म इकट्ठे किए हैं, वे दूसरे से संबंधित होने के लिए। हमारा सारा खेल यंत्र का है। हमारा सारा शरीर, हमारा सारा मन दूसरे से संबंधित होने का उपकरण है। जब कोई चेतना अपने से संबंधित

होती है, यह सारा उपकरण नीचे गिर जाता है। इसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। इससे हमारा संबंध टूट जाता है।

यह जो संबंध का टूट जाना है, तभी सर्वत्रगामी केवलज्ञान का उदय होता है। तब ऐसे बोध का जन्म होता है, जो सब तरफ फैलता चला जाता है; जिसकी कोई सीमा नहीं है; जो असीम है। तब भीतर से प्रकाश के वर्तुल चारों तरफ फैलते चले जाते हैं, अनंत लोक को घेर लेते हैं। जितना विस्तार है, उसे घेर लेते हैं। महावीर कहते हैं, न केवल लोक का, बल्कि अलोक का भी बोध हो जाता है।

मैंने पीछे आपको कहा कि आधुनिक भौतिक शास्त्री एंटी यूनिवर्स, अलोक की धारणा के करीब पहुंच गए हैं। और पहुंचना जरूरी हो गया, क्योंकि जगत का एक अनिवार्य नियम समझ में आ गया है कि यहां द्वंद्व के बिना कुछ भी नहीं होता। यहां होने का ढंग विपरीत के द्वारा है। यहां सब चीजें विपरीत के साथ मौजूद हैं; अंधेरा प्रकाश के साथ, जन्म मृत्यु के साथ। तो अकेला यूनिवर्स, अकेला लोक नहीं हो सकता, अलोक भी होगा। इससे विपरीत भी कुछ होगा।

महावीर बड़ी अनूठी बात कहते हैं। और तब तो उनके पास कोई वैज्ञानिक उपकरण न थे इसको जानने के। निश्चित ही, यह उनके ज्ञान के विस्तार में ही प्रतीत हुआ होगा। क्योंकि वैज्ञानिक के पास तो उपकरण हैं, महावीर के पास तो कोई उपकरण न थे; कोई प्रयोगशाला न थी; स्वयं को छोड़ कर। खुद ही प्रयोगशाला थे-- इससे ज्यादा तो कुछ भी साथ न था। आंख बंद करके भीतर देखने के सिवा उनकी कोई और विधि न थी। इस विधि के द्वारा उनको यह प्रतीति हुई कि अलोक भी है एंटी यूनिवर्स भी है।

ठीक उस अलोक के नियम इसके बिल्कुल विपरीत होंगे। वह इससे बिल्कुल उलटा है। और वह उलटा होना जरूरी है ताकि यह लोक हो सके। क्योंकि द्वंद्व के बिना जगत में कोई भी अस्तित्व नहीं है। अगर स्त्रियां न हों, तो पुरुष खो जाएं; पुरुष न हों, स्त्रियां खो जाएं।

एक बहुत पुरानी कथा है, अरब में कि एक बार लोग बिल्कुल सुस्त और कहिल हो गए, और ऐसा समय आया कि सब आलसी हो गए। कोई कुछ करना नहीं चाहता था। कोई कुछ करता नहीं था। तो एक मनीषी को पूछा गया कि क्या करें? तो उसने कहा कि तुम एक उपाय करो, सारे पुरुषों को एक द्वीप पर बंद कर दो और सारी स्त्रियों को दूसरे द्वीप पर बंद कर दो। बस, सब ठीक हो जाएगा।

पर उन्होंने कहा कि आप पागल हो गए हैं, इससे क्या होगा? स्त्रियों को एक द्वीप पर बंद कर देंगे, पुरुषों को एक द्वीप पर बंद कर देंगे--इससे सुस्ती कैसे मिटेगी?

उसने कहा कि तुम इसकी फिकर छोड़ो--वे दोनों ही नाव बनाने में लग जाएंगे कि दूसरे द्वीप पर कैसे पहुंचे। सुस्ती बिल्कुल टूट जाएगी। आलस्य बिल्कुल खो जाएगा। उपक्रम आ जाएगा, श्रम शुरू हो जाएगा। पुरुष अकेला नहीं रह पाएगा, स्त्री अकेली नहीं रह पाएगी। वे पास आना चाहेंगे। उपद्रव शुरू हो जाएगा। तुम अराजकता पैदा कर दो, तुम दोनों को अलग कर दो।

द्वंद्व यहां इस पृथ्वी पर जीवन का आधार है। तो महावीर कहते हैं, अलोक और लोक ये दो अस्तित्व की अनिवार्यताएं हैं। जिस व्यक्ति के भीतर मौन घटित होगा, मन समाप्त हो जाएगा; जहां मन समाप्त होता है, वहां मौन है। जो भीतर मुनि हो जाएगा, उसको लोक और अलोक दोनों आलोकित हो जाएंगे, दोनों दिखाई पड़ने लगेंगे। जीवन का मौलिक आधार दिखाई पड़ जाएगा कि द्वंद्व, डुआलिटि, डायलेक्टिक्स, संघर्ष, जीवन का आधार है।

और इस जीवन से द्वंद्व नहीं मिट सकता। कोई चाहे तो अपने भीतर द्वंद्व के पार जा सकता है। लेकिन बाहर द्वंद्व नहीं मिट सकता--नये रूप ले लेगा, नये संघर्ष बना लेगा, नये उपद्रव खड़ा करेगा--क्योंकि बिना उपद्रव के जीवन अस्तित्व में नहीं हो सकता। संघर्ष वहां अनिवार्य है।

"जब सर्वत्रगामी केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है साधक, जब जिन तथा केवली होकर।"

जिन का अर्थ है, जिसने अपने को जीत लिया। अपने को जीतने का अर्थ है, जो दूसरे पर किसी भी अर्थों में निर्भर नहीं रह गया है। दूसरे की निर्भरता जहां पूर्णतया समाप्त हो जाती है, वहां महावीर कहते हैं, व्यक्ति जिन हुआ। और अपने को जिन कहने का हकदार वही है, जो किसी पर किसी भी कारण से निर्भर नहीं है। जो अपने में पर्याप्त है। जिसका होना काफी है। जिसकी चेतना किसी की भी तलाश में नहीं जाती। जो किसी को भी खोजता नहीं है; और कोई न मिले, तो जरा भी पीड़ा नहीं होती। जो अपने साथ रह कर इतना प्रसन्न है कि उसकी प्रसन्नता में कोई भी कमी नहीं है।

अपने ही साथ जो प्रफुल्ल है, उसे महावीर कहते हैं, जिन। और केवली उसे कहते हैं, जिसे इस ज्ञान का अनुभव हो गया है; जिसकी कोई बाधा नहीं है, जिस पर कोई अवरोध नहीं है। जो फैलता ही चला जाता है। जो अनंत प्रकाश है। भीतर के इस अनंत प्रकाश का जिसे अनुभव हो गया। महावीर ने शब्द बड़ा अनूठा चुना है: केवली--अलोन, अकेला, एकाकी, जहां सिर्फ ज्ञान ही रह जाए।

उपनिषदों में कहा जाता है कि जगत का ज्ञान एक त्रिवेणी है। वहां जानने वाला है, जानी जाने वाली वस्तु है, और दोनों के बीच का संबंध है, ज्ञान। वहां तीन हैं।

प्रयाग आप गए होंगे। वहां कुंभ भरता है; त्रिवेणी का मेला जुड़ता है। लेकिन त्रिवेणी बड़ी मजे की है! नदियां वहां दो हैं, तीसरी, कहते हैं, कभी थी। कभी भी नहीं थी। तीसरी अदृश्य है। सरस्वती अदृश्य है, यमुना और गंगा प्रकट हैं। यह त्रिवेणी प्रतीक है भीतर के संगम का।

इस जगत में जो ज्ञान की घटना घटती है, जो तीर्थ निर्मित होता है ज्ञान का, वह तीन से निर्मित होता है: वस्तु, ऑब्जेक्ट, ज्ञेय; ज्ञाता, जानने वाला, सब्जेक्ट; और दोनों के बीच निर्मित होने वाली तीसरी धारा जो दिखाई नहीं पड़ती--ज्ञान। वह ज्ञान, सरस्वती है।

इसलिए सरस्वती ज्ञान की प्रतिमा है। और वह नदी कभी भी नहीं रही दुनिया में। वह हो नहीं सकती। उसके होने का कोई कारण नहीं है। अदृश्य उसका स्वभाव है। पदार्थ दिखाई पड़ता है, देखने वाला दिखाई पड़ता है; दृश्य दिखाई पड़ता है, द्रष्टा दिखाई पड़ता है; दर्शन दिखाई नहीं पड़ता। ज्ञाता, ज्ञेय दिखाई पड़ता है--ज्ञान दिखाई नहीं पड़ता।

मैं यहां बैठा हूं, आपको देख रहा हूं। मैं हूं, आप हैं, और दोनों के बीच एक सरस्वती बह रही है जो दिखाई नहीं पड़ती--जानने की, ज्ञान की, बोध की, दर्शन की। इन तीनों से मिलकर इस जगत का सारा ज्ञान निर्मित हुआ है।

महावीर कहते हैं, जब ज्ञाता भी मिट जाए, ज्ञेय भी मिट जाए, केवल सरस्वती रह जाए; वह जो अदृश्य है, वही एकमात्र शेष रह जाए। जो दृश्य हैं, वे दोनों खो जाएं। क्योंकि दृश्य पदार्थ है, अदृश्य चैतन्य है।

अब यह बड़े मजे की बात है, आप जब प्रयाग जाते हैं तो गंगा-यमुना दिखाई पड़ती हैं, सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। भीतर एक ऐसा प्रयाग भी है, जहां सिर्फ सरस्वती दिखाई पड़ती है--गंगा-यमुना दोनों खो जाती हैं। जहां गंगा-यमुना खो जाती हैं, सरस्वती मात्र रह जाती है, उस अवस्था का नाम "केवल" है।

जो दिखाई पड़ता है, वह नहीं दिखाई पड़ता वहां, और जो नहीं दिखाई पड़ता है, वही केवल दिखाई पड़ता है। इस जगत का दृश्य वहां अदृश्य हो जाता है और उस जगत का अदृश्य यहां दृश्य हो जाता है। इस जगत से वह बिल्कुल विपरीत है। यहां जो अदृश्य है, वहां दृश्य हो जाता है।

पदार्थ और पदार्थ के जानने वालों के बीच, दोनों किनारों के बीच, एक तीसरी अदृश्य धारा बह रही है ज्ञान की। महावीर कहते हैं, वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है; जो दिखाई नहीं पड़ता। और जब तक तुम उसे न जान लोगे, तब तक तुम अज्ञानी ही रहोगे। केवलज्ञान ही एकमात्र ज्ञान है। वस्तुतः, बाकी सब ज्ञान अज्ञान की टटोलें हैं। अज्ञानी आदमी टटोल रहा है; कुछ खोज रहा है; बना रहा है; सिद्धांत निर्मित कर रहा है।

ज्ञानी का अर्थ है, जहां दोनों खो गए। द्वंद्व खो गया और बीच की अदृश्य धारा प्रकट हो गई। उस अदृश्य धारा का नाम केवल है।

"जब केवलज्ञानी जिन लोक-अलोक को, समस्त संसार को जान लेता है, तब मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का निरोध हो जाता है; शैलेशी (अचल-अकंप) अवस्था प्राप्त होती है।"

उस तीसरे में थिर होते ही सारी अथिरता खो जाती है। फिर कोई कंपन नहीं है। फिर कोई चीज हिला नहीं सकती, क्योंकि कोई चीज आकर्षित नहीं कर सकती। फिर कोई चीज डिगा नहीं सकती, क्योंकि कोई चीज आंदोलित नहीं कर सकती। कोई आमंत्रण सार्थक न रहा, फिर कोई निमंत्रण बाहर नहीं बुला सकता।

फिर कुछ भी नहीं है जगत में, जो मैन गेट हो। फिर आप अपने ही मैन गेट पर केंद्र थिर हो गए। अब आप अपने पर हैं--केंद्रित हो गए। आप खड़े हो गए अपनी जगह। आप उस जगह आ गए...। गाड़ी का चाक चलता है, लेकिन चाक के बीच में एक कील है, जो नहीं चलती।

और बड़ा मजा यह है कि कील नहीं चलती, इसलिए चाक चल पाता है। कील भी चलने लगे, तो चाक गिर जाए। कील ठहरी रहती है।

जब तक हम मन के साथ जुड़े होते हैं, हम चाक के साथ जुड़े हैं और जब हम मन से पीछे हटते हैं, शांत और मौन और शून्य हो जाते हैं, तो हम कील पर ठहर गए। कील पर ठहरा हुआ व्यक्ति, सेंटर्ड, स्वयं में ठहरा हुआ व्यक्ति--महावीर कहते हैं--शैलेशी है। वह हिमालय बन गया चेतना का। अब उसमें कोई कंपन नहीं है। अब उसे कोई चीज दुख नहीं दे सकती। क्योंकि अब उसे किसी से सुख की कोई आकांक्षा नहीं है। ऐसा व्यक्ति आनंद को उपलब्ध हो जाता है; या चाहें तो कहें, ब्रह्म को उपलब्ध हो जाता है।

महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति परमात्मा हो गया। परमात्मा का अर्थ है, ऐसी शैलेशी अवस्था को पा लेना।

"जब मन, वचन और शरीर के योगों का निरोधकर आत्मा शैलेशी अवस्था पाती है; पूर्ण रूप से स्पंदन-रहित हो जाती है, तब सब कर्मों का क्षयकर सर्वथा मल-रहित होकर सिद्धि को प्राप्त होती है।"

महावीर के लिए "सिद्धि" अंतिम शब्द है। सिद्ध का अर्थ है: वन हूँ हैज रीचडा। सिद्ध का अर्थ है: जो पहुंच गया। सिद्ध का अर्थ है: जिसे मंजिल मिल गई। सिद्ध का अर्थ है: जिसकी यात्रा का अंत हुआ। सिद्ध का अर्थ है: जिसे अब कहीं जाने को न बचा। सिद्ध का अर्थ है: जिसे अब कुछ पाने को न बचा। सिद्ध का अर्थ है: जिसे अब कुछ जानने को न बचा। जो हो सकता था आखिरी इस जीवन में, वह घट गया। बीज फूल तक आ गया। इसके पार कोई यात्रा नहीं है। चेतना अपनी पूरी संभावनाओं को वास्तविक कर ली। जो-जो हो सकता था, वह हो गया। अब चेतना में कोई और बीज नहीं बचा, सब बीज प्रकट हो गए।

इस पूर्ण प्रकटावस्था को महावीर कहते हैं, परमात्मा की अवस्था। इसलिए महावीर के लिए परमात्मा नहीं है, जितनी चेतनाएं हैं--अनंत चेतनाएं हैं--उतने ही परमात्मा हैं--अनंत परमात्मा हैं। कुछ हैं, जो बीज में बंद हैं। कुछ हैं, जो तड़प रहे हैं और बीज को तोड़ रहे हैं। कुछ हैं, जो अंकुरित हो गए हैं और फूलों की तरफ बढ़ रहे हैं। और कुछ हैं, जो फूल हो गए और आखिरी अवस्था को पहुंच गए हैं।

सभी परमात्मा हैं--कुछ बीज में, कुछ अंकुर में; कोई वृक्ष में, कोई फूल में। लेकिन उनके स्वभाव में कोई अंतर नहीं है; स्वरूप में कोई अंतर नहीं है। अनंत परमात्माओं की धारणा है महावीर की। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भगवत्ता है।

सिद्धि का अर्थ है: भगवत्ता को पा लेना, भगवान हो जाना। सिद्धि का अर्थ है: जहां अब कोई वासना का सवाल न रहा; जहां से पार जाने का कोई उपाय नहीं है; जो आखिरी बिंदु है जीवन का।

इसी की हम तलाश भी कर रहे हैं। लेकिन जहां हम तलाश कर रहे हैं, शायद वह जगह नहीं है जहां इसे पाया जा सके। हम इसी को खोज भी रहे हैं--कोई धन में, कोई पद में, कोई प्रतिष्ठा में, कोई शास्त्र में। लेकिन

यह खोज वहां हो नहीं सकती, उसे खोजना होगा भीतर। जहां भी हम खोज रहे हैं हम गलत खोज रहे हैं। और इसलिए जब हमें नहीं मिल पाता, तो हम इस बात का ख्याल नहीं लेते कि हमारी खोज गलत थी। हम सोचते हैं, हमारा भाग्य गलत था। हम सोचते हैं, कोई चीज बाधा बन गई।

जब हम एक व्यक्ति में सुख खोजते हैं; नहीं पाते हैं, तो हम सोचते हैं, यह व्यक्ति ही गड़बड़ है, इसीलिए सुख नहीं मिल पा रहा है, किसी और में खोजें। धन में खोजते हैं; नहीं मिलता, तो सोचते हैं, पद में खोजें, पद में खोजते हैं; नहीं मिलता है तो सोचते हैं, शास्त्र में खोजें।

लेकिन एक दिशा सदा अछूती रह जाती है; हम कभी नहीं सोचते कि अपने में खोजें। सदा कहीं, किसी और में! जब तक हमें यह ख्याल न आ जाए कि हम कहीं भी खोजें, खोज गलत होगी; जब तक हम अपने में न खोजें। और इसीलिए हमें दूसरों में इतने दोष दिखाई पड़ते हैं। दूसरे में दोष दिखाई पड़ने का कुल कारण इतना है कि जहां-जहां हम असफल होते हैं, वहां-वहां दोष खोज कर हम अपने मन को तृप्त कर लेते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया था। नौकरी के लिए एक दफ्तर में गया। वाचमैन की, पहरेदार की जगह खाली थी। उस मालिक ने कहा कि ठीक है, लेकिन मैं तुम्हें बता दूं कि हमें किस तरह का व्यक्ति चाहिए। तुम ठीक हो, काम हम दे सकेंगे, लेकिन फिर भी तुम समझ लो। हमें ऐसा व्यक्ति चाहिए जो चौबीस घंटे संदेह करे--वाचमैन। कोई भी भीतर आए, तो कभी आस्था और भरोसे से न देखे, चौबीस घंटा संदेह करे। और चौबीस घंटा लोगों के दोष, भूल-चूक निकालने की कोशिश में लगा रहे। और चौबीस घंटा लड़ने को तत्पर रहे। दुष्ट स्वभाव हो, कर्कश आवाज हो। भयावह चेहरा हो और जरा ही कोई उत्तेजना दे दे तो बिल्कुल शैतान उसके भीतर प्रकट हो जाए--हमें ऐसा आदमी चाहिए। ठीक है, तुम चल पाओगे।

नसरुद्दीन ने कहा: क्षमा करें--आइ एम सारी, दिस जाब इज नाट फार मी, बट आई विल सेंड वाइफ अराउंड--यह काम मेरा नहीं है, लेकिन मैं अपनी पत्नी को भेज दूंगा। बिल्कुल जैसा आप कह रहे हैं, वैसा ही व्यक्तित्व है उसका! अपने में दोष देख पाना तो बहुत मुश्किल है। वह आदमी कह रहा है--जिसको नौकर रखना है--कि तुम ठीक हो। लेकिन नसरुद्दीन कहता है, यह नौकरी मेरे... मैं इसमें नहीं जमूंगा, मेरी पत्नी... !

दोष सदा दूसरे में दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि जो-जो हम पाना चाहते हैं दूसरे से, वह-वह हमें नहीं मिलता। वह मिल नहीं सकता--इसलिए नहीं कि दूसरे में कोई भूल है। वह मिल ही नहीं सकता--वह वस्तुओं का स्वभाव नहीं है।

हम दूसरे से प्रेम चाहते हैं और क्रोध पाते हैं। इसलिए नहीं कि दूसरा क्रोधी है। दूसरे से इसका कोई संबंध नहीं है। जो भी प्रेम चाहता है, वह क्रोध पाएगा। वह प्रेम की चाह में ही हम दूसरे में क्रोध पैदा कर रहे हैं। यह बड़ी मुश्किल बात है; जटिल बात है।

हमारी वासना ही उपद्रव का कारण है। हम जो-जो मांगते हैं, उससे विपरीत हमें मिलता है। आप खुद अपने जीवन को देखें। जो-जो आपने मांगा है, उससे विपरीत आपने पाया है। लेकिन आप सोचते हैं कि विपरीत मिला इसलिए कि दूसरी तरफ गलत लोग थे।

नसरुद्दीन के गांव में पहली दफा टेलीफोन लगा। बूढ़ा आदमी था और प्रतिष्ठित था, और सारे लोग जानते थे, जाहिर था--या कहिए बदनाम था। तो टेलीफोन कंपनी ने सोचा कि पहले टेलीफोन का उद्घाटन नसरुद्दीन करे। उसकी पत्नी तीस मील दूर कहीं गांव में गई थी। तो उसकी पत्नी से मुलाकात उद्घाटन में।

नसरुद्दीन बामुश्किल राजी हुआ। उसने कहा कि बामुश्किल तो वह गई है और तुम उसी से मुलाकात करवा रहे हो। और हम किसी तरह थोड़ी शांति अनुभव कर रहे थे, तब यह एक उपद्रव टेलीफोन का गांव में आ गया! मतलब यह है कि अब पत्नी से कोई छुटकारा नहीं--वह बाहर जाए तो भी!

फिर भी लोग नहीं माने तो वह राजी हो गया। आषाढ़ के दिन थे, वर्षा का मौसम था। उसने टेलीफोन हाथ में लिया कंपते हुए, डरते हुए--जैसा कि सभी पति पत्नी को फोन करते वक्त नर्वस... हाथ कंपने लगता है। और फिर यह तो पहला टेलीफोन था और उसने कभी टेलीफोन किया नहीं था।

उसका हाथ कंपने लगा। और तभी संयोग की बात, जोर से बिजली कड़की और सामने के वृक्ष पर बिजली गिरी। उसके हाथ से टेलीफोन छूट गया, वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। किसी तरह सम्हाल कर अपने को उसने उठाया और उसने कहा कि दैट्स आल राइट! "दैट्स माई ओल्ड वुमन!"

उसने कहा कि बिल्कुल पक्की बात है कि वही बोली है, यही मेरी पत्नी है! यह हम पहले ही कहे थे कि यह और उपद्रव टेलीफोन का यहां मत लगाओ!

तो दूसरे में हम सदा ही खोज पाते हैं--सभी। नसरुद्दीन अति पर हो, आप थोड़े पीछे हों, इससे फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हमारे जीवन की पूरी अड़चन यही है कि सारा दुख हमें कोई दे रहा है। कोई परिस्थिति, कोई व्यक्ति, कोई घटना--लेकिन सदा बाहर से आ रहा है।

महावीर कहते हैं कि बाहर से कुछ भी नहीं आता। हम बाहर से मांगते हैं, उससे विपरीत हमें मिलता है। यह सीधा उत्तर है हमारी मांग का। सिद्धावस्था वैसी अवस्था है, जब बाहर से हमारी मांग गिर गई, और हम भीतर तृप्त हैं। और हम भीतर जैसे हैं, वैसे होने से हम परिपूर्ण तथाता में हैं: टोटल एक्सेप्टेबिलिटी पूर्ण संतुष्टि।

सिद्ध को आप हिला नहीं सकते। आप कहें कि वहां हीरे की खदान मकान के बगल में है, तो भी वह हिलेगा नहीं। आप कहें कि इंद्र निमंत्रण देने आया है कि चलो स्वर्ग में, आपकी तपश्चर्या काफी हो गई, तो भी वह हिलेगा नहीं। आप उसे किसी भी तरह आकर्षित नहीं कर सकते। आप कुछ भी नहीं दे सकते हैं, जो उसे कंपित कर दे। आपके पास कुछ भी नहीं है। सारा जगत राख हो गया। इस जगत में कुछ भी मूल्यवान न रहा। सारा जगत निर्मूल्य हो गया।

ध्यान रहे, मूल्य हम देते हैं। जगत में सभी चीजें निर्मूल्य हैं। मूल्य हमारा दिया हुआ है। कितना हम मूल्य देते हैं, यह हम पर निर्भर है। किस चीज को हम मूल्य देते हैं, यह हम पर निर्भर है।

सारा मूल्य मनुष्य कल्पित है। इसलिए अलग-अलग जगह अलग-अलग मूल्य दिखाई पड़ते हैं। अलग-अलग समाज अलग-अलग चीजों को मूल्य देते हैं। और जहां जो चीज मूल्यवान है, वहां मूल्यवान है। आपको दो कौड़ी की लगेगी, क्योंकि आपके समाज में आपने उस चीज को कोई मूल्य नहीं दिया है।

मूल्य व्यक्ति देता है। और मूल्य दिए जाते हैं वासना से। सिद्ध के लिए जगत निर्मूल्य है।

और ध्यान रहे, जब तक जगत में मूल्य है तब तक आप भीतर निर्मूल्य रहेंगे। जब जगत से मूल्य खो जाएगा, तो भीतर मूल्य स्थापित हो जाता है।

सिद्ध की आत्मा में मूल्य है, और सारा जगत निर्मूल्य है। इसलिए शंकर कहते हैं कि आत्मा ही सत्य है, सारा जगत माया है। माया का मतलब इतना ही है केवल कि वहां हमने ही डाला था मूल्य और हमने ही निकाला था। जो हम डालते हैं, वही हम निकालते हैं। हम पहले प्रोजेक्ट करते हैं मूल्य, और फिर हम मूल्य से आंदोलित होते हैं। बड़ा खेल है!

महावीर कहते हैं, सिद्ध वह है, जो इस खेल के बाहर हो गया।

"जब आत्मा सब कर्मों का क्षय कर--सर्वथा मल-रहित होकर सिद्धि को पा लेती है, तब लोक के मस्तक पर, ऊपर के अग्रभाग पर स्थित होकर सदा काल के लिए सिद्ध हो जाती है।"

महावीर कहते हैं: लोक और आलोक, ये द्वंद्व हैं। जैसा मैंने कहा यमुना और गंगा, ये दो दृश्य हैं और सरस्वती अदृश्य है। लोक और अलोक, मैटर और एंटी मैटर--विज्ञान की भाषा में कहें--ये दो विरोध हैं। इन

दोनों विरोधों के बीच लोक के अग्रभाग पर और अलोक के प्रथम भाग पर सिद्ध चेतना थिर हो जाती है। पदार्थ और अ-पदार्थ, लोक और अलोक--इन दोनों के द्वंद्व के मध्य में चेतना थिर हो जाती है।

इस अवस्था का फिर कोई अंत नहीं है। यह अनंत अवस्था है। यह टाइमलेसनेस है। यह शाश्वतता है। इस क्षण से फिर कोई दूसरा क्षण नहीं है। यह क्षण अनंत है।

इससे बड़े विचार पैदा हुए, बड़ी चर्चा हजारों साल तक चली है। क्योंकि पश्चिम में वे पूछते हैं कि जब भी कोई चीज शुरू होती है तो उसका अंत होता है। अगर यह सिद्धावस्था शुरू होती है तो यह अंत कब होगी?

महावीर कहते हैं, इसका कोई अंत नहीं होता, यह सिर्फ शुरू होती है। सिद्धावस्था की सिर्फ बिगनिंग है, अंत नहीं है। यह बड़े मजे की बात है। और महावीर की बात समझने जैसी है। महावीर कहते हैं: संसार का अंत है, प्रारंभ नहीं है; सिद्धावस्था का प्रारंभ है, अंत नहीं है। और दोनों मिल कर एक वर्तुल बन जाते हैं।

महावीर कहते हैं, संसार का कोई प्रारंभ नहीं है, यह सदा से है। इसलिए महावीर स्रष्टा को नहीं मानते, या कभी क्रिएशन हुआ, इसको नहीं मानते; सृष्टि की गई, इसको नहीं मानते। वे कहते हैं, संसार सदा से है। इसका कोई प्रारंभ नहीं है। दि वर्ल्ड इज बिगनिंगलेस। सिद्धावस्था का प्रारंभ है। सिद्धावस्था के प्रारंभ का अर्थ हुआ कि संसार का अंत। जैसे ही कोई सिद्ध हुआ, उसके लिए संसार का अंत हो गया, संसार शून्य हो गया।

तो महावीर कहते हैं: संसार का प्रारंभ नहीं है, अंत है; सिद्धावस्था का प्रारंभ है, अंत नहीं है। और दोनों मिल कर वर्तुल को पूरा कर देते हैं।

हम एक बड़ी लकीर को खींचें। इस लकीर को हम दो हिस्सों में बांट दें। पहले हिस्से के अग्रभाग पर सिद्धावस्था को रख दें; उसका कोई अंत नहीं है, प्रारंभ है। सिद्धावस्था एक दिन प्रारंभ होती है, लेकिन उसका अंत कभी नहीं होता। यह आधी बात हुई, आधा संसार है। उसका प्रारंभ नहीं है, उसका अंत है। दोनों को जोड़ दें तो एक वर्तुल बन जाएगा।

महावीर कहते हैं; ये दोनों घटनाएं एक ही विस्तार के दो हिस्से हैं। सिद्ध पहुंच गया वहां, जहां से फिर कोई रूपांतरण नहीं--न गिरना, न उठना; न आगे न पीछे।

अनेक दार्शनिकों ने सवाल उठाया है कि जब उसका कोई अंत नहीं होगा--इतनी लंबी, एण्डलेस, अंतरहित स्थिति होगी, तो हम उससे ऊब नहीं जाएंगे? उससे घबड़ाहट पैदा नहीं हो जाएगी? उससे आदमी भागना नहीं चाहेगा?

महावीर कहते हैं कि जब भी हम सोचते हैं, अंत-रहित, तो हमारा मतलब होता है, बहुत लंबी है, लेकिन कहीं अंत होगा। महावीर कहते हैं, जब मैं कहता हूं, अंतरहित, तो उसका मतलब ही यह होता है कि जहां लंबाई का सवाल नहीं है, शाश्वतता का सवाल है, इटरनिटी का सवाल है। तब एक क्षण, जो प्राथमिक क्षण है, वही अंतिम क्षण है। वहां कोई चीज गुजरती हुई मालूम भी नहीं पड़ेगी; वहां समय व्यतीत होता हुआ मालूम भी नहीं पड़ेगा; क्योंकि समय संसार का हिस्सा है।

कालातीत है चेतना की सिद्धावस्था। वहां कोई समय नहीं है। इसलिए आपको ऐसा नहीं लगेगा कि बहुत देर हो गई सिद्ध हुए। ऐसा कभी नहीं लगेगा। क्योंकि देर का, ज्यूरेशन का कोई सवाल नहीं है। समय वहां है नहीं। वहां आपकी घड़ी रुक जाएगी। वहां घड़ी नहीं चल सकती।

जीसस से कोई पूछता है, तुम्हारे स्वर्ग के राज्य में खास क्या बात होगी? तो जीसस कहते हैं--देयर शैल बी टाइम नो लांगर--वहां समय नहीं होगा।

समय संसार का हिस्सा है, क्योंकि समय परिवर्तन का हिस्सा है। अगर हम ठीक से समझें, तो परिवर्तन होता है, इसलिए समय का हमें पता चलता है। अगर परिवर्तन न हो, तो समय का पता न चले। जितना ज्यादा परिवर्तन होता है, उतना ज्यादा समय का पता चलता है।

इसलिए पश्चिम में लोग ज्यादा टाइम कांशस हैं--ज्यादा समय का पता चलता है, क्योंकि परिवर्तन बहुत हो रहा है। पूरब में लोग उतने समय से परेशान नहीं हैं। अगर जंगल में जाएं आदिवासियों के पास, उन्हें समय से कोई लेना-देना ही नहीं है। समय का कोई सवाल नहीं है। समय जैसे है ही नहीं। सब चीजें ठहरी हुई हैं।

जब परिवर्तन जोर से होता है, तो समय का पता चलता है। परिवर्तन धीमा होता है, तब समय भी धीमा हो जाता है। जब परिवर्तन बिल्कुल नहीं होता, तो समय समाप्त हो जाता है।

अगर ठीक से समझें तो समय का मतलब हुआ, परिवर्तन। परिवर्तन के बीच जो बोध होता है, वह समय है। अन्यथा समय का हमें कोई पता नहीं होगा। अगर आप एक ऐसी अवस्था में हों, जहां कुछ भी न बदले--समझें, इस कमरे में आप बैठे हैं, कुछ भी न बदले, सब चीजें थिर हों--तो आपको समय का कोई भी पता नहीं चलेगा। समय का पता चलता है, क्योंकि चीजें बदल रही हैं। एक बदलाहट से दूसरी बदलाहट के बीच जो खाली जगह है, उसमें ही समय का पता चलता है।

समय परिवर्तन का बोध है।

तो महावीर कहते हैं, सिद्धावस्था में कोई परिवर्तन नहीं है, इसलिए समय भी नहीं है। वहां समय का कोई पता नहीं चलता। सिद्ध होते ही समय गिर जाता है, संसार गिर जाता है।

असल में वासना के गिरते ही परिवर्तन समाप्त हो जाता है। जहां तक वासना है, वहां तक परिवर्तन है। जहां वासना नहीं है, सिर्फ आत्मा है, वहां कोई परिवर्तन नहीं है। वहां शाश्वतता है, इटरनिटी है।

यह जो सिद्धावस्था है, यही तलाश है हर प्राण की। यही खोज है हर श्वास की। प्राण इसी के लिए आतुर हैं कि एक ऐसी जगह मिल जाए, जिसके पार पाने को कुछ न बचे। आप कितना ही धन पा लें, ऐसी जगह नहीं मिलती। क्योंकि और धन पाने को बच रहता है! कितने ही बड़े पद पर हो जाएं, वह पद नहीं मिलता। और पद पाने को बच रहते हैं! और कितने ही शास्त्र के ज्ञाता हो जाएं, कुछ फर्क नहीं पड़ता। और शास्त्र बचे रहते हैं!

इस जगत में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसको पाकर आप कहें, इसके आगे कुछ भी नहीं बचता। आगे बचता ही है! इसलिए इस जगत की उपलब्धियों में कोई सिद्धावस्था नहीं हो सकती। सिर्फ अंतर्यात्रा में एक जगह है, जहां पाने को कुछ भी नहीं बचता।

जो अपने को पा लेता है, उसे पाने को कुछ भी नहीं बचता है। और जो अपने को नहीं पाता, उसे पाने को सदा ही बचा रहता है। और जब तक वह अपने को न पा लेगा, तब तक कितना ही भटके, कितनी ही यात्रा करे; यात्रा का कोई अंत नहीं है। यात्रा मिटती है अपने को पाकर। स्वयं में होकर ही यात्रा समाप्त होती है। जो स्वयं में पूरी तरह हो गया, वही सिद्ध है।

महावीर इस सिद्धयोग के लिए ही इन सारे सूत्रों को दिए हैं। क्षण भर को आप भी सिद्ध होने का रस ले सकते हैं। क्षण भर को भी रस मिल जाए, तो आपकी खोज शुरू हो जाए। क्षण भर को भी आपका मन न दौड़ता हो, तो एक क्षण को झलक मिलती है सिद्ध होने की। एक क्षण को पता लगता है उसका कि क्या होता होगा सिद्ध को! पर वह आनंद भी अपरिसीम है। एक क्षण को भी झलक, एक बिजली कौंध जाए भीतर, तो भी आप शुरू हो गए, चल पड़े।

जिन्हें भी उस स्थान की तलाश हो, जिसके आगे कोई स्थान नहीं और जिन्हें भी वह धन पाना हो, जो छीना नहीं जा सकता, जो नष्ट नहीं होता, जो खोया नहीं जा सकता; जिन्हें भी वह पद पाना हो, जिस पद के बिना आप हमेशा दीन-हीन मालूम पड़ेंगे--चाहे कुछ भी पा लें, आपकी दीन-हीनता चाहे कितने ही सम्राट के वस्त्रों में छिप जाए, दीन-हीनता ही रहेगी--जिस पद को पाकर सारी दीनता मिट जाती है और वस्तुतः व्यक्ति सम्राट होता है... !

स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे। जब वे अमरीका गए तो लोगों को बड़ी परेशानी होती थी। क्योंकि वे हमेशा अपने को कहते थे "राम बादशाह।" उन्होंने एक किताब लिखी, जिसका नाम है: "राम बादशाह के छह हुक्मनामे--सिक्स आर्डर्स फ्रॉम एम्परर राम।" अमरीका का प्रेसिडेंट उनसे मिलने आया था, वह जरा बेचैन हुआ। और उसने कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन आप बिल्कुल फकीर हैं, और अपने को बादशाह क्यों कहते हैं?

राम ने कहा: मैं इसीलिए बादशाह कहता हूं कि मुझे पाने को अब कुछ भी नहीं बचा है। जिसको पाने को कुछ बचा है, वह भिखारी है, अभी वह मांगेगा। जिसको पाने को कुछ नहीं बचा, वह सम्राट है। मुझे पाने को कुछ भी नहीं बचा है। मैं सम्राट इसलिए अपने को कहता हूं कि अब इस जगत में कुछ भी नहीं है, जो मेरी वासना का आकर्षण बन जाए। अब मैं मालिक हूं! मेरे पास कुछ भी नहीं है, लेकिन मैं हूं! यह मेरी मालिकियत है, यही मेरा जिनत्व है।

महावीर कहते हैं, हर व्यक्ति जिनत्व को, सिद्धत्व को खोज रहा है। जैसे हर सरिता सागर को खोज रही है, ऐसे हर चेतना, हर आत्मा सिद्धत्व को खोज रही है। दिशाएं भटक जाएं, मार्ग भूल-चूक से भरे हों, लेकिन खोज वही है। धन में भी हम वही खोज रहे हैं; पद में भी वही खोज रहे हैं; संसार में भी वही खोज रहे हैं; प्रेम में भी वही खोज रहे हैं। हम खोज रहे हैं कुछ और, पर जहां खोज रहे हैं, वहां वह मिलता नहीं, इसलिए हम पीड़ित हैं; इसलिए हम दुखी हैं।

जिस दिन हमें ठीक दिशा का बोध हो जाए और जिस दिन हम भीतर की तरफ चल पड़ें, और थोड़ी सी भी भनक पड़ने लगे कानों में सिद्धावस्था की, थोड़ा सा भी स्वर गूंजने लगे उस अनंत संगीत का, थोड़ी सी सुगंध आने लगे, थोड़ा सा प्रकाश स्पर्श करने लगे, फिर इस संसार का कोई मूल्य नहीं है।

जरा सा संस्पर्श, फिर जादू की तरह खींचने लगता है। एक बार व्यक्ति भीतर की तरफ मुड़ा कि खींच लिया जाता है। फिर केंद्र खुद ही खींच लेता है। लेकिन उस मुड़ने के लिए ध्यान के क्षण चाहिए। थोड़ी देर के लिए संसार से अपने को बंद करके भीतर की तरफ खुला छोड़ देना जरूरी है ताकि मौका मिले कि भीतर का चुंबक आपको खींच सके। थोड़ी देर के लिए भीतर के लिए अवेलेबल, उपलब्ध होना चाहिए--कि आप खुले हैं और राजी हैं।

चौबीस घंटे में एक घंटा निकाल लें। उस एक घंटे में कुछ भी न करें, आंख बंद करके बैठ जाएं और भीतर के अंधेरे से राजी हों। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे प्रकाश आना शुरू होगा। और धीरे-धीरे प्रतिक्रमण शुरू होगा; चेतना भीतर मुड़ने लगेगी। बाहर कोई मार्ग न पाकर भीतर की तरफ मुड़ना अनिवार्य हो जाएगा। और एक किरण आपको मिल जाए, सिद्ध होने की एक झलक, फिर आपको कोई रोक न सकेगा। फिर कितने ही संसार चारों तरफ खड़े आपको बुलाते रहें, निर्मूल्य हैं। सब स्वप्न हो गया! जैसे नींद जिसकी टूट जाए, फिर स्वप्न कितना ही मधुर क्यों न रहा हो, वापस नहीं बुला सकता। ऐसे ही, जिसकी तंद्रा में एक किरण सिद्धावस्था की उतर आए, फिर संसार व्यर्थ है। फिर उसे नहीं बुला सकता।

ऐसी ही चेतना का नाम संन्यस्त चेतना है। संन्यास प्रारंभ है, सिद्ध होना अंत है।

आज इतना ही।